जगद्गुरु श्रीत्रिदण्डिग्रन्थमालाया उनचत्वारिंशत्तमपुष्पम्

सर्वेश्वर श्रीसीतारामाभ्यां नमः

श्रीरामानन्दसम्प्रदायके ३९वे आचार्य
महामहोपाध्याय जगद्गुरु
श्रीरामानन्दाचार्य रघुवराचार्य

स्मृतिग्रन्थः

प्रकाशक
विश्रामद्वारकास्थ पश्चिमाम्नाय श्रीरामानन्दाचार्यपीठ
श्रीशेषमठ का धर्मप्रचार विभाग
पो० शीगडा, वाया-बगवदर
पोरबन्दर (सौराष्ट्र)

सम्पादकमण्डल
स्वामी रामेश्वरानन्दाचार्य
पण्डित शरच्चन्द्र शास्त्री
स्वामी हरिप्रसादाचार्य
स्वामी सीतारामाचार्य

तिथि
माघशुक्ल ५ (वसन्तपञ्चमी) २०४३ मङ्गलवार
श्रीरामानन्दाब्द ६८७ दि० ३।२।१९८७

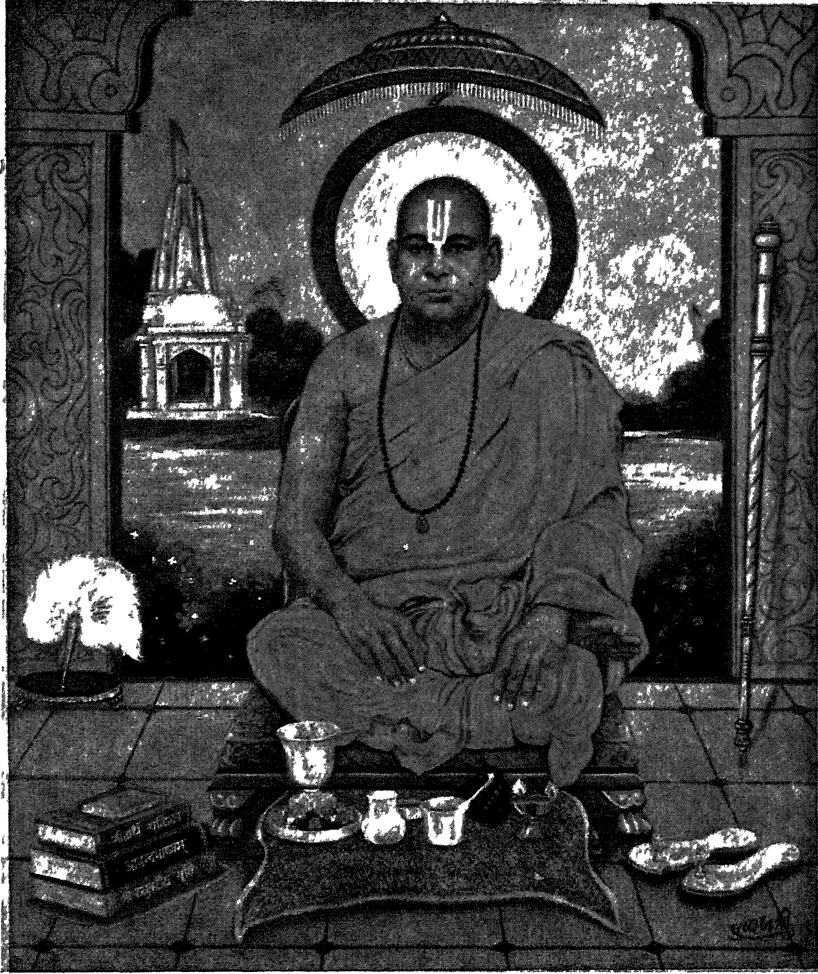
मुद्रक
आनन्दभाष्यमुद्रणालयम्
आचार्यपीठ-अहमदाबाद-३८०००७

श्री रामानन्दसम्प्रदाय के ३९ वें आचार्य

जगद्विजयी महामहोपाध्याय

जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्य रघुवराचार्यजी वेदान्तकेसरी

ज. गु श्री रामानन्दाचार्य पीठ–श्रीशेषमठ–शींगडा–सौराष्ट्र



चत्वारिंशैकहीने प्रथमरजतसिंहासने न्यस्तपाद:
नानोपायैर्विशिष्टद्वयमधुररसं वर्षयन् शस्तवाद:।
सवादो यस्य हर्षं वितरति विदुषः संश्रुत सिंहनाद:
आचार्यस्तेजसाऽसौ जयति रघुवरो रामसेवासुधार्द्र: ॥

सर्वेश्वर श्री सीतारामजी

जगद्‌गुरु श्री रामानन्दाचार्यपीठ

विश्रामद्वारका–श्रीशेषमठ पोरबन्दर–सौराष्ट्र



प्रथितभानुकुलाम्बुजभास्कर
जनकजाहृदयैकविभूषणम् ।
शिवविरिञ्चिनुताङ्घ्रिसरोरुह
रघुपतिं सतत प्रणमाम्यहम् ।।

विजयादशमी १९४३ २००७ वमन्तपञ्चमी



SANAD

To

Mahant Shri Raghuvaracharyaji,
Mahant of Shingda Math,
Porbandar State

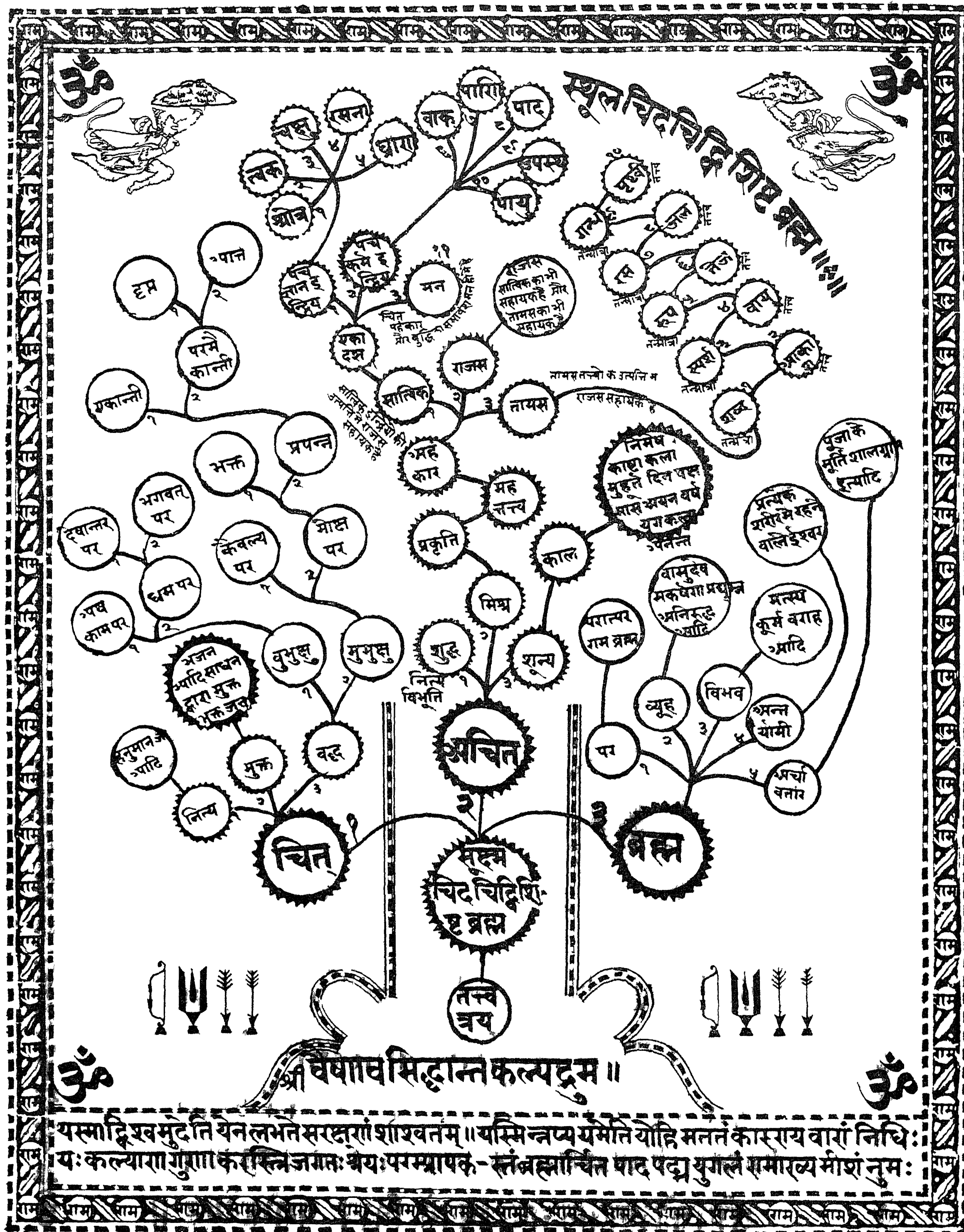
I hereby confer upon you the title of Mahamahopadhyaya as a personal distinction

Wavell
F.M.
Viceroy of India

New Delhi
The 14th June 1945



रामानन्दनयार्यवर्ययतिभिः स्वाचार्यभाः मंभूतो
दुर्वादान् मददन्तिनोविदरयन् मंकाशते केसरी ।
शिष्ट्वा शिष्यवरान् सुतीर्थपदवीं सम्पादयल्लक्ष्यते
श्रीयुक्तोजयतात् सदा रघुवरो विश्वे यशोहर्षयन् ॥


स्थूल चिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म ॥
चक्षु
रसन
घ्राण
त्वक्
श्रोत्र
वाक्
पाणि
पाद
उपस्थ
पायु
पञ्च ज्ञान इन्द्रिय
पञ्च कर्म इन्द्रिय
मन
एकादश
राजस
सात्विक
तामस
राजस सात्विक का भी सहायक है और तामस का भी सहायक
गन्ध
रस
रूप
स्पर्श
शब्द
तन्मात्रा
महत्तत्व
प्रकृति
मिश्र
शुद्ध
शून्य
नित्य विभूति
काल
निमेष काष्ठा कला मुहूर्त दिन पक्ष मास अयन वर्ष युग कल्प
अचित
चित
ब्रह्म
नित्य
मुक्त
बद्ध
हनुमान आदि
बुभुक्षु
मुमुक्षु
भजन आदि साधन द्वारा मुक्त भक्त जन
अर्थ काम पर
धर्म पर
देवान्तर पर
भगवत पर
कैवल्य पर
मोक्ष पर
भक्त
प्रपन्न
एकान्ती
परमैकान्ती
दृप्त
आर्त
पर
व्यूह
विभव
अन्तर्यामी
अर्चावतार
परात्पर राम ब्रह्म
वासुदेव संकर्षण प्रद्युम्न अनिरुद्ध आदि
मत्स्य कूर्म वराह आदि
प्रत्यक्ष शरीर में रहने वाले ईश्वर
पूजा के मूर्ति शालग्राम इत्यादि
सूक्ष्म चिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म
तत्त्व त्रय
श्री वैष्णव सिद्धान्त कल्पद्रुम ॥
यस्माद्विश्वमुदेति येन लभते संरक्षणं शाश्वतम् ॥ यस्मिन्नप्ययमेति योहि मनतं कारुण्य वारां निधिः
यः कल्याण गुणाकरस्त्रि जगतः श्रेयः परम्प्रापकः - स्तं ब्रह्मार्चित पाद पद्म युगलं रामाख्य मीशं नुमः



आमुख



विश्रामद्वारकास्थ जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यपीठ

卐 एक पौराणिक तीर्थ 卐

स्थिति—ललितनगर पोरबन्दर–सुदामापुरीसे लगभग ३५ किलोमीटर के अन्तर पर उत्तरपूर्वके कोनेमें यह तीर्थ अवस्थित है । आज वहाँ विश्रामद्वारका(शींगडा) नामक ग्राम है जो वर्तु तथा कमण्डलु नदियोके बीच तट पर स्थित है ।

यातायातके साधन—पोरबन्दरसे द्वारकाकी ओर जानेवाली राज्य परिवहनकी बसोका एक स्टैण्ड मजीवाणा है । यहाँसे ५ किलोमीटर उत्तरमे यह तीर्थ अवस्थित है यहाँ अब एक गाव है जिसे विश्रामद्वारका (शींगडा) (शृंगपुर) कहते हैं । पोरबन्दरसे दिनमें पाच बार राज्य परिवहनकी बसे जिनपर "पोरवन्दर शिशली वाया शींगडा" लिखा रहता है, ठेठ तीर्थके मुख्य फाटक "श्रीत्रिदण्डि सस्थान श्रीरामानन्दाचार्यपीठ श्रीशेषमठ' के प्रवेश–

(श्रीविश्रामद्वारका तीर्थका एक विहंगम दृश्य)

द्वारतक पहुँचाती है और वहासे पोरबन्दरकी ओरके यात्रियोको वापस लाती है। द्वारकाकी ओरसे आनेवाले तीर्थयात्री मजीवाणा उतरकर तीर्थ तक पहुचते है ।

इतिहास—वर्तमान शीगडा नामक गाव जो लगभग ३५० वर्ष पहले बसा है, से पूर्व वहा क्या था निश्चित रूपसे कुछ कहा नही जा सकता। वैसे उस किंवदन्तीमे इस तीर्थ विषयक इतिहासकी झलक दिखाती है जिसमे मलिककाफूर द्वारा द्वारका ध्वसका विवरण है। वस्तुत वर्तमान द्वारकाको नाममात्रकी क्षति पहुची थी परन्तु यह तीर्थ विश्रामद्वारका ही नष्ट भ्रष्ट कर दिया गया था ऐसा पौराणिक एव किंवदन्ती परक साहित्यसे प्रतीत होता है ।

किंवदन्तिया इस तीर्थकी स्थितिको द्वापरमे लेजाती है और मान्यता है कि भगवान् कृष्णने द्वारका जाते हुए यहा विश्राम किया था एक ऐसी भी जनश्रुति है कि श्रीसुदामाजीने यहा विश्राम किया था। यह घटना तबकी कही जाती है जब वे भगवान श्रीकृष्णसे मिलने द्वारका जा रहे थे। एक ऐसी भी मान्यता है कि त्रेतायुगीन× ऋषिशृगीजी भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनार्थ जाते हुए अशक्त होकर यही रुक गये थे ओर भक्तवत्सल भगवानको स्वय ही उन्हे दर्शन देनेके लिये दौड आना पडा था।+ आचार्यपीठकी परम्परा द्वारा इस तीर्थको कमसे कम ई० सन् पूर्व द्वितीय शताब्दीका कहा जा सकता है क्योकि उसमे श्रीसम्प्रदायके एक आचार्य श्रीसदानन्दाचार्य द्वारा यहा आना कहा गया है। आचार्यजीका समय ई० पूर्व २८०–२३ है। "श्रीत्रिदण्डि मस्थानश्रीरामनन्दाचार्यपीठ श्रीशेषमठ" शीर्षक तले मठीय मान्यताये संकलित है ।

सभी कुछ विस्मृति के गहन गर्त मे है जहा केवल मठीय परम्पराओ तथा किंवदन्तियोके माध्यमसे ही झांका जा सकता है। वस्तुत आचार्यपीठका इतिहास ही तीर्थस्थान का इतिहास बन गया है ।

तीर्थ यात्राका फल तथा महात्म्य

मध्ये मार्गपरिश्रान्तो विश्रामं प्राप्य श्रृंगिणः ।
आश्रमे परमारामे कृष्णो वचनमब्रवीत् ॥१॥
त्वया संस्थापितां मूर्तिं विश्रामद्वारकापते ।
अदृष्ट्वा द्वारकायात्रा नराणां निष्फला भवेत् ॥२॥

× मध्ये मार्गपरिश्रान्तो विश्रामं प्राप्य शृङ्गिण। आश्रमे परमारामे कृष्णो वचनमब्रवीत् ॥१॥ त्वया संस्थापिता मूर्तिं विश्रामद्वारकापते। अदृष्ट्वा द्वारका-यात्रा नराणा निष्फला भवेत् ॥

+ उसीकाल ऋषिशृङ्ग नामके एक तपस्वी आये। रुके यहा जा रहे द्वारका थे वे थके थकाये॥
(शृङ्गपुर, सुषुमा १–१०)

यथा व्यासमनालोक्य काशीयात्रा हि निष्फला ।
तथैव द्वारकायात्रा ऋतेऽत्राऽगमनाद् भवेत् ॥३॥

उक्त श्लोकोके अनुसन्धानसे यो मालूम होता है कि भगवान् श्रीकृष्ण जब द्वारिकापुरी मे विराजमान थे, तब उनके दर्शनार्थ श्रृङ्गिऋषि द्वारका पधार रहे थे । उस समय इसी स्थान पर विश्राम किया श्रीद्वारकानाथकी आराधना की और भगवान् शंकरजीकी भी उन्होंने स्थापनाकी जो श्रृङ्गेश्वर' महादेवके नाम से आज भी मोजूद है । इसी अवसर पर ऋषीश्वरकी आराधनासे प्रसन्न होकर भगवान् यह बरदान देते गये कि जिस प्रकार व्यासेश्वरके दर्शन बिना काशी श्रीविश्वनाथका दर्शन निष्फल हो जाता है, उसी प्रकार आपके द्वारा समाराधित मेरी साम्य मूर्तिके दर्शनके बिना द्वारका यात्रा निष्फल हो जायगी ।

श्रीत्रिदण्डि संस्थान रामानन्दाचार्यपीठ, श्रीशेषमठ परम्परा

श्रीशेषमठ शीगडा श्रीसम्प्रदाय भरमे पश्चिम भारतकी एक प्रमुखपीठ है । इस मठका महनीय इतिहास चढाव उतारसे परिपूर्ण है । कहा जाता है कि भट्टिकवि, कवि मुरारि तथा बनराज चावडाका यहा निरन्तर आना जाना होता था। यदि समयने साथ दिया तो



(श्रीविश्रामद्वारकास्थ ज गु श्रीरामानन्दाचार्यपीठ का प्रधान प्रवेशद्वार)

— श्रीअवधेशदाजी रामायणीकृत शृङ्गपुर सुषुमा (अप्रकाशित)—
अब भी मुझे याद है कुछ बनराज चावडा ऐसे । दूरबीनसे दूदूर का पास दीखना जैसे ।

ख्याति अन्यथा विस्मृतिका नैसर्गिक नियम है । ख्रिष्टकी १९ वीं शदीका प्रारम्भ भारतमे ऐतिहासिक शोधका समय गिना जाता है । विद्वद्वर्गकी यह भावना आचार्यो, साधुओको भी स्पर्शकी और उन्होने अपनी विस्मृतप्राय परम्पराओको खोजबीन द्वारा इतिहासमे परिवर्धित करनेकी चेष्टाये की । श्रीसम्प्रदाय सदैवसे ही अन्योकी अपेक्षा रहस्यप्रिय रहा है और अपने विषयमे प्रकाश डालनेमे सदा कतराता रहा है ।

यो कहा जाता है कि द्वारका क्षेत्रमे परम्परा अनुश्रुतियोके आधारपर प्रथम प्रथम पदार्पण ज गु. श्रीसदानन्दाचार्य (ईशापूर्व २८०–२३) एवं ज गु श्रीरामेश्वरानन्दाचार्यजी का हुआ, विक्रम सम्वत पूर्व(३६–२३६) मे ज गु श्रीद्वारानन्दाचार्य तो इस प्रदेशके ही थे× विक्रम सम्वत (१९६–३७६) इनके कृपापात्र शिष्य द्वारा यहाँ कहीं वरद (वराह) भगवान्‌की स्थापना की गई थी+ । कालन्तरमे लम्बे समय तक अन्धकार है और सर्वप्रथम परम्परागत सूत्रपात ज गु श्रीश्रुतानन्दाचार्यजीको (विक्रम् सम्बन ६३६–८३६) इधर देखते है ।* उन्होंने हा विश्रामद्वारका (जो नाम अब भी इस स्थलका है, यद्यपि पर्याप्त विस्मृत हो गया है ।) मे भागवत कही पश्चात्‌वर्ती आचार्यगण तथा तीर्थयात्रीगण भी यहा आये गये होगे परन्तु जब पीपाजीके साथ श्रीभावानन्दाचार्यजी यहा पधारे थे तब यह तीर्थ अपनी उच्छिन्न अवस्थाको प्राप्त हो रहा था । यद्यपि भाट इसिहास श्रीअनुभवानन्दाचार्यजीके द्वारका प्रवेश तथा शैवमर्दनका बडा भयकर वर्णन करता है परन्तु उन्होने विश्रामद्वारका मे क्या क्या किया वह निश्चितरूपसे नही कहा जा सकता है । बहुत समय बाद हमे श्रीरघुनाथाचार्यजी वि स १७५७–१८०७ तथा ज गु विश्वम्भराचार्यजी वि स १७७७–१८२७ पुन विश्रामद्वारकामे दिखलाई पडते है। ।

कहा जाता है कि वे परिभ्रमण करते हुए यहाँ आये और स्वप्नमे इस स्थानका महात्म्य जानकर यहीं रुक गये । उनके कृपापात्रोकी परम्परामे ज गु श्रीजानकीनिवासा-

---

× इसी समय वे सदानंद द्वारिका तरफको आये । श्रीरामेश्वरको आनन्द दिये रुचिकर अपनाये ॥
चित्रकूट उद्‌भूत वपुष वह सोम सदृश लगता था । शान्त तेज लखि उरमे आदर भाव नया जगताथा ॥
वे ही दयासिन्धु आये अपनाये मुझको जाने । और मुझे ''विश्रामद्वारका कह करके सनमाने ॥(१.३-३४)

+ रामानंद सम्प्रदाय का इतिहास (पूर्व) पृष्ठ–१९७

* शृंगपुर सुषुमा––
पुन' एक आचार्य जिन्हे सब श्रुतानन्द कहते थे । आकर यहा कुछ दिवस मेरी सेवा ले रहते थे ॥
वहुत बडे विद्वान् मैत्रको को वे मन्त्र दिये थे । बडे बडे विद्वद्‌वर उनका लोहा मान लिये थे ॥
पुण्यभूति, मौखरी ठेठ दक्षिण तक उनका था यश । तन मन धन मैने भी अपना वारा उनपर सर्वस ।
उनके रहते यहा भट्टिकवि आते ही रहते थे । रामचरितकी कथा उन्हे आचार्यपाद कहते थे ॥१,१-४३॥
– श्रीसम्प्रदाय दिग्दर्शन, पृष्ठ––५९

चार्यजी वि स १८५१–१९१५ तक सभी यहाँ मात्र गोपालजी (सिंहासनमे छोटे से लड्डूगोपाल) की सेवा करते हुए बने रहे जिन्होने सर्वप्रथम साम्प्रदायिकोके इस पवित्र तीर्थकी कथा जनताको सुनाई जिससे जनाभिरुचि इस ओर हुई किन्तु इस बीच यह तीर्थ—यात्रा स्थल विल्कुल भुला दिया गया । इन श्रीजानकीनिवासाचार्यजीके कृपापात्र एकमेव शिष्य श्रीसाकेतनिवासाचार्यजी इस स्थानसे कहीं चले गये । उनके बाद (१) ज गु श्रीजानकीजीवनाचार्य (२) ज गु श्रीभरताग्रजाचार्य एवं (३) ज गु श्रीहनुमदाचार्य ऐसे ३ पीढिया बीतीं । सन् १९३० मे पुन यह स्थान इस परम्पराके आधिपत्यमे आया । इसी बीच यहाँ एक अन्य परम्पराका प्रचार रहा जिसके ३ महान्त प्राख्यात है । मेहर शिशोदियावशके रत्न राणा तथा डोसाके आत्मज दुदा तथान्य बन्धुबर्ग द्वारा स्वगुरु श्रीनन्दरामदासजीको यह शींगडा नामक ग्राम प्रदान किया गया जिसके अभिलेख स्वरूप श्लोक सग्रहीत है× । समयके साथ अन्य ग्रामको संकलित कर लिया गया और धीरे धीरे शींगडा स्टेटका निर्माण हो गया । सन् १०,३० मे तत्कालीन पोरबन्दर नरेश श्रीनटवरसिंहने सब विधी योग्य तथा परम्परागतआचार्य समझके तत्कालीन वायसराय श्रीलार्डवेवल द्वारा 'महामहोपाध्याय" की गरिमापूर्ण उपाधि प्राप्त करनेवाले ज गु श्रीरामानन्दाचार्यरघुवराचार्यजी वेदान्तकेशरीजीको गद्दीका आचार्य माना और उसके (आचार्यपीठके) समस्त अधिकार साप दिया । उन्हींके कृपापात्र ज गु. श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामप्रपन्नचार्यजी वर्तमानपीठाधीश है ।

श्रीविश्रामद्वारकास्थ श्रीरामानन्दाचार्यपीठमे श्रीगोपालजीका मन्दिर

जैसा कि आगे कह आये है भगवान् श्री कृष्ण द्वारा यहाँ विश्राम लिया गया था और तभी से महर्षि शृङ्गि द्वारा उनकी प्रतिमा प्रतिष्ठित हुई । काल के अन्धकार मे वे प्रतिमाये कहाँ अपने को अन्तर्हित कर ली कहा नहीं जा सकता परन्तु लड्डु गोपाल के रूप मे भगवान् अब भी विराजित है । जन्माष्टमी के अवसर पर मेला भरता है और भावुक व्यक्तियो का सागरसा हिलोरे लेता दिखलाई देता है ।

वि स १८३७ वसन्त पञ्चमी के दिन श्री कल्याणराय जी तथा माधवरायजी भी प्रतिष्ठित हुए वे भक्तो की मान्यताओ को पूर्ण करते है । वे ही श्री विश्रामद्वारकाधीशके नामसे प्रसिद्ध है । मुख्य मन्दिर पर रजत आवरण है जिसपर दशावतार अकित है । वर्तमान भव्य

×शीशोदियावंशजरत्नराणादूदाख्यडोसात्मजबन्धुवर्गैं । श्रीनन्दरामाख्यगुरु महान्तं मत्वाऽर्पितो ग्राममुशींगडाख्य
श्रीमन्मेहरवशशेखरमणिदूदाख्यडोसात्मज सप्तग्रामजन सुपञ्चपरिषन्मुख्या मिलित्वा समे ।
श्रीगोपालकलालपूजनकृते श्रीनन्दरामाभिधं बाबाऽऽख्य परिपूज्य सत्वसथकं श्रीशृङ्गपुर ददु ॥



(श्रीविश्रामद्वारकाधीशमन्दिर का एक झलक)

मन्दिरका निर्माण सबत १९३०से१९४२ मे हुआ था जो वहाँ लगे ताम्र पट्टसे सिद्ध है। ऊपर मञ्जिलका कार्य अपूर्ण होनेसे भगवत्प्रतिष्ठा नही की जासकी थी सौ वर्ष बाद अब श्रीरामानन्दाब्द ६८० विक्रम सम्बत् २०३६ माध शुक्लपञ्चमी मगलवार दि २२।१।८० को हुई है।

(२) **श्री लक्ष्मी नारायण**——मुख्य मन्दिर के दक्षिण भाग मे भगवान लक्ष्मी नारायण विराजमान है और भक्तो को आश्वाशन देती अभय मुद्रा मे खडे है।

(३)——**भगवान् श्री विष्णु का मन्दिर**—मुख्य मन्दिर के बाम पार्श्व मे भगवान श्री हरिजी विराजित है।

(४)—**श्री हनुमान जी**—मुख्य मन्दिर के सामने दाहिनी ओर मिन्दर के अन्तरग मे ही परम राम भक्त, भक्त शिरोमणि श्री हनुमानजी का मन्दिर हे। ये अपने भक्तोकी मानता को ग्रहण करके उनको अभीष्ट प्रदान करते है।

(५)—**श्रीगरुड जी**——यह मन्दिरके ऊपर जाने वाली सीढी के नीचे अवस्थित है।

(६)—**सर्वावतारी भगवान् श्री रामचन्द्रजी**—ऊपर मजिल के मध्यमे अभय मुद्रा मे सर्वेश्वर सर्वावतारी श्रीरामचन्द्रजी तथा सर्वेश्वरी भगवती श्रीसीताजी ज्ञान मुद्रामे सब भक्तोको अभय तथा ज्ञान प्रदान कर रहे हैं।

(७) **भगवान् श्री कृष्णचन्द्रजी एवं श्रीराधाजी**—मुख्य मन्दिर के वाम भाग में ज्ञान मुद्रा मे लीलापुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णजी तथा रासराजेश्वरी श्री राधा जी अभय मुद्रा मे भक्तोकी मनोकामना सिद्ध कर रहे है।

(८) मुख्य मन्दिर के दक्षिण भाग मे सनातन हिन्दुधर्मोद्धारकविशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय के प्रधानाचार्य प्रस्थानत्रयानन्दभाष्यकार जगद्गुरु श्रीरामानदाचार्यजी विराजमान है।

(९) **श्री गोपेश्वर महादेवजी**—मठ के बाहर निकलने समय मन्दिर के प्रथम द्वार पार करते ही दाहिने ओर यह छोटा सा मन्दिर है, भगवान् भोले शकर यहाँ पशुओके रोग मिटाने मे आशुतोष है। इनकी मान्यता से पशुरोग दूर हो जाता है। दूर दूर से मानताये आती रहती है। ऐसी किंवदन्ती है कि गोपके डूगर पर विराजते भगवान् श्रीगोपनाथ ही यहा श्रीगोपालजीकी सेवामे विराजते है।

(१०)—**श्री श्रृङ्गेश्वर हनुमानजी**—श्रीरामानन्द पीठ के प्रवेश द्वारके निकट ही उत्तर दिशा मे यह मदिर अवस्थित है। भक्तो की मानताये फलती है। शनीवारको तेल—सिन्दूर चढाने के लिये भीड उमडती है। दक्षिणाभिमुख होनेसे अतिचमत्कारी है।

(११) **कमैया माता जी की मठिया**—यह मठिया श्री जानकी बाग मे अवस्थित है और समस्त गाँव की कुलदेवी होने से विशेष पूज्या देवी है। प्रति दूसरे वर्ष वहाँ मेला लगता है।

श्री रघुवर सस्कृत महाविद्यालय इस सस्कृत महाविद्यालय की स्थापना महामहोपाध्याय ज गु श्री रामानन्दाचार्य रघुवराचार्यजी ने सन् १९३१ ई में की थी। तब से अब तक न जाने कितने छात्र यहा से सस्कृत का अध्ययन करके गये है। श्रीरामानन्द सम्प्रदाय तथा सौराष्ट्र में सस्कृत शिक्षा प्रसार का अपने प्रकार का प्रथम केन्द्र रहा है। विद्यालय में सस्कृत की उच्च शिक्षा का सुष्ठु प्रबन्ध है। जहा जगद् गुरु श्रीरामानन्दाचार्य रामप्रपन्नाचार्ययोगीन्द्रजी ज गु श्रीरामपदार्थदासजी वेदान्ती ज गु श्रीजानकीदासजी पण्डितसम्राट् श्रीवैष्णवाचार्यजी तथा पश्चिमाम्नाय श्रीरामानन्दाचार्यपीठाधीश स्वामीरामेश्वरानन्दाचार्यजी प्रभृति विशिष्ट विद्वान् तैयार हुये। विभिन्न भारतीय प्रान्तो के साथ ही साथ नेपाल तकके छात्रगण यहाँ शिक्षा ले रहे है। विद्यार्थियोके लिये रहने तथा भोजनका नि शुल्क प्रबन्ध है।

श्रीरामानन्द पुस्तकालय— यह पुस्तकालय भी ज गु रामानन्दाचार्य श्रीरघुवराचार्य जीकी स्मृति है। उनके द्वारा स्थापित इस पुस्तकालयमे प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थोको सरक्षण मिला है। पुस्तक सख्या लगभग ५ हजार है। श्रीरघुवर सस्कृत महाविद्यालय तथा गावका शिक्षितवर्ग इससे लाभ उठाता है।

श्रीबालगोपाल गौशाला–मठकी ओरसे गौसेवाके लिये अपाहिज अगहीन गायोको सरक्षण दिया जाता है। सुघरी नस्लकी गाये भी रक्खी जाती है। इस समय लगभग १०० गाए गौशालामे है। खेतीमे उत्पन्न घासचारा इन्हे दिया जाता है। इनसे प्राप्त दूध छात्रो तथा अभ्यागत आगन्तूकोमे नि शुल्क वितरित कर दिया जाता है।

श्रीजानकीबाग

मठके प्रवेशद्वारके ठीक सामने थोडी दूरी पर यह बाग है। बागमे विभिन्न प्रकार के फलोके साथ भगवानकी सेवाके लिये अनेकश पुष्पोके पौवे लगाये गये है। बागमें पहुचकर मन प्रकृतिके साथ एकरग सा हो जाता है। बागके मध्यमे सूर्यकुण्ड है जहाँ यात्रालुजन स्नान आचमन व दर्शन करते है जो बागको सिंचित करता है। इसे जीर्णोद्धार करके श्रीवेदान्तीजीने पक्का बधवाया है। पानी–निकालने के लिये विद्युत इलेक्ट्रिक मोटरलगवाई गई है। छात्रगण स्नानादि प्रात कर्मोके लिए यही आते हैं।

श्रीरामबाग–कमण्डलु नदीके उत्तरतट पर अवस्थित यह बाग अपनी आम्रराशिके लिए सुख्यात है। कभी इस बागमे भी विभिन्न प्रकारके फल पकाए जाते थे परन्तु कालप्रवाहने परिस्थितियोको बदल दिया है। अब इस बागमें मुख्यत आम है और जमीन को कृषि योग्य बनाकर खेती की जाती है। बागके मध्यमे कुआ है जहाँ इलेट्रिकमोटर लगवाई गई है। गाँवके लोग दुष्काल व अन्य सामान्य दिनोमे भी बगीचोसे पूरापूरा लाभ उठाते है।

श्रीशृङ्गेश्वर महादेव–कहा जाता है कि महर्षि शृङ्गिकी पुण्य समाधिपर अवस्थित यह भूतभावन भगवान् शकरका मदिर सैकडो वर्षोके उतार-चडाव देख चुका है। मठसे उत्तरमे थोडी ही दूर पर यह शृङ्गेश्वर महादेवजीका पवित्र मदिर है। प्राकृतिक रमणीयताके बीच यह स्थान बडा सुशोभन है। यहाँ पचासो वर्षसे अखण्ड दीप चालू है।

चौरा—गावके मध्यमे यह मन्दिर चौराके नामसे विख्यात है।

श्रीत्रिदण्डी संस्थानविश्रामद्वारकास्थ आचार्यपीठ श्रीशेषमठ शींगडाकी विविधप्रवृत्तियाँ

(१) **धार्मिक**–नित्य नैमित्तिक पूजापाठ (२) विशेष अवसरोपर जयन्तियाँ पर्व, उत्सव एव पारायण आदि (३) नित्य साय सकीर्तन (४) योग्य शास्त्रनिष्णात आचार्यो द्वारा नित्य साय धर्मोपदेश (५) सनातनधर्मके प्रचारसे सबद्ध प्रत्येक प्रवृत्तिया।

(२) **संस्कृत वाङ्मयका प्रचार**—(१) श्रीरघुवर सस्कृत महाविद्यालयमे वेद, उपनिषद्, न्याय, व्याकरण, वेदान्त, साहित्यादि विषयोके पठन-पाठनकी सुन्दर व्यवस्था है

इस विद्यालयमे उच्च कक्षाके विद्वानो द्वारा देशके विभिन्न प्रान्तो तथा नेपाल आदिके छात्रोको शिक्षण देनेकी व्यवस्था है ।

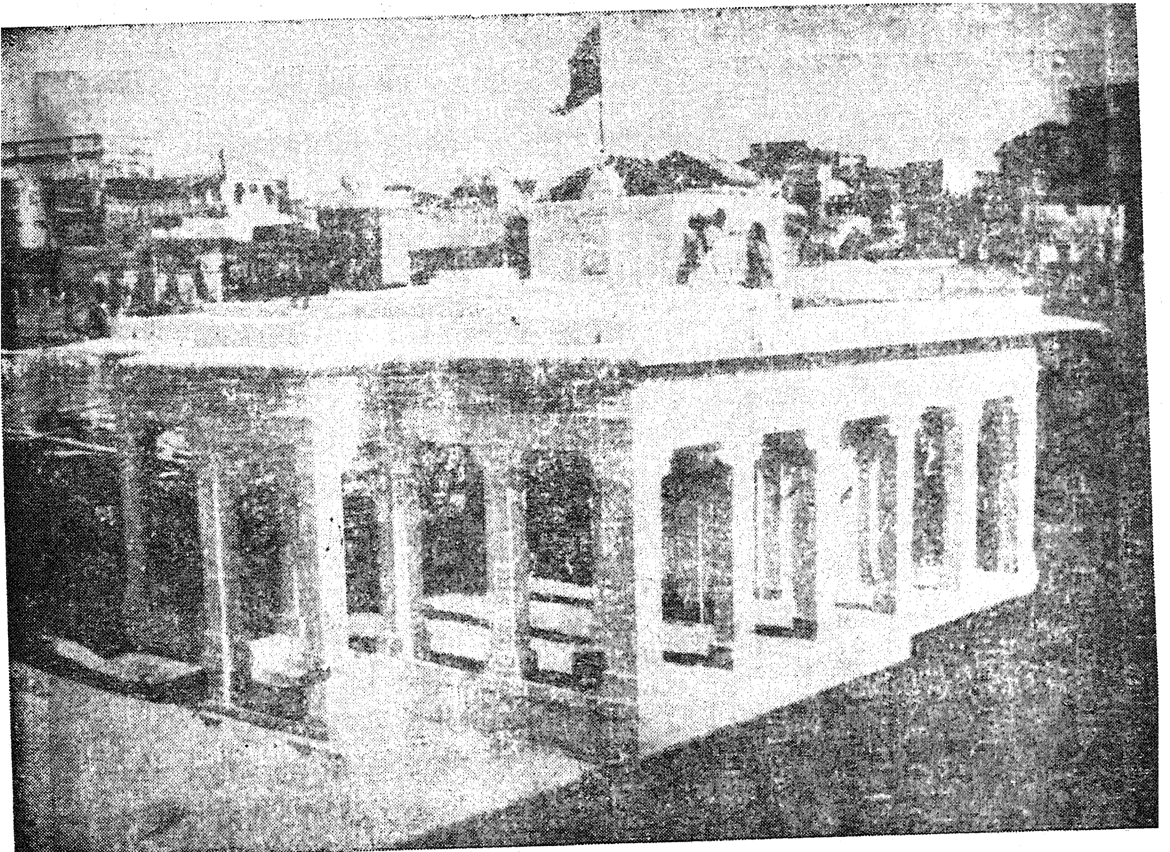
(२) सस्कृत पढरहे सभी छात्रोके लिये भोजन, वस्त्र, निवास पुस्तक, परीक्षा-शुल्क आदि व्यवस्था नि शुल्क तथा कक्षानुसार छात्रवृत्तिकी व्यवस्था है ।

(४) मैट्रिक, एफ वाय, वी ए, तथा एम ए मे जो छात्र सस्कृत विषयोके साथ अध्ययन कर रहे है उन्हे तथा सस्कृतके रिसर्च स्कालरोको मार्गदर्शन ।

(५) प्राचीन गुरुकुल प्रणालीसे शिक्षा आदि ।

(३) **योगसम्बन्धी**—वर्तमान पीठाधीश जो स्वत योगविद् है और 'योगिराज' नामक उपाधिसे अलकृत है । उनके सरक्षकत्वमे अष्टाङ्गयोग साधनो द्वारा तन्दुरुस्ती प्रसन्नता प्राप्त कराइ जाती है ।

(४) **समाजिक** (१) अन्नक्षेत्र (२) शिक्षा (३) उपदेशक निर्माण ।



(आचार्यपीठ—श्रीजानकीमठ श्रीअवधविहारी मन्दिर पोरबन्दर की एक झाखी)

(५) **जीवदया**–गोशालाओमे पशुपालन । गोसरक्षण ।

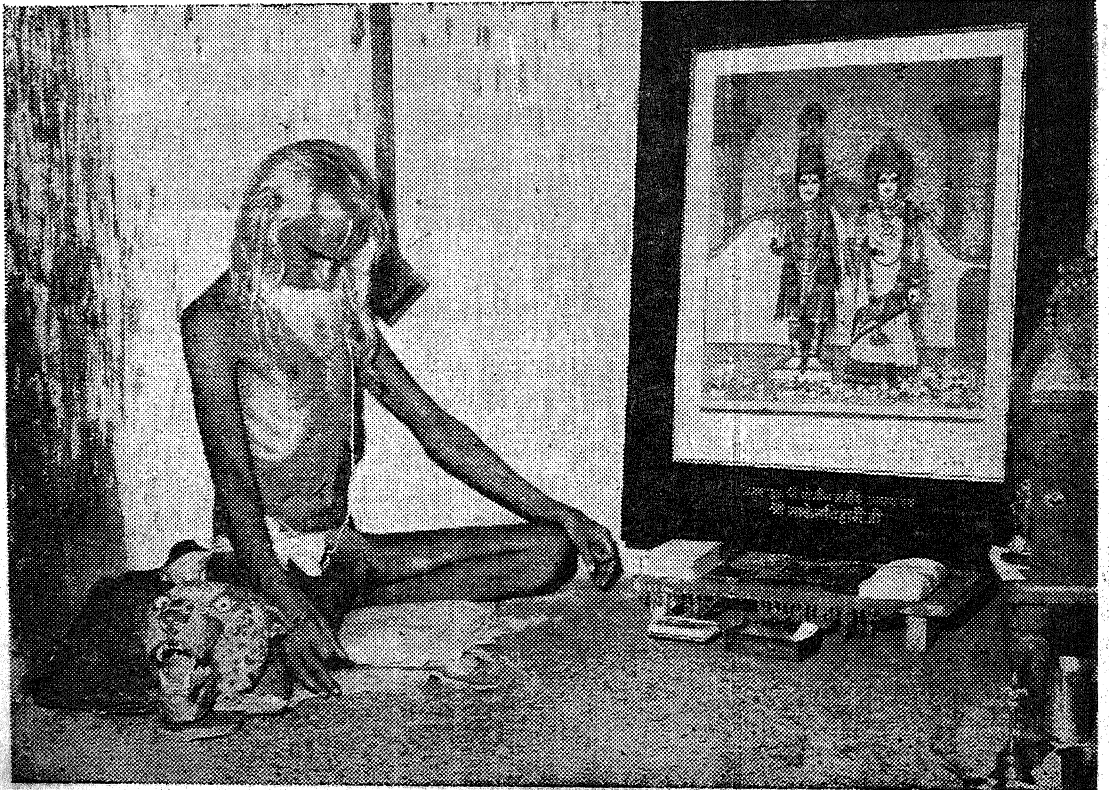
(६) **साहित्य जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजीसे सम्बन्धित** संस्थान द्वारा श्रीरामानन्द वेदान्त दर्शन व साम्प्रदायिक साहित्यका प्रकाशन ।

(२) धार्मिक साहित्यका प्रकाशन

(३) भारतीयदर्शन व साहित्यका प्रकाशन ।

वस्तुत प्राणीसेवा एव मानव विकासमे जिस प्रकार सहयोग दिया जासके वे सब विषय इन स्थानकी प्रवृत्तिके अन्तर्गत है ।

विश्रामद्वारका श्रीशेषमठ, शीगडाकी एक शाखा पोरबदरसे स्थित है । यह शाखा 'श्रीअवधविहारी मन्दिर–जानकीमठ, के नामसे शीतलाचौकसे पश्चिमकी ओर १।४ किलोमीटरकी दूरीपर स्थित है और "शीगडावालोका मन्दिर" इस नामाभिधानसे प्रसिद्ध है ।



जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य रामप्रपन्नाचार्यजी योगीन्द्र १५ दिन के दीर्घ–शान्त समाधिमे समवस्थित

भगवान् अवधविहारीजीका मन्दिर मुख्य है परन्तु यात्रामे असुविधा अथवा शीघ्रता-वशात् जो तीर्थयात्री श्रीविश्रामद्वारका नहीं पहुच पाते, उनके लिये श्रीगोपमठके ही गोपालजीकी यहाँ पर भी प्रतिष्ठाकी गई हैं। विश्रामद्वारका न पहुच सकने वाले यात्रीगण यहा भगवद्दर्शनका लाभ ले सकते ह ।

गोपालजीके दर्शनसे वही पुण्य लाभ होता है जो श्री विश्रामद्वारका दर्शनस। श्रीगोपालजीके दर्शनमे ही यात्राका साफल्य है ।

प्रस्तुत स्मृतिग्रन्थमे सस्कृत हिन्दी तथा गुजराती भाषामे लिखेगय गद्य-पद्यके अनेक निबन्ध-प्रबन्धोका सग्रह किया गया है। लेख प्राय तत्त्वदर्शनपरक ह। जगदाचार्य श्रीवेदान्तीजीका समयाभाव होनेके कारण केवल श्रीमन्त्रराजमीमासा प्रबन्धका ही सग्रह किया जासका प्रयत्न करनेपर भी अन्य प्रबन्ध सग्रहीत न किये जासके, एतदर्थ क्षोभ हे। जिन महानुभावोने मेरी प्रार्थना स्वीकारकर समयपर लेख भेजदनेकी कृपा की, उन सबोका मे हृदयसे आभारी हू । विशेष सावधानी रखनेपर भी मानव सुलभ स्वभाववस त्रुटि रहना स्वाभाविक ही है, शोधनिका सयोजन भी नहीं किया जासका। अत सहृदय पाठकोसे आकाक्षा रखते हे कि समवगत स्खलनसे कृपापूर्वक अवगत करावे ताकि पुनरावृत्तिमे शोधा जासके। इस प्रसगमे जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यपीठ पत्रिकाके सहसम्पादक शास्त्री श्रीशरच्चन्द्रजी राज्यगुरु आर व्यवस्थापक तथा प्रकाशक स्वामीहरिप्रसादाचार्य तथा स्वामीसीतारामाचार्य ओर श्रीआनन्दभाष्यमुद्रणालय के कार्यकर **पं० धनेश्वरझा** तथा स्वामी रामवल्लभदासजीके परिश्रमको भी नहीं भुलाया जा सकता जिन्होने रातदिवस परिश्रम कर इस कार्यको पूर्ण किया। सम्पादक मण्डलके सदस्योके पूर्णसहयोगसे यह स्मृतिग्रन्थ इस रूपमे सम्पादित होसका एतदर्थ उन्ह धन्यवाद ।

स्वामीरामेश्वरानन्दाचार्य

आचार्यपीठ श्रीकोसलेन्द्रमठ अहमदाबाद ३८०००७







विषयसूची





तत्र श्री

…नुभावाय
जगद्…
समुप…

सर्वेश्वरश्रीसीतारामाभ्यां नमः
श्रीहनुमते नमः
प्रस्थानत्रयानन्दभाष्यकाराय नमोनमः
जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यरामप्रपन्नाचार्ययोगीन्द्रप्रणीततत्त्वत्रयसिद्धौ

अथ संवित्सिद्धिः

राम एव परं ब्रह्म राम एव परं तपः ।
राम एव परं तत्त्वं श्रीरामो ब्रह्मतारकम् ॥
सीताकान्तसमारंभां रामानन्दार्यमध्यमाम् ।
रघुवरार्यगुर्वन्तां वन्दे गुरुपरंपराम् ॥
"रामानन्दः स्वयं रामः प्रादुर्भूतो महितले" इत्यागमप्रामाण्यात्

॥ सर्वेश्वरश्रीरामोविजयतेतराम् ॥
श्रीहनुमते नमः
पश्चिमाम्नायश्रीरामानन्दाचार्यपीठाधीश्वरस्वामीरामेश्वरानन्दाचार्यप्रणीत

तत्त्वदीपः

सीताकान्तसमारम्भां रामानन्दार्यमध्यमाम् ।
रामप्रपन्नगुर्वन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम् ॥

"प्रमाणतोऽर्थप्रतिपत्तौ प्रवृत्तिसामर्थ्यादर्थवत् प्रमाणमिति" न्यायभाष्यम् ।" अर्थात् यदा चक्षुरादीनां स्वविषयेण सह संयोगादि संनिकर्षो जायते तदाऽयं घटः पटोवेत्यादिकं ज्ञानमुत्पद्यते । ततश्च ज्ञातघटाद्यानयनाय लोकः प्रवर्तते । ततश्च घटादि विषयप्राप्तौ सत्याम् , इयं मदीया घटादि प्रवृत्तिः सफला, समर्थप्रवृत्तित्वात् विषयान्तरसफलप्रवृत्तिवत् । इत्यनुमानेन प्रमाणजनित ज्ञानस्य सत्यत्वमवगत्य फलभूतज्ञानेन प्रमेयतत्वं व्यवस्थापयति । एतदुक्तं भवति प्रमाणफल रूपस्य ज्ञानस्यैव प्रमेयतत्वव्यवस्थापकत्वमिति नियमः । एवं चेतादृशस्वरूपकस्य ज्ञानस्यस्वरूपं किमात्मकं लक्षणं च किमिति जिज्ञासायां "लक्षणप्रमाणाभ्यामेव वस्तुनः सिद्धिरिति" पूर्वाचार्य वचनमनुसृत्य तादृशज्ञानस्य स्वरूपादिविशोधनमत्र संवित् सिद्धौ करिष्यते । तदाशयेनाह

"यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ?। अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥ परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् । धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥" इति स्वोक्तिं संपुष्टयनधिप्रयागेऽवततार श्रीरामानन्दरूपेण स्वयंश्रीरामः, त्रयोदशशतोत्तर-षट्पञ्चाशत्तमे वैक्रमाब्दे श्रीसुशीलादेवीकुक्षितः श्रीपुण्यसदनसद्मनि । वाराणसीस्थश्रीमठा-ध्यक्षजगद्गुरुश्रीराघवानन्दाचार्यचरणमाराध्यलब्धसाङ्गवेदवेदान्तविद्यास्तत एव प्राव्राज्यं स्वीचक्रुरितिविश्वविदितमेतदितिवृत्तमानन्दभाष्यकारजगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यचरणा-नाम् । इतरसमस्तकार्याणि सम्पाद्य मोक्षसाधनीभूततत्त्वसम्पादनाय स्वशिष्यान्यतमं जगद्गुरुश्रीसुरसुरानन्दाचार्यं निमित्तीकृत्य तत्त्वत्रयमुपदिदेश सर्वमुमुक्षुजीवोपकृतये, तत्र च प्रथमं तत्त्वम्—

"अथ सवित् सिद्धिरित्यादि ।" अथात्राथशब्दोमङ्गलार्थक । **तदुक्तम्**

"ओंकारश्चाथशब्दश्च द्वावेतौ ब्रह्मणः पुरा ।
कण्ठं भित्वाविनिर्यातौ तस्मान्माङ्गलिकावुभौ ॥" इति ।

अथवा "अथ योगानुशासनम्" "अथ शब्दानुशासनमितिवत् प्रकृते आरभार्थक एव योगा नुशासननामक शब्दानुशासननामक शास्त्रमारभ्यते इत्यर्थवत् । लक्षणप्रमाणनिरूपणद्वारा सविदो निर्णयमित आरभ्यते प्रस्तूयते इति ।

अत्र प्रकरणे प्रायशोऽद्वैतमतस्यमायिकस्य यन्मत तस्यैव निराकरण करिष्यते । प्रसङ्गा गत किमप्यन्यदपि लेशत एव विचारयिष्यते आचार्येणेति । ननु केवलाद्वैतवादिन "सदेव सोम्ये दमग्रे आसीदेकमेवाद्वितीयमित्युपश्रुत्य तत्र स्थूलसूक्ष्मसाधारणजडचेतनात्मकसकलप्रपञ्च कारणभूतस्य "यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते" इत्यादि श्रुतिप्रतिपादितकारणीभूतसत्पद वाच्यस्य सविशेषब्रह्मणोऽद्वितीयत्वश्रवणात् । "सत्य ज्ञानमनन्त ब्रह्मेति" ज्ञानमात्रत्वश्रवणादपि एकावधारणद्वैतप्रतिषेधकपदै सजातीयविजातीयस्वगतभेदसामान्याभाववद् ब्रह्मैवचिन्मात्र स्वरूप सत् परमार्थं कालत्रयेऽप्यबाध्यम् । एतद् भिन्न सर्वं जगत् ब्रह्मण्येवाविद्ययाकल्पित शुक्ति रजतादिवदेव परिकल्पितम् । तदुक्तम् "अक्षमा भवत केय साधकत्व प्रकल्पने । किं न पश्यसि ससार तत्रैवाज्ञानकल्पितम्" इति । "शुक्त्यवस्थात्ममोहोत्थारुप्यधी शुक्तिसभवा । कथ्यते मृदवस्थात्मजातोमृज्जो यथाघट " इति च । तत्र यथा शुक्त्यवच्छिन्नचैतन्यनिष्ठाविद्याजात रजत रजतत्व तदीयसम्बन्धादिककल्पितमिति मिथ्या स्वात्यन्ताभावसमानाधिकरणतया प्रतीय मानत्वम् ज्ञानसमानकालिकत्वरूपवेति ते कथयन्तीति पूर्वपक्षमाकलय्य तद्दर्शयितुमुपक्रमते

"पृष्टानामेकमाद्यं त्रिकमपि श्रृणु तद्भेदतो नामभेदं
निंत्याऽज्ञाऽचेतना सा प्रकृतिरविकृतिर्विश्वयोनिश्शुभैका ।
नानावर्णात्मिकाऽजात्रिगुणसुनिलयाऽव्यक्तशब्दाभिधेया
निव्र्यापारापरार्थामहदहमितिसूरुच्यते तत्त्वविद्भिः ॥१।६॥" इति ।

तदत्र छान्दोग्ये "सदेव सौम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयं ब्रह्मेति वचनं तद्वचनं सच्चिदात्मकब्रह्मणोभिन्नस्य पदार्थस्य सद्भावं निराकृत्य तावन्मात्रं पदार्थ इति निवेदयतीति चेत्सत्यम्—

"छान्दोग्ये "सदेवसोम्येदमग्रे आसीत्" इत्यादि । हे सोम्यश्वेतकेतो ! इद नामरूपाभ्या परि दृश्यमान जडचेतनात्मक जगत अग्रे स्वोत्पत्ते पूर्वम् सदेव सदात्माक ब्रह्मरूपमेव ब्रह्म तादात्म्य-कमविभज्यमानस्वरूपकमेवासीत् तच्च सदात्मक कारणम् तदा एक सजातीय भेदरहितम् एव स्वगतभेदशून्यम् अद्वितीय विजातीयभेदरहित चासीत् । यथा कस्मिश्चिदपि वृक्षे स्वगतपत्रादिभिर्भेद वृक्षान्तरात् सजातीयो भेद शिलादितो विजातीयो भेदो भवतीति सर्वानु-भवसिद्धम् तथैव सजातीय विजातीय स्वगतभेदो ब्रह्मणि वस्तुत्वात् प्राप्नो भवतीति तादृशभेद-निराकरण, श्रुतिश्च ऐक्यावधारणद्वितीयप्रतिषेधकवाचोभिस्तादृशभेदाना निराकरण करोतीति' तदुक्तमभियुक्तै –"वृक्षस्य स्वगतो भेद पत्रपुष्पफलादिभि । वृक्षान्तरात्सजातीयो विजातीय शिलादित । तथा सद्वस्तुनो भेदत्रय प्राप्त निषिध्यते। ऐक्यावधारणद्वैतप्रतिषेधै स्त्रिभि क्रमादिति ।

इत्येव क्रमेण प्रश्नाशय स्फोरित । तत्राद्वितीये श्रुते केवलाद्वैताभिमतार्थप्रतिपादकत्व न सभवतीति वर्णयितु तन्मतमेव प्रदर्शितम् "एकमेवेत्यादि" "यत्तदोनित्य सम्बन्ध" इति नियमात् । यदित्यस्यानुषञ्जनम् । एकमेवाद्वितीयमिति यदुपनिषद्वचन तदिति सम्बन्ध । अथवा तत्पदम् प्रसिद्धार्थविद्योतकम् । यथा "द्वयगत सम्प्रति शोचनीयता समागमप्रार्थनया कपालिन । कला च सा कान्तिमती कलावत त्वमस्य लोकस्य च नेत्रकोमुदी" श्रीशिव प्राप्तये पार्वत्यास्तपो ऽवसानसमये शिवस्तस्या कीदृशीश्रद्धेति जिज्ञासया तदुपरि प्रसन्नोभवस्तदन्तिक ब्रह्मचारि रूपमास्थायगतस्तत्तस्ता चालयितु प्रथमत शिवस्य निन्दामेवाकरोत् । तत्प्रवाहे कथित यत् हे उमे! शिवसमागमप्रार्थनया एतदुभय लोके निन्दनीयता गतम् एका तु कान्तिमतश्चन्द्रस्य सा कला या हि सर्वलोकप्रसिद्धा द्वितीया च त्वम् । तत्र सा कलेति कथनात् चन्द्रमस कान्तिमत्या कलाया सर्वलोकप्रसिद्धत्वध्वनितमिति । तत्र यथा कलाया सर्वलोकप्रसिद्धत्वमवोचदिति प्रसिद्धार्थकोपितच्छब्द प्रकान्ताद्यर्थबोधकत्वे सत्यपि । तथैव प्रकृते तत्पद प्रसिद्धार्थविद्योतकम् । एवञ्च ब्रह्मवाचकस्तत्पदविशेषणमद्वितीयपद ब्रह्मभिन्नस्यासत्वबोधकमिति पूर्वपक्षकर्तृणामाशयोमानस. ॥

किमत्राद्वितीयोक्तौ कीदृशः समासः किं तत्पुरुषः किं वा बहुव्रीहिसमासो विवक्षितः ! तत्र नाद्यः यतः पूर्वस्मिन् कल्पे उत्तरपदार्थः प्रधानतया विवक्षितस्तद्ब्रह्मततोऽन्यत् तत्सदृशं तद्विरुद्धं वा । त्रिष्वपि तदन्यश्च बाध्यते । अन्यत्वे सदृशत्वेवा द्वितीयस्य सिद्धिरेव जायते । नतुबाधः । विरुद्धत्वे द्वितीयपदेन प्रथमं तृतीयं वा

तदिममद्वैतिमतकल्पितमत निराकर्तुमद्वितीयपदे समास विकल्पयति सिद्धान्तवादी "किमत्रा द्वितीयोक्तौ कीदृश समास" इत्यादि ।

अत्राद्वितीयोक्तावद्वितीयपद, उत्तरपदार्थप्रधानकस्तत्पुरुषसमासोऽथवाऽन्यपदार्थप्रधानको बहुव्रीहिसमास, राजपुरुष गङ्गाभार्यवदिति तत्र यदि अद्वितीयपदस्य तत्पुरुषसमास इष्यते तदा द्वितीयस्य बाधो नस्यात्तत्राह "पूर्वस्मिन कल्प" इत्यादि । अद्वितीयमित्यत्र न द्वितीयमद्वितीयमित्येव तत्पुरुषे उत्तरपदार्थप्रधानके समासे स्वाङ्गिकपदार्थ नतोऽन्यपदार्थ प्रधानरूपेण विवक्षितो भवति. यथा राज्ञ पुरुषोराजपुरुष इत्युत्तरपदार्थ पुरुष प्रधानमाश्रयोऽपि शब्दवृत्त्याप्रधान एव । ततश्च राजपुरुषयोस्तादात्म्यवाधे पूर्वपदार्थराजपदस्य राजसम्बन्धिनि लक्षणा भवति तस्य चाभेदेन पुरुषेऽन्वय इति राजसम्बन्धयभिन्न पुरुषोऽमात्यादिवोधितो भवति उत्तरपदार्थप्रधान त्वात्तत्पुरुषसमासस्य ।

तत्र च न द्वितीयमित्यद्वितीयम् । नञ् तत्पुरुषसमासे चारोपितत्वस्य पूर्वपदार्थत्वं. तस्य· चोत्तरपदार्थविशेषणत्वमेवेति वैयाकरणा । आरोपश्च तद्भिन्नेतत्सदृशे वा भवति । तस्यैव फलित कथन तदन्याद्यर्थेनञ्–इति । "नञिवयुक्तमन्यसदृशाधिकरणे तथाह्यर्थगति" रिति च शाब्दिक परिभाषा । एवञ्चाद्वितीयपदेनारोपितद्वितीयवत् ब्रह्मेति शाब्दबोधे तत्र द्वितीयभिन्नत्वस्य द्वितीयसदृशत्वस्य द्वितीयविरुद्धत्वस्य वा प्रतीति फलति नैतद्भिन्नस्य । यतः समासान्तर्गतस्यनञ पदस्यार्थविशेषबोधकत्वस्यैव नियमात् । तदुक्तम् —

> **"तत्सादृश्यमभावत्वं तदन्यत्वं तदल्पता ।**
> **अप्राशस्त्यं विरोधश्च नञर्थाः षट् प्रकीर्तिताः ॥"**

यथा "अनिक्षु सर" इत्यत्र सादृश्यमेवार्थो नञ. । अघटभूतलमित्यत्राभावोह्यर्थ । अघट पट इत्यत्रान्योन्याभावोर्थ । अनुदराकन्या अलवणक शाकमित्यत्र नञोऽल्पत्वमर्थस्तथाचे· षल्लवणक शाकमित्यर्थ । "अब्राह्मणोवार्धुषिक इत्यत्राप्रशस्तो ब्राह्मण स इत्येवार्थ. । असुरो· रावणादिरित्यत्र विरोध एव नञर्थो नतु भेदादिरर्थस्तथा सति सुरभिन्नत्वस्य मनुष्यदेवादावपि सत्वेन मनुष्यादीनामप्यसुरत्वप्रसङ्गात् तस्मादत्र नञर्थो विरोध एव । तथा च सर्वसमञ्जसं भवति । प्रकृतेऽद्वितीयमात्रयोग्यत्वात् त्रय एवार्थाविकल्पिता. । तत्रचार्थत्रयेपि ब्रह्मव्यतिरिक्तस्यार्थात् ब्रह्मभिन्नस्य

प्राप्नोति तद् ब्रह्मैव तद् द्वितीयेन विरुद्ध्यते । अतः स सर्वे प्रथमाः सर्वे तृतीयाद्यर्थ समुदाया द्वितीयेन स्पृष्टा अबाधिता एव स्वस्थातिष्ठन्ति । ननु नञा ब्रह्मभिन्नस्य सर्वस्यैवनिषेधोयतो द्वितीयपदस्य सर्वार्थोपलक्षकत्वात् इति चेन्मैवम्—

नैवं प्रकारेण ब्रह्मभिनस्य विनिषेधो युक्तः, यतोऽस्मात् , अद्वितीय पदात्

द्वितीयपदार्थस्य बाधो न सम्भवति । यतो द्वितीयपदार्थप्रतियोगिकस्य भेदस्य सादृश्यबोधने प्रति योगी विधया द्वितीयस्यसिद्धे । एतदुक्त भवति यथा चन्द्रवन्मुखमित्यत्रमुखानुयोगिकचन्द्रप्रति योगिकसादृश्य विवक्षितमिति सादृश्यप्रतियोगितया चन्द्रस्यबोध इति न चन्द्रादिबोधित किन्त्व बाधितरूपेणैव तस्य प्रतीते । एव भिन्न इति कथने कस्य भेद कुत्रेति जिज्ञासायाम् प्रतिविधयासमु- पस्थित पटादिर्न स बाधित किन्तु प्रमित एव अप्रमितस्य निषेधायोगात् । निषेधानुपपत्यैव प्रति- योगिन सिद्धत्वात् ।

"लब्धरूपेक्वचित् किञ्चित् तादृगेव निषिध्यते । विधानमन्तरेणातो न निषेधस्य सम्भव ॥"

इति प्राचीनोक्ते ।

अथैवमपि द्वितीयविरुद्धत्वे ब्रह्मणोबोधिते कथ नद्वितीयपदार्थस्य बाधस्तत्राह "विरुद्धत्वे" इति । अयंभाव' द्वितीयत्वमत्रद्वित्वमख्यापूरकमेव । द्वितीयविरुद्धत्वञ्च द्वितीयविरुद्धधर्मवत्वात् । स चधर्म प्रथमत्व नियमत तृतीयत्वादिकत्व वा एतावता द्वितीयस्य कस्यचिद् बाधो न भवति । तत्राह, "अत. स प्रथमा सर्वे" इत्यादि द्वितीयेन द्वित्वसङ्ख्यापूरकेण तथा स्पृष्टा विरोधसम्बन्धेन सम्बद्ध्यस्वस्था स्वस्वप्रमाणाधीनसिद्धिका सन्त , अद्वितीयत्वकथनेनापि अबाधिता एव प्रथमतृतीयादि पदार्थ समुदाया वर्तन्ते । प्रमाणाधीनसिद्धिकत्वादितिभाव ॥

पुनरत्र शङ्कते "ननु नञ्" इत्यादि । अयमाशय प्रश्नकर्तु "प्रकृते अद्वितीयमिति पदघटक द्वितीयपद न मुख्यार्थस्य समर्पकम् । येन भवदुत्तर समीचीन भवेत् । किन्तु भेदार्थकद्वितीयपदं भेदप्रपञ्चस्य सर्वस्य लक्षकमेव । अर्थात् लाक्षणिकम् । ततश्च छत्रिणोयान्तीत्यत्रछत्रिपद समुदा- यस्यबोधक तथा प्रकृते द्वितीयपद लाक्षणिकमेव । नञ् पदञ्च नभेदबोधकमपितु- अत्यन्ताभावस्य- ज्ञापकम् । द्वितीयस्याभावोऽद्वितीयम् । अर्थाभावेऽव्ययीभावसमास । एवञ्च भेद प्रपञ्चबाधो द्वितीयश्रुत्या भवतीति । अर्थादद्वितीयपदलक्ष्यस्य प्रपञ्चमात्रस्याभावेऽर्थतस्तेषा बाध एव ब्रह्मणि स्वात्यन्ताभावसमानाधिकरणतया प्रतीयमानत्वादिति ॥

पूर्वप्रदर्शित परिहरति "नेव प्रकारेण ब्रह्म भिन्नस्येत्यादि ।" यत इति पद हेत्वर्थकम् । यस्मात् कारणात् । "अस्मात्—अद्वितीय पदात् ब्रह्म समानाधिकरणात् ब्रह्मणो द्वितीयादि पदा- र्थतोभिन्नत्व विरुद्धत्व सदृशत्वमेव बोध्यते । नतु प्रपञ्चमात्रस्याभावबोधित भवति । तस्मादत्राद्वितीय

द्वितीयस्य कस्यचिन्निषेधो न ज्ञायते। यतोऽद्वितीयशब्दोब्रह्मभिन्नं ब्रह्मविरुद्धंतत्सदृशमेवार्थं कथयति नतु प्रपञ्चनिषेधं वक्ति। द्वितीयं यस्य नास्ति तद्ब्रह्मेतिपक्षे सत्यत्वादि ब्रह्मलक्षणानामपलक्षणत्वमापतेत्। अद्वितीये द्वितीयार्थमात्रस्य नास्तितामात्र विषयत्वे नञर्थभावस्य स्वप्रधानत्वात्। ब्रह्मपदे विशेषणविधयाऽन्वयोनस्यात्। तत्र द्वितीयशून्यत्वं ब्रह्म विशेषणं न संभवेत्। विशेषणे तद् ब्रह्म तृतीयं प्रथमं वा भवेद्।

पदे नाव्ययीभावसमास इतिभाव। अपि च ब्रह्मभिन्नस्य सर्वस्य निषेधोऽनुपपन्न एव। तथा सति "सत्य ज्ञानमित्यादि ब्रह्मलक्षणवाक्यानामसङ्गतिरवस्यादित्याशयेनाह 'द्वितीय यस्य नास्ति तद्ब्रह्मेत्यादि।' यत्सम्बन्धिनोऽन्यस्य—यतोभिन्नस्य सर्वपदार्थस्याभावस्तदवच्छेदकथने ब्रह्मात्मकलक्ष्यवृत्त्यसाधारणधर्मरूपसत्यत्वप्रसङ्गा यतोधर्मधर्मिणो भिन्नत्वेन लक्षणस्याप्यसत्त्वेन सत्यज्ञानादि लक्षणवाक्यमलक्षणमेवस्यादित्याशय। अव्ययिभावस्य सत्पदेनान्वयोपि न स्यात्। तस्या व्ययत्वादित्याशयेनाह "अद्वितीये द्वितीयार्थमात्रस्येत्यादि" अद्वितीयेऽथात "एकमेवा द्वितीयमिति श्रुतिघटकाद्वितीयपदे स्वनिष्ठत्वात् स्वप्रधानत्वात् स्वेतरपदार्थविशेषणत्वादित्यर्थ। ब्रह्मवाचक सदादिपदे विशेषणविधयाऽन्वयोनैव स्यात्। यत सत्यादिक ब्रह्मसमानाधिकरण ब्रह्मविशेषण नीलेनेवघटस्य। तस्मान्नैवापत्तिरत्र सम्भवति। तथा सतीष्टापत्तावाक्यभेददोषप्रसङ्गात।

अथ लाघवादभावोऽधिकरणस्वरूपमेवान्यथा गौरवप्रसङ्गादेकस्याप्यभावस्यानेकरूपत्वादिति द्वितीयाभावो ब्रह्मरूपमेव ततस्तादृशाभावस्य ब्रह्मसामानाधिकरणत्व घटत एवेति चेत्तत्राह "तत्र द्वितीयशून्यत्वमित्यादि" अर्थात द्वितीयराहित्य तादात्म्यसम्बन्धेन विशेषण सम्भवति सदसतोस्तथा भावस्यादर्शनादनुपपन्नत्वाच्च ब्रह्म तु सत्पदार्थोऽभावस्तु न तथा। अथवा तुच्छ स इति परस्पर विरुद्धयोस्तयोरतादात्म्यासम्भवात्। नहि सतोऽसद्योगोऽसदात्मकत्व वा नहि भवति प्रकाशतमसा सम्बन्धस्तदात्मकत्व वेति।

ननु तर्हि घटाभाववज्जलमित्यादौ जलघटाभावयो क सम्बन्ध इति चेत्। घटाभावादेर्जलादौ स्वरूपसम्बन्धेनैव विशेषणत्वमिति। प्राडिवादेन समाधत्ते "विशेषणत्वे तद्ब्रह्म" इत्यादि। यदि द्वैताभावो विशेषणमिति स्वीक्रियेत तदापि अद्वितीयस्य द्वितीय यत् प्रतियोगि तत् प्रथम तदभावत्व द्वितीयम् तृतीय च ब्रह्मविशेषणम्। किं वा ब्रह्म प्रथमम्। द्वितीये प्रतियोगित्व द्वितीयम् तृतीय तदभावत्वविशेषणमिति प्रथमत्व तृतीयत्व ब्रह्मण आवश्यकमेवेति भाव। एवमव्ययीभाव पक्षे दोष उक्त.॥

एतावता प्रकरणेन अद्वितीयपदे तत्पुरुषसमासपक्षे प्रपञ्चस्यबाधो न भवतीति प्रदर्श्य बहुव्रीहि समासोवेति द्वितीयकल्पेऽर्थात् बहुव्रीहि समासपक्षस्वीकारेपि दूषण दर्शयितुमाह "बहु-

बहुव्रीहिसमासपक्षेपि अद्वितीयपदे तत्पुरुषवदेव ब्रह्मणो ये प्रथमास्तृतीयादयाश्च ते सर्वे प्रसक्ता भवन्ति। ब्रह्मप्रति अद्वितीयत्वादवाधिता एव भवन्ति। किञ्च बहुव्रीहि समासाश्रयणे कृते सतिवृत्त्यर्थस्यनञर्थस्य पदार्थान्तरेणान्वयो न स्यात्। सत्याद्यर्थान्तरसम्बन्धे एव षष्ठ्या प्रयोगो भवति। द्वितीयवस्तुनो नास्तित्वे न ब्रह्म नवा

व्रीहि समास पक्षेपीत्यारभ्य प्रसक्ता भवन्तीति" ग्रन्थेन—बहुव्रीहि समासेऽप्यद्वितीयपदे तत्पुरुषसमासवदेवप्रथमतृतीयादि सर्वपदार्थसद्भावोऽनिवार्य प्रसक्त एवेति तदेव दर्शयति "ब्रह्मप्रत्यद्वितीयत्वादिति। नास्तिद्वितीय यस्य तद् ब्रह्मेत्यस्मिन् विग्रहे। ब्रह्मनिष्ठद्वित्वमसंख्यापूरकत्व नास्तीत्यर्थ। एवञ्च ब्रह्मण एव द्वितीयत्व लभ्येत। ततश्चब्रह्मापेक्षया प्रथमस्य तृतीयादेर्वापदार्थस्याद्वितीयश्रुत्यावाधो भवतीति सिद्धम्। यत आद्यसंख्यापूरकत्वमेव प्रथमत्वम। तृतीयादि संख्यापूरकत्व च तृतीयत्वादीति। "ब्रह्मप्रत्यद्वितीयत्वादिति—ब्रह्मापेक्षया द्वितीयत्वाभावात। तच्च ब्रह्मापेक्षया तृतीयत्वाद्वा ते सर्वेपि पदार्था निराकुला सन्तोऽवतिष्ठन्ते नतु तेषा वाध इति।

अथ बहुव्रीहिसमासघटकस्य द्वितीयपदस्य द्वित्वसंख्यापूरकत्व। द्वित्वसंख्याया च यत् पदवोऽन्यस्य ब्रह्मणोनिष्ठत्वसम्बन्धेनान्वयो न स्वीक्रियते। येन प्रथमस्य तृतीयादेर्वा प्रसक्ति भवेत्।

किन्तु द्वितीय पद भिन्नपरकमर्थाद् भेदाश्रयपरकम्। भेदे च प्रतियोगिता सम्बन्धेनब्रह्मणोऽन्वयोऽर्थात् भेदब्रह्मप्रतियोगिकत्वस्यान्वय। एवञ्च यतो ब्रह्मणोभिन्न नास्ति किञ्चित् तद्ब्रह्माद्वितीयमित्येव क्रमेणाद्वितीयश्रुत्या द्वितीयपदार्थस्य वाधोलभ्यते एवेत्याशंका दर्शयति "किञ्च बहुव्रीहि समासाश्रयणे कृते सतीति। बहुव्रीहिसमासश्चान्यपदार्थप्रधानकोभवति 'गगाभार्य' इति वत्। तथा च बहुव्रीहिवृत्तपदोपस्थापितद्वितीयाभावस्यान्यपदार्थब्रह्मविशेषणत्वमेव वक्तव्य भवेत्। परन्तु तन्न घटते। यतो ब्रह्मभिन्नसर्वस्य शून्यतायाम् द्वितीयाभावस्यापि शून्यत्वेन ब्रह्म पदार्थविशेषणत्वायोगात्। नहि सदसतोर्विशेष्यविशेषणभाव क्वचिद् दृष्ट स भवेद्वेति। ननु वृत्त्यर्थस्य बहुव्रीह्यर्थस्य नञ् पदवाच्यस्य द्वितीयाभावस्य कुतो न पदार्थान्तरान्वय ? तत्राह "सत्याद्यर्थान्तरसम्बन्धे" इत्यादि। यस्येति भेदार्थकषष्ठी प्रकृत्यर्थान्वितेऽर्थान्तरसम्बन्धे प्रामाणोपस्थापिते एव सगच्छते। देवदत्तस्य कम्बल इतिवत्। अत्र च निर्विशेषे च अर्थात् सर्वविशेषरहिते ब्रह्मणि प्रकृत्यर्थे पदार्थान्तरसम्बन्धस्यासत्यत्वात्। षष्ठीबहुव्रीहिसमास प्रकृते न घटते इतिभाव। ननु यथा देवदत्तस्य गृहमित्यादि प्रयोगदर्शनाद् भेदे षष्ठी विभक्तिरिति ज्ञायते। परन्तु नायमेकान्ततो नियम क्वचिद् राहो शिर इत्यादि प्रयोगादभेदेपि षष्ठी विभक्तिर्भवत्येव। एवञ्चाभेदार्थेपि षष्ठी विभक्तेर्दर्शनात्। यदभिन्नो द्वितीयाभावस्तदद्वितीय ब्रह्मेति कस्यचिद् विवक्षा प्रतिक्षेप्तुमाह "द्वितीयवस्तुनोनास्तित्वे इति। असत सत् पदार्थभेदस्तद्विशेषणत्वमपि न घटते। सदसतोस्तथा भावादर्शनादित्यर्थ। प्रकरणार्थमुपसहरति "तस्मादित्यादि" दूरत्वादिसर्वदोषरहित

विशेषणम् । असत्वान्नासद्ब्रह्म भवेन्नना विशेषणं चापि भवेत् । तस्मात् ब्रह्मेतरप्रपञ्चसत्वं-नाद्वैतश्रुति वाधितम् । अपितु साधक प्रमावलादेवसिद्ध्यति । स च श्रुत्याप्यनुमोदितः ।

इत्यद्वितीयत्वश्रुतेः पराभिमतार्थदूषणम्

तेनैकमेवाद्वितीयं ब्रह्मेतिश्रुतेः स्वसम्प्रदायानुसारेणार्थं वच्मि । द्वितीयगणना-योग्योनासीन्नास्ति समोवाऽभ्यधिको ना यस्य यः स एव द्वितीय पदेन गण्यते । यतोऽस्य ब्रह्मण इदं जगत् विभवव्यूहकलामात्रमेवा तस्मात् कथंकोप्यस्य द्वितीयपदयोग्य-तां प्राप्नुयात् ।

प्रत्यक्षप्रमाणसिद्धोऽथ च प्रामाण्यान्तरप्रतिपादकश्रुतिभिरनुमोदितोऽर्थात् तया परमार्थतया-ऽनुमोदितो भेदप्रपञ्चसद्भावो नाद्वितीयश्रुतिबाध्य । प्रदर्शितप्रकारेणाद्वितीयश्रुतेर्ब्रह्मभिन्ननास्तिता प्रतिपादनेऽसामर्थ्यादित्यर्थ ।

॥ इत्यद्वितीयत्वश्रुते पराभिमतार्थदूषणनिरूपणप्रकरणस्य तत्त्वदीप ॥

ननु यदि केवलाद्वैतिसम्मतोऽर्थ "एकमेवाद्वितीय मित्यस्य न युक्तस्तदा कीदृशोऽर्थस्तादृशो-ऽर्थ सम्प्रादायानुमतो निर्दुष्टश्चे याशङ्कायामाह—"तेनैकमेवाद्वितीयमित्यादि ।" उक्त श्रुते परा-भिमतार्थस्य युक्तिश्रुत्यन्तरादि विरोधेन तदन्यादृश एवार्थोऽस्माभिरुपन्यस्यते योर्थ श्रुत्यन्तरयुक्त्या-ह्यनुमोदित सम्प्रदायानुमतश्च स एवार्थोऽस्माभिरुदाह्रियते इति भाव । सोऽर्थ उच्यते मयेति प्रतिज्ञात प्रोच्यमानार्थस्यापूर्वत्वमहदाश्चर्यावहत्वक प्रख्यापनार्थमववेयत्वार्थं च । तादृशमेवार्थं वक्तुमाह "द्वितीयगणनायोग्य इत्यादि ।

प्रथमतोजगन्निदानस्य भगवतो ब्रह्मणो गणनाया कृताया तेन सह गणनायोग्यो द्वितीयः समानो वा तदधिको वा पदार्थोनाभूत नास्ति न भविष्यतिवेति कालत्रयेपि नास्तीत्यर्थ ।

अथानेक विलक्षणानन्तजडचेतनात्मकसंसारे कथ ब्रह्मतुल्यस्य कस्यचिदप्यभाव स्यात् तादृशशकायामाह, "यतोऽस्य—विभवव्यूह" इत्यादि । अस्य ब्रह्मण सविशेषस्यानन्तमहाविभूति-मतो विभूतेरेकदेशांशमात्रत्वाच्चतुर्दशभुवनात्मकब्रह्माण्डकोटेरपि तदन्तर्गतस्योदुवरफलोदरेविपरिव-र्तमानमशकवत् परिच्छिन्नस्वरूपस्वभावादिमतो लोकपालादेभवप्रजापत्यादेरपि न तेन तेन समत्वं प्रसज्यते इति द्वितीयपदवाच्यत्वयोग्यतामर्थात् ब्रह्मणासहगणनायोग्यत्व कथ तत् जगत् प्राप्नुया-दित्यर्थ । एवच स्वसिद्धान्तेऽद्वितीयमितिपदस्य समासद्वयमपिसम्भवतीति ध्वनितम् ॥

एवच नञतत्पुरुषे ब्रह्मण एवाग्रगण्यत्व स्थितम् । ततस्तस्य सर्वाधिकत्वसिद्धि । ततश्चाधिक-निषेध फलति । तथा चाद्वितीयमित्यत्रबहुव्रीहि समासेन च समनिषेध फलित ब्रह्मण । मुक्ताना-मपिभोगमात्रे साम्यमिति न ब्रह्मणा सह गणन मुख्यगणनप्रस्तावे युक्तम् । तन्मुख्य वस्तु वस्तुना ब्रह्मैकमेवेति तस्य ब्रह्मणोऽद्वियत्व प्रतितिष्ठतीति बोद्धव्यम् ।

यथा चोलनामको राजाऽद्वितीयो भुवि विद्यते इति कथने चोलनृपतिसमान नृपान्तरस्य निवारणमेव ज्ञायते नतु तदीयभृत्यपुत्रकलत्रादिनिवारणपरकं तद्वाक्यम् । तथैव दैत्यदानववसुनरब्रह्माण्डकोटयोऽस्य क्लेशकर्मविपाकाशयैरस्पृष्टस्य भगवतो रामचन्द्रस्य ज्ञानादिषड्गुणाकरस्य श्रीरामस्य विभूतिमहिमसमुद्रस्यविन्दुममाना एवेति ॥

कः खलुपुमान् अंगुल्या सप्तसमुद्रान् गणयन् तदीयजलविन्दुराशिं गणयितुंशक्नुयात् । यथैव गगने एक एव सूर्यो न द्वितीयो विद्यते इति कथनेन सूर्यरश्मीनां निषे-

एवमद्वितीयश्रुते ब्रह्मण समाभ्यधिकराहित्यप्रतिपादनपरत्वव्यवस्थापितम् । तथा च श्रुत्यन्तरम् "न तस्य कार्यकरणं च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्चदृश्यते । परास्यशक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रियाचेति नत्वत्समस्त्यभ्यधिक कुतोऽन्योलोकत्रयोऽप्यप्रतिमप्रभाव" इति भगवद्गीतावचनानुसाराच्चायमेवार्थोऽद्वितीयमिति श्रुतिखण्डस्य कर्तु युक्तो नत्वर्थान्तरकरण युक्तमिति ।

अथ अद्वितीयमिति पदस्य समासान्तर्गनिषेधपरत्वे लौकिकप्रयोगमपिदृष्टान्तयति "यथाचोलनृप" इत्यादि, यथाऽत्रचोलनृपस्याद्वितीयत्ववर्णन राजातिरिक्ततदीयविभूत्यादेर्निषेधक न भवति किन्तु एतत्सदृशनृपान्तरस्यैव निषेधवर्णनपरकमेव । तथैवाद्वितीयश्रुतिर्नब्रह्मणो विभूत्यादेनिषेधवर्णनपरकमेवेत्याशयेनाह "तथैवदैत्यदानवसुरादि" इत्यादि या सुरासुरनरादिकमलासनघटितब्रह्माण्ड कोटयस्ता ब्रह्मणोविभूत्यर्णवविशीर्यमाणजलकणिकायमानास्तदद्वितीयश्रुत्यावाधिता न भवन्तीति । उपनिषत् प्रतिपाद्य परतत्त्व सर्वेश्वरश्रीरामचन्द्र एवेति "राम एव पर ब्रह्म राम एव पर तप । राम एव पर तत्त्व श्रीरामो ब्रह्म तारकम् । इत्याद्यथर्ववेदीयश्रीरामोपनिषदादिभिर्निरूपितम् । विष्णुशब्दादिप्रयोगास्तु व्यापकत्वगुणविशिष्टत्वेनेतिगौणार्थाभिप्रायेणेतिध्येयम् ।

"अयनोनरवृन्दस्य तस्मान्नारायणोहि स । सर्वत्र व्यापकत्वात्सविष्णुत्वेन प्रभाष्यते ॥
सर्वेषु वसतीत्यस्माद्वासुदेवतयोच्यते । निष्कर्षकेतरे शब्दा शक्त्या रामस्य वाचका ॥
विश्वरूपस्य ते राम ? विश्वेशब्दाहिवाचका । स्कन्दस्येति वचस्तत्र प्रमाण विद्यते खलु ॥"
(श्रौतप्रमेयचन्द्रिका ६/१८–१९–२०) इत्यादिरूपेणाचार्योक्ते ।

ननु असमत्वेपि सहगणनास्वीकारे काक्षतिस्तत्राह "क खलु पुनानित्यादि । तत्स्वरूपान्तगतस्य न गणना भवति तेन, तत्र दृष्टान्तोऽङ्गुल्यासप्तसमुद्रान्" इति, तथा तत्रैव "**यथैव गगने** एक एव सूर्य" इति दृष्टान्तोऽपि प्रदर्शित ।

एव घटादिगुणाना नीलपीताना गुणिना घटादिना सह गणनायोगो न भवति, तत्र दृष्टान्तः

धो न भवति किन्तु सूर्यान्तरस्यैव यथा प्रधानसंख्येय संख्यायाम्, संख्येयात् पृथगपि संख्यानैवगण्यते संख्येयभिन्नपदार्थान्तरवदिति ।

तथा "पादोस्य सर्वभूतानि त्रिपादस्यामृतंदिवि" एवं प्रतिपादयन्ती श्रुतिःसर्व-जगतो ब्रह्मणोंऽशत्वमेव कथयति । एवं "एतावानस्य महिमाततोज्यायांश्च पुरुषः । यत्रा-

माह "यथा प्रधानसंख्येयसंख्यायामिति" । पृथक् सती=संख्येयात् पार्थक्येन वर्तमानापि, अथवा ऽपृथक् सती=संख्येयात् पार्थक्येनावर्तमानापि, अथवाऽपृथक् सती=अपृथक् सिद्धविशेषणरूपा संख्या । संख्येयान्यपदार्थवदितिवैधर्म्यदृष्टान्त । यथा संख्याविद्भिर्यगणनाया संख्येयद्रव्याभिन्नो गुणादि-र्यथा गण्यते तथा तदीयगुणभूताद्वित्वादिका संख्या, तेन स्वाश्रितद्रव्येन सह नव गणिताभवतीति । अथवा संख्येयत्वेनाप्रस्तुतपदार्थान्तरवदित्यर्थ । एवञ्च साधर्म्यदृष्टान्तत्वमपि घटते एवेति ।

अथैतदुपयुक्त तदैव सपत्स्येत, यदि ब्रह्मव्यतिरिक्ततदीयविभूतिषु किमपि प्रमाण भवेत्, "प्रमेयसिद्धि प्रमाणाद्धि" इति नियमात् । अन्यथा ब्रह्मविभूतेर्वर्णन गगनकुसुमादितुल्यतामियादित्या-शङ्कां निवर्तयितु प्रमाणशेखरमेव दर्शयति, "पादोऽस्य विश्वाभूतानि" इति । येन प्रकारेण जगतो ब्रह्मत्व सिद्ध्येत्, तथैव ब्रह्मांशत्व प्रतिपादयत्, श्रुत्यादिप्रमाणजात सर्वं जगत ब्रह्माऽपृथक्सिद्ध प्रकारत्वेव्यवस्थापयत् । गुणत्व चात्यन्तपारतन्त्र्यरूपम्, इत्थ भावपदवाच्यमपृथक् सिद्धप्रकारत्व-स्वरूपमेव । इत्थ भाव इत्यनेन स्वरूपैकदेशत्वलक्षणमशत्व नैव भवति । किन्तु विशिष्टब्रह्म स्वरूपान्तर्गतप्रकारतैकरूपत्वलक्षणमेत्र जगतो ब्रह्मांशमितिव्यञ्जनयाऽभिव्यञ्जितम् ।

ननु स्थूलसूक्ष्मसाधारणजडचेतनात्मकस्य समस्तस्यापिजगतो ब्रह्मस्वरूपैकदेशत्वमेव कुतो न भवतीत्याशङ्कायामाह, "एतावानस्यमहिमा ततोज्यायाश्च पुरुष" इति । तत्र महिमेति पदेन समस्तस्यापि जगतो विभूतित्व ब्रह्मणोऽतिशयवत्वकथनाद् ब्रह्मत्व च । "ततोज्यायाश्च पुरुष" इत्यनेन तु ब्रह्मणोजगदपेक्षया वैलक्षण्य च ज्ञापितम् । तस्मात्प्रपञ्चस्य न ब्रह्मस्वरूपैकदेशत्व जगत· यथामृत्तिकापरिणामरूपघटोदञ्चनशरावादेर्मृत्स्वरूपैकदेशत्व न तथा प्रपञ्चस्य ब्रह्मस्वरूपै कदेशत्वमिति ।

तस्मात् अपृथक् सिद्धविशेषणत्वरूपेणैव विशिष्टैकवस्त्वेकदेशत्वस्वरूपमेव ब्रह्मांशत्व जड़ चेतनप्रपञ्चस्याभिमतमित्यर्थ । "विशिष्टस्यैकदेशोऽशस्तत्वविद्भिर्मतोयत । प्रभाप्रभावतश्चाशा. शक्ति शक्तिमतोयथा । देहिनो ब्रह्मणोश्चाशो देहो जीवस्तथैव हि । वैलक्षण्येऽपि चाशत्व विशेषणविशेष्ययो । देहिनो ब्रह्मणोभिन्नश्चाशो जीवस्तथैव हि ।" (श्रौतप्रमेयचन्द्रिका ५/३–५) इत्याचार्योक्ते. । प्राप-ञ्चिकपदार्थमात्रस्य ब्रह्मस्वरूपान्तर्गतत्वमेवात्र श्रुतिमुदाहरति "यत्रानान्यद्विजानातिनशृणोतीत्यादि"

न्यन्नविजानाति नशृणोति सभूमा, यदोदरमपि उदरं कुरुतेऽथतस्य भयं भवति। मेरोरिवाणुर्यस्येदं ब्रह्माण्डमखिलं जगत्'' इत्यादि पुराणवाक्यमपि सम्पूर्णस्य जगतस्त-दित्थंभावपरकत्वमेवेति ॥

वाचारंभणमात्रं विकारजातं सकलं जगत्, सत्यंकूटस्थमात्रमेव मूलकारणम्,

यत्रजडचेतनात्मकविशेषणविशिष्टे सविशेषे परमात्मनि समीचीनतयाऽनुभूयमाने, तदन्यत् स्वत-न्त्रवस्तुपरमेश्वरपार्थक्येन परिदृष्ट न भवति, यत षदार्थमात्रस्य ब्रह्मण्येवान्तर्भावात्, जलेफेन बुद्-बुधादिवत्, स एव भूमा सर्वव्यापक श्रीरामपरमात्मेत्यर्थ । तस्मात् सर्वव्यापक सर्वात्मापरम ब्रह्मपरमपुरुषो भगवान् सीतापतिरेव स एव च भूमपदवाच्य, तदन्य सर्वोप्यल्पक एवेति ज्ञापित भवति ।

स्वनिष्ठप्रपञ्चदर्शननिन्दया च ब्रह्मनिष्ठत्वमेव सर्वप्रपञ्चस्य ज्ञात भवतीत्याशयेन श्रुत्यन्त-रमपि प्रस्तौति "उदरमन्त मिति" यदाह्येवैष एतस्मिन्नुदरमन्तर कुरुते, अथ तस्यभय भवतीति । एतस्मिन् जडचेतनात्मके जगति, दरमल्पमपि, अन्तराल ब्रह्मसम्बन्धविच्छेदलक्षण जीवो यदा पश्यति विजानाति, तदैव तादृशज्ञानोत्तरसमकालमेवास्य विजानतो जीवस्य भय ससारभय समु पस्थितमेवाग्रे भवतीतिभाव । अद्वैतवादिना प्रक्रिययेदृशार्थोऽत्रविवक्षितो भेदमिथ्यात्व जगतो न सिद्-ध्येत्तद्वाक्यत इति द्योतनाय । वस्तुत स्वमतेन तु निष्ठाराद्धान्तेनस्य ध्रुवानुस्मरणस्य पूर्ववाक्य-प्राप्तस्याल्पसमयविच्छेदेपि ससारभयप्राप्तिरेवेति सिद्धान्तानुमोदित पन्था पूर्वकथन तु तुष्यतु-दुर्जनन्यायानुगमेनेति भाव । परब्रह्मणो विभूत्येकदेशत्वे निखिलप्रपञ्चस्येति तत्र स्मृतिमपिप्रमा णमितिदर्शयति "मेरोरिवाणुर्यस्येदमित्यादि" यस्य ब्रह्मण एकदेशरूप ब्रह्माण्ड सकलजगत्, यथा मेरो महापर्वतस्याण्डस्तथैव, एते प्रमाणराशयो ब्रह्मापृथक् सिद्धप्रकारकत्वप्रतिपादनपरका एवेति बोद्धव्यमिति फलिताशय ॥

ननु "पादोऽस्य विश्वाभूतानीत्यादिकथितश्रुतिस्मृतिवचनेषु सकलप्रपञ्चस्य ब्रह्मविभू-त्यादौ प्रतिपादनेपि तदन्यश्रौतस्मार्तवचनान्तरेषु, मूलकारणमात्रस्यैव सत्यत्व तदन्यस्य सर्वस्य विकारजातस्यासत्यत्वमेव ज्ञायते इति वचनान्तरानुरोधेन प्रपञ्चसमुदायस्य व्यावहारिकत्वमन्त व्यमित्याशयेनाह "वाचारम्भणमात्र विकारजातमित्यादि" सत्य किन्तु वाचारम्भणेत्यादिवचना-न्तरेष्वपि भेदप्रपञ्चस्य स्वात्यन्ताभावसमानाधिकरणतया प्रतीयमानत्वरूप मिथ्यात्व न प्रतिपा-दित भवति, किन्तु ब्रह्मात्मकत्वरूपेण भेदमात्रस्य सत्यत्वमेव प्राप्त भवतीति भाव ।

श्रौतकतिपयपदघटित श्रौतार्थानुवादरूपमेव "वाचारम्भणमात्रमित्यादि" तत्तत्पदस्मारितानि श्रुतिवाक्यान्यत्र विवक्षितानि । वाचारम्भणमात्र विकारोनामधेय मृत्तिकेत्येव सत्यमिति छान्दोग्योप-

अनन्यत्कारणात् कार्यं पावकतदीयविस्फुलिङ्गवत्, मृत्तिकादिना दृष्टान्तेन प्रदर्शितम्। नाशकद्ग्धुमनलादिरित्यादिदृष्टान्तैः कारणशक्तेरनादरः। एकप्रधानविज्ञानादेव

निषद षष्ठप्रपाठके कथितम्। तत्र वाक् पदोत्तर या तृतीया विभक्ति सा प्रयोजनस्य कारणत्व विवक्षायाम्, तत्रारम्भणम्=आलम्भनम् गृहीतमित्यर्थ आलम्भ स्पर्शसिह्योरितिवत्। आरभ्यते इत्यारम्भण स्पृष्टमिति वा, नपुसकैकशेषवद्भावौ। कि तत् विकारो नामधेय च। किं तत् स्पृष्ट तत्राह—वेत्थ यथा सौम्यैकेन मृत्पिण्डेनेत्यादि पूर्वप्रक्रान्तोमृत्पिण्ड योग्यतया कर्तृत्वेनान्वयमेति। घटत्वाद्यवस्थालक्षणो विकार तत्तदवस्थायोगप्रयुक्त घटादिनाम च मृत्पिण्डेनैव वाक् पूर्वकव्यवहारोपपादनाय गृहीतमिति फलित भवति। एत्र सतिकारणद्रव्यस्योपादानभूतस्य सुवर्णमृत्तिकादिपदार्थस्यानेकावस्थाभाक्त्वेन नानाकार्यात्मिकत्वात् कटककुण्डलघटशरावादिकार्याणामृदादिकारणेनानन्यत्व तदभावेतदभावरूपमित्याह मृत्तिकेत्येव सत्यमिति, कारणद्रव्यमेव सत्य मित्यर्थ।

अत्र सर्व मृण्मय सुवर्णमथ वा विशेष्यम्। "मृत्तिकेत्येव" इत्यत्र इति पद प्रकारवाचकम्। ततश्च सर्वं मृण्मय लोहमय वा व्यापकधर्मेण मृत्तिकात्वादिप्रकारेणैव प्रमाणविषयता भवति, नतु मृदनात्मकत्वेनेत्यर्थ। एतेन कणादसमत कार्यकारणयोरुपादानोपादेययोऽर्थात् समवायिकारणकार्ययोर्गवाश्ववदत्यन्तभेदो निराकृत।

यत., एकविज्ञानेन सर्वविज्ञानमिति श्रौतप्रतिज्ञाया समुपपादनार्थमेव "वाचारम्भण वाक्यस्य प्रवृत्तत्वात्, अस्य वाक्यस्य यथा सोम्येकेनेत्यादिकस्योपादानोपादेययोरनन्यते एवतात्पर्यमिति कथितम् नतु कार्यमात्रस्य मिथ्यात्वे तात्पर्यम्, तथा सति ज्ञातव्यत्वेनाभिमतस्य प्रपञ्च स्याभावादेव सर्व ज्ञात स्यादिति कथन सर्वथैव निरर्थक स्यात्, वाग् व्यवहारस्य व्यवहर्तव्यमन्तरेण सर्वथैवासभवादिति।

"वाचारम्ण विकार." इत्यस्याद्वैताभिमतस्य समस्तपदत्वे "वागारम्भणमिति भवेत्, नतु वाचारम्भणमिति। वाचारम्भणमिति शब्दस्य पराभिमत मिथ्यार्थकत्व चात्यन्तमेवाप्रसिद्धमिति ज्ञातव्यम्। तस्मात् श्रौतसिद्धान्तानुकूल एवार्थो ग्राह्य कृतश्चेति।

"तत्सत्यं स आत्मा श्वेतकेतो" इतिवाक्यस्यार्थतोऽनुवाद कृत "कूटस्थम्" इत्यनेन। उपादानकारणत्वेपि ब्रह्मणो निर्विकारत्वकूटस्थपदेन कथितम्, घटादिकार्यस्थलेषु सर्वत्रोपादानकारणलोहसुवर्णादीना विकारवत्वस्यैव दर्शनात्।

तद्ब्रह्मसत् सत्यम्=सततमनवरत सत्यरूपमेव, "असन्नेव स भवति, असद्ब्रह्मेति वेदचेत्। सद्ब्रह्मेति चेद्वेद सन्तमेन ततो विदुरिति श्रुत्यन्तरात्तस्य सदैकरूपत्वव्यवस्थितेरिति। ननु

सर्वं विज्ञातं भवतीत्येकविज्ञानेत्यादिश्रुत्यभिप्रायः, तेन चिदचिन्मयः प्रपञ्चो ब्रह्मात्मनैवात्मलाभः । इति न भवति ब्रह्मविभूतेर्निषेधः । यतस्तन्निषेधे सर्वमिथ्यात्वात् लोक

ब्रह्मणो निर्विकारत्वे कथं तस्योपादानत्वम्, उपादानस्य सविकारत्वात् ? इति चेत् सर्वजडचेतन शरीरकत्वात्तस्य, सूक्ष्मचिदचिद्विशिष्टत्वेनोपादानत्वं ब्रह्मण उपपद्यते एवेति गृहाण "तस्मिंल्लीनं जगज्जातं ततस्तस्मिंश्च संस्थितम् । रामस्य परिणामोऽहि चिदचिद्द्वारको जगत् ॥" "स्वरूपे च स्वाभावे च विकारः प्रकृते खलु । स्वभाव एव जीवस्य विकारः स्वीकृतो बुधैः । ब्रह्मणस्तु विकारो यन्नस्वरूपस्वभावयो ॥" इत्याद्युक्ते । सोयं प्रपञ्चब्रह्मणो शरीरात्मभाव "सदायतना" "ऐतदात्म्यमिदं सर्वम्" इत्यत्र विशेषतो निर्दिष्टम् ।। नचैवं स्वरूपपरिणामे ब्रह्मणो मृण्मयदृष्टान्तासङ्गतिरितिवाच्यम्, कार्यकारणयोर्मृदादिघटशरावादिकयोरनन्यत्वस्वीकारणेव श्रुतिदृष्टान्तस्य सुसगतत्वात् । ननु जडचेतनजगतो ब्रह्मणा सहानन्यत्वं कथं स्यादिति चेन्न प्रपञ्चमात्रस्य ब्रह्मात्मकत्वेन ब्रह्मरूपत्वेन तयोरनन्यत्वोपपादनमभवात् ।

एतदेव प्रामाणिकम्, तत एव श्रुतावुच्यते "ऐतदात्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यं स आत्मा" इति वाक्येन, एकवाक्यतयान्वयात् । मृदादिदृष्टान्तवाक्यानुकूलश्चायमेवार्थो भवति । समानप्रकरणेषु कार्यकारणयोरैक्यस्यैव प्रतिपादनात् कारणस्य सत्यत्वं कार्यस्य च मिथ्यात्वं न वाचारंभण श्रुतेरर्थः किन्तु कार्यस्य कारणात्मकतैवेति दर्शयितुमाह "अनन्यत् कार्यं कारणादिति ।" पावकादग्नेर्व्युच्चरितानां विस्फुलिङ्गानां वन्ह्यंशत्वेनानन्यत्वमात्यन्तिकोऽभेदस्तथैव परिदृश्यमानस्योद्भूतस्थूलजगतोपि परब्रह्मांशभूतस्य ब्रह्मणाऽनन्यमेव विवक्षितं दृष्टान्तवोवेषु । तदिदमनन्यत्वं कार्यकारणयो । सुवर्णमृत्तिकालोहदृष्टान्तेषु विविच्यप्रदर्शितम् ॥ कार्यं कारणात्मकमेव भवति नतु ततो व्यतिरिक्तमत्र युक्ति प्रदर्शिता—तत्र तथा उपक्रमोपसंहाराभ्यासोऽपूर्वताफलमित्यादिना तात्पर्यनिर्णायकत्वं युक्त्यादेरन्येवार्थवादस्यापि तथात्वमितिदर्शयितु केनोपनिषदन्तर्गताख्यानकं स्मारयति "नाशकद्दग्धुमनलादिरिति ।" वह्निर्वायुर्वा परमेश्वराज्ञा विना तृणादिकमपि नदग्धु शशाक देवराजस्तु स्वरूपत एव दूरापेत इत्यादिकथानकमर्थवादात्मकं तत एव ज्ञातव्यमितिकार्यकारणयोरनन्यत्वमेवेति ज्ञातव्यम् ।

ननु "उततमादेशमप्राक्ष्योयेनाश्रुतमपि श्रुतं भवत्यमतमपि मतं भवति" इत्यादिना, एक विज्ञानेन सर्वविज्ञानं प्रतिज्ञातं सेयमेकविज्ञानेन सर्वविज्ञानप्रतिज्ञा, केवलब्रह्मणः पारमार्थिकत्वे एव घटते, नतु ब्रह्मतदीयकार्याणां तदन्येषां पारमार्थिकत्वे कथमपि घटते, तस्मात् आकाशादिप्रपञ्चस्य सर्वस्याप्यनिच्छयाप्यपारमार्थिकत्वमेव मन्तव्यमिति याशङ्कां निराकर्तुमाह "एक प्रधानविज्ञानेत्यादि" परब्रह्मण सकलजगतोऽन्तरात्मतया, समस्तजगत् प्रधानत्वेन सर्वस्या-

शास्त्रव्यवहारविलोप आत्मज्ञानस्यापि तथात्वप्रसङ्गात्, व्यावहारिकसत्यत्वेन समाधानं प्रागेव दूषितम् ॥ अत आपिनपदात्मविज्ञानेन ज्ञानम् साध्यते ब्रह्मविभूतित्वादेव ।

कारणादित आरभ्यविज्ञानपर्यन्तजगतो ब्रह्मशरीरत्वेन तत्प्रकारतैकस्वरूपतया, तादृशपरब्रह्मणि ज्ञान सति प्रत्यक्षमनुमानादिप्रमाणेन विषयीकृते सति, ब्रह्मान्तर्गत किमपिवस्तु ज्ञानस्य मुख्य नावशिष्ट भवतीति, एकप्रधानब्रह्मणि ज्ञाते सर्वविज्ञानमुपपद्येत एवेति एक विज्ञानेन सर्वविज्ञान प्रतिज्ञा वाक्यस्यायमेवार्थोऽनन्वादृग इति नि[illegible] सिद्धान्तमार्गे । तदत्रानन्दभाष्यकारजगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यमहाभागा —'तदयमर्थ[illegible]ऽर्थ , इद प्रत्यक्षादिप्रमाणेन परिदृश्यमान जगद्विभक्तनामरूप बहुत्वावस्थ सृष्टे पूर्व [illegible]रहितमविभक्तनामरूपतया एक सच्छब्दशब्दित ब्रह्मलक्षणमेवाभवदिति । यद्यपि जगदिदानीमपि सदेव पूर्वमपिसदेव तथापि सृष्टेरनन्तर विभक्तनामरूपतयासत् उत्पत्ते पूर्व तु अविभक्तनामरूपतया सत्वमेतावानेवविशेष । ये तु एकमेवाद्वितीयमिति वेदवाक्य जगतोमिथ्यात्वे प्रमापयन्ति ते भ्रान्ता यतो यदि एकमेवेत्यादिवाक्य मिथ्यात्वमवबोधयेत्तदा सदेव सोम्येदमग्र आसीदिति वाक्यघटकक्कालप्रापकाग्रपदेन तथा तदैक्षत नामरूपे व्याकरवाणीति ईक्षणनामरूपप्रतिपादकोत्तरवाक्येन विरोधप्रसङ्गादिति" इति ।

यथोक्तरूप[illegible] श्रुतिवाक्ये[illegible] [illegible]स्मृतिवचनैश्च ब्रह्मा[illegible] [illegible] [illegible] । ननु ब्रह्म[illegible]नामरूप प्रपञ्च कदा[illegible] । [illegible] प्रपञ्च इ[illegible] यस्य न बहु[illegible] तेन ब्रह्मा[illegible] प्रथे [illegible] । अथवा ब्रह्मात्मलाभोऽय प्रपञ्च इति समस्त पाठ । तत्र आत्मना लाभ आत्मलाभ । आत्मलाभ इति तदीय स्वरूपसत्त्वम्, ततश्च ब्रह्मात्मतया=ब्रह्मात्मकत्वेनात्मलाभो यस्याते बहुव्रीहिरेव । ब्रह्मा[illegible]स्वरूपसत्ता[illegible]निर्यर्य । इति प्रतीयते तत्वतो ज्ञायते । एतावता ब्रह्मविभूतिरूपस्य जगतो न निषेध कृतोऽपितु साधित एवेति । ननु "अतोऽन्यदार्तमित्यादि" श्रुत्या प्रपञ्चनिषेधस्य दर्शनेन, तादृशनिषेधस्यान्यथानुपपन्नत्वादपिनिषेधपरकत्वादपिनिषेधपरकत्वप्राप्तान प्रतिपन्नानाम् "अतो यदार्तमित्यादि" आगमवाक्यनामन्यत्रैव तात्पर्य कल्पनीयमित्याशयवानाह "तन्निषेधे" इत्यादि । अथादागम वाक्यात् प्रपञ्चनिषेधे विवक्षिते, तत्तदर्थप्रतिपादनहानोपादानाद्यर्थका सर्वेव्यवहारा लौकिका शास्त्रीयाश्चदत्ततिलाञ्जलयोऽप्रामाणिका भवेयु सर्वपदार्थस्य मिथ्यात्वात् ।

ननु यथा स्वाप्निका सर्वे व्यवहारा परिदृश्यमाना अपि तत्काले तथापि प्रबोधे तेषामप्रामाणिकत्व सर्वसम्मतम्, तथैव सर्वमेवव्यवहाराणामप्रामाणिकत्वमिष्टमेव तत्राह—"आत्मज्ञानस्यापी"त्यादि । अयमर्थ ब्रह्मभिन्नपदार्थमात्रस्य मिथ्यात्वे "श्रोतव्य" इत्यादिवाक्यजन्यान्त करण

वृत्त्यात्मकब्रह्मज्ञानस्यापि मिथ्यात्वमापतेत्, असत्यकारणजन्यत्वादसत्यत्वमसत्यविषयत्वं च भवेदौपनिषद् ब्रह्मधिय इति । तथा च निरर्थको ब्रह्मविचारो भवन्मतेऽपीति भावः ।

अथ पारमार्थिकदृष्ट्या ब्रह्मभिन्नस्य सर्वस्य मिथ्यात्वेऽपि, परन्तु ब्रह्मज्ञानात् पूर्वं व्यवहारकाले ब्रह्माज्ञानत्वात्, प्रमाणप्रमेयव्यवहारो पारमार्थिकत्वाभावेऽपि व्यवहारे यथायथं निर्वाह्यते एवेति चेत्तत्राह, "व्यावहारिकसत्त्वे" इत्यादि । अयमाशयः व्यावहारिककारणेन लौकिके न वा, व्यावहारिकमेव कार्यं साधितं स्यात्, लौकिके घटादिके स्वर्गादिश्च । मोक्षस्तु न लौकिकं कार्यं इति तत्सम्पादनं कथं केन स्यादिति । एतदुक्तं भवति व्यावहारिकसत्तया प्रमाणप्रमेयादिव्यवहारस्य समर्थने ब्रह्मज्ञानाय व्यावहारिकस्यैव प्रमाणस्याभावात्, श्रुत्यादिप्रमाणजनिताऽन्तःकरणवृत्तिरूपा [illegible] व्यावहारिकधर्ममात्रविषयकमेव भवेत्, ततश्च निर्विकल्पब्रह्ममात्र[illegible] व्यवहाराप्रमाणाधीनत्वमेवापतेत् । तथा च ब्रह्मपारमार्थिकत्वमपि पारमार्थिकसाधक[illegible] । एवञ्च भवन्मते मोक्षाशा, आशामोदकादिसमानैव स्यादिति न मोक्षात्मकेष्टसिद्धिरिति । न चात्र करणजन्यवृत्तिज्ञानस्याविद्यकत्वेन, व्यावहारिकाविद्यायास्तादृशकरणेन विनाशात्, ब्रह्मप्राप्तिरूपा मोक्षः स्यादेवेति वाच्यम्, तथापि तत्त्वज्ञानजनिताविद्याध्वंसस्य विनाशकाभावेनाऽनाशात्, अविद्याध्वंसरूप द्वितीयस्य सर्वदाऽवस्थानेन द्वितीयस्य तस्य सत्त्वेनाद्वितीयब्रह्मप्राप्तिरूपमोक्षस्यासम्भवात् । "अविद्यास्तमयो मोक्षः सा च बन्ध उदाहृतः" इति त्वत्पक्षपातिनामुद्गारात् । अविद्या च द्विविधा स्थूलरूपा संस्कारादिसूक्ष्मरूपा च, ततश्च तत्त्वज्ञानेनोभयोविनाशेऽपि तत्त्वज्ञानस्य तज्जनिताविद्याविनाशस्य च नाशकान्तराभावेन सर्वथा अविद्याया विनाशाभावेन तदभावरूपमोक्षाभावादिति ।

अद्वैतश्रुतिजनितब्रह्मविषयकनिश्चयेन प्रपञ्चबाधो न भवतीति प्रदर्श्य, तदेतत्प्रकरणमुपसंहर्तुमाह "अतऔपनिषद्" इत्यादि । यत् इदं जगत् सविशेषस्य ब्रह्मणो विभूतिरूपमर्थात् जगद् ब्रह्मणो प्रकारप्रकारिभावः तस्मात् कारणात् ब्रह्माद्वैतनिश्चयेन जगतो बाधो न भवति, विभूतिसहितस्यैव ब्रह्मणोऽद्वितीयनिश्चयस्योपनिषद्वाक्यासिद्धत्वात् । तथाऽबाधितप्रतीतिसिद्धत्वात् । अर्थात् यथा मन्दान्धकारे सादृश्यादिदर्शनसमुद्बोधितरजतसंस्कारसहितशुक्त्यज्ञानेन शुक्तिकायां जायमानरजतस्य, यथा वा रज्जौ जायमानसर्पभ्रमस्य शुक्तित्वरज्जुत्वादिज्ञानोत्तरकालेनेदं रजतं सर्पो वा बाध्यते, न तथा ब्रह्मविभूतेर्बाधकं किञ्चिदुपलभ्यते इति बाधकाभावान्न बाधः किन्तु घटवत् बाधकाभावान्न भवति घटस्य बाधस्तथैवेहापि ब्रह्मविभूतिरूपजगतो बाधो न भवतीति सङ्क्षेपः । इति प्रपञ्चस्य ब्रह्मविभूतित्वस्थापनपूर्वकाद्वितीयश्रुत्यर्थवर्णनप्रकरणस्य तत्त्वदीपः ॥

ननु प्रपञ्चस्य सत्यत्वं नास्तीति प्रतीतिविषयत्वं कथमुपपद्यते? असत्त्वे वा अस्तीति प्रतीतिविषयता प्रपञ्चस्य कथमित्यस्यापि समानत्वात्। सदसत्त्वमेकस्य कथं तयोर्विरुद्धत्वात् सदसत् प्रतीतिप्राप्तस्य विरोधप्रसङ्गे तयोर्मध्ये एकस्य तदन्यतरस्यार्थस्य निश्चायकाभावात् प्रपञ्चस्योभयधर्मवत्त्वमिति जैनमतालंबिनो गिरन्ति। सत्त्वं पुरस्कृत्यैवासत्त्वप्रतीतिदर्शनात् सर्वदा प्रपञ्चस्य सत्त्वमेवेति सांख्याः। सदसत् प्रत्यय प्राप्तविरोधे प्राप्ते विरोधपरिहाराय विरुद्धांशं परित्यज्यानिर्वचनीयत्वमेव प्रपञ्च-

एकमेवाद्वितीयमिति, अद्वितीयश्रुत्या प्रपञ्चनिराकरण भवतीति मन्यमानानामेतावता प्रकरणेन निरासो भवतीति प्रतिपादितम्। अथ च प्रपञ्चो न सद् वाधात्, नाप्यसत् प्रतीय मानत्वात् तस्मात्सदसद्भ्या विलक्षणमनिर्वचनीयमेवेतियत्तदीयमेवमत तस्य निराकरणाय विचार मुपक्रमते "ननु प्रपञ्चस्य सत्यत्त्व" मित्यादि। ननु यदि प्रपञ्च सद्भवेत्तदानास्तीति प्रत्यय विषयता तस्य कथ स्यात् नाह सतो वाध दृश्यते च प्रपञ्चस्य वाध शुक्तिरजतादिवदिति सर्वा सत्ववादिनो माध्यमिकस्याक्षेप, अर्थात्, तस्य सत्यत्वनास्तीति बाधविषयत्व कथ भवेदित्या क्षेप। अत्र साख्यादय प्रत्यवतिष्ठन्ते 'असत्वेवा–कथमिति"–यदि नास्तीति प्रतीत्यन्यथानुपपत्त्याऽसत्वाग्रहोभवतस्तदा घटोय पटोयमिति बाधरहितसर्वलोकप्रत्यक्षादिप्रमाणस्य निरालवमिति तस्य प्रपञ्चस्य सत्वमप्येष्टव्यमेवाकामेनापीत्यत सन्नेव प्रपञ्च इति साख्यादय। ननु घटादौस्व रूपतोऽस्तीति सत्प्रत्यय पररूषेण नास्तीत्यसत्प्रत्यय इति सत्वासत्वप्रत्ययवलादुभयमपि पदार्थस्येति जैनमत तत्राह–'सदसत्वमेकस्य कथमिति" विरुद्धद्वयमेकस्मिन्नसभवान्नोभययोग्यमित्यर्थ। विचारप्रसक्तिमाह, 'सदसत् प्रतीतिप्राप्तमित्यादि" परस्परविरुद्धाकारद्वयप्रसगे परस्पर विरोधात्तदुभयस्य तदन्यतराकारस्य वाऽनिर्णयाद्विचारो भवति प्राप्तावसर, अतोऽत्र विचार प्रस्तूयते इति पूरयित्वा वाक्यार्थो वर्णनीय। तत्र प्रथमतोऽनेकान्तवादिमा स्याद्वादमतमुभयो प्रतीयमानत्वादेवैकस्मिन् सदसत्वयो समावेशे न भवति कोपि विरोध प्रतीयमानत्वादेवेति तदाशय। अर्थात् सदसत्वयोरेकत्र प्रतीयमानयोर्मध्ये एकस्यैवनिर्णये विनिगमककारणाभावात्, यथा प्रतीतप्रपञ्चस्योभयरूपत्वमेष्टव्यमेवेति जैना वदन्ति। 'निश्चायकाभावात्' इत्यस्य निश्चायककारणाभावादित्यर्थ। स्याद्वादविरोधि एकान्तत सत्ववादिसांख्यमतमाह, 'सत्व पुरस्कृत्य' इत्यादि निषेधस्य प्राप्तिपूर्वकत्वनियमेनोपजीव्यत्वादसत्वप्रतीत्यपेक्षया सत्वप्रतीति प्रबला। तदुक्तम्—

"लब्धरूपे क्वचित्तस्यतादृगेव निषिध्यते। विधानमन्तरेणासौ न निषेध्यस्य सभव॥" इति।

तस्मात् सर्वदा प्रपञ्चस्य सत्वमेवेति। न च तर्हि घटो भविष्यति घटोध्वस्त इत्याद्य-

स्येति शांकराः। सत्वासत्वे विरुद्धदेशकालभेदेनैकत्रैवव्यवस्थिते घटादौस्त एवेति नैयायिकाः। तदेवं वादिविप्रतिपत्त्या संविद्विचारोमीमांसकमतेन विधेयः। यदि घटादि स्वरूपेऽस्तित्वं नास्तित्वमुभयमपि विजानाति तदा युगपत्सत्वमसत्वं घटादिषु स्यादेव।

भावप्रतीति कथ सगतास्यादिति वाच्यम्, घटो नास्तीत्याद्यभावप्रतीतिर्नघटाद्यभावपरा किन्तु तदीयानभिव्यक्तिपरैवेति न दोष ।

एतन्मतद्वयविरोधिशांकरमतमाह, 'सदसत्प्रत्ययेत्यादि' प्रतीतिबलात् सत्वासत्वरूप विरुद्धधर्मप्राप्तौ, विरुद्धयोर्द्वयो सामानाधिकरण्यबलात् सत्वमसत्व च परस्परविरुद्धधर्मद्वय परिहाय, नसत् नाप्यसत किन्तु सदसद्भ्या विलक्षणमनिर्वचनीयमेवजगत, सत्वेवाबे तस्या सत्वे प्रतीतिर्नस्यादिति मायावादिन ।

न्यायमतमाह, 'सत्वासत्वे' इत्यादि । विभागेन=विभक्तकालदेशाविशेषबलात् प्रतीयमान घटादे सत्वासत्व च व्यवस्थितमिति भावस्तेषाम्। प्रकरणमुपसहरति 'तदेववादिविप्रतिपत्तावित्यादि' वादिविवाददर्शनात्, विप्रतिपत्ते सशयोत्पत्त्या, सदिग्धार्थस्य निर्णयाय विचार प्राप्तावसरो भवति, तत्रान्यमताना दोषवत्वप्रदर्शनपूर्वकसोपाधिकसत्वासत्वपक्षो मीमासकाभिमत सद्युक्तिको निर्णीयते इति भाव ।

तत्र निरूपाधिकसत्वासत्वसमुच्चयनिराकरणपूर्वकसिद्धान्तोऽनुवर्णितो भवति घटादि स्वरूपे सत्वमसत्वमित्यादि । अयमाशय —घटस्वरूपे नास्तित्व प्रतीयमानमेव, नास्तीतिप्रतीतिदर्शनात्, अथ यदि तस्य घटस्य सत्वमपि मन्येत, अथवा प्रतीति सत्वमसत्व च निरुपाधिक यदि प्रतिपाद्येत तर्हि सदसत्वसमुच्चय स्वीकृतो भवेत्। न चेव किन्तु यत् किञ्चिद्देशकालावस्था विशेषेणसत्वम्, अन्यदेशकालावस्थाविशेषावच्छेदेनोपाधिकमेवासत्वमेन च प्रतीतय प्रतिपादयन्ति । तस्मात् कालदेशादिभेदात् सत्वासत्वे घटादौ व्यवस्थिते, इति वादस्य वादान्तरस्य च दुष्टत्वान्न तेषा सभव इति भाव । निराकृतस्य व्याघातवाधितस्य स्याद्वादपक्षस्य, स्यादस्ति स्यान्नास्ति, स्यादस्ति च नास्ति च स्यादवक्तव्य स्यादस्ति चावक्तव्यश्च, स्यान्नास्ति चावक्तव्यश्च, स्यादस्ति च नास्ति चावक्तव्यश्चेति जैनानामनेकान्तवादस्य न कथमपि सभव इति ॥

अत्र च नैयायिकादिमतमुपाधिभेदादुभय तद्भेदस्तु स्वात्मना सत्वम्, परात्मनाऽसत्वम् स्वकाले सत्वम् परकाले चासत्वमेव। एव स्वदेशे सत्वम, अन्यदेशेऽसत्वम्। अत्र तु तादात्म्य ससर्गो वा सत्व व्यपदिष्ट भवति । तद्विरुद्धवेषेण वस्तुन्येवासद् व्यवहार । यथाघटादि स्वात्मना सन्निति निर्दिश्यते, स एव घट पटात्मनाऽसन्निति निदिश्यते। स्वदेशकालयो सन्नेव घटादिर्थ

इदमिदानीमत्रनास्तीत्येवं बुद्धिदर्शनात् । देशकालादिदशाभेदेऽस्तिनास्तीति बुद्धेः । तस्मात् देशकालादिभेदेन घटादिषु सत्वमसत्वमुभयमपि व्यवस्थितम् । जैनमतस्य निरासात् स्याद्वादो न संभवतीति ।

स्वविरोधिदेशकालयोरसन्नित्येव व्यपदिश्यते । उभयानुकूलोत्पाद्यमेव मींमांसकपक्ष आहतोभवति सिद्धान्ते । अत्रैतावान् विवेको यथा तादात्म्यतदितरसबन्धान्यतरलक्षणैव सत्ता भवति । तत्राय घटोऽस्तीत्यत्र प्रथमातादात्म्यरूपैव सत्ताप्रतीता भवति, तथाऽत्रेदानीं घटोऽस्तीत्यत्रैतद्देशकालसयोगलक्षणा सा सत्ता प्रतीयते । तत्र तदा घटोनास्तीत्यत्र च पटादितादात्म्याभावलक्षणा पटात्मनाऽसत्ता प्रतीयते । तत्र तदाघटोनास्तीत्यत्र च तद्देशकालसयोगाभावलक्षणाऽसत्तैव प्रतीयमाना भवति । एव भाव रूपयो सदसत्वयोर्देशकालादिभेदेन घटादिभावेषु समुपपत्तिर्भवती त्येक पक्ष । एवम् 'भावान्तरमभावोऽन्योनकश्चिदनिरूपणात्' इति वदद्भि अभावो भावान्तररूप एव, अभावस्याधिकरणरूपतयापटेविद्यमानो घटाभाव पटरूप एवेति पक्षान्तरम् । अयघटोऽस्तीत्यत्र प्रतीत घटस्यस्वरूपसत्व घटत्वरूपमेव । तदेवाय घटोनास्तीत्यत्रापि पटादितोभेदरूपमसत्व प्रतीयते । एवं स्वदेशकालसम्बन्धरूपासत्तैवान्यदेशकालनास्तिता प्रतीतावपि विषयो भवति देशकालादिसम्बन्धाभावत्वेनेति । तथा च धर्मविशेष एव सर्वभावानामस्तिप्रतीतिविषयो भवतीति साधितम् । अयमेव प्रकार सिद्धान्तसमत इति ।

परस्परविरुद्धयोरपि सत्वासत्वयोरेकस्मिन् धर्मिणि सहचरितोभयधर्मद्वयवत् विरुद्धयोरप्येकत्राविरोधेन समर्थनकारिणा मतमसहमान सत्वैकान्तवादिसाख्य युक्त्या सत्वपक्ष समर्थयितु पुन प्रत्यवतिष्ठते "ननुदेशकालादिसम्बन्ध" इत्यादि–पूर्वमसतोघटादे स्वदेशकालादिसम्बन्धेन सत्ता नोपपादयितु शक्नोति कोपि, यथा सिकतासु, अविद्यमानतैलस्य सत्ता कर्तुं न शक्नोति तथैव प्रकृतेपिज्ञेयम् । यत सम्बन्धो हि द्वयाश्रितो भवति, यथा पटघटयोर्नत्वेकस्यसम्बन्धो भवति नवा, विद्यमानस्याविद्यमानस्य तदपरस्य सम्बन्धोऽसबन्धो भवति, कुत ? यतो द्विष्ठस्य सम्बन्धस्यैकासत्वे तदसभवात् । अर्थात् सयोगादे सम्बन्धस्य सम्बन्धिद्वयजन्यस्या सत्याधारान्तरे समुत्पत्तेरभावात् । एव च स्वदेशकालादिसबन्धात् सत्व भावानाम् , भावस्य सत्वे च स्वदेशकालादिसम्बन्ध इति भवति दुरुत्तरोऽन्याश्रय इति । तस्मात् सत्वमेव सर्वदा भावानामित्येव स्वीकर्त्तव्यम् । अन्यथाऽन्योन्याश्रयप्रसङ्गादिति । ननु यथा दण्डचक्रादिव्यापारादनन्तर सत उपलब्धिस्तदा कारकव्यापारो निरर्थक एव, तस्मात् कारकव्यापारात् पूर्वं न सन् घटादिरपितु असन्नेव । न च वन्ध्यापुत्रादेरप्युपपत्ति स्यादिति वाच्यम् , असद्विशेषस्यैव तथा नियमात् , तस्मादसत एवोत्पत्तिरित्याशङ्कायायमाह "असत कारकव्यापारेण सत्वमित्यादि" नहि

ननु देशकालादिसम्बन्धः सत एवोपपद्यते, ननु देशकालादिसम्बन्धाः सतः सत्वमिष्टम्, सम्बन्धस्योभयनिष्ठत्वात्, तस्मात् सत एव सत्वं सर्वदा भवति। असतः कारकव्यापारेण सत्वं तु सर्वदैव दुर्घटम्। प्रपञ्चश्चाद्यन्तवानतः सत्पक्षे एव निवेशितः। स्वभावतोऽसत्पदार्थस्य प्रयत्नशतेनापि सत्व सभवति, नहि सिकताभ्यस्तैल कोपि कर्तु शक्नोति, तथा सति तैलार्थीतिलोपादानकारण तिलादिक नो सचिनुयाद्। सर्वोपि सर्वत्र सर्व स्वाभिलपित प्राप्स्यति प्रयत्नमन्तरेणापीतिनासत्व भावस्य।

किञ्च असत्पदार्थस्याप्युत्पत्तिस्वीकारे दण्डचक्रादितोऽसत्वाविशेषात् घटवत् पटादेरप्युत्पत्तिप्रसङ्गात्। केनचिद्व्यापारविशेषेण कूर्मरोमगगनकुसुमादीनामपि कदाचिदुत्पादप्रसङ्गात्। तस्मात् सर्वदा सन्नेवभावपदार्थ। उपलब्ध्यनुपलब्धी तु आविर्भावतिरोभावाभ्या जायेते, तादृश भावे एवासत्कथनमिति।

ननु दण्डादिसद्भावे घटादिकार्यविशेषस्य दर्शनेन सामर्थ्यप्रतिनियमात्, नातिप्रसङ्ग इति चेन्न कार्यगर्वत्वमन्तरेण सामर्थ्यस्यापि निरूपयितुमशक्यत्वात्। तस्मात् कारणव्यापारात् पूर्वमपि सदेव कार्य कारणव्यापारेणाभिव्यज्यते, निष्पीडनेन तैलस्य दोहनेन सौरभीयेषु पयस। एतदेव स्वीकर्तव्यमित्याशयेनाह "तस्मात्, आद्यन्तवान्" इत्यादि, घटादेभावस्याद्यन्तौ, प्रागभावप्रतियोगित्वध्वसप्रतियोगित्व तन्नोत्पत्तिविनाशलक्षण किन्तु आविर्भावतिरोभावलक्षणमेव। अर्थात् न घटादेरुत्पादो विनाशो वा भवति किन्तु आविर्भावतिरोभावावेव भवतो नतूत्पत्ति भवति स्वभावत सर्वदा सत्वात् "नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सत" अत सत्वेन निश्चित सदासन्नेवेतिमन्यतामिति। "सदसद्रूपयोरात्मदेहयोर्नित्यत्वानित्यत्वाभ्यामेव सदसच्छब्दाभ्या व्यपदेश" इत्याचार्योक्ति।

"असत" इत्यादि यश्च सर्वथाऽसत्पदार्थस्तस्य कदापि सत्व न सभवति, कारणसबंधरूपोत्पत्तेरभावात्। यथा खपुष्पादेरुत्पत्तेरभावात् कदापि सत्व न भवति तथैव भावानामप्यसत्वे कदापि तेषा सत्व नैव सभवेदिति। उत्पत्ते पूर्वमविद्यमानस्य तथा विनाशादनन्तरमसतः सार्वदिकासत्वापेक्षया कोपि विशेषो नास्ति, असत्त्वस्य सर्वत्र समानत्वादिति। ननु साख्यमत व्यवस्थितौ तदेवमतं सिद्धान्त स्यात्, परन्तु नैव विशिष्टाद्वैतसिद्धान्तेऽन्यादृशप्रक्रियायाः श्रुतिसमर्थिताया स्वीकारात् तस्मात् साख्यमतस्य निरास सक्षेपेणात्र टीकायामुद्भाव्यते। तत्रायमाशय द्रव्य तावत् विनाशोत्पत्तिराहित्यलक्षण नित्यमेवैकान्तत। तस्यमृदादिद्रव्यस्यावस्था विशेषापटत्वतन्तुत्वादिका आगन्तुका उत्पत्तिविनाशभाजोऽनित्या एव। अवस्थाविशेषस्य सपादनायैवतन्तुवायवेमादिलक्षणकारकाणा व्यापारोऽपेक्षितो भवति ननु पटादेरुत्पत्त्यर्थम्। द्रव्यस्य मृत्तिकादे सत्वादेवकारकव्यापारविषयत्वमवस्थान्तरभागित्वञ्चेति तदुभयत्व सुलभतयैव घटते।

तथैवोक्तमभियुक्तैः "आदावन्ते च यन्नास्ति मध्यभागेपि तत्तथेति । अतो निश्चितसद्भावः सर्वदासत्वमेव स्वीक्रियताम् । असतः सर्वदाऽसत्वमेवोत्पत्त्यभावात्, गगनकुसुमवत् । पदार्थस्यासत्वे प्रागभावात्यन्ताभावयोरविशेष एव स्यात् ॥

नचात्रकपालादिनैव घटस्तन्तोरेव पट इतिप्रतिनियम इति वक्तव्यम् अन्वयव्यतिरेकयोरेव नियामकत्वात् । अर्थात् यस्य कार्यस्य येन कारणविशेषेण सहान्वयव्यतिरेको घटते तत्रैव कार्ये तादृशकारकविशेषस्य जनकत्व नतु तद्भिन्नस्य तदन्यत्रकार्ये जनकत्वम् । अन्वयव्यतिरेकश्च सार्वलौकिक प्रत्यक्षादिप्रमाणसिद्ध एवेति न तत्र प्रयत्नान्तरमधिकमपेक्षित भवति । अर्थादन्वयव्यतिरेकाभ्यामेव च कारकसमुदायस्य तस्य तस्य तत्र तत्र कार्ये सामर्थ्य नियम सिद्ध्यतीतिनातिप्रसङ्ग पदमादधातीतिभाव । तत्तदवस्थाविशिष्टस्वरूपेण घटो जात पटश्च विनष्ट इत्यादिप्रतीतिरपि समुपपद्यते । कारकसमुदायस्य कार्याभिव्यजकत्वम्, नतूत्पादकत्वमिति मतेतु कारककारणस्य ज्ञापककारणस्य च विभागो न सघटेत ।

[यथा 'दण्डेन घट' इत्यत्र दण्डस्थतृतीययादण्डे जनकत्व ज्ञाप्यते 'प्रदीपेन घट.' इत्यत्र तु प्रदीपपदोत्तरतृतीययाज्ञापकत्व प्रदर्शित भवति नहि प्रदीपेन घट कदाचिदुत्पादितो भवति किन्तु ज्ञापित एव भवति, नवा दण्डेन घटोज्ञाप्यते अपितूत्पादित एव भवतीत्येव जनकज्ञापककारणयोर्भेदो भवति । सचाय भेद उत्पत्तिस्वीकारे एव भवत्यभिव्यञ्जकत्व पक्षे न घटेत तस्मात् कारकचक्रस्याभिव्यञ्जकत्वपक्षे कारकज्ञापकयोर्यौविभागोलोकसिद्ध. स दत्तजलाञ्जलिक एव स्यादिति] ननु नेयमभिव्यक्तिर्ज्ञानरूपा किन्तु ततो भिन्नैव काचिदिति चेत् तदाप्रकारान्तरेणोत्पत्तिरेववलादूगले सांख्यस्यापतिता भवतीति न कारकसमुदायस्याभिव्यञ्जकत्वमपितु कार्यजनकत्वमेव । अपिच येयमभिव्यक्ति सा नित्या, अनित्या वा ? नोभयथापि समीचीनतामञ्चति, तथाहि तस्या अभिव्यक्ते नित्यत्वे सर्वदा विद्यमानत्वेन कारक व्यापारो निरर्थकत्वमेव स्यात्, सत्वादभिव्यक्ते सर्वदा सत्वेन तादृशाभिव्यक्त्यर्थं कारकचक्रस्य निष्प्रयोजनत्वात् । अभिव्यक्तेरप्यभिव्यक्त्यन्तरस्वीकारेऽर्थात् द्वितीयपक्षस्वीकारेऽनवस्था दुरवस्थैव स्यात् । तत्र प्रथमाऽभिव्यक्ति स्वात्मलाभायाभिव्यक्त्यन्तरमपेक्षते, द्वितीयापि तृतीया सा चतुर्थीमित्ययमेवमनवस्था स्यात् । न च व्यवस्थाया सत्या साभ्युपगन्तु युक्ता । न चाभिव्यक्तेरभिव्यक्तिर्नभवति, किन्तु साऽभिव्यक्तिरुत्पद्यते, इत्येवस्वीक्रियते, ततश्च नानवस्था नवा कारक चक्रो निष्फल इति वाच्यम्, तथा सति सत्कार्यवादोऽस्तमियादसत्कार्यवादश्चापतेत् ।

तदभिव्यक्तेरुत्पत्त्युपगमतो यथोपलभतस्योत्पत्तिरुपगन्तुमुचिता । सदेवद्रव्यमवस्थान्तर भाक् सत्कार्यं भवतीत्येव सत्कार्यवाद. परिरक्षणीय. । एतादृश एव सत्कार्यवादो विशिष्टाद्वैत

अथ षष्ठप्रपाठके श्वेतकेतुमुपादायतत्वमसीति यत् श्रुतम् तस्यमुख्यार्थः कथं सिद्ध्यति, यतः कार्पण्यादियुक्तश्चेतनस्त्वंपदार्थः, सर्वज्ञत्वादियुक्तश्चेतनस्तत्पदार्थस्तयोरैक्यं कुतः संभवति प्रकाशान्धकारवत् विरुद्धत्वात्। त्वमर्थस्थे तटस्थे वा गुणे तत्वंपदयोरैकार्थ्यश्रुत्या कथमिव प्रतिपादितं भवेत्। अज्ञत्वं सर्वज्ञत्वं वा चैतन्यस्य विशेषणमुपलक्षणं वा ? विरुद्धगुणसंक्रमणात् त्वंतदर्थयोर्भेद एव भवेत्। वाच्यैकदेशपरित्या-

सिद्धोऽपीतिसाख्यमतनिरास । अविद्याजनितोनिखिलभेदप्रपचो मिथ्या । अद्वितीयश्रुत्या च-जगतोमिथ्यात्वमेव प्राप्त भवतीति गम्यते । तच्च प्रतीतिविरोधाभ्या सदसद्विलक्षत्वसिद्धे सुस्थितमिति मयावादिमतम् । तच्च बहुधानिराकृतत्वादेवोपेक्षणीयमितिदिक् ।

॥ इतिसकलभेदप्रपचस्यसत्वपक्षसमर्थनप्रकरणस्य तत्त्वदीप ॥

ननुब्रह्मात्म्यैकाज्ञानमूलकजगत् निर्विशेषचैतन्यमात्रब्रह्मात्मैक्यज्ञानादेवाविद्यादिसर्वजगतो विनाशो भवति । निर्विशेषचिन्मात्रब्रह्मात्मैक्य च तत्वमसीति ज्ञानादेवजायते इति मत प्रतिक्षेप्तुतत्वमसि वाक्यार्थविचार प्रक्रमते "अथषष्ठप्रपाठके श्वेतकेतुमुपादाय" इत्यादि, उपादान ग्रहणार्थक न किन्तु सबोधनार्थकम्, तथा चोद्दालक ऋषि स्वपुत्र श्वेतकेतु सम्बोध्य, छान्दोग्यस्य षष्ठाध्याये तत्वमसीति प्रोवाच । अद्वैतवादे जीवब्रह्मणोरभेदसिद्धयेतत्वमसीति वाक्यमेवमुख्य प्रमाणमिति ते सगिरन्ति, परन्तु अस्यापि समानाधिकरणवाक्यस्य मुख्यार्थत्व न सभवति तत्राह "तस्येति" तस्य=तत्वमसीति वाक्यस्यमुख्यार्थत्व न सभवति, तत्राह "कार्पण्यादि", तस्यवाक्यस्य मुख्यार्थत्व न भवतीत्युपपाद्यते, कार्पण्येत्यादि । तत्र कार्पण्यमतिदैन्यम् गतिशून्यतेत्यर्थ । शोकश्चदु खानुसधानजनितचित्तस्य व्याकुलत्वम् । दु ख च वर्तमानकालिकमनिष्टानुभवलक्षणम् । तत्र जीवेश्वरयो समानविभक्त्या ज्ञायमानमेकत्वम्, तदेकत्व तेजोऽन्धकारवत् परस्परविरुद्धयोर्नघटते तस्मान्न सद्वाक्यस्यमुख्यार्थत्व सभवति । परस्परविरुद्धस्वभावकत्वमेव दर्शयति "कार्पण्यादिदोषविशिष्टश्चेतनो जीवस्त्वपदस्यार्थ सर्वज्ञत्वादिगुणकश्च तत्वमसीतिवाक्यघटिततत्पदार्थस्य सर्वज्ञत्वादिविशिष्टपरमेश्वरपरक ततश्च परस्परविरुद्धयोरेकत्व न भवति, तस्मात् तत्वमसीतिवाक्यनोक्तार्थकम् । "त्वमर्थेवा तटस्थे वा" इत्यादि । त्वमर्थजीवनिष्ठोगुणोऽल्पज्ञत्वसुखित्वदु खित्वादितदर्थपरमेश्वरनिष्ठो गुण सर्वज्ञत्वसत्यसङ्कल्पत्वजगत्कारणत्वादि स च यथोक्तगुणोयथायथं ब्रह्मणस्तटस्थलक्षणत्वेनमायावादाभिमत । अनयोरल्पज्ञत्वसर्वज्ञत्वादिधर्मयोराश्रयभेदकत्वात् तदर्थत्वमर्थयोरैक्यमभेद कदापि न सभवतीत्यर्थ ।

ननु सर्वज्ञत्वाल्पज्ञत्वयोश्चोपलक्षणतैव, नतु तयोर्धर्मयोर्विशेषणता, ततश्च तदुभयोपलक्षितं चिन्मात्रं वस्तु एकमेवेति न मुख्यार्थतमत्र इति । तत्राह "अज्ञत्व सर्वज्ञत्व वा" इत्यादि । चित्त-

गात्, एकव्यक्तिनिष्ठत्वं तयोर्भवेत् सोयं देवदत्तवत्, तदप्यपेशलम्। देशकालदशाभेदात्, विरुद्धयोरपि समावेशः सोयं गौरिवेति युज्यते। स्वप्रकाशचैतन्ययोविरुद्ध धर्मद्वयसम्बन्धस्याविरोधापादकं व्यवस्थापादकं किंचिदपि देशकालादिकं न संभवति।

निर्धूतनिखिलद्वन्द्वे स्वप्रकाशात्मके चैतन्ये, द्वैतलक्षणानर्थभ्रमस्याभावात्तत्त्वमस्यादिशास्त्रं निरर्थकमेव भवेत्। एतेन सत्यकामत्वादिकागुणामायोपाधिकेऽध्यस्तास्तथाशोकमो-

त्वश्य शुद्धचैतन्यस्य एते गुणा विशेषण वा उपलक्षण वा ? तत्र च नास्ति कश्चिद्विरोधस्तत्राह "अज्ञत्वमित्यादि" चिद्धातो चित्त्वस्योपलक्षणत्वेपि, अज्ञत्वादिनाउपलक्ष्यस्य जीवभावस्य, सर्वज्ञादिधर्मेणोपलक्षितस्य चेश्वरभावस्य च वैयधिकरण्यादेव त्व पदार्थस्य तत्पदार्थस्य च, एतयोर्द्वयो रैक्य तादात्म्य कथमपि नसिद्ध्यतीत्यर्थ।

ननु तत्वपदयोर्विरोधान्मुख्यार्थस्त्यज्यते, चिन्मात्रेतु पदद्वयस्य लक्षणास्वीक्रियते यथा सोय देवदत्त इत्यत्र तद्देवदत्तोपलक्षितवस्तुमात्रेपदद्वयस्यलक्षणा, तथैव प्रकृतेपीति कुतो विरोध इत्याशङ्कायामाह "वाच्यैकदेश" इत्यादि, वाच्यैकदेशस्य प्रवृत्तिनिमित्तभेदस्य परित्यागेन विशेष्य शुद्धचैतन्यमात्रे पदद्वयस्यवृत्तिर्जहदजहल्लक्षणयेति तनो न कोपि दोष इति। एतन्निराकरोति "तदप्यपेशलम्" इति न समीचीनमसुन्दरमिति यावत्। एकपदलक्षणयैव परस्परविरोधपरिहारसभवे पदद्वयलक्षणा न युक्ता नो मनोरमेत्यर्थ। दृष्टान्ते सोय देवदत्त सोय गौरित्यादावपि पदद्वयस्य लक्षणा नास्ति, तत्राह—"देशकालावस्थाभेदादित्यादि। तत्र तत्तानामतद्देशकालयोगित्वरूपम्, इदन्तैतदेशकालयोगित्वरूपा, ततश्चतत्ताविशिष्टे इदन्ताऽन्वयस्य बाधेपि, एकस्मिन् धर्मिणी देवदत्तादौ, तदुभयाऽन्वये न कोपि विरोध। परिच्छिन्नपदार्थस्य देशद्वयसम्बन्ध. कालभेदात् सभवत्येव, कालद्वयसबन्धस्तु पदार्थस्य स्थिरत्वादेव निर्वाह्यते। प्रतिपादकाभ्या देशद्वयकालद्वयसम्बन्धस्य समानविभक्त्या तदाश्रयद्रव्यैक्यस्य च प्रतिपादने, नास्ति विरोध। अस्मिन्नेवार्थे सोय देवदत्त सोऽय गौरित्यादिवाक्यस्य तात्पर्यम्। तस्मात् दृष्टान्ते न पदद्वयस्य लक्षणेत्यर्थ।

नच केवलाद्वैतमते इद समाधानमपि तु मदीयसिद्धान्ते एव, ततोनेद तैर्वक्तु शक्यं तत्राह "स्वप्रकाशस्ये"त्यादि। निर्विशेषचैतन्यमात्रे विरुद्धधर्मद्वयसबन्धस्याविरोधोपपादकं देशकालावस्थाभेदादौ किमपिनघटते, स्वय प्रकाशरूपत्वादज्ञानमपि, अविरोधोपपादक न शक्य तस्मिन् चैतन्ये इति भाव।

स्वयं प्रकाशरूपे ब्रह्मणि तमोरूपाज्ञानस्य सम्बन्धाभावादेवाविद्याकृतभेददर्शननिरसनार्थत्वं तत्वमस्यादिशास्त्राणा निर्विशेषचिन्मात्रब्रह्मात्म्यैक्यविषयत्व च पराभिमत कथमपि न

हादिकाजीवेऽध्यस्ता विभागेन ते मायाविद्ये तदुभयस्मिन् विद्येते इति यन्मतं केषाचित् तन्मतं- पूर्वमेव निरस्तम् । चित्स्वरूपे विशिष्टे वा मायाऽविद्यादयोऽवतिष्ठन्ते ? पूर्वकल्पेजीवेश विभागाभावे सर्वसाङ्कर्यंभवेत् । द्वितीयकल्पेविशिष्टचैतन्यमपि निर्विशेषेभावाद्युपाधिभि र्विभिन्न इव विश्रान्तं विशिष्टं चेति तव मतम् । तदापि तदा तटस्थे विद्यमाना धर्माः स्वरूपं कि नस्पृशन्ति ? किं दण्डिनोमस्तककर्तनेन पुरुषो न हिंसितो भवत्यपितु हिंसित

सम्भवति तत्राह—**निर्धूतनिखिलद्वन्द्वे** इत्यादि । अत्र द्वन्दशब्दार्थो भेद॰ । अविद्याद्वारेणैव भेदभ्रमो वक्तव्य स्यात्, परन्तु निर्विशेषस्वप्रकाशे ब्रह्मणि, तमोरूपाज्ञानस्य सम्भवो यतस्ता- दृशाज्ञाननिरसनीयस्यासिद्धेरिति तन्निरासकत्वाभिमतैक्यज्ञाने शास्त्रतात्पर्यं न कल्पयितु युक्तम् । ततश्च निरर्थकमेवापतेदध्यात्मशास्त्र **तत्वमसि** इत्यादि महावाक्य चेत्यर्थो मूलप्रकरणस्य । एतेना- विद्या कृतान्त करणभेदो य स एवजीवत्वेश्वरत्वकल्पक उपाधिश्चेतनमात्रे, इत्यपि निरस्तम् । तादृशस्वप्रकाशात्मकचैतन्ये तमोरूपाया अविद्याया एवासम्भवात् । नाह तेज स्वरूपे तमस सत्व भवति तथैवात्रापीति ज्ञेयम् ।

चैतन्यस्वरूपे ब्रह्मण्यविद्यान्वयस्यानुपपत्तिप्रदर्शनेन, कैश्चिदद्वैतिभि कल्पित मायाऽवि- द्योपाधिभेद तत एव चेशेशितव्यभेद चापारमार्थिकमुपपाद्यमान निरसितुमाह "एतेनसत्यकामत्व" इत्यादि । एतेन देशकालवस्तुकृतत्रिविधपरिच्छेदरहिते चिन्मात्रेब्रह्मणि मायाविद्योपाधिभेदा सिद्ध्यैव मायोपाधौ—मायोपाहतचैतन्यमात्रे, परे=परमेश्वरे विनाशेनेति तत्वमस्यादिमहावाक्य जनितवृत्तिविशेषरूपैक्यसाक्षात्कारेण मायाविद्यात्मकोपाधिविनाशे सति तादृशोपाधिकल्पित जीवेशभावोपि निवृत्तोनावस्थातु शक्त इति भाव । **पूर्वमेवनिरस्तमिति** अपारमार्थिकत्वेनाभिमत- योर्मायाविद्ययो कस्यचित् कल्पकस्याभावादेव मायाऽविद्ययो सिद्धिर्नस्यात्, कल्प्यस्य कल्प- काधीनत्वात् । स्वत कल्पनायामात्माश्रयदोपो भवेत् । यदि कदाचित् ब्रह्मण एवमायाविद्याकल्प- कत्व, तदा कल्पकस्य ब्रह्मणो नित्यत्वेन सर्वदाऽवस्थानात्, तयोर्मायाविद्ययोरपिनित्यत्वमापतेत् । ब्रह्मात्म्यैक्यज्ञानरूपतत्वज्ञानेनतयोर्निवृत्तिस्वीकारे निवर्तकज्ञानस्य क्षणिकत्वेन पुनरपि नित्यब्रह्म- स्वरूपवलान्मायाविद्ययो कल्पनाप्रसङ्ग । अपि च मायाया प्रपञ्चभ्रमोत्पादकत्वेदु खादिजन कत्वे च मायाया अविद्यातो विभागो न सिद्ध्येत । मायाया यथार्थज्ञानजनकत्वे, क्रीडारसपरिकर- त्वेचापुरुषार्थत्वाभावात् , तन्निरासोनोपपद्येत । अनादिभावरूपाया मायाया ज्ञानमात्रेण निरस- नाऽनुपपत्ति । अनादिभावस्यात्मवत् नित्यत्व नित्यत्वेन विनाशायोग । माया न निवर्तते अना दिभावरूपत्वादित्यनुमानात् । अविद्याया एवानेकवेदान्तिसमतत्वात् , मायाऽविद्योपाधिभेदवा- दिनस्तदेकदेशिन क्षुद्रा सर्वथा शास्त्रपरिज्ञानहीनाब्रह्मविदोऽद्वैतिषुचेति ज्ञातव्यम् । एव नाश-

एव भवति । अचिदंशपरित्यागेन चिन्मात्रमेवावशिष्यते, अयमेवार्थस्तत्त्वमसीति वाक्यस्य भवतीति युक्तम् "ब्रह्माहमितिकस्यापि प्रत्यक्षं जायते नहि ।ब्रह्मणश्चाथजीवस्य नैक्यं प्रत्यक्षतस्ततः । तत्त्वमस्यादिवाक्यस्य श्रवणानन्तरं ननु । जायतेऽनुभवश्चोक्त इति चेन्मैवमुच्यताम् । प्रकारि ब्रह्मणोरैक्यं तद्वाक्यार्थोयतस्ततः । नस्यादनुभवस्तादृग्वाक्यस्य श्रवणादनु । ब्रह्मणो देहरूपत्वाच्चिदचितोः प्रकारता । चिदचिदात्मनश्चाथ

कस्य तत्वज्ञानस्य नित्यत्वाभ्युपगमेतद्विनाशाभावेन तद्रूपद्वैतस्य सर्वदाऽवस्थानेननाद्वैतसिद्धिरित्यादि बहुतरदोषो ज्ञातव्य ।

ईशजीवोपाधिभूतमायाविद्ययोर्भेदोपगमासम्भव इति पूर्व कथितम्, किन्तु तयोर्भेदस्योपगमे तु दोषान्तर वक्तुमुपक्रमते **चित्स्वरूपे विशिष्टे वेत्यादि** अयमाशय' किं चैतन्यमात्रेमायाऽविद्याद्युपाधय सबद्धा भवन्ति अथवा उपाधिविशिष्टे चैतन्ये उपाधय सम्बद्ध्यन्ते ? तत्र न प्रथम पक्ष अर्थात् शुद्धचैतन्यमात्रे मायाविद्ययो सम्बन्धाभ्युपगमे, उपाधिप्रयुक्तस्वभावभेदा एकस्मिन्नेव प्रसक्ता भविष्यन्तीति जीवेश्वरस्वभावयो साकर्यमापतेत् । यदि कदाचित् विशिष्टे तयो सम्बन्धस्तदा किं तद्विशेषणमितिवक्तव्यम् ? मायाचाविद्यायैव विशेषणमितिस्वीकारे आत्माश्रय, मायाया मायाया वृत्तित्वस्वीकारात् । यदि जीवत्वेश्वरत्वविशिष्टे उपाधयस्तदाऽन्योन्याश्रयो दोषो भवेत् । एतदतिरिक्तं किमपि जीवेश्वरे विशेषण स्यादिति सुदुर्वचमेव ।

किञ्च माययाऽविद्यया वा सवित्स्वरूपस्य परिच्छेदासभवात्, एकमेव तत्तदुपाहित भवेत्, आकाशवत्, मठान्तर्वर्तिघटेन मठेन चोपहितम् । तथा च हस्तपादाद्यवच्छिन्नसुखदु खभोग एकस्यैव यथा जीवस्य तथा तत्तदुपाधिप्रयुक्तैश्वर्यदु खादिभोग एकस्यैव परब्रह्मण प्रसज्यते इति जीवेश्वरस्वभावाव्यवस्थितिरेव भवेदिति नेद मत समीचीनम् ।

अथोपाधिकप्रदेशभेदोपगमाद् परब्रह्मणि न जीवेशस्वभावसाकर्यमिति चेत् तत्राह **तदा तटस्थे विद्यमानाधर्माः** इत्यादि । माययाऽविद्ययावोपहित ब्रह्मैव तत्स्थमिति कथ्यते, तादृश ब्रह्मनिष्ठस्य सर्वज्ञत्वज्ञत्वादेश्च, दण्डेन कुण्डलेन वा उपहिते पुरुषे कदाचिद्दण्डादिविशेषणवत्तया तटस्थपदबोध्यदेवदत्तादौ वर्तमानस्य सुखदु खप्रयत्नादेर्देवदत्तात्मनीव, ब्रह्मण्यपितटस्थपदवाच्ये सुखदु खादे' सम्बन्धोदुर्निवार एवस्यादित्यर्थ ।

तत्र ब्रह्मण्यनान्दित्वप्रसङ्गस्य "आनन्दब्रह्मेतिश्रुत्येष्टत्वेपिदु खित्वप्रसङ्गस्य कथचित् दु खित्वादिप्रसङ्गस्यासह्यत्वे दृष्टान्तमाह **किं दण्डिनः** इत्यादि । उपाधिभेदे सत्यपि विरुद्धधर्मसमावेश प्रसङ्गो न निवारयितुं शक्य । अर्थात् यथा दण्डोपाधिविशिष्टदेवदत्तस्य विनाशिरश्छेदे जाते दण्डिनो मरणं न भवति किम् ? अर्थात् भवत्येवेति । तस्माद् वस्तुभेदविना कल्पितप्रदेशभेदमात्रे

ब्रह्मणोहि प्रकारिता ।" (श्रौतप्रमेयचन्द्रिका ५।३०-३४) इत्याद्याचार्योक्तेः ।

इति तत्वमसिवाक्यस्य ब्रह्मात्मैक्यपरत्वेऽनुपपत्त्युपपादकप्रकरणम् ।

अब्रह्मणोऽनात्मत्वे तत्त्वंपदयोर्लक्ष्यार्थ एकः प्रत्यक्तत्वं चैतन्यमात्रं परिशिष्टं भवति । यत एक शेषे तादात्म्यं चैतन्यमात्रे न स्यात् । तत्पदं त्वं पदं चैतद्वयं जीवेशयोस्तादात्म्यविषयकतन्मुख्यवृत्तिस्तादात्म्ये तु वस्तुद्वयाश्रितं भवतीति । भेदाभेद वि-

जीवेशादिभेदव्यवस्था न कथमपि घटते । एवञ्च मायाऽविद्योपाधिभेदकल्पना निरर्थिकैवतेपास्थितमिति ।

एतेन मायाऽविद्योपाधिरूपविशेषणभेदपरित्यागेन विशेष्यीभूतचैतन्यमात्रस्यैक्य **तत्त्वमसीति** महावाक्यस्यार्थो भवतीत्यपि निरस्तमेव, तत्राह **अचिदंशपरित्यागेन** इति । अचेतनमाया विद्यादिक परित्यज्य चैतन्यमात्रस्यैक्यं भवतीति कथने, तत्पदे त्व पदे चोभयपदे लक्षणा भवति, सच-नेष्ट., एकस्मिन्नेव पदे लक्षणाकरणेनैव तथाबोधसम्भवेन पदद्वये लक्षणाकरणस्यायुक्तत्वात् । एव ब्रह्मणिदोषापत्तिश्चभवतीति । स्वोक्तिदार्ढ्यार्थं पूर्वाचार्यप्रबन्धमवतारयति **ब्रह्माहमिती**त्यादि ।

॥ इति तत्वमसिवाक्यस्य पराभिमतब्रह्मात्मैकपरत्वेऽनुपपत्त्युपपादनप्रकरणस्य तत्त्वदीप. ॥

केवलाद्वैतमते सामानाधिकरण्यार्थस्य तादात्म्यस्य, अर्थात् ब्रह्मजीवयोस्तादात्म्यस्यानुपपत्तिमुपपादयितुमुपक्रमते **अब्रह्मणः**इत्यादि । अब्रह्मण इत्यत्र नञर्थाकारस्यभेदवानित्यर्थ । ततश्च ब्रह्मभिन्नस्य जगतोऽनात्मत्वे तत्त्वपदद्वयलक्ष्यार्थ एक प्रत्यक्तत्व चिन्मात्र ज्ञानमात्रमेवावशिष्यते । तत्रैकस्मिन् समानाधिकरणवाक्यार्थस्य तादात्म्यस्य लाभो न स्यात्, तादात्म्यस्य सम्बन्धत्वात् , सम्बन्धस्य द्वयाश्रितत्वनियमेनैकस्मिन् तदयोगात् , नहि भवति घटोघट इति । एकशेषे तादात्म्यस्यानुपपत्ति विवृत्त्यदर्शयति **तत्पदंत्वं पदंचैतद्वयं जीवेशयोस्तादात्म्यविषयकमिति,** तत्त्वंपदद्वयस्येशजीवयो सामानाधिकरणमितिशेष । **तन्मुख्यवृत्ती**ति । तस्य मुख्यवृत्तिर्यत्र तत् तन्मुख्यवृत्ति । **वस्तुद्वयाश्रितम्** इति । तादात्म्य द्विविध भेदसामानाधिकरणम्, यथा नीलाभ्रम् , भेदासहिष्णु च तादात्म्यमपरम् । तत्र भेदसमानाधिकरणाभेदस्य तादात्म्यस्यात्यन्ताभेदे तस्य सभवो न भवत्यर्थादसभव एवेति भाव । अत्र च यादवप्रकाशस्य प्रक्रियामाश्रित्याह प्रक्रिययावा तादात्म्य निरूप्यते इति ज्ञातव्यम् । सिद्धान्तेतु **वस्तुद्वयाश्रय**मित्यस्य प्रवृत्तिनिमित्तधर्मभेदवदेकवस्त्वाश्रितमिति । तत्र प्रवृत्तिनिमित्तधर्म शक्यतावच्छेदकमेव, यथा घटे घटत्वम् । तयो. प्रवृत्तिनिमित्तधर्म शक्यतावच्छेदकयोर्यत्र भेदस्तत्रैव तादात्म्यसम्बन्ध , यथा नीलो घट इत्यत्रोद्देश्यतावच्छेदको धर्मोघटत्व विधेयतावच्छेदकधर्मस्तु नीलत्वमिति प्रवृत्तिनिमित्तधर्मयो-

कल्पस्तु यः कथितो भवता, स भेदाभेदिनोः बन्धेतादात्म्येऽसति निरर्थक एव भवति। अभेदो हि स्वाश्रयीभूतवस्तुनोर्भेदविरोधी भवति, परस्परानात्म्यरूपो भेदोभावानामे तयोः। स्वरूपं स्वीकृत्यैवभेदाभेदविकल्पयोर्बाधः, तेन वाक् विरोधेन निगृहीतो भवसि। भिन्नाभिन्नत्वविकल्पः सम्बन्धस्य सत्वासत्वयोश्च विकल्पः प्रत्यक्षादिप्रमाण

नीलत्वघटत्वयो र्विभिन्नत्वेन भवति नीलघटयोस्तादात्म्यम् , यत्रत्वनयोर्नभेदस्तत्र तादात्म्यं न भवति यथा घटोघट इत्यत्रोद्देश्यतावच्छेदकघटत्व तदेव च विधेयतावच्छेदकमपि, तत्र च तयोर्भेदाभावात्, तत्र तादात्म्येन घटप्रकारकघटविशेष्यक शाब्दबोधो न भवतीति। अर्थात् धर्मद्वारकभेदविशिष्ट स्वरूपस्याभेदे सत्येवतादात्म्य भवतीति विवेक ।

ननु भेदाभेदस्तादात्म्यमिति न सभवति। भेदाभेदयोरभेदेऽत्यन्तभेदेपिभेदाभेदस्यासिद्धे । भेदाभेदे वा तत्रापि भेदाभेदेपि तथेत्यनवस्या एकस्मिन् भेदाभेदेऽपरापरभेदाभेदकल्पने स्यादेवानव स्थेतिचेत्तत्राह **भेदाभेदविकल्पस्तु यस्त्वयाकथितः** इत्यादि। अत्रत्यविकल्पप्रकार शङ्क-ग्राहितया मूलकृताऽत्रवास्थलान्तरे वा न प्रदर्शितस्तदीयाभिप्रायेण शास्त्रसग्रहमालोच्य किञ्चित्प्रद-र्श्यते, तथाहि भिन्नयोस्तादात्म्यमिष्यते, अथवा अभिन्नयोस्तदात्म्यमुच्यते ? तत्र न तावत् प्रथम पक्ष प्रथमपक्षस्वीकारे हिमवद् विन्ध्ययोरपि तादात्म्यमापद्येत सर्वथाभेदस्य तत्र विद्यमानत्वात् , यथावा धर्मापेक्षया स्वरूपापेक्षया च भिन्नयोर्गवाश्वयोरपि तथा भावप्रसङ्गात्। अभिन्नयो तादा-त्म्यमीति द्वितीयकल्पादरे घटोघट इति वा भेदाभेदविकल्प स्यात्। अभेदाभेदिन =भेदाभेदि· भिन्नस्य, अत्यन्तभिन्नस्यात्यन्ताभिन्नस्य वा बन्धे=तादात्म्यसम्बन्धे असति, अप्रामाणिके सति भवद्भि कृतोय विकल्पो निरर्थकतामेतीत्यर्थ। नहि घटोघट इति वा घट पट इति वा सामाना-धिकरण्य क्वचिद्दष्ट श्रुतमुमपद्यते वा। किन्तु नीलोघट इत्येव भवति, अशतो भेदेऽशतोऽभेदे एवेति मन्तव्यम्। न चोद्देश्यविधयभेदे, तयोर्भेदाभेदयोर्विरोधादेवैकत्र समावेशो न घटते इति वाच्यम् नीलपटयो प्रतीतिसिद्धत्वादेवतयोर्विरोधाभावात् प्रतीतिरेवभगवती शरणम्। अथवा धर्मं पुरस्कृत्य भेद स्वरूपतश्चाभेद इति ज्ञातव्यम् , तथैव सर्वत्र निर्वाहादिति भाव ।

भेदाभेद विकल्पयत स्ववचनव्याघातोपि भवति, यतोऽभेदोभेदस्य प्रतिद्वन्द्वीविरोधीभवति। अर्थादत्यन्तभेदस्य निरासको भवति, एतयो=र्भेदाभेदयो स्वरूपमर्थात् स्वरूपभेद स्वीकृत्यैव. भेदोवाऽभेदोवेति विकल्पकोटिद्वयोर्बाधोन दूषण क्रियते। तेन स्वाभ्युपगमेनैववाग्बाधा=भवदुक्त दूषणवचनेन व्याघात प्रसज्यते। एतावतात्व स्वाभ्युपगतवचनेन निगृहीतो भवसि।

भिन्नाभिन्नत्वेत्यादि। भिन्नमिन्नत्वस्य धर्मिणा सह सम्बन्धोऽस्ति नवा प्रथमेपक्षे, तत्स-म्बन्धेपि सम्बन्धान्तर वक्तव्यम् , सम्बन्धान्तरेऽपि सम्बन्धान्तर वक्तव्यमित्येव क्रमेणानवस्थैवायाति।

बाधित इति वृथा कण्ठशोषणम् । नीले नीलज्ञानमुत्पलादौ नीलादिज्ञानं प्रत्यक्षं नापलप्यं तथा प्रकृतेपीति ।

यथा प्रत्यक्षगोचरे संयोगादिसम्बन्धे भेदाभेदादिदुस्तर्कजनितो विभ्रम एव प्रत्यक्षादिबाधितत्वात् । एवं श्रुतिप्रत्यक्षमूलकतादात्म्ये संयोगे च दुस्तर्कमूलकभ्रमो

सम्बन्धोनास्तीति द्वितीयपक्षे असम्बद्धस्य विशिष्टबुद्धिजनकत्व न स्यादिति विकल्पोपि कण्ठशोपण मात्र फलको भवति प्रत्यक्षानुभवबाधितश्चापि भवतीत्यर्थ । यथावा नीलपीतादि रूपवति घट-पटादिद्रव्ये नीलपीतादिबुद्धिर्भवति साच नीलादिप्रतियोगिकघटादिद्रव्यानुयोगिकसमवाय सम्बन्धमवगाहमाना भवति, साच नापलपितु योग्या । एव नीलमुत्पलमिति विदिता लोकप्रसिद्धा नीलादितादात्म्यबुद्धिरपिनापलयितु शक्या । स्वपरनिर्वाहकान्तरेग स्वरूपसम्बन्धेन वाऽनवस्था दोष परिहरणीय इति भाव । तादात्म्यसम्बन्धप्रद्वेपिप्रयुक्ताना दुस्तर्काणा प्रत्यक्षपराहतत्व-मपि । तदेव प्रपञ्चयति—

संयोगेभेदभेदादिदुस्तर्कम् इति यथा भिन्नयो सयोगसम्बन्धो भवति, अभिन्नयोर्वासयोगो भवति ? इति विकल्प सयोगविषयक । तत्र न प्रथम तथासति अतिविदूरयोर्हिमाचलविन्ध्याच लयोरपि सयोगसम्बन्धप्रसङ्गात् । न चेष्टापत्ति, अनुपपत्ते । तथाहि, सयोगो हि क्रियाजन्यो भवति, स चैकक्रियाजनित उभयक्रियाजनितभेदात् । तत्रैकक्रियाजनित पर्वतपक्षिणो., तत्रश्येनमात्रे क्रिया पर्वतस्त्वचलत्वादक्रियावानेव, तत्रश्येनक्रियया श्येन उड्डीयागत्यपर्वते विश्राम करोतीति श्येनजनितक्रियया श्येनशैलयो सयोग एक क्रियाजनित, नचोभयोर्गिरयोर्व सयोग. स नैव तादृश हिमवद्विन्ध्ययो क्रियारहितत्वात् । द्वितीयश्च सयोग उभयक्रियाजनित यथा मेष-योग स उभयमेषनिष्ठक्रियाजनित । नापनापि सयोगोद्वयोर्गिर्योयो तयोर्द्वयोरपि निष्क्रियत्वात् । तृतीयस्तु सयोगज सयोगो यथा कपालतरुसयोगात्सयोगस्तरुकुम्भयोर्भवति । अत्र च न तृतीयोपि, असम्भवात् , इति न भिन्नयो सयोग इति प्रथमकल्प । नवा द्वितीयोऽभिन्नयो सयोग इत्याकारक, तथा सति स्वेनैव स्वस्य सयोग आपद्येत् । नचतदपीष्टम् , अनुपपत्ते सम्बन्धमात्रस्यैकप्रतियोगिकत्वापरानुयोगिक त्वरूपद्विक यनियमेन स्वप्रतियोगिकस्वानुयोगिकत्व लक्षणैकपयोगे सम्बन्धत्वस्यैवमावेन भवपेक्षायासिरिति । एव सयोग स्वधर्मिणो भिन्नो न वा । तत्र न प्रथम सयोगसयोगिनोर्भिन्नत्वेनुपपत्तिप्रथम सयोगो द्रव्यात्मकसयोगिसापेक्ष, एवमेव संयोगस्यापि सम्बन्धान्तर कल्पनीयम् । तथैव सम्बन्धान्तरस्यापि सम्बन्धान्तरमित्येव क्रमेणानवस्था-यामेवपर्यवसान स्यादिति न प्रथम । नवा धर्मिणोऽभिन्न सयोग इति द्वितीयकल्प , अभेदे सति तस्य सयोगत्वमेव न सिद्ध्येत् । एव स्फुटप्रतिपन्नेदुस्तर्कानुरूपकाविकल्पनादि यथा भ्रमलक्षण

वारणीयः । निर्दोषापौरुषेयास्यर्थमादरेण, ब्रह्मजीवब्रह्मणोस्तादात्म्यरूपंमसकृदाह । ब्रह्मानन्दलक्षणहृदे निमग्नो मुक्तात्मा सुखंप्राप्नोति । फले मोक्षकाले जीवस्वरूपस्य

कण्ठशोषणमात्र प्रत्यक्षप्रमाणपराहत च, एवमेव नीलोत्पलादितादात्म्ये प्रत्यक्षे जीवब्रह्मतादात्म्ये च शास्त्रसिद्धेदुस्तर्कतन्मूलकविकल्पनादिकं प्रत्यक्षशास्त्रदण्डनिवारितमिति । तत्र प्रत्यक्षदण्डे नेति, नीलघटयोस्तादात्म्याभिप्रायेण, श्रुतिदण्डेनइति तु प्रकृत **तत्त्वमसि** वाक्यार्थाभिप्रायेणकथितमिति विवेक । ननु जीवपरमेश्वरयोस्तादात्म्ये तु अभ्यासलक्षण तात्पर्यनिर्णायकलिङ्ग विद्यते तत्र "उपक्रमोपसंहारावभ्याशोऽपूर्वताफलम् । अर्थवादोपपत्तिश्च लिङ्गम् तात्पर्यनिर्णये ।"

इति तात्पर्यनिर्णायक षड् लिङ्गम् । तत्रोपक्रमादीना यथा तात्पर्यनिर्णायकत्वं तथैवाभ्यासस्यापि तथात्वविद्यते अत्र प्रकरणे, तत्वमसीति नवकृत्वोऽभ्यासो विद्यते इति तद्बलेन जीवेशयोस्तादात्म्य सिद्ध्याशयेनाह, **निर्दोषेत्यादि** प्रवृत्ति निमित्तरूपधर्मभेदेनधर्मिस्वरूपयोरभेदेन च तादात्म्य तत्वमसीत्यादौ तत् त्वमादिपदाना तत्तच्छरीकब्रह्मपर्यन्ततया निरूपणीयम्, तदादिपदाना ब्रह्मात्मकपरतया वा निरूपणीयम् । यादवप्रकाशादिमतेतु जीवब्रह्मस्वरूपगतावेव भेदाभेदाविति विवेक । एतावता केवलाद्वैतमते प्रातिपदिकयोरिव समानविभक्तेरपि न मुख्यार्थतेतिस्थापितम् । यद्यपि, अभेदमात्रस्य समानविभक्त्यर्थत्वं सभवति । तथापि प्रवृत्तिधर्मभेदत्यागात् सामानाधिकरण्यमुख्यार्थता परमते संभवतीति ज्ञेयम् । मोक्षे चैतन्यमात्रस्य परिशेषो भवतीति कथनमपि न युक्तम्, एव सति मोक्षस्य सर्वाभिमतपुरुषार्थता नस्यात्तत्राह **ब्रह्मानन्द... मुक्तात्मा** इत्यादि । "एष ब्रह्मप्रविष्टोऽस्मि ग्रीष्मेशीतमिव हृदम्" इत्यभिमुक्तोक्तवचनबलेन ब्रह्मानन्दस्य हृदरूपेणोऽभिमत चन्द्रेणेव मुखस्य । सकलससारतापक्लेशनाशनात् नित्यनिरतिशय सुखप्रापकत्वाद् ब्रह्मानन्दस्य मुक्तात्मा तु त्रिविधपरिच्छेदरहितब्रह्मानन्दमहासमुद्रे निमग्नोनित्यप्रवुद्धसुखवानेव भवतीति शास्त्रमर्यादा । नित्यनिरतिशयसुखात्मकपरमफले मोक्षे भोक्तृत्वावस्थापन्नस्यस्वस्यक्वचिद्विलय यदि जानीयात्, तदातादृशफलमनेकमनेकप्रयाससाध्य, न तदा तादृशफल क्वचिदपीच्छेत्, ततश्च शास्त्राणां महर्षीणा च तदर्थं प्रवृत्ति सर्वथैव निष्फला भवेत् । मोक्षकाले, एकशेषेऽर्थात् निर्विशेषचैतन्यमात्रावशेषे कस्य मोक्षात्मकस्यादिति वक्तव्यम् । किं ब्रह्मणो मोक्षफलम् जीवस्य वा मोक्षफलम्? तत्र ब्रह्मणो मोक्षफलमिति न प्रथम. पक्षो ब्रह्मणो नित्यत्वेन तद्वैयर्थ्यत्वात् । तस्यापि तादृशफलवत्त्वस्वीकारेऽस्मदादिवदनीश्वरत्वप्रसङ्गात्, सिद्धान्त विरोधाच्च । नापि जीवस्यमोक्षफलमिति द्वितीय पक्ष, मोक्षसमये जीवस्य विलयात्, सतिजीवे तस्य बन्धनिवृत्तिपूर्वकनिरतिशयसुखात्मकमोक्षरूपफलंभवेत्, सति धर्मिणि तदीयधर्मोऽवस्थित स्यात् तत्र धर्मिणि । नहि कुड्यादीनामभावे तद्विशेषणीभूतचित्रादीनामवस्थान संभवति श्रूयते

विलये मोक्षस्य पुरुषार्थत्वं नस्यात्। एक शेषे निरवच्छिन्नचेतनमात्रावशेषे कस्यजीवस्य ब्रह्मणो वा फलं स्यात्।

॥ इति परमते सामानाधिकरण्यार्थायोगवर्णनप्रकरणम् ॥

किञ्च प्रपञ्चाकारेण कीदृशीसंविद्विवर्तते। नतावद्घटज्ञानं प्रपञ्चाकारेणविवर्तते? घटज्ञानाभावेपि, भेदप्रपञ्चस्यदर्शनात्। नहि घटादिज्ञानस्यानुत्पादे तद्विनाशे वा सकलं जगत् नास्तीति वक्तुं शक्यते. प्रत्यक्षवाधात्। नाप्यन्यसंवित् प्रपञ्चाकारेण वा, तदुपपद्यतेवा चैतन्यमात्र ब्रह्मैव जीवस्य स्वरूपमिति चेत्तर्हि ब्रह्मण एवानादिभावात्मकाविद्यया जीवभाव इति स्वीकर्तव्यम्, तच्च श्रुतियुक्तिबाधितमिति बोद्धव्यम्। अनेन प्रकारेणाविद्यापरिकल्पित जीवेश्वरत्वादिविकल्पपरित्यागेन निर्विशेषचिन्मात्रैक्यम् **तत्त्वमसीत्यादि** महावाक्यस्यार्थ इत्यत्र दोषजालमवोचत्।

॥ इति परमते सामानाधिकरण्याथाऽयोगवर्णनप्रकरणस्यतत्त्वदीप ॥

अथ चेतनेनरसकलप्रपञ्चविभ्रमाधिष्ठानस्य चेतनस्य तथा प्रपञ्चविभ्रमकारणस्य च स्वरूपविमर्शेनापि केवलाद्वैतिमतेऽसामञ्जस्य दर्शयितुमुपक्रमते **किञ्च** इत्यादि। अत्र प्रपञ्च विभ्रमस्य यदधिष्ठानम्, किञ्च प्रपञ्चविभ्रमे कारणमित्युभयविषयक प्रश्न। विवर्तते इति, अन्योहि अन्याकारेण भासते इत्यर्थ। तदुक्तम् 'अतत्वतोऽन्यथा प्रथा विवर्त इत्युदाहृत। अतत्वतोऽन्यथा प्रथा विकार इत्युदाहृत।'

कारण विषयसत्ताककार्योत्पादो विवर्त इत्यर्थ। यथा शुक्तौरजतम्, इत्यत्र कारणमधिष्ठान शुक्तिकादिद्रव्यम्, तस्यव्यावहारिकीसत्ता, कार्यस्य च रजतस्य प्रातिभासिकी सेति तत्र विषयसत्ताककार्यस्योत्पादेन रजतस्य शुक्तिकाऽधिष्ठानम्, चाकचिक्यादिसादृश्यदर्शन विभ्रमे कारणमिति घटने विवर्त लक्षणम्। वस्तुतस्तु शुक्त्यवच्छिन्नचैतन्यमेव रजताधिष्ठानं शुक्तिकात्ववच्छेदकमात्रम्, तदुक्तम्-शुक्त्यवच्छिन्नान्मोहोत्थारुप्यधी शुक्तिसभवा। कथ्यते मृदवस्थात्मजातोमृज्जो अथा घट' इति। एतदभिप्रायेनैव कथितम् विवर्ततेऽययार्थाकारेण प्रतिभासते, इति। न तत्र घटज्ञान प्रपञ्चरूपेण विवर्तते इति पक्ष? घटज्ञानाभावेपिघटादिप्रपञ्चस्य ज्ञायमानत्वात्। अधिष्ठान विना तस्मिन्नारोप्यप्रतीतेरयोगात्।

नहि शुक्त्याद्यधिष्ठानमन्तरेण रजतप्रतीतिर्भवतीति। तस्माद् घटज्ञानस्य पटादिज्ञानस्यवोत्पादविनाशशालिना निखिलप्रपञ्चविभ्रमाधिष्ठानत्व समभवतीति भाव। नहि घटादिज्ञानस्याजातत्वे विनाशे वा, जगतोऽखिल प्रपञ्चोनास्तीति वक्तु शक्नोति कश्चित्, यत पटादिज्ञानस्या भावेपि तदितरसकलप्रपञ्चस्य प्रत्यक्षात्। अर्थात् पटज्ञाननाशेपि तदन्येषा घटादिभेदाना

विवर्तते पटज्ञाननाशेपि घटादिनाशेपि तदन्यज्ञानानां समुपलंभात् । ननु संविदेकैव तस्या भवान्तरभेदोनास्ति, केवलं विषयाघटादय एव परस्परं विभिन्नायन्ते, किन्तु ज्ञानं न भिद्यते, यतो ज्ञानस्यावभासनात् । ननु यदि ज्ञानमेकमेव तदाघटज्ञानकाले पटज्ञानं कुतोनावभासते इति चेन्नैवं, घटादेरनवभासनेपि तस्याः स्फुटरूपेण भासनात् । तत्रघटव्यावृत्तिसंवित् नोस्फुरतीति चेत्, तद्व्यावृत्तिपदेन किं सैवसंविदुच्यते तदन्या वा । सैवचेत्, भासते एव, अन्यच्चेत्तस्य भासनं न ब्रूमः । किञ्च नीरूपायाः स्वप्रकाश रूपायाश्च संविदोन स्वतो भेदोऽपितु विषयनानात्वादेवतथा भेदः । विषये नानात्व

प्रत्यक्षसिद्धत्वान्न पटज्ञानादेरपि प्रपञ्चाधिष्ठानत्व सम्भवति, अधिष्ठानमन्तरेणारोप्यस्यारोपासम्भवात् । ज्ञानमेव प्रपञ्चविभ्रमस्याधिष्ठानमिति परेषा मतम् । तत्र प्रातिस्विकरूपेण घटपटादिसंविदा-नाधिष्ठानत्व सम्भवति परस्परव्यभिचारात् । नाप्यन्यसंवित् तन्नाशेपि तदन्येषामुपलम्भदर्शनादिति। अत्र पुन केवलाद्वैतवादीशङ्कते **ननु संवित्** अभिन्नैकैव, तादृश संविदि भेदो नास्ति, विषय भेदेपि विषयिण सर्वदाऽवभासमानत्वात् । अथात् संविदखण्डा एकैवोत्पादविनाशरहिता व्यापि-का च । विषयाणा रूपस्पर्शादीनामन्यज्ञानेष्ववभासमानमेव परस्पर भेद । ज्ञानस्य तु सर्वज्ञानेषु प्रकाशमानत्वादेकत्वमेव । तदुक्त शब्दस्पर्शादयोवेद्या वैचित्र्याद् जागरे पृथक् । ततो विभक्ता-त्संविदेकरूपा न भिद्यते' अतस्तस्या संविदि भेदबुद्धिरौपाधिकविषया ननु यथार्थ संवित्स्वरूप-भेदविषया । एतादृशविशुद्धैका संविदेकत्रापि कैवानिखिलप्रपञ्चविभ्रमस्याधिष्ठान भवति । ननु घटज्ञान तु पटज्ञानकाले न भासते, तदा तु पटज्ञानमेव भासते इति चेन्न, तदा पटज्ञानकाले विषयरूपघट एव न भासते । ननु घटविषयकत्वविशिष्टसंविद् पटज्ञाने न भानमिति चेन्मैवम्, घटविषयकत्वरूप घटव्यावृत्तत्वसंवित्स्वरूपमेव । अत पटज्ञाने तस्यभानमेव घट केवल न भासते । तस्यातिरिक्तत्वे तु पटज्ञाने तद्भानेपि संविदोभानमक्षतमेवेति समुदित ग्रन्थस्याशय ।

ननु संविदिज्ञाने यदि भेदोनास्ति किन्तु यदि सा संविदेकैव, तदेद घटज्ञानम्, तदन्यत्पटादिज्ञानम्, तदेकमुत्पन्न जातम्, तदन्यद्विनष्टमित्यादिसर्वलोकसाक्षिको व्यवहार कथमुपपद्यते इत्याक्षेपमाक्षेतुमाह **किञ्च नीरूपायाः स्वप्रकाशरूपायाः संविदः** इत्यादि । तत्र नीरूपाया निराकाराया सर्वविशेषरूपाया इत्यर्थ । नानात्वावग्रहभ्रम =नानात्वा रूपा सदाकारोपहितत्वभ्रम एव भवति । संवित् नाना न भवति । भवति स्वप्रकाशत्वात्, यत् नाना भवति तन्न स्वप्रकाशरूप भवति, यथा स्वभावजडो घटादिरिति, इत्याशय । संविदिज्ञानेनानात्व प्रतीतिर्याभवति, सापि न स्वत किन्तु विषयौपाधिकभ्रान्तिरेव नतु वास्तविको भेदस्तस्यामित्यर्थ । ननूपाधिभेदेनैव भेदोपि तत्र वास्तविक एव स्यात्, सांसर्गिकधर्मस्य तत्र तत्रोदयदर्शनात्, तत्राह

ज्ञानमपि भ्रमलक्षणमेव। घटादिवेदोपि न वस्तु नवा वस्तुधर्मः, न प्रत्यक्षो नवा लैङ्गिकः किन्तु भ्रमलक्षण एव केवलम्, यदा तदा विषयभ्रमाधीनोज्ञानभेदग्रहः कुतः कुतस्तरांच तस्य पारमार्थिकत्वसंभावना। किञ्च स्वयं प्रकाशज्ञानस्य प्रागभावादिः स्व-

नवस्तुवस्तुधर्मोवा इत्यादि यदा खलु विषयभेदएव वास्तविकस्तदातत्प्रयुक्तसंविदोना· नात्वमप्य वास्तविकमेवेति भाव ।

ननुघटादिभेदस्य प्रत्यक्षसिद्धत्वात्, तथा "द्वासुपणा" "ज्ञाज्ञौ" इत्यादि श्रुत्यादि सिद्धत्वात् तदभावे ऐहिकपारलौकिकव्यवहारबन्धमोक्षादिव्यवहारस्योपपादन कथमुपपन्नस्यादित्यतभेदो वास्तविक एवेति चेन्न, नहि वय व्यसनिभेद निराकुर्म किन्तु भेदवास्तविकत्वस्यदुर्निरूपत्वात् निराकरण कुर्मस्तथाहि=भेदो हि नतावद् वस्तुनो घटादेर्नवेवस्तुत स्वरूपम्, प्रतिज्ञानापेक्षग्रह-स्यभेदस्य तदनपेक्षग्रहस्वरूपत्वासभवात्। नवाऽय भेदो वस्तुनो घटादेर्धर्मरूप, भेदस्य धर्मिणा सहभेदो धर्मान्तरमेव, तस्यापि स्वधर्मिणा सहभेदो धर्मान्तरमेव, एवञ्च तस्यापि धर्मिभेदो धमान्तर-मेवेत्यनवस्थायामेव पर्यवसानात्। एव घटस्य पटभेदो धर्म पटभेदभेदो धर्म एवतद्भेदोपीत्येव क्रमेणानवस्था प्रसज्येत सेय दोषत्रयवती। तदुक्त—

"प्राग्लोपाविनिगम्यत्व प्रमाणापगमैर्भवेत्। अनवस्थितिमास्थानमचिकित्स्यात्रिदोषतेति।"

सोयश्लोको व्याख्यातप्रायोऽथवा स्वयमेव व्याख्यातव्य। एव य पदार्थ स्वरूपतोनिरूपो भवति तस्य प्रमाणतोपि दुर्निरूपत्वमेव। यथा वन्ध्यापुत्रादे स्वरूपतो लक्षणतोवाऽनिरूपणात् कथमपि प्रमाणेनापि निरूपण न भवति। अन्यथा तस्यापि वस्तुत्वप्रसङ्गात्। प्रकृते—यथा प्रत्यक्ष प्रमाण भेद विषयीकर्तु न शक्तम्, यतोभेदस्याभावत्वात् रूपस्पर्शाद्यभावे चक्षुरादिना ग्रहणा सभवात्। यद्वाक्षणिकस्य तस्य, स्वरूपप्रतियोगिग्रहणपूर्वकभेदग्रहणपर्यन्तावस्थानाभावात्। अर्थात् प्रत्यक्ष भेद प्रतियोगिग्रहणपूर्वकभेदग्रहणकालपर्यन्तं तस्यास्थिरत्वात्। न च प्रथम प्रतियोगिज्ञान तदनन्तरभेदस्य ग्रहणमिति वक्तु शक्यम्, 'शब्दज्ञानकर्मणा विरम्यव्यापारा-भावात्' इति नियमात्। युगपदेव त्रितय विषयीकरोति तदपि न समूहालवनवदुपश्लेषासिद्धे। अर्थात् यथा घटपटादीना समूहालवज्ञाने तद्विषयाणा परस्पर विशेष्यविशेषणभावो न प्रतिभाति तथैव प्रकृतेप्यापतेत्।

प्रत्यक्षप्रमाणेन यदा भेदग्रहण न भवति तदा प्रत्यक्षमूलकव्याप्तिग्रहाधीनानुमान प्रमाणमपि भेदग्रहणे सशक्त न भवतीति। ननु तर्हि घटादेरनुभूयमानो भेदग्रह कथ भवतीति चेत्तत्राह **केवलंभ्रमलक्षण** इति। अर्थात् योय भ्रम स न सद्रूप किन्तु शुक्तौ प्रतिमानरजत-वदेव भ्रमस्तदेव गृहीतो भवति, गगनेनीलपीतादिवदिति। **यदेत्यादि** यदातु ज्ञाने नानात्वस्य स्वाभाविकत्व न घटते, तदा औपाधिकमपि नानात्व न भवति, उपाधिभेदस्यैवाभावात्। किन्तु

तो गृह्यते परतो वा ? तत्र न स्वतः संभवति स्वस्मिन् स्वस्य विरुद्धत्वात्, अनवस्थानात्। स्वनिमित्तप्रकाशस्य स्वस्याभावेऽसंभवाच्च। अनन्यविषयत्वेन ज्ञानस्य स्वतो ग्रहणं परतोपि वा ग्रहणासंभवात्। किञ्च वेद्यस्य भेदादेर्नचिद्धर्मत्वम्, रूपस्पर्शादिवत्, तस्मात् संविदद्वितीया स्वयं प्रमाचेति। अतस्तद्भेदमाश्रित्यविकल्पादिकं कथितं तदविद्याविलास एवेत्यत्रप्रक्रिया।

अनादि अविद्या दोषमूलकापारमार्थिकोपाधिभेदाधीननानात्वस्य भ्रममात्रमेव भवतीत्यर्थ। एव ज्ञाने घटपटादिविषयभेदेन प्रतीयमानाभेदबुद्धिरप्ययथार्थेत्युक्त भवतीति। अथोत्पत्यादि प्रतीत्या, भेदबुद्धिरपि तत्रायथार्थैवेतिनिरूपयितुमुत्पत्याद्ययोगमाह **किञ्चस्वयंप्रकाश** इत्यादि। संविदो ज्ञानस्य प्रागभाव· प्रध्वसो तेनैव ज्ञानेन गृह्यते, अथवा ज्ञानान्तरेण गृहीत भवतीति विकल्प। तत्र विकल्प प्रतिक्षेप्तुमाह **स्वतः** इत्यादि। विद्यमानेन स्वेन स्वस्याभावो गृहीतो भवति अथवाऽविद्यमानेन तेन स्वस्याभावो गृह्यते इति विकल्पद्वयम्? तत्र तावत् प्रथमकल्पदूपयितु माह **स्वस्मिन् स्वस्यविरुद्धत्वा**दिति। स्वस्मिन् विद्यमाने तदभावे विरोधात्, अभावस्थानमशक्यम् प्रतियोगितदभावयो समानकालिकत्वस्यासभवात्। अविरुद्धयोस्तथा भवति न तु विरुद्धयो समानकालिकत्वम्। द्वितीयपक्ष निराकर्तुमाह **स्वनिमित्तप्रकाशस्यस्वाभावेऽसंभवा**दिति। अर्थात् स्वाधीनप्रकाशस्य स्वस्य ग्राहकस्याभावेऽसभावादिति।

तदेव स्वत इति कल्प निराकृत्य परत इति द्वितीयकल्प निराकर्तुमाह **अनन्यविषयत्वेन** इत्यादि। अभावस्य सप्रतियोगिकत्वनियमात् प्रतियोगिनमुल्लिख्यैवाभावो गृह्यतो भवेत्, ज्ञान स्यत्वनवस्थाभयेन ज्ञानान्तराविषयत्वाभावात्, ज्ञानान्तरेणापि प्रथमज्ञानीयप्रागभावप्रध्वसयोर्ग्रहण न सभवतीत्यर्थ। सविदोनानात्वस्वीकारेपि न तदीयप्रागभावादिग्रहसभव इत्यभ्युपगम्यविचार आरब्ध। नत्वद्वैत्यभिमतं वस्तुतस्तन्नानात्वमितिभाव। वस्तुतो ज्ञाने नानात्वाभावे प्रमाणमपीति दर्शयितुमाह **किञ्चवेद्यस्यभेदादेरित्यादि** ज्ञानस्य न भेदो वेद्यत्वात् रूपादिवदित्यनुमानमत्रविवक्षितम्। **तस्मात्संविदद्वितीये** त्यादि। ज्ञानभेदभेदस्य निरूपयितुमशक्यत्वात् संविद्धर्मत्वासभवाच्च सा संविदद्वितीया। अर्थात् सजातीयविजातीयस्वगत भेदरहितैव यथावृक्षादौ सजातीयात् वृक्षान्तरात् सजातीयो भेद शिलादितो विजातीयो भेद पत्रपुष्पादिभि स्वगतोभेदस्तद्वदिह स्वगतसजातीयविजातीयभेदोनास्ति, तस्मादिय सवित् स्वप्रकाशरूपैकैवनतुनानेति सिद्धम्। ज्ञाने स्वयं प्रकाशत्वकथनेन तुच्छव्याप्तिर्भवतीत्युपसहरति **अतस्तद्भेदमाश्रित्य** इत्यादि। यतः सर्वथा भेदराहित्यं संविद, अत किं घटादिसवित्प्रपञ्चाधिष्ठानम्, अथवा पटादिसवित्तथेति विकल्पकथनं यत्, सोय सविद्भेदावलवीविकल्पवाद सवित्स्वरूपयथार्थाज्ञानकार्य इत्यद्वैतवादिनो मन्यते इत्यर्थ॥

॥ इति परकीयसंविदेकत्वव्यवस्थानुवादप्रकरणस्यतत्त्वदीपः॥

हन्तयोयं भवतोपदेशो ब्रह्मविषयकः सतु श्रद्धानशिष्यगोष्ठीष्वेव केवलं शोभते। नाहंभवद्वचसि श्रद्धानोऽतोमदर्थं युक्तितर्कोपेतंवचनमेवोदाहर्तव्यम्। प्रतिप्रमातुः परस्परविलक्षणा अपरोक्षाः सुखदुःखप्रमुखा बुद्धयः प्रतिभान्ति। एवं सम्बन्धिन्यंग्यभेदसंयोगस्येच्छादेर्वास्वतोभेदो नास्तीति न, नवा तादृशेच्छादेरप्रत्यक्षोऽसम्मतः।

गतैतावताप्रकरणेनयदद्वैतमतस्योपपादन कृतवान्, तदनूदित परकीयमत निराकर्तुमुपक्रमते **हन्त** इत्यादि, हन्तेतिपद वेदान्तमते विभ्रान्तेषु परेषु खेदप्रदर्शनार्थम्। तदिमे तत्त्वेषु विभ्रान्ततया पथभ्रष्टामोक्ष न प्राप्नुयुरिति व्यञ्जनया सूच्यते। यथा 'गच्छ गच्छसि चेत्कान्त ? पन्थान सन्तु ते शिवा। ममापि जन्म तत्रैव भूयाद् यत्र गतो भवान्" इत्यत्र जन्मनो मरणमन्तरेणासंभवात्, तवगमन मरणनिमित्तकस्यान्मे, गमनप्रतिषेधयति, तथैव प्रकृते तवाय भ्रान्तमार्गानुसरण वन्धायैवस्यान्न मोक्षायेति स्वाग्रहगृहीतमार्ग मुञ्चथेति व्यज्यते परमकृपालोराचर्यस्य सकेत। श्रद्धामात्रशरणेषु विनेयबुद्धिषु निरूपणसमर्थेष्वेव केवल भवदभिमतोय ब्रह्मोपदेश शोभते, युक्तितर्कद्वारा विचारकावय तु नात्रभवदीये ब्रह्मोपदेशे श्रद्धालव। तस्मादत्र युक्तितर्कोपेतसत्प्रमाणेनैव विचायन्तु।

तत्र प्रथमस्तावज् ज्ञाननानात्व यत् सर्वलोकसिद्ध तन्नकूटयुक्तिभिरपलपनीय तत्राह **प्रतिप्रमातुः** इत्यादि। चैत्रमैत्रादिभेदेन, एकस्मिन्नपि देवदत्तादिषु रूपो विषयघटपटादिभेदेन, एकस्मिन्नेव घटादिविषये, वर्तमानादिकालभेदेन ज्ञान परस्पर विभिन्नमेवेति प्रत्यात्मप्रत्यक्षसिद्धमेव सुखादिवदित्यर्थ। अर्थात् यथा एकस्य पुरुषस्य सुखभवति, कस्यचिद्दुःखजायते इत्यनुभवसिद्ध तथेव ज्ञानमपि पुरुषविषयकालभेदेन विभिन्नमेवानुभूयते इत्यनुभवसिद्धमेवेति। यदि ज्ञानस्य भेदापलापे तुल्यन्यायेन सुखदुःखादिनानात्वमप्यपलपित भवेत्। न चेष्टापत्ति अनुभवविरोधस्य जागरुकत्वात्।

ननु यथा सर्वथा भेदरहितेप्याकाशे सम्बन्धिव्यङ्ग्योभेदोऽय घटाकाशोऽय पटाकाशश्चायमिति प्रतीयते, एवमेव ज्ञानस्य व्यापकत्वैकत्वेपि तत्र ज्ञानेपि विषयाश्रयाव्यक्तोभेदो न पारमार्थिको गगनवदेवेति चेत्तत्राह **सम्बन्धिव्यंग्यभेद** इत्यादि। यथा घटप्रतियोगिकभूतलानुयोगिकसयोगोऽयम् पटप्रतियोगिकमठानुयोगिक सयोग इति सम्बन्धिभूतलादिभेदेनैव व्यावृत्ततया ज्ञायमान सयोगभेद पारमार्थिकोवास्तव एव कुत. ? यत सम्बन्धिजन्यत्वात् तादृशसयोगस्य, यथावा चैत्रस्य घटविषयिणीच्छा, देवदत्तस्य पटविषयिणीच्छा इत्येव प्रकारेण सम्बन्धिभेदेन भिन्नतया प्रतीयमाना भिन्नभिन्नैवेच्छातत्तत् पुरुषसमवेता तदातदा जायमाना भवति,

यदि नित्यासंविदेकाव्यापिकाऽभ्युपेयते तदा सर्वं ज्ञानं सर्वपुरुषस्य सर्वदैवभासेत, नवा किञ्चित् कस्यचित्कदाचिदपि न भासेत तदानीं वेद्यघटादेरसन्निधिकारिता व्यवस्था न घटेत, आकाशादिवद्वित्तेर्व्यापकत्वस्वीकारात्। नापि कारणभेदेन व्यवस्था स्यात्, एवमेव विषयाश्रयभेदेन ज्ञायमानो ज्ञानभेदोपि पारमार्थिको वास्तविक एव कालपुरुषादिभेदेन ज्ञायमान इति सिद्धान्तेतु तत्तत्पुरुषे वर्तमानस्य धर्मभूतज्ञानस्यैकत्वे नित्यत्वेपि तत्तद्विषयप्रकाशनार्थप्रसरणावस्थाभेदविशिष्टस्वरूपेणानेकत्वमुत्पादविनाशित्वरूपमनित्यत्व च समतमतमेव यथा प्रकृतिर्नित्या, एकापि, तत्परिणामविशेषाणामनित्यत्वमनेकत्वमिति तथैवेहापि ज्ञातव्यम् ।

एवमुपलब्धिबलेन सविदो ज्ञानस्य नानात्वमनेकत्व प्रसाध्य सविद एकत्वेऽर्थात् ज्ञानस्यैकत्वे बाधक दण्ड वक्तुमाह **यदिनित्या** इत्यादि । यदि ज्ञानस्याकाशवन्नित्यत्व व्यापकत्वमर्थात् सर्वगत्वमेकत्व च स्वीक्रियेत, तदासर्व वस्तु सर्वदा भासेत, भासकस्य ज्ञानस्य व्यापकतया सर्वेण सहसम्बन्धस्य विद्यमानत्वात्, नित्यत्वादेकत्वाच्च । अर्थात् नित्यस्यव्यापकस्य प्रकाशस्यैकस्यैकस्य ज्ञानस्य सर्वविषयकसम्बन्धे सर्वस्यापि घटपदार्थस्य सर्वदैवभानप्रसङ्ग स्यात्, नत्वेव भवति कस्याप्यनुभव । यदि कदाचित् प्रकाशकज्ञानस्य सम्बन्धेसत्यप्यभानाभ्युपगमे, कस्यचिदपि घटाद्यर्थस्य कदापिभान न स्यात्, प्रकाशज्ञानसम्बन्धव्यतिरिक्तस्य कारणान्तरस्यासमवादित्यर्थ ।

तदानी वेद्यस्येत्यादि । तदानी तस्मिन् समये सन्निधिभिन्नमर्थाद् मनिधानम् अर्थात् तत्काले वेद्यस्य व्यवस्था सनिधि तदतिरिक्ता कृतव्यवस्था न घटते, यतो ज्ञानस्याकाशवद्विभुत्वस्वीकारात् । अत्रायमाशय, ज्ञानसनिव्यसंन्निधिप्रयुक्तार्थभेदेभानाभानव्यवस्थादुरुपपोदा स्यात् यतो ज्ञानस्य सदा सदा सर्वेण सह सम्बद्धत्वात्, गगनवत् यथा व्यापकस्य सर्वदा सर्वेण सम्बन्धो भवत्येव तथैव प्रकृतेपि सर्वदा सर्वदा सर्वविषयसम्बन्धात् सर्वस्यार्थजातस्य सर्वदाभान प्रसज्येत नवा कस्यापि कदापिभान न स्यादिति भाव ।

सिद्धान्तेतु ज्ञान सकोच विकाशशालि, अर्थात् तदेव ज्ञान सहकारिबलात् कदाचित्सकोचमासादयति कदाचित् तादृशसहकारिविकाशमेतीति सकोशविकाशाभ्या ज्ञानस्य विषयभेदे, सन्निध्यसन्निधीव्यवस्थिते भवत इति ज्ञातव्यम् ।

अमुककरणजन्य ज्ञानममुकमर्थमेव गृह्णाति अर्थात् चक्षुरिन्द्रियजनित ज्ञानरूप रूपत्वतदभावरूपिद्रव्यादिकमेवगृह्णाति त्वगिन्द्रियजनित ज्ञानस्पर्शादिकमेव गृह्णाति, एव प्रकारेणकरणभेदेनापि व्यवस्था न भवन्मते इति शेष । करणभेदे व्यवस्थाकुतो न स्यादिति न वाच्यम्, ज्ञानस्य भवन्मते नित्यत्वस्वीकारेण नित्यस्य करणासभवात्, इति ज्ञानस्य नित्यत्वेकरणभेदप्रयुक्तव्यवस्था न कथमपि घटते, करणजन्यत्व स्वीकारे सिद्धान्तकराळव्याकोप प्रसज्येत इति ।

नित्यस्य कारणाभावात् । न च स्वरूपभेदेन नानात्वम्, ज्ञानस्यैकत्वस्वीकारात् । ततश्चान्धबधिरादेरपि रूपशब्दादिग्रहणंस्यात् । गुरुशिष्यादिभेदोप्यकारणक एव भवेत् ।

।। इति संविदैक्यमतदूषणेन संविन्नानात्वोपपादनप्रकरणम् ।।

ननु न भवतु करणभेदेन ज्ञानभेदो ज्ञानस्य नित्यत्वात् तदापि घटादिविषयभेदेनैव ज्ञानभेद स्यात्, तदपि केवलाद्वैतिभिज्ञानाद्वैतस्वीकारादिति न विषयभेदेन ज्ञानभेदव्यवस्था तत्राह **न च स्वरूपभेदेन नानात्वमि**ति । एभिर्ज्ञानैकत्ववादिभिर्नैववक्तु शक्यते ज्ञानस्यैकत्वस्वीकारे णापसिद्धान्तापातप्रसङ्गादिति भाव ।

प्रकाशकसम्विदैक्यवादे लौकिकवैदिकमर्यादाभङ्गमुपपादयति **ततश्चान्धबधिरादे**रित्यादि । ज्ञानस्यैकत्वस्वीकारेण येन ज्ञानेन शब्दोगृह्यते तेनैव ज्ञानेन शब्दरूपादीनामपि ग्रहणवक्तव्यम् एवञ्च शब्दग्राहकज्ञानेनैव रूपादिग्रहणसम्भवे, अन्धोपिरूपादिक गृह्णीयात, बधिरोपि शब्द शृणुयादिति बधिरान्धव्यवस्थापि विपन्ना स्यात । एव बाह्यकरणचक्षुरादीना स्वीकारोपि निरर्थको भवेत्, ज्ञानस्य नित्यत्वात प्रकाशकत्वेन सर्वदाऽर्थप्रकाशने समर्थत्वादित्येव सर्वोपिलौकिक वैदिकव्यवहारोऽस्तमियात् । एव गुरुशिष्यभेदोपि कारणरहित स्यात् । एव "ऋतौभार्यामुपेयात" "गुर्वङ्गनानगच्छेत्", इत्यादिविधिनिषेधव्यवहारोऽपि निर्मूलक एव भवेदिति । नतु तदर्थं व्यावहारिकभेदो विधिनिषेधयोराश्रयणेऽभेदोऽद्वैतमिति स्ववचनव्याघात स्यात् ।

ननु प्रकाशकस्य चैतन्यस्वरूपज्ञानस्य स्वरूपत एकत्वेपि, चक्षुरादि बाह्यकरणेन बहिर्निसृतान्त करणवृत्त्याविषयसबद्धयाऽविद्याया निवर्तनेनैवचैतन्यमर्थ प्रकाशयतिनान्यमर्थं प्रकाशयतीति व्यवस्था सम्यगुपपद्यते एवेतिचेत्, मत्र वृत्तेर्जडाया अविद्यावरणनिवर्तकत्वाभावात् । आवरणनिवर्तकत्व प्रकाशस्यैव ननुतदितरस्य, यथा तमो निवर्तकत्व सूर्यप्रकाशस्यैव । तथेहापि, अन्त करण वृत्तेरविद्याजन्यत्वेनाविद्यात्मकत्वमेव । अविद्यानप्रकाशरूपा जडत्वात् ततश्चजडात्मकाविद्याजनितान्त करणवृत्तेरपि तथात्वेन तादृशजडात्मकावरणस्य नाशायोगात् । यदि कदाचित् जडात्मकान्त करणवृत्ते प्रकाशकत्वमिष्येत तदा तस्या एवार्थप्रकाशकत्वमिति चैतन्यस्य तदतिरिक्तस्य स्वीकारो निरर्थक एव भवेत्, यत आवरणनिवर्तकत्वरूपकार्यस्य प्रकाशात्मकवृत्त्यैव सपादनादिति ।

ननु ब्रह्मरूपचैतन्यस्यैकत्वात्, प्रमाणप्रमातृप्रमेयादिभेदव्यवस्था भवन्मते केवलाद्वैत मते कथमुपपद्येत, तदभावे सर्वलोकसर्वसाक्षिकलोकयात्रायास्तथा लौकिकवैदिकव्यवहारस्य गुरुशिष्यादिव्यवहारस्यानुयोगे, तत्राहाद्वैतवादी, मम मते, त्रिविध चैतन्य प्रमाणचैतन्य प्रमातृचैतन्य प्रमेयचैतन्य च । तत्रान्त करणावच्छिन्न चैतन्य प्रमातृचैतन्यम्, अन्त करणवृत्त्यवच्छिन्न चैतन्य प्रमाणचैतन्यम्, घटादिविषयावच्छिन्नचैतन्य प्रमेयचैतन्यम्, एतदेव ब्रह्मचैतन्यमिति गीयते ।

ननु मम मते संविदोभिन्नं सर्वनाम न किञ्चिद्विद्यते "नान्यत् किञ्चित् मिषत्" "नेहनानास्ति किञ्चन" इतिश्रुतेः। अतः सर्वं सर्वदाभायादिति दोषोनापतति। इदं

तत्र प्रमाणचेतन्यप्रमेयचैतन्ययोरेकत्वज्ञानप्रत्यक्षम्। प्रमातृचैतन्यप्रमेयचैतन्ययोश्चैकत्वस्थले विषयस्य घटादे प्रत्यक्षत्वव्यवहारो भवतीति। तथाहि चक्षुरादिकस्य विपयेणसयोगे सति घटाकारान्त करणवृत्ति, यथा तडागोदकछिद्रान्निर्गत्य कुल्यादिमार्गेण केदारान्प्रविश्य केदारवदेवचतुष्कोणाद्याकार भवति तथैव परिणाम्यन्त करण तैजसवृतादिवत्, चक्षुरादिद्वारेण वहिर्निर्गत्य घटादिविषय प्राप्यतदाकारेण परिणमते, सोय परिगामो वृत्ति। ततश्च परिणामावच्छिन्न चैतन्य विषयावच्छिन्नचेतन्यमेकीभवति, यत उपाध्योरेकदेशैककालिकतया भेदाजनकत्वात्। एवञ्च घटज्ञान प्रत्यक्ष भवति। अनुमित्यादिस्थलेतु वह्न्याकारवृत्तेर्वह्निदेशे निर्गमानाभावेन वह्न्याकार वृत्तेर्वह्न्यवच्छिन्नवृत्तेश्च देशद्वयावस्थानेन नवन्हे प्रत्यक्षत्वमपितु परोक्षत्वमेव तत्रोपाध्योर्भिन्नदेशस्थत्वेनोपधेयाभेदाप्रयोजकत्वात्। तत्रैवोपधेयस्याभेदो भवति यत्रोपाध्यो समानदेशत्वम्। तत्र वृत्तावभिव्यक्तचैतन्येन प्रत्यक्षादिव्यवहारो निष्पद्यते इति न कोपि लौकिकादिव्यवहार प्रतिरुद्ध्यते इति चेन्न, एतादृशप्रक्रियानुसरणस्यहस्तसमावरणमात्रत्वात्। यथाशिरसि घातकदण्डपात कालेतद्रक्षणाय हस्तेन मस्तक समावृणोति। परन्तु दण्डपातान्निवारण न भवति दण्डघातो न निवर्तते तथैवात्रापि ज्ञातव्यम्। तस्माद् ग्राह्यग्राहकभेदेन ज्ञानाना पार्थक्य मन्तव्यमेव। विशेष विवरण तु सति समयेऽन्यत्र करिष्यते इति दिक्।

॥ इति सविदैक्यमतदूषणेन सविन्नानात्वोपादनप्रकरणस्य तत्त्वदीप ॥

ननु सविद एकत्वे नित्यत्वे व्यापकत्वे ज्ञानस्य सर्वदा सर्वत्र सत्वात् सर्वसवद्धत्वाच्च सर्वपदार्थस्य सर्वदा भान भवेदितिवधिरान्धाभावप्रसङ्ग इति सिद्धान्तिनाऽक्षेपेकृते केवलाद्वैतिना पुन समाधानाय समुपस्थिते, सिद्धान्ती पुनदोषमुद्भावयितु प्रक्रमते **ननुममते संविदोभिन्नम्** इत्यादि। "नेह नानास्ति किञ्चन" इह पूर्वप्रकान्ते सर्वाधारे सर्वोत्पादके ब्रह्मणि, नाना किञ्चनवस्तु तत्वतो नास्ति, अपितु केवलमविद्यामात्रेणावभासते, नतु परमार्थभूतवस्तुनास्ति, अर्थात् ब्रह्मव्यक्तिव्यतिरिक्त वस्तुसामान्याभावात्मकमेव ब्रह्मेत्यर्थ श्रुते। तथा च ब्रह्मव्यतिरिक्तपारमार्थिक नानावस्तुयदि भवेत्तदा, ज्ञानस्यैकत्वव्यापकत्वे सर्व सर्वदा भासेत इत्याकारकोपालभो योग्यो भवेद्विशिष्टाऽद्वैतिनाम्। परन्तु सविद्भिन्नस्य सर्वस्याभावादेवास्मन्मते, सर्वसर्वदाभायादित्यनुयोगभवतोऽकाण्डकाण्डित एव भवतीत्यर्थ। सिद्धान्तीसमाधानायोपक्रमते **इदंवद** इत्यादि। अत्र पृच्छामि भवन्तम् यतो योयोनील पीतइत्यादिक सर्वसाक्षिक प्रत्ययो जायते, तादृशप्रत्ययेनीलादिपदार्थस्यप्रत्ययो जायते, सप्रत्यय एव नास्ति अथवा नीलादिपदार्थस्य सविदभिन्नत्वेनैवनीलादिप्रतीतिरेव सेति

वद ? किं नीलादिर्न प्रकाशते, प्रकाशमानो वा नीलादिः संविदो ज्ञानान्नभिद्यते। प्रथमकल्पे अवाधितानुभवसिद्धोलोकवेदव्यवहारः कथं स्यात्, यतः पदपदार्थादिकं न किञ्चिदप्यवभासते। द्वितीयकल्पे भवदभिमतं ज्ञानाद्वैतं व्याहन्येत, प्रतीयमाननाना प्रपञ्चैक्ये संविदोपि नानात्वापातात्। नचाविद्याविलासत्वाद् भेदाभेदनिरूपणा। सा हि भेदाभेदनिरूपणा युक्तिवन्हिस्पृष्टा जातुषमाभरणवद्विलीयते। तथाहि यदीयम-

भवद्भिर्मन्यते इति विकल्पद्वयमत्रापतति ? तत्र प्रथमकल्प दूपयितुमाह **प्रथमकल्पेऽवाधितानुभव** इत्यादि।

सर्वानुभव सिद्धानेकप्रतीतिनिन्हवे, नानापदपदार्थप्रत्ययनिर्वाह्यसर्वोपि लोकसिद्धव्यवहारो वैदिकव्यवहारोवाऽबाधितानुभवसिद्ध कथ भवद्धि सावितोभवेन्न कथमपि सिद्धोभवेदिति। अथद्वितीय पक्षदूषयितुमुपक्रमते **द्वितीय व्याहन्येत** इत्यादि। अर्थात् द्वितीय कल्पस्य स्वीकारे यदद्वैतभवत् सिद्धान्तसिद्ध भवदभिमत च तस्य व्याघात स्यात। अर्थात प्रतीयमानानेकप्रपञ्चेन सहसविद ऐक्ये सविदोपि नानात्व प्रसज्येत एवेति स्वाभिमतज्ञानाद्वैतस्य हानिस्तथात्वे चापसिद्धान्तापातश्चेति भाव। अथ पुन शङ्कते केवलाद्वैतवादी **नचाविद्याविलासत्वा**दित्यादि। नीलादिभेदाना विशेष्याणामत्राध्याहार कर्त्तव्य। ततश्च नीलादिभेदाना भिन्नतयाऽभिन्नतया निरूपणा शक्यत्व च तस्या अविद्या विलासत्वादेव। अविद्यावलायातस्याविद्याकार्यस्यनीलादिभेदस्य मिथ्यात्वेन मिथ्यार्थेचदुर्घटत्वस्य भूषणायमानत्वेन भेदाभेदनिरूपणमुपपद्यते एवेति। उत्पत्त्यननुवार्तत्वादेव च "सर्वसदा भायादित्याद्यापत्तेरनवकाश इति पूर्वपक्षिणा दोषाभावनिरूपणाभिप्राय।

सिद्धान्ती परिहरति **साहि** इत्यादि। अथात् युक्तितर्केण यथायथमविद्यास्वरूपविचारयामि, तथा तथाविनश्यति सिकताकूपवद् विशीर्यते, यथायथा न्यायवन्हिनाऽविद्यास्वरूप तापयामि तदातत् जतुभूषणवद्विशीर्यते एव नतुस्थिरायते, अथात् य भेदाभेदनिरूपणमविद्यायाविलास. कार्यमिति कथयसि, सैवाविद्यान्यायुक्तिप्रमाणपराहता, स्वात्मानमेव लब्धु योग्या न भवति, यथाजतुधातुनिर्मितमाभूषण तावदेवस्वात्मान लभते यावन्नाग्निना तापित भवति। वन्हितापसपकात् स्वात्मानमेव जहाति विलीयते इति यावत्। यथा सिकतानिर्मित कूपस्तावदेवास्ते यावद्दण्डाघात न प्राप्नोति। तथैव प्रकृते यस्या अविद्यायावलेन भेदाभेदनिरूपण कर्तुमिच्छसि तामधिकृत्य यदा विचारयामि सैव विनश्यतीति। अयमर्थ आविद्यकस्य भेदस्यनीलादिसम्बन्धिनो मिथ्यात्वात् मिथ्यार्थेदुर्घटत्वस्यनेत्रकज्जलवत् भूषणत्वात् तदुक्त **अलौकिकत्वमेतेषांभूषणंनतु दूषण**मिति। एवञ्च भेदनिरूपणमुपपद्यते एव। उपपत्यननुवर्तित्वादेव च **सर्वसदाभाया**दित्यादि सिद्धान्तापत्तेरनवकाश इति भाव। एवञ्चाविद्याविलासत्वमर्थादविद्याकार्यत्व च **भेदादि**

विद्याविद्याभावात्मिका स्वीक्रियते तदा निरूपाख्यस्वभावत्वात् वस्तु नियन्त्रणे नशक्ता प्रपञ्चस्य नसिद्ध्यतीत्युत्तरग्रन्थस्याभिप्राय । सम्प्रत्येनस्यावान्तरप्रश्नस्य सिद्धान्ती पराकर्तु-मुपक्रमते=अर्थात् न्यायपराघात प्रपञ्चयति **तथाहि** यद्यविद्येयमित्यादि । अयभाव

"तत्सादृश्यमभावत्व तदन्यत्व तदल्पता । अप्राशस्त्य विरोधश्चनञर्था षट् प्रकीत्तिता ॥"

अयमर्थ समासान्तर्गतस्य नञ षडर्था सभवन्ति सादृश्यम्, अत्यन्ताभाव, तदन्यत्व, भेद, अल्पता च अप्राशस्त्यम्, विरोधश्चेति षट् । तत्र "अनिक्षु सर" इत्यत्र न इक्षुरनिक्षु-रिति विग्रहे, दीर्घत्वमिष्टजलवत्वे न सरस सादृश्यमवगत भवति समासान्तर्गतनञ् वलात् । एव अघट भूतलमित्यत्र न विद्यते घटोयत्रेति बहुव्रीहिसमासान्तर्गतस्य नञ अत्यन्ताभावोऽर्थ प्रतीयते, तेन घटात्यन्ताभाववद्भूतलमित्यर्थोऽवगतोभवतीति । एवमनुदराकन्येत्यत्र न विद्यते उदर यस्या सा अनुदरेति विग्रहेनञो वलादल्पोदरत्व प्रतीयते नत्वत्यन्ताभावो लोकविरोधा-दर्थान्तरासभवादित्यतो योग्यत्वादल्पत्वमेवार्थ । यथावा अलवणकशाकमिति । अप्रशस्तत्वमपि तदर्थ, अप्रशस्तो ब्राह्मणोऽब्राह्मणो वार्धुषिको वार्धुकिको न तु ब्राह्मणभिन्न इत्याद्यर्थोऽयोग्यत्वात्। विरोधि भवत्येव नञर्थ यथाऽसुर इत्यत्र, न सुरोऽसुर इति विग्रहेनात्यन्ताभावादिस्तदर्थ सुरभि-न्नोवेत्यर्थ । तथात्वेसुभिन्नत्वस्य देवनरादिषु सर्वत्रवेयनान्येन नरादिष्वपिविद्यमानत्वात्, विशिष्टाभावोभयाभावस्य सुरेष्वपि समत्वात्, जात्याविरोधिविभीषणेपि तथात्वात् । न चेष्टापत्ति दयादक्षस्य करुणासिन्धोर्भगवतो रामस्य दयादृष्ट्याऽवगाहनसारतानस्यापगमेनासुरत्वस्यापगमात् । तत्र प्रवृत्तेराक्षसकुलोत्पन्नोपि विभीषण परम स्वरूपज्ञो भागवतेषु परिगणितोव भूत्वेति । एतादृशमहाजनेऽसुरत्वस्य का सभावनेति विद्वाङ्कुर्वन्तु विद्वांस इति ।

किमियमविद्या विद्याया अभावरूपा वा विद्याभिन्नावा ? इति योग्यत्वात् विकल्प द्वयम् । **यदीयमविद्याविद्याभावात्मिका** यादि । अथादत्रविकल्पद्वय भवति । यथार्थज्ञानरूपाया सविद्धेन पदायात्मिकाया अभावोऽविद्या, अथवा विद्याभिन्न भावान्तररूपा वा ? तत्र न प्रथम पक्ष साधीयान्, अयथार्थज्ञानानिरोधकत्वमनिरूपणीयत्वे, तस्या अलीकत्वमेव स्यादित्या-शयेनाह **निरूपाख्यत्वा**मित्यादि, तत्र निरूपाख्यत्व निःस्वरूपत्वतुच्छत्वमितियावत् । उपाख्या च धर्मविशेषरूपैव, असतितुच्छे च धर्माभावात्, धर्मश्च धर्मिणिनिष्ठीति नियम । तुच्छे च धर्मधर्मिभावस्याभावात् । धर्मधर्मिभावे च घटादिवत् तुच्छत्वमेवानिवर्तेत । तथा च भवदभिमता विद्या भावात्मिका शून्यस्वरूपैवेति स्वसिद्धान्तहानिर्बौद्धमतप्रवेशश्च भवन्मतस्य सनापतेत् । तथा च **स्वयमेवालब्धसत्ताकाऽविद्या** कथमिव प्रपञ्चस्य परिणाम्युपादान भवेदित्यभिप्राय ।

स्यात् । यदीयमविद्यार्थान्तर तदा शोभना ते भेदाभेदनिरूपणा । अर्थानर्थान्तरत्वादि-

इत्येव प्रथमकल्प दूषयित्वा द्वितीयकल्प दूषयितुमुपक्रमते **अर्थान्तरम्** इत्यादि । यदि विद्यातोऽर्थान्तरमविद्या, तदा भेदाऽनिरूपणा=भिन्नत्वेनाभिन्नत्वेनवा, अशक्य निरूपणा चाऽर्थान्तर चेत्युपपादयितुमशक्यैव भवेत । कथ निरूपणनस्यादिति चेत, स्ववचनविरोधादेवेति गृहाण वाग् विरोधमेव दर्शयति **अर्थानर्थान्तरत्वादि विकल्पोऽविद्यायानसंभवती**त्यादि, अर्थादर्थान्तरत्वादि विकल्पोऽविद्याया न कथमपि सम्भवति स्ववचनविरोधात । अद्वैतमते सर्व ब्रह्मण्येव कल्पितम् आरोप्यस्य सत्वमधिष्ठानेनैव, नतु आरोप्यस्य सत्ताऽधिष्ठानसत्तातो भिन्ना । एवञ्च विद्यातोऽर्थान्तर तदाऽसौ विद्यते कथन कथन कथन कथमविरुद्धमपितु विरुद्धमेवञ्तोऽधिष्टानविद्यापेक्षया भिन्नत्वे तत्स्वरूपमेव खपुष्पायमाणभवेत् । तदापुनरसौ, इति कथनमिति परस्परमतिविरुद्धमेव "मातामेवन्ध्येतिवत्" यथा जिह्वा मे नास्ति वच्मिचेति वद्वा । तस्मादर्थानर्थान्तरविकल्पो नैव युक्त इति ।

अयमाशय प्रकरणस्य तथाहि—अपिचास्या अविद्याया स्वरूप किमात्मकमिति ब्रूहि "नजानामीति प्रतीतेर्ज्ञानप्रागभावे तदीयध्वसे एव वा व्यावहारिकव्यवहारोपलम्भात् । ज्ञानोत्पत्ते प्राक्काले तत्प्रध्वसानन्तरमेव वाऽज्ञानव्यवहारोपलम्भात् । नहि, आभ्यामन्य कश्चित्प्रकार श्रुत-उपपद्यते नवेय ज्ञानात्यन्ताभावरूपा, तथा सति, वेद्यस्य घटादेरभावो नानिर्वचनीयस्तथैव विद्याया अभावोपि नानिर्वचनीय स्यात् । नवा किञ्चिदस्या लक्षण वा पश्यामि । न च विद्याया अभावोऽविद्येति लक्षणम् ? तथा सति विद्यातिरिक्तस्य सर्वस्य जगतो विद्यात्व प्रसङ्गात् । नचानादित्वे सतिज्ञाननिवर्त्यमज्ञानमिति तल्लक्षणमिति वाच्यम्, तथा सति ज्ञानप्रागभावे व्यभिचारात् । ज्ञानप्रागभावो ज्ञाननिवर्त्योऽनादिश्च स्वप्रतियोगिजनक स्वप्रतियोगि निवर्त्यश्च भवति प्रागभवादेस्तत्र गतत्वादज्ञानलक्षणस्येति तत्रभवत्येवातिव्याप्तिरिति ।

न चानादित्वे सति भावत्वमेवाज्ञानलक्षण भवतु । प्रागभावस्याभावत्वेन तत्र भावत्वस्या भावान्नातिव्याप्ति । नचाज्ञानस्यानादित्व शङ्कनीयम् "जीव ईशो विशुद्धाचित्तथा जीवेशयोभिंदा । अविद्यातच्चितो र्योग षड्स्माकमनादय ।" इत्यभियुक्त्येति वाच्यम्, तथा सत्यात्मवदविद्याया अपि नित्यत्वप्रसङ्गात् । यथाऽन्माऽनादिभावत्वात् नित्यत्वेन विनाशित्व न भवति तथैव विद्यायाअपि अनादिभावत्वेन तत्त्वज्ञानविनाश्यत्वाभावादद्वैतव्याघातप्रसङ्गात् । तथा च "त्वदीयोवाणस्त्वामेव प्रहरतीति न्यायविषयतानातिक्रामसि । ननु परमाणुश्यामिकाऽनादिभावरूपादि पाकेन विनश्यतीति तद्वदेवाज्ञानस्यापि विनाशकस्यादर्शनात्, ईश्वरज्ञानस्य तन्नाशकत्वस्यास्वीकारात् । अस्तु वा यथा कथञ्चित् अविद्याया किमपि लक्षण तथापि एतादृशाज्ञानस्य किमपि प्रमाण न पश्यामि ।

ननु "गाढमूढोह मह्य न किञ्चिदवेदिषम्" इति सुप्तोत्थितस्यपरामर्शान्यथाऽनुपपत्त्या सुषुप्तिका ज्ञानानुभव एवाज्ञाने प्रमाणम् अनुभव विना स्मरणस्यानुपपत्तो । तदुक्तमभियुक्तै –
"प्रमाणमनुभूति स्यात्स्यतेरन्यस्मृति पुन । पूर्वविज्ञानसस्कारमात्रज ज्ञानमुच्यते" इति चेन्न,

सुषुप्तिकालिकज्ञानाभावस्य प्रबोधकालेऽनुमीयमानत्वात् । नाय सुषुप्तिकानुभवजनित परामर्शोऽपितु समुत्थितस्य प्रबोधकाले एवायमनुभवो जायते, सुषुप्तिकालो ज्ञानाभाववान् कालत्वात् स्वप्नकालवदिति नाय स्मरणात्मकज्ञानस्य मूलभूताज्ञानानुभव । किन्तून्थितस्य प्रबोधकालिका ज्ञानानुभवेति । नवा "अहमज्ञ" इति प्रत्यक्षज्ञान भवदभिमताज्ञाने प्रमाणम्, तस्य ज्ञानाभाव विषयकत्वेनापि सार्थकत्वात् । एवमस्य भावत्वानादित्वस्य भवदभिमतस्य बोधने आदासीन्यात् । उक्तप्रतीतेरज्ञानवानहम्" इति नार्थ किन्तु सुषुप्तिकालिकज्ञानाभाववानहमित्येव प्रतीते· । न चाभावज्ञानस्याधिकरणप्रतियोगिबोधपराधीनत्वनियमेन सुषुप्तौबोधाबोधाभ्या व्याघातात । अर्थात् यस्याभावो गृह्यते तदभावप्रतियोगिनस्तदधिकरणस्य च प्रथमतो ज्ञानमावश्यकम्, प्रमितप्रतियोगिकाभावस्वीकारात्, तदुक्तमभियुक्तै —

"लब्धरूपेक्वचित् किञ्चित् तादृगेव निषिध्यते ।
विधान (प्रमाण) मन्तरेणासौ ननिषेध्यस्य सभव ॥ इति ।

एवञ्च यदि सुषुप्तिकालेऽज्ञानप्रतियोगिनो ज्ञानस्य तादृशज्ञानाधिकरणात्मनस्य च ज्ञानं वर्तते तदाऽज्ञानप्रतियोगिनो ज्ञानस्य विरोधिन सद्भावादेवनाज्ञानप्रत्यक्षम् । अधिकरणप्रतियोगिनोऽभावेकारणाभावादेवनाज्ञानप्रत्यक्षम् । एव प्रकारेण प्रतियोगिज्ञानाज्ञानाभ्या व्याघातो भवेदेवेति वाच्यम्, भेदसादृश्यवत्तदुपपत्तिसभवात् । अर्थात् यथा सदृश भिन्नश्चेत्यत्रसादृश्य प्रतियोगिनश्चन्द्रस्यानुयोगिनो मुखस्य च तत्तद्रूपेणाज्ञानेपि, यथावा भिन्नमित्यत्रचानुयोगिप्रतियोगिनोस्तत्तद्रूपेणाज्ञानेपिमुकुलिततया भेदसादृश्ययोर्ज्ञान जायते एव तथैवाज्ञानस्थले सुषुप्तौ ज्ञान प्रतियोगिनोऽनुयोगिन आत्मनो बोधाभावेपि अज्ञानभान निराबाधस्यादेवेति चेन्न, तथा सति सादृश्यवदेव भावत्वप्रसङ्गात् "निर्विकल्पकबुद्धिविषयत्व भावत्वमिति लक्षणात् । भावत्वस्वीकारेऽनादिभावस्यात्मवदेवनित्यत्वप्रसङ्गोभवेत् । नवा "इन्द्रोमायाभि पुरुरूप ईयते" इत्यादि श्रुतयोऽज्ञाने प्रमाणम्, माया पदेन परमेश्वरशक्तेरेव कथनात् । तथा अज्ञानपदेन प्रलयकालिकजीवाना ज्ञानाभावस्यैव प्रतिपादनात् । तदेव लक्षणप्रमाणयोरभावेनभावरूपमनादिरूपमज्ञानमिति कथन सर्वदाऽज्ञानविजृम्भितमेव । तदेवमज्ञानस्य निराकरणेन तन्मूलकाद्वैतवादोपि निराकृत एव भवतीति ज्ञातव्यम् । तथा विशिष्टाद्वैतस्थापकानेकश्रुतिस्मृतिप्रमाणेभ्यो विशिष्टाद्वैत श्रीरामानन्दाचार्याभिमतमेव समीचीनम् "एवञ्चाखिलश्रुतिस्मृतीतिहासपुराणसामञ्जस्यादुपपत्तिबलाच्चविशिष्टाद्वैतमेवास्य ब्रह्ममीमासाशास्त्रस्य विषयोनतुकेवलाद्वैतम् । तथाहि चिदचिद्वस्तुनो शरीर

विकल्पनास्याः सेवेत। विद्यातोऽर्थान्तरमविद्येति वचनं व्याहतमेवभवति अर्थान्तरभावोऽविद्याया आविद्यकमेवेति वाच्यम्, तथासति परमार्थतोऽविद्यैव विद्याभवेदिति।

किञ्च संवित् शुद्धाचेतना च अविद्या तु नैतादृशी तत्केनकारणेन सेयमविद्याऽन्यै-

तयाऽपृथक्सिद्धत्वेन प्रकारत्व तद्विशिष्टस्य ब्रह्मणश्च शरीरित्वेन प्रकारित्व शाश्वतिकमेव काञ्चनश्रुतयोऽभिदधते 'पृथगात्मान प्रेरितारञ्च मत्वाजुष्टस्ततस्तेनामृतत्वमेति' 'ज्ञाज्ञौद्वावजावीशानीशा' 'भोक्ता भोग्य प्रेरितारञ्च मत्वा' इत्यादिरूपेणानन्दभाष्ये बहुचर्चितत्वात। मयापि तद्विवरणावसरे यथाकाम प्रपञ्चितत्वाद्विरम्यतेऽधुना विशेषविचार इदमीय सति प्रसगेपुनर्विचारित स्यादित्यलम्।

एतावता गतप्रकरणेन अविद्याया विद्यातोऽर्थान्तरानर्थान्तरादिविकल्पो युक्तितर्कपराहतत्वात न भवतु। परन्तु अविद्याया विद्यापेक्षया यदर्थान्तरत्व न तद् व्यसनितया क्रियते, किन्तु यदविद्याया विद्यापेक्षयाऽर्थान्तरत्व तदपि न पारमार्थिकम्, अपितु तत्कल्पितमेव, कल्पितभुजगे यथा सर्पत्व कल्पितमेव न तु पारमार्थिक तथैव प्रकृतेऽविद्याया विद्याभिन्नत्वमपि कल्पितमेव न वास्तविकमित्याशयेनाह **अर्थान्तरभावोपी**त्यादि। अथात् येयमविद्या तस्या अविद्याभिन्नत्व कल्पितमेव न वस्तुरूपम्, यथाऽविद्याब्रह्मणि कल्पित एवेति न ततो कोपि दोष इति प्रश्नाशय। उत्तरयति, **तथासती**त्यादि। अथात विद्यातोऽविद्याया यो भेद स च कल्पितोऽर्थात् विद्यातोऽविद्याया भेदो नास्तीति स्वीक्रियते तदाभेदानिरूपणे भवदभिमताऽविद्या विद्यारूपैव प्रसज्येत नीलघटयोर्भेदाभावेऽभेदवदिति।

वस्तुतस्तु ज्ञानभिन्नतयैवाविद्यास्वरूपनिरूपणमर्हतीत्याशयेनाह **किञ्च** इत्यादि, अर्थात् येय संवित सा तु शुद्धा समस्तदोषविनिर्मुक्ता तथाऽजडा घटादिविषयवत् जाड्यरहिता च इयमविद्या तु न शुद्धा किन्तु तद्विपरीता जडरूपा च विषयत्वात् एव चेयमविद्याविद्यातो भिन्ना केनकारणेन न स्वीक्रियते भवद्भि, अपि तु भिन्नैवमन्यताम्। तथा च शुद्धाजडसंविदपेक्षया सविकारा शुद्धजडा विद्याया पारमार्थिको भेद एव कुतो न निरूप्यते जलाग्निवदिति। तथा च परमार्थिको विद्या विलासो भेद सर्वोपि एकस्या एव सकलपदार्थप्रकाशकत्वे सर्वदाभासेत इत्याकारको यो दोष पूर्व प्रदर्शित स च दोषोऽद्वैतमते वज्रलेपायते एवेति न ततो विमोको भवतीति।

अथाविद्याया भिन्नत्वतदितराभ्यामनिर्वचनीयत्व निराकृत्य अविद्याया स्वरूपस्यानुपपत्तिमपि दर्शयितुमुपक्रमते **अपि चयेयमविद्या** इत्यादि। अपि च येयमविद्या यस्या अभावरूपा यद्भिन्ना वा सावित्रप्रतियोगिरूपा सा किं स्वरूपेत्यर्थ। अर्थात् विद्याया अत्यन्ताभावरूपा तदन्योन्याभावरूपा वा भवतु त्वन्मतेऽविद्या। तत्रात्यन्तभावान्योन्याभावयो प्रतिविधया भासमाना विद्या

वेति कुतो न निरूप्यते। अपि च येयमविद्या भवन्मतप्रसिद्धा सा किं विद्याया अभाव रूपा ? विद्याया भिन्ना वा ? तत्र सा विद्या संवित्तिरूपा वेद्या वा वेदितृरूपा वा ? तत्र विद्यायावेद्यत्वे वेदितृस्वरूपत्वे वा अस्या अविद्यायास्ताभ्यां विद्यावेदितृभ्यां निवृत्तिर्न भवेत् यतो ज्ञानं विनाऽज्ञानस्यान्येन निवृत्तिरिति ते मतम्। विद्या संविदेवेति चेत् तस्या

स्वरूपप्रमाणाभ्या कि स्वरूपेति विकल्पो विचारार्थ उपन्यस्यते तत्र प्रनियोगिस्वरूपा विद्या वेद्या, वेदितृस्वभा वा ? उभयपक्षेऽपि दोषमाह "**वेद्यत्वेवेवितृरूपत्वे**" इत्यादि। ज्ञानस्य ज्ञानान्तरविषय त्ववेदितृस्वरूपयोरविद्यानिवर्तकत्वाभावात्, तद्रूपायाविद्याया अपि अविद्यानिवर्तकत्वाभाव प्रसङ्गस्तवाद्वैतिमते इति। यदि कदाचित् सवित्तिरूपत्वमविद्यायामन्येत, तदा तत्र दोष दर्शयति **संविदेवेतिचे**दिति अर्थात् सवित्स्वरूपैवाविद्या, तदातस्या सविद सर्वदेव नित्यत्वेन सद्भावात्, तदविद्याया कुत्रापि न सभवो भवेत्। "नित्य विज्ञानमनन्त ब्रह्मेत्यादि श्रुत्या सविदो नित्यत्व सिद्धत्वात्। सर्वमूर्तसयोगितया सर्वत्र सद्भावाच्च तादृशसविदभावलक्षणा विद्याया असिद्धिरेव स्यात्। एवञ्च स्वस्वरूपमेव जह्यादिय स्वभावतपस्विनी अविद्येति भाव। ननु सविद्रूपाविद्या, ततो-विरुद्धैवा विद्येति रोचते तव तदापि दूषणान्न निवृत्तिर्जायते, तत्राह '**किञ्चेयं विरुद्धावे**ति। **अर्थात्** सवित्स्वरूपविद्या विरुद्धैवाविद्या तदा सूर्यकिरणव्याप्ते प्रदेशे दिवाकरे वा तपति सति, दिवाकर विरोधशीलस्य गाढान्धकारस्येव सर्वव्यापकज्ञानव्याप्ते सर्वत्रसविदि वा सत्या ना विद्याया समावेश इति प्रकरणस्यपिण्डितो भाव। एव चाविद्याया विद्याविरुद्धत्वेवर्णिते तस्य अविद्याया कुत्रापि देशेकाले वा न सभवो यतोऽद्वितीयया विद्ययैव सर्वं स्थावरजङ्गम सूक्ष्म स्थूल च जगत्, सर्वमपि, विद्ययाव्याप्त, ततो व्यतिरिक्तस्थानाभावो यत्र सानिष्कण्टक स्थानमवाप्य स्वस्थाऽवस्थितिं प्राप्नुयात्, इति शेष। अत्रा**द्वितीयया विद्यया** इति कथनेन विद्याभेदवती अविद्येति, अविद्याया निर्वचनमप्यद्वैतवादिना दुर्वचमेवेति, व्यञ्जनयाऽभिव्यञ्जितम्।

ननु विद्याया अत्यन्ताभावो वाऽविद्या, विद्या भिन्ना वाऽविद्या, विद्याविरोधिनी वाऽविद्येति यथा-कथितम्, तथैव, यदि सविदभावो विद्यासविद् भिन्ना वाऽविद्या, सविद्विरुद्धा, वाऽविद्येति कल्पत्रय रोचयते, तदा सविदोऽद्वैतप्रतिज्ञाया हानिरेवभवेदित्याशय मनसिनिधायोपसहारव्याजेनाहाचार्य "**संविद इष्येत**" इत्यादि। अथवा कल्पत्रयेपि दूषणमनुवदितुमाह "**संविद इष्येत**" इत्यादि। अयमाशय कल्पत्रयेपि, अर्थात् सविदोऽत्यन्ताभावरूपा सविद्भिन्नरूपा, सविद्विरुद्धरूपा यदि काचिदनादिभावात्मिकाऽविद्याभवेत्तदासविदैवैका "एकमेवाद्वितीयम्" इति श्रुतिवलाद् भवदभिमत ज्ञानाद्वैत न सिद्ध्येत्, यतस्ततोतिरिक्तस्याज्ञानस्य भानतया द्वैतमेवजात ततश्च सिद्धा-न्तस्तभरूपज्ञानद्वैतस्य हानिरेवापतेदिति।

अविद्याया भावरूपत्वे नानादिभावात्मकात्मवत् निवृत्तिर्न भवेत् । किञ्चेयमविद्या यदि विद्याभिन्ना तद्विरुद्धा च, तदा तादृशाविद्यायाः कुत्रापि संभवो न स्यात्, दिवाकर करव्याप्तप्रदेशे गाढान्धकारवदिति । यदि च ज्ञानाभावरूपत्वं ज्ञानाविरोधित्वं वा संविद इष्येत तदा ज्ञानाद्वैतप्रतिज्ञा निराधारा भवेत् । ज्ञानविरोधिन्या संविद एव विद्यमानत्वात् ।

॥ इति अविद्यायास्वरूपनिर्वचनीयत्वानुपपत्तिप्रकरणम् ॥

अथ मन्मते त्रिविधो हि पदार्थ पारमार्थिकव्यावहारिकाध्यासिकभेदात । तत्र कालत्रयेपि प्रतिपन्नोपाधौनाभावबोधन सप्रथम पारमाथिक । यथाऽऽत्मरूप ज्ञानम्, वृत्तिज्ञान ज्ञानं भवदपि नात्मरूपमपितु वृत्तिरूपम । यस्य यावद्व्यवहारमनुवर्तन भवति स व्यावहारिको यथाऽकाशादिप्रपञ्च सर्गादारभ्य याव प्रलयमवस्थानात । यश्च पदार्था यावदज्ञानमनुवर्तते सप्रातिभासिक । यथा शुक्तिरजनादि शुक्तौ प्रतिभासमानस्य ज्ञानभात्रकालेऽवस्थानात्, अयमेव दृष्टिसृष्टिवादो वाचस्पत्यभिमत । प्रतिपन्नोपाधौ शुक्तिकारूपाधिष्ठाने शुक्तिरिय न पुन रजतमिति ज्ञानेन निषेधप्रतिपादनात् । तत्रैतेषु त्रिविध पदार्थेषु मध्ये "सत्य ज्ञानमनन्त चेति श्रुतिबलेन सचिन्मात्र परमार्थसत्, कालत्रयेप्यबाधात्, अन्यत् सर्व न परमात्र सदित्येतादृशैक्यमेव परमार्थ सदैकमस्माकमभिमतम् । अविद्यादेस्तु, अपारमार्थिकत्वेन, तेषामविद्यादीनामनादिभावत्वेपि नाद्वैतमतस्य हानिर्भवतीति चेन्सत्यम् अनादित्वेनाभ्युपगतायाविद्याया कल्पकदोषान्तरस्याभावेना पारमार्थिकत्वायोगात् । यथा शुक्तिरजतमित्यत्र रजतस्य कल्पको दोषान्तर चाकचिक्य सादृश्यादिकं मूल कारणमविद्यैव, इहचाविद्याया कल्पकदोषान्तर नास्तीति कथमविद्याया अपारमार्थिकत्वं तदभावेनार्थत एव पारमार्थिकत्वमायातीति ।

न च विद्याया कल्पना प्रति अधिष्ठानतया यथा ब्रह्मण कारणत्व तत्कल्पना प्रति अब्रह्मण एव दोष विद्ययापि कारणत्वे, तत्र ब्रह्मणोऽविद्या कल्पक दोषस्य दुर्घटत्वात् । नहि विशुद्ध विशुद्धगुणक च ब्रह्मदोषरूपता भजते, यथा जीवनोपयुक्तममृतम् विषवद्दोषायते गुणे दोषव्यवहाराभावात् । यदि कदाचित् उपकरणमन्तरेणाप्यविद्याया कल्पनमिष्येत तदा मोक्षकालेपि कारण विनापि तस्या कल्पनमनिवारितमिति मोक्षार्थप्रयासो महाविया विफलतामियात् । अविद्या निवृत्त्यर्थमेव परमेश्वराराधन परन्तु तत्सद्भावेपिच्छिन्नमूलाप्यविद्या निकृत्तबदरीवृक्षवत् शतशिखरा प्रादुर्भवेत् । अर्थात् मोक्षेपि तस्या अविद्याया. प्रादुर्भावप्रसङ्गादित्यल मोक्षाशा शास्त्राणा महर्षिणा च स्यादिति । एवम् आत्मवदनादिभावस्य विनाशाभावेन ज्ञाननिवर्त्यत्वमप्यज्ञानस्य न स्यादिति । अप्रस्तुत प्रसङ्गाद्विशेषविवरणनात्र कृतम्, समये करिष्यते इति दिक् ।

॥ इति विद्याया. स्वरूपनिर्वचनानुपपत्तिवर्णनप्रकरणस्यतत्त्वदीप ॥

किं चासौ कस्याश्रये भवति । जीवस्येति चेत् कोयं जीवो यस्येति चेत् एवमसमाधानमन्योन्याश्रयणापातात् । न च ऋतेजीवादविद्या न वा जीवमन्तरेणाविद्या । नच

अथ विद्याया स्वरूपानुपपत्ति प्रदर्श्यतदनुतस्या अविद्याया आश्रयानुपपत्ति प्रदर्शयितु प्रकरणान्तरमुपक्रमते **किं चासौ कस्येत्यादि** । अर्थात् "अहमज्ञ" इति प्रतीतावज्ञान भासते तत्राधेय भूताज्ञानस्य विषय भूत ब्रह्म यतोऽज्ञानस्य विषयो ब्रह्मैव । ब्रह्म विषयकाज्ञानवानहमित्यनु व्यवसायात् । आश्रयस्तु जीवो यतस्तस्मिन्नेवाज्ञानस्य वर्तमानत्वादिति वाचस्पतिमिश्रा । सक्षेप शारीरकाचार्यास्तु —

"आश्रयत्वविषयत्व भागिनी निर्विभागचितिरेव केवला ।
पूर्वसिद्धतमसो हि पश्चिमो नाश्रयो भवति नापि गोचर ॥" इति ।

अस्यार्थ तमसोऽज्ञानस्य निर्विभाग, सर्वथा जीवेश्वरादिविभागरहितकेवलाचितिश्चैतन्य मात्रमेव, आश्रयत्व विषयत्व भागिनी शुद्ध चैतन्यमेव, अज्ञानस्याश्रयरूप विषयरूप च भवति । ब्रह्मविषयक ब्रह्माश्रित चाज्ञानमित्यर्थ । किन्तु पश्चिमोऽविद्योत्तरकाले स्वस्वरूप प्राप्नुवन् जीव स्वकारणभूततमसो नाश्रयो भवति न वा विषयोऽपि भवतीत्यर्थ । कारणजन्यत्वात् कार्यस्येति पूर्ववृत्तित्वाभावेन जीवो नाश्रयो नापि विषय इति ।

एव इह अद्वैतवेदान्तिनामाचार्य भेदेन प्रक्रिया । तत्राचार्या सम्प्रति अज्ञानस्याश्रयविषये विमर्शयितु भूमिकामारचयन्ति **किंचासौ कस्येत्या**दि, न विद्यते समाधानमुत्तर यस्य तदसमाधानमसमाधेयमित्यर्थ । जीवो हि अविद्यया कल्पित, यथा घटाद्यवच्छिन्नो व्यापकोप्याकाशो घटाकाश इति कथ्यते । तत्राविद्या कल्पितो जीवभाव इत्येव रूपेण जीवस्य कल्पने सिद्धे सति, तादृशजीवाश्रितत्वात् अज्ञानस्य सिद्धि एव चाविद्या सिद्धो जीवस्य सिद्धिर्जीव सिद्धौ च तस्य अविद्याया सिद्धिरित्येव च जीवविद्यापक्षेऽद्वैतमते अन्योन्याश्रयदोषो भवति स च दोषो न समाधातु शक्य ।

न चासो दोष. सिद्धान्त शिरसि पातनीय । यतो मदीयसिद्धान्ते जीवस्याकल्पितत्वेनार्थात् पारमार्थिकत्वाज्जीवस्य । तादृश जीवेऽज्ञानाभ्युपगमेऽपि क्षत्यभावात् । किन्तु परमते एवाय दोष प्रसरतीति । अन्योन्याश्रयमेव योजति मूलकार. **न वाजीवमन्तरेणाऽविद्येत्यादि** अर्थात् जीवस्य सद्भावमन्तरेणाश्रयाभावात् तदीयाऽविद्याया अवस्थानमसभावितम् । अविद्याया अभावे च तदुपाधिकजीवस्यावस्थान सर्वथैवासभवितम् । इति जीवसिद्धौ जीवाविद्याया सिद्धिरविद्यासिद्धिरिति भवत्येव ते मतेऽनवस्थानम् । अस्मन्मते तु जीवस्याकल्पितत्वेन तादृशजीवेऽविद्या स्वीकारेपिनकोऽपि दोष इति ।

बीजाङ्कुरवदयं दोषः, जीवोत्पत्तेरयोगात् । ब्रह्मैवाविद्याया आश्रयः संभवतीतिचेन्न ब्रह्मणः सदा सर्वज्ञत्वेन विभ्रमासंभवात् । नचाविद्याकृतदेहात्मप्रत्ययाधीनत्वं भ्रमस्येति वाच्यम् ब्रह्मसर्वज्ञतायाः स्वाभाविकत्वश्रुतेः भेदावभासगर्भिता सर्वज्ञता मृषैवेतिचेत्,

ननु यथा बीजाङ्कुरस्थले, बीजसद्भावे एवाङ्कुर प्ररोहोऽङ्कुरसद्भावे एव बीजादय इत्येव परस्परसापेक्षत्वेऽप्यनादित्वात् परस्पराश्रयो न दोषायेहापिस्यात्तत्राह **न बीजाङ्कुरवदयमित्या**दि। बीजाङ्कुरप्रवाहे जातिमूलकोऽन्योन्याश्रयो न तु व्यक्तिमूलक नदीय प्रवाहे एकमङ्कुर प्रति तदुत्पादकबीजस्यापेक्षणात् । बीज प्रति तु तदुत्पादकाङ्कुरान्तरस्यापेक्षणात् यतस्ता बीजाङ्कुरावनित्या न तु नित्याविति तत्र व्यक्तिभेदमाश्रित्य निर्वाहेऽपि, प्रकृते जीवाविद्ययो नैव जीवस्य नित्यत्वाद नित्यत्वाच्चाविद्याया इति । अर्थात् बीजाङ्कुरप्रवाहस्थलेतु, अन्यान्यस्य बीजस्य तदङ्कुरस्य च जन्यजनकभावो विद्यत । प्रकृत तु नत्र सम्भवति । एकत्रैवस्थानेऽनेकजीवप्रसङ्गात्, तथा जीवानामुत्पादविनाशप्रसङ्गेन कृतनाशाकृताभ्यागमदोषप्रसङ्गादिति भाव । ननु परस्पराश्रयदोषप्रसङ्गात् न भवतु जीवोऽविद्याया आश्रयस्तथा जीवस्यानित्यत्वप्रसङ्गादपि। ततोऽमु पक्ष विहाय नित्य पर ब्रह्मैव विद्या विषयवत् अविद्याया आश्रयमपि भवतु तस्य नित्यत्वेनोपर्युक्तदोषा प्रसरादित्याशयेनाह **ब्रह्मण** इत्यादि । यदि ब्रह्मसर्वज्ञ तत् कथमविद्याया आश्रयरूप भवेत्, अथात् सर्व योग्य पदार्थ सर्वकाले सर्वथावस्थितमितरानपेक्षतया स्वतो विजानतस्तस्य ब्रह्मणोऽनेक प्रकारकविभ्रमलक्षणाविद्याश्रयत्व विरुद्धत्वात्कथमपि न घटते इति ब्रह्मण एव ससारकान्तारेऽविद्यया भ्रमण भवतीति कथन सर्वथैव न घटते, यतो ब्रह्मण सर्वज्ञतया भ्रमाभावात् न ब्रह्मभ्रान्त मपि तु परमात्मा भ्रान्तिज्ञ इति । विभ्रमेऽधिष्ठानाज्ञानस्य कारणत्व तद् ब्रह्मणो नास्ति 'य सर्वज्ञ ससर्वविदित श्रुते ।

ननु "सत्य ज्ञानमनन्तम्" "प्रज्ञान ब्रह्म' इत्यादि श्रुत्या ब्रह्म सविन्मात्रमेव स्फटिककल्पमतीव स्वच्छम्, तादृशब्रह्मणि सार्वज्ञ्यमपि न परमार्थिकमपित्वविद्या बलेन कल्पितम् पारमार्थिकमाकाशादिभेदप्रपञ्च सद्भावविषयक ज्ञानतद्वत् मिथ्यैवेति प्रश्नाशय ज्ञात्वा तन्निरस्तुमुपक्रमते **अविद्याकृत** इति । अविद्यया जायमानो योऽहङ्कारस्तज्जन्यत्व तु ब्रह्मवृत्तिसार्वज्ञत्वस्य कथमपि न सभवति श्रुतिविरोधात् । तथा हि "न तस्य कार्य करण च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च विद्यते। परास्य शक्ति र्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबल क्रिया चेति। अस्य वाक्यस्यायमर्थ तस्य भगवतो- जगन्निदानस्य जानकीवल्लभस्य कार्य भूतभौतिक शरीर धर्माधर्मकारित न विद्यते । यदा शरीरमेव नास्ति तदा शरीराश्रितभौतिक चर्मचक्षुरादिरूपस्य करण चक्षुरादिकमपि नास्त्येव । तथा तादृश परस्य समस्तुल्यस्तत्सदृशस्तदन्यश्च न कश्चन विद्यते "न तस्य प्रतिमास्ति" इति श्रवणात् । **यदा च**

तत एव यथार्थविषयैवेतिमन्यताम्, शब्दान्तराभ्याससंख्यादिवत् । यथा शब्दान्तराभ्याससंख्यादयः शास्त्रभेदका यथार्था एव, तथा प्रकृतेऽपि किं नेष्यते ।

तत्समानो नास्ति तदा तदधिकस्य तु काऽशा तत्राह "चाभ्यधिकश्च दृश्यते' सर्वत्र नकारो योजनीय । न कार्य न वा करण कारण वा तत्समतदधिकस्तुनैव विद्यते । इत्थ च चेतन विलक्षणतया तत्स्वरूप पुरस्कृत्य स्वेतरव्यावृत्तगुणप्रदर्शनद्वारेण परमेश्वरस्वरूप प्रस्तौति "परास्य शक्तिरित्यादि" अस्य भगवतो जगदुत्पत्ति स्थिति प्रलयप्रयोजिका शक्ति सामर्थ्यम् पराऽत्युत्कृष्टा । यद्यपि पदार्थमात्र कार्यप्रयोजिका शक्तिर्विद्यते इति परान् निवर्तयितुमाह "परास्येति" यद्यपि सर्वत्र शक्तिरस्तित-थाप्यस्य या शक्ति सा तु परा सर्वतोऽतिशायिनी । अथात यदन्यत्र न दृश्यते न वा सम्भाव्यते तादृशी शक्तिरेतस्मिन् विद्यते सापि शक्तिर्नैकाद्वयी त्रिका वा किन्तु विविधा=अनेक प्रकारिका च । यथाऽला-बुलताया प्रतिपर्वणि फलान्यनेकानि संलग्नानि तथैव भगवल्लतायामनेकशोऽण्डान्यनुस्यूतानीति श्रव-णात् स्वाभाविकीज्ञानबलक्रिया चेति=सांसिद्धिकी च ज्ञानबला क्रिया च भगवत । नैकविध ज्ञान बल क्रिया वा, किन्तु विविधा=अनेक प्रकारा । यथा कस्यचिदेकविषयकमेव ज्ञानमेककाल-भोग्यमेव, क्रिया वा एकाकारा भगवतस्तु सर्वविषयक त्रैकालिक चेति । तथाभियुक्तोक्ति —

सर्वज्ञता तृप्तिरनादिबोध स्वतन्त्रता नित्यमलुप्तशक्ति ।
अनन्तशक्तिश्च विभो विधज्ञा षडाहुरङ्गानि महेश्वरस्य ॥

इत्यादि श्रवणादपि परमेश्वरस्यैते गुणास्तदन्येऽपि अनन्तकल्याणगुणा स्वेतरसकल-विलक्षणा सन्ति । एते ईश्वरस्य गुणा अनन्योपाधिकास्तथैव शास्त्रे श्रवणादिति । अविद्यापि यथा विद्या ब्रह्मण स्वभाव एव, अतोऽविद्या मूलकत्वादेव स्वाभाविकमेवेति कथन न युक्तम्, तथा सति स्वभावस्य दुरतिक्रमत्वेन कण्टकतीक्ष्णतावदेव सर्वदा ब्रह्मणोऽज्ञत्वमनिर्मोक्षश्चापतेदिति ज्ञातव्यम् । तदनेन क्रमेण परमेश्वरस्य सर्वज्ञत्वमेव विद्या कल्पितमिति निराकृत्य परमेश्वरसर्वज्ञत्वस्य भेदावभासगर्भत्वाद्यथार्थत्वमित्यपि निरसितुमुपक्रमते "भेदावभास" इत्यादि । अत्रार्थक एव यदि भेदावभासगर्भत्वात् भगवति सर्वज्ञत्वम् पारमार्थिकमिति यदि मन्यसे, तत एव, तस्मादेव कारणात्, अर्थात् भेदावभासित्वात्, भेदघटितत्वादेवामृषासत्य सत्यमिति कथमन्यसे । भगवति सर्वज्ञत्व तत. सत्यमेव । यथार्थविषयकत्वमेव । ततश्च भेदस्य मिथ्यात्व कथनम् सिद्धमेव । येन भेदावभा-सकस्य यथार्थत्व सिद्ध्येदित्यभिप्राय ।

तत्रानुरूप दृष्टान्तमाह **शब्दान्तरादिव**दिति तदेव विवृणोति **यथा शब्दान्तराभ्यासे**त्यादि । पूर्वमीमासाया जैमिनिप्रकरणे "शब्दान्तराभ्याससंख्या सज्ञा गुणप्रकरणान्तरै कर्मभेदो **निरूपित. कर्मलक्षण्याम्** । एतस्य यथावन्निरूपण "शब्दादिभ्योऽन्त. प्रतिष्ठेत्यादिब्रह्मसूत्रीयश्री

सर्वज्ञे नित्यमुक्तेऽपि यद्यज्ञानं संभवेत् ? तेजसि तमोवत् तदा तेन तन्ननिवर्तेत ।

रामानन्दभाष्ये भाष्यकारेण कृतमिति तत एवार्थो द्रष्टव्यो ग्रन्थबाहुल्यभयान्नास्माभि प्रदर्श्यते जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यरामप्रपन्नाचार्ययोर्ग्रन्थकृतभाष्यतत्त्वदीपनोमदीयानुवादतो वानुसन्धेयो-विशेषार्थिभि । एते च शब्दान्तरादय शास्त्रभेदका =तत्तद्विनिवाक्यस्य विभिन्नविभिन्नविधेयक-तया भेदव्यवस्थापकोऽर्थाद् भेदप्रमाणभूता शास्त्रार्थविचिन्तकैरभिमता । तन्मूलकायागादिविधेय प्रत्ययाश्च यथार्था एव न वयथार्था, यथा तथैवेहापि सार्वज्ञत्वमपि भगवति रामाख्ये परमेश्वरे स्वत सिद्धसर्वज्ञे पारमार्थिकार्थभेदविषयकयथार्थमेव कथ न स्यादर्थात तदनुमानाद् यथार्थमेवेति भाव ।

भगवति श्रीरामे परमेश्वरे सांसिद्धिकसर्वज्ञे सूर्येणाटान्धकारवत जडात्मिकाया अविद्याया असभव प्रदर्शन आचार्येण तत्र सर्वज्ञेऽविद्योपगमेवावकमपि दर्शयति **सर्वज्ञे नित्यमुक्तेऽपी**त्यादि नित्य मुक्तेऽपि सर्वज्ञे भगवति यद्यज्ञान तादात्म्येन सगादिना भवद येन प्रकाशके तमोवत तदा तस्मादी-श्वरादज्ञानस्य निवृत्ति विनाशो न स्यात । अर्थात नित्यमुक्तस्वभाववात्सर्वज्ञत्वाच्च बन्धजनका विद्या विरोधिनि परमेश्वरेऽविद्याऽपस्थान प्राप्नुयात्सूर्ये तमोवत् तदाऽविद्या निवर्तक तदन्यन्न किमपि स्यादिति तस्य अविद्याया अविनाशात् "अविद्यास्तमयो मोक्ष सा च बन्ध उदाहृत नियमस्यत्व-त्सयूथ्यस्यैव वाच प्रसगो भवन्मस्तक प्रहरिष्यतीति न विस्मर्तव्यमिति भाव । ननु—

"तत्वमस्यादि वाक्योत्थ सम्यग् धीजन्ममात्रत । अविद्या सहकार्येण नासीदस्ति भविष्यतीति ॥"

भवदीयसूक्त्यनुसारेण "तत्वमसि" "अह ब्रह्मास्मि" इत्यादि वेदान्तमहावाक्य जनिता ऽपरोक्षचिन्मात्रब्रह्मात्म्यसाक्षात्कारेण तत्त्वज्ञानापरपर्यायेण स्थूलसूक्ष्मसाधारणाविद्या निवृत्ति स्यात तत्र स्थूला विद्याऽकाशादि रूपा सूक्ष्मा च संस्काररूपा । जायमाने तत्वज्ञाने तेनाविद्या दिति चेन्न, वाक्यस्य प्रत्यक्षज्ञानजनकत्वात् प्रत्यक्षमेव चक्षुरादीन्द्रियजनितम्, इन्द्रियार्थ सन्निकर्षजन्यज्ञानाकरणक वा प्रत्यक्षमिति प्रत्यक्षलक्षणत्वात् । तदन्यदनुमानादिशब्दादिजनित च ज्ञान सर्व परोक्षमेव । ततश्च शब्दप्रमाणजनित ब्रह्मात्मकत्वविषयक ज्ञान नियमत परोक्ष-मेव न तु प्रत्यक्षमिति न ततोऽविद्या निवृत्ति सभवेत । यद्यपि तैलधारावदविच्छिन्नभावना प्रकर्ष जनित प्रत्यक्षसमानाकारक मोक्ष प्रत्ययति, इति ममापि समतम् । "मुक्तौ हेतुस्तु भक्त्यपरप-र्याय तैलधारावदविच्छिन्नभगवत्स्मृतिसन्तानमेव । उक्तञ्चसाधनदीपिकायामाचार्यवर्यैर्जगद्गुरु-श्रीगङ्गाधराचार्यै "रामस्य ब्रह्मणोऽनन्यभक्त्यैव मुक्तिराप्यते । भक्तिर्ध्रुवास्मृति सा च विवेकादिक-सप्तकात् ॥" इति । ऊचुश्च तथैव भगवन्त श्रीदेवानन्दाचार्यचरणा अपि "त्वदीया स्मृतिस्तारिका-मृत्युसिन्धोस्तथा विस्मृति पतिका तत्र चैव । पर योगिना हार्दमालम्बन त्वा श्रये राघव सच्चिदा

ननु सर्वज्ञत्वादि वाक्यानां यत् प्रामाण्यं तत्तुव्यावहारिकम्, अद्वैतवाक्यानां तु प्रामाण्यं पारमार्थिकम्, तात्विकव्यावहारिकाभ्यां प्रामाण्यस्य द्विविधत्वादिति चेन्न, विनिगमनाविरहादेतदेव प्रमाणं व्यावहारिकं न प्रमाणमिति वक्तुमशक्यत्वात्।

नन्दरूपम्" इत्यानन्दभाष्यकारोक्ते (गीता २।१२) तथापि तया स्वीकारे स्वसिद्धान्तपर्वतात् भवत पतन परकीय सिद्धान्त स्वीकारेणातो विशिष्टाद्वैतमेवानुसर ।

शुकादिमहापुरुषाणा साक्षात्कारेणैवाविद्या निवृत्ते, तदनन्तरमपि ससारानुस्मरण विरोधात् । ननु सभवेदय दोषो यद्यनेकजीववादो भवेत्, नन्वेवमेकजीववादस्य स्वीकारेण सर्वसामञ्जस्यादिति चेन्न तथा सति वामदेवस्य तत्वज्ञानेन ससारकारणाविद्या निवृत्ता कारणाभावेन ससारकार्यस्य सम्प्रत्युपलभो न स्यादित्यादिकबहुदोषानुद्भाव्यैकजीववादस्यानेकप्रकारेणान्यत्र विविधप्रबन्धे सयुक्तिकशास्त्रानुकूलतयानिराकृतत्वान्निराकरिष्यमाणत्वाच्च । अपि च ब्रह्म स्वाश्रित स्वविषयकविभ्रमज्ञानेन ससारकान्तारे विभ्रमति विभ्रान्तपुरुषवत् जीवश्च स्वकीयविद्यया परमेश्वर मोचयतीति कथन महदुपहासास्पद भवति । इति स्वमनसैवैतद्विचारणीयमिति दिक् ।

ननु भेदकप्रमाणाना सर्वज्ञत्वादि वचनाना यत्प्रामाण्य तदपि व्यावहारिकभेदादिपदार्थ विषयकत्वेन व्यावहारिकप्रामाण्यमर्थाद् गौण तत्प्रमाणम् पारमार्थिकप्रामाण्य तु त्रिकालाबाधित "तत्त्वमसीत्यादि" वचनानामेव । यत परमार्थतस्तु पर ब्रह्मनिर्विशेषचिन्मात्रमेवेति तदर्थस्य पारमार्थिकतया तद्बोधकवचनानामेव पारमार्थिकप्रामाण्य तदर्थस्याबाधितत्वात्, तदतिरिक्तवाक्यानाबाधितत्वेनान्त्यमेव प्रामाण्य न तु पारमार्थिकत्वम् । तादृश परमार्थभूतब्रह्मणि जगत् जीवेश्वरादि भेदेऽप्यविद्यामन्तरेणानुपपद्यमान इति ब्रह्माश्रितैव साऽविद्याऽगत्या स्वीकर्तव्यातदुक्तमभियुक्ते —

"आच्छाद्य विक्षिपति सस्फुररात्मतत्वम् जीवेश्वरत्वजगदाकृतिभि मृषैव ।
अज्ञानमावरण विभ्रमशक्ति योगादात्माश्रयत्व विषयाश्रयता बलेने"ति ।

एतादृशीयमविद्या ब्रह्माश्रितैवेत्याशयेन शङ्कते **ननु सर्वज्ञत्वादिवाक्यानामि**त्यादि । अर्थात् सर्वज्ञत्वादिवाक्याना यत् प्रामाण्य तद् व्यावहारिकमेव तत्प्रतिपाद्यार्थाना व्यावहारिकत्वात् । तत्वमस्यादि वचनाना तु यत् प्रामाण्य तत्पारमार्थिकम् । यतस्तत् श्रुतिप्रतिपाद्यनिर्विशेषचिन्मात्रब्रह्मरूपार्थस्य त्रिकालाबाधिततया तद्बोधकत्वेन पारमार्थिकप्रामाण्यमिति तदेव क्रमेण सर्वार्थव्यवस्थापनमिति शङ्कितुराशय ।

एतदद्वैतमत दूषयति **विनिगमनाविरहादेवेत्या**दि । अर्थात् अमुकस्य व्यावहारिकित्वममुकस्य पारमार्थिकत्वमत्र केवल त्वदीयपरिभाषातिरिक्त नान्यत् किञ्चित् नियामककारण पश्यामीति न श्रद्धेय तव वचनमित्युत्तरम् । अयमभिप्राय भवदीय कल्पितपरिभाषाबलेन बिना

किं चाश्रयप्रतियोगित्वे परस्परविरोधि च वह्याखण्डैकरसंचेति कथं वा ज्ञायमभवेदिति वाच्यम्। प्रत्यक्त्वेन तदेव ब्रह्मब्रह्माविद्याया आश्रयो ब्रह्मत्वेन च विषय इति ब्रूषेचेत् योयं
एतादृशव्यावहारिकपारमार्थिकव्यवस्थाया नान्यत किञ्चित्प्रमाण विद्यते। शास्त्रप्रमाण तु ना द्वैतमत पुष्णाति साधयतीत्यर्थ। तथाहि "ज्ञाज्ञो" "द्वासुपर्ण सयुजा सखाया" "तत्त्वमसि" "अह ब्रह्मास्मि" इत्यादिद्वैताद्वैतप्रतिपादकश्रुत्यो प्रकारनानात्वप्रकार्यैकत्वप्रतिपादनपरकत्वान्नान्यतरस्यापिवाक्यस्य मिथ्यार्थबोधनपरकत्व विद्यते किन्तुसर्वमप्यागमवाक्य सत्यार्थबोधनपरकमेव—

"अद्वैतबोधिका काश्चि काश्चिद्द्वैतस्यबोधिका। घटकश्रुतय काश्चिदन्तर्यामिप्रबोधिका ॥
अप्रामाण्य भवेत तासा विरोधेऽभिमते मिथ। विशिष्टाद्वैतिभिस्तासा क्रियतेऽत्र समन्वय ॥
अद्वैतश्रुतयो बोधया विशिष्टब्रह्मबोधिका। नान्यश्रुतिमताना हि तत्त्वाना प्रतिषेधिका ॥
पर ब्रह्म च तद्वाच्य यद्वाच्य त्वच्छरीरकम्। तत्त्वमसीतिवाक्येन त्युक्तोऽभेदस्तयोर्द्वयो ॥
द्वैतश्रुतिसमूहस्तु विद्वद्भि सम्मत खलु। चिदचिदीशतत्त्वाना पार्थक्येनावबोधक ॥
आत्मत्वमीश्वरस्याथ चिदचितोश्च देहता। सर्वाभिविनिवेद्यते घटकश्रुतिभि किल ॥
वेदान्ततत्त्वविद्भिश्चकार्यकारणभेदत। चिदचिद्भ्या विशिष्ट हि ब्रह्म च द्विविधमतम् ॥
स्थूलाचिच्चिद्विशिष्ट हि ब्रह्म कार्य प्रकीर्तितम्। सूक्ष्माचिच्चिद्विशिष्ट तु ब्रह्मकारणमुच्यते ॥
अद्वैत च मत श्रौत ब्रह्मणोश्च विशिष्टयो। विशिष्टाद्वैतसिद्धान्तस्तस्माच्छ्रुत्यनुमोदित ॥
अत एवास्मदाचार्यबोधायनादिसम्मत। विशिष्टाद्वैतसिद्धान्तो लोके विजयते तराम ॥"

इत्यादिरूपेण सर्वश्रुतिसमन्वयेजगद्गुरुश्रीश्रुतानन्दाचार्योक्ते। तत्वमस्यादि सामानाधिकरण्यश्रुतीनामभेदप्रतिपादनपरकवाक्यानाच जडचेतनसर्वशरीरकसर्वात्मभूतब्रह्मैक्यपरत्वमिति न जीवभावादिकल्पिकाऽनाद्या परब्रह्मणि श्रीरामे कल्पयितव्येति। ब्रह्मणोऽविद्याश्रयत्वे एक दूषण प्रदर्श्य ब्रह्मणस्तदाश्रयत्वे दूषणान्तर चानुवदति **किञ्चाश्रय प्रतियोगित्वेचे**त्यादि। अत्र प्रतियोगित्वमिति पद विषयत्वरूपमेव। अत्र चैकस्यैकत्रैकदायुगपत् कर्तृकर्मभावविरोधोऽभिमतो ग्रन्थकर्तुरिति। परस्परविरोधि चेति, सदितिसत्तामात्रमखण्डैकरस स्वप्रकाशात्मक परब्रह्मकथ स्वविषयकाविद्याश्रयरूप भवेदाकारभेदाभावात। नह्येकस्मिन्नाकारभेदाभावे युगपत् क्रियाकर्मभावो भवतीति। तत्राकारभेदेन विरोधाभावशङ्कते **प्रत्यक्त्वेन तदेवब्रह्म** इत्यादि। प्रत्यक्त्वेन जीवत्वेनाश्रयोऽविद्याया आश्रय तदेव ब्रह्मस्वप्रकाशत्वेन विषय इत्यर्थ। अर्थात् यत् सन्मात्रमेव ब्रह्म स्वप्रकाशरूपत्वरूपेणाहत्वरूपेणवा, प्रत्यक्त्वेनाऽविद्याया आश्रयो भवति, विषयतया तदेव सन्मात्र ब्रह्म आश्रय इत्याकारभेदादुपपद्यते तत्र न कोपिदोष तत् पृच्छामि, उपर्युक्तप्रकारेणयोय भेद स

रूपभेदः सकस्मात्कारणादित्यस्यापि वक्तुमशक्यत्वात्तत्त्वतोऽन्योन्याश्रयात् अवस्तुत्वाद विद्यायानैतद्दूषणमिति चेत् वस्तुनो दूषणत्वमिति भवता दृष्टम् । स्वसाध्यस्य पुरस्का-रादयमन्योन्याश्रयदोषः । तत्र वस्तुत्वावस्तुत्वे इतिनोत्तर समीचीनम्। किं च यद्य विद्या वस्तु न भवेत्तदा व्यवहार्य सा कथं स्यात् ? न च खपुष्पादिकं व्यवहार्यं भवति। यदि साऽविद्या अवस्तु न तदा तस्या वस्तुत्वं ध्रुवमेवमिद्ध्यति ।

॥ इत्य विद्यायाआश्रयानुपपत्तिनिरूपणम् ॥

कस्मादागतस्तत्र ? यद्यविद्यावलादागतो भेदस्तदाऽन्योन्याश्रयदोप प्रसज्येत । अविद्यायारूपभेदा-पेक्षत्वात् रूपभेदस्य च विद्यापेक्षत्वात स्यादेवान्योन्याश्रय इति । स्वाभाविको य ब्रह्मणो रूपभेद इति न वक्तु शक्यते, तथा सति रूपभेदस्य स्वाभाविकत्वे ब्रह्मण सविशेषत्वमेवस्यादिति सिद्रान्त-शिरसि कुठाराघात कृतोभवद्भिरिति । ततश्च—

"हन्यता हन्यता बालोनानेनार्थोऽस्तिजीवता । स्वपक्षहानिकर्तृत्वाद्य कुलाङ्गारतागत ॥"

इति न्यायविषयतानातिक्रमिष्यतीति जीवाविद्यापक्षवत् ईशाविद्यापक्षेप्यन्योन्याश्रय इति । अत्र पुन शङ्कते, **अवस्तुत्वादविद्याया** अविद्या न पारमार्थिकी किन्तु अवस्तुरूपेति तादृश्या अपरमाथा विद्याया दुर्घटत्व न दूषणमपितु भूषणमेव, अतोऽत्र दुर्घटत्वकथन न दूषणम् , तस्मादत्रान्योन्याश्रयदूषणनैव दूषणतायाति । परिहरति **वस्तुनोदूषणत्वंभवता दृष्ट**मिति । अर्थाद् भवदभिमतघटपटादिप्रपञ्चे एव परस्पराश्रयदोषो भवतीति यत्र तत्र भवद्भि प्रदर्शित । नतु पारमार्थिके वस्तुनि कुत्रापि परस्पराश्रयदोषकथित । तस्य व्यवहारागोचरत्वस्य स्वीकारात् । एवञ्चाविद्यायामपि परस्पराश्रयदोषोभवेदेव अविद्याया अपि व्यवहारातीतत्वात् ।

स्वसाध्यस्य पुरस्कारादित्यादि । स्वसा यस्य स्वाधीनसिद्धिकस्यार्थस्य स्वसिद्धौ सत्यामेवहेतुत्वकरणात् , परस्पराश्रयदोप प्रसज्यते । तस्मादवस्तुत्वादविद्याया दुर्घटत्व न दूषण नान्योन्याश्रयोऽवस्तुत्वादित्युत्तर न समीचीन भवनीति भाव ।

किञ्चेत्यादि अत्र प्रकरणस्य समस्तस्यायमर्थो ज्ञातो भवति अविद्या न वस्तुत्व नवाऽवस्तु त्वम् वस्तुत्वे बाधो न स्यात् अवस्तुत्वे प्रतीयमानत्व कारणत्व च न स्यात्, तस्मादनिर्वचनी-यत्वमिति यन्मतमद्वैतवेदान्तिनस्तस्यात्र प्रकरणे निराकरण कृतवान् । अविद्याया अनिर्वचनीयत्वस्य तत्कार्यस्य चानिर्वचनीयत्व कथमपि न सभवतीत्यस्याग्रे समाधास्यमानत्वात् । अत्र ग्रन्थगौरवभ-याद्विरम्यते ।

॥ इत्यविद्यायाआश्रयानुपपत्तिवर्णनप्रकरणस्यतत्त्वदीप ॥

किञ्च आकाशादिसकलस्थूलसूक्ष्मजडचेतनसाधारणप्रपञ्चस्योत्पादयित्री जडेयमविद्या विद्यतेऽद्वैतवेदान्तेऽरूपा, साकिमेका, अनेका वा ? पुनश्चनादृशविद्याया आश्रयीभूतो जीवः, एकोवा प्रतिक्षेत्रविभिन्नोऽनेको वा ?

साचाविद्यैकैवेति पक्षे शुकवामदेवादीनां विद्ययैव सा विद्या विनष्टेत्यविद्याविनाशाय भवदीयो मननश्रवणनिदिध्यासनार्थ प्रयासो विफलतामेतीति एकस्य विद्ययैवाविद्याया विनाशाय श्रवणादिकमपरपरया मोक्षार्थो भवदीयः प्रयासोऽकिञ्चित्कर एव। यद्भवताकर्त्तव्यं तस्य शुकादिनैव निष्पादनात् ।

॥ इति जडात्मकाविद्यायाएकानेकत्वविकल्पएकाविद्यापक्षदूषणप्रकरणम् ॥

ननु अविद्या ब्रह्माश्रिता जीवाश्रिता वेत्यादिविकल्पे न ब्रह्माश्रिता, ब्रह्मणोऽज्ञत्वापातात् । सचनेष्ट । 'य सर्वज्ञ सर्वविदित्यादिश्रुतिविरोधेन तादृशविकल्पद्वयनिराकरणेन तपक्ष निराकृत्यसम्प्रति, अविद्या, एकावा विभिन्ना वा। तथाऽविद्यो जीवोप्येकोवाऽनेकोवेत्यादिविकल्पान् प्रतिक्षेप्तुमाचार्योपक्रमते—**किञ्च** इत्यादि । अथाद्यप्रमविद्यैकैवजडचेतनसाधारणसर्वप्रपञ्चस्योत्पादिका कार्यमात्र प्रतिसाधारणकारणकालादिवत । अथवा अविद्याऽनेका, यथा घटादि कार्यप्रति प्रतिनियतकपालादिकारणवत । तथा तादृशा विद्याया आश्रय एकजीवोऽनेकोवा तस्या आश्रय । अथात् अविद्यैकैव, आहोस्विदनेका । तथा तस्या आश्रयो जीव प्रतिक्षेत्रमेक एव, अनेको वेति प्रश्नयितुर्मतम् । तत्रैकैवाविद्या सकलकार्योत्पादिका भवतीति निरसितुमाह **"साचा विद्यैकैवेतिपक्षे** इत्यादि । मोक्षप्रयोजिकाया, श्रवणादिनिदिध्यासनपरिपाकेन प्रत्यक्षसमानाकारा सजाता सर्वसाधारणी एकैव ब्रह्मविद्या पदवाच्या तस्या एकत्वेन इय विद्या शुकस्य पूर्वमभूदिति श्रूयते शास्त्रे । ततश्च शाकीयब्रह्मविद्ययेव ससारमूलकारणाविद्याया विनाशात् सर्वोपि मुक्त कृतकृत्यश्चजात एवेति पुनरिदानीं मोक्षप्राप्तिप्रयोजकाविद्योत्पत्तये श्रीमतामस्माकीनाद्वैतिनां विद्यार्थं विद्यासाध्यमोक्षायचैतावान् श्रवणमननादीनां सम्पादनाय प्रयासो निरर्थक एवेत्यादि दुत्तरमिति ।

अर्थात् शुको विमुक्तो वामदेवो मोक्षगत इत्येव क्रमेण मोक्षशास्त्र उपनिषदि च प्रसिद्धिर्विद्यते । ततश्चवामदेवादेर्विद्ययैव प्रपञ्चकारिणी मूलकाविद्याविनष्टा जातेति सम्प्रति प्रपञ्चानुवर्तन नैव भवितव्यम् । दृश्यते चेदानीमपि तदनुवर्तनम् । बाधितानुवृत्तिपक्षेपि, अर्थादविद्या तु विनष्टा परन्तु सस्कारवशात् कियन्त कालमविद्याया अनुवर्तनात् ससारोपलब्धिर्भवति । यथोपरतेपि कुलालव्यापारेवेगाख्यसस्कारवशाच्चक्रभ्रमण भवति । तदुक्त—"चक्रभ्रमिवद् धृतशरीर" अयमेव बाधितानुवृत्तिपक्ष । एतत्पक्षस्वीकारेपि भवादृशानामस्मदीयानां पुनर्मोक्षार्थतत्त्वज्ञानसम्पादनाय प्रयासो निरर्थक एव भावेन च स्वयमत्र निराकरण करिष्यमाणत्वादिति ।

॥ इत्यविद्याया एकानेकत्वविद्यापक्षदूषणप्रकरणस्यतत्त्वदीप ॥

भवेदेवं यदि शुकादयोभवेयुः। यद् विद्ययातिरस्कृतत्वान्नाद्याऽविद्या भवेदिति प्रश्नः स्यात्। मदविद्ययैव मुक्तामुक्तादिभेदः कल्पितः। दृश्यत्वान् मदीयस्वप्न-दृश्यभेदप्रपञ्चवत्। यत्पुनर्ब्रह्मविद्यया तेषां मोक्षोजात इति वाक्यं तु स्वाप्नमुक्तिप्रयोजकवाक्यवदेवाप्रमाणमिति।

अथैवमीदृशानुमानेनत्वदन्यः प्रपञ्चस्याविद्यापरिकल्पितत्वं साधयतीति सत्व या प्रतिक्षेप्यः।

अथ पुनरप्येकजीववादनाह्वती प्रतिक्षिपति **भवेदेवंयदिशुकादयोभवेयुरि**त्यादि। गोमयाप्राणेनमृताखुमुज्जीवयतीति न्यायेनकजीववाद समर्थयितुचेष्टनेपर **भवेदेवंयदी**त्यादि, अयमभिप्राय

"सत्र शरीरी प्रथम सत्रे पुरुप उच्यत। आदिकर्त्ता सभूतान। ब्रह्माग्रे समवर्त्तत ॥"

इति पुराणवचनमनुसृत्य-[अस्यार्थ सत्र सत्यलोकस्याधिष्ठाना, प्रथम शरीरीसमभवत् सवै पुरुप उच्यते अर्थात् कल्पादा समस्तप्रपञ्चस्य सर्जक स्वाविद्ययाऽभवत स एव शिर पाण्याद्यवयवसंघातात्मकशरीरवान् जात पुरुषपदेनापि तस्यैव ग्रहग भवति, पुरिशयनात् पुरुप पूर्णं वा जगदनेनेति पुरुष। स एव भूतानामाकाशादिप्रमुखप्रपञ्चस्यादिकर्त्ता सर्वप्रथम स्वाविद्ययोत्पादक, एतादृश ब्रह्म अग्रे जगदुत्पत्ते प्रागेव समवर्त्तत समुत्पन्नो ज्ञात।] प्रथम जायमान कमलासन स्वकीया विद्यया सर्वानेव जनयति समुत्पादयतीत्यर्थ। एक एव जीव स्वाविद्यया सर्वान् जनयति। समुत्पाद्य स्वाप्निकप्रपञ्चवत् सर्व पश्यति। यथा स्वप्ने स्वप्नदृशा परिकल्पिता अनेक पुरुषास्तेनैव कल्पितास्तत्सदृशा एव शुकादयोऽपि नतु व्यावहारिका शुकादय। एतेषां मोक्षप्रतिपादकशास्त्रमपि स्वाप्निकमेव, स्वाप्निकत्वादेते न प्रमाणभूता नवा तत् शास्त्रमपि प्रामाणिकम्। अर्थात् तेषा वचनमपि स्वाप्नवदेव दत्तादिमुक्तिवचनसमानमप्रमाणमेव। तादृशमुख्यजीवस्य यदा श्रवणादिक्रमेग तत्त्वज्ञान जायते, तदा तदीयसाक्षात्कारादेवाविद्याया निवृत्तिर्भवति। तस्मान्नास्ति नानापुरुशो नवा नानाऽविद्या वा। अहमेवोक्तजीवोमूलाविद्याकल्पित। तथा मदीयतूलाविद्ययाकल्पिता इमे परिकल्पितामदन्ये दृश्यमानानानाजीवा। बद्धमुक्तादिभेदोऽपि स्वाप्निकत्वदेवेति। मदविद्यादृश्यत्वादितिग्रन्थस्य भाव।

॥ इत्येकविद्याकल्पितैकजीववादानुवादप्रकरणस्यतत्त्वदीप ॥

तदेव परस्यापिनैकजीववादमनुद्यनत्प्रतिक्षेपार्थमनुक्रमते **"अथैवमीदृशानुमानेन"** इत्यादि स्वकीया विद्यया परिकल्पितत्व तत्र प्रपञ्चस्याकाशादिप्रमुखस्य च साधयन्यद्यनुमानयेत तस्य त्वया कथ निराकरणीय इत्यर्थ। यदा कदाचित् परकीयानुमानस्याप्रयोजकत्व मन्यसे तदा

त्वदीया विद्यानिमित्तत्वे यदेव कारणं विवक्षितं तदेव कारणं तस्यापि भवेत्सर्वज्ञ सिद्धिवत्। एवं प्रकारेण परस्परविरुद्धवचनव्याघातो भवति। "मुखमस्तीति वक्तव्यं दशहस्ता हरीतकी" इति अनर्थकं प्रजल्पतीतिवदवभासते ।

यथा च स्वाप्नकथनतुल्यं तथैव भवतोपि वचनमिति मोक्षार्थं भवतः श्रमो निरर्थक एवेत्याभाति। यथा शुकादीनां भूतपूर्वमात्मविद्यया मुक्तिस्तथैव पश्चात् कालेप्यात्मविद्ययोच्यते, तथैवाभाविन्येव मिथ्याभाविनीति ज्ञायताम्। सन्ति च स्वाप्नदृष्टानि तव दृष्टान्तवचनानि ।

मोक्षोन भविष्यतीति यद्वचनं भवता न तदनिष्टमपित्विष्टमेव यत आत्मनो नित्य

समानमेवाप्रयोजकत्व समानमेवत्वदनुमानस्यापीति भाव । "सर्वज्ञसिद्धिवदिति- सुगतो यदि सर्वज्ञ कपिलोनेतिका प्रमा। उभौ च यदि सर्वज्ञौ [बुद्धि] मार्गभेद कथं द्वयो" इति न्यायेन परस्परविरोधात्तदुभयमपि परमार्थतो न सिद्ध्यतीति भाव । अथवा सर्वेषां ज्ञानिनां जीवानामेकत्वस्य सिद्धिवदन्यस्य सर्वज्ञस्यैक विद्यापरिकल्पितत्वस्यापि सिद्धिरस्या साधकाभावात्, साधकत्वे नाभिमतस्याभासत्वात्। आभासदोषरहित साधक एव स्व साधयति, धूमेन वह्निवत्। आभासस्तु हेत्वाभासोन स स्वसाधनयाल भवति धूमेन ह्रद वह्निसाधनवदिति भाव ।

सम्प्रति परकीयमतमुपहसन्निवाह सिद्धान्ती **परस्पर** इत्यादि। इत्थमनेन प्रकारेण भवान् अन्यान् बाधते, एवं भवन्त भवत् पक्षस्थिताश्चत्व तदन्या बाधन्ते, तथा सुन्दोपसुन्दन्यायेनोभयोरेवबाधो जायते इति स यस्थिता मदीया राजन्ते ।

अपिच प्रकारान्तरेणापि प्रकृतवाद दोषमाह **"यथा च स्वाप्न"** इत्यादि । यथा शुकादीना मुक्तिवचन स्वाप्नमुक्तिसदृश तथा भवतोपि मुक्ति । शुकादिनाचिरतामुक्तिर्भवद्भि प्राप्येत्यसम्भवमेव । स्वाप्नतुल्यमेव मुक्तिवचन स्यात् ततश्च मुक्त्यर्थ प्रयत्नस्ते निरर्थकेवेत्यर्थ ।

मोक्षार्थं प्रयत्न त्यजता न कथमपि मोक्ष स्यादितिदर्शयितुमाह **यथा** इत्यादि। यथा खलु आत्मविद्ययाशुकवामदेवादीना मोक्षोजात एवेत्युच्यते शास्त्रे तथा भवता तदनन्तर भविष्यत्येव मोक्षो न मिथ्या रूप, न भवन्नपि वस्तुत इति वक्तव्यमेवेत्यर्थ ।

ननु मदीय तत्त्वज्ञाननिवर्त्यमानमोक्षमिथ्यात्व कथ? तत्राह **सन्तिच स्वप्नदृष्टान्त वचनानी** यादि भवदीयतत्त्वज्ञानस्याविद्यानिवर्तकत्वाभावात्। तथा चानुमानम् भवदीय तत्त्वज्ञानमविद्याया निवर्तक न भवति, न तत्त्वज्ञानत्वात् स्वाप्नतत्त्वज्ञानवदिति भाव । ननु मोक्षस्याभावित्वप्रसङ्गदृष्ट एवेत्यत आह **मोक्षोन** इत्यादि । मोक्षाभाववादस्त नानिष्टमपित्विष्टमेव। यत. सा मुक्तिर्नित्यात्मस्वरूपत्वान्नित्यैवानित्यस्य चोत्पादाभावेनोत्पादाभावो न दोषायेति

सिद्धत्वेन तदभिन्नमोक्षनित्यप्राप्तत्वात् तथा सति शान्तिकर्मणिवेतालोदयवत् ब्रह्म विद्यार्जनश्रमो निरर्थकः स्यादिति ।

सा मुक्तिर्नित्यसत्यपि अविद्या प्रतिबद्धत्वादसतीवमृग्यमाणा भवति । यथा हस्तगतमपि चामीकरं विस्मृतं मृग्यते प्राप्य च हस्तगतमुपशाम्यति तथैव नित्यसिद्धात्म

भाव । सिद्धान्ती परिहसन्नुत्तरयति **तथे**त्यादि । तदेव शान्तिपर्वणिवेतालावाहनदक्षयज्ञसमय वदिहाप्यय दोषरूपवेतालोदयन्यायोनातिक्रामति । अर्थात् यद्यात्मस्वरूपत्वान्नित्यैव मोक्षस्तदा नित्यस्योत्पादाभावस्य सर्वसिद्धत्वात्, मोक्षार्थमात्मोपासनादिप्रयासो भवदीयोनिरर्थक एव भवेत् । ततश्च मोक्षोद्देशेन "श्रोतव्योमन्तव्यो निदिध्यासितव्य इत्यादि, श्रवणादिविधायकशास्त्राणा वैयर्थ्येन शास्त्रस्यवैयर्थ्यमापतेदिति भाव ।

पुनरस्य परिहारश्चते **अविद्या प्रतिबद्धत्वादि**त्यादि । अयमाशय यद्यपि मोक्षो नित्यो-प्यात्मरूपत्वान्नोत्पाद्यादिरूपस्तथापि अविद्यया प्रतिबद्धत्वात् तिरोभूतास्ता, आत्म विद्याया प्रतिबन्धकस्यापगमेऽभिव्यक्तो भवति, तदभिव्यक्तये एवात्मविद्योपार्जन सफल भवति । यथा कुतश्चित् कारणात्स्वग्रीवागतकण्ठचामीकर विस्मृत्याप्राप्त मन्यमानस्तत्प्राप्तये प्रयतते तथैवे-हापि स्वाश्रिता विद्याच्छादितात्मस्वरूपमोक्षमप्राप्तमपि तदपनोदनाय विद्याप्राप्तिद्वारा मोक्षार्थं प्रयतमानो भवतीति मोक्षप्रतिपादकशास्त्राणा तदर्थं महाविद्या प्रवृत्तिश्चनैवनिष्फला भवतीति प्रश्नकर्तुरभिप्राय । एतत्तदुक्त भवति—यद्यपि मुक्तिरात्मरूपत्वान्नित्य सिद्धैवेति सा मुक्ति परमात्म विद्यया नोत्पाद्या । यथा मघवनस्य पुरोडाश इतिनोत्पाद्यकर्मरूपत्व मोक्षस्य । नवा ग्रामादिवत् प्राप्य कर्ममोक्ष यथादेवदत्तनिष्ठगमनरूपक्रिययाऽप्राप्तमपि ग्रामादिप्राप्त भवति तथानात्र मोक्ष स्यात्मस्वरूपत्वेन नित्यप्राप्तत्वात् । नापि मोक्षोविकर्म दुग्धस्य दधिवत् । आत्मस्वरूपमोक्ष-स्यात्मरूपत्वेनात्मनश्च "अविकार्योऽयमुच्यते' इत्यादिशास्त्रेणाविकारित्वश्रवणात् ।

अपितु संस्कार्यकर्मत्वम्, यथामलिनमादर्शतलमिष्टकाचूर्णादिना निघृष्यमाण स्वच्छे तस्मिन् स्पष्टतया मुखादिदृश्य समीचीनरूपेण परिदृश्यमान भवति । यथावा यवनिकाच्छा-दितानर्तकी सभासद्भि स्पष्टतया निरीक्षिता न भवति, परन्तु नृत्यप्रवर्तकेन प्रतिसीरापनयने नर्तकीना साक्षात् क्रियतेऽर्थात् अनभिव्यक्ततया नर्तक्या अभिव्यक्तिर्भवति सर्वेषामविरोहति नर्तकी, तथैवाविद्या प्रतिबद्धायामुक्तेरत एव तिरोभूतायास्तस्यामुक्तेरव्यक्त्यर्थं एव सफलो ब्रह्मविद्याया परिश्रम । सतो विद्यमानस्यैव पदार्थस्याप्रकाशनान्तत्त्वेनापितिवियनानवत् स्थितस्याभिव्यक्त्यर्थं प्रयासो यथालोके दृश्यते तथैव प्रकृतेपि ज्ञानव्यमिति प्रश्नाशय ।

अमु प्रश्न परिहर्तुमाह **हन्तकेयम्** इत्यादि । अत्र यद्यपि एका विद्यापक्षे शुकवामा-

स्वरूपानबोधादप्राप्तवदपि ब्रह्मविद्यया प्राप्तमिव भवतीति हन्तकेयमभिव्यक्तिर्याखलु ब्रह्मविद्यायाः फलमिव फलमिति भवदभिमता ? किं स्वप्रकाशस्य चैतन्यस्य स्वरूपेऽव-स्थानम् सा संविदेवाभिव्यक्तिः किंवा अहं ब्रह्मास्मीति साक्षात्कारात्मिका वृत्तिरेव-सेति विकल्पः। तत्र यदि स्वरूपसंविदेवाभिव्यक्तिस्तदा स्वरूपसंविदो नित्यत्वात् न तदेवं फलं स्यात्। अथ "अहं ब्रह्मास्मीति साक्षात्कारावृत्तिस्तथैति चेत् तथा सति त-स्यैव विद्यात्वेन तदेव कथं फलं भवेत्। किञ्च यदि तत्त्वमसीति वाक्यजन्या वृत्तिस्तदा

देवादेर्ब्रह्मविद्ययैवाविद्यानिवृत्तिसम्भवेन तदितरव्यक्तेस्तदर्थं प्रयत्नवैकल्यरूपदूषणमस्त्येवेति दूषणान्तरं नोचितमिवाभाति, तथापि, इदं दूषणं स्थितमेवेतिमत्वापि दूषणान्तरमेवाचार्यप्रवरोऽवोचत्—**हन्तकेयमभिव्यक्तिर्याखलुब्रह्मविद्यायांफलमितिष्यतेभवते**ति। तत्राय विकल्पप्र-कार—कि स्वप्रकाशस्वरूपप्रकाशस्य स्वरूपेणावस्थानमेव विद्या साध्यानिष्पत्तिरेवाभिव्यक्ति, अथवा अहं ब्रह्मास्मीति वृत्तिर्वा। इति इदं च दूषणमेकाऽविद्या नानाविद्या पक्षयो समानमेव। किमितरानपेक्षप्रकाशैकरूपस्यान्तरणपरिणामस्य स्वरूपमेव विद्याप्रयोज्याभिव्यक्ति प्रत्युताहं ब्रह्मास्मीति साक्षात्काररूपा वा। तत्र प्रथमकल्पे दूषणमाह—**यदिस्वरूपसंविदि**ति। प्रथमपक्षस्तदा सा तु नित्यैवेति न तत् ब्रह्मविद्याया फलं स्यात् यत फलस्यजन्यत्वेन तथा सम्भवाभावात्। नवा द्वितीयपक्षस्तत्राह, **अथ ब्रह्माहमस्मी**त्यादि।

"अहं ब्रह्मास्मीत्याकाराऽन्तःकरणवृत्तिरेव यदि संविदभिव्यक्तिपदेनोच्यते तदा इयमेव तवमते तदा सैव कथं ब्रह्मविद्याया फलं कार्यं स्याद् यतोऽभेदे कार्यकारणस्यादर्शनात भेदे सत्येव कार्यकारणभावो भवतीति नियमात। अर्थात संवित्ति—साक्षात्कारोऽविच्छिन्नतैलधारावत्। नहि ब्रह्मविद्या साध्यप्रकाशान्तरं मोक्षकाले भवता स्वीक्रियते, इति तदेव तस्या फलमिति भवता वक्तव्यम्। परंतु तत तदा न सम्भवति फलफलीभावस्य भेदसाध्यत्वात्, यागतज्जनितापूर्ववदिति भाव। एकदूषणमस्मिन् कल्पे प्रदर्श्य दूषणान्तरमपि दर्शयति **किञ्च** इत्यादि। तत्त्वमस्यादि वाक्यजन्या या वृत्ति सैववृत्ति ब्रह्मविद्याया फल सा तु वृत्तिरुत्पादविनाशशीलाऽनित्यात स्तस्या वृत्तेर्विनाशे मुक्तस्य पुनरपि संसारभयमापतितं स्यात। अर्थान्नित्यशुद्धमुक्तात्मस्वभावस्या-भिव्यक्तिर्यदि वृत्तिरूपा भवेत तदातस्थावृत्तेरुत्पादविनाशशालिनयातन्निवृत्ता पुनरप्यविद्या छिन्न-बदरीवृक्षवत्, शतशिखरा प्रादुर्भूत्वाऽत्मानमावरयतीति मुक्तस्य पुनरपि भय शिरसिन्यस्त स्यात्, इति भक्षितेऽपि लशुने नशान्तो व्याधिरिति न्यायातिक्रमो नस्याद् भवत इति।

अथेय ब्रह्मविद्या पूर्वपूर्वकालिका विद्या विनाश्य स्वयमपि विनश्यति, कर्णप्रक्षिप्तजलवत् अर्थात् यथा सरसि स्नानावगाहने कर्णं प्रविष्टं जलं सरोवरादुत्तीर्य बहिरागतस्य कर्णे

भवन्मते मोत्पत्तिमत्यनित्या च तदा मुक्तस्यापि संसारभयमापतेत्। अपि च कार्योत्पादकपुष्कलकारणे सत्यपि यद्वशात् कार्यं न भवति तदेव प्रतिबन्धकमिति व्यवहारज्ञा वदन्ति। इह कि स्वहेतुतस्तदुत्पत्तुमुपक्रान्तमविद्या प्रतिबद्धत्वादुत्पत्तिं न प्राप्नोति। तत्र न मोक्षोत्पत्तिर्नित्यत्वात् नहि ब्रह्मास्मीति वृत्तिज्ञानम् नहि ब्रह्मास्मीति संवित् पुष्कलकारणम् संसारिस्तदातदस्तीति तस्या कथं प्रतिबन्धः, यतः माकारणादिदातीनोत्पद्यते किन्तु प्रतिबद्धत्वान्न जायते इति नेति।

पुनरपि जलान्तरं प्रक्षिपति तत् प्रक्षिप्तं जलान्तरं प्रथमतः चूर्णगतं जलं निःसार्य स्वयमपि निःसरति, यथावा मलाविलेजले प्रक्षिप्तं कतकरजोऽजलमनाविलं कुर्वत् स्वयमपि तत्र विनश्यति, यथा वा विषं विषयान्तरमपगमयत स्वयमपि विनश्यति, तथैव पूर्वाविद्याऽविद्यान्तरं विनाश्य स्वयमपि शान्ता भवेदिति कुतोऽवरोस्यमुक्तस्य ससारभयादिति चेत, अत्रब्रम, अनादि भावस्य नाशाऽयोगेन, तत्वसाक्षात्कारेणानादिभावरूपाया अविद्याया आत्यन्तिकनाशस्य कर्तुमशक्यत्वात। यथाऽनादिभावरूपस्यात्मनो न भवति विनाशस्तद्वदिति। कदाचित्स्वाग्रहवशेनाविद्याया सावशेषोच्छेदस्वीकारे सूक्ष्मरूपेणावस्थिताया अविद्याया अभिव्यक्तेर्निवृत्ता पुनः स्थूलरूपेणोन्मेषप्रसङ्ग प्रतिबन्धकविनाशे प्रतिवध्यावस्सानवदिति।

नचानादिभावरूपाया अपि तस्या अविद्याया आकाशादिप्रपञ्चवदेव मिथ्यात्वेनात्यन्तिकोच्छेदो विद्यया क्रियते इति वाच्यम्, परमेश्वरशक्तिरूपाया मायापर्यायरूपाविद्याया मिथ्यात्वे एव विवादात्। न हीश्वरशक्तेर्विनाशः केनचिदपि कर्तुं शक्य। अविद्या मिथ्यात्वप्रतिपादक तर्काणामाभासत्वात्। शास्त्रस्य चान्यपर्यायादिति। एव तत्त्वज्ञानेन सर्वदृश्यनाशे मोक्षोभवतीति तव मतम्। तत्र पृच्छामि, सर्वविनाशकतत्वज्ञानस्यनाश केन? तन्नाशकाभावे तेनैव द्वैतापत्ते। नाशकान्तरस्वीकारे, तन्नाशकोऽन्य कश्चिदन्वेषणीय इति क्रमेणानवस्थाभयात्तेनिवृत्तिर्नभवेदिति दिक्।

नन्वविद्याया नित्यमुक्तभावव्यक्तिप्रतिबन्धकत्वकथनमपि परस्यनोपपद्यते तत्राह **अपिच** इत्यादि। कार्यस्य सर्वकारणसमवधानेयद्वशात् कार्यनोत्पद्यते तदेव प्रतिबन्धक नतु कारणस्याभावमात्रम्। अर्थात् सति पुष्कलकारणे कार्योत्पत्तौ प्रतिबन्धकत्वम्, नहि मजूषाया निहितास्तन्तव कार्याभावे प्रतिबद्धा इति लोका जानन्ति, तत्र सामग्र्यभावात कार्याभावो नतु प्रतिबन्धकवलात्प्रतिबद्धास्तन्तव इति प्रतियन्ति।

भवन्मते मोक्षस्यानिष्पाद्यत्वात् तत्प्रतिबन्धकत्वमविद्याया न सम्भवति। ससारिणश्च विषयप्रावण्यदशाया तत्त्वसाक्षात्कारपुष्कलकारणसपत्तेरेवासिद्धतया तदनुदयोऽर्थान्मोक्षानुदय इति

कञ्चैको जीव इत्येतदपि परमार्थतोनोपयुज्यये, यतोजीवत्वस्याविद्याकल्पित-

न तत्रापि प्रतिबन्धकत्वमविद्याया घटते इत्यर्थ । सिद्धान्तेतु विद्या प्रागभावरूपाया अविद्याया न विद्या प्रतिबन्धकत्वम् । शुभाशुभकर्मण विद्यानुत्पत्तिप्रयोजकस्य निष्कामकर्मभिर्निरासे स्वकारणाद्विद्याया निष्पत्तिर्भवति । विद्यासामर्थ्याच्च प्रतिबन्धककर्मनिवृत्तौ कर्मणा सकुचित प्रसरणस्य स्वाभाविकमसकुचित प्रसरण धर्मभूतज्ञानस्य सदामोक्षे भवतीति परापेक्षया सिद्धान्ते विशेषो ज्ञातव्य ।

अत्र परे पुनराहु अथैव मन्मतेपि वस्तुतत्वाविशदप्रकाशकरीनानाभ्रमकारणभूता विद्याऽनादिरिष्यते । विद्यया तादृशाविद्याया निवृत्तौस्वाभाविको विशदावभास सम्पद्यते । विशद प्रकाश प्रतिरोधकत्वादेव च प्रतिबन्धकत्ववचनमपि युक्तमविद्याया इति ।

तान् प्रतिब्रूम विशदप्रकाशप्रतिरोधकत्व किं विद्योत्पत्तिनिरोधकत्वम्, अथवा तन्निवृत्तिकरत्वम् ? तत्रनाद्य कल्पोब्रह्मस्वरूपभिन्नत्वे विशदप्रकाशस्य ब्रह्मण सविशेषत्वप्रसङ्गात् । तदभिन्नत्ववाच्येऽनुत्पाद्यत्वादेव तस्य तत्प्रतिरोधकत्वायोगादिति । द्वितीयपक्षस्वीकारेतद्ब्रह्मस्वरूपस्यैव निवृत्तिप्रसङ्ग । वैशद्यमेव निवर्तते, प्रकाशस्त्वनुवर्तते इति तु निर्विशेषवादिना नैव वक्तु शक्यते । किञ्च विशदप्रकाशप्रतिरोधिकाया सत्यामविद्याया कथ तत्त्वस्य साक्षत्कारो भवेत्, प्रतिबन्धकसत्वात् ? सोऽयविशेषश्चेत्, प्राथमिकश्रवणजनितज्ञानवदेवाऽविद्या निवर्तकत्वायोगात् । अपिच विद्या निवृत्तौ सत्या विशदसाक्षात्कार साक्षात्कारे चाविद्या निवृत्तिरितिदुरुत्तरोऽन्योन्याश्रय आपततीति । किञ्चाविद्यानिवृत्त्यनन्तरभाविनो विशदानुभवस्य पूर्वमसत्वे मोक्षस्यानित्यत्वम्, प्राक् सत्वस्वीकारे समारानुपपत्ति प्रसज्यते । न च निवृत्ताववियत्वमेव स्वरूपप्रकाशस्य वैशद्यमिति वाच्यम्, स्वप्रकाशवपुषि सदाविद्योतमाने निर्विशेषे चिन्मात्रे ब्रह्मणि, अविद्या सम्बन्धायोगात्पूर्वमपिवैशद्यस्यैवोपगन्तव्यत् । दुर्घटत्वात्तत्तत्रपदन्यसेदविद्येति चेत्तर्हिमोक्षेऽप्यविद्यान्वयप्रसक्तिरिति मुक्तस्यापि भयमावश्यकमेवापततीति प्रकरणस्य भावार्थ । अक्षरार्थस्तुनतिरोहित इति स्वयमेवोहनीय इति सक्षेप ॥

॥ इत्येकजीववादे मुक्त्यर्थप्रवृत्तिवैयर्थ्यादिनिरूपणप्रकरणस्य तत्त्वदीप ॥

इत पूर्वप्रकरणे एव जीववादेऽनेकदूषणानि कथितानि । सम्प्रतिजीवैकवाद प्रत्यक्षाद्युपलभ वाधितोपीत्येतद्दर्शयितुमुपक्रमते **किञ्चैको जीवः** इत्यादि । योयमेकजीववादस्तत्रैको जीव इतिपरमार्थतयानेष्यते, यतो मिथ्याविद्याकल्पितत्वे जीवत्वस्यापि मिथ्यात्वात् प्राय कारणानुगुणत्वात् कार्याणाम् । तथा च मिथ्याभूतस्यैकस्यानेकस्य वा जीवस्य स्वीकारेऽविशेषोविनाभिनिवेशितत्तेति ।

त्वेन मिथ्यात्वात् । तन्न जीवस्य प्रतिभासिकमेकत्वं प्रतीत्यैव पराहतत्वात् । यतः सहस्रशः संसरन्तः प्रतिभासमाना भवन्तीति । आसंसार जीवभेदप्रयुक्ता अबाधिता स्वप्नविलक्षणाश्चव्यवहारा दृश्यन्ते । तेन यौगिकमेकत्वमपि युक्तिपराहतमेव प्रवृत्ति

योयमेकजीववादस्तत्रैको जीव इति कथन किमेकस्यैव प्रतिभासात् स्वीक्रियते आहोस्वित् अनेकत्वेन प्रतिभासमानस्यापि युक्त्यैकत्व निराक्रियते इत्यभिप्रायेण प्रथमकल्पे दोप दर्शयितुमाह **तन्न** इत्यादि यदिद प्रातिभासिकमेकत्व तत् प्रतीत्यैव पराहत भवनि, यस्मात् सर्वेपामनेकेजीवा उपलभमाना भवन्ति ।

नानाजीवभानतु व्यवहारकाले शुक्तौ रजतवत्, नैववा यत्व किन्तु अबा यत्वमेव तत्राह **आसंसारम्** इत्यादि । यावद्येव ससारस्तावत्पर्यन्त तेऽनेकेजीवा स्वाप्निकजीवापेक्षया विलक्षणा सर्वथाऽबाधिता समुपलभनाना भवन्तो नोपलभबाधिताशुक्तिरजतवदिनि । स्वप्न विलक्षणा स्वाप्निकार्थापेक्षयाऽतिविलक्षणा अर्थादबाधिता । अयभाव यथा स्वप्नकालपरि-दृष्टगजादिपदार्थव्यवहाराणा स्वप्नेप्यसत्वतत्पश्चात् कालिकबाधेन, व्यवहारकाले जागरणेतु स्वत एवासत्व स्वाप्नगजादीनामनुभूयमानत्वात् भवतु तेषा तथा परन्तु नैव जागरणकाले जीवभेद प्रयुक्तव्यवहारविशेषण बाधो निश्चीयते, येन न नाममत्व निश्चीयेत । प्रत्युतान्यजीवकृतो-पकारस्यानुपकारस्य वासत्वप्रतीत्यैव, आबालगोपाल तदनुगुणप्रवृत्तिसरमोदृश्यते ऽनुवर्तमान प्रलय यावत् तिष्ठति । अपिच व्यवहारकाले जीवभेदस्याबाध्यत्वात् जीवस्य व्यावहारिकत्वमेव परमतेपि सिद्ध्यति नतु प्रातिभासिकत्व शुक्तिरजतवत्, जीवभेदस्य प्रातिभासिकत्वे शुक्तौ रजतवत् व्यवहारकालेविरोधोनुभूयेत नानुभूयते तस्मान्नजीवभेदस्य प्रातिभासिकत्वमपितु व्यावहारिकत्वमेव।

जीवभेदो मिथ्या प्रतिभासमानत्वात्, स्वप्ने स्त्रीपुरुषभेदवदित्यनुमान च व्वहारदशायाम-बाध्यत्वेन सोपाधिकमेवेति । तथा च ब्रह्मसूत्र "वैधर्म्याच्च न स्वप्नादिवदिति" "स्वप्नज्ञानदृष्टान्तेन जागरितज्ञानस्य निरालम्बनत्व न शक्यते वक्तुम् । कुत ? वैधर्म्यात् । स्वप्नादिज्ञानस्य मन कल्पनामात्रत्वेन बाधितविषयत्वाज्जागरितज्ञानस्य तु प्रत्यक्षप्रमाणजन्यत्वेनाबाधितविपयत्वात् । इत्युभयोर्ज्ञानयोर्वैषम्यात् । चकारात्दृष्टान्तभूतस्वप्नप्रत्ययोऽपि न सर्वथा मिथ्याभूत क्वचित्त-स्यापि साफल्यदर्सनात् " (आनन्दभाष्यम् २।२।२९) इत्यादिरूपकश्रीरामानन्दभाष्येऽस्य विवरण दृष्ट्वा जीवभेदस्य व्यावहारिकत्वमेव निर्णेयमिति न जीवभेदस्य प्रातिभासिक कथमपि सिद्ध्यतीति सिद्धान्त ।

व्यवहारकालाबाधेन हेतुना जीवभेदप्रातिभासिकत्वस्य यौक्तिकनिष्कर्षमपि निराकर्तुं दर्शयति "**तेन यौगिकमेकत्वमपि युक्तिपराहतमेवे**त्यादि" तेन जीवभेदस्य व्यवहारकालाबाधेन

भेदानुमितविरुद्धवृत्तयस्तत्तत्स्वात्मवदन्येपि जीवा न निराकर्तुं योग्याः । यथाऽनुमेयवन्ह्यादेरनुमानविलक्षणावह्नय आनुमानिकवह्निभ्योभिन्नाः प्रत्यक्षेण दृश्यन्ते तथैवचेष्टाविशेषादिना परोपि जीवोऽनुमितो भवत्येव । अन्यथा लौकिकवैदिकव्यवहारः

हेतुना । सर्वे जीवा अहमेकजीवत्वात्, अहमिव, सर्वाणि शरीराणिमयैवात्मवन्ति शरीरत्वात् मदीयशरीरवदित्यादि जीवैक्ययुक्तिर्जीवभेदसाधकयुक्तिपराहतैवेत्यर्थः जीवभेदयुक्ते प्राबल्यं च व्यवहाराऽबाध्यत्वादुपलम्भानुगुणत्वाच्चेति बोद्धव्यमिति । जीवभेदपराहताऽभेदयुक्तिरित्युक्तम्, तत्र का सा जीवनानात्वयुक्तिरितिजिज्ञासायामाह **प्रवृत्तिभेदानुमित** इत्यादि । तत्तद्शरीरगतविलक्षणभेदानुमितास्तत्तदनुगुणाविरुद्धज्ञानसङ्कल्पप्रयत्नस्तदन्ये देहिनोऽपि ससस्वात्मेव स्वशरीरप्रवृत्त्यनुगुणज्ञानादिमान् प्रत्यात्मसिद्धो न निराकर्तुं शक्यन्ते । पञ्चाननोऽप्याह "प्रवृत्त्याद्यनुमेयोयरथगत्येव सारथिः । अहङ्कारस्याश्रयोऽयं मनोमात्रस्य गोचरः ॥" इति । अत्रप्रवृत्तिपदेन हिताहितप्राप्तिपरिहारानुकूलचेष्टाया ग्रहणं भवति, तादृशचेष्टया परकीयदेहादावात्माऽनुमीयते, रथगत्या सारथिवदिति । तत्रवृत्तिग्रहणं सङ्कल्पादेरप्युपलक्षकम् । परशरीराणि सात्मकानि चेष्टावत्वात्, स्वशरीरवदिति सात्मकत्वेऽनुमिते तदात्मना स्वात्मभेदोऽर्थात् परिशेषात् सिद्ध्यति । परकीयशरीरप्रवृत्तिहेतुभूतसङ्कल्पप्रयत्नस्य, स्वासमवेतत्वे सति गुणत्वात् स्वभिन्नसमवेतत्वानुमानात् । स्वासमवेतत्वं च तस्य स्वस्य तद्भिन्नसङ्कल्पप्रवृत्तिनवादेव सुनिश्चितमिति ज्ञातव्यम् ।

सिसाधयिषिताना परात्मना दृष्टान्तीभूतस्वात्मभिन्नत्वे दृष्टान्तं प्रदर्शयत्याचार्यः **यथाऽनुमेयवन्ह्यादे**रित्यादि । अत्रानुमाना =अनुमानप्रयोजका सपक्षदृष्टान्तमहानसादौ परिदृश्यमाना महानसचत्वरादिवन्ह्यनुमेयात्पर्वतीयवन्हिभ्यो यथा भिन्ना एव व्याप्तिग्रहणसमये प्रत्यक्षेण दृष्टा भवन्ति, तथाऽनुमेयेभ्य परकीयदेहस्थितात्मभ्य शरीरप्रवृत्तिचेतनसङ्कल्पप्रयत्नपूर्वकत्वव्याप्तिग्रहणसमयेकाले गृहीतं स्वीयात्मस्वरूपस्वदेहप्रवृत्तिहेतुभूतसङ्कल्पादिमद्भिन्नत्वेन कुतो न प्रत्यक्षम् ? अपितु प्रत्यक्षमेवेतिभावः । जीवानामैक्यसाधकं ज्ञानामैक्यसाधनमप्रयोजकमुपलम्भबाधितं चेति हृदयम् स्वशरीरे स्वात्मवत् परशरीरे परात्मापि सिद्ध्यतीति सावितम्, तदनुपगमे बाधकमपि दर्शयति **तथैव चेष्टाविशेष** इत्यादि । परशरीरेषु परात्मनश्चेष्टाविशेषणानुकूलप्रतिकूलमध्यस्थानुहित्वैव, तत्तदनुगुणा व्यवहारा लोकेषु दृष्टा भवन्ति जीवभेदप्रयुक्ता एवाविकारितद्भिन्नविभागादिव्यवहारा शास्त्रीया दृष्टास्तेषां व्यवहाराणां विलोपः प्रसज्येत जीवभेदानुपगमे इतिभावः ।

अथज्ञानमात्रस्वभावक आत्मा स्वमात्र एकएव, नानोपाधिवशान्नानाजीवरूपेण विभाति, तावतैव लोकवेदव्यवहारोपि सगच्छते । आपाधिकजीवभेदप्रयुक्त एव व्यवहारभेदो जीवस्वरूपासकरश्च समाहितो भवति । उपाधिभेदोऽपि न पारमार्थिकोऽपितु कल्पित एवेत्याशङ्काम-

सर्वोऽपि विलुप्येत । नचोपाधिभेदात्प्रतिशरीरं जीवभेदः । तथात्वे स्वशरीरेपि शिरः पाण्याद्युपाधिभेदेन जीवभेदप्रसङ्गात् । स्वशरीरपादादिभेदेपि अनुसन्धानात् तदेकत्वं तदा तवमते सर्वत्रानुसन्धानप्रसङ्गात् ।

॥ इत्येकाविद्या कल्पितैकजीववादनिरासप्रकरणम् ॥

नुद्यपरिहर्तुमाह **नचोपाधि**रित्यादि । यदि उपाधिभेदेन व्यवस्थामीहेन तदा शिर पाणिपादाद्यु पाधिभेदेनापि तत्तदवच्छिन्नचेतनस्य भेदप्रसङ्ग । एवञ्च पाणो वृक्णे महत्यवयवेस्तनादौ जाते युवतिमृताजातावेत्यपि व्यवहार प्रसज्येततथाचैकस्मिन्नेव देहे पादे मे वेदना शिरसि मे सुखमित्यादि प्रतिसन्धानानुपपत्तिर्भवेदितिनौपाधिकभेद सावीयान् । नन्रुपाधिभेदे सत्यपि चैतन्याभेदात्प्रतिसन्धान स्यादिति चेत्तत्राह **तथात्वे** इत्यादि, अत्र तथेतिपदमनिष्ट समवचिनोति यथा शिर पाणिपादादौ वेदनाद्युदये एकत्वेऽनुसन्धान तथैव सर्वत्र तवमतेन सुख दुखानुभवानमापतेत् । वस्तुत सर्वस्मिन्नेवशरीरे चैतन्यस्यैकत्वात् सर्वगतसुखादिप्रतिसंधानप्रसङ्गस्यादित्यर्थ । न च शरीर भेदस्यैवात्मभेदकत्व नतु तदवयवभेदस्यात्मभेदकत्वमिति वाच्यम्, सौभरिप्रभृतिमहात्मसु शरीर विद्यमानेपि, प्रतिसधानस्य दर्शनेन शरीरभेदस्यापि जीवभेदप्रयोजकत्वाभावात् । न च तत्तत्पुरुषीयकर्माधीनशरीरस्यैव तत्तद्भोगावच्छेदकत्वेनैव व्यवस्थास्यात् सोभरिप्रभृतेर्युगपन्नानादेहसम्बन्धेपि तत्तदीयकर्मसम्पादित एव, नत्वस्मदादीना तथेति वाच्यम्, औपाधिकात्मभेदवादे प्रतिकर्म व्यवस्थाया अपि दुर्घटत्वात्, उपाधे स्तदीयत्व तत्कर्मणैव वाच्यम्, उपाधिव्यवस्थया च तत्तत्कर्मभेद इत्यन्योन्यादिति । अतो वास्तविकजीवभेदेन भोगादीना परस्परस्तत्कार्य निवारणीयनान्यथेति ।

ननु देहभेदेप्यात्मन एकत्वात् यदि प्रतिसधान समर्थयसे तदा जन्मान्तरेऽनुभूतस्य प्रतिसंधान जन्मान्तरेस्यादिति चेत् मरणक्लेशात्, नरकक्लेशात् तथा प्रसवव्यथापीडनाच्चचिरातीत जन्मसम्बन्धि सुखादयोनानुभूयन्ते । अयभाव प्रबलदुखानुभवस्य सस्कारविनाशकत्व कालस्य च तथाऽन्यकारणेनापि सस्कारप्रमोषो भवति सस्काराभावाच्चनस्मरण भवति । यथा प्रवलवातकफपित्तजज्वरादिरोगार्दितस्याधीन विस्मरणदर्शनात् । जन्मभेदे च मरणनरकगर्भवासजन्मकालिक क्लेशाधिक्येन सस्कारस्यापगमात् कारणाभावेन पूर्वजन्मानुभूतवस्तुविषयकस्मरण जन्मान्तरे सस्काराभावान् न जायते । कालदीर्घत्वस्यापि सस्कारनाशकत्व जीवनादृष्टवलादेव सस्कारविशेषस्य न विनाश इत्यपि कल्प्यते, अतएव जातमात्रस्य स्तन्यपानेप्रवृत्तिर्भवति । अन्यथा प्रवृत्त्यभावे मरणमेव भवेत् । केषाचित् जातिस्मरादीना पुण्यातिशयेन सस्कारस्याविनाशात् पूर्वजन्माद्य विस्मरण भवतीति लोकशास्त्रमेवेति बोद्धव्यम् । समकाले जायमानेषु सुखदुखानुभवेषु "शिरसिमे वेदना पादे सुखमित्यादिषु कालदैर्घ्यादिसस्कारप्रमोषकाभावेपि, अस्मरणाद्यात्मनानासस्काराद-

न चैवं प्रातिस्विकतत्तदविद्या कल्पिता नानाजीवाः स्वस्वस्वप्नकल्पितदृश्य-कैर्जीवैरनेकैरेषा लोकयात्रोपजायते इति वाच्यम् परवातानिज्ञत्वात् ते स्वस्वप्नैकदर्शिनः-कथं प्रवर्तयेयुः

किञ्च तवमते स्वप्रकाशत्वव्यापकत्वैकनित्यत्वाद्योभवदीयमता ब्रह्मगुणा संविदोऽद्वितीयतां वाधेरन् । संवित्स्वरूपा एव गुणा अतो न संविदोऽद्वितीयतां

नैक्यादेव व्यवस्थाप्यम् । तथा चैकात्म्यवियो भ्रमरूपायाअपिनोदयावसर आत्मभेदस्यैव स्फुट प्रतिभानादितिभाव । एवमेकाविद्याकल्पितैकजीववाद दूषणजातानि प्रपञ्चितानीति दिक् ।

॥ इत्यैकविद्याकल्पितैकजीववादनिरासप्रकरणस्य तत्त्वदीप ॥

एकविद्याकल्पितैकजीववाद निगद्य नानाविद्याकल्पितनानाजीववाद निरसितुमुपक्रमते **नचैवंप्रातिस्विकेत्या**दि अत्र नचेति पद निराकरणपरक वादस्त्र । नायवादो युक्त इत्यर्थ । तत्तदविद्या कल्पिताश्चितोनानाजीवविशेषा । ते च स्वकीय स्वकीयाविद्याकल्पित घटपटादिसमुदाय पार्थक्यैनैकविजानाति, यथा स्वप्नदृक् भिन्नभिन्नमेव स्वस्वप्न तद्गतान् पदार्थांश्च पश्यति । व्यावहारिका अन्येजीवा स्वेतरान् जीवान् न पश्यन्ति । स्वेन दृश्या जीवास्तु स्वाप्नवत् प्रातिभासिका, ज्ञानसमकालीनत्वात् समानोज्ञानसत्ताका एवेत्यस्य हृदयम् । अत्रान्यजीव तद्गतगुरुक्षेपादिक वा तदन्यो जीवस्तथा भूतो न विजानामीति चेत्तर्हि तेषा तथा विवानामेकस्मिन् स्थले समागमादिप्रसगाभावात् सहानुभूत्यैकसा योऽनुवृत्तो लोकव्यवहार कथमिव निर्वर्त्येतेत्यर्थ. । स्वाविद्याकल्पितमेव पश्यन्तीत्युक्त्या परवातानभिज्ञत्व-व्यावहारिकजीवान्तरवृत्तानभिज्ञत्व सिद्ध्यति । लोकव्यवहारोपि प्रातिभासिक एवचेत्तर्हि एकजीववादप्रसङ्ग । एकजीववादे च दोष कथित एवेति हृदयम् ।

॥ इति नानाविद्याकल्पितनानाजीववादनिरासप्रकरणस्य तत्त्वदीप ॥

ज्ञानमात्रे ब्रह्मणि मायाकल्पितमेयप्रमातृप्रभृतिभेद इति परकीयमत मुकुलिततया निरस्य विस्तररूपेण तमेव मत प्रतिक्षिप्तमेतावताप्रबन्धेन अथ संविदि ज्ञानेपराभिमत निर्विशेषत्वं प्रतिक्षेप्तुमिदमुपक्रम **किञ्चतवमतेस्वप्रकाशत्व** इत्यादिना । अद्वैतिमताभिमतैरेवानन्दत्वविभुत्वादि धर्मैर्ब्रह्मण सविशेषत्वप्रसङ्गस्यात् यत आनन्दत्वधर्माणा धर्मिब्रह्मणोभिन्नत्वस्य सर्वसमतत्वात् । तेषामानन्दत्वादिधर्माणा ब्रह्मस्वरूपत्वाभेदात्तेषा न संविद सधर्मत्वमिति शङ्कामनूद्यनिराकर्तुमाह **संवित्** इत्यादि । अर्थात् सम्प्रतिपन्नेपि संवित्स्वरूपे धर्मिणि न नित्यत्वविभुत्वैकत्वस्वप्रकाशत्वादौ, बौद्धतार्किकमीमांसकादीना प्रतिपक्षीणा विवादात् स्वस्वस्वरूपभेदाच्च तेषा धर्माणा

जगद्गुरु श्रीत्रिदण्डिग्रन्थमालाया उनचत्वारिंशत्तमपुष्पम्

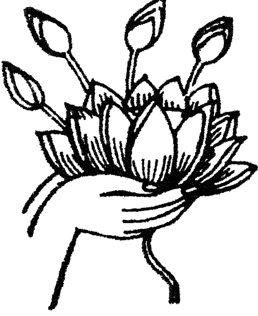


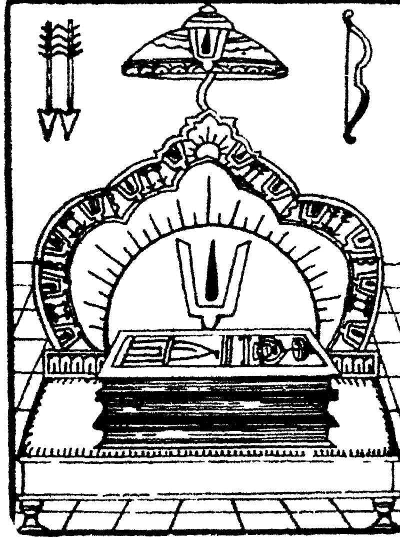
सर्वेश्वर श्रीसीतारामाभ्या नमः

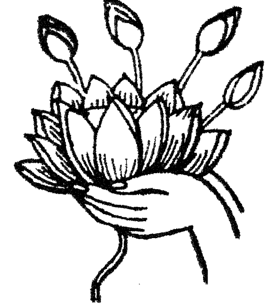
श्रीरामानन्दसम्प्रदायके ३९वे आचार्य

महामहोपाध्याय जगद्गुरु
श्रीरामानन्दाचार्य रघुवराचार्य



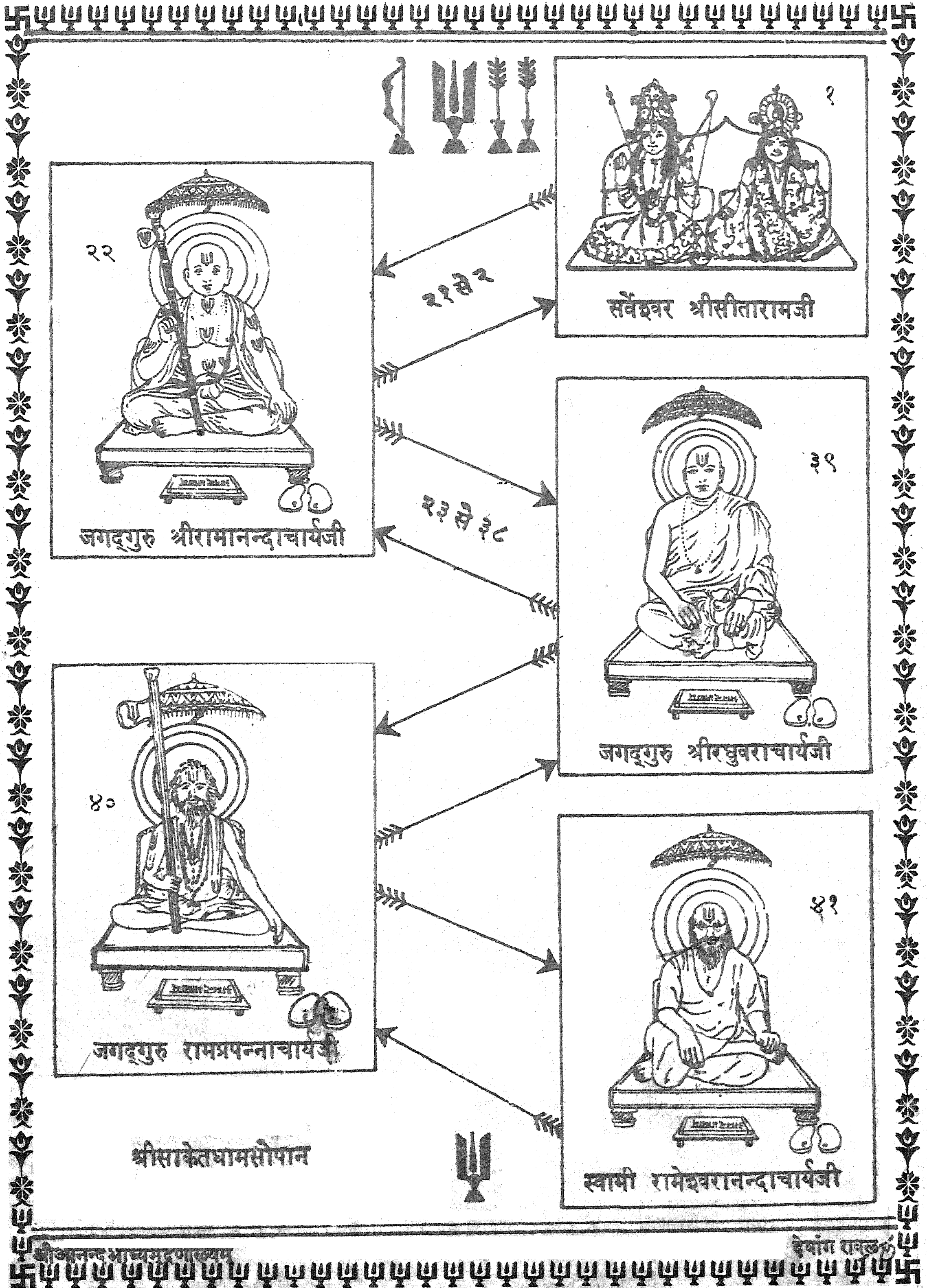






स्मृतिग्रन्थः




१
सर्वेश्वर श्रीसीतारामजी
२२
२१से२
जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी
३९
२३ से ३८
जगद्गुरु श्रीरघुवराचार्यजी
४०
जगद्गुरु रामप्रपन्नाचार्यजी
४१
स्वामी रामेश्वरानन्दाचार्यजी
श्रीसाकेतधामसोपान
देवांग रावल

पक्षस्तुपूर्वमेव निराकृतः । तथात्वे ब्रह्मणोपिघटादिभ्यो विशेषो न स्यात् । किञ्चापोह्यजडत्वाद्यर्थस्यासमर्पणे, तत्तदपोह्येत, एकार्थप्रतिपादकपदवत् । प्रतियोगिनि दृश्येतु यामावान्तरबुद्धिः सैवाभावस्तथा च तेन सद्वितीयत्वं ब्रह्मणोऽनिवारितमेवेति ।

॥ इति सविशेषत्वोपपादनेन संविदो निर्विशेषत्वनिरसनप्रकरणम् ॥

एवं स्थितेपि दोषान्तरं वक्ति **तथात्वे** इत्यादि । घटादिभ्यो ब्रह्मापि भिन्नं न स्यात् । अपोहानां ब्रह्म स्वरूपत्वे सदसद्विलक्षणत्वे च ब्रह्मणोपि सदसद्विलक्षणत्वं स्यात् । घटादि प्रपञ्चवदेव । यथा घटादौ सत्त्वं स्यात्तदा तस्य बाधो न स्यात् । असत्त्वं स्यात् तदा वन्ध्यापुत्रादिवत् प्रत्यक्षप्रतीतिर्नस्यादिति सदसद्विलक्षणत्वं तथैव ब्रह्मणोपि तथात्वमापतेदिति भावः । पुनर्दूषणान्तरमाह **किञ्चापोह्यजडत्वादि**रित्यादि । जडादिव्यावर्तकधर्मबोधनमन्तरा जडादीनां व्यावृत्तिरथात् स्वेतर व्यावृत्तिर्न प्रतिपादयितुं शक्यते सत्यज्ञानादिपदैर्जडादिपर्यायपदैरिवेति व्यावर्तकधर्मबोधकत्वम-वश्यमेव स्वीकरणीयम् । तथा च तैस्तैर्धर्मैः सत्यत्वादिभिः सविशेषत्वं ब्रह्मणो दुर्वारमेव ननु निर्वि-शेषत्वं तस्य कथमपि साधयितुं शक्यमिति । तत्तत् जडत्वादि, अपोह्यैतद्व्यावर्त्त्येन ननुव्यावर्तक धर्मवत्त्वं पदैर्न बोध्यते, किन्तु जडादिव्यावृत्तिरूपत्वमेव बोध्यते सत्यज्ञानानन्दादिपदैर्धर्मिणो ब्रह्मण । तत्र जडत्वादिप्रसङ्गो ब्रह्मण इति चेत्तत्राह **दृश्ये प्रतियोगिनि** इत्यादि । योग्ये प्रतियोगिनि घटादि केऽनुपलभ्यमानेऽधिकरणज्ञानमेवतदभाव इतिज्ञानविशेषरूपत्वाद् भावस्य ज्ञानविशेषरूपै सत्य ज्ञानादिपदलक्ष्यार्थैरभावैर्भावरूपैर्ब्रह्मण सविशेषत्वं प्रसज्यते इत्यर्थ । अभावो ज्ञानरूप एवेति न सर्वसमतम्, तथापि अभावस्य ज्ञानरूपत्वकथनमतविशेषमभिप्रेत्येव । यद्वा भावान्तरमात्र-धिरिति, उपलभ्यमान भावान्तरमित्यर्थ पर्यवस्यति । तथोक्तमभियुक्तैर्भावान्तरमभावोऽन्योन कश्चिदनिरूपणादिति । अर्थात् योग्ये घटादिके प्रतियोगिन्यनुपलभ्यमाने तत्राधिकरणे जलादा यद्भावान्तरं शैवालादिकं समुपलभ्यते तदेव प्रतियोगिव्यपेक्षयाऽभावव्यपदेशभागिनि-अधिकरण वृत्तिधर्मान्तररूपत्वादभावान्तरै सविशेषत्वं प्रसज्यते एव ब्रह्मण । घटादौ द्रव्ये विद्यमानोऽभा-वस्तस्य धर्मरूप । धर्मस्य च स्वपरनिर्वाहकत्वेन स्वरूपमेवाभाव सति समत्वे धर्मान्तरमभावोवेति यथोपलभ व्यवस्था । यस्मिन्नधिकरणे प्रतीयमाने, इतरारोपो न घटते, तस्यैवतदभाव रूपत्वम् । सत् स्वरूपे प्रतीयमाने एव भेदानामध्यासाच्च तत्र तस्यैवनेतराभावरूपत्वमिति ।

नचाविद्ययाऽविशद भासमाने सति भेदभ्रम अविद्या निवृत्तौ विशद भासमाने तु न भ्रम इति विशदस्वरूपस्याभावरूपत्व सम्भवतीति वाच्यम् । वैशद्यस्य स्वरूपत्वे पूर्वमप्यविद्यादिभेदा-रोपायोगात् । स्वरूपातिरिक्तत्वे तु तस्यैवाभावरूपत्व न स्वरूपस्येति प्रसङ्गात् । किञ्च निर्वि-शेषे स्वप्रकाशे वस्तुनि विशदाविशदभानमेव दुर्वचम् । सविशेषेतु कतिपयाकारेणभासनमविश-दम्, सर्वाकारभान विशदमिति विशेष । किञ्च ब्रह्मणो द्रव्यत्वे सधर्मकत्वम्, अद्रव्यत्वे तु

ननु भूतभौतिकाकाशादिप्रपञ्चस्य सदसद् भिन्नत्वं प्रत्यक्षप्रमाणेन निश्चीतमागमप्रमाणेन वा ? तत्र न प्रत्यक्षं सदसद्भिन्नत्वे प्रमाण्यं प्रत्युत यथावस्थितार्थबोधकत्वेन सत्त्वासत्वयोरन्यतरस्मिन्नेव प्रामाण्यावधारणात् । नतु वस्तुनः सदसद्भिन्नत्वेऽप्रामाण्यात् । यथा पुरतो भासमाने नीलेऽवाधितनीलबुद्धिरेवजायते नरक्तादिधीर्जायते । नहि भवति स्फटिकचक्षुः संयोगेनीलमतिः प्रत्त्युत धवलमतिरेव भवति । नवा रसना निम्बसम्बन्धेकषायमतिर्भवतीत्येवं रूपेण सर्वे लौकिकवैदिकव्यवहाराः कस्यचिद्धर्मरूपत्व प्रसज्यते । द्रव्याद्रव्यविलक्षणत्व तु नैव सभवति विरोधात् । उभयविलक्षणत्वेऽनिर्वचनीयत्व स्यात्, तच्च पूर्व पश्चाच्च निराकृतमितिदिक् । सत्यज्ञानादिपदानामपोह लक्षणायामपि न ब्रह्मणो निर्विशेषत्व सिद्ध्यति, उभयपदलक्षणायातु कल्पनागौरव मात्रमेव हस्तगत भवतीति विशेपविचारोभारमात्रमेव न फलाय भवतीत्यलम् ।

॥ इति सविशेपत्वोपपादनेन सविदो निर्विशेषत्वनिरसनप्रकरणस्य तत्त्वदीप ॥

अथ प्रपञ्चस्यापि प्रसङ्गसङ्गत्या सदसदनिर्वचनीयत्वमिति यत् परमत तदपि निराकर्तुमाह "**भूतभौतिकाकाशादि** इत्यादि, अथात् प्रपञ्चस्य भूतभौतिकस्य सदसद्भिन्नत्वमद्वैतमत सिद्धम्, तत् कस्मात्प्रमाणादवगम्यते, कि प्रत्यक्षप्रमाणेन निश्चीयते आगमेन वा प्रमाणेन ? तत्र न प्रथम तस्य सद्भावग्राहकत्वात् । नन्वनिर्वचनीयत्व गृह्णातीति प्रदर्शयितुमाह **तत्र न प्रत्यक्ष**मित्यादि तत्रेन्द्रियार्थसनिकर्पजन्य ज्ञान प्रत्यक्षम् । अथवा ज्ञानाकरणक ज्ञान प्रत्यक्षम् । एतत् हि स्वस्वग्राह्यमर्थ यथायथतत्तदसाधारणाकारतो विजातीयसजातीयान्तरव्यावृत्तमेव ज्ञापयन्ति प्रन्यक्षादीनि चक्षुस्त्वक् रसना घ्राणादीनीति लोकप्रसिद्धमेव एवञ्च तत्तदसाधारणाकारैणैतानि प्रमाणानि वस्तूना रूपशव्दादीना सद्भावे एव प्रमाणानि नतु प्रत्पक्षसदसदनिर्वचनीयत्व बोधयतीति भाव । एतदेवोपपादयति **यथा** इत्यादि नीलघटादो नीलत्वमतिस्वच्छे स्फटिकादौ धावल्यप्रतीतिश्चनैव वस्तुविपया, किन्तु परस्परव्यावृत्तद्रव्यगुणादिविपयैव एव गव्येपयसि मधुर बुद्धि स्वभावत कटौ निम्वे तिक्ततामतिहरितक्यादौ कषायबुद्धिरेवजायेत, परन्तु नैकार्थविषया किन्तु परस्परव्यावृत्तगुणादिविषयैव भवति । एवञ्च परस्परविभिन्नार्थभेदविपयत्वमेव ज्ञानाना स्थितमिति भाव । तत्र नीले नीलमतिरेकाकारा एकनीलादिविपया च भवति । तत्र नीले न नील गुणभिन्नगुणत्वप्रसङ्ग । स्फटिके धवलमति ततो भिन्नाभिन्नाकाराचेत्यर्थौ नैवेत्यस्यैतादृगितीत्यस्याक्षेप कर्त्तव्य ।

एवक्रमेण ततद्वस्त्वसाधारणाकारभेदेऽबाधितबुद्धि प्रदर्श्य व्यवहारमपि तादृश दर्शयति प्रमाणतया **व्यावहाराःप्रतिनियताः** इति । अवाधितप्रत्यक्षादिप्रमाणतन्मूलकव्यवहारवलात्पदार्थाना तत्तदसाधारणाकारेण सत्त्वमेव स्वीकर्त्तव्य नतु सदसद्भिन्नत्वमुपेयमिति भाव ।

प्रतिनियताः। सत्यं तथा प्रतितिपरन्तु तस्यामूलं नास्तीति चेन्न, प्रमात्मककार्यसत्वेतेन शुद्धकारणानुमानात्। क्लृप्तं चेन्द्रियलिङ्गादीनामन्वयव्यतिरेकानुविधानम्। यौगपद्य-क्रमायोगाद् विधानम्। भेदो न प्रत्यक्ष इति यो भ्रमः सभेदतदितराभावविवेकाग्रहणेन भवति। भावानां स्वरूपमेव प्रत्यक्षेण परिस्फुरित, स एव भेदव्यवहारहेतु स्यात् प्रति-

शङ्कात्रातूद्यते **सत्यं तथा प्रतीति**रित्यादि। अर्थात् भवति नीलादा नीलादिबुद्धि परन्तु अस्याबुद्धे किञ्चिन्मूल नास्ति किन्तु निर्मूलेयमितिमतिरिति प्रश्नाशय परिहरति न इत्यादि कार्यवलात्तदनुगुण मूलकारणमवाधितबुद्धीना याथार्थ्यव्यवस्थापकमनुमीयताम्। अर्थात् कार्येणा वाधितेन सन्मूलस्यानुमान भवति। पर्वते वन्हिमति यावन्हिमत्वबुद्धिसत्करणजन्यैवेति। दोष रहितचक्षुरादीन्द्रियादेरेवज्ञानयाथार्थ्ये कारणत्वमन्वयव्यतिरेकाभ्या निर्णातम्, तस्यापलापो न कर्त्तव्यस्तत्राह **क्लृप्तं चेन्द्रियलिङ्गादि** इत्यादि। सतिचक्षुरादीन्द्रियार्थसम्बन्धेऽवाधिते सति-ज्ञानस्य याथार्थ्यमसति च न तथेति, अन्वयव्यतिरेकाभ्या निर्णीयते। तत्र कार्यरहितकारणे-ऽवश्य कार्यभूतज्ञानप्रमैवेति निश्चीयते अर्थात् वस्तुभेदोनिर्दुष्टेन्द्रियरूपेण प्रत्यक्षप्रमाणेनैव गृह्यते इतिभाव।

अत्र पुन शङ्कते **यौगपद्यक्रमे** इत्यादि अत्र व्यवच्छेदपदेन भेदस्य ग्रहणम्। विधानेन तु स्वरूपस्यग्रहण भवति। अयमाशय—प्रात्यक्षिकबुद्धेर्युगपदेवाधिकरणतन्निष्ठभेदोभयग्राहकत्व न सभवति, यतोभूतलाद्यधिकरणग्रहणे प्रतियोगिग्रहणस्य निरपेक्षत्वात्, विनापि प्रतियोगिग्रहण-मधिकरणप्रमोत्पादात्। भेदस्याभावरूपतयाऽभावस्य च प्रतियोगिग्रहणसापेक्षत्वात्। "प्रति-योगिविशेषिताभावज्ञान विशिष्टवैशिष्ट्यमर्यादानातिशेते" इति नियमात् एवञ्च प्रथममधिकरण स्वरूप गृहीत्वैव तदनन्तर भेदग्रहण करोतीति क्रमोपि न सभवति, प्रमिते क्षणिकत्वात्, शद्धबुद्धिकर्मणा विरम्यव्यापाराभावाद्वा। स्वरूपभेदयोस्तज्ज्ञानयोश्चैक्यमपि न सभवति। अत स्वरूपग्रहस्यैव प्रत्यक्षप्रमितिरूपत्वम्, भेदग्रहस्यतु भ्रमलक्षणत्वमेवेति भाव। इमा शङ्का प्रतिक्षिपति **भेदो न प्रत्यक्ष इतियोभ्रमः** इत्यादि। ऐक्यायोगादितियोभ्रम अत्रेत्यादि तत्र भेदोनाम अन्योन्याभाव इतरेतराभाव -अन्यस्मिन् अन्यस्य ससर्गाभावरूप एव, अथवा, भेद ससर्गाभावभेद प्रागभावध्वसा भावान्यताभावरूप। इतरेतराभाव भेद। तयो स्वरूपयाथात्म्यज्ञानप्रयुक्तो निरुक्तविध परेषा भ्रम इत्यर्थ भेदस्य याथार्थ्य तावद्दर्शयति **भावाना**मित्यादि भावाना भूतलादिना यत् स्वरूपम् प्रत्यक्षेण परिस्फुरति प्रतियोगिव्यपेक्षया भेदव्यवहारे हेतुर्भवति, अर्थात् स्वरूपम्=स्व-कीयासाधारणाकारप्रकार - तदेव गृह्यमाणम् प्रतियोगिस्मरणसहकारेण तदितरस्मात् भेद व्यवहारकारण भवति। यथा कबुग्रीवादिमत्वघटस्यपटादितो भेद इति भाव। अत्र दृष्टान्त यथा भूतलादे स्वरूपज्ञानमेव घटाद्यनुपलभे सति तत्तत्स्मरणसहकृतघटादिशून्यता व्यवहार-कारणं मतम्। अभावस्याधिकरणस्वरूपत्ववादिनाम्। सिद्धान्तेत्वधिकरणवृत्तिधर्मविशेषरूपत्व-

योगिन्यपेक्षया ह्रस्वत्वदीर्घत्वभेदा यथैकत्र षडङ्गुलेः। एवमेव व्यवस्थितानेकप्रकारवत्तया प्रत्यक्षस्य घटादिप्रपञ्चस्य तद्भावोनापलपितुं शक्यः। आगमप्रमाणमपि कार्यपरकत्वादीदृशेऽर्थे न प्रमाणम्। प्रामाण्येपि, अन्वयायोग्यपदार्थत्वाद्बोधकं न भवति। नासत् प्रतीतेः बाधाच्च न सदित्यपि यन्न तत् प्रतीतिरेव किं न बाधान्नासज्जगत्। तस्मादविद्ययैवेयं भवन्तमाश्रितेति। किञ्च भेदप्रपञ्चनिष्ठं मिथ्यात्वं प्रपञ्चधर्मः स्वयं-
मेव भेदादेरिति बोध्यम्। एकस्यैव प्रतियोगिभेदेन नानाव्यवहारसाधनत्व दृष्टान्तद्वारेण दर्शयति **ह्रस्वत्वदीर्घत्वभेदायथैकत्रषडङ्गुले** इत्यादि। एकत्रैव षडङ्गुलिप्रमितेदण्डादिवस्तुनि तदपेक्षया दीर्घपदार्थान्तरमपेक्ष्य ह्रस्वव्यवहारम्, ह्रस्वे वस्तुनि तदपेक्ष्य दीर्घव्यवहारम् [यथा व्यजनात् केतन दीर्घम्] तत्तद् वस्तुज्ञानमपेक्ष्य तत्तत्प्रतियोगिस्मरणसहकारेण जनयतीतिभाव। दार्ष्टान्तिके योजयति **एवमेव व्यवस्थितानेकप्रकारवत्तया** इत्यादि। स्वरूपलक्षणभेदस्याद्यक्षणे एव धर्मिग्रहणे ग्रहणसंभवाद्भेदव्यवहारे एव प्रतियोगिस्मरणस्यापेक्षितत्वाच्चनानाकारविभिन्नपदार्थस्वरूपस्य तत्व प्रत्यक्षप्रमाणप्रमित नापलपनयोग्यमितिभाव।

असाधारणाकाररूपस्य भेदस्य स्वपरनिर्वाहकत्वादनवस्थान भवति। तदीय प्रागभावस्तत्पूर्वावस्थारूप प्रध्वंसाभावस्तु तदुत्तरावस्थारूप तदन्यताभावस्तदविकरणस्वभावविशेषात्मक। सामयिकाभाव कालविशेषावच्छिन्नतत्तदविकरणस्वरूपात्मक एतेषां च तत्तत्प्रतियोग्युपरक्तत्वेन व्यवहारे पुनस्तत्तत्प्रतियोगिस्मरणसापेक्षा भवतीति विवेको ज्ञातव्य।

एवञ्च भेदप्रपञ्चस्य सत्यत्वे एव प्रत्यक्ष प्रमाणम्, नतु तदनिर्वचनीयत्वे प्रत्यक्ष प्रमाणं भवतीति व्यवस्थापितम् 'यजेत' 'जुहोति' च इत्यादि शास्त्रमपि भेदप्रपञ्चस्य निर्वाच्यत्वे प्रमाण न भवति, तस्मात्, आगमप्रमाणता निर्वाच्यत्वे इति दर्शयन् भेदप्रपञ्चस्य मिथ्यात्वे शास्त्र प्रमाणमिति द्वितीयपक्षनिरसितुतत्प्रकरणमुत्थापयति **आगमप्रमाणमपि कार्यपरकत्वादि** त्यादि। तत्रागम -शास्त्रम् कार्यनिष्ठत्वात् कार्यार्थप्रतिपादनपरत्वात्, ईदृशेऽर्थे—कार्यानन्वयिनिसिद्धार्थे प्रपञ्चनिर्वचनीयत्वादा, नप्रमाऽर्थात् प्रमाण न भवति। एतत्पूर्वमीमांसकमतमाश्रित्यकथितम्। सिद्धान्तमतेन तु कथयति **प्रामाण्येऽप्यन्वयायोग्यपदार्थत्वादि**त्यादि। सिद्धार्थे शास्त्रस्य प्रामाण्ये सत्यपि शास्त्रस्य प्रमाणशब्दमात्रस्य वाऽनिर्वचनीयत्वेन प्रामाण्यम्, न सन्नाप्यसन्नित्यादेरनन्वितार्थकत्वेन शाब्दबोधाजनकत्वादित्यर्थ तत् अर्थात् तत्प्रतिपादकतयैव प्रतीयमानोपि शब्दसदर्भोऽविरुद्धार्थ परतयैव नेतव्य इत्यभिप्राय। अथानुमानसदसदनिर्वचनीयत्वेन प्रामाण्य तत्राह **नासदिति**—प्रपञ्च सदसद्भिन्न प्रतीयमानत्वे सति बाध्यत्वादियुक्तिरपिनसती, प्रपञ्च सदसत्ववान् प्रतीयमानत्वे सतिबाध्यत्वात्, तत एवाभाससमानयोगक्षेमत्वादिति। निरुपाधिकसत्वासत्वयोर्विरोधोऽत्र भवतीति ज्ञेयम्। **तस्मादविद्ययैवेय**मित्यादि। अनिर्वचनीयत्वस्याप्रामाणिकत्वात्तत्तदुपपादक कल्पनभवतोऽज्ञानमेवेत्यभिप्राय। प्रमाणाभावाद्दूषितमपि प्रपञ्चनिष्ठसदसत्वं प्रकारान्तरेणापि दूष-

मिथ्या वा पारमार्थिकं वा ? मिथ्याधर्मस्यमिथ्यात्वे प्रपञ्चसत्यता स्यात् । पारमार्थिकत्वे, तेनैवाद्वैतव्याघातः स्यात् ॥

॥ इति प्रप्रञ्चसदसद्व्यतिरेकित्वरूपमिथ्यात्वनिरसनप्रकरणम् ॥

सर्वाणि प्रमाणानि स्वंस्वमर्थ बोधयन्ति । असतोऽर्थान्तरेभ्यश्च व्यवच्छेदमपि दर्शयन्तीति मे मतिः । तथाहि घटोऽस्तीति या बुद्धिर्जायते सा घटाद्यभावं पटादिकं वा नाववोधयति । ननु अस्तीति यदुक्तम्, तत्र घटोपि तन्मात्रमर्थान्तर वा तन्मात्रे सदद्वैतं यितुमुपक्रमते **किञ्चभेदप्रपञ्च** इत्यादि । यदिद प्रपञ्चनिष्ठधर्मत्व तत् मिथ्यासद्वा ? प्रथमे मिथ्यात्वस्य मिथ्यात्वेधमिण प्रपञ्चस्य सत्यत्वमेव स्यात् । सत्यत्वनिषेधपरकमिथ्यात्वस्य मिथ्यात्वे प्रपञ्चसत्यत्वात् । प्रपञ्चमिथ्यात्वस्य सत्यत्वमिति द्वितीयकल्पस्वीकारेतु मिथ्यात्वस्यसत्यत्वे तत्तद्द्वारेण भेदप्रपञ्चस्यापि सत्यत्वप्रसङ्गात् । अपसिद्धान्तो द्वैतापत्तिश्च । न च भेदमिथ्यात्व सत्य तद्ब्रह्मस्वरूपमेवेति नद्वैतापत्तिरिति वाच्यम् तथा सति ब्रह्मणो मिथ्यावस्तुगुणत्वप्रसङ्गादिति विशेषोऽन्यत्र ज्ञातव्य ।

॥ इति प्रपञ्चस्यसदसद्व्यतिरेकित्वरूपमिथ्यात्वनिरसनप्रकरणस्य तत्त्वदीप ॥

एतावता प्रबन्धेन प्रपञ्चाकाशादिप्रमुखस्य मिथ्यात्वसदसद्भिन्नत्वलक्षण निरस्यघटादिभेद प्रपञ्चस्य सत्यत्व व्यवस्थापयत् पराभिमत सदद्वैत निराकर्तुमुपक्रमते **सर्वाणिप्रमाणानीत्या**दि । प्रमीयते परिच्छिद्यते येन तत्प्रमाण प्रमा प्रतिकरणमिति सामान्यलक्षणम् । सजातीयविजातीय व्यवच्छेदपूर्वकयथावस्थितार्थवोधनमेव तत्फलम् । तच्च प्रत्यक्षानुमानशब्दभेदात्त्रिविधम् ।

"प्रमाया. करण तत्र प्रमाणसम्मत बुधै । अवाव्यव्यवहारस्यानुगुणा तु मति प्रमा ।
करणचावगन्तव्य व्यापारशालिकारणम् । त्रिधा प्रमाणमध्यक्षानुमानशब्दभेदत ॥'

इत्यादिरूपेण प्रमाणदीपिकाया जगद्गुरु श्रीहर्याचार्योक्ते । तत्रोपमानार्थापत्त्यनुपलब्धिसहितं षड् विधमिति मतान्तरम् । तत्र प्रत्यक्षानुमानादीना विशेषलक्षण फल च तत्तत्प्रकरणेभ्य एव ज्ञातव्यम् । विस्तरभयान्नेह प्रतन्यते । यथोदित सर्वमेव प्रमाणस्वकीयमर्थमेव प्रमाणयति नतु प्रपञ्चस्य मिथ्यात्व दर्शयति । मिथ्यात्वस्यापदार्थत्वात् । तत्र स्वस्वप्रमेयस्यासतोऽभावाद् भावान्तरेभ्यश्च व्यावृत्ताकारता प्रत्ययजनकत्वमेव प्रसिद्धमुपपन्नमपि तदेवेति मूलस्य सपिण्डितोर्थ ।

तदेवोपपादयति **तथाही**त्यादि । अत्रेदानीं घटोऽस्तीति प्रात्यक्षिकप्रत्ययस्तदानीं तत्रैतत्कालावच्छेदेन देशावच्छेदेन च स्वकीयासाधारणाकारेण घटादेर्देशकालास्तितामस्तित्वमेवावगाहते, नतु घटादेरभावमर्थान्नासत्ताम्, नवा पटत्वाद्यर्थान्तरधर्मवत्वमित्यर्थ । तथा च सद् व्यावृत्ता सदन्तरव्यावृत्ता च वस्तुत सन्त घटादिकमेव प्रतिपादयति प्रतीतयो घटोऽस्तिपटोऽस्तीत्यादय इति सन्नानात्वमेव सिद्ध्यति, नतु सदद्वैत सिद्ध्यतीति भाव । अत्र परिशङ्कते **नन्वस्तीतियदुक्तम्** इत्यादि । घटपटादिपदेनापि अस्तीत्युक्त सन्मात्रमेवोच्यते तदा सिद्धमेव तदद्वैतम् । यदि सतोऽ-

प्रसज्यते, अर्थान्तरत्वे सदसद्भ्यां विलक्षणं तत् सिद्धम् । यद्येवम् अस्ति ब्रह्मेत्यत्र ब्रह्मौपनिषदम्, तदपि घटादिवदेवानिर्वाच्यमापतेत्तवमते । एवम् "आनन्दो ब्रह्म" इत्यादावपि-ब्रह्मणोप्ययथाभावस्तवमते प्रसज्येत तथा प्रपञ्चस्य सदसद्व्यतिरिक्तत्वमपि हीयेत । यत् यत् किञ्चिदुच्यते तस्य सर्वस्यतथात्वं भवेत् । तस्मादस्तीति धीर्घटादिषु जायमाना तत्तत् पदार्थस्य पारमार्थ्यमेव बोधिका । तथा सजातीयविजातीयव्यवच्छेदपूर्वकपदार्थानां स्वस्वव्यवस्थितस्वरूपैर्यास्थितिः सैव तदीयसत्ता नान्या, तत्राद्वैतकथा निरर्थिकेति ॥ ॥ इति सदद्वैतनिरासेन भेदप्रपञ्चस्यपारमार्थिकत्वसमर्थनप्रकरणम् ॥

न च नीलपीतादिनानाकारप्रतीतेर्बाधोयुक्तोऽनुभूयमानत्वात् । न च वेद्यं नीला-
र्थान्तरमपि वोच्यते तर्हि घटादेरापतितमनिर्वाच्यत्वम् । प्रतीतिबलाच्चासद्व्यावृत्तिरिति भाव । अमु प्रश्न दूषयति **यद्येवमस्तीत्यादि** "अस्तिब्रह्म" इत्युपनिषत् प्रतिपाद्यमपि ब्रह्मतुल्यन्यायात् सदसदनिर्वचनीय प्रसज्यते इति भाव । एव सर्वत्र समानाधिकरणतत्त्वमस्यादिवाक्येऽनभिमत विरुद्धाकारप्रसङ्गस्तत्राह=**आनन्दः** इत्यादि । 'आनन्दो ब्रह्म" इत्यादौ आनन्दादिमात्रब्रह्मपदेनोच्यते चेत्तदास्त्यादिपदान्तरस्य कथन निरर्थकम् तदतिरिक्तार्थबोधनेत्वानन्दविलक्षणत्वादि ब्रह्मण प्रसज्यते इत्यर्थ । आनन्दपदेनानान्दव्यावृत्तिर्ब्रह्मपदेन चानन्दव्यावृत्तिर्भवेदिति । अयथा भाव =अनानन्दत्वादि परस्यानिष्टान्तरमपि दर्शयति **सदसद्व्यतिरिक्तत्व** मित्यादि, सदसद्व्यतिरिक्त प्रपञ्च इत्यपिशब्द स्वार्थात् प्रच्यवेत, त्वदुक्तरीत्या सदसद् व्यतिरिक्तान्यत्वमेव प्रपञ्चस्यतवानभिमत सिद्ध्येतेतिभाव । यत् किञ्चिदपिवस्तु यथा येन प्रकारेणोच्यते, तस्यसर्वस्य तथा=भवत्प्रदर्शितमार्गेण तत्प्रकारराहित्य प्रसज्यते इत्यर्थ । घटोऽस्तीत्यादौ सत्तामात्रस्य विशेष्यत्वम्, तत्र विशेषे घटादेर्भेदप्रपञ्चस्यारोपितत्व चेति पराभिमत प्रतिक्षिपन्निव स्वाभिमतमर्थं प्रतिपादयति **तस्मादस्तीति** इत्यादि, यत परमत न सम्यक् तस्मात् घटोऽस्तीति जायमान घटादि विषयक ज्ञानम् तत्तत्पदार्थस्य पारमार्थिकत्वमेव बोधयतीत्यर्थ । **सजातीय विजातीयेत्यादि**" सजातीयविजातीयान्तरव्यावर्तकेन स्वस्वासाधारणाकारेण तस्य तस्य घटादि पदार्थस्य यास्थिति कालसम्बन्धप्रमाणसम्बन्धो वा सा तस्य तस्य पदार्थस्यसत्तेति गीयये । सा च सत्ता प्रतिपदार्थं व्यवस्थिता, धात्वर्थत्वाच्चकर्तृपराधीनाचातत्सत्ताया स्वतन्त्रत्वमद्वैत च भवदभिमत नैव कथमपि युक्तमिति भाव ।

॥ इति सदद्वैतनिरासेनभेदप्रपञ्चस्य पारमार्थिकत्वसमर्थनप्रकरणस्य तत्त्वदीप ॥

एवमुपर्युक्तक्रमेण प्रमेयात्मकसन्नानात्व व्यवस्थापितवानाचार्य । तदनन्तर ज्ञानप्रमितिनानात्वमपि व्यवस्थापयति, बौद्धाभिमतचिदद्वैतनिरासेन **नचेति** । विषयाश्रयविशेषै प्रत्यक्षादि प्रमाणस्वगतविशेषैश्च प्रतिपुरुषानुभूयमान सविदोज्ञानस्य नानात्व न कथमपि निराकर्तुं शक्ययुक्तमित्यर्थ. ।

दिकं वित्तेधर्म इति यत्पूर्वमुक्तम् , तेन त्वयासंविदः किञ्चित् साधितं न वा ? अस्तिचेत् तदा पक्षे वाधः नचेत्तदानिरर्थकः प्रयास । अतः स्वाभाविकस्पष्टदृष्टभेदाः संविदः । यथावस्थाभिर्वाह्यैनैक्यं भवति घटादिभिरपि ज्ञानस्यैक्यं न भवति । ज्ञानज्ञेययोरैक्यं सहोपलंभनियमोपि नैकैकसंविदा संभवति, यतश्चैतन्यसामान्यं सर्वसंवेदनात्मकं नैव दृष्टम् ।

न चास्ति सामान्यसहितं सर्वसंवेदन रूपम् । सहोपलंभनियमात्, अन्योऽर्थ संविदो न भवेत् । यदेतदपराधीनस्वप्रकाशं तदेवस्वयंप्रकाशपदवाच्यमिति प्राचो वदन्ति । यस्मिन् अभासमानेपि योऽर्थोनावभासते नासौ अर्थान्तरम्, चन्द्रमसश्च-

अत्रयोगाचारमतानुयायिभि सविदो ज्ञानस्य निर्विशेषत्वे यदनुमानमुद्भावित तदनुमानमनूद्य प्रतिक्षेप्तुमुपक्रमते **नचवेद्यम्** इत्यादि । सविदिज्ञाने यो निर्विशेपत्वरूप साध्यधर्म समुपगम्यते स साध्यधर्म पक्षे सविदिज्ञान स्वीक्रियते नवा ? तत्र यदि उपगम्यते इति प्रथमपक्ष स्वीक्रियते, तदानिर्निमित्त एकस्मिन् धर्मेण पक्षपातस्तव प्रसक्तो भवति, यत एको धर्म पक्षे मन्यते, अन्ये धर्मा प्रमाणसिद्धा अपिनोपगम्यते, तत्र भवतो रुचिरेव प्रमाणम् । तथा चाभ्युपगतनिर्विशपत्वविरोधप्रसङ्ग इत्यभिप्राय । अथवा नोपेयते चेत्साध्यधर्म पक्षे तर्हि तादृश पक्षे साध्यसाधनाय क्रियमाण प्रयासो निरर्थकतामञ्चतीति । अत सविन्निर्विशेषत्वानुमानप्रतिक्षेपात्, स्वरसतो विषयाश्रयस्वगत विशेषैर्विशिष्टा विलक्षणत्वेन स्फुट प्रतियमाना सविदो यथावस्थितैर्घटपटवाह्यपदार्थैनैक्ये प्राप्नुवन्ति इति । वेद्यवेदित्रोर्वित्त्यभेदमत निराकर्तुमय प्रक्रम **सहोपलंभ नियमः** इत्यादि । सविदा ज्ञानेन घटादेर्विषयस्य सहैवोपलभ्यमानत्वात् ज्ञेयज्ञात्रोर्ज्ञानाभेद, एकस्माच्चन्द्रमसो द्विचन्द्रवदितिवक्तुं न युक्तम्, यतस्तत्तत्सवेदन विशेषेण सहोपलभनियमाभावात् । एक विज्ञानविना ज्ञानान्तरेणाप्यर्थोपलब्धिदर्शनात् ।

विशेषेण सहोपलभस्य व्यभिचारेपि चित्सामान्येन सहोपलभनियमोस्तीतिचेत्, तदपि न समीचीनम्, विशेषव्यतिरिक्तस्य चित्सामान्यस्यैवानुवृत्तस्य सर्वविषयकविज्ञानविषयस्याभावादित्यर्थ । अत्र प्रतिक्षेप्यमतस्यानुवाद पुन **सहोपलभनियमा** दित्यादि वाह्यार्थप्रकाशे नियमेन सविदो भानसिद्ध्यर्थ वित्ते स्वप्रकाशत्वमाह **यदेतदपराधीनस्वप्रकाश**मित्यादि, स्वय प्रकाशता प्रवृत्ति निमित्त शब्दोयस्यतत् स्वय प्रकाशता शब्द स्वयप्रकाशशब्दवाच्यम् । अनेन सहोपलभनियम सिद्ध

यस्मिन्नित्यादि । सवित्प्रकाशाभावेऽर्थस्यापि न प्रकाश इति सवित् प्रकाशाभावव्यापकाभाव प्रतियोगिप्रकाशकस्यार्थस्य सविदानन्यत्व सिद्ध्यति, विम्वाप्रकाशेऽप्रकाशमानस्य प्रतिबिम्बस्येव बिबानन्यात्वमित्यर्थ । **अभासमान** इति । विज्ञाने आभासमाने प्रकाशमानेसति, आत्माज्ञाता—अर्थौ नीलपीतादिज्ञेयात्मकम् । सविद्विवर्तत्वम्-सविदाधिष्ठानकारोपविषयत्वम्, प्रपञ्चे वेद्यवेदितृत्व प्रपञ्च. अञ्चति—गच्छति प्राप्नोतीति । अधिष्ठानसत्तातिरिक्तसत्तारहितत्वलक्षण सविदनन्यत्वं प्रपञ्चस्य विवक्षितम् । नीलपीतादिवाह्याकारोवासनाकल्पिताज्ञाने इति योगाचारमतम् । नील-

न्द्रवत् । विज्ञानेऽभासमानेऽथात्मावभासनं न तस्मात् प्रपञ्चः संविदोविवर्तरूप इति-चेन्न, एवमतिरिक्तार्थापलपनं न कर्त्तव्यं प्रत्यक्षविरोधात् न भवदीयानुमानानुवर्तिनो भवन्ति । तथाहि इदमहं वेद्मीत्यन्यानात्मना स्फुटरूपेण त्रयं साक्षादेव प्रकाशते इति सर्वानुभवसाक्षिकम् । प्रत्यक्षविरुद्धमनुमानेनोत्थातुमर्हतिः अग्निरनुष्णा इतिवत् । किञ्चायं हेतुर्विरुद्धोयतो द्वयोः सहभावस्तवमतेपि, नहि संवित्तिः स्वात्मना सहभासते । नीलाद्युपप्लवरहितस्वच्छचैतन्यमात्रसन्तानं स्वापादौ भासते, नैवमर्थः मंवेदनात् पृथक् भासते, तेन संवेदनं सत्यम्, अर्थस्त्वसन् । तदेतत् स्ववाग् बाधितम्, यत एवं

पीतादिलक्षणोऽर्थोऽविद्ययाकल्पितो ज्ञाने मायिकपक्षश्चनिराचिकीर्पितोऽत्रेति विभावनीयम् । एतद्योगाचारमत प्रतिक्षेप्तुमाह **विज्ञाने** इत्यादि, हे बाह्यार्थापलापिन् एव यथोक्तक्रमेण बाह्या-र्थान् नीलपीतादिकानमपरिभव, एतेपा निराकरण न कुरु । कुत तत्राह **प्रत्यक्षे**त्यादि । बलीयसा सर्वप्रमाणापेक्षज्येष्ठेन सर्वोपजीव्येन, अत सर्वप्रमाणपेक्षया बलवता इमे बाह्यार्था सुरक्षिता ।

अर्थात् प्रबलतरप्रत्यक्षप्रमाणसरक्षिता एते ज्ञातृज्ञेयभेदा पदार्थास्त्वदीयसविदैक्यानुमानानु-वर्तिनो नभवन्तीति । इतरप्रमाणापेक्षया प्रत्यक्षस्योपजीव्यत्वेन ज्येष्ठत्वेन बलवत्वम् । ज्ञेयेषु सविदा सहैक्यसाधनार्थमर्थाना सविदश्च स्वरूपग्रहण तावदपेक्षितम् । एतावतैवचज्ञानज्ञेयादीना परस्पर भेदोपि सिद्ध इति प्रत्यक्षबाधितमनुमान न प्रवर्तते इत्यर्थ । अत्र ज्वालाभेदानुमानवैषम्यप्रकारो विशेपरूपेण विचारितस्यादात्मसिद्धाविति विशेप जिज्ञासुभिस्तत एव द्रष्टव्यो विस्तरभियानेह पुन प्रतन्यते इति सक्षेप ।

तथाहीदमहंवेद्मि इत्यदि अन्योन्यानात्मना=परस्परविभिन्नस्वरूपेण, त्रय ज्ञातृज्ञेय ज्ञानलक्षण पदार्थलक्षणम् । **प्रत्यक्षप्रतिपक्षमनुमान** मित्यादि, अर्थात् प्रत्यक्षप्रमाणबाधितम-नुमान स्वानुमेयसाधनाय न प्रवर्तते, यथा "अग्निरनुष्णो द्रव्यत्वादित्यनुमानमुष्णत्वग्राहिप्रत्य-क्षेण बाधित न प्रवर्तते, यथा वा 'ह्रदो वन्हिमान् धूमात्' इत्यत्र वन्ह्यभाववान् इति निश्चयात्मक बाधेन बाधित न ह्रदेवह्निमत्ताबुद्धि निश्चितोति तथैवात्रापीति । अर्थात् प्रतिपक्ष विरुद्ध वन्हेरनुष्ण-त्वानुमानमिव प्रत्यक्षबाधित विपयज्ञात्रो सविदा सहैक्यानुमानत्वदीयमिति प्रोक्त भवतीति । किञ्च साहित्य भेदनियत भेदे सत्येव तद्दर्शनात्, इति ज्ञानार्थयोर्हेतुघटक ज्ञानज्ञेययोरभेदसाधने विरुद्ध-मिति दर्शयितुमाहाचार्य **किञ्चायम्** इत्यादि । सवित् सविदा सविदा सहभासते इति न यो गाचारस्यापि समतम्, तत्सविदा सहोपलभमानमर्थजात नियमेन ज्ञानभिन्नमेव भवेदितिभाव ।

अत्र पुन शङ्कते योगाचारमतानुयायी **नीलाद्युपप्लवे**त्यादि विपयोपरागमन्तरेण ज्ञान भासते स्वापकाले, नैव विपयो ज्ञान विना कदापि भासते । तत् प्रतिबिम्बस्येवार्थजातस्य मिथ्या-त्व सविदि कल्पितस्येतिभाव । एतत्पक्ष परिहरति **"तदेतत्"** इत्यादि । अर्थ विना सविदोभाने

सति सहोपलंभनियमस्य हानिप्रसङ्गात् तस्माद् यदभावेयद् भासते, तदभावेपि तदवभासते एव भानेऽपि घटादिभानवदिति संक्षेपः ।

।। इति चिदद्वैतनिरासेनमितिमातृमेयाभिदायाथार्थ्यसमर्थनप्रकरणम् ।।

इति वाराणसिस्थानन्दभाष्यकारजगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यपीठसंस्थापकाचार्य श्रीरामानन्दसम्प्रदायस्यचत्त्वारिंशत्तमप्रधानाचार्यजगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्य रामप्रपन्नाचार्ययोगीन्द्रप्रणीता तत्त्वत्रयसिद्धौसंवित्तिसिद्धिः ।।

卐 श्रीरामः शंकरोतु 卐

ता विना सविदन्तरेणापि विषयस्यभान सिद्धप्रायमेवेति सहोपलभनियमरूपभवदुक्तहेत्वासिद्धिरिति पूर्वापरस्ववचनविरोधमपि नपरामृष्टवान् एव वदन्निति भाव । हेत्वसिद्धिमेवोपपादयति **तस्मात्** इति । घटापटादृतेभानात् पटादृतेभान घटस्य यथा सिद्ध्यति, तथाऽर्थमन्तरेण भानाद् ज्ञानाद् विना भानमर्थस्य सिद्ध्तीति सहोपलभनियमो न नीलादितद्धिया सिद्ध्यतीत्यर्थ । ननु ज्ञानैनैवार्थस्य प्रकाशस्य वक्तव्यत्वाद् ज्ञानस्य च स्वप्रकाशत्वाद् ज्ञानभान विनाऽर्थभान युज्यते इति चेदेवमपि सहोपलभनियमो न युज्यते, ज्ञानविशेषेण ज्ञानसामान्येन वा पूर्वत्रव्यभिचारात् । परमतेऽसिद्धेश्चेति । विशेषविचारो “नाभाव उपलब्धे ” इति सूत्रीयश्रीरामानन्दभाष्ये “किञ्च यदिविज्ञानातिरिक्त कश्चित्पदार्थ एव नस्यात्तर्हिकस्य किमर्थ विज्ञान नीलाद्याकारतामुपयातीति वक्तव्यम् । नहि विज्ञानमेव स्वय स्वार्थ तत्तद्रूपतामुपैति प्रयोजनाभावात्” (आनन्दभाष्यम् २।२।२८) इत्यादि रूपेण कृत । एतदीयव्याख्याने भाष्यदीपेऽस्मद्गुरुप्रवरजगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यरामप्रपन्नाचार्ययोगीन्द्रमहाभागेन बहुचर्चितत्वात् । मयापि भाष्यप्रकाशेन्यत्र च विवेचितत्वाद्विरम्यते प्रपञ्चात् प्रकृतप्रकरणाद्विशेपार्थिभिस्तत एवानुसन्धेयमितिशम् ।

। इतिचिदद्वैतनिरासेनमितिमातृमेयभिदायाथार्थ्यसमर्थनप्रकरणस्यतत्त्वदीप ।

वन्दे राम रमानाथ जानकीवल्लभ परम् ।
अन्तर सवित्तिसिद्धिर्हि यत्कृपालवलेशत ।।

इति पश्चिमाम्नायविश्रामद्वारकास्थश्रीरामानन्दाचार्यपीठाधीशजगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यरामप्रपन्नाचार्ययोगीन्द्रपट्टशिष्यस्वामींरामेश्वरानन्दाचार्यप्रणीत श्रीरामानन्दसम्प्रदायस्यचत्वारिंशत्तमाचार्यकाशीस्थश्रीरानन्दप्रधानपीठाचार्य जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यरामप्रपन्नाचार्ययोगीन्द्रप्रणीतसवित्तिसिद्धौ

卐 तत्त्वदीपः 卐

।। श्रीरामचन्द्रचरणौ शरण प्रपद्ये ।।

सर्वेश्वरश्रीसीतारामाभ्या नम
श्रीहनुमते नमः
प्रस्थानत्रयानन्दभाष्यकाराय नमो नम
जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यरामप्रपन्नाचार्ययोगीन्द्रप्रणीततत्त्वत्रयसिद्धौ

卐 आत्मसिद्धिः 卐

राम एव पर ब्रह्म राम एव परंतपः । राम एव पर तत्त्वं श्रीरामो ब्रह्मतारकम् ॥
सीताकान्तसमारम्भां रामानन्दार्यमध्यमाम् । रघुवरार्यगुर्वन्ता वन्दे गुरुपरम्पराम् ॥
तत्र तत्त्वत्रये द्वितीयं तत्त्वम्—

"नित्योज्ञश्चेतनोऽजः मततपरवशः सूक्ष्मतोऽत्यन्तसूक्ष्मः
भिन्नोवद्धादिभेदैः प्रतिकुणपमसौ नैकधा सूरिवर्य्यैः ।
श्रीशाक्रान्तालयस्थोनिजकृतिफलभुक्तत्सहायोऽभिमानी
जीवः सम्प्रोच्यते श्रीरघुपनिसुमते ? तत्त्वजिज्ञासुवेद्यः ॥१।७॥" इति ।

"विद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः" "पृथगात्मानं प्रेरितार च मत्वाजुष्टस्ततस्तेनामृतत्व-मेति" "आत्मानंचेद्विजानीयादयमस्मीतिपुरुषः । किमिच्छन् कस्य कामाय शरीरम-

पश्चिमाम्नाय श्रीरामानन्दाचार्यपीठाधीश्वर
स्वामीरामेश्वरानन्दाचार्यविरचित

तत्त्वदीपः

सीताकान्तसमारम्भां रामानन्दार्यमध्यमाम् । रामप्रपन्नगुर्वन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम् ॥

ननु निष्फले कर्मणि प्रेक्षावता प्रवृत्तिर्नभवति "नकुर्यान्नि फल कर्मनात्यायामसुखोदयम्" इतिस्मृते । अनर्थकात्मतत्वे ज्ञानाय प्रवृत्तिर्नभविष्यतीत्याशङ्क्याह **"मोक्षोपायत्वंत्रते"** इति । अर्थात् यत आत्मज्ञान मोक्षस्य जनकमतस्तादृशप्रकरणमारब्धव्यमेव । कथमात्मज्ञानस्यतथात्व तत्र श्रुतिप्रमाण दर्शयितुमाह **"विद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः"** इत्यादि । अयमर्थ श्रुते, अत्र विद्वानि-त्यस्यात्मज्ञानवानित्यर्थ, तत्व वेत्तिविजानाति इति व्युत्पत्ते । तथाच विद्वासमात्मज्ञानिनमुद्दिश्य नाम-रूपात्मकससारस्याभाव विधत्ते । ततश्च धनीसुखवानित्यत्रधनवन्तमुद्दिश्य विधान क्रियते तत्र "उद्देश्यतावच्छेदकप्रयोज्यत्वतत्कालावच्छिन्नत्व च सिद्ध्यतीति धनवानेव धनसत्ताकाले एव सुखी लक्ष्यते नतुधनाभावे सुखी भवतीति धनजन्यत्वधनसमानकालिकत्व भवद्भवति सुखजनकत्व धनस्य ।

नुसंज्वरेत्" "तरतिशोकमात्मवित्" इत्यादिवेदान्तवाक्यं परावरात्मज्ञानस्यनित्य निरतिशयज्ञानानन्दात्मकमोक्षोपायत्वं ब्रूते इति श्रूयते। तदेतत्सर्वतन्त्रप्रसिद्धमेवेत्यत आत्मतत्वनिर्णायकमात्मसिद्धिनामकं प्रकरणमारभ्यते।

तथैव प्रकृते आत्मज्ञानस्योद्देश्यतावच्छेदकतया विधेयेमोक्षेजनकत्वमर्थत एव सिद्ध्यतीति। द्वितीयमन्त्रेण परमात्मप्रपत्तेरेवमोक्षजनकत्वमायातीति सिद्धान्तवेदिन। केचनतु अनन्याभक्तेज्ञान रूपतयाऽर्थतो ज्ञानस्यैव तथात्वमिति वेदयन्ति। तृतीयमन्त्रस्तु "आत्मान चेद्विजानीयादित्यादिना साक्षादेवात्मज्ञानस्यमोक्षहेतुत्व सूचयति। "तरतिशोकमिति मन्त्रस्तु प्रथममन्त्रवत् उद्देश्यतावच्छेदक प्रयोज्यत्व विधेयेभवतीति नियमेनात्मज्ञानस्य मोक्षजनकत्वमावेदयतीति। विशेषस्त्वन्यत्रानुसन्धातव्योविज्ञै। श्रुत्यक्षरादेव प्रकरणस्यारभात् सर्वमङ्गलरूपा श्रुतिरेवमङ्गलम्। सीताकान्तेत्यत्र सर्वेश्वर श्रीसीतानाथ आदिस्वरूपोऽनन्तरवर्तिन सर्वेश्वरीश्रीसीता श्रीहनुमत् श्रीब्रह्मा श्रीवशिष्ठ श्रीपराशर श्रीवेदव्यास श्रीशुकदेव श्रीपुरुषोत्तमाचार्यबोधायन श्रीगङ्गाधराचार्य श्रीसदानन्दाचार्य श्रीरामेश्वरानन्दाचार्य श्रीद्वारानन्दाचार्य श्रीदेवानन्दाचार्य श्रीश्यामानन्दाचार्य श्रीश्रुतानन्दाचार्य श्रीचिदानन्दाचार्य श्रीपूर्णानन्दाचार्य श्रीश्रियानन्दाचार्य श्रीहर्यानन्दाचार्य श्रीराघवानन्दाचार्या ज्ञेया। मध्यवर्तिनस्तुस्वयमाचार्या प्रस्थानत्रयानन्दभाष्यकारा जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यचरणा। अन्ते च महामहोपाध्यायपदविका जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यरघुवराचार्यपादा वेदान्तकेशरिणोऽस्मत्परमगुरुचरणा एषामध्येस्थिता श्रीभावानन्दाचार्य श्रीअनुभवानन्दाचार्य श्रीविरजानन्दाचार्य श्रीआशारामाचार्य श्रीरामभद्राचार्य श्रीरघुनाथाचार्य श्रीविश्वभराचार्य श्रीराघवेन्द्राचार्य श्री वैदेहीवल्लभाचार्य श्रीकोसलेन्द्राचार्य श्रीरामकिशोराचार्य श्रीजानकीनिवासाचार्य श्रीसाकेतनिवासाचार्य श्रीजानकीजीवनाचार्य श्रीभरताग्रजाचार्य श्रीहनुमदाचार्या। एतेन तत्त्वत्रयसिद्धिकाराजगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यरामप्रपन्नाचार्ययोगीन्द्राश्चत्वारिंशत्तमास्तट्टीकातत्त्वदीपकार पश्चिमाम्नायश्रीरामानन्दाचार्यपीठाधीश्वरस्वामीरामेश्वरानन्दाचार्य श्चैकचत्वारिंशत्तवाचार्य इति श्रीसम्प्रदायपरम्पराशोधिता वेदितव्या। अत्र परावरात्मतत्व विषय परमतनिरासोनान्तरीयकतया गौण। आत्मनिर्णयश्च साक्षात्प्रयोजनम् मोक्षस्तु परपरयाप्रयोजन ध्यानोत्तर जायमानत्वात्। मोक्षाभिलाषी कश्चिदधिकारी प्रकरणविषययो प्रतिपाद्यप्रतिपादकभाव एव सम्बन्ध। एतावताऽनुबन्धोदर्शित

अथ यत्सदिग्ध सप्रयोजन च तदेव विचारणीयतामादधाति। नहि भवति सवितृप्रकाशप्रकाशिते घटादौ पक्षिणा दन्तादिविषयेविचार। इहच श्रुत्यैवात्मतत्वस्य विनिश्चये जाते सशयाभाव रूपपक्षतोया अभावात् कथमात्मतत्वविचारे प्रवृत्तिरितिचेत्? अत्र केचित्समादधति—यद्यपि "तरतिशोकमात्मविदित्यादिश्रुति वचनेन शाद्वविनिश्चये जातेपि प्रसिद्धमहाबुद्धिमतामनेकप्रकारक कुतर्कश्रवणवत श्रुतितात्पर्ये एव सदेहेन श्रुतितात्पर्येपि सशयेन तदाहितसशयाद्विचारे प्रवृत्ति-

तत्र विचार्यमाणे आत्मतत्त्वेजीवेपरात्मनि च सन्ति वादिनामनेकविधाविप्रतिपत्तयः। तथाहि जीवात्मतत्वं तावत् शरीराकाराकारपरिणतभूतचतुष्टयं पृथिव्यादिकमेवात्मानं मन्यन्ते। तदन्ये तु चक्षुरादीकानीन्द्रियाण्येवात्मेति। तदितरे मन एवात्मा। प्राण एवात्मेति केचन अध्यस्तज्ञातृत्वमहं प्रत्ययाविषयंबोधमात्रमेवेत्यन्ये। करणकलेवरमनः प्राणज्ञानविविक्ताकाशवदेवाचेतन आगन्तुकज्ञानसुखादिविशेषगुणवानहङ्कारविपय इति तदन्ये। सांख्यास्तु ज्ञानमात्रस्वरूप एव, यथा स्वभावतो

रित्याशयमनसि निधाय प्राह **"तत्रविचार्यमाणे"** इत्यादि। वस्तुतस्तु गृहे वर्तमानयोविपयान्तरे व्यासक्तयो पुरुषयोर्गगनमेघवन्नवेत्याकारकसशयात्मकपक्षताया अभावेपि गगन मेववत् घनगर्जनश्रवणादित्येव विधानुमानस्य दर्शनेन सशये पक्षतात्वाभावात्। अत एव इच्छामात्रमपि न पक्षता विनापीच्छा गर्जनश्रवणेनानुमितेरुत्पादात्। नवा सिद्ध्यभावमात्र पक्षता, सत्यामपि प्रात्यक्षिकसिद्धौसत्यामिच्छायामनुमानेनवह्नि ज्ञास्यामीत्याकारिकाया वन्हेरनुमानस्य दर्शनात्। अतएव नहि प्रत्यक्षदृष्टेकरिणि, अनुमानेन त ज्ञानुयतते, प्रत्यक्षदृष्टमप्यर्थमनुमानेनवुभुत्सन्ते तर्करसिका" इति वाचस्पति वचनयोरविरोध। उत्तेजकेच्छासत्वासत्वाभ्या तदुभययोरविरोध। तस्मात् सिषाधयिषाविरहविरहविशिष्टसिद्ध्यभाव एव पक्षता। ततश्च पक्षताया सशयाघटित्वात्, नविप्रतिपत्ते सशयकार्योत्पादनद्वारेणानुमित्यात्मकविचारे उपयोग अपितु समयबन्धादिवत् स्वकर्तव्यतानिर्वाहार्थमादौ विप्रतिपत्ति प्रदर्शनीयैव। यद्यपीय फलतो विचारे न जनयति तथापि स्वरूपत एव तत्करोति, अन्यथा मूर्खस्य सभायाममन्दस्य हास्यत्वापत्ते। अथवा विप्रतिपत्त्या मध्यस्थो वादि प्रतिवादिनो परीक्षण करोति नियमयति। अन्यथा सामयिक कमपि विषयमालब्यतयोर्विचारे क्रियमाणे विचारणीयविषयस्य विचारो न कृत स्यादित्याशयेन विप्रतिपत्ते. प्रदर्शनमावश्यकमेवेति कृत्वाऽचार्यप्राह **तत्रेत्यादि** तत्र विचारणीयविषयेदार्शनिकास्तीर्थकरा इति शेष। तीर्थदर्शनयो समानत्वात्। अन्तरवस्थिताज्ञानविनाशपूर्वकतत्वज्ञानात्मकशुद्धिमुपजनयतिजीवस्येति दर्शन तत्कुर्वन्तीति दार्शनिकास्तीर्थकरा इति।

तत्र सर्वप्रथमोवादी चार्वाकोलोकायतिक। अयच सर्वत्र सुलभ सर्वस्यैव चार्वाकत्वात्, प्रत्यक्षमात्र प्रमाणमासाद्य यस्याकस्यामपिसभाया प्रविश्य विवादमात्र करोति। कि बहुनाऽप्रत्यक्षेप्यात्मनि, शरीराकारपरिणतपृथिव्यादिभूतचतुष्टयमात्रमेवात्माऽर्थात्, देहएवात्मा। अयमेव सर्वथा रक्षणीय पोषणीयश्च। नतु शरीरव्यतिरिक्तो जीव परलोकगन्ता। अतो देहपातानन्तरतदुद्दिश्यश्राद्धादिकरणेन वित्तव्ययोमुधैव जायते। एतादृशोपदेशकस्य वचन श्रुत्वा त प्रशसत् बहुमानयति लोक इति। न च पृथिव्यादेर्जडत्वेनतत्समुदायरूपे देहे चैतन्य कथमिति चेत्, प्रत्येकस्मिन्नसत्वेपि तत्समुदाये विलक्षणशक्तेरन्यत्रदर्शनात्। यथा ज्वरनाशकताशक्ते केवलतुलसीपत्रे-

विशुद्धोऽति स्वच्छोपिस्फटिकमणिर्जपाकुसुमादिसंनिधानवशेन तथा तथारक्तिमनैल्या दिभावेन प्रतिभासते तथैवातिनिर्मलोपि स्वरूपतः पुरुषः सत्वादिगुणविशिष्टप्रकृत संनिधानात्सुखदुःखादिभावभासते, स्वतोनित्यंज्योतिः स्वभाव एवेति प्रतिपादयन्ति ।

अन्येतु–ज्ञानानन्दस्वभावमेवात्मानं मन्यन्ते । आश्रयस्यानुकूलतया प्राप्तः आनन्दानन्दसुखादिव्यपदेशोज्ञानविशेष एवात्मेति केचन ॥

यथाऽत्मनः स्वरूपे विप्रतिपत्तयः प्रदर्शितास्तथैव तदीयग्राहकप्रमाणेपि तानि-वादिनां पृथग्भूता एव भवन्ति । तथाहि केचन प्रत्यक्षप्रमाणमात्र समधिगत आत्मेति

केवलमवुनिचादर्शनेऽपि समिलितनयोस्तच्छक्ते प्रादुर्भावात् । यथावा मद्यावयवप्रत्येकद्रव्ये-मादकताया अदर्शने तत्समुदायेमादकताया दर्शनात् यथावा प्रत्येक द्व्यणुके दृश्यत्वस्यासत्वे-पितत्समुदायत्रसरेणोर्दृश्यतावदेव प्रत्येकभूतेषु चेतनाया, असत्वेपि तत्समुदायात्मकादेतत्सौ लभ्यात् । अत्रत्य विशेष विवरणचार्वाकमतपरीक्षायामग्रे विवेचयिष्यामि । तस्माद्देह एवात्मेतिचार्वाकासगिरन्ति ॥

इन्द्रियाण्येवात्मेतिकेचन इति । श्रुतौ "वगदध्रे" इत्यादिप्रकरणे इन्द्रियाणा परस्पर कलह तेषा स्वविवादशमनार्थं प्रजापतिगमन विवादविमोचनमित्यादि चेतनवत् गमनादिक च चेतनकार्यमवलोक्य तेषामेवमिलितानामात्मत्वमिच्छन्ति वहव प्राजापत्त्या । **मन इति केचने**ति । अनित्यस्येन्द्रियस्यात्मत्वे इन्द्रियादिविलोपे स्मरणादिकनस्यादित्यालोच्य नित्यस्य मनस एव तथात्वमिच्छन्तिकेचनचार्वाकविशेषा इति ।

प्राणमपरे इति । मनसोऽणुत्वेन तत्स्थसुखदु खेच्छादोषादीना साक्षात्कारो न स्यात् , प्रत्यक्षे महत्वस्य कारणत्वादित्याद्यरुचि विभाव्य प्राणस्यैवात्मत्वमाहु केचन, तथा पूर्वापेक्षया प्राणस्य श्रेष्ठत्वादपि ।

अत्र प्रकरणे **अन्ये केचन** इत्यादिनायस्यवादिनो यन्मत तत् तदीयपरीक्षा समये स्पष्ट रूपेणनामग्राहकतयाच विविच्य प्रदर्शित भवतीत्यनस्तत्र एवावगन्तव्यम् ।

प्रमेयसिद्धि. प्रमाणाद्धीति नियमेन स्वरूपप्रमाणाभ्या पदार्थसिद्धिरिति लोकोक्त्या च सिसाधयिषितवस्तुन. साधनमावश्यकमितिप्रकृते आत्मन सिद्धौकर्त्तव्यतायामात्मन स्वरूप प्रमाणमेतदुभयप्रदर्शनमावश्यकम् । एतयोर्विचारो विप्रतिपत्तिप्रयोज्य एवेति प्रथमस्वरूपविषये विप्रतिपत्तिरुदाहृत । तदनन्तर तदीयप्रमाणेष्वपि तत्प्रदर्शनमावश्यकमिति मनसिनिधायप्राह **यथा-ऽत्मनःस्वरूपेविप्रतिपत्तयः प्रदर्शिताः** इत्यादि । अयमाव पदार्थसिद्धौ प्रत्यक्षमात्र प्रमाणमिति चार्वाकमतम् । प्रत्यक्षानुमाने वैशेषिकबौद्धौ। प्रत्यक्षानुमानागमा इति साख्या । प्रत्यक्षानुमानोप-मानशब्दा इति नैयायिका. । अर्थापत्तिसहितास्त इमे इति प्रभाकरा । अनुपलब्धि साहता इमे,

मन्यन्ते। अन्ये केचन प्रत्यक्षेणानुमानेन च ज्ञायते। अन्येतु द्वितीयप्रमाणमात्रवेद्यः। आगममात्रवेद्य इति तदपरे। रूपाद्यभावेन मानसप्रत्यक्षप्रमाणक इत्यपि कश्चित्।

इतिभाट्टा। तत्र "केचन प्रत्यक्षप्रमाणमात्र" इत्यत्र केचनपदेन चार्वाकस्य ग्रहणम्। एतन्मते देहस्यैवात्मतयातस्य तत्समधिगम्यत्वात्। न चैतन्मते कथंचिद्द्रव्यस्यचक्षुषा ग्रहणेपि गुणकर्म-जात्यादिकारूपिणा ग्रहणं कथं तेन वाच्यम् युक्त्यानन्त् सिद्धे। तथाहि न्यायमते संयोगादि षट् सनिकर्षसहकारेण चक्षुरूपादिरहितगुणकर्मजात्यभावादीन् प्रत्यक्षयति तथैवैतन्मतेपि तद्दण्डवारित भवेत, अन्यत्र पक्षपातात्। यथावा लौकिकसनिकर्षैरलौकिकोपि सनिकर्षः स्वीकृतः। तेनाप्य निर्वाहे अनुमानादिकप्रमाणमङ्गीकृत्यास्तिकः स्वात्मानं सर्वज्ञमिव विजानाति। तथैवैतन्मते ह्रस्वदीर्घदीर्घतरादिव्यामिज्ञानादिसनिकर्षानाश्रि यचक्षुपैव लौकिकालौकिकसर्वमेव ज्ञानस्यादेवेति युक्त एव केचनपदेन चार्वाकस्य ग्रहणं तदीयप्रमाणविषयकप्रतिपत्तिप्रदर्शनमपि। अत्रत्य वैशिष्ट्य तत्वोपप्लवग्रन्थसम्बद्ध सति प्रकरणेऽत्रैवटीकाया क्वचिद्दर्शयामि।

द्वितीय **अन्येकेचन** इत्यनेन वैशेषिकसौत्रान्तिकयोर्ग्रहणम्। इमे यथायथं प्रत्यक्षानुमाना-भ्यामात्मानं ज्ञातुमिच्छन्ति। अन्येतु द्वितीयप्रमाणमात्रवेद्य इति। अत्रमात्रपदेन प्रत्यक्षस्य निरा-करणम्-यथाघटादिविज्ञानवाह्यघटादिसालंबनं तथा अहमिति आन्तरमपि सविषयकं विज्ञानत्वात् नीलपीतादिविज्ञानवत्। एतन्मते सर्ववस्तु विज्ञानमयम्। विज्ञानं द्विविधंवाह्यमाभ्यन्तरं च प्रवृत्ति विज्ञानमालयविज्ञानभेदेन द्विविधम्। तत्र प्रथमंवाह्यवस्तुविज्ञानम्, द्वितीयमात्मपदवाच्यम्। तदुक्तम् "तत्स्यादालयविज्ञानं यद्भवेदहमास्पदम्। तत्स्यात् प्रवृत्तिविज्ञानंयन्नीलादिकमुल्लि-खेदिति। तदेतत्सर्वं क्षणिकं सत्वात्। मेघमालावदित्यनुमानेन ज्ञानज्ञेयप्रपञ्चयोः क्षणिकत्वम-भ्युपैति। अतएव जातविनष्टत्वादनुमानमात्रवेद्यम्। ज्ञानज्ञेययोः सहोपलभनियमेन निय-मतोऽभेद एव भेदस्त्वविवेकः। तदुक्तं "सहोपलभनियमादभेदोनीलतद्धियोः। भेदस्त्वभ्रान्ति विज्ञानैर्दृश्यतेन्दाविवाद्वये" इति। यथाऽविद्यमानमेव रजतम् विद्यमानवत् शुक्तौ प्रतिभासते, यथावा अविद्यमान एव द्वितीयश्चन्द्रमा सद्वितीयवदाभाति तथैव वस्तुनोऽविद्यमानमेवज्ञेयजगत् ज्ञाने पृथक्तयागृह्यते,ज्ञानज्ञेययोः सहोपलभनियमादेवेति **आगममात्रवेद्यइतितदपरे** इति। येयमस्मीति बुद्धिविषयतया प्रतिभासते, तत्राह बुद्धेः देहादिविषयालंबनातयैवोपपादनसंभवेन येयेसंघातास्तेपरार्थाः इति नियमस्य क्वाचित्कतया, अनुमानस्याप्रयोजकत्वेन च, परिशेषादागममात्रवेद्यः "ब्रह्मसत्वे प्रमाणं च शास्त्रमेव सुनिश्चितम्। 'तन्त्वौपनिषद' इत्येतच्छ्रुतिवाक्यप्रमाणतः॥" (श्रीबोधायनम-तादर्शे १३१) इत्याद्याचार्योक्तेरितिश्रोत्रियमतम्, **मानसप्रत्यक्षग्राह्य** इति "अहङ्कारस्याश्रयोऽ-यमनोमात्रस्य गोचरः' इति नियमेन "मनसैवानुद्रष्टव्य" इत्यादिश्रु याचमनोमात्रग्राह्य इति भाट्ट-तार्किकयोर्मतम्।

घटपटादिसकलप्रत्यक्षेषु ग्राहकतयैवात्मा प्रत्यक्ष इति प्रभाकरः। ज्ञानस्वरूपत्वेनोत्पाद विनाशरहितस्वभावकः स्वयं ज्योतिः स्वरूप इति सांख्याः। एतादृशश्चायमात्मा यथा संभवंशब्दानुमानयोगिप्रत्यक्षैः आत्मेतरसकलपदार्थविलक्षणस्वभावतयाविशदतया विशदतरतया विशदतमतया गृहीतोयाथार्थ्येन प्रत्यक्षीकृतो भवति।

आत्मपरिणामेपि विप्रतिपत्ति दर्शयन्ति। केचन आत्मापरमपरिमाणवान्,

ग्रहाकतयैवात्मा प्रत्यक्ष इति प्रभाकरमतम्। एतन्मते यद्यद्ज्ञान भवति, तत् ज्ञातृज्ञेयज्ञतिविषयघटितमेव भवत्यतस्त्रिपुटिज्ञानमिति कथ्यते। तत्रात्मानो ग्राहकतयाऽर्थाद् ज्ञातृतया, विपयस्य ज्ञेयत्वेन ज्ञानस्य स्वरूपतयेति ज्ञानमात्रत्रितयावभासकतया, नीलपीतादि प्रत्यक्षे, यथा घटस्तज्ज्ञानतदीयज्ञाताऽत्माचसर्वमेतत् त्रितय प्रकाशते, तथैवज्ञानमात्रे एव ग्राहकतयाऽत्मनो ग्राह्यतया विषयस्यमितित्वेनमितेरिति सर्वज्ञानेषु आत्माप्रत्यक्ष एवेति। नित्यप्रकाशरूपतया स्वय ज्योति रवरूप इति साख्यमतम्, "अत्राय पुरुप स्वय ज्योतिर्भवति" इत्यादि श्रुत्या, अनवस्था भयाद् ज्ञानस्यज्ञानान्तराऽकर्मतया, कृतप्रणाशाकृताभ्यागमदोषभयात् सर्वथोत्पादविनाशरहितोबोधरूप स्वय प्रकाश इति तन् मतम्।

सिद्धान्तमतमाह **एतादृशश्चायमात्मा** इत्यादि। यथोक्तगुणविशिष्टोयमात्मा, सर्वान्तरतया गृहीतो जीवत्वेन श्रुतिप्रतिपादितस्वप्रकाशतया, बाह्यशरीरेन्द्रियादिव्यावर्तकसर्वथा नित्यत्वाणुत्वज्ञानकर्तृत्वादिप्रकारेण वेदान्ताद्यागमद्वारा विशदतया गृहीत तत श्रवणादनन्तरामतव्यानाऽपरपर्यायमननद्वारेण विशदतरतया परिगृहीत युक्तयुञ्जानयोगजप्रत्यक्षद्वारेण समधिगतो विशदतमतयाऽवगत आत्मा साकेतप्रतिरूपमोक्षे स्वभावसिद्धविकास, सकोचक कर्माद्यभावेन सर्वथाऽसकुचितप्रत्यक्षज्ञानप्रकाशालोकेन स्वरूपतो गुणतश्चानुभूयमानो भवतीति सिद्धान्तसिद्ध सर्वकलङ्करहित पक्षपातविरहितै परिगृहीतमिति।

सर्वोपि वेदप्रामाण्याभ्युपगन्तृक आस्तिको नास्तिको वा द्रव्यगुणादिपदार्थान्तर्गत प्रथम द्रव्यपदार्थान्तर्गतमेवात्मान मन्यन्ते। तत्र "तत्रावस्थाश्रयो द्रव्य मत वेदान्तवेदिभि। आमन्तुका पृथक्सिद्धोधर्मोऽवस्था प्रकीर्तिता" इत्याद्याचार्योक्ते द्रव्यस्यावस्थाश्रयत्व गुणक्रियावत्व समवायिकारणत्वद्रव्यत्व जातिमत्व वा लक्षणमाचक्षते। अर्थात् द्रव्य गुणानामधिकरण भवति। एवञ्च पृथिवी प्रभृतिद्रव्येषु यथा योग्य रूपादयो गुणास्तथा चतुर्विधपरिमाणेषु यथा योग्य कश्चित परिमाणोपि अवश्यमेव तिष्ठतीति तथैवात्मनोपि द्रव्यत्वात् तत्र कतमत् परिमाण विद्यते सशयात्त स्यात्मनि परिमाणदर्शनाय वादिविप्रतिपत्तिं दर्शयितुमाह **आत्मपरिमाणेपि विप्रतिपत्तिंदर्शयन्तीति** तत्परिमाणमणुह्रस्वदीर्घमहत्, भेदाच्चचतुर्विधम्, तत्र ह्रस्वदीर्घत्वयो. सापेक्षत्वेन अणौ मह-

अन्येमध्यमपरिमाणवान् अणुपरिमाणवानिति वा केचन। अन्येकेचन स्वभावतः परिमाणविरहितोपि व्याप्यवस्तुनः परिमाणद्वारा सम्पादितपरिमाणः। तत्रापि व्याप्ति- त्येव समावेश इति कृत्वा मुख्यतो मूलेऽणुमहतोरेव विप्रतिपत्ति। बाद्यनुरोधात् म'यमस्यापि परिग्रह। तत्र न्यायसांख्यकेवलाद्वैतवादिन आत्मनो व्यापकत्व मन्यन्ते। उपाधिभेदबलेन व्यापकस्यापि, उत्क्रान्त्यादिक वर्णयन्ति, व्यापकस्य स्वतो निष्क्रियत्वात्। क्रियावतश्चानित्यत्वनियमेनात्मनस्तथा स्वीकारे कृतप्रणाशादिदोषापातात्। तस्मादात्मा व्यापकपरिमाणवानेव। तथा व्याप्यस्यैकदा एकत्रैवसत्वेन तत्रैव तदीयादृष्टादिकमपिस्यात् एव स्वीकारेऽनिदूरे तत्तदर्थं निर्मीयमाणप्रासादादिस्थले तददृष्टाभावेन तदुपभोगायतत्तत्कार्यं न पर्याप्तमिति कृत्वा तस्य व्यापकत्वमेव, तथा सति जीवस्य सर्वत्र सत्वात्तदर्थं तत्रापि कार्यं भवत्येव। अन्ये जैनास्तु व्यापकस्य गमनासंभवात् मनुष्यशरीर परित्यज्य पुत्तिकाशरीरकर्मवशात् प्रविविक्षोर्जीवस्य पुत्तिकादिलघुशरीरे प्रवेशो न स्यात् तथा कीटपतंगादिशरीर परित्यज्य मनुष्यशरीर गजादिशरीर प्रविशतो जीवस्य कार्त्स्न्येन तत्रावस्थानमपिन स्यात्। तस्मात् आत्मनोऽवयवा संकोचविकाशशालिनस्तेचावयवा स्वल्पशरीरप्रवेशकाले संकुचन्ति दीर्घेचविकशन्ति, ततश्च जीवस्य प्रवेशनिर्गमोनानुपपन्नौ भवेताम्। एवञ्च यावान् शरीर परिमाणस्तावानेवजीवस्यापि न तु जीवस्य परिणामो व्यापकोऽणुर्वेति।

केवलकर्मनिर्जरार्थजीव केवलि समुद्घातेन स्वावयवान् लोकालोकव्यापक कृत्वाक्षणेनैवघातिकर्माणि निर्जरयतीति तत्काले कथंचित् परममहत्परिमाणको भवतीत्यनेकान्तवादिनामुद्गार इति विशेषो मत्कृतचिदात्ममीमांसातो ज्ञातव्य इति जैनमते देहपरिमाणो जीव।

अन्येत्वत्रापरितुष्यन्त अणुपरिमाणमेव जीवस्य स्वीकुर्वन्ति। एव सति शरीरान्तरगमनागमनादौ न कोपि दोषो भवति। अन्ये वेदसद्युक्त्यादिपक्षपातिन —"बालाग्रशतभागस्य शतधाकल्पितस्य च। भागोजीव सविज्ञेय स चानन्त्यायकल्पते' (५।९) एषोणुरात्मैष द्रष्टा' इत्यादि श्रुतिमानत। अणुश्चचेतनो जीवोद्रव्यरूपो मतोबुधै" (श्रीबोधायनमतादर्श ८६०) "तत्राणुचेतनोजीव सच्चिदानन्दलक्षण" (श्रौतप्रमेयचन्द्रिका ५।१) "नित्योज्ञश्चेतनोऽज सततपरवश सूक्ष्मतोऽन्त्यन्तसूक्ष्म" (श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर १।७) "जीवोऽणुश्चेतनो व्याप्तो ज्ञानेनाखिलवर्ष्मणि झटितितेन जानाति सर्वदेहसुखादिकम्" (श्रीरामानन्दसिद्धान्तसार २९) 'स चाणुचेतन" (श्रौतार्थसंग्रह) इत्यादिकसच्छास्त्रैकप्रामाण्यवन्त सनातनीया श्रीरामानन्दीयास्तु आत्मनो व्यापकपरिमाणस्वीकारे तथा मध्यमपरिमाणस्वीकारे उभयपक्षेपि दोषमाकलय्य, ते तस्याणुपरिमाणमेवाद्रियन्ते। तत्र च माध्ववल्लभप्रभृतिका अन्तर्भूता। इमेऽणुपरिमाणमेवजीवस्य रोचयन्ते। न च जीवस्याणुत्वे क्रियावत्व स्यात् सक्रियत्वे च कार्यपृथिव्यादिवदनित्यत्व च भवेदिति प्रकृतपक्षेपि कृतप्रणाशादिदोष आपतेदिति वाच्य, क्रियावतो नियमतोऽनित्यत्वमेवेति नियमस्य मनसि व्यभि-

बोधमात्रेण स्वरूपत इति । एवमेनं प्रकृतजीवं कश्चित्क्षणिकं घटादिवदेव स्वीकरोति बौद्धः । यावत्पर्यन्तं शरीरे उष्मोपलभ्यते तावदेवजीवावस्थानमित्यपि प्राकृतः । प्राकृत चारात । मनसि क्रियावत्व विद्यते, "क्षितिर्जल तथातेज पवनोमन एव च । परापरत्वमूर्तत्वक्रिया वेगाश्रया अमी" इति नियमेन मनस क्रियावत्वेऽयनित्यत्वप्रतिद्वन्दिनित्यत्वस्वीकारात् । यद्यपि मनस स्वरूपेतत्परिमाणे विगानेपि तन्नित्यत्वेऽन्तत प्रवाहनित्यत्वपक्षे सर्वेषामेकमतस्यैवप्रायो दर्शनात् । न च मनसोऽणुत्वे तादृशस्य तस्य शरीरस्य क्वचिदेकदेशे एव व्यवस्थितत्वात् सकल शरीरव्यापकसर्वाङ्गीणसुखाद्यनुभवो न स्यात् । भवति च निदावे गङ्गाम्भसिनिमज्जतोनरस्य सर्वाङ्गीणसुखोपलब्धिरिति वाच्यम, आत्मन स्वरूपेणाणुत्वेपि ज्ञानगुणद्वारातद्व्यापित्वश्रवणात् "जीवोऽणुश्चेतनो व्याप्तो ज्ञानेनाखिलवर्ष्मणि । झटितितेन जानाति सर्वदेहसुखादिकम् ॥२९॥" इति श्रीटीलाचार्योक्ते । तथैव—"दीपज्योतिरिव ज्ञान जीवस्य व्यापक मतम् । हृत्स्थो जीवोऽखिल वेत्ति ततोदेहसुखादिकम् ॥२८॥" इत्यादिरूपेण श्रीरामानन्दसिद्धान्तसारे स्वामिश्रीवैष्णवाचार्योक्तेश्च हरिचन्दनविन्दुवदेव । यथा हरिचन्दनविन्दु शरीरैकदेशे सल्ग्नोपि सर्वशरीरगतमाल्हाद करोति, तथैवात्मनोऽणुत्वेपि तदीयगुणभूतज्ञानस्य व्यापकवत्तया सर्वशरीरगतसुखाद्युपलब्धिर्न विरुध्यते । अथवा मनस साहाय्येन तथा करोति । अतएव "शिरसि मे वेदनापादे मे सुखमित्यपि प्रतीति समर्थिता भवतीति । स्वरूपतोऽणुत्वेपि गुणतो व्यापकत्वस्याभ्युपगमे न कोपि विरोधस्तस्मादणुरात्मेत्यपि पक्ष प्रदर्शित । अत्रत्य विशेषतत्त्व प्रदीपचिदात्ममीमांसाया श्रीआनन्दभाष्यदीपे वा द्रष्टव्यमिति दिक् । यथाऽत्मन परिमाणेवादिनामनेकविधमत प्रदर्शित विचारकारणीभूत संशयजनकम्, एवमयमात्माकियत्काल यावदवतिष्ठते इति कालसम्बन्धेऽपिताविप्रतिपत्तिर्दर्शयति **क्षणिक** इत्यादि अयमात्माक्षणिको जातविनाशीत्यर्थ । एतन्मत बौद्धानाम् । एतन्मते यदा पदार्थ उत्पद्यते, तत्रोत्पादकसामग्र्या समुत्पद्यते, तत्रोत्पादकसामग्री विनाशकसामग्र्या सवलितैव, यदि प्रथमक्षणे समुत्पद्यविनाशकसामग्रीमपेक्ष्यविनश्येत तदास्थिर एव नकोप्यस्य विनाशक स्यात् । तावत्काल स्थिर चैन क पश्चान्नाशयिष्यतीति तन्नियमात् । तस्माद्विनाशकसामग्रीसवलित एव जायते इति यदैवोत्पादस्तदैव विनाश इति तस्य क्षणिकत्वम् । यत् सत् तत् क्षणिकम् सन्तश्चेमे आत्मादिका भावास्तस्मात् क्षणीका एव । मेघमालावदेव । तस्माद् भावत्वादेव बौद्धा आत्मानमपि क्षणिकमेव सगिरन्ति ।

नचतस्य क्षणिकत्वे कालान्तरभाविस्वर्गमोक्षादिव्यवस्था नोपपद्येतेतिवाच्यम् प्रतिक्षणमालयसतानधाराया प्रचलनेन पूर्वपूर्वविज्ञानजनितसस्कारस्योत्तरोत्तरसजातेषु सक्रमणेन पूर्व पूर्वतर संतानस्य विनाशेपि तत्सस्काराणा दद्त्तरोत्तरे सचरणात् स्मरणादीनामुपपादनसभवात् । तदुक्तम् "यस्मिन्नेवहि सन्ताने आहिताकर्मवासना । फलं तत्रैव सधत्ते कार्पासेरक्तता यथा"इति ।

प्रलयपर्यन्तजीवोऽवतिष्ठते इति ब्रह्मदेवादयः। यावद् यस्य जीवस्यमोक्षो न भवतिताव त्पर्यन्तं तस्यावस्थानमिति, औडुलौमिमतानुवर्तिनां मतम्। कूटस्थनित्य इतिबहवः। एवं सर्वशरीरेष्वेक एवजीव इति कश्चित्। शरीरभेदाद्भिन्न इति वा केचन।

यथा यस्मिन् कार्पासवृक्षेलाक्षारसावसेक क्रियते तत्रैव कालान्तरे सतानपरपरयारक्तताऽनुगता भवति। यथावा मृगमदवासनावासितवसनादिवत् पूर्वपूर्ववासनाया सचारो भवति तथैव पूर्वविज्ञानस्थ वासनाकर्मादीनामुत्तरोत्तरगमनात्। न चैव तथा सतिमातृगनवासनायास्तज्जातशिशावपि सस्कार-सचारेमात्रानुभूतवस्तुन पुत्रस्यापि स्मरणमापद्येत् मातुरालयविज्ञानपूर्ववृत्तित्वादिति वाच्यम्, उपादानोपादेयभावस्य नियामकत्वेन पूर्वदोपाभावात् अर्थात् न केवल वासनाया सचारेपूर्ववृत्ति-त्वमात्रनियामक येन कथितदोषापादान शोभेत, किन्तूपादानगतवासनादेरुपादेये सचार इति नियम। मातापुत्रस्यनोपादानमर्थात् समवायिकारण भवति, किन्तु निमित्तकारणमेव केवल भवति, समवायिकारण तु पित्रोरजोवीर्यंच, जाते पुत्रे तदीयरजोवीर्याद् समुदितसताने पूर्वकाले-स्थितसस्कारादेरेवतदुत्तरसन्ताने गमन भवतीति। न च वासनायागुणतया गुणस्य च क्रिया रहितत्वेन कथमुत्तस्मिन् गमनमितिवाच्यम्, उत्तरस्मिन् तदुत्पत्तेरवसक्रमपदार्थत्वात्, नत्वत्र सक्रमण क्रिया एव येनत्वदुदीरितदोषापादान स्यादिति। तथा च क्षणिकशरीरेऽतिशयविशेष कल्पनचैव सर्वेहलौकिकपारलौकिकव्यवस्थाया उपापादनसभवेन प्रामाणिकस्थिरात्मवादकल्पन मुधैवेति। एव वाह्याङ्कुरादिष्वपिकूर्वद्रूपत्वशक्त्यैव सर्वसभवे, सहकारिसमवधान निरर्थकमेवेति बौद्ध समय।

'यावच्छरीरोप्मस्थायीति चार्वाकमत, यावत्कालमेवदेहेषूस्मण सत्वतावदेवकालमत्रजीवो-वतिष्ठते, तदभावेप्रवसतिम्रियतेइत्यर्थ। अतएवमृतशय्याया स्थितस्यमूमूर्षोर्जीवति नवेति सशयाना वायवा हृदयदेशेहस्त निधायनिधायवायुष्मणोरस्तित्वे जीवतीति विजानन्ति, अन्यथातु अन्तिम सस्काराय नयन्तीतिचार्वाकविप्रतिपत्तिरिति। "आप्राकृत प्रलय यावदवतिष्ठते" इतिब्रह्मदेवादय सगिरन्ति। "द्विपरार्द्धेत्वतिक्रान्ते ब्रह्मण परमेष्ठिन। तदा प्रकृतय सप्तकल्प्यन्ते प्रलयाय हि।" इति प्राकृतप्रलय। तत्र "जगत्प्रतिष्ठादेवर्षे पृथिव्यप्सु प्रलीयते। आपस्तेजसिलीयन्तेतच्चवायौ प्रली-यते। वायुश्चलीयते व्यक्त व्योम्नि व्योमोऽव्यक्ते प्रलीयते अव्यक्त पुरुपे ब्रह्मन् निष्क्रले सप्रलीयते।" पृथिव्यादिक्रमेणाव्यक्तपर्यन्तस्य यदास्वस्वकारणे लयोजायते तस्य प्राकृतप्रलय इति नाम। तत्र पञ्चभूताहङ्काराव्यक्ताना लयो भवतीत्येतस्य प्राकृतप्रलय इत्याख्या जायते। तत्र ब्रह्मदेवानुयायिन कथयन्ति। ततश्चयावत्पर्यन्त प्राकृतप्रलयोनजायते तत्पूर्वमेव जीवानामवस्थान काल इति। पूर्वमतापेक्षयैतन्मते दीर्घकालावस्थान जीवानामिति।

यथा जीवात्मविषये चार्वाकादारभ्यवेदान्तमतपर्यन्ततत्तद्वादिनां विप्रतिपत्तय उदाहृतास्तथैव परमात्मविषयेपिवादिभेदप्रयुक्ता अनेकाविप्रतिपत्तयो भवन्ति। तत्र केचन चार्वाकवौद्धजैनकर्ममीमांसकसांख्याजीवव्यतिरिक्तं सर्वज्ञत्वसर्वशक्तिमत्वादि गुणकं सर्वद्रष्टारमतिरिक्तं परमात्मानं नाभ्युपगच्छन्ति। तत्र चार्वाको लोकसिद्धराजानमेवेश्वरं भजते। जैनोजीवमेव केवलिनमाह। सांख्यमीमांसकः सृष्टौकर्मणि च नास्तीश्वरप्रयोजनम्। बौद्धः सर्वथैव तदभावमाह। ये ईश्वर मन्यन्ते तेष्वपि परस्परवैमत्यमेव। तत्राद्वैतवादिनः कूटस्थं विज्ञानमात्रस्वरूपं ब्रह्मैव सत्यम्। यत्रेश्वरजीवादि भेदप्रपञ्चो नास्ति प्रमातृप्रमाणप्रमिति भेदोपि नास्ति, एतादृशेऽधिष्ठानेऽनेक शक्तिमदविद्ययैवाकाशादिप्रपञ्चो भासते, रज्जौसर्पवत्। तत्र समष्ट्यभिमानिचेतन-

आमोक्षमवतिष्ठन्ते जीवा इत्यौडुलोमिमतमिति। अर्थात् मोक्ष पर्यन्तजीवानामवस्थानम्। स च जीव कूटस्थो नित्यश्च। तत्र नित्यत्व द्विविध परिणामिनित्य कूटस्थ नित्यच। तत्रतेषुविक्रियमाणेष्वपितवेदमिति बुद्धिर्नविहन्यते तत्परिणामिनित्यम्। यथाघटादिकार्यकालेमार्दवमिति व्यवहारदर्शनेन घटादावपि मृदोऽनुवर्तनेन मृदादिक परिणामिनित्यमेव यथावा प्रकृति परिणामित्वात् प्रवाहरूपेण तदनुवर्तनात्। तदपर नित्यकूटस्थनित्य यथाऽत्मा। तत्र कूटस्थत्व सर्वथा विकाररहितत्वम्। नित्यत्व सर्वकालसत्ता, त्रिकालावाध्यत्वकालत्रयेभूतादौ सर्वथावाधराहित्यमेव। अथवा स्वरूपेणोत्पादविनाशराहित्य वेतिजीवोनित्य।

जीवात्मस्वरूपे तदीयपरिमाणे तदवस्थानकाले च विप्रतिपत्तिप्रदर्श्य जैवीयसख्यायामपि विप्रतिपत्तिर्दर्शयितुमुपक्रमते **सर्वशरीरेष्वेकः शरीरभेदाद्भिन्नोवे**ति।

यथाकश्चिद् योगी, अल्पीयसाकालेनायु कर्मक्षीणस्याद्भोगकालश्चभूयानितिमत्वा, स्वल्पकालेनैव सर्वकर्मणाशुभाशुभानाभोगायभोगोचितमनेकशरीर सङ्कल्पान्निर्मायभुङ्क्ते। तत्रजीवो मुख्य एक एव योगी शरीरतु विभिन्नजातीयकमनेकविध भवति। तथैव कश्चिदेक एव जीवोऽनेक शरीरमधिष्ठाय तत्तच्छरारानुकूल फलभोग करोति, अथवा प्रतिक्षेत्र जीवोऽनेक स्वस्वकर्मानुरूप तत्तच्छरीरावच्छेदेन फलं भुनक्ति।

अत्राह मायावादिनोऽनुयायी कश्चित्, एकजीव एव सर्वक्षेत्रेषु नचैकजीवादेभोगसाकर्यम्। अन्त करणात्मकोपाधिभेदेनभोगसाङ्कर्याभावात्। अन्येतु बन्धमोक्षस्वर्गनरकादिव्यवस्थाया प्रतिनियमदर्शनेन, तथा बन्धकालेपि कश्चिद्गुणवान् परोमूर्ख कश्चिदत्युत्कृष्टसुखवान् दरिद्रश्च कश्चित् तथाकश्चिज्जायते कश्चिन् म्रियते, कश्चिदन्धोवधिर काण, इत्यादिजननकरण मरणादीना प्रतिनियमदर्शनाजीवबहुत्वमेव रोचयन्त इत्यनेकप्रकारेणमन्यमानावादिनस्तथातथा विप्रतिपद्यन्ते जीवस्वरूपपरिमाणसख्याभेदेषु इति।

मीश्वरो व्यष्टयभिमानि चेतनं जीवः। एतन्मतेऽविद्यामात्रजीवेश्वरकल्पकोपाधिः। "मायाख्यायाः कामधेनोर्वत्सौ जीवेश्वरावुभावित्युक्तेः।

मायाऽविद्ययोर्भेदमतंतु-व्यापिका माया, व्याप्या चाविद्या। तत्र निर्विशेष चैतन्यमविद्ययोपहितं सदनेकजीवरूपेण भासते, तादृशमेव चैतन्यं माययोपहितं सदीश्वरभावेन प्रकाशते। तदुक्तम् "आच्छाद्यविक्षिपति संस्फुरदात्मतत्वं जीवेश्वरत्व जगदाकृतिभिर्मृषैवेति। तत्राविद्याभेदाज्जीवभेदः कामादिगुणप्रधानोऽविद्यावश इति कथ्यतेजीवः। मायाया एकत्वेन सत्वप्रधानतया ता स्ववशीकृत्य वर्तमानः परमेश्वरः सर्वनियामकः सर्वज्ञादिश्च भवतीति तथा तदन्ये औपाधिकमीश्वरत्वमिति। अन्येतु मायोपहितं चैतन्यमीश्वरः। मायिकान्तः करणेषु प्रतिबिम्बितं जीवः। अथवा मायायां प्रतिबिम्ब ईश्वरः। अन्तःकरणेषु प्रतिबिम्बो जीव इत्यनेकप्रकाराः भवन्ति। अन्येतु स्ववशवर्तित्रिविधचेतनाचेतनस्वरूपस्थितिप्रवृत्तिभेदः स्वाभाविकस्वेतरविलक्षणनिरवधिकज्ञानाद्यैश्वर्यकल्याणगुणार्णवः पुरुषविशेष ईश्वरः इत्येवमीश्वरस्वरूपे विनिश्चिन्वन्ति। अर्थात् "रमन्ते योगिनोऽन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि। इतिरामपदेनासौ परब्रह्माभिधीयते।" 'राम एव पर ब्रह्म राम एव परं तपः। राम एव पर तत्त्वं श्री रामोब्रह्म तारकम्। (श्रुतिः) "रामो ब्रह्मपरात्पर श्रुतिमतं भक्त्यैव निःश्रेयसम्" (स्मृति) साकेताधिपतिः सकलकल्याणगुणाकरसर्वेश्वरश्रीराम एव परमात्मा सगुणो नित्यमुक्तमुक्तजीवैरुपासना विषय इति।

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष एवेश्वर इति पातञ्जलाः तत्र पुरुष विशेष इति कथनेन नामादिविषयेपि वैमत्यं भवति तत्रैके एकएवेश्वरो हरिहरब्रह्माभास्कर इति। नामचतुष्टयं कार्यवशाद् गृह्णातीति। त्रिमूर्तिवादिनस्तुभास्कर विहायमूर्ति त्रयमेव मन्यन्ते। विष्णुशिवयोरैक्यवादिनस्तु मूर्तिद्वयमेव स्वीकुर्वन्ति। शैवास्तु-महेशमूर्तिमात्रमङ्गीकुर्वन्ति परमेश्वररूपेण। अन्येकेचन गणपति तदन्येदत्तंतदन्येनरसिंहं नारायणमित्येवं क्रमेणेश्वरस्वरूपे वहवोविप्रतिपन्ना वाक्याभासयुक्त्याभास समाश्रिता सन्ति।

यद्यपि साधारणतया सर्वेपि परमेश्वरं स्वीकुर्वन्त्येव तथापि मूर्तिविशेषेण विषयाः नित्यत्वानित्यत्वभौतिकत्वाभौतिकत्वस्वार्थपरत्वादिविषयका वहवोवितर्कामतभेदेन प्रादुर्भवन्ति। तथा परमेश्वरस्य परिजनस्थानविशेषविषयका अपि वितर्का संभवन्ति।

तथा परमेश्वरग्राहकप्रमाणविषयेपि विप्रतिपत्तयोभवन्ति । तत्र शास्त्रमात्र प्रमाणग्राह्य इति केचित् । तदन्ये आगमानुमानप्रमाणक इति । श्रुतितोनुमानतश्च-ध्यानसंस्कृतमनो ग्राह्यश्चेति वहवः । एवमीश्वरजीवयोः सम्बन्धेपि विप्रतिपत्तयो-भवन्ति । तत्रानादिविलक्षणाविद्योपादनकभेदादेवेश्वरेशितव्यलक्षणसम्बन्धो जीव परमेश्वरयोर्नतु पारमार्थिकः संबन्ध एकत्वादुभयोरित्यद्वैतवेदान्तिनः । तत्रापि प्रति-विंबवादिनस्तु बिवतो भेदस्येश्वरजीवयोरभावेपि प्रतिबिंबरूपजीवानां भेदप्रतिपत्ति-लक्षणो विशेषो विद्यते एवेति वदन्ति ।

भास्करमतानुयायीनस्तु स्वरूपतश्चेतनत्वेन जीवेश्वररयोरभेदः पारमार्थिकः भेदस्तु अविद्योपाधिक एवेति वदन्ति विरुद्धयोर्भेदाभेदयोः केवलस्वरूपेऽसंभवादिति ।

यादवप्रकाशीयास्तु जीवेश्वरयोर्नानात्वे भेदसत्येवाभेदोऽभेदोनाम अंशाशि-भावरूपएव शांशित्वादेव भेदाभेदयोरुपपत्तिः । भेदसमानाधिकरणाभेदस्यैव तादात्म्य-स्य समानाधिकरण्यार्थत्वम् । सामानाधिकरणस्थले भेदसहिष्णुः अभेदस्यैव दर्शनात्, नीलोघट इत्यादि स्थले । न सर्वथाभेदस्थले सामानाधिकरण्यं यथा घटपटयोः नवा सर्वथाऽभेदेपि सामानाधिकरण्यं घटोघट इति तत्र शाब्दबोधस्या दर्शनात् । नीलोघट इति शाब्दबोधस्य सर्वसंमतत्वात् । तत्रैव सामानाधिकरण्यं तादत्म्यं यत्रभेद सहिष्णुरभेदोभवतीति । सिद्धान्तपक्षस्तु समवायः स च परतन्त्रता लक्षः परतन्त्रताऽपृथक् सिद्धिरूपा तद्रूप एव समवायोनतुन्यायमतवत् समवायो धर्मिभ्यां-भिन्नः । तथा शेषशेषि लक्षणः सम्बन्धो जीवेशयोः स्वस्वामिभावश्च । तत्र परगतातिशयाधानेच्छा प्रक्लृप्तस्वरूपादिकत्वं शेषत्वम् । यथेष्टविनयोगार्हत्वं स्वत्वम् । भृत्य स्वामित्वलक्षणश्च सम्बन्धः । तत्र प्रेर्यचेतनत्वमेव भृत्यत्वम् । अयमेव स्वत्वभृत्य-त्वयोर्भेदः । एवञ्च अंशांशित्वलक्षणसम्बन्धादारभ्यभृत्यस्वामित्वलक्षणपर्यन्ता अनेके संबन्धा जीवेश्वरयोः प्रदर्शिता इति सर्वेप्यभिमताः सिद्धान्ते विशेषप्रपञ्चस्तु तत्तत्प्र-करणे दर्शयिष्यते ।

एवं परमलक्ष्यरूपमोक्षस्वरूपेऽपिवादिनां स्वस्वमतानुसारेणानेकविधा विप्र-तिपत्तयो भवन्ति । तथाहि, सुखदुखाद्यनुभावकस्वस्वरूपस्यात्यन्तिकोच्छेदरूप एव मोक्ष इति चार्वाकचरमबौद्धौ । "अविद्याऽस्तमयो मोक्षः साचबन्धउदाहृतः" इति नियमेनाविद्यायाः सर्वथा विनाश एवमोक्षोनत्वानन्दज्ञानलक्षणः" इति केवलाद्वैति-योगाचारौ । तथा चार्वाकमते "यावज्जीवेत्सुखं जीवेन्नास्तिमृत्योरगोचरः" इति नियमेन जीवत एव सुखादिकं भवति नतु मृतस्य यथैतन्मते तथैव शून्यवादेपि. तथैव केवलाद्वैते

तथा योगाचार मतेपिस्वरूपविनाशस्यैवेष्टतया नानन्दादिप्राप्तिरिति नैतेषां मोक्षः परम पुरुषार्थरूप इति । न्यायमतयोर्नवानामात्मविशेषगुणानामात्यन्तिकोच्छेदलक्षण एव मोक्षः । तद्दशायां काष्ठपाषाणवदेवात्मनोऽवस्थानादिति ।

सांख्यास्तु कैवल्यरूप एव मोक्षः । "वृत्ति सारूप्यमितरत्रेतिनियमेन संसारदशायां कैवल्यं विहायप्रकृतिरूपतापादनेन कैवल्यं तिरस्कृतमिव भवति. तदभावे कैवल्यमास्थायावतिष्ठते. इति कैवल्यलक्षण एव मोक्षः । अद्वैतमतैकदेशी तु ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवतीति नियमेन ब्रह्मभावसाधर्म्यलक्षण एव मोक्षः । अथवा ब्राह्मगुणसङ्क्रान्तिरेवमोक्षः । यद्वाब्रह्मच्छायाब्रह्मकान्तिप्राप्तिरेव मोक्षः । मीमांसकादयस्तु स्वाभाविकानन्दाद्याविर्भावरूप एव मोक्ष इति । अन्ये केचन ब्रह्मगुणानुभवजनितनिरतिशयसुखाद्यनुभवजनितपरमात्मकैङ्कर्यलक्षण एव मोक्ष इति ते यथा तथा वितर्कं मोक्षविषये कुर्वन्ति ।

एवं मोक्षसाधनेपि वादिनां विप्रतिपत्तयोऽनेकविधा भवन्ति । तथाहि. कर्मणामोक्ष इति कर्मवादिपक्षः । तमेव विदित्वेत्यादि श्रुतिबोधितज्ञानयोगलभ्यो मोक्ष इति केवलाद्वैतपक्षः । ज्ञानकर्मसमुच्चयलभ्य इति यादवप्रकाशपक्षः । दण्डचक्रादिन्यायेन ज्ञानकर्मभ्यां मोक्ष इति विशिष्टाद्वैत पक्षः । ज्ञानकर्मभ्यां संस्कृतान्तः करणस्य पराभक्तिरुदेति तादृशानन्यभक्त्यामोक्षः । मुक्तौ हेतुस्तु भक्त्यापरपर्यायं तैलधारावदविच्छिन्न भगवत्स्मृतिसन्तानमेव । उक्तञ्च साधनदीपिकायामाचार्यवर्यै जगद्गुरुश्रीगङ्गधराचार्यैः 'रामस्यब्रह्मणोऽनन्यभक्त्यैवमुक्तिराप्यते । भक्तिर्ध्रुवा स्मृतिः साच विवेकादिकसत्कात् । इति । ऊचुश्चतथैव भगवन्तः श्रीदेवानन्दाचार्यचरणा अपि "त्वदीयास्मृतिस्तारिका मृत्युसिन्धोः स्तथा विस्मृतिः पातिका तत्र चैव । परयोगिनां हार्दमालम्बलं त्वां श्रयेराघव सच्चिदानन्दरूपम्" इति गीतानन्दभाष्योक्तेः । "रामो ब्रह्म परात्परं श्रुतिमतं भक्त्यैव निः श्रेयसम्" इति जगद्गुरुश्रीसदानन्दाचार्योक्तेश्च "भक्त्यात्वनन्यया शक्यमहमेवं विधोऽर्जुन" इति स्मृतेः । "नायमात्माप्रवचनेन लभ्योनमेधया नबहुधा श्रुतेन । यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुंस्वाम्" "मुमुक्षुर्वैशरणमहंप्रपद्ये" इत्यादि श्रुतेश्च ।

तदेवं परीक्षकाणां विप्रतिपत्तौ सत्यां निर्णायकप्रमाणाभावेन संशयानाः पुरुषामोक्षाय न घटमाना भविष्यन्ति, इति मोक्षमार्गाद्विभ्रष्टा अनर्थमेव प्राप्नुयुर्यावत्पर्यन्तं स्वरूपतः प्रमाणादितश्चात्मा परमात्मा च न निर्णीयेत । इति तयोः सपरिकर योर्निर्णयाय प्रकृतविचारः प्रस्तूयते ।

यद्यपि, आत्मपरमात्मनोः स्वरूपतः प्रमाणतः परिमाणादितश्चभगवताव्यासेन ब्रह्मसूत्राणिनिर्मितानि। तेन सूत्रजातेन तयोरात्मपरात्मनोः स्वरूपप्रमाणपरिमाणादिभिर्निर्णयः कृत एव तथाऽनेकैः प्राचीनाचार्यैस्तादृशसूत्रार्थनिर्णायकश्रीबोधायनवृत्तिप्रमिताक्षरा प्रमिताक्षरासार श्रीआनन्दभाष्यश्रीरघुवरीयवृत्तिप्रभृतिग्रन्था अपि निर्मायातीवतदीयप्रचारः कृत एव। ततश्च तदर्थमेव नवीनग्रन्थनिर्माणे भवदीयोऽयं प्रयासः सर्वथाऽनुपयुक्त एवेति। तथापि तदर्वाचीनैराचार्यटंकभर्तृप्रपञ्चशङ्करभास्करादिभिरर्वाचीनैरात्मानं पण्डितंमन्यमानैः स्वकृतव्याख्यानैः स्वाभिमतव्याख्यानेन सूत्रार्थमन्यथा प्रकल्प्यलोकान् कुमार्गान् प्रापिताः। विमार्गगता लोका मोक्षात् विभ्रष्टा भविष्यन्ति, अनर्थं च प्राप्नुयुरितिमत्वा समस्तपूर्वाचार्यप्रपञ्चितसूत्रवृत्तिभाष्यव्याख्यानादिसाराणां यथा वदर्थं कर्तुमयं विचार आवश्यक इति तदर्थमक्षरतः स्वल्पोऽर्थतोगंभीरोऽयं विचारग्रन्थ आरभ्यते।

प्रत्यक्षप्रमाणमहं स्थूलोऽहं कृशः, इत्यत्र स्थूलत्वकृशत्वयोर्देहधर्मत्वस्य सिद्धतयाः तत्रैवदेहेऽहंत्वस्यापि सामानाधिकरण्यानुभवाद्देह एवात्मा। अहं जानामीति प्रतीतौ

"यथाजीवात्मविपये चार्वाकादारभ्य वेदान्तमतपर्यन्ततत्तद्वादिनाम्" इत्यत आरभ्य तदर्थमक्षरत स्वल्पोऽर्थतो गभीरोऽय विचारग्रन्थ आरभ्यते एतत्पर्यन्तमूलग्रन्थोऽतिरोहितार्थक पाठकै स्वयमेव विचारणीय इति।

आत्मनि परमात्मनि चानेकप्रकारिका विप्रतिपत्तय स्वरूपविषये प्रनाणादिषुच प्रदर्शिता पूर्वम्, तासा निराकरणाय, एकैकस्य मत प्रदर्श्य तन्निराकरणेन स्वमत सिद्धान्तितस्यादित्याशयेनाग्रिमप्रकरणारभकर्तु स्वमत सिद्धान्तभूत च प्रदर्शयितुमुपक्रमते **प्रत्यक्षप्रमाणमहं स्थूलोऽहंकृशः** इत्यत्रेत्यादि। अत्र प्रथमतश्चार्वाकमतनिरसनाय "अभाव ज्ञाने प्रतियोगिज्ञानस्य कारणत्वमिति नियमनिर्वाहयितु प्रथमतश्चार्वाकमत सक्षेपेण प्रदर्श्यते "प्रत्यक्ष प्रमाणमित्यादि" तन्मते ज्ञाते एव तदीय मत सुलभतया निराकृत भवेत्। सिद्धान्ते जीवात्मा शरीरेन्द्रियमन प्राणविज्ञानेभ्योभिन्न स्वय प्रकाशो नित्योऽणु प्रतिक्षेत्र भिन्न स्वत सुखी, अर्थात् स्वरूपत एवानुकूलप्रकाशस्वरूपसुखावान् सुखस्वरूप इति यावत्। अथवा स्वभावत आनन्दित्वम्, दु खादिक तु कर्मरूपौपाधिकमिति। तत्र शरीरभिन्नआत्मा" इत्यसहमानश्चार्वाक पूर्वपक्षयति। न देहभिन्नोजीवोऽपितु प्रत्यक्षप्रमाणेन देहरूप एव सिद्ध्यतीति तत्राह **प्रत्यक्ष प्रमाणम्** इत्यादि—

तथाहि, अत्र सक्षेपतस्तन्मतमित्थम्—यावज्जीवेत्सुखजीवेन्नास्तिमृत्योरगोचर। भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमन कुत" इति। लोकगाथानुरोधेन नीतिशास्त्रकामशास्त्रानुसारेणार्थकामावेव पुरुषार्थौ, धर्ममोक्षौ तु न पुरुषार्थौ तयोर्भीरुपुरुषसमतत्वात्। कामादिकमेव पुरुषार्थमन्यमाना प्राय. सर्वे

ज्ञाताऽत्माहमित्येवक्रमेण प्रकाशने, देह एवाहङ्कारविषयः स्थूलोहंकृशोहमिति प्रतीति दर्शनात्। स्थूलत्वादिकं च शरीरीधर्मः। अतः स्थूलत्वादि समानाधिकरणतया ज्ञायमानोहङ्कारो देहविषयक एव। अन्यथा व्यवहारविलोप एव भवेत्।

एव तथा भूता एव परिदृश्यन्ते। एतन्मते पृथिव्यापस्तेजो वायुरूपाणिचत्वारि भूतान्येव तत्वान्यभिमतानि। एतेभ्यो भूतेभ्य एव शरीराकारेण परिणतेभ्यश्चैतन्य समुत्पद्यते, किण्वादिभ्योमदशक्तिवत्। यथावा क्रमुकतावूलादिद्रव्याणा समवाये विलक्षणोरक्तिमा जायते। यद्यपि प्रत्येकतावूलादिषुरक्तिमोत्पादकत्व नास्ति तथापि तत्समुदितेभ्यस्तथा भवति। दथैव प्रत्येकपृथिव्यादिषु चैतन्यानुपलभेपि तत्समुदयात्तदुत्पत्तौबाधकाभावात्। तथैतादृशदेहाभावेचैतन्याभावोपिजायते। नचैतन्मतमवैदिक श्रुतावप्येव श्रवणात्, "विज्ञानघनएवैतेभ्यो भूतेभ्य समुत्थाय तान्येवानुविनश्यति न प्रेत्य सज्ञास्ति" इति श्रुतिरेव चैतन्यविशिष्टाहमास्पद शरीरमेवात्मेति वदति। ननु देहातिरिक्त कश्चिदिहलोकयात्रा निर्वाहक आत्मा विद्यते। तादृशात्मप्रतिपादकप्रमाणाभावात्। प्रत्यक्षमात्रस्यैव प्रमाणत्वात्। ननु यथा पर्वते वन्हिसत्त्वज्ञापकप्रत्यक्षप्रमाणास्याभावेपि धूमदर्शनलिंगेनाप्रत्यक्षस्यापि वन्हे सत्त्वमनुमान ज्ञापयति तथैव प्रकृते देहातिरिक्तात्मज्ञापक स्यादिति चेन्न, अनुमानस्य व्याप्तिज्ञानाधीनत्वेन तादृशस्याव्याप्तिनिर्णय प्रत्यक्षेण प्रमाणान्तरेण वा? तत्र नाद्य प्रत्यक्षदृष्टवन्हिधूमयोर्व्याप्तिनिश्चयेपि, परोक्षसाध्यहेत्वोस्तदसभवेनानुमानस्य तत्राकिञ्चित्करत्वात्।

नापि प्रमाणान्तरमिति द्वितीयपक्ष प्रमाणान्तरस्य स्वीकारे प्रमाणाभावात्। तत्रानवस्था दोषग्रस्ततयानानुमानम्, तदधीनत्वात्, शब्दादीना प्रामाण्यतु दूरापेतमेव। परिशेषात् प्रत्यक्षमात्रमेव प्रमाणम्। तच्चाह स्थूलोह कृश इति, अहत्वसामानाधिकरण्येन ज्ञायमानश्चैतन्य विशिष्ट शरीरमेवात्मेति विनिवेदयति। तस्मादेह एवात्मेति न ततो व्यतिरिक्त स इति। एवञ्च कलत्रकनकमालादिविषयसम्पर्कजनितसुखप्राप्तिरेव मोक्षरूप परमपुरुषार्थ। नच लौकिक सुखस्य स्वस्वकारणपराधीनतया तथा दु ख समिलिततया कथ पुरुपार्थत्वमिति वाच्यम्, भावानवबोधात्, अय भाव यद्यपि सुखमात्र दु खाघ्रात तथापि तत्र यद्यद् दु खप्रयोजक तदश परित्यज्य सुखमात्रस्यैव भोक्तव्यत्वात्, अवर्जनीयतया यज्ञगत तदशस्य परिहारयुक्त। यथा धान्यार्थी स पलानानिधान्यान्याहरति। तत्र यावानश सफलस्तावदेवाददाति। इतराश च परित्यजत्येव, तथैवेहापि। तस्माद् दु खभयान्नानुकूलवेदनीय सुखमपि परिहातव्यम। " नहि मृगा सन्तीतिशालयोनोप्यन्ते, भिक्षुका सन्तीति स्थालयोनाधिश्रियन्ते "इति लोकाचारात्। अनिष्टप्राप्तिभयादिष्टस्यापि परिहारोनोचित इति। तदुक्तम् "त्याज्य सुख विषयसगमजन्यपुसा दु खोपसृष्टमिति

मूर्खविचारणैषा । ब्रीहीन् जिहासति सितोत्तमतण्लाढयानूकोनामभोस्तुपकणोपहितान् हितार्थी" इति । न च पारलौकिकसुखाभावे तादृशसुखोद्देशेन विदुषा प्रवृत्ति शास्त्रविधिश्च निरर्थक एवभवेदिति वाच्यम् ? इष्टापत्त कश्चिद् धूर्तपण्डितस्त्वय वञ्चित परान् व्यामुह्यवित्तव्यय साव्यकर्मणि तान् प्रेरयति, स्वकीयलाभामाकल्य । वेदस्तु प्रमाणमेव न भवति, अनृतव्याघात दोषदुष्टत्वात् । "पुत्रकाम पुग्येष्टयायजेत" इति श्रूयते । तथा श्रुत्वा प्रवर्तमानोपि जन तत्फल पुत्रप्राप्तिलक्षण न प्राप्नोतीति वेदस्यानृतत्वम् । एवम् "अतिरात्रे षोडशिन गृह्णाति" इति विधाय पुन "नातिरात्रे षोडशिन गृह्णाती"ति निषेधकरणेन न वेदस्य प्रामाण्यम् । तथा "वेदस्य वर्णराशि रूपतयावर्णस्यचोत्पादविनाशशालितयातत्समुदायात्मकवेदस्याप्यनिन्यत्वेन न प्राण्यम् । न च वेदोनित्य श्रावणत्वात् शद्बत्ववदित्यनुमानेन तस्य नित्यत्वमिति वाच्यम् । वेदोऽनित्य कार्य त्वाद् घटादिवदित्यनुमानेन पूर्वानुमानस्य प्रतिपक्षितत्वात् । किञ्च वेदस्याप्रमाण्यमीश्वरोच्च-रितत्वेन, ईश्वरसिद्धिश्चवेदादित्यन्योन्यात् , न वेदस्य प्रामाण्यम् ।

अपि च तदनुयायिनामपि वेदस्य प्रमाण्ये परस्पर वैमत्यमेव दृश्यते । यथा कर्म-काण्डप्रवर्तका अध्वरमीमासकादय प्रतिक्षिपन्ति समुपासकम्, उपासनाकाण्डरतास्तान् प्रति-क्षिपन्ति, इत्युभययो प्रतिक्षेपेन तदुभयभागस्य प्रामाण्यमर्थत आपतत्येवनातोवेदस्य प्रामाण्य तदप्रामाण्ये तत्प्रतिपादितक्रिया विधीना कथ प्रामाण्य कश्चिन्मन्वीत । इति वेदस्य धूर्त प्रलापमात्रत्वमेव तथा विधास्तेष्वेषामाजीविकार्थमेवाग्निहोत्रादीना निरूपण तत्र कृतवन्त । तस्मात् प्रमाणान्तराभावात् प्रमाणाभिमतप्रत्यक्षेण देहस्यैवात्मत्वप्रतिपादनाच्चैतन्यविशीष्ट देह एवात्मा । यथा वनितादिसगमजनितसुखं स्वर्गोऽपवर्गोवा, तथैव कण्टकवेधजनित सर्पादिजनित दु खमेव नरकयातना । एतेषा यथायथ लौकिकप्रत्यक्षेण सिद्धत्वात् । यन्मते प्रत्यक्षातिरिक्त प्रमाणान्तर तन्मतेऽपि तदितरसर्वप्रमाणान्तराणा प्रत्यक्षोपजीवित्वेन प्रत्यक्षा धीनत्वमेवेति सर्वतो ज्येष्ठत्वेन प्रत्यक्षस्यैव सर्वेभ्य प्रावल्यमिति तद्विरोधेन तेषा दुर्बलत्वेन प्रत्यक्षेण वाधितत्वात्, दुर्वलस्य वाध्यत्व प्रबलस्य वाधकत्वमिति सर्वसमत्वादिति ।

तथा प्रदेशनियन्तायो भवति राजेति पदवाच्य स एव परमेश्वरोतिग्रहानुग्रहकरणे समर्थ नतु तदतिरिक्त स्वमनीषा कल्पितस्तत्साधकप्रमाणाभावात् । अस्य च मातापितृजनितशरीरस्यात्यन्तो-च्छेद एव मोक्ष । नचाय देहवादोऽप्रामाणिक ? स्थूलोऽह कृशोहमित्यादिप्रत्यक्षप्रतीतेरेव प्रमाणत्वात् । अहमित्याकारका प्रत्यये आत्मा प्रकाशते, स्थूलोऽहमित्यादौच स्थूलत्वादिकमहत्वसामा-नाधिकरण्येन च भासत इति स्थूलत्वादिविशिष्टोदेह एवाह पदवाच्यतयाऽऽत्मेति निश्चितो भवति । नच देहस्यात्मत्वे "ममदेह" इति प्रतीति कथ स्यात् , "ब्राह्मणकम्बल" इत्यादौ सर्वत्रषष्ठी विभक्तेर्भेदस्थले एव दर्शनात्, इति वाच्यम् "राहो शिर" इति वदत्रापि षष्ठीविभक्ते

रापचारिकनयापि समन्वयसम्भवात् । यथा राहुशिरसोरभेदेपि षष्ठी प्रयोगो न बाधितो भवति तथैव प्रकृतेपि देहात्मनोरभेदेपि षष्ठीप्रयोगो न दोषाय भवतीति प्रमाणसिद्धत्वात् । यत्र सम्बन्धिनोरभेदो न प्रमाणसिद्धस्तत्रैव षष्ठीतयोर्भेदमावेदयति नतु सर्वत्र । अथवा षष्ठीसर्वत्रभेदे एव भवतीति न नियम किन्तु तादात्म्येपिषष्ठीप्रयोगो दृश्यते । यथा "देवदत्तस्य गन्तु" इत्यत्र देवदत्तगन्त्रोरभेदएव, देवदत्ताऽभिन्नोगन्तागमनकर्त्ता, नतु देवदत्तातिरिक्त कश्चिदन्योगमनकर्त्ता भवति तस्यैवगन्तृत्वादिप्रकरणतोलाभादिति । न च यदि देह एवात्मा, तदा "अहं जानाम्यहमिति प्रत्यय कथ स्यात ? अत्र शरीरस्यानेकावयवविशिष्टस्याह पदशक्यत्वे, तदाऽनेकाना तदवयवानामपि, ज्ञानमापद्येत, घटप्रत्यक्षे घटावयवप्रत्यक्षवत् । ततश्च "अहं जानामीति प्रतीतौ देहरूपात्मवत्, देहावयवा अपि भासेरन्, नत्वेव भवति, तस्मान्न देह आत्मा किन्तु देहातिरिक्त एव कश्चिदात्मेति वाच्यम्, अनेकावयवस्य बाह्यप्रत्यक्षे एव तदवयवाना प्रत्यक्षेति नियमस्य स्वीकारात् । नत्वान्तरप्रत्यक्षस्थलेपीति । अन्तरप्रक्षस्यतु, आन्तरगुणावभासे एव सामर्थ्यनियमात । अपिच "सावयव द्रव्यप्रत्यक्षे तदवयवाना प्रत्यक्षमावश्यकम्" इति नियमस्वीकारेत्र्यसरेणुप्रत्यक्षे व्यभिचार आपतति । तथाहि त्र्यसरेणोर्द्व्णुकादितदीयावयवगत त्रित्वादिसख्यया महत्व समुत्पद्यते "सख्यात परिमाणाच्च प्रचयादपि जायते परिमाणमिति नैयायिकनियमात अवयविनि परिमाण कारणत्रयेण भवति क्वचित् सख्यात परिमाण जायते क्वचित् परिमाणेन, क्वचित् प्रचयात् । तत्र "प्रचय शिथिलाख्योय सयोगस्तेन जायते परिमाण तूलपिण्डादौ, अर्थात्, तूलपिण्डादौ यन्महत्परिमाण समुत्पद्यते, तत शिथिलाख्यसयोगेन जन्यते घटाद्यवयविनि तत्कारणकपालगतपरिमाणेन परिमाण जायते । त्र्यसरेणौ तु न कारण परिमाणोत्पत्तिस्तत्कारणद्व्यणुकपरमाण्वोरतीन्द्रियत्वात् । किन्तु द्व्यणुकगतसख्ययात्र्यसरेणौ महत्परिमाण समुत्पद्यते । ततश्च प्रत्यक्षे इन्द्रियसन्निकर्षमहत्वस्यच कारणत्वावगमात् । एवञ्च चक्षु सनिकर्षेमहत्वेच सतित्र्यसरेणो प्रत्यक्ष जायते । तत्कारणावयवद्व्यणुकपरमाण्वोर्महत्वाभावेन यथोक्तनियमस्य व्यभिचारो विद्यते एव । अर्थात् द्रव्यग्राहकेन्द्रियस्य योग्यसनिकृष्ट द्रव्यगुणग्राहकत्वमिति नियमस्तथा चातिरिक्तात्मवादे यथा सख्यादीनामात्मगुणाना कालादि सयोगानामात्मसमवेताना विद्यमानत्वेपि योग्यत्वाभावादेवान्तरेण मन इन्द्रियेण ग्रहण न भवतीति स्वीक्रियते, तथैव देहात्मवादपक्षेपि देहात्मसम्भवे न रूपादिगुणस्यमनसाऽग्रहणदण्डवारित भवेदिति । न च रूपवद्द्रव्यस्य चाक्षुषप्रत्यक्षे स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धेन रूपादि ग्रहण भवतीति नियम स्वीक्रियते इति वाच्यम्, घटादिस्पार्शनप्रत्यक्षे व्यभिचारात् । अर्थात् तत्र केवल घटस्यत्वगिन्द्रियग्रहण भवति परन्तु तत्र रूपस्यकारणत्व न भवति किन्तुत्वगिन्द्रियसयोगस्यैव कारणत्व नतु रूपस्य कारणत्वमिति । तथैव प्रकृतेपि बोद्धव्यम् । यथातत्र

एवं सति प्रत्येकस्मिन् परमाणौ ज्ञानानुपलब्धेः, तत्स्वीकारेतु एकस्मिन्नेव शरीरेऽनेकचेतनस्वीकारः प्रसज्येत। ततश्च "चैतन्यं न देहगतविशेषगुणोऽकारण-पूर्वकत्वात्, चैतन्यं न शरीरविशेषगुणोऽयावद्द्रव्यभावित्वाद्वा" इत्यनुमानाभ्यां ज्ञान-स्यदेहविशेषगुणत्वं निवारयाम इति वाच्यम्, अनयोरनुमानयोः प्रत्यक्षवाधितत्वात्।
प्रत्यक्षविषयसख्यादिग्रहणनियम । अर्थात् देहातिरिक्तात्मवादे बाह्यप्रत्यक्षे एव द्रव्यग्राहकेन्द्रिय-चक्षुरादेस्तादृशद्रव्यगतसख्यादिग्राहकत्व भवतीति नियमस्तथैव देहात्मवादेपि बाह्यप्रत्यक्षे एव द्रव्यग्राहकेन्द्रियस्य सख्यादिग्राहकत्वमिति ।

गतग्रन्थेन "अहजानामीत्यादि" प्रत्यक्षस्य शरीरात्मविषयकत्व प्रतिपादितवान् देहा-त्मवादी । ये च प्रतिवादिनोऽनुमानद्वारादेहस्यात्मत्वनिरौति, तादृशानुमानस्य वाधनायोपक्रमते **एवं सति प्रत्येकस्मिन् परमाणा**वित्यादि । भवतुनामाह जानामीत्यादि प्रत्यक्षदेहात्मवाद समर्थकत्व परन्त्वनुमानेनतु देहस्यात्मत्व निराकरोमि **ततश्चैतन्यं न देहगत विशेषगुण** इत्यादिकमनुमानम् । योहि चेतनस्य विशेषगुण सकारणगुणपूर्वक अयतु चैतन्यगुणो नदेहस्य देहकारणपरमाणौ तदभावात् । तथात्वेदेहे एकत्रानेकात्मप्रसङ्गात्, तथाऽयावद्रव्यभावित्वात् कार्य द्रव्यस्य विशेषगुणो न यावद्देहभावीमृतदेहे तदभावात् । तस्माद्देहगुणो न चैतन्यम् । ननु नभवतु देहारभकपरमाणौ चैतन्य येनात्मवहुत्वप्रसङ्गो भवतु, घटाद्यकारणपूर्वकोरूपादि पिलुपाकवादिमते पाकजो दृश्यते तथैवात्रापि स्यात् तद्वदेव चैतन्यमिहस्यात्तत्राह **अयावद्द्रव्यभावित्वात्** । अर्थात् कार्यद्रव्ये यावद्द्रव्यभावी दृश्यतेऽयतु न तथा । तथाच कार्यद्रव्यविशेषगुणत्व व्यापक स्वसमवायिसमवायिवृत्तिसजातीयगुणासमवायिकारणकत्वरूप कारणगुणपूर्वकत्वम्, इति व्यापकाभावे च व्याप्यस्याप्यभाव इति नियमेन प्रकृते व्यापकनिवृत्या च ज्ञानेदेहविशेषगुणवत्वस्य भावो भवति । द्वितीयानुमाने च यो य कार्यद्रव्यविशेषगुण स सर्वोपि यावत्पर्यन्त द्रव्यस्यावस्थान भवति, इति सामान्यब्याप्ति पिलुपाकवादिमते ज्ञेयम् । एतन्मत दूषयति देहात्मवादी तत्राह **अनयोरनुमानयो**रिति । दूषणप्रकार वदति **प्रत्यक्षवाधितत्वा**दिति । यत्र प्राबल्यदुर्वल-भावस्तत्र प्रवलस्य दुर्वलेनवाधोनैव भवति, प्रत्यक्षमुपजीव्यतयाऽनुमानात्प्रवलमिति प्रत्यक्षवाधित-विषयतानोदेत्यनुमानादितिनानुमानेनप्रत्यक्षवाधोऽपितु विपरीत एव । प्रत्यक्षेण देहे एव चैतन्यस्य निवेदनादिति । एवञ्च यथा अकारणगुणपूर्वकाणामयावद्द्रव्यभाविना विशेषगुणभिन्नानामपि सयोगविभागद्वित्वादिसख्याना शरीरगुणत्वदर्शनेन "चैतन्येनदेहस्य विशेषगुण तन्निष्टविशेष-गुणान्तरवैधर्म्यादित्याद्यनुमानेनापि चैतन्ये शरीरगुणत्वस्याभावोनैव साधयितु योग्य शरीरे एव ज्ञानस्योपलभात् सयोगादिवदेव । अथवा उपर्युक्तहेतुत्रयेण देहविशेषगुणत्वस्य निषेधेपिक्षत्यभावात् । पारिभाषिकमेवात्र विशेष गुणत्वमभिमतम्, भावनाख्यसस्कारभिन्नोयोवायुवृत्तिस्पर्शावृत्तिधर्मसमवायी-

प्रत्येकपरमाणौ चैतन्यानुपलब्धेः तत्स्वीकारे सहचेन प्रसङ्गात्। ज्ञाने विशेषगुणत्व प्रतिषेधे देहगुणत्वप्रसङ्गात्। किंचेच्छानुविधायिक्रियत्वेन्द्रियत्वादिकाः शरीरे एवोपलभ्यन्ते ते अचेतनघटादिभ्योऽत्यन्तं व्यावर्तमानादेहमेवात्मानं गमयन्ति। यथा क्रमुकताम्बुलावयवेषु प्रत्येकमविद्यमानोऽपिरागो यथा संयोगविशेषाज्जायन्ते, तथैव देहोत्पादकपरमाणुषु विलक्षणसंयोगादेव, यथावा किण्वेभ्योमदशक्तिवत् देहेचेतनो-
तद्भिन्नत्वे सति गुरुत्वाञ्जलद्रवत्वान्यगुणत्व तदेव विशेषगुणत्वमित्यत्र गुरुत्वादेरेव ज्ञानादेरप्यन्यत्व प्रतिक्षेप्यमिति ।

किंचेच्छानुविधापि क्रियत्वेन्द्रियत्वादिका इत्यादि । अयभाव यदिकदाचिदकारणपूर्वकत्वादयावद्रव्यभावित्वादिगमकहेतूनामप्रयोजकत्वकथनात् देहगुणत्वस्य ज्ञाने प्रतिषेधेपि न कापि क्षतिरित्याशयेन कथितम् **किंचेत्यादि** यदि देहविशेषगुणान्तरवैलक्षण्याद्वैधर्म्याद्वाज्ञानस्य देहविशेषगुणत्व निराकर्त्तु समाहसे तदा सम्प्रतिचैतन्यरहितघटपटादिवैधर्म्यादेहस्यज्ञानगुणत्वमेवलाघवान्स्वीक्रियताम् । **इच्छानुविधायिक्रियत्व**मित्यस्य साक्षादिच्छाधीनप्रवृत्तिमत्व शरीरस्येत्यर्थ । घटादिवाह्यपदार्थाना तु शरीरव्यापारद्वारकमेवेति देहोज्ञानवान्, इच्छानुविधायि क्रियात्वात्, इन्द्रियत्वाद्वा, यन्नैव तन्नैव यथा पटादिद्रव्यम्, इतिव्यतिरेक्यनुमानेन शरीरे चेतनावत्वमपि साधनीयमिति । **यथा क्रमुकताम्बूलावयवेषु** इत्यादि । क्रमुकसुपारीति प्रसिद्ध समिश्रितकत्थकादियुक्तताम्वूलपत्रस्यमुखे प्रक्षिप्तस्य दन्तचवितस्य पूर्वावयविविनाशेतदवयवानां सश्लेषविशेषेण निष्पन्नपिण्डितावयविनि, अवयवेऽविद्यमानमपिरक्तरूपसवन्धविशेषत एवोत्पद्यते नतु तदवयवे पूर्वं रक्तमासीदितिकार्यद्रव्यविशेषगुणत्वस्य कारणगुणपूर्वकत्वमेव रक्ततन्तुत्वम् न रक्तवस्त्रवदितिव्याप्तो व्यभिचारादेव सा व्याप्तिर्निराक्रियते इति ।

न च यथागोभुक्तनृणादीना तर्दायोदर्येणवह्निसम्बधेन परमाण्वन्तभगे तृणावयवपरमाणौ पाको भवति, ततश्च यादृश रूपरसादिक तादृशपाकजनितपरमाणुषुरूपरसादिकं जायते। ततो भोक्तुर्भाग्यवशात् परमाणूना सयोगे दुग्धादिकमुत्पद्यते, तथैव प्रकृते दन्तसंघट्टनेनतावूल पत्रस्य पूर्वावयवविनाशे पुन स्वतत्रपरमाणुषु चर्वणजनितमुखाग्निलक्षणपाकवलेनरक्तरूपतत्रोत्पद्यते इति कल्प्यते इति कार्यद्रव्यगतगुणस्यकारणपूर्वकत्वनियमस्यपिलुपाकवादिमतेन न व्यभिचारो भवतीति वाच्यम्—प्रमाणाभावात् । अर्थादत्र सम्बन्धविशेषस्यैव रूपान्तरजनकत्वम् । नतुपाकाद्रूपान्तरम्, यथा हरिद्राचूर्णे सुधाजलसयोगेन रक्तरूपजनकत्व दृश्यते । तथा प्रकृतताबूलादिषु रूपान्तरोत्पादसभवेन पाककल्पनाया गौरवात् । अत एव न्यायनये अवयविन्येव पाक स्वीकृत कल्पनागौरव पश्यन्निति व्यभिचारो दुरुद्धर एवेति । पिलुपाकवादे भवत श्रद्धातिशयमनुरुध्य "कार्यद्रव्यगतगुणस्य कारणगुणपूर्वकत्वमिति नियमस्य स्थलान्तरे व्यभिचार

त्पत्तेर्नानुवपत्तिः स्यात् । अपिच शुक्लनीलादितन्तुषु अविद्यमानमपि चित्ररूपं यथोक्ततन्तुजनितपटावयविनिचित्ररूपं जायमानं चित्ररूपकारणगुणसजातीयमेव कारण-गतरूपं कार्ये सजातीयगुणोत्तरमुत्पादयतीति नियमोपि व्यभिचरित एव । अपि

दर्शयितुमाह **अपिच शुक्लनीलादितन्तुषु** इत्यादि । चित्रपटस्थलेऽवयवेषु नीलपीतादिकमनेक रूपमिति तादृशकारणेनावयविपटचित्र जायते । न च तत्र कारणगुणपूर्वकत्वमवयवरूपाणा परस्पर विरोधात् । नवा चित्रपटस्थलेऽवयवेषु पाकसभव नवाऽवयवेषु चित्ररूपम् । एवञ्चावयव विशेपगुणर्नीलादे स्वसजातीयावयवगुणपूर्वकत्वमिति नियमस्य स्पष्टो व्यभिचार । अत्र साजात्य रूपत्वव्याप्ययजात्यैव विवक्षितम् । नतु रूपत्वजात्या अन्यथानीलतंतुना शुक्लवटोपि जायेतेति । अर्थात् शुक्लनीलादिकारणगुणेपु प्रत्येकमविद्यमानमपि चित्ररूप तादृशगुणविशिष्टपटेऽवयविनि चित्ररूप विलक्षणमेव समवैत्येवेतिकार्यगतगुणपूर्वकत्वमिति नियमस्य व्यभिचारो भवत्येव । अथैवमपि चित्रनामक रूपान्तरमेव नास्ति तादृशचित्ररूपस्वीकारे प्रमाणाभावात् । नच नाना-रूपविशिष्टतन्तुभिरुत्पादितश्चित्रघटोरूपरहित एव भवतु, शुक्लादिरूपादेर्व्याप्यवृत्तित्वनियमेना-व्याप्यवृत्तिनानारूपवत्वस्यावयविनि पटे स्वीकारासभवादिति वाच्यम् स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धे नैवावयवरूपेणैवावयविनश्चित्रपटस्य चक्षुषा प्रत्यक्षसभवेनावयविनश्चित्रपटस्य रूपराहित्येप्य-नुपपत्तेरभावात् । न च समवायस्वसमवायिसमवेतत्वान्यतरसम्बन्धेनोद्भूतरूपस्यैव द्रव्यचा-क्षुषप्रत्यक्षे कारणत्वमिष्यते इति वाच्यम् तथा सति सर्वस्यैव कार्यद्रव्यस्य नीरूपत्वप्रसङ्गपातात्, कारणगतरूपेणैव सर्वत्रकार्यद्रव्यस्य प्रत्यक्षसभवेन कार्येऽवयविनि रूपस्वीकारो निरर्थक एव स्यात् । न चेष्टापत्ति अनुभवविरोधाच्च । अथात् साक्षादेवकार्यद्रव्येरूपवत्वमुपलभ्यते, तथा घटोरूपवानिति व्यवहारोपि भवति, तयोस्तादृशानुभवव्यवहारयो सर्वजनीनत्वेनावाधितत्वमेव ज्ञायते । तस्मात्कार्यद्रव्यस्य नीरूपवत्व नेष्टापत्त्यास्वीकर्तुशक्ष्यति कोपि । तथा चित्रपटेपटो-ऽयमित्यवाधितव्यवहारेणापि चित्ररूप स्वीकर्त्तव्यमेव । किञ्च यदि समवायस्वसमवायिसमवेतत्वा-न्यतरसम्वन्धेन द्रव्यचाक्षुपे लाघवात्कल्पयते तदा ततोपि अधिक लाघवेन स्वसमवायिसमवेतत्व मात्रस्यैव कारणत्व भवतु ? तथा स्वीकारेऽणौ महत्त्वाभावेन त्र्यसरेणोश्चाक्षुपत्व न स्यात्, यत. त्र्यसरेणो कारणे द्व्यणुके महत्वाभावात् । एव लाघवात् यथोक्तनियमादरेतु लाघवाद् घटमात्र-स्यैकत्वं मन्यताम् नानाघटस्वीकारे गौरवादित्यादिक सर्वमन्यत्र द्रष्टव्यम् । तस्मादतिरिक्तं चित्ररूपमवश्य स्वीकर्तव्यमेव तत्र कार्यद्रव्यगतगुणस्य कारणगुणपूर्वकत्वे व्यभिचार इति । नन्ववयवगतनानाशुक्लादिरूपैरवयविन्यव्याप्यवृत्त्येव कार्ये नाना रूप कार्ये स्वीक्रियताम्, "व्याप्यवृत्तिजातीयकानामव्याप्यवृत्तित्वेविरोध" इति नियमस्य प्रायिकत्वादिति चित्रपटे न यथोक्तनियमस्य व्यभिचार इत्याशङ्क्य स्थलान्तरे कार्यद्रव्यगतगुणस्य कारणगुणपूर्वकत्वव्यभिचार दर्शयितुमाह **अपिच करकाद्रव्यनिष्ठ** इत्यादि ।

च करकाद्रव्यनिष्ठविशेषगुणः काठिन्यमकारणपूर्वकं दृश्यते इति व्यभिचारोपीति ।

अथ ज्ञानविषयस्यशरीरस्य द्रष्टृत्वं कर्तृत्वं कथम् ? एक क्रियायामेकस्यैव कर्तृत्व

जलजातीयककरकाद्रव्यस्य तदवयवसंयोगविशेषेणारम्भकसहकारि, अदृष्टादिसहकारि कारणवैचित्र्यात् द्रव्यत्वगुणविरहितस्य कठिनस्पर्श एवोपलभ्यते, सच कठिनस्पर्शो न कारणगुण पूर्वक तत्समवायिकारणजलीयपरमाणुषु कठिनस्पर्शस्याभावात्, कठिनस्पर्शस्तु पृथिवीपरमाणुगत एव । अत एव केचनकरके पृथिवीत्वमेव नतु जलत्वमिच्छन्ति । ततश्च करककार्यगतकठिनस्पर्शस्य कारणगतपूर्वकत्वनास्तीति पूर्वनियमे व्यभिचारावश्यभाव एव । नचावयवगतसंयोगविशेष एव कठिनत्व नतु स्पर्शात्मकगुणान्तरमिति वाच्यम् काठिन्यस्य संयोगविशेषरूपत्वाभावात् संयोगस्यानेकनिष्ठत्वनियमात् कठिनत्वस्य तु करकमात्रवृत्तित्वात् । अर्थात् अवयवसंयोगविशेषस्य काठिन्यरूपत्वे तादृशसंयोगरूपस्य तस्यावयविन्यवर्तमानत्वेन कठिन करकद्रव्यमित्याकारकप्रतीतिर्व्यवहारश्च न कथमपि समुपपादित स्यात् । काठिन्य संयोगविशेष एवेति कस्यचिन्मतमाश्रित्य यदिकाठिन्यस्य रूपत्वमापाद्येत, तदा तत्र वच्मि, यत् यदिकाठिन्य संयोगात्मकस्तदाचक्षुरिन्द्रियग्राह्यद्रव्यघटादिगतसंयोगविभागादीनामपि चाक्षुषग्राह्यत्वनियमेन काठिन्यस्य संयोगरूपस्य चक्षुरिन्द्रियेणापि ग्रहणमापद्येत, न चैव भवति किन्तु स्पर्शविशेष एव काठिन्य तच्च त्वगिन्द्रियमात्र ग्राह्यम् "त्वगिन्द्रियग्राह्यो गुण स्पर्श" इति तल्लक्षणात् । किञ्च काठिन्य यदि संयोग विशेषस्तदा कन्दुकादीना चाक्षुषे जाते तद्गतसंयोगविशेषरूपस्यापि चक्षुसा गृहीतत्वात्, पुरोवर्त्तिकन्दुकप्रस्तरादिद्रव्य कठिन कोमलवेति संशयानस्य संयोगविशेषस्य तस्यचक्षुषा निर्णीततया संशयाभाव स्यात् परन्तु भवति संशयस्तस्मात् काठिन्य न संयोगात्मकमपितु स्पर्शविशेषात्मकमेवेति । अतएव तस्य संयोगरूपत्वेउपर्युक्तदोषविशेषमाकलय्यवैशेषिकमुनि काठिन्यस्य स्पर्शविशेषरूपत्वमेवोदाजहारेति भाव ।

ननु "अहं देहं जानामिति प्रतीतिर्भवति । तत्राहमर्थोदेह एवात्मा, ज्ञानविषयोपि देह एव, स एव कर्मतयापि भासते, ज्ञानाश्रय कर्त्ता ज्ञानविषयश्च कर्म । न चैतदुभयमेकत्रसंभवति, नहि भवति देवदत्तो देवदत्त भवति । तत्कस्य हेतो ? कर्तृकर्मभावस्यभेदघटितत्वात् भवति लोके प्रतीतिर्देवदत्तो ग्राम गच्छतीति । अत्र गमनक्रियाया कर्त्ता देवदत्त सचान्य गमनक्रियाया कर्मग्रामादिक स च ततोऽन्य । नतु भवतिप्रतीतिदेवदत्तो देवदत्त गच्छतीति । तत्कथम् । तत्रगमनक्रियाया प्रथमान्तपदोपस्थाप्यो देवदत्त कर्त्ता स एव तस्यामेव क्रियायां कर्मतयापि भासते, स्वतन्त्र कर्त्ता कर्म च तज्जन्य नच जन्यजनकयोरेकत्व भिन्नत्वात् । तथैवाह देहजानामीत्यत्रभेदाभावेनाभेदेकमेकर्तृभावस्य विरुद्धत्वेनोक्तप्रतीते कथ सामञ्जस्यमित्याशङ्का समाधातुमुपक्रमते जगदाचार्य **अथज्ञानविषयशरीरस्येत्यादि ।**

कर्मत्वयोर्विरोधात्, नहि भवति घटोघटं पश्यतीति। न च तदा देहातिरिक्तवादे आत्मनि अहमिति प्रतीतिः कथमिति ? न च रूपभेदादेकत्रापि कर्तृत्वं कर्मत्वमित्युभयमपि स्यात्। तदा शरीरात्मवादेपि तदेवोत्तरमन्यत्राभिनिवेशात्। अपि च परसमवेतक्रियाजन्यफलभागित्वं कर्मत्वम्, इति स्वसमवेतक्रियाजन्यफलाश्रयस्य देहस्य मुख्यकर्मत्वमेवनास्तीति न कोपिदोषः। तथा च निरस्तसमस्तदोषत्वात् देह एवा-

कर्मान्यत् तदन्यश्च कर्त्ता अर्थात् क्रियाया आश्रय कर्त्ता क्रियाविषयश्च कर्मेति लोकस्थिति। तदिहदेहात्मवादेनास्ति, परन्तु देह एव द्रष्टा स एव च कर्म, तच्च लोकविरुद्धमिति। ननु देहात्मवादातिरिक्तात्मवादेपि अह स्वात्मान जानामीति प्रतीति कथमेकस्यैव कर्तृकर्मभासमानताया स्वीकारात्। नच रूपभेदात् अर्थात् अतिरिक्तात्मवादे अहत्वेनात्मन कर्मत्वम्, मन सयोगवत्वेन कर्तृत्व ज्ञानक्रियायामित्येव रूपभेदादुभयमपि घटते तेन न कोपि दोष इति वाच्यम् समानत्वादिदमुत्तर देहात्मवादे। किञ्च यदा सर्प स्वात्मना स्वात्मन परिवेष्टयतीति एकस्यामेववेष्टनक्रियाया स एव सर्प कर्त्ता भवति करण कर्मापि भवति तथैवात्रापि देहात्मवादे एकस्यैव देहात्मनो दर्शनक्रियायां कर्तृत्वकर्मत्वनोविरुध्ययते इति, किञ्च यादृशस्य गमनादि क्रियाकर्मत्वस्य गमनक्रिया कर्तृत्वेन विरोधोजायते, ततोऽतितरा विलक्षण ज्ञानक्रियाकर्मत्वम्, तस्मादत्र न कोपि प्रकृते विरोधो भवतीति दर्शयितुमाह **अपिच पर समवेत** इत्यादि। स्वसमवेतज्ञानफलभागिन" इति। स्वनिष्ठज्ञाननिरूपितविषयतावत, इत्येवार्थ स्वसमवेतज्ञानफलभागिन। विषयोहि घटादिर्ज्ञेयपदार्थ तेषु विषयता विषयि च ज्ञान तस्मिन् विषयता भवति, तयो निरूप्य निरूपकभाव सम्बन्धो भवति, तथा च विषयिता निरूपितविषयितति विषयिता निरूपितेति विषयताया विषयिनिरूप्यत्वेन विषयताया ज्ञानफलत्वस्योपचारमात्र भवति नतु मुख्य फलत्वमस्ति। तदेव कथित यत् स्वसमवेतज्ञानफलभागिनो देहस्य मुख्यकर्मत्वमेव नास्ति ततोनकोपि दोषावकाश इति।

अयमाशय —परसमवेतक्रियाजन्यफलाश्रयत्वमेव मुख्य कर्मत्वम् यथा ग्राम गच्छति चैत्र इत्यत्र चैत्रसमवेतगमनात्मकक्रियाजनितग्रामाद्युत्तरदेशसयोगलक्षणफलप्राप्तिरूपस्याश्रयता ग्रामे विद्यते इति ग्रामे यथोक्तकर्मलक्षणसमन्वयेन कर्मत्व भवति, यद्यपि गमनजनितसयोगात्मकफलस्य द्विष्ठत्वेन यथाग्रामनिष्ठत्व तथैव चैत्रवृत्तित्वमपि विद्यते एवेति चैत्रेपि कर्मत्वापात इति चैत्रे प्रथमा निर्देशवत् द्वितीययापि कर्मत्वबोधिकया भाव्यम् न चेष्टापत्तिस्तथा व्यवहाराभावात्, तथापि समानतया सयोगात्मकस्य सभवेपि वैलक्षण्यात्। ग्रामे यत् सयोगाश्रयत्व तत् चैत्ररूपपरसमवेतगमनक्रिया जनितसयोगात्मकफलस्यानुयोगितासम्बन्धेन चैत्र तु चैत्रसमवेतगमनात्मकक्रियाजनितसंयोगात्मकफलस्य प्रतियोगिता सम्बन्धेन। यद्यपि सयोग एकरूप. सयोगत्वेन, तथापि

त्मा न ततो भिन्नः सर्वप्रमाणरहितः कपोलकल्पित आत्मेति । तथा च "पृथिव्यापस्ते-जो वायुरिति तत्वानि तेभ्यश्चैतन्यमुपजायते किण्वेभ्योमदशक्तिवदिति । इति देहात्मवादे पूर्वपक्षः ।

अत्रोत्तरयति–देहोनात्मा संभवति, अहमिति प्रत्ययेदमिति प्रत्यययोर्भेदेन प्रति भासनात् । तत्र स्वात्मविषयकोऽहं प्रत्ययः स्वेतरविषयकश्चेदमिति प्रत्ययः। इमौ एकस्य पुरुषस्यैकस्मिन्नेवार्थे न घटते विरुद्धत्वात् । नहि देवदत्तादिर्दण्डविशिष्टस्वात्मान-

संयोगस्यैक प्रतियोगी भवति तदपरश्चानुयोगी भवति । तत्र योऽनुयोगितयाधिकरण तत्र मुख्य कर्मत्वम्, तत्रैव कर्मत्वव्यवहरन्ति वैयाकरणा । चैत्रेकर्तरि तु नपरसमवेतक्रियाजन्यफलाश्रयता सत्यपि सयोगस्य सत्वे । अर्थात् चैत्रे सयोगाश्रयता प्रतियोगिता सम्बन्धेनैवेतिगमनागमनक्रिया-जनिता । अय विवेक यत्रानुयोगितासम्बन्धेन परसमवेतक्रियाजन्यफलाश्रयतातत्रैव कर्मत्वस्य मुख्यो व्यवहार तदन्यत्रतु कर्तृत्व वा अपादानत्व वाऽधिकरणत्ववेति शाद्बिकाना समय' । न च कथ तर्हि "विहगो विहग गच्छतीति प्रयोगस्यव तत्र कर्तृत्वकर्मत्वभानादिति वाच्यम्, अपेक्षाभेदेन सभवात् । यत्र यदा कर्तृत्वमभिमत तदन्यस्मिन् कर्मत्व यत्र च कर्मत्वभिमत तद-न्यस्मिन् कर्तृत्वस्य साधुत्व वोद्धव्यम् । विशेषतोऽत्रन्यो विचार शाद्बिकसम्प्रदायादेवावगन्तव्य प्रकृते तद्विचारस्यानतिप्रयोजनत्वादितिदिक् । एवञ्च गमनादिक्रियास्थले मुख्य कर्मत्वम् । ज्ञानादिक्रियाकर्मत्वतु विषयविषयिभावलक्षण गौणमेवकर्मत्व मुख्यतु प्रतीत्यादिवाधितमेवेति ।

एवञ्च परसमवेतक्रियाजन्यफलशालित्वमेव मुख्य कर्मत्वम् । यथा ग्रामादेर्गमनादिकर्म-त्वज्ञानादिकर्मत्वतु विषयविषयिभावलक्षणममुख्यमेवतत् । सविषयार्थकधातुयोगे विषयतारूपमेवकर्म-त्वमितिन्यायविद । एतादृशकर्मत्वस्य ज्ञानकर्तरिसत्वेपि आत्मानजानातीत्यादिप्रत्ययस्यनानु-पपत्ति मुख्यकर्मत्वस्यैवकर्तृत्वेन विरोधादिति । इति देहात्मवादतत्त्वदीपे पूर्वपक्ष ।

ननुदेह एवात्मा, तत्र किण्वेभ्योममदशक्तिवत् तत्वेभ्योजायमानदेहे चेतना शक्ते प्रादुर्भावात् । स एवात्मा नतु तदतिरिक्त कश्चिदात्मेतिनास्तिकशिरोमणेर्मतमिति तस्य खण्ड-नायोपक्रमते **अत्रोत्तरयतीति** अह जानामीत्यत्रात्मविषयिणी वुद्धिरहकारविषया सतीशरीरादि व्यतिरिक्तमान्तर स्वविषय कथयति । यथाघट इत्याकारिका बुद्धि शद्बश्च स्वविषय घटव्यवस्था-पयति । इदमिति बुद्धिस्तु देहविषयिणी स्वकीयविषयमहकारात पृथक् करोति । यथाऽय घट इति वुद्धि स्वविषयवाह्यमान्तरा विवेचयति, अन्यथा स्वपरविभागोनिरालवन स्यात् । अथात् आन्तरवस्तुव्यवस्थापकोऽह प्रत्यय शद्बश्च, वाह्यवस्तुव्यवस्थाय इदमिति शद्ब, प्रत्य-यश्च अन्यथाऽय विभागोनस्यादिति रूपभेदात् व्यवस्थाया निर्वाहे दण्डमाह, **देवदत्तादि-र्दण्डविशिष्टेत्यादि** अहत्वविरोधिधर्मोघटादौ वर्तमानो यथा इदमास्पदे घटादौ अहत्व

मयं दण्डीति विजानाति । तत्राहमिति बुद्धिर्बाह्यार्थव्यतिरिक्तमान्तरमुपस्थापयति। इदमिति बुद्धिस्तु आन्तरव्यतिरिक्तं बाह्यमर्थं गमयति । नत्वेकमर्थं गमयतोऽहंत्वेदन्त्व व्यावर्तयति तथैव देहे वर्तमानो इदत्वधर्म स्वविरोधिनो महत्वमपि व्यावर्तयत्येवेति ।

किञ्च यदि "स्थूलोह कृशोहमिति प्रतीतिस्नेहदेहस्यैवात्मत्व प्रतीयात्, तदादेहस्या वयवाद्युपचयापचयेन विनाशियतया "योहबाल्येपितरावन्वभूवम् स एव वृद्धत्वे प्रणप्तृननुभ वामीति प्रतिसधान न स्यात् वाल्युववृद्धशरीराणामेकत्वाभावात् । तत्र बालत्वादिक व्यावर्ततेऽह मास्पदतु सर्वत्रानुवर्तते । तस्मात्येषुव्यावर्तमानेष्वपि यदनुवर्तते तत्तेभ्योविभिद्यते । यथाकुसु मेभ्य सूत्रम्, कुसुमेषु व्यावर्तमानेष्वपि मालायामनुवर्तते इतिव्यावर्तमानकुसुमापेक्षया सूत्रानु मान कुसुमाद्भिन्नमेव भवति तद्वदिह वालादिशरीरेषु परस्पर व्यावर्तमानेष्वप्यहमिति बुद्धिरनुव्र जमाना इदमास्पदशरीरेभ्योऽहवाच्यमात्मान भिनत्त्येव । नच बालादिशरीराणा प्रत्यभिज्ञान गन्धोपि विद्यते तेष्वेकत्व प्रतीयेत । तस्मादिदकारवो यशरीरेभ्यो भिन्न एवात्मेति नदेह कथमपि, आत्मपदार्थ सभवति । अहमास्पद आत्माकश्चिदान्तर पदार्थ देहश्चेदकारपदवाच्य पराग् पदार्थ परस्परविरुद्धधर्साक्रान्त प्रकाशतमोवदिति ।

अपि च शयान पुरुष स्वप्ने स्वकीय देवशरीर पश्यन् देवोचितभोगान् भुञ्जन् स्वप्न जनककर्मावसाने प्रतिबुद्धोशरीरमात्मन पश्यन् नाह देवोऽपितु मनुष्य इति देवत्वे वाध्यमानेपि मनुष्य शरीरमबाधित पश्यति । तत्र देवमनुष्यशरीरयोर्भेदेपि अबाधितमहम्पदमनुवर्तमानमेव विजानाति, तत्रापि देवमनुष्ययोर्भेदेपि, अहमाश्पदमभिन्नमेवानुवर्तमान विजानातीत्यत इदमास्पद शरीरात् अहमास्पद प्रत्यगात्मा विभिन्न एव प्रसिद्ध्यतीति । अपिच योगकर्मणा व्याप्रता गतोयोगी, अनेक शरीरसाध्यकर्मणो भोगेन क्षयायानेकशरीर धृत्वा कर्मक्षपण करोति । तत्रशरीरभेद पश्यन्नपि अभिन्नमेवाहमास्पदमाप्मान विजानातीत्यतो नदेहआत्मा, किन्तु शरीरभेदेप्यात्माऽहमास्पदो भिन्न एवेति निश्चित भवति । न च देहस्यानात्मत्वे तद्गतस्थौल्यादीनामात्मन्निसक्रमाभावेन "अह स्थूल" इत्यादिप्रतीति कथ स्यादिति वाच्यम्, भोगसत्वन्वात् । अर्थात् शरीरविरहिते आत्म निभोगो न भवति किन्तु शरीरावच्छिऌ एव भोगो जायते । इति भोगे आत्मन समवायिकारणत्व तत्रावच्छेदकतया शरीर कारणमिति कथचित् देहधर्म आत्मनि सक्रामय्यगौणस्तथाप्रतीति । अथात् औपचारिक एवात्मनिस्थूलत्वादिरिति कृत्वाऽह स्थूल कृशोवेति । मञ्चा क्रोशन्तीतिवदिति ।

यद्यपि पूर्वपक्षिणा कथितम्, किण्वेभ्योमदवत् समुदितभूतेभ्यश्चैतन्य प्रादुर्भवतीति, तदपि न समीचीनम्, प्रत्त्येकमपर्याप्तस्य समुदायेपि पर्याप्तमयोगात् यथाद्वित्वादिसख्याया प्रत्येक स्मिन् समवायसम्बन्धेनवर्तमानतयैव व्यक्तिद्वयेपर्याप्तिर्भवति नत्वेकत्रावर्तमानस्योभयत्रापि पर्या प्तिर्भवति । यथावा प्रत्येकस्मिन् सिकताकणेऽवर्तमानेतैलोत्पादनसामर्थ्ये सिकता समुदायादपि

योर्वैयधिकरण्येन इदं पदवाच्यो देहोऽहंपदवाच्यात्मस्वरूपो भवतीति ।

अपि च देहस्यात्मत्वेऽहमिति प्रत्यये देहावयवानामपिभानं स्यात, स्थूलावय-

तैल न प्रादुर्भवति, किन्तु प्रत्येकतिलेवर्तमाने एव तैलोत्पादनसामर्थ्ये, ततस्तत्समुदायात् प्रभूत तैल समुत्पद्यमान भवति । यद्यपि प्रत्येकविष्टीना शिविकावहनसामर्थ्यं नास्ति परन्तु मिलितास्ते- शिविकामुद्वहन्ति, तत्र प्रत्येकविष्टिसुफलोपधायककारणत्वस्य सत्वेपि योग्यतारूपकारणत्वस्या- क्षतत्वात । तथैव प्रकृते प्रत्येकपरमाणालेशतोपि चैतन्योपादनसामर्थ्ये सत्येवतत्समुदाये तत्समुदायात्मकतत्वचतुष्टयजनितदेहेपि चैतन्यसद्भाव स्यादित्युत्प्रेक्षेत । किञ्च प्रत्येक परमाणोरतीन्द्रियत्वेन तत्समुदायात्मकदेहस्यापि तथात्वेनादृश्यत्वप्रसङ्गात । न च तथादूरे विद्यमास्यैककेशस्य चाक्षुपत्वाभावेपि तत्समूहस्य प्रत्यक्षतावदत्रापि तथा स्यादिति वाच्यम, पटुकरणस्य पुरुषस्य समीपेपि प्रत्यक्षता दर्शनात दूरस्थोपि केशोनातीन्द्रिय सनिधाने तत्प्रत्यक्ष स्यानुभवसिद्धत्वात, तस्मात दृष्टान्तासिद्धा देहस्य कथमपि चेतन्यविशिष्टात्मरूपत्व न सम्भवतीति ।

नचादृश्यपरमाणोर्दृश्यदेहानुपादानत्वे कथमति तप्ततैलेऽदृश्यदहनशक्तेर्दृश्यदहनोत्प- त्तिरिति तद्दृष्टान्तेन प्रकृतेपि, अदृश्यपरमाणोर्दृश्यदेहोपादानत्वमितिवाच्यम, तत्रदृष्टान्तेविद्यमा- नस्यैव दहनस्य कारणबलेन स्थूलदहनोत्पत्ते स्वीकारात् । न च तदाऽदृश्यद्व्यणुकेभ्यो दृश्यस्यत्र्यसरेणोरुत्पत्तिरिति वाच्यम् त्र्यसरेणोर्महत्वसम्बन्धेन चाक्षुपत्वात । तस्माद् यदि अवयवावयविनोरेकत्व तदा परमाणुसमूहदेहस्य तदुत्पन्नदेहस्य वा प्रत्यक्षता नस्यादतो देहात्मवादे आत्मरूपदेहस्य प्रत्यक्षत्व न स्यात् । मानसप्रत्यक्षत्वन्तु देहस्य नशङ्कनीयम् "परतन्त्रवहिर्मन" इति न्यायादिति ।

ननु यथा ममात्मेत्यत्रास्मत्पदस्येद पदस्योभयोरपि प्रयोगो भवति न पुनरपि काचित् क्षतिस्तथैव "ममेदशरीरमीति प्रतीति स्यादित्यहन्त्वेदन्तयोर्न विरोध महद्वृत्तित्वादित्याशङ्क्य देहात्मवादे दूपणान्तर वक्तुमुपक्रमते **अपिचदेहस्यात्मत्वेऽहमितिप्रत्यये** इत्यादि "इमेवयमाशा स्महे" इत्यादि बहुल प्रयोगदर्शनेन भवतु, अहन्त्वेदन्त्वयो सामानाधिकरण्य तथापि देहात्मवादे दूपणान्तर नातिक्रामति । अर्थात् स्थूलावयविनश्चक्षुरादिना ग्रहणे तदवयवस्यकतिपयस्य तदिन्द्रियेण ग्रहणमवश्यमेवभवतीति नियम । तथाच य पुरुषो निवारितबाह्यविषयेभ्यश्चक्षुरा- दीन्द्रियस्तस्यमनसास्वात्मानुसधान कुर्वतस्तदनुसधान न शरीरविषयकम्, करणचरणादिदेहावयवा विषयकत्वात् । यत प्रत्यक्षमवयविविषयक तदवश्य तदवयवविषयक भवत्येव । यथा

विनो ग्रहणे कतिपयतदवयवानां भानस्यावश्यकत्वात्, नत्वेवं भवति। न च त्र्यसरेणोर्ग्रहणे तदवयवानां ग्रहणं न भवतीति नियमोऽयव्यभिचरित इति वाच्यम्, त्र्यसरेणु भिन्नपरमाणुसद्भावे प्रमाणाभावात्। न च वायुस्पर्शने व्यभिचारः, तत्रापि अनेकावयवप्रतिभासस्य सत्वात् स्पृश्यमानघटादिवत्।

घटाद्यवयविनश्चाक्षुषादिसमये घटोगृहीतो भवति, तथैव घटावयवा अपि गृह्यन्ते एवेति। इह तु अवहितमनसाऽत्मानमाकलयतो देहावयवाना ग्रहण न भवति, तस्माद्देहोनैव चैतन्यवानाऽत्मा सभवतीति। नहि भवति, स्थूलोऽवयवी प्रकाशते तदीया अवयवाश्च न प्रथन्ते। यद्यपि, अवयवि ग्रहणे तदवयवग्रहणमवश्यमेव भवतीति नियमस्तु परिणामकारणवादे एव भवति तत्रावयवावयविभावस्याभावात्, किन्तु यथादुग्धमेव विशेषावस्थानान्तरमापद्यमानन्दधीति नतु दुग्धादवयवात्, दध्न उत्पत्तिर्भवति। आरभ कारणवादे एव, अवयवेभ्योऽवयविन उत्पत्तिर्भवतीति नियम। अत्र चावयवावयविनोर्भेद इति यदा चक्षुषा घट सयुक्तोभवति तदा घटस्य चाक्षुष भवति नतु तदवयवानामपि, तेषामिन्द्रियसयोगाभावात्। अवयविनोऽवयवेभ्योऽभेदपक्षे एव प्रकृतनियम कथञ्चित्स्वीकृत्यकथितमितिग्रन्थाशय ,

यदाऽवयविनो ग्रहण तदातदवयवस्यापि ग्रहणभवतीति नियमस्यत्र्यणुकग्रहणे व्यभिचारं प्रदर्श्य तद्वारणायाह **नचत्र्यसरेणोर्ग्रहणे** इत्यादि त्र्युणकरूपमहत्ववतो द्रव्यस्य यदा चाक्षुष भवति तत्समयेतदवयवाना परमाणूना प्रत्यक्ष न जायते, परमाणूनामतीन्द्रियत्वेन प्रत्यक्षायोग्यत्वात्। तथा च तत्रावयविग्रहण भवति, तदवयवास्तु न गृह्यन्ते इति, उपर्युक्तनियमस्यव्यभिचारोदुरुद्धर एवेति। समाधत्ते-त्रसरे**णु भिन्न परमाणुसद्भावे प्रमाणाभावा**दिति। वलवत् प्रमाणान्तराभावेसति निवर्तमान प्रत्यक्ष तदभावमेव गमयति, यथाकूर्मरोमादिभ्यो निवर्तमानं प्रत्यक्ष तदभावविनिश्चिनोतीति, नियमेनातीन्द्रियपरमाणुत प्रत्यक्ष निवर्तते इति तादृशातीन्द्रियपरमाणोर्न प्रत्यक्षमिति तदभावेनतदभाव एवातो न यथोक्तनियमस्यव्याघात प्रौढिवादेनग्रन्थकर्तुरुत्तरम्। अथवा शिरोमणिमतेन "जालान्तरगतेभानौ सूक्ष्म यद्दृश्यते रज। तस्य षष्टितमोभाग परमाणु स उच्यते"इति यत् प्राचीनमतिरिक्तवचन तत्र शोभनम्, गवाक्षविवरादौ दृश्यमानत्र्यसरेणुभेदेन तदवयवावयवपरमाणुकल्पनाया प्रमाणाभावात्। तदुक्तम् "प्रमाणवन्त्यदृष्टानि कल्प्यानि सुवहून्यपि। अदृष्टशतमात्रोपिनकल्प्योनिष्प्रमाणक" इति। यदि प्रमाणमन्तरेणापि पदार्थसिद्धिर्माहेत तदा सर्वत्र सर्ववस्तु सद्भाव प्रसज्येत, कल्पनाया निरकुशत्वात्। तथाच कश्चित् ससार एव माभवतु, इत्यपि-कल्पयेत्, अन्य कश्चित् सर्वदैव ससारो भवतु, इत्यपिकल्पयेत् जीवस्य नभवतु ससार पर एवेश्वर ससारे निमज्जतामित्यादि। तस्मात् त्र्यणुके एवावयवधारा निवर्तते इति नततोव्यतिरिक्त परमाणुरिति यथोक्तनियमस्य न व्यभिचार।

यदप्युक्तं देहचेतनवादिना "स्थूलोहं कृशोहमिति शरीरेऽहं प्रत्यक्षतोऽनुभूयते ततो देह एवात्मेति । तदपि न शोभनम् स्थूलोऽहमिति प्रत्यय उभयविषयकः, तत्राहं

अथवा प्रत्यक्षयोग्यावयववतो द्रव्यस्यावयविनो ग्रहणे तदवयवस्यभानमित्येव नियमे सकोचस्तथा च परमाणुकल्पनेपि यथोक्तनियमस्य न व्यभिचारो यतस्त्र्यणुकावयवावयवपरमाणु रूपावयवस्यातीन्द्रियत्वेनायोग्यत्वात् त्र्यणुकप्रत्यक्षे न व्यभिचार इति । न च बहिरिंद्रियग्राह्ये एवावयविनि यथोक्तनियम इत्यपि न नियम, तथा नियमेपि प्रमाणाभावादेव । न च मन इन्द्रियेण केवलमवयविन एव ग्रहणमवयव ग्रहणमन्तरेणैवमितिचेत्, स्वातन्त्र्येणमनसोवाह्यपदार्थग्रहणे सामर्थ्याभावात् "परतन्त्रबहिर्मन" इतिनैयायिकोद्‌गारादिति ।

वायो प्रत्यक्षे तदवयवप्रत्यक्षत्व नास्तीति यथोक्तनियमे नास्ति व्यभिचार । अयमाशय —रूपादिविशिष्टावयविग्रहणे तदवयवानामपिभानमिति नियमे, वायु प्रत्यक्षेव्यभिचारो नास्ति वायो रूपरहितत्वात् । वायुप्रत्यक्ष स्पार्शनमेव नतु चाक्षुषम् । स्पर्शाधारमात्रेण तस्यत्वगिन्द्रियमात्रग्राह्यत्वात् । तत्रापि तादृशानेकावयवप्रत्ययस्तु भवत्येव, घटस्पार्शने घटावयवस्यस्पार्शनवत् वायो स्पर्शेतदवयवस्यापि स्पार्शनेनावयविग्रहणे तदवयवभान भवत्येवेति । इदमुक्त भवति—

वायो स्पार्शनप्रत्यक्षे तदवयवानाभान भवत्येवेति । अवयविन इन्द्रियसनिकर्षे सति तदीयावयवानामपि यथापथ चाक्षुषस्पार्शनयोर्यथायोग्यमावश्यकतया, योग्यसयुक्तावयवभानस्यावयविप्रत्यक्षनियतत्वेनावयविप्रत्यक्षस्यतदवयवविषयत्वमिति नियमेपिवायुस्पार्शनप्रत्यक्षे न कोपि व्यभिचार उदेति । वायुस्पार्शने वायोरवयवस्यापि सभवात् । यथा घटाद्यवयविन स्पार्शनेजाते घटावयवस्य स्पार्शन भवति, तथैव प्रकृतेपीति । यदपि, त्र्यसरेणौ व्यभिचारप्रदर्शनावसरे परमाणुमस्वीकृते–तदुद्धार कृतवान्, तदपि न शोभनम्, अवयविनत्रसरेणु प्रत्यक्षत्वे प्रकल्प्य तदवयवचिन्ताया तदीयमवयवान् अनुमानेनैव स्थापितवान् । त्रसरेणु सावयवोमहत्वात् घटवत्, इत्यनुमानेन तदवयवद्व्यणुक प्रसाध्य, त्र्यसरेणोऽवयवा सावयवा महदारंभकत्वात् कपालवदित्यनुमानेन तदवयवपरमाणोरपि ससाधनात् । ततश्च त्र्यसरेणो व्यभिचार स्फुट एवेति । तत्खण्डनतु प्रकृते प्रौढिवादमात्रेण । अथवा महान्तो नप्रतिक्षेपणीया महत्त्वादेवेति । विस्तरस्तु स्थलान्तरे द्रष्टव्यो विस्तरभयान्न प्रतन्यते । यद्वाऽप्रस्तुतत्वादिति सक्षेप ॥

शरीरात्मसाधक "स्थूलोहमित्यादिप्रत्यक्षप्रत्ययम् यदप्युक्तमित्यादिना तदनुवाद कृत्वा तन्निराकरणायोपक्रमते **यदप्युतंदेहचेतनवादिनेति** समाधत्ते **तदपि न शोभनमि**त्यादि सम्पूर्ण प्रकरणस्यायमाशय स्थूलोहमिति प्रत्यये शरीरान्तवर्तमानमहमाकार प्रत्यगात्मान बोधयति । स्थूलोह जानामीत्यह प्रत्ययोदेहद्वारा स्थूलत्वयुक्तान्तरात्मविषयक एवेति । मानस प्रत्यये शरीरमान तु ज्ञानलक्षणासनिकर्षेण भवति । घटोवायुमानित्यत्र यथावायुर्ज्ञान लक्षणया ज्ञायते

प्रत्ययः शरीरव्यतिरिक्तमहमाकारमान्तरं किमपि वस्तुप्रकाशयति, अपरोंऽशस्तु स्थौल्यादिगुणकं शरीरमुपस्थापयति। अत एव ममेदं कलत्रादिकमितिवन्ममायंदेह तथैव प्रकृते। स्थूलोहं जानामीत्यनुव्यवसायप्रत्यक्षेपि देहवाचकस्थूलादिशब्दोहंसबन्धिनि प्रत्यगात्मनि गौण एव। सिद्धान्तपक्षेतु मुख्य एव देहस्यचेतनं प्रत्यपृथक् सिद्धप्रकारत्वस्वीकारात्। अपृथक् सिद्धवाचकशब्दानां वर्मिणि मुख्यवृत्तेरुपगमात्। यथा देववाचकपद देवदत्तशरीरावच्छिन्नप्रकारिणो बोधने समर्थमिति। यदा च समानाधिकरणप्रत्यय शरीरव दात्मविषयकस्तदाव्यधिकरणप्रत्ययोपि तद्विषयको भवति, ममेदं शरीरम्, मम कवलो गेहादि र्वेति। भेदज्ञानं व्यवहारश्चेति। नचासौ, औपचारिक सर्वानुभवसिद्धत्वादिति। ततश्च यथाऽत्म शब्दस्यात्मनिवृत्तेरैकार्थ्यमविनादश्चेति, अहमर्थात्मनोरेकत्वे विवादाभावात्, देहाहशब्दयो रैकार्थ्यमसिद्ध विवादश्चापि वर्तते एव। नचैव प्रकृते। तस्माद्देहभिन्नचेतनस्य प्रत्यक्षप्रत्यय सिद्धतया आत्मसम्बन्धिनि शरीरेऽहं शब्दस्यापचारिक एव प्रयोग।

नचोपर्युक्तयुक्तिवलेनाहं जानामीति मानसप्रत्यक्षरूपानुव्यवसायज्ञानस्य यदाऽवयव-विशिष्टशरीरभिन्नत्वं स्थिरीकृतं ततश्च शरीरव्यतिरिक्तात्ममाने कथमात्मन शरीराऽभेद-ग्रहो विरोधिभेदस्य विद्यमानत्वादिति वाच्यम्, वाह्यघटपटादिपदार्थानां परस्परविरुद्ध परिमाणसख्यादीनां प्रत्यक्षसिद्धत्वेन परस्पर भेदोयथा सिद्धस्तथाऽन्तरात्मनि वाह्येन सहभेदक सख्यापरिमाणादिविरुद्धधर्माणामग्रहणात् देहात्मनोरभेदग्रह कदाचिद्भवतीति। अर्थात् यद्यपि शरीरादितो भिन्नपरिमाणवानात्मा, अणुपरिमाणकआत्मा मध्यमपरिमाणश्चदेह इति परस्पर देहात्मनोर्भिन्नोधर्मौविद्यते एवेति, तयोर्देहात्मनोरभेदो न युक्तस्तथापि, आत्मपरिमाणादिक प्रत्यक्ष नभवति, आत्मनोऽणुपरिमाणतया तदीयधर्माणापरोक्षत्वात् प्रत्यक्षे च महत्त्वस्य कारण त्वात्, यद्यपि ज्ञानसुखादिक प्रत्यक्ष भवति तथापि यावत्पर्यन्त शरीरे ज्ञानादीनामसभव ज्ञानं न भवेत् तावत् तत्सुखादिक भेदक न स्यात्। एवं वाह्यद्रव्यस्थितरूपादिको गुणस्ता-वत्पर्यन्त वाह्यदेहादिभ्योभेदक आत्मनो न सभवति, यावत्पर्यन्त रूपादीनामसभवग्रहो न स्यात्। सयोग सख्यादयस्तु सर्वद्रव्यसाधारणतया देहात्मनो भेदको न सभवेत्। एवं प्रकारेण बाधक प्रमाणस्य भेदकाकारग्रहो न सभवत्येवमुपपादितम्। तथा देहात्मनोरेकत्वज्ञाने सादृश्यमस्तीति प्रतिपादयति। आत्मन इच्छानुविधायित्वव्यापारकत्व देहात्मनोस्तुल्यमेवभवति इच्छाद्वारेणैवात्मा संकल्प करोति पूर्वदृष्ट कालान्तरे स्मरति वितर्कयति। एवं यथाऽत्मावितर्कादिकमिच्छादिक करोति तथैव देहोपि चेतनेच्छानुविधायिशयनोत्थानादिकार्याणि करोत्येव प्रकरेणात्मदेहयो सादृश्यदर्शनेन भवति देहात्मनोरेकत्वविभ्रमो रज्जौभुजङ्गविभ्रमवत्। अर्थात् रज्ज्वामपिदैर्ध्या-दिको गुणो भवति सर्पस्यापि तथा इत्येवमुभयो सदृशत्वात्। रजतेपि चाकचिक्य तथा शुक्ता

इत्यादिप्रतीति व्यवहारश्च भवति । न चायं भेदज्ञानं व्यवहारश्च सार्वलौकिको जायमानो भेदमूलको गौणोममात्मेतिवदिति कथनं युक्तम् , आत्मशब्दस्यात्मनि वृत्तित्वे समानार्थत्वाद् विवादाभावाच्च मुख्यत्वकथनं युक्तमेवदेहादिशब्दयोश्चैकार्थत्वस्या सिद्धेर्विवादाच्च नोपचरितार्थत्वम् ।

वपितदिति सादृश्यवर्मव वस्योभयत्रापि तात्यमिति शुक्तारजतविभ्रमो भवति तथैव देहात्मनोरपि सादृश्येनाभेदविभ्रमो जायते, इति पूर्वपक्षाशय । देहात्मनोर्भेदविषये सिद्धान्तानुयायिनामाशयस्त्वित्थम्-सत्यमविवेकिना देहात्मनोरभेदभ्रम परन्तु येऽवहितमनसो विवेकिन तेतु ज्ञातृत्वमात्राकारेण प्रकाशमानमहमाकारम् मनोमात्रगोचर सर्वावयवरहित पश्यन्त स्थौल्यादिगुणयुक्त देहादिभ्य पार्थक्येनैव जानन्ति । तत्रैकरूपतयाऽनवयवतयाऽऽत्मग्रह एव भेदकारणग्रह । ततश्च प्रणिहितमनस यथोक्तस्मरणवत मनसा शरीरवलक्षण्यतयात्मप्रत्यक्ष भवत्येव । योगिनस्तु सर्वदैवदेहभिन्नतयैव निरवयव स्वेनरविलक्षणमेवात्मान प्रत्यक्षयन्ति । स्वप्नदृगपि स्वप्ने देवदेहविशिष्टस्वात्मान पश्यन् तदुचितभोग कुर्वन् स्वप्नावमाने मनुष्यदेह पश्यन नाह देवोऽपितु मनुष्यदेह इति तत्र जागरणे देवादिदेहस्य बाधेपि अबाध्यमान निरवयवमहमाकारमात्मान प्रत्यक्षयत्येवेति स्थितम् । आत्मावाह्यदेहादिव्यतिरिक्तज्ञातृत्वेकाकारेण प्रकाशमान इति । "अहंकारस्याश्रयोय मनोमात्रस्य गोचर' इति नियमेन देहव्यतिरिक्तत्वमात्मन प्रत्यक्षेण साधितम् 'चेतसा वेदितव्य ' इत्येतच्छ्रुते प्रमाणत । अणोर्मानसप्रत्यक्ष जीवस्य चोपपद्यते" ॥८६९॥ श्रीबोधयनमतादर्शे श्रीआचार्यचरणोक्ते ।

अनुमानप्रमाणेनापिजीवस्य शरीरातिरिक्तत्व सिद्ध्यति अहजानामीति ज्ञान शरीरादिविषयक न भवति । देहावयवाविषयकत्वात । जानामीति प्रत्यय आत्मव्यतिरिक्तार्थान्तरविषयको न भवति, अप्रकाशमानतदवयवप्रतिभासत्वात , य एव प्रकार स तथा, यथाघटोयमिति प्रतिभास यत् शरीरविषयक न तदात्मविषयकम् , यथोभयवादि सम्मतशरीरादिविज्ञानम् । अत्र प्रथमानुमाने शरीरविषयकत्वाभाव साध्यम् द्वितीयानुमानेतु देहातिरिक्तविषयकत्व च यह जानामीत्यपरोक्षस्य प्रदर्शितम् । एवम् , देहोऽहमिति ज्ञानविषयो न भवति, इदमाकारकप्रतीति विषयत्वात , तथा देहोऽहमिति ज्ञानविषयो नभवति बाह्येन्द्रियग्राह्यत्वात् । तत्र बाह्येन्द्रियेण चक्षुषात्वगिन्द्रियेण च बाह्यद्रव्य प्रत्यक्ष यथा चक्षुषा घटादिकत्वगिन्द्रियेण च वायुर्गृहीतो भवतीतिरूपिद्रव्य पृथिवीजलतेजासि वायुश्च रूपरहित इति वायो प्रत्यक्ष त्वगिन्द्रियमात्रेण रूपद्वारा पृथिव्यादीना तूभाभ्यामिन्द्रियाभ्या भवति । एव चोपयुक्तानुमानभ्योपि, अहमिति प्रत्ययस्य न शरीरादिविषयकत्व सिद्ध्यति । "प्रवृत्त्याद्यनुमेयोऽयरथगत्येव सारथि । अहकारस्याश्रयोऽय मनोमात्रस्य गोचर" इति न्यायविदा प्रक्रियानुसारेण मनसाऽय स्वे देहे ज्ञातो भवतीति मानस प्रत्यक्षमात्र विषय । शरीररूपत्वेत्वात्मन शरीरस्य रूपस्पर्शवत्वेन

तस्माद्देहभिन्नात्मनः प्रत्यक्षसिद्धत्वात्, आत्मसम्बन्धिनि शरीरे लाक्षणिकोऽहं शब्दप्रयोगः। देहात्मनोऽभेदस्तु भ्रममूलक एव पामराणामिति।

रूपस्पर्शसहकारेण पृथिव्यादिरूपिद्रव्यवत्, केवलस्पर्शाश्रयवायुवच्च बाह्येन्द्रियेणापि कदाचित्कस्यचित् प्रत्यक्षो भवेत्, नतुरूपस्पर्शादिरहितस्यात्मन केषाचिदपिबाह्येन्द्रियग्राह्यता दृश्यते। तस्मान्नायमात्माबाह्येन्द्रियग्राह्य इति न बाह्यपदार्थ, अपितु आन्तर एव। आन्तरत्वाच्च सुखादिवत् केवलमनसैव गृहीतो भवन् चाक्षुषादिद्रव्यव्यतिरिक्त एव। यथा परकीयदेहे हिताहितप्राप्तिपरिहारानुकूलचेष्टात्मकप्रवृत्त्याऽनुमितो भवति, तथैव स्वशरीरेपि प्रवृत्त्याज्ञेयो भवति। यथा गृहान्तर्गतो बालको विविधवातायनद्वारेणानेक मनस आल्हादजनक वस्तु पश्यन् शृण्वन् स्पृशन् गृहातिरिक्तो भवति नतु गृहस्वरूपो भवति, आधाराधेयभावस्य भिन्ने एव सभवात्, अभिन्ने तदभावात्, तथैव शरीराधिष्ठित शरीरे विद्यमानो जीवात्मागवाक्षस्थानीय चक्षुरादिद्वारा रूपस्पर्शादिकमनुभवन् शरीरात्मकाधारात् सर्वथा भिन्न एव। नतु कदाचिदपि देहस्वरूपस्तत्रानुपपत्ते पूर्वप्रदर्शितत्वात्। किञ्च "मृत शरीरमुत्क्षिप्यकाष्ठलोष्ठ समक्षितौ। विमुक्तावान्धवायान्ति धर्मस्तमनुगच्छति" इति मनु। अयमर्थ अत्रमृतदेहस्यवने विसर्जनमात्मनश्च धर्माधर्मसहकृतस्य परलोकगमन श्रावितमित्यतो देहेन सह भेद आत्मन स्पष्टरूपतया प्रतिपादित। यद्ययजीव शरीररूप एव तदा चितारूढदेहो भस्मसाद्भूदिति धर्माधर्मपाथेयस्य कथ परलोकस्य महाप्रस्थान भवेत्। तस्मादग्निदग्धसावयव दहनादियोग्यपार्थिवादिशरीरापेक्षया, निरवयवाग्न्याद्यदाह्यपरलोकगामी कश्चिदन्यस्तवात्मा।

तदुक्तम् "अग्राह्योऽयमदाह्योयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्य सर्वगत स्थाणुरचलोऽय सनातन ॥"

इत्यादि प्रकरणेन भगवान् जीवस्याग्राह्यत्वादिक प्रतिपादयन् तद्भिन्नदेहस्य च ग्राह्यत्व दाह्यत्वादिक कथयन् स्पष्टत एव देहजीवयोर्भेद प्रतिपादितवान्। नहि दाह्यत्वानित्यत्वादिधर्मोपेत देहस्य नित्यत्व परलोकगामित्वादिक श्रुतमुपपद्यते वा। तस्माद्देहभिन्नजीव इति प्रत्यक्षानुमान स्मृत्यादि प्रमाणै प्रदर्शितम्। किञ्च "सत्य ज्ञानम्" "प्रज्ञान घन" "न सदृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम्" अरूपमस्पर्शमशब्दमव्यय तथा रस नित्यमगन्धवच्चयत्" इत्यादिश्रुतिप्रमाणेन शरीरातिरिक्तत्वमात्मन समर्थित भवति। तत्र प्रथमद्वितीयमन्त्राभ्यामात्मनो ज्ञानरूपत्वम्, तच्चगुणरूपमेव, ततश्च स्वरूपज्ञानस्य पृथिव्यादिभूतपरिणामात्मक देहरूपत्वाभावात्। अशब्दमस्पर्शमित्यादिनाभूतगुणादिशब्दादिनिषेधेन शब्दस्पर्शादिमद्भूत रूपत्वस्यात्मनोर्थत एव सिद्धत्वेन न कथमपि देहरूपत्वमात्मनो भवति। विस्तरस्त्वन्यत्र द्रष्टव्य स्तत्रतत्रबहुप्रपञ्चितत्वादितिदिक्।

देहोनात्मा सङ्घातरूपत्वात् शयनासनादिवदित्यनुमानेनापि शरीरस्यानात्म रूपत्वं सिद्ध्यति। यत् सङ्घातरूपं तत्सर्वं परार्थमेव भवति, आत्मातु न परार्थः किन्तु आत्मार्थ एव। तदन्यत्सर्वमात्मार्थमेवनत्वात्मा तथा सङ्घातरूपत्वाभावात्। एवं भोक्तृत्वादपि देहादतिरिक्तः तथाऽचेतनदेहादीनामधिष्ठापकः। शास्त्रस्य महर्षीणां च मोक्षार्थं प्रवृत्तिदर्शनादपि देहभिन्नः सर्वस्य भोग्यजातस्य भोक्तृत्वात् देहादेः सङ्घात रूपत्वात् ततो व्यतिरिक्तत्वमेवेति। त्रिगुणात्मकत्वादपि जीवसिद्धिः।

देहोहि जीवो न भवति, यत शब्दादेर्वाह्यस्य भोगस्य, तथाऽन्तरस्य च सुखादेरात्मार्थित्व भोक्तुश्च जीवस्यानन्यार्थत्वदर्शनेनात्मासर्वस्यशेषीति प्रत्यक्षत एव सिद् यति, इत्याकलय्य, शरीर नात्मा सङ्घातरूपत्वादित्यनुमानेन देहस्यानात्मत्वसाधकप्रयोगे हेत्वसिद्धिपरिहर्तुं हेतुस्वरूप प्रतिपादयति **देहोनात्मा** इत्यादि। अयमाशय—यद्यत्सङ्घातरूप समुदायात्मक तत्सर्वं परार्थमेव भवति, यथा शयनासनविहाररूपादयोनतु ते स्वप्रयोजनका अचेतनत्वात्। आत्मा तु नपरार्थरूप आनन्दरूपत्वात् "मानभूव नभूयासमिति प्रेमात्मनीक्ष्यते" इति शयनासनादिक यथा स्वकीयभोक्तार स्वव्यतिरिक्तमाक्षिपति तथैव सङ्घातरूपतयाशरीरमपि स्वभोक्तारमसहतकमप्याक्षिपति स एवासहतो जीव आत्मेति। न च सङ्घातरूपशयनासनादिक सङ्घातरूपमेव शरीरादीना प्रयोजनाय भवत् सजातीयमेव सघातान्तरमाक्षिपति तथैव देह सघातरूपत्वात्सङ्घातान्तरमेवाक्षिपेदितिनाहतपुरुषसिद्धि स्यादिति वाच्यम, भावानव बोधात्। अर्थात् यथा सङ्घातरूपेण शयनासनादिना सहतदेहस्य सिद्धिर्भवति तथैव देहोपि कमपि सघातान्तरमेवाक्षिपेत्तदाऽनवस्था प्रसज्येत। यतो देहेन सघातरूपेण सघातान्तरस्यानुमान तदाऽनुमीयमानसघातान्तरस्यापि सङ्घातरूपत्वेन तेनापि सघातान्तरस्य सिद्धि प्रसगेनानवस्थादुरवस्था स्यात्। न च भवतु, अनवस्था न तावताक्षतिरिति वाच्यम् "प्रागुलोपा विनिगम्यत्वप्रमाणापगमैर्भवेत्। अनवस्थितिमास्थातुरचिकित्स्यात्रिदोषतेति" पूर्वाचार्योदितवचनेन त्रिदोषप्रसङ्गात्। अर्थात् अग्रिमाग्रिमसघातस्य सिद्धौ पूर्वपूर्वसघातस्य निष्प्रजनत्वेन सघातान्तरप्रवाह किमालवेत, उत्तरोत्तरेण पूर्वपूर्वप्रयोजनस्य सिद्धौ पूर्वपूर्वस्य विलोपप्रसङ्गात्। अनेकसङ्घान्तरस्य सिद्धौ कस्यात्मत्वस्यादिति विनिगमनाविरह। प्रवाहस्य कुत्रचिदप्य विरामे तादृशप्रवाहपरपराया स्वीकारे नास्ति किमपि प्रमाणम्, नवा तदनुभवोपि कस्यचिदपि सभवति तस्मात् प्रागुलोपाविनिगम्यत्वप्रमाणापगमदोषेभ्योऽनवस्थाऽसमाधेयाभवति यथा लौकिक त्रिदोष सन्निपातज्वरोऽसमाधेयस्तथैव त्रिदोषग्रस्ताऽनवस्थापि, समाधेया नैव स्यादिति। न च शयनाशनसङ्घातो यथा सहतशरीराद्यर्थो दृश्यते तथैव सहतदेहेन जीवस्यापि सहतत्वमापद्येत, सहतत्वाच्चतस्यापि परार्थत्व स्यात् परन्तु आत्मा तु नपरार्थोऽपितु अपरार्थ प्रत्यक्षेण

ननु यद्यपि शरीरे भौतिके आत्मप्रतियोगिकभेदस्य कालाकाशयो प्रत्यक्षाऽयोग्यत्वमेव, तथापि, देहस्यात्मत्वमचेतनत्वानुमानप्रमाणादेव सिद्धं भवति । कार्यद्रव्यनिष्ठो विशेषगुणः कारणगतविशेषगुणपूर्वक एव भवति जलीयरूपरसादिवत् ।

दृश्यते न च व्यवस्थाया सत्यामव्यवस्थायुक्ता । नवा सङ्घातस्य परार्थत्वे परस्य सघातत्वमपिप्रयोजकम् । भोक्तृत्वेनैवात्मन स्वार्थसवात प्रतिपरत्वस्यकथञ्चित् सभवात् यद्यनुमाने दृष्टान्त दृष्टसर्ववर्मस्य सादृश्यमीहेत तदासर्वानुमानस्य विलोप प्रसज्येत । अन्ततो महानसत्वपर्वतत्वेन समानत्वस्याभावादिति । तस्मात्साधर्म्यमात्रेण कस्यचिदर्थस्य सिद्धि प्रतिषेधो वा भवतीति । एवञ्च यथोक्तक्रमेण "अहमात्मान जानामीत्यह ज्ञानस्य प्रत्यक्षरूपस्य परागरूपशरीरातिरिक्त विषयकत्व व्यवस्थापित युक्तितर्कादिना । ततश्चाह प्रत्यय एव शरीरभेदस्वरूप इतीदकरास्पदे शरीरे आत्मप्रतियोगिकभेदोपि प्रत्यक्षसिद्ध एव भवतीति । ततश्च सङ्घातस्यपाराश्येन देहस्य सङ्घातरूपत्वेनतत परआन्तरस्य तद्भिन्नजीवसिद्धि प्रदर्शिता । एवमधिष्ठानत्वेनापि जीवस्य सिद्धिर्भवति तथाहि, यद् किञ्च देहस्य सत्वरजस्तमो गुणात्मकतयातद्व्यतिरिक्तस्यात्मन पार्थक्येनैवत्रिगुणस्यसिद्धिर्भवति । तथा सर्व भोग्य जीवश्च भोक्तेति भोक्तृतयापि सिद्धिर्भवति । तथा मोक्षार्थ प्रवृत्तिदर्शनात् शास्त्रस्यमहाविद्याच्च । मोक्षोहिबन्धनविश्लेषरूप , बन्धश्च प्रकृति रूप एव, नहि बन्धरूपस्य बन्धनिवृत्ति स्वस्यस्वेन वियोगाभावात् , इति ततो व्यतिरिक्त एव कश्चिद्बध्य सचकारणवशेनादृष्टादिना पूर्व बद्ध इति तन्निवृत्तये मननादौप्रवर्तमाना , उपासनया सञ्जातज्ञानो मोक्षभाग्भवतीति । देहव्यतिरिक्तत्व जीवस्य भवतीति सक्षेपो विशेषस्त्वन्यत्र ।

ननु यथा घटे पटभेदो घटपदयोर्भेदेनदृश्यमानतया तयोर्भेदेपि प्रत्यक्षो भवति, इह तु देहात्मनोर्मध्ये देहस्य बाह्यप्रत्यक्षत्वेपि जीवात्मनो बाह्यप्रत्यक्षाऽविषयतया कथमात्मदेहयोर्भेद प्रत्यक्षेण साधित इत्याशङ्क्य देहात्मनोर्भेदस्य प्रत्यक्षायोग्यत्वेपि, अतीन्द्रिययो कालाकाशयोर्भेदोऽप्रत्यक्षोपितयोर्भेदोऽनुमानेनैवसाध्यते, तथैवप्रकृते शरीरस्यानात्मत्वम्, अचेतनत्वलक्षणानुमानेन साधयितु शक्यते, एवेत्याशयेन समुपक्रमते **ननु यद्यपि शरीरे भौतिके** इत्यादि । समाधत्ते तथापि देहस्येत्यादि । एतदेवोपपादयति **कार्यद्रव्यनिष्ठ** इत्यादि । कार्यद्रव्यगतो विशेषगुण कारणगुणपूर्वक एवभवति, यथाऽवयविजलराशोयो रूपरसादिर्भवतिसस्वकीयकारणगतगुणेनैव, नतु कारणगुणविपरीतगुण कार्येभवति । इहतु देहावयवेषु ज्ञानस्याभावात्, कारणगुणपूर्वक देहेचैतन्य सभवति। यदि कदाचित् शरीरावयवेषु चैतन्य स्वीकुर्यात् तदा, एकस्मिन्नेवदेहेऽनेकचेतनस्वीकारदोष आपतेत । न चैतदिष्ट दृष्टविरोधात् । तस्मात्कारणगुणपूर्वक शरीरेचैतन्यगुण । नचाकारणगुणपूर्वक एव भवत्विति वाच्यम् , ज्ञानस्य विशेषगुणत्वेन तत्कारण-

नच "चतुर्भ्यः खलुभूतेभ्यश्चैतन्यमुपजायते किण्वेभ्योमदशक्तिवदितिवाच्यम् शक्ति पदार्थस्य सामान्यगुणत्वेन सर्वसाधारणतया तथोपपत्तिसंभवेपि चैतन्यस्य देहात्मत्व गुणत्वस्वीकारेण सर्वसाधारणत्वाभावात् । ज्ञानस्य तु कार्यत्वेन प्रत्यक्षसिद्धतया विशेषगुणत्वात् ।

गुणपूर्वकत्वस्य देहेऽसभवादिति । पुन शङ्कते, **चतुर्भ्यः खलु भूतेभ्यमदशक्तिवदि**ति । यथाऽनेकद्रव्ययोगेन तत्रैकामदशक्तिरुत्पद्यते तथैव पृथिव्यादिचतुर्भूतमयोगेन ज्ञानाख्योगुण समुत्पद्येत, ततश्च तदाश्रयत्वेन न देहस्यात्मत्वमुपपद्येतेतिभाव । उत्तरयति **"शक्तिपदार्थस्येत्यादि** शक्ति सामान्यगुणरूपासर्वभाववृत्तित्वात्, ततश्च शक्ते सामान्यगुणत्वेनकथञ्चिदकारणगुणपूर्वकत्वत्र्यसरणुमहत्ववत् सभवेदपि ज्ञानस्य तु विशेपगुणतयाऽकारणगुणपूर्वकत्वाभावात् । "सयोगशक्तिनामानो सर्वद्रव्यगुणा मतो" इति श्रौतप्रमेयचन्द्रिकाकारोक्ते शक्ति पदार्थान्तररूपैवेति कार्यप्रतियोगिककारणानुयोगिकाकार्यदर्शनात्तत्कार्येणानुमीयते नतु शक्ति प्रत्यक्षा । "न तस्य कार्यं करण च विद्यते परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकीज्ञानबलक्रियाच" शक्तय सर्वभावानामचिन्त्यज्ञानगोचरा" इत्यादिश्रुतिपुराणानुमोदिता तत्तत्कार्यप्रयोजिका सर्वसाधारिणी सामान्यगुणरूपेत्यतो यथा कथचिदकारणगुणपूर्वकत्वसभवोनत्वेव ज्ञानस्येति । अस्या गुणत्वकथन विशेपणत्वरूपेण नतु परिगणितरूपत्वम् । ज्ञानतु न सामान्यगुणात्मकम्, देहे एव तदुपगमात् विशेषगुणत्वमेव । द्रव्यत्वन्यूनवृत्तिगुणत्वमेव विशेषगुणत्वमिति सिद्धान्तिना पन्था । वैशेषिकानुयायिनस्तु "ज्ञान विशेषगुण कार्यत्वे [जन्यत्वे] सति, एकविधप्रत्यक्षविषयत्वात् रूपरसादिवत् । चक्षुस्त्वगिन्द्रियाभ्या ग्राह्ये सख्यादिसामान्यगुणे विशेषगुणलक्षणातिव्याप्ति, वारणाय प्रकृतलक्षणे, एकविधत्वमिति विशेषण प्रत्यक्षे प्रक्षिप्तम् । ततश्चद्वीन्द्रियग्राह्यसख्यादौ एकप्रकारकप्रत्यक्षविषयत्व नास्तीति । तत्र द्विविधप्रत्यक्षत्वात् । आलोककुड्यादिसयोगे लक्षणस्यातिव्याप्तिवारणाय एकविधप्रत्यक्षविषयजातिमत्वमेव वाच्यम्, सयोगनिष्ठसयोगत्वजातेर्द्रव्यग्राहकचक्षुस्त्वगिन्द्रियोभयग्राह्यत्वान्न भवत्यतिव्याप्ति । विशेपगुणलक्षणे ज्ञानादि भिन्नत्वमिति निवेशस्तु नशङ्कनीयस्तस्यज्ञानादे विशेषगुणत्वस्य प्रमाणसिद्धत्वादिति । मद्योत्पादक द्रव्येषु प्रत्येकमपि मादकताशक्ति सूक्ष्मरूपेण वर्तते एवेति कार्यगतगुणोत्पादकत्व सजातीयकारणगतगुणस्यैवेति नियमे न कोपि दोप । कारणगतो गुण कार्यगत सजातीय गुणान्तरमारभते द्वयणुकगतरूपाद्युत्पादकपरमाणुस्वरूपादिवदितिनियमघटककारणपदेन समवायिकारणस्यैव ग्रहण नतु कारणस्य, निमित्तकारणादिगतरूपादे कार्यद्रव्ये सजातीयरूपान्तराऽनारभात् । नहि नीलादि दण्डेन नीलघटस्योत्पत्ति । तत्र दण्डत्वेनैवदण्डस्य कारणता नतु नीलादिरूपविशिष्टत्वेन, तथाऽदर्शनात् । यदि निमित्तकारणमपि द्रव्यकार्यं प्रतिस्वगुणमुत्पादयेत्तदा प्रागभावोत्पादितघटोऽ-

यद्यपि चित्ररूपमकारणगुणपूर्वकं तादृशचित्ररूपे व्यभिचारोद्भावनं कृतम् तदपि न समीचीनम्, नानारूपविशिष्टतन्तुभिरवयविनि चित्ररूपसंभवात्। यद्यपि प्रत्येकतन्तौ नानारूपंनास्ति, संमिलिततन्तुषु तत्संभवात्, पटावयविहेतवस्तन्तवश्चित्रा इति लोकप्रतीतेः। एवं चित्रपटहेतुषु तन्तुष्वचित्ररूपमव्याप्यवृत्त्येव चित्ररूपं विद्यते इति न

प्यभाव रूप एव स्यादिति। न चैवमत्र शरीरावयवभूतेषु प्रत्येक चैतन्यमुपलभ्यते येन तत्समुदायजनितदेहे चैतन्यमुपेयात्। नवात्रप्रत्येकभूते चैतन्य साध्यते। दृश्यते च प्रत्येकतिलेषु तैलसत्वे एवतत्समुदायादपि पीडनेन तैलप्रादुर्भाव, नहि भवति सिकताभ्यस्तैलोत्पत्ति। तत्कस्य हेतो ? प्रत्येकस्मिन्नसत्वात्। यदि शरीरस्य प्रत्येकस्मिन् अवयवे चैतन्योपगम स्यात्तदा, एकस्मिन्नेव देहेऽनेकचेतनसद्भावे कस्य प्राधान्य कस्य गौणत्व को हि नियामक कश्च नियाम्य इति निर्णयाभावेन दर्शनस्पर्शनादि व्यवहारो नैव कथञ्चिदप्युपपादित स्यात्। एकशरीरे एक चेतनवादेतु भवति व्यवहारोऽविसवादित। तथैकजीववादे एव अनुभवस्मरणयोर्बद्धमुक्तयोर्व्यवस्था भवति, अनेकजीवस्यैकस्मिन्देहे स्वीकारे, येनानुभव कृतस्तदभावे तदन्यस्य स्मरण न स्यात् "नान्य दृष्ट स्मरत्यन्योनैकभूतमयक्रमात्" इति दर्शनस्मरणयोश्च सामानाधिकरण्यात्। नहि देवदत्तदृष्टमर्थं यज्ञदत्त कदाचिदपि स्मरति तयो सामाधिकरण्यादेवेति। तथा शरीरावयवाना हस्तादीनामकस्मात् खण्डने जातेऽवशिष्टावयवजनितखण्डशरीरस्थितचेतनेन पूर्वदृष्टरथादेस्तदन्यावयवजनितशरीरान्तरेण स्मरण कथमपि न स्यात्, द्रष्टुर्विनिष्टत्वादित्यादिकमधिकमन्यत्रानुसन्धेयम्। तस्माच्छरीर नात्मा तथात्वे लौकिकपारलौकिकसर्वव्यवहारविलोपप्रसङ्गादित्यय चार्वाकोदेहात्मवादी विद्वद्गोष्ठीभ्यो निष्काशनीयोनिष्काशितश्च पूर्वाचार्यै —

"स्थूलश्चाह हि गच्छामि प्रत्ययाच्चेतनस्तनु। मृते देहेतु चैतन्य प्राणनिर्गमनान्नहि ॥८७६।
इति चेन्न वर चैतद्विकल्पासहता यत। देहस्यावयवे तच्चैकस्मिन् सर्वेषु वास्ति हि ॥८७७॥
माद्य प्रतीयते यस्माच्चैतन्यमितरत्र च। बहुचेतनवत्वस्यादन्त्ये चैकतनावथ ॥८७८॥"

इत्यादिरूपेण सहस्रश्लोक्या जगद्गुरुश्रीपूर्णानन्दाचार्यप्रभृतिभि। तथैव

"देहप्राणेन्द्रियादेश्च ममेत्यादिप्रतीतित। देहप्राणादिरूपत्व नात्मनोमन्यते बुधै ॥५।२०॥

एवंरूपेण जगद्गुरुश्रीश्रियानन्दाचार्येणापि गलहस्तितञ्चैतमितिदिक्।

पूर्वपक्षकृतप्रश्नस्य समाधानार्थमुपक्रमते **यदपि चित्ररूपकारणपूर्वकमि**त्यादि।" अयमाशय· रूपम् व्याप्यवृत्त्यव्याप्यवृत्तीतिमतद्वयम्। तत्र"व्याप्यवृत्ति"इति मते अनेक रूपवदवयवेभ्यो जायमानपटेननीलरूपमात्र पीतादेरपितत्र दर्शनात्, अव्याप्यवृत्तिरूपस्यासभवात्। न चावयविनिरूप नास्त्येव, तथा सति रूपाभावेन चाक्षुषतानस्यादतोऽवयविनि चित्ररूपमेकमपूर्वमेवोत्पद्यते

व्यभिचारशङ्का। नचैकरूपाभावेनावयविनश्चाक्षुषत्वं न स्यात्, रूपाभावादिति वाच्यम् रूपमहत्त्वयोरेव चाक्षुषे प्रयोजकत्वोपगमात्। अथवा भवतु रूपस्य व्याप्य-वृत्तित्वं, तथापि कारणगतनानारूपैरेव कार्यगतचित्ररूपस्य संभवात्। न चैवं तदा-ऽवयवगतचैतन्येदेहात्मगतचैतन्यस्योत्पादो भवत्विति वाच्यम् सामान्यतो देहगत तदवयवगतस्य प्रमाणाभावेनास्वीकारात्, अन्योन्याश्रयाच्च। तस्मान्न देह आत्मेति। अपि च विरोधिगुणोदयं विना निवर्तमानश्चैतन्यगुणो न देहस्य संभवति चन्दनादि गन्धवदिति ज्ञानसुखादिर्न देहगुणोयावद्द्रव्यभावित्वात्। देहगुणः प्रत्यक्षयोग्यो बाह्येन्द्रियग्राह्यश्च दृष्टो ज्ञानादिस्तु न तथेति न देहगुणः। ततश्चोत्पत्तिमत्त्वात्परा-र्थत्वात् रूपादिमत्वात् शरीरस्य नात्मत्वमिति देहात्मवादः।

इति प्राचीनमतम्। नवीनास्तु, अनेकरूपावयवैर्नानारूपविशिष्ट एव विलक्षणो जायतेऽर्थाद व्याप्यवृत्त्येव रूपमवयविनिजायते। लौकिकविषयतासम्बन्धेन द्रव्यचाक्षुष प्रतिसामाना-धिकरण्येन महत्त्वविशिष्टोद्भूतरूपस्यैव कारणत्व समवायसम्बन्धेन भवति, नतु कारणताव-च्छेदककोटौ व्याप्यवृत्तित्वाव्याप्यवृत्तित्वयोर्वा प्रवेशे गारवमात्रमेव। अतएव "लोहितो यस्तु वर्णेन मुखेपुच्छे च पाण्डुर। श्वेत खुरविषाणाभ्या स नालोवृष उच्यते" इत्यादि शास्त्रमप्यनु-नुकूल भवतीति। नच तन्त्वादिकारणविविधनीलादिवर्णै पटेऽवयविनि चित्ररूपारभस्तथैव देहावयवगतानुद्भूतचैतन्यैर्देहे उद्भूतचैतन्योत्पत्तिरिति वाच्यम्, चैतन्यसामान्यस्यैवभूतेतद-वयवे वा वृत्तित्वे प्रमाणाभावात्। **अन्योन्याश्रया**च्चेति यदिशरीरे चैतन्य तदातदन्यथाऽ-नुपपत्त्यातत्कारणतदवयवेषु चैतन्यमनुमीयेत, यदातु कारणभूतावयेषु कल्पनास्याच्चैतन्यस्य तदातत्कार्यभूते देहे चैतन्येति भवत्येवान्योन्याश्रयोदुरवस्थ एव भवतीति। ततो न देहश्चेतन इति। **अपि च विरोधि गुणोदयं विना**पीत्यादि–" अयभाव–"पाकजरूपादिक परि-त्यज्य तदन्यविशेषगुणस्तदुत्तरजायमानेन निवर्तते इति भूतगुणायावद् द्रव्यभाविन, याव-त्काल द्रव्य भवति तावत्काल तदीयगुणोप्यवतिष्ठते एव। आत्माकाशादेर्विशेषगुणस्तु नयावद्द्रव्य भावीनि आत्मगुणेभ्योभूतगुणस्य वैधर्म्येण न भूतगुणत्व ज्ञानस्य अभावद्रव्यभावित्वात्। अर्थात् स्वात्ममात्रग्राह्यत्व मनोग्राह्यत्व मनोग्राह्यत्व च ज्ञानसुखादे शरीरविशेषगुणेभ्योवैधर्म्यम्। रूपरसादयस्तु देहगुणा स्वपरग्राह्यावहिरिन्द्रियग्राह्याश्च भवन्ति, इति विरुद्धशालित्वात् ज्ञान न भूतगुण। तस्मात् उत्पत्तिमत्वाद्रूपादिमत्वाच्च न देह आत्मेति सक्षेप॥

शरीरस्य चक्षुरादिवाह्येन्द्रियप्रत्यक्षविषयत्वाद्भौतिकत्वाद्वेति प्रत्यक्षानुमानप्रमाणैरात्मत्व निराकृत्य, तदनन्तरवाह्यप्रत्यक्षाऽग्राह्यतयाऽन्तरत्वेनेन्द्रियस्यैवात्मत्वव्यवस्थापयितुमुपक्रमते

अथ भवतु तदेन्द्रियमेवात्मा। तदिन्द्रियं चक्षुरादिकं नेदं पदवाच्यम् येन शरीरवदहंकारपदवाच्यं भवेत्। नवा तदिन्द्रियमुद्भूतगुणाधारतया स्थूलं येन स्थूलप्रतिभासवत् इन्द्रियविषयत्वेऽहंमिति ज्ञानस्य रूपावयवादिप्रतीतिप्रसङ्ग आपद्येत तस्मादिन्द्रियमेवात्मा। अत एवोपनिषदि चक्षुरादीनां परस्परं चेतनवत्कलहोपि श्रूयते।

अथ भवतु तदेन्द्रियमेवात्मा इत्यादि। शरीरस्यात्मत्वे वहवो दोषा उदाहृत्य देहस्यात्मत्व निराकृतम् परन्तु करणरूपेन्द्रियस्यात्मत्वे ते दोषाभवदुक्ता न भवन्तीति दर्शयितुमाह **तदिन्द्रियं चक्षुरादिक**मिति अयमाशय, इदमेतदो प्रत्यक्षविषये शक्ति, अर्थादिदशब्द प्रत्यक्षमेवार्थं बोधयतीति नियम ततश्च देहस्य स्थूलतयेन्द्रियग्राह्यतया च ग्रहण भवनीत्यत इद बोध्यतयानाहङ्कारविषयता, इन्द्रियस्य तु, अतीन्द्रियतयानेद पदवोध्यता, तस्मादिन्द्रियस्याहङ्कार वोध्यत्वे नकोपि दोष। नवा उद्भूतरूपादिगुणानिस्थूलानि तत्र भवन्ति, येनेन्द्रियविषयत्वेऽहमिति ज्ञानस्य रूपावयवादिप्रतीतिरापादिता स्यात्। किञ्चज्ञानमिन्द्रियधर्म इन्द्रियाणा यो व्यापार स्तादृशव्यापारजनिततयेन्द्रियफलत्वात् यस्य व्यापारस्य यत् फल तत् तस्मिन् वर्तते इति नियमात् यथाऽत्मन पवित्रीकरणाय क्रियमाणगङ्गास्नान देवदत्तीयव्यापारस्य फल शुचित्व देवदत्ते समवेतम्, यथा देवदत्तीययागादिव्यापारजनित स्वर्गादिफल देवदत्ते एव समवैति तथैव प्रकृते इन्द्रियव्यापारजनितज्ञानात्मकफलमिन्द्रिये एव समवेत भवेदिति ज्ञानाधिकरणत्वादिन्द्रियमेवात्मा। नचैवमिन्द्रियस्यैव चाक्षुषादिज्ञानात्मकक्रिया प्रति कर्तृत्व करणत्व चापतेत्। नच तत्सभवति ? क्रियाया स्वतन्त्रस्य कर्तृत्वभवति, करण च कर्तृव्यापारविषय, न चैतदुभय परस्पर विरुद्धमेकस्य सभवतीति वाच्यम्, सर्प स्वात्मान स्वेनैववध्नातीत्यत्र वन्धनक्रियाया सर्पस्यैव तदुभयदर्शनात्। **अतएवोपनिषदीति** अयभाव कदाचित् पूर्वकाले चक्षुरादय समिलिता तत्रसमेत्याह श्रेष्ठ इत्येव विवदमाना अभूवनतस्ते विवादप्रशमनायपितर प्रजापतिं प्रतिजग्मु। गत्वाच विवादविषय पितर कथयामासु। ततस्तेषा वचनमुपश्रुत्यसहोवाच "हे चक्षु त्व शरीराद्विनिर्गत्यान्यत्र गच्छ, किञ्चित्कालमन्यत्रावस्थायपुनरागच्छेति। ततश्चक्षुर्गत पुनरागत्यपृष्टवान्, मयिगते कथ भवता व्यवहारो जात इति। ततस्तेवागादय ऊचु। अन्धस्य या गतिस्तेनैव प्रकारेणास्माकमपि व्यवहारोऽभूत्। एव प्रकारेण सर्वेषा गमनमप्यभूत्, तदनन्तर प्राण शरीरान्निर्गमनमिच्छन् प्रयत्न गमनार्थमकरोत्ततस्तेवागादयोमृतप्राया अभवन्निनिदृष्ट्वापित्रा कथितम्, सर्वेषामिन्द्रियाणा मध्ये प्राण एव श्रेष्ठ इति। ततस्ते वागादय प्रीता, शरीरमाविशन्निति। इत्येव वागादीन्द्रियाणा कलहोत्रह्मलोक प्रतिगमनमागन चैतत्सर्वं श्रुत्वा दृष्ट्वा च निश्चीयते यत इन्द्रियाणा व्यवहार सर्वोपि, अस्मदादिवेतनवदेवेति। ततश्चेन्द्रियमेवात्मा नतु देह आत्मा, नवा एतदन्यतरथासति गौरवात्। अत सम्यगेवकथित प्रश्नकर्त्रा, भवत्विन्द्रियमेवात्मेति पूर्वपक्षस्य सार।

यदेतदिन्द्रियाणामेवात्मेतिवदता मतं तन्न समीचीनम्। तथाहि प्रत्येकं चक्षुरादिकमात्मा, अथवा मिलितं सर्वं तदात्मेति विकल्पासहत्वात्। तत्र यदि प्रथमः कल्प्येत तथा चक्षुषाऽनुभूतस्य चक्षुरभावेतत्सत्वेवा, इन्द्रियान्तरेण स्मरणं न स्यात्। अनुभवस्मरणयोः सामानाधिकरण्येनैव कार्यकारणभावस्य नियमात्। दृश्यते च यमहमद्राक्षं तमेवेदानीन्त्वक्स्पृशामीति। नवा संमिलितेन्द्रियग्रामस्यात्मत्वमिति द्वितीयः पक्षः? मिलितानामपि तेषां चेतनत्वासंभवात्। शब्दादिविषयः प्रतिनियतग्राह्योजातः संभूयतैरेकं रूपादिकमनुभूयेत नवा स्मर्यते। तथा यस्य कस्यचिदेकस्येन्द्रियस्य विनाशे मरणमेवापद्येत, नत्वेवं भवति, इन्द्रियविलोपिजीवनदर्शनात्। नवा इन्द्रिय व्यापारफलतया ज्ञानमिन्द्रियसमवेतं व्यभिचारात्।

इन्द्रियात्मवाद दूषयितुमुपक्रमते **यदेतत्** इत्यादि। दूषणप्रकारमेव दर्शयति **तथाहि प्रत्येक**मित्यादि। अयमाशय यदिप्रत्येकमिन्द्रियमात्मा, एकमिद षाट्कोशिक शरीरमनकचेतनवत् स्यात्। ततश्च यथैक नगरमनेकशासकयुक्त भवति तत्र मदीय नगर मदीय नगरमिति विदन्तस्ते, कोपि तन्नगर ज्वालयति, क्षतविक्षत च करोतीति ग्रामस्य भवति सैवस्थिति शरीरस्य स्यात, कश्चित् पूर्वाभिमुख देह करिष्यति, इति विरुद्धदिक् क्रियत्वे शरीरमुन्मथ्येत निष्क्रिय प्रसज्येत। तदेवमिन्द्रियसमुदायोनानुभवकर्ता नवा स्मरणकर्ता, विकल्पासहत्वात्, किं समुदाय सयोगरूप सख्यारूपोवा उभयथापि तस्य गुणरूपत्वेन ज्ञानाधिकरणत्व न स्यात्, गुणस्य गुणानधिकरणत्वात्। गुणाधिकरणत्वे, द्रव्यत्वप्रसङ्गात् गुणाधिकरणमेव द्रव्यत्वमिति सयोगादेर्नगुणाधारत्वमिति तस्य ज्ञातृत्वासभवात्, द्रव्याश्रितत्व निर्गुणत्वमित्यादिगुणलक्षणात् "अद्रव्य कथ्यते प्राज्ञै सयोगरहित च यत् इत्याचार्योक्ते। यदि सयुक्ताना तेषामिन्द्रियाणा सङ्घातत्वेन विवक्षाभवेत्तदापि, बहूनामिन्द्रियाणा चाक्षुषाश्रयत्व स्पार्शनाश्रयत्व वा। एवञ्च चक्षुषो द्रष्टु स्प्रष्टुश्च विभिन्नत्वात स्मरण नोपपद्येत नान्यदृष्ट स्मरत्यन्योनैकं भूतमपक्रमादिति।

एवमिन्द्रियैकस्यकस्यचिद्विनाशेजीवस्य सर्वथैवविनाशमरणमेवापद्येत्। यद्यपि केनापि कथितम् "द्रष्टुश्चक्षुषो न जिह्वा" इत्यादि, तन्न तत्रत्यवचनस्यान्यपरत्वात आसीत् कश्चित्सत्यतपानामब्राह्मण कुत्रचिदधिष्ठाने तप कुर्वन्। तत्र कदाचित् कमपि स्वशरविद्धवराहमुनेराश्रमे आगत दृष्ट्वा, सव्याधोमुनि तत्रागत्य पृष्ठवान् भगवन् ममलक्ष्यो वराहो भवदाश्रमे कुत्रविद्यते तमन्विषामि, त मारयिष्यामि स्वशरीरयात्रायै। ततोमुनिर्यद्यह सत्यंवदिष्यामि तदा शरणागतपालन न स्यात् तथा व्याधस्य हत्याकरणेनाधोगति स्यादुवाच हेव्याध? दृष्ट चक्षुषा तस्य जिह्वानास्ति, यद्भवन्त वदिष्यति, या च वदिष्यति तया न व्याघ्रो दृष्ट इति। एतावतेन्द्रियस्य ज्ञातृत्वनायातीतिनेन्द्रियाणामात्मत्वम्। **नवा इन्द्रियव्यापारफलतयाज्ञानमिन्द्रियसमवेतमिति**ज्ञानमिन्द्रियधर्मे इन्द्रिय

अथेन्द्रियाणामनित्यत्वेनात्मत्वं न भवतु, मनस्तु नित्यमिति मानस एव चैतन्यं भवतु ? तच्च मनः सर्ववाह्येन्द्रियाणामध्यक्षमिति सर्वस्यापि स्वस्वविषये प्रेरकमिति प्रमाणतो ज्ञायते व्यवह्रियते च। एवञ्च नित्यस्य तस्योत्पादविनाशरहिततयाऽनुभव स्मरणादीनामनुपपत्तेरिति, शङ्कापि न भवतीत्यतो मन एवात्मा।

फलत्वात् , व्यापारफल यद्भवति, तत्तस्मिन् समवायेन तिष्ठति यथा स्नानव्यापारफलशौचादिक देवदत्तसमवेतमित्यादिपूर्वपक्षे कथितम् , तदपि न समीचीन व्यभिचारात् । तथाहि कृपाणपरशु-व्यापारजन्यपापस्यद्वैधीभावफलस्य कृपाणे परशौ वा, असमवेतत्वेन तत्र व्यभिचारात् । कृपाणस्य जडत्वेन पापासभवात् । द्वैधीभावफलस्य च परशावसभव किन्तु मारके देवदत्तादिकर्तरि भवति, छेदनचच्छेद्येकाष्ठादा भवतीत्येव यद्यद्व्यापारजनित तत् तन्निष्ठमिति नियमस्य व्यभिचारो भवतीत्यतश्चक्षुरादिव्यापारजन्यस्य ज्ञानस्य चक्षुरादिककरणाश्रितत्व भवति किन्तु करणात्मक चक्षुरादेर्य प्रयोजक स्वतन्त्र कर्त्ता, तस्य चेतनत्वात् तस्मिन्नेवज्ञान समवेतमिति ज्ञाताजीव एव। एवञ्च चक्षुरादीनामनित्यतया तद्विनाशेऽनुभवस्मरणादीना नैवोपपत्ति स्यादितिनेन्द्रिय-स्यात्मत्व किन्तु चाक्षुषादिज्ञानस्य य कर्त्ता स एव ज्ञातेतिसक्षेप इतीन्द्रियात्मवादखण्डनेतत्वदीप ।

ननु चक्षुरादिज्ञानकरणस्यानित्येनानुभवस्मरणादीना तदभावे उपपादनासभवात्तेषा वाह्येन्द्रियाणामात्मत्व न भवतु । परन्तु मनस्तु नित्यमागमापायिरहितमिति तद्विनाशाभावेन तस्या त्मवन्निन्यत्वेन स्मरणाद्यनुपपत्त्यभावेन तथात्वमस्तु ? इत्याशङ्कानिरसितुमाह **अथेन्द्रियाणामनित्यत्वेन**इत्यादि । यमहमद्राक्ष तमेव स्मरामीत्यनुभवस्मरणमिन्द्रियस्यानित्यत्वेनैव सभवतीत्यादिका दोषा इन्द्रियाणा चेतनत्वे, तथा बहूनाचेतनानामेकत्रावस्थाने परस्पर तेषा कलहेव्यवहार विलोपो भविष्यतीत्यादिका दोषा समुदीरितास्तेदोषामनसो नित्यत्वे सरलतयैव परिहृताभवन्तीति । **वाह्येन्द्रियाणामध्यक्ष**मित्यादि । 'मनोदशेन्द्रियाध्यक्ष हृत्पद्मगोलके स्थितम् । तच्चान्त करणवाह्य-परतन्त्रविनेन्द्रियैरित्यादिना सर्वस्येन्द्रियस्याध्यक्षता मनसि कथिता । दृश्यते च लोके, कदाचित्स्फीतालोकसयुक्तघटे चक्षुष. सयोगे सत्यपि चक्षुषो मनस सयोगाभावे, विषयान्तरससक्ते वा मनसि चाक्षुषदर्शन न भवति मन सयोगे सति चाक्षुषादिज्ञान भवति । एवत्वगादिस्थलेपि ज्ञातव्यमिति । तस्मान्मन एव ज्ञाता, तस्य नित्यतया सर्वमुपपद्यते इति ।

अथोत्पत्तिविनाशशीलत्वादिद प्रत्ययत्वात्तथादेहेऽहङ्कारप्रत्ययविषयत्वाभावाच्च न भौतिको देह आत्मेति दर्शितम् । एवमेवेद प्रत्ययविषयत्वाभावात् चक्षुरादीना विलोपे प्रतिसन्धानाद्यनु-पपत्तिश्चस्यादतश्चक्षुरादिकमिन्द्रिय प्रत्येक समिलित वा तदिन्द्रियचक्षुरादिकनात्मेति प्रसाधितम्। परन्तु एते दोषा नित्यस्यमनस आत्मत्वस्वीकारे न सभवन्तीत्यतोमन एवात्मेति पूर्वपक्षकर्तृ-

यदुक्तं नित्यत्वान्मन एवात्मेति तन्न शोभनम्। अतीन्द्रिये मनसिज्ञानसुखादि सत्त्वेपि तत्प्रत्यक्षानुपपत्तेः प्रत्यक्षेमहत्वस्य कारणत्वात्। तथा च मनसि महत्त्वलक्षण कारणाभावेन सुखादिप्रत्यक्षरूपकार्याभावस्यार्थतः सिद्धत्वात्। अपि च "मनोनात्मा करणत्वात् चक्षुरादिवदित्यनुमानेनापि मनसश्चैतन्यं न संभवति। या क्रिया

णा माशयमाकलय्य तन्निरासायोपक्रमते **यदुक्तं नित्यत्वान्मन एवात्मेती**त्यादि।

ननुयथानित्यत्वाज्जीव आत्मेति स्वीक्रियते, तथैव नित्यस्य मनस आत्मत्वस्वीकारे काक्षति स्तत्राह **अतीन्द्रियेमनसि** इत्यादि। प्रायोऽप्रत्यक्षेऽधिकरणे विद्यमाना अपि विशेषगुणा सामान्यगुणा वा प्रत्यक्षा न भवन्ति नहि भवति घटस्याप्रत्यक्षत्वे तदीयगुणारूपादय प्रकाशमाना। नच घटस्याप्रत्यक्षत्वेपि तद्गतगुणादिना सहसयुक्तसमवायसम्बन्धेन रूपादीना प्रत्यक्षता स्यादिति वाच्यम्, प्रथमतो घटस्य सयोगे सत्येव तद्घटितसयुक्तसमवायसम्बन्धेन प्रत्यक्षसभवात् नान्यथेति। एव च मनसोऽतीन्द्रियत्वेन मनस्थितज्ञानसुखादीना प्रत्यक्षत्व न स्यादिति। मनसि विद्यमानस्यापिज्ञानसुखादेरप्रत्यक्षत्वेकारणमाह **प्रत्यक्षे महत्वस्य कारणत्वादिति** अयभाव "सम्बद्ध वर्तमान च गृह्यते चक्षुरादिना" इत्यादिनियमात, यथा वर्तमाने विषये एव सयोग तत्समवायाद्यन्यतमसनिकर्षे सति लौकिकप्रत्यक्ष भवतीति, इन्द्रियसयोगादिसनिकर्षे सत्येव घटादिविषयस्य प्रत्यक्ष भवति। तथैव लौकिकविषयतासम्बन्धेन प्रत्यक्ष प्रतिमहत्वस्यापि कारणत्वमावश्यकमेव। अतएव परमाणौचक्षुरादिसयोगस्योद्भूतरूपविद्यमानत्वेपि परमाणोश्चाक्षुषनभवति। इत्थमेव परमाणुकल्पस्य मनसि महत्वस्योद्भूतरूपस्यचाभावेन तत्र मनसि ज्ञान सुखादीना प्रत्यक्षता न स्यात् एवञ्चाह सुखीदुखीवेति सर्वलोकसाक्षिकप्रतीतेरुपपादन न भवेदतो नित्यमपि मनोनात्मा किन्तु तदतिरिक्त एव कश्चिदात्मेति। **महत्वलक्षणकारणाभावेन** इत्यादि। व्यापकाभावेन व्याप्यस्याभावो भवतीति स्थिति यथा यत्र गुणादौ द्रव्यत्व न भवति, अर्थाद् यत्र द्रव्यत्वस्य व्यापकस्य गुणादावभावस्तत्र गुणादौ कथमपि पृथिवीत्वस्य सत्व न भवत्यपितु तदभाव एव भवति। यथा वा जलादौ वह्न्यभावस्य सत्वे वह्निव्याप्यस्यधूमस्याभाव एव भवति नतु कथमपि सत्व भवति तदुक्त "व्याप्यव्यापकभावो हि भावयोर्यादृशो मत। तयोरभावयोस्तस्माद्विपरीत प्रतीयते। अन्वये साधन व्याप्य साध्य व्यापकमिष्यते। तदभावोऽन्यथा व्याप्ये व्याप्यक साधनात्यय, इति।

यथा वह्नौ साध्ये धूमादिर्हेतुर्व्याप्यो वन्हिश्चव्यापक तयोरभावो व्यापकोवह्न्यभावश्च व्याप्यो भवति, धूमाभावोजलादावपि वर्तमानोऽयोलकेपिवर्तते, वन्ह्यभावस्तु जलादौवर्तमानोपि, अयोगोलके न भवति, यतोवन्ह्यभावविरोधिनो वन्हेरेव तत्र सद्भावादित्येव प्रकारेण वन्ह्यादेर्व्या-

सा कर्तृकरणसापेक्षैव भवति, छिदादिक्रियावत्, यथा चाक्षुषज्ञानक्रियायां चक्षुः करणं तथैव सुखादिज्ञानक्रियायां किमपि करणमेष्टव्यमिति तत्र चक्षुरादेः करणत्वा संभवात् मानस एव तत्सिद्ध्यति परिशेषात् । एवं चैकस्मिन्नेव मनसि परस्परविरुद्ध

पकस्याभावो वन्ह्यभावो व्याप्यो भवति, अल्पदेशवृत्तित्वात् । तथाऽन्वये व्याप्योपि धूमो- व्यापकोऽधिकायोगोलादिष्वपिवर्तते इति धूमाभावो व्यापकोभवत्ययोगोलकरूपाधिकदेशवृत्तित्वात् यथावा शूद्रादौ निवर्तमान ब्राह्मणत्व शूद्रादिषु कठत्वकाण्वत्वादिकमपि निवर्तयति । तथैव मनसि प्रत्यक्षकारण महत्व तद्गतज्ञानसुखादीनपि निवर्तयति । इत्येव महत्वाभावेन सुखा- देरप्यभावो मनसि भवत्येव अतोनित्यमपि मनश्चक्षुरादेरात्मत्वपक्षदोषविनिर्मुक्त भवदपि दोषसा- मान्यविनिर्मुक्त न भवती त्यतो मनोपिनात्मेति । एतच्च दूषण न्यायमतमाश्रित्योदीरितम् मतान्तरेण दोषवक्तुमाह **अपिच** इत्यादि ।

वाह्यविषकमान्तरविद्यक वा यद्ज्ञान भवति, तादृशज्ञानस्य करणतया मनस कल्पन भवतीति । यथा वाह्यविषये स्वस्वविषयसयोगविद्यमानेपि सर्वेन्द्रियेणयुगपदेव रूपादिसर्वविषयक ज्ञान न भवति, अतो वाह्येन्द्रियव्यतिरिक्तमपि किञ्चित्कारण विद्यते इति कल्पते, यस्य सम्बन्धेन वाह्येन्द्रिय स्वविषयकमेवज्ञानमुत्पादयति, यस्य च सम्बन्धाभावेन तदपर वाह्येन्द्रिय स्वविषयक ज्ञान नार्जयति । इति चक्षुरादिवत , मनोपि ज्ञानकरणमेव । एव प्रकारेण यथावाह्यार्थ विषयेषु युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिहेतुना समस्तवाह्येन्द्रियसहकारितयाऽणुरूपनित्यस्य मनस करणत्व भवति, तथैवान्तरसुखदु खादिप्रत्यक्षेष्वपि मनस करणत्वमनुमानद्वारेणसिद्ध्य त्येव तथाहि, सुखदु खादिसाक्षात्कार सकरणक क्रियात्वात् ज्ञानत्वाद्वा, रूपादिविषयक क्रियाया चक्षुरादिवत्, क्रियामात्रस्य करणसापेक्षत्वनियमेन छिदादिक्रियाया वास्यादिवत्, रूपादिज्ञानक्रियाया वाह्येन्द्रियचक्षुरादिवत्, आन्तरसुखादिविषयकज्ञानक्रियाया मनस करणत्व भवति । आन्तरसुखादिप्रत्यक्षे मनोमात्रस्य करणत्व वाह्यरूपादिविषयकक्रियायांतु, वाह्येन्द्रिय साक्षादेवकरणत्वमनसस्तु, वाह्याभ्यन्तरविषयकज्ञानक्रियाया साक्षात्करणत्व परपरया वा करणत्वम् । अर्थात् चक्षुरादिज्ञानक्रियायामेवकरणत्व मनसस्तूभयत्रापि करणत्वम् । परन्तु आन्तरे साक्षात् वाह्येतु परपरया एतावानेव विशेष । तदेव यथा चक्षुरादेर्वास्यादेर्वाकरणतयैवसिद्धिर्भवति तथैव मन सिद्धिरपिकरणरूपत्वेनैव नतु रूपान्तरेणेति । मनसि प्रमाणतु, अनेकविषयसयुक्तेष्वप्यनेके- न्द्रियेषु सर्वविययकज्ञानमेककालेन भवतीति "युगपद् ज्ञानानुपत्तिरेव । अन्यथा तानि सर्वज्ञानि युगपदेवोत्पद्येरन्निति । ननु यथाऽन्तरवस्तुविषयकप्रत्यक्षकरणतया नित्यसर्वार्थग्राहितयामन सिद्ध- मिति तस्मिन् ज्ञानकर्तृत्वमपि स्वीक्रियता लाघवात्, परिकल्प्यतदतिरिक्तजीवाऽपेक्षया कल्पितमन- स कर्तृत्वेलाघवात् तदेव कर्तृ ज्ञानक्रियाया इति ।

कर्तृत्वकरणत्वयोरसंभवान्न समावेशः। न च मनः करणान्तरमादाय स्मरणादिषु कर्त्ता, इति वाच्यम् तथा सति संज्ञामात्रे विवादस्य पर्यवसानादिति न मनसः ज्ञानादिकर्तृत्वमिति। एवं च चक्षुरादिवत् तत् करणमेवेति।

नचैकस्मिन् विरुद्धतया कर्तृत्वकरणत्वयो समावेशासम्भव इति वाच्यम् छिदादिक्रियासु तथाऽदर्शनेपि क्रियासामान्ये तथा नियमाभावात्, यथा 'सर्प स्वात्मना स्वात्मान वेष्टयति" इत्यादिस्थले वेष्टनक्रियाया कर्तृभूतस्य तस्यैव सर्पस्य करणत्वस्यापिदर्शनादितिचेत् तत्राहुर्योगीन्द्राः "एकस्मिन्नेव मनसि परस्परविरुद्धकर्तृत्वकरणत्वयोरसभवादित्यादि" अयंभाव ज्ञानकरणतया प्रसिद्धस्य तस्मिन्नेवकर्तृत्व स्यात्। यत कर्तृत्वकरणत्वयो परस्पर विरोधात। स्वतन्त्र कर्त्ता-ईप्सिततम करणमित्यनुशासनात। स्वेतरकारकाप्रयोज्यत्वसर्वकारकप्रयोजकत्वम्। अर्थात् स्वेच्छया स्वप्रवृत्तिकत्वलक्षणस्वातन्त्र्यरूपम् स्वेच्छानुरोधेनैव साध्यसिद्धिजनकसामर्थ्यरूप कर्तृत्वम्। करण तु परेच्छानुरोधेन स्वव्यावृत्तिकत्वरूपपारतन्त्र्यघटितम्। परस्याभीष्टक्रिया सम्पादने प्रकृष्टोपकारकत्वरूप वाणादिवत्। यथोक्तलक्षणयो कर्तृत्वकरणत्वयो परस्परविरुद्ध-योरेकत्रसमावेशासभवात्। वेष्टनक्रियाया चेतनस्य सर्पादेरेकत्रक्रियाया रूपभेदात् कर्तृत्व कर-णत्व सभवेदपि कथचित, यद्यपि तथापि जडस्य भौतिकस्य मनसश्चेतनत्वे दृढतरप्रमाणाभावेन कथमपि कर्तृत्व करणत्व च न सभवति। अपि च लोकसिद्धव्याप्त्या या क्रिया सा करणिकेति व्याप्त्या चक्षुरादिवत् स्वेतरचेतनदेवदत्तादे सुखादिसाक्षात्कारादौ करणरूपेणैव सिद्धत्वात् कथ-मपि मनसोज्ञानकर्तृत्वरूप ज्ञातृत्व नैव सिद्‌ध्यतीति।

किञ्च सर्वथा प्रत्यक्षविषयातीतेन्द्रियपदार्थेषु प्रत्यक्षमूलकानुमानादिप्रमाणान्तरस्याभावेन शास्त्रमात्रप्रमाण न तदन्यत् प्रमाणम्। शास्त्र च "अन्नमय हि सोम्य ! मन आपो मय प्राण." इत्यादिकमेव। ततश्चविज्ञानमयस्यजीवात्मान उपकरणरूपेणैवमनस सिद्धिर्भवतीति शास्त्रसिद्धमेव साधकतमत्वरूपकरणमिति तस्मिन् करणरूपे मनसि परस्परविरुद्धकरणत्व कर्तृत्वोभयमपि स्यादिति भवद्वचन न कोपि स्वीकुर्यात्, भवद्वचनेविश्वासाभावात् विश्वासे तु पक्षप्रतिपक्षभाव एव न भवेदिति।

ननु भवतु बाह्यरूपस्पर्शादिविषयेषु तथाऽभ्यन्तरसुखदुःखादिसाक्षात्कारिषु मनस एव कर्तृत्वम् आभ्यन्तरसुखाद्यनुभवेतु तन्मनोऽन्यमेवकरणान्तर कल्प्यते तद्बलेन स्मरणादिषु कर्तृ-भविष्यति, तत्र मनोतिरिक्तमेव करणान्तर भविष्यतीत्याशङ्क्य तन्निरासाय प्रक्रमते **नच मनः करणान्तरमादायेत्यादि** स्वभिन्नमन्य किमपि करणतया स्वीकृत्य सुखादीना स्मरण जनयिष्यति, यथा सिद्धान्ते आत्मारूपादिवाह्यपदार्थविषयकज्ञानोत्पादने, मनोतिरिक्त चक्षुरादिकमादायबाह्य

अथकोयं मनः पदार्थः ! नचान्तरं ज्ञानकरणं द्रव्यं तस्य स्वरूपं प्रमाणञ्च किमिति न च "युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिरेव तथेति। सत्यं तथापि तस्य मनसस्तत्वान्तरत्वं कथमिति ? मनसः स्वीकारेपि युगपत्स्मरणानुत्पत्यर्थं कारणान्तरस्य संस्कारादेरावश्यकत्वात्। अस्य स्मर्तुरनेकार्थानुभवजनितसंस्काराणां विद्यमानत्वात्। तथापि तेऽर्थातस्मृता भवन्ति। संस्कारोद्बोधककारणस्य क्रमिकत्वात् क्रमिकं स्मरणमिति चेत्? एवमपि प्रणिधानमात्रोद्बोधनीयसंस्कारात्स्मृतियौगपद्यमापतेत्। यदि तु शुभाशुभादृष्टवलात्स्मृतिव्यवस्थाभिमता, क्रमिकज्ञानस्वभावाद्वा, तदा वहिरिन्द्रियेष्वपि नानार्थसम्प्रयुक्तेषु व्यवस्थोपपादनसंभवात्, आन्तरकरणान्तरस्वीकारो निरर्थकएव।

विषयकज्ञानमर्जयति, तथैव प्रकृतेपीति प्रश्नकर्तुराशय। उत्तरयति समाधाता **तथासति संज्ञामात्रे विवादस्यपर्यवसाना**दित्यादि अयभाव क्रियामात्र प्रतिकर्त्ताकरण कर्मचापेक्षितमेव भवति, यथा गमनादिक्रियादौ दृष्टम्। इहापि, आभ्यन्तरसुखादिविषयकज्ञानक्रियायामुपर्युक्तनियमेन कर्त्ताआत्माकरणं मन। अत्रमन करणमादाययोज्ञानसम्पादयति तस्यात्मेति सञ्ज्ञाभवति, भवन्मतेतु मनएव करणान्तरमादाय ज्ञान सम्पादयेदिति मन्मते कर्तुरात्मेति सञ्ज्ञा, भवन्मते कर्तु मन इति सञ्ज्ञा ततश्च सञ्ज्ञानाममात्रे विवाद फलेतु न कोपि विवाद। कारणस्य कर्तुरुभयत्रापि स्वीकारात्। एव सति मदिष्टस्यज्ञातरि, अन्त करणभेदस्य न काप्यनुपपत्तिर्भवति। अर्थात् सञ्ज्ञातु इच्छा प्रयोज्या अर्थेतु न कोपि विवाद इति।

परन्तु ज्ञातुरात्मनोमन सञ्ज्ञाया लौकिकशास्त्रीयव्यवहारस्य विरोधो भवति, नहि लौकिक शास्त्रीयोवा पुरुष आत्मन मन सञ्ज्ञया व्यवहरति, देवदत्तो यज्ञादिक गमनादिक करोति, इत्येव प्रयोगो भवति नतु मनोयज्ञादिक करोतीति कश्चित्प्रयुङ्क्ते। अतोनात्मनि मन इति सञ्ज्ञाऔचित्यमादधाति। तस्मात्, यथा नचक्षुरादिकरणमात्माकरणत्वात्, तथैव मनोपिनात्माकरणत्वादेव वास्यादिवत्। किञ्चमनसि महत्वाभावेन प्रत्यक्षे च महत्वस्य कारणताया अन्यत्रव्यवस्थापनेन मनसिज्ञानसुखादीना सत्वेपि तत्प्रत्यक्षत्व न स्यात्। अपिच मनसस्तथात्वे, सर्वोपिमन प्रत्येमीत्येव प्रतीयात्, नत्वह प्रत्येमीति विजानीयात्। तस्मान्मनसो ज्ञानदौ कर्तृत्व न कथमपि सभवतीति सक्षेप.।

ननुमनान्तरसिद्धमनस प्रौढिवादेन निराकरणाय तदीयस्वरूपस्य तत्र प्रमाणस्य चाभाव दर्शयित्वा स्वमतेन च तस्य मनसोबुद्धावेवान्तर्भाव प्रदर्शयितु प्रक्रमते **कोयं मनः पदार्थः ?** इति। अत्र "किं शब्द आक्षेपे। अर्थात् मनस्तत्वान्तरत्वनास्ति नवा तत्र च प्रमाणकिमप्यस्तीति। **नच युगपज्ज्ञानानुपपत्ति**रिति। अन्यथाऽनुपपत्तिरेवतत्र प्रमाणम्। अन्यथाऽनुपपतिप्रमाणस्य

केचित्तु कारणजनितस्यान्तरसुखादिकार्यस्यात्मसमवेतस्यादृष्टादिनिमित्तका-रणकस्यासमवायिकारणमपि किमपि वक्तव्यम्, तच्चपरिशेषादात्ममनः संयोग एवेति, सुखाद्यसमवायिकारणसंयोगाश्रयतयैव मनसः सिद्धिर्भवतीत्येवं क्रमेण संयो-गाश्रयीभूतमनो रूपद्रव्यान्तरस्य सिद्धिर्भवतीति ।

सर्वतोवलीयस्त्वात् । युक्तिशतमवताय्यापि, अन्यथयितु न शक्येति । सत्ययुगपग्ज्ञानानुत्पत्ति-रुक्ता परन्तु तत्रकारण तुनैवोक्तम् । अदृष्टादिसहकारीविरहेणैव युगपज्ज्ञानानुपपत्तेरुपपत्तिसभवात् । मनस स्वीकारेपि एककाल युगपत् ज्ञानानुत्पत्तयेऽदृष्टसहकारिविरहस्यावश्य स्वीकर्तव्यत्वात् । विद्यन्ते च नानार्थविषयकसस्कारा तथापि ते नानार्था नैकदास्मृता भवन्ति, किन्तु एकस्यैवा-र्थस्य स्मरणं जायते अदृष्टवशात् स्मरणस्वीकारेतु तद्बलेनैव सर्वव्यवस्थोपपादनसभवेन मनसोऽति-रिक्तद्रव्यान्तरस्य स्वीकारो निरर्थक एवेति ग्रन्थस्यमुकुलितोऽर्थ ।

मनसो द्रव्यान्तरत्व नास्ति तथा, आत्मन सयोगस्य सुखादिक प्रति, असमवायिकारण-त्वमपि नास्तीत्युपश्रुत्यमन सयोगस्यजन्यसुखादीनामात्मनि समवेताना परिशेषादसमवायि कारणत्व साधयितु प्रक्रमते **केचित्तु** इत्यादिना । अयभावो भावकार्यमात्रे समवायिकारणमसमवायिकार-णनिमित्तकारणमवश्यापेक्षितम् । एषु एकस्यापि कारणस्याभावेकार्यस्यानुत्पादात्, कार्यनियतपूर्व-वृत्ति कारण कार्यंच प्रागभावप्रतियोगीतिनियमात् । कार्यं प्रतिदण्डादे कारणत्वमन्वयव्यतिरेक-गम्यम्, कपालतत्सयोगदण्डादिकारणाना सत्वे एव घटादिकार्यमुत्पद्यते इति स्थिति । तथा च यथाघटोत्पत्तौकपाल समवायिकारणम्-तद्द्वयसयोगोऽसमवायिकारणम् दण्डचक्रादिक दृष्टमदृष्ट च शुभाशुभ निमित्तकारणम्, एषु सत्त्वे एव घटउत्पद्यते नान्यथेत्येवसर्वस्य कार्यस्य कारणत्रितया-धीनत्वमेव । एवमेव, आत्मनि जायमानसुखादिकार्यस्या ममन सयोगेन प्रत्यक्षीक्रियमाणकारण· सुखादेरपि भावकार्यकारणत्रितयेन भवितव्यम् ।

तत्रात्मासुखस्य समवायिकारणयत् आत्मनि सुखादे समवेतत्वात्, आत्मन सयोगश्चा समवायिकारणम्, प्रयत्नमदृष्टादिक च निमित्तकारणम् । न चात्मगतो ज्ञानमेवासमवायिकारण-भवतु नतु आत्ममन सयोग इति मन कल्पनमुधैवेति वाच्यम्, आत्मविशेषगुणानामसमवायित्वस्या स्वीकारात् । न च तेषाम् असमवायिकारणत्वे काक्षतिरितिवाच्यम् समावायिकारणविनाशे कार्य-विनाशस्यावश्यकत्वात् । दृश्यते च कपालद्वयसयोगरूपासमवायिकारणस्य विनाशे कार्यघटस्य विनाश । कदाचित् कपालात्मकसमवायिकारणस्य विनाशेपि घटस्य विनाश सभवति, तथापि द्व्यणुकसमवायिकारणे परमाणोर्नित्यत्वेन विनाशाभावेन नित्यत्व प्रसज्येत द्व्यणुकस्येति, सर्वत्रासमवायिकारणविनाशस्यैव कार्यविनाशकत्वमिति स्वीक्रियते । एवञ्च सुखादिकार्यं प्रति यदि ज्ञानस्यासमवायिकारणत्व मन्येत तदा सुखजनक पूर्वकालिक ज्ञान प्रथमक्षणे उत्पद्यते, उत्पद्य

तन्मन्दम्। आत्मसमवेतस्य सुखादिकार्यपूर्वकालोत्पन्नानुकूलप्रतिकूलविषयसंयोगजनितज्ञानस्यैवात्मसंभवे तस्य समवायिकारणत्वात्। तत्र विषयसंनिकृष्ट एवात्मनिष्ठोऽसमवायिकारणं भवति। तत्र च कारणमिन्द्रियसंयोगः प्रयत्नो दृष्टं चात्मनिष्ठम्, प्रयत्नस्य कारणं प्रयत्नपूर्वक्षणवृत्तिकार्यताज्ञानम्। इत्यादिक्रमेणात्मसमवेतसुखादिकं प्रत्यात्मवृत्तिगुणादिरेवासमवायिकारणं नतु, आत्ममनः संयोगोऽसमवायिकारणम्। येन तदनुरोधादप्रसिद्धात्ममनः संयोगस्यासमवायिकारणताद्वारेण मनससिद्धिरपेक्षितास्यादिति न मनो द्रव्यान्तरम्।

च सुखमुत्पाद्यक्षणिकत्वात् तृतीयक्षणे विनश्येत, तृतीयक्षणवृत्तिध्वंसप्रतियोगित्वस्यैवक्षणिकत्वात्। एवञ्चप्रथमक्षणे ज्ञान ततस्तद्बलात् द्वितीयक्षणे सुखोत्पत्तिज्ञानस्य स्थितिरित्येव ज्ञानोत्पत्तिक्षणतृतीयक्षणे ज्ञानस्य विनाश इति स्वासमवायिकारणनाशे ज्ञानतृतीयक्षणे सुखादे प्रत्यक्षासभव कारणाभावात्। तथा प्रत्यक्षे विषयस्यापि हेतुत्वेन विषयाभावे कथमिव सुखादिप्रत्यक्षभवेदत आत्ममन सयोगस्यकारणता स्वीकार आवश्यक एव। यथासमवायिकारणयावत्कार्यमवतिष्ठते तथैव प्रायोऽसमवायिकारणमपि। निमित्तकारणतु पूर्ववृत्तितयैवकारणमित्यतोमन स्वसयोगद्वारा कारण भवतीति तस्य द्रव्यान्तरत्वमर्थत एव सिद्‌ध्यति सयोगस्य गुणतयाद्रव्यभिन्नेऽसभवादित्याशयेनाह पूर्वपक्षी **केचित्तुकारणजनितस्यान्तरसुखादिकार्यस्य** इत्यादि। पूर्वपक्षमूलाक्षरस्तु न तिरोहित इति न पुनर्व्याख्यात सम्प्रदायविदा स्वयमेवोहनीय।

समाधातोत्तरयति-'**तन्मन्दमिति**। तदेवोपपादयति **तत्रचेत्यादि** तत्रान्तरसुखाद्युत्पत्तौ आत्मसमवेत ज्ञानमेवासमवायिकारणमिति। तथाहि—सुखादावान्तरविषयेऽनुकूले प्रतिकूले च दु खादौअनुकूलविषयविषयक तथा प्रतिकूलविषयविषयकम्, आत्मनि सुखादिपूर्ववृत्तिसुखदु खकारण च तत्र सुखादावसमवायिकारण भवतीत्येव युक्त लाघवात्। नतु सर्वथाऽप्रसिद्ध आत्ममन सयोगाऽसमवायिकारणम् 'तादृशस्य तस्य कारणत्वे गौरवात्। ज्ञानेन च रूपादितत्तद्विषयसनिकृष्टचक्षुरसयोग एवासमवायिकारणम्। तद्धेतुश्चेन्द्रियव्यापार प्रयत्न कारणम्। प्रयत्ने च चिकीर्षाद्वाराकार्यताज्ञानमेवकारण भवति, स्मरणात्मककार्यताज्ञाने उद्‌बुद्धसस्कारो भवति, अनुद्बुद्धसस्कारात्स्मरणानुदयात्। स्मृतिकारणानुभवेहेतुज्ञानादिकारणम्। प्रमाणमनुभूति स्यात् स्मृतेरन्या स्मृति पुन। पूर्वविज्ञानसस्कारमात्रज ज्ञानमुच्यते" इति। सस्कारे स्मृति द्वारेण पूर्वानुभव एककारण भवति। एवमदृष्टस्याप्यसमवायिकारणात्मनिष्ठ प्रयत्न एवेति। एवमिच्छा प्रति, इष्टसाधनताज्ञान कारणमथवेष्टजातीयताया ज्ञानमेव कारणम्, आत्मगतद्वेष प्रत्यनिष्टत्वज्ञानमथवा सर्पादिरनिष्टस्य साधनमित्यनिष्टसाधनताज्ञानमेवहेतुर्भवति। एवञ्च सुख दुखेच्छाद्वेषप्रयत्ना, दृष्टसस्कारादिजीवसमवेतगुणानामसमवायिमात्मविशेषगुणान। ज्ञानादीनामेव भवति नतु आत्ममन· सयोगस्यासमवायिकारण भवति। कस्मिन्नात्मविशेषगुणेक स्यात्म-

यदपि नित्यद्रव्यस्य ये विशेषगुणास्ते द्रव्यान्तरसंयोगासमवायिकारणका एव पाकजरूपादौ वह्निसंयोगवत् । ततश्च मनः संयोगहेतुकतया मनसः सिद्धिरिति । तदपि न युक्तम्, दृष्टानुसारेणकार्यकारणभावस्य पाकजरूपादौ दर्शनेन प्रकृते इष्टादिप्राप्त्य-
गुणस्यासमवायितेतिविविच्य प्रदर्शितम । एव स्थिते "आत्मविशेष गुणाना कुत्राप्यसमवायि कारणत्व न भवतीति कथनस्य कि प्रयोजनमिति ते एव प्रष्टव्या ।

अथवा असमवायिकारणनाशे कार्यस्य विनाशो भवतीतिनियमो यथा घटाद्यसमवायि-कारणकपालद्वयसयोगनाशे घटनाशो भवतीति प्रत्यक्षसिद्ध । यद्यपि घटादिनाश कपालनाशे नैव भवति, कपालनाशे घटानवस्थानात, तथापि एव स्वीकार, द्व्यणुकनाशोन स्यात, द्व्यणुक समवायिकारणपरमाणोर्नित्यत्वेन विनाशासभवात । ततश्चद्व्यणुकस्य तथा तत्क्रमपरपरया घटादेरपि ध्वसप्रतियोगित्व न स्यात् । न चेष्टापत्ति दण्डादिघातेन घटविनाशस्य सर्वसमतत्वात् । नहिदृष्टेऽनुपपन्न नामेति ।

न च कार्यद्रव्यनाशा भवत्यसमवायिकारणविनाशात्, गुणविनाश तु नाय नियम इति वाच्यम्, उत्तरकालवर्त्तिशब्दन पूर्वशब्दस्यापिविनाशदर्शनात् । अपेक्षाबुद्धिनाशेन द्वित्वादि सख्यायाविनाशस्वीकारात् "अपेक्षाबुद्धिनाशेन नाशस्तेपा निरूपित "इत्युक्ते ॥

वस्तुतस्तु आरम्भवादे एवैतावतीचर्चा, परिणामवाद तु नासमवायिकरणनामकारणकार्यं प्रति । अत्रतूपादनकारणमात्रघटादिरूपेण द्व्यादिरूपेण च परिणमते । अत्रत्यो विशेषविचारोविशिष्टा-द्वैतविमर्शे द्रष्टव्य । तस्मान्मनोन द्रव्यान्तर नवा आत्ममन सयोग सुखादिविशेषगुण प्रत्य-समवायिकारण भवति । यद्यपि, अत्रबहुविचारणीयमवशिष्यते तथापि ग्रन्थगौरवभयाद्विरम्यते ॥

प्रकारान्तरेण मनसोनवमद्रव्यत्व साधयितु युक्ति प्रदर्शयतन्निराकरणायफक्किकान्तरमा-रभमाण प्राह **यदपिनित्यद्रव्यस्यये** इत्यादि । अत्रेदमनुमानम् "सुखाद्यान्तरकार्यम्, नित्यद्रव्यसयोगासमवायिकारणकम्, जन्यत्वे सति नित्यद्रव्यविशेषगुणरूपत्वात् । पाकज [अग्नि सयोगज] परमाणुरूपादिवत्" । तत्र सुखादौकार्येपृथिवीजलतेजोवाय्वाकाशात्मकद्रव्या-न्तसयोगस्यासमवायिकरणत्वान्मन सयोगस्यैवासमवायित्व सिद्ध्यतीति मनसोनवमद्रव्यस्य सिद्धिर्भवतीति । अर्थात्सुखकार्यस्यात्मसमवेतस्य समवायिकारणम्, आत्ममन सयोगोऽसम-वायिकारणम, यत सुखसमवायिकारणे आत्मनिससयोगो विद्यते तथा तत्रात्मनि विद्यमान सुखादिकजनयति, तथा च समवायस्वसमवायिसमवेतत्वान्यतरसम्बन्धेन समवायिकारणे प्रत्या-सन्न कार्यजनकमात्मविशेपगुणभिन्नयत् कारणं तदसमवायिकारणमित्यसमवायिकारणलक्षणा-क्रान्तआत्ममन सयोग सुखादिक प्रत्यसमवायिकारण भवति । अदृष्टकालदेशादिक तत्रनिमित्त-कारण भवतीति सुखाद्युत्पत्तिर्जायते । तत्रसुखाद्युत्पत्तौ पृथिव्यादिद्रव्यान्तरसयोगस्यासमवायि

कगमानन्तरं सुखाद्युत्पत्तिदर्शनेन समवायिकारणासन्नत्वात् कार्यसुखस्य जनकत्वाच्चज्ञानस्यैव तथात्वस्वीकारात्। दृष्टकारणे व्यभिचारादेव कारणान्तरस्य कल्पनं नान्यथा। एवञ्च प्रसिद्धहेतावेवयत्रकार्यं समवेतं तत् समवायि, यच्च तत्र समवेतं कार्यजनकं च तदसमवायिहेतुरेतादृशंज्ञानमेव, नत्वप्रसिद्धद्रव्यान्तरसंयोगः कारणम्। एवमपि व्याप्तिवलेन यदि स्वीक्रियते तदा स्पर्शवद्द्रव्यसमवेत एव संयोगः सिद्ध्येत्।

वस्तु तस्तु न भौतिकं मनोनवा द्रव्यान्तरम्। किन्तु बुद्धावेवमनसः प्रयोगो कारणत्वस्यासभवेन, आत्ममन सयोगस्यैव तादृशकारणत्वसभवेनभवदनभिमतमन सयोगस्यैव कारणत्वसभवेन परिशेषान्मनो रूपनवमद्रव्यान्तरस्यगलेपादुकान्यायेन सिद्धिर्भवतीतिपूर्वपक्षप्रवट्टकस्याभिप्राय। तदेतद्वालुकाभित्तिवदनवस्थित पूर्वपक्ष निराकर्त्तुप्राह **तदपि नयुक्तम्।** कथ न युक्तम्। तदेवायुक्तत्वमुपपादयितुमाह **दृष्टानुसारेणकार्यकारणभावस्येत्यादि** अयमाशय सर्वत्रान्वयव्यतिरेकाभ्यामेवकार्यकारणभावस्य निश्चयो भवति। पार्थिवपरमाणुरूपादावपि वन्हि सयोगस्य कारणत्व तत एव सिद्ध्यति, ततश्च शरीरावयवत्र्यणुकादारभ्यदेहावयवे रूपादीना परावृत्तिर्भवतीति दृष्टत्वात्, इतिकार्यदर्शनेन कल्पित भवति। अत्र सुखादिस्थलेतु, अनूकूलप्रतिकुलज्ञानस्यैव कारणत्व दृश्यते। यत सुखसमवायिकारणे, आत्मनि ज्ञानस्य समवेतत्वात्, तत्र प्रत्यासन्नमेव ज्ञान जनयति। अन्यथा सुखोत्पत्तेरभावात् विज्ञानस्यैव सुखादे सत्वमविदिते सुखादौ प्रमाणाभावात्। अतएव स्वापमूर्छादौ न तदस्तित्वकश्चित् प्रत्येतीति न तत्र सुखादावदृश्यमानद्रव्यान्तरसयोगस्य कल्पनावसरोभवतीति।

दृष्टकारणे व्यभिचारादेवेत्यादि। यत्र दृष्टकारणाभावो विद्यते, तत्रापिकार्योत्पत्ति दृश्यते तत्रैव कारणान्तरस्यादृष्टस्य वा वलात्कारणत्व कल्पित भवति। यत्रतु न तथा नतत्रकारणान्तर कल्पन भवति। अत्र सुखादौ तु दृष्टहेतौ ज्ञाने एव तत्तल्लक्षणस्य विद्यमानत्वेन ज्ञानस्यैवासमवायिकारणत्व कल्प्यते। अन्यथा दृष्टस्य परित्यागोऽदृष्टस्य कल्पना च निरर्थिकैवस्यात्। तस्मान्नमनोद्रव्यान्तर नवा तदात्मसयोगोऽसमवायिकारण सुखादाविति।

ननु भवत्वेव तथाप्यनुमानवलेन तत्सिद्धि स्यात्तत्राह **व्याप्तिवलेनेत्यादि** अर्थात् योय द्रव्यान्तरसयोग सच भूतप्रतियोगिक एवोपलभ्यते, ततश्च प्रकृतेपि पृथिव्यादिभूतप्रभवदेहादि प्रतियोगिक आत्मानुयोगिकसयोग एव कारणम्, नत्वभौतिकमन प्रतियोगिक सयोगस्य तथात्व विशेषस्त्वाकरे द्रष्टव्य॥

पूर्वोक्ततर्कवलान्मनसो भौतिकत्व निराकृत तथा नवमद्रव्यत्वमपि निराकृतमेव, ततश्चशास्त्रे परिदृश्यमानमनसो व्यवहार कुत्रस्यादित्याद्याशङ्कामपनेतुमाह="**वस्तु तस्तु** इत्यादि।

भवति । अत एव ज्ञानवान् पुरुष एव मनस्वीति कथ्यते । तन्मन एकमेवावस्थाभेदेना-नेकत्वव्यवहारः दुखितं मे मनः प्रसन्नं वा मे मनः । "मनमैतान् कामान्" "मनसा ध्यायीत" इत्यादि श्रुतेरप्युपपत्तिर्भवति । परन्तु बुद्धेरेवमनस्त्वेपि करणत्वान्न तच्चे-तनमिति ।

ननु भवतु सर्वान्तरः प्राण एव चेतनः । तादृशचेतनप्राणसम्बन्धादेवदेहे सात्मकता प्रतीतिः तत्सम्बन्धाभावादेव निरात्मकता प्रत्ययश्चोपपद्यते । गृहीतदेहाद् देहान्तरगमनं लोकान्तरगमनमप्युपपद्यते संचरणशीलत्वात्प्राणस्य । अन्यथा व्यापक परिमाणस्य मध्यमपरिमाणस्य स्पर्शादिरहितस्य क्रियाविरहिण उत्क्रान्तिगत्यादिको-नैव स्यात् । ततश्चोत्क्रान्त्यादिप्रतिपादकश्रुतयोवाधिता भवेयुरिति प्राणएवात्मेति ।

एतदपि न चारुतरम्, यथा बाह्योवायुर्नात्मा तथैवान्तर वायुरपिनात्मा वायु-त्वात् । प्राणोनात्मा, सुषुप्तिकाले व्यापाररूपादात्मवैधर्म्यात् न प्राणश्चेतनत्वम् त्वकू

येयमात्मन सर्वार्थसाधिका बुद्धिस्तत्रैवबुद्धौ मनस समावेश । अर्थात् "मनोबुद्धिरहङ्कारश्चित्त-करणमान्तरम् । सशयोनिश्चयो गर्व स्मरण विपया इमे इति । वाह्येन्द्रियसहायकमान्तर करण-मन्त करणमनोवुद्ध्यादिशब्दव्यपदेश्यम्, तदेव सशयनिश्चयादिवृत्तिभेदेन चतुर्धाव्यपदिश्यते सययादिवृत्तिक यदा मन शब्देन तस्य व्यवहार यदातु तदेव निश्चयात्मकवृत्तिविशिष्ट भवति वुद्धिशब्देन व्यपदेशभाक् भवति ।

यद्यप्यन्त करणमप्रत्यक्ष तथापि तस्यावस्थाभेदव्यवहारेण ज्ञायते एव । तथाहि कदा-चिन्मनसोनुकूलसहकारिबलात्सुप्रसन्न मे मन प्रतिकूले च विषये क्षुभित मे मन इत्यादिव्यवहारो भवतीति दृश्यते । तथा मनो वुद्धयोरेकत्वे, बुद्धिमतिनरे वुद्धिमान् मनस्वीति सगीयते । परन्तु मनसोजड़त्वेन तत्रचेतनव्यवहारोनैव भवति, करणत्वादेव चक्षुरादिवदिति विशेषोऽन्यत्रावगन्तव्य इति दिक् । इतिमनसात्मवा दनिराकरणेतत्त्वदीप ।

प्राणसम्बन्धादेव सात्मकत्वप्रतीतिर्भाति तदभावे, न सात्मकत्वप्रत्ययोमृतदेहवत् । एवञ्च तदन्वयव्यतिरेकदर्शनेन प्राणस्यैवात्मत्व प्रसिद्ध्यति, किञ्चोपनिषदि, करणानामहंश्रेष्ठो ज्येष्ठ-श्चेत्येव विवादे पर्यवसाने प्राणस्यैवज्येष्ठत्वादिक निर्धारितम् । किञ्च शुक्रनिषेककालादारभ्यै-वाऽस्मिन् शरीरे प्राणस्यलाभो भवति, तद्गमने च शरीरे मृतत्वव्यवहार एतदेवकार्यमात्मनोपि तच्च कार्य प्राणस्यैवेतिप्राणएवात्मेतिपूर्वपक्षाशय । सिद्धान्तिनस्तुतदेतन्नानुमोदन्ते । यथा वाह्योमहा-वायुस्त्वगिन्द्रियग्राह्यत्वात् नात्मा भवति तथैवान्त सचरणशीलस्यापि प्राणरूपस्य तस्य तत्वादेव नात्मत्वम् । यथा वाह्योवायुस्त्वगिन्द्रियग्राह्यस्तथैवोच्छासरूपेणवहिरागत. प्राणोपित्वगिन्द्रियेण

स्पर्शनेन्द्रियग्राह्यत्वात् घटादिबाह्यपदार्थवद् प्राणोनात्मावायुत्वात् शरीरसंसक्तसलिलशैत्याभिव्यञ्जकव्यजनादिपवनवत् । सुषुप्तिकाले सर्वथा वृत्तिविहिने प्राणस्य व्यापारदर्शनात् प्राणवृत्तिवलेनैव भुक्ताशितपीतद्रव्यस्य पाचनं जायते, श्वासादयोपि प्राणस्यैव कार्यम् , शरीरान्तः सञ्चारिवायुरेवप्राणः स च वृत्तिभेदात्पञ्चविधः। सचोच्छासेन वाह्यगतस्त्वगिन्द्रियेण गृह्यते। तस्माद्वायु विशेषः प्राण आत्मा न संभवतीतिदिक्

संविदात्मपक्षः

अथ भवतु विज्ञानमेवात्मा अजडत्वात् , यत् जडस्वभावकं तन्नात्मा यथाघटादि विषयः । एवञ्च जडत्वस्य विज्ञानाद् व्यावृत्तस्य तस्मिन् स्वप्राकाशात्मत्वं व्यवस्थापयति । अजडत्वं च विज्ञानस्य स्वसत्तामात्रेण प्रकाशमानत्वादेवसिद्ध्यति ।

स्पष्टतया प्रतीतो भवति । अपि च प्राण उत्पद्यते विनश्यति चेद्युत्पादविनाशशीलत्वादेव घटादिवन्नैवात्मा सभवति । किञ्च व्यापकद्रव्यस्य निष्क्रियत्वाद् गत्युत्क्रान्त्यादिको न सभवतीति युक्त परन्तु, अणुरूपस्यात्मनस्तु गत्यादिक उपपद्यते एव मनोवत् । अन्येतु नकेवलस्यात्मनो गत्यादि भवति किन्तु प्राणमनोभ्या युक्तस्यगत्यादिर्भवतीति तदपि न युक्तम । अणुरूपस्यात्मनस्तथा सभवात् । अतएव श्रुतिप्रतिपादित, उत्क्रान्ति गत्याद्यनुरोधेनात्मनो व्यापकपरिमाणवत्व न स्वीकृत सिद्धान्ते । विस्तरस्तु परिमाणनिरूपणावसरे प्रतिपादयिष्यति स्वयमेवाचार्य । तस्मात् प्राणोनात्मादेहादेरात्मत्वनिराकरणावसरे ये ये दोषा प्रदर्शितास्तेते दोषा यथायथमिहापि सञ्चारयितव्या इत्युत्तरपक्षाशय । इति प्राणात्मवादनिराकरणेतत्त्वदीप ।

देहात्मवादादादारभ्य प्राणात्मवादपर्यन्तपूर्वपक्षिणो निरासकृत्वा सम्प्रति विज्ञानात्मवादिना मत निराकर्तुं तथा स्वकीयसिद्धान्तरहस्यमाविष्कर्तुमुपक्रमते **अथभवतु विज्ञानमेवात्मेति** यद्यपि सिद्धान्तेपि, विज्ञानात्मकत्व प्रपिपादयिष्यतीति कथ विज्ञानवादस्य "यश्चोभयो समोदोष परिहारोपि तादृश । नैक पर्यनुयोक्तव्यस्तादृगर्थविचारणे" इति वृद्धोक्ते तथापि स्वसिद्धान्तरहस्य प्रतिपादनावसरे विशेषतोमतद्वयभेदस्य प्रतिपादन करिष्यति, अत्रापितत्प्रतिपादनेपिष्टपेषणमिवस्यात् ।

कथ विज्ञानस्यात्मत्व यावता विज्ञानस्यगुणरूपत्वेन द्रव्यात्मकात्मरूपत्वात् । गुणस्य गुणानाधारत्वादिनाऽशक्यविज्ञानस्यात्मरूपत्वमुपपादयति **अजडत्वात्** इति । अर्थात् यद्वस्तु स्वभावतजडस्वभावक परप्रकाश्य तद्वस्तु, नात्मरूप यथा घटपटादि, इदतु विज्ञान नपरेण प्रकाशित भवति किन्तु स्वसत्तयैव प्रकाशित भवति । अतएवज्ञाने जातेऽहजानामि नवेति सशयो नवा न जानामीति विपरीत प्रमाजायते, तेन ज्ञानविषयकसशयाद्यभावात् , स्वसत्तया प्रकाशमानमेवज्ञानम् ।

न च ज्ञाने जाते विषयमात्रस्यैव प्रकाशो भवति, न तु ज्ञानमपि प्रकाशितं भवतीति, किन्तु ज्ञानेन विषये ज्ञातताख्यो धर्म उत्पद्यते, तया च ज्ञानानुमानमेव नतु ज्ञानं प्रत्यक्षमपितु धूमेन वह्निवदनुमेयमेवेति वाच्यम् ज्ञानातिरिक्तार्थधर्मस्य प्रकाशस्य रूपादिवत्प्रत्यक्षासंभवात् ज्ञाततया ज्ञानानुमानेन तेन च तदनुमानेऽन्योन्याश्रयश्चापद्येत । तस्माज्ज्ञानं स्वप्रकाशत्वादेव प्रत्यक्षं नत्वनुमेयम् ।

एवमहमस्मिनवेति संशयोनाहमस्मीति विपरीतप्रमा न जायते इति आत्मनि संशयाद्यभावादात्मन स्वप्रकाशत्वमिति विज्ञानमेवात्मा नतु विज्ञानव्यतिरिक्त कश्चिदात्मा ।

अत्राह भाट्टो विज्ञान न प्रकाश जाते विज्ञाने विषयमात्र प्रकाशित भवति नतुज्ञानस्यापि प्रकाश । यथाऽयघट इतिज्ञाने जाते घटमात्रानदीयविषयो भवति नतु घटातिरिक्तपटोर्भान भवति तथैव घटज्ञाने सति घटमात्रस्यैव प्रकाश इत्याशयेनभाट्टा विज्ञानस्य परप्रकाशत्वमेवमन्यते । एतदेवोपपादयति **नच ज्ञाने जाते विषयमात्रस्यैवप्रकाश** इत्यादि ननुज्ञान यदि न स्वप्रकाशात्मक तदातत्प्रकाश कथमिति चेत्तत्राह **अनुमेयमेवेति वाच्यम्** इति नीलमितिज्ञानकालेऽनीलमिति प्रत्ययाऽनुदयात् । तस्मात् स्वरूपसत्त्वेनैवज्ञानेन विषयो विज्ञायते तदनन्तरम , ज्ञानगतागन्तुप्रकाशातिशयदर्शनेन विज्ञानमनुमित भवति । अयमत्राशय - इन्द्रियादिसंनिकर्षेण विज्ञानोत्पत्त्यनन्तर ज्ञानेन विषयेज्ञातताऽर्थाद् ज्ञानविषयता रूपोजायते । स एव प्रकाशशब्देन कथितो भवति । स एव च ज्ञानकृतोऽतिशयोनाम विषयस्य सच ज्ञातु पुरुषस्य प्रत्यक्ष तेन प्रत्यक्षेणार्थप्रकाशहेतुनाऽत्मनिज्ञाततोत्पादकज्ञानस्यानुमान भवति, तथाहि "इय घटत्वादिप्रकारकघटविषयकज्ञातता, घटत्वादिप्रकारकघटादिविषयज्ञानजन्या, घटत्वादिप्रकारकघटाविषयकज्ञातताात्वात्" एतादृशानुमानिकज्ञानविषयको "घटमहजानामीति" प्रत्ययोनतुज्ञान प्रत्यक्षमपितु, अनुमेयमेवेति न ज्ञानस्यस्वप्रकाशकत्वमितिभाट्टस्य प्रश्नाशय । अस्यमहाशयस्य निराकरण दर्शयन्नाह **ज्ञानातिरिक्तार्थधर्मस्य प्रकाशस्य** इत्यादि । ज्ञानभिन्नार्थधर्म प्रकाश इति निपुणमतीनामपितावत्प्रत्यक्ष नभवति रूपादिवदेव । अथात ज्ञातताहिज्ञानविषयता रूपैव । तद्विषयतया घटाद्यर्थसमबद्ध मानव्यतिरिक्ततया विषयधर्मस्य साधन सभवति, यत ममघटाद्यर्थविषयक ज्ञान जातम् , विदितो घटोघटोमया ज्ञात इत्यादिज्ञानाना धर्मिधर्मभावव्याप्यासंविदा धर्मभेदस्यानुभवाभावात् । तदेव ज्ञातताया सिद्धिर्न प्रत्यक्षेण नवा प्रकारान्तरेण, यत सर्वममतज्ञानेनैव सकलव्यवहारस्य सिद्धि सभवेन ज्ञातताख्पातिरिक्तप्रकाशकक्ल्पनायाप्रमाणाभावादिति । किञ्चार्थविषयकज्ञानेज्ञातुर्ज्ञानस्य ज्ञेयरूपार्थस्येति त्रितयस्यज्ञान नियमतो भवतीति प्राभाकरा , तत्र यदिज्ञानस्य ज्ञातुश्चानवगाहने विषयमात्रस्येवबोधे स्वीक्रियमाणे घटादिज्ञानोदयेपि "घटज्ञानवानहनवेति" संशय स्यात् "घटज्ञाना-

अपि च यस्य सम्बन्धेन पदार्थान्तरादौ जायमानो व्यवहारो धर्मभेदो वा स तस्मिन्नुपलभ्यमानस्तत्स्वरूपप्रयुक्त एव भवति नतु तत्संवन्धमूलको भवति। यथा न्यायमते सत्तासम्बन्धेन तदितरघटादौ सद्व्यवहारो यथा वा रूपसम्बन्धेन गुणादौ सत्तायां च। एवमेवज्ञानसम्वन्धाद् घटादौ प्रवर्तमानः प्रकाशते इति व्यवहारः प्रकाश-भाववानहमिति विपरीतप्रत्ययो वा भवेत, यतोज्ञातुर्ज्ञानस्यचानभासनात्, विषयमात्रस्यैवभान स्वीकारात्। परन्तु सशयादिर्ज्ञानोदयानन्तर न कस्यापि भवतीति त्रितयविषयकत्वज्ञानस्यैव स्वीकर्तव्यमिति ज्ञानस्य स्वप्रकाशकत्वमयत्नत एव सिद्धमितिज्ञानाद्घटादिव्यबहारवत् ज्ञानताया अपि व्यवहारसभवेनातिरिक्तज्ञातताया स्वीकारोऽनवसर इति। अपि च प्रत्यक्षविषयेकर्तृज्ञात ताया उत्पादेपि अतीतानागतविषयस्य स्मरणस्थले विषयस्य विद्यमानत्वेन तत्र विदित्वमूलकप्रतीति व्यवहारयो सत्त्वेऽसत्त्वेवा विदितत्वव्यवहारात्पूर्वमेव विदितत्वप्रतीते स्तथातम्मूलभूतायाज्ञातताया उत्पत्तिरिति नतत्रव्यवहारादिहेतुना विदितत्वस्यानुमान कृत्वा तदनन्तर वेदनस्यज्ञानपर्यायस्यानुमानम्, किन्तु ज्ञानस्य स्वय प्रकाशवलादेवातीतानागतेऽर्थेविदितत्वज्ञान ततश्चतन्मूलको व्यवहार इतिज्ञानस्य स्वप्रकाशत्वमेवायाति। स्मरणस्थले व्यवहारात् पूर्वमेव स्मरणद्वारेण घटादिविषयस्य स्मृतिविषयत्व ज्ञात्वा ततश्च तत्रज्ञातत्वव्यहारो भवति, यथा केनचित्कश्चित् "साकेतवासकृतवान् तत्स्मरसिनवेति पृष्टोमनोवधानकृत्वास्मृत्वा च ब्रवीति, न पूर्वं स्मरणमभूदपिसाम्प्रत स्मरामीति। न चायमेवव्यवहारो ज्ञाततायालिङ्गम्, व्यवहारस्यज्ञाततामूलकत्वात्। न च स्मरणेनैवार्थस्य स्मृतत्व ज्ञात्वा व्यवहरतीति वक्तव्यम्, यदि लिङ्गवलात्स्मृतत्वानुमान तर्हि, अनेनैलपनात्मकलिङ्गेन स्वस्य स्वकीयार्थविषयेप्रतीतिरानुमानिकीस्यादिति परस्याश्रयप्रसङ्गात्। स्मृतत्वप्रतीत्या तद्व्यवहार, तेनच व्यवहारेण स्मृतत्वमिति। नच परस्पराश्रय क्षेमाय भवतीति, एवञ्च विषयज्ञानानतर कर्तृर्ज्ञानस्य प्रकाशितत्वेन, अह जानामि नवा? ज्ञानाभाववान् नवाऽहमित्यादिसशयविपर्यासयोरदर्शनेन ज्ञानस्य स्वप्रकाशकत्वमर्थत एव पर्यवस्यति।

सम्प्रति विषयनिष्ठ धर्मान्तर प्रकाश स्वीकृत्यापि, भाट्टमत प्रौढिवादेन तन्निरसितुमुपक्रमते **अपिच यस्य सम्बन्धेने** त्यादि अयमाशय अनुमानवलेन विज्ञानस्य स्वप्रकाशत्व सिद्ध्यति। तथाहि अनुभूति स्वयप्रकाशाऽनुभूतित्वात्, यन्नैव यथा घट इतिव्यतिरेकी हेतु। अनुभूत्यात्मक ज्ञानम्, स्वेतराधीनतद्धर्मा, स्वसम्बन्धाद्विषयान्तरे तद्धेतुत्वात् रूपादिकम्।

रूपादिक वस्तु स्वकीयसम्बन्धादेव घटादेश्चाक्षुषप्रत्यक्षे कारण भवति, रूपव्यवहारेरूप रूपान्तरापेक्ष न भवति। यदि रूपप्रत्यक्षे रूपान्तरस्यापेक्षाभवेत्तदाऽवस्थाप्रसङ्गेन घटीना प्रत्यक्षतैव न स्यात्, तस्मात् स्वेतरचाक्षुषे रूपस्य कारणत्वेपि स्वस्मिन् स्वरूपत एव कारणम्। यथावा "अनुभूतिरनन्याधीनस्वव्यवहारा, स्वसम्बन्धादेवद्रव्यादिपदार्थान्तरव्यवहारकारणत्वात्

मानत्वं वा धर्मः । ज्ञानेतु जायमानस्तादृशव्यवहारो नज्ञानसम्बन्धापेक्षः किन्तु ज्ञानस्वरूपप्रयुक्त एवेति स्वयं प्रकाशत्वात् ज्ञानमेवात्मा । किञ्च योहिवादी ज्ञानाति रिक्तं ज्ञातारं स्वीकरोति सोपिज्ञानं तु स्वीकरोत्येव ज्ञानाभावे जानामि ज्ञानवानहमस्मीति प्रतीतिर्नस्यात् । तथा च सर्ववादिसंमततया विज्ञानमेवात्मा. न ततोऽव्यतिरिक्त आत्मेति विज्ञानमतम् ।

सत्तावत् । यथा द्रव्यगुणादौसत्ता सम्बन्धात्सदितिव्यवहारो भवति सत्तासतीतिव्यवहारेतु न सत्तान्तरस्यावश्यकता, किन्तु स्वरूपसत्त्वस्यैव कारणत्वेननिर्वाहात् । अन्यथाऽनवस्था । नचैव सत्ताधाराया अनुभवो भवति केषामपीति । अनेनान्वयि अनुमानेन ज्ञानगतप्रकाशस्य ज्ञानान्तरापेक्षारहितत्वेन ज्ञानस्य स्वप्रकाशत्वमेव सिद्ध्यति । अर्थात् चक्षुरादिकारणसवन्धे सति जायनान ज्ञान घटादिविषय प्रकाशयति स्व प्रकाशस्तु न ज्ञानान्तरेणानवस्था भयात् । एतदेव ज्ञानस्य स्वप्रकाशत्व यदन्यानधीन प्रकाशत्वम्, स्वसत्तयैव प्रकाशरूपत्वमिति । एवचानुमानेनार्थापत्त्या च स्वप्रकाशत्व सिद्धभवतीति । ततश्च स्वयप्रकाशज्ञानस्यैवात्मत्वमपि भवतु लाघवात् ।

किञ्चात्मन स्वयप्रकाशरूपत्वमनुमानश्रुत्यादिभिरेवसिद्ध्यति । आत्मा स्वय प्रकाश सवित् कर्मनामन्तरेण प्रकाशशीलत्वात्सवेदनवदेव । श्रुतिरपि स्वप्नावस्थामधिकृत्य कथयति "अत्रायपुरुष स्वयज्योतिर्भवतीति । ततश्च स्वप्रकाशरूपज्ञानस्यैवात्मत्वमपि सभवेदेवेति न ज्ञानव्यतिरिक्त आत्मेति ज्ञानमेवात्मेतिविज्ञानवादिमत सिद्ध भवतीति ।

बौद्धमते स्वप्रकाशात्मक ज्ञानमेवात्मा । तद्विज्ञान द्विविधम्, आलयविज्ञानप्रवृत्ति विज्ञानभेदात् । तत्राहमाकारक विज्ञानमालयविज्ञानम्, तत्र सस्कारादीना लीनत्वात् । विज्ञानेतर घटादिज्ञेयमात्रविषयक विज्ञान प्रवृत्तिविज्ञानम् । तदुक्तम् "तत्स्यादालयविज्ञान यद्भवेदहमास्पदम्" तत्स्यात्प्रवृत्तिविज्ञानयन्नीलादिकमुल्लिखेदिति । अर्थात् वाह्यघटादिज्ञेयविषयक ज्ञान प्रवृत्ति विज्ञानपदवाच्यम्, आन्तरज्ञेयविषयक ज्ञानमालयविज्ञानपदवाच्यमिति तस्यैव नाम भवति, आत्मेति । तद्विज्ञानमपि क्षणिकम्, यत्सत्तत् क्षणिक यथामालेति निदर्शनात्, मेघमालाया सत्वात्क्षणिकत्व तथैव सत्वहेतुना विज्ञानेपि तदस्तित्व प्रतीयते । तादृशविज्ञानस्य ज्ञानसुखदु खेच्छाद्वेष सस्कारादयोप्याकारविशेषा एव । विज्ञानस्य क्षणिकत्वे कालान्रे पूर्वानुभूतसुखादय कथमिव स्मृता भवेयु· "नान्यदृष्ट स्मरत्यन्य" इति नियमात्पूर्वज्ञानसस्कारस्योत्तरसन्तानेषु सक्रमणात् तदुपपत्ते । मृगमदवासनावासितवसनवत् पूर्वपूर्वसस्कारस्यातिसादृश्यादुत्तरोत्तरक्षणेषु मक्रमणेन सर्वोपपत्तिसभवात् । स एवायमात्मेति व्यवहारस्तु "लूनपुनर्जातकेशादौ अमी त एव केशा" इति व्यवहारवज्जातिविषयकतयैव निर्वाह्य । नतु व्यक्तिविषयको ये न स्मरणादिक दुरुपपादो भवेत् । न च व्यक्तिविषयक प्रत्यभिज्ञानम् किन्तु सैवेय गुर्जरीतिवत् प्रत्यभिज्ञानजातिविषय-

ननु अहं जानामीति प्रत्यये ज्ञानस्याधिकरणरूपतया तदतिरिक्त आत्मापि भासते, इति कथं ज्ञानमेवात्मेति प्रोच्यते ? सत्यम् आत्मातु विकल्पबुद्धिविषयत्वाद प्रामाणिक एव । विकल्पज्ञानस्य भ्रमरूपत्वात् । "कल्पनापोढमभ्रान्तं प्रत्यक्षं निर्विकल्पकमिति" नियमात् । ततश्च सहोपलंभनियमेन ज्ञानज्ञेययोरभेद एव प्रामाणिकः। भेदस्तु वासनारूपदोषमूलक इति विज्ञानमेवात्मा निर्विकल्पकप्रत्यक्षविषयत्वात् ।

कत्वालम्बनात् । न च पूर्वज्ञानानुभूतसंस्कारस्योत्तरविज्ञानेऽनुसरणाभ्युपगमे, मात्रानुभूतविषयस्य पुत्रेण तत्कार्येणोत्पादप्रसङ्ग, विज्ञानवत् मातृपुत्रयोरपि कार्यकारणभावस्य समानत्वादिति वाच्यम्, उपादानोपादेयभावस्य तत्र नियामकत्वात् । अर्थात्, यदुपादाने समवायिकारणे भवति, तदेवोपादेयेऽनुवर्तते इति नियमाकारो नतुकारणेऽवस्थित कार्ये समवैतीति नियम, नहि घटकारणे समवेत रूप घटेऽनुगच्छति नवा प्रागभावे सम्बद्धमभावत्व कार्ये आगच्छति, तथा सति भावरूपो घटादिर्भावत्वजह्यात् स्वीकुर्याच्चाभावत्वमिति दृष्टविपर्यय आपद्येत । पूर्वक्षणस्तूत्तरक्षणस्योपादान तेन तद्गतसंस्कारस्य तदुत्तरक्षणे सङ्क्रमो भवति माता तु पुत्रस्यनोपादनमपितु निमित्तकारणमेवेति न तदापत्तिर्भवति ।

तादृशक्षणिकमालयविज्ञानमेवात्मा नतु ज्ञेयकोटिप्रविष्ट आत्मा विकल्पज्ञानविषय पारमार्थिक निर्विकल्पज्ञानग्राह्यस्यैव पारमार्थिकत्वात् । यथा शुक्तो प्रतिभासमान रजत न पार्थिव तथैवज्ञानेवासनावलादविद्यावलाद् भासमानोज्ञेयो न पारमार्थिक इत्याशय हृदिनिरुद्ध्य तदीय पक्षमुपपादयितुमाह **नन्वहं जानामीति प्रत्यये** इत्यादि । यथा "अहजानामीति प्रत्यये ज्ञान भासते तथैव तदाश्रयरूपस्तदतिरिक्त आत्माऽपि भासते एवेति कथ तन्निराकृत्यज्ञानमात्रस्य सत्ताऽद्रियते इत्यर्थ । ज्ञानात्मनोर्मध्ये प्राधान्यादहमर्थस्यैवात्मत्व नतु तद्धर्मरूपेण भासमानज्ञानस्यात्मत्वम्, अपितु गोणत्वमेव, विशेष्यविशेषणयोर्विशेष्यस्यैव प्रधानत्वम् पर्वतोवन्हिमानित्यादो वन्हिपर्वतवदिति । उत्तरयति ज्ञानवादी **आत्मातु विकल्पबुद्धिविषयत्वादित्यादि**, सत्यमात्मन प्रधानत्व परन्तु सतु-आत्मा, अप्रामाणिकविकल्पविषयत्वेनाप्रामाणिक एवेति ।

कल्पनाऽपोढमभ्रांतं प्रत्यक्षं निर्विकल्पमिति कल्पनया राहत भ्रमभिन्न निर्विकल्पक प्रत्यक्षमित्यर्थ । अर्थात् प्रत्यक्ष निर्विकल्पक सविकल्पक च । तत्र स्वलक्षणवस्तुमात्रावगाहिनिर्विकल्पक प्रमाणम्, सविकल्पकतु धर्मधर्मभावादिभेदावगाहितया न प्रामाणिकमपितु भ्रान्तमेव । ततश्च ज्ञाता तु भेदरूपतया न साक्षात् प्रत्यक्षप्रमाणसिद्धोऽपितु भ्रमसिद्ध शुक्तौरजतवत् । निर्विकल्पक प्रत्यक्षमेव प्रमाण स्वलक्षणसिद्धत्वात्, तदितरत्सर्वमप्रामाणिकमेव ततश्च ज्ञातुर्भ्रमसिद्धत्वेन प्राधान्यमकिञ्चित्करमेव **सहोपलंभनियमेन** इत्यादि । अपि च सहोपलभनियमादपि ज्ञेयज्ञानयोर भेद एव सिद्ध्यति नतुतयोर्भेद । यत् येन सहैवोपलभ्यते स ततो भिन्नो न भवति, यथैकस्मात्

अत्रोच्यते, क्षणिकं विज्ञान प्रतिविषयं विभिन्नमेव प्रतीतं भवति । तादृशस्य चन्द्रमसो द्वितीयश्चन्द्रमा एकस्मिन् चन्द्रे उपलभ्यमाने एव द्वितीयश्चन्द्रमाभासते इति नतयोर्भेद । एव ज्ञाने उपलभ्यमाने एवार्थ उपलब्धो भवतीति नज्ञानाद्भिन्नोऽर्थोऽपितु तयोरभेद एव । तदुक्तम् "सहोपलम्भनियमादभेदोर्नीलतद्धियः । भेदश्च भ्रान्तिविज्ञानैर्दृश्यतेन्दाविवाद्वये" इति । यथा भ्रमज्ञानवतामेव द्विचन्द्रदर्शन विद्यावतातु चन्द्रैकदर्शनम् । एवमिहापि निर्विकल्पकप्रत्यक्षेण ज्ञानज्ञेययोरेकत्वमेव, भ्रान्त्यातुभेदइवभानम । तस्माज्ज्ञानार्थयोरभेद एवेति । न च ज्ञानार्थयोरभेदऽयं घटोऽय पट इति भेदावलम्बनप्रत्यय कथमुपपद्यते इति वाच्य वासनाबलादिति गृहाण । अनादिकालिकवासनाबलात् अविद्याबलाद्वा । ततश्चवासनात्मकसमनन्तरप्रत्ययबलेनानाद्यविद्याबलाद्वा समारोपित ग्राह्यग्राहकविकल्पालम्बनकस्वप्रकाशज्ञानमेव परमार्थ सत्, तदन्यत्सर्वंविकल्पसिद्धत्वादपारमार्थिकमेवेति । ग्राह्यग्राहकयोर्ज्ञानादभेदे ज्ञानज्ञातृज्ञेयादिभेदो दोषमूलत्वात । तथा च दोषमूलकत्वात् ग्राह्यग्राहकादिभेदज्ञान मिथ्यैव, ज्ञानमात्र तु सत्यम् । तदुक्तम् "अविभागोपि बुद्ध्यात्मा विपर्यासित दर्शनै । ग्राह्यग्राहकसंवित्तिभेदवानिवलक्ष्यते" इति । अयमर्थ सर्वज्ञेयप्रकाशकबुद्धिरेवार्थादालयविज्ञानमेवात्मा, साच बुद्धि सर्वप्रकारकज्ञातृज्ञेयादिभेदरहितापि, विपर्यासितदर्शनै भ्रमात्मकज्ञानै ग्राहकसंवित्तिभेदवानिवलक्ष्यते=नीलयति घटपटादिग्राह्यभेदचैत्रदेवदत्तादिग्राहकभेद प्रत्यक्षपरोक्षरूपज्ञानादिभेदवान्तदेवैक विज्ञान भासते । यस्यापिमतेज्ञानव्यतिरिक्त आत्मा तदाधार कल्पितो भवति तन्मतेपि स्वप्रकाशात्मक विज्ञानमभ्युपगन्तव्य भवतीति वस्तुद्वयकल्पनापेक्षयैकस्यैव विज्ञानस्य क्षणिकस्यैवात्मत्वमिति विज्ञानपक्षस्य सक्षिप्त पूर्वपक्ष ।

विज्ञानस्यैवात्मरूपत्व, तत्रमतद्वयम् योगाचारमतम् शाङ्करमतञ्च । तयो प्रथममत सक्षेपेण-प्रदर्शितमेव । अथ द्वितीयमतमपीत्थम् , तथाहि—बौद्धमते विज्ञानस्य क्षणिकत्वेनान्यदृष्टस्यान्येन स्मरणाद्यसभवदोषेण यथातथ भवतु, परन्तु "सत्य ज्ञानमनन्तम्" "प्रज्ञान ब्रह्म" इत्यादि सिद्धो विज्ञानरूप एवात्मा, स च नित्य श्रुत्यादिभिरेव तथा प्रतिपादनात् । तस्मिन्नेवात्मनि, एकस्मिन् ज्ञातृज्ञेयविभाग कल्पित एव रज्जा भुजङ्गवत् । शुद्धस्य ब्रह्मणो जगत्कारणत्वेसत्यकारण जनितससारस्य सत्यत्वेन ससारस्य विनाशो न स्यात् तस्मात् ज्ञातृज्ञेयविभागादयोऽनिर्वचनीयानादिमायाया कल्पिता एव । तदुक्त "शुद्धतत्व प्रपञ्चस्य न हेतुर्ननिवृत्तिन । ज्ञातृज्ञेयविभागस्य मायैव जननीमता" इति । एतन्मतस्य विशेषप्रपञ्च उत्तरावसरे दर्शयिष्यते ।

स्वप्नावस्थामधिकृत्य "अत्राय पुरुष स्वयज्योतिर्भवतीत्यादिनाऽत्मन स्वप्रकाशत्व श्रुतिसिद्धम् । विज्ञानस्य स्वप्रकाशत्वतु युक्तितर्काभ्यासिद्धमिति विज्ञानस्यैवात्मत्वम् , विज्ञानभिन्नस्य सर्वस्यैव पदार्थजातस्य वासनादिदोषमूलत्वेनाभासमात्रत्वमेवेत्यतो विज्ञानस्यैवात्मत्वमिति विज्ञानवादिना निश्चय निराकर्तु नित्यात्मवाद्युपक्रमते **अत्रोच्यते** इत्यादि । अर्थात् यदुक्त क्षणिक

तस्यात्मत्वस्वीकारे, "यमहं पूर्वमद्राक्षं तमेवेदानी पश्यामीति प्रत्यभिज्ञाकथं स्यात् अनुसन्धातुरात्मनः स्थिरत्वे एव प्रत्यभिज्ञाया दर्शनात्। न च सा प्रत्यभिज्ञा प्रतिभावदसद्विषयैवेति वाच्यम्, निर्विषयकप्रत्यभिज्ञायाः प्रत्यक्षादिज्ञानबाधितत्वात्। साधनस्य ज्ञानरूपस्य सविषयत्वेऽशेषज्ञानानां सविषयत्वमेवस्याज्ज्ञानत्वाविशेषात्, निर्विषयत्वेतु हेत्वभावादेव साध्यस्यासिद्धिः स्यात्। आकरग्रन्थे निर्विषयकज्ञानवादिमतं विस्तरेण निराकृतमिति तत एव द्रष्टव्यम्।

विज्ञानमेवात्मेति तन्न युक्तमित्येतत्प्रतिपादयति, अथाद् यद्बवन्मतेक्षणिक विज्ञानमात्मत्वमिति तदशोभन, यतस्तथा विधस्यात्मत्वे प्रत्यभिज्ञा न स्यात्, क्षणरूप विज्ञान विनाश स्वभावक नीलपीतादिविषयभेदेन विभिन्नमेव, तादृशस्य तस्यात्मत्वे प्रत्यभिज्ञानैव सभवेत् अनुभवितुरात्मन स्थिरत्वे एव प्रत्यभिज्ञाया सभवात्। अर्थाद् यश्चानुसधाता तस्यैव पूर्वानुमतसस्कारेण कालान्तरे स्मरण भवतीति नियमात्। तच्चानुसधातु स्मर्तुश्चैकस्यस्थिरत्वे एव सभवति, अन्यथाऽन्यदृष्टस्यान्येन स्मरणासभवात्। अनुभवस्मरणयो स्थिरसमानकर्तृकत्वनियमात्। अतएव चैत्रानुभूतस्य मैत्रेण स्मरण न भवति। यदातु स्थिरे आत्मनि स्वीक्रियमाणेऽन्यदृष्टस्यान्येन न भवति तदाका कथा क्षणिके कर्तरि स्वीक्रियमाणे। पुन शङ्कते—**न च साप्रत्यभिज्ञाप्रतिवदित्यादि** यथा प्रातिभज्ञान न सविषयक किन्तु निर्विषय तथैव प्रत्यभिज्ञाया निर्विषयत्वेको दोष इत्यर्थ। तथा च "प्रत्यभिज्ञानिर्विषयताप्रतिभात्वात् मानसकल्पनावदित्यनुमानमेव प्रत्यभिज्ञायानिर्विषयत्वे प्रमाणमिति प्रश्नाशय।

उत्तरयति सिद्धान्ती **निर्विषयकप्रत्यभिज्ञाया** इत्यादि। अयमर्थ ज्ञानमात्रस्य सविषयकत्वनियमात्। यद् यज्ज्ञान तत्सर्वं सविषयकमेव ज्ञानत्वात्, घटादिज्ञानवदित्याद्यनुमानेनज्ञानसविषयकत्वसाधनेन ज्ञानविशेषस्य निर्विषयत्वस्वीकारे प्रत्यक्षादिबाधात्। सर्वेप्रत्यया यथार्था प्रत्ययत्वात् घटादिप्रत्यक्षवत्। अयभाव सर्वतो विश्वासभूमिर्ज्ञानमेव। शतधाबोध्यमानोपिनतावत् श्रद्धते यावज्ज्ञानविपर्यी न क्रियते, एतादृश सर्वविश्वासकारण ज्ञान यद्यर्थाद् व्यभिचरेत् तदा तस्य विश्वासभूमितैव न स्यात्। तदुक्त "यदिस्वार्थं परित्यज्य काचिद्बुद्धि प्रवर्तते। व्यभिचारवती स्वार्थे कथ विश्वासकारणमिति। तथा "अन्यस्य चान्यथाभान प्रतीत्यैव पराहतम्। परस्मिन् भासमानेपि न परभासते यत" इति। नवा असदर्थविषयकज्ञानस्योत्पादक किमपि कारण विद्यते। चक्षुरादिकमेवाऽसदर्थविषयकज्ञानोत्पादने हेतुरिति वाच्यम्? चक्षुरादीना यथार्थज्ञानोत्पादकत्वस्यैव दर्शनात्। न च यथावेत्रबीजस्यवेत्राङ्कुरजनने समर्थस्यापि, दावदहनदग्धस्य तस्यैव कदलीकाण्डजनकत्व दोषात्, तथैव दूरत्वसादृश्यादिदोषसहकृतचक्षुरादेरेवायथार्थज्ञानजनकत्वमिति वाच्यम्, तथा सदोषदुष्टकारणस्य पुरुषस्य सर्वदर्शित्व

ननु भवतु विज्ञानस्य क्षणिकत्वं तथापि विज्ञानसन्तानाश्रयणेन प्रत्यभिज्ञानोपपादनं स्यादिति चेन्न. विज्ञानक्षणातिरिक्तस्थिरस्यस्मर्तुरेकस्यास्वीकारेण प्रत्यभिज्ञानो

प्रसङ्गात् । अर्थात् दोषोहि यस्य यत् सामर्थ्यं स्वकार्यकरणे तादृशसामर्थ्यस्यैव विघातक भवति नतु तत्रातिशयमपि जनयति, तथा सत्यन्यपुरुषस्यसर्वज्ञत्वापातप्रसङ्गात न च तर्हि "इद रजतमिति" ज्ञानमपिनविभ्रमरूप स्यादपितु प्रमैव भवेदिति वाच्यम, इष्टापत्ते । तथाहि इदरजतमिति ज्ञानमशद्वयविषयकम, तत्रेदमाकारविषयकमनुभवात्मक चक्षुरादिकरणजनितम, रजतमिति ज्ञानतु स्मरणात्मकमेव तयोश्च स्वरूपतो विषयतश्च विविक्तयोरपिभेदाग्रहप्रयुक्तोऽभेदव्यवहारोभवतीदरजतमितिवाधकनेदरजतमितिज्ञान विवेकाग्रहप्रसजितमभेदव्यवहारमात्र प्रतिरुणद्धि, एतदेव बाधकस्य बाधकत्वमितिज्ञानमात्रासर्वमपिसदर्थविषयकमेवनासदर्थविषयक भवतीति तस्मात्सर्वज्ञान सविषयक भवति । यदि कदाचित्प्रत्यभिज्ञानस्यनिर्विषयत्व कश्चिद्ब्रूयात्तदातस्य प्रत्यक्षादिवाधोदुर्वार एव स्यादिति । अर्थात सर्वस्यज्ञानस्य सविषयकत्वनियमात, तादृशज्ञान विशेषस्य निर्विशेषकत्वे तस्मिन् ज्ञानत्वमेवनस्याद् व्यापकाभावेन व्याप्यस्यसत्वायोगात् । तस्मात् ज्ञानविशेषे निर्विषयकत्वसाधन प्रत्यक्षवाधितमेवेति । प्रातिभज्ञानेपि न सर्वथा निर्विषयकत्वम् । अन्यत्रविद्यमानस्यैववस्तुनोऽन्यत्रभानदर्शनात् जले सत एव कमलस्यान्यत्रभनात् । तथा प्रतिभज्ञान स्वाप्निक ज्ञानमपि क्वचित्सत्यमेवभवतीति । निर्विशेषत्वसाधकहेतो सविषयकत्वम् । अन्यत्रविद्यमानस्यैव वस्तुनोऽन्यत्रभानदर्शनात् । जले सत एवकमलस्यान्यत्रभानात् । तथा प्रतिभज्ञान स्वाप्निक ज्ञानमपि क्वचित्सत्यमेव भवतीति । निर्विशेषत्वसाधकहेतो सविषयकत्वे, तदविशेषात् सर्वज्ञानानासविषयकत्व प्रसज्येत, तादृशहेतो र्निर्विषयकत्वे कारणाभावादेवनिर्विषयकत्वरूपसाध्यमेव नसिद्ध्येत् । तस्मात्क्षणिकविज्ञानवादिमत न समीचीन यथार्थख्यातिवादेविशेषोद्रष्टव्य ।

विज्ञानस्य क्षणविनष्टत्वेन प्रतिसन्धान न स्यादनुभवितुरभावादित्यादिदोषेण तन्मत निराकृतमपि पुनर्विज्ञानसन्तानाश्रयणेनतदुपपादयति । मन्मते विज्ञान द्विविध प्रवृत्तिविज्ञानमालयविज्ञान च । तत्रनीलपीतादिवाह्यवस्तु विषयक ज्ञानमाद्यम् । द्वितीयतु अहमहमित्याकारक तत्तु आलयविज्ञानमात्मरूपम् । तदुक्तम् "तत्स्यादालयविज्ञन यद्भवेदहमास्पदम् । तत्स्यात्प्रवृत्ति विज्ञान यन्नीलादिकमुल्लिखेत्" इति । तत्र यत्सत् तत्क्षणिक मेघमालावदिति नियमेनोभयप्रकारक विज्ञानस्य क्षणिकत्वेपि, आलयविज्ञानधाराया अनुवर्तनेन पूर्वपूर्वसन्ताननिष्ठसंस्कारादेरुत्तरोत्तरेऽनुवर्तनात्प्रत्यभिज्ञानस्यानुपपत्तिर्नस्यादित्याशङ्कामपनेतुमुपक्रमते **"ननु भवतु विज्ञानस्य क्षणिकत्वमित्यादि** । विज्ञानसन्तानस्य स्वीकारेण विज्ञानस्य क्षणिकत्वेपि स्मरणादीनामुपपाद नस्यादिति प्रश्नाशय । उत्तरयति=**विज्ञानक्षणातिरिक्तस्थिरस्येत्यादि** । विज्ञानमेव क्षणोविज्ञानक्षण. ।

पपादनस्याशक्यत्वात् । स्वीकारेतु स्वसिद्धान्तपरित्यागान्यदीयसिद्धान्ताभ्युपगम प्रसङ्गाच्च । नचात्यन्तसादृश्यात् लूनपुनर्जातकेशादाविवप्रमातरि भेदाग्रहणेन प्रत्यभिज्ञाया भ्रमः स्यादिति वाच्यम् दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकयोर्भेदात् दृष्टान्तेकेशादौ स्थिरस्यैकस्य पूर्वोत्तरकालिककेशव्यक्तिद्रष्टुः समसंस्थानतया व्यक्तीनां भेदादर्शिन एकत्व भ्रमसंभवात् ।

प्रकृतेतु विज्ञानव्यक्तयः परस्परवार्तानभिज्ञानिरन्वयविनश्वरस्वभावा इति बौद्धसमय इति तेषु विज्ञानेष्वेकत्वभ्रमासंभवात् । अति सादृश्येपि अन्यकृतं स्वकृत मितिकश्चिदप्यनुसन्धत्ते । तस्मादुत्पादविनाशशीलसंतानाश्रयः स्थिरः कश्चिच्चेतनोऽवश्यंमन्तव्योऽन्यथा प्रत्यभिज्ञानोपपादनाऽशक्यत्वादिति क्षणिकवादिमतम् ।

स्मर्तुरनुसधानकर्तुरित्यर्थ । अत्रायमाशय अनुसन्धानकर्तुरालयविज्ञानधाराऽन्त पतितपूर्वकालिकार्थस्मरणकर्तुर्विज्ञानादतिरिक्त क्षण सस्थिरोऽभ्युपगम्यते नवा यद्यभ्युपगम्यते इति प्रथमपक्षोऽर्थादतिरिक्त स्थिर कश्चिदस्ति, तदास्वसिद्धान्तव्याकोप , यत सर्वक्षणिकमिति स्वाभ्युपगतसिद्धान्तोदत्तजलाञ्जलिक स्यात् । अर्थात् क्षणिकविज्ञानातिरिक्तस्य स्थिरस्यकस्याप्यनाभ्युपगमात् । यदि विज्ञानव्यतिरिक्त स्थिरोन कश्चिन्मन्यसे तदा प्रत्यभिज्ञान न स्यात् । अर्थात् क्षणिकक्रमिकालयविज्ञानसमुदायरूप सन्तान यदि समुदायितोऽननिरिक्त तदा प्रत्यभिज्ञान नोपपद्येत, सन्तान मध्यतितस्यप पूर्वकालिकानुभवकर्तुर्विनष्टत्वात् , उत्तरकालिकविज्ञानक्षणस्यचानुभवाभावेन प्रतिसन्धानासभवात् । इत्येव सोगतस्योभयत पाशारज्जुरितिन्यायातिपात । स्थिरस्य कस्यचित् स्वीकारे सिद्धान्तव्याकोपोऽस्वीकारे च स्मरणाभावप्रसङ्गश्चापद्येतातस्तदिदमुभयमपि अनिष्टमेवेति ।

अत्रेदमनुसन्धानव्यम ये च पदार्था क्षणिकास्तेषा समुदायोपिनसभवति स्थिरदेशकालाद्युपाधिक्रोडीकाराभावात सुगतसमये एकज्ञानक्रोडीकारस्यातिप्रसञ्जकत्वात् । स्वान्यसन्तानिविज्ञानस्यव्यधिकरणत्वेन सन्ताननियामकत्वासम्भवात् , न च पूर्वपूर्वविज्ञानकारणकतदुत्तरोत्तर विज्ञानपरपरैव सन्तानमिति वाच्यम् , पूर्वत्वमात्रस्याति प्रसक्तत्वात् , पूर्वकालिकदेवदत्तविज्ञानस्यापि उत्तरकालिकयज्ञदत्तादिविज्ञानोत्पादकत्वप्रसङ्गात् विनष्टस्य कार्यकालेऽविद्यमानस्योपादानत्वायोगात् । उपादानकारणस्य कार्यसहभावित्वेनैव कारणत्व नतु केवलपूर्वकालिकत्वमात्रेण, नहि भवति मृत्तिकादेर्घटपूर्वत्वमात्रेण कारणत्वम । उत्पन्नविनष्टकपालात् घटोत्पत्तेरदर्शनात् । ततश्चपूर्वत्वमात्रस्यातिप्रसक्तत्वेन सन्तानानुपपत्ते समाधान नैव भवतीति ।

ननु प्रथमालयविज्ञानस्य द्वितीयाद्यालयविज्ञानेन सहातिसादृश्यात् , तयोर्द्वयोरतिसादृश्येन भ्रमात्मक प्रत्यभिज्ञानं समुपपद्येत दीपकलिकादिवदित्याशयेनशङ्कते, **नचात्यन्तसादृश्यादित्यादि** । उत्तरयति-**दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकयोरि**रित्यादि । भ्रान्तिरूप प्रत्यभिज्ञान न सभवेत्, तदेवोपपादयति **दृष्टान्तेकेशादावि**त्यादि दृष्टान्ते केशादो दीपकादौवापूर्वापरादिभिन्नकालि-

यदुक्तंक्षणिकं विज्ञानमात्मा, तन्न ज्ञानस्य प्रागभावाद्यस्याभावात् । तथात्वञ्च तस्यस्वतः सिद्धत्वात् । स्वतः सिद्धस्य प्रागभावादयो न भवन्ति । यदि स्वयमेव स्वभावमवगमयेत्तदातत्सर्वथा सदेव भवेत् गगनादिवत् गगनकुसुमवदसदेव वा भवेत् । मत्पक्षेऽभाव एव नास्तीतिकथं तत्साधयेत् । साधकस्यासत्वे साधकत्वमेव न स्यादिति न तावत्स्वतस्तत्सिद्धिरिति । नापि प्रमाणान्तरेण, ज्ञानस्य प्रमाणान्तरगाविषयत्वात् । प्रमाणान्तरविषयत्वे घटादिवदेव ज्ञानस्याज्ञानत्वप्रसङ्गात् । अनवस्थादिप्रसङ्गश्च

कयो केशयोर्दीपकलिकादेर्वाऽत्यन्तसदृशयो प्रत्यक्षकृतातदतिरिक्त कश्चित स्थिरश्चेतनो विद्यते, यस्यसमीचीन स्थलान्तरेऽसमीचीनज्ञानमपि भवति । तादृशस्थले दोषवशात कदाचित् भ्रमात्मक प्रत्यभिज्ञानमुपयुज्यते, दार्ष्टान्तिकेतु क्षणिकालयविज्ञानाना द्रष्टास्थिरोऽतिरिक्तस्तु भवन्मतेनैव स्वीक्रियते । अतोविज्ञानमेवात्मा स्वभिन्नेनात्मना स्वस्मिन् तद्भेद भावयिष्यति ततश्चाभेदभ्रमो भवतीति वक्तव्यम , परन्तु क्षणिकतया परस्परवार्तानभिज्ञतया स्वस्मात् स्वस्माद् भेदवाऽभेदवा ग्रहीतुन शक्नुयात् । तस्मान्नैव प्रत्यभिज्ञानभ्रमात्मकमिति कथन युक्ततरमिति । यदुक्त प्रश्नावसरे मृगमदवासनावसितवसनवत् पूर्वपूर्वविज्ञान सस्कारस्योत्तरे सक्रमणादिकमुपपद्यते इति । तदपि नोपपद्यतेयतो निरन्वय विनाशस्याभ्युपगमात् । अर्थात पूर्वविज्ञानस्य निरन्वय समूलनाशानान्तरमेवोत्तरोत्तरस्योत्पादो भवतीति, तत्र पूर्वविज्ञानगतवासनादिबलादेव प्रत्यभिज्ञान भ्रमात्मक न घटते, धर्मधर्मिणोरुभयोरपि समूल विनाशात । ततश्च पूर्ववातुवृत्तिबलादपि पूर्वानुभूतवस्तुन प्रतिसन्धानादिकं न घटते परस्परवार्तानभिज्ञत्वात । तेन ज्ञानान्तरतद्विषयाऽग्राहित्वमेव । यदि कारणगतवासनात तदुत्तरतत्कार्येषु वासनाद्वयमङ्गीकृत्य स्मरणादिकमुपपाद्येत तदा मात्रानुभूतपदार्थस्मरण तत्कार्यभूतपुत्रस्यापि स्यात् । नचोपादानोपादेयभावो नियामक, वासनायागुणरूपया सक्रमणासंभवात् ।

नचोत्तरस्मिन्नुत्पत्तिरेव सक्रमोनतु क्रिया रूप सक्रम इति वाच्यम , विज्ञानस्य क्षणिकत्वेनानन्तसस्कारकल्पने गौरवादिदोषप्रसङ्गात् । अतो विज्ञानातिरिक्तस्थिर एवात्मेतिस्थिरात्मवाद एव श्रेयान् नतु क्षणिकविज्ञानात्मवादोऽवैदिक श्रेयानिति ।

अथ क्षणिकविज्ञाननात्मा, कृतप्रणाशाकृताभ्यागमादिदोषप्रसङ्गादित्युपश्रुत्यनित्यविज्ञानमेवात्मेति शङ्करमतानुयायिन प्रत्यवतिष्ठन्ते । **यदुक्तंक्षणिक विज्ञानमात्मेति ।** सत्यतन्मतभवद्भिर्निराकृतम्, ज्ञानस्यानित्यत्वे प्रत्यभिज्ञानोपपादनासम्भवात । तथा कृतप्रणाशाऽकृताभ्यागमादि दोषाच्च । परन्तु नित्यविज्ञानस्यात्मत्वे, नास्तिकोपि दोष प्रत्युतनित्यविज्ञानवाद श्रुतितर्कानुमोदित इति स एव वाद स्वीकरणीय । कथमय विज्ञानात्मवादो निर्दुष्टस्तत्राह **तन्न इति ।**

तस्माज्ज्ञानस्योत्पत्तिर्नभवति । तस्य प्रागभावाऽभावेन जन्माभावस्ततश्च जन्मसापेक्ष स्थितिविनाशादिभावविकाराणामप्यभावोऽर्थत एव सिद्ध्यति । विज्ञानस्योत्पत्यभावादेवाकाशादिवदेवानेकत्वमपि न भवति, व्यापकाभावेन व्याप्याभावस्यावश्यकत्वात् । नहि जन्मरहितस्य विभागो भवति । ज्ञानत्वादेवतस्येतरेतराभावादयो न भवन्ति । तस्मात् समस्तभेदविकल्परहितनिर्धमकप्रकाशमात्रैकरसकूटस्थनित्यविज्ञा

क्षणिकविज्ञानवादे दोष तथा नित्यविज्ञानस्य सिद्धि प्रदर्शयितुमाह **ज्ञानस्य प्रागभावाद्यभावादि**त्यादि । योहि अनित्य पदार्थ स जायते यथा घटादि । जायमानस्योत्पादककोटौ प्रागभावो प्रविशति । परन्तु ज्ञानस्य नित्यत्वेन प्रागभावस्यावश्यकतैवनास्ति, स्वत सिद्धत्वात् कालादिवदिति । अत सिद्धस्य ज्ञानस्य प्रागभावाद्यसिद्धेर्नज्ञानमनित्य किन्तु नित्यमेव । स्वत सिद्धस्य प्रागभावादयो न स्वत सिद्ध्यन्ति परतोवा । स्वयमेव स्वाभावमवगमादसद्वा सद्वा साधयेत् । सत्वेऽभावमेव न विद्यते कथ साधक, असत्वाच्च साधकत्वमेव नास्तीति न तावत् स्वतस्तत्सिद्धिरिति । अर्थात् स्वस्यासत्वे ग्राहकस्याभावादेव, स्वस्यस्वत्वे ग्राह्याभावाच्चज्ञानस्य न प्रागभावादिर्गृह्यते । ज्ञानस्यज्ञानान्तरविषयत्वेन ज्ञानान्तरेण तज्ज्ञानप्रागभावप्रागभावस्य ज्ञानमपि न सभवति ज्ञानाविषयत्वमन्तरेण ज्ञानोपरक्तप्रागभावग्रहणमेव न स्यात्, यदि ज्ञानस्यापि ज्ञानान्तर विषयत्व कश्चिन्मन्येत, तदाज्ञानस्यापिज्ञानान्तरविषयत्वेनानवस्थैव । क्वचिदपिज्ञानप्रवाहे विषयान्तरसचारोच्छभयात्, अनवस्थानाद्वाविश्रामे प्रथमज्ञानस्यघटादिवज्जडत्वमापद्येत । ज्ञान विषयत्वस्यैव जडरूपत्वस्यैव जडत्वात् । तस्मात्प्रमाणाभावात् ज्ञानस्यप्रागभावो न विद्यते । प्रागभावाभावाच्च न ज्ञानस्यजन्यत्वमपितु नित्यप्रकाशरूपत्वमेव । **प्रागभावे**त्यादि । पदार्थमात्रस्य प्रथम जनिस्ततस्तस्य स्थितिस्ततो विनाश । स्थितिकालेच, अस्तित्ववृद्धिपरिमाणापक्षयाश्च । एतत्सर्वमुत्पत्यनन्तरमेव भवतीत्यतो यस्य पदार्थस्य प्रागभावादिकारणकलापान्तर्गतप्रागभावस्य निरासोजातस्तादृशपदार्थस्यस्थित्यादिका विकारा परिहृता एव भवन्ति । उत्पत्तेरभावात् ज्ञानस्यानेकत्वमपि निराकृतम् । यत्रयत्रोत्पत्तिमत्व तत्सर्वनानाभवतीति नानात्वस्यव्यापकमुत्पत्तिमत्वम् । प्रकृतेविज्ञाने व्यापकस्योत्पत्तिमत्वस्य प्रागभावन्निराकरणेनाभावेजाते, उत्पत्तिमत्वाभावे तद् व्याप्यस्यनानात्वस्यापि निवृत्तिर्भवत्येव । यद् जन्य तदेवनाना दृष्टम्, यदजन्यमाकाशादिक तत्रनानात्वनभवति, यद्यपि घटाद्युपाधिभेदेन नित्याकाशेऽपि घटाकाश पटाकाश इति भेदो दृश्यते, तथापि तादृशोभेदो घटादिवन्न स्वाभाविकोऽपितु आगन्तुको नतु परमार्थिक । तथा चात्रोत्पत्तिमत्वाभावरूपव्यापकाभावेव्याप्यस्य 'नानात्वस्याप्यभावो विज्ञाने प्रसिद्ध्यत्येव । यथा व्यापकस्यद्रव्यत्वस्य रूपादिप्रमुखगुणादावभावे गृहीते द्रव्यत्वव्याप्यपृथिवीत्वादीनामभावो गृहीत एवभवति । सोयभेदद्विविधः सजातीयविजातीयस्वगतभेदात् । तथोक्तम् "वृक्षस्यस्वगतोभेद पत्रपुष्पफलादिभि । वृक्षान्तरात्सजातीयो विजातीय शिलादित" इति ।

नमेवात्मा परमात्मा च नतु विज्ञानं क्षणिकम् । यथोक्तम् "यानुभूतिरजाऽमेयाऽनन्तात्मात्मेति" ।

एतादृशं विज्ञानमेव "तत्वमस्यादि वाक्यात्मकवेदान्तवेद्यम् । यथोक्तम् परागर्थप्रमेयेषु या फलत्वेन संमता" इत्यादि तदीयवार्तिकवचने । अपि च शुष्कतर्कमात्रेणैवात्मनोननित्यविज्ञानस्वरूपत्वं किन्तुश्रुतिस्मृत्यादिप्रमाणबलादपि तद्रूपत्वमेव सिद्ध्यति । "सत्यंज्ञानमनन्तं ब्रह्म" "प्रज्ञानघनंब्रह्म" "एकमेवाद्वितीयम्" "अहं ब्रह्मास्मि" "अजोनित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते" "वेदाविनाशिनं नित्यम्" "यतोवाचो निवर्तन्तेऽप्राप्यमनसा सहेत्यादि" तस्मात् क्षणिकविज्ञानस्यानात्मत्वेपि स्वतः सिद्धप्रकाशात्मकनित्यविज्ञानस्यैवात्मत्वमिति शाङ्करमतप्रश्नः ।

यथावृक्षे तदीयफलादितोयोभेदोवर्तते सस्वगतोभेद स्वस्मिन् स्वावयवानाम् । वृक्षान्तराद्वृक्षान्तरेयोभेद स सजातीयोभेद वृक्षत्वेन सर्ववृक्षाणा साजात्यात्, पनसाम्रात्वेन व्यक्तिभेदात् । तत्रैव शिलादितोभेदो विजातीयो वृक्षत्वपाषाणत्वाभ्यावजात्यात् । तथा सद्वस्तुनोभेदत्रय प्राप्त निवार्यते । ऐक्यावधारणाद्वैतप्रतिषेधैस्त्रिभि क्रमात् ' इति । अथात् 'यद्वस्तुनत् भेदत्रयतत् इति लौकिक व्याप्त्या विज्ञानात्मकब्रह्मणि प्राप्त भेदत्रयम्, "एकमेवाद्वितीयत्' इतिश्रुतिवाक्यघटक, एकम्, एव, अद्वैतम् इति पदै क्रमेणनिराकृतम् । नानोविज्ञाने सर्वथैव नाना वस्त निराकरणन तदक त्र नित्यत्वादिकञ्च सिद्ध्यति । उत्पादकप्रागभावादिकारणानामभावेन नित्य विज्ञानमेवात्मा, तदतिरिक्त दृश्य सर्व तस्मिन्नेवदृक् स्वभावेमाययाकल्पितमेव, जीवेशादिविभागोपिकल्पित एवातो मिथ्यैव । सर्वमिथ्यात्वेपि स्वप्नवदेव सर्वव्यवहारोयावत्ससारमनुवर्तते । तथापि सर्वमिथ्यात्वेपि "जीव ईशो विशुद्धाचित् तथा जीवेशयोभिदा । अविद्यातच्चितोर्योगपडस्माकमनादय " इतिप्राचीनोक्त्या अनादिका एव । अत्रावच्छेदवादप्रतिबिंबवादादयस्तत्तदाचार्यमतिभेदादनेकविधा एव । अविद्यादीना स्वरूप लक्षणच यथा समवतत्तत्स्थले प्रदर्शितम् । तस्माद्विगलितभेद कूटस्थविज्ञानमेवात्मापरमात्माचेति । यथोक्तम् ' याऽनुभूतिरजाऽमेयाऽनन्तात्मेति" [अस्यार्थ या सर्वानुभवसिद्धा, अनुभूतिर्ज्ञानरूपा सैव, अजानजायतेनोत्पद्यते प्रागभावरहिततयानोत्पत्तिमती । "अमेया" ज्ञान विषयत्व मेयत्वम्, तद्भिन्निममेयत्वम्, एतावता ज्ञानाविषयत्व कथितम् । अनन्ता" नविद्यतेऽन्त प्रध्वसप्रागभावोवायस्य तदनन्तम् । एतेन विनाशरहितत्व सूचितम् । यद्वादेशकृतकालकृतवस्तुकृतान्तवत्वनिषेधेनत्रिविधपरिच्छेदरहितत्व विज्ञापितम् । "आत्मा" यथोक्तानुभूतिरवात्मा । तत्रात्मत्वम्, जीवात्मपरमात्मरूपत्वमेव इत्थभूतज्ञानमेवैक सर्वव्यापक सर्वव्यापकपरमात्मरूपम् । उपाधिभेदेनार्थात्, अन्त करणरूपापाधिभेदेनानेकजीवरूप च, घटपटाद्युपाधिभेदनाकाशादि वदित्यर्थ. । **यानुभूतिरजेत्येति** । एतदेव यथा लक्षणकज्ञानतत्वमसीति वेदान्तमहावाक्यस्यतात्पर्य

तदेतत् शाङ्करमतमशास्त्रीयमलौकिकं चेति विशिष्टाद्वैतवादिनः संगिरन्ति।

विषयम् । "यतोवाचोनिवर्तन्तेऽप्राप्यमनसासहे" तिश्रुत्यावाङ्मनसातीतत्वप्रतिपादनेन जीवात्म परमात्मनोऽभेदप्रतिपादनम् । किन्तु सोऽयदेवदत्त इत्यादिवाक्यवदुभयपदेऽर्थात् तत्पदे त्व पदे च लक्षणामाश्रित्य तात्पर्यवलेनाभेदप्रतिपादन भवतीति तदेवज्ञान वेदान्तवाक्यस्यतात्पर्यम् । अर्थात् नात्मा वेदान्ते शक्त्यावोधितोभवत्यपितुशाखाचन्द्रमसन्यायेन तात्पर्यन एवाधिगतो भवतीति तेषा मतम् । एवं तदीयवार्तिककरोप्याह "परागर्थप्रमेयेषु या फलत्वेन समता । सवित् सैवैह्मेयोऽर्थो वेतान्तोक्तिप्रमाणत । अप्रामाण्यप्रसक्तिश्च स्यादितोऽन्यार्थकल्पने । वेदान्तानामतस्तस्मान्ना-न्यमर्थप्रकल्पयेत्" इति ।

तदयमर्थ परागर्थेषु वाह्यघटपटादिविषयविषयक पारमाथिकवेदान्तवाक्यात्मकप्रमाण-जनितज्ञानफलरूपेण स्वीक्रियते प्राचीनाचार्यै स्तदेव प्रमाणजनितज्ञानम्, वेदान्ततन्त्रेप्रमेयरूपम्। इतोऽन्यस्मिन्, एतदरिक्तपरागर्थप्रमेयेवेदान्तवाक्यस्यतात्पर्ये परिकल्प्यमानेसति वेदान्तवाक्यना प्रामाण्य न स्यात्, यतो ब्रह्मव्यतिरिक्तार्थस्यमायिकतयाऽसत्यस्य प्रमाणाविषयत्वेन मिथ्यात्वात् । अर्थादेतन्मतेब्रह्ममात्रस्यसत्यत्व तदतिरिक्तस्यासत्यत्वमेवति सुरेश्वराचार्यवचनार्थ । अर्थात् निर्विशे-षनित्यज्ञानमात्रमेवतत्तत्प्रमाणजनितान्त करणवृत्तिप्रतिबिंबिततया तत्तदाकारवृत्त्यवच्छिन्नतयावा-तत्तद्प्रकाशकत्वेन प्रमाणफलत्वव्यवहार इति । इतिनित्यविज्ञानात्मवादेतत्त्वदीप ॥

नित्यज्ञानाद्वैतवादिमतस्य सक्षेपेण प्रश्नोगत । एतन्मतेज्ञाननिर्विषयमकर्तृकच, तदेव पारमार्थिक तदतिरिक्त सर्ववस्तुमाययातत्रैव प्रकल्पितमिति मिथ्यैव । तथोक्तम्—सुरेश्वराचार्येण "अक्षमाभवत.केयं साधकत्वप्रकल्पते । किं न पश्यसि मसार तत्रैवाज्ञानकल्पितमिति । एतन्मतेद्वि-विधं ज्ञानस्वरूपज्ञानमन्त करणवृत्यात्मक च । तत्राद्यम् निविषय स्वप्रकाशात्मकम् । द्वितीयंमनोज-न्यत्वेन नित्यंसकर्तृक सकर्मक च यमधिकृत्य "अहघटादिक जानामीत्यादि प्रयोगा भवन्ति । प्रथमंचाधिकृत्य "अरूपमस्पर्शमशद्बमव्यय तथाऽरस नित्यमगन्धवच्च । अनाद्यनन्तम् "सत्यज्ञानम् प्रज्ञानब्रह्म" इत्यादिश्रुतय प्रवर्तन्ते । इत्यादिक प्रश्नरूपेणोपक्षिप्तम् । तन्मत शास्त्रलोकविरुद्ध-मेवेति कृत्वातस्य विशेषरूपेण निराकरणायोपक्रमते **तदेतत् शाङ्करमतमित्यादि** तत्रालौकिकमिति लोकप्रसिद्धप्रत्यक्षादिविरुद्धयतो "घट सन्नित्यादिप्रत्यक्षादिना जगत पारमार्थिकत्वस्य निवे-दनात् । अत्र न जगतो मिथ्यात्वस्य प्रतिपादनात् । ततश्च लोकविरुद्धमिददर्शनम् । तथात्वेदविरुद्ध-मपि, वेदे "स्वर्गकामोयजेत" "स्वराजकामोवाजपेयेनयजेत" इत्यादिक श्रूयते । सच वेदप्रतिपादि-तो यज्ञस्तदैव स्वरूप लभेत यदा परलोकेहलोकयो पारमार्थिकत्व भवेत् । तथा यदि यागस्य स्वरूप द्रव्य देवता च, कर्त्ताकाश्चिज्जीव. पारमार्थिको भवेत् । ब्रह्मव्यतिरिक्तसर्वस्यमिथ्यात्वे

तथाहि, यदेतत् ज्ञानादिपर्यायभूतं संविदादिपदंतत् स्वकीयाश्रयं प्रतिस्वसत्तया यस्य-कस्यचिद्र्थस्य प्रकाशनशीलो ज्ञानादिपर्यायकः सकर्मकः संवेदनकर्तुरात्मनो धर्मो-लोकप्रसिद्धः । इत्थमेव सर्वेषामनुभवो जायते "अहमिदं जानामीति । एतादृशस्य धर्मभूतज्ञानस्यसुखदुःखादिवदेवोत्पत्तिस्थितिनाशाश्च प्रत्यक्षत एवानुभूयते "ज्ञानमुत्पन्नं विनष्टं चेति । स्वापमूर्छादौ तस्य वेदनस्यासत्वादेवनोपलंभो भवति, यदि तत्र स्वापादौ वेदनं भवेत्तदा जागरणेपि तदनुसंधानं भवेत् , परन्तु नैव भवति, तत् स्वापादौ न सद्भावः । एवं सुषुप्तावपि न संवेदनसद्भावः प्रबुद्धस्य तत्काले 'इयन्तकालं न किञ्चिदवेदिषमिति प्रबोधे ज्ञानाभावस्य स्मरणात् ।

समुदाहृतहेतुर्निरालम्बन सन्सर्वथैवाप्रामाणिक त्वमियादि येवमेतन्मतस्य वदविरुद्धत्वमापद्यते । इत्येव लोकवेदस्याननुकूलमिदमिति विशिष्टाद्वैतवादिन कृता मसाक्षात्कारावदन्तीति । [अत्रकृतात्मसाक्षात्कार इति कथनेनाचार्यवचस प्रामाणिकत्वेन श्रद्धातिशयो व्यञ्जित । अविश्वासकारण भ्रमप्रमादकरणापाटवादय । जातेचात्मसाक्षात्कारे एतेषा दोषाणामस्तगमितनया तद्वचन सर्वथा प्रामाणिकमेवेति]

पराभिमत यत् सविद्दर्शन, तत्रसविदद्वैते प्रत्यक्षविरोधदर्शयितुमाह **तथाहि यदेतद ज्ञानादिपर्यायेत्यादि** परागर्थप्रमाया एवफलतया आत्मस्वरूपत्व कथित वार्तिककृता सुरेश्वरेण तत्र प्रत्यक्षविरोध दर्शयति **ज्ञानादिपर्यायभूतमिति** ज्ञानादिपद पर्यायनामकैकार्थबोधक यस्यैतादृश आत्मधर्म [विषय] भूतो विषयप्रकाशक एव सवित्पदवाच्यो भवति, नतु तदतिरिक्त कश्चित्पदार्थस्तादृश इति तस्यज्ञानापरपर्यायस्यान्यविशेषणधर्मतयाऽनित्यत्वेनार्थादुत्पादविनाशशीलस्य प्रमाणफलभूतस्य विषयविषयकज्ञानस्य नित्यात्मस्वरूपत्व कथमपि न सभवति, परस्परविरुद्धप्रकाशतमसोरिव यथा तमोन प्रकाशात्मक तथैव नित्यात्मक न स्यादितिभाव । प्रमाणफलभूतस्य सकर्मस्य साश्रयस्य चानित्यत्वमेव दर्शयति **स्वापमूर्छादावित्यादि**—यदि स्वापेवेदनस्यवर्तमानत्वतदातस्य योग्यत्वादुपलब्धिर्भवेदेव, स्पर्शनालोकवतिघटादिवदेव, परन्तु स्वापादा नोपलभ्यते इत्यतस्तदा स्वापेज्ञानस्याभावनिश्चितोभवतीति । सुषुप्तोत्थितस्य प्रबोधसमयेवेदनाभावस्यैव स्मरण भवति तावता सुषुप्तिकालेवेदनस्यासत्वमेवसिद्ध्यतीत्याशयेनाह-**एवं सुषुप्तावपीत्यादि** एतावन्तकाल सुप्तो न किञ्चिदवगतम्" इति सुप्तोत्थितस्य स्मरण भवति, स्मरण चानुभवपूर्वकमिति सुषुप्तौनासीज्ज्ञानमितिज्ञायते, अन्यथाऽननुभूतज्ञानाभावस्य प्रबोधेऽवबोधो न स्यादिति । न चोक्त ज्ञान प्रबोधकालेजायमानमनुमानात्मकमेव सुषुप्तिकालोज्ञानाभाववान्, सामग्रीविरहात्, अतोतत्कालेज्ञानाभावस्य स्मरणात्मकत्वमत्र नास्तीतिवाच्यम् , तदनुमायकहेत्वाभावात् ।

नचज्ञानाभावानुमापको हेतुर्ज्ञानसामग्र्यभावएव, सुषुप्तिकालोज्ञानाभाववान् ज्ञानसामग्री वैकल्यात् , तस्मात् सुषुप्तिकालेज्ञानाभावानुमितसामग्र्यभावेनानुमित एव, ज्ञानाभाव. प्रबोधेभवति

यावदनुभूतं तत्सर्वमेवस्मर्यतेति न नियमः। अत एव संस्कारविनाशकमरणादिकारणाभावोपि नियमतो जायमानस्मरणं सुषुप्तावनुभवाभावमेव ज्ञापयति। न च संवित्प्रकाशे विद्यमानेपि विषयाभावेन विषयोपश्लिष्टाहंकाराभावात् स्मृतेरनुदय इति वाच्यम् विषयाभावस्य तदग्रहणस्य चार्थान्तरप्रकाशप्रयुक्तकार्यप्रतिबन्धकत्वासंभवात्। संविदित्रितयावभासनियमेपि तत्तदनुभवस्यैव तत्तत्संस्कारद्वारा तदर्थस्मारकत्वात्। न च स्वापेऽहमर्दो विनष्ट इति वक्तव्यम्। प्रत्यभिज्ञया तस्यस्थायित्वसिद्धेः।

नतु तदाऽनुभवजनितस्मरणात्मक इति वाच्य तथा सत्यन्योन्याश्रायप्रसङ्गात्, तस्मात् प्रबोधकालिकज्ञानाभावोऽसुषुप्तिकालिकानुभवजनितस्मरणात्मकमेवनत्वनुमेयम्। अनुमितौज्ञानाभावेन सामग्र्याभावानुमानम् सामग्र्यभावेन च ज्ञानाभावानुमानेऽन्योन्याश्रयस्यापातात्। तत स्मरणात्मकमेव सुषुप्त्यनन्तरप्रबोधकालिक तदितितेनज्ञानाभावस्तदासिद्ध्यतीतिभाव।

ननुस्वप्नकालेपि विद्यते एवानुभवोज्ञानस्य स्वप्रकाशरूपत्वात्। नचैवमनुभूतस्य स्मरणमवश्यमेव भवितव्यमित्याकारकनियमाभावात् अर्थात् सत्यमनुभूत स्मर्यते, परन्तु यावदवस्तु अनुभूत तत्सर्वमेव स्मर्तव्यमिति नियमाभावात्। ततश्च तदननुसन्धान जागरणकाले सभवत्येव "एतावन्त न किञ्चिदवेदिषम्" इत्याकारकप्रबोधकालिक स्मरण तु प्रकाशकत्वविशिष्टज्ञानाभाव विषयकमेव। स्वप्नकाले विद्यमानस्यापि स्वप्रकाशकत्वनास्तीति तत्राह **यावदनुभूतंतत्सर्वमित्यादि'**—यदनुभूयतेतत्सर्वमेव स्मृत भवत्येवेति यद्यपि नियमो न सार्वत्रिकस्तथापि सस्कारविनाशकमरणादीनामभावेपि नियमतोजायमानमस्मरण स्वापे स्मरणाभाव करोत्येवेति। तदेते सस्कारप्रमोषकास्तदुक्तम् "प्रापणान्नरकक्लेशात्प्रसूतिव्यसनादपि। चिरातिवृत्ता प्राग्जन्मभोगा न स्मृतिगोचराः इति। अयमाशय सकलसस्कारविनाशकारणप्रबलदुखहेतोरभावेपि नियमतोजायमानस्मरण सविद स्वापादौ, अप्रकाशत्वमेव साधयति। चिरपूर्वजाताअपिभोगा प्रापण[मरण]नरकक्लेशप्रसवरोगादिकारणवलेनऽनुभूताइव न स्मृताभवन्तीति। स्वसिद्धान्ते तु विषयप्रकाशसमये एव धर्मभूतज्ञानस्य प्रकाशत्वस्याकारेणस्वापादिकालेविद्यमानस्यापिधर्मभूतज्ञानस्य प्रकाशाभावो न क्षतिकारको भवतीति ज्ञातव्यम्।

अत्रपुन सङ्कते **न च संवित्प्रकाशे विद्यमानेपीत्यादि** स्वापादिकाले विषयाभावेन **विषयसम्बन्धस्या**भावात्, विषयोपश्लिष्टविषयसवन्धरहिताहकारपदवाच्यज्ञातुरभावात्, विषयसम्बन्ध सविदएव सस्कारजनकत्व नतुविषयसम्बन्धरहितानुभवस्य सस्कारप्रयोजकत्वमिति स्वापकालेऽनुभवस्य तदाधारज्ञातुश्चाभावात्, स्वप्रकाशस्यापि चैतन्यमात्रज्ञानस्य न सस्कारजनकत्वमिति सस्काराभावात्, प्रबोधकाले, नानुसधानप्रसङ्ग इति प्रश्नकतुरभिप्राय.।

अतएवैतावन्तं कालमहमस्वाप्समिति जागरणे स्मरणं ममुपलभ्यते । न कुत्रचिदपि कर्तृ-कर्मविरहितं ज्ञानं संभवति, तथा कुत्राप्यनुपलब्धेः । ज्ञानसंविदादिशब्दाः सम्ब-

उत्तरयति **विषयाभावस्येत्यादि** अर्थान्तराभावस्यार्थान्तराभावग्रहणस्यार्थान्तरप्रकाश-प्रयोज्यकार्यप्रतिबन्धकत्वासम्भवात् । समानधर्मिणि समानप्रतियोगिकार्थाभावस्यैवतद्धर्मिणितद्वत्ता-ज्ञानप्रतिबन्धकत्वनियमात् । अतएव भूतलेघटोऽस्तीति ज्ञानस्य भूतलाधिकरणकघटाभाववत्ता-निश्चयस्यैव प्रतिबन्धकत्व नतु घटवत्ताज्ञानस्य पटाभाववत्ता निश्चयोजलाधिकरणक भूतलाधिकरणको वा प्रतिबन्धको भवति । समानधर्मिण्येव प्रतियोगितदभावयोर्बाध्यबाधकत्वस्य विस्तरेण साधितत्वा-दिति । **संविदि त्रितयावभासनियमेपीति** मीमासकमते प्रत्येकस्मिन् ज्ञानेज्ञातृविषयकज्ञानाना नियमत प्रकाशनात्, स्वापेपिज्ञानावभासोभवत्येवेति न शङ्कनीयम्, यतोज्ञानज्ञेयज्ञातृरूपवस्तुत्रि-कस्यावभासनियमेऽपि न ज्ञातृविषयकज्ञातार विषय स्मारयति नवा विषयविषयक स्वविषयातिरिक्त स्मारयति । अर्थात् त्रितयमानेपि तत्तत्सस्कार प्रतितत्तदनुभवस्यैवकारणत्वमिति । एकाग्रतया सविदनुभवे स्वापादो तत सस्कारस्योत्पादनेऽहमर्थविलयघटपटाद्यर्थानुभवयो प्रतिबन्धकत्वा-भावात्, सवित्मात्रप्रत्यवमर्शो भवन्मतेदुर्वार एव जागरणेस्यादेवेतिभाव ।

नचैव स्वापे ज्ञातुर्विनाशेन तत्रस्मर्ता क स्यात् ! इति शङ्कानिराकर्तुमाह **नच स्वापेऽहमर्थोविनष्टः** इत्यादि नहि स्वापादौविज्ञातुर्विलय यत पूर्वदिनेकृतकार्यस्य तदपरदिनेऽनुसन्धान दर्शनेन, ज्ञातु स्थायित्वमिति पूर्वापरदिनेऽवस्थितस्य कर्तुमध्येस्वापकाले विनाशासभवात । अर्थात प्रत्यभिज्ञया तस्य स्थायित्वसिद्धावकस्मान्मध्येतद्विनाशोनोपपद्यते । स्वापकाल आत्मवान् काल-त्वात् प्रवोधकालवदित्यनुमानेनापितस्यज्ञातु स्थायित्वमेव भवति नतु तद्विनाश शङ्कनीय इति ।

एव यथास्वापादिकालेऽहमर्थज्ञातु सद्भावस्तथैवतत्कालेतस्यज्ञातुर्भानमपि भवत्येवेति तद्द-र्शयति **अतएवैतावन्तं कालमित्यादि** सुप्तोत्थितपुरुषस्यस्वापापगमे प्रवोधकालेऽहमेतावन्त, कालमस्वाप्समित्याकारकस्मरणदर्शनेन नतद्भानस्य सिद्धत्वात् । अर्थात् तदेतत्प्रतिसन्धान स्वापकालिक स्वापकालिकात्मप्रतिभासस्य समर्थकभवतीति । नचेदमनुसन्धानमनुमितस्वापतत्सु-खादिसत्ताविषयकमेव, एव चेदमनुसन्धान स्वापकालेऽहमर्थस्यात्मन प्रकाशस्योपपादक न भवतीति-वाच्यम् सुषुप्त्यशे व्याप्तिज्ञानजन्यत्वेप्यहमर्थेऽनुसन्धानरूपत्वस्यस्वभावसिद्धस्य निराकरणासभवात, "प्रात काले चत्वरे नाहमासमित्यादिवत् । प्रात कालानुभूतात्मस्वरूपत्वादस्यात्मस्वरूपे प्रतिसन्धान-रूपत्व यथा समुपपद्यते तथैव प्रकृते सुषुप्तावनुभूतात्मस्वरूपपरामर्शत्वादात्माऽशेनुसन्धानरूपत्वे न किमपिबाधकमिति । नच नित्यात्मप्रकाशस्य सस्कारोत्पादने प्रमाणाभावेन कथमर्थे आत्मनि प्रतिसन्धानरूपत्वमस्येतिवाच्यम्, स्वजन्यस्वसस्कारवत्वेनानुभवात्मकज्ञानस्य प्रतिसन्धाने एककारण त्वनिर्वाहाय नित्यानुभवस्यापि सस्कारजनकत्वस्य स्वीकारेणनित्यानुभवेनापि सस्कारोत्पाददिति ।

न्धिशब्दत्वात्सम्बन्ध्यान्तरसापेक्षा इति शाब्दिकाः। जानातीत्यादौ ज्ञा धातुः सकर्मकः सकर्तृकश्चेति नास्य प्रयोगः कुत्रापि कर्तृकर्मरहितस्य भवतीति।

अथ सविषयकज्ञानस्यघटादिज्ञानवत् नित्यत्व न भवतु, शुद्धस्य सर्वोपाधिविरहितज्ञानस्य नित्यत्वेकाक्षतिरिति चेत्तत्राह **नकुत्रचिदपिकर्तृकर्मविरहितमि**त्यादि, स्वप्रकाशात्मकज्ञानानुभवोयदा भवति तदा विषयाश्रयोपश्लिष्ट एव भवतीति लोकानामनुभव। इदमहजानामीत्यादौ कर्तृकर्म सहितस्यैवानुभवात, नतुनिर्विषयक निराश्रयवेति। केवलज्ञानमात्रस्यानुभवस्तुनकस्यापि कुत्रचिदपि प्रसिद्ध इति।

ननु सर्वोपिवेदान्ती स्वस्वसिद्धान्ते ज्ञानस्वरूपस्यात्मनोनिर्विषयत्वमभ्युपगच्छति तत्कथ सगतमिति चेत्तत्रोच्यते, सवित्ज्ञानानुभूत्यादीना सविषयकज्ञाने एव प्रयोगस्यलोके दर्शनेन, तत्तदर्थस्यनिर्विषयत्वादिनिषेव कथचिदुपपद्यते। परन्तु धर्मभूतज्ञानस्य तु विषयप्रकाशकस्य न निराश्रयत्वम्, नित्यात्मस्वरूपे आश्रितत्वात् धर्मस्य धर्मिणमन्तरेणावस्थानासभवात्। आत्मस्वरूपज्ञानस्यापिप्रत्यक्त्वानुकूलत्वैकत्वप्रकारत स्वरूपप्रकाशकत्वस्यैवाभिमतत्वेन तस्यापिनिर्विषयकत्वनिर्धर्मकत्व वा स्वीक्रियते। नच प्रत्यक्त्वादिनापितस्यमानाभावे काक्षतिरितिवाच्यम्, आत्मा एकोऽनेको वा। इत्यादिरूपेण तस्मिन्नेकत्वानेकत्वाहत्वानहत्वादिसशयस्य कस्यचित् कदाचिदप्यदर्शनेन प्रत्यक्त्वादिप्रकारेणधर्मिभूतस्वरूपज्ञानस्यापिभानमवस्यमेष्टव्यमेव। अयमर्थ धर्मभूतज्ञान यदा विषयावभासकस्तदाऽवश्य साश्रय विषयकच भवत्येव, धर्मीभूतज्ञान तु निर्विषयक निराश्रितमपि भवति। स्वरूपभूतमपि ज्ञान दशाविशेषे प्रत्यक्त्वादिप्रकारेणभासमान सविषयक भवत्येव। अहमेकोऽनेकोवेति सशयानुरोधेन प्रत्यक्त्वेनभानभवत्येवेति। अपिच परमप्रेमास्पदत्वात्, सुखत्वप्रकारेणाप्यात्मभान भवत्येव। तदुक्तमभियुक्तै—अयमात्मापरानन्द परप्रेमास्पदयत। मानभूव नभूयासमितिप्रेमात्मनीक्ष्यते" इति। धर्मभूतज्ञानस्य सविषयत्व सविद्ज्ञानादिशद्वानांसवन्धिसाकाक्षत्व प्रसिद्ध्यापि सपादयितुमाह"**ज्ञानसंविदादिशद्वाः** इत्यादि, तत्र सवित् ज्ञानानुभूत्यादि शद्वा सबन्धिशब्दा स्वेतरसवन्धवतोबोधका" नियतसवन्ध्याकाक्षाशालित्वस्यैवतथात्वात्। यथाज्ञान जातमित्युक्ते कस्य कर्तुरिदज्ञान किं विषयक वा ज्ञानमित्येव कर्तुर्विषयस्य च नियमतोपेक्षादर्शनात्। यथा पुत्र इति कथने कस्य पुत्र इत्येवपितुराकाक्षा भवति, पितावेति कथने, कस्यपिता, इत्येवमाकाक्षा भवति तत पितृपुत्रादिशद्वा साकाक्षास्तथैवज्ञानादिपदमपि साकाक्षमेव।

जानातीत्यादौ ज्ञाधात्वर्थो ज्ञान कर्तृकर्मविषयसाकाक्षमेवेति। नचायमेकान्तो नियमोयत् ज्ञानप्रयोगे कर्तु कर्मणश्चावश्यमेवापेक्षा "ज्ञानस्वरूपमित्यादि प्रयोगे कर्मकर्तृरहितकेवलज्ञानस्यैव प्रयोगात्। यथा भेदसादृश्ययोरनुयोगिप्रतियोगिसापेक्षयोरपि, भिन्नसदृशमित्यादौ प्रतियोग्यावच-

यद्यपि स्वतः सिद्धस्यानुभवस्य विद्यमानत्वे, तादृशानुभवविरोधादेव तत्काले

पेक्षयोरपि प्रयोगात । अर्थात् , भेदइति सादृश्यमितिकथनेकस्यभेद कुत्रेति जिज्ञासाया प्रतियोगिनो घटादेरनुयोगिनोभूतलादे, सदृशमित्यत्र चन्द्रमुखयो रुपस्थितिर्भवतीति तदवशाद्बोधो भवतीति वाच्यम् , भिन्नत्वात , अथात ज्ञानस्वरूपमित्यत्रज्ञानपदम स्वयप्रकाशधर्मिभूतज्ञानस्यवाचकम , जानातीत्यादौज्ञानपद धर्मभूतज्ञानवाचकम ' ज्ञानस्वरूपम अत्रत्य धमिवाचकज्ञानपस्यस्व प्रकाशत्वप्रवृत्ति निमित्तकस्य सवन्विपदाद्धर्मभूतज्ञानवाचकात विभिन्नत्वात । यथागोत्वजा धर्वा छिन्नचतुष्पादादिमतो गोपदात किरणवाचकगोपदातभेदो भवति । तत्र येन गोपदेनकिरणस्यबोधो न गोपदन गोत्वावच्छिन्नव्यक्तेर्बोधो नवा गोत्वावच्छिन्नबोधकगोपदन किरणस्यबोधो भवति । ततश्च न कापिदोषो भवतीति । मन्मतेविशिष्टाद्वैतमते, ज्ञानसंविदादि पद सवन्धिशब्दत्वप्रसिद्धिस्तु धर्मभूतज्ञानसंविदादिपदलक्षीकृत्य भवतीति । ततश्च, स्वरूपज्ञान धर्मज्ञानयार्भेदोवक्तुशक्य इति विविच्य व्यवहारो भवति ।

मतान्तरे शाङ्करमतेतु स्वरूपस्य धर्मिणो ज्ञानस्य तथा धर्मभूतविषयविषयकज्ञानस्य च परस्परभेदाभावात , एकस्यैवात्मरूपस्यनिर्विशेषत्वस्वीकारेण सवन्धिशब्दत्वनोपपद्यते संविज्ञानादिशब्दस्यतयोर्भेदस्याभावात् । निर्विशेषज्ञानमात्रस्य तु प्रवृत्तिनिमित्ताऽयोगेनैव धर्मिवाचिज्ञानवाच्यत्वमपि न सभवतीति विशेषोऽन्यत्रावधार्य । वस्तुतस्तु-मतान्तरेपि स्वरूपज्ञानान्त करणवृत्तिज्ञानभेदेन ज्ञानस्य द्वैवि यमुक्तमेव । तत्रस्वरूपज्ञानमनिर्वचनीयानादिविद्यावलेन समस्तप्रपञ्चस्य विवर्वतोपादानम्, वृत्तिज्ञानतु लोकव्यवहारोपपादक भवति । अक्षमाभवन केय साधकत्व प्रकल्पने—" इत्यादि, आश्रयत्वविषयत्वभागिनी निर्विभागचितिरेव केवला" इत्यादिना निर्विशेषचैतन्यस्यकारणत्वमुक्त तदप्याविद्यकमेव नतु पारमार्थिकम् । वाचस्पति, ब्रह्मविषयक जीवाश्रितमज्ञानमेवोपादानमित्यादिना ज्ञानयोर्भेद । "चैतन्यत्रिविधम् अन्त करणतद्वृत्तिप्रमाणविषयावच्छिन्नभेदादिति धर्मराजाध्वरिणोक्ते । एवञ्चतत्रापि ज्ञानद्वय सिद्धमेवान्यथा सर्वव्यवहारोपपादना सभवादिति कृत विस्तरेण ।

अतोगतप्रकरणे प्रमाणफलज्ञानस्यैवात्मत्व कथित तदनुपपत्त्यानिराकृतम् , यत प्रमाणफलस्य प्रमाणजन्यत्वेनागन्तुकतयाऽत्म धर्मत्वाच्च नित्यात्मरूपत्व न भवतीत्यादिना । तत्रज्ञानस्यप्राग भवाभावात् , ज्ञानस्य नित्यत्व साधित परै । यतो यस्यप्रागभावघटितसामग्र्योत्पत्ति स न नित्योऽपित्वनित्य एव यथा घटादिमात्र यस्य च प्रागभावो न भवति तस्य द्विधागतिर्भवति । सर्वदा सन्नेवार्थात नित्य एव, यथाऽकाशादि । अथवा नियमतोऽसन्नेव भवति, यथा गगनकुसुमकूर्मरोमादि । प्रकृते ज्ञानस्य स्वप्रकाशत्वेनतदीयप्रागभावोन भवतीति पूर्व कथित तन्निराकरणायाह **यद्यपि**

तदीय प्रागभावस्यानवस्थानात् तादृशप्रागभावेनानुभवस्य न जन्यत्वसिद्धिरिति। तदप्ययुक्तमेव, अतीतानागतयोरसंवेद्यत्व प्रसंगेन ज्ञानेन ज्ञानसमानकालिकार्थस्यैव सिद्धिरिति नियमाभावात् । नच संवित्प्रागभावस्य सिद्धिः संवित्समकालस्यैवेति वाच्यम् तथा क्वचिदप्यदर्शनात्, तथा सति संवित् सिद्धेर्नतत्प्रागभावासिद्धिः

इत्यादि ज्ञानस्य परोक्तप्रागभावासिद्धिं स्वत परतोवेत्यादियुक्ति प्रदर्शयितुमाह, **स्वतः सिद्धस्येत्यादि** स्वत सिद्धस्यानुभूतिसंविदादि पर्यायज्ञानस्य सत्ताकालेन तदीयप्रागभाव-प्रतियोगिनो सहानवस्थानलक्षणविरोधादित्यर्थ विरोधोद्विविध सहानवस्थानप्रतियोग्यनुयोगिभावा-त्मक । तत्रजलाग्न्योर्योविरोध सप्रथम तदुभययोरेककाले समानदेशेचादर्शनात् । द्वितीयस्तु, अत्यन्ताभावप्रतियोगिन । अत्रघटादिर्भाव प्रतियोगी, अभावश्चानुयोगी, अभावेप्रतियोगिता सबन्धेन प्रतियोगिनस्तत्राभावेवर्तमानत्वात । अत प्रतियोगिनमपसार्यैवानुयोगिनोऽवस्थान भवति नतूभयो पार्थक्येनोपलब्धिरिति । प्रकृते आचार्येण प्रकाशतमसोरिव सहानवस्थानलक्षण एव विरोधोदर्शित । तथा च प्रागभावप्रतियोगिनो सहानवस्थानान्न प्रागभावेन ज्ञानस्यजन्यत्वम् ।

एतन्मत दूषयति **तदप्ययुक्तमेवेति** । कुत पूर्वपक्षस्य तत्राह **अतीतानागतयोरित्यादि** ज्ञानसामन्य स्वसमानकालिकमर्थमेवगृह्णातीति न नियम । अन्यथा "रात्राववभूत्वर्षणम्' इत्यग्रिमदिवसे यदतीतवर्षणस्यज्ञानम्, तत्, तथा, "भविष्यति वृष्टिर्मेघोन्नते" रित्यनुमानेनानागत वर्षणस्य प्रज्ञापक प्रमाण स्वार्थस्यातीतानागतस्य प्रज्ञापक न स्यात्, तत्र विषयविषयिणो विभिन्नकालिकत्वात् । **न च संवित्प्रागभावस्येति** । ननु भवतु, अन्यत्र यथातथा, परन्तु सवित्प्रागभावस्य स्वसमानकालिकज्ञानग्राह्यमेवेति नियम इतिशङ्काशय । उत्तरयति **तथा क्वचिदप्यदर्शनादि**ति तथा सतिप्रागभावज्ञानसिद्धेर्न प्रागभावस्यासिद्धि किन्तु सिद्धिरेव । यद्यप्यय सिद्धान्तमते समीचीन एव, विद्यमानयत्किञ्चित् ज्ञानप्रागभावस्यवर्तमानेनैवानुज्ञानान्तरेणानुमानादिज्ञानेन ग्रहण सभवात् । अथात विद्यमान एत किञ्चित ज्ञानप्रागभावस्य तज्ज्ञानेनाग्रहणेपिज्ञानान्तरेण तद्ग्रहण सभवात् । अहमिदानीं चक्षुरिन्द्रियजनितज्ञानस्याभाववान् [नि] उन्मीलितचक्षुष्ट्वात् । एतादृशानुमानसभवादिति । ननु भवतु सिद्धान्ते निर्वाह परमतेतु कागतिस्तत्प्रागभावस्य तत्समकालिकत्वाभावात् । एतन्मते एकज्ञान ज्ञानान्तराग्राह्य मन्यते, तज्ज्ञानप्रागभावस्तेनैव समानकालिकेन गृहीत स्यात् भवन्नियमानुसारेण, परन्तु तन्न सभवति, अयोग्यत्वात् । नचानेनैवकारणेन ज्ञानस्य प्रागभावो न भवतीत्युच्येत, ऐन्द्रियकज्ञानस्वभाव स्वसमकालिकपदार्थप्रकाशकत्वमर्थात् ज्ञानसमानकालिकत्व प्रत्यक्षज्ञाने एव नियतमिति, नतुज्ञानमात्र प्रमाणमात्रंवा स्वसमकालिकपदार्थकमिति नियम, विभिन्नकालिकानुमानादिनाऽतीतानागतपदार्थप्रकाशकत्वस्यानुमानादो सर्वसमतत्वात् ।

संवित्प्रागभावः संवित्समानकालिक इति तु प्रतियोगिप्रागभावयो विरोधादनुपपन्न एव । इन्द्रियजनितज्ञानसमानकालिकत्वमेव स्वसमानकालिकविषयप्रकाशकत्वं नतु ज्ञानस्य सर्वस्य तथात्वं प्रमाणमात्रस्यवेति ।

अपि च यदुक्तं "मानं स्वयं प्रकाशत्वात् स्वतः सच्चेत्सदास्त्यतः । तन्मेयं च सदास्त्येवमानंमेययुगेवहीति" तदपि निराकृतं भवति । यतः प्रमाणस्य स्वसत्ताकाले एव प्रमेय सहयोगः मानयोगः किन्तु देशकालादि संवद्धंमेयमेव भासते तदेव सत्यमिति।

एवञ्चप्रतियोगिपूर्वकालिकस्वप्रागभावस्य तेनैववर्त्तमानकालिकज्ञानेन ग्रहणे, न काचित्क्षतिरिति । प्रमाणस्य प्रमेयेन घटादिनाऽविनाभावेन प्रमाणस्य नित्यत्वे, प्रमाणाज्ञानस्य स्वय प्रकाशतया नित्यत्वात्तदविनाऽभूत प्रमेयमपि नित्यमेवेति यस्यमत तन्निराकरणायाह **"अपिचयदुक्तं** मान स्वय प्रकाशत्वादिकारिकाद्वयम् ।

"मान स्वयप्रकाशत्वात् स्वत सच्चेत् सदास्त्यत ।
तन्मेय च सदाऽस्त्येवमानमेययुगे व हि ॥"

अस्यार्थ =मान प्रमाणम्, अत्रमानपद न करणव्युत्पत्त्यासिद्धम्, किन्तु मानमितिज्ञानम्, स्वय प्रकाशत्वात्, अनन्याधीनप्रकाशकत्वात्, स्वतएव सत् अनन्याधीन सत्ता कत्वात् सदासर्वकालेऽस्त्येवार्थात् नित्यमेवनत्वनित्यम् । तदेवानित्ययत्, उत्पत्ते पूर्वविनाशानन्तर नभवतिज्ञानन्तु त्रिकालवृत्तित्वात्, अनन्यसत्ताकत्वात् नित्यमेव । एव चार्थात्, अग्रे वक्ष्माणकारणात्, तादृशज्ञानस्य यत् प्रमेय परिच्छेद्य घटादिवस्तु तदपि सदात्रिकालेपिवर्त्तते एव नित्यमेवेति । हि शब्दोऽत्रहेत्वर्थक, हि यस्मात् कारणात्, मान प्रमाणज्ञानमेययुगेव, प्रमेयाऽविनाभूतत्वा प्रमाणस्य, ततश्च प्रमाणस्यनित्यत्व यदातन्नियतस्य प्रमेयस्यापि नित्यत्वमेवस्यात्, जलपरमाणुगतरूपरसादिवदिति । एतन्मत निराकरोति **तदपि निराकृतं भवतीति** तदेवोपपादयति **यतः प्रमाणस्य स्वसत्ताकालेएवेत्यादि** । अयमाशय सत्यम्, प्रमाणज्ञानमिति स्वय प्रकाशरूप तथापि सत्यम्, तथापितस्य प्रमाणत एवोत्पत्तौजन्यत्वमेव नतु नित्यत्वम, नहि जन्यत्वसातिरिक्त नित्य भवति, इति कुत्रचिदपिदृष्टचरम् । ज्ञानप्रागभावस्यापि ज्ञानस्वत परतोऽनुमानादिनापि सभवत्येव । ततश्चमितेर्नित्यत्व कल्पयित्वा तदीयप्रमेयस्यापि नित्यत्वकथनमुधैवेति ।

प्रमाणज्ञानस्य समानकालिकपदार्थग्राहकत्वमितिनियमाभावादितिनिराकरण ननु यदि प्रमाण ज्ञानमसदर्थस्यापि ग्राहकमथादविद्यमानस्याप्यर्थस्य ग्राहक तदाप्रमाणज्ञानस्यार्थेन सहविनाभाव स्यात्, नहि सदसतोरविनाभाव क्वचिद्दृष्ट श्रुतोवा समुपपद्यतेवा तत्राह **देशकालादि संबद्धमित्यादि,** अयमाशय यदायस्मिन्कालेज्ञान तस्मिन् तस्मिन्नेवकाले प्रमेयमिति न व्याप्ति

अतएव स्मरणं न वाह्य विषयार्थकं, विषयापगमेपि स्मरणदर्शनात् ।

अनागतादिस्थले व्यभिचारात् । तत्र प्रमेयमतीतमनागत वा भवति, ज्ञानतु तत्कालिकमिति काल-भेदात् । किन्तु यद्देशकालसवन्धितया यादृशाकारवत्वेन च य पदार्थं प्रतिभासते यादृशज्ञाने तादृशपदार्थस्यतत्प्रकाराभावपर्यवसितमेव प्रमेयप्रतियोगित्वम । अतद्रूपानवगाहित्व प्रमेयेभवति, तद्वन्निष्ठविशेष्यविशेष्यतानिरूपिततन्निष्ठप्रकारताशालित्वमेव तदविनाभूतत्वमिति । एव स्मृतेरपिना प्रामाण्यम्, अतीतानागतमपि परागर्थमतीतानागतत्वेन बोधयन्त्या स्मृतेर्नानिर्विषयत्वमप्रामाणिक-त्वम् । प्रमेयव्यभिचारो भवति, तत्रापितद्वतितत्प्रकारावगाहित्वात्, अतद्वतितत्प्रकारकत्वस्यैवा यथार्थत्वात्स्मृतिज्ञानेतु तद्वतितत्प्रकारकत्वस्यैव सत्वादिति ।

यतोऽव्यधिकरणकालादा विद्यमानमप्यतीतानागतविषयकंज्ञान ना प्रमाण नवा प्रमेयव्यभि-चारि, तथैव स्मरणात्मकज्ञानमपिनाप्रमाण नवाऽर्थव्यभिचारिभवति विषयस्य विनाशेपि तादृशा-र्थविपयकस्मरणस्य दर्शनादित्येतद्दर्शयति **अतएव स्मरणं न बाह्यर्थविषकमित्यादि,** स्मरणा-त्मक ज्ञान न प्रमारूप, प्रमाणाजन्यत्वात् । "त्रिधा प्रमाणमध्यक्षानुमानशब्दभेदत" इति जगद्-गुरु श्रीहर्याचार्योक्ते प्रमाणच प्रत्यक्षानुमानशद्बभेदेन त्रिविधमेव तत्रेन्द्रिय सनिकर्षेण न स्मरणम्, अथाभावात्, नानुमानमव्यभिचरितलिङ्गाभावात्, नवाशब्द "स्वर्गकामोयजेत" इतिवत् प्रकृते तदभावात्, इत्येव स्मृतिजनकप्रमाणस्याभावेन सस्कारमात्रजनिततया न प्रमाण स्मरणम् । सस्कारस्यापिप्रमाजनकत्वेन प्रमाणोपगमे प्रमाणविभागस्य त्रैविध्यरूपेण कथन मुने व्याहतस्यादत प्रमाणाजनितत्वेन स्मृतेरप्रमारूपता येऽनुमन्यन्ततन्मतमपि प्रतिक्षिप्तम् **अतएव स्मरणंनेत्यादिना** न च सत्प्रमाणजनितमेवज्ञाने प्रमेति प्रमालक्षणम्, येनपरिगणितप्रत्यक्षादिप्रमाणाऽजन्यस्य स्मरणस्याप्रमात्वमापतेत्, किन्तु तद्वतितत्प्रकारकत्वमवाधितार्थविषयकत्वमेवज्ञानस्य प्रमात्वम् ।

वस्तुतो वन्हिमतिपर्वते, कश्चिद्वाष्पमेव धूमोयमितिज्ञात्वा, तेन धूमाध्यस्तवाष्पेन पर्वतो वन्हिमान् धूमादित्येवमनुमितिं करोति, तत्रकारणस्थ व्यभिचारित्वेपि ततोजायमानमनुमित्यात्मक ज्ञानप्रमैव, विषयस्य वन्हेस्तत्रावाधितत्वात् । तादृशज्ञानस्यावास्तविकत्वेऽनुमानानन्तर प्रवृत्तस्य-वन्ह्यर्थिनोविफलैवप्रवृत्ति स्यात्, न च तथा भवति, तादृशस्थले सवादिन्या एव प्रवृत्तेरूपलभात् । अर्थात् धूमाध्यस्तवाप्पलिङ्गकानुमित्यनन्तर प्रवर्तमानोजनस्तत्र वन्हिमवाप्यइयमे प्रवृत्ति सफलावन्हे लाभादित्येवजानाति कृत्यकृत्यश्चापि भवति । तदत्रयदि प्रमाणजनितस्यैवज्ञानस्यप्रमात्व भवेत्तदोदा हृतस्थलेऽनुमित्यात्मकज्ञानमप्रमाणमेवेति तत्रवह्नेरुपलभो न भवेत्, किन्तूपलभ्यते एव तस्माद्यथाऽ-नुमानादिस्थलेऽर्थस्यावाधितत्वेन ज्ञानस्य प्रमात्व तथैवाप्राणभूतेनापि सस्कारेण जायमानस्मरणस्थले ज्ञानस्यावाधितत्वेन, तद्वतितत्प्रकारकत्वेन वा प्रमारूपत्वमेवेति नतस्या स्मृते. प्रमाणान्तरेणापह्नत

ननु संविदः प्रागभावस्याविद्यमानतया प्रत्यक्षप्रमाणस्याभावेन न प्रत्यक्षप्रमाणेनतत्सिद्धिः "संवद्धं वर्तमानं च गृह्यते चक्षुरादिनेत्यादि" नियमात्। नवाऽनुमान प्रमाणेन संवित्प्रागभावस्यासिद्धि र्लिङ्गाभावात्। ततः प्रमाणान्तरेण न संवित्प्रागभावसिद्धिरिति संविदो नित्यत्वमेव स्वतः सिद्धत्वात्।

स्वतः सिद्धत्वात् कारणत्वमेव प्रागभावाद्यसिद्धेरितिवदनप्रमाणाभावस्य तत्कारणतया कथनान् हेत्वन्तरदोषस्य प्रसङ्गात्। नच प्रमाणाभावः स्वापादौ प्रमाणान्तराभावस्य योग्यानुपलब्धिवलेन प्रसाधनात्।

विषयकत्वम्। न च तदा संस्कारस्यापि प्रमाजनकत्वात् संस्कारोपि प्रमाणस्यात्। न चेष्टापत्ति। प्रमाणविभाजकसूत्रविरोधात्, इतिवाच्यम्, नहि कस्यचिद् ग्रन्थकृतोविपरीतलेखन युक्तिवलात्वस्तु सिद्धावाधकमिति गदाधरनचनात्। विस्तरस्त्वन्यत्रद्रष्टव्य।

ज्ञानस्य प्रागभाव प्रत्यक्षेण गृहीतो न सम्भवति, यतोयत्वर्तमानमिन्द्रियसंवद्ध तादृश वस्तुन एव प्रत्यक्षयोग्यत्वेन प्रत्यक्षप्रमाणगम्यत्वनियमात्। अन्यथाऽवर्तमानस्यापि घटाद प्रत्यक्षत्वप्रसङ्गादिति कारणाभावादवज्ञानप्रागभावासिद्धि। नवाऽनुमानप्रमाणेनतत्सिद्धिरव्यभिचरितहेतोरभावादितिज्ञानप्रागभावासिद्ध स्वत सिद्धत्वादेवज्ञानस्य नित्यत्वमित्याशङ्कानिवारयितु ग्रन्थ। **ननु संविद्** इत्यादि। तत्र ननु इत्यादि शङ्काग्रन्थ **स्वतः सिद्धत्वादि**त्यादि परिहार ग्रन्थ।

स्वत सिद्धत्वात ज्ञानस्य प्रागभावो न भवतीत्यथात ज्ञानस्यनित्यत्वमित्यत्र प्रमाणाभावा हेतुरिति कथने, हेत्वन्तरदोषोजायतेऽर्थात् प्रमाणाभावोप्यसिद्ध एवेति। तत्र प्रमाणाभावस्य सिद्धिर्नवक्तव्य तत्रहेतुमाह **स्वापादावि**त्यादि अर्थात स्वापपदमूर्छादा, योग्यानुपलम्भरूपएवहेतुर्विद्यते एवेति। अत्रायमाशय अप्रकाशेपि ज्ञानस्य स्वापादिकालेऽह न जानामीति ज्ञानाभावप्रत्यक्ष स्वापादिकाले न सम्भवति। स्वापस्यैव व्याघातात। अथात तात्कालिकोज्ञानाभावोज्ञानसामान्याभावरूप एव। तथापि स्वयप्रकाशस्वभावकज्ञानस्याप्रकाशात्स्वापकालेऽभाव सिद्ध। तत्प्रतीतिस्तु अनुमानसिद्धाजागरणकाले एव स्मरणाभावनियमानुमितेन स्वापकालिकज्ञानाननुभवहेतुकेन योग्यानुपलब्धिलक्षणेन। इदमेवानुमान ज्ञानत्वसामान्येन स्वापकाले स्वस्याप्यभावमपि विषयीकरोत्येवेति सिद्ध्यत्येव स्वकीय प्रागभावग्रह स्वेनैव भवतीति प्रागभावाग्रहात् संविदो नित्यत्व कथन मुधैवेति।

प्रमाणफलरूपस्य ज्ञानस्यात्मधर्मत्वात् प्रमाणजन्यत्वाच्च, ज्ञानस्यानित्यत्व प्रसाध्य

किञ्च प्रत्यक्षज्ञानंस्वसत्ताकालेस्ववीषयस्य यत्सत्तांज्ञापयति तत्कालवीशेषावच्छि-न्नामेव वीषयसत्तांज्ञपयति नतु वीषयस्यसार्वकालीकी सत्तासाधयति अहमीदानीमेरा-स्मिनान्यदेति प्रतीत्यादिप्रतीतेःकालविशेषावच्छिन्नैव कादाचित्की। अन्यथा सर्वदाप्रका

तस्य ज्ञानस्य प्रकारान्तरणापितथात्वमनित्यत्वे सावयितुमुपक्रमते **किञ्च प्रत्यक्षज्ञानम्** इत्यादि। अयमाशय सवद्धार्थप्रकाशकत्वमेव ज्ञानस्य अर्थमन्तरेण तत्स्वरूपस्यैवासभवात्। यदा ज्ञान तदाऽवश्यमेव तस्यविपयोऽभविता चेति तदुभय विषयीक्रियमाणैव सवित् चकास्ति इति नियम। परन्तु तथापि ज्ञानस्य कदाचित्की एव मत्ता विषयस्य च नतु सार्वकालिकी ज्ञानादे सत्ताऽपितु कालविशेपनियतैवान्यथाज्ञानवत तदीयविपयस्यापि सर्वदाप्रकाशनात्, ज्ञानवत्तदीयविषयोपि प्रकाशमानो नित्य एव स्यात। नतु विपयस्य कदाचिदपितथात्व सभवति, कारणजन्यस्य तथात्वसाधनासभवात। एवच प्रत्यक्ष ज्ञानस्य कदाचित्कतयाऽनित्यत्वमेव नतु एकान्तनित्य-मिति प्रतिपादयति–**प्रत्यक्षज्ञानं स्वसत्ताकाले** इत्यादि कालविशेपावच्छिन्नकदाचित्कतया प्रत्यक्षप्रकाशस्य नियम एवेति। प्रमाणफलीभूतज्ञानस्यैव ज्ञानस्यान्यमते आत्मत्व स्वप्रकाशत्वयो स्वीकारेण तन्मते एव रूपेण प्रमिते प्रकाश स्यात्।

अन्यथेति प्रत्यक्षप्रमिते स्वसत्तासमानकालिकघटादिविपयप्रकाशकत्वनियमेन ज्ञान-स्य प्रमाणजनितस्यापि नित्यत्वे, तादृशज्ञानविषयीभूतघटादेरपि नित्यत्वमापतेदिति परन्तु यावत्पर्यन्तघटादिप्रत्यक्षविषयो भवति तावत्कालनाध्यक्षविपयो भवति, किन्तु विद्यमानोपि कदाचिदेवाध्यक्षविपयो भवति। तथा च घटादिविषयस्ययत् कदाचित्कत्व तन्न विषयस्य विरहप्रयुक्त, किन्तु स्वस्य कदाचित्कप्रयुक्तमेव। एवञ्चेदृशोऽत्रानुमानाकार प्रत्यक्षज्ञान स्वविषयकालाव्यापकम् समानकालिकार्थभासकत्वे सति यावदर्थसत्तदप्रकाशकत्वादिति।

यथा प्रत्यक्षज्ञानस्य युक्त्याऽनित्यत्व साधित तथैवानुमानादिज्ञानादीनामप्यनित्यत्वं दर्शयति **एवमनुमानादिज्ञानानामपी**त्यादि यथा प्रत्यक्षज्ञानस्य कदाचित्कत्वादनित्यत्व तथैवानुमानादिज्ञानानामपीत्यर्थ। यथा प्रत्यक्षज्ञानकादाचित्कतयैव प्रकाशते नतुयावद्विषयसत्व तथैवात्रापि-इति। कथमित्थमितिचेत् तच्छृणु ? लिङ्गपरामर्शसापेक्षस्यानुमिते पदज्ञानसापेक्षस्य शाब्दस्य, अहमिदानीमनुमिनोमि शाब्दयामिचेत्यादिप्रतीतयश्च कादाचित्कतामेवप्रज्ञापयन्ति-तस्मात् कारणकालपेक्षाणामनुमानादीनामनित्यत्वमेवेति। समानकालिकार्थग्राहकत्वनियमविरहितानामप्युप-मानादिज्ञानाना प्रतीत यत् कदाचित्कत्व तन्नविषयसत्वविरहनिमित्तक किन्तु स्वरूपनिमित्तक-मेवेत्यभिप्राय। एव प्रकारेण प्रत्यक्षादिज्ञानानानामग्राहिकतयाऽनित्य प्रदर्शितमिति। ननु भवतु सविपयकप्रत्यक्षादिज्ञानानामनित्यत्वभवतु निर्विपयकज्ञान तु नित्यमिति स्वीकारे का क्षतिरित्याशङ्का-

शेज्ञानवद् घटादिविषयस्यापि नित्यत्वमापतेत्, एवमनुमानादिज्ञानानामपि कादाचित्कतयैव प्रकाशनात् अनित्यत्वमेव। नच प्रत्यक्षानुमानादिभेदविधुरा काचिद्धी निर्विषया निराश्रया च संभवति स्वरूपविरोधात् ज्ञानस्य साश्रयत्वसविषयकत्वस्वाभाव्यादिति।

निराकृत्य तस्याप्यनित्यत्वं प्रदर्शयितुमुपक्रमते, **नच प्रत्यक्षानुमानादिभेदविधुरा** इत्यादि — अत्रच प्रत्यक्षपदमनुमानपदं च भावप्रधानकम्, ज्ञानं संवित् धीपदानां च स्वरसतः सविषयकज्ञाने एवलोके प्रयोगोभवति नतु निर्विषयकज्ञाने प्रयोगः क्वचिदपि दृष्ट उपपन्नो वा। एवंतद्विषयस्य च साश्रयत्वनियम एव उपलभ्य शास्त्रबलादेवबलाच्च स्वरूपज्ञानस्यापि कथमपि निर्विशेषत्वं न भवत्यपितु सविशेषत्वमेव।

ननु ज्ञानं द्विविधं स्वरूपज्ञानवृत्तिज्ञानभेदात्। तत्रप्रथमज्ञानम् "सत्यज्ञानमनन्तम्" "प्रज्ञानंब्रह्म" न सन्दृशे तिष्ठतिरूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम्" इत्यादिश्रुतिभिर्ज्ञानमात्रं नित्यनिर्विशेषरूपं स्वप्रकाशरूपंच त्रिकालाबाध्यसत्। द्वितीयंतु वृत्तिज्ञानम्, तस्य नित्यज्ञानस्येन्द्रियलिङ्गादिजनितवृत्त्यवच्छेदकादाचित्कत्वात् विशिष्टस्यतस्यानित्यत्वं प्रतीयते, तत्र विशेष्यस्य सर्वथा नित्यत्वेपि विशेषणस्यानित्यत्वेन तद्विशिष्टतया तत्रानित्यत्वं प्रतिभाति तदेव शुद्धचैतन्यमन्तःकरणविशिष्टतया ज्ञातृ इत्यपि कथ्यते। अयमभिप्रायस्तेषाम्, चैतन्यमेकमेवनित्यम् तच्चोपाधिवशात् त्रिविधं भवति प्रमातृचैतन्यं प्रमाणचैतन्यं विषयचैतन्यं च। तत्रान्तःकरणावच्छिन्नं प्रमातृचैतन्यमन्तःकरणवृत्त्यवच्छिन्नं प्रमाणचैतन्यं विषयावच्छिन्नंचैतन्यं प्रमेयचैतन्यम् तत्र यदा चक्षुरादिसंयोगे विषयेजाते सति-घृतवत्तरलमन्तःकरणंचक्षुरादिद्वारेण निःसृत्यघटादिविषयादिप्रदेशं प्राप्य विषयाकारेण परिणमते स एव परिणामोवृत्तिः चैतन्यमप्यन्तःकरणद्वारेण विषयसंबद्धोभवति, तत्रोपाध्योरेकदेशस्थैककालिकतया विभाजकत्वाभावेनान्तःकरणतद्वृत्त्यवच्छिन्नचैतन्ययोरेकत्वात्तत्र विषयकं ज्ञानं भवति। तत्र प्रमाणविषयचैतन्योरेकत्वात्, ज्ञानप्रत्यक्षम् प्रमातृचैतन्ययोरेकत्वे विषयप्रत्यक्षं भवतीति। वस्तुतश्चैतन्यस्यैकत्वेप्युपाधिभेदात्तत्रभेदव्यवहारः इत्यादिकं वेदान्तपरिभाषायां विस्तरेण द्रष्टव्यम् तथा चैतन्मते चेतनस्यैकत्वेपि व्यवहारोपपादनायोपयुक्तप्रक्रियाविरचिता स्वबुद्धिप्रभवा। साच प्रक्रिया न पारमार्थिकी किन्तु अनाद्यनिर्वचनीयमायाकल्पितैव ब्रह्मणि संसारवदेव कल्पितमेवेति।

तदपि नमनोरमम्, शास्त्रविरोधात् युक्तिविरोधाच्च। तथाहि निरवयवस्याणुलक्षणस्य मनसोवृत्तिरङ्गीकृता, साकिं चक्षुषाघटज्ञानेजनयितव्ये मनसःसंयोगो व्यापाररूपेणापेक्षते तथैव प्रकृते मनसो वृत्तिर्व्यापाररूपा, अथवा मृत्तिकायाघटोत्पादयितव्येमृत्तिकायाः परिणामवदत्रमनसः परिणामरूपा वा वृत्तिः? तत्र न प्रथमः अन्तःकरणस्यवृत्त्युत्पादेपि ज्ञानव्यापारंविना विषयप्रकाशलक्षणकार्याभावात् तदुक्तम् "इन्द्रियाणां हिचरतां यन्मनोऽनुविधीयते। तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्-

नच संविदोऽन्याविषयत्वादन्यत एव ज्ञानभावासिद्धिः "अज्ञासिषम्" इति पूर्व

भसि ॥" "तेनास्यक्षरति प्रज्ञा" इत्यादिस्थलेषु मन इन्द्रियद्वारेण ज्ञानप्रसरणादेवार्थप्रकाशस्य व्यवस्थापनात् । क्वचित् प्रज्ञामनसोरभेदव्यवहारस्तु ज्ञानव्यापारानुकूलव्यापारवत्वान्मनसोभाक्त एवेति । नवा मन परिणामरूप इति द्वितीय मनसोऽणुरूपस्य विपयाकारपरिणामासभवात् ।

सावयव हि वस्तु परिणमते यथादुग्धसावयमेव द याकारेणपरिणमते, नचाणुरूपस्य निरवयवस्य परिणाम सभवति । नच मन सावयवसादिद्रव्यत्वात्, घटादिवदित्यनुमानेन मनसोऽणुत्वे निराकृते मनस परिणाम सभवति, तथा "मन प्रत्यक्षज्ञानासमवायिकारणसयोगा धारत्वादात्मवदित्यनुमानेन च तस्य नाणुत्वमिति वाच्यम, मनसि रूपस्पर्शाद्यभावेनोपर्युक्तानुमानयो प्रत्यक्षवाधितविपयत्वादग्नौशैत्यानुमानवत् । सर्वैरेववादिभिर्मनसोऽतीन्द्रियत्वस्वीकारेणतत्परिणामासभवात् । नच रूपस्पर्शाभावेपि गन्धादिवत् प्रत्यक्षतास्यादितिवाच्यम् । तत्र पृथिवी सवन्धेन तत्प्रत्यक्षसभवेपिमनसस्तदभावात । यद्यपि रूपादिराहित्येपिजीवप्रत्यक्षदर्शने मनसो ग्राहकेन्द्रियान्तरस्यादर्शनात् । नवावाह्येन्द्रियेण मनसो ग्रहणम्, रूपस्पर्शाभावेनाकाशवदग्रहणात् । रूपस्याभाववता द्रव्याणावाह्येन्द्रियाग्राह्यत्वस्यान्यत्रव्यवस्थापनात । नवारसनादिनातग्रहण तेपा गुणग्रहणे एव सामर्थ्यदर्शनात् तेन द्रव्याग्रहणाच्च । नवाऽन्तरेन्द्रियेण मनो व्यतिरिक्तान्तरेन्द्रियस्याभावात् । न च मनोजनितमनोऽन्तरेण स्पर्शादिरहितद्रव्येण द्रव्यान्तरस्यानारभात् । मनोजात मनइन्द्रियम् इन्द्रियमिन्द्रियतया, शरीरतया विपयतयावा भोगजनक स्यात्? तत्र नेन्द्रिय रूपेण मनोजनितमनोन्तरस्य भोगजनकत्वम् प्रथममनसैवतत्कार्यसभवेन द्वितीयमनसो निरर्थकत्वात् । नवा मनोजनितद्वितीयमनसो भोगजनकत्वम्, इन्द्रियाधिकरणतयापृथिवीप्रभृतिजनित शरीरस्यैवभोगजनिततयाद्वितीयमनसोऽतथात्वेन तेन भोगजनकत्वासभवात्, यतो द्वितीयमनसो भूताजन्यत्वात इन्द्रियाधिष्ठानत्वाभावाच्च । तथा च मनोजनितमनोऽन्तरस्य निरर्थकत्वमेव । तेन मनसो ग्राहक न किमति ग्राहकम् । तस्मान्मनसो विषयाकारपरिणामे नास्ति किमपि प्रमाणमिति न तस्य परिणामरूपावृत्ति सभवति । नवा निर्विशेपत्वे चेतनस्य किमपि प्रमाण सभवति, येन निर्विशेपचैतन्यस्योपाधिकभेदकल्पितप्रमातृप्रमाणादिभेद समीचीन स्यात् । प्रत्युत निरुपाधिकज्ञातज्ञेयभेदप्रतिपादकसर्वथाऽवाधितप्रत्यक्षशास्त्रादिप्रमाणवाधितमेवेद केवलाद्वैतमतम ।

एतत्पूर्वप्रकरणे स्वज्ञानप्रागभावस्यस्वकीयप्रतियोगीनैव सिद्धिर्जायते इति प्रदर्श्य तदनुस्वेतरज्ञानेनापि सिद्धिर्भवतीति प्रदर्शयितुमुपक्रमते **नच संविदोऽन्याविषयत्वादित्यादि** नचज्ञानस्यान्याविपयत्वात्तदन्यतस्तदीयप्रागभावस्य सिद्धिर्नभवतीति वाच्यम् । उत्तरयति, **अज्ञासिषमिति** अतीतकालिकज्ञानस्य वर्तमानकाले स्मरण भवति **अहमज्ञासिषमि**त्याकारकम्, तेन

कालिकज्ञानस्याद्यतनीयज्ञानेन विषयीकरणात् । प्रतिकूलानुकूलविषयनियतहानोपादानोपेक्षालिङ्गादिगम्यत्वाच्च परकीयज्ञानस्य । तदस्वीकारे शब्दार्थग्रहणासंभवेन सार्वलौकिकवैदिकव्यवहारो विलुप्त एव भवेत् । एवं गुरूपसर्पणादयोपि सर्वथाऽनुपपन्ना भवेयुः । गुरुगतज्ञानवत्त्वस्य प्रतीतेरभावादिकबहुतरदोषोऽवगन्तव्यः ।

स्मरणेन पूर्वभूतस्य ज्ञानस्मरण भवतीति स्मरणेनानुभवात्मकज्ञानस्य सिद्धिर्भवतीति स्वेनैवस्वस्य ग्रहणमित्यर्थ ।

तदनेन क्रमेणातीतकालिकस्वकीयस्य ज्ञानस्य ग्राह्यत्वमितिप्रदर्श्य तदनुपरचेतोगतज्ञानान्तरग्राह्यत्वभवतीति दर्शयितुमाह **प्रतिकूलाननुकूलेत्यादि** । सर्वोपिलोक शब्दश्रुत्वा ततोऽनुकूलपदार्थविषयकज्ञानेजाते तद्ग्रहणेच्छया तत्रप्रवर्ततेशब्दादिविज्ञाने प्रतिकूले ज्ञाते ततो निवर्तते । एवमन्येषामपि प्रवृत्ति च दृष्ट्वाऽनुमिनोति, यदयमस्यापिशब्दादिविज्ञानमनुकूल प्रतिकूल वा जात तेनायमपि प्रवर्ततेनिवर्तते वा । कि बहुना पशवो मुग्धा एव प्रतियन्ति । तेषामपि अनुकूलशब्दादिविज्ञाने प्रतिकूले सत्येव तथा कुर्वन्ति । यथादण्डोद्यतकर क्रूरदृष्टीनाक्रोशत पुरुषानुपलभ्य पशवोपि ततो निवर्तन्ते । हरिततृणपूर्णपाणि सरलशब्दब्रुवाण पुरुषमुपलभ्यतत्समीपङ्गच्छन्ति । तथा पुरुषा अपिकुर्वन्ति, इति सर्वेषा न प्रत्यक्षम् । एवञ्च हानोपानादिलिङ्गेभ्य परकीयज्ञाप्य भवत्येव । एव यदि ज्ञानान्तरवेद्य न स्यात्, तदाकस्यचित्समीपे आगच्छति, स तदाऽयकिंचिद्वक्ष्यति, अयसन्दिग्धो विपर्यस्तो विपरीतज्ञानवान्वेति "आकारै रिङ्गितैर्गत्याचेष्टयाभाषणेन च नेत्रक्रूरविकारै श्च" इत्यादि लिङ्गेन तदाशयज्ञात्वा तदनुकूल पृच्छादिक करोति । अन्यथा तदाशयमनवबुद्ध्यैवप्रवर्तेत तदोन्मत्तवदुपेक्षितो भवेत् । तस्मादवश्यपरान्त करणगतसशयादिकमवश्यमेवज्ञातव्यमित्यनुमानादिना परकीयज्ञानमपि ज्ञानान्तरज्ञेय भवत्येवेतिस्वेन स्वस्य सिद्धिवत् परज्ञानान्तरेणापि परकीयज्ञानस्य सिद्धिर्भवत्येवेति। यदि ज्ञानस्यज्ञानान्तरग्राह्य न स्वीकुर्यात्तत्रदण्डमाह **शब्दार्थग्रहणासंभवेनेति** ।

इयमत्र शाब्दबोधप्रक्रिया-प्रत्यक्षस्थले चक्षुरादिक विषयेणसहसयोगसयुक्तसमवाय सयुक्तसमवेतसमवायविशेषणविशेष्यभावादन्यतमसनिकर्षसहकारेण पदार्थाना यथायथ प्रात्यक्षिक ज्ञान जनयतीति स्थिति । एवमनुमितिम्, व्याप्तिज्ञानबलेन हेतुर्जनयति, तत्र, वन्हिव्याप्यधूमवान् पर्वत इति परामर्शोव्याप्यतो हेतुज्ञानमर्थात् लिङ्गज्ञान करण ततोऽनुमितिं जनयति । नतु ज्ञायमान लिङ्गकरणम्, इम यज्ञशाला वन्हिमती भविष्यति भावि धूमात, इय यज्ञशाला वन्हिमती समभवत्, अतीतधूमादित्यादौ तत्काले धूमस्य विरहेपि, अनुमितेरानुभविकतयाज्ञायमानधूमो नानुमितिजनकोऽपितु धूमादिहेतुज्ञानमेव, स्वरूपत स्थलविशेषे धूमस्याविद्यमानत्वेपि तज्ज्ञानस्य

तदापिपूर्वकालिकतयाऽव्यवहितपूर्ववृत्तित्वरूपजनकत्वस्याक्षतत्वात् । इति लिङ्गज्ञानमेवानुमितोकरण नतुज्ञायमान तत्करणमिति ।

उपमित्यात्मकज्ञाने सादृश्यज्ञानं करणमतिदेशवाक्यार्थस्मरण व्यापारोभवत्युपमैव फलमिति। एव शाब्दबोधे पदज्ञानकरणम्, नतुज्ञायमान पद तथा मौनिश्लोकादौ ज्ञायमानस्य पदस्याभावात् । पदार्थस्मरणमर्थात्पदार्थोपस्थितिर्व्यापार शक्तिलक्षणान्यतरवृत्तिज्ञान सहकारकम् । तत्र पदार्थस्मरण पदजनितमेव। अर्थात् पदजनितपदार्थस्मरणमेव व्यापार अन्यथाघटादिपदात्, शब्दाविकरणतयाऽकाशस्मरणेजाते तत्राकाशस्यापि शाब्दबोधविषयत्वमापद्येत ।

शक्तिश्च पदस्य पदार्थेन सहसम्बन्धोऽर्थात्पदप्रतियोगिक पदाथानुयोगिक, अस्मात्पदादयमर्थोबोधव्य इतीश्वरेच्छारूपएव । आधुनिकसकेते तु न शक्तिरिति प्राचीना नवीनास्तु "द्वादशेऽहनि पितानामकुर्यादिति" नियमेनाधुनिकसकेतेऽपि शक्तिरस्त्येवात इच्छामात्रे शक्तिर्नतु परमेश्वरेच्छा मात्रा शक्तिरेतादृशशक्ति सहकृत्य पदज्ञान पदार्थोपस्थितिद्वाराशाब्दबोधजनयतीति । तत्रशक्तिग्रहो व्याकरणादितो भवति । तदुक्तम्—"शक्तिग्रह व्याकरणोपमानकोशाप्तवाक्याद्व्यवहारतश्च । वाक्यस्यशेषाद्विवृतेर्वदन्ति सानिध्यत सिद्धपदस्य वृद्धा" तत्र धातुप्रकृतिप्रत्यायादीना शक्तिग्रहो व्याकरणाद् भवति । परन्तु क्वचिद्बाधके सति त्यज्यते । यथा व्याकरणकारैस्तिबादिप्रत्ययस्य कर्तरि शक्तिरुपेयते, किन्तु गोरवात्तत्यज्यते । तत्रकर्तरि शक्तौशक्यतावच्छेदक कृतिरेवेति सा नानेति गौरवमतोलाघवात्तिबादिप्रत्ययस्य कृतावेव शक्तिस्तत्रशक्यतावच्छेदक कृतित्वजाति सा च नित्यत्वे सत्यनेकसमवेतत्वरूपेत्येकेति लाघवमत कर्तरि न शक्तिर्व्याकरणसहमतापि, किन्तु कृतौ शक्तिर्लाघवात्, लाघवच शक्यतावच्छेदककृतित्व स्यजातिरूपस्येति नैयायिका । नच तिवादिप्रत्ययेनकर्तुरकथने "अनभिहितेकर्तरि करणे च तृतीया भवतीत्यर्थक कर्तृकरणयोस्तृतीयेत्यनुशासनेन देवदत्त पचतीत्यत्रदेवदत्तादिकर्तृवाचकपदात्तृतीया स्यात् मन्मतेतु आख्यातस्य कर्त्रर्थकतयातिवादिबोध्यकर्तुर्देवदत्तेन सहतादात्म्येन देवदत्ताऽभिन्नो देवदत्त पाकानुकूलव्यापारवानित्यकारक शाब्दबोधो भवति" देवदत्त पचतीतिवाक्यात्। भवन्मते आख्यानेन कर्तुरनभिधानात् कर्तृबोधकतिबादिनातदकथनात् देवदत्तपदोत्तरतृतीया विभक्तिरेवस्यात् । ततश्च देवदत्तेन पचतीति प्रयोगोपि साधुरेवस्यादितिवाच्यम् भावानवबोधात् तथाहि "कर्तृकरणयोस्तृतीयेति पाणिनीय सूत्रस्य अनभिहिते कर्तरि करणे च तत्तद्वाचकपदात् तृतीया विभक्तिर्भवतीतिनार्थ किन्तु यदि यत्राख्यातेन कर्तृकरणगतसख्यानोक्ता भवेत्तदा तत्र तत्तत्पदात् तृतीया भवतीत्ययमेवार्थ । प्रकृते च देवदत्त पचतीत्यत्रतिपदेन देवदत्तादिसख्याया प्रतिपादनात् अनभिहितत्वाभावेन प्रथमैव भवति न तु तृतीयेति । सख्याभिधानयोग्यश्च कर्मत्वाद्यनवरुद्ध प्रथमान्तपदोपस्थाप्य. कर्मत्वाद्यनवरुद्ध इत्यस्येतरविशेषणत्वेन तात्पर्याविषयत्व-

मर्थ । तेन चैत्र इव मैत्रोगच्छतीत्यत्र इवार्थसदृशत्वेन तात्पर्यविषयीभूतस्य चैत्रस्य निवर्थस्य याऽन्वयो न भवति । यथा व्याकरणेन पदस्य शक्तिग्रहो निश्चीयते तथैवोपमानादपिशक्ति ग्रहो भवति यथा चैतत्तथातर्कसङ्ग्रहीयोपमानप्रकरणादेवावगन्तव्यम् । एवं कोशादपि पदानां शक्तिग्रहो जायते, यथा नीलादिपदानां गुणे तद्वति च शक्तिं प्रतिपादिता कोशे परन्तु गौरवात् गुणवतिशक्तिमनादृत्य केवल नीलादिगुणे एव शक्तिराद्रियते लाघवात् । गुणाश्रये नीलादि नीलादिपदानातु लक्षणैव, नीलोघट इत्यादौ नीला मकगुणात्मघटादिद्रव्येण तादात्म्यस्य वाधितत्वेन नीलपदस्य नीलाश्रये द्रव्ये लक्षणामाश्रित्यतयो द्रव्ययोरेव तादात्म्येन शाब्दबोधस्याकरे प्रतिपादनात् एवमाप्तवाक्यादपि पदानापदार्थेशक्तिग्रहोजायते । यथा कोकिल पिक इत्याप्त वाक्यात् पिकपदस्यकोकिलेशक्ति ग्रहोभवति । एवं व्यवहारेणापि पदानाशक्ति ग्रहोभवति, यथा-प्रयोजकवृद्धेन प्रयोज्यवृद्धप्रति कथित 'भो घटमानय' इति श्रुत्वा प्रयोज्य वृद्धस्तथाकृतवान् यदेतन्नय-घट तदेतच्छ्रुत्वा प्रयोज्येन ततो घटोऽपसारित । इति दृष्ट्वापार्श्वस्थोबालोऽगृहीतशक्तिकोप्यावा-पोद्वापाभ्या शक्ति गृह्णाति । तत्र यद्यपि यदायदा घटस्य प्रयोग कृत तदा आनयनादि-विशिष्टस्यैवेतिमीमांसकैकदेशी आनयनादिक्रियान्विते एव घटादौ शक्तिरितिनिश्चनोति । तथापि प्रथमत क्रियान्विते शक्तिग्रहेपि पश्चात्त परित्यज्य लाघवेन घटमात्रे एव घटादिपदस्य शक्तिग्रहो-वाच्य । तत्र प्रयोजकवृद्धस्यशब्दश्रवणसमनन्तर प्रयोज्यस्य प्रवृत्त्यादिव्यवहारेणनयनादिकमा-कलय्य पार्श्वस्थो बालक प्रयोज्य प्रवृत्तिनिवृत्तिकारण ज्ञानमनुमिनोतीति, अनुमितज्ञानेनैव तदीयानयनादिव्यवहार विजानाति । तत्र यदि ज्ञान नभवेत्तदा सर्वोपि व्यवहारोविलुप्येत । तस्मात् व्यवहारोपि पदपदार्थयो निश्चाययतीति । एवं वाक्यविशेषविवरणसिद्धपदसान्निध्यादिहेतुभि शक्तिर्गृहीता भवतीति यथा प्रकरणमेव ज्ञातव्यम् । ततश्च शक्तिप्रतियोगिपद तदनुयोगिचपदार्थ । तत्पद चतुर्विधरूढयौगिक योगरूढ यौगिकरूढ च । तत्र घटादिपदम् रूढम् , अवयवशक्तिनिर-पेक्षतया समुदायशक्त्यैव घटत्वावच्छिन्नादेर्बोधकत्वात्, द्वितीयतु पाचकादिपदम्, अत्र समुदायशक्तिमनपेक्ष्यैवयोगात् , पचति य स पाचक इति धातु प्रत्ययौ मिलित्वा पाककर्तार बोधयत् यौगिक पाचकपद भवतीति । यत्रावयवशक्तिविषये समुदायशक्तिर्भवतीति परस्परसहका-रितयाऽर्थ कमपि विलक्षण भवति तत् तृतीयम् , यथा पकजपदम् अत्रावयवशक्त्यापकजनिकर्तृत्वम् समुदायसक्त्याचपद्मत्वस्यवोधो जायते, सतिप्रसगेकेवलावयवशक्त्या कुमुदिनीनाबोध । यथा—

"निरर्थक जन्मगत नलिन्या यया न दृष्ट तुहिनांशुबिम्बम् ।
उत्पत्तिरिन्दोरपिनिष्फलैव न येन दृष्टा नलिनीविनिद्रेति ॥"

यौगिकरूढपदमुद्भिदादिपदमुद्भिनत्तीतिव्युत्पत्त्या, भूमिमुत्पाट्यजातानां तरुगुल्मादीना बोधो-भवति, तथा "उद्भिदा यजेत" इतिविधिबोधितयागविशेषोपि ज्ञायते । एतादृशपदस्यज्ञान शब्दबोधकरण

तथापदार्थस्य स्मरण व्यापार शक्तिलक्षणान्यतरवृत्तिज्ञान सहकारिशाब्दबोध एव फलमिति ।

तदेतत्सर्वं यदि परज्ञानमनुमानादिना ज्ञायते इति न स्वीक्रियते तदा सर्वोपि व्यवहारो विलुप्त एव भवेदिति । अक्षरार्थस्त्वेवम्, परकीयस्य विषयविशेषैकचन्दनादावनुकूलत्वज्ञानस्य प्रतिकूलसर्पादित्वज्ञानवा परकीयहानोपादानमाध्यस्थप्रवृत्तिनिवृत्त्युपेक्षात्मकहेतुजनितानुमेयत्वादित्यर्थ । यदि ज्ञान ज्ञानान्तरग्राह्य न भवेत्तदा परज्ञानानुपगमे व्यवहाराच्छक्तिग्रहस्य परज्ञानानुमानसापेक्षतया शक्तिग्रहस्यासभवात्, शक्तिग्रहमूलकव्यवहारस्य सर्वथाविलोपएव भवेदिति । अथवा शब्दार्थसवन्धस्यवाच्यवाचकभावस्य बोध्यबोधकभावरूपस्य बोध [ज्ञान] स्य यदिज्ञानान्तरग्राह्यत्व नो स्वीक्रियेत तदा व्याकरणकोशाप्तवाक्यव्यवहारादिना तत्प्रतिपादनासभवात्सर्वशाब्दबोधव्यवहारो भज्येतेत्यर्थ । शब्दार्थग्रहणासभवेनेति । तथा गुरूप सर्पणादिकमपिनिर्थकतामुपगच्छेत् । अर्थात्, दुखाबुधौनिमज्जमानोजीव पूर्वकृतसुपुण्योदयात् सजात वैराग्य सुखलेशमात्रमपि ससारमपश्यन् रोदनक्रन्दनादिक यतस्तत स्वकीयमपमानादिक प्रियत्वेनाभिमतपुत्रकलत्रबन्धुबान्धवादिभ्योपि समुपेक्षितोभगवतोऽयोध्यानाथस्य शरणमेवचतुर्वर्गफल प्रापकमिति यतस्ततोभाषाप्रबन्धादितोवाऽवगत्य तथा भगवत स्वरूपाच्छादिका माया भगवदनन्यभक्त्यैव विनाश्य तस्य सायुज्यादिक प्राप्स्यामित्यवगत्य च भगवत्स्वरूप यथावज्ज्ञातु रामभक्त ब्रह्मसेवापरायणज्ञानिन गुरुमुपसीदति । तथोक्तम् "परीक्ष्यलोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणोनिर्वेदमायात् नास्त्यकृत कृतेन । स तद्विज्ञानार्थं गुरुमेवाभिगच्छेत्समित्पाणि श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठम्" "दुखार्णवे निमज्जन्त दृष्ट्वा जीवमहेतुक । करुणासिन्धुरामस्य जायतेकोऽप्यनुग्रह ॥३॥ पुण्यभवति चाज्ञात रामस्यानुग्रहेण हि । अभावो जायये तस्माद् विद्वेषप्रतियोगिक ॥४॥ श्रीरामरामभक्तानामभिमुख्यस्य कारणम् । तज्जन्यादभिमुख्याद्धि जिज्ञासासमुदेति च ॥५॥ इत्यत "सत्यसन्ध प्रतिश्रुत्यप्रपन्नायाभय स्वयम् । निवर्तयेद्भयेनैन श्रीराम श्रितवत्सल ॥४९॥ इत्यन्तदिव्यप्रबन्धश्रीरामप्राप्तिपद्धतौजगद्गुरुश्रीरामेश्वरानन्दाचार्यदेशिकेन्द्रेणसाधुसम्पादितमत्रत्यप्रकरणरहस्यमिति ततोऽनुसन्धेयोविशेषार्थिभि । अत्रनिर्वेदप्रतिपादकशास्त्रेब्राह्मणात् ब्राह्मणस्यैव प्रव्रज्यामधिकारोनेतरेषामिति सुनिश्चित भवति । तथा च कथतदन्ये तत्रसमिलिता । इति विचारणीयमेव । अन्येतु "ब्राह्मण ग्रहणचात्रद्विजानामुपलक्षणमितीति । एतन्मतेपि त्रैवर्णिकानामेवाधिकारोनान्येषाम् । श्रोत्रियेति कथनेनाधीतशास्त्राणामेवोपदेशकत्वम् । ब्रह्मनिष्ठेति कथनेन श्रीरामभक्तानामेव भक्तिप्रापकत्वमिति सक्षेप ।

ज्ञानव्यतिरिक्त सर्वोपि पदार्थ स्वभावतोजड, अर्थात् प्रतियोगव्यधिकरणज्ञानाभाववान् । यद्यपि जीवोपि सुषुप्तौज्ञानाभाववान्, तदातत्रज्ञानस्याभावादिति सोपिजड़ एव भवेत् । अतएवेतरे दार्शनिका —जीवोपिजड़भूतस्य तस्यबन्धननिवृत्तिरूप. सुखात्मको मोक्षोनस्यादिति

यदुक्तं पूर्वं ज्ञानस्य ज्ञानान्तरविषयत्वेऽननुभूतित्वमेवापद्येत ज्ञानविषयघटादि जडवदिति तन्नयुक्तम् नहि ज्ञानविषयत्वमननुभूतित्वे प्रयोजकम्। अपितु स्वाश्रयस्य स्वसत्तया प्रकाशमानत्वं वा स्वविषय [साधन] ज्ञापकत्वमेवानुभूतित्वमिति।

एतद्द्वयं यत्र विद्यते साऽनुभूतिरेतद्द्वयं यत्र न भवति सानानुभूतिरित्येव नियामकम्। एवं च ज्ञानस्य ज्ञानविषयत्व न ज्ञानत्वप्रकाशकत्वस्य वा विघातकम्।

मोक्षप्रतिपादकशास्त्राणा नैरर्थक्यमेवापतति। अतएव केनचित् कथितम्-वरवृन्दावनेऽरण्ये शृगालमभिवाञ्छितम्। नतु वैशेषिकीं मुक्तिमात्मज्ञो गन्तुमिच्छतीति।

तथापि, सुषुप्तिकालेजीवेज्ञानाभावेऽपिजागरणसप्रत्यक्षादिज्ञानस्य यथायथ विद्यमानत्वेन न ज्ञानाभावे ज्ञानात्मकप्रतियोगिव्यधिकरणो रूपाभावात्, अपितुकालविशेषेसुषुप्त्ता मोक्षे वा विद्यमानोपि ज्ञानसमानाधिकरण एव, एकस्मिन् वृक्षेशाखामूलादिदगविशेषावच्छेदेन विद्यमानकपिसयोगतदभाववत्। अथवा वर्तमानभूतानागतकालावच्छेदेनवृक्षेकपिसयोगतदभाववत्। एवञ्च प्रतियोगिव्यधिकरणो ज्ञानभावोयत्रभवति स जड जीवेतु यदाकदाचिज्ज्ञानस्य सत्वेन कालान्तरे देशान्तरे वा तदभावो न प्रतिव्यधिकरणोऽत एवजीवो नजड किन्तु घटादिरेव पदार्थोजड तत्रकदाचिदपिज्ञानस्यासत्वात् अतएव सर्वोपि दार्शनिको न्यायमत प्रायउपजीव्यैव स्वकीयवाग् वैभवमादाय जीवेश्वरस्वरूप यथामतिविचारयति। तथा च विषया स्वभावजड इति तेन तेषा प्रकाशासभव। यदि कदाचिज्ज्ञानमपि स्वप्रकाशात्मकनस्यात्तदा जगत आन्ध्य मेवस्यात्। तथा च लौकिकानामाभाणक "अन्धस्येवान्धलग्नस्य विनिपात पदेपदे" इति। नच ज्ञान जडात्मकमपि ज्ञानान्तरेणानुव्यवसायादिना प्रकाशित सत् विषयप्रकाशक स्यात्। एव सतिदुरवस्थादुरवस्था स्यात् ज्ञानस्याज्ञानान्तरविषयत्वे स्वीक्रियमाणत्वे क्वचिद्गत्वाज्ञानधाराया विश्रामे उपान्त्य ज्ञानस्य जडत्वापातेन मूलपर्यन्तमप्रकाशापत्तिरतो ज्ञान न ज्ञानान्तरग्राह्य जडत्वप्रसङ्गात्। तस्मात् ज्ञान स्वप्रकाशात्मकमेव नतु ज्ञानान्तरेणानुभाव्यम्, अनुभाव्यत्वे जडत्वप्रसङ्गात्, यतोऽनुभाव्यत्वस्यैव जडत्वप्रयोजकत्वादित्यादि स्वप्रकाशज्ञानवादिना पूर्वपक्षप्रकरणे पूर्वं प्रतिपादितम्। तन्मत निरासायोपक्रमते **यदुक्तं पूर्वज्ञानस्य ज्ञानान्तरविषयत्वे** इत्यादि, यद्वस्तु अनुभूत्यावेद्यतन्नानुभूतिरपितु तद्भिन्न जडात्मकमेव, यथाघटप्रभृतिक पदार्थ। एवचानुभूतिरपि, अनुभाव्यस्यात् तदातस्या अनुभूतिभिन्नत्वमेवभवेदिति शकायाभिप्राय। उत्तरयति **तन्न युक्त**मिति। तदेवोपपादयति **नहिज्ञानविषयत्वमननुभूतित्वे प्रयोजयम्** इत्यादि। **स्वाश्रयस्य** स्वसत्ताया प्रकाशमानत्वमनुभूतित्वमथवा स्वविषयज्ञापकत्वत्वाऽनुभूतित्व नतु ज्ञानान्तराविषयत्वम्। अथात् स्वाश्रयाय स्वयमेव प्रकाशमानत्वमनुभूतित्वम्। स्वाश्रयाय स्वविषय प्रकाशकत्व, तच्च स्वकीयवर्तमानता समये ज्ञानस्यापि विद्यते एव। उभयप्रकारक चेदमनु-

घटादेस्तु एतादृशस्वभावाभावादेवानुभूतिभिन्नत्वं नतु ज्ञानविषयत्वेन जडत्वमिति ।

अपि चाननुभाव्यत्वस्य ज्ञानत्वप्रयोजकत्वे गगनकुसुमादेरप्यनुभाव्यत्वाभावेन तस्यापि ज्ञानत्वप्रसङ्गात् । नवाऽत्माज्ञानरूपोऽनुभवितृत्वात् । नवाऽयमननुभाव्यः स्वपरसंवेद्यत्वात् । अन्यथाऽत्मनोवेद्यत्वेऽनात्मत्वमवेद्यत्वेखपुष्पायमाणत्वं चापतेत् ।

नच गगनकुसुमादिकमसत्वादेवानात्माऽननुभूतिश्चेति वाच्यम्—एवं चेत् तदा

भूतित्वस्वकीय वर्तमानताकाले यदि स्वाश्रयायाप्रकाशमानत्वम्, अथवा स्वविषयस्याप्रकाशकत्वकथमपि न सम्भवति । अपितु अनुभूति स्वसत्ताकाले स्वाश्रयायप्रकाशमानत्वमेव विद्यते स्वविषयज्ञापकत्वमेवविद्यते इत्येवानुभूतित्वम् । अतीतत्वादिकाले स्वाश्रयाय वर्तमानदशाया वा पुरुषान्तराय ज्ञानान्तरेण प्रकाशमानत्वेपि, अनुभूतेर्ननिर्वचितानुभूतित्वलक्षणस्य भङ्गोभवति ।

अथात्-यथोक्त लक्षणमत्र विद्यते तत्रानुभूतित्व तत् ज्ञानान्तरवेद्य भवतु नवाभवतु तथापि तज्ज्ञानमेव । परन्तु अननुभाव्यत्व न ज्ञानत्वे प्रयोजक येन भवदीयप्रश्न समुपयुक्त स्यादिति । ततश्च स्वप्रकाशत्वे एवज्ञानत्व ज्ञानान्तरज्ञेयत्वेनानुभूतित्वमिति न नियम । ग्रन्थोक्तरीत्या सर्वदोपस्य परिहृतत्वादिति । अनुभाव्यत्व जडत्वेन प्रयोजकम्, घटादीना तु निरुक्तोभयविधज्ञानत्वाभावादव जडत्व नत्वनुभाव्यत्वात् । यदि कदाचिदननुभाव्यत्वस्यानुभूतित्वस्यानुभूतित्वप्रयोजकत्व तदागगनकुसुमादेरपि, प्रत्यक्षज्ञानाननुभाव्यत्वेन तेषामप्यनुभूतित्व प्रसज्येत । वस्तुनस्तु गगनकुसुमादेरपि स्वाप्तज्ञानशाब्दज्ञानज्ञाप्यत्वमस्त्येवेति ज्ञानविषयत्वस्याननुभूतित्वप्रयोजकत्वस्वीकारेपि न क्षति ।

यदपि परैरात्मनो ज्ञानरूपत्व स्वीकृत तदप्यनोवविजृम्भितमेव, आत्मनोऽनुभवितृत्वेन ज्ञानभिन्नत्वात् । नवाऽत्माऽननुभाव्य ज्ञानवदेवस्वत सिद्ध्यतोऽस्यात्मन स्वपरसंवेद्यत्वाभ्युपगमात् नच यथा वेद्यत्वाद् घटादिनात्मा, तथैवात्मनोऽपि, यदिज्ञानान्तरवेद्यतास्यात्तस्यात्मनोऽप्यनात्मत्व प्रसङ्ग इतिवाच्यम्, तुल्यत्वात् । अयमाशय यदिज्ञानविषयतयाऽत्मन्यनात्मत्वप्रसङ्गस्तदा, यदि ज्ञानान्तरविषयत्वाभावरूपमवेद्यत्वमन्येत, तदा यथाप्रमाणाविषयत्वात् वन्ध्यापुत्रादिरसद् भवति तथाऽत्मनोपि प्रमाणाविषयत्वाऽसत्वमेव स्यात्, प्रमाणाविषयत्वस्यैवासत्वापादकत्वात् । नचावेद्यत्वे स्वपरोक्षव्यवहारविषयत्वरूपमेव स्वप्रकाशत्वम्, एतादृशस्वप्रकाशत्व ज्ञानवदेवात्मनोऽपि मन्यते इति वाच्यम्, अवेद्यत्वाऽपरोक्षव्यवहारविषयत्वयो परस्परघातात् । ज्ञानाविषयत्वमवेद्यत्व प्रत्यक्षज्ञानविषयत्व प्रत्यक्षव्यवहारप्रयोजकम् । एवञ्च यदि ज्ञानाविषयत्वरूपमवेद्यत्व तदाऽपरोक्षव्यवहारविषय येन सम्भवति । तथा यदि अपरोक्षव्यवहारविषयत्वम्, अथात् प्रत्यक्षविषयत्व तदासामान्यतोऽवेद्यत्व न स्यादित्येव तयो परस्परव्याघात आपतति स च परिहार्यो भवति भवन्मते । ननु, फलव्याप्यत्वरूपवेद्यत्ववेद्यत्वाभावेनावेद्यत्वभावात्मनो व्यवहार

घटादिस्वभावजडस्यापि ज्ञानानाश्रयत्वमेवात्मभिन्नत्वेप्रयोजनकम्, तथाऽज्ञानाविरोधित्वमेवानुभूतिभिन्नत्वे प्रयोजकमिष्यताम्। ननु ज्ञानानाश्रयत्वमज्ञानविरोधित्वमेतद्द्वयमप्यनुभाव्यमेवेति चेत् तदातद्द्वयमपि कूर्मरोमादिवदेवाविषयत्वेन सदेवस्यादिति न किञ्चिदेतत्।

विषयत्व तु वृत्तिव्याप्यतयेति तदुभय घटते। अत्र व्यवहारविषयत्वमात्रकथने घटादावतिव्याप्ति। अवेद्यत्वमात्र कथने धर्माधर्मादावतिव्याप्ति। तस्मादुभयोरुपादानम। नच योगि प्रत्यक्षविषयतया, अवेद्यत्वधर्मादानास्तीति वाच्यत तेषा योग्यत्रब्रह्मत्वस्यैव विवक्षितत्वात्। तदुक्त "यत्रात्यतिशयो दृष्ट स स्वार्थानतिलघनात्। दूरसूक्ष्मादिदृष्टोस्यान्नरूपे श्रोत्रवृत्तितेति वाच्यम्, एतस्य परिभाषामात्रत्वात। आत्मन परकीयज्ञानविषयत्वप्रतिपादनेनावेद्यत्वघटित स्वप्रकाशत्वस्यात्मनि सर्वथैवासभवात् यद्यपि तैरज्ञान–फलव्याप्यत्वमेवास्य शास्त्रविद्भिर्निवारितम्। ब्रह्मण्यज्ञानाशाय वृत्तिव्याप्तिरपेक्षिता। स्वयप्रकाशरूपत्वान्नाभास उपयुज्यते' इति। तदपिन –सभवेदेव यदि विवर्तवादो मायावादो वा शास्त्रसमतो भवेत्। तन्मते "एकमेवाद्वितीयमित्यादि" कतिपयश्रुत्यनुसारेण, ब्रह्मणि सजातीयविजातीयस्वगतभेदराहित्येन निर्विशेषत्वमेव एवञ्चनिर्विशेषब्रह्मैव शास्त्रप्रतिवादोमुख्योऽर्थ उपासनाया विषय। तादृशे तत्र ब्रह्मणि "अनादिभावात्मकानिर्वचनीयाविद्याऽत्मात्मानमाच्छाद्या यारोपापवादाभ्या तन्निरूपणकुर्वन्ती, आत्मनिरूपण करोति। तमेवात्मानमाश्रय विषय च कृत्वाऽकाशादिसकल्पदार्थलोकभुवनादिकमाविष्करोति। तत सैववैराग्य ससारात् कारयित्वागुरूपसदनादिक कृत्वा, श्रवणमननादिद्वारेण तत्वज्ञानमुत्पादयति। ततश्चात्मतत्वज्ञानेन सर्वस्य प्रपञ्चस्य विलयो भवति तदन्तर्गततत्वज्ञानमपिकतकर जो न्यायेन विनश्यति। ततोऽनाकुलमेक ब्रह्मैव नित्यनिरतिशयज्ञानसुखात्मकमवतिष्ठते इति स एव मोक्ष।

परन्तु नाय पक्ष, आत्मन सविशेषत्वस्य लोकयुक्तिशास्त्रैर्निश्चितत्वात्। यदि सर्वथा पारमार्थिकमेक एवात्मा तदाविविधभेदाभावात्, गुरुशिष्या मभेदसाध्यलौकिकवैदिकस्वर्गमोक्षादिव्यवहारो भज्येत। "किञ्चात्मनाभेदाभावे गुरुशिष्यव्यवस्थाभङ्गोऽपि स्यात। तदेव शिष्यतयाकञ्चनशिक्षणीयमुपलभ्यानुपलभ्यवोपदिशत्याचार्य ? आद्ये स्वस्मात्भिन्नमभिन्नवा ? प्रथमे सत्यमसत्य वा ? नाद्योऽपसिद्धान्तात्। अन्ते तु तस्यमिथ्यात्वेनोपलम्भे तस्मा उपदेशासम्भव। सत्यत्वेनोपलम्भे तु भ्रान्तत्वेनाचार्यत्वहानिराचार्यस्य। अभिन्नत्वपक्षे कथमुपदेश। अनुपलभ्येतिपक्षे तु कस्मा उपदिशति ? (गीतनन्दभाष्यम् २।१२) इत्याद्याचार्योक्ते। ततश्च स्वर्गादिप्रतिपादक "स्वर्गकामोवाजपेयेन यजेत' "मोक्षकाम आत्मानमुपासीन" इत्यादिविधिप्रतिपादकवेदाना नैरर्थक्यमेव प्रसज्येत। नच व्यावहारिकभेद स्वीकृत्यवेदस्य सार्थत्वे स्वकीयप्रतिज्ञा विरोधो-

यत्तु पूर्वमुक्तं ज्ञानं सर्वविधभेदरहितम् अनुत्पन्नत्वात् आकाशवदिति। तन्न, अजातस्यैवात्मनो देहेन्द्रियादिभेदेन मनुष्यदेवादिविभागस्य समर्थितत्वात्। अनादितया स्वीकृता ज्ञानस्याभिन्नत्वस्यावश्यंमन्तव्यत्वात्। नचात्माऽज्ञानयोर्विभागो न पारमार्थिक इति चेत्, उत्पत्तिव्याप्यपारमार्थिकभेदस्य भवन्नयेऽभावात्। दृग्दृश्य भेदोऽबाधितत्वात्पारमार्थिक एवेति सिद्धान्तात्।

भवति। तदुक्तमुपहास कुर्वन् परै "भेदापह्नवमूलेन भेद विधि निषेधयो। स्वय समर्थयन् मूर्ख स्ववाग् वज्रेण ताडित। इति।

विशिष्टाद्वैत सिद्धान्ते एतस्यमतस्यनिराकरण कृत बहुशस्तत्तत्स्थले अग्रेपिसति प्रसङ्गे करिष्यतेऽतोऽत्रनप्रपञ्च्यते। तस्माद्वैद्यत्वनानात्मत्वप्रयोजकमिति सक्षेप।

अथ यदुत्पद्यतेऽर्थात्प्रागभावप्रतियोगि भवति तद्विभाज्यमर्थात् भिन्न भिन्न भवति, तेषु स्वजातीयविजातीयस्वगतभेदप्रतियोगिभवत्येव। यथा घटादिर्भाव उत्पत्तेरनन्तरमेव सजातीयादि भेदेन घटादौ भिन्नत्वदर्शनात्। अथ यन्नोत्पद्यते तस्मिन्नविभागोऽर्थात्सजातीयस्वगतभेदो न भवति। यथाऽकाशे आकाशोह्यनुत्पन्नत्वात् सजातीयभेदवान् न दृश्यते तद्वत् सविद् ज्ञानमपि प्रागभावादिसमुत्पादककारणकलापरहितत्वान्नोत्पद्यते। उत्पत्तिरहितत्वेन अर्थादजायमानत्वात् तस्मिन्नजे ज्ञाने विभागाऽपरपर्यायो भेदोपि न भवति। ततश्च तस्मिन्नुत्पत्तिरहितत्वेनाजेज्ञाने स्वगतसजातीयविजातीयभेदोपि न भवति भेदत्रयनिषेधेन ज्ञानमेकमज नित्य चेति, यदुक्त परेण तदिहानुद्यतत्प्रतिक्षेपायोपक्रमते **यत्तु पूर्वमुक्तंज्ञानं सर्वविधभेद रहितमनुत्पन्नत्वा**दिति। ज्ञान सजातीयादिभेदरहितम् अनुत्पन्नत्वात् आकाशादिवत् यदुत्पद्यते तदेवभिद्यते यथा घटादिकम् इत्यन्वयि यन्नोत्पद्यते तत्र भेदो न भवति यथा गगने इति व्यतिरेकि। एवचानुमानादि प्रमाण द्वारा ज्ञाते सर्वविधभेदस्यनिषेधेन ज्ञाने एकत्व नित्यत्वादिक साधितम्। स्वरूपभेदोऽन्योन्याभाव विभागपृथक्त्वादिभेदेन सोऽनेक। पुनश्च स्वगतभेद सजातीयभेदो विजातीयभेदश्च। यथा वृक्षस्य फलपत्रादिप्रतियोगिको भेद स्वगतोभेद वृक्षान्तराद्यो भेद स सजातीयस्तथा शिलादितोजायमानो भेद स विजातीय तदिह ज्ञानेवस्तु स्वाभाव्यात्सप्राप्तभेदत्रयम् "एकमेवाद्वितीयमित्यादि" श्रुत्यानिवारित भवति। यतो भेदस्य समुत्पन्नवस्तुन्येव समावेशदर्शनात्, ज्ञान चोत्पत्तिमत्वविरोधिकारणविरहादजत्वाक्रान्तमिति सर्वथाभेदगन्धरहितमेव ज्ञानमिति पूर्वपक्षाशय।

समाधाता विज्ञान सर्वविधरहितम् अजत्वादित्यनुमानम् व्यभिचारदोषेणदुष्ट न स्वसाध्य साधनाय समर्थमिति प्रतिपादयितुमुपक्रमते **तन्नेति** व्यभिचारस्थल व्यभिचारलक्षणसमन्वय च दर्शयितुमाह **अजातस्यैवात्मनः** इत्यादि "अजोनित्य शाश्वतोऽय पुराण" इत्यादि श्रुत्या सर्ववादिनिश्चयेनात्मनोऽनुत्पन्नत्वेन तत्रात्मनि हेतोरनुत्पन्नस्य विद्यमानत्वात् तत्र च सिषाधयि-

पितसाध्यस्यावर्तमानत्वात् साध्याभाववति हेतोर्वृत्तित्वमेवव्यभिचार इति व्यभिचारलक्षणमन्वेन तादृशहेतोरसाधकत्वात्। तथा भवदभिमतमज्ञानमनादित्वेनैवाभिमतमिति तत्रानुप नवहतुस्तिष्ठति तत्र साध्य न तिष्ठतीत्यज्ञानेपि व्यभिचारो भवत्येव। अज्ञानात्मनोर्भेद सर्ववादिसमत एव। नचाज्ञानात्मनोर्यो भेद सतु न पारमार्थिकोऽपित्वपारमार्थिक साध्यस्तु पारमार्थिकोभेदो विवक्षित इति वाच्यम् पारमार्थिकभेदस्योपरोरभावात। यत्परमार्थभेदवत्तदुत्पद्यते इत्याकारकव्याप्तेर भावात् परमार्थभेदस्य भवता मतेऽप्रसिद्धे।

अपि च भेद पारमार्थिकोऽपारमार्थिको वा? तत्र नाद्य भवमते तदसिद्धेर्भेदे पारमार्थिकत्वविशेषण हेता विशेषणासिद्धिमावहेत न द्वितीय तथा सति पारमार्थिकत्वविशेषणस्य निरर्थकत्वात् प्रतिवादे भेदस्य नित्यत्वेनापारमार्थिकत्वाभावात् तथोभयत पाशारज्जुरिति। नचापारमार्थिकभेद इत्यस्य पारमार्थिकत्वेन भेदो नास्तीत्याकारको व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नाभाव एवाभिमत समवायितया वाच्यत्वाभाववदिति वाच्यम् तथा सति व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नाभावस्यकेवलान्वयितया यत्परमार्थभेदवत्तदुत्पन्नमित्याकारकव्यतिरेकव्याप्तेर्निर्वचनासम्भवाद् व्याप्यत्वासिद्धिदोषप्रसङ्गात्। नच "प्रज्ञान ब्रह्म" "सत्य ज्ञानमनन्त ब्रह्म" इत्यादि शास्त्रेण ज्ञानस्य नित्यत्व तथा सर्वभेदराहित्य च प्रतीयते इति तस्य निर्भेदत्व नित्यत्व च स्यादिति वाच्यम् शास्त्रेण तस्य न निर्भेदत्व सिद्ध्यति प्रत्युत तस्य भेदवत्त्वस्यैव श्रवणात्। "ज्ञाज्ञावजावीशाऽनीशा" इत्यादि शास्त्रेषु नित्यानामेव चिदचिदीश्वरादीना पारमार्थिकभेदस्यैव श्रावितत्वात्। तत्र चित्पदवाच्य शरीराधिष्ठितो जीवोनित्योभिन्नश्च न स्यात् तदाकृतिहितिरकृताभ्यागमदोषाभवेताम् ज्ञानित्वाज्ञानित्वमनुष्यदेवादिव्यवस्थाऽकस्मिकीभवेत् तथाऽन्यानुभूतेन तदन्यस्य स्मरणमप्यापतेत्। तस्माज्जीवस्य चित्पदवाच्यनित्यत्व परस्पर पारमार्थिकभेदोऽवश्यमेव सिद्ध्यतीति। तथाऽचित्पदवाच्यप्रकृते नित्यत्व भेदवत्त्व न स्यात् तदातदधीनससारस्यानादित्व न स्यात् किन्तु कादाचित्कत्वमेव भवेत्तस्मात्प्रकृतेरपि प्रवाहनित्यत्व भेदवत्त्वमपि मन्तव्यमेवशास्त्रप्रामाणिकै। परमेश्वरस्य नित्यत्व परस्परभेदवत्व न स्यात्तदा तदुपासनया मोक्षवार्तादत्ताञ्जलि स्यात। तदुक्तम् "स्वर्गापवर्गयोर्मार्गमामनन्ति मनीषिण। यदुपास्तिमसावत्र परमात्मा निरूप्यते। ईश्वरश्रवणमनननिदिध्यासनादीनो मोक्षोपयोगित्वात्। तथा ज्ञाने यत् सजातीयभेदो निराकृत, सोपि निर्वाधप्रात्यक्षिक प्रतीत्यैव निराकृतो भवति। तत्र ज्ञानजडयो परस्पर भेद प्रत्यक्ष स चावाधित एव। एव जीवस्य परस्पर भेद सजातीयो विजातीयो वा एतेषां च सर्वज्ञसर्वसर्जकपरमात्मनाभेद शास्त्रलोकादि प्रसिद्ध एवेति। तस्मात् अजत्वहेतुना ज्ञानेयत्सजातीयविजातीयभेदस्य निराकरण कृतम् तदजस्यैव जीवस्यशरीरेन्द्रियादिभ्यो भेदपर्यायविभागस्य समर्थनेन व्यभिचरित प्रत्यक्षादिनावाधहतविषयम् वन्हावनुष्णत्वानुवदेवेतिदिक्।

यदपि पूर्वं कथितं यद्ज्ञाने नास्तिकश्चिद्धर्मोमानसिद्धः। ज्ञानत्वंतु ज्ञानधर्मो ज्ञानगतः। तदपि नमनोरमम् शास्त्रानुमानादिप्रमाणेन स्वयं प्रकाशत्वनित्यत्वादीनां सिद्धत्वेन तेनैव व्यभिचारात्। न च स्वप्रकाशत्वं नित्यत्वं च ज्ञानरूपमेवेति वाच्यं, तत्रापि विवादात्। ज्ञानस्वरूपं स्वीकृत्यतदनुमेयं क्षणिकंवेत्यादि विवाददर्शनात्वादिनाम्। एवं स्वरूपभेदाच्च। तत्र ज्ञानंनाम स्वसत्तयैवकस्यचित्प्रकाशनम् स्वयं प्रकाश-

सविदि सजातीयविजातीयभेदनिषेधकानुमाने, अजायमाने आत्मनि व्यभिचारादिदोष प्रदर्शनेन तदनुमाननिराकरणेन पारमार्थिकभेदस्यात्मनि ज्ञाने च ससाध्य, ज्ञानेस्वगतभेदो नास्ति, ज्ञानगतज्ञानातिरिक्तधर्मस्यभावेन, स्वगतभेदोनास्तीत्यनुमानेपि दोषमुक्त्वातदनुमानस्यापि निराकरणायोपक्रमते "**यदपि पूर्वकथितमित्यादि** । अस्या सविद् प्रमाणसिद्धोज्ञानगतो नास्तिकश्चित् धर्म, ज्ञानत्वतु धर्मोनास्ति कश्चित् धर्मिभिन्नधर्मस्यानभ्युपगमादित्यर्थ प्रश्नवाक्यस्येति। उत्तरयति **तदपि न मनोरमम्**। उत्तरवाक्य विवृणोति—**शास्त्रानुमानेनेत्यादि,** शास्त्रेणानुमानेन च स्वय प्रकाशत्वादिकं ज्ञानधर्म इति साधनादित्यर्थ । एवञ्च ज्ञानधर्माणा स्वय प्रकाशत्व नित्यत्वादीना प्रमाणसिद्धत्वप्रतिपादनेनज्ञाने धर्मनिषेधकानुमाने हेतोर्बाधितत्वात्, वन्हौ शैत्यसाधकद्रव्यत्वहेतौ बाधवत्। अर्थात् सविदज्ञानधर्माणा शास्त्रादिप्रमाणसिद्धत्वप्रतिपादनात् सविदिज्ञानेधर्मसाधकहेतोर्बाधितत्वमर्थत एव सिद्ध्यतीति । अतएव ज्ञानपक्षकव्यतिरेक्यनुमाने, तथा ज्ञानत्वादिधर्मपक्षकेचान्वयिनि सविद्धर्मनिषेधकानुमाने पक्षमादायैव व्यभिचारदोषस्योद्भावन भवतीति ज्ञेयम्। ननु ज्ञानधर्मानित्यत्वादयोज्ञानरूपा एवेतिवाच्यम्, धर्मस्यधर्मिरूपत्वसिद्धावपि तत्र धर्मे वादिना धर्मिस्वरूपस्वीकर्तृणा विवादस्यपरस्पर दर्शनात्। ज्ञानस्वरूपता मत्वैव च न तस्यानुमेयत्व स्वीकुर्वन्ति केचनानुमितिगम्यत्व स्वीकुर्वन्ति।

यत् सत् तत् क्षणिकम्। तत्रापि केचनप्रत्यक्षगम्य केचनानुनानगम्यमित्येव परस्पर कलहायन्ते। इत्येव विवादविपयीभूतज्ञानधर्माणा नित्यत्वादीनामुभयमसहमतज्ञानात्मकधर्मिस्वरूपत्वनकथमपि सिद्ध्यतीनिभाव । ननु यथा घटपटादीनामाकारप्रकारभेदाद्भेदाभवन्तितथैवज्ञानतद्धर्मयोरपि, आकारप्रकारप्रकारयोर्भेदात्तयोधर्मधर्मिणोर्ज्ञानज्ञानत्वयोर्भेद एव भवति नतु तयोरेकत्वमित्याशयेनाह **स्वरूपभेदाच्चेति**।

अथ धर्मधर्मिणोरभेदवादिमते तयोर्भेद एव सिद्धोऽर्थात् हेत्वभाववान् पक्ष, यथाशब्दो गुणश्चाक्षुपत्वादित्यनुमाने शब्दपक्षकगुणत्वसाध्यकचाक्षुषत्वहेतौ, शब्दस्यश्रावणतया, तत्रचाक्षुषत्व नास्ति, इति चाक्षुपत्वाभाववान् शब्द इति ज्ञाने जाते गुणत्वव्याप्यचाक्षुषत्ववान् शब्द इत्याकारकपरामर्शाभावेन शब्दे गुणत्वसाधकचाक्षुषत्व स्वरूपासिद्धम्। तथैव प्रकृते ज्ञानज्ञानत्वयोर्भेदोऽसिद्ध इत्याशङ्का वारयितु तयो स्वरूपभेदमेवोपपादनायाह **तत्रज्ञानंनाम** इत्यादि,

तातुसत्तयैवात्मने प्रकाशमानता। प्रकाशस्तु चिदचिदादिसकलपदार्थसाधारणो धर्मः। प्रकाशात्मकधर्मस्यास्वीकारे व्यवहारानुगुणस्यैव प्रकाशवाच्यत्वोपगमः।

कस्यचिदित्यस्य, कस्यचिदर्थस्येत्यर्थे। ज्ञानमित्यत्र, भावप्रधानो निर्देशस्तेन ज्ञानत्वमित्यर्थः। अथवा प्रकाशनमेव प्रकाशकम्। आत्मने स्वस्मैस्वाश्रयायवा। स्वाश्रयाय स्वविषयप्रकाशकत्वमेव सवेदननिष्ठ सवेदनत्वम्, स्वय भासमानत्व च सवेदनस्य स्वय प्रकाशकत्वमित्येव प्रकारेणज्ञानतद्गतधर्मयो स्वरूपभेद प्रतिपादित इति बोध्यम्।

तत्र सवेदनत्वस्वप्रकाशत्वशरीरघटक प्रकाशशब्दार्थं दर्शयितुमाह **प्रकाशस्त्विति** अय च प्रकाशो मीमासकाभिमतज्ञातताऽपर्यायोज्ञानगतोधर्मविशेषरूपएव। नाय प्रकाशो जडपदार्थमात्रस्यैवधर्म किन्तु चितोपि धर्मविशेष। अर्थात् प्रकृतिजीवपरमेश्वराणा प्रमाणसिद्धसर्वपदार्थानामय धर्म इति सवित्सिद्धौ प्रतिपादनात्। ननु यदि प्रकाशस्य धमान्तरत्व स्वीक्रियते तदा को दोषस्तत्राह **धर्मस्यास्वीकारे** इति। व्यवहारप्रयोजकत्वमेव ज्ञानाधीन प्रकाशपदवाच्यम्। अर्थात् यावन्तो व्यवहारा भवन्ति ते सर्वेज्ञानाधीना इति ज्ञानधर्मप्रकाशात्मककारणाभावे आदानप्रदानादिका सर्वेपि व्यवहारा विलुप्ताभवेयुरिति प्रकाशस्वीकारोऽप्यावश्यक एवेति। नच तदाऽव्यवह्रियमाणस्थले का गतिरितिवाच्यम्, तत्कालेऽव्यवह्रियमाणत्वेपिज्ञानाधीनयोग्यताया विद्यमानत्वात्। अत्रायमर्थ कारणत्वनामनियताव्यवहितकार्यपूर्वकालिकत्वम्। तद्द्विविधम्, फलोपधायक योग्यता रूपच तत्रघट प्रतितात्कालिकदण्डादिक तेषा दण्डादीना तदुत्तरक्षणे एव घटोत्पादकत्वात्, तेन दण्डादिक फलोपहितकारण भवति। योग्यत्व च कारणतावच्छेदकीभूतधर्मवत्वमेव, यथापर्वतीयो दण्ड स च वने विद्यमानोन तदाघटमुत्पादयति किन्तु कालान्तरे घट जनयति, तत्रकारणतावच्छेदकदण्डत्वस्य वन्यदण्डेपि विद्यमानत्वात्। अथात् तात्कालिक कारण यद्भवति तत् फलोपहितम्, अन्यदायद्भवति जनक तत्र योग्यतारूपैवकारणता। तथैवेहापि, अव्यवह्रियमाणस्थलेज्ञानस्य कारणता योग्यता रूपैवेति।

एवमेकत्वसख्यावच्छिन्नत्वमेवज्ञान एकत्वधर्मो भवति। एव कालानवच्छिन्नत्व ज्ञानेनित्यत्वधर्मोदेशानवच्छिन्नत्वज्ञाने विभुत्वमित्येव ज्ञानेस्वप्रकाशत्वनित्यत्वविभुत्वैकत्वादयोऽनेके धर्मा भवन्ति, ते च सर्वेधर्माधर्मिभ्य परस्परच विभिन्नाएवेतिननिर्भेदत्वज्ञाने सभवतीति किन्तु पारमार्थिक एव भेदो ज्ञाने भवतीति निर्भेदानुनान सर्वथैव निरालवनमित्याशय प्रकरणस्य सक्षिप्त।

ननु जडत्वाभाव स्वप्रकाशत्वम्, देशानवच्छिन्नत्व व्यापकत्वमित्यर्थ। कालानवच्छिन्नत्व नित्यत्वम्, अर्थात् य पदार्थोजन्यते स उत्पत्ते पूर्वमनागतकालोपस्थितिसमयेवर्तमानकालेनावसाने भूतकालेनेत्येव वर्तमानादिकालेनावच्छिन्नमेव भवन् अनित्य इति व्यवह्रियते। यस्तु न केनापि

कालेनावच्छिद्यते स नित्य इति कालावच्छेद्यत्वाभाव एव नित्यत्वम् । एवम् सर्वगत पदार्थोयेन केनापि देशेन सम्बद्ध एव भवति, स च प्राचीप्रतीच्युदीच्यवाची, ऊर्ध्वात्मकोधोभागात्मक इत्येतेषु अन्यतमस्तत्र भवत्यवेति तेनान्यतमे न सवद्ध । एकदेशसवद्धस्तद्विरोधिदेशेन सवद्धो न भवति विरोधादिति पूर्वस्यासवद्धो न प्रतीच्यादिभि मवद्ध्यत इत्यादिप्रतीते । यस्तु न केनापि देशेन सवद्ध स सर्वव्यापक सर्वमूर्तसयोगीभवन् व्यापको विभुर्वा कथ्यते । ततश्चानवच्छिन्नत्वम् देशावच्छेदाभाव एव व्यापकत्वम् एव स्वव्यवहारायपरापेक्षो जडोऽथवा ज्ञानानुभावत्व जडत्वजडत्वाभावश्च स्वप्रकाशत्वम । बहुत्वाभाव एवैकत्वम् । तथा च स्वप्रकाशत्वानित्यत्वविभुत्वैकत्वाना सर्वेषामभावरूपत्वमेव नतु स्वप्रकाशत्वादयोभावात्मका पदार्था भवन्ति । अभावश्चाधिकरणात्मक । यथा जलादाविद्यमानोगन्धाभावो जलात्मक एव लाघवात्, जलाधिकरणस्यक्लृप्ततया जलादित एव निर्वाहो भवति, तत्रातिरिक्ताभावस्य तदतिरिक्ततदधिकरणस्य च पार्थक्ये गारव भवति । अभावस्याधिकरण रूपे च क्लृप्तपदार्थेनाधिकरणेनैव निर्वाहात् लाघव भवति । सोयमभावोऽधिकरणात्म इति मीमासक मतम् । एवञ्च जडत्वाभावात्मकस्वप्रकाशत्वादिकानि अभावरूपाणि नतुभावात्मकानि । अभावस्यचाधिकरणरूपतयैव निर्वाहेन सविदोज्ञानस्य धर्मकत्वमावहतीतिचेन्न, भावानववोधात् । अयभाव भवेदेवमभावस्याधिकरणरूपत्वे सति, परन्तु तदेव न सभवति, अभावस्याधिकरणरूपत्वेन लाघवमपितु गौरवमेव भवति, तथाहि यदि अभावोऽतिरिक्तस्तदाऽतिरिक्तेन तेनाभावेनैवनिर्वाहो जायते अधिकरणात्मकत्वेतु, तदधिकरणानामनेकत्वाद् गन्धाद्यभावस्यानेकत्वेन महद्गौरवमेवापद्येत मीमासकस्य पण्डितमन्यस्येति । अपिच यद्यभावोऽधिकरणात्मको भवेत्तदागन्धाभावादिजलाद्यधिकरणयोराधाराधेयभावाभावेन गन्धाभाववज्जलादिकमिति प्रतीति सर्वानुभवसिद्धाव्याहता भवेत् । आधाराधेययोर्भेदमूलकत्वात् नहि भवति य एवाधार स एवाधेय तदुक्तमुदयनाचार्येण "नहिसुशिक्षितोपि नटवटु स्वस्कन्धमधिरोहितु शक्नोतीति । किञ्चतयोरैक्ये पुनरुक्तिरपि स्यात् गन्धाभावे कथिते तदभिन्नजलादिकमपिप्रतीयेत, जलादिप्रयोगेतदभिन्नजलादिकमपिज्ञायेत । परन्तु नैवकुत्रापि भवतीति । तस्मादभावोनाधिकरणरूपोऽपित्वतिरिक्त एव । किंच "योगुणो यदिन्द्रियग्राह्यस्तदभावोपि तदिन्द्रियेणैव गृहीतोभवतीति युक्तिसिद्धो नियम । यथागन्धात्मकोगुणो घ्राणेन्द्रियेण गृह्यते यदा गन्धाभावोपितेनैव घ्राणेन गन्धग्राहकेण गृह्यते । अभावस्याधिकरणरूपत्वेतु गन्धाभावस्य जलात्मकादे घ्राणेण ग्रहण न स्यात्, जलादीनाचक्षुरादिग्राह्यत्वात् । घ्राणरसन श्रोत्राणाद्रव्याग्राहकत्वात् । चक्षुस्त्वक् मनसामेवद्रव्यग्राहकत्वनियमात् । ततश्च गन्धप्रतियोगि ग्राहकघ्राणेनजलादीनामग्रहणेन "यो गुणोयदिन्द्रियेण गृह्यते" इत्यादिनियमोवाधित एवस्यात् । तस्मादभावोनाधिकरणरूप किन्त्वतिरिक्त एव । एवचाधिकरणस्यानेकत्वेप्याधेयभूताभावस्यैकत्वाद् लाघवमाधाराधेयभावश्चापि समुपपादितो भवतीति ।

एवं कालानवच्छिन्नत्वं नित्यत्वम्। एवमेकत्वं संख्यावच्छेदेनैवैकत्वमिति। न च जडत्वा-

एव यथाऽधिकरणरूपोनाभावस्तथैवज्ञानरूप कालरूपोपि न भवति, अप्रत्यक्षत्वापत्ते.। अर्थात् गन्धाभावादेर्यदिकालरूपत्वतदा सर्वदैवतस्य प्रत्यक्षतानस्यात्, कालस्येन्द्रियाग्राह्य-त्वात्। ज्ञानरूपत्वेतु गन्धाभावादे घ्राणादिग्राह्यता न भवेत्, ज्ञानस्यमनाग्राह्यत्वेन तदतिरिक्त ग्राह्यत्वाभावात्। ततश्चाभावो न ज्ञानरूप कालरूपो वा सभवति। एवमाधाराधेयभावानुपपत्ते नाधिकरणरूपोऽपित्वतिरिक्त एव। किञ्चालङ्कारशास्त्रनिष्णाताअपिनाभावस्याधिकरण रूपता मन्यन्ते। यद्यभावस्य अधिकरणरूपतानुमोदितोभवेत्तदा "निर्दूपणा गुणवतीरसभाव पूर्णासालकृति कमलकोमलवर्णराजि। सा मामकीनकवितेव मनोऽभिरामारामाकदापिहृयान्ममना-पयाति ॥" अत्रनिर्दूषणेति पदेन सामान्यभाव समुपस्थापितो भवति, सच दोषसामान्याभावोऽ-भावत्वादधिकरणरूपोऽर्थात्, गुणरूप एवेति दोषाभाववत्तयैव गुणवत्वप्राप्ति मभवेन दोषाभावात् पार्थक्येन, गुणवतीति विशेषण निरर्थकमेव पण्डितराजस्यानो मन्ये यदयमभावोनाधिकरणरूपो-ऽपितु परिगणितषडभावव्यतिरिक्त स्वतन्त्र एव। एवञ्च निर्दूपणेति विशेषणेन दोषसामान्याभावो विधेये आधेयतावच्छेदकधर्मोऽभावत्व विधेयतावच्छेधकसवन्धश्च स्वरूप एव। गुणवत्यत्र गुणवत्वस्य गुणस्य वा विधेयवत्वभामिन्याश्चोद्देश्यत्वम्, ततश्चभामिनीमुद्दिश्यगुणवत्वस्य गुणस्यवा विधानम्। तत्र विधेयतावच्छेदकधर्मो गुणत्व तत्सवन्धश्च समवाय इति, एकत्र विधेयत्वमभा-वस्य, तदीयो विधेयतावच्छेदकोऽभावत्व सवन्धश्च स्वरूप। अपरत्रविधेयोगुणो विधेयतावच्छे-दकधर्मीगुणत्वविधेयतावच्छेदकसवन्ध स च सर्वोपिभावात्मक इति विधेयप्रभृतिसर्वस्यभावतया, तदुभयपदयो सार्थक्य भवतीति। अन्यथातु तादृशवैलक्षण्यभान न स्यादतोऽभावोनाधिकरणरूप इति सक्षेप।

एवचाभावाना जडत्वादिप्रतियोगिकाना कालानवच्छेद्यदेशानवच्छेद्यत्वादीना तत्तत्प्रतियो-गिकानामतिरिक्तमधिकरणवृत्तिधर्मान्तररूपत्ववाऽधाराधेयभावप्रतीतिवलात्। ततश्च भावात्मकधर्मेण सविद सधर्मकत्व वा नवा भवतु किन्तु जडत्वाभावादिरूपाभावात्मकधर्मैरेव सधर्मकत्व सविदोऽप-रिहार्यमेव भवतीति। यस्मिन्प्रतीते निषेध्यवुद्धिर्नभवति तस्यैव तयाभावरूपत्वम्। अर्थात् यथाघटवद्भूतलमित्यत्र, घटाभाववद्भूतलमितिनिश्चयतद्भावग्राहकतर्थाऽभावबुद्धि प्रतिबन्धक। तथैव घटाभाववद्भूतलमितिज्ञान प्रति घटवद्भूतलमिति निश्चयोपि प्रतिबन्धको भवत्येव। तत्रोक्त लक्षणसमन्वयो भवत्येव, यस्मिन्घटाभावे प्रतीते सति, निषेध्यवुद्धिर्नभवति। अर्थात् यत्राधिकरणे घटाभावो ज्ञायते तत्राधिकरणे निषेधरूपघटाभावस्य निषेधोघट इतितादृशवुद्धिस्तत्राधिकरणे कथमपि न भवतीति तत्र तस्यैव घटाभावस्यैवाभावरूपत्वम्। तथा घटाभाववद्भूतलमित्यत्र, यस्मिन् घटाभावाभावात्मकघटे प्रतीतेज्ञाते सति, तत्रनिषेध्यबुद्धिर्घटाभावबुद्धिर्नभवति, घटाभावाभावात्मक-

भाव एव स्वयं प्रकाशत्वं कालानवच्छिन्नं नित्यमिति न कोपि दोष इति वाच्यम् इत्थं भूतैरपिइचितिधर्मभूतैर्व्यभिचारात्। ज्ञाने च निषेध्यत्वेनाभिमतजडत्वादिविरुद्धानेक

घटस्यैव, तत्रतदभावरूपत्वम्। अर्थात् घटाभावात्मकघटस्यैव तत्राभावरूपत्वं भवतीति। प्रकृतेच प्रतीयमानायामपि संविदिज्ञानमनित्य नवेति संशयादिदर्शनात्, नतदभावरूपत्वमर्थात्, अनित्यत्वाभावनित्यत्व तस्या संविदो भवति। किन्तु सर्वकालसम्बधित्वसर्वदेशसवन्धित्वादिविरोधिधर्मान्तरलक्षणमेव नित्यत्वादितस्या भवतीति। [यथाघटवद् भूतलमितिज्ञानेघटाभाववद् भूतलमिति बोधो न भवति, किन्तु घटाभावाभाववद् भूतलमिति प्रतीतिव्यवहारोजायते इति घटाभावाभावो घटरूपोभवति। परन्तु घटभेदाभावो न घटस्वरूपो भवति, किन्तु घटत्वरूपएव अत्यन्ताभावाभाव प्रतियोगिरूप भेदाभावस्तु प्रतियोगितावच्छेदकरूप एव। अतएव धर्माभावधर्मिभेदयो समानतेति यथाघटत्वरूपधर्माभावो घटेतरपदार्थेषु, तथाघटभेदश्च स्वप्रतियोगिन विहायैवतिष्ठतीति धर्मात्यन्ताभावधर्मिभेदौसमानावितिन्यायविदा पन्था] संविदिज्ञानेतु विरोधिधर्मवत्त्वबोधन विनाजडत्वादिनिषेधकत्व न प्रतिज्ञावाक्यस्य। प्रतिज्ञाया विरोधिधर्मत्वबोधनेतु ज्ञानस्यसंविद सधर्मकत्वमेवसिद्ध्यति नतु निधर्मकत्वम्। नच जडत्वविरोधिस्वरूपत्वमेव प्रतिज्ञया बोध्यते संविदोज्ञानस्य, नतु विरोधिधर्मवत्वमिति वाच्यम्, प्रपञ्चमात्रस्याथात् सत्राधिष्ठानरूपाया संविदोज्ञानस्य सर्वविरोधित्वस्यासिद्धे। अर्थात् योहियस्याधार तस्य तद्विरोधित्वाभावात्। यथायोदेशो घटस्याधार सदेशो घटादेराधेयस्य विरोधि नभवतीति। यदाधार एव न भवेत्तदा तस्मिन् तस्यावस्थानमेव न स्यात्। नांह भवति बन्हि विरोधिजले वन्हेरवस्थानमपितु तस्य वन्हेस्तत्र जलेविलय एव भवति। एवमत्र प्रकृते सर्वपदार्थस्याधिष्टानभूतसंविदोज्ञानस्य स्वकीयाधेयेन सह विरोधित्वमशक्यमेव, अत सर्वाधिष्ठानसंविदोज्ञानस्य सर्वविरोधित्व सर्वथैवासिद्धमिति। नच शुद्धया संवित् सैवसर्वाधिष्ठानम्। तदुक्तम् "आश्रयत्वविषयत्वभागिनी निर्विभागचितिरेव केवला। पूर्वसिद्धतमसोहि पश्चिमो नाश्रयोभवति नापि गोचर" इति। [अयमर्थ —यत् चैतन्य सर्वविभागरहितम्, तदेवतादृशम ज्ञानस्याश्रयरूप विषयरूप च भवति, सवाधिष्ठान मायायास्तज्जनितकार्यस्य चाधिष्ठानम्। किन्तु, पश्चिमोविद्यान्तरकालेऽज्ञानेनजायमानो जीवादि तत्पूर्वसिद्धमायायाआश्रयो विषयो वा न भवति, कार्यस्यकारणाश्रयत्वतद्विषयत्वाभावात् "मायाख्या कामधेनोर्हिवत्सौ जीवेश्वरावुभौ। यथेच्छ पिवता द्वैत तत्त्वत्वद्वैतमेवहि" मायाच विद्याच स्वयमेवभवति। अर्थात् सर्वस्यवस्तुजातस्य कारणमज्ञानम् तस्याज्ञानस्याश्रयो विषयश्चशुद्ध चैतन्य ब्रह्मचैतन्यमेव। अज्ञानजनितश्चजीवोन तस्या मायाया कारणम्। ततश्च शुद्धमेव चैतन्यमधिष्ठानम् तस्यैवजडत्वादिधर्मविरोधित्वमितिवाच्यम्, एतादृशसंविदोज्ञानस्य सर्वविशेषधर्मविरोधित्वे स्वीकृते यथा जडत्वादिप्रत्यनीकताऽर्थात् विरोधित्वात्, शुद्धरूपाया संविदोजडत्वादिप्रत्यनीकतापि स्यात्, तथा च जडाजडविलक्षण-

प्रकारकधर्माभावे निषेधकथनं कथनमात्रमेव भवेत्। चेत्यमप्यज्ञानमात्मनि विद्यते-तदिष्टं भवताम्। अपिचास्य षष्ठीविभक्त्या ज्ञानस्य सम्बन्धं कथयित्वा यदि तस्या अनुभूतेर्निर्धर्मकत्वं प्रतिज्ञायते तदा माता वन्ध्येति वद् विरुद्धतैव भवतीति।

त्वमेव भवेत्, अर्थात् जडविरोधित्वे जडविलक्षणत्वम्, अजडत्वप्रकाशविरोधित्वेऽजडवैलक्षण्यत्वमापतेत। नचैतद्युक्तम् यथा घटादिविरोधित्वेऽघटवत्वम्, अघटविरोधिघटत्व भवति। नतूभयविलक्षणत्वम् परस्परविरोधेहि न प्रकारान्तरस्थितिरिति नियमात। तथाप्युभयविलक्षणत्वेऽनिर्वचनीयनैवापतेत्। तस्यच प्रमाणागम्यत्वेन वन्ध्यापुत्रवदसत्वमेवेति।

ननु संविदि, अजडत्वाद्यभावस्य विद्यमानत्वे न सा संविद् जडाऽपितु अजडत्वनित्यत्वसर्वगतत्वादिरूपैवसेचिचेत्, न तथा सति अजडत्वाद्यभावेपि यदि साऽजडैवतथा गतिसर्वधर्मत्वाभावेपि सर्वधर्मस्वरूपैव सा संविदित्यस्यापि वक्तु शक्यत्वात्। ततश्च न संविदिसर्वधर्मप्रतिषेधो वक्तु शक्यति। किञ्च "अहसुखीज्ञानी" इत्यादि प्रत्यक्षेण, ज्ञान स धर्मक पदार्थत्वात् घटादिवदित्यनुमानेन, "य सर्वज्ञ ससर्ववित्, ज्ञाज्ञौद्वावजावीशो" इत्यादिश्रुत्या "अजोपिसन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोपि सन्। प्रकृतिं स्वामधिष्ठायसभवाम्यात्म मायया" इत्यादिस्मृतिप्रमाणादिप्रमाणेनेतिहासपुराद्युपबृंहितेन संविद सधर्मकत्वमेव सिद्ध्यतीति। यद्यप्यनेके आचार्या स्वस्वबुद्धिविभवेनवचनाभासतर्काभासानवलम्ब्य येनकेनापि प्रकारेण स्वस्वसम्प्रदायावष्टम्भेन निर्विशेषवादसस्थापयन्तो दृश्यन्ते तथापि तेषा साहस मात्र नतु युक्तितर्कोपबृंहित किन्तु स्वबुद्धिप्रभवमितिदिक्। ननु भेदादिधर्मपक्षकचित्सवन्धित्वाभावानुमाने, भेदादिकोधर्मश्चित्सवन्धित्वाभाववानित्यनुमाने व्यभिचार दर्शयितुमाह **चेत्यमप्यज्ञानमात्मनिविद्यते** इत्यादि तत्रचेत्यम्=अनुभवयोग्यमनुभाव्यमित्यर्थ। आत्मनि=चिन्मात्रे आत्मनि—अर्थात्—अनुभाव्यमनुभवविषयभूतम्। न जानामीतिप्रतीतिसाक्षिकमज्ञान भवन्मते आत्मन्येव तिष्ठतीति भवता मतम्। आत्मन एवाज्ञानमिति। ततश्च हेतो तत्र सत्वेन तत्रसाध्यस्यत्वयन्त्रासत्वाद्भवत्येव व्यभिचारदोष इति। किञ्च चितो धर्मत्वाभावसाधकमनुमान न युक्तम्, प्रतियोग्यप्रसिद्धे। अर्थात्, अस्या अनुभूते निधर्मत्व साध्यते, तत्रानुभूतेरिति षष्ठीविभक्त्या, अनुभूते सवन्ध कथयित्वा, तदनन्तर तस्य सवन्धस्य निषेधे क्रियमाणे "मे माता वन्ध्येतिवद् भवति, यथा मे मातेति कथने पुत्रस्यमात्रासह सवन्ध सिद्ध इति पुनर्वन्ध्येति कथन व्याहतार्थक वचन भवति। तथैव प्रकृते "अस्या अनुभूतेरित्यनेनानुभूतितदीयधर्मयो सवन्ध सिद्ध। पुनश्चानुभूतेधर्मोनास्तीति कथन विरुद्धार्थकमेव भवतीति।

तस्मात् संविदोज्ञानस्य सिद्धि प्रकाशोऽभ्युपगम्यते नवा? तत्रयदि सम्विद सिद्धिप्रकाशो विषत इति प्रथम पक्ष स्वीक्रियते, तदासंविद प्रकाशरूपधर्मेण सधर्मवत्वमापद्येत संवित् स्वप्रकाशात्मकधर्मवती, पदार्थत्वात् घटादिवत्, यत्रयत्रपदार्थत्व तत्रतत्रधर्मवत्व भवत्येव, घटादौ

अथ संवित् सिद्धिरूपैवेति । तदा कस्येयमिति चेत् न कस्यापीयं संविदिति चेत् तदा संवित्त्वमेव न स्यात् । सप्रतियोगिकत्वात्, पितृपुत्रादिशब्दवत् । न चात्मन इयं संविदिति वाच्यम् षष्ठ्यर्थानिरूपणात् । एवं च गगनकुसुमसदृशे तादृशानुभूतौ वेदान्ततात्पर्यकथनं तद्विनाशार्थमेवेति ।

पदार्थत्वे सति तत्र घटत्वादिधर्मवत्व भवत्येवेत्यन्वय्यनुमानम् । यत्र चधर्मवत्व नास्ति तत्र पदार्थत्वमपि न भवति यथाकूर्मरोमादिकम । नच "एषवन्ध्यासुतो याति खपुष्पकृतशेखर । कूर्मक्षीरचयेस्नात शशशृङ्गधनुर्धर " इत्यादिप्रतीत्या, तेषामपि ज्ञानविषयत्वमस्त्येवेति वाच्यम्, अत्र ज्ञानविषयत्व-मित्यनेन प्रत्यक्षज्ञानविषयत्वस्यविवक्षणात् । अयोग्यबिषयादौ परोक्षज्ञानविषयत्वेऽपिप्रत्यक्षज्ञानविपय-ताया असत्वादिति । "यदि सविद सिद्धिर्नाभ्युपेयते" इति द्वितीय पक्ष आद्रियेत तदा सविद प्रकाशानभ्युपगमेशशविषाणादितुल्यत्वमेवस्यात । यथाखपुष्पादीना प्रकाशाभावेतुच्छत्व तथैव सविदोपि प्रकाशानाश्रयत्वेन तुच्छत्वस्यापरिहार्यत्वमेवस्यात् । तस्मात्सविद सिद्धि प्रकाशेस्वीकृते तादृश-धर्मेणसधर्मत्वमेव, अनभ्युपगमे शशविषाणादितुल्यत्व स्यादत सविद सिद्धिर्वक्तव्यैव, तदभावेऽप-दार्थत्वमेव संविदो भवेदिति सविज्ज्ञान सधर्मकमेव न निर्धर्मकमिति सक्षेप ।

सर्वधर्मरहित ज्ञानमिति पक्षमतीतप्रकरणेननिराकृत्यसधर्मकत्वमेव सविदो नतु निर्धर्मकत्व तस्या इति गतप्रकरणे सिद्धान्तिना स्थापितम् । तत्र पुन पूर्वपक्षवादी, मृताखोर्गोमयाघ्राणेनपुन र्जीवितुमिति प्रत्यवतिष्ठते **अथसंवित् सिद्धिरूपैवेतीति** । अर्थात् येय सवित्ज्ञानसासिद्धिरूपैव भवति, नतु प्रकाशस्याश्रयरूपा, किन्तु प्रकाशस्वरूप एतावता न सिद्धेस्तुच्छवन्ध्यापुत्रादितुल्यत्व नवा सधर्मकत्वमित्यक्षरार्थ । तदेतन्मतमाक्षेप्तुमाह, **तदा कस्येयमिति चेदिति** । यदीय सविद् न प्रकाशधर्मिका किन्तु प्रकाशरूपैव तदेय कस्य । यथा गृहमिति कथने गृहादे सापेक्षत्वात्, देवदत्तादे प्रतियोगिन अपेक्षा भवति, तथैव प्रकृते सवित् शद्बस्य सापेक्षत्वे प्रतियोगिनोऽपेक्षानिय-मतोभवत्येव कस्यसवन्धिज्ञानमित्याकाक्षा ।

इत्युपश्रुत्योत्तरयति पूर्वपक्षवादी **न कस्यापीति** अर्थात् सवित्पदवाच्य न कस्यापि सवन्धि भवति स्वतन्त्रत्वादित्यर्थ । सिद्धान्ती उत्तरयति=**तदासंवित्वमेव न स्यादिति** । अर्थात् यदि सवित् न कस्यापि सवित् स्यात्, तदा तस्या सत्वमेव न स्यात् प्रतियोगिसापेक्षत्वात् । यथा **"पुत्र"** इति कथने नियमेन पितुरपेक्षा भवति, यतस्तदुभयोर्नित्यसापेक्षत्वात् । तथैव ज्ञानमिति कथने किं विषयक कस्य सविदिति नियमत आकाक्षा जायते एव । कर्मण कर्तुश्चाभावे तदु-भयनियतस्यज्ञानत्वमेव न स्यात् । तस्मात् न कस्यचित्संविदिति कथन सर्वदैवाशोभनमिति पुन पूर्वपक्षवादी कथयति **आत्मन** इत्यादि अर्थात् ज्ञानमिदमात्मन सवन्धि आत्मन सवन्धितदिति । उत्तरयति **षष्ठयर्थानिरूपणादिति** अयमर्थ आत्मानुयोगिकात्मप्रतियोगिकसविद सिद्धि-

अपि च ज्ञानस्यनित्यत्वेपि अनित्यतापक्षवदेव प्रत्यभिज्ञानाऽनुपपत्तिरपरिहा-र्यैव । साचानुभूतिरनुभवकर्तारमात्मानं पूर्वापरकालावस्थायिनमाक्षिपति "अहमिद-मन्वभुवमिति । भवन्मतेऽनुभूतिस्त्वनुभूतिरेव । न च सानुभूतिरनुभूतिं प्रति कर्त्रीकर्म वा संभवति ।

रित्यर्थ । आत्मन इत्यत्रात्मशब्द स्वरूपवाचक एव । एव स्वीक्रियमाणे संविद सधर्मत्वमेवायातमिति स एव घट्टकुटीप्रभातवृत्तान्त आपतति । अर्थात, यथा कलत्रप्रतिपत्त्यु पतित्वमिव, आत्मप्रतियोगिक प्रकाशो धर्म एव संविदात्मन सिद्ध्यत्येवेत्यर्थ । किंच यत्र षष्ठी विभक्तिर्भवति तत्र प्रतियोग्यनुयोगिनोर्भेदो नियतो भवत्येव सबन्धोहि भेदे सत्येवजायते नत्वभेदे यथा 'देवदत्तस्य कवल " इत्यत्र देवदत्तकवलयोर्भेदेनैव प्रतिभासनात् । नत्वभेद भवति षष्ठी=देवदत्तस्य=दवदत्त इत्यादि प्रयोगादर्शनात् । प्रथमयैवाभेदप्रतिपादनात् "नीलोघटोदेवदत्तो दण्डीत्यादिप्रयोगात । तस्मात् षष्ठी प्रथमयोविकल्पस्यासाधुत्वेनवैकल्पिकप्रयोगाभावात । भेदे षष्ठी प्रथमात्वभेद एवेति । तस्मादात्मन इत्यत्र षष्ठीदर्शनेन स्वरूपवाचकात्मन प्रकाशोधर्म एवेति सधर्मिकसंविदिति सिद्ध्यतीति । नच "राहो शिर " इत्यत्र प्रतिवाचकराहोरनुयोगिभूतशिरसोर्भेदाभावेप्यभेदे एव षष्ठी तथैवेहापीतिवाच्यम, सतिनिर्वाहेऽभेदे षष्ठीविभक्तेरसाधुत्वात् । व्यधिकरणे एव षष्ठी, सामानाधिकरण्ये षष्ठे प्रयोगाभावात् । राहो शिर इत्यादावयवावयविनो कथचिद्भेदमादायतया प्रयोगस्य सभवात् । अत एवानन्यगतिकोय प्रयोग इति वैयाकरणा वदन्ति । एवच यथापितर प्रतिपुत्रस्य पुत्रत्व तथैवात्मप्रतियोगिक प्रकाशाख्यो धर्म संवित्स्वरूपात्मन सिध्यत्येवेति। ततश्च यथावर्णितप्रकारेण संविदोज्ञानस्य निर्विशेषत्व निराकृत्य, निर्विशेषसंविदि ये वेदान्तशास्त्रस्यतात्पर्य वर्णयन्ति ते वस्तुतवेदान्तशास्त्रस्य प्रमाण्येकुठाराघातमेव कुर्वाणास्तेभ्योस्तिलाञ्जलिमेववितीर्यन्ति । अर्थात वेदान्तस्य प्रमाण्यमेवमुपघ्नन्तीति वेदप्रमाण्यवादिनो गोष्ठीतोदूरमुत्सारणीया । विशेषविचारस्तु स्थलान्तरे द्रष्टव्यविस्तरभयादत्रविरम्यते ।

अथ विज्ञानात्मवादिनोद्वौबौद्धशकरानुयायिना । तत्र प्रथम क्षणिकविज्ञानात्मवादी । द्वितीयस्तु "सत्यज्ञानमनन्तम् " "विज्ञान ब्रह्म" इत्यादिश्रुतिपुरस्कृत्य नित्यविज्ञानस्यैवात्मतामिच्छतिस्वीकरोति च । तत्राचार्य स्थिरस्य कस्यचिदात्मनोऽसत्वे प्रत्यभिज्ञादीनामुपपादन सर्वथैवाशक्यमिति कृत्वा क्षणिकविज्ञानात्मवाद प्रत्याख्यातवान्पूर्वानुभूतस्मरण स्थिरात्मवादे एव सभवतीतिवदन् तदेव क्षणिकविज्ञानात्मवादे प्रत्यभिज्ञानाद्यनुपपत्त्या निराकृते नित्यविज्ञानात्मवादिमत पराभवितु शङ्करमतमुपस्थापयति **अपिच ज्ञानस्य नित्यत्वेपीत्यादि**—नहि ज्ञानस्य नित्यत्वस्वीकारमात्रेण 'अहमिदमन्वभवम् " इत्याकारक प्रत्यभिज्ञानमुपपन्न स्यात, किन्तु ज्ञातुरात्मनो नित्यत्वे सत्येव प्रत्य-

भिज्ञानमुपपादित भवेत् । प्रतिसन्धानतुज्ञातार पूर्वापरकालावस्थायिनमेवोपस्थापयति । मत्र न्मतेतु ज्ञानज्ञानमेव नतु ज्ञान प्रतिज्ञान कर्तृकर्म वा, एकक्रिया प्रतितस्यैककर्तृत्व कर्मत्ववा न सभ वति, तथाऽदर्शनाद्विरोधाच्च । क्रियां प्रति स्वातन्त्र्यकर्तृत्वम् परसमवेतक्रियाजन्यफलशालित्व च कर्मत्वमिति स्मरणात् । ततश्च कर्तृकर्मणोर्लक्षणभेदेनैकस्यैव कर्तृत्वकर्मत्वयो र्विरोधात् । देवदत्तो देवदत्त गच्छतीत्यादिप्रयोगादर्शनाच्च ।

अर्थात् ज्ञातुर्नित्यत्वे एव "अहमिदमन्वभवमित्यादेरुपपत्तिर्नतुज्ञाननित्यतामात्रेणेति । यद्यपि सिद्धान्तपक्षेपिज्ञानस्यनानुभववितृत्व तथापि ज्ञानस्यानुभाव्यत्व ज्ञानान्तरविषयत्वमिष्यते । अनु भवितुरहमर्थस्यात्मन एव नित्यत्वम्, तावतैव प्रतिसन्धानस्योपपादनात् । मतान्तरेतु स्वय प्रकाश त्वेन सविदोऽननुभाव्यत्वादनुभवितृत्वाच्च सविदात्मनो यथोक्तप्रतिसन्धान कथमपि समुपपादित नैवस्यादित्यर्थ । तथा च यथोक्तप्रतिसन्धानबलेन ज्ञातुरेवात्मत्व नतुज्ञानमात्रस्यात्मत्वमिति स्थितम्। अपि चात्मनोनित्यज्ञानरूपत्वमिष्येत, तदाज्ञानसविषयकत्वनियमेन सुषुप्तिकालेपि नित्यज्ञानस्यानु वर्तमानत्वेन सुषुप्तावपि विषयावभास स्यात् । नचैतत्सभवति तत्कालेज्ञानसामग्र्या अभावात् । तत्र प्रत्यक्षज्ञानकारणविषयेन्द्रियसयोगाद्यभावान्न चाक्षुषादिज्ञानम्, मनसोपि तदोपरमात् न मानस ज्ञानमन्यथा सुषुप्तिरेव न भवेत् । नवाऽनुमितिज्ञानम्, तत्कारणव्याप्तिज्ञानादेरभावात् । नोपमिति सादृश्यज्ञानाभावात्, नवाशाद्बज्ञान तत्कारणपदज्ञानादेरभावात् । तदेव न ज्ञाता ज्ञानरूपोऽपितु ज्ञानाधिकरणमेव । सत्यज्ञानमनन्तमित्यादिश्रुतिस्तु जीवस्यज्ञानरूपतां न दर्शयति किन्तु परमात्मन एव तदात्मकता दर्शयति । नच " तत्वमसीत्यादि" श्रुत्याजीवात्मनोरेकत्व सिद्धौ परमात्मवत् तस्य जीवस्यापिज्ञानरूपत्व स्यादेवेति वाच्यम्, ईश्वरत्वजीवत्वरूप विरुद्धधर्माध्यासात् तयोरेकत्वासभवात् । कश्चित्सुखी कश्चिद्दुःखी कश्चिज्ज्ञानी कश्चिदज्ञा- नीतिप्रतीत्या यदा जीवात्मना परस्परभेदस्तदा जीवात्मपरमात्मनोरेकत्वस्य दूरापेतत्वात् । नच ससारकालेऽज्ञानवशात् कदाचित्परस्परभेदेपि मोक्षकालेऽज्ञाननाशाज्जीवेश्वरयोरेकत्वस्यादिति वक्त- व्यम्, भेदस्य नित्यत्वेन तन्नाशस्यासभवात् । कदाचित्तयोर्भेदस्य विनाशेपिव्यक्तिद्वयस्य तदवस्थ- त्वात् । नवामोक्षदशायाजीव सर्वदासुखीभवतीति परमात्मवत्, मोक्षकालेजीवस्यदुःखाभावेन सुखि- त्व प्रत्ययात् " भाराद्यपगमे सुखीसवृत्त " इतिवत् । नच ज्ञानादिरूपो जीवोऽपितुज्ञानाधिकरण- रूपएव । नवा मोक्षकाले आनन्दरूप तत्रानन्द इत्यास्यानन्दवानेन, अर्शादित्वान्मत्वर्थीयाचूप्रत्य- यात्आनन्दमित्यत्राऽनन्द इतिपुल्लिङ्गतापत्ते तदेव जीवोवा परमात्मावा न ज्ञानरूपोऽपितु, आनन्द- वानेव । ततश्चनित्यविज्ञानरूपत्वमात्मनो न युक्तम् । अपितुज्ञानव्यतिरिक्तो ज्ञातैवजीव इति सिद्ध मेतावता नित्यविज्ञानात्मवादोपि निराकृत । एतस्यैव प्रपञ्चोऽग्रेकरिष्यति ।

। इति मायावाद्यभिमतनित्यविज्ञानात्मवादे तत्त्वदीप ।

ननु परमार्थतः संवित्मात्र एव पदार्थः स एवात्मा। पारमार्थिके संविन्मात्रेऽधिष्ठानेऽहमर्थस्य ज्ञातुभ्रान्तिवलेनावभासो भवति । यथा पुरोवस्थितशुक्तिकायां रजतावभासो भवतीदं रजतमिति। नहि सत्याधिष्ठानमन्तरेण मिथ्यावस्तुनोऽवभासो भवतीतिचेत्सत्यम् तथा सति अनुभवितुरहमर्थस्यानुभवसमानाधिकरणतयाऽवभासः स्यात्

अस्मिन्नद्वैतमते ज्ञानमात्रमात्मा, तत्रज्ञानस्वरूपे आत्मनि सत्याधिष्ठानेहमर्थस्य ज्ञातुरध्यासो भवति, तदनन्तरमहजानामीति ज्ञातृविषयक भ्रमात्मक प्रयोगो भवति। यथा पुरोवस्थित भास्वर शुक्तिकादिद्रव्ये सादृश्यादिवलेन रजतस्यारोपो भवति "इदंरजतमिति" तत्रतादात्म्येन रजतधर्मिण एव शुक्तिकायामारोप रजतत्वधर्मस्यैव वा समवायेन शुक्तिकाधर्मिणिभान भवति। भ्रमे आरोप्यमाणगतधर्मेणैवाधिष्ठानस्यभान भवति, इदंरजतमिति प्रत्ययेन रजतत्ववत्तयैव शुक्तिकाया स्फुरणात् नतु अधिष्ठानगता साधारणधर्मेणाध्यस्तस्यभानम्, सामान्यधर्मेणेदन्त्वादिनातुभवत्येव तदुक्तम् "समारोप्यस्यरूपेण विषयो (ऽधिष्ठानम्) रूपवान् भवेत्। विषयस्यतु रूपेण समारोप्य न रूपवदिति" [अयमर्थः रज्जौ सर्पभ्रमेऽयं सर्प इत्येव रूपेणभासमानरज्जुद्रव्यस्य, समारोप्यसर्पगत सर्पत्वस्यतदसाधारणधर्मस्याधिष्ठाने भानेन तद्वत्तयाऽधिष्ठानरज्जुद्रव्यस्य भानभवति। परन्तु विषयस्याधिष्ठानस्ययोऽसाधारणोधर्मोरज्जुत्वस्य समारोप्ये सर्पेभान न भवति, यतोरज्जुत्वज्ञानकाले सर्पस्यैवाभावात्, अधिष्ठानस्य सामान्यज्ञान भ्रमे कारणम्, तदीय विशेषज्ञानतुभ्रमस्य बाधकमिति रज्जुत्वज्ञानकालेयद्यारोप्यमाणसर्पस्यसत्ताभवेत्तदा सर्पे आरोप्येऽधिष्ठाविशेषधर्मस्यभानभवेन्नवेतिप्रश्नउदीयात् तस्मात् आरोप्यधर्मेणाधिष्ठानभान भवति, नत्वधिष्ठानगतविशेषधर्मस्यारोपेभान भवतीति] एवमत्र ज्ञानमात्र नित्यपारमार्थिक तस्मिन् पारमार्थिकानुभूतौ, अपारमार्थिकज्ञातृत्वस्य भ्रमोजायते ततश्चाहं जानामीत्याकारकज्ञातृविषयको भ्रम इति भ्रमेणैवाहमर्थस्यभानमिति तदीयमतनिराकर्तुं प्रक्रमते **ननु परमार्थतः संविन्मात्र एव पदार्थ** इत्यादि। अत्रज्ञातृत्वप्रतीतिर्भ्रमात्मिकैवेति पराभिमत प्रथमतोऽनुवदति **नन्वित्यादि** संवित्ज्ञानमात्र एव परमार्थ स एवात्मा, एतादृशस्याधिष्ठाने ज्ञानेज्ञातुरहमर्थस्य भ्रमोजायते, परमार्थभूत शुक्तिकाया पुर स्थिताया रजतवदिति। पारमार्थिके वस्तुनि मिथ्याभूतस्यारोप इति नियमेन भ्रमोपपादनार्थमेव संविदोज्ञानस्य पारमार्थिकत्वमवश्यमभ्युपेयम्। नहि निराधारे वन्ध्यापुत्रादौकस्यचिद्भ्रम इति। तदेतन्मतनिराकरोति **इति चेत्सत्यमि**त्यादि अयमाशय यत्रैकस्मिन् धर्मिणि धर्म्यन्तरस्यारोपो भवति, तादृशस्थले आरोप्याधिष्ठानयोरभेदेनाथात् सामानाधिकरण्येभान भवति, यथा इदंरजतमिति, अत्रारोप्यस्य रजतशुक्तिकयोरभेदनभान जायते।

यत्र स्थलविशेषेधर्मिणि धर्ममात्रस्यारोपो भवति, तत्राधिष्ठानारोप्ययोः विरुद्धविभक्त्यैव निर्देशोभवति नतु तत्र सामानाधिकरण्यप्रतीति। यथाशंखेपीतत्वम्, मुखदर्पणस्थम्, स्फटिके

अहमनुभव इति यथेदंपुरः स्थितसितभास्वरद्रव्यंशंखमुखचन्द्रादेराकारतयेव, रजतपीतदर्पणस्थत्वद्वित्वादिकम्। अत्रतु पृथक् तयाऽवभायमाने एवायमनुभवोऽहमर्थं ज्ञातारमनुभवात् पार्थक्येनैवोपस्थापयति दण्डी देवदत्त इतिवत्। ततश्चानुभूतिविशिष्टमस्मदर्थमवभासयन्नहं प्रत्ययः कथं विशेषणीभूतानुमात्रविषयः स्यात् दण्डात्मक विशेषणमात्रेदण्डी देवदत्त इतिवत्।

आरुण्य द्वौचन्द्राविन्यादि। प्रकृतेऽवहमनुभूतिरितिभान न भवति किन्त्वह ज्ञानवान् जानामि वा, इन्येव प्रयोगोजायते, तस्मात् परमार्थभूताया संविदि, ज्ञातुरहमर्थस्यारोपो न भवतीत्येवयुक्तमिति। नच कदाचिदहमर्थे एव संविदआरोपोजायतामिति कथन तु न सभवति, तन्मते सत्यालवनकारोपस्यैव स्वीकारेण ज्ञातुरहमर्थस्यारोपितत्वेन सन्यत्वेन तस्मिन्नसत्येऽहमर्थेसत्याया सविद आरोपा सभवात।

अथ यथा "इदरजतमित्यत्रेदमितिरजतस्य तादात्म्येनाध्यासो भवति, तथैव रजतेऽपि, इदमर्थ शुक्तिकाया आरोपोभवत्येव। आरोपानन्तरम् "इदरजत जानामि, रजतमिदजानामीत्येव क्रमेणानुव्यवसायस्य सद्दर्शनात्। तत्र प्रथमे इद विषयतात्वेनावच्छिन्न रजतविषयत्वम् तथा द्वितीयेरजत विषयतयाऽवच्छिन्न रजतविपयत्व भवति। प्रथमे रजतस्यतदीयतादात्म्यस्यरजतत्वस्य च भान भवति, द्वितीयेपि, इदमिदत्वस्यतत्सवन्धस्य च भान भवति। वाधेजाते रजतत्वतत्तादात्म्याना वाधोभवति, द्वितीयेतुरजततादात्म्योपहितेदम इदत्वतत्ससर्गस्य च वाधोजायते, अवशिष्यते च केवल स्वरूपतोऽधिष्ठानम्। एतादृशोभयमुखतादात्म्यारोपो भवतीति "अन्योन्यस्मिन्नन्योन्यात्मकतामन्योन्यधर्माश्चाध्यस्याहमिदममेदमितिनैसर्गिको लोकव्यवहार" इत्यादि, उपोद्घातभाष्यम्, ततश्चपरस्पराध्यासस्य प्रमाणिकतया सविदिज्ञातुरध्यासवत् ज्ञातरि अहमर्थेपि सविदो भविष्यति तत्र न कापिक्षतिस्तन्मतेनेति सन्यम्, यद्युभयत्रोभयाध्यास सर्वसमतोभवेत्। तथा सतिवाधोत्तरकालमधिष्ठानस्यापि वाधितत्वेनबौद्धमतवत् निरधिष्ठानकभ्रमस्य स्वीकारापातोभवेत्, तदाप्रच्छन्नवौद्धत्वमपहाय मा यमिकमतप्रवेशेन स्यात्नो वाद्धत्वमापनेदिति वेदवाह्येन सहाधिकालोपि वेदवाह्य एवेति।

एवचासत्येऽधिष्ठाने आरोपस्यासमनत्वात्, नाहमर्थेऽसत्ये सविदारोपो युक्त तथासति, अनुभवसमानाधिकरणतया, ज्ञानाऽहमयोऽहमनुभूतिरूप इति प्रतीयात्, परन्तु नैव भवति किन्तु पृथगेवावभासते, दण्डी देवदत्तवत्, अहमनुभवामीति। तत्र पृथगवभासमानत्व प्रकारतया प्रकारिणौ वैलक्षण्येन भासमानत्वमेव। अह दण्डवानितिप्रतीतितुल्यत्वमहजानामीति प्रत्ययस्येत्यहमर्थेज्ञानधर्मवत्वावगाहनमेव। किञ्चदण्डवानित्यत्र, यथा विशेषणभूतदण्डमात्रस्य सत्यत्व तस्मिन् सत्येदण्डमात्रे विशेषणे पुरुषादेरारोपितत्व न भवति किन्तूभयो सत्यत्वे एव दण्डीपुरुष इति प्रत्ययो

ननुज्ञातृत्वमनुभूतावध्यस्तमिति कस्माज्ज्ञायते ? नचदेहात्मभ्रमवतां स्थूलोहं कृशोऽहमिति प्रतिभासनादितिचेत्, तदाऽऽत्मतयाभिमतानुभूतिरपि भ्रमवत एव प्रतिभासते इत्यनुभूतिरपितथास्यात् । नच तत्वज्ञानादनन्तरमपि संविदोऽनुवर्तनान्नानुभूतिरध्यस्तेतिवाच्यम्, तदाकिम् ? अयमात्मामोक्षकालेवोद्धा न भवति । ततश्चैतादृशातत्ववेदित्वापेक्षया भ्रमादिज्ञातृत्वस्यैवेष्टत्वात् ।

युक्तिसिद्धस्तथैव "अहं जानामि" इत्यत्रापि न संविदो ज्ञानमात्रस्य विशेषणतयाऽवभासमानस्य सत्यत्वं ज्ञातुरहमर्थस्यारोपितत्वेन शुक्तारजतं वा मिथ्यात्ववक्तुयुक्तम्, अपितु सर्वानुभव साक्षिकाहमर्थस्य ज्ञातु सत्यत्वस्वीकार एव युक्त यतोज्ञातुरहमर्थस्य त्रिकालेपि बाधानुपलब्धे । बाधित एवार्थोमिथ्या भवति । यथाशुक्तौ रजमभ्रमानन्तरनेदं रजतमितिबाधजात एव नादृशरजतेमिथ्यात्वमवसीयते नतुशुक्तिका रूपाधिष्ठानस्य बाधोभवतिबाधोत्तत्तरकालेपि तस्य यथापूर्वमवभासनात् । तथैव कदापि ज्ञातुरहमर्थस्य बाधोनोपलभ्यते, तथा भनि अहमस्मिनवेति संशय नाहमस्मीति वा विपर्ययो भवति । तस्माज्ज्ञातुरहमर्थस्यत्रिकालेबाधादर्शनान्न मिथ्यात्वमपितु सत्यत्वमेव । नचाज्ञानमूलकसंसारस्य तत्वज्ञानोत्तरकालेबाधात् कारणाभावेनाज्ञानकार्यभूतसंसारान्तर्गतज्ञातुरपिभाविकालिकबाधेन बाधितत्वान्मिथ्यात्वमितिवाच्यम्, जडचेतनात्मकसंसारस्य परमेश्वरशरीरतया, सूक्ष्मजडचेतनस्य प्रवाहनित्यत्वेन बाधस्य वक्तुमशक्यत्वात्, तस्मान्न ज्ञातुरहमर्थस्य कदाचिदपि बाधोभवतीति स्थितम् । अपि च श्रुतिस्मृत्यादिप्रमाणेनज्ञातुर्नित्यत्वमेव नतु बाधितत्वमिथ्यात्वमिति "ज्ञाज्ञाद्वौ" इत्यादि नात्रप्रपञ्चितमितिसंक्षेप ।

यथाशुक्तौ रजतमध्यस्तमध्यस्तत्वाच्च रजतमिथ्यैव नतुसत्यम्, तथैवसंविदिज्ञाताऽहमर्थोऽध्यस्त एव, ततश्चाध्यस्तत्वात् मिथ्यैव नतुसत्य इत्यादिगतपूर्वप्रकरणे कथितम्, तस्य च यथामति निरासोपिकृत । सप्रतिज्ञातुरहमर्थस्य मिथ्यात्वं न संभवतीति विस्तरेण प्रतिपादयितुमुपक्रमते **ननुज्ञातृत्वमनुभूतावध्यस्त**मित्यादि शुक्तिरजतवत् संविदिज्ञातुरहमर्थस्याध्यासे किं प्रमाणम्, प्रमाणभावाज्ज्ञातुर यासो न कथमपिसिद्ध्यतीति प्रश्नुर्रभिप्राय ।

पूर्वपक्षीस्वाभिप्राय प्रस्तौति **देहात्मभ्रमवतामित्यादि** अथात् यथा स्थूलोहंकृशोहमिति प्रतीति प्रसञ्जितदेहधर्म स्थूलत्वादिकमात्मधर्मो न भवति किन्तु देहस्यैव स इत्यात्मनि देहात्मभ्रमवतामेव भवति, तथैवेहापिज्ञातृत्वमपि भ्रान्तमेवसंविदीति । यतोभ्रान्तैर्गृह्यमाणत्वात्, ज्ञातृत्वमप्यध्यस्तमेवेति भाव । स्थूलोहमित्यादिकतु न साधकम यस्तत्वेबाधितत्वात्, इतिप्रतिवन्दीमाह **तदात्मतयेत्यादि** देहात्मभ्रमवता गृहीतस्यसंविज्ञानस्याबाध्यत्वान्नमिथ्यात्वतत्राह **नच तत्व ज्ञानानन्तरमित्यादि** तुल्यमिदं पक्षान्तरेपितत्राह—**किमयमात्मा** इत्यादि, तत्वज्ञानजनित

ननुज्ञातृत्वंज्ञानक्रियांप्रतिकर्तृत्वं तच्चविकारात्मकंजडमहङ्कारग्रन्थिस्थम् । तादृश ज्ञानकर्त्रासंपाद्यमानयागादिककर्मणः सुखदुःखात्मकशुभाशुभफलस्य वस्तुतोऽकर्ता सर्वविक्रियारहितः साक्षीशुद्धःप्रकाशमात्र आत्मैव । यदिकर्तृत्वमात्मनोभवेत्तदाऽहंप्रत्यय विषयत्वेपि, शरीरेन्द्रियप्राणादिवदेवानात्मत्वजड़त्वपराकृत्वमनिवार्यमेवापतेत् । लोकेपि दृश्यते लौकिकपारलौकिकयागादिक्रियासुकर्तृत्वेन प्रसिद्धशरीरादितस्तादृश

इत्यादि, तत्वज्ञानजनित मोक्षात्मकफलसमयेपिज्ञातृत्वमबाधितत्वाद्विद्यते एव सविद्वदेवेति । दु खनिवृत्तिमात्रेणैव यदिमोक्षस्यपुरुषार्थत्वमिष्येत, तदाऽनन्दानुभवनिवृत्या तथाऽनुभवितुरहमर्थस्य च निवृत्त्याच मोक्षस्य पुरुषार्थता न स्यात् । एव चाहमर्थस्याध्यस्तत्वस्वीकारे महदनिष्टमापतेदद्वैतवादिन इति । ननु मोक्षसमये यदि ज्ञातृत्वमात्मनो निवर्तेत तदामोक्षस्यपुरुषार्थता न स्यादित्युपश्रुत्याद्वैतवादी प्रश्नयति, ज्ञातृत्वं नात्मधर्मोऽपित्वनात्मधर्म इति ज्ञातृत्वनिवृत्तौ मोक्षे पुमर्थत्वाभावात्मकदोषो न भवति, न ह्यनिष्ठगुणस्य दोषस्य वा निवृत्तौ तदन्यस्मिन् कश्चिद्दोषो वा गुणोभवति । नहिघटनिष्ठघटत्वस्यनिवृत्तौ पटोऽपटोभवति, तस्मादात्मातिरिक्तनिष्ठज्ञातृत्वनिवृत्तौमोक्षस्यापुरुषार्थतेत्याशङ्कामुपपादयितुमाह **ननु ज्ञातृत्वमित्यदि** अर्थादद्वैतीपुन शङ्कते **ननुज्ञातृत्वमिति** तदेवोपपादयति **ज्ञानक्रिया प्रतिकर्तृत्वमित्यादि** ज्ञातृत्वज्ञानक्रियां प्रतिकर्तृत्वतच्चविकारि, उत्पत्तिस्थित्यादिमत्भावविकारत्वात् । जडात्मकोऽहङ्कारात्मकग्रन्थि मध्येस्थितश्च । सचज्ञाताऽहमर्थ क्रियया यागादिकया सपाद्यमानशुभाशुभस्यफलस्य भोक्ता न भवति, किन्तु तादृशफलस्यभोक्ता सभवति यश्चनविक्रियात्मक सर्वस्य कार्यजातस्यसाक्षीसाक्षाद्द्रष्टाज्ञानात्मकप्रकाशरूप समुख्यआत्मा । कर्तृत्वादिक दृश्यत्वात्, नात्मधर्म यथाघटादयोभावादृश्यत्वान्नात्मधर्मास्तथा ज्ञातृत्वादिकमपि दृश्यत्वान्नात्मधर्मा ।

तत्राहङ्कारोऽन्त करणम्, तदेवभेत्तुमशक्यत्वाद् ग्रन्थिपदवाच्यम् । तस्मिन्नेव वर्तमान ज्ञातृत्व ज्ञानात्मना परिणामात्मक विक्रियात्मक जडपदार्थस्य विकारत्वाज्जडात्मक च, यथा मृद्विकारोघटोमार्दव कथ्यते नो सौवर्ण । आत्मन स्वरूप दर्शितम्, "तत्फलभुगित्यादि" कर्तृत्वस्यफलभोक्ता विकाररहितत्वादकर्ता प्रकाशमात्रस्वरूपतया साक्षी च भवत्ययमात्मेति । कर्तृत्वन्त्वात्मनोऽह प्रत्ययविशरिरेन्द्रियादिवन्नात्मत्व किन्तु परार्थत्वादिप्रसङ्ग इति । आत्मा न कर्ता भवति नाप्यहमर्थोपि भवति आत्मत्वात्, अनन्यार्थत्वात्, अजडत्वात्स्वप्रकाशत्वाद्वा तथाऽविक्रियत्वात्, यन्नैव यथाशरीरेन्द्रिय प्राणा इतिव्यतिरेक्यनुमानान्येव प्रमाणानि । ननु य कार्यं करोति स एव तत्फलस्य भोक्ता भवतीति कर्तृत्वभोक्तृत्वयो सर्वत्रसामानाधिकरण्यदर्शनात् । नहि भवति करोति, अन्य फलभोक्ता च तदन्य इत्याशङ्कायामाह **दृश्यते च लोके** इत्यादि, लौकिकपारलौकिकयागादिक्रियायाज्ञातृभिन्नस्यप्रकाशमात्रस्वरूपस्यकस्यचिदात्मनोऽनुपलम्भात् । तदेवमनुपलम्भमेव प्रदर्श्य, प्रत्यक्-

कर्मफलभोक्तृप्रमातुरहंप्रत्ययविषयिनःपार्थक्यमेव । तथैव प्रकृतेर्ज्ञातुरहमर्थाद्विलक्षण एव साक्षीसचैव प्रत्यगात्मेति चेत्सत्यम् ।

अहं जानामीत्यबाधितसर्वलोकसाक्षिकप्रतीत्यासिद्धप्रत्यगात्मभिन्नस्य प्रकाशमात्रस्वरूपस्य साक्षिण आत्मनः प्रमाणेनानुपलंभात् । शरीरेन्द्रियप्राणादिभ्यो ज्ञानाधिकरणतया विविच्यमानेऽहमर्थे प्रतीपमञ्चतीवनिर्भासमानोऽहंभाव एव हि प्रमातुः प्रत्यक्त्वंनामेति । एतादृशप्रमातुरेवसाक्षित्वमपि साक्षाज्ज्ञातृत्वादेव भवति । जानान एव साक्षीभवति, नत्वजानन् साक्षीलोकेपि तथा दर्शनात् । सर्वं प्रकाशमानमेवप्रमात्रे प्रकाशते ।

त्ववलेनैवाहमर्थस्यैवात्मत्व स्वीकर्तव्यमिति । **शरीरेन्द्रियप्राणेत्यादि** आत्मधर्मज्ञानस्यशरीरादावसंभवात् देहादिवैलक्षण्य पार्थक्यम प्राय पूर्वमेवप्रसाधितमात्मन । तज्ज्ञातृत्वमात्मन एव नान्यस्य, यदि शरीरादिश्चेदहकारविषयोभवेत् । तत्राहकारस्तु शरीरादावाभिमानिक एव । तदह भावस्य शरीरादिगतेदभावत प्रतीपत्वे विरुद्धत्वम् । प्रतीपमञ्चतीति प्रत्यक्सचाहङ्कारविषय । तत्प्रत्यक्त्वादहत्वमात्मन एवापततीति । देहादेर्दृश्यादिदकारगोचरात् द्रष्टर्यात्मनि प्रतप विरुद्धमार्गं गच्छतीवेत्युत्प्रेक्षा । **साक्षित्वमपीति** । साक्षाद्रष्टरि सञ्ज्ञायामित्यनुशासनादेवेतिभाव । यदिदज्ञेय ज्ञान विषयभूत वस्तुतत्सर्वमपिज्ञात्रयात्मन एव भासते, नतु ज्ञानमात्रात्मने प्रकाशते । ततश्च ज्ञातुरेवाहमर्थस्यैवात्मत्व न ज्ञानमात्रस्येत्यत्राह **सर्वमि**त्यादि । एतस्य चतुर्थ्यन्तप्रकाशते इत्यनेन सवन्ध । ततश्च केवलस्यज्ञानस्य साक्षित्व न सभवति किन्तुज्ञातुरेव साक्षित्वमिति तस्यैव ज्ञातुरहमर्थस्यात्मत्व नतु ज्ञानमात्रस्येत्यभिप्राय । यत्तुपूर्वमुक्त ज्ञातुरात्मत्ववत्वेज्ञातृत्वस्य विक्रयात्मकत्वेनानित्यत्व प्रसङ्गेन यागादिप्रतिपादक विधिवाक्यस्य, तथा "अजोनित्य शाश्वत " इत्यादि, श्रुतिस्मृति विरोध स्यादतोनात्माज्ञातृरूप किन्तु सर्वथाऽविकारीति । तन्नयुक्तम् नहिपञ्चविंशतितत्वप्रतिपादकसाख्यमतवत् ज्ञानपरिणामित्व स्वीक्रियतेवेदरहस्यज्ञातृभि । किन्तु अर्थप्रकाशनानुकूल व्यापारवद् धर्मज्ञानाश्रयत्वमेवज्ञातृत्वम् । सविषयकधात्वर्थयोगेकर्तृत्वस्याश्रयत्वरूपताया एव स्वीकारात् । यथा सविषयकधातुयोगे कर्मत्वस्य विषयत्वरूपवदिति ।

यदपि कथितम्, यागादिक्रिया कर्तुर्देहादय एव कश्चित्परलोकगामीभोक्ता भवतीति कर्तृभिन्नस्यैव भोक्तृत्वमिति । तदपि न मनोरमम्, हानोपादानादिशारीरकक्रियाकारणज्ञानेच्छापूर्वकाभ्यन्तरप्रयत्नाश्रयत्वरूपमुख्यकर्तृत्वस्यात्मन्येव समुपपत्तिसभवात् । शास्त्रप्रयोक्तरि "कर्ताशास्त्रार्थवत्वात्" इतिवेदादिशास्त्राभिप्रायाभिज्ञा श्रीसप्रदायाचार्या श्रीव्यासमहर्षय कथयन्ति । तथैवानन्दभाष्यकाराअपितद्व्याख्याने—"तस्माज्जीव कर्त्तैव तथाचश्रुति 'एषहिद्रष्टा श्रोता मन्ता बोद्धा कर्त्ता विज्ञानात्मापुरुष ' (प्र ४।९) इति स्पष्टमेवकर्तृत्वमभिधत्ते" इति । यदपिपूर्वं कथित कर्तृत्वादिर्नात्मधर्मोदृश्यत्वात्, यद्दृश्य दृशिक्रियया कर्मरूपमर्थात् ज्ञानविषयीभूतयत्तन्नात्मधर्मो भवति, यथा प्रपञ्च ।

तस्मात् प्रमातृभिन्नोनाम न कश्चित्साक्षी, अपितु स एव साक्षीति।

अर्थात् यथाघटादिकपदार्थोऽक्षानविषयतया आत्मधर्मो न भवति, तथैव कर्तृत्वमपि ज्ञानविषयत्वादात्मधर्मो न भवति, किन्तु विकारास्पदस्यकस्यचिदहमर्थादेरेव धर्मोभवतीति तदपि मन्दमेव, विकल्पासहत्वात् । फलव्याप्यत्व दृश्यत्ववृत्तिव्याप्यत्वरूपवा ? तत्रनाद्य पक्ष धर्माधर्मादीनामतीन्द्रियाणा फलव्याप्यत्वाभावेनतेषुलक्षणस्यासत्वेनाव्याप्तिप्रसङ्गात्, उद्देश्यतावच्छेदका व्यापकत्वेन सर्वपक्षेसाध्यासाधकत्वात् । नचयोगिप्रत्यक्षगम्यत्वाद्धर्मादिष्वपि दृश्यत्वमस्त्येवेतिवाच्यम्, तयो शास्त्रैकप्रमाणगम्यत्वात्, न चैतावता सर्वदर्शित्वाभावोयोगिनाम्, सर्वद्रष्टृत्वपदेन सर्वयोग्यद्रष्टृत्वस्यैव विवक्षितत्वात्, नत्वयोग्यसर्वद्रष्टृत्व विवक्षितम्, यथाऽस्मदादिप्रत्यक्षे दूरत्वविप्रकृष्टत्वयो प्रतिबन्धकत्व न तथा योगिप्रत्यक्षे बाधकत्वम् । नैतावता चाक्षुषवस्तुन श्रोत्रादि ग्राह्यत्व भवति योगिनाम् । यथोक्तम "यत्राप्यतिशयो दृष्ट सत्वार्थानतिलघनात् । दूरसूक्ष्मादि दृष्टौस्यान्नरूपेश्रोत्रवृत्तिता" इति । यथाऽस्मादि प्रत्येक्षेविप्रकृष्टत्व सूक्ष्मत्ववाव नतथा जनकत्वयोगिप्रत्यक्षेबाधकम्, नतुचाक्षुषवस्तुश्रोत्रादिनागृहीत भवति तेपामिति । नवावृत्तिव्याप्यत्व दृश्यत्वमिति द्वितीय पक्षोपि समीचीन ब्रह्मण फलव्याप्यत्वाभावेपि वृत्तिव्याप्यत्वस्य स्वीकारेण तत्रापि दृश्यत्वहेतोर्विद्यमानतया ब्रह्मणोपिमिथ्यात्वप्रसङ्गात्, ब्रह्मगताज्ञानविनाशाय वृत्तिव्याप्यत्वस्वीकारात् । तदुक्तम् फलव्याप्यत्वमेवास्य शास्त्रकृद्भिर्निवारिमम् । ब्रह्मण्यज्ञाननाशाय वृत्तिव्याप्तिरपेक्षिता ।" इति भवदाचार्येण । तस्माद्दृश्यत्वहेतुना कर्तृत्वस्यानात्मधर्मत्व न सभवति ।

अथवा यदि दृश्यत्व बाह्येन्द्रियग्राह्यत्वरूपम्, तदाऽन्तरप्रयत्नाधारत्वलक्षणकर्तृत्वपक्षे हेत्वसिद्धि । अर्थात् प्रयत्नाधारत्वलक्षणकर्तृत्व पक्षे नास्तीति नस्यानात्मधर्मत्वसाधने उपयोग । यदिज्ञान विषत्वमात्र दृश्यत्वतदा, एतादृशहेतोर्दृश्यत्वस्याप्रयोजकत्व व्यभिचारशङ्कानिवारकानुकूलतर्कराहित्य मेवेति । तस्मान्न दृश्यत्व साध्यसाधकमिति । यदपिकर्तृत्वादौ अनात्मत्वाद्यापादन कृतम् तदपिभ्रममूलकमेव, मुख्यकर्तृत्वस्यैव अनात्मत्व व्याप्यत्वात्, यत्रामुख्य कर्तृत्वतदेवानात्मत्वस्य साधकम् तेनमुख्यकर्तृत्वाहप्रत्ययास्पदे अनात्मनि अनात्मत्वप्रसक्तिर्नभवतीति सक्षेप ।

साख्यमतसिद्धज्ञातु स्वरूपमुपपाद्यतत्खण्डयितु भूमिकामारभते-तथाहि "मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्या प्रकृतिविकृतय सप्त । षोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्नविकृति पुरुष" इतितद्वचनतदनुसारेणसर्वकार्यस्य परिणामिकारण प्रकृति सा स्वय न विकारात्मिकाकारणमात्रमेव नकस्यापिकार्यम्, एतन्मते कार्यकारणयोस्तादात्म्यस्वीकारेण कार्यनाशे कारणस्यापि विनाश स्यादत' पुरुषो न कस्यापिकारण किन्तु पुष्करपलाशवन्निर्लेपश्चेतनो बुद्धौचेतनोऽहकरोमीति प्रतीतेरन्यथोपपादनासभवेन पुरुषस्यचेतनत्व स्वीक्रियते । तदुक्तम् "तस्मात्तत्सयोगादचेतन चेतनावदिव लिङ्गम् । गुणकर्तृत्वेपि तथा कर्तेवभवत्युदासीन" इति । पुरुषस्य सवन्धेनाचेतन-

ननुसत्त्वरजस्तमोगुणात्मिकायाः प्रकृतेर्यः परिमाणलक्षणोऽहङ्कारोमहत्तत्त्वं बुद्धि नामकं तस्यैवाहङ्कारस्यमुख्यमात्मत्वं बुद्धेरेव वा ज्ञातृत्वमात्मत्वं च नतुतदतिरिक्तस्य वाऽत्मत्वं ज्ञातृत्वं च । तथा सति तदतिरिक्तात्मस्वीकारेगौरवप्रसङ्गात इतिचेन्न प्राकृतिकाऽहङ्कारस्य बुद्धेर्वाऽचेतनत्वेनज्ञातृत्वासंभवात्, देहादिवत् ।

मपि बुद्धितत्व चेतनवद्भवति, बुद्धिश्च प्रकृतेर्जडाया परिणाम इति न साचेतना, किन्तुजडैव । किन्तु चेतनोऽहंकरोमीति प्रतीतेर्दर्शनात तत्र पुरुषसवन्धेन चेतनावद्व्यवहारो भवति । तथा पुरुष सर्वथाक्रियारहितोकर्त्री प्रकृतिसवन्धात्कर्तेवभवन् स्वस्मिन् कर्तृत्वमभिमन्यते । यथादाहकाग्निसयोगादय पिण्डोप्यन्यदीयधर्मसवन्धाद्दाहको भवति तथैव प्रकृतेपि भवति । यथा वा, आदर्श स्वस्मिन् सूर्यप्रतिविंवमादाय प्रकाशको भवति, तथैव बुद्धा प्रतिविंबित पुरुषस्तद्गतधर्माननुभवति, तथा बुद्धिरपि पुरुषसवन्धाच्चेतनेव भवति । तदुक्तम् "तस्मिश्चिदर्पणेस्फारे समस्तावस्तुदृष्टय । इमास्ता प्रतिबिंवन्तिसरसीवतटद्रुमा " इति । एतन्मतेवन्धमोक्षा प्रकृतिगता पुरुषेतयोरुपचारमात्रमेव । तदुक्तम् "रूपै सप्तभिरेव मात्मानवघ्नात्यात्मना प्रकृति । सेव च पुरुषार्थं प्रतिविमोचयत्येक रूपेण " । रङ्गस्य दर्शयित्वायथात्मान नर्तकीविनिवर्ततेनृत्यात् । तथा पुरुषस्य दर्शयित्वाऽत्मान विनिवर्तते प्रकृतिरिति । तथाबुद्धिरहंकारोवाऽहमर्थो ज्ञाताभवतीतिमतमुपपाद्य तन्निराकरणायोपक्रमते **"ननु सत्वरजस्तमः** इति । अर्थादुपर्युक्तप्रकरणेनात्मत्वमन एव मुख्य ज्ञातृत्वमजत्व चेतिगतप्रकरणेन प्रदर्श्य तदनु प्रकृते प्राथमिकपरिणाम स्वरूपे महत्तत्वेऽथवा महत्तत्वकार्येऽहंकारेवामुख्य ज्ञातृत्व कथमपि युक्तिसिद्ध न भवतीति दर्शयितुमुपक्रमते **ननुसत्वरजस्तमः** इत्यादि, अविकारात्मकप्रकृते परिणामस्य साक्षात्कार्यरूपस्य बुद्धिनामकस्याथवा बुद्धिकार्यरूपस्याहङ्कारस्यनज्ञातृत्वम्, अर्थाद्बुद्धितत्वस्याहंकारस्य वा न सभवति कुत ? अचेतनत्वात् तत्राचेतनत्वमनात्मत्वरूपमेवनत्वज्ञातृत्वम्, अनुमाने साध्यहेत्वोरेकत्वप्रसङ्गात । नच साध्यहेत्वोरेकत्वे को दोष इति वाच्यम, पक्षे हेतुसिद्धोतदभिन्नसाध्यस्यापि सिद्धतयाऽनुमानप्रयोगस्यानावश्यकत्वात् । साध्यसिद्ध्यर्थमेवहेतुप्रयोग साध्यसिद्ध्यश्चसाध्यव्याप्यहेतुमान् पक्ष इति परामर्शादेव सिद्धेरनुमितेर्वैयर्थ्यात् ।

पक्षे हेत्वसिद्धौ साधकाभावादेव न साध्यसिद्धिरित्ययमेवदोष साध्यहेत्वोरेकत्वेभवतीति । तथा चात्रानुमानप्रयोग "महत्तत्वमहकारो वा प्राकृतिकोमुख्योज्ञाता न सभवति, आत्मभिन्नत्वादनात्मत्वादित्यर्थ । तथा परिणामित्वात्कार्यत्वात्, जडत्वादस्वप्रकाशत्वात, परार्थत्वाद् देहादिवत् । यथा शयनासनादय सघात्मका पदार्था स्वेतरशरीरादीना प्रयोजनायैव भवन्ति, तथा शरीरेन्द्रियादिका अपि सघातरूपा । इति स्वेतरा सहतात्मप्रयोजनका एव नतु स्वप्रयोजनका । तत्रोयोऽसहत स एवा-

यथाप्रकृतिजातोदेहेन्द्रियप्राणादिकोनात्माऽचेतनत्वात् परिणामित्वात् जडत्वात् परार्थत्वाच्च तथैव प्राकृतिकत्वादिहेतुभिर्जडप्रकृतिजनिताहङ्कारस्यापिनात्मत्वं ज्ञातृत्वं वेति। नच महत्तत्वस्यातिस्वच्छतया तस्मिन् आत्मनः प्रतिबिम्बोदयात्तत्रैव ज्ञातृत्व-मितिवाच्यम्, अचाक्षुषद्रव्यस्य प्रतिबिम्बाभावात्, नभसः प्रतिबिम्बवत् नच भवन्मतेवा-स्तविकं ज्ञातृत्वं चितावपि विद्यते। येन वन्हिसंवन्धेनायः पिण्डे उष्णता प्रतीतिवत्, चितः संवन्धेन बुद्धावपि चैतन्यमनुभूयेत। अर्थात् ज्ञातुः संवन्धात् जडेमहत्तत्वेपि ज्ञातृत्वं संभवेत्, अनुभूतं वा भवेदित्यतोऽहंकारस्यज्ञातृत्वप्रतीत्यनुपपत्तिः।

त्मा ज्ञाता च भवति नत्वङ्कारोबुद्धितत्ववाऽत्माज्ञातावेति। एतावता देहादिवत्, प्राकृतिकोऽ-कारो वा स्वतो न ज्ञाता, अचेतनादिकारणैरिति।

ननु साक्षात् ज्ञातृत्वाभावेपि चेतनछायापत्याऽर्थादात्मनस्तत्रबिम्बितत्वात् तदपिचेतनावद् भव-तीत्यतस्तस्य ज्ञातृत्वमिति तत्राह **महतत्वस्याति स्वच्छतयेत्यादि,** अर्थादहङ्कारबुद्धयो स्वच्छ-तयातयोबिम्बादय स्यादित्यर्थ। छायाया असभव दर्शयति **अचाक्षुषेत्यादि** रूपस्पर्शादिरहित-स्यचेतनस्यरूपादिरहितमहत्तत्वे बुद्धयपरपर्यायेछायाया प्रतिबिम्बस्यासम्भवात्। यद्रूपादिमद्द्रव्य तद्रूपादिमतिविप्रकृष्टेऽतिस्वच्छे प्रतिविम्बे इति नियम। तथा रूपादिमातस्वच्छे-जले आदर्शे वा रूपादिमतोऽतिस्वच्छस्य विप्रकृष्टस्य सूर्यादेर्जले प्रतिबिम्वो दृश्यते, नतु स्वभावतोऽस्वच्छस्यान्यत्रप्रतिविंबो भवति। नहि भवति दूगालस्य क्वचिदपि प्रतिबिम्ब। प्रकृते चेतनस्य प्रकाशरूपस्यापि रूपादिरहिततया स्वभावतोजडे प्राकृतिके बुद्धितत्वे प्रतिबिम्बस्य सर्वथैवासभवात्। नहि भवति समलेकर्दमे सूर्यस्य तदन्यस्य वा प्रतिबिम्ब। तत्कस्य हेतो? समलत्वात्कर्दमस्येति भवति जलेप्रप्रकाशसूर्यस्येति। यथावा सरूपे आदर्शे रूपादिमतो विंबभूत मुखादे। तदिहसर्वथा रूपादिरहितत्वाच्चेतनस्य पुरुषस्य प्रकृतिपरिणामभूतेऽत एव सर्वथाजडेबुद्धि तत्वेप्रतिबिम्बोदय इति। तस्मात्मूकण्ठूक्तमचाक्षुषस्य छायादर्शनादिति। नवा सांख्यमते वास्तविक ज्ञातृत्वमस्ति, अकारणत्वस्वीकाराच्चैतन्यस्य। ततश्चचित्सवन्धात् बुद्धौज्ञातृत्व ज्ञातृत्वप्रतिभानवा समवेत्। यथा वन्हिसपर्कादय पिण्डे औष्ण्यादिप्रतिभासवदिति। किञ्च "चेतमोहकारोमीति प्रतीत्या चैतन्यकर्तृत्वयो सामानाधिकरण्यदर्शने यस्मिन्नधिकरणे चैतन्य तत्रैव कर्तृत्वमपि भवन्मते तन्नसमवतितयोर्व्यधिकरणत्वाद् बुद्धौप्राकृतिके कर्तृत्वस्याकर्तेरचात्मनिज्ञानस्य स्वीकारेणासामञ्ज-स्यात्। तस्मान्न साख्यमत समीचीनमिति सक्षेप श्रीवैष्णवमताब्जभास्करस्यप्रभा-किरणटीयाया-बहुप्रपञ्चितत्वात्।

अथ सुरेश्वराचार्यमतेऽहमर्थ प्राकृतिकत्वाज्जडोपि सर्वसाधकं स्वप्रकाशात्मकमात्मानमभिव्यञ्जयति, यथागुल्य सूर्यप्रकाश्या अपि तमेव सूर्यमभिव्यञ्जयन्ति। तादृशाहमर्थोजडोपि सर्वसाधकमभि-

यदि कश्चिदेवंब्रूयात्, ज्ञप्तिमात्रस्वरूप एवात्मा, तादृशमात्मानमभिव्यञ्जयन् जडस्वरूपोऽप्यहंकारोऽहमर्थः स्वाश्रयतया ज्ञप्तिमात्रस्वरूपमात्मानमभिव्यञ्जयति। स्वभावश्चायमभिव्यञ्जकानाम्, यत्स्वात्मस्थतयाऽभिव्यङ्ग्यमभिस्फोरयन्नभिव्यञ्जयन्ति यथाऽदर्शजलादयोमुखसूर्यबिम्बादीन्। तत्कृतश्चाहं जानामीत्याकारको भ्रमः। अतएव सुषुप्तौमुक्तौवाऽहमुल्लेखाभावेपि स्वाभाविकातिशयानुभवमात्ररूपेणात्मनः प्रकाशोजायते। तस्मादेव कारणादहमर्थस्यानात्मत्वमिति तत्रेदं सुरेश्वराचार्यवचनम्—

व्यञ्जयन्ज्ञातृत्वप्रतीति निर्वाहयति। सच स्वयनात्मा सुषुप्तौ तदभावात्। तमिम पक्षमपहस्तयितुमुपक्रमते **यदि कश्चिदेवंब्रूयादि**त्यादि अर्थात् ज्ञातृत्वप्रतीतेर्निर्वाहाय सुरेश्वराभिमतम्, अहमर्थस्यैव सविज्ज्ञानात्मकाभिव्यञ्जकत्वमिति पक्षमनुवदित्वानिरसनाय प्रस्तौति **ज्ञप्तिमात्र स्वरूप एवात्मेति** अभिव्यञ्जयन् प्रकाशयन्, तत्राभिव्यनक्ति स्वबलेन प्रकाश्यविषयतामापादयतीत्यभिव्यञ्जक, यथा तैलस्थ वन्हिमदर्शनविषयभूतमपि वन्हिकृशानुतापस्त प्रकाशयन्, तत्राभिव्यञ्जको भवति, तथा विद्यमानमप्यात्मन प्रकाशयन् अहमर्थस्तस्याभिव्यञ्जक इति कथ्यते। स्वाश्रयतया स्वाश्रितोर्यथा। आदर्शोमुकुरविंव। यथा खण्डमुण्डादिव्यक्तयो गोत्वजातेरभिञ्जका यथावा आदर्श स्वस्मिन् मुखादेरभिव्यक्तिर्यथा वा जलादासूर्यविंवस्याभिव्यक्ति प्रतिबिंबरूपेणेत्यादि। तत्कृतश्चेति, अहकारेण प्रत्युपस्थापितश्च, "अह जानामीत्याकारको भ्रम। अतएव मुक्तौ सुषुप्तौ च अहकाराभावेपि स्वाभाविकातिविशदानुभवमात्रेणात्मन प्रकाशोजायते इत्यर्थत एवाहङ्कारस्यानात्मत्वजडत्व च सिद्ध्यतीति। तत्कृतश्चार्थात्, सविदभिव्यञ्जनकत्वकारणक एवाहकारस्य सविदाश्रयत्वप्रतिभासो भवति। यथामुखाद्यभिव्यञ्जकत्वकारणको मुखसूर्यादिमत्व प्रतिभासोभवति तद्वदेवेहापीति। तत्राह जानामीत्यत्राह प्रकृतिपरिणामविशेषस्यैवनतुपरनार्थतो ज्ञप्तिमात्रस्यात्मन। कुत यतो ज्ञातृत्वप्रत्ययोभ्रमात्मक शुक्तौ रजतवत्, रज्जौसर्पप्रत्ययवत्। अतएव यतोऽहत्वप्रत्ययो मिथ्याऽतएव सुषुप्तिमोक्षकाले च नाहमर्थस्यभान व्यभिचारित्वात्, नाहंभावस्य भानम्, किन्तु ज्ञप्तिरूपात्मन एव भानमिति। अतएव, यस्मात्, अहमुल्लेखाभावेपि सुषुप्तिमोक्षयो स्वाभाविकविशदज्ञानमात्ररूपेणात्मन एव प्रकाशोजायते, तस्मादेव कारणात्, अहत्वेनोल्लिख्यमानाहमर्थस्यनात्मत्व किन्तु ज्ञप्तिमात्रस्यैवात्मत्वम्, अहमशस्तु शुक्तौरजतवत्, सर्वाधिष्ठानतया भासमानात्मनि प्रतिभासनान्मिथ्येति, ततएवाहमशोनात्मेति। यद्यपि रज्जुसर्पवत् तदुत्तरकालेबाधो न दृश्यते, तथापि "अतोऽन्यदार्तम्" इत्यादिश्रुतिभिर्युक्त्याप्रपञ्चोमिथ्या दृश्यत्वादित्याद्यनुमानेनाहमर्थस्यमिथ्यात्वसाधनेनाहमर्थस्यानात्मत्वमिति। अत सुरेश्वराचार्येण कथितम्—

आत्मनश्चेदह धर्मोयायान्मोक्षसुषुप्तयो।
यतोनान्वेति तेनायमन्यदीयोभवेदहमिति॥

"आत्मनश्चेदहंधर्मोयायान्मुक्तिसुषुप्तयोः । यतोनान्वेतितेनायमन्यदीयो भवेदहम्" इति । तं प्रतिब्रूयात्, यथाशान्तोऽगारः स्वतः प्रकाशस्वरूपमादित्यमण्डलं नाभिव्यञ्जयति, तथा स्वप्रकाशस्वभावमात्मानंतत्सिद्धोऽकारो जडोप्यहमर्थो व्यञ्जय-

अयमर्थ अहत्व यदि आत्मधर्म स्यात्, तदामोक्षकाले सुषुप्तिकाले चाहत्वस्यानुव्रजन भवेत्। मोक्षादौचाहत्वस्यानन्वयादनुव्रजनाभावाज्ज्ञायते यदिदमहत्वनात्मधर्मोऽपितु, तदन्यस्यैवकस्य-चिद्धर्म तथाचात्मेतरसासारिकधर्मत्वमिति । एतदुक्त भवति, योहियस्यधर्मो भवति स त विहाय-नात्मस्वरूप लभते, यथा घटीयो रूपरसादिर्घटविहाय न भवति, धर्मिव्यतिरेकेण धर्मस्यस्वातन्त्र्ये-णावस्थानासभवात् । योहिय विहायाप्यन्यत्रभवति स न तदीयोधर्म यथाकालविशेषे उपलभ्यमानमौष्ण्य-वायौ परिदृश्यमानमपि न वायवीय स्वाभाविक । तथैवेह मोक्षादिकाले आत्मान विहायापिवर्तते इति स नात्मनो धर्मोऽहमर्थोऽपितु आत्मेतरस्येवेति वायौ, उष्णस्पर्शादिवदिवेतिसुरेश्वरवचनार्थ । तस्मादहत्वनात्मधर्म इति स्थितम्, अपित्वात्मेतरस्यैव । वन्हिसवन्धादपसितापकत्ववदिति प्रश्नप्रकरणस्य मुकुलितोऽभिप्राय ।

तदिदमतमुपक्षिपति **तंप्रतिब्रूयादित्यादि** अयमर्थ यथाकथचित् स्वप्रकल्पोपिप्रदीप सर्वार्थविभासकमादित्य न प्रकाशयति तथैवात्मसवन्धेन स्वच्छताप्राप्तआत्मसवन्धेन प्राप्तस्वरूप प्रकृतिजन्यत्वाज्जडरूपोऽहङ्कार कथमिवात्मन प्रकाशक स्यात्, अर्थात् कथमपि न सभवति । यद्यपि सूर्यबिम्बात्प्राप्तस्वरूव आदर्शगतसूर्यप्रतिबिम्बोऽन्धकारावृतगृहकोणेऽवस्थितमपि घटाद्यर्थमभि-व्यञ्जयति, तथापि तेन प्रतिबिबितसूर्येणाकाशगतसर्वार्थावद्योतकसूर्यस्यप्रतिभासन न कथमपि भवति, बिम्बेन, प्रतिबिम्बस्य निरोधानात् । तथैवोदयास्तमयवजितनित्यप्रकाशमानस्यात्मन प्राकृतिक जडस्वभावकयाचितमण्डनन्यायेन तत एव प्राप्तवैभवोऽहङ्कार कथमिव प्रकाशयेत् । अथवा यथाज्व-लदङ्गारो यदानावभासति सूर्य न प्रकाशयति सूर्य तदाजलनिर्वापितोऽतएव शान्तोऽङ्गार सूर्यं नप्रकाशयति तथैवायमहङ्कार सूर्यप्रतिकल्पनित्यप्रकाशस्वरूपमात्मानंनैवावभासितुक्षम इति । ततश्च "जीवन्नाखुर्नमार्जारहन्ति हन्यात्मृत कथमिति न्यायविषता नातिक्रामतीति । अर्थात् सर्वार्थप्रकाशक कदाचित्प्रकाशतेऽथ न पुन कदाचित्प्रकाशते, इत्युत्पत्ति विनाशरहितनित्यप्रकाशस्वरूपमनुभावात्मानं नियमत तदायत्तप्रकाश प्रकृतिजन्यो जडस्वभाव-कोऽहकारोऽभिव्यनक्तीति महदाश्चर्यमायिकवदिति । न खलु सर्वसाधकस्यसाधकान्तरनिरपेक्षस्वत. सिद्धस्य सर्वदाऽनुभवरूपस्यात्मन प्रकाशकान्तरस्यापेक्षा भवति । तथा सति स्वप्रकाशकत्वव्याको-पात् । स्वभावजडस्याहमर्थस्य नियमत आत्मप्रकाशस्यात्मन प्रकाशने सामर्थ्यमस्ति येनानुभव-रूपस्यात्मनोऽभिव्यञ्जयत्वकथनमुपपन्न भवेदितिभाव । अथवा भवतु नित्यप्रकाशरूपस्याप्या-त्मन. केनचिदभिव्यङ्ग्यत्वम् भवतु वाजडस्यापि अहङ्कारस्य सात्विकतयातिस्वच्छस्यस्फटिकवद-

तीति विचित्रवचोनप्रमाणिकपरिषदि शोभते इति। किञ्चानुकूल्ये एव व्यङ्ग्यत्व-व्यञ्जकत्वं भवति, नतु विरोधे। यद्यात्माव्यङ्ग्यः स्यान्तदाऽनुभाव्यतयाघटादिवज्जडो भवेदिति।

भिव्यञ्जकत्वम्, परन्तु प्रकाशाभिव्यङ्ग्येकस्वभावस्याहमर्थस्यप्रकाशात्मकात्मनोऽभिव्यञ्जकत्व तत्राह **किञ्चानुकूल्येएवेत्यादि** सर्वदासर्वथा चित्स्वभावस्य ज्ञातुरात्मनस्तथाजडस्वभावस्याहङ्कारस्य च परस्पर व्यङ्ग्यव्यञ्जकभावोऽथात स्वभावन प्रकाशलक्षणातुभवस्यात्मनो व्यङ्ग्यत्व तथा जडात्मकाहङ्कारस्याभिव्यञ्जकत्वमित्येव रूपेण तदुभययोर्व्यङ्ग्यव्यञ्जकभावोनोपपद्यते। कुत ? विरोधात्प्रतिकूलत्वात्, स्वभावविरोधलक्षणादुक्तात्प्रतिकूलभावादित्यर्थ। अर्थात् प्रकाशो हि सर्वदा व्यञ्जक एव भवति, इति तस्य नियम। जडश्च पदार्थ सर्वदाऽभिव्यग्य एव भवतीति तस्य नियम। तदिह प्रकाशस्यव्यग्यत्व जडस्यचाभिव्यञ्जकत्व तदुभययो स्वभावलक्षणप्रतिकूलतैवजायते। यथाप्रदीप सर्वथा प्रकाशक एव दृष्टो घटादिजडपदार्थोव्यग्यो भवति नतु घटप्रकाशास्वस्वभाव विहायस्त्वान्यस्वभाव विजहाति, कदाचिदपिवह्नि शीतोष्णचजल भवति, तथैव कदाचिदप्यनुरूपस्यात्मनोव्यग्यत्व व्यञ्जकत्व च जडात्मकाहंकारस्य समवतीति। अथात् नियमतस्तद्व्यङ्ग्यस्वरूपस्यतद्व्यञ्जकत्व सर्वथैव विरूपमितिकथित भवति। अहकारोयदाज्ञानेनाभिव्यक्तो भवेत् तदैवानुभवस्याभिव्यञ्जकत्व तस्मिन् सभवेत्, अधिष्ठानातिरिक्तारोपितसत्तायाभवन्मतेऽस्वीकारात्। अर्थात् मिथ्यापदार्थस्य प्रतिभासाधीनसत्ताकत्वनियमेन प्रतिभासाभावेऽ यस्तपदार्थसत्ताया एवासभवात्। [अतएववाचस्पतिर्दृष्टिसृष्टिवादमेवमन्यते, यावज्ज्ञान तावदेवपदार्थसद्भाव इति] ज्ञानतु वस्यप्रकाशत्वात्स्वय भासमानमेवाहकार जडात्मकमभिव्यञ्जयेत्। ज्ञानस्याभिव्यञ्जकत्वाभावे घटादिवज्जडत्वमेवापतेत्। एवञ्च स्वप्रकाशसविदधीनप्रकाशाहकाराधीनप्रकाशत्व ज्ञानस्यकथितभवेत्, ततश्चदुरुत्तरोऽन्योन्याश्रय प्रसज्येत, सवित्प्रकाशाधीनोहकारप्रकाशाधीनश्चज्ञानस्य सविद प्रकाश इति। ततश्च प्रकृतेऽन्योन्याश्रयदोषान्नानुभवाहकारयोरभिव्यञ्जकभाव उपपद्यतेऽपितु स्वभावविरोधादभाव एव तयोरापततीति। अथ यदि कदाचित्कुसृष्ट्यातयोरभिव्यग्याभिव्यञ्जकभाव स्वीक्रियेन्तदा तन्मते अनुभवस्वभावस्यात्मनोऽहकारव्यग्यत्वे तादृशात्मानुभूतित्वरूपत्वमेव नस्येद् घटादिवज्जडत्वमेव भवेत् तन्मते ज्ञानविषयत्वस्यैव जडत्वप्रयोजकत्वनियमात्। किञ्चज्ञानस्यापि यदिज्ञानान्तर विषयता भवेत्तदा घटादीना सिद्धये ज्ञानानुसरणम्, ज्ञानस्वरूपस्यापिसाधनाय स्वभिन्नज्ञानान्तर मावश्यकमिति ज्ञानधारानुसरणेऽनवस्थाभवेत्, क्वचिद्गत्वाज्ञानधाराया विश्रामेऽन्तिमज्ञानस्य प्रकाशत्वम् अथवा तत्प्रमाणाभावात् तस्याप्रमाणिकत्वेनखपुष्पायमाणत्वमेव भवेत्। ज्ञानधाराया अभिमतेतु दुरवस्थाऽनवस्था। ततश्चैकघटादिविज्ञानमेव स्यात्, नतु विषयान्तरसञ्चार स्यात्, सुषुप्त्य-

नच सूर्यकिरणाभिव्यक्तंकरतलं सूर्यकिरणाभिव्यञ्जकं तथैवात्रापि, आत्मनाऽभिव्यक्तोप्यहंकारोऽनुभवात्मकमात्मानमभिव्यञ्जयेदिति वाच्यम् , करतलस्य सूर्यकि-

भावमोक्षाभावश्चापि स्यात् । परन्तु एतादृशज्ञानानुभवो न भवति, प्रत्युतप्रमाणाभावोपि भवतीति मूलक्षयकरीयमनवस्थेति ।

ननु भवत्वनवस्थातत्रकोदोष इति चेदत्रोच्यते-अनवस्थायास्त्रिदोषग्रस्तत्वात् । तदुक्तम्—
"प्राग्लोपाऽविनिगम्यत्व प्रमाणापगमैर्भवेत् । अनवस्थितिमास्थातुरचिकित्स्यात्रिदोषता ।।" इति ।

अयमर्थ अनवस्थितिमास्थातु पुरुषस्य प्राग्लोपाविनगम्यत्वप्रमाणापगमाऽभिन्ना त्रिदोषतादोषत्रयात्मिका, अचिकित्स्या, चिकित्सितुमयोग्यैव भवति यथा लोकेपि वातपित्तकफत्रय प्रयोज्योरोगोभिषग् वरैरपि समाधातुमशक्यो भवति, प्राग्लोपाविनिगम्यत्वप्रमाणापगमप्रयोज्यो दोषोऽसमाधेय एवभवतीत्यत्रापि, तथाहि प्रथमज्ञानसिद्धये यदिज्ञानन्तरमाद्रियते, तदा प्रथमज्ञानेन यत्कार्यंक्रियतेतत्कार्यं कल्प्यमानद्वितीयज्ञानेनैवसिद्ध्येत्, ततश्चप्रथमज्ञानस्य विलोपोभवेत् । प्रथमस्य द्वितीयस्य वा स्वीकार इति विनिगमनायामपि न किमपिप्रमाणम् । एवमनेकज्ञानस्वीकारे नास्ति किमपि प्रमाणम् । नवाकस्यचिदेवमनुभवो जायते । तथापिज्ञानप्रवाहस्वीकारे विषयान्तर संचारोच्छेदोमोक्षाभाव सुषुप्त्यभावादयोपिदोषाभवेयुरिति सक्षेप ।

योहि येन व्यज्यते स तस्यव्यञ्जकस्यापिव्यञ्जको भवति प्रकाश्यप्रकाशकयो परस्पर तथात्वे विरोधाभावात् , लोके तथा दर्शनादित्याशङ्कामपवदितुमुपक्रमते **नचसूर्यकिरणाभिव्यक्त मित्यादि** सूर्यकिरणेन करतलादिक समभिव्यक्तं भवत्सूर्यकिरणस्याभिव्यञ्जकमितिदृश्यते इति दृष्टत्वादेव, व्यंग्यव्यञ्जकयो परस्परव्यञ्ग्यव्यञ्जकभावे नास्ति विरोध । प्रत्यक्षप्रमाणसर्वतो ज्येष्ठ सर्वस्यप्रामाणस्योपजीव्यञ्च । प्रत्यक्षाभावेऽनुमित्यादीनाप्यसभवात् , यदावन्हिधूमादे प्रात्यक्षिकसहचारादिमुखेनैव्याप्तिनिश्चयानन्तर पक्षतासहकारेण परामर्शो जायते तदैवलिङ्गज्ञानात्साध्यानुमितिर्जायते नान्यथेत्यत प्रत्यक्षप्रमाण सर्वतोज्येष्ठमुपजीव्यञ्चेति । एव च सर्वानुग्राहक-प्रत्यक्ष प्रकाश्यप्रकाशकयो परस्परतथात्वेति विरोध न दर्शयति, किन्तु साधकमेव भवति, करतल सूर्यादिकिरणस्थले, तथैव प्रकाशात्मकानुभवप्रकाश्योप्यहकारोजडोपि स्वप्रकाशमात्मान प्रकाशयेत्, तत्रनास्तिकोपिदोष इति प्रश्नग्रन्थस्यसमुदितस्याशय । उत्तरयति, **करतलस्येत्यादि** अर्थात् करतलादिकम् , गवाक्षादिविवरप्रविष्टसूर्यरश्मीना गतिप्रतिरोधकतयासघातमात्रे एव कारण भवति, नतु करतल सूर्यकिरणस्य प्रकाशक भवति, तेषा प्रकाशस्तु, यदा ते किरणा सहताभवन्ति तदातेषा सहतकिरणाना स्फुटप्रकाशोजायते इति तेषा प्रकाशे न करतलकारणमपितु सहतत्वमेव, सहतत्वे च करतलकारणमिति करतलस्य कारणकारणत्वात्, युवकुलालजनकवृद्धकुलालस्यान्यथा

रणबाहुल्यमात्रे कारणत्वात् , तादृशाश्च सूर्यकिरणाः स्फुटमुपलभ्यन्ते इति न कर-तलव्यङ्ग्यत्वं सूर्यकिरणस्येति । अधिकमन्यत्र द्रष्टव्यम् ।

किञ्चकोयमभिव्यक्तिपदार्थः ? यश्चानुभवस्यात्मनोऽहंङ्कारेण मिमाधयिषितः । नतावत् सिद्धःप्रकाशरूपः, आत्मप्रकाशस्य स्वतः सिद्धतयाऽनन्यार्धीनसिद्धत्व स्वीकारात् । नवा तद्विषयकज्ञानम्, ज्ञानान्तरागम्यत्वात्, ज्ञानान्तरग्राह्यत्वेघटादिव

सिद्धत्व तथैवात्रापि करतलस्यगवाक्षप्रविष्ठसूर्यकिरणप्रतिरोधेकारणत्व, ततश्च स्फुटतरप्रकाश इति करतलादिकमन्यथा सिद्धमेवेत्याशयेनाह **करतलस्य सूर्यकिरणबाहुल्यमात्रे कारणत्वादिति** । करतल तु न सूर्यकिरणस्य प्रकाशे कारणम् , कथचित् किरणानां गतिरोधे एव कारणम् ततश्च समुदितास्तादृशा किरणा प्रत्येक प्रकाशमाना अपि स्फुटस्फुटतरादिरूपेण प्रकाशमाना भवन्तीति स्वानुभवेनैवानुभूता भवन्तीति न दृष्टान्त समीचीन इवाभातीति ।

नच गति प्रतिरोधद्वारेणैव करतलस्येव, प्रकृतेसविदोपि प्रकाशोऽहकारेणभविष्यतीति न साम्प्रतम् , यतो दृष्टान्ते करतलादिक मूर्तपदार्थ सूर्यरश्मयोपिमूर्तपदार्था एवेति, मूर्तेनमूर्तस्य किरणगतिप्रतिरोधो युक्त कथचित् , परन्तु अहकारस्तु न मूर्तोपित्वमूर्त आत्मापि तादृश एवेति कथमहकारस्य गतिरोधकत्व स्यात् । नहि अमूर्त पदार्थ कस्यापि गतिरोधको भवति, नहि आकाशादि कस्यापि गति रूणद्धि, इति दृश्यते, तथासति व्योमयानादीनामाकाशे सचाराभावप्रसङ्गात । ततश्च गतिरोधेनापि सवित्स्फुटप्रकाशहेतुत्व करतलादीनामिवाहकारस्योपयुज्यते, तस्यामूर्तत्वादितिभाव । विस्तरभयात्सक्षिप्त प्रकरणम्, जिज्ञासुभिरन्यत्रावधेयम् ।

गतप्रकरणेन जडाहकारव्यग्यत्वमनुभावात्मनोऽनपेक्षित तथाऽनुपपन्न चेतिनिवेद्यतदनु अभिव्यक्तिप्रकाशा ये ये सभावितास्तेषामत्रोपपत्तिर्नभवतीत्यतोऽहयारस्य आत्माभिव्यञ्जकत्व न भवतीति दर्शयितुमुपक्रमते **किञ्चकोयमभिव्यक्तिपदार्थः** इत्यादि । अर्थादियमभिव्यक्ति का ? येयमनुभवरूपस्यात्मनोऽहकार द्वारा सम्पादयितुमिष्ट भवति इति ।

तत्र सभावितविकल्प दर्शयितुमाह **नतावदिति** तत्रसिद्धि सविदात्मप्रकाश , **तत्रसिद्धि** पदज्ञाप्याप्यात्मप्रकाशस्य स्वप्रकाशतयाऽन्याधीनप्रकाशत्वाभावस्वीकारेणैतादृशात्मप्रकाशकारणत्वमहकारस्य न कथमपि संभवतीत्यर्थ । **नवातद्विषयकज्ञानमिति** तद्विषयकमात्मविषयकज्ञानमपि अभिव्यक्तिर्नसभवति । कुत ? तत्राह **ज्ञानान्तरागम्यत्वात्** इति । सविदोज्ञानस्यज्ञानान्तराविषयत्वेनात्मविषयज्ञानोत्पादकत्वमपि तदभिव्यञ्जकत्वमप्यहकारस्य न सभवति । **अर्थात्** तत्रज्ञानान्तरस्यानुपलब्धे ज्ञानान्तरविषयत्वस्वीकारेतु, यथाघटोज्ञानविषयत्वान्नात्मा किन्तु जडात्मकस्तथैवात्मनोपि ज्ञानान्तरविषयत्वेऽनात्मत्वमेवस्यात् । यद्यपि ज्ञानस्य नित्यत्वेन न

देवाननुभूतित्वप्रसङ्गात् । नवा ज्ञानकरणानुग्रहो विकल्पासहत्वात्, सहिवेद्यगतज्ञानोदय प्रतिबन्धकापगमेन वा, प्रदीपवदन्धकारनिराकरणेन चक्षुरिन्द्रियस्य, वेद्यसंनिकर्षोपाधित्वेन वा व्यक्तिदर्पणादिवत्, जातिमुखादिज्ञापकचक्षुरादिवत् वेतृगतमला [कलंका] दिप्रक्षालनेन वा, शमदमादिवत् परावरात्मतत्वज्ञानोत्पादकशास्त्रादिवत् ।

तस्य कश्चिदज्ञानकरणाग्रहस्तथापि, अननुभाव्यत्वादेवानुभवरूपस्यात्मनस्तद्विषयकानुभवकरणस्य सर्वथैवाप्रसिद्धत्वेन तदनुग्रहकरणस्वरूपाभिव्यक्तिप्रकारोपिनकथचित्सभवतीति, अथवा भवत्वनुभवस्यापि किंचिद्ज्ञानकरण भवतु वा तदनुग्रहप्रकारस्तथापि तदीयप्रकार प्रकृतेऽनुभस्यनित्यत्वान्नतत्सभवतीति प्रतिपादयन्, अनुग्रहप्रकारमेव विकलपयति **विकल्पासहत्वादिति** तदेवोपपादयति **महिवेद्यगतेत्यादि** सोऽर्थादनुग्रह ग्राहकस्य सहकारिकारणमपत्त्यापादनस्वरूप । **वेद्यगतेत्यादि** वेद्यगतज्ञानोत्पत्तिप्रतिवन्वकनिराकरणद्वारेणानुग्राहको भवति, यथा चाक्षुषकार्योत्पत्तये वहलान्वकारनिरासकदीपस्य चक्षुरनुग्राहकत्ववदिति प्रथमोविकलपार्थ । द्वितीयप्रकारविकल्प दर्शयति **चक्षुरिन्द्रियस्येति** करणस्य चक्षुषोग्राह्यसयोगसयुक्तसमवायाद्यन्यतमसनिकर्षप्रयोजकत्वेत्यर्थ । यथाघटादिव्यक्तय स्वद्वारेण चक्षुरादिकरणस्य वेद्यघटत्वादिजातिगुणादि सवन्धात्मकसनिकर्ष प्रयोजयन्ति । दर्पणाद्युपाधिश्चाक्षुकिरणपरावर्तनद्वारेणचक्षुरादेर्मुखादिगतसयोगादिसनिकर्ष प्रयोजयति । अर्थात्, यदा चक्षुष सयोगोदर्पणेन सहभवति, ततो दर्पणस्यातिस्वच्छतया, दर्पणहतानेत्ररश्मयोमुखात्मकबिबप्राप्य तदीयप्रतिबिम्ब दर्पणेदर्शयन्ति । तत्रदर्पणादिरूपोपाधिश्चाक्षुपगतिपरावर्तनद्वारेणचक्षुषो मुखादिबिम्बेन सहसनिकर्पजनयन्नुपकरोतीति द्वितीय विकलपार्थ । तृतीय विकल्प दर्शयन्नाह **वेतृगतमलादिप्रक्षालनेने**त्यादि । तत्र **मल-कल्को**ऽर्थात् ज्ञानोत्पत्तौपापादिरनेकप्रकारक । "नाविरतोदुश्चरितात् नाशान्तोना समाहित" इत्यादिशास्त्रेण शमदमोपरतिप्रभृतीना तत्वज्ञानजनकस्य सहकारित्व ज्ञापित भवति । निष्कामकर्मणाशमदमादिना निराकृतपापरागादिदोषस्य विशुद्धान्त करणवत, एव पुरुषस्यतत्वज्ञानमुत्पद्यते तदुक्तम् "ज्ञानमुत्पद्यते पुसा क्षयात्पापस्यकर्मण" इति । तथा "नित्यनैमित्तिकैरेव कुर्वाणोदुरितक्षयम् । ज्ञान च विमलीकुर्वन्नभ्यासेनतुपाचयेत् । अभ्यासात्पक्वविज्ञान कैवल्यलभते नर" इत्यादिवचनेन चित्तशुद्धिद्वारा निष्कामकर्म भवतीति कथितम् । शमादीनातु साक्षादेव मोक्षोपयोगित्वमिति महता परिकरेणशास्त्रेप्रतिपादितमिति ।

तत्रानुग्रहविकल्पेषु प्रथमानुग्रहकल्पस्यानुपपत्ति दर्शयितुमाह **तत्राहंकारेणानुभवगतं न किमपीत्यादि,** अहकारेणनिवर्तनयोग्यज्ञानोत्पत्तौ प्रतिबन्धक न किमपिवस्त्वस्तीत्यर्थ । **ननु ज्ञानोत्पत्तौ** प्रतिबन्धकमात्मन्यज्ञानमेव विद्यते तदेमाहकारायनेयस्यात्तत्राह **अज्ञानंतु** इत्यादि **ज्ञानेनसहसमानौ** आश्रयविषयौ यस्य, एतादशमर्थाद्ज्ञानसमानाश्रयविषयकमज्ञानम्, ज्ञाना-

तत्राहंकारेणानुभवगतं न किमप्यपनेयं विद्यते यज्ज्ञानोत्पत्तौविरोधि भवेत् । अज्ञानंतु ज्ञानस्य समानाश्रयविषयतया, आश्रयविषयतारहिते केवले चिदात्मनि पदमाधातुं शक्नोति । नहि ज्ञानरहितो जडोघटादिरज्ञानीतिभाष्यते । न कदाचिदपि ज्ञानमात्रस्यात्मनो ज्ञातृत्वंसंभवेत् , अज्ञानं वा पदमाधातुंशक्नोति । संभवेपि वा नाहंकारेणाज्ञानायनयनं तत्वज्ञानेनैवाज्ञाननिवृत्तिरितितव सिद्धान्तात् , ज्ञानैकनिवर्त्यत्वादिति । ज्ञानं च स्वविषये एवाज्ञानंनिवर्तयति । नच तस्यात्मनो विषयत्वंतवमते इत्या-

श्रयत्वज्ञानविपयत्वरहिते कथमपिसस्थातुमर्हत्यात्मनोनिवर्मत्वेनाश्रयत्वविपयधर्मस्य तत्रात्मन्यभावात् नाहज्ञानसबन्धरहिते वस्तुनि, अज्ञानस्यासभव तथासत्यज्ञानीघटइत्यपिप्रतीतिप्रसङ्गात । नत्वेव प्रतीतिर्दृष्टपूर्वा । एवमेवज्ञातृत्वकेवलज्ञानस्य सभवतीत्यज्ञान समवेत् । आश्रयत्वविपयत्वभागिनीनिर्विभागचितिरेवकेवला । पूर्वसिद्धतमसोहि पश्चिमोनाश्रयो भवति नापिगोचर ” इत्यादि भवदीय प्राचीनाचार्यवचनस्नेहेन यदिज्ञानमात्मन्यज्ञानस्य सत्त्वमभ्युपगम्येत , अर्थादात्मन्यज्ञानाश्रयत्वमन्येत, तदाप्यज्ञानस्याहकारेण निरासाभावात् । वेद्यगतदोपापनायकत्वरूपाभिव्यञ्जकत्वनाहकारस्य सभवतीति, भवन्मते “तरतिशोकमात्मवित् ” “तमेव विदित्वाऽति मृत्युमेति” इत्यादि श्रुत्यनुसारेणज्ञानेनैवाज्ञानस्यनिरासस्वीकात् , नत्वहकारेणाज्ञानवृत्ति ज्ञानैकनिवर्त्यत्वादज्ञानस्येति । किञ्च ज्ञानस्वकीयविषयेऽर्थात् स्वाधिकरणे एवाज्ञान निवर्तयति । आत्मवेतमात्मविषयकमज्ञानमात्मनोऽननुभाव्यत्वाद् ज्ञानाप्रतिवध्यनित्य च भवेत् समानाश्रयविषयत्वेनैवज्ञानाज्ञानयोर्वाध्यवाधकभावात् , आत्मविषयकज्ञानस्वीकारेऽपसिद्धान्त प्रसङ्ग । अयमाशय भूतलरूपेऽधिकरणेजायमानो घटवद्भूतलमिति निश्चयो भूतलाधिकरणकघटाभाववद्भूलमितिज्ञान प्रतिवघ्नाति । नतु भूतलेजायमानो घटवत्तानिश्चयो घटाभाववज्जलमितिज्ञान वघ्नाति नवा भूतलस्थित घटाभावज्ञानजल घटाघटवदितिज्ञानप्रतिरुणद्धि । तत्कस्यहेतो ! प्रतियोगितदभावयोर्विरुद्धाधिकरणे व्यवस्थितत्वात् । तथैव प्रकृते यदिज्ञानाज्ञानयो समानाधिकरणे सत्वतदैवविरोधोविरोधाच्चवाध्यवाधकभावो भवेत् । नहि घटीयरूपरसयोर्विरोध समानाश्रयेविद्यमानत्वात् । नवा घटवत् भूतल पटाभाववज्जलमित्यनयोर्वाध्यवाधकभावोविरोधस्यैवाभावात् ।

ननु शुद्धस्य ज्ञानरूपात्मन फलव्याप्यलक्षणज्ञानाविषयत्वेपिवृत्तिव्याप्यत्व तु भवत्येव, अर्थादन्त करणवृत्तिव्याप्यत्वन्त्विष्टमेवात्मनो नतु अन्त करणवृत्त्यवच्छिन्नचैतन्यव्याप्यत्वम् तदुक्त “फलव्याप्यत्वमेवास्य शास्त्रकृद्भिर्निवारितम् । ब्रह्मण्यज्ञाननाशाय वृत्तिरपेक्षिता । स्वयप्रकाशमानत्वान्नाभासउपयुज्यते” इति । यदिब्रह्मण फलव्याप्यत्वभवेवत्तदैव घटादिवज्जडत्वमापतितंभवेत् । इत्थत्वात्माकारान्त करणवृत्त्यैवात्मगताज्ञानस्य निवृत्तिरितिचेत्सत्यम् , मायाजनितान्त.करणवृत्तेर्जडत्वात्

त्मगतमज्ञानं केनाप्युच्छेत्तुं शक्यम् । नवा ज्ञानप्रागभावरूपमज्ञानं नानोत्पादेप्रतिबन्धकं जनकस्य प्रतिबन्धकत्वाभावात् । नवा भावत्वविशेषितमनिर्वचनीयं जगदुपादानमित्यादिकथनं तु केवलं वचनमेव । आत्मनः करणविषयत्वेन तत् संबन्धजनकत्वं न भवति । बोद्धृत्वादहमर्थस्य स्वेन स्वस्यशोधनासंभवादिति ।

आत्माश्रिताज्ञाननिवर्तकत्वाभावात् , ज्ञानाज्ञानयोर्विरोधोभवतीति ज्ञानमेवाज्ञावस्य निवर्तक नतु जडस्य ज्ञाननिवर्तकत्वात् । यद्यन्त करणवृत्यवच्छिन्नचैतन्यनिवर्त्यत्वे तु आत्मनोज्ञेयत्वेनानात्मत्व प्रसङ्गादिति सक्षेप ।

किञ्च अज्ञान किं ज्ञानस्यप्रागभावरूपम् , अथवाभावरूपमनाद्यनिर्वचनीयजगदुपादानरूप वा । तत्र न प्रथम पक्ष , ज्ञानप्रागभावरूपस्यतस्यज्ञानोत्पत्तौ प्रतिबन्धकत्वासभवात् । तथा सति क्वचिदपिकार्यनोत्पन्नस्यात् , भवदपि क्षणिकमेवभवेत् , कार्यमिति । नवाद्वितीय पक्ष तथा सत्यनादिभावरूपाज्ञानस्य विनाश एव न स्यात् , अनादिभावस्यात्मादेर्विनाशादर्शनात् । एव चाज्ञाननिवर्तकज्ञानोत्पादनाय "श्रोतव्यो मन्तव्य " इत्यादिश्रुत्याश्रवणमनननिदिध्यासनादिविधानस्यनिरर्थकत्वेन तद्विधायकश्रुतिस्मृत्यादिप्रमाणस्याप्रामाणिकत्वमेवापतेन् । न च यथाऽनादिभावस्यापि पार्थिवपरमाणुगतश्यामत्वस्य पिलुपाकवादिमते, आमपाकनिक्षिप्तस्यपाकेन विनाशदर्शनात् , तथैव, अनादिभावरूपस्याप्यज्ञानविनाश्यत्वस्यादितिवाच्यम् 'अपाकजत्वेसति' इति निवेशेन तद्दोषस्य परिहारात् । अपिचयद्यनादिभावस्यापि विनाशोमन्येत तदाऽत्माकाशकालादीनामपि विनाशप्रसङ्गात् । अपिच भवदुक्ताज्ञानस्य अनिर्वचनीयत्वानिरूपणेनाप्यप्रमाणिकत्वमेव ततश्च तस्य नित्यत्वानित्यत्वविचारोपिदूरापेत एव भवति । अपि च "यतो वा इमानिभूतानि जायन्ते" इत्यादिश्रुत्यापरमात्मन एव जगदुपादानादिश्रवणेन अज्ञानस्य जगदुपादानत्वकथन विद्वत्सदसिकेवलमुपहासायैव भवतीति न किचिदेतदिति । द्वितीयानुग्रहकल्पे दूषणदर्शयितुमाह **आत्मनः करणविषयत्वेनेति** । ज्ञान प्रत्यक्षादिभेदेनानेनकप्रकारकम् । तत्र प्रत्यक्षज्ञान चक्षुरादिवाह्यकरणजन्य मनोजन्य च भवति । तत्रात्मनो रूपस्पर्शादिरहितस्य चक्षुरादिज्ञान न भवति, चक्षुरादीन्द्रियाग्राह्यत्वादात्मेन इति नात्मेन्द्रियसयोगादिसनिकर्षोपाधित्वेनाहकारस्यात्मनोऽभिव्यञ्जकत्व समवतीति । तृतीयोऽनुग्रहपक्षे दोप दर्शयितुमाह **बोद्धृत्वादहमर्थस्येति** स्वनिष्ठपापादिरूपकल्मषस्यकेवलेनैवस्वेन निराकरणासभवात् । नहि दर्पणगतमलकेवलेन दर्पणेन निराकृत भवति, किन्तु स्वातिरिक्तेष्टकादिचूर्णनिघर्षणयाकृत भवति । तथैवात्मगतदोषस्य न केवलमात्मनैवातीत भवतीति सक्षेप ।

समतीतप्रकरणेनाहमर्थस्य व्यञ्जकत्व निराकृत्यपरोक्तव्यञ्जकस्वभावनिरसितुमुपक्रमते

नवा स्वाश्रयतया व्यंग्यपदार्थस्य प्रकाशनम्, अभिव्यञ्जकस्य स्वभावः अभिव्यञ्जकेमण्यादौ प्रदीपादौ वा तथाऽदर्शनात् किन्तु यथाऽवस्थितप्रकाशनानुनवास्वाश्रयतयेत्यादि प्रदीपादिर्हितैजसत्वात् घटाद्यतैजसस्य प्रकाशको भवति, तत्र प्रदीपादि स्वाश्रयतयाऽर्थात् प्रदीपवृत्तितया प्रकाश्य न प्रकाशयति, नहि भवति प्रतीति घट प्रदीपे तिष्ठति प्रदीपोघटादिमान्वेत्याकारक प्रत्यय सर्वोपि प्रदीप प्रकाशयति प्रकाश्यघटादिकमित्येव जानाति, नतु प्रदीप स्वाश्रिततया विजानाति। अथाद् घटादेरावेयत्व प्रदीपस्याविकरणत्व वा विजानाति। किन्तु यथावस्थितरूपेणैव प्रकाश्य घटादिक प्रकाशक च विजानाति, भूतले घटोघटवद् वा भूतलमिति। ततश्चाभिव्यञ्जक स्वाश्रयताऽभिव्यग्यमभिव्यञ्जतीतितस्याभिव्यञ्जकस्य स्वभाव इति भवदुक्तनियमे स्पष्टो व्यभिचारोमण्यादिप्रकाशके इति। वाह्यप्रकाशके नियमस्य व्यभिचारप्रदर्श्य, आभ्यन्तरप्रकाशकज्ञानमपि यथावस्थितपदार्थप्रकाशकत्वमेवेति तत्रयुक्ति दर्शयति=**स्वतः प्रामाण्यादिति**। ज्ञानादेर्यथावस्थितपदार्थप्रकाशकत्व स्वत प्रामाण्यात्। प्रसङ्गादत्र प्रामाण्यस्वत परतोवेति यथामतिविज्ञायविचार्यते। अत्रायमाशय अथकिमिद प्रामाण्यस्वतस्त्वम्, तत्र किं स्वत एव प्रामाण्यजन्मस्वत प्रामाण्यम्, अथवा, स्वाश्रयज्ञानजन्यत्वम्, अथवा स्वाश्रयज्ञानसामग्रीजन्यत्वम्, अथवा ज्ञानसामग्रीजन्यप्रमाश्रितत्वम्, अथवा ज्ञानसामग्रीमात्रजन्यप्रमाश्रितत्वमिति। तत्र प्रामाण्यस्वत एव जन्मेति न प्रथम पक्ष स्वस्य स्वहेतुकत्वे विरोधात्, अर्थात् यदि स्वस्यस्वेनैवजन्मतदात्माश्रयदोषो भवेत्, नहिघटादेव घटस्यजन्मकारकव्यापारादनन्तर जायमानस्य पूर्वमविद्यमानत्वात्। पूर्वापरकालघटितत्वात्कार्यकारणभावस्य नहि स्वमेवकारणत्वात्पूर्ववृत्तितदेवचकार्यत्वात्परकालवृत्तीति। नवा प्रमात एव प्रमाणस्यजन्म भवतीति द्वितीय पक्षोपि समीचीन। प्रमाया ज्ञानस्यरूपतयास्वप्रामाण्यप्रतिसमवायिकारणत्वासभवात्, अर्थात् स्वाश्रयप्रामाण्यजनकत्वे कारणत्रयमध्ये समवायिकारणत्वे स्वीकारे ज्ञानस्य द्रव्यत्वप्रसङ्गात् "समवायिकारणत्वद्रव्यस्यैवेतिनियमात् तदन्यकारणत्व तु सभवत्येव नहि, अयोग्यत्वात्। नवा प्रामाण्यस्य ज्ञानसामग्रीतोजन्मभवतीति तृतीयपक्षोपि सभवति कुत? प्रामाण्यमुपाधिरूप जाति रूप वा। उभयथापितदन्यत्वसभवात्। तथाहि यदि प्रमाण्यमुपाधिरिति तस्यप्रमाण्यस्य स्वीक्रियते, तदास्मृतित्वावधिकरणस्यज्ञानस्यवाधाभाव एव प्रामाण्यम्। नच तादृशाभावस्योत्पत्ति सभवति, अत्यन्तान्योन्याभावयोर्नित्यत्वस्वीकारात् न्यायविद्भिरिति। नवा प्रामाण्य जातिरूपम्, जातेर्नित्यत्वेनतज्जन्मासभवात् "नित्यत्वे सत्यनेकसमवेतत्वस्यैवजातिलक्षणत्वादिति। नवा स्वाश्रयज्ञानसामग्रीजन्यत्व प्रमानिष्ठ प्रामाण्यस्य स्वतस्त्वमिति तृतीयपक्ष, कुत? तथा सति, अप्रमाया अपिज्ञानसामान्यसामग्रीजन्यतया प्रमात्वापातात्, यतोऽप्रमापि ज्ञानविशेषरूपैव विशेषसाग्र्याञ्च विशेषसामान्य सामग्रीमध्येवानुप्रविष्टा यथानीलघटसामग्र्या सामान्यतो घटसामग्री अनुप्रविशत्येव। यथावा शिंशपासा-

मग्ना वृक्षसामग्री प्रविशत्येव । अन्यथा शिंशपायांवृक्षत्वस्याकस्मिकत्वप्रसङ्गात्, तस्मात् परतस्त्वेनाभिमता प्रामाण्येपि ज्ञानसामग्रीजन्याश्रितेऽतिव्याप्तिप्रसङ्गात्, ततश्चेदलक्षण न युक्तमिति। नच ज्ञानसामग्रीमात्रजन्यत्वमेव प्रमाया स्वतस्त्वम्, अप्रमातु न ज्ञानसामग्री प्रयोज्या, अपितु पीत्तादिदोषसहकृतज्ञानसामग्रीजन्येति नाप्रमाया स्वतस्त्वापत्तिरिति वाच्यम्, विकल्पा सहत्वात् । तथाहि दोषाभावसहकृतज्ञानसामान्यसामग्रीजन्यत्वमात्रशद्बस्यार्थ, किंवा दोषा सहकृतज्ञानसामग्रीजन्यत्वमर्थ ? तत्र न प्रथम पक्षो निर्दुष्ट, एव सतिपरत प्रामाण्यवादिमतेतव प्रवेशप्रसङ्गात्, यत परत प्रामाण्यवादिनो नैयायिकादयोपि दोषाभावसहकृतज्ञानसामग्रीजन्यत्वमेव परत प्रामाण्यमिच्छन्ति भवतामपि तदेवानुमतमित्युभययो समानतैव नतुवैलक्षण्य किमपीति । नवादोषासहकृतज्ञानसामान्यत्वमिति द्वितीय पक्षोपिसमीचीन, यतोविशेषदर्शनस्य शुक्तित्वादि ज्ञानस्य रजतमित्याकारकरजनभ्रमनिवृत्तिकारणत्वे, विशेषदर्शनस्य शुक्तित्वज्ञानाभावस्यभ्रमे कारणत्व यथार्थत एव सिद्ध्यति, यथातथैव प्रकृते "दोषसहकृतज्ञानसामान्यसामग्रीजन्यज्ञानम प्रमेति स्वीकारेऽप्रमाप्रतिदोषभावस्य कारणताऽर्थत एवापतेत्, अर्थात् यथाप्रमाणज्ञानकारणस्य शुक्तित्वादिविशेषदर्शनस्याभावोऽप्रमाणज्ञानस्य कारणस्य दोषस्यचाकचिक्यादेरनेकप्रकारकस्याभावोपि यथार्थज्ञान प्रत्यर्थत कारण भवेदेवेति । नच यथा पारमेश्वरज्ञाने दोषाभावेऽवर्जनीयतया नियमतो भवत्येव नतु तत्रेश्वरज्ञाने हेतुस्तथैवमदीयप्रमास्वपिदोषाभावस्यावर्जनीयतयैवोपस्थितिर्भवेत्तत्रको दोष ? नहि परमेश्वरज्ञानेपिदोषाभावस्यप्रयोजकत्वमिति वक्तु युक्तमिति, यतस्तत्प्रयुक्तत्व तदन्तर्गतसामग्रीप्रयोज्यत्वस्य तदन्तर्भूतसामग्रीजन्यत्वरूपत्वात्, परमेश्वरज्ञानस्य नित्यत्वेन विशिष्टसामग्रीप्रयोज्यत्वस्य [जन्यत्वस्य] सर्वथैवासभवादितिवाच्यम्—तत्सामग्रीजन्यत्व विनापिनित्यद्रव्येषुपरमाणुकालाशादिषुगुणवत्व प्रयुक्तद्रव्यत्वात्, अत्रापि दोषाभावप्रयुक्तत्वस्योपपत्तिसभवादिति । नच दोषाभावस्य विद्यमानत्वेपि, अभावत्वादेव न कारणत्वम् कारणत्वस्य भावत्वव्याप्तत्वादिति । यथाशुक्तित्वादिविशेषदर्शनाभावस्याभावत्वेपि भ्रमेकारणत्व भवति, यथावा प्रमाणाभावस्यप्रमेयाभाव प्रतिकारणता भवति, यथावा विहितनित्यनैमित्तिककर्मणामभावस्य पापेकारणत्व तथैव प्रकृते दोषाभावस्य कारणत्व प्रमाप्रति भवत्येव । नहि भाव एव कारण नाभाव कुत्रापि कारणमितिराजाज्ञा, पूर्ववृत्तित्वमात्रस्यैव कारणत्वप्रयोजकत्वमित्येव नियमात् । कार्यपूर्ववृत्तित्व यथाभावस्यतथाऽभावस्यापि-इतितत्भावाभावसाधारणमेव । "भावो यथातथाभाव करणकार्यवन्मत" इत्युदयनाचार्योक्तिः । यथाघटादि कार्यं भवति तथा करणमपिभवत्येव, तथैव यथाप्रध्वसोऽभावोपि कार्यं भवति तथैवात्यन्ताभावादयोऽपिकारणानिभवन्त्येव, भावस्यैवकार्यत्व कारणत्व नत्वभावस्यतत्वमितिविनिगमनाया प्रमाणाभावादिति ।

यथाप्रामाण्यस्यस्वतस्त्वे लक्षण न किमपि तथैव तत्रप्रमाणमपि नास्त्यत्र नच "प्रामाण्यज्ञान हेतुमात्रजन्याश्रयम्, अप्रामाण्येतरत्वेसतिज्ञानैकधर्मत्वात् । तथा प्रामाण्यज्ञानहेतुमात्रजन्याश्रयम, अप्रामाण्यभिन्नत्वेसतिज्ञानत्वन्यूनवृत्तित्वात् प्रत्यक्षत्वादित्येव स्वतस्त्वेप्रमाणमितिवाच्यम, विकल्पा सहत्वात् । तथाहि किं तथाविधव्यक्तिवृत्तितामात्रंविवक्षितम्, अथवाऽन्यावृत्तित्वेसति तथाविध-व्यक्तिवृत्तित्वम् । तत्र नाद्य पक्ष, अशत सिद्धसाधनत्वात्, अनुव्यवसायानुमित्यादीनां स्वत प्रमाणस्य सर्वै स्वीकारात् । नवाद्वितीय प्रथमप्रयोगे दृष्टान्तस्य साध्यविकलत्वात्, ज्ञानत्वस्य दोष जनिताप्रमाणज्ञानवृत्तित्वात् । द्वितीयानुमाने सशयत्वादिना व्यभिचार सशयादिकमपि अप्रामा-ण्येतरत्वे सतिज्ञानत्वन्यूनवृत्तिर्भवति, परन्तु न भवति ज्ञानहेतुमात्रजन्याश्रयतिमिरादिदोषजन्यत्वात्, दृष्टान्तेसाध्यविकलता च । प्रत्यक्षत्वस्यापि परत प्रामाण्यवादिना ज्ञानहेतुमात्रजन्याश्रयत्वस्यास्वीका-रात् । यस्यमते प्रमात्वमपि ज्ञानहेतुमात्रजन्याश्रय न भवति गुणविशिष्टज्ञानसामग्रीजन्यवृत्तित्वात्, तन्मते तदवान्तरजातिप्रत्यक्षत्वकथतद्धेतुमात्रजन्याश्रयकस्यादिति । तस्माज्ज्ञानस्य स्वतस्त्वेनास्ति किमपिप्रमाणमिति । अस्ति च प्रामाण्यस्यपरतस्त्वेपि अनुमानप्रयोग अनीश्वरप्रमाविज्ञानहेत्वतिरि-क्तहेतुजन्या, कार्यत्वात्, घटादिवदिति । नच ज्ञानसामग्र्या एव निरूपणाभावात् तदतिरिक्त कारणाधीनत्वदुर्ज्ञानमितिवाच्यम्, ज्ञानसामग्र्या निरूपणाभावे, अप्रमायोयस्यापि परतस्त्व न स्यात, यतोऽप्रमाज्ञानमपिज्ञानसामग्रीनिरूपणाधीननिरूपणकमेव, यतोऽप्रमाज्ञानस्यदोषसहकृत विज्ञानसामग्रीजन्यत्वस्यैव स्वीकारात् । तस्मादुत्पत्तौप्रमात्वस्यस्वतस्त्व कथमपि न भवतीति । तथा ज्ञानस्यविज्ञप्तावपि स्वतस्त्व सभवति । तथाहि नीलादिविज्ञानस्य यत्प्रामाण्य तन्नीलज्ञानेनैव गृह्यते इति तस्य स्वतस्त्वमथवानीलादिग्राहकमात्रग्राह्यत्वेन ? तत्र न प्रथम पक्षो नीलादिज्ञानस्य स्वगत प्रामाण्यग्राहकत्वाभावात्, इन्द्रियार्थसनिकर्षोत्पन्नमनीश्वरप्रात्यक्षतदिद वहिरिन्द्रियस्यान्तरस्य वा प्रामाण्येन सनिकर्षादेवोत्पद्यते इतिवक्तव्यप्रत्यक्षवादिना, तत्र वहिरिन्द्रियग्राह्यत्व प्रामाण्यस्यान्तर्धर्म-त्वान्न सभवतीति तस्यतत्राऽप्रमाणत्वात् । तथाहि यदेतन्नीलप्रकाशनप्रत्यक्ष तत यद्यपि नीलात्मक विषय प्रतिप्रत्यक्ष भवति, यस्तत्रेन्द्रियार्थसनिकर्षाज्जायमानत्वात्, परन्तु स्वकीयप्रामाण्यग्रहणेतु कथ प्रत्यक्षस्यात्, अर्थात्कथप्रमाण स्यात् तस्यवहिरिन्द्रियै सह सनिकर्षाभावात् । किञ्च तत्प्रत्यक्ष विज्ञानस्यैवप्रामाण्य गृह्णीयात्, अथवा तदीयफलस्यापि ? तत्रनाद्य, ज्ञानफलात्मकहेतु-नाऽनुमेयतयातस्यातीन्द्रियत्वेनाप्रत्यक्षतया तत्प्रामाण्यमपि प्रत्यक्षत्वासभवात् । फलस्य तु स्व-प्रकाशतया वाह्येन्द्रियग्राह्यत्वाभावात्, तथा ज्ञाननिष्ठयथार्थतत्वस्वरूपप्रामाण्यस्यापि वाह्ये-न्द्रियप्रत्यक्षत्वासभवात् ।

नवा द्वितीयपक्षोपि प्रामाण्य यदिज्ञानग्राहकमात्रग्राह्यभवेत्तदाघटादिज्ञानानन्तरम्, इदप्रमा-णमप्रमाणवेति सशयानवकाशात्, भवति च सशय इदज्ञानप्रमानेति, ज्ञानग्राहकग्राह्यत्वे, ज्ञानेजाते

तदीयप्रामाण्यस्यापि गृहीततया तादृशसंशयाभावप्रसङ्गात् । नच प्रामाण्यज्ञानग्राहकग्राह्यत्वेप्यर्थ विशेषितत्वस्य संशयिकत्ववत् तदीयप्रामाण्यस्यापि सांशयित्वसंभवति, यथाऽयंघट इतिजाते कुम्भज्ञानस्यजल विषयोऽभवन्नवेत्येवजनानां संशयो दृश्यते, यत सजलनिर्जस्यापि कुम्भानादर्शनात् । एवं प्रामाण्येपि संशयः स्यादेवेति वाच्यम्, जलस्य कुम्भग्राहकसामग्रीमात्रजन्यत्वस्यास्वीकारात्, यद्यङ्गीक्रियेत तदाऽविशेषतया सकलघटानां जलवत्वप्रसङ्गात्, तस्मान्नारिकेलफलस्थितजलादिवद्-भिन्नसामग्रीग्राह्यत्वादेव तत्रसंशयोभवतीति प्रामाण्ये तु नतथेत्येव स्वीकर्तुं युक्तमिति । अपि च यदि ज्ञानगतप्रामाण्यस्य विज्ञानग्राहकसामग्रीमध्यग्राह्यत्वस्वतस्त्ववादिना स्वीक्रियेत, तदाशुक्तौरजत भ्रमानन्तरतादृशभ्रमात्मकबुद्धावपि प्रामाण्यगृहीतमेवस्यादितिसापिबुद्धि प्रमैवस्यात् । न चेद् रज तमितिज्ञानानन्तर तज्ज्ञानेपि ज्ञानत्वात्प्रमात्व गृहीत यद्यपि भवति तथापि नेदंरजतमितिबाधका-त्तदपनयनात् प्रामाण्यंतस्यज्ञानस्य न भवतीति । तदुक्त "तस्माद्बोधात्मकत्वेन प्राप्ताबुद्धे प्रमाणता। अथान्यथात्वहेतूत्थदोषज्ञानैरपोह्यते " तस्माद् भ्रमज्ञाने प्राप्तमपि प्रामाण्यनिराक्रियते इत्यत इष्टमेव स्वतस्त्ववादिनामिति वाच्यम्, तयासतिपरत प्रामाण्यज्ञानस्यापतेदिति, तथाहि प्रथमत प्राप्तमपि प्रामाण्यशुक्तिरजतादिबुद्धिषुबाधकान्नेदं रजतमित्याकारकादपोह्यते इत्युच्यते तदा, बाधकाभाव-मूलक एव प्रामाण्यनिश्चयइति तस्य प्रामाण्यस्य परतस्त्ववज्रलेपायते इति ।

नवाज्ञप्तिस्वतस्त्वे प्रमाण विद्यते । नच प्रमास्वतो ज्ञायते, परनिरपेक्षोत्पत्तिकत्वात्, एव प्रामाण्य स्वतोज्ञायते, अप्रामाण्येतरत्वे सति ज्ञानैकधर्मत्वादित्यनुमानमेव प्रमाणमितिवाच्यम्, प्रथमानुमाने परत प्रमाण्यवादिन प्रतिहेत्वसिद्धत्वात्, प्रमाऽप्रमेतरज्ञानस्यैवाभावात् । द्वितीया-नुमानेतु प्रभाकरमतेज्ञानैकधर्मे स्वय प्रभत्वे, भट्टमते ज्ञातताया व्यभिचारात् । प्रामाण्य परतोज्ञायते, अनभ्यासदशाया सांशयिकत्वादप्रमावदितिसत्प्रतिपक्षदोषोपि । तस्मात् प्रामाण्य परत एव गृह्यते नतु विज्ञानग्राहकमात्रसामग्रीग्राह्यत्वेनस्वत एव भवतीति पूर्वपक्ष ।

अत्राह विज्ञानग्राहकसामग्रीजन्यत्वेसति तदतिरिक्तकारणाजन्यत्वमेव प्रमाया स्वतस्त्व-मिति । नचाजन्ये ईश्वरज्ञाने एतल्लक्षणाव्याप्तिरितिवाच्यम्, ईश्वरज्ञानस्याजन्यत्वेपिज्ञानसामग्री-जन्यत्वविशिष्टकारणजन्यत्वलक्षणविशिष्टधर्मत्वाभावेनाव्याप्तेरभावात् । अर्थात् विज्ञानसामग्रीजन्यत्व विशिष्टतदतिरिक्तसामग्रीजन्यत्वमप्रमाज्ञाने प्रसिद्धतदत्यन्ताभावत्वलक्षणस्य नित्येपीश्वरज्ञानेनाव्याप्त-मिति । एतच्चलक्षणप्रमामात्रे विद्यते इतिसर्वप्रमासुलक्षणसमन्वयो भवति । नवात्र लक्षणेऽतिव्याप्ति, अप्रमायाविज्ञानसामग्रीजन्यत्वविशिष्टतदतिरिक्तदोषादिजन्यत्वस्यैव विद्यमानत्वेन तदभावस्याभावादिति।

एवं प्रमाया स्वतस्त्वेऽनुमानमपिप्रमाणं भवति, प्रमाविज्ञानसामग्रीजन्यत्वेसतितदतिरिक्त कारणजन्यानभवति, अप्रमाभिन्नत्वात् घटादिवत् । नच स्वतस्त्वसाधकानुमाने, ज्ञानत्वानधिकरणत्व-

मुपाधिर्भवति, तस्यसाध्यव्यापकत्वेन साधनाव्यापकत्वात् । तथाहि, घटादिदृष्टान्तेसाध्य विद्यते तत्र ज्ञानत्वानधिकरणत्वमुपाधिरप्यस्तीति साध्यव्याकत्व तथाहेतु पक्षेप्रमायाविद्यते, तत्रज्ञानत्वानधिकरणत्वनास्तीत्युपाधे साधनाव्यापकत्वमपीतिवाच्यम्, पारमेश्वरज्ञाने साध्यमस्ति तत्र च ज्ञानत्वानधिकरणत्वमुपाधिर्नास्ति, तस्य ज्ञानत्वेनज्ञानत्वानधिकरणत्वादित्येवसाध्यस्य यत्रयत्रसद्भावस्तत्रसर्वत्र, ज्ञानत्वानधिकरणत्वरूपोपाधेरभावात् । प्रकृते प्रमात्वानधिकरणत्वनोपाधि । ततश्चप्रकृतानुमानेन प्रमाया स्वतस्त्वनिर्वाधमेवभवतीति । किञ्चविज्ञानसामग्रीमात्रेणैवप्रमायाउत्पत्ति सभवे, तदतिरिक्तगुणादेर्दोषाभावस्यकारणत्वकल्पनाया गौरवप्रसङ्गो भवतीति । एवञ्च "प्रमाविज्ञानकारणातिरिक्तकारणाधीनाकार्यत्वादिपरतस्त्वेयदनुमान तदपिनिरस्त भवतीति । प्रमादोषातिरिक्तज्ञानकारणजन्या न भवति ज्ञानत्वादप्रमावदिति सत्प्रतिपक्षादिदोषो भवति परतस्त्वे । नचैव प्रमा प्रतियद्दोषाभावस्यकारणताऽन्वयव्यतिरेकवलेन प्राप्यते तस्य नैरर्थक्यमिति वाच्यम्, भावानववोधात्, यद्यनन्यथासिद्धान्वयव्यतिरेको यत्रकारणत्वावेदकौ भवतो तदैव तत्रवलेन कारणत्वसिद्ध्यति, इहतु तावन्वयव्यतिरेकौविरोधि, अप्रमाप्रतिवन्धकतयैवचरितार्थो भवतो न कारणतामावेदयत । तदुक्तम्—

"तस्माद्गुणेभ्यो दोषाणामभावस्तदभावत । अप्रामाण्यद्वयासत्व तेनोत्सर्गोऽनपोदित –॥" इति।

अर्थात्—"प्रत्यक्षेतु विशेष्येणविशेषणवता समम् । सनिकर्षोगुणस्तु स्यादथत्वनुमितौगुण" इतिनियमप्रदर्शितगुणादिकारणतो दोषाणापीत्तदूरत्वादीनामनेकविधानामभावोवोधितो भवति । अर्थात् गुणसत्वेतद्विरोधिदोषाणामभावो ज्ञायते इतिगुणप्रयोज्यत्वदोषाभावाना भवति । दोषाभावे ज्ञाते दोषाभावप्रयोज्यत्वेऽवगते, तेनाप्रामाण्यद्वयस्य सशयविपर्ययोरभाव साधितो भवतीनि सशयाद्यभावोदोषाभावेनानुमीयते, दोषाभावश्चगुणप्रयोज्यइतिगुणानादोषाभावद्वारेण सशयाद्यभावइति, तत्रैव गुणस्य कारणत्व भवति । प्रामाण्ये तस्य कारणत्वम्, प्रामाण्यंतु सामान्यनियमप्राप्तज्ञानसामग्रीमात्रसाध्यमेव नतु तदतिरिक्तस्कश्चित्तत्र कारणतेति । नच यदिज्ञानसामग्रीमात्रादेव प्रामाण्यमिष्यते तदाशुक्तिरजतादिमिथ्याज्ञानेष्वपि प्रामाण्यमापतेत, मिथ्थाबुद्धावपिज्ञानसामान्यसामग्रीजन्यत्वस्य कारणगतदोषावगमबाधबोधाभ्यामेवापनयनादिति । नच ताभ्यामपनये दोषवाध बुद्धयोरभावज्ञानस्यप्रामाण्यकारणकारणत्वस्य सिद्धत्वेन परत प्रामाण्यमापद्यते, इति स एव घटकुट्टी प्रभातन्याय शिरसि समापन्न इति वाच्यम् । दोषबाधवुद्ध्योरनुद्यमात्रेणैव प्रामाण्यग्रहस्य स्वीकारात्, तथोक्तभट्टाचार्येण "यदास्वत प्रमाणत्व तदान्यन्नैवमृग्यते । निवर्तते हि मिथ्यात्व दोषाज्ञानादयत्नत" इति । अन्यथा तदभावावगमस्यापिप्रामाण्यग्रहणकारणत्वेन, तदभावावगमस्यापि प्रामाण्यावगमायतत्तदभावावगमान्तराणामवस्याश्रयणीयतयाऽनवस्थायादुरवस्थत्वात् । ततश्च "प्रमाण्य परतो ज्ञायतेऽनभ्यासदशाया साशयिकत्वात्, अप्रामाण्यवदित्योदयनिकपरतस्त्वानुमाने, अनभ्यास-

कूलस्वभावत्वाच्च, ज्ञानतत्साधनतदनुग्राहकाणाम् । एतच्चैतेषां स्वतःप्रामाण्यास्वीकारे सर्वत्राविस्वासप्रसंगात् । गवादिव्यक्तीनां तु न गोत्वादिजात्यभिव्यञ्जकत्वंजाते निराकारतया स्वाश्रयतयाबोधकत्वमेव नतु व्यञ्जकत्वं व्यक्तेः यथोक्तव्यभिचारात् अभिव्यञ्जकतयाऽभिमत आदर्शादिस्तु नेत्रकिरणप्रतिफलनरूपदोषहेतुर्भवति, नतु मुखा-

दशार्यां साशयिकत्वादितिहेतौ व्यभिचारात् । यत स्वत प्रमाणत्वेनाभिम्तानुमानोपमानोपमाना-नुव्यवसायधर्म्यव्यवसायेषुव्यभिचारात् । अनुमानादिज्ञानस्थस्वत प्रामाण्यमाचार्यवाचस्पतिनापि व्याख्यातम् "विवादास्पदीभूतज्ञानमर्थाव्यभिचारि समर्थप्रवृत्तिजनकत्वात्, यदिपुनरेवनाभविष्यत्त-दासमर्थां सफलाप्रवृतिनाकरिग्यत् यथा प्रमाणाभास इति व्यतिरेकी । अनुमानस्य स्वत प्रमा-णतयाऽन्वयानुमानस्यापि सभवात् । तथाचानुमानस्यपरितोनिरस्तसमस्तविभ्रमाशकस्य स्वत एव प्रामाण्यम्, अनुमेयव्यभिचारिलिङ्गसमुत्थत्वादिति । तथा सत्प्रतिपक्षदोषोपि भवति "विवादस्थले प्रमात्वम्, विज्ञानग्राहकसामग्रीग्राह्यम्, अप्रमामात्रवृत्तित्वानधिकरणत्वे सति ज्ञानैकवृत्तिजातित्वात्, ज्ञानत्ववदिति । एवचोपयुक्तप्रकारेणप्रमाणस्यस्वतो ग्राह्यत्व प्रतिपादितम् । एतदेवात्रापि कथितम् **एतच्चैतेषां स्वतः प्रामाण्यास्वीकारे सर्वत्राविश्वासप्रसङ्गादिति** स्वत प्रामाण्यन्यायात्, प्रमाणस्वतस्त्वात्मकयुक्तिवलादित्यर्थ । ज्ञानोत्पादकसामान्यसामग्री प्रयोज्यत्वम् ज्ञानभासकसामग्रीभास्यत्वप्रामाण्यस्योत्पत्तौज्ञप्तौ च स्वतस्त्वमित्येवमुपरिप्रदशितमेव । ननु यदि स्वत प्रामाण्यमिष्यते तदा क्वचिद् ज्ञानेजाते, इद ज्ञानं प्रमा नवा ! इद ज्ञानमप्रमेत्याकारकविप-रीतावगाहन कथ भवति, भवन्मते ज्ञाने गृहीते प्रामाण्यस्यगृहीतत्वादेव सशयादेरभावादितिचेन्न, ज्ञानसामग्र्या तदतिरिक्तदोषवलादेवेति गृहाण । एवमेव स्वत प्रामाण्यग्रहेप्यनभ्यासदशापन्नज्ञाने य प्रामाण्यस्यसशयादिर्भवति तदपि दोषमूलकसशयादेवेति । प्रामाण्यस्यस्वतस्त्व यदिनाद्रियेत तदा तत्रवाधादिकदर्शितम् **अस्वीकार** इति । प्रत्यक्षादिसर्वज्ञानेषु अप्रमाण्यशकयाज्ञानमात्रस्य प्रामाण्यमपगतस्यात् तस्मात्प्रामाण्यस्यस्वतस्त्वस्वीकार आवश्यक एव । अन्यथाप्रामाण्यनिश्चये-जातेपिप्रामाण्यशङ्काक्वचिदपि प्रतिहताभवेत्, ततश्च येय निष्कपप्रवृत्ति सा नकुत्रापि भवेदिति । **व्यक्तेरिति** यथाव्यक्तिर्जातिमभिजयतिस्वाश्रिततया तथाप्रकृतेपिस्यादिति, तन्निषेधति, व्यक्तेरिति, व्यक्त्यास्वाश्रिततयाजाते प्रकाशन यद्भवति तन्नव्यक्तेरभिव्यञ्जकत्वप्रयुक्तम्, किन्तुव्यक्त्यपृथक् सिद्धप्रकारत्वलक्षणवस्तुस्वभावादेव तत्र तथा भवति, व्यक्ति तिरस्कृत्यजातेरनवस्थानासभवात् जातिव्यक्त्योरपृथक्सिद्धत्वमिति अपृथक् सिद्धत्वादेव व्यक्त्याजाते प्रकाशन तु तत्र जाते स्वाश्रिततयाऽभिव्यञ्जकस्तु सर्वत्र प्रकाशशीला लोकादिरेवभवतीतिव्यक्तेर्व्यञ्जत्व न कुत्रापि समतमिति । ननु व्यञ्जकत्व नास्तितदाकथ व्यक्त्यादिरूपस्यादर्शादे सवितृप्रकाशव्यञ्जकत्व तत्राह **आदर्शादित्यादि** तत्रापि दर्पणादेर्नाभिव्यञ्जकत्वम्, तत्रतु दर्पणादिप्रतिहतगतेश्चक्षु-

देर्व्यञ्जकोऽव्यञ्जकस्त्वालोकादिरेव। कथंचिदव्यञ्जकत्वेपि विपरीतगमनदोपप्रयोज्यस्तत्र विपरीतावभासः। नचात्रतथाऽहमर्थज्ञातुस्तादृशदोपोपनायकत्वस्वभावः। एवसति सर्वप्रत्यक्षस्याप्रामाणिकत्वेन न किमपियथार्थं स्यादिति। ततश्च ज्ञातृरूपेणैवाहमर्थस्य सिद्धिस्ततोऽहमर्थ एव प्रत्यगात्मा न केवलंज्ञानमात्मेति।

❀ स्वापेऽहमर्थस्यभानसमर्थनम् ❀

यदप्युक्तंस्वापेमोक्षे च ज्ञानमात्रतयात्मनः स्फुरणं भवति, अहमर्थस्यभानं तु न भवति, तदपि न सुषुप्तौप्रतिसंधानबलादेवाहमर्थसद्भावस्य पूर्वमेवप्रतिपादनात्। अहमित्येकरूपेणप्रबोधपर्यन्तंज्ञातुः स्फुरणात्। नच यदि परागर्थस्याननुभवात्तमसाऽभि-

पतेजस प्रतिनिवृत्त्यमुखादिविम्बाभिमुखतया प्रसरणमेवमुखादिविबस्यान्यथा प्रतीतोदोपरूप प्रयोजक भवति। प्रतिकूलरूपदोपप्रयोजकस्यादर्शादव्यंञ्जक व भवतु, न भवतु वा' नतु व्यञ्जकप्रयोज्यमन्यथाज्ञानमिति समुदितार्थ।

प्रकृतेतु, अहमर्थस्य न दोपापादकत्वस्वभाव, एव सतिसर्वस्यापि अप्रामाण्यात् किमपि सत्य न स्यात्। अर्थात् अहमर्थस्यदोषापादकत्वम् ज्ञानकरणाना चक्षुरादीनाम् विपरीतज्ञानोपयोगिव्याप्रुतिदोपापादकत्वमेव। तथात्वे प्रमाणधीनज्ञानेहमर्थस्यापि कारणत्वात्, तदेव यदि प्रमाणदोषसम्पादकभवेत्तदाकुत्रापि यथार्थज्ञाननोदीयात् सर्वत्रदोपसम्पादकाहमर्थस्यविद्यमानसर्वत्रभ्रमात्मकमेवज्ञान भवेत् न प्रमाणजनित यथार्थज्ञान भवेदिति सर्वत्र प्रमाणज्ञानदत्तजलाञ्जलिकमेव भवेदिति। प्रकरणार्थमुपसहरन्नाह **ततश्चे**त्यादि अत्रनायमानमहमर्थविषयकज्ञानप्रमारूप पूर्वयुक्त्यातदर्थेभ्रमासभवात, ततश्चज्ञातृरूपेणैव तस्याहमर्थस्य सिद्धिर्भवतीति स एव ज्ञानाऽत्मा नतु केवलज्ञानस्वरूपक आत्मेति।

। इत्यहङ्कारस्य सविदभिव्यञ्जकत्वनिराकरणे दत्त्वदीप।

अहमर्थ एव ज्ञाता स एव चात्मा, यदाखलु, आत्मविषयकज्ञाननदाऽहमर्थ पुरस्कृत्यैव नान्यथाऽत्मज्ञानमिति सिद्धान्तोदेदविदाम्। अन्येकेचन, सुषुप्तिकाले मोक्षकाले चाहमर्थस्याभावेन तस्य व्यभिचारितत्वान्नाहमर्थ आत्मेति पक्ष निराकरिष्णुस्तदीय मतमुपपादयन्नाह **यदप्युक्तं स्वापेमोक्षेचेत्यादि** अर्थात् मोक्षसमये स्वापकालेचाहमर्थस्याभावेनाहमर्थस्यात्मत्वस्वीकारोनो युक्तियुक्त **किन्तु** ज्ञप्तिमात्रमेवात्मेतिपूर्वपक्षाशय। उत्तरयति—**सुषुप्तौ** भवयेत्राहमर्थस्यावस्थानमित्यस्यासकृत्पूर्व **निवेदनात्** अर्थात् "अहमित्येकरूपेण सर्वदाऽस्मनानुभव सुप्तोत्थितस्याहमर्थघटितस्मरणदर्शनात्स एवाहमर्थमात्मेति। पुन पूर्वपक्षयति **न च यदि परागर्थस्याननुभवादित्यादि** तत्तत्परागर्थस्य

भवाद्विवेकेनाहमर्थस्यभानं न भवतीतिवाच्यम्, स्वापादौविविच्यप्रकाशनाभावस्यानुभूतेरपिदर्शनात् । तत्र नाहमः नाप्यर्थान्तरस्यभानं यद्यपि, तथापि, अज्ञानसाक्षितयाऽनुभूतिमात्रंवर्तते, इत्यपिकथनं नोपयुज्यते, एतादृशस्वापकालिकानुभवस्य कस्यापि परामर्शस्यादर्शनात् । नच सुप्तोत्थितस्य "एतावन्तं न किञ्चिदवेदिषम्" इत्यादि परामर्शादेव तथा ज्ञायेते इति वाच्यम्, तथादर्शनात्कथमेतत् । नकिञ्चिन्निर्देशादितिचेत् । एवं सतितदास्वापेज्ञानमात्रमपिप्रत्याख्यातंस्यात् । अपि च स्वापप्रसिद्धमात्मानमहमितिपरामृशन्, न किञ्चिदवेदिषमिति तज्ज्ञानेनिराकुर्वन् तात्कालिकीज्ञानस्यसिद्धिमहमर्थस्यचासिद्धिकथयन् अनुभवविरोधमपिनावधारयसि निर्विषयंनिराश्रयं च ज्ञानं न कुत्रापि संभवति, उपपद्यतेवेति ।

वाह्यार्थस्य स्वापेऽननुभवेन वाह्यार्थानुभवितृत्वमात्मनस्तथातमोगुणाभिभूततया स्फुटरूपेणेतरविवेकेनभान न भवति, तस्मान्नाहमर्थआत्मेत्याशय पूर्वपक्षस्य । उत्तरयति **स्वापादौविविच्यप्रकाशनाभावस्येत्यादि** यथा स्वापेऽहमर्थस्य विविच्यस्फुटरूपेणभान न भवतीतिनाहमर्थस्यात्मत्व स्वीक्रियतेतथैवकेवलज्ञानस्यापिस्वापेविविच्यस्फुटरूपेणभानाभावोज्ञप्तेरपिसमान इति ज्ञप्तेरप्यात्मत्व न स्यात् । नचैतावन्त न किञ्चिदवेदिषमित्याकारकस्मरण सुप्तोत्थितस्य भवतीति, एतावन्तमनुसधान ज्ञानसाक्षितयाऽहमर्थस्यस्वापकालेसत्वनिवेदयतीति कथमित्थ स्यादिति सिद्धान्तिन आक्षेप । कथमेव स्यात् अर्थात् न कथमपि सभवतीत्युत्तरपक्षाशय । पुन पूर्वपक्षी कथयति **न किञ्चिदिति** निर्देशात् स्वापकाले न किञ्चिदिति कथनेन किञ्चपदवोध्यजडाहकारस्य निषेधो भवनीतिपूर्वपक्षाशय तत सिद्धान्ती प्राह यथा किञ्चनपदबोध्यस्याहकारस्य निराकरणतथैवकिञ्चनपदेनात्मनोपि परामर्शात् संविन्मात्रस्यापिभान यत्पूर्वपक्षिणामभिमत तदपि न सिद्ध्येत्, अथदिहकारनिराकरणे सविदोपि निराकरण स्वापकाले आपतेत्, सविन्निराकरण तु भवताकथमपि न शोभनांमति । अथ **किञ्चिदिति** पदेन जडमात्रस्यैव परामर्शो भवति नतु ज्ञानस्येति चेत्तर्हि, तदाऽहमर्थस्यापिनिराकरण न स्यात, तस्याहमर्थस्यापि प्रत्थक्त्वेन जडत्वाभावात् । अथवा ज्ञेयमात्रस्य किञ्चिदिति पदेन ग्रहण भवति नतु ज्ञानस्यापीतिचेत्तुल्यन्यायेन ज्ञातुरपि परामर्शो न स्यात, यतो भवन्मते ज्ञातुरपि जडात्मकाहमर्थघटितत्वादिति ।

अपि च पूर्वपक्षकर्तु प्रतिसन्धानविरोधोपि शिरसिन्यस्तो भवतीति दर्शयति **अपि च स्वापप्रसिद्धमात्मानमित्यादि** सुषुप्तिकाले सिद्धमात्मानमह पदेन प्रतिसन्धायापि **न किञ्चिदवेदिष**मित्यादिना तदीयज्ञान निराकुर्वन् तथा, स्वापकालिकवित्तिसिद्धिमहमर्थस्य न सिद्धमिति वदन्, अनुभवविरोधमपिज्ञानदुर्वलोन विजानातीतिभाव । नहि भूतलेघटोनास्तीति प्रतीत्याघटस्यसद्भावो भूतलस्य च निराकरणकस्यचिदपि विजानाति, किन्तु भूतलस्यसद्भाव तदाधेय

स्यादेतत्, प्रबोधकाले "सुप्तोऽहं मामपि न ज्ञातवान्" इति प्रत्ययोजायते इति। सत्यं जायते, सतुप्रत्ययोवर्णाश्रमादिवैशिष्टयेन प्रबोधकाले संवेद्यमानंशरीरिणंमामित्यस्मदुपदवाच्यमादायस्वाप्यभावस्थाप्रसिद्धाविशदस्वानुभवकतानाहमर्थस्य तेन रूपेणाज्ञातत्वं विज्ञापयति, नतु ज्ञस्वभावस्याहमर्थस्यापि। एवमिवायमनुभवः—"इहसुप्तोहमी- घटस्यैवाभाव प्रत्येति। अर्थादावारस्य सत्वमावेयमात्रस्य चाभाव विजानाति एव प्रकृते **एतावन्तं न किञ्चिदवेदि**षमिति सुप्तोत्थितपुरुषस्य परामर्शेन केवल ज्ञानस्यैवाभावो विषयो ज्ञातुश्चसद्भाव एव प्रसिद्ध्यति। तदेतादृशमभिप्रायमविद्वान् सर्वथाज्ञानदुर्बल एव पण्डिता मन्यन्ते इति प्रकरणस्याभिप्राय।

ननु एतावन्त काल न किञ्चिदवेदिषमिति स्मरणात्मकप्रतीत्यासविषयकसंविद एव निराकरण भवति, नतु निर्विशेषसविदोऽभावो भवति। अथात तादृश स सविपयकज्ञानमेव निषिद्ध नतु निर्विशेषज्ञानस्यनिराकरणमिमि निर्विशेषज्ञानमत्व तु स्वापेप्यक्षतमेवेतिचेत्तत्राह **निर्विषयं निराश्रयं चेत्यादि** अर्थात् यज्ज्ञानतत्सर्व सविषयक साश्रयमेव भवति, अह घटादिज्ञानवान्, इत्यादौ तथादर्शनात्, ततश्च स्वापादिकाले यद्यपिज्ञाननिर्विपयकमिवाभाति तदपि साश्रयमेव न निराश्रयमसम्भवात्। तच्च ज्ञान धर्मभूत न स्वापे प्रकाशते इति सिद्धान्त पन्था जागरणादिव्यवहारकाले स्फुटतरव्यवहारापपादनाय, तत्रजागरणे आश्रयविपयसहितमेवज्ञान धर्मभूत प्रकाशते, स्वापेतु व्यवहाराभावेनतदानिर्विषयकमपि धर्मभूतज्ञान साश्रयमेवविभातीत्यर्थ।

स्वापादिकालेपि "न किञ्चिदवेदिपमित्याकारकप्रतिसन्धानबलेन तदाहमर्थस्यैवात्मनोऽनुसन्धान भवतीति यद्यपिसिद्धान्तिना प्रसाधित, तथापि "मामप्यह न ज्ञातवान् प्रसुप्त" इत्याकारकप्रतिसन्धानान्तरबलेनाहमर्थस्यात्मन स्वापेनानुभवो भवतीतिनात्माऽहमर्थ इति यदुच्यते शङ्कापक्षीयेन तन्निराकरणायप्रथमत सक्षेपेण तन्मतमेवानुवददि **स्यादेतत् प्रबोधकाले** इत्यादि,।

प्रबोधकाले जागरणे "मामप्यह न ज्ञातवान् स्वापकाले" इत्याकारकपरामर्शा जायते, तन्नाहमर्थआत्मेति प्रश्नार्थ इति। तमिमपक्ष परिहरति, अर्धस्वीकारेण **सत्यं जायते** इति। अर्थदेतादृश परामर्शो जायते, तावताहमर्थस्य तदा निराकरण सर्वथा न भवतीत्यर्थ। **सतु प्रत्ययः** इत्यादि जागरणकालेज्ञायमानम् "अहब्राह्मणोऽहब्रह्मचारी" इत्यादिवर्णाश्रमादिविशिष्टमात्मानशरीरादिविशिष्ट "मामितिपदेनसमादाय, स्वापावस्था, प्रसिद्धाविशदस्वाभाविकानुभवैक रूपाहमर्थस्य, तेन रूपेणाज्ञातत्वमेव प्रतिपादयति, अथात विशिष्टरूपेणाहमर्थस्यात्ममात्र ब्रवीति नतुसर्वथाहमर्थस्य वियोग स्वापे साधयति। स्वापकालिकाविशदस्वप्रकाशैकाश्रयस्य, तेन रूपेण वर्णाश्रमादिविशिष्टाकारेण, ज्ञस्वभावस्य ज्ञातृस्वरूपस्य स्वापन, ज्ञानस्यप्रकाशो भवतीति। परन्तु ज्ञातस्वरूपमात्रस्यैव तदास्वापे प्रकाशोजायते इति। उक्तप्रतीतेरर्थ प्रदर्शयति, **एवमिवायमनु-**

दृशश्चेत्येवं प्रकारेण मामपि न ज्ञातवानहमिति । किञ्चविशुद्धआत्माऽज्ञानसाक्षितया सुपुप्तिकाले वर्तते इति भवदभिमतः । तत्र साक्षित्वंनाम साक्षाज्ज्ञातृत्वस्वरूपमेवेति पूर्वमेवकथितम् । स चायमात्माजानामीत्येवं प्रकारेणभासमानोऽहमर्थ एवेति कथमुच्यते यत्सुषुप्तावहमर्थो न प्रकाशते । स्वस्मैप्रकाशमानोहमित्येवं प्रकारेणैव प्रथते इति । तस्मात् सुषुप्तिकालादावप्यात्माहमित्येवं प्रकारेणैव प्रकाशते इति तदापि, अहमर्थस्यैवात्मत्वमायाति नतु तद्विरहितस्यकेवलज्ञप्तिमात्रस्यात्मत्वंसिद्ध्यति ।

यत्तु मोक्षकालेनाहमर्थानुगमनमिति, तन्न, बौद्धमतवत्, आत्मनाशस्यैवमोक्षत्वभ्युपगतं स्यात्, न चाहमितिधर्ममात्रं, येन धर्मरूपाहंत्वापगमेप्यज्ञानाविद्यानिवृत्तौ,

भव इति । "इह सुप्तोऽहमीदृशश्चेत्येव प्रकारेणमामपि न ज्ञातवान्' इति। ननु स्वापकालेऽज्ञान साक्षितयैषात्माप्रकाशते इति मतम्, तदनुसारेणापि, अहमर्थस्यभान ननिराकृत भवति किंतु तन्मतेनापि स्वापेऽहमर्थज्ञातुर्भानमवर्जनीयमेवेति दर्शयितुमाह **किञ्च विशुद्धआत्मा** इत्यादि, अर्थात् शाङ्करमतेपि स्वापकाले विशुद्ध एवात्माऽज्ञानसाक्षितयाभासते इत्यम्युपगम तत्रसाक्षित्व साक्षादेव ज्ञातृत्वमिति कथमिवाहमर्थस्य निराकरण संभवेदिति । अर्थात् साक्षाद्रष्टरिसज्ञायामित्यनुशासनवलात्, साक्षात्कर्तरि, एव साक्षिशद्वस्य प्रयोगो भवति परपरिते । एव च स साक्षी ज्ञातृत्वेन ज्ञायमानोऽहमर्थ एवेति "अहमज्ञ" एव प्रकारेणाज्ञानसाक्षितया स्वापकालेपि, आत्मनोऽहत्व सिद्ध्यत्येवयदातदाकथमहमर्थस्य स्वापे निराकरणवचण शोभेत, अपितु स्वापेऽहमर्थप्रकाशन सर्वथाऽवाधितमेवेति । अपि च प्रत्यक्त्वस्याह बुद्धिव्यवस्थाप्यत्वादपि स्वापकालेपिआप्मनोऽहत्वसिद्ध्यत्येव तत्राह **स्वस्मै** इत्यादिस्वापकालेपिस्वस्मै प्रकाशमानोह प्रकाशते इत्यहमर्थस्य स्वाप प्रसिद्धस्यात्मत्वसिद्ध्यत्येवेति । प्रकरणार्थमुपसंहरति **तस्मादि**ति सुसुप्तिकालादावित्यत्रादिपदेनमोहमूर्छादीनासग्रह । इति सुषुप्तावहमर्थस्यभानसमर्थनप्रकरणेतत्त्वदीप ।

मुक्तिकाले आगन्तुकसर्वधर्मस्यनिवृत्तावहमर्थस्यापिधमान्तरत्वविशेषेणतस्यापिनिवृत्तिर्जायते इतिसर्वधर्मनिवृत्तौकेवलज्ञानमात्रमात्मापरिशिष्यते । तस्मादहमर्थस्यमोक्षेऽनुवर्तन न भवति "प्रज्ञानघन" "सत्यज्ञानमनन्तम्" "एकमेवाद्वितीयम्" इत्याश्रितिप्रामाण्यादिति यन्मतशङ्करानुयायिनातदनुद्यतस्य निराकरणायानुक्रमते **यत्तुमोक्ष** इत्यादि । न कस्यापिमोक्षसमये प्रतीतिर्जायतेऽहमुक्तो जात इति । मोक्षकालस्यश्रुतिमात्रसमधिगतत्वात् । यदिमोक्षेपि अहमर्थउपावर्तेत तदोपर्युक्तप्रतीतिरपिभवेन्नतु तथा कस्यापिप्रतीतिरस्ति, अदर्शनादिति । तदेतदवैदिकमिति निःसार बौद्धमतप्रवेशश्चेति दूषयति-**तन्नेति** । अर्थादेतन्मत न समीचीनम् । तदेवोपपादयति, **बौद्धमतवदित्यादि** बौद्धोहि ज्ञानाधाररूपमालयविज्ञानस्यावसानमेव, अर्थादात्मविनाशमेवमोक्ष मनुते **स** एव प्रकारस्तवशिरसिसमापतति । वैनाशिकदर्शन माध्यमिकचरमबौद्धदर्शनम्, इति तदेव-

आत्मास्वरूपेणावतिष्ठेत, अहमित्येवात्मरूपम् । ज्ञानमपितद्धर्मत्वेनतस्यैवप्रकाशते ज्ञानं-मे जातमिति । तदा का कथाऽर्थान्तरस्यात्मत्वे । ।

किञ्च यः पुरुषविशेषोजननमरणादिदुःखैरात्मानमहंदुःखवानस्मि एवं तत्वतो भ्रमेण वा विजानाति, स सर्वमिदंदुःखजालंनिराकृत्यकथमहंनिरतिशयंसुखमिच्छन् तादृशमोक्षसाधनेशमदमादौप्रवर्तेयम् । अनेनोपायेन सांसारिकसुखदुःखादिक विनाश्यैकान्तिकात्यन्तिकदुःखनिवृत्तिपूर्वकसुखविशेषलक्षणमोक्षमवाप्यस्वस्थः सुखी-स्यामिति ।

एतादृशःपुरुषो यद्यहंतत्वज्ञानादिसाधनानुष्ठानेनाहमेव न भविष्यामीत्यवगच्छे-त्तदामोक्षकथैवनिरर्थिकास्यात् ? अधिकारिणोऽभावात् वेदान्तविद्यामोक्षशास्त्राणि चाप्रामाण्यमुपगच्छेयुः । नचाहमुपलक्षितः कश्चित् प्रकाशोमोक्षेस्थास्यतीति वक्तव्यम्

प्रकारान्तरेणाहमर्थानुवृत्तिकथनद्वारेण भवद्भिरपि प्रतिपादनादिति । यदि कदाचिदहत्व धर्ममात्रम्, तदाऽहत्वस्य धर्मस्य निवृत्त्यनन्तरमपि धर्मिरूप आत्मामोक्षेऽनुवर्तेत । अथादहमर्थानुगमनमोक्षे-भवेदिति भवत्कथन समीचीन भवेदिति । नतुधर्ममात्रमासा किन्तु स एवाहमर्थ आत्मेति । यच्चेद ज्ञान तदपि, आत्मधर्मत्वेन तस्यैवाहमर्थस्यैव प्रकाशते ज्ञानमजातमिति प्रतीते । अर्थात्, धर्मरूपेण-प्रतीयमानस्य सर्वान्तरस्य स्वतन्त्ररूपेणमात्मत्वमपितुपराधीनतयैवाववोधो भवतीति न तस्यात्मत्वम् ।

यदातुसर्वापेक्षया, आत्मनोऽन्तरङ्गस्य ज्ञानस्यात्मत्व तदावहिरङ्गस्य प्राणमनइन्द्रियशरीरादे स्वातन्त्र्येणात्मत्वकथनतुदूरापेतमेवभवति तत्राह **का कथेत्यादि** । यदितु ज्ञातृतया ज्ञानकर्तृत्व रूपेण प्रतीयमाणाहमर्थाद्भिन्नस्यज्ञानस्यनात्मत्व तदाज्ञानव्यतिरिक्तप्राणादिन आरभ्यशरीरपर्यन्त पदार्थस्य स्वातन्त्र्येणात्मत्वकथन न कथमपि सभवति । शरीरादितआरभ्यप्राणान्तस्योत्पादविनाश-शालिनोऽनित्यस्यानात्मत्वमोक्षेऽभावात्, परन्तु ज्ञातृतयाप्रसिद्धस्याहमर्थस्य तथात्व मोक्षेपि तदनु-गमनात्, मोक्षेपि-ज्ञानमात्रधर्मत्वेनप्रकाशते ज्ञानमजातमिति । तस्मादहमर्थ एव आत्मामोक्षेऽनु-गमनादिति सक्षेप ।

स्वापकालेमोक्षकाले चाहमर्थस्य निवृत्तिर्नभवतीति प्रतिपाद्य, मोक्षकालेऽहभावनिवृत्तौ दोषान्तरमपि दर्शयति **किञ्च यःपुरुष विशेष** इत्यादि, पुत्रकलत्रस्रक् चन्दनादि, इहलौकिक सुखदुःखादिभोक्तृत्व तथा स्वर्गादिपारलौकिकसासारिकफलभोक्तृत्वमहमर्थस्यैव भवति तथा, ऐहलौकिकविषयाणामनित्यत्व दुःखरूपता च विचार्यैतत सजातवैराग्यस्य दुःखत्रयाद्यघातात् मुमुक्षुत्व च ज्ञातुरहमर्थस्यात्मन एव भवतीति सर्वजनप्रसिद्धम् । स च ज्ञाताऽहमर्थो यदि **मोक्ष समयेस्वस्य** विनाशमवगच्छेत्तदा स कथमपि मोक्षविषयकस्पृहा न करिष्यति, मृतस्यभोगाभावात् । अत एव "जीवन्नरोवर्षशतानि भुक्ते" इति न्यायात् सर्वोपिसर्वदास्वसत्वमेवेच्छति, नतु स्वविनाश

ममविनाशोत्तरं कश्चित्प्रकाशो भविष्यतीतिकृत्वातदर्थंकश्चिदपि स्वस्थः पुरुषस्तत्र प्रवृत्ति कुर्यादिति, देहगेहादि उपलक्षितः कश्चिद् भविष्यतीति कृत्वा स्वमरणाय न कश्चिदपि तत्र प्रयत्नशीलोभवतीति ।

एतेनाहंजानामीति प्रतीतोयोऽनिदमंशश्चैतन्यमात्रस्वरूपः प्रकाशः स एवात्मा । तस्मिन्नात्मरूपाधिष्ठानेज्ञायमान आत्माधीनप्रकाशो युष्मदर्थोऽहमर्थः स नात्मा कथमपीच्छति । अत एव "आमवातकृतजडशरीरोत्थातुमसमर्थोऽनेकदु खभुञ्जन्नपि स्वविनाशनेच्छति ।"मान भूव न भूयासमिति प्रेमात्मनीक्ष्यते" । मोक्षकाले स्वविनाशावगमेकथमोक्षमिच्छेन्न कथमपीति । तथासति मुक्तेरपुरुपार्थत्वप्रसङ्गात् । नवा मोक्षकाले स्वविनाशजानन् मोक्षसाधनतत्साधनानुष्ठानयो कश्चिदपि प्रवर्तेत, एवञ्ज्ञापकतयाऽनुष्ठापकतया च प्रमाणभूताना मोक्षप्रतिपादकशास्त्राणा श्रुतिस्मृत्यादीना प्रमाण्य विलुप्यत । न चैतदिष्टम्, स्वत प्रमाणताया स्वीकारादिति । **मम विनाशेति** यथा शरीरतदधिष्ठानोपलक्षित कश्चिद्भूभाग शरीरादि विनापि स्थास्यत्यवेति देहगेहादिविनाशोत्तरमपि, इति जानन् विद्वान् स्वकीयशरीरस्य गृहादेश्च विनाशाय प्रवर्तमानो दृश्यते । तथैव ममविनाशानन्तरमपि मोक्षकालेऽहमर्थोपलक्षित कश्चिदर्थ स्थास्यत्येव मोक्षकाले इति बुद्ध्वापि स्वस्वरूपविनाशात्मकमोक्षायज्ञाताहमर्थोनकमपि प्रवर्तेत इति । एव चैतन्मतस्यनिराशात्मकत्वमेवापततीत्यत प्रच्छन्नबौद्धोयमिति कृत्वाश्रुतिसारविद्भिरुपेक्षित इत्यतोज्ञाताहमर्थएवेति सक्षेप । विस्तरस्त्वन्यत्रावधातव्य ।

एतेनेत्यस्यपरास्तमित्यनेन सम्बन्ध । एतेनवक्ष्यमाणप्रत्यक्षादिविरोधकथनेन यदिदमुच्यते तदपिखण्डितभवतीत्यर्थ । आत्मनो ज्ञानरूपत्वात् चित्वात् स्वयप्रकाशत्वम्, तदनन्तरप्रत्यक्त्वसिद्ध्यति, तदनन्तरमात्मत्वज्ञानस्यैवनत्वहमर्थस्याहजानामीति प्रतीतिविपयस्येति । एतन्मतनिराकर्तुमाह **एतेन** इत्यादि । अयभाव –अहजानामीतिप्रत्यक्षप्रत्ययेचैतन्यमात्रस्वरूप पराग्विषय व्यतिरिक्त प्रत्यक् य खलु, जानामीतिज्ञायते, स प्रकाशरूपएवात्मा । एतादृशप्रकाशात्मकरूपेऽधिष्ठाने, शुक्त्यधिष्ठानेरजतादिवत्, तस्मिन्नात्मरूपेधिष्ठाने भासमानोऽधिष्ठानाधीनप्रकाशोऽहमर्थोवस्तुतो युष्मदर्थ एव स च नात्मा, तस्य बाह्यविषयाऽगन्तुकत्वात् । तस्मिन्नधिष्ठाने इति कथनात्, अहमर्थे चिदभिन्नत्व ज्ञापितम्, आधाराधेयभावस्थले गृहे देवदत्त इत्यादौभेदस्यदर्शनात्, इहापितस्मिन्नित्यनेनाधाराधेयभावस्यकथनात् तस्य च भेदघटितत्वादिति । तद्बलनिर्भासितत्वेति कथनेनाध्यस्तस्यास्वप्रकाशत्वनिवेदित कथितम् । लक्षणतोयुष्मदर्थस्यानात्मत्वेहेतुरुक्त । एवञ्चज्ञानस्वप्रकाश ज्ञानत्वात, यन्नैवयथाघटादि । ज्ञानप्रत्यक्रूपस्वयप्रकाशत्वात्, ज्ञानमात्माप्रत्यक्त्वादिति । तथा अहमर्थोनस्वप्रकाश, चिद्भिन्नत्वात्, घटादिवत् । अहमर्थ पराक् अन्याधीनप्रकाशत्वात् घटादिवदेवेति । अनुमानत्रिक प्रदर्शितमिति पूर्वपक्ष ।

परागरूप एवेति तदपि परास्तम्। कुतः? प्रत्यक्षादिप्रमाणविरोधात्। अहं जानामीति प्रत्यक्षसिद्धश्चेतनः स युष्मदर्थ इति कथनं माता मे वन्ध्येतिवद्व्याहतार्थकमेव भवतीति, न चासावहमर्थोऽन्याधीनप्रकाशः स्वयंज्योतिरूपत्वात्। प्रकाशस्वरूपश्च, प्रकाशरूपत्वादेवायं कस्यचित् संबन्धीसूर्यादिप्रकाशवदिति नायमात्मा संभवति तस्माज्ज्ञातृतयासिद्ध्यन्नहमर्थ एवात्मा नज्ञानमात्रमात्मा।

उत्तरयति **प्रत्यक्षादिप्रमाणविरोधात्**। अथादत्र चितोज्ञानमात्रस्यात्मत्वस्वीकारे धर्मिग्राहकप्रमाणबाध कथितोऽग्निः शीत इति, तत्रधर्मिणोवन्हेर्ग्राहक प्रमाणस्पार्शनप्रत्यक्षम्, तेनाग्नेरुष्णस्पर्शवत्तयैवग्रहणात् शीतस्यबाधो भवति। इहापि आत्मग्राहकप्रमाणेनाहंजानामीत्यनेन ज्ञानस्यधर्मरूपतयैवग्रहणात, धर्मितयाज्ञानस्य विपर्यीकरणे बाध एव भवतीति। **माता मे वन्ध्यावदिति** या प्रसवकर्तृत्वेनमाता भवति या च प्रसव न करोति सा वन्ध्या, तथा च माता वन्ध्येति विरुद्धार्थकम् तथैवाहमर्थो युष्मदर्थ एवेति कथनमपिपरस्पर विरुद्धमेव। अहं प्रत्ययआत्मान प्रतिपादयति, युष्मदर्थस्तुतद्व्यतिरिक्तबाह्यमर्थंप्रतिपादयति। युष्मदस्मदोस्तु अन्धकारप्रकाशवदति विरोध इति विरुद्धार्थयो सामानाधिकरण्यस्य सर्वथैवासंभवात। नहि भवति तम प्रकाशयोस्तादात्म्य परस्परसवन्धोवासंभवात्। नन्वहमर्थपराक्त्वमात्मभिन्नत्व चिदधीनप्रकाशत्वेन भविष्यति, अर्थात् यदाहमर्थ प्रकाशते तदाचिदधीन एव ननु स्वतन्त्रस्तस्यप्रकाश इति चिदधीनप्रकाशत्वादसावहमर्थोनात्मेत्याशयेनशङ्कते **नचासावहमर्थोऽन्याधीनप्रकाशः** इति। अर्थात यथाघटादय स्वभावजडा यदायदाप्रकाशन्ते ज्ञानविषयाभवन्ति तदातदास्वान्यस्यप्रकाशमपेक्षन्ते एव तथा दर्शनात् तथैवाहमर्थोपि स्वान्यप्रकाशसापेक्ष इति घटादिवदेतस्यनात्मत्वमिति प्रश्नाशय। तत्रोत्तरस्वरूपन्तु चैतन्यस्वभावतयाहमर्थोनान्याधीनप्रकाश स्वयंज्योतिरूपत्वात। स्वयंज्योतिष्ट्व चास्य स्वप्नवस्थामधिकृत्य स्वयश्रुतिरेववक्ति "अत्रायपुरुष स्वयंज्योति भवतीति। तत्रस्वयंज्योतिर्ब्राह्मणे बृहदारण्यकीये "यदाखलुयाज्ञवल्क्य? यदाऽस्तमिते आदित्ये चन्द्रादावस्तमिते किं ज्योतिरय पुरुष इति प्रश्नस्य प्रत्वाहे "यदाखलुसर्वावभासकसूर्येऽस्तमितेचन्द्रादिप्रकाश पुरस्कृत्यसर्वोपि खखव्यवहार करोति वन्हिनक्षत्रान्तप्रकाशास्तमये, तत्काले पुरुष एव स्वयंज्योति स्वभावो भवति, पुरुषपदेन चात्राहमर्थ एवोपलभ्यते, तस्यजीवनादारभ्यमरणपर्यन्तमहंपदन ग्रहणादितिजीवनादारभ्यान्तिमश्वासपर्यन्तमनुवर्तमानतया स एवाहमर्थ आत्मा, तस्यैव श्रुतिस्वप्रकाशरूपत्व समर्थयतीति। प्रकाशश्च साक्षेपो यथा प्रदीप प्रकाशवत स्वातिरिक्तधर्मिणमाक्षिपति। नतु प्रकाशो निरपेक्ष। केवलप्रकाशस्य स्वातन्त्र्येणनात्मत्व धर्मत्वात ततश्चजानामीतिप्रत्यक्षप्रमाणेन ज्ञातृतयैवाहमर्थस्यसिद्धिर्भवतीति स एव मुख्यआत्मेत्याबालगोपालप्रसिद्धि। तस्मात् न केवल ज्ञानमात्मा नवा केवलोऽहमर्थ किन्तुधर्मभूतज्ञानप्रकार स्वरूपत प्रकाशीज्ञातेवाहमर्थ प्रमात्मासिद्ध्यतीतिकथ तस्याधीनप्रकाशत्वमिति सक्षेप।

सचाहमर्थआत्मा, मोक्षकालेप्यात्मनेऽहंरूपेणैव प्रकाशते, स्वस्मैप्रकाशमानत्वात्। यस्तु स्वस्मैप्रकाशते, स सर्वोऽप्यहमित्येव प्रकाशते, यथोभयसंमतः सुखदुःखादि भजनशीलः सासारिक आत्मेत्यन्वयदृष्टान्तः यः खलुअहमिति रूपेणनावभासतेनासौ स्वस्मैप्रकाशते इति व्यतिरेकी दृष्टान्तः। स्वस्मै प्रकाशते च मुक्तिकाले आत्मेत्युपनयः। तस्मान् सोहमित्येव प्रकाशते मुक्त इति निगमनमिति।

मोक्षकालेपि, अहमर्थस्यैवात्मत्वात तत्प्रकाशस्तदनुवर्तन भवतीति तर्कबलेन प्रसाधितम्। अथमोक्षकालेमुक्तजीवस्याहत्वेनभान भवतीति, अनुमानेनप्रतिज्ञादिनिगमान्तेनपञ्चावयवयुक्तेन प्रदर्शयितुमुपक्रमते **सचाहमर्थआत्मामोक्षकालेपीत्या**दिप्रकरणेन। मुक्तिकालेप्यात्मनोऽहमित्येव प्रकाशते, स्वस्मैप्रकाशमानत्वात्, य स्वस्मैप्रकाशते स सर्व अहमित्येवप्रकाशमानोभवति। यथा ससारीआत्मेति, इत्यन्वयदृष्टान्त। य खलुअहमित्येव न प्रकाशते स नस्वस्मैप्रकाशते यथा घटादिर्वाह्यपदार्थ इति व्यतिरेकि दृष्टान्त। स्वस्मै प्रकाशते च मुक्त इत्युपनय। तस्मात् मुक्तोपि अहमित्येव प्रकाशते इति। यथा पर्वतोवन्हिमान् इति प्रतिज्ञा, धूमादिति हेतु। यो यो धूमवान् स स वन्हिमान् यथामहानसमित्यन्वयिदृष्टान्त। यो न वन्हिमान् स नधूमवान् यथा महाहृद इति व्यतिरेकिदृष्टान्त। वन्हिव्याप्यधूमवानयपर्वत इत्युपनय। तस्माद्वन्हिव्याप्यधूमवत्वात्पर्वतो वन्हिमानिति निगमनम्। प्रतिज्ञातस्या यस्यधूमादिषु व्याप्तिग्रहणकथनद्वारापक्षे उपसचरण निगमनमिति। तथैवेहापिमोक्षकालिकात्मनि पूर्वप्रतिज्ञाताहमर्थस्यपुनरुपसहरणेनाभीष्टसिद्धि प्रदर्शितेति। ननु दृष्टान्तदृष्टधर्मस्यहेतुद्वारापक्षे व्यवस्थापन, भवतीति, ततश्चात्रदृष्टान्तेससारिकात्मनि, अज्ञानित्व ससारित्व च विद्यते इति मुक्तिकालिकेप्यात्मनितयो प्रसक्ति स्यादित्याशङ्क्य तादृशीशङ्कामपनेतुमुपक्रमते **न चैवं यथोक्तरूपेण** इत्यादि। मुक्तस्यापि ससारिवदेवाहत्वेन भासमानत्वे, यथा ससारी, अज्ञानवान् भवति तथैवमुक्तोप्यज्ञानवान्, स्यात्, ततश्चमोक्षार्थं न कोपि प्रयासकुर्यादितिमोक्षकथैवास्तमियादित्यर्थ प्रश्नवाक्यस्य। उत्तरयति **तथात्वे मुक्तत्व विरोधादिति**। यदि ससारिवाज्ञानित्व तदामुक्तत्वविरोधात्, अर्थादज्ञानराहित्यमेवमोक्ष, तदा पितत्सत्वे कोनामस्वस्थात्मामोक्षायप्रयतेत। अर्थात् मुक्तस्य—अहत्वेन भासमानत्वे तस्यमुक्तस्य ससारिकात्मवत्, अज्ञानित्वादिप्रसङ्गोनापादनीयस्तथा सति मुक्तत्वविरोधात्, शास्त्रप्रतिपादित मोक्षकालिकाज्ञानादिनिवृत्त्यादिविरोधात्। मोक्षकालेऽज्ञानादीनानिवृत्तिर्जायते इति

भिद्यते हृदयग्रन्थीश्छिद्यन्ते सर्वसशया। क्षीयन्तेचास्यकर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे॥

इत्यादिनापापादिसर्वदोषकारणाज्ञानादीनामभाव परमेश्वरसाक्षात्काराद् भवतीति श्रूयते। पापादि रूपकार्यस्याभाव अज्ञानादिकारणस्याभावादेव, अज्ञानाभावश्च परमेश्वरसाक्षात्कारजन्य इति परमेश्वरज्ञानेन विरोधिअज्ञानादेरभावस्तेन च पापाद्यभावो भवतीति। तत्कथमुच्यते मुक्तस्यज्ञानिनो-

नचैवं यथोक्तरूपेण मुक्तस्यभासमानत्वे तस्य सांसारिकात्मवदेव ज्ञानित्वसंसारित्वप्रसङ्गस्यादिति वाच्यम्, तथात्वेमुक्तत्वविरोधात्, अज्ञानोपाधित्वाभावादहं प्रत्ययस्येति। न चाहं प्रत्ययस्याज्ञानोपाधित्वम्, ब्रह्मज्ञानविनाशिताज्ञानानांवामदेवादिप्राचीनमहर्षीणामपि, अहमितिज्ञानदर्शनात्। तथा च श्रुतिः "तद्धैतत्पश्यन् ऋषिर्वामदेवः प्रतिपेदे अहंमनुरभवं सूर्यश्च" अहमेव च वर्तामिभविष्यामि च" इति तथा कथमप्य

ज्ञानादिसभव इति। एवञ्च "मुक्तात्मा, अज्ञानवान्, ससरणधर्मवान् वा अहत्वेन भासमानत्वात् ससारान्तर्गतजीववत्' एतदनुमानम् मोक्षविधायकशास्त्रवाधितत्वादुपेक्ष्यम् यथा "नरशिर कपालशुचिप्राण्यगत्वात् शखवदित्यनुमानम्, अस्थिशुचित्वापादकम् 'नरास्थिस्पृष्ट्वासवासाजलमाविशेदित्यादिशास्त्रवाधितमस्थि शुचित्वेप्रमाण न भवति। यथा वा वन्हिशीतोद्रव्यत्वादित्यनुमानमग्ने शैत्यापादकम्, स्पार्शनप्रत्यक्षवाधिततया, तथा "अग्निर्हिमस्यभेषजमित्यर्थवादशास्त्रवाधिततया न प्रमाणमितिकृत्वोपेक्षित भवति तथैव प्रकृते मुक्तस्याज्ञानित्वापादकमनुमान मोक्षशास्त्रवाधित विषयतया वाधितमेवेति। अथ मुक्तपुरुषस्य युक्त्याऽज्ञानवत्व साध्यते, किन्तु यदिमुक्तात्माहत्वेन भासेत तदाऽज्ञानादिसासारिकधर्मवान् स्यात्, यथा यद्यवन्हयभाववान् तर्हिधूमाभाववान्स्यादेवेतिवदिहापिनियतप्रसजनमेवक्रियते इतिचेत्तत्राह **अज्ञानोपाधित्वाभावादहं प्रत्ययस्येति** अहमितिप्रत्ययस्याज्ञानकारणकत्वाभावादित्यर्थ। आपाद्यव्याध्यापादकवत्ताज्ञानम्, आपादनेकारण भवति। तत्रापाद्यव्यापकमापादक च व्याप्यम्, तथा चापाद्यापादकयोर्व्याप्यकभावे सत्येवापादान भवति, न चात्रापाद्यापादकभावोविद्यते, तन्नियामककार्यकारणभावस्याभावात्। न चात्राज्ञान कारणमहमितिप्रतीतिश्चकार्यम्। यतोवामदेवादिऋषीणांब्रह्मात्मापरोक्षज्ञानेनाशे ततो विनाशिताज्ञानानामपि, अहमस्मीत्याकारकप्रत्ययोजायते इतिशास्त्रेश्रवणात्। यदि कदाचिदज्ञानमहजानामीत्याकारकप्रत्ययस्यकारणस्यात्तदा, अज्ञानिनामेवाहप्रत्यय स्यात् यथाऽस्माक मसारिणा जायते, अज्ञानाभावेचाहमिति न स्यात्, परन्तु नैव भवति निर्गताविद्यानामपिवामदेवादीना अहमिति प्रत्ययदर्शनात्। यथाघटदण्डयो प्रमाणवलात्कार्यकारणभावे निश्चिते दण्डाभावे घटो न जायतेऽपितु दण्डसत्वेएवजायते इति लौकिकीस्थितिस्तथैव प्रकृते यद्यज्ञानामहमिति प्रतित्यो कार्यकारणभावाभावे ऽज्ञत्व यस्याविद्यते तस्यैवाहमिति प्रतीति स्यादपिससारस्येत्येवमन्वयसभवेपि, व्यतिरेकस्तुनात्र सभवति, यतोवामदेवादीनामज्ञानरूपकारणस्याभावेपि, अहमित्या कारककार्यलक्षणप्रतीतेरभावदर्शनात्। अर्थात् वामदेवादावज्ञानात्मककारणस्य विद्यमानत्वेपि अज्ञानकार्याहमिति प्रतीतेरभावादितिव्यतिरेकव्यभिचारात्, अज्ञानाहप्रतीत्योर्नास्तिकार्यकारणभाव इति स्थितम्। ततश्चापाद्यापादकयो कार्यकारणभावस्याभावान्नापाद्यापादकभावस्तदभावे च न भवति, अहमिति-

विद्यादिक्लेशपञ्चकैरस्पृष्टस्य परमपुरुषस्य जगन्निदानस्यापि, अहमितिरूपेणस्वस्व रूपस्याभिलापः श्रुतिस्मृतिषु समधिगतः। तथा च श्रुतिः "हन्ताहमिमास्तिस्त्रो देवताःस्वेनरूपेणानुप्रविश्यनामरूपे व्याकरवाणि" "स ईक्षतलोकान्नुसृजा" इति। तथा स्मृतयोपि भवन्ति, "यस्मात् क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः। अतोऽस्मिलोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः। यो मामेवमसंमूढोः जानाति पुरुषोत्तमम्। स सर्व विद्भजति मां सर्वभावेन भारत। तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्। भवामि न प्रतीतेरज्ञानजन्यत्वम्, तदभावे ससारित्वापादानमुक्तपुरुषस्येति। अज्ञानमुपाधि प्रयोजकयस्य सोऽज्ञानोपाधिरिति बहुव्रीहिसमास इति।

अहमिति प्रत्ययस्याज्ञानकरणकत्व नास्तीत्यत्र वामदेव एव तथेति कथितम्, तत्र कुत्रेदश्रुत मिति जिज्ञासाया प्रमाणभूतआचार्य श्रुतिमुदाहरति "तद्धैतत्पश्चात्ऋषिर्वामदेव प्रतिपेदे अहमनुरभव सूर्यश्च, अहमेववर्तामि भविष्यामिचेत्यादि, गर्भेशयान एव वामदेव स्वस्य सूर्यादिस्वरूपत्वमुदा जहार, नह्येतदविद्यावत सभति, अविद्यायाज्ञानस्यतिरस्कारात्, एतादृशकथनकथमप्युपयुक्त न स्यादिति। **अहमेव च वर्तामि** इत्यादि, एतद्वचनरुद्रवाक्यतच्चाथर्वशिरसि वेदेदृष्टत्। रुद्रश्च त्रिकालदर्शीकर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुंशक्त। नैतादृश पुरुषकथमपिअविद्यादिमान् सभवति, सोपिस्वात्मान महंजानामीति प्रतिपद्यते, ततश्चाज्ञानाहप्रत्यययो कार्यकारणभाव प्रतिरुणद्धीति। न च परमपुरुष व्यतिरिक्तानावामदेवादीनामह प्रत्ययोभवति सतुअज्ञानस्यविनाशेपि लेशतोऽविद्याया अनुवर्तना भवतीति तत्राह **तथा कथमपि अविद्यादिक्लेशै** रित्यादि, योगशास्त्रे "अविद्यास्मिता रागद्वेषा भिनिवेशपञ्चक्लेशानानिरुपणकृत्वा, तदनन्तरम् "क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्ट पुरुविशेष ईश्वर" इत्येव परमपुरुषीयस्वरूप प्रतिपादितम्। तत्र सर्वदासर्वथाऽविद्यादि पञ्चक्लेशरहितस्यपरमेश्वरस्याह मित्याकारकप्रतीतिर्जायते साऽविद्यादिमूलक इतिवक्तु न शक्यते "क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्ट पुरुषईश्वर "इतिपरमेश्वरलक्षणम्। तत्राविद्यादिभि सर्वदाऽसम्भद्धस्यपरमेश्वरस्यस्वात्मनियोऽहमित्यात्मनि ज्ञान तन्नाविद्यादिमूलकमिति सभवेत्। सृष्टिपूर्वकालेऽहंकाराद्युपाधेरसभवात्, तत्कालिकोऽहमिति प्रत्ययोभगवत परमपुरुषस्य न परोपाधिप्रयुक्तोऽपितुस्वरूपप्रयुक्त एवेतिप्रदर्शयितु सृष्टिप्राक्तन कालिकसंकल्पवाक्यस्योपादान कृतवान् "हन्ताहमिमास्तिस्त्रोदेवता" "बहुस्यांप्रजायेय" "स ईक्षत" इत्यादि। अत्र चिदचिदन्तर्यामिस्वरूपबोधक "हन्ताहमिमा" इत्यत्र "अहमितिशद्ब। तथा मुक्तप्राप्यपरमेश्वरवाचक "यस्मात्क्षरमतीतोहमक्षरादपिचोत्तम। अतोऽस्मिलोके वेदे च प्रथित "पुरुषोत्तम" इति गीतावाक्येभगवतोऽवबोधकोऽहमितिशद्ब। न चात्रसोपाधिकईश्वरोऽन्तर्यामी वा मुक्तप्राप्यो वा भवतीतिभाव। तथा मृत्युससारमहासागरोत्तारकपरमशुद्धमेवस्वरूपगभवतोऽहमिति निर्दिष्ट तेषामहसमुद्धर्तामृत्युससारसागरादित्यत्र। नहि सोपाधिक इतरानुद्धर्तुं समर्थ. सभवेत् "नहि

चिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् ।" "अहंबीजप्रदःपिता" "वेदाहंसमतीतानिवर्तमानानिचार्जुन । भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन" इत्यादिवचनैः स्वस्वरूप महंममादिपदेन भगवानपि व्याजहार ।

ततश्च साक्षादहमर्थात्मापेक्षयातिविलक्षणेपि देहादौ परंपरया प्रकृतिपरिणाम विशेषेणाहमित्याकारकप्रत्ययोजायते सतुभ्रमात्मक एव । तदभिप्रायकोऽहंकारस्यक्षेत्रान्तभावोपदेशो भगवतः श्रीकृष्णस्य "महाभूतान्यहंकारो बुद्धिरव्यक्तमेव च । इन्द्रि-

स्वयमशक्त परान्तारयतीति न्यायात् । अर्थात् सर्वथाऽविद्याक्लेशादिभिरसस्पृष्टस्य परमपुरुषस्य यदहमात्मनिपरमेश्वरोहमित्यादिज्ञानजायते नतदविद्यामूलकम्, सर्वदाप्रकाशात्मके तस्मिन् तमोरूपायाअविद्याया सम्वायोगादिति । सर्गपूर्वकालेऽविद्याद्युपाधेरभावेन तत्काले जायमानोऽहमित्यात्मनि य प्रयोग परमेश्वरस्यजायतेस तु नस्वरूपप्रयुक्त परोपाधिप्रयुक्तो वा । स्वस्मिन् तदुपाधेरभावात्, परोपाधिनापरस्यसम्बन्धाभावाच्च,किन्तु स्वकीय यत्पारमेश्वररूपतत्प्रयुक्तमेवपरमेश्वरेऽहप्रत्ययो जायते । एतदेवदर्शयितुम् "हन्तामिमास्तिस्त्रोदेवताजीवेनात्मनानुप्रविश्यनामरूपेव्याकरवाणि" इत्यादि मार्गविषयकसंकल्पवाक्यस्यकथनमकरोत्, हन्ताहमित्यत्रचिदन्तर्यामिस्वरूपस्य प्रज्ञापक । तथा "यस्मात्क्षरमतीतोहमक्षरादपिचोत्तम "इत्यत्रयोयमहशब्द स मुक्तै प्राप्यपरमेश्वरस्वरूपस्यवाचक । नहि सोपाधिकईस्वरोऽन्तर्यामी वा मुक्तप्राप्यो वा भवतीतिभाव तथा "तेषामह समुद्धर्तामृत्युससार सागरात्" इदमीयाहमिति पदमृत्युससारतारक शुद्धमेव भागवत स्वरूप दर्शयति—नाह सोपाधिरितरेषामुपाधिमोचनाय शक्तो भवति, नहिस्वभावदरिद्रोऽन्यस्य दारिद्रय परिहर्तुं शक्तो भवति । "अहवीजप्रद पिता" एतद्वावाक्यघटकोऽहमिति शब्द पितृत्वरक्षकत्वाद्यभिप्रापक । अहपद वाच्यजगत्कारणस्वरूपयत्ततत्स्वरूप भगवतोनाज्ञानोपहितम्, नवातज्ज्ञानमात्रमेव किन्तु सर्वं जानातीतिव्युत्पत्तिसिद्धसर्वज्ञमेवेति ज्ञापनायैव "वेदाहसमतीतानिवर्तमानानीचार्जुन" अत्राहमितिपदमुपात्तम् । ततश्चाहमर्थएवात्मा, न ततो व्यतिरिक्तोज्ञानमात्र स्वरूप इति सिद्धम् ।

अथैवमहभावस्यात्मस्वरूपत्व यदि मन्येत तदाहङ्कारस्यक्षेत्रे परिगणनहेयत्वप्रतिपादन च गीताया यत्कृष्णेनकृत तत्सर्वथैवासङ्गतस्यादित्याशङ्क्य तन्निराकरणायोपक्रमते आचार्य — **ततश्च साक्षादहमर्थात्मापेक्षयेत्यादि । परपरया प्रकृतिपरिणामविशेषणेति ।** आव्यक्तिपरिणामविशेषोऽहकार सर्वस्यप्रपञ्चस्यमूलकारणंप्रकृति तदनन्तरम् गुणानावैषम्यात्, प्रकृते सकाशात्, धर्माधर्मादृष्टगुणकमहत्तत्व परिणमतेप्रकृत्याऽविर्भूत भवति, ततश्च गर्वादिपर्यायोऽभिमानलक्षणोऽहकारोजायते । "तस्मात्तत्सयोगादचेतनं चेतनावदिवलिङ्गम् । गुणकर्तृत्वेपि तथाकर्तेवभवत्युदासीन " इति प्रकृत्य "प्रकृतेर्महान् ततोऽहकारस्तस्माद्गणश्च षोडशक । तस्मादपि षोडशकात् पञ्चभ्य.पञ्चभूतानि"इत्यादिनाप्रवाहनित्यप्रकृत्याप्रधानेन प्रथम प्रकृतिपरिणाम-

याणिदशैकं च पञ्चचेन्द्रियगोचराः" बहुमन्तव्यजनावधीरणकारणमसौगर्वापरपर्यायो-ऽनेकत्रशास्त्रेषु प्रायशोनिराकरणायोपादिश्यते । तस्मादहमित्याकारकः प्रत्ययोबाधक विरहित आत्मविषयक एव । अनात्मनि शरीरादौयाऽहमितिप्रतीतिः साऽविद्या-रूपा भ्रम इति । तदुक्तम्—श्रूयतां चाप्यविद्यायाः स्वरूपं कुलनन्दन ! अना-

भूतमहत्तत्वम्, तस्य च कार्यपरिणामभूतोहकारोमहत्वापेक्षयाद्वितीय प्रधानापेक्षया तृतीयोभिमानलक्षणोऽहकार प्रादुर्भवत्येव रूपेणाहकारआव्यक्तिपरिणामविशेष इति कथ्यते पर परयाप्रधानस्य कार्यरूप इति । नथा च यदनहमहपदप्रतिपाद्यापेक्षया वस्तुतोभिन्नम्, तदह रूप क्रियते येन सोऽहकार इत्यहकारपदव्युत्पत्ति । करणचात्रमानसमेव न वाह्यम् । अर्थात् यस्याह पदप्रतिपाद्यत्व नास्तितस्याहपदप्रतिपाद्यत्व क्रियते येन स एवाहंकार । तथा चा वस्तु तोऽनहमिशरीरादौ- अहमित्यभिमानहेतुरनात्मनि देहादो आत्मभ्रमकारणमहकार । एतादृशाहका रस्यैवक्षेत्रान्ततयोपदेश कृतोभगवतागीतायामिति नपूर्वापरविरोधो भवतीति फलितम् । ननु "अहकारबलदर्पंकामक्रोध च मश्रिता । मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयका" इत्यादौहेयतया कथितस्याहकारस्य, अभिजनादिहेतुकदुरभिमानभूगर्वस्वरूपत्वमेव, नतु तादृशाहकारस्यात्ममूलत्व मितिद्योतयितुमाह **वहुमन्तव्यजनावधीरणेत्यादि**, न अहमित्यनहम्, अनहमह भिन्नमद क्रियते येनसोऽहकारइत्यत्रव्युत्पत्तिरभूततद्भावेऽर्थे । विशिष्टकुलजातशरीरादौजायमानोआत्माभिमानोऽह कार । स चायमभिमान पूज्यावमानहेतुगर्वहेतुकत्वाद्गर्व इति कथ्यते, अभूततद्भावेच्युरितिच्व-र्थमन्तर्भाव्यात्मन्यनात्मनिचोभयत्रापि अहकारस्यप्रयोगो भवति । च्विप्रत्ययार्थमनन्तर्भाव्यतुव्यु-त्पन्नोऽहकारआत्मनिअहबुद्धिवाचीति भेद । अर्थात् च्व्यर्थमन्तर्भाव्यजायमानोऽहङ्कार, आत्मन्य-नात्मनीति, उभयत्र तदनन्तर्भाव्यसजायमानस्तुआत्मन्यहबुद्धिवाचीतु भेद । **तस्मादित्यादि** यस्मादहकारपदस्यात्मनिशरीरादावुभयत्रापि प्रयोगस्तस्मादहमित्याकारिकावाधकरहितासाक्षादात्मान-मेव गोचरयति, शरीरादौजायमानातु बाधितत्वाद्भ्रमरूपैव । अर्थात् प्रमाणान्तराऽवाधिता हमितिमतिर्मुख्या, साऽत्मानमेव बोधयति, देहादौजायमानातुप्रमाणवाधिततया भ्रमरूपैवेति अहकार शब्दस्यसमानत्वेप्यर्थानुसन्धानवलान्मुख्यत्वे गौणत्वमवाधितत्व वाधितत्ववेतिव्यवहारोजायते । आत्मनि प्रयुज्यमानोऽहकार आत्मवाचीमुख्यश्च, तदन्यत्रप्रयुज्यमानस्तु गौणोभ्रमादिरूपश्चेति । अत्रप्रमाणतया पुराणवचनमुदाहरति **तदुक्तमिति** 'श्रुयतांचाप्यविद्याया स्वरूपकुलनन्दन' **अनात्मन्यात्मबुद्धिर्या"इत्यादि । तदग्रेचेत्थमभिहितम् "आत्मन्येष नदोषायशब्दोऽहमितियोद्विज' अना-त्मन्यात्मविज्ञानशब्दोवाभ्रान्तिलक्षण" इति ।** आत्मविज्ञानम्=आत्मविषयिणी, अहमित्याकारिका **मतिः । शब्दोहमित्याकारक** । अनात्मनिदेहादौजायमानाऽहबुद्धिरेवाविद्या, अतद्वतितत्प्रकारिका-

त्मन्यात्मबुद्धिर्यासैवाऽविद्या प्रकीर्तितेति महर्षिणावाशिष्ठनन्दनेनेति न च ज्ञानप्रतिभासकस्य चिदपिशरीरादावस्तीति । येनज्ञानमात्रात्मवादिनाऽप्यनात्मन्यात्मबुद्धिरुपपद्येत ।

तदेवं प्रत्यक्षसिद्धत्वात् न्यायानुगमात्तकात, अविद्या सम्बन्धाच्चात्मा ज्ञातैवाहमर्थः सिद्धो भवतीति ।

अवटेघटवदितिबुद्धिवदिति । केनत्थमुदाहृत कुत्र ? तत्राह, **महर्षिणाशिष्ठनन्दनेनेति** वशिष्ठस्यायमितिवाशिष्ठोवशिष्ठपुत्रशक्तिनामक तस्य नन्दन पुत्रतेनमहर्षिणा। श्रीमत्पराशरस्यप्रष्ठाच।र्येण श्री पराशरेण श्रीव्यासपित्रेत्यर्थकथितमितिभाव । तदेवम्, अहमाकारकबुद्धेरनात्मविषयत्वं, ततश्चाह मर्थ एवात्मा नतुज्ञानमात्रमात्मा, तथात्वेतिज्ञानमात्रस्य। गत्व, स्थूलामविदित्यत्रदेहात्मभ्रमस्याकारो-भवेत् । नतुस्थूलोहमित्यहमथघटितस्तदाकार स्यात, भवति च स्थूलोहमिति प्रत्ययस्त स्मादपिकारणात, अहमर्थएवात्मानज्ञानमात्रमिति । यस्यसत्वेदेहादावहमितिप्रत्ययदत पदभावे च देहेऽहबुद्धिर्नोदेतिसोयमात्मा सुखदुःखादीनांभोक्ता ऐहिकपारलौकिकव्यापारनिर्वाहकोऽहमर्थ एवेति युक्तमाश्रयितुमितितत्रेदमुक्तम् **नचज्ञानप्रतिभासकस्यचिदपिशरीरादावस्यतीति येनज्ञानमात्रात्मवादिनामनात्मनि आत्मबुद्धिरुपपद्येत इति ।** सम्प्रतिप्रकरणार्थमुपसंहरन्नाह **तदेवमित्यादि प्रत्यक्षसिद्धत्वादित्यादि** घटादिकजानामिघटादिविषयकज्ञानवानहमितिव्यवसायानुव्यवसायादितया प्रत्यक्षज्ञानाश्रयतया आबालगोपालप्रत्यक्षसिद्धतया वमितयाप्रसिद्धोऽहमर्थ एव ज्ञाताऽत्मा, नतुधर्मतया प्रकारभूतज्ञानमात्रमात्मा । एतादृशाहमर्थस्य स्वापेमुक्त्यादावपि अहन्त्वेनभान भवतीत्यपि अनुमादि प्रमाणेन सावितम । तस्मादहमर्थ एवात्मेतिस्थितम । तथा प्रत्यक् वान्यथाऽनुपपत्तिलक्षणस्तर्कोपि अहमर्थस्यात्मत्वसाधकस्तत्रतत्रप्रदर्शित एव सर्वतावलम्बमन्यथाऽनुपपत्तिलक्षणप्रमाणस्य तदुक्तम् "अन्यथानुपत्तिश्चेदस्तिवस्तुप्रसाविका । पिनष्टिदृष्टवैमत्यसेवसर्ववलाधिकेति । यथा, ज्ञाताऽन्योज्ञेयश्चान्योज्ञान च तदन्यदिति सर्वत्रान्यत्नघटजानामि देवदत्तइत्यादाहम्यते, परन्तु अय नियम आत्मानविजानामीत्यत्र न स्वीक्रियते, यताज्ञाताज्ञेययोर्भेदाभावात् । तथा 'वाच्यान्यथोपपत्तिवात्याज्योवादष्टताऽग्रह । नह्येकत्रसमावशश्छायातपवदेतयोरिति । तस्मात् प्रत्यक्त्वान्यथानुपपत्तिलक्षणतर्कोपि आत्मनोऽहमर्थत्वव्यवस्थापको भवति । अयादामर्थ एव भवति नतु आत्माकेवलज्ञप्तिरूपइति । तथा स्थूलोहकृशोहमित्यादिदेहात्मभ्रमात्मकाविद्यासम्बन्धादपिज्ञाताऽहमर्थ एवात्मा भवति न ज्ञानमात्रमात्मेति । सचात्मासर्वकालमहमित्येव रूपेणनभासते नतु ज्ञानरूपेणभासते । यदिज्ञानमात्रमात्माभवेत्तदासर्वोपिज्ञानमित्येव प्रतीयात, ततुनप्रत्येति किन्तुज्ञाताऽहमित्येवप्रत्येतितस्मादहमर्थएवात्माज्ञातेति, स्थूलोऽहकृशोऽहमित्यादौस्थूलत्वकृशत्वादिकादिकं च शरीरस्यरूपस्पर्शादिमत एवधर्मोनतुरूपस्पर्शादिरहितस्यलोकेतयादर्शनात् । नहि भवात स्थूल आकाश इतिकदापिप्रतीतिराकाशस्यरूप-स्पर्शवत्वाभावात् । तथैवप्रकृत पृथिव्यादिधर्मस्यतारूपेआत्मनिरूपादिरहितेन कथम

॥ ज्ञानात्मत्वसाधकाजडत्वहेतुदूषणम् ॥

यदपि पूर्वं कथितम् "ज्ञानमेवात्माऽजडत्वादिति तदपि न युक्तम् अजडत्वानिरुक्तेः। अथ सदपि यन्न प्रकाशते तज्जडम् तद्भिन्नमव्यभिचरितप्रकाशसत्ताकमजडमिति ? तथा सत्येशादशोऽजडत्वस्य सुखादावपि विद्यमानेन तेषु व्यभिचारात्।

पिसत्ववास्तविकमिति अस्थूलादिमत्यात्मनिस्थूलत्वादिमतिरविद्यैव, एतादृशाविद्यासम्बन्ध आत्मनिजायमान आत्मनोज्ञानरूपतानिरौति। यत्रज्ञानसम्बन्धस्तस्मिन्नेवकालविशेषेऽज्ञानसम्बन्धोजायते, नतुज्ञानेज्ञानसम्बन्धोऽज्ञानसम्बन्धो वा, नवा ज्ञानविरहितज्ञानाज्ञानयो सबन्ध नहि घटादिरचेतनोज्ञानीअज्ञानी वेति व्यवहारोदृश्यतेउपपद्यतेवेति सक्षेप ।

आत्माज्ञातैव नतुज्ञानरूपइत्यत्र तादृशात्मनि "अहजानामि, घटादिविपयकज्ञानवानहमपिज्ञानमित्यादिप्रत्यक्षमेव" अहकारस्याश्रयोऽयमनोमात्रस्यगोचर" इतिदर्शनात्। आत्मनि प्र यक्षप्रमामित्यत्रमानसमेव प्रत्यक्षमभिमनम्, वाह्यविपयकज्ञानस्येन्द्रियव्यवहितत्वेन साक्षात्वाभावादिति तस्मादहजानामिज्ञानवानहमित्यनुव्यवसायाद साक्षादेवसाधकत्वात् ज्ञानस्याशरीरादिधर्मत्वनिराकरणात् "शरीरस्य न चैतन्य मृतेषु व्यभिचारात । नथात्व चेदिन्द्रियाणामुपघाते कथस्मृति" रित्यादौ प्रतिपादनात्। एवञ्च ज्ञान न देहधर्मआन्तरधर्मत्वात्सुखादिवदित्यादिपरिशेषानुमानेनज्ञानाश्रयतयाऽहमर्थस्यैवज्ञातृत्वसिद्ध भवति। "ज्ञाज्ञौ" इत्यादिशास्त्रमपिप्रमाणम्। किञ्चज्ञानसमानाश्रयत्वमेवाज्ञानस्येतिनियम । यत्रज्ञानभवति तस्मिन्नेवाश्रयेअज्ञानमपि भवति, नतुज्ञानानाश्रयेकदाप्यज्ञान भवति, नहिघटोऽज्ञानवान् भवतीतिप्रत्ययोजायते। तत्कुत ? ज्ञानाश्रयत्वाभावात्। ततश्च यदि आत्मनो ज्ञानाश्रयत्वतस्यातदाऽज्ञानाश्रयत्वमपि न स्यात्। शुक्तौ रजतम्, रज्जौसर्प इत्यादिभ्रान्तिरूपाऽविद्यासर्वस्यापिप्रायोभवत्येवेति, अविद्या सम्बन्धस्यान्यथानुपपत्त्यापि ज्ञातृत्वमहमर्थस्यैव सिद्ध्यतीतिभाव ।

इतिज्ञातुरात्मनोमोक्षादौसर्वदाप्यहभावमानसमर्थनप्रकरणे तत्त्वदीप ।

ज्ञानमात्मा, चित्वात, ज्ञानमात्मा, स्वयप्रकाशत्वात्, ज्ञानमात्मा अजडत्वात्, यन्नैव तन्नैव यथाघटादिर्जड "सत्यज्ञानमनन्तब्रह्म" "प्रज्ञानब्रह्म" इत्यादिश्रुत्या यदिपरमात्मनोज्ञानरूपत्वरोचयेत्तदा, ज्ञानमात्माऽजडत्वात्, यथापरमात्मा, इत्याद्यनुमानेनात्मनोज्ञानरूपत्वमेव नतु स ज्ञातेतितन्मतम्। तत्रात्मनोजडत्वहेतुवलेनज्ञानरूपत्वमसाधयत् पूर्वपक्षे। तत्रस्वप्रकात्वहेतुना ग्रन्थाद्वहिरेवनिराकृत्य सम्प्रत्यजडत्वहेतु व्यभिचारविरोधस्वरूपासिद्ध्यादिदोषैर्निराकर्तुमुपक्रमत **यदपि पूर्वंकथित**मित्यादि। अर्थादज्ञानमात्माऽजडत्वात्, यन्नैवतन्नैव यथाघटादिजडपदार्थ । इत्येवक्रमेणज्ञानस्यधर्मभूतस्यात्मत्वप्रसाधने प्रच्छन्नबौद्धेनाजडत्वलिङ्गमुपन्यस्त तदजडत्व विकल्प्यदूषयितुमाह **यदपीत्यादि।**

नहि सुखादयोविद्यमाना अपि कदाचिदप्यनवभाना दृष्टाभवन्तउपलभ्यन्ते। स्वसत्ताप्रयोज्यप्रकाशत्वमपिनाजडत्वम्, प्रदीपादौव्यभिचारात्। ज्ञानातिप्रकाश-

यत स्वय न प्रकाशते विद्यमानमपितज्जडम् यथा घटादिकम्। एतद्विपरीतमव्यभिचरितप्रकाश सत्ताकतदजडस्वयप्रकाशरूपमित्यर्थ। तत्राव्यभिचरितोनियत प्रकाशोयस्या एतादृशीसत्तायस्य-तदजडम् स्वसत्ताव्यापकप्रकाशत्वमित्यर्थ तद्दूषयति सुखादिष्वान्तरधर्मेषुयथोदिताजडत्वस्यविद्य-मानत्वेन, तेषुसुखदु खेच्छाद्वेपप्रयत्नादिषु, आत्मत्वरूपसा यस्याभावात, सा यतावच्छेदकावच्छिन्ना-प्रतियोगिताकाभाववतिहेतोर्विद्यमानत्वस्यैव व्यभिचारलक्षणलक्षितत्वात्, पर्वतोधूमवान् वन्हेरितिव-दिति। न च वन्हिमान् धूमादित्यत्र सन्दिग्धतयावह्न्यभाववति पर्वतेधूमस्य विद्यमानत्वेपिनव्यभि-चार पक्षेपक्षसमवेतस्यादूषणत्वादिति वाच्यम्, प्रकृते तद्विलक्षणत्वात्। इहतु यथाऽत्मधर्मभूतसुखा-दावनात्मनि हेतोर्विद्यमानत्वनास्तितथैवात्मधर्मेऽनात्मनिज्ञाने आत्मत्वस्याभावाद्व्यभिचारस्यदुरुद्धर-त्वात। यथाऽत्मधर्मभूत मुखादिकनात्मेति प्रत्येतितथैवज्ञानेपि आत्मत्वस्यसद्भावेनाभ्युपैतिकश्च-नेति। न खलु सुखा विद्यमाना सन्त कदाचिदप्यप्रकाशमाना भवन्ति, अपितुप्रकाशन्ते एवेति तेषु व्यभिचारस्यदुरुद्धरत्वादिति। न च ज्ञानमात्मा, स्वसत्ताप्रयुक्तप्रकाशत्वादिहेत्वन्तरेणज्ञानस्यात्मत्व-स्यात्, तत्र यस्यस्वसत्तयैवप्रकाशस्तत्स्वसत्ताप्रकाशस्तत्वमेवाजडत्वमितिवाच्यम्, तथापि स्वप्रकाशक-ल्पेप्रदीपे सूर्यादौ वा व्यभिचारस्यतदवस्थत्वात् अर्थात्सूर्यादीना प्रकाशेसजातीयप्रकाशान्तरस्यानपेक्ष-णात्। प्रदीपदर्शनायसजातीयप्रदीपान्तरापेक्षाया अदर्शनात्। ननु प्रदीपेप्रदीपान्तरापेक्षाया अभावेपि चक्षुरादिकरणापेक्षाविद्यते एवेतिचेत्, भवतु नाम तथा, तथापि स्वसत्ताप्रयुक्ततायाअनपायात्, स्वसत्तामात्रप्रयुक्तत्वविवक्षणतु न सम्भवति, एतादृशाजडत्वस्य ज्ञानेप्यभावेनहेतोर्ज्ञानात्मकपक्षेऽभावात्, हेत्वभाववान् पक्षस्यैवस्वरूपासिद्धत्वरूपत्वात्। विजातीयात्मापेक्षत्वात् प्रकाशमात्रस्येति वक्ष्यते। दोषान्तरमपि भवति, ज्ञानातिरिक्तप्रकाशस्यास्वीकारात्, प्रकाशोनामज्ञानतोऽतिरिक्तोधर्मो न भवति किन्तु ज्ञानमेवप्रकाशरूपम्, इतितत्स्वसत्ताप्रयुक्तप्रकाशत्वलक्षणोहेतुर्ज्ञानात्मकपक्षेनास्ति स्वस्मिन् स्वस्यानवस्थानात्। यश्चज्ञानप्रकाशनित्यमेव स्वीकुर्वन्ति तेषामते ज्ञानस्य स्वसत्ता-प्रयुक्तत्वकथन विरुद्धमेव भवति, नहिनित्यश्चप्रयोज्यश्चेति सम्भवति, नित्यत्वात्, योज्य न भवति, प्रयोज्यते नित्यता न भवेदिति। किञ्च प्रकाशत्वधर्मो यदिसविदोज्ञानस्यस्वीक्रियेत, तदास्वसिद्धा-न्तव्याकोप प्रसज्येत भवन्मतेज्ञानरूप आत्मनोद्वैतापत्तिभियानिर्विशेपत्वस्यैवाभ्युपगमात्, नित्यत्व-विभुत्वादिकनात्मधर्म किन्तु कालानवच्छेद्यत्वाभावात्मकमेव, एवं देशानवच्छिन्नत्वमेव। अभावस्या-धिकरणरूपतयानित्यत्वविभुत्वयो तत्र सत्वेपि न द्वैतापत्ति। भावात्मकधर्मवत्वे एव द्वैतस्य-सद्भावो नतु, अभावात्मकधर्मेणद्वैतसम्भव इति। किञ्च स्वस्मै स्वयभासत्वलक्षणम् जडत्वहेतुरा-

स्यानंगीकारणहेत्वसिद्धिर्विरुद्धश्चेति । यदि सततमव्यभिचरितप्रकाशम्। सुखादिरन्यार्थमेव प्रकाशते इति ततश्च घटादिवत्सुखादयो जडा एव, तस्मात् सुखादिर्नात्मेति। तदा किं ज्ञानं स्वस्मै प्रकाशते ? अन्यस्मैवाहमर्थस्य जानतः प्रकाशते, अहं जानामीति अहं सुखीति । ततश्च स्वस्मै प्रकाशमानत्वमभिप्रेत्यैव प्रयुक्तोऽजडत्वहेतुः संविदि स्वरूपासिद्ध एव । अतः स्वसत्तयैव स्वात्मानं प्रति, सिद्ध्यन् जडभिन्नोऽहमर्थ एवात्मेति। ज्ञानस्यापि प्रकाशकत्वं तु अहमर्थसम्बन्धाधीनमेव ।

अतएव स्वाश्रयचेतनं प्रति प्रकटत्वम्, तदितरं प्रति अप्रकटत्वं च ज्ञानस्य भवति सुखदुःखादिवदेवेति । न चैवमात्मान्तरसम्बन्धरूपधर्मान्तरं वा समपेक्ष्यायमात्मा स्वस्मै [आत्मने] प्रकाशते । एतत्सर्वमनुपदमेव विज्ञापयिष्ये ।

अथाहमर्थस्य ज्ञानेन सहसहोपलंभनियमस्तस्याहमर्थस्यापि ज्ञानेन भेदं निवारयतीति चेत्, एवं सति ज्ञानस्यापि मिथ्यात्वप्रसङ्गात् । ज्ञानमपि तेन सहोपलंभैवेति, अहमर्थात्मात्वसाधनाय यदि स्वीक्रियते तदा सहेतुः स्वरूपासिद्ध एव तत्राह **यदि सततमव्यभिचरित प्रकाश इत्यादि** सर्वं मूलमत्रानुसन्धेयम् । यथाऽव्यभिचरितप्रकाशवानपि सुखादिरन्यार्थमेव प्रकाशते घटवदिति घटादिवदेव जडएवेति नात्मेति । तदा किं स्वात्मार्थं प्रकाशते ? न तदपि परार्थमेव प्रकाशतेऽहं जानामीत्यहं सुखीवदिति । ज्ञानात्मकोपि प्रकाशः स्वाश्रयनिबन्धन एव । प्रकाशत्वं ज्ञानरूपत्वमेव । प्रकाशमानता वा स्वाश्रयार्थं स्वविषय प्रकाशकत्वालक्षणज्ञानत्वमेव प्रकाशमानताचात्मधर्मता हेतुकैव नहि स्वाश्रयादन्यस्मै ज्ञानं स्वविषयं प्रकाशयति स्वयं वा प्रकाशते इति दिक् । तस्मात् स्वस्मै स्वयं भासमानत्वमहमर्थस्यैव दृश्यते इत्यहमर्थ एवात्मा न ज्ञानमात्रमात्मा । तत्र प्रकटता-प्रकाशतारूपैव आत्मान्तरसम्बन्धमर्थादाश्रयान्तरसम्बन्धम्, अर्थान्तरमज्ञानादिसम्बन्धमितिभाव । विशेष विवरणत्वन्यत्रेहापि वा वक्ष्यमाणप्रकरणे द्रष्टव्यमिति सक्षेप ।

इत पूर्वप्रकरणे प्रच्छन्नबौद्धमते ज्ञानस्यात्मत्वसाधकाजडत्वादिलिङ्ग प्रदर्श्य, यथान्याय तादृश हेतूनां निराकरणप्रकारोपि प्रदर्शित इति प्रच्छन्नबौद्धचर्चया प्रकटबौद्धोपि स्मृतो भवति, स्मृतस्योपेक्षानर्हत्व प्रसङ्ग इति प्रसङ्गत्या योगाचारमतसिद्ध सर्वज्ञानज्ञेययोरैकत्वप्रतिपादकतन्त्रं निराकर्तुमुपक्रमते **अथाहमर्थस्येत्यादि** । अयमाशय भगवतो बुद्धस्य चत्वारो विनेया केचन बाह्यार्थास्तित्ववादिन सौत्रान्तिकान्तिकवैभाषिकाश्च । तत्रापि प्रथम प्रत्यक्षवेद्यमर्थं विजानाति, द्वितीयस्तु सर्वमनुमेयमास्थित । तृतीयो योगाचार सच ज्ञानमेव सत्य मनुते ज्ञेयं तु ज्ञानग्राह्यं मिथ्येति मनुते, चतुर्थस्तु सर्वशून्यता रोचयते । यद्यप्युपदेशको भगवानेकविधामेव देशनामुदाजहार, तथापि स्वाशयवशाद्भिन्नमेवोपदिश्यमानं जग्राह, यथा वारिदविमुक्तजलमेकरसकमेव परन्तु तत्तद्भूविकारानासाद्यानेकविधं भवति तद्वत् । तदुक्तं "देशना लोकनाथानां सत्त्वाशयवशानुगा । भिद्यते बहुधा लोके उपायैर्बहुभि पुन ।

गभीरोत्तानभेदेनक्वचिच्चोभयलक्षणा । भिन्नापिदेशनाऽभिन्नाशून्यताद्वयवक्षणा'' इति । तत्रैतत्तृतीयमतेज्ञानमेवैक सत्वाह्यार्थस्तु न ज्ञानादतिरिक्तस्तथात्वेज्ञान साकारतामियात्, ततश्चविषयस्य ज्ञानाकारेनैवविरुद्धत्वात् , अतिरिक्तवाह्यार्थकल्पना निरर्थिकैव भवति तस्मान्नज्ञानातिरिक्तो वाह्यार्थ किन्तु शुक्तावध्यस्तरजत न स्वतन्त्रा किन्तु शुक्तिस्वरूपाधिष्ठानानुगतमेव, अधिष्ठानातिरिक्तारोपितसत्ताया अभावात् । तथैवज्ञानेऽध्यस्तोवाह्यार्थो न ततोतिरिक्त । तच्चज्ञानसत्वात क्षणिकम् । तज्ज्ञान द्विविध प्रवृत्तिविज्ञानभेदात , सुखादिका आन्तरपदार्थाआलयविज्ञानस्याकारविशेषा एव तदुक्त " यत्स्यादालयविज्ञान यद्भवेदहमास्पदम । तत्स्यात् प्रवृत्तिविज्ञानयन्नीलादिकमुल्लिखेदिति । एव चान्तरविज्ञानातिरिक्तो न वाह्य पदार्थ । न च यदिविज्ञानव्यतिरिक्तोवाह्योनास्ति तदाघट पट कुभादिरिति प्रत्ययभेद कथप्रभवेदिति चेत् वासनाभेदादितिगृहाण । यथा परिव्राड्कामुकशुनामेकस्या प्रमदातनौ । कुणप कामिनीकान्तइतितिस्रोविकल्पना । अथात् तनुत्वेनस्त्रीदेहस्यैकत्वेपि सर्वथाकामादिरहितसर्वोपेक्षकमहात्मनाकुणप इति ज्ञान भवति, तत्रैव कामोपहतमनसा स्ववासनाविशेषवशादिय कामिनीतिप्रत्यय , मासभक्षिजीवानाश्वव्याघ्रादीनांस्ववासनाविशेषवलान्मांसमदीयमक्ष्यमतएवकान्तमतिरमणीयमिति प्रत्यय । यथावा "गतोस्तमर्क" इतिवाक्ये उक्ते तत्तद्वाक्याभिप्रायेणसूर्यास्तेसन्ध्यासमयाभिसारकालश्चौर्यकालोजात इति प्रतियन्ति । यथात्रा स्वभावतोऽतितिक्त सकण्टकोवृक्षोऽन्येपापीडाकारको भवति, तदेवोष्ट्रस्यातिप्रिय , तथैवघटवासनावान् घट कुडयादिकथनोत्तरस्ववासनाविशेषवलात्स्वस्वाभिमतघटादिपदार्थमेवजानन्ति । स्वप्नादिवच्चेदद्रष्टव्यम । तथास्वप्नकालेऽविद्यमानोपि घटादिपदार्थ अविद्यावलात्प्रकाशितोभवति ज्ञानेन तथैव जागरणकालिकोप्यर्थोवस्तुतोऽविद्यमानोपि विद्यमानव देवाभाति तत्र स्वप्नकालेनिद्रादिदोषकारणका इमे पदार्था हस्तिगवादिका इदानी तु अविद्यादिकारणका शुक्तिरजतादिवदित्यध्यस्तत्वात् ज्ञानोपस्थापितामिथ्याभूताज्ञायमानसत्ताका इति नवाह्योर्थ कश्चिद्वस्तुतोविद्यते किन्तुज्ञानवलादेव तथा तथाऽवभासमानाभवन्तीति न ते सत्या इति । अपिच ज्ञानार्थयो सहोपलभनियमादपितयोरभेद एव, नतुतयो पार्थक्येनप्रत्यय , यदाऽर्थस्तदाज्ञानेन सहैवोपलब्धोभवति, भेदस्तुतयोर्भ्रान्तिमूलक एव, तदुक्तम् "सहोपलभनियमादभेदोनीलतद्धियो । भेदश्चभ्रान्तिविज्ञानैर्दृश्येतेन्दाविवाद्वये" अयमर्थ यदापदार्थोनीलादिरुपलभ्यते तदाज्ञानभवत्येव यदा च ज्ञान तदैवार्थ प्रतिभाति, नतु तथादण्डादिकमुपलभ्यते तदैवघट किन्तु दण्डादिकारणोत्तरकाले एवघटप्रत्यय दण्डनिष्पादितोघटो दण्डाभावेपिसमुपलब्धो भवति । अत्रतूभयोर्ज्ञानज्ञेययो सहैवोपलभ इति घटादिविपरीतत्वात्, तयोर्ज्ञानज्ञेययोरेकत्वमेव नतु भेद । यथाऽद्वयेचन्द्रेद्वितीयश्चन्द्रमातिमिरादिदोषजनितभ्रमवतासमुपलभ्यमानोऽसन्नेव नतु तौ परस्पर वस्तुतो भिन्नौ, अपित्वभिन्न एव विद्यते, भेदस्यभ्रममूलत्वात् ।

दात्मनोऽनर्थान्तरमिथ्यारूपमेवप्रसज्येत । किञ्चासिद्धोपिभवति विकल्पासहत्वात् । तत्र न संविद्विशेषैः सहोपलंभनियमः प्रत्येकंव्यभिचरितत्वात् । नवाज्ञानविशेषंज्ञान-

ननु भ्रमोपि सतिवस्तुद्वये भवति, तथाशुक्तिकाधिष्ठितसादृश्यादिदोषोपस्थापितरजतादेरारोपो भवति, यथावाजलादौतदन्यस्यचन्द्रादेर्दोषवशाज्जायमानस्तदीयप्रतिबिम्बो जले भवति, तत्कथमत्रैकस्मिन्नेव तस्यैवारोप इति चेत् तत्राह, "इन्दाविवाद्वये" नहिदृष्टेऽनुपपन्न भवनीति न्यायादेकत्रापिभ्रम सद्भावो न बाधित इति । अनेनप्रकारेणविज्ञानवादीनीलादिपदार्थतदीयज्ञानयोरभेदस्वीकुर्यन्ति, तत्रानेके प्रश्नप्रकारान् प्रदर्शितवान् । तत्र सहोपनियमादित्रिविधप्रकारस्य विद्यमानत्वेपि प्रमुखत सहोपलभनियममेवपुरतआदत्याचार्य खण्डनकरणायोपक्रमते **अथाहमर्थस्य ज्ञानेन सहोपलंभनियम** इत्यादि मिथ्यारूपाहमर्थेनात्मनासहोपलभनियमात्, सोऽयहमर्थआत्माज्ञानाद भिन्न एव नतु ज्ञानाद्भिन्नोहमर्थआत्मेत्यर्थ । **ज्ञानस्यापिमिथ्यात्वप्रसङ्गा**दित्युत्तरम् । मिथ्याभूतेनाहमर्थेन सहोपलभनियमस्य ज्ञानज्ञेययो समानसविदस्तदभेदात् । अहमर्थेनाभेदाज्ज्ञानस्यापि मिथ्यात्वप्रसङ्गादितिभाव ।

अभिमतविरुद्धापादकत्वात् हेतोस्त्वदीयस्य विरुद्धत्वमितिहेतुदोष एतावता समुद्भावितो भवतीति । सविदोपि, अहमर्थेन सहोपलभमुपपादयति ज्ञानमपितेन इत्यादि । तेन=स्वप्रकाश व्यापकवतातेनाहमर्थेन, अहकारेणसहोपलभोयस्य तत्सहोपलभमिति । अपि च तदुपलभव्याप्योपलभवत्वलक्षण एव हि सहोपलभनियमोज्ञानज्ञेययोरभेदसाधकतयाऽभिमतो बौद्धपण्डितै । सचाय सहोपलभनियमोऽहमर्थस्य सविदोज्ञानस्याभेदसाध्ये पक्षे स्वरूपासिद्धोऽर्थात् हेत्वभाववान् पक्षो भवतीति तत्राह **किञ्चासिद्धोऽपिभवति विकल्पासहत्वादिति** । अत्राय विकल्पप्रकार किमत्रज्ञानविशेषेणघटादिना तेन तेन सहोपलभोऽहमर्थाहकारस्याभिमत ? अथवा ज्ञानविशेषमात्रेण नीलादिज्ञानेन सहाहमर्थस्य सहोपलभनियमो वा विवक्षित । अथवा येन केनापि ज्ञानविशेषेणाहमर्थस्य सहोपलभनियमोविवक्षितइत्येवविकल्पत्रिक भवति । तत्र प्रथमपक्षेस्वीक्रियमाणेअसिद्धिनामको दोषोभवति । तत्राह **तत्र न संविद्विशेषैः सहोपलंभनियम** इत्यादि । चाक्षुषाद्वे कतमविज्ञानप्रकाशविनापि, अहमर्थस्य ज्ञानान्तररासनादिज्ञानप्रकाशे प्रकाशमानत्वादित्याशयेनकथितव्यभिचारादिति द्वितीयतृतीयविकल्पेदोषमाह **नवाज्ञानविशेषे ज्ञानमात्रंवेत्यादि** । निर्विशेष न सामान्यमितिन्यायात् तदैवतत् सामान्य यदितदन्तर्गतो विशेषो भवेत् विशेषाभावे किमपेक्षसामान्यस्यात्, यथानीलादिघटोऽनेको भवति तदा घटमात्र सामान्यतया व्यपदिश्यतेनीलादिविशेषणकश्चघटोविशेष इति कथ्यते । यत्र विशेषो न भवेत्तदातत्रकश्चविशेष कश्चसामान्यमिति । । अर्थात् विशेषाभावेसामान्यस्याप्यभावादिति विशेषाभावकुटैरेव सामान्याभावस्यसाधनादिति । तस्मात् "ननिर्विशेष सामान्यमिति न्यायात्, चाक्षुषस्पार्शनाद्यनुमित्यादिव्यतिरिक्ते

मात्रं वा निर्विशेषम् । येनात्मनोऽहमर्थस्यसहोपलंभनियमःस्यादिति । ज्ञानसामान्यं विद्यमानमपिबौद्धमते न तद्वस्तुसदिति । सिद्धान्तनयेतु विषयसम्बन्धंविनापिस्वयंज्योतिःस्वरूपआत्मा विद्यते एव । स्ववाग्विरोधोपि एकं द्वावित्यादिवदेव । द्वयोर्वस्तुनोरेकक्रियासम्बन्धे एव सहशब्दःप्रयुज्यते, पुत्रेणसहागतःपितेतिवत् । नीलंतदीय ज्ञानविशेषमात्र ज्ञानमात्र वा भुवि नभवति । चाक्षुषादिविशेषप्रकाशव्यभिचारश्चाहमर्थस्य प्रथमविकल्पखण्डनावसरे कथित एवेति तत्तद्विशेषाभावेपि अहमर्थप्रकाशो भवत्येवेतिभाव ।

अथैवमपि तत्तत्तज्ज्ञानत्वावच्छिन्नज्ञाननिष्ठप्रकाशेनाहमर्थस्यव्यभिचारेपि ज्ञानत्वावच्छिन्न सामान्यत प्रकाशस्यनास्तिव्यभिचारोऽहमर्थस्य यतोऽहर्थप्रकाशेज्ञानत्वावच्छिन्नप्रकायस्यावश्य भावात् । अर्थात् तत्तज्ज्ञानव्यक्तिप्रकाशस्य तत्तदहमर्थप्रकाशस्य व्यक्त्यन्तरेण कदाचिद्व्यविचारसभवेपि ज्ञानत्वरूपसामान्यधर्मपुरस्कारेण ज्ञानप्रकाशाहमर्थप्रकाशयोर्व्यभिचाराभावात्, इत्याशयेनाह **ज्ञानसामान्यं विद्यमानमपिबौद्धमते न तद् वस्तुसदितीति** । अयभाव बौद्धमते, अनुवृत्तिप्रत्ययकारणभावात्मक पदार्थान्तरम्, नित्यत्वेसत्यनेकसमवेतत्वापरपर्यायनास्त्येव "नयाति न च तत्रासीत् नचोत्पन्न नचाशवत् । जहातिपूर्वंनाधारमहोव्यसनसस्थिति" इति वदन् बौद्धपण्डित स्वातन्त्र्येणतत्स्थितिंनिराचकार । नचैव सति "गौर्गौरितिप्रत्यय कथस्यादिति वाच्यम् अतद्व्यावृत्त्यैवनिर्वाहात् । अर्थात् गोत्वनामपरिगणितपदार्थादतिरिक्तपदार्थान्तर नास्ति । तादृशजातिरूपस्यसत्त्वे प्रमाणाभावात्, किन्तु गोत्वादिकगवेतरावृत्तित्वेसतिगोव्यक्तिमात्रवृत्तित्वरूपमेव भावात्मकमेवेति स्वतन्त्रस्यासत्वेपिस्वेतराभावात्मकत्वात्, तावतैवगौर्गौरित्यादिप्रत्ययानाप्रामाणिकत्व निर्वाहेणानुवृत्तप्रत्ययासाधारणकारणेसामान्य नास्ति तन्मते । तस्माद्ज्ञानत्वावच्छिन्नसामान्यतोज्ञानप्रकाशस्य सामान्यतोऽहमर्थप्रकाशेनव्यभिचारोनास्तीति कथन खपुष्पायमाणमिव भवतीतिभाव. । बौद्धादिमतान्तरेणदोष प्रदर्श्यसिद्धान्तरीत्यापिविनापिज्ञानप्रकाशेनाहमर्थप्रकाशोभवत्येवेति दर्शयति **सिद्धान्तनयेतुविषयसम्बन्धं विनापीत्यादि** सर्वप्रत्यक्षानुमित्युपमिति शाब्दात्मकप्रवाहस्यस्वप्नकालेऽभावेपि, अहमर्थप्रकाशोभवत्येव, अन्यथा, यदातदाऽनुभूतवस्तुनोदिनान्तरेस्मरणनोपपद्येतानुभवितु स्वप्नकालेऽभावेतस्यदिनान्तरेस्मरणासभवात् । अथभवतिस्मरण तस्मात् स्वप्नादिकाले आत्मास्तित्वमनुमानादिसिद्धमेव । स्वप्नादिकालेआत्मवान्, कालत्वात्जाग्रदादिकालवदेवेति । एवम् "अत्रायपुरुष स्वयज्योतिर्भवतीत्यादि श्रुत्या, समस्तवृत्तिप्रत्ययाभावेपि स्वप्नादौस्वयज्योतिरूपात्मन सद्भावप्रतिपादनादिति ।

अपि च अहमर्थ आत्मास्वय प्रकाश सवित्कर्मतामन्तरेण प्रत्यक्षत्वात् सवेदनवत्, घटज्ञानघटयो सम्बन्ध आत्मनिष्ठत्वात, पदविषयतावत्, इत्यानुमानाभ्यामात्मन संविद्रूपत्व भवति । अत्रधर्मिभूतज्ञानस्यैवात्मत्व प्रसाध्यते नतु धर्मभूतेन सहाभेद इति । यदि आत्माज्ञानरूपोन स्यात्

विज्ञानमितिवस्तुद्वयमभिधायतयोरभेद इति कथने "मातावन्ध्येतिवत्" व्याघातोपि भवति । अपि चात्रानेकान्तदोषोपि भवति ज्ञानेनिषिद्ध्यमानजडत्वादिभिः । नियमेनैक-ज्ञानसिद्धत्वमपियथोक्तप्रकारेणनिराकृतमेव भवति । विपक्षव्यतिरेकश्चासिद्धः ।

तदा आत्मनिज्ञातेतद्विषयकसशयविपर्यात्रपिस्याताम्, सशयाद्यभावोज्ञानरूपत्वे एव स्यात् । न च ज्ञानरूपत्वमन्तरेणापि सुखादिवत्सशयाभाव स्यादितिवाच्यम्, सुखादीनास्वसत्तायांज्ञानाव्यभिचा-रात्तथासभवात् । नचात्मन्येवसुषुप्त्यभावप्रसङ्गात् । तथा ज्ञानाकर्मत्वादप्यस्वयप्रकाश एव, वेद्य-त्वे स्वाश्रयज्ञानविषयतयाकर्तृकर्मभावविरोधात् । न च सुखादिष्वात्मन कर्मत्वकेवलस्यकर्तृत्वमित्या-कारभेदाद्विरोधाभाव इति वाच्यम, तथा सति गमनादिक्रियास्वपिकर्तृत्वगमनादिविशिष्टत्वेन कर्म-त्वमितिसर्वत्रकर्तृकर्मभावोदत्ततिलाञ्जलि स्यादिति । अत्रायपुरुष स्वयज्योतिर्भवतीति श्रुत्याप्यात्मन स्वप्रकाशत्व सिद्ध्यति । स्यादेतत् स्वप्नावस्थामधिकृत्यैतदुक्त श्रुतास्वप्ने च मनसोऽनुपरमात्, न स्वयज्योतित्वम् । न च स्वप्नेमनसोरथाद्याकारपरिणतस्यज्ञानकर्मतयैवावभासमानताज्ञानकरणाभावा-त्करणान्तराभावान्न स्वयज्योतित्वमितिवाच्यम्, मनस इन्द्रियत्वेन प्रत्यक्षत्वाऽनुपपत्ते । तस्मात्मन संयोगजनितज्ञानाधारत्वेन स्वयज्योतिशब्दवाच्यआत्मास्वयज्योतिरिति कथ्यते, अथवा ज्योति साधन-त्वात् । "वाचैवायज्योतिषा" अग्निनैवायज्योतिषा इत्यादिप्रकरणपठितवागग्न्यादितस्मादात्मान स्व-यज्योतिर्द्रव्यस्यात्मनो गुणरूपत्वानुपपत्तेरितिचेदत्रोच्यते-मन प्रत्यक्ष ज्ञानासमवायिकारणसयोगाश्रय-त्वात्,आत्मवदित्यनुमानेन मनस प्रत्यक्षोपपत्तेस्ततश्चधर्मभूतज्ञानाश्रयस्याहमर्थस्यात्मन स्वय प्रकाश-त्वमिति ज्ञानप्रकाशाभावेप्यहमर्थप्रकाशस्य विद्यमानत्वमिद यत्येवेतिभाव । स्ववाग्विरोधश्चापि भवति । एकद्वावित्यादिवत्, अर्थात्, साहित्यस्यभेदघटितत्वात् सहोपलभ्यमानहेतुप्रयोगोहेतुव्यपदेशस्व-रूप एव, तेन सहोपलम्भहेतुना, ज्ञानाहमर्थयोरभेदसाधने प्रतिज्ञावाक्यहेतुवाक्ययोविरोधोभवत्येव, एकद्वित्वादिवदिति । यद्यपि, एकस्मिन्नपि द्वित्व समवायसम्बन्धेन विद्यते एव, अन्यथा प्रत्येक मवर्तमानस्योभयत्रापि वर्तमानत्वाभावात्, अतएव एकोद्वित्ववानित्यपिप्रतीतिर्भवत्येव, तथापिपर्याप्ति सम्बन्धेनोभयत्रैवभवति, एकद्वावितिप्रतीतेरभावादिति । उभयत्वमुभयत्रैवपर्याप्तमिति नत्वेकत्रेति-पर्याप्तिसम्बन्धेनैकस्मिन् द्वित्वाभावेन, पर्याप्तिसम्बन्धेनैतादृशप्रयोगे एव विरोधो ज्ञातव्य इति । तदेव प्रतिज्ञाहेतुघटकपदयोर्विरोधमुद्भाव्य प्रतिज्ञाघटकपदयोरपिविरोधदर्शयितुमाहनीलतद्धियोरित्यादि, अय-माशय "सहोपलंभनियमादभेदोनीलतद्धियो । भेदश्चभ्रान्तिविज्ञानैर्दृश्यतेन्दाविवाद्वये" इतीयप्रतिज्ञा विषयविषयिणोरभेदसाधने । तत्र द्वित्वविशिष्टेविषये विषयिणिचानेकत्वमर्थत एवायाति, तस्मिन् एकत्वविधान मातावन्ध्येतिवत् परस्परव्याघातमेवापादयति, नहि मातावन्ध्येतिसम्भवतीति, तद्वदि हापियद्द्वय न तदेक भवति कथमपीतिव्याघातोभवत्येवेति । ज्ञानज्ञात्रोरभेदसाधनदूषणप्रसङ्गेऽ स्मिन्, ज्ञानज्ञेययोरभेदसाधकप्रयोगदूषणादिसाधनदूषणप्रकारयो समत्वादितिध्येयम् । शब्ददोष मुदीर्य्यार्थदोषमपिदर्शयति **अपिचात्रानेकान्त** इत्यादि, तदयमर्थ सविदोज्ञानस्यस्वप्रकाशत्वाद्-

अपि च ज्ञानज्ञेयादीनामभेदे प्रत्यक्षोबाधः त्रिपुटीज्ञानाभ्युपगमात् । नवाभेद जडत्वादिप्रकाशसमयेज्ञानप्रकाशो नियत एव । ततश्चसविदाज्ञानेन सहोपलभनियमवत्ताजडत्वमूर्तत्व-विषयत्वादीनामपिसविदोऽभेदे संविदोज्ञानस्यापिजडत्वादिप्रसङ्ग स्यात्, धर्मधर्मिणोर्भेदस्यानुपगमात्, अभेदेप्याधाराधेयभावस्याभ्युपगमात् । घटाभावेघटोनास्तीत्यत्रघटाभावेघटाभावस्यानुभविकत्वादिति ।

एव सर्वज्ञपुरुषस्य बद्धज्ञानानामुपलभेनियमतो बुद्धज्ञानमप्युपलभ्यते एवेतितेषाबुद्धज्ञानसहोप-लभानाबुद्धज्ञानादभेदेबुद्धस्यापि वद्धत्वमापद्येत, तत्र तत्र चाभेदानुपगमेऽनैकान्त्यव्यभिचारोदोषो हेतौभवतीतिभाव । एव ज्ञानज्ञेययोरभेदसाधकहेत्वन्तरमपि समत्वान्निरसनीयमेव, तथाहि नियमे-नैकज्ञानसिद्धत्वमपि निराकृत भवति । तत्रैकज्ञानसिद्धत्वमित्यस्यएकज्ञानेद्वयो प्रकाशमानत्वमर्थ । तन्न युक्तम्, एकज्ञानविषयत्वेनाहमर्थेसविदोऽभेदस्यसाधनेतुल्यन्यायनाहमर्थभेदोपि सविदिज्ञाने प्रसज्येत । चाक्षुषादिज्ञानविशेषेणैवसिद्धत्वचाहमर्थस्यासिद्धम , ज्ञानान्तरेणरासनादिनापितत्सिद्धे । स्वप्नकालेऽहमर्थस्वत सिद्धेश्च श्रुतिप्रामाण्यादिति । विपक्षेवाधोपि भवति भवतु नियमेनैकज्ञानसिद्धत्व ज्ञानज्ञेयप्रमातृणाम् । न च भवत्वभेदस्तावता काक्षति । तस्मादप्रयोजको हेतुरिति ।

योय नीलादिर्विषयस्वयमस्वप्रकाश स किं स्वकीयस्य "नीलमिदपीतमिदमित्येवस्वव्यवहार-साधनायस्वप्रकाशज्ञानमपेक्षते, अथवा, ज्ञानाभिन्नत्वात्, स्वव्यवहारायज्ञाननापेक्षते, इत्येवसंशयात्, ज्ञानज्ञेययोरभेदो न साधयितुशक्य ज्ञानानुरोधित्व च नीलादेविषयस्यज्ञानेनसहैवोपलभरूपमेव । तत् किं सविदभेदप्रयुक्तमथवा स्वप्रकाशेजडस्यनीलादिविषयस्य स्वप्रकाशसविदपेक्षाप्रयुक्तमिति सशये सति । अभेदप्रयुक्तत्वनिर्णयो यावन्नभवति तावदस्याभेदसाधकत्व न सभवति, ततश्चहेतोरप्रयोजक-त्वम् । कथञ्चित्प्रयोजकत्वेपिसहोपलभनियमोबोध्ययोरेवसाधक स्यात्, नतु बुद्धिबोध्ययो स्यात् । तत्र ज्ञानानाज्ञातृणा च सहोपलभ्यमानामभेदेबुद्धस्यापिवद्धत्वमापतेत् । नवाबुद्धिबोध्ययोरभेद सभवति बुद्धेर्जडत्वसङ्गात्, तथासत्यमिथ्यार्थयोरभेदप्रसङ्गाच्च । तस्मान्नज्ञानार्थयोरभेद इति । अपि च योय सहोपलभ सतूपायोपेयभावेन, ज्ञानेसत्येवार्थोपलभात् तदभावेऽभावादिनाभेदप्रयुक्त किन्तूपायहेतुक एवेति बोध्यम् । विस्तरस्त्वन्यत्र द्रष्टव्य ।

धर्मभूतज्ञानस्य तथा तादृशज्ञानाधिकरणधर्मिभूतज्ञानरूपात्मनोरभेद एव, तदुभययोर्ज्ञानत्वेन सहोपलभ्यमानत्वनियमेन चाभेदस्यसाधनकृतवान्, बौद्ध परन्तु तदनुमानम्, वह्नि शीतोद्रव्य-त्वादित्यनुमानपक्षग्राहकौष्ण्यप्रत्यक्षेण स्पार्शनेन बाध्यते, तथैव ज्ञानज्ञात्रोरभेदसाधने, प्रत्यक्षज्ञानेन-बाधित एव भवतीति ज्ञानज्ञात्रोरभेदानुमान न सभवतीति दर्शयितुमुपक्रमते **अपि च ज्ञानज्ञेयादीनामभेदे प्रत्यक्षोवाधः** इति, कुत ? प्रत्यक्षवाधस्तत्राह **त्रिपुटीज्ञानाभ्युपगमादिति ।** अर्थात् घटमहजानामीतिप्रत्यये विषयस्य घटादेर्ज्ञानस्य, तथा ज्ञातुरात्मनश्च प्रत्यक्षत एव परस्पर भेदस्योपलभेन, ज्ञानज्ञात्रोरभेदसाधकानुमाने भवत्येवप्रत्यक्षवाध । ततश्च प्रत्यक्षवाधावद्धतविषय

प्रत्यक्षेप्रतियोगिनःप्रत्यक्षत्वं वा दृश्यत्वं वा कारणम्, प्रतियोगिनोज्ञानमात्रेण तदुपपत्तौज्ञानविशेषस्याप्रयोजकत्वेन तदनपेक्षणात् । प्रतियोगिनोऽप्रत्यक्षत्वेपिविलक्षणा-भावाज्ञायन्तेएवेतिसर्वलोलसाक्षिकानुभवात् ।

तयाज्ञानज्ञात्रोभेदसाधकानुमानसर्वथैवाकिञ्चित्करमिति । मीमांसकोपिज्ञानमात्रज्ञानज्ञातृज्ञेयादिविष-यकं भवत्येवेतिस्वीकृत्यज्ञानज्ञात्रोरभेद प्रतिरुणद्ध्येवेति । ननुभेदप्रत्यक्ष प्रतियोगिन प्रत्यक्षकारणम् प्रतियोगिज्ञानमन्तरेणाभावज्ञानस्यानभ्युपगमात् । अन्यथा परमाणुप्रभृति अतीन्द्रियवस्तुनोऽभा-वोपि चक्षुरादिनागृह्येत । प्रतियोगिविशेषिताभावज्ञानविशिष्टवैशिष्ट्य बोधमर्यादानातिक्रामतीतिनिय-मात्, तस्माद्भावप्रत्यक्षेप्रतियोगिन प्रत्यक्षज्ञानकारणमेव प्रकृते च ज्ञानस्यानवस्थाभयेनज्ञानान्तरा विषयतया, स्वयप्रकाशत्वाभ्युपगमेनेतिज्ञानभेदस्यप्रत्यक्षज्ञातारि न सभवति । ततश्च ज्ञातरिज्ञानभेदा-सभवात् कथ प्रत्यक्षेज्ञानज्ञात्रोरभेदानुमान प्रत्यक्षबाधितमितिकथन ते सङ्गतमित्याशङ्कयतन्निरा-करणायोपक्रमते **नवाभेदप्रत्यक्षेप्रतियोगिनः प्रत्यक्षत्व**मित्यादि । अयमाशय घटत्वेनघटात्मकप्र-तियोगिनस्तथा भूतलत्वेनाधिकरण भूतलादिप्रत्यक्षेसत्येव भूतलाधिकरणकघटत्वावच्छिन्नघटाभावप्रकारक प्रत्यक्षमुदेति । तथा तादृशाधिकरणे एव सयोगादिनाजायमानघटवत्ताज्ञान प्रतिबन्धक भवति । अन्यथा भूतलाधिकरणकपटाभावप्रकारकभूतलाधिकरणकपटाभावोपिप्रत्यक्षत परिगृहीतो भवेत् । अतएवसमानविषयकप्रतियोगितदभावयोरेव बाध्यबाधकभावो भवतीतितान्त्रिकाणामुद्घोष । प्रकृते भेदप्रतियोगिन प्रत्यक्षाभावेनकथप्रमातरिज्ञानभेदोगृहीत ? तदभावेकथतयोर्भेद स्यात्, तदभावेकथप्रत्यक्षाभेदानुमानयो प्रतिबध्यप्रतिबन्धकभाव सभवेदिति प्रश्नस्यमुकुलिताशय. । तमिममाक्षेप परिहरति–**प्रतियोगिनोज्ञानमात्रेणतदुपपत्तौज्ञानविशेषस्य** इत्यादि ।

सत्यमभावज्ञाने प्रतियोगिज्ञान कारणं नतु तत्र प्रतियोगिप्रत्यक्षमेव, किन्तु ज्ञानत्वेनैवज्ञान-सामान्यस्यैव, तत् प्रत्यक्षात्मकभवतु, अनुमित्यादिक वा, कारणतावच्छेदकेप्रत्यक्षत्वनिवेशस्या प्रयोजकत्वात्, इति ज्ञानान्तराधीनतत्प्रकाशस्यभेदप्रत्यक्षेऽकारणत्वेन, प्रकाशविशेषस्यप्रत्यक्षादि ज्ञानान्तराधीनस्यानपेक्षणादिति । अयभाव -अत्यन्ताभावप्रत्यक्षेप्रतियोगिताया अपेक्षणात् प्रतियोगिनो ज्ञानं प्रत्यक्षादिसाधारणमेव विवक्षितम् । अतएव मेरौपरमाण्वभाव पाषाणे सौरभाभावइत्येवक्रमेण तत्तत्प्रतियोगिनोऽभावज्ञानमुपजायते । अन्योन्याभावप्रत्यक्षेतु न प्रतियोगिनो योग्यताऽपेक्षिता, किन्तु अधिकरणयोग्यतैवापेक्षिता भवति । अर्थात् अधिकरणं योग्यभवेत् प्रतियोगीयोग्योऽयोग्यो वा भवतु तत्रनाग्रह । अतएव स्तंभे पिशाचभेदश्चक्षुषागृहीतो भवति, स्तम पिशाचोनेति प्रत्य-यात् । अन्यथाऽतीन्द्रियपिशाचचक्षुरयोग्येन तद्भेदस्यस्तभे प्रत्यक्षासभवात् । ममतुपिशाचस्य योग्यत्वेपिस्तंभस्ययोग्यत्वेन स्तभे तदीयभेदस्यप्रत्यक्षत्वोपपादन भवतीति । प्रकृते वेदनस्यज्ञानस्य-प्रतियोगिन प्रकाशस्तुस्वत एव भवतीत्यत एव ज्ञातरिआत्मनि संवेदनभेदप्रत्यक्षे न काप्यनुपपत्तिर्भवतीति ।

अथ विद्यमानंभेदप्रत्यक्षमुपेक्ष्य, सहोपलंभनियमस्याभेदेनव्याप्तिग्रहणं कथं स्यादितिभेदप्रत्यक्षेणाभेदानुमानबाधः संभवति । तथा सति ज्वालाभेदानुमानमपिज्वालैकत्वप्रत्यभिज्ञयाबाध्येतेति । दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकयोर्वैषर्म्यस्यापरिज्ञानात् तत्रहि

वस्तुतस्तत्तत्साधारणाकार एव, इतरतादात्म्याज्ञानविरोधितयातस्यतस्येतरस्माद्भेदरूपो भवतीति सक्षेप । स च भेद प्रतियोग्यनुयोगिनोरनवभासनेपि भासते एवेत्याशयेनाह **प्रतियोगिनः** इति। अर्थात् प्रतियोगिनो ज्ञानाभावेपि, भेद शादृश्यचेतरविलक्षणतया भासमानाभवन्त्येवेत्यर्थ । इयान्स्तुविशेष –यदा प्रतियोग्यनुयोगिनोभान भवति, तत्कालेभेदस्यसादृश्यस्य च स्फुटतरव्यवहारो भवति "घट पटाद्भिद्यते" इत्यादिरूप चन्द्रवन्मुखमित्यादिसादृश्यव्यवहारश्च । यदातु न तयोरुपस्थितिस्तत्कालेपि भेदत्वेनभेदस्यास्फुटव्यवहारोभवत्येवेति । एवमेव, ज्ञातुरा मनोऽहत्वेन यद्ज्ञान जायते तदेवसवित् सकाशादात्मनोभेदग्रहण नातोऽधिक किमपीति । सविद्भिन्नत्वव्यवहारे पुन प्रतियोगिज्ञानसहकृतमसाधारणाकारज्ञान कारणभवतीतिज्ञातव्यमिति । यत्तुकैश्चिदुक्तम्, भेदस्य प्रत्यक्ष न कथमपि सभवति, यतो यत्सत्तत्क्षणिक जलधरपटलवदिति वस्तुमध्यान्तर्गत प्रत्यक्षस्यापिक्षणिकत्वेनप्रतियोगिज्ञानपूर्वकभेदग्रहणकालपर्यन्तमनवस्थानतयाभेदग्रहणस्यासभवात् । युगपदेवार्थादेकस्मिन् एव प्रतियोगिस्तदभावाधिकरणग्रहणेतु, समूहालवनज्ञानवदुपश्लेषविशेषासिद्धिप्रसङ्गस्यात् । तस्मात् भ्रमात्मक एव सर्वत्रभेदग्रहइतितन्नसमीचीनम्, तत्तद्दशासाधारण रूपस्यघटत्वपटत्वादिधर्मस्यैवेतरभेदरूपत्वात्, तादृशघटत्वादिधर्मस्य च धर्मिणिघटादौप्रथमक्षणे चक्षुरादिसम्बन्धकाले एव ग्रहणसभवात् । क्षणिकप्रत्यक्षस्यभेदोन गृह्यते इतिरिक्तमेववचनमिति । दृष्टपूर्वाश्वतएवपूर्वोष्ट्रादिवस्तुग्रहणकाले अश्वादिपशुभ्योविलक्षण एव कश्चन प्राणीत्येव रूपेण, इतरेभ्योभेदप्रतीति सर्वलोकसाक्षिक सर्वेषामुदेत्येवेति सक्षेप । विशेषस्त्वन्यत्राव धातव्य ।

विषय विषयिणोर्ज्ञातुश्चाभेदसाधनायपुनरपिप्रत्युत्तिष्ठते विज्ञानवादीसौगत **अथ विद्यमानभेदप्रत्यक्षमुपेक्ष्य** इत्यादि । उपेक्ष्यभेदप्रत्यक्षस्यतिरस्कारकृत्वेत्यर्थ । व्याप्तिग्रहण प्रतिबन्धग्रहणमित्यर्थ । ततश्च भेदप्रत्यक्षात्, तद्बाधसभव अभेदानुमानस्यबाध सभवति । तथा सति, प्रत्यक्षस्यानुमानबाधकत्वे सतिज्वालाभेदानुमानमपिज्वालैकत्वप्रत्यभिज्ञयाबाधिता भवेत् । अयमाशय भिन्नत्वेनगृह्यमाणयोरेवपदार्थयो सहोपलभनियमस्तयोरभेदव्याप्यतयागृहीत । तेन चाभेदानुमाने, प्रत्यक्षेभेदग्रहणरूपोऽशोभ्रमस्वरूपइति निर्णीयते । न च प्रत्यक्षात्मकोपजीव्य विरोधोऽनुमानस्य, प्रत्यक्षसिद्धवस्तुस्वरूपस्यैवव्याप्तिग्रहोपयोगिनोऽभ्युपगमात्, भेदग्रहस्य चव्याप्तिग्रहणेऽनुपयोगात् इतिपूर्वपक्षाशय । तदेतन्निराकरोति, **दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकयोरित्यादि** अर्थात्दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकयोर्विरोधमप्यल्पप्रज्ञोनविजानातीति । तदेवोपपादयति **तत्रहीत्यादि ।**

निश्चितकारणदोषसत्वेपिजायमानोऽपरोक्षावभासोनिर्दुष्टप्रत्यक्षपूर्वकमनुमानं वाधितुनोत्सहते–तथाहि–ज्वालादौझटिति [अचिर] निर्वापितारोपितैकवर्तिषु अनेकप्रदीपादिषु, ज्वालाभेदाद्दर्शिषुरुपस्याति सादृश्यदर्शनेन "स एवायंमितिस्मरणं जायते इति प्रत्यक्षतो दृश्यते ततश्च तदन्यत्राप्यप्रतिवन्धपुष्कलकारणक्रमोपनिपातादवयवविश्लेषाच्च, सुसदृशनिरंतरप्रवृत्तिप्रदीपप्रवाहालंबनैव तथा [भेद] मतिरितिनिर्णीयते। तथैक-

न प्रत्यक्षत्वबाधकत्वे प्रयोजक नवानुमानत्वबाध्यत्वे प्रयोजकम्। अर्थात् यत् प्रत्यक्ष तत्स्वभावतोबाधकमेवेति, यच्चानुमानभवेत्तत् स्वभावतोबाध्यमेवभवतीति नियम किन्तु यद्दोषमूलक भवेत्तद्बाध्य भवति, दोषामूल च यत्तत्बाधकम्। अन्यथानेदरजतमितिज्ञानेन, इदरजत मित्यस्यबाधो न स्यात, कदाचिद्विपर्ययस्यापि सभवात। अपितु दोषाघ्रातकारणेनजायमान बाध्यम् दोषापरिवर्जितसामग्र्या जायमानप्रमाणत्वाद्बाधकमेव। ततश्च दोषमूलत्वबाध्यत्वे प्रयोज कमदोषमूलत्वबाधकत्वे प्रयोजकमितिविवेक। तथा च ज्वालाभेदानुमानम् दोषमूलकभवद्बाकमेव। ज्वालैक्यप्रत्यक्षज्ञान प्रत्यक्षात्मकसादृश्यादिदोषमूलकभवद् बाध्यमेवभवति, यथाशुक्तोजायमान रजतप्रत्यक्ष सादृश्यमूलकत्वाद्बाध्य भवति, नतुनेदरजतमितिबाध्यमपिबाधकमेव तस्योत्तरकालजाय मानदोषरहितकारणजन्यत्वात्। तथैव प्रकृते ज्ञातृज्ञानज्ञेयभेदग्रहस्य दोषमूलत्व नास्ति, ततश्च ज्ञात्रादिभेदग्रहोऽभेदान् प्रतिरुणद्ध्येवेति प्रत्यक्षेणैवात्रानुमानबाधो नतु तद्विपरीत भवतीति प्रकरणाशय।

ज्वालैक्यप्रत्यक्षतुदोषमूलकमेवेति तस्यबाधो भवत्येव। तत्र प्रथमत ज्वालैक्यप्रत्यक्षेक्लृप्त कारणेदोषानुवृत्तिमुपपादयितुमाह **तथाहीत्यादि** अत्राचीरप्रशमितत्वपुनरुद्दीपितत्वकथनेन, पूर्वापरज्वालयोर्वस्तुत एव भेदो विद्यते इतिध्वन्यते तद्दर्शनमेकवर्तिकृत्तित्वज्ञानचैकत्वविभ्रमेकारणमिति कथित भवति। यश्च प्रदीपस्थनिर्वापणमुद्दीपन च साक्षात्करोति, तस्यज्वालयोर्भेदप्रत्यक्ष वर्तते इति तेन बाधितत्वमपिनिर्वापणोद्दीपनादयद्रष्टृनिष्ठज्वालैक्यप्रत्यक्षे विवक्षितम। कथितभ्रम कारणमनिर्वापितस्थलेप्युपपाद्य दर्शयति **तदन्यत्रापी**त्यादि। तैलवर्तिकातदवयवाग्निसयोगश्च कारण भवति, तस्योपर्युक्तकारणस्यसर्वत्रसर्वथाभिन्नत्वेन ज्वालायाअनिर्वापणस्थलेपितद्भेदोऽङ्गी कर्त्तव्य, तत्र कारणप्रवाहानुवृत्तिवलात् कार्यात्मकज्वालाया अनुवर्तन भवति, पूर्वपूर्वतरज्वालाया यत्कारणतैलवर्तिकानदवयवाग्निसयोगानानिवृत्त्यातत्कार्यभूतपूर्वपूर्वज्वालायानिवृत्ति कारणाभावे कार्यनिवृत्तेरवश्य भावात्। ज्वालाकारण तैलवर्त्तिकातदवयवविशेषाग्निसयोग एव। वन्हेस्त्वाश्रय विनाशकत्वेन वर्त्यवयवविनाशे, आश्रयाभावाद् वन्हिरुपशान्तो भवति। तदुक्तम् अतृणेपतितोवन्हि स्वयमेवोपशाम्यतीति। ज्वालाभेदेसत्येव एकमेवदीपप्रज्वाल्यतदीयापरस्परभिन्नामनेकदेवेभ्योयाजका.समर्पयन्ति, नतु दीपमेव ददति, तथा सत्येकस्मैप्रदत्तदीपस्यानेकत्रदाना

स्मिन् नानात्वप्रत्ययःस्वतः प्राप्तेन्द्रियवृत्तिविपर्ययुक्तः गमकाबोपजायमानानेक निर्दुष्टप्रत्यक्षनिराकृतविषयश्चद्विचन्द्रादौ दृष्ट इतिनासौ तत्र द्विचन्द्रादावेकत्वानुमानं बाधते । नचैवमत्रज्ञेयज्ञानज्ञातृभेदसाक्षात्कारीप्रत्ययः, इति प्रतिरोधते एवाभेदानुमानम् । न चोपलब्धिसाहित्यनियममात्रादेवज्ञानज्ञेयादीनांभेदोऽनुमेय इति वक्तव्यम्, विपक्षेबाधकादर्शनात् । संविदधीनसिद्धितयापि तथा नियमोपपादनसंभवात् । अतीन्द्रियकत्वेन च तद्वृत्तिविपर्यस्याकिञ्चित्करत्वात्, बाधकप्रत्ययस्ययोग्यानुपलब्धि

भावात्, अतएव दीपस्यैकत्वेपि तदीयज्वालाया परस्परभेदादनेकस्मै तस्यैकदीपगतानेकज्वालायादान भवतीतिशिष्टा । एव चैकत्रदीपे एव पूर्वोत्तरज्वाल्योर्भेदेसिद्धेसजातीयदीपधाराणाभेदाग्रहात् सादृश्यात्मकदोपसत्वान्चैकत्वभ्रमो भवति, "सैयदीपकलिकेति, सैवेयगुर्जरीवदिति । नानाभूते एकत्वभ्रमप्रत्यक्षात्मकप्रदर्श्य एकस्मिन्नपिनानात्वभ्रममपिदर्शयति **तथैकस्मिन् नानात्वप्रत्ययः** इत्यादि स्वभावसिद्धचाक्षुपकिरणप्रसरणस्य विपर्योद्वैतीभावोङ्गुल्यवष्टभादिप्रयुक्तत्व एव दोपश्चैकस्यापितदीयद्वित्वे भवति, तत एव द्वाचन्द्राविर्त्यवतिमिरादिदोषवान् विजानाति, अतद्वतितत्प्रकारकत्वेन तादृशज्ञानभ्रमात्मकम् । एतज्ज्ञानद्वौचन्द्रौ, इत्याकारकम् दोषरहितपुरुषान्तरीयचन्द्रैक्य प्रत्यक्षेण बाधित भवतीति **तथैकस्मिन्नानात्वप्रत्ययः** इत्यादिग्रन्थेन प्रदर्शितदृष्टान्तात् दार्ष्टान्तिकेपरस्यवैषम्यदर्शयति **नचैवमत्रज्ञेयज्ञानाज्ञातृभेदसाक्षात्कारीप्रत्यय** इत्यादि । **अर्थात्** ज्ञातृज्ञानज्ञेयभेदनिरूपितचाक्षुषादिलौकिकविषयिताशाली, घटादिबाह्यविषयमहजानामि, **घटोज्ञात** इत्याकारक साक्षात्कारो भवति, अतदोपमूलको न वा, ज्ञातृज्ञानज्ञेयाअभिन्नाइत्याकारकाभेदसाक्षात्कारबाधिनो भवन् दृश्यते । तस्मादभेदानुमानबाधकत्वयथोक्तज्ञानस्य सुव्यवस्थितमेव भवतीति भाव । एतद्विपरीतमेव कस्मान्न भवति ? तत्राह **नचोपलब्धीत्यादि** नचोपलब्धिसाहित्यनियमेन ज्ञातृज्ञेययोर्ज्ञानाभिन्नत्वमेव कुतो भवति, इति प्रश्नस्योत्तरे कथयति **विपक्षेबाधकादर्शनात्** । पूर्वमभेदानुमानेऽअप्रयोजकत्व व्यभिचारशङ्काऽनिवर्तकत्व कथितम्, तमेवात्रानुस्मारितम् **विपक्षेबाधकादर्शनादिति** विपक्षेसाध्याभावाधिकरणे हेतोवृत्तित्वशङ्कायाम्, अथात् साध्याभावाधिकरणेहतुर्वर्ततेनवेति सशयेयत्पर्यन्त, यदिसाध्याभावाधिकरणेहेतुर्वर्तते तदासहेतुस्तादृशसाध्यस्य व्याप्यो न स्यादित्याकारकानुकूलतर्कोनोदेष्यति, तावत्पर्यन्तसाध्यहेत्वोर्व्याप्तिसिद्धिरेव न स्यादिति-व्यातेरसिद्धयाज्ञातृज्ञेयादीनामभेदात्मकसाध्यानुमानमेव न सेत्स्यतीत्यतस्तादृशानुमान न **ज्ञानज्ञेया-** दिप्रत्यक्षेबाधकत्वेनशङ्कितुमपि योग्यमिति भाव ।

ननुज्ञातृज्ञेयादिभेदज्ञान चक्षुरादि, इन्द्रियवृत्तिप्रसृतिभेदरूपात्मकदोषमूलकभेदेदिति **चेन्न,** अनिन्द्रियकत्वेनचेन्द्रियवृत्तिविपर्ययस्याकिञ्चित्करत्वात् । अर्थात् ज्ञातृज्ञानादीनाचक्षुरादिबाह्येन्द्रि-

पराहतत्वाच्च । अपि च विषयसिद्धिरेवसंवित्, सा च स्वप्रकाशरूपैवेति सर्वसंमतम्। तेनावर्जनीयतया नियमः । न च ज्ञातृज्ञानादीना भेदोपिसिद्धि[ज्ञान]मन्तरेणसेद्धु-मर्हतीत्यलंशुष्कविवादेन ।

नीलादिविषयप्रकाशस्तु, अनुभवसिद्धत्वान्नप्रकाशात्मकः तदतिरिक्तप्रमाणान्त-याऽग्राह्यतयातेपामिन्द्रियाणांभेदज्ञानरयनेन्द्रियवृत्तिभेदप्रयोज्यत्व कथमपि सम्भवेत् । तथा प्रकृते बाधकज्ञानमपिनास्तिचन्द्रद्वित्वादिभ्रमवत, तत एवोक्तम् "योग्यानुपलब्धित्वाच्चवाधकज्ञानस्येति समुदितार्थ । किञ्चभेदोभवतुज्ञानादीनांपरस्पमभेदो वा भवतु, परन्तु सर्व तत्, ज्ञानाधीनमेव, ज्ञानाभावेऽस्तित्वस्यैव सन्दिग्धत्वात्, तत्रोक्तम, **अपिच विषयसिद्धिरेव संवित्** साचसर्वमतेन स्वप्रकाशरूपैव, तेनावर्जनीयतयाज्ञानेनसर्वस्यसहोपलभनियमो नतु ज्ञानज्ञेययोरभेदप्रयुक्तोऽपितू पायोपेयमूलक एव । अर्थात् विषयग्रहणज्ञान विना सम्भवतीत्यतस्तयोरभेद इति लोकानाप्रत्ययो भवति नतु अभेद मूलको विषयविषयिणोस्तम प्रकाशवत् विरुद्धस्वभावयोरभेदस्यसर्वथैवविरुद्धत्वात् । "न सूर्यस्तमसायुक्तोनवासूर्यस्तमोमय " इत्यभियुक्तोक्ते । नहि भवति वन्हिर्जलमितिलोकानामनुभवो भवन् वा न तादृशोऽनुभव प्रामाणिक कथ्यते पण्डिताना सदसीति ।

ननुज्ञान विनापि विषयादे सिद्धिस्वीकारेकाक्षतिस्तत्राह **नच** इत्यादि भेदो ग्राह्यस्य विषयादे ग्राहकस्यविकल्परूपज्ञानस्यसिद्धिर्ज्ञान विना सम्भवति, स्वलक्षणनिर्विकल्पकज्ञानमन्तरासिद्ध्यति कल्पनापोढमभ्रान्तप्रत्यक्षनिर्विकल्पकमितिनियमात् । विशेपविवरणमन्यत्र द्रष्टव्यमितिदिक् ।

॥ इतिसुगताभिमतग्राह्यग्राहकविकल्पप्रत्युद्धारनिराकरणप्रकरणेतत्त्वदीप ॥

गतप्रकरणेनक्षणिकविज्ञानस्यात्मनासहाभेदव्यवस्थापक सहोपलभनियमात्मकसाधन निराकृत-वान् । तदनन्तरनित्यविज्ञानमेवात्मेतितस्यनित्यविज्ञानस्यात्माऽभेदसाधक हेत्वन्तरदूषयितुमुपक्रमते **नीलादिविषयप्रकाशस्तु** इत्यादि । अर्थात प्रकटबोद्धमतसिद्धसिद्धज्ञानात्मनोऽभेदसाधनार्थं-यत्सहोपलभनियमात्मकहेतोरुपन्यासकृतस्तस्य युक्त्यातर्केणापनयनमकरोदित्येवप्रकटबौद्धस्यनिराक-रणेनप्रच्छन्नबौद्धोपि स्मृतिपथमधिरोहतीति "स्मृतस्योपेक्षानर्हत्वप्रसङ्गसङ्गतिरितिनियमेन प्रच्छन्न बौद्धस्यापिनिराकरणायप्रयतते **नीलादिविषयप्रकाशस्तु** इत्यादि । अप्रकाशात्मकस्य, ज्ञान-भिन्नस्यात एव जडरूपस्यनीलादिविपयस्याय प्रकाश इत्यनुभव सर्वसाक्षिको भवति । सचानुभव एव ज्ञानज्ञेयादीनामभेदानुमाने बाधकम् । नीलादे प्रकाश इत्येवषष्ठीविभक्त्याज्ञानज्ञेयादीना परस्पर भेद एव समर्थितो भवति देवदत्तस्यगोरितिवत् । नचोक्तप्रत्यक्षप्रमाणातिरिक्तप्रमाणान्तरमपेक्षित ज्ञानज्ञेयादीनाभेदे । एतावता, ज्ञेयस्यज्ञानाभेदसाधकेऽनुमानेप्रत्यक्षबाध कथित वन्हौशैत्यसाधक-द्रव्यत्वादिहेतौ, अग्निरूष्णइतिस्पार्शनप्रत्यक्षवत् । तथा हेतो सहोपलमनियमात्मकहेतो पक्षेऽ-भावात्मकासिद्धिरूपासिद्धदोषोपि प्रतिपादित पुरैवेति । यद्यपिनीलादिविषयाणाजड़रूपत्वात्,

रस्यानपेक्षणात् । ज्ञानं तु प्रकाशस्वभावोऽनजडः, एतावताऽऽत्मा ज्ञानरूपः स्वतंत्रत्वात् । पराधीनमागन्तुकं यावदर्थेन्द्रियं सम्बन्धादिकारणसंनिधानमवतिष्ठमानधर्मावच्छेद्यरूपमेव ज्ञानमिति ।

आत्मा तु स्वतन्त्रो न पराधीनो ज्ञाताऽहमित्येवं सदा प्रकाशते । यद्येतादृशोऽप्ययमनन्याधीनसिद्धिर्ज्ञानपदवाच्यं कथ्यते तथापि ज्ञानवद्वेद्यं ज्ञानं न तु ज्ञप्तिमात्रेण तथेति संक्षेपः ।

प्रकाशात्मकत्वं न कथमपि सम्भवति तथापि स्वप्रकाशज्ञानसम्बन्धात् कदाचित्कप्रकाशो घटते नीलादेर्विषयाणामपि । यथा स्वभावतोऽतिमलिनस्यापि काष्ठकुड्यादेर्जलरोगनादितल्लवस्तु सम्बन्धेन कुड्यादावपि मुखादेः प्रतिबिम्बो दृश्यते । अत्रोदतिस्वच्छ एव जलादर्शादि स्वस्मिन् मुखादीनां प्रतिबिम्बं दर्शयति न त्वस्वच्छं काष्ठादि, तथापि स्वच्छजलविशेषरोगनादिनोपलिप्तं काष्ठकुड्यादिर्जलविशेषेणोपलिप्यमानं स्वस्मिन् प्रतिबिम्बमुद्गृह्णात्येव । तथैव प्रकृतेऽपि प्रकाशज्ञानसम्बन्धाद्विषयेऽपि कादाचित्कप्रकाशो घटत एव स्वभावजडस्यापि घटादिविषयाणामपीति भावः । ज्ञानाऽऽत्मा ज्ञानाभिन्नः प्रकाशस्वभाववत्वात्, अत्र हेतुरूनगम्यते सा यतु न तत्राह एतावतेत्यादि । अयात् स्वप्रकाशस्वभाव एव तावताऽऽत्मना न ज्ञानरूपत्वं स्वतन्त्रत्वात्, ज्ञानं तु न स्वतन्त्रमपि तु परतन्त्रम्, अपि तु विषयेन्द्रियसंनिकर्षादिकारणबलादापतितमागन्तुकमेवाति । तत्र ज्ञानत्वविषयप्रकाशकत्वमेव । जानातेरित्यादाज्ञावात्पर्यस्यतु कर्तृधर्मत्वमेव ज्ञानस्य, आत्मनस्तु धर्मिरूपत्वान्न धर्मात्मकज्ञानरूपत्वम् । ज्ञानस्वभावतावदाह पराधीनमाऽऽगन्तुकमित्यादि ज्ञानस्यानिम्नलिखिता धर्मा भवन्ति, प्रकाशैकस्वभाववत्त्वं ज्ञानधर्मोऽथात्, यदा ज्ञानं तत्सर्वदा प्रकाशस्वरूपमेवेत्यनन्तरं प्रकाशत्वम् । कदाचित्कत्वमपि ज्ञानधर्मः कदाचिदथात् विषयेन्द्रियादिकारणसन्नवधानेसत्येव जायते घटादिवत्, अत कदाचित्कम् । तथा विषयावगाहित्वाद्विषयप्रकाशकत्वमित्येते धर्मरूपज्ञानस्य स्वाभाविकधर्मा । तथाऽनुवर्तमानत्वधारारूपतया । तदाहुराचार्यसार्वभौमा श्रीयामुनाचार्या ज्ञानेऽत्रागच्छन्नागच्छन्नामान्य परेण तु । धारावाहिकविज्ञानमेकमेवहि सम्मतम् ॥८५४॥ इति स्वरूपस्यानुवर्तमानम्, यावाद्विषयान्तर सञ्चारो भवति तावत्पर्यन्तमवतिष्ठते एव प्रथमोत्पन्नज्ञानं न तु न्यायमतवत् प्रतिक्षणं विनश्वरम् । अर्थाद् यावत्कालविषयान्तरसञ्चारो न भवति तावत्पर्यन्तपूर्वज्ञानमवतिष्ठते इत्येव स्वभावकधर्मज्ञानं भवतीतिभाव । ज्ञाता आत्मा तु स्वतन्त्र पराधीनोऽहमितिमानसप्रत्यक्ष एव सर्वदा प्रकाशते । तत्रात्मनः धर्मित्वज्ञातृत्वमहमर्थतयाभानं चेत्येते धर्मा भवन्ति । अयैवमात्मनो ज्ञानभिन्नत्वे आत्मनो ज्ञानमित्याकारकव्यवहारः कथमिति चेत् तदा, ययोक्तस्वआत्माऽनन्याधीनसिद्धिकतया भवतु ज्ञानपदवाच्यस्तथापि ज्ञानवेद्यज्ञानम्, न तु ज्ञानमात्रस्वरूपः किन्तु ज्ञानाविकरणमानन्दाधिकरणं च । अर्थात् ज्ञानादनन्यः स्वमात्मकम् । आत्मनि ज्ञानव्यवहारो यो भवति स ज्ञानसादृश्यात् ज्ञानसादृश्यं च तत्र स्वा-

अत एव हि "योवेदेदंजिघ्राणीति स आत्मा" इति छन्दोगाः समामनन्ति । एवम् "कतमआत्मा" इत्यादिसप्रश्नमिदमेवात्मनो लक्षणं वाजसनेयिनः कथयन्ति । "योयं विज्ञानमयःप्राणेषुहृद्यन्तर्ज्योति पुरुषः" इति । अत्र खलुयोयंसर्वलोकप्रसिद्धोऽनेकविषयविषयकवेदन[ज्ञान]प्रचुरःप्राणेषुसर्वप्रेरकतया विद्यमानो हृदयायतनेऽन्तर्ज्योति स्वरूपोहमितिपरागभिन्नत्वेन प्रकाशितो भवति स एव पुरुषोज्ञानात्मा इत्येवंक्रमेणमदुक्तमेवात्मस्वरूपं निर्वक्ति । "एष एव हि द्रष्टाश्रोताघ्रातारसयितामन्ताबोद्धाकर्त्ताविज्ञानात्मापुरुषः" इत्येवंप्रकारेणाथर्वणा आमनन्ति । इत्थमेव "विज्ञातारमरेकेनविजानीया-

धीनप्रकाशत्वरूप स्वय प्रकाशत्व, स्वनिरूपितविषयताव-त्तादात्म्योभयसम्बन्धेन किञ्चिद्विशिष्टत्वस्वरूपमेवेतिभाव । अयमाशय ज्ञानपदेनोच्यमानम् स्वरूपज्ञानमपिसमानम् परन्तु ज्ञप्तिमात्रतयाऽत्मस्वरूपज्ञान न मुख्यज्ञानरूपम् । अथवा ज्ञानाधिकरणमेवात्मस्वरूपज्ञानम् , नतु ज्ञप्तिमात्रतयामुख्यज्ञानात्मकम् । एवञ्चज्ञानाधिकरणज्ञातुरात्मनोज्ञानाभेदानुमान प्रबलप्रत्यक्षबाध्यमेव भवतीति भाव । विशेषस्त्वन्यत्रज्ञातव्य ।

॥ इत्यद्वैताभिमतग्राह्यकविकल्पप्रत्युद्धारानिराकरणप्रकरणतत्त्वदीप ॥

अथातीतानन्तरप्रकरणेनसार्वलौकिक "अहघटादिकजानामि, घटादिज्ञानवानहमित्यादि प्रत्यक्षेण, यदिज्ञानविषयव्यतिरेकेणताभ्यामन्य कश्चिदहमर्थ शरीरेन्द्रियविलक्षण आत्मा नभवेत्तदाहमित्याकारकप्रतीतिर्नस्यादिति तर्केणतदन्यतर्केणापि, जीवस्यज्ञातृत्वप्रसाधितवान् । तदनन्तरमेतस्यैवात्मनो ज्ञातृत्व । प्रमाणशेखरेण स्वत प्रमाणेनापौरुषेयेणसमर्थयितुमर्फक्किकामिमामुपक्रमते **अतएवेत्यादि** यतोज्ञातुरहमर्थस्यप्रत्यक्षतःकाम्यमात्मत्वस्थितम् । अत एव छान्दोग्योपनिषदिप्रतिपादयति "अथयोवेदेदंजिघ्राणीति स आत्मा ? क आत्मा ? इति प्रश्ने उत्तरयति **यो वेद जिघ्राणीति** योहि, अह घ्राणेन्द्रियादिनागन्धरसादिकजिघ्राणि, अर्थात घ्राणादीन्द्रियादि, उपकरणेनगन्धरसादिविषयाननुभवामि स एवात्मेतिप्रत्युत्तरम् । एतावताघ्राणादीनामुपकरणत्वकथनेनतेषामात्मत्वनिराकृत्यतदन्यस्यतद्विलक्षणस्याहमर्थज्ञातुरेवात्मत्वव्यवस्थापितम् । एक क्रियायातस्यैवकरणत्वकर्तृत्वञ्चविरुद्धत-यातत्सम्भवाभावात् । तस्मात् घ्राणादिकमुपकरणशरीरमधिष्ठानमेतेषांप्रेरकोऽहमर्थएवेति । **अथयो वेदेत्यादि** वाक्यम् ज्ञातुरहमर्थस्यात्मत्वप्रतिपादनपरकमेवेति । "एवंकतमआत्मा" इत्यादिनाबृहदारण्यकोपनिषदिप्रश्नस्योत्तरप्रवाह, एतादृशात्मन एव निर्वचन याज्ञवल्क्येनकृतमितितत्राह **योयं विज्ञानमयोहृद्यन्तर्ज्योतिः पुरुषः** [अस्यार्थ उपनिषद्घटकयोऽयमिति पदम्, तत् , चक्षुरादीन्द्रियसहकारजनितविज्ञानप्रचुरस्यसर्वेन्द्रियाधिष्ठापकस्यज्ञातुरात्मनोहृदयमध्यप्रविष्टत्व स्वयप्रकाशपरकत्वपरकम् । इन्द्रियादिप्रवृत्यनुकूलसङ्कल्पप्रयत्नवत्वरूपाधिष्ठनप्राप्तकर्तृत्वज्ञातृत्वज्ञानाधिकरणत्व च स्वयप्रकाशत्वात्, ज्ञानपदवाच्यस्यात्मन प्रतिपादकत्वाच्यम् "एष हि द्रष्टा"

दिति" "न पश्योमृत्युं पश्यति न रोगम् नोतदुःखताम्" एवमेवास्य परिद्रष्टु-रिमाःषोडशकलाःपुरुषायणाः पुरुषं प्राप्यास्तंगच्छन्ति" तस्माद्वाएतस्मान्मनोभया- इत्यादि ।] **योयंविज्ञानमयः** इत्यादिवाक्येयोयसार्वलौकिकानुभवसिद्धोरूपरसादिविषयानेक-ज्ञानप्रचुर प्राणमध्येसर्वस्यप्रेरकतयाऽव्यवस्थितोहृदयरूपाधिष्ठाने स्वयप्रकाशरूपोऽहमितिप्रत्यक्स्वरूप-तयाप्रकाशितो भवति, स एव पुरुष पुरुषपदवाच्योऽन्तरात्मा जीवो ज्ञातेति । पुरिशुशयनात् पुरुषाकारत्वाद्वापुरुषपदवाच्यो भवतीति ।

एषएव ज्ञाताजीवोद्रष्टा, दर्शनस्यचाक्षुषज्ञानस्यकर्त्ता भवति । श्रोता=श्रोत्रेन्द्रियोपकरणेना-काशगुणद्विविधशब्दस्य वन्यात्मकवर्णात्मकभेदभिन्नस्य ग्राहकोभवति । घ्राता=घ्राणेन्द्रियोपनीतसुरभि-दुरभिभेदभिन्नपार्थिवगुणगन्धस्याघ्राताघ्राणकरो भवति । रसयिता=रसनामधुराम्लकटुकषादीनामन्यत-मानापण्णांपृथिवीजलसमवेतानारसास्वादक पुरुष । मन्ता=मननकारक । वोद्धा बोधसम्पादक । कर्त्ता=ऐहिकपारलौकिकक्रियासम्पादक "कर्त्ताशास्त्रार्थत्वत्वादितिसूत्रानन्दभाष्यानुमत । तदत्र आत्मन कर्तृत्वमस्ति न वेति सशय । "अहङ्कारविमूढात्माकर्ताहमिति मन्यते" (गी ३।२७) "नान्यंगुणेभ्य कर्तारम्" इत्यादिवचनै कर्तृत्वनास्तीतिपूर्व पक्ष । अत्राभिधीयते—'यजेत' 'उपासीत' इत्यादिशास्त्राणामर्थवत्वादात्माकर्त्तैवनात्मभिन्नानां गुणाना तत्सम्भवत्यचेतनत्वात् " (२।३।३४) इत्यादिरूपेणस्वाशयप्रकटितवन्तोवृत्तिकारामहामहोपाध्याया जगद्गुरव श्रीरामानन्दाचार्यरघुवराचार्य-महाभागा । एतेन परमतसिद्धाकर्तृत्वमात्मनो निराकृतम् । अकर्तृत्वेतु "स्वर्गकामोयजेत" अग्नि नादधीत "वसन्तेवसन्तेज्योतिषायजेत" इत्यादिशास्त्राणामानर्थक्यमापतेत्, तस्मात् कर्त्ता भवति-जीव । विज्ञानात्मा=विज्ञानप्रचुरइत्याद्यर्थ आथर्वणश्रुतेरिति तथा "विज्ञातारकेन विजानीयात्"आत्माधी-नस्यवाह्यविषयग्रहणचतुरस्यात्मनोग्रहण न सभवतीत्याशयेनाह "विज्ञातरमितिविज्ञातार परमेश्वरम् । जीवात्मशरीरककेनकरणेन विजानीयात् । अत्र किं शब्द आक्षेपार्थे भवति । अर्थात् अन्तर्यामि प्रकरणपर्यालोचनयापरमात्मासर्वस्य चिदचिद्वर्गस्यशरीरी भवति, जडचेतनाश्चतस्य शरीरम्, तादृशसकलशरीरकपरमेश्वरस्य भक्तिज्ञानविरहितेन ग्रहण न कथमपि भवतीतिदर्शनायेय श्रुति. प्रवर्तते । मोक्षकालेपिज्ञानाधिकरणपरकमेवज्ञानपद नतुज्ञप्तिमात्रपरक ज्ञानपदम् । एतेन मोक्षकाले सर्वोपाधेस्तत्वज्ञानेन विनाशात्, तदाजीव शुद्धस्वकीयरूपवान् भवति, ततश्चपरमात्मनाऽभेदप्राप्नो-तीतियन्मततदपिनिराकृतम् । यतो मोक्षेपिज्ञानपदस्यज्ञानाधिकरणपरकत्वात् । नहि धर्मिणविहाय-धर्मस्यावस्थानकुत्रापिदृष्टनोपपद्यतेइतिबहुश प्रतिपादितम् । एतत्सर्वं **न पश्य**इत्यादिना प्राह-तत्रसर्वंपश्यतीति पश्य सर्वार्थदर्शीमुक्तात्मेति । मोक्षकालेज्ञानाभावप्रतिपादिकाश्रुतिर्नज्ञानाभाव प्रतिपादयति किन्तु दर्शनाभावबोधिकेयादिक सर्वज्ञत्वस्थापयति "न पश्य" इत्यादि ।

तत्र पश्यति सर्वं त्रैकालिकयच्चत्रिकालातीतसत्सर्वंविजानातीति पश्योमुक्तात्मा । विषयता

दन्योऽन्तर आत्मा विज्ञानमयः"इत्यादिकाः । "सत्यंज्ञानमनन्तम्" इत्यत्रापिब्रह्मलक्षण कथनावसरेसमुपदिष्टज्ञानशद्बो न ज्ञानमात्रवाचकोऽपितुज्ञानाधिकरणवाचक एव ।

अन्यथा ज्ञाप्तिमात्रबोधकत्वेज्ञानशद्बस्य "लिति" इति शाब्दिकानुशासनेनाद्युदात्तत्वमापद्येत । परन्तु अन्तोदात्तोयंज्ञानशद्बोऽत्रत्यः । अस्यान्तोदात्तत्वंतुमत्वर्थीयाच् प्रत्ययकरणेनैवघटते नान्यथेति ।

सम्बन्धेनज्ञानप्रतितादात्म्यसम्बन्धेनविषयस्यकारणत्वमितिनियमोलौकिकप्रत्यक्षे एव नतु मुक्तयोगि प्रभृतिकज्ञानेऽपीति । "नरोगपश्यति" स्वात्मन प्रतिकूलरोगादिक न पश्यति । "नो दु खताम्" कुत्रापिवस्तुनिप्रतिकूलता न विजानाति, मुक्तस्यमोक्षसमये भगवत परमात्मनोविभूतितया सर्वस्य वस्तुन स्वानुकूलत्वेनैवतदादर्शन भवति । सर्व ह्पश्य पश्यतीत्यादित "नोपजनस्मरन्निदशरीरम्" एतत्सर्वमन्त्रानुसन्धेयम् । मोक्षसमये " गता कला षोडशकप्रतिष्ठादेवाश्चसर्वेप्रतिदेवताश्च परेऽव्ययेसर्वएकीभवन्तीति श्रुतिप्रतिपादितकलाषोडषकस्यमुक्तौनिवृत्तौसत्यामपि मुक्तस्यस्वरूपनिरूपक धर्मभूतज्ञानानानिवृत्तिनेवभवतीत्येतत् परकमेव" "एवमेवास्यपरिद्रष्टुरिमा षोडषकला पुरुषायणा पुरुषप्राप्यास्तगच्छन्ति" एवमेवोपर्युक्तप्रकारेण अस्यपरिद्रष्टुर्मुक्तजीवस्यतत्काले इमा वक्ष्यमाणा पृथिव्यादिका षोडशकलापुरुषायणा पुरुषोन्मुखा सत्य पुरुष परमात्मानप्राप्यतस्मिन्नेवपरमात्मनि अस्त गच्छन्ति तत्रैव विलीना भवन्ति दिवसावसानेनीडेपक्षिवत् । तत्र शरीररूपेणैवावस्थिता भवन्तीत्यर्थ । एव ज्ञानाधिकरणत्वेनजीवात्मनोदेहेन्द्रियमन प्राणविज्ञानादिभ्योभेदप्रतिपादकञ्च "तस्माद्वातस्मान्मयोमयादन्योऽन्तर आत्माविज्ञानमय ' इत्याद्या श्रुतय प्रमाणतयोदाहर्तव्या । तस्माज्ज्ञानाधिकरणपरकमेवज्ञानपदम्, नतु ज्ञाप्तिमात्रपरकमिति प्रकरणस्योपसहार । तदेव जीवात्मप्रकरणेयत्रयत्रजीवबोधनायज्ञानपदस्य प्रयोगोविद्यते तत्रसर्वत्रापि ज्ञानपदज्ञानाधिकरणपरकमेव नतुज्ञप्तिमात्रपरकमिति प्रत्यक्षतर्कश्रुत्यादिप्रमाणै प्रतिष्ठाप्यब्रह्मण कारणत्वप्रतिपादकतल्लक्षण निर्देशेबृहदाण्यकादिसर्वत्र "सत्यज्ञानमित्यादिस्थले यत् ज्ञानपदतत्स्वप्रकाशात्मककेवलज्ञानपरकमेवेति परमेश्वर शुद्धज्ञप्तिमात्ररूप एवेत्यद्वैतमतनिराकरणायोपक्रमते **सत्यंज्ञानम्** इत्यादिजगत्कारणब्रह्मलक्षणनिर्देशस्थलेपीत्यादि । अत्रायमाशय-सत्यज्ञानमित्यादिश्रुतिघटकज्ञानपदमपि नज्ञप्तिमात्रबोधयति किन्तु ज्ञानवन्तपरमात्मानबोधयति । यदिज्ञानमात्रमेव बोधयेत्, तदा लितीतिस्वरप्रकरणसूत्रेणज्ञानशद्ब आद्युदात्तोभवेत्, नतु तथा किन्तु अन्तोदात्तोऽत्रज्ञानशद्ब ईदकृत्व च मत्वर्थीयाच् प्रत्ययेसत्येव सभवेत् । अर्थात् यदि ज्ञानमात्रवाचीभावेल्युट्प्रत्ययेकृतेसम्पन्नो भवेत् तदालित्स्वरेणाद्युदात्त स्यात्। अयन्त्वन्तोदात्तवाची, एतच्चाच् प्रत्ययेकृतेसत्येवघटतेनान्यथा । तस्मान्मत्वर्थीयाच् प्रत्ययान्तोदात्तज्ञातृवाचकएवेतिमन्तव्य. ।

ऐतरेयेपि तथैवोक्तम् "प्रज्ञानब्रह्मेतिनिर्दिश्य—"स एतेन प्राज्ञेन" इत्यादि, ऐतरेयब्राह्मणो-

ऐतरेयोपनिषत्प्रकरणे "प्रज्ञानं ब्रह्म" इत्यावेद्य "स एतेन प्राज्ञेनात्मनाऽरूढउत्सर्जेत् याति" इत्यत्राप्राज्ञपदेनाधिकरणवलेनात्युत्कृष्टज्ञानवन्तंभगवन्तंपरमात्मानमेव प्रदर्शितम् । इति देहादिविलक्षणप्रत्यगात्मस्वरूपनिरूपणणप्रकरणम् ॥

ननु शरीरेन्द्रियातिरिक्तजीवस्यरूपस्पर्शादिविरहितस्यास्तित्वे. प्रत्यक्षं न संभवति? रूपादिरहिततयावाह्यप्रत्यक्षासंभवात् । नवा मानसंसुखादिव्यतिरिक्तत्वात् । नाप्यनुमानमव्यमिचरितलिङ्गाभावात् । नवोपमानम्, तत्सदृशतदन्यस्याभावात् । नवा शब्दःतादृशशब्दस्यादर्शनादितिचेत् । अत्रोच्यते—अनुमानस्यैव तथात्वात् इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखविज्ञानान्यात्मनोलिङ्गमितितर्ककुशलाअक्षपादाः ।

पनिषत्प्रकरणे, तत्रत्यप्रकरणपर्यालोचनेन—प्रज्ञानवत्परक एव । अर्थात् "प्रज्ञानप्रज्ञानवत्व्रह्म" इत्येवार्थ । ब्रह्मणपरमात्मनोपिज्ञानाधिकरणत्वमेव, ननुज्ञप्तिमात्रपरक वनथात्वेदोषस्य कथनात् । **स एतेन प्राज्ञेनात्मना** तत्र प्राज्ञेन—प्रज्ञ एव प्राज्ञ स्वार्थेऽण्प्रत्यय तेन प्राज्ञेनसर्वविषयकापरोक्षज्ञानवतापरमात्मनेत्येवमेवार्थ । एवम् "आनन्दब्रह्म" इत्यत्रापि न आनन्दात्मक तत्तादात्म्यापन्नपरब्रह्मेत्यर्थ । किन्तु आनन्दवान् परमात्मेत्येवार्थ । आनन्दस्यसुखापरपर्यायतयागुणत्वेन द्रव्यात्मकपरमात्मनातादात्म्यानुपपत्ते द्रव्यस्यगुणत्वायोगात् । तथा आनन्दमित्यत्रनपुसकत्वायोगात्, आनन्दपदस्यनित्यपुल्लिङ्गत्वात् । तस्यब्रह्मविशेषणेविशेष्यलिङ्गस्यानुशासनसिद्धत्वात् । तत्सिद्धेज्ञातैवात्मेति । विस्तरोन्यत्रेतिदिक् ॥

॥ इतिदेहादिविलक्षणप्रत्यगात्मस्वरूपनिरूपणप्रकरणेतत्त्वदीप ॥

ऐहिकपारलौकिकसर्वकार्येपियोगिनोजीवस्यशरीराद्यन्यतमरूपत्वेकृतप्रणाशाकृताभ्यागमदोष आपतेदित्यतस्तदतिरिक्तस्यैव तस्य "अनन्यसाधन" इत्यादिना प्रतिज्ञात स्वयप्रकाशत्वमात्मनो जीवस्यसमर्थयितुप्रमाणपरीक्षामुपक्रमते **ननुशरीरेन्द्रियातिरिक्तजीवस्येत्यादि** अर्थात् "प्रमेयसिद्धिप्रमाणाद्धि" इति नियमेनप्रमेयरूपजीवस्यास्तित्व प्रमाणेनैवभविष्यति, तदभावेप्रमेयव्यवस्थानुपपत्ते तस्मात्जीवरूपप्रमेयस्यास्तित्वप्रमापणायप्रमाणान्वेषणमेव प्रथमत कर्त्तव्यमित्यत प्रमाणपरीक्षैवावश्यकीतदर्थमयमारभ । तत्र प्रमाणत्रिकञ्चतुष्कवेतिपक्षद्वयम् । प्रमाणत्रिकमितिसाख्या तदपर पक्षोगौतमस्याप्रत्यक्षमनुमानोपमानशब्दा प्रनाणानि । प्रत्यक्ष च द्विविधवाह्यमाभ्यन्तरञ्चेति । तत्र रूपस्पर्शाभावेन जीवस्यवाह्यप्रत्यक्षासभव । नान्तरमप्रसिद्धत्वात् । नानुमानादिकमव्यभिचरित लिङ्गाभावात् ! अस्ति जीवएतादृशप्रत्यक्षागमादर्शनेनशब्दप्रमाणकत्वाभावात्ततोजीवात्मनो न प्रमाणविषयत्वमितिपूर्वपक्षाशय ।

उत्तरयति **अनुमानस्यैवतथात्वात्** अर्थात् शरीरेन्द्रियातिरिक्तजीवस्यास्तित्वेऽनुमानस्यैव प्रमाणत्वात्, अनुमानेन हि जीवस्यास्तित्वप्रसिद्धिर्भवति । यद्यपि "अहजानामि" "ज्ञातोघट"

अथ किमिच्छादिविशेषगुणानामात्मनासहव्याप्तिर्वन्हिविशेषेणसहधूमविशेषस्यव्याप्तिर्विशेषरूपेण भवति किम् ? तथा सति धूमविशेषेवन्हिविशेषवत्, इच्छाद्यन्यतमेनैवात्मप्रमितिसंभवेनानुमानंमन्दप्रयोजनकमेवेति चेत्—आत्मनासहेच्छादिनाविशेषरूपेण-
इत्यादिमानसप्रत्यक्षमेवप्रमाणंविद्यतेऽतस्तदस्तित्वप्रमाणान्तरनान्वेषणीय भवति, तथापियथोक्तप्रत्यक्षस्य शरीरादिविषयत्वासभवात् । अयमाशय अथापिविलक्षणजीवात्मविषयत्वंप्रत्यक्षस्यैतत् प्रमाणमत्रैव प्रवतितुमर्हतीत्येवसामग्रीनिरूपणाद्यात्मकेन तर्केण व्यवस्थाप्यमितिभाव । अक्षपादो हि अनुमानमेवेच्छतिजीवास्तित्वविषये तथाहि तदीयसूत्रम् "इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदु खज्ञानान्यात्मनोजीवस्यलिङ्गमिति" तत्रेच्छाद्यन्यतमंविलणात्मन साधकमिति, अक्षपादाशय । इच्छादय क्वचिदाश्रिता गुणत्वात् रूपादिवदित्याद्यनुमानेनेतरबाधसहकृतेन इच्छाद्वेषाद्यधिकरणतयाजीवस्यसिद्धिर्भवति । यथापरिशेषा शब्दाधिकरणतयाऽकाशसिद्धिर्भवतीति ।

इच्छादिगुणानामात्मनश्चयोयमविनाभावो निर्धारित स कि पर्वतीयधूमविशेषस्यपर्वतीयवन्हिविशेषेणसहप्रत्यक्षमूलकसहचारदर्शनेनतत्तद्व्यक्तयोर्विशेषरूपेण वा भवति सायान्यरूपेण वन्हित्वधर्मत्वेन वा भवति । इति जिज्ञासायाविशेषरूपेणतत्स्वीकारेप्रत्यक्षादेवतत्सभवेनानुमानानुसरणव्यर्थमेवेत्यादिकविचारयितुशङ्कते **अथ किमिच्छादिविशेषगुणानामित्यादि** प्रष्टुरयमाशय. व्याप्तिग्रह सहचारमूलकोभवति "यत्रयत्रधूमस्तत्रतत्रवन्हिरित्येव महानसादौवन्हिधूमयोर्व्याप्तिग्रहात् । तश्चशरीरेन्द्रियादिविलक्षणेनात्मनाजीवेनसहचारदर्शनेऽर्थात् यश्चजीव सचेच्छादिमानित्येव रूपेण सहचारदर्शनेसति, प्रत्यक्षेणैवतस्यात्मन सिद्धिसभवेन तदर्थमनुमानमन्दप्रयोजनकमेव । यदि आत्मनासहेच्छादीनां सहचारो न गृह्यते, तदासहचारादर्शनात् सहचारदर्शनमूलकव्याप्तिरेव न गृह्येत । व्याप्तिग्रहणाभावेचार्थादगृहीतव्याप्तिकेन हेतुनेच्छादिनात्मानुमानमेवनस्यादित्युभयत पाशारज्जुरितिप्रश्नकर्तुराशय । तमिम पूर्वपक्षनिराकरोति **आत्मना सहेच्छादीनां विशेष रूपेण** विनाभावेत्यादि, अयमाशय साधनेच्छाविषयीभूतसाध्यविशेषस्यहेतुविशेषेण सह, प्रातिस्विकरूपेण सहचारादर्शनेपि, सामान्यरूपेणसाध्यसाधनयो सहचारोभवत्येव, यथापूर्वादृष्टवह्निधूमयो सहचाराज्ञानेऽपि सामान्यतोऽर्थाद्वह्निसामान्यधूमसामान्ययो सहचारग्रहोभवत्येव । तथैवात्मव्यक्तिइच्छाव्यक्त्यो, सहचारादर्शने तत्तद्व्यक्त्यो सामान्यरूपेणसहचारग्रहसभवेनानुमानसभवात् । यथारूपादिविज्ञानसकरणकम्, क्रियात्वादित्यादौ, इन्द्रियजातीयककरणमनुमित भवति, तत्रेन्द्रियजातीयकस्यमादृशानामप्रत्ययत्वेपि, करणत्वेनाभिलषितसाध्यस्यानुमान भवति । तथैव प्रकृतेव्यक्तिरूपेणेच्छादीनामग्रहात्सहचारग्रहाभावेपि, आश्रितत्वगुणत्वादिसामान्यधर्मेण सहचारदर्शनादेवात्मानुमान भवत्येवेति । इदमेव च सामान्यतो दृष्टानुमानमितिगीयते तदुक्तसाख्याचार्येण "सामान्यतस्तुदृष्टादतीन्द्रियाणा प्रतीतिरनुमानादिति ।

विनाभावाभावेपि सामान्यतोव्याप्तिग्रहणसंभवात् । तथाहि इच्छादयःक्वचिदाश्रिताः कार्यत्वादनित्यगुणत्वात् शब्दवत् । इत्यनुमानेनैतेषामिच्छादीनांशब्दवदेवक्वचिदाश्रि-

इच्छादीनांसामान्यतोदृष्टानुमानादात्माश्रितगुणत्वम् । यथाकार्यत्वादाकाशगुण शब्दोगगनाश्रितो भवति । तत्रकार्यत्वमुत्पत्तिमत्वप्रागभावप्रतियोगीति । नित्यत्वनाविनाशित्वध्वंसप्रतियोगित्वरूपमेव । वस्तुध्वंसेप्रागभावेचादित्वानन्तत्वदर्शनात् तयो कदाचिन्नित्यत्वमति कश्चिदुपपद्येततद्दोपपरिहाराय "प्रागभावाप्रतियोगित्वेसतिध्वंसाप्रतियोगि वादिकमेवनित्यत्वलक्षणरोचयावभूव । एकांशेन प्रागभावस्यानित्यत्वमेकांशेनध्वंसस्यानन्तत्वकामलोको मन्यते यदि तदापि नक्षति "भिन्नरुचिर्हिलोक" इतिन्यायात् । इच्छायागुणत्व च गुणत्वजातिमत्वात् । द्रव्यकर्मभिन्नेसामान्यवति, या कारणता सा किञ्चिद्धर्मावच्छिन्नाकारणतात्वात् , घटादिसमवेतकार्यनिष्ठायाकार्यतातादृशकार्यतानिरूपिततादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नकपालगतकारणतावत् । या या कारणताऽवश्यकेनापिधर्मेणावच्छिन्ना भवति, निरवच्छिन्नकारणताया असभवात् , अवच्छेदकानुगतकस्यचिदभावेकारणताया व्यक्त्यैकरूपत्वेकारणतायाअननुगमेगौरवापतेदिति । तत्रापि-अन्यूनानतिप्रसक्तधर्मएवेति, अन्यूनधर्मस्यतदवच्छेदकत्वेरूपत्वादन्यतमस्यैवावच्छेदकत्वे, रूपत्वाद्येकैवधर्मस्यरूपाद्यतिरिक्तरसादावमवेत रूपेतरत्रयोविंशतिगुणेषुगुणत्वव्यवहारो न स्यात् , व्यवहारनियामकस्याभावात् । अतिप्रसक्तधर्मकारणतावच्छेदकत्वस्वीकारे, स्वेतरभेदानुमापकहेतौ, धूमसाधकजलहेतौव्यभिचारआपतेत । तस्मादन्यूनानतिप्रसक्तधर्मएवसर्वत्रावच्छेदक करणीय । प्रकृते नरूपत्वादिकन्यूनवृत्तित्वात् , नवा सत्ताजातिरेवावच्छेदिकाव्यापकत्वात् । किन्तुचर्तुविंशतिगुणसाधारणगुणत्वमेवकारणतावच्छेदकम् । तत्र गुणत्वनोपाधिरूपमननुगमादपितुजातिरूपमनुवृत्तप्रत्यासाधारणाकारणत्वात् स्वाश्रयव्यावृत्तिप्रत्ययाजनकत्वात् । ततश्चगुणत्वजातिमत्वमसमवायिकारणमत्व वा विशेषणतैकस्वभावत्व वा अर्थात् यदायावद्वागुणोवतिष्ठते तदातत् स्वस्मिन् विशेषणत्वस्वभावतनातिक्रामति, रूपवान् रसवानित्येव प्रतीतिदर्शनात् । यद्यपि यथा रूपवान् घट इत्यादौरूपस्यविशेपणतयाभानविशेष्यतयैवघटेरूपमितिप्रत्ययोआधेयतासम्बन्धेन घटस्यभानविशेष्यतयैवप्रथमान्तार्थविशेष्यतयैवशाब्दवोधोपगमात् । अर्थात् प्रथमाविभक्तिनिर्दिष्टतदेवोद्देश्यभवति, तदितरतु येन केनापिसम्बन्धेन विशेषण भवति । शाब्दबोधमर्यादायारूपस्यविशेपतया, आधेयतासबन्धेनघटादिद्रव्यस्यविशेषणतयासमुपस्थितावपिघटेरूपमित्यत्रनाधिकरणतारूप विशेष्यत्वरूपस्यनवाविशेषणतैकस्वभावरूपविशेषणत्वघटस्यवृत्त्यनियामक सम्बन्धस्याधाराधेयभावस्याभावप्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धताश्चास्वीकारादिति । एतानिउत्पत्तिमत्वनित्यत्वकार्यत्वध्वंसप्रतियोगित्वगुणत्वासमवायिकारणत्वविशेषणतैकस्वभावत्वप्रकारत्वशेषत्वादीनि सर्वाण्यपिआश्रितत्वस्यव्याप्यनिगमकानि भवन्तीति । इत्थचेच्छादयआश्रितागुणत्वात् रूपादि-

तत्वंसिद्ध्यति । ततश्च यश्चैषामिच्छादीनां परिशेषादाश्रयः स एवात्माशब्दाश्रयतयागगनादिवत् । इच्छादीनां गुणत्वं च परिशेषादेवायाति ।

वदित्याद्यनुमानमिच्छादीनामाश्रितत्वेऽनुमानप्रमाणानिभवन्तीति, इच्छादिकाअष्टौगुणा क्वचिद्द्रव्ये-आश्रिता गुणत्वात् शब्दाश्रिताकाशवदिति । ततश्च शब्दात्मकगुणाश्रिततया यथा पृथिव्याद्यष्टद्रव्ये रूपेणाकाशस्यसिद्धिर्भवतिसामान्यतोदृष्टानुमानेन तथैव प्रकृते गुणात्मकेच्छादिहेतुना परिशेषानुमाने नेच्छाद्यधिकरणपृथिव्याद्यष्टद्रव्यातिरिक्तद्रव्यरूपेणात्मन सिद्धिर्भवत्येव । तस्मादिच्छादीनां प्रत्यक्षतोऽविनाभावस्यात्मनाऽसभवेपिसामान्यतो दृष्टानुमानेन सर्वसमीहितमुपपद्यते एवेति । ननु यदीच्छादीनागुणत्वसिद्धेततदैवगुणत्वहेतुना, गुणात्मकेच्छादिवलेनात्मसिद्धि स्यात् ? परन्तु अद्यावधि-गुणत्वमेवेच्छादौ न प्रमाणप्रमिति, कथ तेन गुणरूपेच्छा प्रयत्नादिनातदाधारतयाऽत्मसिद्धि प्रत्याशा, इत्याशङ्काया प्रथमतइच्छादौगुणत्वसाधनप्रकारमेवदर्शयितुमाह **शब्दाश्रयतयेत्यादि** इच्छादयोद्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायाभावान्यतमा पदार्थत्वादितिपदशक्यत्वलक्षणपदार्थत्वहेतुना द्रव्यादिवदेव द्रव्याद्यन्यतमत्वेप्राप्तेद्रव्यकर्मसामान्यविशेषसमवायाभावभेदकानुमानैर्द्रव्यत्वादिषट्पदार्थानानिराकरणान्तरद्रव्यादिविशिष्ट पदार्थत्वमेवपरिशेषात्गुणत्वमिच्छादौव्यवस्थापयति । यथा महानसीयवन्हीतरपर्वतगोष्ठचत्वरवन्ह्यभाववान्पर्वतइतीतरवन्ह्यभावसहकृतवन्हिव्याप्यधूमवान् पर्वत इतिवन्हिधूमयो सामान्यपरामर्शेजातेऽपितदनन्तर सामान्यपरामर्शादेवेतरबाधसहकारेण पर्वतेमहानसीय वन्हिमानित्यनुमितिर्जायते, तथैव प्रकृतेइतरभेदानुमानसहकृतसामान्यतोदृष्टानुमानवलादिच्छागुणत्व सिद्धम्, तेन गुणत्वहेतुनाद्रव्याश्रितत्वभवति । ततश्चात्माश्रितत्वसिद्ध्यनन्तरमात्मसिद्धिर्भवति । तदेव क्रमेण जीवसिद्धिर्भवतीति । इच्छादिषुपदार्थत्वहेतुनाद्रव्याद्यन्यतमत्वेप्राप्तेद्रव्यादिभेदकानुमानतोद्रव्यत्वादिनिरासेद्रव्यकमादिभेदविशिष्टपदार्थत्वमेवपरिशिष्यमाणमिच्छादिषुगुणत्वव्यवस्थापयतीत्याशयेन--कथितम् **इच्छादीनां गुणत्वश्चपरिशेषादिति** । तत्रेच्छादिक न सामान्यविशेषसमवायाभावरूपम्, कुत ? अनित्यत्वात् अर्थात्, नित्यत्वेसत्यनेकसमवेतम् सामान्यमनुवृत्तप्रत्ययकारणम्, तत सामान्य-मनुगतघटपटादिरूपानेकव्यक्तिनामेकत्वप्रत्ययनियामक स्वय नित्यम्, व्यक्तीनाविनाशेपिव्यक्त्यन्तरजातदर्शनात् । तथा "नित्यत्वेसत्यनेकसमवेतत्वेसति सामान्यरहितत्वमेवविशेषाणांलक्षणम्, तेच नित्यद्रव्येषुव्यावर्तकतयाविद्यमानत्वेनवहवोभवन्ति । समवायस्तु सबन्धविशेषरूप एव, तत्र विशिष्टबुद्धि नियामकत्वमेवसबन्धत्वम् । यथा घटभूतलयोराधाराधेयभावमभिव्यञ्जयन्सयोगोघटवद्भूतलमिति बुद्धिजनयतीतिघटभूतलयोराधाराधेयभावात्मकविशिष्टबुद्धिजनकत्वात् सयोग सम्बन्धइतिकथ्यते । एव"रूपादिमान्घट" इत्यादिस्थलेरूपघटयोर्विशिष्टबुद्धिनियामक कश्चनसम्बन्धोऽभ्युपगन्तव्य । तत्ररूपघटयोर्नसयोग सभवति, यतोरूपात्मकविशेषणगुणत्वात्गुणे च गुणान्तरानङ्गीकारेणघटानुयोगिक-रूपप्रतियोगिकसंयोगासभवात्, द्रव्ययोरेवसयोगइतिनियमाच्च नत्रो रूपघटयोस्तादात्म्यमेवविशिष्ट-

तत्र न सामान्यविशेषसमवायाभावाः, अनित्यत्वात् नवा द्रव्यं कर्म वा व्यापकद्रव्य समवायादिति । इच्छादौ विशेषगुणत्वं चानित्यत्वेसत्यस्मदाद्येकेन्द्रियग्राह्यत्वात्रूपादिवदिति । एवमेभिरनुमानैराश्रितत्वमिच्छादीनांसिध्यति ततःकेवलव्यतिरेकिसाधनद्वारे-
बुद्धिनियामक भवतु ? स्वरूपतोविरुद्धयोद्रव्यगुणयोस्तादात्म्यासभवात् । नहि भवति घटोघटो-घटवान् घटवान् वा । नवा सर्वथाविरुद्धयो सूर्यतमसो । अपितु सामानाधिकरणयोरेवभवति नीलोघटइतिवत्, तस्माद्रूपघटादीनाविशिष्टबुद्धिनियामको न तादात्म्यम् । नवा द्रव्यगुणयो सर्वाधारतानियामक कालिकसम्बन्धोपिसभवति, जन्यद्रव्यजन्यगुणयो कथचित्कालिकसम्बन्धस्य-सभवेपि "रूपवान्परमाणुरित्यादौ" विशिष्टबुद्धिनियामकत्वात्, महाकालव्यतिरिक्तनित्यानुयोगिक-कालिकसम्बन्धस्यन्यायविद्भिरनभ्युपगमात् । ततश्चनित्येचतुष्टयेदिगात्ममन स्सु च कालिकेनगुण-स्यावस्थानाभावप्रसङ्गात् । यद्वस्तुजन्य तथा तदन्यदपिजन्यसमानकालिक च तदुभय च तयोरे-कस्मिन् तदपरस्यावस्थानकालिकेन भवति । महाकालस्यसर्वाधारतयातस्यैव सर्वेश्वरत्वस्वी-कर्तृमतेमहाकालभेदविशिष्टमपिवस्तुतिष्ठतीतिमते कथञ्चिन्निर्वाहोपिसर्वसाधारणतयानित्येवस्तुनिकालि-कसम्बन्धेनगुणस्यावस्थासभवात् । तत्र विशिष्टबुद्धिर्नोदीयात् । तस्माद्द्रव्यगुणयोविशिष्ट बुद्धिनियामक कश्चनसमवायनामक सम्बन्धोऽवश्यस्वीकरणीय एवेति ।

अभावश्च समवायसामानाधिकरण्यान्यतरसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावत्वात्मक एव । अर्थात्तदन्यतरसम्बन्धेनसत्ताभावत्वमेवाभावत्वम् । स चायद्विविध ससर्गाभावान्योन्याभावभेदाद् । तत्र तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावत्वमेवान्योन्याभावत्वम् । तद्भिन्नत्वससर्गाभावत्वम् । स च ससर्गाभाव प्रागभावप्रध्वसाभावात्यन्ताभावभेदात् त्रिविध । तत्रात्यन्ताभावान्योन्याभावौनित्यौ, प्रागभावप्रध्वसाभावौतु नित्यकल्पौ,तत्तुल्यावित्यर्थ । एव च सामान्यविशेषसमवायाभावानानैयायि-काभिमतानानित्यतयाइच्छादीनाचोत्पादविनाशयो सर्वसिद्धत्वेनानित्यस्येच्छादिगुणस्यनित्येषुसामान्य विशेषादिषुसमावेशाभावेनाचार्यै कथितम् **अनित्यत्वान्नेति** सामान्यादिषुप्रयत्नादीनामन्तर्भाव । इच्छादिका न सामान्यरूपा नवाविशेषसमवायाभावरूपा अनित्यत्वादिति हेतु । अत्राभावभेदानु-मानोऽनित्वमुत्पादविनाशात्मकमेव । ततश्च प्रागभावेप्रध्वसे वा व्यभिचारदोषोद्भावनमसामयिक एवेति ।

अत्रकेचनसामान्यविशेषसमवायाभावानामित्थवर्णयन्ति, तथाहि "नित्यत्वेसत्यनेकसमवेतत्व-मेव सामान्यलक्षणम् । अत्रनित्यत्वेसतीतिविशेषणानुपादानेऽनेकस्मिन् समवायसम्बन्धेनवर्तमानत्व मात्रकथनेनसयोगविभागयोरपिद्विष्ठतयाऽनेकस्मिन्वर्तमानतयातयोरतिव्याप्तिस्यादतोनित्यत्वेसतीति कथ-नम्, तदुपादानेतु सयोगविभागयो क्रियाजन्यत्वेनानित्यत्वेननित्यावघटितजातिलक्षणस्यातिव्याप्तिर्न-भवतीति । सामान्यलक्षणघटक, अनेकपदानुपादाने नित्यत्वे सति समवायसम्बन्धेन वर्तमानत्वमात्र कथने आकाशीयपरिमाणेऽतिव्याप्ति स्यात्तदीयपरममहत्परिमाणस्य नित्यत्वात् आकाशेसमवेतत्वाच्च ।

णात्ममात्राश्रितत्वं साधितं भवतीति । तथाहि–इच्छादयो न महाभूतगुणाःस्वात्मनैव-गृह्यमाणत्वात्, वाह्येन्द्रियाग्राह्यत्वात् ये महाभूतगुणास्तेस्वात्मपरात्मप्रत्यक्षावाह्येन्द्रिय प्रत्यक्षाश्च यथा प्रतियतग्राह्यारूपादयः । नैवंरूपाइच्छादय इति नते इच्छादयोमहाभूत

तदुपादानेतुपरममहत्परिमाणस्यनित्यत्वेप्यनेकत्रासमवेतत्वात्–आकाशस्यैकत्वात् । न च घटादिभेदेन पटादिवदेवाकाशोपिभिद्यते एवेतिवाच्यम्, औपाधिकभेदस्यपारमार्थिकभेदाप्रयोजकत्वात् । नहि बाल युववृद्धाद्यवस्थाभेदेपिवस्तुतोदेवदत्तादिर्भिद्यमानो भवतीति कश्चिदनुभवति, तथा सति "योहबाल्ये-पितरावन्वभूव स एवाह वृद्धत्वेप्रणप्तृननुभवामीत्यादिप्रत्यभिज्ञानादिकमनुपपद्येत । नहि बालस्थ विरादिशरीराणाकिञ्चिदपिप्रत्यभिज्ञानगन्धो नास्ति, येन तेषाममेदोभवेत् । तस्मादौपाधिकोभेदो वस्तुन पारमार्थिकभेदसाधनेनोपयुज्यते । एवमनेकसमवेतत्वमित्यस्यनानाव्यक्तिषुसमवायसम्बन्धेनवर्त मानत्वमेवार्थ, येनकेनापिसम्बन्धेनवृत्तिमत्वकथनेऽत्यन्ताभावेऽतिव्याप्ते, एकएवघटाभाव स्वरूप सम्बन्धेन भूतलजलतेज प्रभृतिवस्तुषुस्वरूपसम्बन्धेनवर्तते नित्यश्चापि, अत्यन्ताभावत्वादेव एव प्रकारेणसामान्यलक्षणस्यात्यन्ताभावेऽतिव्याप्तत्वात्, समवेतत्ववृत्तित्वसामान्यविहायसमवायसम्बन्धेन वृत्तिमत्वकथितम् । तदुपादानेतुनातिव्याप्ति सगच्छतेऽभावस्यासमवेतत्वात् । अर्थात् भावोद्विविध समवेतासमवेतभेदात् । तत्र द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषाख्या पञ्चापि, समवेताभावाश्चापिकथ्यन्ते, अन्तिमस्त्वभावोऽसमवेतश्चतुर्विधश्चेति । तत्र प्रतियोगितानुयोगित्वान्यरसम्बन्धेन अथवा तदुभय सम्बन्धेनसमवायसम्बन्धवत्व समवेतत्वम् । यथा द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषा सवे एते समवायसम्ब न्धेन द्रव्येषु यथायथ नवसु वर्तन्ते, द्रव्यमपिद्रव्येवर्ततेऽर्थात्कार्यद्रव्यकारणद्रव्येषुसमवायतस्तिष्ठति कार्यकारणयो समवाय एवेतिनियमात् एवञ्चयदाघट कपालरूपकारणेसमबायसम्बन्धेनतिष्ठति । तत्र कपाले वर्तमानसमवास्यप्रतियोगिविशेषणघटोभवति, तथा कपालरूपकारणसमवायस्यानुयोग्यधिकरण मितिकार्येघटादौप्रतियोगितासम्बन्धेनसमवायस्तिष्ठति । तथा कपालकारणसमवायस्यानुयोग्यधिकरण भवतीति कपालादिकारणे अनुयोगितासम्बन्धेनसमवायोभवतीतिकार्येकारणे च समवायो भवति, अत कार्यकारण च प्रतियोगित्वानुयोगित्वसम्बन्धेनसमवायत्वात् समवेतमिति कथ्यते । द्रव्यजनकेद्रव्ये प्रतियोगित्वानुयोगित्वमित्युभाभ्यासमवायवत्वात्समवेतत्वम् । द्रव्येद्रव्यभवतिगुणोभवतिकर्मापि, गुणेगु-णत्वकर्मणिकर्मत्वमिति द्रव्यगुणकर्मसुप्रतियोगित्वानुयोगित्वोभयाभ्यासमवायस्यसभव, यदाद्रव्यगुण कर्माणिक्वचित्तिष्ठन्ति, तदा तेषु प्रतियोगितासम्बन्धेन समवायवत्वम्, यदाद्रव्यगुणकर्मसुसामान्यादि स्तिष्ठतिद्रव्यादिषुअनुयोगितासम्बन्धेन समवायस्तिष्ठति, अर्थात् यदा य समवायसम्बन्धेनाधेयो भवति तदा तत्र प्रतियोगितासम्बन्धेन समवायो भवति, यस्मिन्नन्य आगच्छति समवायेन, तदातदधिकरणेनानुयोगिता सम्बन्धेन समवायवद्भवतीतिद्रव्यगुणकर्माणिमुख्यत समवेतानि भवन्तीति । यत कदाचित्कार्यद्रव्यकारणद्रव्येतिष्ठति, इतिद्रव्यंविशेषणविशेष्य चेति तत्र प्रकारद्वयेन प्रतियो-

गुणाः । न दिक्कालमनसोगुणाइच्छादयोविशेषगुणत्वात्दिगादिगुणानामप्रत्यक्षत्वाच्च। एवमकारणगुणपूर्वकत्वायावच्छरीरभावित्वादयोपि हेतवः, इच्छादीनांशरीरविशेषगुणत्व-प्रतिषेधकाभवन्तीति तेऽपि अनुस्मरणीयाः। तस्मादिच्छादयोनशरीरगुणास्तद्गुणाभावाय-गितयाऽनुयोगितया च समवायो भवति । यदागुणोद्रव्यविशेषणो भवति तदा प्रतियोगितासम्बन्धे-नसमवायो भवति, यदा तु गुणत्वगुणे आगच्छतितत्कालेगुण समवायस्यानुयोगी भवति, ततश्च-गुणेऽनुयोगितासम्बन्धेनसमवायस्तिष्ठतिगुणत्वेतुप्रतियोगितासम्बन्धेन भवत्येवप्रकारेणगुणेपितदुभय-सम्बन्धेनसमवायवत्वमागच्छतीति गुणोपिसर्वथासमवेत एव । एव कर्म यदा द्रव्येतिष्ठतिसमवायेन तदाकर्मणो विशेषणतयाप्रतियोगित्वमितिप्रतियोगितासम्बन्धेनसमवायाधिकरण भवति । यदातु कर्मणिकर्मत्वजातिरूप तिष्ठति समवायेन, तदा समवायस्याधिकरणतया तदेव तत्रानुयोगि भवतीति तत्रानुयोगितासम्बन्धेनसमवायवद्भवतीत्यत कर्मापिपर्यायेणप्रतियोग्यनुयोगिभवन्मुख्यत एव समवेत-मिति कथ्यते । सामान्यविशेषावपिसमवेतो । इयास्तुविशेष यत्सामान्येविशेषे च केवल प्रतियोगिता सम्बन्धेनैवसमवायोभवति । अर्थात् समवायसम्बन्धेनसामान्यत्वादिकतिष्ठति सामान्येतु न कश्चि-दपिपदार्थ समवायसम्बन्धेन तिष्ठति, येन सामान्यमपिद्रव्यादिवत्समवाय स्यात् , किन्तु केवलव्यक्तौ तिष्ठत्येव न तदन्य कश्चित्तिष्ठतीतिकेवल प्रतियोगितयैवसमवायवद्भवदशत एव समवेत भवति। एवमेवविशेषोपिस्वाधिकरणस्यान्येभ्योभेत्तु नित्यद्रव्येषुवर्तते एव, नतुविशेषकश्चिदन्यस्वाश्रयमेत्तु तत्र भवति, विशेषाणां स्वतोव्यावृत्तत्वात् । अन्यथाऽनवस्थाप्रसक्ते । अयमाशय -विजातीयानाघटपटा-दीनापरस्परभेदकस्तद्गतासाधारणोधर्मोघटत्वपटत्वादिरेव भवति । समानजातीयानातुपरस्परभेदकोन स्वगतसमानधर्म तादृशधर्मस्य सर्वतस्तत्तद्व्यक्तिवृत्तित्वेनातिप्रसक्तत्वात् । किन्तुद्रव्यकार्यतत्तद्-व्यक्तिकारणतत्तदवयव एव भेदकोभवति, एवञ्चघटादितआरभ्यद्व्यणुकान्तावयवानाभेदकस्तत्तदव-यवभेद एव द्व्यणुकाना भेदकास्तदवयवास्तदीयाश्चरमा परमाणव एव परमाणूनाश्चयोभेदकोभवति स एव विशेषपदवाच्योभवति । एवञ्च यदितस्यविशेषस्यापि कश्चिदन्योभेदकोऽभ्युपगम्येत, तदा-तत्प्रवाहस्यानुपरमादनवस्थास्यादेव, प्रवाहस्योपरामेतुतेषामनन्तानाभेदकस्याभावात् सर्वकार्यद्रव्यमेक-रूपमेवभवेत् , भेदव्यवहारएवदत्तजलाञ्जलि स्यात् । तस्मादयविशेषपदार्थ स्वत एव सर्वतोव्यावृत्त स्वेतरसर्वानेव स्वाश्रयान् भिनत्त्येव । इत्यादियुक्त्यानित्यद्रव्येषुविद्यमानोऽनन्तोविशेषोन्यायसिद्धान्ते-सिद्धान्तित । यथा कश्चिन्महाविद्वान् स्वाधिकविद्याक्रियादिसमन्वितगुरुभ्य प्राप्तविद्योविद्वानिति कथ्यते, एव तस्य गुरुरपिस्वस्वगुरुभ्योविद्यादीक्षाचासाद्यविद्वत्तामवाप्नोति । सर्वप्रथमस्तुभगवताऽयो-ध्यानाथेनशासितो भवति । भगवान् श्रीरामस्तुस्वयमेवसम्बुद्ध सर्वज्ञश्च भवति "योब्रह्माणविदधातिपूर्व-योवैवेदाश्चप्रहिणोति तस्मै"इतिश्रुते । एवञ्चस्वतोव्यावृत्तत्वमयत्रानित्यत्वेसतिनि सामान्यत्वेसति-नित्यद्रव्यसमवेतत्वमेवविशेषस्यलक्षण भवति । तदेवद्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषा पञ्चापिमुख्यतोऽ-

वादकप्रमाणत्वेसतिगुणत्वात्, यन्नैवं तन्नैवं यथा रूपादिकम् । इच्छादयस्तुयथोक्तसाधना इतियथोक्तसाध्या एवेति । अथवा विवादास्पदीभूतशरीरादिभ्योऽर्थान्तरगुणा इच्छादयो यथोक्तसाधनत्वात् , उदाहरणंस्वयमेवोह्यम् । यद्वासामान्येनान्वयदृष्टान्तः, योयद्गुण-
शतोवासमवेता पदार्था कथ्यन्ते । समवायाभावयो प्रतियोगित्वानुयोगित्वान्यतरसम्बन्धेनसमवायाभाव-वत्वमेव, यत समवायोऽभावश्च न कुत्रचित्समवायसम्बन्धेनतिष्ठत , नवासमवायाऽभावयो कश्चित्स-मवाय सम्बन्धेनतिष्ठति तस्मात् समवायाऽभावोअसमवेतपदार्थाविति गण्यते ।

एवञ्चयोयमिच्छादिर्नससामान्यविशेषसमवायाभावेषुसमाविष्ठो भवति, कुत ? अनित्यत्वात्, सामान्यादिचतुष्टय तु नित्यम्, इच्छादिकत्वनित्यमुत्पादविनाशशालित्वस्येच्छादिषुसर्वानुभवसिद्धत्वा-दितिनेच्छादीनामुक्तपदार्थेऽन्तर्भाव सभवतीति, ननु न भवति, उक्तरीत्यापदार्थपञ्चकेषु, इच्छा-दीनामन्तर्भाव परन्तु वाधकरहितत्वात सर्वाश्रयरूपद्रव्येषुनवसु अन्यतमेषु पञ्चविधकर्मण्यन्यतमेतस्ये-च्छादे समावेश कुतो न भवति ? इत्याशङ्कासमाधातुमाह **नवा द्रव्यं कर्म वा** इति । अय भाव यदिदमिच्छादिकद्रव्यमिति, तत्किम् पृथिव्यादिपरिगणितद्रव्यरूपं तदन्यद्वा ? तत्र न प्रथम पृथिवीजलात्मसुचतुर्दशगुणाधिकरणेष्वन्तर्भाव । तेजसि, एकादशगुणाधिकरणे वा समावेश । अथवा नवगुणकेवायौ वा समावेश । अथवा षड्गुणके आकाशे वा तस्येच्छादे समावेश । अथवा नव गुणकेमनसितस्येच्छादे समावेश । अथवा पञ्चगुणकदिशितस्येच्छादे समावेश अथवा पञ्चगुणकेकालेतस्येच्छादे, स स्यादिति ।

तत्र पृथिव्यानान्तर्भाव सभवति, तथासति पृथिव्यागन्धादिकाश्चतुर्दशगुणा सन्ति तेषा चतुर्दश गन्धादिगुणानापृथिवीवदेवेच्छादिष्वपिसमुपलभप्रसङ्गात् नतु तत्रेच्छादिषुगन्धादिका उपलभ्यमाना भवन्तो दृश्यन्ते । नवा जलान्तर्भावइच्छा तथा सति शीतस्पर्शादिकागुणाउपलभ्यन्ते । नवा तेजसि समावेशस्तदीयोष्णस्पर्शादीना तत्रानुपलभात् । नवा वायौसमावेश तथासत्यपाकजस्पर्शादयोपि समुपलभ्येरन् । नवा नभसि, तथासत्यदृश्यत्वव्यापकत्वप्रसङ्गात् । नवा मनसि मनोगुणाना तत्र प्रसङ्गात् मनसोऽतीन्द्रियतयेच्छादीनामप्यतीन्द्रियत्वप्रसङ्गाच्च । नवात्मनिसमावेशस्तथासतिजीवचतु-र्दशगुणानामपितत्रसद्भावप्रसङ्गात् । नवा कालदिशोरिच्छादीना स तदीयसर्वगुणवत्वप्रसङ्गात् नित्यत्वव्यापकत्वप्रसङ्गाच्च । तस्मात् परिगणितनवद्रव्येषुनान्तर्भाव इच्छादे सभवति । नवा परिगणितपृथिव्याद्यन्यतमद्रव्यातिरिक्तद्रव्यमिच्छादिकमितिद्वितीयपक्षोपिसभवति ? गुणरहि-तस्यद्रव्यत्वानुपपत्तौद्रव्यान्तरस्यसुतरामेवानुपपत्ते । एतत्सर्वमनसिनिधायकथित **"नवा द्रव्य मिति** कुतो न द्रव्यमिच्छादिकतत्रहेतुमाह **व्यापकद्रव्यसमवायादिति** अर्थात् व्यापकेकस्मिंश्चिद्-द्रव्येसमवायसम्वन्धेनविद्यमानत्वात् । कीदृशद्रव्यमिच्छादेरधिकरणतदग्रेप्रतिपादयिष्यति । नवेच्छा-दिक कर्मस्वन्तर्भवति, सयोगविभागयोरनपेक्षकारणत्वाभावात् "सयोगविभागयोरनपेक्षकारणकर्म"

भवापवादकप्रमाणवत्वेसतिगुणः स तेभ्योऽर्थान्तरस्यगुणः यथा पृथिवीजलादिभ्योऽर्थान्तरभूताकाशस्यशब्दइत्याकाशवदात्मापिसिद्ध्यतीति ।

॥ इतिशरीरादिविलक्षणात्मनो जीवस्यानुमानिकत्वपक्षनिरूपणम् ॥

इतिकर्मलक्षणात् । अर्थात् सयोगेविभागे वा यदन्यनिरपेक्षकारणभवति तदेवकर्मइतिगौतमीया वैशेषिकाश्चवदन्ति । इच्छादिकन्तु न तादृशमितिनेच्छादिककमणिसमाविष्टम् । अथवा इच्छादिक न द्रव्यरूपम् असयोगित्वात्, यद्द्रव्यतदवश्यमेवसयोगवद्भवति यथा पृथिव्यादिकम् । नेच्छादिकक्वचिदपिसयोगवद्भवतीति दृष्ट श्रुत वा, नवा युक्तियुक्तमपि । एव प्रकारेणद्रव्यकर्मसामान्यविशेषसमवायाभावेषुसमावेशप्रतिषेधेनसामान्यतोगुणरूपत्वमनिराकरोत् । अर्थाद्गुणरूपत्वसाधितम् । तत इच्छादीनाविशेषगुणत्वसाधनायोच्यते "इच्छादयोविशेषगुणाअनित्यत्वेसत्यस्मदादिप्रतिनियतैकेन्द्रियग्राह्यत्वाद्रूपस्पर्शादिवदित्यनुमानम् । अत्रेच्छादय साध्यधर्मापक्ष विशेषगुणत्वसाध्यम् विधेयमित्यर्थ, अनित्यत्वेसत्यस्मदादिबाह्यैकेन्द्रियग्राह्यत्वहेतु, अनेनहेतुनाशब्देविशेषगुणत्वसिद्ध्यति, इच्छादीनाम् । यथारूपादेरनित्यत्वेसतिअस्मदादिचक्षुरादीन्द्रियमात्रग्राह्यत्वेनविशेषगुणत्वसिद्ध्यति तथैव प्रकृतेपि । अत्रहेतुघटककतिपयपदाना प्रयोजनमर्थात्पदकृत्यमपिप्रदर्श्यते । तथाहि यदि हेतु घटकप्रथमविशेषणमनित्यत्वेसतीतिनदीयेत तदा नित्ये रूपत्वे रूपाभावेप्रभाभित्तिसयोगेनित्यआलोकत्वेन तदभावेच 'अस्मदादिचक्षुरिन्द्रियग्राह्यत्वस्यहेतोविद्यमानत्वेपितेषुरूपत्वादिषुविशेषगुणत्वस्यसत्वनास्ति, यतस्ते यथायथ कश्चनजातिरूप कश्चित्सामान्यगुणरूप कश्चनाभावरूपोवा । अतस्तेषुलक्ष्यभिन्नेषुयथोक्तलक्षणसद्भावेनव्यभिचार स्यात्, शृङ्गित्वस्यगोर्लक्षणस्यमहिषीप्रभृत्यादौव्यभिचारवत् । तस्माद्हेतौअनित्यत्वेसतीतिविशेषणस्योपादानम् । तदुपादानेतुनातिव्याप्तिरूपत्वतदभावालोकत्वतदभावाना सामान्यरूपत्वेनाभावरूपतया च नित्यत्वेनतेष्वनित्यत्वस्याभावात् न व्यभिचार । निश्चित साध्याभावाधिकरणेयदिहेतोर्निश्चयस्तदाव्यभिचार तत्र हेतोर्वृत्तित्वसशयेतुव्यभिचारसशयश्चेति । एकेन्द्रियग्राह्यत्वाकथनेऽनेकेद्रियग्राह्यद्वित्वादिसख्यादौव्यभिचारवारणायेति । योगिप्रत्यक्षग्राह्यत्वस्यसूक्ष्मादिवस्तुनिव्यभिचारवारणाय 'अस्मदादीतिविशेषणम् । शब्दोपस्थापितेऽनुमेये च व्यभिचार वारणायप्रत्यक्षग्राह्यत्वकथनम् । तदत्रसक्षेप इच्छादयो विशेषगुणा अनित्यत्वेसत्यस्मदाद्येकेन्द्रियग्राह्यत्वादित्यत्रेत्थंपदकृत्ये, रूपत्वजातौव्यभिचारदोषवारणाय "अनित्येसतीतिरूपत्वादेनित्यत्वजातिरूपत्वान्नातोव्यभिचार । घटपटादिसयोगेव्यविचारवारणाय 'अस्मदाद्येकेन्द्रियादिविशेष्यदलम्, सयोगादेर्द्वीन्द्रियग्राह्यत्वात्तद्वारणात्, एवमपिप्रभायाव्यभिचारोभवेत्प्रभायाश्चक्षुर्मात्रग्राह्यत्वनियमादतोगुणत्वे सतीत्यपिदेयमेव, गुणत्वोपादानेनप्रभायाव्यभिचार प्रभाया प्रविरलतेजोरूपतयाद्रव्यत्वात्तत्रगुणत्वाभावान्नदोष. । तथापि चक्षुर्मात्रग्राह्यप्रभामिति सयोगेव्यभिचारवारणाय एकेन्द्रियमात्रग्राह्यजातिमत्वंवक्तव्यम् तथा सति, प्रभामित्तिसयोगत्वजातेश्चक्षुर्मात्रग्राह्यत्वाभावात्, स्थलविशेषेत्वगिन्द्रि-

येणापि सयोगत्वजाते ग्राह्यत्वात् । ननु जातिघटितलक्षणेअनित्यत्वविशेषणस्यगुणत्वविशेषणस्य च नैरर्थक्यम्, प्रभात्वजातावनित्यत्वगुणत्वयोरभावादितिचेन्न, प्रभात्वजातिस्वीकारेमानाभावात्, तैजसत्वादिजातीनोद्वीन्द्रियग्राह्यत्वदर्शनात् । किन्तु यदि प्रभात्वजाते प्रामाणिकत्वस्पार्शनप्रत्यक्षत्वस्वीक्रियेत तदाप्रदर्शितस्थलेऽव्यभिचारवारणायगुणत्वविशेषणवज्ञलेपायितम् । अत्र यदवशिष्ट तत्सति समयेऽग्रेप्रदर्शितभविष्यति ।

[अनुमानसर्वानुमतप्रायस्त्रिप्रकारकभवति, केवलान्वयि, अन्वयव्यतिरेकिकेवलव्यतिरेकी भेदात् । यत्रान्वयमात्रव्याप्तिद्वाराजायमानमनुमान प्रथमम, यथाघटोऽभिधेयोवाच्यत्वात्, अत्र यत्र वाच्यत्वतत्राभिधेत्वमितिकेवलमन्वय एव नतु, यत्राभिधेयत्वनास्तितत्रवाच्यत्वनास्तीतिव्यतिरेकस्य, शक्तिविषयत्वलक्षणाभिधेयत्वस्येश्वरेच्छाविषयत्वस्याभावासभवादित्यभावमूलकव्याप्तेरभावेनकेवलान्वयित्वादिति । तथा, यत्रस्थलेऽन्वयव्याप्तिर्व्यतिरेकव्याप्तिर्भवति तदनुमानम् यथापर्वतोवह्निमान्धूमात्' यत्र यत्रधूमस्तत्रतत्राग्निरित्यन्वयोयथामहानसे यत्रचवह्निर्नास्तितत्रतत्रधूमोपिनास्ति, यथा ह्रदे । अन्वयेसाध्यव्यापकसमनियत वा भवति साधनव्याप्यव्यतिरेकिव्यतिरेकानुमाने साधनाभावो व्यापकोऽधिकदेशवृत्तित्वात्, साध्याभावोव्याप्योऽल्पदेशेवर्तमानत्वात्, यथा वन्ह्यभावोऽयोगोलकेऽवर्तमानोजलादिषुवर्तते, धूमाभावसाध्यस्तुजलादावन्यत्रविद्यमानोप्ययोगोलके विद्यते एवेति सवन्ह्यभावोव्याप्योव्यापको भवति । तदुक्तम्—

"व्याप्यव्यापकभावस्तुभावयोर्यादृशोमत । तयोरभावयोस्तस्माद्विपरीतोनिगद्यते ॥१॥
अन्वयेसाधनव्याप्य व्यापकसाध्यमिष्यते । साध्याभावोऽन्यथाव्याप्योव्यापक साधनात्यय ॥इति॥२॥

साध्यव्याप्येहेतुमान्पक्षोऽन्वये परामर्श । साध्यभावव्यापकीभूताभावप्रतियोगिहेतुमान् पक्ष इति व्यतिरेकव्याप्तिमूलक परामर्शइति तदेतदन्वयव्यतिरेक्यनुमानम् । तृतीय तु केवलव्यतिरेक्यनुमानम्, यथा पृथिवीस्वेतरेभ्योभिद्यतेपृथिवीत्वात् गन्धवत्वात् वा, यन्न पृथिवीतरेभ्योभिद्यते न तत् पृथिवी यथाजलमिति ।] एव क्रमेणोपरिप्रदर्शितान्वयव्यतिरेक्यनुमानेनेच्छादिगुणानामाश्रयमात्रमर्थात्, अनिर्दिष्टनामककस्मिंश्चिद्द्रव्यसमवेतत्वप्रसाधितम्, अर्थात् सामान्यतोदृष्टानुमानेनेच्छादीनासामान्यतोद्रव्याश्रितत्वप्रसाध्यतदनु, आश्रयान्तरनिराकरणपरककेवलव्यतिरेक्यनुमानेनेच्छादीनामत्राश्रितत्वसाधनायकेवलव्यतिरेक्यनुमानानिप्रदर्श्यन्ते । तथाहि इच्छाप्रयत्नसुखदु खप्रयत्नधर्माधर्मभावनाख्यसस्कारादिकाविशेषगुणा न महाभूतपृथिव्यादीना, स्वात्मन एव प्रत्यक्षत्वात्, अथवा बाह्येन्द्रियाग्राह्यत्वात्, अत्रेच्छादिकंपक्षीकृत्यतेषुमहाभूतानापृथिवीजलतेजोवाय्वाकाशात्मक महाभूतसम्बन्धिविशेषगुणत्वाभावसाधयति, तत्रस्वात्मनएव प्रत्यक्षत्वहेतु । अत्रत्यएवकारेणपरात्मप्रत्यक्षत्वनिराकृतम्, आत्मनो ये विशेषगुणास्तेन परेणात्मनाप्रत्यक्षविषयाभवन्ति । पृथिव्यादीनां ये विशेषगुणास्ते तु यया देवदत्तस्यप्रत्यक्षास्ते यज्ञदत्तादीनामपिप्रत्यक्षाभवन्ति, रूपादिकसर्वात्मसा-

ग्रारणप्रत्यक्षयोग्यमितिसर्वानुभवसिद्धम्, एकस्यानर्तकीभ्रूलतायामनेकेपा प्रतिसन्धानस्यदर्शनात् । अयवा वाह्येन्द्रियाग्राह्यत्वाद्वाहेतु येभूताना पृथिव्यादिपञ्चानारूपादिका शद्वान्ता विशेषगुणास्तेचक्षू-रसनघ्राणत्वक्श्रोत्रलक्षणवाह्येन्द्रियै क्रमशोगृहीता भवन्ति पुनरिच्छादिक वाह्यकरणाग्राह्यम् तन्मन-सैवतदात्मसमवेतेच्छादीनाग्राह्यत्वदर्शनात् । तदुक्तम्-"मनोग्राह्यसुखदु खमिच्छाद्वेषोमतिकृतिरिति । अतएव परात्मसमवेतसुखादीनास्मरणपरात्मनो न भवति । तदप्युक्तम् "नान्यदृष्टंस्मरत्यन्योनैकंभूत-मित्युदयन । एतदेवप्रदर्शितमाचार्येण "ये भूतगुणारूपरसादयस्तेस्वात्मपरात्मप्रत्यक्षाभवन्तिबाह्य-करणचक्षुरादिनाप्रत्यक्षविषयाअपिभवन्ति यथा रूपादय" इति । अर्थात् भूतविशेषगुणारूपादय सर्वसाधरणाभवन्तीत्यर्थ । न तथा सर्वसाधारणाइच्छादयस्तेतुप्रत्यात्मनियता एवेतिनेच्छादयोमहाभू-तानाविशेषगुणाइच्छाप्रमुखा किन्तु जीवसमवेताएवकेवलप्रत्यात्मनियततत्तन्मनोग्राह्या एवेतिकेवलव्यति-रेकिणाऽनुमानेन ते इच्छादयआत्मनिष्ठा एवेति साधिताभवन्तीति विशेषोऽन्यत्रद्रष्टव्य । एवमेते, सुखदु खेच्छाद्वेषप्रयत्नधर्माधर्मभावनाख्यसस्कारादिककालमनसामतीन्द्रियाणा न विशेपगुणा एतेषु विशेषगुणवत्वस्याभावात् सख्यापरिमाणपृथक्त्वसयोगविभागाख्या सामान्यगुणा ये पञ्च त एवदिशिकाले च भवन्ति, नतु कश्चनापि विशेषगुणस्तयोरधितिष्ठति । मनसि च सख्यापरिमाणसयोगविभाग-परत्वापरत्ववेगाख्यसस्कारा एते एवाष्टौ सामान्यगुणा भवन्ति । अपिच दिगादिमनोन्तत्रयाणामतीन्द्रिय-त्वात्तद्गता सयोगादयोगुणा अप्यतीन्द्रिया एवेति ते नप्रत्यक्षा अतस्तेनात्मगुणा आत्मगुणानातुमनोग्राह्य-त्वप्रतिपादनात्। अर्थात् सुखादयो न दिक्कालमनसागुणा पारिभाषितविशेषगुणत्वात्, रूपरसादिवत्, प्रत्यक्षविषयत्वाद्वारूपादिवदेव, ये पुनर्दिक्कालमनसासख्यादिका पञ्चतेसख्यादयो न प्रत्यक्षा नवा विशेष गुणा वा भवन्ति । सुखादयस्तुप्रत्यक्षाविशेषगुणाश्चभवन्तीति ते नदिगादीनागुणाअपित्वात्मन एव, विशेषगुणत्वान्मानसप्रत्यक्षविषयत्वाच्चेति ।

तथासुखादयोस्पर्शवता विशेषगुणा अग्निसयोगासमवायिकारणकत्वाभावेसत्यकारणगुणपूर्व-कप्रत्यक्षत्वात्, अयावद्द्रव्यभावित्वात् । तत्रस्पर्शवतापृथिव्यादीनानैतेसुखादयोविशेषगुणा । पाकज रूपादिकमादायव्यभिचारवारणाय "अग्निसभोगासमवायिकारणकत्वेसतीतिविशेपणम् । इत्यादि हेतवोपि, उपपादनीया । विविधहेतुभिर्यत्फलित तादृशसामान्यानुमानप्रयोगमेव भवति "एभि पूर्वो-क्तहेतुभि सुखादयो न शरीरादीनाविषेषगुणा भवन्ति, तद्गुणभावायवादकप्रमावत्वेसतिगुणत्वात्-ये शरीरगुणाभाववत्वरूपसाध्यवन्तो न भवन्ति ते तद्गुणाभावत्वापवादकप्रमाणवत्वेसतिगुणत्वरूपसाधन-वन्तोपि न भवन्ति,, यथारूपरसादिका । इमे सुखादय पुनर्यथोक्तसाधनवन्तो भवन्तीति ते सुखादयो यथोक्तसाध्याएवेति । विवादास्पदीभूतेभ्य शरीरादिभ्योऽर्थान्तरगुणाएवेच्छादय इति वा प्रतिज्ञावाक्यम्, हेतुश्चपूर्वोक्त एव, अर्थात् सुखेच्छादयस्तदाश्रयत्वेनविप्रतिपन्नशरीरादिव्यति

एके इदमपि न युक्तमितिसंगिरन्ति तथाहि—अन्वयव्यतिरेकिहेतुद्वारेण केवलं शरीरादिसाधारणमिच्छादीनामाश्रयमात्रंसिद्धं न तु शृङ्गग्राहिकतया सर्वविलणस्यात्मनोनवमस्यसिद्धिरायाता, न च तावन्मात्रेणात्मनः सिद्धिरभूत् ।

केवलव्यतिरेक्यनुमानं तु साधनमेव न भवति ? कुतः: सपक्षवृत्तित्वा

रिक्तगुणास्तद्गुणत्वबाधकप्रमाणविषयगुणत्वादितिहेतुरुदाहरणञ्च व्यतिरेकीत्यादि । अर्थात्प्रसिद्धद्रव्यभिन्नस्य द्रव्यभिन्नस्याद्रयस्यप्रसिद्धावपि तद्गुणत्वस्याप्रसिद्धय नान्वयि उदाहरणसभवति तस्माद् व्यतिरेक्युदाहरणमेव प्रतिपादिम् । न चैव साध्याभावस्यापि, अनुमानात् पूर्वमप्रसिद्ध्यैव, व्यतिरेक्युदाहरणमपि न कथमपिसभवतीतिवाच्यम्, प्रसिद्धद्रव्यव्यतिरिक्तसामान्यादिनिष्ठसमवेतत्वस्यैवसाध्यीकरणात्, प्रसिद्धद्रव्यव्यतिरिक्तसामान्यादिनिष्ठसमवेतत्वव्यतिरेकस्यरूपादिगुणेकर्मणि च प्रसिद्धिसभवादिति । सामान्यरूपेणान्वयव्याप्तिर्वासभवति, तथाहि, योयद्गुणभावापादकप्रमाणवत्वेसतिगुण स ततोऽर्थान्तरस्य गुण यथापृथिव्यादिभ्य शद्व विलक्षणशब्दाश्रयसिद्ध्युपजीवनेनेदम्, अर्थात् यथा विलक्षणशब्दद्वारेणाकाशस्याष्टद्रव्यातिरिक्तनवमद्रव्यस्यसिद्धिर्भवति तथैव विलक्षणपूर्वोक्तानेकहेतुभि पृथिव्यादिप्रसिद्धाष्टद्रव्यव्यतिरिक्तनवमस्यात्मन इच्छादिद्वारेणसिद्धिर्भवतीति सक्षेपोविस्तरस्तु यथासम्प्रदाययथाशास्त्रमवधेयम् ।

। इतिविलक्षणात्मनआनुमानिकत्वपक्षनिरूपणेतत्त्वदीप ।

गतप्रकरणेन्यायमतमाश्रित्यानुमानेविलक्षणात्मसिद्धिंप्रदर्श्यसिद्धान्तमुखेन त मतनिरसितुमुपक्रमते **एके इदमपि न युक्तमितिसंगिरन्ति** इति । एके श्रोत्रियाविशिष्टद्वैतमतनिष्णातास्तन्मतप्रवर्तका इत्थ सगिरन्ति प्रतिपादयन्ति यत् यदिदानीमात्मसिद्धिविषयेन्यायानुयायिना कथितम् तत्कथनतेषा नसमीचीनयुक्तियुक्त न भवति इत्यर्थ । कथ नन्यायमतसमीचीनम्, तत्रहि, अन्वय्यनुमानेनाश्रयमात्रस्यसिद्धौजातायातदनन्तर केवलव्यतिरेक्यनुमानेनाश्रयविशेषरूपविलक्षणात्मन.सिद्धिर्भवत्येवेति नतन्मतयुक्तमितिशङ्कासमाधातु केवलव्यतिरेकिण साधकत्वमेव न भवति हेत्वाभासत्वादसाधारणवदिति। तत्राह **केवलव्यतिरेक्यनुमानं तु साधनमेव न भवतीति** । कथकेवलव्यतिरेक्यनुमानसाधन न भवति तत्राह **सपक्षवृत्तित्वाभावादसादारणव्यभिचारवदिति** । अयमर्थ.केवलव्यतिरेक्यनुमानसाधनदशानुमापकत्वावस्था हेतुभावमेवप्राप्नोति, कथ ? सपक्षान्वयविरहात् । अर्थात् साध्य हेत्वो सहचारस्थलीयसम्बन्धाभावात् । असाधारणाऽनैकान्तिकवत् । अनैकान्तिको हेत्वाभासस्त्रिप्रकारकोभवति साधारणासाधारणानुपसहारिभेदात् । तत्र स पक्षविपक्षव्यावृत्त:पक्षमात्रवृत्तिर्हेतुर साधारणपदभाक् । तत्र पक्षमात्रेवर्तमानस्यसाधारणहेतो साध्यसहचारग्रहविरहेणागृहीतव्याप्तिमतो यथाऽनुमापकत्व न भवति, तथैवकेवलव्यतिरेकहेतोरपि स पक्षाभावेनव्याप्तिग्रहएव न भवति, इति कथ तस्यापिगमकत्वमनुमापकत्व नास्त्येवेति । अर्थात् असाधारणहेतो साध्यसहचारग्रहोपस्थापक

भावादसाधारणव्यभिचारवत् । न चैवं केवलान्वय्यनुमानमपिसाधकं न स्यात्, तस्य सपक्षस्यभावेन व्याप्तिनिश्चयाभावादव्याप्तहेतुनासाध्यानुमान न भवतीत्यत सोऽसाधारणोहेतुर्हेत्वाभासः साध्यसाधनायसमर्थो न भवति। तथैवकेवलव्यतिरेकिहेतुस्थलेपि सपक्षस्यसहचारग्राहकस्याभावेनव्याप्तेरनिश्चितत्वात्, तादृशहेतुनापिनानुमितिरिति ।

अथ यादृशसाध्यकयादृशपक्षकयादृशहेतुकस्थले सपक्षो विद्यते सतिसपक्षेतत्रसपक्षेयदिहहेतुर्नभवतितदैवासाधारणस्यशकलपक्षे वर्तमानस्यशब्दत्वानित्यत्वसाधनेऽसाधारणत्वतत्वाच्चनानुमापकत्वहेत्वाभासत्वव्यवहार । केवलव्यतिरेकिणि, पृथिव्यापृथिवीतरभेदसाधकपृथिवीत्वेतु स पक्षस्यसभावनैव-नास्ति, इति कथ तस्यदोष कथवा तदभावेहेत्वाभासत्वकथवानुमापकत्वमितिचेत्, मैववोच विकल्पासहत्वात्, तथाहि केवलव्यतिरेकिणिसाधनेऽनुमिते पूर्वम् साध्यस्यक्वचिदन्यत्रप्रसिद्धिरस्ति नास्ति वा ? तत्रास्तीतिप्रथमपक्षतदातत्राधिकरणेसाध्यस्यप्रसिद्धिरर्थात् तत्रसाध्यस्यप्रसिद्धिरस्ति, तादृशप्रसिद्धे साध्याधिकरणेहेतोर्वर्तमानत्वमस्तिनवा ? प्रथमपक्षेऽर्थात् प्रसिद्धसाध्याधिकरणेहेतोर्विद्यमानत्वेमहानसे धूमवन्ह्योर्निश्चये यथाधूमस्यहेतोरन्वयित्व नतु व्यतिरेकित्व तथैव प्रकृतेपिसाध्यसाधनयो पक्षातिरिक्ते सहचारदर्शनस्यसभवेनान्वयित्वमेवापद्येत हास्यतिपरित्यक्ष्यतितुव्यतिरेकित्वमिति । यदिनिश्चितसाध्याधिकरणेहेतोरसत्वेऽवर्तमानत्वेसतिसपक्षव्यावृत्तत्वादसाधारणएवकेवलव्यतिरेकीहेतु स्यादित्युभयत -पाशारज्जुरिति । यत्र साध्यस्यप्रसिद्धिरस्ति तत्र हेतुर्नास्तिचेदितिद्वितीयपक्ष तदासाध्याभावस्याप्रसिद्धे साधकाभावादिति केवलव्यतिरेकित्वमपि निश्चेतुदुर्घटमेवेति । विस्तृतविचारस्तुन्यायपरिशोधनप्रकरणेद्रष्टव्य इतिदिक् । यथा सपक्षाभावात्केवलव्यतिरेक्यनुमानस्यसाधकत्वमेव नास्ति, तदाएवमेवविपक्षाभावात्, केवलान्वयिनोपिगमकत्व न स्यादित्याशयेन शङ्कते **न चैवं केवलान्वय्यनुमानमपीत्यादि** तत्रविपक्ष व्यतिरेकोविपक्षासत्वम्, तत्र निश्चितसाध्यवान् सपक्षोनिश्चित साध्याभाववान् विपक्ष', एतादृशविपक्षस्यासत्वात्, यथाऽसारणे सपक्षस्य व्यतिरेक इति व्यतिरेकिणो न गमकत्व तथैव केवलान्वयिनिविपक्षस्यासत्वान्नगमकत्व साधारणवत् अर्थात्पक्षसपक्षविपक्षरूपपक्षत्रयवृत्तिप्रमेयत्वादिहेतुवत् । अर्थात् यथा वन्हिसाध्यकप्रमेयत्वरूपसाधारणदोषग्रस्तहेतौ यथा विपक्षे निश्चितवाह्यभावाधिकरणेजलादौ प्रमेयत्वहेतोर्विद्यमानत्वेनव्यभिचरितत्वात्साधकत्व न भवति, साध्यसामग्रीवत् साध्याभावसाधकसामग्र्या अपि वर्तमानत्वात्, तत्र न गमकत्वम् केवलान्वयिस्थलेपि विपक्षस्यनिश्चितसाध्याभावतो विपक्षस्यैवाभावेन तत्सत्वाभावस्याप्यप्रसिद्धे प्रतियोग्यप्रसिद्धत्वादप्रमितप्रतियोगिकाभावानभ्युपगमात् तदुक्तब्रह्मसिद्धौ "लब्धरूपे क्वचित् किञ्चित्तादृगेव निषिध्यते । प्रमाणमन्तरेणासौ न निषेध्यस्य सभव" इति । केवलान्वयिविपक्षाप्रसिद्धेस्तस्यपूर्ववदेवागमकत्व न स्यादित्यर्थ । अन्वयव्यतिरेकिणिवन्हिमान्धूमादित्यन्वयादिस्थले, अन्वयव्यतिरेकोभयप्रकारकसहचारदर्शनेनव्याप्तिज्ञानस्यदृष्टत्वेन साध्यसाधनयो सह-

विपक्षाप्रसिद्ध्यातदवृत्तित्वाभावाभावात्साधारणानैकान्तिकवदेवेति वाच्यम् , देशकालादिशंकितोपाधिविरहेप्यन्वयदर्शनादेव साध्यान्वयस्वभावतायाः परिनिश्चितत्वात् । न च साधनाभावाधिकरणेसाध्याभावस्यदर्शनमात्रेणसाध्यान्वितस्वभावत्वंहेतोः शक्य निश्चेतुम् । अभावस्यानन्तदेशव्यापितयाऽनवयवेनग्रहस्यैवातिक्लिष्टत्वात् । दुष्करत्वात् । कलयालेशतोपिहेतोः साध्याभावाधिकरणेवृत्तौसम्बन्धेनियमासंभवात् । किञ्च साधनाभावप्रयोज्यं साध्याभावोऽथवानिमित्तान्तरप्रयुक्तःसाध्याभावः ? इत्याकारकसंशयग्रहग्र-
चारस्यादर्शनात् , केवलव्यतिरेकिहेतोर्व्यवसायकत्वमभिमत तदासाध्याभावसाधनाभावयो सहचारादर्शनात् , इद वाच्यप्रमेयत्वादित्यादिकेवलान्वयिहेतूनामपिसाधकत्वकथमपि न स्यादितिपूर्वपक्षकर्तुरभिप्राय । तमिममाक्षेपमाक्षेप्तुमाह **देशकालादिशङ्कितोपाधीत्यादि** कस्मिंश्चिदपि देशेकाले वा प्रयुज्यमानोर्हेतु साध्यसम्बन्धमन्तरेणापि प्रयोजकान्तरात् स्यादितिदेशकालविशेषयोरन्तर्भावेनशङ्कितोपाधेरनुकूलतर्केणप्रतिबन्धोजायते साध्यसाधनयो सहचारदर्शनमात्रेणैवान्वयव्याप्ति निश्चीयते एव, ततश्चसाध्यान्वितस्वभावतयाऽर्थात् साध्यव्याप्त्यानिश्चय स्यादेवेति । व्यतिरेकव्याप्तिग्रहे एव व्यतिरेकसहचारज्ञानस्यावश्यकतयाऽपेक्षितत्वेन, केवलान्वयिनिवाच्यत्वज्ञेयत्वादि हेतौ अन्वयव्याप्तिग्रहस्यव्यतिरेकसहचारस्याप्रसिद्धावपिनकाचिदप्यनुपपत्तिरित्याशय । सिद्धान्त विदामाशयस्तुविपक्षसत्वस्यैवाप्रसिद्ध्यैवरूपपञ्चकसम्पत्ति पक्षसत्वविपक्षासत्वाबाधितत्वासत्प्रतिपक्षितत्वस्वरूपाया सम्पत्तिर्भवत्येवकेवलान्वयिस्थले, विपक्षासत्वस्यैवाभावरूपत्वादिति ।

अथैवमपिसाध्यहेत्वोर्व्यतिरेकयो सहचारदर्शनादेव व्याप्तिग्रहोजायतेऽर्थात्तदुत्पद्यते, इत्याशयेन पुनशङ्कतेपूर्वपक्षवादी **न च साधनाभावाधिकरणेसाध्याभावस्येत्यादि** न च साधनस्याभावेविद्यमाने सति साध्याभावस्यदर्शनमात्रेणैवसाध्यान्वितस्वभावत्वम् । अर्थात् साधनस्य हेतो साध्यनिरूपितव्यतिरेकव्याप्तिमत्वसाध्याभावव्यापकीभूताभावप्रतियोगित्वनिर्णेतु शक्यम् । कथ न निश्चेतुशक्य तत्राह **अभावस्यानन्तदेशव्यापितयेत्यादि** तत्र व्यतिरेकिणो साध्यसाधनयोरधिकरणसापेक्षतयातदभावाधिकरणाना जलादीनामनेकत्वात् , अशत कलयाकुत्रचिदपि यस्मिन् कस्मिन्नपिसाध्याभावाधिकरणे हेतोर्वर्तमानत्वे व्यतिरेकसाहचर्यनियमलक्षणव्यतिरेकव्याप्तेर्निश्चयस्यासभवादित्यर्थ । व्यतिरेकीसाध्यसाधनवतोऽधिकरणस्येति परिमिततया क्वचित् सम्पूर्णरूपेण ग्रहणमपिकदाचित्सभवत्येवेत्याशय । अथैवमपियावन्तिसाधनाभावसाध्याभावयोरधिकरणानिप्रत्यक्षेणप्रमाणेननिर्णीतानि तावत्स्वधिकरणेषुसाधनाभावसाध्यभावयो सहचारदर्शनादेव व्यतिरेकव्याप्तिर्निश्चिताभविष्यति, ततश्च तादृशव्यतिरेकव्याप्तिमत्साधनेनानुमानमपि स्यादेवेति कुतोव्यतिरेक्यनुमाननानुमानमिति कथ्यते ? इत्याशङ्कांसमाधातुमाह **संशयग्रहग्रस्तत्वाच्चेति** । किं साधनाभावप्रयोज्य साध्याभावोऽथवा निमित्तान्तरप्रयोज्योवेति अयमाशय व्यतिरेकव्याप्ते-

स्तत्वाच्चेति । अपि च पृथिव्यादिभ्योऽर्थान्तरगुणत्वप्रतिज्ञापिद्रव्यान्तराप्रसिद्धेर-प्रसिद्धविशेषणैवेति । इति नैयायिकाभिमतात्मानानुमाननिरासः ।

एतेन सांख्योक्तात्मसाधकसंघातपरार्थकत्वादिहेतवोपिनिरस्ता इतिवेदितव्यं तथा च तन्मतम्—"संघातपरार्थत्वात्त्रिगुणादिविपर्ययादधिठानात् । पुरुषोस्तिभो-

स्वरूप साध्याभावेहेत्वभावनिरूपितव्याप्तिघटितमेव । तत्रसाध्याभावोऽस्तु साधनाभावोमाभवतु इत्याकारकव्यभिचारशङ्कायां सत्याम्, यावदनुकूलस्तर्कोनावतरेत् तावत् पर्यन्त साधना-भावव्याप्यत्वसाध्याभावेनैवगृहीतु शक्यम् । साध्यस्य च साधनकारणकत्वसाधननियत-स्वभावत्वाद्यन्यथानुपपत्तिलक्षणतर्कबलेन तादृशशङ्कानिवारणतु साध्यहत्वो, सहचारदर्शनमूलक-कार्यकारणभावाद्यवधारणमन्तरेण न घटते इति केवलव्यतिरेकिणोऽनुमानस्यनानुमानत्व कथमपि घटते इत्यभिप्राय । अपि च साधनद्वारा साध्यस्यनिश्चयात्मकमनुमानमितिनियम तत्र साधन निष्ठसाध्यनिरूपित एवहेतुर्भवति, ततश्चसा यव्याप्यहेतुमान्पक्ष इति परामशाऽनुमिति तत्रसाधन निष्ठ साध्यनिरूपितव्याप्तिरेवकारणम् । तादृशस्थलेसाध्याभावगतसाधनाभावव्याप्तेर्नास्त्युपयोगो व्यधिकरणत्वात्, साधकस्तुहेतुर्व्याप्तिश्चसाध्याभावनिष्ठेत्येतादृशहेतुनासाध्यसाधनायव्यतिरेकव्याप्ते-रयोग्यत्वात्कारणतैव नास्तीति । नचैवताह, धूमेऽन्वयव्याप्तिविरहकालेवन्ह्यनुमानमितिवाच्यम्, अर्थापत्तिप्रमाणादेवेतिनिश्चय । अन्वयव्याप्तिविरहकालेऽनुमिनोमि पर्वते वन्हिमितिनानुव्यवसाय किन्तु आपाद्यानापादककल्पयामिति षट्प्रमाणवादिनोमहाश्रोत्रियाअनुमन्यन्ते इनि विस्तरविचारो-ऽत्रैवस्थलान्तरेद्रष्टव्य । यदपि विशिष्टहेतुना, पृथिव्यादिभ्योऽर्थान्तरगुणत्वप्रतिज्ञाकृता, तत्रापि, अप्रसिद्धविशेषणतादोषोद्धारो न जायते इति दर्शयितुमाह **अपिचेत्यादि** अर्थान्तरस्यगुणादे प्रसिद्धावपिगुणगतंगुणत्वलक्षणंसाध्यमप्रसिद्धमेवेति । न च पृथिवीजलादिभ्योऽर्थान्तरसमवेतत्वमर्था-त्समवायसम्बन्धेनवृत्तिमत्वमेवसाध्यते, तच्चरूपरसत्वादोप्रसिद्धमेवेतिवाच्यम् निरुक्तसमवेतत्वस्यार्थान्तर समवेतत्वस्यक्रियाभिन्ने एव प्रसिद्धे गुणे ज्ञानेच्छादानत्साधनायोगात् । अथान्तरद्रव्यसमवेतत्वस्य-चानुमानात्पूर्वमसिद्धत्वेन, अप्रसिद्धविशेषतादोषाद्विमुक्तिर्नभवतीत्यभिप्राय ।

॥ इतिनैयायिकाभिमतात्मानुमाननिरासप्रकरणेतत्त्वदीप ॥

न्यायमतेज्ञानाधिकरणमात्मेत्यात्मलक्षणविनिर्दिष्टम्, स च स्वापादिकालेज्ञानविशेषगुणरहितोजडवत् प्रायोभवति, तत्सिद्धान्तविरुद्धमितिमत्वामहदाडवरेण, गतप्रकरणेनन्यायमतनिलोठीतमाचार्येण । तत्र यथाऽनुमानिकात्मसिद्धिमकरोन्न्यायानुयायी, तन्मतस्यासारताप्रादर्शि । तत परसांख्यमतमपितत्तुल्यमे-वेतिस्मृतशास्त्रमतमिति तदपिनिराकरोत्यतिदेशेन **एतेनसांख्योक्तात्मसाधकसंघातपरार्थकत्वादि हेतवोपिनिरस्ता इति** । एतेन=न्यायोक्तात्मबाधकहेतुनानिराकरणेन साख्यीयहेतवोपिनिराकृता-

क्तृभावात्–कैवल्यार्थप्रवृत्तेश्च ॥इति॥ अयमर्थोऽस्याआर्यायाः–शरीरेन्द्रियादय पर-प्रयोजकाःसंघातत्वात् शयनासनगृहादिवत् । शरीरादीनासंघातत्वंसमुदायात्मकत्वंपृथिव्यादिपञ्चभूतानामपि सावयवत्वंप्रत्यक्षमेव । एवं प्रकृतिमहत्तत्वाहंकारेन्द्रियाणां च वेदितव्या । ततश्चतानेवहेतून्प्रथमतोदर्शयति, "सघातपरार्थत्वात् त्रिगुणादिविपर्ययादधिष्ठानात्। पुरुषोस्तिभोक्तृभावात् कैवल्यार्थंप्रवृत्तेश्चेति" ईश्वरकृष्णार्या । अनयाहिआत्मसिद्धि प्रदर्शिता । तत्रदेन्द्रियाहकारमहत्तत्वप्रकृत्यादिपदार्थेभ्योव्यतिरिक्त कश्चिदात्मापुरुषोऽस्तीतिप्रतिज्ञा न च प्रतिज्ञामात्रेणवस्तुन सिद्धिर्भवत्यपितु प्रतिज्ञार्थस्यहेतुद्वारासिद्धिर्जायते । तदुक्तम् "सभावित प्रतिज्ञायापक्ष साध्येत हेतुना । नतस्यहेतिभिस्त्राणमुत्पतन्नेवयोहत " इति । तस्मात् प्रतिज्ञातार्थस्य साधनाय "सघातपरार्थत्वादितिप्रथमहेतुप्रदर्शितवानीश्वरकृष्ण । अयमाशय शयनासनादयोयथा सघातत्वात् अवयवसमुदायरूपत्वात्, स्वेतरस्यदेवदत्तशरीरस्यप्रयोजनायैवभवन्ति तथैव, शरीरेन्द्रियादि पञ्चमहाभूतानिपृथिवीतआरभ्याकाशान्तान्यपि, सघातत्वादर्थात् अवयवसमुदायात्मकत्वात्, परार्था एव परप्रयोजनका एव भवन्ति। नहि यथा गृहादिकसंघातरूपसघातरूपस्यैवशरीरस्य कृते भवति न तथा शरीरादिक किन्तु शरीरादिकसघातव्यतिरिक्तस्य कृते एव भवति, सचासहत पर पुरुष एव स एवात्मा । नहि जडोजडान्तरेणानुकूलनीय प्रतिकूलनीय प्रतिकूलनीयो वा भवति, किन्तु यश्चैतेभ्य परश्चेतन य स एवानुकूलनीय प्रतिकूलनीयोवेति पुरुषप्रयोजनका एव शरीरादि महान्ता सर्वेपि प्राकृतिका पदार्था स्वसजातीयप्रयोजनका इति असहत पुरुष सिद्धो भवतीति । एवमव्यक्तप्रधानमहत्तत्वाहकारेन्द्रियाणामपि सुखदु खमोहात्मकतयासत्त्वरजस्तमोमोहगुणत्रयरूपसघातरूपत्वमेवेतितेषामपिसघातरूपत्वमेवेतिसत्वादिष्वपिपरार्थत्वमनुमित भवति । यथाकार्येण घटादिनास्वसमानजातीयकमेवकारणमनुमीयते तथैवात्रापि । सर्वोपिपदार्थ सुखदु खमोहात्मकस्तज्जनको वा । तत्रसुखसत्वात्मकसुखजनक वा एव दु खरूपदु खजनक वा रजोगुणतमोगुणोमोहात्मको मोहजनको वा यथैकैवमैत्रपत्नी, स्वपतिरूपलावण्ययुक्तापतिसुखयति, त कस्यहेतो ? पतिस्तस्या सुखरूपसमुद्भवात् । सैवमैत्रपत्नी स्वसपत्नीर्दु खाकरोति, तत्कस्यहेतो ? ता प्रतितस्या दु खरूपत्वात्, सैव स्त्रैणकामुकमलभमानातमोहयति तत्कुत ? तं प्रतितस्यामोहरूपसमुद्भवात् । अनयास्त्रियासर्वेपिभावाव्याख्याता । "सत्वलघुप्रकशकमिष्टमुपष्टभकचल च रज । गुरुवरणकमेवतम प्रदीपवच्चार्थतो वृत्ति " इत्युक्तदिशासत्वगुण सुखलाघवप्रकाशगुणयुक्त रजोगुणश्च दु खचलात्मक । तमोगुणश्चगुरुराच्छादकश्च । तत्रसत्वप्रकाशयुक्तयथाऽग्ने ज्ञातमपितज्जन्यमेव "सत्वात्संजायतेज्ञान रजसोलोभ एव च । प्रमादमोहौतमस " इत्यादिस्मृतेश्च । ततश्चसत्वादिगुणत्रयमपिसुखाद्यवयवादियुक्तत्वात्सघातात्मकमेवेति ते गुणा पराथा एव । तथा च तादृश गुणत्रयसमुदायात्मकमव्यक्त प्रधान तत्कार्यतदात्मकमहत्तत्वमहत्तत्वकार्यरूपोऽहङ्कारस्तथाहङ्कारकार्य-

सुखदुःखमोहात्मकतयासंघातमनुमेयंशरीरादिवदेवेति । न च ज्ञानेन्द्रियकर्मेन्द्रिया-णामाहंकारित्वेन स्वीकृतस्य, तथा साध्यत्वाभिमतपारार्थ्यधर्मस्यासंहतरूपपरार्थत्व-स्यान्यथात्वापादानादुभयविशेषविरोधोहेतोरितिवाच्यम् , इद्रियाणामहंकारान्वयव्य-तिरेकदर्शनेन, तथा "देवावैकारिकाः स्मृताः" इत्यादि शास्त्रवलेन च वैकारिकापिधानसात्त्विकाहंकारभेदयोनित्वस्येन्द्रियाणां प्रमाणसिद्धतयातदपवादायोगात् । पुरुषस्यापिसंघातत्वस्वीकारे तस्यापिसंघातान्तरप्रयोजनकतया प्रमाणेऽनवस्थाप्रसङ्गा-

मुभयविधमिन्द्रियमनश्चैतत्सर्वंगुणत्रयविशिष्ट तयाऽवयवसमुदायरूपत्वात्परार्था इतितेभ्य पर पुरुषोऽसहत सिद्‌ध्यतीति । अत्र परार्थ्यसाधकहेतोर्विरुद्धत्वशङ्कते **नचज्ञानेन्द्रिये**त्यादि उभयविशेष विरुद्धमर्थात् पक्षसाध्ययोरभिमतविशेषविरुद्धाकारापादकत्वम् । भूतभौतिकवस्तुषुअनाहकारिक-त्वेनसघातस्य, तथासहतपरार्थत्वेन च गृहशय्यासनादिषु भूयोभूय सहचारदर्शनात्, व्याप्तेर्गृ-हीतत्वात्, पक्षमध्यपतितेन्द्रियाणाज्ञानेन्द्रियकर्मेन्द्रियाणामभिमताहकारिकत्वविरुद्धस्यानाहकारिकत्वस्य, साध्यमध्यप्रविष्टस्य च परस्य, अभिमतासहतत्वविरुद्धस्यापादकत्वाद्विरुद्धत्व भवति सघातत्व-हेतोरित्याशय । हेतोरुभयविशेषविरुद्धत्व न भवतीत्याशयेनाह **अहंकारान्वयव्यतिरेकेत्यादि** प्रति-ज्ञातमविरोधमन्वयव्यतिरेकप्रदर्शनेनदर्शयति **अहंकारान्वयव्यतिरेक** इति । अयमाशय —यदायदा अहकारस्यवृत्तिर्जायते तदैवज्ञानेन्द्रियपञ्चकस्यकर्मेन्यिपञ्चकस्यतदुभयानुगतमनसश्च व्यापारो जायते । स्वापकालेचाहकारवृत्तेरभावे सति, ज्ञानकर्मेन्द्रियमनसाच वृत्तिर्नभवतीत्यनुभवसिद्धम्, ततश्च तत् सत्वेतत्सत्वंतदभावेचतदभावइत्याकारकान्वयव्यतिरेकाभ्यां मन पर्यन्तेन्द्रियाणामहकारजन्यत्वंनिर्णी-यते । अत्रार्थे आगमप्रमाणमपिप्रदर्शयति "देवावैकारिका स्मृता" इतितत्रद्योतनात् प्रकाशक-त्वात् चक्षुरादयोदेवपदवाच्याभवन्ति । अहकारश्चसात्विकराजसतामसभेदेनत्रिविधोभवति, सात्वि-काहकारस्यवैकारिक इतिसज्ञाशास्त्रेकृता । तेनप्रकाशलाघवगुणयुक्तानि चक्षुरादीन्द्रियाणिसात्विक युक्तानिकारणात्मकत्वात् कार्यस्य घटमृत्तिकावत् । तथा च वैकारिकस्यसात्विकाहङ्कारस्यकार्यभूताइमे-चक्षुरादयइतिवैकारिका इतिकथ्यन्ते । अतो न कोपि पूर्वापरविरोध प्रकृते पदमादधातीति । पक्षे विरुद्धत्वदोषनिराकृत्यसाध्यविशेषविरुद्धत्वमपि परिहर्तुमाह **पुरुषस्यापिसंघातस्वीकारे** इत्यादि । अर्थाद्यथाशयनासनादौबाह्यसमुदायरूपसघातत्वविद्यते इतिपरार्थत्वशरीराद्यर्थत्वभवति,ततश्चशरीरादिसं-घातात्मकमेव । अर्थात् सघातान्तरस्यैवासिद्धिर्नत्वसहतस्यकस्यचिदन्यस्य तथैव व्यक्तदेहादिसघातेन संहतआत्मसिद्धिरपितुसघातरूपस्यैवात्मन सिद्धि स्यात् । एतादृशशङ्कानिरसितुमाह **पुरुषस्यापिसंघातत्वे इत्यादि** । अयमाशय यदि शरीरादिसघातेनसघातरूपएव पर सिद्ध्येत्तदापरत्वेन सिद्धोपिसघातरूप-एव भवेदेव तदन्योपिसघातरूपएवेति अप्रमाणिकानन्तप्रवाहात्मकानवस्थाऽपद्येत । सघातत्वहेतुना-सेत्स्यमानस्यपुरुषस्यासहतत्वमात्रस्वीकारेण व्यवस्थोपपत्तौसत्यांत्रिदूषणग्रस्तानवस्थाया अनुचितत्वात् ।

दप्रयोजकत्वाच्चसंघातस्यशेषित्वे, दृष्टान्तदृष्टसर्वधर्मस्य दार्ष्टान्तिकेस्वीकारेऽनुमानप्रमाणमेवास्तमियात् तदसंघातत्वस्यचाप्रचाल्यत्वात् । न च प्रमाणान्तरबलेनाहंकारिकत्वसंघातान्तरार्थत्वयोर्बाधेऽवाधितेन संघातपरार्थत्वेनापि न भवितव्यम् । एवञ्च संहतत्वव्यापकविरुद्धत्रैगुण्यादिरहितोऽसंहतपुरुषपदवाच्यआत्मासिद्ध्यतीति ।

एवमेवशरीरादयःसुखदुःखमोहात्मकतया परेणाधिष्ठिताःयन्त्रादिनारथादिवत् । अपिचेष्टानिष्टवेदनीयेसुखदुःखेभृत्यशत्रुवदेवानुकूलवेदनीयप्रतिकूलवेदनीयवती । दृश्य-

तत्रैते त्रिदोषा भवन्ति—

प्रागूलोपाविनिगम्यत्वप्रमाणापगमैर्भवेत् । अनवस्थितिमास्थातुरचिकित्स्यात्रिदोषता ॥इति।

यथा लौकिको वातपित्तकफप्रयुक्त सनिपातोभिषग्वरैरपि समाधातुमशक्यप्रायोभवति, तथैव प्रकृतेऽन्यत्रापिप्रागूलोपाविनिगम्यत्वप्रमाणापगमत्रिकप्रयोज्योऽनवस्थादोष समाधातुनितरामशक्य स्यात् । तस्मात् सघातातिरिक्तमात्रस्यासहतत्वमस्वीकारेणैवव्यवस्थोपपत्तौ सत्यामनवस्थासर्वथैवानादेया । इतिसघातस्यपरार्थतयातेनसघाततद्रूपेणाव्यक्तादिनापरोऽसहत पुरुष सिद्ध्यतीतिभाव । अप्रयोजकत्वाच्चेति, अपिच असहतस्याप्यात्मनश्चेतनत्वादेव भोक्तृत्वस्योपपादयितुशक्यतयाभोक्तृत्वलक्षणपरत्वे प्राधान्ये सघातत्वस्य प्रयोजकत्व न भवत्यर्थादप्रयोजकत्वमेवेतिभाव । यदि सघातपरत्वेप्रयोजक स्यात् तदा सहतपरार्थत्वेनव्याप्ति स्यात् सघातत्वस्याव्याप्तिवलेनानेकसघातस्यकल्पनापियुक्ताभवेदिति । परन्तु नैवमस्ति, एवञ्च सहतपरार्थत्वेसघातत्वस्यव्याप्यत्वासिद्धत्वमितिभाव । किञ्च सघातपरत्वेनानुमानप्रमाणगम्यस्यात्मन सघातरूपत्वयोग्यानुपलब्धिवलेनबाधितमपि भवति, वन्हौद्रव्यत्वेनहेतुनाशैत्यानुपलब्धिवलादिति । अथ यदि सघातत्वपरार्थत्वेनव्याप्तिर्नप्रसिद्ध्येत यदिकश्चिद्बाधको भवेत् परन्तुप्रकृतेप्रमणान्तरविरोधाभावात्तुसघातत्वस्यपरार्थत्वेन व्याप्ति स्यादेवेत्याशयेनाह **न च प्रमाणान्तरवलेनाहंकारिकत्वसंघातान्तरार्थत्वयोर्बाधेऽवाधितेन संघातपरार्थत्वेनापि न भवितव्यम्** अर्थात् भवितव्यमेवेति । सम्प्रतिप्रकरणार्थमुपसहरति **एवञ्च संहतत्वव्यापकेत्यादि** यथाधूमव्यापकस्यवन्हेरभावेऽर्थाद् वन्ह्यभावेसतिधूमाभावोभवत्येव तथैव सहतत्वव्यापकस्य परार्थावस्थाभावेसति, असहत सत्वादिगुणत्रयरहितोऽसहतआत्मा साख्याभिमत पुरुष सिद्ध्यतीति । एतावताव्याख्यानेन सघातपरार्थत्वात् त्रिगुणादिविपर्ययादित्यशआर्यायाव्याख्यात । तदनु "अधिष्ठानात्" अयमशआर्यायाव्याख्यातुमुपक्रमते **एवमेवशरीरादयसुखदुःखमोहात्मकतयापरेणाधिष्ठिताः** इति । अधिष्ठानादयमशो व्याख्यायते तेनप्रकरणेन, तथाहि—"यथारथयन्त्रादय स्वेतरेण चेतनपुरुषाश्वादिभिरधिष्ठिता एव गमनादिकार्यक्षमाभवन्ति, तथैवशरीरेन्द्रियादयोबाह्याआन्तराश्चैते सुखदु खमोहात्मकतयापरेणासहतेनपुरुषेणाधिष्ठता एव, तेन तत्र चेतन पुरुष सिद्ध्यति । अर्थात्, सत्वगुण सुखात्मकस्सुखजनको वा तथा रजोदु खात्मकस्तज्जनकचल च, तमो मोहात्मक

त्वाच्छरीरादयो विलक्षणद्रष्टृकाघटवदेवेति । अधिष्ठातुरनुकूलप्रतिकूलवेदकस्यद्रष्टु-स्त्रैगुण्यादिविपर्ययः पूर्ववदेवज्ञातव्यः। तथा शरीरादारभ्यप्रधानान्तसर्वस्य वस्तुजातस्य-सुखदुःखमोहात्मकतया, ऐकान्तिकात्यन्तिकदुःखशमनलक्षणमोक्षानुपपत्तेस्तदर्थं च-शास्त्राणांमहामतीनां च प्रवृत्तिदर्शनाद् देहातिरिक्तोऽसंहतःत्रैगुण्यासंस्पृष्टः पुरुषः सिद्धः ।इति ।

प्रमादालस्यजनक मोहात्मकचेतिदेहादय सुखदु खमोहात्मतया=सुखादिलक्षणसत्वरजस्तम समुदाय-रूपतया, परेणस्वसजातीयभिन्नेनचेतनेनकेनचिदधिष्ठीयन्तेस्वस्वकार्यकरणायप्रेरिता भवन्ति, यन्त्रा-दिभि सारथिप्रभृतिभि प्रेरिता सन्तस्तदिगितानुरोधेनाश्वारथान्वहन्ति "विज्ञानसारथिर्यस्तुमनप्रग्र-हवान् नर । सोध्वन पारमाप्नोति यद्विष्णो परमपदमिति" इत्यादिस्थलेचेतनयुक्तस्य अर्थात् चेतनाधिष्ठितस्यैवाचेतनस्यकार्यक्षमत्वप्रदर्श्यचेतनाधिष्ठितत्व देहादेर्द्दढीकृतमिति, अनेनप्रकारेणा-धिष्ठानादित्यशो व्याख्यात । अत कारिकाघटकभोक्तृभावादित्वशव्याख्यातुमाह **अपिचेष्टानिष्टे त्यादि** तत्रेष्ट अनुकूलवेदनीययोऽनिष्ट प्रतिकूलवेदनीय । अनुकूलत्वप्रकारकबुद्धिविपय प्रति-कूलत्वप्रकारकमितिविषय । भृत्यसेव्य स चानुकूलत्वप्रकारकबुद्धिविपयो भवति, भ्रातृव्य शत्रुश्च प्रतिकूलत्वप्रकारकबोधविषयश्च भवतीति । भोक्तृभावादित्यस्यद्रष्टृत्वपरत्वम्, इमेदेहादयसर्वेपि-पदार्थादश्या सन्ति, इतितेषामस्ति कश्चित्द्रष्टा, स च सघातादतिविलक्षण । यथाघटादयोविषया विलक्षद्रष्टृकामवन्तोदृश्यन्ते तथैव देहादयोपि दृश्या सघातरूपाविलक्षणद्रष्टृकाएवेति । अधिष्ठाना-नुकूलप्रतिकूलवेदकस्य द्रष्टु पुरुषस्यत्रैगुण्यविपर्यय पूर्ववदेवससाधनीय । सहतपदार्थस्ययेय प्रवृत्तिर्भवति सा प्रवृति, अधिष्ठात्रान्तराधीनैवदृश्यते, यदिअधिष्ठातापिसंहतरूपएवभवेत्तदातदीया प्रवृत्तिरपितदन्येनकेनाचिदपिप्रयोज्याभवेत् , तदाऽधिष्ठातृपरपराप्रवाहेऽप्राप्राणिकी अनवस्थास्या-दिति । तस्मादनवस्थादोषपरिहाराय, अधिष्ठातु प्रवृत्तिर्नसघातात्मकाधिष्ठातु प्रयोज्या, अर्थात् यश्चशरीरादिनामधिष्ठाता सनसघातरूपोऽपित्वसहत त्रिगुणादिविपरीत एव । अर्थादसहत एवा-धिष्ठाता, तस्यापिसघातरूपरूपत्वेदु रवस्थानवस्थास्यादित्यादिकपूर्ववदेवज्ञातव्यम् । एव सुखेनानु-कूलनीयस्य दु खेनप्रतिकूलनीयस्य वा भोक्तु पुरुषस्यापिसुखदु खमोहरूपत्वे, तस्यापि, अनुकूलवेद-नीयत्वप्रतिकूलवेदनीयत्वप्राप्तेरनुकूलप्रतिकूलवेदनीयान्तरापादकत्वादनवस्थापिशाचिनी, समुपस्थिता भवेत् , यस्या शान्तिरशक्यपरिहारास्यादत सोऽनुकूलप्रतिवेदनीयो न त्रिगुण सुखदु खमोहा-त्मकोपितु तद्विपरीतोऽत्रिगुणोऽसघातरूपएवेति । अर्थात् देहादिपक्षकविलक्षणद्रष्टुरनभानेन च पुरुषस्यात्मनोदेहादिवैलक्षण्यसिद्ध भवतीति भाव ।

कारिकाघटके "कैवलार्थंप्रवृत्तेश्चेत्यशव्याख्यातुमाह—**तथाशरीरादारभ्यप्रधानान्त सर्वस्येत्यादि** स्थूलशरीरादितआभ्यपरमसूक्ष्माव्यक्तपर्यन्तजगतस्त्रिगुणात्मकत्वम्, तत्रसुखभागो-

अपि च योयं विभ्रमोजायते स कस्य भवति किञ्चितिरात्मनोबुद्धेर्वाभवतीति विचारणीयम् । तत्र न तावत् चितिशक्तेरात्मनः सर्वविकाररहितायाऽतिविशुद्धाया पुरुषपुरुषस्य न सघातरूपदेहादिक प्रतिपरत्व नवा सघातात्मकदेहादे पुरुषार्थत्वमिति । न च स्वरूपतोऽपकार्योप्यात्माप्रकृतिसम्पर्कादात्मानमुपकार्यतयाऽभिमन्यतेस्वात्मानमितिचेत् ? एतावता केवलमुपकार्यतायाअभिमानमात्रजात नतु वस्तु उपकार्योजात नहि बालैर्मलिनतयागगनमलिनमभिमन्यते, इति तावतागगनमलिन कि भवति, अर्थात् मलिन वस्तुतोनैवभवति । अर्थात् रूपादि राहित्येनावस्थितगगनमविवेकबालक कदाचित् पृथिवीच्छायामारोप्यकदाचित् सौरप्रकाशमारोप्य मणिमयकराहरूपमलिन वा राजहसमालावत्, अतिस्वच्छवेतिभ्रान्तिमूलकव्यवहारकरोति, न तावतारूपनभस्तथाभवति किन्तु व्यवहारमात्रातान्कालिक जायते, तावतावस्तुतो न मलिन स्वच्छोवाऽकाशो भवति । यथावा सर्पतादात्म्येनभ्रमकालेज्ञायमानोपिदण्डादिर्वस्तुत सर्पोभवति, नायसर्पोऽपितु दण्डएवेतिवाधानन्तरप्रतीतिदर्शनात् । तत्रारोप्येणसर्पगनसर्पत्वप्रकारकज्ञानमात्र भवति तेनाय सर्प इतिव्यवहामात्र जायते, नतु ज्ञानमात्रात्रज्ज्वादि सर्पो भवति । तथैवेहापिउपकार्यतयाऽभिमानोपिनात्मनउपकार्यत्वमितिनात्मनस्तथाविधवास्तविकभवतीति सक्षेप ।

। इति साख्याभिमतात्मानुमाननिरूपणप्रकरणीयग्रन्थस्यतत्त्वदीप ।

ननु यद्यपिवस्तुतोऽविक्रियत्वादात्मानोपकार्यस्तथापितादृशस्यात्मनोऽनुपकार्यत्वेपि, शरीरेन्द्रियबुद्धिवेदनादिभि प्राकृतवस्तुभिरुपकृतोऽहमित्याकारकोपकृतत्वभ्रमलक्षणएवोपकार सचोपकार प्राकृतदेहेन्द्रियादिभि साध्य इतितत्परत्वमुपपद्यते इत्यादिप्रश्नकर्तुराशयमाकलय्यतन्निरासायोपक्रमते **अपि च योयं विभ्रमोजायते** इत्यादिप्रकरणेन । ससारमोक्षप्रयोजकोयोयविभ्रम स्वीक्रियते स च विभ्रम कस्य भवति, यथा मालादोजायमान सर्पत्वप्रकारकोऽयसर्पइत्याकारकोभ्रमोजायते स यथा देवदत्तादविद्योपहतकरणस्य भवति । तथा प्रकृते योयविभ्रम. स कस्य भवतीति विचारणीयतामापद्यते इत्याशय । ननु ज्ञानमात्मसमवेतसचात्माचेतनस्तस्यैवप्रमात्मक भ्रमात्मक वा यद्ज्ञानतत्तस्यैवचेतनात्मनो भवति, नतु जडस्यकदाचिदपिज्ञान जायते इति सर्वतन्त्रसिद्धान्त. । एतादृशस्थितौ "ज्ञानकस्यभवतीति" विचारो न युक्त इति चेत्सत्यम्, यस्य मते धर्मभूतज्ञानस्याधिकरणत्वमात्मन ज्ञानात्मनोर्भेदस्तन्मतेनायविचार किन्तु यन्मतेज्ञानमात्रमात्मा, घटादिविज्ञानमन्त. करणवृत्तिरूपतन्मते युक्त एवायविचार इति **तत्र न तावत् चिति शक्तेरात्मनः** इति, चितिशक्ते.=चैतन्यस्वरूपस्यपुरुषस्यशक्तितद्वतोरभेदमाश्रित्यकथनम् **तावच्चितिशक्तेरात्मन इति** । **अर्थात्** यदिदविभ्रमात्मकज्ञान भवति, तन्नचेतनस्यसभवति, आत्मन सर्वथाऽविक्रियत्वात्, ज्ञानास्य च क्रियारूपत्वेनात्मनिसमवायासभवात् । यथाघटाभावविशिष्टभूतलमुद्दिश्यघटविधानेबाध. अघटघटवदित्यप्रयोगात्, तथैव विकाररहितपुरुषेविकारात्मकज्ञानवत्वविधाने स्पष्टोवाधोजायते,

अशुभशतकारणविभ्रमासंभवात् । नवा द्वितीयःपक्षःबुद्धेरचेतनतयाचेतनकार्यविभ्रमासंभवात् । नवाचेतनापिबुद्धिरतिस्वच्छतयाचेतनयासमापत्त्याचेतनावद्भवतीतिवाच्यम्, सर्वथानीरूपतयाचितेर्बुद्धेश्चछायातद्ग्रहणानुपपत्तेः । छायावदिवछायेतिचेत्, इवार्थनिर्वचनासंभवात् । "चितिसमानरूपत्वमेव" इवार्थः, इतिचेत् , सर्वविकाररहितचिति

तस्मात् पुरुषे विभ्रमात्मकज्ञानसमवैतीतिकथन बाधितमिति न प्रथमपक्ष साधीयानिवाभातीति । नवा, विभ्रमात्मकज्ञानवुद्धौ अन्तकरणे भवतीति द्वितीयपक्ष । "अध्यवसायोवुद्धि" "मनोवुद्धिरहकारश्चित्तकरणमान्तरम् । सशयोनिश्चयोगर्व स्मरणविषयादिमे" इत्यादिस्वतन्त्रपरिभाषापरिभाषितमन्तकरणम् , तस्मिन्नन्तकरणेविभ्रमात्मकज्ञानसमवैतीतिकथनसर्वथाऽयुक्तम् , यतस्तादृशान्त करणस्य चेतनत्वात् । नहि अचेतन प्रमात्मकभ्रमात्मकज्ञानस्याधिकरण भवतीति । यथादेवदत्तश्चेतनोविभ्राम्यति न तथा देहोदण्डादिर्वाविभ्राम्यतीति दृष्टश्रुतमुपपद्यते वा । तस्माद न्त करणेविभ्रमोजायते इति द्वितीयपक्षो न युक्त । ननु "तस्मात्तत्सयोगादचेतन चेतनावद् भवति । गुणकर्तृत्वेपि तथा कर्तेवभवत्युदासीन । "तस्मिश्चिद्दर्पणेस्फारेसमस्ता वस्तुदृष्टय । इमास्ता प्रतिबिबन्तिसरसीवतटद्रुमा ।" इत्यादिवृद्धोक्त्या, स्वभावतोऽचेतनमप्यन्त करणचेतनस्यप्रतिबिम्बाश्रयतयाचेतनावद् भवति, तथा निष्क्रियोप्यात्मा कर्तृत्वादिधर्मविशिष्टान्त करणप्रतिबिबाश्रयतयाक्रियावद्भवति । ततश्चान्त करणेऽचेतनेपिविभ्रम मभवतीत्याशयेनाह **"अचेतनापि स्वच्छतयेत्यादि** प्रश्न । अर्थादचेतनमपिचेतनछायापत्त्याचेतनवदेवकार्यकरोतीतिप्रश्न । उत्तरयति **सर्वथानीरूपतयाचितेर्बुद्धेश्चेत्यादि** आत्मन सर्वथारूपरहितत्वेनकान्तिस्वरूपायाश्छायाया उज्वलरूपवद्धर्मभूताया. सर्वथारूपाभाववतिचैतन्यरूपेआत्मन्यसभवात् । तथाऽन्त करणेरूपरहितेतत्प्रतिफलनलक्षणसक्रमणस्यासभवात् । दृश्यते च सर्वत्रस्फटिकादौ वा रूपादिविशिष्टजपाकुसुमलोहितादिवर्णानाप्रतिबिंब । जलादौ वा विप्रकृष्टसूर्यनक्षात्रादीनाप्रतिबिबस्तदीयछायाया सक्रमणप्रतिबिम्वो जायते, नतु रूपरहितेरूपरहितस्यप्रतिबिबादय । अतएव कथितम् "शद्बगन्धरसादीनाकीदृशीप्रतिबिम्बता" इति । अर्थात् नहि रूपादिरहितशद्बादिगुणानाकुत्रापिप्रतिबिम्बोदय सभवन्तीति । एवमेवप्रकृतेरूपरहितेन आत्मनिरूपरहितान्त करणस्य, तथानीरूपेऽन्त करणे रूपादिरहितस्यात्मनो वा प्रतिबिम्बादय इति । पुन शङ्कते **छायावदिवछायेति** नात्रछायापदेन मुख्या—कान्तिरूपा सा विवक्षिता, अपितु सादृश्यरूपमेव, ततश्च चितिसादृश्यापत्तिश्चेतनोपमानत्वमिति । उत्तरयति **इवार्थनिर्वचनासंभवादिति** अर्थात् आत्मान्त करणयो सादृस्यकेनाकारेणस्यादिति । न च चितिर्ज्ञानतादृशज्ञानसारूप्यमेवतयोरितिवक्तव्यम् , वृत्तिपरिणामसामान्याभाववत्वेन सादृश्यमित्यर्थ । उत्तरयति=**सर्वविकाररहितचितिरूपत्वे** इत्यादि, पुरुषो हि सर्वविकाररहित इति ते मतम्, एतादृशसर्वविकार रहितचेतनसरूपतापत्तौ, अन्तकरणस्वस्वरूपमेव परित्ययजेत् ततश्चान्त. करणमपिसर्वविकाररहित

रूपत्वेचितिरन्तःकरणमपिसर्ववृत्तिरहितंस्यादितिभ्रमसुखादिविकारयोगः प्रत्यात्मसिद्धो विलुप्तएवभवेत्, चेतनत्वेनसमानरूपत्वमेवचितिबुद्ध्योरितिचेत् ? भवन्मतेचितिरेव पुरुषो नतु चेतयिता तदुक्तंपतञ्जलिना "यदाचितिरेवपुरुषः किमत्रकेनव्यपदिश्यते" इति । अजडायमानत्वमिवार्थ इतिचेत् । अजडत्वं न ज्ञातृत्वातिरिक्तंकिञ्चित्, इति

स्यादिति, ततस्तस्मिन्नन्त करणे सुखदु खभ्रमादयोविकारानिरालबना भवेयु । एवचान्त करणस्य सर्ववृत्तिरहितत्वेविभ्रमादयोयेविकारास्तेकस्यस्यु । न चान्त करणस्यसर्ववृत्तिरहितत्वमिष्ट, अन्त करणे भ्रमादिमत्वस्यसर्वानुभवसिद्धस्यनिराकरणासभवात् । अर्थात् अन्त करणस्यनिर्वृत्तिकत्वेभ्रमादयस्तस्य न स्यु । अर्थात् भ्रमादिरूपवृत्तेरुपपादनार्थमेवचेतनायमानत्व परिष्क्रियते, तदन्त करणचेत् सर्ववृत्तिरहितरूपम्, इतिनैवप्रसगोभ्रमाद्युदयस्य । एवञ्च, यदर्थमयमारभ तत्सर्वमवसादितमितिन्यायारोपोनातिक्रामति । प्रकारान्तरेणसरूपत्वशकते—**चेतनत्वेन समानरूपत्वमिति** अर्थात्, आत्मान्त करणयो सरूपत्वविवक्षित, ततश्चप्रसक्तोदोषउद्धृतोभविष्यतीत्यर्थ । ततश्चचेतनत्वेनज्ञातृत्वरूपेणैवसादृश्यविवक्षितमिति । उत्तरयति-**भवन्मते पुरुषो नतु चेतयितेति** । ज्ञानरूप एवात्मा, नतु ज्ञानात्मनोराधाराधेयभावस्तव मते । ततश्चचेतनत्वेन ज्ञातृत्वरूपेणसादृश्यनैवसमाहित भवतीति । तदुक्तपतञ्जलिना "यदाचितिरेवपुरुष" इत्यादि । यदातुज्ञानात्मनोस्तादात्म्य नतु तयोराधाराधेयभावस्तदाकेनकस्यनिरूपणंस्यात् , आधारभिन्नेनाधेयेनविशेषणेनतदतिरिक्ताधेयेनाधारस्यनिरूपणभवति, नतु स्वेनस्वस्यस्वेननिरूपणभवति, तथात्वे आत्माश्रयप्रसङ्गोभवतीति । नहि घटेनैव घटस्यनिरूपण भवति, किन्तु अन्येनान्यस्यनिरूपण भवति, 'वेगवानश्व" इत्यादिस्थले, वेगेनाश्वोनिरूप्यते नतु अश्वेनैव स एवाश्वो निरूप्यते इति । पुन प्रकारान्तरेणेवार्थंशङ्कते **अजडायमानत्वमिवार्थ इतिचेदिति** । यथा आत्माऽजड स्वप्रकाशरूपस्तथैवाप्त करणमपिचेतनसपर्कात् स्वप्रकाशात्मकमिति, एतयोरात्मान्त करणयोरजडायमानत्व सम्भवती तितेनरूपेणैवतयो समानत्वमितिप्रश्नाशय । परिहरति **अजडत्वं न ज्ञातृत्वातिरिक्त**मित्यादि । तत्र ज्ञातुरहमर्थस्यचेतयितुरहमर्थस्यात्मन एव, स्वेतरानपेक्षप्रकाशत्वलक्षणमजडत्वसभवतीति, ज्ञातैवात्मेतिनिरूपणप्रकरणेप्रतिपादितम्, ततश्चैवविधाजडत्वस्यज्ञातृत्वसमानाश्रयत्वात् , ज्ञातृत्वधर्मेणैवज्ञातृत्वस्यसमर्थनेकृतेसति, आत्माश्रयदोषस्यपरिहारोनैव भवतीतिभाव । ज्ञातृत्वैकाश्रयेणाजडत्वेन, एतदजडायमानत्व न किञ्चिदिति । अर्थात् स्वार्थसाधनेनोपयुक्तविवक्षितभ्रमादिवत्वोपपादक न भवति, यतोऽसिद्धेनैवासिद्धस्योपपादनात् । सिद्धेनकारणेनासिद्धंकार्यसाधित भवतीतिनियम नतु स्वयमसिद्ध परान् साधयति, यथा कार्यमसिद्धमितितत्साधनायसिद्धकारणमपेक्षित भवति, यदिकार्यवत् कारणमप्यसिद्ध तदाकेनकस्यसाधनस्यात् , उभयोरसिद्धत्वात् अथवा असिद्धेन साधनेनप्रकृतार्थोपपादनस्यसर्वथैवासभवात् । यथाऽनागतेनदण्डेन वर्तमानकालिकघटस्य सपादन न संभवति तथैवप्रकृतेपि, असिद्धेन

पूर्वमेवनिवेदितम् । अपि च चितिसंनिधानाधीनांबुद्धिप्रतिपादयत् कथमिवाजडत्वंस्यात् । न च चेतनान्तःकरणयोर्बिम्बप्रतिबिम्बयोरन्यतरस्मिन्नविद्यमानस्यविषयविशेषोपरक्त-ज्ञातृत्वलक्षणधर्मविशेषस्य प्रतिबिम्बसंभवोभवेदित्यादिकं सर्वप्रतिबिम्बखण्डनावसरे निवेदितं तत एवद्रष्टव्यम् ।

कारणेनासिद्धकार्यस्योपपादनासभवादितिमक्षेप । अथ यदि अन्त करणस्याजडत्वस्वीकुर्यात् स्वपक्ष समर्थनलोभेन तदासाख्यस्यापसिद्धान्तदोषोप्यापतति तत्राह **अपि च चितिसंनिधानेत्यादि ।**

अन्त करणापरपर्यायस्यबुद्धितत्वस्यसिद्धिरात्मन सनिधानादेवजायते, जडवर्गस्यचेतनसपर्का-देवसिद्धिर्जायते इति साख्यसिद्धान्त । एव व्यवस्थितनियमे, बुद्धिर्नजडा किन्तु प्रकाशरूपेति कथनम् ‘‘तस्मात्तसयोगादचेतनावदिवलिङ्गम्’’ इत्याद्यभिधानकथमिवसमुपपन्नस्यात् । अर्थात्—नैव समुपपद्यते इति । ननु बुद्धितत्वापरपर्यायस्यान्त चितिसारूप्यस्यासभवादभावेपि तस्मिन्नन्त करणे चितेरात्मन प्रतिबिंबज्ञातृत्वादिधर्मवान् स्यात् । अर्थात् यद्यपिजडचेतनयोर्बुद्धितत्वाऽत्मनो परस्पर सारूप्याभावेपि, अन्त करणे योय चेतनात्मन प्रतिबिम्बोजायते, यथा जलेदर्पणादौवा, य सूर्यस्यप्रति-विम्ब दर्पणेमुखस्य वा प्रतिबिम्ब , तथैवान्त करणे य आत्मन प्रतिबिम्ब स एव चैतन्यप्रतिबिम्बो ज्ञातृत्वादिमान् भवति, तथा जलस्यचलनेजलगत प्रतिविम्ब चलतीवलक्ष्यते, न तत्र प्रतिबिम्बे-चलनवास्तव किन्तु जले एव तच्चलनभ्रमात्मकमेव, तदभाववतितत्प्रकारकत्वात् । तथैवान्तकरणे योयमात्मन प्रतिविम्बस्तत्रैवभ्रमात्मकज्ञातृत्वादिकभवतीतिचेत्सत्यम् । अयमाशय चिदन्त करण-योर्बिम्बाधिकरणत्वेनाभिमतयोरेकत्रापि, अवर्तमानस्यविषयविशेषोपरक्तज्ञातृत्वरूपधर्मविषस्य प्रति-बिम्बेसभवाभावात् । अत्र बिम्बत्वेनाभिमतशुद्धचैतन्यपुरुष , तथा प्रतिबिम्बाधारतयाऽभिमत तदन्त करणम् । तत्र बिम्बे आरोप सभवेत् । अत्र च प्रकृतेज्ञातृत्वधर्म विभ्रमोवा, प्रकृतेऽन्यतरस्मिन् विद्यते यस्यचित्प्रतिबिम्बेसमारोपोभवेदिति । अपि च विभ्रम पुरुषेऽन्तकरणे वा विद्यते, इत्यादि विचार तदैव समीचीनो भवेत् , यदि विभ्रमनामक कश्चित्स्वतन्त्र पदार्थो भवेम्, नत्वेवविद्यते ज्ञानमात्रस्ययथार्थत्वात् स्वरूपतोविभ्रमस्यैवाभावात् । सर्वज्ञानत्वात् , घटवतिघटवद् भूतल-मितिज्ञानवत् , अन्यथाऽन्याकारस्यरजताद्याकारस्येदरजतमित्यादेर्ज्ञानस्यान्यविषयत्वेशुक्तिकादि-विषयत्वेऽनुभवविरोध स्यात् । अर्थात् ज्ञानेभासमानत्वमेव विषयत्व नतु सत्तया विषयत्वम् नाधिकरणतया विषयत्वमतिप्रसङ्गात् । न च रजतज्ञानेशुक्तिकाया प्रकाश , तथात्वेरजतानुभव-विरोधआपद्यते । तदुक्तमभियुक्तेन ‘‘अत्रब्रूमोयएवार्थोयस्यां सविदिभासते’’ इत्यारभ्य ‘‘अन्यस्यचान्यथा भानंप्रतीत्यैव पराहतम् । परस्मिन् भासमानेपि न परभासते यत ’’ इति। अपि च ज्ञानस्य स्वविषयव्यभिचारे तत्रलोकानामविश्वासोपि स्यात्, तदुक्त ‘‘यदिस्वार्थपरित्यज्यकाचिदबुद्धि प्रवर्तते । व्यभिचारवतीस्वार्थेकथविश्वासकारणमिति । किञ्च ‘‘इदरजतमित्यादिस्थलेविद्यमान-

यदुक्तम् यद्यपि सर्वथाविकाररहितपुरुषस्तथापितदीयसान्निध्यवलात्तत्समीपस्थान्तःकरणेप्रमाणविपर्ययादिवृत्तिविशेषाजायन्ते तेन च विषयोपदर्शनंपुरुषस्य भवति । यथा सर्वथाचेष्टारहितस्यापि सार्वभौमस्यमाहात्म्यात् सेनापत्यादीनांयुद्धादिव्यापारस्तदीय विजयादिफलं भवति, तादृशफलभोक्तृत्वंसार्वभौमस्यभवति, स च राजापराक्रमीविजयीतिकथ्यते । तथैव प्रकृते पुरुषोभोक्ताद्रष्टा च व्यपदिश्यते । तन्नोपयुक्तम्, योहि द्रष्टा तस्मै दर्शनीयं दृश्यते । न च दृशिमात्रात्मवादिनः सांख्यस्यतदन्यतदुपजीविनश्चात्मनोद्रष्टृत्वंवास्तविकमस्ति । न च काल्पनिकंद्रष्टृत्वमात्मनःकल्पनायामप्यसंभवात् । सार्वभौमस्तुनात्रदृष्टान्तः संभवति, स तुसार्वभौमः सामान्यतोविशेषतोवायुद्धादिकर्मसु, सेवकानमात्यादीन् नियोजयतियुद्धादिफलं च जय विजयादिकमैश्वर्यादिकंचाश्नोति । तत्रसार्वभौमामात्ययोःसाधरणसैनिकस्यस्वस्वामिभावहेतुकक्रयप्रतिग्रहादिव्यापारवान् भवतीतिनोपयुक्तोनिर्विकारपुरुषस्य निदर्शनम् ।

। इति सांख्याभिमतात्मानुमाननिराकरणम् ।

ससर्गस्यापि भासमानत्वस्वीकारेबौद्धमतप्रवेश स्यात् । तस्माद्विषयत कारणतश्चविभ्राभावेन, सभ्रम कुत्रवर्तते इत्यादिविचारोऽकाण्डताण्डव एवेति सक्षेप ।

अथान्त करणे एव "प्रमाणविपर्ययनिद्रातर्कस्मृतिप्रभृतिमूत्रोक्ताविषयाकारावृत्तिविशेषा समुत्पद्यन्ते, तत्रविषयाकारपरिणामलक्षणप्रत्यक्षादिज्ञानरूपवृत्ते स्वीकारात्, अन्यस्मिन्नपिवृत्तिरहि तस्वलक्षणदोषोऽनुपपन्न । एवञ्चचिदात्मनोबुद्धेश्चभेदाग्रहात् चिदात्मनेज्ञातृत्वप्रतिभासोयुज्यते एवेत्याशयेनशङ्कते **यदुक्तं यद्यपीत्यादि,** यद्यपिचितिनिर्विकारा तथापि चितिशक्ते सनिधानबलादेवायस्कान्तमणिवत् स्वसमीपवर्तिनोऽन्त करणस्यप्रत्यक्षानुमानादिप्रमाणज्ञानभ्रमादिलक्षणादिवृत्तिविशेषा समुदिता भवन्ति । तत्रचितिशक्ते प्रधानत्वात्, चितेस्तासावृत्तीनासाक्षित्वभोक्तृत्वचोपपद्यते । यथा सर्वथायुद्धक्रिययाविरहितस्य कस्यचित्सार्वभौमराज्ञ प्रधानत्वात्प्रबलामात्यसेनापत्यादिसमुदायकर्तृकयुद्धपराक्रमजयविजयादिफलभोक्तृत्वप्रधानस्यैवसार्वभौमस्य भवति । सार्वभौमेनजितमित्यादिव्यपदेशात् । ननु सेनापत्यादौव्यावहार पूर्वोक्तो भवति । तथैवनिर्विकारपुरुषसनिधानादन्त करणेजायमानवृत्तीनासाक्षित्वभोक्तृत्व च प्राधान्यान्निष्क्रियत्वेपि पुरुषस्यैवभवति नत्वन्त करणस्येतिशङ्काशय । उत्तरयति=**तन्नोपयुक्तमिति,** निर्विकारस्यपुरुषस्यसाक्षित्व न सभवति। यत साक्षित्व न चैतन्यमात्रत्वमपितुसाक्षाद् द्रष्टृत्वमेवतत्त्वम् । एतादृशद्रष्टृत्व न चैतन्यमात्रस्य, शुद्धचेतनस्यकूटस्थनिर्विकारत्वादिति । ननु चितिद्रष्टृत्वकल्पितमेवेति चेत्, सर्वथाविकाररहितेनिर्धर्मकेकूटस्थेपुरुषेद्रष्टृत्वादिभ्रमोपिनसम्भवति । यदा चैव तदाकल्पना न स्यात् । दृष्टान्ते राजनि तु राज्ञो न व्यापाररहित्यनिर्धर्मकत्व वा तस्यतु सामान्यरूपेणव्यापारादिमत्वमेव, स्वस्वामिभावसम्बन्धश्च।

स्थूलोहंकृशोहमित्यादिप्रत्यक्षबाधापहृतविषयनयाविलक्षणात्मसाधकव्यतिरेकानु - मानानांबाधितत्वमिति न तेनानुमानेनशरीरादिव्यतिरिक्तात्मसिद्धावश्रद्दधानाः श्रुति-प्रमाणेनैवश्रोत्रियाः शरीरादिव्यतिरिक्तात्मसिद्धिसङ्गिरन्तोश्रुदिवलादेवविलक्षणात्मा-सिद्धिं मन्यन्ते नतुप्रमाणान्तरेणेति । श्रुतयोहि साक्षादेवस्वमुखतोविलक्षणात्मसिद्धिं

तत्रस्वस्वामिभावेहेतव क्रयप्रतिग्रहोत्पादनमरणादयोलोकेप्रसिद्धा एव । तदुक्तम् "सेवायापन-मिच्छद्भि सेवकै पश्य यत्कृतम् । स्वातन्त्र्यंयत् शरीरस्य मूढैस्तदपिहारितम् " । "सुवर्णपुष्पितापृथ्वी विचिन्वन्ति नरास्त्रय । शूरश्चकृतविद्यश्चयश्चजानाति सेवितुम् " इतिराजा हि धनादिनापुरुषान् क्रिणित्वातैर्युद्धकारयति, तेन तत्र सेनाकर्तृकजयविजयफलभाग्राजैवभवतीति न राजनिदर्शनमत्रघटते ।

तदेवराज्ञोभरणपोषणादिनिमित्तकस्वामित्वमुपपद्यते, नतु सांख्याभिमतनिर्धर्मककूटस्थनिर्वि-कारस्य तथात्व सम्भवतीतितद्दृष्टान्तप्रदर्शनमयुक्तमेवेतिसमुदिताशय । अथ साख्याभिमतस्यपुरुषा-ख्यात्मनोऽनुमानेनसिद्ध्यसम्भवेपिनैयायिकादिभिराधेयातिशयत्वेन भोक्तृत्वेन चाभिमतस्यात्मनसघात-परार्थत्वानुमानेनसाधनस्यादेवेतिचेत्सत्यम्—सघातस्य सघातपरार्थत्वेनव्याप्तेर्दर्शनात् । असहृतस्य-परस्यकस्यचिदात्मन सिद्धेरसम्भवात् । न च भोक्त्रर्थत्वेनसघातत्वस्यव्याप्तिर्भवतु । अर्थात् यत्र सघातरूपत्व तत्र भोक्तृप्रयोजनकत्व भवति शरीरादिवदेव । तथा च भोक्तृत्वात्, असहतस्या-त्मन सिद्धिर्निष्कण्टकस्यादितिवाच्यम्, शरीरेन्द्रियाणामपिशरीरान्तररूपभोक्तृप्रयोजनकत्वसाधनपर्यव-सानात् । अहतात्मन सिद्धेरभावात् । शरीरादिभिन्नस्यभोक्तुरनुमानात्पूर्वमसिद्ध्या विलक्षणभोक्त्रर्थत्वेन-व्याप्तेरग्रहात् विलक्षणस्यशरीरादिव्यतिरिक्तस्यात्मन साधनायोग एवेति ।

। इति साख्यतन्त्राभिमतात्मानुमाननिरासप्रकरणीयतत्त्वदीप ।

ननु विलक्षणे आत्मनिशरीरादिभेदसाधकानुमानानासाख्यनैयायिकाद्यभिमतानासाधकत्व न भवति तत्सिद्धेरेवासभवादिति कथितम् । तेष्वनुमानेषुप्रत्यक्षबाधोपि भवतीतिदर्शयितुतमेवप्रत्यक्ष विशेषमुपस्थापयितुमुपक्रमते **स्थूलोहंकृशोहमित्यादि** । सर्वेषामाबालवृद्धनासाधारणतया वा विल-क्षणभोजनबलेनशरीरावयवानामुपचयात् "अह स्थूल" इत्यादिप्रत्यक्षप्रतीतिर्जायते, तथा भोजना-भावे तपसिस्थितस्यशरीरावयवानामपचयात् "कृशोहजात" इत्यपिप्रात्यक्षकीप्रतीतिर्जायते । इयच प्रतीति शरीरमेवविषयीकरोति नत्वात्मानमतिरिक्तविषयीकरोति, आत्मनोऽवयवाभावेनतदुपचयापचययो-रसभवात् । किन्तु आभ्या प्रतीतिभ्याशरीरमेव विषयीभवति । ततश्चोपर्युक्तप्रतीत्याशरीरस्यैव-स्थूलत्वकृशत्वादिविशिष्टस्यात्मत्व प्रसिद्ध्यति, इति वन्हौशैत्यानुमान यथा तदीयोष्णप्रत्यक्षेणबाधित साध्यकं सत् तत्रशैत्य न साधयति स्थूलोहमितिप्रत्यक्षेण बाधितत्वात्, शरीरादिव्यतिरिक्तात्मान न विलक्षणात्मानसाधयितुसमर्थमिति । अर्थात्, यथा वन्हिरुष्ण इतिस्पार्शनप्रत्यक्षेणबाधसत्वेन वन्हि

प्रदर्शयन्ति । तथाहि—"स एष नेति नेत्यात्माऽगृह्योनहिगृह्यते" "स पर्यगाद्शुक्रमकायमव्रणमस्त्राविरशुद्धमपापविद्धम् । कविर्मनीषिपरितः स्वयंभूः" "योनिमन्यप्रपद्यन्ते शरीरत्वायदेहिनः । स्थाणुमन्येऽनुसञ्जन्तियथाकर्मयथाश्रुतम्" "न जायते म्रियते वा कदाचित्, नायं कुतश्चिन्नबभूव कश्चित् । अजोनित्यः शाश्वतोयंपुराणो शीत इति वन्हिनिष्ठशैत्यानुमितिर्नोत्थातुशक्नोति तथैवस्थूलोहमित्यादिप्रत्यक्षबाधात् शरीरादिव्यतिरिक्ताद्यनुमानमपिनोत्थातुशक्तभवतीतिभाव । **प्रत्यक्षवाधापहृततया** अहस्थूल इत्यादिप्रत्यक्ष प्रमाणवाधितसाध्यकतयेत्यर्थ । वाधदोपस्यैवप्राचीनग्रन्थेकालात्ययापदिष्टत्वकथनम् । व्यतिरेकानुमानभेदानातादृशानुमानविशेषाणामिति । कापिलाद्यभिमतानान्यायानुमतानामिति । ननु यदिशरीर मेवसाध्यसाधकानुमानप्रत्यक्षादिवाधित, तदातादृशात्मन सिद्धि कथस्यादित्यालोच्यश्रुतितात्पर्यज्ञाश्रुत्यैव तादृशात्मानसाधयन्तिशास्त्रैकसमधिगतत्वात् ।

तादृशश्रुतिमेवदर्शयति **स एषनेतिनेत्यात्माऽगृह्यो नहि गृह्यते** योयमात्माऐहिकपारलौकिकयात्रानिर्वाहक स, अगृह्य श्रोत्रादीन्द्रियैर्ज्ञातुमशक्योरूपाद्यभावात् । अनयाश्रुत्याऽत्मन शरीरादिगतप्रकार निषिध्यतेगौरत्वकृशत्वादिरूप । **सपर्यगात् शुक्रमकायम्** अकायम् शरीररहितम्, एतावताकारणसूक्ष्मशरीरयोर्निपेध कृत । अव्रणमस्नाविरम् शरीरभिन्नशरीरधर्मव्रणादिर्शहतम्, स्नावाशिरातद्रहितम्, एतावताषाट्कौशिकस्थूलशरीरप्रतिषेध कृतो भवति । शुद्धसर्वमलविरहितम्, एतावताकारणशरीरशरीरप्रतिषेध । अतएव "अपापविद्धम्=धर्माधर्मविवर्जितम् एतावता सूक्ष्मशरीरराहित्यमात्मनोदर्शितम्, तदधिष्ठितत्वात् पुण्यपापयो । कवि क्रान्तदर्शी, मनीषिमनस ईशितापरिभू परित सर्वतोभवतीतिपरिभू । स्वयमेवभवतीतिस्वयभू । एतादृशआत्मा नकथमपि कृशोहमित्यादिप्रतीत्याशरीररूपोऽपितदतिरिक्त एव, श्रुते सर्वप्रमाणापेक्षयाश्रेष्ठत्वात्, सर्वप्रमाणानाप्रामाण्यं श्रुत्यनुग्रहादेवेत्यग्रेवक्ष्यते । **योनिमन्ये** इत्यादि, केचनदेहिनआत्मान स्वकीयकर्मोपासनावलात्, शरीरग्रहणाय, योनिमनुष्यपश्वादियोनिप्रपद्यन्ते, प्राप्नुवन्ति, तदन्येकेचनदेहिन स्थाणुवनस्पत्यादियोनिमाप्नुवन्ति । कर्मोपासनावलादिति । यदि आत्माशरीरादिरूपएवभवेत्, तदतिरिक्तोनभवेत्तदास्वोत्पत्त्यर्थयोन्यादिग्रहणनोपयुक्तभवेदितिज्ञायते यदयशरीरेन्द्रियादिभिन्न एवेति। **नजायते म्रियते** इत्यादि अनयाऽत्मनोजननमरणयोर्निषेधात् शरीररूपत्वप्रतिषेध कृतोभवति, शरीर रूपत्वेजननमरणयोरवश्य भावात्, "जातस्य हि ध्रुवोमृत्युर्ध्रुवजन्ममृतस्यचेति" स्मृते । **जीवापेतं** इत्यादि, जीवापेतजीवसम्बन्धरहित सदिदशरीरम्रियतेनतुजीवस्यस्वरूपतोमरणतस्यनित्यत्वप्रतिज्ञानात् । स्वस्वकारणवलेनशरीरादेरेवोत्पत्तिर्जायते नतुचेतनस्यशरीरादिभिन्नस्योत्पत्त्यादिक भवति, तत्र श्रुतिप्रमाणप्रदर्शितम्, **न जायते म्रियतेवा विपश्चित्** चैतन्यमात्रस्वरूपोदेहादिविलक्षणआत्मा न जायते नवा म्रियते, किन्तु तत्सवन्धिनोदेहादेरेवजननमरणादिकभवतीति श्रुतेरर्थ । एतावताशरीरादि

न हन्यते हन्यमाने शरीरे" "जीवापेतं वा वकिलेदंम्रियते" "नहवैशरीरस्य मतः प्रिया ऽप्रिययोरपहतिरस्ति" "अशरीरवा वसन्तं न प्रियाप्रियेऽस्पृशतः" इत्यादिकाःश्रुतयः । किञ्चकालान्तरेजायमानस्वर्गनरकादिसाधनविधयः "ज्योतिष्टोमेनजयेत" इत्यादि विधिशास्त्रंशरीरेन्द्रियादिभिन्नंनित्यमजंचेतनमिति श्रुत्यनुपपत्तिप्रमाणक एवायं प्रत्यगात्मा । नात्रप्रमाणान्तरानुचिन्तनमुचितमिति । इति शरीराद्यतिरिक्तविलणात्मशास्त्रैकप्रमाणकत्वपक्षनिरूपणम् ।

भिन्नत्वमात्मन प्रदर्शित श्रुत्या, अन्यथा शरीररूपत्वे शरीरवदात्मनोपिजननविनाशास्यातामेवेति । शरीरसम्बन्धित्वयदात्मनस्नदपि न स्वाभाविकमपि वोपाधिकमेव, मोक्षकालेतु स्वाभाविकम् शरीरत्वमेव, तत्रश्रुतिप्रमाणयति "नहवैसशरीरस्यसत प्रियाप्रिययोरपहतिरस्ति" अशरीरवावसन्त न प्रिया प्रिये स्पृशत " [यावदयचेतन, आत्माशरीर शरीरोपाधियुक्तो भवति, अर्थात ससारासक्तचित्तोभवतितावत्पर्यन्तमस्यानुकूलवेदनीयप्रतिकूलवेदनीयविषयानुभवजनितसुखदु खयो स्पर्शाभावो न भवति, अर्थात् यावत् ससारशरीरस्यविद्यमानतया सुखदु खयोरभावोनैव भवति, कारणसद्भावेतत्कार्यस्यावश्यभावात् दण्डादिसमवधानेघटादिवदितिमोक्षकालेतुसर्वथाऽशरीरत्वमेव, तेन मुक्तोप्रियाप्रिययो स्पर्श परोपाधिकोवा स्वाभाविको वा न कथमपि भवति । वैषयिकसुखादिकारणशरीरस्यापगमात्कारणाभावेकार्याभाववदिति । शरीरादिव्यतिरिक्तविलक्षणात्मनिश्रुतिसमुदायप्रमाणतयाकथयित्वातदनन्तर श्रुत्यर्थापत्तिप्रमाणमपिविलक्षणात्मनिदर्शयितुमुपक्रमते **कालान्तरेजायमानेत्यादि** कालान्तर= अनुष्ठानसपादनोत्तरमनुष्ठातृदेहपातानन्तरमर्थात् मरणानन्तरलोकान्तरेउपभुज्यमान यत् स्वर्गादिफलम् स्वर्गश्च "यन्नदु खेन सभिन्न न च ग्रस्तमनन्तरम् । अभिलाषोपनीत च तत्सुख स्वपदास्पदम्" [यत्सुखलौकिकसुखवत्नदुखेनश्लिष्टम्, यस्यचोत्तरकालेविनाशो न भवति, अर्थान्नित्य "अपाम सोमममृताअभूम" इत्यादिश्रुत्यासुखस्यनित्यत्वात् । न च स्वर्ग क्षयी, कार्यत्वाद्घटादिवदित्यनुमानेनस्वर्गस्यक्षयित्वमितिवाच्यम्, तस्यानित्यत्वे 'अपामसोममित्यादिश्रुत्याऽमृतत्वाभिधानस्यासङ्गतिकतयाश्रुतेरप्रमाण्यप्रसङ्गात्, तस्मात्, स्वर्गसुखनित्यमिति, न च ग्रस्तमनन्तरमितिकथनं सावकाशसार्थक च भवतीति, तथाऽभिलाषोपनीत च=अभिलाषा समीहा तथा च यदा यद्विषयिणीच्छा भवतितद्वस्तुतदैवप्राप्त भवति नतु कालातिक्रमोजायते]

एतादृशसुखविशेषरूप स्वर्ग । स च स्वर्ग अनुष्ठाता, येनदेहेनानुष्ठान कृतवान्, तादृश देहस्य विनाशानन्तरस्वर्गसुखानुभवयोग्यदेवादिशरीरमवाप्यतेनदैवशरीरेणसुखमुपभुनक्ति यदि अनुष्ठातु शरीरमेवात्मा भवेत् तदाऽनुष्ठातु फलभोक्तुश्चपरस्पर भेदात् अनुष्ठानतदीयफलस्वर्गस्य च वैयधिकरण्यमापद्येत तन्नयुक्तम् । अन्यत्रकार्यकारणयो सामानाधिकरण्यस्यैव दर्शनात्, तस्यैवोचितत्वात् । विहिताविहित च करोत्यन्य फलचान्योभुनक्तीति क्वचिददृष्टमुपपद्यते वा इति कारण

फलयो सामानाधिकरण्यनियमस्यान्यथानुपपत्त्याशरीरात्मनोर्भेदोऽकामेनापिस्वीकर्त्तव्य एव । एवञ्च मनुष्यशरीरावच्छिन्नो य आत्मास्वर्गविधिमनुतिष्ठति स एवात्मादेवदेहमासाद्यफलभोक्ता भवतीति । तस्मात्, अन्यथानुपपत्तिप्रमाणेनदेहातिरिक्तत्वतद्वैलक्षण्यञ्चात्मन.सिद्ध्यतीति । सर्वतो वलवतीयमन्यथानुपपत्तिर्योहिदृष्टशतमप्यवधूयकार्य करोत्येव । तदुक्तम् "अन्यथानुपपत्तिश्चेदस्ति-वस्तुप्रसाधिका । पिनष्टिदृष्टवैमत्यसैवसर्वबलादिका ॥१॥ वाच्यान्यथोपपत्तिर्वात्याज्यो वा दृष्टता-ऽग्रह । न ह्येकत्रसमावेशश्छायातपवदेतयो ॥२॥ यथाअन्योज्ञाताज्ञेयश्चान्य इतिलोकेदृष्ट. यथा वा अन्य कर्त्ताकर्म चतदन्यत्, यथा वा करणमन्यत् कर्मचान्यत् कर्ता च तदन्य इतिलोकनियम' परन्तु आत्माआत्मनविजानाति सर्प स्वात्मनास्वात्मानवेष्टयतीतिप्रत्यन्यथानुपपत्त्यासर्वोपिनियम परित्य-ज्यते । एव प्रकृतेऽपिविधिशास्त्राणांकार्यकारणानाचान्यथानुपपत्त्यैव देहात्मनोभेद स्वीकर्त्तव्य एव। अयभाव यथा "स्वर्गकामोयजेतज्योतिष्टोमेन" इत्यादिस्थलेस्वर्गोद्देशेनयागस्यविधान भवति । यागो-नामपुरोडाशादिद्रव्यत्यागरूप स च क्षणिकत्वादनन्तरमेवविनश्यति, इति यागस्यकालान्तरेजायमानं स्वर्गात्मककार्याव्यवहितपूर्वक्षणे अवस्थानाभावात्, अव्यवहितपूर्वक्षणवृत्तिरूपकारणत्वंनायातीतिकृत्वा यागस्वर्गयोर्मध्येविद्यमानमेक यागजन्यमपूर्वंधर्मादिरूपप्रकल्प्ययागस्य स्वजन्यापूर्वद्वारास्वर्गंप्रतिकारण-त्वनिर्वाहयति । न च तथापियागस्यकारणत्वनायाति अपूर्वेणैवकार्यसिद्धौयागस्यान्यथासिद्धत्वात्, वृद्धकुलालजन्यतत्पुत्रेणैवपुत्रकर्तृकघटसिद्धिसभवेवृद्धकुलालस्यान्यथासिद्धिवदिति वाच्यम् स्वजन्यव्या-पारेणव्यापारिणोऽन्यथासिद्धत्वानभ्युपगमात् "नहिव्यापारेणव्यापारिणोऽन्यथासिद्धत्वमितिलोकप्रवा-दात् । अन्यथादण्डजनितसयोगेनैवघटादिकार्यसिद्धौसत्यांदण्डादिकरणानाकरणत्वमेवहीयेत । न च तदिष्टम् प्रसिद्धघटादिवत् कार्यमात्रस्याकरणकत्वप्रसङ्गात् । तस्माद् व्यापारेणतद्व्यापारिणोऽन्यथा-सिद्धत्व न भवतीतिसिद्धवत् कृत्वाव्यापारद्वाराविप्रकृष्टस्यापिकरणत्वकारकत्व च निर्वर्त्यैव । ततश्च विप्रकृष्टस्यापियागादिकर्मण स्वर्गादिकार्यप्रतिजनकत्वमायाति । तत एव स्वर्गमुद्दिश्ययागादिकर्म-विधायकशास्त्रंसफलसप्रमाणक च भवतीति । एवमेवदेहादिभिन्नत्वमात्मनो न मन्येत तदास्वर्गप्रति-पादक "यजेत" इत्यादिविधिशास्त्रामामपिवैयर्थ्यस्यादितितदन्यथानुपपत्त्यादेहादिभिन्नत्वमात्मन. स्वीकर्त्तव्यमिति । स्वर्गादिसाधनविधिशास्त्राण्यपिदेहादिव्यतिरिक्तविलक्षण नित्यमजत्वादिगुणकं चेतनमाक्षिपन्तीति श्रुतितदनुपपत्तिप्रमाणकएवाय प्रत्यगात्मा नतु प्रत्यक्षानुमानादिप्रमाणक एवेति । शरीरविनाशादनन्तरजायमानस्वर्गादिसाधनयागादिकर्मणामनुष्ठान तादृशशास्त्रविधानं वा भोक्तुरात्मनोदेहभिन्नत्व नित्यत्वमन्तरेण न सघटते इति विलक्षणात्मसिद्धिर्जायते एवेति सर्वमुपपद्यते न किञ्चिदपिहीयते । अथैवमपिविलक्षणात्मनोदेहभिन्नत्वेसिद्धेपितस्येन्द्रियादिभेदोनैव सिद्ध इति चक्षुरादिकरणानामेवात्मत्वभवतु इति चेत्सत्यम्, विकल्पासहत्वात् किं ? गोलकमि-न्द्रियम् तदतिरिक्त वा नाद्यस्तस्यानित्येननित्यात्मरूपत्वाभावात् । द्वितीयपक्षस्तुशास्त्रप्रमाण-

अथ शास्त्रंहिताहितप्राप्तिपरिहारमात्रंबोधयति, नतु सिद्धात्मबोधकं ततश्च शास्त्रेणात्मावबोधोभवतीति कथमुच्यते । आत्मातुसिद्धवस्तुतदवबोधनं तु अनुमानागम मन्तरेण न सिद्धयेत् । शास्त्रतु आत्मन उपकरणरूपेणैवेन्द्रियसिद्धिर्ब्रूते इतिशास्त्रेणविलक्षणात्मनस्तदतिरिक्तस्यसिद्धिर्भवत्येव ।

। इतिविलणात्मन शास्त्रैकप्रमाणकत्वनिरूपणप्रकरणेतत्त्वदीप ।

ननु "स्वर्गकामोयजेत" इत्यनुज्ञा "न कलञ्जभक्षयेदितिनिषेध "ऋतौभार्यामुपेया' दिति लौकिकी, अनुज्ञा "गुर्वङ्गनानोपगच्छेदितिपरिहारस्तथा च, शास्त्रमात्रहिताहितप्राप्तिपरिहारकमेव "आम्नायस्यक्रियार्थत्वादानर्थक्यमतदर्थानाम् " [सर्वोपिवेदभाग क्रियाकार्यार्थमात्रप्रतिपादक अतदर्थानामक्रियार्थप्रतिपादकानान्त्वानर्थक्य नैरर्थक्यमेवेतिजैमिनिसूत्रार्थ] एवञ्च "वज्रहस्त पुरन्दर " इत्यादिसिद्धवस्तुप्रतिपादकार्थवादिना वेदभागानामानर्थकत्वप्रसज्येत, इत्यालोच्य "विधिनात्वेकवाक्यत्वात्स्तुत्यर्थेनविधीनांस्यु " इत्यादिना "सोरोदीत् तद्रोदीत् तद्रुद्रस्यरुद्रत्वमित्यादि, निषेधार्थवादानावैयर्थ्यमाशङ्क्य "वर्हिषिरजत न देयम् " इति निषेधविधिना तस्यैकार्थ्यात् तेषामक्रियार्थप्रतिपादकानामपि, अन्यशेषतयैवसर्वस्यवेदभागस्यचारितार्थ्यप्रदर्शितम् । न चैव तर्हि "सत्यज्ञानमानन्दम् " इत्यादिसिद्धात्मवस्तुप्रतिपादिकागमानाकागतीति वाच्यम् "आत्मावारेद्रष्टव्य " इत्याद्यात्मोपासनविधिपराणा तेषामुपासनाविधिशेषतयैवचरितार्थत्वसम्भवात् । न च "पुत्रस्तेजात. कन्यातेगर्भिणीजाता" इत्यादिसिद्धपुत्रादिबोधकाना यत् प्रामाण्यतदपिहीयेत इतिवाच्यम् , तत्रजात पुत्र त पश्येतिविधिवाक्यशेषतयैवप्रामाण्यस्य सम्भवात् । एवञ्च सिद्धार्थबोधकत्वशास्त्रस्य न कुत्रापि दृष्टम् । किन्तु हिताहितप्राप्तिपरिहारकत्वबोधनमेव । एव स्थितौसिद्धात्मावबोधकत्वभार: शास्त्रस्यशिरसिकथमुपक्षिप्यते । अर्थात् हिताहितप्राप्तिपरिहारबोधकस्यशास्त्रस्यतदवबोधकत्वात् , शासनादेवतस्यशास्त्रत्व नतु सिद्धवस्तुप्रतिपादनात् , कार्यपरतयैवागमस्यचरितार्थत्वात् । यदपि कुत्र चिदात्मादिबोधनपरत्वदृश्यते नतत् साक्षात किन्तु "आत्मोपासीत" आत्मावारेद्रष्टव्य " इत्यादि उपासनाविधीशेषतयैव "तद्रोदीत् सोऽरोदीत्" इत्यादिनिषेधार्थवादानाम् । वर्हिषिरजतं न देयमितिनिषेधविधिशेषतावदिति । न च यदि आत्मानशास्त्रप्रमाणकस्तदातदवबोधनं कुत प्रमाणादिति चेत् ? अनुमानागममूलकप्रत्यक्षेणैवतद्बोधनात् , यथा ममगृहमित्यत्रगृहदेहयो. प्रत्यक्षेणग्रहण तथैव "ममेद शरीरम् " इत्यत्रापि, आत्मदेहयो प्रत्यक्षेणैवसिद्धिर्भवति । "ममेद शरीम् " इदमहजानामीत्यादिस्थलेघटादिदृश्यवस्तुभ्यआत्मन प्रत्यक्षेणैवग्रहणम् । एवमेवदेहादपिपृथग्भूत आत्मा प्रत्यक्षेणैव गृह्यते । अक्षरार्थस्त्वेवम् , देहादिव्यतिरिक्तविलक्षणात्मनि, अनुमानमात्रगम्यत्वमागममात्रप्रमाणकत्ववेतिमतभेदेनगतप्रकरणेनोपपादितम् । सम्प्रतिमीमासकमतमाश्रित्यात्मन प्रत्यक्षगम्यत्वमेवेतिनिरूपयितुमुपक्रमते **अथ शास्त्रंहिताहित** इत्यादि, तत्र हित वलवदनिष्टाननुबन्धीष्टसाध-

कारणभूतप्रत्यक्षेणैवबोधितो भवति, 'ममेदंशरीरम्' 'घटादिकमहंजानामीति' प्रत्ययात्। यथा घटादिदृश्येभ्यः पार्थक्यतयाऽत्माप्रत्यक्षीक्रियते तथैव देहात्पृथग्भूतःप्रत्यक्षेणैव विषयो भवति नतु श्रौतः स आत्मेति ।

अत्रोच्यते, नात्मेन्द्रियग्राह्यः "इन्द्रियार्थसंन्निकर्षजन्यंज्ञानंप्रत्यक्षमितिप्रत्यक्ष लक्षणत्वात्, रूपस्पर्शादिमानेवार्थ इन्द्रियजनितज्ञानविषयो भवति घटादिः । आत्मा नतारूपम्, तच्चशास्त्रमात्रप्रमाणैकसमधिगम्यमेव "स्वर्गकामो यजेत" ऋतौभार्यामुपेयादितिरूपम् । अहितं वलवदनिष्टजनकतारूपमेव, यथा "नकलञ्जभक्षयेत्" तत्र "विपाक्तेनैववाणेनहतो यौमृगपक्षिणौ । तयोर्मांशकलजस्यात् शुष्कमांसमथापि वा ।" अथवा लशुनगृञ्जनादिक "लशुनगृञ्जन चैवपलाण्डुकवकानिच । अभक्ष्याणिद्विजातीनाममेध्यप्रभवाणि च । शुष्कमांसा स्त्रियोवृद्धा वालार्कस्तरुणदधि । प्रभाते मैथुन निद्रा सद्य प्राणहराणिषट् ।" इत्यादिशास्त्रेणक लञ्जभक्षणादेर्निषेधेनतस्यशास्त्रसमधिगम्यत्वमेव ।

तथा च हिताहितप्रवर्तनैकपरस्यशास्त्रस्यशिरसिसिद्धार्थात्मपरत्वस्यापिभारपरिकल्पनमहाभारोपरोपणमयुक्तमेव भवति । "अप्राप्तेशास्त्रमर्थवत्" इतिन्यायेनकदाचित् कार्योपयोगीआत्मानन्यलभ्यो भवेत् तदा तत्र शास्त्रतात्पर्यकल्पनमपिस्वीकुर्यात्, नत्वन्यलभ्येशास्त्रतात्पर्यकल्पनसमीचीनम् प्राप्तेकर्मणि नानेकोविधातुशक्यते गुण । अप्राप्तेतु विधीयन्तेवहवोप्येकयत्नत । अप्राप्तप्रापकोवेदभागो विधिरितिविधिलक्षणात्, प्राप्तप्रापकस्तु न विधिरपित्वनुवादक एव । प्रकृते च देहादिविलक्षण आत्मा "ममेदशरीरमित्यादिप्रत्यक्षेणैवस्फुटमधिगतो भवति, इतिनात्राप्राप्तप्रापकत्वरूप प्रामाण्य शास्त्रस्य भवतीति विशिष्टाद्वैतवादिन प्रति मीमासकस्यपूर्वपक्ष ।

अथ घटादिवाह्यपदार्थवत् सुखदुखाद्यान्तरपदार्थवत्, सर्वस्यानुभावकआत्मापीन्द्रियजनित ज्ञानप्रमाण एवेति मीमांसका कथयन्ति, तत्र सर्वप्रमाणज्येष्ठसर्वप्रमाणमूलभूतप्रत्यक्षेणैवात्मनो पिग्रहणसभवेन प्रत्यक्षप्रमाणक एवेतितदात्मसाधनायशास्त्रशिरसिभारोपन्यासोऽयुक्त एव । यत शास्त्रस्यकार्यार्थे एव प्रमाण्योपगमात् "आम्नायस्यक्रियार्थत्वादानर्थक्यमतदर्थानामिति वचनात् । नतु सिद्धात्मप्रतिपादकत्वशास्त्रस्यहिताहितप्राप्तपरिहारमात्रबोधनेनहितादिशासनतयैव शास्त्रस्य चरितार्थत्वात् । सिद्धार्थप्रतिपादनपरकत्वतु प्रत्यक्षस्यैवेति, तदात्मनोपि सिद्धार्थरूपतयातद्बोधक मपिप्रत्यक्षमेवेति यत् श्रोत्रिय प्रतिमीमासकस्यवचनतन्निरसितु श्रोत्रियाविशिष्टाद्वैतवादिनउपक्रमन्ते **अत्रोच्यते** इत्यादि । सत्यम्, "प्रवृत्त्याद्यनुमेयोयरथगत्येवसारथि । अहकारस्याश्रयोयमनोमात्र स्यगोचर" इत्यादिवचनमुपश्रुत्यमीमांसकाआत्मनोपिप्रत्यक्षप्रमाणकत्वमन्यमाना आत्मन प्रत्यक्ष ग्राह्यतामन्यन्ते परन्तुतदीयमतविचार्यमाणेसिकताकूपवद् विशीर्यते । तथाहि योयमात्माप्रत्यक्ष ग्राह्यो भवतीत्युच्यते, सकिं वाह्यप्रत्यक्षविषयआन्तरप्रत्यक्षगाह्योवेति । तत्रान्तरप्रत्यक्षग्राह्यत्वमुप

नुरूपस्पर्शादिमान् । "अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम् " इत्यादिश्रुत्याऽत्मनिरूपादेः प्रतिषेधात् । नवा घटादिवदात्माप्रत्यक्षज्ञानविषयः "पराञ्चिखानिव्यतृणत् स्वयंभूः" इत्यादिशास्त्रेणात्मनःप्रत्यक्षाविषयत्वप्रतिपादनात् ।

किञ्च यदिन्द्रियग्राह्यंतद्बाह्यमेवनान्तरम् , तस्मान्नात्मेन्द्रियज्ञानविषय आन्तरत्वात् । तस्मात् आत्मानेन्द्रियप्रमाणकोऽपितुशास्त्रमात्रप्रमाणकः ।

रिष्यान्निराकरिष्यते । प्रथमपक्षोपि नसमीचीन यत रूपवद्द्रव्यतदेवचक्षुपागृहीत भवति, आत्मातु न घठादिवत् रूपि द्रव्यम्, श्रुत्याऽत्मनोरूपादिमत्वस्यनिराकरणात "अशव्दमस्पर्शमरूपमव्ययम्, तथाऽरसनित्यमगन्धवच्चे"त्यादिश्रुत्यारूपादिमत्वस्य तस्मिन् निषेधकरणात्, नात्माचक्षुर्ग्राह्य चक्षुर्हिआलोकसयोगरूपरूपादिसहकारेणरूपिद्रव्यगृह्णाति, तथा रूपरूपत्वरूपाभावादिक च गृह्णाति आत्मातुश्रुत्यनुभवाभ्याा रूपविरहित इति न चाक्षुष । स्पर्शाभावेन च नत्वगिन्द्रियग्राह्य स्पर्शसहकारेणैवत्वगिन्द्रिय स्पर्शवद्द्रव्यग्राहक भवति, यथावायुर्घटादिवात्वगिन्द्रियगृहीतो भवति। रूपस्पर्शरहितद्रव्यतु न चक्षुषागृह्यतेनवात्वगिन्द्रियेण, यथा द्रव्य भवदपि गगन न चक्षुपा नवात्वगिन्द्रिय ग्राह्यतांभजते तथैवात्मनिरूपस्पर्शाभावेनात्माचक्षुर्विषयोनवात्वगिन्द्रियज्ञानविषयो भवति कालाकाशादिवदेवेति । यत आत्मानचक्षुरादिविषय किन्तु बाह्यपदार्थ एवेन्द्रियग्राह्य अत सर्वसर्जकमपिब्रह्माणमुपहसतीवश्रुति "पराञ्चिखानिव्यतृणत्स्वयभू तस्मात् पराग्पश्यति नान्तरात्मन् । कश्चिद्धीर प्रत्यगात्मानमैच्छदावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन्" अयमर्थ श्रुते स्वयभू सर्वसर्जक प्रथमोजीवोधातासर्जनसमये एव, स्वानिस्वोपलक्षितानिचक्षुरादीन्द्रियाणिव्यतृणदिन्द्रियाणा चक्षुरादीनाहिसनंकृतवान् अर्थात्, वहिर्मुखत्व कृतवान्, तेनकारणेनेन्द्रियजात पराग्वाह्यविषयमेव पश्यति । नान्तरात्मन्=अन्तरात्मान न विजानन्ति, किन्तु परागर्थरूपस्पर्शादिविशिष्टमेवघटादिक विषयीकुर्वन्ति, प्रतीचमात्मानंनैवजानन्ति । प्रजापतिनायदेनेपावहिर्मुखत्वकृनतदेवैतेषा हिंसनम् । इत्यादिश्रुत्या, एतदेवफलतियन्द्रियाणां विपय प्रत्यगात्मा न भवति । एतावता, आत्मानेन्द्रियग्राह्यआन्तरत्वात् रूपादिरहितत्वाच्चेत्येवफलति । एतेनेन्द्रियग्राह्यत्वमात्मन इति मीमासकमत तन्निराकृत भवतीतिश्रोत्रियोनिवेदयति । अक्षरार्थस्त्वेव भवति, रूपादिव्यतिरेकिणि=रूपस्पर्शादिरहेतेवस्तुनि चक्षुषोऽसामर्थ्यात् द्रव्यस्यचाक्षुषादिप्रत्यक्षेउद्भूतरूपस्पर्शान्यनरस्य हेतुत्वात्, उद्भूतरूपनयनस्यगोचरोद्रव्याणितद्वन्ति पृथक्त्वसख्ये । विभागसयोगपरापरत्वस्नेहद्रवत्वपरिमाणयुक्तम् । क्रियाजातिर्योग्यवृत्ति समवायश्च तादृश । गृह्णाति चक्षु सयोगादालोकोद्भूत रूपयोरिति । ततश्चात्मनिरूपस्पर्शयोरभावादात्मनोवाह्यप्रत्यक्षत्वनैव भवतीति । आत्मासूक्ष्मेभ्योपिनिरतिशयसूक्ष्मइति कथनेनेन्द्रियायोग्यत्वमाविष्कृतम् । योग्य एव प्रत्यक्षविषयता प्राप्नोति ना योग्यस्यप्रत्यक्ष भवति । अतएवोद्भूतरूपादिविशिष्टस्यचक्षुसयुक्तस्यापिपरमाणोश्चक्षुषाग्रहण न

पुनर्भट्टःशङ्कते चक्षुरादीनीन्द्रियाणिभौतिकानि, आत्माचाभौतिक इति अभौतिकेआत्मनिभौतिकानामिन्द्रियाणाग्रहणंमाभवतु, परन्तु, मनस्त्वभौतिकमित्यभौतिकेन मनसाऽत्मनोग्रहणे काक्षतिरिति । तदपिमन्दम् इन्द्रियान्तरवन्मनसोपिभौतिकत्वात् "अन्नमयं हि सोम्यमन आपोमयःप्राणस्तेजोमयीवागिति" श्रुतेः । तन्नमनसाप्यात्म ग्रहणमितिदिक् ।

भवति । इतरकारणसाकल्येपिमहत्वाभावादितिन्यायविद कथयन्ति । अर्थात् योग्य एव प्रत्यक्ष भवति ना योग्य इति भाव। । आत्मनइन्द्रियाग्राह्यत्वे श्रुतिप्रमाणमपिदर्शितम् "पराञ्चिखा निव्यतृणत्स्वयभू स्तस्मात् पराक् पश्यतिनान्तरात्मन् " इति । वाह्यार्थमात्रग्रहणपटुत्वमेवेन्द्रियाणानत्वान्तरसूक्ष्मग्रहणसामर्थ्यमिति । किञ्चवाह्यार्थग्रहणमचित्वव्याप्यम्, यत्र वाह्यार्थग्रहण तत्रचित्वमवश्यमेव आत्मानेन्द्रियगृहीतो भवति आन्तरत्वात् यन्नैव यथा घटादिर्वाह्य इति ।

आत्माप्रत्यक्षो घटादिवदेवेन्द्रियग्राह्य इतिभट्टमतम् , तन्मतस्यगतप्रकरणे निराकरण कृत वान् स्वयुक्तिभि श्रोत्रिय इति तदुपश्रुत्यभट्ट पुन शङ्कते भवतुनामचक्षुरादिकम् पृथिव्यादि भूतत्वादेवभौतिकमिति भौतिकेनबहिरिन्द्रियेणाभौतिकस्यात्मनो ग्रहण न भवतु, परन्तुमनस्तु न भौतिकमपित्वभौतिकमिति, अभौतिकेनान्तरेणमनसाऽन्तरस्यात्मनो ग्रहणस्यादिति प्रत्यक्ष एवात्मा, तत श्चात्मन शास्त्रैकप्रमाणकत्वकथन न युक्तमिति प्रश्नयितुमुपक्रमते **पुनर्भट्टः शङ्कते** इत्यादिना, अवतरणेनैवमीमासकस्यपक्षोव्याख्यातएवेति न तद्विवरणमावश्यकम् । श्रोत्रियउत्तरयति **तदपि मन्द**मित्यादिघ्राणेन्द्रियपार्थिवगन्धवत् पृथिवीत्वात् कुकुमगन्धाभिव्यञ्जकगोघृतादिवदित्यनुमानेन घ्राणेन्द्रियेपार्थिवत्वेपार्थिवत्वादेव गोघृतवद्गन्धग्राहकमर्थात्गन्धादिमत्वादेवघ्राणादेरिन्द्रियस्यगन्धादिग्राहकत्वव्यवस्थित तेन च तस्य भौतिकत्व च व्यवस्थितम् । घ्राणरसनादिदृष्टान्तेन मनसोपिभौतिकत्वसिद्ध्यत्येव मनोभौतिकम्, इन्द्रियत्वात् घ्राणादिवदेवेति । एवञ्च घ्राणादेभौतिकत्वात्, यथाऽभौतिकात्मग्रहण न भवति तथैव भौतिकेन साप्यभौतिकात्मनोग्रहण न सभवति । न च मनसि, इन्द्रियत्व भवतु भौतिकत्व माभवतु इति शङ्कायामनुकूलतर्काभविकथमनसो भौतिकत्वमिति मनसोभौतिकत्वसाधयितुमनुकूलतर्कसवलित श्रुतिमुदाहरति "अन्नमय हि सोम्यमन " इत्यादि, हे सोम्य, श्वेतकेतोयदिदमनोऽन्त करण सुखादिग्राहकलोकेप्रसिद्ध, तन्मनोऽन्नमयपृथिव्या विकारात्मकमेव, अन्नमयहीत्यत्र मयट् प्रत्ययोविकारार्थे । यद्यप्यन्नमयोयज्ञइत्यादौप्राचुर्येर्थेपिदृष्टस्तथापि प्रकृतेप्रकरणवलाद्विकारार्थकएव । अन्नमयमर्थात् अन्नस्यपृथिव्याविकाररूपमेवघटादिवत् , प्राणबद्वा। तथा च यथा घ्राणेन्द्रियमभौतिकस्यात्मनो न ग्राहकमन्नमयेन्द्रियत्वात् तथैव भौतिकमनोपितस्य न ग्राहकमर्थात् मनोनात्मग्राहकपार्थिवेन्द्रियत्वात् घ्राणवदेव, यथा घ्राणमिन्द्रियमितिपार्थिव गन्धादेर्गुणस्यैव ग्राहकमवतिनत्वभौतिकसुखादेस्तथैवमनोपिभौतिकत्वात् नात्मनो ग्राहकम् । ततश्च मनइन्द्रियेणात्मनोऽग्रहणात् प्रत्यक्षप्रमाणक एवात्मेतिभाट्टमतयुक्तिश्रुत्यादिबाधितमेवेति सक्षेप ।

अथभाट्टः श्रोत्रियमतं प्रतिक्षिपन् पुनः शङ्कते, भवति हि सर्वलोकसाक्षिकोऽहमस्मीतिप्रत्यक्षावभासः । न चायमस्मीतिप्रत्यय ऐन्द्रियकत्वमन्तरासम्भवति दृश्यते च बहिरिन्द्रियविषयेऽपिसुखाद्यन्तराविषयेऽन्तःकरणस्यस्वातन्त्र्यंतदन्तःकरणनिमित्तकाहंप्रत्ययोयुक्तएवेति ।आत्मामानसप्रत्यक्षग्राह्योबहिरिन्द्रियाऽयोग्यत्वे सति प्रत्यक्षज्ञानविषयत्वात्, सर्वानुभवसिद्धसुखदुःखादिवदिति ।

ननु कथमुच्यते आत्मा नप्रत्यक्षोयावताबहिरिन्द्रियासनिधानेपि "अहमस्मीतिप्रत्यय सर्वसचेतसा जायते एव । सचायप्रत्योनानुमानगम्य अव्यभिचरितहेतोरभावात्, नापिशाब्द तादृश प्रत्ययस्थलेनियमत शब्दोपस्थानाभावात् । नापिबहिरिन्द्रियजन्य बहिरिन्द्रियाणामभावेपि तादृशप्रत्ययस्यसद्भावात् । तस्मात् सर्वलोकानुभविकोऽयप्रत्यक्षग्रहोजायते एवेति । परिशेषान्मनो जनित एवेति निश्चीयते । न च बहिरिन्द्रियोपस्थापितविषय एव मनसागृह्यते इति वक्तु योग्यम्, यतो दृश्यते स्वप्नेजागरणेपिसमयविशेषे सुखादिप्रत्ययोरथादिदर्शन च भवतीति । तत्रान्येषो करणानामभावेकेवलमनोनिमित्तक एव सुखादिरथादिप्रत्ययश्च, स च मानस । यद्यपि बाह्यविषयग्रहणे "अस्वतन्त्राबहिर्मन" इतिन्यायेनमनस पराधीनत्वेपि, आन्तरग्रहणेमनस स्वातन्त्र्यस्य सर्वानुमतत्वात् । कथमन्यथास्वप्नकालेरथादीनामनुभवस्तज्जनितसस्कारेणकालान्तरेरथादिकस्मरामीति प्रत्यय । तस्मादान्तरितसुखादीनामनुभवने बाह्यनिरपेक्ष मन एव कारणमिति तज्ज्ञानंमनइन्द्रियजनित प्रत्यक्षमेवेतिप्रत्यक्षप्रमाणकआत्माभवत्येवेति न भवति भट्टमतस्यनिराकरणमित्याशयेनभाट्ट पुन श्रोत्रियमतप्रतिक्षेप्तुमुपक्रमते **अथ भाट्ट** इत्यादि । परोक्षप्रतीतिभिन्न प्रत्यय प्रत्यक्षमितियावत् । लौकिकविषयतासम्बन्धेनजायमान प्रत्यय इति । सुखादिविषये मनसा स्वातत्र्यनामबहिरिन्द्रयानपेक्षज्ञानजनकतारूपमेव । आत्मामानसप्रत्यक्षग्राह्य =मानसप्रत्यक्षनिरूपितलौकिकविषयतावानित्यर्थ । तथा चात्मनोमानसप्रत्यक्षयोग्यत्वेऽनुमान भवति, आत्मामानसप्रत्यक्षग्राह्य बहिरिन्द्रियाऽयोग्यत्वेसतिप्रत्यक्षज्ञानविषयत्वात्, सुखादिवत् इत्यनुमानफलति । अत्रसर्वानुभवसिद्धोजीव पक्ष । मानसप्रत्यक्षग्राह्यइति साध्यम्, एतावता आत्मनोऽनुमानादिविषयत्वंप्रतिक्षिप्तम् । बहिरिन्द्रियायोग्यत्वेसतीत्यादिर्हेतु । अत्र विशेष्यमात्रस्योपादाने, रूपवान् घट इति प्रत्यक्षे, प्रत्यक्षत्वहेतोर्विद्यमानत्वेन तत्रमानसप्रत्यक्षग्राह्यत्वलक्षणसाध्याभावेन, साध्याभावाधिकरणे सद्भावे हेतोर्व्यभिचारदोषप्रसङ्गात् । अतोबहिरिन्द्रियाऽयोग्यत्वेसतीतिविशेषणोपादानम् । तथा च घटादिप्रत्यक्षस्यबहिरिन्द्रययोग्यत्वेनविशेषणविशिष्टहेतोरभावेनव्यभिचारादिर्दोष ।

। इतिभाट्टाक्षेपेतत्त्वदीप ।

आत्मामानसप्रत्यक्षग्राह्योबहिरिन्द्रियाऽयोग्यत्वेसतिप्रत्यक्षत्वात्सुखदु खादिवदितियत् भाट्टानु-

तदेतन्मतं न युक्तम् ज्ञानेनसंवेदनपदवाच्येन निरुक्तानुमानेऽनैकान्तिकत्वात्। न च संवेदनमप्रत्यक्षम् जानामीत्यनन्योपाधिकतयाभासमानत्वात् । ज्ञानस्यपरोक्षत्वे च

मानप्रकृततत् प्रभाकरमतद्वारेणदूषयितुमुपक्रमते श्रोत्रिय **तदेतन्मतं न युक्तमित्यादि,** यदेभि र्भाट्टैरनुमानेनात्मनोमानसप्रत्यक्षविषयत्वप्रतिष्ठापितम्, तन्मत न युक्तम् । कुतो न युक्तम्, तत्राह **ज्ञानेनेत्यादि** । अर्थात् यदेतदनुमानतत्रत्योहेतुर्ज्ञानेसवेदनापरपर्यायेति परन्तु तत्रसाध्यमानसप्रत्य क्षवियत्वनास्ति, यतोज्ञानस्यातीन्द्रियत्वेनज्ञातताल्लिङ्गकानुमानग्राह्यत्वस्वीकारेण, हेतुसद्भावेसाध्यस्य मानसप्रत्यक्षविषयत्वस्याभावात्, ज्ञानस्यज्ञातताल्लिङ्गकानुमितिग्राह्यत्वादिति । सवेदनेप्रत्यक्षत्वहेतोर्व्य भिचारमेवोपपादयति **न च संवेदनमप्रत्यक्षम्, जानामीत्यनन्योपाधिकतया भासमानत्वा दिति** । साध्याभावाधिकरणेहेतोर्वर्तमानत्वमेव व्यभिचार इति व्यभिचारस्यलक्षणम् । तत्रसविदि, हेतुघटकविशेषणाशस्यबहिरिन्द्रियायोग्यत्वेसतीत्यस्यसिद्धिर्यद्यप्यस्त्येवज्ञानस्यबहिरिन्द्रियाऽयोग्यवात्,- विशेष्याश प्रत्यग्त्वात् इत्ययमगतावत्साधयति, तत्राह **न च संवेदनमप्रत्यक्षम्** अथात् तत् सवेदन प्रत्यक्ष न भवतीति न च वक्तव्य किन्तु प्रत्यक्षमेव, तस्मात् प्रत्यक्षत्वरूपहेतुघटकप्रत्यक्षत्व लक्षणविशेष्याशो नासिद्धोऽपितुसिद्ध एव सविद प्रत्यक्षत्वस्वीकारात् । बहिरिन्द्रियाऽयोग्यत्वे सतिप्रत्यक्षत्वादितिहेतुघटकप्रत्यक्षत्वविशेष्याश कथनासिद्धस्तत्राह **जानामीत्यादि** जानामीत्याका रेण, अनन्योपाधिकतया=लिङ्गज्ञानपदज्ञानादिकारणनिरपेक्षतया जानामीतिप्रत्ययस्य **भासमानत्वात्** =प्रकाशनात्, अर्थात् परोक्षज्ञानकारणलिङ्गादिकारणनिरपेक्षतयाऽहजानामीति प्रत्ययस्यप्रकाशदर्श नेन हेतो प्रत्यक्षत्वस्यज्ञानेसिद्धत्वात्, ननु कथमुच्यते अनन्योपाधिकतया, अर्थात् लिङ्गादिपद ज्ञानादिकारणानपेक्षतयासवेदनस्यप्रतिमानम्, यावता "घटत्वप्रकारकघटविशेष्यकज्ञातताघटत्व प्रकारकज्ञानसाध्यातादृशज्ञाततात्वादिति ज्ञाततावलेनैवज्ञानस्यानुमान भवतीत्यनन्योपाधिकत्वमेव- ज्ञानप्रतिभासस्यनैवसिद्धमित्याशकायामाह **परोक्षत्वे च** इत्यादि, यदिज्ञान प्रत्यक्ष न स्यात्तदा तादृशसवेदनस्यसिद्धिरेव न साधकाभावात् । अर्थात् ज्ञानव्यतिरिक्तायाज्ञाततायांज्ञानज्ञापकलिङ्ग रूपेणाभिमतायास्वातन्त्र्येणकस्यचित्प्रमाणस्याभावात्, प्रमाणेन प्रमेयसिद्धिरितिनियमेनप्रमाणाभावे ज्ञातताया सिद्धेरभावात् । सत्याअपिज्ञाततायाअतीन्द्रियत्वेन, ज्ञानस्यातीन्द्रियतेनाविनाभावग्राह्या योगात्, ज्ञानजनकसामग्र्या अर्थात्ज्ञानोत्पादिकाया ज्ञातताया एव साक्षाज्जननसभवात् तन्मध्ये ज्ञानकल्पनायानैरर्थक्यमेवेति न ज्ञानसिद्धि स्यात् ज्ञानस्याप्रत्यक्षत्वे, तस्माज्ज्ञानान्यथाऽनुपपत्त्यैव ज्ञानस्यप्रत्यक्षत्वमितिभाव । ननु यथा सवेदनेहेतुर्विद्यते साध्यं न विद्यते तत्रसवेदनेव्यभिचार उद्भावितो, यथा अयोगोलकेवह्निरस्तिधूमसाध्यनास्तीतितद्वत् । परन्तु यथा पर्वतपक्षेधूमेनवन्हि- साधनसमयेचत्वरेधूमसद्भावेनवन्हेस्तदानीमनिश्चित इति दोषमुद्भाव्य, चत्वरेपिवन्हिनिर्णयोऽभिमत इति चत्वरादे सपक्षकोटिप्रवेशेनव्यभिचारोनिराक्रियते तथैव प्रकृते सवेदनेहेतुसद्भावेसाध्यमपिविद्यते

ज्ञानस्यसिद्धिरेव न स्यादित्युक्तप्रायत्वात् । न च ज्ञानमपिमानसप्रत्यक्षविषयतया सपक्षान्तर्गतम् , विकल्पासहत्वात्, यदाकुतश्चिदात्मनः संयोगाद्विषयाकारासंविदु-देति, तस्मिन्नेन समये किं तद्विषयकेज्ञानमपिजायते, अथवा तदन्यकालेतद्भिन्नकारणेन ज्ञानान्तरमुत्पद्यते इति वक्तव्यम् । न चोभयविषयकज्ञानस्ययुगपदेव संभवः । तथा

चत्वरादे सपक्षकोटिनिक्षेपादित्याशकानिरसितुमुपक्रमते **न च ज्ञानमपिमानसप्रत्यक्षविषयतया सपक्षेति** । यथा चत्वरादेर्वन्हिसाधकधूमादिपक्षेनिक्षेपस्तथैवेहापिसवेदनस्यापिसपक्षेएवप्रवेशोयावता-सवेदनस्यापिमानसप्रत्यक्षविषयत्वात् । ततश्चनात्रव्यभिचारोद्भवनम् , यतो नहि सपक्षेव्यभिचारोद्भा-वनयुक्तम्, यतस्तत्रापिसाध्यस्यसिसाधयितुमिष्टत्वात्, इतिवचनात्, इतिप्रश्नाशय । तदियपक्ष-विकल्पासहत्वादुद्धर्तुमाह **विकल्पासहत्वादिति**, विकल्पासहनान्नायपक्षोयुक्तियुक्त । तानेव विक-ल्पान् दर्शयितुमाह **यदाकुतश्चित्** इत्यादि, यस्मिन्कालेआत्मन सयोगात्मकासमवायिकारणबलादा-त्मनिघटादिविषयकज्ञानमुदेति, तदैवतेनैवात्मन सयोगेन ज्ञानविषयक ज्ञानान्तरमपिसमुदेति अर्थात् विषयज्ञानस्यतथा ज्ञानविषयविषयकज्ञानस्य, अर्थादनुव्यवसायस्यापिसमुत्पत्तिर्भवति, अथवा, ज्ञानज्ञानस्यानुव्यवसायस्यान्येनव्यवसायज्ञानजनककारणव्यतिरिक्तकारणेन, अन्यदाकालान्तरेत दुत्पत्तिर्भवतीतिविकल्पद्वयम् । उत्तरयति=**नचोभयेत्यादि** अर्थादेकैवात्मन संयोगेनविषयविषयक-व्यवसायस्तदनुव्यवसायस्यचोत्पत्तिर्भवतीतिप्रथमकल्पो न युक्त । कुतो न युक्तस्तत्राह **तथा सतीत्यादि** अर्थात् एकसमये एवोभयोरुत्पत्तिस्वीकारे, विषयज्ञानस्योत्पत्तिसमये एव ज्ञानविषयक-ज्ञानस्यापि तस्मादात्ममन सयोगबलादुत्पत्तिस्वीकारे पूर्वोत्तरीभूतज्ञानस्यतज्ज्ञानस्यतदन्यज्ञानादीनाम-नेकेषासमुदायस्ययुगपदेवोत्पत्तिरपरिहार्यास्यात् । कार्यकारणयो समानकालत्वेतयो परस्परकार्यकारण भावस्यैवविलोपो भवेत्, कार्यकारणोत्तरकालभावि, कारण च कार्यान्नियमत पूर्वकालभावि, यदा-दण्डादिघटादिकार्यात , पूर्वमेवोदयमासादयतितदैवतस्यकारणत्वकार्यत्वं च तदुत्तरभाविनो घटादे । यदि कार्यकारणयो समकालत्वतदाकस्यपूर्ववृत्तित्वकस्यचोत्तरकालवृत्तित्वमितिनियमो न स्यात् नहि समानजातयो सव्येतरविषाणयोर्मध्येएकस्यकारणत्वतदपरस्यकार्यत्वभवतीति दृश्यते । तत्कस्य हेतोर्नियामककारणस्यविनिगमनाभावात् । यथावा समानकालेसमागतयोर्द्वयो साध्वोरेकस्मिन् दवालययो-र्मध्ये एक शासकोमहंन्तपदवाच्योभवदपरश्चखडियापलटनोऽतिथिरितिकथ्यते । तत्कथ ? पूर्वकाल-भाविन शासकत्वपरकालागतस्यातिथित्वमित्येवमत्रापिद्वयोज्ञानयोर्ज्ञानाना वा समानकालिकत्वेदोष इति न युगपदुदयकारणेनैकेषाम्, तथा समानकारणजन्यत्वेकार्यभेदोपि न स्यात् । यथावटवीजा-ज्जायमानानावृक्षाणावटवृक्षत्व नतु कुटजककोलनिंबादिवृक्षाणावटवृक्षत्व कुत ? कारणभेदात् , तथा च कारणैकेनजायमानयोर्विषयज्ञानतज्ज्ञानयोर्भेदोपिनैवस्यादिति । (अथवाऽयग्रन्थ प्रकारान्तरेण-योजनीय· तथाहि येनात्मन सयोगरूपासमवायिकारणेन घटाविषयकप्रथमममनुभवात्मकज्ञानमुत्पद्यते,

सति विषयज्ञानोदयकाले एव विषयज्ञानस्यतज्ज्ञानपरपराया युगपदुदयप्रसङ्गात्। न-चैवं भवति कुत्रचित्, उपपद्यते वा ज्ञानसमुदायस्ययुगपदुत्पत्तिस्वीकारेविषयविषयित्व-नियमश्चाकारणकएवापद्येतेतिनिर्बन्धनःस्यात्। असमसमयविभिन्नकालजन्मनाज्ञानेन तेनैवात्ममन सयोगरूपासमवायिकारणेनतदनुव्यवसायस्योत्पत्तिर्भवति। अथवा सयोगान्तरेणानु-व्यवसायस्यापिसमुत्पत्तिर्भवति? तत्र एकेनैवासमवायिकारणात्ममन सयोगोनोभयोरुत्पत्तिरिति प्रथमपक्षो न युक्त अनुव्यवसायज्ञानप्रतिकर्मकारकतयाजनकस्यव्यवसायज्ञानस्यव्यवसायज्ञान-जनितानुव्यवसायकार्यस्ययुगपदुपन्यासासभवात् करणस्यप्रत्ययपर्यायेसामर्थ्याभावात्।

यतोऽसमवायिकारणात्ममन सयोगस्यभेद एव ज्ञानस्यभेदेकारणभवतीति। अन्यथा यतो-ऽसमवायिकारणभेदस्यज्ञानभेदहेतुत्व न मन्येत तदासमवायिकारणादे सर्वज्ञानोत्पत्तौसमानतयातदति-रिक्तकारणान्तरस्यापेक्षासभवेनघटानुभवतदीयस्मरणयोरनुभवान्तरस्य घटादिविषयस्ययुगपदेवसमुत्प-त्तिरापद्येत। ज्ञानभेदेऽसमवायिकारणभेदस्यनियामकत्वेतुनायदोप प्रादुर्भवति, यतोज्ञानसामान्य-प्रति सर्वत्रासमवायिकारणात्ममन सयोगस्यविभिन्नस्यैवाभ्युपगमेन युगपत् घटानुभवतदीयस्मरणा-दीनामापत्तिर्नभवति, आत्ममन सयोगस्यसर्वत्रभिन्नभिन्नस्यैव सत्वेनानुभवस्मरणादीनाविभिन्नानामेवो-त्पादात्। क्रमरहितकारणेनकार्यक्रमस्यायोगात्। बाह्यसामग्रीरूपावच्छेदकक्रमभेदेनकार्यक्रमस्य-भेदस्वीकारेतुयुगपदेककाले एव सप्रयुक्तेषुघटपटादिषुयुगपदेकस्मिन् काले एवानेकज्ञानानामुत्पत्ति प्रसङ्गात्। न चैव क्वचिदपि दृश्यते समुपपद्येतयुगपदनेकज्ञानस्य, तस्मात् प्रथम पक्षो नविचार सह इति। न च येनात्ममन सयोगेनविषयविषयकव्यवसायज्ञानप्रथममुत्पद्यते, तदतिरिक्तात्मम-सयोगरूपकारणेनविषयकज्ञानान्तरद्वितीयज्ञानादिकजायते, ततश्चप्रथमपक्षोक्तज्ञानानायौगपद्यरूप-दोषो न भवतीति, यदयद्वितीय पक्ष सोपिनयुक्त विचारासहत्वादेव। तथाहि घटादिविषयक-ज्ञानोत्पत्तिकाले एव मनसिकर्मतदन्तरततो विभागस्तदनन्तरमनस पूर्वसयोगो य आसीत् तादृशसयो-गस्यविनाशस्तदनन्तरमनसउत्तरसयोगस्यसमुत्पत्तिस्तदन्तरज्ञानान्तरस्यानुव्यवसायादिद्वितीयज्ञानस्यो-त्पाद., इत्यनेकक्षणविलम्बेनजायमानद्वितीयज्ञानस्यग्रहतयाऽभिमतस्य, प्रत्यक्षतयाप्रथमज्ञानात्मक पूर्वज्ञानस्यग्राहकत्व न स्यात् यतोज्ञानस्यक्षणिकत्वेनैतावत्कालपर्यन्तस्थायित्वानुपपत्ते "सम्बद्धवर्त-मान च गृह्यते चक्षुरादिनेतिनियमात्, विषयतासम्बन्धेनज्ञानोत्पत्तौ तादात्म्यसम्बन्धेनविषयस्यकार-णत्वस्याभ्युपगमात्। इहचानेकक्षणविलबेपूर्वज्ञानस्यविनाशेनकस्यग्रहणकरिष्यतिद्वितीयज्ञानम्? तथापि तस्यद्वितीयज्ञानस्यपूर्वज्ञानग्राहकत्वे चिरातीतार्थात् जन्मान्तरप्रथमज्ञानस्यानेकभवानन्तर जायमानत-द्विषयकज्ञानान्तरमपिग्राहकस्यादिति न द्वितीयपक्षोयुक्तइति।) अपि च विषयज्ञानज्ञानज्ञानयो-श्चयदियौगपद्यमेककालिकत्वस्वीक्रियेत तदापिदूषणान्तरवक्ति **युगपदुत्पत्तिरित्यादि** विषयता सम्ब-न्धेनप्रत्यक्षप्रतिविषयस्यतादात्म्यसम्बन्धेन कारणत्वात्, अन्यथाऽतीतानागतविषययोरपिप्रत्यक्षत्वमा-

वेद्यत्वे न प्रत्यक्षत्वम्, क्षणिकतयातदग्रिमज्ञानस्यग्राहकज्ञानोदयपर्यन्तमवस्थानाभा-द्वेत, एतादृशनियमस्वीकारेतुविषयस्यप्रत्यक्षत्वाभिमतकालेऽविद्यमानत्वेनातीतानागतकाले प्रत्यक्षत्व न भवति तदानींविषयाभावादिति । एतादृशश्चनियम, योगिप्रत्यक्षेविषयस्यकारणत्व, नास्तीतिमते । तथा च लौकिकविषमतासम्बन्धेनप्रत्यक्षेतादात्म्येनविषयस्यकारणत्व योगिनातु योगजप्रत्यक्षमतीता-नागतयोरपिभवत्येव योगजधर्मसहकृतेनमनसेति । तथा च प्रत्यक्षे घटादिविषयस्यतादात्म्यस-म्बन्धेनकारणत्वात्, कर्मतयापूर्वज्ञानजातस्यतदुत्तरज्ञानस्यानुव्यवसायापरपर्यायरूपस्यस्वजनकसमा-नाधिकरणपूर्वज्ञानविषकत्वक्रमभावित्वे समुपपद्येत नतु यौगपद्यकथमपि तथा नियम समुपपद्ये तेत्याशय ।

ननु भवतु विषयज्ञानस्यतदुत्तरजायमानानुव्यवसायज्ञानयोर्नतावता किञ्चिदपचीयते इत्या-शङ्कायामाह **असमसमयेत्यादि** असमसमयजन्मना—विभिन्नकालोत्पत्तिमता, तदुत्तरज्ञानेनवेद्यत्व न भवति क्षणिकत्वात् । तत्रज्ञानस्यक्षणिकत्वमुभयथा भवति, यदैवज्ञानजायते तदैवतद्विनाशोपीति-मतमेकबौद्धस्य, ज्ञानप्रथमक्षणेसमुत्पद्यतेद्वितीयक्षणेऽवस्थीयतेतृतीयेविनश्यति, योग्यविभुविशेषगुणाना शद्वज्ञानादीनास्वोत्तरसमानाधिकरणगुणनाश्यत्वनियमादुपपद्यते इतिन्यायमतम्, उभयथापिज्ञानं-क्षणिकमेवेतिज्ञानस्यक्षणिकत्वनियमादुत्तरज्ञानस्यानुव्यवसायरूपोत्पादकालेपूर्वज्ञानस्य व्यवसा-यात्मकस्यविनाशेनासत्वान्नप्रत्यक्षत्व सभवेत्, प्रत्यक्षे तादात्म्यसम्बन्धेनकारणत्वात् । इह च तस्यपूर्वज्ञानस्यविनष्टत्वात्, यदिपूर्वज्ञानमुत्तरज्ञानोदयकालपर्यन्तस्थितभवेत्, तदैवोत्तरज्ञानेनपूर्वस्य ग्रहणभवेत्, नत्वेवमिहतु तदुत्तरज्ञानोदयकालएवपूर्वस्यविनाशेननोत्तरज्ञानस्यकथमपि प्रत्यक्षतास्या-दितितयोर्ग्राह्यग्राहकभावएववातामात्रविषयक स्यादिति भाव । अर्थात् ज्ञानस्यक्षणिकत्वस्वीका-रात्, उत्तरज्ञानोत्पादकालेतेनैवोत्तरज्ञानेनयोग्यविभुविशेषगुणस्यस्वोत्तरवृत्तिगुणनाश्यत्वमतेनपूर्वज्ञान-स्याभावात्, न कथमपि प्रत्यक्षत्वसभवेत् पूर्वज्ञानस्यज्ञानान्तरोत्तरकालिकज्ञानवेद्यत्वस्वीकारेपीति । अमुमभिप्रायमाश्रित्याऽवादीत् **असमसमय**जन्मनाविभिन्नकालिकार्थात् पूर्वापरीभूतज्ञानान्तरेणो-त्तरज्ञानेनपूर्वज्ञानस्यवेद्यत्वोपगमेपि पूर्वज्ञानस्य न प्रत्यक्षत्वम् । कुतो न प्रत्यक्षत्व तत्राह **क्षणि-कतया**ग्रिमज्ञानस्यग्राहकस्वोत्तरज्ञानोदयपर्यन्तपूर्वज्ञानस्यावस्थानाभावात् । अर्थात् यावत्पर्यन्तमुत्तर-ज्ञानजातम् ग्राहकज्ञानतावत्कालपर्यन्तपूर्वज्ञानस्यावस्थानाभावात् । कुतो न पूर्वज्ञानस्योत्तरग्राहक-ज्ञानकालपर्यन्तमवस्थान तत्राह **क्षणिकतया** । अर्थात् ज्ञानस्यक्षणिकत्वेन ग्राहकोत्तरज्ञानपर्यन्तमव-स्थानाभावेनोत्तरज्ञानज्ञानस्यवेद्यत्व नैवस्यात् इतिभाव । अथ यदि ज्ञानस्यक्षणिकत्वेपूर्वोक्तो-दोषस्तदाज्ञानस्यक्षणिकत्व न मन्तव्यमितिज्ञानस्यक्षणिकत्वानुपगमेपिदोषादुद्धारो न भवतीत्ययाश-येनाह **भावे च सर्वज्ञानानामि**त्यादि, भावे=सद्भावस्वीकारे अर्थात् क्षणिकत्वेनाभिमत-स्यपूर्वज्ञानस्यग्राहकद्वितीयज्ञानपर्यन्तमवस्थानस्वीकारे सर्वज्ञानाना द्वितीयादिसर्वज्ञानानांसर्वदा-

वात् । भावे च सर्वज्ञानानांसर्वदाऽवस्थानप्रसङ्गात् । कार्यविरोधित्वेत्वनन्तरमेव संस्कारजननान्नकालान्तरेस्थितिरिति न संविदोमानसप्रत्यक्षवेद्यत्वंस्यात् । न चाप्रत्यक्षं-ज्ञानमितिव्यभिचारस्तदवस्थ एव ।

ऽवस्थानस्थितिप्रसङ्गात् । ज्ञानमात्रस्योदयसमयेएव विनाशककारणस्यसेवन भवति, इति नियम । ततश्चोत्पद्यतदैव विनष्ट न भवेत् तदा "तावत्कालेस्थिरचैन क पश्चात् द्वितीयादि क्षणेनाशयिष्यति" एवविधस्वीकारेणप्रथमज्ञानवत् सर्वमपिज्ञानसर्वदैवावस्थित भवेत् । ततश्चयोय क्षणिकविज्ञानवाद स सर्वथादत्तजलाञ्जलिरेव स्यात्, इति तद्रक्षणाय क्षणिकमेव ज्ञानम् । इदानी यदि, पूर्वज्ञानग्राहकद्वितीयादिपर्यन्तमवस्थितमितिमन्येतसर्वमेवज्ञानसर्वदाऽवस्थित भवत् स्वकीयक्षणिकविज्ञानवादस्यविलोपमेवकुर्यादिति पूर्वज्ञानस्यग्राहकज्ञानपर्यन्तमवस्थान भवतीति तव-वचन सर्वदैवनिरर्थकमितिभाव ।

अथैवमपिपूर्वादिज्ञानस्यक्षणमात्रवृत्तित्वेनक्षणिकत्वम् , नवाघटादिवत् चिरमवस्थानात् स्थि-रत्वम्, किन्तुस्वाकार्येणस्वोत्तरकालवर्तिनानिवृत्तिरिष्यते इतितदेवक्षणिकत्वमित्याशयेनाह **कार्यवि-रोधित्वेत्वनन्तरमेव** इत्यादिकार्यस्यविरोधित्वनाशकत्वचेद् द्विक्षणावस्थायित्वलक्षणचेद्विज्ञानस्य अथवा सहानवस्थानलक्षणचेदेकक्षणमात्रवृत्तित्वम् , तत्रप्रकृतेसहानवस्थानलक्षण एव विरोधो नतु कार्यस्यविरोधि त्वत्वनाशकत्वलक्षण न द्विक्षणवृत्तित्वतदापूर्वज्ञानस्य द्विक्षणावस्थायित्वे, अर्थात् प्रथमक्षणेउत्पद्यतेद्वितीय-क्षणेऽवस्थित भवतितृतीयक्षणेज्ञानान्तरोदयात् निवर्तते 'योग्यविभुविशेषगुणानास्वोत्तरवर्तिगुणनाश्यनिय मात्' ततश्च द्विक्षणावस्थायित्वे तु नैयायिकप्रक्रियायामानसप्रत्यक्षविषयत्वोपपत्तेस्तन्निषेधाऽनुपपत्ते-रितिज्ञेयम् । परन्तु न्यायमतानुसरणोपि, विषयविषयकज्ञानोत्तरद्वितीयज्ञानततोद्वितीयज्ञानस्यापिग्राहक तृतीय ज्ञान चतुर्थादिज्ञानमित्यादिक्रमेणज्ञानधारानुवर्तनेन दुरवस्थानवस्थातुदुरतिक्रमैवेति । न च व्यवस्थाया सत्यामनवस्थायुक्ता, अनवस्थाया त्रिदोषलग्नास्यात् । "प्रागूलोपाविनिगम्यत्वप्रमाणा-पगमैर्भवेत् । अनवस्थितिमास्थातुरचिकित्स्यात्रिदोषतेति । यथा वातपित्तकफानासमानरूपेणावस्थाने तत्कालेसनिपातनामकोज्वरविशेषोयोवातपित्तानासनिपातेनजन्यतेऽथवावातपित्तादिसमुदायलक्षणोमह-द्भिरपिभिषग्वरै समाधातुमशक्यप्रायोभवन् सनिपातग्रस्तवान्धवरोदयति, तथैवत्रिदोषग्रस्तानवस्था-समाधातुमशक्यातत्स्वीकर्तृतान्त्रिकरोदयत्येवेतिभाव । न च सवित् अप्रत्यक्षा अहजानामीतिप्रत्ययस्य-सर्वानुभवसिद्धत्वादिति,आत्मामानसप्रत्यक्षविषयोवहिरिन्द्रियायोग्यत्वेसतिप्रत्यक्षत्वात्सुखादिवदित्यनुमाने सविदिव्यभिचारस्यसद्भावेननेदमनुमानपूर्वपक्षीयमतमानसप्रत्यक्षग्राह्यत्वसाधनेसमर्थ भवति । यथा वह्नि हेतुनाऽयोगोलकेधूमसाध्यकमनुमानमयोगोलकेवन्हिहेतुना धूमसाधकम्, धूमरूपसाध्याभावाधि-करणेऽयोगोलकेवन्हिहेतो प्रमेयत्वादिहेतोर्वावृत्तित्वेनव्यभिचारित्वात्तत्रायोगोलकादौ धूमस्यसाधकं न भवति, तथैवसविदिमानसप्रत्यक्षग्राह्यत्वाभाववतिप्रत्यक्षत्वहेतोर्विद्यमानत्वेनात्मनोमानसप्रत्यक्षत्व-

ऐन्द्रियकत्वस्यानात्मत्वव्याप्यतयाविरुद्धदोषश्च भवेत् । दृष्टान्तसाध्यविकलश्च, साधनायनोपयुक्तमितिनेदमनुकूलमनुमाननिर्दुष्टमितिभाव । अपि च आत्मनोमानसप्रत्यक्षग्राह्यत्व साधकानुमानेऽव्यभिचारवत् सविदि एतदनुमानेविरोधदोपोपि भवति अत्राह **ऐन्द्रियकत्वस्यानात्मत्वेति,** अयमाशय साध्याभावसाधकोहेतुर्विरुद्ध इतिविरोधलक्षणम् । अर्थात् यस्यहेतो साध्येन सहसामानाधिकरण्यमर्थात् व्याप्तिर्नभवति, किन्तुसाध्याभावेनसहव्याप्तिर्भवतिसविरोधोयथा "अय गौ अश्वत्वात्" एतदनुमाने, यत्रयत्रअश्वत्वतत्रतत्रगोत्वमिति न व्याप्ति अश्वत्वरूपहेतोरश्वत्वेविद्य मानत्वेनतत्राश्वत्वस्याभावात् । किन्तु यत्र गोत्वाभावरूपसाध्याभावोऽश्वेतत्रैवहेतोसद्भाव इति, तत्राश्वत्वरूपहेतौ न साध्यगोत्वनिरूपिताव्याप्तिरपितुयत्राश्वेगोत्वरूपसाध्याभावोऽश्वेतत्रैवाश्वत्व हेतो सद्भावेनैतादृशहेतो साध्याभावनिरूपितैवव्याप्तिरर्थात् सा याभावेनप्रतिबद्धोव्याप्योहेतुरिति न तादृशो हेतु साध्यगोत्वसाधयति किन्तुतादृशगोत्वाभावप्रतिबद्धत्वात् व्याप्यत्वात् स्वाधिकरणेऽश्वेविद्यमानोहेतुरश्वेगोत्वाभावरूपसाध्यसाधयन् विरुद्धहेतुरितिगीयते । प्रकृते च यत्रयत्र घटादिबाह्येऐन्द्रियकत्वमर्थादिन्द्रियजनितज्ञानविषयत्व तत्रसर्वत्रापिबाह्येअनात्मत्वजडत्वमित्यर्थ । ततश्चैन्द्रियकत्व हेतुरनात्मत्वव्याप्यम्, इत्यैन्द्रियकहेतुनाऽनात्मत्वस्यैवसिद्धि स्यान्नत्वात्मन प्रकृते तु ऐन्द्रियकत्वव्यापकस्यनात्मत्वस्यनिवृत्त्याऽत्मनि ऐन्द्रियकत्वहेतुरपिनिवर्तते, यथाजलादौधूमव्यापकस्यवन्हेर्निवृत्त्याव्याप्यस्यधूमस्यनिवृत्तिर्भवत्येव । व्यापकाभावस्यव्याप्याभावव्याप्यत्वस्यावश्यनिवृत्तिरितिसर्वानुमतत्वात् । तदुक्तम् "व्याप्यव्यापकभावोहि भावयोर्यादृगिष्यते । तयोरभावयोस्तस्माद्विपरीत प्रतीयते । अन्वयेसाधनव्याप्यसाध्यव्कापकमिष्यते । साध्याभावोऽन्यथाव्याप्योव्यापक साधनात्यय । इति । यथा वा समवायेनगुणवत्वव्यापकस्यनिवृत्त्यातद्वाध्यस्यद्रव्यत्वस्यसामान्यादौ निवृत्तिर्भवति । एवमेवप्रकृतेअनात्मत्वजडत्वव्याप्यत्वादैन्द्रियकत्वस्यस्वव्यापकनिवृत्त्याऽत्मनिनिवृत्तिरावश्यकीति, ऐन्द्रियकत्वेनहेतुनासाध्यविरुद्धस्यव्यापकनिवृत्त्याव्याप्यस्यैन्द्रियकत्वस्या ानिवृत्तिरिति तथा च पक्षतावच्छेदकात्मत्वविरुद्धमेव मानसप्रत्यक्षग्राह्यत्व साध्यमिति ।

ननु न ऐन्द्रियकत्वसामान्यतोऽनात्मत्वव्याप्यमपितुबाह्येन्द्रियग्राह्यत्वमेवानात्मत्वव्याप्यम्, दृश्यते च चक्षुरादिबाह्येन्द्रियग्राह्ये एवानात्मत्वम्, नतु प्रत्यक्षग्राह्यत्वस्यानात्मत्वव्याप्यत्वम्, आत्मनोपिमनोग्राह्यत्वदर्शनात्, इत्येव यदि बाह्येन्द्रियग्राह्यस्यैवानात्मत्वव्याप्यतेयाग्रहस्तदापिदूषणान्तरदर्शयति **दृष्टान्तसाध्यविकलश्चसुखदुःखादीनांप्रत्यक्षत्वस्यानभ्युपगमादित्यादि ।** अत्र "आत्मामानसप्रत्यक्षग्राह्य बहिरिन्द्रियाऽयोग्यत्वेसतिप्रत्यक्षत्वात्सुखाद्यान्तरपदार्थवदित्यात्ममानसप्रत्यक्षविषयत्वसाधकानुमाने, आत्मा पक्ष दृष्टान्तश्चसुखादि । तत्र दृष्टान्ते साध्यविकलत्वम्, अर्थात् दृष्टान्तेसुखादौमानसप्रत्यक्षग्राह्यत्वरूप साध्येनास्ति, अन्वयिदृष्टान्तसुखे, मानसप्रत्यक्षग्राह्यत्व नास्तीति, दृष्टान्त सुखादि प्रकृतमानसग्राह्यत्वरूपसाध्यरहित इत्यपि दृष्टान्तेसाध्यवैकल्यरूपोदोषो

भवतीति न निरुक्तानुमानपक्षे आत्मनिसाध्यक भवति । यतोन्वयिव्याप्तिग्रहस्याभावात्, यत्रहेतुर्भवति तत्रसाध्यसद्भावे एव तस्मिन् हेतौतादृशसामानाधिकरण्यरूपाव्याप्ति सिद्ध्यति, अत्रतुसुखादौदृष्टान्तेहेतुर्वहिरिन्द्रियाऽग्राह्यत्वेसतिप्रत्यक्षत्वमस्तिपरन्तु तत्रसुखादो दृष्टान्तेमानसप्रत्यक्षविषयत्वरूपसाध्य नास्तीत्यत हेतुव्यापकसाध्यसामानाधिकरण्यरूपासिद्धान्तोनघटते । ततश्च तादृशहेतौसाध्यनिरूपितव्याप्तेरभावेन नानुमानसाध्यसाधनायोग्य भवतीति दृष्टान्तस्यसाध्यविकलत्वस्यदोषत्व भवति । दृष्टान्ते साध्यभावेसाध्यसामानाधिकरण्यरूपव्याप्तेरग्रहात्, तदभावे चागृहीतव्याप्तिकहेतुना साधनासमवादिति भाव । ननु भवतिसर्वेषामनुभवोऽहसुखीदु खीति वा, तत्कथमुच्यतेऽन्वयिदृष्टाते सुखादौसाध्यविकलत्वम्, ततश्च सुखवतिसुखाभावज्ञान वह्निमान् पर्वतो वन्ह्यभावात्, इत्यादि ज्ञानवत्, आहार्यज्ञानरूपमेवस्यादाहार्यज्ञान च न प्रतिबन्धक प्रतिवध्य वा भवति, इच्छाकाले एवाहार्यज्ञानस्यसद्भावस्वीकारात्, इत्याशयेनाह **सुखदुःखादीनांप्रत्यक्षत्वस्यानभ्युपगमादिति**। यथाऽत्रान्वयिहेतौसाध्यविकलत्वदोषस्तथैव दृष्टान्तेसाधनविकलत्वमपियद्यपिफलति, पूर्वपरग्रन्थोपपादन प्रकारेण, तथापि सिद्धान्तप्रक्रियावलेनसुखदु खादेर्ज्ञानावस्थारूपत्वात्, ज्ञानस्य च स्वयप्रकाश रूपत्वेन, ज्ञानभिन्नस्यसुखादेरपिस्वयप्रकाशज्ञानरूपत्वमेवेतिमनसिनिधायप्रकृते साध्यविकत्वमेवसत्यपि दोषान्तरसनिपातेपि । कुत साध्यविकलत्वमेव कथितम्, सत्यपिसाधनविकलत्वेपि । तत्रोच्यते, यतोऽन्वयदृष्टान्ते, साध्यस्यसाधनस्यवा एकस्याप्यभावेन साध्यहेत्ववच्छेदेनसाध्यनिरूपितव्याप्तिग्रहण हेतौ न सभवति, साध्याविकलत्वे वा व्याप्तिप्रतिबन्धकत्वस्योभयो समानत्वात्, तथा साध्यवैकल्ये-व्याप्तिसिद्धिर्नभवति तथैव साधनवैकल्पेपिव्याप्तेरग्रहात् व्याप्यत्वासिद्धिरेवविवक्षिता, सा च व्याप्यत्वासिद्धिरुभयोवैकल्येसमानरूपेणैवभवतीति, एकस्यैवहेतुवैकल्यकथनेननिर्वाह्यते इतिनोभयोर्वैकल्यस्यकीर्तनकृतवान्पार्थक्येनेति नकोपिदोष । अथवा साधनवैकल्यस्यकीर्त्तनमुपलक्षणम्, व्याप्तिग्रह प्रतिबन्धकसर्वहेतुदोषाणाम् । अतएव प्रकृतानेकव्याप्तिग्रहप्रतिबन्धकव्यभिचारविरोधसाधनविकला नामनेकदोषाणामुद्भावनस्वगिरै वकृतवान्, व्यभिचारादीनासर्वेषाव्याप्तिग्रहप्रतिवन्धकत्वसमानमेवेति । अथ यदिव्यभिचारादीनासर्वदोषाणांव्याप्तिग्रहप्रतिवन्धकत्वरूपफलसमानमेवतदाव्यभिचाराद्यन्यतम-दोषस्योद्भावनेनैव आत्मामानसप्रत्यक्षग्राह्योवाह्येन्द्रियाऽयोग्यत्वेसतिप्रत्यक्षत्वादित्यनुमानस्यासाधकत्वे सिद्धे दोषान्तरस्यसमानफलकस्योद्भावनकिमर्थं कृतवान्, अनेकेषासकीर्तनपिष्टपेषणन्यायनातिवर्तते इतिवादिन प्रश्नकर्तुरसामर्थ्यस्वस्यतर्काटवीप्रवेशकौशल्यं च दर्शयितु तथाकृतवानितिगृहाण । यद्यपि एकदोषोद्भावनेनैवसाधकानुमानस्यासादकत्वभवति तथापि सर्वेषांदूषणप्रकारे भेद इति दर्शयितु वाचार्यस्तथाकृतवानिति । विशेषतोऽत्रत्यतत्वगुरूपसदनेनैवज्ञातव्य, सक्षेप एवात्रवरमिति ।

कथ सुखादिरूपो दृष्टान्तस्तत्राह **सुखदुःखादीनांप्रत्यक्षत्वेत्यादि** । अर्थात् सुखदु खयो प्रत्यक्षत्वं न भवति, इन्द्रियार्थसनिकर्षजनितज्ञानस्यैवप्रत्यक्षत्व, तथा तद्विषयतयैवविषयस्यापिप्रत्य-

सुखदुःखादीनांप्रत्यक्षत्वस्यानभ्युपगमात् । अनभ्युपगमश्चेन्द्रियपौष्कल्यनाशयोरेव-सुखदुःखत्वात् । नहि तस्मिन्नप्रत्यक्षेतत्पौष्कल्यं वैकल्यं वा प्रत्यक्षं भवति । इन्द्रिय इवाभ्यासपाटवात्तयोरपरोक्षत्वाभिमानः, मनोऽवस्थाभेदेष्विव चानुमेयमनो-वादिनाम् । तस्मान्नभाट्टाक्षेपोयुक्तः ।

क्षत्वम्, यथाऽयघट इतिज्ञानस्यचक्षुरादीन्द्रियघटार्थस्यसयोगेन जात ज्ञान तद्विषयत्वात् प्रत्यक्षत्वम् मतविशेषेमनसोनेन्द्रियत्वम्, इन्द्रियप्रकरणेतत्पाठाभावात् । न च "मन षष्ठानीन्द्रियाणिप्रकृति-स्थानिकर्षतीतिगीतावचनेनैवमनसइन्द्रियत्वसिद्ध्यतीतिवाच्यम्, अनिन्द्रियेणापिमनसाषष्ठसख्यापूरणे-ऽविरोधात् । "यजमानपञ्चमाऋत्विज इडा भक्षयन्ति" इत्यत्रानृत्विजेनापियजमानेनपष्ठत्वसख्या-पूरणेविरोधाभावात् । यथा वा "वेदानध्यापयामासमहाभारतपञ्चमान्" इत्यत्रावेदनापि महा-भारतेनपञ्चत्वसख्यापूर्त्तौविरोधादर्शनात् । अपि च "इन्द्रियेभ्य पराह्यर्था अर्थेभ्यश्चपरमन । मनस्तुपराबुद्धिर्बुद्धेरात्मामहान् पर" इत्यादाविन्द्रियेभ्य परत्वमनसोवदनिन्द्रियभिन्नत्व श्रुतौप्रदर्शितम् । न च मनसोऽनिन्द्रियत्वे, इन्द्रियजनितार्थान्मनोजनितज्ञानस्यसुखादिविषयकस्य-सुखादेश्च प्रत्यता नस्यादितिवाच्यम् प्रत्यक्षत्वे इन्द्रियजन्यत्वस्याविवक्षणात्, अन्यथापरपरयाचक्षु-रादिजनितस्यसाक्षादेवमनोजनितस्यानुमित्यादिज्ञानस्यापिपरोक्षस्यप्रत्यक्षत्वप्रसङ्गात्, अनुमित्या दिवार्तापिविलुप्येत । ईश्वरज्ञानस्यानिन्द्रियजन्यस्य प्रत्यक्षता न स्यात् । "न तस्यकार्यंकरण च विद्यते नतत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते । परास्यशक्तिर्विविधैवश्रूयते स्वाभाविकीज्ञानवलक्रिया च" इत्यादिश्रुत्यापरमेश्वरस्यज्ञानसहायकशरीरेन्द्रियाणिप्रतिषिध्येश्वरस्यस्वाभाविकप्रदर्श्यते । ततश्चानि-न्द्रियजनितपारमेश्वरज्ञाने प्रत्यक्षलक्षणस्याव्याप्त्यानेदप्रत्यक्षम् । किन्तु यत्र विषय प्रत्यक्षोवर्तमा-नश्चतत्रैवतस्यप्रत्यक्षताभवति । तस्मात् सुखादिक न प्रत्यक्षमिन्द्रियाजनितत्वात् मनसश्चेन्द्रिय त्वनिराकरणादिति । अथसुखदु खयोरप्रत्यक्षत्वे प्रत्यक्षवदवभास सुखदु खयो कथ भवति ? एतादृशशङ्कायामाह **अनभ्युपगमश्चेन्द्रियपौष्कल्यनाशयोरेवसुखदुःखत्वात् । नहि तस्मिन्न प्रत्यक्ष** इत्यादि, यथाऽतीन्द्रियत्वेपिचक्षुरादीन्द्रियणा ममेदचक्षुर्घ्राणवा, अहचक्षुष्मान् पश्यामि घ्राणादिमान् जिघ्रामीत्येवप्रत्यक्षवदेवावभासोऽतीन्द्रियस्यापिचक्षुरादे कदाचित् चाक्षुषादिवृत्तिसमये-ऽनेकचक्षुरादिवृत्तिप्रतिसधानवतश्चेतनपुरुषस्येन्द्रियविषयसंस्काराधिक्यप्रयोज्य, तथैवेन्द्रियावस्था रूपसुखदु खादिपरामर्शोपिप्रत्यक्षसमानाकारस्तदभ्यासप्राचुर्येणसभवेदेवेत्यर्थ । अत्रार्थेनुरूपंदृष्टान्त दर्शयति **मनोवस्थाभेदेष्विवेत्यादि** । अनुमेयमनोवादिनामिति, तत्रानुमेयमनोवादिनाम्=बुद्धि व्यतिरिक्तमनोऽनुमानादिप्रमाणेनाभ्युपगच्छतामित्यर्थ । कामसकल्पादयोमनस एववृत्तिरूपा, इति तत्र श्रुतिंप्रमाणयति "कामसकल्पोविचिकित्साधृतिरधृति सर्वं मन एव" कामसङ्कल्पादिका सर्वोपि

यस्तु बौद्धमतमवलम्बतेसविज्ञानाभिन्नकारणजनिततयासुखदुःखयोरप्यन्तर्भावं ज्ञाने एवाभिमन्यते । कणादमतमवलम्बमानस्तु सुखदुःखयोरात्मविशेषगुणत्वमेवेति कथयति । आभ्यांसुखाधिकरणंकिमिति वक्तव्यम् स्वतः सुखादि एतद्विमर्शवाऽत्रत्यं कर्त्तव्यम् रागद्वेषादयस्तु चेतनाश्रयात्मनः एवावस्थाविशेषास्तद्वदेव प्रत्यक्षी मनसोवृत्तिरूपा एव, तत्र वृत्तिवृत्तिमतोरभेदात्मन एवेति कथनम् । एतेषा मनोवृत्तिभेदादीना कामादीनाम् तथा प्रत्यक्षत्वावभास क्रमादिविषयानुभवाभ्यासवाहुल्यादेवेतिवक्तुम्, अर्थात् अनुमेयमनोवादिभिर्यथास्वाक्रियते तथैव सर्वैरप्येतद्विषये स्वीकर्तव्यमनन्यगतिकत्वादिति भाव ।

स्यादेतत्, बौद्धमतेनशरीरादीनि आत्मा किन्तु क्षणिकविज्ञानमेवात्मा, तस्यैवविज्ञानरूपात्मन आकाररूप सुखदु खादिविज्ञानाऽभेदआत्मन तेनात्मनाऽभेद सुखादेरितिसुखादिकमपिज्ञानाभिन्नत्वाज् ज्ञानरूपमेव, तदपिक्षणिकसत्वात्, यत् सत् तत्क्षणिक यथामेघमाला, सच्चविज्ञानमिति तदपि क्षणिकमेव, तदभिन्नाभिन्नाभिन्नस्यतदभेद इतिनियमेनसुखाभिन्नमात्मा, तदभिन्नञ्चसुखमितिज्ञानसुखयोरप्यभेद एव । तद्विज्ञानद्विविधम्, प्रवृत्तिविज्ञानमालयविज्ञान च । तत्र प्रथम घटादि विज्ञानद्वितीयंतु आलयविज्ञानम् । तदुक्तम्—

तत्स्यादालयविज्ञानयद्भवेदहमास्पदम् । तत्स्यात् प्रवृत्तिविज्ञानयन्नीलादिकमुल्लिखेदिति ॥

कस्तूरीसुगन्धिसुगन्धितवस्त्रवत्, प्राथमिकविज्ञानाधिष्ठितवासनयातदग्रिमविज्ञानेपिसस्कारस्यक्रमणात् बालकालेऽनुभूतपदार्थविषयकसस्कारवशात् वृद्धावस्थायामपिस्मरण भवति समानाधिकरणसजातीय विज्ञाने । नतु सतानान्तरे भवति, तदुक्तम्—

यस्मिन्नेवहिसन्ताने आहिताकर्मवासना । फल तत्रैवसन्धत्तेकार्पासेरक्ततायथेति ॥

योह्यहबाल्येपितरावन्वभूव स एवाहवृद्धत्वे नप्तारमनुभवामीति, तदेतत्स्मरणसमानाधिकरणसन्ताने एव जायते नतु व्यधिकरणसन्ताने "नान्यदृष्टस्मरत्यन्य" इति नियमात् । एवञ्चक्षणिकविज्ञानरूपात्माऽभिन्नमेवसुखादिकनान्यदिति । कणादमतेतु नित्य एवात्मा, नतु क्षणिक ससारमोक्षयो—वैयधिकरण्यापातेनकृतनाशाकृताभ्यागमदोषापाताम् । तादृशे आत्मनिपुण्यपापरूपनिमित्तकारणेन, आत्मन संयोगरूपासमवायिकारणवलेनसमवायिकारणेतदात्मनिसुखादिकमुत्पद्यते इति तत्सुखादिकमात्मन आगन्तुकधर्मरूपमेव न ततोव्यतिरिक्तम् । अर्थात् सुखदु खयो क्षणिकविज्ञानलक्षणमात्माऽभिन्नत्वम्, आत्मन आगन्तुकधर्मरूपत्वयथाक्रमबौद्धकणादमतभेदेन व्यवस्थितमितितदुभयमतनिराकरणायोपक्रमतेसिद्धान्तीति तत्राह **यस्तु बौद्धमतमवलम्बते** इत्यादि । उत्तरयति **आभ्यामित्यादि,** बौद्धप्रक्रियामाश्रित्यकणादप्रक्रियावासमाश्रित्यक्षणिकविज्ञानात्मकाऽत्माऽभिन्न त्वम्, नित्यस्यात्मनआगन्तुकधर्मरूपत्ववामन्यमानाभ्याबौद्धन्यायतत्वशास्त्रस्थसुखदु खाधिकरण किम् ? तथा एतत्प्रकरणस्थितसुखीत्यविचारवासङ्कीयेत । अर्थात् सुखादिक भिन्नमभिन्नं वा

भवन्तीति न तद्दृष्टान्तेनानुमानावसरः । सुखप्रयुक्तविषयीकारचैतन्यंरागस्तद्विरोध प्रयोज्यविषयीकार तदेव द्वेषः, भूतदुःखज्ञानेनचेतश्चलनं शोकः आगामितज्ज्ञानेन- चेतश्चलनंभयम्, इतिलक्षणग्रन्थादेवावगन्तव्यमितिगुरुमुखेनात्मनोमानसप्रत्यक्षत्वानु- मानदूषणम् ।

निरंशस्यैकस्य चात्मनो न स्वापेक्षयाग्राह्यग्राहकभावः संभवतिविरोधात् ।

भवेत् आगन्तुकधर्मरूप वा भवेत्, किन्तु तयो सुखदु खयोरधिकरणगुणोद्रव्यवेतिविचारणीयता भवतीतितत्प्रदर्शनीयम् । अर्थात् गुणस्यतथात्वेविज्ञानस्यतस्यक्षणिकत्वेनाधिकरणत्वायोगात् । नवा द्रव्यरूपत्व तस्यतथात्वेवादिविवादात्, एतत्तत्वमग्रेप्रदर्शयिष्यते ।

रागद्वेषादयस्तु चैतन्यस्यैवास्थाविशेषास्तद्वदेव प्रत्यक्षीभवन्तीति न सुखदु खादिरागद्वेषादि वा दृष्टान्तीकृत्यानुमानोदय इति । ननु सुखदु खयोमानसप्रत्यक्षत्वेविवादेपिरागद्वेषयोरेवदृष्टान्तत्व- मस्तुतत्राह **सुखप्रयुक्तविषयीकारेत्यादि** सुखेति, सुखत्वप्रयुक्तविषयीकरणसमुपादेयताप्रकाशन यस्मात् ज्ञानविशेषाद्भवति, तादृशज्ञानमेवराग, सुखविषयकोपादेयताज्ञानलक्षणोरागोनतुज्ञान व्यतिरिक्तोरागनामक पदार्थ । एव समुपात्तस्यसुखस्योपघातोविनाशोयेन तद्विषयकत्याज्यता प्रका- शकज्ञानमेवद्वेषोनतुतदतिरिक्त । ततश्चरागद्वेषयोर्ज्ञानवदेव प्रकाश इति न तयोरागद्वेषयो पार्थ- क्येन दृष्टान्ततयोपादान सभवतीतिभाव । ननु न भवतु रागद्वेषयोर्दृष्टान्तता ज्ञानाभिन्नत्वात् शोक भययोस्तुदृष्टान्तत्वकथ न स्यात् । तत्राह **भूतदुःखज्ञानेनेत्यादि,** अतीतकालिकयद्दु खजात तदनुसन्धानस्मरणपूर्वकोयोऽन्त करणस्यविक्षोभ स एव शोकपदाभिधेय, तथा भविष्यत् कालिक यत्दु ख तस्ययत् कारण तादृशकरणपरामर्शनिमित्तकोऽन्त कारणेजायमानोयस्तस्यैवभयमितिसंज्ञा भवति । तयोश्चशोकभययोरन्त करणधर्मत्वादेवप्रत्यक्षत्व न सभवतीतितयोर्दृष्टान्तत्व न सभवति । मन पर्यायस्यान्त करणस्यातीन्द्रियत्वेनतद्गतधर्मस्यप्रत्यक्षना, अधिकरणग्रहणानन्तरमेवाधेयस्य प्रायो ग्रहणदर्शनात् ।

। इतिगुरुमुखेनात्मनोमानसप्रत्यक्षत्वानुमानदूषणेतत्त्वदीप ।

आत्मामानसप्रत्यक्षग्राह्योबहिरिन्द्रियायोग्यत्वेसतिप्रत्यक्षत्वात्सुखादिवदित्यनुमानेनात्मनोमानस- प्रत्यक्षविषयत्वसाधितपरेण । तत्र साधकोहेतु "बहिरिन्द्रियायोग्यत्वेसतिप्रत्यक्षत्वादितिसाधकतया समुपन्यस्त परन्तु प्रत्यक्षत्वादिहेतुना तत्साधकतयोपन्यस्तानामन्येषामपियुक्त्याऽसाधकत्वमुपन्यस्तवा निति तेन सर्वोपिहेतुहेतुवदाभासमानत्वादसाधक एवेति प्रदर्श्य सम्प्रति, आत्मनो मानसप्रत्यक्ष ग्राह्यत्वेबाधकमपिप्रदर्शयितुमुपक्रमते **निरंशस्यैकस्यात्मनः** इत्यादि । एकस्यैकैकक्रियायाकर्तृकर्म भावो न सभवति विरोधाम्, अर्थादात्मनो निरंशस्यस्वापेक्षयाग्राहकभावो न भवति यथा गमनादिक्रि- यायां स एवदेवदत्तोगमने स्वतन्त्रत्वात्, तथातस्यैवगमनस्य स एव देवदत्त कर्म न भवति, यतः

आत्मनोंऽशभेदस्वीकारेतु तत्सिद्धयेचांशान्तरमवश्यंस्वीकृतंस्यादिति तत्रतत्राप्यंशान्तर स्वीकारेदुरवस्थैवाऽनवस्थाप्रसज्येत, सङ्घातरूपत्वचात्मनः ।

इत्यात्मनोग्राह्यग्राहकभावविरोधप्रदर्शनम्

परसमवेतक्रियाफलभागिनएवकर्मत्वात् । न च स एव देवदत्त कर्तृत्वात् प्रयोजक कर्मत्वात् प्रयोज्य-श्चभवति, कर्तृ स्वसमवेतक्रियाफलभागित्वग्रामादे कर्मण परसमवेतक्रियाफलभागित्वात् । अतएव देवदत्तोदेवदत्तगच्छतीतिप्रयोगोऽसाधुरेवेति वैयाकरणा । न च स्वप्रधानतयादेवदत्त कर्त्ता गमनविशिष्टाकारेणकर्मइतिरूपभेदात् न विरोध इति वाच्यम्, तथा सति, एकस्मिन् साशे वस्तुनि भेदसभवेन एकस्मिन्कर्तृकर्मभावो न भवतीतिनियमोनिरालवन एव भवेत् ।

अपि च सर्प स्वात्मनास्वात्मानवेष्टयतीत्यादिप्रयोगदर्शनेनसाशेवस्तुनिकथचित्, एक स्मिन्नेवकर्तृकर्मभावस्यस्वीकारेऽपिनिरशेआत्मनिस्वस्मिन्नेवस्वापेक्षयाग्राह्यग्राहकभावस्य विरोधादेव स्वीकारासभवेन तस्मिन् स्वापेक्षया स एव ग्राहकोग्राह्यश्चेतिनैवकथमपिसभवतीति । अयमेव बाधकोभवत्यात्मनोमानसप्रत्यक्षविषयत्वसाधकानुमाने । ननु उक्तविरोधस्यनिरशेआत्मनिग्राह्यग्राहकभाव रूपस्यविद्यमाने, एतद्दोषपरिहारायात्मनोपिपदार्थान्तरवत् साशत्वमेवमन्यता नतु तस्यनिरशत्वम् । एव सति एकस्मिन् ग्राह्यग्राहकभावरूपदोषोनिरस्त स्यादित्याशयेनाह **अंशभेदस्वीकारे** इत्यादि । सत्यमत्र ग्राह्यभावविरोधस्ययथाकथचित्समाधानेपि, अशभेदाश्रयणेऽनवस्थापिशाचस्यासमाधेयत्वात् । अर्थादशभेदाश्रयणे तत् सिद्धये अंशभेदसिद्ध्यर्थमशान्तराश्रयणम्, तथा तत्रतत्रेत्यनवस्थातो-निर्मोक्षोन भवति । एतदुक्त भवति । एकश्चांशोग्राह्य, तद्ग्राहकक्रमात्मनोऽशान्तरमवश्यमाश्रयणीयम्, यश्चाग्राहक स्यात्, यच्चाग्राहकमात्मनोऽशान्तरतस्याप्यशस्यप्रमाणीकर्तुतद्गाहकमपितदन्यो ग्राहको भवेत्, एवतदर्थमपिअशान्तरग्राहकमितिग्राहकाशानामुपर्युपरिसचरणादूर्ध्वमुख्यानवस्थाया-अवश्यमापात स्यादेवेति । न च व्यवस्थाया सत्यामनवस्थोचिताअनवस्थाया त्रिदोषग्रस्तत्वात् । तदुक्त—‘ प्राग्लोपाविनिगम्यत्वप्रमाणापगमैर्भवेत् । अनवस्थितिमास्थातुरचिकित्स्यात्रिदोषतेति । अस्यार्थ पूर्वपूर्वग्राहकस्यग्रहणार्थमुत्तरोत्तरग्राहकस्वीकार इति तृतीयग्राहकेनतत्पूर्वतरस्यग्राह्यत्वस्या-दिति, तृतीयग्राहकेणैवप्रथमस्यग्राह्यत्वोपपत्तौग्राहकस्य विलोपतोग्राह्यत्वस्यग्राहकत्व तृतीयेनैवसिद्ध-मिति द्वितीयग्राहकस्यविलोप एव, द्वितीयग्राहककार्यस्यतृतीयेनैवनिर्वाहात् । एवमनेकग्राह-कसत्त्वेकस्य ग्राह्यत्व कस्य च ग्राहकत्वमितिनियमोपि न स्यात्, नियामकहेतोरभावेन सर्वेषांग्राहकत्वादेव । एवमनेकग्राहकस्वीकारेनास्तिकिञ्चित्प्रबल प्रमाणयद्बलाद्ग्राहकानवस्थाभ्यु-पगताभवेदिति दोषत्रयग्रस्तत्वात् नानवस्थायुक्ता, तस्यामूलविध्वसकत्वादिति । ननु कदाचित्, एकेनात्मनोऽशेनात्मनस्तदन्यांशस्य, अन्यदाकालान्तरेअशान्तरे तदशस्य ग्रहणकरणीयमितिका-लभेदेनसर्वोपपत्तिसभवेनानवस्थाया आपातोयद्भयाद्बिभेसि, इतिचेत्तत्राह **संघातरूपत्वंचात्मनः**

ननुग्राहकावभासः श्रुत्यैवप्रदर्शितः । तन्नयुक्तःसतुस्वसिद्धान्तश्रद्धाविप्रनद्धमतिभिरेव कथितः । इन्द्रियादिप्रत्यासन्नतत्तत्पदार्थमात्रस्फुरणात् । तादृशोपिक्वचि-
प्रसज्येतेति । एव चात्मनोनिरशत्वविरुद्धसाशत्वमेवसति, आपद्येतेत्यर्थ । आत्मासाशत्वादवयवसमुदायवान्, आत्मनोऽवयवसमुदायरूपत्वेऽनित्यत्वे, उत्पादविनाशशालित्व घटादिवदापद्येत, ततश्चोत्पादवत्वेयेनात्मांशेन यद्यागादिकार्यमकरोद्यस्तस्यापगमेयागादिफलस्य भोक्तातदन्य एव भवेदितिकर्तृत्वभोक्तृत्वयोर्वैयधिकरण्य भवत् कृतहान्यकृताभ्यागमश्चदोषौस्यातामेवेतिभाव । अत्रेदज्ञातव्यम्, गुरुमतानुयायीआत्मनोज्ञानविषयत्व न रोचयति किन्तु विषयज्ञानकालेज्ञातृत्वबलेन प्रकाशमात्रमनुते, ज्ञानस्यापितथैवस्वीकरोति ।

। इत्यात्मनोग्राहकभावेविरोधोद्भावनप्रकरणेतत्त्वदीप ।

एव यथोक्तक्रमेणप्रभाकरानुयायिनानिरस्तेस्वपक्षेभाट्ट प्रभाकरमत दूषयितुमाह **ननुग्राहकावभासः** इत्यादि । तत्रवेद्यमात्रस्यावभास आत्मना भवति, ग्राहकस्यावभासस्तु न ग्राहकान्तरेण, किन्तु श्रुतिप्रमाणेनैवभासोजायते नतु प्रमाणान्तरेण, येनानवस्थादिदोषापात स्यात्, सर्वप्रमाणशेखरीभूतास्तु श्रुतिस्वत प्रमाणम्, तेन तत्र प्रमाणान्तरान्वेषगस्यानावश्यकत्वान्नपूर्वोक्तदोषा अवतरन्तीनि तद्दूषयति **तन्नयुक्तःस तु स्वसिद्धान्तेत्यादि** । स्वकीयो य सिद्धान्तस्तत्रयोऽभिनिवेशोदुराग्रहस्तेन वशीकृतमभिनिविष्ट यत् चित्तम् मन तेन मनसाजायमानयदभिमानतन्मूलक एव ग्राहकावभासवादोनतु श्रुतिप्रमाणेनग्राहकावभासवादो कथमपि सिद्ध्यतीतिभाव । ग्राहकावभासोनामज्ञानमात्रेषुसर्वज्ञानेषु, आश्रयत्वेनाधिकरणरूपेणात्मन स्फुरणम् । एतादृशस्फुरणस्य श्रुतिभिरसिद्धौहेतुमनुभवविरुद्ध चाकलय्य, ग्राहकस्यानुभवप्रकारमाह **इन्द्रियादिप्रत्यासन्न** इत्यादि । नहि, अनुभवविरुद्ध श्रुति प्रतिपादयेत्, तथात्वे तस्याप्रमाणिकत्वमर्थवादरूपत्व वा स्यात्, नतु अप्राप्तप्रापकत्वमज्ञातज्ञापकत्वरूप प्रामाण्य स्यात् । नहि मनुष्यद्विशिरस्कत्व शिरश्चतुष्टयवत्वब्रुवती श्रुति प्रमाणिकीस्यादिति । स्वसिद्धान्तवादिभि प्रभाकरमतानुयायिभि प्रतिपादितोग्राहकावभासोनस्वीकर्त्तव्य प्रतीतिविरोधात् । प्रतीतिस्तुतत्तत्पदार्थमात्रप्रकाशयति नतु तदन्यत् किमपि प्रकाशयतीति प्रकरणस्यमुकुलिताशयोभवतीतिभाव. ।

ननु ज्ञानमात्रे विषयप्रमितितदाश्रयस्यभान भवत्येव, यथाऽयघटइतिप्रत्यक्षेघटाद्यात्मक विषयस्यज्ञानस्यतदाधारस्यात्मनोऽवभासो भवत्येवेतित्रिपुटीज्ञानमेव । अन्यथाघटादिप्रत्यक्षेग्राहकस्यात्मनोऽवभासो न स्यात् तदाघटमहपश्यामिविजानामीतिवाऽनुभवोलोकप्रसिद्ध कथमुपपन्नःस्यात्तत्राह **तादृशोपि क्वचिदस्तु प्रत्यय** इति, तादृशोघटमह पश्यामि, इतिग्राहकादिविषयघटित प्रत्ययोज्ञानभवतु वा कस्यचित् कुत्रचित्, नतु स प्रत्ययोग्राहावभास । किन्तु स तु प्रत्यय आगन्तुकात्मप्रतियोगिकप्राकट्यप्रकाशादिपदवाच्योऽर्थविषयधर्मानुमितज्ञानविशिष्टमानसप्रत्यक्षसिद्धा --

द्वस्तुनामप्रत्ययः । सत्वागन्तुकात्मप्रतियोगिकप्रकाशादिपदाभिधेयार्थधर्मानुमितज्ञान विशिष्टमानसप्रत्यक्षसिद्धात्मनिबन्धनः ।

। इतिप्रभाकरमतेभाट्टस्यप्रत्यवस्थानम् ।

उच्यते। अहोखलुस्वानुभव एव विभ्रमः परीक्षकाणाम् , यत्स्वानुभवसमये पूर्वावस्थातो न कञ्चिद्विशेषमयमात्मनोऽववुध्यते इति । उक्तं हि—एतदीदृश, एवायमर्थःज्ञायतेनवेति न विद्मोमम वा प्रतिभासते परस्यवेत्यपि नविद्मः इति न जातु चिदेवं

त्मकारणक एव । यस्य यद्विषयेज्ञानप्रादुर्भवति तस्यैवपुरुषस्यसोऽर्थोघटादि प्रकाशते नतु तदन्यस्यसोऽर्थप्रकाशनेऽन्यविषयकोवाऽर्थ प्रकाशते । इतिप्राकटयस्यार्थानुयोगिकात्मप्रतियोगिकस्यभान भवति, ततश्चज्ञाततालिङ्गेनज्ञानानुमानमेव भवति, तच्चानुमानकदाचिदेव भवति । तदनन्तरप्राकटयात्मकार्थधर्मेणज्ञानानुमानमेव भवति ज्ञानतत्रप्रत्यक्षज्ञानस्यातीन्द्रियत्वेन प्रत्यक्षत्वासम्भवात् । ततश्चानुमितज्ञानोपरक्तात्ममानसरूपो निरुक्तानुभवश्चकदाचित्क एव ननु सार्वदिक । अयचानुभवो न चाक्षुषो येन विषयज्ञानेषुग्राहकस्यात्मनोभानस्यादिति भाव । अत्र च मानस प्रत्यक्षेज्ञानवत्वेनविषयत्वकर्मत्वमात्मनोदेहादिमत्तयाचाश्रयत्वकर्तृत्वमात्मन इतिकर्तृकर्मभावविरोधपरिहारोपिभाट्टानामभिमत ।

। इति प्राभाकरमते भाट्टस्यापि प्रत्यवस्थानप्रकरणेतत्त्वदीप ।

गतप्रकरणेप्रभाकरमतस्य निराकरणकृतवानितितदुपश्रुत्यप्रभाकर पुनर्भाट्टमतनिरसितुमुपक्रमते **उच्यते** इति । यावन्नोत्तरकरोमितावदेवभाट्टस्यकथन शोभते कृतेतुसिकताकूपवदेवविशीर्यते एवेत्यर्थ । निरासप्रकारमुपपादयति **अहोखलुस्वानुभव एव विभ्रमः परीक्षकाणामिति** । यथा यदाज्ञानजायते तदानुपलम्भोपि भवत्येव, तथैवज्ञानोत्पादानन्तरतादृशज्ञानवत्तयाज्ञानाविष्करणस्यानुभवोप्यनुभवसिद्धएवेति । तत्रैवानुभवेयोऽविभ्रमोनास्तितालक्षणेभ्रमएवपरीक्षकाणा तस्मिननुभवेनास्तितालक्षणोभ्रम परीक्षकत्वेनात्मानमन्यमानाना भ्रम एव । अर्थात् य स्वकीयमनुभवमपि ज्ञातु न शक्नोति तस्य परीक्षकत्व कीदृशम् ? अर्थात् स्वकीयमनुभव न जानन्ति, इति नतेपरीक्षका किन्तु भेदाभाषा एव । य खलु यदाविषयस्यभान भवति तत्समये पूर्वावस्थापेक्षयाकमपि विशेष वैशिष्टयमात्मनो न जानन्तीतिमहदाश्चर्यमिति । विषयानुभवकालेज्ञानस्यतज्ज्ञातुश्चावभासाभावेपूर्वोक्तदोषस्मारयति **उक्तंह्येतदित्यादि** अर्थात् ज्ञानानुभवकाले यदि ज्ञानस्यप्रकाशो न भवेत् तदा "ज्ञायते न वेत्यादिसशय स्यात् विपर्ययो वा स्यात् विपरीतप्रभा वा स्यात् , परन्तु न भवतिकस्यापितादृशसशयादिरितिज्ञानकालेज्ञानप्रकाशो भवत्येवेतिज्ञातव्यम् । अथ यदि विषयविषयकज्ञानोदयसमये यदिज्ञातुरात्मनोऽवभासाभावोदोषमुद्गिरति **मम वा प्रतिभासते** इति ज्ञातृविषयकसशयादि स्यात् । परन्तु ज्ञानविषयको वा ज्ञातृ

प्रतीतिरस्ति, ज्ञानज्ञात्रोरनवभासे तादृश्यप्रतीतिरापद्येत, इति । सोयंपरसञ्चेति स्वसञ्चेतितस्यातिशयः सर्वत्रपरिस्फुरन्नसतिग्राहकात्रभासेनोपपद्येत । अनुमितज्ञानालंवनत्वेचाज्ञासिषमित्येवप्रतिभासः स्यात्, नजानामीत्याकारकः प्रतिभासः स्यात् । ज्ञानजन्यार्थातिशयदर्शनतद्व्याप्त्यनुसंधानानुमानोदयकालेऽनुमितिसितज्ञानस्यातिवृत्तत्वाद्विनाशाद् । ज्ञानानुमानासंभवःपूर्वं प्रतिपादित एव । मानमप्रत्यक्षत्वंचात्मग्राह्यधीनिरासितम् । तथा सतिस्वपरवेद्ययोरनतिशयः स्यादिति ।

। इतिप्रभाकरस्यस्वपक्षसाधनम् ।

विषयको वा सशयादिर्नभवति, परन्तु तयोर्ज्ञानज्ञात्रोश्वभासे तदुभयविपयकमशयविपर्ययादीनानिवारिता क भवेत् न कोपि समर्थ स्यादिति । **सोयंपरसञ्चेति**नामस्वसञ्चेनितज्ञानस्यातिशय स्वात्मने प्रकाशमानत्वलक्षणोऽनुभूयमान सर्वत्रपरिस्फुरन्, ग्राहकस्यात्मनोऽनवभासने कथमपि समाहित स्यादिति । ज्ञाततालिङ्गकज्ञानानुमानस्वीकारेभाट्टस्यदोषदर्शयति **अनुमितज्ञानालम्बनत्वे** इत्यादि । जानामीत्यादिवर्तमानकालिकप्रतीतेर्ज्ञातताज्ञानविपयतालिङ्गानुमितिविषयकज्ञानोपनीत मानात्मकमानसप्रत्यक्षरूपत्वस्वीकारेऽतीतकालिकज्ञानालम्बनत्वात्, जानामीतिस्थानेऽज्ञासिषमित्यतीतकालघटित एव ज्ञानस्याभिलाप स्यात् । किन्तु जानामीतिज्ञानेवर्तमानकालस्य बोध स्यात्। जानामीन्यत्र "वर्तमानेलट्" इत्यनुशासनेनवर्तमानकाले लट् विधानात्, ततश्च विषयावबोधवत् वर्तमानकालोऽपि भासत एवाज्ञासिसमित्यत्रतु न वर्तमानापदेशोऽपितु भूतकालापदेश एवानुशासनवलादिति ।

न च भूतवर्तमानयोर्विकल्प किन्तु विरोध एव तयोर्भूतवर्तमानयो, अर्थात् शीघ्रता दोषादेवतन्त्रकालभेदग्रहोन भासने, अतोवर्तमानत्वागेभ्रमात्मकोजानामीतिप्रत्ययोजायते, लोकाना मित्याशङ्कायामाह, **ज्ञानजन्याथातिशयदर्शनेत्यादि** । स्वज्ञानव्यवहारहेतुकमेवज्ञानानुमानमिति आत्माश्रयदोपभयान्नैव सभवतीत्यादिक विस्तरेणपूर्वमेवनिवेदितम् । ज्ञाततालिङ्गकमपिज्ञानानुमान न सभवति, ज्ञानेनज्ञाततायाव्याप्तिग्रहासभवात् । ज्ञानसामग्र्यैवान्यथासिद्धत्वात् ज्ञाततायाउत्पत्तेरेवासभवादित्यभिप्राय । विषयज्ञानेजाते, तेनैवज्ञातु प्रकाश स्यादिति प्रकाशमात्मन साधयितुमात्मनो मानसप्रत्यक्षत्वनिराकर्तुमाह **मानसप्रत्यक्षत्वंचात्मग्राह्यधीनिरासितम्** इति मानसप्रत्यक्षत्व मित्यत पूर्वमात्मन इतिपदमध्याहरणीयम् । मानसप्रत्यक्षत्वमित्यत्रबहुव्रीहिसमासानन्तरत्वप्रत्यय आत्मग्राह्यत्व धियोबुद्धे स्वयप्रकाशत्व तच्चस्वयंप्रकाशतत्व ज्ञानस्यतत्स्वप्रकाशत्वमानसप्रत्यक्षानुमानायोगप्रतिपादनादेवसिद्धम् । आत्मनोमानसप्रत्यक्षत्वचव्यभिचारात् साधकत्वाभिमतस्यखण्डितम्, साधकाभावादित्यर्थ । **धीनिरासितम्**=व्यभिचारनिरूपकत्वोपपादकात्मग्राह्येतिधियोविशेषणम् एव ग्रहग्राहकयो. प्रकारान्तरेणभानासभव समुपपाद्यतदनवभासेविपयवित्तौ विषयविषयकज्ञानेपूर्वो-

ननु ज्ञाने ग्राहकस्यानवभासेकथं स्वपरवेद्ययोरनतिशयप्रसङ्गः स्यात्? यावता, नहि ग्राहकस्यावभासमूलक एव स्वपरवेद्यविशेषनियमः, किन्तु स्वसमवेतविषयबोधजन्मना तथा परसमवेतबोधजन्मना च तद्विशेषोपपत्तिसम्भवात् स्वपरसम्बन्धिज्ञानविशेष-जन्मव्यवस्थापि, स्वकीयपरकीयेन्द्रियार्थसंनिकर्षादिज्ञानसामग्रीभेदमूलकैव।

क्तातिशयासंभव निगमयन्, आह **तथा सतीति** अत्रानतिशय=अविशेष पूर्वापेक्षयातदपरस्य विशेषाभाव इत्यर्थ। स्वस्मैज्ञायमानत्वेन भानभानाभावचार्थस्यघटादिविषयस्येत्याकारकवैलक्षण्य-स्याभावोविरह स्वपरयो प्रसज्यते, विषयवित्तौ=विषयविषयकज्ञानेज्ञानस्यज्ञातुश्चाभानेहीत्यर्थ।

। इतिप्रभाकरीयस्वपक्षसाधनप्रकरणेतत्त्वदीप ।

एवम्—**उच्यते** इत्यारभ्य **तथा सति स्वपरवेद्ययोरनतिशयःस्यादि**त्यन्तप्रकरणेनप्रभाकरेण-भाट्टमतप्रतिक्षेपेस्वमतस्थापनेकृते तदुपश्रुत्यभाट्ट पुन प्रभाकरमतप्रतिक्षेप्तुमुपक्रमते **ननु ज्ञाने ग्राकस्यानवभासे** इत्यादि। अर्थात् घटादिज्ञाने यदि ग्राहकस्यावभासो न भवति तदास्वपरवेद्ययो रनतिशयप्रसङ्ग कथ स्यात्, अर्थात्, घटादिज्ञानेस्वस्यात्मनोऽनवभासमानत्वेपिस्वस्मैभासमानत्व रूपो विशेषोऽर्थस्यार्थात् विषयस्यघटादे स्वनिष्ठत्वादेवघटते, तदा ग्राहकानवभासेस्वपरवेद्ययोरनतिशय प्रसङ्ग कथमिव स्यात्, नैव प्रसङ्ग प्रसज्यते इत्यर्थ। कथ न अनतिशयप्रसङ्ग स्यात् तत्राह **यावता** इत्यादि। नहि ग्राहकस्यात्मनोयदासिद्धिर्भवति तदैव स्वपरवेद्यविशेष स्यात्, अर्थात् स्वपरवेद्यविशेषात्मकेकार्येनग्राहकज्ञानकारणविद्यते घटादिकार्येदण्डादिवत्, अनयोर्नकार्यकारणभावो विद्यते, येनकारणाभावेसतिकार्याभावोऽर्थत एव सिद्ध्येत, दण्डादिकारणाभावेघटाभाववत्। अर्थात् विषयबोधाश्रयत्वमेवस्वस्यातिशयोऽपूर्वोविषयज्ञानकाले इति। न च विषयज्ञानकालेवित्तेर्ज्ञानस्य वेदितुर्ज्ञानाश्रयस्यात्मनोरनवभासेपूर्वोक्त सशय "ज्ञायते नवा मम प्रतिभासते परस्य वा प्रतिभासते" इत्याकारक सशयो न निराकृतो भवतीतिवाच्यम्, स्वज्ञानजनितघटाद्यर्थविषयधर्मप्रकाशस्य स्वप्रति-प्रत्यक्षत्वात् "ममप्रकाशतेविषयोनवेत्याकारकसशयस्यावकाशाभावात्। ज्ञानस्यफलीभूत प्रकाशेनभू-तितत्समये एव ज्ञानस्यानुमानप्रमाणसिद्धत्वात् "ममज्ञान प्रकाशतेनवेत्याकारकसशयस्यममज्ञानंजातमन्य स्यवाजातमितिसशयस्याप्यनवकाशात्। नैयायिकप्रक्रियानुसरणेतु "योग्यविभुविशेषगुणानास्वोत्तरवर्त्ति-गुणनाश्यत्वनियमात्, ज्ञानस्यद्विक्षणमात्रावस्थायित्वात् व्यवसायानन्तरानुव्यवसायबलादेवप्रथम-ज्ञानविनाशेनानुव्यवसायानन्तरपूर्वोक्तसशयस्यानवकाशीकरणात्। ज्ञानस्यज्ञातुश्चापिविषयविषयक ज्ञानेऽवभासेपि पूर्वोक्तसंशयानवतारात्। स्वसमवेतविषयविषयकबोधोत्पादनसभवात्। स्वसमवेतज्ञानो-त्पत्तौपरसमवेतज्ञानोत्पत्तौ च स्वकीयपरकीयचक्षुरादीन्द्रियार्थसनिकर्षस्यभेदेनैवज्ञानस्य भेद"। अर्थादीन्द्रियार्थसन्निकर्षरूपकारणभेदादेवस्वस्यपरस्य वा ज्ञानजायते, ज्ञाने तस्यैवकारणत्वात् कारणभे-दस्य च कार्यभेदेकारणत्वादिति। ननु यथेन्द्रियार्थसनिर्षोज्ञानजन्मनिहेतुस्तथैवात्मप्रकाशस्यापि तत्र

न चात्मनःसिद्धिरपिज्ञानसामग्र्यामनुप्रविशति ? इन्द्रियवदेवानवभासमानस्यैवज्ञानंप्रतिकारणत्वसंभवात्। न च विषयज्ञानंतदवबोधएवात्मबोध इति कथनं युक्तम्? नहि विषयान्तरज्ञानं विषयान्तरस्यज्ञानं भवति, तथासत्यतिप्रसङ्गात् । अपि च यद्धीनाभावानांरूपभेदस्यव्यवस्था भवति तदपि संवेदनज्ञानं तदानींतत्कालेज्ञातंनिलीनमेव कारणम् घटादिबोधेनिलीनेन्द्रियवदिति । कुतः खलुकारणात् बोधाश्रयस्यात्मनाप्रतिभासः प्रस-

कारण भवतु ? तदनुरोधेन विषयवित्तौ, आत्मप्रकाश आवश्यक इति चेन्न, यथा, अर्थज्ञानेज्ञायमान निलीनमिन्द्रियमेव कारण न ज्ञायमानसदिन्द्रियादिककारण तथैवाप्रकाशमान एवात्माज्ञानजन्मनि कारण भवतीत्याशयेनैव कथित **न चात्मसिद्धिरपि ज्ञानोत्पादकसामग्र्यामनुप्रविशति** इन्द्रियादिवदेवानवभासमानस्यैवात्मनोज्ञानहेतुत्वस्य स्वीकारात् । अर्थादनुमानस्थले यद्धूमादीना कारणत्व तत् तदीयज्ञानस्यैव नतु ज्ञायमामस्य हेतोरतीतानागतहेतुज्ञानादपि घनगर्जनादिस्थलेऽनुमित्युत्पत्तिदर्शनात् । एवमेवोपमितौशाब्दबोधे च सादृश्यज्ञानपदज्ञानादीनामेव करणत्वम् , परन्तु नाय नियमोऽपरोक्षस्थले, तत्रातीन्द्रियस्यकारणत्वेनप्रत्यक्षत पूर्वं तज्ज्ञाना सभवात्, किन्तु निलीनमज्ञायमानमेवद्रव्यमतीन्द्रियमिन्द्रिय हेतुर्भवति । अतएव "ज्ञानाकरणक ज्ञानं प्रत्यक्षमिति" प्रत्यक्षलक्षणम्, "इन्द्रियार्थसन्निकर्षजन्यज्ञानप्रत्यक्षमितिलक्षणंविहायपूर्वोक्त लक्षण कृतवान् एवमीश्वरप्रत्यक्षेऽव्याप्तिमनुमित्यादौ चातिव्याप्तिमशक्यमिन्द्रियार्थसनिकर्षजन्यत्व विहाय ज्ञानाकरणकमितिलक्षण कृतवान् । अतएव विषयवोधे आत्मन करणत्वज्ञायमानस्यैवकथितम्, **इन्द्रियादिवदेवानवभासमानस्यैव** हेतुत्वादित्यादिना । ननु आत्मसिद्ध्यघटितापिविषयबोधसामग्रीआत्मप्रकाशेकारण भवतु ? तत्राह **न च विषयप्रसङ्गादिति** । इन्द्रियार्थसनिकर्षा योग्यता घटिताविषयिकज्ञानसामग्रीयमार्थज्ञानजायते, एतादृगीसामग्री, अयोग्या मबोधमुत्पादयितु नैव समर्थाभवतीति । **अतिप्रसङ्गात्** घटादिबोधसामग्रीवलात्पटादिविषयकबोधस्यापि समुत्पादप्रसङ्गात् तस्मादन्यकारणेनान्यस्योत्पादइतिवक्तु नैवयुक्तमिति । ननु यदा विषयस्यघटादेरबोधो भतति, तस्मिन् समये बोधस्यज्ञानस्यप्रकाशो न भवतीत्याशङ्कायामाह **अपि च यद्धीनांभावाना**मित्यादि । प्रमाणाधीनाप्रमेयसिद्धि "प्रमेयसिद्धि प्रमाणद्धि" इति वृद्धोक्ते । प्रमाण खलुप्रत्यक्षादिकम्, तद्वलात् पदार्थस्यसाधन भवति, प्रमाण च स्वलक्षणाधीनस्थितिकम् । अर्थात् भावानाद्रव्यादिपदार्थानां रूपभेदव्यवस्था भवति, यदधीनायत्प्रयोज्या भवति, इद द्रव्यगुणोवेत्यादिक्रमेणघटादीनापृथक्तया सिद्धिर्ज्ञानाधीनमेव भवति ज्ञानस्यैवज्ञेयप्रकाशत्वेनप्रमाणत्वात्, तत् सवेदनज्ञानप्रमाणरूपम् तदानीं विषयप्रकाशनसमयेविलीनमज्ञातमेव नतु ज्ञात सत्, अर्थस्यप्रकाशकम्, अन्यथा ज्ञायमानत्वेन ज्ञानस्यविषयसाधकत्वेज्ञानानवस्थाया पूर्वमेवप्रतिपादनादतोनिलीनमेवज्ञानमर्थस्यरूपभेदसिद्धौ साधकं

क्तिः? "यदाहुः इदमहंजानामीति त्रितयावभासः सार्वत्रिकः" इतिदप्यनुभवाना-रूढमेवेत्यनन्तरमेव निराकृतम् ।

। इति भाट्टेन प्रभाकरमतदूषणम् ।

भवतु तर्हिग्राहकतयैवसर्वपदार्थग्रहणसमये आत्मनोपिसिद्धिः । ज्ञानस्यस्वतःसि-द्धिरवश्यमेवाभ्युपगन्तव्या, सर्वप्रकारकसाधनान्तरस्यप्रतिक्षेपात् सत्याश्चतस्याः कदा-चिदनवभासादर्शनात् । यथा च संविदः प्रकाशाव्यभिचारस्तथाप्रपञ्चितप्रागेवना-त्रतत्प्रदर्श्यनिराकरणीयम् । सतो विद्यमानस्यापि घटादिप्रमेयजातस्यस्वप्नमूर्छादिकालेऽनु

भवति । यथा चक्षुरादिकमतीन्द्रियत्वान्निलीनमेवार्थसाधक भवति तथैवप्रकृतेपि । अर्थात् पदार्थानाद्रव्यादीनोजातिगुणादिविशेषस्यव्यवस्था यदधीनाज्ञानात्मकप्रमाणाधीना, तदपि सवेदन विषयप्रकाशकालेऽज्ञायमानम् प्रकाशमानस्वरूपस्वरूपसदेवज्ञापक भवति, चक्षुरादिवत्, यथाचक्षुरादिकविषयप्रकाशनसमयेऽप्रकाशमानस्वरूप सदेवप्रकाशक तथैवप्रकृतेपीतिभाव । ततश्चस्वरूपजज्ञानेनैवविषयविशेषसिद्धिवत् स्वरूपसत्, अज्ञायमानज्ञात्रैवस्ववेद्यविषयातिशयसिद्धि-र्जायते एवेति नतस्यज्ञातु प्रकाशमानत्वेनकारणत्वमिति भाव । प्रभाकराणामतमनुवदति **यदाहुः** इत्यादि **इदमहंजानामीतित्रितयावभासः सार्वत्रिक** इति । तत्र सार्वत्रिक—प्रत्यक्षानुमानादि सर्वविषयज्ञानव्यापीत्यर्थ । एतन्मत प्रतिक्षिपति **तदप्यनुभवानारूढ**मित्येवरूपेणनिराकृतमेव । अनुभवारूढमितिकथनेनत्रितयावभासेसाधकाभाव कथित, अनन्तरमेव प्रतिक्षिप्तमित्यनेनबाधकस्य प्रदर्शनकृतम् ।

। इति भाट्टेन प्रभाकरमतदूषणेतत्त्वदीप ।

यथा ज्ञान स्वविषय साधयतीतिज्ञानस्यतस्यस्वभावस्तथैव स्वस्वाश्रयस्यापि प्रकाशेकारण-मितिज्ञानस्यायस्वभाव स्वभावश्चसर्वस्यपदार्थजातस्यदुरपन्हव एव । तदुक्तम्—"अतीत्यहिगुणान्स-र्वान् स्वभावोमूर्ध्निवर्तते" इति न्यायादिति पुनरपिप्रभाकर शङ्कते **भवतु तर्हिग्राहतयैवेत्यादि** तत्र ग्राहकतया=ज्ञानाश्रयतयाऽर्थात् ज्ञानाधिकरणतयैवेति । विषयविषयकबोधज्ञानसामग्रीवलेन विषयमेव यद्यपि जायते, जायमान तादृशविषयविषयकज्ञानस्वसामर्थ्यवलेनस्वस्याविषयमपि स्वस्वा-श्रय च प्रकाशयत्येवेति सर्वत्रज्ञानेषु स्वग्राहकतयाआत्मानप्रकाशयतीतिभाव । ननु सभवेद्‌पि ज्ञानस्यविषयवत्, स्वस्यस्वग्राहकस्यापि प्रकाशकत्वस्वभावो यदि ज्ञानस्यस्वप्रकाशकत्वसिद्धेयत नत्वे व ज्ञानस्यस्वप्रकाशकत्व तु नाद्यापि सिद्धमित्याशङ्क्य ज्ञानस्यस्वप्रकाशकत्व युक्त्यासाधयितु प्रभाकरमतेन तत्तावद्दर्शयति, एव स्वप्रकाशत्वज्ञानस्यकथयित्वाज्ञानस्यविषयप्रकाशकारणत्वस्वभाव च साधयति=**सतोविद्यमानस्यापि घटादिप्रमेयजातस्य** इत्यादि। यद्यपि स्वप्नसमयेवाह्या घटादि विषया वर्तन्ते एव नतुतेषाविषयाणामभावो जायते, तथापि सन्तोपि ते प्रकाशमाना न भवन्ति, अय

पलब्धेरितिस्वीकृतं तावत् संविदोज्ञानस्यविषयसाधकत्वम् । अतस्तस्मादेवकारणात्क्ल- प्तार्थान्तरसाधनभावतयासंविदैवात्मनो ग्राहकस्यसिद्धिरभ्युपगन्तव्या ।

यत्तु विषयविषयकज्ञानस्याभावेपिस्वप्नसमयेऽयमात्माप्रकाशत एवेति । तद् यद्यपि युक्त्यासिद्ध्यपि तथापि प्रतीत्यनुसारेणव्यवहरतां न प्रमोदमञ्चति ।

अपि च मोक्षकालेपिआत्मनोज्ञानंभवतीतिमतंतदप्यसंभवप्रायमेवज्ञानकारणस्य- घटोऽयपट इति, ज्ञायते यत् सतामपितेषा सद्भावेपिप्रकाशकस्यकस्यचिद्भाव स्वप्नकालेइन्द्रिया- दीनामुपरमात्, तेषाज्ञाननास्तीति, तस्मात् तत्रात्मनोमनसोविषयाणासत्वेपिज्ञानसाधनाभावेनज्ञाना भाव । ततश्चज्ञानस्यैवप्रकाशकत्व नान्यस्यकस्यचित्तथात्व स्वीक्रियते । अर्थात् स्वप्नसमयेमूर्छा- कालेज्ञानस्यनिवृत्त्याविषयप्रकाशाभाव , जागरणेतु इन्द्रियसन्निकर्षादिनाजायमानज्ञानेनविषयप्रकाशो जायते इत्यन्वयव्यतिरेकाभ्याज्ञानस्यैवविषयप्रकाशकत्वमितितस्यप्रकाशकत्वसिद्ध्यतीति । **अतस्त- स्मादेवकारणादिति** परप्रकाशकत्वेनान्विष्यमाणस्यज्ञानस्यैवप्रमातुरात्मनोपि प्रकाशकत्वमपि युक्ति युक्तमिति न पार्थक्येनात्मन स्वयं प्रकाशत्वमपिकल्पनीयमिति । यद्यपि जागरणाद्यवस्थामधि- कृत्यतत्प्रवाहेस्वप्नावस्थामधिकृत्य–"अत्रायपुरुष स्वयज्योतिर्भवति"इत्यादिश्रुत्यादित्यादिप्रकाशस्या- स्तमयेस्वप्नावस्थायामात्मन एव स्वयंप्रकाशत्व प्रतिपादितम्, तथापि तादृशश्रुत्यर्थेगजनिमीलिका- मादधानस्तथाकथितवान् । इदमीयविशेषविचार स्वयमेवकरिष्यतीतिनात्रतत्प्रपञ्च आवश्यक इति कृत्वा विरम्यते । । इतिपुन प्राभाकरेणस्वमतस्थापनप्रकरणेतत्त्वदीप ।

प्रभाकरमतानुयायी "अत्राय पुरुष स्वय ज्योतिर्भवतीति श्रुतिवलात स्वापादिसमयेपि आत्मनोज्ञानभवत्येवेति तदीयमतमनुद्यतत्खण्डयितुमुपक्रमते **यत्तु विषयविषयकज्ञानस्य** इत्यादि । सत्यपि विषयविषयकवित्ते स्वापेउपरामेपितदाप्ययमात्माप्रकाशते एव, अर्थादात्मनोज्ञान विषय विषयकभवत्येव । अर्थात् सुप्तोत्थितपुरुषस्य "सुखमहमस्वाप्स न किञ्चिदवेदिषम्" इत्या- कारकं स्मरण भवतीति सर्वासद्धमेव, स्मरणचानुभवमन्तयेण न सभवतीति स्मरणान्यथानुपपत्त्याऽ- नुभव स्वापेस्वीकर्तव्यमेवेति स्वापसमयेज्ञानमात्मनोभवत्येवेति मन्तव्यम् । अत स्वापादिकालेपि आत्मन प्रकाशो भवत्येवेति स आत्माज्ञानवानेवेतिप्रभाकरस्यपूर्वपक्ष । तदुत्तरयति **तथापि प्रतीत्यनुसारेण** इत्यादि । सुखमहमस्वाप्समित्येव स्मरत स्वापे आत्मप्रकाशमन्तरेणानुपपद्य- मानत्वलक्षणयुक्तियुक्तमपिप्रकाशमानत्वमात्मनस्तथापि अनुभवमात्रशरणाना न मनोऽनुरञ्जयतीति, उपपद्यमानमपीत्यत्रअपिपदस्योपपत्तिरपि– नास्त्येवेत्यर्थ सुखमहमस्वाप्समितिस्मरणस्यान्यथाप्युपपत्ति सम्भवात्, अन्यथासिद्धत्वादित्यर्थ तदन्यथासिद्धिप्रकारमग्रेस्वयमेवदर्शयिष्यते । एतावता प्रकरणेन स्वापे आत्मन प्रकाश निषिध्य, मोक्षकाले आत्मास्वयप्रकाशते इति यन्मत तदपि निराकर्तु- माह **अपि च मोक्षकालेपीत्यादि** करणकलेवरादिविनाशानन्तरमेवात्मनोमोक्षो भवति, ततश्च

मोक्षकालेऽभावेनतज्ज्ञानस्यासंभवात्, कारणाभावेकार्याभावस्यौत्सर्गिकत्वात्। न च मुक्तस्यज्ञानंनित्यमेवेतिवाच्यम्, तथा सतिमोक्षस्यसार्वदिकत्वप्रसङ्गात्। न च तर्हि मुक्तस्यसर्वज्ञत्वप्रतिपादकश्रुतीना का गतिः ? तादृशश्रुतेरर्थवादत्वेन विधायकत्वासंभवात्। विनाशितसकलशरीरेन्द्रियज्ञानकर्मवासनानुवन्धस्यमुक्तस्य न किञ्चिदपिस्वपरज्ञानोदयकारणकंसंभाव्यते। न च मनसि नित्येन्द्रियत्वेन तादृशमनःसंयोगादेवमोक्षकाले ज्ञानं जायते, तदपि न युक्तम् स्वरूपतो गगनवत्, नित्यस्यापिविद्यमानस्य मनस इन्द्रियत्वेनज्ञानोत्पादकत्वस्यधर्माधर्ममूलकत्वात्। ततश्चधर्माधर्मसहकृतं मन एव ज्ञानोत्पत्तौकारणंमनसोनित्यत्वेन्द्रियत्वेपि। यथा नित्यत्वेपिश्रोत्रस्यादृष्टमूलकमेव शब्दोत्पत्तौकरणत्वम्।

ज्ञानप्रति अवच्छेदकयो करणकलेवरयोस्तदामोक्षकालेऽभावेनकथमनित्यज्ञानसासारिकवत् तस्यमुक्तस्यादर्थात नैवकथमपि सभवति, यथा दण्दादिसहकारिकारणबिधुरस्यकुलालस्यघटादिप्राप्तिर्न भवति कारणमन्तरेणकार्यासभवात्तथैवजन्यज्ञानकारणस्यमोक्षकालेऽभावेन मुक्तस्य ज्ञान न कथमपिसभवेदित्युत्तरपक्षस्यसमुदिताशय।

ननुकारणसाध्यज्ञानशरीरादिकारणाभावान्नमुक्तस्य भवतु, परन्तुमुक्तस्ययद्ज्ञानतन्नित्यमेव भवतु ? इत्याशङ्कांसमाधातुमाह **न च मुक्तस्यज्ञानं नित्यमेवेतीति** उत्तरयति **तथा सति मोक्षस्यसार्वदिकत्वप्रसङ्गादिति।** यदि नित्यज्ञानत्वान्मुक्तस्तदातदीयज्ञानस्यसर्वदाऽवस्थानेन नित्यमुक्तत्वस्यात्, ततश्चससाराभावोप्यापतेत्, न चैतद् युक्तम् 'योनिमन्ये प्रपद्यन्तेशरीरत्वायदेहिन" इत्यादिश्रुतिविरोधआपतेत्, तस्मान्मुक्तस्यज्ञाननित्यमितिकथनमयुक्तमिति। ततश्च नित्यत्वेन मुक्तज्ञानस्यसर्वदाऽवस्थानेन ससाराभावआपतेत्, ससाराभावस्वीकारे "योनिमन्येप्रपद्यन्ते" इत्यादिससारसाधकश्रुतिविरोध।

ननु तर्हिमुक्तिकालेसर्वज्ञस्यसर्वज्ञत्व भवतीति तस्यसार्वज्ञत्वप्रतिपादकश्रुतीनाकागतिरित्याशङ्कय, सार्वज्ञश्रुतीनामर्थवादत्वेनापिचारितार्थ्यसभवादित्याशयेनाह **तादृशश्रुतेरर्थवादत्वेन** इत्यादि। मोक्षकालेऽज्ञानतत्कार्याभावनिमित्तकामोक्षसाधनप्रशसापरका सार्वज्ञत्वादिप्रतिपादकश्रुतय इत्यर्थ एतदेव विभज्य प्रतिपादयति **विनाशितसकलशरीरेन्द्रियेत्यादि** अर्थात् मुक्तस्य ज्ञानोदयकारण न शरीरेन्द्रियादिशरीरादिनांविनाशात्, किन्तु ज्ञानवासनाकर्मवासना तदीयसस्कारमात्रतस्यज्ञानोदयेकारण नतुवासनातिरिक्तकिमपिकारण सभाव्यतेयद्बलादस्यज्ञानोदयो भवेत्। निरस्तसमस्तदेहेन्द्रियवासनानुवन्धस्यमुक्तस्य, येन स्वस्वरूपविषयकमर्थान्तरादिविषयकं वा ज्ञानादिक समुक्तोऽर्जयेत्। तदाधर्माधर्मसहकाराधीनत्वात्तदीयज्ञानस्येति। न च मोक्षकाले देहेन्द्रियादेरनित्यत्वेज्ञानकारणत्वानुपपत्तावपिनित्यस्य मनइन्द्रियस्यसर्वदाऽवस्थानेन न तस्यैव

योगजधर्मसहकृतमनसः संयोग एव मुक्तस्यज्ञानोत्पादेसाधनंस्यादिति न वाच्यम्, "क्षीयन्तेचास्यकर्माणि तस्मिन् दृष्टेपराऽवरे" "तदा विद्वान् पुण्यपापेविधूयनिरञ्जनः परमसाम्यमुपैति" इत्यादिश्रुतिभिः सकलपापकर्मविनाशस्यप्रतिपादनात् । मोक्षस्य धर्मफलत्वेमुक्तस्यपुनरावृत्तिप्रसङ्गात् "न स पुनरावर्तते" इत्यादिनाश्रुतौमुक्तस्यपुनरा-

तदीयज्ञानोत्पत्तौकरणत्व स्यात्, ततश्च मनोवलेन तदीयज्ञानमोक्षकालेपिस्यादितिवाच्यम्, यद्यपि स्वरूपतोमनोनित्यम्, तथापि स्वरूपतो न मनस इन्द्रियत्व ज्ञानजनकत्वं किन्तु धर्माधर्मसहकारेणैवज्ञानादिजनकत्व नतु स्वतन्त्रस्य तस्यमनसस्तथात्वमिति गृहाण । यथा धर्माधर्मावरुद्धम्, अर्थात् पुण्यपापलक्षणादृष्टनिमित्तकोपकरणत्वावस्थाविशिष्टम् । श्रोत्रवदिति, यथा कर्णशष्कुल्यवच्छिन्नगगनस्यैवश्रोत्वम्, नतु स्वरूपतआकाशस्य तथात्वम् । तस्य चाकाशस्यादृष्टसहकारे सत्येवशद्बादिप्रत्यक्षेकरणत्वम्, नतु धर्माधर्मयोरभावे । इति यथाऽदृष्टकारणक एवाकाशस्य श्रोत्रत्वशद्बादिग्राहकेन्द्रियत्व तथैव प्रकृतेमनसइन्द्रियत्वज्ञानजनकत्व चादृष्टवलाद् भवति । मोक्षकाले च ससारप्रयोजकशुभाशुभकर्मणोऽभावात् स्वरूपतोनित्यस्यापिमनसोनेन्द्रियत्व नवाज्ञानकरणत्वमिति न मुक्तस्यसमवायिकारणस्यचाभावात् । अयमाशय मोक्षकालेऽनित्यस्यैवासत्वम्, मनसस्तुनित्यस्य न विनाश परन्तु यावदिद मनोधर्माधर्मसहकृत तावदेव स्वकार्यंकुर्वदिन्द्रिय करण च भवति । मोक्षेतु कर्मणोपि, अनित्यतयाऽवस्थानाभावेनतत्सहकाराभावात् तादृशेन मनसामुक्तस्य न ज्ञान भवति नवा तदितर ससारोपि भवतीति सर्वसामञ्जस्य भवतीति न कस्यचिदपिप्रश्नस्यावसरो भवतीति विशेषोऽन्यत्रद्रष्टव्य ।

एतावतागतप्रकरणेनभाट्टेनप्रभाकरमतेखण्डितेपुन शङ्कतेप्रभाकरानुयायी **योगजधर्मसहकृत** इत्यादि । ननु योगजधर्मसहकारेणमनसोनित्यस्यैवमोक्षकालिकज्ञानेसाधनत्व भवतु ? अर्थात्तादृशमन सयोग एव मोक्षकालिकज्ञानोदयेऽसमवायिकारण भवतु । अत्र मन सयोस्ययोगजधर्मानुगृहीतत्वमर्थाद्योगजधर्मसहकारित्वम् योगजधर्मप्रभावान्मुक्तिकालेपिमनसइन्द्रियत्वमनुवर्तते एवेतिमानसमेवात्मज्ञानमोक्षकालेऽपिसभवत्येवेतिप्रश्नस्यभाव । नैतन्मनोरम तत्राह **क्षीयन्ते चास्येत्यादि** अर्थाद् मोक्षकाले यदि योगजधर्मस्यानुवर्तन भवेत्तदाश्रुतिविरोध स्यात् । श्रुतिमेवोदाहरति **भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः क्षीयन्तेचास्यकर्माणितस्मिन्दृष्टेपरावरे** इति । अस्यार्थ तस्मिन् चिदचिच्छरीरकेवेदान्तवेद्येपरमात्मनिश्रीरामेदृष्टेसाक्षात्कृतेसति, प्रत्यक्षसमानाकारोपासनज्ञानेनध्यानेनविषयीकृते सति, अस्यध्यातुरुपासकस्य, हृदयग्रन्थिरन्त करणगतसर्वमपिमोक्षप्रतिबन्धकमलभिद्यतेविनष्ट भवति, यथा रात्रिप्रसरितान्धकारस्यसूर्यतेजसा सर्वथाविनाशोजायते यथा वा मृत् पिण्ड कठोरोपिशिलातलप्रक्षेपेशतधाविभिद्यते, तथैव ध्यातुर्हृदयगत सर्वमपिमलसमूलविनष्ट भवति । तथाध्यातुर्हृदयेऽवस्थिता येशशया श्रीरामोवोपासनीयोऽन्योवा इत्याकारकास्तेसर्वेऽपिछिन्नाभिन्नाभवन्ति, तथाऽस्य

वृत्तेर्निषेधात् "सत्यसन्धः प्रतिश्रुत्यप्रपन्नायाभयंस्वंयम् । निवर्तयेद्भयेनैनं श्रीरामः श्रितवत्सलः" इतिस्मृत्युक्तेश्च । "नास्त्यकृतःकृतेन" "तद्यथेहकर्मचितोलोकःक्षीयते-एवमेवामुत्रपुण्यचितो लोकः क्षीयते" इत्यादिशास्त्रदर्शनाच्च ।

ध्यातुरन्त करणे यानिसञ्चितानिशुभाशुभकर्माणिसर्वाण्यपिविनश्यन्ति, ततश्चध्यातुर्निष्प्रत्यूहमयत्नोपनतमिवसाकेतगमन भवतीति । इय श्रुति कर्मणा निषेधकुर्वतीमोक्षकालेतदभावमेवदर्शयतीति कथ मोक्षकालेयोगजधर्मसाहाय्यमनस कथ वा मोक्षज्ञानम्, कथवाऽत्मनोमानस प्रत्यक्षविषयत्वमिति । तथा "तदा विद्वान्पुण्यपापेविधूयनिरञ्जन परमसाम्यमुपैति" यदाखलुध्यातोपासक सर्वशरीरकभगवन्त पश्यति-प्रत्यक्षसमानाकारकज्ञानेनसाक्षात्करोति तदा अत्रैवपुण्यपापस्वर्गनरकादि पापककर्मविधूयविनाश्य "अश्वइवरोमाणि" इतिश्रुत्यन्तरात् । अतएव निरञ्जन सर्वमलरहितो भगवत परमसमताप्राप्नोतीत्यर्थ । इत्यादि, शुक्लेतरसकलकर्मणाभोक्षकालेऽभाव दर्शयति । मोक्षकालेकर्मसद्भावस्वीकारेप्रस्तुतश्रुतिविरोध स्पष्ट एव । तस्मान्नमोक्षेकर्मसभावनेति । अपि च यदि मोक्षो धर्मस्यफलरूपोभवेत् स्वर्गादिवत्तदास्वर्गादिवदेवनिवृत्तोपि स्यात् । अर्थात् यथा यागादिकर्मणासमुपार्जित स्वर्गोभोगान्तर स्वजनककर्मण स्वजन्यफलस्यावसानेतत स्वर्गान्निवृत्तिर्जायतेसस्थापककर्मगामुपभोगेन विनाशादिति स्वर्गिगापुनरावर्तन भवति, तथैवापवर्गस्यापिधर्मफलकत्वेउपभोगेनमोक्षजनककर्मणाविरामेमुक्तस्यापिपुनरावर्तनस्यादेव, परन्तुनैव श्रुयते, प्रत्युत "न स पुनरावर्तते" इत्यादिश्रुत्या मोक्षगतानामपुनरावृत्तिश्रवणादिति तादृशश्रुतिविरोधो भवत्यतोमोक्ष स्वगादिवत् न कथमपिधर्मफलभूत । अर्थात् मोक्षसमयेआत्मविषयकज्ञानस्ययद्वा सर्वविषयकज्ञानस्यधर्मोत्पाद्यत्वस्विकारेजन्यभावस्य निवृत्तेरवस्य भवति घटस्वर्गवदितिनियमेनपुनरपिअज्ञानतत्कार्यादिकप्रसङ्ग इत्यर्थ । कर्मणाशुभाशुभादिनामनित्यत्वमुत्पादविनाशित्वमित्यत्र श्रुतिप्रमाणचोदाहरति

"नास्त्यकृतः कृतेन" "तद्यथेहकर्मचितोलोकः क्षीयते एवमेवामुत्रपुण्यचितोलोकः क्षीयते

इत्यादि श्रवणात् । श्रुत्यर्थस्त्वित्थम्, यथा येनप्रकारेणकर्मणाकृष्यादिक्रिययासपादित सञ्चितो लोकोधान्ययवादिक उपभोगेनकालपरपरयाक्षीयतेविनश्यति, नतु सार्वदिको भवति, ते एवमेवैतद् दृष्टान्तानुसारेणामुत्रस्वर्गादिस्थानविशेषेपुण्यचितोविधिबोधितयागादिकर्मणासञ्चित इन्द्रयमादिलोकोपि उपभोगेन सचायककर्मणाविरामेक्षीयते विनस्यति । स्वर्गोविनाशीभावत्वेसतिकार्यत्वादित्यनुमान प्रमाणित. । किञ्च यथा श्रुत्याकार्यभूतस्वर्गादिफलस्यानित्यत्वप्रदर्शित तथैव श्रुत्यन्तरात्, फलभूतस्यापिमोक्षस्यचिरस्थेमानत्वमपिदर्शित भवति, "परीक्ष्यकर्मचितान् लोकान् ब्राह्मणोनिर्वेदमायात् । नास्त्यकृत कृतेन । स तद्विज्ञानार्थंगुरुमेवाभिगच्छेत्समित्पाणिर्ब्राह्मणश्रोत्रियब्रह्मनिष्ठम्" ब्राह्मणोजात्याब्राह्मणवंशजात कर्मचितान्, कर्मणाशुभाशुभकर्मणाचितान् सञ्चितान्, आचकीटपतगेभ्यआचदेवर्षिप्रमुखान् सुखलेशविरहितान् रात्रिन्दिवहाहाकारेणसक्षुभितान् इत्थभूतानेकप्राणिसकुलान् परीक्ष्य=सर्व-

न चात्मसत्तयैव तदानीं मोक्षसमये तज्ज्ञाननिमित्तत्वंभवत्वितिवाच्यम् प्रक्लृप्त्यागाप्रक्लृप्तकल्पनादोषप्रसङ्गात् । मोक्षकालेज्ञानस्यात्ममात्रनिमित्तकत्वे च सर्वदा आत्मस्वरूपवत्तदपिविद्यतेएवेति संसारानवतारप्रसङ्गात् तथा बन्धमोक्षयोरविशेषप्रस-

मनित्यसुखलेशविवर्जितदु खवहुल च विचार्य्यनिर्वेदवैराग्यम्, आयात् प्राप्नुयात् मनुष्यलोकादारभ्य प्रजापतिलोकपर्यन्त स्पृहामुपादेयता च परित्यज्यवैराग्येमन स्थापयेत् । ततचैषणात्रयविमुक्त-कुतश्चिदात्मज्ञानसकलशरीरक परमात्मानं ज्ञात्वा, तद्विज्ञानार्थ श्रोत्रियब्रह्मनिष्ठ च गुरुमभि, गच्छेत् । गुरुणाविदितपरमेश्वरध्यानमेवसर्वदु खरहितमोक्षप्रतिकारणमितिश्रवणमननध्यानात्तमेवोपासीत। । ततस्तदीयकृपयैवमोक्षमवाप्तो भवति । स चाकृतो नित्योमोक्ष कृतेनयागादिकर्मणाप्राप्तो न भवति किन्तु परमेश्वराराधनेनैव भवतीतिक्रियाज्ञानसमुचितभक्तौमनोनिवेशयेत् "भक्त्यात्वनन्यया शक्यअहमेवविधोऽर्जुन" इतिभगवद्वचनात् । तदत्रास्मत्परमगुरवोमहामहोपाध्याया जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यरघुवराचार्यमहाभागाअर्थचन्द्रिकायाम् "एवविश्वरूपोऽहमनन्ययामदेकगोचरयाभक्त्याऽनुरक्त्या तु तत्वेन याथार्थ्येनज्ञातुशक्यस्तत्वेनद्रष्टुसाक्षात्कर्तुञ्चशक्यस्तत्वेनप्रवेष्टु-सायुज्यवाप्तुञ्चशक्य । सन्ध्यभावस्त्वार्ष । तुशब्दोऽत्रैवकारार्थक साधनान्तराणिव्यवच्छिनत्ति ।

नन्वनन्यभक्तेर्ज्ञानप्रतिकारणत्वेन तत एव कृतकार्यत्वेनदर्शनप्रवेशनयो कारणता न स्यादिति चेन्न 'अधिकप्रविष्ट नतु तद्धानि' इतिन्यायाद्भक्तेरेवतयोरपिकारणत्वाक्षते तथाहि भक्तेरनन्यत्वमत्रप्रयोजनान्तरनिरपेक्षत्वमेव । एव च सद्गुरुमुखाद्वेदान्तशास्त्रश्रवणेनादौप्राप्यस्यभगवत्स्वरूपस्ययाथात्म्यानुभवो जायते । अयञ्चानन्यभक्ते प्राथमिकम्फलम् । अनन्तरमेतज्ज्ञानविशिष्टोत्कटदिदृक्षयोपास्यस्वरूपसाक्षात्कारोजायते । एतत्साक्षात्कारजननीभक्तिरेवपरभक्तिपदेनाभिधीयतेसाम्प्रदायिकैस्ततश्चसाक्षात्कारानुभवविशिष्टपरभक्त्या भगवत्सायुज्यमवाप्यते । सायुज्यफलिकेयमेव च परमभक्तिपदेनव्यपदिष्यते। एतद्भक्तिसहकृतामेववेदानुवचनादीनाभगवद्दर्शनप्रयोजकत्व "तमेतंवेदानुवचनेन" इतिश्रुत्याऽवगम्यते । ये तु केवलज्ञानेन सायुज्यमाहुस्तेषामयमसङ्गतएवेतिध्येयम्" (गी० ११।५४) इति सक्षेपोविस्तरास्तुततएवानुसन्ध्येय ।

ननु मोक्षसमये आत्मैवस्वसत्तयाकारण भवतु, नतु तदतिरिक्त किञ्चिदपिज्ञानकारणम्। **अर्थात्** ज्ञानसामान्यप्रतिसमवायिकारणमात्मद्रव्यम्, असमवायिकारणमात्मन सयोग एतस्यज्ञान **समवायिकारणेआत्मनिसमवेतत्वात्** ज्ञानात्मककार्योत्पादकत्वाच्च, तथा निमित्तकारणमदृष्टादिक **यथायथमितिस्थिति** । तत्रज्ञानात्मककार्यंप्रतिआत्मैवकारण भवतु नतु तदतिरिक्तमनोमन.सयोगो **वा ततश्चात्मैवमोक्षसमयेज्ञानस्यकारण** भवतु नतु तदतिरिक्तकिञ्चिदपेक्षितमित्याशङ्कांदर्शयितुमाह **न चात्मसत्तयैव तदानींमोक्षकाले** तज्ज्ञाननिमित्त भवत्वितिप्रश्न उत्तरयति **प्रक्लृप्तत्यागाप्रक्लृप्तकल्पनादोषप्रसङ्गादिति** । आत्ममात्रस्यैवज्ञानप्रति यदि कारणत्वस्वीक्रियेत तदा **ज्ञानकारणतया**सर्वानुमतस्येन्द्रियादे कारणत्वम्, तस्येदानींपरित्याग स्यात्, नैयायिकादिभिरपि

ज्ञात् । न शरीरेन्द्रियादिप्रतिबद्धतयासम्प्रतितदभाव इतिवाच्यम्, तदेव प्रतिबन्धकं भवति, सतिपुष्कलकारणेपिकार्यंविरुणद्धि । न चात्मनोज्ञानंप्रतिकारणत्वं सिद्धम्, करण कलेवरवतामेव ज्ञानोत्पाददर्शनात् । क्लृप्तज्ञानकारणस्यदेहादेरेवज्ञानप्रतिबन्धकत्व कथनमुन्मत्तवचनवदेवाभाति । अतो मोक्षकालेनास्तिज्ञानम् । तात्कालिकमोक्षकालिक-ज्ञानसुखादिवचनंतुआत्मज्ञानविधिशेषतयागुणवादेननेतव्या । अतो विषयवित्तिकाले एवात्मनियमाद् यथोक्तरीत्याऽर्थज्ञानेषुवेदितृतयाज्ञानग्राहकतयैवात्मसिद्धिरिति, विषय-वित्तिकाल एवात्मनोभानम् । । इति गुरुमतोपपादनप्रकरणम् ।

मन प्रभृतिकेन्द्रियाणातत्सयोगानां कारणत्वस्यस्वीकारात्' स च नियमएतन्मतेपरित्यक्तो भवेत् । तथा क्लृप्तस्यैवकेवलस्यात्मन ज्ञानकरणत्वेन च कल्पन प्रसज्येत । तस्मान्नाय पक्ष पण्डितानां मोदमावहतीति भाव । अस्मिन् कल्पेनैतावद्दूषणमपितु दोषान्तरमपि विद्यते तद्दर्शयितुमाह **आत्म मात्रनिमित्तकत्वे च सर्वदाऽत्मस्वरूपवत्तदपि विद्यते एवेति संसारानवतारप्रसङ्गा-दिति** । यदि ज्ञानमात्ममात्रनिमित्तकमस्तु न कारणान्तरप्रयोज्यतदाऽत्मस्वरूप यथा सर्वदा विद्यते, तथाऽत्ममात्रनिमित्तकमुक्तिकालिकज्ञानमपिस्थास्यत्येवेतिसर्वदामोक्ष एव नतु कदापि ससार इति ससारानवतार ससाराभाव आपतेत् , यतोज्ञानस्याज्ञानतन्मूलके ससरणप्रतिबन्धकत्वात् , ज्ञानाज्ञानयोर्विरोधात् , ज्ञाने सतिनाज्ञान नवाऽज्ञानकार्यरूप ससरण वा भवेदिति । अथ यदि विशदतत्वसाक्षात्काररूपज्ञानसद्भावेपि यदि ससारस्यसद्भावमिच्छेत्कश्चित्तदापिदोषदर्शयति **बन्ध-मोक्षयोरविशेषप्रसंगाद्** इति । मुक्तिकालिकतत्वज्ञानस्यसाक्षात्कारिज्ञानस्यससारकालेपिसद्भावस्वी-कारेससारापेक्षयामोक्षे किं वैलक्षण्य स्यात्, अर्थात् किमपिवैलक्षण्य न स्यात् , उभयत्रापि तत्त्वज्ञानस्यात्ममात्रनिमित्तकस्यात्मरूपवत्, सत्वस्यविद्यमानत्वादिति भाव । ननु कथमुच्यते ससारमोक्षयोरविशेषोयावताससारकालेदु खध्वसोनविद्यतेऽपितुदु खमेव विमोक्षकालेतु दु खप्रध्वसोविद्यते इतिदु खतत्प्रध्वसावेव विशेष इति चेत्तर्हितावन्माग्रमेव दु खप्रध्वस एव मोक्षकालेभवेदितिमोक्षकाले ज्ञानसुखादीनासद्भावोनिरर्थक एवस्यात् ।

अथात्मनोमोक्षकालिकज्ञानेकारणीभूतस्य, नित्यत्वेपिनससारकालेप्रसङ्गोयत ससारकालेशरीरे-न्द्रियादेरेवनित्यज्ञानप्रतिबन्धकत्वादित्याशयेनाह **न शरीरेन्द्रियादिप्रतिबद्धतयासम्प्रतितदभाव** इति । ससारकालेदेहेन्द्रियादिक वर्तते इति तदेवनित्यज्ञानस्यप्रादुर्भावेप्रतिबन्धक भवति, यथा चन्द्रकान्तमण्यादिनाप्रतिबद्धोविनाशितशक्तिको वह्नि स्वरूपतो विद्यमानोपिनोत्पादयतिदाहकार्यं स्वसयुक्तकाष्टे तथैव प्रकृते देहेन्द्रियादिनाप्रतिबद्धत्वात् मोक्षकालिकनित्यमपिज्ञान न प्रादुर्भवति । तस्मात् संसारमोक्षावस्थयोर्नाविशेषदोष इति प्रश्नयितुराशय । तदेतदिन्द्रजालमिवाबोधविजृंभित-मितितदुत्तरयति **तदेव प्रतिबन्धक**मित्यादि, तस्यैव प्रतिबन्धकत्वमुच्यते यत् खलुकार्योदये

इदमपिपूर्वोक्तवचनमात्मतत्वानभिज्ञस्येति न तत्रवेदान्ततत्त्वाभिज्ञानामादरः । विषयवित्तिज्ञानं विषयवित्तिरेव । न तया वित्त्याऽत्मवित्त्याआत्मवित्तिःस्वरूपं वा सिद्धं भवितुमर्हति, अतद्विषयत्वात् । योहि यस्यज्ञानस्यविषयो न भवति न सपदार्थस्तेनज्ञानेन स्वसिद्धिमासादयति । यथा रूपज्ञानेन रसस्यसिद्धिर्नकुत्रापिसेद्धुमर्हति । एवमेव विषयविषयकज्ञानस्य न भवतो ज्ञानज्ञाताचेति नविषयवित्त्याज्ञानस्वरूपंज्ञाता च न कथमपिसिद्ध्यतः ।

पुष्कलकारणेसत्वेपिकार्योत्पत्तिविरूणद्धि, यथादाहकारणसमवधानेपिमण्यादिसमवधानेदाहादिकार्यं न मण्यादीनाप्रतिबन्धकत्वदाहकार्योत्पादविरोधित्वात्, प्रकृतेतु न देहादे प्रतिबन्धकत्वम् अपितु देहादिविशिष्टात्मन एवज्ञानजनकत्वदर्शनेनविशेषणविधयातेषामपिदेहादीनामुत्पादकत्वस्यानुभविकत्वात् । आत्मनस्तुज्ञानप्रतिपुष्कलकारणत्वमेव न सिद्धम्, केवलस्यानुत्पादकत्वात् करणकलेवरसहितस्यैवतथात्वमितिप्राप्ताप्राप्तविवेकन्यायेनकरणादेरेवहेतुत्वनतुकेवलस्यात्मन । प्रत्युतदेहादेरेवकारणत्वलोकेदृष्टमिति, यत् कारणतस्यैव प्रतिबन्धकत्वकल्पननतरांशोभामञ्चति । तस्मान्नमोक्षकालेज्ञान भवतीति । तात्कालिकमोक्षकालिकज्ञानसुखादिवादात्स्वात्मज्ञानविधिशेषतयागुणवादेन नेतव्या । अर्थात् मोक्षेदु खनास्ति किन्तु दु खाभावो वर्तते इति दु खाभावेसुखस्योपचार । यथाभारापगमेसुखी अहसवृत्त इति, अभावस्याधिकारणरूपत्वात्, तथा च दु खनिवृत्तिपरका सुखवादामुक्तौ । मोक्षेज्ञान विद्यते इति वचनतु तदानींज्ञानप्रागभावस्यनास्तिताभिप्रायकम्, एते च ज्ञानसुखादिवादा, आत्मज्ञानस्यप्रशसामात्रपरकास्तद्विधिशेषभूता एवेति । सम्प्रति प्रभाकरमत सक्षिपति "अतो विषयवित्तिसमयेएवात्मसिद्धि नियमात्पूर्वोक्तरीत्याविषयज्ञानादावेवज्ञाततयैवात्मसिद्धिर्भवतीति ।

। इतिविषयवित्तिकालेएवात्मनोभानमितिगुरुमतोपपादनप्रकरणेतत्त्वदीप ।

एव यथोक्तप्रकारेण प्रभाकरमतस्यसमर्थनश्रुत्वा प्रक्षिपतिप्रभाकरमतसिद्धान्ती **इदमपि पूर्वोक्तवचनमित्यादि** । आत्मतत्वयथावदजानानामेवपूर्वोक्तवचन शोभते, नतु सिद्धान्त परिपुष्टमतीनाम् । कुत ? नहि अन्यज्ञानेनान्यस्यसाधन भवतीति कुत्रचिदपि दृष्टम् । एतदभिप्रायेण सिद्धान्ती ब्रूते **विषयवित्तिज्ञानं विपयवित्तिरेवेति** । विषयवित्तिर्विषयकज्ञानमेव "यस्यां सविदियोर्थोऽवभासते स एव तादृशज्ञानस्य विषय" इति नियमेन विषयज्ञानेनविषयमात्रस्यसिद्धि स्यात्, नतु विषयज्ञानेनआत्मवित्ति स्वरूपवासेत्स्यति । कुत ? तयोर्द्वयोर्विषयज्ञानाविषयत्वात् । तत्रात्मवित्ति - आत्मधर्मभूत ज्ञानम्, स्वरूपम् आत्मस्वरूपमेव । तदिमोधर्मभूतनानम्, आत्मा च विषयज्ञानेनसिद्धिंनार्हत तयोर्विषयज्ञानेभासमानत्वाभावात्, योहि विषयोयत्रावभासते स एव तद्विषयो भवतीतिनियमात् । न च धर्मभूतज्ञानमात्मा च विषयज्ञानेभासेते इति तौ विषयज्ञानस्य न विषयौ इति तयो स्फुरणविषयज्ञाने न सभवत । योहि पदार्थोयस्यज्ञानस्य

ननुस्वसंवेद्यस्वभावोऽयम् , यदयं स्वविषयकसंविदासिद्धिं समासादयति । वित्ति ज्ञानंतु वित्तिर्ज्ञानमेव वेदिता चात्मावेदितैवेतिकुतस्तयोर्ज्ञानज्ञात्रोर्वेद्यस्वभावेऽन्तर्भावः । पूर्वमेवोक्तंतयोर्मानसप्रत्यक्षाविषयत्वमनुमेयासंभवश्चाव्यभिचरितलिंगाभावात् । कुतस्त र्हितस्यासिद्धिः स्वत एव स्वयंप्रकाशासंवित् ।

विषयतया नप्रकाशते स पदार्थस्तेनज्ञानेन स्वसिद्धिंनासादयति । यथारूपादिविषयकज्ञानेनरसस्य तदन्यस्य वा पदार्थस्यसाधन न भवति । कुत एवम् ? अतद्विषयत्वात् , नहि रूपज्ञानेरसोभासते । तथोक्त—

"यदि स्वार्थंपरित्यज्यकाचिद् बुद्धि प्रवर्तते । व्यभिचारवती स्वार्थे कथविश्वासकारणम् ॥

"अयथार्थस्यबोधस्यनोत्पत्तावस्तिकारणम् ," इत्यादिना, अतद्विषयकज्ञानस्यभ्रमत्वेनायथार्थ बोधस्यानभ्युपगमात् । नहिभ्रमज्ञानेनवस्तुसिद्धिर्भवतीतिविशेषरूपेणान्यत एव ज्ञातव्यम् । तदेवं विषयवित्तेरविषयौज्ञानात्मानौविषयवित्त्या कथ सेद्धुमर्हतो नैव विषयवित्त्यातयो साधनसमत इति ।

। इति प्रभाकरमतनिरासेतत्त्वदीप ।

यद्यपि ज्ञानज्ञाता वा नज्ञानस्यविषय किन्तु अविषयोरपितयोवित्तिवेदित्रोज्ञानवलादेवसिद्धिर्भवति, इत्येवप्रभाकर पुन शङ्कते **ननुस्वसंवेद्यस्वभावोयमित्यादि** वित्तिज्ञानतुवित्तिरेवज्ञानमेव, नतु वित्तिविषय , नवाघटादिविषयवज्जडात्मिका । तथा वेदिताआत्मावेदिताआत्मैवसर्वदाज्ञानस्याश्रय एव भवतीति तयोर्वित्तिवेदित्रो स्वभाव । स्वभावस्तुसर्वभावानाविलक्षणोनसपर्यनुयोज्य , एकस्ययादृश स्वभावो न तादृश स्वभाव कथनान्यस्यवचनसुवचनम् , कण्टकतैक्ष्ण्यादिवत् । एव वेदिताऽत्मावेदितैव भवति, नतु कदाचिदपिवेद्योऽज्ञाता वा भवति, भावानाविलक्षणस्वभावत्वात्, अविषयोरपिज्ञानज्ञात्रोर्ज्ञानवलादेव सिद्धिर्भवत्येवेति ज्ञानविषयतयातयोर्वित्तिवेदित्रोरसिद्धिर्विषयवदिति कथन सर्वदैवायुक्तमिति भाव ।

ननुज्ञानान्तरविषयत्वेनज्ञानात्मनो प्रकाशसभवे, तयोरविषयत्वेपिज्ञानवलादेवसिद्धिरिति न युक्तमित्याशङ्कायामाह **पूर्वमेवोक्तमि**त्यादि । मानसप्रत्यक्षायोग्यत्वेन न तयोर्मानसप्रत्यक्ष विषयतयासिद्धिर्नवाऽव्यभिचरितहेत्वाभावादेवनानुमानविषयत्वेनसिद्धि किन्तु विषयज्ञानवलादेवतयो सिद्धि । तत्रैकस्यक्रियात्वेनतदपरस्यात्मनआश्रयतयैवसिद्धिरिति भाव । स्ववलादेवज्ञानस्यसिद्धिर्भवतीतिशङ्कासमाधानद्वारेणदर्शयति **कुतस्तर्हितस्यासिद्धिरिति,** केनप्रमाणेनवित्तेर्ज्ञानस्यसिद्धिरिति पूर्वपक्ष । उत्तरयति, **स्वत एवेति** । स्वस्यस्वतएवसिद्धौस्यादात्माश्रयदोष इति तदुद्धारपूर्वक स्वत एव सिद्धिरित्यशमुपपादयति **स्वयंप्रकाशासंविदिति** । एतदुक्त भवति, घटोयमित्यादिविषयज्ञानकाले सविद प्रधानभवेत्तदासापिसंविदर्थतोजडैव भवेत् , विषयस्तुसर्वदैवजड एव केन क प्रकाशेत, ततश्च "अन्धस्येवान्धलग्नस्यविनिपात.पदेपदे" इति न्यायातिक्रमण न स्यात् ।

मैवम्, सा संविदपिविषयवदेवान्यस्यैवप्रकाशमानतयाप्रकाशते इति न संवित्स्वतः सिद्धयति । यदि संविदःस्वतएवसिद्धिस्तदा सा कथमेकस्यैव प्रकाशते न सर्वान्प्रतिप्रकाशते । एकत्रैव संविदः समवायात् इति चेत्–यत्र समवेतासंवित्तस्यैवप्रकाशते नान्यस्य, अन्येनसमवायाभावात्, यद्येवंतर्हिआत्मसम्बन्धनियतः संविदःप्रकाशः, आत्मभावाऽभावानुविधानात् । यद्युच्येत, प्रकाशस्वरूपाया एव अत प्रकाशमानैव सवित् विषय प्रशयतीतिवक्तव्यम् । तत्र विषयस्तु स्वभावतोजड विषयज्ञानमपि चेत्तथैव तदाजगदान्ध्यस्यादित्यकामेनापिविषयप्रकाशनकाले तदीयज्ञानमपिप्रकाशते एवेति मन्तव्यमितिसविद प्रकाशमानत्वात् स्वयप्रकाशा सवित् । ततश्च स्वयप्रकाशरूपसविदाश्रयतयाऽत्मन सिद्धिर्भवतीति ।

। इतिगुरुमतस्योपपादनेतत्त्वदीप ।

गुरूक्त प्रभाकरकथितसविदोज्ञानस्यस्वप्रकाशत्वमाक्षिपति सिद्धान्तानुयायी **मैवमित्यादि** ग्रन्थेन तदेवोपपादयाति **सा** इत्यादिना। अन्यस्यप्रकाशमानतयैवविषयादेवप्रकाशते इति मन्यसे, अर्थात् यथा विषयोघटपदादि स्वव्यतिरिक्तस्यज्ञानस्यप्रकाशेनैवप्रकाशते, तदा नविषय स्वप्रकाशोऽपितुजड एव भवतीतित्वमपिमन्यसे तथैवयदिसविदपिस्वान्यास्यप्रकाशमानतयैवप्रकाशते इति मन्यसे तदा सविदोपिप्रकाशकत्व न स्यादपितुजडत्वमेवसविदोप्यापद्यते । अर्थात् सविदाश्रयभूताऽत्माधीनप्रकाशत्वादेवतस्मै एव प्रकाशमानत्व सविदोज्ञानस्यघटते इति सविद स्वत सिद्धत्व भवदुक्त न कथमपि सिद्धयतीतिसिद्धान्तवादिन आशय । अस्य परिहारप्रभाकर पुन शङ्कते, **समवायादिति** । एतत् स्वयमेवोपपादयति **यत्र** इत्यादि या सवित् ज्ञान यस्मिन् पुरुषेसमवायसम्बन्धेनविद्यतेतादृशपुरुषायैव सा सवित् प्रकाशते । कुत ? तेनैवसहतस्या समवायात् पुरुषान्तरेणतस्या समवायोऽर्थात् सम्बन्धो न विद्यते, तेन सर्वान् प्रति न प्रकाशते कञ्चिदेवप्रतिंप्रकाशते इति सर्वान् प्रतिसविद प्रकाश स्यादितिपरकीयशकाया समाधानजातमेव भवतीति । अर्थात् स्वभावादेवस्वयप्रकाशायसविदात्मनोऽपृथक्तयाऽत्मन एव प्रकाशते नान्यस्मैप्रकाशते इति। पुनराक्षिपतिप्रतिक्षेप्ता **यद्येवमित्यादि** एव तर्हिसविद प्रकाशो न स्वत सिद्ध किन्तु आत्म,सम्बन्धप्रयोज्य एव, यत आत्मन सम्बन्धेसतिसविद प्रकाशो भवति, आत्मन सम्बन्धाभावे सतितस्या प्रकाशो न जायते, यथा यस्य कृते, एव दण्डादिसम्बन्धेघटादिकार्योत्पादस्तदभावे च न घटादिकार्योत्पत्तिरिति, अन्वयव्यतिरेकाभ्याघटादिकप्रतिदण्डादे प्रयोजकत्वमायाति, तथैवात्मसम्बन्धेसत्येवसविद प्रकाशस्तदभावे, न तथेत्यन्वयव्यतिरेकाभ्यामात्मसम्बन्धप्रयोज्य एव सविद प्रकाशो नतु स्वतःसिद्ध । अर्थात् आत्मन सम्बन्धान्वयव्यतिरेकानुविधाय्यन्वयव्यतिरेकत्वात्सवित्स्वप्रकाशस्यात्मन सम्बन्धकारण मेवसिद्धयतीत्यर्थोनिर्गलित । पुनरत्रप्रभाकर शकते, **अद्युच्येतप्रकाशस्वरूपाया**

तस्याः प्रतियोगिविशेषावच्छेदायैवात्मापेक्षा नतु स्वरूपसिद्ध्यर्थमितिचेत्, कथमयंनिश्चयोऽकारि ? यदि प्रतियोगिनिरपेक्षतयैवकदाचिदात्मस्वरूपवत् संवित्प्रकाशेत, तदैव निश्चीयेतापि न च तथा विद्यते, आश्रयप्रतियोगिसापेक्षैवसंयोगपुत्रत्वादिवत् संविदः स्वरूपसत्तेति नपार्थक्येन तत् सिद्धेरवकाशः ।

एव तस्याः इत्यादि सवित् प्रकाशस्वभावा एव, एव भूताया अपि तस्या, आत्मसम्बन्धापेक्षा, सा नस्वप्रकाशार्थम्, किन्तु "प्रतियोगिविशेषावच्छेदायैव तदपेक्षा अर्थात् प्रतियोगीविषयोघटादि पदार्थ स एव विशेष =विशेषणम् तदवच्छेदायैव-तत्सम्बन्धार्थमेवार्थात् विषयप्रकाशकत्वप्रयोजनार्थमेव, अथात् विषयप्रकाशार्थमेवात्मसम्बन्धमपेक्षते सवित् नतु स्वप्रकाशार्थमात्मसम्बन्धमपेक्षते सा सवित्, स्वप्रकाशत्व तु तस्या स्वभाव एव, परन्तु विषयप्रकाशायैवात्सम्बन्धमपेक्षते इति प्रश्नाशाय । प्रभाकरोपस्थापितामुपपत्तिपरिहर्तुमाह **कथमयम्** इति । एव पूर्वोक्तोनिश्चय कुत कस्मात् प्रमाणात् निश्चितो भवति प्रामाणाभावादेवपूर्वोक्तप्रकारक अर्थात् विषयप्रकाशायात्मसम्बन्धमपेक्षते संवित् नतु स्वप्रकाशायेत्याकारक इति तत्र पूर्वोक्तनिश्चयस्यासभवमेवोपपादयति **यदि प्रतियोगिनि**रपेक्षैवकदाचिदात्मस्वरूपमिव सवित् प्रकाशमानाभवेत्, तत एवम् भवदुक्तम् निश्चय स्वीकुर्म । तत्र प्रतियोगिनोऽपेक्षामन्तरेणविषयापेक्षांविनानैवेतियावत् । **एवम्** विषय प्रकाशार्थमेवात्मसम्बन्धमपेक्षते सवित् नतु स्वप्रकाशप्रत्यात्मसम्बन्धमपेक्षते, इत्याकारकनिश्चयमिति । तथा यथोक्तनिश्चयमङ्गीकुर्म इत्यर्थ । **न च तथा** इति नान्यदा किन्तु विषयप्रकाशकाले एव स्वाश्रयायैवप्रकाशमानाया सविदोज्ञानस्यस्वप्रकाशेविषयात्मसम्बन्धाधीनत्वमभ्युपगन्तव्यमिति भाव । एतदुक्त भवति यथा वर्तमानकालेज्ञानज्ञेययोर्विषयिभावलक्षण सम्बन्धोऽनुभवबलात् स्वीकृतो भवति, तथाऽतीतानागतज्ञानेष्वपिविषयेण सम्बन्धोज्ञानस्यविषयविषयिभावलक्षण सम्बन्धान्तरापेक्षयाविलण स्वरूपसम्बन्धविशेषोभवत्येवेति । यद्यपि विषयेविषयताज्ञाने च विषयितेतितयोर्द्विष्ठत्वाभावेन, न तयो पार्थक्येनसम्बन्धत्वम्, किन्तु विषयतानिरूपितविषयित्वसम्बन्ध विषयितानिरूपितविषयत्व वा सम्बन्ध । अथवा द्विष्ठसयोगादिसम्बन्धापेक्षयाऽयसम्बन्धोविलक्षण एव । आधेयतानिरूपिताधिकरणतादिवदेव, तत्रापि केवलाधेयतायाआधेयमात्रेस्वरूपसम्बन्धेनवृत्तित्वादित्यादिकमधिकमन्यत्रैवद्रष्टव्यम् । ननु येय सवित् सातु विषयाश्रयशून्यैव नतुसविषयासाश्रया च । अन्त करण तथा तदीयवृत्त्युपधानोपाधिककेवल तस्या सविद साश्रयत्वसविषयत्वादिप्रतीतिमात्रमेव, अर्थात् स्वरूपत सवित्नाश्रयविपयतावती किन्तु तादृशत्वतस्याउपाधिमात्रप्रयोज्यमितिसासाश्रया स विपया च प्रतीयते, प्रतीतिमात्रा तत् नतु स्वाभाविकमित्याशयेनाह **आश्रयप्रतियोगिसापेक्षैवेत्यादि** "घटवद्भूतलम्, भूतलेघट" इत्यादौभूतलाधिकरणकघटप्रतियोगिकसयोगात्मकसम्बन्धस्यभान भवति, सयोगस्यद्विष्ठत्वेनसम्बन्धत्वात्, तस्यसयोगस्यप्रतियोगिविशेषणघट अधिकरण-

सत्या एव संविदः प्रकाशाव्यभिचारात् स्वरूपप्रयुक्त एव प्रकाश इति चेत्? सत्या एव संविदः किमात्मसम्बन्धव्यभिचारोऽस्ति? अपि चैवं सुखादयआन्तराअपि भवन्मतेस्वतःसिद्धाभवेयुः न हि ते सुखादयो न प्रकाशन्ते इति।

मनुयोगिभूतलम्, यो यत्र येन सम्बन्धेन वर्तते स तस्य सम्बन्धस्यप्रतियोगीति, तथा यस्मिन् वर्तते तस्यसयोगस्यानुयोगि आधारो भवति, इति नियम तदिह भूतले विद्यमानस्यघटसयोगस्य तत् प्रतियोगिविधयाघटस्य चाधिकरणभूतलमेव, सयोगस्यप्रतियोगिविशेण वा घट। यथाघटस्याभाव इति प्रतीतो, अभावस्यप्रतियोगिघटादिर्भवति, अनुयोगीतुतदभाव इति तत्र प्रतियोग्यनुयोगिभाव। तथा सम्बन्धस्यापि प्रतियोग्नुयोगिनौ भवत। देवदत्तस्य पुत्र इत्यादौपुत्रत्वस्यस्वरूपसम्बन्धेनाश्रय पुत्रस्तस्य पितातुप्रतियोगीभवति, यत पितृनिरूपितपुत्रत्वस्यपुत्राश्रितत्वात्। "घटोयमित्यत्रतु भासमानघटविषयकज्ञानस्यप्रतियोगीघटादिविषय, आत्मातु तादृशज्ञानस्याश्रयोऽधिकरणम्, आत्मन्येवज्ञानस्यसमवेतत्वात्। सिद्धि स्थिति,प्रकाशश्चेति। तथा च निर्विषयत्वेनाश्रयशून्य-तयास्थिति प्रकाशोवा सविदोनैव भवतीति। केवलज्ञानस्यानुभवस्तु न कुत्रापि भवतीति, दृष्ट इत्यनुपलभबाधित एवेति। ततश्च सवित् प्रकाशे, आश्रयतयाऽत्मसम्बन्धस्यापेक्षादुर्वारै वेति भाव।

ननु विद्यमानानामेव सविद सवित् सत्ताव्यापकप्रकाशत्वेनस्वप्रकाशत्वसविदोभविष्य-तीतिपुन शकते प्रभाकर। **सत्या एव संविदः प्रकाशाव्यभिचारात् स्वरूपप्रयुक्त एव प्रकाशः** यावत् पर्यन्त ज्ञानमवतिष्ठते तावत् पर्यन्त प्रकाशस्य व्यभिचारोन भवति, तस्मात् ज्ञानस्यस्वरूपप्रयुक्त एव प्रकाश इति प्रश्नाशय। इमाशङ्का परिहरति **सत्याः** इत्यादि-अर्थात् विद्यमानाया एव सविदआत्मसम्बन्धस्यव्यविचारोऽस्ति? अर्थात् नास्ति इति, ततश्च विज्ञानस्य वर्तमानतासमयेयदाऽत्मसम्बन्धो विद्यते तदाऽत्मसम्बन्धस्यनियतपूर्ववृत्तित्वस्यसत्वेनतस्याआत्मसम्बन्ध कारणकत्वकोनामविहन्तुशक्नुयादित्यात्मसम्बन्धस्यप्रयोजकत्वमस्त्येवेति। अयमाशय तदाचात्म सम्बन्धस्यज्ञानात्मककार्यनियतपूर्ववृत्तित्वस्य विद्यमातत्वात् तथा समवायिकारणतयाऽवश्यापेक्षणीय-त्वात् समवायिकारणाभावे न कार्ये स्वसत्ता कथमप्यासादयितु शक्यमिति। किञ्चानन्तरोदिरि-तनिरुक्तहेतुनासविद स्वप्रकाशत्वसाधनेवर्तमानतासमयेसुखादेरपिभासमानतया तेषा सुखादीनामपि स्वप्रकाशत्वमापतेत्, अविदित सुखादे सत्वे प्रमाणाभावादित्याशयेनदोषान्तरमपिदर्शयति **अपि चैवम्** सुखदु खादयोपिस्वत सिद्धाभवेयुरिति। अर्थात् स्वसत्ताकालेसुखादीनामपिभासमानत्वेन तत्र सुखादिषुहेतो सत्वात् साध्यस्य च स्वत सिद्धत्वस्याभावेनव्यभिचार स्फुट एव भवतीति। तथा च धूमसाध्यकप्रमेयत्वहेतुस्थलवदस्यापि हेतोर्व्यभिचरिततया न यथोक्तसाध्यकत्वमिति सक्षेप.।

स्यादेतत् लौकिकविषयतासम्बन्धेन ज्ञानप्रतितादात्म्यसम्बन्धेनविषयस्यकारणत्वमितिनियमो यथा घटोयमित्याकारकजायमानघटादिज्ञानप्रतिसमवायसम्बन्धेनात्मनस्तत्र कारणतत्वम्, तदेवज्ञान-

ननु घटादिरूपार्थान्तरस्यसाधकंज्ञानमेवेतिसर्ववादिसिद्धम् । ततश्च स्वतःप्रकाश रूपज्ञानेनैव बाह्याभ्यन्तरमकलपदार्थसिद्धेरुपपादनसंभवेनानेकस्वप्रकाशभावान्तरकल्प-नमयुक्तमेवेति चेत् सत्यम्, सर्वार्थस्य तद्विषयकज्ञानस्य च साक्षाद् द्रष्टाऽत्मैवेति सर्वमतम्, ततश्चात्मन एव स्वतः सिद्धत्वमस्तु किमनेकस्वतःसिद्धकल्पनाव्यसनेन

यदाविषयतासम्बन्धेनोत्पद्यते, अर्थात् विषयतासम्बन्धेनज्ञानविषये समुत्पद्यते, तत्र घटादि विषयेतादात्म्यसम्बन्धेन घटादिर्विषयो वर्तते, ततश्चकार्यम्, विषयतयाविषये, तत्र तादात्म्य सम्बन्धेनविषयोपितिष्ठतीतिकार्यस्यकारणस्य च सामानाधिकरण्यनिर्वहति, अन्यथाकार्यकारणयोर्वैय-धिकरण्ये तयो कार्यकारणभाव एव न स्यात् । सोय विषयनिष्ठप्रत्यासत्याकार्यकारणभावव्यवस्था, अपरस्तु कार्यकारणभाव समवायसम्बन्धेन भवन्नात्मनिष्ठप्रत्यासत्येतिगीयते, अत्र समवायसम्बन्धेन कार्योत्पत्तौसमवायादिनैव कारणता, यथाऽनुमिति समवायेनात्मन्युत्पद्यते तत्रैवात्मनिसमवायेनमन सयोगोधर्माधर्मादिकमपि वर्तते इति ज्ञानात्मककार्यंप्रति आत्ममन सयोगादिकारणमपिविद्यते कार्यं ज्ञानमपितत्रैवात्मनिसमवायेन भवति । समवायिकारणतुद्रव्यमेवेति "समवायिकारणत्वंद्रव्यस्यैवेति विज्ञेयम्" इति सर्वत्र द्रव्यस्यैव समवायिकारणत्वम्, ततश्च ज्ञानादिकार्यमात्मनि, तदात्मनि, आत्मातादात्म्येन वर्तते इति कार्यकारणयो समानाधिकरण्यनिर्वहति, इति । इत्थञ्च विषयता सम्बन्धेनज्ञानकार्यप्रतितादात्म्यसम्बन्धेनविषयस्यकारणतेति एव सवित्प्रकाशेलोकसिद्धकार्यकाणभावा-नुरोधेन विषयस्यकारणत्व भवतीति सर्वानुमतम्, तथैव भवादृशानामनुरोधेनात्मसम्बन्धस्यापिकार-णत्व स्वीक्रियताम्, तावतानक्षति । परन्तु एतावन्मात्रेणसविदोज्ञानस्यस्वयप्रकाशत्वे न कापिहानि भवति, यतोज्ञानस्यसजातीयज्ञानान्तरानपेक्षत्वात् तत् सिद्धेरस्वप्रकाशत्वसिद्धे सभवात् । सजातीय ज्ञानान्तराधीनप्रकाशत्वे एव स्वप्रकाशत्व न स्यात्, विषयवत्, यथा विषय सजातीयज्ञानसापेक्षो भवन् न स्वप्रकाशोपितु जड एव । तथैव सविदपिसजातीयज्ञानान्तरापेक्षसिद्धिकाभवेत्तदातस्या. स्व-प्रकाशत्वहीयेतापि, नत्वेवमपितुसजातीयज्ञानान्तरानपेक्षसिद्धिकत्वात् नापयाति तत स्वप्रकाशत्वमिति।

आत्मातु न स्वप्रकाशो यथा विषयो नस्वप्रकाश, किन्तु बाह्यपदार्थप्रकाशकस्यसर्वतन्त्रप्रसिद्ध-स्यज्ञानस्यैवसर्वप्रकाशकस्यात्मप्रकाशकत्वमपिस्वीकर्तव्यम्, लाघवात् यदैकस्यैवज्ञानस्यप्रकाश-कत्व तदासर्वान्तर्गतात्मनोपितेनैवप्रकाशसभवे बहुना प्रकाशकत्वगौरवममानभिमतमपीत्य-शयेनपुनर्गुरुमतानुयायीशङ्कते **ननु घटादिरूपार्थान्तरस्यसाधकं ज्ञानमेवेत्यादि** सर्वोहिवादी, पदार्थमात्रस्यबाह्याभ्यन्तरस्यसाधकज्ञानमेवेच्छति,तदनुसारेणास्माभिरपिज्ञानस्यैवस्वप्रकाशत्वमाश्रितम्। इत्थ भूतेन स्वप्रकाशात्मकज्ञानेनैव सर्वपदार्थस्यसिद्धिसभवात्, तदतिरिक्तात्माद्यनेकपदार्थस्य स्वय प्रकाशकस्याभ्युपगमोनिरर्थक एवाभातीतिप्रश्नस्यमुकुलितोऽर्थ सम्पद्यते, प्रश्नग्रन्थस्यविवरणमवतरण ग्रन्थेनैवगतार्थं भवतीति नपुनस्तद्विस्तृतम् । तमिममाक्षेप परिहरति सिद्धान्ती **सत्यमित्यादि**

किञ्चयोयस्यसाक्षीति न लोकसिद्धम्, विषयविषयकज्ञानस्याप्यात्मैवसाक्षीभवतीति । अथवा भवतु विषयविषयकज्ञानं स्वप्रकाशरूपम्, तथापि न तैरर्थविषयकज्ञानैरात्माप्रत्यक्षीभवति साक्षित्वात् । यस्य साक्षीपुरुषोयम् तेन नासौ प्रत्यक्षोघटसाक्षात्कारीवघटादिविषयेन । अर्थसंविदाञ्च साक्षात्कारीचेतनःपुरुषो नतु सताभिः प्रत्यक्षीभवति ।

। इति गुरुमतखण्डनप्रकरणम् ।

सर्वोपि पदार्थः सजातीयस्वसाध्यनिरेपेक्ष एव भवति स्वसिद्धये । तेनायमा- ग्रन्थमुखेन । सत्यज्ञानमेवसर्वस्यप्रकाशकम्, परन्तु विषयतद्विषयिणोज्ञानस्य सर्वपदार्थसाक्षी भवति, आत्मैवेतितावन्मात्रस्यस्वप्रकाशकत्व भवतु, किन्तु तदतिरिक्तानेकस्वय प्रकाशकल्पनाया गौरवभवतीति, सर्वार्थानासर्वज्ञानाना च साक्षात्कर्तुरेकस्यैवात्मन स्वयप्रकाशत्वकल्पनीयतथात्वे एव लाघवात् । नत्वनेकज्ञानाना स्वप्रकाशत्व तथा सतिगौरवात्, विषयाणामिव तदीयज्ञानानामात्मनो प्रकाशमानत्वादेक आत्मैव स्वप्रकाशोभवतुनाम । तदन्ये सर्वेभावा ज्ञानज्ञेयरूपा सर्वेपदार्थाआत्माधीन प्रकाशा एव भवन्तु । तथा सति महल्लाघव भवति, तथा, अत्राय पुरुष स्वय ज्योति भवतीत्यादिश्रुतयोप्यनुगृहीता स्युरितिदिक् । एव सविदोज्ञानस्यापि "तमेव भान्तमनुभातिसर्वंतस्यभासासर्वमिदविभाती" त्यादिश्रुतिप्रसिद्धसर्वावभासकाधीनप्रकाशत्वमेव नतु मुख्य स्वप्रकाशत्व ज्ञानस्येति कथित भवति । अथवा स्वसजातीयज्ञानान्तरानपेक्षप्रकाशत्वेन यथाकथचिद् ज्ञानस्यभवतुनामस्वप्रकाशत्वज्ञानस्येति, तथापि सर्वप्रकाशकआत्माकथमिवज्ञानधीन प्रकाशइत्यावेदयितुमाह **किञ्चयोयस्य साक्षीत्यादि** यस्य य साक्षीद्रष्टा भवति, तस्य साक्षिणस्तेन साक्ष्येन प्रकाश सिद्धिर्भवेदिति न लोकप्रद्धिम्, यथा यस्य घटादेरात्मा भवति तेन साक्ष्यभूतेन घटादिनासाक्षिणआत्मन सिद्धिर्भवतीति न लोकप्रसिद्धम्, अपितु तद्विपरीत एव नियम साक्षिणैव साक्ष्यस्यावभासनादिति ।

अर्थात् यद्यपि यथा कथचिद् भवतु नाम, यटादिविषयकज्ञानाना स्वप्रकाश तथापि तैर्विषयविषयकज्ञानैर्नात्माप्रत्यक्षीकृतो भवति, यत आत्मन सर्वसाक्षित्वात्, यस्य साक्षीभवत्यात्मा-तेनैवसाक्ष्येन घटादिनाप्रकाशितो भवति । नहि भवति घटप्रकाशकस्यदेवदत्तस्यसाक्ष्येनघटेनप्रकाशो भवतीति कुत्रापि दृष्ट श्रुतवा, न वा तदुपपद्यते अनुभवविरोधात् । तथा "येन सर्वं जानाति तं केन विजानीयादि"त्यादिश्रुतिविरोधोपि, एतस्मिन् मते आपततीति । तस्मात् कथितरीत्या, ज्ञानेनात्मप्रकाशासभवेनतादृशात्मन स्वय प्रकाशत्वमन्वेष्टव्यमेवेतिसक्षेप ।

। इतिसिद्धान्तिनाकृतगुरुमतखण्डने तत्त्वदीप ।

गतप्रकरणेनात्मनोज्ञानाधीनप्रकाशकत्वेयथामतिसिद्धान्तिनाबाधकदोष प्रर्शित, तदनुआत्मनः स्वत प्रकाशत्वेसाधकंयुक्तियुक्तंदर्शयितुमुपक्रमते **सर्वोपिपदार्थः सजातीय** इत्यादि । सजातीय-

त्माऽपिस्वेतरानपेक्षस्वसिद्‌धिक एव, नतु स्वप्रकाशोऽन्याधीनप्रकाशः । नहि कोपि पदार्थःस्वप्रकाशायासाधारणसजातीयपदार्थान्तरमपेक्षमाणोभवतीति दृष्टम् । यथा घटपटादिर्विषयःस्वसिद्‌ध्यर्थंस्वसजातीयंघटपटादिकंनापेक्षते, किन्तु स्वविजातीयंप्रदीपादि प्रकाशमेवापेक्षते, तादृशालोकेनैवतत्सिद्‌धिर्जायते ।

एवमालोकोपिनालोकान्तरमपेक्षते, नवा स्वप्रकाश्यमपेक्षतेऽपितु स्वविजातीयं चक्षुरादिकमेवकरणमपेक्षते । तथा चक्षुरादिकमपि न सजातीयमिन्द्रियान्तरं स्वापेक्षप्रकाशमालोकं स्वविषयंघटादिकं वा किन्तु स्वविजातीयंज्ञानमेवापेक्षते । एवं ज्ञानमपिज्ञानान्तरमिन्द्रियादिकं वा नापेक्षतेस्वसिद्‌धये, परन्तु स्वविजातीयं स्वाधिकरणमात्मानमेवस्वतन्त्रमपेक्षते । एवमात्मापिस्वसजातीयमात्मान्तर वा ज्ञानमिन्द्रियादिकं वा स्वकीयापरोक्षतायैनापेक्षते इत्यनन्यापेक्षैवात्मस्वरूपस्यसिद्‌धिर्भवतीति । तदेवं सिद्‌धान्तरीत्याऽत्मनः स्वप्रकाशत्वसमर्थनम् ।

मत्र स्वासाधारणधर्मरूपेण, यथा घटस्यसजातीयम्=घटगतासाधारणरूपम् , घटत्वमेव, ततश्च घटस्यसजातीयघटत्वरूपेणघटान्तरमेव नतु घटादिकप्रदीपेन्द्रियादिक वा, व्यापकरूपेणसाजात्य विवक्षणेतु, प्रमेयत्वरूपेण घटस्य सजातीयघटान्तर यथा भवति, तथैव सर्वोपिभावोऽभावो वा समवेतोऽसमवेतो वा भवेत् , पदार्थमात्रस्यप्रमेयत्वात् तथा च यस्य सजातीयमपेक्षित तद्गतासाधारणरूपेणैव तथात्वमेष्टव्यम् । एवञ्च घटस्य सजातीय घटान्तरमेव, आलोकस्य सजातियमालोकान्तरमेव, नतु सर्वस्यसर्वमिति । तथा च सर्वे ये प्रकाशमानाघटपटादिकाभावास्ते स्वसजातीयम्=स्वस्यात्यन्तसजातीयस्वगतासाधारणानुगतधर्मविशिष्टम् , तथा स्वसाध्यम् स्वाधीन प्रकाश च भावमनपेक्ष्यैव भवन्तीति, आत्मापि प्रकाशमानआत्मत्वेनसजातीयमात्मान्तरस्वापेक्ष प्रकाशज्ञानादिकचानपेक्ष्यैवप्रकाशते इत्येवमनुमेयम् । एव प्रकारेणात्मनोज्ञानाधारस्यस्वप्रकाशत्व फलतीति । **नहि कोपि पदार्थः** इत्यादि, यथाघटादि स्वसिद्धयेऽर्थात् स्वस्यप्रकाशायस्वात्यन्त सजातीयवटान्तरनापेक्षते, घटवत् घटान्तरस्यापिजडत्वविशेषेणप्रकाशरूपत्वाभावात् । किन्तु घटोऽपेक्षते स्वविजातीयप्रकाशस्वभावकचन्द्रसूर्यप्रदीपादिष्वन्यतममेवापेक्षते । एवमेव प्रकाशमानोप्यालोक.स्वप्रकाशायस्वसमानजातीयमालोकान्तरनापेक्षते नवाऽलोकापेक्षप्रकाशजडघटादिकमेववाऽपेक्षते, किन्तु स्वप्रकाशायस्वविजातीयमिन्द्रिय रूपवता प्रत्यक्षे चक्षुरादिकस्पर्शवतां च स्पार्शनेत्वगिन्द्रियमेव । एव चक्षुरादीन्द्रियस्वसिद्धयेनेन्द्रियान्तरमपेक्षते, नवा स्वापेक्षप्रकाशमालोकादिक नवा स्वसाध्यविषयघटादिकम् । किन्तु तानीन्द्रियाणिस्वसिद्धयेस्वकीयसवेदन ज्ञानापरपर्यायमपेक्षते । एव सवेदनज्ञानमपिस्वसिद्धयेनापेक्षते सजातीयसविदन्तरस्वाधीनसिद्धक वा, किन्तु स्वविजातीयस्वाधारभूत स्वतन्त्रमात्मानमेवापेक्षते । एवमात्मास्वसजातीयमात्मत्वाक्रान्तमात्मान्तरस्वाधीन

तदेवं चैतन्यमात्रस्वभावस्यात्मनोधर्मिणश्चैतन्यं स्वाभाविकमेव । तदेव ज्ञानमंनेकविषयसम्पर्कात् घटादिविषयभेदेन तत्तद्विषयकमिति व्यपदिश्यते । यथा

सिद्धिकमिन्द्रियविषय वा नापेक्षते इति स्वव्यतिरिक्तानपेक्षैवात्मस्वरूपसिद्धिरिति । एव चात्मन पूर्वोक्तयुक्त्यास्वप्रकाशत्वसिद्ध्यति, नतु ज्ञानस्य तथात्वम् । विषयस्यस्वप्रकाशत्वतुदूरायेतमेव, तस्य स्वप्रकाशत्वसर्वमतविरुद्धमेवेति । अत्रायमाशय । इयानत्रविशेष यत् स्वविषयकानुव्यवसायादि लक्षणज्ञानान्तरानपेक्षप्रकाशत्वरूप स्वप्रकाशत्वज्ञानस्यात्मनश्चसमानमेव, किन्तु स्वेतरसकलनिरपेक्ष प्रकाशत्वतु सर्वावभासकात्मस्वरूपस्यैवेति दिक् ।

। इति सिद्धान्तिनात्मन स्वप्रकाशत्वसमर्थनप्रकरणे तत्त्वदीप ।

एव पूर्वोक्तप्रकारेणात्मनोज्ञानवेद्यत्वमर्थाद् वित्तिविपयत्वनिरस्यतादृशात्मन स्वयप्रकाशत्वमेवेति युक्त्योपपादितम् । एवञ्च यथोक्तस्वरूपस्यात्मन साक्षादेवघटादिविपयप्रकाशकत्व भवति, किन्तु आत्मनोज्ञातुर्धर्मिण स्वस्यधर्मभूतविशेषणीभूतयज्ज्ञानतद्द्वारीकृत्यैवबाह्याभ्यन्तरविषयान् प्रकाशयति, यथाऽद्वैतमतेसर्वावभासकोप्यात्मा, इन्द्रियादिजनितत्तद्विया‌कारान्त करणजनितवृत्तिद्वारीकृत्यैवघटादि-कमवभासयति स्वतोव्यापकत्वात् सर्वार्थसम्बद्धोपि । अतएवेन्द्रियसयोगादिकालेविद्यमानोपिनार्थान् बाह्यानवभासयति, तथैव प्रकृतेपि स्वयप्रकाशोप्यात्मा साक्षाद् विषयान् नावभासयति किन्तु स्वधर्मभूतज्ञानद्वारीकृत्यैवपरपरयातान् विषयानवमोक्षयन् प्रकाशक इति कथ्यते । तच्चद्वारभूतं चैतन्यमात्मन स्वाभाविक शाश्वतमेव । नतु न्यायमतवत्तदागन्तुकमनित्यमिति यावत् । यथा न्यायमते आत्मनिअविद्यमानमपिज्ञानम्, अदृष्टादिनिमित्तकारणसहकारेणात्मन सयोगात्मकासम-वायिकारणवलेनजायमानजन्यत्वादनित्यमिति कथ्येते, तथा न मम श्रुतिप्रवणस्यमते, किन्तु तज्ज्ञान धर्मभूत नित्यमेवकेवलविषयसनिधानाज्जायमानमिव भवतीति समर्थयितुमुपक्रमते **तदेवं चैतन्य मात्रस्वभावस्य** इत्यादि । चैतन्यमात्रस्वभावस्य=स्वयप्रकाशस्वरूपस्यात्मनोधर्मिण । चैतन्यम्= चितिर्धर्मभूतज्ञानस्वाभाविकमेव नतु परोपाधिकम् - येनधर्मभूतज्ञानमनित्यस्यादितिमतान्तरवत् । अथा त्मभावानुवन्धित्वेनात्मवत् तदपि नित्यमेवेति यावदात्मभावित्वे, अर्थात् यावत्कालमात्मातिष्ठति । तावकालपर्यन्तावस्थायित्वे, उत्पादविनाशराहित्येधर्मभूतज्ञानस्यघटादिविषयसम्पर्कात् घटज्ञान मे उत्पन्न च विनष्टमित्यादिउत्पादविनाशालबनोव्यवहार कथभवेद्ज्ञानस्येत्याह **तदेवज्ञानम्** इत्यादि अत्र-ज्ञानस्यार्थेनघटादिनासम्बन्धस्तत्तदिन्द्रियपदद्वारेणजायते पूर्व चक्षुषा घट पश्यति, तत्रार्थस्य चक्षुषा सयोगस्तत्श्चतदर्थजनितज्ञानतमेवविषयीकरोतीति तज्ज्ञान तदीयम् । तथा च चक्षुरादीन्द्रियद्वारा-तत्तदर्थसम्बद्धज्ञानमेवघटादिज्ञानमितिपटादिकज्ञानमेव तदीय ज्ञानमिति । तत्र च तत्तदर्थप्रतियो-गिकसयोगादिससर्गस्येन्द्रियेण चक्षुरादिना, विषयेण च घटादिनातस्मिन्काले समुत्पन्नमित्यनित्यम्,

सौरश्चान्द्रो वा प्रकाशोघटपटादिविषयसंसर्गभेदात् घटपटादिप्रकाश इति व्यपदिश्यते। तथैवात्मनःप्रकारभूतंज्ञानं तत्तत् पदार्थसम्बन्धात् घटज्ञानंपटादिज्ञानंचेतिभेदेनव्यपदिश्यमानं भवतीति। तेन चैतन्यस्यज्ञानस्यदशाविशेषज्ञातुरात्मनोधर्मविशेषत्वादेवात्मनोऽपरोक्षाभवन्ति। यथा न्यायमतेज्ञानस्यविषयभेदावच्छेदादयः।

। इत्यात्मधर्मज्ञानस्यनित्यत्वोपक्षेपः।

अथात्मनोयच्चैतन्यंतदागन्तुकंकारणजनितमितिन्यायमार्गविदांमतम्। तन्मतानुयायिनोनवीनमीमांसकाः इत्थंसंगिरन्ति, विषयेन्द्रियसंन्निकर्षान्वयव्यतिरेकदर्शनात्

स्वकारणवलात् सजातघटादिवदेवानित्यमेव। तथा च तादृशसंसर्गस्यसयोगसयुक्तसमवाय, तत्समवेत समवायादिविशिष्टस्यतत्तद् ज्ञानेपि, उत्पादविनाशव्यवहारोभवतीति। तथाचोत्पादविनाशौ न ज्ञानगतौ येन ज्ञानस्याप्युत्पत्तिर्विनाशोवा कल्पित स्वाभाविक किन्तु तादृशसंसर्गतस्योत्पादादेरेव भानम्। यथा खलु स्वरूपतआकाशोनित्योऽव्यापकश्च परन्तु व्याप्यघटादेरुत्पत्तौतादृशघटसम्बद्ध आकाशोघटाकाशसञ्ज्ञामासाद्य घटाकाशोजात इति व्यवहार, तादृशघटस्यतदुपलक्षितआकाशोविनष्ट इति चापि व्यवहारो जायते। तत्र मुख्य उत्पादादिघटगतआकाशेतुतदुपाधिकोगौण एव। नैतावताऽकाशस्यनित्यत्व याति, अनित्यत्व चागच्छति। तथैव प्रकृते संसर्गस्यैवोत्पादादि भवति ज्ञानेतद्व्यवहारस्तु तदुपाधिकोगौणोनैतावताधर्मभूतज्ञानमुत्पादादिदोषवान् भवति। गगनवदेव धर्मभूतात्मनोज्ञान स्वभावतोनित्य भवति, अनित्यरूपधर्मस्तुरागेश्चोज्ञानगतस्वाभाविकधर्मापहारको नैवेति। अत्रार्थेऽनुरूप दृष्टान्तदर्शयति स्वयमेव **यथासौरश्चान्द्रो वा प्रकाश** इत्यादि, यथा सौर प्रकाशआलोकस्तत्तर्थभेदेनघटादिपदार्थभेदेन घटप्रकाश पटप्रकाशोवेतिप्रख्यायते, एवमात्मन प्रकारलक्षणंचैतन्यघटपटाद्यर्थविशेषसम्बन्धात्, घटज्ञानपटज्ञानवेत्यादिसञ्ज्ञाप्राप्नोति। ते च विषय प्रकाशोपयुक्तदशाविशेषाज्ञाननिष्ठाज्ञानस्यविकाशरूपाअपिधर्मत्वात्, स्वधर्मनिष्ठाकारत्वादात्मनोऽपरोक्षा प्रत्यक्षा एव भवन्तीति भाव। अत्र दृष्टान्तमाह **यथेत्यादि**। यथा न्यायमतेज्ञाननिष्ठ घटपटादिविषयकत्वाकाराअनुव्यवसायज्ञानग्राह्य एवाभिमतास्तथैवै तन्मते विषयसंसर्गावस्थाभेदाज्ञानस्यप्रत्यक्षा एवेति सिद्धान्तिनामभिमतमितिसक्षेपोविस्तरस्त्वन्यत्रद्रष्टव्य।

। इत्यात्मधर्मभूतविषयविषयकज्ञानस्यनित्यत्वोपप्रकरणे तत्त्वदीप।

स्थूणानिखननन्यायेनपूर्वज्ञानस्यनित्यत्वमाक्षिप्यतदनुज्ञानस्योत्पादविनाशराहित्यलक्षणनित्यत्व स्थापयितुप्रथमत पूर्वपक्षमतमेव दर्शयति **अथात्मनो यच्चैतन्यमित्यादि** तत्रपूर्वपक्षिणोऽभिनवमीमांसका मुरारीमिश्रप्रभृतयोभट्टमतानुयायिन। तत्रात्मनो यत् चैतन्यधर्मभूतज्ञानम्, तदागन्तुकमेव, अर्थात् आत्मनि आत्ममन सयोगेसति ज्ञानमुत्पद्यते इति तदनित्यमागन्तुकमुत्पादविनाशवत्वेन जन्यमेवेति न्यायमतानुयायिना पन्था। तन्मतमेवालम्ब्यदार्शनिकविचारकुर्वाणा ते इत्थ विचार-

व्रजाम्यागच्छामीत्यादिवत्, ज्ञानामिज्ञास्याम्यज्ञातिषमित्यादिकालविशेषावच्छिन्नत्व प्रतीतिदर्शनात् । जाग्रत्स्वप्नमोक्षकालेष्वप्यात्मनोज्ञानाधारत्वे प्रबुद्धसुप्तमुक्तादिव्य-

यन्ति । तथाहि **विषयेन्द्रिय संनिकर्षेत्यादि**---अयमाशय प्रत्यक्षज्ञानमिन्द्रियार्थसनिकर्षजन्य-मेव, यत् इन्द्रियार्थसनिकर्षेसत्येवघटादिज्ञानानाजायमानत्वदर्शनात् । इन्द्रिार्थसन्निकर्षाभावेसतिविषये घटादिज्ञानस्योत्पादादर्शनेनान्वयव्यतिरेकाभ्याकारणत्वनियामकत्वेनाभिमताभ्यामेव घटादिज्ञानस्य दर्शनात् । तथानुमित्युपमितिशाद्बादिज्ञानेषुलिङ्गज्ञानसादृश्यज्ञानपदज्ञानादीनामन्वयव्यतिरेक दर्शनेन तत्तत्स्थलेतेषातेषामुत्पादकानासत्वेएवानुमित्यादेरुत्पाददर्शनेन तत्तज् ज्ञाने तेपा तेपामेव कारणत्वेनप्रत्यक्षादिज्ञानमनित्यमेव । नहि कारणजन्यत्वातिरिक्त किमपिजन्यत्वनियामकमिति प्रत्यक्षादिज्ञानमप्यनित्यमेव । एवम् गच्छतिगतोगमिष्यतीत्यादौकालभेदोज्ञायते इति कालाव-च्छिन्नत्व तेन च गमनादिक्रियायाजन्यत्वम्, तथैव जानामिज्ञानवान्, ज्ञास्यामीत्यादिक्रमेण ज्ञानेष्वपिकालपरिच्छिन्नत्वपरिज्ञायते, तेनकालपरिच्छिन्नत्वस्यज्ञानप्रतिभासमानत्वेनज्ञानस्यानित्यत्व-मेवायाति । कालपरिच्छिन्नत्वस्यानित्यत्वप्रयोजनकत्वात् । तच्चकालपरिच्छिन्नत्व जानामीत्यादि प्रतीत्या ज्ञायते इतिज्ञानमप्यनित्यमेवेतिनिर्णीयते । इत्थ च तत्तद्धेतुजन्यत्वात्कालपरिच्छिन्नत्वा-ज्ज्ञानमनित्यमेवेतिज्ञानानित्यत्वेयुक्तिरुदाहृतेति । विशेपविचारइदमीयोऽन्यत एवाववातव्य । एव धर्मभूतविषयविषयकज्ञानस्यानित्यत्वेयुक्तिमुपपाद्यज्ञानस्य नित्यत्वेवाधकमपि दर्शयति **जाग्रत्स्वप्न इत्यादि,** तत्रेन्द्रियजनितज्ञानावस्थाजाग्रदवस्था, बाह्येन्द्रियनिरपेक्ष पूर्वानुभवजनितज्ञानावस्थास्वप्न, यत्रमनसोप्युपरामोभवति न किमपि वेदित भवति तादृशी अवस्थासुषुप्ति, अत्रात्मस्वरूपज्ञानव्यति-रिक्तधर्मभूतज्ञानस्याभावोऽज्ञानमात्रसुप्तोत्थितस्य, न किञ्चिदवेदिषमित्योकारकस्मरणान्यथानुपपत्त्यै-वज्ञायते इति विषयकज्ञानव्यतिरेक एवेतिनिर्णीयते । तुरीयावस्थामोक्षस्यैवनामान्तरम् । जीवनमरण-योरन्तरालेमूर्छावस्थाप्येका दृश्यते, सा चावस्थाऽदिपदग्राह्या । जागरणसुपुप्तयोर्भेदस्तुज्ञानज्ञानाभाव प्रयुक्त एव, अर्थात् जागरणे इन्द्रियादीनामनुपरमात् तज्जनितज्ञानस्याभावोऽस्तित्वप्रतीयते, सुषु-प्तौतु, इन्द्रियादीनाज्ञानोत्पादकानामुपरमात्, न ज्ञानमपितु तदभाव इति तस्या सुषुप्त्यवस्थाया ज्ञानाभाव इत्येतावानेवतयोर्भेद स्पष्टतयावेदितो भवतीति । अथ यदि धर्मभूतज्ञानमात्मवदेवै-कान्ततोनित्यमेव भवेदितिजागरणस्वप्नवत्, सुषुप्तिकालेपिनित्यस्यज्ञानस्यावस्थानेन, अय सुषुप्तोऽय प्रबुद्धोविषयाननुभवतीति व्यवस्थानैवकथमप्युपपादिताभविष्यति, दृश्यते च सुप्तप्रबुद्धव्यवस्था, तदनुरोधेनधर्मभूतज्ञानस्यानित्यत्वमकामेनापिमन्तव्यमेव, ततश्चज्ञानतदभावव्यवस्थाऽनायासेनैवोपपा-दिता भवतीति तादृशज्ञानस्योनित्यत्वस्वीकृतसर्वैरपितस्यतथात्वस्वीकर्त्तव्यमेवेति । अर्थात्, ज्ञानस्य यदि नित्यताऽस्थीयेत तदा सुप्तप्रबुद्धव्यवस्था, तथा, बद्धमुक्तव्यवस्थापिनैवकथञ्चित्, ससारा-वस्थाया एव नामान्तरम्, विगतससारावस्थायानामान्तरम्, यदि एतत् स्थितौ, बद्धस्यापिज्ञाना-

वस्थानोपपद्येत । नित्यस्यात्मसमवेतज्ञानस्यप्रतिकर्मव्यवस्थापिदुरुपपादैव भवेत् तदाहि प्रकाशनतया 'तस्याः संविद्' इत्येकस्यामेव संविदिसर्वमेववस्तुजातं प्रकाशेत चित्रघटादावनेकरूपवत् । नवा किञ्चिदपिवस्तुजातंकदापि न प्रकाशेत, अविशेषात् । अन्यदाऽनित्यत्वेधर्मभूतज्ञानस्यस्वीकारेतुयदर्थसन्निकर्षप्रयुक्तेन्द्रियलिङ्गादिना या धीर्जन्यते सा तदीयैवेतिसर्वव्यवस्थासमुपपद्यते ।

। इतिधर्मभूतज्ञानस्यनित्यत्वस्थापनम् ।

दिक यथा तथा, मुक्तस्यापिज्ञानवत्, तदितरात्मविशेषगुणादीनामपि यथा पूर्वमवस्थाने नबन्धनविश्लेपलक्षणमोक्षस्तुपराभूत एव भवेदितिवद्वमुक्तादिव्यवस्थान्यथाऽनुपपत्त्यावश्यज्ञानस्यानित्यत्वमभ्युपेत भवतीति । न चोक्तव्यवस्थामात्रमनुपपद्यतेज्ञाननित्यत्वपक्षे, किन्तु येय सर्वानुभवसिद्धा प्रतिकर्मव्यवस्था, एकस्यैकदाप्रतिनियतविषयकज्ञानमेवनान्यस्य, घटेन जलाहरणमेव न कार्यान्तरम्, पटेन प्रावरणमेव न बन्धनादिकमित्येव रूपा प्रतिकर्मव्यवस्थापिज्ञानस्यनित्यत्वे न सभवति । ततश्चज्ञानस्यनित्यत्वेसर्वदासर्वस्यसर्वविषयकभानप्रसङ्गआपतेदित्याशयेनाह, **नित्यस्यात्मसमवेत** इत्यादि । ज्ञानस्यनित्यस्यात्मनिसमवायसम्बन्धेन सर्वदा समवस्थितस्य विद्यमानत्वे, प्रतिकर्मव्यवस्था=विषयभेदनियम "इद ज्ञानघटादि विषयक न पटादिविषयकम् "घटेनजलाहरण नतु कार्यान्तरम्" "पटेन प्रावरण न कार्यान्तरम्" इत्येवविषयभेदनियमोनोपपादितो भवेद् ज्ञानस्य नित्यत्वे इति । प्रतिकर्मव्यवस्थायाअनुतपत्तिमेवोपदादयितुमाह **तदाहि प्रकाशनतया तस्याः** इत्यादि । तदा=तत्समयेतस्या सविद प्रकाशनशीलतया=प्रकाशकस्वभावतया, एकस्मिन् यत् किञ्चित् विषयकेज्ञानेसर्वापिसंनिकृष्टासनिकृष्ट पदार्थमात्रमपिसमानरूपेण, प्रकाशित भवेत्, अथ यदि नानेकविषयान् प्रकाशयति तदाज्ञानस्य प्रकाशकत्वाभावादेकोपि विषय, प्रकाशितो न भवेत् । अर्थात् ज्ञानस्यसर्वस्यापिनित्यत्वेनविषय प्रकाशनस्वभावतयाअपेक्षणीयस्यान्यस्यकस्यचिदप्यभावात्, एककाले एव निखिलान् सम्वद्धान संबद्धान् पदार्थान्प्रकाशयेत् । अथ न पदार्थान् निखिलान् प्रकाशयतिचेत्तदातुल्ययुक्त्याकमपि न प्रकाशयेदितिसत्यपिज्ञानेपदार्थस्यप्रकाशो न स्यात् तथा च कदाचित्कमपिविषयप्रकाशयतिकमपिविषय न प्रकाशयतीत्येवं रूपा व्यवस्था कथमपि न घटेत् । तस्माज्ज्ञानमनित्यमेव नतु नित्यमिति ।

तदेवं ज्ञानस्यनित्यत्वपक्षे दोषान्प्रदर्श्यज्ञानस्यानित्यत्वपक्षेसर्वव्यवस्थाया सामञ्जस्यदर्शयितुमाह—**अन्यदा** इत्यादि । अन्यदाअन्यस्मिन्ननित्यत्वपक्षेज्ञानस्य, अर्थात् ज्ञानस्यानित्यत्वेस्वीक्रियमाणेतु, येनार्थेन सनिकृष्टेन्द्रियलिङ्गादिना या सविद्ज्ञानमुत्पद्यते, तज्ज्ञान तदीय तेन च ज्ञानेन तादृशार्थस्यैवप्रकाशन नत्वर्थान्तरस्य, अर्थान्तरे तदर्थनिकृष्टेन्द्रियादिरूपकारणाभावेन नतज्ज्ञान तदीय नवानेनतस्यप्रकाशन घटते । अर्थात् ज्ञानस्यानित्यत्वेदूष्यमाणेतु घटादिप्रतिनियतार्थ

स्यादेवम्—चक्षुरादीन्द्रियद्वारेणबहिर्निसृत्यचैतन्यमेवतत्तदर्थेन सम्बद्ध्यमानं भवत् तत्प्रकाशकतयातदीयत्वेनावस्थितं भवति । अनुरागस्यचागन्तुकतयाचक्षुरादीन्द्रियानुविधानंकालावच्छेदःस्वप्नावस्थाचोपपद्यते । तन्नयुक्तमर्थान्तरसंनिकर्षेऽर्थान्तरस्यसम्बन्धासंभवात् । चैतन्यमपि तथैवनिष्क्रम्यते इतिचेन्न—अमूर्तपदार्थस्याकाशवन्निष्क्रमणप्रवेशयोरसंभवात् । गुणश्च चैतन्यंगुणवन्तं विहाय कथमन्यत्रयास्यति । न चार्थोऽन्तः प्रविशति । सतु बाह्यदेशसम्बद्धःसर्वलोकप्रत्यक्षः जात्यादिषुचानुपपत्तिःसमानैव ।

सनिकृष्टेन्द्रियादिना जायमान तादृशार्थविषयकमेवेतिसर्वापि व्यवस्थाऽतिसरलतयाव्यवस्थापिताघटते एवेति न कोपिदोष पदमाधातु योग्यो भवति । तत्र चक्षु स्पर्शनादि, इन्द्रियाणासनिकर्ष सयोग सयुक्तसमवेतसमवायसमवायसमवेतसमवायविशेषणविशेष्यभावलक्षण एव । अनुमितौतुलिङ्गस्य विनाभावव्याप्तिलक्षण । एवमेव यथायथसर्वत्रैववोध्यम् । तस्मात् ज्ञानानित्यत्वपक्षेदोषा भावात् सर्वव्यवस्थोपपादनाच्चानित्यत्वपक्ष एव श्रेयान् ।

। इतिधर्मभूतज्ञानस्यानित्यत्वमतोपस्थापनप्रकरणेतत्त्वदीप ।

अत्र ज्ञानस्य नित्यत्वेपीन्द्रियादेर्ज्ञानप्रसरणोपयोगित्वकालावछिन्नत्वप्रतीतिदर्शनादिन्द्रियप्रसरणस्य कादाचित्कत्वमूलकत्वचयत्सिद्धान्तिनामभिमततद्दूषयितुमनुवदन्नाह पूर्वपक्षी **स्यादेव मित्यादि** तत्रचैतन्य ज्ञानम्, सम्बध्यमानमनुरज्यमानमित्यर्थ । तत्प्रकाशतया=तत्प्रकाशकत्वेन तदीयत्वेन=तद्विषयकतया प्रतिविषय व्यवस्थित भवतीति । अनुरागस्येति, इन्द्रियार्थसनिकर्षस्यान्वयव्यतिरेकस्तुज्ञानस्यार्थविषयसम्बन्धे एवोपक्षीण भवति । सम्बन्धानन्तरमेव विषयप्रकाशकत्वम् । तत्र सम्बन्धस्यनित्यत्वेनतद्विशिष्टस्यज्ञानस्यार्थप्रकाशकस्यातीतत्वादिप्रतीतिरुपपद्यते । विद्यमानत्वेपि ज्ञानस्यार्थसम्बन्धव्यतिरेकेणार्थप्रकाशनादेव स्वापादेरुपपत्तिरिति, अन्यथासिद्धत्वज्ञानानित्यत्वसाधकानामिति । तद्दूषयति **तन्नयुक्तमिति । अर्थान्तरेत्यादि** प्रसरणेनेन्द्रियस्यार्थसम्बन्धेपिज्ञानस्यार्थेन सम्बन्धाभावात् । पुन शङ्कते **चैतन्यमपीति** चक्षुरादिद्वारा चैतन्यमपिनिष्क्रम्यार्थेन घटादिनासम्बद्ध्यते इत्याशय । परिहरति **अमूर्तस्येति** स्पर्शरहितस्य अमूर्तस्याप्य विभुत्वान्निष्क्रमणादिघटतेज्ञानस्य । आकाशस्यतुव्यापकत्वादेवनिष्क्रमणनेतिचेत्तत्राह **गुणश्च** इत्यादि, ज्ञानस्यगुणत्वाद् गुणिनमात्मानमन्त स्थितबाह्येनिष्क्रमणंनैव घटते । न चमूर्तापिजातिर्विनस्यन्तमपहाययथाऽन्यत्रगच्छति तथाऽत्रापिकुतोनेत्याशङ्कायामाह **जात्यादिदिषु चानुपपत्तिः** समानैवेति सक्षेप ।

। इतिज्ञाननित्यत्वपक्षेज्ञानार्थसंनिकर्षानुपपत्तिनिरूपणप्रकरणे तत्त्वदीप ।

卐

ज्ञानस्यात्मविरलत्वनिरूपणम्

यद्युच्येत, योऽयंप्रत्यगात्मेतिजीवः स च प्रकारद्वयेनावस्थितो भवतीति । बहुलरूपेणप्रविरलरूपेण च तत्र बहुलः प्रत्यक् चेतनक्षेत्रज्ञादिपदतयाऽपदिश्यते स चात्मा ज्ञानसुखादिमानूबद्धोमुक्तश्चेत्यपिगीयते । विरलस्तु ज्ञानसंविदादिपदवाच्यः ।

अथात्रजैनशासनानुमतस्य कस्य चिन्मतस्यप्रदर्शन करोति तन्निराकरणाय तत्राह **यद्युच्येत योयं प्रत्यगात्मेतीत्यादि** सामान्यत एतन्मतस्यायमभिप्राय तथाहि ते जैनाचार्या सगिरन्ति "आदीपमाव्योमसमस्वभावस्याद्वादमुद्रानतिभेदिवस्तु । तन्नित्यमेवैकमनित्यमन्यदितिल-दाज्ञाद्विषताप्रलापा " इति सर्वोहिपदार्थ प्रदीपादारभ्यव्योवपर्यन्ता नित्याअनित्याश्चप्रदीपोपिस्वर सतैलवार्तिकादिविनाशात् परमाणुरूपेणावतिष्ठते, इति प्रदीपमर्ज्ञाविहायपरमाणुरूपता भजन् कारणरूपेणनित्य एव । यदा खलु त एव प्रदीपपरमाणवोविलक्षणसगादिक्रमेणपरमाणुभावं परित्य-जन् प्रदीपपर्यायंलभतेतदाप्रदीपत्वेनानित्य कारणरूपेऽर्थात्, द्रव्यरूपेणनित्यएवेति द्रव्यपर्याया भ्यासर्वोपिपदार्थोनित्यश्चानित्यश्चापि भवतीति ।

ननु नित्यत्वानित्यत्वयो परस्परविरोधात्कथमेकस्मिन् समावेश स्यात् तदुक्त "नैकस्मिन्न सभवात्" इत्यत्र । तन्न, अपेक्षाभेदेनोभयोरप्येकत्रसमावेश सम्भत्येव, यथास्वरूपत एकैव स्त्री, माताभगिनीपुत्रीति नानापदेनव्यपदिश्यतत्रपितरमपेक्ष्यपुत्रीतिकथ्यतेस्वापत्यमपेक्षमाणा मातेति, स्वोदरचापेक्ष्यभगिनीतिगीयमाना, एककालेएवविरुद्धमातृत्वादिधर्मवती भवति तथैव प्रकृते-पीति । यथावा, एकस्मिन्नेववृक्षे एकस्मिन्नेवकालेमूलमवच्छेदकीकृत्यकपिसयोगाभाव शाखावच्छेदेन तदैव तत्रकपिसयोगस्यविरुद्धस्यसमावेशो भवतीति न तत्र कोपि विवदते । तत्कस्य हेतो ? अवच्छेदकभदेनविवादस्यप्रशमनात् । तथैव प्रकृतेपि ज्ञेयम् । अर्थात् द्रव्यरूपेण सर्वोपिपदार्थोनित्य पर्यायरूपेणानित्य रूपान्तरेणसन् भवति । एतदेवपदार्थाना सत्वम् तदुक्तम् वाचकमुख्येनोमास्वातीनामकेनाचार्येण "उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त सदिति" प्रमाणनयतत्वालोकाऽल-कारे । सर्वोपिपदार्थउत्पादस्थितिविनाशयुक्तत्वादेव सत् भवतीति । तथैवेहात्मनोपिवहुलविरला-दिनामरूपद्वय भवतीति जैनमतसक्षिप्यप्रदर्शितपूर्वपक्षिणेतितदेवेहाचार्योदर्शयति **यद्युच्येत** यश्चाय जीव, प्रत्यगात्मा, सद्विधाऽवतिष्ठते, बहुलोविरलेश्च । तत्र बहुलोनिविठावयवसश्लेष सम्बन्ध युक्तो भवति । विरलस्तुशिथिलावयवसश्लेषवान् । तत्र बहुल प्रत्यक् चेतनक्षेत्रज्ञादिपदवाच्यो धर्मीआत्मेति कथ्यते । विरलस्तुजीवाधीनतयाप्रत्यगर्थस्यैकदेशरूपतया तदधीनस्थितिकत्वेनज्ञाना-दिपदवाच्ययागुणरूप. । अर्थात् मूलत एक रूपोपि बहुलोधर्मी द्रव्यमिति कथ्यते । विरल-स्तुजीवाधीनास्थितितयानैकदेशोगुणपदवाच्य । विरलस्याप्यात्मप्रदेशत्वादेवनात्मनोविच्छेदी भवति, विरलतया च प्रसरणादिकमपि भवति । आत्माहिसकोचविकाशशाली यदास्वल्पशरीरप्राप्नोत्य

स च प्रत्यगर्थाधीनतयागुणतया उपदिश्यते तेजो वदिति । अत्र यथा बहुलं तेजः सूर्योग्निश्चेति । विरलंतु प्रभाप्रकाशोज्योतिरिति च । अतश्चैतन्यज्ञानस्यविरलात्मप्रदेशरूपतयाऽलोकादिवदेवगमनादिकंकर्मसंयोगवियोगादिकमप्युपपन्न भवतीति ।

एतन्मतमपिनोपपद्यते–निरवयवस्य मूर्तत्वविरहिततस्यसर्वथा संगवर्जितस्यजीवात्मनोबहुविरलत्वादिधर्मसमुदायादिकस्यात्मन्यननुमतत्वात् । यदि तेजोवदुपर्युक्तंधर्मजातंकश्चिन्मन्यते तदातेजोवदेवजीवात्मनोऽपि, अचेतनत्वान्नित्यत्वानित्यत्वादिमते जडत्वसावयवत्वादिदोष आपतेत् । ततश्च कृतहान्यकृताभ्यागमादिदोषा आपतेयुः ।

दृष्टवलात्तदाऽत्मनोयेऽवयवास्तेसकुचिता भवन्ति, यदा स एव पुत्तिकाशरीरपरित्यज्यहस्तिशरीर प्रविशतितदाऽत्मीया.प्रदेशाविकासभावप्राप्नोति । अतएवायमस्मिन् तन्त्रेशरीरपरिमाणवान्, अर्थान्मध्यमपरिमाणवानिति, नाणुपरिमाणो नवा व्यापकपरिमाणवान्, अणुपरिमाणत्वे, निदाघकाले जान्हवीजलनिमग्नस्यसर्वागीणसुखाद्युपलब्धिर्नस्यात्, अणुत्वेनशरीरैकदेशेएवावस्थानात् । नवा तृतीय पक्ष व्यापकतयानिष्क्रियस्यलोकान्तरेगमनागमनाद्यनुपपत्ते तस्मात् यादृशशरीर यदाप्राप्नोति तदा तदानुकूल्येनतदवयवाबहुलीभवन्ति विरलाश्च भवन्तीतिनिष्कण्टकोयस्याद्वादतन्त्र । अत्रते इमे सप्तभङ्गा भवन्ति, स्यादस्ति १ स्यान्नास्तीति-२ स्यादस्ति च नास्ति च ३ स्यादवक्तव्य ४ स्यादस्ति चावक्तव्यश्च ५ स्यान्नास्ति चावक्तव्यश्च ६ स्यादस्ति च नास्ति चा वक्तव्यश्च ७ । यथायोग्यमिमेसप्तभङ्गा प्रतिपदार्थयोजनीया । एतेषां विशेषविवरणस्याद्वादशास्तादेवावगन्तव्य दिङ्मात्रमिहप्रदर्शितम् । अत्रानुरूपतृष्टान्तदर्शयति **यथा बहुलं तेजश्चेति** । यथा तेजो द्रव्य यदा निविडावयवसश्लेषविशिष्ट तदा तस्याग्निरिति प्रदीपोभौमोवेति व्यवह्रियते । यदातु तदेवतेजोवयवशिथिलावयवसश्लेषवद् भतति तदा प्रकाशो वा प्रभावेत्येव रूपेण प्रथते । ततश्च विरलात्मप्रदेशतया, आलोकवदेवात्मप्रदेशरूपस्यज्ञानपदवाच्यस्यगमनागमनसयोगोवियोगश्चापि भवतीति प्रश्नग्रन्थस्य समुदिताशय । नेद मतम्, यतोऽस्मिन्मते निरवयवादिमतआत्मन सावयवत्वादिदोषआपतति, ततश्च तस्यात्मनोऽनित्यत्वादिक भवेदित्याशयेनोत्तरयति **एतन्मतमपिनोपपद्यते** इत्यादि, कथमेतनोपपन्नमितितदेवोपपादयति **निरवयवस्येत्यादि** । यदि आत्मन सावयचत्त्व स्यात् तदैवावयवत्वेनवहुलत्व विरलत्व च सभवति, तमन्तरेण निविडावयव सश्लेषलक्षणबहुलत्वस्यप्रविरलावयवसश्लेषवत्वरूपत्व भवेत् । परन्तु निरवयवस्यामूर्तस्यासङ्गस्यात्मनोबहुलत्वादेरनुपपत्ते । ‘सपर्यगात् शुक्रमकायमव्रणम्” इत्यादिश्रुत्याऽत्मन शरीरादिप्रतिषेधेन सावयवत्वस्यार्थत एव प्रतिषेधात् । “द्वेवावब्रह्मणोरूपेमूर्तञ्चामूर्त च” इत्यादिश्य अर्थात् “आदेशोनेतिनेति” इत्यादिनातस्मिन्नात्मनिमूर्तत्वस्यनिषेधात् । तत्रपरिच्छिन्नपरिमाणवत्वम्, क्रियावत्वम्, स्पर्शराहित्य वा ? न चात्माक्रियावान् परिच्छिन्न स्पर्शादिमान् वा भवति । ईदृशस्यात्मन.

अथायमात्माऽवयवरहितेन सर्वतः सर्वार्थप्रकाशनसामर्थ्ययुक्तज्ञानेनयुक्तत्वात्सर्वव्यापकः । अथ यदि ज्ञानं सर्वव्यापक सर्वार्थप्रकाशकं तदाऽऽत्मनः सर्वदैव सावयवत्वापादकबहुलविरलादिधर्मवत्वादिधर्मानुपपत्ते । यदि हि आत्मन सावयवत्वादिकमभिलषित भवेत् तदा सावयवत्वानित्यत्वादिक धर्मजात स्वीकृत स्यात् । आत्मनि, नतु कोपि आत्मवादी तथा मन्येत । यदि स्वसिद्धान्तमोहादेव कुर्यात् । तदा शरीरादिवदेवात्मनोप्यचेतनत्व प्रसज्येत । अर्थात् यथा करणकलेवरादीनिसावयत्वादचेतनमवेत नत्वात्मनित्यत्वमितितानिनात्मद्रव्याणि, तथैवात्मनोप्यचेतनत्वे तस्यापिदेहादिवदेवानित्यत्वान्नात्मतत्वमेव भवेत् । अर्थादात्मन सावयवत्वे च स्पर्शवत्वसलेपत्वविकारित्वानित्यत्वाचेतनत्वादीनिशरीरवदेव प्रसज्येत । यथा स्पर्शादिमत्वे शरीरादीनामनित्यत्वादिकमिति न तान्यात्मरूपाणि तथैव प्रकृतेपिबोध्यम्, अस्यमतस्य सविस्तरनिराकरणस्याद्वादमीमासा प्रकरणे श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर-प्रभा-किरणे चिदात्ममीमासा याञ्च कृतमिति तत एव विशेषजिधृक्षुभिर्द्रष्टव्यम् ।

। इति ज्ञानस्यात्मबहुलविरलप्रदेशमतदूषणप्रकरणे तत्त्वदीप ।

ज्ञानात्मनो स्वरूपविचारप्रस्तावेमतान्तरप्रदर्शयति, **अथायमात्मेत्यादि,** एतन्मतेसर्वदासर्वार्थप्रकाशकज्ञान यदात्मनस्तज्ज्ञान सर्वव्यापकविभु इत्युच्यते । एतादृशज्ञानेनैवसर्वार्थप्रकाशनसभवादात्मन स्वप्रकाशत्वेनैतेषामादर यथोक्तज्ञानेनैवात्मनोपिबाह्यपदार्थप्रकाशनसभवेन पार्थक्येनतस्यात्मन स्वप्रकाशत्वानभ्युपगमादिति **अवयवरहितेन**=अनवयवेनकार्त्स्न्येनेति यावत् । ततश्च सदासर्वकालसर्वार्थ एव प्रकाशनेसमर्थमुपयुक्त यद्ज्ञान तादृशज्ञानवान् सर्वव्यापक आत्मेत्यर्थ फलित । ननु यदा सर्वार्थप्रकाशनशीलज्ञानवानात्मा, तता तादृशात्मनासर्वविषयक ज्ञान कथ न भवति, अर्थात् तादृशज्ञानेसर्वेऽर्था कथ न सर्वदाभान्तीति शङ्कामपनोदितुमाह **अथयदिज्ञानम्** इत्यादि । अथ यदि सर्वार्थप्रकाशनशीलमस्यज्ञान तदा तादृशात्मन सर्वदासर्वार्थविषयकज्ञानकुतो न भवतीति प्रश्नाशय । उत्तरयति **इतिचेत्तमोगुणप्रतिबन्धादिति** । यथान्धतमसेचक्षु सयोगस्यविद्यमानत्वेपिचक्षुरिन्द्रियेणचाक्षुषघटज्ञान न जायते, कुत अन्धकारेणप्रतिबन्धात्, तथैवात्मनोज्ञान सदपि तमो गुणेनाव्रियमाणघटादिक न प्रकाशयतीत्युत्तरज्ञेयम् । ननु यदि ज्ञान तमसाऽवृत्तंसन्नप्रकाशयति तदाआलोकसहकृतचक्षु सयुक्तघटादीनामपिकदाचिदपि प्रकाशो न स्यात्, तमसाऽच्छादनस्यविद्यमानत्वेन न कोप्यर्थ प्रकाशित स्यादित्याशङ्कायामाह **सत्वाधिक्ययुतकरणैः** इत्यादि । अत्रायमाशय यथा प्रदीपेनान्धकारेऽपसारितेसन्निहितघटादिकमेव चक्षुषा प्रकाशित भवति, सूर्यालोकेनापसारितेऽन्धकारे ततोऽधिकपदार्थस्यचक्षुषाप्रकाशो जायते । तथैव प्रकृते सत्वगुणयुतकरणेन यावत्तस्तमोगुणस्यनिरसनतावदेव तत्रप्रकाशन भवति । अर्थात्, प्रदीपालोकादिनातमोवत्, सत्वोद्रिक्तैश्चक्षुरादिज्ञानकरणै सत्वोद्भवतारतम्येनाल्पेतमसि-महतिवातमसिनिरासिते सतिज्ञानं तत्तदिन्द्रियार्थमल्पवाऽधिक वा प्रकाशयतीत्यर्थ ।

सर्वार्थस्फुरणं कुतो न भवतीति चेत् ? तमोगुणप्रतिबन्धादिति गृहाण । सत्त्वाधिक्ययुत-करणैः स्वकीयपाटवानुसारेण निराकृते तमोगुणे तत्तदर्थानांप्रकाशोजायते । अतो विनापिज्ञानार्थयोर्निष्क्रमणप्रवेशौसम्पद्यत एवार्थविशेषोपरागोज्ञानस्येति ।

यद्येवं तथापि, अर्थातिशयमात्रहेतुत्वादिन्द्रियलिङ्गादीनाज्ञानवदेवज्ञापकत्वं न स्यात्, ज्ञानकारणत्वाभावात् । न चार्थप्रकाशस्यज्ञानत्वम्, तथा सति प्रकाश-मानतयाघटादिविषयाणामपिज्ञातृत्वमापतेत् । यथोक्तम् ''आत्मधर्मस्य चैतन्यस्य विषयेणसहसंयोगोज्ञानमित्युच्यते'' इति ।

गाढान्धकारेतु चक्षुरादीना सत्वोत्कटत्व न भवतीत्याशय फलति । एतन्मतमपि निराकरोति **यद्येव तथापीत्यादि** एव चार्थगतप्रकाशलक्षणातिशयमात्रे, ज्ञानवदेवेन्द्रियादे कारणत्वमेव भवेत्, किन्तु अर्थविषयकज्ञाने इन्द्रियादे कारणत्व न भवेत, यतोऽर्थविषयक ज्ञानस्यभवद्भिर्नित्यत्वस्वीकारात्, नहि नित्यस्यहेतुर्भवतिनित्यत्वादेव, अनित्यमेव वस्तुकारणमापेक्ष भवति नित्यस्य तुतदनपेक्षत्वनियमात्, तदेवतस्यनित्यत्व यत् कारणानपेक्षत्व कारणापेक्षाया नित्यत्वमेव जह्यात् । ज्ञानस्यैवप्रकाशहेतुत्वसाक्षात् तदन्यस्यतु ज्ञानद्वारेणैव भवति प्रतिबन्धकस-तमसादेर्निरसनद्वारा कथचिदेवेन्द्रियादे कारणत्वम् । तथा चैतन्मते, इन्द्रियादेर्यद् ज्ञानकरणत्वनियम प्रतिष्ठापितश्चाक्षुषज्ञानवेत्यादिरूप स नियमो निराकृत एवभवेत्, यतो भवद्भिर्ज्ञानकरणत्वस्या स्वीकारात् ।

ननु भवतु ज्ञान नातिरिक्तकिमपिवस्त्वन्तरम्, किन्तु घटादिविषयनिष्ट प्रकाश एव ज्ञान पदवाच्यस्तत्कारणत्वात् चक्षुरादीन्द्रियाणाज्ञापकत्ववचनमपियुक्त भवतीत्याशङ्कानिराकर्तुमुपक्रमते **नचार्थप्रकाशस्यज्ञानत्वमिति,** योयमर्थगतप्रकाश तस्यैवज्ञानमितिपरिभाषेतीत्यर्थं । तदेतन्निरा-करोति **प्रकाशमानतया** इति । यदि प्रकाशएवज्ञानम, तदायथाज्ञानस्याश्रयआत्माज्ञानेति कथ्यते, तथैव प्रकाशस्यैवज्ञानरूपत्वेप्रकाशाश्रयीभूतघटाविषयोपिज्ञातृपदेनव्यवह्रियेत । **प्रकाशमान-तया**=प्रकाशस्याश्रयतयाघटादिविषयोपिज्ञातास्यात् । विषयतासम्बन्धेन यद्यपि ज्ञानस्य विषय-विषयत्वमस्ति, तथापि समवायेन ज्ञानाश्रयत्वन्नास्तीति । इहापि समवायसम्बन्धाभिप्रायेणै-वविषयस्यज्ञातृत्वप्रसङ्गआपादितोविषयतयातु तथात्वस्यानुमतत्वेपि ज्ञातृत्वमात्मगतमेवेति । अत्रैव प्रसङ्गान्मतान्तरमपिदर्शयति **यथोक्तम्**=आत्मधर्मस्यचैतन्यस्य विषयेणसहसयोग एव ज्ञानमिति । अर्थात् चैतन्यमात्मनोधर्मस्तस्यात्मधर्मस्यघटादिनाविषयेण सहसयोग एव ज्ञानम्, अर्थात् सयोग एव ज्ञानम्, स च ज्ञानात्मक सयोगश्चक्षुरादीन्द्रियाधीन इति तज्जनकतया, चक्षुरादेरिन्द्रियस्यज्ञापकत्वमुपपद्यते इतिभाव । एतस्मिन् मतान्तरेपिपूर्वोक्त

तत्रापि संयोगस्यद्विनिष्ठतया पूर्वोक्तदोष एव भवतीति । अनुभवविरोधोऽप्यत्र भवति "अहमिदानीं जानामि" "नेदानी विजानामि" इत्यात्मसमवायिनोरेव ज्ञानज्ञानाभावयोरेवानुभवात् । अविकृतप्रकाशाकरणसमुदाये विद्यमानेऽपि सूर्यप्रकाशेप्रकाशकत्वव्यवहारो यथा तथैव प्रकृतेपिस्यादिति न युक्तम् । तत्रहि दिनमणिकिरणानां द्रव्यरूपतयातस्मिन्, आकुञ्चनप्रसरणद्रव्यान्तनेणसंयोगो विभागादिर्वासंभवात् समुपपद्यते कदाचित्तथाव्यवस्था, इहतु ज्ञानस्यगुणत्वान्नात्रकादाचित्कव्यवहारःस्यात् ।

। इति नित्यसर्वगतज्ञानवदात्मवादनिरासप्रकरणम् ।

दोषमेवापादयति **तत्रापि संयोगस्य द्विनिष्ठतयेत्यादि,** सयोगविभागादेर्द्विनिष्ठत्वेन चैतन्य सयोगस्यैवज्ञानरूपत्वभवेत्तदाचैतन्यसयोगाश्रयघटादिविपयस्यज्ञातृत्वापत्तिदोषस्तदवस्थ एव भवति, नहि आत्मव्यतिरिक्त कोपि पदार्थो ज्ञातृतया व्यवहारलभत इत्यर्थ । अर्थगतप्रकाशस्यचैतन्यार्थसयोगस्य वा, ज्ञानरूपत्वे, पूर्वोक्तदोषातिरिक्तदोषान्तरदर्शयितुमाह, **अनुभवविरोधः इति ।** अनुभव विरोधमेवोपपादयति **अहमिदानी** वर्तमानकाले घटादिविषयजानामि न खलु पटादिक जानामि' इत्यादिस्थले आत्माधिकरणतयैवज्ञानस्यसत्वतदभावोवा अनुभूतो भवति । एवञ्च ज्ञानतदभावयोरात्मनिष्ठतयैवानुभवो भवति । एतादृशानुभवबलात्, घटादिविषयसम्बद्धनित्यमुत्पादविनाश रहित चैतन्यमेवज्ञानपदवाच्यमित्यवश्यस्वीकरणीयम् । तत् स्वीकारेपिचक्षुरादीन्द्रियादेर्ज्ञापकत्व न स्यादित्येवदोषोऽस्मिन् पक्षे निराकृतोनैव भवतीति । न च ज्ञानजनकज्ञानविषयत्वरूपज्ञापकत्वचक्षुरादीन्द्रियादेर्न भवतु तावताकाक्षतिरितिवाच्यम् । चक्षुरादीन्द्रियसनिकर्षादिनासयोग सयुक्तसमवायादिनैव घटाद्यर्थप्रकाशसभवोपपत्तेर्नभवतु प्रकाशव्यतिरिक्त चैतन्यमित्यस्यापिवक्तु शक्यतयाऽर्थविषयकज्ञानसिद्धेरप्यसभवप्रसङ्गात् । न च जानामीत्याद्यनुभवानुरोधेनातिरिक्त ज्ञान स्वीकर्त्तव्यमितिचेत् तदा, चक्षुरादेर्ज्ञापकत्वमनुभवबलादेवास्थीयते इत्यपि वक्तु शक्यतयासर्वतुल्य मेवेतिभाव । ननु सर्वदायोग्यसर्वार्थप्रकाशनसमर्थरश्मिसमूहयुक्तेपिदिनकरे "इदवस्तुजातमिदानीं सूर्य प्रकाशयति, तदानी न प्रकाशयतीत्याकारककदाचित्कप्रकाशकत्वप्रतीतिर्भवति कादाचित्क व्यवहारो भवतीति दृश्यते, तथैव नित्यचैतन्यविशिष्टेऽप्यात्मनि, प्रकाशकत्वव्यवस्थोपपन्नास्यादिति ज्ञाननित्यत्वेपि न कोपि दोष तत्राह **अविकृतप्रकाशकारण** इत्यादि । इमांशङ्का परिहरन्नाह **तत्र हि दिनमणिकिरणानामित्यादि** दिनकरकिरणस्तु तेजो विशेषत्वात् द्रव्यरूपा पृथिव्यादिनवानां द्रव्यत्वात्, तादृशकिरणानांसकोचविकाशशालितया, बाह्यार्थसम्बन्धस्यकादाचित्कत्वसभवेदपि, परन्तु द्रव्यभिन्नस्यगुणात्मकस्य चैतन्यस्यसर्वथोत्पादविनाशरहितस्यार्थात् नित्यस्यनित्यव्यापकात्मनिसमवायसम्बन्धेन विद्यमानस्यसर्वगतस्य च चैतन्यस्य कदाचित्कविषयसम्बन्धो न सभवेत्, गुणरूपे तस्मिन् गुणरूपसयोगासभवात्, "गुणेगुणानाङ्गीका

अथोच्येत, यदिदमात्मानो ज्ञानं तद्द्विधाविभज्यते, तत्रप्रथममात्माश्रितमात्म विषयकं च। द्वितीयमात्माश्रितंविषयविषयकं च। तत्र प्रथममुत्पादविनाशरहितं नित्यमात्मस्वरूपप्रयुक्तमनवरतमनुवर्तते। द्वितीयं तु घटाद्यर्थसम्बन्धीन्द्रियादिकारण-कंतत्तदर्थप्रकाशकतयोत्पद्यतेविनश्यति च। एतद् द्वतीयज्ञानमपेक्ष्यैव स्वापजागरादि-व्यवस्थासमुपपद्यते। तत्रोच्यते, तदैवेयं व्यवस्थोपपद्येत, यद्यात्मनिनित्यज्ञानमस्ती-त्यत्र प्रमाणंकिमपि भवेत्।

ननु स्वीकृतस्तावत्सर्वोपि जागरणावस्थाया सर्वदैवात्मनोनुऽभवो भवतीति। स्वापादिकालेतुआत्मानुभवोऽनुमानादेव भवति, स्वापकालिकस्य विषयविषयकज्ञाना-रादिति नियमात्। सयोगस्तु द्रव्ययोरेव भवति नतु द्रव्यभिन्नेगुणादौ वा भवति। यदि गुणोपि गुणवान् स्यात् तदागुणत्वंविहायद्रव्यरूप एव स्यात् गुणवत्वसमवायिकारणत्व वा द्रव्य-मिति नियमेन यदि गुणान्तर भवेत् तदा यस्मिन् गुणे गुणान्तरवत्तासगुणोद्रव्यमेव भवेदिति। यदि ज्ञानस्य विषयसम्बन्धो भवेत्तदाज्ञानस्यनित्यत्वेनसर्वदैव विषयप्रकाशो भवेत्। परन्तु कस्यचिदपिविषयस्यसर्वदाप्रकाशोऽदृष्ट समवेदुपपद्यते वा।

। इतिनित्यसर्वगतज्ञानवदात्मवादनिरासप्रकरणे तत्त्वदीप ।

अत्रैव प्रसङ्गात् ज्ञानविपयेमतान्तरमुपस्थापयति **अथोच्येत** इति। पूर्वपक्षमुपपादयति, **यदिदमात्मनो ज्ञानमित्यादि**, ज्ञान द्विविधम्, नित्यमनित्य च, तत्र नित्यमेकमात्मनो ज्ञान तदात्मनोधर्मभूतमात्मस्वरूपमात्रविषयकम्। द्वितीयतु, अनित्यविषयविपयकस्वकारणाधीनतदप्यात्म समवेतमिन्द्रियार्थसनिकर्षजातम्। द्वितीयमनित्यज्ञानमभिलक्ष्यैवस्वापजागरणाद्युपपत्तिरितिनित्यानित्य ज्ञानभेदाभ्युपगमपक्षोऽयम्। अत्रापिपक्षेनात्मन स्वप्रकाशत्वमिच्छन्ति। अमुपक्ष निराकरोति **तत्रोच्यते** इत्यादि। एक ज्ञानमात्माश्रितमात्मविषयक च तदपरन्त्वात्माश्रितविषयविषयकं स्वकारणाधीनकत्वात्। उत्पादविनाशशील घटाद्विवदनित्य च। तत्र द्वितीयसभवेपि, प्रथम-पक्षेआत्माश्रितमात्मविषयक च नित्यमेकमेव ज्ञान विद्यते, एतत्कथने न किमपि प्रमाण विद्यते, तस्मादश्रद्धेयमतमित्युत्तरपक्षाशय।

स्वापकालेनित्यज्ञानमस्तीत्यत्र किमपि प्रमाण नास्तीतिकथितपूर्वम्। स्वाप्रकालेपि नित्यज्ञानमस्तीतिप्रतिपादयितु पुन शङ्कते कश्चिदितितदनुवाद्यतन्मत निरसितुमुपक्रमते **ननु स्वीकृतस्ताव**दित्यादि, अर्थात्, स्वापकालिकस्यात्मप्रकाशस्यज्ञानमन्तरेणोपपादनस्याशक्यत्वात् स्वापकालेआत्मविषयकज्ञानमवश्य मन्तव्यम्, तत्काले च चक्षुरादिकरणानामुपरमात् तात्कालिक तज्ज्ञाननित्यमेवेतिपरिशेपाज्ज्ञायते इत्याशयवान् स्वापकाले आत्मप्रकाशसाधयितु प्रयतते, तत्राह, **ननु स्वीकृतस्तावदित्यादि**, जागरणकालेसर्वदैवात्मानुभव स्वीकृत एव सर्वोपिस्वापकालेतद्नु-

भावस्योत्तरोत्तरकालंस्मर्यमाणत्वात् [परामृश्यमानत्वात्] यत्कालिकोऽभावः परामृश्यते, तत्कालिकेन तदाश्रयस्वरूपज्ञानेनापि भवितव्यमेव, मध्यान्हकालपरामृश्यमान इव प्रातःकालदृष्टतडागादिवृत्तिनिगजाद्यभावे। यत्कालिकाभावाश्रयतया यः पदार्थः परामृश्यते स पदार्थस्तत्कालिकस्वरूपानुभववान्, यथा प्रातःकालानुभूततडागतटादिः। स्वापकालिकार्थानुभवाभावाश्रयतया चायमात्मापरामृश्यमानोभवतीत्यत स्तत्कालिकस्वरूपानुभववानित्येवं निश्चीयते, इतिचेन्मैवम्, व्यभिचरितत्वात्, प्रातस्तत्रनाहमासमितिस्वाभावभूमितयाऽवगतेन प्रातरनवगतपर्वततडागादिना अभावप्रपत्तिकालेप्रतिपिपन्सितभावसमकालवर्तिनः तदाश्रयस्सरूपस्वावगत्याविद्यमानत्वे तत्कालतयाऽवगमप्राप्तस्यप्रतियोगिनोऽनवगत्या च भाव्यमेवाभावज्ञानस्येत्येतावत्।

भवोऽनुमानाद्व्यवसाय्यो भवतानि। अत्रवाक्य प्रतिज्ञा विवक्षिताहेतुवाक्य, **तात्कालिकस्येत्यादि** उत्तरोत्तरेतिकथनतु दिनभेदाभिप्रायग कथितम्, स्वापोत्तरकाल प्रबोधकालमितियावत्। उदाहरणवाक्यतु **यत् कालिकाभावाश्रयतयेत्यादि**। व्याप्तिप्रतिपादक वाक्य मध्ये निवेशितम्। ततश्चात्रायमनुमानाकार फलितो भवति, आत्मास्वप्नकालिकस्वरूपप्रकाशवान् स्वप्नकालिकज्ञानाभावाश्रयतयाऽनुसन्धीयमानत्वात्, यो यत्कालिकाभावाश्रयतयाऽनुसन्धीयमानो भवति, स तत्कालिकानुभवविषयो भवति, यथा प्रात कालोनगजाद्यभाववत्तयाऽनुसन्धानविषय प्रात कालपरिदृष्टतडागतटादिरिति। नमिममनुमानप्रयोगघटकलिङ्गं व्यभिचारदोषेणदूषयितुमाह, **मैवम्** इत्यादि **व्यभिचरितत्वादिति** व्यभिचारदोषमेवोपपादयति **प्रातस्तत्रनाहम्** इत्यादि, अननुभूते प्रात कालेमध्यदिनेदैवात्स्मृते यस्मिन् गिरिनदीतडागादो प्रातस्तद्वृत्तितयास्वस्याप्रतिसन्धानवलात् स्वस्याभाव प्रात कालिक.परामर्शविषयोभवति, तदवच्छेदेनात्रव्यभिचारोभवतीतिज्ञातव्य। ननु तात्कालिकाश्रयज्ञानाभावेतात्कालिकाभावाश्रयतयातस्यप्रतिसन्धानकथ सगच्छते तत्राह, **अभाव प्रतिपत्ति** इत्यादि। अवगमप्राप्तस्य=प्रतिपत्तियोग्यस्येति। यत्कालिकपदभाववत्तया, प्रतिसन्धीयमानत्व यस्य, तत्र प्रत्यनुसन्धाने तस्य तत्कालेऽवस्थानमेवापेक्षितम्, प्रतीतिस्तु—अभावप्रतिपत्तिसमये एवापेक्षितो भवति। तथा तात्कालिकतद्वृत्तितयाप्रतिपत्तियोग्यस्यप्रतियोगिन स्तथाऽप्रतिपत्तिश्चाभावज्ञाने एवापेक्षितो भवति। यत् कालिकोऽभाव परामृश्यते तत्काले तदाश्रयप्रतीतिर्भवतु मा वा इत्यत्रनाग्रह, इतिसाश्रयप्रतीतिर्नापेक्षिता। अर्थात् अभावज्ञानेप्रतियोगिज्ञानमेवकारणम्, अत्यन्ताभावप्रत्यक्षेप्रतियोगिनो योग्यताया एवापेक्षितत्वात्। अन्यथाऽयोग्येवस्तुनिगन्धाद्यभावस्य प्रत्यक्षत्व न स्यात्। अन्योन्याभावप्रत्यक्षे एवाधिकरणयोग्यतायाअपेक्षणात्, अतएव स्तम्भादौपि शाचादिभेद प्रतीयते, तत्र प्रतियोगिनोयोग्यतायाअनपेक्षणात्। एवञ्च "स्वापकाले" एतावन्तकाल न किञ्चिदवेदिषमूढोऽहमासमित्यादिप्रतिसन्धानेननात्मानुभव. कथमपिसिद्ध्यतीति भाव.।

[अन्तरेणापि] विनापिस्वापकालिकमात्मानुभवमिहतदुभयमुपपद्यते, प्रत्यभिज्ञयैव[प्रबोधे] जागरणकाले स्वरूपसिद्धेः। जाग्रत्कालिकानुभवस्यपटीयमः स्वापेपिमतोऽनुभवस्यस्मर्तव्यस्यसतस्तदानीस्मरणाभावदर्शनाच्च ।

सुखमहमस्वाप्स न किञ्चिदवेदिसमित्यादिवृत्तयस्तु नस्मरणात्मिकाः किन्तु प्रबोधकालिकशरीरेन्द्रियलाघवपाटवादिपर्यालोचनपूर्विका एव, जातिवेषसंस्थानादिवदेव । तेपि हि परामृश्यमाना भवन्ति, एवं जातीयकोहमीदृशेनवेषेणानेन संस्थानेन चात्रेयन्तं कालमस्वाप्समिति । स्मृतिरूपत्वेपिपूर्वज्ञानस्यजाग्रत्कालिकवदेवनिद्रालक्षणयावृत्त्या, प्रमाणविपर्ययतर्कादिवृत्त्यभावकारणतमोगुणालंबनयाप्रतीत्यैव तत्कालप्रसिद्धस्यात्मनः स्मरणं जायते, नतु स्वाभाविकसंवेदनसिद्धस्यप्रकाशस्य वा, तत्र प्रमाणा-

अन्तरेणापिस्वापकालीकमात्मानुभवम् इत्यादि, इहात्राभावप्रतिपत्तिकाले, **तदुभयम्**— स्वप्नकालिकात्मस्थिते प्रबोधकालेजागरणेऽवगम प्रतियोगिन संवेदनस्य, स्वापकालिकत्वेनास्मरण च, एतदुभयमपिप्रत्यभिज्ञयेव "सुखमहमस्वाप्सम्" इत्यादिप्रत्यभिज्ञाबलेनेव स्वापकालिकस्यात्मस्वरूपस्यप्रबोधेजागरणकालेचावगमउपपद्यते एवेति । "पटीयस अतिशयेनपटुरितिपटीयान् तादृशस्य स्फुटप्रकाशस्यानुभवस्यस्वापसमयेसत्वेविद्यमानत्वे, तादृशस्यैवानुभवस्यप्रबोधेजागरणसमये स्मरण भवति । स्मरणाभावाच्च तस्यानुभवस्यतदभावस्यविद्यमानत्वेपिस्वापकालिकस्यात्मनि, प्रबोधकाले परामर्शोऽर्थात्स्मरणसमुपपद्यते एवेति भाव । अथ स्वापसमयेसुखत्वरूपेणात्मनोभानविना "सुखमहमस्वाप्समित्याकारकस्मरणस्यान्यथाऽनुपपत्त्या, अन्यथानुपपत्तिप्रमाणेनस्वापसमयेपितादृशात्मनो भवतीति, अवश्यमेवस्वीकर्तव्यमन्यथा तदनुपपत्तेरित्याशङ्कायामाह **सुखमहमस्वाप्सम्** इत्यादि । सुखमस्वाप्समित्याकारक ज्ञान न स्मरणात्मकम्, किन्तु प्रबोधकालिककरणपाटवादिपूर्वकमेव, अर्थात् सुप्तप्रबुद्धस्यप्रबोधकालिकानुमित्यादिजनितमेव । सुप्त एवाह प्रबुद्ध, इत्यादिप्रत्यभिज्ञाऽक्षिप्तस्वापसामयिकात्मसत्ताविषयकमेवेदमनुभवान नतु स्मृतिरूपमितिभाव । **जातिवेषसंस्थानादिवदिति,** यथा स्वापसमये जातिवेषसंस्थानादे प्रतिभानाभावेपि, यथा जात्याद्यशस्यभानमनुमानादिलभ्य भवति । तथैवात्रापिसुखाद्यशस्य स्वापेमानाभावेपिसुखाद्यशस्यप्रतिसन्धानमनुमित्यादिप्रमाणेनैव भवतीतिभाव । तदेव दर्शयति **तेपि परामृश्यमाना भवन्ति** प्रबोधकाले नतु स्वप्नेऽनुभूता यथा ब्राह्मणादिजातीयकोहममुकवेषेणामुकसंस्थानेनास्मिन् स्थलेसुप्तोहमासमित्यादि । न च जात्यादीना प्रतिसन्धान स्वप्नकाले जात येनेदानीं सुप्तोत्थितस्यस्मरणमितिकल्पयितु शक्यम् । किन्तु प्रमाणान्तरबलेनैवोपस्थापित भवति प्रबोधकाले तस्मादिदजाग्रत्कालिकएवानुभवोनत्वेपास्मरणमिदानीमितिभाव । स्वापकालेभवतुनामानुभवस्तथापि तादृशोऽनुभवोनात्मसत्ताप्रयुक्त, भवतु वा स्वापकालेऽज्ञानसाक्षितयाऽऽत्मन प्रतिभास किन्तु स आत्मन प्रतिभासोनात्मस्वरूपप्रयुक्तआत्मा-

भावात् । निद्राऽपिप्रमाणविषयतर्कादिवत् वृत्तिविशेष एव तदाह भगवान् पतञ्जलिः "अभावप्रत्ययालंवनावृत्तिर्निद्रेति ।" प्रयोगश्च विमताऽत्मस्वरूपसिद्धिर्विषयानुभवमूला, आत्मस्वरूपसिद्धित्वात् जाग्रत्कालिकात्मस्वरूपसिद्धिवत् । तथा, आगन्तुकं ज्ञानम्, आत्मविशेषगुणत्वात्, सुखदुःखादिवत् न च सुखादयोनात्मगुणाः अप्रसिद्धाश्रयान्तरत्वे सति, अहमितिप्रत्ययसामानाधिकरण्येन प्रकाशमानत्वाद् ज्ञानवत् ।

। इति ज्ञानस्यानित्यत्वेपूर्वपक्षः ।

वभास किन्तु, अनित्यतात्कालिकाज्ञानविषयकानुभवप्रयुक्त एवेति । एतावतानात्मन स्वप्रकाशत्व सिद्ध्यति, नवाऽत्मनि नित्यज्ञानमस्तीत्यपिसिद्ध्यतीतिभाव ।

ननु अज्ञान नामज्ञानविरोधित्वमतएव तादृशाज्ञानविषयकवृत्ते स्वापे स्वीकारे, स्वापस्यैवविघात, यत स्वापेनाशेवृत्तेविराम एवेति, तत्काले तमो विषयकवृत्तेसत्वेस्वाप एव न स्यात् । अथात् वृत्तिसामान्याभावस्यैवस्वापत्वात्तत्राह **निद्रापिप्रमाणविषय** इति यथा प्रमाण विपर्ययादिकवृत्तिविशेषरूप नथैव निद्राप्येकावृत्तिविशेषलक्षणैव । तदाहभगवान् पतञ्जलि "अभावप्रत्ययालवनावृत्तिर्निद्रेति" [अभावप्रत्ययम्, अभावात्मकविषयमालभतेयावृत्ति सा निद्रावृत्ति, अयादभावादिविषयकवृत्तेस्तदानीमभावेपि, अभावविषयिणीयावृत्ति सैवनिद्राप्रमाणविपयादिज्ञानवृत्त्यभावहेतुभूततमोवृत्तिरेवनिद्रेत्यर्थ] ततश्चात्मावृत्तेर्निद्रात्वकथनात्, आत्मतमोऽतिरिक्तविषयकज्ञानसामान्याभावस्यैव स्वापस्वरूपत्वावश्यमेवेष्टव्यमिति भाव । ननु घटादिविषयकज्ञाने विद्यमाने एव तादृशज्ञानवत्तयैवात्मानुभवोनान्यथा तदनुभव इत्याशङ्कायाप्रयोगदर्शयति **प्रयोगश्चार्था**दनुमानप्रयोग इत्थ भवति, **विमता आत्मस्वरूपसिद्धिः** विषयानुभवमूला, आत्मस्वरूपसिद्धित्वात्, जाग्रतस्तत्सिद्धिवत्, तथा, ज्ञानम्, आगन्तुकम्, आत्मविशेषगुणत्वात्, सुखदु खादिवदिति ।" तत्रविमताऽत्मसिद्धिरितिपक्ष । अर्थात् नित्यानित्यज्ञानप्रयुक्ततत्वस्वरूपप्रयुक्तत्वविप्रतिपत्तिविषय. स्वापकालिकात्मस्वरूपप्रकाश " इत्यन्त पक्षोधर्मिनिर्देश - तत्र पक्षे विषयानुभवसाधनेन च तस्य ज्ञानस्यानित्यत्वफलित भवति । ज्ञानस्यचानित्यत्वे च द्वितीय प्रयोगोज्ञानमागन्तुकमित्यादि, ज्ञानमागन्तुकस्वकारणजनितमनित्यमित्यर्थ । आत्मविशेषगुणत्वादिति हेतु । यत्र सुखादौ आत्मविशेषगुणत्वहेतुरस्तितत्रानित्यत्वमपिविद्यते एवेत्यादि, क्रमेणज्ञानस्याप्यात्मविशेषगुणत्वात्तत्रापिसाध्यमनित्यत्वसिद्ध्यत्येवेति । दृष्टान्तेसुखादौ, आत्मविशेषगुणत्वरूपोहेतुरस्तिनवेतिसशयनिराकर्तुमाह **न च सुखादयोनात्मविशेषगुणाः** इत्यादि । अह प्रत्ययसामानाधिकरण्येन अह प्रत्ययविषयाहमर्थवृत्तित्वेनेत्यर्थ । अहमर्थस्यात्मनोधर्मतयाप्रतीयमानस्य 'अहस्थूल कृश " इत्यादिप्रतीतिसिद्धस्थूलत्वादे शरीरलक्षणमाश्रयान्तरलोकप्रमाणेन सिद्धमिति तन्निवारणार्थम्, अप्रसिद्धाश्रयान्तरत्वेसतीतिसत्यन्तविशेषण हेतुघटकतयाप्रक्षिप्तम्, तथा च स्थूलत्वाश्रयोदेहोनाप्रसिद्धोऽपितु

अत्राहुरात्मस्वरूपवेदिनोयदात्मनश्चैतन्यं तत्स्वत एव नान्यतः स्वरूपोपाधिधर्मत्वात् तेजसः प्रकाशवत् । चैतन्याश्रयत्वमेवात्मनः स्वरूपं न तदतिरिक्तं तस्य स्वरूपम् । यच्चैतन्यरहितंतन्नात्माघटादिवत् । न च चितिशक्त्याऽत्मत्वं, मोक्षे तन्नाशप्रसङ्गात् । बोधेनैवघटादिभ्यआत्मनोभेदसिद्धौबोधशक्तेस्तदन्यस्यकल्पनानि-
लोकप्रसिद्ध एवेति । सुखादेरपरोक्षत्वादिन्द्रियधर्मत्वमपिनिराकृतमित्याशय प्रकरणस्य ।

। इति ज्ञानस्यानित्यत्वपूर्वपक्षप्रस्तावेतत्वदीप ।

गतप्रकरणेन, विषयप्रकाशस्यकदाचित्कत्वात्, आत्मनोधर्मभूतज्ञानमागन्तुकस्वकारणजन्यत्वेन ज्ञानमनित्यमेवेतिप्रतिपादितम् । आत्मन स्वरूपप्रकाशोपि न सार्वदिक किन्तु विषयविषयक-ज्ञानकालेज्ञानद्वारेणैवात्मप्रकाशो भवति नत्वात्मन प्रकाशस्वतो भवतीति शङ्कानिरस्यज्ञानस्यनित्यता साधयितुमुपक्रमते **अत्राहु** रित्यादि । यदिदमात्मनोधर्मभूतज्ञानतदात्मस्वरूपप्रयुक्तमेव नतुपरतो भवति । तज्ज्ञानमात्मनोनित्यत्वान्नित्यमेवनानित्यम् । यतो ज्ञानस्यात्मस्वरूपकधर्मत्वात् । ज्ञान-स्येति न ज्ञानरहितमात्मस्वरूपव्यवस्थित भवेत्, यथा सूर्याग्निप्रभृतिक तेजोवातु । प्रकाश विरहितनात्मन स्वरूपलभते तथैव प्रकृतेबोधविरहितआत्मापि स्वात्मस्वरूपमेव न प्राप्नुयात् । अतोऽशेषविशेषगुणोच्छेदलक्षणमोक्षकालेपिज्ञानवत्वमेवात्मस्वरूपमित्येववक्तु युक्तमिति । यतो ज्ञानरहितस्यानात्मत्वात्, घटादि जडवत् । यथा प्रतिव्यधिकरणज्ञानाभाववान् घटादि सर्वथा जड एव नत्वात्मरूपस्तथैवात्मनोपिज्ञानराहित्योपगमे, स आत्मास्वस्वरूपमेवपरित्यजेत्, तस्मात्सर्व-दाऽत्माज्ञानाश्रय एव, स च मोक्षकालो भवतु ससारकालो भवतु तत्र न कोपि दुराग्रह । ज्ञानाश्रयस्तुसर्वदैवेति ततश्चात्मनोधर्मभूत ज्ञान नित्यमेव नतु पाकजरूपरसादिवदनित्यम् ।

ननु मोक्षकाले ज्ञानाभावेपिज्ञानशक्तिविशिष्टमात्मस्वरूपमेव मोक्षकालेस्यादितिशङ्कानिराकर्तु-माह **न च चितिशक्त्याऽत्मत्वमिति** अयमाशय कारणत्वद्विविधम्, फलोपहितत्वरूप योग्यतारूप च । तत्र सामग्रीसद्भावेतदव्यवहितोत्तरकाल कार्यमुत्पाद्यते, यत्र स्थले प्रथमफलो-पहितत्वरूपकारणत्वम्, यथा दण्डादिसकलकारणकूटसत्वेतदव्यवहितोत्तरकालेऽवष्यमेव घटादि कार्य जायते एव । द्वितीयतु यत्र तत्कालेकार्यनोत्पद्यते किन्तु कालान्तरेऽनेन कार्यस्यादित्या-लोच्यतस्यसङ्ग्रह क्रियते यथावनस्थितदण्डेन तत्कालेघटो न भवति, तादृशदण्डे स्वरूपयोग्यतारूप कारणत्वम्, कारणतावच्छेदकधर्मत्वरूपमेवयोग्यत्वमयोग्यत्वमिति । प्रकृते तत्काले ज्ञान यद्यपिनास्ति तथापिज्ञानोत्पादकशक्तिमत्वमात्मनि विद्यमानमेव, अर्थादात्मनि-ज्ञानोत्पादकशक्तिमत्वरूपायोग्यताविद्यते एवेतितदादायनिर्वाहे सति, कथमुच्यते, आत्मनोज्ञान-शून्यत्वेऽनात्मत्वम्, अनात्मत्वतु तस्यैवयस्यतत्काले न ज्ञानोत्पादकत्व नवा कालान्तरेपीतितत्रैवतत्व घटादिवत् । परन्तु अयतु कारणतायाविचारस्तदुपयोगश्चानित्ये वस्तुनि भवति, यथा दण्डोऽनित्य

र्थिका । वैशेपिकमतेबुद्ध्यादिनवगुणानामत्यन्तोच्छेद एव मोक्षः । तत्र सर्वथा विलुप्तकार्यवस्तुतदुत्पादनसामर्थ्यमेतीत्यत्र न किमपि प्रमाणं विद्यते । शरीरादिसम्बन्धितया परिदृश्यमानसुखादिकार्यविशिष्टवर्तिनीमेवात्मकार्योत्पादशक्तिज्ञापयति, धूमवत् आर्द्रेन्धनसंयुक्तवन्हौधूमोत्पादनसामर्थ्यम्, शाल्यङ्कुरवत् सतुषधान्ये । अपि च ज्ञाने सत्येवात्मनोऽनात्मभेदसिद्धौतच्छक्तेः कल्पनंसर्वथैवनिरर्थकम् ।

इति स यदा स्वरूपतो भवति तदा तत्र फलोपहितत्वम्, यदातु स दण्डो न विद्यते यथावनीयदण्डस्तथापिकालान्तरेसोपि कार्यजनकोभविष्यत्येवेतिकृत्वातत्रकारणतावच्छेदकदण्डत्वस्य विद्यमानत्वेनतत्रस्वरूपयोग्यत्व भवति । नित्यपदार्थे यदि स्वरूपयोग्यत्वकारणत्वमिष्येत, तदानित्यस्यविनाशाभावेनस्वरूपयोग्यत्वरूपकारणत्वेफलमवश्यमेवस्यादिति नियमात् नित्यस्यात्मन स्वरूपयोग्यत्वलक्षणकारणत्वेमुक्तात्मनोपिकदाचिज्ज्ञानोदय स्यात् । परन्तु मुक्तात्मनस्तवमते कदापि ज्ञानोदयाभावात्, ज्ञानशक्तिरपिनष्टैवतदा, आत्मविनाश एव भवद्भि प्रतिज्ञात स्यात् । अर्थाद् ज्ञानशक्तिमत्वस्यैवात्मत्वस्वीकारेज्ञानशक्तिविनाशे आत्मरूपमपिनश्येदिति "वृद्धिमिच्छतोमूलमपिते नष्टमिति" लोकाभाणकोनातिक्रान्त स्यात् । अर्थात् स्वरूपनिरूपकधर्मविनाशे तादृशधर्माश्रयीभूतस्वरूपमपिनश्येदिति भाव । ननु ज्ञान वा ज्ञानशक्तिर्वा आत्मन स्वरूपक न, किन्तु ज्ञानादिक स्वकारणसमासादितरूपकमागन्तुकमनित्यमेव, तथा भूतमपिज्ञानादिकमात्मन एव धर्ममिति मन्ये, तन्न घटादेधर्मभूतमित्थमेवात्मानात्मव्यवस्थोपपादिता भवतीतिचेत्सत्यम् ज्ञानस्यात्मस्वरूपकधर्मत्वमेवेत्यस्यस्थापयिष्यमाणत्वात् अत्रैव प्रकरणे, ज्ञानस्यात्मस्वरूपनिरूपकधर्मत्व यथा भवति, तादृशविचारस्याग्रेकरिष्यमाणत्वादिति । जडात्मवादस्य "प्रज्ञानब्रह्म" "सत्यज्ञानमानद ब्रह्मेतिवेदान्तविरुद्धतयाऽनादरणीयत्वादितिभाव । चितिशक्त्याआत्मत्वस्वीकारेमोक्षकालिकात्मनि ज्ञानादेरभावात्, आत्मनोपिविनाशप्रसङ्गदर्शयितुवैशेपिकमतविविच्यदर्शयितुमाह **वैशेषिकमतेबुद्ध्यादिनवगुणानामित्यादि** । बुद्धिप्रमुखानामात्मविशेषगुणानामात्यन्तिकोच्छेद एव मोक्षस्वरूपबुद्ध्यादीनामात्मन सयोगजनितानामात्ममन सयोगाभावान्न तत्रमोक्षकालेसभव इति तन्मतम् । परन्तु यद्वस्तु आत्यन्तिकलुप्तकार्यकजातम्, तद्वस्तुतत्कार्योत्पादकशक्तिविशिष्टमिति कथने किञ्चित् प्रमाणनास्तीतिभाव । मोक्षकालेमुक्तस्यात्मन अचिद् घटादिभेदसिद्धयेव्यावर्तकचिच्छक्तेराश्रयणविरर्थकम्, बोधात्मकहेतुनाचिदचितोर्भेदसभवादित्याशयेनाह **अपिच ज्ञानेसत्येव** इत्यादि । बोधात्मक [ज्ञानात्मक] हेतुनैवजडचेतनयोर्भेदसिद्धौतत्सिद्धये, आत्मनिबोधजनकशक्ते स्वीकारस्यनैरर्थक्यात्, आत्माजडभिन्नो बोधात्, एतावतैवतयोर्भेद सिद्धयतीतिबोधशक्त्याश्रयणमात्मनिमन्दप्रयोजनकमेवेतिभाव । ननु यदि ज्ञानमपिनित्यम्, स्वर्गमोक्षव्यवस्था सिद्धये आत्मनोऽपिनित्यत्वमेवैतदुभययोनित्यत्वकल्पनेगौरवमितिलाघवात्, नित्यज्ञानस्यैवात्मत्व स्वीक्रियतामितिशङ्का-

न चैवं तदाबोधरूप एवात्माभवत्वितिवाच्यम्, बोधस्याश्रयप्रतियोगिसापेक्षत्वात्, आत्मनश्चतद्विपरीतस्वभावत्वात्। साक्षादेवाहमर्थस्यात्मनः स्फुरणदर्शनात्। श्रुतितर्कानुभवबलेनबोधवत एवात्मत्वस्य व्यवस्थापितत्वात्। न च चैतन्यमात्रात्मवादेपि तस्यात्मन आगन्तुकविषयसम्बन्धेबोधत्वमारोप्यतस्यबोद्धृत्वसमर्थनं युक्तं प्रतिभाति, सम्बन्धस्य द्विष्ठतयाऽऽत्मवत्, अर्थस्यापिज्ञातृत्व [बोद्धृत्व]स्य प्रसङ्गात्।

मनुद्यपरिहर्तुमाह **न चैवं तदाबोधरूपएवात्मेति** उभयोराश्रयाश्रितयोर्नित्यत्वापेक्षया नित्यज्ञानमेव भवतु, आत्माद्वैतमतवदिति शङ्कितुराशय। परिहरति **बोधस्याश्रयप्रतियोगीसापेक्षत्वात्** अर्थात् ज्ञानस्य प्रतियोग्यनुयोगिसापेक्षत्वम्, तत्रात्माज्ञानाश्रय इति स आत्मायोगी भवति, तथा ज्ञानस्यप्रतियोगिघटादिविपय, एतदुभयसापेक्षत्व ज्ञानस्य। आत्मातु न प्रतियोग्यनुयोगिसाक्षेप इति प्रतियोग्यादिसापेक्षत्वनिरपेक्षत्वेन विरुद्धस्वभावतया, नित्यस्यापिज्ञानस्य न नित्यात्मरूपत्वम्। नहि विरुद्धस्वभावयो प्रकाशतमसोरेकत्वविरुद्धत्वादेव तथैव नित्यत्वेनज्ञानात्मनो कथञ्चित्समत्वेपिस्वगतविरुद्धधर्माक्रान्ततयानैकत्वसभावना। यथा द्रव्यत्वेनघटपटयोरेकत्वेपिघटत्वपटत्वादिर्विरुद्धतयाभेदएवनतुतयोरेकत्वमपितुपरस्परभिन्ना एव तेन ज्ञानस्यनित्यत्वेपिनित्येनात्मना भेदो नवा एकेन तदपरस्यगतार्थतेति भाव। अपि च कल्पनायामेवलाघवगौरवयोर्विचार सभावना भवति, नतुवस्तुस्वरूपेलाघवगौरवयोरवसर। नतु स्फुटतया ज्ञायमानेबोधयति, आत्मनि तदवसरो जायते, एतदाशयेनाह **साक्षादेव** चेतयितुरहमर्थस्य स्फुरणात्, श्रुतितर्कानुभवबलेनचितिमत एवात्मस्यान्तरमेव प्रतिपादितत्वात्। घटमहजानामीत्यादिप्रतीत्यासाक्षादेवात्मन. प्रतिभासनात् तदन्यस्यतुतद्बलेनैव स्फुरणदर्शनादिति। ननु "अह जानामीति" प्रतीतिबाधवत्यात्मनिभ्रमरूपैव, शुक्तौ इद रजतमितिप्रतीतिवत्तत्राह, **श्रुतितर्कानुभवबलेनेत्यादि**। श्रुतिस्तावत् "अत्राय पुरुष स्वयज्योति र्भवति" अयमात्मा सर्वानुभूरित्यादियुक्तिरपि तत्रतत्रप्रतिपादितैव। अनुभवोपि अह स्वात्मानमनुभवामिसुखीत्यादि। तथा च सत्तर्कसत्प्रमाणतर्कबलात् ज्ञात्रात्मप्रत्यक्षस्याहजानामीत्यादिरूपस्य न भ्रान्तित्वमपितुयाथार्थ्यतत्वम्। तस्मान्नज्ञानात्मनोरेकत्वम्। ततश्च न चैतन्यमात्रस्वरूपएवात्मा किन्तु तयोर्भेद एवेति स्थितम्। ननु योयज्ञानस्यविषयसम्बन्धस्तस्यैवबोधनाम भवति, अतआत्मनोबोद्धृत्वमुपपद्यते, इत्याशयेनशङ्कते **न च चैतन्यमात्रात्मवादेपितस्यागन्तुकविषयसम्बन्धे** इत्यादि। विषयचैतन्ययोर्य सम्बन्धस्तस्यैवबोधत्वेनाभिमतस्यसयोगादिरूपत्वे तादृशसयोगादे सम्बन्धत्वेनद्विनिष्ठत्वेनात्मवत्, विषयस्यापिबोद्धृत्वमापतेदित्याशयेनोत्तरयति **सम्बन्धस्यो**भयनिष्ठतयाऽऽत्मवत्, विषयस्यापिबोधद्धृत्वमनिवारितमेव भवेत्। यथा आत्मनस्तादृशसम्बन्धाश्रयतयाबोद्धृत्व भवति तथैव विषयस्यघटादेरपिद्विष्ठसयोगाश्रयतयाघटादिविषयस्यापि बोद्धृत्व कोनाम निवारयितु शक्येत।

न च यथा कार्यकारणसम्बन्धस्योभयनिष्ठत्वेपि कार्यकारणत्वव्यवस्थोपपद्यते तथैव प्रकृतेपि बोद्धृत्वादि व्यवस्थोपपन्नास्यादिति वाच्यम्, भावानवबोधात्। तत्र जन्यजनकयोः परस्परापेक्षानियमलक्षणसम्बन्धत्वात्, न दोषः कोपि भवति। अत्रापि

ननु यथा कार्यकारणभावस्य कार्यकारणोभयसापेक्षत्वेपि भवति तथात्रापि किं न स्यात्। तत्परिहारायोपक्रमते **न च यथा कार्यकारणसम्बन्धस्येत्यादि** अयमाशयो यथाकार्य कारणभावस्थले, कार्यकारणोभयनिरूप्यत्वेपि योग्यताबलात्, दण्डादिक कारणकार्यञ्चागन्तुकं घटादिकम्, दण्डादिर्घटस्यकारणघटादिश्चदण्डादेकार्यमितिसर्वलोकप्रसिद्धोपपद्यते ननु तत्र कश्चि द्विवदति, तथैव प्रकृतेपिचिद्विपयसबन्धस्यतदुभयविषयविषयिनिरूप्यत्वेपि, आत्माभवतिबोद्धा घटादिविषयश्चबोध्य स्यादितिस्यादेवबोद्धृव्यवस्थेति न तत्र कोपि विवाद पदमादधातीति- शङ्कितु स्वरूपम्। तदिदमाक्षेप परिहरति सिद्धान्ती **तत्र जन्यजनकयोः परस्परापेक्षात्** इति अयमाशय कार्यकारणभाव इत्यत्र, कार्यत्व स्वरूपसम्बन्धेनकार्यमात्रवर्म कार्येएवकारणत्वञ्चस्वरूपेण कारणमात्र एव, तिष्ठतीति न तयोर्द्विष्ठत्वमिति नतौ परस्परासम्बद्धत्वात्, सबद्धत्वात् पार्थक्येन सम्बन्ध किन्तु कार्यनिरूपितकारणत्वकारणनिरूपितकार्यत्वम्, परस्परनिरूप्यनि रूपकभावापन्नसदेव सम्बन्धतालभते। एवं विषयविपयिभावसम्बन्धस्थलेपि विषयत्वस्यविषयमात्रनिष्ठत्वात्। विपयि- त्वस्य ज्ञानमात्रगतत्वेन द्विनिष्ठत्वाभावात् न पार्थक्येनसम्बन्धता, किन्तु विषयनिरूपितविपयित्वविषयि निरूपितविषयत्वमेवसम्बन्धो भवति। तत्र चोभयोर्विपयविषयिणो परस्परापेक्षत्वात् तथा व्यवस्था भवतुनाम, परन्तु प्रकृते परस्परापेक्षाया कारणाभावात् बोद्धृत्वबोद्धव्यत्वव्यवस्थानोपपादिता स्यात्। अर्थात् यद्यपि कार्यस्यघटादेर्जनिमत करणस्य च कपालादेर्जनयितु सम्बन्ध एव कार्यकारणभावसम्बन्धेनव्यवहृतो भवति लोके। परन्तु तत्र कार्यत्वकारणकपालादिनिरूपित कार्यं घटादिमात्रगतम् नतुकार्यकारणोभयवर्ति, तच्चकार्यत्वकार्यमात्रनिष्ठमनन्यथा सिद्धस्वनियमत पूर्व- वर्तिकारक्षापेक्षत्वलक्षणस्वपूर्वव्यवहितकालावच्छेदेनकार्यव्यापककारणकत्वेपर्यवस्यति, कारणत्व च कार्यनिरूपित कारणनिष्ठस्वोत्तरभाविकार्यापेक्षत्वलक्षण कार्यनियतपूर्वकालवर्तित्वेपर्यवस्यतीति भिन्न- भिन्नमेवकार्यकारणभावेप्रविष्टम्। अत्रतु एक एवोभयस्मिन् समवायसम्बन्धेन विद्यमान. सयोगइति कथमिवात्रव्यवस्थाव्यवतिष्ठेत, अर्थात् व्यवस्था नकथमपि घटते इति भाव।

इदमत्र विचारणीयम्, यद्यपि सयोगविभागानामनेकाश्रितगुणानामुभयनिष्ठत्वेपि, अनु- योगिता सम्बन्धेन तादृशसयोगस्यचैतन्ये एव वर्तमानत्वेन चित एव बोद्धृत्वम्, विषयोघटा- दिस्तुप्रतियोगितासम्बन्धेनतस्यासम्बन्धस्यसम्बन्धीति विषयस्यैवबोद्धव्यत्वमितिबोद्धृबोध्यव्यवस्था- या न कापि क्षति, यथागमनक्रियायामेकस्यैवसयोगस्यकर्तृकर्मोभयवृत्तित्वेपिकर्तरि प्रतियोगिता सम्बन्धेनसंयोगोग्रामेतु अनुयोगितासम्बन्धेनेति तत्र ग्रामस्याधिकरणत्व पुरुषेतु प्रतियोगितया स

स एव सम्बन्ध इति चेन्न प्रकृतेऽपेक्षाहेतोरभावात् । किमर्थमर्थचैतन्यमपेक्षते अथवा चैतन्यमेवार्थमपेक्षते । सिद्ध्यर्थमितिचेत् ! कः सिद्ध्यर्थः ? नतावदुत्पत्तिः. तस्या ज्ञातनिमित्तान्तरत्वात् . यथा घटादिकार्यलोकप्रसिद्धकपालकुलालदण्डादिनिमित्तान्तर-सापेक्षंभवन् न चितिमपिस्वोत्पत्यर्थमपेक्षते निराकृतश्च पूर्वमेवविज्ञानमात्रवादः । नित्य-

सयोग इति पुरुषस्यावेयत्वमितिवदत्रापि व्यवस्था सभवति, तथापि न चिन्मात्रस्वरूपत्वमात्मन किन्तु चित्याश्रयत्वमपि श्रुतिप्रमाणसिद्धत्वात् स्वीकर्तव्यमेवेति ज्ञातव्यम् तदाहुर्जगद्गुरव श्रीअनुभवानन्दाचार्याचार्यसुरेन्द्रा "चेतनोनामज्ञानाश्रयो जानामिति प्रतीतेबोद्धाकर्तेतिश्रुतेश्च 'एषद्रष्टा स्प्रष्टा श्रोताघ्रातारसयिता मन्ताबोद्धाकर्ता विज्ञानात्मापुरुष (प्रश्न०५।९) इतिश्रुतिमाण्याज्ज्ञाना श्रयोऽपिजीव सिद्धान्ते ज्ञानरूपतयाऽङ्गीकृतोऽत एव स ईश्वरवत् प्रत्यक् पदवाच्य "(श्रातार्थ-सङ्ग्रह) । ननुज्ञानात्मनोरपि परस्परापेक्षानियमरूपग एव सम्बन्ध स्वीक्रियतामित्याशयेन पुन शङ्कते **अत्रापि स एवेति** अत्रापिपूर्वोक्त एव सम्बन्धो भवतु इति । परिहरति **न प्रकृतेऽपेक्षाहेत्वभावादिति** अपेक्षाया हेतुप्रयोजनरूपोऽर्थ प्रकृतोऽस्तीति । अपेक्षाहेतुत्वमेव प्रदर्शयति, **किमर्थमर्थश्चैतन्यमपेक्षतेचैतन्यंवाऽर्थमपेक्षते** इति, स्वसिद्ध्यर्थमेवार्थश्चैतन्यमपेक्षतेइतिचेत् ? तत्रसिद्धिशब्दार्थ क ? इति । नचोत्पत्तिरूपैवसिद्धि स्वसिद्ध्यर्थम् स्वोत्पत्यर्थमेवार्थश्चैतन्यमितिनयुक्तम् तस्या उत्पत्तेरज्ञातनिमित्तान्तरत्वात् । यथाघटादयोभावा स्वोत्पत्तयेस्वोत्पत्यर्थंप्रसिद्धकारणमपेक्षमाणाभवन्ति, यथा चैतन्यमपेक्षमाणादृश्यन्ते इति । अथघटादिभावानावासनाख्यदोषाच्चेतन्ये एव शुक्तिरजतवत् कल्पितत्वेनाधिष्ठानरूपेणचैतन्यापेक्षास्यादेव । नहि अधिष्ठानमन्तरेणकल्पनासभवति, शुक्त्यभावेरजतकल्पनावदित्याशङ्कानिरसितुमाह **निराकृतश्चपूर्वमेव विज्ञानमात्रवाद** इति । विज्ञानमात्रमेवात्मा, तच्च विज्ञानमपि क्षणिकभावत्वात् "यत् सत् तत्क्षणिकमितिनियमात् । तद्द्विविधनिवृत्तिविज्ञानालयविज्ञानभेदात् । तत्र घटादिविषयकविज्ञान क्षणिकतत्प्रवृत्तिविज्ञानमहमित्याकारक यद्विज्ञानतदालयविज्ञान तस्यैवात्मेतिनामभवति । तदुक्तम्—तत्स्यात्प्रवृत्तिविज्ञान यन्नीलादिकमुल्लिखेत् । तत्स्यादालयविज्ञान यद्भवेदहमास्पदमिति ॥ अस्यैवालयविज्ञानस्य ज्ञानसुखादिकम्, विज्ञानस्यक्षणिकत्वात् प्रतिक्षण विनाशेपि प्रथमादि विज्ञानजनितसस्कारस्योत्तरोत्तरविज्ञानेसक्रमणात् बाल्येविलोकितस्यवस्तुनोवृद्धावस्थायामपिभवतिस्मरणम्, योहबाल्येपितरावन्वभूव स एव वृद्धत्वेप्रणप्तृननुभवामीत्यादि मृगमदवासनावासितवसन इवोत्तरोत्तरे सक्रमणात् । यथावा, कपासवृक्षेलाक्षारसे प्रदानात्, पाकपरपरयातत्पुष्पेपिरक्तिमाया सक्रमणेन नदीयपुष्परक्त भवति । तदुक्तम्

"यस्मिन्नेवहिसन्ताने आहिता कर्मवासना । फल तत्रैव स धत्ते कार्पासेरक्तता यथेति ।

सोय विज्ञानमात्रात्मवादोबौद्धाभिमतोविचारितोनिरस्तश्च । निरासप्रकारस्तु इत्थम्—एतन्मते सर्वस्य

स्यात्मनः स्वोत्पत्त्यर्थमर्थापेक्षेति कथनंव्याहतत्वादेवोपेक्षणीयम् ।

ननुसिद्धिः प्रकाश एवेतिचेत्, स्वयंज्योतिः स्वभावोप्यात्माऽर्थाधीनप्रकाशोयेन तदर्थमर्थमपेक्षते, महदिदमाश्चर्यम् । प्रकाशश्चसंविदेवनतुतदतिरिक्तः कश्चिदर्थ-धर्मसंभवतीतिपूर्वमेवप्रतिपादितम् । संभवन्नप्यसौ न चितिस्वरूपमात्रनिमित्तकः, तथा सतिसर्वदासर्वार्थप्रसङ्गात् नहि कारणकूटसमवधाने कदाचित्कार्यं भवति कदा-चिन्नेति । आगन्तुकातिशयस्याश्रयणे वा नामान्तरेण, ज्ञानमेवस्वीकृतमिति ज्ञानवा-नेवात्मापि स्वीकृतः ।

। इतिधर्मभूतज्ञानस्यनित्यत्वसाधनम् ।

वस्तुजातस्यनिरन्वयविनाशस्वीकारेणान्वयिन कस्यचिदभावेन, बन्धमोक्षव्यवस्थास्वर्गनरकादि व्यवस्थापिच न भवति । एवमहज्ञानवानितिप्रतीतिसिद्धज्ञानात्मनोराधाराधेयभावोपिनोपपादितो भवेत्, भेदघटिताधाराधेयभावस्याभेदे सम्भवाभावात् । न च "राहोशिर" इत्यादिवदभेदेपि कदाचित्सम्भव इतिवाच्यम्, सर्वत्रषष्ठीविभक्तेर्भेदे एव दर्शनेन राहो शिर इत्यत्रागतिकगति कल्पनात् । तदेव महतारोपेनविज्ञानात्मवादोवृद्धैर्निराकृत, तदेवेहापिस्मारित **निराकृतश्चेति**

एवमुपर्युक्तप्रकारेणमृदादिकारणकघटाद्यर्थस्योत्पत्तौचिदपेक्षा निराकृत्यचितउत्पत्तौ, अर्थस्या-पेक्षा निराकर्तुमुपक्रमते **नित्यस्यात्मन** उत्पत्तयेऽर्थस्यापेक्षाविद्यतइत्यनुपपन्नमेवेति । नित्यचैत-न्यस्यार्थापेक्षितत्वमिति न युक्तम्, अनित्योहिपदार्थ स्वात्मलाभायकारणसत्ता समवायमपेक्षते, तत्रकारणापेक्षेतिवचनमुपपन्नं भवति परन्तु य पदार्थोनित्योयद्बलेन सर्वोपिपदार्थ. स्वसत्ता लभते तस्यार्थापेक्षास्वोत्पत्तये भवतीति कथन व्याहतमेव । नित्यश्चस्वोत्पत्तयेऽर्थापेक्षश्चेति । चैतन्य प्रकाशस्याप्यर्थापेक्षानिरस्यति **सिद्धिः प्रकाशश्चे**त्यादि । एतत्प्रकरणमुपालभपूर्वकनिराकरण-परकम् । एतावताऽनात्मवेदित्वमेव वक्तुरायाति, यत सर्वभासकस्यात्मन "अत्रायपुरुष स्वय ज्योतिर्भवतीत्यादिना स्वयप्रकाशत्वप्रतिपादनेन तस्यान्यापेक्षत्ववचननिरर्थकमेवेति । ननु भवतु प्रकाशे घटाद्यर्थानाचिदपेक्षा, तत्राह, **प्रकाशश्चनसंविदतिरेकीकश्चिदर्थधर्मः संभवतीत्यादि** संविदेवप्रकाशो नतु तदतिरिक्त कश्चिदर्थधर्मस्तश्चस्वस्मिन्नेव स्वस्यापेक्षणेआत्माश्रयदोष स्यात्, घटोत्पत्तौ तस्यैव घटस्यापेक्षावदिति । यदि संविदतिरिक्तश्चेत्प्रकाशस्तदापि दोषमाह **संभवन्न-प्यसौ न चिति** स्वरूपकारणक. सर्वदासर्वार्थप्रसङ्गादिति । चैतन्यमात्रापेक्षत्वेऽर्थप्रकाशस्यसर्व-दैव नित्यत्व प्रसज्येत । आगन्तुकधर्मवत् चिदपेक्षत्वे च तस्य ज्ञात्रात्मसिद्धिर्निर्गलैव, तत्राह **आगन्तुकातिशयस्याश्रयणे** इत्यादि आगन्तुकातियश्चस्वधर्मभूतज्ञानविकाशरूप एव । तद्वि-शिष्ट ज्ञानमेवबोध. । तदाश्रयश्चात्मेति न बोधमात्रमात्मेति युक्तम् ।

। इति धर्मभूतज्ञानस्य नित्यत्वसाधनप्रकरणे तत्त्वदीप. ।

ननु सत्येवं घटाद्यर्थव्यवस्थापकतया यदभ्युपगतं ज्ञानंतत्वागन्तुकं क्रियारूपं चेतितादृशज्ञानस्य कथं नित्यात्मस्वभावत्वं स्यादिति ? तथाहि अर्थान्तरग्रामादि गतत्वे सति स्वोत्पादकजनकद्रव्यान्तरं गन्तारं प्रतिकार्यत्वादिरूपेणासाधारणो ग्रामादिगन्तव्यदेशप्राप्तिकार्यप्रत्यसाधारणः, तत्कर्तृसमवेत [आगन्तुक] अनित्या सा साधारणगमनादिक्रियाजनिताभवतीतिदृश्यते । तादृगेवचार्थसिद्धिर्यपुरुषविशेषंप्रत्य साधारणीभवति तादृशपुरुषसमवेतक्रियाजन्याऽवश्यमेवेत्यनुमानेन ज्ञातुंशक्यमेवेति

स्यादेतत्, एव यथाऽत्मनो बोधस्वरूपत्व न भवति, आत्मनोद्रव्यत्वाद्बोधस्य च गुणत्वात्, द्रव्यगुणयोस्तादात्म्यासंभवात्। तथैवात्मनोबोधस्वभावकत्वमपि, उभयोर्विरुद्धधर्माक्रान्तत्वात् तम प्रकाशयोरिवबोधस्यानित्यत्व कारणजन्यत्वात् आत्मनश्चनित्यत्वात्। नहिविरुद्ध स्वभावयोर्बोधात्मनोरेकत्वसभवोऽग्निजलवत् । तथाऽर्थप्रकाशकादाचित्कत्वसरक्षणार्थबोध्यस्य कदाचित्कत्वमन्तव्यमेवेत्याशयेनाशङ्कते **ननुसत्यप्येवं घटाद्यर्थव्यवस्थापकतया** इत्यादि । ज्ञाने क्रियारूपत्व तथाऽगन्तुकत्वमर्थवदनित्यत्व च साधयितुंपूर्वपक्षवादी सामान्यतो मुखेन व्याप्तिमेव दर्शयति **तथाहि अर्थान्तरग्रामादिगतत्वे सतीत्यादि** तत्रार्थान्तर ग्रमादिकम्, गमनक्रियामाश्रित्येदमुक्तम्। ग्रामादिकर्मनिष्ठत्वेसति जनकद्रव्यान्तर प्रतिजनकद्रव्य गमनकर्त्तादेवदत्तादिरेव। गन्तव्यदेशप्राप्ति ग्रामपुरुषसयोग, अत्र खलु देवदत्त कर्त्तागमनक्रियायाग्रामादिश्चकर्मगमनगमनक्रिया फलग्रामप्राप्तिरर्थात् ग्रामपुरुषयो सयोग सचसयोगोद्विनिष्ठत्वात् कर्तृकर्मोभयगतोऽप्यय सयोगः पुरुषप्रवृत्तिकारणतया पुरुषासाधारण पुरुषनिष्ठाऽगन्तुकगमनक्रियाजन्य एव दृष्टोभवतीत्यर्थ । कर्तुरनधीनत्वादिना कर्त्रसाधारणार्थान्तरनिष्ठधर्मत्वयापकंकर्तृनिष्ठगतुकगमनक्रियाजन्यत्व ग्रामानु योगिकपुरुषप्रतियोगिकसयोगात्मकफल फलितभवतीति, एतावतोदाहरणप्रदर्शनं कृतम्। तदनन्तरमुपनयन निगमनचदर्शयति **तादृगेवचार्थसिद्धिर्यंपुरुषविशेषप्रत्यसाधारणी** इत्यादि। प्रतिज्ञालिङ्गञ्चार्थसिद्धिगतम्। घटाद्यर्थगत· प्रकाशस्तत्तत्पुरुषासाधारण तत्तत्पुरुषीयागन्तुकज्ञानात्मकक्रियाजनित एवात्रसाध्यत्वेनाभिमत. । अत्रसमुदाहृताव्याप्तिदूषयितुमाह **मैवम्** . [अनैकान्त्याद्व्यभिचारा, दिति] **अक्रियाजन्येत्यादि** । यस्य गृहे यस्य जन्म भवति तद्गृहेपितृपितामहादिपरपरया कुलागतक्षेत्रादिचरमचरमधनतस्य स्वत्व स्वाम्य कालपरपरया तथैव बालकस्यभवति, अर्थात् जन्मनो -ऽनन्तरमेव कुलपरपराप्राप्त यत् क्षेत्रादिक तस्यजन्मत एव अस्यबालकादेर्भवति, तत्रतदन्यस्य तदाऽभावात्, अन्यस्य तत्र विद्यमानत्वेपिदायतो यत् क्षेत्रादिकं यस्य, तत्रतदसाधारणेऽर्थान्तर क्षेत्रादिस्वत्वे, तन्निष्ठाक्रियादिजन्यत्वरूपसाध्यस्याभावेन स्पष्ट एव व्यभिचारोजायते. हेतोर्वर्तमानत्वेपि तदीयक्रियाजन्यत्वरूपसाध्यस्याभावात् । एकत्रव्यभिचार प्रदर्श्यान्यत्रापिव्यभिचारं दर्शयति, **क्षेत्रिणः** इत्यादि, यत्रान्यस्यक्षेत्रस्वामिव्यतिरिक्तपुरुषान्तरस्यक्रियया, दैवतो

चेन्मैवम्, अक्रियाजन्येनस्वभावप्राप्तक्षेत्रस्वत्वेनकृषकंप्रत्यसाधारणेन क्षेत्रतज्जात धान्यादिस्वत्वेनव्यभिचारात्। न च तत्रव्यापाररहिततयाक्षेत्रिणःकृषकस्यजनकत्वमिति वाच्यम्,व्यपारकालादिनैवव्यभिचारात्। तद्भावभावित्वस्य च समानत्वात् [अविशेषात्] ननु क्षेत्रिणोजीवनमेवतत्रजनकव्यापारइतिचेत् ? तत्तुक्षेत्रगतव्रीह्यादिसस्यपालनादि साधारणमिति कथमसाधारणक्रियाजन्यत्वम् ? अपिचैवंसतितदेवबोद्धुर्जीवनमेवार्थ प्रकाशेपिजनकव्यापारोभवतुकिमक्लृप्तकल्पनया। सत्यापितस्मिन्नर्थोनप्रकाशत इति चेत्! किं क्षेत्रादिसत्वमपिजीवने सति जायते एव ? व्रीह्याद्यन्नसत्ताप्यपेक्षिताभवतीति

वा स्वक्षेत्रेसमागतानायवादिबीजाना कालेफलादिक्रमेणपक्काना स्वत्वे स्वक्रियासाधारणेस्वक्रिय क्रियाजन्यत्वनास्तीति तत्रापि व्यभिचारोभवत्येव। नच दैवाद्यागतबीजाज्जायमानव्रीह्याद्यन्नेनि र्व्यापारतयाक्षेत्रस्वामिनस्तत्रजनकत्वमेव नास्तीतिवाच्यम्, व्यापारकालादिना व्यभिचारात्। अर्थात् यथा दण्डजनितभ्रम्याद्यात्मकव्यापारेपुनर्व्यापारान्तर न विद्यते किन्तु कार्याव्यवहितपूर्वकाल वृत्तित्वरूपकारणत्वं व्यपारस्यभवति, नहि व्यापाररहितत्वेनकारणत्वभवति, यथावा कालस्य व्यापा- रान्तर न किञ्चिदपितथापिकालस्यसर्वंप्रतिकारणत्वभवत्येव, तथा प्रकृतेपिक्षेत्रिणो व्यापारान्तराभावे जनकत्वनापहतमतीति।

तद्भावभावित्वस्य च समानत्वादिति यथा व्यापाररहितस्यापि व्यापारादेरनन्यथासिद्धा- न्वयव्यतिरेकाभ्या कारणत्वमवधारितभवति, तथैवक्षेत्रिणोऽपिसत्वे एव क्षत्रिनिरूपितक्षेत्रादि स्वत्वसिद्ध्यतीति तत्र तत एवव्यापाररहितस्यापिक्षेत्रिणो जनकत्व निर्वहत्येवेति। ननु कथमुच्यते क्षेत्रिणोव्यपारराहित्यम्, यावताअन्नाभावेतदीयजीवननिर्वाहो नस्यादितिजीवनमेवतत्रव्यापारस्त- देवाह **क्षेत्रिणो जीवनमेव ततजनकव्यापारइति** चेदिति, जीवनस्यैव व्यापारतयास्वीकारादि- त्यर्थ। सस्यपालनादिनैवगतार्थतेत्याशयेनपरिहरति **तदित्यादि**। क्षेत्रस्वामिनाहि- जीवन रक्षितसस्यान्नादे साधारणकारणकिन्तुक्षेत्रेस्वत्वेनासाधारण कारण भवति। एव चासाधारणागन्तुकानित्यक्रियादिजन्यत्वानुमानेव्यभिचरितमेव भवतीति। अथ तदीयव्यापार- जनितत्वमेव साध्यते, नत्वसाधारणक्रियाजन्यत्वमनुमीयतेऽतोनास्ति व्यभिचारो दोष इति यदि ब्रूषे तर्हि अथान्तरदोषआपततीतितदेवदर्शयति **अपि चैवं सतीति** व्यापारजन्यत्वे- ऽनुमिते सति तदेव वोद्धुर्जीवनमेवात्रापिव्यापारा भवतु अयात् बोद्धुजीवनमेवात्रार्थे प्रकाशेपि जनकस्यव्यापारोभवतु परन्तु आगन्तुकाज्ञानस्य व्यापारत्वकल्पननिरर्थकमेव भवतीति। क्लृप्त परित्यज्याक्लृप्तकल्पनायागुरुतरत्वात्। ननु सत्यपिजीवनेनार्थ प्रकाशितो न भवतीतिचेत् ? तर्हि यथोक्तमिदस्वत्व सतिजीवनेभवत्येव किम् ? अथात् क्षेत्रस्वत्वेविद्यमानेपिजीवनाभावात्। न च जीवने व्रीहिप्रभृतीना सत्तावश्यकीति चेत्, तदिहापि चक्षुरादीन्द्रियप्रत्यासत्ति सयोगादि

चेत् ! तर्हीहापिचक्षुरादीन्द्रियसत्ता, अपेक्षते एवेतितुल्यमेव । तस्मात्यंप्रत्यसाधारणोय थोदितधर्मस्तदीयासाधारणधर्मनिमित्त एव भवतीति सचेष्यते एवात्मनः इचैतन्यं मवितुस्तेजस्वित्वमितिवत् ।

ननु कारणविशेषस्यान्वयव्यतिरेकानुविधायितया "अहंजानामि-अज्ञासिषम्" इत्यादि क्रमेणज्ञानस्यकालावच्छिन्नत्वप्रतीतेस्तस्यागन्तुकत्वमनित्यत्वमेव, यथागच्छामि-गमिष्यामीतिप्रतीत्याकालावच्छिन्नत्वप्रतीत्यागमनक्रियायाआगन्तुकत्ववदेवेति चेन्न सवितुःप्रकाशेनव्यभिचारात् । अत्राप्यमुंप्रदेशंसूर्यः प्रकाशयति प्रदेशान्तर च

विद्यते एवेति सर्वं तुल्यमेव । इहतु चक्षुरादीन्द्रियाणा घटादिरूपपदार्थस्य य सन्निकर्ष सयोग-सयुक्तसमवायादिलक्षण सम्बन्धस्तादृशसम्बन्धस्य सहकारेणनिर्नोद्धुजीवनादृष्टमेवार्थप्रकाशेहेतुर्भव विति, किमर्थमन्येऽक्लृप्तस्यज्ञानस्यकल्पनाव्यसनेनेति भाव । ननु जीवनस्योत्तरोत्तरकालसत्ता स्वरूपस्य न क्रियारूपत्वविद्यते इति न तदियव्यापारजन्यत्वमिहसाध्यतेऽपितुतद्साधारणधर्मजन्यत्व-मेवसाध्यते इत्युपपद्यतेएवसर्वमित्युपसहारव्याजेनाह **तस्मात् यं प्रत्यसारणो यथोदितधर्म** इत्यादि । य प्रतियोऽसाधारणो धर्म स तदीयासाधारणधर्ममूलएवभवतीति । ननु यदि एतादृशो नियमस्तदा एतावनाकोलाभोजात इत्याशङ्कायामाह, **सचेष्यते एवात्मनश्चैतन्यमिति** यथासूर्यस्यप्रकाश सूर्यस्यासाधारणोगुणइति । अर्थात्सिद्धान्तिनोऽनभिमतवस्तुसाधयितुप्रवृत्तस्य पूर्वपक्षिण अर्थान्तरदोषप्रदर्शनेन निग्रहोजात एतावानेवपरमोलाभ । अपिचकुलपरपराप्राप्तक्षेत्रा-दिस्वत्वव्यभिचारप्रदर्शनेनाप्यागन्तुकधर्मजन्यत्वस्य साधन न भवतीतिपूर्वोक्तमप्यत्रविज्ञेयमितिदिक् ।

अर्थस्य योयप्रकाश स सर्वदा न भवति किन्तु कदाचिदेव भवतीत्यतोज्ञानमप्यागन्तुक-मनित्यमेवेति यत्प्रसाधित तद्गतप्रकरणेन साक्षेपप्रदूषितम् । अत पर प्रकारान्तरेण ज्ञानस्या नित्यत्वनिराकर्तुमुपक्रमते **ननु कारण विशेषस्यान्वयव्यतिरेकेत्यादि** ययागमनादिककाला-वच्छिन्नत्वप्रतीत्या, गच्छति अगच्छदित्यादिक्रमेणविभिन्नकारणजन्यत्वेकालावच्छिन्नत्वात्, गमनादिषु आगन्तुकत्वं सिद्ध्यति । तथैव जानामि ज्ञातवान् विज्ञास्यामीत्यादिक्रमेण ज्ञानेपि कालावच्छि-न्नत्वप्रतीतिदर्शनेन ज्ञातस्याप्यागन्तुकत्वमनित्यमेवेति । ज्ञानमागन्तुकमेव, तत्रकालावच्छिन्नत्व प्रतीतिदर्शनात्, गमनपाचनादिक्रियावत् । तथा ज्ञानम्, इन्द्रियलिङ्गपदज्ञादिकारणजन्यम्, इन्द्रियाद्यन्वयव्यतिरेकानुविधायित्वात्, पाके काष्ठादिवत्, यथा पाकादिकार्यमिन्धनादिकारण समवधाने जायते, काष्ठादीनामसमधाने नजायते तथैवज्ञानस्यापीन्द्रियाद्यर्थादिकारणकलापेउत्पत्तिर्भ-वति तदभावे न भवतीतिज्ञानेपि तथैव ज्ञेयमित्येवक्रमेणार्थप्रकाशकादाचित्कत्वेन ज्ञानस्यापि कादा-चित्कत्वमनुमेयमितिपूर्वपक्षस्यमुकुलिताशय ।

तमिममाक्षेपसूर्यप्रकाशे व्यभिचारप्रदर्शनेन दूषयितुमाह **सवितुः प्रकाशेनव्यभिरादिति** ।

प्रकाशयिष्यतीतिप्रतीतेःकालावच्छिन्नत्वमिति । न च सूर्यप्रकाशस्यस्वाभाविक त्वेपि प्रकाश्यदेशसम्बन्धस्य कदाचित्कत्वेन तत्र कालावच्छिन्नत्वप्रतीतिर्भवति नतु तावतातत्प्रकाशस्य कादाचित्कत्वमिति वाच्यम्.तर्हिप्रकृतेपि, इन्द्रियादिसम्बन्धप्राप्त योग्यभावोऽनुभाव्यभेदः स्वाभाविकमात्मनश्चैतन्यगुणमवच्छिनत्ति,तदपेक्षयैवेन्द्रि यान्वयव्यतिरेकानुविधान भवति नतु स्वतस्तथा, एवमतीतानागतप्रयोगोव्यवहार श्चापिसमुपपद्यते नतु स्वरूपापेक्षया तथेति ।

सूर्योऽमुकप्रदेशप्रकाशयति प्रकाशितवान् प्रकाशयिष्यतिचेत्येवप्रकारेण सूर्यप्रकाशेपि कालावच्छिन्नस्य विद्यमानत्वेपि तत्र प्रकाशेकादाचित्कत्वनास्ति, नवाऽगन्तुकत्वरूपसाध्यविद्यते, इति साध्याभाववतिहेतोर्वृत्तित्वेन व्यभिचारोदुर्निवारएवेति प्रदर्शितवान् **अत्रापि अमुंप्रदेशंसूर्यः** इत्यादि । ननु सूर्यस्यप्रकाशो न कादाचित्कोपितु सूर्यस्यस्वाभाविकोऽर्थात् शाश्वतिक तत्तत् प्रकाशस्य पूर्वदक्षिणादिकस्यदेशस्तत्सम्बन्धस्यवर्तमानादिकालत्रयपरिच्छिन्नत्वेनेति कालत्रयपरि-च्छिन्नविशिष्टकालत्रयपरिच्छिन्नमतिर्जायते, नसामति. प्रकाशस्वरूपस्यकादाचित्कत्वसाधिका, इत्याशयेन शङ्कते **स्वाभाविकत्वेपि** सूर्यप्रकाशस्यप्रकाश्यदेशसम्बन्धकदाचित्कतया कालाव-च्छिन्नत्वप्रतीति स्यादिति । अत्र विशेषणाशे एव कालावच्छेदप्रतीत्याकादाचित्कत्व नतु विशे-ष्याशेतत्सम्बन्धात् । स्वाभाविकत्वंस्वारसिकत्वमित्यर्थ । अस्ति अत्रैको नियम "विशिष्टे विधी-यमानौविधिनिषेधौसतिविशेष्येवाधे विशेषणमुपसक्रामत" इति । यथा कश्चित्पुरुष ससारा-सारता स्वयमाकलय्यगुरूपदेशाद्वासञ्जातवैराग्य ऐहिकामुष्मिकविषयेभ्य, कमपि श्रोत्रिय ब्रह्म-निष्ठ गुरुमुपसृत्यब्राह्मणोभागवतीं दीक्षा प्राप्य परित्यक्तशिखोभवन् सन्यास गृह्णाति । तत्र लोक एवं वदति यदिदानीं शिखी विनष्ठ इति । तत्र तादृशपुरुषस्य वस्तुतो मरण न जातमपितु शिखा परित्यज्य परिव्राडभवत् । तत्र पुरुषस्य विनाशाभावेपि तदीयविशेषणीभूतशिखाया एव कर्त्तन जातम्, एवञ्च शिखाविनष्टेनष्ट इति कथनेन शिखामात्रागतमिति कृत्वानाशस्य सम्बन्ध शिखायासहैव नतु विशेष्यस्यपुरुषस्यनाशप्रतियोगित्वम् । एवञ्च शिखाविशिष्टेन नाशसम्बन्धो विशेषणे एव प्रतियोगितासम्बन्धेनान्वयो भवति । एव चानेनन्यायेन विशिष्टे-कालावच्छिन्नत्वप्रतीतिर्जायते, तत्र च विशेषणे, एव तत्प्रतीति पर्यवसिता भवति नतु विशेष्ये । अनित्यत्वानुमान च विशिष्टविषकमेव नतु विशेष्यस्वरूपमात्रविषयकम् । तथा च यद्रूपाव-च्छिन्नस्यकालावच्छिन्नत्वप्रतीतिस्तदशस्यार्थात् विशेषणांशस्यानित्यत्वमेव । इतिस्वरूपमात्रस्य कलावच्छिन्नत्वप्रतितेर्नव्यभिचार इतिभाव । कालावच्छिन्नत्वस्य प्रतीति पक्षेप्यप्रसिद्धैवेति कृत्वापरिहति **तर्हि प्रकृतेपी**त्यादि । तत्रयोग्यस्यभावोयोग्यत्वम् । अवच्छिनत्ति=अर्थात् काला-वच्छिन्नत्वयथाभवेत्तथास्वसम्बन्धेनचैतन्यविशिनष्टीति । हेतुविशेसानुविधानस्याप्यन्यथासिद्धत्वं दर्शयति **तदपेक्षयैव** अर्थात् घटाद्यर्थसम्बन्धापेक्षयैवेति । तथा च प्रथमानुमानम् प्रयोजकमेवेतिभाव. ।

अथकथमत्र निश्चीयते, यत् सूर्यादिप्रकाशवदत्रज्ञाने कालावच्छेदेनभेदऔपाधिको नतु गमनादिक्रियादिवत्स्वाभाविक इति चेत् ? ताद्रूप्येणैव प्रत्यक्षत्वात्। नहि कदाचिदप्ययमात्माऽचिद्रूपः पाषाणादिवत् । योहि यद्गुणवत्तयाप्रत्यक्षीभवति सोऽवश्यंतत्स्वभावको यथा वायुःस्पर्शगुणवत्तया प्रतीयमानःस्पर्शस्वभावक एव

ननु कालावच्छिन्नत्वादिकं क्वचिदौपाधिक भवति क्वचित्स्वाभाविक च भवतीति लोके दृष्टम्, यथा सूर्यमण्यादिप्रकाशेकालावच्छेद्यत्वमौपाधिकम्, गमनादिक्रियायान्तु, कालावच्छिन्नत्वभेदश्चस्वाभाविक एव तदत्रज्ञाने, कालावच्छेद्यत्वस्यैकान्त औपाधिकत्वमेवेति कुतो, निर्णीयते, नतु गमनादिवत्स्वाभाविकोभेद इत्याद्याशयेन पुन शङ्कते **अथ कथमत्र निश्चीयते** इत्यादि । ज्ञाने योयं भूतभविष्यादिभेदोज्ञान ज्ञान विद्यते ज्ञानमभवत्, ज्ञान भविष्यतीत्याकारको भेद स च विषयसम्बन्धप्रयुक्त औपाधिक एव भवति नतु गमनादौ प्रतिभासमानभेदवत् स्वाभाविक इति प्राटुराशय निर्णायककारणाभावात् कथनिश्चीयते यत् ज्ञानेयोय कालप्रयुक्तो भेद प्रतिभासते सविषयसम्बन्धप्रयुक्त औपाधिको नतु स्वाभाविक इति । अमुमाक्षेप परिहरति **ताद्रूप्येणैवप्रत्यक्षत्वादिति** । आत्मनोनित्यत्वसर्ववादिभि श्रुतिस्मृतीतिहासप्रत्यक्षादि सकलप्रमाणैर्निर्धारितमनुमत च, ज्ञानस्येत्थभूतात्मस्वभावकत्वान्नित्यत्वमेवेति सर्वसमतम् । एवञ्च जानाम्यज्ञासिषमित्यादिप्रतीत्यायज्ज्ञाने कालावच्छिन्नत्वप्रतीतिर्भवति, तदौपाधिकमेव नतु स्वाभाविकमितिनिश्चेतु शक्यते । ज्ञानाधिकरणतयैव साक्षात् क्रियमाणत्वादात्माज्ञानस्वभावक इतिज्ञानमात्म स्वाभाविकमितिभाव । साक्षात्कारोनामात्रवृत्तिविशेषरूप एव । सचात्मनोज्ञानवत्त्वेनैवेति। तेनात्मन स्वरूपत एव प्रकाशमानस्यस्वापकाले, ज्ञानवत्वेनप्रकाशाभावेपि न कापिक्षतिरिति । नचैवमपि "अहसुखी" "अहदु खी" "अहमिच्छामि द्वेष्मि" इत्यादिरूपेणात्मन साक्षात्कारेज्ञानवत्वेनात्मन प्रकाशभावादसिद्धिहेत्वाभासत्वं हेतोरितिवाच्यम्, तत्राप्यहमिति, अनुकूल प्रतिकूलपदार्थविषयकज्ञानवत्वस्यैवविषयीकरणात् । सुखादीनामपिज्ञानस्यावस्थाविशेषरूपत्वादिति । इच्छादीनाप्रत्यक्षसमये ज्ञानस्य स्वप्रकाशत्वादिच्छाद्यनुभववत्वेनात्मनोभानसभवात्, ज्ञानवत्त्वेनैवात्मन प्रत्यक्षसिद्धभवितीतिज्ञेयम् ।

यद्यपि ज्ञानमात्मस्वभावकमिन्यत्र श्रुतिरेवभगवतीप्रमाणभवति, तथापिप्रकरणस्यास्ययुक्तिप्रधानत्वात् प्राधान्यम् युक्तेरेवात्रप्रदर्शनकृतमितिभाव । "अत्रायपुरुष स्वयं ज्योतिर्भवति" "तस्यभासा सर्वमिदविभाति" "सत्य ज्ञानमनन्तब्रह्म" इत्यादिशास्त्रमात्मनो ज्ञानरूपत्वेस्वयमेवाग्रे प्रदर्शयिष्यतीतिनात्रशास्त्रप्रदर्शनकृतमिति । आत्मनोऽचिद्रूपत्वनिराकृत्यात्मनो ज्ञानरूपत्वमर्थात् स्वाभाविकज्ञानात्मकगुणवत्त्वमुदाहरणद्वारा दर्शयति **नहि कदाचिदप्ययमात्मा**पाषाणखण्डवत्, **दृष्ट** केनचिदपि । यस्तु यद्गुणवत्वेन साक्षात् क्रियमाणो भवति, सतत्स्वभाववत्त-

भवति नत्वन्यादृशगुणकः । योयत्स्वभावो न भवति सतदभावकालेपिस्वरूपत एव प्रतीयते,यथागमनादिरहिततया प्रतीयमानो देवदत्तःस्वरूपत एव समीक्ष्यते ।

शरीरवदपि न असिद्धत्वात् । अथयथाऽत्मनोऽस्वभावभूतेनापि कलेवरेणसहकृत एव चेतनःआत्माप्रकाशते, तथाऽतत्स्वभावेनापिज्ञानेनप्रकाशपदवी प्राप्स्यते इतिकोदोष इतिचेत् तन्नैवमसिद्धत्वात् । नहि करणकलेवरवत्तयैवात्मा चकास्ति, योगिनामुपरत वहिरिन्द्रियाणां प्रणिहितमनसां शरीरादिप्रतिसधानमन्तरेणापि. अहमित्याकारतया प्रतिभासनात् । जानामीति प्रत्ययस्तु शरीरबाह्यत्वादिप्रतिभासरहिततया शरीराद्य-
यैव साक्षात्कृतोभवति, यथास्पर्शात्मकविशेषगुणाधिकरणप्रत्यक्षीक्रियमाण प्राणपानादिविशे-षगुणस्वभावक एव । योयत्स्वभावो न भवति स तदभावसमयेपि स्वस्वरूपत प्रत्यक्षोभवत्येव । यथास्थितिसमये गमनाभाववत्तयोपलभ्यमानोपि स्वस्वरूपेणोपलभ्यमानो भवन् न वायुवत् चलन स्वभावक इति ।

ननु यत्-यद्वत्तयोपलभ्यते तत् तत्स्वभावकमितियोय नियम स्वीक्रियते न तथा नियम शरीरवत्तयोपलभ्यमानस्यापि चेतनस्यशरीरस्वभावकत्वस्यादर्शनादत पूर्वोक्तो न नियमइत्याशयेन पुन शङ्कते **शरीरवदिति** यदा खलु देवदत्तादिरुपलभ्यतेतदाशरीरादिमानेवोपलभ्यते इति । नैतत्सारम् **असिद्धत्वादिति** यदि शरीररूपत्वमात्मनोमन्येततदा, शरीरस्यानित्यत्वेनविनाशात् बन्धमोक्षव्यवस्था न स्यात् । तथा बन्धमोक्षयोर्वैयधिकरण्यमप्यापतेत् । अत शरीररूपत्वाभावात् शरीरस्वभावकथनमात्मनोऽसिद्धमेवेति भाव । ननु यथा, देहोनात्मन स्वभावभूतस्तथापि यथाऽनात्मन स्वभावभूतेनापिशरीरेणसहकृत एव प्रकाशते, अह मनुष्योऽहदेवदत्तादिस्तथैवात्म-नोऽस्वभावभूतेनापिसहकृतस्यात्मन प्रकाशोजायतामिति शङ्काग्रन्थस्य विवरण**मथयथे**त्यादि । परिहति **तन्नैवमसिद्धत्वात्** शरीरसहकृतात्मन एवभान जायते, एवकथन न युक्तम् , कुत ? असिद्धत्वात् । असिद्धत्वमेवोपपादयति **नहिकरणकलेवरवत्तयैव** इत्यादि, अर्थात् यदाऽत्मनोभान प्रकाशोजायतेतदातस्मिन् काले आत्माशरीरादिविशिष्टतयैव प्रकाशते इति नियम । तथा दर्शना-देव, एव निश्चीयते इति न वक्तव्यम् । कुत ? अर्थात् शरीरवत्तयैवात्मन उपलभोऽसिद्ध । कुत एतत् तत्राह **योगिनामुपरतवहिरिन्द्रियाणामित्यादि** योगकालेयोगिना निवृत्तवहि-रिन्द्रियव्यापाराणांयोगजधर्मसहकृतचित्तानां शरीराभानेपि आत्मनोभानदर्शनात् । यथोक्तम् "सोऽपश्यत् प्रणिधानेन सन्तते स्तभकारणम्" इतितुयुञ्जानयोगिनांशरीररहितात्मनोभान भवति । युक्त योगिनांतु सर्वदैवातीन्द्रियसेन्द्रियकसर्वपदार्थानाज्ञान जायते । तत्रसर्वपदार्थान्तर्गतात्मनोपिभान जायते एवेति भाव । योगिप्रत्यक्षे आत्मचिन्तने च शरीरादिकविनापि, आत्मनोभानजायते इति प्रतिपाद्य लौकिकविषयतयासम्बन्धेन प्रत्यक्षेपिशरीरप्रतिभास विनैवात्मन प्रत्यक्ष जायते एवेतिदर्शयि-

तिरिक्तपदार्थान्तरविषयक एवेति पूर्वमेवनिवेदितत्वात् । शुभाशुभकर्मानुसारेण देवदेवदानवमनुजादिजातीयतयाभिद्यमानपरस्पर भिद्यमानेष्वपिशरीरेषु मनोवत्

तुमाह **जानामीति प्रत्ययस्तु** इत्यादि, अह सुखी अहजानामीत्यादिप्रतिते शरीरविरहितस्यान्तरपदार्थग्राहकत्वमित्येव शरीरविरहितस्यात्मन स्फुटतयोपलभात् । शरीरात्मस्वभावत्वाभाव द्रढयितुमाह **शुभाशुभकर्मानुसारेण** इत्यादि, अयभाव ससारसागरे पोप्लुयमानो जीवस्तत्तत् शुभवाऽशुभकर्मप्राप्यकदाचिद्देवो भवति कदाचिन्मानवोवा तदन्योवा भवति । तत्र यदि जीवस्यशरीर स्वभावत्वमन्येत तदा, एकदागृहीतगजदेह कदापिशरीरान्तर न गृह्णीयात्, ज्ञानवत्, अर्थात् ययाज्ञानस्वभावको जीव कुत्रापि ज्ञानस्वभावतांनजहाति तथैव गजाद्यन्यतमदेह न परित्यजेत्, किन्तु प्रतिभवमुपात्तदेह जहाति कर्मवलेन देहान्तरमुपादत्ते । तत्र देहस्य सर्वत्रभिन्नस्य न कथमपि जीवस्वभाव सभवति । यथाजीवोयत्र कुत्रापिगच्छति तत्रतत्र सर्वथैवमनोनजहाति, ननथानियमो देहस्य, किन्तु शरीरतुप्रतिभवमपरापरमेव भवति, तस्मान्नात्मन स्वभावभूतशरीरमिति। तस्माद्येषु व्यावर्तमानेष्वपि यदनुवर्तते तत्तेभ्यो विभिन्नमेव भवति नतु स्वभावक तद्भवति । यथा कुसुमेभ्य सूत्रम्, विलक्षणसयोगविशिष्टकुसुमनिकरस्यैव मालेतिनामभवति, तत्र पुष्पाण्यननुगतानिभवन्ति सूत्रन्त्वेकमेवानुवर्तमान भवति, एवञ्चकुसुमेषु परस्पर व्यावर्तमानेष्वपि सूत्रमालात्व प्रयोजक न व्यावर्ततेऽपितु, अनुवर्तते इति कुसुमेभ्य सूत्रस्य भेदो भवति । तथैव प्रकृते शरीरस्य परस्पर देवादिभेदेन, एकस्मिन्नपिभवे बाल्यौवनवृद्धादिभावेन व्यावर्तमानस्यापि सर्वत्राह बुद्धि सूत्रस्थानियाऽनुवर्तते एव नतु कदाचिदपिव्यभिचरति तस्मादात्मभिन्नान्येव शरीराणि, भिन्नत्वादेव च नात्मस्वभावकानीमानिशरीराणि ।

अपिचयोगव्याघ्र प्रारब्धकर्मफलभोगायैकस्मिन्नन्तिमभवेयोगवलादनेक भोगायतन प्राप्य स्वल्पकालेनैवसकलप्रारब्धकर्मफलमनेकविधभुनक्ति, सच तदैवानेक शरीर पश्यन्नपि, भोक्तारमात्मानमेकमेवाहमिति रूपेणपश्यति । तत्रयदिशरीरात्मनो स्वभावकत्वभवेत्तदानैव सभवति तस्मादात्मा न शरीरस्वभावकोऽपितुभिन्न एवेति तस्मादेव मनुष्यादिभोगायतनवत्तयाऽत्मन उपलभोऽसिद्ध एवेत्याशय । मनोवदिति दृष्टान्तो न साधर्म्यदृष्टान्तोऽपितु वैधर्म्यदृष्टान्त एव, यथात्मानं मनोऽनुवर्तते न तथा शरीराण्यनुवर्तते आत्मानमित्यर्थ । मोक्षावस्थायामपिमनोऽनुवर्तत एवात्मानमितिमतेनेद कथनम् । एतदुक्त भवति, कश्चिद् दार्शनिको मोक्षकालेऽशेषात्मविशेषगुणाना बुद्ध्यादीनाविनाशो भवति, तादृशनवगुणविनाशावस्था एव मोक्ष इति सञ्ज्ञा भवति, यद्यपि मनोनित्यमिति मनस स्वरूपतो विनाशो न भवति परन्तु आत्ममनसोर्नित्यत्वेपि तयो सम्बन्धस्यैवविनाशो भवतीत्यतो मोक्षकालेनात्मानमनुवर्तते मन इत्येकमतम् । अपरेतु, मोक्षकालेपिमनसोऽनुवर्तमानभवत्येवेति मन्यन्ते, कथमन्यथा षाट्कौशिकशरीरेणसंसारकालेभोगमनुभूयसाकेतप्राप्तस्यजीवात्म

स्वभावानुबन्धित्वेनाश्रयितुमशक्यत्वात् । इन्द्रियप्राणमनोबुद्धिसमुदायात्मकलिङ्गशरीरस्यानुवर्तनेपि तादृशसूक्ष्मशरीरस्य प्रत्यक्षाऽयोग्यतया न भवति व्यभिचारदोषः ।

। इतिज्ञानस्यात्मस्वभावत्वप्रतिष्ठापनम् ।

नोभगवत्स्वरूप दृष्ट्वा विलक्षणसुखानुभव कुर्यात्तदामनसोऽननुवर्तने । मुक्तस्यापिसुखाद्यनुभवो भवति "स यदापितृलोककामो भवति तदा पितर समुत्तिष्ठन्तीति" श्रुतिरेव प्रमाणम् । कथवा विलक्षणसुखपरित्यज्यपाषाणखण्डकल्पमात्मान समीहेत । विचारोऽत्रत्यो जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यप्रसादितसभास्करप्रस्थानत्रयतन्त्रेऽन्वेषणीयोविशेषजिघृक्षुभिर्मदीयमुक्तिर्मीमांसायावेतिशम् । ननु मोक्षकालेमातापितृजनितषाट्कौशिकस्थूलशरीरस्यागमापायिनस्तत्कालेऽनित्यत्वेननिवृत्तिर्भवतीतिमन्ये , परन्तु सप्तदशलिङ्गात्मकसूक्ष्मशरीरतु आकल्पमवतिष्ठते, इतिसूक्ष्मशरीरसर्वदाऽनुवर्तते एव । एतादृशविलक्षणस्वभावस्यापि, आत्मस्वभावत्वनास्तीति तत्रैव सूक्ष्मशरीरेव्यभिचारोविद्यते एवेति कस्यचिदाशङ्कामपनेतुमुपक्रमते, **लिङ्गशरीरस्ये**त्यादि पुनरनुवृत्तावपि, तस्य प्रत्यक्षविषयत्वासंभवान्नतत्रव्यभिचारत्वमिति । लिङ्गशरीरस्यमोक्षकालेऽनुवर्तन तथा प्रलयकालेपितदनुवर्तन न भवतीतिव्यञ्जनावृत्त्याऽभिव्यञ्जित भवति । तथा लिङ्गशरीरमतीन्द्रियत्वेन तत्रप्रत्यक्षत्वहेतोर्वृत्तित्वाभावेन तत्रव्यभिचारसभावनैवनोदेति । अत्रायमाशयो ज्ञातव्य , आत्मनोधर्मभूतयज्ज्ञानस्वरूपतस्तुतावन्नित्यमेव नानित्यम्, किन्तु सकोचविकाशशालिनोज्ञानस्यचक्षुरादीन्द्रियादिद्वारेणप्रसरणादर्थप्रकाशकत्व भवतीति, अर्थप्रकाशकत्वविशिष्टस्यतुपुनरनित्यत्वमिष्टमेव । तस्मात् विशिष्टरूपेणज्ञानस्यानित्यत्वम्, स्वरूपतस्तु धर्मभूतज्ञानस्यनित्यत्वम् तदाहु सिद्धान्तविजयिनोजगद्गुरव श्रीश्रियानन्दाचार्यचरणा श्रौतप्रमेयचन्द्रिकायाम्——

"अर्थप्रकाशक ज्ञान विभुद्रव्यगुणात्मकम् । नित्यजीवेशयोर्धर्मोभिन्न तत् प्रतिचेतनम् ।
अनुकूलतयावेद्यं मत तस्मात् सुखात्मकम् । तद् न विज्ञातुर्विज्ञातेर्विपरिलोपोविद्यते' ।
इति श्रुतिवलान्नित्य मन्यतेहिविचक्षणै । 'तथा हेयगुणाध्वसादवबोधादयोगुणा' ।
प्रकाश्यन्ते न जयन्ते नित्या एवात्मनोहि ते" । इति । (३।३–६)

तथैव जगद्गुरव श्रीपूर्णानन्दाचार्या सिद्धान्तसार्वभौमा श्रीबोधायनमतादर्शे——
सुखरूप च नित्य च कालभिन्नप्राक् तथा । नित्यात्मनोगुणोज्ञान स्वरूपस्य निरूपक ।।" इति (८५२) तथा च वेदान्तचिन्तामणौ–

"नित्या तथा सविषया जडतोविहीना विभ्वी मतिर्मदयाप्रभृतिस्वरूपा ।
प्रामाण्यमत्र सुमत स्वत एव चास्या याथार्थ्यक विषयसत्यतया तथा च ।।६।।"
इतिजगद्गुरुश्रीमङ्गलार्यमुनीन्द्रा । उक्तञ्च तथैवानन्ततत्वपीयूषे——
"विद्वद्भिः सम्मत चात्र ज्ञानमर्थप्रकाशकम् । धर्मधर्मिस्वरूप च ज्ञानहि द्विविधमतम् ।।४०।।

ननु ज्ञानस्य बोधस्वभावत्वेज्ञातुः स्वापेमूर्छादावपिप्रकाशप्रसङ्ग इतिचेन्न, विकल्पासहत्वात् । तथाहि अत्रहि प्रकाश इतिपदेन सर्वपदार्थसाधारणं बोधजनितं प्राकटयादिपदपर्यायंकमपि धर्मंलक्षीकृत्यायंप्रसङ्गः ? अथबोधमेवाभिप्रेत्यप्रसङ्गः ? तदविप्रकर्षं या प्रथमपक्षेतदभावादेवनतत्प्रसङ्गः । अभावश्चप्रकटित एव संवित्स्वतः सिद्धिप्रस्तावप्रकरणे । भावेपि, अन्धकारप्रतिवन्धादप्यनुदयसंभवात् । एतदतिरिक्तपक्षद्वयेमदभिमतमेव प्रतिपादितमिति न कोपि दोषः । बोधस्वाभाव्येतु पुरुषस्य स्वापमूर्छादौ तथा भावोऽभिमत एवेति तदापादनं न दोषाय इष्टत्वात् ।

यदि स्वापमूर्छादावपि स्वकीयानुभवस्य सत्वंस्वीक्रियते तदाजागरणात् स्वापस्यतुल्यत्वं प्रसज्येत, जागरणवत् स्वापेपि व्यवहारस्येति चेन्न, व्यवहाराविषयत्वात् स्वापस्य । तदानीं कः खलु आत्मनिव्यवहारो हानोपादानोपेक्षाया अशक्यत्वात् ।

ज्ञानधर्मिस्वरूपहि जीवस्तथाऽखिलेश्वर । ज्ञानधर्मस्वरूपहि नित्य प्रज्ञाभिवविभु ॥४१॥

इति जगद्गुरुश्रीनरहर्यानन्दाचार्यै । इत्यादिकनिखिलपूर्वाचार्यदिव्यप्रबन्धमाकलय्यास्मिन् प्रकरणे श्रीयोगीन्द्रप्रवरेण श्रीरामानन्दसम्प्रदायाचार्यत्वपदमलङ्कुर्वता चत्वारिंशत्तमाचार्यवरेणजगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यरामप्रपन्नाचार्यमहाभागेनव्यवस्थापितमिदमितिदिक् ।

। इति ज्ञानस्यात्मस्वभावत्वप्रतिष्ठापनप्रकरणेतत्त्वदीप ।

ज्ञानस्य नित्यत्वस्वीकारेऽनेकधाऽक्षेपमुद्भाव्यतन्निरासायोपक्रमते **ननुज्ञानस्यबोधस्वभावत्वे** इत्यादि । ज्ञानस्वभावत्वेपुरुषस्य स्वापकाले मूर्छाकाले च स्वरूपप्रकाशो भवेदिति प्रथम आक्षेप । अमुमाक्षेय प्रकाशपदार्थविकल्पेन परिहर्तुमाह **विकल्पासहत्वादित्यादि** ज्ञानव्यतिरिक्तस्य ज्ञानजनितस्य विद्यमानत्वेपि आत्मनिबोधेन, तस्य प्रकाशयानुत्पादन स्वापमूर्छादौ तमोगुणप्रतिबन्धादेवभवति, यथा गाढान्धकारप्रतिबन्धात्, चाक्षुपज्ञान न जायते तथैवात्रापि तमोगुणात्मकप्रतिवन्धादेव प्रकाशोत्पादन स्वापे न भवतीतिभाव । तथाभावोबोधवत्त्वमिति यावत् ।

यथा जागरणकालेबोधसत्त्वे आदानादिव्यवहारोभवति, तथैव स्वापादौज्ञानसद्भावे तत्रोपि, आत्मनोव्यवहारप्रसङ्ग इति द्वितीयाक्षेप । एन द्वितीयमाक्षेपमुपपादयितुमुपक्रमते **यदिस्वाप मूर्छादावपीत्यादि** यथा जागरणदशाया स्वानुभवस्य सद्भावे आदानहानगमनागमनादिसर्वोपि व्यवहारोऽविकल सपादितोभवति, तथैव स्वापेज्ञानस्वीकारे तत्रापिव्यवहार आपद्यते इत्यर्थ । तमिममाक्षेप परिहर्तुमाह **चेन्नव्यवहाराविषयत्वात्** इति । किदृशो हि स्वापे आपाद्यते किं कायिकोवावाचिकोवा ? तत्र न प्रथमोव्यवहार शक्य आपादयितुम्, तत्राह **कः खलुआत्मनिव्यवहारः** इति । अत्र किशद्व आक्षेपार्थक । यथा प्रश्नाद्यर्थे किं शब्द प्रसिद्धस्तथैवाक्षेपार्थेपि । आक्षेपस्वरूपमेवोपपादयति **हाने**त्यादि । व्यवहारो हि कायिकवाचिकादिभेदेनानेकविध ।

व्यवहारः प्रसज्येत, किमत्र, निर्विकल्पकबालमूकप्रभृतिकज्ञानविषयौ व्यवह्रियमाणो लोके भवति, कारणपाटवादिसहकारिविरहाद् बालमूकादेर्व्यवहारो न भवतीति चेत्! तर्हि स्वपादौ तुल्यमेतत्।

स्मृतिप्रसङ्गोऽपि न तदामनसो वृत्तिराहित्यात्। यदि कथ्येत स्वापादिकाले आत्मनोऽनुभवस्वीकारे पदार्थान्तरविषयकानुभववदात्मनोपि "अहमन्वभूव" मित्याकारकानुभवः स्यात्, तदनन्रमात्मविषयकस्मरणंजागरेस्यादिति कथनं न युक्तम्, तदामनसोऽवृत्तित्वात्। नहि मूर्छावाप्रस्वापोवा वुद्धेवृत्तिविशेषो दर्शनस्पार्शनवत्, यतस्तादृशवृत्तिविशेषणस्मरणकारणीभूतसंस्कारस्योत्पादनं भवेत्, किन्तु तदा समुद्भूतेन तमोगुणेन विरमितव्यापारवता चक्षुरादिनाकरणेन, वृत्तिरहितस्वभाविक बोधस्वरूपेण केवलमात्मनोऽवस्थानमेवात्मनोभवतीति। न च बोधस्वभावत्वादेवा-

तत्रकायिको व्यवहार आदानहानोपेक्षा भेदात्त्रिविध। तत्र स्वापकालिकात्मनिनोपादानादिव्यवहार। आदाननामाप्राप्तस्यवस्तुतो ग्रहणात्मक। नचात्मोपादातु योग्य, आत्मस्वरूपस्य नियमत एव प्राप्तत्वात्, यदप्राप्तघटादितेपामुपादानायैव प्रयत्नोभवति, नतु नित्याप्तस्य प्राप्तु, नहि गगनादिकमादातु कश्चित्प्रयतते, कृतप्रयत्नोपि न प्राप्तुशक्नोति। तत्कुत ? नित्यप्राप्त्वात्। तथैवात्मापि नित्यप्राप्त इतितस्यकार्यकोपादान न सभवमि। नवाहातुमपि। युक्तो नित्यप्राप्तत्वादेव, यद प्राप्तसत् प्राप्त भवति, तस्यैवद्वेषादिकारणेन हान भवति, आत्मातुनित्यप्राप्तस्वरूपत्वान्नहातु योग्य। नवोपेक्षितुमपि युक्तोऽनुकूलवेदनीयतया नित्यप्राप्तत्वात्।

द्वितीयवाचिक व्यवहारमात्मनि निरसितुमाह **व्यवहारःप्रसज्येत** इति द्वितीयोवाचिक व्यवहार आपाद्यते इत्यर्थ। एतस्य प्रश्नस्यपरिहारमनुवदति **किमित्यादि** बालमूकादीनां यत् निर्विकल्पक ज्ञान तदीयविषयः पदार्थ किं वचसाव्यवह्रियमाणो भवतीति क्वचित् किं दृष्टचरम्, अर्थान्नैव दृश्यते इति। अर्थात्, यज्ज्ञान वाचकशब्दादिविशेषणादिक नोल्लिखति तादृश ज्ञानमेव निविकल्पकम्, बालस्यमूकादेश्च भवति, बालादीना तादृशज्ञानसत्वेपि न तस्यव्यवहार क्वापि भवति। तस्मादात्मनोन कायिकादानहानोपेक्षालक्षण कुत्रचिद्भिवति। नवा, बालमूकादीनां निर्विकल्पकज्ञानसद्भावेपि तादृशज्ञानविषयीभूतपदार्थस्यवचसा व्यवहारोभवति। तथा च ज्ञानस्य स्वविषयव्याहारव्याप्तिनास्तीति। ततश्च स्वापेज्ञानसत्वेपि जागरणवदेव व्यवहारापादन नैवयुक्तमसभवात्। नच निर्विकल्पकज्ञानवता बालादीनाकरणपटुत्वादिरूपसहकारिसनिधानाभावेन व्यवहारो न भवतीति वाच्यम्, स्वापेपितुल्यत्वात्। यथा करणपाटवादिसहकारिणामभावोबालादि ज्ञानेषु तथै स्वापादिषु समानमेव भवतीति, तत्रनैक पर्यनुयोज्य। तदुक्तम् "यश्चोभयो समोदोष. परिहारोपि तादृशः। नैक. पर्यनुयोक्तव्यस्तादृगर्थविचारणे" इति।

त्मनः संस्कारोत्पादकत्वम्, तथासति सततजायमानसंस्कारतयामोक्षाभावप्रसंगात्, अनुभवेतु स्वानुरूपसंस्कारोत्पादननिरोधेसदृशसम्बन्धिदर्शनादिसहकारिसमुद्बोधित स्वकीयकारणानुसारेण कालान्तरेस्मरणं प्रादुर्भवति । नचात्रात्मस्वरूपबोधस्यनिरोधोवाप्रादुर्भावोवासंभवति, नित्यात्मसत्ता प्रयुक्तत्वात् । तत्रकारणान्तराभावश्चानन्तरमेव प्रतिपादयिष्यते ।

यदि स्वापकालेमूर्छाया वा, आत्मनोऽनुभवो जायते, तदाऽनुभूतस्य तस्य, मूछाविरामेजागरणसमयेऽनुभूतस्यानुभवजनितस्मृतिकारणसस्कारवलादात्मन स्मरणमापद्येतेति तृतीयाक्षेप । तमेवाक्षेप प्रदर्शयति, **स्मृति-प्रसङ्गः** इति । एतस्यपरिहारो **वृत्तिराहित्यादिति** । शङ्काग्रन्थस्यविवरणम् **यदि कथ्येत स्वापादादिकाले**इत्यादि । परिहारकग्रन्थस्यविवरणम् **न युक्तमित्यादि** । **नहि मूर्छा वा प्रस्वापोवाबुद्धेर्वृत्तिविशेष** इत्यादि । तत्र बुद्धिवृत्तिविशेषोऽर्थात्, धर्मभूतज्ञानस्यावस्थाविशेष ।

स्वापमूर्छादिकालेयोयमात्मनोऽनुभव स तु आत्मस्वभावलक्षणक एव न तु धर्मभूतज्ञानस्यावस्था विशेषलक्षण इति । **ततस्तादृश** इत्यादि, नहि बोधमात्रस्य स्मृतिकारणसस्कारजनकत्वम्, अपितु ज्ञानस्य वृत्तयस्ता या वृत्तय एव स्मृतिवीज सस्कारमुत्पादयन्ति, अत सस्कारानुद्बोधे स्मरणादर्शनात् । स्वापादिकाले स्वाभाविकधर्मभूतज्ञानवत्वेनावस्थानमेवात्मनो न तु तदानीं ज्ञानस्यवृत्तय प्रमाणविपर्ययादिका भवन्तीतिभाव । **न च बोधस्वभावत्वात्** इत्यादि । बोधस्वभावत्वादित्यस्य नित्यस्वविषयकबोधस्वभावकत्वादित्यर्थ । धर्मभूत ज्ञान तावत्, नित्यमात्मविषयकमेव, यदातु इन्द्रियार्थ सयोगाद्यन्यतमसनिकर्षादिसहकारिसवलित भवति तदैव पुनर्विषयघटादिग्राहक भवति । ततश्च चिद्रूपत्वादेवास्यात्मन स्वविविषयकस्मृतिवीजसस्कारोत्पादकत्व कथन स्यादिति शङ्का ग्रन्थस्याशय । अस्यनित्यबोधस्यार्थात् नित्यबोधस्यात्मन सस्कारजनकत्व कथनस्यादित्याशङ्का परिहरति **तथा सति सततजायमाने**त्यादि अनवरतोपचीयमानसस्कारतया मोक्षाभावप्रसङ्ग एव भवेत् । अर्थात् एव सति बाह्याभ्यन्तरसामग्रीवलेन प्रतिक्षण स्मृतिजनक सस्कारोदयसभवेन सस्कारधाराया कुत्रापि विश्रामो न स्यात् । ततश्च क्लेशकर्मविपाकाशयानामात्यन्तिकोच्छेदलक्षणमोक्षस्य कस्यापिसभवो न स्यात् । तथा च मोक्षप्रतिपादिकागमाना वैयर्थ्यं तथा मोक्षाय प्रवर्तमानाना महाधियाञ्च प्रवृत्तिर्विफलैव भवेदिति भाव । नित्यबोधस्वरूपस्य यदि सस्कारजनकत्व तत्रदोष प्रदर्श्य तत्रफलाभावरूप निष्प्रयोजनत्वमपि दर्शयति, **अनुभवेतु** इत्यादि, स्वानुरूपसस्कारोत्पादन निरुद्धेदनुभवे, सादृश्यादिदर्शनसमुद्बोधितस्वकीयकारणसस्कारानुकूल्येन स्मरण जायते इतिक्रम । अत्रात्मस्वरूपबोधस्यनित्यत्वेन न कदाचिदपिनिरोध उत्पादोवा सभवति नित्यत्वादेव । अर्थादनुभवे विद्यमाने, सस्कारस्य कल्पन हि अनुभूतस्याननुभूयमानस्य

तदेवं सततमनुवर्तमाने एवानुभावे कथं स्मृतेरुदयःसंभवेत् । "य एवाहं पूर्व-दिने आसं स एवाहमद्यापिवर्त्ते" इत्याकारकस्मृतिमिलितज्ञानंतुकालावच्छिन्नस्वरूप विषयकं नतु स्वरूपमात्रविषयकम् । स्वापादिकाले जायमानःस्वानुभवो [मुकुलितः] ऽविशदो निर्विकल्पश्चाविस्पष्टसविकल्पकबोधेनस्मृतिकारणं संस्काराधान भवतीति प्रतिपत्त्यर्थमेव, यदातु नित्यानुभव स्वयमेव विद्यते, तदा तत्रसस्कारकल्पन सर्वथैवनि प्रयोजनक भवतीतिभाव । स्वानुरूपत्वमर्थादनुभवसमानविषयकत्वमेवेति । स्वकारणमर्थात् स्मृतिकारणस-स्काररूपमेवेति । ननु आत्मविषयकमपिस्मरणं दृश्यते, तत्राह **य एवाहं पूर्वदिने आसमि-त्यादि**, "स्मृतिसमिलितज्ञानम्" पूर्वकालावच्छेदाशेस्मरणरूप , वर्तमानकालावछिन्नत्वाशेऽनुभव रूप आत्मविषयक प्रत्ययोज्ञानम् । **कालावच्छिन्नेति**=यद्यनित्यतयाऽत्मस्वरूपमात्रस्यसर्वदैवप्रकाशो भवति, तथापि तत्तत्कालावच्छिन्नत्वाशस्यबुद्धिवृत्त्यैव ग्रहणात्, ततश्च तादृशबुद्धिवृत्तेरेवसस्कार-जनकत्वेन "य यवाहपूर्वदिनेऽभव स एवाहमिदानीमपी"त्याकारक प्रत्ययउपपद्यते एव न तत्र कोपि दोष इति । नासौ पूर्वोक्तप्रत्ययआत्मस्वरूपमात्रविषयक इति । तदेव नित्यवोधस्यस-स्कारोत्पादकत्वेवाधक प्रयोजनाभाव च प्रदर्श्य, स्वापादिकालिकनित्यवोधस्यसस्कारोत्पादकत्वमपि न सभवतीति प्रदर्शयितुमाह, **अविशद्** इत्यादि । स च बोधस्तमोगुणेनाभिभूतत्वान्न विशदोना-त्यर्थं प्रकाशक एव बाह्याभ्यन्तरविशेषणानवगाहित्वान्निर्विकल्पकश्च, ततो वालमूकादिज्ञानवन्नार्थ प्रकाशको भवतीति । यदायबोध केनापिप्रतिरुद्धो न भवति तदैवस्वकार्यकरो भवति, सति, अभिभावकेन तथा भवति । यथा सत्यपि चक्षुरादीनामर्थेन सहसन्निकर्षे गाढा-न्धकारावृत्त चक्षुरादिकरण न चाक्षुषज्ञानादिकर्मजनयति तमसावृतत्वात् । अपगते तमसि, आलोकसयोगादिसहकृतमेवसत् प्रतिबन्धकाभावे स्वकार्योत्पादने समर्थंभवति तथैवात्रापिति । अत्रायमाशय —यद्यपि जागरणकाले सुप्तोत्थितपुरुषस्य "सुखेन सुप्तोहम्" इत्याकारक स्मरण जायते इति सर्वलोकसिद्धम्, स्मरण च स्वकारणानुभवतज्जनितसस्कारोद्बोधमन्तरेण न सघ-वति, कारणमन्तरेण यदि स्यात् , तदा सर्वदैव स्यात्, कदाचिदपिनस्यात् , कार्यस्य नियामक कारणाभावेनाकस्मिकत्व न स्यादिति । ततश्च "सुखमहमस्वाप्समिति सुप्तोत्थितस्यैतादृशप्रतिस-न्धानवलात्स्वापकालिकात्मस्वरूपानुभवस्यापि सस्कारजनकत्वमादर्तव्यमेव, तथापियदुक्त पूर्वम् , यत् , आत्मस्वरूपानुभवस्य सस्कारजनकत्व नास्तीति तदेकदेशिमतमाश्रित्यैव प्रतिपादितम्, स्वमतत्वग्रे **अस्तुवा** इत्यादिसदर्भेण पक्षान्तर प्रदर्शयिष्यते । अनुभवस्यात्ममात्रविषयकस्य वर्त-मानता समये, आत्म स्वरूपमात्र विषयकस्मरणोदयाभावेपि, प्रतिसधानस्य ततोप्यधिकविषयक-स्य संस्कारवलादुदयेऽपिनक्षति । यथा "सोयदेवदत्त" इत्यादौ, अनुभव समये देवदत्त एवानुभूतो वर्तमानकालश्चाप्यनुभूत भूततातुनानुभूता तथापि स्मरणे भूतताया सोयमिति तदशस्यभूतताया

कुतः ? अनुभवकाले स्मरणस्य संभवः स्मरणकारणसंस्कारानुत्पादात् । लून पुनर्जात-केशादाविवाननुभवेपि तदभिमानः । अथवा शरीरतद्धारणप्रयत्नाननुसंधानवत् ।

नचाविकृतसांसिद्धिकबोधरूपेणात्मनः स्वापेऽवस्थानाभ्युपगमे स्वापमोक्षयोर्विशेषः कोपि न स्यात्. उभयत्रापि तेन रूपेणात्मनोऽवस्थानादिति वाच्यम् तयोर्विशेषस्य

अपि संस्कारवलात् , इन्द्रियसवद्धविशेषणतारूप संनिकर्षवलात्स्मरणभान भवति तथैवप्रकृतेपि सस्कार वलादभान स्यात् "अधिक प्रविष्ट न तद्वानिरिति न्ययात् । इदमीयविशेषविचार करिष्यते । ननु सर्वकाले आत्मस्वरूपानुभवोजायते इति कथन न युक्त प्रतिभाति, "यत विषयानुभवसमये एवसुखादिविशेषणपूर्वकाहमर्थस्यात्मन प्रकाशस्य सर्वानुभवसिद्धत्वात् , एकाकारेणानुभूयमाने विशेषाकारस्यस्फितौ सत्यामननुभवभ्रमोजायते, यथा लूनपुनर्जातकेशादौ, एकाकारेणानुभूयमानत्वमर्थात् केशत्वरूपसामान्यधर्मेण केशानामनुभूयमानत्वमस्ति, तत्रैव च विशेषाकारेण तत्तद्व्यक्तित्वेन तत्स्फुरण नजायते तत्रैव द्वितीयपुनर्जातकेशेषु, अननुभवाभिमानो भवति ।

अत्रार्थे स्वयमनुरूप दृष्टान्त दर्शयति **शरीरतद्धारणप्रयत्नाननुसंधान**वदिति । यथा जागरणावस्थायां सर्वदाऽनुभूयमानस्यकरपादादिसमुदायरूपदेहस्यागन्तुकविशेषस्फुरणसमये एव विशेषत प्रतिपत्त्याकालान्तरेऽननुभूयमानतावदेव, अथवाऽन्तरस्य जागरणदशाया शरीरधारक प्रयत्नस्य सर्वदाऽनुवर्तनस्यापि, बुद्धिपूर्वककरचरणाद्युत्क्षेपणकाले एव स्फूटरूपेणावभासात् , कालान्तरेऽननुभूयमानतेव, एव प्रकृतेपिवोद्धव्यम् । यद्यपि "यत्नो जीवनयोनिस्तु सर्वदाऽतीन्द्रियो भवेत् । शरीरे प्राणसञ्चारे कारण परिकीर्तितम्" इति शरीरविधारकप्रयत्नस्य जीवन योनिशब्दशब्दबोधस्यातीन्द्रियत्वन्यायमते स्वीक्रियते । तत्रापि शुभाशुभादृष्टवलादेव जीवनस्योपपत्तिसभवेनातीन्द्रिययत्नकल्पनगौरवपराहतमेव । जागरणकालेतु प्रयत्नेनापि शरीरादिधारणमिष्टत्वात् । स च प्रयत्न प्रत्यक्षविषय एवेति । निद्राकालेतु, अदृष्टवलादेव शरीरादिधारणमित्याशय आचार्यस्य लक्षितप्रायोभवति । परन्तु यावत्कालदृष्टकारणवलेन व्यवस्था भवति, तत्रादृष्टचरेणा दृष्टवलेन तत्समाधानमयोग्यम् । अन्यथाऽदृष्टसहकृतेनमनसारूपादिसर्वविषयकव्यवस्थोपपादनसभवेन चक्षुरादिवहिरिन्द्रियाणा कल्पनमपि गौरवाघ्रातमेव भवति, निद्रादिवत् जागरणेऽपि शरीरादिधारणकार्यस्योपपादयितु शक्यमित्यस्यापिवक्तुशक्यत्वादिति । नहि "अर्धजरतीय कुत्रापि शोभनमित्यधिकमन्यत्र प्रयत्नमीमासाया द्रष्टव्यम् । विस्तरभयादत्रैतत् सक्षिप्यते ।

ननु यदि स्वापकालेपि तदीयबोधस्यानुवर्तन स्वीक्रियते, तदा समाधिमोक्षयो स्वापकालेन सह को विशेष ? बोधवत्वस्य तदुभयत्रापि समानत्वात् । इत्याक्षेपान्तरमनूद्यपरिहर्तुमुपक्रमते **न चाविकृत** इत्यादि । उत्तरयति **तयोर्विशेषस्य विद्यमानत्वा**दिति । सत्यम् , स्वापेमोक्षे च

विद्यमानत्वात् । स्वापकाले अविद्यादिकक्लेशवासनानां तमसाऽभिभवस्य विद्यमानत्व रूपविशेषस्य सत्वात् । मोक्षकालेतु क्लेशानां समूलविनाशात् । असंप्रज्ञातसमाधौसं सारकालेपि विदुषः सर्ववृत्तेर्निरोधेन तत्कृतो विशेषस्य विद्यमानत्वात् ।

ननु निद्राया यदिवृत्तिराहित्यं तदा निद्रोत्थितस्यकथं "सुखमहमस्वाप्समिति" स्मरणम् , नहि अननुभूतपदार्थविषयक स्मरणमुत्थातुमुत्सहते । उद्भूतसत्वेनाभिभूत तमोगुणेसति "सुखमहमस्वाप्सम् , लघूनि अङ्गानि, प्रसन्नं मे मनः" इत्यादि ।
बोधवत्वम् , तथाहि स्वापकालिको बोध अविद्यास्मितादिपञ्चक्लेशसहकृतो भवति, तेन तत्र तमो गुणेनाभिभवात्, अत्यन्तसकुचितज्ञानत्व च स्वापकाले भवति, नहि स्वापकाले ज्ञानद्वाराऽऽत्मन प्रकाशोभवतीत्यय विशेष स्वापे । मोक्षसमये तु "अविद्याऽस्मितारागद्वेषाभिनिवेशा पञ्चक्लेशा." इति योगसूत्रप्रतिपादितपञ्चक्लेशाना समूलमुन्मूलन भवति, ततश्च क्लेशात्मकावरणनिवर्तने नावरणरहितनित्यसकोचरहितसर्वविषयकज्ञानवत्वचात्मनो भवतीत्येतावानेव विशेष उभयस्थले । अर्थात् संसारकालस्थितज्ञानमावरणप्रतिबद्धमत एव सकुचित भवति तमो गुणाभिभावात्, मोक्षकालेतु आवरणस्य सर्वथाऽपगमात् तत्कालिक गगनोपम सर्वविकाशित सर्वविषयकभवति तेनमुक्तजीवोपि सर्वज्ञ इति कथ्यते । एतावानेव स्वापमोक्षयोर्विशेषोयदेकत्रावरणसद्भावात् सकुचित भवत्यन्यत्रमोक्षेतु, अनावरणात् विकाशित सर्वप्रतिद्वन्दिरहित निरकुशविकाशोपेत सर्वविपयकभवतीति, स्पष्ट एव स्वापमोक्षयोर्भेद । तदाहुर्मोक्षजीवप्रस्तावेजगद्गुरु श्रीरामेश्वरानन्दाचार्यसारस्वतसार्वभौमा. श्रीराम-प्राप्तिपद्धतौ—

"श्रीमद्रामस्यसङ्कल्पाद्दिव्यदेहोभवत्यसौ । कालकाल्येतरेदिव्येदेशे प्राप्तो भवत्यथ ॥२१॥
सर्वान् कामानवाप्नोतिचायरामेणसहतत गुणानाविग्रहादेश्चस्वरूपरूपयोस्तथा ।
प्रत्यक्षाज्जायते प्रीतेः प्रकर्षोहितत परम् । अनेकविग्रहाणा च जायतेऽथपरिग्रह ॥
कामचारे च लोकानासमर्थोऽपिभवत्ययम् ॥ (४२–४४) इति । ससारकालेसर्वस्यापिमन क्लेश-युतमेव, तेन सर्वथा क्लेशमोक्षकालाद्विशेष प्रदर्शित । सम्प्रतिससारावस्थस्यापि अभ्यासवैराग्या-भ्यां निरुद्धमनस आत्मैवासम्प्रज्ञातसमधिस्थस्यमनोमोक्षार्जनेकारण भवतीत्येतावानेव विशेष इति दर्शयितुमाह **असंप्रज्ञातसमाधावित्यादि** । अवतरणेनैव कृतव्यख्यानमिदम् ।

। इति ज्ञाननित्यत्वेप्रसक्ताक्षेपाणापरिहरणप्रकरणे तत्त्वदीप ।

अथ स्वापसमयेपि, अनित्याया बुद्धिवृत्तिस्तादृशानित्यबुद्धिवृत्त्यैवात्मन· प्रकाश सिद्ध स्यादे-वेति स्वप्रकाशकत्वस्वीकारोनिरर्थक एवेति हृदि निधाय स्वापसमयेपि बुद्धिवृत्ते. स्वीकारआवश्यक एवेति शङ्कते **ननु निद्रायां यदि वृत्तिराहित्यंतदानिद्रोत्थितस्य** इत्यादि । निद्रया वृत्तिर्न भवति तदा सुप्तोत्थितस्य, सुखमहमस्वाप्समित्यादिस्मरणकथमुपपन्न स्यात् , अनुभूतविषयस्यैव

रजस्तमोगुणयोरुद्रेकेऽभिभूतसत्त्वे "दुःखमहमस्वाप्सम्, भ्रमति मनः" इत्यादिप्रत्ययो जायते । तमसा रजःसत्वयोरभिभवे नितान्तंतमस उद्भवे "गाढमूढोहमासम्, गुरुणि मे अङ्गानि, शरीरम् मनः स्थगितमिवेति, प्रत्ययो भवति एतेषांनिर्वाहःकथंस्यात्, निद्रायां-वृत्तिराहित्ये । सत्यमेवैतत्, परन्तुनैतेप्रत्ययाः संस्कारप्रभवाः किन्तु समुत्थानकालिक शरीरेन्द्रियादीनामवस्थाविशेषपर्यालोचनकारणका अनुमानिका एवेति । तथाहि यतो-मनोऽतीवप्रसन्नमिववर्तते तथा विशुद्धाहारपाचनात् लघूनिचाङ्गानि, अस्मादेवकारणा-त्सुखमहमस्वाप्सम् । तस्मान्निद्राया नवृत्त्यन्तरत्वम् । न वा "अभावप्रत्ययालंवनावृ-
स्मरणदर्शनात्, अनुभवाभावेतज्जनितसस्कारस्याप्यभावेन स्मरणोदयकदापि न स्यात्, सत्त्व-गुणसम्बन्धे, उद्भूततमोगुणजनितसस्कारेण, सुखमहमित्यादिसुखवानहमासमदीयमन प्रसन्नशरी-रचलघु इत्यादिस्मरणंभवति, रजोगुणस्याधिक्येदु खस्मरणम्, सत्त्वरजसोरभिभवे तमोगुणस्य च नितान्तमुद्भवेगाढमूटसुप्तोस्मीत्यादिस्मरणभवति । तदेतत्सर्वनिद्राया वृत्त्यभावेनोपपद्येन, तस्मान्निद्रा कालेपि बुद्धिवृत्तेरनित्याया स्वीकार आवश्यक एवेति । अत्रायप्रश्नग्रन्थस्यसुकलिताशय तथाहि स्वापोहि तमोगुणस्यानुभवकालविशेष तत्रलेशत सत्वगुणससर्गे तमोगुणाधिक्येसुखभवति । तथा सत्वस्य लघुत्वप्रकाशादिक च भवति, तथा लेशतो रज सम्बन्धे दु खचलनादिक च भवति । तथा सत्वरजसोरत्यन्ताभिभवेतमस आधिक्ये गाढमूढत्वादिकम् यत्रोक्तम् "सत्त्वलघुप्रकाशकमिष्टमुपष्टभकं चल च रज । गुरुवरणकमेव तम प्रदीपवच्चार्थतोवृत्तिरिति । (सा का) एवञ्चस्वापसमये उद्भूत-तमसोऽनुभवएवतादृशानुभवजनितसस्कारेण जागरणे "सुखमहमस्वाप्समित्यादि, स्मरणस्योपपादन स्यात् अन्यथा तदननुभवेतज्जनितसस्काराभावेकारणाभावेन प्रबोधे तद्विषयकस्मरण न स्यात्, तस्मा-न्निद्रायामपिबुद्धिवृत्तिर्भवत्येवेतिमन्तव्यम् ।

अमुमाक्षेपमर्धस्वीकारेण परिहरन्नाह **सत्यमेवेति** । स्वापकालस्यतमोविषयकवृत्तिरूपत्वे, स्मरणरूपत्वेवा स्वपादिकाले निरुक्तज्ञानस्यास्वीकार, एवेत्याशयेन दत्तोत्तरमेवेति । यदि न तमोवृत्तिरूपास्तदैनेषा किं रूपत्वमित्तन आह **आनुमानिकाएव** इति । सुप्तोत्थितस्य तत्समये क्रियमाणे विचारे इमे पूर्वोक्ता प्रत्यया अनुमानादिप्रभवाइति,एतेऽनुमित्यादिप्रमाणजातत्वादनुभवरूपा एवेति । अथात्, स्वापकालो हि वृत्तिसामान्याभावरूप एव न तु वृत्तिनिष्ठप्रतियोगिताकोवृत्तिविशे-षाभावात्मक । योग्यपदार्थविषयकस्मरणाभावात्मकलिङ्गेन च प्रकाशस्वभावात्मिकाया वृत्तेर भावस्य तत्कालिकस्यानुमानमेव । शरीरेन्द्रियादिगतलघुत्वादिलिङ्गेन च सुखदु खमूढत्वादीनामपि तत्रानुभवपूर्वपूर्वतरदिवससंपादितकार्यस्यदिनान्तरे प्रत्यभिज्ञानवलेन स्वापकालिकात्मसत्ताशेप्यनुमान रूपैवप्रदर्शितप्रतीतिरितिभाव. । **निद्रायानवृत्त्यन्तरत्वम्** तमोगुणविषयकबुद्धिवृत्तिरूपेत्व निद्रायाः नैवस्वीकर्त्तव्यं, स्वापानुमानेनैव प्रदर्शितवृत्तिनानिर्वाहादिति । नन्‌ु निद्राया वृत्तिरूपत्वं

त्तिर्निद्रेति योगसूत्रविरोधःशङ्कनीयः प्रकृतप्रकरणस्य वृत्तिनिरोधपरकत्वात्, नतुतस्य न स्वीक्रियते तदा "अभावप्रत्ययालवनावृत्तिर्निद्रेतिपतञ्जलिसूत्रकथ सामञ्जस्यमियादित्याश येन शङ्कते **नवेति** उत्तरयति **निरोधपरकत्वात्** तदीयप्रकरणस्येति। अर्थात् भावपदार्थमवलवते यावृत्ति सैवनिद्रेति। भावालवनवृत्तिसामान्याभावस्यैव निद्रात्वम्, ननु षट् पदार्थातिरिक्तवस्तु विषयकत्वनिद्राया इति। अस्याश्च निद्राया "योगश्चित्तवृत्तिनिरोध" इत्यनुसारेण वृत्यन्तरव-देव निरोधत्वसामान्यात् कथचिद्वृत्तित्वोपचारमात्रत्वमेवेति। कथमेवमित्याशयेनोपयुक्त दृष्टान्त दर्शयति **विपर्ययादिवदित्यादि**। अयमाशय विपर्ययोऽतद्रूपप्रतिष्ठ मिथ्याज्ञानम्, अर्थात्तद भावत्रति तत्प्रकारकमिति। परन्त्वेतादृशज्ञानमेवनास्ति, सर्वज्ञानानामर्थेन सह व्यभिचारादर्शनात्, सर्वज्ञानानायाथार्थत्वमेव, नतु भ्रमरूपत्व भ्रमस्यैवाभावात्। सर्वज्ञान यथार्थरूपमेवज्ञानत्वात्, घटवतिघटकभूतलमितिज्ञानवत्, यथा घटाधिकरणे घटवदितिज्ञान घटार्थिनोघटार्थप्रवृत्तस्य घटप्राप्तिदर्शनेन तस्ययाथार्थ्यमेव, तथैव ज्ञानमात्रस्यार्थाव्यभिचारादर्शनेन प्रमात्वमेवेति। अन्य-थाऽन्याकारस्य रजताकारज्ञानस्यालवनत्वेऽर्थात् शुक्त्यादिविषयकत्वे "इद रजतमित्यस्यशुक्ति विषयकत्वे, रजतानुभवस्य विरोध आपद्येत।

अर्थाद्यस्मिन् ज्ञानेयोभासते स एव तज्ज्ञानस्य विषयो भवति, ननु सत्तया विषयत्वमन्यथाघटादि ज्ञानकालेकलादेरपि विद्यमानत्वेन तेषामपि घटादिज्ञानविषयत्वापातात्। नवा यद्ज्ञानस्य यत् कारण तत्तद्विषयोनयनादृष्टादेरपि घटादिज्ञानविषयत्वापातात्। नच "शुक्तिरजतमिति रजतज्ञाने शुक्तिकाऽ-वभासते, तथाचर्च्यमानशुक्तिकावलवनत्वकल्पनाया रजतानुभवोऽवश्यमेव विरुद्ध्यति तदुक्तमभियुक्तै "अत्रब्रुमो य एवार्थोयस्यासविदि भासते। ज्ञेय स एवे" त्यादि प्रकरणेन विषयलक्षण कथयित्वा-पुनस्तत्रैवोक्तम् "अल्पस्य चान्यथाभानं प्रतीत्यैवपराहतम्।परस्मिन् भासमानेपि न परभासते यत" इति [अन्यस्य शुक्तिकादेरन्यथा रजतरूपेणभान प्रतीति पराहतम्, यत परकीयज्ञाने भासमानेपि यत पर न भासते इति] अपिचान्यज्ञाने तदन्यस्यभासमानत्वे ज्ञानाना स्वकीयविषयव्यभिचारे ज्ञाने लोकानामविश्वास स्यादित्यपिपरज्ञानविषयत्वे ज्ञानेऽविश्वास प्रसङ्ग स्यादित्यपिबाधकम्। तदु-क्तमभियुक्तै "यदि स्वार्थं परीत्यज्यकाचिद्बुद्धि प्रवर्तते। व्यभिचारवती स्वार्थेकथ विश्वास कारणम्" इति। अस्यार्थ सर्वेषां बुद्धिरेव विश्वासस्थानम् शतश कथनेपि, यावत्स्वबुद्धिर्न निर्णय करोति ताव न्नकोपि तमर्थंविश्वसति, इति सर्वविश्वासकारण ज्ञानमेव स्वकीयमर्थं व्यविचारेत्तदासर्वेषां ज्ञाने-ऽविश्वास एव स्यादिति। अपिचज्ञानस्यस्वार्थे व्यभिचारेऽपसिद्धान्तदोषोपिबाधकोभवति, तथाहि, अविद्यमानस्यापि संसर्गस्य भासमानत्वस्वीकारेऽसत्ख्यातिवादिनोबौद्धस्यापि प्राप्तावसरतया बौद्धमत स्वीकारादित्यपसिद्धान्तोवादिनाम्। अर्थात् असदेव रजतवद्धि प्रतियेत तदा विज्ञानस्य साकारतानि भवेत्। तदुक्तम् "अयथार्थत्वपक्षे च ज्ञान साकारतामियात्" इति। तदेवमनुभवविरोधानाशात्

सत् ख्यातिप्रसङ्गादिदोषसम्भवेन नज्ञानमन्यायकं भवतीतिभ्रमाभावएवेति। अपिचैव भ्रमज्ञानस्योत्पत्तौ कारणमपिनास्ति, यथा कारणाभावात् कूर्मरोमशशविषाणादीनामुत्पादो न भवति तथैव कारणाभावाद्भ्रमज्ञानमपिनैवोदेति। तदुक्तम् " अयथार्थस्यबोधस्य नोत्पत्तावस्ति कारणमिति।

नचान्वयव्यतिरेकाभ्या चक्षुरादेरेव भ्रमोजायते इति चक्षुरादीन्द्रियेणैव भ्रमोत्पत्तिरितिवाच्यम् "सम्बद्ध वर्तमान च गृह्यते चक्षुरादिनेति नियमेनेन्द्रियाणां संयुक्तपदार्थमात्रग्राहकत्वनियमात् देशान्तरस्थरजतेन सह चक्षुष सयोगाभावेन तेन तद्ग्रहणासभवात्। न च स्वरूपतश्चक्षुरादेर्देशान्तरस्थासयुक्तपदार्थग्रहणासभवेपि दोषदूषितेन्द्रियेणमिथ्याप्रत्ययजनकत्व कथ न स्यादितिवाच्यम्, दोषाणा स्वाभाविककार्योत्पादकशक्तिप्रतिबन्धमात्रे कारणत्वात्, यथा कृष्णामूषिकाघ्रातवीजे तथा दर्शनात्। अर्थात् दोषेण स्वाभाविकशक्तिरेव प्रतिबध्यते नत्वतिशयाधानकरणमपि दोषकार्यम् तथासति नष्टचक्षुष पुरुषस्य सर्वदर्शित्वमेवापद्येत, तस्मान्न दोषवशादिन्द्रियेण भ्रमोत्पाद सभवति। ननु दावाग्निदग्धवेत्रवीजस्य, यथा वा हरिद्राजलावसिक्तनदङ्गारपाचितहारीनमासस्य, तथादशरात्रिपर्यन्तकाशपात्रेऽवस्थापितधृतस्य स्वाभाविकशक्तिनिरोधतद्विपरीत रभाकाण्डजनकत्वतादृशघृतमासयो सद्य एव मरणजनकत्व दृष्टमेव तथैवप्रकृतेपि स्वाभाविककार्यप्रतिरोधकत्व विपरीतकार्योत्पादकत्व च किं नस्यादितिवाच्यम्, अभिप्रायानवबोधात्। दावाग्निदग्धवीजात् कदलीकाण्डोत्पाद इत्येव नात्रवक्तव्यम्, दग्धस्य वेत्रवीजस्यावेत्रवीजत्वेनात्रोदाहरणरूपेण तदुद्भावनस्यानुचितत्वात्। तस्माद् दोषाणां विपरीतकार्यकारित्व प्रतिकारणत्वनैवेति। प्रत्युतनष्टचक्षुष पुरुषस्य सर्वदर्शित्वमापद्येत। कारणवशात् विनष्टचक्षुषो गरुडवद्दीर्घदर्शित्ववत्वमपिस्यादिति न भ्रमज्ञानोत्पत्तौ किमपिकारण नास्तीति कारणाभावान्न भ्रमज्ञानस्य सभव इति। ननु इद रजतमित्येव रूपेणपुरोवर्तिरजतयो ससृष्टव्यवहारदर्शनेन सत्यस्थलवत् ससर्गज्ञानपूर्वकत्व मन्तव्यमेवेति चेत्सत्यम्, सर्वत्रप्रतीयमानयो ससर्गिणो ससर्गव्यवहारस्यासंसर्गाग्रहमूलकत्वात्, ससर्गग्रहस्यापि कारणत्वकल्पने गौरवप्रसंगात्। तस्मादससर्गकारणकत्वमेव नतु स्वातन्त्र्येण ससर्गज्ञानस्यापि कारणत्वमिति। नच यदि भ्रमज्ञाननस्वीक्रियेत तदा "नेद रजतमिति निश्चयेन कस्यबाध स्यात्, भवन्मते वाध्यस्य भ्रमस्यैवाभावादिति वाच्यम्, नह्यत्र भ्रमस्यबाधता भवति, किन्तु असंसर्गाग्रहप्रसञ्जितससर्गव्यवहारस्यैव वाधनात्। एतावतैव वाधकस्य बाधकताया उपपत्ते। इद रजतमिति ज्ञानतु ससर्गग्रहपूर्वक नैकमेवेद ज्ञानमपितु ज्ञानद्वयमत्र, तत्रेदमिति ज्ञान पुरोवर्तिना सहचक्षु सयोगादिजनितमनुभवात्मकम्, अस्येदमात्मकज्ञानस्य स्वप्रकाशरूपस्यापि स्वस्य स्वविषयस्य च, इतरस्मात् विवेचयितुमशक्यत्वेन, तस्य दोषदूषितेन्द्रियजन्यत्वेनाकलितशुक्तिकत्वादिविशेषसामान्यपुरोवर्तित्वादिमात्र ग्रहणरूपत्वम्। रजतमित्यस्य चासन्निहितविशेषरजतत्वादिविषयस्य, सम्प्रयोगलिङ्गादिभ्योऽजायमानतया परिशेषात् रजतसस्कारमात्रजन्यतया स्मरण

प्रकरणस्य वृत्तिस्वरूपणे तात्पर्यविपर्ययादिवत् । नहि, अतद्रूपप्रतिष्ठंमिथ्याज्ञानंनाम किञ्चिदस्ति, सर्वज्ञानानामर्थाव्यभिचारतया सत्यताया एव प्रतिष्ठापनात् । सचाधिकरणसिद्धान्तसिद्धः एतत्तत्वमन्यत्रप्रदर्शयिष्यते । मोक्षभागियन्मनस्तत्प्रतिद्वन्दितया निद्रायानिरोध्यत्वेन शास्त्रे उपदेशः ।

। इति निद्रायावृत्तिरूपत्वनिषेधप्रकरणम् ।

भवतु वा पूर्वोक्तप्रमाणविपर्ययवृत्त्यभावकारणभूतसञ्चिततमोगुणविषयक वृत्तिरेव निद्रा, भवतु च सुप्तोत्थितपुरुषस्यज्ञानं स्मरणात्मकमेव, तथापि सततानुवृत्तज्ञानतयाऽत्मनोबोधस्वरूपत्वं सिद्धमेव भवति ।

रूपत्वमेव । यद्यपि "सामेमातादि" स्मरणस्थले तत्ताशगोचरत्व स्मृतेगृहीतग्राहिस्वरूपत्वात्, प्रकृतेतु तदशरहितमिद ज्ञानतत्ताऽशस्याग्रहणात् कथ स्मृत्यात्मकम् , तथापि तत्तामात्राशस्य दोपकारणकतया तत्ताशविषयतया स्वविषयविवेचकत्व नभवति । नच तथापि स्वरूपतो विषयतश्च परस्पर विभिन्नाभ्यामाभ्या ग्रहणस्मरणाभ्या ससृष्टप्रवृत्ति कथमिवजायते इति वाच्यम् , तयोरेतादृश ज्ञानयोरन्योन्यससर्गसाकाक्षसामान्यविशेषालवनयो स्वरूपतोविषयतश्चागृहीताऽससर्गयोनिरन्तर जायमानयो स्वरूपेण यथार्थयोरपि,अयथार्थव्यवहारप्रवर्तकयोर्विभ्रमत्वप्रसिद्धेरप्युपपपादनसमुपपद्यते एव । एतत्सर्वं सगृह्योक्त "नयविथि" नामकमीमासकग्रन्थे—

"सनिहितरजतशकले रजतमतिर्भवति यादृशीसत्या । भेदानध्यवसायादियमपि तादृक् परिस्फुरति॥
साधारण हि रूप तस्याश्चास्याश्च विद्यते तेन । तन्मात्र प्रतिभानात् समानतामेव मन्यन्ते॥
तत्तुल्यव्यवहारप्रवृत्तिरपि युज्यते चात । तद्विनिवारणकारणबाधकभावोय बाधकस्यापि॥इति॥

एतत्सर्वं मनसि सनिधाय सुष्ठूक्तमाचार्येण **नहिअतद्रूपप्रतिष्ठं मिथ्याज्ञानंनामकिञ्चिदस्ति, सर्वज्ञानानामर्थाव्यविचारादिति** । इत्थस्वरूपतो ज्ञानस्य विवेचनम् । विशेषविचारो ज्ञानस्य लक्षणनिरूपणावसरे प्रदर्शयिष्यते इतिदिक् ।

। इति निद्राया वृत्तिरूपत्वनिषेधनप्रकरणे तत्वदीप ।

"सुखमहमस्वाप्स न किञ्चिदवेदिषमि"त्यादिप्रत्ययस्य [ज्ञानस्य] स्मरणरूपत्व स्वीकृत्यापि, आत्मनोबोधस्वरूपत्व स्थापयितुमुपक्रमते **भवतु वा पूर्वोक्तप्रमाणविपर्यये** त्यादि, अयमाशय , यदाऽत्मन उपलब्धिर्भवति, जागरणस्वप्नसुषुप्तिरूपावस्थात्रयेपि, तत्र सर्वत्र ज्ञानाधिकरणतयैवात्मन· समुपलभ्यमानत्वेन तस्यबोधस्वभावत्व सिद्ध्यत्येव, "सुखमहमस्वाप्समित्यादि" क्रमेण, यदा स्वापेपि बोधानुवर्तनेन प्रतिपादितम्, तदायदभिमन तस्यैवत्वयापि प्रतिष्ठापनात् । अस्माक तदिष्टमेवस्थापितमिति संक्षेपः ।

अथ बोधकारणबाह्याभ्यन्तरसंयोगलिङ्गादीनामनुवर्तनेनापि बोधानुवृत्तिसंभवे कथंबोधस्वभावत्वमिति चेन्न, स्वतःसिद्धबोधस्वरूपत्वमन्तरेणस्वापकालिकं तमः सिद्धमेव न स्यात् साधकप्रमाणाभावात् । तथाहि यतः स्वापकालेमनःसहितानिसर्वाण्यपीन्द्रियाणिविरतानिजातानि स्मृत्यतिरिक्ते च संस्कारस्यापि सामर्थ्याभावात् । न च तमः स्वप्रकाशात्मकम् तमोवत् तदन्यस्यापिप्रकाशप्रसङ्गात् । सर्वार्थप्रकाशकत्वेन बोध एव निश्चित इति तेन बोधेनैवतमसः सुखादीनागुणानांस्फुरणं भवतीति मन्तव्यम् ।

अयमात्माप्रमातृत्वात् नित्यप्रकाश एव यत्रयत्रानित्यप्रकाशत्व तत्र न प्रमातृत्वं घटादिवत् । तदुक्तमभियुक्तैः—

ननु स्वापकालेऽन्त करणवृत्ते स्वीकारेपितावताज्ञानस्यनित्यत्व न सिद्ध्येत्, यतोऽन्त करणवृत्तेश्चक्षुरादिकरणान्यतमतयानित्यत्व सर्वत्रैव दृश्यते । एतादृशीकस्यचित् शङ्कासमाधातु प्रथमत शङ्कामेवानुवदन्नाह **अथ बोधकारण** इत्यादि । स्वापादौकारणानुवर्तनेनतत्कार्यबोधस्याप्यनुवर्तनसभवेनबोधस्य नित्यत्व कथमिति शङ्कितुराशय । इमां शङ्कां परिहरति **इति चेन्न स्वतः सिद्धबोधस्वरूपत्वमन्तरेण** इत्यादि । ज्ञानस्वभाववत्वनिर्णयोवक्ष्यमाणप्रकारेण करिष्यते इति । **स्वापकालिक तमः** इत्यादि । उपरतव्यापारतया चक्षुरादिकारणानां न स्वापे ज्ञानवृत्ते संभव । तस्मात् स्वत सिद्धबोधेनैव तमो गुणस्य प्रकाशो भवतीतिस्वीकर्त्तव्यम्, यदि स्वापेतमस प्रकाशोभवेदिष्टस्तदा, तत्सिद्धेबोधस्वभावत्वमिति । वस्तुतस्तु, स्वापकालेज्ञानस्य न तम प्रकाशकत्वम्, अतिशयेन सकुचितवृत्तित्वात् । स्वापकालिकानुभवबलात् सुखवत्वे न स्वापेभासमानस्यात्मन परामर्श स्मरण प्रबोधकाले भवतीति वेदान्तसिद्धान्त । अस्वाप्समिति स्वापकालाशयोस्तु अनुमितिरूपेवपूर्वोक्तप्रतीति नित्यानुभवस्यसस्कारानुत्पादकत्वेतुसाक्षादेव स्वापकालिकात्मानुभवस्वरूपस्य यथोक्तानुसधानकारणत्व सुखत्वेनात्मावगाहनांशे ।

ननु भवतु बोधस्वभावकआत्मा, तथापि तादृशात्मनोऽन्त करणवृत्तिसमये एव प्रकाशो जायता न पुन सर्वकालिक प्रकाशइत्याशङ्कायां तादृशात्मनोनित्यप्रकाशत्वसाधयितुमुपक्रमते **अयमात्माप्रमातृत्वान्नित्यप्रकाशएवेति ।** तत्रात्मापक्ष नित्यप्रकाशवत्व साध्यम्, प्रमातृत्व हेतु । यत्र यत्र नित्यप्रकाशत्वनास्ति तत्र तत्र पराधीनप्रकाशत्वमेव, यथा पटादौ, तत्र दृष्टान्ते प्रमातृत्व व्यतिरिक्तोनित्यप्रकाशस्यापि व्यतिरेक सुलभ, इहच । प्रमातृत्वव्यतिरेकात् तद्व्यापकपराधीनप्रकाशवत्वस्यार्थात् नित्यस्वप्रकाशवत्वस्यैव साधन भवति । यथा धूमव्यापकवन्हेरभावात्, जलादौवन्हिव्याप्यधूमस्याप्यभावोवलादेवायाति, व्यापकाभावस्य व्याप्याभावसाधकत्वेननिर्णीतत्वात् । एतदेव **तदुक्त**मित्यनेन स्पष्टीकृतम् । ज्ञातृत्वस्वप्रकाशत्वमित्यादि । ननु यदात्मनि नित्यप्रकाशत्वम्, नित्य-

"ज्ञातृत्वात्स्वप्रकाशत्वं तथा श्रुत्यापि संस्थितम् ।
अप्रमातृतयायुक्ताजडरूपत्ववस्तुषु ॥ इति । तथैव
"ततो ज्ञानस्वरूपात्मा विभुर्ज्ञान च तद्गुणः । ज्ञानस्वरूपमत्यन्तं निर्मलं परमार्थतः ।'
एवं विष्णुपुराणे हि ज्ञानस्वरूपतात्मनः । मन्ताबोद्धेतिप्रामाण्याज्ज्ञाताजीवोबुधैर्मतः ।
ज्ञोत एवेति सूत्रं हि ततो व्यासेन सूत्रितम् । विज्ञानं यज्ञंतनुतेज्ञानोक्तिश्चेतियाऽऽत्मनः ।
विज्ञानगुणसारत्वात् सूते सा प्राज्ञवन्मता । (श्रीबोधायनमतादर्शे (८९६–८९९) इति च
। इत्यात्मनोज्ञानस्वभावस्यनित्यस्वप्रकाशत्वसमर्थनप्रकरणम् ।

वोधकृतमेव कथ न स्यात् । तत्राह **ज्ञातृत्वादिति** व्यापकाभावेनव्याप्याभावोभवति, अर्थात् व्यापकाभावोव्याप्य व्याप्याभावस्तु व्यापक एव भवतीतिनियम । तदिहव्यापकाभावेनव्याप्याभाव सिद्ध्यतीति । अर्थादस्यात्मनोज्ञातृस्वभावत्वादेवापराधीनप्रकाशत्वस्य सिद्धिर्भवतीति । अतएवेदमपि परास्तम्, धर्मभूतज्ञानस्यप्रकाशो यद्यपि, अनुव्यवसायादिज्ञानान्तराऽपेक्षो भवति, तथापि, आत्मसम्बन्धापेक्षस्तु भवत्येवेति, ज्ञानेऽनन्याधीनप्रकाशत्वलक्षण सिषाधयिषित साध्य न विद्यते, तेन सपक्षे ज्ञाने सति पक्षमात्रवृत्तिज्ञातृत्वम्, सपक्षविपक्षव्यावृत्तित्वेनासाधारणानैकान्तिक दोषनातिक्रामतीतिशङ्काया अपि प्रकृतेऽवसरो न भवतीति ।

यद्यपि केवलव्यतिरेक्यनुमानस्य प्रमाणत्व न सिद्धान्तसिद्धम्, तथापि परप्रक्रिययैवपरान्, निराकर्तुमेतावान् प्रयासकृतवान् । सिद्धान्तेचान्वयि, अनुमानेनैवात्मन स्वप्रकाशत्वसाधन भवति । न्यायमते, त्रिप्रकारकमनुमानम्, केवलान्वयिकेवलव्यतिरेक्यन्वयव्यतिरेकिभेदात्, इदवाच्य प्रमेयत्वात्, पृथिवीस्वेतरेभ्योभिद्यते गन्धवत्वात्. अत्रजलादिर्दृष्टान्त । पर्वतो वन्हिमान्, धूमादित्यत्रान्वयव्यतिरेकव्याप्तिबालादुभयव्याप्त्यापि समावेशसभवात् । अत्र स्वसिद्धान्तेऽन्वयि अनुमानेनैवात्मन स्वप्रकाशत्वमात्मन साधित भवति । नित्यत्वाग्राहकप्रमाणवलेनैवात्मनस्तदीय प्रकाशस्यापि नित्यत्वमर्थत एव सिद्धभवतीति सगिरन्ति सैद्धान्तिका । वस्तुतस्तु "सत्य ज्ञानमानन्द ब्रह्म" "प्रज्ञान ब्रह्म" इत्यादि श्रुतिभिरात्मनो ज्ञानरूपतामभिधाय, पुनस्तस्य "अत्रायपुरुष स्वय ज्योतिर्भवति" "न तत्र चन्द्रतारकनेमाविद्युतोभान्ति, तमेवभान्तमनुभाति सर्वं तस्यभासा सर्वमिद विभाति" इत्यादिश्रुतिभि "न तद्भासयते सूर्योन शशाको न पावक" इत्याद्यनेकस्मृतिभिश्च, तादृशज्ञानस्वरूपस्यात्मन स्वत सिद्धप्रकाशत्व कथयित्वा प्रकरणस्योपसहारमकरोत् । एवञ्च सर्वप्रमाणशेखरेणागमेनैवात्मनस्वत सिद्धबोधरूपत्व प्रकाशात्मकत्व च प्रतिष्ठापितवान् । तत्र को नाम लौकिकप्रमाणस्य तर्कस्य युक्तेर्वाऽवसर । तस्मात्स्वतबोधरूपत्वमेवात्मन सिद्ध्यतीति सक्षेप ।

॥ इत्यात्मनो ज्ञानस्वभावस्य नित्यस्वप्रकाशत्वसमर्थनप्रकरणे तत्त्वदिप ॥

अथ कोयं प्रकाशशद्धार्थः, यश्चप्रकाश आत्मानो नित्यः स्वतः सिद्धश्चात्मनः स्वीक्रियेत । तथाऽस्यप्रकाशस्यात्मना सह सम्बन्धः ? यदि ज्ञानमेवप्रकाशःसम्बन्धश्चाश्रयाश्रयिभावात्मक एवेति ब्रूषे, तदा हेत्वभावसाध्याभावयोर्व्याप्तौ दृष्टान्ततयाघटादिरेव स्यात्, यदनित्यप्रकाशं न तत् प्रमातृ, यथा पटादिरिति ।

ननु "सप्रसङ्ग उपोद्घातहेतुताऽवसरस्तथा । निर्वाहकैक्यकार्यैक्येषोढा सगतिरिष्यते" इतिसगतिघटक "स्मृतस्योपेक्षानर्हत्व प्रसङ्ग" इति प्रसङ्गसङ्गतिमभिप्रेत्यप्रकाशशद्धार्थस्य निर्णयाय विचारमुपक्रमते **अथकोयंप्रकाशशब्दार्थ** इत्यादि । अथवा "चिन्ताप्रकृतसिद्ध्यर्थामुपोद्घात विदुर्बुध" इत्युपोद्घात लक्षणम्, तत्रात्मन स्वत प्रकाशत्वसाधन तदैव सभवति यदि तत्पूर्वं प्रकाशार्थस्य स्वरूपतो लक्षणतश्च निर्णये सत्येवेत्यात्मन स्वत सिद्धयेतत्पूर्वमस्य विचारो निर्णीतो भवेदिति प्रकृतस्यात्मविचारस्यसिद्ध् यनुकूलत्वस्य प्रकाशत्वस्य विचार पूर्व कृत इत्यनेन प्रकारेणोपोद्घातसङ्गतिमाश्रित्यापि तद्विचारोपक्रमते **अथकोयं प्रकाशशब्दार्थः** अत्राथशद्ब प्रकाशप्रकरणस्यारभार्थक 'अथयोगानुशासनमिति योगशास्त्रमधिक्रियते, तथैव प्रकाशशद्धार्थोयारभ्यते । अथवा "ओकारश्चाथ शद्बश्चद्वावेतौ ब्रह्मण पुरा । कण्ठभित्वाविनिर्यातौ तस्मान्माङ्गलिकावुभावितिमङ्गलार्थक एव स ।

यद्यपि अथ शब्दस्य वाच्यो वा लक्ष्यो वा मङ्गलम्, तथापि, अन्यार्थमानीयमानोदककुम्भवत्, मृदङ्गशखकोकिलादिवत् मङ्गलप्रयोजकतु भवत्येव । किं शब्दश्च आक्षेपार्थक । अथस्वप्रकाशशद्धार्थविचारे कृते न कोपि घटते इत्यर्थ । अथवा किम सर्वनामतया, तदादिशब्दवत्, प्रसिद्धार्थक एव । यथा"द्वय गत सम्प्रति सोचनीयतां समागमप्रार्थनया कपालिन । कला च सा कान्तिमतीकलावतस्त्वमस्यलोकस्य च नेत्रकौमुदी" अस्मिन् कुमारसभवीयकालिदासवाक्यस्य घटक वत्, सात्वमित्यत्र तत् पद सर्वप्रसिद्धमर्थं बोधयति, अर्थात्, सर्वलोकप्रसिद्धाचन्द्रकलावत् त्व च पार्वती शोचनीयता गतेति । पार्वतीचन्द्रकलयो सर्वलोकप्रसिद्धवदिहापि प्रकाशस्य सर्वलोके प्रसिद्धिरेव, प्रकाशमन्तरेण चक्षुषादिव्यवहारस्योपपादयितुमशक्यत्वादितिसक्षेप । विशेष शब्दशक्तिवादे ।

कश्चाय प्रकाश, योहि आत्मनोनित्य सासिद्धिकश्च स्वीक्रियते, तथाऽस्यात्मना सह सम्बन्दश्च किं स्वरूप ? नित्यमपीदमीय ज्ञान प्रतिकर्मादिव्यवस्थोपपादने समर्थमित्यत एतदीयविचारस्य प्रकृतोपयोगित्वमिति । यदितु ज्ञानमेव प्रकाश सम्बन्धस्तु आधाराधेय रूप । यथा "प्रकाशते" इत्यत्र सोपसर्गस्य काशधातोरर्थ प्रकाशो ज्ञानमेव तथा प्रकाशते इत्यत्र, आख्यातस्यार्थ आश्रयत्वम्, इतियदुच्यते, इति प्रश्नार्थ । तदेतद्दूषयति, **तदाहेत्वभावइ**

तत्र घटादौ, विशेषनिषेधस्यसामान्येपर्यवसानेनजन्यंज्ञानमेव घटादौ स्वीकृतं भवेत् । अथैतद्दोषपरिहारायययदिविषयविषयिभावःसम्बन्धोऽभ्युपगच्छेत, तदा नित्यज्ञानविषयत्वमात्मनःप्रसज्येत, ज्ञानविषयत्वं च साधनाधीनमिति न तस्य स्वाभाविकत्वमर्थान्नित्यत्वं स्यात् ।

न चाचेतनविषये एव साधनाधीनत्वनियम इति वाच्यम् चेतनान्तरविषयत्वेपि तथादर्शनात् । नचानात्मविषयक एव साधनसापेक्षत्वनियम इतिवाच्यम्, आत्मनोपियोगजलिङ्गशब्दादिप्रमाणविषयत्वेकरणसापेक्षत्वस्यसर्वानुमतत्वात् । अपिचैक-त्यादि एव हेत्वभावनिरूपितसाध्याभावनिष्ठव्याप्तौ, उदाहरणरूपेणाचेतनघटादेरेवोपादानमितिवक्तव्यम्, अर्थात् यदनित्यप्रकाशवत्, पराधीनप्रकाशवा, न तत् प्रमातृ भवति, यथा घट । दोषमेवोपपादयति **तत्रघटादौविशेषनिषेधस्येत्यादि** विशेषनिषेधस्य सामान्यस्वीकारपर्यवसायितायादर्शनात्, यथा घटवति नीलघटनिषेध सामान्यतो घट स्थिरयत्येव, तथैव प्रकृते नित्यप्रकाशरूपविशेषनिषेधसामान्यतो ज्ञानवत्वे पर्यवसानात्, घटादिदृष्टान्ते सामान्यतो ज्ञानवत्वमापतितभवेत् तच्च न युक्त प्रतियोगिव्यधिकरणज्ञानाभाववत्वस्यैव जडत्वात्, तत्र केनापिरूपेण कदाचिदपि ज्ञानसद्भावस्वीकारे घटादयोजडताविमुञ्चेरन्निति महत्कष्टमापतित देवाना प्रियस्येति, नच तर्हि घटादिहेत्वभावोज्ञातृत्वनस्यादितिस्वरूपासिद्धदोष प्रकृतानुमानेभवेदिति वाच्यम् । अनात्मत्वस्यैवात्राज्ञातृत्वपदेन विवक्षितत्वात् । प्रकाशाश्रयत्वमात्रस्य तु साधनायोग सिद्धत्वादित्यपिध्येयम् ।

पूर्वोक्तदोषनिराकरणाय प्रकारान्तर पूर्वपक्षीसमुपस्थापयति । **अथैतदि**त्यादि । ननु न भवतु ज्ञानात्मनोराश्रयाश्रयिभाव सम्बन्ध किन्तु तत्र घटज्ञानवत् विषयविषयिभाव एव सम्बन्धो भवतु, अर्थात् ज्ञानविषयत्वमेव प्रकाशमानत्वमित्यपि वक्तु न युज्यते, कथम् ? तत्राह **तदानित्यज्ञानविषत्वमित्यादि** तथा च नित्यप्रकाशमानत्वसाधनेनात्मन सार्वकालिक ज्ञानविषयत्वप्रसङ्ग स्यात् । तथाज्ञानविषयत्वस्य कारणविशेषाधीनतया न स्वाभाविकत्वस्यात् । इष्टत्वे दोषमाह **ज्ञानविषयत्वंचेत्यादि** ज्ञानस्यविषयप्रकाशनव्यापार इन्द्रियादिद्वारैव भवति, ततइतरानपेक्षो नित्यश्च ज्ञानविषयत्वमात्मनि साधित भवेदिति । नचाचेतनविषयक एव पूर्वोक्तनियम, अर्थात्, इन्द्रियादिकरणाधीनत्वमेव विषयीकरणमितिनियमोऽचेतनविषये एव भवति नतु चेतनविषये तथा नियम इति वाच्यम्, चेतनान्तरविषयत्वेपि तथाभावदर्शनात् । नचानात्मकविषयकोय कारणसाक्षेपत्व नियम, अर्थात् स्वात्मव्यतिरिक्तविषये एव विषयीकारस्य चक्षुरादिकारणसापेक्षत्वमिति वाच्यम्, आत्मनोपि लिङ्गशब्दादिज्ञानविषयत्वे, लिङ्गादिकरणजन्यत्वनियमदर्शनेन यथोक्तनियमे सकोचस्यानुचितत्वात् । ननु आत्मन स्वरूपमात्रविषयकज्ञानमेव साध्यत्वेनाभिमतम्, एतादृशनित्यज्ञानस्यात्मविषयीकरणे न करणसापेक्षत्वमित्या-

स्यैवैकक्रियायां कर्तृत्वकर्मत्वेऽपि विरोधस्यजागरूकत्वात् । नित्यत्वसूक्ष्मत्वादिरूपेण जीवस्यैवानुमानादिविषयत्वं नतु स्वरूपतः । स्वरूपापेक्षया स्वतः सिद्धिस्वीकारे न भवेत्तदा विरोधसमाधानमिति । रूपभेदेन विरोधसमाधानेतु शब्दादिवदेव न स्वतः सिद्धमात्मनः ।

इतिज्ञानाश्रयत्वविषयत्वयोः प्रकाशमानरूपत्वाक्षेपोद्भावनप्रकरणम् ।

यद्युच्येत न ज्ञानरूपः प्रकाशः किन्तु ज्ञाननिमित्तश्चेतनतदितरसर्वपदार्थानुगतोधर्मविशेष एव प्रकाशः, एतद्बलादेवसमानरूपेण सर्वपदार्थेषु प्रकाशते व्यवहारः प्रत्ययश्चापि भवति । तेन सह सर्वपदार्थस्याश्रयाश्रयिलक्षणःसम्बन्धो भवति । स च पूर्वोदीरितकारणबलात्स्वाभाविको नित्यश्चात्मनः ।

शयेनाह **अपिचैकस्यैकस्यांक्रियायामि**त्यादि आत्मन स्वरूपमात्रस्य एकक्रियाया कर्तृत्वकर्मत्वमतीवविरुद्धम् । नहि भवति देवदत्तो देवदत्त गच्छति । कुन ' परसमवेतक्रियाजन्यफलाश्रयत्वस्यैव कर्मत्वात् स्वस्मिन् क्रियाजन्यफलस्यपरसमवेतत्वाभावात् । ननु स्वरूपमात्रज्ञाने आकार भेदेन कर्तृत्वकर्मत्वमुभयमप्यविरुद्ध स्यात् तत्राह **नित्यत्वसूक्ष्मत्वे**त्यादि आत्मनो यदनुमानशब्दादिविषयत्व न स्वरूपत किन्तु धर्मविशेषवत्वेनैव तत्रस्वरूपापेक्षयैवात्मन स्वत सिद्धत्वस्वीकारे विरोधस्योद्धार कथमपि न स्यात् । ननु स्वरूपस्यैव गम्यत्व तस्यैव च गमकत्वमपि सामान्यविशेषधर्मभेदात् कथचित्सम्भवेदिति चेत् एतदपि न समीचीनम् एव सत्येकक्रिया प्रतिएकस्यैव रूपान्तरेण कर्तृत्वरूपान्तरेण च कर्मत्व फलितम् ततश्च सर्वत्रगमनादिक्रियायामपि गमनादिविशिष्टाकारेण देवदत्तस्य कर्मत्व स्वगतधर्मवत्वेन कर्तृत्वस्योपपादयितु शक्यतया एकत्र कर्तृकर्माभावभावस्यदत्ततिलाञ्जलितैवापतेत् अथवा अय शब्द इत्याकारकशब्दबोधकशब्दस्यशब्दशब्दवाच्यत्वेपि वाच्यता श्रोत्रेन्द्रियग्राह्यगुणत्वाकारेण वाचकता तु तादृशानुपूर्वीविशेषेणेति न स्वय प्रकाशत्वमपक्षरूपस्य शब्दस्य तथैव ग्राह्यग्राहकतावच्छेदकधर्मभेदे पक्षीभूतस्यात्मनो न स्वय प्रकाशत्व सिद्ध्येदिति ।

॥ इति ज्ञानाश्रयत्वविषयत्वयो प्रकाशमानरूपत्वेदोषोद्भावकपूर्वपक्षप्रकरणे तत्त्वदीप ॥

ग्राह्यग्राहकतावच्छेदकधर्मभेदेशब्दशब्दवत्, आत्मनोपिस्वप्रकाशत्व न सिद्ध्यतीतिप्रश्नस्यभट्टप्रक्रियामाश्रित्यनिरसितुमुपक्रमते **यद्युच्येत** इत्यादि । **न ज्ञानरूपः प्रकाशः** इत्यादि । अयमाशयोऽत्रशङ्कस्यप्रकाशोनामप्राकट्यम् आश्रयत्व च सम्बन्ध, घटादि प्रकाशते, इत्यादि प्रतीतिर्व्यवहारश्चप्राकट्याश्रयत्वार्थक एव प्रायशो भवति । स च प्राकट्यार्थकप्रकाशो ज्ञानेन जायते, स च प्रकाशश्चेतनतदितरसर्वपदार्थेषुसमानरूपेण भवति, घट प्रकाशते तथैवात्मापि प्रकाशते इति प्रतीतिदर्शनात् । स एव प्रकाशो नित्य स्वभावसिद्धश्चात्मन इत्येव ज्ञातृत्वलिङ्गेना-

पूर्वमेवनिराकृतोऽयंपक्षः । न ज्ञानभिन्नःकश्चित् प्रकाशाख्यः पदार्थो यदीय व्यवहारेऽनूकूलं प्रकाशते इत्युच्येत । ज्ञेयस्य विषयस्यज्ञातुःस्वात्मनश्चव्यवहारानुकूलं ज्ञानमुत्पद्यते । अतोयुक्तोज्ञेयादित्रिष्वपि समानरूप एव यः प्रकाशते इति व्यवहारः। अतिरिक्तप्रकाशस्वीकृतेतत्स्वभावतयापुनश्चैतन्याभ्युवगमेन किम् ? प्रकाश एव ज्ञान-मितिनैववाच्यम्, तदाघटादेर्ज्ञेयस्यापिप्रकाशाश्रयतयाचेतनत्वप्रसङ्गात् ।

यद्युच्येत, सतिचेतनावत्वे एव पुरुषस्यप्रकाशमानत्वमित्यपिनवक्तव्यम् संविदि तदानी किं स्यात् ? सासवित् चेतनारूपैव, न चेतयते, अथ संविदो ज्ञानस्यतत्स-म्बन्धाधीनःसप्रकाशरूपोधर्म इति चेत् ? कस्तयासंविदा सम्बन्धोः यतस्तन्निबन्धनम् ? आश्रयाश्रयिभावत्वंतु न घटादेरपितदभावप्रसङ्गात् । नवा विषयविषयिभावःसम्बन्धः

नुमातव्यमिति शङ्काग्रन्थस्यसक्षेपेण विवरण भवति । इदभाट्टमत प्रभाकरमतेननिराकर्तुमाह **पूर्वमेव निराकृत** इत्यादि, "घटो ज्ञात" इत्याकारकज्ञाततान्यहारस्यस्वप्रकाशज्ञानादेव ज्ञाततोपपादन-सभवेन ज्ञानजन्यज्ञाततानामकधर्मान्तरस्वीकारे न किमपि प्रमाणं विद्यते इति भट्टमतनिराकरण प्रकारो ज्ञातव्य । ज्ञानभिन्न प्रकाशनामकोनास्ति कश्चित्, यस्य व्यवहारोपपादकानुकूल ज्ञानम्, तत्प्रकाशते इत्युच्येत। ज्ञेयस्यविषयस्यज्ञातुरात्मनश्चव्यवहाराऽनुकूलज्ञानमुदयस्तस्मात् "त्रि-ष्वप्येकरूप प्रकाशते व्यवहार" अर्थात् प्रकाशोज्ञानम्, ज्ञानाधीनव्यवहारकारणसम्बन्ध प्रकाशते, इत्यत्राख्यातार्थ इतिपक्ष एव विषयस्तज्ज्ञानतज्ज्ञातृषु, एकार्थत्व प्रकाशते इति व्यवहारस्योपपद्यते-ऽयमेवार्थ । अर्थात् ज्ञानज्ञेयज्ञातृणाव्यवहारानुगुण्यापादन घटादिसर्वविज्ञानानास्वभाव इति भाव । यदि कदाचित् ज्ञानव्यतिरिक्तप्रकाशस्य नित्यस्य आत्मनिस्वीकारे तु, तत्रात्मनि ज्ञानसमवाय-स्वीकारोनिरर्थक एव इत्याशयेनाह **अतिरिक्तप्रकाशे**त्यादि । तत्वान्तरस्यज्ञानातिरिक्तप्रकाश-नामकपदार्थस्यात्मनिस्वीकारेतु तत्रज्ञानस्वीकारोऽनर्थक एवेति ।

ननु स्वविषयकज्ञाने विद्यमाने एवात्मन प्रकाशमानतेति योगक्षेमसाधारणप्रयोजकत्व-स्यस्वीकारात्, नात्मनि चैतन्यमर्थात् ज्ञानस्यवैयर्थ्यमित्याशयेन शङ्कते **यद्युच्येत** इति । सत्येवपुरुषस्यचेतनावत्वे तदैवात्मन प्रकाशवत्तेति न ज्ञानस्यवैयर्थ्यमितिभाव पुनराक्षिपति **संविदिति** तत्र सवित् पदवाच्यज्ञानमेव भवति, परन्तु ज्ञान तु न ज्ञानस्याश्रयीभूतम्, तथा च चैतन्यसमवायित्वप्रकाशमानताप्रयोजकत्वस्वीकारे चैतन्येचैतन्यभावेन प्रकाशमानत्व न कथमपि घटेतेतिभाव । अथ चैतन्यसम्बन्ध एव प्रकाशस्यकारणस्वीक्रियते चेत् तादृशाशङ्कायामाह **कस्तया संविदासम्बन्धः** इति । तयाचेतनया सह क सम्बन्ध इत्यर्थ । अत्र सम्बन्ध विकल्पनेन-**दोषमुद्गिरति** । तत्र चैतन्यवदात्मसमवेतत्वस्य यदि चैतन्यसम्बन्धत्वमिष्यतेतदाघटादेर्बाह्यपदार्थस्य प्रकाशोन स्यात्, यतोघटादौबाह्ये उपयुक्तसम्बन्धाभावात् । इत्याशयेनैव कथितं **घटादेस्तदभाव-प्रसङ्गात्,** अर्थात् घटादेः प्रकाशाभावप्रसङ्गादित्यर्थ ।

विषयविषयिभावस्याद्याप्यनिरूपणात् । आत्मनस्तस्य चाप्रकाशप्रसङ्गात् । ज्ञानाधीन प्रकाशाश्रयतयैवतत्सिद्धिस्तथा च तदनुमानमित्ययमपि पक्षः पूर्वमेवापसारितः ।

स्वप्रकाशज्ञानानुवादिनां गुरुणामपिव्यहारानुकूल्ये एकरूपत्वमशक्यमेव-ज्ञानाश्रयेआत्मनिज्ञानंसमवेतंसम्बन्धरहितार्थेकथंप्रकाशं व्यवहार वा जनयेदिति विचार-

अथ यदि चैतन्यविषयत्वस्यचैतन्यसम्बन्धत्व स्वीक्रियात् तदाचैतन्यस्यतदाश्रयभूतस्यात्मनश्चप्रकाशो न स्यात् तत्राह **न वा विषयविषयिभावः** तस्यैवानिरूपणत्वादिति । अत्र विषय विषयिभावो न घटते, तत्स्वरूपस्यैवाद्यापिनिरूपणाभावात्, निरूपणे वा, नभवेत्तदावादिविवादात्मककोलाहलस्यावकाश । आत्मनश्चैतन्यस्य च विषयत्वाभावेन तयो प्रकाशो न स्यात् । आत्मन =सविदस्तस्यपुरुपस्य च प्रकाशप्रयोजकस्यचैतन्यविपयत्वस्य, अङ्गुल्यग्रेणस्वात्मस्पर्शवत् चैतन्ये, कर्तृकर्मभावविरोधेनात्मनि वा सभव एवेति ज्ञेयमिति । ननु भवतु कर्मकर्तृभावविरोधस्तदापिज्ञानस्याश्रयतयैवात्मनिप्रकाशते इति व्यवहार । यद्यपि स्वभावतोज्ञानस्यातीन्द्रियत्वमर्थादिन्द्रियाविषयत्व तथापि तस्य ज्ञानस्यज्ञाततालिङ्गकानुमानादेव [घटत्ववतिघटत्वप्रकारकज्ञातता घटत्ववतिघटत्वप्रकारकज्ञानजन्या, तादृशज्ञातत्वात्, पटादिज्ञानतादिवदित्याद्यनुमानादेव] प्राकट्य सभवति, तदेव प्रकाशते इति, व्यवहारस्यकारणस्यादित्याशङ्कायामाह **ज्ञानाधीनप्रकाशाश्रयतयैवतत्सिद्धिरिति** ज्ञानानुमानस्यप्रभाकरेणनिराकरणात्, ज्ञानस्यज्ञानरूपतयैव "प्रकाशते" इत्याकारकव्यवहारोवक्तव्य । तथा च ज्ञानधर्मेणप्राकट्येनघटपटादिविषयेषु तथा ज्ञानरूपतयाज्ञाने, ज्ञानाश्रयतयाचात्मनिप्रकाशते इति व्यवहारह स्यात् । एवञ्च ज्ञातृज्ञानज्ञेयेषुत्रिष्वपितस्यज्ञानस्यैकरूपत्व न सभवत्येतन्मते ।

एव यथोक्तप्रकारेण 'ज्ञानज्ञेयज्ञातृषु' इत्याकारकव्यवहारस्यैकरूपत्व न सभवति, किन्तु विषयत्वज्ञानत्वप्रमातृत्वादिविभिन्नरूपेणैवप्रकाशते इत्याकारकव्यवहारविषयत्व भवतीति **गुरुमतेनप्रति**पाद्य, **गुरुमतेपि**ज्ञानज्ञेयप्रमातृषु समानरूपेणप्रकाशते इत्याकारकव्यवहारविषयत्व न सभवतीतिविचारक आम्या विभिन्नकश्चिद्विचारयतीति, तदेवदर्शयितुमुपक्रमते **स्वप्रकाशज्ञानानुवादिनाम्** इत्यादि । **अर्थे**घटपटादौज्ञानातिरिक्तेप्रकाशतेइत्याकारकोयोव्यवहारो भवति सतु विषयत्वेनरूपेणज्ञाने योव्यवहार **प्रकाशते** इत्यकारको भवति, स तु व्यवहारोज्ञानरूपतयाऽर्थात् ज्ञानत्वात्मकासाधारणधर्मं पुरस्कृत्य भवति, तथात्मनिप्रकाशते इत्याकारकोयोव्यवहारोभवति स व्यवहारोज्ञानाश्रयतया, आत्मनोज्ञानाश्रयत्वात्, ज्ञानाधिकरणत्वादित्यर्थ । तथा च **गुरुमतेपि** समानरूपेणव्यवहारोपपादकत्व नास्ति किन्तु **विभिन्नरूपेणैव**व्यवहारोपपादन भवति । एतादृशस्थितौसमानरूपेणभट्टमतेव्यवहारोपपादनाशक्यत्वं **दूषण** यद्गुरुमतानुयायिनाप्रतिपादित तदस्थाने एवेतिविमर्शकस्याभिप्राय । "यश्चोभयो समोदोष **परिहारोपि**तादृश । नैक पर्यनुयोक्तव्यस्तादृगर्थविचारणे" इतिन्यायविषयतानातिक्रामतिप्रभाकरीय

णीयमेवापतति । इन्द्रियादिज्ञानकारणसम्बन्धबलादिति न वक्तव्यम् । लब्धात्मकं कार्यं स्वकीयनिमित्तकारणबलेन न स्वकार्यंकरोतीति दृष्टम्, नहि घटादिकं जलाहरणादिकार्यं इति । सन्यप्युपर्युक्तदोषे, मतद्वयेपिदूषणान्तरप्रदर्शयतिविमर्शकस्तत्राह, **आत्मनि** इत्यादि। ज्ञान प्रकाशरूपम्, आत्मनिसमवायसम्बन्धेनेति, ससवायश्चसम्बन्धोऽयुतसिद्धयोरेव भवति नतु युतसिद्धयोर्घटपटवत् । एवञ्चात्मसमवेतज्ञानम्, विषयेणासम्बद्धसत्कथमर्थंघटादिकप्रकाशयिष्यतीति विचारणीयमेव । अर्थात् असम्बद्धविषय न ज्ञान प्रकाशयेदितिभाव । एतद्दोषपरिहारायात्रशङ्कते **इन्द्रिय** इत्यादि । यद्यप्यात्मसमवेतज्ञानस्यसाक्षादिन्द्रियार्थेन सहसम्बन्धोनास्तितथापि, आत्मसमवेत ज्ञानस्याजनकमिन्द्रियादिकम् 'इन्द्रियार्थसनिकर्षजन्यज्ञानप्रत्यक्ष, लिङ्गादिजन्य च ज्ञानमनुमि"त्यादिकम् । एवञ्चज्ञानस्यनिमित्तकारणमर्थेन्द्रियसनिकर्ष, समवायिकारणमात्मा, असमवायिकारणमात्मन सयोग एव, अदृष्टेश्वरेच्छादिकसाधारणकारणभवतिनिमित्तकारणान्तर्गतमेव । एतान् कारणकूटानासाद्यज्ञानमुत्पन्न भवति, तथा च निमित्तकारणान्तर्गतस्वनिमित्तकारणसम्बन्धाज्जायमानज्ञानस्य विषयेणघटादिनासम्बन्धसत्वेनार्थं प्रकाशयत्येवज्ञानम् । येनार्थेन सम्बद्धयदिन्द्रियलिङ्गवाद्विषयकज्ञानमर्जयति, तज्ज्ञानतस्मिन्नेवार्थेघटादिविषये प्राकटयव्यवहारानुकूलत्व वा निष्पादयतिनान्यनान्यत्रेति शङ्काग्रन्थस्यमुकुलितो भाव । अमु प्रश्न परिहर्त्तुमाह **लब्धात्मकं कार्यमि**त्यादि ।

अयमाशय, द्रव्यात्मक यत्कार्यंतत्स्वोत्पत्तौदण्डकुलालादिनिमित्तकारणमपेक्षते, नतु स्वजन्यकार्येपिस्वनिमित्तमपेक्षते, अन्यथाघटमुत्पाद्य, तदनन्तरदण्डस्यकुलालस्य वा विनाशेजाते, तत्र कुलालाभावात् घटेनजलाहरणपटेनप्रावरणरूप वा कार्यं न स्यात्, दृश्यते च घटोत्पादानन्तरदण्डादीनांविगमेपिजलाहरणादिकमिति । द्रव्यात्मककार्येसमवायि, असमवायिनिमित्तकारण च जनकं भवति, तत्रसमानजातीयंद्रव्यद्वयकपालात्मकसमवायिकारणमेतदुभयसयोगोऽसमवायिकारणनिमित्त च कुलालादिकम्, यथोक्तकारणसयवायेघटउत्पद्यते, तदा कारणविनाशेसतिकार्यमपिविनश्यति । तत्र कारणद्रव्यस्यानित्यस्थलेसमवायिकारणस्य, तथाऽसमवायिकारणकपालद्वयसयोगनाशेघटादे कार्यस्य विनाशो भवति, द्व्यणुकस्यकारण तु परमाणुरेव स च नित्यस्तत्रसमवायिकारणस्यनित्यत्वेन, समवायिकारणस्यविनाशासम्भवेन, तत्र परमाणुद्वयसयोगात्मकासमवायिकारणविनाशस्यैवद्व्यणुकादिकार्यनाशकत्वम् । घटविनाशेतुतयोरेकस्यापिविनाशे घटविनाशस्यानुभवसिद्धतयासमवायिकारणासमवायिकारणयोरन्यतरनाशस्यैवघटविनाशकत्वम्, परन्तु द्रव्यकार्यविनाशेऽदृष्टेतरनिमित्तकारणनाशस्य कार्यविनाशकत्व न भवतीति, नहि कुलालनाशेघटेनजलाहरण भवति ? किन्तु भवत्येव । ससारजनकादृष्टाभावेससारस्यनिवृत्तिदर्शनेन क्वचित् निमित्तकारणविनाशो भवतीत्यद्वैतवेदान्तिन कथयन्ति । एवञ्च द्रव्यात्मककार्यनाशेनिमित्तकारणविनाशस्यप्रयोजकत्व न भवति, गुणात्मककार्यनाशेतु गुणात्मकनिमित्तकारणविनाशस्यक्वचिद्विनाशकत्व भवतीति । अतएवाचार्येणकथित"लब्धात्मक स्वनिमित्त

कुलालादिकारणबलेन करोतीति । न च निमित्तकारणविनाशेकार्यनाशो भवति, इन्द्रिय संयोगादिनाशेरूपादिविज्ञाननाशात् । अत इन्द्रियेणसाकं चैतन्यमपिबहिर्निःसृत्यार्थेन महसंनिकृष्ट भवति । तथा सतिहितदुपाधिकत्वात् तज्ज्ञानस्य युक्त एव तदनुविधा-नम् । उत्पन्नंज्ञानंस्वकारणमिन्द्रियार्थसंयोगनाशे कथं निवर्तते । अन्यथासमुत्पन्न-मिन्द्रियविषयसम्बन्धाभावे कथमिव निवृत्तं भवति । अयंचदोषोज्ञानजन्यार्थधर्मप्रकाश-

मुखमपेक्षमाणो न कार्यं जनयितुमलमिति सक्षेप । ज्ञानस्यैवस्वकार्योत्पादनेस्वनिमित्तकारणमपेक्षेति-स्वीकारेचेदमपिवैषम्यप्रसज्येतेति भाव । अन्यदपिवैषम्यदर्शयितुमाह **नच निमित्तकारणविनाशे-कार्यविनाशः** अन्यत्र द्रव्यात्मकघटादिकार्यस्थलेनित्तकारणदण्डकुलालादिकारणस्यविनाशेपि घटात्मक कार्यं विनाशस्याननुभवात् । किन्तु ज्ञानागुणात्मककार्यस्यैवस्वकीयनिमित्तकारणनाशेन विनाश-कारेपिवैषम्य प्राप्त भवति तदुभयपक्षेपीत्यर्थ । कथं तर्हि प्रकाशस्यव्यवहारस्य वा समुपपादन स्यादितिचेत्तत्राह **अतइन्द्रियेणसाकं चैतन्यमपीत्यादि** । यथाचक्षुरादीनारश्मिरर्थसनिकर्षेनि सरति, तथैव, विपयार्थसयागेसतिधृतादिवत्तरलमनोपिवहिर्निगच्छति, मनसोपिसावयवत्वरूप "अन्न-मयसोम्यमन" इत्यादौ तथा सावितत्वादिति, ज्ञानस्यापिनिसरणे, तत्तदर्थसनिकृष्टस्यज्ञानस्यार्थप्र-काशकस्यार्थप्रकाशव्यवहारोपपादकत्वमवश्यस्वीकार्यमितिसिद्धान्तिमतम् । यथावा तडागादिजलना-लिकाद्वारेणतडागान्नि सृत्यतडागादिवदेव चतुष्कोणाद्याकारेणपरिणमते' तथैव तैजसोऽन्त करणमपि इन्द्रियादिद्वारेणवहिर्नि सृत्यसन्निकृष्टमर्थ व्याप्नोति, सोऽस्यपरिणामोवृत्तिज्ञानमितिज्ञानस्यार्थप्रकाश-कत्व तथा प्रकाशते घटादिरितिव्यवहारप्रयोजकत्व च निर्वहतीतिमनस सावयवत्वपक्ष । एत-न्मते न कोपि दोष । मनसोनिरंशत्वेकदाचित् दोष उन्मीमिषति । तत्रापि परपरयामनस सम्बन्धो-घटादिकमवतीतिविचारणीयमिति सक्षेप । एव सति किं फलिततत्राह **तथा सतिहितदुपाधिक-त्वादित्यादि** एव सति, इन्द्रियोपाधिकत्वात् विषयज्ञानस्येन्द्रियेणसहान्वयव्यतिरेकानुविधानतत्स-त्वेतत्सत्वतदभावे तदभाव इत्यादिरूपमपिघटते एव । अर्थात् यदाहि, चक्षुरादीन्द्रियेणप्रवृत्त्यादि-मत्वज्ञानस्यतत्तदर्थसन्निकर्षयुक्तस्यपदर्थप्रकाशकस्येन्द्रियार्थसनिकर्षान्वियव्यतिरेकानुविधायि, तदन्वय-व्यतिरेकयोरप्युपपत्तिर्भवत्येवेत्यर्थ ।

यदि चक्षुरादीन्द्रियद्वारेणज्ञानार्थयो सयोगसमवायसंयुक्तसमवायाद्यन्यतमसनिकर्षो न मन्येत तदानैवनिर्वाह स्यादित्याशयेन दोषदातुमुपक्रमते, **अन्यथा समुत्पन्न**मित्यादि, अयभाव यदि चक्षुरादीन्द्रियद्वारेणज्ञानस्य तद्विषयीभूतार्थस्य घटादे सनिकर्ष सयोगादारभ्यविशेषणविशेष्यता लक्षणान्यतमरूपो न मन्येत तदासमुत्पन्नज्ञानघटादिकम्, इन्द्रियार्थसनिकर्षस्यविगमे तज्ज्ञानस्य निवृत्तिःकथस्यात्, दृश्यते च यावदेवेन्द्रियार्थयो संनिकर्षस्तावदेवतज्ज्ञानावस्थानम् । एवचैतादृश सनिकर्षस्याऽस्वीकारे तथा निमित्तकारणनाशस्यकार्यनाशे कारणतया अभावात्, इन्द्रियार्थसनि-

वादिनामपितुल्यमेवयतःअर्थधर्मप्रकाशेज्ञानंनिमित्तकारणमेवेति कथं निमित्तकारणनाशे सतिकथमर्थप्रकाशात्मककार्यस्यनिवृत्तिर्भविष्यति, यावत्पर्यन्तंज्ञानंतावत्कालपर्यन्तं प्रकाशावस्थानंस्यादन्यत्र तथाऽदर्शनात् ।

कर्षस्यविनाशे कथ कार्यस्यविनाश स्यादिति । कार्य द्रव्य गुणकर्म च एतत्त्रितय स्वस्वकारणबलादुत्पद्यतेविनश्यति च । तत्र द्रव्यात्मककार्यस्यसमवायिकारणसमानजातीयद्रव्यान्तर यथाघटस्यकपालद्वयम् । तत्रासमवायिकारणकपालद्वयसयोग , समवायिकारणेआसन्नमनन्यथासिद्ध सत् कार्यं जनकयद्भवतितदसमवायिकारणमितितल्लक्षणात् , निमित्तकारणदण्डचक्रचीवरसलिलकुलालादिकम् , समवाय्यसमवायिकारणभिन्न वेसतिकार्यजनकयत्तदेवतथेति । तत्र द्रव्यात्मककार्यनाशेसमवायिकारणासमवायिकारणयोरन्यतरविनाश एव कार्यं विनाशयति । द्वयणुकविनाशेतदीयसमवायिकारणपरमाणोर्नित्यत्वेनविनाशासभवेन, तत्र परमाणुद्वयसयोगलक्षणासमवायिकारणविनाश एव कार्यविनाशक । गुणात्मककार्यनाश समवायिकारणद्रव्यविनाशात् क्वचित् समवायिकारणविनाशात् , कर्मण्यपि तथैव। विविच्यस्वयमूहनीयम् ।

इहतुइन्द्रियार्थसनिकर्षस्यज्ञानप्रतिनिमित्तकारणत्वात्तद्विनाशएवज्ञानस्यनाशक । अन्यथा तदन्यस्यकस्यचिदपिविनाशकस्याभावात् ,जनितमपिचाक्षुपादिज्ञान न निवर्तेत, अर्थतो ज्ञान नित्यस्यात्। नत्वेवसंभवति, जन्यस्यावश्य विनाश इतिनियमात् । निमित्तकारणविनाशो न कार्यंविनाशयतीतिनियमस्तु द्रव्यकार्यविनाशाभिप्रायक ।अर्थात् घटादिकयद्जन्यद्रव्यतत् समवायिकारणासमवायिकारणान्यतरकारणविनाशादेवनश्यति नतु निमित्तकारणविनाशात् , समवायिकारणासमवायिकारणे एव यावत् कार्यमवतिष्ठेते, नतु निमित्तकारणमपियावत्कार्यमवतिष्ठते । तद्विगमेपिकार्यस्यावस्थानदर्शनात् । अत कारणविनाशएवकार्यविनाशक इति प्राय साधारणोनियम । एवञ्चप्रकृतेज्ञानात्मककार्यस्य निमित्तकारणविनाश एव विनाशक इति सक्षेप ।

यद्यपि घटादिद्रव्यात्मककार्यस्यदण्डकुलालादिनाशेन नाशो न भवति । तथापि कुत्रापि निमित्तकारणनाशेकार्यं न नश्यतीति न सार्वत्रिकोनियम किन्तु क्वाचित्क एव । "अयमेकोयमेक" इति द्वौ, इत्याकारकापेक्षाबुद्धयाद्वित्वादिकासख्यासमुत्पद्यते, तादृशसख्यायाम् , यत्रद्वित्वमुत्पद्यते तद् द्रव्यम् समवायिकारणनिमित्तकारण चापेक्षाबुद्धिरेव भवति । पुनश्चापेक्षाबुद्धि क्षण चतुष्टययावत तिष्ठतितावदेवद्वित्वादे प्रत्यक्षजायतेऽपेक्षाबुद्धेर्विनाशेऽनेकाश्रयपर्याप्तद्वित्वादिसख्याना विनाशो भवति सत्यपिसमवायिकारणद्रव्यस्यविद्यमानत्वे । एवञ्च स्थलविशेषेनिमित्तकारणविनाशेनापिकार्यविनाशो भवतीति । अर्थात् समवायिकारणासमवायिकारणविनाशेन यथाकार्यंविनश्यति, तथा स्थलविशेषेनिमित्तकारणविनाशस्यापिकार्यविनाशकत्वमङ्गीकर्त्तव्यमेव । अन्यथाऽपेक्षाबुद्धिनाशेन द्वित्वादिसख्यानाविनाशानुपपत्ते । तथैवप्रकृतेऽपिनिमित्तकारणज्ञानस्यनाशेनार्थप्रकाशादेर्विनाश,

ननु निमित्तकारणनाशादपिकार्यनाशो दृश्यते, यथाऽपेक्षाबुद्धिनाशेन द्वित्वादिसंख्यायानाशदर्शनादितिचेन्न. असिद्धेः । अत एतादृशपूर्वपक्षो न युक्तः ।

स्यादित्याशङ्कामपनेतु प्रथम पूर्वपक्षमुपदर्शयति, **ननुनिमित्तकारण** इत्यादि । भवतुनामद्रव्यात्मककार्यनाशेद्रव्यात्मककारणविनाशो न कारणम्, किन्तु, यथा द्वित्वादिसामान्यगुणात्मककार्यनाश प्रतिज्ञानात्मकापेक्षाबुद्धिरूपनिमित्तकारणविनाशस्यप्रयोजकत्वेकाक्षति । एवमेव प्रकृते ज्ञानात्मकनिमित्तकारणविनाशस्यापिप्रयोजकत्व भवतु, इति प्रश्नाशय । तमिम दोष परिहर्त्तुमाह, **असिद्धेरिति** । निमित्तकारणनाशेनकार्यभूतायाद्वित्वादिसख्याविनाशो भवतीत्यसिद्धत्वात्, अस्वीकारात् । यद्यपेक्षाबुद्धिरूपनिमित्तकारणविनाशेन द्वित्वादेर्विनाश इति सिद्‌ध्येत, तदाद्वित्वादिकमुदाहृत्य तद्‌दृष्टान्तेनप्रकृतेपितत्साधन कदाचित्सभवेदपि, परन्तु प्रकृतोदाहरणमेवनाद्यावधिसिद्धम्, तत्रैववादिना विवादात्, वादिप्रतिवादिनिर्णीतमेव स्थलमुदाहरण भवति । यथा धूमेनपर्वतेवह्निसाधनावसरेमहानसादिकम् । हेतुसाध्ययोर्निर्णयो यत्र तदेवोदाहरण महानसेधूमसाध्ययो सहचरोदृश्यते, ततस्तत्रैकस्य धूमादिहेतो पर्वतेदर्शनेनवह्ने स्थितिरवगम्यते । इहतु तथा न विद्यते । अपेक्षाबुद्धिनाशेनद्वित्वादि विनाशस्यासिद्धत्वेन न निमित्तकारणनाशेनकार्यनाशोद्वित्वादिसख्यायानाशस्यदृष्टान्तत्वसभवतीतिभाव.

एकत्वसख्यावत्, तदन्यापिद्वित्वादिकासख्या, यावद्‌द्रव्यभाविनीसख्यात्वात् । सर्वाघटपटादिगतासख्याता सर्वापिसख्याद्रव्ये एव वर्तन्ते, तथा यावद्‌द्रव्यमवतिष्ठते, एकत्वसख्यानित्येप्यनित्येपि च वर्तते, तथा यावत्कालद्रव्यभवतितावत्पर्यन्तसासख्यापिभवत्येवेतिसर्ववादिसिद्धमेवनात्रकस्यापिविवाद । यापि द्वित्वादिकासख्याद्वित्वाद्यारभ्यपरार्द्धपर्यन्तेवर्तमानाऽनेकवर्तिनीसापिसख्यात्वसामान्यात्, एकत्ववदेवभवतीति, यथा एकत्वसख्या, यावदाश्रयभावित्वात्, अपेक्षाबुद्धिनाशान्ननश्यति, तथैव द्वित्वाद्यारभ्यपरार्धपर्यन्तेवर्तमानाऽनेकाश्रिता, सांख्या, ता अपि, अपेक्षाबुद्धिनाशान्ननश्यन्ति, सख्यात्वधर्मस्यसर्वसख्यासु समानत्वात्, यथैकत्वसख्या, अपेक्षाबुद्धिनाशेन नश्यति, तथैवद्वित्वाद्यारभ्यपरार्धपर्यन्तेवर्तमानासख्यापि, अपेक्षाबुद्धिनाशान्न नश्यतीति । "द्वित्वाद्यनेकाश्रयपर्याप्तासख्या, यावद्‌द्रव्यभाविनी, सख्यात्वादेकत्वसख्यावत्" तथा च तथैकत्वमपेक्षाबुद्धिविनाशविनाश्य न भवति, तथैवद्वित्वादयोपियावदाश्रयवर्तमानानापेक्षाबुद्धिनाशनाश्या भवन्ति । किन्तु यथैकत्वस्याश्रयद्रव्यविनाशादेवविनाशस्तथैवद्वित्वादीनापिआश्रयविनाशादेवविनाशइतिसिद्धान्तपन्था ।

इत पूर्वम्, द्वित्वादिपरार्धपर्यन्तसख्यायामनेकपर्याप्तायांयावदाश्रयभावित्वमनुमानप्रमाणद्वाराव्यवस्थापितम्, तथाचानुमानाकार, द्वित्वादिपरार्धपर्यन्तासर्वाऽपिसख्यायावदाश्रयवर्ती, अर्थाद् यावत् कालतदाश्रयद्रव्येतिष्ठतितावत्कालद्वित्वादिसख्यापितिष्ठत्येव, नतु मध्येनिमित्तकारणापेक्षाबुद्धिविनाशेनविनश्यति । कुत सख्यात्वात्, या या संख्यासाआश्रयनाशादेवनश्यति, एकत्वसख्यावत्, यथा

यत्तु "द्वित्वादिसंख्या न यावद्द्रव्यभाविनी अनेकद्रव्यवृत्तित्वे सति सामान्यगुणत्वात्संयोगविभागादिवत्" इतिसाध्यविपर्ययसाधकप्रतिहेतुना सत्प्रतिपक्षितत्वं स्थापना हेतोरिति । तन्न नानात्वे प्रतिहेतोर्व्यभिचारात् । विद्यमानयोरपि घटपटयोस्तन्नानात्वस्य [बहुत्वस्य] विनाशादर्शनात् । न च तन्नानात्वद्वित्वसंख्यैव त्रयाणां तद

पर्याप्तिकवृत्तिकत्वाभावस्वरूपकमेवेति । एतावता द्वित्वादिसखयाया यावदाश्रयभावित्वानुमानेद्वित्वादित्रित्वादिलक्षणदृष्टान्ते सखयान्तरविरुद्धत्वहेतोर्वैकल्यन भवतीति सूचित विशेषस्त्वन्यत्रेतिदिक् ।

अथ "द्वित्वादिसखयायावदाश्रयवती । [यावद्द्रव्यभाविनी] सखयात्वात्, एकत्वसखचावदिति यावद्द्रव्यभावित्वलक्षणस्थापनानुमाने सत्प्रतिपक्षदोषमाशक्यति **यत्तुद्वित्वादिसंख्या नयावद्द्रव्यभाविनी** इत्यादि । अयमाशय "समानबलबोधितसाध्यविपर्ययकत्वमेव सत्प्रतिपक्षलक्षणम्, अथवा "साध्याभावसाधकहेत्वन्तर यस्य स सत्प्रतिपक्ष" यथाशब्दोऽनित्य कार्यत्वात्, शब्दोनित्य श्रावणत्वात्, शब्दत्ववत्, अत्र नित्यत्वसाधकहेतो श्रावणत्वस्य यत् साध्य नित्यत्वतदभावोऽनित्यत्वम्, तस्यसाधको हेतु कार्यत्वम्, तथानित्यत्वस्याभावोनित्यत्व तादृशनित्यत्वस्य यत्साधक श्रावणत्वम्, अर्थात्, श्रावणत्वशब्दत्व दृष्टान्तीकृत्यशब्दात्मकपक्षे नित्यत्व साधयति, कार्यत्वच हेतुनित्यत्वविरोधिन नित्यत्वाभावमेवसाधयति, ततश्चैकस्य हेतोर्यत्साध्य तद्विरुणद्धि प्रतिहेतुस्तदन्यस्यसाध्यस्याभाव साधयति, अपरो हेतुरिति परस्परप्रतिरोधान्नकाप्यनुमितीति नवीनमतम् । रत्नकोशकारस्तु, परस्परविरोधिहेतु सद्भावस्थले संशयाकारैवानुमितिर्भवतीति । तदन्येतु अनुमितिशाब्दादीना निश्चयरूपत्वमेव नतु सशयरूपत्वमिति मन्यमाना उभयानुमित्यो प्रतिरोधमेवमन्यन्ते । अन्येतु गगेशोपाध्याया साध्याभावव्याप्यवान् पक्ष सत्प्रतिपक्ष यदा ह्रदो वह्निमान् जलादित्यत्र वन्ह्याभावव्याप्यजलवानिति परामर्शेन ह्रदेवन्ह्यनुमिति प्रतिरोध, यथा वन्हिमत्वज्ञान वन्ह्यभाववत्ता निश्चयो विरुणद्धि तथैव वन्ह्यभावव्याप्यजलवत्वादिनिश्चयोपि विरुणद्ध्येव अत्रत्यो विशेषविचारो गुरूपासनेनैवज्ञातव्य ।

अत्र प्रथमद्वितीयसत्पक्षलक्षणे प्रतिहेतुरावश्यक एव, तृतीयलक्षणेतु एकस्मिन्नपि हेतौ सत्प्रतिपक्ष सभवात् । ततश्चात्रद्वित्वादेर्यावदाश्रयभावित्वाद् प्रतिहेतुमुत्थापयति द्वित्वादिसखयायावदाश्रये न भवति अनेकद्रव्यवृत्तित्वे सति सामान्यगुणत्वात्, अनेन प्रतिहेतुना स्थापनानुमानहेतुवोधितो भवति । अर्थात्, यावदाश्रयभावित्व न सिद्ध्यति किन्तु तद्विरुद्धमयावद्द्रव्यभावित्वमेव भवतीति । परिहरतिपूर्वपक्षम्, **तन्ननानात्वेप्रतिहेतोर्व्यभिचारात्** । व्यविचारादिदोषमेवोपपादयति **विद्यमानयोरपिघटयोरित्यादि** अत्रनानात्वमर्थात् बहुत्वरूपमेव तादृशबहुत्वस्यापि, अनेकद्रव्यवृत्तित्वेन, यथा द्वित्वादिक व्यासज्यवृत्तित्वात् गुणरूपमेवभवति नतु पदार्थान्तरत्वम्, तथा बहुत्वस्यापिव्यासज्यवृत्तितया गुणरूपत्वमेव, नत्वत्र नानात्व भेदरूप, भेदस्य प्रतियोग्यनुसापेक्ष-

भावप्रसङ्गात्। न च घटादीना नानात्वम् तथैकत्वाभावरूपम् तुच्छस्य वन्ध्यापुत्रादेर-पि नानात्वप्रसङ्गात्। अपि च संवन्ध्यन्तरज्ञानसापेक्षत्वात् द्वित्वादिसंख्यायाः प्रतियोगिनोऽज्ञानेन ग्रहणमेव न भवति अपेक्षाबुद्ध्यादिसहकारिणा भावकालेग्रहणमेव द्वित्वादेर्नभवतीति संक्षेपः।

अपिच, भवन्मतेऽर्थप्रकाशकमेवज्ञानम्, यत्प्रकाशकं तदर्थसंयुक्तं सदेव प्रकाशयति, यथा प्रकाशकः सूर्यप्रदीपादिः, तस्माज्ज्ञानमपि विषयसंनिकृष्टमेव प्रकाशयिष्यति नासिद्धमिति। न च ज्ञानं न क्रियावत्, अमूर्तत्वात् गगनवदिति वाच्यम्,

त्वेपिऽव्यासज्यवृत्तित्वाभावात्। न च बहुत्वस्य व्यासज्यवृत्तिधर्मत्वेगुणरूपत्वे च तादृशबहुत्वस्य त्रित्वे एवान्तर्भावो भवत्विति वाच्यम्, मतविशेषेत्रित्वादिसखयायामेव तत्समावेशस्य स्वीकारात्। अन्येतु "इतोवहुतरेयसेने" त्यादिप्रतीत्या त्रित्वादिभ्यो भिन्नस्यैव स्वीकारात्। अतिरोहितत्वान्मूलाक्षरो न विवृत्त।

। इतिभाट्टप्राभाकराभिमतप्रकाशपदार्थेऽप्यनुपपत्तिप्रकरणेतत्त्वदीप ।

ननु यदि ज्ञानस्य विषयेण सनिकर्षोनानुमतो भवेत्तदार्थप्रकाश एव न भवेदित्यादिबाधिकायुक्तिगतप्रकरणे दर्शयित्वा, ज्ञानस्यार्थेन सनिकर्षोपगमे साधिका युक्ति दर्शयितुमुपक्रमते **अपिचेत्यादि** नकेवलबाधकाभावप्रदर्शनमात्रेण कार्यसिद्ध्यति, किन्तुवाधकापसारणानन्तर यदि साधकसद्भावोभवति, सामग्रया कार्योत्पत्तित्वनियमात्। नाहचाक्षुषे प्रतिबन्धकतमसोऽपसारणादेव चाक्षुषभवति किन्तु विषयेन्द्रियादीना सद्भावेन तत्कार्यभवति। तथैव प्रकृते ज्ञानस्यार्थसनिकर्षे साधक दर्शयितुमयमुपक्रम। भवन्मतेघटादिविषयस्यप्रकाशक ज्ञानमेव, यच्च प्रकाशक भवति तत् प्रकाश्यवस्तुनासह सम्बद्ध भवति नान्यथा, यथाघटादिप्रकाशकमणिप्रदीपादिक घटादि सम्बद्ध भवति तदैव प्रकाशयति, नावर्तमान नवाऽसम्बद्धसत्। नहिरजन्या प्राङ्गणेवर्तमान प्रदीपोगृहकोणेस्थित घटादिक प्रकाशयतीति दृष्टमुपपद्यतेवा। तथैव ज्ञानस्यापि प्रकाशकत्व सामान्यात् तथैवभवितुंयुक्तमिति ।

ननु प्रतिपादिकमूर्तमिति भवतु तस्य विषयसम्बद्धं तथा भवतु ज्ञानतु न मूर्तंद्रव्यमपित्वमूर्तंद्रव्यम्, तथा च यथाऽमूर्तस्य गगनक्रियायोगोन भवति तथैवामूर्तस्य ज्ञानस्यापि न स्यात्। क्षितिर्जल तथा तेज पवनोमन एव च। परोपरत्वमूर्तत्वक्रिया वेगाश्रयाअमी" इति नियमात्। क्रियावत्वमेव मूर्तत्वमपकृष्टपरिमाणवत्व वा, एतादृशमूर्तत्व द्रव्याणामुपयुक्तानां पृथिव्यादीनामेव, तत्त्वद्रव्यस्य गुणादे र्मूर्तत्व कथमपि सभवति। अद्रव्यत्वादेव च ज्ञानस्यबहिर्नि सरणरूपक्रियायोग संभवतीत्याशङ्कते **न च ज्ञानंनक्रियावदमूर्तत्वात् गगनवदित्यादि** यथा मूर्तभिन्नस्य व्यापक गगनद्रव्यस्यामूर्तत्वात् क्रिया सम्बन्धो न भवति तथाऽमूर्तस्य ज्ञानस्य क्रियायायोगो नवक्तु शक्यमिति पूर्वपक्षाशय।

विकल्पासहत्वात्, तथा हि केयमूर्तिर्यदभावज्ञाने क्रियावत्वं न भवति न च पारिभाषिकमेव मूर्तत्वं द्रव्यत्वे सति क्वाचित्कत्वमिष्येत तदा एतादृशंमूर्तत्व ज्ञाने इष्टमेव नहि ज्ञानंसर्वगतंद्रव्यम्, तथा सति एककाले एव सर्वार्थसिद्धिप्रसङ्गात्। क्वाचित्कत्वेतु तज्ज्ञानंयदा, एकैकेन्द्रियेण संयुनक्तितदज्ञानं तदर्थाभिमुखं भवति, तदा तज्ज्ञानं नेन्द्रियान्तरमधितिष्ठति। अत एवयुगपज्ज्ञानानुत्पत्तिरपि संगच्छते। निरतिशय वेगवत् तत्, युगपदतिशयिनवेगवदनेकेन्द्रियाधिष्ठानदर्शनेनतथोक्तंमूर्तत्वं न सिद्ध्यति। न च स्पर्शवत्वमिति स्पर्शाभावेन क्रियावत्वं तत्र नास्तीतिवाच्यम्, शब्देन

तदेतन्मत विकल्पपराहतत्वान्न युक्तमित्युत्तरयति **विकल्पासहत्वादिति** विकल्पप्रकार मेवोपपादयति **तथाहिकेयंमूर्तिरित्यादि,** अत्र किमिद मूर्तत्व भवदभिमतम् यस्याभावेन ज्ञानेक्रिया सम्बन्ध प्रतिपाद्यते ? नच तन्मूर्तत्वम् पारिभाषिकम्, द्रव्यत्वे सतिक्वाचित्कत्वरूपम्, अर्थाद् यद्द्रव्य रूप सत् कदाचिद् भवति कदाचिन्नभवति, यथाऽनित्यपृथिव्यादिकम्। अर्थात् अव्यापक द्रव्यमेव मूर्तमदवाच्य भवतीति। एतन्न शोभनम्, नहि ज्ञानस्य व्यापकत्वमस्माकमभिमतम्, बन्धकालेऽर्थात् ससारदशायाज्ञानस्याविभुत्वस्यैव स्वीकारेणेष्टत्वात्। अर्थात् अव्याप्य, द्रव्यरूपत्व मूर्तरूपत्वतु ज्ञानस्य स्वीकृतमेवेतिज्ञानस्यापि मूर्तत्वात्, तादृशज्ञाने क्रियाया अयोगोन वक्तव्य। अन्यथा ज्ञानस्यव्यापकत्वे स्वीकृतेतु, तादृशज्ञानस्यव्यापकतया सर्वेणार्थेन सर्वदा सम्बद्धत्वात् युगपदेव सर्वस्याप्यर्थस्यसिद्धिप्रसङ्गापातात्। ज्ञानस्य क्वाचित्कत्वेतु, तद्ज्ञान यदैकदा चक्षुराद्येकेनेन्द्रियेण सयुक्त भवति, तदा तदर्थाभिमुखमेव प्रवर्तयति, तस्मिन् समयेनेन्द्रियान्तरेण सम्बद्ध भवति। अर्थादेकेन्द्रियाधिष्ठानसमये, तदन्येन्द्रियसयुक्त भवन्नेन्द्रियान्तर प्रवर्तयति तदर्थ सम्बन्धायेति। एवञ्चाव्यापकद्रव्यत्वद्रव्यत्वरूपमूर्तत्वस्यज्ञानेपि सद्भावान्नामूर्तत्व यथोक्तलक्षण ज्ञानेऽसिद्धमपितुसिद्धमेवति। यत एकदा एकेन्द्रियेण सम्बन्धोनेन्द्रियान्तरेण, अतयुगपद्ज्ञानोत्पत्तिर्न भवतीति। अथवा निरातिशयवेगवदेव तत् अतो युगपदिवत्वराऽनेकेन्द्रियाधिष्ठान वदेव भवतीति दृश्यते। तस्मादेतादृशममूर्तत्वमसिद्धमेवेविभाव।

यदपि स्पर्शवत्वमेव मूर्तत्वम्। एव चैतन्मतेपृथवाजलतेजोवायुद्रव्याणामेव स्पर्शवत्वेन तेषामेव मूर्तत्वम्। तथा च ज्ञानस्य गुणत्वेनस्पर्शवत्वाभावेन निष्क्रियत्वमिति। तदपि न समीचीनम्, शब्देव्यविचारात्, अर्थात् यस्यास्पर्शवत्व तस्य क्रियारहितत्वमिति नियमोप्यसिद्धएवा मूर्तस्यापि शद्वस्य क्रियावत्वदर्शणात्। शखभेर्यादिप्रदेशे विद्यमानोपि शब्दोवीचितरङ्गन्यायेन कदम्बगोलकन्यायेन दूरतरमपि कर्णप्रदेशे आगत्य कर्णशष्कुल्यवच्छिन्ननभ प्रदेशे समवैति तदा तस्यश्रावणप्रत्यक्ष भवतीति शब्दस्यामूर्तस्यापिक्रियावत्व दृश्यते एवेति मूर्तत्वाभावेपि तत्र शब्दे क्रियावत्वदर्शनेन व्यभिचारो भवत्येव। तदुक्तम् "शब्दोध्वनिश्च वर्णश्च मृदगादि भवोध्वनि।

व्यभिचारात् । शब्दोहिशंखमुखादेर्दूरदेशादपिनोदनसंयोगविशेषेण प्रस्तरखण्डवत् , स्पर्शरहितोपि यावद्वेग तिष्ठति । स्पर्शरहितस्यापि मनसः क्रियावत्वंन्यायविदामनुमतमेव । स्पर्शरहितस्यापि जलीयत्रसरेणोः क्रियावत्वाभ्युपगमात् ।

ननु कथमविद्यमनयोरतीतानागतपदार्थयोर्ज्ञानेन सम्बन्धोऽतीतत्वादेवेति चेदत्राहुर्यथातीतानागतयोर्विषयविषयिभावः प्रकाशमानत्वं द्वयादिसंख्यासम्बन्धो वा भवति

कण्ठताल्वादिजन्या च वर्णास्ते कादयो मता । सर्व शब्दो नभोवृत्ति श्रोत्रोत्पन्नस्तुगृह्यते । वीचितरङ्गन्यायेन तदुत्पत्तिस्तु कीर्तिता । कदवगोलकन्यायादुत्पत्ति कस्यचिन्मते'' एवञ्च स्पर्शवत्वाभावेन भवदभिमता मूर्तस्य शब्दस्यक्रियावत्वस्य दर्शनात् । अन्यथा तस्यातिदूरस्थितशखादिप्रदेशे समुत्पन्नस्य कर्णप्रदेशे प्रत्यक्षता न स्यात् । तथा च तद्वदेव स्पर्शरहितस्यापि ज्ञानस्य प्रसरणादिक्रियावत्व नानुपपन्न भवतीति शब्देव्यभिचारदर्शनम् । यस्यवैयाकरणादेर्मते शब्दस्य द्रव्यत्वमिति सिद्धान्तस्तन्मतमाश्रित्यैवेति । अन्यथा निर्गुणनिष्क्रियस्य शब्दस्य क्रियावत्वप्रतिपादननोचित भवेदिति । यस्य नैयायिकादेर्मतेशद्वो न द्रव्यरूप किन्तु गुणात्मकस्तन्मते शब्दे व्यभिचारप्रदर्शनमयुक्तमित्याशयेनमनसि व्यभिचार दर्शयितुमाह **स्पर्शरहितस्यापिमनसः** इत्यादि । यत् स्पर्शरहित तन्नक्रियावदितिनियमे मनसिव्यभिचारात्, यतोन्यायमिमासकादीना मते स्पर्शवत्व मनसि नास्ति तथापि तत्र मनसि क्रियावत्वस्वीकारात् । कथमन्यथा प्राणमन प्रभृतीना प्रयाणकाले देहाद्देहान्तरे गमन स्यादिति सक्षेपो विस्तरस्त्वन्यत्र द्रष्टव्य ।

ननु घटाद्यर्थेन सह सनिकर्षसत्वे एव ज्ञानस्यार्थप्रकाशकत्वमिति मन्यते तदाऽर्थस्य वर्तमानतादशाया यथाकथचिन्निर्वाहसभवेऽपि, अतीतेनागतेनवाऽर्थेन घठादिना सह सन्निकर्षस्य न सभवोऽर्थाभावात्, तादृशस्थले कथ ज्ञानेन तत्तदर्थस्य प्रकाशो वा व्यवहारश्च कथस्यादित्याशयेनशङ्कते **ननु कथमविद्यमानयो**रित्यादि । अर्थात्, यत्रविषयो वर्तते तत्रतु ज्ञानार्थयो सम्बन्धस्य विद्यमानत्वेन ज्ञानमर्थसनिकृष्ट भवत् सम्बन्धवलात् प्रकाशयिष्यति, परन्तुध्वंसप्रतियोगित्वलक्षणातीते, प्रागभावप्रतियोगित्वलक्षणानागते, अर्थस्य विनष्टत्वेनानुत्पन्नत्वेन तादृशार्थस्य ज्ञानेन सम्बन्धस्याभावात्कारणाभावेन तादृशार्थाना प्रकाशोवा व्यवहारोवा न स्यादितिशङ्काशयः ।

अत्र यद्यपिवास्तवमुत्तरमग्रे कथयिष्यति सम्प्रति शङ्ककस्यमुख सार्गलीकर्तुं **प्रतिवन्दीमेवाह अत्राहुर्यथाऽतीतानागतयो**रित्यादि, ननु भो भवन्मते कथ तयोर्विषयविषयिभाव मानत्व वा सम्भवति ? तव मते यथा निर्वाहस्तथैवमन्मतेपि बोद्धव्य । अर्थात्, वैशेषिकमते, अतितानागत पदार्थयोर्वार्तमानिकज्ञानविषयत्वम्, भट्टमतेतु वर्तमानज्ञानाधीनप्रकाशात्मकधर्मसमवायित्वम्, तदुभयमते द्वित्वादिपरार्द्धान्ता सख्या वर्तमानकालिकापेक्षाबुद्धिजन्यैव भवतीत्येतेषा कथ निर्वाहो भवतीति विचार्यताम् । ततश्चैतेषा यो हि निर्वाह प्रकार स एव प्रकारोममतेकिम् **दण्डवारितः ?** ।

तथैवप्रकृतेपि समाधातुं शक्यत्वात् । अपिचातीतानागतौ न सर्वथाऽविद्यमानावपितुतौ, अतीतत्वानागतत्वादिना विद्येते एवेति तेनैव रूपेणतयोर्ज्ञानसम्बन्ध इति नानुपपत्तिः । किञ्च यथावाऽतिविप्रकृष्टदेशस्थितध्रुवादिना सहज्ञानस्य सम्बन्धस्तथैव विप्रकृष्टेपिकालेदूरादिकालवर्तिज्ञानस्य सम्वन्धोभवत्येव नायनतेजोवत् ।

ज्ञानविषयतायां ज्ञानाधीनधर्मवत्वे ज्ञानाधीने एव तत्रार्थस्यवर्तमानकालिकत्व नापेक्षित भवति, तत्रार्थस्यापेक्षणेऽतीतादिविषयस्यज्ञानेन कथमपि प्रकाशन न स्यादित्यकामेनापि स्वीकर्त्तव्यमेव। एतादृशस्थले सर्वोपियदित्थमेव मन्यते तदाममापि, इत्थमेवनिर्वाहो भवेदिति कस्तत्र प्रद्वेषो भवताम् ।

अयभाव लौकिकविषयतासम्बन्धेन प्रत्यक्षस्थले एव तादात्म्यसम्बन्धेन विषयस्य कारणत्व मिति नियम । "सम्बद्ध वर्तमान च गृह्यते चक्षुरादिनेति" प्राचीनोक्ते । प्रत्यक्षेऽर्थेन सहेन्द्रिय सयोग आलोकसहकारस्यपेक्षणात् । अन्यथा निविडेपितमसि घटादीना चक्षुपादिप्रसङ्गात् । परोक्षानुमित्यादिस्थलेतु, नार्थस्य कारणता, यत —पर्वतस्थवन्हे परोक्षात्, तत्रतुव्याप्त्यादिवले- नैवार्थज्ञानजायते । अनुमित्यनन्तर वन्हेर्ज्ञानेजातेपि कीदृशोवन्हि: पर्वते इति जिज्ञासायादर्शनात् । प्रत्यक्षज्ञानम्, विशेषणादि सहितविशेष्य विषयक विशेषरूपेण भवति, तत्रार्थेवर्तमानादिकालस्यार्थ सनिकर्षादीनो सर्वेषा समवलनम् । परोक्षस्थलेतु समान्यज्ञानमेवजायते । एवम् प्रत्यक्षेपि सर्वत्रनार्थस्य वर्तमानत्वनियम योगिना सर्वदा सर्वविषयक त्रिमालस्थितपदार्थविषयक ज्ञान भवति । युजानयोगिना तु योगजधर्मपुरस्कारेण मनसा सर्वविषयकज्ञान प्रत्यक्षमेव भवतीति शास्त्रमर्यादा। तत्रयथानार्थस्य वर्तमावत्वमपेक्षित तथैवातीतानागतपदार्थज्ञानेपि, अर्थगतवर्तमानत्व नैवापेक्षित भवतीति । अन्यथा चिरातीतस्यसर्वेश्वरश्रीरामचन्द्रस्यकथाश्रवणे लोकाना प्रवृत्तिर्नैवस्यात् । तत्रार्थस्य चिरातितत्वात्, तथा भविष्यत्कालिककल्पादिगतभगवत्स्वरूपस्य चिन्तनादिकमपिन स्यादिति कृत विवेचनेन ।

वस्तुतस्तुश्रीरामानन्दवेदान्तसिद्धान्ते ध्वसप्रागभावात्मकावस्थाविशेषेणातीतानागतपदार्थयोरपि ज्ञानकाले सत्वविद्यते एवेतितयोरपि ज्ञानेन सम्बन्धो विद्यते एवेत्याशयेनाह, **अपिच** इत्यादि। अतितानागतावपि, अतीतत्व रूपेणागतत्व रूपेण चाद्यापि विद्यते एवेतितत्तद्रूपेणार्थात्, अनागतत्वरूपेण ज्ञानसनिकर्षे न भवति काप्यनुपपत्ति । सर्वस्यापि पदार्थस्योत्पत्तिस्थितिविनाशाभवन्ति। तत्रोत्पत्ते पूर्वकालिकीकारणसमवधानरूपावस्थाप्रागभावरूपैव, इह घटो भविस्यति । उत्पत्तेरनन्तरं जायमानाऽवस्थास्थिति तत्रजातो घटादिरिति प्रतीतिर्भवति । दण्डादिप्रहारानन्तरयाऽवस्थासा विनाशावस्था यत्र विनष्टोघट इतिप्रतीतिर्जायते । एवञ्च सर्वोपि पदार्थोऽवस्थात्रययोगयुक्त एव भवतीति कदाचित् स्वस्थितिकाले वर्तमानत्व तदीयरूपम्, उत्पत्ते. पूर्वमनागतत्व रूपम् विनाशानन्तरमतीतत्वचतदीय रूपमिति, सर्वदैव पदार्थस्य सत्वात् तत्तद्रूपेण तस्यज्ञानसम्बन्धोऽव्याहत

किञ्चातीतानागतपदार्थौ न बुद्धेर्विदूरौ ज्ञानेन प्रकाशमानत्वात्, सन्निकृष्टवत् । यथाज्ञानं ज्ञानविप्रकृष्टं न भवति ज्ञानेन प्रकाशनात् । यथावा बोद्धा ज्ञाता ज्ञानेन दूरो न भवति ज्ञानप्रकाश्यत्वात् । यो येन प्रकाशितो भवति स तेन दूरो न भवति प्रकाश्यत्वादेवेति । तथैव प्रकृतेऽतीतानागतकालयोस्तत्र स्थितपदार्थयोर्बुद्ध्याप्रकाशमानत्वात् ततो विप्रकृष्टत्वमतीतानागतयोर्न भवति ।

एवञ्चज्ञानस्य सर्वातिशायिवेगवत्तया मध्यवर्तिदेशकालयोरग्रहणीयमानो भवति. अलातचक्रभ्रमणे देशविशेषसंयोगविभागस्याग्रहणाभिमानवत् ।

एवेति न काप्यनुपपत्तिर्भवतीति भाव । अथैवमपि तत्तदतीतादिकालस्थायतनीयज्ञानेन ग्रहण न स्यात, यतस्तत्कालस्य सम्प्रतिवर्तमानतायामभावादित्याशङ्कायामाह, **किञ्च** इति । यथा दूरे देशे विद्यमानध्रुवादिवस्तुना सहनाचननेजस सयोगादि सनिकर्षो भवति ततश्च तद्विषयक ज्ञानमत्र स्थितस्यापिजायते इति सर्वानुभवसिद्धम, तथैवातिदूरेऽनागतेऽतीते वा काले विद्यमानस्य पदार्थस्य ज्ञानमध्यस्थितस्यापि स्यादेव । अर्थाद् ज्ञानस्यातिवेगवत्वात , तेन तेन कालेन सनिकर्षसम्भवात्, तत्रत्पदार्थग्रहणेन किञ्चिदपगत भवति । ज्ञानस्य व्यवहितकालेन सह सनिकर्षो भवतीत्यत्रातिदूरदेशस्योदाहरण प्रदर्शितम् । यथा नयनकिरणस्यातिवेगवत्तयाऽतिविप्रकृष्टपदार्थेन सह क्षणेन सनिकर्षस्तद्विषयकज्ञान तथैव विप्रकृष्टकालेपीति भाव ।

परिमाणतोऽतिदूरोपि पदार्थस्तस्य ज्ञानेन सह सनिकर्षो भवतीतिगतफक्किकया प्रतिपादितम् , इदानींतु ज्ञानापेक्षया कस्यचिदपि दूरत्वन भवतीतिप्रतिपादनायानुक्रमते **किञ्चातीतानागतपदार्थौ** इत्यादि । अयमर्थ अयमस्मात् सनिकृष्टोऽयमस्माद्विप्रकृष्ट इति व्यवहारस्तु जडपदार्थमाश्रित्य, तत्रापि देशकालौ वाऽपेक्ष्य भवति, प्रायोमूर्तवस्तुनि, नत्वमूर्ते प्रकाशशीले वेति प्रायोनियम । यथा घट पटात् देशत कालतोवा सन्निकृष्टोवा दूरोवेति व्यवहारदर्शनात् । ज्ञानतु प्रकाशात्मकमतीव वेगवच्च भवति, इतिज्ञानापेक्षया न कोपिविप्रकृष्टोऽपितु सर्वोपि सन्निकृष्ट एव । तेन सर्वस्यापि ज्ञानेन सनिकर्षो विद्यते, इति दूरत्व समीपत्व चानपेक्ष्यैव सर्वस्यवस्तुन सर्वदा प्रकाशनतदीयव्यवहारोपि भवत्येव । एतादृशस्थितौ अतीतादिज्ञानस्य कथ सन्निकर्ष इति प्रश्न एव नो युक्त । कथमन्यथा चीरोतीतवस्तुन शब्दादिप्रमाणेन ज्ञापन सार्थक भवेदिति । तस्मात्सुष्ठूक्त श्रीरामानन्दसम्प्रदायाचार्यप्रवरेण "अतीतानागतपदार्थौ न बुद्धेर्विदूरावित्यादि" ।

विप्रकृष्टदेशकालयोर्ज्ञानेन सनिकर्षोभवतीतिकथित तत्र व्यवहितदेशकालयो सन्निकर्षस्तदन्तरालस्थदेशकालयो ससर्गनियत इति दूरस्थदेशकालग्रहणवदन्तरालस्थदेशकालयोरपिग्रहणस्यादित्याशङ्कामिदानीं सनाधातुमुपक्रमते **एवञ्च ज्ञानस्यसर्वातिशायिवेगवत्तये** यादि । अयमर्थ यथा सूर्यस्य-

किञ्चेन्द्रियलिङ्गशब्दसंकारादिनां यदर्थनियतस्वरूपम् , तेनैवोपश्लिष्यबहिर्वि निर्गमञ् ज्ञानमपि तद्विषयेणैव सङ्गतमिवभवति, नतु विषयान्तरेण ज्ञानं संसृष्टंभवति।

यथा घटपटादिपदानां शक्तिः सामानन्यविशेषात्मके वस्तुन्येकबुद्धिसिद्धेषि घटत्वादिसामान्यांशेनैव सम्बन्धोभवति । यथा वा विधिशास्त्रं "स्वर्ग कामो यजेत"

चन्द्रमसो वा प्रकाशस्तैजसद्रव्यत्वात् , अतिशयितवेगवानिति नेत्रादिना बहिर्नि सृतोझटिति दूरदेश गत्वाप्रकाश्य प्रकायति अन्तरालस्थितमपि न प्रकाशयति, अलातचक्रादौम यस्थितयोगादिवत् , तथैव तैजसत्वात् चक्षुरादीन्द्रियद्वारेणनि सृत्यदूरस्थमपिग्राह्यगृह्णाति,तदन्तरालस्थस्याग्रहणाभिमानमात्रनायते, इति समाधानग्रन्थस्यमुकुलिताशयोभवतीति वेददिनाप्रक्रिया । अथैवमपि, यथा तडागोदक जलनालिका द्वारेणकेदारप्राप्यसवानेव प्लापयति तथैव चक्षुरादिद्वारेणबहिर्नि सृतज्ञानस्ययथा रूपादिना सम्बन्धो जायते, तथैवतत्रस्थिररसादिना सन्निकर्षेविद्यमानेपि, तत्रज्ञानेनरूपस्यैवप्रकाशन भवति नतुतत्ररसा दीर्नाचक्षुरयोग्याना ग्रहणभवतीतिलोकस्थितिरिति सेयव्यवस्था कथमुपपादितास्यादित्याशयेनाह **किञ्चे-न्द्रियलिङ्ग** इत्यादि । व्यवस्थामेवोपपादयति, चक्षुरादीन्द्रियलिङ्गाना यदर्थनियतरूपम् , तमेवार्थविशेष समासाद्य नि सरतिज्ञानमिति तादृश ज्ञानतादृशमेवार्थविशेषविपयीकृत्यप्रकाशयति, नतु स्वायोग्यविषयेण सम्बन्धोनवाज्ञातेनान्यस्य प्रकाशो वा भवति । तदुक्तम् "उद्भूतरूपनयनस्य गोचरोद्रव्याणितद्वन्ति पृथक्त्वसङ्ख्ये । विभागसयोगपरापरत्वे स्नेहद्रवत्वपरिमाणयुक्तम् " क्रियाजातिर्योग्यवृत्तिसमवायोपि तादृश । गृह्णातिचक्षु सयोगादालोकाद्भूतरूपयोरितिनियमात् , यत इन्द्रियादिक तत्सर्वस्वयोग्य विपयेणसम्बद्धभवत्तद्विपयकमेव ज्ञानमर्जयति तेन च तादृशार्थस्यैवप्रकाशोजायते । यथारूपरसादि विशेषणयुक्तघटे सयुक्तंचक्षुरूपरूपत्व तद्द्रव्यमेवगृह्णाति तद्विपयकज्ञानमेव च जनयति, नतुघटस्थित रसमिन्द्रियायोग्यार्थविषयकज्ञानजनयतीन्द्रियलिङ्गादीना स्वभावात । अतएव"यदाकारान्त करण वृत्तिर्जायते यदातदातद्विपयकमेवज्ञानभवतीति केवलाद्वैतानुयायिधर्मराजाध्वरीन्द्रवचन सार्थकमिव भवति । यदर्थनियतरूपम यादृशार्थे एवस्थित बोधजनकतारूपंसामर्थ्यम , तेन तदर्थप्रतिनियत रूपेणेन्द्रियलिङ्गादीना संप्रतिनियतार्थविषयकज्ञानमेव भवतिनान्यायोग्यार्थेनसहेन्द्रियादे सम्बन्धो न वातदन्यार्थविषयकज्ञान वा भवतीति । एवञ्च चाक्षुषज्ञानस्य नरसादिविषयेण सम्बन्धोनवा तदीय ज्ञानजननमपिभवति । अस्मिन्नर्थेऽर्थाद् योग्याशेनैवेन्द्रियलिङ्गादीनासम्बन्धेऽनुरूप लौकिक वैदिकच दृष्टान्त घटादिदर्शयितुमाह, **यथाघटपटादिपदानांशक्ति** यथावाविधिशास्त्रमित्यादि । घटादिपदाना यदिव्यक्तिमात्रेशक्तिग्रहोभवेत्तदा व्यक्तीनामानन्त्यात् , शक्तेरपि तथात्वमर्थादानन्त्यस्यादित्यतीव गौरवस्यात् तस्माद्गवादिपदाना गोत्वविशिष्टेशक्तिस्ततश्चनशक्तेरानन्त्यम् । नचैवयदिशक्तेरनुगमाय जातौशक्तिस्तदा जातेर्गवादिपदशक्यतास्यान्नतुव्यक्तेस्तथात्व स्यादिति वाच्यम्, ज्ञातायाशक्तेर्जातौ स्वीकारात् । व्यक्तौतु स्वरूपसती एव शक्ति । अथवाव्यक्तेर्बोधोलक्षणयैवेतिकेचना । अर्थात् गवा-

इत्यादिकं प्राप्तांशं परित्यज्याप्राप्तांशमेव भावनाया विषयीकरोति । तस्मात् चक्षुरादीन्द्रियद्वारेणचैतन्यं बहिर्निःसृत्येन्द्रियसंयुक्तमर्थं विषयीकरोतीति वक्तुमेव युक्तम् ।

अतएवगीतायां श्रीकृष्णोप्याह "तदस्य हरतिप्रज्ञांवायुर्नावमिवांभसि" । "इन्द्रियपदशक्तेस्तत्तद्व्यक्तिलक्षणविशेषेणसम्बन्धेन।भ्युपगमे घटादिपदात् व्यक्त्यन्तरस्यबोधो न स्यात् सामान्यायोगेनजात्यासम्बन्धे सति सर्वस्यापिव्यक्तेर्बोधोनिर्वहतीतिनटपदयोग्यत्व जा यात्मकसामान्यस्याभिमतमीमांसकादीनामिति । यथावा विधिशास्त्रमित्यादि "अप्राप्तप्रापकोविदभागानिधियेशा "स्वर्गकामोयजेत' अत्र स्वर्गकामिन स्वर्गोद्देशेनयागस्यविधानभवतिस्वर्गात्मकफलस्य प्रमाणान्तरणाप्राप्तत्वात् , अप्राप्तागपरिकरणफलकत्वविधि । प्राप्तप्रापकत्वे विधेवयर्थ्यमेव । तदुक्तम्—

"प्राप्तेकर्मणि नानेकाविधातु शक्यते गुण । अप्राप्तेतु विधीयन्त वहवाऽप्येक यत्नत ॥' इति ।

विधिवाक्यस्य प्राप्तार्थेऽन्वये स्वीक्रियमाणे स चान्वयोनिरर्थकएवकुतस्य कणायागादिष्वप्राप्तेनैवसम्बन्धोवक्तव्य इतितेनतेनतत्तदन्वय एवेष्ट स्यात् , अप्राप्तप्रापकवेद भागस्यैवविधित्वात् तथाच यत्र यस्यविधि सार्थक्यमन्यथातुनर्थक्यमेवापतत् । एवप्रकृतेऽपि, तत्तदिन्द्रियजनितरूपादिज्ञानस्यतत्तदिन्द्रियग्राह्ययोग्यार्थेनसहैव सम्बन्धोवक्तव्य । अन्यथा एकेन्द्रियजनितज्ञानेनैवसर्वार्थग्रहणसंभवेन, अन्धकाणवधिरादिव्यवस्था सर्वथवनिरालम्बनास्यात् । व्यवस्याविलोपापतेदिति । न चेष्टापत्ति । एवमनिश्रुताचक्षुरादीन्द्रियाणा परस्पर स्वकीयमहिमाप्रत्यापनाय य कलह श्रुत सचकलहोऽप्रासङ्गिक एवापतेदितिसंक्षेप । **भावनाया विषयीकरोतीति,** यथाभावनाद्विविधा, शाब्दीभावनाऽर्थाभावनेति भेदात्' साचसाध्यसाधनेतिकर्त्तव्यतासापेक्षाभवति । तत्रसामान्यत साध्यसाधनाद्यन्वयित्वेऽपि भावनान्वयिन्यप्राप्तेसाधनांशे एव विधिवाक्यस्यतात्पर्यमिति मिमांसका अभ्युपगच्छन्ति । अतइन्द्रिय द्वारेणचैतन्यलक्षणज्ञान तत्तदर्थाभिमुखमेवेन्द्रियद्वारेणभवति, अथात् ज्ञानस्वयोग्यार्थविषयकमेवनिःसरतीति स्वीकरणमेवयुक्तन्याय्यचेति ।

ततश्चसम्बन्धविशेष एवज्ञानार्थयो सन्निकर्षोनतुसम्बन्धमात्रम् । सचसम्बन्धविशेषस्तत्तदिन्द्रिययोग्यार्थेन सहैवतत्तदिन्द्रियजनितज्ञानस्येति न चाक्षुषज्ञानविषयोरसादिर्भवतीत्यभिप्राय । वस्तुतस्तुचक्षुरिन्द्रियजनितज्ञानस्यरसादिनासम्बन्धएवनास्ति चक्षुराद्ययोग्यत्वात् रसादे । यथा घटस्यचाक्षुषे, घटसंयुक्तघटेचक्षुप संयोग सन्निकर्ष घटसमवेतरूपतद्गतजातौ च समवेतसमवाय सन्निकर्षस्तथापिचक्षुषा घटघटरूपस्यरूपगतरूपत्वस्यैवज्ञानजायते परन्तुतेनवसमवेतस्यरसस्य तथागन्धादेर्ज्ञान न जायते, कुत ! चक्षुरयोग्यत्वाद्रसादेस्तस्मात् सन्निकर्षस्यज्ञानजनकत्व भव येवेतिनियम , परन्तु योग्यतायाअधिकरणत्वमिति नान्यन्द्रिययोग्यस्यान्येनेन्द्रियेण प्रत्यक्षम् , नवाऽन्येन्द्रियजनितज्ञान विषयत्वमन्येन्द्रिययोग्यविषयस्येति । इन्द्रियार्थाभिमुखतयैवज्ञानस्यबहिर्निसरणभवति गीतावचनमपि प्रमाणयति **'इन्द्रियाणांहिचरतांयन्मनोऽनुविधीयते । तदस्यहरतिप्रज्ञांवायुर्नावमिवांभसि**

याणां हि सर्वेषां यद्येकं क्षरतीन्द्रियम् । तेनास्य क्षरति प्रज्ञा दृतेः पादादिवोदकम् " इति-मनुनाप्युक्तम् ।

यत्तु कश्चित् , चैतन्यं गुणः सच गुणिनमात्मानं परित्यज्य कथं विषयपर्यन्तं यास्यति ज्ञानात्मनोरपृथक्सिद्धत्वात् । तदयुक्तम् , परित्यागस्यास्वीकारात् । आत्मानमपरित्यजदेव ज्ञानं यतस्ततः इन्द्रियादिद्वारेण प्रयाति सवितुः प्रकाशवत् , यथा सौरश्चान्द्रमसो वा प्रकाशः स्वाश्रयमपरित्यजन्नेव चतुर्दिक्षु प्रसर्गति । तथैवात्रापि । विच्छिन्नायाश्चेतनायाः प्रतिसन्धानासंभवात् ।

शब्दगन्धसूर्यप्रकाशादयो गुणा अपि गुणिनं विहाय गतिमन्तो धर्मिणः सकाशादति दूरवर्त्तिनो भवन्तीति दृश्यन्ते । अतिसूक्ष्मो हि शब्दो दूरगमनधर्मा भौतिकः । तथा च यथा शब्दादयः स्वधर्मिणं विहायान्यत्र गच्छन्ति तथा ज्ञानमपीति ।

इति तदयमर्थः , उपर्युक्तवाक्यस्य , ज्ञानं हि, आत्मप्रेरणाया सोन्मुखं भवति, मनस्तु, इन्द्रियाणि प्रवर्त्तयत्, इन्द्रियद्वारेण विषयाभिमुखं बहिर्मनो नयति प्रापयतीति । इन्द्रियद्वारेण बहिर्ज्ञानस्य प्रसरणे मनोर्वचनमपि प्रमाणायतुमाह-

इन्द्रियाणां हि सर्वेषां यद्येकं क्षरतीन्द्रियम् । तेनास्य क्षरति प्रज्ञा दृतेः पादादिवोदकमिति ॥

सर्वेषां चक्षुरादीन्द्रियाणां मध्यात यद्येकमपीन्द्रिय क्षरति बाह्यविषयप्रति निःसरति, तदा, तेनैवेन्द्रियद्वारेण तदीय चैतन्यमपि निःसरत्येव अत्र दृष्टान्तमाह, **दृतेः पादादिवोदकमिति** यथा सच्छिद्रचर्मभास्त्रिकातउदकं जलं निस्सरति तथैव प्रकृतेऽपि भाव्यमिति भाव ।

॥ इति ज्ञानस्यार्थेन सह सन्निकर्षोपपादनप्रकरणे तत्त्वदीप ॥

ननु ज्ञानं जीवात्मधर्मः स च स्वाश्रयपरित्यागपूर्वकं कथं विषयपर्यन्तं गच्छतीति शङ्कापरिहर्तुं गन्धादिवदाश्रयव्यतिरेकेण गमनादिकं भवतीति दर्शयितुमुपक्रमते **यत्तु कश्चित्** इत्यादि । द्रव्यगुणयोरयुतसिद्धत्वमपृथक्सिद्धत्वम् , गुणो हि स्वाश्रयगुणिनं परित्यज्य न गच्छति । गुणत्वेन निष्क्रियत्वात् । न हि घटीयरूपं वा रसो वा यावदवस्थानमाश्रयस्य तत्कालेघटादिकं विहायान्यत्र गच्छन्ति, न हि घटीय रूपादिमान् पटादिर्भवति । न च हरिद्रागतपीतिमाया हरिद्रासयुक्तवस्त्रादौ प्रतीतिर्भवतीति वाच्यम् , अन्यदीयगुणस्य तदन्यत्र समवायाभावात् , न हि हरिद्रायागुणो वस्त्रे समवेतो भवति किन्तु स्वसमवेतसंयुक्ततया वस्त्रे समुपलभ्यते, तत्र न गुणमात्रस्य गमनं वस्त्रे किन्तु हरिद्राया संयोगो वस्त्रे । तथात्र प्रकृते, आत्मगुणस्य ज्ञानस्य विषये गमनं कथं स्यादिति शङ्कितुराशय । तमिमं पूर्वपक्षं परिहर्तुमाह **परित्यागस्यास्वीकारात्** प्रहाणानभ्युपगमादित्यर्थः । तदप्रहाणमेवोपपादयति **आत्मानमपरित्यजदेव ज्ञानमित्यादि** यथा तृणजलायुका संकोचविकाशशालिनी, यथा वा प्रदीपप्रभा, गृहकोणे समवस्थिता संकुचिता भवति, सैव प्रभाऽनावृत्तप्रदेशे विद्यमाना स्वप्रकाशेन दूरदूरतर वा प्रदेशं विभासयन्ती विकाशितेव

भवति । तथैवज्ञानमपिसङ्कोचविकाशशीलम् , तच्चज्ञानमात्मनोधर्मः सचधर्मः स्वाश्रयमात्मानमपरित्यज्य यदाविकाशावस्थामाप्नोति तदाबाह्यघटादिविषयेणसह ज्ञानस्यसम्बन्धो घटत एवेतिनैकान्त्यनुपपत्तिर्भवति ।

ननु गुणोऽपिकथंचित्स्वाश्रयं विहायाश्रयादन्यत्रगच्छतीति तत्रदृष्टान्तंदर्शयति, दृश्यन्ते इति यथादूरदेशेविद्यमानोऽपि स्वाश्रयशङ्खभेर्यादिकपरित्यज्यश्रोतुः कर्णकुहरंप्रविशति अतोदूरतोमयाशब्दःशब्द इहस्थ एवश्रूयत इतिप्रतीतिर्जायते । एवम्, केतकीगन्धस्याघ्राणमतिदूरस्थस्यापि सर्वानुभवोभवति । अतएवकेनचित्कविनाकथितम्—

आदायबकुलगन्धानन्धीकुर्वन्पदेपदेभ्रमरान् । अयमेतिमन्दमन्दं कावेरीवारिपावनः पवनः ॥ इति ॥

द्वीपान्तरानीतलवङ्गपुष्पैरकृतस्वेदलवमरुद्भिरित्यादिकं सर्वं तदैवोपपद्यतेयदि गन्धात्मकगुणस्य गमनमङ्गीकुर्यात् । नच गन्धस्यसाश्रयस्यगमने, यस्मात्गन्धाश्रयस्य सूक्ष्मभागानिर्गमनेऽतःपुष्पीयपरिमाण-स्याल्पताभवेत्तथापुष्पे सच्छिद्रतास्यादिति वाच्यम् , भोक्तुरदृष्टवशाद् गन्धप्रसरणवन्नरस्यतत्रागमनेन सच्छिद्रत्वदोषस्यानवसरात् । यत्र कर्पूरादौ भोक्तुरदृष्टाभावस्तत्रकर्पूरादेर्विनाशस्यदर्शनंभवत्येवेति । तस्मा-द्गुणस्यापि स्वाश्रयाद्दूरगमनंभवत्येव ।

गुणस्य धर्म्यतिवर्तित्वंतुधर्मिदेशादधिकदेशसम्बन्धित्वरूपमेव । गुणत्वं गन्धादावयुतसिद्धत्वरूप-मेव, तच्चद्रव्याद्रव्यसाधारणमेवात्रज्ञातव्यम् । शब्दोगन्धश्च न द्रव्यरूपः तयोस्तथाऽलोकप्रमयोर्द्रव्य-रूपयोरपिगुणत्वेनोपादानात् । द्रव्याणांपृथिवीजलतेजोवायुमनसांतुमूर्त्तद्रव्यत्वादस्वाभाविकमेव नित्य-त्वादिकम्, गुणानांगतिमत्वादिकं तु न स्वभावतः किन्तु स्वाश्रयाद्वारेणैव भवतीत्यभिप्रायः । न च यदि स्वाश्रयाद्वारेणगुणस्यगतिमत्वं तदाधर्मिदेशादधिकदेशसम्बन्धित्वंगुणस्यप्रोच्यमानम-सिद्धमेवस्यादितिवाच्यम् , तत्र प्रसिद्धाश्रयशङ्खभेरीपुष्पाद्याश्रयसम्बन्धिदेशाधिकदेशसम्बन्धित्वे एव तात्पर्यात्, नतु रूपादिगुणानां धर्मिदेशाधिकदेशसम्बन्धित्वेतात्पर्यम् , घटीयादिरूपाणांनीलपीतानां घटाद्यधिकदेशसम्बन्धित्वेप्रत्यक्षबाधात् । न केवलंगन्धादिगुणानांस्वाश्रयातिरिक्तदेशादौ गमनंभवतीति युक्त्यनुभवादिकमेवप्रमा किन्तु श्रुतिरपितस्यगन्धादेस्तथात्वंसाधयतीतिदर्शयितुं श्रुतिप्रमाणमपिप्रभवति, तथाहि, “दूराद्गन्धोवाति” इति श्रुतिर्गन्धस्यगमनं दर्शयति । शब्दस्यगमनं तु “सखशब्दोऽयमयाऽधुना श्रूयते” इति प्रतीते कर्णशष्कुल्यवच्छिन्ननभःप्रदेशस्यैव श्रोत्रत्वेनतस्यपरिच्छिन्नत्वाद् शब्ददेशे गम-नम् । अथवावीचितरङ्गन्यायेननिमित्तपवनवशादिहैवकर्णदेशेशब्दस्यागमनात् तथा प्रतीतिर्भवति । ननु गन्धादिगुणाश्रयाणांपृथिव्यादिद्रव्याणांगतिमत्वदर्शनेन तत्राश्रयद्वारागन्धादेर्गतिमत्वं कथंचित् साधनंयुक्तमपि, परन्तु शब्दस्तुनभसोगुणो नभस्तु व्यापकद्रव्यंव्यापकगतिर्नकस्यापिसंमतामितिकथं शब्दस्याश्रयद्वारेणापिगतिमत्वंप्रसाधयितुं युक्तमितिचेत् , शब्दस्यातिसूक्ष्मस्यदूरगमनधर्मिणोभौतिकस्य स्वीकारात् । तत्र शब्दोभौतिकः पृथिव्यादिभूतोत्पन्नः , अर्थात् भेरीदण्डाभिघातेन, वंशदलस्फाटन-

ननु नभो यथा व्यापकं तथैव शब्दोपि विभुरेव, परन्तुव्यञ्जकवायुबलेनप्रादेशिक इव गतिमानिवोपलभ्यते । तथाहि शब्दःसर्वव्यापक एकद्रव्यवृत्तित्वेसतिनभसो-
मानेविभागेन, उद्भूतेवायोजलादा च शब्दो जायते । तत्राश्रयवायु नशस्यगमनबलादनेकदिगनुवि-दिशादिसुशब्दस्यापिसम्बन्धो भवत्येव । तदुक्तं—

"वीचितरङ्गन्यायेन तदुत्पत्तिस्तुवर्णिता । कदम्बगोलकन्यायादुत्पत्ति कस्यचिन्मते ॥" इति ॥
तत्र शब्दाश्रयस्यवायोरनिमृष्टमत्वादतिदूरगमन न व्याहतमिति । तत्राश्रयवायुधर्मस्याश्रयिण्युपचारो भवति 'मञ्चाक्रोशन्तीतिवत् ।

अथशब्दस्याकाशगुणस्यस्वाश्रयवदेवव्यापकत्वमितिशब्दस्यव्यापकत्वान्नगमनापेक्षात्व, यदर्थं तस्य शब्दस्यवायुगुणत्व कल्पयत । न च शब्दस्यव्यापकत्वोपगमदिवसकोलाहलावसरशब्दोपलम्भवत् , स्वविवनितरजन्यामपि शब्दोपलम्भ कुतो न भवति । किञ्चव्यापकआकाश सवदात्मसुपलभ्यत तथा शब्दस्या पिस्दासर्वत्रोपलम्भोऽनिवार्य स्यादितिवाच्यम , अभिव्यङ्ग्यदेशैरेवोपलभ्यमानत्वनतस्यशब्दस्यव्यापकत्वेपिसर्वत्रोपलम्भप्रसङ्गाभावात् । अभिव्यञ्जकनियतत्वात । यथातिलेपुमर्दादाविद्यमानमपिपीडनादिव्यञ्जकनियत सत् सर्वदानाभिव्यक्तभवतीतीमाशङ्कामपनेतुमुपक्रमत **ननुनभोयथाव्यापकमित्यादि,** आकाशस्यव्यापकत्वसर्वदर्शनानुमतमितितद्वदेवतदीयगुणस्यशब्दस्यापितथात्वमेवेतिशाब्दिका सङ्गिरन्तीतितन्मतावलम्बेनाय पूर्वपक्ष । अभिव्यञ्जकदेशनियतत्वात व्यापकस्यापितस्य न सर्वत्रोपलम्भ प्रसङ्गस्तस्मात् शब्दोव्यापकएवेतिशङ्काशय । ननु न प्रतिज्ञातमात्रेणसाध्यस्यसिद्धिर्भवति, तथात्वे प्रतिज्ञामात्रादेवसर्वप्रसिद्धिर्भवेदपितुप्रतिज्ञानन्तरहेतुर्वक्तव्य । तदुक्त

"सभावित प्रतिज्ञायापक्ष साध्येतहेतुभि । न तस्य हेतुभि त्राणमुत्पतन्नेववर्योहत" । इति ।

ततश्चशब्दस्यव्यापकत्वसाधनायाह **तथाहि**=शब्द सर्वव्यापक एकद्रव्यवृत्तित्वेसति नभसो गुणत्वात् , तदीयपरिमाणवत्" इति । अत्रशब्दोवर्णात्मकध्वन्यात्मकश्च पक्षउद्देश्यम् , तत्रसर्वव्यापित्वम् साध्यम्, एकद्रव्यवृत्तित्वेसति, आकाशगुणत्वादितिविशिष्ट हेतु । तत्र हेता विशेषणानुपादानेऽनेकवृत्तिसयोगविभागद्वयादिसङ्ख्यादिषुव्यभिचार स्यात् , सयोगादिसामान्यगुणानाद्रव्यमात्रवृत्तीनामप्याकाशगुणत्वविद्यमानत्वेपिसाध्यस्यविभुत्वस्याभावात् , इमे च सयोगाद्य प्रादेशिका । विशेषणोपादानेतु न भवति व्यभिचारोयत सयोगादीनाद्वित्वेनैकद्रव्यवृत्तित्वाभावात् । आकाशगुणत्वादितिहेतुघटकविशेष्यानुपादानेघटपटाद्येकवृत्त्येकत्वेगुणत्वस्यविद्यमानत्वेन न पुनर्व्यभिचाररूपोदुरात्मासमानेत , इतितद्वारणाय, आकाशवृत्तिगुणत्वस्यकथनम्, घटाद्येकत्वस्याकाशगुणत्वाभावात् । गुणत्वे आकाशीयत्वानुपादाने, घटीयरूपेव्यभिचारस्तस्यापि एकद्रव्यवृत्तित्वेसतिगुणत्वात् । आकाशीयत्वस्यगुणत्वकथने न भवति व्यभिचारोघटादिव्यक्तिमात्रस्याकाशीयत्वाभावादिति । यथागगनपरिमाणयथोक्तहेतुवदितियथोक्तसाध्यवदपिभवति, तथैव, शब्दात्मकपक्षेपि, एकद्रव्यवृत्तित्वेसति, आकाशगुणत्वहेतुविद्यते

गुणत्वादाकाशपरिमाणवदिति चेन्मैवम्, अतद्गुणत्वादाकाशगुणत्वाभावात्। शब्दो-वायवीयोवायुनानियतमहोत्पत्तिकत्वात्, वायवीयस्पर्शवत्। यश्चयेनद्रव्येणमहोत्पत्तिकः मतस्यैवगुणः,यथातथाविधास्पर्शादिकाः। नियतमहोत्पत्तिकश्चवायुनाशब्दः। उभयोर-पिभेरीदण्डवंशविदलादिसंयोगविभागजनितत्वनियमदर्शनात्। शब्दोगुणोद्रव्याश्रितत्वात् संयोगविभागादिवत्। इत्यनुमानेन शब्देगुणत्वंप्रसाध्यतत उत्पद्यते शब्दोवहिरिन्द्रियग्राह्य-त्वनित्रशब्दात्मकपक्षेपिसर्वव्यापकत्वसा यमपिसिद्ध्यतीतिपूर्वपक्ष। अनेन प्रकारेणशब्दस्यव्यापकत्वे समर्थितेसिद्धान्तवादीनाहशहेतौ स्वरूपासिद्धिंदर्शयति, **अतद्गुणत्वादिति**, अयमाशय ममवेदनेना-नुमानेनशब्दस्यव्यापकत्वेयदिशब्दात्मकपक्षे "एकद्रव्यवृत्तित्वेसत्याकाशगुणत्वहेतुस्तिष्ठेत, परन्तुशब्दे आकाशगुणत्वमेवनास्तिशब्दस्यवायुगुणत्वात। तथा च यथाहृदोवन्हिमान् धूमादित्यत्रहृदेधूमाभा-ववस्यदर्शनेनहृदभाववान् पक्ष स्वरूपासिद्धिरितिस्वरूपासिद्धलक्षणाक्रान्तत्वात, तादृशधूमस्य, न साधकत्वम्, धूमाभाववान् हृद इति ज्ञानकालेवन्हिव्याप्यधूमवान् हृद इत्याका-रकपरामर्शस्यवाधितत्वेनसाधकत्व तथैव प्रकृते शब्देआकाशगुणत्वाभावज्ञानकालेविभुत्वव्याप्ययथो-क्ताकाशगुणत्ववान् पक्ष इतिपरामर्शाभावात् प्रकृतहेतोर्नशब्देसर्वव्यापकत्वस्यसाधनेसामर्थ्यमितिभाव।

ननुयुक्त्या शब्दस्याकाशगुणत्वनभवतु "आकाशाद्वायु" इत्याद्यनेकागमेनतुशब्दस्याकाश गुणत्वमेवसिद्ध्यतितत्कथमत्रतस्यशब्दस्याकाशगुणत्व प्रतिक्षिप्यतेमहदाडम्बरेणेतिचेतसत्यम्, यदि-आगमानुसारेणगगनगुणत्वव्यापकत्वं च साधयामीत्युच्येत, तदात्रवच्मि, आगमस्तु "यतोवाइमानि भूतानिजायन्तेयेनजातानिजीवन्तियत्प्रयन्त्यभिसंविशन्तीत्यादि" पृथिव्यादिवदेवाकाशस्यापिजनि-स्थितिप्रलयचप्रतिपादयति, एवञ्च जनिप्रलयादिमतापृथिव्यादिपवनान्तानाव्यापकत्वतथैवजन्यादिमतो गगनस्यापिनव्यापकत्वमपितुव्याप्यत्वमेव नहिउत्पत्यादिमतांक्वचिदपिव्यापकत्वदृष्टंश्रुतमुपपद्यतेवा। आकाशोनव्यापकउत्पत्त्यादिमत्वात् जायमानघटादिवदेवेत्यनुमानमपि श्रुतिसमनुगृहीतगगनस्यव्याप-कत्वनिराकरोत्येवेति। एवञ्चागमानुसरणेतुगगनस्यैवाव्यापकत्वसिद्धयतितदाकाकथाआकाशपदोपजी-विनावराकानांशब्दानांव्यापकत्वे तनश्चकेवलयुक्तिबलेन तथात्वसाधनीयमितियुक्त्याश्रयणेतुशब्दस्य-वायवीयत्वमेवायाति, रूपरसादे पार्थवीयत्ववदेवेतिनशब्दस्याकाशगुणत्वमितिभाव। तत्रशब्दस्यवाय-वीयत्वप्रतिपादनेयुक्तिमेवानुसरन्नाह।

शब्दोवायवीयोवायुनासहोत्पत्तिकत्वाद्वायवीयस्पर्शवदिति। योयविलक्षणःशब्दोऽनु-भूयते स चवायोरेवनतुगगनस्य कुत? वायुनासहैवोत्पत्ते, यदावायोरुत्पत्तिर्भवति, तदैवतदनन्तरशब्द-स्याप्युत्पत्तिदर्शनात, यथाऽपाकजोऽनुष्णाशीत स्पर्श वायुनानियतसहोत्पत्तिक इतितादृशस्पर्शोवायोरे-वाथात् पवनसमवेतएवनान्यस्यतथैवशब्दोपीतियुक्तिबलात्, शब्दस्यवायुसमेतत्वमेवनतुगगनेसमवेतः। शब्दोहिभेरीदण्डसयोगेनवंशेपाटयमानेवंशदलनविभागेनजायते नियमतस्तस्मात्वायोरेवविशेषगुण.।

रोमर्ति गुणत्वात् गन्धरसादिवत् । जलोऽयंशब्दः क्रियोत्तरकालेसमुपलभ्यमानत्वात्संयोगवत् घटादिवद्वा । न च न शब्दस्योत्पत्तिरपितु, अभिव्यक्तिमात्रं भवतिप्रयत्नादिबलादितिवाच्यम् । गौरवात् । शब्दप्रतीतिकारणत्वकल्पनामपेक्ष्यशब्दोत्पादककारणस्य-

किञ्च अवकृत्यभाविवात्, यावत्कालवायुरवतिष्ठतेतावत्कालपर्यन्तशब्दस्यापिप्रत्यक्षतापत्तेः । आकाशगुणत्वेनाविकृत्यस्यभावे शब्दस्यसम्भवति, अभिव्यञ्जकसद्भावेएवाकाशशब्दस्यसत्त्वादिनित्यञ्जकवायोरेवगुणोनास्त्यति । कश्चित् शब्दोनित्य एव, अभिव्यञ्जकसद्भावे तस्याविर्भावमेवमन्यते, तत्राभिव्यञ्जकोवायुरेव, अत एववायुर्भवतितदेवशब्दस्यग्रहणनान्यदातस्यग्रहणमितिवदति । तथा च पूर्वोक्तमस्य नास्य चापक वनिराकृतम्, तदनन्तरतस्यनित्यत्वनिराकरणायाह **शब्दउत्पद्यते** इत्यादि, शब्दउत्पद्यते, बाह्येन्द्रियग्राह्यत्वेसतिगुणत्वात्, गन्धवत्, यत्रगन्धादाघ्राणेन्द्रियग्राह्यत्वे सति गुणत्वम्, तत्र विविनतत्रगन्धेउत्पत्तिमत्त्वदृश्यते एव । एवञ्च, एतादृशहेतोः न हेपिसद्भावदर्शनेनोपर्युक्तहेतुबलात् शब्देपिउत्पत्तिमत्त्वमनत्येव । एवञ्चशब्दोनित्य श्रावणत्वात् शब्दत्ववदितिशब्दनित्यत्वानुमानमुपर्युक्तानुमानेनसत्प्रतिपक्षितभवत् न नित्यत्वसाधकमवनीत्यत शब्दोननित्य इति ।

तत्र शब्देऽनित्यत्वमर्थातकृतकत्वरूपमेव । कृतकत्व च शब्दस्यक्रियोत्तरकाले एव नियमतउपलभ्यमानत्वात् संयोगविभागादिवत् "अप्राप्तयोस्तुयाप्राप्ति सैवसयोगईरित । कीर्तितस्त्रिविधस्त्वेषआद्योऽन्यतर कर्मज । तथोभयक्रियाजन्योभवेत्सयोगजोऽपर । आदिम श्येनशैलादिसंयोग परिकीर्तित । मेषयो सन्निपातोय सद्वितीयउदाहृत । कपालतरुसंयोगात् संयोगस्तरुकुम्भयो" इतिनियमेनसंयोगादीनां यदोपलम्भभवति तदाकर्मोत्तरकालएवेतितस्यकर्मजनितत्वात्कृतकत्वमनित्यत्व च सिद्ध्यतीति ननित्य शब्दोऽपितुक्रियोत्तरमुपलभ्यमानत्वात्संयोगवदनित्य एवेति ।

ननुक्रियोत्तरकाले उपलभ्यमानत्वकृतकत्वादेवेतिननियम क्रियोत्तरमुपलभ्यमानत्व तु नित्यत्वेपि सम्भवति, पवनाद्यभिव्यञ्जकेनाभिव्यङ्ग्यत्वादपिसम्भवति, पीडनादिनाऽभिव्यङ्ग्यत्वात् तिलेषु तैलवदितिक्रियोत्तरमुपलभ्यमानो हेतुरप्रयोजकइत्याशङ्कानिराकर्तुमाह **नच नशब्दस्योत्पत्ति गौरवादित्यादि,** अयमर्थ नहिशब्दोऽनित्य क्रियोत्तरकमुपलभ्यमानत्वात्, किन्तुनित्यापितुप्रयत्नादिरूपाभिव्यञ्जकेनाभिव्यक्ते सन्नुपलब्धोभवति, तावतानानित्यत्वंतस्यशब्दस्य भवतीतिप्रश्नार्थ । उत्तरयति **गौरवादिति** प्रयत्नादीनांशब्दोत्पत्तौकारणत्वकल्पनापेक्षया, शब्दस्याभिव्यक्तौ प्रयत्नादीनांकारणत्वकल्पनायांगौरवात्, अथात्, शब्दोत्पत्तावेवकारणत्वकल्पनीयम् तस्यशब्दस्य प्रथमोपस्थितत्वात्, तदपेक्षयाद्वितीयाविभक्ता तथात्वकल्पनेप्रथमोपस्थितस्यत्यागोद्वितीयोपस्थितस्यदूरत्वमित्येवकारकत्वकल्पनेगौरवस्पष्टमेव । न च भवन्मतेपिगौरवमितिवाच्यम्, मन्मतेऽनुकूलतर्कस्यविद्यमानत्वेनगौरवस्यादोषत्वात्, प्रतीतौकारणत्वकल्पनापेक्षया प्रतीतिविषये कारणत्वकल्पनमेवोचितलघुभूतचेति सर्वसमतत्वादितिभाव ।

कल्पनायामेवलाघववात् । अभिव्यञ्जकाश्चैकदेशावस्थितानेकेन्द्रियग्राह्यान् पदार्थान् महसैककालेएवाभिव्यञ्जयन्ति । यथा प्रदीपोरूपसख्यापरिमाणंकरकादीश्चैकदेशवर्तियुगपदेवाभिव्यञ्जयन्तीति दृश्यते । न चैवंकण्ठताल्वाद्यभिघातविभागादिजनितवायुरितिनासौवायुर्व्यञ्जकः ॥

शब्दनित्यत्वादिनांमते,शब्दनिर्विभागगनवर्तिनःश्रावणप्रत्यक्षाश्चभवन्ति । नित्यः

ननुशब्दस्य कारणवलेनाभिव्यक्तिरेवभवति नतूत्पत्तिरितिपक्षेनकेवलगौरवभवतिकिन्तुतत्रानुपपत्तिरपिभवतीति दर्शयितुमाह **अभिव्यञ्जकाश्चैकदेशावस्थितानेकेन्द्रियग्राह्यान्** इत्यादि । अर्थात्येऽभिव्यञ्जकाभवन्तितेषामयस्वभावोयत्ते, एकदेशस्थितान्पदार्थान् , अनेकेन्द्रियग्राह्यान्सर्वानपियुगपदेवाभिव्यञ्जयन्तिप्रकाशयन्ति । यथाऽभिव्यञ्जक प्रदिपालोकादि रूपतत्सहचरितसख्यापरिमाणादिकसर्वमेवप्रकाशयति, नत्वेकमेवप्रकाशयतीति । अर्थात्कण्ठताल्वाद्यभिघातात्मकोच्चारणस्ययदि वर्णादिकादीनामभिव्यञ्जकत्व ते इष्टम् तदायुगपदेककालमेवानेकवर्णानाविभिन्नस्थानप्रयन्तवतामभिव्यक्ति स्यात् , अभिव्यञ्जकस्यसर्वत्रसमानत्वात् , यतोऽभिव्यञ्जकस्यसमानदेशस्थितस्यैकेन्द्रियग्राह्यमर्वस्याभिव्यञ्जकत्वमितिस्वभावात् नत्वेवभवति नच वर्णानाव्यञ्जकोवायुरेव,सचविलक्षणो वायुरेवककारमभिव्यञ्जयतितद्विलक्षणश्चवर्णान्तरमभिव्यञ्जयतीत्येव क्रमेणवणाभिव्यञ्जकपवनेवैजात्यकल्पनेऽतीत्रगौरवमेवस्यादिति । व्यक्तौकारणत्वकल्पनम् ,तथावर्णव्यक्तेर्व्यवस्थार्थव्यञ्जकपवनेवैजात्यकल्पनंचेत्यपि, प्रकृतेदोषोज्ञातव्य कारणद्विविधम् , जनकज्ञापकचयथाघटादिकप्रतिदण्डचक्रादिकजनकमुत्पादकभवति, दण्डादिकविनाघटोत्पत्तेरशक्यत्वात् । अपरचकारज्ञापकमथाज्ञानजनकयथाघटादिविषयकज्ञानोत्पादनेप्रदीपादिकम् , तत्रज्ञापकज्ञानमात्रमेवोत्पादयति नतुज्ञानविषयीभूतघटादिकप्रतिकिमपिकरोति, अभिव्यञ्जकोपिनोत्पादक किन्तुप्रतिबन्धकनिराकरणेन प्रज्ञापक एव । एवञ्चयदाजनक स्वकार्यंकृत्वानिवृत्त व्यापारोभवति, तत्रैवप्रज्ञापकस्यावसरोभवतीति न जनकप्रज्ञापकयोर्विकल्पोभवति, समानविषयत्वाभावात्. समानविषये एवविकल्पोनतुविषयभेदे । यथा "व्रीहिभिर्यजेत" "यवेनवायजेत" अत्रयत्कार्यंयागनिष्पादनरूपव्रीहिभि सपादितभवतितदेवयागनिष्पादन यवैश्चापिभवति,तदुभययो.फलभेदाभावात् । अत्रतुजनकज्ञापकयो कार्यभेदात् , प्रज्ञापकाभिव्यञ्जकत्वविचारस्यविकल्पस्यवाऽनवकाशात् ।

वर्णनित्यत्ववादिनोवर्णस्योत्पत्तिंनेच्छन्ति किन्तु अभिव्यञ्जकपवनवलादभिव्यक्तिमेवमन्यन्ते इति पवनस्यशब्दाभिव्यञ्जकत्वेदोषमुद्भावयितुमाह **शब्दनित्यत्ववादिनांमते** इत्यादि । अर्थात् शब्दा-आकाशमभिव्याप्यैववर्तन्ते तथा, गगनीयश्रवणेन्द्रियेणग्राह्या भवन्ति । तत्राभिव्यक्तिनियमेकारण नास्तीति । अन्यथा यथा प्रदीपोयत्रतिष्ठति तत्रस्थान् सर्वान् विशेषेणप्रकाशयति तथैव पवन-

शब्दोनोत्पद्यतेकिन्तुव्यञ्जकेनाभिव्यक्तोभवतीति, नियमेनास्तिकारणम् । यत्रदेशग्राहकयोरैक्यंतत्रैवव्यञ्जकत्वंभवतीतिप्रदर्शितम् । प्रकृतेतदभावात्, नवायोरभिव्यञ्जकत्वम्, किन्तुध्वनेःकारणंपवनएव अतएवजन्यत्वात् शब्दस्यनानात्वमेवप्रत्युच्चारणम् । कृतस्य करणायोगान्कारणभेदाच्च । अपिचउदात्तत्वादिकाधर्माः ककारादिवर्णगता युगपद्

स्याभिव्यञ्जकत्वेसर्ववर्णानामेककालमेवाभिव्यक्ति स्यादितिदर्शयति **यत्रदेश** इत्यादि । अभिव्यञ्जकस्यखल्वयनियमोयत्, एकदेशावस्थितैकेन्द्रियग्राह्यसर्वानेककालेएवअभिव्यञ्जयति, परन्तु अत्र तदभावात् न तदभिव्यक्तिर्नव।वायुरभिव्यञ्जक, अपितु स एव वायुर्वर्णानुत्पादयतीत्येवकारणरूपत्वात् । अतएवप्रत्युच्चारणकादिवर्णाना।भेद एव मन्तव्य, अन्यथा शुकशब्द सारसशब्दोवेतिप्रतिभासनोवर्णगतोभेदोनिरालवन एव स्यात, तस्मात् कादिर्वर्ण प्रत्युच्चारण भिन्न-भिन्न एवाभातीति। नच यदि वर्णोभिन्नस्तदा, स एव ककारोयोऽयोऽ्याय श्रुत स एवेहापिश्रुतिगोचरो भवतीति कथमुपपद्यतेतिवाच्यम्, अतिसादृश्यात जातिविपयत्वाद्वाप्रत्यभिज्ञाया इति गृहाण, तदेवौपधमित्यादिवत् । तदुक्तम् ‘ शब्दोध्वनिश्चवर्णश्चमृदगादिभवोध्वनि । कण्ठसयोगादिजन्यावर्णास्तेकादयोमता । सर्वशब्दोनभोवृत्ति श्रोत्रोत्पन्नस्तुगृह्यते । वीचितरगन्यायेनतदुत्पत्तिस्तुवर्णिता । कदवगोलकन्यायादुत्पत्ति कस्यचिन्मते । उत्पन्न कोविनष्ट कइतिबुद्धेरनित्यता । सोय क इति बुद्धिस्तुसाजात्यमवलवते । तदैवोपधमित्यादौसजातीयेपिदर्शनात् । तस्मादनित्याएवेतिवर्णा सर्वेमत हि न ।” इत्यादि कमन्यत्रप्रदर्शितम् ।

तस्मात् ककारादि सर्वोपिवर्णोऽनित्य एव । तत्रोत्पादक शब्दस्यवायुरेवेतितदुत्पन्नत्वात्तदाश्रयत्वात् सवायवीय एव नतुनभोगुण । अर्थादेकव्यञ्जकाभिव्यग्यत्वाभावात्, ध्वनेर्वर्णात्मकशब्दस्य, तदुच्चारणार्थक्रियमाणप्रयत्नेनसञ्जायमान कोष्ठान्तर्गतोवायुस्तालुजिह्वामूलदन्तादिस्थानेशब्दकारणीभूताभिघातप्राप्यस्थितोवर्णस्यककारगकारादेरुत्पादक एव भवति नतु व्यञ्जकोऽर्थात् जनक. कारक एव भवति तदुक्तम् “आत्माबुद्ध्यासमेत्यर्थान् मनोयुक्तेविवक्षया । मन कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयतिमारुतम् । मारुतस्त्वुरसिचरन्मन्दजनयतिस्वरमितिपाणिनीयशिक्षायाम् । तत्र “जनयति” इत्युक्त नतुप्रादुर्भवतिशब्द इतिकथितम् । जनधातुश्चासतिबाधकेउत्पत्यर्थक एव, शरीरजातघटो जात इत्यादावुत्पत्यर्थस्यैवप्रत्यभिज्ञानात्, आत्माभिप्रायेण ‘देवदत्तोजात” इत्यादिप्रयोगदर्शनात् “असतिवाधके” इतिकथितम् । “न जायते म्रियतेवाविपश्चित् अजो नित्य शाश्वतोऽयंपुराण ” इत्यादिश्रुत्याविशुद्धस्यात्मनोनित्यत्वादिश्रवणेनतदुत्पादस्यवाधितत्वमेवशरीराभिप्रायेणतुवास्तविकत्वम्, अत शरीरविशिष्टस्योत्पादमालक्ष्यविशेषणांशेआविर्भावोविशेष्यतुजनेरुत्पत्यर्थ एव । ततश्च पाणिनीयशिक्षायामुत्पत्त्यर्थकजनधातो प्रयोगात् वायुनाककारादिवर्णस्योत्पत्तिरेव भवतिनत्वभिव्यक्ति । न केवलमुत्पत्त्यैववर्णाना भेद किन्तु उदात्तत्वादिधर्मभेदादपिवर्णानाभेदइत्यपिदर्शयति **अपिच** इत्यादि । “उच्चैरुदात्त” । “नीचैरनुदात्त ” “समाहार स्वरित” इति पाणि-

भान्तीतितेउदात्तत्वाद्यवर्णान् स्वाश्रयभूतान्भिन्दन्त्येवेतिस्थितिः । सोयंककारइति प्रत्यभिज्ञापिनवर्णाभेद्यात् किन्तु "तेइमेकेशाःसैवेयंगुर्जरी" इत्यादिवदतिसादृश्यात्जाति विषयिणीत्यतःसानवर्णस्यैकत्वसाधनायालम् ।

अथैवमपिचैतन्यसंयोगोऽथवा संयोगनिमित्तको वा कश्चिदयंप्रकाश इति ते मतम् । परन्तु–एतदुभयमपिचैतन्ये नसंभवति, सम्बन्धस्यद्विष्ठतयाभेदापेक्षत्वात् कुण्डवदरवत् । नवाऽत्मनोपिचैतन्ये नसंयोगात्मकः सम्बन्धःसभवति, चैतन्यस्यात्मधर्मिकत्वात् । नहि भवति धर्मधर्मवतोःसंयोगःसंनिकर्षोऽपितयोर्मर्धर्मिणोः

नीयानुशासनवलेनवर्णापरस्परविरुद्धावर्माविभिन्ना एव दृश्यन्ते च स्वाश्रयवर्णानपिविभिन्दन्त्येव, यथाशीतत्वोष्णत्वादिका स्वाश्रयद्रव्याणिभिन्दन्ति ।

एव तीव्र शब्दोमन्दशब्द इत्यादिप्रतीत्यापरस्परविरुद्धधर्मत्यासदर्शनाद् शब्दस्यभेदोजन्यत्वमेव च सिद्ध्यति नतु नित्यत्वव्यापकत्वादिक वा एकस्यापि कथचित्कालभेदनप्रतिभासो भवतीति, यथाचिररोगिणावृद्धस्य वा अन्यस्यकृतेमन्दोपितदार्थमधिकप्रायमेवभवन्तो दृश्यन्ते, तस्मात् भासमाना इति कथितम्, अर्थात् तीव्रमन्दादितयाप्रतीयमाना भवन्तीति । व्यञ्जकत्वस्यासभवादेवव्यञ्जकगताधर्माव्यङ्ग्येसमारोपितानभवन्ति । अयमाशय, यथोक्तप्रकारेणशब्देनित्यत्वव्यापकत्वयोर्निराकरणेनशब्दस्यवायुगुणत्वव्यवस्थापित भवति, तथा युक्तिवलेनशब्दस्यगतिमत्त्वमपिप्रतिपादितम् । आत्मगुणस्यचैतन्यज्ञानस्यान्यत्रसम्बन्धमात्रे, उदाहरणशब्दोगन्धश्चेत्यपि कथितम् । आश्रय विनापि ज्ञानस्यतदन्यत्रगमनेदृष्टान्त सूर्यस्यप्रकाशोमण्यादीनाप्रभा च । अर्थात् यथासूर्यस्यालोक सूर्यविनापि तदन्यत्रघटादौगच्छतिमणिप्रभा च गच्छति, अन्यथासुदूरस्थितवस्तुन प्रकाशो न भवेत्, सूर्यलोकमणिप्रभादीनाद्रव्यरूपत्वेनतदन्यत्रगमनसभवति । सूर्यालोकादे सूर्यरूपाश्रयेणसहसम्बन्धस्य विच्छेदात् सूर्यधर्मत्वमपिव्यवस्थितमेवेतिसम्पूर्णप्रकरणनिर्गलितार्थ सक्षेपेणसञ्चित ।

॥इतियथोक्तक्रमेणात्मधर्मरूपज्ञानस्यान्यत्रसम्बन्धोपपादन तथा वायवीयत्वसमर्थनचेतिप्रकरणतत्त्वदीप ॥

पूर्वप्रकरणकथितप्रकारेणचैतन्यस्यघटादिविषयजातेनसहसम्बन्धप्रकार समुपपादित । "घटादि प्रकाशते" इत्यादिव्यवहारोपिचैतन्यसम्बन्धमूलक एव भवतीत्यपिप्रपचित एव । अत परमेतस्मिन् विषयेप्रभाकर पुन प्रश्नयतीतिदर्शयितुमुपक्रमते **अथैवमपिचैतन्य** इत्यादि । एतावतासमतीतप्रकरणेनचैतन्यस्यविषयादिना य सयोगसम्बन्ध स एव प्रकाश ? अथवा चैतन्यविषयसगात् जायमानएवकश्चित्प्रकाशरूप इति प्रसाधित । परन्तु एतदुभयमपि न घटते, यतश्चैतन्येतस्यसंयोगस्यासभवात् । यत सम्बन्धोहिभेदघटितएवभवतीतिनियम ततश्चस्वस्मिन् स्वभेदस्याभावात्, तथाऽत्मनोपिचैतन्येनसम्बन्धो न सभवतिधर्मधर्मिणोसयोगाभावात् किन्तु तयो सम्बन्धो ऽयुतसिद्धसमवाय एव भवतीतितान्त्रिकैर्निर्णीतत्वात् । सयोगसम्बन्धस्तु युतसिद्धद्रव्ययो-

समवायएवसम्बन्धोभवति, अयुतसिद्धत्वात् । संयोगस्तुसंनिकर्षोऽयुतसिद्धयोः [पृथक्सिद्धयोः] द्वयोद्रव्ययोरेवभवति, सचसंयोगः क्रियाजनितोऽप्राप्तप्राप्तिरूपकार्यद्रव्ययोरेवभवति । नित्ययोर्द्वयोर्द्रव्ययोरकार्यकरणयोनिरन्तरस्थितिरूपएव, यथाकालाकाशयोः । चैतन्यसंयोगसमवायोरन्यतरस्य वा सम्बन्धमात्रस्य वा प्रकाशरूपत्वाभ्युपगमे, ज्ञातृज्ञानज्ञेयेषुशरीरेन्द्रियादिषुयथायथमव्याप्तिर्वातिव्याप्तिर्वास्यात् । प्रकाशस्यतत्वान्तरत्वस्वीकारस्तु अनुपलब्धिपराहत इति न दूषणान्तरस्यप्रयोजिकः अतोयद्व्यवहारकारणंभवति ज्ञानम् तदेवप्रकाशते इत्येवंस्वीकार एवयुक्तः । ज्ञातृज्ञेयज्ञाने तत् त्रितयव्यवहारहेतुत्वंसंविदःस्वभावः सच निमित्तस्यानेकरूपत्वेपि न पर्यनुयोगमर्हति । स्वभावस्यपर्यनुयोगात् एवंचेत्संयोगसमवायरहितस्यापि पदार्थजातस्य निमित्तकारणभेदानुसारेण व्यवहारकारणं चैतन्यमितिस्वीकार एवयुक्तआभाति।

जेन्ययोरेव भवति कर्मज । नित्यद्रव्ययो कालाकाशयोस्तुनैरन्तर्येणसमवस्थानमेव । कालाकाशयोरित्थसयोगस्वीकारेतुल्ययुक्त्यातयोर्नित्यविभागोपिसिद्ध्येत्, न चैतत्कस्यचिदपिममतम् । चैतन्यसयोगतदीयसमवायान्यतरयोस्तथात्वेऽव्याप्तिर्वाऽतिव्याप्तिर्वानिमित्तकारणेशरीरादौस्यादिति। प्रकाशस्यतत्वान्तरत्वतु अनुपलब्धिप्रमाणपराहतमेव । तस्मात्, 'प्रकाशते' इत्याकारकव्यवहारेयत्कारणतदेवकारणम् । ज्ञातृज्ञानादीनाब्यवहारकारणत्वमितिज्ञानस्यस्वभाव सचस्वभावो न पर्यनुयोगार्ह । एवञ्चसयोगादिरहितस्यापिपदार्थस्यनिमित्तकारणभेदबलेनव्यवहारहेतुर्ज्ञानमित्येवपक्षोयुक्तइवाभातीति । अथवा पूर्वपक्षग्रन्थस्येत्थमभिप्रायवर्णन भवति, चैतन्यसयोगसम्बन्धस्यप्रकाशमानताया प्रयोजकत्वमन्येततदाचैतन्येज्ञाने तथा ज्ञानाश्रये च प्रकाशमानत्वव्यवहारो न स्यात् । चैतन्य समवायस्य तादृशव्यवहारनियामकत्वेविषयविषयिणोस्तथाव्यवहारो न स्यात्, तयो समवायाभावात् । यथा कथचित् चैतन्यसम्बन्धमात्रस्यप्रकाशते इति व्यवहारनियामकत्वेज्ञाननिमित्तकारणशरीरेन्द्रियादेरपि प्रकाशप्रसङ्ग स्यात् । तस्मान्निमित्तबलादेवतत्तद्घटादिज्ञानस्यतादृशार्थव्यवहारकारणत्व भवति, तथा स्वस्वाश्रयव्यवहारकारणत्वचेत्येवमन्तव्यम् । तावतैवसर्वव्यवहारोपपादनसभवेनिरर्थकमेवार्थचैतन्ययो सम्बन्धकल्पनमितिप्रकरणस्यनिर्गलितोर्थ । मूलाक्षरसयोजनतु-इत्थम् विभुद्वयस्याकाशकालादे सयोगो भवतीति पक्षे विभौक्रियाया अभावादेव न भवतीत्युक्त्वातत्रनित्येप्रकारान्तरेणसयोगप्रकारनिर्वक्ति **अकार्य** इत्यादि, अवयवावयविभिन्नयोर्द्रव्ययो कालाकाशयोरन्तरालावस्थानमेवसयोग सचसयोगोऽव्यापकद्रव्येक्रियया भवति, व्यापकयोस्तुद्रव्ययो ' स्वतएव । **तत्वान्तरत्व** इति । प्रकाशस्यतत्वान्तरस्वीकारोऽनुपलब्धिबाधित एव । ज्ञानव्यवहारेस्वस्यैवव्यवहारजनकत्वम् । स्वाश्रयस्यतुस्वसमवाय्यर्थस्यस्वनिमित्तानुसारेणेति प्रयोजकनानात्व न दोषायेत्यलम् ।

॥ इति पुन प्रभाकरमतविवरणे तत्त्वदीप ॥

अत्रोच्यते यत् कार्यं तत् स्वकीयनिमित्तकारणमनुरुद्ध्यस्वकार्यंजनयतीति न नियम इत्यस्यपूर्वमेवोक्तत्वाद् । प्रकाशपदार्थेव्यवहारानुकूलसंवेदनत्वेपि प्रवृत्तिनिमित्तभेदस्यदुष्परिहरत्वात् बहुव्रीहिसमासपक्षेतुज्ञानान्तरस्याभावेनतस्यांसंविदितदभावप्रसङ्गात् । कर्मधारयसमासाङ्गीकारपक्षेतुज्ञातुर्विषयस्य च संविदभिन्नत्वेनाप्रकाश प्रसङ्गात् । व्यवहारोत्पादनानुकूलत्वव्यवहारोत्पादानन्तरमेवावगतंस्यादितितत्पूर्वविदित्वाप्रतीतिव्यवहारयोः सिद्धत्वात् ।

यद्येवंकथ्यते तदा 'प्रकाशते" इत्यत्रप्रकाशशब्दस्यकोर्थो भवति ? यतो ज्ञानज्ञातृज्ञेयेषुनिर्दुष्टमनुगतमेवरूपंनोपलभ्यतेप्रकाशपदस्येति । तत्रोच्यते "अर्थप्रकाशकं ज्ञानम्" (श्रौतप्रमेयचन्द्रिका ३।३। इतिजगद्गुरुश्रीश्रियानन्दाचार्योक्तेः "विद्वद्भिः

एव यथोक्तप्रकारेण गुरुमतानुसरद्भि प्रतिपादितेविमर्शक कश्चिद्दोषवक्ति, **अत्रोच्यते** इति । दोषमेवोपपादयितु विवृणोति **यत् कार्यं तत् स्वकीय** इत्यादि । यथा घटादिकार्यं स्वोत्पत्तौ निमित्तकारणदण्डाद्यधीन भवत्यपि किन्तु सदण्डजोघट स्वकीयजलाद्याहरणकार्येदण्डादिकनापेक्षते दण्डादिनिमित्तकारणानामभावेपि घटकार्यस्यजननात् । यथावापट ततुवायादीनामभावेपि प्रावरणादिकार्य करोत्येवेत्यस्योक्तत्वात् । अर्थात् स्वकीयनिमित्तकारणवद्देशे एव स्वकार्यजनकत्वमितिनकुत्रचिदपि दृश्यते घटनिमित्तकारणाना देश कुलालादिगृह तत्रैवघट स्वकार्यं जलाहरणादिक करोति तथा सति तदन्यत्रघटस्य जलाहरणकारणत्वनस्यात् परन्तु नैव भवति तदन्यत्रापि तथा दर्शनात् । इतीन्द्रियसनिकर्षवत्येवार्थे घटादिज्ञानेनव्यवहार समुत्पाद्यते इतिनसमीचीनमिति भाव ।

दूषणान्तरमपि दर्शयति **प्रकाशपदार्थेव्यवहारानुकूल** इत्यादि ज्ञातरिज्ञेयेच स्वस्वव्यवहारानु गुणज्ञानकत्वलक्षण एव प्रकाशपदार्थ । ज्ञानस्यतुज्ञानव्यवहानुकूलज्ञानत्वलक्षण एव प्रकाशपदार्थ इति ज्ञातृज्ञेयज्ञानेषुत्रिष्वप्यनुगत प्रकाशपदार्थोनास्ति सर्वत्रानुगतव्यवहारनियामको भवेदिति भाव । ज्ञानप्रकाशोयस्येति व्युत्पत्तिपक्षे ज्ञानस्य ज्ञानान्तराभावेनज्ञानेतदभावप्रसङ्गात् । ज्ञानमेव प्रकाश इति व्युत्पत्तौ ज्ञानप्रकाशयोस्तादात्म्य लभ्येत तत्र च ज्ञातृज्ञेययो प्रकाशेनतादात्म्याभावेनतयोर्ज्ञातृज्ञेययो प्रकाशाभावप्रसङ्गात् । अथज्ञानाधीनव्यवहारानुकूलत्वमेव प्रकाशपदार्थो भवत्वितिशङ्कायामाह **व्यवहारोत्पादनानुकूलत्व**मित्यादि । व्यवहारयोग्यता रूपप्रकाशस्यव्यवहारद्वारेणैवानुमेयतया व्यवहारात् प्राक्कालेजायमानौ विदितत्वप्रतीतिव्यवहारावनुपपन्नौ स्यातामित्यर्थ ।

॥ इति प्रभाकरमते पुनरपिदोषोद्भावनप्रकरणे तत्त्वदीप ॥

प्रभाकरमते पुनरपि दोषोद्भावनप्रकरणेन विमर्शकेनकेनचित्प्रकाशशब्दार्थस्य **प्रकाशते** इतिपद घटकस्याक्षेपे कृते तटस्थ कश्चित् शङ्कयति **यद्येवम्** इत्यादि **निर्दुष्टमनुगतमेवरूप**मित्यादि

संमतंचात्रज्ञानमर्थप्रकाशकम् " (अनन्ततत्वपीयूषः ४०) **इतिजगद्गुरुश्रीनरहर्यानन्दाचार्योक्तेश्च अनुभवादूरत्वकस्मृतिनिमित्तकप्रकाशः स्वरूप एव सः । अर्थात् संविद्दूरत्वमेवप्रकाशपदार्थस्यलक्षणमितिभाव ।**

पुनराहकश्चित्—किमिदमदूरत्वम् ? दूरादन्योऽदूरोदूरविरुद्धोवातदभावो वा ? एवं विशेषणमुपलक्षणं वा अदूरत्वम् ? विशेषणत्वे त्रिष्वपिपक्षेषु संवेदनदूरत्वज्ञानपूर्वकं अर्थात् ज्ञानसम्बन्धस्य सयोगसमवायन्यतमस्य प्रकाशशब्दार्थत्वकथने एतादृशज्ञानसम्बन्धमात्रस्य अप्रकाशमानघटाद्यर्थसाधारण्य भवति तथा समवायादपि नानुगतमित्यन्यूनातिरिक्त "प्रकाशने" इत्यादौप्रकाशपदार्थो दुर्निरूप एव भवतीति शङ्ककस्याभिप्राय । अत्रसिद्धान्ती समधातुमाह **तत्रोच्यते** अयमाशय नहि एतादृशसदिश्यमानार्थस्य स्वकीयाल्पबुद्धिमात्रेण कश्चिदपि निर्णेतु प्रभवति । ततोगुरोरूपासनैवश्रेयस्करीप्राचीनाचार्यग्रन्थानामध्ययनमावश्यकम् । तत्र च "अर्थप्रकाशकम्" इत्यादिप्रपञ्चितम् । यदा विषयो घटादिरनुभवस्या दूरे समीपेविद्यमान स्वविषयकस्मृतिजनयति, तथैवानुभवस्याप्यनुभवाददूरत्वसस्कारद्वारेणास्त्येवेति तस्यापिस्मृतिरुपपद्यते एवेति । एतावताप्रकाशपदार्थनिरूपणेकिसमाहितम्, तत्राह **संविददूरत्वमेव** इति । यथा सविदोज्ञानस्यदूरत्वसमीपवृत्तित्वम् विषयत्वज्ञातुश्चभवति, तथैव सविद्दूरत्वसविदापिभवत्येव, ततश्चसविददूरवर्तित्वमेवप्रकाश, तथा च ज्ञानापरपर्याय एव प्रकाश । एवञ्चप्रकाशपदार्थ क इति जिज्ञासायाज्ञानरूप एव प्रकाशपदार्थ इत्युत्तरम् । अयमर्थ सम्पूर्णप्रकरणस्य पर्यालोचनयाप्राप्तो भवति, दधिमन्थनेननवनीतप्राप्तिवदितिसक्षेपोविस्तरस्तुसम्प्रदायसेवयैवज्ञातव्य ।

अथसविददूरत्वमेवप्रकाशनेपदघटकपदार्थ इति पूर्वसिद्धान्तिनासिद्धान्तरूपेणप्रतिपादितम् । अर्थात्सविददूरत्व ज्ञानेज्ञातरिज्ञेयादित्रिष्वपिविद्यते, तद्रूपएवप्रकाशपदार्थस्तत्रशङ्कते **पुनराहकश्चित्** इत्यादि । अदूरमित्यत्र, नदूरमित्यदूरमितिनञ्समास । समासान्तर्गतनञ षडथाभवन्ति । तथोक्तम्—तत्सादृश्यमभावत्वतदन्यत्वतदल्पता । अप्राशस्त्यविरोधश्चनञया षट्प्रकीर्तिता " यथा, "अनिक्षु सर" इत्यत्र न इक्षुरनिक्षु अर्थात्, इक्षुवत्लवायमानमिक्षुवदतिमिष्टरसोपपन्नसर । अत्र न इक्षुरनिक्षुरित्यत्रनञ.सादृश्यमेवार्थ परिगृह्यतेयोग्यत्वात्, इक्षुवत् अतिमिष्टरसवत्वमतिदीर्घत्वनञासरसिबोध्यते । क्वचिदभावाऽत्यन्ताभावोपिनञोऽर्थो भवति, यथाऽघटभूतलमित्यत्रघटविरहवतिघटाभाववद्भूतलमित्येवार्थ प्रतीतोभवति । क्वचिदन्योन्याभावोप्यर्थो भवति, यथा ऽघट पट " अत्रघटभिन्न पटोऽथात् घटान्योन्याभाववान् पट नञाघटतादात्म्यस्यपटेप्रतिषेधात, ईदृशोऽर्थएव । एव समासान्तर्गतनञपदस्याल्पत्वमप्यर्थो भवति, अर्थादीपदर्थकत्वनञ । यथा "अलवणकशाकम्," प्रमाणतोन्यूनेलवणेसति, अय प्रयोग । तथाचेषल्लवणकत्वशाकेप्रतीयते, ननु लवणस्यात्यन्ताभावोऽन्योन्याभावो वा प्रतीतो भवति । यथावा, "अनुदराकन्या" अल्पोदरवती

'प्रकाशते'' इतिज्ञानंस्यात् । नचैवं भवति । उपलक्षणत्वपक्षेःउपलक्ष्यस्वरूपान्तरव-क्तव्यं भवेत्, नतु तदुपलभ्यते । अभिप्रायानवबोधात् भवतु दूरान्योदूरविरुद्धोदूरा-भावोवाऽदूरत्वम्, सर्वोपिसमीचीन एव । तद्भावप्रकाशपदार्थ इति ।

ननुदूरस्यात्यन्ताभावोलोकवाधात् । तथैवप्रकृते, अदूरत्वम्, ईषद्दूरत्वमिति । क्वचित् अप्राश-स्त्यमपितदर्थ । यथाखडियापल्टन-मात्रवेषधारिणदृष्ट्वावदतिलोक "असावुरयम" अत्र न साधुरसावु-रितिसमासानन्तरसावुत्वस्य न निषेध किन्तु अप्रशस्तोऽयसावुरित्येवार्थ प्रतीयते। एव विरोवोऽप्यर्थ-कुत्रचिद् भवति नञ् पदस्य यथा नसुरोऽसुर । अत्रनात्यन्ताभावोऽन्योन्याभवो वा, अन्योन्याभावा-र्थक वेसुरभेदस्यसुरेतरत्वस्यमनुष्यादिष्वपिविद्यमानत्वेनसर्वेपिमनुष्यादयोऽसुरा एव भवेयुरतोऽत्रनञोर्थो-विराव एव परिगृह्यते । सर्वचेन्द्रादिसुरपदवाच्यस्यविरोध कर्मराक्षसरावणादिदितिपुत्रादेरेवस्वभाव विराधसद्भावेनरावणादयएवासुरपदवोध्या भवन्ति ।

एवञ्चनञोनानार्थकत्वस्यदर्शनात् प्रकृतेऽदूरमित्यत्रतस्यनञ कीदृशोऽर्थ परिगृह्यते इतिजिज्ञासु प्रश्नयति **किमिदमदूरत्वमिति** । तत्रदूरादन्योऽदूर इतिवा, दूरविरुद्धोवाऽदूर इति दूराभावोवाऽदूर इति । योग्यत्वादर्थत्रयविगृह्यप्रश्न । यद्वाभवतुनञोयो वा कोवाप्यर्थ तत्रान्यतमार्थपरिगृह्यशङ्कान्तर करोति **एवविशेषणमुपलक्षणंवा** इति । अर्थात्, इदमदूरत्वसविदोविशेषणमुपलक्षणंवेतिप्रश्न । तत्रयदि सविदोविशेषणत्वमदूरेइत्यस्यमन्येत, तदात्रिष्वपिभेदविरोवाभावपक्षेषु, दूरप्रतियोगिकान्योन्याभाव विरोधात्यन्ताभावानाप्रकाशपदार्थत्वस्यस्वीकारे, दूरज्ञानपूर्वकमेवभेदादिज्ञानस्यात्, प्रतियोगीज्ञान-पूर्वकस्याभावज्ञानस्यदर्शनात्, "प्रतियोगिविशेषिताभावज्ञाने विशिष्टवैशिष्ट्यवोवमर्यादानातिशेते" इतिनियमात् । यत्प्रतियोगिकोयदनुयोगिकस्याभावोभवति, तादृशाभावज्ञानेप्रतियोगिज्ञानस्यानुयोगि-ज्ञानस्यपूर्वमवश्यमेवापेक्षणात् । अन्यथाकारणाभावेनाभावज्ञानस्यैवासभवात् । नहिघटप्रतियोगिन जलादिकमधिकरणमजानता घटाभाववज्जलमितिरुदेति ।

अतएवसुमेरुर्वन्ध्यापुत्राभाववानित्यभावप्रतीतिर्जायते, तत्रप्रतियोग्यनुयोगिनोरुभयोरप्यसवि-दितत्वात् । परन्तु नैव कुत्रचिदप्युपलब्धमितिविशेषपक्षो न युक्तोऽनुपलभादेवेति संक्षेप । नवा उपलक्षणत्वमितिपक्षोपियुक्त ? उपलक्ष्याकारान्तरस्यादर्शनात् । 'काकवन्तोदेवदत्तगृहा' इत्यत्रोत्तृण-त्वादिवत् । एवञ्चविशेषोपलक्षणपक्षद्वयेपि, अनुपपत्तिज्ञानमेवप्रश्नबीजमित्यवधेयम् । अथवा प्रकृते किंशद्ब आक्षेपार्थकएवविकल्पासहत्वात् सविददूरत्वनप्रकाशपदार्थइति । उत्तरयति**अभिप्रायानवबोधा-दिति** । अत्रादूरत्वदूरान्यत्वदूरविरोधित्ववा, तत्सर्वमनुमतमेव, अर्थाद्दूरविरोधित्वदूरभिन्नत्वचादूरत्व तदभावएवप्रकाशपदार्थ । द्वितीयविकल्पकल्पस्योत्तरम्, **तद्भवःप्रकाशपदार्थः** । अर्थात् अनुभव-दूरभिन्नत्वमनुभवदूरविरोधित्वरूपमेवप्रकाशत्वप्रकाशमानत्वप्रकाशार्थाइति । अनुभवपद न प्रत्यक्षादिज्ञान विशेषस्यबोधकमपितुज्ञानत्वेनज्ञानसामान्यबोधकम् । तेनप्रत्यक्षानुमित्युपमितिशाद्बसस्कारजसर्वज्ञानाना

'प्रकाशते' इत्येवंप्रकारेणजायमानप्रतिभासोपिज्ञानविप्रकर्षविरोधिबोधतत्संसक्तपदार्थस्वरूपविमर्श एव बाह्यप्रदीपप्रकाशवत् । प्रदीपादावप्यालोकेआलोकव्याप्तपृथिव्यादिभागे च प्रकटोयमितिप्रख्योपाख्येआलोकादूरत्वनिमित्तकेभवत एव । प्रदीपालोकस्थलेयथाऽलोकनिमित्तकोगाढान्धकारविनाशः । तथैव प्रकृतेज्ञानादूरत्वमूलकाज्ञाननि-
सह । अतएवप्रत्यक्षज्ञानानन्तरयथाऽर्थप्रकाशतेइतिव्यवहारस्तथैवाऽनुमित्यन्तरवह्निरूपोऽर्थ प्रकाशते इत्येवरूपेणसर्वज्ञानानन्तरप्रकाशते इतिसमानएवप्रकाशतेइतिव्यवहारोभवत्येवेति । एतत्तदुच्यते "शाखाचन्द्रन्यायेनशाखायाचन्द्रइतिवत् , उपलक्ष्योपलक्षणयो सामानाधिकरण्येननिर्देश । एवञ्च सविद्दूरत्वोपलक्षितोधर्मविशेषप्रकाशोभवतीति भाव ।

सविदविदूरत्वतद्विरोधित्वमेवप्रकाशत्वयत्कथिततत् स्वयमेवाचार्योविस्पष्टयति **प्रकाशते**इत्यादि, सविद्दूरभेदाद्युपलक्ष्याकारस्तुज्ञानज्ञातृज्ञानसबद्धार्थान्यतमभाव । प्रकाशपदस्यज्ञानादूरत्वोपलक्षितधर्मवाचकत्वात् । अथवासविद्दूरप्रतियोगिकभेदवत्वतादृशदूरविरोधित्वप्रकाशइत्यर्थ । अथैव प्रकाशज्ञानेसविद्दूरविरुद्धस्यावश्यभावित्वस्यापेक्षायामाह, **प्रकाशते** इत्यादि, "भावान्तरमभावो हिकयाचित्तु-व्यपेक्षया" इत्यादिनियमेन, अभावस्यभावादूररूपत्वात् , सविद्दूरभेदस्यतद्विरोधस्य च सवित्तत्संसृष्टपदार्थतादृशप्रदार्थाश्रयरूपत्वेनदूरादिपदार्थज्ञानविनापिप्रकाशप्रतीतिर्भवत्येव । अभावस्याधिकरणात्मकत्वमितिमते घटाद्यभावोऽधिकरणपटादिरूपएवयथावादोषाभावोगुणात्मकइति घटाद्यभावज्ञानेऽधिकरणात्मकपटादिज्ञाननापेक्षितभवति, अनुभवविरोधादेवेतितत्रपटादिज्ञानमन्तरेणापिघटाभावादिर्ज्ञायते एव, तथैव संविद्दूरादिभेदज्ञानमन्तरेणापिप्रकाशज्ञानमपिसभवत्येवेति प्रकाशपदस्यसविद्दूरत्वावच्छिन्नमेवार्थ इतिभाव ।

बाह्यप्रदिपप्रकाशवदिति दृष्टान्ततयोपात्तम् , यथाबाह्यप्रदिपालोकस्थलेतथातादृशालोक प्रकाशितपदान्तरेचालोक प्रकटित इति, घटादिश्चप्रकाशितइतिप्रतितिव्यवहारौ च सभवत स च व्यवहारादि प्रदिपालोकनिमित्तकएव, एवयथा प्रदीपालोकेनान्धकारस्यद्रव्यात्मकस्याभावरूपस्यवा, निवृत्तिरपिजायतेएवतथैवालोकात्मकज्ञानप्रकाशेनान्तरतमोगुणात्मकाज्ञानस्यनिवृत्तौसत्याप्रकाशते इत्यपि व्यवहारोभवत्येवेति । **अज्ञाननिवृत्तिरिति** नात्राज्ञानपदेनमतविशेषेभावात्मकस्याभावरूपस्याज्ञानस्यनिवृत्तिरित्यर्थ ,अपितुअप्रकाशकारणभूतस्यतमोगुणस्यसाख्यतन्त्रप्रसिद्धस्यैवनिवृत्तिरित्यर्थ तमोगुणस्यनिवृत्तिरेवार्थ । अप्रकायोऽप्रवृत्तिश्चप्रमादोलोभएवच । तमस्येतानिजायन्तेप्रवृद्धेभरतर्षभ" इति भगवदुक्ते ।

अप्रकाशकारणत्वतमोगुणेप्रतिष्ठितम् । स्वकारणतमोगुणस्यनिवृत्तौसत्वकारणकसत्वगुणविवृद्ध्या, प्रकाशाविर्भावात् । तदप्युक्तम् "सत्वात्सञ्जायतेज्ञानमिति । प्रकाशाप्रकाशयोर्विरोधस्यसर्वानुमतत्वादित्यलम् । ननुभवतुसविद्विषयत्वमेवप्रकाशत्वम् , यथाज्ञानविषयत्वात् घटादौप्रकाशते इति

वृत्तिर्जायते एवेति । अतएवानुभूतेऽनुभवेचोत्तरकालेसमानमेवस्मरणम् ।

प्रतीतिर्व्यवहारश्चभवति, तथैवप्रकाशेपिसभवात् । नच यथाघटादोज्ञानविषयत्व न तथाज्ञानस्यज्ञान विषयत्वस्वप्रकाशतयाज्ञानविषयत्वस्यज्ञानेऽभावात् , इति नज्ञानस्यज्ञानविषयत्वेपिज्ञानान्तरविषयत्व सभवात्, यथाऽयघटइतिप्रात्यक्षिकज्ञानविषत्वघटपश्यतीत्यत्र, तथैवघटविषयकज्ञानवानहमित्यनु व्यवसायात्मकज्ञानकर्मत्वेनप्रथमज्ञानान्तरकर्मत्व तथा च द्वितीयज्ञानवलात्तस्यापिप्रकाशप्रतीतिव्यवहारौ घटेत एवेतिकिम् दूरत्वपर्यन्तानुधावनेनेत्याशकानिवर्तयितुमाह **अतएवानुभूतेऽनुभवेचेत्यादि** अयमाशय , यदिघटाद्यनुभवानन्तरदैवात् , अनवस्थादिप्रसक्त्या वा ज्ञानविषयकज्ञानान्तर न जातम् , तत्रयुगपत् घटतद्विषयकानुभवयो स्मरणमेवभवति, अप्रकाशितस्य च स्मरणासमएवसविद दूरत्वप्रकाशस्योपपादकभवति । यदिकश्चित् विषयकज्ञानानन्तरसशयविपर्ययादिवारणायव्यवसाया-त्मकज्ञानानुव्यवसायात्मकज्ञानान्तरमवश्यमेवेतिमति तस्यवादिनोऽनवस्थादोषादनिर्मोक्षएवापतेत् । यथाविषयविषयकज्ञाननिष्ठसशयादिवारणायद्वितीयज्ञानमनुव्यवसायात्मकमवश्यमेवमन्तव्यम् , अन्यथा प्रथमज्ञानगतसशयादीनानिराकरणासभवात् । एवद्वितीयज्ञानगतसशयविपर्ययादेर्निराकरणायतृतीय ज्ञानान्तरस्वीकर्त्तव्यम् , एवतृतीयज्ञानगतसशयादिकेजातेतद्वारणायचतुर्थज्ञानान्तरम् । एवमेवपञ्च-मषष्ठादिज्ञानान्तरानुसरणेज्ञानप्रवाहोनकुत्रचिन्निवर्तेत । तथा च विषयान्तरसञ्चारसुषुप्त्यभावमोक्षो-च्छेदभयाच्चक्वचिद्ज्ञानधाराया विश्रामे, यदनन्तर न ज्ञानान्तरजाततस्यज्ञानस्याप्रमाणिकत्वमेवभ-वेत् , तस्यान्तिमस्यतथा वेउपान्त्यस्याप्रमाणिकत्वस्यादितिक्रमेणप्रथमज्ञानपर्यन्तसर्वज्ञानस्याप्रामाणि-कत्वे नकापिव्यवस्थाव्यवस्थिताभवेत् ।

नचानवस्थास्वीकारोपिक्षेमाय, अनवस्थायास्त्रिदोषग्रस्तत्वात् । तथोक्तम् “प्राग्लोपा विनिगम्यत्वप्रमाणापगमैर्भवेत् । अनवस्थितिमास्थातुरचिकित्स्यात्रिदोषता । अग्रिमाग्रिमज्ञान स्वीकारे प्रथमप्रथमस्यविलोप प्रथमज्ञानकार्यस्यद्वितीयादिज्ञानेनैवसपादनादितिपूर्वपूर्वतरस्यादर्शनमेव भवेत् । एवप्रथमस्यद्वितीयादे प्रामाणिकत्वमितिविनिगमनायाप्रमाणाभावादविनिगम्यत्वमपिदोष । तथापिप्रवाहस्वीकारेप्रमाणाभावो नहिभवतिकस्यचिदपिघटादिज्ञानान्तरमनन्तज्ञानानामनुभव । तथा च यथोक्तानवस्थादिदोषदर्शिनाघटानुभवानन्तरघटानुभवविषयकज्ञानान्तरेचासतियुगपत् घटघटानुभव-योर्यत्स्मरणजायते, तत्स्मरणप्रकाशमन्तरेण नसभवति, अप्रकाशितार्थस्यस्मरणानुपपत्तिरेवसविददूरत्व लक्षणप्रकाशस्योपपादकभवतीति । यथादिवाऽभुञ्जानस्यपिनत्व रात्रिभोजनस्योपपादकभवति । यथा वा घटादीनाप्रमितिश्चक्षुरादिप्रमाणस्योपपादकभवति । प्रमाणमन्तरेणप्रमितेरुत्थानासभवादिति सक्षेप ।

एवञ्चसंविददूरत्वस्यैवप्रकाशरूपत्वव्यवस्थित्याचैतन्यसम्बन्धविषयकविकल्पोनिरस्तः । नैरन्तर्यपदबोध्यमत्यन्तसामीप्यमेवसंयोगः । स एव संयोगोन्यायमतेसमवायेतिकथ्यते इतिसंयोगादर्थान्तरत्वंसमवायस्यनास्तीत्यग्रेप्रदर्शयिष्यते ज्ञानादूरत्वनिमित्तकोव्यवहारोपपादकतालक्षणो वा परः प्रकाशः ।

ननु पूर्वंचैतन्यस्यसंयोग प्रकाश स्तत्समवायो वा प्रकाश सम्बन्धमात्र वा प्रकाश ? तत्र न प्रथमश्चैतन्यस्यगुणत्वेनसंयोगाभावात् 'द्रव्ययोरेवसंयोग" इतिनियमात् । नवाद्वितीय, आत्मेतरस्यप्रकाशाभावापातात् । नवातृतीय, चक्षुरादिकरणस्यापितथात्वापातादेवप्रकारत्रयविकल्पेन प्रकाशार्थंप्रतिरोधितवान् । तत सविददूर त्वस्यैवप्रकाशपदार्थत्वनिर्णीतोवा निर्णीतवान् । एवञ्चप्रकाश विषयकोयोवादिनोविकल्प चैतन्यसंयोगोवातत्समवायो वा, तत्सम्बन्धमात्रवान सर्वंसिकताकूपवदव विदीर्णमितिदर्शयितुमुपक्रमते **एवंचसंविददूरत्वस्यैवप्रकाशरूपत्व** इत्यादि । अर्थात् यदासंविद दूरत्वमेवप्रकाशपदार्थंनिर्णीतवान् तदानकस्यापिविकल्पस्यावसरोभवतीतिभाव ।

ननुयदिदनैरन्तर्य तस्यैवसंयोगसमवायवायुरूपत्वेनतद्भेदोपजीविकल्पोनतरापतते, इत्येन दर्शयितुमाह **नैरन्तर्यपदबोध्यम्** इत्यादि । अत्रेदबोध्यम्, संविददूरत्वनामसंवित्नैरन्तर्यमेव । तच्च संवित्नैरन्तर्यसंविदिसंवित्विषयार्थेसंविदाश्रयत्वादिषु तुल्यरूपेणैववर्तते । **तत्रायुतसिद्धयोरपृथक्सिद्धयोर्यन्नैरन्तर्यं** तदेवसंयोगसम्बन्धवाच्यभवति, तथाऽयुतसिद्धयोर्गुणगुणिनो क्रियातद्वतोर्यन्नैरन्तर्यंतदेवसमवायपदवाच्यभवति । अस्यैवनैरन्तर्यस्य न्यायविद समवायनामेतिवदन्ति । तथास्वस्यैवस्वापेक्षायाऽभेदपदवाच्यतापिभवति । एवञ्च "प्रकाशते" इत्यात्राशद्वयम् काशधातु 'ते' इतिप्रत्ययश्च, तत्रकाशेतिप्रकृत्यर्थोज्ञानम्संविद्वा, नैरन्तर्यं चाख्यातार्थ ततश्चसंविदोनैरन्तर्यं "प्रकाशते"इतिसमुदितस्यार्थोनिष्पद्यते । अत्रप्रकाशपदेनकस्यकस्य वा स्वरूपमितिविषयेसिद्धान्तपक्षेवक्ति **ज्ञानादूरत्वनिमित्तक** इत्यादि । यथास्फीतालोकवत्तिचक्षुः सन्निकर्षेजातेघट प्रकाशते, इतिव्यवहार सार्वलौकिकोभवति, तथैवशास्त्रजनितज्ञानेनप्रकाशतेश्रीरामइति व्यवहारदर्शनजायतेइतिस्वभाव सचज्ञानादूरत्वनिमित्तोव्यवहारोदयानुगुणलक्षण एव ज्ञानज्ञेयज्ञातृषु समानएवेतिभाव ।

अथैवमपि व्यवहारबलादेवव्यवहारक्षमत्वस्य ज्ञातुशक्यत्वेनव्यवहारोत्तरकाले एव प्रकाश प्रतीतिस्यान्नतुव्यवहारात् पूर्वप्रकाशप्रवृत्ति स्यादितिचेत्सत्यम्, घटादिप्रमेयेपुज्ञानसम्बन्धस्यनैरन्तर्य रूपस्यज्ञानेनैवप्रतीतिसंभवेन ज्ञानस्य च व्यवहारयोग्यतालक्षणकारणत्वव्याप्यत्वानुसंधानात्, तत्काले व्यवहारमन्तरेणापि व्यवहारयोग्यतायाज्ञातुशक्यत्वात तत्कालेतत्रफलोपहितत्वरूपकारण त्वस्यघटादौ वर्तमानदण्डादिवदभावेपि, वनीयदण्डेतत्कालेकारणत्वाभावेपि, यथाकारणतावच्छेदकदण्डत्ववत्वस्य तदानिमपिविद्यमानत्वेनयोग्यताकारणत्वस्याक्षतत्ववदिहापितथैवनिर्वाहोवक्तव्य एवेतिभाव ।

मचविद्यमानेपिस्वकीयनिमित्तकारणमाकल्येप्रतिबन्धाद् योग्यत्वाभावाद्वाऽव्यापकत्वामङ्गित्वाद्यात्मकधर्मान्तरेषु तथा करणकलेवरादौ च न जायते, चक्षुरादिसम्बद्वेपिकालिन्दीजलेरूपरसादिवत् ॥

"मन्यमज्ञानम्" इत्यादिश्रुत्यापूर्वोक्तयुक्त्या च स्वतश्चैतन्यशरीरेज्ञानस्वभावकएवात्मा ।

"ततोज्ञानस्वरूपात्मा विभुज्ञानं च तद्गुणः । 'ज्ञानस्वरूपमत्यन्तंनिर्मलंपरमार्थतः ॥ एवंविष्णुपुराणेहि ज्ञानस्वरूतात्मनः । 'मन्ताबोद्धे'तिप्रामाण्याज्ज्ञाताजीवोबुधैर्मतः ।

अथज्ञानसम्बन्धादय घटाद्यर्थस्यप्रकाशोभवतीति यदिस्वीक्रियते,तदाचक्षुरिन्द्रियजनितसम्बन्धस्यगन्धरसस्पर्शादिगुणेऽपिसभवेन, तथामनोजनितज्ञानसन्निकर्षस्यात्मवत् तदीयपरिमाणेपिसत्वात् , ततत च तस्यतस्यप्रकाश स्यादित्याशङ्कायामाह **सचविद्यमानेपि** इत्यादि । स्वनिमित्ताविक्येन प्रतिबन्धात् तत्रप्रतिबन्ध प्रबलगुणान्तरेणाभिभाव । यथाहनिसूर्यतीक्ष्णप्रभाभिरभिभूतेनक्षत्रमण्डलस्यपिस्वपुष्कलकारणेनेवदृश्यते, अभिभावकस्यागमेतुनदेवग्रहादिमण्डलं दृष्टभवति । अभिभवेनाग्रहे, उदाहरणदर्शितयमुनाजलम् , तद्गतरूपादिकचस्वभावतोजलस्याभास्वरशुक्लमेवपरन्तुतदीयशौक्लस्यजलान्तर्गततलगतेनाभिभवादग्रहोजायते । अयोग्यतयाऽग्रहेयमुनाजलसमवेतरसस्य चक्षुषाग्रहणभवति, रसस्यचक्षुरयोग्यत्वात् । यथा वा वन्ध्यापुत्रादेश्चक्षुषाग्रहेऽयोग्यत्वमेवकारणभवति । सामग्रीसद्भवेपिकस्यचिदिन्द्रियादिनाऽग्रहोऽभिभवादेवभवति । एवमतिदूरातिसामिप्यादिकमपिस्वकारणेविद्यमानेपितदीयग्रहाभावेप्रयोजकभवतीति तदन्यत्रद्रष्टव्यम् । अयोग्यवस्तुनोऽग्रहणेपुष्कलकारणाभावएवप्रयोजकोभवति तत्कारणस्यैवाभवादिति । प्रचुरदुःखादिनाप्रचुरतमोयोगेन वा स्वल्पसुखादे स्वापे, विद्यमानेपिज्ञानस्याभिभवादेवाग्रहोभवति, अयोग्यत्वादेवात्मपरिमाणादेर्ग्रहोमनसा नभवतीतिदिक् ।

॥ इतिसविददूरप्रयुक्तव्यहारानुगुणस्य प्रकाशपदार्थत्वोपसहारप्रकरणेनत्त्वदीप ॥

समतीतप्रकरणेनप्रसङ्गागतप्रकाशपदार्थस्यविचार कृत । सम्प्रतिविषयघटानाज्ञानकालेएवात्मनोज्ञानाधीनप्रकाशइतिमीमासकवादस्यनिराकरणाय पूर्वयत्समर्थितमात्मनोज्ञानस्वभावत्व स्वेतराधीनप्रकाशत्व च तदुपसहर्तुमाह **सत्यंज्ञानमित्यादि** यस्मात् कारणात् ज्ञानज्ञेयज्ञातृसाधारणस्य प्रकाशस्यश्रुतियुक्त्यादिकारणेननिर्वचनसभवति, तस्मात् कारणात् , आत्मास्वाधीनप्रकाश सिद्ध । सचात्माज्ञानस्वभावकएव, नत्वात्मनआगन्तुककरणादिजनितज्ञानम् । चक्षुरादिवाह्याभ्यन्तरकरणद्वारावहिर्निर्गतधर्मभूतज्ञानादेवार्थान्तरस्य घटादेरभ्यन्तरस्यसुखादेश्च प्रकाशकोभवति । स्वयतुस्वप्रकाशरूपत्वात् स्वत सिद्धोनतुपराधीनप्रकाशोभवति ।

'ज्ञोऽतएवे'ति सूत्रं हि ततोऽव्यासेनसूत्रितम् । 'विज्ञानंयज्ञंतनुते'ज्ञानोक्तिश्चेतियाऽऽत्मनः । विज्ञानगुणसारत्वात्सूत्रे सा प्राज्ञवत् मता ।" (श्रीबोधायनमतादर्शे८९६-८९९) इत्याचार्योक्तेः । स च स्वभिन्नपदार्थचक्षुरादिकरणेननिर्गतज्ञानेनावभासयति ।

यत्तुज्ञानमागन्तुकमात्मधर्मत्वात्सुखदुःखादिवदित्यनुमानेनात्मधर्मभूतं ज्ञानमनि-

अयमाशय नहिघटादिक कश्चिदपिपदार्थ स्वकीयप्रकाशायसाधारणासाधारणसजातीयपदार्थान्तरसापेक्षोभवति, नहिघट स्वप्रकाशाय घटान्तरमपेक्षनेकिन्तु स्वविजातीयप्रदीपादिकमेवापेक्षते । एवप्रदीपादीनामालोकोपिस्वप्रकाशाय नमूयोद्यालोकान्तरमपेक्षमाणोभवति, नवाप्रदीपालोकप्रकाश घटादिकमपेक्षते, अर्थात् स्वप्रकाश्यघटादिक स्वसजातीयमालोकान्तरमपेक्षते, किन्तुप्रदीपादीनामालोक स्वविजातीयचक्षुरादिकरणमेवापेक्षते । एवमेव चक्षुरादिकरण न स्वसजातियमिन्द्रियान्तरस्वापेक्ष प्रकाशमालोकघटवाऽपेक्षनेकिन्तु स्वविजातीयज्ञानमेवापेक्षते । एवज्ञानमपिज्ञानान्तरस्वाधीनसिद्धिकमिन्द्रियादिकवानापेक्षतेस्वसिद्धये, किन्तुज्ञानस्वसिद्धयेस्वविजातीय स्वाश्रयभूतकर्तृत्वात् स्वतन्त्रमात्मानमेवकेवलमपेक्षते । एवमात्माप्यात्मत्वेनसजातीयमात्मान्तरस्वाधीनसिद्धिकज्ञानमिन्द्रियादिक वा स्वसिद्धयेनापेक्षते । इत्येवरूपेणानन्यापेक्षत्वादात्मस्वरूपस्यसिद्धिर्भवति । तदुक्तमभियुक्तै सर्वतीर्थदशासिद्धि स्वाभिप्रेतस्यवस्तुन । यदभ्युपगमवलात्तत्सिद्धि केनवार्यते ॥ इति ।

एवप्रकारेण ज्ञानवेद्यत्वमात्मनोनिरस्यतस्यस्वयप्रकाशत्व

"स्वस्मैस्वयप्रकाश स ज्ञानवत्ता च तत्राह । 'एतद्‌योवेत्ति' गीताया 'जानाम्येव' श्रुतोतथा ॥

'ज्ञोऽतएवेतिसूत्रेऽपिज्ञातृताचात्मनोमता । 'विज्ञानात्मेतिवेदोक्तेरात्मनोज्ञानरूपता ॥ "

(श्रौतप्रमेयचन्द्रिका ५/१४-१५) इत्यादि श्रुतियुक्त्यादिभि समर्थितम् ।

अथैवस्वरूपस्यात्मनो न साक्षादेवविषयप्रकाशकत्वमपितु स्वात्म धर्मभूतज्ञानद्वारेणैवविषयादिप्रकाशकत्वभवति । तच्चधर्मभूतज्ञानमात्मन स्वाभाविकमेवनतु परोपाधिकत्वेनागन्तुकमित्यर्थ । ततश्चचित् चैतन्यस्वभावस्यात्मन स्वप्रकाशरूपस्य धर्मभूतज्ञानम् तद्रूपमेव । न चैवमात्मभावानुबन्धित्वात् ज्ञानस्ययावदात्मभावित्वेमध्येघटज्ञानजातनत्पूर्ववर्तिपटादिज्ञान च विनष्टमित्यादिज्ञानगतोत्पादविनाशप्रतीतिर्व्यवहारश्चकथसमर्थनीय इतिवाच्यम्, इन्द्रियादिद्वारेण तत्तदर्थसपृक्तज्ञानमेवघटादिज्ञानम्, तत्रससर्गस्यानित्यत्वेनतद्विशिष्टज्ञानेपि तथाप्रतीतिव्यवहारोपपादन सभवेनादोषात् ।

अथात्मबोधस्य स्वभाविकत्वनतुजन्यत्वमितिगतप्रकरणेस्थापितवान् आत्मनोहिबोधो न स्वाभाविकोऽपितु ज्ञानस्यात्ममन सयोगजनिततयाऽगन्तुकत्वमनित्यत्वमेवेतिसुखादिवत् इतिसिद्धान्त प्रतिपक्षतयाकेनचिद् व्यवस्थापितम्, तन्मतमिहानुवप्रतिक्षेप्तुदर्शयति **यत्तुज्ञानमागन्तुकमित्यादि** । इदमीयमूलानुमाने, ज्ञानबोधापरपर्यायपक्ष.आगन्तुकत्व कारणजन्यत्वसाध्यम्, आत्मधर्मत्वात्, इति

न्यमेवेतिकथितम् । तन्न युक्तम्, ज्ञानस्वरूपापरिज्ञानात् । यत स्वरूपोपाधिकोधर्मो यावदाश्रयभावी एव भवतीतिनियमः सुखादिकं नात्मनः स्वरूपोपाधिकः बोधस्त्वात्मनः स्वरूपोपाधिक एव अतोयावदाश्रयभावित्वंतत्स्वभावः । वोधोपाधिरात्मस्वभावो यथा

हतु सुखवदित्युदाहरणम् , यथासुखदु खादो, आत्मधर्मत्वमस्तीतितत्रागन्तुकत्वमपिविद्यतेएवेति यथोक्त साध्यहेत्वो सहचारात् व्याप्तिसिद्धौतद्बलेनवोधेआगन्तुकमयत्नसिद्धमेवभवति । वन्हिव्याप्तधूमात्पर्वते-वन्हिसाधनवदिति प्रश्नकर्तुरागयोन्यायमतानुसारेणेति । स्वसिद्धान्तमनुसृत्यतन्मतेगजनिमीलिकामादधान सिद्धान्तीप्रतिक्षिपति **ज्ञानस्वरूपापरिज्ञानादिति** । गुणस्वभावस्यापरिज्ञानादिति, तत्रकीदृशोगुण स्वभावइत्याकाक्षायामाह, **स्वरूपोपाधिकोधर्मोयावदाश्रयभावीत्यादि** । तत्रस्वरूपोपाधि व नामस्वरूपनिरूपकत्वमेव, तथाच स्वरूपनिरूपकधर्मा यावदाश्रयभावित्वस्वभाव । यथावायोरनु-ष्णाशीतस्पर्शवत्वम् । एवञ्चस्वरूपनिरूपकधर्माणामेव यावदाश्रयभावित्वस्वभाव । येचनस्वरूपक धर्मास्तेनयावदाश्रयभावित्स्वभावका यथाजलेऔष्ण्य किन्तुतेतुपरोपाधिका आगन्तुकाएवकथ्यन्ते ।

अत्रबोधस्यैवैतादृश स्वभावो ननुसुखादीनामिति तेसुखादयआगन्तुकाएवेति । **बोधोपाधि-रात्मस्वभावोयथाभवतीत्यादि,** बोधउपाधिर्यस्यसबोधोपाधिरिति बहुव्रीहिसमास । अर्थात्, ज्ञानाभिन्नस्वरूपनिरूपधर्मवानात्मपदार्थ । ज्ञानवत्वेनैवसर्वदोपलभ्यमानत्व युक्त्याबोधोपाधित्वमा-त्मन समर्थितम् । रूपरसादिविषयसन्निकर्षस्य कदाचित्कत्वेनतादृशप्रमेयोपरक्तबोधस्यकादाचि-त्कत्वप्रतितेर्जायमानत्वेपिस्वतज्ञानस्वरूपतु नित्यमेव । अर्थात् विषयसवन्धोऽनित्यो भवन्नपिज्ञानतु स्वरूपतोनित्यमेवनागन्तुककदाचिदपि भवतीतिभाव ।

ननु यद्यपिज्ञानमात्मस्वभावकमित्यत्रश्रुत्यादिप्रमाणमेवदर्शयिष्यते, तेनैवज्ञानस्यात्मस्वभावत्व-मायास्यत्येवेतितत्रवृथाकण्ठशोषणेनानेकप्रकारकयुक्तितर्कादिप्रदर्शनेन, तथापि प्रकृतप्रकरणस्ययुक्ति-तर्कप्रधानतयायुक्तिरेवविशेषत प्रदर्शितेतिभाव । अनेनज्ञानस्यागन्तुकत्वानुमाने 'स्वरूपनिरूपकधर्म-भिन्नत्वमुपाधिरित्यपिकथित भवति । साध्यव्यापकत्वेसतिसाधनाव्यापकत्वमुपाधेर्लक्षणम् । यथा ऽयोगोलकपक्षेवन्हिनाधूमानुमाने, आर्द्रेन्धनसयोगउपाधिर्भवति, तत्रयत्रयत्रमहानसादौधूमस्तत्रसर्व-त्रार्द्रेन्धनसयोगोभवत्येवेतिधूमव्यापकत्वमार्द्रेन्धनसयोगस्य, यत्रालोकेहेतुर्वन्हिस्तिष्ठतितत्रनार्द्रेन्धनसयोगो विद्यते, इतिसाध्यव्यापकत्वेसतिसाधनाव्यापकत्वात्, तत्रार्द्रेन्धनसयोगउपाधिर्भवति । उपाधिव्य-भिचारात् हेतौसाध्यव्यभिचारानुमान भवति "वन्हिर्धूमव्यभिचारी, धूमव्यापकार्द्रेन्धनसयोगव्यभि-चारित्वात् । पक्षेउपाध्यभावात्साध्याभावानुमानमेवोपाधे फलमिति । प्रकृते **ज्ञानम् आगन्तु-कम् , आत्मधर्मत्वादि**त्यनुमानेस्वरूपनिरूपकधर्मभिन्नत्वमुपाधिर्भवति, यत्रयत्रागन्तुकत्वरूप-साध्यविद्यते, घटादौ, तत्रसर्वत्रस्वरूपनिरूपकधर्मभिन्नत्वमपिविद्यते इति, उपाधे साध्यव्यापकत्व यत्र च बोधे, आमधर्मत्वविद्यतेहेतुस्तत्रस्वरूपकधर्मभिन्नत्वनास्ति, ज्ञानस्यात्मस्वरूपनिरूपकधर्मत्वादिति

भवति तयोरपवादितम् । सुखादिकंतुनात्मधर्मः इन्द्रियजनितानुकूलप्रतिकूलज्ञानयोरेवसुखदुःखस्वरूपतयादृष्टान्तस्य हेतुरहितत्वात् । रागद्वेषादयोऽपिमनसएवावस्थाविशेषरूपानत्वात्मधर्माः ।

साध्याव्यापकत्वात्, साधनाव्यापकत्वाच्चस्वरूपनिरूपकधर्मभिन्नत्वमुपाधिर्भवतीतिसोपाधिकत्वादागन्तुकत्वानुमानव्याप्यत्वासिद्धमितिनानेनानुमानेनज्ञानेआगन्तुकत्वसिद्ध्यतीतिभाव ।

अथात्रसुखादिदृष्टान्तेस्वरूपासिद्धरूपहेत्वाभासत्वदर्शयति, यत्रपक्षेहेतुर्नभवत्यपितुहेतोरभावो भवति, तत्रस्वरूपासिद्धिदोषस्यावसर, यथाह्रदोवन्हिमान्धूमादित्यत्रपक्षेह्रदेधूमो न भवत्यपितुधूमाभाव एव, तत्रधूमाभाववान् ह्रद इति निश्चयकाले, वह्निव्याप्यधूमवान् ह्रद इत्याकारकपरामर्शाभावेनानुमितिर्नभवतिपरामर्शरूपकारणाभावादिति । परामर्शप्रतिबन्धोऽस्यदूषकताबीजम् । इत्थ च ज्ञानमागन्तुकमात्मधर्मत्वात्सुखवदितिप्रयोगेसुखदु खादिदृष्टान्तेआत्मधर्मत्वहेतुरेवनास्ति, यत सुखादेरात्मवृत्तित्वाभावादिनिदर्शयितुमाह **सुखादिकम्** इत्यादि । यदनुकूलत्वप्रकारकप्रतिकूलत्वप्रकारक च ज्ञान तदेवक्रमश सुखरूपं दु खरूप चैतत् श्रीरामानन्दाचार्यदर्शने, एव च सुखादीनाज्ञानाभिन्नाना पक्षे एवान्तभावान्नदृष्टान्तत्वसभवति, पक्षभिन्नस्यसाध्यसाधनसहचारप्रापकस्यैवदृष्टान्तत्वामितिनियमात् । ज्ञानविशेषातिरिक्ते च सुखदु खेकरणपटुत्वापटुत्वरूपेएव । एवञ्चकरणपटुत्वापटुत्वेचनात्मधर्मरूपेइतिहेत्वसिद्धिर्दृष्टान्तेभवत्येवेतिभाव । एवमत्रानुमानेनिदर्शनस्यसाधनवैकल्पदोषोपिभवतीतिप्रदर्शयिष्यते । ननु भवतुसुखादिकप्रकृतानुमाननिदर्शनतथापिरागद्वेषादयस्तु आत्मधर्मरूपेणैवप्रसिद्धा इतितेषामेवदृष्टान्ततास्यात् । यतोरागादयआत्मविशेषगुणास्ते चागन्तुकाअपीत्याशङ्कायामाह **रागद्वेषादयइत्यादि** । नैतेरागादयआत्मनोधर्माकिन्तुमनसएवविकाररूपा, अतोनरागादीना दृष्टान्तत्व सभवतीति ।

ननु यदि रागादयोनात्मधर्मा किन्तुमनोविकारत्वात्मनसएवतेरागादयोधर्मास्तदाऽन्यधर्मत्वाद्रागादीनामात्मनि कथ प्रतीति स्यात्, नहि अन्यधर्मास्तदन्यत्रप्रतीताभवन्ति, नहि जलधर्माणा वन्हौवन्हिधर्माणा वावायोगगनेवाप्रतीतिर्भवति । इहतुरागवानहमस्मीतिप्रतीत्याऽत्मन्येवरागादे प्रतीति दर्शनादितिचेत्सत्यम् यथाऽयसिस्वभावतोदाहकत्वाभावेपि, बाह्यवन्हिधर्मदाहत्वादे वन्हिसम्बद्धस्थाल्यादावपिप्रतीतिर्भवति, अयोदहतिस्थाल्यादिर्वादहतीतिप्रतीतिस्तथैवरागविशिष्टमनसोविलक्षणसम्बन्धादात्मन्यपिरागादे प्रतीतिमात्रजायते । यथावा रज्जौसर्पत्वभ्रमवतोभयकपादिर्भवतीति दृश्यते तथा प्रकृतेपिमनोधर्मस्यकथञ्चिदात्मनिसक्रमणात्, रागवानहमस्मीतिप्रतीतिमात्रा भवति, नतु सत्येय प्रतीति । अन्यधर्मस्यान्यत्रसक्रमणेन तत्कार्यंतदन्यत्रापिप्रतीयते, यथोक्तम्—

"रविरपितादृग् न दहति यादृगृदहति वालुकानिक । अन्यस्माल्लब्धधनोनीच प्रायेणदु सहोभवतीति ॥

तस्माद्रागादीनानात्मधर्मत्वमपितुप्रकृतिधर्मत्वमेवेति । तथाचोक्त पुराणादौ—

"कामः संकल्पोविचिकित्साश्रद्धाऽश्रद्धाधृतिरधृतिर्ह्रीर्धीर्भीरित्येतत्सर्वं मन एवेति" श्रुतेः। "इच्छाद्वेषःसुखंदुःखमिति" गीतास्मृति। एवं चेतनाधृतिरित्यादिनाक्षेत्रलक्षणमेतेषांप्रतिपादितम्। चेतनयाधारितःसंघातोदेहः स्ववृत्त्यनुगुणचैतन्यमात्रेणैवप्रवर्तमानं

"निर्वाणमयएवायमात्माज्ञानमयोऽमल। दुःखाज्ञानमलाधर्मा प्रकृतेस्तेनचात्मन॥" इति।

[अस्यार्थ अयमात्माऽहमस्मीतिप्रतीतिप्रतीत, आचमनुष्यलोकादारभ्य आचदेवर्षिपर्यन्त सर्वोपि जीवराशि शरीरकरणादिभिन्नतयावगत "निर्वाणमय एव"तत्र निर्वाणोमोक्षस्तन्मय एव अर्थात सर्वदामुक्त एव, ससारसम्बन्ध प्रतीतिमात्रमेव, तथा ज्ञानमयोज्ञानप्रचुरोज्ञानरूपो वा, अमल ससारप्रापकधर्माधर्मादिलक्षणमलविवर्जित एव, वन्हिधर्मस्यौष्ण्यस्यजलेप्रतीतिमात्रवत्, इहान्यन्यधर्माणां तत्र प्रतिभासमात्रत्वात्। न च तर्हिदुःखदीनाकुत्रावस्थान तत्राह "दुःखज्ञानमल" इत्यादि, यदिदसर्वकारणमज्ञानम्, मलोधर्माधमादि तत्सर्वप्रकृतेसत्वादिगुणस्यैवधर्मोनत्वात्मन आत्मन स्फटिकवत्सर्वदानिर्मलत्वात्।] रागादयोहिनात्मनोधर्माअपितुमनसएवतेधर्मा, अस्मिन्नर्थेश्रुतिमुदाहरति **कामः सङ्कल्पः** इति। तत्र कमुकान्तौकान्तिरत्रेच्छारूपैव, तथा च कमुधातुनिष्पन्नकामपदस्येच्छैवार्थ सचकामोमनसएवधर्म कार्यम्। तथा "सकल्पइदमित्थकरिष्येइत्येवरूप सोपिमनोधर्म एव। "विचिकित्सा सशयएकस्मिन् धर्मिणिविरुद्धभावाभावप्रकारकज्ञानरूप सोपिमनोधर्म एव। "श्रद्धा" गुरूपदिष्टवेदान्तादिषुविश्वासस्वरूपातदभावोऽश्रद्धा, 'धृतिर्धैर्यम्, तदभावोऽधृतिरधैर्यरूपा। ह्रीर्लज्जाधीधर्मभूतज्ञानमन्त करणवृत्तिरूपवा। भीर्भयम्, बिभेमीतिग्राह्यम्। एतदुपर्युक्तंसर्वमन एव, मन स्वरूपमेवकार्यकारणयोरभेदोपचारात्, अथवा एतेकामान्ता सर्वेपिमनसएवविकारा। एवमत्रार्थेभगवद्वचनमपिप्रमाणदर्शयति **इच्छाद्वेषः सुखं दुःखंसङ्घातश्चेतनाधृतिः। एतत्क्षेत्रसमासेन सविकारमुदाहृतमि**तिक्षेत्रलक्षण कथितम्। क्षेत्राश्रितत्वादन्त करणस्येति अन्त करणधर्मारागादय क्षेत्र धर्मतयाकथिता। ननु प्रकृतेचेतनाधृतिरित्यपि कथितमितिचेतनादिक्षेत्रधर्मएवनात्मधर्मइतिचेन्न, चेतनाधृतिरितिपदद्वयाभावादपित्वेकमेव पदम्, चेतनेनचेतनया आसमन्तात् धृतिर्यस्येतिचेतनाधायैनियमत कलेवरमितिशरीरलक्षणमुक्तमत्र, अर्थात् स्ववृत्त्यनुगुणचैतन्यमात्रेणैव प्रवर्तमान क्षेत्रम्। तत्रवृत्ति सत्ताप्रवृत्तिर्वा, प्रवर्तमानमर्थात्, प्रकर्षेणवर्तमानप्रवृत्तिमद्वा। एवञ्च, आत्मचैतन्यप्रयोज्यस्वसत्ताप्रवृत्तिकयद्भवति तदेवषाट्कौशिकशरीरस्यनिर्दुष्टलक्षणफलितभवतीति। अथवाचेष्टाश्रयत्वम्शरीरत्वम्, तत्रहिताहितप्राप्तिपरिहारातुलाक्रियैवचेष्टेति। आध्यात्मिकवायुसम्बन्धित्वमेवतत्। नतुकरचणादिमत्वशरीरत्वम्, करचरणादिरहितजीवविशेषशरीरेवनस्पत्यादिशरीरे च तदभावेनाव्याप्ति प्रसगात्, विषयेन्द्रियभिन्नत्वेसत्युपभोगसाधनत्वशरीरत्वम् अत्राचार्यपादस्तु "यस्यप्राण शरीरम्" इतिश्रुत्याप्राणस्यशरीरत्वनिर्देशादाधेयत्वविधेयत्वाङ्गत्वादयस्तस्मिन्फलन्ति। लोकेऽपिशरीर पदेनाधेयत्वादयएवगृह्यन्तेइतितान्येवशरीरपदबोध्यानि" (आनन्दभाष्यम् १/२/२) इति। एतादृश

शरीरादिकंक्षेत्रमिति । अतएवबृहदारण्यकेऽन्तर्यामिब्राह्मणे "यस्यपृथिवीशरीरम्" "यस्यापःशरीरम्" "यस्यात्माशरीरम्" इत्यादिकथितम् । "जगत्सर्वंशरीरते" इति

शरीरलक्षणमभिप्रेत्यैवपृथिव्यादीनापरमात्मशरीरपरकत्वमित्याशयेनवचनमपिपठति,**अतएवबृहदारण्यक** स्यान्तर्यामिब्राह्मणे "**यस्यपृथिवीशरीरम्' यस्यापःशरीरम्" यस्यात्माशरीरमिति** । अस्यार्थ पृथिवी=प्राणिमात्रस्याधारभूता यस्यपरमात्मन सर्वेश्वरश्रीरामस्यसर्वनियामकस्यशरीरवपु शरीरप्रकार प्रकारि च परमात्मेत्यर्थ । एवजलजीवात्मा च यस्यसर्वनियामकस्यशरीरभवति । उपलक्षणमेतत्, सूक्ष्मस्थूलजडचेतनमात्रस्य,यदुक्तभगवत शरीरतयायच्चनोक्ततत्सर्वमेवभगवत शरीरम् यथासूत्रेविलक्षण सयोगेनानेकप्रकारकवन्यावन्यपुष्पाणि ओतानिप्रोतानि च भवन्ति यदभावेतानिनान्यत्रभवन्तिमालाकारेण प्रतिष्ठितानि तथैवपरमेश्वरलतायापृथिव्यादिसूक्ष्मस्थूलसाधारणजडजीववस्तूनिओतानिप्रोतानि चापृथग्भावेनव्यवस्थितानि तमन्तरेण न स्वसत्तावन्तिभवन्ति । तदुक्तभगवता "मयिसर्वमिदप्रोत सूत्रेमणिगणाइवेति ।

तदत्रार्थचन्द्रिकायामस्मत्परमगुरुचरणाजगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यरघुवराचार्यवेदान्तकेसरिण – "सर्वंस्थावरजङ्गमात्मकब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तमिदकार्यकारणोभयवस्थमच्छरीरतयानिर्देश्यजगत्सूत्रेमणिगणाइवान्तर्यामिरूपेणसर्वदाऽवस्थितेमयिप्रोतमामन्तर्यामिणंव्याप्याऽवस्थितम् । इयमात्मशरीरतयाऽवस्थितिश्च "यस्मपृथिवीशरीरम्" "यस्यात्माशरीरम्" "जगत्सर्वंशरीर ते स्थैर्यते वसुधातलम्" (श्रीरा यु) इत्यादिश्रुतिस्मृतिषुस्पष्टमेवोपवर्णिता ।

न चैव भगवत सर्वोपादानत्वेविकारित्वदोपापत्तौनिर्विकारत्वाभिधायिनीना श्रुतीनाव्यापकोप इति व्याच्यम्, विलक्षणाश्रयाश्रयिभावोपगमेप्रोक्तदोषानवकाशात् । यथा शरीरन्तरवस्थितजीवशरीरेन्द्रियगतखर्वदीर्घान्धवधिरत्वादयोदोपा न स्पृशन्ति नैवैवमन्तर्बहिविलक्षणाधारतथावस्थितपरमात्मानमपितदाश्रमिणोश्चिदचिनोर्दोषा इति सर्वशक्तिसमन्वितोमहापुरुषोनित्यनिरवद्यादोषगन्धोदिव्यकल्याणगुणगणार्णवएवावतिष्ठते । प्रतिपादयतश्चेममर्थंपरमार्षेसूत्रे "न स्थानतोऽपिपरस्योभयलिङ्गसर्वत्रहि" (ब्र सू ३।२।११) "आत्मनिचैवविचित्राश्चहि" (ब्र मू ३।१।२९) इत्याभ्यासूत्राभ्यामुमयलिङ्गत्ववैशिष्टय स्पष्टमुपपाद्यते ।

एव सर्वशक्तियोगाऽप्यस्य "परस्यशक्तिर्विविधैवश्रूयतेस्वाभाविकीज्ञानबलक्रियाच" (श्वे) यथाभगवतोदिव्यमङ्गलविग्रहोऽनादिरनन्तोदेशत कालतोवस्तुतश्चापरिच्छिन्नस्तद्वदेवस्वेच्छयासर्वारम्भसामर्थ्यमपिशाश्वतिकमेवविद्यतेऽत श्रुतोस्वाभाविकीत्युच्यते नहिकस्यचित्स्वभाव कादाचित्कोदृष्टचरस्तदाह सूत्रकृत "सर्वोपेता च तद्दर्शनात्" (२।१।३१) इति । एतेनकृत्स्नप्रसक्त्यादयो दोषा अपिपरिहृताभवन्ति । परिमितशक्तिमतोजीवस्यैव तथाऽऽशङ्कासम्भवेन्नत्वपरिमितशक्तिमति

परमार्षवचनम् तथैव पुराणेपि "तानि सर्वाणितद्वपुरिति" ।

अथ "कामःसंकल्पः" इत्यादिश्रुतौयत् धीरितिपठितंतत् किमिदम् ? तस्योत्प्रेक्षामात्राभिप्रायकत्वात्, नतुज्ञप्तिविषयकंधीरितिपदम्, बुद्धेःस्वाभाविकत्वस्यनित्यत्वस्य श्रुतावेव श्रुतत्वात् । "न विज्ञातुर्विज्ञातेर्विपरिलोपोविद्यते" "नहिद्रष्टुर्दृष्टेर्विपरि-

महापुरुषेइत्येतत्सर्वमत्रसूत्रदृष्टान्तेन मयिश्रोत'मितिसहेतुकपदोपन्यासेन च सगुणीनभवनीतिसम्प्र-दायरहस्यवेदिन " इति ।

तथाऽस्मिन्नर्थेपुराणवचनमपिप्रमाणयति**तानिसर्वाणितद्वपुः**इति । अयमर्थ यानि जडचे-तनानिदृश्यन्तेशास्त्रेणचावगम्यन्तेतानिसर्वाण्यपि सर्वजगदुपादानभूतस्यसङ्कल्पस्यसर्वज्ञस्यपरमात्म-न सीताजानेर्वपु शरीरमेवनतुततोव्यतिरिक्तम्वस्तुवन्ध्यादिवदेवोपलभ्यते एवञ्चभगवत्सङ्कल्पात्म-कज्ञानेनैवलब्धस्वरूपस्थितिप्रवृत्तिकत्वात्सर्वपदार्थजातस्यभगवत शरीरत्वमेवानौपचारिकरूपेणेतिसक्षेप ।

ननुयथामनसोऽवस्थाविशेषरूपत्वात् रागादयोनात्मगुणा, यथावा कामसंकल्पादीनामनोधर्म-त्वान्नात्मविशेषगुणा किन्तु मनोधर्माभवन्तोपि, यथाऽग्नेरौष्ण्यवह्निससक्तस्थाल्यादावपिप्रतीयन्ते, तत्तस्यतत्रप्रतीतिमात्रा नतु स्थाल्यादिधर्मत्वमेवमत्र "काम सकल्प" इत्यादिश्रुतौधीपदवाच्यबो-धोपिपठितइतिबोधोपिमनस एव स्वाभाविकइति न बोधोपि आत्मधर्मोऽपितुमनसएवेत्याशयेनशङ्कते **अथकामःसंकल्प इत्यादिश्रुतौयत्धीरितिपठितम्** इत्यादि । तत्रबोधस्यापिमनोधर्मतयाकथनात् मनोधर्मत्वमेवबुद्धेस्ततोबोधस्यकथमात्मधर्मत्वमितिप्रश्नकर्तुराशय । उत्तरयति **तस्योत्प्रेक्षामात्रा-भिप्रायकत्वादिति** । काम संकल्पइतिश्रुतिघटकधीतिपदम नज्ञप्तिपरकमपितु, उत्प्रेक्षामात्रपरकम्, तत्रचित्तान्तकारणवृत्तिविशेषेपृत्प्रेक्षैव धीरितिकथ्यते, ननुधीपदेनबोधस्यग्रहणम । यद्यपिकामादीनामप्यात्मधर्मत्वमतम्, तथापिनैताकामादय आत्मा न स्वाभाविकानित्याधर्माभवन्ति किन्तुशुभा-शुभकर्माद्युपाधिकाएव । कामादितत्तद्बुद्धिवृत्तिहतुव्यापारवत्तया च मनसस्तै सहाभेदनिर्देश-सचौपचारिक श्रुतौकृतइतिसिद्धान्त । ननुतथाव्यवस्थाविशेषविशिष्टस्यज्ञानस्यैवरागादिस्वरूप-तयाज्ञानस्य कादाचित्कत्वानुमानेऽथान्ज्ञानस्यानित्यत्वानुमाने, रागादेर्दृष्टान्तत्व न सम्भवति । न च विशिष्टदृष्टान्तद्वारेणज्ञानमात्रस्यैवागन्तुकत्वसाध्यमितिवाच्य । अवस्थाविशेषविशिष्टस्यैवो-पलभ्यमानत्वेन, अविशिष्टेज्ञानमात्रे आगन्तुकत्वस्यनित्यत्वस्यसाधनायोगात् तस्यज्ञानस्यश्रुति-सिद्धत्वे च तद्गतनित्यत्वमपिश्रुतिवचनसिद्धमेवेतिधर्मिग्राहकमानबाधोभवति । असतोऽवस्थायोगस्य चाभावादेवज्ञाननित्यत्वस्वीकारएवश्रेयानिति,अभिप्राय ततो यथाश्रुततुप्रौढिवादमात्रेणकथितमितिभाव ।

आत्मधर्मज्ञानस्यनित्यत्वतुश्रुत्यैवावेदयति, तामेवदर्शयति "**श्रुतावेव** इति । श्रुत्यक्षरपठति **नहिविज्ञातुर्विज्ञातेर्विपरिलोपोविद्यते** अत्रविज्ञातृत्वदृष्टित्वात्रस्यावतोज्ञानस्वरूपस्यनित्यत्वकथितम्,

लोपोविद्यते अविनाशित्वादिति च । आत्मनोज्ञातुर्विनाशाभावादेवतदीयज्ञानस्या विनाशाभावंकथयन्ती श्रुतिर्ज्ञातुःस्वरूपप्रयुक्तंज्ञानमितिवत् । न च दृष्टिविशेषणत्वेन द्रष्टुरुपादानमितिवाच्यम्, तथा मतिपुलिङ्गप्रयोगविरोधात् । हेतोःसाध्यसमत्वापत्तेः । द्रष्टुःस्वरूपनिर्देशपरत्वेपिदृष्टिपदस्यासमाधेयमहेतुत्वम्, स्वपक्षहानिरपिवादिनः । आत्मनस्तुज्ञातुर्नित्यत्वंनैवास्वीकरणीयमनेकन्यायागमसिद्धत्वादितितस्यहेतुतयाकथनंयुक्तमेव ।

अर्थात् ज्ञातुरात्मनोविज्ञाने धर्मभूतज्ञानस्यविपरिलोपोविनाशो न विद्यतेऽपितुधर्मिवत्तद्धर्मस्याप्यविनाशित्वनित्यत्वमेवेति । नचात्र, "विपरिलोपोनविद्यते" इत्यत्रविनाशाभावस्यकथितोनतुअनाद्यनन्तत्व ज्ञानस्यकथितमितिवाच्यम, भावानवबोधात्=धर्मिणोज्ञातुरात्मनोऽविनाशित्वकथनादेवज्ञानस्याविनाशदर्शयन्तीयश्रुति ज्ञातुरात्मन स्वरूपप्रयुक्तज्ञानमित्येवप्रदर्शयतीति । ज्ञानस्यस्वरूपनिरूपकधर्मत्वेननित्यात्मस्वरूपप्रयुक्तज्ञानस्यध्वंसप्रतियोगित्वनिराकरणवत् प्रागभावस्याप्रतियोगित्वस्यापिनिराकरणेनानाद्यनन्तरूपपुरातनत्वस्यापि, अर्थवशादेवोपपादनान्नकोपिदोष इति । एतस्मिन्नर्थेश्रुत्यन्तरमपि दर्शयति **नहि द्रष्टुर्दृष्टेर्विपरिलोपोऽविद्यतेअविनाशित्वादेवेति** । तत्र द्रष्टुरात्मनोधर्मभूत दृष्टेर्ज्ञानस्यविनाशोध्वंसप्रतियोगित्व न भवति । ज्ञानस्यविनाशो न भवतीति तत्रकोहेतुस्तत्राह श्रुतावेव "अविनाशित्वात्" एवञ्चज्ञानस्यस्वरूपनिरूपकधर्मत्वेननित्यात्मस्वरूपप्रयुक्तस्यतस्यज्ञानस्यानाद्यनन्तत्वमर्थत एव फलित भवति । जन्मनालब्धसत्ताकस्यैव भावस्यविनाशदर्शनेन, आत्मनस्तदीय ज्ञानस्यजन्माद्यभावेनार्थत एव नित्यत्वमर्थादुत्पादविनाशराहित्यमायातीति । तदुक्तम् "अजो नित्यं, शाश्वतोयमिति, स्मृते । ननु श्रुतौ द्रष्टुर्दृष्टेरित्यत्रद्रष्टृदृष्ट्योः षष्ठीनिर्देशो दृश्यते, षष्ठी च 'राहो शिर" इतिवत् समानाधिकरण्येपि भवतीति न द्रष्टृदृष्ट्योर्भेद किन्तु दृष्टिविशेषणत्वमेवेतिशङ्कांनिराकर्तुमाह **न च दृष्टिविशेषणत्वेनद्रष्टुरिति** ।

कथ न तयोरभेदस्तत्रदोष वक्ति **पुलिङ्गप्रयोगविरोधादिति** । अर्थात् यदि अभेदसम्बन्धेन दृष्टिविशेषणत्व द्रष्टृपदस्याभिमतभवेत्, तदा द्रष्टुरितिपुल्लिङ्गनिर्देशो न स्यादपितु द्रष्ट्र्या, इत्येव रूपेणस्त्रीलिङ्गस्यैवनिर्देश कृतोभवेत, नतु तथानिर्देशोदृश्यते तस्मान्न तथा । किन्तु देवदत्तस्य-कवल इतिवदिहापिद्रष्टृद्रष्ट्र्योर्भेद एव षष्ठीनत्वभेदे । अपिच व्याकरणमतेनशाब्दविरोधदर्शयित्वा, अर्थविरोधमपिदर्शयितुमाह **हेतोः साध्यसमत्वापत्ते** । पर्वतोवन्हिमान् वन्हेरित्यत्रहेतोर्वन्हे साध्यसमत्वम, अर्थात्, गृहीतव्याप्तिकहेतुनाऽनुमानादनन्तरमेवसाध्यसिद्ध्यति, नतु ततःसाध्यसिद्धम । तथा च साधनावस्थायासाध्याभिन्नत्वतदासा यवद्धेतुरप्यसिद्धएवेतिकथमसिद्धेन हेतुनासाध्यसिद्ध्येत । निश्चितहेतुरूपत्वेसाध्यस्यतदापक्षधर्मतासमयेएवहेत्वभिन्नसाध्यस्यसिद्ध्याहेतु द्वारापक्षेसाध्यसाधनप्रयासोनिरर्थकएवस्यादिति । साध्यसमत्वहेतोरसिद्धत्वमेव । सर्वकालवर्तमानत्व स्वरूपनित्यत्वात्मकसाध्यवदेवाविनाशित्वलक्षणहेतोरनुमानात्पूर्वकालेऽसिद्धिरेवेत्यर्थ. । अथवा अविना-

नहि पदार्थेविद्यमानेतदीयस्वरूपोपाधिर्नभवतीति । सुवर्णपीतिमावत्, प्रदीपप्रभावद्वाततश्चआत्मनः स्वरूपभूतचैतन्यस्यबाह्याभ्यन्तरविषयविशेषसम्बन्धप्रकारप्राप्तदृष्टिघ्रातिरसयतिवक्तिश्रुतिमतिस्पृष्टिविज्ञातिव्यवहारभेदभिन्नस्वप्रकाशस्यसंसारेमोक्षे च न कदाचिदपिविपरिलोपोविनाशो न विद्यते नैव भवतीति ।

शित्वस्यैवसाध्यरूपतयातस्यैववन्हिमान् वन्हेरितिवत् हेतुत्व न सभवेदिति । द्रष्टृ स्वरूपनिर्देशपरत्वे तुदृष्टिपदस्यासमाधेयमहेतुत्वम्, अत्राक्षरयोजनासमयेदृष्टपदभावप्रधाननिर्देशपरकदृष्टित्वदर्शनमिति यावत्, ज्ञानत्वेनसहायोगव्यवच्छेदोद्रष्टुरात्मन साध्य । अत्रचाप्रयोजकत्वादेवहेतोरहेतुत्वमथात्, असाधकत्वस्यसमाधान न भवतीति । प्रश्नकर्तु स्वपक्षहानिरपिदोपोभवति । आ मनोज्ञानरूपत्वस्वीकारेआगन्तुकज्ञानवादिनामपसिद्धान्तापातात् । ततश्च—

"हन्यताहन्यताबालोनानेनार्थोस्तिजीवता । स्वपक्षहानिकर्तृत्वाद्य कुलाङ्गारतागत ॥ इतिन्यायविषयतानातिक्रामतीतिकेवलाद्वैतिमते "नहिद्रष्टुर्दृष्टेर्विपरिलोपोविद्यते' इतिश्रुत्यर्थेदूपणभवतीतिव्यञ्जिनम् । यथाहि, ज्ञातुरात्मनोज्ञानोभिन्नत्वेसाध्येव्यधिकरणासिद्धत्वेनात्मगतनित्यत्वस्यनहतु साध्यहेत्वोभिन्नाधिकरणकत्वात् । ज्ञातुरहमर्थस्यात्मत्वाविनाशित्वोपगमेतुस्वसिद्धान्तवाध । यतस्तन्मतशुक्तिरजतवत् मायिकत्वस्यस्वीकारेणशुक्तिरजतवदेववाधितत्वेनानित्यत्वात् ।

आत्मनस्तुज्ञातुरनेकागमसिद्धमित्याह **नहिपदार्थे** इत्यादि । आत्मनोज्ञातुर्नित्यत्व न केवल्युक्तिसिद्रम्, अपितुआगमप्रमाणेनापितत्सिद्ध्यत्येवेति । यावत् काल पदार्थो भवति विद्यते तावत्कालतदीयधर्मोप्यनुभूयमानोभवत्येव, यथाऽग्नेरौष्ण्यप्रदीपादीनाप्रभा च, तथैव यावदात्मातावत्कालस्तत्स्वरूपोपाधिधर्मोज्ञानभवत्येवेति । तत्रात्मनोनित्यत्वमविनाशित्वादेवेतिकथितम् । द्रष्टुरित्येवरूपेणधर्मिणआत्मनोधर्मिणोनिर्देशेनात्मस्वरूपनिरूपकधर्मत्वज्ञानस्यसिद्धभवति । एवञ्चफलित हेतुस्वरूपदर्शयति **आत्मनःस्वरूपभूतचैतन्यस्येत्यादि**, एतावतानित्यात्मस्वभावत्वहेतुरिति । तत्र विषयविशेष सम्बन्धप्रकार=चक्षुरादिबाह्याभ्यन्तरेन्द्रियादिद्वारकप्रसारणभेदाधीनज्ञानार्थसम्बन्ध, तेन सम्बन्धेनप्राप्तादर्शनादिव्यवहारोयेनेतिसमास । तत्र दृष्टिर्दर्शनचक्षुरिन्द्रियजनितचाक्षुपप्रत्यक्षात्मकज्ञानम् । घ्रातिर्घ्राणेन्द्रियजनितगन्धादिविषयकज्ञानप्रात्यक्षिकमेवरसयतिनेन्द्रियजनितपड्भेदभिन्नमधुरादिविषयकरासनज्ञानम् । वक्ति शाब्दज्ञानम्, पदज्ञानकरणपदार्थस्मरणद्वारकजायमानशाब्दबोधात्मकज्ञानपरोक्षम् । श्रुतिरितिश्रोत्रेन्द्रियजनितशब्दविषयकश्रावणप्रत्यक्षम् मतिरिनिव्याप्तिज्ञानकरणकपरामर्शद्वारकपरोक्षमनुमित्यात्मकज्ञानम् । स्पृष्टि त्वगिन्द्रियजनितम् शीतोष्णाऽदिभेद भिन्नस्पर्शविषयकत्वाचप्रत्यक्षम् । विज्ञाति "आत्मनमुपासीत"इत्यादिश्रुतिसिद्धमुपासनात्मक ध्यानापरपर्यायज्ञानम् । अथवा योगाभ्यासजनितोयोगजधर्मसहकृतोऽलौकिकसनिकर्पजनित साक्षात्कार । तत्र योगीयुक्तयुञ्जानभेदेनद्विप्रकारको भवति । तत्र युक्तस्यसर्वदायोग नधर्मसहकृत-

"मयथामैन्वघनोऽनन्तरोऽवाह्यःकृत्स्नोरमघन एव, एवं वा अरे अयमात्मा-अनन्तरोऽबाह्यःकृत्स्नःप्रज्ञानघनः" तथा स्वेनभासास्वेनज्योतिषा" आत्मज्योतिः सम्राडिति होवाचयाज्ञवल्क्यः" इति । तथा मोक्षकाले एव छन्दोगाः "न परमाण्वादिविषयकंज्ञानम प्रक्षरूपमेव भवति । युञ्जानस्यतुचिन्तासहकृतमनसासर्वविषयकज्ञानजायते। यत्रेदमुक्तम "सोऽपश्यत् प्रणिधानेनसन्तते स्तभकारणमिति । स्वमात्मावभासकस्यार्थात् स्वप्रकाश-रूपस्य । यथाधर्मभूतमात्मनोज्ञानम् परानवभासयति तथैवस्वरूपमपिभासयतिस्वयप्रकाशत्वात्, प्रदीपालोकवदिति । यथोक्तविशेषणविशिष्टात्मधर्मभूतज्ञानस्यससारावस्थायामोक्षावस्थाया वा, कदाचिदपिविपरिलोपोन भवति, अथादेशादरज्ञानस्यविनाशो न भवति उत्पादविनाशराहित्येनैकान्त-नित्यत्वात् ।

"तथाहेयगुणध्वमादवबोवादयोगुणा । प्रकाश्यन्ते न जायन्तनित्याएवात्मनोहिते"
सुषुप्त्यादिकससिद्धिस्तमोविशेषसन्निधे । उत्पन्नचाथनष्ट च व्यवहारेमते खलु ॥
सकोचाख्याविकासाख्यावस्थाभ्यासभवेदिह । सकोचश्चविकासश्चसर्पकुण्डलवन्मत ॥
सकोचोऽस्येन्द्रियद्वारावद्धएवाहकर्मणा । विकाशश्चेन्द्रियेणाथज्ञानस्यप्रसृतोमत ॥

(श्रीनप्रमेयचन्द्रिका ३/६—७—८ ९) इत्याद्याचार्यप्रवरकारिकास्वारस्यात् घटज्ञानजातपटज्ञानविनष्टमित्यादिप्रतीतिस्तुविषयतत्सम्बन्धयोरुत्पादविनाशविषयकत्वेनैवतथाप्रतीतिमात्रभवति, स्वभावतस्तु ज्ञानेसर्वथानित्यत्वमेवेतिसक्षेप ।

नकेवलमात्मनोधर्मभूतज्ञानस्यनित्यत्वे "न विज्ञातुर्विज्ञातेर्विपरिलोपोविद्यते" इत्यादिश्रुतिरेव प्रमाणम्, किन्तुधर्मभूतज्ञानस्यनित्यत्वेन्या अपिश्रुतय प्रमाणमितितामेवोदाहरति **सयथासैन्धवघनः** इत्यादि । अनन्तरइत्यस्यबाह्यइत्यर्थ । अवाह्यइति, आन्तरश्च, प्रदेश सामस्त्येनविवक्षित । आत्मन कृत्स्नत्व च स्वरूपतोधर्मादपिभवति एवञ्चज्ञानस्वरूपत्वज्ञानेस्वभावत्वचात्मन सार्वदिक मेवेतिलब्धभवति, एतस्मिन्नर्थे श्रुत्यन्तरमपिप्रमाणभवति तदपिदर्शयति **स्वेनभासास्वेनज्योतिषा** इति । अत्र "स्वेनभासा" इत्यनेनविशेषणेनात्मन स्वरूपतत "स्वेनज्योतिषा" इत्यनेनतुधर्मत आत्मन प्रकाशरूपत्वकथितभवति "आत्मज्योति सम्राडितियाज्ञवल्क्य प्रोवाचेत्यस्यापि, स्वरूतोधर्म तश्चात्माप्रकाशात्मकएवेत्यर्थ । यथासूयादयोहियथाप्रकाशरूपाश्च तथैवात्मापिप्रकाशरूप प्रकाश धर्माचयथासूर्यादिज्योतिष प्रकाश स्वाभाविकोनतुतदन्योपाधिकस्फटिकमणेर्नैल्यादिवत्, तथैवात्मनोज्योति स्वरूपज्ञानस्वाभाविकमेव, नतुन्यायमतवन्मन सयोगकारणमित्येवार्थोविवक्षित आसाश्रुतीनाम्।

न्यायमते आत्मविशेषगुणानानवानामत्यन्तोच्छेदएवमोक्षइति नियमेनतन्मतेमोक्षेनज्ञानस्यतदा सत्वनवाज्ञानरूपत्वमात्मन स्वरूपविनाशस्यासभवादिति परोपाधिकमेवज्ञानयावत्ससारमेवानुवर्तते इतिमतंनिरसितुमात्मवदात्मधर्मभूतज्ञानमपिनित्यमेवेत्यतोमोक्षकालेपि ज्ञानानुवर्तनभवत्येवेतिदर्शयितु-

पश्योमृत्युंपश्यति न रोगंनोतदुःखताम् । सर्वं हपश्यःपश्यतिनोपजनं स्मरन्" इति । "मना एष एतेनदैवेन चक्षुषामनसैतान् कामान् पश्यन् रमते" इति च ।

एतदतिरिक्ताअपि "जानात्येवायपुरुषः, ज्ञातव्यंतुनवेद" इत्यादिकाबाह्याभ्यन्तरकरणानाविरामकालेपिआत्मनोज्ञानंकथयन्त्यः श्रुतयःज्ञानस्वभावतामात्मनोनिर्णयन्ति । पुराणेपि "निर्वाणमय एवायमात्माज्ञानमयोऽमलः" इत्यादि । महाभारतेपि 'ज्योतिषामपितज्ज्योतिस्तमसःपरमुच्यते" इति । शौनकोप्याह—

माह **मोक्षकाले** इत्यादि । अर्थात मोक्षेपिज्ञानस्यानुवर्तनभवती यत्र न केवलनर्कएवशरणमपितु श्रुतिरपि प्रतिपादयतीतिताश्रुतिंदर्शयति **नपश्योमृत्युंपश्यति** अयमर्थ पश्यति=चक्षुरादिकरणेन विजानातीति पश्योजीव सचमृत्युविनाशनपश्यति, नवारोगमृत्युप्रनियोजक वातपित्तादिजनितव्याधिपश्यति । सर्वं वा सर्जीव पश्यतीत्याद्यर्थ । एतावतास्वस्वरूपाकाराविर्भावलक्षणमोक्षेज्ञानस्यानुवर्तमानत्वेन ज्ञानस्यात्मस्वभावानुवर्त्वित्वप्रसिद्ध्यत्येवेत्याशय । यथामोक्षकालेज्ञानानुवर्तनंतथैव सुषुप्तावपिज्ञानानुवर्तनभवतीति नदर्थिकाश्रुतिमाहतदन्याअपिश्रुतय **सवाएषएतेनदैवेनचक्षुषामनसैतान्कामान्पश्यन् रमते** एव **जानात्येवायंपुरुषःज्ञातव्यंतुनवेद** इत्यादि, यद्यपिज्ञानस्वभावत्वादात्मासर्वं सर्वदाविजानात्येव इति। तथापिसुषुप्तौविद्यमानस्यापिज्ञानस्य सकलकरणस्योपरमात् , अर्थसन्निकर्षाभावात् स्वापकालेऽर्थ प्रकाशो न भवति । अत्रज्ञानाभावादर्थप्रकाशो न भवतीति न किन्तुज्ञानप्रयोजकेन्द्रियार्थसन्निकर्षाणामभावेनप्रकाशोनभवतीतिश्रुतीनामभिप्राय ।

पुराणेपीत्थमेवप्रतिपादयति **निर्वाणमयएवायमात्माज्ञानमयोऽमलः** इतिज्ञानस्यनित्यत्वे आत्मस्वभावत्वेवैष्णवपुराणवचनम् । यद्यपिमृन्मयोघटइत्यादिप्रयोगानुसारेण विकारार्थकोपिमयट् प्रत्यय "तत्प्रकृतिवचनेमयडितिव्याकरणानुसारात् , तथापियवमयोयज्ञइत्यादिवचनेनप्राचुर्यार्थेपि मयटोविधानदर्शनात् , अत्रप्राचुर्यार्थकोमयट्अतएवपुराणवचने "अमल" इतिविशेषणमपिसार्थकम् । अन्यथामयटोविकारार्थकत्वे, आत्मनोज्ञानविकाररूपत्वेऽमलत्वस्यसर्वथैववैयर्थ्यमापतेत् । न चेष्टापत्ति ? वैष्णवकल्पेवैष्णवपुराणस्यैव प्रमाणिकत्वस्यव्यवस्थापनेनतस्याप्रामाणिकत्वनैववक्तुशक्नोति कश्चिदपि, मयडर्थकविशेषचर्चाश्रीआनन्दभाष्यानन्दमयाधिकरणीयश्रीयोगिराजीयेमदीयेविवरणेचानुसन्धेयेतिदिक् । **ज्योतिषामपितज्ज्योति**रित्यादि, वचनमहाभारतान्तर्गतभगवद्गीतावाक्यमेव । "अस्तमितेआदित्येऽस्तमितेचन्द्रेऽस्तमिते ग्रहनक्षत्रेकिंज्योतिरयपुरुष' इयादिप्रश्नप्रतिवचनप्रवाहेसर्वान्ते आत्मनएवज्योति स्वभावकत्वस्यनिर्णीतत्वेनतदीयप्रकरणस्यैवेतिहासेनस्मारितत्वादिति ।

आत्मनोधर्मभूतज्ञानस्यनित्यत्वे श्रीविष्णुधर्मवचनमपिप्रमाणतयोपदेष्टुमाह **शौनकोप्याह, यथानक्रियतेज्योत्स्ना** इत्यादि । यथामणेर्मलप्रक्षालनेनमलापनयनेनमणेर्ज्योत्स्नाप्रकाश कृतोन भवति, प्रत्युतमणिगतस्वभाविकप्रकासस्यदोषवशात्तिरोहितस्य दोषापनयनेनप्रकाशआविर्भवति, **नतू-**

"यथा न क्रियतेऽज्योत्स्नामलप्रक्षालनान्मणेः। दोषप्रहाणान्नज्ञानमात्मनः क्रियते तथा॥ यथोद्पानकरणात् क्रियतेनजलांबरम् । सदेवक्रियतेऽयक्तिमसतःसंभवःकुतः ॥ तथाहेयगुणध्वंसादवबोधाद्योगुणाः। प्रकाश्यन्ते न जन्यन्तेनित्याएवात्मनोहिते ॥इति। तथा च भगवान् सूत्रकारोबादरायणो "ज्ञोऽत एव" इति ।

तदित्थमात्मनःस्वभावरूपस्यचैतन्यस्य [ज्ञानस्यात्मधर्मभूतस्य] विषयसम्बन्ध विशेषनित्तचयमंययादिव्यवहारभेदोभवति । अथवा तत्तद्विषयवर्तिचैतन्येवानिश्चयादि व्यवहारभेदोभवतीति । तत्र चैतन्यस्यज्ञानविषयेणदृढसंयोग एव निश्चयः । चैतन्य

त्पादितोभवति, तथैवात्मनोज्ञानमात्मनिस्थितमपि दोषेणावृत्तभवदपिदोषापनयनादाविर्भूतभवतीतिप्रथमवाक्यस्यार्थ । **यथोद्पानकरणादित्यादि** यथोदपानस्य जलाशयस्यकरणेन जलगताकाशस्यकरणन भवति, यतोयत् सत् तस्यैवाविर्भावोभवति, नत्वसतआविर्भावोभवतीति नहिकारणशतेनापिवन्ध्यापुत्राविर्भवति । एवमेवआत्मनोयेबोधादिकागुणास्ते आत्मनिष्ठ,हेयगुणानाविनाशादेव ससारेमोक्षे च प्रकाशिताभवन्ति, ते बोधादयआत्मनोनित्या स्वाभाविकाएव, नतुतेऽवबोधादयकारणशतेनापिउत्पादिता भवन्तीतिसमुदितवचनस्यार्थ ।

अस्मिन्नर्थेसूत्रकारस्यवचनमपिप्रमाणयति **ज्ञोऽतएवेति** । अत श्रुतिप्रमाणादेवात्माज्ञ अर्थात् ज्ञाताज्ञानाधिकरणएवसूत्रार्थ । ज्ञएवेत्यनेननित्यत्वमात्मस्वभावत्व ज्ञानस्यास्तीतिसूत्रकाराभिप्राय आत्मधर्मभूतज्ञानस्यनित्यत्वे, स्वापादिदशायामपिज्ञानस्यप्रत्यक्षकुतोनभवतीत्याशङ्कायाम् "पुस्त्वादिवत्" इतिसूत्रान्तरेणतत्परिहारकृतवान्सूत्रकार । तथा सूत्रकाराभिप्रायजानाद्भिर्जगद्गुरुश्रीरामानन्दचार्यैर्विस्तरेणाशङ्क्यसर्वञ्चनिराकृत तत् सर्वं तद्भाष्यादेवागन्तव्यमस्मच्छ्रीगुरुचरणप्रसादित भाष्यदीपतो मदीयविवरणतोवेतिदिक् ।

॥ इति धर्मभूतज्ञाननित्यत्वस्यश्रुत्यादिभि प्रतिष्ठापनप्रकरणेतत्त्वदीप ॥

अथैव चेतन्यज्ञानस्यात्मनोधर्मभूतस्यनित्यत्वेएकरूपत्वेच, इयप्रमाऽप्रमा च अय, सशयो विपर्ययोनिश्चयश्चेत्यवान्तरव्यवहारस्तन्त्रान्तरप्रसिद्धोभवन्मतेकथमुपपादितो भवेदित्याशङ्कासमाधातुमुपक्रमते **तदित्थमात्मनःस्वभावरूपस्येत्यादि** अयमाशयोयथातोयदविमुक्तजल स्वभावतएकविधमपितत्तद्भूभागमासाद्यमधुरादिभेद भिन्नमिवभवति,उपाधेराधारस्यभेदात् ,तथैवआत्मधर्मभूतचैतन्यमेकनित्यभवदपि, अर्थसम्बन्धात्मकपरोपाधिभेदात् , अनुभवरूपस्मृत्यात्मकप्रमाऽप्रमानिश्चयसशयविपर्ययादिपदलभते, तावतातस्यस्वाभाविकत्वेकिमपिवैलक्षण्यनायातीति । तदेवसशयादिभेदप्रकारमुपपादयति, **आत्मन** स्वभावरूपचैतन्यस्येत्यादि, तत्रात्मधर्मभूतचैतन्यस्यविषयसम्बन्धविशेषे जाते तत्रैवानिश्चयादिव्यवहारभेदोजायते, अथवाऽर्थविशेषसभवति चैतन्येनिश्चयादिव्यवहारभेदो भवतीति । तत्रज्ञानस्यघटादिप्रमेयेण सह य खलुदृढतरसयोगस्तस्यनिश्चयइतिपरिभाषाभवति ।

स्यैवानेकैःसहयुगपदद्दढसंयोगःसंशयपदवाच्यो भवति । अनुभववासनानुसारेणविषय सम्बन्धस्तस्यैवस्मरणमितिनामभवति तथा चात्मधर्मसंयोगोज्ञानमिति न चैवंद्विष्ठत्वेनो भयाश्रितत्वात्, घटादिप्रमेयस्यस्वभावजडस्यापिज्ञातृत्वमापद्येतेतिवाच्यम्, विषयेणसंयोगा भावात् । चैतन्येनसहैवतस्यसंयोगोबाह्यप्रकाशवत् । यथाऽलोकसयोगेपिप्रकाशेसवितुरेव प्रकाशकत्वं नतु घटादेर्विषयस्यतथात्वम् । अथसूर्याद्यधीनत्वादालोकस्य स एव तद्धर्मा-तत्सम्बन्धेनार्थान्तरस्यप्रकाशकइत्युच्यते एवमिहापितर्हिचेतन्यस्य=ज्ञानस्यात्मधर्मत्वेन

तस्यैवचैतन्यस्यानेकैर्विषयै सहयुगपत् झटितिनैरन्तर्येणवा, जायमानोयोऽदृढसयोग सचसयोग स सशय । ज्ञानवासनानुसारेण य सम्बन्धविशेषस्तस्यस्मरणमितिनाम । अथवाऽनुभवजनितसस्कार तज्ज्ञानस्मरणम् । चैतन्यार्थसम्बन्धविशेष । अथवाप्रमेयसम्बन्धविशेषविशिष्ट चेतन्यमेवनिश्चयादि व्यवहारभाग्भवतीति ।

तत्रप्रथमपक्षेआत्मवत् घटादिप्रमेयस्यापिआत्मत्वज्ञातृत्वस्यादितिशङ्कते, **नचैवमिति** । सयोगोहिद्विष्ठत्वादनेकाश्रितत्वमितिचित्यर्थसयोगोयथाचित्यात्मनितथैव विषयाश्रितोपीत्यात्मनोयथासयोगवत्वाद्ज्ञातृत्वभवतीतितवेष्टतथैवनादृक् सयोगस्यविषयै सहापिसभवाद्विषयस्याज्ञातृत्वस्यात् । चैतन्यस्यज्ञातृत्वप्रसङ्गेकदाचित् कश्चिदिष्टापत्तिकुर्यात् धर्मधर्मिणोस्तादात्म्यस्वीकारात्, अतोविषये ज्ञातृत्वापत्तिमवोचत् । विषयस्य=विषयाश्रयस्य । यथाश्रुतेआत्मनोपितत्तद्ज्ञानाश्रयत्व न स्यात्, अस्मिन्पक्षे। अत स्वाश्रयाश्रयत्वसम्बन्धेन ज्ञानवत्वमेवज्ञातृत्वमत्रपक्षेवक्तव्यमिति विषयेघटादौनज्ञातृत्व प्रसङ्गोभवतीति ।

अमुदोषपरिहर्तुमाह **विषयेणसंयोगाभावादित्यादि** विषयेण इत्यत्रतृतीया हेत्वर्थिकादण्डेनघटइतिवत्, विषयशद्बश्चनविषयबोधकोऽपितु विषयव्यापारबोधक । अयमाशय घटादि प्रमेयग्रहणार्थव्याप्रियमाणचैतन्यमेवभवति, अर्थादात्मधर्मभूतेनज्ञानेनसयोगादिव्यापारयुक्तेनप्रमेयोहि प्रकाशितोभवतीति । एवञ्चविषयचैतन्यसयोगस्यघटादितत्तदर्थज्ञानरूपत्वेपि तस्यसयोगस्यस्वानुकूल व्याप्तिमच्चैतन्याश्रयत्वसम्बन्धेनात्मरूपज्ञातर्येवसत्वात्तस्यैव ज्ञातृत्वमात्मत्वभवतिनतुघटादिरूपार्थोन्तस्योपलभबलाद्व्यवस्थापितभवति । अत्रार्थेदृष्टान्तदर्शयति **यथेत्यादि** यथाघटाद्यर्थसयोगस्यैव प्रकाशस्यसत्यपि प्रकाशरूपत्वेप्रकाशकत्वंतुसूर्यादेरेवस्वधर्मभूतालोकप्रसरणबलात् नतुसयोगस्यार्थ निष्ठत्वेपिप्रमेयस्यप्रकाशकत्वमित्यनुभवात्, तथैवप्रकृतेसयोगात्मकचैतन्यस्यार्थनिष्ठत्वेपि चैतन्यस्यैव प्रकाशकत्वनत्वर्थस्यप्रकाशकत्वम् ।

यद्वा "विषयेणसयोगाभावादि" त्यस्यविषयानुयोगिकसयोगाभावादित्यर्थ । तस्यसयोगोऽर्थात् विषयप्रतियोगिक सयोग । सयोगस्यद्विष्ठत्वात्, एकप्रतियोगिकोऽपरानुयोगिक यस्यसयोग सतत्प्रतियोगिकोयस्मिश्चसयोग सतदनुयोगिक, यथावृक्षेपतत्रीविशतीत्यत्रपक्षिण सयोग, इतितत्र

तेनपदार्थान्तरेणसंयोगवद् भवन् स एव जानातीतिव्यवह्रियते । तत्सिद्धंज्ञानस्वभावक एवायमात्मा आत्मानंजानान एव भवति, इतरत्तुनिमित्तकारणभेदानुगुण्येनजानाति नवेति ।

पक्षिणिसंयोगप्रतियोगित्वमितिपक्षिणिसयोग प्रतियोगितासम्बन्धेन भवति । पक्षिणोऽधिकरणवृक्षइति सयोगोऽनुयोगितासम्बन्धेनवृक्षेतिष्ठतीतिपतत्रिण प्रतियोगित्वमनुयोगित्व च वृक्षस्य । एवञ्चसमयोग प्रतियोगितयापक्षिणि, अनुयोगितयावृक्षे । तथैवप्रकृतेआलोक प्रतियोगितयाविषयेअनुयोगितयाऽलोकाधिकरणेसूर्ये ततश्चाऽनुयोगिसएवसूर्य प्रकाशकइत्युच्यते, यत्रार्थेप्रतियोगितयविषयेइतिविषय प्रकाश्य प्रमेयइतिकथ्येत इत्येवप्रकाशकप्रकाश्यस्य च भेदो भवतीतिभाव । एव ज्ञानस्यानुयोगीआत्मेतिसज्ञातेतिगीयतविषयश्चप्रतियोगिइतिसज्ञेयोऽर्थोभवति । नतुसयोगाश्रयत्वेसत्यपिज्ञातासइति । चैतन्यस्यविषयसम्बन्धविशेषणवज्ज्ञानमिति, व्यवहारस्तदानिश्चयादिभेद कथमितिजिज्ञासायाम् "चैतन्यस्यविषयेण सहदृढतरसयोगोयत्रसनिश्चयादिरितिप्रथमपक्षमुपपाद्य "तत्तदर्थसम्बद्धचैतन्यमेवतत्तदर्थविषयकज्ञानमित्याकारकद्वितीयपक्षशङ्कासमाधानद्वारेणव्यवस्थापयितुमुपक्रमते **अथ सूर्याद्यधीनत्वादालोकस्येत्यादि** यथाऽलोकस्यसूर्याद्यधीनत्वमथात् सूर्याद्यधीनस्वरूपस्थितिप्रवृत्तिनिमित्तकत्वसूर्याद्यपृथक्सिद्धविशेषणत्व च रूपादेर्घटाद्यपृथक्सिद्धविशेषणत्वम, इति सूर्यादिरेवालोकधर्मो भवति । इति तत्तदर्थसम्बद्धालोकाश्रयसूर्यस्यैवप्रकाशकत्व न त्वर्थस्यप्रकाशकत्वम् तेनैवप्रकारेणप्रकृतेतत्तद्घटाद्यर्थसम्बद्धचैतन्याश्रयस्यात्मनएवज्ञातृत्वभवति, नतु पूर्वकल्पवत्, अर्थस्यज्ञातृत्वमिति । तस्माद् द्वितीय पक्ष एव मुख्य पक्ष यतोऽत्रपक्षेज्ञातृत्वमात्मन्येवसुसंगतभवतीतिभाव ।

इत पूर्वमुक्तयदनन्यमाधनआत्माप्रकाशयतीति । तत्रानन्याधीनसिद्धित्वचैतन्यस्वभावत्व चात्मनउपसहरति **तत्सिद्धंज्ञानस्वभावकएवायमात्माऽत्मानंजानानएवभवतीति** । तदेतत् सिद्धयदयमात्माचैतन्यधर्मभूतज्ञानम, तत्स्वभावकोऽर्थात् ज्ञातृत्वस्वभावक एव, स्वकीयस्वरूपंजानन्नेव, नतु परापेक्ष स्वरूपविजानातीति । एतावताज्ञानस्यागन्तुकत्वमर्थात् कारणाधीनतयाघटादिवदनित्यत्वनिराकरण भवति । सर्वोपिस्वर्गमोक्षव्यवस्थाऽर्थमात्माननित्यमेवमन्यते, सचायमात्मा द्रव्यरूपोगुणरूपो वा भवतीत्यन्यत् । तत्रचैतन्यस्यानित्यत्वेनित्यस्यात्मनस्तेनचैतन्येनतादात्म्य न स्यात्, तस्मात् चैतन्यस्वभावत्वेऽर्थात् ज्ञातृत्वरूपत्वेऽर्थतश्चैतन्यस्यापिनित्यत्वमेवायातिनत्वनित्यत्वम् । अन्यथा नित्यानि ययोस्तादात्म्यस्यासभवभवदुक्तिक वमेवभवेदिति । **आत्माऽत्मानं जानान एव भवतीति** आत्मानजानन्नेव=नित्यस्येतरानधीनप्रकाशता नेवतिष्ठतीत्यर्थ एतावता आत्मनो य प्रकाशस्तादृशप्रकाशस्यागन्तुकत्वमनित्यम् निराकृतम्, तथा स प्रकाशआत्मनोज्ञान प्रयुक्तोऽर्थात् ज्ञानेनप्रकाशोजनितोभवतीत्यपिनिराकृतमेवभवति । अन्यथा, नित्यानन्याधीनप्रकाशत्वमितितदीयस्वरूपमेव न स्यादितिभाव । **इतरत्तुनिमित्तकारणभेदानुगुण्येन** इति तत्र

तदित्थंस्वयंप्रकाशतयास्वतःस्फूर्यमाणोप्ययमात्माकावेरीजलनिमग्नमकरादिवत्.जल सम्पृक्तगोक्षीरवत् स्वेतरेभ्योविविच्यज्ञानविषयो न भवतीति । तादृशात्मन उपपादनार्थंन्यायानुगतानुमानभेदाःशास्त्राणिचादृतानिभवन्तीतिनिवेदितम् । अन्येतुअनुमानादिभ्यो न प्रत्यक्षोभवतिपदार्थइतिप्रत्यक्षेणैवात्मानंज्ञातुंयमनियमप्राणायामादियोगाङ्गानामनुष्ठानेनविशुद्धान्तःकरणाःपरिपक्वध्यानेनयोगजधर्मसहकारितयाहस्तामलकवत् स्वेतरसकलविलक्षणतयाऽत्मानंसाक्षात्कर्तुंप्रयतमानाभवन्तोदृश्यन्ते । ततो भावनाप्रकर्षेणान्तेऽपरोक्षज्ञानंतेषांभवतीतिसर्ववादिसंमतमेव । एतदन्यत्सर्वंयोगादिलक्षणंयोगशास्त्रादेवावगन्तव्यमितिकृतंपल्लवितेन । इत्यात्मनिरूपणप्रमाणप्रकरणम् ।

निमित्तभेदानुसारेणनिमित्तकारणतद्भेदेनजायमानम् तत्सतिनिमित्तनायनेनदभावे, न जायते, यथा चाक्षुषप्रत्यक्षज्ञानम् चक्षुरिन्द्रियघटादिकचार्थ नयो सनिकर्षे सयोगसयुक्तसमवायन समवायादिरूपेसति, तथालोकसयोगेमहत्त्वोद्भूतरूपादिके च विद्यमाने घटज्ञान तदायम्पनद्भतरूपत्व-तदभावादीनाचाक्षुप भवति । एतेष्वन्यतमस्याप्यभावेतादृशतत्तद्विषयकज्ञान न जायते, इति तत्सत्वेतत्सत्व तदभावेतदभावइत्याकारान्वयव्यतिरेकेविद्यमानेमतिज्ञानकदाचिद् भवति, एतेषामभावे च तत्तज्ज्ञान न भवति । ततश्च **निमित्तकारणभेदानुगुण्येनेत्यस्य** इन्द्रियलिङ्गसादृश्यपदज्ञानार्थसंनिकर्षोपाभ्यन्वयव्यतिरेकानुविधानेने यर्थ । अन्यत्सर्वमतिरोहितार्थकमितिदिक् ।

॥ इतिधर्मभूतज्ञानस्यसशयाद्यवान्तरभेदोपपादकप्रकरणेतत्त्वदीप ॥

यद्यपिपूर्वप्रतिपादित आत्मास्वयप्रकाशत्वात् स्वत सिद्धएव । "सर्वतीर्थदृशासिद्धि स्वाभिप्रेतस्य वस्तुव । यदभ्युपममादेवतत्सिद्धि केनवार्यते" इत्यभियुक्तोक्तदिशास्वयप्रकाशतयातत्सिद्धि समर्थितैवेतितत्रप्रमाणान्तरस्यानवकाशस्तथापि "अविकप्रविष्ट न तद्धानिरितिन्यायमनुस्मरन् स्थूणानिखननन्यायेनसिद्धमपिप्रमाणान्तरेण तमेवसाधितमनुमानशब्दादिप्रमाणविषयतयेतिसाधयितुमुपक्रमते **तदित्थंस्वयंप्रकाशतयेत्यादि** । अयमाशय वर्तमानोपिपदार्थ पार्थक्येनदृष्टिगोचरोनभवति, यथाजलाशयान्तर्गतोमत्स्य जलमिलितदुग्ध च । तत्रास्फुटप्रकाशेमत्स्यनिदर्शनम्, अविवेकग्रहणे दुग्धम् । यथाकालिन्दीजलस्यान्तस्तलेचलन्नपिमत्स्य स्फुटतयानोपलभ्यते । अविवेकोविवेकाभाव यथाजलदुग्धयो समिलितयोस्तदेकतरस्यतत्रभेदेनग्रहणनभवति ।

पदार्थस्यविद्यमानत्वेपितद्ग्रहण न भवतीति, अकारणवलादित्यन्यत्रापिप्रतिपादितम्—
"अतिदूरात्सामीप्यादिन्द्रियघातान्मनोऽनवस्थानात् । सौक्ष्म्यादभिभवात्समानाभिहाराच्च ॥" इति साख्यकारिका तत्रविद्यमानोपि पदार्थोनोपलब्धोभवति । यथाऽकाशेउड्डीयमानोपिपक्षी, अतिदूरगतोनोपलभ्यतेचक्षुरादिनेतितत्रातिदूरत्वकारणम् । यथावाऽतिसमीपेविद्यमानस्वचक्षु सम्बद्धमञ्जनस्वचक्षुषानो-

गतप्रकरणेनात्मनिप्रमाणपरीक्षाकृतातदनन्तरमात्मनःकालपरीक्षाप्रस्तूयते। तत्रबौ

पलभ्यतेऽतिसमीपत्वात् । इन्द्रियघातेपि न पश्यति, यथान्धोरूपनविजानाति । एवमनसाऽनवस्था-नादपि न पश्यति, यथाकामाद्यपहतमना समीपस्थमिन्द्रियसनिकृष्टमप्यर्थं न पश्यति । एवमभिभ-वादपि, यथाऽहनिसूर्यप्रभाभिरभिभूतग्रहनक्षत्रमण्डल नपश्यति । समानाभिहारात्=सजातीयसवलना दपिनपश्यनिर्विनिच्यपदार्थम , यथानदिजलेप्रक्षिप्तकमण्डलुजल न पार्थक्येनगृहीनभवति सजाती सवलनदोषात । अत्रशरीरकरणाद्यभिभवात् तत्समृष्टत्वाद्वाऽत्मानस्तेभ्य पार्थक्येनस्फुटतयोपलभ्यते स्वयप्रकाशोभवन्नपीतिभाव । इत्येतादृशस्यात्मन, उपपादनन्यायानुगता =आत्मानात्मविवेकोपपा-दकावयवपञ्चात्मकप्रतिज्ञाहेतूदाहरणोपनयनिगमनात्मकन्यायप्रयोज्या अनुमानभेदा =अनुमानविशेषा -केवलान्वयिकेवलव्यतिरेक्यन्वयव्यतिरेकिरूपा शास्त्राणि शास्त्रानुगतप्रमाणवाक्यानि च समादृतानि भवन्ति । अथात् अनुमानादिप्रमाणादिभ्यआत्मन करणकलेवरादिभ्योभेदेनात्माननिर्णेतुमिच्छ-न्तिवहवइति अत्रपरितोपमप्राप्तवन्त केचन,अथात् तनुमानादीनापरोक्षज्ञानजनकतयाऽत्मन प्रस्फु-टज्ञानसम्पादकतया, प्रदर्शितानुमानादिप्रमाणेषु सभवत्येवस्वभावतोऽपरितोष योहिआत्मन स्फुटाव-भासमिच्छति । एतादृशपुरुपस्यापरितोषे, सप्रकारान्तरमात्मन प्रत्यक्षज्ञानकरण यमनियमादिसह-कृतयोगानुष्ठानमेवेच्छन्ति ।

तत्रयोगश्चित्तवृत्तिनिरोधलक्षण । तदङ्गानियमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यान समाधिरूपाणि । एतेपालक्षणानियोगतन्त्रेभ्यएवज्ञातव्यानि । वृत्तिरन्त करणस्यसात्त्विकराजसतामस रूपात्रिधाभवति । पुनस्ताद्विप्रकाराक्लिष्टाअक्लिष्टाश्च । तत्राविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशा क्लिष्टा । त एतेदोषाऽन्त करणमलिनयन्ति, अक्लिष्टास्त्वन्त करणविशो यनिर्मलकुर्वन्ति । समाधिर्द्विविध सम्प्रज्ञातोऽसप्रज्ञातश्च । तत्रप्रथमे याताध्येयोपासनाभेदोभासते । द्वितीयेनतथा । एवञ्चसाङ्ग योगानुष्ठानेननिर्मलचित्तस्यसाधकस्यध्यानपरिपाके योगजधर्मसहकृतमनसाऽत्मन साक्षात्कार प्रत्यक्षा-त्मकज्ञानप्रादुर्भवति, तेनसाक्षात्करेणात्माविषयीकृतोभवति, आत्मन स्फुटरूपेणप्रत्यक्ष भवतीतिप्रत्यक्ष प्रमाणविषयआत्मेतियोगमतम । अत्रविशेपतोयद्द्रष्टव्यतत्सर्वयोगशास्त्रादेव ज्ञातव्यमितिनात्रतद्विचार प्रपञ्चित । एवयथोक्तप्रकारेण "अत्रायपुरुष स्वयज्योतिर्भवति" इत्यादिश्रुतिप्रत्यक्षादिप्रमाणेनस्वयं प्रकाशस्वरूपस्यात्मनोधर्मभूतज्ञानम् , घटपटादिसकलपदार्थग्रहणेनथाऽत्मन करणकलेवरादिभ्योवैल-क्षण्येन च ग्रहणायसमुपयुज्यते इत्येतत्प्रबन्धेनसाधितम् । अर्थात् अनुमानागमादिप्रमाणेन, तथा लौकिकालौकिकयोगजनितप्रमाणेन च विस्पष्टतयाप्रत्यक्षीक्रियते इति ।

॥ इत्यात्मनिरूपणपरकप्रमाणप्रकरणेतत्त्वदीप ॥

अथ आत्माशरीरादिव्यतिरिक्तोऽस्तिनवेतिसशयेपूर्वप्रकरणेअनुमानादिप्रमाणेनात्मन स्वेतरसकल पदार्थविलक्षणतयातदस्तित्वमुपपादितम् । तदनन्तरमस्यात्मन कालावच्छेदपरीक्षा कालसम्बन्ध-विषयकविचारमवतारयति **गतप्रकरणेनेत्यादि तत्रबौद्धमतानुयायिन** इत्यादि । तत्रात्मनः

दुमतानुयायिनोयत् सत् तत्क्षणिकमेवयथामेघमालेतिब्रुवाणानित्यात्मदर्शनमेवानर्थमूलमिति च मन्वानाःकथयन्तियत्सत्तत् क्षणिकमेवआत्मापिसन्नेवतस्मात् सोपिक्षणिकः ।

कालावच्छेदविचारेप्रवृत्तेसति । अत्रायमाशय चार्वाकोहिप्रत्यक्षमात्रसिद्ध पदार्थ प्रामाणिकइनितदभावात् स्वर्गादिलोकोऽप्रामाणिक एवेति । न चानुमानादिनातत्सिद्धिस्तदभावात , अर्थादनुमान न प्रमाणम् अनवस्थादु स्थतर्कानिवर्त्यव्यभिचारशङ्कावरुद्धव्याप्तिकत्वादिनाऽनुमानस्यनिरासेनाविनाभावस्य-व्याप्तेर्दुर्ग्रहत्वादनुमानस्यैवाभावादिति । तत्रबौद्धोवदतिनेदयुक्तम्, तादात्म्यतदुत्पत्तिभ्यामविनाभावस्यज्ञातुशक्यत्वात् तदुक्तम् "कार्यकारणभावाद्वास्वभावाद्वानियामकात् । अविनाभावनियमोदर्शनान्नरदर्शना"दिति ॥ अन्वयव्यतिरेकावविनाभावनिर्णायकाविति पक्षेसाध्यसाधनयोरव्यभिचारोदु रवधारणोभवेद् भूतेभविष्यति वर्तमानेऽनुपलभ्यमाने च व्यभिचारशङ्कायानिराकर्तुमशक्यत्वात् । न च तादृशस्थलेभवन्मतेव्यभिचारशङ्काभवत्येवेतिवाच्यम्, विनापिकारणभवतुकार्यमेतादृश्या शङ्कायाव्याघातावधिकतयानिवृत्तिसभवात । तदुक्त "तदवाशङ्क्येतयस्मिन्नाशङ्क्यमानेव्याघातादिदोषानावतरेयुरिति । तदुक्तमुदयनाचार्येण —

"शङ्काचेदनुमास्त्येवनचेत्शङ्काततस्तराम् । व्याघातावधिराऽशङ्कातर्क शङ्कावधिर्मत " ।।इति।। तस्मात्तदुत्पत्तिनिश्चयेनाविनाभावोव्याप्तिनिर्णीयते तदुत्पत्तिनिश्चयश्चकार्यत्वहेतो प्रत्यक्षोपलभानुपलभपञ्चकनिबन्धन । उत्पत्ते पूर्वंकार्यस्यघटादेरनुपलभ कारणोपलंभेसत्येवकार्योपलभ ,उपलब्धस्यपश्चात् कारणानुपलभात् ,अनुपलभ इनि पञ्चकारण्यात्वन्हिधूमयो कार्यकारणभावोनिर्णीतोभवत्येवेति । यदि शिंशपा वृक्षविशेषोवृक्षत्वमतिपतेत्तदास्वरूपमेवपरित्यजेदितिविपक्षेबाधकस्यसद्भावात् । बाधकानुदये च भूयोभूयःसहभावोपलभेपिव्यभिचारशङ्कायानिवारणासभवात् । शिंशपावृक्षयोश्चतादात्म्यनिश्चयो वृक्षोऽयंशिंशपेतिसमानाधिकरण्यबलादेवास्थीयते । नहि अत्यन्ताभेदेसामानाधिकरण्यसभवति, पर्यायतया युगपत्प्रयोगायोगात् । नवाऽत्यन्तभेदेवासामानाधिकरण्यसभवति, स्वभावभिन्नयोर्गवाश्वयो सामानाधिकरण्यानुपलभात् । तस्मात् कार्यात्मानौकारणमात्मानगमयत इति सिद्धमेवेति । यदि कदाचित् चार्वाकोऽनुमानस्यप्रामाण्यनाङ्गीकुर्यात्तप्रतिब्रूयात् अनुमानप्रमाण न भवतीत्येतावन्मात्रमुच्यते, तत्र किंचित्साधनविद्यतेनवाद्वितीयपक्षेप्रतिज्ञा मात्रेण वस्तु सिद्धेरसभवात् एकाकिनीप्रतिज्ञा हि प्रतिज्ञातं न साधयेदिति न्यायात ।

"समाश्रित·प्रतिज्ञायापक्ष साध्येतहेतुना । नतस्यहेतिभि त्राणमुत्पतन्नेवयोहत ।। इति च ।।

न प्रथम पक्ष ,अनुमानप्रमाण न भवतीतिब्रुवताअशिरस्कवचनोपन्यासे "ममभातावन्ध्येतिवद् व्याघातात् । अपि च प्रमाणप्रमाणाभासव्यवस्थापनतत्समानजातीयत्वादितिवदता, स्वीकृतमेवस्वभावानुमानम् । तथापरपुरुषगताविप्रतिपत्तिर्वचनादिलिङ्गेन भवतीति ब्रुवनाकार्यलिङ्गकानुमानमपिस्वीकृतमेवेति । ते च बुद्धानुयायिनोसा यमिकयोगाचारसौत्रान्तिकवैभाषिकाश्चत्वारोभवन्ति । ते च यथा-

अर्थक्रियाकारित्वमेवसत्त्वम् , तच्चस्थिरेनोपपद्यते, क्रमाक्रमाभ्यामर्थक्रियाकारित्वस्य-व्याप्तत्वात् । क्रमाक्रमयो क्षणिकेएवसंभवात् । इतिव्यापकयोर्व्यापकयोःस्थिरेनिवृ-त्तत्वम् ,सर्वशून्यत्वबाह्यशून्यत्वबाह्यार्थानुमेयत्वबाह्यार्थप्रत्यक्षत्ववादान् मन्यन्ते । यद्यपिउपदेष्टाभगवानेक एव तथापिविनेयभेदाद् बुद्धिभेदाद्दुपदेशोभिन्नभिन्नइवाभाति । तदुक्त "देशनालोकनाथानासत्वाशयव-शानुगा । भिद्यन्तबहुधालोकेउपायैर्बहुभि पुन । गम्भीरोत्तानभेदेनक्वचिच्चोभयलक्षा । भिन्नापि देशनाऽभिन्नाशून्यताद्वयलक्षणेति । गतोऽस्तमर्कइत्यादिलौकिकोपदेशवदितिजानन्ति । तत्रसर्वक्षणिक क्षणिकदु खदु खस्वलक्षणस्वलक्षणशून्यशून्यमित्येवभावनाचतुष्टयमुपदिशदितिवेदितव्यम् । तत्र क्षणि-कत्वनीलादिलक्षणानासत्त्वेनानुमातव्यम् । यत सत्तत्क्षणिकयथामेघमालेति । इमे नीलादिभावा सत्तात्तस्मात्तेपिक्षणिकाएवेति । न च सत्त्वहेतुनोऽगदावसिद्धम् , अर्थक्रियाकारित्वलक्षणसत्त्वस्यनीला-दिपदार्थेप्रत्यक्षसिद्धत्वात । व्यापकनिवृत्त्यानिवृत्तियायेन, स्थिरपदार्थेव्यापकक्रमाक्रमयोर्निवृत्तौव्याप्य-सत्वस्य निवृत्तिरपिस्थिरान्निवर्ततेत्यतार्थतोभावानाक्षणिकत्वसिद्ध्यत्येव । एतादृशचार्थक्रियाकारित्व-क्रमाक्रमाभ्याव्याप्तमयात् यदापदार्थ कार्यकरोति, तदाक्रमशोयुगपद्वेतिनियम । नचात्र प्रकारान्तर सभवति, परस्परविरोधात् । यदुक्त—

"परस्परविरोधेहि न प्रकारान्तरस्थिति । नैकतापिविरुद्धानामुक्तिमात्रविरोधत ।।इति।।

इमौ च क्रमाक्रमस्थिरपदार्थाव्यावर्तमाना, स्वव्याप्यभूतमर्थक्रियाकारित्वमपिव्यावर्तयन्तौक्षणिकत्वपक्षे एवार्थक्रियाव्यवस्थापयतइतिसिद्ध भवतीति । ननु स्थिरपदार्थस्यार्थक्रियाकारित्व कथ न भविष्यतीतिचेत् विकल्पासहत्वेनस्थिरेऽर्थक्रियाकारित्वस्यासभवात् , तथाहिवर्तमानार्थक्रियोत्पादनसमयेऽतीतानागतयो-रर्थक्रिययो करणेस्थिरपदार्थस्यसामर्थ्यमस्तिनवा ? तत्रास्तीतिप्रथमपक्षस्वीकारे, यदैकक्रियाकरोतित-स्कालेएवातीतागनार्थक्रियामपिकुर्यात् , समर्थस्यकालक्षेपाऽयोगात् । यद्वस्तुयत्कालेयत् करणसामर्थ्यवत् तत् तदा करोत्येवयकारणकूटात्मकसामग्रीस्वकार्यकरोत्येव, उत्पत्तिव्याप्यत्वात् सामग्र्या । तथाऽ-यकार्यकुर्वन् पदार्थोऽवश्यमेवकरिष्यत्यतीतानागतार्थकार्यमपि, नत्वेवदृश्यते उपपद्यतेवा । तस्मान्न प्रथमपक्ष समीचीनइवाभाति । नवा द्वितीयपक्षोपियुक्त । यद्येव न समर्थस्तदासपदार्थ कदापि कार्यं न करिष्यति, सामर्थ्यमूलत्वादर्थक्रियाकारित्वस्य । यत् यदा यावन्न करोति तत् तदा नवा समर्थमेव, यथाशिलाखण्डोयवाङ्कुरेऽसमर्थइतिसर्वदाऽसमर्थ एव । न चैववर्तमानार्थ क्रियाकरणकालेभूतभविष्यार्थक्रिया करोतीति न द्वितीयपक्ष । अथस्थिरोपिपदार्थ क्रमवत्सहका-रिलाभात्क्रमेणकार्यकरिष्यति, यदायादृशसहकारिण समवधानतदनुतमेवक्रमश कार्यकरिष्यतीति न कोपिदोषइतिचेन्सत्यम । विकल्पासहत्वात्, ये ते सहकारिणस्ते कि पदार्थस्यबीजादेरुपकारकुर्व-न्ति नवा ? यदिनोपकुर्वन्तिसहकारिणस्तदाऽनुपकुर्वतस्तेषासहकारस्यानुपयोगात् । यद्युपकुर्वन्ति सहकारिणोभावानितिपक्षस्तदातै क्रियमाणउपकारोभावाद्भिद्यते नवा ? यदि स उपकारोभावाद्भिद्यते,

स्यातद्व्याप्तंस्थिरत्वमपिनिवर्तते एव वह्निनिवृत्तौधूमनिवृत्तेर्जलादौदर्शनात् । इतिसत्वादात्मापिक्षणिकमेवेतिबौद्धमतम् । तन्नयुक्तम्, स्थिरपदार्थेपिक्रमयौगपद्याभ्यामर्थ-

तदाऽगन्तुकस्यैवतस्यकारणत्वस्यात्, नत्वक्षणिकस्यभावस्य, यत् आगन्तुकातिशयान्वयव्यतिरेकानुविधायित्वात् कार्यस्य, उपकारेणभिन्नस्यभावस्यव्यवहितत्वादन्यथासिद्धत्वचस्यात्, पुत्रव्यत्वहिनवृद्ध कुलालवत घटादिकार्ये । तदुक्त

"वषातयाभ्या किं व्योम्नश्चर्मण्यस्तितयो फलम् । चर्मोपमश्चेन् सोऽनित्य रवतुल्यश्चेदसत् फल ॥" इति अथबीजादिक पदार्थ सहकारिभि सहैवकार्यकार्यड्कुरादिकंकरोतीतितेपास्वभावएवेति चेत् ? एव तर्हि बीजादिकोभाव कदाचिदपिसहकारिणमिलाजलादिकन पत्यनिपरन्तुमर्ददैवनै सहित एव स्वकार्यंकरिष्यतिस्वभावस्यानपायात् । अपि च सहकारिणायोतिशय सम्पाद्यत, सोऽनिशयोऽनिशयान्तरमारभते नवा ? द्वितीयपक्षेऽतिशयकल्पननिरर्थकमेव । प्रथमपक्षस्वीकारेबहुमुखानवस्थैवापनेत्, अतिशयेउत्पादयितव्येसहकार्यर्थन्तरापेक्षापेक्षायातदीयपरपराया प्रसङ्ग इत्येकानवस्था । तथाहि, सहकारिभि सलिलपवनादिभि पदार्थसमूहेराधीयमानेबीजस्यातिशयेबीजमुत्पादकमितिस्वीकर्तव्यम् । अन्यथा तदभावेऽप्यतिशय प्रादुर्भवेत् । बीजस्यातिशयमादधानसहकारिसापेक्षमेवावत्ते, अन्यथैवोपकारापत्तावड्कुरात्मककार्यस्यापिसर्वप्रादुर्भावआपद्येत । तस्मादतिशयार्थमपेक्षमाण सहकारिभिरनिशयान्तर कुर्यात् बीजादिभावे । तस्मिन्नप्युपकारेपूर्ववत्सहकारिसापेक्षस्यबीजस्यजकनत्वे, सहकारिसम्पाद्यबिजगतानवस्थाप्रथमाव्यवस्थितेति ।

अथोपकार कायार्थसापेक्षमाणोपिबीजादिनिरपेक्षकार्यंजनयतितत्सापेक्षो वा ? तत्र न प्रथम पक्ष बीजादीनामकारणत्वप्रसङ्गात् । द्वितीयपक्षेऽपेक्ष्यमाणेनबीजादिना, उपकारे, अतिशय आधेय एव, एवतत्रतत्रापीतिबीजादिजन्यातिशयनिष्ठातिशयपरपरापातइति द्वितीयानवस्थाशिरसिस्थिराभवेत् । एवमपेक्षमाणेनोपकारेणबीजादौधर्मिणि, उपकारान्तरमाधेयमित्युपकाराधेयबीजातिशयपरपरापात इति तृतीयानवस्थापतेत् । अथभावभिन्नोऽतिशय सहकारिभिराधीयते इतिस्वीकारे तु तदा, प्राचीनोभावोऽनतिशयात्मानिवृत्त अन्यश्चातिशयात्मकुर्वद्रूप पदवाच्योजायते,तदाममश्रमोपिसफलतायाति । तस्मात् अक्षणिकस्याथात् स्थिरस्यार्थक्रियानसभवतीति । नापिस्थिरपदार्थस्याक्रमेणयुगपदर्थक्रियासभवति, विकल्पासहत्वात् । तथाहि युगपत्सकलकार्यकरणसमर्थ सभावस्तदुत्तरकालमनुवर्तते, नवा ? तत्र प्रथमपक्षे, तत्कालवत्कालान्तरेपिकार्यकरणमापनेत् । द्वितीयेस्थापित्ववृत्त्याशाकृष्णमूषिकाघ्रातबीजादावड्कुरादिजननप्रार्थनामनुहरेत् । यद्विरुद्धधर्माध्यस्तभवति तन्नैकंकिन्तुपरस्परविभिन्नमेवभवति, यथाजलवह्निश्चाविरुद्धधर्माध्यस्तश्चायमितिमेघमालादौ व्याप्तिप्रसिद्ध्यतीति । नचायहेतुःस्वरूपासिद्धोऽस्यात् पक्षेस्वाभाववान् भवति । स्थापिनिपदार्थेकालभेदेनसामर्थ्यार्थ्ययौ प्रसङ्गतद्विपर्ययासिद्धत्वात्तत्रासामर्थ्यसाधकौप्रसङ्गविपर्ययौपूर्वमेवप्रदर्शितौसामर्थ्यासामर्थ्यसाधकाविति । यद्यदायज्जननेऽसमर्थंतत्त-

क्रियाकारित्वस्यसहकारिवैचित्र्येणोपपादयितुमशक्यतयानीलादिवद्घटादिवद्वासंभवेननात्मनोघटादिवत् कालपरिच्छिन्नत्वमितिकालानवच्छेदात् सर्वथानित्यएवसिद्ध्यतीतिदिक् ।

इत्यानन्दभाष्यकारजगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य प्रधानपीठाचार्य श्रीरामानन्दसम्प्रदायस्यचत्वारिंशत्तमाचार्य पदमलङ्कुर्वज्जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यरामप्रपन्नाचार्ययोगीन्द्र प्रणीततत्त्वत्रयसिद्धावात्मसिद्धिः ।

॥ श्रीसीतारामार्पणमस्तु ॥

दातन्नकरोति यथाशिलाखण्डकमलाङ्कुरम् । असमर्थश्चायवर्तमानार्थक्रियाकरणकालेअतीतानागतयोर्थक्रिययोरितिप्रसङ्गोऽन्वय ।

यद्वस्तुयदायन्करोतिनतत्तदातन्करणेसमर्थ यथासामग्रीस्वकीयघटादिकार्ये, करोतिचायमतीतानागतकालेतत्कालवर्तिन्यर्थक्रियेवीजादिभाव इतिप्रसङ्गव्यत्यययोविषय । तस्माद्विपक्षेक्रमयौगपद्यनिवृत्त्या व्यापकानुपलम्भेनाधिगतव्यतिरेकव्याप्तिक प्रसङ्गतद्विपर्ययबलेनगृहीतान्वयव्याप्तिसत्वक्षणिकत्वसाध्य पक्षेस्थापयतीतिसिद्ध्यति । तदेवसर्वपदार्थानाक्षणिकसत्वबलादवायातीति । अत्रार्थक्रियाकारित्वमेव सत्वननतदन्यत । न च सत्तावत्त्वसत्तासमवायो वा सत्वनैयायिकाभिमतभवत्विति वाच्यम्, एवसति द्रव्यगुणकर्मसुसत्तावलेन सत् सदितिव्यवहारसम्भवेऽपिसामान्यविशेषसमवायेषुसत्तायाअभावेनसदिति व्यवहाराभावप्रसङ्ग । न च द्रव्यादित्रिषुसत्ताबलेनसदितिव्यवहारस्तथैव सत्तासतीविशेष सन्समवाय सन्नितिव्यवहारदर्शनात्, तेष्वपिसामानाधिकरण्यसम्बन्धेनसत्ताया सम्भवेनसद्व्यवहारसम्भवादिति वाच्यम्, एवसतितादृशव्यवहारप्रयोजकस्यसत्तासमवायस्यसामानाधिकरण्यसम्बन्धस्यस्वीकारप्रयोजकद्वैविध्यप्रसङ्गापातात् । एवमतिरिक्तसत्तास्वीकारे सा अनुगताऽननुगतावेतिविकल्पपराघातोपि भवति, एवसर्पपादारभ्यपर्वतादिषुपरस्परविलक्षणेषुअनगतेषु, अनुगतस्यकस्यचिदाकारस्य, मणिषु सुत्रवदुद्भूतगुणेषुरूपादिगुणवच्चाप्रतिभासमानत्वात् । तदुक्त केनापि "स्वतोनिवृत्तिव्यतिवृत्तिभाजो भावानभावान्तरनेयरूपा" इति । तस्मादर्थक्रियाकारित्वव्यतिरिक्ताधेयापन्नसत्ताया स्वीकारेप्रमाणाभावादर्थक्रियाकारित्वातिरिक्तसत्तानास्त्येवेति ।

किञ्चभवदभिमतसामान्यसर्वगतस्वाश्रयसर्वगतवेतिविकल्पपराघातोपिभवतिविकल्पासहत्वात् । तत्रयदिघटत्वादिसामान्यस्यसर्वगतत्वमास्थीयेतेति प्रथमपक्षस्तदासर्ववस्तूनासाङ्कर्यप्रसङ्गात्, घटत्वस्यपटादावपिसद्भावेघटवत्पटादिरपिघटरूपएवापतेत्, सिद्धान्तव्याकोपश्चभवेत् । यत प्रशस्तपादाचार्येणस्वभाष्येप्रदर्शितम् "स्वविषयसर्वगत"मिति । किञ्चविद्यमानेघटेविद्यमानघटत्वादिसामान्यं तदन्यत्रजायमानेनव्यक्तिविशेषेण, तस्मादागच्छत्सम्बद्ध्यते, अथवाऽनागच्छदेवसम्बन्ध्यते । प्रथम पक्षेसामान्यस्यद्रव्यत्वस्यात् । क्रियावत्वात् । द्वितियपक्षेगमनंविनाव्यक्त्यन्तरेणसह सम्बन्ध एव न स्यात् । अपिचघटविनाशेतत्स्थसामान्यमवतिष्ठते विनश्यति वा,स्थानान्तरवागच्छति ? प्रथमे सामान्यस्य निराधारत्वस्यात्पूर्वाधारस्यविनाशात् । द्वितीयपक्षेसामान्यस्यनित्यत्वभङ्गेन "नित्यत्वेसत्यनेकसमवे-

नत्वलक्षणकस्यैवसामान्यस्यस्वीकारात् । तृतीयपक्षेचद्रव्यत्वापत्तिरेवेत्यादिदूषणमनिरिक्तसामान्येभवनी त्यनोऽर्थक्रियाकारित्वमेवतत् , नत्वतिरिक्तमिति । तदुक्तम्=

अन्यत्रवर्तमानस्यततोऽन्यस्थानजन्मनि । तस्मादचलत स्थानाद्वृत्तिरित्यतियुक्तता ॥ "

यत्र सोवर्ततेभावस्तेनसम्बद् यतेनतु । तद्देशिन च व्याप्नोतिकिमि येतन्महाद्भूतम् ॥

नयाति नच तत्रासीदस्तिपश्चान्नचाशवत् । जहातिपूर्वनाधारमहोव्यसनसन्ततिरिति ॥

ननुभावव्यतिरिक्तसामान्य न स्वीक्रियेत तदा, अनुवृत्तप्रत्यय किमालवतेइतिचेत् सप्रत्ययो-ऽन्यायोहालवकएव । अगोव्यावृत्तमेवगोत्वम् , नतुनदतिरिक्तकिञ्चिदिति, व्यावृत्तिश्चाभावात्मिकैव नतुभावरूपायेनानुवृत्तप्रत्ययोभावकमप्यालवेदिति । आदितएवारभ्यन्तिमक्षणपर्यन्त ससारो दु खात्मक एव,सुखलेशस्यापितत्रादर्शनादितिसर्वतीर्थकरसमतम् । अ यथाससारात्निवृत्तिमिच्छता ससारनिवृत्तयेत-दुपायेश्रवणमननादौ प्रवृत्त्यनुपपत्ते । तस्मात् "सर्वदु खसर्वदु खमित्येवसर्वदाभावनीयमिति बुद्धोप-देश' । ननु सर्वक्षणिककिंवदिति दृष्टान्तापेक्षायादृष्टान्त प्रदर्शनीयइतिचेत्सत्यम्—स्वलक्षणक्षणानां क्षणि-कतयासालक्षण्याभावात् , नैतेनसदृशतदपरवस्तुविद्यतेयस्यसादृश्यतयोपादान कृत्वातदृष्टान्ततयोपस्था-पयेदितितत स्वलक्षण स्वलक्षणमित्येवभावनीयमिति, एवशून्यमित्यधिभावनीयम् , यत स्वप्नकाले जाग-रणकाले च "नमयादृष्टमिदरजतगजरथादिकवेति विशिष्टविषयकज्ञानस्यनिषेधान्नर्थात् प्रातिभासिकस्थले ज्ञानवदेवतद्विषयीभूतविषयस्यापिवाधानुभवात् । यदिज्ञानविषयीभूतसद्भवेत्तदातादृशविषयविशि-ष्टज्ञानस्येदन्तारूपेणाधिष्ठानशुक्तिकादेस्तत्राध्यस्तस्यरजतादेर्धर्मिणस्तदीयरजतत्वादिधर्मस्यतदीयसम्ब-न्धसमवायादेर्जाग्रतकालिकपदार्थवदेव तद्गतसत्वस्यावश्यभावताभवेत् । नचैतत्केनापिस्वीक्रियते । नचार्धजरतीययुक्तम् । तस्माद्ध्यस्ताधिष्ठानधर्मसम्बन्धदर्शनद्रष्टृणामध्ये एकस्यानेकस्य वा, असत्वे निषेधविषयत्वेनसर्वस्यासत्ववलादापततीति । नचाधिष्ठानस्याध्यस्तत्वेनिरधिष्ठानकभ्रम कथस्यादिति वाच्यम् , केशोण्डकवदेवसर्वत्रनिरधिष्ठानकस्यापिसभवात् । इत्येवबुद्धोपदिष्टेमाध्यमिकास्तावत्सर्वो-त्तमा इति ते कथयन्ति । तदेवसर्वशून्यत्वक्षणभङ्गादिकथनमुखेन, स्थिरत्वानुकूलवेदनीयत्वानुगतसर्व सत्यत्वभ्रमत्वव्यावर्तनेन सर्वशून्यतायामेववौद्धसिद्धान्तस्यपर्यवमानभवतीति । अतोवास्तविकनसत् ,ना सत् , नोभयात्मकनवाऽनुभयात्मकमितिकोटिचतुष्कविनिमुक्तमेव । अर्थात्नसत्वाधात् , नासत् , सत्वेनप्रतीयमानत्वात् , नवोभयात्मकपरस्परविरोधात् परस्परविरोधेहिनप्रकारान्तरस्थितिरिति । नवा ऽनुभयात्मकविरोधादेव । अतश्चतुष्ककोटिविनिमुक्तशून्यत्वमेव । तदुक्त "देशनालोकनाथाना-सत्वाशयवशानुगा । भिद्यतेबहुधालोकेउपायैर्बहुभि पुन । गभीरोत्तानभेदेनक्वचिच्चोभयलक्षणा । भिन्नापि देशनाऽभिन्नाशून्यताऽद्वयलक्षणा,तथाहियदिभावानाघटादीनासत्वस्वभावस्तदा तदुत्पादनायकु-लालकपालादिकारकस्वीकारोनिरर्थकएवस्यात् , अविद्यमानस्योत्पादनायकारकव्यापारोऽपेक्षितोभवति, तत्र यदिसत्वस्वभावक एव भावस्तदाकारकव्यापारेण किंकरणीयस्यादिनितस्यनैरर्थक्यमेवापतति ।

अथयदिघटादिभावानाममन्त्वमेव स्वभावस्तदामुद्गरादिपातनेनतद्विनाशप्रयासोपि विफलतामेवेयात्, असत्वस्वभाववादेवभावानाम । यथोक्तम्—

"नसत कारणापेक्षान्योमादरिपयुज्यते । कार्यस्याग्मभवोहेतु खपुष्पादेरिवासत ॥" इति ।

एवतृतीयचतुर्थपक्षानुविरोधादेवनोपपन्नाभवत तदुक्तभगवतेवऽलकारावतारे—"बुद्ध्याविविच्यमानानान्स्वभावोनावधार्यते । यतोनिरभिलप्यास्तेनि स्वभावाश्चदेशिता ॥" अपिच—

"इदवस्तुबलायातयद्वदन्तिविपश्चित । यथायथार्थाश्चिन्त्यन्तेविशीर्यन्तेतथातथा ॥

यथासिक्ताप्रासाद स्थिरतापरीक्षणा यशिल्पिनामस्त्रादिव्यापार प्रवर्तने तथातथाविशीर्यमाणोभूमावेवशेते, तथैवार्थानास्थिति । न हीथ केनापिकारित किन्तु एतदेवतेभ्योरोचते "यथायथा चिन्त्यन्तेविशीर्यन्ते तथा तथा। यदेतत्स्वयमर्थेऽभ्योरोचतेतवकेवयमिति । न च तर्हिसर्वशून्यत्वेप्रतिनियतकर्मादिव्यवस्था,कार्यार्थकारणान्वेषगादिव्यहार सर्वलोकप्रसिद्ध कथमुपपादितस्यादितिचेत् स्वाप्निकव्यवहारवत् ,अविद्यावलादेवसर्वस्योपपादनमविद्यादशायाभवतीतिजानीहि,तदुक्तम् "परिव्राट्कामुकशूनामेकस्याप्रमदातनो । कुणप कामिनीभक्ष्यइतितिस्रोविकल्प्यते"तदेवभावनाचतुष्टयवलात् सकलवासनानिवृत्तोजातायासर्वशून्यतालक्षण परनिर्वाणमनायासेनैवसिद्ध्यतीतिवयकृताथा । तत परवयकृतार्था तत परनकिंचिदुपदेश्यभवेत्प्राप्तव्य वाऽवशिष्यते इति । शिष्यैस्तावद्योगश्चाचारश्चेतिद्वयमपिकरणीयमेव । अप्राप्तस्यार्थस्यप्राप्तयेपर्यनुयोगोयोग , गुरुणोपदिष्टस्यार्थस्यस्वीकरणश्रद्धापूर्वकमाचार । तत्रगुरूपदिष्टार्थस्यस्वीकरणादुत्तमास्तेशिष्या , पर्यनुयोगस्याकरणादधमाश्चतेशिष्या । अतस्तेषा माध्यमिकाइतिलोकेप्रसिद्धि । गुरुक्तभावनाचतुष्टयबाह्यार्थस्यशून्यत्वचाङ्गीकृत्यान्तरस्यशून्यत्वमङ्गीकृत कथमितिपर्यनुयोगस्यकरणात् केषाञ्चित् , योगाचारेतिसज्ञाभवति । एषाहितेर्षापरिभाषास्वयवेदन हि तावदवश्यमङ्गीकरणीयम , वाह्यानास्वयपरस्परचजडत्वेनप्रकाशनासभवाद् यदिप्रकाशात्मकज्ञानमपिनाङ्गीकृतभवेत्तदाजगदान्ध्यमापतेदित्यतआन्तरपदार्थस्वीकारआवश्यक इति । तदुक्तधर्मकीर्तिना "अप्रत्यक्षस्योपलम्भस्यनार्थदृष्टि प्रसिद्ध्यतीति ।" आन्तरज्ञानेनतदतिरिक्तोनीलादिपदार्थोग्राह्योभवतीति, तस्माद्बुद्धिव्यतिरिक्तपदार्थस्यापिस्वातन्त्र्येणसत्वविद्यतेएवेति न ज्ञानमात्रमेवव स्त्वितिनैववक्तव्यम् विकल्पानुपपत्ते । तथाहि, भावात्समुत्पन्नोनीलादिपदार्थोज्ञानग्राह्यो भवति, अथवाभावादनुत्पन्नएवज्ञानग्राह्यो भवतीति । तत्र न प्रथम पक्ष समुत्पन्नस्यस्थितेरभावात् । नवा द्वितीयपक्ष अनुत्पन्नस्यासत्वात् , अर्थक्रियाकारित्वस्यैवसत्वनियमात् । ननु, समतीतएवबाह्योनीलादिपदार्थोज्ञानग्राह्योभवति, ज्ञानस्यजनकत्वादितिचेत्सत्यम् , अतीतस्यैवजनकतयाज्ञानग्राह्यत्वेघटो ज्ञातइतिप्रतीति स्यात , परन्तु इहतुघटजानामीत्येवरूपेणवर्तमानतावभासो भवतीति तादृशवर्तमानतावभासविरोधोजायेत तथा यथा ज्ञानोत्पादकत्वाद्बाह्यार्थस्यग्राह्यत्व तथा ज्ञानजनकचक्षुरादिज्ञानकरणस्यापिघटादिज्ञानग्राह्यत्वमापतेत, घटाद्यर्थवदिन्द्रियादेरपिजनकत्वस्यविद्यमानत्वात् । अपि च

ज्ञानग्राह्य परमाणुरूपोऽर्थो भवति, अथवा परमाणुसमुदायात्मकावयविरूपोऽर्थोग्राह्योभवतीति वक्तव्यम् । तत्र न चरमपक्ष कृत्स्नैकदेशविकल्पादिना, अवयवसमुदायैकदेशविकल्पेनावयवसमुदायात्मकबाह्यपदार्थस्यनिराकरणात् । नवापरमाणुरूपोबाह्योर्थोभवतीतिप्रथमपक्षोपि समीचीन परमाणूनामतीन्द्रियतयातद्रूपबाह्यार्थस्यग्रहणासभवात् सभवेवा, अयपरमाणुरितिप्रत्यक्षस्यात, ननुघटएको बाह्य स्थूलश्चेतिप्रतीतिस्यात । अपि च परमाणोरतीन्द्रियत्वेननिरवयवतयाप्राच्यादिषट्कदिग्भागैर्युगपत् सयोगोपि न स्यात् । तत्स्वीकारेतु, एकस्यापिपरमाणो षडशत्वमापद्येतेनितस्यनिरवयवत्वकथनव्याकुप्येत । तदुक्तम्—

"षट्केनयुगपत् योगात परमाणो षडशता । तेषामप्यैकदेशत्वेपिण्ड स्यादणुमात्रक । इति ।

तस्मादान्तरज्ञानातिरिक्तग्राह्यबाह्यार्थस्याप्रमाणिकतयानीलाद्यर्थात्मिकज्ञानस्वयमेवस्वात्मरूपप्रकाशकभवतिसूर्यादिप्रकारावदित्येवसिद् यति । तदुक्तम्—"नान्योऽनुभाव्योबुद्ध्यास्तितस्यानानुभवोऽपर "

ग्राह्यग्राहकवैधुर्यात्स्वयमेवग्राह्यग्राहकयोरभेदोऽनुमानेनेवसिद्धयति । तथाहि—प्रकाशते " इतियेनज्ञानेन, यद्वस्तुवेदितभवति, तद्वस्तुतेनज्ञानेनभिन्न न भवति किन्त्वभिन्नमेवभवति, यथा ज्ञानेनज्ञायमानआत्माज्ञानभिन्नो न भवति, तदभिन्न एव, इहापि, नीलादिका पदार्थाज्ञानेनवेदिता भवन्तोज्ञानेनाभिन्नाएवेति । तयोर्ज्ञानज्ञेययोर्भेदे, अधुनाअनेनार्थस्यासम्बन्धो न स्यात् । तादात्म्यस्यव्याप्तिहेतोरभावात् । तदुत्पत्तेरपिनियमहेतोरनियामकत्वादेव, वृक्षशिशपयोरिवतादात्मस्यादर्शनात् । वन्हिधूमयोरिवजन्यजनकभावस्यापिनियामकतयाऽदर्शनादेव ।

ग्राह्यग्राहकसवित्तीनायोयपार्थक्येनावभासोदृश्यते सत्वेकस्मिन् चन्द्रमसिद्धिचन्द्रावभासवदेव भ्रमात्मकएव, तत्रादिरविच्छिन्नप्रवाहभेदवासनैवकारणभवति । वासनाभेदादेवग्राह्यग्राहकाद्यवभासो भवन् भ्रमरूपएवशुक्तौरजतवदिति । यथोक्तम्—

"सहोपलभनियमादभेदोनीलतद्धियो । भेदश्चभ्रान्तिविज्ञानैर्दृश्येतेन्दाविवाद्वये ॥" इति ।

"अविभागोपि बुद्ध्यात्माविपर्यासितदर्शनै । ग्राह्यग्राहकसवित्तिभेदवानिवलक्ष्यते ॥" इति ।

नच सर्वस्यापिभ्रमरूपत्वेआशामोदकोपार्जितमोदकोरसवीर्यविपाकादिभेदो न स्यात् ,तदुभययोर्भ्रमरूपत्वस्य समानत्वात् । तथा च मोदकोपार्जनक्लेशस्यानर्थक्यमेवस्यादिति न भ्रमितव्यम्, वस्तुतोवेद्यवेदकाकाररहितायाअपिबुद्धेर्व्यवहर्तृपरिज्ञानानुरोधेनविभिन्नग्राह्यग्राहकाकाररूपवत्तयातिभिरा - बुपहतनयनानांकेशेन्द्रनाडीज्ञानभेदवदनाद्युपप्लववासनासामर्थ्यवद्व्यवस्थोपपत्ते सभवात् । तथोक्तम्—

"अवेद्यवेदकाकारायथाभ्रान्तैर्निरीक्ष्यते । विभक्तलक्षणाग्राह्यग्राह्यकाकारविप्लवा ॥"

"तथाकृतव्यवस्थेयकेशादिज्ञानभेदवत् । यदातदानसञ्चोद्याग्राह्यग्राहकलक्षणा ॥ इति ।"

ततश्च क्षणिकबुद्धिरेवानिर्वचनीयानादिवासनाबलानेकाकारेणावभासते इति, एवञ्च पूर्वोक्तभावना प्रचयबला सकलवासनानामुच्छेदविगलितानेकविषयाकारोपप्लवविशुद्धविज्ञानवारोदयएवमोक्षोदय इत्येवमुपासक कृतक योभवति । अन्येतु कथयन्ति, यदुक्तबाह्यनीलादिकवस्तुनास्त्येवज्ञानातिरिक्तमिति, तन्नप्रमाणाभावात् । नच द्विचन्द्रवत्सहोपलम्भनियमएवतन्नास्तितायाप्रमाणमितिवाच्यम् , ज्ञानज्ञेययोरभेदासाधकत्वेनाभिमतस्यसहोपलम्भस्याप्रयोजकत्वेनसदिग्धविपक्षव्यावृत्तिकत्वात् । अथाद्वैतवेदकर्योंयसहोपलम्भ सचोपायोपेयभूतकोनत्वभेदमूलकइति । ननुभेदेसहोपलम्भनियमात्मकसाधननसम्भवतीति चेन्नज्ञानस्यान्तरत्वाभेदेन प्रतिभासमाननया, एकदेशत्वैककालत्वलक्षणसहत्वात् नियमासम्भवात् । किञ्चनीलाद्यर्थानांज्ञानाकारत्वेऽहमित्येवरूपेणप्रतिभासोभवेत् ननु नीलमिनादिकमितिप्रतिभास स्यात , प्रतिपन्नप्रत्ययादभिन्नत्वात् नतुवस्तुनोज्ञानस्वरूपोनीलादिपदार्थ शुक्तिरजतवत् , भ्रमाद् बहिर्वद् भेदेन प्रतिभासते, तस्मात्तत्राहमुल्लेखो न भवति, इदरजतमित्यत्रशुक्तिकोल्लेखवदिति । तदुक्तम —"परिच्छेदान्तराद्योयभागोवहिरिवस्थित । ज्ञानस्याभेदिनोभेदप्रतिभासोऽप्युपप्लव ॥" इति ।

यदन्तर्ज्ञेयतत्त्वतद्बहिर्वदवभासते ॥ इति च । तदपि न युक्तम् , यदि वस्तुतोबाह्यार्थोऽव्यतिरिक्ति न भवेत्, तदातदुत्पत्तिरहिततयाबहिर्वदित्येवरूपेणोपमानोपमेयभावोनैव सम्भवेत् । नहि देवदत्तोवन्ध्यापुत्रवदवभासते इति कश्चित् प्रयुनक्ति प्रत्येतिवा तथा कश्चित् अपिच भेदप्रतिभासस्यभ्रमत्वेसिद्धेऽभेदप्रतिभासस्यप्रामाण्यसिद्ध्येत् , अभेदप्रतिभासस्यप्रामाण्ये च भेद प्रतिभासस्यभ्रमत्वमितिपरस्पराश्रयप्रसङ्गआपतति ' अपिमभवान्नीलादिकबाह्यमेवजानानोबाह्यमेवोबादत्तेजगतिउपेक्षतेवाऽवान्तरमितिव्यवस्थादर्शनात । एवञ्चज्ञानज्ञेययोर्योऽयमभेदसाधकोहेतु प्रदर्शित ससाध्यसाधनायाक्षम एवेति । ततश्चबहिर्वदितिवदता, बाणं ग्राह्यमेवेतिभावनीयमितित्वदीयोबाणोभवन्तमेवप्रहरेत् । अथैवमपिज्ञानाभिन्नकालस्यार्थस्यबाह्यत्वकथमिवोपपन्नमितिचेन्न, इद्रियसनिकृष्टविषयस्योत्पाद्येज्ञानेस्वाकारसमर्थकतयासमर्पितेनचाकारेणतस्यार्थस्यानुमेयतोपपत्ते । अतएवदोषतत्परिहारश्चतुल्यावेव भवत ।

"भिन्नकालकथंग्राह्यमितिचेदग्राह्यताविदु । हेतुत्वमेवचव्यक्तेर्ज्ञानाकारार्पणक्षममिति ।

तथा च पुष्ट्याभोजनानुमान तथेवज्ञानाकारेणविषयोप्यनुमेय । तदुक्तम्—

"अर्थेन घटयत्येनानहिमुक्त्वार्द्ररूपताम् । तस्मात्प्रमेयाधिगते प्रमाणमेयरूपते ॥" इति ॥

नहि वित्तिसत्तैवतद्वेदनायुक्ता, तस्या सर्वत्रसमानत्वात् । तासुवित्तिषुसारूप्यमाविशत्सरूपयितुंघटयेदिति । ततश्चबाह्यार्थसद्भावेऽयंप्रयोग , ये यस्मिन् सत्यपिकादाचित्काभवन्तिते तदतिरिक्तहेतुसापेक्षाभवन्त्येव । यथाअविवक्षितमपिवचनगमनादिप्रतिभासाविवक्षुप्रभृतिषुपुरुषान्तरसापेक्षाभवन्ति । तथा च विवादाध्यासिता प्रवृत्तिप्रत्यया विद्यमानेप्यालयविज्ञानेकदाचिदेवनीलपीताद्युल्ले-

खना भवति । तत्राहमित्याकारकविज्ञानमालयविज्ञानम् , एतदेवपुण्यसस्कारादिविशिष्टनदेवान्यत्रदर्शने आत्मपदवाच्य भवति घटादिविषयकं च विज्ञानप्रवृत्तिविज्ञानपदवाच्यम् । तदुक्त–

"तत्स्यादालयविज्ञानयद्भवेदहमास्पदम् । तत्स्यात्प्रवृतिविज्ञानयन्नीलादिकमुल्लिखेदिति ।

ततश्चालयविज्ञानसन्तानभिन्न कादाचित्कप्रवृत्तिविज्ञानकारणीभूतोवाह्योघटपटाद्यर्थोग्राह्य एव, नतु वासनापरिपाकप्रत्यय कादाचित्कत्वात् कदाचिदुत्पद्यते इति । विज्ञानवादिनामतेतुवासनानामेक-सन्तानस्थितानामालयविज्ञानानातत्तत् प्रवृत्तिजननशक्ति तस्याश्चस्वकार्यो प्रत्याभिमुख्येपरिपाक स्तस्य च प्रत्यय कारणस्व, ज्ञानपूर्ववर्तिक्षण स्वीक्रियते [अर्थादेतन्मते, कार्यमात्रेचतुर्विधकारणम , अधिपति प्रत्यय सहकारिप्रत्ययआलवनप्रत्यय समनन्तरप्रत्ययश्च । तत्रप्रदीपाद्यालोक सहकारिकारणम्, चक्षुरादिकमधिपतिकारणम्, घटादिर्विषयआलवनप्रत्यय स्वसन्तानवनिपूर्वक्षण समनन्तरप्रत्यय । एभिश्चतुभि प्रत्ययै पदाथाववोधो भवनि, उत्पत्तिश्च, एवमेवसर्वत्रैवोहनीय । तत्र यत्रैकेन कारणेन कार्यंजायतेतत्रहेतूपनिवन्ध यथावीजात्काण्डकाण्डात् पत्रपलाशादि । यत्राककारणप्रतिकारणान्तरमेत्य कार्यंकरोतितत्रप्रत्ययोपनिबन्ध , इत्यादिक्सर्वतदीयशास्त्रादेवज्ञातव्म्] सन्तानान्तरनिवन्धनत्वाऽनङ्गी-कारात् । ततश्चप्रवृत्तिविज्ञानजनकालयविज्ञानवतिवासनापरिपाकप्रतिसर्वेष्यालयविज्ञानवर्तिन क्षणा समर्था एवेतिमन्तव्यम् , नोचेदेकोपिक्षण समर्थो न स्यात् , आलयविज्ञानविज्ञानसन्तानवतित्वाविशे-षात् । तत्रसर्वेप्यालयवर्तिक्षणा समर्थाभवन्तीतिपक्षेकार्यक्षेपोनैव भवेत् । ततश्चकार्यस्यकादाचित्क-त्वनिर्वाहायशब्द स्पर्शरूपरसगधविषयाबाह्याआन्तरा सुखादिविषयाश्चषडपिप्रत्ययाश्चतुर प्रत्ययान् प्रती-त्य, एककारणकारणान्तरेणमिलित्वैवोत्पद्यन्ते इति बुद्धिमतात्वयाऽनिच्छतापिस्वानुभवमनाच्छाद्य, परिच्छेत्तव्यज्ञातव्यम् । तेच चत्वार प्रत्यया शास्त्रेप्रसिद्धा आलवनप्रत्ययसमनन्तरप्रत्ययसहकारि-प्रत्ययाधिपतिप्रत्ययरूपा । तत्रज्ञानपदवाच्यनीलाद्यवभासस्यचित्तस्यनीलाद्यालवनप्रत्ययात् । नीला-कारता भवति, समनन्तरप्रत्ययादर्थात्स्वसतानवतिपूर्वक्षणादबोधरूपता भवति, सहकारिप्रत्ययादालोकात् , चक्षुषोऽधिपतिप्रत्ययाद् विषयग्रहणप्रतिनियमोभवति, विदितस्यज्ञानस्यरसादिसाधारण्यप्राप्तेर्नियामकं चक्षुरधिपतिर्भवितुमर्हति, लोकेनियामकस्यैवाधिपतित्वदर्शनात् । एवमान्तराणाचित्तात्मकानासुख-दुःखरागद्वेषादीनाचत्वारिकारणानि भवन्तीतिद्रष्टव्यम् । एवञ्चचित्तचैत्तात्मकस्कन्ध पञ्चप्रका-रक रूपविज्ञानवेदनासज्ञासस्कारस्कन्धभेदात् । तत्ररूप्यन्ते एभिर्विषया शब्दस्पर्शादिका रूप्यन्ते इति व्युत्पत्त्याविषयसहितानिचक्षुरादीनिषडपीन्द्रियाणिरूपस्कन्ध । आलयविज्ञानप्रवृत्तिविज्ञानप्रवा-होविज्ञानस्कन्ध । पूर्वकथितस्कन्धद्वयसम्वन्धजनित सुखदु खादिप्रत्ययप्रवाहोवेदनास्कन्धपदवाच्य । घटादिकोऽयमित्याकारकशब्दोल्लेखसविद्ज्ञानप्रवाह सज्ञास्कन्धपदेनव्यवहृतो भवति, वेदनासम्बन्धनिब-न्धनारागद्वेषादय क्लेशाउपक्लेशाश्चमदमानादयोधर्माधर्मौ च सस्कारस्कन्ध इति । तदेतत्सर्वंदु खाय-

तन दु खकारणंचेतिभावयित्वातन्निरोधोपायतत्त्वज्ञानमर्जयेत् । अत एवकथितम "दु खसमुदयतिनिरोध-मार्गाश्चत्वारआर्यस्यबुद्धाभिमतानितत्त्वानि । तद् द्विविधम्, प्रत्ययोपनिबन्धनहेतूपनिबन्धनभेदात् ।

तत्रप्रत्ययोपनिबन्धनस्यसग्राहकतदीयसूत्रम् "इदकार्येयेअन्येहेतव प्रत्ययन्ति" गच्छन्तितेषा-मयमानानाहेतूनाभाव प्रत्ययत्वकारणसमवायस्तन्मात्रस्यफलम्, न तदतिरिक्तचेतनस्यैतत्कार्यंफलमिति-सूत्रार्थ । यथाबीजहेतुरङ्कुर षण्णाधातूनांसमवायाज्जायते । तत्रपृथ्वीधातुरकुरस्यकाठिन्यगन्ध जनयति । जलधातुस्तु, अकुरस्यरसस्निग्धताचजनयति । तेजोधातुरकुरस्यरूपमौष्ण्य च जनयति, वायुधातुरकुरस्यस्पर्शंचलन च जनयति, आकाशधातुरकुरस्यावकाशशब्द च जनयति, ऋतुधातुर्यथा योगपृथिवीप्रभृतिकमुत्पादयन्नुपकरोति । हेतूपनिबन्धनस्यसग्राहकसूत्रम् "उत्पादाद्वातथागतानाम-नुत्पादाद्वास्थितेवैषांधर्माणाधर्मताधर्मस्थितिताधर्मनियामकता च, प्रतीत्यसमुत्पादानुलोमतेति । (अस्य सूत्रस्यायमर्थ तथागतानाबुद्धानामते, धर्माणा=कार्यकारणरूपाणायाधर्मताकार्यकारणभावरूपा, सैषा, उत्पादानुत्पादाद्वास्थिता, यस्मिन् सतियदुत्पद्यतेतत्तस्यकारणस्यकार्यमिति] [यथाकपालेसति घट कार्यमुत्पद्यते इति घट कपालस्यकार्यंकारणता चकपालस्य, कपालसत्वे एवघटोत्पादात्, कपाला-ऽभावेघटानुत्पादात्] इद सूत्रस्थधर्मता, इत्यस्यविवरणम्, धर्मस्यकार्यस्यकारणानतिक्रमेणैवस-स्थिति । धर्मतेत्यत्रस्वार्थिकस्तसिलप्रत्यय । धर्म एव धर्मतेति । धर्मस्यकारणस्य कपालादे कार्यं-घटादिकप्रतिनियामकता, कारणसत्वेएवकार्यकारणाभावेकार्याभाव इति ।

ननुयत्रयत्रकार्यकारणभावस्तत्रावश्यचेतनावस्थानघटेकुलालादिवदितिअवश्यकश्चिदित्याशकाया माह, "कारणेसतीति" कारणेसतितत्प्रती य=प्राप्यसमुत्पादेअनुलोमताऽन्वयोऽनुसारिताया, सैवधर्म-ताउत्पादादनुत्पादाद्वाधर्माणास्थिता,अर्थादन्वयव्यतिरेकाभ्याकार्यकारणभावो भवति, न चात्रकश्चिच्चे तनोऽधिष्ठाता भवतीति यथा प्रतीत्यसमुत्पादस्यहेतूपनिन्बध बीजादकुरोऽकुरात् काण्डकाण्डा-न्नालोनालात्, गर्भोगर्भात् शूकतत पुष्पम्, पुष्पात्फलमिति । नचात्रबाह्ये समुदायेकारणबीजादि-कम् कार्यमकुरादि वा चेतयते । नहिभवतिकारणस्येत्थ ज्ञानयदहमकुरमुत्पादयामिनवाऽकुरस्य "अहबीजेननिर्वर्तित" इतिज्ञानभवति, जडत्वादुभयो किन्तु तत्समवयानेकार्यभवतीत्यनादिरेवप्रवाह । एवमेवाध्यात्मिककार्यस्थलेपिकारणद्वयहेतुपनिबन्धनरूप प्रत्ययोर्यंकारणद्वयमवगन्तव्यम् । विस्तृत-विचारस्तुतद्ग्रन्थादेवज्ञातव्य । तदुभयनिरोधोवातदनन्तर विमलज्ञानोदय वा मोक्ष । तादृश-निरोधस्योपायोमार्गशब्देनज्ञातव्य । सचतत्वज्ञानतच्चपूर्वकालिकभावनाबलाद्भवतीति । सूत्रस्या-न्तेपृच्छताशिष्याणासौत्रान्तिकेतिसज्ञाजातेति । केचनान्येबुद्धशिष्या, बाह्येषुशब्दस्पर्शगन्धादिषु, आन्तरेषुरूपादिस्कन्धेषुविद्यमानेष्वपितत्रानास्थामुत्पादयितु "सर्वशून्यम्" इति, प्राथमिकशिष्यानक-थयत्भगवान्बुद्धस्तथागत । द्वितीयास्तुविज्ञानमात्रेआग्रहवताविज्ञानमात्रमेवसत् तदन्यत्सर्वंमिथ्यैवेति-प्रावोचत्, विज्ञानरूपेऽधिष्ठानेशुक्तारजतवदेवसर्वमध्यस्तमिति । तृतियतुयविज्ञानविज्ञेय च सत्यमि-

न्यास्थित, विज्ञेयप्रमेयमनुमित्यैवऽवगम्यतेनपुन प्रत्यक्षेण, क्षणिकत्वेनतावत्कालमनवस्थानात्। सेय-परस्परविरुद्धाभाषेति वर्णयन्तोवैभाषिकाख्याता । एषा हि तेपापरिभाषाभवति, ज्ञेयपदार्थोऽनुमा-नेनानुमीयतेइतिमते, प्रत्यक्षसिद्धस्यकस्याप्यर्थस्याभावाद्व्याप्तिग्रहणस्थानाभावेनानुमानप्रवृत्तेरनुपपत्ते सकललोकानुभवविरोधोपिभवतीत्यत पदार्थोद्विप्रकारकोग्राह्यश्चाध्यवसेयश्च । तत्रग्रहणनिर्विकल्पक रूपयत् तदेवप्रमाणकल्पनापोढत्वादर्थात्कल्पनारहितत्वात् । अध्यवसायस्तुसविकल्पकरूपोऽप्रमाण कल्पनारूपत्वात् । तदुक्तम्—

कल्पनापोढमभ्रान्तप्रत्यक्षनिर्विकल्पकम् । विकल्पोवस्तुनिर्भासादसंवादादुपप्लव ॥" इति ।

"ग्राह्यवस्तुप्रमाणहिग्रहणयदितोऽन्यथा । नतद्वस्तुनतन्मानशब्दलिङ्गेन्द्रियादिजमिति ॥"

ननुयदि निर्विकल्पकज्ञानमात्रमविकल्पकज्ञान न प्रमाणनदासविकल्पकप्रत्यक्षानन्तरघटादि-कमुद्दिश्यप्रवृत्तपुरुषस्यकथमर्थप्राप्तिर्भवेत संवादश्चकथस्यात् । नहिशुक्तौरजतज्ञानानान्तर प्रवृत्तस्य-पुरुषस्यरजतरूपार्थप्राप्तिर्भवति, नवाशुक्तिरजतज्ञानप्रमाणातरणसंवादितभवतीतिचन्न, मणिप्रभाविषय-मणिविकल्पन्यायेनपरपरयातत्तदर्थप्राप्तिसंभवेनार्थप्राप्तिसंभवात् । अधिकमन्यत्रद्रष्टव्यम् । नच शिष्याशयानुरोधेनजायमान उपदेशभेदोन सम्प्रदायसिद्धइतिवाच्यम्—बोधिचित्तविवरणेतथाप्रति-पादनात् । "देशनालोकनाथानासत्वाशयवशानुगा । भिद्यन्ते बहुधालोकेउपायर्बहुभि पुन । गभीरो-त्तानभेदेनक्वचिच्चोभयलक्षणा । भिन्नापिदेशनाऽभिन्नाशून्यताऽद्वयलक्षणेति । एतन्मतेद्वादशायतन-पूजनमहत्फलमित्यपिप्रतिपादितम् । तत्रद्वादशायतनमित्थम्, पञ्चज्ञानेन्द्रियाणि तथैवपञ्चकर्मेन्द्रि-याणिवाक्पादादिरूपाणि, मनोबुद्धिश्चेतिद्वादशायतनम् । तथा विवेकविलासविवरणेबौद्धमतमित्थ प्रदर्शितम् । अत्रभगवान्बुद्धएवदेव बाह्यमान्तरसर्वजगत् क्षणिकम् । दुखनदायतनम, समुदयोमार्ग-श्चेतिआर्यसत्ववाच्यभवति । विज्ञानवेदनासंज्ञासंस्काररूपसंज्ञका पञ्चस्कन्धास्तेससारिणादुखदा इति । ज्ञानेन्द्रियाणि चक्षुरादिकानि, शब्दादिका पञ्चतदीयविषया । पञ्चमानसधर्मायतनम् । रागद्वेषादीनागणआत्मात्मीयस्वभावक स एव समुदय । सर्वोपि पदार्थ क्षणिकइत्येव या स्थिरवासना-समार्ग विमलज्ञानोदयएवमोक्ष । प्रत्यक्षमनुमानमेतद्द्विकमेवप्रमाणम् । अत्रचत्वारोऽवान्तरवैभाषिका-दिका सन्ति । सकलविप्लवरहितज्ञानमात्रेणावस्थानमेवमोक्षइतिसर्वसम्मतम् । तदित्थक्रमेणआत्मन काल-परीक्षाप्रकरणे क्षणिकत्वमात्मनोपिकथितम् । सत्वहेता क्षणिकत्वस्यव्यवस्थापनकृतवान्, स्थिरेवस्तुनि-क्रमेणयुगपद्वाऽर्थकारित्वस्यासंभवात्, अर्थत सर्वस्यक्षणिकत्वमेवेतिसर्वान्तर्गतस्यात्मनोपि क्षणिकत्वमेवे-त्येवबौद्धसमतात्मविचार संवृत्त परन्तुनायपक्ष समीचीन इति केचनतत्रेत्थप्रतिपादयन्ति तथाहि

यदि कदाचिदात्मनामक स्थिर कश्चिन्नस्वीक्रियेततदातृप्त्यर्थभोजनादिसाधनपारलौकिक फलादिसाधनाययागाद्यनुष्ठानसर्वथैवानर्थकस्यात् न चान्येन कर्मकृतफलस्त्वन्योभोक्ष्यतीतिसंभवति, साध्य साधनयो समानाधिकरण्यस्यैवदर्शनात् । तस्माद् "योहपूर्वमतीतकालेयागपाकादिलौकिकपारलौकिक-

कर्मकृतवान्, सएवाहसम्प्रतितत्फलसुखदु खवाऽनुभवन्विचे" इत्येवप्रकारेणपूर्वापरकालान्युस्यूतस्यस्थिरस्यात्मन सुस्पष्टप्रमाणावगततया, पूर्वापरभागरहितकालकलाऽवस्थितिलक्षणक्षणिकतानैवाभ्युयेतव्या । अथ "प्रमाणवत्वादायात प्रवाह केनवार्यते" इतिन्यायेन "यत् सत् तत्क्षणिकयथामेघमाला" इत्याद्यनुमान प्रमाणेनक्षणिकत्वस्यासिद्धतयातदनुसारेणसजातियसन्तानानिष्ठानामेवपूर्वप्रत्यय कार्यस्यपाकयागादे कर्त्ताभवति, तत्रैवचोत्तरप्रत्ययस्तज्जनितफलस्यभोक्ताभवतीतिकोदोष । न चातिप्रसङ्ग कार्यकारणभावस्येवनियामकत्वात् । यथामधुररसभावितानामाम्रादिबीजानांकर्षितपृथिव्याप्ररोपितानामङ्कुरकाण्डस्कन्धशाखाफलादिषुतद्द्वारापरपरया तदीयफलेपिमाधुर्यमनुगच्छति, यथावालाक्षारसावसिक्तायां कार्पासबीजानामङ्कुरादिपरपरयाकापासेपिरक्तिमनियम । यथोक्तम्- —

"यस्मिन्नेवहिसतानेआहिताकर्मवासना । फलतत्रैवसधत्तेकार्पासेरक्ततायथा ॥" इति ।

"कुसुमेबीजपुरादेर्यल्लाक्षाद्य सिच्यते । शक्तिराधीयतेकाचित्ताकथनहिपश्यति ॥" इतिच ।

तदपिनयुक्तम्, विकल्पासहत्वात्, तथाहि, यदिदमालादिदृष्टान्तेक्षणिकत्वतदनेनैवानुमानेन साधितम्, अथवाप्रमाणान्तरेणप्रसाध्यते ? तत्र न प्रथम पक्ष समीचीन दृष्टान्तासिद्धे यतस्तृतीयक्षणवृत्तिध्वसप्रतियोगित्वरूपक्षणिकत्वस्यान्यत्रप्रसिद्धावपि, भवदभिमतक्षणिकत्वस्यक्वचिदप्यदृष्टचरत्वेन, दृष्टान्तस्यैवासिद्धे । दृष्टान्तविनाऽनुमानावतारस्यैवासभवात्, दृष्टान्ताभावे, साध्यसाधनयो सहचारस्यादर्शनेनव्याप्तिग्रहाभावेनहेतोरगविकलतयासावकत्वशक्तेरेवास्तमितत्वात् । नवाद्वितीयपक्ष, तथा सतिप्रमाणान्तरेणदृष्टान्तेसाध्यसाधनवत् तेनैवप्रमाणान्तरेणपक्षेपिसाधनसभवेन सत्व साधकानुमानस्य सर्वथैवनैरर्थक्यमापतेत् । नवार्थकारित्वभवदभिमतयुक्तम्, मिथ्यासर्पदशनेनापिमरणादिदर्शनतत्र सत्वलक्षणस्यातिव्याप्तेर्थक्रियाकारित्व यदि सत्वलक्षण स्वीक्रियेत तदाकदाचित् रज्जौसर्पज्ञानमिथ्यारूपजाततत्रापितादृशसर्पसदष्टोम्रियते, तावतातादृशसर्पस्यतदीयसंदसनस्यसत्व न कश्चिदपिमनुते, सम्प्रतितेनापि, अर्थक्रियादर्शनेनतादृगसर्पस्यतदीयदसस्यसत्वमापतेत् । तच्चनेष्टमनुभवविरोधात्, लोकविरुद्धत्वाच्चेतिअतोनेदसत्वलक्षणकिन्तु उपास्वातिनोक्तम् "उत्पादव्ययययुक्तसदि" त्येवनिर्दिष्टसत्वम्, अतएवप्रथमत पदार्थउत्पद्यते तत स्थीयतेततो विनश्यतीतिलोकानुभवस्तत्रैव, सदिदमिति प्रत्ययव्यवहारोभवत । ननु यदेवबीजकुशूलनिहिततन्नोत्पादयत्यङ्कुरम्, तदेवक्षेत्रपतितजलादिसंवहितमङ्कुरोत्पादने समर्थंसदङ्कुरमुत्पादयतीतिसामर्थ्यासामर्थ्यस्वरूपविरुद्धधर्मवसात् बलादेवक्षणिकत्वसिद्धिर्भवति, अर्थात् कुशुलस्थबीजमन्यत् तद्भिन्न च क्षेत्रगतसहकारिमध्यस्थतनोभिन्नमेवेत्येवक्रमेणप्रतिक्षणंतद्विनाशेन पदार्थमात्रस्यक्षणिकत्वमायातीतिचेत्सत्यम्, दृष्टत्वात्, अनेकान्तवादेतदिष्टत्वात् । तथाचोक्त हेमचन्द्रसूरिणा

"आदीपमाव्योमसमस्वभावस्याद्वादमुद्रानतिभेदिवस्तु ।

तन्नित्यमेवैकमनित्यमन्यदितित्वदाज्ञाद्विषतांप्रलापा ॥

एतन्मतेनेकान्तत कश्चिदपिनित्य नवैकान्ततोऽनित्य किन्तु द्रव्यरूपेणसर्वोपिपदार्थोनित्यपर्याय रूपेणानित्य एव । अत्रसप्तभङ्गीन प्रयोग स्यादस्तिस्वरूपा —स्यान्नास्तिपररूपेण, स्यादस्ति च नास्ति च स्यादवक्तव्य । स्यादस्ति च अवक्तव्यश्च । स्यान्नास्ति चाव्यक्तव्यश्च । स्यादस्ति च स्यान्नास्ति चावक्तव्यश्चेति एव क्षणिकत्वसाधनाययदुक्तकार्यासादिदृष्टान्तादिकम्,तदपिन युक्त तत्र युक्तेरनुक्ते । तत्रापिनिरन्वयविनाशस्यानगीकारात् । नवामतानिसतानिव्यतिरिक्त कश्चित्सनान प्रमाणसिद्ध । तदुक्तम्—

"सजातीया क्रमोत्पन्ना प्रत्यासन्ना परस्परम् । वक्तयस्तासुसतान सचैकइतिगीयते ॥"इति ।

नवामृगमदवासनावासितवसनेव, पूर्वक्षणावस्थितसस्कारस्योत्तरसजातीयक्षणान्तरेषुसक्रमणेनपूर्व-क्षणानुभूतस्योत्तरकालिकक्षणेनस्मरणादिकस्यादिति, ऐहिकपारलौकिकयात्रायानिवाह स्यादितिसभवति, सस्कारादेरपिभावतयाक्षणिकत्वेनतत्सक्रमासभवात् । नचोत्तरस्मिन्नुत्पत्तिरेवमक्रमस्तदुत्पादकाभावात् । तथा मात्रानुभूतस्यपुत्रेणापिस्मरणप्रसङ्गात् । नवाकार्यकारणाभावोऽतिप्रसङ्गनिवारक सभवति, गुरुणानुभूतस्यशिष्येणापिस्मरणप्रसङ्गात् । ततश्चकृतप्रणाशाकृताभ्यागमप्रसङ्गात् । साध्यसाधनयोर्वैयधिकरण्येऽयदोष प्रभवति । तदुक्तम्— कृतप्रणाशाकृतकर्मभोगभवप्रमोक्ष स्मृतिभङ्गदोषान् । उपेक्ष्यसाक्षात् क्षणभङ्गमिच्छन्नहोमहासाहसिक परोऽयमिति । तस्मान्नक्षणभङ्गवादो युक्तियुक्त इति ॥

अपिच क्षणभङ्गवादेज्ञानकालेऽर्थस्यज्ञेयस्यासत्वेन, ज्ञेयकालेज्ञापकज्ञानस्याविद्यमानत्वेन च तयोरर्थज्ञानयोग्राह्यग्राहकभावानुपपत्तौसकललोकयात्रोऽस्तमियात् । नच ज्ञानज्ञेययो समानकालिकत्वमेवेतिवाच्यम् ,तथात्वेसव्येतरविषाणवत्कार्यकारणभावएवनस्यात् कार्यत्वपरकालभाविभवनिकारणतुपूर्वकालिकभवति, कार्यनियतपूर्ववृत्तिकारणम् , कार्याव्यवहितानन्यथासिद्धपूर्वकालिकमेवकारणम् , एवञ्च समानकालिकेपूर्वापरकालवृत्तित्वस्याभावेनसव्येतरविषाणवत् , यथाकार्यकारणभावोज्ञानज्ञेययोर्नस्यादित्यत क्षणभङ्गवादोनयुक्त इति । अथ भिन्नकालिकस्यापिविषयस्यज्ञानाकारसमर्थकतयाग्राह्यत्व स्यात् आकारसमर्थकत्वस्यैवग्राह्यत्वप्रतिप्रयोजत्वनियमान्नतुभिन्नकालिकत्वसमानकालिकत्वयो प्रयोजकत्वमित्यपि न युक्तियुक्तम् , क्षणिकविज्ञानस्यविज्ञानस्याकारार्थकताश्रयतायादुर्वचत्वेनसाकारज्ञानवादेप्रत्यादेशेननिराकारज्ञानवादेपियोग्यतावलादेवप्रतिकर्मव्यवस्थाया स्थितत्वात् ।

तथाहिप्रत्यक्षेणविषयाकाररहितमेवज्ञानप्रतिपुरुषघटपटादिविषयतयानुभूत भवति । नतु आदर्शादिवत् प्रतिविम्बाक्रान्तज्ञानमनुभूयते । तथात्वेविषयाकारधारितत्वेन च ज्ञानस्यार्थेदूरसमीपादिव्यवहारविलोपप्रसङ्गात् । न चेदमिष्टम् दवीयान् महीधरोनेदीयान् दीर्घोवाहुरितिव्यवहारस्यनिर्वाधजागरुकत्वात् । नचाकाराधायकस्यविषयस्यदवीयस्त्वादिशालितया तथा व्यवहार स्यादित्यपिकथनसमीचीनम् दर्पणादौतादृशव्यवहारस्यानुपलभात् । अपिच विषयादुत्पद्यमानविज्ञान यथा विषयस्यनीलाद्याकारमनुकरोति तथा यदि विषयनिष्ठजडतामपिधारयेत् तदाऽर्थवदेवज्ञानमपि-

जडविज्ञानमपिजडात्मकमेवभवेदिति । वृद्धिमिच्छतोमूलमपिनष्टमितिन्यायापातात् । ननुज्ञानमर्थगत-जडतानानुकरोतीनियदुच्यनेतदातादृशजडताया अग्रहण न स्यात् , इति एक दोषपरिहारायक्रियमाणउपायोदोपान्तरमावहतीतिन्यायापात स्यात् । ननु मा भवतु जडताया, ग्रहणंतावताकोदोष ? तदग्रहणेपिग्रहणेऽपिनलाकारग्रहणेतयोर्भेदो नैकान्तावाभवेत् , नीलाकारग्रहणेचागृहीताजडताकथत-स्यानुरूप स्यात । अन्यथागृहीनस्यस्तभस्यागृहीतत्रैलोक्यमपिरूपभवेदिति । बोद्धमत न समीचीन मपितुजैनमतसमीचीनतदेवाश्रयणीयम । एतन्मतेजीवाजीवास्रवबन्धमोक्षादिका पदार्थाअनेकेसन्ति । नास्तिकश्चिदकोजगत कर्ताइत्यादिकमपिबहुप्रपञ्चितमित्येवजैनीयग्रन्थादेवविभज्यसर्वंज्ञातव्यम् ।

एवञ्च "कण्टकेनकण्टकमुद्धरेदिति" न्यायेनाचार्योबौद्धमतस्यजैनमास्थायनिराकरणकृतवान् । तदेतदपिमतन्वेदविरोधात् , एकस्मिन् धर्मिणीविरुद्धसत्वासत्वयोर्युगपदभ्युपगमात , नैव समीचीनम् । तथाहिकथमेतन्मतप्रमाणिकताग्रहीतुमर्हति, एकस्मिन् वस्तुनिपरमार्थेसतिपारमार्थिकानांसत्वासत्वादि धर्माणायुगवत्समावेशासम्भवात् । नच परस्परविरुद्धयो सत्वासत्वयो समुच्चयासम्भवेविकल्प स्यादिति वक्तव्यम , क्रियैवविकल्प्येननतुवस्तुनिर्विकल्पइतिन्यायात् । नच नरसिंहदृष्टान्तेनसर्वजगदनेकान्तात्मकमेवेतियुक्तम् एकस्मिन् देशेसिंहत्वमपरस्मिन् नरत्वमितिदेशभेदमास्थायविरोधाभावेनतस्यैकस्मिन् देशे एवसत्वासत्वादिनाऽनेकान्तत्वकथनेदृष्टान्तत्वाउनुपपत्ते । अथद्रव्यत्वेनरूपेण सत्वपर्यायात्मनातदभावइत्येवमुभयमपिसमुपपद्यतेएव, यथाएकस्मिन्नेववृक्षेवृक्षत्वेनकपिसयोगो मूलावच्छेदकभेदेनतदभावस्योपपत्तिवदितिमैवम्, कालभेदनकस्यचित्सत्व च स्वभाव इति स्वीकारेऽदोषात् । न चैकस्यहृस्वत्वदीर्घत्ववत्सर्वत्रानेकान्त व न दोषायेतिवाच्यम्, तत्रप्रतियोगिभेदेन विरोधाभावात गुरुत्वशिष्यत्ववत् तस्मात् प्रमाणाभावात् युगपत्सत्वासत्वेपरस्परविरुद्धेएकस्मिन् पदार्थेविद्येतेइतिवक्तुन कोपि प्रभवति । अपि च सर्वस्यवस्तुन कारणरूप सप्तभङ्गिनय एव, स च स्वयमेकान्तोऽनेकान्तो वा ? प्रथमपक्षे "सर्वमनेकान्तमितिप्रतिज्ञाव्याघातात् , यतएकान्तस्यानेकान्तत्वाभावात् । न द्वितीयपक्षोपिसमीचीन तथा च विवक्षितसर्वानेकान्तस्यासिद्धे , अनेकान्तत्वेनसाधकत्वासम्भवात् । अपि च नवत्वसप्तत्वादिनिर्धारणस्यनिर्द्धारणफलस्यतन्निर्द्धारणकर्तु प्रमातुप्रमाकरणस्यप्रमाणस्यतत्फलस्य नवत्वसप्तवादेर्नियमोनस्यादिति, तीर्थङ्करोपदेशस्यनैरर्थक्यमेवापपति ।

एवयदिजीवस्यशरीरपरिमाणत्वस्वीकारेयोगप्रभावबलेनयोगिनामनेकपरिग्राहकमनुष्यकीटपतङ्गादिजीवेषुप्रतिशरीरेजीवविच्छेद प्राप्नुयात् , यतोमनुष्यपरिमाणोजीवोगजादिदीर्घदेहकृत्स्नप्रवेष्टु न प्रभवेत् । अपिचयदागजशरीरारम्भकायु कर्मणोऽवसानेतच्छरीरपरित्यज्यपिपीलिकायोनिप्रापककर्मवशात्प्राप्तपिपीलिकाशरीरस्तपिलिकायशरीरप्रविशतस्तस्य पूर्वगजीयशरीरसन्निवेसविनाशोपिप्राप्नुयात् । नच प्रदीपप्रभाविशेष कुटीरसादाद्युदरवर्तिसङ्कोचविकाशवान्भवति,अथात्पूर्वशरीरापेक्षयागन्तव्यशरीरस्याल्पपरिमाणत्व आत्मन प्रवेशस्तत्रसकुचति,गन्तव्यशरीरस्यमहत्वेतत्रात्मप्रदेशोविकाशताप्राप्नोति, तत-

ञ्चगन्नन्यशरीरकृत्स्नतयाप्रविशति,तेन नकोपिदोष स्यादितिवाच्यम् । एवमनिसङ्कोचविकाशशालिनया-ऽत्माविकारवान्स्यात् विकारित्वेचानित्य स्यादात्माप्रदीपादिवदेव । एवञ्चमनुष्यशरीरपरिमाणेनयत् शुभाशुभकर्मोपार्जिततादृशकर्मणआश्रयविनाशेनविनाशोजातस्तथायत् कर्म न कृतवान् , तादृशकर्मणएवफलशरीरान्तरेणोपभोक्ष्यतीतिकृतप्रणाशाकृताभ्यागमदोषयोर्निवारण कथकरिष्यतीतिचिन्तनीय भवति नचाय दोषोजैनस्यापीष्टापादक , यत क्षणभङ्गमतनिरासप्रकरणेतेनकथितम् तथाहि— "कृतप्रणाशाकृतकर्मभोगभवप्रमोक्षस्मृतिभङ्गदोषान् । उपेक्ष्यसाक्षात्क्षणभङ्गमिच्छनहोमहासाहसिक परस्ते ।" इति । एवञ्चजीवाजीवयोस्तत्रप्रधानभूतपदार्थयोर्निराकरणात् तन्ममनिरस्तमेव । तस्मात् नित्यनिर्दोषश्रुति विरुद्धत्वात्तन्मतनोपादेयश्रेयस्कामै । अतएवभगवताबेदव्यासेनापिकथितपरमतनिराकरणप्रवाहे, "नैकस्मिन्नसभवात् "इतिसूत्रेण । (एकस्मिन्वस्तुनिनित्यानित्यत्वद्रव्यत्वपर्यायत्वभावत्वादीनासमावेशो न सभवति, विरुद्धधर्माणायुगपदेकत्रसमावेशासभवादिति । तत्सूत्रजैनमतनिराकरणपरत्वेन व्याख्यात तन्मतानुयायिभि श्रीबोधायनादिविशिष्टाद्वैतमतप्रवर्तकाचार्यैर्जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यैरपिस्वसिद्धान्तानुकूल्येनजैनमतनिराकरणपरत्वेन "नयुक्तोऽनेकान्तवादोजैनानामिति । कुत ? एकस्मिन्वस्तुनि नित्यत्वानित्यत्वसत्वासत्ववक्तव्यत्वावक्तव्यत्वादीनापरस्परविरुद्धानो धर्माणामसभवात् । नहिसमेषापदार्थानाविरुद्धधर्माक्रान्तत्वसम्भवति । तद्धियौगपद्येनदेशकालावस्थाभेदेन वा ? आद्येऽसम्भवात् ॥ द्वितीयेसिद्धसाधनात् । नित्यपदार्थानाञ्चप्रकारद्वयेनापिनानैकान्त्यम् । तस्मादसङ्गतमयुक्तञ्चजैनदर्शनम्" (आनन्दभाष्यम्२/२/३३) इत्यादिरूपेणव्याख्यातम् । तदेव श्रीरामानन्दाचार्यदर्शननिदर्शनम्—

"प्रधानक्षेत्रज्ञपतिर्गुणेश इति च श्रुतौ । प्रधनजीवब्रह्मेतितत्त्वत्रयसमीरितम् ॥३॥
अचेतनप्रधानहितत्रचत्रिगुणजडम् । ब्रह्मणाधिष्ठिततच्चजगत कारणमतम् ॥४॥
अजडश्चेतनोजीवोजगद्व्यापारवर्जित । अजडचेतनब्रह्मजगज्जन्मादिकारणम् ॥५॥
जीवश्चप्रकृतिर्ब्रह्मदेहत्वाद्विविशेषणे । शरीरीचोभयोर्ब्रह्मविशिष्टतद्द्वयेन च ॥६॥
ननुरामेशरीरित्वाद्भोक्तृता सुखदु खयो । न ह वै सशरीरस्य, प्रमाणचात्रवर्त्तते ॥७॥
मैवं दु खादिभोक्तृत्वेशरीरित्व न कारणम् । किन्तुपापादिवैशिष्ट्यभूपालश्चौरयोरिव ॥८॥
सूक्ष्माचिच्चिद्विशिष्ट श्रीरामोब्रह्माहकारणम् ॥ स्थूलचिच्चिद्विशिष्टस्तुकार्यब्रह्मसभाषित ॥९॥
द्वयोर्विशिष्टयोश्चाथकार्यकारणरामयो । सदेवसौम्येदमग्रआसीदितिश्रुतौयत ॥१०॥
ऐक्यमापदितंतस्माच्छ्रीमद्बोधायनोमुनि । येन च सुमत श्रौत विशिष्टाद्वैतसञ्ज्ञकम् ॥११॥
अखिल श्रुतयोद्वैतेचाद्वैतेसङ्गतानहि । विशिष्टाद्वैतवादेतुसर्वास्तासङ्गिगता ॥१२॥
अद्वैतबोधिका काश्चित्काश्चिद्द्वैतावबोधिका । घटकश्रुतय काश्चिदन्तर्यामिप्रबोधिका ॥१३॥
अप्रामाण्यभवेत् तासाविरोधेऽभिमतेमिथ । विशिष्टाद्वैतिभिस्तासांक्रियतेऽत समन्वय ॥१४॥

अद्वैतश्रुतयोवो याविशिष्टब्रह्मबोदिका । नान्यश्रुतिमतानाहितत्त्वानाप्रनिषेधिका ॥१५॥
परब्रह्मचतद्वाच्यत्वद्वाच्यत्वच्छरीरकम् । तत्त्वमसीतिवाक्येननूक्तोऽभेदस्तयार्द्वयो ॥१६॥
द्वैतश्रुतिसमूहस्तुविद्धि ममन खलु । चिदचिदीशतत्त्वानापार्थक्येनाववोधक ॥१७॥
आत्मत्वमीश्वरस्याथचिदचितोश्चदेहता । सर्वाभिर्विनिवेद्येतेघटकश्रुतिभि किल ॥१८॥
वेदान्ततत्त्वविद्भिश्चकार्यकारणभेदत । चिदचिद्भ्याविशिष्टतुब्रह्म च द्विविधमतम् ॥१९॥
स्थूलाचिच्चिद्विशिष्टाद्ब्रह्मकार्यंप्रकीर्तिमम् । सूक्ष्मचिच्चिद्विशिष्टतुब्रह्मकारणमुच्यते ॥२०॥
अद्वैतमन्यनेप्राज्ञैर्ब्रह्मणोश्चविशिष्टयो । विशिष्टाद्वैतसिद्धान्तस्तस्माच्छ्रुत्यनुमोदित ॥२१॥
अतएवास्मदाचार्यबोधायनादिसमत । विशिष्टाद्वैतसिद्धान्तोलोकेविजयतेतराम् ॥२२॥
(श्रीबोधायनमतादर्श) इत्यादिकम ।

अपरेशंकरानुयायिनस्तु,सकलविशेषप्रत्यनीकचैतन्यमात्रब्रह्मैवपरमार्थिक पदार्थ । तत्तुब्रह्मनित्य शुद्धबुद्धसर्वदामुक्तस्वभाववदपि "तत्त्वमस्यादिमहावाक्यसामानाधिकरण्यगतजीवभिन्न बद्ध्यते मुच्यते च,नतुयथोक्तब्रह्मभिन्नोनामकश्चित्पारमथिक पदार्थ । एतदतिरिक्तानेकप्रकारकभोक्तृभोग्यादिप्रपञ्च समुदायस्तादृशब्रह्मणि, माययैवपरिकल्पित इतिसर्वेपिकाल्पनिका एव "सदेवसोम्येदमग्रआसीदेकमेवा द्वितीयम्" इतिवचनप्रामाण्यात् । "तरतिशोकमात्मवित्" इत्यादिश्रुतिवचनेननिर्विशेषब्रह्मात्मैकत्व विषया, अनाद्यविद्यानिवृत्तिमन्यन्ते, तथा "मृत्यो समृत्युमाप्नोति" इत्यादिनिन्दाश्रवणेनपारमार्थिक भेदं-नानुमन्यन्तेइत्थभूतावादिन "ईश्वरचिदचिद्विभागमेवश्रौतमिति न स्वीकुर्वन्तिभवेदेवतदीयकथनयुक्तयदि, अविद्यायाकिंचित प्रमाणभवेत् । नच "अनादिभावरूपयद्विज्ञानेनविलीयते । तदज्ञानमितिप्राज्ञालक्षण सम्प्रचक्षते' । इतिवचनादनादिभावरूपज्ञाननिवर्त्यम्, अहमज्ञोमामहंनजानामीतिप्रत्यक्षसिद्धमेवा ज्ञानमितिवाच्यत, भावातिरिक्ताभावानगीकारान्मीमासकै । यदुक्तमभियुक्तै "स्वरूपपररूपाभ्या नित्य मदसदात्मके । वस्तुनिज्ञायतेकिञ्चित् कैश्चिद्रूपकदाचन । भावान्तरमभावोन्योनकश्चिदनिरूपणा-दिति । अभावस्यानुपलब्धिप्रमाणमात्रवेद्यत्वेनज्ञानस्य च नित्यानुमेयतयाप्रत्यक्षप्रमाणविषयत्वासम्भवात् । यस्तु, अभावस्यप्रत्यक्षविषयतामन्तव्य स एव प्रष्टव्य "अहमित्याकारकानुभवे, अहपदवाच्यस्यात्मनो ऽभावाधिकरणतया, ज्ञानस्यचप्रतियोगितयाभानभवति नवा ? प्रथमपक्षस्वीकारेज्ञानतदभावयो परस्पर विरुद्धतयायदाज्ञानाधिकरणमात्मातत्समयेज्ञानाभाववान् न स्यात्, एव प्रतिविषयाज्ञानस्यतत्रसत्वेतद-भावज्ञानचकथस्यात् । यदिपूर्वधर्मिज्ञाननास्ति, नवाप्रतियोगिभूतज्ञानमस्ति इतिद्वितीयपक्षस्तदाप्यभाव-ज्ञानस्यात्, यतोऽभावज्ञानस्यधर्मिप्रतियोगिबोधपराधीनत्वात्, नहिभवत्यज्ञातेधर्मिणिप्रतियोगिज्ञानाभावे च भूतलाद्यधिकरणेघटाभावस्यप्रत्ययत्वम् । तत्कस्यहेतो ? अभावज्ञानस्यधर्मिप्रतियोगिबोधपराधीन त्वादेव । अत एवसुषुप्तौघटाभावादयोन प्रत्यक्षाभवन्तीत्युक्तिरपिसगतेति । तस्मादज्ञानस्यभावरूपत्वे स्वीकारेतुपूर्वोक्तदूषणाभावादयमभावोभावरूपाज्ञानविषयकएवनत्वभावरूपाज्ञानविषय ।

तदेतदद्वैतमतनोयुक्तम् , भावरूपत्वेस्वीक्रियमाणेपिज्ञानाभावसमानयोगक्षेमत्वात् , तथाहि विषयविषयाऽश्रयतया च ज्ञानस्यव्यावर्तकतयाप्रत्यगर्थआत्माप्रतिपन्नो नवा ? प्रतिपन्नइतिप्रथमपक्षे स्वरूपज्ञान निवर्त्यतदज्ञानमितितरिम नात्मनि प्रतिपन्नेसति तदज्ञानकथमिवावस्थितस्य,त मिर्यदि शार्वरतमोवदिति न प्रथम पक्ष साधीयान् । प्रत्यगर्थआश्रयविषयतया न प्रतिपन्नइतिद्वितीयपक्षस्वीकारेतु, व्यावर्तकाऽश्रयविपयरहिताज्ञानस्यानुभव एव न स्यात् । ननुविशदात्मस्वरूपाभासएवज्ञान विरोधिना ज्ञानोनाभासितइति, आश्रयविषयज्ञानस्यविद्यमानत्वेपिनाज्ञानानुभवविरोधइतिचेत्सत्यम् , एव ताहअज्ञानस्यज्ञानाभावपक्षेप्येतत्समानमेवान्यत्रस्वपक्षपातात् । तस्मादुभयवादिममतज्ञानाभावएव "अहमज्ञोमामन्य च न जनामीत्याकारकानुभवविषयइतिस्वीकर्तव्यम् , ततश्चज्ञानाभावरूपमज्ञानतुभावरूपतत् । एवमज्ञानस्यभावत्वप्रमापकप्रमाणाभावादपिभावरूपत्व नकथमपिसभवतीतिसक्षेप ।

ननुयदिभावरूपाज्ञानेप्रत्यक्षप्रमाणनास्ति, भवदपिनतत्साधकतदाऽनुमानेनैव तत्सिद्धिरेष्यनाम् , विवादास्पदप्रमाणज्ञानस्वप्रागभावव्यतिरिक्तस्वविषयावरणस्वनिवर्त्यस्वादेशगतवस्त्वन्तरपूर्वकम् , अप्रकाशितार्थप्रकाशकत्वात् , अन्धकारेप्रथमोत्पन्नप्रदीपप्रभावदित्यनुमानमेवतत्साधकमिति—तन्न युक्तम् अज्ञानेप्यनभिमताज्ञानान्तरसाधनेऽपसिद्धान्तप्रसङ्गादनवस्थानाच्च । अज्ञानान्तरासाधने, व्यभिचारात् साधनविकलत्वाच्चदृष्टान्तप्रदीपप्रभाया । नहिप्रदीपप्रभायाअप्रकाशितार्थप्रकाशकत्व सभवति, जडतयाप्रकाशकत्वाभावादपितुज्ञानस्यचेतनतयातस्यैवप्रकाशकत्वात् , यत प्रदीपस्यविद्यमानत्वेपिज्ञानेनविषयप्रकाशसभवात् , प्रदीपप्रभायास्तुचक्षुरिन्द्रियस्यज्ञानसमुत्पाद्यतो विरोधिनिविडान्धकार नरसनद्वारेणोपकारकत्वमात्रमेवभवति, नतुकिमपितत्रविशेषान्तरमुत्पादयति । अपिचअज्ञानसाधकानुमानेसत्प्रतिपक्षोपिभवति, "विवादाध्यासितमज्ञानम् , न ज्ञानमात्रब्रह्माश्रितम् , अज्ञानत्वात् शुक्तिकाद्यधिष्ठानाद्यज्ञानवत् " इति । अथशुक्तिगताज्ञानस्याश्रयस्यप्रत्यगर्थस्य ज्ञानमात्रस्वभावत्वमितिचेत्सत्यम् , अनुभूतिर्हिस्वसद्भावेनैवकस्यचित्पदार्थस्यव्यवहारानुगुणत्वापादकस्वभावा, ज्ञानावगतिसंविद् क्रियाऽपरनामासकर्मकानुभवितुरात्मत्वज्ञानत्वमित्याश्रयणात् । ननु ज्ञानस्वरूपस्यात्मन कथज्ञानगुणवत्त्वमितिचेत्तदप्यल्पमेव, यदाहिमणिदिनमणिप्रभृतितेजोद्रव्यप्रभावद्रूपेणावतिष्ठानप्रभारूपगुणाश्रयोभवति, स्वाश्रयादन्यत्रापिवर्तमानतयारूपत्वेन च प्रमाद्रव्यस्यापितच्छेपत्वनिबन्धनगुणव्यवहारा ' एवमयमात्मा स्वप्रकाशचिद्रूप एव चैतन्यगुणकस्तथाचश्रुति "यथासैन्धवघनोऽनन्तरोबाह्य कृत्स्नोरसघनएव, एव वाऽरेआत्माऽनन्तरोबाह्य कृत्स्न प्रज्ञानघनएव, अत्रायपुरुष स्वयज्योतिर्भवति, नविज्ञातुर्विज्ञातेर्विज्ञानेर्विपरिलोपो विद्यते, नद्रष्टुर्दृष्टेर्विपरिलोपोविद्यतेऽविनाशित्वात् । अथयोवेदेदजिघ्राणीतिसआत्मायोऽयविज्ञानमय प्राणेषुहृदयन्तज्योति पुरुष एषहिद्रष्टाश्रोतारसयिताघ्रातामन्ताबोद्धाकर्ताविज्ञानात्मापुरुष " इत्यादिश्रुतिरपिविशिष्टाद्वैतमेवपोषयति ।

नच "अनृतेनप्रत्यूढा" इतिश्रुतिरविद्यायाप्रमाणमितिवाच्यम् , अभिप्रायानवबोधात् , अत्र

ऋतेतरविषयाह अनृतशब्द ऋतशब्दस्तु कृतशुभाशुभकर्मबोधक "ऋतपिबन्तौसुकृतस्यलोकेगुहाप्रविष्टौ परमेपरार्द्धे' इतिवचनात । ऋतकर्मफलाभिसंधिविरहितसासारिकाल्पफलक परमपुरुषाऽराधनतयैवपर-मेश्वरप्रापकभवतीति । अत्र तु तदतिरिक्तमासारिकाल्पफल्कशुभाशुभकर्म, अनृतम् ब्रह्मप्राप्तिविरोधि "य एतब्रह्मलोकनविन्दन्तिअनृतेनप्रत्यूटा" इतिवचनात् एव"मायातुप्रकृतिविद्यादित्यादौमायाशब्दो विचित्रार्थसर्गकर्तृत्रिगुणात्मकप्रकृत्यभिप्रायकएव ननु अनाद्यनिर्वचनीयभावात्मकब्रह्मदर्शनविरोध्यज्ञान-परक किन्तु यथावर्णितप्रकारकएवेति ।

"तेनामायासहस्त्रतच्छम्बरस्याशुगामिना । बालस्यरक्षतादहमेकैकश्याविशोधितम् ॥'

इत्यादिपुराणादौ विचित्रार्थसर्गसमर्थस्यपरमार्थिकस्यैवासुराद्यस्त्रविशेषस्यैव मायाशब्दवाच्य-ताया समुपलभात । तस्मात्कदाचिदपिपूर्वोक्ता श्रुतयोऽनिर्वचनीय भावात्मकमज्ञान नप्रतिपादयन्ति । अपितुमदुक्तार्थबोधिकाएवेति ॥

नवा "तत्वमसीति"श्रुतिप्रतिपादितजीवेशयो रैक्योपदेशानुपपत्त्या, उक्तवाक्यघटकतत्पदत्वपदयो सविशेषब्रह्मवाचकत्वेनविरुद्धयोस्तयोर्जीवेशयो स्वरूपैकत्वस्यगृहीतुमशक्यतयाऽर्थापत्तिप्रमाणस्यानु-दयदोषदूषितत्वात्—तथाहितत्पदजगदुत्पत्तिस्थितिलयस्वभावकब्रह्मप्रतिपादयति, यत "तदैक्षतबहुस्या प्रजायेय"इत्यादिश्रुतिषुतादृशब्रह्मण एव प्रक्रान्तत्वात् । समानाधिकरणत्वपदवाचिद्विशिष्टजीवशरीरक ब्रह्माभिधीयतेप्रकारद्वयविशिष्टैकवस्तुपरत्वात्सामानाधिकरण्यस्य । "नच यथासोयदेवदत्त" इत्यत्र, पूर्वदेशकालविशिष्टदेवदत्तवाचकतत्पदस्य, एतद्देशकालविशिष्टदेवदत्तोपस्थापकेदपदस्यविरुद्धत्वादैक्य न सभवतीति तत्रविरुद्धाशयो परित्यागेनलक्षणतदुभययोरविरुद्धदेवदत्तयो सामानाधिकरण्ययथाभवति तथा तत्वमसीत्यत्रापिविरुद्धजीवत्वेशत्वपरित्यज्याविरुद्धचैतन्ययोरेकत्वभागलक्षणयाकुतोनस्यादितिवाच्यम् ,— दृष्टान्तस्यविषमत्वात् , सोयदेवदत्तइतिदृष्टान्तेपि विरोधाभावेन भागत्यागलक्षणाया समावेशासभवात्, एकस्यमूर्तादे पदार्थस्यतावत् , भूतवर्तमानकालद्वयसम्बन्धोनविरुद्ध । यतोदेशान्तरस्थितिरेवभूतता, सनिहितदेशस्थितिश्चवर्तमानता, इतिदेशभेदसम्बन्धविरोध कालभेदेन परिहृतोभवति । लक्षणास्वी-कारपक्षेपि एकस्यैवपदस्यलक्षकत्वमाश्रित्यविरोधपरिहारसम्भवे, तत्त्वमोरुभयो पदयोर्भागत्यागलक्षणा स्वीकारोयुक्तिसगतोनभवति । अन्यथा, एकस्यैवपदार्थस्यतत्तेदन्ताविशिष्टत्वावगाहनेनप्रत्यभिज्ञा प्रमा-णस्य प्रामाण्यास्वीकारेजगत स्थायित्वासिद्धौ क्षणभङ्गस्यैवसाम्राज्यमवस्थितस्यादिति साधुकृतवानद्वैत वादीजीवेशयोर्नियतामन्वानोपि ।

सोयदेवदत्तइतिवदेव, प्रकृतेपिजीवेशयो शरीरात्मभावेनतादात्म्य किं न स्यात् , अर्थात्तयो-स्तादात्म्यघटते एव । जीवा-माहिपरमात्मनोब्रह्मण श्रीरामस्यशरीरतयाप्रकारत्वाद् ब्रह्मात्मक एव तदुक्तम् "य आत्मनितिष्ठन् आत्मनोऽन्तरोयआत्मा नवेदयस्यात्माशरीरम् " इति श्रुत्यन्तरात् । न केवल जीवब्रह्मण:शरीरम् , किन्तु सर्वोपिजीवाजीवपदार्थोब्रह्मण.शरीरमेवेतिघटादिशब्दा अपि ब्रह्मणोवाचका

एव । देवमनुष्यादिस्थलेदेहादिवाचकशब्देनमनुष्यवाचक । इहापि तथैवज्ञानव्यमिति । न च तर्हिसर्वशब्दानापयायत्वस्यान्नतुभिन्नार्थकत्वमितिवाच्यम् द्वारभेदमभवात् । तथाहि-मनुष्यादिजीवस्य शरीरतयाप्रकारभूतानिदेवमनुष्यादिदेहमस्थानानीवसर्ववस्तूनीतिसर्वाण्यपिब्रह्मात्मकान्येवभवन्ति ।तस्मात् "देवोमनुष्योयक्षोवापिशाचोरगराक्षसा । पक्षीवृक्षशिलाशैलंघटादि पट एव च" । इतिदेवादिका सर्वेशब्दा प्रकृतियोगेनवाचकतयालोकेप्रसिद्धास्तद्वाच्यतयाप्रतीयमानतत्तत्संस्थानवद्वस्तुद्वारेणतदभिमानि जीवतदन्तर्यामिपरमात्मपर्यन्तसस्थानस्यवाचका । तदेतत्

'जगत्सर्वंशरीरतेस्थैर्यतेवसुधातलम् " "विश्वरूपस्य ते राम ! विश्वशब्दाहिवाचका "

इत्यादिमहर्षिवाल्मीक्युक्तेस्तथा—

"शुद्धाविशुद्धमिदयाद्विविधश्चसत्त्व कालोमनिर्गतमतेरचिन प्रभेदा ।
साकेतनित्यपरधामपदाभिधेय सत्त्वविशुद्धमजडप्रकृतेर्विभिन्नम् ॥४॥
नित्याऽकृतिर्गुणवतीप्रकृति परार्था तथ्या च मूलमहदादिकभेदभिन्ना ।
भूतादिकव्यवहृतेर्जनकोहिकालो नित्या विभुर्भुवननाथवपुर्जडश्च ॥५॥
नित्या तथा सविषयाजडताविहीना विभ्वीमतिर्मदयाप्रभृतिस्वरूपा ।
प्रामाण्यमत्रसुमतस्वतएवचास्या याथार्थ्यकविषयसत्यतयातथा च ॥६॥

इत्यादिप्रकारकजगद्गुरुश्रीमङ्गलाचार्योक्तेश्चव्यज्यते ।

अयमेवार्थ समर्थितोवेदार्थचन्द्रिकाप्रकरणे,नामरूपश्रुत्यर्थप्रकाशनप्रकरणेआचार्यवरेणजगद्गुरु-श्रीरामानन्दाचार्यरामप्रपन्नाचार्येणतदर्थस्तुततएवावगन्तव्यइतिदिक् अपिचप्रमाणमात्रस्यसविषयविषय कत्वस्वभावेन निर्विशेषवस्तुनिब्रह्मणि न किमपि प्रमाण विद्यते निविकल्पकप्रत्यक्षे सविशेषमेववस्तुप्रतीत भवति। अन्यथासविकल्पकप्रत्यक्षे"सोयमिति"पूर्वप्रतिपन्नप्रकारविशिष्टप्रतीतेरनुपपत्तिरेवस्यात् । किञ्च- "तत्त्वमसि, अहब्रह्मास्मि"इत्यादिमहावाक्यमपि न भवतिकथमप्याकाशादिप्रपञ्चस्यबाधकभ्रममूलक-त्वात् । भ्रमप्रयुक्तशुक्तिरजतवाक्यवत् , अर्थात् यन्मते चेतनाचेतनसर्वमपिवस्तुब्रह्माज्ञानमूलकत्वात् भ्रमात्मकमेव, किञ्चपरमेश्वरस्वर्गमोक्षादिकसर्वमपिभ्रममूलकएवतदासर्वस्यभ्रमत्वेसर्वान्तर्गतवेदवाक्या दरपिभ्रमत्वेनेदरजतमितिवाक्यमपिरजतादेर्बाधक न, तथाऽभेदोभ्रमत्वादेवभेदभ्रमबाधकोनस्यादितिसुष्ठु-व्याख्याततै । अमुभेदमाश्रित्यकथितमभियुक्तै —

"भेदापह्नवलोभेनभेदविधिनिषेधयो । स्वयसमर्थयन्मूर्ख स्ववाग्वज्रेणताडित ॥" इति ।

नचब्रह्मात्म्यैकज्ञानप्रपञ्चस्यबाधकसभवति , प्रमाणाभावात् , प्रमाणत्वस्यापिअज्ञानमूलकत्वे-नैवासाधकत्वात् नहि भवति, शशशृङ्गधनुषाबन्ध्यापुत्रस्यविनाशोयत् उभयोरप्यसत्त्ववदिहापिबाध्यबाध-कयो समानतयाक कहन्यादितिभाव । नचाकाशादिप्रपञ्चसत्यत्वेकस्मिन् विज्ञातेसर्वमिदविज्ञातस्या-दितिप्रश्नप्रतिवचनप्रवाहेएकस्मिन्ब्रह्मणिविज्ञातेसर्वमिदविज्ञातभवतीत्येकविज्ञानप्रतिज्ञासाबाधितास्यादिति

वक्तव्यम्, यत प्रकृति पुरुषमहत्तत्वाहङ्काराकाशादितन्मात्रभूतेन्द्रियचतुर्दशभुवनात्मकब्रह्माण्डतदन्तर्गतदेवदैत्यदानवमनुष्यकीटपतङ्गस्थावरादिसर्वप्रकारसस्थानसस्थितनिखिलकार्यजातमपिब्रह्मरूपमेवेतिसर्वकारणभूतपरब्रह्मज्ञानादेव, अथात् सर्वकारणब्रह्मणिज्ञातेध्यानेनसाक्षात्कृतेसाक्षात्कृतेसति, तादृगपरमेश्वरस्यज्ञानादेवसर्वविज्ञान भवतीत्येवप्रकारेणैकविज्ञानेनसर्वविज्ञानप्रतिज्ञापिसमुपपादिताभवत्येव जगत्सत्यतामतेपितदामुधैवबौद्धनयानुसरणेनानिर्वचनीयत्वमज्ञानजन्यत्वस्वीकारेणेति । अत एवैनप्रच्छन्नबौद्धोऽयमितिलोका सङ्गिरति ॥

किञ्च ब्रह्मभिन्नस्याकाशादिप्रपञ्चस्यस्वाश्रयनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वरूपज्ञानबाध्यत्वरूप मिथ्यात्वस्वीकृते सर्वस्यप्रपञ्चस्यासत्वादेकविज्ञानेनसर्वविज्ञानप्रतिज्ञासुतरामेवबाध्येत, यतोनामरूप विभागानार्हसूक्ष्मदशावत् प्रकृतिपुरूपादिसरीरकपरब्रह्मैव कारणावस्थसदवशिष्यते, जगतस्तादृशदशापत्तिरेवप्रलय तथा नामरूपविभागविभक्तस्थूलचिदचिद्वस्तुशरीरकब्रह्मकायावस्थम्, ब्रह्मकार्यावस्थब्रह्मण स्तथाविधस्थूलभावापत्तिरेवसर्गशब्देनाभिधीयमानसृष्टिरिति, नातोऽन्यतिरिक्तकश्चिदन्य प्रलय सर्गोवा । एवञ्चकार्यकारणयोरनन्यत्व "तदनन्यत्वमारम्भणशब्दादिभ्य' इत्यत्रारभाधिकरणेयदुपपादिततदप्युपपन्नतरभवति । तत्रहि—आनन्दभाष्यकाराउपसहारे "यथावायुरितित्रिवृत्कृतोवायुरेकएवस्थानविशेषमास्थायप्राणापानादिसंज्ञालभमान कार्यान्तराणिविधत्तेतथैवसूक्ष्मचिदचिच्छरीरब्रह्मापीहस्थूलचिदचिच्छरीरभवञ्जगदित्याख्यालभतइतिजगतोब्रह्मानन्यत्वसिद्धम्" इति । "निष्कलनिष्क्रियशान्तनिरवद्यनिरञ्जनम्' इत्यादिकाब्रह्मणिनिर्गुणत्वप्रतिपादिकाश्रुतयस्तु न गुणसामान्याभावब्रह्मणिप्रतिपदयन्ति, किन्तुप्राकृतिकाविवेकिभिर्हातुयोग्याहेयगुणास्तानेवगुणाभासान् विवेकिसमाहतान् निषेधन्ति । ये चभगवत स्वाभाविका कल्याणागुणास्तेषानिषेध न कुर्वन्ति "योसानिर्गुण प्रोक्त शास्त्रेषुजगदीश्वर । प्राकृतैर्हेयसत्वाद्यैर्गुणैर्हेयत्वमुच्येत" इतिपुराणरत्नोक्ते । तदादुराचार्या श्रीआनन्दभाष्ये "तस्मात्प्राकृतगुणाकारयोरसत्वेननिर्गुणत्वनिराकारत्वदिव्यस्वासाधारणगुणाकारवत्वेन च सगुणत्वसाकारत्वचैकस्यैवब्रह्मणउपपन्नतरमिति न कश्चिद्विरोध"(१।१।२)

"मृत्यो समृत्युमाप्नोतियइहनानेवपश्यती'यादिश्रुतिबोधितनानात्वनिषेधस्तु, एकस्यैवपरब्रह्मण श्रीसीतानाथस्य, शरीररूपत्वात् प्रकारभूतनिखिलजडचेतनात्मकवस्त्विवतिसर्वस्यैवपदार्थजातस्यात्मतयासर्वप्रकारकब्रह्मैवावस्थितमितिसर्वात्मकब्रह्मपृथग्भूतवस्तुसद्भावनिषेधपरत्वेनता श्रुतय समर्थिता श्रीआनन्दभाष्यकारप्रभृतिप्राचीनाचार्यैरिति न कुत्रापिदोषलेशोपि भवति । अथकिमत्रवस्तुत्वभेदोवाऽभेदोवा, अथवाभेदात्मकसर्वमेवातत्वमिति, तत्रसर्वशरीरकतयासर्वप्रकारक ब्रह्मैवावस्थितमितिदृष्ट्या सर्वस्याभेद एवस्वीक्रियते । एवमेव तथाविधब्रह्मनानाभूतचिदचित् प्रकारकनानात्वेनावस्थितमित्येवभेदाभेदौ, चिदचिदीश्वराणास्वरूपस्वभाववैलक्षण्यादसकराच्चसर्वत्रभेद एव प्रतिभाति । तत्रचेतनस्वभावकानाजीवात्मनामसकुचितापरिच्छिन्ननिर्मलज्ञानरूपाणामनादिकालिकशुभाशुभात्मककर्मरूपाविद्यापरिगृहीतानातत्तत्कर्मानुकूलज्ञानसकोचविकाशौभवत ।

भोग्यभूताचित्भोक्तासंसर्गस्तदनुगुणसुखदुःखोभयभोगवत्ताकृतापरमेश्वरप्रतिपत्ति परमेश्वरप्राप्ति-प्रभृतिका स्वभावा । अचिद्वस्तूनातुभोग्यभूतायामचेतनत्वस्वतोऽपुरुषार्थत्वविकारशालित्वादिका स्वभावा । परमेश्वरस्य तु भोक्तृभोग्ययोर्द्वयोरन्तर्यामितयाऽवस्थानमपरिच्छेद्यज्ञानैश्वर्यवीर्यशक्तितेज प्रभृत्यनवस्थितिकासंख्येयकल्याणगुणाकरत्वसत्यसंकल्पप्रवृत्तस्वेतरसमस्तचिदचिद्वस्तुजातास्वाभिमत--स्वानुरूपैकरूपदिव्यरूपनिरतिशयविविधानन्तभूषणेत्यादिस्वभाव । तदाहु श्रीआचार्यचरणा स्ववेदा-न्तसारे-

'पृष्टानामेकमाद्यत्रिकमपिशृणुतद्भेदतोनामभेदैर्नित्याऽज्ञाऽचेतनासाप्रकृतिरविकृतिर्विश्वयोनिश्शुभैका । नानावर्णात्मिकाजात्रिगुणसुनिलयाऽव्यक्तशब्दाभिधेया निर्व्यापारापरार्थामहदहमितिमूरुच्यतेतत्त्वविद्भि नित्योज्ञश्चेतनोऽज सततपरवश सूक्ष्मतोऽत्यन्तसूक्ष्मो भिन्नोबद्धादिभेदैः प्रतिकुणपमसानेकधामूरिवर्ग्यै । श्रीशाक्रान्तालयस्थोनिजकृतिफलभुक्तत्सहायोऽभिमानीजीव मप्रोच्यतेश्रीरघुपतिसुमते' तत्त्वजिज्ञासुवृन्द विश्वजातयतोऽद्धायदवितमखिलंलीयतेयत्रचान्ते सूर्योयत्तेजसेन्दु सकलमविरतभासयत्येतदेष । यद्भीत्यावातिवातोऽवनिरपि सुतलयातिनैवेश्वरोज्ञ साक्षीकूटस्थएकोबहुशुभगुणवानव्ययोविश्वभर्ता ॥ श्रीमानर्च्य शरण्योबहुविधविबुधैर्योगिगम्याङ्घ्रिपद्मोऽस्पृश्य क्लेशादिभि सत्समुदितसुयशा सूरिमान्योवदान्य शश्वच्छ्रीरामचन्द्र सुमहितमहिमासाधुवेदैरशेषैर्निर्मृत्यु सर्वशक्तिर्विकलुषविजरोगीर्मनोभ्यामगम्य ॥ (श्रीवैष्णवमताब्जभास्करे १। ६–७–८–९) इत्यादि । प्रकृतश्लोकस्थाक्षरविशिष्टतत्त्व-तुमदीयप्रभाकिरणव्याख्यातोऽनुसन्धेयम् ।

तत्र, ये कर्मविशिष्टा कर्मोपलक्षिताश्चित् पदवाच्या सभेदाजीवात्मानस्ते परमा मभिन्नास्तथा परस्परमपि भिन्ना नित्याश्च । तथा च श्रुति "द्वासुपर्णा सयुजासखाया समान वृक्ष परिषस्वजाते । तयोरन्य पिप्पलस्वाद्वत्तिअनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति" । तथा "ऋतपिबन्तासुकृतस्यलोकेगुहाप्रविष्टौ-परमेपरार्धे । छायातपौब्रह्मविदोवदन्तिपञ्चाग्नयोयेचत्रिणाचिकेता" इत्यादि । अत एवोक्तम्— "नानात्मानोव्यवस्थात" इति ये इमेकर्मफलभोक्तारोजीवात्मानस्तेसर्वेविभिन्नाएवनत्वेकात्मवाद । अन्यथाज्ञानित्वाज्ञानित्वबद्धमुक्तादिव्यवस्था न स्यात्, तदनेकत्वेश्रुतिप्रमाणितसर्वापिव्यवस्थाव्यवस्थि ताभवतीति । जीवात्माना नित्यत्वमपिश्रुत्यादिप्रसिद्धमेव । तथा च श्रुति

"नजायतेम्रियतेवाविपश्चिन्नायभूत्वाभवितावानभूय ।अजोनित्य शाश्वतोऽयपुराणोनहन्यतेहन्यमानेशरीरे

वासासिजीर्णानियथाविहायनवानिगृह्णातिनरोऽपराणि ।

तथा शरीराणिविहायजीर्णान्यन्यानिसयातिनवानिदेही ।" एव

"वेदाविनाशिनं नित्य य एनमजमव्ययम् । कथसपुरुषव्याघ्रकघातयतिहन्तिकमिति ॥"

यदि कदाचित् कश्चित् देहात्ममोहवशादनित्यमन्येत, तदातच्छिरसिकृतनाशाऽकृताभ्यागम प्रसङ्गदोषआपतितोभवेत् तस्मादयजीवोभगवच्छरीरभूतो नित्य एवेति ॥

अत एवगोनमेनापिकथितम् "वीतरागजन्मादर्शनात्" निर्मुक्तसकलाविद्यादिक्लेशस्य जन्मम-रणादिकनैवभवनीतिसूत्रार्थ । तथाऽयजीवोनव्यापकोनवाम यमपरिमाणोऽपितु अणुपरिमाणकएवव्याप-कत्वेउत्क्रा तिगत्यागतीनामनुपपत्ते । द्वितीयेदेहविनाशेतत्परिमाणकजीनस्यापिविनाशेकृतनाशाकृता भ्यागमप्रसङ्गात । नाहउपाधिभेदेनसमाधानम्, उपाधिभेदस्योपधेयभेदाप्रयोजकत्वात, नहिपाणौ वृक्णेमहत्यवयवेवास्तनादोजानेयुवतिर्मृताजातावेतिव्यवहारोभवनीति । नचाणुपरिमाणे, शरीरैकदेशे-ऽवस्थितस्यसर्वाङ्गीणसुखाद्युपलब्धिर्नस्यादितिवाच्यम्, हरिचन्दनविन्दुवत् तत्समाधानसभवात् यथा शरीरैकदेशेसंलग्नोपिचन्दनविन्दु सकलशरीरगतमाल्हादजनयतितथैवशरीरैकदेशेसमवस्थितोपिजीवो धर्मभूतज्ञानप्रभयाऽनुभावयति, मणिप्रदीपप्रभावदेवेति । श्रुत्यापिजीवस्याणुत्वसमर्थितम्—तथाहि "बाला-ग्रसतभागस्यशतधाकल्पितस्य च । भागोजीव सविज्ञेय सचानन्त्यायकल्पते" तथा "आराग्रमात्र पुरुषो ऽणुरात्माचेतसावेदितव्य" इतिच ।

अत्रचाचित् पदवाच्यदृश्यमर्थात् ज्ञानविषयीभूतजडात्मकजगत् तत्सर्वत्रिविधम्, भोग्यभोगोपकरणभोगा-यतनभेदात्, तदेवान्यत्रशरीरेन्द्रियविषयभेदात् त्रिविधमितिकथितम्।एतस्य जगतोऽभिन्ननिमित्तोपादानका-रणतु ईश्वरपदार्थ क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्ट पुरुषविशेषश्रीरामसीतानाथादिपुरुषोत्तमादिपदवाच्य ।

"रामएवपरब्रह्मरामएवपरतप । रामएवपरतत्वश्रीरामोब्रह्मतारकम् ॥"

"रामदेव परब्रह्मकल्याणगुणसयुत । भुवनानामुपादानकर्त्ताजीवनियामक ॥" इत्याद्युक्ते ।

स एवसर्वेश्वरश्रीरामचन्द्रोदयासागर समाभ्यधिकविवर्जितोभक्तवत्सलोभक्तपराधीनोमर्यादा-पुरुषोत्तम स्वोपासकेभ्यउपासनानुकूलतत्तत्फलप्रदानायलीलयैवार्चाविभवव्यूहसूक्ष्मान्तर्यामिभेदेनपञ्च प्रकारेणावतिष्ठते । तत्रार्चानामप्रतिमादय । नारायणाद्यवतारोविभव । व्यूहश्चतुर्विधो, वासुदेव सकर्षणप्रद्युम्नानिरुद्धभेदात् सूक्ष्मसम्पूर्णषड्गुणकश्रीरामाख्यपरब्रह्मशब्दितम् । गुणा अपहतसत्यसकल्प-त्वादिका श्रुतिप्रसिद्धा "सोऽपहतपाप्माविरजोविमृत्युर्विशोकोऽविजिघित्स सत्यकाम सत्यसकल्प" इति श्रुते ।अन्तर्यामी सकलजीवनियामक "यआत्मनितिष्ठन्"पृथिव्यातिष्ठन्इत्यत्रसम्पूर्णोप्यन्तर्यामिब्राह्मणोद्रष्ट व्य । तत्रप्रतिमादिपूर्वपूर्वमूर्तेरुपासनेक्रियमाणेधर्मकामादिपुरुषार्थप्रापकदुरितकर्मणोविनाशेसति,तदुत्तरो-त्तरमत्युपासनादोभवन्यधिकारउपासकस्य । एतत्प्रकृतस्वरूपमहताप्रबन्धेनसहस्रश्लोकात्मकश्रीबोधाय-नमतादर्शाख्यमहाप्रबन्धेजगद्गुरुश्रीपूर्णानन्दाचार्येणप्रपञ्चितमत्रनप्रतन्यतेप्रबन्धगौरवभयादतस्ततएवानु-सन्धेय विशेषार्थिभि । तथैवान्यत्राप्यभियुक्तै —

"रामचन्द्र स्वभक्तेषुवात्ल्यात्तत्तदीहितम् । अधिकार्य्यानुकूल्येन प्रयच्छति फल बहु ॥"

"तदर्थलीलयास्वीया पञ्चमूर्ती करोतिवै । प्रतिमादिकमर्चास्यादवतारास्तुवैभवा ॥"

"सकर्षणोवासुदेव प्रद्युम्नश्चानिरुद्धक । व्यूहश्चतुर्विधोज्ञेय सूक्ष्मसम्पूर्णषड्गुणम् ॥"

"तदेवरामचन्द्राख्यपरब्रह्मनिगद्यते । अन्तर्यामीजीवसस्थोजीवप्रेरकउच्यते ॥" इति ।

"सचात्मनीतिवेदान्तवाक्यजातैर्निरूपित । अर्चोपामनयाक्षिप्तेकल्मपऽविकृनोभवेत् ॥"
विभवोपासनेपश्चाद्व्यूहोपास्तौतत परम् । मूक्ष्मेतदनुशक्त स्यादन्तयामिणमीक्षितुम् ॥" इत्यादि

भगवतोरामचन्द्रस्योपासन च पञ्चप्रकारकभवति । तदुक्तनारदीयपाञ्चरात्रे—"अभिगमनमुपादानभिज्यास्वाध्यायोयोग "इति । तत्राभिगमनदेवस्थानमार्गस्य च समार्जनोपादानादिनापरिष्करणम् । उपादानचन्दनपुष्पादिपूजोपकरणसम्पादनम् । इज्यानामदेवपूजनतदर्थहोमादिकम । स्वाध्यायोनाम, अर्थानुसन्धानपूर्वकतन्मन्त्रजपोवेदोक्तमूक्तादिपाठोनामसकीर्तनादिकम , तत्त्वप्रतिपादकवेद शास्त्राभ्यासश्च । योगश्चित्तवृत्तिनिरोधरूप । सच "यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणध्यानसमाधिभेदादष्टविध । समाधिर्द्विविध सप्रज्ञातोऽसप्रज्ञातश्च । तत्रयमनियमादिसमाधीनास्वरूप लक्षणमवान्तरभेदाश्चयथाक्रमयोगशास्त्रादेवज्ञातव्या । सम्पूर्णमपियोगशास्त्रमत्रैवार्थेउपक्षीणम् । एव मुपासनकर्मसमुचितेन विज्ञानेनद्रष्टदर्शनेविनष्टेसति भगवद्भक्तस्य ब्रह्मनिष्ठस्य भक्तवत्सलोरामचन्द्र - परमकारुणिको मर्यादापुरुपोत्तम स्वयथार्थानुभवानुगुणनिरवधिकनित्यनिरतिशयानवधिकानन्तरूपपुनरावृत्तिरहित स्वपद ददाति । "न स पुनरावर्तते"इतिश्रुते स्मृतिरपि——

"आब्रह्मभुवनाल्लोका पुनरावर्तिनोऽर्जुन । मामुपेत्यतुकौन्तेयपुनर्जन्मनविद्यते ॥
मामुपेत्यपुनर्जन्मदु खालयमशाश्वतम् । नाप्नुवन्तिमहात्मान ससिद्धिपरमागता ॥"
"स्वभक्तरामचन्द्रोयसम्प्राप्यानन्दमक्षयम् । पुनरावृत्तिरहितस्वीयधामप्रयच्छति ॥"इति ।
"सकृदेवप्रपन्नायतवास्मीतिचयाचते । अभय दसर्वभूतेभ्योददाम्येतद्व्रतमम ॥'
"सत्यसन्ध प्रतिश्रुत्यप्रपन्नायाभयस्वयम् । निवर्त्तयेद्भयेनैनश्रीराम श्रितवत्सल ।" इतिच ।

तदेतत् सर्वंपूर्वापरानुसधानेनाकल्प्यश्रीरामतापिनीयमहोपनिषदानुसारेणच, श्रीबोधायनाचार्यापरपर्यायश्रीपुरुषोत्तमाचार्यकृतब्रह्मसूत्रवृत्तिमतिविस्तीर्णांसक्षिप्य लोकोपकारायजगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्य शारीरकमीमासाशास्त्रीयभाष्यप्रणिनायानन्द भाष्यनामकम् । तत्रव्यासप्रथमसूत्रस्य **अथातोब्रह्मजिज्ञासा** इत्यस्यायमर्थ सक्षिप्यप्रदर्शित आचार्येण । तत्राथशब्द पूर्वप्रवृत्तकर्माधिगमस्यानन्तर्य्यंदर्शयति—तदुक्तबोधायनेन "वृत्तात्कर्माधिगमादनन्तरपश्चात् ब्रह्मविविदिषतीति । अत शब्द सूत्रघटक अधीतसागसरहस्यवेदस्याधिगतवेदार्थस्यागमापायिस्वर्गादिफलाद्विरक्तस्यनिवृत्तैषणत्रयस्येतिकारणात् । स्थिरमोक्षस्यज्ञानानन्दलक्षणस्येच्छाकुर्वत तादृशमोक्षोपायभूतब्रह्मजिज्ञासाभवति । ब्रह्मपदार्थस्तुस्वभावतोनिर्गलितनिखिलप्राकृतहेयगुणकोऽनवधिकातिशयानन्तकल्याणगुणोमर्यादापुरुपोत्तमोरामएवेति । तदुक्तमाचार्येण "ब्रह्मशब्दश्चमहापुरुपादिपदवेदनीयनिरस्ताखिलदोपमनवधिकातिशयसख्येयकल्याणगुणगणभगवन्तश्रीराममेवाह । सामान्यवाचकानापदानाविशेषार्थेपर्यवसानात् । तदाहवृत्तिकार, "विशेषार्थेनसमान्यार्थोऽवसीयत इति (बो वृ)"

ननञ्च "अग्निष्टोमादिनिष्कामज्ञानस्य,तादृशकर्मानुष्ठानस्य चैाहकपारलाकिककलत्रस्वर्गादिविषयेषु वशीकारसञ्ज्ञकवैराग्यपर्यन्तवैराग्यजननद्वारेणतथाज्ञानोत्पत्तिप्रतिबन्धकदुरितकर्मनिरासनद्वारा-ब्रह्मज्ञान कारणतया "ज्ञानमुत्पद्यतेपुंसाक्षयात्पापस्यकर्मण" इतिवचनेनब्रह्मज्ञानप्रतिकारणत्वात्, इतितयो कर्मज्ञानयोकार्यकरणत्वेनतादृशकर्मज्ञानबोधकशास्त्रयो कार्यकारणत्वेनैकशास्त्रत्वमेवायातिनतु-तयो पार्थक्येनशास्त्रद्वयत्वम् । अत एवबोधायनेनवृत्तिकृताकथितम् "एकमेवेदशास्त्रजैमिनीयेनषोडशलक्षणेनेति । यत्कर्मणामकामानाफलमैहिक पारलौकिकब्रह्मलोकान्ततद्विनाशिफलकम्।ब्रह्मज्ञानफलतुनित्यनिरतिशयञ्च भवति । तदपिश्रुत्यैवविज्ञापित भवति "परीक्ष्यकर्मचितान्लोकान् ब्राह्मणोनिर्वेदमायान्नास्त्यकृत कृतेन तद्विज्ञानार्थगुरुमेवाभिगच्छेत्समित्पाणिश्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठम्" इति। अत्र ब्राह्मणग्रहणात्ब्राह्मणानामेवप्रव्रज्यायामधिकारोनेतरेषामितिफलति।अन्येतु "ब्राह्मणग्रहणचात्रद्विजानामुपलक्षणम्" इतिवचनात् त्रैवर्णिकानामधिकार इतिवदन्ति । अद्यतनीया केचनसर्ववर्णानामधिकार इतिवदन्त शिष्यबुद्ध्यासमागतान् द्रव्यादिलोभदत्वासर्वानेवदीक्षयन्ति, शास्त्रमर्यादापरिणामाद्यविमर्शका । केवलस्यकर्मण केवलस्यज्ञानस्य च निन्दाश्रवणात्, कर्मसमुचित ज्ञानस्यैवमोक्षसाधनत्वश्रुतिर्दर्शयति ॥ अन्धंतम प्रविशन्तियेऽविद्यामुपासते । ततोभूयइवतेतमोयेऽविद्यायामेवरता । विद्याञ्चाविद्याञ्चयस्तद्वेदोभयसह। अविद्ययामृत्युतीर्त्वाविद्ययाऽमृतमश्नुते"इत्यादि। यद्यप्यत्रविद्यापदेनोपास्तिज्ञानविवक्षित "विद्यांब्रह्मोपासनात्मिकाम्" (आनन्दभाष्यम्) इत्याचार्योक्तेर्नतुपरमात्मज्ञानम्, यतस्तयो प्रकाशतमोवद्विरोधेनसमुच्चयासभवात् । तथापिप्रौढिवादेनवक्ष्यमाणप्रकारेण कथित पुन कुत्रचित् विचारसिष्यामि ।

तदुक्तनारदपाचरात्ररहस्ये—

सएवकरुणासिन्धुर्भगवान्भक्तवत्सल । उपासकानुरोधेनभजतेमूर्तिपञ्चकम् ॥
तदर्चाविभवव्यूहसूक्ष्मान्तयामिसञ्ज्ञकम् । यदाश्रित्यैवचिद्विर्गस्तत्तज्ज्ञेयप्रपद्यते ॥
पूर्वपूर्वोदितोपास्तिविशेषक्षीणकल्मष । उत्तरोत्तरमूर्तानामुपास्त्यधिकृतोभवेत् ॥
"एवमहरह श्रौतस्मार्तधर्मानुसारत । उक्तोपासनयापुसारामचन्द्र प्रसीदति ॥
प्रसन्नात्माहरिर्भक्त्यानिदिध्यासनरूपया । अविद्याकर्मसधानरूपासद्योनिवर्तयेत् ॥
तत स्वाभाविका पुसातेससारतिरोहिता ।आविर्भवन्तिकल्याणा सर्वज्ञत्वादयोगुणा ॥
एवगुणा समाना स्युर्मुक्तानामीश्वरस्यच । सर्वकर्तृत्वमेवैकरामेदेवेविशिष्यते ॥
"मुक्तास्तुशेषिणिब्रह्मण्यशेषेशेषरूपिण । सर्वानश्नुवतेसहतेनविपश्चितेति ॥"

एतस्मात्कारणात्, प्रज्वलत्ससारदावानलदग्धाशिरस्कैर्विवेकिभिरमृतत्वप्राप्तयेमर्यादापुरुषोत्तमादिवाच्यसर्वेश्वरश्रीरामाख्यपरब्रह्मजिज्ञासितव्यमित्युक्त भवति प्रथमसूत्रेणेति । तत्र प्रकृतिप्रत्ययौ प्रत्ययार्थप्रधान्येनसहब्रूतइत सनोऽन्यत्रेतिवचनबलादिच्छायाइष्यमाणप्रधानत्वात्, इष्यमाणज्ञानमेवेहविधेयम, तज्ज्ञानध्यानोपासनादिपदवाच्यवेदनमेव, नतुतत्त्वमस्यादिवाक्यजन्यमापातज्ञानम्, तादृश-

ज्ञानस्यपदसदर्भेश्राविणोव्युत्पन्नस्यविधानविनापिप्राप्तत्वात । "आत्मावारेद्रष्टव्य श्रोतव्योमनन्तव्यो निदिध्यासितव्य" "आत्मेत्येवोपासीत' "विज्ञायप्रज्ञाकुर्वीत" "अनुविद्यविजानाना"यादिश्रुतिभ्य । अत्र "श्रोतव्य" इत्यत्रनविधायकस्तव्यत्प्रत्ययोऽपित्वनुवादक एव । "स्वाध्यायोऽध्येतव्य' इत्यध्ययनप्रापकेनसाङ्गस्यस्वाध्यायपदवाच्यवेदसमुदायस्यग्रहणेसमवीतवेदस्यपुरुषस्य प्रयोजनवदर्थ-दर्शनात्तन्निर्णयार्थस्वभावत एव श्रवणेप्रवर्तमानतयाश्रवणस्यप्राप्तत्वात् । मन्तव्य इति अनुवादएवश्रवण प्रतिष्ठापकमनस्यापिप्राप्तत्वादेव । "अप्राप्तेशास्त्रमर्थवदितिन्यायात । ध्यानन्तुतैलधारावदविच्छिन्न-स्मरणसन्तानरूपाध्रुवास्मृति "स्मृतिप्रतिलम्भेसर्वग्रन्थीनांविमोक्ष" इतिध्रुवाया स्मृतेरेवमोक्षकारणतयाश्रव-णात् । सेयस्मृतिर्दर्शनसमानाकारैव । "भिद्यतेहृदयग्रन्थिश्छिद्यन्तेसर्वसंशया 'इत्यादिश्रुत्यैकत्वात । एवञ्च "आत्मावारेद्रष्टव्य" इत्यनेनास्यदर्शनरूपताविधीयते । यद्यपिदर्शनस्मरणयोर्विभिन्नत्वात समानाकारता न सभवति तथापिभावनाप्रकर्षात स्मृतेर्दर्शनरूपत्वसभवात । तदेतत् श्रीबोधायनवृत्ति कारेणप्रपञ्चितम् "वेदनमुपासनस्यादित्यादि' ग्रन्थन । एतदेव ध्यानविशेषपरश्रुति ' नायमात्मा प्रवचनेनलभ्यो न मेधयानबहुनाश्रुतेन यमेवैषवृणुतेतेनलभ्यस्तस्यैषआत्मा विवृणुतेतनुस्वामिति' मुण्ड-कोपनिषत् । अतिशयेनप्रियइतिप्रियतमस्तादृशस्त्वपदार्थोवरणीयो भवति । ततश्चयथाऽयजीवोऽति-शयेनप्रियतमपरमात्मानप्राप्नोति, तथा स्वयमेवभगवान् श्रीरामएवप्रियतमइतिभगवतावासुदेवेनकथित गीतायाम्—"तेषां सततयुक्तनांभजतांप्रीतिपूर्वकम् । ददामिबुद्धियोग तं येनमामुपयान्ति ते ।।इति।। "पुरुष स पर पार्थ ! भक्त्यालभ्यस्त्वनन्यया" इति।।

इत्यादिनाप्रवचनकेवलज्ञानादीनामसाधनताभगवत्प्राप्तौनिषेध्यपराभक्तेरेवभगवत्प्राप्तौसाधनतामुदा-जहार साचभक्तिर्द्विविधापरापरभेदात, तत्रपरैवभक्ति साधनम् । तदतिरिक्ताध्ययनप्रवचनादीन् "नाहवेदैर्नतपसा नदानेन न चेज्यया । शक्य एव विध द्रष्टु दृष्टवानसिमा यथा" इत्यादिनाप्रति-षिध्यतदनन्यभक्तेरेवपरमात्मप्राप्तावुपायत्वनिर्धारितवान् । तत्र "भज् सेवायामितिधातो क्तिन् प्रत्यये भक्तिपदनिष्पन्न भवति । सातुभक्तिर्निरतिशयानन्दप्रियानन्यप्रयोजनसकलेतरविषयकतृष्णारहितज्ञान विशेषरूपैव । "सा च भक्ति परमप्रेयोभगवदितरवैतृष्ण्यपूर्वकपरमपुरुषानुरागरूपोज्ञानविशेषएव"इति-भाष्यकारोक्ते । एतादृशभक्तेसिद्धिश्चविवेकादिभ्योभवतीतिवाक्यकारेणश्रीबोधायनाचार्येणकथितम् । "तल्लब्धिर्विवेकविमोकाभ्यासक्रियाकल्याणानवसादानुद्धर्षेभ्य सभवान्निर्वचनाच्चेति ।।"तत्रविवेकोनामा दुष्टादन्नात् सत्वस्यान्त करणशद्धितस्यशुद्धिर्निर्मलत्वमिति । अत्रनिर्वचनम्"आहारशुद्धौसत्वशुद्धि सत्व शुद्धौध्रुवास्मृति" [अन्नमय हि सोम्यमन" इत्यादिश्रुत्याऽन्त करणस्यपार्थिवत्वमवगतमितियादृश-शुद्धमविशुद्धवाऽन्नमुपभुज्यतेतादृशेवान्त करण भवति । तदुक्त "दीपोभक्षयतेध्वान्तकज्जल च प्रसूयते । यदन्नभक्ष्यतेनित्यतादृशीजायतेप्रजा । इत्यशुद्धाहारग्रहणेमनसोनिर्मलत्वनयाति, अपितु समलमेवतद्भवतीत्यशुद्धेमनसि नो भवतिध्यानतस्मात् शुद्धाहारस्यैवध्यानप्रयोजकत्वकथितयोगतन्त्रे] विमोकस्तु "कामानभिष्वङ्ग" इति । एतन्निर्वचन "शान्तउपासीनतज्जलानिति । अभ्यासस्तु,

उपात्तस्यवस्तुन पुन पुन सर्गील्नम्" एतस्यनिर्वचनतु "ज्ञानप्रसादेनविशुद्धसत्वस्ततस्तुतपश्यते" इत्यादि श्रुति "य य वापिस्मरन् भाव त्यजत्यन्तेकलेवरम् । त तमेवैतिकौन्तेय सदा तद्भावभावित इति । स्मृति । क्रियानाम, श्रौतस्मार्तकर्मणाम्, अग्निहोत्रवाजपेयादीनाकामनारहितानामनुष्ठानयथाशक्ति रत्र निर्वचनम् "क्रियावानेपब्रह्मविदावरिष्ठ' इति । कल्याणानिसत्यार्जवदयादानादीनि, एतस्य निर्वचनम् "सत्येनलभ्यतेआत्मेति । "दीनतायाविपर्ययोऽनवसाद" एतस्यनिर्वचनम् "नायमात्मा-बलहीनेनलभ्य" इति । तथा दैन्यविपर्ययजनितातुष्टिरेवानुद्धर्ष । अत्र "शान्तोदान्तउपासीत" इति निर्वचनम् । तदेव प्रकारकनियमविशेषसम्प्राप्तपुरुषोत्तमश्रीरामप्राप्तप्रसादनिर्मृष्टतम स्वान्तस्य अनन्यप्रयोजनानवरतनिरतिशयप्रियवदात्मप्रत्ययावभासतापन्नध्यानलक्षणयाऽनन्यभक्त्यापुरुषोत्तमसर्वे-श्वरश्रीरामपदसाकेतलभ्य भवतीतिसिद्धम् । तदादुराचार्या श्रीमदानन्दाचार्यचरणा —

"रामोब्रह्मपरात्परश्रुतिमतभक्त्यैवतिं श्रेयस शेषा येन च शेषिणोरघुपतेर्जीवाइतिस्वीकृतम् ।
श्रोतयुक्तियुतमतखल्विशिष्टाद्वैतकयस्य स श्रीबोधायनवृत्तिकृद्विजयताबोधायन शाश्वतम् ॥"

तथैवजगद्गुरुश्रीपूर्णानन्दाचार्ययादा —

"कारुण्याम्वुनिधिश्चयस्तनुभृताप्राप्यस्तथाप्रापक सायुज्यचददातियोहिनिजयाभक्त्याप्रपत्त्याऽथवा ।
सर्वेश स परात्परश्चराहतोवैषम्यनैर्घृण्यत श्रीरामोजगदाश्रयोभवतु मे त्राताजगद्व्यापक ॥
जायन्तेमृतिमाप्नुवन्ति च पुनलब्ध्वानयप्राणिनो यञ्चोपेत्यभवेन्नवैतनुमतालोकेपुनर्जन्मस ।
ब्रह्मेशानसुरेन्द्रवन्दितपदोभक्त्येकलभ्य प्रभु श्रीरामोजगदाश्रयोभवतु मे त्राताजगद्व्यापक ।

अथद्वैपायनीयप्रथमसूत्रेणब्रह्मजिज्ञासासमारब्धा, तत्र कीदृश किं लक्षण कि ब्रह्म, जिज्ञा-स्यमितिजिज्ञासायाद्वितीयसूत्रमाह **जन्माद्यस्ययत** इति । अत्रलक्षणप्रमाणाभ्या वस्तुसिद्धि-रितिपश्यन् ब्रह्मलक्षणदर्शयतिद्वितीयसूत्रेणसूत्रकार "जन्माद्यस्यत" इति । अस्यार्थ तत्रजन्मादी-त्यनेन, उत्पत्तिस्थितिप्रलयानातद्गुणसविज्ञानबहुव्रीहिसमासाश्रयणेलाभो भवति, लवकर्णपुरुष-मानयेत्यत्र तथा लम्बौकर्णौयस्येतितद्गुणसमासेविशेषणविशेष्यस्यानयनम्, नतु दृष्टसागरपुरुष-वत्सत्यपिसमानेबहुव्रीहाविशेषणस्यानयन भवति, अतद्गुणत्वात् बहुव्रीहे । तथेहसूत्रे, नातद्गुण सविज्ञानोबहुव्रीहिरपितुतद्गुणसविज्ञानबहुव्रीहिरितिजन्मसहितयोस्थितिप्रलययोर्ग्रहण भवति । अस्येति-षष्ठयन्तेदपदेनपरमात्मभिन्नेन महामहिमवतापिलोकपालग्रहादिनामनसाप्यचिन्त्यविविधरचनायुक्तस्य प्रतिनियतदेशकालभोगब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तक्षेत्रक्षेत्रज्ञसवलितस्यास्यजगतोजायमानस्य, यत सर्वज्ञसर्व-शक्तिसत्यसकल्पसत्यत्वादिगुणविशिष्टसविशेषपरमेश्वराज्जानकीनाथादिपदवेदनीयात्सर्वेश्वरात् हेय प्रत्यनीकस्वरूपात्पुरुषविशेषात्, जगत सर्गस्थितिप्रलयाभवन्तीतिप्रकृतसूत्रार्थसम्पद्यते । नन्वे तादृशब्रह्मणिकिमपिप्रमाणमस्ति नवा ? अस्ति चेत् तदा तत् कि प्रत्यक्षाद्यन्यतमरूपतदन्यद्वा ? तत्र न प्रत्यक्ष बाह्यसभवति, रूपस्यस्पर्शादिविहीनेपरमपुरुषेनेत्रस्पर्शनयोरसभवात्, रूपस्पर्शवतामेवचा-क्षुषादिप्रत्यक्षत्वदर्शनात् । न वा घ्राणादिकसम्भवति परमपुषस्यद्रव्यरूपत्वात् ।

गुणादीनामेवघ्राणादिग्राह्यत्वनियमस्यान्यत्रदर्शनात् । नवामानसप्रत्यक्षजीवतद्गुणादिभिन्नत्वात् । नवाऽनुमानादिकम्, अव्यभिचरितहेत्वभावात् । नवाशब्दस्तत्रपरमेश्वरेप्रमाणम्, अन्योन्याश्रयात्, परमेश्वरसिद्धौतदुच्चरितत्वात, शब्दस्यप्रामाण्यसिद्धिस्तत्सिद्धा च परमेश्वर सिद्धिरित्यन्योन्याश्रयस्य दुरुत्तरत्वादिति न परिगणितप्रमाणेन ब्रह्मण सिद्धि । यदिनादृश-परमेश्वरेप्रमाणनास्ति, इतिद्वितीयपक्षस्तदाप्रमाणाभावादेव नतादृशपरमेश्वरविचार शोभेत, यथा प्रमाणाभावात् गगनकुसुमादि न सत्ता लभते तथाऽयमपि नप्रामाणिक स्यात् । कारणरहित पदार्थोद्विविधो भवति, नियमत सन् वा असन्, यथाऽकाशोबन्ध्यापुत्रोवेत्यनो न तादृशब्रह्मण - सिद्धिरित्येवपरस्यालोचनसमवधार्य्यभगवान् सूत्रकारोब्रह्मणिप्रमाणमाह **शास्त्रयोनित्वात्** तत्रशास्त्रं-योनि कारणमस्यतच्छास्त्रयोनि स्तस्यभावस्तत्वात्, अत्रयोनिपदवोध्यकारण न कारक किन्तु, प्रदीपनघटइतिवत् ज्ञापकरूपमेव नतुदण्डेनघटइतिवत् जनकम् । तथा च सास्त्रमृग्वेदादिकयोनि कारणप्रमाणयस्य, अर्थात् यदवगतौशास्त्रमेव "यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते" "भृगुर्वैवारुणि पितरवरुणमुपसार, अधीहि भगवोब्रह्म "इत्युपश्रुत्य वरुण प्राह "आनन्दाद्ध्येवखल्विमानिभूतानिजायन्ते' आनन्देन जातानिजीवन्ति, आनन्दप्रयन्त्यभिसविशन्ति, तद्ब्रह्मतदेवविजिज्ञासितव्य" इत्यादि ततश्चशास्त्रमेवब्रह्मावगतौप्रमाणम् ।

"ब्रह्मसत्वेप्रमाण च शास्त्रमेव सुनिश्चितम् । तत्वौपनिषदञ्चैतच्छ्रुतिवाक्यप्रमाणत ॥१३१॥"

इत्यादिरूपेणजगद्गुरुश्रीपूर्णानन्दाचार्येणश्रीबोधायनमतादर्शेप्रतिपादनाच्च । ननु, घटादि प्रमेयसाधकानेकप्रमाणेषुतदन्यतमेनैवब्रह्मण सिद्धिसभवेकिमर्थंशास्त्रशिरसिएतावान् भार आरोप्यते इति चेदत्राह, सत्यम् "यतोवाचोनिवर्तन्तेऽप्राप्यमनसासह" अवचनेनैवप्रोवाच" इत्यादिश्रुतिभिर्वाङ्-मनसाऽगोचरताया प्रतिपादनेनब्रह्मणोऽतीन्द्रियत्वावगमेनशास्त्रेतरप्रमाणानातत्रपदाधानासभवेनशास्त्रस्यैव तत्रप्रमाणत्वदर्शयामाससूत्रकार । रूपस्पर्शादिरहितत्वात् यद्यपि ब्रह्मप्रत्यक्षादिविषयतानासादयति, शास्त्रस्यापिप्रवृत्तिनिवृत्तिपरकत्वात्, सिद्धब्रह्मस्वरूपबोधकत्वमपि न सभवति । प्रवृत्तिनिवृत्तिरूप प्रयोजनपरकाणामेवशास्त्रत्वादित्याशङ्कायामाहसूत्रकारश्चतुर्थमिदम **तत्तुसमन्वयादिति** सूत्रम् । एतत्सूत्रघटक"तु"शब्द पूर्वपक्षनिराकरणपरकइतिबोद्धव्यम् प्रायोब्रह्मसूत्रेषु यत्र "तु" शब्दोभवति तत्र सर्वत्रपूर्वपक्षव्यावर्तक एवेति पूर्वपरानुसन्धानेनावगत भवति । तत् जिज्ञास्य ब्रह्मलक्षणप्रमाणेनाववारित, शास्त्रप्रमाणकमेवसभवति ? कुत ? समन्वयात्, परमपुरुषार्थभूतस्यब्रह्मणोऽभिधेयतयान्वयात्, सर्वेवेदान्ता परमप्रयोजनभूतब्रह्मण प्रतिपादनपरतयैवसमन्विताभवन्तीति । ननु घटकुरुघट पश्यति, इत्यादिलौकिकप्रयोगेण, "अग्निहोत्रजुहुयात् स्वर्गकाम" इत्यादिवैदिकप्रयोगेणकार्यान्वित स्वार्थबोधकत्वमेवप्रवृत्तिनिवृत्तिपरकाणामेवशास्त्राणाम् "आम्नायस्यक्रियार्थत्वादानर्थक्यमनर्थानामित्यादिनाऽक्रियाप्रतिपादकानामानर्थक्यमाशङ्क्य "विधिनात्वेकवाक्यात्स्तुत्यर्थेन" इत्यादिनाक्रियाप्रतिपादन विधुराणामर्थवादीनामपिसार्थकत्वसमर्थितम् । एव "आत्माइत्येवोपासीत" उपासनपरकवेदान्तादीना कथचित्सार्थकत्वनतुस्वातन्त्र्येणतेषामर्थबोधकत्वमितिनशङ्कनीयम्, "चैत्रपुत्रस्तेजात' 'नायसर्पोऽपितु

रज्जुरित्यादि'' स्थलेऽकार्यबोधकानामपिहर्षभयादिनिवृत्तिरूपप्रयोजनवत्वदृष्टमेवेति, क्रियाप्रतिपादकानामेवसार्थकत्वमितिरिक्तमेवत्रच शङ्कस्येति विस्तरस्थलान्तरेद्रष्टव्यो भाष्यविवरणप्रस्तावादावितिदिक् । इत्थंवपरदर्शनखण्डनमुखेनस्वशास्त्रप्रतिपाद्यविषयप्रतिपादनेजीवस्वरूपस्यक्षणिकत्वमनित्यत्व प्रतिक्षिप्य स्वसिद्धान्तेनजीवस्वरूपस्यनित्यत्वादिकप्रतिपाद्यात्मसिद्धिर्निवेदितेति सक्षेप ।

सगृह्यशास्त्रसार च जीवरूपस्थिरीकृनम् । तदनेन रमानाथ प्रीत स्तात् भक्तिवर्धक ॥१॥

इत्यानन्दभाष्कर जगदगुरुश्रीरामानन्दाचार्यप्रधानपीठाचार्यजगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यरामप्रपन्नाचार्ययोगीन्द्रपट्टशिष्यपश्चिमाम्नायश्री/विश्रमद्वारिकास्थश्रीरामान्दाचार्यपीठाधीश स्वामीरामेश्वरानन्दाचार्यकृतआत्मसिद्धौतत्त्वदीप ।

॥ श्रीसीतारामार्पणमस्तु ॥

※ विशिष्टाद्वैत शब्द मीमांसा ※

केनचित्तत्वसमीक्षणप्रतिभाप्रभावप्रभासितस्वान्तेन स्वाश्रितामलवैदुष्यशुष्यदनवबोधेन विपश्चिदपश्चिमेन सीकरजनपदावयवलक्ष्मणगढनिवासरसिकेन रामनारायणाख्यमहोदयेनमारवाडी ब्राह्मणनाम्नि (२१।९।३५) ईसवीयदिवसे स्वप्रसरावसरजुषिपत्रे ''विशिष्टाद्वैतमित्यत्रक समास ?'' इत्याकारक उपरिष्टान्निर्दिष्टस्तस्योत्तरसतृष्ण प्रश्न प्रकाशि। अदसीयप्रश्नस्येदमधस्तनीय समुल्लसति समाधानम्।

विशिष्टाद्वैतमित्यत्र विशिष्टञ्चविशिष्टञ्च विशिष्टे (एकशेष) द्वयोर्भावोद्वितािद्वितैव द्वैतम् (स्वार्थिकोऽण्) भेद इति यावत् । नद्वैतमद्वैतम् । 'नञ्' इति पाणिनीयेन समास । ततश्चविशिष्टयोरद्वैत विशिष्टाद्वैतमिति षष्ठीतत्पुरुष । अत्र च विशिष्टपदाभ्या सूक्ष्मचिदचिद्विशिष्ट स्थूलचिदचिद्विशिष्टञ्च ब्रह्मैवाभिधीयते । तयोश्चब्रह्मणोरद्वैतमभेद एवेत्यर्थोपलभ्यते । सूक्ष्मावस्थाहि कारणावस्था स्थूलावस्था च कार्यावस्था तयोरुभयोरवस्थितिमेकमेव ब्रह्मेति तु तत्त्वम् ।

नचात्राचित्पदार्थनिष्ठे स्थौल्य सत्यपि पारिमाण्डल्यजुषो जीवस्य कथ तत्त्वम् कथन्तराञ्चाणोरणीयान्—इत्याम्नायाभिहितस्येश्वरस्येतिवाच्यम् । अनेकाम्नायसमधिगतयोर्नामरूपविभागार्हत्वतदनर्हत्वयोरेवस्थौल्यसौक्ष्म्यचिदचिद्विशिष्ट स्थूलचिदचिविशिष्ट ब्रह्मेत्यस्य शाब्दबोधस्तु—अपृथक् सिद्धिसम्बन्धावच्छिन्न प्रकारतानिरूपितसूक्ष्मचित्त्वावच्छिन्नविशेष्यत्वावच्छिन्नापृथक्सिद्धिसम्बन्धावच्छिन्नसूक्ष्मचित्त्वावच्छिन्नप्रकारतानिरूपितनिरवच्छिन्नविशेष्यताकस्यापृथक्सिद्धिसम्बन्धावच्छिन्न - स्थूलचित्त्वावच्छिन्नप्रकारतानिरूपितस्थूलचित्त्वावच्छिन्नविशेष्यत्वावच्छिन्नपृथक्सिद्धिसम्बन्धावच्छिन्नस्थूलचित्त्वावच्छिन्नप्रकारतनिरूपितानिरवच्छिन्नविशेष्यताकस्य ब्रह्मणश्चतादात्म्यमितिदिशावसेय ।

अनेन च सूक्ष्मचिदचिद्विशिष्टस्थूलचिदचिद्विशिष्टपदयो समानाधिकरण्यमुपपादित भवति। एतादृशपदसामानाधिकरण्यञ्च 'तत्पुरुष समानाधिकरण इत्यादिशास्त्रेशाब्दिकशिरोमणिर्भगवान् पतञ्जलि स्पष्टमाचष्टे । भिन्नप्रवृत्तिनिमित्तशब्दानामेकस्मिन्नर्थे वृत्ति सामानाधिकरण्यमिति । एतदनुरोधेन तत्पदविशिष्टत्वमेव तत्पदस्य तेन सार्द्धम् सामानाधिकरण्यमितिनिश्चीयते । अत्रवैशिष्ट्यञ्च स्वजन्योपस्थितिविषयतानवच्छेदकधर्मावच्छिन्नोपस्थापकत्वस्वप्रयोज्यविषयतानिरूपिततादात्म्यनिष्ठ—विषयतानिरूपितविषयताप्रयोजकत्वोभयसम्बन्धाभ्याम् । एतच्च सामानाधिकरण्य प्रकृतेऽपि सङ्गच्छत इतिदिक् । (जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यरघुवराचार्या)

卐 सर्वेश्वरश्रीसीतारामाभ्या नम 卐

श्रीहनुमते नम

प्रस्थानत्रयानन्दभाष्यकाराय नमोनम

जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यरामप्रपन्नाचार्ययोगीन्द्रप्रणीततत्त्वत्रयसिद्धौ

अथेश्वरसिद्धिः

श्रीरामचरणौवन्देभोगमोक्षफलप्रदौ । आनन्दान्तञ्चरामञ्चनुमोरघुवरं तथा ॥

राम एव परंब्रह्म राम एव परंतपः । राम एव परंतत्त्वंश्रीरामोब्रह्मतारकम् ॥

सीताकान्तसमारम्भां रामानन्दार्यमध्यमाम् । रघुवरार्यगुर्वन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम् ॥

तदत्रतत्त्वत्रयेतृतीयंतत्त्वम्—"विश्वंजातयतोऽद्वायदवितमखिलंलीयतेयत्रचान्ते

सूर्योयत्तेजसेन्दुःसकलमविरतंभामयत्येतदेषः ।

यद्भीत्यावातिवातोऽवनिररपिसुतलयातिनैवेश्वरो ज्ञः

साक्षीकूटस्थएकोबहुशुभगुणवानव्ययोऽशिवभर्ता ॥१।८॥

श्रीमानर्च्यःशरण्योबहुविधविबुधैर्योगिगम्याङ्घ्रिपद्मोऽ-

स्पृश्यः क्लेशादिभिःसत्समुदितसुयशाःसूरिमान्योवदान्यः ॥

शश्वच्छ्रीरामचन्द्रःसुमहितमहिमासाधुवेदैरशेषै

र्निर्मृत्युःसर्वशक्तिर्विकलुषविजरोगीर्मनोभ्यामगम्यः ॥१।९॥"इति ।

अस्तिकश्चिदेकःक्लेशकर्मादिभिरपरामृष्टःपुरुषविशेषोयस्याधिकारेसर्वंविश्वंप्रवर्त्तत इतिसमाधानाय तत्रपूर्वपूर्वपक्षंप्रदर्श्यते—

पश्चिमाम्नायश्रीरामनन्दाचार्यपीठाधीश्वर

स्वामीरामेश्वरानन्दाचार्य

प्रणीत

卐 तत्त्वदीपः 卐

सीताकान्तसमारम्भां रानानन्दार्यमध्यमाम् ।

रामप्रपन्नगुर्वन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम् ॥

अथाचार्यप्रवरआत्मसिद्धिप्रकारप्रदर्श्यतत्सिद्धौपरमात्मचिन्तन कुर्वन् परमेश्वरसाधकप्रमाण दर्शयितुमुपक्रमते **अस्ति कश्चिदेक** इत्यादि । **कश्चिदेक** इति-स्वेतरसकलविलक्षण । एक-सजातीयविजातीयलक्षणोऽद्वितीय । "न तस्य कार्यकरण च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्चदृश्यते । परास्यशक्तिर्विविधैवश्रूयतेतमाहुरग्र्यपुरुषमहान्तम्" इत्यादिश्रुते । **क्लेश कर्मादिभिरित्यादि** । क्लेश, अविद्याऽस्मितारागद्वेषाभिनिवेशा पञ्चक्लेशा इतियोगसूत्रोदिताअविद्यादय एव । कर्मशुभाशुभ विहितकर्मजनितनिषिद्धकर्मजनितपुण्यापुण्यशब्दितम् । विपाक फलोदय । आशय सस्कार. ।

तत्रेश्वरप्रद्वेषिणोमीमांसकाःप्राहुर्नसर्वार्थदर्शनशक्तिसम्पन्नोयथोक्तपुरुषःसेद्धुमर्हति। तत्साधकप्रमाणाभावात् प्रत्युतबाधकबहुतरप्रमाणदर्शनाच्च । तथा हि परमेश्वरसाधकं प्रत्यक्षप्रमाणंतदन्यद्वा तत्साधकम् ? तत्र द्वितीयं न संभवति, अग्रेतन्निराकरिष्यमाण त्वात् । नापिप्रत्यक्षंप्रमाणं ? विकल्पासहत्वात् । प्रत्यक्षमपि किं लौकिकम्, यौगिकं वा ? तत्र न लौकिकप्रत्यक्षमीश्वरसाधकंसंभवति, लौकिकप्रत्यक्षप्रमाणस्यचक्षुरादेर्व्य-

क्लेशाः पुनर्द्विविधा क्लिष्टाअक्लिष्टाश्च । एवञ्चक्लेशादिभिरपरामृष्टोऽसम्बद्ध पुरुष पुरुष सदृश सविशेषइत्यर्थ । **यस्याधिकारे**=यस्यपुरुषोत्तमस्याधिकारे=शासने "एतस्यैवशासनेगार्गिद्यावा पृथिव्यौविधृतेतिष्ठत" इतिश्रुते । तथासम्पूर्णोपि, अन्तर्यामिब्राह्मणप्रकरणमत्रप्रमाणतदप्यनुसंधेयम् । विश्व=समस्तजडचेतनात्मकस्थूलसूक्ष्मसाधारणजगत् प्रवर्तते,एकस्यतस्यसर्वेश्वरस्यवशेसङ्कल्पस्वरूपेच्छायां **प्रवर्तते**=प्रकर्षेणवर्तते—असंकीर्णस्वरूपस्वभावसद्विद्यते । प्रवर्तते च तत्सर्वंस्वीयकर्मणियथा यथमितिसमस्तस्यजगत सर्वेश्वरसंकल्पाधीनस्वरूपस्थितिप्रवृत्तिकत्वद्योतयितुप्रमाणद्वाराव्यवस्थापयितु-मयमुपक्रम क्रियते, तत्रोत्तरस्यपूर्वपक्षाधीनत्वेनपूर्वंपूर्वपक्षमेवस्थापयामीति । यद्यपीश्वरेकस्यापिविप्रतिपत्तिनास्ति, यत

य ब्रह्मेतिगदन्तिवेदनिपुणावेदान्तिन सर्वदासाख्यज्ञै पुरुषस्तथाक्षचरणै कर्तेतियोगीयते ।
भाट्टै कर्मचकाव्यकोविदचयैर्मुख्योरस कीर्तितोविश्वस्मिन्सुजनान् स एवभगवान्पायाद्घृणापति ॥"

इत्यादिरूपेणमहामहोपध्यायपदविकजगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यरघुवराचार्यवेदान्तकेसरिणाप्रपरञ्चितदिशास्वार्थमहिमानस्तस्वीकुर्वन्त्येव । तत्रशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावइत्यद्वैतवेदान्तिन , तदेवसविषयमिति विशिष्टाद्वैतिन । आदिविद्वान्कपिलइतिकापिला । क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टइतियोगा । बुद्ध इतिबौद्धा । अर्हन्नितिजैना । कर्तेतिनैयायिका । कर्मैवेतिमीमासका । लोकसिद्धराजैवेतिचार्वाका । **किंबहुना,** यकारवोपिविश्वकर्मेतिस्वीकुर्वन्ति । तदेवजातिगोत्रप्रवरहीनेभगवतिसशयएवनास्तीति किं निरूपणीययदर्थमयमारभ । तथापितथाविवेभगवतिप्रमाणनास्तीतिविवदन्त वादिनमभिप्रेत्यायमारभ । "प्रमेयसिद्धिप्रमाणाद्धीतिन्यायात् । प्रमाणेनैवप्रमेयसिद्धिर्भवतिनान्यथा, अत एवशशशृङ्गकुर्मरोमादयो नविषया भवन्ति । अन्यथा तेषामपिसद्भावोबलादापतेदिति ।

अध्वरमीमासकेनहिसर्वार्थसाक्षात्कारिसर्वपदार्थोत्पादकशक्तिपरिवृतश्चेतनविशेषरूप पुरुषोनस्वीकृत स्वतन्त्रे, यत एतादृशस्यसाधकप्रमाणाभावादित्याशयेनाह—**नसर्वार्थदर्शनशक्तिसम्पन्न** इत्यादि । **अर्थात्साधकप्रमाणाभावान्नास्तिपुरुषइत्यर्थ** ।नकेवलसाधकाभावादेवतदभाव प्रत्युततादृशपुरुषास्तित्वेबाधक प्रमाणमपिजागर्ति, तत्राह, **बाधकबहुतरप्रमाणदर्शनाच्चेति** । उपरिष्टाद्बाधकप्रमाणनिदर्शयिष्यते। **साधकप्रमाणाभावदर्शयितुमाह तथाहीत्यादिना** । तत्रचक्षुरादीन्द्रियार्थसनिकर्षजनितस्यचक्षु स्पर्श रसनगन्धग्राहकश्रवणाद्यन्यतमस्यप्रत्यक्षस्येश्वरसाधकत्वं न सभवतीत्यावेदयितुमाह **व्यवस्थितविष**

वस्थितविषयत्वात् परिमितविषयत्वाच्च तदग्राह्यपरमेश्वरस्य तेन साधयितुमशक्यत्वात् ।

नवायोगिप्रत्यक्षमीश्वरसाक्षात्कारेसाधनम् । यतो योगिविज्ञानमपिकिम् , इन्द्रियजनितं नवा ? इन्द्रियजनितमपि किं चक्षुरादिबहिरिन्द्रियजनितमान्तरकरणजन्यं वा ? तत्र न तावत् प्रथमपक्षः यतोबहिरिन्द्रियाणांस्वविषयसंनिकर्षवतामेवस्वविषयज्ञानोत्पादकत्वस्यैवदर्शनात् । अतोरसनादिभिर्नभवति व्यवहितासंनिकृष्टज्ञानोत्पादः । नचाविद्यमायत्वात्परिमितविषयत्वाच्चेति । यतोऽत्रलौकिकप्रत्यक्षस्यचक्षुरादर्थेग्राह्यविषयास्तेपरिमिता यथा चक्षुषाग्राह्यरूपंरूपत्वरूपाभावारूपवद्द्रव्यतद्गताजातिस्तदभावादय । रसनायारसोरसत्वतदभावश्च, घ्राणस्यगन्धोगन्धत्वतदभावश्च त्वच स्पर्शत्वादिकतद्वद्द्रव्यतदभावश्च । तत्रापि बहिरिन्द्रियजनित प्रत्यक्षेनादात्म्येनविषयस्यकारणत्ववर्तमानत्वादिक यथायथमालोकादिसंनिकर्षश्चेति ।

अर्थात् चाक्षुषप्रत्यक्षस्यतावत् रूपरूपवद्द्रव्यरूपैकार्थसमवेतसंख्यापरिमाणपृथक्त्वसयोग विभागादिप्रमुखाविषयाग्राह्याभवन्ति । तदुक्तम्"उद्भूतरूपनयनस्यगोचरोद्रव्याणितद्वन्तिपृथक्त्वसंख्ये । विभागसयोगपराऽपरत्वस्नेहद्रवत्वपरिमाणयुक्तम । क्रियाजातिर्योग्यवृत्ति समवायश्चतादृश । गृह्णाति चक्षु सयोगादालोकाद्भूतरूपयोरित्यादि । एतावन्तोविषयाश्चक्षुषोयोग्याभवन्ति, नतुचक्षुषारसादिगन्धादिकागृहीताभवन्ति, तेषातेषुसर्वथाऽयोग्यत्वात् । एवमुद्भूतानभिभूतरूपादिकमहत्वसामानाधिकरण सत् चक्षुषादिग्राह्यभवति, नतुपरमाणुद्व्यणुकगतरूपादिकचक्षु सयुक्तमपिगृहीतभवति । इत्येवप्रकारेणरसनाघ्राणत्वक् श्रवणेन्द्रियादिष्वपियथायथबोद्धव्यम् । एतादृशस्यचेन्द्रियजनितप्रत्यक्षस्यसर्वार्थादे प्रकाशनस्यासभवात्कथमीश्वरे प्रमाणाभावमासादयेत् । यदातु एकमपरविषयस्यग्रहणेसमर्थंनभवति तदा "अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययमि"त्यादिश्रुतिसमर्थितमीश्वरेसर्वथारूपादिरहिते ईश्वरेकथप्रमाणस्यादिति ।

गतप्रकरणेबाह्यप्रत्यक्षव्यवस्थितपरिमितस्वार्थग्राहकत्वात् सर्वार्थग्रहणसमर्थईश्वरेप्रमाण न भवतीत्यावेद्य,योगिप्रत्यक्षस्यापिपरमेश्वरसाधकत्व न सभवतीत्यावेदयितुप्रकरणान्तरमुपक्रमते **नवायोगिप्रत्यक्ष** मित्यादि । वर्तमानसनिकृष्टार्थग्राहकत्वस्यप्रत्यक्षव्यापकत्वात् , यदियोगिज्ञानमपिप्रत्यक्षमेवभवेत्तदा वर्तमानार्थग्राहकभवेदिति तादृशयोगिप्रत्यक्षस्यनसर्वार्थग्राहकत्वम , अतीतानागतादिविषयत्वेवा नतत्प्रत्यक्षभवेदितिसशयादि वा । तत्प्रत्यक्षस्यशुक्तिरजतप्रत्यक्षवत् प्रामाण्यनैवकथमपिसभवेदिति । एतदेव विवृणोति **यतोबहिरिन्द्रियाणांस्वविषय** इत्यादि । यै खलुस्वयोग्यार्थंसन्निकर्षालोकमहत्वादीलक्षण सहकारिणप्राप्तम्, एव भूतान्येवचक्षुरादिकरणानिस्वविषयकप्रत्यक्षज्ञानमर्जकानिभवन्तीतिलोकेऽन्वयव्यतिरेकाभ्याभवति, अर्थसन्निकर्षादिसहकारिसत्वेचक्षुरादिनाज्ञानानिभवन्तितदभावे न भवन्तीति । यस्मादर्थादिसहकारस्यज्ञानजनकत्वप्रसिद्धम् । **अतोरसनादिभिर्नभवतीति** । अतश्चक्षुद्वाराऽतीतानागतव्यवहितार्थविषयकज्ञानजनन न भवतीत्यर्थ । इन्द्रियेणाग्रहणेसनिकर्षाभावात्मकप्रयोजकमुपपादयति **नचाऽविद्यमानविषयैर्भवति संनिकर्षः** इति ।

नविषयैर्भवति संनिकर्षोयतःसन्निकर्षस्यसंयोगादेर्द्विष्ठत्वेनविषयात्मकाश्रयाभावेतदसंभवात्, तस्मादिन्द्रियाणामार्थसंनिकर्षोऽपेक्षित एव । सहकारिविरहेऽतीतानागतविषयज्ञानोत्पादनायबाह्यकरणंकथमिवसमर्थ भवेत् ।

यत्, यं सहकारिविशेषमासाद्ययत्कार्यंजनयति, तत् तादृशसहकारिविरहे तत् कार्यं नोजनयति, यथाबीजादिकंपृथिवीजलादिकंसहकारिणमासाद्यैवाङ्कुररूपंकार्यंजनयतीति तदभावेजलाद्यभावेनैवोत्पादयतिबीजाङ्कुरम् । एवमिहापिबहिरिन्द्रियाणि, अर्थसन्निकर्षादिसहकारिणमादायैवज्ञानमुत्पादयिष्यन्तीतिनातीतानागतार्थज्ञानोत्पादनियमंत्यक्ष्यन्तीतितदीयप्रत्यक्षमपियथोक्तविषयनियमं नातिक्रमेदिति न योगिप्रत्यक्षंसवार्थग्राहकम् ।

नवा मनःकरणजनितं प्रमाणम्, आन्तरिकसुखदुःखादिग्रहणे एव मनसःस्वतन्त्र

कथ नतद्भवति, तत्राह **संनिकर्षस्यसंयोगादेर्द्विष्ठत्वेने** दित्यादि । सयोगादिलक्षण सनिकर्षाणाद्विष्ठत्वात्=उभयसमवायिकत्वात इत्यर्थ । तत्रान्यतरस्याश्रयस्याधिकरणस्याभावेआधेयभूत सनिकर्षस्योत्पत्तेरभावात्, नहिभवतिभूतलाधिष्ठानकस्यघटादेर्भूतलाद्याधाराभावेसमुत्पादइति । एतदेवन्यायप्रयोगेणोपपादयति, **यद्यंसहकारिविशेषमासाद्येत्यादि** यदाखलु चक्षुपादिज्ञानोत्पादेऽर्थसंन्निकर्षस्यसहकारिकारणत्वयुक्तिसिद्धलोकप्रसिद्ध च तदा तादृशार्थकारणभावेकथमिवज्ञानात्मककार्यंस्यात्, नैवकथमपिसभवति । कारणाभावस्यकार्याभावनियतत्वादिति । एवञ्चयोगिप्रत्यक्षस्यापिबहिरिन्द्रियजन्यत्वस्वीकारेतस्यापिबाह्यकरणवदेवनसर्वार्थावभासित्वसिद्ध्यति, तस्मात् योगिप्रत्यक्षस्यपरमेश्वरेसाधकत्व नकथमपिसभवतीति अथलौकिकविषयतासम्बन्धेनप्रत्यक्षोत्पत्तौतादात्म्येनविषयस्यकारणत्वतथाऽर्थसन्निकर्षस्यापितथात्वम्, नतुयोगिप्रत्यक्षेऽर्थादे कारणत्वम्, अन्यथातादृशप्रत्यक्षेप्यर्थादे कारणत्वे, योगिना ययत्सर्वार्थावभासकत्वप्रसिद्धेर्लोकेशास्त्रे च तदुपरोध प्राप्नुयादितिचेत् सत्यम्, भावानवबोधात्, नहि अस्माभिश्चक्षुषारूपप्रत्यक्षीक्रियते तथासोपि चक्षुसैवरूपपश्यतिनतुयोगीकर्णाभ्यांरूपविजानातिकिन्तुचक्षुसैवसोपितद्विजानाति । न च तर्हि उभयो समत्वमेवतदाजातनतुवैलक्षण्यम्, श्रुतचशास्त्रादौ, उभयोर्वैलक्षण्यमिति । उभयोर्विशेषस्याक्षतत्वात् । उभयोरेतावान्विशेप यदेकस्यचक्षुरादिनासूक्ष्मस्यव्यवहितस्यग्रहण न भवति तस्य तुतथाभवतीति । तदुक्तं "यत्राप्यतिशयोदृष्ट सस्वार्थानतिलङ्घनात् । दूरसूक्ष्मादिदृष्टौस्यात् न रूपेश्रोत्रवृत्तितेति । विशेषोऽन्यत्रेतिदिक् ।

अथतस्यान्तरकरणजनितप्रत्यक्षस्यमनोमात्रजन्यत्वेपि तस्य प्रमाणत्वनसभवति तस्यबाह्येन्द्रियजनितज्ञानवदेवसर्वेन्द्रियग्राहकत्वादेवेत्याशयेनोपक्रमते **नवामनःकरणजनितमिति** । कुतोनप्रमाणत्व तत्राह, **आन्तरिकसुखदुःखादिग्रहणे** इत्यादि । सत्यमनसाप्रत्यक्षंभवति, तदपिप्रतिनियतमेव । अर्थात् मनसायद्ज्ञानभवतितत्सुखाद्यन्तरवस्तुविषयकमेव, तत्रैवमनस्वातन्त्र्यात् बाह्यविषयकज्ञानतु बाह्येन्द्रियसापेक्षतयैवभवतिनतुतन्निरपेक्षतया "अस्वतन्त्रबहिर्मन" इतिन्यायात् । तदुक्त—

त्वात् । बाह्यविषयग्रहणेपिमनसोस्वातन्त्र्येचक्षुरादिबाह्यकरणानांवैयर्थ्यप्रसङ्गात्, ततश्चान्धोवापङ्गुर्वानभवेत् कोपि । न्यायप्रयोगश्चेत्थम्—विवादास्पदंमनःबाह्येन्द्रियसहकारविवर्जितं, नबाह्यविषयेरूपादौप्रवर्तते, बाह्येन्द्रियाधीनत्वात् । यत् यत्र यदधीनकं भवति न तत् तत्रतन्निरपेक्षंकार्यंकरोति, गाढान्धकारेचक्षुर्वत् ।

नच मन्त्रौषधिसमाधिप्राप्तातिशयविशिष्टमिन्द्रियंपरित्यजतिविषयनियमःस्वाभाविकसामर्थ्याविर्भावफलकत्वान्मन्त्रादीनाम्, सामर्थ्यस्य च प्रतिनियतत्वात् ।

नहि भवति सुप्रयुक्तभेषजशतसंस्कृतमपिश्रोत्रंरूपंरसंवाऽवगमय। एवञ्चविवादा-

"मनोदशेन्द्रिया·यक्षहृत्पद्मगोलकेस्थितम् । तच्चान्त करणबाह्येऽस्वनन्त्राविनेन्द्रियैरिति ॥"

अथोदान्तरविषये परिगणितसुखादावेवमनसोवहिरिन्द्रियमनादृत्यप्रत्यक्षजनकत्वात् । ननु स इन्द्रियान्तरनिरपेक्षतयासाक्षादेवसुखादिवदेवबाह्यार्थग्राहकत्वेकोदोषस्तत्राह, **बाह्यविषयग्रहणेपिमनसः स्वातन्त्र्ये** इत्यादि, अयमाशयोयथामनोबाह्येन्द्रियनिरपेक्षसदेवसुखादिकंविषयीकरोति, तथाबाह्यविषयेमनस स्वातन्त्र्ये, बाह्येन्द्रियस्वीकारोनिरर्थकएव, सुखादिवत् रूपादिवाह्यविषयाणामपिग्रहणसंभवात् किमिन्द्रियान्तरकल्पनाव्यसनेन । ततश्चसर्वलोकप्रसिद्धबधिरान्धत्वादिभेदोविलुप्यत एव । एवञ्चभवत्यनुमानम्, विवादास्पदमनोबहिरिन्द्रियनिरपेक्ष न बाह्यविषयग्रहणे, बाह्यविषयेचक्षुराद्यधीनत्वात्, यत् यदधीननतत्रतन्निरपेक्षप्रवर्तते । आलोकाद्यपेक्षचक्षुरादिकनान्धकारेरूपादिग्रहणायप्रवर्तते इति ।

पुन शङ्कते **नचमन्त्रौषधिसमाधीत्यादि** । यस्यकस्यापीन्द्रियस्यचक्षुरादे पटुत्वातिशयोयश्च सूक्ष्मविप्रकृष्टार्थग्रहणसामर्थ्यारूपोमन्त्रौषधादिप्रभावजनित तथापिसस्वभाविकवर्तमानयोग्यसन्निकृष्टार्थमात्रग्राहकत्वरूपत्यक्तु न शक्ष्यति । यतोमन्त्रादीना स्वाभाविकसामर्थ्याविर्भावैकफलत्वात्, सामर्थ्यस्य च प्रतिनियमात् । अथात्दुरदृष्टप्रयुक्तप्रतिवद्धसङ्कुचितप्रवृत्तिसासिद्धिकशक्तिविकाशकत्वमेवमत्रमहौषधतप प्रभृतिनाभवति, नतुविलक्षणशक्त्यावायकत्व भवति । शक्तिश्चकार्यैकार्थकसमधिगम्या, अर्थात् कार्यदर्शनात् तत्कारणीभूतशक्तिविशेषस्यानुमान भवति । अस्मदादीनाचक्षुर्भवतु, योगिना वा तद्भवतु, नहिचक्षुरादीनासर्वार्थग्रहणेशक्ति किन्तुचक्षुषो जन्मसिद्धस्वाभाविकसामर्थ्यरूपरूपवद्द्रव्यतद्गतजातिप्रतिनियतगुणादिग्रहणे एवेति योगिचक्षुरादीनामपि रूपादिग्रहणे एवसामर्थ्यंनतुतस्यरसादिग्रहणेसामर्थ्यमभवति । मन्त्रौषधादिभ्य पटुत्वाद्यतिशयात् दूरस्थमपिसूक्ष्मतमरूपयोगिचक्षुषाविषयीभूतभवतु वा, एतावताअतीतादेरसादेर्वातद्ग्राहकत्वैनवभवतीति ।

"यत्राप्यतिशयोदृष्ट सस्वार्थानतिलङ्घनात् । दूरसूक्ष्मादिदृष्टौस्यान्नरूपेश्रोत्रवृत्तितेति

पुनरपिन्यायान्तरप्रयोगदर्शयति, **एवं च विवादास्पदबाह्याभ्यन्तरकरणपटुत्वातिशय इत्यादि** । बाह्याभ्यान्तरसाधरणकरणानाय पाटवातिशय सनोलङ्घितमयाद नातिक्रान्ता न परित्यक्तास्वस्वीयमर्यादासीमायेनतादृशोऽनुल्लङ्घितमर्याद सर्वमयकरणजातस्वस्वमर्यादायामेववर्तते इत्यर्थः । **चक्षु-**

स्पदबाह्याभ्यन्तरकरणपटुत्वातिशयोनोल्लङ्घितमर्यादैरैन्द्रियकविप्रकर्षत्वात्, परिदृश्यमानतत्प्रकर्षवदिति, इन्द्रियजनितंप्रत्यक्षंनातीतादिविषयंविषयीकरोतीति ।

भावनाधिक्येनसंजायमानतज्ज्ञानस्याधिकविषयत्वेसत्यपि,तत्पूर्वकालिकानुभवविषयादल्पविषयत्वेस्मृतित्वंस्यादधिकविषयत्वेभ्रमत्वमेवेतिनतस्यप्रामाण्यतदभावे न प्रत्यक्षत्वं,

षोमर्यादा च रूपरसगन्धस्पर्शेषुचतुर्षुरूपमात्रस्यग्राहकत्वे एव एव त्वचोमर्यादा, रूपादिषुमध्येस्पर्शादिग्राहकत्वे एव । रसनाया रसमात्रे एव,घ्राणस्यचतुर्षुगन्धग्राहकत्वे एव । चक्षुस्तैजसरूपादिषुमध्येरूपस्यैवग्राहकत्वात् । घ्राणपार्थिकपृथिवीकुकुमगन्धाभिव्यञ्जकघटवदित्यादिप्रयोगोद्रष्टव्य ऊहनीयश्चेति । **परिदृश्यमानतत्प्रकर्षवदिति** । अयमाशय योगिभिन्नेस्वपिमध्ये य कश्चित् पटुनेत्र सवृक्षाग्रैसमुपविष्टपक्षिणपश्यतिसाधारणतया, यश्चपटुतरनयन स पूर्वापेक्षयास्पष्टतयापश्यति, यश्चपटुतमनयन सततोप्यधिकपश्यति, यश्चातिशयेनहीननेत्र स नपश्यति, अन्धस्तुकदापिनपश्यति । एवश्रोत्रादिकरणेष्वपि यथायोग्यमूहनीयम् । ततश्चयोगिनामपिकरणतेजोमान्द्यप्रकर्षतरतमै रूपादिग्रहणेतारतम्यसमधिगतम्, इत्थमेवयोगिनामपिचक्षुरादिकरणतेज प्रकर्षोपिततोऽप्यधिकोऽनतिक्रान्तस्वमर्यादापिभवतीतिसिद्ध नतु योगिनइन्द्रियान्तरेणजानन्तीति भाव ।

गतप्रकरणेनयोगिज्ञानस्येन्द्रियप्रभवत्वेस्वीकृतेसर्वार्थग्राहकत्व न सभवतिलौकिकप्रत्यक्षज्ञानवदितिसमुपपादिनम् । अथयोगिज्ञानस्येन्द्रियप्रभवत्वस्वीक्रियते तथापियोगिज्ञानस्य न सर्वार्थग्राहकत्व तथात्वे च परमेश्वरेप्रमाणत्वमपियोगिज्ञानस्यनसभवतीत्युपपादयितुमुपक्रमते **भावनाऽधिक्येन** इत्यादि । तत्र भावनाया, आधिक्यतस्यपर्यन्तोऽवसान तत्रजन्मयस्यसमुत्पन्नज्ञानस्य, अधिकविषयत्वेसत्यपि=विशदनिर्भासत्वविस्पष्टप्रकाशकत्व=लौकिकविषयतानिरूपकत्वेसत्यपीत्यर्थ । तत्पूर्वकालिकेतिपूर्वकालिकानुभवगाचरात् पूर्वानुभवविपयादित्यर्थ । प्रकृतज्ञानस्याधिकोयोविषयस्तविषयप्रकाशयत । भ्रमत्वमेवस्यात्, यथा कामिनींभावयितु कामुकस्यपुरोवर्तितया अन्या एव कामिन्या प्रतिभासवदित्यर्थ । अनधिकविपयत्वेतुस्मरणत्वम्, पूर्वानुभूतसस्कारजनितस्यस्मृतित्वात् । तदुक्त—

"प्रमाणमनुभूति स्यात्स्मृतेरन्यास्मृतिपुन । पूर्वविज्ञानसस्कारमात्रजज्ञानमुच्यते ॥" इति ।

अयमाशय आचार्यस्य । यादृशपदार्थविषयकोऽनुभवस्तेन तावन्मात्रविषयकस्मरणजायते, अनुभूतस्यपुन पुन स्मृत्यभ्यासेनसस्कारबाहुल्यसपद्यते'तत्पर्यन्तेस्मरणाभ्यासेसतिजायमानस्मरणमेवप्रत्यक्षवत्, विशदविपयाभासोभवतीति । तत्र यदि प्रत्यक्षसमानाकारकंस्मरणात्मकज्ञानभवमिन्द्रियजनित स्वीक्रियते, तदातादृशयोगिज्ञानस्यप्रत्यक्षसमानाकारकस्यपूर्वानुभूतमात्रविषयकत्वात्, न परमेश्वर विषयकयतस्तत्पूर्वमीश्वरानुभवाभावेनतदुदयासभवात् । तादृशज्ञानस्यस्मृतिरूपत्वेनप्रमाणत्वाभावात् "प्रमाणमनुभूति स्यात् स्मृतेरन्या" इतिवचनात् । अनुभवत्वेसतितद्वतितत्प्रकारकज्ञानस्यैवगौतमादिभि. प्रमाणत्वस्वाकारात्—

तथापि तथात्वस्वीकारेकथंविदितविषयनियमातिक्रमणम्, अतिक्रमेकुतस्तस्यप्रत्यक्षत्वम्? इति न तादृशयोगिज्ञानंसर्वानुभवैश्वर्यवन्तमीश्वरगमयेदिति ।

"मिति सम्यक्परिच्छित्तिस्तद्वत्ता च प्रमातृता । तदयोगव्यवच्छेद प्रामाण्यगौतमेमते॥"इत्युदयनोक्ते ।

प्रमाण च प्रत्यक्षादिकपञ्चैव । न चान्यतमजनितज्ञानस्मरणतस्यमस्कारमात्रजन्यत्वात् । सस्कारस्यापिप्रमाणत्वेस्वीकृतेप्रमाणपञ्चकत्वव्याघातात् । इदमुक्तभवति "अनधिगताबाधितार्थविषयमेवप्रमाणमितिस्वाकृत्येदकथितम् । अत्राधितार्थमात्रविषयकत्वस्यप्रमाणत्वेतुकोदोषइतिविचारकैरेव विवेचनीयम् । ग्रन्थबाहुल्याद्विरतोहम् । यदियोगिज्ञानस्यस्मृतिरूपत्वेतु "यथार्थानुभवत्वलक्षणम्, अज्ञातार्थज्ञापकत्वलक्षणं वा प्रमाण्यनास्तीतिकथम् प्रमाणस्यादीश्वरप्रत्यक्षे इति । यदिअतिन्द्रियजमपि भावनाप्रकर्षपर्यन्तयोगिज्ञानम्, तदाप्रत्यक्षसामान्यस्यलोकप्रसिद्धोयोनियम सवद्धार्थग्राहकलक्षणस्तादृशनियमकथमतिक्रामिष्यतियोगिज्ञानम् । यदिकदाचित् लोकप्रसिद्धतादृशनियमस्यानिक्रमणकरिष्यति, तदाप्रत्ययत्वव्यापकतादृशनियमस्याभावे, व्यापकाभावात्, तद्व्याप्यप्रत्यक्षत्वस्यापिततोऽवश्यमेवनिवृत्तिप्रसज्येन, गुणोव्यापकद्रव्यत्वस्यनिवृत्तौतद्व्याप्यपृथिवीत्वस्यनिवृत्तिवदेव । यथावाव्यापकवृक्षत्व निवृत्तौशिंशपात्वनिवृत्तिवदितिसक्षेप ।

सूक्ष्मस्थूलसाधारणचेतनजडात्मकसर्वजगत् साक्षात्कर्तरिसर्वज्ञोसर्वनियन्तरिहेयप्रत्यनीकसर्वकल्याणगुणवतिपरमेश्वरेश्रीसीतानाथेऽस्मदादीनामल्पप्रज्ञानायोगिना वा, इन्द्रियरूपचक्षुरादिकप्रत्यक्षप्रमाणतद्विषयकप्रमोत्पादकनभवतीति। स्यादेतत् बहिरिन्द्रियनिरपेक्षकेवलमनस बाह्यार्थग्रहणेसामर्थ्याभावेपियोगज प्रकृष्टशुभाशुभादृष्टसहकृतस्यान्त करणस्य, बाह्यविषयेष्वतीन्द्रियेषु भूतभविष्यवार्तमानिकेषुचार्थसमुदायेषु कथचित् प्रवृत्तिर्भवेदपि । ततप्रकृष्टादृष्टसहकृतमनोजनितमेवप्रत्यक्षम्, इतियोगिनातदीश्वरेप्रमाणं स्यादेव । प्रत्यक्षस्यमवद्धावर्तमानार्थग्राहकत्वमितिनियमस्तु, योगिव्यतिरिक्तास्मदादिप्रत्यक्षविषयक एव । लौकिकविषयतासम्बन्धेनप्रत्यक्षप्रतितादात्म्येनयथायथविषयादे कारणत्वावगमात् ।

अत्रब्रूम प्रकृष्टादृष्टविशेषसहकारेणापिप्रमाणिकसर्वार्थग्रहणमेवभवतुनामसर्वेश्वरेचैकस्मिन् न किञ्चिदपिप्रमाणपश्यामि । अतोनक्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टपुरुषविशेषस्यसिद्धिर्योगिप्रत्यक्षेणापिसभवतीत्याक्षेपकाभिप्राय ।

परमेश्वरध्यानजनित परमेश्वरविषयकज्ञानमेवपरमात्मविशेषमानसप्रत्यक्षप्रमाणपरमेश्वरे, इत्यपिनिरस्तमेवभवतीतिज्ञेयम् । तथाहिपरमेश्वरस्यध्यानपरज्ञानमन्तरा न सभवति—तत्रपरमात्मज्ञानप्रत्यक्षेणभवतीत्यधुनैवनिराकृतम् नाप्यनुमानम्, गमकम् । अव्यभिचरितलिङ्गाभावात् । नच कार्यत्वादिनातत्सिद्धि, कार्यत्वहेतोर्मेघमालादौव्यभिचारात् । नोपमानतत्रप्रमाणम्"नतस्यकार्यकरण च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्चदृश्यते" इत्यादिश्रुत्यैवतत्सदृशस्यनिराकरणात् । अतएव "गगनगगनाकारसागर सागरोपम । रामरावणयोर्युद्धरामरावणयोरिव" इत्यादावन्वयाकारएवस्वीकृतोपमा, उपमानस्याभावात् ।

नापि प्रत्यक्षातिरिक्तंतत्रेश्वरंप्रमाणम् । तत्किमनुमानमागमो वा ? तत्रागम प्रमाणंपश्चाद्विचारयिष्यते । प्रथममनुमानंनिराकर्तुंविकल्पयामि, अनुमानमपिविशेषतो

तस्मादन्ततोगत्वाशास्त्रस्यैवेश्वरेप्रमाणत्ववक्तव्यम् । शास्त्रचप्रवृत्तिनिवृत्तिपरकत्वात्कार्यार्थे-एवप्रमाणम्,नतु सिद्धार्थेप्रमाणम्—"आम्नायस्यक्रियार्थत्वादानर्थक्यमतदर्थानामितिजैमिनिनयात्। तथाच-कार्यपरक शास्त्राशयेनेश्वरेतात्पर्यम् । किञ्चश्रुतिपौरुषेयत्वमते—शद्ब ककारादिरनित्य कार्यत्वादित्यनु-मानेन तस्यानित्यत्वम् । नचकण्ठताल्वाद्यभिघातेनाभिव्यज्यते एवशब्द निष्पीडनेनतिलेभ्यस्तैलवत् इति वाच्यम् तथासत्युच्चारणभेदेनवर्णेषुभेदप्रतिपत्तिर्नस्यात् तथाचवर्णसमुदायात्मकपदस्यानित्यत्व, तत-श्चपदसमुदायस्यवाक्यस्यतथात्वम् एवमेववाक्यसमुदायात्मकवेदस्यानित्यत्वमीश्वर रूपपुरुषविशेषाज्जा यमानत्वेन, सजातीयोच्चारणानपेक्षोच्चारणकर्तृतयाश्रुते पौरुषेयत्वमेव"यस्य नि श्वसितवेदा" इत्यादि स्मरणात् । एतादृशपौरुषेयत्ववादिमतेपुनरत्रपरस्पराश्रयदोषोपि भवति, तथाहिपरमेश्वरसिद्धौतदुच्च-रितत्वात् वेदस्यप्रामाण्यसेत्स्यति, अर्थात्, क्लेशकर्मविपाकादिराहित्येनेश्वरस्यनभ्रमप्रमादौ, तदभावा-न्नानृतवादित्वम्, तस्मात्पुरुषविशेषादुच्चरितोनानृतारूपोपितुसत्यएवेतिवेदस्यप्रमाण्यसिद्ध्यति, तत-श्चप्रमाणभूतवेदज्ञापनात्, ईश्वर सेत्स्यति । एवञ्चप्रमाणभूतवेदसिद्धौपरमेश्वरसिद्धि परमेश्वर-सिद्धोचवेदस्यप्रमाण्यमित्येवरूपेणपरस्पराश्रयग्रस्तत्वात्, इति नशब्दज्ञाप्योहरिरिति । अनुमानप्रमाण-कत्वतुतस्याचार्येणस्वयमग्रेदर्शयिष्यते । एवञ्चसाधकाभावेनेश्वरासिद्धौतज्ज्ञानासिद्धिरितीश्वरज्ञानामूल-श्वरप्रणिधानाद्यसिद्धिरिति न तद्व्यापियोगिज्ञानगम्यत्वमिति । एवलौकिकयौगिकभेदेनद्विप्रकारक-स्यापिप्रत्यक्षस्यनेश्वरेप्रमाणत्वम् ।

॥ इतीश्वरेप्रत्यक्षप्रमाणनिरसनप्रकरणतत्त्वदीप ॥

अथयथाप्रत्यक्षप्रमाणमीश्वरेपदनादघातितथाप्रमान्तरस्यापीश्वरेनप्रमाण्यमितिकथयितुमुपक्रमते **नापिप्रत्यक्षातिरिक्तमित्यादि** । मतविशेषेतावत् त्रिविधकेवलान्वयिकेवलव्यतिरेक्यन्वयव्यतिरे-किभेदात् । तथान्यत्र विशेषतोदृष्ट सामान्यतोदृष्टमित्येवद्वैविध्यमेव प्रतिपादयामास, यत्रखलुसिषाधयि-तसाध्यम्, प्रत्यक्षम् तस्यप्रत्यक्षेणान्येनसहभूय सहचारदर्शनभवति ततस्तादृशसहचारबलात्साध्य-सामानाधिकरण्यरूपव्याप्तेर्निश्चयो भवति, तत हेतुवान् पक्ष इतिपक्षधर्मता ज्ञानमुदेति तदनन्तरसाध्य-निरूपितव्याप्तिविशिष्टहेतुमान् पक्ष इति ज्ञानसाध्यव्याप्योहेतु पक्षे इति वा विशिष्टवैशिष्ट्यावगाहि-ज्ञानपरामर्शोजायते, तदनुसाध्यवान् पक्ष इत्यनुमितिर्जायते, यथा प्रत्यक्षमहानसीयवन्हिनिरूपित व्याप्तिमता धूमेन वन्ह्यनुमान तत् विशेषतोदृष्टोऽनुमानम् । अर्थात् यत्रसाध्यरूपस्वलक्षणो-वन्ह्यादि प्रत्यक्ष पूर्वदृष्टश्च, तत्रक्रमपरपरयाजायमानमनुमानमेतत् यथा महानसे प्रत्यक्षदृष्टवन्हे पर्वतेधूमेनग्रहस्तत्रेदमनुमानम् । यत्रतुसाध्यात्मकस्वलक्षणोनप्रत्यक्षयोग्यातीन्द्रियादिकारणेन, तत्र **सामान्यधर्मदर्शनेनजायमानमनुमानसामान्यतोदृष्टानुमानम्, यथेन्द्रियविषयकानुमानम्, अत्रेन्द्रिय-**

दृष्टंसामान्यतो दृष्टं वा ? तत्रनाद्यःसर्वथाऽप्रत्यक्षेपरमेश्वरेसाध्यप्रत्यक्षपूर्वकगृहीतव्याप्तिकधूमादिभ्योजायमानस्यैवविशेषतोदृष्टानुमानत्वेनसाध्याप्रत्यक्षेतदनुमानस्यैवोदेतुम--शक्यत्वात् । नहि अज्ञातवह्निकाःपुरुषाव्याप्तिग्रहणाभावात् तादृशधूमेववह्निपर्वतेनिश्चिन्वन्ति । नवासर्वार्थसाक्षात्कारसमर्थेभगवतिसामान्यतोदृष्टानुमानमपि, तादृशहेतोर्दर्शनानुपपत्तेः ।

त्वसामान्यविशेषो न दृष्टमर्वाग्दृशा, किन्तुकरणत्वसामान्यस्यकरणविशेषोदृष्टोवास्य इति करणत्वसामान्येन, रूपादिविज्ञानसकरणकक्रियात्वादित्यत्रपरिशेषतयाकरणत्वसामान्यविशेषइन्द्रियत्वमनुमित भवतीति तत्रद्विविधेऽनुमानेविशेषतोदृष्टस्येश्वरेप्रमाणत्व न सभवतीतिदर्शयितुमाह **तत्रनाद्यःइति**। तत्रानुमानद्वयेविशेषतोदृष्टानुमानमीश्वरेनपदमादधाति, कुत ? तत्राह **सर्वथाऽप्रत्यक्षेपरमेश्वरे** इत्यादि । सर्वथेति,इदविशेषतोदृष्टानुमानम् , सकलकरणातिक्रान्ते, न समर्थम् , कथनसमर्थम् तत्राह, **अप्रत्यक्षेति** =तदसाधारणाकारग्रहणपूर्वकविशिष्टतत्सहचारदर्शनाधीनतद्व्याप्तिज्ञानविषयलिङ्गरूपस्य विशेषतोदृष्टानुमानस्यासाधारणाकारेणसर्वज्ञत्वादिनाऽप्रत्यक्षत्वादीश्वरस्यतत्सहचारदर्शनमूलकव्याप्तिग्रहस्यहेतुविशेषेऽसभव ईश्वरे इति ।

विशेषतोदृष्टानुमानस्यानुमानात् पूर्वव्याप्तिग्रहणसमयेविशिष्टासाध्याग्रहणविनाऽसभवदर्शयितुमुपक्रमते **नहिअज्ञातवन्हिकाः** इत्यादि । अर्थादनुमानात्पूर्वमसाक्षात्कृतवन्हिविशेषाअनुमानारोवन्हित्वावच्छिन्नवन्हिनिरूपितहेतुव्यापकसाध्यसामानाधिकरण्यलक्षणव्याप्तिधूमविशेषेगृहीतुसमथा नप्रभवन्ति । सिषाधयितवन्हिसामान्यस्यानुमानपूर्वमेवार्थात् व्याप्तिग्रहणकालेएवमहानसादौदृष्टत्वात् , तत्रधूमानुमानस्यविशेषतोदृष्टत्वमितिनाम भवति । वन्हित्वावच्छिन्नेनसामान्यतोव्याप्तिग्रहणादेव, यत्रवन्हित्वातिरिक्ताकारविशेषस्यपर्वतीयपक्षत्वादेरपिपक्षधर्मतावलात् सिद्धिमिच्छन्ति, यत्र वा महानसीयवन्हीतरवन्ह्यभाववान् पर्वतइत्याकारकेनरबाधसहकारकालेसामान्यपरामशादेवमहानसीयवन्हिमान् पर्वतइत्याकारकानुमितिमिच्छन्तितत्रपुनर्धूमहेतुनाऽनुमानजायतेतदनुमानमेव सामान्यतोदृष्टानुमानमिति । अथवा यद्व्यक्ते कालदेशविशेषनियन्त्रितरूपेणपूर्वज्ञानजातम् , तद्व्यक्तेस्तथाविधस्यानुमापकमनुमानमेवविशेषतो दृष्टमिति । यथामहानसीयवन्हे पूर्वज्ञानजातकालान्तरेतत्रैवतदनुमापकधूमादिकविशेषतोदृष्टम् । अथवा तद्रूपवानुतद्रसादिकमेवविशेषतोदृष्टानुमानमिति । धूमत्वधर्मपुरस्कृत्यधूमेनजायमानवन्हित्वावच्छिन्नविषयकमनुमानतुसामन्यतोदृष्टमेव नतुविशेषतोदृष्टमिति । सर्वथापिविशेषतोदृष्टमनुमानमीश्वरगमयितु न समर्थम् , तत्रपुरुषविशेषरूपेश्वरस्यातीन्द्रियतयातत्प्रत्यक्षस्यासभवादितिसक्षेप ।

सामान्यतोदृष्टानुमानमपि परमेश्वरेऽनुमापकतयाप्रमाण न भवतीति दर्शयितुमुपक्रमते **नवा सर्वार्थसाक्षात्कारसमर्थे** इत्यादि । साधनेच्छाविषयीभूतविशेषाकारव्यतिरिक्तसामान्यधर्मावच्छिन्नगृहीतव्याप्तिकत्वमेवहेतो सामान्यतोदृष्टानुमानत्वम् , यथाचाक्षुषादिज्ञान सकरणकं क्रिया-

विवादास्पदं जगत्, एकचेतनजनितम्, अचेतनाजन्यत्वात् स्वस्थस्वशरीरवत्। एवं विवादास्पदंजगत् बुद्धिमत् कर्तृकंकार्यत्वाद्धटादिवदिति। आभ्यामनुमानाभ्यां जगत्कर्तृतयापरमेश्वरसिद्धिरितिन्यायानुसारिणोवदन्ति।

त्वात् छिदादिक्रियावत् अत्रेन्द्रियत्वजातीयकं करणसिपाधयिषितम्, न तत्प्रत्यक्षम्, अपितुकरणत्वजातीयकवास्यादिकनथा, तत्रसिपाधयिषितविशेषाकारातिरिक्तकरणत्वसामान्यधर्मानच्छिन्नेनसहपूर्वक्रियात्वहेतोर्व्याप्तिग्रहणात् तेनेन्द्रियजातीयककरणस्यानुमानभवतीतितत्सामान्यतोदृष्टमितिकथ्यते। एतादृश सामान्यतोदृष्टानुमानप्रभवति परमेश्वरे परमेश्वरस्यस्वरूपतोऽदृश्यतयातद्गताविशेषधर्मस्य सामान्यधर्मस्यादृष्टत्वेनतत्रव्याप्तिग्रहणासभवात्। ईश्वरे सर्वधर्मसामान्यरूपविशेपरूप वा निषेधतिश्रुति "अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययनथाऽरसनित्यमगन्धवच्चेति, "नतस्यकार्यंकरण च विद्यते" इत्यादि, ततश्चेश्वरवत्तदीयधर्मस्याप्यप्रत्यक्षतयातेनसहव्याप्तेरग्रहादिति।

॥ इतीश्वरेऽनुमानस्यप्रामाण्यासभवोपक्षेपप्रकरणेतत्त्वदीप ॥

विशेषतोदृष्टानुमानसामान्यतोदृष्टानुमानमीश्वरसाधनाय न प्रभवतीतिकस्यचित्पूर्वपक्षमुपश्रुत्य-तर्करसिकास्तर्ककेवलेनैवतत्वसाधनेकुशला प्रत्यवतिष्ठन्ते। भवतुनामश्रुत्यादिविरोधादृश्यत्वाच्चपरमेश्वर प्रत्यक्षाग्राह्य किन्तुद्वितीयप्रमाणेनतत्साधयामितत्राह **विवादास्पदंजगदित्यादि**। तत्र जायते इति जगदितिव्युत्पत्यासर्वंकार्यद्रव्यजातमितिगृह्यते। तच्चजगत्, एककर्तृकनवेतिप्रतिपत्त्यासशयविशयीभूतंपक्ष एकचेतनकर्तृकमितिसाध्यम्, अचेतनेनाजन्यत्वादिति हेतु। अन्नाभावादिरोगग्रस्त शरीरस्य स्थितो नानाचेतनधीनत्वेन न दृष्टान्तसभवति तत्राह **स्वस्थशरीरवत्** नीरोगस्वशरीरवदित्यर्थ। तस्यस्वात्मैकाधीनत्वदर्शनात्।

अचेतनारब्धत्वम्, अचेतनसमवायिकारणकद्रव्यत्वरूपमेव। समवेतद्रव्यत्वरूपमितिवेति केचन, तदेवहेतुतयाविवक्षितम्। तेनारब्धत्वस्यैवलिङ्गत्वसभवे, अचेनारब्धत्वस्यव्यर्थविशेषणत्वश कापि न भवति, एकस्यहेत्वन्तरादूषकत्वनियमेन, हेत्वन्तरेणाभिमतसाध्यसिद्धौहेत्वन्तरस्यसभवेपि न तत्र कोपिदोप प्रथमेनयत्कर्तव्यहेत्वन्तरेणापिसम्पादनादिति। एव क्रमेणैकस्यविधातु साधकमनुमानकथितम्। परमेश्वरस्यसर्वज्ञत्वादिविशिषयकमनुमान्तरमपिदर्शयति **विवादास्पदंजगत् बुद्धिमत् कर्तृकमि त्यादि**। एतदनुमान "क्षित्यङ्कुरादिकसकर्तृककार्यत्वात् घटादिवदित्यस्मिन्ननुमाने एवपर्यवसित भवति। तत्रकर्तृत्वमुपादानगोचरापरोक्षज्ञानचिकीर्षावत्वरूपमेव, तेनघटादिकार्येचेतनकुलालात्मकबुद्धिमत्कर्तृकत्ववदिहापितथात्वसिद्ध्यति। इत्थचजगदात्मकपक्षवृत्तिना कार्यत्वलिङ्गेनतत्रकश्चित् कर्ता कुलालादिवदेवानुमितोभवति। तस्यकार्यत्वहेतोर्जगदात्मकपक्षसम्बन्धबलेनपरमेश्वरस्यसर्वज्ञत्वादिकमनुमानबलात्सिद्धमेवभवति।

अर्थात् कार्यंसकर्तृककार्यत्वाद् घटवदित्यनुमानफलितत्तदेव च विवक्षितम्। न चैव पक्षतावच्छेदकहेत्वोरेकत्वेऽनुमाननोदेश्यतानिवाच्यम्, अत्रपक्षतावच्छेदकावच्छेदेनसाध्यसिद्धेरुद्देश्यत्वात्, तत्रपक्षता-

अयमाशयः । यदेतत्परिदृश्यमानंकार्यजातंतत्सर्वस्वकीयोपादानोपकरणसम्प्र-दानप्रयोजनादिज्ञातृत्वेनविरचितमेवावगम्यते, यथाघटगृहादिकम् ।

विवादास्पदीभूतंपृथिवीमहार्णवादिकंसर्वंकार्यमितितदपिचेतनपूर्वकमेवेतिज्ञायते ।

वच्छेदकसामानाधिकरण्येनसाध्यसिद्धिघटितव्यापकसामानाधिकरण्यलक्षणव्याप्तिनिश्चयस्यविरोधेमाना भावात् । अर्थात, यस्मिन्पक्षेसाध्यसिपाधयित तत्रैवप्रत्यक्षादिनासाध्यसिद्धौ, तन्निश्चयस्तत्रावपक्षेऽनु-मितिंविरुणद्धि, व्यक्त्यन्तरेसाध्यसिद्धिर्नविरुणद्धितामनुमितिम् । तथाचपक्षतावच्छेदकसामानाधिक-रण्येनसाध्यसिद्धि पक्षतावच्छेदेनजायमानानुमितिंप्रतिवध्नाति । पक्षतावच्छेदकावच्छेदेनसाध्यसिद्धि पक्षतावच्छेदकावच्छेदेनजायमानानुमितिंपक्षता न समानाधिकरण्येनजायमानानुमितिं च प्रतिवध्नात्येवेति निश्चय । विशेषतएतत्तत्वजगदीशकृतपक्षताग्रन्थेविलोकनीयजिघृक्षुभि ।

नच पक्षतावच्छेदकहेत्वोरेकत्वेउपनयादिवाक्य न समञ्जसस्यात्, उद्देश्यतावच्छेदकविधेय-योरेकत्वेशब्दासभव घटवान्घटवानितिवदितिवाच्यम्, एव सतिस्वरूपसम्बन्धविशेषकार्यत्वपक्षतावच्छे-दकम्, प्रागभावप्रतियोगित्वात्मकोत्पत्तिरूपकार्यत्वस्यहेतुकरणेनतयो परस्परविभिन्नत्वेनपक्षताव-च्छेदकहेत्वोरेकत्वमायातीतिदोषस्यनिरवकाशीकृतत्वादितिसङ्क्षेप । एवम्—

"कार्यायोजनधृत्यादे पदात्प्रत्ययत श्रुते । वाक्यात्सख्याविशेषाच्चसाध्योविश्वविदव्यय ॥"

इत्युदयनोक्तप्रकारेणकार्यत्वहेतुवत् हेत्वन्तरेणापिपरमेश्वरानुमानसभवतीतिवोध्यम् ।

यद्यपीश्वरसाधकसामान्यतोदृष्टानुमानप्रदर्शितमितितस्यातिसक्षिप्तत्वादल्पधिया न सुखेनवोध जननेसमर्थमितिमत्वातमेवविशदयितुमुपक्रमते **यदेतत्परिदृश्यमानंकार्यजातमित्यादि** कार्यवर्ग स्यद्रव्यरूपस्यतदेवोपादानतत्समवायिकारणयदन्तोगत्वापरमाणव स्वसजातिया यथावायवीयद्वयणुकादि कार्याणामुपादानकारणवायवीया परमाणव तेषु अदृष्टवदात्मसयोगेनाद्यक्रियाजायते,तेनकर्मणापूर्वदेशा-द्विभाग प्रदेशान्तरेणतेषासयोग । ततश्चपरमाणुसयोगोऽसमवायिकारणम्, अदृष्टमीश्वरेच्छादिक यथायथनिमित्तकारणम्, तदेवपरमाणुभ्योद्वयणुकोत्पत्तिस्ततस्ताभ्यांद्वयाणुकाभ्या त्र्यणुकादिकजायते, एव क्रमेणमहावयविघटादिकार्याणामुत्पत्तिर्भवति । तेनकार्यवर्गेणयथादृष्टजीवानाफलोपभोगोभवति । तत्र यद्यपिधर्माधर्मजीवजनिर्मितसर्वदाजीवसमवेतमपीति । तथाप्यज्ञत्वाज्जीवो नो तानिनियमयति-नियामने समर्थोभवति, किन्तुतददृष्टानानियामक सर्वशक्ति सर्वज्ञएक पुरुष सिद्ध्यतीति मूलप्रदर्शिता-नुमानस्य सक्षिप्ताशय । अक्षरार्थस्त्वित्थम्तथाहि **उपादानोपकरणमित्यादि,** तत्रोपादानसमवा-यिकारणम्, समवायिकारणासमवायिकारणनिमित्तकारणै कार्यस्योत्पत्तिर्भवतीतिनियम । तत्रन्यायप-रिभाषायायत्समावायिकारणतस्यैवदर्शनान्तरे परिणामवादउपादानकारणमितिनामभवति । उपकरण— सहकारिकारणम्, अत्रैवोपकरणकारणेऽसमवायिकारणनिमित्तकारणानाकुलालचक्रचीवरजीवादृष्टेश्वरे-च्छाप्रयत्नादीनासमावेशोभवति । सम्प्रदानमुपभोक्तायस्यसुखदु खोपभोगायसर्गोभवतिसजीवविशेष ।

नचैतेषुमहार्णवादिषुहेतुःस्वरूपासिद्धिः, एतेषामवयवित्वेनतत्सिद्धेः । इहचान्त्यावयविघटादितआरभ्यद्व्यणुकपर्यन्तंसोपादानकमेव । तदुपादानमन्त्यावयवरूपाश्चतुर्विधाः परमाणवएवसकलजगतः । तेचवायवीयास्तैजसाआप्याःपार्थिवाश्च । तेषुप्राथमिकपरिस्पन्दस्तदनुकूलादृष्टवदात्मसंयोगासमवायिकारणकोभवति, तत्रोपकरणंभोक्तृनिष्ठधर्माधर्मलक्षणमदृष्टमेव । प्रयोजनंतुसृष्टेरनेकप्रकारकार्थक्रियाविशेषात्मकः । फलभो-
प्रयोजनक्रियमाणकार्यजनितफलम् । उपादानादीना=समवायिकारणएतेषामुपादानादीनाय सर्वेदितासाक्षात्करणशील कर्ताकुलालस्थानीयो यश्चेतनविशेषस्तेननिमित्तकारणेनरचितसम्पाद्यमानकार्यजातघटादिकदृष्टमिति । एतावताऽशयप्रकाशनपरकवाक्यजातेनकार्यत्वहेतो सकर्तृकत्वव्याप्यमिति । अनुमानाङ्गभूतमुपनयनिगमन "कार्यं च पृथिव्यादिकमित्यनेनप्रदर्शितम् । अत्रकर्तृत्वमुपादानादिगोचरापरोक्षज्ञानचिकीर्षाकृतिमत्वरूपमेवविवक्षितम । कार्यं च पृथिव्यादीति, विवादास्पदमितिवाक्यम्, सकर्तृत्वाकर्तृकत्वविप्रतिपत्तिविषयीभूतम् । सदिग्धसा यधर्माधर्मिपक्ष" इतिमदिग्धसाध्यकत्वरूपपक्षत्वसमुपपद्यतेइत्यपिसूचितम् । अथवा सिषाधयिषाविरहविशिष्टसिद्ध्यभावएवपक्षतेति ।

हेत्वभाववान्पक्ष स्वरूपासिद्धि, अर्थात् अस्मीन्पक्षे,हेतुत्वेनाभिमतस्याभावोभवति, तादृश हेतौस्वरूपासिद्धिर्भवति, यथाह्रदोवन्हिमान्धूमादित्यत्रह्रदात्मकपक्षप्रत्यक्षेणधूमाभावोगृह्यते, तदाधूमवान्ह्रदइतिज्ञाननजायते, धूमवत्ताबुद्धिंप्रतिधूमाभाववत्तानिश्चयस्यप्रतिबन्धकत्वात्, ततश्चपक्षतानिवृत्यातद्द्वारासाध्यव्याप्यवान् पक्ष इतिपरामर्शाभावान्नानुमितिरुदेति । अयदोष साक्षादनुमितिकरणपरामर्शनिरुन्धानफलतोऽनुमितिप्रतिबन्धात्येव । एवमेवातिविस्तृतपृथिवीसमुद्रादौविरहदर्शनेनकार्यत्वहेतु स्वरूपासिद्धमितितदपनोदनायोपक्रमते **नचैतेषु** इत्यादि ।

परिहरति **एतेषामवयवित्वेनेत्यादि** । यथाघटादौ, अवयवित्वेविद्यतेइतिकार्यत्वविद्यते एवेतिनतत्रघटादौकार्यत्वाभाव प्रत्युतकार्यत्वतथैवपृथिवीमहार्णवादावपि, अवयवित्वसमस्तीतितत्रापिकार्यत्वस्यानुमानसिद्धतयानासिद्धत्वमहार्णवादिपक्षे इति । इहचान्त्यावयविघटादितआरभ्यकपालिकात्रसरेणु, द्व्यणुकपर्यन्तमवयवि, सर्वकार्यजातद्रव्यात्मकचरमावयवपरमाणुसयोगात्मकसमवायिकारणजन्यम्, अर्थात् परमाणव समवायिकारणतदीयसयोगोऽसमवायिकारणमितिताभ्याजनितमितिक्रम । तत्रोत्तरोत्तरकार्यापेक्षयापूर्वपूर्वकार्यद्रव्येऽवयवानामल्पत्वमाधिक्यचेति । अवयवसयोगविशेषजन्यत्वकपालिकादौप्रत्यक्षसिद्धत्रसरेणुप्रभृतिषुअनुमानसिद्धमेव, त्रसरेण्वादिसमवायिकारणस्यादृश्यत्वात्, कपालिकादि समवायिकारणस्यप्रत्यक्षसिद्धत्वाच्चेति।अन्योपादानत्वनामअवयवित्वासमानाधिकरणावयवत्वरूपमेवेति । तेचपरमाणवश्चतु प्रकारका पृथिवीजलतेजोवायवीया गन्धशीतोष्णेरणस्वभावका । ते इमेचतुर्विधस्यकार्यद्रव्यस्यसमवायिकरणरूपा । तत्रपरमाणूनासर्गाद्यकालिकारभकसयोगोत्पादकक्रियारूप आदिस्पन्दोऽदृष्टवदात्मसयोगलक्षणासमवायिकारणजन्य । एतावतैवश्रीरामानन्दवेदान्तसिद्धान्तेऽदृष्टानामुपकरणत्वकथितम् ।

क्तारोजीवाएवसम्प्रदानम् । नचेमेजीवाःस्वसमवेतमपिधर्माधर्ममदृश्यत्वाद्द्रष्टुंप्रभवन्तीति जीवव्यतिरिक्तःकश्चित्सकलभुवननिर्माणनिपुणःसर्वज्ञःसकलैश्वर्यसम्पन्नः सर्वशक्तियुतः पुरुषःसामान्यतोदृष्टानुमानेनसिध्यतीति ।

सोयंनैयायिकविचारःपलालपुञ्जवदसारोविकल्पासहत्वात्, तथाहिपृथिव्यादेरुत्पत्तौस्थितौ वा,एकचेतनाधीनत्वंसाध्यते, तत्प्रवृत्तौ वा,एकचेतनाधीनत्वंसाध्यते । तत्र न प्रथम द्वितीयकल्पौसंभवतः, अन्वयदृष्टान्तस्यनीरोगदेहस्यसाध्यविकलत्वात् । न

आद्यपरिस्पन्दस्यादृष्टमेवासमवायिकारणनतुकार्यद्रव्यस्यसमवायिकारणगतसयोगासमवायिकारणत्वमित्यत्रतर्कबलेनसाधककणादमुनिप्रदर्शितसूत्रमेवप्रमाणम् "अग्नेरूर्ध्वज्वलनवायोस्तिर्यक्पवनमणूनाममनशश्चाद्यकमादृष्टकारितमिति,अस्यार्थस्तद्भाष्यादेवविशेषतयाऽवगन्तव्य । **प्रयोजनमिति** महदायासेनसम्पाद्यमानसर्गप्रयोजनमनवधिर्जीवोपकारप्रकारभेद सृज्यमानपदार्थबाह्यानेकप्रकारकार्थक्रियारूपएवनानाविधभोगनिष्पादरूपोऽनन्तएवेतिभाव । सम्प्रदान च साक्षादेवपरस्यानदुभयाभ्या वा कार्यप्रयोज्यभोगमनुभवन्तोजीवनिकाया ।ते एव यथायथसर्वपदार्थभोक्तारोभवन्ति।एतादृशसर्वप्रकारकपरमाणुसर्वजीवादृष्टशुभाशुभलक्षणकर्मसर्वजीवोपकाररूपसकलप्रपञ्चोपादानोपकरणप्रयोजनसाक्षात्कर्तृत्वादिजीवराशिषु नसभवति, अल्पज्ञत्वादितिदर्शयितुस्वसपादितस्वकीयादृष्टसाक्षात्कर्तृत्वयदाजीवस्यनसभवतिनदा, उपर्युक्तपदार्थेषुकाकथेत्याशयेनाह **नचेमेजीवाःस्वसमवेतमपिधर्माधर्मे**त्यादि,यस्मात् स्वसपादितस्वस्मिन् सदावर्तमानमप्यदृष्टजातप्रभवति,तस्मात् तदतिरिक्त सर्वज्ञ सर्वशक्तिसम्पन्न पुरुषविशेषोऽधिकरणसिद्धान्तसिद्ध सिद्ध्यति।'यत्सिद्धावन्यप्रकरणसिद्धि सोऽधिकरणसिद्धान्त 'इतिगौतमीयन्यायसूत्रम्। अस्यार्थ , यस्यसिद्धिविनाप्रकृतार्थोनसिद्ध्यति, तथाभूत प्रकृतार्थसिद्धेर्नान्तरीयकतयासिद्धयन्नर्थोऽधिकरणसिद्धान्तइतिभाव । एवञ्चसकलार्थसाक्षात्कारित्वमन्तरेणक्षित्यादे कर्तु पुरुषविशेषरूपस्यसकर्तृकत्वलक्षण प्रकृतार्थो न सिद्ध्यतीतिविशिष्टकर्तृत्वलाभोऽधिकरणसिद्धान्तमतेनभवतीति फलति ।

॥ इतीश्वरेसामान्यतोदृष्टानुमानस्यप्रमाणताप्रतिपादकप्रकरणेतत्त्वदीप ॥

नैयायिकाभिमतेश्वरसाधकमाननिरसितुमीमासका प्रत्यवतिष्ठन्ते—**सोयंनैयायिकविचारःपलालपुञ्जवदसारः** इति । यथापलालसमुदायोऽसारोऽतीवनिर्बलस्तथैवतदभिमतेश्वरसाधकैकचेतनाधीनत्वादिहेतुप्रयोगोपिनिष्फलोभवन्नसारएवेति । असारतामेवतदीयहेत्वादावुपपादयितुमाह, **विकल्पासहत्वादि**त्यादि अस्यक्षित्यादेरेकचेतनायतत्वनिरस्यति । महार्णवमह्यादेर्जन्मनिएकचेतनहेतुकत्वमाध्यते ? अथवा पृथिव्यादिस्थितेरेकचेतनहेतुकत्वप्रसाध्यते,अथवा भुवनादिप्रवृत्तेस्तथात्वसाध्यते ? तत्रप्रथमद्वितीयविकल्पयोर्योऽन्वयदृष्टान्तोनिरोगदेह प्रदर्शित सच साध्यविकलस्तथा च व्याप्यत्वासिद्धिर्व्यभिचारश्च दूषणमापतति । तत्र नीरोगदृष्टान्तेसाध्यरहितमेवोपपादयितुमाह—**नखलु** इत्यादि । मानवीयशरीरोत्पत्तिस्थित्यो स्वसमवेतशुभाशुभादृष्टद्वारेणापिकारणमवश्यमेववक्तव्यम् , कार्यजातस्यादृष्टत्वनियमात् । तच्छरीराधीनोपभोगोपकारभाजामन्येषा तु तत्रादृष्टद्वाराकारणत्वतद्देहिनइवास्तीति, एकचेत-

खलु एकचेतनाधीनोत्पत्तिस्थितिकंशरीर भवति, ये जीवायन्शरीराधीनसुखादीनांभोक्तारो भवन्ति, तेषा तदुचितकर्मशालिनाममेषामेवतद्देहिनडवतदुत्पत्तिस्थितिनिमित्तत्वं भवति । अपिच शरीरावयविनस्वावयवसमवायस्वरूपास्थितिरवयवसम्बन्धविनापरचेतयितारनापेक्षते । या पुनःप्राणनलक्षणास्थितिश्चेतयितारमपेक्षते, न सा पृथिव्यादिपक्षे संभवतीतिस्थितिर्नैकरूपापक्षसपक्षयोर्विद्यते । एकचेतनाधीनप्रवृत्तित्वेतु प्रबलानेकजनप्रयत्नचालितरूपाषाणशिलादौव्यभिचारात् जन्यत्वमात्रहेतुतएवैतत्साध्यसिद्धौनीलधूमादिवद् व्यर्थविशेषणतापि ।

नाधीनोत्पत्तिस्थितिकत्वर्नारोगदहरूपदृष्टान्तेनास्त्येवेति । द्वितियविकल्पेस्थितिशब्दार्थविकल्पद्वारेण दूषणान्तरमपिदर्शयितुमाह **अपिच** इति । शरीर च अवयविचेनिशरीरावयवि, तस्येतिकर्मधारय । अवयवसमवेतोत्पादकसमवेतेऽतिः ढेसतिस्वावयवसमवेतत्वलक्षणास्थिति शरीरस्यनिरावाधघटपटादिवदतिप्रसिद्धैवेति, नैताटशस्थितेश्चेतनसापेक्षत्वमस्ति । प्राणवृत्त्यधीनाशैथिल्यावस्थानरूपाशरीरस्थितिस्तुजीवनयोनियत्नकारणकत्वाद्भवतुनामचेतनशापेक्षा, तत्र न कोपिविवाद —

"यत्नोर्जीवनयोनिस्तुसर्वथाऽतीन्द्रियोभवेत । शरीरेप्राणसचारेकारणपरिकीर्तितमिति ॥"

दृष्टान्तेसाधनस्यव्यापकतयागृहीतेवप्रकारस्थितिस्तुपक्षाभिमतपृथिवीप्रभृतिकेनैवविद्यते । ततश्चकार्यत्वावच्छेदेन, एवप्रकारकैकचेतनाधीनस्थितिकत्वसाधनेआशिकोवाधोभवतीति वाधापहृतविषयमाननसाध्यसादनायप्रभवतीति । तृतीयविकल्पेदोपदर्शयितुमुपक्रमते **एकचेतनाधीनप्रवृत्तित्वे** इति । अनेकप्रबलजनचलनप्रवृत्तिमतिमहारथादामहापाषाणखण्डादाचसाध्याभाववतिहेतोरनेकान्तत्व दोषोपिजायत, तथाचायोगोलकधूमवत् द्रव्य वादित्यत्रधूमाभावरूपसाध्याभाववत्ययोगोलकहेतोर्विद्यमानतयाताद्दशद्रव्यत्वहेतोर्व्यभिचरितत्वयानसाधकत्वमपित्वसाधकत्वतथैवप्रकृतेप्रकृतहेतोरपिव्यभिचरितयानसाधकत्वमिति । ननु व्यभिचारादिदोषदुष्टत्वेहेतो कोदोष ' इतिचेत् सत्यम् , अयमाशय लक्षण हिलक्ष्यस्येतरभेदसाधनायभवतीतिनियम । तत्राव्याप्त्यतिव्याप्त्यसभवदोपरहितयल्लक्षणतदेवलक्ष्यस्य स्वेतरभेदप्रकारकानुमितागमकंस्यात् , तत्रयद्यतिव्याप्तिदोषाघ्रातलक्षणभवेत् , तदागास्त्वेतरेभ्योभिद्यते, शृङ्गित्वादित्यनुमानप्रयोगेहेतो शृङ्गित्वस्यगवेतरभेदीयावतिमहिषेसत्वेनव्यभिचारितयासा यसाधकत्व न स्यात् । एवलक्षणस्याव्याप्तिदोषग्रस्तत्वेताद्दशलक्षणेन, इतरभेदानुमानेभागासिद्धिपक्षतावच्छेदक सामानाधिकरण्येनहेतोरभावेभागासिद्धदोषस्यप्रसरात् । असभवदोषग्रस्तत्वेलक्षणस्य तेनहेतुना स्वेतर भेदानुमानेहेतोअसभवदोषवत्वेस्वरूपासिद्धिरेवदोष पक्षतावच्छेदकावच्छेदेनपक्षेहेतोरभावेसत्येवस्वरूपा सिद्धे प्रसरादित्येवप्रतिसन्धाययत्रतत्रव्याप्त्यादिदोषादेरुद्भावनकुर्वन्तिग्रन्थकर्तारस्तदनुमोदयन्ति च टीकाकृतस्तदन्येवेतिदिक् ।

अपिचप्रकृतहेतौव्यर्थविशेषणत्वरूपदोषोपिभवतीतिदर्शयति **जन्यत्वमात्रहेतुतएवेत्यादि,** एतदुक्तभवति, यथापर्वतोवन्हिमान् नीलधूमादित्यत्रवन्हिव्याप्तधूममात्रेणैवसाध्यसिद्धौ, नीलत्वेतिविशेषण

ननु भवतु, एकचेतनाधीनत्वमात्रंसाधनंतावतैवनिर्वाहादितिचेन्न, यतः सिद्ध साधनस्यतथाप्यपरिहारात् । यावन्तोभोग्यास्तेसर्वेपिजीवेनैवस्वादृष्टद्वारामुत्पादना दितिसर्वसंमतम् । नचोपादानाद्यनभिज्ञत्वंदोषायजीवानामपिउपादानादिसाक्षात्कारस्य संभवादितिनजीवस्यकर्तृत्वप्रतिक्षेपःकर्तुंशक्यः ।

व्यर्थंभवति, स्वसमानाधिकरणव्याप्यतावच्छेदकधर्मान्तरघटितत्वस्यैवतथात्वात् । तथास्वसमानाधिकरणधर्मान्तराघटितत्वस्यैवहेतुत्वादितिधूमेनयथापर्वतादावन्ह्यनुमानम् तथैवधूमप्रागभावादपितथाभवति, तत्र प्रागभावस्यसंग्रहायस्वसमानाधिकरणेतिविशेषप्रक्षिप्तमुक्तलक्षणे । एवञ्चप्रकृतानुमानेपिजन्यत्वमात्रस्यैव हेतुकरणेव्यभिचारादिदोषासंभवेनसाध्यसिद्धौभवन्त्याम् , अचेतनोपादाननिरूपितत्वस्यजन्यत्वेविशेषणे तादृशविशेषणस्यवैयर्थ्यंदुर्निवारमेव । ततश्चव्याप्यत्वासिद्धिर्दूषणनातिक्रामति । यद्यपिसमवेतसमवेत द्रव्यत्वस्वरूपफलितहेतौवैयर्थ्यादिदोषोनभवतितथापिफलितहेतावपिदोषान्तरमग्रदर्शयिष्यते । तत्रसमवेत द्रव्याणि, पृथिव्यादिचतुर्णांप्रथमावयवितआरभ्यचरमावयविपर्यन्तजन्यद्रव्याण्येवेति ।

॥ इत्येकचेतनाधीनत्वानुमानदूषणप्रकरणेतत्त्वदीप ॥

ननु यदि पूर्वानुमानेऽनैकान्त्यदोषादेकत्वविशेषणत्यक्तुमिच्छसितर्हितत् त्यजनाम् चेतनाधीनत्वमेवसाध्यते, इत्याशयेनाह**ननुभवतुएकचेतनाधीनत्वमात्र**मित्यादि । तत्रापिदोषमाह **सिद्धसाने**दित्यादि । यद्यप्यत्रप्रतिज्ञातिर्नामदोषोभवतितथापितस्यवचनदोषत्वादर्थदोषवदतीति । सर्वेषामपिकार्यसामान्यस्यजैवीयादृष्टप्रयोज्यतयाचेतनाधीनत्वस्यस्वीकारात् ततश्चजीवाधीनत्वसाधने, जीवैरेव सिद्धसाधनततश्चार्थान्तरदोषोऽपरिहार्य एव । अथादृष्टद्वाराचेतनप्रयोज्यत्वमात्र न सा यते किन्तुचेतन कर्तृत्वम् । कर्तृत्वचाल्पजीवाना न संभवतीतिद्वितीयानुमाने एव, तत्रापिसिद्धसाधनमेव । एवञ्चलाघवपक्षपातित्वादनुमानस्येतिसकर्तृकत्वानुमानस्यापिसम्प्रतिपन्नजीवमात्रे एवविश्रामादिति ।

अथाल्पज्ञजीवस्यजगत्कर्तृकत्वनोपपद्यतेतदुपादानादिसाक्षादसंभवादित्याशयेनाह **नचोपादानाद्यनभिज्ञत्वमिति**—जीवोजगदुपादानकारणपरमाणु न प्रत्यक्षीकरोति, घटादौतथाविधकुलालस्यैव कर्तृत्वदर्शनादितिनशङ्कनीयजीवस्याप्युपादानसाक्षात् कारसंभवात् , यतोयागदानाद्युपादानकारणपृथिवी प्रभृतीनांसर्वेजीवा साक्षात्कुर्वन्त्येवेति । अयभाव अग्निष्टोमादितत्तद्वैदिककर्मणोऽतिशयिततत्तत् पशुपुत्रस्वर्गादिफलसाधनभावमन्यथाऽनुपपत्तिप्रमाणतोज्ञात्वावेदद्वारावैदिकादिऋत्विजावचनादपिसहकारकाणामनुकम्पयैवानुष्ठाय, तादृशयागदानादिकर्मविध्यनतिक्रमेणसमधिगतपुण्याख्यसामर्थ्यविशेषाएव जीवराशय पृथिव्यादिभूतचतुष्टयभौतिककार्यवर्गाणामुपादानभूतसहकारिणप्रत्यक्षकृत्यतदुपादाय च जगत्सृजेयुरिति न जीवातिरिक्तकर्तृ कल्पनाया पदाधानमिति । तस्माज्जीवाअपिउपादानज्ञातुक्षमन्ते तस्माज्जीवानापृथिव्यादिकार्येषुकर्तृत्वस्यप्रतिक्षेपोनशकनीय इति । अथजन्यद्रव्यानधिकरणलक्षणप्रलय समयेआद्याणुकंपृथिव्यादिभूतानाविनाशात् , अवशिष्टस्यजीवजातीयकस्यदेहेन्द्रियाद्यभावेनज्ञानोपादानसामर्थ्यस्याभावात् , न जीवानासर्गाद्यकालिकसर्गकर्तृत्वस्यादितिचेन्मैवम् । तदापिपृथिव्यादीनां

ननु यागादिकर्मणःशक्तिरूपापूर्वंतस्यातीन्द्रियत्वात् प्रत्यक्षत्वाभावेपि, शक्त्याख्यापूर्ववास्तुप्रत्यक्षविषयोऽतो न कोपिदोषः ।

नहि तन्तुवायादयः पटादिकार्यमारभमाणाः पटोपादानोपकरणभूततुरीवेमादिकार्योत्पादनशक्तिपूर्वमाकल्प्यैवपटादिकार्यमारभन्ते । यदितुशक्तिमजानतामभिलषित साधनेतदुपादानादित्यवहारोनोपपद्यते तदाभवतुतत्रतथा ।

अत्र तु विलक्षणाः कर्मशक्तयः शास्त्रादवगम्यन्ते, इति तेन कर्मभिः कर्मानुगुणंसर्जने समर्थाभवन्त्येव विभागेनसृजन्तुनामेति ।

अपि च तदेवकार्यंचेतनकर्तृकभवति, यतः शक्यक्रियंशक्त्योपादानादिकं च भवति सर्वांशेनोत्पादविनाशस्यानभ्युपगमात् । किन्तुवर्तमानकालवदेवभागभेदेनैवोत्पादविनाशाविितितौक्रमश आगन्तुकैकदेशवृद्धिह्रासलक्षणौभवत । ततश्चजीवेष्वेवकेषाञ्चित्साधनविशेषप्राप्तज्ञानशक्त्यतिशयाना हीनांशप्रपूरणात्मकसर्जनपृथिव्याद्यद्युपादानसाक्षात्कारादिभ्य सम्भवेदेवविश्वामित्रादीनामित्यर्थ । जन्यभावानधिकरणलक्षणमहाप्रलयेतु न पुनस्तदनन्तरपुन सर्ग स्यात् । सावशेषप्रलयेऽर्थात्खण्डप्रलयेतु जीवविशेषाणाभगवद्भक्तानातत्तद्भागभेदकर्तृत्वम्भविष्यतीति न तदर्थमीश्वरकल्पनावसर पदमादधातीति ।

अथशुभाशुभकर्मरूपमपिकार्यमात्रोत्पादनेसहकारिकारणभवति, तादृशपुण्यपापाख्यादृष्टस्य प्रत्यक्षजीवाना न भवतीतितदनुगुणकार्योत्पादकत्वजीवानानैवसम्भवतीत्याशङ्क्यतन्निरसनायोपक्रमते **कर्मणः शक्तिरूपापूर्वमि**त्यादि । व्यक्त यन्तरकर्तृकयागादिधर्मणोहिंसाद्यवर्माणा च प्रत्यक्षकरणे साक्षीभूता अन्येजीवविशेषा समर्थाभवन्त्येवेतिसर्वप्रत्यक्षमेतत् । शास्त्रादपितत्तद्यागादिकर्मणाफलविशेषोत्पादनसामर्थ्यंजानन्त्येव । तथाचतत्तदनुगुणसर्गसक्षत्येवशक्तिमत साक्षात्कार शक्तेर्ज्ञानमात्र च कर्तृत्वोपयोगि, ननुशक्ते साक्षात्कारोपिकर्तृत्वोपयोगिभवति । स्वस्य च पुन करणसामर्थ्यंचापेक्षितम् । तथा च पुण्यपापशब्दवाच्यकर्मशक्ते जीवानाप्रत्यक्षाभावेपिजीवगतजगत्कारित्वनानुपपद्यते, पुण्यपापाभ्यातत्संभवादिति ।

यत्पूर्वंकथितदृष्टान्तद्वारातदेवोपपादयितुमुपक्रमते **नहितन्तुवायादय** इत्यादि । अक्षरार्थौ न तिरोहित । **यदितुशक्तिमजानता** इत्यादि । **अत्रतु** इत्यादि, शास्त्रात्विचित्राकर्मशक्तयो ज्ञायन्ते, तेनकर्मनिष्ठशक्तीनामागमादवगमेनकर्मभिरनेकजीवहेतुनकर्मानुगुणसर्जनम् शक्तिमन्तोजीवा विभागेनतत्तदेकदेशभेदेनसर्वजगत्—अर्थात् कार्यद्रव्यगुणादिजातम् सृजन्तु इति ॥

॥ इतिपृथिव्यादिसकर्तृकत्वानुमानस्यसिद्धसाधनत्वापादनप्रकरणेतत्त्वदीप ॥

इत पूर्वंकार्यत्वहेतौसिद्धसाधनतामुद्भाव्यतदनुतद्धेतौ स्वरूपासिद्ध्याद्यसिद्धिंदर्शयितुमुपक्रमते **अपिचतदेवकार्यमित्यादि** तत्रप्रथमत स्वरूपासिद्धिमुपाधिद्वाराव्याप्यत्वासिद्धिं च प्रदर्शयति **यतः शक्यक्रियम्** इत्यादि ।

तत्रशक्यासपादयितुयोग्याक्रियाकरणयस्यतत् शक्यक्रियम् । सपादयितुयोग्यमित्यर्थ । **शक्यं-**

यथा घटादिकम्, यदशक्यक्रियमशक्योपादानादिच नतथातद् भवितुं संभवति, तथा च कथं पृथिव्यादिकं कार्यंस्यात्, कथं वा तदुपादानोपकरणादेः प्रत्यक्षविषयता । घटादिकमेवोपादानोपकरणज्ञानपूर्वकमितितत्रैवोपादानादिसाक्षात्कर्तुस्तज्जनकत्वंनान्यत्रेति ।

अपिचेश्वरभिन्नेनशरीरेन्द्रियवताऽनवाप्तसकलकामेनसंपादितंयद् घटादिकार्यंतत्सर्वम् कुलालादिवदल्पज्ञमेवसाधयतीति, भवदभिमतहेतुः सर्वज्ञमीश्वरोपस्थापनेविरुद्धात्तादृशहेतुनेश्वरसाधने विरोधदोष आपततीति ।

ज्ञानसाक्षात् कारिरूपयस्यतत् तथा, शक्यज्ञानमुपादानादिर्यस्यतत् शक्यज्ञानोपादानोपकरणादि । एतादृशकार्यमेवसकर्तृकभवतिनेतरत् । कार्यंचचेतनरहितनास्त्येवेति । नचाशक्यक्रियादेर्महार्णवादे पृथिव्यादेर्वाऽशक्यक्रियादे कार्यत्वसभवति, तेनपक्षस्यकार्यत्वहेतुरहितत्वेनस्वरूपासिद्धिरापनतीति । उपादानोपकरणपरमाण्वदृष्टादे साक्षात्कर्तुमशक्यतयोपादानादिप्रत्यक्षचिकीर्षाकृतिमत पुरुषकर्तृत्व क्षित्यकुरादे कथमपि न सभवेत् । तदापिस्वाग्रहानुरोधेनपृथिव्यादे कार्यत्वमिष्यते तत्स्वीक्रियतांपरन्तुसकर्तृकत्वतुनोपपद्यतेकथमपीति । घटादिककार्यमिति, अर्थात् यादृशकार्यकृतिसाध्यत्वार्हज्ञेयत्वोपादानादिकं च भवति । एतावताशक्यक्रियत्व शक्यज्ञानोपादानादिकचोपाधिरित्युक्तभवति । उपाधेफलन्तुव्यभिचारोत्थापकत्वसत्प्रतिपक्षोत्थापकत्वचेतिज्ञातव्यम् । अयभाव साध्यव्यापकत्वेसति साधनाऽव्यापकोधर्म सचोपाधिस्तद्विपरीताव्याप्ति । यथाधूमवान्वन्हिरित्यत्रार्द्रेन्धनसयोगस्तथा, सचसाध्यस्यधूमस्यव्यापको यत्रधूमस्तत्रतत्रार्द्रेन्धनसयोगस्यावश्यभवात्, तदभावेतददर्शनादित्येव धूमव्यापकत्वतस्येतिव्यापकत्वनिर्वाह । हेतुश्चवन्हि सचायोगोलकेविद्यते इतितत्रार्द्रेन्धनसयोगोनास्तितत्रनिर्धूमवन्हेर्विद्यमानत्वेनसाधनाव्यापकत्वमार्द्रेन्धनसंयोगस्येत्युपाधिलक्षणसघटेत । अयमुपाधिर्मूलहेतोवन्हे पक्षेस्वभावेनसाध्याभावमनुभावयति, तथाहि अयोगोलकधूमाभाववत्, धूमव्यापकार्द्रेन्धनसयोगाभावात्, योयद्व्यापकव्यभिचारीसोऽवश्यतद्व्याप्यव्यभिचारी, यथागन्धव्यापकपृथिवित्वव्यभिचारिस्नेहोऽवश्यगन्धव्यभिचरत्येव । अथवाऽयमुपाधि स्वव्यभिचारेणसाध्यव्यभिचारमुत्थापयति, यथावन्हिर्धूमव्यभिचारी, धूमव्यापकार्द्रेन्धनसयोगव्यभिचारित्वात्, अयोगोलकेधूमतद्व्यापकेन्धनसगयोरुभयोरभावदर्शनादिति । एतदेवफलमुपाधेरितिनिश्चिन्वन्तितर्करसिका ।

।। इतिकार्यत्वहेतोरसिद्धिदोषोद्भावनप्रकरणेतत्त्वदीप ।।

कार्यत्वहेतौसिद्धिसाधनासिद्धिदोष प्रदर्श्यतस्मिन्हेतौविरुद्धदोषमपिदर्शयितुमुपक्रमते **अपिचेश्वरभिन्नेन** इत्यादि । निश्चितसकर्तृकत्वरूपसाध्यवतिघटादौशरीरेन्द्रियादिमत्वस्वार्थापेक्षत्वानीश्वरत्व परिमितज्ञानवत्वादिविशिष्टकर्तृत्वेनसहैवकार्यत्वहेतोर्व्याप्तिग्रहोजातइति विशिष्टसाध्येनगृहीतव्याप्तिक च विग्रहविशिष्टकर्तारमेवोपस्थापयिष्यतिक्षित्यङ्कुरादिपक्षे, नतुक्लेशकर्मविपाकाशयादिरहितकर्तारमुपस्थापयिष्यति । तेच विग्रहवत्वाशरीरादिविशिष्टाआकाराअभिमतविपरीता एवेतिविरुद्धव्याप्यत्वात्कार्यत्वहेतोर्विरुद्धत्वमेव, गोत्वसाध्येऽश्वत्वादिवत्, साध्याभावव्याप्तहेतुत्वं साध्याभावसमानाधिकरणत्वम् ।

नचैवंमतिसर्वानुमानोच्छेदः स्यादितिवाच्यम्, प्रमाणान्तरोपस्थापितेसाध्येलिङ्गिनिहेतुबलात् सिध्यतोविशेषानेवतत्प्रमाणेनप्रतिबध्नाति। अत्रतुपुनरतिपतितसकलप्रमाणान्तरकर्मभावेसर्वनिर्माणसमर्थेसाधनेच्छाविषयीभूतेयेऽन्वयव्यतिरेकनिर्णीताविनाभाववन्तोधर्मास्तानप्यविशेषेणोपस्थापयति।

किञ्चप्रेक्षावतांप्रवृत्तिः स्वार्थकरुणाभ्यांव्याप्तेतिनियमः। ईश्वरे तदुभयाभावान्नेश्वरप्रवृत्तिः सर्जनेभविष्यति, व्यापकाभावेनव्याप्याभावात्। अर्थादीश्वरः संसार स्वार्थमामाद्यसृजति, करुणया वा ? नाद्यः, अवाप्तसकलकामत्वात्। नद्वितीयोऽन्योन्याश्रयादितिनेश्वरसिद्धिः संभवेदिति।

एतावताप्रतिवादिनोऽशक्तिविशेष समुपस्थापितोभवति, सत्प्रतिपक्षे हेतौसाध्याभावसाधक प्रतिहेतुर्भवतिविरोधेतुयएवहेतु सध्याभावस्यसाधकोवस्तुत स एवसाध्यसाधनायोपात्तइतिदिक्। नन्वेवनिश्चितसाध्यवतिमहानसेखदिरप्रभववन्हिनागृहितव्याप्तिकेनधूमेनपक्षेपर्वतादौखादिरवन्हेरेवसाधनं स्यात् तेनसहैवतस्यव्याप्तिग्रहात्परन्तुपर्वतेखादिरएववन्हिरिति न निश्चयस्ताणादिरपिसभवादितितादृशानुमानस्याप्रामाण्यमापतेदित्याशयेनाह **नचैवंसतिसर्वानुमान** इत्यादि। **प्रमाणान्तरे** त्यादि, सिषाधयितसाध्यस्यप्रमाणान्तरसिद्धत्वेलिङ्गबलादापतितानाविरुद्धविशेषाणांप्रत्यक्षादिनाऽपवदनात्, निर्विशेषण वन्हिमात्रेऽनुमानस्यप्रामाण्यव्यवस्थापनसभवात्। साध्यस्यप्रमाणान्तराऽसिद्धत्वेतु लिङ्गबलादागताना विपरीतविशेषाणामपवादकाभावात्, तत्रतथैवावस्थानमितिभाव।

अन्वयव्यतिमेकसहचारग्रहाद् यद्यद्धर्मावच्छिन्नकर्तृपूर्वकत्वेनकार्यत्वहेतोर्व्याप्तिग्रहोजात, ते कुलालतन्तुवायाद्यनुगता अनीश्वरा ससारासक्तजीवा एव भवन्ति व्यापकतावच्छेदकतयागृहीता। व्यापकतावच्छेदकधर्मप्रकारेणैवसाध्यानुमापकत्वस्वभावाच्चलिङ्गस्येतिससारिजीवकर्तृमात्र पर्यवसायित्व कार्यत्वहतुकसकर्तृकत्वानुमानस्येति।

॥ इतिकार्यत्वहेतोर्विरोधप्रतिपाकप्रकरणेतत्त्वदीप ॥

परमेश्वरस्यजगत्कर्तृत्वासभवादपिकार्यत्वमनीश्वरमेवसाधयतीतितत्राह, **किञ्चप्रेक्षावतांप्रवृत्तिरि** त्यादि, अयमाशयश्चेतनानायाप्रवृत्तिर्भवति, सास्वार्थवशात्, करुणातो वा, यथामादृशानाजायमान पठनपाठनादौप्रवृत्ति सातुस्वार्थमूला, "प्रयोजनमनुद्दिश्यमन्दोपिनप्रवर्तते" स्वार्थहीनेजलताडनादौ प्रवृत्तेरदर्शनात्, इदानींतनानाप्राचीनमहर्षिणाचयाप्रवृत्ति साकरुणया, तेषु गन्धतोपिस्वार्थाभावात, ततश्च याचेतनप्रवृत्ति सास्वार्थकरुणाधीनैवभवतीतिस्थिति। तदिहजगत् सृजत परमेश्वरस्यप्रथमा प्रवृत्तिर्नैववक्तुशक्नोति, तथात्वे ईश्वरत्वव्याघातात्। नवा चरमा, परस्पराश्रयदोषात्, करुणानामपरदुःखप्रहाणेच्छारूपैव, सातु जगत्सर्जनान्तरदुखिनमवलोक्यभवेत्, ततश्च करुणयासर्ग सर्गेचसतिपमेश्वरस्य कारुण्यमित्येवान्योन्याश्रयकोनिवारयेत्। व्यापकाभावाद्व्याप्याभावोभवतीतिनियम। ततश्चस्वार्थकारुण्ययोर्निवृत्त्या ईश्वरस्यसर्गेप्रवृत्त्यभाव एवावस्थित इतिविशेषोऽन्यत्रद्रष्टव्य। अपि च यदीश्वर

पूर्वप्रदर्शितासिद्धत्वविरुद्धत्वानैकान्तिकत्वव्याप्यत्वमिद्धत्वादिहेत्वाभासदोषदुष्टत्वेनकार्यत्वहेतुतोजगत्कर्तृकत्वंसाधयितुंनैवयुक्तम् ।

अत्रायंप्रतियोगःपृथिवीपर्वतादिकंकार्य न भवति, प्रसिद्धकार्यविलक्षणत्वादाकाशकालादिवत् । अशक्यदर्शनोपादानोपकरणत्वात्, यन्नैवं तन्नैवं यथा घटादिकम्, पृथिव्यादिपरमाणवःप्रत्यक्षाविषयाः, अतीन्द्रियत्वात्, व्यतिरेकेणघटादिवत्, विमतः कालोनसर्गशून्यःकालत्वाद्वर्तमानकालवत् । महीमहीधरादिकं नेश्वरकर्तृकंकार्यत्वाद् घटादिवत् । ईश्वरो न कर्ता भवति शरीररहितत्वान्मुक्तात्मवदिति ।

इतीश्वरसिद्धौ पूर्वपक्षः

करुणयाजगत्सृजेत्, तदासर्वंसुखिनमेवसृजेत, नतुहीनमध्यमोत्तमान्, अदृष्टविशेषमाकलय्य तथा चेतु ईश्वरस्यस्वातत्र्यमतिपतेत्, तत्स्वीकारोपिव्यर्थोयतोभाग्येनैवविचित्रसम्भवादितिसंक्षेप । किञ्चकर्तुरुपादानोपकरणादिज्ञानमपिनावश्यकम्, यतोऽजानतोपिजीवस्यस्वकीयज्ञानसुखादौकर्तृत्वस्यसर्वसमतत्वादिति । ।। इतीश्वरस्यजगत्कर्तृत्वानुपपत्तिप्रकरणेतत्त्वदीप ।।

न्यायमतसिद्धेश्वरसाधककार्यत्वानुमानेमीमांसकमतेनयेदोषा प्रदर्शितास्तान्सगृह्यदर्शयितुमुपक्रमते **पूर्वप्रदर्शितासिद्धत्वेत्यादि** । कार्यत्वस्यहेतो क्षित्यादावसिद्धि कुत ? पृथिव्यादेरशक्यक्रियात्वादिहेतुनाऽकार्यत्वानुमानात् । अनीश्वरत्वानवाप्तकामत्वशरीरित्वादिविपरीताकाराक्षेपकत्वेनक्षित्यर्णवादौसिषाधयिषितकार्यत्वस्यविरुद्धमेतत । अभिमतविपरीताकाराक्षेपकत्वहेतोर्विरुद्धत्वमितिप्राञ्च । अन्येतु साध्याभावसाधक साध्यव्यविकरणोवाहेतुर्विरुद्ध । गौरश्वत्वादित्यादिवदिति । अनैश्वर्याद्यापादकत्व चानैश्वर्यादिविशिष्टकर्तृकत्वेनव्याप्तेर्घटपटादौकार्यत्वहेतोर्गृहीतत्वादेव । किञ्च चेतनजन्यत्वमात्रेसाध्ये शुभाशुभकर्मद्वाराजीवजन्यत्वस्यकार्यमात्रेसमतत्वेनासिद्धसाधनभवति, वन्हिमान् वन्हेरितिवत् । तदुपादानादिप्रत्यक्षकर्तृपूर्वकत्वसाध्यमेवस्वीकर्तव्यम् तत्र च ज्ञानाद्यन्तर्भावेनानैकान्त्यस्यसुस्थितत्वात् । इत्थमसिद्ध्यादिदोषदुष्टत्वात् कार्यत्वस्यहेतोरपिताद्दशहेत्वाभासायितेनपृथिव्यादावुपादानोपकरणादिसाक्षात्कर्तृकर्तृपूर्वकत्वसाधयितुनैवालमितिभाव । प्रतिप्रयोगदर्शयति **अत्रायंप्रतिप्रयोगःपृथिवीपर्वतादिकंकार्यंनभवती**त्यादि । अशक्यदर्शनोपादानत्वमुपपादयति **परमाणवोनप्रत्यक्षाः** । घटादिव्यतिरेकदृष्टान्त । कार्यत्वस्यक्षित्यादौ, असिद्धिसाधनायप्रयोग कथित । अथजीवेनसिद्धसाधनसाधनाय प्रलयनिराकरणायप्रयोग कथ्यते **विमतःकाल** इति, सतिप्रलयेतदवसानेसर्गारम्भेऽदृष्टवजीवानाशरीरादिरहितत्वान्नघटते इतिकर्त्रन्तरस्वीकर्त्तव्यभवेत् । तत्सर्वकार्यद्रव्यविलक्षण प्रलयोनास्त्येवेतिसाध्यतेऽत्र प्रकृते । विरुद्धत्वप्रदर्शनायप्रयोग **महीमहीधरादिकम्** इत्यादि । ईश्वरकर्तृकेनभवतीतिकथनेनार्थतोऽनीश्वरकर्तृकत्वेपर्यवस्यतीति । एवविपरीतपर्यवसायित्वकार्यत्वानुमानस्यकथितम् । अभिमत पर्यवसायित्वाभावस्फुटयति **ईश्वरःकर्त्तानभवतीति** । तत्रेश्वर, ईश्वरत्वेनाभिमत । इदमनुमानं सत्प्रतिपक्षात्मकम्, शब्दोनप्रत्यक्ष श्रावणत्वादित्यत्रशब्द प्रत्यक्ष कार्यत्वादित्यत्रवादिनि ।

।। इति सकर्तृकत्वानुमानेदूषणोद्भावनप्रकरणे तत्वदीप ।।

॥ श्रीरामचन्द्राय नमः ॥

जगतोजनकंरामं सीतयासहितं नुमः । यत्कृपालवमात्रेण चिदादेःप्रभवाप्ययौ ॥१॥

अत्रब्रूमः । क्षित्यङ्कुरादौकार्यत्वस्यहेतोर्निराकरणासंभवात्, सभागत्वात्, क्रियावत्वात्, बाह्यप्रत्यक्षसामान्यविशेषत्वात् घटादिवत् । एभिरनुमानैःसिद्धकार्यत्वहेतुना पृथिव्यादौप्रसिद्धकार्यत्वहेतुना तत् सिद्धेर्घटादौकुलालादिवत् । नचैतादृश एव संनिवेशविशेषःकार्योनेतरइत्यवयवसंनिवेशप्रतिनियतरूपंविशेषपश्यामि । यदपिशक्यक्रियं शक्यज्ञानोपादानोपकरणंचेतिकथितं तत्तुस्थलविशेषेभवतुनामकथंचित् । किन्तु ते क्रिया ज्ञानशक्तीक्रियाज्ञानाभ्यांकार्याभ्यामभिज्ञातेभवतः । ते च पृथिव्यादिकार्येषु यथोक्तसाधन

एवंपूर्वपक्षप्रकरणेयन्नैयायिकाभिमतमीश्वरसाधककार्यत्वाद्यनुमानमीमांसकैरसिद्ध्यादिदोषैर्दूषितमत्रतमेवानुमानदोषनिरसनद्वारेणप्रतिष्ठापयितुमुपक्रमते **जगतोजनकम्** इत्यादि । एतदतिरिक्तमपिनिर्दुष्टमानान्तरविशेषतोव्याख्यानेप्रदर्शयिष्यतेविवेचकेन । अत्रकार्यत्वमुत्पत्तिमत्वरूपमेव, प्रागभावप्रतियोगित्वमितियावत्, अथवाप्रागभावप्रतियोगित्वेसतिध्वंसप्रतियोगित्वलक्षणम् । तत्रक्षित्यंकुरादेः कार्यत्वसाधनेसभागत्वादयोहेतव प्रदर्श्यन्ते। तत्रसभागत्वम् सावयवत्वरूपम्, भागोनामावयवपर्याय तेनावयवेनसहित सभाग सावयव इत्यर्थ तस्यभाव,सभागत्वकार्यत्वम्। इदचलक्षणकार्यद्रव्यमात्रमुद्दिश्य,द्रव्यस्यैव-कार्यत्वप्रतिपादनावसरात्, नेदगुणाद्यनुगतनेपानिरवयवत्वात्।मूर्तत्वक्रियावत्वपरिच्छिन्नपरिमाणवत्वरूपम् एतत्पृथिवीजलतेजोवायुमनसामेव गगनादिचतुर्णांतुव्यापकतयानिष्क्रियत्वात् परिच्छिन्नपरिमाणाभावाच्च । समान्यविशेष द्रव्यत्वपृथिवीत्वादिक च, एतत्केवलनित्यपरमाण्वादिसा वारणमितिबाह्यप्रत्यक्षविषयत्वेनविशेषितसदेवहेतु । "मनोमात्रस्यगोचर" इतिनियमेनजीवस्यमानसप्रत्यक्षविषयत्वात् सामान्यविशेषत्वाच्चात्मनिव्यभिचारवारणायप्रत्यक्षेविशेषणप्रक्षिप्तबाह्यत्वेसतीति, तथाचात्मनआन्तरत्वान्नदोषइति । अथैवमपिसावयवत्वादिसाधनै कार्यत्वस्यहेतो क्षित्यादौसकर्तृकत्वेकिमायातम् ? कार्यत्वावच्छिन्नकर्तृनिमित्तकारणत्वेप्रमाणाभावात्, अन्तरेणापिकर्तारमेघमालावत्, कारणान्तरतएवमहीमहीधरादेरुत्पत्तिसभवादित्याशकामपनेतुमाह **नचैतादृश** इत्यादि । नचामुक एवसनिवेशविशेष कार्योभवतीतिनान्य इत्यादिराजाज्ञायाअदर्शनात् ।

सावयवत्व चावयवसनिवेशविशेषलक्षणाकृतिमत्वरूपमेव,तत्सर्वंपुरुषप्रयत्नजन्यमेवदृष्टयथाघटादिस्तथैवमहीधरादिरपीतिघटादिवत्तेषामपिसकर्तृकत्वनानपोदितभवति । यदिकार्यविशेषत्वमेवकर्तृत्वव्याप्यमित्याग्रहस्तदापिसोपिविशेष क्षित्यादौविद्यते एवेतिक्षित्यादीनामप्ययत्नसिद्धमेवसकर्तृकत्वमित्येव तत्रापिसकर्तृत्वनि प्रत्यूहैवेतिभाव । किञ्च"यद्विशेषयो कार्यकारणभावस्तत्सामान्ययोरपितथैवकार्यकारणभाव" इतिन्यायेन, कार्यविशेषेपटादातन्तुवायादे कर्तृत्वदर्शनात् पटत्वावच्छिन्नसामान्यतस्तन्तुवायत्वावच्छिन्नस्यकर्तृत्वसिद्ध्यतीति कार्यत्वमेवसकर्तृकत्वव्याप्यमितिक्षित्यादिकार्येपिकमपिपुरुषविशेष कर्तारं समर्थयतीतिदिक् । अथवाक्षित्यादिक न भवति, प्रसिद्धघटादिकार्यविलक्षत्वादितीश्वराभाव साधकप्रत्यनुमानेऽप्रयोजकत्वमाग्र्यनेनप्रकरणेनदर्शयति **नचेयानेव** इत्यादि । तत्रकार्यकृतिप्रयोज्य

बलादेवोपस्थापिते इति नकोपिविशेषःप्रासादप्राकारादिकार्येभ्यःशरीरपृथिव्यादीनाम् ।
नचेयानेवक्रियाविषयइतिविषयनियमोदृष्टःकश्चित् क्रियायाःयेन तनुभुवनादेरशक्य क्रियत्वंनिर्णीयेत । एवञ्चक्षित्यादौमिद्धेकार्यत्वेतदुपादानादिमाक्षात्करणतदधिष्ठानतत्प्रेरणक्षम ईश्वरः सिद्ध्यत्येवेति ॥

परमाण्वाद्यधिष्ठानंचेश्वरतत्प्रवृत्त्यनुकूलसंकल्पविशिष्टपरमेश्वरमंनिकर्षरूपएवजीव उत्पत्तिमान् वा कृतिप्रयोज्यत्वे उत्पत्ति वा प्रयोजक पृथिव्याद्याकारमात्रवृत्तिधर्मविशेषो न दृष्टि पथमवतरतीति ।

एतादृशविशेषेसत्ये एव प्रसिद्धकार्यवैलक्षण्यहेतो कर्तृत्वाभावेनसहव्याप्ति प्रसिद्धाभवेत् । अन्यथात्वप्रयोजकत्वमेव "अदृष्टकर्तृकोराजादिसाधोनकार्यो, दृष्टकर्तृकरादिकार्यविलणत्वादिवत् समानयोगक्षेमत्वात । स्यादेतत् शक्यक्रियत्वादिरेवतादृशोविशेषोऽस्ति, यश्चक्षित्यादियावन्तमन्त्राह, **शक्यक्रियंशक्यज्ञानोपादानोपकरणंच** अक्षराथो न तिरोहित । उत्तरयति **भवतुनामेति** पृथिव्यादिपक्षेषुतादृशविशेषाभावेनाद्यापिसिद्धोऽस्तु, सर्वथाऽप्रसिद्ध एवेतिसमाधातुरभिप्राय **किन्तु ते क्रियाज्ञानशक्तीक्रियाज्ञानाभ्यामि**त्यादि । ते क्रियाज्ञाने ' यथोक्तेति । कार्यत्वहेतु सकर्तृकत्वानुमानलक्षणेत्यर्थ । अयमाशयउपादानोपादानोकरणादिविषयकापरोक्षनाचिकीर्षाकृतिमज्जन्यत्वमेवमहीमहार्णवादिषु, सा यते । तत्र च तद्विषयकवृत्ति परमाणुलक्षणोपादानादिविषयपरोक्षज्ञानंच घटकमस्येव,"नानातीच्छतितत प्रवर्तते' इति नियमात् । ज्ञानमन्तरेण न चिकीर्षा,तदन्तरेण न प्रयत्नइत्यनुगमात् । ज्ञानक्रिययोरेवप्रमाणिकत्वेतदनुगुणसामर्थ्यमपिकर्तु कल्पनीयमेव "परास्य शक्तिर्विविधैवश्रूयते, स्वाभाविकीज्ञानबलक्रियाचेतिश्रुते । जगत्कर्तुरियशक्यक्रियात्वादेर्जगत् कर्तुनैवसिद्ध्यतीति ।

प्रकरणमुपसहरन्नाह **सिद्धे कार्यत्वे** इत्यादि, सावयवत्वादिनाक्षित्यादासिद्धेसति, अर्थात् प्रामाणिके च कार्यत्वेसति, कार्यत्वस्यविशिष्टकर्तृपूर्वकत्वव्याप्तिवलेनपृथिव्यादिपक्षेकर्तृविशेषस्यक्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टस्यसिद्धिर्निराबाधैव भवतीति । तदधिष्ठानमन्तरेणेत्यत्रकर्म प्रारय एव । अथवा परप्रवृत्त्यनुगुणव्यापार प्रेरणम् । तादृशव्यापारवत प्रेर्येणसम्बन्धोऽधिष्ठानमितिभेद । एवं पूर्वोक्तक्रमेणसभागत्वसावयवत्वादिहेतुभि पृथिवीमहार्णवादिषुकार्यत्वव्यवस्थापितम् । यद्यपिदिगन्त विश्रान्तमहापृथिवीमहार्णवेषुजन्यत्वरूपकार्यत्वनोपलभ्यतेऽर्वाग्दृश कस्यापि तथापि यत्सावयवतत्सर्वं कार्यमेवेतिघटादिषुव्याप्तिमनुसन्धायव्याप्तिमताकार्यत्वहतुना, तदनुसकर्तृकत्वव्यवस्थापनायमहानायास स्वीकृत । ततश्चकार्यत्वसकर्तृकत्वयोर्व्याप्तिप्रतिसन्धाय, साधारणलोकापरिदृष्टमहार्णवादिष्वपिसकर्तृकत्वमनुमानबलादेवस्थापितवान् अप्रत्यक्षवन्हे सामान्यतोधूमेननगनिकुञ्जेसिद्धिवदिति ।

। इतिक्षित्यादौसकर्तृकत्वसाधककार्यत्वसाधनेऽसिद्धिदोषपरिहारप्रकरणतत्त्वदीप ।

कार्यत्वहेतोरसिद्धिदोषतापरिहृत्यसकर्तृकत्वानुमानस्यक्षेत्रज्ञै सिद्धसाधनदोषपरिहर्तुकर्तृत्वस्वरूपघटकमधिष्ठानादिस्वरूपमावि कर्तुमुपक्रमते **परमाण्वाद्यधिष्ठानंचेश्वर** इत्यादि । येनप्रकारेण-

वत्स्वदेहादौ । सोयंसम्बन्धोद्रव्यैःसहसंगात्मकःस्तद्गतगुणक्रियादिभिस्तुसंयुक्तसमवाय तत्समवेतसमवायादिरूपः । प्रवृत्तिस्तुपरमाणोःक्रियारूपाधर्माधर्मयोस्तुफलोत्पादनानुकूलतादृशदेशकालादिसहकारादिसाहित्यरूपा । धर्माधर्माभ्यामेवफलोत्पादता । चेतन सम्बन्धरहितानामचेतनानांनैरर्थक्यात्, नहिकुलालादिसम्बन्धरहितोदण्डादिर्घटजनयति,

देहावयवाद्यधिष्ठानशरीरावयवादिप्रवृत्तिप्रयोजकसकल्पद्वारेण भवति, तथैवद्व्यणुकादिसमवायिकारणपरमाण्वाद्यधिष्ठानजगदुत्पादनकर्तृरीश्वरस्यपरमाणुप्रवृत्त्यनुकूलस्वसकल्पद्वारेणैव भवति, इत्येवस्तीकर्त्तव्यप्रकारान्तराभावादिति । सच सम्बन्व द्रव्येण सहसयोगरूप सनिकर्ष इति परमाण्वादासयोगरूप । गुणक्रियादौसयुक्तसमवायादिलक्षण । अदृष्टे शुभाशुभरूपे तु विभुद्वयसयोगाभ्युपगमेसयुक्तसमवायरूप एव पूर्वोक्त । सयोगस्यान्यत्रक्रियाजन्यत्वनियमदर्शनेव्यापकद्रव्येसयोगकारणक्रियायाअनभ्युपगमेननित्यसयोगस्यनित्यविभागवदस्वीकारेतु, सयुक्तसयोगिसमवायरूपएवन्यायप्रक्रियामन्तव्य **प्रवृत्तिस्तुपरमाणोरि**त्यादि । अर्थात् परमाणोरचेतनतयाप्रयत्नात्मकप्रवृत्तेस्तत्रासभवेन, आरभकसयोगानुकूलक्रियालक्षणेवप्रवृत्तिर्नतुगुणात्मिका, तादृशप्रवृत्तेर्जीवमात्रनिष्ठत्वात । **धर्माधर्मयोरि**त्यादि, इदपुण्यपापवाऽस्मिन् देशेकाले एव फलसुखदु ख वा जनयत्वितीश्वरसकल्पमूलाप्रवृत्तिरदृष्टस्यफलोदयानुकूलतादृशदेशकालादिसहकारिसमासादनलक्षणैव भवतीतिभाव । **धर्माधर्माभ्यामेवफलमिति** । अत्रैवकारोभिन्नक्रम अर्थात् ताभ्या केनचित्चेतनेनाधिष्ठिताभ्यामाभ्यामेवशुभाशुभाभ्याफल सुखदु खात्मक भवति नान्यथा, चेतनाधिष्ठितरथादिवदेवेतिभाव । अथान्तरेणापिकतारकारणान्तरसमवायिकारणान्तरबलादेव पृथिवीमहार्णवादेरुत्पत्तिर्भवतु किमिति कर्तु स्वीकारेणपयोऽम्बुवदिति शङ्का मनसिनिधायतत्परिहारार्थमाह **चेतने**त्यादि । चेतनसहकाररहितानामचेतनरथादीनास्वातन्त्र्येणफलप्रत्यकिञ्चित्करत्वादिति । कथमकिञ्चित्करत्वमचेतनानामित्यतआह **नहि कुलालादि** इति । नहिचेतनमन्तरेणानधिष्ठितवासीकुद्दालादिक स्वकार्यंजनयतीति न दृष्टचरमित्यर्थ ।एव चाधिष्ठातु स्वेतरकमादिसकलकारकप्रयोक्तुकुलालादेरचेतनस्यापेक्षाकार्यमात्रप्रतिविद्यते एवेति कार्यविशेषेपृथिव्यादौसकर्तृकत्वस्यानादरोनकथमपियुक्त । अचेतनस्य कारणसमुदायस्यचेतनाधिष्ठानमन्तरेणप्रवृत्तेरेवानुपपत्ते । उपादानगोचरापरोक्षज्ञानमन्तरेणतदधिष्ठानलक्षणकर्तृत्वस्यासभवात् पृथिवीमहार्णवादिकर्तृ परमाण्वाद्युपादानकारणसाक्षात्कारोप्यावश्यक एव । एव चिकीर्षापूर्वस्वेतरसकलकारकप्रवृत्तिहेतुकृति= प्रयत्ननिरुप्यप्रेरणमितिकारकचक्रप्रवर्तकत्वरूपाधिष्ठातृत्वस्वरूपस्योपादानादिविषयकापरोक्षज्ञानचिकीर्षाकृतिमत्वरूपलक्षणस्य च कर्तृत्वस्यनात्यन्तिकोभेद । ततश्चपूर्वत्रोपादानोपकरणादिगोचरापरोक्षज्ञानचिकीर्षाकृतिमत्वकर्तृत्वमेवोक्त भवति । तदेवचात्राधिष्ठातृत्वरूप तदिहसमर्थ्यते इति प्रकृतासंगत्यमित्याकारकशकायानावसरो भवतीतिध्येयम् ।

एव भूतस्यक्षितिमहार्णवादिकर्तृत्वस्यसदसर्वद्रष्टार सर्वसामर्थ्ययुक्तचेश्वरमन्तरेणजीवादिकतिपयसामर्थ्यवत्यसभवात्, नजीवद्वारापरमेश्वरसाधकानुमानेसिद्धसाधनमित्यपिचात्रविवक्षितमिति । **अग्रेचैत दूवक्ष्यते, रथाद्यचेतनकरणानाकर्माधिष्ठाननैयत्यनिरूपणसमयेदृष्टकर्तृकेषुमहाग्रहप्रागणप्रासदादिध्वशकुर्णादिषुव्यभिचारदोषःस्मृत । तस्यचोपानर्हत्वात्प्रतिक्षेपःकरणीय इति प्रसङ्गतिमादायमध्येव्यभिचारदोष-**

नवाकारणाविरहितावास्ययूपादिकंसम्पादयति । बीजाङ्कुरादयस्तुपक्षमध्यनिक्षिप्ताःपक्ष मंमवेति तेनव्यभिचारोद्भावनंतर्कानभिज्ञत्वमेवमीमासकानांसूचयतीति । एतेन सुखादिना व्यभिचारोपिनिराकृतः ।

नच वादिप्रतिवादिसिद्धतामात्रेणजीवानामेवाधिष्ठातृत्वं नतुतदनिरिक्तस्येतिवक्तव्यम् तेषांजीवानांसूक्ष्मव्यवहितादिदर्शनाशक्तेर्निर्णयात् । दृष्टानुरोधिनीकल्पनैवग्राह्या नसादृष्टविरोधिनी । नच परमेश्वरस्यशक्तिर्निश्चिता, श्रुत्यादिप्रमाणबलतएवेश्वरसिद्धेः । यथोक्तप्रमाणबलतः सिद्ध्यत्स्वाभाविकसर्वार्थदर्शनतत्प्रेरणशक्तिसम्पन्नएवपुरुषविशेषस्सिद्ध्यति, कार्यत्वहेतोःसमर्थकर्तृपूर्वकत्वेएवव्याप्तेर्निश्चयात् ।

निराकर्तुमाह **बीजाङ्कुरादयस्तु** इत्यादि । यत्रयत्रमेघमालादिकार्येषुदृश्य कर्ता न दृश्यते, तत्सर्वमपिकार्यमत्रक्षित्याद्यनुमानेपक्षीकृतम् , तेषामपिपक्षकोटिनिक्षिप्तपदेन, पक्षेपक्षसमेचव्यभिचारोदोषाय न भवति, तत्रप्रतिज्ञाविषयत्वपक्षत्वसाध्यसन्देहत्व व च प्रकृते च प्रतिज्ञाविषयत्व च क्षित्यङ्कुरस्यैवेति सर्वोपितावन्मात्रस्यैवेतिमनुते, परन्तुसा यमशयवत्व च सर्वस्यैवेति, यदामेघमालाद प्रतिज्ञाविषयतास्यान्तदातेषामपिपक्षत्वस्यादेव । अन्यथाऽनुमानात् पूर्वंपर्वतवन्हेरदर्शनात् धूमस्यप्रत्यक्षतोदर्शनाद् धूमानुमानव्यभिचारदोषनातिक्रामेदित्यनुमानमात्रस्यैवप्रामाण्यदत्तजलाञ्जलितामावहदितिपक्षेतत्समेवा व्यभिचारो न दोषायेति । **एतेनसुखादिनाव्यभिचारोपिनिराकृतः इति** । अत्रसुखपदमनोमात्रग्राह्यज्ञानेच्छाकृत्यादीनासग्राहकभवतीति । नहि स्वकीयसुखज्ञानाद्यर्थप्रवृत्तिमानजीवस्तदोपकरणतदुपादानाद्यदृष्टस्वात्मसाक्षात्कर्ता भवति, सर्वथाऽयोग्यदृष्टादीनासाक्षात्कारस्यासभवात् । तदुपादानादिसाक्षात्कर्तृत्वरूपसाध्याभाववतिसुखज्ञानादौ कार्यत्वस्यहेतोर्विद्यमानत्वेन व्यभिचारोदुर्वार इति तदर्थंसुखादेरपिपक्षत्वंपक्षसमत्वकथितमिति, ततश्चव्यभिचारपरीहारादेवसदोषोनिरस्त एवम् सुखादावपितदुपादानादिसाक्षात्कर्तृपूर्वकत्वपरमेश्वरेणैवनिष्पादितसिद्धान्तिनेति । तेन न कोपि दोष इति । अथैवमपिजीवात्मन स्वसुखादौकर्तृत्वनस्यादितिवाच्यम् सुखाद्युत्पादनार्थंतत्साधनदर्शनोपादानप्रवृत्तिमत्वादेवजीवस्यकर्तृत्वोपपत्ते घटादिकार्येकुलालादिवत् दृष्टोपकरणादिदर्शनकपालादिनाघटादिकार्यवदिति । अदृष्टकारणस्याधिष्ठानसर्वत्रकार्येपरमेश्वरस्यैवेतिस्वीकर्तव्यम् । अथैवमपिस्वज्ञानाद्यर्थेप्रवृत्त्यवहितपूर्वकालेनियमत स्वस्यसाक्षात्काराभावात् , स्वज्ञानाद्युपादानभूतस्वात्मसाक्षात्कर्तृत्वतदाजीवस्यनास्तीतिचेत्सत्यम्, "अत्रायपुरुष स्वयज्योतिर्भवतीति श्रुत्या जीवात्मन स्वप्रकाशनयेनतदास्वात्मसाक्षात्कारस्यापिसंमानयितव्यत्वात् । स्वज्ञानादौस्वस्यकर्तृत्वस्यस्वकीयस्मरणमात्रेणैवस्वीकर्तव्यत्वाद्वेति न कोपि दोष । उपादानादिसाक्षात् कर्तृकपूर्वकत्वमितिनियमस्तुपरमेश्वरेणैवतत्रतत्रनिर्वाह्य इति । **तदर्थ**मेवसुखदु.खज्ञानेच्छाप्रवृत्त्यादिक सर्वोप्यान्तरपदार्थ पक्षीकृत इति ज्ञेयम् तदनेनेश्वरसाधककार्यत्वानुमानेव्यभिचारदोषनिराकृत्यतदनुसिद्धसाधनदोषमपाकर्तुमुपक्रमते **नच वादिप्रतिवादिसिद्धतामात्रेणे**त्यादि । स्वस्यपरस्यवा, सिद्धत्वमात्रेण, जीवस्याधिष्ठातृकल्पनम् , परमाण्वदृष्टादिप्रवृत्त्यनुकूलाधिष्ठातृत्वकल्पनंनैवयुक्तमित्यर्थ. । कुतोनयुक्तसतिसभवेतत्राह **तेषांजीवानां** सूक्ष्मव्यवहितादिपदार्थदर्शनस्यैवाशक्तत्वेनतदधिष्ठातृत्वस्यदूरापेतत्वादित्याशय ।

यत्तुपूर्वंपरिमितशक्तिज्ञानेऽवयोविपन्नाद् धर्मविशेषनिरुद्धमाधनत्वं कथितम्, तदकिञ्चित्करम्, तेषामप्रयोजकत्वात् । किञ्चित् क्रियमाणत्वंकर्तुरर्थान्तरविषयमसामर्थ्यज्ञानंवा नापेक्षतेस्वोत्पत्तौ, स्वसिद्धौसमर्थकर्तृमात्रस्याक्षेपात् केवलव्यतिरेकासिद्धेः । एतावतैवकार्योत्पत्तिसंभवेसम्बन्धिनोऽकिञ्चित्करस्यार्थान्तरविषयकस्याभावस्यकारणत्वकल्पनानुपपत्तेः । अपि च तदितरसमस्तविषयकज्ञानंकार्यत्वस्यव्यापकम्,

नन्वेव परमेश्वरस्यापि, अधिष्ठानसामर्थ्येतुनदृष्टमितिनकल्प्यते । दृष्टानुसारिणीकल्पनाया सर्वत्रदृष्टविरोधित्वस्यास्वीकारात । न चैवमीश्वरस्याशक्तेर्निश्चय ? प्रमाणान्तरतईश्वरस्यसर्वसामर्थ्यवत्वसिद्धे प्रत्यक्षादिप्रमाणेनपरमेश्वरस्यासिद्धयाअसामर्थ्यस्यासिद्धे । ननुप्रकृतानुमानेनेतस्यासामर्थ्यस्यासिद्धे । यथादितप्रमाणबलात् योऽर्थ सिद्ध्यति सच स्वाभाविकसर्वाधिष्ठानप्रेरणशक्त्यादिसपन्न एव सिद्ध्यतिकार्यत्वहेतो समर्थकर्तृपूर्वकत्वेनव्याप्तेर्निश्चयात् ।

॥ इति सकर्तृकत्वानुमानेव्यभिचारसिद्धसाधनदूषणपरिहारप्रकरणेतत्त्वदीप ॥

यत्रयत्रकार्यत्व तत्रसर्वत्रकुलालादि कर्त्ता, किञ्चिद्विषयकाशक्तिमान्, किञ्चिद्विषयकाज्ञानवानेवोपलभ्यत, नहिघटादिकारणेनसर्वशक्तिमान् सर्वज्ञो वा भवति इत्यत समुपपद्यतेश्रूयत वा, किन्तु तदल्पज्ञानाल्पशक्तिमानेवेति, नाटककर्त्ता कुलालादिनेवभूयाभूय सहचारदर्शनात् कार्यत्वस्य हेतोर्व्याप्तिरितितदभिमतविपरीतापादकत्वात् कार्यत्वहेतुविरुद्ध एव । सच हेतु कार्यत्वरूपोऽल्पज्ञमेवकर्त्तारमुपस्थापयेत्, नतुसर्वज्ञसर्वशक्तिमन्त वा कर्त्तार साधयिष्यति । यथा अश्वत्वहेतु कदापि गोत्वसाध्य न साधयति । तत्कस्य हेतो ? विरुद्धत्वात्साध्यविपरीतेनसहव्याप्तिमत्वात् । तथैव प्रकृतेऽल्पज्ञकर्त्रासहैवकार्यत्वस्यहेतोर्व्याप्तिदर्शनेन न तत् कार्यत्व सर्वशक्तिमन्तंसर्वज्ञकर्त्तारसाधयिष्यति, त प्रतितस्यविरुद्धत्वात्, इत्याशङ्कां **यत्तु** इत्यादिग्रन्थनानुवदर्शयितुमुपक्रमत । अक्षरार्थोन तिरोहित पूर्वमेवशङ्काग्रन्थेप्रदर्शित । इमानाशङ्कापरिहर्तुमाह **अप्रयोजकत्वादिति** । अनुकूलरहितत्वात् व्याप्यसाधकत्वाद्वा, अप्रयोजकत्वात्=कार्यकरणोपयुक्तत्वाभावात् । किञ्चिद्विषयकाज्ञानाशक्त्यादे । एतदुक्त भवति—येनाकारप्रकारेणकर्तु कारण वगृह्यतेतद्रूपावच्छिन्नकर्तृपूर्वक त्वेनैवकार्यत्वस्यहेतोर्घटादिकार्येव्याप्तिर्गृहीता । ननु किंचिद्विषयकाज्ञानादिमत्वेनघटादाकारण त्वकुलालतन्तुवायादेर्व्याप्तिर्गृहीता । किन्तुघटाद्युपादानादिसाक्षात्काराधिष्ठानसामर्थ्यविशिष्टत्वेनैव । अथान्तरविषयेज्ञानमज्ञान वा शक्तिरशक्तिर्वानप्रकृतकार्योपादेप्रयोजकतयापरिगृहीत भवति । तस्मात् कार्यत्वस्यव्याप्ति समर्थकर्तृकत्वेनैवेष्यते । यथाधूमस्यार्द्रेन्धनसयोगविशिष्टवन्हित्वावच्छिन्नैववन्हिनाव्याप्तिरावश्यकीसम्बन्धनियम, नतुवन्हिगततार्णत्वाद्यर्णत्वरक्तत्वपीतत्वाद्यनुपयुक्तधर्मावच्छिन्नेनसम्बन्धनियमस्तथैवप्रकृतेपीति ।

कथ विरुद्धहेतोरप्रयोजकत्वमितिताद्दशप्रयोजकत्वमेरोपपादयति नहि क्रियमाणकर्तुरथान्तर **विषयकमसामर्थ्यंवाकार्योत्पत्तयेऽपेक्षित किन्तु स्वसपादनसमर्थकर्तृमात्राक्षेपात् केवलव्यतिरेकासिद्धेः । तत्रअज्ञानम् विपयान्तरोपकरणादिविषयकंतद्विषयकमसामर्थ्यञ्च । स्वेति=स्वकारणतयाऽनुमीयमान-**

अथवा कतिपयकमज्ञानंकार्यत्वस्यव्यापकम् । तत्र न प्रथमपक्षोयुक्तःअनुपलंभात् । नैवं दृश्यते यत् तन्तुवायःपटातिरिक्तं न किञ्चिदपिविजानातीति । न द्वितीयपक्षः अनियतविषयतयातस्यतस्यव्यभिचारोपलब्धेः । न चास्तिकिञ्चिद् व्यवस्थितम्, यद्विषयकाज्ञानवानेवकर्तृत्वमनुभवेदिति ।

स्यकर्तुं स्वनिष्पत्त्युपयोगिसामर्थ्यादिकमेवाक्षिप्यमाण नवनि, कार्यत्वस्यसमर्थकर्तृक वेन सहैवव्याप्तेरत केवलव्यतिरेकस्य=अथात् केवलस्यनियतपूर्वमात्रवृत्तित्वस्यानुपयोगिनोव्यतिरेयस्य = अथान्तरविषय शक्त्याद्यभावस्यप्रकृतकार्येप्रयोजकतयाऽसिद्धेरिति । अथवा अथान्तरविषयशक्त्यभावस्यव्यतिरेकेत-मनरेणेत्यर्थ प्रकृतकार्यस्यव्यतिरेक एतादृशव्यतिरेकसहचारस्यासिद्धे दण्डव्यतिरेकेघटव्यतिरेकवत् । **एतावतैव** स्वनिष्पादनोपयोगिज्ञानशक्तित एव । अत्रार्थान्तरोविषयेतिबहुव्रीहिसमास । तत्र प्रधानोऽन्यपदार्थोज्ञानादिरेव, स्वचार्थसिद्धएव । सम्बन्धिन नियमन कायाव्यवहितपूर्ववर्तिन । **अकिञ्चित्करस्य** प्रकृतकार्यानुपयोगिनोऽन्यथासिद्धस्यदण्ड वदण्डरूपादिवदित्यर्थ । एव प्रकारेणार्थान्तरविषयकाज्ञानाशक्त्यादेनियतपूर्ववृत्तित्वनिविकल्पद्वारेणापिनयोरर्थान्तरविषयकाज्ञानाशक्त्योनियत पूर्ववृत्तित्वनिराकर्तुमुपक्रमते **अपिच** किं तदितरसमस्तवस्तुविषयमज्ञानादिव्यापकम् ? किंचिद्विषयकवेत्यादि । तत्र व्यापककायाव्यवहितनियतपूर्ववृत्तिनिराकरोति **तत्र न प्रथमःपक्षः** अनुपलब्धे, अर्थात् प्रकृतकार्यातिरिक्तसकलकार्योपयोगिज्ञानसामर्थ्याभाव कर्तरिकुत्रापिनप्रसिद्ध इति भाव । तदेव कथितम् न खलु तन्तुवाय पटातिरिक्त न किमपि जानातिअपितुप्रकृतकार्यातिरिक्तस्वदेहगेहादिकविजानात्येवान्यथा कार्याद्विरत कुलाल स्वगेह न गच्छेत् तद्विज्ञानाभावात्, प्रवृत्तौज्ञानस्यकारणत्वेनतदभावेगमनादिकार्यस्याभावप्रसङ्गात् ।

ननु प्रकृतघटादिकार्यव्यतिरिक्तकतिपयवस्तुविषयकाज्ञानासामर्थ्यंकर्तुरिष्टमित्याकारको यो द्वितीयविकल्पस्तदपि न युक्त ? कुत ? यत कतिपयविषयाज्ञानस्यानियतविषयतयाव्यभिचारात् । अयमर्थ अर्थान्तरयत् किञ्चिद्विषयकाज्ञानासामर्थ्यादिकव्यवस्थितकथमपि न सभवति, यथा, कश्चिद्रथकारोरथमुत्पादयितुविजानाति किन्तु तदतिरिक्तघटादिक न विजानातिकश्चित्तुघटमपि कर्तुंविजाति, कश्चित्तुतदन्योनविजानाति, अन्यस्तुतद्विजानातिसमीचीनतयेतिप्रकृतघटकार्यकर्तु कुलालादेर्घटकर्तृरन्यान्यविषयज्ञानवाऽज्ञान वा सामर्थ्यमसामर्थ्यंवाऽव्यवस्थितमेव दृश्यते । पटादिविषयकमज्ञानघटाद्यज्ञान वा कर्तृर्दुर्वचम्, तत्तदज्ञानस्यतत्रतत्रव्यभिचारात्कारणत्व न भवतीतिभाव । सर्वस्यापिकर्तु किञ्चिद्वस्तुनियमेन न ज्ञायते तत्राह **न चास्ति किंचिद्व्यवस्थितम्** यदविद्यादिमानेवकर्तृत्वमनुभवेदिति । नतुस्वविशिष्टभाववत्वेनैव । ज्ञानस्यहेतुत्वस्वीक्रियते । ननु स्वविशिष्टज्ञानाभाववत्वेनाज्ञानस्यहेतुत्वमर्थात् कारणत्वस्वीक्रियते अत्रस्वपदंप्रकृतघटादिकार्यपरकमेव । तत्र ज्ञानेवैशिष्ट्य च स्वनिष्ठविषयत्वनिरूपकत्व, स्वान्यनिष्ठविषयतानिरूपकत्व, एतदुभय सम्बन्धेन । एवञ्चतत्तज्ज्ञानस्यतत्रतत्रव्यभिचारेपिनिरुक्तरूपावच्छिन्नज्ञानाभावस्यनियतपूर्ववृत्तित्वसभवान्नकोपिदोष इति चेदेवमपिपूर्वोक्तमन्ततोगत्वापञ्चममन्यथासिद्धत्वदुर्वारमेवेतिज्ञातव्यम् ।

न चास्तिनियमःशरीरादिमानेवकर्ताभवतीति, शरीरग्रहणेनैवव्यभिचारात् । नहि शरीरविशिष्टएवात्माशरीरान्तरस्वीकरोति, अयोगिनोयुगपदनेकदेहग्रहणासंभवात् । पूर्वोपात्तदेहपरित्यागेनशरीरान्तरप्रापकशुभाशुभकर्मप्रेरितप्राणेन्द्रियसहकृत एव देहान्तरस्वीकरोतीत्यात्मसिद्धौकथितमेव । अपिचजीवस्यशरीरमधितिष्ठतोऽधिष्ठानकर्मभूतशरीरस्याधिष्ठानशरीरप्रवेशोनोपपद्यते, एक क्रियायामेकस्ययुगपत्कर्तृकर्मभावविरोधात्।
कार्यत्वस्याज्ञत्वादिविरुद्धाकाराक्षेपकत्वक्षितिमहार्णवादिकर्तरिपरमेश्वरेपरिहृतमेवेतिदिक् ।

ननु कार्यत्वघटादौतत्रकर्तृपूर्वकत्वम्, कर्ता च कुलादि सदेहएवघटादीनामुत्पादकोनतुशरीर विरहितोदृश्यते । अन्यथा परलोकप्रस्थितपूर्वरहितोपितत्रस्वाभिलषितकार्यमुत्पादयेत्, नत्वेवमभवति, असम्भवादनुपपत्तेरश्रुतत्वाच्च । इह च "न तस्यकार्यं करण च विद्यते" इत्यादिश्रुत्येश्वरस्यशरीररहितत्वेनाशरीर कथक्षित्यादिकार्यंप्रतिकर्त्तास्यात्, शरीरवतैवकर्त्राभाव्यम्, इतिशरीरित्वलक्षणविपरीताकाराक्षेपकत्वपरिहर्त्तुमुपक्रमते **न चास्तिनियमःशरीरादिमानेवेत्यादि** । एतद्दोषपरिहरति **शरीरग्रहणेनैवव्यभिचारादिति** यश्चकर्त्ता भवेत् सशरीवानेवभवेत्, इति तु न नियम । कुत ? कर्मबलादुपात्तमेकमातापितृजनितषाट्कौषिकशरीरपरित्यज्यकर्मबलेनैवनवनवशरीरान्तरग्रहणकुर्वतोजीवस्यान्तराकालेशरीराभावेनशरीररहिततयैवशरीरान्तरग्रहणदर्शनेपूर्वनियमेव्यभिचारस्यस्पष्टत्वात् । न च कुलालादीना तथैव दृश्यते इति वक्तव्यम्, अयोगिनोयुगपदनेकशरीरग्रहणासभवात् । अत्र योगबलात्, योगिनाजीवतामेवानेकव्याघ्रादिशरीरान्तरग्रहणपूर्वशरीरमत्यजतामेवदृश्यते, अतोऽयोगिनामितिकथितम् । अर्थात् ये मादृशजीवास्तेयुगपदनेकशरीरग्रहणकर्तुं न शक्नुन्ति, ततश्चपूर्वं शरीरत्यजन् शरीरान्तरमुपादत्ते इतिनवशरीरोपादानात् पूर्वशरीररहित एवेतिशरीरवानेवकर्ताभवतीति व्यभिचारस्यसुस्थिरत्वादितिभाव । ननु "तत सत्यवत कायात् पाशबद्धवशगतम् । अगुष्ठमात्रपुरुष निश्चकर्षयमोबलात्" इति शास्त्रबलात्, अयोगिनस्सत्यवतस्तथातदन्यस्याप्ययोगिन सूक्ष्मशरीरवतएव शरीरान्तरग्रहणभवतीतिकथमुच्यतेव्यभिचारोदोषोभवतीति तत्राह **पूर्वोपात्तेत्यादि** । पूर्वदेह परित्यागेनदेहान्तरप्रापककर्मप्रेरितप्राणसहायअर्थात् प्राणमात्रसहकृत एव शरीरान्तरग्रहणकरोतीतिव्यभिचारस्यतदवस्थत्वात् । ननु "रहतिसपरिष्वक्त प्रश्ननिरूपणाभ्यामितिसूत्रस्तथा श्रुतिबलात् सूक्ष्म भूतै सम्बद्धस्यैवजीवस्यशरीरान्तरग्रहणस्वीकरणीयम्, तान्येवज्ञानकर्मेन्द्रियप्राणमनोबुद्धिससृष्टानिसूक्ष्म शरीरमितिकथ्यते । ततश्चकर्तु शरीरवत्वनियमेव्यभिचारदोषोनास्तीतिचेत् ? तत्रवच्मि, तथापि, कर्तु. षाट्कौशिकस्थूलशरीरवत्वनियमेव्यभिचारो न व्यभिचरति, अपिचलोकव्यवहारशास्त्रप्रमाणाच्चस्थूलशरीरमेवमुख्यतयाशरीरपदाभिधेयम् लिङ्गशरीरस्य न मुख्यशरीरत्वम्। गौणशरीरतुपरमाणव ईश्वरस्यापि विद्यते एवेति । तदुक्तमुदयनाचार्यैरिति । तदनेन "न च शरीरवतैवकर्त्राभाव्यमितिगतप्रकरणेन, शरीरोपादानेजीवस्यकर्तृत्वस्थूलशरीररहितस्यैवभवतीतिसमर्थ्यशरीरादिप्रेरणादिकार्येऽपि जीवस्यशरीररहितस्यैवकर्तृत्वभवतीतिदर्शयितुमुपक्रमते **अपि च जीवस्य शरीरमधितिष्ठतोऽधिष्ठानकर्मभूतशरीरस्याधिष्ठानशरीरप्रवेशोनोपपद्यते इत्यादि** ।

अधितिष्ठासितशरीरसंयोगवत एव तत्प्रवृत्त्यनुगुणप्रयत्नयोगलक्षणमधिष्ठानं दृश्यते इतिचेत् ? अस्त्वेकतस्त्वसंबद्धस्याधिष्ठानानुपपत्तेः प्रेर्यपदार्थसम्बन्धिना प्रेरकेण भाव्यम्, न पुनः शरीरसम्बन्धिना भवितव्यमिति , कथमयं निश्चयः ? इत एवायं निर्णयः, यतोऽन्यदप्यधिष्ठीयमानं दण्डचक्रादि स्वसम्बन्धिनैवाधिष्ठीयते । तस्मादधिष्ठानक्रियापेक्षिताधिष्ठेयवस्तुसम्बन्धमात्रातिरेकेण शरीरसम्बन्धो नान्यादृशः स्वीकर्तव्यः । ईश्वरस्यापि जगदुपादानोपकरणैः सम्बन्धोऽस्त्येवेत्याचार्योदयनस्योद्गारः ।

अथ स्वशरीरातिरिक्तपदार्थे प्रवृत्तिनिरूपकत्वं स्वदेहद्वारेणैव भवति । दृश्यते च

तत्र शरीरमधितिष्ठतोऽर्थात् शरीरस्य प्रेरणं कुर्वत । अधिष्ठातृदेहेऽनुप्रवेशं कुर्वतस्तत्राधिष्ठातृदेहेऽनुप्रवेशानाम, अधिष्ठातृतावच्छेदकघटकत्वम् , तत्र शरीरमधितिष्ठतो जीवस्य अधिष्ठातृतावच्छेदकोधमा जीवसकलपादि प्रयत्नादिश्च, नतु तदीयशरीरमप्यधिष्ठातृतावच्छेदकम् , कार्यस्य तावनुप्रविष्टस्य कारणकोटिप्रवेशासभवात् , तथात्वे आत्माश्रयात् । यदा खलु अधिष्ठानक्रियाभूतं जीवशरीरं तस्मिन्नेव काले तदधिष्ठानकर्तृतावच्छेदकत्वं न सभवति, कार्यस्य कारणकोटौ प्रवेशासंभवस्योक्तत्वात् । एवं च तदुभयत्वं कुतो न सभवतीति न शकनीयम् ? अदर्शनादनुपपत्तेश्च । यथा "काष्ठं छिनत्ति कुठारेण-कारुक" इत्यत्र द्वैधीभावात्मकच्छेदनक्रियाकर्मभूतकाष्ठस्य तच्छेदककर्तृतावच्छेदकत्वं न सम्भवति, तथैवाधिष्ठानक्रियाकर्मभूतशरीरस्य कर्तृतावच्छेदकघटकत्वं नैव सम्भवेत , अदर्शनादनुपपत्तेश्चेति भाव । ननु जीवाधिष्ठातृसम्बद्धदेहस्य कथं नाधिष्ठातृतावच्छेदकत्वम् ? यथा देहावच्छिन्नजीवस्य सुखादौ कारणत्वे तदवच्छेदकीभूतशरीरस्यापि, अवच्छेदकतासम्बन्धेन कारणत्वं तथैव प्रकृते शरीरस्य कथं नाधिष्ठातृतावच्छेदकत्वमिति शङ्कते **अधितिष्ठासितशरीरसंयोगवत** इत्यादि । देहसम्बन्ध एव तत्प्रवृत्त्यनुकूलप्रयत्नयोगस्वरूपमधिष्ठानं दृश्यते इति प्रश्नाशय । उत्तरयति **अस्त्वेकतस्त्वसम्बद्धस्याधिष्ठानानुपपत्तेरिति** प्रेर्यवस्तुना सह प्रेरकस्यावश्यकोनतु शरीरसम्बन्ध आवश्यक । अर्थादत्यन्तोऽसम्बद्धस्याधिष्ठेयवस्तुना तदधिष्ठातृत्वस्य, काष्ठाद्यसंबद्धकुठारस्य छेदकत्वासभववदेव, अधिष्ठेयसम्बन्धिनाऽधिष्ठात्रा भवितव्यमित्येव नियमो न तु शरीरसम्बन्धवतैव भवितव्यमित्याशय ।

ननु प्रेरणादिक्रियाप्रति प्रेरकस्य कर्तु प्रेर्यवस्तुना सम्बन्धमात्रमपेक्षित, ननु प्रेरकस्य शरीरसम्बन्धोपेक्षित इत्याकारकनियमे किं नियामकमिति पृच्छन्नाह **कथमयंनिश्चयः ?** उत्तरयति, **इतएवेति** । तदेवोपपादयति **यतोऽन्यदप्यधिष्ठीयमानं दण्डादि** इत्यादि । तत्राधिष्ठीयमानं—प्रवर्त्यमानम् , स्वसम्बन्धिना—प्रेर्यानुयोगिकसंयोगवता, हस्तादिकमित्येव विशेष्यम् । अयं भाव —स्वावच्छिन्नसंयोगवत्त्वसम्बन्धेन शरीरवत एव जीवस्य प्रवर्तकत्वमिति न नियम हस्तादेरपि मानदण्डप्रवर्तकत्वात् । प्रेर्यसम्बन्धक एव प्रवर्तकत्वमिति तु सभवति हस्तादेरपि रामेण बाणेन हतो वालीत्यादिस्थले प्रेर्यसम्बन्धात । अथवा, मतविशेषे परमेश्वरस्यापि परमाणुशरीरश्रवणात् । "सहस्रशीर्षा पुरुष" इत्यादिश्रुत्यापि तस्य शरीरवत्त्वश्रवणादिति सक्षेप ।

पुन शङ्कक शङ्कते **अथस्वशरीरातिरिक्तपदार्थे** इत्यादि । यो यजीव प्रवर्तको भवति तत्र स्वकीयशरीरभिन्ने वस्तुनि प्रवृत्तिविशेषकरत्वं जीवस्य स्वकीयशरीरद्वारेणैव भवति, यथा घटादिकार्याय कुलालो

लौकिकदण्डादिषुकुलालस्यहस्तसम्बन्धेनैवप्रवर्तयित्वमित्यपि न युक्तम् , संकल्पाभिध्यानमात्रेणैवसपदष्टदेहगतविषनिर्गमनादेर्दर्शनात् । शरीराभावेपरप्रेरणात्मकः संकल्पःकथं स्यादितिचेत् ।

किं देहमेवसंकल्पयति येन तदभावेसंकल्पएवनोत्पद्येत। करणत्वमिति न मनस एव

दण्डादिकरणप्रेरयति तत स्वहस्तेनैवदण्डादिकप्रवर्तयति । तत्र प्रवर्तननामपरव्यापारप्रयोजकप्रयत्नवत्वरूपमेव तच्चप्रयत्न वपुरुषस्यकर्तुरेव। स च पुरुष स्वहस्तव्यापारेणैवमानदण्डादिकघटोत्पादनार्थंप्रवर्तयति। एवञ्चशरीरशरीरावयवपदार्थप्रवर्तनेशरीरतदवयवहस्तादिव्यापारापेक्षाविद्यते एवेति न परमेश्वरस्यसर्वथा विग्रहरहितस्यपरमाणवाद्यचेतनपदार्थस्याधिष्ठातृत्वसम्भवति, अधिष्ठानस्यशरीरनियन्तृत्वात् , तदभावे तदभावादितिप्रश्नकर्तुराशय इत्यप्रकाशिनोभवतीतिसक्षेप । एतन्नियममपिव्यभिचारदोषेणैवदूषयितुमुत्तरयति **संकल्पाभिध्यानमात्रेणैवेत्यादि,** सकल्पध्यानादिमानसव्यापारमात्रेणदेहदेहावयवहस्तादिव्यापारमन्तरेणापिपरकीयशरीरस्थितविषनिवर्तनावतारणादिदर्शनस्यलोकसिद्धताया शरीरतदवयवव्यतिरिक्ताधिष्ठानेदहादिव्यापारसापेक्षत्वनियमस्यव्यभिचारोपलम्भादित्यर्थ । प्रेर्यपदार्थेनसहयोय प्रेरकस्यसम्बन्ध सोपिज्ञानद्वारेणैवनान्यादृश सम्बन्ध इतिविभावनीयम् , तदन्यस्यासम्भवादिति ।

पुन शङ्कत **शरीराभावेपरप्रेरणात्मकः** इति । अर्थात "जानातीच्छतिप्रयतते" इति नियम सचदेहसद्भावेएवसम्भवतिकुलालादौतथवदृष्टत्वात् , सर्वचैतद्देहमूलकम्, असतिदेहेनदसम्भवात । जन्यज्ञानादौदेहस्यैवनियामकत्वादितिभाव । उत्तरघटितमेवाक्षिपति **किंदेहमेवसंकल्पयति** इत्यादि । किमत्रशरीरस्यसकल्पात्मककार्येकर्तृत्व, येन तदभावेसकल्पात्मककार्यस्य निष्पादनमेवकुलालाभावेघटाभाववदित्यर्थ । पुनरपिशङ्कते **करणमिति** इति । न देहस्यसकल्पेकर्तृत्वयेनायमुपर्युक्तदोषोभवेत् , किन्तु संकल्पप्रतिदेहकरणमित्यर्थ । पुनरुत्तरयति **मनसएवकरणत्वादिति** । सकल्पप्रतिदेहस्यकरणत्वमिति नान्यत्रोपलब्धम् , तस्मादनकल्पनीयम , तदपेक्षयाऽन्तरेच्छादिकप्रतितुसर्वसिद्धमनसएवकरणत्वमितिमनस करणतयेवेहापिनिर्वाहसम्भवेनाकल्प्यस्यतत्कल्पने गौरवमात्रमेवहस्तगतभवति, तस्मात् सकल्प प्रतिदेहस्यकरणत्वमितिरिक्तमेववच इत्यर्थ ।

एवञ्चशरीराभावेस्वनियतकरणादेवसकल्प स्यादेव न कोपिदोषइति । ननुभवतुसकल्पादौमनस करणत्वतथापिजन्यज्ञानादौशरीरस्याप्यवच्छेदकतासम्बन्धेनापेक्षास्यादेव, यथादेहावच्छिन्ने आत्मनि यदासुखादिकमुत्पद्यतेतादृशसुखादिकार्येसमवायिकारणमात्मा, असमवायिकारणमात्ममन सयोगोनिमित्त कारणमदृष्टादिकम , अत अवच्छेदकतासम्बन्धेनसुखोत्पत्तिंप्रतितादात्म्यसम्बन्धेनावच्छेदकशरीरस्यकारणत्वम् । तत्रशरीरेऽवच्छेदकतासम्बन्धेनसुखकार्यंतिष्ठतितत्रैवशरीरेतादात्म्यसम्बन्धेनकारणदेहोपितिष्टतीति सुखदेहयो कार्यकारणयो सामानाधिकरण्यनिर्वाहोऽपिभवति । यथा "हिमालयेवनौषधयउत्पद्यन्ते" अत्रवनौषधीनामुपादानकारणतदवयवावा परमाणव असमवायिनिमित्तकारणतुयथायथमवयवसयोगोऽदृष्टादिकम , हिमालयस्त्ववच्छेदकतयैवकारणम , इहाप्यवच्छेदकतासम्बन्धेनवनौषधीनामुत्पादेऽवच्छेदकस्यहिमालयस्यतादात्म्यसम्बन्धेनविद्यमानतयानिर्वर्तितस्तयो कार्यकारणभावइति ।

एवञ्चदेहस्याप्यवच्छेदकतासम्बन्धघटकतयाऽपेक्षाविद्यते एवेतिचेत् , अत्रोच्यते—ज्ञानोत्पत्तावच्छेदकतासम्बन्धेनशरीरापेक्षेतिमन्ये, परन्तुनत्रैतावान् विशेष यत् बद्धजीवस्यज्ञानाद्युत्पादेएवशरीरापेक्षा, नतुज्ञानसामान्येदेहापेक्षा । तदुक्तश्रुतौ "मनसैवैतान्कामान् पश्यन्रमते—यएतेब्रह्मलोके" "तन्म-

करणत्वात् । नतुतर्हीश्वरस्यजीववन्मनोपिविद्यते, मन्यंतथात्वेकाक्षति नन्वेवंतर्हीश्वर-
स्यदेहधर्मधर्माधर्मादयोपिप्रसज्येरनितिचेन्मैवम् , कार्यत्वाक्षिप्तसमर्थकर्तृमत्तयैवास्यदोष-
स्यापास्तत्वात् । मनस' शरीरित्वव्याप्यत्वमपि न संभवति आन्तरेन्द्रियस्यमनसो-
नेत्यतयाशरीराभावेपिप्रायेणसमयेसम्बन्धसत्वेनव्यभिचारात् । यावद्भिदृष्टानुगुणंव्या-
प्तावुपयोगिभवति तावन्मात्रंव्याप्तयेस्वीक्रियते । अस्मादृशैर्लौकिकपालादिभिर्मनसाप्यचि-
न्त्यरचनस्यभूतमहाभूतादिप्रपञ्चकलापस्यसर्वज्ञभिन्नेनाल्पशरीरकोऽल्पज्ञश्चपुण्यपाप—
नोऽकुरुत" "एकोहबहुस्याम" "मनसैवजगत्सृष्टिम् " इत्यादिनामुक्तत्वनि यमुक्तस्यपरमेश्वरस्यसर्वसम-
र्थस्यचमनोवत्वप्रदर्श्यते, एतावतैवैपाज्ञानसकल्पादिकदेहाभावेपिप्रतीयते । यद्यपिमन प्रभृतेरंगत्रिष्टान
शरीरमितिमातापितृजतदभावेमनोवत्वमसभवितमिवाभाति, तथापितत्कालेनादृशशरीरस्याभावेपि, मनसो-
नित्येन्द्रियतयत्वोपगमादेव शरीरेन्द्रियापेक्षाविरहेपिज्ञानसकल्पादीनामान्तरात्मधर्मणामुत्पत्तौ न काय-
नुपपत्तिर्भवति । यस्य तु तार्किकस्यमते, परमेश्वरज्ञानचिकीर्षाप्रय नादीनानित्यत्वम , तन्मते तु ज्ञान
सकल्पादिकप्रतिशरीरापेक्षानह्येवभवतीति । अत्रमनोवत्वागन्तुकसकल्पादीनात्र समर्थनकृतवान , तदेक-
देशिमतमाश्रित्यसिद्धान्ताभिप्रायेण वा कृतवान् । यत परमेश्वरस्यकार्यकरणचविद्यत इत्यादिनाशरीरेन्द्रि-
याद्यभावप्रतिज्ञाय "अपाणिपादोजवनोग्रहीतापश्यत्यचक्षु सशृणोत्यकर्ण । न तस्यवेद्यनहितस्यवेत्ता-
तमाहुरग्र्यपुरुषमहान्तम् ।" "एषसर्वज्ञ " "ज्ञानघन " "परास्यशक्तिर्विविधैवश्रूयतेस्वाभाविकीज्ञान-
बलक्रिया च ।" "यतो वा इमानि भूतानिजायन्ते" इत्यादिश्रुतिबलेन च तस्यदेहाभावेपिज्ञानसकल्पा-
दिमत्व च समर्थितवान् । सर्वस्वतन्त्रस्यसर्वेसर्वदाशोभते एवेतिसक्षेप । ननु यदिपरेशस्यमनोवत्व-
मिष्यते तदानिष्टापादनभवतीत्याशयेनशङ्कते—**नन्वेवमिति ।** विग्रहवमाग्मानैश्वयादयोपि न स्यात् ,
यतोमनोवत्वस्यशरीरित्वादिव्याप्यतयाशरीरादिधर्मवत्वमपीश्वरस्यापद्येत, इत्यर्थ । उत्तरयति **मैवमि-
त्यादि** । समर्थकर्तृपूर्वकत्वेनसहैवकार्यत्वस्यहनोव्याप्तिर्गृह्यते । तत एवमहीमहीधरादिपक्षेसंसिद्ध्यत
कर्तु परमेश्वरस्याशरीरित्वैश्वर्यवत्वाद्येवसिद्ध्येत, "यक्षानुरूपोबलि " इत्यादिन्यायात , नहिराज्ञआग-
मनरथाश्वादिविरहितस्य भवति, आगच्छतिराजेतिश्रवणेरथाद्यागमनमर्थेनएवसिद्ध्यतीति । परमेश्वरस्य
शरीरित्वस्वीकारेतुअसामर्थ्यप्रसङ्ग प्राप्नुयात् , एतत्त्वमग्रेप्रतिपादयिष्यते । एवञ्चपरमेश्वरशरीरत्वा-
नैश्वर्यादीनामापादनधर्मिग्राहकप्रमाणबाधितम् । परमाणु स्थूल परपरयास्थूलारम्भकत्वादित्यनुमानेपक्ष
साधकप्रमाणेनवावस्तथैवप्रकृतेपीति । एवमनस शरीरित्वव्याप्यत्वमपिनसभवतीतिदर्शयितुमाह **मनस**
इत्यादि । शरीरविगमेपिप्रायेणावान्तरप्रलये च नित्येन्द्रियत्वात्मनसोविद्यमानतयाकालावच्छेदनशरीर
व्याप्यत्वमनसोनास्तीति ।

अथैवमपिशरीरसहितस्यैवकर्तृत्वतत्रतत्रकुलालतन्तुवायादावदृष्टमितिशरीरिकर्तृकत्वेनैवकार्यत्वस्यव्या-
प्तिग्रह कथनस्यादपितुनथैवव्याप्ति स्यादित्याशङ्कायामाह **यावद्भिदृष्टानुगुणमि** त्यादि । तत्र
दृष्टानुगुणकार्यानुकूलतयादृष्टमतएव व्याप्तावुपयोगियद्रूपतदवच्छिन्नहेतुनासहैवसाध्यस्यव्याप्तिरेष्टव्या,
धूमत्वावच्छिन्नेनसहवन्हित्वावच्छिन्नसाध्यवत् । अत्र च ज्ञानस्यशक्तेरेव च कार्यानुकूलता, ते उभे
यद्यपिशुभाशुभकर्मपराधीनेकुलालादौशरीराधीने एव, एतावतातशरीरादव्यापकतावच्छेदककोटौसमावेश
स्तार्णत्वातार्णत्ववदिति । एवमनभिमतापादकत्वस्यनिराकरणकृतवान् । अथचाभिमतविशेषसिद्धिप्रकार

पराधीनो न तन्निर्माणंकर्तुंशक्नोतीति परिशेषात् सकलैश्वर्यशक्तिः सर्वज्ञोविग्रहानपेक्षः स्वसंकल्पमात्रेणवसर्वमुत्पादयतीतिसएवजगतः कर्तासिद्धोभवतीति संक्षेपः।

एतादृशमहामहिमगुणवताकर्त्रासहकार्यत्वस्यहेतोर्घटादिकार्येषु व्याप्तिरदृष्टचरेति चेत्? अतिनिबिडपर्वतप्रान्ताविच्छिन्नसर्वथाऽपरिदृश्यमानेन्धनादिसम्बन्धवतावह्निधूम-स्यव्याप्तिरदृष्टान्येनतत्रपर्वतेधूमविशेषदर्शनात्पर्वते तादृशोवह्निरनुमितोभवति। ननु यत्र यादृशोधूमोज्ञातस्तत्रतादृश एव तत्संपादनसमर्थउदाहरणेऽज्ञातोपिसामान्यलक्षणयासा-मान्यव्याप्तिबलेन पक्षधर्मताबलात्तादृशसाध्यस्य सिद्धिर्भवतीति चेत्! तदिदमुभयपक्षेपि समानमेव, अन्यत्रस्वपक्षपातात्। एवमत्रापि घटादिषु कार्यत्वं समर्थकर्तृकत्वेनैवज्ञात-व्याप्तिकं सत्, पृथिव्यादिकार्येषु परिदृश्यमानंस्वोत्पादनशक्तिकमदृष्टपूर्वं ज्ञानादिमत्क-र्तारं साधयति। देशकालादिविशेषमनादृत्यैवधूमस्यस्वजननसमर्थवह्निमात्रेणैव सहव्याप्ति गृह्यतेइतिनियमस्तथैवाल्पज्ञत्वशरीरवत्त्वादिविशेषान् पापपुण्यपराधीनत्वादीविशेषपरित्या-गेन कार्यस्य तदुत्पादनसमर्थज्ञानादिमत् कर्तृमात्रेणव्याप्तिग्रहोभवतीति न कोपिविशेषः।

विविच्यदर्शयति—**अस्मादृशैरि**त्यादि। अपर्यन्तविस्तारस्य, नास्तिपर्यन्तोविरामोयस्यतादृशस्य, अन-वधिकविस्तारवतोऽपरिच्छिन्नस्य यर्थ। महाभूतभौतिकप्रपञ्चस्य, तत्रभूतसपञ्चीकृततन्मात्रादिकम्, महाभूतस्थूलाकाशादिकम्, भौतिक प्रपञ्च श्रोत्रादिघ्राणान्तइन्द्रियगण एतादृशप्रपञ्चस्यलोकस्य, लोकपालादिकैर्महामतिपशालिभिरपि, मनसापि, अचिन्त्यरचनावतश्चतुर्दशभुवनस्यप्रादेशिकशरीरक =परिच्छिन्नमूर्तिमान्, किञ्चिदज्ञोऽल्पज्ञ इत्यर्थ, तथापुण्यपापपराधीनश यागतिमान्, कथंनिर्मा-णायसमर्थ स्यात् न कथमपिसमर्थ सर्वथाकर्तुमसमर्थएवेति। तस्मात् **परिशेषात्**=योहिपुरुषविशेषो ऽनन्तशक्तिश्चविभोर्विविज्ञा इत्यादिशास्त्रसमर्थितापरिमितज्ञानैश्वर्यशक्तिसम्पन्नोमातापितृजपाञ्चकौशिक शरीरसाहाय्यानपेक्ष स्वकीयामोघसंकल्पमात्रादव 'सर्वाल्लोकान् सुसंहृत्यसभूतान्सचराचरान्। पुन-रेवथास्रष्टुंशक्तोरामोमहायशा।' इत्यादिरूपेणमहर्षिश्रीवाल्मीकिप्रतिपादितदिशा सकलभुवननिर्मा-णक्षम कर्त्तासिद्धोभवतीतिसंक्षेप। तदाहुर्जगद्गुरव श्रीरामानन्दाचार्या "यस्माद्विश्वमुदेतियत्रलभते संरक्षणशाश्वतयस्मिन्नन्त्यमेतियोहिसततकारुण्यवारांनिधि। य कल्याणगुणाकरस्त्रिजगत श्रेय परप्रा-पकस्त ब्रह्मार्चितपादपद्मयुगलरामाख्यमीशंनुम" इति तदुक्तमभियुक्तैरपि—

"संसारपटकुविन्दजगदण्डकलशकुलालमीशानम। सर्गप्रलयसिताकुसुमस्रग्मालिनंवन्द॥ इति॥

अन्यत्रापि—"परमेश्वरशक्तिलतायामलाबुल्मात्रत्सहस्रशोऽण्डान्यनुस्यूतानीत्यनुश्रूयते' इत्युदयन।

॥ इतिपरमेश्वरसाधककार्यत्वहेतोविरुद्धदोषपरिहरणप्रकरणेतत्त्वदीप॥

पुन शङ्कते प्रतिवादी **एतादृशमहामहिमगुणवताकर्त्रा** इत्यादि। कर्मपराधीनत्वशरीर रहितत्वसर्वज्ञत्वामोघसंकल्पत्वादिविशिष्टेनकर्त्रासहकार्यत्वहेतोर्व्याप्तिर्घटादिकार्येषुनदृश्यते, तदानतोऽति-विलक्षणतत्ताकथमतस्मात् हेतोर्न्याप्ति स्वीक्रियतेइतिशङ्काग्रन्थस्यतात्पर्यम्। वह्नित्वादिसामान्यधर्मात्र-च्छिन्नस्य येनव्याप्तिग्रहणादवपक्षधर्मतासहकारात्तदितरबाधसहकाराद्वापर्वतीयसाध्यविशेषस्यसिद्धिर्जायते तथप्रकृतेपि किं न तथा स्यादित्याशयमनुरुध्यप्रतिबन्दिउत्तरमाह **अतिनिबिडपर्वतप्रान्तेत्यादि**। उत्तरेसमानतामेवदर्शयति, तदिदमुत्तरपक्षेपिसमानमेवकेवलस्वपक्षपातात्। यथा देशकालस्वगतपरि-

किञ्चव्यापकद्रव्याकाशात्मसम्बन्धवत्. क्रियावतश्चमवत्राव्यभिचरितत्वेपि, ज्ञानसुखदुःखादिविशेषगुणादनुमितात्मसंयोगवतोमनसः कथंस्पर्शराहित्यमभ्युपगम्यते ।

कथं वा वायवीयद्रव्यस्यमहत्वगुणवतोऽनियताधिष्ठानस्पार्शनत्वनियमदर्शनेपि-माणादिविशेषयुक्तवन्हेर्व्यभिचारात्, धूमव्यापकतावच्छेदकघटकत्व न भवति, किन्तु वन्हित्वमात्र-व्यापकतावच्छेदक भवति, किन्तु आर्द्रेन्धनसंयोगमहत्त्वन्हित्वमात्रधूमव्यापकतावच्छेदकत्वमत्र म-नुष्यत्वादिसहचरितम्, न कर्तृतावच्छेदककोटीघटकम्, यतोऽन्यत्रापितथादर्शनात् । ननु मनुष्यादिक न व्यापकतावच्छेदकतदाकिमत्रतद्घटक तत्राह **एवमत्रापीत्यादि** अर्थात सामर्थ्यमात्रव्यापकतात्र-च्छेदकमिति । यथापर्वतादौधूममात्रहेतुत एववन्हिनिरूपस्यपर्वतानुयोगीकस्यपक्षधर्मतासहकारेणसिद्धि-र्भवतिनान्यादृशस्यवन्हे सिद्धिर्भवति, तथैव प्रकृतकार्यत्वहेतुत पृथिव्यादिपक्षेऽप्यपूर्वस्यापिसर्वसमर्थ-सर्वशक्तिमतोऽपरिमितज्ञानवत् कर्तुरनुमान भवति । धूमहेतौ कार्यत्वहेतोश्चवैलक्षण्याभावादिति ।

ननु सपक्षदर्शनमात्रेणाथात् निश्चितसाध्यवतिसपक्षेयेयादृशाधर्मा परिदृष्टास्तेपामर्वेपापक्षे आपादनेप्राय प्रत्यक्षधर्मिकानुमानमात्रमस्तंतामियात, तथा तत्र प्रतिबन्दादर्शयितुमुपक्रमते **किंच-व्यापकद्रव्याकाशे**त्यादि । तत्र "व्यापकद्रव्य" इत्यनेनमनसोव्यापकत्वनिराकृतम, न्यायमते विभुद्रव्ययोराकाशकालयो संयोगस्यास्वीकारात् । नच यद्याकाशकालयो सम्बन्धान्तरस्यसमवाया-देरसम्भवात्, परिशेषात् तयोर्द्रव्यरूपतयासंयोगआवश्यकत्वेनिवाच्य तयासतितुल्ययुक्त्यातथाविधोविभा-गोपिसिद्ध्येत्, प्रतियोगिनोर्नित्यतयानित्यसंयोगवत् तयोविभागोऽपिनित्य स्यात् । सचनेष्ट काला-काशौविभक्ताविति प्रतीतेरभवात्, इत्थ च संयोगस्यक्रियाजन्यत्वस्यश्येनशैलादौदृष्टत्वेनव्यापकयो क्रियाया अभावेनव्यापकयोर्नित्य संयोगो वा तादृशोविभागोवानाद्रियते । ज्ञानसुखाद्यसमवायिकारणसंयोगाश्रय-तयामनस सिद्धिर्भवतीति । ज्ञानादीनामुत्पत्तौसमवायिकारणमात्मा, आत्मन संयोगस्यासमवायिकार-णत्वमदृष्टादेर्निमित्तकारणत्वम् । समवायिकारणत्वद्रव्यस्यैवेतिनियमेनसमवायित्वमात्मनो गुणकर्मणोरेवा समवायित्वमितिनियमेनात्मन संयोगोऽसमवायिकारणम् । ततश्च ज्ञानाद्यसमवायिकारणसंयोगाश्रय-तयामन सिद्ध्यतीतितन्मतम् । तथा ज्ञानानामयौगपद्यात, तस्यमनसोऽणुत्वम्, मध्यमपरिमाण-वत्वेव्यापकत्वे वा अनेकेन्द्रियेणयुगपत् सम्बन्धादनेकज्ञानजन्मप्रसङ्गात् । "अयौगपद्याज्ज्ञानाना-तस्याणुत्वमिहेष्यते" इति तन्नियमात् । "कथितान्यगवश्चेतिसूत्रेऽणूनीन्द्रियाणिहि" (श्रौतप्रमेय-चन्द्रिका १/१२४) "प्राणमनूत्क्रामन्तसर्वेप्राणाअनूत्क्रामन्ति" (बृ ४/४/२) इत्यादिश्रुतिस्मृ-त्योश्च । एवस्पर्शराहित्येनत्वचाऽग्राह्यत्वम्, स्पर्शवत्वेवायुवन्मनसोपिभूतत्वप्रसङ्गात्, नीरूपत्वाच्च-चक्षुरयोग्यत्वम्, अन्यथाघटादिवदेवभूतत्वमेवप्रसज्येत । मनसोभूतवस्वीकारचाभूतात्मादिविशेष-गुणग्राहकत्वतस्याचक्षुरादिवदिति । एवञ्चयोहिविभुद्रव्यसंयोगी क्रियावान्, तत्रस्पर्शवत्वघटादिवद् भवत्येव, ततश्चैतादृशस्यमनस स्पर्शत्वकथनाभ्युपगतम, तस्मात् क्वचिद्यद्दृष्टतत्सर्वत्रतदन्यत्रभवत्ये-वेति न नियमोमनसि व्यभिचारात् ।

अत्रायप्रतितर्को मनोयदिपरिच्छिन्नपरिमाणवत्स्यात्, क्रियावद्वाभवेत्तदास्पर्शवदवश्यमेव, पर-न्तुघटादिवन्मनसिक्रियावत्वप्रमाणासिद्धमपि किन्तुस्पर्शवत्व न केनापिस्वीकृतम्, अन्यथा प्रयाणकाले शरीराद्विनिर्गच्छतोमनसः स्पर्शवत्तयाऽनुभवोभवेत्, परन्तु न केनाप्यनुभूततदुपपद्यतेवेति । भूयो

त्वगिन्द्रियेशरीरान्तर्गतेतदभावोभवति। कथं वा तैजसद्रव्यरूपस्पर्शयोरन्यतरस्यप्रत्यक्ष नियमेपिरूपोपलंभसाधनतानुमिततेजसस्यचक्षुषोनियमस्तदुभयानुद्भवयोःस्वीकारः। अथ कार्यज्ञानानुमितसद्भाववतोतेजसत्वेपितत्तद्विशेषणांशयोग्यानुपलंभापहतविषयतया, तद्-भूय सहचारदृष्टयोरपिपृथिवित्वलोहलेख्यत्वयोर्वज्रेव्यभिचारवदिहापि व्यभिचारागमनमिस्पर्शवत्वस्यव्य-भिचारइति भूयसहचारदृष्टस्येदप्रथममुदाहरणमितिदर्शयित्वानिदर्शनान्तरदर्शयितुमुपक्रमते **कथंवावा-यवीयद्रव्यस्य** इत्यादि महत्वगुणशालिनोनियतावष्ठानेति। अत्रानियतावष्ठानस्येत्याकारकप्रश्नाश स्तथासत्येवप्रकरणसगते। यद्यपिमहत्वगुणवतोवायो सर्वदेरणतयासर्वदेवगमनशीलस्यानियताविष्ठानत्व मुद्भूतस्पर्शवत्वात् च प्रत्यक्षविषयत्वभूयो भूयोदृष्टम्, तथापि वायवीयत्वेनानुमितशरीरव्यापित्वगिन्द्रि-यस्यनियताविष्टानत्वस्पार्शनप्रत्यक्षाविषय वमेवाभिमतम्। यद्यपीन्द्रियमात्रस्यातीन्द्रियतयाऽन्तरत्वेन च न स्पार्शनविषयतायाः सभवस्तथापिप्राद्विवादनप्रकरणानुकूलतया च निदर्शनत्वेनव्यभिचारित्वमुदाहृत-मिति। अत्रायप्रतितर्क —त्वगिन्द्रियस्यवायवीयमहत्कार्यत्वेउद्भूतस्पर्शवत्वभवेत्, नत्वेवतथाऽदर्शना-दितिद्वितीयमुदाहरणप्रदर्शनम्।

अन्यदपिदृष्टान्तमुपन्यसितुमाह **तैजस** इत्यादि। यत्कार्यरूपजन्यतेजोद्रव्यम् तस्यमहिम गुणवतोमहतस्तस्योद्भूतस्पर्शव वद्दृश्यते, तदन्यतरस्य वा प्रत्यक्षविषयत्वनियमतोदृश्यते एववैश्वानरादा, परन्तुविज्ञानसकरणकम् क्रियात्वात्, इत्यनुमानेनचक्षुरिन्द्रियमेव, तत्रकरणतयाऽनुमियते, चक्षुस्तै-जसरूपादिषुमध्येरूपस्यैवाभिव्यजकत्वात्, इत्यनुमानेनचक्षुषस्तैजसत्वात् तत्वाच्चोद्भूतरूपवत्वमपि तथापितस्यप्रत्यक्षत्वनेतिकथमिवसभवेत्। अर्थात् जन्यतेजस काष्ठाश्रितवन्ह्यादेर्महत्वयुक्तस्यरूपस्पर्श-योरुद्भूतत्वज्वलनादौ, सर्वानुभूतम्। स्पर्शमात्रस्योद्भूतत्वभर्जनकपालस्थितवालुकादो, तत्रतादृश वालुकान्तर्गतवन्हेरप्रत्यक्षत्वेपितद्गतवन्हे स्पर्शवत्वस्योपलभेनोद्भूतस्पर्शवत्वत्वगिन्द्रियेणगृह्यते, तैजस प्रमादोरूपमात्रस्योद्भूतत्वस्पर्शस्यतत्रानुभवाभावात्। एवञ्चरूपस्पर्शोभयतदन्यतरोद्भवस्यबहुशोदृष्ट-त्वेपिचक्षुरिन्द्रियस्यरूपादिषुमध्येरूपमात्रव्यञ्जकत्वेनानुमीयमानतैजसस्यतदुभयानुद्भवोऽर्थात्, चक्षुषि उद्भूतरूपाद्भूतस्पर्शयोरभाव कथम्। चक्षुषितयोरभाव कथमिति न शङ्कनीयम्, प्रमाणाभावेन तदवगमात्। यदिकदाचित् चक्षुषिउद्भूतरूपस्पर्शयो सभवोभवेत् तदावैश्वानरादिवदेवचक्षुषोपितै-जसेन्द्रियग्राह्यताभवेत्—परन्तुनत्वेवक्वचिद्दृष्टश्रुतमुपपद्यतेवेति।

चक्षुषो विवैश्वानरादिवत् तैजसमहत्कार्यत्वेतत्ररूपस्पर्शान्यतरोद्भव स्यादितिप्रसङ्गोऽत्रा-वधातव्यइति। उपर्युक्तप्रतिकूलतर्काणामाभासत्वमेवे याशयेनाह=**अथकार्यज्ञानानुमितसद्भावे** त्यादि। तत्तद्विशेषाणाम्—उद्भूयोभूय सहचारदर्शनमात्रेणचक्षुरिन्द्रियादावापाद्यमानानायोग्यानुप-लभबाधितत्वमितितापादकत्वमापाद्यस्येत्यभिप्राय। यद्यपिमनसोऽणुत्वेनाप्रत्यक्षत्वात्, तादृशाधिकरणे स्पर्शवत्वस्य, योग्यानुपलभबाधोनयुक्त, यत "लब्धरूपेक्वचित् किञ्चित् तादृगेवनिषिध्यते, प्रमाण-मन्तरेणासौ न निषेध्यस्यसभव" इतिवचनात्। तथापि तत्रोद्भूतस्पर्शवत्वोपगमेऽनेकनियमभङ्गोऽ स्त्येव। एतदभिप्रायेणकथितम् **तदभ्युपगमेऽनेकनियमभङ्गप्रसङ्गाच्चतथाभ्युपेयते** इति। तत्रयथा, मनइन्द्रियस्यस्पर्शवत्वेभूतत्वादनिन्द्रियत्वप्रसङ्ग, अन्यत्रस्पर्शवताभूतत्वदर्शनात्, मनसो भूतत्वास्वीकारेस्पर्शवत्वेभूतत्वेभूतत्वमेवघटादिवदितिनियमभङ्गप्रसङ्ग। तदनुरोधात् कदाचिद्भूत-

भ्युपगमेऽनेकनियमभङ्गप्रसङ्गाच्चतथाभ्युपेयते ? इतिचेत् तर्हिप्रकृतविषयेपिप्रामाङ्गित धर्मविशेषाणामनुपलंभबाधस्यसमानत्वेनानेकनियमदर्शनविधानात् . तथास्वीकारोऽस्माभिः क्रियते इतिसर्वंतुल्यमन्यत्राभिनिवेशात् ।

दृश्यन्तेह्येवमनुमानानि विवादास्पदं परमाण्वादिकम् प्रेक्षावत् प्रेरणानन्तरमेव त्वोपगमेचेन्द्रियान्तरचक्षुरादिवदेवात्मविशेषगुणसुखदुःखादिग्राहकत्व न स्यात । तथापिनद्ग्राहकत्वोपगमेचाभूतविशेषगुणाग्राहकत्वनियमस्यापि भङ्गप्रसङ्ग ।

एवं चक्षुस्त्वक् घ्राणादीन्द्रियादावपिस्वीकारेऽनेकनियमभङ्गोभवतीत्यनुसन्धेय । विपक्षेबाधकाभावेनापाद्यापादकयोर्व्याप्यव्यापकभावसिद्धि । एवं च प्रतितर्काणांछिन्नमूलत्वमेवापेक्षितम । मन प्रभृतिकेन्द्रियस्यति स्पर्शत्वाभ्युपगमादितिसक्षेप । एवंप्रकृतेपिपरमेश्वरस्यापकार्यत्वानुमानेतुल्यन्यायात् कर्तृत्वेशरीरवैशिष्ट्यमितिनियमोपिनास्तीतीश्वरवादीकथयति **तर्हिप्रकृतेपीत्यादि ।** कर्तुरीश्वरस्य सरीरत्वेशरीरद्वारापरमेश्वरस्याप्युपलभप्रसङ्ग । परमेश्वरस्यशुभाशुभकर्मवत्वस्वीकारेजीववदेवासर्वज्ञत्व प्रसङ्ग । प्रकृष्टधर्मवत्वात् सर्वज्ञत्वाद्युपगमश्च न सभवति, कुत ? परमेश्वरस्यधर्मसाधनयागाद्यनुष्ठानरहितत्वात् प्रकृष्टधर्मस्याप्यनुपपत्ते । परमेश्वरस्यसधर्मोनित्य एवंस्वीक्रियते इतिपक्षेतु धर्मसामान्यस्यार्थात् सर्वधर्माणावेदविहितक्रियाजन्यत्वनियमस्य भङ्गप्रसङ्ग । ईश्वरस्यकर्मरहितत्वेसशरीरत्वानुपपत्तिर्यत शरीरादेर्धर्माधर्मजन्यत्वनियमात , अन्यथामुक्तस्यापितथात्वप्रसङ्गात् । परमेश्वरशरीरस्येश्वरवदेव नित्यत्वस्वीकारेसावयवत्वस्यकार्यत्वव्याप्यत्वनियमभङ्गप्रसङ्गस्तथा च क्षित्यङ्कुरादेरपिकार्यत्वासिद्धेस्तत्कर्तृतयेश्वरानुमानाभावेनेश्वरचचाऽस्तमियादित्यादिकस्त्वयविचारणीयम् ।

इतीश्वरेसामान्यतोदृष्टानुमानस्यप्रामाण्यव्यवस्थापनप्रकरणेतत्त्वदीप ।

अथ चक्षुरादीन्द्रियस्यानुमानद्वारेण रूपाद्युपलभकतयातैजसत्वेपितत्तैजसविशेषस्यप्रमाणसिद्धत्वात् तत् विरुद्धापादनसभव परन्तु, एवंप्रप्रकारेणपरमेश्वरीयविशेषाणाप्रमाणसिद्धत्वनास्तीत्यत परमेश्वर सिद्ध्यापादनदुरुपपादमेवेत्याशङ्कानिराकर्तुमुपक्रमते **दृश्यन्तेह्येवमनुमानानि** इति परमेश्वरीय विशेषसाधकानीति । अर्थात् परमेश्वरेप्यभिमतविशेषसाधकान्यनुमानानिसन्त्येवेत्यर्थ । तान्यनुमानानिविविच्यदर्शयति **विवादास्पदंपरमाण्वादिकम्** इत्यादि । तत्रविवादास्पदपरमाण्वादिकमिति पक्ष । **प्रेक्षावत् प्रेरणानन्तरमेवविलक्षणक्रियावद**र्थात् हिताहितप्राप्तिपरिहारात्मिकाचेष्टेवविलक्षणक्रिययागृह्यते इति परमाण्वाद्यचेतनयाचेष्टादृश्यते सासर्वज्ञपरमेश्वरप्रेरणापूर्विकैवेति, अचेतने स्वातन्त्र्येणप्रवृत्तेरसभवात् । अचेतनत्वादितिधूमादिवत साधनवन्हिसाधकवत । यदचेतनमित्याद्युदाहरणम् । यथाधूमेनवन्हिसाधनेयोयोधूमवान् , सवन्हिमानितिवदिति, तथैवप्रकृते, यद्यदचेतन तत यथोक्तसाध्यवानित्यन्वयिदृष्टान्त । व्यतिरेकीदृष्टान्तोपिवन्ह्यभावेधूमाभाववदिव, परप्रेरितचेष्टाभावेचेतनत्वस्यदर्शनादिति । इहापिपरमेश्वरीयाभिमतविशेषस्यसाधका सन्ति बहव प्रकारा. । तत्रेश्वरस्य सर्जकत्वे "यतो वा इमानिभूतानिजायन्ते" इत्यादिश्रुतिसमर्थितानुमानपूर्वंप्रदर्शितम् । परमेश्वरस्यप्रवर्तकत्वेतुप्रमाणत्विदम् **परमाण्वादिकम्** इत्यादि । तत्र विवादास्पदमितिपक्षविशेषणम् पक्षताया सभवद्योतकम् । साध्यतदभावयोरन्यतरस्यनिर्णये एवपक्षताऽतिवर्तते । साध्यसाध्याभाववत्वविप्रतिविषयीभूतम् , इतिविवादास्पदमित्यस्यार्थ साध्यवत्वेनसन्दिह्यमानत्वमितिफलितम् । अनुमाना-

विलक्षणक्रियावद् भवति, अचेतनत्वात् यत् यथोक्तहेतुमत् तद् यथोक्तसाध्यवद् भवत्येव कन्दुकादिवत्। तथा विवादाध्यासिता बाह्याभ्यन्तरप्रवृत्तय उपादानोपकरणप्रत्यक्ष-पूर्विकाः कार्यत्वाद्घटादिवदिति शम् ॥

इत्यानन्दभाष्यकारजगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यप्रधानपीठाचार्य जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यरामप्रपन्नाचार्ययोगीन्द्रप्रणीततत्त्वत्रयसिद्धावीश्वरसिद्धिः ॥ ॐ सर्वेश्वर श्रीराम प्रीयताम् ॥ ॐ

त्पूर्वं साध्यनिश्चयेसिद्धिसत्त्वादनासिति न पक्षता, साध्याभावनिश्चयेतुबाधत्वेति न तत्र पक्षता, अग्निरनुष्णद्रव्यत्वत । प्राचीनमतेसाध्यसन्देहस्यपक्षतेवह्निमान्नवेत्याकारकस्यपक्षतात्वम् , सन्दिग्धसाध्यवान्पक्ष इति । सा समशयक्षपक्षतेनिप्राचीना सन्दिग्धत्वाय प्रवर्तनेननिश्चितेनतद्भावनिश्चये, इति प्राचीना ।

गृहस्थ तस्थितस्याकस्माद् घनगर्जनश्रवणेपूर्वगगनेमेघसत्त्वेनिमेघीयसंशयाभावेपिगगनमेघवद् गर्जनादित्यनुमानदर्शनेन न साध्यसंदेह पक्षता । किन्तु सिषाधयिषाविरहविशिष्टसिद्ध्यभाव एव तथा, स्वयामपिसिद्धाअनुमितेर्मानीच्छायाउत्तेनकत्वेनपक्षतायानिर्वाहात । अन्यथाश्रुत्यात्मनिश्चयवताऽनुमित्स्याऽऽत्मानुमान न स्यात् , ततश्च "श्रोतव्य" इत्यादिनाश्रवणानन्तरम् , "मन्तव्य" इति पदतः मानुमानप्रतिपादनपरकश्रुतिवाक्यस्य का गतिरितिविभावनीयतामापद्येत । तस्मात् यदोक्त सिद्ध्यभावस्यैवपक्षतात्वस्वीकृतनवीनैः । 'नहिप्रत्यक्षेकरिणिचीत्कारेणतमनुमिमतेऽनुमातार" "प्रत्यक्षकरिकलितमप्यर्थमनुमानेनबुभुत्सन्तेतर्करसिका" एतद्वाचस्पतिवचनमनुरुद्ध्ययथोक्तविशेषणविशिष्ट सिद्ध्यभावस्यपक्षतात्वगङ्गेशोपाध्याया स्वीकृतवन्त । केचित्तुसाध्यसन्देहस्यपक्षतात्वप्राचीनमतम् । सिद्धिस्थलेप्याहार्यसंशयादेवानुमितसयाऽनुमान भवतीतिवदन्ति । परन्तुविचारणीययत , आहार्यज्ञानस्य प्रतिबध्यत्वप्रतिबन्धकत्वयोरनुपगमेनकथमित्थमिति ।

परमेश्वरस्य परमाण्वाद्यचेतनप्रतिप्रेरणतुपरप्रवृत्त्यनुकूलसंकल्पप्रयत्नवत्वस्वरूपमेवनेतोऽन्यादृश तदितिभाव । तदनेनप्रकारेणपरमाण्वादिविषयकार्येश्वरस्य संकल्पप्रयत्नौसाक्षात्कारमपितथाविधसाधयितुमाह **तथाविवादाध्यासिताबाह्याभ्यान्तरप्रवृत्तयउपादानोपकरणप्रत्यक्षपूर्विकाः कार्यत्वाद्घटादिवत्** इति । अत्र घटादिप्रवृत्तौ–उपादानकारणघटादि , उपकरणदण्डादिकम् , तदीयद्रष्टादण्डेनघटादिकप्रवर्तयनदृश्यते, तदनन्तरघटादाप्रवृत्तिरुपजायते । एवमेवपरमाण्वाद्यचेतनप्रवृत्तेर्ज्ञानाद्यर्थान्तरात्मप्रवृत्तेरप्युपादानोपकरणपरमाण्वाद्यदृष्टादीनासाक्षात्कारीपुरुष कर्त्ताऽत्रसाधितोभवतीति । नचैतादृशकर्तृत्वजीवानामितिनतेनसिद्धसाधनम , अत्रानुमानेऽतीन्द्रियाद्यर्थानामपिसाक्षात्कारस्यप्रकृतानुमानेफलितत्वादितिदिक् । तदेवमाचार्यामहान्तप्रयत्नमास्थायानुमानद्वारानिरीश्वरवादस्थापयतोवादिन केवलानुमानेनैवेश्वरसिद्धिमुदाजहार । शंभवतु सर्वजगत ।श्रीराम शरण मम ॥

केवलेनानुमानेन साधितोऽत्रजगद्गुरुः । सिद्धश्चभगवान् रामोदयांकुर्यान्ममोपरि ॥
वन्दे रामं रमानाथं जानकीवल्लभं परम् । अन्तर तत्त्वसिद्धिर्हियत्कृपालवलेशतः ॥

इत्यानन्दभाष्यकारजगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य प्रधानपीठ संस्थापकाचार्य जगद्गुरु श्री रमानन्दाचार्य रामप्रपन्नाचार्ययोगीन्द्रशिष्यपश्चिमाम्नायविश्रोमद्वारिकास्थ श्री रामानन्दाचार्य पीठाधीश्वर स्वामी रामेश्वरानन्दाचार्य प्रणीत ईश्वरसिद्धौ
ॐ तत्त्वदीपः ॐ

卐 विशिष्टाद्वैतमीमांसा 卐

ले० पं० केदारनाथओझा
मुमुक्षुभवन–अस्सी-वाराणसी

सीतासमेतो विरहे च राम सदाभिरामो मम शुग्विराम ।
ममात्मदेहोभवतात्मनो मे गेहस्तदीय सफलो भवामि ।।

श्रीसीतासाहित्यविशिष्ट सीताविरह राम एव न रामाद् भिन्न विशिष्ट शुद्धान्नातिरिच्यते इति शास्त्रप्रसिद्धि । अत एवन्यायनये विशिष्टा सत्ता शुद्धसत्तैव विशिष्टऽऽविकरणतेव अतिरिक्तेति गीयते । सर्वेश्वरस्य श्रीरामस्य श्रीसीताविरहसमये विरहविस्पन 'तत्तद्भाद्दृणा ततो भावनया' इति महान्तो दार्शनिका श्रीमदप्पय्यदीक्षितमहोदया ब्रुवते । मानवावतारेमर्यादापुरुषोत्तमो भगवान् मानवलीलाम् एकपत्नीव्रतञ्च विश्व पालयेदिति तस्य भावना नक्त्ते विरह नाटयेत् । येषा तु सर्वेश्वरो भगवान् निरतिशयनित्यस्वभावभूतानन्दस्तेषा कृते तु सदाभिरामो नित्य सान्दर्यशाली, यथा प्रसन्नस्वभावोपि नट शोकस्थायिभावानुभावान् अभिनयेनसम्यगभिव्यनक्ति । एक पत्नीव्रतस्यैषामर्यादा सच्चिदानन्दस्य भगवत समीचीनालीलेति भावयतो मम शुग्विराम शुच विरमयति=करुणरसलिप्तान्त करुणस्य सहृदयस्य शोकाभिमयैरभिव्यक्तस्यान्दमयस्यकरुणरसस्यास्वाद इव । एतावता सीतासाहित्यविशिष्टसीताविरहविशिष्टयो रामयोरद्वैतम् आनन्दघनत्वमकारण कृपालुत्व "ज्ञात्वा धीर शोकमोहौ जहाति" इत्यादिरीत्या प्रपन्नजनाना शुग्विनाशित्वञ्च सक्षेपेण सूचितम् । ममात्मदेह' इत्यनेन औपनिषदो जडचेतनयो परमात्मन शरीरशरीरिभाव सूचित , स च वैदिकदर्शनाना वैदिकत्वादेव कथमपि समन्वेय उपयोजनीयश्च । पर विशिष्टाद्वैतदर्शने तत एव शेषशेषिभावोऽपि विशेषोऽभ्युपेयते । यतो हि शरीरिण एव यथा स्वस्वामिन एव न स्वतन्त्र शरीरम् । शरीर न स्वस्यैवोपयोगि किन्तु शरीरिण उपयोगाय भोगाय वा 'एकाकी न रमते लोकवत्तु लीलाकैवल्यमिति' इत्यादिश्रुति सूत्राभिप्रेत स्वतृप्तिमनुदिश्य क्रियमाण स्वाभाविकी ज्ञानवलक्रिया च' इत्यादिशास्त्राभिमत सर्वं सृष्टिस्थिति सहारानुकूल कर्म नित्य तृप्तस्य भगवतोऽपि लीलैव । जीवाना भोगो भगवतो लीलैवभोग । यथा ग्रामस्य जडचेतनसमूहस्य ग्रामणी शेषी तथा चिदचिन्मयस्य जगतो भगवान् श्री राम शेषी । परमात्माधीन सर्वंजगदिति फलति । एव जीवस्य चेतनस्य शरीरे भौतिके या क्रिया सा जीवाधीना यथा लोके मन्यते तथा जीवस्य भगवद्देहस्य या क्रिया सा भगवदधीनेति शरीरशरीरिभाव शेषशेषीभावो वा स्फोरयति । शेषशेषिभावेन सर्वापेक्षया शेषिणो भगवत प्राधान्यमगतम् । भगवन्तमन्तराव्यक्तित्व न पर्यवस्यतीत्यपिफलितम् ।

"द्वादशेऽहनि पिता नाम कुर्यात्" इतिस्मृतिदिशा यन्नामकरणं तन्न जातस्य शरीरमात्रस्य किन्तु नित्यसिद्धस्य जीवस्य शरीराधिष्ठितस्य, चैत्रप्रभृतिनामानि तस्मिन् जन्मनि सर्वव्यवहार साधकानि चेतनाविष्टिनस्यैव, नामानि चेतनसंस्कारास्तन्नाम्नैव संकल्प्यन्ते। जातस्य सद्योमृतस्य चैतन्यतिरोधानस्यनामकरणमेव न जायते। अत एव चैत्राऽधीते सम्यगवबुध्यते चेति चैत्रनाम्नि अवबोधकार्यशास्त्रसमर्थित लोकेऽपि व्यवह्रियते। ततोऽग्रेऽपि विशिष्टाद्वैत शास्त्रीयं समुपदिशति। नैतावदेव भगवच्छरीरेण भगवताऽधिष्ठितेन जीवेनाधिष्ठितस्य शरीरस्य चैत्रादीनि नामानि। तत्रापि शरीरमपेक्ष्य शेषी जीवात्मा प्रधान भूयो व्यवहारस्य चेतनस्यैव लोके दर्शनात्, जीवात्मानमपेक्ष्य परमात्मा शेषी प्रधान सर्वव्यवहारस्य परमात्माधीनत्वात्, तथा च चैत्रादीनि सर्वाणि नामानि प्राधान्येन परमात्मनामानि प्राधान्येन परमात्मबोधकानि। अनया रीत्या सर्वजगद्वस्तुबोधकानिसर्वाणि वचांसि प्राधान्येन सर्वशेषिण परमात्मनो बोधकानि, किमुत वैदिकानि किञ्च वैदिकानां तात्पर्यान्वेषणेन ? व्यक्तित्वेऽपि प्राधान्य परमात्मन एव। एतेन 'सर्वं ब्रह्ममयं जगत्' इति साधु व्याख्यायते।

अन्तर्यामि ब्राह्मणवेदसिद्धतया समेषा वैदिकदर्शनाना विभो ब्रह्मण सर्वत्र व्याप्तत्वमभिप्रेतम्, सर्वाणि वैदिकदर्शनानि ईश्वरमङ्गीकुर्वन्ति, निरीश्वरवादिता केषाञ्चिज्जगत्कर्तृत्वानङ्गीकारादित्यहमभिप्रैमि, पर ततोऽपि विशेषेण दर्शनमिद शरीरशरीरिभावेन शेषशेषिभावेन च परमात्मपरतन्त्रतां जीवाना प्रसारयति भक्तिं च भगवतीं सम्यग्भूषयति। पामरास्तु मम शरीरम् अह चिन्तये इत्यादि निसन्देह चर्चयतोऽदेहजीवात्मनोऽपि शरीरशरीरिभाव न व्यवहरन्ति तथाऽपिश्रमेणाऽवधानेन च गवेषणया जनव्यवहारे परमात्माधीनतो जीवात्मनो लब्धुशक्ष्यन्ति, यथा हि कश्चित् कञ्चित् स्वाभिप्रेत स्वीकारयितु नैकप्रकारै प्रयतते तत्र चावसाने उत्तर प्राप्नोति=भवान् सम्यङ् मम हितमुपदिशति पर किं करोमि ? ममान्तरात्मा न स्वीकरोति, इति, तत्र मम जीवात्मनोऽन्तरात्मा परमात्मैव व्यवहृत।

"जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिर्जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्ति। केनापि देवेन हृदिस्थितेन यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि" इति गीतापद्यमर्जुनस्यानुभवप्रकाशन स्वीकृत्य तत्र परमात्माधीनता अर्जुनजीवात्मनो द्रक्ष्यन्ति विवेकिन। धर्मं जानन्नपि अहमात्मा न धर्मे प्रवर्ते, अधर्मं जानन्नपि नाधर्मान्निवर्ते, केनापि ममात्मविलक्षणेन शुध्देन ममात्मस्वरूपशरीराधिष्ठायिना प्रधानेन परमात्मना प्रकाशमानेन यस्मिन् विषये देशे काले उपादेये हेये वा प्रेरिषि तथा प्रवर्ते निवर्ते वा, निखिले प्रवृत्तिनिवृत्ती जीवात्मन परमात्माधीने इति अर्जुनस्य परमात्मपरायणस्यानुभवप्रकाशनम्। कुरुवंशस्यार्जुनस्य शरीर तच्छरीरि अर्जुनात्मा शरीरशरीरिणोरभेदात्कुरुवंशस्य, अतो विरोधिसेनाया कुरुवंशीयास्तेषा सम्बन्धिनश्च भ्रातर पितृव्य पितामहा गुरव श्याला श्वसुरादयश्च ममतामापन्ना.

कथं हन्तव्या इति युद्धविरोधिविषादः। अग्रे च भगवत्कृपया वासुदेवकृष्णस्य जगत्सृष्टिस्थिति-संहृतिकर्तृत्वस्य च साक्षात्कारे तदधीनञ्च मम सर्वं कार्यम्। ममशरीरमात्रं कुरुवंशीयमर्जुनञ्च। न ममार्जुनस्य शरीरीजीवात्मा कुरुवंशीयः, न मम जीवात्मन एव सैनिका भ्रातृप्रभृतयः एतादृशा बहवः सम्बन्धिनः, शरीरत्वेन च सर्वे जडाजीवाश्च समाना न केऽपि शत्रवो मित्राणि वा, शरीरञ्च साम्प्रतं कुरुवंशीयं क्षत्रियम्, तदध्यक्षजीवशरीराध्यक्षपरमात्मादेशानुसारं शरीरेण कार्यंसम्पादनीयम्, आदेशश्च "स्वकर्मणासम्यचर्च्य" गीतानुसारं स्वं कर्म भगवत्पूजा, तादृश्या पूजया च 'स्वे स्वे कर्मण्यभिरत' इत्यादि गीतया सिद्धिलाभः। तथा च भगवदाज्ञानुसारं युद्धमेव साम्प्रतं सिद्धिसाधकं साधकस्यसाम्प्रतम्, इति दर्शनानुसारिदर्शनस्वारस्यम्।

एवं श्रीमद्भागवतचतुर्थस्कन्धनवमाध्यायपाठं पद्यं श्रीध्रुवस्तुतिरूपध्रुवस्यानुभवप्रकाशनं पश्यन्तु पठकाः —

"योऽन्तः प्रविश्य मम वाचमिमां प्रसुप्तां सञ्जीवयत्यखिलशक्तिधरः स्वधाम्ना।
अन्यांश्चहस्तचरणश्रवणत्वगादिन् प्राणान्नमो भगवते पुरुषाय तुभ्यम् ॥१॥

योभगवान् अन्तः प्रविश्य प्रसुप्ताम् इमां मम वाचम् अन्यान् हस्त चरण श्रवणत्वगादीन् प्राणान् च सञ्जीवयति। स्वस्य परमात्मनः धाम शरीरं ध्रुवस्य जीवात्मा सञ्जीवयति वाग्हस्त चरणादिजागरणव्यापारेण प्रयोज्य कर्ता, प्रयोजककर्ता च भगवान् सञ्जीवयति। जीवस्य सर्वे व्यापाराजीवनञ्च शेषिपरमेश्वरायत्त इति स्फुटं निर्दिष्टमत्र भगवद्वरप्रसादात् प्राक्तनमिदं ध्रुवस्य स्वानुभववर्णनम्। तादृशानुभवो ध्रुवस्य प्राग्जन्मसुकृतस्य तदानीन्तन तन्मय समाधे र्वा फलमस्तु। जीवकार्यस्येश्वराधीनत्वेऽनुभवः प्रमाणम्। अन्तर्यामिब्राह्मणदिशा प्रागुक्तरीत्या समेषां वैदिकदर्शनानां मते कार्यमात्रं प्रति परमेश्वरस्य कारणता अञ्जसासिद्ध्यति, जीवकार्यं प्रति अपि यद्यपि परमात्मनः कारणता सिद्धा तथापि विशिष्टाद्वैतमते शरीर शरीरि—शेष शेषि भावाभ्यां यथा तथा न सिद्ध्यति, अन्येषां मते एकं कार्यं प्रति जीवस्तत्कर्मेश्वरश्च कारणं परस्परसहकारिकारणमिति जायते विशिष्टा-द्वैतदर्शने जीवस्तत्कर्मजीवशरीरं प्रकृतिः प्राकृतिकं सर्वमीश्वराधीनमितिसर्वत्र परमात्मनः प्राधान्य-मनिवार्यं जायते। उक्तपक्षेऽधात्वर्थसंग्रहीत कर्मत्वेन जीवतेरकर्मकत्वं नाङ्गीकृत्य प्रयोज्यकर्तरि तृतीया। जीवति प्राणिति प्राणचलनानुकूलयत्नार्थकं सकर्मकं सञ्जीवति। सुषुप्ता मूर्च्छादौ च ज्ञानाभावेऽपि प्राणसञ्चारः परमेश्वरस्यजन्यजीवयत्नजन्यः। तादृशप्राणसञ्चाराय नैयायिका जीवनयोनियत्नज्ञानाभावाय च मनसा पुरीतति नाड्यादौ प्रवेशं प्रवदन्ति, वेदान्तिनोऽपि प्राणानां स्वातन्त्र्यं बुद्धेः स्वापः इत्यादिनैकविधा कल्पयन्ति। सुषुप्तेरपसारणन्तु अवशिष्यते एव, इश्वरसहा-यमन्तरा जडेनादृष्टेन व्यवस्थापनमीश्वरमङ्गीकुर्वाणानां न शोभते। अत ईश्वरजन्यजीवाध्यवसायेनैव व्यवस्था समीचीना। 'येन जातानिजीवन्ति' प्रभृतयः श्रुतयः उद्घोषयन्ति। जीवनं स्थितिः स्थिति-

कर्तृत्व परमेश्वरे सत्यत्र तत्र तदत्र जीवन कर्तृत्वम् 'अशरीर वाव सन्त न प्रियप्रिये स्पृशत' इत्यादिश्रुतिसूचितप्रियाप्रियस्पर्शित्वसूचितो जीवात्मन शरीरशरीरिभावो मृतेन शरीरेण विनश्यति वास्ति। सर्वत्रव्यापिना परमात्मना साक्षात्सम्बन्ध सत्त्वेऽपि तत्र जीवयत्याभावान्न जीवनव्यवहार, परमात्मनस्तु प्रियाप्रिययोरभावान्न न स्पर्शित्व शरीरत्वनियामकम्।

अत्र नैयायिका आहु—शरीरेन्द्रियात्मना युगपदेकेनेन्द्रियेण प्रत्यक्षाभावात्तेषा भेदस्यापि प्रत्यक्षाभावेन अहस्थूल काणो ज्ञाता भोक्तेत्यादयस्तेषामभेदप्रत्यक्षभ्रमा अनादिकालात् प्रचलन्ति। तादृशभ्रमवशाद्दृढा वासना नानादोषानुत्पाद्य शरीरेन्द्रियवशजातान् प्रपञ्चान् आत्मनि आरोपयति कलुषयति च, आन्वीक्षिकी सहायश्च साधक उपनिषदा श्रवणेन तेषा भेदप्रमा दृढीकृत्य शुद्धात्मनश्चिर निदिध्यासनेन स्वाभाविककर्तृत्वभोक्तृत्वरहितमात्मान प्रत्यक्षीकुर्वाणो मुच्यत इति।

वेदान्तिनश्च—प्रकाशैकस्वरूपे चिदात्मनि ब्रह्मणि जडाना सर्वेषामनादिमायावशात्परस्पराध्यासात्सर्व जगद्विवेकहीन मिश्रित जडचेतनात्मक वर्तते, स्थूलोऽह गौरश्चिन्तयामि करोमि भुञ्जे चेत्यादयो युगपदकस्मिन् समानो जडचेतनव्यवहार। साधकोमुमुक्षुर्विधिपूर्वकमुपनिषदा श्रवणेन जीवेश्वरात्मनोरभेदतात्पर्य निर्णीय लौकिकवैदिकतर्कयुक्तिभ्यस्तयोरभेदप्रमा दृढीकृत्य चिर निदिध्यासनेन तमेवापरोक्षा विधाय जडचेतनयोरभेदप्रत्यक्षे वासनाकार्यसहिता ब्रह्मनिष्ठा माया निवर्तते। स्वाभाविको ब्रह्मभावो जीवस्य प्रकटो भवति मुक्त इति व्यवह्रियते च इति वर्णयन्ति।

तत्र अध्यासस्य मिथ्यात्वापत्त्या बहवस्तमध्यास न रोचयन्ते। यथाप्रसिद्धन्यायाचार्यश्रीमदुदयनाचार्यस्य आत्मतत्त्वविवेके बाह्यार्थभङ्गवादावसाने लेखोऽयम्—तस्मात् तथ्यमेव विश्वम्, मन्दप्रयोजनत्वात्तु सत्वरैर्मुमुक्षुभिरुपेक्षितमिति युक्तमुत्पश्याम। तर्हि नैयायिकाना जगत्परिरक्षणे कोऽयमभिनिवेशातिशय इति चेत् सहसैव तदुपेक्षाया न्यायाभासावकाशे प्रमाणमात्रविप्लवो भवेत्। तथा च न्यायरुचि प्रेक्षावान् न तत्त्वमधिगच्छेदिति भियेति। तथ्यमेव विश्वम्—ससार सत्य एव न सवृत्ति सन् मिथ्या वा। धर्मार्थकामपुरुषार्थत्रयसाधकोऽपि सत्य ससार परमपुरुषार्थेमोक्षेऽनुपयुक्तत्वात् मन्दप्रयोजन ससार। सत्वरै मुमुक्षुभि ससारिण कृते ससारो वयञ्च मोक्षमात्रमभीप्साम, गुरु शिष्य शास्त्राणि मुमुक्षव, आश्रम स्थान भिक्षा इत्यादिसर्वं ससार। इत्यादिक नावहितवन्तोऽत एव सत्वरा, अन्यथा शास्त्राणामपि ससारसत्यत्वेतात्पर्यमपात्नुयु। वैराग्यदिशोपेक्षा अन्यविधी युक्ता, उपयोगदिशा ससारोपेक्षा त्वरायुक्ता। जगत्परीरक्षणे—बौद्धानामनात्मवादस्य क्षणिकवादस्य विज्ञानमात्रवादादेर्मुमुक्षूणाञ्च मिथ्यात्ववादादेश्च शास्त्रसम्बन्धियैर्न्यायै खण्डनद्वारा समेषा पदार्थाना कार्यकारणफलादिभि पूर्णव्याख्यानम्। न्यायाभासाऽवकाशे—निर्णीयते यैस्ते न्याया प्रत्यक्षानुमानागमादि प्रमाणानि, तेषामाभासा न तदपि तदिवाभासमानानि अप्रत्यक्षाण्यपि प्रत्यक्षवल्लोके अवकाश लभेरन्। एवमनुमानादयोऽपि। आगमप्रमाणमपि लोकक्रीडाभवेत्।

अत एव प्रमाणमात्र विप्लव । आगमा शब्दा व्युत्पत्तिमपेक्षमाणा अर्थबोधका, व्युत्पत्तयश्च बहुविधलोकव्यवहारानुभवाधीनान्वयव्यतिरेकव्यभिचारविधुरकार्यकारणभावावधारणमुखालोकस्य जगत एवासत्यत्वे कुत्रात्मान लभेरन् ? यथा अधुनैव भारते बहुविधा आगमा वेदस्यापि बहुविधानि भारतीयानि विदेशीयानि च व्याख्यानानि । भारतीयैराद्रियन्ते च । विदशीयव्याख्यानादव 'आर्या उत्तरीय ध्रुवप्रदेशादनेन मार्गेण शनै शनैभारते समायाता । इति भारतीयानामितिहासे प्रसिद्ध । अहमपि तथैव मध्यमाया पठित । यदा श्री जवाहरलाल नेहरु काँग्रेसाध्यक्ष सन् "अंग्रेजा भारत त्यजत" इत्युद्घोषयत् तदा अंग्रेजा अकिखन्=भारतीयानामेवमिथ्याभिमान । आया हि उत्तर ध्रुवादागता न तेषा भारतदेश । तदा भारतीयाना दृष्टिरुन्मिलिता इतिहासश्च परावर्तित । इतो विस्तरेणैतन्मम व्याकरणनिबन्धमालाया हिन्द्या सस्कृत च प्राप्यते । 'यस्तर्केणानु सन्धत्ते स धर्म (वेदार्थ) वेदनेतर' इति मनुस्मृतिरपि तदाशयपगमे तर्क महायत्नते । एव प्रमाणाना विप्लवे तत्त्वनिर्णयस्योपायाभावाद् योमन्दबुद्धि यथा केनचिदुक्त लिखित वा प्रायैवतुस्येत्, पर यदुहापोहशङ्कासमाधानसमर्थबुद्धिमान् प्रेक्षावान् वस्तुनिर्णयप्रमाणान्वेषीप्रमाणाभावेन कथ तत्त्व जानीयात तुष्येच्च यतो हि प्रेक्षावान् न्यायरुचि —स प्रामाणान्वेषी भवति । अतस्तत्त्वजिज्ञासुभि ससारसत्यत्वमवश्यमभ्युपेयम् । यत प्रमाणस्वरूपपरीक्षणक्षेत्र समाप्त । नव वैदिक विशिष्टाद्वैतदर्शनन्तु निर्दोषशङ्कयाऽकलङ्कितेन वेदेन प्रतिपादिता साक्षात्परमेश्वरकृता जगत्सृष्टि न सत्यामेव किन्तु "तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्" इत्यादिश्रुतिरीत्याभगवत शरीर शरीरिणो भगवत स्थान मन्दिर मूर्तिमिव वा मनुते । चिता चेतनेन अचिता प्रकृत्याजडेन च विशिष्टोभगवान् सदा सर्वत्रावस्थितिर्भगवत, अवस्थितिरपि न केवल शरीरित्वेन अपितु शेषित्वेन प्राधान्येन, कथमन्यथास्थितिकर्तृत्व भगवत । जडस्यापि विशेषकारण विना उच्छेदोन कार्य । भगवन्मन्दिरमूर्तिरूपाश्रीया, न क्लेशनीया हिंसनीया अन्यथा श्रीराममन्दिरमूर्तिदूषणस्यभागी भवेत् । सृष्टिनियमपालन जीवाना समादरण भगवदादेशभूतशास्त्रानुसाराचरता भगवपूजेति शिक्षयति ।

जीवात्मशरीरयो सम्बन्धविशेषमुधादर्शनान्तरीया भेदाभेदयो क्लिश्यन्ति । प्रागुवर्णित श्रुतिसमर्थित भेदाभेदविलक्षण शरीरशरीरिभावमेव कथन्न समर्थयन्ति, भिन्नयो शरीरशरीरिणोरभेदभ्रमकेचन ब्रुवते अन्ये अभ्यासवशाद् भेदप्रतिति सम्पादयन्ति । वस्तुनो भेदज्ञान न जायत एता वतैवाभेद प्रतीते प्रवादा । अन्यसम्बन्धबोधकशब्दान्तरव्युत्पत्त्या नात्र निर्वाहस्तेन शरीरशरीरिभावः सम्बन्धान्तरसिद्ध्यति । शरीरमात्रे शक्ता चैत्रचेतयते इति नोपपद्यते, आत्मामात्रे शक्तो चैत्र स्थूल इत्यत्र बाध, शरीरविशिष्टे शक्ता चैत्र स्थूल इत्यत्रैकदेशान्वयापत्ति । खण्डश शक्तिवादे स्थूलश्चैत्रश्चेतयत इत्यत्र उभयोविशेष्यतयोपस्थितयो क सम्बन्ध इति प्रश्न स्यात् । शरीरशरीरिभावस्तु सर्वदोभयो क्वचिच्छरीरस्य क्वचिदात्मनश्च विशेस्यतया भानमित्यन्यसम्बन्धवैलक्षण्यम् ।

'तमेवविदित्वाति मृत्युमेति' प्रभृतिवेदानुसारमुदयनाचार्या 'स्वर्गापवर्गयोर्मार्गमामनन्ति मनीषिण । यदुपास्तिमसावत्र परमात्मानिरुप्यते' इत्यादिना परमात्मोपासनामपवर्गमार्गं वदन्ति, 'आत्मावाऽरेद्रष्टव्य श्रोतव्योमन्तव्योनिदिध्यासितव्य' इतिश्रुति सर्वत्रप्रसिद्धा तेनापि व्याख्याता अन्यत्र शुद्धात्मोपासना वर्णिता च । अन्येषा मते उभयो प्राधान्ये विकल्पापत्ति, अङ्गाङ्गिभावे कलह । अस्मिन् दर्शने न क्वचिद्विरोध । सर्वत्र परमात्मैवोपास्य । पूर्ववर्णितरीत्या सर्वे शब्दा प्राधान्येन परमात्मबोधका । तथा च आत्मशब्देन जीवात्मशेषीपरमात्मैव प्रतिपादित । जीवात्मा न स्वतन्त्र परमात्मशेषतयैव कार्यकारी नाना च तस्योपासनया किं भवेत् ?

जगत् तत्कारणञ्च

तत्र साङ्ख्यम्—सुखदु खमोहात्मकस्वप्रकाशकचेतनसम्बन्धिन जगत्, तत् कारणञ्चतादृश मेव अविविक्तचेतनावशिष्ट प्रधानप्रकृत्यपरनामकम, उपादानोपादेययोरभेदात् जगत्सदृशमेवउपादानम् । यावत् जडप्रकृतिचेतनपुरुषयोर्विवेको न ख्यायते तावत्करणमेकम्, एकमेव । अतएव श्रीकालिदास ईश्वरस्तुता "त्वमेव प्रकृतिमाहु पुरुषार्थप्रवर्तनीम् । तद्दर्शिनमुदासीन त्वमेव पुरुष विदु" आह । "सदेवसोम्य इदमग्र आसीत्" इत्यादि श्रुतौ तादृशमेव परमात्मान पश्यति च एक त्रैव पुरुषार्थप्रवर्तित्व सङ्गतत्व द्रष्टृत्वञ्च उपलभ्यते । 'ऐतदात्म्यमिद सर्वम्' इत्यादि श्रुत्यातस्यैवात्म पदेन व्यवहार । तस्यैव 'एतस्मादात्मन आकाश सम्भूत' इत्यादिसृष्टिश्रुतौ निर्देश । "तत्त्वमसिश्वेतकेतो" बुद्धिप्रकाशरूपोजीवात्मप्रकृतिपुरुषरूप कारण कारण तत्पदार्थ । "एकेन मृत् पिण्डेन ज्ञातेन—मृत्तिकेत्येव सत्यमित्यन्तश्रुत्यासामान्यज्ञानेन विशेषाणा ज्ञान वर्णितम् । तत्र सत्यशब्देन अनुवर्तमानत्वम्, असत्यशब्देन विशेषाणा व्यावर्तमानत्वमभिप्रेतम् । चैतन्याविष्टाप्रकृति परिणामस्वभावा कर्तृत्ववती क्रिया करोति, क्रियाजात पापपुण्यरूप प्रकृतिरूपाया बुद्धौतत्कृत परिणाम । कार्यविशेषोऽपि तत्रैव । क्रियापापपुण्यतत्फलशून्योऽसङ्ग पुरुष केवल पश्यति—तेषा प्रकाश, तावतैव वराक पुरुषो भोक्ता भण्यते बद्धश्चगीयते । जाताया विवेकख्यातौ जडचेतनयो भेदे प्रत्यक्षेजाते बुद्धेश्चैतन्यावेशो विनश्यति । असङ्गपुरुषस्य अर्थाभावात्पुरुषार्थप्रवर्तनविरमति निरर्थानि क्रिया च बुद्धि स्वप्रकृतौलीयते, तत्पुरुषार्थप्रकृतिपरिणामानि भवन्ति । स्वभोगोपयोगिन पदार्थान् पश्यति पुरुष । स्वभावेनमुक्तस्तिष्ठतीति । बहुभ्यो नेय रोचते साख्यप्रक्रिया—चैतन्यप्रभावातिरिक्तो बुद्धौ चैतन्यावेशो न कश्चित्पदार्थ सिद्ध्यति, चैतन्यप्रभावरूपत्वे चैतन्यस्य कर्तृत्वमायाति, विवेकख्यातिप्रकृतौपुरुषो वा । प्रथमे वृत्तिरूपाप्रकाशस्वरूपा वा, आद्ये जडत्वान्नख्यातिविवेकस्य प्रकाशो व्यर्था ख्याति., जडे प्रकाशधर्माऽसभवात् न द्वितीयम् । असङ्गोऽनाधेयातिशये पुरुषे ख्यातिरुत्पादासभव । प्रकृतिनिष्ठाया पुरुषेप्रतिबिम्ब इति चेत् प्रतिबिम्बित मुखं न दर्पणस्य किन्तु चैत्रस्यैव भवति ।

अत एव विशिष्टाद्वैतदर्शनेन प्रकृतिपरमात्मनो वैदिकशरीरशरीरिभाव सम्बन्ध समाद्रियते, शरीरियत्वेन शरीरे चेष्टा लोकप्रसिद्धा । प्रकृतोस्त्वभाविकपरिणामक्रिया स्वीकारे विवेकख्यानात्वपि मुक्तिदशायामपि साख्यानुसार विभुप्रकृतिपुरुपयो सम्बन्धस्य स्वच्छन्दतया परस्परच्छायाया अपरिहारात् पुरुपे भोग एवविराजेत न मोक्षस्यावसर । परमेश्वरयन्नेन प्रकृतेर्जडवर्गपरिणामेनोपादानत्वयोग्यता चेतनस्य शरीरिणो विकाराभावादपरिणामेन तादृशोपादानत्वनास्ति, उपादानगोचरा परोक्षचिकीर्षा कृतिमत्वरूप स्वतन्त्रकर्तृत्व जडप्रकृतौ न सभवति । अचित्प्रकृतिविशिष्टचोभय सिद्ध्यति । तेन उपादानबोधकानि कर्तृत्वबोधकानि च वैदिकवाक्यानि विशिष्टे सुख समनुभवन्ति ।

न्यायनये परमेश्वरस्य कर्तृत्वे उपादानता परिणामाभावेन न सिद्ध्यति 'एकेन मृत्पिण्डेन ज्ञातेन' इत्यादिना । सामान्यज्ञानेनसामान्यलक्षणासहायेन विशेषाणा ज्ञानसमर्थनेऽपि मृत्तिकोपलक्षित सर्वोपादानस्य सत्यताबोधक मृत्तिकेत्येव सत्यमितिपरमेश्वर न स्पृसति । कार्यमात्रा प्रतीश्वरस्य अदृष्टस्य च द्वेधाकारत्वेगौरवम् । चेतन जीवस्वरूपशरीरविशिष्टस्य परमात्मन कारणत्वे सर्वं सगृह्यते ।

अचेतनजीवकर्मकार्यमात्रा प्रति कारण ब्रुवाणा कर्मणैव सर्वं व्यवस्थापयन्तो मीमासका कर्म द्वाराजीवस्य चेतनस्यापि चरणता न पश्यन्ति । मुधैव निरीश्वरकलङ्क बिभ्रति । तथा च सूक्ष्म-चिदचिद्विशिस्टोराम सृष्टिप्राग्दशाया सृष्टिदशाया स एव श्रीराम स्थूलचिदचिद् विशिष्टस्तयोर्द्वैत न सम्भवतीति, अद्वैत । विशिष्टाद्वैतदर्शन जडे चेतने च सर्वदा श्रीराम तिष्ठतीति उपदिशति द्वेष विद्रावयति स सौहार्दञ्च सृजति । तेन श्रीराममयस्य परिवारस्य जनपदस्य देशस्य च अद्वैतवितरतीति ।

विश्वनाथ जगद्व्याप्त श्रीराम प्रणमाम्यहम् । विरमामि महाशास्त्राद् विशिष्टाद्वैत दर्शनात ।

॥ अर्चिरादिमार्गविवेकः ॥

(गीता ८-२३ की श्रीरघुवरीटीका)

जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य रघुवराचार्यजी वेदान्तकेसरी

यत्रकालेत्वनावृत्तिमावृत्तिंचैवयोगिनः । प्रयातायान्तितंकालं वक्ष्यामिभरतर्षभ १॥

पूर्वोक्तपरेशोपासनयायोगधारणया च निर्वृतसमस्तकर्मवासना ये स्वात्मशरीरक परम्ब्रह्मोपासते ये च ब्रह्मात्मकस्वात्मानमुपासते तेऽनुक्रमेण महापुरुपसायुज्यमक्षरधाम्निपरमगतिञ्चसम्प्राप्य पुनरावृत्तिरहिता भवन्ति ये चान्ये वर्णाश्रमधर्माभिमानिन कर्मफलानुसन्धानतत्परास्तेत्वनिशमस्मिन् ससृतिचक्रेसमावर्तन्त इत्यनयोर्द्वयोरपिफलभेदात् सृतिभेदोऽप्यावश्यक । सृतिरत्रकरणव्युत्पत्यामार्ग-वाचिका । तत्र येन मार्गेणसमुपासितभगवच्चरणाब्रह्मात्मकत्वेनप्रत्यगात्मोपासकाश्चप्रयान्ति स

देवयानपदवाच्योऽर्चिरादिमार्ग प्राथमिकोद्वितीयश्चपितृयाणपदवाच्योधूममार्ग कर्मिणाभूयोभूय मसृतिसम्पादक । तत्राऽस्मिन्नध्यात्मशास्त्रेऽस्यपितृयाणस्योपदेशस्त्वर्चिरादिसृतेर्महिम्यातिशयद्योतनायाभिसहितफलकर्मानुष्ठायिनापितृयाणेनाप्यकृत्स्नसारगर्तपात इति मुमुक्षुभिर्दूरत परिहरणीयोऽपन्था इत्यावेदयितु वा समादृत । तदेवमफलमार्गद्वयविवक्षुरादौ प्रतिजानीते **यत्रेति** । हे भरतर्षभ ? प्राणोत्क्रान्तेरनन्तरयत्रकालेतत्तदातिवाहिकदेवताभिर्नीयमानेमार्गेप्रयातायोगिनोब्रह्मानु यानयोगिन सद्विद्यानुष्ठानयोगादनावृत्तिमेवयान्ति पुनरावृत्तिं नैवप्राप्नुवन्ति । इष्टापूर्तादिकर्मानुष्ठानयोगिनस्त्वावृत्तिमेव प्राप्नुवन्ति, अभिसहितफलकर्मानुष्ठानयोगात न देवयानाख्यं पितृयाणाख्य च काल तत्तत्कालाभिमानिनीभिरातिवाहिकदेवताभिर्नीयमानं पन्थान वक्ष्यामि । यत्त्वत्र मधुसूदनेन "यद्यपि देवयानेऽपि पथिप्रयाता पुनरावर्त्तन्ते" इत्युक्तमाब्रह्मभुवनाल्लोका पुनरावर्तिन इत्यत्रतथापिपितृयाणेपथिगता आवर्तन्त एव न केऽपि तत्र क्रममुक्तिभाज । देवयानेपथिगतास्तुयद्यपिकेचिदावर्तन्तेप्रतीकोपासकास्तडिल्लोकपर्यन्तगताहिरण्यगर्भपर्य्यन्तममानवपुरुषनीताअपि पञ्चाग्निविद्याद्युपासका अतत्क्रतवोभोगान्तेनिवर्तन्त एव तथापि दहराद्युपासका क्रमेणमुच्यन्तेभोगान्त इति न सर्व एवावर्तन्ते । इत्याद्युपन्यस्त तदयुक्तमुपनिषद्गीताब्रह्मसूत्रविरुद्धत्वात् ।

तथाहि—छान्दोग्येस्थलद्वयेऽर्चिरादिगति श्रूयते । तत्र चतुर्थेऽध्याये 'अर्चिषोऽहरह्न आपूर्यमाणपक्षमित्युपक्रम्य "स एनान् ब्रह्मगमयत्येषदेवपथोब्रह्मपथ एतेन प्रतिपद्यमाना इम मानवमावर्तंनावर्तन्त" (छा. ४।१५।६) इति स्पष्टमेवाऽनावृत्तिराम्नाता । पञ्चमेऽप्यध्याये—तद्य इत्थ विदुर्येचेमेऽरण्ये श्रद्धातपइत्युपासतेतेऽर्चिषमभिसम्भवन्ति ' इत्यारभ्यचन्द्रमसोविद्युततत्पुरुषोऽमानव स एनान् ब्रह्म गमयत्येषदेवयान पन्था इति (छा ५।१०।१)इत्याम्नायते । अत्रचन्द्रलोकादूर्ध्वंविद्युल्लोकप्राप्तिस्ततोऽत्राश्रवणेऽपिश्रुत्यन्तरेश्रुतत्वाद्वरुणादिलोकानाम्प्राप्ति 'तडितोऽधिवरुण सम्बन्धात् (ब्र सू ४।३।३) इति न्यायेन । अन्येषाञ्च 'आगन्तूकानामन्तेनिवेश, इति न्यायात्तदूर्ध्वंनिवेश । तथा चात्रापि 'एनान् ब्रह्मगमयति, इत्यविशिष्टश्रवणादपुनरावृत्ति स्पष्टमेवप्रदर्शिता । नपुसकब्रह्मपद परस्मिन्नेव ब्रह्मणिनिरूढमितिमुख्यार्थंपरिहाय न गौणोऽर्थ शक्योगृहीतुमतोब्रह्मप्राप्तिरपुनरावृत्तिलक्षणैवात्राभिप्रेता । एव छान्दोग्येऽष्टमप्रपाठकेऽपिश्रूयते 'एषसम्प्रसादोऽस्माच्छरीरात् समुत्थायपरज्योतिरुप सम्पद्यस्वेनरूपेणाभिनिष्पद्यते, (छा —८।१२।३।) अत्रशरीरात्समुत्थायेतिमूर्धन्यनाड्योत्क्रम्यदेवयानेनोद्गमनाभिधानम् । तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेतीतिविवरणश्रुतावायन्निनिशतृप्रत्ययेनार्चिरादिमार्गप्रस्थितीनाममृतत्वप्राप्तेर्मध्येलोकविशेषचिरकालस्थितिलक्षणव्यवधानराहित्यप्रतिपादयता 'एषसम्प्रसाद, इतिमूलश्रुतौसमुत्थायेतिल्यप्प्रत्ययार्थस्यविवक्षितत्वादुक्तश्रुतेरर्चिरादिमार्गप्रस्थितानामव्यवधानेनामृतत्वप्राप्तिप्रतिपादकत्वस्पष्टमेवातोऽपि न पुनरावृत्ति । एव वाजसनेयकेपञ्चमषष्ठयो प्रपाठकयो "स लोकमागच्छत्यशोकमहिम तस्मिन् वसतिशाश्वती. समा , इति । "तान् वैद्युतान् पुरुषोऽमा-

नव एत्यब्रह्मलोकान् गमयति तेषुब्रह्मलोकेषु परा परोवतोवसन्तितेषा न पुनरावृत्ति" (बृ३।२।१५)
अत्रापिस्पष्टमेवापुनरावृत्तिराम्नाता । अत्र ब्रह्मलोकानित्यदिति पाशानितिबहुवचनमुपपत्त्याकर्मधारय समासमाश्रित्यार्थस्यसगतिरथवाऽप्राकृतलोकानामपिवहूनाप्रमाणप्रतिपन्नतया न-पुरुषसमासोऽपियुक्त एव । ननूपनिषत्स्वेवमुण्डके 'ते ब्रह्मलोके तु परान्तकालेपरामृतात परिमुच्यन्ति सर्वे. (मु३।२।६) इति वचनादर्चिरादिमार्गेणकार्यब्रह्मलोकगतिरवगम्यते । अत एव छान्दोग्य 'प्रजापते सभावेश्मप्रपद्ये' इत्यष्टमाध्यायीयवाक्यमपि सगच्छते । अत एव च मुण्डकश्रुति समानार्थाभिधायिनी 'ब्रह्मणासह-तेसर्वेसम्प्राप्तेप्रतिसचरे । परस्यान्तेकृतात्मान प्रविशन्तिपरपदम्, इति स्मृतिरपिसगच्छते । तथा च ये सगुणब्रह्मोपासकास्तेऽर्चिरादिनाब्रह्मलोकप्रयान्ति । तत्रापि ये पञ्चाग्निविद्योपासीनस्तेपुनरावर्तन्ते प्रतीकोपासकास्तुदेवयानेनगताअपितडिल्लोकादेवावर्तन्ते न तेषा ब्रह्मलोकावाप्ति । तदुक्तभामत्या "उत्तरोत्तरभूयस्त्वादब्रह्मक्रतुभावत । प्रतीकोपासकान्ब्रह्मलोकनामानवोनयेदिति ।" ब्रह्मोपासकास्तु परविद्यासामर्थ्याद् ब्रह्मलोकसम्प्राप्यतत्रोत्पन्नविज्ञानाद्धिरण्यगर्भेणसहपरमविशुद्धविष्णो पदप्रयान्तीत्येषा-तेषांक्रममुक्तिरुपपद्यते । अत एव कार्यात्ययेतद यक्षेगसहात परमभिधानात्. (ब्र सू. ४।३।१०) इति ब्रह्मसूत्रसगच्छते । तस्मात्त एव नावर्त्तन्त इति चेन्न, अज्ञातशास्त्ररहस्यानामिद चोद्यम् । तथाहि—उदाहृतश्रुतिस्मृत्योरेकविषयतायाअसम्भवात् । ते ब्रह्मलोकेत्वित्यादिश्रुते प्रकरणानुरोधा-दयमर्थ । अस्या खण्डिकाया पूर्वार्धे—"वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्था सन्यासयोगाद्यतय शुद्धसत्त्वा" (मु—३।२।६) एवमाम्नायते । निर्मलान्त करणामुमुक्षव इहैवलोकेसद्गुरुमुपसम्पद्यवेदान्तविज्ञाने-नसुनिश्चितार्थो सन्तोऽनभिसहितकर्मफला अतएवयत्नशीला शुद्धस्वभावा सम्यग्ब्रह्मविद्योद्भासि-तान्त करणास्तेसर्वेब्रह्मलोकेब्रह्मैवलोकोब्रह्मलोकोनिपादस्थपतिन्यायेनकर्मधारयसमास एवात्राभिप्रेतस्तस्मि-न्नुपास्येपरब्रह्मणिवर्तमाना परान्तकालेपरोऽन्तिमोयोन्त कालस्तस्मिन्प्रारब्धकर्मभोगहेतुप्राक्तनचरम-देहावसानसमयेपरामृतात् । परममृतप्राप्यपरिमुच्यन्ति सर्वस्माद् बन्धाद्विमुच्यन्त इति । नह्यत्रकार्य-ब्रह्मलोकमासाद्य तत्र विद्यामभ्यस्यपरान्तकालेब्रह्मणासहमोक्षमाप्नुवन्तीत्ययमर्थ सम्भवति पूर्वापरार्धवाक्य-विरुद्धत्वात् सदर्भविरुद्धत्वाच्च । सन्दर्भोऽयंपरस्यब्रह्मण प्राप्तेरेव । यत प्रथममुण्डकेद्वितीयखण्ड एकादशखण्डिकायां तप श्रद्धे ये ह्युपवसन्त्यरण्येशान्ताविद्वासोभैक्षचर्याचरन्त । सूर्यद्वारेण ते विरजा प्रयान्ति यत्राऽमृतस्सपुरुषोह्यव्ययात्मा, इत्यस्यामूर्योपलक्षितार्चिरादिमार्गगामिनाब्रह्मविदाह्यमृतत्वाव्य-यात्मत्वविशेषितपरमपुरुषतल्लोकावेवप्राप्यतयानिर्दिष्टौ न तु द्विपरार्धावसानकालविनाशिहिरण्यगर्भ-तल्लोकावितिप्रस्फुटमेवाभिधीयते । इत स्मृतिस्त्वर्थान्तरमेवप्रतिपादयति सा चेहलोकसमभ्यस्तविद्य-स्यदेवयानपथाप्रस्थितस्यविदुषोविषये न किमप्यभिधत्तेऽपि तु पुण्यकर्मानुष्ठानेनप्रजापतिलोकमुपेता-नामविदुषा तदुपर्यपिवादरायण, इति न्यायेनब्रह्मलोकएवाभ्यस्तविद्यानापरमपदप्राप्तिप्रकारमेव । तदर्थश्च ते सर्वेपुरुषविशेषा स्वोपार्जितपुण्यकर्मणाब्रह्मणाप्रजापतिनासहकृतात्मान ब्रह्मलोकएवाधिगतविद्या-

स्सन्त परस्यप्रजापतेरायुषोऽन्तेप्रनिसंचरेमहाप्रलयेसम्प्राप्तेसतिपरपद प्रविशन्ति, इति । तस्माच्छ्रुति-स्मृत्यो रैक्यार्थमेव नास्ति । श्रुतिर्विदुषाप्रारब्धशरीरावसानेऽचिरादिनापरब्रह्मप्राप्तिमभिदधाति । स्मृ-तिस्त्वविदुषांपुण्यकर्मविशेषेणकार्यब्रह्मण प्रजापतेर्लोकमेजुषा तत्रैवाधिगतविद्यानाप्रारब्धकर्मफलभूतहि-रण्यगर्भसायुज्यानुभवावसानेनेनैवसावँमोक्षस्थानप्राप्तिमितिद्वयोविविक्त पन्था । ब्रह्मविद् शरीरादुच्चि-क्रमिषोमूर्धन्यनाड्यैवोत्क्रम्याचिरादिमार्गेणैव गमनेलोकविशेषेचिरकालवासलक्षणव्यवधानमन्तरेणैव परब्रह्मप्राप्तिरितिस्पस्टमुच्यते । छान्दोग्ये पष्ठाध्याये सद्विद्याप्रकरणस्थया 'तस्यतावदेव चिर याव-न्न विमोक्ष्येऽथ सम्पत्स्ये, इति श्रुत्या सद्विद्यानिष्ठस्य मोक्षप्राप्तेर्देहपानमात्रावधिविलम्बप्रतितेरिति । अपि च तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेतीतिछान्दोग्यश्रुत्युपबृहणभूतया याज्ञवल्क्यस्मृत्या "उर्ध्वमेकस्थित स्तेषा योभित्त्वासूर्यमण्डलम् । ब्रह्मलोकमतिक्रम्य तेन याति परागतिम् ।" (या० स्मृ० ३/१६७) इतिदेवयानपथप्रस्थितानामेकस्यैवेनैव प्रजापतिलोकमप्यतिक्रम्य तत ऊर्ध्वंगत्वा ह्यमृतत्वप्राप्ति-स्वरूपपरमगतिप्राप्तिमभिदधत्या निवारितैव तेषा हिरण्यगर्भप्राप्तिर्हिरण्यगर्भलोके च चिरकाल स्थित्वामहता विलम्बेन पश्चादमृतत्वप्राप्तिरित्यपि । तस्मादुपनिपद्विरुद्धैवैषा कल्पना यदर्चिरादिमा-र्गेण गताना चतुर्मुखलोकस्थितिरावश्यकी केषाञ्चित्पुनरावृत्तिरपीति नापि गतिशास्त्रेदेवयानेन ब्रह्मलो-कमागतानाम्पुनरावृत्तिर्बोध्यते । यदि देवयानमार्गगामिनामावृत्तिर्भगवतोऽभिमता चेत्तर्हि "यत्रकाले त्वनावृत्तिमावृत्तिञ्चैव योगिन" इतिप्रतिज्ञावाक्यमेव नोच्चारयेन्नवोपसहार एकया यात्यनावृत्तिमन्य-याऽऽवर्तते पुन, इति स्पस्टतयोपदिशतो गीताशास्त्रविरुद्धमेतद् यद् देवयानेनपथा गतानामप्यावृ-त्तिरिति । एवमनावृत्तिश्शब्दादनावृत्ति शब्दाद् (ब्र० सू० ४।४–२२) इति ब्रह्ममिमासायामप्यना-वृत्तिमेव प्रत्यपीपदद्भगवान् बादरायण । ननु "अप्रतीकालम्बनान् नयतीति बादरायण उभयथा च दोषात्तत्क्रतुश्च' (ब्र० सू० ४/३/१४) इति सूत्रेऽप्रतिकालम्बनान् नयतीत्युक्तत्वान् नामादि, प्रति-कोपासकाना नामानव पुरुषो विद्युल्लोकादूर्ध्वं नयतीति स्पस्टमेवावगम्यते । किञ्च प्रतीकोपासका हि न परविद्याविदिवप्राधान्येन ब्रह्मोपासका यतस्तेऽचिरादिना मार्गेण गत्वा स खल्वेव वर्तयन् याव-दायुष ब्रह्मलोकमभिसम्पद्यते न च पुनरावर्तते" (छा० ८/१५/१) इत्युक्त साक्षाद्ब्रह्मविद्योपास कफल लभेरन् । न पितृयाणतृतीयगतिभ्या वैषागमन सम्भवति । चन्द्रलोकादिप्रापककर्माननुष्ठा-यित्वादतस्तेषामर्चिरादिमार्गेणैव गतिर्वक्तव्या । अतश्चैते तडिल्लोकपर्यन्तमर्चिरादिमार्गेणैवगच्छन्तीति निश्चीयते । एव पञ्चाग्निविदामपि कार्यब्रह्मलोक यावदेवगति पुनरावृत्तिश्च । तथा च 'ते य एव मेतद्विदुर्ये चामी अरण्ये श्रद्धासत्यमुपासते, (बृ० ६/२/१५) इत्यत्राद्येन यच्छब्देन पञ्चाग्नि-विदागृह्यन्ते द्वितीयेन यच्छब्देन च तप सत्यादिपदवाच्यपरब्रह्मविपयकविद्यावन्त प्रतीकोपासकाश्च सर्वेऽपि गृह्यन्ते । तत्र प्रतीकोपासका देवयानेन गत्वाऽपि विद्युल्लोकयावद्गत्वा पुनर्निवर्तन्ते । एव पञ्चाग्निविदामपि ब्रह्मलोक यावद्गति पुनरावृत्तिश्च, उभयोरब्रह्मोपासकत्वात् । तृतीयोपासकास्तु सगुणब्रह्मविद्यावन्त इति तेपामर्चिरादिमार्गेण कार्यब्रह्मलोके गतिस्तत्र चिराय, चतुर्मुखसायुज्यमनु-

भूय तच्छरीरावसाने तेनैव सार्धं द्विपरार्धकाले परब्रह्मधामप्राप्ति । निर्गुण ब्रह्मानुध्यायिनान्तु न परिच्छिन्ने देशे गतिरुपपद्यते सर्वगतत्वात् ब्रह्मणोऽनस्तन्मुक्तिर्न देशविशेषे किन्त्विहैव ब्रह्मभूयता-प्राप्यते । न तस्य प्राणाउत्क्रामन्ति । इहैव समवलीयन्त इति श्रुतेरितिविवेक इति चेन्न, सूत्रता-त्पर्यानवबोधविजृम्भितत्वात्तवाभिप्रायस्य, सूत्रेऽप्रतीकालम्बनान्नयतीतिकथयता बादरायणर्षिणा बादरि जैमिनिमते व्युदस्ते तथाहि प्रतीकालम्बनत्वेन हिरण्यगर्भलक्षणकार्योपासकस्यापि ग्रहणेन तस्या-र्चिरादिगतिनिषेधसिद्ध्या बादरिमतमप्रतीकालम्बनत्वेन पञ्चाग्निविद् ब्रह्मनिष्ठोभयविधोपासकग्रहण विधाय देवयानेनागतिप्रतिपादनेन जैमिनिमतञ्चेति सूत्रेऽप्रतीकालम्बनान् नयतीत्युक्तम् । अत्रैतत्पद-घटकप्रतीकालम्बनाश्चाचिन्मात्रवस्तु । अचिन्मिश्र वा । ब्रह्मदृष्ट्या स्वरूपेण वा तद्वस्तूपासनपरा परमप्राप्यादर्वाचीनभूतप्राप्यरूपप्रतीकोपासनपरा इति पिण्डितार्थ । न चेव परब्रह्मणोऽर्वाचीनप्रकृति-वियुक्तप्रत्यगात्मत्वावलम्बिना पञ्चाग्निविदामपि प्रतीकालम्बनत्वेनतेषामप्यर्चिरादिनागतिर्नैव सिद्ध्ये-दितिवाच्यम् । प्रकृतिवियुक्तस्य प्रत्यगात्मस्वरूपस्य परमप्राप्यत्वेन प्रतीतत्त्वासिद्धे । अयमभिसन्धि । यस्मिन् प्राप्ये प्राप्तेऽपि पर तत्त्व न प्राप्त भवति पश्चात् प्राप्तव्यतयैव चावशिष्यते । तत्प्रतीक-शब्दवाच्यमर्वाचीनप्राप्यम् । यस्मिश्च प्राप्ते सर्वस्मात् पर तत्त्वप्राप्तमेव भवति पश्चात् प्राप्तव्यतयाच नावशिष्यते तत्परमप्राप्यम् तत्र परमपुरुषस्य स्वय परतत्त्वस्वरूपत्वेन तत्प्राप्ते परतत्त्वप्राप्तिरूपत्वात् तस्य स्वत एव परमप्राप्यत्वम् एवभगवत्स्वरूपतीरोधायक नि शेषाविद्यानिवृत्त्यनन्तरमेव विशुद्धात्म-स्वरूपावाप्ति स्थानविशेषावाप्तिश्च सम्भवत इति तादृशप्राप्तिसमकालमेव भगवत् प्राप्तिर्नैयत्येनतयोरपि परमप्राप्यत्व सम्भवत्येवात एव त्रणायामपि परमपदव्यपदेश्यत्व यत्र तत्र श्रुतिस्मृतिषु दृश्यते । यथा 'तद्विष्णो परमपद सदापश्यन्ति सूरय' इति श्रुत्या परमस्थानमेव परमपदबोध्य भवति । सर्गस्थि-त्यन्तकालेषु त्रिधैव सम्प्रवर्तत्ते । गुणप्रवृत्त्या परम गुण तस्यागुणमहत् । इति प्रकृति विनिर्मुक्तक्षेत्रज्ञ स्वरूपम् । समस्तहेयरहित विष्णवाख्य परमपदमिति स्मृत्या च भगवत्स्वरूपमेव परमपदशब्देन व्यपदिश्यते । तथा च ब्रह्मप्राप्तितदभावयोरेव परमप्राप्यत्वप्रतिकत्वप्रयोजकत्वावगमादचिद्वस्तु तन्मिश्र-योरेवप्रतीकता विश्राम्यति तत्रैवाविद्ययाब्रह्मप्राप्तिप्रतिरोधात् । यथोक्तरीत्याऽविद्याकृततिरोधानविगमेन ब्रह्मप्राप्तिगर्भत्वप्राप्तिकत्वात् । प्रकृतिवियुक्तप्रत्यगात्मस्वरूपन्तु परमप्राप्यमेवेतितत्त्वम् । अत एव गीता-शास्त्रे तमाहु परमागतिमिति परमगतिशब्देनैतदेव प्रकृतिविनिर्मुक्तप्रत्यगात्मस्वरूप निर्दिष्टम् । तथा च परात्महत् परममितिविग्रहे पृषोदरादिवत् तत्तदवयवलोपमाश्रित्य व्युत्पादनीयेन परमशब्देन सह प्राप्य शब्दस्य कर्मधारय समासमाश्रित्यापरत्वेनाभिमतात् कस्माच्चित्प्राप्यात् परत्वेनाभिमत यत्प्राप्य तस्मादुत्कृष्टप्राप्य परमप्राप्य शब्देन बोध्यते । एवञ्च प्रकृतिपदवाच्याचित्तत्वात् परयदचिन्मिश्रचि-त्तत्वरूपप्राप्य तस्मादुत्कृष्टत्वलक्षण परमप्राप्यत्व स्वोत्कृष्टप्राप्योत्कृष्ट वसम्बन्धेन प्राप्यविशिष्टप्राप्यत्व-पर्यवसित विशुद्धक्षेत्रज्ञपरमात्मलक्षणप्राप्यद्वयसाधारणम् । परमात्मप्रकृतिविनिर्मुक्त प्रत्यगात्मस्वरूप-

परमस्थानेषु त्रिष्वपि पयाप्त परमप्राप्यत्वन्तु स्वप्राप्त्युत्तरकालप्राप्तव्यस्त्वोत्कृष्टत्वोभयसम्बन्धावच्छिन्ना धेयतासम्बन्धेन प्राप्यविशिष्टान्यप्राप्यत्वरूपम् । प्रोदीरितसम्बन्धेन प्राप्यविष्टिष्टप्राप्यत्वरूपमर्वाचीन प्राप्यत्वमेव च प्रतीकपदप्रवृत्तिनिमित्तमिहविवक्षितम । परम्माप्यस्मात्तत्परमपरम च तत्प्राप्यञ्च परमप्राप्यमितिविग्रहे परमशब्दघटकपरशब्दस्योत्तरकालप्राप्तव्योत्कृष्टसमभिव्याहृतपदार्थतावच्छेद कावच्छिन्नपरतया यस्मात् प्राप्तादुत्तरकालप्राप्तव्योत्कृष्टप्राप्यवस्तु नास्ति तादृश प्राप्यमित्यर्थ सिद्ध्यापरमप्राप्यशब्देन यथोक्तरूपावछिन्नोऽर्थ पर्यवसितो भवतीति बोध्यम् । स्थानविशेषस्य विशुद्धक्षेत्रज्ञस्वरूपस्य च प्राप्तिदशाया परमात्मनोऽपि पाप्तेरुत्तरकायप्राप्तव्यत्वाभावेनोक्तलक्षण परमप्राप्यत्व तयोरपि सम्भवत्येव । तथा च परमप्राप्यादर्वाचीनत्वरूप प्रतीकत्व प्रकृतिवियुक्तप्रत्यगात्मव्यावृत्तमेवज्ञेयम् । तेन पञ्चाग्निविदो न प्रतीकालम्बना भवन्ति । अथेदानीं प्रतीकालम्बनपदार्थो विचार्यते । तत्त्व इह न तावत् स्वप्राप्तिप्रयोजकस्वनिष्ठविलक्षणविषयतानिरूपकत्वसम्बन्धेन प्रतीक विशिष्टोपासनाश्रयत्व सर्वेषा ब्रह्मविदा प्रतीकालम्बनत्वापत्ते । किन्तु ब्रह्म प्राप्त्यभावविशिष्टस्वप्राप्ति प्रयोजकस्वनिष्ठविलक्षणविषयतानिरूपकत्वसम्बन्धेन प्रतीकविशिष्टोपासनाश्रयत्वमेव तद् विवक्षित तदेकप्राप्तिप्रयोजकतन्निष्ठविलक्षणविषयताशाल्युपासनाश्रयत्वस्यैव तदालम्बनत्वरूपत्वात् । स्वप्राप्तौ प्राप्यभाववैशिष्ट्यञ्च समानकालिकत्वसामानाधिकरण्योभयसम्बन्धेन एवञ्च सति पञ्चाग्निविदां न प्रतिकालम्बनत्वप्रसङ्ग । ब्रह्मप्राप्त्यन्त पातितयैवप्रकृतिविनिर्मुक्तप्रत्यगात्मप्राप्तेस्तदीयविद्याफलत्वात्तदर्थमेव तदीयविद्ययास्तत्क्रतुन्यायेन ब्रह्मात्मकत्वेन प्रकृतिविनिर्मुक्तप्रत्यगात्मोपासनरूपतयाशिक्षणात् । ब्रह्मविदातुमुक्तिदशाया ब्रह्मप्राप्तौ विद्यमानायामेवतदन्त पातितया प्रतीकपदार्थप्राप्तेर्विद्यमानतया न प्रतीकालम्बनत्वमिति तत्त्वम् । तदय निर्गलितोऽर्थ 'स्ववृत्तिविषयतानिरूपकत्व, स्वकार्यविषयकत्व, स्वमसृष्टचिन्निष्ठविषयतानिरूपकत्वैतदन्यतमसम्बन्धेन प्रकृतिविशिष्टोपासनाविषयत्वपर्यवसितमेवार्वाचीनप्राप्त्वरूप प्रतीकपदप्रवृत्तिनिमित्तम् । एतादृशप्रतीकालम्बनानामर्चिरादिमार्गेण गतिर्न शास्त्रसम्मता यतोहि सिद्धान्तसूत्रस्थाप्रतीकालम्बनानित्यत्रोपासकपदमनुच्चार्य तत्रालम्बनपद प्रयुञ्जानस्यबादरायणमहर्षेरयमाशयो यत् प्राप्यतयाप्रतीकमुद्दिश्य ये प्रतीकोपासकास्ते सर्वेऽपि प्रतीकालम्बनपदेनोच्यन्ते । तथा च नामादिकं वस्तुमाणवकेऽग्निदृष्टिवद् ब्रह्मदृष्ट्यास्वरूपेण वा तद्वस्तूपासका हि ते तादृशानर्चिरादिगणो नैव ब्रह्मलोक नयतीत्यर्थ । प्रतीकोपासकव्यतिरिक्तान् गत्यव्यवधानेन ब्रह्मप्राप्तिरूप फलमुपलिप्सवो येऽधिकारिणस्तादृशाक्षेप्य फल लब्धु तत्परास्तानेवार्चिरादिरातिवाहिकगणोनयति । चतुर्मुखादिकार्योपासकाना नामादिप्रतीकोपासकवत्प्रतीकालम्बनत्वान्न तेषादेवयानेन गतिरुपपद्यते । प्रतीकोपासकाना फलन्तु 'स यो नाम ब्रह्मेत्युपास्ते यावन्नाम्नो गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति । (छा० ७/१/५) इत्यादिरूपेण छान्दोग्ये स्पष्टमेवाम्नातम् । पञ्चाग्निविदा दहरादिविद्यावता साक्षाद्ब्रह्मोपासकानाञ्च 'तद्य इत्थ विदुर्ये चेमेऽरण्ये श्रद्धा तपइत्युपासते तेर्चिषमभिसम्भवन्ति, (छा० ५।) इत्यर्चिरादिनाऽपुनरावृत्तिलक्षणागतिराम्नायते ।

ग्वश्चात्र स्वनिष्ठविषयतानिरूपकत्वस्वविशिष्टवस्तुविषयकत्वाभ्या सम्बन्धाभ्या प्रकृतिवियुक्तात्मविशिष्टो पासनाश्रयत्वमेवानावृत्तिविशेषप्रयोजकतावच्छेदक निष्पद्यते ।

सम्बन्धघटकवैशिष्ट्यञ्चस्वशरीरकब्रह्माभिन्नत्वस्वकर्मकब्रह्मात्मकत्वानुसन्धानत्वैतदन्यतरसम्बन्धेनग्राह्यम् । एतादृशोपासनाशालिनापुनरावृत्तिर्नहिशास्त्रसम्मतेति निर्णय । पञ्चाग्निविदोऽपि यद्यचिद्विशिष्टमेव प्रत्यगात्मान प्राप्यतयोपासीरस्तर्हितत्क्रतुन्यायेन नस्यात् तेषा ब्रह्मप्राप्तिरनावृत्तिश्च । तत्क्रतुन्यायश्च अथखलुक्रतुमय पुरुषोयथाक्रतुरस्मिन् पुरुषो भवति तथेत प्रेत्य भवति, (छा३।१४।१। त यथायथोपासतेतथैव भवतीति द्वाभ्या श्रुतिभ्या तथोपासीनस्तथैव प्राप्नोतीत्येवरूप । एतन्न्यायबलेनानुपासितस्य ब्रह्मण प्राप्त्ययोगात् । क्षरणस्वभावाचिन्मिश्रप्रत्यगात्मोपासनेनतस्यैव प्राप्तिस्तस्य च विनाशशीलत्वेन पुनरावृत्तिरवश्यम्भाविनीत्यत पञ्चाग्निविद प्रकृतिवियुक्तब्रह्मात्मकत्वेनप्रत्यगात्मानमेवोपासते । क्षेत्रज्ञस्यब्रह्मात्मकत्वन्तु 'यस्यात्माशरीरमित्याद्यनेकश्रुतिभिरवगतमेव । तस्मात् पञ्चाग्निविदादेवयानगतिपुनरावृत्तिश्चसिद्ध्यत एव । ननु सर्वगतस्यब्रह्मण क्वचिल्लोकविशेषोनोपपद्यते न वा तस्य सभावेऽगमादिकयतस्तत्रतदुपासकस्यगतिनिरूपपद्यता न वा निर्धूतनिखिलाविद्य पुमान् लोकविशेषस्थैश्वर्यकामयेत् । नथाविधैश्वर्यप्राप्तिरेवमोक्षश्चेत् तस्य विनश्वरत्वेन मोक्षस्याप्यनित्यत्वमापद्येत । तस्मान्निर्गुणब्रह्मविदस्तुनार्चिरादिनादेशान्तरेगतिरस्तीतिचेन्न, श्रुतिशतप्रतिपादिताचिरादिनामार्गेणदेशान्तरगत्यैव ब्रह्मप्राप्तिरितिश्रौतनिश्चयेऽत्र निशेषाविद्यानिवृत्ताविहैव च मुक्तिरितिकुतर्कोपबृंहितस्यत्वन्मतस्याप्रामाणिकत्वात् । न हि तर्कशतमेकामपि श्रुतिंबाधितुं प्रभवति लोके यथा वह्नेरौष्ण्य सलिलस्य च शैत्य वचादीनाविद्योवर्धकत्वतुण्ड्यादीनाञ्च तन्नाशकत्वमित्यसकृत्तत्तद्भावस्वभावोविलक्षणशक्तिमत्त्वेनानुभूयते । तथैव प्राकृतिकजगतिकर्मवासनाख्याविद्याजननशक्ति. परमव्योमाख्यदेशविशेषस्यतादृशाविद्यानिवर्तनशक्तिश्चनापह्नवमर्हत । स्वाभाविकविचित्रभावशक्तयस्तर्केणाशक्यनिह्नवा इति निश्चिनोति ।

भगवान् पराशर "शक्तय सर्वभावानामचिन्त्यज्ञानगोचरा । यतोऽतो ब्रह्मणस्तास्तुसर्गाद्याभावशक्तय । भवन्ति तपता श्रेष्ठ² पावकस्य यथोष्णता" इति । अपि च श्रुतिसचिवस्तर्कोऽप्यत्र प्रामाण्यमासादयति यथा पंकोपलिप्ताङ्ग न हि पकिलाम्भस्यवस्थितनिर्मलमपिजलक्षालयितुं क्षमते तथा ह्याविधिकप्रकृतिमण्डलेऽविद्याख्यमलस्तोम तिरस्कर्तुं न पार्यते विद्याबाहुल्येनापि । तदत्र यथा पकोपलिप्तवस्तुकश्चिच्चतुरोनिष्पङ्कप्रदेश प्रसन्नसलिलतीर्थंवाऽऽनीयप्रक्षाल्यनिर्मलीकरोति तथाऽत्रापिस्वभक्तानुकम्पाकूपारो भगवान् भक्तोपासनयाऽनुग्रहाविष्टउपासकानातिवाहिकगणैरर्चिरादिभिः प्राकृतलोकेभ्य. ऊर्ध्वं प्राकृतसम्बन्धविधुरदेशविशेषमानीयसमस्ताविद्याकल्मष प्रक्षाल्यस्वात्मानंप्रापयतीति विदुषा ब्रह्मावाप्तयेऽवश्यमेवगतिरुपपद्यते । समस्ताविद्यानिवृत्तिभूमयोऽप्राकृतादेशविशेषाः परमात्मन. श्रुतिस्मृतिप्रतिपादिता सन्त्येव । तथा च श्रुतय. 'दिव्ये ब्रह्मपुरे ह्येषः व्योम्न्यात्माप्रतिष्ठित, (मु.२।२७) 'आदित्यवर्णंतमस.परस्तात्, (पु. सू.) क्षयन्तमस्यरजस.पराके,

तद्विष्णो परम पद सदा पश्यन्ति सूरय , इत्याद्य शतशस्तल्लोकमामनन्ति । श्रुतिप्रतिपन्नेऽर्थेयथा-श्रुतिविचारस्यैवन्याय्यत्वादन्यथाशास्त्रकप्रमाणकस्यब्रह्मणोऽपितर्कबलेनापलापप्रसङ्गात् । न चैवमुत्तर मीमासाया कार्याधिकरणस्य का गतिरितिवाच्यम् । कार्याधिकरणीयाद्ययोर्बादरिजैमिनिपक्षयो पूर्वपक्ष-तयावस्थाप्यभगवताबादरायणेनाप्रतीकालम्बनान्नयतीत्यादिसूत्रद्वयेनसैद्धान्तिकस्यस्वाभिप्रायस्य स्पष्ट प्रतिपादितत्वात् ।

तथाहि— कार्यं बादरिरस्यगत्युपपत्तेरितिचतुर्मुखादिरूपकार्यब्रह्मोपासकानातिवाहिकगणो हिरण्यगर्भलोकमेवनयतीति बादरिमतमयुक्तबहुषूपनिषत्सुब्रह्मविद्याप्रकरणेश्रूयमाणायाअर्चिरादिगते पर-ब्रह्मप्राप्तिहेतुतयैव तत्रतत्रसमाम्नानात् । तादृशश्रुतीनामपरब्रह्मविषयत्वेदहराद्यनेकविद्याविरोधात् । सर्वगतस्यापिब्रह्मणोगतिशास्त्रबलसिद्धस्यदेशविशेष एव नि शेषाविद्यानिवृत्तिसम्भवस्यदुरपह्नवतया त विना प्राप्तेरयुक्तत्वेनमार्गविशेषेणदेशविशेषगतिपूर्वकप्राप्तेरेवयुक्तत्वात् । तस्य च बादरिमतस्यजै-मिनिनैवनिराकृतत्वात्तन्मतमत्र न प्रपञ्च्यते । उभयमनयोर्दोषमुद्भाव्याप्रतीकालम्बनान्नयतीति बादरायणस्यमहर्षे सिद्धान्त समुज्जृम्भते । इद पुना रहस्य यद्यपि कार्याधिकरणेऽपिदेवयानमार्ग गामिना पुनरावृत्तिस्तुक्तापि नोदीरिता न वा तत्प्रमाणभूतामूपनिषत्सु तथाऽप्यत्रमधुसूदनेन तट्टीकायाम्पुनरावृत्ति प्रतिपाद्यत इति चित्रमतस्तन्मत वेदानुसारिभिरनादरणीयमिति सक्षेप । विस्तरस्तुअस्मद्गुरूपनिबद्धपरमगतिमीमासायाष्टीकायामत्प्रणीतायाद्रष्टव्य ॥२३॥

श्रीसीतारामाभ्या नम

प्रतिपक्षिभयङ्करजगद्गुरुश्रीहर्यानन्दाचार्य-
सिद्धशिरोमणिप्रणीता

ॐ प्रमाणदीपिका ॐ

(स्वशताब्दीमहोत्सवे श्रीहर्यानन्दाचार्योपदिष्ट प्रबन्ध)

राम सीतां तथाचार्यं श्रियानन्द प्रणम्य च । प्रमाणाना प्रकाशाय कुर्वे प्रमाणदीपिकाम् ॥१॥

* अथ प्रत्यक्षप्रमाणमयूखः *

चिदचिदीशतत्त्वाना ज्ञान प्रामाणिक च यत् । मोक्षस्य साधन तद्धि 'भोक्ता भोग्यमि'तिश्रुते ॥२॥
प्रमाया. कारण तत्र प्रमाण सम्मत बुधै । अबाधव्यवहारस्यानुगुणा तु मति प्रमा ॥३॥
करण चावगन्तव्य व्यापारशालि कारणम् । त्रिधा प्रमाणमध्यक्षानुमानशब्दभेदत ॥४॥
सम्भवस्योपमानस्य चार्थापत्तेस्तथैव हि । अन्तर्भावोनुऽमाने तु तत्त्वज्ञैरुररीकृत ॥५॥
ऐतिह्यमाप्तमूल यच्छब्दे चान्तर्भवत्यद । अनुमानाङ्गतर्कस्य मन्यते स्वाङ्गिरूपता ॥६॥
भावान्तरेण चभावप्रतीतिरुपपद्यते । अभावाख्य पदार्थश्चातिरिक्तो मन्यते न तत् ॥७॥
अतिरिक्त प्रमाण तन्नानुपलब्धिनामकम् । अभावसाधकत्वेन प्रमाणज्ञैर्हि मन्यते ॥८॥
अनुमाध्यक्षशाब्दीतिभेदात् त्रिधा मता प्रमा । ज्ञानाकरणकं ज्ञानं प्रत्यक्षत्वेन सम्मतम् ॥९॥
प्रत्यक्ष द्विविध चाथ तत्राद्यं निर्विकल्पकम् । अनेकवृत्तिजात्याद्यविषया शेमुषी च तत् ॥१०॥

प्रत्यक्ष चापर प्रोक्त विद्वद्भि मविकल्पकम । अनेकवृत्तिजात्यादिविषया शेमुषी च नत् ॥११॥
प्रत्यक्ष द्विविध चैतद् द्वैविध्य च गत पुन । अर्वाचीनमथानर्वाचीनञ्चेतिविभेदत ॥१२॥
एकमिन्द्रियसापेक्षमपर तद्विलक्षणम् । स्वयसिद्ध च दिव्य च द्विविधमादिम तथा ॥१३॥
योगजन्य च तत्राद्य परञ्चेशप्रसादजम । प्रत्यक्षानुभवे तत्र करणमिन्द्रिय मनम ॥१४॥
व्यापारस्तत्र सयोग सयुक्ताश्रयण तथा । अर्वाचीनेतरद् बोध्य प्रत्यक्षमीशमुक्तयो ॥१५॥
पूर्वानुभवतश्चात्र सस्कृतिरुपजायते । सदृशादृष्टचिन्ताद्यैरुद्‌बुद्धा मस्कृतिर्भवेत ॥१६॥
उद्‌बुद्धसस्कृतेर्जाता स्मृति प्रत्यक्षमेव हि । प्रतिभाप्रत्यभिज्ञे च प्रत्यक्षे एव सम्मते ॥१७॥
'यथार्थं सर्वविज्ञानमिति वेदविदा मतम् । शुक्तावपि हि रौप्यांशा पञ्चीकरणतो मता ॥१८॥
शुक्तिरौप्यमतेस्तस्मात् सत्यालम्बनता मता । शुक्तिरौप्यमतिभ्रान्ता रौप्याशाल्पत्वहेतुन ॥१९॥

इतिप्रतिपक्षिभयङ्करजगद्‌गुरुश्रीहर्यानन्दाचार्यसिद्धशिरोमणिप्रणीताया प्रमाणदीपिकाया प्रत्यक्षप्रमाणनिरूपणाख्य प्रथमो मयूख ॥१॥

अथानुमानप्रमाणमयूखः

अनुमाकरण चाथानुमान परिकीर्तितम् । साधकतममेवात्र करण प्राज्ञसम्मतम् ॥१॥
ततोलिङ्गपरामर्शोऽनुमाया करण मतम । व्याप्यस्य पक्षवृत्तित्वधी परामर्शनामिका ॥२॥
तज्जा चानुमिति पक्षे साध्यबुद्धिर्मता बुधै । साध्याधारस्थता हेतौ व्याप्ति प्राज्ञै प्रकीर्तिता ॥३॥
साहचर्यस्य भूयिष्ठदर्शनाद् व्याप्तिधीर्भवेत् । तद्दर्शन सपक्षे हि भवेन्निश्चितसाध्यके ॥४॥
साध्यशून्यो विपक्षश्च पक्ष सन्दिग्धसाध्यक । अन्वयव्यतिरेकी हि हेतुश्च केवलान्वयी ॥५॥
यत्सत्त्वे खलु यत्सत्त्वमन्वयव्याप्तिरीरिता । यच्छून्यत्व च यच्छून्येऽभावव्याप्तिर्हि साधने ॥६॥
अन्वयव्याप्तितश्चाथान्वयी हेतुर्बुधैर्मत । अभावव्याप्तितो हेतुर्व्यतिरेकी समीरित ॥७॥
सिद्धान्ते द्विविधश्चैव सद्धेतुर्बुधसम्मत । केवलव्यतिरेकी तु सिद्धान्ते मन्यते न हि ।८॥
उमे चात्रानुमानाङ्गे व्याप्तिश्च पक्षधर्मता । द्वयोरन्यतरस्याथ विरहे हेतुदुष्टता ।९॥
व्यभिचारी विरुद्धोऽथासिद्ध सत्प्रतिपक्षक । बाधितश्चेति पञ्चापि हेत्वाभासा प्रकीर्त्तिता १०॥
हेतुश्च व्यभिचारी हि स्वस्थानातिक्रमे भवेत । स ह्यनैकान्तिकश्चाथ द्विविध परिकीर्तित ।११॥
विपक्षेऽपिस्थितश्चेत् स साधारणो मतस्तदा । बुधै सपक्षमात्रस्थोऽसाधारण उदाहृत ।१२॥
साध्याभावेन स व्याप्तो विरुद्धत्वेन सम्मत । आदिमस्त्रिष्वसिद्धेष्वाश्रयासिद्ध समीरित ।१३॥
पक्षश्च पक्षताऽवच्छेदकशून्यश्च तत्र हि । पक्षे च हेतुराहित्य स्वरूपासिद्धता स्मृता ।१४॥
व्याप्यत्वासिद्धता चात्र द्विधा प्राज्ञै समर्थिता । व्याप्तिग्राहकमानस्य शून्यत्वात् तत्र चादिमा ।१५॥
हेतावुपाधिसत्त्वाच्च द्वितीया सम्मता बुधै । साध्यव्यापकतायाञ्च साधनाव्यापकत्वकम् ।१६॥
उपाधित्वेन सम्प्रोक्त हेतो परमदूषणम् । प्रतिपक्षस्य सत्त्वे तु हेतो सत्प्रतिपक्षता ॥१७॥
यस्य प्रबलमानेन साध्याभावो विनिश्चित । दार्शनिकै स हेतुर्हिबाधित सम्प्रकीर्तित ।१८॥

अनुमान द्विधा स्वार्थं परार्थं चेति भेदत । स्वार्थेन स्वानुमा चात्र परार्थेन परानुमा ॥१९॥
न्यायजस्तु परामर्श परानुमितिकारणम् । न्यायस्तत्र प्रतिज्ञाद्यवयवपञ्चक मत ॥२०॥
प्रतिज्ञा साध्यनिर्देशो हेतूक्तेर्हेतुता तथा । व्याप्तिनिर्देशपूर्वा हि दृष्टान्तोक्तिरुदाहृता ॥२१॥
व्याप्यस्य पक्षवृत्तित्वबोधश्चोपनयो मत । निगमन तु साध्यस्योपसहारश्च खलु ॥२२॥
नैयायिका भवन्त्येतत्पञ्चावयववादिन । वेदान्तिनो वदन्त्येष्वनुमासिद्धौ यथारुचि ॥२३॥

इति प्रतिपक्षिभयङ्करजगद्गुरुश्रीहर्यानन्दाचार्यसिद्धशिरोमणिप्रणीताया प्रमाणदीपिकायामनुमानप्रमाण-निरूपणाख्यो द्वितीयो मयूख ॥२॥

※ अथ शब्दप्रमाणमयूखः ※

अनाप्तानुक्तवाक्यस्य शब्दप्रमाणता मता । द्वार पदार्थबुद्धिश्च शक्तिधी सहकारिणी ॥१॥
वाक्य पदसमूहश्च शक्त पदतया मतम् । अभिधाख्या च शक्तिर्हि वेदस्यार्थावबोधिता ॥२॥
मुख्या वृत्ति पदस्यार्थे सर्व प्राज्ञैरुदीरिता । घटेत्युक्ते घटे चैव शक्तिर्घटपदस्य हि ॥३॥
सम्बन्धोऽभिहित प्राज्ञैर्वृत्ति पदपदार्थयो । मुख्यार्थस्य हि बाधे तु वृत्तिर्मतौपचारिकी ॥४॥
गौणी च लक्षणा चेति भेदात् सा द्विविधा पुन । शक्यस्य गुणवत्त्वेन त्वाद्या वृत्तिर्मता बुधै ॥५॥
लक्षणा शक्यसम्बन्ध साऽन्वयानुपपत्तित । जहदथाजहच्चेति द्विधा सा परिकीर्त्तिता ॥६॥
आकाक्षायोग्यताऽऽसत्तिमद् वाक्य हि प्रमापकम् । प्रमाणमखिलो वेद सिद्धे व्युत्पत्तिसम्भवात् ।७॥
भागद्वये हि वेदस्य कर्मब्रह्माभिधायकम् । तत्राद्ये कथित कर्म ब्रह्माराधनलक्षणम् ॥८॥
शास्त्रे हि पूर्वमीमासाऽऽख्येऽस्यशका समाहिता । ब्रह्मणो वर्णित चान्त्ये स्वरूप च गुणादिकम् ।९॥
एतच्छङ्कासमाधान मीमासा चोत्तरा मता । मता मीमासयोस्तस्मादुभयोरेकशास्त्रता ॥१०॥
विध्यर्थवादमन्त्रेतिभेदाद् वेदस्त्रिधा मत । सम्मतस्तत्र विद्वद्भिर्विधिवाक्य प्रवर्त्तकम् ॥११॥
विधिरत्यन्तमप्राप्ते नियम पाक्षिके सति । तत्र चान्यत्र च प्राप्तौ परिसख्येति गीयते ॥१२॥
इत्येवहिविधि प्राज्ञैस्त्रिविध सम्प्रकीर्त्तित । नित्यो नैमित्तिक काम्यश्चापि भेदा विधेर्मता ॥१३॥
प्रवृत्त्युत्तम्भक वाक्यमर्थवादतया मतम् । मन्त्रत्वेन मतो वेदोऽनुष्ठेयार्थप्रकाशक ॥१४॥
शिक्षा व्याकरण छन्दो निरुक्त ज्योतिष तथा । कल्पश्चेति षडङ्गानि वेदस्योक्तानि वैदिकै ॥१५॥
पूर्वक्रमविशिष्टा हि वेदाश्चेशसमीरिता । नित्या अपौरुषेयास्ते तस्माद् बुधैश्च सम्मता ॥१६॥
नित्यो वेदश्च निर्दोषो वक्त्रभावाद्धि सम्मत । प्रामाण्य हि बुधैर्वेदे स्वीकृत स्वत एव तत् ॥१७॥
स्मृत्यादेस्तु प्रमाणत्व वेदमूलतया मतम् । शास्त्र वेदविरुद्ध च नैव याति प्रमाणताम् ॥१८॥
देहस्य वाचका शब्दा प्रर्यवस्यन्ति देहिनि । सर्वशब्दकवाच्यस्तद् राम· सर्वशरीरक. ॥१९॥

इति प्रतिपक्षिभयङ्करजगद्गुरुश्रीहर्यानन्दाचार्यसिद्धशिरोमणिप्रणीताया प्रमाणदीपिकाया शब्दप्रमाण निरूपणाख्यस्तृतीयो मयूख ॥३॥

श्रियानन्दार्यशिष्येण हर्यानन्देन निर्मिता । प्रकाशिका प्रमाणाना भूयात् प्रमाणदीपिका ॥२०॥ 卐

卐 श्रीरामतत्त्वविमर्श 卐

ले प. पशुपतिझा
वि वि व सस्थान (पजावविश्वविद्यालय)
साधुआश्रम, होशियारपुर, (पजाव)

मंगल भवन अमङ्गलहारी । द्रवहुँ सो दशरथ अजिर विहारी (रामचरितमानस १।१११।२)

श्रीराम परमविशुद्ध परात्पर सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्मा है, इसमे किसीको सशय नही करना चाहिए । क्योंकि इन्हींको वेदपुराण दर्शनादि तथा ज्ञानी भक्त, योगी आदि एकस्वर से अखण्ड-अनादि-अनन्त-सदैक रस-अव्यय-सर्वव्यापक-निरञ्जन, परमसत्य, आदिमध्यान्त रहित–सगुण निर्गुण निराकार स्वयप्रकाश-ज्ञानानन्दैकविग्रह-सर्वस्वरूप-सर्वगत-सर्वनाम-सर्वमय, सर्वातीत, सर्वसकल्पातीत, अद्वितीय, नित्य-शुद्ध-बुद्ध, परमसत्तात्मकस्वरूप सर्वज्ञ सर्वाधार, सर्वनियन्ता, सर्वोपाधिवर्जित, सनातन, समस्त सदसद्वस्तुसे विलक्षण, परमज्योति स्वरूप, सर्वप्रकाशक सबमेरमणकरनेवाले ब्रह्म कहते हैं । श्रीराम सर्वव्यापक पूर्णब्रह्म परमात्मा है । उनसे कही एकपरमाणु भी खाली नहीं है। वे सभी स्थावर जंगममे समानरूपसे रम रहे हैं । जो कुछ दृश्य-अदृश्य, सदसत् विश्व तथा असंख्य ब्रह्माण्ड है, वे सब राममय है । यही तात्पर्य रखकर सन्त श्रीतुलसीदासजीने रामचरितमानसमे कहा है–'सीयराममय सब जगजानी' 'सर्व खल्विदं ब्रह्म नेह नानोस्ति किंचन' यह श्रुति भी श्रीराममे पूर्ण रूपसे चरितार्थ होती है । वास्तविकमे यह सब कुछ ब्रह्म (राम) मय है, उनके सिवा और कुछ नहीं है । परब्रह्म श्रीरामजी भक्तोंपर अहैतुकी कृपावश चिदानन्दमय दिव्यशरीरसे आविर्भूत होकर भवसागरमे डुबते हुए समस्तजीवोंके कल्याणार्थ मर्यादावद्ध परमानन्दमोक्षदायिनी परमपावनी मधुर आदर्शलीला करते हैं । कविकुलचूडामणि सन्त श्रीतुलसीदाजी श्रीरामचरितमानस ६०२।१२५–१२६ दोहामे श्रीरामके विषयमे कहते है–"हे राम ! आप श्रुतिकी मर्यादाका पालन करनेवाले परब्रह्म परमात्मा है । आपकी योगमाया परमाह्लादिनी शक्ति श्रीजानकीजी है, जो आपकी प्रेरणासे जगत की उत्पत्ति, पालन तथा सहार करती है । श्रीलक्ष्मणजी हजार शिर धारण करने वाले शेषजी है । आपने देवकार्य तथा ससारका मङ्गल करनेके लिए मानव शरीर धारण किया है और खलनिशाचरों का दमन करनेके लिए कृतसकल्प है । हे राम ! वाणी द्वारा आपका स्वरूप अवर्णनीय है, बुद्धि से परे है, अविगत है, अकथनीय है, अपार है । यहॉ तककि वेद भी नेति नेति कहकर पुकारते हैं तथैव दोहा २।१२६।३ मे भी कहा है कि–हे राम आपका यह शरीर चिदानन्दमय है–यह प्राकृतिक पाञ्चभौतिक कर्मबन्धनग्रस्त–मायिक नही है । साथ ही साथ उत्पत्ति, वृद्धि, क्षय, नाश आदि विकारोंसे रहित है, सत और देवोंका हित करनेके लिए मानुष शरीर धारण करते है, जैसे संसारी लोग कहते करते है, वैसाही आपका आचरण होता है ।" गीतामे भगवान श्रीकृष्ण कहते है––

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धय । पर भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम् । (गीता ७।२४)

अर्थात् बुद्धिहीन मूढ पुरुष मेरे स्वरूपको न जानकर मुझे साधारण मनुष्य जानते हैं, मैं

तो अविनाशी अजन्मा होते हुए भी अपनी योगमायासे स्वेच्छानिर्मित सच्चिदानन्दविग्रहसे प्रकट होता हूँ। श्रीरामके सम्बन्धमें जब जगन्माता पार्वतीके मनमें जिज्ञासा हुई तब भगवान् शकरने इस प्रकार कहा—

राम सच्चिदानन्द दिनेशा। नहि तहँ मोह निशालवलेशा॥
सहजप्रकाश रूप भगवाना। नहि तहँ पुनि विग्यान विहाना॥
हरष विषाद ज्ञानअज्ञाना। जीवधर्म अहमिति अभिमाना॥
राम ब्रह्म व्यापक जगजाना। परमानन्द परेश पुराना॥

पुरुष प्रसिद्ध प्रकाशनिधि प्रगट परावर नाथ।
रघुकुलमणि मम स्वामि सोई कहि शिव नायउ माथ॥
रा च मा १।११५।३ ४, ११६

अर्थात् श्रीराघवेन्द्र रामजी विशुद्ध सच्चिदानन्द हैं। सत् का अर्थ है—सदा एक समान रहने वाला अविनाशी। अस्तीति सत्—जिसकी सत्ता सदा एकसी बनी रहती है। जो सदा वर्तमान है, वही सत् है। चेततीति चित्—जो सदा प्रकाशमय और ज्ञानस्वरूप है, जिसे कोई प्रकाशित नहीं करता प्रत्युत स्वय प्रकाश है, उसे चित् कहते हैं। आनन्दयतीति आनन्द। इसका अर्थ है, जहाँ सर्व सुख हो, इच्छा मात्रसे ही सब कुछ प्राप्त होजाय, किसी प्रकारका अभाव न हो। समस्त कामनायें पूरी हो जाय वही आनन्द है। सत् चित् आनन्द मिलकर सच्चिदानन्द होता है। भगवान् श्रीरामजी सदा रहने वाले अखण्ड ज्ञानस्वरूप परमानन्द सिन्धु हैं। सदा उदित रहने वाले सूर्य हैं। उनमें मोह या अज्ञानमयी रात्रिका लेशमात्र नहीं है। वे सहज प्रकाशरूप भगवान् हैं। वहाँ विज्ञानरूप प्रातकाल नहीं होता। क्योकि जब अज्ञानरूपी रात्रि होगी तभी तो विज्ञान रूपी प्रभात होगा। जब रात ही न होगी तब प्रभात कहाँ से आयगा। भगवान् सच्चिदानन्द दिनेश हैं। हर्ष-विषाद, ज्ञान-अज्ञान, अहता-ममता ये द्वन्द्व तो जीवोंके धर्म हैं। श्रीराम तो व्यापक ब्रह्म, परमानन्दस्वरूप परमात्मा हैं। परात्पर परमपुरुषोत्तम पुराणपुरुष सर्वेश्वर हैं। येही राघवेन्द्रश्रीराम मेरे इष्टदेव हैं। इसके बाद पुन सकरजी कहते हैं—

जगत प्रकाश्य प्रकाशक रामू। मायाधीश ग्यान गुन धामू।
जासु कृपा अस भ्रममिटिजाई। गिरिजा सोई कृपाल रघुराई।
आदि अन्त कोइ जासु न पावा। मति अनुमानि निगम अस गावा।
विनुपद चलइ सुनइ विनुकाना। कर विनु करम करइ विधिनाना।
आनन रहित सकल रस भोगी। विनु वानी वक्ता वड योगी।
तन विनु परस नयन विनु देखा। ग्रहइ घ्रान विनु वास अशेषा।
असि सब भाँति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहि वरनी। (रा च मा)

अर्थात् यह ससार प्रकाश्य है और श्रीरामजी इसके परम प्रकाशक हैं। वे मायाके अधीश्वर, दिव्य अलौकिक अखण्ड ज्ञान और परम विशुद्ध सत्वगुण तथा कल्यणमय मङ्गलके धाम हैं। उनकी कृपा लवलेश से सब सशय मिटजाते हैं। उनका आदि, मध्य और अन्त कोई नहीं पा सकता वेद भी अनुमान से कहते हैं कि वे सत्तामात्र अगोचर—इन्द्रियातीत हैं। वे प्राकृत पाँव, कान, हाथ, मुह, नाक आखसे रहित होते हुए भी गमनशील, श्रोता, कर्ता, भोक्ता, घ्राता और द्रष्टा हैं।

अर्थात् तत्तत् प्राकृत इन्द्रियाँ न होने पर भी उनके समस्त विषयोंका उपभोग करते हैं । इस प्रकार सब तरहसे जिनकी क्रिया अलौकिक है और जिनकी महिमा अवर्णनीय है । इस विषयका समर्थन श्रुति भी करती है —

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम् । (श्वेताश्वतर ३।१९)

अर्थात् हाथ-पैरके बिना वेगवान् और ग्रहण करनेवाला है, नेत्रके बिना देखता है, बिना कान के सुनता है, वह सभी कुछ जानता है अर्थात् सर्वेश श्रीराम उनसब क्रियाओं का साक्षी और द्रष्टा है, किन्तु उसे कोई नहीं जानता उसीको पुराण पुरुषोत्तम परमात्मा कहते हैं । इस प्रकार श्रीरामकी जितनी भी क्रियायें हैं, वे सब अलौकिक हैं ।

स्कन्दपुराणमें भक्तशिरोमणि श्री हनुमानजीने कहा है—

सर्वावस्थासु सर्वत्र पाहिमां रघुनन्दन ?। महिमानं तव स्तोतुं कः समर्थो जगत्त्रये ॥
त्वमेव त्वन्महत्त्वं वै जानासि रघुनन्दन ।

हे रघुनन्दन श्रीरामजी! प्रत्येक अवस्थामें सब जगह आप मेरी रक्षा करें । आपकी महिमाका वर्णन करनेकी शक्ति तीनों लोकमें किसीमें नहीं है । आप स्वयंहि अपनी महिमाको जानते हैं, इस प्रकार जिसका वर्णन श्रुति, पुराण, महर्षि, ज्ञानी योगी भक्त आदि करते हैं, वे ही भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाले परम विशुद्ध परात्पर परब्रह्म श्रीरामजी मनुशतरूपाकी कठोर तपस्या और अनन्य उपासनाके वशीभूत होकर भक्तवत्सल कोशलाधीश भगवान श्रीराम हुए हैं । श्रीरामजीका यह मानव शरीर दशरथके यहाँ पुत्ररूपमें आनेपर ही नहीं हुआ, यह तो सनातन, अनादि परात्पर ब्रह्म है । मनुशतरूपाकी तपस्यासे पूर्व भी सदा विद्यमान था । जब मनुशतरूपा नैमिषतीर्थमें तपस्या करने लगे तब इनकी कठोर तपस्यासे परम शंकित होकर वर देनेके लिए ब्रह्मा, विष्णु और महेश इनके पास कईबार आये किन्तु ये विचलित नहीं हुए । इन त्रिदेवोंकी ओर देखा तक नहीं और अपनी तपस्यामें धीरतासे लगे रहे । इनके मनमें निरन्तर ही अभिलाषा होती रही कि सर्वोपरि परमपुरुष प्रभुका दर्शन करें ।

उर अभिलाष निरन्तर होई । देखिय नयन परम प्रभु सोई ॥
अगुन अखण्ड अनन्त अनादी । जेहि चिन्तहिं परमारथवादी ॥
नेति नेति जेहिवेद निरूपा । निजानन्द निरुपाधि अनूपा ॥
सम्भु विरञ्चि विष्णु भगवाना । उपजहिं जासु अंश ते नाना ॥
ऐसेउ प्रभु सेवक बस अहई । भगत हेतु लीलातनु गहई ॥ रा च मा १।१४३

इस प्रकार कठोर तपस्यासे शरीर क्षीण होगया, शरीरमें अस्थिमात्र रह गया, किन्तु प्रखर श्रद्धातथा अनन्य भक्तिसे परिपूर्ण ये दम्पती छ हजार वर्षतक जल पीकर तपस्या करते रहे फिर भी परात्पर परब्रह्मका इन्हे साक्षात्कार यानी दर्शन नहीं हुआ । तब इन्होंने जल भी छोड दिया और केवल वायु पर ही आश्रित होकर सात हजार वर्ष तक भगवानकी उपासनामें लगे रहे । इसपर भी जब परमेश्वर श्रीरामका दर्शन नहीं हुआ तब इसे भी कम समझकर इन्होंने वायुभक्षणका भी परित्याग कर दिया और एक पाँवसे खडे होकर दश हजार वर्ष बिता दिए । शरीरकी हड्डिया सूखकर नाममात्र रह गई थी । इतना होनेपर भी इनके मनमें किसी प्रकार कष्टका अनुभव नहीं हुआ बल्कि श्रद्धा और भक्ति बढती ही गई तब परब्रह्म श्रीरामने परमभक्त राजा-रानीको अपना परमभक्त

जानकर आकाशवाणी द्वारा 'वर ब्रूहि' ऐसा कहा। यह वाणी ऐसी थी जो परमकृपामृतसे सिक्त होनेके कारण मृतकको भी जीवनदान देनेवाली थी। हृदयमे पहुँचते ही इसने शरीरको हृष्ट-पुष्ट बना दिया मानो राजसिंहासनसे अभी उतरकर आये हो। राजा-रानी दोनो आनन्दसे परिपूर्ण होगये। अपार भक्तिसे प्रफुल्लित होकर हाथ जोडकर बोले—

सुनु सेवक सुरतरु सुर धेनू। बिधि हरिहर बन्दित पदरेनू ॥
सेवत सुलभ सकल सुखदायक। प्रणतपाल सचराचर नायक ॥
जौं अनाथ हित हमपर नेहू। तौ प्रसन्न होइ यह वर देहू ॥
जो सरूप शिव बस मनमाहीं। जेहि कारण मुनि जतन कराहीं ॥
जो भुशुण्डि मनमानस हंसा। सगुन अगुन जेहि निगम प्रसंसा ॥
देखहि हम सो रूप भरि लोचन। कृपा करहु प्रणतारति मोचन ॥ (रा मा. १।१४५।१ ३)

हे भक्त इच्छाओ के कल्पवृक्ष ! ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी आपके चरणरज की वन्दना सतत किया करते है। उनकी भी अभिलाषा आप से ही पूरी होती है। ऐसे महाप्रभु हम पर यदि प्रसन्न है तो कृपा करके हमे यही वर दीजिये कि जो स्वरूप भगवान शिवजी के मन मे है, जिसको पाने के लिए महर्षि लोग भी यत्न करते है जिस स्वरूप के ध्यान मे परम भक्त काकभुशुण्डी आदि अत्यन्त लीन रहते है और जिसकी प्रशसा सगुण तथा अगुण कहकर वेद करते रहते है वही आपका स्वरूप अश्रुपूर्ण नेत्रो से देखना चाहते है। राजा और रानी की यह वाणी भगवान् को अत्यन्त प्रिय लगी। वे भक्तवत्सल कृपानिधान भगवान श्रीराम इनके सामने प्रगट हो गये। जिनके एक नख की शोभा से करोडो कामदेव लज्जित हो जाते है ऐसे सच्चिदानन्द घन सर्वानन्द प्रदायक श्रीरामने अपने नराकार रूप का दर्शन दिया। परब्रह्म परमात्मा श्री राम का सब कुछ नित्य तथा परमानन्द दायक है।

रामस्य नामरूप च लीला धाम परात्परम्। एतच्चतुष्टय नित्य सच्चिदानन्दमव्ययम् ॥
(वसिष्ठ संहिता)

श्रीरामजी का नाम रूप लीला और धाम ये चारो ही परम सत्य, दिव्य, ब्रह्मस्वरूप, अप्राकृतिक नित्य, सच्चिदानन्द और अव्यय है। अर्थात् ये चारो परब्रह्म परमात्मा श्रीराम के समान ही हैं। इनमे और श्रीराम मे कोई भेद नही है। श्रीराम का अद्भुत स्वरूप अवर्णनीय है।

यस्य महिमानं पर ब्रह्मेति शब्दितम्।

श्रीराम की महिमा को परब्रह्म कहा जाता है। ये ही विश्वबास भगवान् श्रीराम मनुशतरूपा के लिए प्रकट हुए। इनके वामाङ्ग मे इनकी अर्धाङ्गिनी जो सदा इन से अभिन्न हैं–परमाह्लादिनी परमशक्ति श्री सीताजी शोभित है। जिन श्रीसीताजी के अश से अगणित उमा–रमा–ब्रह्माणी उत्पन्न होती है। जिनके भृकुटि विलास मात्र से ससार का सृष्टि–पालन–सहार होता है उन अभिन्न शक्ति श्रीसीता सहित श्रीराम ने मनु–शतरूपा को दर्शन देकर कृतार्थ किया। इन्हीं श्रीरामके सम्बन्ध मे वाल्मीकिजी का वचन है—

पर ब्रह्म पर तत्त्व पर ज्ञानं पर तप। पर बीजं पर क्षेत्र पर कारणकारणम् ॥

हे राम ! आप परब्रह्म, परमतत्त्व परमज्ञान, परमतप समस्त उत्पत्ति के बीजरूप, परमक्षेत्र और परम कारण के भी कारण है। येही श्रीराम भगवान् शिव के जीवनघन और उनका सर्वस्व है।

माता रामो मत्पिता रामचन्द्रो राम स्वामी मत्सखा रामचन्द्र ।
भ्राता रामो राम एवार्थदाता रामादन्य नैव जाने न जाने ।। (शिवरहस्य)

अहं भवन्नाम गृणन् कृतार्थो वसामि काश्यामनिश भवान्या ।
मुमूर्षमाणस्य विमुक्तयेऽह दिशामि मन्त्र तव रामनाम ।। (अध्यात्मरामायण ६।१५।६२)

श्रीरामनाम से ही कृतकृत्य होकर गिरिनन्दिनी पार्वती के साथ भगवान शंकर काशी मे निवास करते है और मरणशील मनुष्य को रामनामरूप तारक मन्त्र देकर मोक्ष दिलाते है। माहेश्वर तन्त्र मे श्रीराम स्वय मूर्तिमान सनातन ब्रह्म, चिदानन्दस्वरूप आत्मा मे ही रमण करने वाले तथा भक्तों पर कृपा करने वाले माने गये है—

इति रामो विग्रहवान् स्वय ब्रह्म सनातन । आत्मारामश्चिदानन्दो भक्तानुग्रहकारक ।। (माहेश्वरतन्त्र)

श्रुति भी प्रतिपादन करती है—

रमन्ते योगिनो यस्मिन् सत्यानन्दे चिदात्मनि । इति राम पदेनासौ पर ब्रह्माभिधीयते ।।

जिस आनन्दमय सत्यानन्द परमज्योति स्वरूप परमात्मा मे योगी लोग रमण करते है वे परब्रह्म परमात्मा श्री राम ही है । हम पहले कह आये है कि श्रीराम के नाम, रूप, लीला और धाम सभी परात्पर है । मनु शतरूपा के प्रकरण मे बताया जा चुका है कि श्रीराम मनुशतरूपा के सामने प्रकट हुए । मनु ने भगवान की स्तुति की और वर मागा 'चाहउ तुम्हहि समान सुत' तुम्हारे समान पुत्र चाहता हूँ । भगवान् ने उत्तर दिया—

आपु सरिस खोजौ कहँ जाई । नृप तव तनय होब मै आई ।। (रा च मा १।१४९।१)

राजन् ! मै अपने समान दूसरा कहाँ से खोज कर लाऊगा । मै ही तुम्हारा पुत्र बन कर आऊगा । यजुर्वेद मे कहा गया है कि—

न तस्य प्रतिमास्ति यस्य नाम महद्यश । (यजुर्वेद ३२।३)

अर्थात् उस परमात्मा की समता करने वाला कोई नहीं है यानी उनका सादृश्य कही भी नही हो सकता । उनका नाम ही महान् यश है । अत स्वयं भगवान् सच्चिदानन्द परब्रह्म परमात्मा श्रीराम के रूप मे इस पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए । 'साधन धाम मोक्ष कर द्वारा' (रा. च मा ७।१२०।५) यानी मानव शरीर मुक्ति का द्वार माना जाता है । इसलिए भगवान अपने मानव शरीर से लोगो को शिक्षा देना चाहते है कि सासारिक लोग भवसागर से पार उतर कर मोक्ष प्राप्त कर सकते है । अत नर शरीर धारण करने मे उनके अनेक कारण है । भक्तों का रञ्जन करना प्रथम कारण है । दूसरा जीवो का उद्धार, तीसरा आसुरी वृत्तिवालों का विनाश और चौथा कारण लीला करना इत्यादि अनेक कारण है ।

मनु–शतरूपा को वरदान देकर प्रभु अन्तर्हित हो गये । समय आने पर त्रेतायुग मे मनु–शतरूपा दशरथ और कौसल्या के रूप मे प्रगट हुए । इसी मौके पर पुराण पुरुष परब्रह्म परमात्मा अशों सहित इनके घर मे मानव रूप मे अवतीर्ण हुए । इनकी अलौकिक लीलाएं देखकर साधारण मनुष्यों की बात ही क्या परमज्ञानी भरद्वाज ऋषि को भी सन्देह होने पर याज्ञवल्क्य मुनि से प्रश्न किये—

प्रभु सोई राम की अपर कोउ जाहि जपत त्रिपुरारि ।। (रा, च मा १।४६)

यह शका न केवल ऋषि भारद्वाज तक ही सीमित रही वल्कि जगज्जननी सती के मन मे भी यह आशका जागृत हुई कि—

ब्रह्म जो व्यापक विरज अज, अकल अनीह अभेद । सो कि देह धरि होइ नर जाहि न जानत वेद
(रा च मा. १।५०)

ब्रह्म तो व्यापक है, विरज है, अज है, अकल है । उसमे इच्छा और भेद कहॉ ? क्या वह भी शरीर धारण कर मानव हो सकता है जिसे वेद भी नही जानते । इस रहस्य को समझने के लिए सती को बहुत कष्ट झेलना पडा। यहॉ तक कि भगवान् शकर के द्वारा परित्यक्त हो गई । दुवारा पार्वती के रूप मे जब आई तो शकर के द्वारा सन्देह मुक्त हुई । श्रीराम परात्पर ब्रह्म है इस विषय मे वसिष्ठ संहिता मे कहा गया है—

परान्नारायणाच्चैव कृष्णात्परतरादपि । यो वै परतम श्रीमान् सवै दाशरथि स्वराट् ॥
जय मत्स्याद्यसंख्येयावतारोद्भवकारण ? । ब्रह्मविष्णुमहेशादिसंसेव्यचरणाम्बुज ? ॥

श्रीनारायण से परे, श्रीकृष्णजी से भी परे जो सवसे परतमस्वराट् परमात्मा जो है वेही दशरथ पुत्र श्रीराम हे। जिनके चरणकमल की सेवा ब्रह्मादि त्रिदेव करते है और मत्स्य आदि अनेक अवतारों के कारण हे ऐसे परम प्रभु श्रीरामजी ! आप की जय हो ।

इसी प्रकार वाल्मिकि रामायण मे अनेक जगह श्रीराम की भगवत्ता तथा अवतारत्व मे अनेक प्रमाण मिलते है—

(क) अर्थितो मानुषे लोके जज्ञे विष्णु सनातन (अयोध्य १।७)
(ख) दिव्यं च मानुषं चैवमात्मनश्च पराक्रमम् (अरण्य ६६।२०)
(ग) विष्णुं मन्यामहे राम मानुषं रूपमास्थितम् (लङ्का ३५।३५)
(घ) सीता लक्ष्मीर्भवान् विष्णुर्देव कृष्ण प्रजापति ।
वधार्थ रावणस्येह प्रविष्टो मानुषी तनुम् (लङ्का ११७।२७–२८)

इन प्रमाणो से सिद्ध हो जाता है कि भगवान् श्रीराम साक्षात् परब्रह्म ही मानुषरूपेण अवतरित है ऐसा मानने मे किसीको सन्देह नही होना चाहिए । अन्यान्य वेदों पुराणो तथ महाभारत आदि ग्रन्थो मे भी श्रीराम का परत्व सिद्ध किया गया है । लेकिन लेख के विस्तार भय से अन्यान्य प्रमाण उधृत नही कर रहा हूँ ।

❁ उल्टा नाम ❁

[ले० वैदेहीकान्तशरण]

उलटा नाम जपत जगजाना । वालमीकि भए ब्रह्म समाना ॥
जानि आदि कवि नाम प्रतापू । भयउ शुद्ध करि उलटा जापू ॥
तुलसी रघुवर नाम के, रीझ भजे के खीझ । उलटे सुलटे जामिहै, पडे खेत मे बीज ॥

शब्द सामान्य का मूल अनहत ध्वनि 'र'कार है । जब शान्त रात्रि मे कोई ध्यान से सुनता है तो उसे 'र' वीज रूप ध्वनि सुनायी पडती है । इसी प्रकार जब हम अपना कर्ण कुहर अगुलियो से अथवा योगियों द्वारा व्यवहृत तुलसी काष्ठ के टुकडो से बन्द कर देते हैं तो एक अव्यक्त गूञ्ज (ध्वनि) सुनाई पडती है, जो ध्यान से सुनने पर 'र'कार रूप मे स्पष्ट सुन

पडती है। योगी लोग इसी अनहतनाद को जिसके विषय में कबीरदास ने कहा है—' अनहत बाजे ढोल रे, तुम्हे राम मिलेंगे।' तथा 'रकार मे रमना योगी श्रीगुरु रामानन्दने भाख्या। पंच मात्रा॥' असख्य ब्रह्माण्डो का उद्भव, लय औ पालन रकार से ही होता है—"ब्रह्माण्डानामनन्तानामुद्भव लयपालनम्। रकाराद् भवेत्याहो कान्त तवैव का कथा॥ शिव संहिता॥' रटे ररंकार मत राम रघुनाथ उपासकी॥ सिद्धान्त पटल॥'

अभियुक्त वचन—"रणति ब्रह्मरन्ध्रान्ते र नाद परिकीर्तित॥" तथा पाणिनि के धातु पाठ रण शब्दे रणति इति रण=र भी वही सिद्ध करता है।

योगी लोग सर्वदा अजपा के द्वारा स्वत राम का निरन्तर जप करते रहते है—

"रकारेण बहिर्याति मकारेण विशेत्पुन। रामरामेत्यमु मन्त्र योगी जपति सर्वदा।

परन्तु यह तो हुआ राम का सुल्टा जप। उलटा जप से तो उलटाफल की प्राप्ति होगी तब वाल्मीकि उल्टा जप करने से ब्रह्म समान कैसे हो गये?

इसका उत्तर यह है कि राम शब्द को उलटा (वर्णविपर्यय) करने से प्रणव (ॐकार) की उत्पत्ति हो जाती है—

मकार व्यञ्जन विन्दुर्हेतु प्रणवमाययो। अर्धमात्रादुकारस्यात अकाराद्भ्रस्पिग॥

रकारगुरुराकार तथा वर्णविपर्यय। मकार व्यञ्जनचैव प्रणव चाभिधीयते॥"

ॐकार को ब्रह्म कहा गया है—'ओमित्येकाक्षर ब्रह्म—गीता' और 'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति' वाक्य के अनुसार ब्रह्मवेत्ता ब्रह्म के समान ही हो जाता है। अत उलटा राम जपने से वाल्मीकि का ब्रह्म समान हो जाना उपपन्न है।

पुन वर्णविपर्यय (उलटा) करने से सभी शब्दो का अर्थ नहीं बदलता है। उदाहरण के लिये 'तप ऐश्वर्ये। तपधातोरतकारयो क्रम व्यत्यासेन पत ऐश्वर्ये वा इति पाठान्तरम्। तप का उल्टा पत का भी वही अर्थ है। अर्थ मे व्यतिक्रम नही हुआ। 'लज अपवारणे। जल इत्येके यहाँ भी लज का उलटा जल होने से अर्थ मे व्यतिक्रम नहीं है।' नभ आदित्या भवति—नेता भासाम्, ज्योतिषा प्रणय। अपि वा भन एव स्यात् विपरीत, न न भातीति वा। एतेन द्यौर्व्याख्याता। निरु "यहाँ भी 'भन' का उलटा नभ होने से अर्थ मे परिवर्तन नहीं हुआ। इसी प्रकार राम शब्द के वर्ण विपर्यय से अर्थ मे परिवर्तन नही समझना चाहिए। व्याकरण शास्त्र ने भी आगम वर्ण विपर्यय को माना है—'भवेद्वर्णागमाद्धम सिंहो वर्णविपर्ययात।' अत राम नाम मे वर्ण विपर्यय से अर्थ विपर्यय नहीं होता है।

राम शब्द के दो और तीन अक्षर कहे गये है 'आखर मधुर मनोहर दोउ। वरण विलोचन जन प्रिय सोउ॥, इस चौपाई मे स्पष्ट रूप से दो अक्षर कहे गये है तथा इनमे प्रयुक्त 'मधुर एवं 'मनोहर' शब्दों मे 'र' एवं 'म' वर्णो का विपर्यय (उलटा) प्रयोग कर उक्त तत्त्व का संकेत भी कर दिया है। पुन 'वन्दौ नाम राम रघुवर को। हेतु कृशानु भानु हिमकर को॥' चौपाई में अस्पष्ट (परोक्ष) रूप से 'र' 'आ' 'म' इन तीन अक्षरों का प्रतिपादन है। दो अक्षर—'राम' को उलटा जपने पर 'मरामरामरा' की शृङ्खलात्मक उच्चारण मे 'रामरामराम' का उच्चारण स्वत होने लगता है। अत उलटा सीधो मे कोई अन्तर नहीं पडता। 'र' 'आ' 'म' इन तीन अक्षरों को उलट पुलट करने मे (१) म+आ+र=मार शब्द बनता है। कुमार क्रीडायाम् (चुरा०) एवं रमु क्रीडायम् (भ्वा०) धातुओं का एक ही अर्थ है। पुन मार का अर्थ स्मर है—'मारोस्मरेमृत्यौ

मेण और राम को भी 'मरमूर्तिमान्' कहा गया है। कुमार (युवराजस्तु कुमारो अ को १।७।१२) एव सुकुमार (सुकुमार तु कोमलं मृदुल मृदु–अ को ३।१।७८) पद राम मे पूर्ण घटित है। वेद मे भी राम को कुमार कहा गया है–"युवो कुमार प्रत्येत्याहवन्–ऋ १।१५५।६ मार शब्द का मूल धातु 'मृ' मृदल एव मृदु मे स्थित है। अत वर्ण विपर्यय (उलटा) करने से अर्थ मे कोई अन्तर नही पडता है। (२) र+आ+म=राम करने पर 'रमा सीता–सीता राहरानाम एवं राम मध्ये स्थिता सीता–मिथिला महात्म्य' के अनुसार अर्थ (राम) मे कोई अन्तर नही पडता है। (३) म+र+आ=मरा के सम्बन्ध मे ऊपर लिखो जा चुका है। अत उलटा नाम जपने पर भी वाल्मीकि का ब्रह्म समान हो जाना उपपन्न है।

राम शब्द के अशाश से ही बीज, ॐकार तथा सोऽह–ये तीनो सिद्ध होते है–"अशाशै रामनाम्नश्चत्रय सिद्धा भवन्ति हि। बीजमोकारसोऽह च सूत्र मुक्तमिति श्रुति ॥" बीज को उलटा सुलटा मे कोई अन्तर नही पडता–"उलटे सुलटे जामिहे, पडे खेत मे बीज ॥" ॐकार तो राम पद के वर्ण विपर्यय से बना ही है। अत ॐकार को उलटने पर राम ही बनेगा और कोई अन्तर नही पडेगा। 'सोऽह' पद का वर्णविपर्यय 'अहस' पद तो हंस (अहंस इति तादात्म्य भाविन ससारमय हन्तीति हस–शङ्कराचार्य) का अर्थ तो 'हन्ति गच्छति सर्वशरीरेष्विति हस' और रमते सर्वभूतेपु स्थावरेपु चरेपु च इति राम' ही है। अत उलटा जपने से कोई अन्तर नही पडता।

राम शब्द 'र+अ+म' मे र विसर्ग ( ) रूप अ अकाररूप (ऽ) तथा म अनुस्वार (ं) रूप होने से तीनो ही बीज रूप अथवा निराकार रूप है। अत इनको उलटने पर इनके बीज रूप मे कोई परिवर्तन नही होता और उलटे सुलटे जामिहे पडे खेत मे बीज के समान इनके परिणाम मे कोई अन्तर नहीं पडता है।

पुन रकार 'तत्' का वाचक है, अकार 'त्व' का वाचक है और मकार 'असि' का वाचक है–"रकारस्त्वत्पदोज्ञेयस्त्वपदोऽकार उन्यते। मकारोऽसि पदं ज्ञेय तत्त्वमसि सुवोचने ॥" 'तत्त्वमसि' 'त्वमसितत्' 'असित्वतत्' आदि रूपो मे उलटने से अर्थ मे कोई अन्तर नही पडता। अत राम को उलट कर जपने से अर्थ मे कोई अन्तर नही है।

इसी प्रकार 'चिद् वाचको रकारस्याद् सद् वान्याकार उच्यते। मकारानन्दकं वाच्य सच्चिदानन्दमव्ययम् ॥' मे सच्चिदानन्द, चित्सदानन्द, आनन्दसत् चित्' आदि रूपो मे उलटने से कोई अन्तर नही पडता और राम शब्द को उलटने से अर्थ मे कोई अन्तर नही पडता है।

अधिक क्या राम शब्द का वर्ण (अक्षर) सभी शब्दो का छत्र और मुकुट है–'एकु छत्रु एकु मुकुट मनि, सब बरननि पर जोउ। तुलसी रघुबर नाम के बरन बिराजत दोउ ॥ मानस॥ "निर्वर्ग रामनामेद केवल च स्वराविपम्। मुकुट छत्र सर्वेषा मकारो रेफ व्यञ्जनम् ॥ महारामायण ५२।१०१॥" पहले मुकुट कहे और पीछे छत्र तथा पहले छत्र कहे और पीछे मुकुट–इन दोनों ही स्थितियों मे अर्थ मे कोई अन्तर नही आता है। अत राम नाम को उलट कर जपने मे भी अर्थ मे अन्तर नहीं पडता है।

इस प्रकार 'उलटा नाम जपत जग जाना। वाल्मीकि भए ब्रह्म समाना ॥ का कथन सर्वथा उपपन्न है। "ॐतत्सद्यत्पर ब्रह्मरामचन्द्रश्चिदात्मक। रा उ. ता ॥"

❀

❁ पुरुषोत्तम ❁

[ले० वैदेहीकान्तशरण]

पुरुषार्थ की अभिलाषावाले ईश्वर को जिन रूपों में उपासना करते हैं, उनका निरूपण करते हुये श्रीउदयनाचार्यजी ने न्यायकुसुमाञ्जलि की स्वकृत टीका में कहा है कि पुरुषार्थ की प्राप्ति के हेतु वैष्णव लोग पुरुषोत्तम की उपासना करते हैं—"इह यद्यपि यं कमपि पुरुषार्थमर्थमाना शुद्ध बुद्धस्वभाव इत्यौपनिषदा, आदि विद्वान सिद्ध इति कापिला, क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टो निर्माणकायमधिष्ठाय सम्प्रदायप्रद्योतकोऽनुग्राहकश्चेति पातञ्जला, लोकवेदविरुद्धैरपिनिर्लेप स्वतन्त्रश्चेति महापाशुपता, शिव इति शैवा, पुरुषोत्तम इति वैष्णवा, पितामह इति पौराणिका, यज्ञपुरुष इति याज्ञिका, सर्वज्ञ इति सौगता, निरावरण इति दिगम्बरा, उपास्यत्वेन देशित इति मीमांसका, लोक व्यवहार सिद्ध इति चार्वाका, यावदुक्तोपपन्न इति नैयायिका, किं बहुना य कारवोऽपि विश्वकर्मेत्युपासते ।"

अत वैष्णव पुरुषोत्तम के उपासक प्रसिद्ध हैं। पुरुषोत्तम शब्द में दो पद हैं पुरुष+उत्तम पुरुष का शब्दकोष में अर्थ है—'क्षेत्रज्ञ आत्मा पुरुष—अ को १।४।२९।" तथा उत्तम का अर्थ—

"क्लीबे प्रधानं प्रमुख प्रवेकानुत्तमोत्तमा । मुख्यवर्यवरेण्याश्च प्रवर्होऽनवराध्यंवन् ॥

पराध्यग्रिप्राग्रहरप्राग्र्याग्रीयमग्रियम् । श्रेयान्श्रेष्ठ पुष्कल स्यात्सत्तमश्चातिशोभने ॥ अ को ३।१।५७ ५८

एवं पुरुषोत्तम का अर्थ—"श्री पति पुरुषोत्तम—अ को १।४।२९।" सर्व प्रसिद्ध होने के कारण—"विनापि प्रत्ययं पूर्वोत्तरपदयोर्वालोपो वक्तव्य (वा० ३२९९), देवदत्त—दत्त—देव' इति वत् ईश्वर (पुरुषोत्तम) को केवल पुरुष नाम से भी शास्त्रों में निरूपण है और विष्णु सहस्रनाम में इनको दो स्थानों में 'पुरुष" नाम से ही प्रतिपादित किया गया है (श्लोक १५ श्लोक ५७) जिसके भाष्यों में शङ्कराचार्यजी ने लिखा है—

"पुरं शरीर तस्मिन्शेते पुरुष । 'नवद्वार पुर पुण्य—मेतैर्भावै समन्वितम् । व्याप्यशेते महात्मा यस्तस्मात पुरुष उच्यते ।' इति महाभारते । (शान्ति० २१०।३७) । यद्वा अस्तेर्व्यत्यस्ताक्षरयोगाद् आसीत् पुरा पूर्वमेवेति विग्रह कृत्वा व्युत्पादित पुरुष । 'पूर्वमेवाहमिहासमिति तत् पुरुषस्य पुरुषत्वम्' इति श्रुते । अथवा पुरुषु भूरिषु उत्कर्षशालिषु सत्त्वेषु सीदतीति, पुरूणि फलानि सनोति ददाति वा, पुरूणि भुवनानि संहारसमये स्यति अन्तं करोति वा, पूर्णत्वात् पूरणाद्वा सदनाद्वा पुरुष 'पूरणात्सदनाच्चैव ततोऽसौ पुरुषोत्तम' इति पञ्चमवेद (उद्योग० ७०।११) प्रधान प्रकृतिर्माया, पुरुषोजीवस्तयोरीश्वर प्रधानपुरुषेश्वर, सर्वस्मात्पुरासदनात्सर्वपापस्यसादनाद्वापुरुष 'स यत्पूर्वोऽस्मात्सर्वस्मात्सर्वान्पाप्मन औषत्तस्मात्पुरुष (बृ उ १।४।१) इति श्रुते, पुरि शयनाद्वा पुरुष, 'सवा अयं पुरुष सर्वासुपूर्षु पुरिशय' (बृ उ २।५।१८) इति श्रुते ।" यास्क ने भी पुरुष शब्द के सम्बन्ध में यही लिखा है—"पुरुष पुरिषाद पुरिशय पूरयतेर्वा 'पूरयत्यन्तरित्यन्तरपुरुषमभिप्रेत्य—'यस्मात्पर नपारमस्ति किंचिद्' यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति किञ्चित् । वृक्ष इव स्तब्धोदिवि तिष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्ण पुरुषेण सर्वम् ॥' इत्यपि निगमो भवति ॥"

मुण्डकोपनिषद् मे उक्त पुरुष से ही सभी की उत्पत्ति बतलायी गयी है—

"दिव्योह्यमूर्त पुरुष सबाह्याभ्यन्तरो ह्यज । अप्राणो ह्यमना शुभ्रो ह्यक्षरात्परत पर ॥
एतस्माज्जायते प्राणो मन सर्वेन्द्रियाणि च । ख वायुर्ज्योतिराप पृथिवी विश्वस्य धारिणी ॥
अग्निर्मूर्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ दिश श्रोत्रे वाग्विवृताश्च वेदा ।
वायु प्राणो हृदय विश्वमस्य पद्भ्या पृथिवी ह्येष सर्वभूतान्तरात्मा ॥
तस्मादग्नि समिधो यस्य सूर्य सोमात्पर्जन्य ओषधय पृथिव्याम ।
पुमान्तरे सिञ्चति योषितायाम् बह्वी प्रजा पुरुषात्सम्प्रसूता ॥
तस्माद्दृच साम यजूषि दीक्षा यज्ञाश्च सर्वे क्रतवो दक्षिणाश्च ॥
संवत्सरश्च यजमानश्च लोका सोमो यत्र पवते यत्र सूर्य ॥
तस्माच्च देवा बहुधा सम्प्रसूता साध्या मनुष्या पशवो वयासि ॥
प्राणापानौ व्रीहि यवौ तपश्च श्रद्धा सत्य ब्रह्मचर्य विधिश्च ॥
सप्तप्राणा प्रभवन्ति तस्मात् सप्तार्चिष समिध सप्त होमा ।
सप्त इमे लोका येषु चरन्ति प्राणा गुहाशया निहिता सप्त सप्त ॥
अत समुद्रा गिरयश्च सर्वेऽस्मात्स्यन्दन्ते सिन्धव सर्वरूपा ॥
अतश्च सर्वा ओषधयो रसश्च येनैष भूतैस्तिष्ठते ह्यन्तरात्मा ॥
पुरुष एवेदं विश्वं कर्म तपो ब्रह्म परामृतम् ॥
एतद्यो वेद निहित गुहाया सोऽविद्याग्रन्थि विकिरतीह सोम्य ॥ मुण्डक २।१।२-१०॥"

चारो वेदों के प्रसिद्ध पुरुष सूक्तो मे भी ईश्वर को पुरुष नाम से ही निरूपण किया गया है तथा उनसे ही जगत की उत्पत्ति आदि का प्रतिपादन किया गया है । अतएव वैष्णवों के लिये पुरुषोत्तम की उपासना करना वैदिक एवं महत्त्वपूर्ण है । श्रीमद्भगवद्गीता मे इस पुरुषोत्तम तत्त्व के सम्बन्ध मे कहा गया है—

"द्वाविमौ पुरुषौलोके क्षरश्चाक्षर एव च । क्षर सर्वाणि भूतानि कूटस्थोक्षर उच्यते ॥
उत्तम पुरुषस्त्वन्य परमात्मेत्युदाहृत । यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वर ॥
यस्मात्क्षरमतीतोहमक्षरादपि चोत्तम । अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथित पुरुषोत्तम ॥
योमामेवमसंमूढो जानाति पुरुषोत्तमम् । स सर्वविद्भजतिमा सर्वभावेन भारत ॥१५।१६ १९

गीता मे इस निरूपण को गुह्यतम शास्त्र की संज्ञा दी गयी है तथा इस अध्याय को पुरुषोत्तमयोग नामक अध्याय कहा गया है—

इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्त मयानघ । एतद्बुध्वा बुद्धिमान्स्यात्कृतकृत्यश्च भारत ॥१५।२०।"
"इति पुरुषोत्तमयोगो नाम पञ्चदशोऽध्याय ॥"

इस प्रकार ईश्वर को पुरुषोत्तम जानना ही उसको सर्वरूप से जानना है तथा उसका सर्वभाव से भजन (भक्ति) है । यही पुरुषोत्तम योग है एव यही गुह्यतम शास्त्र है । अत श्रीरामानन्द सम्प्रदाय मे ईश्वर को पुरुष एवं पुरुषोत्तम नाम से ध्येय एवं प्राप्य कहा गया है—

ध्येय=प्रसन्नलावण्यसुभ्रून्मुखाम्बुजं, जगच्छरण्यं पुरुषोत्तम परम् ।
सहानुजं दाशरथिं महोत्सवं, स्मरामि राम सह सीतया सदा ॥ वै म भा

प्राप्य=श्रीमान् दिव्यगुणाब्धिरौपनिषदो हेतु शरण्य प्रभुर्देवेशो जगतामनादिनिधनो ब्रह्मादिदेवार्चित ।
तारार्कानलचन्द्रमोबहुमह सौदामिनीभासकोऽजय्यो वीरमपत्नशस्त्रनिचयैर्जेता च तेषा मुहु ॥

नित्यो ब्रह्म विधायकश्च पुरुषो वेदप्रगे ब्रह्मणे नित्याना शरणं नम प्रश्नूनिर्नि मन्दोगिन दुर्लभ ।
एकश्चेतनचेतनो भूतजगद्धेय स्वतन्त्रो वशी, म प्राप्योऽस्ति मुमुक्षुभि सुगुर्मि मन्नाड्ग्भिमन्नपरै ।
व म भा १।२-३

इस सम्प्रदाय के इष्ट का नाम मर्यादापुरुषोत्तमश्रीराम है । राम मर्यादा पुरुषोत्तम हैं । उन्होंने निर्मर्यादपुरुष की निन्दा की है—

"निर्मर्यादस्तु पुरुष पापाचार समन्वित । मान न लभते सत्सु भिन्न चारित्र दर्शन ।।वा रा २।१०९।३

अपर महाभारत वचन में पुरुष शब्द के लक्षण का निरूपण किया गया है- नवद्वार पुर पुण्यमैतैर्भावै समन्वितम् । व्याप्यशेते महात्मायस्तस्मात् पुरुष उच्यते ।" वह पूर्ण रूप से श्रीराम के पुर (साकेत) एवं श्रीराम में ही घटित होता है—

"ऊर्ध्वोनुसृष्टास्तिर्यङ्नुसृष्टा सर्वादिश पुरुष अवभवाँ । पुर यो ब्रह्मणो वेद यस्या पुरुष उच्यते ।।
यो वै ता ब्रह्मणो वेदामृतेनावृता पुरम् । तस्मै ब्रह्म च ब्रह्माश्च चक्षु प्राण प्रजा ददु ।।
न वै तं चक्षुर्जहाति न प्राणो जरस पुरा । पुर यो ब्रह्मणो वेद यस्या पुरुष उच्यते ।।
अष्टचक्रानवद्वार देवाना पूरयो या । तस्या हिरण्यमय कोश स्वर्गो ज्योतिषावृत ।।
तस्मिन् हिरण्यये कोशेत्र्यरे त्रिप्रतिष्ठिते । तस्मिन यद् यक्षमात्मन्वत तद् वै ब्रह्मविदो विदु ।।
प्रभ्राजमाना हरिणी यशसा सपरीवृताम् । पुर हिरण्ययी ब्रह्मा विवेशापराजिताम् ।।
अथर्व० १०।२।२८-३३।।"

"पुण्डरीकं नवद्वार त्रिभिर्गुणेभिरावृतम् । तस्मिन् यद् यक्षमात्मन्वत तद् वैब्रह्मविदो विदु ।।
अकामोधीरो अमृत स्वयभूरसेनतृप्ती न कुतश्चननोन ।

तमेवविद्वान् न विभायमृत्योरात्मान धीरमजर युवानम् ।। अथर्व० १०।८।४३-४४।। "

अत श्रीरामानन्दीय श्रीवैष्णव सम्प्राय में पुरुषोत्तम (राम) की उपासना प्रसिद्ध है ।

इसकी प्राप्ति का उपाय उपनिषद् में इस प्रकार है—

"तप श्रद्धेयेह्युपवसन्त्यरण्ये शान्ता विद्वासो भैक्ष्यपर्याचरन्त ।
सूर्यद्वारेण ते विरजा प्रयान्ति यत्रामृत स पुरुषोह्यव्ययात्मा ।।
परीक्ष्यलोकान्कर्मचिमान्ब्राह्मणो निर्वेदमायान्नास्त्यकृत कृतेन ।
तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणि श्रोत्रिण ब्रह्मनिष्ठम ।।
तस्मै स विद्वानुपसन्नाय सम्यक्प्रशान्तचित्ताय शमान्विताय ।
येनाक्षर पुरुषं वेदसत्यं प्रोवाच ता तत्त्वतो ब्रह्म विद्याम् ।।मु० १।२।११-१३।।"

पुरुष की उपासना का फल कहा गया है—

"स वेदैतत्परमं ब्रह्मधाम यत्र विश्व निहित भाति शुभ्रम् ।
उपासते पुरुषं ये ह्यकामास्तेशुक्रमेतदतिवर्तन्ति धीरा ।।मु० ३।२।१।।"

"यथानद्य स्यन्दमाना समुद्रेऽस्त गच्छन्ति नामरूपे विहाय ।
तथा विद्वान्नामरूपाद्विमुक्त परात्पर पुरुषमुपैति दिव्यम् ।।मु० ३।२।८।।"

अत गीता मे कहा है—

"तत पद तत्परिमार्गितव्य यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूय ।
तमेव चाद्य पुरुष प्रपद्ये यत प्रवृत्ति प्रसृता पुराणी ।।

निर्माणमोहा जितसङ्गदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामा ।
द्वन्द्वैर्विमुक्तासुखदु खसञ्ज्ञैर्गच्छन्त्यमूढा पदमव्यय तत् ॥
न तद्भासयतेसूर्यो न शशाङ्को न पावक । यद्गत्वा न निवर्तन्तेतद्धाम परमं मम ॥ गी० १५।४–६।'

श्रीमद्भगवद्गीता के ८।१ १०।१५ एव ११।३ मे भगवान् को पुरुषोत्तम, ११।८ मे सनातन पुरुष, ११।३८ मे पुराणपुरुष कहा गया है एव ८।१० मे दिव्य परम पुरुष १०।१२ मे दिव्य शाश्वत पुरुष, ८।२२ पर पुरुष कहा गया है । यह सब उनका साधारण पुरुष (जीव) से भेद निरूपण के लिये है जिसका निरूपण गीता मे किया गया है—

"प्रकृति पुरुषं चैव विद्धयनादी उभावपि । विकाराश्च गुणाश्चैव विद्धि प्रकृतिसभवान् ॥
कार्यकरणकर्तृत्वे हेतु प्रकृतिरुच्यते । पुरुष सुखदु खानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते ॥
पुरुष प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान्गुणान । कारण गुणसङ्गोऽस्यसदसद्योनिजन्मसु ॥
उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वर । परमात्मेति चाप्युक्तोदेहेस्मिन्पुरुष पर ॥
य एवं वेत्ति पुरुषं प्रकृति च गुणै सह । सर्वथावर्तमानोऽपि न स भूयोऽभिजायते १३।१९-२३

पुरुष (जीव एव ईश्वर) के पारस्परिक भेद का निरूपण वेद तथा उपनिषद् मे इस प्रकार किया गया है—

'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्ष परिषस्वजाते ।
तयोरन्य पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ॥
समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनिशया शोचतिमुह्यमान ।
जुष्टं यदा पश्यत्यन्तमीश–मस्यमहिमानमिति वीतशोक ॥ ऋ १।१६४।२०-२१ मु०३।१।१–२।

इस प्रकार पुरुष (जीव) को परम पुरुषार्थ सिद्धि के लिये परमपुरुष पुरुषोत्तम (राम) को जानना एव उनकी उपासना करनी चाहिए। ईश्वर को पुरुषोत्तम जानने से बढकर उनको जानने एवं भजने का कोई अन्य साधन नही कहा गया है—

"यो मामेवमसमूढो जानाति पुरुषोत्तमम् । ससर्वविद्भजतिमा सर्वभावेन भारत गी०१५।१९।"

अत उदयनाचार्यजी का उपरोक्त कथन 'पुरुषोत्तम इति वैष्णवा' सही एवं भगवद्वचन तथा श्रीवैष्णव मताब्जभास्करोक्त ज.गु श्रीरामानन्दचार्यजी के उपदेश के अनुकूल है तथा वेद प्रतिपादित है ।

❀





श्रीमते रामानन्दाचार्याय नमः

❁ भागवत में श्रीरामपरत्व

ले० मानस तत्त्वान्वेषी रामायणी पं० श्रीरामकुमारदासजी महाराज
मणिपर्वत अयोध्याजी

ईश सदा सब ईश कलान के नाथ सबै अवतारन के।
पाद सुचिन्हन ते अवतार अनेक धरै जन तारन के॥
स्वामि सदा चहुँ पाद विभूति के अंशकला पद धारन के।
भागवती सुचि सार सुपाद नमौं अवधेश कुमारन के॥

आज अनेकानेक भी रामोपासको द्वारा यह शंका उठायी जाती है कि जब भी रामोपासकों की सबसे बडी प्राञ्जल सम्या श्री श्रीरामानन्दीय श्रीवैष्णवों के आचार्य परम्परा मे भगवान कृष्ण द्वैपायन वेदव्यासजी हो चुके है और उनकी अन्तिम एवं सर्वोत्कृष्ट अथ च प्रौढ रचना श्रीमद्भागवत महापुराण ख्यात है। जो कि भगवच्छरणागति रहस्य के सर्वांग से पूर्ण परमोत्कृष्ट शास्त्र है। परन्तु इस महाग्रन्थ मे प्रधान रूपेण भगवान् श्रीकृष्णावतार का ही परत्व रहस्य एवं चरित्र है। तब क्या कारण है कि इस महापुराण मे श्रीवेदव्यासजी ने अपने उपास्यश्च श्रीमद्दाशरथी रामजी का चरित्र अथ च परत्व प्रधान रूपेन वर्णन नही किया?

पर ऐसा प्रश्न तभी तक उठता है जब कि श्रीराम परत्वान्वेषण दृष्टि से श्रीमद्भागवत को टटोला नहीं जाता हैं। जिस तरह बहुत से दूध के मथन मे थोडा माही सारभूत मक्खन निकलता है जो कि देखने मे कम होने पर भी उसका मूल्य एवं गुण समस्त दूध किंवा निःशेषित मही से सर्वथा एवं सर्वदा अधिक ही होता है। उसी तरह जब श्रीमद्भागवत का मंथन किया जाता है तो उसका सारभूत मक्खन रूप श्रीरामपरत्व ही ठहरता है अर्थात् श्रीमद्भागवत मे श्रीरामपरत्व का ही प्राधान्य सिद्ध होता है, और तब इससे श्री वेदव्यासजी की अन्तर्दृष्टि, श्रीरामोपासना की अनन्यता परिस्फुटित होती है, जिसका किञ्चिद् दिक्प्रदर्शन मात्र इस पुस्तिका मे कराया जा रहा है।

जगृहे पौरुषं रूपं भगवान् महदादिभिः। सम्भूतंषोडशकलमादौ लोकसिसृक्षया॥ (१।३।१)

इस प्रथमावतार का नाम नारायणावतार एवं पुरुषावतार है—

भूतैर्यदा पंचभिरात्मसृष्टैः पुरं विराजं विरचय्य तस्मिन्।
स्वांशेन विष्टः पुरुषाभिधानमवाप नारायण आदि देवः॥(२।१४-३)

इन्हीं षोडशकलांशावतार क्षीराब्धि निवासी से अनेक अवतार होते हैं—

एतन्नानावताराणां निधानं बीजमव्ययम्। (१।३।५)

परन्तु श्रीराम—दाशरथी राम उन नानावतारों मे नही है। इसीलिए उनको अगले श्लोक मे "अत=एभ्य उक्तानुक्तेभ्य परं=अतः परम्" कहा गया है।

नरदेवत्वमापन्नः सुरकार्यचिकीर्षया। समुद्रनिग्रहादीनि चक्रेवीर्याण्यतः परम्॥(१।३।२२)

जिस तरह श्रीरामजी शेषशायी के कलांश न होकर शेषशायी से परे हैं उसी तरह श्रीकृष्णावतार क्षीराब्धिशायी के कलांश से नहीं हुआ था अपितु स्वयं शेषशायी भगवान् ही श्रीकृष्ण हुए थे, जैसा कि अगला श्लोक स्पष्ट करता है—

एते चांशकला पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् । इन्द्रारि व्याकुलं लोकं मृडयन्ति युगे युगे ।१।३।२८

यही तथ्य अन्यत्र भी बताया है कि—

एष नारायणः साक्षात् क्षीराब्धिनिकेतनः । नागपर्यंकमुत्सृज्य ह्यागतो मथुरां पुरीम् ॥

अस्तु ! प्रथम स्कन्ध में जो क्षीरशायी नारायण को सोलह कलावाला कहा गया है, तो वे सोलह कलायें किसकी हैं ? इस प्रश्न का सीधा एवं सरल उत्तर है कि वे कलायें परब्रह्म की अनन्त कलाओं में से मात्र सोलह हैं। ब्रह्म सब तरह से अनन्त है तो उसकी कलाओं का भी अन्त नहीं हो सकता संख्या नहीं हो सकती। वह अनन्त असंख्य कलावाला अर्थात् सम्पूर्ण कलाओं का स्वामी ब्रह्म कौन है ? यद्यपि इस जिज्ञासित प्रश्न का उत्तर (१।३।२२) में "अत परम्" कह कर दे दिया गया है तो भी दूसरे स्कन्ध में कलेश' कहकर स्पष्टीकरण कर दिया गया है। 'कलेश' का विग्रह होता है– सर्वासां कलानां ईशः कलेशः" और जो सम्पूर्ण कलाओं का ईश है उसने स्वयं ही इक्ष्वाकुवंश में अवतार लेकर गुरु–पिता माता के निर्देश से प्रिया एवं अनुज के सहित वन में जाकर दशकन्धर वधादि लीला किया—

अस्मत्प्रसादसुमुखः कलया कलेशः, इक्ष्वाकुवंश अवतीर्य गुरोर्निदेशे ।
तिष्ठन्वनं सदयितानुज आविवेश, यस्मिन्विरुध्य दशकन्धर आर्तिमार्च्छत् ॥(२।७।३)

इक्ष्वाकुवंशावतीर्ण श्रीरामजी कलेश कलाओं के स्वामी हैं और श्रीकृष्ण भगवान् कला एवं अंश से अवतीर्ण हैं। इसे आगे के श्लोकों में और भी स्पष्ट कर दिया गया है। सहस्रभुज शेषशायी, चतुर्भुज वैकुण्ठाधीश एवं अष्टभुज भूमा पुरुष श्रीरामजी के कलांश हैं—

बैकुण्ठेशस्तु भरतः क्षीराब्धीशस्तु लक्ष्मणः । शत्रुघ्नस्तु स्वयं भूमा रामसेवार्थमागताः ॥

बृहद् ब्रह्म संहिता का यह वाक्य वा० रा० के शिरोमणि टीका में बारबार उद्धृत है और भी अनेक शास्त्रीय उद्धरण एवं उनका स्पष्ट विवेचन (मानस, सघ रामवन, सतना से प्रकाशित) मानस सिद्धांत पुस्तक में देखा जा सकता है। अस्तु 'प्रकृतमनुसराम' श्रीरामजी के अंश कला भूमा पुरुष के श्वेत एवं श्याम केश स्वीकृताओं से बलराम और श्रीकृष्ण का अवतार हुआ है जैसा कि—

भूमेः सुरेतरवरूथविमर्दितायाः क्लेशव्ययाय कलया सितकृष्णकेशः ।
जातः करिष्यति जनानुपलक्ष्यमार्गः कर्माणि चात्ममहिमोपनिबन्धनानि ॥२।७।२६॥

इसी का समर्थन आगे चलकर (१०।८९।५९) में सोदाहरण रूप से किया गया है यही नहीं इसी श्रीमद्भागवत में ही और भी बारबार आया है कि श्रीकृष्णावतार कलांश से हुआ है। कुछ उद्धरण ये दिये जाते हैं—

(१) क्लेशव्ययाय कलया सित कृष्णकेशः ॥२।७।२६॥

(२) ताविमौ भगवतोहरेरंशाविहागतौ । भारव्ययाय च भुवः कृष्णौ यदुकुरुद्वह ॥४।१।५९॥

यदुकुलोद्भवकृष्ण–वासुदेव एवं कुरुकुलोद्भव कृष्ण अर्जुन ।

(३) यदोश्च धर्मशीलस्य नितरां मुनिसत्तम । तत्रांशेनावतीर्णस्य विष्णोर्वीर्याणि शंसन ॥१०।१।८

(४) अथाहमंशभागेन देवक्या पुत्रतां शुभे ॥१०।२।९॥
(५) आविवेशांशभागेन मन आनक दुन्दुभेः ॥१०।३।१६॥
(६) ततो जगन्मंगलमच्युतांशसमाहितं सरसुनेन देवी ॥१०।२।१८॥
(७) दृष्ट्यास्म्ब ते कुक्षिगतं परं पुमान् । अंशेन साक्षाद् भगवान् भवाय न ॥१०।२।४१॥
(८) अवतीर्णोऽशं भागेन साम्प्रतं पतिरांशिपाम् ॥१०।१०।३४॥
(९) अवतीर्णोहि भगवानंशेन जगदीश्वरः ॥१०।३३।२७॥
(१०) अवतीर्णौ जगत्यर्थे स्वांशेन वलकेशवौ ॥१०।३८।३०॥
(११) भवन्तौ किल विश्वस्य जगतः कारणं परम् । अवतीर्णाविहांशेन क्षेमाय च भवायच ॥१०।४१।४६
(१२) एतौ भगवतः साक्षाद्धरेर्नारायणस्य हि । अवतीर्णाविहांशेन वसुदेवस्य वेश्मनि ॥१०।४३।२३
(१३) स त्वं प्रभोऽद्य वसुदेवगृहेऽवतीर्णः । स्वांशेन भारमपनेतुमिहासि भूमे ॥१०।४८।२४॥
(१४) यदर्थमवतीर्णोऽहमंशेन ब्रह्मणार्थितः ॥११।७।२॥
(१५) कलावतीर्णावबनेर्भरासुरान् हत्वेह भूयस्त्वरयेतमन्ति मे ॥११।८९।५९॥

जहा वक्ताओ—श्रीव्यास एवं श्रीशुकाचार्यादिकों का कथन श्रीकृष्ण का कलांश आदि पुष्ट करता है वहीं सम्मुख स्तुति करने वालों ने पुरुष पर (१०।१।२३) पुरुष परम् (१०।३।१२।१३) महापुरुष लक्षणम् (१०।३।२३) पुरुष पर (१०।१०।२९) परदैवतम् (१०।१२।११) पूर्ण ब्रह्म (१०।१४।३२) अतुल्यातिशयै वीर्यै (१०।१०।३४) आदि भी कहा है परन्तु यह नहीं भूलना चाहिए कि स्तुति में अर्थवाद की प्रधानता रहती है परन्तु श्रीरामजी के लिये (रामजी के परोक्ष मे) वक्ता गण श्रीव्यास एवं श्रीशुकादि का कथन है—

किम्पुरुषे वर्षे भगवन्तमादिपुरुषं लक्ष्मणाग्रजं सीताऽभिरामं श्रीरामं तच्चरणसन्निकर्षाभिरतः परमभागवतो हनुमान् सह किम्पुरुषैरविरतभक्तिरुपास्ते ॥(५।१९।१)

इस पंचम स्कन्ध मे भी भगवान् आदि पुरुष (परब्रह्म कलेश) श्रीरामजी का वर्णन करते हुए सबसे विलक्षणता दिखाने के लिए छ बार नमः शब्द का प्रयोग एक ही पद्य मे किया है और उसी पद्य मे ही श्रीरामजी को नौ विशेषणों से विशेषित किया गया है—

ॐ नमो भगवते, १ उत्तम श्लोकाय, २ नमः आर्य लक्षण शीलव्रताय, ३ नमः उपशिक्षितात्मने ४, उपासितलोकाय ५, नमः साधुवादनिकषणाय ६, नमो ब्रह्मण्यदेवाय ७, महापुरुषाय ८, महाराजाय ९ नमः इति ॥(५।१९।३)

क्योंकि आचार्यो ने भगवच्छरणागति को षड्विधा बतलाया है देखिये । अहिर्बुध्न्य संहिता—

षोढाहि वेदविदुषो वदन्त्येनं महामुने । आनुकूल्यस्य संकल्पः प्रातिकूल्यस्यवर्जनम् ॥
रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्ववरणं तथा । आत्मनिक्षेपकार्पण्ये षड्विधा शरणागतिः ॥

इससे छ जगह नमः कहकर श्रीशुक ने सूचित किया कि षट् प्रकारक शरणागति एक मात्र श्रीसीतानाथजी की ही लेनी चाहिये अन्य की नहीं । नौ विशेषण देकर अनन्तत्व सूचित किया गया है, क्योंकि नौ संख्या का अन्त है नौ के बाद कोई नई संख्या नहीं है, अन्य संख्याये तो इन्हीं एक से नौ तक की संख्याओं को इकाई दहाई करके बनाई जाती है । इसी प्रकरण मे भगवान् के अन्य अनेकों रूपो का ध्येय ध्येय रूपेण विभिन्न खण्डों एवं उपासकों के प्रसंग में वर्णन है और न्यूनाधिक नमः एवं विशेषण भी आये है पर छ नमः और नौ विशेषण तो अपनी विलक्षणता सबसे अलग रखता ही है ।

यत्तद्विशुद्धानुभवमात्रमेकं, स्वतेजसा ध्वस्तगुणव्यवस्थम् ।
प्रत्यक् प्रशान्तं सुधियोपलम्भनं, ह्यनामरूपं निरहं प्रपद्ये ॥५।१९।४॥

ब्रह्म के नौ ऐसे विशेषण हैं जो दूसरों में नहीं दिये जा सकते, वे असाधारण विशेषण श्रीरामजी को परब्रह्म, अंशी, कलेश, अवतारी, आदिपुरुष आदि सूचित करते हैं। भगवान् का मनुष्य अवतार मनुष्यों को शिक्षा देने के लिए हुआ करता है। अन्य अवतारों में तो भगवान् कहकर ही शिक्षा दिया करते हैं आचरणों द्वारा नहीं, परन्तु साक्षात् परब्रह्म श्रीरामजी ने तो आचरणों द्वारा भी मनुष्यों को शिक्षा दिया है। जो कुतार्किक यह तर्क करना चाहे कि स्त्री के लिये व्याकुल होकर रोना पीटना कौन-सी शिक्षा है। उनके लिये गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी ने रामचरित मानस में बताया है कि स्त्रियों के ममत्व में फँस कर मनुष्य किस तरह दीन हो जाता है, अतएव स्त्री ममत्व से सदैव अलग रहना चाहिये—

कामिन कै दीनता दिखाई । धीरन के मन विरति दृढाई ॥

यदि ऐसा न होता तो ईश्वर में वियोग कहाँ, क्योंकि वास्तविक सीताजी का वियोग तो हुआ ही नहीं था—

मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणं, रक्षोवधायैव न केवलं विभो ।
कुतोऽन्यथास्याद्रमतः स्व आत्मनः, सीताकृतानि व्यसनानीश्वरस्य ॥५।१९।५॥

न जन्म नूनं महतो न सौभगं, न वाङ् न बुद्धिर्नाकृतिस्तोषहेतुः ।
तैर्यद्विसृष्टानपि नो वनौकसश्चकार सख्ये बत लक्ष्मणाग्रजः ॥५।१९।७॥

भगवान्श्रीरामजी किसी योग्यता को देखकर प्रसन्न नहीं होते वे तो केवल प्रेममात्र हि देखते हैं, यदि योग्यता देखते तो वानरों और कोल भीलों से मित्रता न करते—

जानत प्रीति रीति रघुराई । नाते सब हाते करि राखत राम सनेह सगाई ॥
केवट भीत कहे सुख मानत वानर बन्धु बडाई । (विनय पत्रिका)

और भगवान् कृष्ण यदि प्रेमियों का हृदय देखते तो कभी भी व्रज का परित्याग न करते।

सुरोऽसुरोवाऽप्यथवा नरोऽनरः सर्वात्मना यः सुकृतज्ञमुत्तमम् ।
भजेत रामं मनुजाकृतिं हरिं य उत्तराननयत् कोशलान् दिवम् ॥५।१९।८॥

देवता, दैत्य, नर, नाग अर्थात् समस्त विचारशील प्राणियों को यही उचित है कि मनुष्याकार (द्विभुज, धनुर्धर अवधेश श्रीरामजी का ही स्मरण भजन ध्यान जप कीर्तनादि करे। क्योंकि श्रीरामजी ही समस्त उत्तर कोशल (अवधप्रान्त—उत्तरप्रदेश) निवासियों को उनके इसी पाच भौतिक शरीर से अपने दिव्यलोक (त्रिपाद्विभूतिस्थ साकेत) में ले गये। (केवल स्वप्न मात्र में ही दिखलाकर नहीं रह गये) ऐसा अर्थात् प्रत्यक्ष ही पाच भौतिक शरीर से ही कीट पतङ्ग तक को सदैव के लिए त्रिपाद्विभूतिस्थ दिव्यलोक प्रदान किसी अन्य ने नहीं किया। आचार्य केशव ने तो मानो इसी श्रीमद्भागवत वाक्य की व्याख्या सी करते हुए कहा है कि—

दान कथा रघुनाथ की 'केशव' को वरणै रस अद्भूत कीनी ।
जो गति उरधरेतन की सो तौ औध के कूकर शूकर लीनी ॥

तस्यापि भगवानेष साक्षाद् ब्रह्ममयो हरिः । अंशांशेन चतुर्धाऽगात् पुत्रत्वं प्रार्थितः सुरैः ॥९।१०।२

यहा नवम स्कन्ध में भी यही बतलाया गया है कि श्रीरामजी किसी के कलांश नहीं है, श्रीरामजी मे इयत्तावद्ध गिनती की ही कलायें नहीं है, वे कलेश तो साक्षात् परब्रह्म है। अपने कुछ अंश (तीन अंश) कलाओं को लेकर साक्षात् परब्रह्म ने ही कौशल्यानन्दवर्धन का रूप धारण किया।

नेदं यशो रघुपते सुरयाञ्च्ययाऽऽत्त, लीलातनोरधिकसाम्यविमुक्तधाम्न ।
रक्षोवधो जलधिबन्धनमस्त्रपूगै, किं तस्य शत्रुहनने कपय सहाया ॥९।११।२०

इस श्लोक मे भी जाके सम अतिशय नहि कोई ।
कहकर श्रीरामजी का सर्वाधिक्य सूचित किया गया है ।

यस्यामलं नृपसदस्सु यशोऽधुनाऽपि गायन्त्यघघ्नमृपयो दिगिभेन्द्रपट्टम् ।
त नाकपाल वसुपाल किरीटजुष्टं पादाम्बुज रघुपतिं शरणं प्रपद्ये ॥९।११।२१॥

श्रीशुकदेवजी कहते है कि आज भी श्रीरघुपति का अमलयश ससार मे व्याप्त है ।

द्विजात्मजा मे युवयोर्दिदृक्षुणा, मयोपनीता भुवि धर्मगुप्तये ।
कलावतीर्णाववनेर्भरासुरान् हत्वेह भूयस्त्वरयेतमन्ति मे ॥१०।८९।५९

अष्टभुज भूमा पुरुष ने तो बहुत स्पष्ट शब्दो मे श्रीकृष्ण और अर्जुन को आदेश देते हुए कहा था कि तुम (कृष्ण और अर्जुन) दोनो मेरी कला से अवतीर्ण हुये हो ।

कस्मिन् काले स भगवान् कि वर्ण कीदृशो नृभि ।
नाम्ना वा केन विधिना पूज्यते तदिहोच्यताम् ॥११।५।१९

यहाँ तक कृतयुग त्रेतायुग और द्वापर युग इन तीनो युगो का ग्येय और ध्येय बतलाकर अब कलियुग का ग्येय और ध्येय बतलाने का उपक्रम करते हुऐ यथाशृणु कहकर सावधान किया। विशेष सावधान करने का कारण यह है कि त्रेता मे हुआ अवतार प्रधान रूपेण कलियुगीय मुमुक्षुओ के उपास्य सुनकर आश्चर्य न करना, क्योकि अन्य युग तो पूर्णत या अंशत धर्मयुग है भी परन्तु कलियुग तो पूर्ण रूपेण मात्र पाप युग है। अत इस पापयुग कलि मे कला या अंश की उपासना से सर्वांगीण पूर्णता नही आ सकती, कली मे तो परिपूर्णतम की ही उपासना, गान ध्यान, जप, पूजन आदि से काम चल सकता है। अतएव यथा श्रृणु' कहकर आरम्भ किया—

कृष्णवर्णंत्विषाऽकृष्णं सागोपागास्त्रपार्षदम् । यज्ञै सकीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधस ॥११।५।३२

श्याम वर्ण, स्वच्छ चमकती कान्तिवाले श्रीरामजी को उनके अस्त्र एवं पार्षद आदि के सहित यजन करके उनका ध्यान करते हुए उन्ही का नाम सकीर्तन करना चाहिये । उनके नाम संकीर्तन, ध्यान यजनपूजन आदि का माहात्म्य "परिभवघ्नम्, अभीष्टदोहम्, तीर्थास्पदम्, शरण्यम्, भृत्यार्तिहम्, भवाब्धिपोतम् आदि शब्दो से अगले श्लोक मे बताते हुये स्वयं प्रणाम किया तथा साथ ही साथ यह भी विधिविहित किया कि मुमुक्षुओका अग्रिम दोनो श्लोक बोलते हुए एवं श्लोकार्थ का चिन्तवन करते हुये नित्य ही उन प्रणतपाल महापुरुप श्रीरामजी के चरणारविन्दो की नित्य बन्दना-प्रणाम—दण्डवत् करनी चाहिये ।

ध्येयं सदा परिभवघ्नमभीष्टदोहं, तीर्थास्पद शिवविरिञ्चिनुत शरण्यम् ।
भृत्यार्तिहं प्रणतपाल भवाब्धिपोतं, वन्दे महापुरुप ? ते चरणारविन्दम् ॥११।१०।३३

इस श्लोक से कुछ लोग कुतर्क लाकर कह सकते है कि इसमे श्रीरामजी का वर्णन कहाँ है ? इसके समाधान के लिये योगीश्वरो ने श्रीरामजी की अवतार कालीन लीला का संकेत करते हुए अगला श्लोक 'त्यक्त्वा सुदुस्त्यजादि' कहा है । इस श्लोक का अर्थ जो लोग कि दुराग्रह ग्रह ग्रस्त है वे ग्रह ग्रहीत लोग भूतावेश मे आकर श्रीदाशरथी राम परक न लगाकर अपने

अपने उपास्य भगवान् के अन्य अवतारो या किन्ही खास आचार्यो के प्रति खीचतान कर लगाने की दुश्चेष्टा करते है पर उनकी वह दुश्चेष्टा एव तज्जन्य वाग्विलास अपने निरक्षर अनुयायियों मे चाहे प्रशंसनीय होती हो परन्तु विद्वत्समाज मे तो उसका कोई भी आदर नही ही हो सकता। श्रीमद्भागवत का अनुशीलन करनेवाले तो जानते है कि भागवत मे दाशरथी श्रीरामजी के अतिरिक्त अन्य किसी का भी चरित्र चित्रण ऐसा नही है जीसने आर्यपूज्य गुरुजन के वचन से सुदुस्त्यज सुरेप्सित राज लक्ष्मी को त्यागकर वनगमन किया हो और जो वन मे दयिता–प्रिया पत्नी की इन्छा प्रेरणा से मायामृग कपटमृग के पीछे दौडा हो।

त्यक्त्वा सुदुस्त्यज सुरेप्सितराजलक्ष्मी धर्मिष्ठ आर्यवचसा यदगादरण्यम्।
मायामृगं दयितयेप्सितमन्वधावद् वन्दे महापुरुष ? ते चरणारविन्दम् ॥११।५।३४॥

श्रीमद्भागवत ११ के इस पाचवे अध्याय से तो यही निश्चित होता है कि एकमात्र श्रीदाशरथी रामजी का ही कलियुग मे ध्यान, नामजप, संकीर्तन पूजन आदि करना चाहिए, और इस वर्तमान कलि मे जो सच्चे अर्थो मे श्रीमद्भागवत को प्रमाणिक रूप मे मानने वाले होगे वे तो सदा यही प्रार्थना करेगे कि—

अवधराज सुरराज सिहाही। दशरथ धन लखि धनद लजाही॥

ऐसी सुरेप्तिस, सुदुस्त्यज, अवध की राजलक्ष्मी त्यागी परम धर्मिष्ठ आर्य पिता के वचन को सत्य करणार्थ जिन्होंने वनगमन किया था—

पिता वचन तजि राज उदासी। दण्डक बन विचरत अविनासी॥

और जो अपनी दयिता–प्राणप्रिया श्रीसीताजी की प्रेरणा से मायामृग के पीछे दौडे थे—

निगम नेति शिव ध्यान न पावा। मायामृग पाछे सो धावा॥

ऐसे महापुरुष ! आपके चरणारविन्दों की मै बन्दना करता हूॅ। नव योगीश्वरो के शब्दों की पुनरावृत्ति करते हुये श्रीवेद-व्यासजी किंवा श्रीशुकदेवजी महाराजजी यही कहते है कि—

एवं युगानुरूपाभ्या भगवान युगवर्तिभि। मनुजैरिज्यते राजञ्छ्रेयसामीश्वरो हरि ॥११।५।३५॥

स्वामी श्रीमधुराचार्यजी ने "रामतत्वप्रकाश" मे लिखा है कि "नवयोगेश्वरो' ने कहा—

सीतापतिर्जयति लोकमलघ्नकीर्ति ॥ भाग ११।४।२१॥

'जयति सर्वोत्कर्षेण वर्तते' यह वाक्य सव वाक्यो से प्रबल है। क्योंकि इसमे वहुतों का सम्बाद है, जैसे ११वे स्कन्ध मे भगवदुद्धव सवाद समस्त भागवत का सारभूत है—

यत्रात्मविद्या निखिला प्रोक्तो धर्म विनिर्णय ॥

और "निगमकल्पतरोर्गलितं फलम्"

इससे श्रीमद्भागवत का निगमसारत्व सिद्ध है—

निगमकृदुपजह्रे भृङ्गवद् वेदसारम्॥

यहाॅ भीं भागवत को वेद–सार कहा गया है, और भगवदुद्धव सम्वाद भागवत का सार है। इस तरह भगवदुद्धव सम्वाद का सार और नव योगेश्वर निमि सम्वाद–भगवदुद्धव का परमसार है।

अत 'सीतापतिर्जयति' यह कृष्ण वाक्य का सारभूत, नव योगेश्वर वाक्य का सारभूत नारद वाक्य का सारभूत, सूत वाक्य का सारभूत, शुक वाक्य का सारभूतऔर व्यास वाक्य का सार भूत है। और—

निःसृतं ते मुखाम्भोजाद् यदाह भगवानज ।
पुत्रेभ्यो भृगुमुख्येभ्यो देव्यै च भगवान् भव ॥११।२७।३

से सिद्ध हुआ कि ब्रह्म-शिव वाक्य का भी सारभूत है, क्योकि वह सम्वाद भी इसी के अन्तर्गत है।

शुकदेवजी ने श्रीकृष्ण की वन्दना रूप मंगलाचरण नही किया, पर अनेक वार श्रीरामजी की वन्दना करते-मङ्गलाचरण करते हुये कथारम्भ करते है—

गुर्वर्थेत्यक्तराज्यो अवतान्न ॥९।१०।४॥

श्री श्रीरामानन्दीय श्रीवैष्णवो के पूर्वाचार्य एवं परम श्रीरामोपासक श्रीवेदव्यासजी ने तथा श्री शुकाचार्यजी ने तो "परान्नारायणाच्चापिकृष्णात्परतरादपि। योवै परतम श्रीमान् रामोदाशरथि स्वराट्" इत्यादि रूपसे आगम शास्त्र प्रतिपादित होने से समस्त भागवत मे एकमात्र श्रीदाशरथी रामजी को ही परतम सिद्धकिया है, और सच्चे अर्थो मे तो श्रीमद्‌भागवतानुयायी परम आस्तिक उसी को माना है जो इस कलि मे एकमात्र श्रीदाशरथी रामजी की ही उपासना करता है, उनके अन्य रूपो, अवतारो की नही। अर्थात् श्रीरामजी के ही अन्य रूप अवतार एव लीला मे अन्य युगों के लिये ध्येय एव गेय है कलि के लिये नही। कलिके लिये तो श्रीराम ही ध्येय एव श्रीरामचरित्र ही गेय है।



श्रीरामानन्दाचार्याय नम'

❀ विशिष्टाद्वैतमीमांसा ❀

ले० पं० श्रीकेदारनाथ ओझा
मुमुक्षुभवन अस्सी वाराणसी-५

सीतासमेतो विरहे च राम सदाभिरामो मम शुग्विराम ।
ममात्मदेहो भवतान्मनो मे गेहस्तदीय सफलो भवामि ॥

सीता के साथ तथा उसके विरह मे सदा सुन्दर वही राम हमेशा मेरे शोक को रोकने वाले हैं, मेरी आत्मा उनका देह है, मेरा मन उनका घर हो, मै सफल होऊँ।

विशेषण से युक्त विशिष्ट कहा जाता है, जैसे सीता के साथ राम इस वाक्य के अर्थ में राम विशेष्य है, सीता के साथ यह विशेषण है उससे युक्त राम विशिष्ट कहे जायेगे। वैसे ही सीता के विरह मे राम यह भी है यहाँ राम मे सीता विरह विशेषण है, सीता विरह से विशिष्ट राम है। सीता के साथ और सीता का विरह ये दोनो विशेषण आपस मे विरुद्ध है। एक समय नहीं होते, किन्तु दोनो विरुद्ध से युक्त एक ही राम है। एक विशेषण से विशिष्ट राम,

दूसरे विशेषण से विशिष्ट राम, इन दो रामो का द्वैत (भेद) नही है अभेद है ऐसा ही विशिष्टाद्वैत शब्द का अर्थ है। इसी से शास्त्रो मे प्रसिद्ध है कि विशिष्ट शुद्ध से भिन्न नहीं होता। न्याय दर्शन मे शुद्ध सत्ता ही विशिष्ट सत्ता कही गई है, विशिष्ट की अधिकरणता ही भिन्न मानी जाती है। सर्वेश्वर श्रीरामका सीता विरह के समय विलाप आदि उन उन दर्शन करनेवाले जनो के मन की भावना के अनुसार है, ऐसा बडे दार्शनिक श्रीमान् अप्पय्यदीक्षित महोदय कहते है। मनुष्य रूपसे अवतार मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम मनुष्य लीला और एक पत्नीव्रत का अवश्य पालन करेगे। ऐसी जिसकी भावना है उनके लिये प्रेमदर्शक विरह का अवश्य अभिनय करेगे। सर्वेश्वर भगवान् नित्य सभी से अधिक स्वभावभूत आनन्द है। ऐसी जिसकी भावना है, उसके लिये सर्वदा नित्य सौन्दर्य शाली है। प्रसन्न स्वभाव भी नट करुणरस के अनुभावो का अच्छा अभिनय कर देता है। तथा एक पत्नीव्रत का ऐसा प्रेम प्रदर्शन मर्यादा कहा जा सकता है। सच्चिदानन्द भगवान् की यह सब अच्छी लीला है। ऐसी भावना करते हुए मेरे (लेखक के) शुग्विराम है=शुक्शोक का विराम=रोकनेवाले है। करूणरस की वासना जिसके अन्तकरण मे है ऐसे सहृदय शोक के अभिनय से आनन्दस्वरूप करूणरस का आस्वादन लेते है। इतने से सीता साहित्य विशिष्ट तथा सीता विरह से विशिष्ट राम का अद्वैत विशिष्टाद्वैत दिखाया गया। तथा श्रीराम आनन्द घन है। एवं अकारण कृपालु है ऐसे कल्याण गुणो के आकर है 'ज्ञात्वा धीरो शोकमोहौ जहाति।' धीर मानव इसको जानकर शोक और मोह को छोडते है। इत्यादि श्रुतियो के अनुसार शरणागत भक्तो के शोक को नष्ट करनेवाले है=ऐसा (शुग्विराम शब्द से थोडे शब्दो से सूचित किया गया)

उपनिषदो मे जड चेतन सभी परमात्मा का शरीर है ऐसा बताकर सभी के साथ परमात्मा का शरीर शरीरिभाव सम्बन्ध सूचित किया गया है। उसके अनुसार लेखक की आत्मा परमात्मा का देह है=ऐसा 'ममात्मदेह' इस उपर लिखितपद्यस्थ शब्द से सूचित होता है। ऐसा शरीर शरीरिभाव वैदिक होने से सभी वैदिक दर्शनो के समानरूपसे समन्वय और उपयोग के योग्य है। इसी वेद भाग मे 'यमयति' शब्द आया है, उसके अनुसार विशिष्टाद्वैत आगे बढकर शेषशेषि भाव मानता है। जैसे कोई धन धनी का ही है। स्वतन्त्र धन नही होता है। धनी के अधीन है जैसा उपयोग करे, वैसा ही शरीरी का ही शरीर है। स्वतन्त्र नही है। शरीर के अधीन है, शरीर शेप है शरीरी शेपी है 'एकाकी न रमते' अकेले नही रमते। श्रुति "लोकवत्तु लीला कैवल्यम" ससार के ऐसा केवल लीला सूत्र के अनुसार अपनी तृप्ति को उद्देश्य न रखकर किया गया कार्य लीला होती है। 'स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया' परमात्मा का बल और क्रिया उनका स्वभाव है' इत्यादि शास्त्रो के अनुसार ससार की सृष्टि स्थिति, प्रलय के उपयोगी जितने कार्य है वे सभी नित्य तृप्त भगवान् की लीला ही है। जीवो का भोग भगवान् की लीला भोग है। जैसे जडचेतन समूह ग्रामका ग्रामणी शेषी होता है। वैसे ही जडचेन समूह जगत् का भगवान् श्रीरामशेषी है। परमात्मा के अधीन सभी जगत् है यह साफ हो जाता है। चेतन जीव जीवके उसके भौतिक शरीर मे जो क्रिया होती है वह जीव के अधीन होती है। इसको साधारण लोग भी मानते है। उसी प्रकार चेतन जीव भगवान् का शरीर है। चेतन जीव की क्रिया भगवान् के अधीन है ऐसा शरीर शरीरीभाव तथा शेष शेषीभाव स्फुट होता है। शेषशेषिभावसे सभी की अपेक्षा शेषी भगवान् की प्रधानता आती है, भगवान् के विना किसी

व्यक्तित्व की पूर्ति नही हो सकती यह सिद्ध हुआ। "द्वादशेऽह्नि पिता नाम कुर्यात्" बारहवे दिन पिता को सन्तान का नाम करना चाहिये । इस स्मृति के अनुसार पैदा हुआ शरीर है उसीका बारहवा दिन लेना है किन्तु केवल शरीर के चैत्र आदि नाम नहीं होता। नित्य सिद्ध जीवात्मा से अधिष्ठित शरीरका नाम होता है । उस जन्म मे उसी नाम से शरीर और शरीरी आत्मा का सभी व्यवहार होता है । चेतन जीव के सस्कारो का भी उसी नाम से सकल्प किया जाता है। पैदा होकर १२ दिन के पहले मृत म नाम ही नही रखा जाता। इसीलिये चैत्र पढता है अच्छा समझता है, इत्यादि समझ का व्यवहार शास्त्र से समर्थित है तथा लोक मे माना जाता हैं । उससे आगे भी शास्त्रानुसार विशिष्टाद्वैत उपदेश देता है=भगवान् से नियमित चेतन जीव भी भगवान का शरीर है, भौतिक शरीर का शरीरी जीवात्मा जीव शरीर का शरीरी परमात्मा का भी नामकरण होता है। उसमे भी भौकित शरीर से प्रधान जीव, जीव से प्रधान परमात्मा इस प्रकार प्रधानरूप से परमात्मा का नामकरण चैत्र आदि होते है । इस प्रकार जगत् के सभी वस्तुओ के वाचक शब्द प्रधान रूप से परमात्मा के वाचक होते है । यह ठीक ही है कि जड की अपेक्षा चेतन का व्यवहार अधिक होता है। ससार के सभी व्यवहार परमात्मा के अधीन हैं । क्योकि सभी का शेषी परमात्मा है । वैदिक शब्दो को क्या कहना है, किस लिये उनका तात्पर्य ढूँढता है, क्योकि सभी के वाच्य ही परमात्मा है । व्यक्तित्व मे भी प्रधानता परमात्माकी है। इससे सभी जगत् ब्रह्म मय है इसकी अच्छी व्याख्या हो जातीहै।

अन्तर्यामी ब्राह्मण वेद से सिद्ध होने से सभी वैदिक दर्शनों का मान्य है कि विभु ब्रह्म सभी जगह व्याप्त है, सभी वैदिक दर्शन ईश्वर मानते है ऐसी मेरी मान्यता है, किसीका निरीश्वरता प्रवाद जगत् को दूसीत मानने के कारण है, किन्तु उससे विशेष रूपसे यह दर्शन शरीर शरीरी भाव तथा शेषशेषी भाव से जीव सर्वथा परमात्मा के अधीन है ऐसा प्रचार करता है । और भगवान् की भक्ति को भूषित करता है। पामर लोग मेरा शरीर मै शोचता हूँ इत्यादि भेद-अभेद की चर्चा करते हुए भी जीवात्मा और उसके शरीर को शरीर शरीरिभाव का व्यवहार नहीं करते, तो भी परिश्रम तथा सावधानी से खोज करेगे तो लोकव्यवहार मे जीवो को परमात्मा के अधीन पा सकते है। जैसे कि कोई किसी को अपना अभिप्राय स्वीकार कराना चाहता है । उसके लिये बहुत प्रयास करता है । अनेक प्रकार से समझाता है, अन्त मे उत्तर पाता है=कि आप मेरे हित का अच्छा उपदेश करते है किन्तु मेरी अन्तरात्मा नही स्वीकार करती, वहाँ "मै, जीव" के भीतर आत्मा–परमात्मा का ही व्यवहार हुआ ।

"जानामि धर्म न च मे प्रवृत्ति र्जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्ति ।
केनापि देवेन हृदि स्थितेन यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि ।।

गीता धर्म को जानता हूँ किन्तु उसमे मेरी प्रवृत्ति नही होती, अधर्म जानता हूँ किन्तु उससे मेरी निवृत्ति नही होती, किन्तु हृदय मे रहे किसी विलक्षण प्रकाशमान् से जैसी प्रेरणा पाता हूँ वैसा करता हूँ। इस प्रश्न को अर्जुन जीवात्मा के अनुभव का प्रकाश माने तो विवेकी जन जीवो का सभी कर्म परमात्मा के अधीन है ऐसा गीता मे देखेंगे । यह श्लोक साफ दिखाता है कि अर्जुन जीव का धर्म करना तथा अधर्म छोडना यह केवल अर्जुन की समझ के अधीन नही है किन्तु परमात्मा की प्रेरणा के अनुसार है । जहाँ भी पुराण महाभारत मे अर्जुन का जीवन चरित मिलता है वहाँ यह भाव अवश्य रहता है । बहुत प्रयास किया किन्तु भाग्य

मे नही रहा, नही सफल हुआ, भाग्य शब्द का पण्डितो का व्याख्यान पाप-पुण्य अदृष्ट होगा, पाप आदि अचेतन जड है उनके नियामक परमात्मा ही है। अन्त मे लोक व्यवहार का पवित्र ज्ञान परमात्मा मे ही है । कोई कोई 'परमात्मा की मर्जी' ऐसा कहता है, इस प्रकार चिन्तन से जीवात्मा का अध्यक्ष प्रधान परमात्मा है ऐसी भारतीयो की अनादि संस्कृति है, जो संकीर्ण काल मे अभी जीवित है वही हुआ कि विशिष्टाद्वैत के शेषशेषि भाव की वासना अभी भी भारतीय सस्कृति मे उपलब्ध है । गीता को देखिये—अर्जुन का शरीर कुरुवश का है, उसका शरीरी अर्जुन आत्मा भी शरीर-शरीरी का अभेद व्यवहार होने से कुरुवश की हो गयी, सामने सेनामे कुरुवश के और उनके सम्बन्धी है, वे अर्जुन के भी भाई, चाचा, दादा श्याला स्वशूर गुरु आदि सम्बन्धी है, उनको कैसे मारु ऐसा युद्ध का विरोधी विषाद हो गया। विषाद अज्ञान से होता है । ससार का प्रपञ्च उसके ज्ञान को दबा दिया। शरीर को प्रधान मानकर शरीर उसके सम्बन्धीयो मे ममता बढी । शरीर से भिन्न उससे प्रधान जीव, जीवसे भी भिन्न प्रधान परमात्मा है ऐसा पढा था। शायद झूठा भी होगा किन्तु प्रत्यक्ष नही कर पाया था । किन्तु भगवान् के शरण मे था, शरणागति भक्ति उसकी अच्छी थी। भक्तिवश भगवान् कृपा किये ।

जाकर तपस्या करो नही कहे, थोडा फटकार कर दिव्यदृष्टि दिये, वासुदेव शरीर की आत्मामे परमात्मापना दीख पडा, इसी परमात्मा के अधीन जगत् की सृष्टि स्थिति और सहार है इसमें संदेह हटा, उसीके अधीन मेरा सब कार्य है ऐसा पहले का पढा-सुना दृढ हो गया। भासने लगा कि मेरा शरीर मात्र कुरुवश का है, शरीरी शरीर का मालिक कुरुवंश का नही है, ये सैनिक मेरी आत्मा के ही सम्बन्धी नही है, ऐसे बहुत सम्बन्धी पहले जन्म मे मेरे से दूसरे से उत्पात से मारे गये है। मेरी आत्मा मे रहने वाले सभी से प्रधान परमात्मा का तो ऐसे कोई सम्बन्धी ही नही होता, जडचेतन सभी समानरूप से परमात्मा के शरीर है, न कोई शत्रु न मित्र होता है। मेरा शरीर कुरुवंश का क्षत्रिय है, परमात्मा की आज्ञा के अनुसार शरीर से काम करना चाहिये । "स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धि निन्दति मानव"-गीता । मनुष्य अपने कर्मो से मेरी पूजा करके सिद्धि पाते है। अपने वर्ण आश्र अवस्था के अनुसार कर्म भगवान् की पूजाहै । "स्वे स्वे कर्मण्यभिरत" इत्यादि गीता के अनुसार भी अपने कर्म का अनुष्ठान सिद्धिदेने वाला है । इसलिये इस समय युद्ध ही सिद्धि देनेवाला कर्म है, इस प्रकार विशिष्टाद्वैत दर्शन के अनुसार गीता का अभिप्राय समझना चाहिये । इसी प्रकार श्रीमद्भागवत चतुर्थ स्कन्ध नवम अध्याय छट्ठे पद्य ध्रुव की स्तुति को ध्रुव के अनुभव को प्रकाश करता है। उसको पाठक देखे-

"योऽन्त प्रविश्य मम वाचमिमा प्रसुप्ता सजीवयत्यखिलशक्तिधर स्वधाम्ना ।
अन्याश्च हस्तचरणश्रवणत्वगादीन् प्राणान्नमो भगवते पुरुषाय तुभ्यम् ॥१॥

जो भगवान् मेरे अन्दर प्रविष्ट होकर मेरी सोई हुई वाणी हाथ-पैर-कान त्वचा आदि प्राणों को अपने प्रभाव से जीलाता है पुरुषावतार भगवान् तुमको मेरा नमस्कार है" स्व परमात्मा उसका धाम शरीर अथवा शेष ध्रुव की आत्मा उससे स्वधाम्ना का अर्थ है । ध्रुव की आत्मा प्रयोज्य कर्ता है । बाणी हाथ-पैर आदि के जागरण व्यापार वाला है । प्रयोजक कर्ता भगवान् है । जीवों के सभी व्यापर और जीवन परमात्मा के अधीन है इसमे स्फुट दिखाया गया है । भगवान् के वरदान से पहले यह ध्रुव का अपने अनुभव का वर्णन है। वैसा ध्रुव का अनुभव पूर्व जन्म के पुण्य से ही अथवा इस समय की तन्मय समाधि का फल हो । जीवकार्य सभी भगवान् के

अधीन है इसमे यह अनुभव प्रमाण है । अन्तर्यामी ब्राह्मण वेद के अनुसार पहले कही गई रीति से कार्य मात्र के प्रति कारणता सभी वैदिक दर्शनो का भी सिद्ध है, वह जीव कार्यो के प्रति भी है तो भी विशिष्टाद्वैत दर्शन से जैसा सिद्ध होता है वैसा नहीं होता और दर्शनो मे एककार्य के प्रति अनेक कारण जीव उसका कर्म ईश्वर परस्पर समान रूप से सहकारी हो जाते है । शरीर शरीरीभाव शेषशेषी भाव के अनुसार और कारणो की अपेक्षा ईश्वर की प्रधानता और कारणो मे ईश्वर दयिता बनती है । उक्त भागवत पद्य मे धातु के अर्थ से सगृहीत कर्म होने से जीव धातु अकर्म मानकर नही है जीवति का पर्याय भी होता है, प्राण के चलन का यत्न अर्थ संजीव का है सकर्मक है, सुषुप्ति आदि मे ज्ञान नही होने पर भी प्राण सचार के लिये ईश्वर से पैदा हुआ जीव का यत्न ही कारण यहा बताया गया । वैसे प्राण सञ्चार के लिये नैयायिक जीवन योनि यत्न और ज्ञान न होने के लिये मनका पुरीतत नाडी मे प्रवेश मानते है, वेदान्ती भी प्राणो की स्वतन्त्रता बुद्धि का सोना आदि अनेक कल्पना करते है, तो भी सुषुप्ति को हटाना बच ही जाता है, ईश्वर की सहायता के बिना जड अदृष्ट से व्यवस्था करना ईश्वर मानने वाले शास्त्रो को शोभा नही देता । इसलिये ईश्वर अन्य जीव यत्न ही व्यवस्था अच्छी है । "येन जातानि जीवन्ति" पैदा हुए जिससे जीते है । इत्यादि श्रुति आजीवन के कर्ता परमेश्वर की घोषणा करती है, और जीवन स्थिति है, स्थिति का कर्ता परमात्मा मानते ही है । इस नैयायिको के जीवन योनि यत्न की व्याख्या जीवन के कारण परमात्मा का यत्न व्याख्या करना ठीक है जीवन का यत्न परमात्मा के यत्न से जन्य है । "अशरीर वा वसन्त प्रियाप्रिये स्पृशत ॥ शरीर रहित होने पर प्रिय अप्रिय का सम्पर्क न होता इत्यादि श्रुतियाँ जीवात्मा के शरीर का लक्षण बताती है कि प्रिय अप्रिय का सम्पर्क कराने वाला शरीर कहा जाता है, मृत शरीर से प्रिय अप्रिय का आत्मा मे सम्पर्क नही होता इसलिये मृत शरीर के साथ जीव का शरीर शरीरी भाव नष्ट हो जाता है नही रहता परमात्मा का सभी के साथ साक्षात् सम्बन्ध होने पर भी परमात्मा से जन्य जीव का यत्न उस शरीर से न होने के कारण मृत शरीर मे जीवन व्यवहार नही होता ।

नैयायिक अपने दर्शन का अति सक्षिप्त रूप इस प्रकार दीखाते है=शरीर इन्द्रिय और आत्मा का एक साथ एक इन्द्रिय से प्रत्यक्ष नही हो पता, इसलिये उनका भेद भी प्रत्यक्ष नही हो पाता, इससे मै मेरा, मै प्राण, मै ज्ञाता भोक्ता इत्यादि आत्मा का शरीरेन्द्रियो के साथ अभेद भ्रम प्रत्यक्षात्मक अनादिकालसे चला आता है । उसकी वासना मजबूत हो गई है, वह अनेक दोषों को पैदा करके शरीर इन्द्रिय से होने वाले प्रपञ्चो को आत्मा मे आरोप करती है । शुद्ध आत्मा को कलुषित करती है । आन्विक्षिकी दर्शन की सहायता से प्रत्यक्ष अनुमान आगम प्रमाणों की प्रक्रिया को साफ दृढ करके उपनिषदों का श्रवण करे, शरीर इन्द्रिय भेद प्रमा को दृढ करके चिरकालतक शुद्ध आत्मा ध्यान से उस भेद प्रमाको प्रत्यक्षात्मक हो जाने से शरीर इन्द्रिय कृत प्रपञ्चों का आरोप नष्ट हो जाता है । आत्मा मुक्त हो जाती है ।

उसी प्रकार वेदान्तीयो का सक्षिप्त दर्शन स्वरूप —

प्रकाशमान स्वरूप चिदात्मा ब्रह्म मे अनादि माया के कारण परस्पर अध्यासवश सभी संसार जडचेतन मिला जुला समझा जाता है और व्यवहार मे लाया जाता है एक ही साथ मोटा मै सोचता हूँ करता हूँ भोगता हूँ इत्यादि यवहार चलने है । साधक मुमुक्षु विधिपूर्वक उपनिषदों के श्रवण से जीव ईश्वर का अभेद मे तात्पर्य निर्णय करके लौकिक वैदिक तर्क युक्तियों से

उनकी अभेद प्रमा को दृढ करके उस प्रमा को प्रत्यक्ष करके जडचेतन का भेद प्रत्यक्ष होने से वासना कार्य के साथ ब्रह्म मे रहने वाली माया हट जाती है, स्वाभाविक जीवन का वह भाव प्रगट होता है मुक्त हुआ ऐसा व्यवहार होता है। उसमे अभ्यास होने से अध्यस्त वस्तु मिथ्या हो जाता है इससे बहुत लोग उस अध्यास को नहीं पसन्द करते। जैसे प्रसिद्ध न्यायाचार्य उदयनाचार्य आत्मतत्त्वविवेक पुस्तक के बाह्यार्थ भङ्गवाद के अन्त मे लिखते है—तस्मात् तथ्यमेव विश्वम्, मन्दप्रयोजनत्वात्तु सत्वरैर्मुमुक्षुभिरपेक्षितमिति युक्तमुत्पश्याम, तर्हि नैयायिकाना जगत् परिक्षणे कोऽयमभिनिवेशातिशय इति चेत् सहसैव तदुपेक्षाया न्यायाभासावकाशे प्रमाणमात्रविप्लवो भवेत, तथा च न्यायरुचि प्रेक्षावान न तत्त्वमधिगच्छेदिति भियेति। उससे ससार सत्य ही है, थोडा प्रयोजन होने से तो साहसिक मुमुक्षुओं से उपेक्षित हुआ है ऐसा मै ठीक ही समझता हू, तो नैयायिको का ससार की रक्षा मे बहुत विशेष आग्रह यह क्यो है? सहसा उपेक्षा होने पर खराब न्याय का उपयोग होने लगेगा तो सभी प्रमाणो का उच्छेद हो जायेगा, वैसा होने पर न्याय चाहनेवाला बुद्धिमान् तत्त्व को नही जान सकेगा, इसी भय से इति। ससार सत्य ही है सवृत्ति सत् या मिथ्या नही है, धर्म, अर्थ—काम इन तीन पुरुषार्थो का साधक यह सत्य संसार परम पुरुषार्थ मोक्ष मे उपयोगी न होने से थोडा प्रयोजन वाला ससार है, संसारीयो के लिये संसार है, और हम लोग तो केवल मोक्ष को चाहते है, एसा सोचनेवाले मुमुक्षु है। गुरु—चेला—शास्त्र—मुमुक्षु—आश्रम—स्थान—भिक्षा इत्यादि मोक्ष मार्ग का उपयोगी संसार पर सावधान नही है, इसलिये जल्दवाजी करते है, नही तो सत्य संसार का भी तात्पर्य उपनिषदो का पाते। वैराग्य से संसार की उपेक्षा दूसरे प्रकार की है वह ठीक ही है, ससार का उपयोग नही ऐसी उपेक्षा साहस है, वौद्धों के आत्मवाद—क्षणिकवाद विज्ञानवाद आदि का और मुमुक्षुओ के मिथ्यात्ववाद आदि का खण्डन करके सभी पदार्थो का कार्यकारण फल आदि के साथ सम्पूर्ण शास्त्र का ससार का पूरा व्याख्यान नैयायिको का ससार परिक्षण है। जिससे तत्त्वो का निर्णय ठीक हो ऐसे प्रत्यक्ष अनुमान आगम आदि न्याय है, जो वास्तवमे प्रमाण नही है, और प्रमाण के ऐसे मालूम पडे वे न्याय के आभास है वे वास्तविक प्रमाण के ऐसा लोक मे व्यवहार पाने लगेगे।

शुद्ध अनुमान प्रमाणों की व्युत्पत्ति नष्ट हो जायेगी, आगम प्रमाण भी लोकप्रिय हो जायेगा। इसीलिये सभी प्रमाणों का विप्लव कहा गया है, आगम शब्द है, शब्द अर्थ बोध मे व्युत्पत्ति की अपेक्षा रखते है, अनेक प्रकार के लोक—व्यवहार के अनुभव से अन्वय व्यतिरेक के व्यभि-चार को हटाकर ठीक कार्यकारण भावका निर्णय आदि की अपेक्षा करने वाली व्युत्पत्ति होगी, यदि संसार ही असत् होगा तो ऐसी व्युत्पत्ति नही हो पायेगी, जैसे इसी समय भारत मे अनेक प्रकार के आगम है, वेद के भी अनेक प्रकार के भारतीय तथा विदेशीय व्याख्यान है तथा भारतीयों से सम्मानित है, विदेशीय व्याख्यान के बलसे ही 'आर्य लोग उत्तरीय ध्रुव प्रदेश से धीरे इस मार्ग से भारत आये" ऐसा भारतीयों का इतिहास प्रसिद्ध हुआ। मै भी मध्यमा मे वैसा ही पढाया गया हू। जब जवाहरलाल नेहरुजी कॉग्रेस के अध्यक्ष हुए, अग्रेजो भारत छोडो घोषणा किये, अग्रजो ने लिखा कि यह कैसे? हिन्दू भी उत्तरीय ध्रुव प्रदेश से आये है, तव भारतीयो की ऑखे खुली इतिहास बदला गया। इसका कुछ विस्तृत स्वरूप मेरी व्याकरण निबन्ध माला मे हिन्दी संस्कृत दोनो मे मिलता है। "यस्तर्केणानुसधत्ते स धर्मंवेदनेतर" जो तर्क से अनु-सन्धान करता है वही वेद का अर्थ—धर्म को जानता है दूसरा नहीं, यह मनुस्मृति भी वेद

के अर्थ धर्म को जानने मे तर्क सहायक है ऐसी पोषणा करती है। इस प्रकार प्रमाणो का विप्लव हो जाने पर तत्त्वनिर्णय का कोई उपाय नही रहेगा, जो मन्द बुद्धि है वह किसी का कहा-किसी का लिखा देखकर सन्तुष्ट हो जायेगा, किन्तु जिसकी ऊहापोह शङ्का समाधान की बुद्धि प्रेक्षावान् है उसको तत्त्वज्ञान का उपाय कही नही मिलेगा क्योकि वह न्याय चाहेगा अच्छा प्रमाण खोजेगा। इसलिये तत्त्व जिज्ञासुओ को सत्य ससार जरूर मानना चाहिये। उस पर वैदिक विशिष्टाद्वैत दर्शन तो दोष शङ्का से अकलङ्कित वेद से प्रतिपादित तथा परमेश्वर से साक्षात् की गई जगत् की सृष्टि न केवल सत्य है किन्तु "तत् सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्" उसकी सृष्टि करके उसीमे प्रविष्ट हुए' इन श्रुतीयो के अनुसार भगवान् का शरीर शरीरी भगवान् का स्थान मन्दिर मूर्ति के ऐसा मानता है। चित् चेतन से अचित प्रकृति जड से विशिष्ट भगवान् है। हमेशा सभी जगह भगवान् की स्थिति है। वह भी शेषी होकर प्रधानता रूप से, नहीं तो स्थिति का कर्त्ताकर्तृ कैसे हो, जड का भी विशेष कारण बिना उच्छेद नहीं करना चाहिये, भगवान् का मन्दिर या मूर्ति रूप जीव को क्लेश नही देना चाहिये, हिसा नही करनी चाहिये, नही तो श्रीराम मन्दिर मूर्ति के दूषण का भागी होगा। सृष्टि के नियमो का पालन करना जीवो का आदर करना, भगवान् की आज्ञा रूप शास्त्रोके अनुसार आचरण करना यह सब भगवान् की सेवा है पूजा है ऐसा सिखाता है। जीवात्मा का उसके शरीर के साथ भेद या अभेद सम्बन्ध को लेकर व्यर्थ ही दूसरे दार्शनिक क्लेश पाते है, पहले सूचित श्रुतीयो से समर्थित भेद-अभेद से विलक्षण शरीर शरीरी भाव ही सम्बन्ध का समर्थन क्यो नहीं करते, कोई दोनो भिन्नों का अभेद भ्रम करता है। दूसरे अध्यास द्वारा अभेद प्रतीति का समर्थन करते है, वास्तव मे भेद ज्ञान नहीं होता, इसलिये अभेद प्रतीति का प्रमाद है। अन्य सम्बन्ध के वोधक दूसरे शब्दों की व्युत्पत्ति से यहाँ निर्वाह नही है। इससे शरीर शरीरी भाव दूसरा ही सम्बन्ध है, शरीर मात्र मे शक्तिमान मे पर चैत्र सोचता है यह नहीं बनेगा। आत्म मात्रमे शक्ति मानने पर चैत्र गोरा मोटा है यह विरुद्ध होगा। शरीर विशिष्ट मे शक्ति मानने पर मोटा चैत्र यहाँ एक देशान्वय दोष होगा। खण्डश शक्ति मतमे मोटा चैत्र सोचता है यहाँ शरीर आत्मा दोनों विशेष्य उपस्थित होगे उनका क्या सम्बन्ध है ऐसा प्रश्न रहेगा। शरीर शरीरि भाव तो हमेशा दोनों का सम्बन्ध होगा, कभी शरीर कभी आत्मा का विशेष्य रूप से ज्ञान होना यह और सम्बन्धो की अपेक्षा विलक्षण है।

"तमेव विदित्वातिमृत्युमेति" उसी को जानकर मोक्ष पाता है इत्यादि वेदके अनुसार उदयनाचार्य-

'स्वर्गापवर्गयोर्मार्गमामनन्ति मनीषिण। यदुपास्तिमसावत्र परमात्मा निरूप्यते ॥१॥

विद्वान् लोग जिसकी उपासना को स्वर्ग या मोक्ष का मार्ग मानते है उस परमात्मा का निरूपण करता हूं। कहते है "आत्मा वाऽरेद्रष्टव्य श्रोतव्यो मन्तव्य" इत्यादि आत्मा का श्रवण-मनन करना चाहिये। इत्यादि श्रुतियाँ प्रसिद्ध ही है, उन्होंने भी इसका व्याख्यान किया है, दूसरी जगह शुद्ध आत्मा की उपासना का भी वर्णन किये है। अन्यो के मत मे दोनो प्रमाणों को स्वतन्त्र प्रधान बनायेगे तो विकल्प दोप होता है, अङ्गाङ्गिभाव मानने पर कलह है। विशिष्टाद्वैत दर्शन मे कहीं विरोध नहीं है सभी जगह परमात्मा की ही उपासना है। पहले सिद्ध किया गया है कि सभी शब्द प्रधान रूप से परमात्मा के बोधक है, उस रीतिसे आत्मशब्द

जीवात्मा का शेषी परमात्मा को कहता है। जीवात्मा स्वतन्त्र नही है, परमात्मा का शेष होते हुए कार्य करनेवाला तथा अनेक है, उसकी उपासना से क्या हो ?

जगत का कारण

उसमे साख्यमत–सुख–दुखमोह स्वरूप जड प्रकृति और स्वप्रकाश चेतन से मिला–जुला ससार है, इसमे कौन अश जड और कौन अश चेतन है ऐसा विवेक नही हो पाता, उसका कारण वैसा ही अविविक्त चेतन से आविष्ट प्रधान प्रकृति नाम वाला है, उपादान और उपादेय मे अभेद होने से जगत् के सदृश ही उपादान है। जबतक जडप्रकृति और चेतन पुरुष का विवेक प्रत्यक्ष नही होता तव तक एक कारण एक ही है। इसी से श्रीकालिदासजी ईश्वर की स्तुति मे कहते है—

"त्वामेव प्रकृतिमाहु पुरुषार्थप्रवर्तनाम्। तद्दर्शनमुदासीनं त्वामेव पुरुषं विदु ॥

पुरुष प्रयोजन से प्रवृत्त होने वाली तुम्ही को प्रकृति कहते है उस जड प्रकृति का प्रकाश स्वरूप तुम्ही को पुरुष कहते है। "सदेव सोम्येदमग्र आसीत्।" हे सौम्य यह ससार सृष्टि के पहले एक ही था, इस श्रुतिमे कालीदास वैसे ही परमात्मा को देखते है। एक ही मे पुरुष प्रयोजन से प्रवृत्ति सघात और द्रष्टृत्व मिलता है इसका कुछ विस्तार मेरे 'कालिदासदर्शन और साख्य कारिका–निवन्धमाला मे मिलेगा।

'ऐतदात्म्यमिदसर्वम्' इस रूप ही सब है, इन श्रुतीयो मे उसीके लिये आत्म शब्द का व्यवहार है। उसीका 'तस्मादात्मन आकाशसभूत' उस आत्मासे आकाश आदि हुए इत्यादि श्रुतिओ मे उसीसे सृष्टि का वर्णन है "तत्त्वमसिश्वेतकेतो" हे श्वेतकेतु तुम यही हो' इस श्रुतिमे अभेद वर्णन है। श्वेतकेतु जीवबुद्धि पुरुष रूप है, कारण भी वैसा ही जडचेतन है। 'एकेनमृत्पिण्डेनज्ञातेन'=मृत्तिकेत्येवसत्यमित्यन्त' एक मृत्पिण्ड के ज्ञान होने पर मृत्तिका ही सत्य है। यहाँ तक कि श्रुतियो से सामान्य ज्ञानसे विशेषो के ज्ञान का वर्णन है। जो बहुतो मे समानरूप से रहे मालूम हो वह सत्य कहा गया है, जो सभी जगह भिन्न भिन्न रूप से मालूम हो वह असत्य कहा गया । चैतन्य से आवेश मे आई प्रकृति परिणाम स्वभाव वाली है क्रिया करती है कर्त्ता है। क्रिया से पाप–पुण्य आदि परिणाम प्रकृति परिणाम बुद्धि मे होते है। उसके भी परिणाम फल सुख–दुख आदि उसी मे होते है। असङ्ग पुरुष के बल इनको देखता है। इनका प्रकाश है, इतने ही से भोक्ता तथा बद्ध कहा जाता है। बिवेक ख्याति होने पर बुद्धि पुरुष का भेद प्रत्यक्ष होने पर बुद्धि का चैतन्य का आवेश नष्ट हो जाता है। असङ्ग पुरुष का कुछ प्रयोजन न होने से पुरुषप्रयोजन न होने से पुरुषार्थ बुद्धि की प्रवृत्ति नही होती। निरर्थक निष्क्रिय बुद्धि प्रकृति मे लीन हो जाती है। पुरुष भी अपने भोग के उपयोगी पदार्थो को नही देखता, भोक्ता नही होता स्वभाव से मुक्त रहता है।

बहुतो को यह साख्य प्रक्रिया पसन्द नहीं आती=चैतन्य के प्रभाव से भिन्न बुद्धि मे कोई चैतन्य का आवेश वस्तु नही सिद्ध होता=चेतन का प्रभाव स्वरूप हो तो चेतन ही कर्त्ता हो जायेगा। विवेक ख्याति प्रकृति अथव पुरुष मे होती है ? प्रथम पक्ष वृत्तिरूप है या प्रकाश स्वरूप है ? पहले पक्ष मे ख्याति जड होगी विवेक का प्रकाश नही होगा ख्याति व्यर्थ होगी, जड मे प्रकाश धर्म असभव है इससे दूसरा नही। असङ्ग पुरुष मे कोई वस्तु का उत्पादन नहीं हो

सकता। प्रकृति मे रहनेवाली ख्याति का पुरुष मे प्रतिबिम्ब कहा जाय तो वह प्रकृति की ख्याति होगी पुरुष की नही, जैसे दर्पण मे प्रतिबिम्ब वाला मुख चैत्र का होता है दर्पण का नही।

इसीलिये वैदिक विशिष्टाद्वैत दर्शन प्रकृति और परमात्मा के वेदसिद्ध शरीरशरीरिभाव सम्बन्ध का आदर करता है। शरीरो के यत्न से शरीर मे चेष्टा लोक सिद्ध है। प्रकृति मे स्वाभाविक परिणाम क्रिया मानने पर विवेक ख्याति होने पर मुक्त दशामे भी परिणाम होता रहेगा दोनो विभु है स्वच्छ है परस्पर छाया की आपत्ति रहेगी, पुरुष मे भोग ही विराजेगा, मोक्षका अवसर नही आयेगा। परमेश्वर के यत्न से प्रकृति मे परिणाम उससे जडवर्गकी सृष्टि होती है, प्रकृति शरीर है इससे शरीरी परमात्मा उपादान हो जाता है, साख्य की जड प्रकृति मे ज्ञान नहीं इसलिये वह कर्त्ता नही हो सकती। उपादान का जिसको प्रत्यक्ष हो, उसमे करने की इच्छा हो, यत्न हो, वह कर्त्ता होता है, सर्वज्ञ परमात्मा उपादान और कर्त्ता दोनो प्रकार का कारण है, परमात्मास्वरुप मे परिणाम आदि विकार नही हो सकता, शरीर प्रकृति मे हो सकता है, वह भी उनके यत्न से। इस प्रकार अचित्प्रकृतिविशिष्ट परमात्मा मे उपादान का बोधक कर्त्ता का बोधक सभी श्रुतियाँ आसानी से समन्वय पाती है।

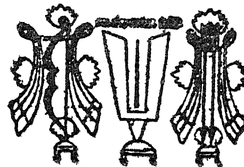
न्यायदर्शन ईश्वर को कर्त्ता मानता हुआ भी ईश्वर मे परिणाम न होने के कारण ईश्वर को उपादान नही मानता, "एकेन मृत्पिण्डेन ज्ञातेन" एक मृत्पिण्ड के ज्ञात होने पर" इत्यादि श्रुतियो का सामान्य लक्षणा की सहायता से सामान्य ज्ञान से विशेषो का ज्ञान मे तात्पर्यवर्णन करता है, मृत्तिका से उपलक्षित सभी उपादानो को सत्य बतानेवाली "मृत्तिकेत्येव सत्यम्" इस श्रुति को परमेश्वर से सम्बद्ध नही कर पाता। सभी कार्यो मे ईश्वर को अदृष्टो को उसके द्वारा जीवो को कारण बताकर गौरव पाता है। चेतन जीव भी परमात्मा का शरीर है, चिद्विशिष्ट परमात्मा को कारण मानने पर सभी का संग्रह हो जाता है।

जड जीव कर्मो को सभी कार्यो का कारण कहनेवाले कर्मो से ही सभी की व्यवस्था करनेवाले मीमासक कर्मो द्वारा जीवोकी कारणता को नही देखने, व्यर्थ ही निरीश्वरवाद कलङ्क को ढोते है। इस प्रकार सृष्टि के पहले सूक्ष्म चित्, जीव सूक्ष्म अचित् प्रकृति से विशिष्ट श्री राम सभी सर्वविध कारण है। सृष्टि होने पर वे ही स्थूल अचित् से विशिष्ट हो जाते है। उनका द्वैत=भेद नही हो सकता इसलिये विशिष्टाद्वैत है। इस दर्शन के अनुसार जड-चेतन सभी जगह हमेशा श्रीरामचन्द्रजी रहते है, ऐसा उपदेश मिलता है और इसी प्रकार यह दर्शन द्वेष को भगाता है, सौहार्द को शोभाता है। इससे श्री राममय परिवार जनपद-देश और विश्व को अद्वैत देता है।

"श्रीरामपाद धूलिवती विरम रे मन मोर। बहु गम्भीर यह दर्शन कहा छुडोगे छोर।।"

अर्वाची सुभगे ? भव सीते ? वन्दामहे त्वा।

यथा न सुभगाऽससि यथा न सुफलाऽससि॥ (ऋग्वेद ४।५७।६)



श्रीरामचन्द्राय नम

❁ जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य-प्रस्थानत्रयी-आनन्दभाष्य ❁

(डॉ० मुरलीधर पाण्डेय आचार्य एम. ए, डी लिट्
प्राचार्य—श्रीरणवीर केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ जम्बू-तवी)

दर्शन, धर्म एवं सम्प्रदाय परस्पर सापेक्षतत्त्व है। ये तीनो इसलिये सापेक्ष कहे जाते है कि सम्प्रदाय की पृष्ठभूमि धर्म है तथा धर्म की पृष्ठभूमि दर्शन है। दर्शन पहले सिद्धान्त तय करता है। इसी सिद्धान्त की शिला पर धर्म की नीव रखी जाती है और एक सिद्धान्तविशेष या धर्मविशेष के अनुयायी वर्ग की अविच्छिन्न परम्परा को सम्प्रदाय विशेष कहा जाता है। सामान्यत दर्शन यह बतलाने की चेष्टा करता है कि जीव, जगत् और ईश्वर क्या है और ये तीनो एक ही तत्त्व है या अनेक तत्त्व है। यदि ये तीनो जीव जगत तथा ईश्वर एक है तो अद्वैत-सिद्धान्त स्थिर हुआ और यदि दो है तो द्वैतवाद है और यदि ये तीनो अलग अलग होकर भी एक है तो विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त सुस्थिर हुआ। अब इसी अद्वैतवाद द्वैतवाद और विशिष्टाद्वैत वाद की भीत्ति पर ज्ञान प्रधान धर्म उपासनो प्रधानधर्म तथा ज्ञान कर्मोपासनासमुच्चय प्रधानधर्म की कल्पना की जाती है। यदि अद्वैत है तो सब कुछ एकही ब्रह्मस्वरूप है। अत केवल ज्ञान से ही उक्त ब्रह्मस्वरूपावगति हो जाती है। अत उपासना आदि की गौणता आ जाती है। यदि वस्तुत दो तत्त्व है या दोनो अलग अलग होकर विशिष्ट—अद्वैत है तो जीव को ईश्वर की प्राप्ति के लिए उपासना ज्ञान तथा कर्मकाण्ड की आवश्यकता पडती है। इसमे उपासना प्रधान हो जाती है और ज्ञान गौण हो जाता है। इन्ही दोनो तथ्यो के आधार पर ज्ञानप्रधान विशेषधर्म एवं उपासना प्रधान विशेष धर्म प्रक्रिया की कल्पना होती है। किन्तु व्यवहार जगत दो या तीन तत्त्वो को मान करही चलता है। एतादृश दर्शन एवं धर्म के माननेवालो की अविच्छिन्न परम्परा को सम्प्रदाय कहा जाता है। जैसा ऊपर भी कहा जा चुका है।

ऐसे सम्प्रदाय अपने निगमागममूलक सनातनधर्म मे अनेक है। जैसे अद्वैत दर्शनानुयायी पञ्चदेवोपासक को श्रौतस्मार्त सम्प्रदाय वाला कहते है, विशिष्टाद्वैत दर्शनानुयायी विशेषत श्री लक्ष्मीनारायणोपासक को रामानुजसम्प्रदाय वाला तथा विशेषत श्रीरामोपासक को श्रीरामानन्दसम्प्रदाय वाला कहते है। इसी प्रकार माध्व वल्लभ निम्बार्क तथा चैतन्य आदि सम्प्रदाय भी है। इन सम्प्रदायो को प्रमाण की कसौटी पर कसने के लिए तत्तत् दर्शन है और तत्तद् दर्शनो को सही परखने के लिए वेदमूलकत्व होना अनिवार्य है। वेदमूलकत्व को परखने के लिए प्रस्थानत्रयी पर भाष्य आवश्यक है। प्रस्थानत्रयी मे तीन आते है—श्रीवादरायणविरचित ब्रह्मसूत्र ईशावास्य छान्दोग्य आदि उपनिषद् तथा श्रीमद्भगवद्गीता। इन तीनो की व्याख्या मे जो दर्शन खरा निकलता है वही दर्शन श्रौत या वैदिक दर्शन कहा जाता है। अत इन सम्प्रदायो के आचार्यो ने प्रस्थानत्रयी पर अपने अपने भाष्य लिखे है। इनके सम्प्रदायानुसारी भाष्यो मे ब्रह्मतत्त्व साथ ही पञ्चदेवतत्त्व, नारायणतत्त्व तथा श्रीरामतत्त्व आदि की प्रधानता होती है। इन्हीं प्रधान उपास्य देवो को ध्यान मे रखकर इनकी उपासना पद्धति बनायी गयी है।

इस प्रकार इन प्रमुख सम्प्रदायो के अनुसार श्री वादरायण निर्मित ब्रह्मसूत्रो मे ये प्रमुख भाष्य उपलब्ध हो रहे हैं—

१	श्रीशङ्कराचार्य	७८८-८२० ई०	शारीरक भाष्य	निर्विशेषाद्वैत।
२	श्रीभास्कराचार्य	१०००	भास्करभाष्य	भेदाभेद।
३	श्रीरामानुजाचार्य	११४०	श्रीभाष्य	विशिष्टाद्वैत (श्रीलक्ष्मीनारायण)
४	श्रीमध्वाचार्य	१२३८	पूर्णप्रज्ञभाष्य	द्वैत।
५	श्रीनिम्बार्काचार्य	१२५०	वेदान्त परिजातभाष्य	द्वैताद्वैत।
६	श्रीकण्ठाचार्य	१२७०	शैवभाष्य	विशिष्टाद्वैत (शक्तिशिव)।
७	श्रीरामानन्दाचार्य	१२५६-१५३२	आनन्दभाष्य	विशिष्टाद्वैत (श्रीसीताराम)
८	श्री श्रीपति आचार्य	१४००	श्रीकरभाष्य	बिशिष्टाद्वैत (वीरशैव)।
९	श्रीवल्लभाचार्य	१४७९-१५४४	अणुभाष्य	शुद्धाद्वैत (बालकृष्ण)।
१०	श्रीविज्ञानभिक्षु	१६००	विज्ञानामृतभाष्य	अविभागाद्वैत (साख्ययोगप्रभावित)
११	श्रीबलदेवाचार्य	१७२५	गोविन्दभाष्य	अचिन्त्यभेदाभेद (श्रीहरिराधाकृष्ण)

इन आचार्यो के भाष्यो मे परस्पर सिद्धान्तभेद तो है ही साथ ही ब्रह्मसूत्रग्रन्थ के सूत्रों की तथा अधिकरणो की संख्या मे भी भेद है। श्री शकराचार्यजी के अनुसार सूत्रसंख्या ५५५ तथा अधिकरण १९९ है। श्रीरामानुजमत मे सूत्र सख्या ५४५ तथा अधिकरणसख्या १६० है। श्रीमाध्वमत मे सूत्र संख्या ५६४ और अधिकरण संख्या २२३ है। श्रीनिम्बार्कमत मे सूत्रसंख्या ५४९ तथा अधिकरणसंख्या १६१ है। श्रीकण्ठमत मे सूत्र सख्या ५४४ तथा अधिकरणसंख्या १८२ है। श्रीरामानन्दाचार्यमत मे सूत्र सख्या ५५१卐 तथा अधिकरण सख्या १६०❀ है। श्रीवल्लभमत मे सूत्र सख्या ५५४ तथो अधिकरण सख्या १७१ है। सूत्र सख्या तथा अधिकरणसंख्या मे भेद का कारण यह है कि इन आचार्यो ने स्वसिद्धान्तानुसार कही कही दो सूत्रों को एक सूत्र मान लिया है और कही एक सूत्र को दो सूत्र मान लिये है। इसीसे अधिकरणसंख्या मे भी भेद हो गया है।

इन आचार्यो ने उक्त प्रस्थानत्रयी के अध्ययन से जिस परमतत्त्व का अपरोक्षानुभव किया उसीको प्रस्थानत्रयी के भाष्यरूप मे अवतरित किया। इनमे जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी ने प्रस्थानत्रयी के अध्ययन के अनन्तर ब्रह्मरूप मे श्रीरामतत्त्व का अपरोक्षानुभव किया और श्रीरामरूप ब्रह्मको श्रीआचार्यजी ने प्रस्थानत्रयी के भाष्य मे विवृत किया। इस भाष्य का नाम आनन्द भाष्य रखा। क्योकि परमतत्त्व श्रीराम आनन्दरूप है। जैसा कहा है—

रमन्ते योगिनो यस्मिन् सत्यानन्दे चिदात्मनि। (श्रीरामतापनीयोपनिषद्)

श्रीराम ही जगत् की उत्पत्ति स्थिति एवं लय करते है। यतो वा इमाति भूतानि जायन्ते इस श्रुति तथा जन्माद्यस्य (१।१।२) इस ब्रह्मसूत्र के अनुसार सृष्टि आदि करनेवाला ब्रह्म राम ही है। मीमासादर्शन कहता है वेदविहित कर्म ही धर्म है और धर्म ही जगत् को धारण करता है और वह धर्म साक्षात् राम ही है। क्योकि रामका स्वरूपही धर्म

卐 आनन्दभाष्यानुसारीसूत्र सख्या—१-३२+३३+४३+२९=१३७, २-३६+४५+५३+२१=१५५, ३—२७+४१+६४+५१=१८३, ४—१९+२०+१५+२२=७६, योग ५५१

❀ आनन्दभाष्यानुसारीअधिकरणसंख्या—१-११+७+१२+८=३८, २—१०+८+९+९=३६, ३—६+८+२५+१५=५४, ४—११+१०+५+६=३२. योग १६० सम्पादक

है–रामो विग्रहवान् धर्म । श्रीराम ने धर्म के स्वरूप को यथार्थ बतलाने के लिए और प्रत्यक्ष रूप मे दिखलाने के लिए सारे चरित्रकिये धर्ममर्यादा की रक्षा करने के ही कारण श्रीराम को मर्यादापुरुषोत्तम कहा जाता है । चौदहवी शताब्दी का समय भी ऐसा ही था। जब वैदिक धर्म पर सभी ओर से प्रहार हो रहा था तब जगद्गुरु जी ने मर्यादापुरुषोत्तम राम ब्रह्म को प्रस्थान त्रयीभाष्य मे अवलोकन किया ।

जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी का शास्त्र ज्ञान एव लोकानुभव बडा ही विस्तृत था। वे उच्च कोटि के शास्त्रज्ञ योगी संत तथा उच्चकोटि के जननेता थे । उनकी दृष्टि शास्त्ररक्षा एवं लोक-रक्षा के हेतु वाल्मीकि रामायण पर पडी । वैदिक वाङ्मय के अनन्तर वाल्मीकि रामायण का ही स्थान आता है। इस रामायण मे आदिकाल के महर्षि वाल्मीकि ने श्रीहनुमानजी के मुखारविन्द से कहलाया है कि श्रीरामचन्द्रजी इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को क्षण भर मे बना सकते है, रख सकते है, और मिटा सकते है ।

"सर्वाल्लोकान् सुसहृत्य सभूतान् सचराचरान् । पुनरेव तथा स्रष्टु शक्तो रामो महायशा ॥"
(वा० रा० सु०का० ५१।३९)

इसी प्रकार मनु के वचन पर भी उन्होने ध्यान दिया। भगवान् मनुजी ने कहा है कि गायत्री मन्त्र तीनो वेदो का सार है। तीनो वेदो से एक–एक चरण दुहकर गायत्री मन्त्र का अवतार हुआ ।

अथर्ववेद ने कहा कि गायत्री वेद माता है—स्तुतामया वरदा वेदमाता और यह भी कहते है कि वाल्मीकीय रामायण मे चौबीस हजार श्लोक हे । ये चौबीस वर्णो के गायत्री मन्त्र के एक–एक अक्षर की व्याख्या है। इस सम्पूर्ण रामायण मे श्रीरामजी ही वर्णित है । जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के जनक, पालक एव सहारक है। महर्षि वादरायण ने इसी तत्व को ध्यान मे रखकर ब्रह्मसूत्र ग्रन्थ मे सूचित किया–"अथातो ब्रह्मजिज्ञासा" (ब्र सू १।१।१) वह ब्रह्म कैसा है इस जिज्ञासा पर द्वितीय सूत्र मे लिखा–"जन्माद्यस्य यत" (ब्र सू १।१।२) अर्थात् जिसके द्वारा ब्रह्माण्ड का जन्मस्थिति एवं लय होता हे वही ब्रह्म हे। जिसे उपनिषद् ने—यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत् प्रयभिसविशन्ति (तै० उप० ३।११) यह परमब्रह्म राम का स्वरूप लक्षण हुआ। तटस्थ लक्षण तो प्रसिद्ध ही हे जैसे–रामतापनीयोपनिषद् ने किया है–तटस्थ–रमन्ते योगिनो यस्मिन् सत्यानन्दे चिदात्मनि ।

इति राम पदेनासौ परब्रह्माभिधीयते । (पूर्वरामतापनीयोपनिषद् १।६)

इसी तथ्य को तैतिरीयोषनिषद् भी कहता है–सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म, आनन्दभाष्यकार ने इस तत्व को बडे अच्छे ढंग से (तै० उप० २।२) जन्माद्यस्य यत (ब्र० सू० १।१।२) इस सूत्र के भाष्य मे प्रकट किया है । महर्षि व्यासजी महाभारतान्तर्गत श्रीमद्भगवद् गीता मे ब्रह्माण्ड के सभी तत्वो का वर्णन करते हुए श्रीकृष्ण भगवान् के मुख से कहलाते है ।

उत्तम पुरुषस्त्वन्य परमात्मेत्युदाहृत । यो लोकत्रयमाविश्य विभर्त्यव्ययईश्वर । (श्रीमद्भ गी १५।१७

अर्थात् सभी चराचर से परे एक उत्तम पुरुष है वही परमात्मा है जो तीनो लोको मे प्रविष्ट होकर संसार की रक्षा कर रहा है । वह उत्तमपुरुष या पुरुषोत्तम या महापुरुष कौन है ? इसको महर्षि व्यासजी स्वयं श्रीमद्भागवत मे स्पष्ट करते है—

ध्येयं सदा परिभवघ्नमभीष्टदोहं, तीर्थास्पदं शिवविरिञ्चिनुतं शरण्यम् ।

भृत्यार्तिहं प्रणतपाल भवाब्धिपोत, वन्दे महापुरुष? ते चरणारविन्दम् ।। (श्रीमद् भागवत ११।५।३३)
त्यक्त्वा सुदुस्त्यजसुरेप्सित राज्यलक्ष्मी, धर्मिष्ठ आर्यवचसा यदगादरण्यम्।
मायामृगं दयितयेप्सितमन्वधावद् , वन्दे महापुरुष? ते चरणारविन्दम् ।। (श्रीमद् भागवत ११।५।३४)

इन दोनो श्लोको मे भगवान् राम की वन्दना की गयी है और उन्हे महापुरुष कहा गया है। व्यासजी ने इन्हे शिवविरञ्चिनुत तथा प्रणतपाल भवाब्धिपोतं कहा है। शिवजी तथा ब्रह्मा जी से प्रणम्य केवल श्रीरामजी ही है। यह तो लोकातीत पक्ष है। पर वही राम लोकस्थिति के लिए पिता की आज्ञा से वन जाते है। और अपनी दयिता सीता के मन को रखने के लिए मायामृग का अनुसरण करते है।

श्रीरामानन्दाचार्यजी को तो यही चाहिये था जो लोक एव परलोक दोनो की गति हो। उन्होने निगमागमसम्मत श्रीमद् वाल्मीकि-व्यासानुमोदित श्रीरामब्रह्म को अपनाया तथा तादृश धर्म को तैयार करने के लिए श्रीराम विशिष्टाद्वैत दर्शन को मान्यता दी।

इस दर्शन की मान्यता को सुस्थिर आधार भूमि देने के लि प्रस्थानत्रयी पर भाष्य की रचना की। आनन्द भाष्य मे विशिष्टाद्वैत के प्रधानतत्व ब्रह्म जीव और माया का साक्षात् स्वरूप श्रीरामजी श्रीसीताजी एवं लक्ष्मणजी को बार-बार दर्शाया है। जिसे ज गु, श्रीतुलसीदासजी ने इस प्रकार कहा है—

"आगे राम अनुज पुनि पाछे। मुनिवर वेष बने अति काछे।
उभय बीच श्री सोहइ कैसी। ब्रह्मजीव बीच माया जैसी।"

मनुष्य जीव दो प्रकार के है-सगुणोपासक तथा निर्गुणोपासक। इसलिए श्रीराम के दाये सगुणोपासक जीव के रूप मे लक्ष्मणजी तथा निर्गुणोपासक के रूप मे श्रीभरतजी का अवतरण किया गया है।

गीतोक्त इस परमपुरुष की उपासना केवल भक्ति से हो सकती है। गीता ने स्वयं कहा है—
"पुरुष सपर पार्थ भक्त्यालभ्यस्त्वनन्यया। यस्यान्त स्थानि भूतानि येन सर्वमिद ततम् ।।
(श्रीगीता ८-२२)

एक भक्तिर्विशिष्यते वादी आचार्यजी ने इसी गीतोक्त सिद्धान्त को वैष्णवो के लिए कर्तव्यरूप मे इस प्रकार कहा—

"एव महान् भागवत सुसस्कृतो। रामस्य भक्ति परमा प्रकुर्यात् ।।
महेन्द्रनीलाश्मरुचे कृपानिधे। श्रीजानकीलक्ष्मणसयुतस्य वै।।" (श्रीवैष्णवमताब्जभा ४।११)
"सहानुज दाशरथि महोत्सवं स्मरामि राम सह सीतया सदा।।" (श्री वै० म भा ३।५)

श्रीआचार्यप्रवरजी ने जिस भक्ति को अपनाया है उसका स्वरूप उन्होंने कहा है कि गिरती हुई अविच्छिन्ना गतिवाली तैल धारा के समान श्रीरामजी मे अविच्छिन्न सतत स्मृति ही भक्ति है। यह भक्ति योगशास्त्रोक्त यम नियमादि से परिपुष्ट होती है।

"सा तैलधारासमनित्यसंस्मृते संतानरूपेशिपरानुरक्ति।
भक्तिर्विवेकादिकसप्तजन्या तथा यमाद्यष्टसुबोधकाङ्गो।। (श्रीवै म. भा ४।१३)

इस प्रकार जगदाचार्यजी ने प्रस्थान त्रयीपर आनन्द भाष्य बनाया और श्रीरामविशिष्टाद्वैत की स्थापना की तथा इस विशिष्टाद्वैत दर्शन के आधार पर गृहस्थ धर्म की भी स्थापना की। जिसमे आराध्य श्री रामब्रह्म के चरित्र के अनुसार वर्णाश्रम की व्यवस्था को पुन सुदृढ किया,

जो वर्णाश्रम धर्म उनके काल मे वैदेशिक शासको के प्रभाव से तथा दूसरे पन्थो के प्रभाव से क्षीण हो रहा था। आचार्यजी का लक्ष्य यही है कि परमब्रह्म ने वर्णाश्रम व्यवस्था वनायी है। इसलिए आवश्यक था कि आचार्यजी इसके अनुकूल दर्शन स्थापित करे। इसीलिए आपने प्रस्थान त्रयी पर भाष्य वनाकर तदनुकूल विशेष धर्म एवं तदनुकूल सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया। इसके प्रचार एवं प्रसार हेतु जगदाचार्यजी ने एक विरक्त समाज की भी स्थापना की जो गृह परिवार से रहित होता है।

'न स्त्रियं परिगृह्णीयाद् विरक्तो वैष्णव क्वचित्'' (श्रीवै म भा ५।५)

इन विरक्त वैष्णवो के मनन के लिए स्पष्टतया आनन्दभाष्य का उल्लेख किया तथा आदेश दिया—

''शक्तैरानन्दभाष्यैरथ च शुभतमाचार्यदिव्यप्रवन्धै।'' (श्रीवै म भा ८।२)

इस प्रकार आचार्यचरणजी ने आनन्द भाष्य की रचना करके दर्शन धर्म सनातनधर्म विशेष की स्थापना के साथ क्षीण होती हुई विरक्ताश्रम परम्परा को पुनरुज्जीवित किया इसी विरक्त सम्प्रदायी परम्परा के ज गु श्रीतुलसीदासजी श्रीकृष्णदास पयोहारी श्रीरविदास श्रीकवीरदास प्रभृति विरक्त महात्माओने श्रीरामाश्रित ग्रन्थों की रचना से मन्दिरमठ आदि की स्थापना से तथा श्रीरामभक्तिके प्रचार से लोक-परलोक उभय की शुभसिद्धि का मार्ग प्रशस्त किया। इस आनन्दभाष्य को विशेष प्रकाश मे लाने का श्रेय श्रीशेषमठ विश्राम द्वारका सौराष्ट्र के आचार्य श्रीरामानन्द सम्प्रदाय के ३९वे आचार्य ज गु श्रीरामानन्दाचार्य रघुवराचार्यजी महाराज तथा श्रीरामानन्दसम्प्रदाय के ४०वे आचार्य परमहंस योगीराज जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य रामप्रपन्नाचार्यजी दर्शन केसरी और उनके उत्तराधिकारी ४१वे आचार्य स्वामीरामेश्वरानन्दाचार्य को है। जिन्होने श्रीरामविशिष्टाद्वैत के प्रचार प्रसार से लोकको श्रेय तथा प्रेय दोनो प्रदान कर दिया है।

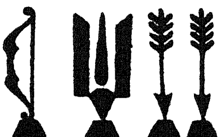
इन तीनो महात्माओ के द्वारा श्रीशेषमठ विश्राम द्वारिका सौराष्ट्र तथा श्रीकोशलेन्द्रमठ, पालडी अहमदाबाद तथा श्रीरघुवर रामानन्द वेदान्त सस्कृत महाविद्यालय श्रीशेषमठ सौराष्ट्र तथा अहमदाबाद के द्वारा सनातन धर्म संस्कृत वाङ्मय एव वैदिक दर्शन के संरक्षण, अभ्युत्थान एवं अभ्युदय के लिए अति महनीय स्तुत्य कार्य किये जा रहे है। वस्तुत श्रीरामविशिष्टाद्वैत दर्शन (श्रीरामानन्द वेदान्त) को उज्जीवित करने का प्रस्थानत्रयी के आनन्दभाष्य को प्रकाशमे लाने का और सर्व सुलभ करने का सर्वाधिकश्रेय इन्ही महापुरुषो और इन्ही मठो विद्यालयों को है। इति शम्

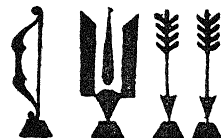
। श्रीकोशलेन्द्र शरणम्।

॥ श्रीसीतारामार्पणमस्तु ॥

श्री राम जय राम जय जय राम। श्री राम जय राम जय जय राम







❀ श्रीरामानन्द दर्शन का व्यवहारिक स्वरूप ❀

[ले० वैदेहीकान्तशरण]

दर्शन पद अनेकार्थक है–'दर्शनं नयन स्वप्न बुद्धि धर्मोपलब्धिषु, शास्त्रदर्पणयोश्च–मे ८८।७३' अत अनेक सिद्धान्तवादी अपने अपने मन्तव्यों को दर्शन कहते है। आस्तिक दर्शन और नास्तिक दर्शन भी कहा जाता है। जब कि न अस्ति का दर्शन क्या होगा ? प्रकृत निबन्ध मे दर्शन शब्द का अर्थ शास्त्र ग्रहण किया जाता है।

श्रीरामानन्द दर्शन वस्तुवाद को मानने वाला यथार्थवाद या सत्यवाद है। इस दर्शन के अनुसार प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष सभी पदार्थो की सत्ता वास्तविक है, सत्य है, निर्भ्रान्त है, भ्रम या प्रतिभास या मानसिक सवेदन या शून्य या स्वप्न नही।

बौद्धदर्शन के क्षणिक विज्ञानवाद जगत् के पदार्थो को मानसिक सवेदन मात्र मानता है और शून्यवाद बाह्य अन्तर कुछ भी नही है, शून्य है, ऐसा मानता है।

शाङ्कर दर्शन मायावाद जो कुछ देखते सुनते है सव माया है, भ्रम है, स्वप्न है, प्रतिबिम्ब है, प्रतिभास है, असत्य है अयथार्थ है–ऐसा मानता है।

अत सिद्धान्तत बौद्ध और शाङ्कर के यहाँ व्यवहार [प्रयोग] का कोई प्रश्न ही नहीं है। क्योंकि व्यवहार के लिये आधार चाहिए। उनके यहाँ यथार्थ मे कुछ भी नही है, जो कुछ है सव भ्रम है, मिथ्या है। अत यदि उनको कोई व्यवहार भी कहा जाय तो वह उन्ही के मत से मिथ्या व्यवहार है।

इस प्रकार श्रीरामानन्द दर्शन का व्यवहारिक स्वरूप सत्य है, वास्तविक है, यथार्थ है, अभ्रान्त है, जब कि उपरोक्त दर्शनो का व्यवहारिक स्वरूप उन्ही के मतो से असत्य है, अवास्तविक है, अयथार्थ है, भ्रान्त है।

शङ्कराचार्य ब्रह्म को तो मानते है, परन्तु कहते है कि मै ही ब्रह्म हूँ, और ब्रह्म को निर्गुन निराकार निर्लेप निरञ्जन मानते है। इस प्रकार उनका ब्रह्म कोरा शाब्दिक या शब्द मात्र है। ऐसे निर्गुण निराकार निरञ्जन वस्तु का व्यवहार प्रयोग मे कोई स्थान नही है। निर्गुण, निराकार, निरञ्जन, अनाम का क्या व्यवहार होगा ? केवल मौन हो जाना या निष्क्रियता ही होगी ? निर्गुण और अनाम कहने से अहं ब्रह्मास्मि का कथन भी नहीं बनेगा। क्योंकि 'ब्रह्म' पद भी तो नाम ही है और बृंहनाद्ब्रह्म उसका गुण भी है। अत वह सगुण और सनाम हो जायेगा। पुन 'मै ब्रह्म हूँ' का कथन न केवल उनके मायावादी दर्शन के अनुसार भ्रान्त है अपितु यथार्थता की कसौटी पर भी भ्रान्त तथा हास्यास्पद है, अव्यवहारिक है। इसमे मात्र अहंकार के कुछ भी नहीं है। परन्तु श्रीरामानन्द दर्शन अपने को ब्रह्म कहने का मिथ्याऽहंकार वा मिथ्या प्रलाप नही करता। यह अपने को सर्वदा ब्रह्म का परतन्त्र और ब्रह्म का शरीर ['भोग सामग्री= आत्मनो भोगायतनं शरीरम्–वा, भा' अथवा 'प्रयोग सामग्री वा व्यवहार सामग्री=चेष्टेन्द्रियार्थाश्रय शरीरम्–न्या सू १।१।११।] मानते है प्रकृत प्रसगमे 'यच्चेतनस्य यद् द्रव्यं स्वशक्ये नियमेन हि।

नियाम्यं चापृथक्सिद्धं शरीर तस्य तन्मतम् ॥ श्रौतप्रमेयचन्द्रिका मे जगद्गुरु श्रीश्रियानन्दाचार्यजी तथा आचार्य सार्वभौम जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी "लोकेऽपि शरीर पदेनावेयत्वादय एव गृह्यन्ते इति तान्येव शरीरपदवोध्यानि" आनन्दभाष्य १।२।२। का प्रसग विशेषरूप से ध्यान मे रखना चाहिये पुन यह ब्रह्मको नित्य सगुण साकार मानता है। अत यह विशुद्ध व्यवहारिक दर्शन है और वास्तविक व्यवहारिक दर्शन है।

मायावादी भ्रमवादी और शून्यवादी दर्शनो मे जगत् मे किसी अन्य के साथ सत्य व्यवहार बनता ही नही है जो भी व्यवहार और व्यापार होगा वह मिथ्या ही होगा। पुन मायावादी निराकार निर्गुण ब्रह्मवादी के दर्शन मे ब्रह्म के साथ भी कोई व्यवहार नही बनता। प्रज्ञा चक्षु सूरदासजी ने स्पष्ट कहा है–"मन वाणी के अगम अगोचर निराधार मन चकित धावे।" और सभी विवादो से हटकर श्रीविन्दुजी ने कहा है–'होगा वह निराकार निर्गुण निर्लेप निरजन भी होगा। हमको दिखलायी पडता है, सौवार हमारी आखो मे।" अत सगुण साकार ब्रह्म ही व्यवहारिक हो सकता है, निर्गुण तो चिन्तन का भी विषय नही बन सकना, निराकार केवल शब्द का विषय बन सकता है व्यवहार का नही और अनाम तो स्मरण का भी विषय नहीबन सकता व्यवहार वा चिन्तन को को कहे ? 'न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके य शब्दानुगमादृते। अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भासते ॥ वाक्यपदीय ॥' नैयायिक निर्विकल्प ज्ञान तो मानते है। परन्तु वह निर्विकल्पज्ञान सगुण साकार वस्तु का ही निराकार को नही–'प्रथमतो घटघटत्वयोर्वैशिष्ट्यानवगाहिज्ञानं जायते, तदेव निर्विकल्पम्–सि०मु०।" अत निराकार, निर्गुण, अनाम की तो न सत्ता ही है और न व्यवहार। श्रीरामानन्ददर्शन सगुण साकार सनाम वादी होने से विशुद्ध व्यवहारिक दर्शन है। निर्गुन निराकार वादी दर्शन केवल 'श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्य [श्रवण–मनन–निदिध्यासन] का उपदेश देते है, द्रष्टव्य का नही क्योकि ब्रह्म उनके यहाँ दृष्टि [दर्शन] का विषय नही है। परन्तु श्रीरामानन्ददर्शन 'आत्मा वा अरे द्रष्टव्य श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्य इति ॥ बृ उ २।५॥" के अनुसार द्रष्टव्य का भी अपितु मुख्य और इष्ट वस्तु द्रष्टव्य ही है श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्य तो द्रष्टव्य का साधन है। अत श्रीरामानन्द दर्शन ब्रह्म का सगुण साकार रूप के दर्शन और ध्यान का बडा महत्त्व है। कि ध्यानम् ? प्रश्न से श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर मे जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी ने "रुचिरपद्मदलायतवीक्षणं (३।२) आदि अनेक श्लोको मे श्रीसीतारामजी के रूप दर्शन का निरूपण किया है। इस दर्शन मे ब्रह्म के पर, विभव, अर्चावतार आदि सभी रूपो मे प्रत्यक्ष दर्शन की मान्यता है। अत यह परमार्थत व्यवहारिक दर्शन है।

निर्गुण निराकारवादी शाङ्करदर्शन शिखासूत्रका त्याग कर कर्म का त्याग कर देता और अव्यवहारिक बन जाता है। परन्तु श्रीरामानन्द दर्शन शिखा सूत्र का त्याग नही करता और निरग्नि नही बन जाता। वह 'कुर्वन्नेवेह कर्माणि–शु य वेद के अनुसार आजन्म कर्म का आग्रही है। यह बात दूसरी है कि यहाँ कर्मफल का त्याग और केवल भगवत् प्रीत्यर्थ कर्म का ही आग्रह है। यह दर्शन मीमासा के "आम्नायस्य क्रियार्थत्वानर्थक्यमतदर्थानाम्–१।२।१।' 'तद्भूतार्थाना क्रियार्थेन समाम्नाय–१।१।२५।' के अनुसार वेद को क्रियार्थक मानकर वेदोपदेश के अनुसार भजन, पूजन, तीर्थ, व्रत, दान, यज्ञ, तप आदि कर्म करनेवाला सर्वथा व्यवहारिक दर्शन है कोरा शाब्दिक नही। यह दर्शन दर्शन के–"श्रोतव्य श्रुति वाक्येभ्यो मन्तव्यश्चोपपत्तिभि। मत्वा च सततं ध्येय एते

दर्शन हेतव ।।" सभी हेतुओ का व्यवहार कर ब्रह्म का साक्षात् दर्शन और प्राप्ति कराने वाला सर्वथा व्यवहारिक दर्शन है ।

यह व्यवहारिक स्वरूप अन्य सभी शुद्धाद्वैत, द्वैत, द्वैताद्वैत, अचिन्त्यभेदाभेद आदि वादी वैष्णवदर्शनो का भी है। परन्तु ये अन्य वैष्णव दर्शन अपने को ब्रह्मका शरीर [आत्मनो भोगा यतन शरीरम्–वा भा] नही मानते । अत ये ब्रह्म के तादात्म्य एव नियाम्य मात्र हो सकते है भोग वस्तु नही । भोग वस्तु तो अपना शरीर ही होता है । अन्य वस्तु तो उपभोग होता है और स्वशरीर के माध्यम से ही भोग बनता है ।

अब इस दर्शन का व्यवहारिक स्वरूप क्या है? तो इस दर्शन के सिद्धान्तो के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति का ब्रह्म का पूजन अर्चन, कैङ्कर्यादि समस्त व्यवहार जीवो मे श्रेष्ठ के साथ श्रद्धा, आदर, पूज्य व्यवहार, समान के साथ सखा, मित्रता का व्यवहार लघु के सा वात्सल्य कृपा का व्यवहार, निर्बलो के साथ दया सहानुभूति का व्यवहार, एव अपकारियो के साथ उपकार करनेका व्यवहार तथा जो व्यवहार अपने लिये चाहते है वही व्यवहार दूसरो के प्रति करना ही इस दर्शन का व्यवहारिक स्वरूप है। इस दर्शन का व्यवहारिक रूप साधु बनना है, ब्रह्म वनना नही "उपकारिषु य साधु साधुत्वे तस्य को गुण । अपकारिषु य साधु स साधु सद्भिरुच्यते निर्गुणेष्वपि सत्वेषु दया कुर्वन्ति साधव । न हि संहरते ज्योत्स्ना चन्द्रश्चाण्डालवेश्मन ।। 'अहं ब्रह्मास्मि' का अहं व्यवहार स्वरूप इसका नही है प्रत्युत ईश्वरस्याप्यभिमान द्वेषित्वात् दैन्य प्रिय-त्वाच्च ।। ना भ सू २७।।' के अनुसार यह निरभिमान के व्यवहार का प्रतिपादक है। अत 'सियाराममय सब जगजानी। करौ प्रणाम जोरि युग पाणी ।।' कह कर सभो के आगे झुकने एवं साष्टाङ्ग दण्डवत् करने का उपदेश देता है । संक्षेप मे इस दर्शन का व्यवहारिक रूप सदाचार का पालन है । ईश्वर की उपासना और सदाचार पालन इसके व्यवहारिक रथ के दो चक्के है । इस दर्शन का व्यवहारिक स्वरूप जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी द्वारा श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर मे निरूपित है तथा अन्य आचार्यो द्वारा शताधिकग्रन्थो मे प्रतिपादित है जो वहीं द्रष्टव्य है ।

यह हुआ सक्षेप मे श्रीरामानन्द दर्शन के व्यवहारिक स्वरूप का दिग्दर्शन । व्यवहार शब्द का अर्थ विवाद भी होता है–"विवादो व्यवहार स्यात्–अ को १।१।९।" इस अर्थमे श्रीरामानन्द दर्शन का व्यवहारिक स्वरूपका अर्थ होगा श्रीरामानन्द दर्शन का वैवादिक स्वरूप ।' तब इसका तात्पर्य होगा इस दर्शन के अन्य दर्शनो के सिद्धान्तो के साथ विरोध [परस्पर विरुद्ध कथन] स्वरूप । तब इसका विषय बनेगा विवर्तवाद [शकर] अविकृत परिणामवाद [वल्लभ] निमित्त कारणवाद [मध्वाचार्य] आदि के साथ इसदर्शन के 'सद्वारक परिणामवाद' का विवाद [व्यवहार] आदि । तब इसके पूर्ण ज्ञान के लिये श्रीरामानन्द दर्शन के प्रस्थानत्रयानन्दभाष्य तथा जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य रामप्रपन्नाचार्यजी योगीन्द्रकृतभाष्यप्रकाशादि समस्त वेदान्त ग्रन्थो को देखना चाहिए। क्योंकि उसी मे अन्यदर्शनो से भेद का प्रतिपादन है।

जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी

❁ एक व्यक्तित्व ❁

[ले० आचार्य डा किशोरदास स्वामी "विद्यावारिधि" श्याम निवास जस्सारामार्ग हरिद्वार]

भारत धर्म प्रधान देश है। धर्म यहाँ के निवासियो के रक्तमे प्रवेश कर चुका है। इसकी झलक तीर्थ स्थलो या कुम्भ पर्वो पर देखी जा सकती है। ऐसे लाखो लोग, जो धर्म के विषय मे कुछ भी नही जानते है, वे गठरी-मठरी बाधे धर्मार्जित करने जाते है। वे इतना जानते है कि तीर्थ पर स्नान करने से धर्म होता है। उनके हृदय मे श्रद्धाका निवास है। श्रद्धावान व्यक्ति अपने आपमे धर्मात्मा होता है। वह परमात्मा का रूप है। श्रद्धालु जहा बैठ जाता है, वह सभा पूर्ण हो जाती है। यहा की मुक्ति-मोक्ष की भावना जन-मानस मे घर कर गई है। यदि किसी किसान का बैल मर जाए, तो लोग कहते है यह मुक्त होगया। भारत ने मानव को अमरता प्रदान करने के लिए अनेक टानिक दिए है। यहाँ के अनेक सम्प्रदायों, दर्शनो तथा जीवन क्रमो ने अत्यन्त सुन्दर भूमि का अदा की है, जो अत्यन्त उदार और महत्व-पूर्ण रही है। भारत के विद्वान् गवेषको ने साधको और सन्तो ने, ऋषियो और मनीषियो ने, दार्शनिको और कवियो ने, चाहे वे किसी मजहब या सम्प्रदाय के रहे हो, सभी ने सही सत्य को ससार के सामने रखने का प्रयास किया है निर्गुण निराकार परमात्मा का न तो कोई निश्चित आकार होता है, न रूप होता है, न नाम होता है, पर जब संसार मे प्रकाश दिखाई नही देता है, चारो ओर अन्धकार ही अन्धकार दिखाई देता है, तो परमात्मा को किसी न किसी रूप मे अवतार लेना पडता है। परमात्मा के अवतार के तीन प्रयोजन होते है—

साधुओ के परित्राण के लिए, जो दुष्कृति या दुष्कर्म करनेवाले है, उनके विनाश के लिए तथा धर्म जब अपनी स्थिति से विचलित होने लगता है, तो उसकी स्थापना के लिए भगवान् युग-युग मे अवतार लेते है। अत जगत मे सत्य और सदाचार को प्रतिष्ठित करने के लिए कौसल्यानन्दवर्धन साक्षात् परब्रह्मपरमात्मा श्रीरामचन्द्रजी ने ही श्रीरामानन्दजी के रूप मे अवतार लिया। और जगत मे विशिष्टाऽद्वैतवाद की पुन स्थापना करके मोक्ष के लिए एक नवीन मार्ग का पुन प्रवर्तन किया।

सम्वत् १३५६ की माघ कृष्ण सप्तमी समस्त भारतवासियो के लिए पुनीत तिथि मानी जाती है, क्योकि इसी तिथि मे भगवान् श्री रामानन्दजी ने तीर्थराज प्रयाग मे अवतार लिया था। आपके अवतार के समय, पृथ्वी मागलिक होगई, लोगोके अन्तकरण स्वच्छ होगए? दिशाएं निर्मल होगई। सम्पूर्ण चराचर प्रकृति आपका स्वागत करने को तत्पर हो गई ऐसे वातावरण मे वैदिक सस्कार सम्पन्न, वशिष्ठगोत्रीय कान्यकुब्ज पुण्यसदन नामक एक विद्वान् ब्राह्मण थे, उनकी सती-साध्वी धर्मपत्नी श्रीमती सुशीला देवी की कोखसे श्रीरामानन्दजी उसी प्रकार प्रकट हुए जैसे लकडी से अग्नि प्रदीप्त हो उठती है। भगवान् न तो किसी के पिता होते है न पुत्र पर भक्तिकी भावना के अनुसार वे पिता भी बनते है और पुत्र भी। भक्ति मे बडी शक्ति होती है, वह निर्गुण को भी सगुण बना देती है। निर्गुण ब्रह्म सगुण बनकर श्रीरामानन्दजी के रूपमे प्रकट हुए। बाल्य कालसे ही आप कुशाग्र बुद्धि के थे। प्रारम्भिक शिक्षा घर पर हुई। आपके पिता नैष्ठिक ब्राह्मण

और परम विद्वान् थे। उनके श्रीमुख से गीता, रामायण, उपनिषद् आदि जो भी सुनते उसे आप कण्ठाग्र करलेते थे। आपकी चमत्कार पूर्ण-प्रतिभा देखकर ब्राह्मण और ब्रह्मज्ञानियो को बडो अश्चर्य होता था। यद्यपि सभी विद्याएं और कलाएं आप ही से उत्पन्न हुई है, तथापि गुरु-शिष्य का क्या सम्बन्ध होता है, इस आदर्श की स्थापना के लिए ही आपने अध्ययन किया। ब्रह्मविद्या का ज्ञान प्राप्त करने आप काशी पहूंचे। वहा आपके पिता के गुरुदेव श्रीराघवानन्दाचार्य का पंच गङ्गा घाट पर एक दिव्य मठ था। वहा गुरुपरम्परा से स्वीकृत आध्यात्मिक तत्त्वो का स्वाध्याय कराया जाता था। इसी श्रीवैष्णव मठ मे रहकर श्रीरामानन्दजी अध्ययन करने लगे। बाल्य-कालमे ही आपने सम्पूर्ण वेद वेदाग वैदिक एव वैदिकेतर दर्शनो का ज्ञान अर्जित करलिया। शास्त्रार्थ मे आपके सामने कोई टिक नही सकता था। आपने बडे-बडे विद्वानो को परास्त किया। काशी जैसे क्षेत्रमे सामान्य विद्वान् का टिक पाना सम्भव नही होता। किसी पण्डित सभा मे आपका शास्त्रार्थ होने लगा। विषय था 'सभी प्राणियो मे आत्मा समान है" आपने उत्तर पक्षलिया, आपने कह दिया-सभी प्राणियो मे आत्मा समान नही होता। यद्यपि भीतर से तो आप अभ्युपगमवादी थे, यानी इस बात से सहमत थे कि सभी मे आत्मा समान होता है, पर यहा तो शास्त्रार्थ था। आपने तर्क देते हुए कहा कि भले ही सब मे आत्मा समान है, थोडी देर के लिए हम इस बात को मान लेते है, पर जिस व्यक्ति को आत्मज्ञान है ही नही, उसमे आत्मा का होना न होना, दोनो बराबर है। मान लीजिए किसी के घर मे बहुमूल्य खजाना गडा-पडा हो, यदि घर के मालिक को उस खजाने का पता नही है, तो खजाने का होना या न होना, दोनो बराबर है। क्योकि उनका कोई उपयोग नही है। ऐसी अद्भुत तर्को का उपयोग आप करते थे।

शुरुसे श्रीरामानन्दजी के मनमे त्याग और वैराग्य था। इसलिए सम्पूर्ण शास्त्रो मे निष्णात होकर, आप फिर घर नही लौटे। इस समय देश की दशा बडी विलक्षण थी। ऊच-नीच का भेद बना हुआ था। दीन-हीन-पतित न तो यज्ञ-याग कर सकते थे, न मन्दिर मे प्रवेश कर सकते थे, न सन्यास ले सकते थे। शिव काची और विष्णुकाची नामक दो अलग-अलग स्थान बने हुए थे, शैव और वैष्णव एक दूसरे की सीमा मे जाना भी पाप समझते थे, दूसरी ओर यवन शासक हिन्दू सस्कृति पर कुठाराघात कर रहे थे। मठ मन्दिर तथा धार्मिक सस्थान नष्ट किए जारहे थे। ऐसी दयनीय दशामे आपने देश और धर्म की रक्षाके लिए बीडा उठाया। श्रीरामानन्दजी ने अपने आध्यात्मिक उपदेशो, प्रवचनो और भजनो से देश का वातावरण शान्त कर दिया और मानव समाजको यह बता दिया कि प्रभु की प्राप्ति मात्र भक्ति से होती है। धर्म के प्रति होनेवाले दुराग्रहका आपने अन्तकर दिखाया। आपने बताया कि परमात्मा निस्सीम है, उसे प्राप्त करने के मार्ग भी निस्सीम है। मानव को धर्म के प्रति हठ नही करना चाहिए, धर्म का मुख्य प्रयोजन है परमात्मा की प्राप्ति। विना धर्म के मानव न तो इस लोक मे सुखी हो सकता है, न परलोक मे। जैसे विना पानी के मछलियां गति नही, कर सकती, वैसे विना धर्म के मानव परमात्मा की दिशा मे आगे नही बढ पाता। जो पृथ्वी तलका सत्य है, वही परलोक का सत्य है, जैसे हिमालय से अनेक नदियाँ निकलती है, और समुद्रमे विलीन हो जाती है, वैसे ही सभी धर्मो के सत्य उस परम सत्य मे विलीन हो जाते है, अत आत्मा का आत्मा से धर्म का धर्म से जाति का जाति से कोई विरोध नही है। सभी मानव एक समान है, और परमात्मा को प्राप्त

करने के अधिकारी है। परमात्मा की दृष्टि मे ऊचनीच धनी-निर्धन शिक्षित अशिक्षित का कोई भेद नही है पाच तत्त्वो से ही तो यह शरीर बनता है, मिट्टी भी वही है, पानी भी वही है, आग भी वही है, हवा भी वही है और आकाश भी वही है। तब मानव मानवो मे भेद क्या माना जाए। प्राणियो का मन ही मन्दिर है, वह परमात्मा का निवास-स्थान है। मोर मे भी वही है, कोयल मे भी वही है, गोरैया मे भी वही है। कूकर-शूकर मानव-दानव, कीट-पतत ये सब परमात्मा के चलने फिरते मन्दिर है। किसी को हीन समझना परमात्मा का अपमान करना है। यदि कोई यह कहता है कि मुझे पत्थर की मूर्ति मे तो परमात्मा का दर्शन होता है, पर जो पूज्य पुरुष ह, घरमे माता-पिता है, या नन्हे नन्हे बालक है, इनमे भगवान् दिखाई नही देता, तो ऐसा व्यक्ति विश्वास के योग्य नही है। भले ही कोई व्यक्ति घटी बजाकर मन्दिर मे आरती उतारता है, तीलक आदि लगाता है जप आदि भी करता है किन्तु अभिमान वश किसी का तिरस्कार करता है, तो वह धार्मिक नही है। परमात्मा की दृष्टि मे वह अपराधी है।

अत किसी प्राणी को सन्ताप नही पहुचाओ। निष्काम धर्मका पालन करो। अपनी ओर अपनि आत्मा की ओर लौटो। आप ससार मे रहते हुए, सबमे एक प्रभु का दर्शन करे, बस यही जीवन की पूर्णता है। सदा पवित्र कर्म करो, भगवान की मूर्ति का पूजन, दर्श, स्पर्श आदि करो, जो प्राणी सामने आए उसमे भगवान् की भावना करो, कही आसक्ति नही रखो, बडो का सत्कार करो, यदि परमात्मा को जल्दी प्रसन्न करना हो तो दीनो के प्रति दया करो-"दयया सर्व भूतेषु तुष्यत्याशु जनार्दन" सभी प्राणियो पर दया करने से जन-जनकी पीडा का निवारण करने वाले श्रीराघवेन्द्र भगवान जल्दी प्रसन्न हो जाते है। अत दीनो पर करुणा करो। जो समान है, उनसे मित्रता जोडो, नाम कीर्तन करो, सरलता बनाए रखो। सदा सत्सग करो। सत्संग अमृत है, दु संग विष है। अभिमान नही करो, ऐसा करने से मानव का कल्याण होता है ये जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी के उपदेश थे। आपकी शिक्षाओ और उपदेशो का यह परिणाम हुआ कि समाज मे जो दलित वर्ग था, जिसे यज्ञ-याग, पूजा-पाठ, देव-दर्शन आदि तक का अधिकार नही था, ऐसा वर्ग भी वैष्णव सम्प्रदाय मे दीक्षित होने लगा। आपके उदात्त सिद्धान्तो ने मानव मात्र को चाये कोई कितना ही पतित माना जाता हो, पावन बना दिया। आपका यह डिडिमघोष था कि—

अपि पापप्रसक्तोऽपि ध्यायन्निमिषमच्युतम्। सद्यस्तपस्वी भवति पंक्तिपावन-पावन ॥

भले ही कोई कितने बडे पापपूर्ण कर्मो मे प्रवृत्त हो रहा हो, यदि वह निमेषमात्र श्री भगवान् का ध्यान कर लेता है, तो वह तत्काल तपस्वी बन जाता है। और जो ब्राह्मण पंगतमे बैठकर भोजन नही करते और अपने को पवित्र जनाते है, वह उनसे भी पवित्र हो जाता है।

वास्तव मे जिस मजहब या सम्प्रदाय मे दीन-हीन को या पापी-पतित को कोई आश्रय नही मिलता वह मजहब मजहब नही। वह पन्थ पन्थ नही, वह धर्म धर्म नही। धर्म वही है, मजहब वही है पन्थ वही है, जो दीन-हीन पापी-पतितोको आश्रय देकर सदा ऊपर उठाने का प्रयत्न करता है जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी ने सभी मानव उस परमपिता परमात्मा के पुत्र है, इस मत वादका स्थिर किया है और मानवता के प्रति बडा उपकार किया है। जगदाचार्यजी की दिव्यघोषणा है—

"सर्वेप्रपत्तोरधिकारिण सदा सक्ता अशक्तापदयोर्जगत्प्रभो।

अपेक्षते तत्र कुलं बलं चनो नचापि कालोनचशुद्धतापिवै।" (श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर ४।५०)

श्रीरामानन्दाचार्यजी ने श्रीराघवानन्दाचार्यजी को अपना गुरु माना । आगे श्रीरामानन्दाचार्यजी की भी विशाल शिष्य परम्परा चली जिनमे श्रीपीपा, सेन, धन्ना, रैदास श्रीकवीर साहब आदि मुख्य है । इनके बारह प्रधान शिष्य थे जो सबके सब परमभागवतो के अवतार माने जाते है। इन सबने भी दिव्य पीठो की स्थापना की । सत्साहित्य का सृजन किया तथा भक्ति का सन्देश जनमानस तक पहुंचाया । ये द्वादश शिष्य है—

भावानन्द , सुरसुर, धनो, गालवानन्द, पीपा अनन्तानन्दो, नरहरि, रमादासयुक्त , कवीर ॥
योगानन्द , सुखकर सुखानन्द, सेनौ सुशीलावेते शिष्या निगतकलुपास्तस्य मुख्या अभूवन् ॥
(श्रीरामानन्दचरितम् पृ० २६)

ऐसी जन श्रुति है कि रामायण के निर्माता कविसम्राट श्रीतुलसीदासजी भी जो कि वाल्मीकि के अवतार माने जाते है वे भी रामानन्दी ही थे❀ । अत वैष्णव सम्प्रदाय मे दार्शनिक दृष्टि से श्रीरामानन्दाचार्यजी विशिष्ट आचार्यो मे गिने जाते है । आपने विशिष्टाद्वैतवाद की ग्लानि प्राय स्वरूपसे पुन स्थापना की सर्वेश्वर श्रीरामको अपना इष्ट माना । श्रीराम का नाम लीला धाम का प्रचार किया भक्ति ज्ञान समुच्चय को मोक्ष का साधन माना। भक्ति मे भी प्रपत्ति और शरणागति को श्रेयस्कर माना । आपने उपनिपदों की द्वैत तथा अद्वैत परक श्रुतियो का समन्वय किया। ब्रह्मसूत्र, गीता, उपनिपदो पर भाष्य किए जो आनन्दभाष्य के नामसे प्रसिद्ध है। इन सव भाष्यो के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि आपका पाण्डित्य अनुपम है ।

उपनिपदो का आधार लेकर आपने यह सिद्ध किया है कि यह जो नाम रूपात्मक जगत दिखाई देता है, यह ब्रह्मका परिणाम है। स्वय ब्रह्म मे कोई विकार नही होता। आपके परिणाम वाद का स्वरूप है कि कारण ही कार्य बन जाता है । जैसे घट का कारण मृत्तिका है। कुण्डल का कारण स्वर्ण है । यहा घट एवं कुण्डलरूप कर्म मृत्तिका एवं स्वर्ण ही है। इसलिए कार्य और कारण मे समानता है । कारण के गुण कार्य मे समाए रहते हे-"कारणगुणा कार्यगुणमारम्भते ।" यह ससार कार्य है और अविकृत ब्रह्म उसका कारण है। जगत् मे तीन ही तो तत्त्व है अचित् चित् और ईश्वर। अचित् से तात्पर्य जड वर्ग से है। उसके अज्ञान, अचेतन, प्रकृति, विश्वयोनि, अव्यक्त अजा आदि अनेक नाम है। चित् जीव है, और चिद् अचिद् विशिष्ट ईश्वर है। इसी प्रकार कारण मे भी तीन पदार्थो का होना आवश्यक है। इसे दर्शन की भाषा मे 'त्रैतवाद' कहा जाता है । उसका अर्थ हुआ जिस एक ब्रह्म के भीतर तीन पदार्थ छिपे हुए हैं, वही ब्रह्म तीन रूपो मे प्रकाशित हो रहा है । उस एक का ज्ञान होने पर सब जान लिया जाता है—

"यथा ! एकेन मृत्पिण्डेन विज्ञातेन सर्व मृण्मय विज्ञातं भवति" (छा० उ०) यहा कारण ब्रह्म और कार्य ब्रह्म समान है । कारण ही कार्य रूपेण परिणत होता है । अन्तर इतना ही है

❀ यह इतिहास से पुष्टनिर्विवाद तथ्य है कि जगद्गुरु श्रीतुलसीदासजी श्रीरामानन्दीय ही नहीं वे जगदाचार्य आनन्दभाष्यकार के वाद तीसरी पीढी मे पञ्चगङ्गाघाट के विश्वविख्यात आचार्यपीठ के आचार्य भी थे। आनन्दभाष्यकार जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी (वि स १३५६–१५३२) जगद्गुरु श्रीअनन्तानन्दाचार्यजी (१३६३–१५४० वि स) जगद्गुरु श्रीनरहर्यानन्दाचार्यजी (१४९१–१५९९ वि सं) कविसम्राट् जगद्गुरु श्रीतुलसीदासजी (१५५४–१६८० वि सं) सम्पादक

कि कारण को हम शास्त्र और गुरु उपदेश से जान सकते है। और कार्य वर्ग को प्रमाणो या चर्म चक्षुओ से देख सकते है। अत संसार का कारण जो ब्रह्म है, वह अव्यक्त जड प्रकृति, अव्यक्त चेतन एवं ईश्वर इन तीनो की समष्टि है। यही सूक्ष्म ब्रह्म कार्य रूप से स्थूल जगत् बन जाता है। तात्त्विक दृष्टि से कार्य एव कारण मे कोई अन्तर नही है। ससार ब्रह्म से ओत-प्रोत है, ब्रह्म मे सव है। सव मे ब्रह्म है। यह सब होनेपर भी वह ब्रह्म एक ही है। क्योकि श्रुति का वचन है–"एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म" इसका यह तात्पर्य नही कि जगत है ही नहीं। क्योकि अर्थ क्रिया कारिता प्रत्यक्ष दिखाई देती है, और फिर वेदो मे भी ईश्वर–जीव जगत् का अस्तित्व स्पष्ट सुनाई देता है।

ब्रह्म ज्ञान के लिए भक्ति का आश्रय लेना चाहिए। भक्ति मे भी प्रपत्ति और शरणागति ही मुख्य है। प्रपत्ति मे कर्ताकी विशेपता होती है, और शरणागति मे शरण्य की जिसकी शरण ली जाती है। यथा—

"मुख्य शरण्य शरणागतौ च स्यात्कर्तृवैशिष्ट्यमयी प्रपत्ति।"

प्रपत्ति कलिकाल मे कठिन है, इसमे पकड जीव की होती है, और शरणागति मे जीव को कुछ करना नही पडता, इसमे पकड ईश्वर की होती है। अत वडी से बडी विपत्ति आने पर या आत्मकल्याण के लिए मात्र श्रीराघवेन्द्र रामभद्रजी की शरण मे जाओ। ऐसे आपके दार्शनिक तत्त्व विश्वमान्य है।

यह किसी देश का सौभाग्य होता है, जिसमे ऐसे सम्प्रदाय प्रवर्तक अवतारी पुरुष आते है। सबसे अधिक सौभाग्य उस धरती का होता है, जिसमे आचार्य अपनी लीला भूमि बनाते हैं।

अहमदाबाद श्रीकोसलेन्द्रमठ के अधिपति महामहिम श्री स्वामी रामेश्वरानन्दाचार्यजी महाराज, श्रीरामानन्द सम्प्रदाय के ३९वे आचार्य महामहोपाध्याय जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी श्रीरघुवराचार्य जी वेदान्तकेसरीजी के सौवर्ष पूर्ति प्रसंग मे इस स्मृति ग्रन्थ का प्रकाश करने जारहे है। यह अत्यन्त हर्ष की वात है। सुयोग्य उत्तराधिकारी ही अपने पूर्वजों की जन्म शताब्दियाँ मनाया करते है। हमारा उन युग पुरुष अशावतार आचार्य श्रीरामानन्दाचार्यजी के चरणो मे शतश नमन है। मानवता को उनके जीवन दर्शन से सदा प्रेरणा प्राप्त होती रहे ईश्वर से हम यही प्रार्थना करते है। श्री स्वामी रामेश्वरानन्दाचार्यजी महाराज का यह स्मृति ग्रन्थ प्रकाशन का कार्य आज के भौतिकवादी युग मे नितान्त उपयोगी और सर्वथा स्तुत्य है।



फलाधिकरणव्याख्या

[ले० वैदेहीकान्तशरण]

जीवों के कर्मो का यथोचित फल देनेवाला कौन है? इस सम्बन्ध मे वेदान्त दर्शन का फलाधिकरण निरूपित किया गया है।

इस अधिकरण मे श्रीशङ्कराचार्य, श्रीरामानुजाचार्य, श्रीमध्वाचार्य, श्रीवल्लभाचार्य, श्रीनिम्बार्काचार्य, एवं श्रीकण्ठाचार्य प्रभृति भाष्यकारो के मत से केवल चार सूत्र है "फलमत उपपत्ते।

श्रुतत्वाच्च । धर्मं जैमिनिरत एव । पूर्वं तु बादरायणो हेतुव्यपदेशात् ॥" परन्तु आनन्दभाष्यकार जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी के मतसे इसके पाँचवा सूत्र "स्मर्यते च ।" सूत्र भी है। कुछ लोग यहाँ आपत्ति करते है कि जब अधिकरण मे प्रथम 'श्रुत त्वाच्च ॥' सूत्र कहा ही जा चुका हैं, तब पुन "स्मर्यते च" सूत्र व्यर्थ है । क्योकि श्रुति से स्मृति निर्बल होती है और जब श्रुति से ही सिद्धान्तसिद्ध कर दिया गया तब स्मृति से सिद्ध करना हास्यास्पद है। जहाँ सूर्य का ही प्रकाश हो वहाँ दीपक दिखाना व्यर्थ है ।

परन्तु यह आपत्ति व्यर्थ है। सम्पूर्ण वेदान्त दर्शन मे अनेको सूत्रो १।२।६, १।२।२५, २।३।४७, ३।१।१४, ३।१।१९, ४।१।१०, ४।२।१४, ४।३।११ आदि मे स्मृति द्वारा सिद्धान्तो को सिद्ध किया गया है । पुन स्मृति से तात्पर्य यहाँ ऋषि प्रणति स्मृतियो से न होकर श्रीमद्भगवद्गीता से है जो श्रुति (उपनिषदो) का सारतत्त्व है। "सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दन । पार्थोवत्ससुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत् ॥" अत श्रुति ही नही अपितु "गीता सुगीता कर्तव्या किम न्यै शास्त्रविस्तरै । या स्वय पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनि श्रिता ॥" के अनुसार साक्षात् परमेश्वर के श्रीमुखसे निर्गत वाणी होने से श्रुतियो से भी अधिक प्रामाणिक है। तभी वेदान्त दर्शन के प्रस्थानत्रयी मे ब्रह्मसूत्र, उपनिषद् और श्रीमद्भगवद्गीता का ग्रहण है और वेदान्त के प्रकरण मे इसकी महत्ता सर्वाधिक सर्वमान्य है। अत आनन्दभाष्यकार द्वारा इस "स्मर्यते च" सूत्र को मानना विवेक पूर्ण एवं युक्त है। पुन इस फलाधिकरण मे उक्त 'श्रुतत्वाच्च' सूत्रोक्त उपनिषद (श्रुति) वचन से इस 'स्मर्यते च' सूत्रोक्त श्रीमद्भगवद्गीता (स्मृति) वचन अधिकतर स्पष्ट होने से और भी उपयोगी है। अत आनन्दभाष्यकार द्वारा इसका ग्रहण योग्य है।

अब उक्त फलाधिकरण के पाचो सूत्रों की व्याख्या की जाती है—

[१] फलमत उपपत्ते ॥ब्र सू ३।२।३७॥

व्याख्या —'फलनिष्पत्तौ' के अनुसार साधारणतया फलशब्द का अर्थ क्रिया की निष्पत्ति या सिद्धि होता है। किसी भी क्रिया के तीन परिघटक होते है—१ करण (साधकतम करणम्) २ व्यापार (क्रिया निष्पत्ति अनुकूल प्रयत्न) और ३ फल (क्रिया निष्पत्ति)। 'बाणेन हतो मृग' मे बाण मृगहननक्रियानिष्पत्ति मे अत्यन्त उपकारक (प्रकृष्टोपकारक) होने से करण है, हनन क्रिया के लिये निष्पत्ति के लिये प्रयत्न व्यापार है और मृग हत्या रूप कार्य निष्पत्ति फल है। कर्त्ता जो भी क्रिया करता है वह दो प्रकार की होती है ईप्सित क्रिया और अनीप्सित क्रिया । जिस क्रिया को करने मे कर्ता की इच्छा रहती है वह ईप्सित क्रिया और जिस क्रिया को कर्त्ता की इच्छा नहीं रहने पर भी अपने व्यापार द्वारा आनुषङ्गित रूप से अनायास प्राप्त कर लेता है, उसे अनीप्सित कहते है। अनीप्सित दो प्रकार के होते है उपेक्ष्य और द्वेष्य । 'ग्रामं गच्छन् तृणं स्पृशति' मे कर्ता को ग्राम जाना क्रिया ही अभिलषित (ईप्सित) है, तृण का स्पर्श करना नहीं। अत यहाँ तृण स्पर्श क्रिया उपेक्ष्य कर्म है। 'ओदनं भुञ्जानो विषं भुंक्ते' मे कर्त्ता को भात खाना ही अभीष्ट है विष भक्षण नहीं । यह विष भक्षण अनभिलषित (अनिष्ट) होते हुये भी भोजन व्यापार रूप क्रिया मे संलग्न (अपृथक्) है । अत यह द्वेष्य कर्म है । प्रकृत 'फलमत उपपत्ते' सूत्र मे प्रयुक्त फल शब्द केवल क्रिया निष्पत्ति रूप फल का बोधक नही अपितु निष्पत्ति के लक्ष्य (प्रयोजन) रूप फल का बोधक है। कर्त्ता कोई भी कर्म किसी न किसी प्रयोजन से

कर्ता है। किसी कार्य को करने की इच्छा ही प्रवृत्ति का कारण है। तर्क प्रकाश मे लिखा है 'प्रथमत फल ज्ञानम्। तत फलेच्छा। तत इष्ट साधनता ज्ञानम्' तत उपायेच्छा' तत प्रवृत्ति-रूत्पद्यते।' अत क्रिया का मुख्य फल प्रयोजन (अभीष्ट) की प्राप्ति है और वह एक शब्द मे फल है सुख की प्राप्ति (अनुकूल वेदनीय सुखम्)। चरम प्रयोजन आत्यन्तिक सुख स्वर्ग (स्वर्ग कामो यजेत) अथवा साकेत प्राप्ति या मोक्ष है। श्रीमद्भगवद्गीता मे कर्म फलो को तीन प्रकार का कहा है "अनिष्टमिष्टमिश्र च त्रिविधं कर्मण फलम् गी १८।१२" जीवों के कर्मो के सम्बन्ध मे भी कहा गया है "कर्माशुक्लाकृष्ण योगिनस्त्रिविधमितरेषाम् ॥यो सू ४।७। अब जीवो के उक्त त्रिविध कर्मो का फल (पुरुसकार या परिणाम) किसके द्वारा मिलता है? इस प्रश्न के उत्तर मे उक्त सूत्र का 'अत' पद आया है। अत कारण बोधक आनुमानिक अव्यय है और यह निगमन का निरूपक हे, इसके पूर्व सूत्र मे ब्रह्म को सर्वगत (सर्वव्यापक सर्वशक्तिमान्) कहा जा चुका है 'अनेन सर्वगतत्वमायामशब्दादिभ्य ॥ ब्र सू ३।२।३६॥' उसी सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, सर्वशक्ति-मान् ब्रह्म को कारण का व्यपदेश करते हुये निगमन (पक्षे साध्योपसंहारवचन निगमनम्) बोधक अत पद से ज्ञापित किया गया है। जीवोके शुक्ल कृष्ण मिश्र कर्मो का क्रमश इष्ट अनिष्ट मिश्र फल देने वा सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् ब्रह्म ही है। ऐसा क्या? कोई दूसरा कर्म फल प्रदाता क्यो नही है? तो इस प्रश्न के उत्तर मे कहा गया है "उपपत्ते" क्योकि उपपत्ति (युक्ति) से ब्रह्म ही कर्म फल प्रदाता सिद्ध होता है। अव वह उपपत्ति क्या है? तो कर्मफल प्रदान के लिये दो वातो की अत्यन्त आवश्यकता है—प्रथम कर्मफल प्रदाता सर्वज्ञ हो, सर्वज्ञ का तात्पर्य कर्मो के केवल बाह्य ज्ञान से नही अपितु कर्ता के अन्त करण कार्यकरने का उद्देश्यो के ज्ञान से भी है। सर्वज्ञ केवल ब्रह्म ही है, वही विश्व के सभी जीवो के सभी कार्यो को पूर्णरूपेण बाह्याभ्यन्तर रूप से भलिभाति जानता है। अत वही कर्मो पर यथोचित विचार पूर्वक कर्म फल निर्धारण करने मे योग्य है। द्वितीय कर्मफल प्रदाता सर्वशक्तिमान् हो। सर्वशक्तिमान् ही सभो के कर्मो को सतत स्मरण रखने एवं दण्ड या पुरस्कार देने मे समर्थ हो सकता है। इस प्रकार ब्रह्म ही अनादिकाल से जीवो के सभी कर्मो को यथार्थत जानने वाला, उसको सतत स्मरण रखने वाला उसका यथो चित निर्णण करने वाला तथा उसको फल प्रदान करने मे समर्थ है। क्योकि वही नित्यज्ञानवान् (बुद्धि इच्छा प्रयत्ना नित्याऽनित्याश्च। नित्या ईश्वरस्य, अनित्या जीवस्य। त सं। समवायसम्ब न्धेन नित्य ज्ञानवान् ईश्वर। पद कृत्य) और सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिमान् है। अत सभी जीवों के सभी कर्मो को पूर्णरूपेण जाननेवाला वही ब्रह्म ही सभी जीवो के सभी कर्मो पर पूर्णरूपेण विचार कर उसका यथोचित फल निर्धारण एवं फल प्रदान मे समर्थ है। यदि कहा जाय कि प्रकृति फल प्रदान करती है। तो यह ठीक नही। क्योकि प्रकृति ज्ञानरहित (जड) होने से कर्मो के जानने एवं उसके फल की व्यवस्था करने मे समर्थ नही है। यदि कहे कि जीवात्मा ही कर्मो का फल देती है, तो यह भी ठीक नही। क्योकि जीवात्मा अल्पज्ञ और अनित्यज्ञानवान् होने से वह यथो चित कर्मफलो का निर्धारण एवं अल्पशक्तिमान् होने से कर्मफल प्रदान करने मे समर्थ नही है। पुन जीव स्वय ही कर्म कर्ता कर्मफल भोक्ता और कर्मफल प्रदाता नही हो सकता। मनुष्य चाहता है सुख भोगना परन्तु उसे भोगना पडता है दु ख यदि कहे कि एक जीव दूसरे का कर्म फल प्रदाता होगा। तो वह भी पूर्वोक्त अल्पज्ञादि कारणो से नही हो सकता। यदि कहा जाय कि देवता कर्म फल प्रदाता है, तो वह भी ठीक नही। क्योकि देवता भी सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् नही है, अत वे भी कर्मफलप्रदाता नही हो सकते। ज गु श्रीतुलसीदासजी ने

इनके सम्बन्ध मे कहा है–"देवदनुज मुनि नाग मनुज सब, माया विवश बेचारे।" मीमासको के देवता तो सम्प्रदानकारक सूचक पद (शब्द) मात्र है। इसके अतिरिक्त इनका कुछ भी स्थितित्व नही है। देवता मन्त्रात्मक होते है और देवता की पृथक् सत्ता उन मन्त्रो को छोडकर अलग नही होती जिनके द्वारा उनके लिये होम का विधान है। दूसरे शब्दो मे हवनादि के लिये सम्प्रदान कारक सूचक शब्द मात्र देवता है। वे (देवता) केवल हविष त्याग के कर्म पदमात्र अर्थात् शब्द मात्र है। 'विग्रहवती देवता भवति न वा भवति?' के प्रश्न पर मीमासकों का मत है 'न भवति'। अत मीमासको के देवता कर्मफल प्रदाता हो ही नही सकते। वेदान्तानुसार अग्नि, वायु आदि देवताओ की अपनी कोई शक्ति नही है, वह ब्रह्म की शक्ति से ही शक्तिमान है (केनोपनिषद् देखें)। अत वे कर्मफल प्रदाता नही हो सकते। उनकी उपासनाओ का फल भी ईश्वर द्वारा ही दिया जाता है और वह फल अनित्य होता है—

"यो यो या या तनु भक्त श्रद्धयार्चितुमिच्छति। तस्य तस्याचला श्रद्धा तामेव विदधाम्यहम्॥
स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते। लभते च तक कामान्मयैव विहितान्हितान्॥
अन्तवत्तु फल तेषा तद्भवत्यल्पमेधसाम्। देवान्देवयजोयान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि॥गी०७।२१ २३।

इस प्रकार उपपत्तियो से ब्रह्म ही जीवो का कर्म फल प्रदाता सिद्ध है।

[२] श्रुतत्वाच्च ॥ब्र सू. ३।२।३८॥

युक्तियो से तो जीवो का कर्मफल प्रदाता ब्रह्म ही सिद्ध होता ही है। पुन श्रुतियों (प्रमाणं परमं श्रुति –मनु २।१३) से भी ब्रह्म ही जीवोका कर्मफल प्रदाता सिद्ध होना है। शुक्ल यजुर्वेद मे ब्रह्म को कहा गया है–"तू विश्वपोषक है तथा तू ही निरीक्षक एक है। तू कर रहा नियमन तथा तू ही प्रवर्तन कर रहा। पालन सभी का हो रहा तुझसे पिता की भाति है। निज पोषणादिक शक्तियाँ तू खोल कर मुझ को दिखा। फिर से दिखा एकत्र करके तू इन्हे। अब देखता हूँ रूप तेरा तेजमय कल्याण तम। वह जो परात्पर पुरुष है। वह हूँ हमी—

"पूषन्नेकर्षे यम सूर्यप्राजापत्यव्यूहरश्मीन् समूह। तेजोयत्तेरूप कल्याणतम तत्ते पश्यामि।
योऽसावसौ पुरुष सोहमस्मि ॥शु य ४०।१६॥"

अत वेद (श्रुति) मे ब्रह्म को ही विश्व का पोषणकर्ता, द्रष्टा (नीरीक्षक) और नियमन कर्ता कहा गया है। "भूतंभव्यं भविष्य च सर्वं वेदात्प्रसिद्ध्यति॥ मनु ॥"

[३] धर्मं जैमिनिरत एव ॥ ब्र.सू ३।२।३९॥

परन्तु उन्ही कारणो (युक्ति एव श्रुति) से ही मीमासा सूत्र कार आचार्य जैमिनी ब्रह्म को कर्मफल प्रदाता न मानक धर्म को ही कर्मफल प्रदाता मानते है–ऐसा इस सूत्र से यहाँ पूर्व पक्ष उपस्थित किया गया है। जैमिनि =आचार्य अतएव इसीलिए (इन्ही उक्त कारणो से) धर्मम्= धर्म को फलदाता कहते है। इसकी उपपत्ति यह है कि फल तो कर्म ही का होता है। बिना कर्म का फल नही होता अर्थात् कर्म के अभाव मे फलका भी अभाव होता है। इस प्रकार अन्वयव्यतिरेक से कर्म ही फल का कारण है–कर्मसत्त्वे फल सत्ता। कर्माभावे फलाभाव। तब फल का कारण वा फल प्रदाता भी कर्म ही है। ओदनं पचति, ओदन भुक्ते। भात पकाने का कर्म करता है और भात रूप फल स्वत मिल जाता है। इसमे किसी फलप्रदाता की आवश्यकता नही होती। श्रुति मे भी कहा है–'स्वर्गकामो यजेत।' यज्ञ करने से स्वत स्वर्ग की प्राप्ति हो जाती है। अत. कर्म (धर्म) ही उपपत्ति (युक्ति) एवं श्रुति से फलप्रदाता है

अध्यात्म रामायण मे भी ऐसा ही लिखा है—

"सुखस्य दु खस्य न कोऽपिदाता परोददातीति कुबुद्धि रेष ।
अहं करोमीतिवृथाभिमानं, स्वकर्मसूत्रे ग्रथितोहिलोक ॥अ. रा २।६।६

जैनाचार्य भी ऐसा ही कहते है—

"स्वयं कृत कर्म यदात्मना पुरा, फलं तदीयं लभते शुभाशुभम् ।
परेण दत्तं यदि लभ्यते स्फुटं, स्वयं कृतं कर्म निरर्थकं तदा ॥"

परन्तु यह कथन ठीक नही है। अत आगे का सूत्र है—

[४] पूर्वं तु बादरायणो हेतु व्यपदेशात् ॥ब्र सू ३।२।४०।

तु=परन्तु जैमिनि का कथन ठीक नही है। बादरायण=ब्रह्म सूत्र कर्ता आचार्य । पूर्वम्=पूर्वोक्त ब्रह्म को ही कर्मफल प्रदाता मानते है। हेतुव्यपदेशात्=क्योकि हेतु (कारण) के विर्वचन (व्यपदेश) से ब्रह्म का ही कर्मफल प्रदाता होना सिद्ध होता है।

वह हेतुओ का निर्वचन इस प्रकार है—कर्म क्षणिक अर्थात् नाशवान् है। वह चिरकाल मे नष्ट हुआ कर्म स्वर्गादि फल का प्रदाता नही हो सकता—

"चिरध्वस्तं फलायाल न कर्मातिशय विना ।
सम्भोगो निर्विशेषाणा न भूतै संस्कृतैरपि ॥न्या कु,१।९॥"

पुन कर्म जन्य अदृष्ट (धर्म) भी जड होने से वह स्वयं फलप्रदान नही कर सकता। अत इसके नियमन के लिये चेतन अधिष्ठान (ब्रह्म) की आवश्यकता है । इस प्रकार न तो क्षणिक परिवर्तनशील, जड कर्म स्वत फलप्रदाता हो सकता है और न तज्जन्य जड अदृष्ट (धर्म) ही। अपितु चेतन अधिष्ठाता ब्रह्म ही कर्म फलप्रदाता हो सकता है ।

न्याय सूत्र कार गौतम भी इसी प्रकार इस प्रकरण मे हेतु का निर्वचन करते हुये लिखते है

"ईश्वर कारणं पुरुषकर्माफल्यदर्शनात् ॥न्या कु ४।१।१९॥"

भाष्यकार वात्स्यायन इसके भाष्य मे लिखते है कि संसार मे सुख की इच्छा करने वाले पुरुष अपने इच्छित सुखफलको अवश्य प्राप्त करते है–ऐसा नही होता। इससे अनुमान प्रमाण द्वारा सिद्ध होता है कि पुरुपो के लिये कर्मो के फलो की प्राप्ति होना दूसरे के अधीन है। वह जिसके अधीन है वह ईश्वर है—

"पुरुपोऽयं समीहमानो नावश्यं समीहाफलं प्राप्नोति तेनानुमीयते पराधीनं पुरुषस्य कर्मफलाराधनमिति यदधीन स ईश्वर तस्मादीश्वर कारणमिति ॥"

यदि कर्म के ही अधीन फल रहता तो कर्म करने के साथ ही कर्मफल भी मिलजाता किन्तु ऐसा देखने मे नही आता । लोग कर्म करते है और उसका फल तत्काल नही मिलता है। इससे प्रमाणित होता है कि कर्मफल की प्राप्ति पराधीन है। जिसके अधीन है । वही ईश्वर है।

"शुभंवाऽप्यशुभं कर्म फलकालमपेक्षते । शरद्येव फलात्याशु शालिर्नसुतमौक्वचित् ॥"

पुन गौतम इस पर पूर्वपक्ष उपस्थित करते है–

न पुरुषकर्माभावे फलानिष्पत्तो ॥न्या, सू ४।१।२०॥

इसके भाष्य में वात्स्यायन लिखते है—

"ईश्वराधीना चेत्फलनिष्पत्ति स्यादपि तर्हि पुरुषस्य समीहामन्तरेण फलं निष्पत्ति ॥वा. भा॥"

अर्थात्—पुरुष के कर्म को नही करने पर कर्मो का फल नही मिलने के कारण यह कथन ठीक नहीं है कि ईश्वर कर्मो का फल प्रदाता है। यदि कर्मो के फल की सिद्धि ईश्वर के अधीन हो तो पुरुष के प्रयत्न के बिना ही अर्थात् कर्म किये बिना ही फल की प्राप्ति होने लगेगी। परन्तु ऐसा नही होता। अत ईश्वर कर्मफल प्रदाता नही है।

इस पूर्वपक्ष का उत्तर देते हुये कहा गया है—

"तत्कोरित्वादहेतु ॥न्या सू ४।१।२१॥"

पुरुषकारमीश्वरोऽनुगृह्णाति, फलाय पुरुपस्य यतमानस्येश्वर फलं सम्पादयति। यदा न सम्पादयति तदा पुरुषकर्मफलं भवतीति। तस्मादीश्वरकारितत्वादहेतु पुरुषकर्माभावे फलानिष्पत्तेरिति ॥वा भा

अर्थात्—जीवो के प्रयास (प्रयत्न) को ईश्वर अनुग्रह करता है। प्राणियो का जैसा कर्म होता है वैसा ही फल ईश्वर देते है। अत फल की सिद्धि पुरुपकार (कर्म करने वाले) और ईश्वर (फलप्रदान) करनेवाले दोनो पर है।

इससे उपरोक्त जैनाचार्य की आपत्ति का भी विनास हो जाता है। इन्ही हेतुओ के व्यपदेश (निर्वचन) के कारण बादरायण पूर्वसूत्रोक्त ब्रह्म को ही कर्मफल प्रदाता मानते है।

यहाँ स्मरणीय है कि इस सूत्रोक्त "हेतुव्यपदेशात्" से सिद्ध है कि श्रुति से भी हेतु को प्रमाण मे प्रमुख मानते है क्योकि हेतु (कारण या साधन) से ही साध्य की सिद्धि होती है एवं तर्क (अविज्ञात तत्त्वेऽर्थेकारणोपपत्तितस्तत्त्वज्ञानार्थमूहस्तर्क—न्या सू १।१।४०) के पश्चात् ही निर्णय (विमृश्य पक्षप्रतिपक्षाभ्यामर्थावधारणं निर्णय न्या सू १।१।४१) होता है—"साधनोपलम्भजन्मा तत्त्वावबोधोनिर्णय न्या. मं।" तथा निर्णय को ही प्रमाणो का फल कहा गया है—"निर्णयो निश्चय स च प्रमाण फलम्—त सं दी' 'निर्णयोऽवधारणज्ञानम्। तच्च प्रमाणाना फलम् ॥त भा. 'निर्णयस्तत्त्वज्ञान प्रमाणाना फलम् ॥ वात्स्यायन"' "तत्त्वे विप्रतिपन्नाना वाक्यानामितरेतरम्। विरोध परिहारोत्र निर्णयस्तत्त्वदर्शनम् ॥" पुन श्रुतियो का भी समन्वय (विरोध परिहार और एक वाक्यता) तथा अर्थानुसन्धान और अर्थावधारण भी तर्क ही के द्वारा होता है—"तर्को वै ऋषिरुक्त—यास्क।" "आर्षं धर्मोपदेशं च वेदशास्त्राविरोधिना। यस्तर्केणानुसन्धत्ते स धर्मं वेदनेतर ॥मनु० १२।१०६॥" अत बादरायण अपना मत "हेतुव्यवदेशात्" से ही निर्धारित करते हैं। पुन बादरायण इसको स्मृति प्रमाण से भी पुष्ट करते है—

[५] "स्मर्यते च ॥ब्र सू ३।२।४१॥

श्रीमद्भगवद्गीता मे भगवान् स्वय कहते है—

"तानहं द्विषत क्रूरान्ससारेषु नराधमान्। क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेवयोनिषु ॥गी १६।१९॥"

अत परमेश्वर ही कर्मफल प्रदाता है। यह बात स्मृति से भी सिद्ध है। श्रुति से प्रमाणित करने के बाद पुन स्मृति से प्रमाणित करने का कारण यह है कि श्रुति के अर्थ का समुचित ज्ञापन स्मृति से ही होता है और कहा गया है—'इतिहासपुराणाभ्या वेद समुपबृंहयेत्। बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रहरिष्यति ॥" "वेद स्मृति सदाचर स्वस्य च प्रियमात्मन। एतच्चतुर्विधं प्राहु साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥" अत स्मृति के द्वारा श्रुति को ही पुष्ट किया गया है। क्योंकि श्रुति परम प्रमाण है—"प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते। एन विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता ॥"

❀

卐 श्रीमद्भगवद्गीतार्थचन्द्रिका–परिशीलन 卐

(ले०विद्यावाचस्पति, महामहोपाध्याय, डा० श्रीउमारमणझा एम ए न्यायाचार्य, पी एच डी , डी लिट्
प्रवाचक तथा दर्शन विभागाध्यक्ष, श्रीरणवीर केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ शास्त्रीनगर, जम्मूतवी.१८०००४)

श्रीगौरीतनयं गजेन्द्रवदन लम्बोदर शङ्करम् विघ्नेशं वरदायकञ्च कपिलं कार्येषु सिद्धिप्रदम् ।
भक्तानामभयंकर प्रतिपदं ज्ञानाकर कीर्तिदम् श्रीविद्यादिविवर्धकं गणपतिं श्रीविघ्नराज भजे ॥१
तर्के यस्य गतिसदाऽप्रतिहता शास्त्रेषु वाचस्पति लेब्धो येन हि बालकृष्णसदृशो भाग्येन प्राध्यापक ।
दैव्यां वाचि रति प्रसन्नवदन स्वाचारवद्धादर स्वामी श्रीयुतपूजितो रघुवर पायात्स न स्वर्गत ॥२
सत्ये धर्मसम सदाक्षितितले मूर्ति र्विवेकाकृति गाम्भीर्ये जलधि क्षमाऽवनिसमाऽसीद्यस्यनैसर्गिकी।
व्याख्या–भाष्य–निबन्धलेखनपटुर्वक्ताविपश्चिद्वर पूज्यो यो विबुधोऽधुना रघुवरो नाकेऽपि राराजते॥३
मीमांसासु विचारणे कृतमति विज्ञेषु बद्धादरो विद्यावान् विनयी नितान्तसरल ख्यातो जगन्मण्डले ।
रामानन्दगुरौ सदानतशिर काये भृशकान्तिमान् स्वर्गस्थो विबुधोविभु रघुवर पायादपायाच्चिरम् ॥४
नत्वा रामञ्च कृष्णञ्च पूज्य रघुवर बुधम् । गीतार्थचन्द्रिकाभाष्यं संक्षेपेण विविच्यते ॥५

श्रीरामानन्दसम्प्रदाय के विभूतिस्वरूप महामहोपाध्याय जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरघुवराचार्यजी का पाण्डित्य विश्वविख्यात है । उनके प्रशिष्य आचारविचारनिष्ठ स्वामी श्रीरामेश्वरानन्दाचार्यने अपने परम गुरु की स्मृति मे कुछ विद्वानो के निबन्धरूप कुसुमो से श्रद्धाञ्जलि अर्पित करने का निश्चय किया है । उनके ही आग्रह से मै पूज्य आचार्य श्रीरघुवराचार्यजी की स्मृति मे उनके ही गीताभाष्य गीतार्थचन्द्रिका के उपर यथामति विवेचन करता हूँ ।

महामहोपाध्याय श्रीरघुवराचार्यजी ने विभिन्न शास्त्रीय ग्रन्थो का गहन अध्ययन करके वेदान्त शास्त्र के सूत्र पर विवृति श्रीरघुवरीयवृत्ति लिखकर विद्वानो के लिए वेदान्त के वचनो को और भी सरल एवं चित्ताकर्षक बना दिया है। वेदान्तशास्त्र के ही प्रतिपादक श्रीमद्भगवद्गीता के ऊपर अर्थचन्द्रिका जैसी टीका का निर्माण करके उन्होने गीता के सूक्ष्मभावो को भी सरल बनाकर विश्व की जो सेवा की है वह अवर्णनीय है । प्रस्तुत निबन्ध मे गीतार्थचन्द्रिका के वैशिष्ट्य पर प्रकाश डाला गया है । गीतार्थचन्द्रिका के प्रारम्भ मे ही आचार्य श्रीरघुवराचार्य ने श्रीराम का स्मरण इन शब्दो मे किया है—

जगन्नाथोऽनाथावनदृढमतिस्सर्वगतिक स्वतन्त्रस्सर्वज्ञो निरवधिककल्याणगुणक ।
विरिञ्चेशाद्यैरमरपतिभि स्वर्चितपद परेश श्रीरामो विहरतु हृदब्जे मम चिरम् ॥

श्रीराम की स्तुति करके उन्होने अपने सम्प्रदाय के प्रमुख आनन्दभाष्यकार जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्यजी का गुणगान इस प्रकार से किया है—

परैर्वेदान्तार्थे कलुषितपथं प्रापयति यो विशिष्टाद्वैताख्यं प्रथितमतमेतत्प्रकटयन् ।
परप्रत्यग्भेदं श्रुतिशिरसिसिद्धं विशदयन् यती रामानन्द सहि सुगुणसिन्धुर्विजयते ॥

अपने पूज्य गुरु आचार्यजी के विषय मे वे लिखते है कि जिनके उपदेश को पाकर मै मायारूप समुद्र की आग (दु ख) को जानने मे तथा उससे छुटकारा पाने मे समर्थ हो सका, वेदान्त के विशिष्ट आनन्दप्रदतत्त्वो को जान सका, जिनकी वाणी मिथ्यावाद (या मायावाद) को

ध्वस्त करने मे समर्थ है, उस वेदशास्त्रमर्मज्ञ दया के समुद्र अपने आचार्य को नमस्कार है।१

सभी उपनिषदो के सारभूत गीता के उपर श्रीशङ्कराचार्य, रामानुजाचार्य, वल्लभाचार्य, मध्वाचार्य तथा अन्यान्य सम्प्रदायो के विभिन्न विद्वानो ने अपनी विद्वत्ता से परिपूर्ण व्याख्या ग्रन्थो का निर्माण किया है। भगवद्रामानन्दाचार्यकृत आनन्दभाष्यटीका भगवद्गीता के ऊपर एक अच्छा व्याख्याग्रन्थ है। आनन्दभाष्य के ऊपर विद्वन्चक्रचूडामणि विचारनिष्ठ धार्मिक महामहोपाध्याय स्वामी रघुवराचार्य न्यायोपाध्याय मीमांसोपाध्याय, व्याकरणाचार्य, वेदान्तकेसरी साख्यशास्त्रमर्मज्ञ ने भाष्य लिखते हुए स्वय ही गीतार्थचन्द्रिका मे लिखा है—

सम्यगालोच्य गीताया भाष्यमानन्दसज्ञकम्। कुर्वेऽर्थचन्द्रिका तस्याष्टीका तद्भाष्यसम्मताम्॥

अर्थचन्द्रिका के प्रारम्भ मे ही उन्होने ब्रह्मस्वरूप पुरुषोत्तम राम का वर्णन करते हुए लिखा है

अथ दिव्यज्ञानानन्दैकरूपो निरस्तसमस्ताविद्यदोषगन्धस्वाभाविकापरिमितनित्यज्ञानबलैश्वर्यबीर्यतेजश्शक्त्याद्यखिलकल्याणगुणगणोऽप्रमेयाचिन्त्याद्भुतपराक्रमोत्साहसमन्विताातिशयसौकुमार्योदार्यधैर्यमाधुर्यलावण्यकारुण्यसौशील्यसौजन्यवात्सल्याद्यसख्येयासाधारणगुणगणजलधिदृष्टचित्तापहारिशरण्यमत्यसन्धशरणागतवत्सलत्वादि धर्मविशिष्ट प्रचण्डमार्तण्डकोटिकान्तिकमनीयकलेवरो ब्रह्मादिस्थावरान्ताखिल जगदुदयविभवलयलीलो हिरण्यगर्भोग्रेन्द्राद्यखिलदिविषद्वन्द्यपादारविन्दद्वन्द्व प्रणतकल्पपादपोऽखिललोकलावण्यधामावनितयनार्चिताङ्घ्रिपद्मो हनुमत्सुषेणकुमुदागदादिनित्यसूरिसेवितादिव्यमूर्तिरुभयविभूतिनायकोऽपराजितापरवैकुण्ठपदप्रधानार्थश्रीसाकेतनिकेत परमपुरुषनारायणविष्णुवासुदेवादिपदवाच्य पुरुषोत्तम श्रीराम चाचिन्तयन्। (गीर्थचन्द्रिका पृ० २।३)

वस्तुत बाणभट्ट की कादम्बरी जैसे प्रौढगद्य का निर्माण करना आचार्य श्रीरघुवराचार्य के पाण्डित्य का परिचायक है। इस एक ही वाक्य मे उन्होने वेदान्त दर्शन के परब्रह्मरूप राम का और पुराणादिसम्मत सगुण राम का अवतार प्रयोजनसहित वर्णन किया है। निसंदिग्ध आचार्य श्रीरघुवराचार्यजी किसी सिद्धिविद्या के बल पर या असीम गुरुकृपा के कारण ऐसे पाण्डित्य को प्राप्त कर सके होगे। इसी वाक्य मे उन्होने कृष्णावतार को भी सामने रख दिया है। अवतार के प्रयोजन की व्याख्या करते हुए आचार्य ने याज्ञवल्क्य (१।८९) बृहद्ब्रह्म सहिता (३ ७-२१) भागवत ३।४।२९-३१) तथा अन्यान्य ग्रन्थो के सन्दर्भो को सामने रक्खा है। निर्विशेष परब्रह्म को जानना कठिन है क्योकि—

निर्विशेष परम्ब्रह्म साक्षात्कर्तुमनीश्वरा। ये मन्दास्तेनुकम्प्यन्ते सविशेषनिरूपणै॥

केवल अद्वैतबुद्धि से ही निर्विशेष ब्रह्म प्राप्तिरूप मोक्ष सभव हो सकता है२ इस विषय पर आचार्य ने स्वपक्ष स्थान पूर्वक काफी विवेचन किया है।

इसी प्रसंग मे "जीवो ब्रह्मैव नापर" "ममैवाशो जीवलोके जीवभूत सनातन (गीतो १५।७) इस जीव और ब्रह्म के ऐक्य तथा पार्थक्यविषयक चिन्तन भी मुण्डकोपनिषद् श्वेताश्वतरोपनिषद्

(१) यस्यादेशवशादवेदिषमहं मोहाम्बुधेर्वाडवं वेदान्तस्य विशिष्टतत्त्वगमकं सिद्धान्तमानन्ददम्।
मिथ्यावादविमर्दनेऽतिचतुरा यद्भारती राजते स्वाचार्यं श्रुतिवित्तम तमनिश वन्दे दयावारिधिम्॥
(गीतार्थचन्द्रिका श्लोक ३)

(२) एवञ्च करणोपासनयोरन्त करणनैर्मल्यं विधायैवोपक्षीणत्वान् केवलाद्वैतधियैव निर्विशेष ब्रह्मावाप्तिरूपकैवल्य प्राप्यते इत्येव गीतातात्पर्यमाहु तदपेशलम्। गीतार्थचन्द्रिका ८

तथा गीता के उद्धरण पूर्वक आचार्य ने किया है। ईश्वर मे पूर्णरूप से समर्पण मोक्ष का अच्छा उपाय है और इसके लिए परा भक्ति उत्तम मार्ग है ।३

व्याख्याकार श्रीरघुवराचार्य ने लिखा है कि प्रत्येक ६ अध्याय मे 'त्रिकद्वय' का समावेश है। प्रथम ६ अध्याय मे कर्मभक्ति के साधनरूप कर्मज्ञान योग विचार किया गया है। ६ अध्याय से १२ अध्याय तक ज्ञानयोग और उपासनायोग का प्रदर्शन कर उपासना के स्वरूप पर विचार किया गया है। अन्तिम भाग मे अनेक सूक्ष्मतत्वो पर विचार हुआ है ।४

प्रथमश्लोक के उपक्रमण करते हुए आचार्य श्रीरघुवराचार्यजी ने अनेकसूक्ष्मतत्त्वो का संकेत किया है जो वही द्रष्टव्य है । अव गीता मे प्रतिपादित कुछ तत्त्वो पर विचार करना उचित समझतो हूँ ।

परमतत्त्व एक ही है । "एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति" (ऋग्वेद १ १६४–४६) अर्थात् इन्द्र मित्र वरुण आदि एक ही तत्त्व के अलग–अलग नाम है, मूलत तत्त्व एक ही है। गीता के ग्यारहवे अध्याय मे भगवान् ने अपना विश्वरूप दिखाकर सबकी एकता का प्रत्यक्षबोध कराया। अन्त मे स्वयं ही कहा कि मेरी अनन्य भाव की भक्ति करने से ही सर्वभूतात्मैक्य भाव का प्रत्यक्षबोध हो सकता है ।

मय्यावेश्य मनो ये मा नित्ययुक्ता उपासते । श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमामता ॥

गीता १२–२

अर्थात् हे अर्जुन ! जो मुमुक्षु भक्त मेरे स्वरूप मे मन लगाकर मेरे कर्मादि मे सदा लगे हुए परम शुद्ध श्रद्धा से विश्वरूप सर्वज्ञ मुझ परमेश्वर की उपासना करता है, वे श्रेष्ठ योगीहै।५

वेद मे भी कहा गया है कि जो मुमुक्षुजन प्राणायाम धारणपूर्वक सत्यधारक परमात्मा की उपासना श्रद्धापूर्वक करते है, वही परमात्मज्ञान प्राप्त करके मुक्तिधाम को पाते है।६

श्रीरघुवराचार्यने महारथ की व्याख्या करते हुए लिखा है—

इमे परिगणिता सप्तदशसंख्याका शूरा बलेन भीमार्जुनाभ्या साम्यं दधतोऽपि महारथा एव। अतएव अर्जुनादीनामतिरथत्वेन अत्र महारथेषु परिगणनाभाव ।

एको दश सहस्राणि योधयेद्यस्तुधन्विनाम् । शस्त्रशास्त्रप्रवीणश्च महारथ इति स्मृत ॥

---

(३) मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मा नमस्कुरु । मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसिमे।

गीता १८।६५

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज । अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि माशुच ॥

गीता १८।६६

इति परभक्तिपराकाष्ठास्वरूपशरणागतिधर्मस्यैवोपादेयत्वमशिषत् (गीतार्थचन्द्रिका पृ १०)

एवं अत्र परभक्तेरेव साक्षान्मोक्षोपायत्वं निरूपितम् । गीतार्थचन्द्रिका पृ ११

(४) गीतार्थचन्द्रिका पृ १२

(५) ये मुमुक्षवो नित्ययुक्ता नित्यं मद्योगमाकाक्षमाणा निरकुशैश्वर्यशालिनि समस्तचिदचिद्वस्तुशेषिणि परात्परे मयि स्वकीयं मन आवेश्य श्रद्धयोपेता सन्तो मामेवोपासते ते एवोपासका मम युक्ततमा मतास्ते मामविलम्बेनैव प्राप्नुवन्तीति भाव । गीतार्थचन्द्रिका पृ ६२३

(६) श्रद्धा देवा यजमाना वायुगोपा उपासते। श्रद्धां हृदय्ययाकूत्या श्रद्धया विन्दते वसु ॥

ऋग्वेद १०।१५१४

अभितान्योधयेद्यस्तु सम्प्रोक्तोऽतिरथस्तु स । रथस्त्वेकेनयो योद्धा तन्न्यूनोऽर्धरथ स्मृत ॥ गी च पृ २३

इस प्रकार भीष्म, द्रोण, कर्ण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा तथा अन्यान्य वीरो के साथ अर्जुनका युद्ध कैसे हो सकता है ऐमा भाव है । अपर्याप्तं तदस्माकम् इत्यादि गीता (१।१०) के श्लोक की व्याख्या करते हुए आचार्य ने स्पष्ट किया है–हे आचार्य भीष्मपितामह द्वारा रक्षित हमारी सेना अपर्याप्त है अर्थात् अपने उद्देश्य की पूर्ति मे असमर्थ है और भीमसेन से सुरक्षित इन लोगो की सेना पर्याप्त अर्थात् अपने उद्देश्य की पूर्ति मे सर्वथा समर्थ है ।

यहाँ पर सात सेनापतियों का नाम गिनाकर उन्हे भीष्म पितामह द्वारा सुरक्षित कहकर अपर्याप्त अर्थात् अपूर्ण कहा गया है। मन की सात भूमिकाओ के सात प्रेरक देवता ही सात सेनापति है। अत सत्यरूप भीष्म द्वारा कामात्मक असत्य का पोपण नहीं हो सकता है। वस्तुत पाण्डवो के सेनापतियो द्वारा विजय सभव है ऐमा संकेत है। यहाँ पर्याप्त और अपर्याप्त को लेकर विद्वानो मे काफी मतभेद है ।

“एवमस्य श्लोकस्य उपलभ्यमानेभ्यो भाष्यटीकादिभ्योऽस्मदाचार्यभगवत् पादप्रणीतानन्दभाष्यनामकगीताभाष्यमेव युक्त प्रतीयते इति तदनुसारेणैव मयात्र टीकाया सभवितार्थस्य उल्लेख कृत तत्र विदुषा परितोषाय किञ्चिद्विचार्यते—

“तत्तथाभूतैर्वीरैर्युक्तमपि भीष्मेणाभिरक्षितमपि अस्माकं बलं सैन्यमपर्याप्तं तै सह योद्धुं असमर्थ भाति । इदं तु एतेषा पाण्डवाना बल भीमेनाभिरक्षितं सन् पर्याप्त समर्थ भाति भीष्मस्योभयपक्षपातित्वात् ” इत्यादि । गीतार्थचन्द्रिका पृ २७

गीता मे विभिन्न विषयो पर प्रकाश डाला गया है। लेकिन उन सब मे भी “मोक्ष एव परम पुरुषार्थ” को ध्यान मे रख कर उसके उपाय बताये गये है। किसी ने कर्म को मुक्ति का साधन माना है तो किसी ने भक्ति को किसी ने ज्ञान को ही मोक्ष का मार्ग माना है । पण्डित प्रवर श्रीरघुवराचार्यजी ने ज्ञान सहित भक्तिमार्ग को सर्वश्रेष्ठ माना है । लेकिन ज्ञानोदय के लिए अपेक्षित चित्त की शुद्धि मे कर्म की सार्थकता को अस्वीकार नहीं कर सकते है । अतएव तटस्थ होकर यही कहना पडता है कि आत्म साक्षात्कार के निमित्त कर्म उपासना और ज्ञान तीनो का निरूपण पाया जाता है ।

अविद्या और माया के स्वरूप पर भी गीता मे विचार किया गया है। अविद्या अथवा माया का निराकरण ज्ञान के द्वारा ही होता है । कुछ आचार्यो ने अविद्या और माया मे सूक्ष्म भेद माना है। दोनो मे अनिर्वचनीयता, त्रिगुणात्मता और भाव रूपता ये तीन धर्म है । परन्तु दार्शनिको ने इनमे भेद भी स्वीकार किया है । अविद्या व्यष्टि बन्धन है और माया समष्टि बन्धन है, ऐसा कुछ दार्शनिकों का मत है । ज्ञान द्वारा व्यष्टिबन्धन अविद्या के निवृत्त हो जाने पर समष्टिबन्धन माया के अपसारण के लिए साधक को भक्ति मार्ग का अवलम्बन करके भगवान् को प्रसन्न करना होगा। क्योकि मायाबन्धन के अपसारण के विना मुक्ति सभव नहीं है। इसलिए भक्ति के साथ ज्ञान ही मुक्ति का प्रमुख साधन है । गीता मे कहा गया है कि—

“ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषा नाशितमात्मन ।”

अर्थात् जीवगत अज्ञान ज्ञान के द्वारा नष्ट किया जाता है। यहाँ अज्ञान से जीवगत अविद्या रूप अज्ञान माना गया है । दैवबन्धन रूप माया का अपसारण मात्र भगवद्‌भक्ति से ही संभव है । अतएव गीता मे कहा गया है—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया । मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेता तरन्ति ते ॥ ७-१४

अर्थात् मेरी यह त्रिगुणात्मिका माया बडी दुस्तर है । लेकिन जो व्यक्ति मेरी शरण मे आते है, वे इस माया को पोर कर लेते है, अर्थात् ससार से तर जाते है । यहाँ प्रपद्यन्ते का अर्थ प्रपत्ति या शरणागति है । इस श्लोक की व्याख्या आनन्दभाष्य मे इस प्रकार है–दैवी लीला प्रवृत्तेन देवेन मया निर्मिता एषा मम माया विचित्रकार्यकारिणी प्रकृतिर्हि दुरत्यया दुरतिक्रमणीया भवति । ये पुरुषा माँ सर्वेश्वरमेव प्रपद्यन्ते, शरणमाप्नुवन्ति त एवैता मत्सम्बन्धिनी माया तरन्ति । श्रीमद्भगवद्गीता आनन्दभाष्यम् पृ ४०२ इस सन्दर्भ की व्याख्या करते हुए श्रीवेदान्त केसरी जी ने लिखा है—

मम सर्वनियन्तुर्ह्येषा निदर्शितस्वरूपा गुणमयी सत्वादिगुणत्रयसमुद्भवा माया यतो दैवी लीला धिकारस्थितेन स्वतस्तु परमस्वतन्त्रेण मया देवेन निर्मिता विचित्रार्थसृष्टिविलासविधायिनी ततो दुरत्यया अनवाप्तमच्चरणै दु खेनाप्यत्येतुमशक्या । एवं देवमायाया प्राबल्य दुस्तरत्वञ्चाभिधायेदानी तस्या स्वाभिप्रेतं सन्तरणोपायमुपदिशति मामिति ।

अब इस माया चक्र से उद्धार का मार्ग इस प्रकार है—

ये तु श्रद्धालवो मद्विषयकनिरतिशयप्रीतिपवित्रितस्वान्ता मत्प्राप्त्युत्कटानन्यभावनया मामेव सर्वेश्वर प्रपन्नार्तिहर दिव्यकारुण्यजलधिं सर्वलोकैकशरण्यं प्रपद्यन्ते मत्प्रपत्तिमायन्ति । प्रपदनेनात्र शरणागतिरेव भगवदभिप्रेता यतस्तस्या एव मायासन्तरणौपयिकत्वंशास्त्ररहस्यवेदिभिर्निश्चितम् ।

इसकी पुष्टि मे आचार्यश्रीरघुवराचार्यजी ने पञ्चरात्र से उद्धरण देते हुए लिखा है—

प्राप्तुमिच्छन् परा सिद्धि जन सर्वोऽप्यकिञ्चन । श्रद्धया परया युक्तो हरि शरणमाश्रयेत् ॥

फिर आगे अन्य उद्धरण देते है—

अनन्यसाध्ये स्वाभीष्टे महाविश्वासपूर्वकम् । तदेकोपायता याञ्चा प्रपत्ति शरणागति ॥

यहीं पर शरणागति के लक्षण भी श्रीवेदान्तीजी ने लिखाहै—

अहमस्म्यपराधानामालयोऽकिञ्चनो गति । त्वमेवोपायभूतो मे भवेति प्रार्थनामति ॥

शरणागतिरित्युक्त्वा सा देवेऽस्मिन् प्रयुज्यताम् ।

अन्य आचार्यो ने भी कहा है—

साधनं भगवत्प्राप्तौ स एवेति मतिर्दृढा । साध्यभक्ति स्मृतासैव प्रपत्तिरिति गीयते ॥

इस प्रकार भावना पूर्वक शरणागति होती है । जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी के ही श्लोक को उद्धृत करते हुए व्याख्याकोर ने लिखा है—

अहं भीतोऽस्मि देवेश ससारेऽस्मिन् भयावहे । त्राहि मा पुण्डरीकाक्ष ? न जाने शरणं परम् ॥

महापुरुष निश्चय ही शरणागत की रक्षा करते है ऐसे उनके प्रतिज्ञा वाक्य है—

आर्तो वा यदि वा दृप्त परेषा शरणागत । अरि प्राणान् परित्यज्य रक्षितव्य कृतात्मना ॥

भगवान् शीघ्र ही उनकी रक्षा भी करते है—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते । अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम ॥

यहाँ सभी भूतों को अभय प्रदान करने की शक्ति के कारण वे ब्रह्मा से तृणपर्यन्त सबके स्वामी भी है ऐसा सिद्ध होता है। वे ईश्वर हीं सर्वनियामक है ।

वाल्मीकि रामायण के सुन्दरकाण्ड से उद्धरण देते हुए वेदान्ती श्रीरघुवराचार्यजी ने लिखा है कि सर्वशास्त्रतत्त्वज्ञ आञ्जनेय ने अपने कण्ठस्वर से कहा—

ब्रह्मा स्वयम्भू श्चतुराननो वा रुद्रस्त्रिनेत्रस्त्रिपुरान्तको वा ।
इन्द्रो महेन्द्र सुरनायको वा त्रातुं नशक्ता युधि रामवध्यम्॥ ५।५१।४४

वस्तुत युधि रामवध्यं त्रातु न शक्ता, शरण सम्प्राप्य तु त्रातु शक्ता इति गम्यते ।

इस प्रकार भगवान् राम मे परतत्व का भाव स्पष्ट है। वस्तुत भगवान् शरणागतवत्सल हैं-

विदित सहि धर्मज्ञ शरणागतवत्सल ।

इसलिए विभीषण ने श्रीरामजी के द्वार पर जाकर कहाथा—

निवेदयत मा क्षिप्रं राघवाय महात्मने । सर्वलोकशरण्याय विभीपणमुपस्थितम् ॥

यहाँ सर्वलोकशरण्याय का अर्थ श्रीरघुवराचार्यजीने इस प्रकार किया है—

सर्वलोकशरण्याय सर्वथानालोचितविद्यावृत्तकुलवित्तायुरादिविशेपाशेपलोकशरण्याय इत्यर्थ । इसी भाव की पुष्टि मे गीता मे ही भगवान ने कहा है—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज । अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच ॥ गी १८

यहा "मामेव" मुझको ही प्राप्त कर माया का नाश होगा ऐसा कहा गया है अर्थात् अन्य देवताओ के पास झुकने की जरूरत नही है—

मामेवेत्येवकारेण देवतान्तरप्रपदनस्य मायामन्तरणरूपमोक्षोपयोगित्व नास्तीति तद् व्यवच्छिद्यते। (गीतार्थचन्द्रिका पृ ४०५)

ते एव मदाश्रया सन्त सन्ततमेतां मत्सम्बन्धिनी निरुक्तत्रिगुगमयी मायामनायासेनैव तरन्ति। मत्सायुज्यं प्राप्नुवन्ति। यही पर आचार्य श्रीरघुवराचार्यजी ने पराशर के वाक्य का उद्धरण किया है—

यै स्वधर्मपरैर्नाथ ! नरैराराधितो भवान् । ते तरन्त्यखिलामेता मायामेता विमुक्तये ॥वि पु ५।३०।१६

ये भगवत्प्रपत्तिविरहिणस्ते त्विमा नैव तरन्तीति गम्यते ।

मदाश्रया मदीयेयं माया मदनुकम्पामपहाय अतिदुस्तरेति भगवदाशय ।

इस प्रकार माया का सन्तरण मुक्ति का साधन है ।

गीता का प्रयोजन केवल विरक्त अर्जुन को उत्साहित करके लडाना ही नहीं है। भगवान् कृष्ण, जो अखिल विश्व को अपने अन्दर दिखाते है (गी ११) जो अपने को सब की आत्मा बताते है (गी १०।२०) और जो स्पष्ट कहते है कि मुझसे भिन्न ससार मे कुछ भी नहीं है (७।७) सब लोगो का महान् ईश्वर मे ही हूँ (५।२९) ऐसा कह कर उन्होंने दिव्य ज्ञान का उपदेश दिया है । अर्जुन के मोह प्रसग को सामने रखकर भगवान् कृष्ण ने सारे ससार को गीता का यथार्थ उपदेश देकर अनन्त प्रकार के उलझनो को निश्चित रूप से सुलझाने का एक मात्र सत्य एव श्रेयस्कर उपाय बताया है जिसका अवलम्बन करके प्रत्येक मानव अपने योग्यतानुकूल संसार का व्यवहार यथायोग्य करता हुआ अपना इहलौकिक तथा पारलौकिक नि श्रेयस एक साथ सम्पादन कर सकता है ।

आचार्य श्रीरघुवराचार्यजी ने शब्दों की शास्त्रीय व्युत्पत्ति भी उचित ढंग से की है। जैसे गोविन्द शब्द के विषय मे हरिवंश का उद्धरण देकर लिखा है—

गौरेषा तु यतो वाणी ताञ्च वेदयते भवान् । गोविन्दस्तु ततो देव मुनिभि कथ्यते प्रभु ।।गी च पृ७२
अथवा

नष्टा वै धरणी पूर्वमविन्दन् वै गुहागताम् । गोविन्द इति तेनाहं देवैर्वाग्भिरभिष्टुत ।।

इति स्कान्दोक्त गोपदबोध्य धरणीधारक गा विन्दत इति वा श्रुतिक्षिति गवा रक्षकत्वात् गोविन्दस्तमुक्त्वा वचनेन प्रतिपाद्य तुष्णी वभूव । गी च ७२

गीतार्थचन्द्रिका का विस्तार से विवेचन एक पृथक् शोधकार्य का विषय है। यहाँ हम "स्थाली पुलाकन्यायेन" गीता के १८ अध्यायो के अतिसक्षिप्त मे विचार करते हुए वेदान्ती श्रीरघुवराचार्यजी के विशेष चिन्तन पर प्रकाश डालते है ।

श्रीमद्भगवद्गीता का पहला अध्याय 'विषादयोग' नाम से प्रसिद्ध है। अर्जुन अपने गुरुजनों तथा बन्धुबान्धवो को कुरुक्षेत्र के मैदान मे युद्ध करने के लिए उद्यत देखकर बहुत दु खी है। वह कि कर्त्तव्य विमूढ तथा मोहग्रस्त है। इस अध्याय के प्रारम्भ मे आचार्यश्री रघुवराचार्य ने विभिन्न उपनिषद् के वाक्यो का उद्धरण देकर अपने भाष्य के महत्त्व को दर्शाया है । व्याकरण बिषयक कठिनाइयो पर भी उन्होने प्रकाश डाला है जैसे युधिष्ठिर शब्द की विवेचना करते हुए लिखा है—

युधि सग्रामे स्थिरत्वाद्युधिष्ठिर 'हलदन्तात्सप्तम्या सञ्ज्ञायामित्यलुक्' गवि युधिभ्या स्थिर (पा ८।३।९५) इति षत्वम् । धृतराष्ट्र के इन आततायी पुत्रो को मारकर भी पाप ही लगेगा । इस स्थल पर आततायियो का लक्षण श्रीरघुवराचार्यजी ने किसी पौराणिक ग्रन्थ से उद्धरण कर लिखा है–

अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापह । क्षेत्रदारहरश्चैव षडेते ह्याततायिन ।।
सदा पानरता ये च सदा कामरताश्च ये । सदा द्यूतक्रियासक्ता सदाऽसद्वचनप्रिया ।।
सदा पैशून्यसक्ताश्च सदा मासप्रियाअपि । शास्त्रज्ञा अपि लोकेऽस्मिन् तथैते त्वाततायिन ।।
आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन् । नाततायिवधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन ।।

इस प्रकार शत्रु एवं आततायियो को मारने मे कोई भी दोष नही है ऐसा स्पष्टीकरण आचार्य श्रीरघुवराचार्य ने कर दिया है । उन्होने लिखा है–शत्रव सन्त आततायिनोऽपि सन्ति । अत एतेषा वधे नास्ति दोषलेश इत्याह । (गी च पृ ४८)

गीता के द्वितीय अध्याय मे साख्ययोग पर प्रकाश डाला गया है । मोहग्रस्त अर्जुन कृष्ण के पास अपनी अज्ञानता प्रकट करते है । "शिष्यस्तेऽह शाधि मा त्वां प्रपन्नम् ।" कहकर उसने आत्मसमर्पण कर दिया है । तब कृष्ण ने उत्साहपूर्ण बाते कही है। इस शरीर की नश्वरता, पुनर्जन्म का होना तथा आत्मा के नित्यत्व पर प्रकाश डाला गया है। इस अविनाशी नित्य आत्मा को कोई भी नहीं मार सकता है । इसलिए हे अर्जुन ! तुम कर्म करो ।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन। मा कर्मफलहेतुर्भूमाते सगोऽस्त्वकर्मणि ।। (गी २।४७)

फिर अन्त मे भगवान् कृष्ण ने कहा कि सम्पूर्ण कामनाओ को त्याग कर ममत्व और अहकार से रहित होकर विना इच्छा के विचरता है, वह परम शान्ति को प्राप्त करता है ।

पण्डित प्रवर श्री रघुवराचार्यजी ने लिखा है कि अर्जुन ने स्वयं ही शिष्यत्व स्वीकार कर के भगवान् को आचार्यत्व प्रदान किया है–"शिष्यस्तेऽह शाधि मा त्वा प्रपन्नम्" इति स्वकण्ठरवेणैव स्वस्मिन् शिष्यत्वं भगवति आचार्यत्वञ्चाङ्गीकृत्य विशुद्धधर्म जिज्ञासा प्रकटीकृता अर्जुनेन ।
(गी च. पृ. ५८)

भगवान् शब्द के विषय मे टीकाकार ने लिखा है—

ज्ञानशक्तिबलैश्वर्यवीर्यतेजास्यशेषत । भगवच्छब्दवान्यानि विना हेयैर्गुणादिभि ॥

फिर आगे लिखते है—

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशस श्रिय । ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णा भग इतीरणा ॥

एवं च—

उत्पत्ति प्रलयं चैव भूतानामागति गतिम् । वेत्ति विद्यामविद्याञ्च सवाच्यो भगवानिति ॥गी च.पृ ६०

आत्मा की अमरता पर प्रकाशडालते हुए टीकाकार ने सरल शब्दों मे लिखा है—

य पुरुप एनं स्वेतरसमस्तविजातीयस्वरूपस्वभावमात्मानं हन्तार हननक्रियाया कर्तार वेत्त्यहमस्य हन्तेति जानाति । यश्च अन्य पुरुष एनमुक्तस्वरूपमात्मान हतं हननक्रियाया कर्मभूतं प्रत्यक्षेण हतदेहपातेन आत्मानमेव हतमिति मन्यते तावुभौ न विजानीत । यतोऽय न कमप्यात्मान हन्ति न वाऽपरेण हन्यते । (गीतार्थच पृ १०३) क्षत्रियो को युद्ध मे प्राणत्याग करना श्रेयस्कर है इस विषय मे श्रीरघुवराचार्यजी ने काफी प्रकाश डाला है । (पृ ११७ गीता के तृतीय अध्याय मे कर्मयोग का उपदेश है । भगवान् ने जीवात्मा के स्वरूप पर प्रकोश डालकर समत्वबुद्धि के द्वारा अनासक्तियोग पर विचार किया है । तुम हमेशा कर्म करते रहो–'नियत कुरु कर्मत्वम्'' यह इस अध्याय का मूल उपदेश है । कृष्ण ने अर्जुन से कहा कि अनासक्त भाव से निरन्तर कर्त्तव्य कर्म का आचरण करो क्योकि अनासक्त पुरुप कर्म करता हुआ भी परमात्मा को प्राप्त हो जोता है । उन्होने बतोया कि प्रकृति के गुणो के कारण कर्म होते है लेकिन अहङ्कार से मोहित व्यक्ति "मै कर्ता हूँ" ऐसा मानता है । अपने धर्म के आचरण को करता हुआ मर जाना भी श्रेयस्कर है । लेकिन दूसरे के धर्मको स्वीकार करना भयावह है । इस प्रकार कर्मयोग नामक इस अध्याय मे वेदान्ती श्रीरघुवराचार्यजी ने कर्म के विपय मे सूक्ष्म विचार किया है । ईशावास्योपनिषद् के उद्धरण–"कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीवीषेच्छतं समा" देकर कर्म की महत्ता पर प्रकाश डाला है। (अर्थ चन्द्रिका पृ १९६) मनुस्मृति मे भी कहा गया है–

वेदोदित स्वकं कर्म नित्यं कुर्यादतन्द्रित । तद्धि कुर्वन् यथा शक्ति प्राप्नोति परमा गतिम् ॥

(गीतार्थचन्द्रिका पृ १९६)

चतुर्थ अध्याय मे भगवान् कृष्ण ने ज्ञानकर्मसंन्यासयोग पर प्रकाश डाला है। अर्जुन को रहस्यमय उपदेश देने से पूर्व कृष्ण ने कहा कि तेरे और मेरे अनेक जन्म हो चुके है। तुम उन सबको नही जानते हो परन्तु मै जानता हूँ। भगवान् ने अवतार का प्रयोजन बताते हुए कहा—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत । अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मान सृजाम्यहम् ॥ (गी ४।७)

आगे कृष्ण ने कहा कि मुझे जो जैसा देखता भजता है मै भी उसको उसी प्रकार भजता हूँ । इस रहस्य को जानकर ही बुद्धिमान् मनुष्य सब प्रकार से मेरे मार्ग का अनुसरण करते है। कर्मफल की आसक्ति को छोडकर नित्यतृप्त व्यक्ति कर्मो म रत होकर भी कर्म नहीं करता है । भगवान् ने कहा हे अर्जुन! तत्त्वज्ञानी पुरुषो से नम्रता पूर्वक प्रणाम करके निष्कपट भावसे सेवापूर्वक तथा सरलभाव से प्रश्न करके जानो फिर ज्ञान की प्रशंसा करते हुए कहा गया है कि ज्ञानाग्नि सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन । अर्थात् ज्ञानाग्नि के द्वारा सभी कर्म भस्म हो जाते है अर्थात् ज्ञान के द्वारा कर्म का नाश होता है। ज्ञान से ही परम शान्ति मिलती है।

श्रीरघुवराचार्यजी ने यदा यदा हि धर्मस्य की व्याख्या करते हुए वृहदारण्यकोपनिषद् , तथा भागवत के सन्दर्भो को सामने रख कर विवेचन किया है—

नारायणपरो धर्म स च भागवतो मत । ज्ञानपूर्व संभवति जीवाना मोक्षदायक ॥

एवञ्च—

यस्तु विष्णुपरो धर्मो यो वै नारायणेरित । येन विष्णुरमेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ।
स एव परमो धर्म प्रसादमधिगच्छति । गी च पृ २५०

साधु का लक्षण बताते हुए टीकाकार ने भागवत का सन्दर्भ सामने रक्खा है—

तितिक्षव कारुणिका सुहृद सर्वदेहिनाम् । अजातशत्रव शान्ता साधव साधुभूषणा ॥
मय्यनन्येन भावेन भक्ति कुर्वन्ति ये दृढाम् । मत्कृतेत्यक्तकर्माणस्त्यक्तस्वजनवान्धवा ॥
मदाश्रया कथामृष्टा शृण्वन्ति कथयन्ति च । तपन्ति विविधास्तापानैतान्मद्गतचेतस ॥
ते एते साधव साध्वि सर्वसङ्गविवर्जिता । भा ३।२५ (गीतार्थच० २५२)

ज्ञान ग्रहण करने के लिए कृष्ण ने अर्जुन से कहा था कि तुम नमस्कार करके झुक कर, सरल प्रश्न करके सेवा पूर्वक तत्त्व को समझो तभी तत्त्वज्ञानी तुझे उपदेश देंगे (गी ४ ३४) इसकी व्याख्या करते हुए श्रीरघुवराचार्यजी ने भागवत से–

ब्रूयु स्निग्धस्य शिष्यस्य गुरवो गुह्यमत्युत । भा १.८

आचार्य देवो भव (तै०) आचार्यवान् पुरुषो वेद(छा०) एवं "यस्य देवे परागक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ । तस्यैते कथिता ह्यर्था प्रकाशन्ते महात्मन ॥ (श्वे० ६।२३)

दण्डवत्प्रणमेद् भूमौ निर्लज्जो गुरुसन्निधौ । शरीरमर्थं प्राणञ्च सद्गुरुभ्यो निवेदयेत् ॥(गी.च.पृ.२८७)

ज्ञान से कर्मो का क्षय होता है इस प्रसग मे व्याख्याकार ने लिखा है—

हे अर्जुन? यथा प्रदीप्तोऽग्निरेकाक्येव सपदि सर्वाण्येधासि अनन्तकाष्ठकूटानि निरवशेष भस्मसात् कुरुते तथैव अयं ज्ञानरूपोऽग्नि सर्वकर्माणि प्रारब्धेतराणि भस्मसात् कुरुते। (गी च २९०)

गीता के पाँचवे अध्याय मे कर्म संन्यास योग पर विचार किया गया है। कर्मज्ञान के सयोग से ही संन्यास का रूप लेकर परम पवित्र अर्थात् जन्ममरण के कारणत्व को त्यागा जा सकता है। वस्तुत जो न किसी से द्वेष और न किसी से आकांक्षा करता है वह संन्यासी सदा जानने योग्य है। क्योकि वह बन्धन से मुक्त हो जाता है । निष्काम कर्म से युक्त जीवात्मा आत्मा से ही विशुद्ध होकर परमात्मा का अनुभव करता है। योगी कर्म के फलो को त्याग करभगवत्प्राप्तिरूप शान्ति को प्राप्त होता है और कर्मफल को चाहने वाला बन्धन मे फंसता है। पण्डित समदर्शी होते है अन्त मे कृष्ण ने कहा—

भोक्तार यज्ञतपसा सर्वलोकमहेश्वरम् । सुहृदं सर्वभूताना ज्ञात्वा मा शान्तिमृच्छति ॥ ५।२९

इस अध्याय मे अर्थचन्द्रिकाकार जी ने समुचित व्याख्या करते हुए अन्त मे इस श्लोक के विषय मे कहा है—

प्रोक्तयोगयुक्तो नरो मा यज्ञतपसा भोक्तार यज्ञदानतपोभि समाराध्यं सर्वलोकमहेश्वर सर्वेषा ब्रह्मरुद्रेन्द्रादीना लोकाना महेश्वर महासमर्थं नियन्तार, पतिं पतीना परमं महेश्वरम् (श्वे०) इति श्रुते.। ब्रह्मादिपिपीलिकान्ताना स्वशरीरभूताना सुहृत् इति ज्ञात्वा शान्तिमृच्छति नित्यसुखरूपा शान्ति-

माप्नोति। गी च ३३० गीता के छठे अध्याय मे आत्मसयम योग है। शङ्कराचार्य ने इस अध्याय का नाम "ध्यान योग" रक्खा है। आनन्दभाष्यकार ने इस अध्याय का नाम "अभ्यासयोग" कहा है। इस अध्याय के प्रारम्भ मे ही भगवान् कृष्ण ने अर्जुन से कहा है—हे अर्जुन! जो पुरुष कर्म के फल को न चाहता हुआ करने योग्य अर्थात् यज्ञ, तप, दान आदि शुभ कर्मो का यथाविधि अनुष्ठान करता है वह सन्यासी है और वही योगी है। गृहस्थी मे रहकर भी साधन के द्वारा मनुष्य संन्यासी और योगी हो सकता है। अपना उद्धार मनुष्य स्वयं ही करे। आत्मा ही अपनो बन्धु है और आत्मा ही शत्रु अगर आत्मा के द्वारा मन और इन्द्रियो को जीत लिया जाता है तो वह आत्मा मित्र या बन्धु है। जो जीवात्मा मन सहित इन्द्रियो और शरीर को नही जीत सकता वह आप ही अपना शत्रु है। अन्त मे कहा गया है कि सम्पूर्ण निष्काम कर्म करते हुए योगियो मे भी जो श्रद्धावान् योगी मुझ मे लगे हुए अन्तरात्मा से निरन्तर मेरा भजन करता है, वह मुझे परम श्रेष्ठतया मान्य है। इस अध्याय की विवेचना मे भी आचार्य श्रीरघुवराचार्यजी ने अपनी विद्वत्ता पूर्ण व्याख्या की है। अन्त मे उन्होने लिखा है—यो योगी मा सर्वेश्वरमद्गतेन प्रीत्याधिक्यान्मदेकप्रवणेनान्तरात्मना मनसा श्रद्धावान् मत्प्राप्तिविषयकत्वरावान् सन् मामोखिलदोष प्रतिभटानन्तकल्याणगुणोदधि भजत उपास्ते। स सर्वेषा योगिना सर्वेभ्यो प्रागभिहितेभ्यो मे मम युक्ततम श्रेष्ठतमो मतोऽभिमत। (गी च ३८१)

गीता के सप्तम अध्याय 'विज्ञानयोग' है। इस अध्याय मे व्याख्याकार ने 'अहं कृत्स्नस्य जगत प्रभव प्रलयस्तथा" गी ७।६) की व्याख्या मे—'यस्य पृथिवी शरीरम्' (बृ,३।८।२२) यस्य विज्ञानं शरीरम् (बृ ३।८।३) जगत्सर्वं शरीरन्ते (वा रा, यु), सरित्समुद्राश्च हरे शरीरम् (भाग) इत्याद्यास्ता प्रकृति पुरुषयो महापुरुषस्य शरीरत्वमुपदिशन्ति।

परमात्मा च सर्वेषामाधार परमेश्वर। विष्णुनामा स वेदेषु वेदान्तेषु च गीयते॥ (वि पु ६।४।३१)

इत्यादि उद्धरण देकर सर्वोत्कृष्ट व्याख्या की है। अक्षर ब्रह्मयोग नामक अष्टम अध्याय मे व्याख्याकार श्रीरघुवराचार्यजीने—

सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृति यान्ति मामिकाम्। (गी च ४९२) की व्याख्या विस्तार से की है। फिर गीता के—

अन्यन्याश्चिन्तयन्तो मा ये जना पर्युपासते। तेषा नित्याभियुक्तोर्ना योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥(गी ९।२२)

इस श्लोक की व्याख्या करते हुए उन्होंने लिखा है—

नास्ति मदन्य उपासनालम्बन फलविशेपो वा येषा तेऽनन्या मय्येव निविष्टहृदया मामखिलहेयप्रत्यनीकादिव्यकल्याणगुणाकर परात्पर चिन्तयन्त स्वकीयध्यानविषयीकुर्वन्तो मनोवाक् कायै सर्वकालमुपासते। (गीतार्थच पृ ५१२)

दशम अध्याय के "न मे पिदु सुरगणा" (गिता १०।२) की व्याख्या करते हुए लिखते हैं कि देवाना महर्षीणा च सर्वश सर्वप्रकारेणादिकारणभूत सर्वस्य अहमेव श्रष्टा। अतो मत्कार्यभूतैर्देवर्षिमनुष्यै अहं कारणभूतो न कथमपि ज्ञानविषय इति भाव (गीतार्थच पृ ५३५)

ग्यारहवे अध्याय के—

पश्यामि देवाॅस्तव देव देहे सर्वास्तथा भूतविशेषसंघान्।
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थमृषीश्च सर्वानुरगाश्च दिव्यान्॥ (गीता ११।१५)

इस श्लोक की व्याख्या मे—

विष्णुं समाश्रितो ब्रह्मा ब्रह्मणोङ्कगतो हर । हरस्याङ्गविशेषेषु देवा सर्वेऽपि सस्थिता ॥(पद्मपुराण) जगत्सर्वं शरीर ते स्थैर्य ते वसुधातलम् । इत्यादि उद्धरणपूर्वक विवेचन किया है । गीतार्थच ५७६)

गीता के बारहवा अध्याय 'भक्तियोग' है । इस अध्याय की व्याख्या करते हुए लिखा है कि परमश्रद्धापूर्वक एकाग्रचित से भगवद्ध्यान करनेवाला उत्तम है ।

श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रिया । (गि च ६४७) की व्याख्या भी बडी अच्छी है ।

गिता के त्रयोदश अध्याय मे क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ पर काफी विवेचन है । आनन्दभाष्यकार तथा अर्थचन्द्रिकाकार ने युक्ति तथा शास्त्र पूर्वक सर्वश्रेष्ठता प्रतिपादन किया है ।

गीता के चौदहवा अध्याय "गुणत्रयविभागयोग" है । अर्थ चन्द्रिका कारने इसकी व्याख्या अन्यसभी टीकाकारो के अपेक्षा अतिउत्तम की है ।

उत्तम पुरुषस्त्वन्य परमात्मेत्युदाहृत । यो लोकत्रयमाविश्य विभर्त्यव्यय ईश्वर ॥(गिता. १५।१७) की व्याख्या मे—

य सर्वभूतान्तरात्मा (रा उ ता) य परमात्मा (रा उ ६) य ईशोऽस्य जगतो नित्यमेव नान्यो हेतुर्विद्यते ईशनाय । (श्वे० ६।१७) इत्यादि प्रवलशास्त्र प्रमाणो द्वारा पुरुषोत्तमयोग नामक इस अध्याय का विवेचन बहुत ही समुचित ढंग से हुआ है । (द्रष्टव्यगीतार्थच० ७४७)

दैवासुरसपद्विभागयोग नामक अध्याय मे आचार्य श्रीरघुवराचार्य ने दैवी सम्पत् और आसुरी सम्पत् पर विचार किया है । आसुरी भाव वाले पुन पुन जन्म बन्धन मे पडते है एवं दैवी सम्पत् वाला व्यक्ति परमगति को प्राप्त करता है । जो वही विशेष रूप से द्रष्टव्य है ।

गीता का सत्रहवा अध्याय "श्रद्धात्रय विभागयोग" है । इसमे सात्विकी राजसी एवं तामसी श्रद्धा पर विचार किया गया है । इस अध्याय के श्रीरघुवरीटीका ने विषय विवेचन मे चार चाद लगा दिये है जो वही द्रष्टव्य है ।

गीता का अन्तिम अध्याय "मोक्ष सन्यास योग" है । गीता का अन्तिम अध्याय बहुत ही महत्त्वपूर्ण है । आचार्यप्रवर श्रीरघुवराचार्यजी ने इस अध्याय के विभिन्न श्लोकों का विवेचन सुन्दर ढङ्ग से किया है । श्रीरघुवरी टीकाकारने—

"सर्वं कर्म फलत्यागं प्रोहुस्त्यागं विचक्षणा ।" (गी १८ २) की बडी सुन्दर व्याख्या की है—

विचक्षणा कर्मयोगनिष्णातास्तु सर्वकर्मफलत्यागं सर्वेंषा नित्य नैमित्तिककाम्यकर्मणा फलस्य त्याग सर्वाणि कर्माण्यनुतिष्ठन्नपि भगवदाशयैव केवलं कर्मानुतिष्ठामि नास्य कर्मण फलमाकाङ्क्षे इति भावनया फलपरित्याग तमेव त्यागपदार्थ प्राहु । (गी च ८०९)

ईश्वर सर्वभूताना हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति । भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥ गी १८।६१)

इसकी व्याख्या इस प्रकार है—

हे अजुन! ईश्वर सर्वैश्वर्यशाली सर्वनियामक परमात्मा श्रीराम यन्त्रारूढानि करणकलेवर-समुदायरूपे प्राकृते यन्त्रवद्यन्त्र आरूढानि सर्वभूतानि सत्वादिगुणमय्या प्राकृतकार्यजनन्या स्वाश्रिततया मायया भ्रामयन् सर्वकर्मसु प्रवर्तयन् सर्वभूताना हृद्देशे तिष्ठति । (गीतार्थ च. पृ ८७८)

इस प्रकार गीतार्थचन्द्रिका–श्रीरघुवरीटीका गीता के ऊपर अद्भुत प्रकाश डालती है। विविध-शास्त्रों के ज्ञाता पण्डितप्रकाण्ड महामहोपाध्याय श्रीरघुवराचार्यजी का योगदान निश्चय ही श्लाघनीय है। इस टीका से राम और कृष्ण का ऐक्यभाव भी स्पष्ट हो जाता है।

अपनी व्याख्या के प्रसग मे याज्ञवल्क्य स्मृति, वृहद् ब्रह्म सहिता, भागवत श्वेताश्वतरोपनिषद् मुण्डकोपनिषद् छान्दोग्योपनिषद् महाभारत बराहपुराण, पाणिनिसूत्र, जैमिनिसूत्र धर्मशास्त्र नीतिशास्त्र, ब्रह्मसूत्र शाङ्करभाष्य, विष्णुपुराण वृहद्ब्रह्म सहिता, वायुपुराण, यजुर्वेद, मनुस्मृति, श्रीराघवेन्द्रमङ्गलमाला, आनन्दभाष्य सात्यकारिका कठरुसंहिता, ईशावास्योपनिषद्, पञ्चरात्र, वाल्मीकि रामायण, वेदान्तचिन्तामणि, वाल्मीकिसहिता तैत्तिरीयोपनिषद् महोपनिषद् तथैव योगसूत्र मानवधर्म शास्त्र वसिष्ठस्मृति पद्मपुराण एव पूर्वाचार्यो तथा अन्यान्य शास्त्रीयग्रन्थो के उद्धरण के साथ जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य रघुवराचार्यजी ने विषय की पुष्टि की है। वस्तुत आनन्दभाष्य के ऊपर गीतार्थचन्द्रिका अपूर्व व्याख्या ग्रन्थ हे।

ग्रन्थ के अन्त मे श्रीरघुवराचार्यजी ने लिखा है—

यो भक्तिवर्त्मसुखदं परिपातुकामस्त्रय्यन्तसारमवनौ प्रथयाञ्चकार।
गीतात्मकं निजजनोद्धरणैकबीज, तस्मै नमो भगवते मधुसूदनाय ॥

इति श्रीभगवद्रामानन्दान्वयप्रतिष्ठितश्रीमदनुभवानन्दस्वामिद्वारकेण सर्वतन्त्रस्वतन्त्रेण जगद्विजयिना महामहोपाध्याय ब्रह्मवित्स्वामि श्रीरघुवराचार्येण विरचितायां श्रीमद्भगवद्गीतार्थचन्द्रिका टीकाया मष्टादशोऽध्याय ।

इस प्रकार गीतार्थचन्द्रिका के प्रकाशन से गीता के गभीरविषयो पर प्रकाश पडा है अत जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्री रघुवराचार्यजी इस अथक प्रयास के कारण स्तुत्य एवं वन्दनीय है।

यतिश्रेष्ठाय विज्ञाय श्रीमद्रघुवराय ते। समर्प्यतेऽत्र वाक्पुष्पमुमारमणशर्मणा ॥



ज्ञान तत्त्व विचार

(भाग १)

[ले० वैदेहीकान्तशरण]

चार्वाक दर्शन

"चैतन्य विशिष्ट देहैव आत्मा"

चैतन्य हमारे शरीर (भूत चतुष्टय=पृथिवी–अप–तेज वायु) का ही गुण विशेष है। चैतन्य युक्त शरीर का ही नाम आत्मा है। आत्मा और शरीर मे तादात्म्य है। मै मोटा हूँ, मैं दुवला हूँ, मैं लम्वा हूँ, मै कालो हूँ, मै काना हूँ आदि व्यवहार और अनुभूति से शरीर ही चेतन एवं ज्ञान है। चैतन्य की उत्पत्ति भौतिक तत्त्वो से होती है–'किण्वादिभ्य मदशक्तिवत्।" शरीर मे चैतन्य गुण का अविर्भाव होता है। आत्मा नामक कोई चेनन पदार्थ नही है। चैतन्य आकस्मिक गुण है।

जैनदर्शन

चैतन्य ही प्रत्येक जीव का स्वरूप है–"चेतन लक्षणोजीव ।" चैतन्य आकस्मिक वा आगत गुण नही प्रत्युत स्वरुप और स्वाभाविक लक्षण है । जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश अन्य को और सूर्य को भी प्रकाशित करता है। उसी प्रकार आत्मा वा चैतन्य अपने को एव अन्य विषय वस्तुओ को भी प्रकाशित करता है अत 'ज्ञानं स्वपरभासी' कहा गया है । जिस प्रकार सूर्य किसी आवरण के कारण प्रकाश नही दे सकता, उसी प्रकार आत्मा भी बन्धन मे पड जाने के कारण अनन्त ज्ञान का प्रसार नही कर सकता । जब बन्धन नाश हो जाता है, तब आत्मा अनन्त ज्ञानमय हो जाता है। अनन्त ज्ञान की शक्ति जीव मे है किन्तु बाधाओ के रहने से जीव सर्वज्ञ नही हो सकता ।

ज्ञान के पाँच भेद है– १ मति, २ श्रुत, ३ अवधि, ४ मन पर्यय, ५ केवल (मति श्रुतावधिमन पर्यय केवलानि ज्ञानम् तत्त्वार्थ सूत्रम् ११९) ।

इन्द्रिय और मन की सहायता से प्राप्त ज्ञान मतिज्ञान है । मतिज्ञान के अन्तर्गत प्रत्यक्ष अनुमान, स्मृति एवं प्रत्यभिज्ञा आते है ।

मतिज्ञान के आधार पर अन्य पदार्थो का ज्ञान श्रुतज्ञान है. सर्वज्ञ तीर्थङ्करो के उपदेश सर्व श्रेष्ठ श्रुत ज्ञान है ।

सीमित वस्तुओ का वह ज्ञान जिसके द्वारा व्यक्ति अत्यन्त दूरस्थ सूक्ष्म तथा अस्पष्ट द्रव्यो को जान लेता है 'अवधिज्ञान' है। मनुष्य जब अपने कर्मो को अशत नष्ट कर लेता है तब इस प्रकार का ज्ञान होता है ।

'मन पर्यय' उस ज्ञान को कहते है, जिसके द्वारा व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के भूत और वर्तमान विचारो को जान जाता है ।

'केवल ज्ञान' केवल मुक्त जीवो को ही प्राप्त होता है । इसके द्वारा भूत वर्तमान तथा भविष्य का ज्ञान होता है ।

इनमे अन्तिम (केवल ज्ञान) को छोडकर शेप प्रथम चारों (मति, श्रुत, अवधि, मन पर्यय) मे आशिक सत्यता ही रहती है ।

बौद्ध दर्शन

बौद्ध दर्शन के अनुसार मनुष्य पाँच प्रकार के परिवर्तनशील (अनित्य) तत्त्वो का सग्रह (एकत्र स्थिति) है, जिसे पञ्च स्कन्ध कहते है—

प्रथम स्कन्ध है–'रूप' । अनुष्य के आकार, रग आदि इसके अन्तर्गत आते है ।

द्वितीय स्कन्ध है–'वेदना' । सुख, दु ख, विषाद के बोध इसके अन्तर्गत आते है ।

तृतीय स्कन्ध है–'संज्ञा' । नानाविध ज्ञान इसके अन्तर्गत आते है ।

चतुर्थस्कन्ध है–'संस्कार' । पूर्व कर्मो के कारण जो प्रवृत्तिया उत्पन्न होती हैं, उन्हे ही सस्कार कहते है ।

पञ्चम स्कन्ध है–'विज्ञान' । चेतना को विज्ञान कहते है । गौतम बुद्ध दार्शनिक प्रश्न पूछे जाने पर मौन हो जाते थे । अत इनके अनुयायियों मे दो मत हो गये–एक मत का नाम

प्रतीतिवाद है। जिसके अनुसार हमे केवल उन्ही विषयो का निश्चित ज्ञान मिलता है जो अनुभव गोचर तथा दृष्टफल हो। अप्रत्यक्ष विषय का ज्ञान असभव है। दूसरे मत का नाम अतीन्द्रियवाद या रहस्यवाद है। जिसके अनुसार अलौकिक विषयों की अनुभूति केवल प्रज्ञाशील व्यक्तियो को ही होती है। इनका ज्ञान तार्किक युक्ति द्वारा नही हो सकता। प्रज्ञा ही चरम तत्त्वहै

शून्यवाद

ज्ञाता, ज्ञेय तथा ज्ञान परस्पर आश्रित है। एक का अस्तित्व शेष दोनो पर निर्भर होता है। अत यदि एक असत्य हो तो शेष दोनो भी असत्य सिद्ध होंगे। जब हम किसी रस्सी को साँप समझ लेते है, तो वहाँ साँप का अस्तित्व बिल्कुल असत्य है। ज्ञातवस्तु (सर्प) यदि असत्य है तो ज्ञाता और ज्ञान भी असत्य है। इस दृष्टान्त के द्वारा यह प्रतीत होता है कि स्वप्न जगत् की तरह ज्ञाता, ज्ञान तथा ज्ञेय सभी असत्य है। इस प्रकार आभ्यन्तर या बाह्य किसी भी प्रकार की सत्ता नही है। ससार बिल्कुल शून्य है।

प्रत्यक्ष जगत के परे पारमार्थिक सत्ता अवश्य है। लेकिन वह अवर्णनीय है। उसके सम्बन्ध मे कुछ भी नही कहा जा सकता कि वह मानसिक है या बाह्य। साधारण लौकिक विचारो द्वारा अवर्णनीय होने के कारण उसे शून्य कहते है। बुद्धि के द्वारा वस्तुओं के स्वभाव का पता नही लग सकता। जो सत्य है, वह निरपेक्ष है। वह अपने अस्तित्व के लिये किसी वस्तु पर निर्भर नही हो सकता। किन्तु साधारणत हम जितने वस्तुओ को जानते है वे किसी न किसी वस्तु पर अवश्य निर्भर रहते है। अत य सत्य नही समझे जा सकते लेकिन इन्हे असत्य भी नहीं माना जा सकता है। ये यदि आकाश कुसुम की तरह बिल्कुल असत्य होती तो इनका अस्तित्व प्रत्यक्ष नही होता। लेकिन वैसी बात नही है। आकाश कुसुम की तरह ये बिल्कुल अप्रत्यक्ष नही है। तो क्या हम कह सकते है कि ये सत्य और असत्य दोनो है? या यह कह सकते है कि ये न तो सत्य है और न असत्य? ऐसा कहना तो बिल्कुल विरुद्ध होगा। वस्तुओ का स्वरूप इन चार कोटियो से रहित होने के कारण शून्य कहा जाता है। सत्य दो प्रकार के है—१ सवृति सत्य और २ पारमार्थिक सत्य। इसे शङ्कराचार्य के व्यवहारिक सत्ता और पारमार्थिक सत्ता का रूप माना जा सकता है।

योगाचार (विज्ञानवाद)

विज्ञानवाद के अनुसार चित्त ही एक मात्र सत्ता है। हमारा शरीर तथा अन्यान्य पदार्थ जो मन के बहिर्गत मालूम पडते है, वे सभी हमारे मन के अन्तर्गत है। बाह्यवस्तुओ का अस्तित्व नही है। वे सभी मानसिक प्रत्यय मात्र है। जिस प्रकार स्वप्न या मतिभ्रम की अवस्था मे हम वस्तुओ को बाह्य समझते है। यद्यपि वे मन के अन्तर्गत ही रहती है, उसी प्रकार साधारण मानसिक अवस्थाओ मे भी जो पदार्थ बाह्य प्रतीत होते है, वे भी विज्ञानमात्र है। चूंकि किसी वस्तु मे तथा तत्सम्बन्धी ज्ञान मे भेद नही किया जा सकता है। इसलिये बाह्यवस्तु का अस्तित्व बिल्कुल असिद्ध है। नीले रग मे तथा नीलेरग के ज्ञान मे कोई अन्तर नही है। क्योकि दोनो का पृथक अस्तित्व नही है। यथार्थत दोनो एक ही है। उन्हे दो समझना भ्रम है। दृष्टि विकार के कारण कोई व्यक्ति चन्द्रमा को दो देख सकता है। किन्तु इसका अर्थ यह नही कि चन्द्रमा दो है। किसी वस्तु का ज्ञान ज्ञान के बिना नही हो सकता। अत यह किसी भी प्रकार प्रमाणित नही किया जा सकता कि ज्ञान से भिन्न वस्तु का कोई अस्तित्व भी है।

सौतान्त्रिक (बाह्यानुमेयवाद)

सौतान्त्रिक चित्त तथा बाह्यजगत दोनो को ही मानते है। यदि बाह्य वस्तुओ के अस्तित्व को नही माना जाय तो बाह्य वस्तुओ की प्रतीति कैसे होती है—इमका प्रतिपादन नही किया जा सकता। जिसने बाह्य वस्तु को कभी प्रत्यक्ष नही देखा है वह यह नही कह सकता कि भ्रमवश अपनी मानसिक अवस्था ही बाह्य वस्तु के सदृश प्रतीत होती है। उसके लिये 'बाह्यवस्तु के सदृश' यह कहना उसी तरह अर्थहीन है, जिस प्रकार वन्ध्या पुत्र। विज्ञानवाद के अनुसार बाह्य वस्तु की कोई सत्ता ही नही है। अत बाह्यत्व का न तो कोई ज्ञान हो सकता है और न उसके साथ किसी की तुलना की जा सकती है। यह सत्य है कि वस्तु के वर्तमान रहने पर ही उसका प्रत्यक्ष होता है। किन्तु वस्तु और उसका ज्ञान समकालीन है, इसलिये अभिन्न है—यह युक्ति सत्य नहीं है। हमे जब घट का प्रत्यक्ष होता है तब घट हमारे बाहर है और ज्ञान हमारे अन्दर है—इसका स्पष्ट अनुभव होता है। अत वस्तु को ज्ञान से भिन्न मानना चाहिए। यदि घट मे और मुझ मे कोई भेद नही होता तो मै कहता कि 'मै ही घट हूँ।' यदि बाह्य वस्तुओ का कोई अस्तित्व नही होता तो 'घटज्ञान' तथा 'पटज्ञान' मे भी कोई भेद नही होता। घट और पट यदि केवल ज्ञान है तो दोनो एक है। लेकिन 'घटज्ञान' और 'पटज्ञान' को हम एक नही मानते है। इससे स्पष्ट है कि दोनो मे वस्तु सम्बन्धी भेद अवश्य है।

हम अपनी ही इच्छानुसार जहाँ कही किसी वस्तु को नही देख सकते है। इससे भी प्रतीत होता है कि ज्ञान केवल हमारे मन पर निर्भर नही है। ज्ञान के चार प्रकार के कारण या प्रत्यय होते है—१ आलम्बन, २ समनन्तर, ३ अधिपति और ४ सहकारी प्रत्यय—

१. घटादि बाह्य विषय का ज्ञान का आवलम्बन कारण है। क्योकि ज्ञानका आकार उसीसे उत्पन्न होता है।

२ ज्ञान के अव्यवहित पूर्ववर्ती मानसिक अवस्था मे ज्ञान मे चेतना आती है। इसलिये इसका नाम समनन्तर प्रत्यय है।

३ विषय और पूर्ववर्ती ज्ञान के रहने पर भी बिना इन्द्रिय के बाह्य ज्ञान नही हो सकता है। किसी विषय का ज्ञान रूप–रस–गन्ध–स्पर्शादि किसी प्रकार का ज्ञान होगा वह इन्द्रिय पर निर्भर है। अत इन्द्रियो का ज्ञान का अधिपति प्रत्यक्ष या नियामक कारण कहा जाता है।

४. इनके अतिरिक्त आलोक, आवश्यक दूरत्व, आकार आदि सहायक कारणो का होना भी ज्ञान होने के लिये आवश्यक है। इन्हे सहकारी कारण कहते है।

इन चार प्रकार के कारणो के सयोग से ही किसी वस्तु का ज्ञान होना सम्भव है। अत ज्ञान का आकार ज्ञात वस्तुओ के अनुसार ही होता है। हम प्रत्यक्ष वस्तुओ के जो आकार देखते है वे ज्ञान के आकार है और वे मन ही मे है। बाह्य वस्तु का ज्ञान वस्तु जनित मानसिक आकारो से अनुमान के द्वारा प्राप्त होता है। अत इसे बाह्यानुमेयवाद कहते है।

वैभाषिक (बाह्यप्रत्यक्षवाद)

सौतान्त्रिको के समान वैभाषिक भी चित्त तथा बाह्यवस्तुओ के अस्तित्व को मानते है। परन्तु वे कहते है कि वस्तुओ का ज्ञान प्रत्यक्ष को छोडकर अन्य किसी उपाय से नही हो सकता। यह सत्य है कि हम धूआ देखकर हम आग का अनुमान करते है। किन्तु यह इसलिये संभव

होता है कि अतीत मे हमने आग और धूआ को एक साथ देखा है। जिसने इन दोनो को साथ साथ कभी नही देखा वह धूआ देखकर आग का अनुमान नही कर सकता। यदि बाह्य वस्तुओ का प्रत्यक्ष कभी भी नही हुआ रहे तो केवल मानसिक प्रतिरूपो के आधार पर उनका अस्तित्व सिद्ध नही हो सकता। जिसने कभी कोई बाह्यवस्तु नही देखा है, वह यह नहीं समझ सकता कि कोई मानसिक अवस्था किसी बाह्य वस्तु का प्रतिरूप है। प्रत्युत वह तो यह समझेगा कि मानसिक अवस्था ही मौलिक और स्वतन्त्र सत्ता है। उसका अस्तित्व किसी बाह्यवस्तु पर निर्भर नही है। अत यातो हमे विज्ञानवाद को स्वीकार करना होगा या यह मानना होगाकि बाह्यवस्तुओं का प्रत्यक्ष ज्ञान ही सम्भव है।

वैशेषिक दर्शन

ज्ञान या चैतन्य का अधिकरण (आधार) आत्मा है। बुद्धि का अर्थ है ज्ञान–"सर्वव्यवहारहेतुर्ज्ञानं बुद्धि–त स।" "व्यवहार शब्द प्रयोग ज्ञान बिना शब्दप्रयोगासम्भवाच्छब्द प्रयोगरूपव्यवहारहेतुत्वं ज्ञानस्य लक्षणम्–न्यो बो०।" 'जानामीत्यनुव्यवसायगम्य ज्ञानत्वमेव लक्षणम्–त स दी।" अर्थात् बुद्धि का साधारण धर्म है–'ज्ञानत्व'। जब हम घट पट देखते है तब 'अय पट' ऐसा ज्ञान 'व्यवसाय' कहलाता है। जब हम यह भी अनुभव करते है कि हमे घट का ज्ञान प्राप्त हो रहा है। (घटमहं जानामि) तब ऐसे ज्ञान को अनुव्यवसाय कहते है। व्यवसायात्मक ज्ञान बहिर्मुख होता है और अनुव्यवसायात्मकज्ञान अन्तर्मुख। व्यवसाय और अनुव्यवसाय की सामान्य जाति है 'ज्ञानत्व'। वह ज्ञानत्व जिसमे हो वही बुद्धि है। प्रशस्तपादाचार्य ने वैशेषिक सूत्र के भाष्य मे लिखा है–"बुद्धिरुपलब्धिर्ज्ञानं प्रत्यय इति पर्याय" अर्थात् बुद्धि, उपलब्धि, ज्ञान और प्रत्यय ये सभी पर्याय (एक ही वस्तु के नाम) है। ऐसा उन्होने साख्य मत के खण्डन के उद्देश्य से कहा है। क्योकि साख्य मत म इनमे भेद है। 'महतत्त्व नाम का अन्त करण विशेष जो सत्त्व–रज–तम रूप को प्रथम परिणाम है उसका नाम है 'बुद्धि' उस बुद्धि के विषयाकार प्रतीति या परिणाम 'घट है' का नाम है 'ज्ञान'। दर्पण के समान निर्मल बुद्धि मे वर्तमान ज्ञान से चैतन्य शक्ति रूप पुरुष का भेदज्ञान न होने से पुरुष (आत्मा) मे ज्ञानाश्रय होने के अभिमान को 'उपलब्धि' कहते है।" इस साख्यमत का खण्डन वैशेषिक भाष्यकार ने इन्हे पर्याय बतलाकर किया है। सप्तपदार्थी मे शिवादित्य ने कहा है "आत्माश्रय प्रकाशो बुद्धि'। बुद्धि प्रकाश रूप है और वह आत्माश्रित है। इस लक्षण मे सूर्य या दीप का प्रकाश नही आ सकता। 'बुद्धिरुपलब्धिर्ज्ञान प्रत्यय इत्यादिभि पर्याय शब्दैर्याऽभिधीयते सा बुद्धि। अर्थ प्रकाशो वा बुद्धि ॥त.भा॥"

सांख्य दर्शन

पुरुष चेतन है। चैतन्य इसका आगन्तुक गुण नहीं प्रत्युत स्वरूप ही है। पुरुष का चैतन्य प्रकाश महत् के सत्त्वगुण पर पडता है। अत महत् भी चेतन मालूम पडता है। इसी के साथ चिन्तन का भी प्रादुर्भाव होता है। अत महत् को बुद्धि भी कहते है। वही जगत् की सृष्टिकारिणी बुद्धि है। बुद्धि का रूपान्तर अहकार मे होता है। पुरुष शरीर इन्द्रिय मन और बुद्धि से भिन्न है। पुरुष वह शुद्ध चैतन्य स्वरूप है जो सर्वदा ज्ञाता के रूप मे रहता है, कभी ज्ञान का विषय नहीं हो सकता। यह चैतन्य का आधारभूत द्रव्य नही प्रत्युत स्वत चैतन्य स्वरूप है। चैतन्य इसका गुण नही स्वभाव है।' वह केवल द्रष्टा है जो प्रकृति की परिधि से परे औरशुद्ध

चैतन्य स्वरूप है। उसके ज्ञान का प्रकाश सर्वदा बना रहता है। ज्ञान के विषय बदलते रहते हैं, परन्तु आत्मा या चैतन्य का प्रकाश स्थिर रहता है वह नही बदलता। सृष्टि के क्रम मे सर्व प्रथम बुद्धि का प्रादुर्भाव होता है। बुद्धि प्रकृति का प्रथम विकार है। बुद्धि के विशेष कार्य है निश्चय और अवधारण। बुद्धि के द्वारा ही ज्ञाता और ज्ञेय पदार्थो का भेद विदित होता है। बुद्धि के द्वारा ही हम किसी विषय के सम्बन्ध मे निर्णय करते है। सत्त्वगुण के आधिक्य से बुद्धि का उदय होता है। बुद्धि का स्वभाविक धर्म है स्वत अपने को तथा दूसरी वस्तुओ को प्रकाशित करना। जब बुद्धि मे सत्त्व की अधिक वृद्धि होती है, तब उस सात्त्विक बुद्धि के फल होते है–धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य। जब तमस् का परिणाम बढ जाता है, तब उस तामस बुद्धि से अधर्म अज्ञान, आशक्ति और अशक्ति की उत्पत्ति होती है। बुद्धि पुरुष (आत्मा) से भिन्न है। क्योकि पुरुष समस्त भौतिक द्रव्यो और गुणो से परे है। परन्तु जीवात्माओ के जो ज्ञानादिक व्यापार होते है, उनका आधार यही बुद्धि है। इसमे सत्त्व अधिक होने के कारण आत्मा के चैतन्य को प्रतिविम्बितकर उससे स्वय प्रकाशयुक्त हो जाती है। इन्द्रियो और मन का व्यापार बुद्धि के निमित्त होता है और बुद्धि का व्यापार आत्मा के निमित्त होता है। बुद्धि की सहायता से पुरुष अपना और प्रकृति का भेद समझकर अपने यथार्थ स्वरूप की विवेचना कर सकता है।

योगदर्शन

जीव स्वभावत चैतन्य स्वरूप है। यह अज्ञान के कारण चित्त के साथ अपना तादात्म्य कल्पित कर लेता है और भ्रमवश अपने को चित्त समझने लगता है। चित्त प्रकृति का प्रथम विकार है। चित्त स्वभावत जड है, परन्तु आत्मा के निकटतम सम्पर्क मे रहने के कारण वह आत्मा के प्रकाश से प्रकाशित हो उठता है। निर्मल होने के कारण उस पर आत्मा का प्रतिबिम्ब पड़ता है, जिससे उसमे चैतन्य का अभास आजाता है। चित्त की वृत्तियॉ पॉच प्रकार की होती है १. प्रमाण (सत्यज्ञान), २ विपर्यय (मिथ्याज्ञान), ३ विकल्प (कल्पना), ४ निद्रा (सुषुप्ति) और ५ स्मृति।

प्रमाण (सत्यज्ञान) तीन प्रकार के होते है–प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द। विपर्यय (मिथ्या ज्ञान) विषयो के सम्बन्ध मे भ्रम को कहते है। विकल्प का अर्थ है वह शब्द जनितवृत्ति जिसका सम्बन्ध वस्तुस्थिति से न हो। जैसे 'आकाश कुसुम' शब्द से अर्थ बोध होता है, परन्तु इस बोध के अनुरूप कोई वस्तु नही है। निद्रा वह चित्तवृति है जिसमे तमोगुण का प्रधान रहता है, जिसके कारण जाग्रत् और स्वप्न अवस्थाओ के अनुभव विलीन हो जाते है। इस अवस्था को सुषुप्ति कहते है। सुषुप्ति अवस्था मे मानसिक क्रिया अथवा चैतन्य का लोप नही होता है। निद्राभङ्ग होने पर हम कहते है–"मै खूब सोया', 'ऐसा सोया कि किसी विषय का बोध ही नही रहा' इत्यादि। अर्थात् निद्रावस्था की बात हमे स्मरण रहती है, इससे सूचित होता है कि निद्रावस्था का प्रत्यक्ष अनुभव हमे अवश्य ही हुआ होगा, तभी तो वह हमे स्मरण आता है। इससे सिद्ध है कि सुषुप्तावस्था मे भी मन अपना कार्य करता रहता है। विषय का अभाव ही इस वृत्ति का आवलम्बन है। अत निद्रा को अभाव प्रत्ययालम्बना वृत्ति कहते है। अतीत अनुभवो की यथावत् मानसिक प्रतीति 'स्मृति' है। इन पॉच वृत्तियो के अन्तर्गत ही सभी वृत्तियॉ आ जाती है।

न्यायदर्शन

आत्मा को इन्द्रियो के द्वारा किसी वस्तु से सम्बन्ध होना है, तो उसमे चैतन्य का सचार होता है। चैतन्य आत्मा का कोई नित्यगुण नही है। यह आगन्तुक गुण है। जब मन और इन्द्रियो के द्वारा आत्मा किसी विषय से सम्बद्ध होता है, तभी उस विषय का चैतन्य या ज्ञान आत्मा को होना है। मुक्त होने पर आत्मा इन सम्पर्को से रहित हो जाता है। ज्ञान भी लुप्त हो जाता है। आत्मा एक ऐसा द्रव्य है जिसमे बुद्धि या ज्ञान, सुख दु ख, राग द्वेष, इच्छा, कृति या प्रयत्न आदि गुण रूप से वर्तमान रहते है। ज्ञान के सम्बन्ध मे न्याय दर्शन और वैशेषिक दर्शन का एक ही मत है। यह भी वैशेषिक के समानही बुद्धि, ज्ञान, उपलब्धि और प्रत्यय को पर्याय मानता है–"बुद्धिरुपलब्धिर्ज्ञानमित्यनर्थान्तरम्–न्या सू १।१।१५।" न्यायदर्शन आत्मा के आगन्तुक चैतन्य मानता है, नित्य चैतन्य नही। इस प्रकार ऐसा मानने पर आत्मा मे जडत्वापत्ति होती है। आगन्तुक चैतन्य का आत्मा मन आदि के सयोग से उत्पन्न होने के कारण घट अग्नि सयोगादि से उत्पन्न रक्त (लाल) आदि गुणके समान कादाचित्कत्व होने के कारण यदि इस भय से आत्मा का नित्य चैतन्य स्वीकार करते है तो सुप्त मूर्छित ग्रहादि आविष्टों का भी चिदात्माका नित्य चैतन्य स्वरुप तथा चैतन्य भानारूपी पिशाची जागृत होती है। सुप्त मूर्छित ग्रहादि आविष्ट दशा मे किसी भी आत्मा को कोई भी चेताने के लिये समर्थ होगा। अपितु सुषुप्तादि रहित जागरित स्वस्थता आदि दशा मे ही वे चेतयमान देखने वालों से अनुभव किये जाते है। इसलिये कादाचित्क चैतन्य होने के कारण आत्मा का आगन्तुक चैतन्य ही नैयायिकों का पक्ष क्या युक्त नही है। जडत्वापत्ति के सम्बन्ध मे नैयायिक कहते है कि 'आत्मा ज्ञानवान् है और ज्ञान का अत्यन्ताभाव जड होता है। कादाचित्क चैतन्य मानने पर चैतन्य वा ज्ञान का अत्यन्ताभाव नही है। अत जडत्वापत्ति भ्रान्त है।

मीमांसादर्शन

चैतन्य आत्मा का स्वरूप लक्षण नही है। चैतन्य की उत्पत्ति शरीर के साथ आत्मा के संयोग से होती है। विशेषत जब किसी विषय का ज्ञानेन्द्रियो के साथ संयोग होता है तव चैतन्य की उत्पत्ति होती है। मुक्त आत्मा विदेह होता है तथो चेतना विहीन होता है। किन्तु उसमे चैतन्य की शक्ति रहती है। चैतन्य आत्मा का वास्तविक स्वरूप नहीं, किन्तु एक औपाधिक गुण है जो अवस्था विशेष मे उत्पन्न हो जाता है। सुषुप्ता तथा मोक्षावस्था मे आत्मा को चैतन्य नहीं रहता क्योंकि उसके उत्पादक कारणो (जैसे इन्द्रिय और विषय का सयोगादि) का अभाव रहता या हो जाता है।

भाट्ट मत

आत्मा का ज्ञान कभी कभी होता है, प्रत्येक विषय ज्ञान के साथ आत्मा का ज्ञान नहीं होता। जब आत्मा पर विचार करते है, तब अपनी आत्मा का बोध होता है कि 'मैं हूँ'। इसे 'अहं वित्ति' कहते है। इसीका जो विषय है वह आत्मा है। प्रभाकर सम्प्रदाय इस मत को नहीं मानता। उसका कथन है कि 'अहं वित्ति' की धारणा ही अयुक्त है। क्योंकि एक ही आत्मा उसी ज्ञान का ज्ञाता और ज्ञेय (विषय) दोनो नहीं हो सकता। जैसे वही अन्न भोक्ता और भोज्य दोनो एक साथ नही हो सकता। कर्ता और कर्म के व्यापारों मे परस्पर विरोध होता है। एक ही क्रिया मे एक ही साथ एक ही वस्तु कर्ता और कर्म दोनों नहीं हो सकती। परन्तु

प्रत्येक विषय ज्ञान मे उसी ज्ञान के द्वारा आत्मा कर्ता के रूप, विषय विषय के रूप में उद्भासित होता है। इसलिये हमे जब कोई भी ज्ञान होता है (जैसे–'यह घडा है') तब हम कहते हैं "मै घडा देख रहा हूँ' अथवा 'मुझे घडे का ज्ञान हो रहा है।' यदि यहाॅ मैं स्वय ज्ञाता के रूप मे प्रतीत नही होता तो फिर 'मैने ही घडा देखा' यह किस आधार पर कायम किया जाता? इसके उत्तर मे भाट्ट सम्प्रदाय का कथन है कि प्रत्येक विपय ज्ञान के साथ आत्मा का ज्ञान उद्भासित होता तो मै इस घडे को जान रहा हूँ ऐसा बोध सर्वदा वर्तमान रहता। परन्तु प्रत्येक विषय ज्ञान के साथ ऐसा नही होता। इससे सूचित होता है कि आत्मज्ञान विपयज्ञान का नित्य सहचर नही है। वह कभी उदित होता है और कभी नही होता। अतएव वह ज्ञान विषय से भिन्न है। तव रहा कर्ता और कर्म का विरोध। सो यह कोरा शव्द जाल है। यदि दोनो मे वास्तविक बिरोध होता तो यह वैदिक विधिवाक्य कि 'आत्मानविद्धि' (अपने आत्मा को पहचानो) अथवा यह लौकिक प्रत्यय कि 'मै अपने को जानता हू' बिल्कुल निरर्थक हो जाता। इसके अतिरिक्त यदि आत्मा कभी ज्ञान का विपय नही होता तो फिर अतीत काल मे अपने आत्मा के अस्तित्व को स्मरण करना कैसे सम्भव होता? क्योकि अतीत कालीन आत्मा तो वर्तमान ज्ञान का ज्ञाता है नही, यह केवल वर्तमान कालीन आत्मा के स्मृति ज्ञान का विपय हो सकता है। इससे सिद्ध होता है कि आत्मा ज्ञान का विषय हो सकता है।

प्रभाकर मत

ज्ञान को ज्ञान कैसे प्राप्त होता है? प्रभाकर मीमांसको का मत है कि प्रत्येक विषय ज्ञान मे, जैसे 'मैं यह घडा जानता हूँ' तीन अङ्ग विद्यमान रहते है–(१) ज्ञाता अर्थात् जानने वाला(मैं) (२) ज्ञेय जो विषय जाना जाता हैं (जैसे घडा) और (३) ज्ञान (अर्थात् घडे को जानना)। इन तीनो का ज्ञान एक साथ होता है। इसे 'त्रिपुटी ज्ञान' कहते है। जब कभी ज्ञान उत्पन्न होता है तव वह ज्ञाता ज्ञेय और अपने, इन तीनो को प्रकट करता है। अतएव ज्ञान ज्ञाता और ज्ञेय के प्रकाशक होने के साथ साथ स्वयं प्रकाश भी होता है, परन्तु इसके विपरीत भाट्ट मीमासकों का कथन है कि ज्ञान स्वभावत अपना विषय स्वयं नही हो सकता, जैसे अगुली का अग्रभाग अपने को ही नही छू सकता तब हम यह कैसे जान सकते है कि हमे अमुक बिपय का ज्ञान हो रहा है? इसके उत्तर मे भाट्ट मीमासक कहते है कि हमे कोई भी विषय या तो ज्ञात (प्रकट) होता है या अज्ञात (अप्रकट) रहता है। यदि वह ज्ञात रहता है तब उस ज्ञातता (प्राकट्य) के आधार पर हम यह अनुमान करते है कि हमे उस विषय का ज्ञान था। इस तरह ज्ञान का ज्ञान प्रत्यक्ष नही होता। वह परोक्ष रूप से ज्ञातता के आधार पर अनुमान के द्वारा प्राप्त होता है।

प्रभाकर मतमे–'अयं घट' यह ज्ञान–१ विषय भूत घट, २ ज्ञान तथा ३ ज्ञानप्रामाण्य इन तीनों का ग्रहण करता है। आत्मा एक अचेतन द्रव्य है जो विशेष अवस्थाओं मे चैतन्य का आधार हो जाता है।

भाट्टमत में–ज्ञान अतीन्द्रिय होने के कारण अनुमेय है, उसी तरह उसका प्रामाण्य भी अनुमेय है। (घट) इस ज्ञान के बाद घट मे ज्ञातता उत्पन्न होती है, तत 'मया घटो ज्ञात' इस तरह ज्ञातता को प्रत्यक्ष होता है, अनन्तर व्याप्यस्वरूप ज्ञातता के प्रत्यक्ष होने से ज्ञान का अनुमान होगा। यथा–मै घटत्व प्रकारक ज्ञानवान् हूॅ, क्योकि घटत्त्व प्रकारक ज्ञाततावान् हूॅ। इसी

अनुमान से धर्म-प्रामाण्य तथा धर्मी-ज्ञान दोनो का अनुमान होता है। आत्मा एक ऐसा चेतन पदार्थ है जो अज्ञात अज्ञान से ढका रहता है।

मुरारिमिश्र के मत मे-'अयं घट' इस ज्ञान के बाद 'घट महं जानामि' यह अनुव्यसाय होता है, उसीसे प्रामाण्याग्रह होता है।

वेदान्त दर्शन

अद्वैत वेदान्त मे आत्मा को नित्य चेतन माना गया है। ज्ञान आत्मा का स्वरूप है। ज्ञान उसका असली धर्म है। यह कोई विशेष विषयक ज्ञान नही बल्कि शुद्ध सामान्य चैतन्य है। इस चैतन्य को शुद्ध सत्ता स्वरूप समझना चाहिए, क्योकि यह सभी प्रकार के ज्ञानों मे विद्य मान रहता है। जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति-ये तीन अवस्थाये होती है। आत्मा का सार भूत चैतन्य इन तीनों मे वर्तमान रहता है। प्रथम अवस्था (जाग्रत्) मे बाह्य विषयो का ज्ञान रहता है। द्वितीय अवस्था (स्वप्न) मे केवल आभ्यन्तरिक विषयो का स्वप्नरूप मे ज्ञान होता है। तृतीय अवस्था (सुषुप्ति) मे किसी विषय का ज्ञान नही रहता तथापि चैतन्य का लोप नहीं होता। क्योंकि सुषुप्ति से जागने पर उस सुषुप्तावस्था के आनन्द (मैं खूब आराम से सोया) की स्मृति होती है। इस प्रकार जो जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्ति-इन तीनो अवस्थाओं मे स्थायी तत्त्व है वह चैतन्य है। वह किसी खास विषय का ज्ञान नही निर्विषयक ज्ञान या शुद्ध चैतन्य है। आत्मा अपने स्वभाविकरूप मे शुद्ध चैतन्यरूप है। आत्मा ज्ञान का अधिकरणमात्र नहीं अपितु ज्ञान स्वरूप है। ज्ञान भी पारमार्थिक (एक रूपेणहि अवस्थितो योऽर्थ स परमार्थ) व्यवहारिक और प्रातिभासिक-तीन प्रकार का होता है।

विशिष्टाद्वैत वेदान्त मे ज्ञान, स्वप्रकाश, चेतन तथा बुद्धि को कहते है। आत्मा को ज्ञानाश्रय माना गया है। ज्ञान स्वरूप नही। किन्तु आत्मा को अजड (अजडत्वं ज्ञानेन विना स्वयं प्रकाशमानत्वं अजडत्वम्) माना गया है। ज्ञान को द्रव्य तथा गुण दोनो माना गया है। ज्ञान को अर्थ प्रकाशक कहा गया है। ज्ञान को अचित् और अचेतन माना गया है।

द्वैत वेदान्त मे बुद्धि दो प्रकार की मानी गयी तत्त्व रूपा एव ज्ञान रूपा। तत्त्वरूपा बुद्धि द्रव्य है और ज्ञानरूपा गुण।

कोष

"चित्तं तु चेतो हृदयं स्वान्त हृन्मानस मन। अ को १।४।३१।" चित्तम् चेत (चेतस्) हृदयम्, स्वान्तम्, हृत् (हृद्) मानसम् मन (मनस्)-ये मन या चित्त के नाम है।

"बुद्धिर्मनीषाधिषणा धी प्रज्ञा शेमुषी मति। प्रेक्षोपलब्धिश्चित्संवित्प्रतिपज्ज्ञप्ति चेतना ॥

बुद्धि, मनीषा, धिषणा, धी, प्रज्ञा, शेमुषी, मति, प्रेक्षा, उपलब्धि, चित् (चिद्), संवित् (सविद्), प्रतिपद् (प्रतिपत्) ज्ञप्ति, चेतना-ये बुद्धि के नाम हैं।

"धिर्धारणावती मेधा सङ्कल्प कर्ममानसम्। अवधानं समाधानं प्रणिधान तथैव च ॥
चित्ताभोगो मनस्कारश्चर्चा सङ्ख्या विचारणा ॥ विमर्शो भावना चैव वासना च निगद्यते ॥
अध्याहारस्तर्क ऊहो विचिकित्सा तु संशय। सन्देह द्वापरौ चाथ समौ निर्णय निश्चयौ ॥
मिथ्या दृष्टिर्नास्तिकता व्यापादो द्रोह चिन्तनम्। समौ सिद्धान्तराद्धान्तौ भ्रान्तिर्मिथ्यामति भ्रम ॥

सविदागू प्रतिज्ञान नियमाश्रव संश्रवा । अङ्गीकाराऽभ्युपगमप्रतिश्रव समाधय ।।
मोक्षेधीर्ज्ञानमन्यत्र विज्ञान शिल्पशास्त्रयो । मुक्ति कैवल्यनिर्वाणश्रेयो नि श्रेयसामृतम् ।।

मोक्षोऽपवर्गोऽथज्ञानमविद्याऽहम्मति स्त्रियाम् । अ को १।५।२–७।" इन श्लोको मे बुद्धि के कार्यानुरूप प्रकारो का वर्णन है ।

व्याकरण

चिती सज्ञाने (भ्वा०), चिति स्मृत्याम् (चुरा०), चित सचेतनने (चुरा०) । ज्ञा निशामने (भ्वा०) निशामनं चाक्षुप ज्ञानम् इति माधव , ज्ञापनमात्रम् इत्यन्ये । ज्ञा अवबोधने (क्र्या०)जानाति, ज्ञपमिच्च, अर्थं ज्ञाने ज्ञापने च वर्तते (चुरा०), मनु अवबोधने (तना०), मन ज्ञाने (दिवा०), कि ज्ञाने (जुहो०) चिकेति बुधिर अवबोधने (भ्वा०) बोधते। उबुन्दिर निशामने, निशामनं ज्ञानम् (भ्वा०), वेणृ गति ज्ञान चिन्तानिशामन वादित्र ग्रहणेषु (भ्वा०) विद् विचारणे (रुधा०), विद् चेतनाख्याननिवासेषु (चुरा०), विद्लृ लाभे (तुदा०) जीव प्राणधारणे (भ्वा०)।

श्रीमद्भगवद्गीता

श्रीमद्भगवद्गीता मे बुद्धि और ज्ञान मे अन्तर माना गया है और दोनो का तीन तीन भेद पृथक् पृथक् उपदेश किया है धृति को भी बुद्धि और ज्ञान से पृथक् कहा गया है और उनका भी तीन भेद पृथक् कहा गया है—

ज्ञान —सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते । अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम् ।।
पृथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं नानाभावान् पृथग्विधान् वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तज्ज्ञानं विद्धिराजसम् ।।
यत्तु कृत्स्नवदेकस्मिन्कार्येसक्तमहैतुकम् । अतत्त्वार्थवदल्प च तत्तामसमुदाहृतम् ।।१८।२०।२२

बुद्धि —प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये । बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धि सापार्थ सात्त्विकी।
यथाधर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च । अयथावत्प्रजानाति बुद्धि सा पार्थ राजसी ।।
अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता। सर्वार्थान्विपरीताश्च बुद्धि सापार्थतामसी ।।१८।३०।३२

धृति —धृत्या यया धारयते मन प्राणेन्द्रियक्रिया। योगेनाव्यभिचारिण्या धृति सा पार्थ सत्त्विकी ।।
यया तु धर्मकामार्थान्धृत्या धारयतेऽर्जुन । प्रसङ्गेन फलाकाङ्क्षी धृति सा पार्थ राजसी ।।
यया स्वप्नं भयं शोकं विषादं मदमेव च। न विमुञ्चति दुर्मेधा धृति सा पार्थ तामसी ।।१८।३३।३५

बुद्धि और ज्ञान –बुद्धिर्ज्ञानमसंमोह क्षमा सत्यं दम शम । भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधा
ज्ञान —धूमेनाव्रियते वह्निर्यथाऽऽदर्शोमलेन च । यथोल्वेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम् ।।

आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा । कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च ।।
इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते । एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम् ।।
तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ । पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम् ।।
इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्य पर मन । मनसस्तुपराबुद्धिर्योबुद्धे परतस्तु स ।।३।३८।४२
"बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावभागता ।।४।१०।। "ज्ञानाग्निदग्धकर्माण तमाहु पण्डितंबुधा ४।१९
आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते ।।४।२७ यथैधासि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन ।
ज्ञानाग्नि सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा ।। श्रद्धावॉल्लभते ज्ञानं तत्पर सयतेन्द्रिय ।
ज्ञानं लब्ध्वा परा शान्तिमचिरेणाऽधिगच्छति ।। अज्ञश्च श्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति ।

नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मन ।। योगसंन्यस्तकर्माणं ज्ञानसंछिन्न संशयम् ।
आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नन्ति धनंजय ।। तस्मादज्ञानसंभूत हृत्स्थं ज्ञानासिनाऽऽत्मन ।
छित्त्वैनं संशय योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत ।।४।३९।४२ नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभु ।
अज्ञानेनावृत ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तव ।। ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषा नाशितमात्मन ।
तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयतितत्परम् ।। तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायण ।
गच्छन्त्यपुनरावृत्ति ज्ञाननिर्धूतकल्मषा ।।५।१५।१७। "माययापहृतज्ञाना आसुर भाव माश्रित ।
ज्ञानं ज्ञानवतामहम् ।।१०।३८।। "अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम् ।
आचार्योपासनं शौच स्थैर्यमात्मविनिग्रह ।। अध्यात्मज्ञाननित्यत्व तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम् ।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञान यदतोऽन्यथा ।।१३।७।११ यथा प्रकाशयत्येक कृत्स्नं लोकमिमरवि ।
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्न प्रकाशयति भारत ।। क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमन्तर ज्ञानचक्षुषा ।
भूत प्रकृति मोक्षं च ये विदुर्यान्ति ते परम् ।।१३।३४

(भाग–२)

श्रीरामानन्द सम्प्रदाय के वेदान्त के ग्रन्थो मे ज्ञान के सम्बन्ध मे इस प्रकार निरूपण है—

[१] श्री वैष्णवधर्मपीयूषम्–

अणुर्ज्ञानाश्रयोजीव सच्चिदानन्दरूपक । प्राणतो बुद्धितश्चापि भिन्नो देहात् तथेन्द्रियात् ।।३५।।
'ममज्ञानम्' प्रतीतेश्च ज्ञानेऽपि जीवता न हि ।।३७।। दीपप्रभेव यद् द्रव्यं विम्बचिच्चाजड तथा ।
ज्ञानं तद् ब्रह्म जीवाना धर्मभूत मत बुधै ।।६७।। सङ्कोचश्च विकासश्चतद्विकारौ प्रकीर्त्तितौ ।
'न विज्ञातुरि'ति श्रौते वाक्ये तन्नित्यता श्रुता ।।६८।। विभुज्ञान च बद्धाना त्वान्छाद्यते हि कर्मणा ।
ब्रह्मणो नित्यमुक्ताना ज्ञानं च सर्वदा विभु ।।६९।। ज्ञानं स्वत प्रमाणं हि स्वीकृत वेदवेदिभि ।
सर्वं ज्ञानं यथार्थं हि विषये सत्यता यत ।।७०।।

[२] श्रुतिसिद्धान्तदीपिका—

तत्र ज्ञानस्वरूपोऽणुश्चिदर्थो जीव उच्यते । परागथाजड नित्य विभुज्ञान हि तद्गुण ।।५।।
संयोगगतिमत्त्वाच्च द्रव्यत्वमुभयोर्मतम् । परेण ज्ञानवेद्योऽपि स्वात्मा स्वेनापि गृह्यते ।।६।।
विकारिता मता ज्ञाने नात्मनि सा हि सम्मता । सङ्कोचश्च विकासश्च विकारौ सम्मतौ मतौ ।।७।।
'अहं जानामि' इत्येषा प्रतीति सर्वसम्मता । ज्ञानाश्रयस्ततश्चात्मा ज्ञानं गुणस्तथात्मन ।।८।।
आत्मतज्ज्ञानयोश्चाथ प्रकाशभूतयोस्तथा । आधाराधेयभावोहि दीपतत्प्रभयोरिव ।।९।।
विषयाणा प्रकाशस्य काले ज्ञान प्रकाशते । प्रकाशते सदाचात्मा धर्मभूत सनातन ।।१०।।
अनुकूलस्तथा चैक स्फुरत्यात्मा सदैव हि । ज्ञान चाप्यनुकूलवान् सुखरूपं मतं बुधै ।।११।।
'अहं सुख किलास्वाप्समि' त्थंभूतप्रतीतित । आत्मा सुखस्वरूपोऽत्र स्वस्मै च स्वप्रकाशता ।।१२।।
ज्ञाने नित्यविभूतौ च परस्मै स्वप्रकाशता । स्वान्यनिर्वाहकत्वेन दीपवत् तत्र सागता ।।१३।।

[३] मुमुक्षु सर्वस्वम्—

चिदर्थस्तत्र जीवात्मा ज्ञाता चाणुमतो बुधै । ज्ञानेन धर्मभूतेन व्याप्त सोऽखिलवर्ष्मणि ।।१६।।
ज्ञानमर्थप्रकाशस्तद् धर्मो जीवेशधर्मिणो । प्रभावत्स्वप्रकाशं च विभु नित्यं परागथ ।।४२।।
सङ्कोचश्च विकासश्च जीवज्ञानेहि कर्मणा । सर्वदाचेश्वरज्ञानं व्यापकं सम्मतं बुधै ।।४३।।

[४] श्री अनन्ततत्त्वामृतम्—

विद्वद्भि सम्मतचात्र ज्ञानमर्थप्रकाशकम् । धर्मधर्मिस्वरूपं च ज्ञानं हि द्विविधं मतम् ।।४०।।

ज्ञानं धर्मिस्वरूपं हि जीवस्तथाऽखिलेश्वर । ज्ञानं धर्मस्वरूपं हि नित्य प्रज्ञाऽभिध विभु ॥४१॥

[५] सिद्धान्तरत्नमाला—

ज्ञातुर्ज्ञेयावभासो हि ज्ञानत्वेन प्रकीर्त्तित । धर्मधर्मिविभेदाद्धि ज्ञानं द्विधेति वक्ष्यते ॥२३॥
आत्मधर्मतयाभाति प्रभावत् तत्र चादिमम् । 'सत्यंज्ञानयिति श्रुत्याज्ञानस्य द्रव्यता मता ॥२४॥
'न विज्ञातुरि'ति श्रुत्या श्रुता ज्ञानस्य नित्यता । ईश्वरे नित्यजीवेषु ज्ञानं नित्यं मतं विभु ॥२५॥
कर्मावृत्तं हि बद्धेषु मुक्तेषु प्राक् तदावृतम् । नष्टोत्पन्नप्रतीतिस्तु सङ्कोचाच्च विकासत ॥२६॥
स्वापे ज्ञानतिरोधानं तमोविशेषसन्निधे । ज्ञाने द्रव्यत्वसत्त्वेऽपि प्रभेव गुणता मता ॥२७॥
विषयसत्यताहेतोर्ज्ञाने स्वत प्रमाणता । स्वान्यनिर्वाहकत्वेन सूर्यवत् स्वप्रकाशता ॥२८॥
जीवोऽणुचेतनो व्याप्तो ज्ञानेनाखिलवर्ष्मणि । झटिति तेन जानाति सर्वदेह सुखादिकम् ॥२९॥

[६] श्रीबोधायनमतादर्श —

नित्यधामेतरज्ज्ञानमजडद्रव्यमचेतनम् । घटाद्यर्थप्रकाशानामसाधारणकारकम् ॥८४७॥
प्रसृत्यचेन्द्रियद्वारा द्रव्येण युज्यते तत । गुणक्रिया विशिष्टत्वाज्ज्ञानस्य द्रव्यता मता ॥८४८॥
'अह जानामि' चेत्येषा प्रतीतिर्जायते तत । अपृथक् सिद्धधर्मश्च ज्ञानंजीवपरात्मनो ॥८४९॥
सकोच च विकासं च तदाप्नोति यथा प्रभा । नष्टोत्पन्नप्रतीतिस्तु जायते तत एव च ॥८५०॥
ज्ञानं संकुचितं बद्धे विभुमुक्तपरेशयो । ज्ञाने दैवेन सकोचो दैवाभावे विकासिता ॥८५१॥
प्रसृतत्वं च प्रज्ञाया श्वेताश्वतरसम्मतम् । ज्ञानावृत्तिश्च गीतायामा 'वृतं ज्ञानमि'त्यथ ॥८५२॥
सुख रूपं च नित्यं च कालभिन्नं पराक् तथा । नित्यात्मनो गुणो ज्ञानं स्वरूपस्य निरूपक ॥८५३॥
सुषुप्तौ तमसाच्छन्नं तद् भवेत्तु तिरोहितम् । सकोचश्च विकासश्च सर्पकुण्डलवत् खलु ॥८५४॥
ज्ञाने स्वतश्च प्रामाण्यमाप्रामाण्यं परेणतु । धारावाहिकविज्ञानमेकमेव हि सम्मतम् ॥८५५॥
उपाधिभेदतो बुद्धि सुखदु खादिरूपिणी । ज्ञानावस्था विशेषाश्च भक्त्यादय प्रकीर्तिता ॥८५५॥
ज्ञानस्यानन्त्यतश्चैव ह्यानत्यश्रुतिसङ्गति । ज्ञानेन सर्वभूतेन भोगश्च सर्ववर्ष्मणि ॥८६४॥
प्रभाया भित्तिसम्बद्धाया यथा दीपधर्मता । ज्ञाने भालादिसम्बद्धेऽप्यात्मसम्बद्धतातथा ॥८६५॥
योगिना बहुदेहाना ज्ञानेनैव च धारणम् । तत्कारणं तु बोद्धव्यं योगबलं हि देहिनाम् ॥८६६॥
विलक्षणं हि संयोग ज्ञानप्रसरण मतम् । सुषुप्तावनपायत्वात् तत्तद् देहधृतिस्तत ॥८६७॥"

[७] श्रौतप्रमेयचन्द्रिका—

परोगचेतन द्वेधा ज्ञानं च नित्यधाम च । अर्थप्रकाशकं ज्ञानं विभुद्रव्यगुणात्मकम् ॥३।३॥
नित्यं जीवेशयोर्धर्मो भिन्न तत्प्रतिचेतनम् । अनुकूलतया वेद्य मतं तस्मात् सुखात्मकम् ३।४
तद् 'न विज्ञातुर्विज्ञातेर्विपरिलोपो विद्यते' । इति श्रुतिबलान्नित्यं मन्यते हि विचक्षणै ॥३।५॥
'तथा हेयगुणध्वंसादवबोधदयो गुणा । प्रकाश्यन्ते न जायन्ते नित्या एवात्मनो हि ते' ३।६
सुषुप्त्यादिकससिद्धिस्तमोविशेषसन्निधे । उत्पन्ना चाथ नष्टा च व्यवहारो मते खलु ३।७
संकोचाख्य विकासाख्यावस्थाभ्या सम्भवेदिह । सकोचश्च विकासश्च सर्पकुण्डलवन्मत ३।८
सकोचोऽस्येन्द्रिय द्वारा बद्ध एव हि कर्मणा । विकासश्चेन्द्रियेणाथ ज्ञानस्य प्रसृतौ मत ॥३।९
सकोचादि विकारित्वाज्ज्ञानस्य द्रव्यतामता । द्रव्यत्वेऽपि मताज्ञाने प्रभावद्गुणता बुधै ३।१०
प्रामाण्यं विषयास्तित्वं तज्ज्ञानस्य स्वतोमतम् । अप्रामाण्यं तु धर्मांशे परतो मन्यते किल ३।११॥"

[८] प्रमेयोद्देश भास्कर —

ज्ञानं विम्वजडं द्रव्यं नित्यं विषयिकीर्त्तितम् । धर्मधर्मिविभेदेन ज्ञान हि द्विविधं मतम् ॥१४॥
जीवब्रह्मेतिभेदाच्च धर्मिज्ञानं मतं द्विधा । प्रमाऽप्रमाविभेदेन धर्मभूता द्विधा मति ॥१५॥

[९] प्रमेय परिशोधिनी—

द्रव्यगुणात्मक द्रव्यं प्रभावद्विभु यच्च तत् । ज्ञानमानन्दरूपं स्वप्रकाश नित्यमेव तत् ॥२८॥
प्रसरणादिक्रियावत्त्वाज्ज्ञान द्रव्यं प्रभा यथा । सदाऽऽश्रितस्वभावत्वात् गुणो यथा विशेषणम्॥२९॥
नित्यत्वेचापि शेमुष्या स्वापादिरुपपद्यते । प्रतिबन्धकता यस्मात्तमसश्चास्ति जागरे ॥३०॥
उत्पन्नञ्चाथनष्टञ्च मम ज्ञानमियं मति । सङ्कोचाच्च विकासाच्च ज्ञानस्य जायते नृणाम् ॥३१॥
सकोचं कर्मणाऽऽप्नोति बद्धेषु चेतनेषु तत् ॥३२॥ तत्र वेदान्तिभि प्रोक्ता बुद्धेर्ज्ञानस्वरूपता॥७७॥
इच्छाद्वेषप्रयत्नाना तथा च सुख दु खयो । ज्ञानावस्थाविशेषत्वाज्ज्ञातेऽन्तर्भाव ईरित ॥७८॥"

[१०] श्रीरामानन्दसिद्धान्तसार—

ज्ञानमर्थप्रकाशस्तन्नित्यं द्रव्य तथाऽजडम् । यथा प्रभा तथा ज्ञान विभुद्रव्यगुणात्मकम् ॥१००॥
अचिच्चेतनधर्मस्तद् बद्धाना तु तिरोहितम् । तन्नष्टादिप्रनीतिस्तु तत्सङ्कोचादि हेतुत ॥१०१॥
क्षरन्त्यन्त स्थितंलोके दृते पादात् यथोदकम् । नि सृत्येन्द्रियतो ज्ञानमर्थैन युज्यते तथा ॥१०२॥
अहिकुण्डलवज्ज्ञाने सङ्कोचश्च विकासिता । नित्यात्मनित्य धर्मत्वाज्ज्ञानस्य नित्यतामता ॥१०३॥
स्वापादयश्चसिध्यन्ति यत् तम प्रतिबन्धकम् । स्वीकृता हि बुधैर्ज्ञाने स्वत एव प्रमाणता ॥१०४॥
ज्ञानं विभु पराक्त्वाभ्या जीवाद्भिन्न बुधैर्मतम् । विभुत्वेऽपीशतो भिन्न ज्ञानं पराक्त्वहेतुना ॥१०५॥
काल प्रकृतिजीवेशा शुद्धसत्त्व च शेमुपी । इत्युपादानरूपाणि षड्द्रव्याणि मतानि हि ॥११॥
ज्ञानशून्यमचित् तत्त्व तस्यभेदचतुष्टयम् । प्रकृतिश्चाथ कालश्च शुद्धसत्त्वं च शेमुपी ॥६१॥
जडाजडविभेदाच्च तस्यभेदद्वयं पुन । आद्यद्वयं जड तत्राजडमन्त्यद्वय मतम् ॥६२॥
जडत्वं परमास्यत्व तद्भिन्नाऽजडतामता । अजडं च द्विधा बोध्यं प्रत्यग् पराग् विभेदत ॥६३॥
स्वस्मै स्वभासुर चाद्यं परस्मै भासुर परम् । आद्य जीवेश्वरावन्त्यं शुद्धसत्त्वं च शेमुषी ॥६४॥
जडाहि प्रकृतिर्ज्ञानशून्या च त्रिगुणाश्रय । प्रलये प्रकृतौज्ञेया समा सत्वादयोगुणा ॥६५॥
दीपज्योतिरिविज्ञान जीवस्य व्यापकं मतम् । हृत्स्थो जीवोऽखिल वेत्ति ततो देह सुखादिकम्॥२८॥

भाग–२

ज्ञान लिङ्ग से ही आत्मा एवं परमात्मा को निर्देश किया गया है–"ज्ञानाधिकरणमात्मा । सद्विविध जीवात्मा परमात्मा च ॥त० स.॥" योग दर्शन ने परमात्मा (ईश्वर) को सर्वज्ञता का कारण (मूल) कहा है–"तत्र निरतिशयं सर्वज्ञ बीजम् यो सू १।२५। योगदर्शन मे ज्ञानसामान्य (ज्ञाना ज्ञान) के अनुकूल व्यापार का नाम वृत्ति कहा गया है एवं उसके पॉच भेद या नाम बतलाये गये है–"प्रमाण विपर्यय विकल्प निद्रा स्मृतय –१।६।" इनमे प्रथम प्रमा (यथार्थज्ञान तद्वति तत्प्रकारकोऽनुभव) प्रमाण जन्य ज्ञान रूप है–"प्रत्यक्षानुमानागमा प्रमाणानि–१।७" दूसरा अप्रभा (अयथार्थज्ञान=तदभाववति तत्प्रकारकोऽनुभव) अतद्रूप प्रतिष्ठित मिथ्याज्ञान रूप विपर्यय है– "विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठितम्–१।८।" तिसरा–विकल्प (वस्तुशून्य केवल शाब्दिक अलीक मिथ्या ज्ञान) मृषार्थक है–"शब्दज्ञानानुपाती वस्तु शून्यो विकल्प १।९।" अर्थात् काल्पनिक। चौथा–निन्द्रा (ज्ञाना भाव अथवा स्वप्न 'निद्रा शयनं स्वाप स्वप्न संवेश इत्यपि–अ को १।७।३६) "अभाव प्रत्ययालम्बनावृत्तिर्निद्रा–१।१०।" एव पॉचवा–स्मृति (अनुभूत विषयस्यासम्प्रमोष स्मृति – १।११।" इस प्रकार यहाँ १ यथार्थ (तद्रूप) ज्ञान, २ अयथार्थ (अतद्रूपज्ञान) ३–काल्पनिक ज्ञान, ४–अज्ञान ज्ञानभाव एवं स्वप्न ज्ञान) तथा ५–स्मृतिज्ञान–इन पञ्चप्रकारक ज्ञानो का प्रतिपादन है। योगसूत्र के तृतीय पाद मे अनेक विध ज्ञानो का प्रतिपादन है–१ अतीतानागतज्ञान, २ सर्व-

भूतज्ञान, ३ पूर्वजातिज्ञान ४ परचित्तज्ञान, ५ अपरान्त (मृत्यु) ज्ञान, ६ सूक्ष्मव्यवहित विप्रकृष्ट-ज्ञान, ७ भुवनज्ञान ८ ताराज्ञान, ९ तारागतिज्ञान, १० प्रातिभज्ञान, ११ चित्तज्ञान, १२ पुरुषज्ञान १३ सर्वज्ञातृत्व १४ विवेकज (यो० सू० ३।१६–५४) जो ज्ञान तत्त्व के कार्य या ज्ञानकार्य कहे जा सकते है। इनकी प्राप्ति वहाँ योग सावन (सयम) से कही गयी है।

सम्प्रज्ञात संसम्यक् प्रकारेण (सम्यगर्थे संप्रोक्त दुष्प्रयोगो विवर्जित) प्र प्रकृष्टरूपेण ज्ञात जातम् (ज्ञा अवबोधने क्र्या०) योग भी ज्ञानयोग ही है–"वितर्क विचारानन्दास्मितानुगमात्म सम्प्रज्ञात। यो सू १।१७।" तत्र शब्दार्थज्ञान विकल्पै सकीर्णा सवितर्का समापत्ति ॥ स्मृति परिशुद्धौ स्वरूपशून्येवार्थमात्रनिर्भासानिर्वितर्का ॥यो० सू १।४२–४३॥" निर्विचार वैशारद्येऽध्या त्मप्रसाद यो० सू० १४।७।

दृग्दर्शनशक्त्योरेकात्मतेवास्मिता–यो० सू० २।६।" वितर्क, विचार, आनन्द और अस्मिता–इन चारो के योग से सम्प्रज्ञात योग होता है। प्रज्ञा योग का साधक है (यो० सू०)। जब योगी की बुद्धि अत्यन्त निर्मल हो जाती है तब बुद्धि ऋतम्भरा हो जाती है–"ऋतम्वरा तत्र प्रज्ञा–यो० सू० १।४८।' उस ऋतम्भराप्रज्ञा की विशेषता एवं महत्त्व है–श्रुतानुमानप्रज्ञाभ्यामन्य विषया-विशेषार्थत्वात् ॥ तज्ज सस्कारोऽन्यसस्कारप्रतिबन्धी। यो०सू० १।४९–५०॥" दु खो का अभाव (नाश) विवेक से होता है और विवेक प्राप्त पुरुप की सात प्रकार की स्थिति होती है (यो० सू० २।२६–२७)। योगो के अनुष्ठान करने से अशुद्धियो का नाश होने पर ज्ञान का प्रकाश विवेक मे होता है–"योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिरविवेकख्याते –यो० सू०२।२८।" संयम की सिद्धि से बुद्धि का प्रकाश होता है–"तज्जयात्प्रज्ञालोक यो० सू० ३।२।" जिसका ज्ञान की सप्तभूमियों (यो० सू०२।२७) मे प्रयोग करनाचाहिए–"तस्य भूमिपु विनियोग यो० सू० ३।६।"

सर्वप्रकार के आवरण एवं मल हटजाने पर ज्ञाने अत्यन्त (सीमारहित) हो जाता है एवं ज्ञेय पदार्थ अल्प हो जाता है। ज्ञान व्याप्य एवं ज्ञेय व्यापक बनजाता है–"तदा सर्वावरण मलापेतस्य ज्ञानस्यानन्त्याज्ज्ञेयमल्पम्। यो० सू० ४।३१।"

न्यायदर्शन मे भी परमात्मा (परमेश्वर) एवं आत्मा (जीवात्मा) के ज्ञानो मे भेद बतलायागया है–परमात्मत्वं च समवायेन नित्य ज्ञानत्वम्। समवायेन जन्यज्ञानवत्व जीवत्वम् "प्रतिबिम्ब" "तत्र नित्याया आश्रय प्रमाणम्। अनित्यया साधकतमं प्रमाणम् "लक्षणमाला ॥"

'द्रूगतौ (भ्वा) द्रवति। धातु से कृत् प्रत्यय से द्रव्य शब्द बनता है। अर्थ होता है गति-वाला या गतियोग्य। गति का भी चार अर्थ माना जाता है–गति गमने, गति प्राप्तौ, गति ज्ञाने, गति मोक्षे।

निरुक्त मे 'भावप्रधानम् आख्यातम सत्वप्रधानानि नामानि। कहकर सत्त्व अर्थात् द्रव्य की प्रधानता को नाम कहा है। व्याकरण मे द्रव्य का लक्षण 'लिङ्ग सख्यान्वितं द्रव्यं सत्त्वमित्य-भिधीयते' अथवा 'लिङ्ग सख्याकारकान्वित द्रव्यम्" कहा है।

कोश मे 'द्रव्यं भव्यं गुणाश्रये-अ को ३।३।१५५' लिखा है। अर्थात् द्रव्य शब्द का दो अर्थ होता है। १ भव्य एवं २ गुणों का आश्रय।

वैशेषिक सूत्र मे कणाद ने लिखा है–"क्रियागुणवत् समवायिकारणमिति द्रव्यम्–वै०सू० १।१।१५।" जिसमे गुण, क्रिया अथवा समवायिकारण रहे उसे द्रव्य कहते है।

श्रीरामानन्द वेदान्तसार मे लिखा है–'तत्र द्रव्यमुपादानम्" अर्थात् उपादान को द्रव्य कहते हैं। प्रमेय परिशोधनी मे भी लिखा है–उपादानं द्रव्यमुच्यते।"

इस प्रकार लक्षण वैविध्य के कारण वैशेषिक, मीमासो, श्रीरामानन्द विशिष्टाद्वैत वेदान्त, श्रीमध्व वेदान्त आदि मे द्रव्यो के विभाजन एवं सख्योदि के सम्बन्ध म मतभेद है।

वैशेषिक, १ पृथिवी, २ जल, ३ तेज, ४ वायु, ५ आकाश, ६ काल, ७ दिक्, ८ आत्मा और ९ मन, ये द्रव्य मानते है।

मीमासा १ पृथिवी, २ जल, ३ तेज, ४ वायु, ५ आकाश, ६ काल, ७ दिक्, ८ आत्मा, ९ मन, १० शब्द और ११ तम—ये एकादश द्रव्य मानती है।

श्रीरामानन्द वेदान्त—१ ईश्वर, २ जीव, ३ नित्यविभूति, ४ ज्ञान, ५ प्रकृति और ६ काल—छ द्रव्य मानता है।

श्रीमध्व वेदान्त—१ परमात्मा, २ लक्ष्मी, ३—जीव, ४ अव्याकृत, ५ आकाश, ६ प्रकृति, ७ गुणत्रय, ८ महत्त्व, ९ अहकार, १० बुद्धि, ११ मन, १२ इन्द्रिय, १३ मात्रा, १४—भूत, १५ ब्रह्माण्ड, १६ अविद्या, १७ वर्ण, १८ अन्धकार, १९ वासना, २० काल और २१ प्रतिबिम्ब—ये इक्कीस द्रव्य मानता है।

इस प्रकार इनमे बहुत अन्तर दृष्टिगोचर होता है। इसके सम्बन्ध मे एक दर्शन का दूसरे दर्शन से ही मतभेद नहीं है अपितु एक दर्शन अन्तर्गत भी आपस म मतभेद है। न्यायवैशेषिक के अन्तर्गत ही दीधितिकार काल एव दिक् को पृथक् द्रव्य नहि मानकर उसे ईश्वर के अन्तर्गत ही मानते है। इस प्रकार उनके मत मे सात ही द्रव्य है।

वैशेषिक दर्शन के अनुसार द्रव्य दो प्रकार के है—१ मूर्त्त द्रव्य (पृथिवि—जल—तेज—वायु—मन) और २ अमूर्त्त द्रव्य(काल—आकाश—दिशा—आत्म) १ मूर्त्त का अर्थ यहाँ सीमित परिमाण वाला और अमूर्त्त का अर्थ महत् परिमाण वाला है।

श्री रामानन्द वेदान्त मे ज्ञान को द्रव्य एतावता स्व लक्षणानुसार उपादान (तत्र द्रव्यमुपादानम्) मानते है परन्तु ज्ञान उपादान का कार्य क्या है। उपादान तो मूर्त्त वस्तु होता है। पुन जब ज्ञान द्रव्य है तब शब्द (प्रत्यक्ष) वस्तु द्रव्य क्यो नहीं है ? यह भी विचारणीय है।

卐

❀ संज्ञानसूक्तव्याख्या ❀

[व्याख्याकार—वैदेहीकान्तशरण]

ऋग्वेद का अन्त संज्ञान सूक्त मे हुआ है। इसका अन्तिम सूक्त यही संज्ञान सूक्त है। इस सूक्त मे तीन मन्त्रों के देवता 'संज्ञानम्' है। अत इन्हे संज्ञान सूक्त कहा जाता है जो इस प्रकार है—

(१) "सङ्गच्छध्वं स वदध्वं सं वो मनासि जानताम्। देवा भाग यथापूर्वं सज्जनाना उपासते॥

(२) समानो मित्र समिति समानी समानमन सह चित्रमेषाम्।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये व समानेन वो हविषा जुहोमि॥

(३) समानी व आकृति समाना हृदयानि व। समानमस्तु वो मनो यथा व सुसहासति॥

ऋ० १०।१९१।२-४=अथर्व० ६।६४। १—३॥"

(१) सङ्गच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनासिजानताम्' वाक्य का क्रियापद (विधेय पद) लोट् लकार में है। लोट् लकार का प्रयोग विधि (प्रेरणम् भृत्यादेर्निकृष्टस्य प्रवर्तनम्) निमन्त्रणम् नियोगकरणम्,

आवश्यकेश्राद्धभोजनादौदौहित्रादे प्रवर्तनम्) आमन्त्रणम् (कामचारानुज्ञा) अधीष्ट (सत्कारपूर्वको व्यपार) सम्प्रश्न (इद् कार्य न वेति विचार्य निर्धारणम् सम्प्रश्न) प्रार्थना (याञ्चा) के निमित्त होता है। यह आज्ञा बोधक होता है यहाँ उद्देश्य पद वो (तुमलोग) मध्यमपुरुष का बहुबचन है। तदनुसार तीनो क्रिया पद संगच्छध्वं, संवद्ध्व, सं मनासिजानताम् भी मध्यम पुरुष के बहुबचन रूप मे प्रयुक्त है। वे तिनो क्रियापद मन–वचन–कर्म के क्रियाओ के प्रतिपादक है अत समस्त मन–वचन शरीर के बोधक है। प्रथम शारीरिक क्रिया संगच्छध्व का उपदेश है गच्छ (गम गतौ के चार अर्थ होते है–गमन, प्राप्ति, ज्ञान, मोक्ष, द्वितीय वाचनिक क्रिया पद व्यक्ताया वाचि का उपदेश है और तृतीय मानसिक क्रिया जानताम् (ज्ञ अवबोधने) का उपदेश है। पुन इन तीनों क्रियाओ के साथ'सम' उपसर्ग विशेषण का प्रयोग है। सम् का अर्थ–"सम् कल्याणे सुखे सन्तु शोभनार्थ समार्थयो। सङ्गार्थे च प्रदृष्टार्थे–मे० १८३।५४। सम्यगर्थे स प्रोक्त दुष्प्रयोगविवर्जित।" उपदेशक (ईश्वर को) यह 'सम्' पद यहाँ इतना अभीष्ट है कि तीनो क्रियाओ के साथ पृथक् रूप से तीनवार इसका प्रयोग किया है। ईश्वर यहाँ जीवो को आज्ञा एवं उपदेश देता है कि तुमलोग उक्त सम् बोधक, कल्याण, सुख, शोभन, सम (समान) सङ्ग (साथ) अदृष्ट प्रकृष्ट रूप तृप्त, प्रीत) सम्यक्प्रकार के मार्ग पर चलो और इसके विपरीत कार्य मत करो। इसी प्रकार कल्याणादि वचन बोलो और मन से सोचो। अर्थात् तुम्हारा सभी शारीरिक, वाचनिक और मान सिक व्यापार सम्यक् प्रकार का हो।

'देवा भागं यथा पूर्वे सञ्जनाना उपासते' वाक्यमे उपदेष्टा ईश्वर यथा (सदृशेनिश्चयेऽपि-स्याद् यथा तुल्यार्थमानयो–मे–१८१।३६) पद से उपमा के द्वारा उपदेश प्रकार को स्पष्ट करता है कि तुम्हारा उपरोक्त तीनो शारीरिक-वाचनिक मानसिक व्यापार कैसा हो तो जैसे पूर्वे (पूर्वकाल आदि काल मे परपरारूप से) सम्यक् और समान प्रकारसे देवा सञ्जनाना (कुलीन देवताओ द्वारा) उपासते (उपासनं शराभ्यासेऽप्युपास्तावासनेऽपि च। मे० ९५।७२) उपभोग करते है अपने भागं (हिस्सा को–भागोरूपार्द्धके भाग्यैकदेशयो) यज्ञ मे देवताओ के नाम से समुच्चय रूप से पुष्प अक्षत–चन्दन–आहुती दी जाती है जैसे "इदम् अक्षत इन्द्रादिदशदिग्पालेभ्योनम" परन्तु वे देवता सम्यक्रूप से एक साथ सुखपूर्वक अपने अपने भागोको ग्रहण करलेते है, परस्पर विवाद नहीं करते। इसी प्रकार ईस्वर द्वारा समष्टि रूप से प्रदत्त वस्तुओ को सभी लोग अपने अपने भागों का ही उपभोग करो परस्पर झगडा मत करो।

(२) समानो मन्त्र (जिसके मनन करने से रक्षा होती है वह गुप्त रहस्य विचार समान एकरूप परस्पर अविरोधी हो) समिति समानी (समासमिति रित्युक्तसमिति सय्युगावनी। समिति समयोज्ञेय संग्राम समितिर्म्मत।) अनेका० ध्व० मं ७४॥" समिनि सम्परायेस्यात्सभाया सङ्ग-मेऽपि च। मे० ६६। १६६।" समान हो।) समानं मन (मन मनु अवबोधने मनन साधने-न्द्रियो' एक रूप परस्पर अविरूद्ध हो) सहचित्तमेषाम् (चिती सञ्ज्ञाते, सम्यग्ज्ञान साधनेन्द्रिय भी इसके साथ समान हो मन्त्रमभिमन्त्रयेव [व (तुमलोगो को) समान (एकरूप) मन्त्रम् (मन्त्र) अभि अभीत्थमभूत कथने चाभिमुख्याभिलाषयो मे० १८२।४७) मन्त्रये (मत्रिगुप्त परिभाषणे' मन्त्र देता हूँ, गुप्त रहस्य बतलाता हूँ। अभिमन्त्रित करता हूँ सस्कारित करता हूँ। समान मन्त्र पद से यहाँ निर्दोषं हि समंब्रह्म–गीता के अनुसार ब्रह्ममन्त्र–"ब्रह्मण्याधाय कर्माणिसङ्गत्यक्त्वा करोति य। लिप्यते न स पापेन पद्म पत्रमिवाम्भसा॥गी० ५।१०॥" "ब्रह्मणे नम" मन्त्रोपदेश करता हूँ। ऐवं वो (तुम्हारे लिये) समानेन (समानरूप से हविषा जुहोमि (हवि से हवन करता हूँ) हविर्होतव्यमात्रे

च सर्पिष्यपि न पुसकम्। मे० १७३।४७। हव आज्ञाध्वराहाने ह्रस्व न्यक्‌ खर्वयोस्त्रिषु। हु दानादनयो' (जुहो०) दान चेह सक्षेप प्रक्षेप विधिबोधिते आधारे आहवनीयादौ पुरोडाशादि हविष इति लभ्यते इत्यन्वय ।" हवि से हवन करता हूँ का तात्पर्य 'ब्रह्मणे स्वाहा' उच्चारण से भी है। यहाँ परमेश्वर सामान्य 'ब्रह्मणेनम, ब्रह्मणेस्वाहा' का सकेत किया है जो लोग श्रीसीताराम को ब्रह्म मानते है उनके मत मे यहाँ 'रामाय नम सीतायै स्वाहा' का उपदेश है। यों तो मन्त्र पद से यहाँ वेद मन्त्र (वेदोपदेश) का ग्रहण है। यहाँ परमेश्वर जीवों के लिये हवि हवन करने की बात 'वो हविषा जुहोमि' कहकर अपने वेदोपदेश 'देहि मे ददामि ते शु य ३।५०' तथा गीतोपदेश 'परस्परं भावयन्त श्रेय परमवाप्स्यथ। गी० ३।११॥' का सकेत करता है। जीव ब्रह्म के लिये आसक्ति छोडकर कर्म करे और ब्रह्म जीवो के लिये हविष का क्षेपण (दान) करेगा। पुन 'समानो मन सहचित्तमेषाम् से गीतोक्त "आत्मौपम्येन सर्वत्र समंपश्यति योऽर्जुन। सुखं वा यदि वो दुःखं स योगी परमो मत ॥गी० ६।३२॥ तथा 'आत्मवत्सर्वभूतेषु य पश्यति स पश्यति" के समान अनुभूति वा सहानुभूति का सकेत है।

(३) व (तुमलोगो को) आकूति (प्रयत्न-अध्यव्यवसाय) समानी (समान) व (तुमलोगों का) हृदयानि (चित्तं तु चेतो हृदय स्वान्तं हृन्मानसं मन—अ को १।४।३१। समाना (एक समान हो) वो (तुम लोगों का) मनो (मननसाधनेन्द्रिय) समानमस्तु (एक समान हो) यथा (जिस प्रकार) व (तुमलोगों का) सु सहासति (शोभन मार्ग हो)

इस प्रकार सम्पूर्ण सूक्त मे ब्रह्म का जीवो के प्रति सम्यक् प्रकार के निर्दुष्ट समता और एकता का उपदेश है। जीवों में पारस्परिक भावना का उपदेश है। यही सम्यक्ज्ञान संज्ञान है।

卐

卐 ईश्वर शरीरी है 卐

[वैदेहीकान्तशरण]

न्यायदर्शन "क्षित्यङ्कुरादिकं कर्तृजन्य, कार्यत्वात्, घटवत्। न च तत्कर्तृकत्वमस्मदादीना सम्भवतीति। अत तत्कर्तृत्वेन ईश्वरसिद्धि ।" इस अनुमान से ईश्वर की सिद्धि करते हैं। इस कार्यत्वानुमान से जगत् का सकर्तृकत्व एव ईश्वर कर्तृकत्व की सिद्धि में घटादिकार्यो का कर्ता शरीरी होने से व्याप्ति के अनुसार कर्ता शरीरी ही सिद्ध होता है। अत ईश्वर को जगत्कर्ता होने पर पक्षधर्मतया जगत्कर्ता ईश्वर शरीरी ही सिद्ध है। अशरीरस्य कर्तृत्वं दृश्यते नहि कस्यचित्।' कुछ लोग इस अनुमान प्रयोग में 'व्याप्यत्वासिद्ध' हेत्वाभास इस आधार पर मानते हैं कि "यत्र यत्र सकर्तृकत्वं तत्र तत्र शरीरजन्यत्वं' यह साध्यव्यापकत्व हुआ और 'यत्र यत्र कार्यत्वं तत्र तत्र शरीरजन्यत्वमिति न' यह 'साधनाव्यापकत्व' हुआ। अत 'साध्यव्यापकत्वेसतिसाधनाव्यापकत्वं मुपाधि' लक्षण घटित हो जाने से 'कार्यत्वात्' हेतु सोपाधिक एतावता उपाधिसद्भावात् व्याप्यत्वासिद्ध हेत्वाभास है। परन्तु यह आपत्ति भ्रान्त है। यत्र यत्र सकर्तृकत्वम् हेतु व्याप्ति सर्वथा निर्दोष है 'यत्र यत्र सकर्तृकत्वम् तत्र तत्र कार्यत्वमिति न'—ऐसा नहीं कहा जा सकता। यत्र यत्र सकर्तृकत्वं तत्र तत्र शरीरजन्यत्व न' यह कथन भ्रान्त है। परन्तु तुष्यतु सुजना न्याय से इसे

अभ्युपगम सिद्धान्तानुसार कुछ क्षणो के लिये विचार के लिये स्वीकार भी कर लिया जाये तो कार्य एवं कर्तृकत्व को दो प्रकार का मानना होगा-(१) ज्ञानजन्य बुद्धिमत् कार्य और कर्तृत्व और (२) बुद्धिशून्य कार्य और कर्तृत्व। जगत् कार्य यन्त्रवत् बुद्धिमत् है। राकेट के अभियन्ता के समान। क्योकि इसमे यान्त्रिक रचना, यान्त्रिक व्यवस्था ही नही अपितु बौद्धिक नियन्त्रणात्मक प्रयोजनवती व्यवस्था है। ऐसा बुद्धिपूर्ण कार्य या कर्तृत्व शरीरजन्य ही होता है अशरीरजन्य नही। अत उपरोक्त कार्यानुमान मे क्षित्यङ्कुरादिक शरीरीकर्तृजन्य, बुद्धियुक्त कार्यत्वात्, प्रयोजनवान् कार्यत्वात् वा' तात्पर्य है। अत यत्र यत्र सबुद्धिकर्तृकत्वम् तत्र तत्र शरीरजन्यत्वं' यह साध्यव्यापक के साथ यत्र यत्र सबुद्धिकार्यत्व तत्र तत्र शरीरजन्यत्वम्' यह साधनव्यापकत्व' भी होने से यह हेतु सोपाधिक नही है। स्वयं उदयनाचार्य ने 'प्रवाहोनादिमानेष न विजात्येकशक्तिमान्। तत्त्वे यत्नवताभावमन्वयव्यतिरेकयो ॥ न्या १।६ मे वैजात्य कल्पना सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है और चार्वाक के व्यतिरेक व्यभिचार शङ्का [तृणसत्वेवह्नि सत्ता, अरणिसत्वेवह्निसत्ता, मणिसत्वे वह्नि सत्ता' यह अन्वय तो बनता है, किन्तु तृणाभावेवह्न्या भाव, अरण्याभावे वह्न्याभाव' मण्याभावे वह्न्याभाव, यह व्यतिरेक नही बनता है] का उत्तर न्यायमत से वैजात्य कल्पना अर्थात् तृण अरणि और मणि से उत्पन्न होनेवाले अग्नि सब विजातीय [भिन्न प्रकारक] अग्नि है। अत तृण सत्त्वे तार्णवह्नि सत्ता और 'तृणाभावे तार्ण वह्न्यभाव' यह अन्वय-व्यतिरेक दोनो बन जाता है। इसी प्रकार यहाँ भी कार्यो मे वैजात्य मानना पडेगा बुद्धिपूर्वककार्य बुद्धिरहितकार्य अत उक्त अनुमान मे व्याप्यत्वासिद्ध की आशङ्का व्यर्थ और भ्रान्त है। यह तो हुआ उत्तर आपत्तिकर्ता की आपत्ति को अभ्युपगम सिद्धान्त के अनुसार स्वीकार कर लेने पर। परन्तु वास्तव सभी कार्य आत्मा ज्ञान-इच्छा प्रयत्न का अधिकरण द्वारो एतावता शरीरी कर्त्ता द्वारा ही होता है। कुछ कार्य साक्षात् शरीरी कर्ता द्वारा और कुछ कार्य द्वारा और कुछ कार्य परोक्ष रूपसे शरीरीकर्ता द्वारा जिस कार्य को आपत्ति कर्ता अशरीरी जन्य मानते है वे भी परोक्ष शरीरी कार्य है। क्योंकि कार्य प्रयत्न जन्य होता है और प्रयत्न का अधिकरण आत्मा होता है और शरीरी आत्मा ही होता है। क्योकि प्रयत्न का आश्रय शरीर ही होता है-'चेष्टाश्रयशरीरम्'। जिसप्रकार जीवात्मा का तीन प्रकार का शरीर [१ स्थूल शरीर, २ सूक्ष्म शरीर, ३ कारण शरीर] होता है, उसी प्रकार परमात्मा का भी तीन प्रकार का शरीर [१ अचित् शरीर, २ चित् शरीर ३ दिव्य शरीर] होता है। जिस प्रकार जीवात्मा का कार्य शरीर जन्य होता है उसी प्रकार परमात्मा का भी। जीवात्मा भी परमात्मा से प्रेरित होता है। भौतिक शरीर भी पार्थिव, जलीय, तेजस, वायवीय, भेद से वैशेषिक शास्त्र एवं न्याय शास्त्र को मान्य है-'पृथ्वी त्रिविधा शरीरेन्द्रिय विषय भेदात्। शरीरमस्मदादीनाम्। आप त्रिविधा शरीरेन्द्रिय विषयभेदात्। शरीर वरुण लोके [जलीय शरीर वरुण लोके प्रसिद्धम्। अत्रापि पृथिव्या उपष्टम्भकत्वम्। जलस्य प्रधान्याज्जलीयत्वम्। प्रतिविम्ब]। तेज त्रिविधम्-शरीरेन्द्रिय विषय भेदात्। शरीरमादित्यलोके। [तैजस शरीर आदित्य लोके प्रसिद्धम्-प्रतिविम्ब] वायुस्त्रिविध शरीरेन्द्रिय विषयक भेदात्। शरीर वायुलोके [वायवीय शरीर वायुलोके पिशाचादिना प्रसिद्धम् प्रतिविम्ब]। त० स०।" जहाँ कोई ब्रह्म के शरीर का प्रत्याख्यान करता है वह शरीर के "शीर्यते प्रतिक्षणमिति शरीरम्' 'अथवा आत्मनो भोगायतन शरीरम" लक्षण के अनुसार। क्योकि ब्रह्म का शरीर तत्प्रकारक नही है। किन्तु 'चेष्टाश्रय शरीरम्', 'इन्द्रियाश्रय शरीरम्', अर्थाश्रय शरीरम् [चेष्टेन्द्रियार्थाश्रय शरीरम्-न्यो०सू० १।१।११] लक्षण के अनुसार नही। बिना एतत्प्रकारक शरीर के ईश्वर सृष्टि कर्ता हो ही नही सकता। ठीक ही कहा गया है-"अशरीरस्य कर्तृत्वं दृश्यते नहि

कस्यचित् ।" कुछ लोग इस कथन पर आपत्ति करते हुये कहते हैं–' न च कस्यचित् कुत्रचिद् अशरीरस्य कर्तृत्वमदृष्टचरमिति वाच्यम्, स्वशरीरप्रेरणे स्वात्मन शरीरस्य कर्तृत्व दर्शनात् ।।" परन्तु यह हेतु भी तो शरीरनिष्ठ आत्मा का ही कर्तृत्व साधक है, शरीर रहित आत्मा का नही । अत इससे कर्ता का शरीरत्व होना और भी दृढता से प्रमाणित होता है । पुन न्याय कुसुमाञ्जलि मे ईश्वर को सृष्टि के आरम्भ मे काठकादि शरीर धारण कर वेदो का उपदेश करने वाला कहा है– समाख्यापि च शाखाना नाद्य प्रवचनादृते–न्या कु ५।१६–"सर्वासां शाखाना हि काठक कलापकाद्या समाख्या संज्ञा विशेषा श्रूयन्ते ते च नाध्ययनमात्र निबन्धना । अध्येतृणामानन्त्यादादावन्यैरपि तदध्ययनात् । तस्मादतीन्द्रियार्थदर्शीभगवानेव कारुणिक सर्गादावस्मदाद्यनुग्रहाकृष्टकाठकादिशरीरविशेष-मधिष्ठाय या शाखामुक्तवान् तस्या शाखायास्तन्नाम्ना व्यपदेश इति सिद्धमीश्वरमननं मोक्ष हेतु "ह०वृ० ।" पुन न्या कु, के' मायावत् समयादय ।२।२।' की वृत्ति मे लिखा है– 'यथा मायावी सूत्रसञ्चाराधिष्ठितं दासपुत्रक कृत्वा दासपुत्रक ! घटमानय इत्यादि नियोज्य, घटानयन सम्पाद्य बालकस्य व्युत्पत्तौ प्रयोजकस्तथेश्वरोऽपि प्रयोज्य प्रयोजकभावापन्नं शरीरद्वयपरिगृह्य व्यवहार कृत्वा तदानीन्तनाना शक्तिग्राहयति । एव घटादि सम्पदायमपि स्वय कृत्वा शिक्षयति । तदिदमुक्तं 'मायावत् समयादय' इति । समय शक्तिग्रह ।।" इन सबो से ईश्वर को बिना शरीर का कार्य सम्पादन नही संभव सिद्ध होता है, प्रत्युत ईश्वर का शरीरी होना ही सिद्ध है । कुछ लोग कहते है कि कर्तृत्व के लिये शरीर का होना आवश्यक नही है । कर्तृत्व के लिये केवल इच्छा ज्ञान प्रयत्न ही आवश्यक है–कर्तृत्वं चेतर कारक प्रयोजकत्वे सति सकल कारक प्रयोक्तृत्वलक्षणं ज्ञानचिकीर्षा प्रयत्नावत्त्वम् ।" परन्तु इच्छा ज्ञान का अधिकरण आत्मा (जीवात्मा–परमात्मा) है और प्रयत्न का अधिकरण शरीर ही है–'चेष्टाश्रय शरीरम् ।" अत इस लक्षण के अनुसार भी कर्तृत्व के लिये शरीर अनिवार्य है ।

तत्त्वार्थपञ्चक मे ईश्वर को शरीरी मानने वाले अनेको मतो का निरूपण है–'(११) परमात्मा पशरीरी पुरुषादृष्टेन कान्ताशरीरस्येव अस्मदीयादृष्टेन तच्छरीरस्य (इच्छा प्रयुक्तस्य जननसम्भवात् । अतएव चतुर्भुजत्वादि श्रवण सगच्छत इत्यन्ये नैयायिका । (१२) परमाणव एवेश्वरशरीरमिति केचित् । (१३) आकाशमेवेश्वर शरीरमिति केचित् । (१४) ईश्वर सर्गादौ शरीरद्वय परिगृह्य व्यवहरतीति केचित् । (१५) ससारीनामदृष्टवशात् ईश्वरस्य शरीर तच्च ब्रह्माविष्णुशिवात्मकमिति केचित् । (१६) भूतावेश न्यायेन ईश्वरस्य शरीरमिति केचित । (१७) ईश्वर शरीररहित एव, परन्तु संसार-पङ्कनिमग्नान् अज्ञानिन उद्दिधीर्षु लीलाविग्रह दधाति । इति केचित । (१८) जीवेश्वर शरीरमिति केचित् । १९ अपाकृतं सच्चिदानन्दाद्येवशरीरमिति केचित् ।।" इससे प्रमाणित है कि सभी लोग किसी न किसी रूप मे ईश्व को शरीरी ही मानते है । वास्तव मे ईश्वर दिव्य शरीरी है । और वह अप्राकृतिक सच्चिदानन्दरूप शरीर है एव सामान्य रूप से वह त्रिविध [अचित चित् दिव्य] शरीरी है । "आकाश शरीर ब्रह्म तैत्तिरी योपनिषद् ।।" आसमन्तात् काशते प्रकाशत इत्याकाशं देदीप्यमानमाकाश शरीर यस्य देदीप्यमानविग्रहविशिष्टं ब्रह्म भवति । आनन्दभाष्यम् १।६।३।

वेदो मे भी उसे शरीरी बतलाया गया है तथा उसके हाथ [हिरण्य पाणि] बाहू (हिरण्य बाहवे) जिह्वा (हिरण्य जिह्व) मुखादग्निश्च इन्द्रस्य) पैर (पद्भ्याभूमिर्दिश) मन (चन्द्रमा मनसो जात) चक्षो सूर्योऽजायत) आदि अङ्गो का भी निरूपण है, उसे हाथों द्वारा विश्व रचना करने वाला कहा गया है–विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो विश्वतोबाहूरुत विश्वतस्पात् । सं बाहुभ्या धमति संपतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन्देव एक ।। ऋ १०।८१।३= श य १७=अथर्व० १३।२।२६।।"

आर्यसमाजी और इस्लामीओ का कथन है कि ईश्वर को शरीरी मानने मे तीन दोष है– (१) शरीरी मानने पर वह विनाशी हो जायेगा। परन्तु भौतिक शरीर ही विनाशी होता है अप्राकृतिक दिव्य शरीर नहीं। (२) शरीरी पदार्थ एक देशी होता है। परन्तु सूर्य एकदेशी होते हुये भी अपने प्रभासे सर्वव्यापक है। पुन ईश्वर तो दिव्य शरीरी एव सर्वशक्तिमान् है अत वह अपनी शक्ति से सर्वव्यापक है। (३) शरीरी अल्पज्ञ होता है। परन्तु जन्यज्ञानवान् जीवात्मा अल्पज्ञ होता है। नित्यज्ञानवान् दिव्यशरीरी ईश्वर नही। अत सभी दोषापत्ति व्यर्थ है।

सांख्य के अनुसार भी किसी की भी कार्य की सिद्धि के लिये पाच परिघटको की आवश्यक है–

पञ्चैतानि महावाहो कारणानिनिबोधमे। साख्येकृतान्ते प्रोक्तानि सिद्धये सर्वकर्मणाम् ॥

अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम्। विविधाश्च पृथक्चेष्टादैवं चैवात्र पञ्चमम् ॥

शरीरवाङ्मनोभिर्यत्कर्म प्रारभते नर। न्याय्यं वा विपरीत वा पञ्चैते तस्यहेतव ॥ गी १८।१३–१५॥

इसमे अधिष्ठान शरीर को कहा गया है–"अधिष्ठीयते भगवच्छरीरभूतेनात्मना यस्मिस्तदधिष्ठानं भोगायतनं शरीरम्" (आनन्दभाष्यम्) 'अधिष्ठानमधिष्ठीयतेस्वकर्मफलभोगायात्मना यत्तत्पञ्चभूतसघात-रूपं शरीरमेवाधिष्ठानम्" (अर्थचन्द्रिका) अत एव बिना अधिष्ठान (शरीर) कारण के किसी कार्य की सिद्धि नही हो सकती मन और बुद्धि भी शरीर मे अधिष्ठित होकर ही कार्य करती है। अत एव मानसिक और बौद्धिक कार्य भी बिना शरीर (अधिष्ठान) के सम्भव नही है। न्या सूत्र प्रवृत्तिर्वाग्बुद्धिशरीरारम्भ–न्या सू १।१।१७ का भी तात्पर्य शरीर (अधिष्ठान) से ही है वेद भी "संबाहुभ्याधमतिसंपतत्रैर्द्यावाभूमीजनयन्देव एक–शु य १७–१९ ऋ १०।८१।३=अथर्व १३।२।३६=श्वे० उ० ३।३ तै स ४।६।२४ तै आ १०।१–३ ईश्वर को दोनो हाथो द्वारा विश्वोत्पादक कहता है शु. य १७।२८ मे असूर्ते सूर्ते रजसि निधते ये भूतानि समकृण्वन्निमानि।" विश्वकर्मासूक्त। कहा है यहाँ 'असूर्त्ता लिङ्गशरीरै से ईश्वर शरीरी ही सिद्ध होता है।

निरीश्वर साख्य को भी प्रकृति को नर्तकी बनाकर पुरुष के समक्ष मञ्च पर उतारना पडा है। यह मञ्च नर्तकी भी तो चेतन और शरीरी ही हो सकती है। अत किसी भी रूप मे जगत्कर्ता को शरीरी होना अनिवार्य है।

ॐ

ॐ ईश्वर प्रत्यक्ष प्रमाण वेद्य है ॐ

(ले० वैदेहीकान्तशरण–तुरकी)

कुछ लोग कहते हैं कि ईश्वर के सम्बन्ध मे प्रत्यक्ष प्रमाण नही हो सकता है। परन्तु यह कथन भ्रान्त है। ईश्वर प्रत्यक्ष प्रमाण वेद्य है।

ज०गु० श्रीतुलसीदासजी ने ईश्वर को प्रत्यक्ष प्रमाण वेद्य नही मानने वालो को फटकारते हुये कहा है—

"हम लखि हमहि हमार लखि लखि हमार के बीच।
तुलसी अलखहि का लखहि, राम नाम जपु नीच ॥"

उन्होंने ईश्वर को प्रत्यक्ष नही देखने का कारण वतलाते हुये कहा है—
'नयन हींन अरु मुकुर विहीना। रामरूप देखहि किमि दीना ॥''
किसी प्रत्यक्षदर्शी सन्त ने कहा है—
''राम नाम के साबून से मन का मैल मिटायेगा। निर्मल मन के दर्पण मे राम का दर्शन पायेगा॥
रोम रोम मे राम रमे है, तिलभर तुझसे दूर नहीं।
देख सकेओ ऑखन उनको, जिन ऑखों मे नूर नहीं॥
देखेगा ओ मन मन्दिर मे, प्रेमका ज्योति जगायेगा।
निर्मल मनके दर्पण मे, ओ रामका दर्शन पायेगा॥

❀ ❀ ❀

भक्ति तुम्हारी कच्ची है जव तक प्रभु पर विश्वास नही।
मजिल का पाना है क्या, जो दीपक मे प्रकाश नही ॥''
ज गु श्रीतुलसीदासजी ने श्रीरामचरितमानस के आरम्भ मे ही स्पष्ट शव्दो मे लिखा है—
'भवानी शंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ। याभ्या विना न पश्यन्ति सिद्धा स्वान्तस्थमीश्वरम् ॥''
श्रीमद्भगवद्गीता मे भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है—
'नाह वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया। शक्य एव विधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मा यथा॥
भक्त्यात्वनन्यया शक्य अहमेव विधोऽर्जुन। ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टु च पर तप।११।५३-५४।
'न तु मा शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुसा। दिव्यं ददामि ते चक्षु पश्यमे योगमैश्वरम्।११।८।''

किसी वस्तु का दर्शन के लिये प्रधानतया दो वस्तुओं की आवश्यकता होती है-१ नेत्र और २ प्रकाश। ईश्वर के दर्शन के प्रकरण मे प्रेम को ज्योति अथवा भक्ति को दीपक का प्रकाश कहा गना है एवं विश्वास को प्रकाश माना गया है तथा श्रद्धा को नेत्र। यों तो शास्त्र को भी नेत्र कहा गया है—
''अनेक संशयोच्छेदि परोक्षार्थस्य दर्शकम्। सर्वस्य लोचन शास्त्रं यस्यनास्त्यन्धएवस ॥''
''गावो गन्धेन पश्यन्ति वेदै पश्यन्ति वै द्विजा। चारै पश्यन्ति राजानश्चक्षुर्भ्यामितरे जना ॥''
परन्तु नेत्र (प्रज्ञा) हीन के लिये शास्त्र भी व्यर्थ है—
''यस्यनास्ति स्वयं प्रज्ञा शास्त्रं तस्य करोति किम्। लोचनाभ्या विहीनस्य दर्पण कि करिष्यति ॥''

इसलिये दर्शन के लिये तो दर्पण चाहिए ही साथ ही दिव्य चक्षु भी चाहिए। मन का दर्पण मलिन रहेगा तो उसमे राम दर्शन कैसे होगा ?
''धूमेनाव्रियते वह्निर्यथाऽऽदर्शो मलेन च। यथोल्वेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम्॥
आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्य वैरिणा। कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च।गीता ३।३८-३९।

अत एव जवतक कामनाशक (जहॉ राम तहॉ काम नहीं, जहाँ काम नहीं राम। तुलसी कबहुँ कि है सकहिं, रवि रजनी इकठाम) राम नाम के साबून से मन का मैल नहीं मिटाया जाता है तब तक निर्मल मन के दर्पण मे राम का दर्शन कैसे पाया जा सकता है ? तुलसीदासजीने श्रीगुरुचरणों के पराग को-'जन मन मञ्जु मुकुरमल हरणी' कहा है। क्योंकि श्रीगुरुचरणों मे बैठकर साधना करने पर हीं मन मुकुर के मल का हरण होता है और 'श्रीगुरुपदनख मणि गण ज्योति। सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती है।'' पुन 'उघरहि विमल विलोचन हिय को। मिटहि

दोष दु ख भव रजनी को।" आदि होता है। अतएव कहा है "अज्ञानतिमिरान्धस्यजानाञ्जनशलाकया। चक्षुरुन्मिलितं येन, तस्मै श्रीगुरवे नम ।" अत गुरु कृपा से दिव्य दृष्टि की प्राप्ति होने से ही ईश्वर का दर्शन होता है।

न्याय दर्शन के अनुसार प्रत्येककार्य की अपनी कारणशक्ति के अतिरिक्त प्रतिवन्धक संसर्गाभाव भी एक कारण है, जो कार्य मात्र के प्रति साधारण कारण है। सारी कारण सामग्री उपस्थित होने पर भी यदि कोई प्रबल प्रतिबन्धक आ जाता है तो कार्य नही होता। इसलिये न्याय दर्शन मे प्रतिबन्धक ससर्गाभाव को भी कारण माना गया है। प्रकृत दर्पण मे दर्शन का प्रतिबन्धक मल है। इस प्रकार जबतक मन के दर्पण मे निहित मल के ससर्ग का अभाव नही होगा तबतक निर्मल मन के दर्पण मे राम का दर्शन कैसे मिलेगा ?

ईश्वर यदि दर्शन का विषय नही होता तो-"आत्मावारे द्रष्टव्य" कैसे कहा जाता ?

श्रीमद्भगवद्गीता मे भगवान् ने स्वय कहा है—

"यो मा पश्यति सर्वत्र सर्व च मयि पश्यति ।६।३०।"

"ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना। अन्ये साख्येन योगेन कर्मयोगेन चापर ।।१३।२४।।"

प्रह्लादजी ने ईश्वर के दर्शन की योग्यता के सम्बन्ध मे कहा हैकि मात्सर्यादि षड् विकार प्रतिबन्धक है—

"वेदान्तवाक्यशतमारुत सम्प्रवृद्ध वैराग्यवह्निशिखया परिताप्य चित्तम् ।
संशोधयन्ति यद्वेक्षणयोग्यतायै धीरा सदैव सकथं मम गोचर स्यात् ।।
मात्सर्यरोषस्मरलोभमोहमदादिभिर्वा सुदृढै सुपड्भि ।
उपर्युपर्यावरणै सुबद्ध-
मन्धं मनो मे क्व हरि क्व वाहम् ।।नरसिंह पु ४३।५७-५८



ॐ सगुण निर्गुण तत्त्व विवेक ॐ

[ले० वैदेहीकान्तशरण]

ब्रह्म के सम्बन्धमे जितने भी प्रश्न है उनमे सगुण निर्गुण का प्रश्न सबसे प्रमुख है। इसी लिये श्रीरामचरितमानस मे पार्वती सर्वप्रथम इसी विषय का प्रश्न पूछती है-"प्रथम सो कारण कहहु विचारी। निर्गुण ब्रह्म सगुण वपु धारी।।" और शंकरजी सगुण विरोधियो की ओर सकेत करते हुये कहते है-"अज्ञ अकोविद अध अभागी। काई विषय मुकुर मन लागी। लंपट कपटी कुटिल विशेषी। सपनेहु संत सभानहि देखी। कहहिं ते वेद असमत वाणी। जिनके सूझ लाभु नहि हानीं।। मुकुर मलिन और नयन विहीना। राम रूप देखहि किमि दीना।। जिन्हके अगुण न सगुण विवेका। जल्पहिकल्पित वचन अनेका। हरिमाया वश जगतभ्रमाही। तिन्हहि कहत कछु अघटित नाही।। पुन सगुण निर्गुण के सम्बन्ध मे सिद्धान्त मत देते हुये कहते है-"अगुणहि सगुणहि नहि कछु भेदा। गावहि मुनि पुराण बुध वेदा।। अगुण अरूप अलख अज जोई।

भगत प्रेमवश सगुण सो होई ॥ जो गुण रहित सगुण सोइ कैसे । जलु हिम उपल विलग नहिं जैसे ॥ राम सच्चिदानन्द दिनेशा । नहिं तहँ मोह निशा लवलेशा ॥" पुन उपसहार रूप मे उत्तरकाण्ड मे कहते है–' निर्गुन रूप सुलभ अति, सगुण जान नहिं कोइ । सुगम अगम नाना चरित, सुनि मुनि मन भ्रम होइ ॥"

अत निर्गुण सगुण विवेक होना आवश्यक विषय वस्तु है। निर्गुण सगुण का तात्त्विक [प्रमाणोपपन्न स्वरूप तत्त्व–पदपचिका] विवेक के लिये सर्वप्रथम सगुण निर्गुण पदों का अर्थ समझ लेना अत्यावश्यक है । इस क्रम मे सर्वप्रथम गुण का अर्थ गुण की परिभाषा और तब सगुण निर्गुण का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए ।

गुण शब्द का अर्थ धनुष की डोरी, द्रव्याश्रित २४ गुण [रूप रस गन्ध स्पर्श संख्या परिमाण पृथक्त्व सयोग विभाग परत्वापरत्व गुरुत्व द्रवत्व स्नेह शब्द बुद्धि सुखदु खेच्छा द्वेषप्रयत्न धर्माधर्म सस्काराश्चतुर्विंशतिर्गुणा – स] सत्त्व–रज–तम [साख्य] ३गुण साहित्य के १० गुण [श्लेष प्रसाद समता समाधि माधुर्यमोज पद सौकुमार्यम् । अर्थस्य च व्यक्तिरुदारता च कान्तिश्च काव्यस्य गुणादशैते । भरत] औदार्यादि [मनोवैज्ञानिक] गुण इन्द्रिय पाचक आदि होता है– "मौर्व्यां द्रव्याश्रिते सत्त्व शौर्यमन्व्यादिकेर्गुण –अ०को ३।३।४७।' "गुणो मौर्व्यामप्रधाने रूपादौ सूद इन्द्रिये । त्याग शौर्यादि सत्त्वादि सन्ध्याद्यावृत्ति रज्जुषु ।मे०।' व्याकरण मे अ, ए, ओ को गुण कहा गया है–"अदेङ्गुण –पा० १।१।४५ पुन अ इ मिलकर ए, अ उ मिलकर ओ आदि बन जानेके सन्धि की भी गुण सज्ञा है–आद् गुण पा ६।१।७७॥

गुण की परिभाषा के सम्बन्ध मे 'गुण आमन्त्रणे गुणयति (चुरा०) धातुपाठ ही लक्षण कहा जायेगा। परन्तु न्याय वैशेषिक के अनुसार 'द्रव्य कर्म भिन्नत्वे सति सामान्यवत्त्वम्' सक्षेप मे द्रव्याश्रितत्व लक्षण है। इनके अनुसार परमात्मा के आठ गुण है संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, सयोग, विभाग, ज्ञान, इच्छा, कृति (प्रयत्न) और जीवात्मा मे इसके अतिरिक्त सुख, दुख, द्वेष, धर्म अधर्म, सस्कार–ये छ गुण और है जो परमात्मा मे नही है। व्याकरण का गुण 'अ' 'अक्षराणामकारोऽस्मि–गीता' एवं 'अकारो वासुदेव स्यात् एका० को० के अनुसार परमात्मा मे है ।

गुण के सम्बन्ध मे साहित्य का लक्षण भावात्मक (सगुणत्व) ही नहीं अपितु अभावात्मक (दोष राहित्य) भी है– 'महान् निर्दोषता गुण ।' इस प्रकार साहित्य के अनुसार ब्रह्म का गुण होना (सगुणत्व) ही गुण नही है अपितु ब्रह्म का निर्दोष [दुष्ट गुण रहित] होना भी गुण है । अत हेय गुण राहित्य [निर्गुणत्व] भी गुण (सगुणत्व) है ।

निर्गुण शब्द मे दो पद है निर्+गुण । निर का अर्थ निश्चय और निषेध दोनों होता है– "निर्निश्चय निषेधयो –अ को ३।३।२५३॥ अत निर्गुण पद का अर्थ निश्चित (नित्य) गुण वाला भी है । अचिन्त्यभेदाभेदवादी निम्बार्क दर्शन निर्गुण का लक्षण गुणातीतो निर्गुण कहते हैं। कुछ लोग 'निर्गतोगुण निर्गुण कहते है, तो कुछ लोग अविकृतो गुण निर्गुण कहते है, कुछ लोग निखिल हेयप्रत्यनीकोगुणो निर्गुण कहते है कुछ लोग अगमो गुण निर्गुण कहते हैं जो सभी निर्गुण के पद निर्निश्चय अर्थ के अनुसार सम्पुष्ट है ।

सगुण पद मे भी दो पद है स+गुण । 'अव्ययं यौगपद्य सादृश्य सम्पत्ति साकल्यान्त वचनेषु–पा० २।१।३ के अनुसार १ यौगपद्य [सगुण =गुणेन युगपत्] २ सादृश्य [सगुण =गुणस्य सदृश] ३ सम्पत्ति [सगुण =गुणाना सम्पत्ति] ४ साकल्य [सगुण =गुणमपि अपरित्यज्य] ५ अन्त [सगुण =गुण पर्यन्तम्] ये अर्थ होते हैं ।

ब्रह्म के सम्बन्ध मे शङ्कराचार्यजी स्वीकार करते है कि ब्रह्म के विषय मे सविशेष (सगुण) और निर्विशेष (निर्गुण) दोनो प्रकार की श्रुतिया है–"सन्ति उभयलिङ्गा श्रुतयो ब्रह्म विषया। सर्वकर्मा सर्वकाम सर्वगन्ध सर्वरस इत्येवमाद्या सविशेषलिङ्गा, अस्थूलमनणु अह्रस्वम् अदीर्घम् इत्येवमाद्याश्च निर्विशेषलिङ्गा ।

श्रुति मे ब्रह्म का निर्विशेष और सविशेष दोनों रूपो का प्रतिपादन तो है–"यत्तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षु श्रोत्र तदपाणिपादम् । नित्य विभु सर्वगत सुसूक्ष्मं तदव्यय यद्भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीरा ॥ मु० १।१।६॥ परन्तु श्रुति ने निर्विशेष वाचक प्रथम वाक्य (यत्तदद्रेश्यम्०) को नपुंसकलिङ्ग मे एवं सविशेष वाचक द्वितीय वाक्य (नित्यं विभुं०) को पुल्लिग में प्रतिपादित कर यह अति स्पष्ट कर दिया है कि ब्रह्म का अचित् शरीर ही निर्विशेष है और सच्चिदानन्द परमेश्वर सविशेष है । क्योकि निर्विशेष नपुंसक लिग और सविशेष पुल्लिग मे निरूपित है । इसी प्रकार ब्रह्म का शरीर [सपर्य्यगात् शुक्रम् अकायम् अव्रणम् अस्नाविरम् शुद्धमपापविद्धम्] नपुंसकलिंग मे तथा ब्रह्म का रूप [कविर्मनीषी परिभू स्वयम्भू यथा तथ्यतोऽर्थान् व्यदधात् शाश्वतीभ्य समाभ्य ॥शु य ४०।८॥] पुल्लिग मे निरूपित किया है ।

यहाँ यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि आचार्यजी के अनुसार ब्रह्म का गुण सामान्य गुण नही है वह प्राकृतिक (भौतिक) गुणो से सर्वथा विलक्षण है । ज गु श्रीरामानन्दाचार्यजी ने "निर्गता निकृष्टा सत्त्वादय प्राकृतागुणा यस्मात्तन्निर्गुणमितिव्युत्पत्तेर्निकृष्टगुणराहित्यमेवनिर्गुणत्वम् । तथैव च सत्त्वा दयो न सन्तीशे यत्र च प्राकृतागुणा । सशुद्ध सर्वशुद्धेभ्य पुमानाद्य प्रसीदतु ॥ योऽसौनिर्गुण प्रोक्त शास्त्रेषु जगदीश्वर । प्राकृतैर्हेयसत्वाद्यैर्गुणैर्हीनत्वमुच्यते ॥वि पु॥ इत्यादौ प्रतिपादितत्वात्प्राकृतसत्वादिगुणनिषिद्धे सति ब्रह्मणोदिव्यगुणाश्रयत्वसिद्धे । तादृशदिव्यगुणानाञ्च "परास्यशक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकीज्ञान वलक्रिया च (श्वे० ६।८) इत्यादौ स्वाभाविकत्वाभिधानात्प्राकृतहेयगुणरहितत्वेन निर्गुणत्व, दिव्यगुणवत्वेन च सगुणत्वमित्युभयथैकस्यैव ब्रह्मणोनिर्देश इति न किञ्चिदनुपपन्नम् (आनन्दभाष्य १।२) इत्यादि रूप से निरूपण किया है । तथैव इसे अद्भुतगुण और दिव्य गुण कहा है। अद्भुत पद से विलक्षणत्व एवं दिव्य पद से नित्यत्व तथा अलौकिकत्व निरूपित है–'श्रीमन्तं श्रुतिवेद्यमद्भुतगुणग्रामाग्र्य रत्नाकरम्–श्री वै म. भा श्लो १/१ चित्रं चाखिलमद्भुत शुभगुणा–श्लो० १/२ श्रीमान् दिव्यगुणाब्धिरौपनिषदोहेतु शरण्य प्रभु श्री वै म भा श्लो १।२॥ श्रीरामानुजाचार्यजी ने 'निखिल हेय प्रत्यनीक कल्याणैकतान, स्वेतर समस्त वस्तु विलक्षणानन्त ज्ञानानन्दैक स्वरूप, स्वभाविकानवधिकाशय ज्ञान बलैश्वर्य शक्ति तेज प्रभृत्यसख्येयकल्याण गुण महोदधि' कहा है जिसमे इनके गुण मे १ अखिल हेय प्रत्यनीकत्व २ स्वेतर विलक्षणत्व ३ स्वाभाविकत्व एव ४ कल्याणत्व–ये चार विशेषण है वा लक्षण है । श्री शङ्कराचार्यजी ने इसे सदसद्विलक्षण अनिर्वचनीय कहा है । श्रीनिम्बार्काचार्य के मत मे इसे अचिन्त्य (१. अपरिमितमहिमत्वादचिन्त्यत्वम् २ अचिन्त्यं तर्कासह यज्ज्ञानम् ३. दुर्घट घटकत्व ह्यचिन्त्यत्वम्) कहा है और श्रीवल्लभाचार्यजी ने इसे अविकृत (अविकृतपरिणामीत्व अविकृतत्वम्) कहा है। ये सभी विपर्यय बोधक पद विलक्षण अनिर्वचनीय, अचिन्त्य, अविकृत विपर्यय बोधक निर्गुण पद के प्रकार के प्रकाशक है । साधारणतया विपर्यय के तीन अर्थ होते है–१ अभाव २ अन्यथाभाव और ३ वैपरीत्य । यहाँ अन्तिम दोनों मे ही तात्पर्य सभव होने से यहाँ निर्गुण पद से अन्यथा गुण अथवा विपरीत (लौकिक गुण विरुद्ध) गुण सिद्ध होता है ।

शास्त्रो मे ब्रह्म के गुण के सम्बन्ध मे कहा गया है–'जगत कारणत्व च सगुणत्व स्वभावत । त्रिपाद्‌विभूति युक्तत्वं ब्रह्मणो रूपमुच्यते ॥ 'प्राप्य सर्व गुणार्णवो निखिलभृत् रक्षैक दीक्षो महान् नित्यश्चेतन ईश्वर सकरुण सर्वज्ञताभूमिराट् । औदार्यादिगुणावलिश्रितऋतं सत्यं च सर्वाश्रय, श्रीरामो हि परात्पर सुगतिभि सेव्य सदा सर्वग ॥'

भगवान् के गुणो का निरूपण ज गु श्रीमधुराचार्य कृत भगवद्‌गुण दर्पण मे किया गया है। यहॉ भगवान् का गुण लेखका विषय नहीं है, प्रत्युत निर्गुण सगुण तत्त्व की विवेचना लेखका विषय है। अत भगवद्‌गुणों की चर्चा छोड निर्गुण सगुण की विवेचना करता हूॅ ।

निर्गुण पद गुणो का अत्यन्ताभाव शास्त्रों को इष्ट नही है। क्योंकि सर्वत्र निर्गुणपद के साथ ही सगुण पद का भी प्रयोग है । अत निर्गुण पद का अर्थ नित्यगुण मानने पर ही निर्गुण सगुण मे अन्वय और सामञ्जस स्थापित हो सकता है। अन्यथा नहीं किंच निर्गुण का अर्थ अत्यन्त गुणाभाव मानने पर ब्रह्मकी सत्ता ही समाप्त हो जायेगी । गुण रहित कोई भी वस्तु नही है । गौतम ने कहा है–"व्यक्त्याकृति जातयस्तु पदार्थी –न्या, सू २।२।६६।" निर्गुण मानने पर निरालम्बकी उपासना भी सम्भव नही है–"रूप रेख गुन जाति जुगुति बिनु, निरालम्व मन चकृत धावे। सब विधि अगम विचारहि ताते 'सूर' सगुन लीला पद गावै ।

गुण के अत्यन्ताभाव के अर्थ मे निर्गुण की कहीं सत्ता ही नही है। अन गोपियों उद्धव से प्रश्न कर निरुत्तर कर देती है–"निर्गुण कौन देश के वासी ? मधुकर, हॅसि समुझाय सौंह दै बूझति सॉच न हॉसी ॥ को है जनक जननि को कहियत कौन नारि को दासी । कैसो वरन वेष हैं कैसो केहि रस के अभिलाषी ? पावैगो पुनि कियो आपनो जोरे कहैगो गॉसी । सुनत सुनत मौन है रह्यो ठग्यो सो 'सूर' सवै मति नाशी ॥" यह प्रश्न सुनते ही ऊद्धवजी मौन होकर ठगी सी रह गये उनका सब मिथ्याज्ञान नष्ट हो गया ।

भ्रमर गीतकार नन्ददासजी की गोपिया इसी प्रकार ऊद्धव से प्रश्न करतीं है–जो उनके गुन नाहिं और गुन भये कहॉ ते । बीज विना तरु जमै मोहि तुम कहो कहॉते ?' प्रह्लादजी ने भगवान् से कहा है–"रूपे इमे सदसती तव वेद सृष्टे, बीजाकुरा विव न चान्यदरूपकस्य। युक्ता समक्षमुभयत्र विचिन्वते त्वा योगेन वह्निमिवदारुषु नान्यत स्यात् ॥ श्रीमद्भा० ब्रह्म ही जगत् का कारण (बीज) है । यदि कारण (ब्रह्म) मे गुण नहीं हो तो कार्य (जगत्) मे गुण कहॉ से आवेगा । क्योकि कारण का गुण ही कार्य मे अनुगत होता है । कारणाभावे कार्याभाव–वै. सू' कहा गया है । अत गोपियों का उक्त तात्त्विकप्रश्न बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। जगत् मे ब्रह्म के गुणों के प्रत्यक्ष दर्शन के अभाव का कारण तो प्रह्लादजी ने ही वतला दिया है–'जातेऽङ्कुरे कथमुहोपलभेत बीजम् ॥ श्रीमद्भ०॥ अत एव अनुमान एवं ध्यान (तं पश्यते निष्कलं ध्यायमान – मु० ।३।१।८।' 'कश्चिद्धीर प्रत्यगात्मानमैक्षद् आवृत्त चक्षुरमृतत्वमिच्छन् । का० ४।१ तद्विष्णो परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरय ।ऋ० १।२२।५) द्वारा ही ब्रह्म के गुण एवं रूपो को देख सकते हैं।

वेदों मे ब्रह्म को बृहत् (महान्) युवा (श्रेष्ठ) कुमार (सुन्दर) शरीर वाला कहा है–'बृहच्छरीरो विमिमान ऋक्वभिर्युवाकुमार प्रत्येत्याहवन् ॥ऋ० १।१५५।६।' यह उनके रूपकी विशेषता–'क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूप रमणीयताया । माघ।' का द्योतक है ।

परात्पर ब्रह्म राम के अनन्त गुण है–'राम अनन्त अनन्त गुण अमित कथा विस्तार ।' कहा है–"असित गिरिसमं स्यात् कज्जल सिन्धु पात्रे, सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमूर्वीम् । लिखति यदि गृहित्वा शारदा सर्व कालं, तदपि तव गुणानामीशपार न याति ॥ अत ब्रह्म सगुण है। निर्गुण का तात्पर्य लौकिक गुणो से एवं सगुण का तात्पर्य अलौकिक (दिव्य) गुणो से है ।

इस विषय मे मेरा एक लेख 'निर्गुण परीक्षा' शीर्षक ज गु श्रीरामानन्दाचार्य पत्रिका' के १९८१ तथा अमूर्त्त परीक्षा सन् १९८३ के अङ्क मे प्रकाशित है, जो वही द्रष्टव्य है ।

श्रीबिन्दुजी ने कहा है–"होगा वह निराकार निर्गुण निर्लेप निरञ्जन भी होगा । हमको दिखलायी पडता है, सौवार हमारी आँखो मे ॥" अत निर्गुण का अर्थ गुणाभाव नही है प्रत्युत लौकिक गुण विलक्षण 'नित्य गुण' है । ब्रह्म नित्य गुण वाला (निर्गुण) और सत् गुणवाला (सगुण) है ।

सगुण और अगुण पद गुण का विरोधी नही है । गुण का संयोग सगुण और गुण का विभाग (पार्थक्य) अगुण पद है । अन्यत्र गुण और गुणी मे पार्थक्य तथा आधाराधेय सम्बन्ध है । परन्तु ब्रह्म मे इसके विपरीत तादात्म्य । दृष्टान्त के लिये ज्ञान गुण को ले । ज्ञानाधिकरण-मात्मा के अनुसार ज्ञान गुण का आत्मा द्रव्य के साथ आधाराधेय सम्बन्व है। परन्तु 'समवायेन नित्य ज्ञानवत्त्वम् परमात्मत्वम्' तथा 'समवायेन जन्यज्ञानवत्वं जीवत्वम्' भेद से जीव ज्ञान युक्त है और परमात्मा ज्ञानरूप । अत यहाँ जीवात्मा ज्ञान युक्त (सगुण) और ज्ञान रहित (अगुण) दोनो स्थितियो मे रहता है। परन्तु परमात्मा ज्ञानयुक्त (सगुण) या ज्ञान रहित (अगुण) नही है अपितु ज्ञानरूप (गुण) ही है । अत वह गुण रूप से ही अभिहित है–'प्रज्ञानं ब्रह्म' इसी प्रकार रस गुण को ले 'रसना ग्राह्यो गुणो रस ' रसना से जिसका ग्रहण किया जाय वह रस है और 'पृथिवी जल वृत्ति ' के अनुसार इसका अधिकरण पृथिवी और जल है । इस प्रकार यहाँ गुण और गुणी मे आधाराधेय भाव है । परन्तु ब्रह्म रस युक्त या रस रहित नही अपितु रस रूप है– "रसो वै स ' अत वह रस के प्रकरण मे भी न तो रस युक्त (सगुण) न रस रहित (अगुण) है, प्रत्युत रस रूप (गुण) ही है । इस प्रकार ब्रह्म का गुण स्वतन्त्र होने (द्रव्याश्रित नही होने) गुण स्वरूप होने से सगुण अगुण से भिन्न विशुद्ध गुण है और ब्रह्म सगुण अगुण भिन्न विशुद्ध गुण है जो निश्चित (नित्य) होनेसे निर्गुण कहा जाता है। उसके गुण का लक्षण द्रव्याश्रितत्व समाप्त हो जाने से वह द्रव्य रूप (स्वाश्रित स्वतन्त्र) है । अत इसमे गुणत्वाभाव (द्रव्याश्रयित्वा-भाव) के कारण इसे निर्गुण का गुण निषेधपरक अर्थ भी मान लिया जाता है ।

गुण को सभी नही जान सकते और न समझ सकते है–'गुणीगुणं वेत्ति न वेत्ति निर्गुण । ब्रह्म का सबसे बडा गुण प्रेम कहा गया है और उसे इस प्रेम (गुण) रूप ही मानकर कहा गया है–'प्रेम ही ईश्वर है।' यहाँ भी प्रेम गुण न होकर द्रव्य रूप है । अत ईश्वर इस अर्थ मे निर्गुण है । ब्रह्मका गुण त्रिगुणातित (अप्राकृतिक) होने से वह निर्गुण है ।



* अमूर्त्तपरीक्षा *

उपनिषद् मे ब्रह्म को मूर्त्त एव अमूर्त्त दोनो कहा गया है । इसकी संगति कैसे होगी ?

कोषानुसार मूर्त्त पद के दो अर्थ होते हैं–काठिन्य और शरीर मूर्त्ति काठिन्य काययो अ. को. ३।३।६६ परन्तु शरीर शब्द के दो प्रकार के अर्थ होते है–(१) "शीर्यते प्रतिक्षणमिति

शरीरम्" आत्मनो भोगायतन शरीरम्' और (२) चेष्टेन्द्रियार्थाश्रय शरीरम् न्या सू १।१।११ उक्त प्रथम अर्थ मे तो ब्रह्म का मूर्त्त (शरीर) रूप नही बन सकता, क्योकि ब्रह्म का शरीर न तो प्रति क्षण क्षीयमान है और न ब्रह्म को कर्मफल भोग की अपेक्षा है। किन्तु द्वितीय अर्थ मे तो ब्रह्म का मूर्त्त रूप बनता ही है, क्योकि ब्रह्म इच्छा ज्ञान के साथ ही प्रयत्न (चेष्टा) का भी आश्रय है और जगत का कर्त्ता पालक-सहर्ता है। अत चेष्टा का आश्रय होने से उसका शरीरत्व एवं मूर्त्तत्व (मूर्तत्वं च क्रियाश्रयत्वम्) बनता ही है। अत प्रथम लक्षण के अनुसार वह अमूर्त्त तथा द्वितीय लक्षण के अनुसार मूर्त्त अर्थात् मूर्त्त अमूर्त्त दोनो ही सिद्ध हे।

परिच्छिन्न परिमाणवाले पदार्थ मूर्त्त है-"परिच्छिन्नपरिमाणवत्वं मूर्त्तत्वम्। "आकाश भी मूर्त्त है क्योकि यह परिमाण वाला है (मान व्यवहार सोधारण कारणं परिमाणम्। नव द्रव्य वृत्ति-त स)। पुन ब्रह्म के अष्टमूर्त्तियो मे आकाश को भी मूर्त्त कहा गया है-"अथाग्नी रविरिन्दुश्च भूमिराप प्रभञ्जन। यजमान खमष्टौ च महादेवस्य मूर्त्तय। ब्रह्मको 'आकाशवत् सर्वगतश्च नित्य' कहा गया है। अत ब्रह्म का भी मूर्त्त होना प्रमाणित है। परन्तु ब्रह्म की मूर्त्ति सावयव नहीं है। अत वह अमूर्त्त है।

इस प्रकार ब्रह्म को अमूर्त्त एवं मूर्त्त दोनो कहना सर्वथा प्रामाणिक है। इसमे कोई विरोध या व्याघात नही है। तभी वेदो मे भी इन्हे मूर्त्त तथा अमूर्त्त दोनो ही कहा गया है। अमूर्त्त पद मे अ पद अनुकम्पार्थक भी हो सकता है-"अशब्द स्यादभावेऽपि स्वल्पार्थप्रतिषेधयो। अनुकम्पायाञ्च तथा वासुदेवेत्वनव्ययम्॥ मे० अत अमूर्त्त का अर्थ अनुकम्पामूर्त्त एवं वासुदेवमूर्त्त भी है।



निर्विकल्प निर्णय

नि+वि+कल्प=निर्विकल्प। नि=नही (निर्निश्चयनिषेधयो अ को ३।३।२५३) वि=विविध अथवा विरुद्ध+कल्प=सामर्थ्य वा शक्ति (कृपूसामर्थ्ये-भ्वा०)। अथवा नि+विकल्प=निर्विकल्प। नि=नही+विकल्प="नानाकल्पो विकल्प। विविधो वा कल्पो विकल्प न्या भा १।१।२०॥" अथवा 'विकल्प पुसि भ्रान्तौ च कल्पने-मेदिनी।' 'उपमाया विकल्पे वा-अ को ३।३।२५० के अनुसार 'वा' पद का प्रयोग विकल्प अर्थ के बोधन मे होता है-"यवैर्व्रीहि वा यजेत।' पाश्चात्य निगमन तर्क शास्त्र के अनुसार सम्बन्ध के अनुकूल वाक्य दो प्रकार के होते है-१निर पेक्ष और २ सापेक्ष पुन सापेक्ष वाक्य के दो भेद होते है (क) हेतुफलाश्रित और (ख) वैक ल्पिक यह वैकल्पिक वाक्य 'या' वा' अथवा 'अथवा (यातो) अथवा (यह) आदि सम्बन्ध सूचक पदों से जुडा रहता है। पुन यह वैकल्पिक वाक्य दो प्रकार का होता है। प्रथम-वह जिनके दोनो विकल्प परस्पर व्याघातक एतावता पारस्परिक बहिष्कारक पद होते है इसम एक की सत्यता दूसरे की असत्यता प्रमाणित करती है तथा एक की असत्यता दूसरे की सत्यता। द्वितीय-वह जिनके दोनो विकल्प परस्पर व्याघातक एतावता पारस्परिक बहिष्कारक पद नही होते है। इनमे दोनो विकल्प साथ साथ सत्य वा असत्य हो सकते है। प्रथम का उदाहरण हे-'मनुष्य या तो नाशवान् है या अमर द्वितीय का उदाहरण है-मोहन या तो मूर्ख है या दुष्ट। सस्कृत व्याकरण मे इन्हे (वा को) वियोजक अव्यय की संज्ञा दी गयी है और इन्हे विरोध सूचक सम्बन्ध का प्रतिपादक कहा गया है।

इस प्रकार निश्चय अथवा ऐकान्तिक का अभाव विकल्प मे होता है। यह ठूठा पेड़ है अथवा मनुष्य ? यह मृगजल है वा जल ? इस प्रकार का अनिश्चय विकल्प मे रहता है। बस से पाटलिपुत्र जाये वा ट्रेन से इस प्रकार का अनिश्चय रहता है। अत वैकल्पिक ज्ञान अनिश्चयात्मक और अनेकात्मक होता है।

न्यायसूत्र भाष्यकार वात्स्यान ने कहा–'नाना कल्पो विकल्प विविधो वा कल्पो विकल्प –न्या सू भा १।२।२० अत निर्विकत्प को अर्थ हुआ निश्चित एक विध ज्ञान। हम इसी ऐकान्तिक अर्थ मे निश्चित ज्ञान को निर्विकल्प ज्ञान कहते है और भगवान् को निर्विकल्प तरु कहते है। क्योकि भगवान् के सम्बन्ध मे अनिश्चय नही है। भ्रम रहित एक कोटिक ज्ञान निर्विकल्प है और द्वि कोटिक अथवा चतुष्कोटि ज्ञान सविकल्प है। ऐसा ही व्याकरण एव कोश से स्वशब्दात् निर्विकल्प पद का निर्णय होता है।

परन्तु निर्विकल्प का नवीन अर्थ की कल्पना की गयी है। यद्यपि न्यायसूत्र मे निर्विकल्प और सविकल्प पदो की कल्पना नही है। तथापि बाद के नैयायिको ने वहाँ अपनी कल्पना घुसाई है। फिर भी इस सम्बन्ध मे इनमे काफी मतभेद है। न्यायसूत्र के प्रत्यक्षप्रमाण के लक्षण मे लिखा है–'इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्न ज्ञानमव्यपदेशमव्यभिचारिव्यवसायात्मकं प्रत्यक्षम्–न्या सू १।१।४।' इसमे 'निर्विकल्प' पद पठित नही। फिर भी कुछ लोग इस सूत्र मे पठित 'अव्यपदेश्यम्' पद से निर्विकल्प अर्थ लगाते है। यह स्मरणीय है कि बाद के नैयायिको ने इस सूत्र मे पठित 'अव्यपदेश्यमव्यभिचारि व्यवसायात्मकम्' इस अश को प्रत्यक्ष से हटा कर प्रत्यक्ष का लक्षण 'इन्द्रियार्थ सन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानं प्रत्यक्षम् (त स)' किया है। अत 'अव्यपदेश्यम्' पद व्यर्थ पड जाता है। जो कुछ भी हो 'अव्यपदेश्यम्' का अर्थ निर्विकल्पम्' नही है। 'अव्यपदेश्यम्' पद 'अ+वि+ अपदेश्यम्' के योग से बना है। 'अपदेश' पद का कोशानुसार तीन अर्थ होता है–१ व्याज, २ लक्ष्य और ३ निमित्त–'पदे लक्ष्ये निमित्तेऽपदेश स्यात्–अ को ३।३।२१६।' निमित्त कहते है 'करण' को अनुमान का करण 'व्याप्तिज्ञान' होता है। उपमान का कारण 'सादृश्यज्ञान होता है। शब्द प्रमाण का करण 'पदज्ञान होता है। परन्तु प्रत्यक्ष प्रमाण का करण कोई अन्यज्ञान नही होता। अत प्रत्यक्ष का लक्षण कहा गया है–'ज्ञानाकरणकं ज्ञानं प्रत्यक्षम्' अर्थात् जिस ज्ञान का कोई 'करण' नही हो वह प्रत्यक्ष है। प्रत्यक्ष ही अन्य ज्ञानो का करण है–'ज्ञानाकरणकं ज्ञानं प्रत्यक्षत्वेन सम्मतम्–प्रमाण दीपिका९। इसी 'ज्ञानाकरणकं ज्ञानं प्रत्यक्षम् का बोधक 'अव्यपदेश्य पद है, जो स्व अर्थ एवं प्रमाण लक्षण से सिद्ध है। अत 'अव्यपदेश्य' पद से निर्विकल्प की सिद्धि करना भ्रान्त है।'

'निर्विकल्प' पद का लक्षण दिया जाता है–नाम जात्यादि योजना रहितं निर्विकल्पकम्। 'बालमूकादि विज्ञानसदृशं निर्बिकल्पकम्'। परन्तु यह कथन भ्रान्त है। सर्वप्रथम ऐसा मानने पर केवलान्वयी व्याप्ति–'व्याप्तिमानन्वयेनैव द्वितीयोऽभिमत खलु। यथा घटोऽभिधेयोऽस्ति प्रमेय त्वात् घटादिवत् ॥भा र।' नही बनेगी क्योकि केवलान्वयी विपक्ष रहित होता है और 'बालक मूकादि विज्ञानसदृश' को नाम जात्यादि योजना रहित माना जाय तो यह विपक्ष उपस्थित होने पर केवलान्वयीं अनुमान नही बनेगा। यहाँ व्यतिरेक भी हो जायेगा जो अभिधेय नही है वह प्रमेय है, जैसे बालकमूकादि का ज्ञान। अत केवलान्वयी का लोप हो जायेगा।

निर्विकल्पक सम्बन्ध मे नैयायिको मे विवाद है। सर्वश्रेष्ठ नैयायिक नव्यन्याय के स्थापक श्रीगङ्गेशोपाध्यायजी नामजात्यादि योजना रहित ज्ञान को प्रमा नहीं मानते है—

"अथवा तत्प्रकार यज्ज्ञानं तद्वद्विशेष्यकम् । तत्प्रमा नप्रमा नाऽपि भ्रम स्यान्निर्विकल्पकम् ।
प्रकारतादिशून्य हि सम्बन्धानवगाही तत् ॥

प्रकारता (विशेषणता) आदि घटित ज्ञान मे ही प्रमात्व रहता है, निर्विकल्पक ज्ञान प्रकारतादि रहित है । अत वह प्रमा नही है ।

यहाँ यह भी स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि श्रीगगेशोपाध्यायजी ने निर्विकल्पक ज्ञान को न तो प्रमा माना है और न अप्रमा ही । प्रमा और अप्रमा से विलक्षण कहा है । परन्तु यह न्याय सिद्धान्त के ही विरुद्ध होने से अप्रामाणिक है । उदयनाचार्यजी ने न्याय कुसुमाञ्जलि म कहा है–
"परस्पर विरोधे हि न प्रकारान्तरस्थिति । नैकताऽपि विरुद्धानामुक्तिमात्र विरोधत ॥न्या कु ३।८

अत 'प्रमा एवं 'अप्रमा को परस्पर विरुद्ध होने से प्रमा अप्रमा विलक्षण प्रकारान्तर की स्थिति नही हो सकती । प्रमा और अप्रमा के परस्पर विरोध के कारण जो प्रमा नहीं है वह अवश्य ही अप्रमा है और जो अप्रमा नही है वह अवश्य ही प्रमा है । प्रमा अप्रमा विलक्षण अन्य तृतीय प्रकार सम्भव नही है । प्रमा अप्रमा इन दोनो परस्पर विरुद्ध के विरोध के कारण दोनो की एकता अर्थात् उभयात्मकत्व भी सभव नही है । अत कहा है 'उक्ति मात्र विरोधत । इस प्रकार गगेशोपाध्यायजी का प्रमा अप्रमा विलक्षण कहना ठीक नही है ।

श्रीविश्वनाथ पञ्चाननजी ने लिखा है–"भ्रमभिन्न ज्ञानमत्रोच्यते प्रमा । परन्तु तथा कथित निर्विकल्पक ज्ञान (वालकमूक विज्ञान) को भ्रम भिन्न कैसे कहा जा सकता है । मृग जल जिस प्रकार प्रौढ को जलवत् भासता है, उसी प्रकार वह बालक मूक को भी भासता है । पिपासा बालक और मूक को भी होती है । अत मृगजल देखकर पिपासित व्यक्ति चाहे वह बाल हो या प्रौढ सभो को पीने की प्रवृत्ति होती है । तब कैसे उसे भ्रम भिन्न कहा जा सकता है । अत' जो प्रमा और अप्रमा प्रौढ (नामजात्यादि योजना सहित ज्ञान वाले) को है वही बालक मूक को भी । अत बाल–मूक के विज्ञान को भ्रमभिन्न कहना अव्याप्त है एतावता भ्रान्त है ।

मध्वाचार्य (द्वैतवेदान्त), वल्लभाचार्य (शुद्धाद्वैत वेदान्त) एव भर्तृहरि (वैयाकरण) प्रभृति ज्ञान की उत्पत्ति क्रम मे विशेष विशेषण शून्य कोई ज्ञान स्वीकृत नही करते है । प्रत्येक ज्ञान में किसी प्रकार के विशेष का भान अवश्य रहता है । बालकादि के ज्ञान मे भी आकार (रूप) आदि विशेष्य अवश्य रहता है । अत सभी ज्ञान सविकल्पक है—

"न सोस्ति प्रत्ययो लोके य शब्दानुगमादृते । अनुविद्धमिव ज्ञान सर्व शब्देन भासते ॥

बिना सज्ञा का कोई ज्ञान नही होता । जिसके द्वारा सम्यक् (ठीक) रूप से ज्ञान हो वही संज्ञा कही जाती है और जिसके द्वारा किसी विषय वस्तु का प्रकाशन हो वही नाम कहा जाता है । अत बिना सज्ञा या नाम के वस्तुज्ञान असम्भव है । जितने अर्थ है उनमे अभेद से सज्ञा (उनका ज्ञान) अभेद से वर्तमान है । बालक किसी पक्षी को आकाश मे उड़ते हुये देखता है, तो पक्षी का रूप, उसके उडने की क्रिया, उसका इतर पदार्थो से भेद तथा उसका अधिकरण आदि सभी का ज्ञान उसको होता है । इस प्रकार पक्ष रूप से 'पक्षी' आकाश मे उडने से 'विहग' आदि उन अर्थो मे रहने वाली संज्ञाओ का भी उन्हे अर्थत ज्ञान होता ही है । इसी अर्थत ज्ञान का मातृभाषा के शब्दो द्वारा व्यक्त करता है । अत उसका शब्दत ज्ञान स्वत हो जाता है । इस प्रकार कोई भी ज्ञान निर्विकल्पक (नाम जात्यादि योजना रहित) नहीं होता । प्रत्येक

ज्ञान मे विशेषता और प्रकारता रहता ही है। निर्विशेष (अव्याबर्तक) कोई भी ज्ञान नही होता। उसकी अर्थत सज्ञा, जाति (सामान्य), विशेष (इतरभेद) आदि का ज्ञान होता ही है। अत सभी ज्ञान सविकल्प है। बालक और मूक की अनुभूति अज्ञात होने से वह दृष्टान्तरूप मे नही दिया जा सकता। क्योकि वह अनुभूति प्रकार के निश्चय का अभाव है। हम यह नही कह सकते कि उसको निर्विकल्प प्रकारक ज्ञान होता है। उसकी अनुभूति अज्ञात होने से वहाँ निर्णय स्थगन है। अत उसे दृष्टान्त रूप मे नही दियो जा सकता। बालक जन्म लेते ही कहाँ, कहाँ प्रश्न करने लगता है। अत कहा जाता है कि मनुष्य जन्मत तर्कशील प्राणी है। वह मनोनुकूल वस्तु को देखकर प्रसन्नमुख हो जाता है तथा उसको लेने के लिये प्रयत्न करता है। पुन मन के प्रतिकूल वस्तु को देखकर भयभीत हो जाता है, और हटने का प्रयत्न करता है। अत उसके ज्ञान मे भी भेद (विशेप) वा विकल्प है। मनुजी ने कहा है—

"आकारैरिंगितैर्गत्या चेष्टया भाषणेन च। नेत्र वक्त्र विकारेण लक्ष्यतेन्तर्गत मन ॥"

न्याय सूत्रकार गौतम ने ही कहा है—

"पूर्वाभ्यस्तस्मृत्यनुबन्धाज्जातस्य हर्षभयशोक संप्रतिपत्ते न्या सू ३।१।१९॥"

इसकी व्याख्या न्यायवार्त्तिक तात्पर्यटीका मे वाचस्पतिमिश्र जी ने लिखा है—"अभिप्रेत-विषयक प्रार्थना प्राप्तौ सुखानुभव हर्ष। अनिष्ट विपय सावनोपनिपाते तज्जिहासोर्हानाशक्यता भयम्। इष्ट विपय योगे सति तत्प्राप्त्यशक्यप्रार्थना शोक। तदनुभव सम्प्रतिपत्ति। प्रत्यक्ष बुद्धि निरोधे तदनुसन्धानविषय' स्मृति। अनुबन्धो भावनास्मृति हेतु संस्कार।

नवजात बालको के मुखपर जो हर्ष, भय, शोक के लक्षण देखे जाते है, उसका कारण उनके पूर्वजन्म की स्मृति है। तब बालक मूक के ज्ञान को निर्विकल्पक कैसे कहा जा सकना है?

अत विशिष्टाद्वैत वेदान्त मानरत्नावली मे कथन सत्य है-"नैवावभासकं ज्ञानमविशिष्टस्य वस्तुन ॥१।२४॥"

तर्कसग्रहकार ने केवलान्वयि के प्रकरण मे लिखा है—

"अन्वयमात्र व्याप्तिकं केवलान्वयि। यथा 'घटोऽभिधेय प्रमेयत्वात् इति। अत्र प्रमेयत्वा-भिधेयत्वयोर्व्यतिरेकव्याप्तिर्नास्ति सर्वस्यापि प्रमेयत्वादभिधेयत्वाच्च।"

जब सभी प्रमेय अभिधेय है, तब निर्विकल्पक प्रमा कैसे हुआ? अत न्यायसिद्धान्त से निर्विकल्पक ज्ञान मान्य नही हो सकता क्योकि यह सभी प्रमेय को अभिधेय मानता है।

सज्ञा (सज्ञास्याच्चेतना नाम हस्ताद्यैश्चार्थ सूचना-अ को ३।३।३३) या नाम (नाम प्राकाश्य संभाव्य क्रोधोपगमकुत्सने-अ को ३।३।२५२) रहित कोई भी प्रमेय नही है-ऐसो वैयाकरणों की मान्यता युक्ति पूर्ण है।

निर्विकल्प ज्ञान मानने पर बौद्ध दार्शनिक का प्रत्यक्ष लक्षण "प्रत्यक्षं कल्पनापोढं नामजात्या द्यसंयुतम्-प्रमाणसमुच्चय ॥" स्वीकार होता है, जो इष्ट नही है। पुन मध्वाचार्य, वल्लभाचार्य, भर्तृहरि प्रभृति वेदान्तियों एव वैयाकरणो से विरोध होता है। पुन वेदमन्त्रो के सम्बन्ध मे कहा गया है कि ऋषियों ने अन्त करण मे एकाग्र होकर वेदमन्त्रो का दर्शन किया-"शब्दार्थ प्रत्ययाना-मितरेतराभ्यासात्संकरस्तत्प्रविभागसंयमात्सर्वभूतरुतज्ञानम्। ऋषयो मन्त्रद्रष्टार।" वह नही बनेगा। आचार्यो ने ब्रह्मसूत्र के 'प्रत्यक्षानुमानाभ्याम्' सूत्र के प्रत्यक्ष शब्द का अर्थ श्रुति (वेद) "प्रामाण्ये

स्वातन्त्र्यात्प्रत्यक्षं श्रुति श्रुत्यपेक्षप्रामाण्यकत्वाच्चानुमान स्मृति" (आनन्दभाष्यम् १।३।२८) इत्यादिरूप से कहा है। वह नही बनेगा। वेद ऋषियो को ध्यान मे अलौकिक तत्त्वों का ज्ञान हुआ वह निर्विकल्प नही था, शाब्दिक था। शब्द के द्वारा अथवा शब्द सहित एतावता सविकल्प था। वेद सविकल्प है। निर्विकल्प नही। अत निर्विकल्प ज्ञान मानना वेद और शास्त्रों के विपरीत है।

ॐ शान्ति शान्ति शान्ति



❀ ईश्वर की सत्ता और सर्वज्ञता ❀

[ले० वैदेहीकान्तशरण]

ईश्वर की सत्ता एवं सर्वज्ञता के प्रमाण मे न्यायाचार्य श्रीउदयनाचार्य ने अपने सर्वप्रसिद्ध ग्रन्थ न्याय कुसुमाञ्जलि के पॉचवे स्तवक के प्रारम्भ मे निम्नलिखित कारिका लिखी है। जिनमे आठ हेतुओ से ईश्वर की सत्ता एवं सर्वज्ञता को प्रमाणित किया गया है। इस कारिका की उन्होने स्वय द्विविध व्याख्या की है। प्रथम सांख्य मत [ईश्वरासिद्धे] के समाधानार्थ और द्वितीय मीमासा मत [प्रमाणाभावात्] के समाधानार्थ इस प्रकार सम्पूर्ण पञ्चम स्तवक के प्रथम कारिका मे ईश्वर की सत्ता और सर्वज्ञता प्रतिपादक युक्तियो का निरूपण, द्वितीय से पञ्चम कारिकाओ मे उक्त युक्तियो मे संभावित दोषो का निराकरण, षष्ठ से षोडश कारिकाओं मे उन युक्तियों की मीमासक पक्ष मे द्वितीय प्रकार की व्याख्या की है।

उक्तकारिका को उद्धृत कर उसकी पृथक् व्याख्या यहाँ अपने मत से की जा रही है, जिनमे दोनों प्रतिपाद्य धर्मो-१ सत्ता और २ सर्वज्ञता की पृथक् पृथक् सिद्धि की जायेगी।

'कार्यायोजनधृत्यादे पदात् प्रत्ययत श्रुते। वाक्यात् सख्याविशेषाच्च साध्यो विश्वविदव्यय ॥
न्या० कु० ५।१॥"

व्याख्या—साध्यो विश्वविदव्यय—साध्यो [सिद्ध (प्रमाणित) करने का विषय है] विश्व [अखिल] विद् ['सत्ता' और 'ज्ञ (ज्ञाता)'—सत्तायां विद्यते ज्ञाने वेत्ति०] अव्यय [अविनाशी, नित्य]। इस 'साध्योविश्वविदव्यय' विधेय वाक्य मे प्रतिपाद्य विषय ईश्वर के स्वरूप 'नित्य सर्वज्ञ' और सर्वसत्ता' को साध्य [साध ससिद्धौ] सम्यक् प्रकार से प्रमाणित करने का विषय वा सम्यक् सिद्ध बतलाया गया है। इसके साधन रूप मे अष्ट विध युक्तियों का प्रतिपादन किया गया है। जो इस प्रकार है—

[१] कार्यात्—डु कृञ् करणे (तना०) धातु मे ण्यत् प्रत्यय लगाने से कार्य शब्द निष्पन्न होता है और अर्थ होता है-'क्रिया का विषय' या कर्म [कर्म क्रिया-अ को ३।२।१]। क्रिया द्वारा जो किया जाता है एव क्रिया के करण व्यापार से जो उत्पन्न होता है वह कार्य है [परसमवेत क्रियाजन्यफलाश्रयत्वंकर्मत्वम]। क्रिया के मूल को धातु कहते है एव फल तथा व्यापार धात्वर्थ है और उसके आश्रय (फलाश्रय) कर्म और व्यापाराश्रय कर्ता यह तिङ् (आख्यातार्थ) है-'फलव्यापारयोधातु आश्रये तु तिङ स्मृत।' क्रिया का उत्पादक कारक होता है [करोति क्रिया जनयतीति कारकम्] अथवा क्रिया के साथ जिसका सम्बन्ध हो उसको कारक कहते हैं

[क्रियान्वयी कारकम्] जो छ होते है–'कर्त्ता कर्म च करणं सम्प्रदानं तथैव च। अपादानाधिकरण इत्याहु कारकाणि षट् ॥" [कृ+ण्वुल्=कारक]। इस प्रकार जगत् को कार्य होने पर इस जगत् क्रिया के उत्पादक उक्त कर्त्तादि छ कारको की सिद्धि स्वत होती है। जिनमे सर्व प्रथम और सर्वप्रधान कारक कर्त्ता [क्रिया सम्पादक कर्त्ता] की सिद्धि तो सर्वप्रथम ही होती है। जगत् कार्य (शिल्प) है। अत इसके कारु [कृ+उण्=कारु=शिल्पी] अभियन्ता [इञ्जिनियर] की सिद्धि स्वत होती है। यह विश्व एक यान्त्रिक रचना है और इसकी नियमित सचालन व्यवस्था है अत इसके रचयिता एव नियामक [व्यवस्थापक] की सिद्धि स्वत होती है। यह व्याकरण शास्त्रा नुसार 'कार्यात्' पद से स्वशब्दात् जगत् कर्त्ता ईश्वर की सिद्धि होती है। वेदान्त दर्शन ने भी 'स्वशब्दात्'–ब्र सू १।३।१ एव न्यायदर्शन ने भी 'उक्तिमात्र–न्या कु ३।८ को हेतु माना है। न्याय दर्शन भी कर्तृत्व के लिये कृति [प्रयत्न] को मानते है–'सकर्तृकत्वं च उपादानगोचरापरोक्ष-ज्ञानचिकीर्षा कृतिमज्जन्यत्वम्', 'कर्तृत्वं चेतरकारकाप्रयोजकत्वेसति सकलकारकप्रयोतृत्वलक्षणं ज्ञान चिकीर्षा प्रयत्नाधारत्वम्"। एव नैयायिकयत्न [कृति] कोही आख्यातार्थ मानते है। उनका कथन है कि आख्यात की व्याख्या सर्वदा 'कृत' धातुसे की जाती है 'पचति, पदके दो भाग है –एक प्रकृति या धातु तथा दूसरा प्रत्यय [तिवादि] इसमे पचति पद की व्याख्या 'पाक करोति' पर्याय से की जाती है। पच धातु की व्याख्या 'पाकं' पद से एवं तिप् [ति] की व्याख्या 'करोति' पद से की जाती है। अत सर्वत्र उपरोक्त 'कार्यात्' शब्द साधक डुकृञ् धातु का अर्थ कृति (यत्न) ही आख्यातार्थ है। इस प्रकार भी उपरोक्त कार्यात् हेतु से उसका यत्नकर्ता (कारक) का सहज अनुमान होता है।

वैशेषिक दर्शनानुसार बिना कारण के कोई कार्य नही होता है और कार्य के अभाव मे कर्ता का अभाव नही होता–'कारणाऽभावात्कार्याऽभाव। वै सू १।२।१', 'न तु कार्याऽभावात्कारणाऽभाव॥ वै सू २।१।२।' कार्यकारण का लक्षण एवं प्रकार इस प्रकार कहा गया है–'कार्यं प्रागभावप्रतियोगि।' 'कार्यं नियत पूर्व वृत्तिकारणम्।' 'कारणं त्रिविधम्–समवाय्यसमवायि निमित्त-भेदात्। यत्समवेत कार्यमुत्पद्यते तत्समवायिकारणम्। यथा तन्तव पटस्य। पटश्च स्वगतरूपादे। कार्येण कारणेन वा सहैकस्मिनर्थे समवेतत्त्वे सति कारणं समवायि कारणम्। यथा तन्तु सयोग पटस्य। तन्तु रूपं पटरूपस्य। तदुभयभिन्नं कारणं निमित्तकारणम्। यथा तुरीवेमादिकं पटस्य।' अत वैशेषिक दर्शनानुसार 'कार्यात्' हेतु से इसका कारण रूप ईश्वर की सिद्धि होती है।

न्याय दर्शन के अनुसार 'कार्यात्' हेतु से अनुमान प्रमाण के द्वारा ईश्वर की सिद्धि होती है–"क्षित्यादिकं सकर्तृकं कार्यत्वात् घटवत्।' न च तत्कर्तृकत्वमस्मदादीनां सम्भवति। सकर्तृकत्वं च उपादानगोचरापरोक्षज्ञानचिकीर्षा कृतिमज्जन्यत्वात्।' यह अखिल विश्व [पृथिवी, सूर्य, चन्द्र, ग्रह नक्षत्रादि विविध प्रकार के वृक्ष, जीव, स्वर्णादि धातु, अन्न अग्नि, वायु, जलादि जितने पदार्थ हैं, सभी] कार्य हैं, अतएव इसका कर्ता होना अत्यन्त आवश्यक है। क्योंकि बिना कर्ता के किसी कार्य की उत्पत्ति नही होती है। इस विशाल अनन्त विज्ञान पूर्ण विश्व का निर्माता (कर्ता) हमलोगों मे से कोई भी जीव नही हो सकता है। क्योंकि कर्ता का लक्षण है–'उपादान गोचर (कारण विषयक) अपरोक्ष ज्ञान (प्रत्यक्ष ज्ञान) चिकीर्षा (करने की इच्छा) और कृति (कार्यानुकूल व्यापार) से युक्त।' हमलोगों मे किसी भी जीव मे विश्व कर्तृत्व का यह लक्षण सम्भव नहीं है। अत इसका कर्त्ता ईश्वर है। इस प्रकार उक्त 'कार्यात्' हेतु से ईश्वर की सत्ता की सिद्धि होती है।

अब इसी हेतु से ईश्वर की सर्वज्ञता की भी सिद्धि होती है इस जगत् निर्माण कार्य मे जो अद्भुत् कारीगरी (शिल्प कलाकौशल–सौन्दर्य–विज्ञानादि) तथा सुव्यवस्था (संचालन–नियमन–प्रयोजन–रक्षण–पोषणादि) आदि कार्य है उसको देखने से इसके निर्माता तथा व्यवस्थापक की असीम बुद्धि का अद्भुत चमत्कार का पता चलता है एवं इससे उसकी सर्वज्ञता की सिद्धि होती है [वह सर्वव्यापी परम प्रतापी जगन्नियन्ता छुपा नहीं है। हरेक पत्ता उसी कीं गतिसे साचेत हो सिर हिला रहा है]

वेद भगवान् भी यही कहते है–'विष्णो कर्माणि पश्यत यतो व्रतानिपस्पशे। इन्द्रस्य युज्य सखा ।।ऋ० १।२२।१९=शु य ६।४, १३।३३ साम० १६७१, अथर्व० ७।२६।६।।'–हे लोगों तुमलोग सर्वव्यापक सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान ईश्वर के अद्भुत् कार्यो और लीलाओ को देखो। [केशव कहिं न जात का कहिए। देखत तव रचना विचित्र अति समुझि मनहि मन रहिए।। कोउ कह सत्य झूठ कह कोउ, युगल प्रबल कोउ मानै।'] वाली विचित्र अचिन्त्य अद्भुत अनिर्वचनीय रचना एवं कलाकौशलको देखकर मानव बुद्धि कुण्ठित हो जाती है। ऐसे जगत् कार्य के अवलोकन करने (कर्माणि पश्यत) का उपदेश देते हुये वेद आगे कहते है कि यह जगत् कार्य अव्यवस्थित वा उच्छृङ्खल नही है प्रत्युत नियमो से सुबद्ध और नियमित गति से यन्त्रवत् सचालित तथा सुव्यवस्थित है। इसके यान्त्रिकव्यवस्था, बौद्धिक व्यवस्था तथा नैतिक व्यवस्था उसकी सर्वज्ञता का साधक है (यतो व्रतानि पस्पशे)। फिर आगे कहते है कि वह हितचिन्तक शासक (युज्य सखा) है। अत इस विश्व के कार्यो का अवलोकन करने पर कण कण मे ईश्वर की सर्वज्ञता का अवलोकन करते है। आधुनिक भौतिक विज्ञान के अनुसार एक परमाणुकी ठीक वैसे ही रचता है जैसा कि ब्रह्माण्ड की। जैसे ब्रह्माण्ड के केन्द्र मे सूर्य है और उसके चारो ओर उपग्रह चक्कर काटते (प्रदक्षिणा करते) रहते है, ठीक उसी प्रकार परमाणुओ के केन्द्र मे भी प्रोटीन रहते है तथा उसके चारो ओर इलेक्ट्रोन चक्कर काटते है। अत वेद विज्ञान का कथन–'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे' आधुनिक विज्ञान से भी सिद्ध होता है।

न्याय कुसुमाञ्जलि कारने ईश्वर के जगत्कार्य का इसप्रकार वर्णन किया है–'कार कारमलौकिकाद्भुतमयं मायावशात्संहरन्, हार हारमपीन्द्रजालमिव य कुर्वन् जगत्क्रीडति। तं देवं निरवग्रहस्फुरदभिध्यानानुभाव भवं, विश्वासैकभुवं शिवं प्रतिनमन् भूयासमन्तेऽपि ।।न्या कु २।४।।

इसी जगत्कर्तृत्व के विषय मे प्रार्थना की जातीहै–'जिसने सूरज चाँद बनाया। जिसने तारों को चमकाया। जिसने सारा जगत बनाया। जिसने रची हमारी काया।। वह है सब दुनिया से आला। उसका है सब काम निराला।। उस ईश्वर को सदा मनाओ। उसे प्रेम से सीस झुकाओ ।।'

उपरोक्त 'कार्यात्' हेतु के प्रकरण मे मीमासक कार्य (कर्म) को ही फल प्रदाता एतोवता ईश्वरवत् मानते है। अत श्रीहनुमन्नाटक के मङ्गल श्लोक मे कहा गया है–'यं शैवा समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो, बौद्धा बुद्धमिति प्रमाणपटव कर्तेति नैयायिका। अर्हन्नित्यथ जैन शासनरता कर्मेतिमीमासका सोऽय वो विदधातु वाञ्छितफलं त्रैलोक्यनाथो हरि ।।१।३।।' परन्तु न्याय दर्शन के मत मे कर्म स्वयं फल प्रदाता नहीं है प्रत्युत ईश्वर कर्मफल प्रदाता है 'ईश्वर कारणं पुरुष कर्माफल्य दर्शनात् न्या सू ४।१।१९।' अत इस कार्यात् हेतु से मीमांसक मत में कर्म ईश्वर है और न्यायमत मे कर्मफल प्रदाता ईश्वर है–ऐसा सिद्ध होता है।

उक्त 'कार्यात्' हेतु के प्रकरण मे ही ईश्वर का पर्याय नाम विष्णु सहस्रनाम मे इस प्रकार पठित है–'उद्भव क्षोभणो देव श्रीगर्भ परमेश्वर । करण कारण कर्ता विकर्ता गहनो गुह ॥ श्लो० ५४॥' प्रपञ्चोत्पत्त्युपादानकारणत्वात् उद्भव, उद्गतो भवात्समारादिति वा । सर्गकाले प्रकृति पुरुषं च प्रविश्य क्षोभयामासेति क्षोभण । प्रकृति पुरुषं चैव प्रविश्यात्मेच्छया हरि । प्रविश्य क्षोभयामास सर्गकाले व्ययाव्ययौ ॥ इति विष्णु पुराणे १।२।२९। यतो दीव्यति क्रीडति सर्गादिभि, विजिगीषतेऽसुरादीन व्यवहरति सर्वभूतेषु, आत्मतयाद्योतते, स्तूयते स्तुत्यै सर्वत्रगच्छति तस्माद्देव 'एकोदेव –श्वे० उ० ६।११' इति मन्त्रवर्णात् । श्री र्विभूतिर्यस्योदरान्तरे जगद्रूपा यस्य गर्भेस्थिता स श्रीगर्भ । परमश्चासावीशनशीलश्चेति परमेश्वर । 'सम सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम् । गी १३।२७।' इति वचनात् । जगदुत्पत्तौ साधकतमं करणम् । उपादान निमित्त च कारणम् । कर्ता स्वतन्त्र । विचित्र भुवनं क्रियते इति विकर्ता स एव भगवान् विष्णु ॥ शाङ्करभाष्य ॥"

अत अन्त मे उसे विश्वेश्वर कहा गया है–'विश्वेश्वर देव जगत प्रभवाप्ययम् ॥ श्लो० १४२॥" एवं गरुडपुराण मे कहा गया है–'आदरेण यथा स्तौति धनवन्तं धनेच्छया । तथा चेद् विश्वकर्तार को न मुच्येत बन्धनात् ॥पू २३०।५०।'

उक्त 'कार्यात्' हेतु के प्रकरण मे जो उदयनाचार्यजी ने कार कारमलौकिकाद्भुतमय कुर्वन् जगत् क्रीडति–न्या कु २।४ कहा है वह श्रीरामानन्द सम्प्रदाय के अनुसार जगत् क्रीडा 'रमु क्रीडायाम्' धातु से निष्पन्न राम मे ही संगत है । अत इससे परब्रह्म श्रीराम की ही सत्ता एवं सर्वज्ञता सिद्ध होती है तथा उन्हे जगल्लीलाबीज कहा गया है । भगवान् का नाम इसीलिये– 'करण कारणं कर्ता विकर्ता गहनोगुह –वि स श्लो० २४' कहा गया है ।

[२] आयोजनात्=आ समन्ताभावेन पूर्वक युजिर्योगे धातु के योग मे ल्युट् प्रत्यय से आयोजन शब्द बनता है । अर्थ होता है पूर्ण रूप या सम्यक्रूप से एकत्र स्थित करने या जोडने का कार्य । इस प्रकार रचना प्रकरण मे आयोजन का अर्थ है अशो को जोडकर इच्छित वस्तु को बनाना । ईश्वर विश्व अभियन्ता है । यह विश्व रचना उसकी असीम यान्त्रिक बुद्धि का प्रमाण है । यहाँ आयोजन शब्द से साख्यमत मे प्रकृति (जड) एवं पुरुष (चेतन–जीव) का संयोग संसार है । परन्तु प्रकृति और पुरुष के संयोग के लिये ईश्वर की आवश्यकता है । क्यों कि साख्यमत मे पुरुष निरीह है और प्रकृति जड है । अत इन दोनो का मिलन स्वय नही हो सकता । अत सेश्वर साख्य मत मे इन दोनो का संयोजक वा आयोजन करने वाला ईश्वर है । इसी को गीता मे 'मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन्गर्भंदधाम्यहम् । तथा 'मयाध्यक्षेण प्रकृति सूयते सचराचरम् ।' कहा गया है । निरीश्वर साख्यमत भी प्रकृति के तीनो (सत्व–रज–तम) गुणों को परस्पर विरोधी मानते है । तब ये तीनो परस्पर विरोधी होने से मिलकर एककार्य मे प्रवृत्त नहीं हो सकते । इस आपत्ति के समाधान मे उनका कहना है कि बत्ती तेल और अग्नि परस्पर विरुद्ध होने पर भी अन्धकार नाश द्वारा प्रकाशरूप कार्य के लिये तीनो आपस मे विरोध छोडकर पदार्थों को प्रकाशित करते है (प्रदीपवच्चार्थतो वृत्ति) । परन्तु प्रदीप मे भी तेल अग्नि-बत्ती का सयोग कराने वाला चेतन की आवश्यकता है । अत प्रकृति के तीनो गुणो को प्रयोजनानुसार कार्यसम्पादनार्थ संयोग कराने वाले ईश्वर की सिद्धि होती है ।

वैशेषिक दर्शन के अनुसार 'धर्म विशेष प्रसूताद् द्रव्य गुण कर्म सामान्य विशेष समवायाना तपदार्थाम्–वै सू १।१।४' एवं 'पृथिव्यापस्तेजो वायुराकाशं कालो दिगात्मा मन इति द्रव्याणि ॥

वै सू १।१।५।' एवं 'रूपरसगन्धस्पर्शास्संख्यापरिमाणानि पृथक्त्व संयोग विभागौ परत्वापरत्वे बुद्धय सुखदुःखे इच्छाद्वेषौ प्रयत्नाश्च गुणा ॥वै सू १।१।६।' आदि का सयोजक ईश्वर है।

न्याय दर्शन के अनुसार 'आत्माशरीरेन्द्रियार्थबुद्धिमन प्रवृत्तिदोषप्रत्यभावफलदुःखापवर्गास्तु प्रमेयम् ॥ न्या सू १।१९॥" का सयोजक ईश्वर है। उपरोक्त प्रथम हेतु 'कार्यत्वात्' से ईश्वर के जगत् के कारण सामान्य का निरूपण हुआ है और इस द्वितीय हेतु 'आयोजनात्' से उसका कारण प्रकार 'निमित्त कारणत्व' का निरूपण है।

वेद मत मे साकार ईश्वर सृष्टि कर्ता है-

'विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात्।

सं बाहुभ्यां धमति सपतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देव एक ॥

ऋ १०।८१।३१=यजु १७।१९=अथ, १३।२।९६

न्याय दर्शन ईश्वर को कुम्भकार की तरह प्रयोजक कर्ता मानते है जो उपादानो से रचना करता है। वह निमित्तकारण है, उत्पादक कर्ता या उपादान कारण नही। परन्तु वेद मत मे वह अचित् शरीरी होने के कारण (यस्य पृथिवी शरीरम्) वह उपादान कारण और उत्पादक कर्त्ता भी है। अत वह अपने सकल्प (इच्छा) से ही अपने अचित् शरीर (जगत्) का इच्छित कार्य रूप मे निर्मित कर लेता है। अत वह निमित्त (आयोजक वा प्रयोजक) कर्ता भी है। इस प्रकार इस हेतु से ईश्वर की सत्ता सिद्ध होती है। पुन इस आयोजन कार्य की विशेषताओं के अवलोकन से उसकी सर्वज्ञता भी सिद्ध होती है। सर्वज्ञ के बिना ऐसी विचित्र रचना का आयोजन कोई नही कर सकता।

[३] धृत्यादे =धृञ् धारणे धातु से निष्पन्न धृति शब्दका अर्थ धारण करने का विषय है। यह हेतु विश्वके अधिकरण [आधारोऽधिकरणम्] का ज्ञापक है। अधिकरण के चार प्रकार बतलाये गये है-१ औपश्लेषिक [जिस आधार के साथ आधेय का भौतिक सश्लेष हो, यथा-कटे आस्ते काक], २ वैषयिक [जिस आधार के साथ आधेय का बौद्धिक सश्लेष हो, जसे मोक्षे इच्छा अस्ति] ३ व्याप्य व्यापक [जिस आधार के साथ आधेय का व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध हो, जैसे तिलेषुतैलम्] ४ सामीप्यक [जिस आधार के साथ आधेय का सामीप्य है, जैसे गंगायां घोषो वसति]। आधेय जगत् का आधार ईश्वर के साथ सभी प्रकार का अधिकरणत्व सभव हो सकता है।

न्यायमत मे धृति का अर्थ 'धृतिश्च गुरुत्ववतां पतनाभाव'। धृतिधारणं किया गया है और यहाँ इस तृतीय हेतु से 'ब्रह्माण्डादिपतनप्रतिबन्धकीभूतप्रयत्नवदधिष्ठित धृतिमत्त्वात्, वियति विहङ्गमधृतकाष्ठवत्।

मीमासक मत मे 'धारणात्धर्म इत्याहु' के अनुसार इस विश्व (जगत्) को धारण करने वाला आधार (अधिकरण) धर्म है। परन्तु न्यायमत मे इस धर्म को भी धारण करने वाला अधिकरण ईश्वर ही है-'अतो धर्माणि धारयन्-ऋ० ३।२२।१८' अथर्व वेद मे भी धर्म के साथ ही ब्रह्म (ईश्वर) को अधिकरण बतलाया गया है-'सत्य बृहदृतमुग्र दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञ पृथिवी धारयन्ति। अथर्व० काण्ड १२ पृथिवी सूक्त मन्त्र १) वाल्मीकि रामायण मे 'रामोधर्मस्य विग्रह' कह कर दोनो मे समन्वय करते हुये परात्पर ब्रह्म राम को ही अन्यतम अधिकरण प्रतिपादित किया गया है। विष्णु सहस्रनाम मे परमेश्वर को ही इनको धारण करने वाला (अधिकरण) कहा गया है-'द्यौ सचन्द्रार्क नक्षत्रा खं दिशो भूर्महोदधि। वासुदेवस्य वीर्येण विधृतानि महात्मन ॥ श्लोक १३४॥'

मीमांसा दर्शन धर्म को ही ब्रह्म के समान मानता है और वेदान्त दर्शन जहाँ 'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा–ब्र सू १।१।१' से अपने दर्शन का आरम्भ करते है वहाँ मीमासा 'अथातो धर्म जिज्ञासा–मी सू १।१।१' से अपने दर्शन का आरम्भ करती है। अत मीमासामत मे जगत् का अधिकरण ब्रह्म नही प्रत्युत धर्म है। परन्तु दूसरे ही सूत्र चोदनालक्षणोऽर्थो धर्म–मी सू १।१।२' मे धर्म के लक्षण मे चोदना (प्रेरणा) मानती है। वेदान्तमत मे प्रेरक ईश्वर है– ईश्वर सर्वभूताना हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥गी १८।६१ सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो मत्त स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च। वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम् ॥ गी १५।१५॥' अत ईश्वर ही धारण कर्ता है। इस प्रकार इस धृति (धारण करना) हेतु से ईश्वर की सत्ता सिद्ध है।

यह ब्रह्माण्ड जिस पूर्ण अनुल्लङ्घनीय, अटल, अव्यभिचारी समन्वित, सोद्देश्य अखण्ड नियमो पर स्थिर है, उस पर विचार करने से ईश्वर की सर्वज्ञता का ज्ञान होता है। विश्वका अभ्रान्त विज्ञान पर आधारित होना ईश्वर की सर्वज्ञता का प्रमाण है। विश्व विज्ञान पर विचार करने पर इसका नियामक और संचालक सर्वज्ञ एक ही व्यक्ति ईश्वर सिद्ध होता है। ईश्वर का नाम विश्वनियन्ता इसी लिये है।

[३क] धृत्यादे —धृति के साथ आदे पद है। इसआदि पद से धृञ् धारणे धातु के साथ एक ही आनुपूर्वी मे पठित 'भृञ् भरणे एवं हृञ् हरणे, हरण प्रापणं स्वीकार स्तेयं नाशन च' इन दोनो धातुओ से निष्पन्न पदो का ग्रहण होता है। हरिदासवृत्ति मे 'आदि पदात् नाशपरिग्रह। ब्रह्माण्डादि प्रयत्न वद्विनाश्यं, विनाशित्वात् पाट्यमान पटवत्' अर्थात् ब्रह्माण्डादि किसी प्रयत्नवान् से विनाश्य है, नाशवान् होनेके कारण, फाडेजाने वाले वस्त्र के समान' लिखा है। जिससे विश्व के विनाशकरने वाले सत्ता के रूप मे ईश्वर सिद्ध होता है। यह बात उपरोक्त हृञ् धातु से भी सिद्ध है। हृञ् का प्रथम अर्थ है 'हरण'। विश्व एवं विश्व के जीवो मे अपकर्ष, मल, दोष, एवं पापादि है। इसका शोधन होता रहता है। इसका शोधन करने वाला 'अपापविद्ध' परम विशुद्ध तत्त्व ईश्वर ही हो सकता है, दोष युक्त कोई जीवादि नही (स्वयमसिद्ध कथं परान् साधयति)। अत पाप हारक (हरि) ईश्वर की सिद्धि होती है–'हरिर्हरति पापानि दुष्टचित्तैरपिस्मृत। अनिच्छयापि संस्पृष्टो दहत्येव हि पावक ॥बृ ना १।११ १००।' ईश्वर का एक नाम इसीलिए पापनाशन –वि सहस्र० श्लोक ११९।' है। न्याय दर्शनानुसार 'प्रवर्तनालक्षणा दोषा –न्या सू १।१।१८।' राग (काम, मत्सर स्पृहा, तृष्णा, लोभ माया, दम्भ), द्वेष (क्रोध, ईर्ष्या, असूया, द्रोह, अमर्ष, अभिमान) मोह (विपर्यय, संशय, तर्क मान, प्रमाद भय, शोक) ये ही पाप या मल है। इनको छुड़ाने वाला ईश्वर है। हृञ् का दूसरा अर्थ प्रापणं (नयन) है। इस विश्वको ले जानेवाला नेता वा संचालक ईश्वर है। ईश्वर के सिवा इसका कोई भी संचालक नही होसकता है। इसीलिए ईश्वरका नाम नेता (जगद्यन्त्रनिर्वाहकोनेता) न्याय (नियमेन नीयते इति न्याय)– वि सहस्र० श्लो० ३७, नियम (स्वेषु स्वेषु अधिकारेषु प्रजा नियमयतीति नियम) श्लो० ३०, नय (नयतीति नय नेता) श्लो० ५६।' कहा गया है 'एवं वेदो मे ईश्वर का नाम नेतृ कहा गया है हृञ् का तिसरा अर्थ नाशन है। वह विश्व का नाश करने वाला है अत उसे हरि (ससारं हरतीति हरि) कहा गया है। एवं वही भय का नाश करनेवाला है। अत उसका नाम 'भव-नाशन श्लो० १०२' है (भय नाशयतीति भयनाशन)।' संसार मे अति भय होने पर उससे त्राण के लिये नास्तिको के मुँह से भी 'ईश्वर? बचाओ' शब्द स्वत निकल पड़ता है। इससे

ईश्वर की सत्ता स्वत सिद्ध होती है। विश्व विनाशी है। अत सर्वसमर्थ विनाशक आवश्यक है। वही संहारक ईश्वर है। कार कारमलौकिकाद्भुतमयं मायावशात् सहरन्, हार हारमपीन्द्रजोलमिवय कुर्वन् जगत् क्रीडति न्या कु २-४ हृञ् धातुको चतुर्थ अर्थ स्वीकार होता है। विश्व के लोग किसी न किसी नाम रूपसे ईश्वरकी प्रार्थना करते है। उसका स्वीकार करनेवाला कोई होना चाहिए। हमलोगों के मनुश्यादि से प्रार्थना करनेके समान वहि प्रार्थना स्वीकार करने वाला ईश्वर है 'लभते च तत कामान् मयैव विहितान्हितान् गी ७।२२।' 'अहं हि सर्व यज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च। गी ९।२४।' अब भृञ् धातु का अर्थ भरण होता है। इस जगत् का कोई भरण पोषण करने वाला होना आवश्यक है। माता पिता के द्वारा पुत्र के भरण पोषण करने के समान। वही विश्वभर्ता ईश्वर है और ईश्वर का नाम भर्ता (वि सहस्र० श्लो० १७) है। भगवान् भर्ता विश्व के चौरासी लक्ष्य जीवो के लिये प्रातजीव भिन्न भरण पोषण भोजन व्यवस्था उसी के द्वारा होता है। 'अजगर करै न चाकरी पछी करै न काम। दास मलूका कह गये, सबके दाता राम।' अत ईश्वर को 'भरण पोषणाधार' कहा गया है। इस प्रकार ईश्वर की सत्ता इस 'आदे [भृञ्, हृञ्] पद से होती है। यह सब कार्य अद्भुत और अलौकिक है। अत इससे ईश्वर की सर्वज्ञता की सिद्धि भी होती है।

[४] पदात्=पद शब्द के व्यवसाय रक्षा स्थान, चिह्न, पैर, शब्द (सुबन्त-तिङन्त) वाक्य एकवस्तु, अङ्क, अपदेश-ये दश अर्थ होते है- पदं शब्दे च वाक्ये च व्यवसाय प्रदेशयो। पादतचिह्नयो स्थान त्राणयोरङ्क वस्तुनो। मे० ॥' 'पदं व्यवसित त्राण स्थान लक्ष्माङ्घ्रि वस्तुषु ॥अ को ३।३।९३।' पद=१व्यवहार='पदात्' पद्यतेऽनेनेति व्युत्पत्त्या 'पदं' व्यवहार। 'पटादि' सम्प्रदाय व्यवहार स्वतन्त्र पुरुष प्रयोज्य व्यवहारत्वात् आधुनिक लिप्यादि व्यवहार वत्।' अर्थात् 'पद्यते ज्ञायते अनेन इति पद इस व्युत्पत्ति से 'पद' शब्द का अर्थ व्यहार है। पटादि सम्प्रदाय स्वतन्त्र पुरुष (स्वतन्त्र कर्ता) के द्वारा प्रयोज्य है, आधुनिक लिपि के समान। सृष्टि के आदि मे इस पटादि व्यवहार का शिक्षक कोई होना ही चाहिए। वही ईश्वर है। विश्व मे जो अनन्त कला-कौशल है जो अज्ञात काल से परम्परा रूप से चले आ रहे है। इन सभों का मूल स्रोत ईश्वर है। जिस प्रकार मायावी (बाजीगर) कठपुतली को सूत्रसंचार से अधिष्ठित करके उस कठपुतली को घट लाओ' इस प्रकार की आज्ञा देकर उसके द्वारा घटको आनयन करवा कर बालक के ज्ञान (सकेतग्रह) का शिक्षक होता है। उसी प्रकार ईश्वर भी सृष्टि के आरम्भ मे प्रयोज्य प्रयोजक रूप दो शरीरो (जिन्हे निर्माणकाय कहते है) के द्वारा व्यवहार करके सृष्ट्यादि मे लोगों को शक्तिग्रह करा देता है। इसी प्रकार घटादि का निर्माण करके शिक्षा देता है-'यथा मायावी सूत्र सञ्चाराधिष्ठित दारु पुत्रकं कृत्वो दारु पुत्रक घटमानय इत्यादि नियोज्य, घटानयनं सम्पाद्य, बालकस्य व्युत्पत्तौ प्रयोजकस्तथेश्वरोऽपि प्रयोज्यप्रयोजक भावापन्नं शरीरद्वय परिगृह्य, व्यवहार कृत्वा तदानीन्तनाना शक्ति ग्राहयति। एवं घटादि सम्प्रदायमपि स्वयं कृत्वा शिक्षयति। तदिदमुक्तं मायावत् समयादय-न्या कु २।२' इति। समय शक्तिग्रह ॥' ईश्वर का इसीलिये एक नाम 'शिष्टकृत्-वि० सहस्र० श्लो० ४०' है एव योगसूत्र मे उन्हे 'स पूर्वेषामपि गुरु कालेननवच्छेदात्' कहा है।

ईश्वर, ब्रह्म, जगत्स्रष्टा, विधाता आदि पदो के सार्थक होने से उन पदों के अर्थ-ईश्वर की सत्ता सिद्ध होती है-ईश्वरादि पदार्थनया ईश्वर सिद्धि।' क्योंकि इन पदों की अर्थवत्ता ईश्वर मे ही है। जिसमे अस्तित्व, ज्ञेयत्व एवं अभिधेयत्व रहता है वही पदार्थ है।

'पद्यते ज्ञायतेऽनेनेति पद प्रत्यायक प्रमाणतर्करूपम्' इस व्याख्या के अनुसार 'पदात्' के प्रथम अर्थ प्रमाणात् ईश्वर सत्ता की सिद्धि होती है—'तत्रैश्वर्य विशिष्ट ससार धर्मैरीपदप्यसंस्पृष्ट परो भगवान्महेश्वर सर्वज्ञ सकृठजगद्विधाता। स कथ ज्ञातव्य अनुमानादागमाच्च। तथाहि विवादाध्यासितमुपलब्धिमत्कारणकम् [कर्तृकम्—कर्तृ पूर्वकम्) अभूत्वाभावित्वाद्वस्त्रादिवदिति । सामान्य व्याप्तेरनवद्यत्वेन निराकर्तुमशक्यत्वात् । तत सामान्य सिद्धौ परिशेषात्कार्यविशेषाच्च कर्तृ विशेष-सिद्धि ॥ चित्रादि कार्यविशेषात् कर्तृ विशेषसिद्धिवदिति । एकोहि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थु । य इमॉल्लोकानीशत ईशनीभि (श्वे० ३।२) इत्याद्यागमाच्च। न्याय सार।' द्वितीय अर्थ 'तर्कात्' भी ईश्वर का साधक है—'कर्तार ना कार्य विना स्यात् इति नियमात्, यदि ईश्वर नही होता तो जगत् सृष्टि (कार्य) भी नही होता—इस तर्क से भी ईश्वर की सिद्धि होती है।

अब पद शब्द के उपरोक्त रक्षादि अर्थो से ईश्वर की सिद्धि दिखलायी जाती है।

पद्=२ रक्षा—विश्व के प्रत्येक प्राणियो एव वस्तुओ की रचना मे स्वरक्षात्मक यन्त्रो की व्यवस्था है। ऑख के सामने कुछ आते ही आखो की पलके स्वत ऑखो की रक्षा के लिये स्वचालित अपने कपाट बन्द करलेते है। शरीर के मासकोषो पर आघात होने पर स्वत रक्तकण मास कोषो का निर्माण करके क्षतिपूर्ति करते है। इसी प्रकार प्रत्येक अङ्गो की स्वरक्षात्मक प्रवृत्ति स्वत होती है। यह रक्षात्मक व्यवस्था ईश्वर कृत है। अत ईश्वर का एक नाम 'रक्षण [जगत्त्रय रक्षन् रक्षण] वि सहस्र० श्लोक ११२' है।

पद्=३स्थान—जहॉ स्थित होता है उस अधिकरण को स्थान कहते है। यह विश्व ईश्वर मे ही स्थित है। 'विष्टभ्याहमिद कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ॥गी० १०।४२॥ मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना। मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थि । यथाकाशस्थितो नित्यं वायु सर्वत्रगो महान्। तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय ॥ गी ९।४।६॥' गतिर्भर्ता प्रभु साक्षी निवास शरणं सुहृत्। प्रभव प्रलयं स्थान निधान बीज मव्ययम् ॥गी ९।१८॥' यह अनन्त ब्रह्माण्ड अनन्त ब्रह्म (ईश्वर) मे ही स्थित हो सकता है। तद्विष्णो परम पदं सदा पश्यन्ति सूरय। दिवीव चक्षुराततम् ।।ऋ १।२२।२०॥'

'तत पदं तत्परिमार्गितव्यं यस्मिन् गता न निवर्तन्तिभूय ॥गी० १५।४।' 'गच्छन्त्यमूढा पदमव्ययं तत् ॥गी १५।५

पद्=४लक्ष्म-लक्षण से लक्ष्य की सिद्धि होती है। सृष्टि कर्तृत्वादि लक्षणो को देखने से सृष्टि कर्तादि लक्ष्य रूप ईश्वर की सिद्धि होती है—'ऐश्वर्येण गुणेनासौ सृजते तच्चराचरम्।' ऐश्वर्यं समस्त वस्तु नियमनसामर्थ्यम्।

पाद्=५पैर—यहॉ पद (पैर) शब्द स्थान (देश) मापक पग (डेग) परिमाण को बोधक है। विश्व का मापक कोई होगा। वह मापक ईश्वर है और उसने ही अपने डेग (पग) से विश्वको मापा है—'त्रेधा निदधे पदम्। त्रिणिपादा विचक्रमे।ऋ १।२२।१८ अत यहॉ 'पदात्' हेतु से विश्व मापक यन्त्ररूप ईश्वर की सिद्धि होती है। अथवा, पद का अर्थ ईश्वर का पैर अश मान जाये तो 'पादोऽस्य विश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृत दिवि। ऋ १०।९०। से ईश्वर की सिद्धि होती है।

पद्=६शब्द—ईश्वर शब्द सुबन्त—'ईश्वर' एवं तिङन्त—'इष्टे' से ईश्वर की सिद्धि होती है। पुन शब्द की शक्ति 'अस्मात्पदादयमर्थो बोद्धव्य इति ईश्वर सङ्केत शक्ति—त सं से भी ईश्वर की सिद्धि होती है। तत्रो पदं—गी० ८।११—१२ कठ १।२।१५

पद=७वाक्य–इसकी व्याख्या आगे 'वाक्यात्' हेतु के प्रकरण मे की जायेगी ।

पद=८एकवस्तु–विश्व मे एक वस्तु ईश्वर ही है–'तत्रेश्वर सर्वज्ञ परमात्मा एक एव । जीवस्तु प्रतिशरीर भिन्न । त स ।' 'एकोऽहम् द्वितीयो नास्ति–उपनिषद् ।' अत एक वस्तु रूप मे ईश्वर की सिद्धि होती है । इसीलिये गणना मे भी एक को राम कहकर गिनते है । 'द्यावाभूमी जनयन्देव एक विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता ।।शु य १७।१८।।

पद=९अङ्क–अङ्क का अर्थ ललाट रेखा [ललाट रेखा लिखिता प्रशस्ता] का व्यवस्थापक ईश्वर ही है । पार्वतीजी मा से कही थी–'मेटि सकहिं को विधि के अङ्का । मातु व्यर्थ किमिलेहु कलंका । यह भाग्य रेखा हस्तमे भी अङ्कित रहती है । जिसका प्रत्यक्ष फल ज्ञान देखा जाता है । इसका निर्धारक वा अङ्कक ईश्वर प्रत्यक्ष सिद्ध है ।

पद=१०अपदेश–'पदे लक्ष्ये निमित्तेऽपदेश स्यात्–अ०को ३।३।२१६ हेतु कारण विश्व के कारणो का भी कारण परम कारण अथवा हेतुओ का भी हेतु चरम हेतु परम हेतु ईश्वर है स कारण कारणाधीप ।

[५] प्रत्ययत—प्रत्यय शब्द के १अधीन, २ शपथ, ३ ज्ञान, ४ विश्वास, ५ सद्धेतु, ६ आचार, ७ प्रसिद्ध, ८ छिद्र, ९ सनादि व्याकरण के प्रत्यय–ये नव अर्थ होते है–'प्रत्यय शपथे छिद्रे विश्वासे सत्यहेतुपु–अनेकार्थक कोष श्लो० ११४ प्रत्ययोऽधीन शपथ ज्ञान विश्वास हेतुषु। रन्ध्रे अ को ३।३।१४८

प्रत्यय=१अधीन–विश्व मे पूर्णत स्वाधीन कोई नही है । सभी ईश्वर के पराधीनता मे है । इसलिये ईश्वर का एक नाम 'निग्रह [स्ववशेन सर्वं निगृह्णाति इति निग्रह] वि०सहस्र श्लो ९४' भी है । ईश्वर का एक नाम 'शास्ता [सर्वेषामनुशिष्टि करोतीति शास्ता] वि स श्लो० ३५' भी है । विश्व मे सामान्यतया परम्परया एक दूसरे एवं दूसरे तिसरे के अधीन (आश्रित) है । इस प्रकार जो अन्तिम आश्रय है और वह किसी पर आश्रित नही स्वाश्रित है वही सभो का मूल आश्रय ईश्वर है।

प्रत्यय=२शपथ–ससार के प्रत्येक क्षेत्र मे अन्तिम उपाय शपथ ही है । चाहे राष्ट्रपति हो या सैनिक, साक्षी हो या न्यायधीश सभी को शपथ लेना ही पडता है और सभी प्र.य ईश्वर की ही किसी न किसी रूप मे शपथ लेते है। विना शपथ का जगद्व्यापार नहीं चलता है। सभी ईश्वर की शपथ लेते है और शपथ तोडने पर ईश्वर को दण्ड प्रदाता मानते है । अत शपथ का अधिष्ठान रूप ईश्वर की सत्ता स्वभाव सिद्ध होती है ।

प्रत्यय=३ ज्ञान–ज्ञान का अधिकरण आत्मा है । वह दो प्रकार का है–जीवात्मा और परमात्मा–'ज्ञानाधिकरणमात्मा । स द्विविध परमात्मा जीवात्मा चेति । तत्रेश्वर सर्वज्ञ परमात्मा एक एव । जोवस्तु प्रति शरीर भिन्नो विभुर्नित्यश्च ।।त सं।। परमात्मत्व च समवायेन नित्यज्ञानवत्त्वम् । समवायेन जन्यज्ञान (अनित्य) ज्ञानवत्त्व जीवत्वम् । प्रतिविम्व ।। इस प्रकार समवायेन नित्यज्ञानवान् ईश्वर की सिद्धि होती है । विम्ब रचना का विज्ञान असीम है । इस ज्ञान का अधिकरण अनन्त और सर्वज्ञ ईश्वर ही हो सकता है। ज्ञान का कोई आश्रय होना ही चाहिए–'ज्ञानं कचिदाश्रितम्, कार्यत्वात्, रूपादिवत् ।' विश्व विज्ञान के नियमो को परस्पर समन्वित और एक ही व्यापक नियम के अन्तर्गत नियमित देखने से असीम ज्ञानवान् नियामक ईश्वर की सिद्धि होती है । 'प्रत्यय.

प्रमाण्यात् । वेदजन्यज्ञानं कारणगुणजन्यं प्रमात्वात् प्रत्यक्षादि प्रमावत् । अत वेदजन्य ज्ञानका प्रामाण्य उसके कारणरूपवक्ता ईश्वर [करण] से जन्य है इसप्रकार वेदका वक्ता सर्वज्ञ ईश्वर सिद्ध है । पुन 'प्रत्ययत विधिप्रत्ययात् । आप्ताभिप्रायो विध्यर्थ । यस्याभिप्राय स एवेश्वर । कहागया है वेद कर्ता ईश्वरमे सबोकी श्रद्धा है–'देवानामपि देवमुद्भवदति श्रद्धा प्रपद्यामहे–न्या कु ३।२३।'

प्रत्यय=४विश्वास –शब्दप्रमाण का प्रामाण्य तभी होता है, जबकि उसका वक्ता प्रमाणिक हो। वैदिक वाक्यो का प्रामाण्य भी उसके वक्ता के प्रामाण्य पर आश्रित है। ईश्वर [नित्य और सर्वज्ञ] केअतिरिक्त किसि अन्यमे विस्वासही नहि होगा । अनेक सर्वज्ञ माननेसे अव्यवस्था होगी–'प्रमाया परतन्त्रत्वात् सर्गप्रलय सम्भवात् तदन्यस्मिन्नविश्वासन्नविधान्तरसम्भव ।। न्य।कु।, 'जानेबिनु कि होहि परतीति । बिनुपरतीति होहिं नहि प्रीति ।। प्रीतिबिना नहिं भक्तिदृढाइ । जिमिखगपति जलकेचिकनाइ ।। 'अत विश्वासात् ईश्वरकी सिद्धि होति है । 'परब्रह्मकोपाइये मनहि के परतीति, भवानीशङ्करौवन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ । याभ्याविना न पश्यन्ति सिद्धा स्वान्तस्थमिश्वरम् ।। अत विश्वास से ईश्वर प्रत्यक्ष सिद्ध होता है ।

प्रत्यय=५सद्धेतु—सद्धेतुओ से अनुमानप्रमाण द्वारा ईश्वर सिद्ध होता है । ये सद्धेतु प्रकृत 'कार्यायोजन, लोक की आठो युक्तियो मे है । अत इसकी व्याख्या सभियुक्तियो की व्याख्या के अन्तर्गत समझलेनी चाहिए । सद्धेतु साध्यके साधक होते है ।

प्रत्यय=६आचार—सभी आचारो का चरमउद्देश्य ईश्वर की प्राप्ति ही है और अन्तिम आचार ईश्वर प्रणिधान ही है–'तदर्थ यम [अहिसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य अपरिग्रह –इति यमा] नियमा [शौच सन्तोष तपस्वाध्याय ईश्वर प्रणिधानानि नियमा] भ्या आत्म संस्कारो योगाच्चाध्यात्मविध्युपायै ।।न्या सू ४।२।४६।। अत इससे भी ईश्वर की सिद्धि होती है ।

प्रत्यय=७प्रसिद्ध —विश्व मे ईश्वर सर्वत्र स्वभाविक रूपसे प्रसिद्ध है–'शुद्धबुद्ध स्वभाव इत्यौपनिषदा, आदि विद्वान् सिद्ध इति कापिला, क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टो निर्माणकायमधिष्ठाय सम्प्रदाय प्रद्योतकोऽनुग्राहकश्चेति पातञ्जला, लोकवेदविरुद्धैरपि निलप स्वतन्त्रश्चेति महापाशुपता, शिव इति शैवा, पुरुषोत्तम इति वैष्णवा, पितामह इति पौराणिका, यज्ञपुरुष इति याज्ञिका, सर्वज्ञ इति सौगता, निरावरण इति दिगम्बरा उपास्यत्वेन देशित इति मीमासका, लोकव्यवहारसिद्ध इति चार्वाका, यावदुक्तोपपन्न इति नैयायिका, कि बहुना यं कारवोऽपि विश्वकर्मेत्युपासते, तस्मिन्नेवं जाति गोत्र प्रवर चरणकुलधर्मादिवदासंसार सुप्रसिद्धानुभावे भगवति भवे सन्देह एव कुत, किं निरूपणीयम् ।' 'यं शैवा समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो, बौद्धाबौद्धमिति प्रमाण पटव कर्तेति नैयायिका, अर्हन्नित्यथ जैन शासनरता कर्मेति मीमासका सोऽय वो विदधातु वाञ्छितफलं त्रैलोक्य नाथो हरि ।' अत सर्वत्र प्रसिद्धि ईश्वर की सत्ता का सर्वतन्त्र सिद्धान्त और प्रमाण है ।

प्रत्यय =८छिद्र—गीता मे भगवान् ने कहा है–'भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वत । ततो मा तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदन्तरम् ।।१८।५५।' अत आत्मा का प्रवेश स्थान होने से इस छिद्र अर्थ मे प्रत्ययात् ईश्वर की सिद्धि होती है ।

प्रत्यय=सनादि ९व्याकरण का प्रत्यय—व्याकरण के अनुसार 'न सोस्ति प्रत्ययो लोके य शब्दा नुगमादृते । अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भासते। अत ईश्वर ज्ञान भी ईश्वर शब्द से अनुविद्ध है । ईश्वर शब्द की सार्थकता और सत्ता है। इस ईश्वर शब्द से ईश्वर की सत्ता सिद्ध होती

है। इस ऐश्वर्य (अदा०)। 'ईशावास्यमिद सर्व यत्किच जगत्या जगत्। तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृध कस्यस्विद्धनम् ।। शु य- ४०।१।।'

[६] श्रुते=श्रुति शब्द के तीन अर्थ होते है-१ वेद, २ कर्ण और ३ वार्ता-श्रुति श्रोत्रे च तत्कर्मण्याम्नाय वार्तयो स्त्रियाम्-मे० ५८।६६, वेदे श्रवसि श्रुति-अ को ३।३।७३।'

श्रुति=१ वेद—इस अर्थ मे श्रुते पद से दो प्रकार से ईश्वर की सिद्धि होती है-प्रथम वेदकर्ता के रूप मे-'वेद पौरुषेयो वेदत्वात् आयुर्वेदवत्। द्वितीय वेद प्रतिपाद्य विषय के रूप मे-'कृत्स्न एव च वेदोऽय परमेश्वरगोचर। स्व.र्थद्वारैव तात्पर्य तस्य स्वर्गादिवद् विधौ ।।न्या कु ५।१५।' 'वेदैश्च सर्वैरहमेववेद्यो वेदान्तकृद्वेदविदेवचाहम् ।।गी १५।१५।'

श्रुति=२ श्रोत्र—आकाश मे व्याप्त अनहद् नाद रूप वेद ऋषियो द्वारा श्रोत्रेन्द्रिय द्वारा सुने गये। अत श्रोत्र द्वारागृहित अनहद्नाद (कहेकबीर सुनो भाइ साधो अनहत बाजे ढोल रे) द्वारा ईश्वर का ज्ञान होने से इस हेतु द्वारा ईश्वर की सिद्धि होती है।'

श्रुति=३ वार्ता—अनादि और अज्ञात काल से सर्वत्र जन श्रुति के रूप मे परम्परागत रूप से ईश्वर की वार्ता सर्वत्र सुनी जा रही है। शास्त्रो के रूप में भी यह वर्ता अनादि काल से चली आ रही है। अत यह सर्वव्यापक अनादि वार्ता निर्मूल नही हो सकती। इस वार्ता के द्वारा सर्वत्र ईश्वर की सत्ता और सर्वज्ञता की सिद्धि होती है।

[७] वाक्यात्=वाक्य शब्द के साधारण अर्थ 'वाक्य पद समूह स्यात्। वाक्यं द्विविधं-वैदिकं लौकिकञ्च। वैदिकमीश्वरोक्तत्वात् सर्वमेव प्रमाणम्। लौकिकं त्वाप्तोक्तं प्रमाणं, अन्यदप्रमाणम् ।। त स ।।' के अनुसार वेदो की पूर्ण प्रामाणिकता का कारण ईश्वर है। अत वेदो को ईश्वरोक्त होने के कारण पूर्ण प्रामाणिक होने से ईश्वर की सिद्धि होती है। इस प्रकार वेदवक्तृत्वेन ईश्वर सिद्ध है। 'वेद पौरुषेयो वाक्यत्वात् अस्मदादिवाक्यवत्।' से वेद का पौरुषेयत्व सिद्ध है। सर्वज्ञानमय वेद का वक्ता सर्वज्ञत्व विशिष्ट ईश्वर है।

वाक्य का दूसरा अर्थ भाषा है। विश्व मे हजारो प्रकार की भाषाये है। परन्तु सभी भाषाओ की वाक्य व्यवस्था समान है। सभी भाषाओं मे संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया, विशेषण लिङ्ग, वचन, कारक, काल, उद्देश्य, विधेय आदि की समान प्रक्रिया और व्यवस्था। समरूपता के कारण एक भाषा के वाक्य दूसरी भाषा के वाक्य मे रूपान्तरित होते है। सच तो यह है कि विश्व के सभी भाषाओ का मूल और जननी संस्कृतभाषा ही है। अन्य सभी भाषा सस्कृत के ही कालक्रम से विकृत रूप मे उत्पन्न है। उस मौलिक (आदिम) भाषा पर विचार करने से ज्ञात होता है कि उसकी सृष्टि किसी मनुष्य द्वारा सम्भव नही है। अत आदि भाषा का स्रष्टा सर्वज्ञ ईश्वर ही है।

वाक्य का तृतीय अर्थ-'तिङ्सुबन्तचयो वाक्य क्रिया वा कारकान्विता-अ को १।६।२।' के अनुसार प्रथम सुवन्त के अनुसार 'क्रियान्वयी कारकम्' छ प्रकार के होते है-१ कर्त्ता (क्रिया सम्पादक कर्ता, व्यापाराश्रय कर्त्ता), कर्म (क्रियया क्रान्तं कर्म परसमवेत क्रियाफलाश्रयत्वं कर्म) ३ करण (यद् व्यापाराव्यवधानेन कार्यनिष्पत्तिस्तत्करणम्, साधकतमकरणम्) ४ सम्प्रदान (सम्यक् प्रदीयतेऽस्मै तत् सम्प्रदानम् तादर्थ्येचतुर्थी वाच्या) ५ अपादान (विभाग जनक व्यापारे ध्रुवं यत्त-

दपादानम् ध्रुव प्रभवश्च) ६ अधिकरण (आधारोऽधिकरणम् अधिक्रियतेऽस्मिन्नित्यधिकरणम् आधार)। इनमे कर्ता कर्म करण और अधिकरण डुकृञ् करणे अर्थक होने से जगत्सृष्टि के कर्त्ता, कर्म, करण और अधिकरण निमित्त कारणो का साधक एवं सम्प्रदान प्रयोजन (प्रयोजनमनुद्दीश्य न मन्दोऽपि प्रवर्तते) का तथा अपादान उत्पत्ति स्थान वा उपादान कारण का साधक है। इस प्रकार उक्तसुबन्त वाक्यों से जगत् के कर्त्ता कर्मादि रूप मे ईश्वर की सिद्धि होती है। इसी प्रकार तिङन्त वाक्य के लक्षण के अनुसार सर्वप्रथम पठित धातु 'भू' का तिङन्त रूप 'भवति' विश्व एवं विश्व कर्त्ता की सत्ता का साधक प्रमाण है-,भूसत्ताया (भ्वा० १) यद्यपि सत्ता जाति न क्रिया तथापि आत्म धारणं सत्तेत्युच्यते। स्वरूपेणावस्थानमिति यावत्। द्वितीय धातु एध वृद्धौ (भ्वा०२) से विश्व के 'जायते, अस्ति, विपरिणमते, वर्धते अपक्षीयते विनश्यति इति षट् भाव विकारा' सृष्टि विकार एव विनाश का ज्ञापन होता है। जिससे विश्वस्रष्टा और संहारकर्त्ता ईश्वर की सिद्धि होती है।

[८] संख्या विशेषात्='सख्यास्यादेकाद्यादिविचारयो -मे० 'एकत्वादि व्यवहार हेतु सख्या-त सं।' यह सख्या व्यक्त सख्या (अङ्क गणित) और अव्यक्त गणित (बीज गणित) भेद से दो प्रकार की होती है। अङ्कगणित की प्रधान चार प्रक्रिया ये है-१ जोड़ (योग), २ घटाव (ऋण) ३ गुणा ४ भाग, एवं दश अङ्क है-शून्य (०), एक (१), दो (२) तीन (३) चार (४) पाँच (५) छ (६) सात (७) आठ (८) नव (९) एक एकादश अङ्क है अनन्त (००)। इन संख्याओं का प्रयोग गणित (गणना) मे होता है। इस प्रकार सख्या का विस्तार शून्य से अनन्त तक है। शून्य और अनन्त अविकारी (अर्थात् उपरोक्त चतुर्विध गणित प्रक्रियाओ से अप्रभावित रहने वाले) हैं। अनन्त को किसी भी संख्या से योग, घटाव, गुण, भाग करने पर न तो उसमे वृद्धि होती है और न ह्रास अर्थात् कोई विकार उत्पन्न नही होता। विश्व के सभी वस्तु सान्त है . गणना क्रम मे जो अनन्त वस्तु है वही संख्या विशेष (अन्य संख्याओ का व्यावर्तक) है। अत इस सख्या विशेष के विषय के रूप मे ईश्वर की सिद्धि होती है। यही शब्द प्रमाण वेदों मे भी ईश्वर के सम्बन्ध मे कहा गया है-'पूर्णमद पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण मेवावशिष्यते ॥ अथर्व०॥ इसे सन्त विनोवाजी ने इस प्रकार अनुवाद किया है-'पूर्ण है वह पूर्ण है यह, पूर्ण से निष्पन्न होता पूर्ण है। पूर्ण मे से पूर्ण को यदि ले निकाल, शेष तव भी पूर्ण ही रहता सदा।' इस प्रकार पूर्ण (अनन्त सख्या) ईश्वर का प्रमाण है। बौद्ध दर्शन मे और ज्योतिष गणित मे शून्य को पूर्ण कहा गया है। वौद्ध ईश्वर को मानते नहीं है। वे सत्ता को क्षणिक मानते है। उनके मत मे सभी शून्य रूप है। अत उनके मत से सभी कुछ शून्य (अवास्तविक और अभाव) रूप मालूम पडता है। परन्तु वास्तव मे बौद्धो का शून्यवाद ऐसा नही है, वह अनिर्वचनवाद है, जैसा कि शून्यवादी नागार्जुन ने कहा है-'शून्यमिति न वक्तव्यम् अशून्यमिति वा भवेत्। उभयं नोभयं चेति, प्रज्ञप्त्यर्थं तु कथ्यते।' अत शून्य भी अचिन्त्य सर्व विलक्षण ईश्वर का ही व्यञ्जक होने से ईश्वर (अव्यक्त ब्रह्म) का प्रमाण है। यह प्रलयावस्था काल के ईश्वर का निरूपक है। इस प्रकार अङ्कगणित के संख्या विशेष (अविकारी सख्या) से ईश्वर की सिद्धि होती है।

बीजगणित मे अज्ञात संख्या को एक्स (×) मान लिया जाता है और फिर बीज गणितीय प्रक्रिया से उसे ज्ञात कर लिया जाता है। इस प्रकार अज्ञात ईश्वर को एक्स मानकर इस बीज गणितीय प्रक्रिया से उसकी सिद्धि की जा सकती है। बीजगणित मे अङ्कों के बदले अक्षरों का प्रयोग होता है। अक्षर ब्रह्म ईश्वर का ज्ञान इन अक्षरो के प्रयोगो से भी होता है।

बीजगणित के समान ही रेखागणित भी है। इसमे अङ्को एव अक्षरो के स्थान मे रेखाओं का प्रयोग होता है। बिन्दु–रेखा, केन्द्र, परिधि आदि इस रेखा गणित के उपकरण है। परन्तु सभी को मूल बिन्दु ही है । रेखा भी बिन्दुओ से ही बनती है । इस प्रकार रेखागणित का मूल बिन्दु परमाणु (पर वा त्रुटे परमाणु=अखण्डनीय मौलिक पदार्थ न कि वैशेषिक अथवा विज्ञान के परमाणु) के ज्ञापक है तथा जगत् के मूल उपादान कारण के बोधक है । केन्द्र और परिधि ब्रह्माण्ड रचना (केन्द्र मे सूर्य और चारो ओर चक्कर काटते हुये ग्रहोपग्रह नक्षत्रादि) एवं विज्ञान के परमाणु (केन्द्र मे प्रोट्रोन और उसके चारो ओर चक्कर काटते हुये न्यूट्रोन) की रचना के प्रतीक है। विश्व रचना का ज्ञान रेखागणित से ही होता है । रेखागणित मे साध्योको कल्पनाकर सिद्ध (प्रमाणित) किया जाता है । पहले किसी वस्तु को मानलिया जाता है फिर उसे प्रमाणित किया जाता है। इस प्रक्रिया से ईश्वर को भी मानकर उसकी सिद्धि की जा सकती है । अत रेखा गणित विज्ञान से ईश्वर की सिद्धि होती है।

सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड गणित (अङ्कगणित, बीजगणित, रेखागणित गति गणित आदि) विज्ञान के अधार पर ही निर्मित एव व्यवस्थित है । सूर्य–चन्द्र–पृथिवी–ग्रह–उपग्रह आदि की स्थिति और गति इसी गणित विज्ञान पर आश्रित है । अत गणित (सख्या विज्ञान) से ब्रह्माण्ड नायक ईश्वर के असीम ज्ञान की भी सिद्धि होती है । सभी विज्ञानो–१ पदार्थ विज्ञान २ रसायन विज्ञान ३ जीव विज्ञान ४ अन्तरिक्ष विज्ञान ५ चिकित्सा विज्ञान आदि का आधार गणित विज्ञान ही है। इस गणित का मूल अधिष्ठान इस गणितानुसार विश्व रचयिता ईश्वर सर्वोत्कृष्ट वैज्ञानिकरूप मे सिद्ध होता है ।

इस प्रकार संख्या के अङ्क अर्थ मे दो प्रकार से ईश्वर सिद्ध होता है–एक इस गणित विज्ञान के अधिष्ठान कर्तारूप मे और दूसरा गणित विज्ञान के द्वारा प्रतिपाद्य रूप मे ।

अब सख्या शब्द का दूसरा अर्थ विचारणा भी होता है–'चर्चा सख्या विचरणा–अ को १।५।२' महाभारत मे लिखा है 'दोषाणाञ्च गुणानाञ्च प्रमाण प्रविभागत । कञ्चिदर्थमभिप्रेत्य सा सख्येत्युपधार्यताम् ।। इसी अर्थ मे साख्यदर्शन विचारणा के कारण नाम पडा । अब विश्व मे गुण दोषो का विवेचन करने पर निर्दोष पदार्थ एक मात्र ईश्वर सिद्ध होता है । अत निर्दोष का अधिष्ठान रूप ईश्वर सिद्ध है । इसी प्रकार विचारणा से भी विश्वकर्ता एव व्यवस्थापक ईश्वर की सिद्धि होती है। अत इस अर्थ म भी दो प्रकारो से ईश्वर की सिद्धि हुइ–एक सामान्य विचार (ज्ञान) के द्वारा एव दूसरा गुणदोष विचार के द्वारा ।

सख्यावान् का अर्थ विद्वान् होता है–'विद्वान् विपश्चिद्दोषज्ञ सन् सुधी कोविदो बुध । धीरो मनीषी ज्ञ प्राज्ञ सख्यावान् पण्डित कवि । अ को २।७।५।' विश्व मे ज्ञान का तारतम्य देखा जाता है । एक से बढकर दूसरा विद्वान् होता है और दूसरे से बढकर तिसरा, तिसरे से बढकर चौथा । यह बढोत्तरी का क्रम इसी प्रकार चलता है । इस क्रम मे जो सबसे अन्त मे सबसे बढकर विद्वान् है, जिसके परे कोई विद्वान् नही है । वही अन्तिम पूर्ण ज्ञानी परम विद्वान् ईश्वर सिद्ध होता है। इसी प्रकार विद्याओ के मूल मे जो सबसे पूर्व मे विद्वान् था, जिससे ही विद्याए परम्परागत रूप मे निर्गत हुइ है। वही विद्यास्रोत ईश्वर सिद्ध है । ऐसा ही साख्य दर्शन कहता है–'आदि विद्वान् सिद्ध इति कापिला ।' इस प्रकार सख्या विशेप (ज्ञान विशेष) से ईश्वर की सिद्धि होती है ।

संख्या विशेष का एक अर्थ इन लौकिक गणित विज्ञान से परे सख्या विज्ञान से भी है, जिसमे एक मे एक जोडने से एक ही होता है (जैसे एक बून्द और एक बून्द मिलकर एक ही होता है)–'परेऽव्यये सर्वे एकी भवन्ति।' इस परम एक संख्या विशेष से ईश्वर की सिद्धि होती है।

'गण सख्याने (चुरा०) गणयति' इति सख्या। अङ्क पदे लक्षणे च (चुरा०)। सख्या विशेष (गणनाविशेष) एवं अङ्क विशेष (पद विशेष और लक्षण (लक्ष्यका निर्धारक साधन) विशेष) के द्वारा ईश्वर की सत्ता और सर्वज्ञता की सिद्धि होती है।

'सम्यक् ख्यायते कथ्यते अनया इति सख्या सज्ञा इस व्युत्पत्ति से विश्वकर्मा, विश्वस्रष्टा, ईश्वर आदि संज्ञा विशेषो से भी ईश्वर की सिद्धि होती है।

उदयनाचार्यजी की उपरोक्त कारिका के सभी हेतुएँ वेमन्त्रो से उद्‌भूत है एतावता वैदिक हेतु है। शुक्ल यजुर्वेद मे विश्व कर्मासूक्त का अन्तिम मन्त्र है—

विश्वकर्मा अजनिष्ट देव आदिद्गन्धर्वो अभवद्द्वितीय।
तृतीय पिता जनितौषधीनामपा गर्भंव्यदधात्पुरत्रा॥ शु य १७।३२

इस मन्त्र मे प्रथम नाम विश्वकर्मा से जगदुत्पादक (जगत्कर्तृत्व) द्वितीय नाम गन्धर्व (गो पृथिव्या धारकत्वात् गन्धर्व) जगदाधारत्व (धृतिमत्व) तृतीय नाम पिता रक्षक) जगद्रक्षितत्व का सोधक है। अत सख्या (सज्ञा) विशेपात् जगत्कर्ता सर्वज्ञ ईश्वर की सिद्धि होती है।

अनेकार्थध्वनि मञ्जरी मे सख्या शब्द के अवधि और प्रतिज्ञा ये दो अर्थ बतलाये गये है। इन दोनो अर्थो से भी सख्याविशेषात् हेतु से ईश्वर की सिद्धि होती है—

'संख्यावधिप्रतिज्ञयो—अने० १९०।' 'अवधिस्त्ववधाने स्यात् सीम्निकाले विले पुमान्–मे० १०।२६। परिच्छदे विलेऽवधि–अ को ३।३।९९। सीमा, बिल, समय। साध्यनिर्देशो प्रतिज्ञा–

'विहायसोऽपिनाकोऽपिद्युरपिस्यात्तदव्ययम्। तारापथोऽन्तरिक्ष च मेघाध्वा महाबिलम्॥ द्यौदिवौ द्वेस्त्रियामभ्रव्योमपुष्करमम्बरम्। नभोऽन्तरिक्ष गगनमनन्त सुरवर्त्मखम्॥ वियद्विष्णुपद वा तु पुंस्याकाश विहायसी॥ अ को।'

पक्षी पेड पर है पेड पृथिवी पर है और पृथिवी किसपर है? पक्षी का अधिकरण (आधार) वृक्ष है, वृक्ष का आधार पृथिवी है और पृथिवी का आधार क्या है? पृथ्वी गगन के मध्य (भ्रमति गगन मध्ये काश्यपी पक्षहीना) भ्रमण कर रही है अत पृथिवी का आधार गगन (महा बिलम्=महासख्या–सख्या विशेष) होने से इस संख्या विशेष हेतु के द्वारा मूलाधिकरणत्वेन' विष्णु पद=ख–ख ब्रह्म(शु य)' की सिद्धि होती है।

कल शब्द संख्यानयो (भ्वा० ४६१०) कलते। कल क्षेपे (चुरा० १६०४) कलयति। कलगतौ संख्याने च (चुरा० १८६६ कलयति।

काल के संख्या परिमाण–पृथकत्व–सयोग–विभाग ये पॉच गुण है। निमेष से युग–महा युग–कल्प आदि परिमाण संख्या से काल गणना के क्रम काल ही गणक है और वह काल अक्षय है। काल ही सबका क्षय कर देता है। 'काल कलयतामहम् गी० १०।३० अहमेवाक्षय कालो गी० १०।३३, 'कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो गी० ११।३२। 'कालो अश्वो वहति सप्तरश्मि सहस्राक्षो अजरोभूरिरेता तमारोहन्तिकवयो विपश्चिततस्यचक्रा भुवनानि विश्वा॥ सप्तचक्रान् वहितकाल

एव सप्तास्यनामीरमृतन्वक्ष । सइमा विश्वा भुवनान्यञ्जन् काल स ईयते प्रथमो नु देव ॥ पूर्ण कुम्भोऽधि काल आहितस्त वै पश्यासो बहुधानु सन्त । स इमा विश्वा भुवनानि प्रत्यङ्काल तमाहु परमेव्योमन् ॥ स एव स भुवनान्याभरत् स एव सं भुवनानि पयत् । पिता सन्नभवत् पुत्र एषा तस्माद् वै नान्यत् परमस्ति तेज ॥ कालोऽमू दिवमजनयत् कालो इमा पृथिवीरुत । काले ह भूतंभव्य चेपितहवितिष्ठते ॥ कालोभूतिमसृजत काले तपतिसूर्य । कालेह विश्वा भूतानि काले चक्षुर्विपश्यति ॥ काले मन काले प्राण काले नाम समाहितम् । कालेन सर्वा नन्दन्त्यागतेन प्रजा इमा ॥ काले तप काले ज्येष्ठ काले ब्रह्म समाहितम् । कालो ह सर्वस्येश्वरो य पितासीत् प्रजापते ॥ तेनेषित तेनजात तदु तस्मिन् प्रतिष्ठितम् ॥ कालोह ब्रह्म भूत्वाबिभर्ति परमेष्ठिनम् ॥ काल प्रजा असृजत कालो अग्ने प्रजापतिम् । स्वयम्भू कश्यप कालात् तप कालात् जायत ॥ अथर्व १९।५३।१-१०॥" कालादाप समभवन् कालाद् ब्रह्म तपो दिश । कालेनोदेति सूर्य काले निविशते पुन ॥ कालेन वात पवते कालेन पृथिवी मही । द्यौर्मही काल अहिता ॥ कालोह भूतं भव्यं च पुत्रो अजनयत् पुरा । कालाटच समभवन् यजु कालादजायत ॥ कालो यज्ञं समैरयद्देवेभ्यो भागमक्षितम् । काले गन्धर्वाप्सरस काले लोका प्रतिष्ठित । इम च लोक परम च लोक पुण्याश्च लोकान् विधृतीश्च पुण्या । सर्वल्लोकानभिजित्य ब्रह्मणा काल स इयते परमो नु देव ॥ अथर्व० १९।५४।१-५ इस प्रकार शब्द प्रमाणे नापि संख्याविशेषात् (कालविशेषात्) ईश्वर की सिद्धि होती है ।

काल पूर्वापर क्रम का निर्धारक हे । हम से पूर्व हमारे पिता थे, उनसे पूर्व उनके पिता (हमारे पितामह) इस प्रकार उनसे पूर्व फिर उनसे पूर्व क्रम मे जाते जाते अन्त मे एक व्यक्ति ही बचेगा । क्योकि आज विश्व मे मनुष्यो की सख्या तीन अरब है । इसके पूर्व दो अरब थी और इस क्रम से पूर्व पूर्व मे संख्या ह्रास क्रम नियम होने से अन्त मे एक व्यक्ति होगा जिसके पूर्व कोई नही था। वही आदि और अपूर्व व्यक्ति ईश्वर है। अत सख्याविशेषात् (काल क्रम विशेषात्) ईश्वर की अनुमान प्रमाण से भी सिद्धि होती है।

अनन्त है अत जगत् की सीमा अनन्त हे। परन्तु विश्व की सभी वस्तुये ससीम है । असीम केवल ब्रह्म (बृहत्) ही है । उसकी व्याप्ति सर्वत्र अबाध है। अत सख्या विशेषात् (सीमा विशेष से) ईश्वर की सिद्धि होती है ।

संख्याविशेषात्=प्रतिज्ञाविशेषात्। प्रति (प्रति प्रतिनिधावित्थम्भूताख्यानाभिमुख्यो । मात्रार्थ भागवीप्सासु लक्षण प्रतिदानयो ।।मे०।। 'अभि इत्याभिमुख्यम् 'प्रति' इत्येतस्य प्रातिलोम्यम्-निरुक्त।) ज्ञा (ज्ञा अवबोधने (क्र्या०) जानाति, ज्ञा निशामन चाक्षुषज्ञानम् इति माधव, ज्ञापन मात्रम् इत्यन्ये । निशानंतीक्ष्णी करणम् ।)

अभि का अर्थ अभिमुख (आगे) और प्रति का अर्थ प्रातिम्य (पीछे) होता है । संख्या गणना (एकादि गणना) मे दो, तीन, चार आदि अभि (आगे की) संख्या है और चार से पीछे तीन तीन से पीछे दो और दो से पीछे एक संख्या है । एक के पीछे शून्य है अर्थात् कोई संख्या नही है। अत एकसंख्या विशेष है। क्योंकि सभी संख्याओं के पीछे संख्या है और एक के पीछे कोई संख्या नही है। पुन सभी अन्य संख्याये एकके योगो से ही बनी है और वे सभी एक का विकार या परिणाम है। परन्तु एक किसी के योग से नही बना है। वह स्वतन्त्र और अविकारी है तथा मूल सख्या है।) इस सख्या विशेष एक से जगत्स्रष्टा ईश्वर की सिद्धि शब्द प्रमाण से होती है- 'द्यावाभूमी जनयन्देव एक-शु य. १७।१९ ऋ० १०।८१।३=अथर्व० १३।

२।२६=ऋवे० ३।३ तै सं ४।६।२४ तै आ १०।१।३, 'सप्तऋषीन् पर एक माहु –शु. य १७।२६, यो देवानां नामधा एक एव तं संप्रश्न भुवनानि यन्त्यन्या–शु. य १७।२७।'

पुन इस एक सखया से अनुमान द्वारा भी ईश्वर की सिद्धि होती है–'ज्ञानाधिकरणमात्मा। सद्विविध परमात्मा जीवात्माश्च। तत्र परमात्मा सर्वज्ञ एक एव।' पुन परमात्मा की संज्ञा 'एक' भी है (विष्णुसहस्रनामश्लोक ९१)। परमार्थत सजातीय विजातीय स्वगतभेद निर्मुक्तत्वात् एक 'एकमेवाद्वितीयम् (छा० उ० ६।२।१) इति श्रुते ।।शा भा।।" पुन एक मे ही सभी दृश्य अदृश्य तत्त्वो की मौलिक एकत्व है, और मौलिक एक तत्त्व ईश्वर है। अत अनुमान द्वारा भी इस एक संखया विशेप से ईश्वर की सिद्धि होती है।

संखया विशेष=प्रतिज्ञा विशेष=१ लक्षण (लक्ष्य निर्देश) २ इत्थम् भूताखयान (इस प्रकार के है–ऐसा वतलाना) ३ भाग अश–हिस्सा) ४वीप्सा (व्याप्त करने की इच्छा) के अवबोधन–'लक्षणेत्थंभूताखयान भागवीप्सासु प्रतिपर्यनव –पा० १।४।९।" से ईश्वर की सिद्धि होती है–१लक्षण (ईश ऐश्वर्यं (अदा०) प्टे) 'यो भूतानामधिपतिर्यस्मिंल्लोका अधिश्रिता। य ईशे महतो महॉस्तेन गृह्णामि त्वामहंमयि गृह्णामि त्वामहम ।। शु य २०।३२।।" ईशा वास्यमिदं सर्वयत्किच जगत्या जगत् ।शु, य ४०।१ (२इत्थम् भूताखयान) जगत्क्रीडाभि राम। रमुक्रीडायाम्। कुर्वन् जगत् क्रीडति–न्या कु। इत्थम् भूतलक्षणे–पा २।३।१। इदमस्थमु पा ५।३।२४। अनेन प्रकारेण इत्थम्–"कारकारमलौकिकाद्भूत मयं कुर्वन् जगत्क्रीडति–न्या कु,) ३ भाग (पादोऽस्यविश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतंदिवि–शु य, ३१।३) ४ वीप्सा (व्यापिकी इच्छा। 'स भूमि सर्वत स्पृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्–शु य ३१११।' अतिष्ठन्त परिविश्वेअमुषन्‌श्रियोवसानश्चरति स्वरोचि। महत्तद्वृष्णो असुरस्य नामा विश्वरूपो अमृतानि तस्थौ ।।शु य ३३।२२।।)

इस प्रकार 'सखयाविशेषात्' हेतु के प्रकरण मे संखयाशब्द के विभिन्न अर्थो से भी ईश्वर की सिद्धि होती है।



श्रीरामानन्द सम्प्रदायकी उपासना

ले० पं० अवधकिशोरदास श्रीवैष्वण 'प्रेमनिधि' (श्रीरामानन्द आश्रम जनकपुरधाम)

श्रीरामानन्द सम्प्रदाय एक महान् सुप्रतिष्ठित सम्प्रदाय है, इस सम्प्रदाय के आचार्य भी श्रीवशिष्ठ श्रीव्यास–श्रीशुकदेव–श्रीबौधायन श्रीरामानन्दाचार्यजी श्रीकबीर श्रीतुलसी इत्यादि महान् विश्ववन्दनीय सन्त हो गये है, इनका विपुल साहित्य परात्पर परब्रह्म श्रीरामप्रेम से ओतप्रोत है, फिर भी जिज्ञासुओ की ज्ञान पिपासा तृप्त करने के लिये यह स्वल्प प्रयास किया जा रहा है, जो इस पंक्तियों से उपासक सन्तों को प्रसन्नता हुई तो लेखक अपना श्रम सफल समझेगा।

* उपासना का आधार स्तम्भ *

(आचार्य शरणागति)

उपासना का आधार स्तम्भ श्रीगुरुदेव की कृपा ही है।

मन्त्रे तद्देवतायां च तथा मन्त्र प्रदे गुरौ। त्रिषु भक्तिः समाकार्या साहि प्रथम साधनम्।

उपोसना मे अपना उपास्यदेव सर्वोत्कृष्ट होना चाहिये, उसका मन्त्र सर्वोत्कृष्ट मन्त्र होना चाहिये तथा उपासना के मार्ग प्रदर्शक आचार्य भी सर्वोत्कृष्ट महान् आचार्य होने चाहिये, श्रीरामानन्द

सम्प्रदाय मे ये तीनों ही परमश्रेष्ठ सर्वोत्कृष्ट है, इस लिये उपासक को इन तीनो मे सहज भाव होजाना स्वाभाविक ही है, आचार्यचरणो ने अपने ग्रन्थ के आरम्भ मे ही यह प्रशस्त मार्ग दिखलाया है—

प्राचीनाचार्यवर्यान् यतिपति सहितान् सादर सं प्रणम्य।
सम्यक् शास्त्रानुसारं गुरुनिरत ? समाधीयते श्रूयतां तत् ५॥

श्रीवैष्णवनताञ्जभास्कर

अपने पूर्वाचार्य 'सीतानाथसमारम्भा शुक बोधायनान्विताम्' सब का सादर स्मरण करके उनके श्रीचरणो मे प्रणाम वन्दना कर के तब अपने आचार्य यतिराज श्रीराघवानन्दाचार्य के वचनों का सार तत्त्व हम सुना रहे है, जो सम्यक् प्रकारेण सर्वशास्त्रोनुमोदित है, उसको ध्यान पूर्वक सुनो—

शास्त्र का सिद्धान्त श्रीगुरुदेव के वचनो द्वारा ही जाना जा सकता है, इसलिये उपासना करने वाले उपासक को श्रीआचार्य चरणो का आश्रय गुरुदीक्षा लेना परम आवश्यक है, यह श्रीरामानन्द सम्प्रदाय की प्रणाली है।

गुरु भी परमदयोलु तत्त्वद्रष्टा प्रभुके प्रेम मे परायण शिष्य का सन्मार्ग का ज्ञान करा देनेवाले महापुरुष होने चाहिये। ऐसे महाभागवत मिल जायतो श्रीवैष्णवमताञ्जभास्कर मे आपकी आज्ञा है कि—

ते सर्वतीर्थाश्रयभूतदेहा देशे महाभागवता वसन्ति
यस्मिन् सतद्दर्शन संस्थितिभ्यां स्तेसुपुण्यं निखिलाघशून्यम्॥
तदर्चनात्तत्पदनीरपानात्तत्सङ्गते स्तत्प्रणतेर्विधानात्
नृणांहि तच्छिष्टसुभोजनाच्चस्यात्कोटिजन्मार्जितपापनाशः॥

ऐसे महान् श्रीवैष्णव सन्त जिस देश मे निवास करते है वही सभी तीर्थ ओकर निवास करने लगते है। उन महाभागवतो के दर्शन से तथा उनके रहने से ही वह प्रदेश महान् पुण्यपद तथा सभी पापो का नाश करनेवाला बन जाता है। ऐसे महान् सन्तो के दर्शन करने से चरण स्पर्श करने से, उनका चरणोदक पीने से उनकी संगति करने से उनके श्रीचरणों मे प्रणाम करने से तथा उनके भोजन करने के पश्चात् उनकाप्रसाद भोजन करने से करोडो जन्मो का पाप नाश होजाता है। ऐसे गुरुदेव की कृपा प्राप्त कर उपासक श्रीवैष्णवीदीक्षा प्राप्त करके धन्य धन्य हो जाता है, फिर तो वह—

एवं महान् भागवतः सुसंस्कृतो रामस्य भक्तिं परमांप्रकुर्यात्।
महेन्द्र नीलाश्मरुचेः कृपानिधेः श्रीजानकीलक्ष्मणसंयुतस्यवै॥

'इस प्रकार पञ्चसंस्कारो से संस्कृत होकर वह महाभागवत रात दिन श्रीरामकी प्रकृष्टभक्ति को निरन्तर करता रहता है, श्रीसीतालक्ष्मण सयुक्त नीलमणी श्यामल कान्ति सम्पन्न कृपानिधान श्रीराम की उपासना मे तल्लीन रहता है। इससे यह सिद्ध होता है कि श्रीरामानन्द सम्प्रदाय मे आचार्य तथा शिष्य पञ्चसंस्कार सम्पन्न होकर उपोसना परायण रहे।

उपासना का आधार स्तम्भ श्रीआचार्य शरणागति ही है इसीलिये—आचार्य देवो भव, स रामाभिगच्छेत् श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्" "आचार्य मा विजानीयात्" इत्यादि श्रुति स्मृति वाक्यों ने हमे

मार्गदर्शन करके कृतार्थ किया है। उपासना का दूसरा स्तंभ है, सर्वोत्कृष्ट मन्त्रराज—

॥ सर्वोत्कृष्ट मन्त्रराज ॥

श्रीरामषडक्षरतारकमन्त्र

मन्त्राणां व्यापकानां भगवत इह चाव्यापकानां तु मध्ये-
ऽतिश्रेष्ठोऽव्यापकः सश्रुतिमुनिसुमतः शिष्टमुख्यैर्गृहीतः।
नित्यानामाश्रयोऽयं परितउरुशुभो राममन्त्रः प्रधानः
प्राप्योऽथ प्रापकश्च प्रचुरतरगुणज्ञानशक्त्यादिकानाम् ॥

श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर २।२

व्यापक तथा अव्यापक सभी भगवन्मन्त्रो मे श्रीराममन्त्रराज ही सर्वप्रधान है। यह वेदों तथा मुनिजनो से वन्दनीय है तथा परमश्रेष्ठ महापुरुषो द्वारा सेवनीय है। प्रभु के नित्यमुक्त पार्षदों का परमाश्रय परमधाम है। कल्याणपद सभी मन्त्रो मे सर्वोत्कृष्ट परमप्रधान है। भगवत्स्वरूप का साक्षात्कार कराने वाला है, एवं परब्रह्म प्रभु श्रीरामका मन्त्रमय दिव्य श्रीविग्रह है। स्वयं भगवत्स्वरूप होने से प्राप्य भी है तथा इस मन्त्रराज के आराधन से प्रभु की प्राप्ति होती है इसलिये प्रापक भी है। इस प्रकार यह श्रीरामषडक्षरतारक मन्त्रराज उपासक को नवधा साधन भक्ति एवं प्रेम साध्य भक्ति तथा भगवत्स्वरूपका दिव्यज्ञान तथा प्रभु के परम प्रिय दिव्य भगवदीय गुणों का भण्डार बनाकर प्रभु की आराधना अखण्डित रहे ऐसी दिव्य शक्ति प्रदान करता है।

परम पूज्य श्रीआचार्य चरणो ने इस एक ही श्लोक मे सम्पूर्ण वेदशास्त्रों का साराश "गागर मे सागर" की भांति भर दिया है। तथापि जिज्ञासुओकी आत्म सन्तुष्टि के लिये कुछ शास्त्र वाक्य नीचे दिये जा रहे है—

"ऋते ज्ञानान्नमुक्ति" सिद्धान्त होते हुए भी 'काश्या मरणान्मुक्ति" का कारण स्पष्ट किया गया है कि—

क्षेत्रेऽस्मिन् योऽर्चयेद्भक्त्या मन्त्रेणानेन मा शिव। ब्रह्महत्यादि पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच॥
त्वत्तो वा ब्रह्मणो वाऽपि ये लभन्ते षडक्षरम्। जीवन्तो मन्त्रसिद्धा स्युरन्ते मा प्राप्नुवन्ति ते ॥११॥
मुमूर्षोर्दक्षिणे कर्णे यस्य कस्यापि वा स्वयम्। उपदेक्ष्यसि मन्मन्त्रं स मुक्तो भविता शिव ॥१२॥

श्रीरामोत्तरतापनीयोपनिषद् ४ कंडिका मन्त्र १०।११।१२

हे शिवजी! इस काशी क्षेत्र मे मेरे इस षडक्षर "रा रामाय नम" इस तारकमन्त्र द्वारा जो भक्ति भावना से मेरा पूजन आराधना करेगा, मै उसको ब्रह्म हत्यादिक महान् पापो से मुक्त कर दूँगा, तुम कुछ भी चिन्ता मत करो ॥१०॥ तुम्हारे द्वारा अथवा ब्रह्माजी की परम्परा द्वारा जो यहाँ षडक्षर मेरे मन्त्रराज को प्राप्त करेगे, वे जीतेजी तो मन्त्रसिद्ध महात्मा बन जायेगे तथा मृत्यु के पश्चात् जन्ममरण के बन्धन से मुक्त होकर मुझे प्राप्त कर लेगे। जिस किसी मरणासन्न प्राणी के दाहिने कान मे तुम मेरे इस महामन्त्रराज का उपदेश करोगे वह निश्चय ही मुक्त हो जायगा।

इस प्रकार स्वयं परब्रह्म परमात्मा प्रभु श्रीराम के द्वारा वरदान प्राप्त कर श्रीराममन्त्र प्रदान करने से ही काशी मे मरनेवाला जीव सर्व साधन हीन होने पर भी सद्य मुक्ति प्राप्त कर लेता है।

इससे भी अधिक स्पष्ट इसी उपनिषद् की श्रुति कहती है कि–

श्रीरामचन्द्रमनुस्मरणेन गायत्र्या शत सहस्राणि जप्तानि फलानि भवन्ति । प्रणवानामयुत कोटि जपा भवन्ति । दशपूर्वान् दशोत्तरानुनाति स पक्ति पावनो भवति । स महान् भवति । सोऽमृतत्त्व च गच्छति ।

श्रीरामोत्तरतापनीयोपनिषद् निर्णयसागर प्रेस वम्बई का छपा पृ० ११७ मन्त्र सख्या २६ तथा ३० देखें ।

श्रीरामचन्द्रजी के इस षडक्षर तारक मन्त्र के मात्र एक ही वार स्मरण करने से गायत्री मन्त्र के एक लाख जप करने का फल प्राप्त हो जाता हे । तथा ॐकार प्रणवमन्त्र के दश अरव (दशहजार (करोड) जप करने का फल प्राप्त होता हे । इस मन्त्र का जापक अपने पूर्वकी दश पीढी तथा अपने पश्चात् होनेवाली दशपीढी एव अपने समेत २१ पीढी का उद्धार कर देता है । वह जिस पक्तिमे वेठकर भोजन करता हे उसके साथ भोजन करनेवाले सभी पवित्र हो जाते है । वह महान् बन जाता है वह अमृतत्त्व को (मेरे दिव्य धाम को) चलाजाता हे ।*

इसीलिये गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज कहते है कि छोडो चिन्ता जपो श्रीराममन्त्रराज—

वेगि विलम्ब न कीजिये लीजीये उपदेश । महामन्त्र सो जपहु जेहि जपत महेश ॥

अब दो चार सहितायें तथा पुराणो के भी प्रमाण देख लीजिये—श्रीमहारामायण का वचन

इत्यादयो महामन्त्रा वर्तन्ते सप्त कोटय । आत्मा तेषा च सर्वेषा रामनाम प्रकाशक ॥

बृद्धमनुस्मृतिवचनम्

सप्तकोटि महामन्त्राचित्त विभ्रान्त कारका । एक एव परोमन्त्रो रामइत्यक्षरद्वयम् ॥

सात करोड महामन्त्रो का प्रकाशक प्राणात्मा श्रीरामनाम ही है । चित्त को विभ्रम मे डालने वाले सात करोड मन्त्र है परन्तु सबमे परात्पर मन्त्र तो श्रीरामनाम ही है । हारीतस्मृति अ० ६ श्लो० २४०—

षडक्षर दाशरथेस्तारकं ब्रह्म गद्यते । सर्वैश्वर्यप्रदनृणा सर्वकामफलप्रदम् ॥
एतदेव पर मन्त्र ब्रह्मरुद्रादि देवता । ऋषयश्च महात्मानो जप्त्वा मुक्ताभवाम्बुधौ ॥

श्रीदशरथनन्दन परब्रह्म श्रीरामका यही षडक्षर मन्त्र तारक ब्रह्म कहाता है, जो सभी ऐश्वर्यो को तथा सम्पूर्ण कामनाओको देनेवाला है । इसी परममन्त्र को ब्रह्मा–रुद्रादि महान् देवगण जपते है तथा सभी ऋषी महात्मा इसी को जपकर भवसागर से तर गये है । अगस्त्य संहिता अ० १९ श्लो० १–२

सुतीक्ष्ण मन्त्रवर्गेषु श्रेष्ठो वैष्णव उच्यते । वैष्णवेस्वपिमन्त्रेषु राममन्त्रा फलाधिका ॥

हे सुतीक्ष्ण सभी देवताओ के मन्त्रो से श्रीवैष्णव मन्त्र श्रेष्ठ है तथा सभी वैष्णवमन्त्रों मे भी श्रीराममन्त्र अत्यन्त अधिक फलप्रदायक है । पिप्पलाय सहितायाम्—

शान्त प्रसन्नो वरद अक्रोधो भक्तवत्सल । अनेन सदृशोमन्त्रो जगत्स्वपि न विद्यते ॥
सम्यगाराधितो राम प्रसीदत्येव सत्वरम् । ददात्यायुष्यमैश्वर्यमन्ते राम पदं ब्रजेत् ॥

* परमपूज्य महामना श्रीमदनमोहन मालवीयजीने भी अपने "सनातनधर्मदीपिका" ग्रन्थ मे यह प्रमाण उद्धृत किया है । जो हिन्दू विश्वविद्यालय काशी से उनके समय मे ही प्रकाशित हुआ था ।

श्रीराममन्त्र परम शान्त है, सदैव प्रसन्न रहने वाला है, इच्छित वर प्रदायक है, किसी पर क्रोध तो करता ही नही है, भक्तवत्सल है, अधिक तो क्या कहे इसके समान दयालु मन्त्र त्रिभुवन मे कोई नही है। इसका भली भाति आराधन करने से श्रीराम तुरन्त प्रसन्न होकर इसलोक मे सुखद ऐश्वर्य तथा आयु प्रदान करते है एव अन्त मे श्रीराम के दिव्य धाम साकेत मे जाता है ।

इस प्रकार श्रीरामानन्द सम्प्रदाय का जपनीय मन्त्र श्रीराममन्त्र सभी मन्त्रो का शिरताज है सर्वश्रेष्ठ है, यह सभी शास्त्र वेद पुराणोने एक स्वर से उद्‌घोषित किया है, अत इसका सर्व श्रेष्ठता निर्विवाद है ।

राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे । सहस्रनामतत्तुल्य रामनाम वरानने ।।

पद्मपुराण उत्तर खड अ० २५५ श्लो० २०

श्रीरामानन्दसम्प्रदाय के उपास्य देव

उपासना मे उपास्यदेव की सर्वोत्कृष्टता ही प्रधान है, श्री रामानन्द सम्प्रदाय के उपास्यदेव सर्वेश्वर श्रीरामकी महान् महिमा अपरपार है, अद्वितीय है, इसीलिये गोस्वामी तुलसीदासजी ने डंकेकी चोट से श्रीराम उपासना का डटकर प्रतिपादन किया है—

को करि कोटिक कल्पना, पूजे बहु देव । तुलसीदास तेहि सेइये, शकर जेहि सेव ।।

× × ×

बने तो रघुवर से बने बिगडे तो भरपूर । तुलसी और न ते बने, वा बनिवेमे धूर ।।
तुलसी श्रीरघुवीर तजी, करे भरोसे और । वा अपराधी जीवको, नरकहुँ नाहिन ठौर ।।

स्वयं आचार्यचरणो ने भी स्पष्ट आज्ञा प्रदान की है—

द्विभुजस्यैव रामस्य सर्वशक्ते प्रियोत्तम । ध्यानमेवं विधातव्य सदा राम परायणै ।।३६।।

हे परमप्रिय शिष्य ! समस्त शक्ति सम्पन्न देवो के शिरोमणि द्विभुज धनुर्धारी सर्वेश्वर श्री रामका ही श्रीरामानुरागी सज्जनो को सदासर्वदा इसी प्रकार निरन्तर ध्यान करना चाहिये ।

श्रीमानर्च्य शरण्यो बहुविधविबुधैर्योगिगम्याँघ्रिपद्मोऽस्पृश्य क्लेशादिभि सत्समुदितसुयशा सूरिमान्यो वदान्य शश्वच्छ्रीरामचन्द्र सुमहित महिमा साधुवेदैरशेषैनिर्मृत्यु सर्वशक्तिर्विकलुप विजरोगीर्मनोभ्यामगम्य ।।१९।।

हमारे आराध्य उपास्य श्रीमान् सीतपति है, जो शरणागत वत्सल है, ब्रह्मादिक प्रमुख देवगणोद्वार वन्दनीय है, योगियो की भावना द्वारा अनुभवगम्य श्रीचरणारविंद वाले है, जो अविद्या अस्मिता राग द्वेष अभिनिवेशादिक पञ्चमहाक्लेशो से सदासर्वदा अछूते रहते है, जो विना कष्ट सहन किये भक्तो को केवल कृपा द्वारा ही प्राप्त होते है, जिनका सुयश सर्वत्र सुप्रकाशित है जो नित्यधाम के दिव्यसूरियो द्वारा सम्माननीय है, जो अत्यन्त सुकोमल शील स्वभाव वाले है, जिनकी महान् महिमा सम्पूर्ण वेदो तथा महापुरुषो द्वारा निरन्तर गायी जाती है, वे अजर-अमर सर्वशक्ति सम्पन्न निर्मल निर्विकार मनवाणी से परे अगम्य परात्पर परब्रह्म प्रभु श्रीरामचन्द्रजी ही परमतत्व है, अतएव वही उपास्य है आराधनीय है। अन्यान्य शास्त्र पुराण इसी सिद्धान्त का एकमत होकर समर्थन करते है—सनत्कुमार संहितायाम्—

श्रीरामचन्द्र हरिमादिदेवं, परात्पर राममहं भजामि ॥२५॥
परात्परतर तत्त्वं सत्यानन्दं चिदात्मक । मनसा शिरसानित्य प्रणमामि रघूत्तमम् ॥४८॥
अपार संवित् सुखमेकरूपं परात्पर राममह भजामि ॥६२॥
परात्पर यत्परम पवित्र नमामि राम महतो महान्तम् ॥६८॥

स्कन्द पुराण मे भी

रामात्पर किमपि तत्त्वमह न जाने । श्रीराम शरणं समस्त जगता रामं विना का गति ॥

श्रीमद्भागवत मे—

वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् । तन्नाकपालवसुपाल कीरीटजुष्ट–पादाम्बुज रघुपते शरण प्रपद्ये॥
पद्मपुराण मे उत्तर खंड अ० २४३ श्लो० ३९

त्वन्नामजापिनी गौरी त्वन्मन्त्रजपवानहम् । अतस्त्व जानकीनाथ परब्रह्मासि निश्चितम् ॥

× × ×

रामान्नास्ति परोदेवो रामान्नास्ति पर व्रतम् । नहि रामात्परोयोगो नहि रामात्परो मख ॥
तं स्मृत्वा चैव जप्त्वाच पूजयित्वा नर परम् । प्राप्नोति परमामृद्धि मैहिकामुष्मिकी तथा ॥
पद्मपुराण पातल खड अ० ३६ श्लो० ४६।४७

तस्मात्सर्वात्मनारामचन्द्र भज मनोहरम् । यथागोष्पदवत्तुच्छो भवेत्संसार सागर ॥

आदि काव्य श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण मे—

येषा रामप्रियो नास्ति रामे न्यूनत्त्व दार्वीनाम् । द्रष्टव्यं न मुख तेषा सङ्गतिस्तु कुत पराम् ॥

श्रीविश्वामित्रवाक्यम्

अह वेद्मि महात्मान रामं सत्यपराक्रमम् । वशिष्टोऽपि महातेजो येचेमे तपसिस्थिता ॥
वालकाड सर्ग १९ श्लो० १४

बृहद्ब्रह्मसंहितायाम् श्रीमन्नारायणवाक्य लक्ष्मी प्रति—

वासुदेवादिमूर्तिना चतुर्णा कारण परम् । चतुर्विंशति मूर्तीनामाश्रय शरणं मम ॥
सर्वावताररूपेण दर्शनस्पर्शनादिभि । दीनानुद्धरते योऽसौ श्रीराम शरण मम ॥

शिवसंहिता मे—

न तत्पुराणं नहियत्ररामोयस्या न रामो नच संहिता सा ।
स नेतिहासो नहि यत्र राम काव्यं न तत्स्यान्नहि यत्रराम ॥
उक्तेन किं स्याद् बहुनाम विश्व सर्वमुधास्याद् यदिराम शून्यम् ॥
तदेवसत्यं विहित तदेव तदेव युक्तं रघुनाथ युक्तम् ॥

महारामयणे—

वेदादौ वेदमध्ये च वेद वेदान्त पालक । परात्परतर यो वै सतु राम सनातन ॥

स्कदपुराणीय रामायण माहात्म्ये—

ब्रह्मा विष्णु महेशाद्या यस्यांशा लोक पालका । तमादिदेव श्रीराम विशुद्धं परम भजे ॥

वशिष्ठसहितायाम्—

परान्नारायणाच्चैव कृष्णात्परतरादपि । यो वैपरतम श्रीमान् रामोदाशरथि स्वराट् ॥

इत्यादिक हजारो प्रमाण शास्त्रो मे भरे पडे है श्लोक सीधे सरल भाषा मे है इसलिये अर्थ विस्तार न करके संक्षेप मे ही भावार्थ लिखा जा रहा है—

(सनत्कुमार संहितान्तर्गत श्रीरामस्तवराज) सनातन आद्यदेव परात्पर प्रभु श्रीहरि भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का मै भजन करता हूँ ।।२५) सच्चिदानन्दस्वरूप परात्पर तत्त्व राघवेन्द्र प्रभु श्रीराम को मै तन-मन-वचन से प्रणाम करता हूँ ।।४८।। परात्पर पवित्रो मे परम पवित्र, महान मे महान सर्वश्रेष्ठ प्रभु श्रीराम को मै प्रणाम करता हूँ ।।

स्कद पुराण मे-श्रीराम से भी कोई परमतत्त्व है ऐसा मै नही जानता हूँ न मानता हूँ ।

श्रीमद् भागवत मे-उन महापुरुष प्रभु श्रीराम के चरणो की मै वन्दना करता हूँ जो समस्त ब्रह्माण्ड के लोकपाल दिक् पाल तथा देवलोकपालको के रत्नजटित किरीट जिनके चरणो पर लोटते रहते है उन श्रीरामचन्द्रजी की मै शरणागति ग्रहण करता हूँ ।

पद्मपुराण मे-श्रीशंकरजी कहते है हे प्रभु! आपके नामको पार्वती जपती रहती है तथा मै भी आपके ही मन्त्र का निरन्तर जप करता रहता हूँ । क्योकि हे श्रीजानकी नाथ आपही परब्रह्म परमात्मा है ।

श्रीरामसे परात्पर देव कोई नही है, श्रीराम के व्रतसे परम श्रेष्ठ कोई व्रत नही है। श्रीरामसे श्रेष्ठ कोई योग नही है तथा श्रीराम पूजन से श्रेष्ठ कोई पूजन नही है । उन्ही प्रभु श्रीराम का स्मरण करके पूजन करके मनुष्य इसलोक मे परम श्रेष्ठ सुख प्राप्त करता है तथा परलोक मे परम कल्याण की प्राप्ति करलेता है । इसलिये सर्व प्रकार की शंकाओ का परित्याग कर अत्यन्त भक्ति भावना से सभी प्रकार से श्रीराम का ही अत्यन्त मनोहर भजन करो, इसके प्रताप से भयंकर भवसागर गोखुर की तरह सहज मे ही तर जाओगे ।

श्रीमहर्षि वाल्मीकि लिखते है कि जिनको श्रीराम प्रिय नही है तथा श्रीराम मे किसी प्रकार की न्यूनता दिखाते है वे संसार मे निन्दनीय होते है उनका तो मुख भी न देखना चाहिये । फिर संगति करना तो दूर रहा ।

श्रीविश्वामित्रजी श्रीदशरथजी से कहते है कि-राजन्! मै महात्मा श्रीरामको भलीभाति जानता हूँ कि वे क्या है? उसी प्रकार महान् तेजस्वी श्रीवशिष्ठजी तथा तपस्या परायण महान् सन्त सभी श्रीरामके परत्त्व को जानते है ।

बृहद्ब्रह्म संहिता मे श्रीमन्नारायणजी श्रीलक्ष्मीजी से कहते है-वासुदेवादि चतुर्व्यूहों का तथा प्रभु के चौवीसो अवतारो का मूलकारण परात्पर प्रभु श्रीराम ही हमारा शरण है। सभी प्रकार के अवतार धारणकर दीनजनो को अपने दर्शन तथा श्रीचरण स्पर्श से उद्धार करनेवाले प्रभु श्रीराम ही हमारे रक्षक है। हमारे आश्रय है ।

श्रीशिवसंहिता मे-वह पुराण पुराण नही है, वह संहिता संहिता नही है, वह इतिहास इतिहास नही है तथा वह काव्य काव्य नही है जिसमे भगवान् श्रीराम का वर्णन नहो। बहुत विशेष आडंवर करके कहने से क्या लाभ? साराश यही है कि श्रीराम के बिना सब कुछ मिथ्या है यथार्थ बात यही है कि जिसमे श्रीराम बिराजमान है वही सत्य है वही वैधानिक परम तत्त्व है।

महारामायण मे भी-वेदो के आदि मे तथा वेदो के मध्य मे वेदवेदान्त पालक प्रभु श्रीराम ही परात्पर सनातन परमतत्त्व है यह प्रतिपादन किया गया है। स्कंदपुराणीय श्रीरामायण माहात्म्य मे भी ब्रह्मा विष्णु महेश्वरादिक जिनके अशाश मात्र किंचित् शक्ति प्राप्त कर लोकपालक बने हुए हैं उन आदि देव परमविशुद्ध परमतत्त्व श्रीराम का मै भजन करता हूँ ।

वशिष्ठसहिता मे भी-श्रीमन्नारायण से जो परमश्रेष्ठ है तथा भगवान् श्रीकृष्ण से भी जो परात्पर है वही परात्परतम सर्वतन्त्र स्वतन्त्र प्रभु श्रीराम ही दशरथराजनन्दन होकर प्रकट हुए है ।

परान्नारायणाच्चापिकृष्णात्परतरादपि । योवैपरतम श्रीमान् रामोदाशरथि स्वराट् ॥

ये सभी प्रमाण आचार्य चरणो द्वारा प्रवर्तित श्रीराम उपासना को परिपुष्ट करते है । विशेष समझना हो तो "श्रीरामपरत्त्वम्" नामक ग्रन्थ जो परमपूज्य श्रीब्रह्मदास जी महाराज प्रणीत है तथा मेरी प्रेमामृतवर्षिणी टीका सहित श्रीमहान्त पीताम्बरदासजी, श्रीअवधविहारी मन्दिर कोट पुतली, जिला जयपुर राजस्थान से प्रकाशित है, पढने की कृपा करे —

श्रीरामानन्दसम्प्रदाय की उपासना प्रणाली मे प्रथम श्रीरामभक्त सदाचारी विरक्त सत की शरणागति ग्रहण करके पञ्चसंस्कार सम्पन्न होना चाहिये । तब मन्त्रराज तारकमन्त्र मूलमन्त्र बीज मन्त्र आदि नामो से सुविख्यात षडक्षर श्रीराममन्त्र क जप ध्यान अनुष्ठान करके परात्पर पूर्णब्रह्म उपास्यदेव परमाराध्य प्रभु श्री सीतारामजी की कृपा से उनके दिव्य दर्शनो का अधिकार प्राप्त कर धन्य धन्य होजाना चाहिये, यही मानव जीवन की सार्थकता है श्रीराम के चरणो मे श्रीरामभक्तों के चरणो मे श्रीगुरुदेव के श्रीचरणो मे तथा श्रीराममन्त्रराज मे पूर्ण निष्ठा पूर्णश्रद्धा विश्वास रखना ही श्रीरामानन्द सम्प्रदाय की उपासना का सार सिद्धान्त है । इस परमलाभ को सहज मे प्राप्त करने के लिये साधक को प्रथम श्रीरामनाम का निरन्तर जप कीर्तन स्मरण करते रहना तथा श्रीरामायण का पाठ प्रेम पूर्वक प्रतिदिन करते रहना अत्यन्त आवश्यक है । श्रीरामनाम तथा रामायण की कृपा ही श्रीरामोपासना की दृढता प्रदानकर जीवो को कृतकृत्य धन्य धन्य बना देने मे समर्थ है। इसमे किसी प्रकारका सशय नही है ।



श्रीराम द्वय मन्त्र

[व्याख्याकार—वैदेहीकान्तशरण]

श्रीरामद्वयमन्त्रमद्भुततमं वाक्यद्वयं षट्पदं, बाणाक्षिप्रमिताक्षर तु खलु विद्धि त्व दशार्थान्वितम् ।
युक्त तत् त्रिपदैस्तुतत्र सुमते पूर्वं शुभस्यास्पद
वाक्य पञ्चदशाक्षर तदनु दिग्वर्णात्मकं तूत्तरम् ॥श्रीवै म भा २।२५

विषय=इस श्लोक मे श्रीरामद्वयमन्त्र के स्वरूप, आकार प्रकार, रूपरेखा, शब्दसौष्ठव, पदयोजना एव रहस्यों का दिग्दर्शन है ।

व्याख्या—श्री=परम रस ('अथ या एतेषा सप्ताना पुरुषाणा श्री यो रस आसीत् तमूर्ध्वं समुदौहम्—शतपथम् ।' 'ऋच सामानानि यजूषि सा हि श्रीरमृता सताम्—तैत्तिरीयारण्यकम् ।') संपत्ति (सपत्ति श्रीश्च लक्ष्मीश्च—अ को २।८।८२) । वेश, रचना, शोभा, सरस्वती, लक्ष्मी, त्रिवर्ग-सम्पत्ति विविध उपकरण ('श्रीर्वेश रचना शोभा भारती सरलद्रुमे ॥ लक्ष्म्या त्रिवर्गसम्पत्ति विधोकरणेषु । विभूतौ च मतौ च स्त्री—मे० रान्तवर्ग १—२) 'लक्ष्मी पद्मालया पद्मा कमला श्रीर्हरिप्रिया । इन्दिरा लोकमाता मा क्षीरोदतनया रमा । भार्गवी लोक जननी क्षीरसागरकन्यका ॥अ को १।१।२७।' 'श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्या—शु य ३१।२२।' आचार्य चरण ने श्री पद का अर्थ आगे सर्वाधीशेश्वर

श्रीरामजी की प्राप्ति करानेवाली सीताजी कहा है-''सर्वावीशेश्वरस्याप्तिर्हेतुरत्राभिवीयते सीता पुरुष कारार्था श्रीत्यनेन पदेन तु'' श्लो० २।२६।' 'विभुत्वतो निर्भरता परैस्तै श्रीव्याप्तिराख्यैरभिधीयते हि। प्रपञ्च निर्मातृ विरञ्चिहेतु श्रीरामपादाब्जनिविष्टचित्ते ।।नित्य सा पुरुषकारभूता सीताऽनपायिनी। अनुपायान्तरैर्विज्ञैरुच्यते तदुपायता ।।श्लो०४।४५-४६।।

राम=परात्पर ब्रह्मश्रीराम(विश्व जात यतोद्धा यदवितमखिल लीयते यत्र चान्ते सूर्यो यत्तेजसेन्दु सकलमविरतं भासयत्येतदेष यद्भीत्या वातिवातोऽवनिरपि सुतलं यातिनैवेश्वरोज्ञ, साक्षी कूटस्थ एको बहुशुभ गुणवानव्ययो विश्वभर्ता ।। श्रीमानच्र्य शरण्यो बहु विधविबुधैर्योगिगम्याङ्घ्रिपद्मोऽस्पृश्य क्लेशादिभि सत्समुदित सुयशा सूरिमान्यो वदान्य । शश्वच्छ्रीरामचन्द्र सुमहितमहिमा साधुवेदैरशेषै र्निर्मृत्यु सर्वशक्तिर्विकलुषविजरो गीर्मनोभ्यामगम्य ।। श्लो० १।८-९।'

द्वय=द्वय पद सख्या वाचक है । अर्थ होता है-'दो'। यहाँ यह द्वय पद श्री सीता एवं राम इन दोनो का प्रकाशक होने से 'श्रीराम द्वय' कहा गया है ।

मन्त्रम्='मननात्त्रायते इति मन्त्र' 'वेद भेदे गुप्तवादे मन्त्र' आदि लक्षण एवं अभिधान से प्रोक्त वैदिक, परम्पराप्राप्त, गोपनीय एव मनन करने पर रक्षा करनेवाला अक्षरसमूह मन्त्र कहा जाता है । यह हमारे आचरण का भी अनुप्रेरक है । वेदऋषि कहते है कि मन्त्र (मन्त्रार्थ) के अनुसार आचरण करे-'मन्त्र श्रुत्यं चरामसि सामवेद पूर्वार्चिक १७६। यहाँ 'श्रीरामद्वयमन्त्रम्' कहा गया है। इसके दो अर्थ निष्पन्न होते है-(१) श्रीरामजी का द्वयमन्त्र (दो वाक्यो वाला मन्त्र अथवा दो मन्त्र, [२] श्री (सीता) का मन्त्र और राम का मन्त्र (अर्थात् सीताजी और रामजी-इन दोनो का ही मन्त्र)। यहाँ 'मन्त्रम्' यह एक वचन पद दोनो ही वाक्यो एव दोनो ही देवताओ की अभिन्नता एव एकत्व के ज्ञापन के लिये है। अत श्रीरामजी का द्वयमन्त्र (दो वाक्यों वाला मन्त्र) एक ही मन्त्र है, दो मन्त्र नही, इसीप्रकार श्रीरामद्वय मन्त्र एवं सीताद्वय मन्त्र भी एक ही मन्त्र है, दो नही -ऐसा एक वचनान्त पद 'मन्त्रम्' से सिद्ध है। इसे ही 'मतो पुरुषकारस्य नित्य सम्बन्ध उच्यते-श्लो० २।२७' मे दर्शित किया गया है। 'श्रीमद्रामचन्द्र' पद से श्री(सीता) और राम मे समानाधिकरण्य और एकत्व बतलाया गया है।

अद्भुततमम्=विस्मयोऽद्भूतमाश्चर्यं चित्रम् अ को १।७।१९ विलक्षण वस्तुको अद्भुत कहते हैं। यह श्रीरामद्वयमन्त्र सर्वविलक्षण ही नहीं अपितु परम विलक्षण है। इससे बढकर कोई भी विलक्षण नही है, न था और नही हो सकता है। इसमन्त्र को परम अद्भुत होने का कारण यह है कि इस मन्त्र के प्रतिपाद्य देवता वा उद्देश्य श्रीरामजी भी-'श्रीमन्त श्रुतिवेद्यमद्भुतगुणग्रामाग्रय रत्नाकर-श्लो० १।१' एव श्रीसीताजी भी 'ऐश्वर्य यदपाङ्गसंश्रयमिदं भोग्यं दिगीशैर्जगच्चित्रं चाखिलमद्भुतं शुभगुणा वात्सल्यसीमा च या, विद्युत्पुञ्जसमान कान्तिरमितक्षान्ति सुपद्मेक्षणा-श्लो १।२' अद्भुततम है । अत मन्त्र के प्रतिपाद्य देवता के अद्भुततम होने से यह मन्त्र भी अद्भुततम सिद्ध है । इस मन्त्र मे आकारिक और वास्तविक दोनो प्रकार की अद्भुतता है । इसके आकारिक औद्भुत्य का दिग्दर्शन इसी प्रस्तुत श्लो० २।२५ मे ही-''वाक्यं द्वयं षट्पदं वर्णात्मकत्त्तरम्'' वाक्य मे कराया गया है एवं वास्तविक अद्भुतता का दिग्दर्शन अग्रिम श्लोक २।२६-३४ मे कराया गया है ।

वाक्य='वाक्यं पद समूह स्यात् ।' 'तिङ्सुबन्तचयो वाक्यं क्रिया वा कारकान्विता-अ को १।६।२।'' शब्द अथवा शब्दोका समूह जो पूर्व अर्थ वा भाव प्रकट करता है वाक्य कहलाता है

भाषा विचार का व्यञ्जक है और विचार वस्तु का जब हमारा मानसिक निर्णय भाषा द्वारा व्यक्त (प्रकाशित) होता है, तव वह वाक्य कहलाता है। प्रत्येक वाक्य के तीन अङ्ग है-(१) उद्देश्य (२) विधेय और (३) संयोजक। वाक्य मानसिक निर्णय और आन्तरिक भावनाओ की शाब्दिक अभिव्यक्ति है। यह तत्त्व का ज्ञापक और प्रतिपादक है।

द्वयम्=श्रीरामद्वयमन्त्र को 'वाक्यद्वयम्' इसलिये कहा गया है कि इसमे दो वाक्य है-(१) श्रीमद्रामचन्द्रचरणौ शरणं प्रपद्ये।' एव (२) श्रीमते रामचन्द्राय नम। ये दोनो ही तिङ् सुबन्त युक्त क्रिया और कारकपूर्ण उद्देश्य विधेय लक्षण युक्त पूर्ण अर्थ एव भाव को प्रकट करनेवाले है। अत इनका वाक्य द्वयम् होना सिद्ध है। पुन यह मन्त्र दो बातो-(१) शरणग्रहणकरनो और (२) नमस्कार करना को बतलाने वाला होने से भी वाक्य द्वयम् है। इसी प्रकार यह मन्त्र श्री रामजी के साथ ही श्रीसीताजी के सम्बन्ध मे भी ज्ञापन करने के कारण भी वाक्य द्वयम् है। दोनों वाक्यो का उद्देश्य पद (श्रीमद्रामचन्द्र) एक ही है और क्रिया पद दो है-(१) शरण प्रपद्ये एव (२) आय नम। दोनो क्रिया पद परस्पर एक दूसरे के पूरक है। 'शरण प्रपद्ये' संकल्पवाक्य है और 'नम' क्रिया वाक्य। दोनो परस्परापेक्षित है।

षट्पदम्='पदं व्यवस्थित त्राणस्थान लक्ष्माङ्घ्रिवस्तुषु अ को ३।३।९६।" पदम् न्' के व्यवसाय, रक्षा, स्थान, चिह्न, पैर, शब्द, वाक्य, एक वस्तु और अपदेश-ये दश अर्थ होते है। व्याकरण शास्त्रानुसार जिन शब्दो के अन्त मे सुप् और तिङ् प्रत्यय हो उनकी पद सज्ञा है- "सुप्तिङन्त पदम्-पा० १।४।१४" किन्तु तर्कशास्त्रानुसार शब्द और पद मे अन्तर है। सभी पद शब्द है पर सभी पद नही हो सकते। पद होने के लिये शब्दो मे शव्द होने के अतिरिक्त इस गुण का भी रहना आवश्यक है कि वे स्वतन्त्र रूप से किसी वाक्य के उद्देश्य अथवा विधेय वन सके सभी शब्दो मे वाक्य के उद्देश्य अथवा विधेय बनने की शक्ति नही है। अत सभी शब्द पद नही बन सकते। अन केवल वे शब्द या शव्द समूह जो स्वतन्त्र रूप से किसी भी वाक्य के उद्देश्य या विधेय हो सकते है या होते है पद कहलाते है। न्यायशास्त्र के अनुसार शक्तिमान् शब्द को पद कहते है। जिस शब्द मे एक अर्थ विशेष द्योतन करने की शक्ति रहनी है, वह पद कहलाता है-'अस्मात्पदादयमर्थो बोद्धव्य इतीश्वर सकेत शक्ति-तर्कसग्रह। इस पद से इस अर्थ का बोध होतो है, यह सकेत ईश्वरीय है। यहाँ प्रस्तुत श्रीरामद्वय मन्त्र मे प्रयुक्त शब्दो का सकेत ईश्वरीय है-ऐसा बोध कराने के लिये आचार्य चरण ने यहाँ 'पदम्' शब्द को व्यवहार किया है। षट्पद सख्यावाचक है। पद्यते ज्ञायते अनेन इति पदम्' इस व्युत्पत्ति के अनुसार पद शब्द का अर्थ प्रत्यायक (बोधक) है। जिस प्रकार षट्दर्शनो (न्याय, वैशेषिक, साख्य, योग, मीमासा, वेदान्त) से परब्रह्म परमेश्वर का बोध व उनकी प्राप्ति का उपाय (साधन बोध) तथा दर्शन (फल) होने से उन्हे षट्दर्शन कहा जाता है। उसी प्रकार इस द्वयमन्त्र के षट्पद (प्रत्यायक) से भी परात्पर ब्रह्म श्रीराम का बोध उनकी प्राप्तिका प्रत्यय (उपाय) एव उनका दर्शन और प्राप्ति होता है। अत षट्पदं का व्यवहार हुआ है। श्रीरामद्वयमन्त्र के षट्पदं कहने मे अनेक रहस्य है। तारक मन्त्र षडाक्षर है (रसमितशुभदस्वक्षर श्लो० २।१) तो द्वयमन्त्र षट्पद (षट्पदं श्लो २।२५) है। यह दोनो का साधर्म्य, समानाधिकरण्य, एक रूपता एव एक वाक्यता का निरूपक है। दोनों का रस (रसास्वादन स्नेहनयो) एव शुभद साधर्म्य का प्रतिपादक है। तारक मन्त्र के समान ही यह द्वयमन्त्र भी षड् व्याप्ति भेदक (श्रुति मुनि गतितोत्कृष्टषड् व्याप्तिभेदम्-

श्लोक २।३) अर्थात्–नाम, रूप, यश, गुण, स्वरूप, मन्त्र–इन षड्व्याप्ति पूर्ण है। जहाँ तारक मन्त्र मे षट् अक्षर है वहाँ द्वयमन्त्र मे षट् पद है। इस प्रकार मूल तारक मन्त्र का ही विकास यह द्वय मन्त्र है। अत द्वयमन्त्र का ही अङ्ग (वृक्ष–पल्लव, फूल–फल) रूप यह द्वयमन्त्र है। हिन्दूशास्त्रो के अनुसार सर्वत्र षडङ्गो की ही कल्पना वा मान्यता है। पूजा काल मे एवं श्रीराम मन्त्र जप काल मे भी षट् अङ्ग न्यास ही किया जाता है। ज्ञानपुरुष रूप वेद भगवान् के भी षट् अङ्ग ही है–"छन्द पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते। ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते। शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम् 'तस्मात् साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते॥ पाणिनीय शिक्षा ४१–४२॥" इसी प्रकार भगवन्मन्त्र के भी छ अङ्ग है और उन छ अङ्गो के साथ उनका साङ्ग अध्ययन एव उपासना करने से ब्रह्मलोक (साकेत) की प्राप्ति होती है। 'अभिधानकोशत पदार्थ निश्चय ।१।३।५ पदाधानोद्धरणमवेक्षणम् ।१। ३।१५। काव्यालङ्कार सू०॥" अत इस द्वयमन्त्र का अभिधान कोश के परिज्ञान से पदो के ठीक अर्थ का अनुसन्धान करना चाहिए एव इन षट् पदो की रचना विशेष मे रखे हुये उनके सौन्दर्य और उपयोगिता की परीक्षा किये हुये अर्थात् उनके अवेक्षण को स्थान्य परिवर्तन, परिवर्तन वा क्रम भेदकर नष्ट नही करना चाहिए–ऐसा ही उस 'षट्पदं' मे प्रयुक्त 'पद' पद से सिद्ध होता है। जिस प्रकार–"संज्ञा च परिभाषा च विधिर्नियम एव च। अतिदेशोऽधिकारश्च षड् विधं सूत्र लक्षणम् ॥" के छ लक्षणो से सूत्र का ज्ञापन होता है। उसी प्रकार श्रीरामतारक मन्त्र के छ अक्षरो एवं श्रीरामद्वयमन्त्र के छ पदों से इनमन्त्रो का ज्ञापन होता है। षट्पद नाम भ्रमर का है– मधुव्रतो मधुकरो मधुलिण्मधुपालिन। द्विरेफ पुष्पलिड् भृङ्ग षट्पद भ्रमरालय ॥अ को २।५।२९॥" इस प्रकार षट्पद होने से यह श्रीरामद्वयमन्त्र भी भ्रमर रूप है। जिस प्रकार भ्रमर पुष्प के ही चारो ओर भ्रमण करता रहता है एवं पुष्प के मधुर रस का अपने षडेन्द्रियो (नेत्र–रसना–घ्राण–त्वक्–श्रोत्र–मन) द्वारा आस्वादन करता है। उसी प्रकार यह द्वयमन्त्र एवं इस द्वयमन्त्र के जापक 'तज्जपस्तदर्थ भावनम्' के अनुसार भ्रमररूप अपने षट्पद द्वारा परात्पर ब्रह्म श्रीरामचन्द्रजी के चरणारविन्द के मधुरस का पान करता है–"पद कमल परागा रस अनुरागा मम मन मधुप करै पाना।" षट् कर्मा नाम ब्राह्मण का है– 'षट्कर्मा यागादिभिवृत –अ को २।७।४" अत यह षट्पद द्वयमन्त्र ब्राह्मण के यागादि षट् कर्म रूप है।

अब इस द्वयमन्त्र के षट्पदों का विभाग बतलाया जाता है। यह द्वयमन्त्र समष्टि रूप से षट्पद है–(१) श्रीमद्रामचन्द्र चरणौ (२) शरणं (३) प्रपद्ये (४) श्रीमते (५) रामचन्द्राय (६) नम।" इसी प्रकार यह द्वयमन्त्र व्यष्टि रूप से भी षट् पद है–प्रथम वाक्य (१) श्री (२) मत् (३) रामचन्द्र (४) चरणौ (५) शरणं (६) प्रपद्ये द्वितीय वाक्य (१) श्री (२) मते (३)रामचन्द्र (४) आय (५) न (६) म। इसी प्रकार यह उभयनिष्ठ रूप अथवा सामान्य रूप से भी षट् पद है–(१) श्रीरामचन्द्र (२) चरणौ (३) शरण (४) प्रपद्ये (५) आय (६) नम। पुन दोनो वाक्यों मे उद्देश्यपद (श्रीमते रामचन्द्राय) उभयनिष्ठ है। अत उनका एक ही बार गणना करने पर षट्पद इस प्रकार बनते है–(१) श्रीमद् (२) रामचन्द्र (३) चरणौ (४) शरणं प्रपद्ये (६) नम। अत दोनों ही वाक्यो मे ये ही मूल छ पद है।

बाणाक्षिप्रमिताक्षरम्–बाण शब्द का अर्थ तीर होता है–"पृषत्क बाण विशिखा अजिह्मग खगाशुगा'। कलम्ब मार्गन शरा पत्रीरोप इषु द्वयों ॥अ को २।८।८६–८७।" अक्षिका अर्थ नेत्र

होता है-"लोचनं नयनं नेत्रमीक्षणं चक्षुरक्षिणी । अ को २।६।९३।" प्रमित का अर्थ प्रमाण एवं यथार्थ ज्ञान होता है-"प्रमितौ प्रमा-अ को ३।२।१०।।" "यत् अर्थ विज्ञान साप्रमिति वा भा १।१।१।" अक्षर शब्द का मोक्ष, परब्रह्म, वर्ण, प्रकाश, धर्म, तप, मूलकारण, अपामार्ग-ये आठ अर्थ होते है-'अक्षर तु मोक्षेऽपि अ को ३।३।१८७।" यहाँ 'बाणाक्षिप्रमिताक्षरम्' शब्द मे बाण का साङ्केतिक अर्थ पाँच सख्या (क्योकि कामदेव के पञ्चबाण प्रसिद्व है-"अरविन्द मशोक च चूतं च नवमल्लिका। नीलोत्पल च पञ्चैते पञ्चबाणस्य सायका ।।अ, को क्षे)।।" अक्षि का साङ्केतिक अर्थ दो संख्या है (क्योकि सर्वत्र दो नेत्र प्रसिद्व हैं। एक नेत्र केवल कौआ को ही होता है- स एव च चिरञ्जीवी चैकदृष्टिश्च मौकुलि । अ को क्षे ।' त्रिनेत्र केवल शंकर है और सहस्रनेत्र केवल इन्द्र) ।।" अत अङ्काना वामतो गति के अनुसार बाणाक्षि का साङ्केतिक अर्थ पच्चीस सख्या है । अक्षर शब्द का अर्थ वर्ण है प्रमित शब्द शब्द निश्चितार्थक है । अत 'बाणाक्षिप्रमिताक्षरम्" का अर्थ हुआ पच्चीस अक्षरो (वर्णो) से निश्चित (सीमित एवं प्रमाणित) अक्षरों वाला । इस श्रीरामद्वयमन्त्र मे-"श्री१ म२ द्रा३ म४ च५ न्द्र६ च७ र८ णौ९ श१० र११ णं१२ प्र१३ प१४ द्ये१५। श्री१६ म१७ ते१८ रा१९ म२० च२१ न्द्रा२२ य२३ न२४ म २५ ।।" ये पच्चीस अक्षर है । पुन बाण शब्द का साकेतिक अर्थ ५ सख्या इसके अनुमान प्रमाण के पञ्चावयव (प्रतिज्ञा-हेतु-उदाहरण-उपनय-निगमन) एवं पञ्चरूप (तानि पञ्चरूपाणि पक्षसत्वं, सपक्षसत्त्वं, विपक्ष व्यावृत्ति, अबाधित विषयत्व, असत्प्रतिपक्षत्त्वं चेति)।' का बोधक होने से अनुमान प्रमाण का बोधक है । इसी प्रकार अक्षि शब्द प्रति+अक्ष्ण=प्रत्यक्षम्' अथवा 'अक्षमक्षं प्रतीत्योत्पद्यते इति प्रत्य क्षम्" से यहाँ प्रत्यक्ष प्रमाण का बोधक है।अक्षि का साकेतिक अर्थ २ सख्या प्रत्यक्ष के लौकिक प्रत्यक्ष एव अलौकिक प्रत्यक्ष इन दो भेदो का बोधक है। यहाँ 'बाणाक्षि' का अङ्काना वामतोगति के अनुसार प्रथम् प्रत्यक्ष तव अनुमान-इस क्रम का निरूपण है। अक्षर पद शब्द प्रमाण का बोधक है । अत 'बाणाक्षिप्रमिताक्षरम्' का अर्थ हुआ कि यह श्रीरामद्वयमन्त्र 'त्रिधा प्रमाणमध्यक्षानुमानशब्दभेदत' के अनुसार प्रत्यक्ष-अनुमान-शब्ध इन सभी प्रमाणो से प्रमाणित है । इसी प्रकार इसका बाण पद-' धनुर्गृहीत्वौपनिषद महास्त्र, शर ह्युपासानिशितं सन्धयीत । आयस्य तद्भावगतेन चेतसा, लक्ष्यं तदेवाक्षर सोम्यविद्धि। प्रणवोधनु शरोह्यात्मा ब्रह्म तल्ल क्ष्यमुच्यते । अप्रमत्तेन वेधव्य शरवत्तन्मयो भवेत् ।। मु० २।२।३-४।' का बोधक और अक्षि पद-' न तु मा शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा । दिव्यं ददामि ते चक्षुपश्य मे योगमैश्वरम् ।।" मे कथित दिव्य चक्षु का बोधक है । इस प्रकार यह श्रीराम द्वयमन्त्र श्रीरामजी के ईश्वरीय रूपका साक्षात्कार करानेवाला है-इस तत्त्व का बोधक यह 'बाणाक्षिप्रमिताक्षरम्' पद है। इसके अतिरिक्त यह बाण पद इस श्रीराम द्वयमन्त्र की अमोघता [जिमि अमोघ रघुपति के बाणा] एवं भव वारिधि शोषण [लछिमन बाण सरासन आनू । शोषौ वारिधि विशिख कृशानु ।।] आदि तथा 'प्रत्यूहव्यूह भंगं रामशस्त्रोस्त्रसंघ ।' आदि का भी ज्ञापक है । अक्षि पद "राजीव नय धरे धनु शायक । भक्त विपत्ति भञ्जन सुखदायक ।।" आदि का बोधक है। इस द्वयमन्त्र के पच्चीस अक्षर अविनाशी है। अत इन्हे अक्षर (नित्य) शब्द से ज्ञापित किया गया है । पुन यह 'बाणाक्षिप्रमिताक्षर' अर्थात् पच्चीस अक्षर प्रमित पद पच्चीस तत्त्वों मे चौविस तत्त्वो से मुक्ति तथा पच्चीसवे तत्त्व ईश्वर की प्राप्ति का साधक है । ऐसा इसके मोक्षवाचक अक्षर पद से ज्ञापित है । प्रमित पद इस द्वयमन्त्र की प्रामाणिकता का निरूपक है ।

तु=यहाँ 'तु' पद पाद पूरण के अतिरिक्त श्रीरामद्वयमन्त्र के अवधारण (निश्चयी करण) के लिये भी प्रयुक्त है-'तु स्याद्भेदेऽवधारणे-अ को ३।३।२४२।'

खलु=यहाँ 'खलु' पद वाक्यालङ्कार के अतिरिक्त जिज्ञासा, अनुनय और संशय निषेध के लिये भी प्रयुक्त है-"निषेधवाक्यालङ्कार जिज्ञासाऽनुनये खलु अ को ३।३।२५५।"

विद्धि=यहाँ विद्धि [विद्ज्ञाने, विद विचारणे] क्रियापद ज्ञापनार्थ, ज्ञानार्थ एवं विचारणार्थ प्रयुक्त है। लोट् लकार से प्रश्नकर्त्ता जिज्ञासु श्रीसुरसुरानन्दाचार्यजी को एवं समस्त जिज्ञासु जगत् को जानने एवं विचारने [मनन करने] का परामर्श आज्ञा वा आदेश दिया गया है। लोट् लकार मध्यम पुरुष मे आज्ञा अथवा मृदुउपदेश वा मन्त्रणा के अर्थ मे प्रयुक्त होता है।

त्वं=यह युष्मद् सर्वनाम प्रत्यक्ष उपस्थित प्रश्नकर्ता श्रीसुरसुरानन्दाचार्यजी के व्याज से सभी मोक्षार्थी जीवो के लिये प्रयुक्त है।

दशार्थान्वितम्=दश पद संख्यावाचक है। अभिधेय, प्रयोजन आदि को अर्थ कहते है-"अर्थोऽभिधेयरैवस्तु प्रयोजन निवृत्तिषु-अ को- ३।३।८६।" साहचर्य, एकत्र स्थिति एवं तज्जन्य (सन्तान) को अन्वय कहते है-"साध्य साधनयो साहचर्यमन्वय (पदकृत्य) तत्सत्त्वे तत्सत्ता अन्वय। 'सन्तति गोत्र जनन कुलान्यभिजनान्वयौ, वंशोऽन्वय सन्तान (अ को २।७।१)" 'दशार्थान्वितम्' से श्रीरामद्वयमन्त्र के दश पदो-(१) श्री (२) मत् (३) रामचन्द्र (४) चरणौ (५) शरणं (६) प्रपद्ये (७) श्रीमते (८) रामचन्द्र (९) आय (१०) नम।" के अर्थो का बोध होता है, जिसका प्रतिपादन आचार्य चरण ने अग्रिम श्लोक २।२६-३१ मे इस प्रकार किया है-'सर्वाधीशेश्वर स्याप्तिर्हेतुरत्राभिधीयते। सीतापुरुषकारार्थो १श्रीत्यनेन पदेन तु॥ २मता पुरुषकारस्य नित्यसम्बन्ध उच्यते। ३रामचन्द्रेति पदतो वात्सल्यादि गुणस्य च॥ ४चरणावित्यनेनैव वात्सल्यादिकसीतयो। विलक्षणस्य दिव्यस्य विग्रहस्याश्रयस्य च॥ ५शरणेतिपदेनैवोपायस्तद्विग्रहो बुधै। उपायाध्यवसायस्तु ६प्रपद्य इति वर्ण्यते॥ प्राप्यं मिथुनमेवेति ७श्रीमते पदतो मतम्। ८रामचन्द्रेति पदत स्वामित्व प्रतिपाद्यते॥ ९विभक्त्यायेति पदत शेषवृत्तिर्महात्मभि। विरोधिनो निरासस्तु १०नम पदेन वर्ण्यते॥ २।२६-३१॥" इस प्रकार उक्त दश पदो एवं उनके कथित अर्थो मे साध्य साधन भाव एवं नित्यसाहचर्य तथा अभिव्यक्ति है। इसी प्रकार 'दशार्थान्वितम्' पद का तात्पर्य दश प्रकारक अर्थो से भी है-१ तात्पर्यार्थ, २ वाक्यार्थ, ३ प्रधानार्थ, ४ अनुसन्धानार्थ, ५ शब्दार्थ (अवयवार्थ और समुदायार्थ) ६ इष्टार्थ, ७ अभिधार्थ, ८ लक्षणार्थ, ९ व्यञ्जनार्थ, १० सङ्केतार्थ। इनमे प्रथम चार प्रकारक अर्थो (तात्पर्यार्थ वाक्यार्थ, प्रधानार्थ, अनुसन्धानार्थ) का प्रतिपादन स्वयं आचार्य चरण ने ही श्लोक ३२-३४ म इस प्रकार किया है-"तात्पर्यार्थोस्य विज्ञेय आचार्य रुचिसश्रय। वाक्यार्थोमन्त्ररत्नस्य त्वथ निर्णीयते बुधै॥ प्राप्य प्रापकसम्बन्धस्वरूपाभिनिरूपणम्। प्रधानार्थस्तु तद्युग्मकैङ्कर्यस्य प्रधानता॥ स्वदोषाभ्यनुसधानमनुसंध्यर्थ उच्यते। एवमेवानुसंध्येय मोक्षकामैरहर्दिवम्। २।३२-३४॥" पाँचवा 'शब्दार्थ' के सम्बन्ध मे भामह ने कहा है "शब्दार्थो सहितं काव्यम्।" "अनन्यलभ्य एव हि शब्दार्थ। छठे इष्टार्थ' के सम्बन्ध मे दण्डी ने कहा है "इष्टार्थ व्यवछिन्नापदावली।" सप्तम से नवम 'अभिधार्थ, लक्षणार्थ एवं व्यञ्जनार्थ' का निरूपण न्याय ग्रन्थो एवं काव्य शास्त्रो मे बहुत ही विस्तार के साथ किया गया है। दशमे 'सङ्केतार्थ' का प्रयोग ज्योतिष शास्त्रों, गणित शास्त्रो एव काव्यशास्त्रो मे द्रष्टव्य है। यह श्रीरामद्वयमन्त्र इन दश प्रकार के अर्थो से अन्वित है ऐसा इसके 'दशार्थान्वितम्' पद से ज्ञात होता

है। इसी प्रकार 'दशार्थान्वितम्' पद से काव्य के दश अर्थ गुण [श्लेप प्रसाद समता समाधि, माधुर्य ओज पद सौकुमार्यम्। अर्थस्य च व्यक्तिरुदारता च, कान्तिश्च काव्यस्य गुणा दशैते 'भरत' श्लेष प्रसाद श्लेष–समतो समाधि माधुर्य–सौकुमार्य–उदारताऽर्थव्यक्तिकान्तयो बन्धगुणा ।।वामन।।" "त एवार्थगुणा –वामन ।"] का बोध होता है। इसका थोडा सकेत यहाँ किया जाता है। श्रीरामद्वयमन्त्र मे राम के साथ चन्द्रपद का प्रयोग हुआ है। यह चन्द्र सम्वन्धी अनेक अर्थो का ज्ञापक है–"सज्जन सकृत सिधु सम कोई। देखि पूर विधु बाढइ सोई ।। प्रकटेउ जहँ रघुपति शशि चारु। विश्व सुखद खल कमल तुषारू ।। भगति सुतीय कल करण विभूषण। जगहित हेतु विमल विधू पूषण ।। रामचरित राकेश कर, सरिस सुखद सब काहु। सज्जन कुमुद चकोर चित हित विशेष बड लाहु ।। रामचन्द्र मुख चन्द्रछवि, लोचन चारु चकोर। करत पान सादर सुखद, प्रेम प्रमोद न थोर ।। हृदय अनुग्रह इन्दु प्रकाशा। सूचत किरण मनोहर हासा ।। भए मगन देखत मुख शोभा। जनु चकोर पूरण शशि लोभा ।। सहज विराग रूप मन मोरा। थकित होत जिमि चन्द्र चकोरा ।। इन्हहि विलोकत अति अनुरागा। वरवश ब्रह्म सुखहि मन त्यागा ।। अधिक सनेह देह भए भोरी। सरद शशिहि जिमि चितव चकोरी ।। 'आदि' इस प्रकार काव्यशास्त्र के दश अर्थ गुणो के परिप्रेक्ष्य मे किये गये अर्थो का निरूपक यह आचार्योपदिष्ट दशार्थान्वितम् पदहै।

युक्तम्=युक्तियुक्त नियमवद्ध–"युक्तमौपयिक लभ्यं भजमानाभिनीतवत् ।न्याय च त्रिपु पद्। अ को २।८।२४–२५।

तत्=श्रीरामद्वयमन्त्र की विशेषता बोधक सर्वनाम।

त्रिपदै=त्रिसख्यावाचक है। पद का अर्थ चरण एवं वर्ण (अक्षर) समूह होता है। इस रामद्वय मन्त्र के पूर्व मन्त्र (खण्ड) मे भी तीन पद–'१ श्रीमद्राम चन्द्रचरणौ, २ शरणं, ३ प्रपद्ये है एवं उत्तर मन्त्र (खण्ड) मे भी तीन पद–'१ श्रीमते, २ रामचन्द्राय, ३ नम' है सप्त पद से मैत्री [साप्तपदीन सख्यम्–पा० ५।२।२२] होती है एव त्रिपद से शरणागति। एक पग मे दो चरण होते है। शरणागति के प्रथम पग का दो चरण 'अनुकूलस्य सकल्प –प्रति कूलस्य वर्जनम्', द्वितीय पग का दो चरण 'रक्षिष्यतीति विश्वास –गोप्तृत्ववरण', तृतीय पग का दो चरण 'आत्म निक्षेपकार्पण्य' होता है। इस प्रकार त्रिपद शरणागति का बोधक है। इसे ही वेद भगवान् कहते है–'इन्द्र त्रिधातु शरणं त्रिवरूथं स्वस्तये। छर्दिर्यच्छ मघवद्भ्यश्च मह्यं च गावया दिद्युमेभ्य ।।सा० २६६।। अर्थात् हे परमेश्वर तीनोलोक अपने कल्याण के लिये आपके शरण मे है आप सभो के लिये प्रकाशमय स्वधाम (साकेत) प्रदान कीजिये।" परमेश्वर ने अपने तृतीय पद से वलि के शरीर को माप कर उसे अपना चरणाश्रित (शरणागत) किया था–"इद विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्। समूलमस्य पासुले ।। त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्य। अतो धर्माणि धारयन् ।। तद्विष्णो परमं पद सदा पश्यन्ति सूरय। दिवीव चक्षुराततम्। तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवास समिन्धते। विष्णोर्यत्परमं पदम् ।। ऋ० १।१२।१७–२१।। इसका भी स्मारक आचार्योक्त "त्रिपदै" पद है। क्योकि यह द्वयमन्त्र और ये वेद मन्त्र दोनो ही परात्पर ब्रह्म के चरणो की उपासना और चरणाश्रित होने के विषय के ही प्रतिपादक होने से इनमे एक विषयता है। "यस्य त्री पूर्णा मधुना पदान्य अक्षीयमाणा स्वधया मदन्ति। य उ त्रिधातु पृथिवीमुतद्याम् एको दाधार भुवनानि विश्वा ।। ऋ० १।१५४।४।।" भी इसी तत्त्व के ज्ञापक है। यदि त्रिपदै पद से यहाँ तीन प्रकारक वाक्य का ही आग्रह किया जाये तो 'त्रिपदै' के द्वारा–"चत्वारि वाक्परिमितानि पदानि

तानि विदुर्ब्राह्मणाये मनीषिण । गुहा त्रिणि निहितानेगयंति पदानि तानि विदु ब्राह्मणा ये मनीषिण । गुहा त्रिणि निहितानेगयति तुरीयं बाचो मनुष्या वदन्ति ॥ ऋ १।१६४।४५।।" मे प्रोक्त गुहास्थित पदो का सङ्केत है। एव-'तिस्रो वाच ईरयति प्र ब्रह्निरृ तस्य धीति ब्रह्मणो मनीषाम् । गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमाना सोमं यन्ति मतयो वा वशाना ॥ सो० ५२५।।" का भी बोधक है।

सुमते=सुमते का अर्थ है-हे सुन्दर बुद्धिवाले। यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से यह पद जिज्ञासु श्रीसुरसुरानन्दाचार्यजी के लिये प्रयुक्त हुआ है। तथापि अप्रत्यक्ष रूपसे इसका सङ्केत मन्त्र के अधिकारी के निरूपण मे है। सुन्दर विचार (मति) वाले ही इस मन्त्र के अधिकारी है। दुष्ट विचारवाले अश्रद्धालु व्यक्ति नही "तमुस्तोतार पूर्व्य यथा विद् ऋतस्य गर्भ जनुषा पिपर्तन। अस्य जानन्तो नाम चिद् विवक्तन महस्ते विष्णो सुमति भजामहे ॥ऋ० १।१५६।३।।"

पूर्वम्=यह पूर्वपद क्रम निरूपक है और श्रीरामद्वयमन्त्र के पूर्व वाक्य [श्रीमद्रामचन्द्र चरणौ शरणं प्रपद्ये] के लिये प्रयुक्त हुआ है। यह पूर्व पद आगे कहे जानेवाले उत्तर पद का पूर्वा पर आनुपूर्वी सम्बन्ध बोधक परस्परापेक्ष है। उत्तर पद के साथ सगति, सामञ्जस, समन्वय एवं एक वाक्यताद्योतन के लिये यह पूर्वम् पद यहाँ व्यवहृत हुआ है। पुन 'पूर्व' पद 'उत्तर' पद के साथ मिलकर द्वयमन्त्र का वाक्य विभाजन और द्विविभागत्व स्थापित करता है। न्यायशास्त्र मे पूर्व और उत्तर पद क्रमनिर्देश के अतिरिक्त प्रश्नोत्तर निरूपक भी है।

शुभस्य=शुभ का अर्थ परमकल्याण या मोक्ष है-"श्व श्रेयस शिवं भद्रं कल्याणं मङ्गल शुभम्। अ को १।४।२५।" शुभस्य का अर्थ हुआ कल्याण (मोक्ष) का।

आस्पदम्=आस्पदम् का अर्थ है स्थान देने वाला-"प्रतिष्ठा कृत्यमास्पदम् अ को ३।३।९४।" शुभस्यास्पदम् का अर्थ हुआ मोक्ष पद देनेवाला।

वाक्यम्=अर्थ प्रतिपादन द्वारा अन्य पदों अथवा अन्य अर्थो के विषय मे श्रोता की आकाक्षा को उत्पन्न करनेवाले और प्रतीयमान स्पष्टरूप से परस्पर अन्वययोग अर्थ के प्रतिपादक सन्निधियुक्त पदों का समूह वाक्य कहलाता है-"अर्थ प्रतिपादन द्वारा श्रोतु पदान्तर विषयामर्थान्तर विषया वा काङ्क्षा जनयतां प्रतीयमान परस्परान्वययोग्यार्थ प्रतिपादकाना सन्निहितानां पदाना समूहो वाक्यम्। त भा ॥"

पञ्चदशाक्षरम्=पञ्चदशाक्षरम् का अर्थ पन्द्रह अक्षर-'१श्री २मत् ३रा ४म ५चं ६द्र ७च ८र ९णौ १०श ११र १२णं १३प्र १४प १५द्ये।" यदि 'वाक्यंपञ्चदशाक्षरम्' का विग्रह 'वाक्य पञ्च' एवं 'दशाक्षरम्' किया जाये तो वाक्यं पञ्च का अर्थ हुआ-'१ श्री शरण प्रपद्ये, २ मत् शरणं प्रपद्ये, ३ राम शरणं प्रपद्ये, ४ चन्द्र शरणं प्रपद्ये, ५ चरणौ शरणं प्रपद्ये,।" एवं दशाक्षरम् का अर्थ इस वाक्य मे प्रयुक्त पन्द्रह अक्षरो मे दश अक्षर क्योंकि इसमे म, र, और ण दो दो वार आये है। अत वास्तविक अक्षरो की संख्या दश ही है।

तद्=यह सर्वनाम श्रीरामद्वयमन्त्र के लिये प्रयुक्त है।

अनु=अनु का अर्थ पश्चात्, सादृश्य, लक्षण, तत्त्वाख्यान, भाग, वीप्सा लम्वाई और वितर्क होता है। यहाँ अनुपद पश्चात् के साथ ही पूर्व वाक्य से सादृश्य के अर्थ मे भी प्रयुक्त है।

दिग्वर्णात्मकम्="दिशस्तु ककुभ काष्ठा आशाश्च हरितश्चता। अ को १।३।१ दिक् का साङ्केतिक अर्थ दश है। क्योकि दिशाये दश प्रसिद्ध हैं। इस श्रीरामद्वयमन्त्र का उत्तर वाक्य

दश अक्षरो वाला [१श्री२म३ते ४रा५म ६च७द्रा८य ९न १०म] है। उक्त कोशवाचनानुसार यदि दिक् को ककुभ (ककुभोर्जुन) धवल का वाचक माना जाये तो दिग्वर्णात्मकम् का अर्थ होगा धवल वर्ण (अक्षर) अर्थात् भास्वर वर्ण वाला, यदि काष्ठा (काष्ठोत्कर्षे स्थितौ) का वाचक माना जाये तो अर्थ होगा उत्कर्ष वृद्धि एवं मर्यादा देनेवाला, यदि आशा का वाचक माना जाये तो अर्थ होगा आशा मनोरथ पूर्ण करनेवाला यदि हरित का वाचक माना जायतो अर्थ होगा हरियाली (खुशी याली) लानेवाला या हरि (श्रीराम) को प्राप्त करानेवाला।

तु=यहाँ भी 'तु' पद पादपूरणके अतिरिक्त अर्थावधारणके लिये भी प्रयुक्त है। प्रथम वाक्यके लिये एक 'तु' पद पहले प्रयुक्त हो चुका है और यह तु पद उसीप्रकार दूसरे वाक्यके अर्थावधारणके लिये प्रयुक्त हुआ है।

उत्तरम्=उत्तर शब्दका अर्थ उत्तरदिशा, श्रेष्ठ, प्रतिवाक्य (जवाब), पश्चात् आदि होता है। यह उत्तर पद द्वितीय वाक्य-'श्रीमतेरामचन्द्रायनम'के लिये प्रयुक्त हुआ है जो इसका सम्बन्ध पूर्ववाक्य-'श्रीमद्रामचन्द्रचरणौशरणंप्रपद्ये'के साथ प्रतिपादित करता है तथा दोनों वाक्योंके आनुपूर्वीको निरूपित करता है। प्रथम वाक्य 'श्रीमद्रामचन्द्रचरणौशरणप्रपद्ये' सकल्प (सकल्पकर्ममानसम्) वाक्य है और द्वितीयवाक्य-'श्रीमतेरामचन्द्रायनम' क्रियात्मक वाक्य। प्रथम वाक्य केवल मन अथवा मन और वचन का ही व्यापार है, जबकि द्वितीय वाक्य मन, वचन और शरीर-इन तीनोका व्यापार। इसप्रकार पूर्व वाक्यमे सकल्प बतलाया गया है और उत्तर वाक्यमे उस सकल्पका कर्म। प्रथम सिद्धान्त है और दूसरा व्यवहार। अत दोनोमे नित्य साहचर्य्य, अपृथक् सिद्धि सम्बन्ध (व्याप्ति) परस्परापेक्षित्व, पूरकत्व एवं एकत्वज्ञापनके लिये यहाँ पूर्व' एव 'उत्तर' पदोंका व्यवहार हुआ है। दोनो ही एक ही सूत्रमे ग्रथित है तथा दोनो हीमे एक तानता और एक वाक्यता है। दोनोही एक ही मन्त्रके अङ्ग है। सामवेदके पूर्वार्चिक एवं उत्तरार्चिक भागोके समान यहाँ पूर्व और उत्तर पदका प्रयोग है। जिसप्रकार सामवेदके पूर्वार्चिकसिधान्तभाग (दैवतकाण्ड) अर्थात् ज्ञानात्मक तथा उत्तरार्चिक क्रियाभाग (सूक्त) अर्थात् उपासनात्मक या कर्मोपयोग है, उसी प्रकार श्रीरामद्वयमन्त्रको भी पूर्वभाग सकल्प (ज्ञानात्मक) तथा उत्तरभाग क्रिया (कर्म और उपसना) परक है। जिसप्रकार पूर्वमीमासामे ज्ञानका प्रतिपादन है। उसीप्रकार पूर्ववाक्यम ज्ञान एवं उत्तर वाक्यमे कर्म (उपासना कर्म) का निरूपण है। पूर्व और उत्तर पदोसे प्रश्न और उत्तर उत्तर अर्थका आग्रह करने पर पूर्वसकल्पवाक्य मनोद्भूतप्रश्नरूप एवं उत्तर क्रियावाक्य उसका उत्तररूम सिद्ध है। यदि पूर्व और पदोसे दिशा अर्थका भी आग्रह किया जाये तो पूर्व और उत्तर दिशाओकी सन्धिस्थानका नाम ईशान (दिशा) है जो श्रीरामद्वय मन्त्रकेपूर्व एव उत्तरवाक्योकी सन्धि (योगसे "ईशान मस्यजगत सा० ६८०" का प्रतिपादक होनेसे वह भी सिद्ध हो जाता है।

इस प्रकार श्रीरामद्वयमन्त्र अनेक रहस्योका समुद्र है। इसका सतत मनन करते रहना चाहिए। इस लघु लेखमे इस मन्त्रपर प्रकाश डालना 'खोजहि भानु दीप कर लिन्हे, के ममान हास्यास्पद है अस्तु 'थोडेहिमे जानिअहि सयाने' कहकर विश्राम लेता हूँ।

ॐ श्रीराम शरणं मम। ॐ

卐 द्वयमन्त्र व्याख्या 卐

[ले० वैदेहीकान्त शरण]

मन्त्र–श्रीमद्रामचन्द्र चरणौ शरणं प्रपद्ये। श्रीमते रामचन्द्राय नम ॥

व्याख्या–श्री "श्रीर्वेशरचनाशोभाभारतीसरलद्रुमे । लक्ष्म्यात्रिवर्गसम्पत्ति विधोपकरणेषु च ।
विभूतौ च मतौ च स्त्री स्त्र स्त्रियानिज्झ रेस्नवे ॥मे०॥"
"लक्ष्मी पद्मालयापद्माकसला श्रीर्हरिप्रिया ॥अ को ॥
श्रीश्चतेलक्ष्मीश्च (शु य ३१)"
श्रीरितिलक्ष्मीरितिलक्ष्यमाणाविज्ञायते ॥ सितोपनिषद् ॥
"इच्छाज्ञानक्रियाशक्तित्रयंयद्भावसाधनम् । तद्ब्रह्मसत्तासामान्य सीतातत्त्वमुपास्महे ॥
"श्रीभूमिनीलात्मिका भद्ररूपिणी ।" सीतोपनिषद् ।
"अचलानिश्चलालक्ष्मी श्रीपद्मानगशायिनी ॥ श्रीजानकीसहस्रनाम। ।

आचार्य चरण कहते है–"सर्वाधीशेश्वरप्राप्तिर्हेतुरत्राभिधीयते ।
सीतापुषकारार्था श्रीत्यनेनपदेनतु ॥" (२।२६)

अर्थात् श्रीपदसे सर्वाधीश्वर श्रीरामके प्राप्तिका हेतु (कारण) पुरुषकार (अनुशसा=सिफारिश करनेवाली) सीताजीका निरूपण किया गया है । कहा जाता है कि–"विना पुरुष कारेण दैवं न सिद्ध्यति"–बिना पुरुषकारके देवता सहायता नही करते है । अत श्रीरामजीकी प्राप्तिके लिये तदनुकूल साधन अनिवार्य है । साधनमेतुल्ययोगिता होनी चाहिए–सम समेन लभ्यते । अत श्रीरामजीकी प्राप्तिका साधन उनकी पराशक्तिरूपा श्रीपदवाच्या श्रीसीताजीकी अनिवार्यता है । अत इसी प्रयोजनके लिये श्रीपद की योजना द्वयमन्त्र अपरपर्याप शरणागति मन्त्रमे कीगयी है एवं सर्वप्रथम कीगयी है । यह पूर्वत्व "अन्यथासिद्ध नियतपूर्ववर्तीत्वं कारणत्वम्" का ज्ञापक एवं श्रीरामप्राप्ति कार्यका कारणत्वका प्रतिपादक है । रामार्चनपद्धतिमे इसीलिये आचार्यचरणने प्रथम श्रीसीताश्रीकी शरणागतिका ही निरूपण किया है–श्रीभगवद्रामचन्द्राभिमतानुरूप स्वरूप विभवैश्वर्य शीलाद्यनवधिकाशयासंख्येय कल्याण गुणगणां पद्मवनालया पद्मानना पद्मदलायताक्षी नित्यानपायिनी भगवती निरवद्या श्रीसीता श्रीरामदिव्यमहिषीमखिलजगन्मातरमशरण शरण्यामनन्यशरणंशरणमहंप्रपद्ये ॥"

मत्=यत् मतुप् प्रत्यय श्रीसीताजीका श्रीरामजीके साथ नित्य योग एव सम्बन्ध ज्ञापनके लियेहै–
"भूय निन्दाप्रशंसासु नित्ययोगेऽतिशायने । सम्बन्धेऽस्ति विवक्षाया भवन्ति मतुबादय ॥"

आचार्य चरण कहतेहै–"मतापुरुषकारस्य नित्यसम्बन्ध उच्यते" अर्थात् 'मत्' पदसे पुरुषकार (श्रीसीताजी)का श्रीरामजीके साथ नित्य सम्बन्ध त्रिकालाबाधित अविच्छेद्य सम्बन्धका प्रतिपादक है। सिफारिश (अनुशंसा) का अधिकार किसी सम्बन्धसे ही होता है। श्रीसीताजीका श्रीरामजीके साथ नित्य सम्बन्ध है । इस कारणसे उनकी बातोकी मान्यता अबाध (नित्य) है ।

रामचन्द्र=आचार्यचरणनेकहा है–"रामचन्द्रेतिपदतो वात्सल्यादि गुणस्य च" अर्थात् रामचन्द्र पदसे श्रीरामजीके साथ वात्सल्यादि गुणका नित्य सम्बन्ध कहा गया है। पाल्यपालकभावको वत्सल कहते है–"पाल्यपालकभावेन सावत्सलरतिर्भवेत् ।" 'आदि' पदसे भगवान्‌के असंख्य दिव्यगुणोंका ग्रहण है । यहाँ सर्वाधिक महत्त्वपूर्णज्ञापनके लिये केवल वात्सल्यका ही स्पष्ट कथन है एवं शेषको 'आदि' पदसे अस्पष्ट इङ्गितमात्र करदिया गया है ।

चरणौ=भगान्के सभी अङ्गोकी महिमा अद्वितीय है। परन्तु दीनों और शरणागतोंके लिये सर्वोपरि महिमा चरणोंकी ही है। कहा है-"भजु मन रामचरण सुखदाई। जिन चरणोंकी चरण-पादुका भरत रहे लौ लाई॥ जिन चरणन केवट धोई लिन्हा तब प्रभुनाव चढाई॥ जिन चरणनसे निकसी सुरसरी शंकर जटा समाई ॥आदि॥" सूरदासजीने भी कहा है-"चरण कमल बन्दौ हरिराई। जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै अधेको सब कुछ दरसाई। बहिरौ सुनै मूक पुनि बोले रक चलै शिर छत्र धराई॥ सूरदास स्वामी करुणामय बारबार वन्दौ हरिराई॥" अखिल लोगोंका उद्धारक भगवान् के चरणो का जल (चरणामृत) ही है। वेद भगवान भी उनके चरणो के दर्शन की कामना करते है-तद्विष्णो परम पदं सदापश्यन्ति सूरय । दिवीव चक्षुराततम् ॥ ऋ १।२२" अत चरणो की ही शरण मे जाने की काक्षा से 'चरणौ शरण प्रपद्ये" कहा गया है। आचार्य चरण ने इसीलिये आगे "नमो नम कारुणिकाय तुभ्यं पादाब्ज युग्मे तव भक्तिरस्तु।" मनो मिलिन्दस्तव पाद पंकजे" से चरणो की स्तुति का उपदेश दिया है। इस शरणागतिमन्त्र का मुख्य आश्रय चरण ही है। आचार्य चरण कहते है-"चरणौवित्यनेनैव वात्सल्यादिकसीतयो । विलक्षणस्य दिव्यस्य विग्रहस्याश्रयस्य च॥" अर्थात् चरणौ पद से वात्सल्यादिदिव्यगुण, श्रीसीताजी, तथा शरणागति का श्रीरामजी के साथ विलक्षण सम्बन्ध का वर्णन किया गया है।

शरणं=शरणं गृहरक्षित्रो अ को ३।३।५३' "शरणं गृह रक्षित्रो वध रक्षणयोरपि।मे०।"

रक्षा के स्थान एवं रक्षा के आश्रय को शरण कहते है। गीता मे भगवान् ने शरण ग्रहण करने का उपदेश दिया है और भगवान् को ही शरण कहा गया है—

"गतिर्भर्ता प्रभु साक्षी निवास शरणं सुहृत्। प्रभव प्रलय स्थान निधानं बीजमव्ययम्॥९।१८॥
ईश्वर सर्वभूताना हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥१८।६१।
तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत। तत्प्रसादात्परा शान्ति स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥१८।६९
सर्वगुह्यतमं भूय शृणु मे परम वच। इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम्॥१८।१४
सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। अहं त्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि माशुच॥१८।६६

श्वेताश्वतरोपनिषद् मे भी शरणागति का ही उपदेश है-

'यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदाश्च प्रहिणोति तस्मै।
तं ह देवमात्मबुद्धि प्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमह प्रपद्ये॥" इति

इसका तात्पर्य आचार्य चरणने इस प्रकार वर्णन किया है "अहं तं ह्यात्मबुद्धिप्रकाश स्वविषयक बुद्धिप्रकाशकं देव ब्रह्मेशानादिसर्वपूज्यं भगवन्त श्रीरामंशरणंप्रपद्ये "सकृदेवप्रपन्नाय तवास्मीति चयाचते। अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम" इति भगवच्छ्रीरामोक्त्याभगवच्छ्रीरामप्रपत्तेरेवसर्वाभयनिदानत्वात्सर्वेश्वरश्रीराममेवशरणमहंप्रपद्ये। उक्ता च सकृद्रामप्रपत्यैवपरधामावाप्तिर्जगद्गुरुभि श्रीचिदानन्दाचार्यैर्न्यासकलानिधौ "नावाप्यते पर धामतपोयोगसमाधिभि। सकृद्रामप्रपत्त्यैव प्राणिभि प्राप्यते हि तत्" इति ततो भगवच्छ्रीरामप्रपत्तिरेवमोक्षार्थं विधेया मुमुक्षुभिरितिभाव"—(आनन्दभाष्यम्)

वेदों मे भी शरणागति का उपदेश है—

"पुरुत्वा दाशिर्वा वोचेऽरिरग्ने तव स्विदा। तोदस्येव शरण आ महस्य॥
ऋ० १।१५०।१=सा० ९७॥"

इस प्रकार सर्वत्र शरण को ही उपाय रूप कहा गया है। आचार्य चरण कहते हैं-"शरणेति

पदेनैवोपायस्तद्विग्रहो बुधै" अर्थात् शरण पद से उस शरण को विशेपरूपसे ग्रहण को विद्वज्जन ने उपाय कहा है। 'बुधै' पद से इसकी प्रामाणिकता का निरूपण ही नही अपितु श्रेष्ठत्व का भी प्रतिपादन है।

प्रपद्ये=प्र उपसर्ग पूर्वक पद गतौ धातु से निष्पन्न प्रपद्ये शब्द का अर्थ प्रकर्ष रूप से शरण मे जाता हूँ एवं शरण की प्राप्ति करता हूँ-इस सकल्प वा निश्चय है। आचार्य चरण कहते हैं 'उपायाध्यवसायस्तु प्रपद्य इति वर्ण्यते", अर्थात् पपद्ये पद से उस उपायरूप शरणागति की प्राप्ति के अनुकूल व्यापार अध्यवसाय (उद्यम वो प्रयत्न) का वर्णन है।

श्रीमते=श्री एवं मत् की व्याख्या ऊपर की जा चुकी है। उक्त प्रकार श्री(सीता)जी वाले रामजी के लिये यह नमस्कार (समर्पण) होने से यहाँ श्रीमते कहा गया है। आचार्य चरण कहते है-"प्राप्यं मिथुनमेवेति श्रीमते पदतो मतम्" अर्थात् श्री मते पद से श्रीसीताजी एवं श्रीरामजी दोनो प्राप्य है कहा गया है।

रामचन्द्र=श्रीरामजी जगत् के स्वामी है। आचार्य चरण ने आगे कहा है-"जगत्पते श्रीश जगन्निवास प्रभो जगत्कारण रामचन्द्र (५।१५)" अत इस शरणागति मन्त्र (द्वयमन्त्र) के प्रकरण मे कहा है-"रामचन्द्रेति पदत स्वामित्वं प्रतिपाद्यते" अर्थात्-रामचन्द्र पद से उनके स्वामित्व का प्रतिपादन है।

आय=जिस पुरुप के उद्देश्य से कोई कार्य किया जाता है अथवा क्रिया के द्वारा जो अभि-प्रेत हो उसमे यह चतुर्थी विभक्ति होती है-'कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्-पा० १।४।३२", क्रियया यमभिप्रैति सोऽपि सम्प्रदानम् (वा०)" यहाँ नम क्रिया द्वारा राम को ही सन्तुष्ट करना है। अत उसमे चतुर्थी विभक्ति 'आय' का प्रयोग हुआ है। आचार्यचरण कहते है-"विभक्त्या-ऽऽयेति पदत शेष वृत्तिर्महात्मभि।" अर्थात् महात्मालोग आयविभक्ति से शेषवृति (सेवावृत्ति) के आचरण का वर्णण करते है।

नम=नम का अर्थ नमस्कार करना है-"नमो नतौ अ को ३।४।१८।" आचार्य ने आगे नमस्कार की विधि वतलायी है-

"उर शिरोदृष्टिमनोवच पदद्वयप्राजत्करयुग्मजानुभि।
अष्टौ क्षितौ तं प्रणमेदथाष्टभिर्दीर्घं तथैतैं कृतधीश्च दण्डवत्॥" (५।१७) नम पद का अनेक अर्थ आचार्य चरण ने पडक्षरमन्त्र के प्रकरण मे 'पदेन तेनात्र श्लो० २।१७' से 'उपायस्य श्लो० २।२१' मे बतलाया है, जिसमे अन्त मे मकार का अर्थ-'स खण्डेन मकारेण षष्ठ्यन्तेन विरोधिन" अर्थात् विरोधी का स्वरूप कहा है। उसी अर्थ का यहाँ ग्रहण करते हुये आचार्य चरण कहते है-"विरोधिनो निरासस्तु नम पदेन वर्ण्यते "अर्थात् नम पद से प्राप्ति विरोधियो का निरास का प्रतिपादन है।

इस द्वय मन्त्र का तात्पर्यार्थ आचार्य की रुचि के अनुकूल व्यापार करना है, वाक्यार्थ प्राप्य प्रापक के सम्बन्धी स्वरूप का निरूपण है, प्रधानार्थ श्रीरामजी एवं श्रीसीताजी के कैङ्कर्य की प्रधानता है एवं अनुसन्धानार्थ मोक्ष की इच्छावाले को अपने दोषो का अनुसन्धान करना है।

उक्त द्वय मन्त्र का निरूपण वेदो मे इस प्रकार है—

"वाचमष्टापदीमहं नवस्रक्तिमृतावृधम्। इन्द्रात् परितन्व ममे॥ ऋ० ८।७६।१२=अथर्व० २०।४२।१

मैं आठ पद और नव प्रकार की वाणी को परमेश्वर से पूर्णतया प्राप्त करता हूँ।

इस द्वय मन्त्र मे आठ पद है-१ श्रीमन् २ रामचन्द्र ३ चरणौ, ४ शरणं, ५ प्रपद्ये, ६ श्रीमते, ७ रामचन्द्राय, ८ नमः । एवं इसमे नव प्रकार है इसके नव रस वा नव प्रकार अर्थ। यह नव शब्द सख्याबोधक एव नवीनता बोधक (क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूप रमणीयताया) भी है। इससे नव (नित्यनवीन भाव एव अर्थ तथा नव सख्या प्रकारक अर्थ) निर्गत होता है। उक्त आठ पदो मे से प्रथमपद 'श्रीमत्' के श्री और मन् का विश्लेषण या विस्तारकर देने से नव प्रकार का अर्थ निर्गत होता है। अत 'नवस्त्रक्तिमृतावहम्' कहा गया है।

यहाँ शङ्का सशय वा आक्षेप हो सकता है कि आचार्य चरण ने तब "षट्पद, दशार्थान्विनम्" क्यो कहा? उक्त वेद मन्त्रोपदेश से आचार्य चरण के कथन मे विरोध होता है। परन्तु यह शका भ्रान्त है।

जिस प्रकार रसों की सख्या नव प्रसिद्ध है—

"श्रृङ्गारहास्यकरुण रौद्रवीर भयानका। विभत्सोऽद्भुत इत्यष्टौ रसा शान्तस्तथा मत ॥" सा० ६।३।१८

तथापि दशम रस वात्सल माना गया है—

"स्फुटं चमत्कारितया वत्सल च रसं विदु। सा द ३।२५१।"

इतना ही नही श्रीरूप गोस्वामीजी ने मधुर को अलग रस माना है। फिर भी इससे नव रस की प्रसिद्धि से कोई विरोध नही है। कणाद ने छ पदार्थ कहा है और परवर्ती शिवादित्य आदि सप्त पदार्थ कहते है और कणाद से अविरोध बतलाते है।

इसी प्रकार आचार्य वचन का भी उक्त वेद वचन से अविरोध ही है। इसी प्रकार आचार्य चरण द्वारा आगे कहे जाने वाली 'आत्मार्पणं सा नवधेति गीयते-श्लो० ४।१४" के आत्मार्पण (शरणागति) रूप नवम रूपवाली भक्ति के अन्वय इस द्वय मन्त्र मे होने से इसका अन्वय उक्त वेदमन्त्र 'नवस्त्रक्तिमृतावृधम्'' के साथ है।

यदि उक्त 'वाचमष्टपदीमह' का तात्पर्य 'अष्टौ यत्र प्रयुज्यन्ते नानार्थेषु विभक्तय ।' यह माना जाये तो भी इसका तात्पर्य शरणागति ही इस प्रकार बनेगा—

"रामो राजमणि सदा विजयते रामं रमेशं भजे, रामेण निहिता निशाचरचमू रामाय तस्मै नम ।
रामात् नास्ति परायणं परतर रामस्य दासोस्म्यहम् रामे चित्तलय सदा भवतु मे भो राम मामुद्धर॥"

अथवा-श्रीराम शरण समस्तजगता, रामं विना का गती, रामेण प्रतिहन्यते कलिमलं रामाय कार्यं नम ।
रामात्त्रस्यतिकालभीमभुजगो, रामस्य सर्वंवशे, रामे भक्तिरखण्डिता भवतु मे रामत्वमेवाश्रय ॥स्क०पु०

वेदो मे स्पष्ट शब्दो मे द्वयमन्त्र की चर्चा है—

"यो नो अग्ने अररिवाँ अघायुररातीवामर्चयति द्वयेन ।
मन्त्रो गुरु पुनरस्तु सो अस्मा अनु मृक्षीष्ट यन्वं दुरुक्तै ॥
उत वा य सहस्य प्रविद्वान्सर्तो मर्तं मर्चयति द्वयेन ।
अत पाहिस्तवमान स्तुवन्तमग्ने माकिनो दुरितायधायी ॥ऋ० १।१४७।४-५॥"

꧁ दिव्य संदेश ꧂

(श्रीशेषमठाधीश स्वामी श्रीरघुवराचार्यजी महाराज वेदान्तकेसरीतर्क वेदान्ततीर्थ व्याकरणाचार्य न्याय-मीमासोपाध्याय, वेदान्तशिरोमणि, दर्शन निधि, शीगडा (पोरबन्दर राज्य) का)

[सन्त पत्र वर्ष ३ अक ४ मे श्रीजनकपुर धाम निवासी "श्रीवैष्णव" साहित्य धुरिण स्वामी श्रीअवधकिशोरदासजी नामके किन्ही महात्मा का "भगवत्सम्बन्ध" शीर्षक एक लेख छपा है। यह लेख बहुतही मार्मिक और सुन्दर है। प्रतिपादन शैली क्रमबद्ध और विद्वत्ता पूर्ण है। ऐसे लेखों से इष्टस्मरण मे दृढता होती है। अत आप उक्त महात्माजी को इसे अथवा इसी प्रकार के लेखों के लिखते रहने के लिये प्रोत्साहित करे। भवदीय—श्रीरघुवराचार्य]

❁ भगवत्सम्बन्ध ❁

(ले० साहित्य धुरीण, पं० स्वामी श्रीअवधकिशोरदासजी श्रीवैष्णव प्रेमनिधि
श्रीरामानन्दाश्रम, श्रीजनकपुर धाम नेपाल)

यावच्छ्रीराम सम्बन्धे दृढा प्रीतिर्न जायते।
तावद् भ्रमति ससारे दुस्तरे बहुदु ख भाक्। हनुमत्संहिता ६।१०

"जबतक भगवान् श्रीरामके साथ सम्बन्ध ज्ञान पूर्वक दृढ प्रेम न
ही होता तबतक दु खमय दुस्तर संसार मे भटकना पडता है।"

इसीलिये रस तत्ववेत्ता महात्माओने भगवत्सम्बन्धी भावुक भक्तो को भगवदीय मानकर उनकी श्रेष्ठता के गीत गाये है। शास्त्रकारो ने तो यहाँ तक कहा है कि—

ज्ञानं योगस्तथोदानमिष्टापूर्त्त व्रतं तथा। वैराग्य निष्फलं चैव भक्ति सम्बन्ध वर्जितम्॥

हठानुराग श्रीरामे संबन्धैश्च विना नहि। भवेत्कदाचिल्लोकाना सत्यसत्यं वदाम्यहम्॥
(हनु० सं० ६।११ १४)

ज्ञान—योग—तप—दान इष्टा पूर्ति—व्रत—वैराग्य आदि सबकुछ भगवत्सम्बन्ध विनानिस्फलही है। सम्बन्ध ज्ञानबिना लोकों को प्रभु श्री राम के चरणों मे कदाचिदपि दृढस्नेह नही हो सकता यह सत्य २ कहता हूं।" लोक व्यवहार मे भीदेखा जाता है कि जब तक किसीके साथ कोई खास नाता रिस्ता नही जुटता है तबतक उनकागाढ स्नेह नही होता जितनाकि नातेदारी हो जाने के बाद होताहै। इसलिये —

यथा बद्धो भवेन्मूर्खो मिथ्या सम्बन्ध बन्धनै। तद्वद्विज्ञो भवन्मुक्तो दिव्य सम्बन्ध ज्ञानत॥

जैसेमूर्ख संसारिक मिथ्या सम्बन्ध बन्धनों मे बंधकर कष्ट भोगता है वैसेही विद्वान् भगवत्सम्बन्ध ज्ञान से दिव्य देह पाकर संसारिक बन्धनो से मुक्त होजाता है। आचार्य के परम अनुग्रह से जब भगवत् संबन्धज्ञान प्राप्त होता है, तब उसको भगवान श्री जानकी नाथ के चरणों मे अविरल भक्ति होती है और वह भगवत्प्रिय बन जाता है। भक्तिके पाच रसों मे किसी भी एकरस मे अनन्य निष्ठ होकर भगवान् के साथ नाता जोड लेना भगवत्संबन्ध है यह नाता पुरुषकार (आचार्यकृपा) विनादृढ नही होता इसी लिये शास्त्र कार आचार्य अनुकम्पा सिद्ध भावना को ही दृढ भक्ति मानते है भगवान के साथ किसी भी प्रकार का सम्बन्ध होजाना जीव कल्याण का भण्डार है श्रीमद् गोस्वामी तुलसीदासजी ने—

मोहि तोहि नाते अनेक मानिये जो भावे। ज्यो त्यो तुलसी कृपालु चरण शरणपावे ।। (विनय-पत्रिका)

कहकरपंचरसो की श्रेष्ठता दिखलायी है, परन्तु सर्व प्रथम रस तत्वों को जानकर रसोपासना मे प्रविष्ट होना अधिक उत्तम है, क्यो कि "यहरस ठीक होगा कि वह" इसप्रकार कि ऐचातानी मे स्वरूपस्थिति प्राप्त करना असम्भवहै। हनुमत सहिता के छठे अध्याय मे इसका सुन्दर विवेचन है। रस जिज्ञासु ओ को वह प्रकरण देख लेना चाहिये। यह हुआ शास्त्रीय विवेचन हमे भक्ति शास्त्रों का उपदेश है और हम भक्ति मार्ग पर चलना चाहते है तो भगवत्संबन्धज्ञान प्राप्तकर लेना हमारा कर्तव्य होगा और एतदर्थ भगवद्रस रसिक परम भागवत आचार्य चरणो की उपासना कर के भगवत्तत्व समझना होगा, तभी हमारी स्वरूपस्थिति होगी अन्यथा साधनान्तर प्रयोजनातर और सम्बन्धान्तर जो भगवत्प्राप्ति के प्रवल प्रत्यवाय (विघ्न) है उनके पञ्जे से छूटना नितान्त असम्भव है।

सम्बन्धज्ञानकी आवश्यकता

स्थूल-सूक्ष्म और कारण देह आत्मा को सुख दु ख मय प्रपच मे डाले रहते है जबतक इस तीनो से पर दिव्य देह का ज्ञान प्राप्त नही होता तवतक स्वस्वरूप प्रकाशित नही होसकता, इसी लिये शास्त्रकारो ने नियम बनाया है कि —

' देह त्रय विनाशं च कृत्वादौ गुरुवक्त्रत ।

पहले श्री गुरु वचनों द्वारातीनो देहो का अभिमान छुडाकर तबजीव को भगवत्सम्बन्ध का अधिकारी बनायाजाता है। स्थूल और सूक्ष्म शरीर नष्ट हो जानेपर भी वासना मय कारण शरीर जवतक नष्ट नही होता तवतक शान्ति प्राप्त नही होती, यही बीज शरीर है यह फिर भी नानादेह निर्माण करलेता है। उस वासना मय कारण शरीर का नाश सद्गुरु कृपा विना नही होसकता तभी तो सन्त तुकारामजी कहते है —

"सन्त चरण रज लागता सहज वासना चे वीज जलोने जाये" सन्त चरण रज लगते ही वासना ओ के बीज जलकर खाक हो जाते है तब उस विशुद्ध क्षेत्र मे आचार्य दिव्यस्वरूप का बीज बोते है। मानस शास्त्र का सिद्धान्त है कि मलिनवासनायें मलिन देह तथा दिव्य बासनाये दिव्य देह निर्माण करती है। एक मकान छोडने के पहले किरायेदार दूसरा मकान ठीक कर लेता है वैसेही एकशरीर छोडने के पहले मन दूसरे देहकी सृष्टि रच लेता है। पुराने वस्त्र छोडने के पहले नये वस्त्र लाये जाते है वैसे ही एक देह के छोडने के पहलेही कारण (नयासूक्ष्म) देह बनालिया जाता है यही कारण है कि पापियों को अपनी मृत्यु अत्यन्त दु खद होती है और सन्तो को आनन्द प्रद। पापी मनुष्य ने अपनी मलिन वासनाओंसे ऐसे गदे देह की सृष्टी रची है, जिसमे जाना खुद उसकोभी भयावह मालूम होता है। और सन्त ने ऐसे सुन्दर सच्चिदानन्द मय दिव्य देहका निर्माण किया है जिसे शीघ्राति शीघ्र पाने के लिये वह लालायित हो उठता है तभी तो कहा है —

जा मरनेसे जगडरे सो तेरे आनन्द। कब मरि हौ कब भेटिहौ पूरण परमान्द ।।
जब प्रगटे तव जग हँसा, और रहे तुम रोय। अबकुछ ऐसा कर चलो तुम्ही हँसो जगरोय ।।

किरायेदार ने भाडे के मकान मे रहकर सुन्दर घर बना लिया हो तब उसे भाडे के मकान को छोडने मे दु ख नही प्रत्युत निज निर्मित नव भवन मे जाने का हर्ष होता है, परन्तु दैववश प्रारब्ध के आधीन रहनेवाले भाडे के मकान (देह) मे रहकर जिसने भाँडे के मकान को भी गन्दा

एवं नष्ट करने का प्रयास किया हो वह पामर दंड भाजन ही बनता है और अन्त मे उससे भी अधम योनियो मे जाता है। तभी तो भगवान कहते है—

तानहं द्विषत क्रूरान्ससारेषु नराधमान्। क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीषु च योनिषु ॥ गीता ॥

इसीलिये सन्त जन सद्गुरु की कृपा द्वारा दिव्य देहज्ञान प्राप्तकर कृतार्थ होते है। वैष्णवों की परिभाषा मे इसीका नाम मुक्ति है—

"मुक्तिर्हि त्वान्यथारूपं स्वरूपेण व्यवस्थिति।"

अन्यथा रूपो की भ्रान्तियो को तोडकर भगवत्सगोपयोगी निज स्वरूप की प्राप्ति ही वास्तविक मोक्ष है। सन्तजन यह मुक्ति इसी जन्म मे प्राप्त करके जीवन्मुक्त हो जाते है।

"पञ्च भौतिक देहेऽपि सच्चिदानन्द रूपता।"

प्राप्त करना सन्तो का सहजस्वभाव है। मनका स्वभाव कही न कही लगने का है यदि उसे सन्मार्ग मे न लगावे तो असन्मार्ग की ओर प्रवृत्त होना स्वाभाविक है। महात्माओ ने मनका स्वरूप "दुरित दुष्टमसाधु तीव्रमन" पापी दुष्ट असाधु और तीव्र बतलाया है। दूसरे शब्दो मे 'नाम रूपरूपस्य मनस' नाम और रूप ही उसका रूप है। यदि उसे भगवन्नाम और रूप मे लगावे तो वह भगवद्रूप हो जायगा अन्यथा पापरूप तो है ही है। महात्माओ ने समझा कि जबतक ये "प्रजहाति यदा कामान् सर्वान्पार्थ मनोगमान्" नहि हो जाता तबतक भगवत्प्राप्ति का अधिकार नही मिल सकता तब मन को भगवन्मय बनाने के लिये सम्बन्धान्तरो का परित्याग कर एक मात्र भगवत्सम्बन्ध जोडा और कृतार्थ हो गये। भगवत्प्रपत्ति साधनान्तर प्रयोजनान्तर और सम्बन्धान्तर असहिष्णु है। इसलिये अन्य साधन प्रयोजन एव सम्बन्धो का परित्याग कर एक मात्र भगवत्सम्बन्ध जोडना भागवतो का परम कर्तव्य है। याद रहे, काम-क्रोध-लोभ इन महा अजय शत्रुओं का सहार न होगा तबतक स्वस्वरूप (दिव्य देह) प्रकाश मे न आसकेगा तभी तो प्रभुने कहा है (जहि शत्रु महाबाहो कामरूपं दुरासदम्) काम को "ज्ञान विज्ञान नाशनम्" बतलाया है तुम्हारा ज्ञान और विज्ञान पद भस्मसात् करते देर, न करेगा परन्तु भगवदीय विशुद्ध विज्ञान जलाने की ताकत उस बेचारे के पास नही है। अत अनन्य भगवदीय होजाने पर उससे निर्भय हो जाओगे। इसीलिये तात्विक दृष्टि से देखने पर भगवत्सम्बन्ध की परम आवश्यकता सिद्ध होता है। अब एक बात और कहकर मै अपना लेख समाप्त करता हूँ। साम्प्रदायीक पद्धति और आचार्य परम्परागत सम्बन्ध ज्ञान प्राप्त करते समय सद्गुरु अपने सदुपदेशो द्वारा जीवका देहाभिमान छुडाकर बिशुद्ध आत्म तत्व का बोध कराते है। स्थूल सूक्ष्म कारण से पर जाग्रत-स्वप्न सुषुप्ति से तुरीय दिव्य देह के माता-पिता एवं दिव्य भगवत्परिकरो के परिवार का भी बोध कराते है, यदि कहो कि भगवान् के दिव्य धाम मे इन सबके सम्बन्ध की क्या आवश्यकता है तो आचार्यो का सिद्धान्त है कि भागवती मुक्ति भेदसहिष्णु है कैवल्य मुक्ति भेद सहिष्णु नही है इस लिये भागवती मुक्ति मे भगवत्सेवोपयोगी दिव्य देह और परिवार भगवत्प्रीति वर्द्धक माने जाते है। अत एव नित्य मुक्त भगवत्सम्बन्धी चेतनो का सम्बन्ध भगवत्सम्बन्धवत् सच्चिदानन्द मय है।

अनादिकाल से ममता ग्रस्त जीवो का एकाएक साक्षात् भगवत्सम्बन्ध प्राप्त होना नितान्त असम्भव है इसलिये लोक वल्लीला कर के भगवान् ने भक्तो की उपासना का मार्ग परम सुलभ बनादिया है। भक्त आजकल भी आचार्योपदिष्ट रघुवंश-निमि वंश यदुवश आदि किसी इष्ट वंश के भगवत्परिकरों के साथ अपना नेह नाता जोडकर भगवान् के पास तक पहूँचता है, यहाँ

यह बात भूल नही जाना चाहिये कि "भगवान् का नाम सार्वजनिक सम्पत्ति है परन्तु भगवत्स्वरूप श्री जान की जी (श्रीदेवीजी) की नीज सम्पत्ति है" भगवत्स्वरूप की प्राप्ति उन्ही की कृपापर निर्भर है, उनकी कृपा विना भगवद्‌दर्शन अतिदुर्लभ है भगवान की नर लीला मे भी उन्ही की प्रेम प्रेरणा का परिणाम है। इसी लिये आचार्यो ने कहा है—

मिथिला विनु नाते नहि दरसे। पढे गुने समुझे समुझावे पोथा लादे खर से"

(श्री युगल प्रिया शरणजी)

श्री मद् गोस्वामी तुलसी दासजी कोभी कवहुँक अम्ब अवसर पाय।
मेरी औ सुधि ध्यावी कछु करूण कथा चलाय" (विनय–पत्रिका)

कहना पडा है, सुग्रीव, जटायु, विभीपणादि सभी भक्तों को जगज्जननी के अनुग्रहसे ही स्वरूप सम्पत्ति मिली है, इस लिये भक्तो को भगवत्संबन्ध जोडने के समय जगदम्बा की दया प्राप्त करनी पडती है। अस्तु, भगवान् की लोकलीला भक्तो के लिये ही होती है। प्रभुजिस जाति, कुल परिवार मे अवतीर्ण हुए है वही भक्तो का भी होना चाहिये तभी सम्बन्ध ज्ञान की दृढ़ता होती है और प्रेम का मार्ग प्रसस्त होता है। हम ,विप्रवंश या ऋपि वश मे प्रकट होकर रघुवंश या निमि वंशक्यो माने ? यह कुतर्क भावना सिद्धि का भयावह प्रत्यवाय है। जिस देश मे, गाँव मे, कुल मे और जाति मे भगवान अवतीर्ण हूए है वही भक्तो को आराधनीय है। देव गण भी उस वंश मे जन्म लेने को तरसते है। भक्त जिसवश मे जन्म लेता है वह भी "त्रिसप्तभी पिता पूत" इक्कीस पीढी तारने वाला होता है, तव भगवान् ने जिस वंश को कृतार्थ किया वह जगत्पावन क्यों न होगा ? जिसजाति कुल मे प्रकट होने मे प्रभु को किसी प्रकार का संकोच न हुआ उससे सम्वन्व जोडने मे हम संकोच क्यों करे। महात्माओ का सिद्धान्त है कि—

साइ सुन्दर सोइ सुभग शरीरा। जोतनु पाइ भजिय रघुवीरा ॥
जेहि शरीर रति राम सों सोइ आदरै सुजान। रुद्र देह तजि नेह वश वानर भे हनुमान ॥
जानि राम सेवा सरस समुझ करब अनुमान। पुरुपाते सेवक भये, हरते भे हनुमान ॥

(देहावली १४२,१४३)

उच्चकुल विद्या और सत्कर्म के घमण्ड मे फूले हुए ब्राह्मणो को भगवान् के ग्वालपन ने मोह मे डाल दिया था। और सेवा सुख से वंचित किया था, परन्तु उनकी स्त्रियो ने भगवत्स्वरूप को पहचान कर अपना जीवन कृतार्थ किया अन्त मे ब्राह्मणोंको कहना पडा कि—

धिग्जन्म नस्त्रिवृद्विद्या धिग्व्रतं धिग्बहुज्ञताम्। धिक्कुलंधिक्क्रियादाक्ष्य विमुखाये स्वधोक्षजे ॥
नूनं भगवतो माया योगिनामपि मोहिनी। यद्वय गुरवोनृर्णा स्वार्थे मुह्यामहे द्विजा ॥

(भाग १० पूर्वा २३।३९–४०)

वेद विद्या सम्पन्न हमारे जन्म विद्या बहुज्ञना कुल एवं क्रिया चातुरी को बारम्बार धिक्कार है कि हम भगवत् विमुख रहे, सच मुच भगवान की योग माया योगियों को भी मोहित करती है हम दूसरे वर्णो के गुरु होकर भी स्वार्थ मोहित ही रहे और—

नासा द्विजाति संस्कारो न निवासो गुरावपि। न तपो नात्ममीमासा न शौच न क्रिया शुभा ॥४२॥
अथापि ह्युत्तमश्लोके कृष्णे योगेश्वरेश्वरे। भक्तिर्दृढा न चास्माकं संस्कारादिमतामपि ॥४३॥

इन नारियो को नतो द्विजाति संस्कार प्राप्त है और न कुल गुरु वास। न तप है और न आत्म विचार न पवित्रता है और न शुभ क्रियाए। फिर भी उत्तम श्लोक योगेश्वरेश्वर प्रभु के चरणों मे जैसी इन की दृढामति है वैसी सर्व सस्कार संस्कृत हम लोगो मे नही है। अन्तमे ऐसी भक्त स्त्रियो को पाकर वे अपने जीवन को कृतार्थ मानते है। तात्पर्य यह है कि प्रभुतो भक्ति प्रिय है जाति कुल विद्यादि गुणप्रिय नही है। इसी लिये भक्तो की यही अभिलाषा रहती है कि—

तदस्तु मे नाथ स भूरिभागा, भवेऽत्रवाऽन्यत्रतु वा तिरश्चाम्।
येनाहमेकोऽपि भवज्जनाना–भूत्वा निषेवे तव पादपल्लवम्॥ (भा० १० पू० १४–३०)

ब्रह्माजी कहते है कि इस ब्रह्म शरीर से तो मै उन निर्यक् योनि वाले सन्तो को धन्य एवं भाग्य शाली मानता हूँ जो आपके भक्त समूह मे एकाध भक्त वनकर चरण कमल की उपासना मे दत्त चित्त है। शास्त्रीय सिद्धान्त ऐसा ही है अतएव भागवत सम्प्रदाय मे 'साहेब को गोत गोत होत है गुलाम को" माना जाता है। यह जाति कुल एवं परिवार अच्युत प्रिय है। अतएव अति आदरणीय सन्ततो मुक्त कंठ से कहते है—

नातो नेह नाथ सो करि सब नातो नेह वहै हौ।
यह घर भार ताहि तुलसी जग जाको दास कहै हौ॥(विनय–पत्रिका)

अगर ब्राह्मणता की ठसक हमे भगवद् सम्वन्ध नही जोडने देती तो उस अभिमान का त्याग ही सर्वोत्तम है—

नाते नेह राम सो मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँ लौ।
अजन कहा आँख जेहि फूटै वहुतक कहौ कहाँ लौ॥ (विनय–पत्रिका)

यह भागवत सिद्धान्त है, इसके निर्वाह मे ही भक्तो का सर्वविध कल्याण है! भगवन्मार्ग पर चलते समय ऐसे ऐसे कि तनेही वितण्डावाद खडे होते है प्रेमी भक्त उनकी ओर दृष्टिपात नही करता वह तो प्रियतम की तुच्छ वस्तुऐ भी परमादरणीय मानता है। लैला का कुत्ता भी मजनू के गले का हार वनता है। जो इन कंटको की उलझनो मे फँसता है उनकी गति रुक जाती है। जवतक हृदय मे ईश धर्म का शासन रहता है तवतक ऐसे कुर्तक नही उठते, जीव धर्म आते ही ये सव उपद्रव उठते है। "अह ममादि परोससार" आकरघेर लेता है। भगवान् क्षत्रिय वंश मे प्रकट हुए अतएव उनके प्रसाद एवं चरणोदक से वंचित रहने वाले पामरो की भी आज कमी नही है। ऐसे शंकाशील हृदय वालो का भक्तिमार्ग पर एक पाँव भी आगे वढना दूभर हो जाता है। "भजिये राम सव तर्क विहाई।" भक्ति पक्ष हठ नहि शठताई "सिद्धान्त ही श्रेयस्कर है।" यह निवन्ध पढकर यदि भक्तो को वैष्णव सिद्धान्त समझने मे यत्किंचित् भी सहायता पहुँचेगी तो मै अपना श्रम सफल मानूँगा! यह आचार्योपदेश का परिशीलन मात्र ही है। यदि भगवत् रसिक जनता को रुचिकर हुवा तो "भगवान् की सम्वन्ध प्रियता" के विषय मे फिर भी कुछ लिखकर सेवा करता रहूँगा।

श्रीमत्परमहसपरिव्राजकाचार्यवर्यजगद्गुरुश्रीमद्रामानन्दसंप्रदायसिद्धान्तप्रवर्तकाचार्य श्रीद्वारकास्थ श्रीशेषमठाधीश्वर जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीस्वामि १०८ श्रीरघुवराचार्य वेदान्तकेसरि चरणानां न्यायोपाध्याय, मीमांसोपाध्याय, व्याकरणाचार्य, तर्कतीर्थ, वेदान्ततीर्थं, वेदान्तशिरोमणि सांख्यसागर, दर्शननिधीत्यादिप्रचूरपदवी-विभूषितानां घटिकाशतक शतावधानविधानसमर्थाना पुण्यप्रादुर्भावदिनमुपलक्ष्यश्रद्धा भक्तिसमन्वितस्वान्तैस्तदीयसहृदयसुहृदन्तेवासिनिचयैस्संपादिता

श्रीमदाचार्यप्रशस्तिः

卐

श्रीः

श्रीवैष्णवधर्मधुरधरश्रीमद्रामानन्दसम्प्रदायाचार्यवर्याणा श्रीरघुवरमहाविद्यालयसर्वस्वाना श्रीवैष्णव-धर्मप्रचारिणीसभापतिशेषमठाधीश्वराणा पदवाक्यप्रमाणपारावारीणाना जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य स्वामिश्रीरघुवराचार्यमहोदयानामत्रत्यसुजनजनता समारब्धे

सद्व्यवहाराचरणे तुष्टिर्भोगविरामिता। जायन्ते चरिताच्छ्रेष्ठास्तस्माज्जन्ममहोमतः ॥

इत्यादिप्रमाणेनसफलयादर्शप्रादुर्भावदिनमहोत्सवे

गुणगोचरेचरेन्नैवसाकागौपृथिवीतले । प्राप्नुयात्साकथंकामं कामधेनुपयोयशः ॥

इतिप्रभृतिप्रमाणप्रचयेनस्वकीयसुरभारत्या सद्भाजनविधातुं शुभावसर समवाप्य प्रसीदतोमे पद्य पद्माञ्जलिसमर्पणम्

※ चक्रबंधः ※

रक्ते श्रीयुतशुभ्रलोचनचमत्काराकृति सुन्दर, घुट्क्रान्ते ततहारशोभनतरप्रादीप्तभूर्भामिनि ।
वत्सानामतिशान्तिपालनरता सिद्धात्वदीयारति र्नित्याशक्तिरभूरभीतिघुषिकावत्सस्य रक्षाजनि ॥१॥
अलङ्कालकङ्कालशङ्काहरश्री, सशाङ्कप्रभोरङ्कतङ्कासमोय ।
विशङ्काकृतिर्लङ्कपङ्कालुनि पङ्कजाङ्को रमाङ्कोवरङ्कंप्रदद्यात् ॥२॥
यत्प्राप्तिकामरघुवंशसनाथकारी, धृत्वाकपीन्द्रनिचयं कुणपान्वयारि ।
रक्ष कुलड्कलकल परिपीड्यपश्चा ज्जायासहैवविजयादशमीमवाप्त ॥३॥
सैषाद्वितीय रमणी मदन प्रियेव, प्राप्ताङ्गजसुविमलड्कुमुदन्निशेव ।
योभातिभक्तिसरस कमलप्रकाशी, भास्वद्गुरोरघुवर प्रवरोयति स्यात् ॥४॥
निष्काम सन्सुमुक्ति कृतिकुलकुशलै कामिता कामिनीन्ता,
मिच्छन्नामाभिरामे नयननयनता संदधानाऽप्यराम ।
वामो वामायुतश्रीरघुपतिचरणाम्भोरुहोऽवामभृङ्गो, जीवेदत्रावनौ श्रीरघुवरविबुधोवत्सराणांशतंस ॥५॥
काव्यशक्तिरचनापरिशोधित न्यायबाधिमथनोद्गतसूज्वलम् ।
शाब्द सौधशिखरे प्रतिबिम्बितं स्वामिश्रीरघुवरस्य यशोभवेत् ॥६॥

स्वत्कीर्ति कमलाकरे, शशिकरे, हासे रसे, कुन्दके, कौलट्यडकलतेकलाप्रकुरुते शेते नभोमण्डले ।
तद्दोषेणप्रकोपरक्तवदनं कान्तंकरे कुर्वती, चान्द्रीचञ्चितसिहमञ्चकपटाकान्तिच्छटाकम्पते ॥७॥
यग्देहादुदयाचलाच्छुचिकरामेरो सदा भास्करा नित्यद्वादशमासिका सुरचनाधाराज्ञतामस्करा ।
सत्तत्वासुदृशां तमोपहतयाऽज्ञानान्धसन्तस्करा संयातायुदय भयडकरकलाभाषानयाऽहस्करा ॥८॥
रामानन्दनयार्यवर्ययतिभि म्वाचार्यभा संभृतो दुर्वादान्मददन्तिनो विदरयन् संकाशते केसरी ।
शिष्ट्वाशिष्यवरान्सुतीर्थपदवी सम्पादयॅल्लक्ष्यते, श्रीयुक्तोजयतात्सदा रघुवरो विश्वे यशोहर्षयन् ॥९॥
भक्ति संयातकीर्तिर्जगतियतिमताकौमुदीव प्रफुल्ला, मुक्तिस्तस्यास्तनूजावरवरविरिणीजानकीवाजनिष्ट ।
कान्त कृत्वाकुमार रघुवरसदृशं मन्यतेकृत्यकृत्या, मोचार्यस्स्वामिवर्यो रघुवरविबुधोभासते भूमिलोके ॥१०॥
बादेदुर्वादिदन्तिप्रवरमदहरोराजतेदीप्तसिंहो, वर्मेऽगौ मन्दरो यो मथनविकसितो वैष्णवोयेनयात ।
भास्वद्भानुप्रकाशामुनिगणगुणिता भामिनीयस्यभक्ति राचार्य स्मामिवर्यो रघुवरविबुवोभासते भूमिलोके।
शान्त्यैशान्तावपिकृतवासोरामानन्देविहितविलास रामासक्तोविपयविरक्तो रागेरक्तोरघुवरभक्त ॥१२॥
मल्लेभीम प्रकटितविभव कान्तौसाक्षात्प्रथितरतिधव ।वाचा वाग्मीबहुगुणप्रभवो योगेयोगीरतहृदयजव ।
रूपेरसेमधुरक्षुक्लपराकलौघा ख्यातिस्तथैवकणभुक्थितेपितर्के ।
धीरविजेतुमतिधीरगभीरवार्धिरायाज्जडोविजितएषविभातिकृष्ण ॥१४॥
यशोब्धिमथिताकणा सुकृतवारिपिण्डीकृता, सुरालयसुसद्मानित्रिदशकाण्डभाण्डीकृता ।
निशाकरकराग्रहाध्रुवमितस्ते वितण्डीकृता, नचेदितरथाकथं शिरसिसूर्ध्वपुण्डीकृता ॥१५॥
चलचन्द्रचान्द्रीचमत्कारचञ्चुरलंङ्कारुचारित्र्यचर्चाचितोय ।
विरञ्चिप्रपञ्चेचरन्तश्चरास्तं चिरञ्चोषणायाच्युतञ्चेतयन्ते ॥१६॥
नाम्नासुचापविशिखै शुभशंखचक्रै र्नायजनोरघुवर सहसावगम्य ।
आसीत्समर्कटपतेर्हृदयेनसेव्य स्ससेव्यतेकपिवरोवरदाय्यनेन ॥१७॥
श्रीसम्प्रदायशरणेसुयशोमयङ्क पङ्काङ्कशोपितरणिर्धरणीधुराया ।
लङ्कापते शरणिगाशरणागतियोऽलंकाशतेरघुवर समवाप्यसौभ्य ॥१८॥
तर्काङ्गणेङ्गणवराङ्गनयाङ्गसङ्गोवेदाङ्गशब्दसुतरङ्गमयाङ्गगाङ्ग ।
वेदान्तविज्ञवरवारिधिसोमशोभो भट्टाटवीमुखभटाट्टसटाटनोय ॥१९॥
मायोमायातिमायोरततरतरणिर्भारते भारतेशो धर्मैधर्मेशधर्मायतिवरवरणोऽवारुणीवारुणीश ।
शान्त शान्ताङ्गसीतासुनयननयनकामिन्दिरामिन्दिराभा पाखण्डाखण्डखण्डोरघुवरवरधी सश्रियेसश्रियेत ॥

तदीयगुणगणगुम्फितभावगाथस्य केदारनाथस्य भूतपूर्व

श्रीरघुवर विद्यालय न्या व्या सा मुख्याध्यापकस्य

ः श्रीरामाय नमः ः

श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यवर्यानन्ताहेयगुणगणगरिमार्णवदिगन्तविश्रुताप्रमेय-कीर्तिकलापाकलितकलेवरयमाद्यष्टाङ्गयोगानुष्ठाननिष्ठगरिष्ठप्रतापतापव्याकुलीकृतकपूयक-दम्बमायावादमदोन्मत्तेभाखर्वगर्वविदलनाप्रतिमकेसरिवन्दनीयवन्दारुवृन्दार्चितचरणस-रसीरुहानन्तनिगमनिष्णात श्रीसम्प्रदायाचार्य जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य स्वामिश्री रघुवराचार्यचरणकमलेषुश्रद्धापरतन्त्रहृत्तन्त्रिणायतीन्द्रपञ्चकचतुष्पादिचित्रकाव्यचतुष्टया-द्यात्मककुसुमकलिकाकमदम्बञ्चसमर्प्यते—

—ः यतीन्द्रपञ्चकम् ः—

प्रभाप्रकर्षपुञ्जकुञ्जहृद्गुहाप्रकाशकं क्षितीन्द्रमौलिरत्नलोलचन्द्रिकाचयाञ्चितम् ।
श्रिताघसंघघोरघर्मघातुकघृणार्णव सदार्यवर्यसेविताङ्घ्रिपुण्डरीकमाश्रये ॥१॥
सुपात्रछात्रसत्कदम्बकल्पपादपप्रभं प्रतर्पणा पंणादिदर्पणाच्छचित्तचर्चितम् ।
नृपालिमौलि मञ्जरिप्रभाप्रकाशभूषितन्नमामिसर्वद सदा सदार्यवर्यवन्दितम् ॥२॥
प्रतापतापचापपापघोरषुञ्जहारिणं महामहार्यवर्यवृन्दवन्दित प्रणन्दितम् ।
प्रकाशशौचसचर्यविधुप्रकाशतुल्यकं भजेसदैवदेवकल्पपादपकजमुदा ॥३॥
समस्तशास्त्रतत्वदर्शनातिशुद्धमानस प्रपत्तिमार्गभव्यभावभूपितोपदेशदम् ।
कृपाकटाक्षवीक्षणाश्रितेष्टदकृपाकर यतीन्द्रवर्यमाश्रयामिमोक्षमार्गदर्शकम् ॥४॥
रमेशपादपुण्डरीकवीक्षणादिपोतक घुणैवदोषवृन्दनाशकौषधिप्रभयतिम् ।
वरेण्यवृन्दवन्दिताङ्घ्रिपुण्डरीकमीष्टद रहस्यवर्णकश्रयेसदैवसद्विचारकम् ॥५॥

卐 चतुष्पदी 卐

यत्सत्कीर्तिकणप्रकाशनिचयाभामञ्जरिप्रोल्लसन् दृष्ट्वातज्जयकामुकोर्कभगबाल्लज्जावनम्रोभवत् ।
अद्याप्यम्बरमध्यगात्तुसुपतन्नस्ताचलेनित्यशो दिव्यात्कीर्तिधरन्तथारघुवराचार्यंश्रये सर्वदा ॥१॥
भासाभासितभूतलोभवभवप्राणप्रकर्षप्रद कल्होराच्छविकाशकोतिविमलोदिव्यप्रकाशोकर ।
कामग्रन्थिविमोचनादिविरतासंतापकोविश्वराट् दिव्यत्पीठविराजितोविधुरिवाव्यात्सर्ववंद्य सन ॥२॥
रमतिमतिरकारेस्वच्छकायस्ययस्य घुरतिरतिपतियोयोगिवर्योतिवर्य ।
वदवदनविकासाकासमानोऽसमानो रविकरकरयुक्तस्सैवपायादपायात् ॥३॥
यद्धारतीरतिरतिप्रविकासतेत्र तिर्यग्गते करकरप्रकरार्यवर्य ।
सन्मानमानवनमानितमानसोसौ त्यक्ताह्यसज्जनजनप्रचयस्सदाव्यात् ॥४॥

❀ चित्रकाव्यचतुष्टयम् ❀

श्रीबन्धः

नित्यंभजे रघुवरार्यसुभव्यपाद भव्याभदक्षरतरक्षणतत्परौयौ ।
यौरौद्ररौरवकरौवहुवन्दितौच श्रीचन्द्रचञ्चलकलालसितौसितौतौ ॥१॥

✻ शरासनबन्धः ✻

छलंयन्माजसेनास्ति तेजसिभास्कराइव । वर्णाश्रमस्यगोप्तार कुर्युर्भक्तायमङ्गलम् ॥२॥

—ः बाणबन्धः ः—

मङ्गलंयतिवर्याय दुष्टारिर्हरिरिन्द्रिपा । गुरवेवेदविज्ञायश्रीरामोमोक्षदायक ॥३॥

श्रीऊर्ध्वपुण्ड्रबन्धः

रमामाताशमाद्यावै वैष्णवेशाय सर्वदा । शश्वत्कुर्याद्यतीशाय मारस्यविजितायशम् ॥४॥
आचार्यवरस्वामिश्री १०८ जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरघुवराचार्यचरणचञ्चरीको
जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यरामप्रपन्नाचार्यो योगीन्द्र

–× श्रीमतेरामानन्दाचार्याय नमः ×–

श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यपदवाक्यप्रमाणपारावारीणयमनियमाद्यष्टाङ्गयोगनिष्ठ गरिष्ठतपोनिष्ठवन्दारुवृन्दामन्दानन्दमन्दारुबादिप्रसारितध्वान्तध्वंसधुरीण सुरभारतीरतिमतियतिपतिद्युतिद्योतिताङ्घ्रिसरसीरुह

कन्दर्पदर्पदलनदक्षनि शेषतन्त्रापरतत्र मन्त्रयन्त्रभवमोचक विविधविरुदावलीविभूषितान्छस्वान्तश्रीसम्प्र दोयाचार्यवर्य स्वामिश्री १०८ जगद्गुरु रामानन्दाचार्य श्रीरघुवराचार्य चरण सरसीरुहयुगलेतदीयचरण चञ्चरीकाकिञ्चिदासश्रीनिवासदासहृल्लताकुसुमाकलितमालिकाभिक्रापद्यावलि समार्याशासेयत्स्वीकरिष्यन्ति श्रीमदाचार्यचरणाइति—

मङ्गलाचरणम्

षोडपदलारविन्दवन्धः

मञ्जुमणिमयेमञ्चेमहामहिमश्यामलम् । मद्रमंर्म्मवर्मध्यान्महामणिमहन्मह ॥१॥

ऊर्ध्वपुण्ड्रबन्धः

सुराराध्यंवराधार रक्तानाभयहारकम् । वनुर्वरमहवन्दे रमारामजत्पतिम् ॥२॥

भक्तानामानसेशाबहुधवलितवेशासुरेशारिनीता भीतालङ्कापुरेयासुरगणवनितासेवितादेवगीता ।
स्फीतालोकस्थितादानवगणहितदास्यार्पिताभूमिनीता सीतामासस्मिनापाशमिहवितरतामार्तमानापुनीता ॥३॥

×— श्रीबन्धः —×

ध्येयोरमारमणरक्तकरप्रकाशस्तर्कास्तशग्तहवहस्तसुगोवकोयम् ।
यंकोपिकोमलमति शुभमोक्षमेति श्रीतिग्मतिर्यगतियानकर प्रभोभो ॥४॥

ऊर्ध्वपुण्ड्रबध

आस्यस्यपुण्यस्यप्राप्य यतेरतिसुदर्शनम् । यथेच्छकपिलस्येन्दु स्यदेनलक्ष्मणोवर ॥५॥

—ः धनुर्बन्धः ः—

महसासश्रितजनानानन्दयधनार्णव । वर्णनातीतचरितभव्यकर्मसुसाहस ॥६॥

卐 शरबन्धः 卐

पायाद्रघुवरोनित्यंस्वाश्रितमतनन्नुत सहसासाधकस्वामीसज्जनानाञ्छिरोमणि ॥७॥

※ खड्गबन्धः ※

नरेन्द्रचयभृङ्गाङ्गलालितार्यगणैर्वृत । तथ्यातथ्यविवेकज्ञादिव्यदिव्ययशोधन ॥८॥

ननानान्नेत्रसुखदभव्याभाभूपितासन । नरवृन्दनमस्याद्यपाञ्चिदेवनम्रप ॥९॥

— प्रहेलिका —

क श्रीरामकरे? तदन्वयशुभोसंज्ञाचका? किन्द्यति?—
युद्धेकश्चविनाशित? सुरपते शस्त्रञ्च किं? तद्गुरो?।
कस्त्याज्यो? भवबन्धनंकथमहो? मोक्षस्यहेतुश्चक?—
किं वाञ्छन्तिमनीषिण क्षितितले? रामस्यवामेचका? ॥१०॥

लोकेवाञ्छतिका? स्वार्थकथनेको धातुरुक्तोबुधै? श्रीरामश्चददातिकि? भुवितलेकान्हन्ति? किं भञ्जितम्?।
प्रात केनच जायते? भवति कि देहंज्वरै प्राणिनाम्? ध्येय कुत्रचराघव? स्मरपताकायाञ्चक संस्थित?११

आद्यश्लोकोक्तपद्यानामुत्तरान्तिकवर्णकै । तथाद्वितीयपद्योक्त प्रश्नोत्तराद्यवर्णकै ॥१२
पद्यद्वितीये षष्ठस्यप्रश्नोत्तरस्यमध्यम । वर्णोग्राह्यश्चतत्पश्चान्नि सूतंवामरक्षयेत् ॥१३॥

अन्तरालापः

किं कुर्याद्रघुनायक श्रितजनान्? कनाशयेत्सर्वद? आचार्योस्तिचकोधुनाक्षितितले श्रीवैष्णवान्समहान्?
कस्त्राताभवसागराज्झटितिवै? केप्राप्नुवन्तीश्वर—पायाद्राक्षसनायक रघुवराचार्योगुरुस्त्यागिन ॥१४॥

मायावादमदोन्मत्तकरीन्द्रकुलकेशरी । चार्वाकाखर्वगर्वान्धनिरासकरभाष्कर ॥१५॥
वन्दारुवृन्दमन्दारुर्मुनिमण्डलमण्डन । जीयाद्रघुवराचार्यो वैष्णवार्यशिरोमणि ॥१६॥

卐 शत्रुञ्जयबन्ध 卐

श्रीमानव्यात् १	मायाधीश ५०	सद्वाचाप्य ५	दुरदर्पघ्न १४	रामस्वामी ६३	गोदोन्त्राता २४	प्रेम प्राप्य २७	सत्तत्वय २२
सत्कर्माप्य ६	धारीद्क्ष्माया १३	चन्द्रध्येय ६४	य कुन्दर्जु ४९	कालप्राप्य ४	काकेक्षिघ्न २१	श्रीशक्तीश ४२	गौरीशेश २५
प्राचार्योर्च्य ५१	सर्वाधार २	नाकाधीश ७	दु खत्राता ६२	सर्वस्वोयम् १५	स्वरगस्थोय २६	गर्वाहारी २३	गन्धघ्राता २८
योनिर्योस्ति ८	श्रीरामेश ६१	त्रासत्राता १२	लोकश्रेय ३	मारस्वामी ४८	श्रीभार्न्वाश ४१	यारकध्येय २०	वार स्वामी ४३
योवनघस्स ११	सद्दासाप्यः ५२	कारुण्याब्धि ९	योवृत्तघ्न १६	कन्दर्पाभ ३५	श्रीमन्मान्य ४४	वृन्दासेव्य २९	चारुस्वान्त ४०
दुर्मुखघ्घ्न ६०	उन्निद्रारि ५५	श्रीमद्राम ५८	गण्डक्येश ४७	श्रीलक्ष्मीश ३०	कामम्पूर्यात ३९	दण्डघ्नस्स ३४	आन स्रष्टा १९
योजीवेन्द्र ५७	पोयान्नित्यम् १०	स्वाद्रस्वान्त ५३	ओघुष्टाप्त ३६	भावप्राप्य १७	आरात्यर्क ३२	याञ्चाम्पूर्यात ४५	आर्योद्धर्ता ३८
योवैधार्य ५४	कृष्णस्वाङ्ग ५९	सद्वार्ताप्य ५६	आर्यध्येय ३१	श्रीशिक्षाद ४६	दारोद्धर्ता ३७	नामप्राप्य १८	प्राणि पायात ३३

* क्रियागुप्तः *

न्यायान्यायविचारदक्षनितरा कन्दर्पदर्पग्रह ! प्राचार्यार्यसुकार्यकृद् वृदयधार्यानार्यहृत्शोधक ! ।
प्राचार्यानतु किन्तु भोस्सुरगुरु कारुण्यवारानिधे–हेस्वामिन् ? नवमेघमण्डलइवाखर्वोपकारिन्प्रभो ॥१७॥
छायामोघकदम्बके सुचरितैस्ससेवितौसर्वदा–भूपालालिगणाभिवन्दितचरौदिव्यारविन्दप्रभौ ।
यत्कान्तिञ्च निरीक्ष्यकृष्णहृदयोजातोविधुर्द्वूषतो–विप्रातस्करधारिणौ भवभयध्वान्तास्तकारौप्रियौ ॥१८॥

+ अन्योक्तिः +

भव्याम्भोभवनान्तशून्यभगवन्नान्यनिरीक्ष्येवनौ–नित्यनीरदनीरदोभवतियद्दानप्रभावात्तव ।
रत्नेप्सु श्रयतेऽश्रमेणभवतिश्रीमाश्चसश्रित्यस –सर्वाखर्वविगवगौरवहराहंकश्रये त्वाविना ॥१९॥

卐 व्याजास्तुतिः ॥

विश्वेस्मिन्निहदेव संश्रुतचर त्वञ्चास्यहिंसापर, स्तत्सर्वं वितथं कपूयदलने नित्यव्रतो भाससे ।
कान्ति शान्तियुतातथैवकथिता तन्नवमन्यामहे, नोचेद्दिव्यवि(प्र)तापतापतपित शत्रु कथवेपते ॥२०॥
विप्रेभ्यश्चददातिदानमतुलंप्रेम्णाकुबेरप्रभ पश्याध्यापयतीश्वरोयमनिशंयोगीश्वर कौतुकम् ।
दुर्वाराखलुनैवभूतलतलेस्नाताश्रितस्यार्तिह सेव्यस्सज्जनवृन्दवन्दितचराद्यैवप्रशस्यायम् ॥२१॥

रविपविछविकान्तं स्वर्णकान्तप्रभञ्च घुणगण कृतिदोषध्वान्तध्वंसैकदक्षम् ।
वरदमघुरवन्द्यंनैवतच्चन्द्रिकेन्दो रघुवरचरणाब्जं सश्रयेसर्वदैव ॥२२॥

दिव्यद्वस्तुविभूषितेसुसदसिस्वच्छासनेसंस्थितस्सर्वत्रावृतदेवकल्पनिचयैस्तारावृतेन्दुप्रभ ।
तत्वज्ञानविचारको विलसतिप्रच्छन्नसूर्योयथा कि सैवास्तिबृहस्पति ? नहि सखे ! श्रीसम्प्रदायाब्जराट्॥२३

श्रीमदाचार्यचरण सरसीरुहमकरन्दकामुकश्रीनिवासाचार्य

श्रीः

श्रीमन्निखिल वैष्णवाचार्यवर्य ११११०८ श्रीमद्भगवदनुभवानन्दाचार्यचरणाब्जसुरभिसुरभायमाना !
निखिलनिगमागमोल्लसितहृदयाह्लादका ! विविधविरुदावलीविभूषितान्त करणा !
जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीमद्रघुवराचार्यश्रीस्वामिचरणा !

श्रीमज्जयन्त्युत्सवो धृतोद्गाढ हर्षाब्धि वीचिविह्वलविनम्रीभूतेन, तेनत्त्वदीयकृपाकटाक्षाकृष्टेनार्भकेणाधस्तात्समर्प्यतेऽद्यप्रणतिततय !

* नुमोह्यनुभवानन्दाचार्यपादाब्जयुग्मम् *

प्रभा या भाषाया प्रभवति प्रभो ? शुभ्रसलिला सरिद्धारा धारा सुकविकवितामभोजप्रभया ।
विधात्री धात्री या निखिल भवचित्रञ्च कलया, सुधाकल्पा सामा दिशतु कुशलंतेऽद्यनिखिलम् ॥१॥
भव्यानम्रभवामभूतसुकलाचन्द्राननामीश्वरी कारुण्यामृतसिक्तकोमलकला चित्ताम्बुधेर्वर्द्धिकाम् ।
रक्ताम्भोजकरोज्वला जनकजा विद्युल्लताञ्चाश्रयन्, शश्वद्राघवमेघमण्डलमणिर्वोव्याच्चतेहृल्लताम् ॥२॥
शृङ्गाख्यसौरभयुतेस्वचलेप्रसूने, छात्रालिपंक्तिपरिवेष्टित रामणीये ।
सरञ्जयन् स्वजनताञ्चइमाञ्चमाञ्च, राजत्यसौ रघुवरार्यबुधार्य वर्य ॥३॥
यद्देशिकेन्द्रमणिपीठप्रचण्डदीप्त्या, भीत्याऽन्धकार ततयो लयतां व्रजन्ति ।
तस्मिञ्छरच्छशिनिभे किरणायमाने, राजत्यसौ रघुवरार्यबुधार्य वर्य ॥४॥

यस्यामोघसुरद्रुमाश्रयमहोसम्प्राप्य विद्यार्थिनश्चार्थिव्रातवरस्तथाभिलषित सम्प्राप्नुवन्त्येवहि ।
सर्वैपाशुभवस्तुजातसदनो भव्यैश्चसभ्यैर्वृतो । वन्योय शुभभारते रघुवराचार्योऽदयोव्याद्बुधान् ॥५॥

दिव्यदिव्यवसुन्धरास्थवहवो भूपास्तथान्येजना । स्वोनत्याच सुविश्रुता समभवन् किन्त्वद्ययोगीश्वर ! ।
तेसर्वेतवकीर्तिकल्पलतिक पुष्पप्रभानिष्प्रभास्सजाताइहभारतेरघुवरत्वपाल्यत स्वाश्रितान् ॥६॥

विद्यापाथोधिचन्द्रं व्यपगतबहुतन्द्र क्षितीन्द्रार्चितेन्द्र,केन्द्र भक्ते प्रमुख्य प्रतिभटगजगर्वान्वहं सद्दिनेन्द्रम् ।
योगीन्द्रं सन्नतेन्द्रं सकलबुधगणेन्द्र महामानितेन्द्रं, वन्देवन्द्यार्यवर्यरघुवरमनिशमद्गुणाम्भोधिचन्द्रम् ।७।

हेस्वामि ! त्वपकीर्तिमीरति सदावन्ध्योद्भव प्रोच्चकै श्रृण्वन्त्यत्रहिकर्णहीनमनुजास्तुण्डविनाकीर्तिता ।
धावन्ति प्रचुराग्रियूग्म रहिता श्रोतु प्रवेगं तव, चान्धव्योम भवारविन्दसुदलेदृष्टासदाव्याद्धिमाम् ।८।

रम्यासने हिमगिरिप्रतिमे सुभव्ये । घुव्यद्गणाकलित संल्लसिते शिवाया ॥
वध्यन्तरागमसमोबहुभाषमान । जीयादसौयतिपतिर्निखिलाब्जसूर्य ॥९॥

श्रीमत्कृपाकटाक्षोन्मुख—रामप्रियादास श्रीवैष्णव

卐

श्रीः

श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यवर्य प्रातःस्मरणीयपादारविन्द युगल सर्वतन्त्रस्वतन्त्र श्रीमत्सम्प्रदायाचार्य जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरघुवराचार्य चरण सरसीरुहे प्र चार्यस्तवाष्टकात्मिका पुष्पमालिका समर्प्यते—

× प्राचार्यस्तवाष्टकम् ×

पाखण्डखण्डदुर्दण्ड शास्त्रशौण्डप्रचण्डकम् । नीते शौर्यस्यभाण्डच कल्ये रघुवर भजे ॥१॥

भृशंभव्यादिव्या यतिवररुचा रञ्जितमही, नवीनातुत्पन्नान्निखिलनिगमातथ्यवदकान् ॥
शुभै षड्भि शास्त्रैर्हृदयगतशल्यान्हतवता, सदास्मान्वै पायाद्भवजलधिमग्नान् रघुवर ॥२॥

भाट्टेभट्ट इवाक्षपादनिगमेसाक्षाद्द्वितीयोहिस वेदान्ताम्बुधिपारगाभिमुयमी साख्यान्तविद्योगवित् ।
वादेवादिविदारणेतिसुभटो वैराग्यदिव्याकर । पायाद्विश्वनिसारियामत्रिमलोयोगीन्द्रचूडामणि ॥३॥

लोकालोककर कुकर्मशमनं नीतिप्रद पापहम् । सद्विद्याप्रतिमप्रकाशनिचयाज्ञानान्धहाहस्कर ॥
कार्याकार्यविचारसारशुभदं दुःखत्रयध्वंसकम् । स्वामिश्रीयतिसेव्यक रघुवर नौमीश्वरंसद्गुरुम् ॥४॥

रतिपतिगतिरोधोजायते यच्छरीरे, घुगतियतिमतिर्वैयत्पुरोवादमव्ये ॥
वरिवसितमहद्भिर्भूमिपालालिवृन्दे, रघुवरगुरुस्माऽस्वैसमयाद्वयायात् ॥५॥

रागद्वेषादिशून्यो मनसि मनसिजव्यान्तविध्वंसदक्ष । लक्षश्चोगीन्द्रवृन्दप्रवलरतिभरासेवितांघ्रिप्रकाश ॥
योगाभ्यासासनाद्यैरघुकुलतिलकोलक्षितोदिव्यनेत्र । क्षेत्रभक्ते प्रपूज्यो हरतुरघुवराचार्यवर्य श्रिताघम् ।६

धर्मतनोतुनितराकृपया कृपालु । श्रीसम्प्रदायगतसर्वजनोपकर्ता ॥
हर्ताद्यधर्मनुतबुद्धिमनोरथान्वै । स्वामीतुमे रघुवरोनिजधर्मसेवी ॥७॥

तर्कव्याकरणश्रुतिस्मृतिमहाकाव्येषु प्रोद्यपर । छन्दः साख्यनयेषुसर्वनिगमश्रेष्ठ सदग्रेसर ॥
वेदाताम्बुधिपारदृग्यतिपतिर्योगीश्वरेष्वग्रणी । पायाद्व परमोगुरुरघुवरो सेवारतान्सर्वदा ॥८॥

श्रीमच्चरणचञ्चरीक बालकदास श्रीवैष्णव धराङ्गधरा, सौराष्ट्रम्

◡: श्रीमतेरामानन्दाचार्याय नमः :◡

श्रीमद्र मपदारविन्दयुगलध्यानैकचिन्तापर ? ज्ञातार्थर्वविधे ? कृपाजलनिधे ? लावण्यवारानिधे ॥
वेदान्तस्य सुकेसरिन् ? दृढमते ? शब्दज्ञचूडामणे ? श्रीमद्रामजयस्य पुण्यदिवस क्षेमाय ते भूयताम्।१
मीमासाशुभदर्शनेऽतिगहने पार पर दृष्टवान् । वेदान्तैकविचक्षणो जितरणो वैशेषिके दर्शने ॥
साहित्यैकनिविर्भवान् सतमतिर्नैयायिकानमणि श्रीमद्रामजयस्य पुण्यदिवम क्षेमाय ते भूयताम् ॥२।
दानेनार्चितयाचकै श्रुतयशा ? हे वेदतत्वार्थवित् ? वेदान्तामृतवर्षणेन हितकृत् ? सद्ग्रन्थनिर्माणकृत् ?
हे आचार्यशिरोमणे ? रघुवर स्वामिन् ? सदामोदकृत् ? श्रीमद्रामजयस्य पुण्यदिवस क्षेमाय ते भूयताम्।३

निवेदक श्रीमच्चरणारविन्दचञ्चरीको-प स स्वामी वैष्णवाचार्य 'श्रीवैष्णव'

❀ श्री रामाय नम ❀

श्रीमत्परमहसपरिव्राजकाचार्यवर्यसर्वतन्त्रापरतन्त्रश्रीरामानन्द सम्प्रदायाचार्य जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य स्वामिश्रीरघुवराचार्यचरणकमले श्रद्धान्वितहृदयेन प्रशस्तिरिय समर्प्यते ।

❀ कीर्तिपुष्पवर्णनम् ❀

मायावादकुतर्कजालरचनाछेतुसमर्थोऽसिधैर्बौद्धार्हन्नयनित्यशासनरतान् विद्रावकःकेसरी ।
आस्तिक्यं भूविरक्षयन् श्रुतिगुणान्नाचार्यविज्ञानजम्–आनन्दविदधातु वाञ्छितफलं वेदान्तविद्योविभु ॥१
स्वामिन् शान्तिरियन्तनोतुविमला कीर्ति सदा शालिनी–भक्तानांसुखदायिनीपरजनत्रासं विधात्रीभवेत्।
पापानामभयप्रदाननिरता विद्वद्भिरासेविताकल्याणीतव नीतिकल्पलतिका न श्रायसं भावयेत् ॥२॥
क्वचिद् विद्यादाता, क्वचिदपिच मान्यो बुधजनै–क्वचिद्धर्मप्राण क्वचिदपिच भूभृत्प्रणमित ।
क्वचिल्लब्धाभूमि क्वचिदपिचविस्तारितयशा–क्वचिच्छकाहारी क्वचिदपिच रामायणरत ॥३॥
अयि विलोकय पूज्यप्रभुं गुरुं–भवति शिष्यगणोऽमृतपूरित ।
वदति वेदगुणान् हि यथामत–मखिलवादिजनाननमर्दनात् ॥४॥
दलितपक्षविपक्षनिरन्तर–कमलवैष्णवधर्मदिवाकरम् ।
नृपतिवृन्दसमर्चितविग्रहं–रघुवराङ्घ्रिरजश्चपुनातुन ॥

श्रीमच्चरणारविन्दचञ्चरीक पं रामरत्नदास श्रीवैष्णव 'साहित्यतीर्थ'' 'वेदान्तरत्न' सागर

☫ श्रीरामचन्द्रं भजे ☫

प्रात स्मरणीय दिगन्तविश्रुतकीर्तिकलापानेकविरुदावलिविभूषिताचार्यवर जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यश्रीस्वामिश्रीरघुवराचार्यचरणारविन्देस्तवचतुष्टयश्रद्धया समर्प्यते

ध्यात्वाऽवधानविधिनाशतमत्रवस्तु–जानातियोगगरिमप्रथयत्यजस्रम् ।
यस्संघृणौघरघुपुङ्गवपादपद्मम्–पीत्वाप्रयापयति केसरीशब्दशोभ ॥१॥
योभाति भूतलशुभाकरभास्करोऽयम् ख्यातोऽस्तिकीर्तिकुशल कृतिलस्करीय ।
यातायदीयविजयादशमीप्रसूति भूति सुधी रघुवरस्य चकास्तुलोके ॥२॥
यस्यास्तिकाव्यरचनारुचिराकवीया । शास्त्रसुधाकरनिभंरजनीप्रकाशम् ॥
वेदान्तवन्यगजतुल्यशरीरसौष्ठयम् । पादौतुदर्शननिधेः प्रभजेनितान्तम् ॥३

तस्माद्गुवन्धचरणरम्बुजचञ्चरीक –कीरोवरीमिविजयस्वजयेतिशद्भम् ।
धीमन् दयम्वहरिदास शुभेयतस्व–नम्रो नमामि नवनीपपदाप्रमुक्त ॥४॥
श्रीमदन्तेवासि–स्वामी हरिदास श्रीवैष्णव

श्री

॥ श्रीमते रामानन्दाचार्याय नमः ॥

श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य श्रीसम्प्रदायाचार्य जगद्गुरु १०८ श्रीमद्रामानन्दाचार्यसिद्धान्तप्रतिष्ठापकाचार्य निखिलनिगमागमप्रपारदृश्यर्यतपतिचक्रचूडामणि प्रतिभटोन्मत्तमातङ्गाप्रतिमकेसरिगरिष्ठ गुणगण पाथोधिघटिकाशतशतावधानचमत्कार चित्रचरित्रसुजनजनतोपकारकरनिरस्तसमस्त दोषकोषनिखिलनृपतिनिचयमौलिमणिमरिचिमञ्जरिचर्चितचरणसरसीरुहयुगलविविध विरुदावलिविभूषिताचार्यवर्य जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य

स्वामिश्री १०८ श्रीरघुवराचार्य

चरणसरोजारविन्दप्रसादिनौ

रम्योपदेशः

नवनीरदभव्यश्रीश्रितदिव्यगुणायच । नमोजगदधीशाय साकेतनिलयायनः ॥१॥

नवीन मेघकी कान्तिकेसमान कान्तिवाले, दिव्यगुण, गणार्णव, समस्त ससारके स्वामी, श्री साकेतपति भगवान् श्रीरामचन्द्रजीको हमारा शतश नमन हो ॥१॥

मैथिलीकल्पलतिकाऽलकवल्लरिचञ्चलः । श्रीकोशलेश रोलम्बोलम्बतामेहृदम्बुजे ॥२

महाराणीश्री जानकीजी रूप कल्पलताके अलकरूप मंजरीमे चञ्चल श्रीकोशलदेशाधिपति श्री रामचन्द्रजीरूप भ्रमर मेरे हृदयकमल मे रमण करे ॥२॥

दोषज्ञागतमन्यबश्चसुहृदश्चान्येसुविद्यार्थिनो युष्माकं पुरतोमयाकिमपिचेद्वक्तुंसमारभ्यते।
तत्सर्वंविदिताशयंभवतिवोऽथापिप्रवक्ष्येपर हंसक्षीरनयंनिधाय मनसिग्राह्योगुणोनोगुणः॥३

विगत अहङ्कार विद्वद्गण! अन्यसुहृद्गण! और विद्यार्थीगण! आप लोगोके सामने मै जोकुछ कहुंगा वह आपको विदितही है तथापि मै जो कुछ कहूं उसके गुणोको ही आप हंसक्षीर न्याय से ग्रहण करे, दुर्गुणो को नही ॥३॥

श्रीमद्भिर्ललितैर्मनोहरतरैः पद्यैःप्रशस्तिः कृता सेयंप्रेमविशिष्टतां गमयति प्रीतेरिद लक्षणम्।
नोचेन्मन्दतरेमयिक्षतमतौक्वायंगुणाना चयः
सन्तः स्युर्गुणलिप्सवस्तुजगतीत्युक्तिः समुज्जृम्भते ॥४॥

आप लोगोने जो ललित और अत्यन्त मनोहर पद्यो मे मेरी प्रशंसा की है वह आपके विशिष्ट प्रेम की परिचायिको है। प्रीतिका यही स्वरूप है। अन्यथा अत्यन्त मन्द मेरेमे इनसब गुणोंका संग्रह कहा है इसीलिये "सज्जन पुरुष इस जगत मे केवल गुण ग्राही हुआ करते है।" यह सूक्ति चरितार्थ होती है ॥४॥

भवद्भिर्मयियत्प्रेम दर्शितंतस्यकिञ्चन। नशक्नोम्युत्तरंवक्तुंह्रियावनतमस्तकः ॥५॥

आप लोगो ने मेरे प्रतिजो प्रेम प्रदर्शित किया है इसके लिये लज्जासे अवनत मस्तक होता हुआ उत्तर देने मे मै असमर्थ हूं ॥५॥

तथापिधाष्टर्यमेवेदमातन्वेश्रीमतां पुरः। कथयामियथाबुद्धिवचनत्ववधार्यताम् ॥६॥

तो भी आप लोगो के समक्ष धाष्ट्र्य धारण करके अपनी बुद्धि के अनुसार कुछ कहता हूं ॥६॥

जन्मर्क्षे योग एवायं वर्ततेऽद्यमयाततः। नहर्षोद्रेकताध्येया विचार्येदंजगच्चलम् ॥७॥

आज मेरा जन्म तिथिका योग है इसलिये मुझे हर्ष का आवेश नही करना चाहिये क्योकि यह जगत् चञ्चल है इसमे जन्म और मरण लगा ही रहता है ॥७॥

मूढाजानन्तिवर्षेषुवृद्धिरेतावतीह्यभूत्। परविज्ञास्तु वयसो विचेरुर्ह्रासमद्भुतम् ॥८॥

अज्ञ लोग यह जानते है कि इतने दिनका मै बडा हुआ परतु ज्ञानी तो अपनी अवस्था का इतना ह्रास हुआ ऐसा ही बिचार किया करते है ॥८॥

क्षणंक्षणं वयोयातिरयोमह्याइवद्रुतम्। सूपयोगे व्ययोयेन नकृतोऽस्यसमूढधीः ॥९॥

वेगवती नदी के वेग के समान आयु चली जाती है इस आयु का जिसने सदुपयोग नहीं कर लिया वह मूढ बुद्धिवाला है ॥९॥

धन्यंजन्मदिनंतेषां येषां धर्मेरतामतिः। अधर्मनिरतानान्तु जीवनं भस्महोमवत् ॥१०।

उन मनुष्यो का जन्म दिन धन्य है जिनकी धर्म मे बुद्धि रहती है। अधर्मपरायण प्राणियों का जीवन भस्म मे होम करने के समान व्यर्थ है ॥१०॥

धर्ममेवपरतत्वं भारतीयाअपि प्रथन्। सर्वैप्राणव्ययेनापि रक्ष्यएवेतिचश्रुतिः ॥११॥

इस भारत के रहनेवाले महापुरुपो ने धर्म को ही परमतत्व माना है। वह धर्म प्राणव्यय से भी सुरक्षणीय है ॥११॥

वेदशास्त्रोदितान्धर्मान्वर्णाश्रमपुरस्कृतान्।मनुजायेऽनुतिष्ठन्ति जितंतैः स्वर्गमुत्तमम् ।१२

वेदशास्त्रो मे वर्णित वर्णधर्म और आश्रम धर्मो का जो पालन करते है उन पवित्र महात्माओं ने स्वर्ग जीत लिया है ॥१२॥

ततोऽपिभगवद्धर्मान् श्रेष्ठान् मत्वा मुमुक्षुभिः। अवश्यं परिपाल्यास्ते वर्णधर्माश्चगौणतः।

परतु मुमुक्षु जीवो को वर्णाश्रम से भी भगवत्सम्बन्धी धर्मो को श्रेष्ठ मानकर उनका आवश्यकरूप से पालन करना चाहिये और वर्णाश्रम धर्मो का भी गौणरूप से पालन करते रहना चाहिये ॥१३॥

व्यवस्थेयं विसृश्यैवं प्रत्यपादि महर्षिभिः। भगवानपिगीताया ममुमर्थममन्यत ॥१४॥

महर्षियो ने अपने ग्रन्थो मे इस विचार के लिये दृढ रूप से व्यवस्था की है और भगवान ने भी श्रीगीताशास्त्र मे इसी अर्थ को दृढ किया है ॥१४॥

वर्णाश्रमेतिवचसा नचलतीत्यपरेणच । अगादीदमुमेवार्थ पिताव्यामस्य धीमतः ॥१५

श्रीवेदव्यासजी के पिता पराशर महर्षिजी ने भी 'वर्णाश्रमाचारवता–इस वाक्य से वर्णाश्रम धर्मो को गौणतया पालन करते हुए मुख्य रूपसे भगवद्धर्मो का पालन करना चाहिये" यही सिद्धान्त किया है। (इस विषयका विशेपस्पष्टी करण चाहने वाले महापुरुषो को 'श्रीसम्प्रदाय और अन्त्यज स्पर्श' 'श्रीरामानन्द सम्प्रदाय और वर्णव्यवस्था' वैष्णवाचार, धर्मसंग्रह, प्रभृति मेरे ग्रन्थो का अवलोकन अतीव इष्टप्रद होगा) ॥१५॥

तस्यैवजन्मनः श्रैष्ठयं स्पष्टमूचुर्महर्षयः । यस्य राघवपादाब्जे भक्तिःस्यादनपायिनी १६

उसी मनुष्य का जन्म महर्षियो ने श्रेष्ठ माना है कि जिसके हृदय मे भगवान श्रीरामचन्द्र जी के चरण कमलो की अनपायिनी भक्ति हो ॥१६॥

नाना शास्त्रविचारैर्हिसारएषविनिःसृतः । रामप्रपत्तिरित्येव धर्मोयंसर्वतोऽधिकः १७

समस्त शास्त्रो के विचार से यही सार उपलब्ध होता है कि सबसे महान उत्तम धर्म एक श्रीरामप्रपत्ति ही है ॥१७॥

तस्माद्धर्मसमाचारो जन्मनासुव्ययेनवा। येनव्याधाय्यधिक्षोणि सफलं तस्य जीवितम् १८

इसलिये धर्म का आचरण अपने जन्म के प्राण के व्यय करदेने पर भी इस भूमण्डल मे जो करते है उन्ही नररत्नो का जीवन सफल है ॥१८॥

श्वसन्त्यौदरिकाःकेचिन्मादृशाजगतीतले।प्रारब्धमनुभुञ्जानाः काप्रशस्तिस्तुतादृशाम् १९

इस जगत् मे मेरे जैसे पेट भरनेवाले अनेक प्राणी अपने प्रारब्धका भोग करते हुए श्वास ले रहे है ऐसे जीवो की प्रशंसा क्या हो सकती है ॥१९॥

तथापिप्रेमपीयूष परीवाहं सुखावहम् । वहामिशिरसासर्वे भवत्स्नेहनियन्त्रितः ॥२०।

तो भी आप लोगों के प्रेमपीयूपका जो सुखावह प्रवाह है उसेमै आपके प्रेमपरवश होकर शिरसा धारण करता हूं ॥२०॥

सर्वेनिरामयाः सन्तु सर्वेऽत्रसुखभागिनः । सर्वेषांसुदिनं भूयात् प्रार्थयेकोशलाधिपम् २१

अन्त मे मै श्रीकोशलेश्वर भगवान् से प्रार्थना करता हूं कि, समस्तप्राणी निरोगहो और सब सुखी हो तथैव सबो का दिन मङ्गलमय हो ॥२१॥

श्रीः

श्रीधर्मका डंका गुर्जरमे, बजवाया ज्ञानी रघुवरने ।
भूपालो से सत्कृत होकर, विद्याम्बुधिविधुवर रघुवरने ॥१॥
श्रीशीगडाको काशी करदी, विद्या शीतांशु किरणो से ।
सद्धृदयकुमुदिनी कीर्तिकला, फैलायी श्रीमद्रघुवरने ॥२॥
श्रीधर्मछात्रहृत्सागर मे, विद्याप्रसून का व्यूह बना ।
नूतनसागरभर गौरवको, हर्पाया भास्कर रघुवरने ॥३॥

समदर्शी बन इसविश्ववीच, निजदृष्टिदिवाकर किरणोसे ।
दुखमिटा प्रजाका प्रेमपूर्ण, पालन कर विद्वद्रघुवरने ॥४॥
बन शतावधानी सभाबीच, हरलिये चित्तदर्शक जनके ।
गो धर्म, द्विजोकी रक्षामे, उत्साह बढाया रघुवरने ॥५॥
कन्दराहृदयपट आबूमे, कुछ दिन सुरभित शोभित करके ।
निजजीवनको कृतकार्यकिया, ध्यानब्रवर्य इन रघुवरने ॥६॥
वयबारहवर्ष हुई जिसदम, यज्ञागणको गर्वित करके ।
सप्ताहयज्ञ परिपूर्ण किया, शुकशास्त्रसुनाया रघुवरने ॥७॥
जनऊँझाके सव चकित हुये, वहु शिष्य बने श्रीचरणोके ।
राघवविजयादशमीके दिन, अवतार लिया था रघुवरने ॥८॥
जयनाद छात्रदल करता है, हर्षाब्धि तरगे बढती है ।
'दामोदर' हृच्चातक स्वातीसे, तृप्त किया इन रघुवरने ॥९॥
आपका दामोदरदास 'श्रीवैष्णव' प्रयाग

※ श्रीमतेरामानन्दाचार्याय ननः ※

विश्वमे वीर 'रघुवर'सा, जोरावर हो नही सकता ।
पिये ये रामरस जीभर, कभी कोई पी नही सकता ॥१॥
हृदयमे, भक्तिकी प्रतिमा. गलेमे शास्त्रमालाये ।
जमाना उनकी शानीका मनोहर हो नही सकता ॥२॥
ललित श्रीराम यशवल्ली, बताकर मुक्तिसौरभ से ।
किया सुरभि जमानेको कहू क्या हो नही सकता ॥३॥
है जिनके शास्त्रकी रचना, सरस ज्यो गङ्गाकी धारा ।
वे जैसे तापहारी है, मिस्ल कोई होनही सकता ॥४॥
मनोहर प्रेममय भाषा, सुधासेभी मधुर उनकी ।
डुवो कर स्नेह सरितामे, कोई हा, कह नही सकता ॥५॥
उन्हें संसार सह राजा, व रानी सर झुकाते है ।
है उनमे शान्तिदा सरिता, किसीमे हो नही सकती ॥६॥
हृदय गम्भीर सागरसा, भरावेदान्त विद्यासे ।
बराबर इष्टसिद्धि मे, कोई भी हो नही सकता ॥७॥
बढी है शास्त्ररचने की, महाशक्ति पढाने की ।
चाँदषड् शास्त्रसागरमे सरिस कोई हो नही सकता ॥८॥
बढा जो हर्ष "दामोर" दशहरा बीच छात्रों के ।
यही पर्याप्त है इस दम जहॉ मे हो नही सकता ॥९॥
श्रीमच्चरणाश्रित–दामोदरदास 'श्रीवैष्णव' प्रयाग

卐

श्रीः

[ऊर्दु भाषा]

था परेशा बेकदर सारा जमाना जूर्मसे । मिट रही थी कौमे मजहम जालिमो के जोरसे ॥१॥
आहे सर्दीसे जमी दहली फलक हिलने लगा । शक्तियाथी मिट गई तब आशमा कपने लगा ॥२॥
हायबुज दिल यह जमी जबसर्दसे व्याकुल बनी । आशमाने तब विछाली फीडकर अग्निकनी ॥३॥
उस अवेरी रातमे दर्देजिगर हर हिन्दका । शाह 'रघुवर' सूर्य बन तख्तेजहापर था चढा ॥४॥

श्रीमदीय-रामप्रियादास 'श्रीवैष्णव'

* भाषाउत्कल *

(राग कनडा)

जय जय रघुवर जय विद्यादाता छात्रवृन्द सुखकर्त्ता लिहि छिविधाता ।
विरक्तवैष्णव श्रेष्ठ आहे रघुवर, श्रीवैष्णव उपदेश भेजेविधिवर ॥
स्वर्गपुरे देवगण एकत्रहो इण, वेदान्तकेसरी नाम करै नृत्यगान ।
अद्य अटे रघुवर जन्म दिवस, नाचन्ति अप्सरागण होइ कृत्य कृत्य ॥
ब्रह्मा इन्द्र दिगपाल होइ करिमेल, रघुवर विद्यालयेहोइच्छिन्ति ठुल ।
बृहस्पति प्राये तुम्भे विद्यारे निपुण, होइण आनन्द मनकरे विद्यादान ॥
तव विद्याको देखिणवेदव्यास मुनि, लज्जित होइण त्यक्त कलेलि लिखनी ।
भारतवर्षरे तव ए नाम विख्यात, वाजा यन्त्रे तवमन हुये प्रफुलित ॥
ब्रह्मचर्यस्य प्रतापे तव ए शरीर, अत्यन्त सुन्दर दिशे अति मनोहर ।
ब्रह्मचर्यको देखिण स्वर्ग रतिपति, लज्जित होइणसे हुकल अछि स्तुति ॥
अत्यन्त सुन्दर दिशे एजानकी बाग, मयूरकोकिलराव अत्यन्त अधिक ।
तत्पश्चात रामबाग अत्यन्त सुन्दर, रामबागकु तुलना करै बारबार ॥
सनातनधर्मसभा जगद्गुरुपद, श्रवणकरिण छात्रहु अन्ति आनन्द ।
शाण्डिल्यवंशवर्धक षटशास्त्र ज्ञाता, यशकीर्ति वनवन्त करिछि विधाता ॥
जय जय जय जय शीगडाधिपति, कविता सपूर्ण कला त्रिभुवन पति ।

श्रीमदीय-त्रिभुवनदास 'श्रीवैष्णव' माऊन्ट आबु

वन्दना

અમીરસ વાણી વદનારા, સદા સમભાવ ધરનારા, અમારા પ્રાણથી પ્યારા, રઘુવર વંદિયે તમને
બધાને પ્રિય થાનારા, બસેના ચિત્તથી ન્યારા, અમારી આંખના તારા, રઘુવર વંદિયે તમને
હૃદયના બાગમા રમતા, દુખીના દુખને હરતા, સદા નયનોમા તરવરતા, રઘુવર વંદિયેતમને.
સદા સાચો સુગમ રસ્તો, બતાવ્યો છે બવાઓને, સમયવેત્તા એ સમદર્શી, રઘુવર વંદિયે તમને
પ્રભુ અહી પધારીને, અમો સૌ રંકને પોતા સઉને સુખ દેનારા, રઘુવર વંદિયે તમને
આપનો પ્રેમ સૌ કોને, હૃદયમા શાન્તિ દેનારો, હતો તેવો સદા રાખો, રઘુવર વંદિયે તમને

બ્રહ્મ કુમારો જ્યા કરે, નિત્ય શાસ્ત્રોના ઘોષ, દિલમા દેવગિરા વડે, ભરે જ્ઞાન નિજ કોષ
અર્થીને અન્નાદિ દે, બહુ વિધ વિદ્યાદાન, ધર્મ દાનનુ પરબ જ્યા, સદા દાન ને દાન
ધ્યાન કરે જ્યા સર્વદા, ભાવ ભક્તિ ઉભરાય, શ્રી ગુરુ પદ રજ રાજતી, બોધ વાયુ જ્યાવાય
કલેશ ન સસારી જરા, આવી ન શકતો કોઈ, એવા આ આશ્રમ વિષે, ભજન કરે સહુ કોઈ
શ્રી રઘુવરના ચરણથી, પાવન પૂર્ણ પ્રદેશ, સેવીને શાન્તિ ધરો, હૃદગે ધરી રમેશ
આપશ્રીનો ચરણસેવક—**મૂળશ કર કાળીદાસ** સિદ્ધપુર

॥ શ્રીગુરુદેવસ્તુતિ ॥

આરતિ

જયદેવ જયદેવ જય રઘુવર સ્વામી, ગુરુ જય રઘુવર સ્વામી, વૈષ્ણવ ધર્મ દિવાકર (૨)
તથ્ય તત્વવેત્તા, જયદેવ જયદેવ, સત્ય વચન શુભ શબ્દો નિત્યમુખે બોલે, ગુરુ નિત્ય મુખે બોલે
ભેદ હૃદયના ભેદી (૨) પાખડ પરિહર્તા—જય૦
શુદ્ધ વિશિષ્ટાદ્વૈત ધર્મ પ્રગટકર્તા, ગુરુ નાસ્તિક મતના નાશક(૨) શાશક દુષ્ટોના, જય૦
નિત્ય નિજેષ્ટ શ્રી રામ નિર્ભય કરી જેમા—ગુરુ૦ વસતા સીતા સાથે(૨) રઘુવરના મનમાજય૦
ધર્મોદ્ધાર માટે સ્થાપી વિદ્યાલય—ગુરુ૦ વૈષ્ણવ સત્ છાત્રોને (૨) દેતા વિદ્યાદાન—જય૦
સકલ શાસ્ત્રમા, પૂરા અપૂર્વ છો વિદ્વાન્—ગુરુ૦ વર્ણાશ્રમ પ્રતિપાદક (૨) દીન જનોદ્ધર્તા—જય૦
માસિક પત્ર પ્રવર્તક વૈષ્ણવ ભાસ્કરના—ગુરુ અપૂર્વ ગ્રથના કર્તા (૨) પાડિત્યે પૂરા—જય૦
શુભ શ્રી આનદભાષ્ય સશોધન કર્તા— ગુરુ૦ મોક્ષમાર્ગ પ્રદર્શક(૨)દર્શન નિધિનેતા—જય૦
સાર શાસ્ત્રનો જાણી ગર્વ તજ્યો જેણે—ગુરુ૦ એવા પરમ ગુરુને (૨) નિત્વનમુખ તે—જય૦
શ્રેષ્ઠ જયન્તિ દિવસે સ્તુતિ કરશે જેજે—ગુરુ૦ તેના પાપો હરશે (૨) કૃપાલુ પ્રેમે—જય૦
કરપુટ બાધી ચરણમા રચ્યુ છે ઉમગે ગુરુ૦ બાલકદાસ હમેશા(૨) નિર્ભય બની જાશે જય૦
શ્રીવૈષ્ણવ—**બાલકદાસ**

આચાર્યચરણ શ્રયે

અખડ પ્રૌઢ પ્રતાપ ગૌબ્રાહ્મણ પ્રતીપાલક ધર્મરક્ષક શિરોમણિ, તીર્થસ્વરૂપ, સકલગુણસપન્ન,
સચ્ચીદાનદ, પરમ પૂજ્યપાદ શ્રીમાન્ શ્રી ૧૦૮

卐 જગદ્ગુરુ શ્રીરામાનન્દાચાર્ય સ્વામી શ્રીરઘુવરાચાર્યજી વેદાન્તકેસરીના ચરણારવિંદમાં 卐

શ્રી જગપતિ નમી, યાચિએ ઘનશ્યામ જો, શ્રી રઘુવર મહારાજ, શુભ સુખ પામજો,
સુખ પામજો, દુખ વામજો, યશ જામજો, ઘનશ્યામજો શ્રીજગ૦
રાજરીત સગીત સપુરણ, રણશૂર રીપુચુર છો કરનાર, ધરી હામજો,
સુખ પામજો, સુખ પામજો દુખ વામજો ઘનશ્યામજો શ્રીજગ૦ ''
સ્વધર્મ ધારી તજો તપહારી પચનનીપારી સહીત તુમારી પુરે આશ સારી,
લહેજગજારી, કીરતી પસારી, પાસે કારભારી મહા બુદ્ધિશાળી
પુરે ત્રિપુરારી હામજો, મન હામજો શ્રીજગ૦

સાખી

તપો તેજ ત્રણ લોકમા સૂર્ય કિરણ સમ તાજ
ભાવ ધરી રઘુવરજી, રાજા ભોગવજો આ રાજ
આશીષ કહે હરીદાસ વિજય જશ જામજો
જશ જામજો, સુખ પામજો, દુખ વામજો ઘનશ્યામજો શ્રીજગ૦
લી૦ આપના ચરણારવિંદની રજ, દાસાનુદાસ
હરીદાસ દે. ના સાષ્ટાંગ દંડવત્ પ્રણામ



Broken strirg are not dead lyres, But are in the disguise of cieerones, That take us towards the eternal Creation of FUTURE LIFE

* *

Words that are thrown from the inner Circle of the heart go far away and away Till they get the real sight of infinite Light and sink in it

* *

Poor hearts run to catch the bow of Beautiful colours and desire to make Their residence in that world, But when the mimic world disperses, They have to submerge into, The waves of death-like despair and damages

"SUDHANSHU"



पालनपुर कवि श्रीहमीरदान लखवीरजीकृत

आचार्यप्रशस्तिः

कवित्त

वेदविधवेतालख्यो आगमविजेता लख्यो, प्रगट प्रचेता लख्यो विद्याजलवासको
दक्षमत द्वेया लख्यो दन्तीमुखमेवालख्यो वानी विचवेधालख्यो भूतलनिवासको
कहत 'हमीर' सुनासीरका पुरोवालख्यो स्वामी रघुवर लख्यो योधा इतिहासको
शंकर अधुनो दयानन्द तम पून लख्यो जूनो लख्यो दूनो ए नमुनो वेद व्यासको १

श्रीमदनुभवानन्दाचार्यचरणकमलेभ्यो नम

હૃદયોદ્‌ગાર

પૂજ્યપાદ શ્રી ગડામઠાધીશ્વર શ્રીમદાચાર્યજી મહારાજ !
આભારથી સીંચાતા હૃદય સ્વયમજ ભભકે છે ! !
હજારો વાદળા શાતા, કદી નવ સૂર્ય છુપાશે,
પ્રભો ! તેમ આપના ગુણો, હૃદય આજે જરૂર ગાશે.
રઘુવરાચાર્યે કંઇક જન તાર્યા નામ વખાણુ કે ગુણ તમારા,
લોહનું કંચન છે કરનારા પારસમણિ સમ ગુણ તમારા **રઘુ૦**

ધર્મ, દયા ને સત્ય, સુનીતિ, વિદ્યા પર છો ચિત્ત ધરનારા,
એવા શ્રી **રઘુવરાચાર્ય**, ધન્ય જીવન ગુણ ગાઉં તમારા **રઘુ૦**
શ્રી ગડામઠની ગાદી શોભાવી, પ્રાણ પ્રજામાં પ્રિય ગણાયા,
ધર્મધુરંધર થઈ વખાણાયા, એ સાચા છે ગુણ તમારા **રઘુ૦**
"વૈષ્ણવ ભાસ્કર" માસિક કાઢી, વૈષ્ણવોને જ્ઞાની બનાવ્યા,
સુપથે સૌ કોને ચડાવ્યા, એ ઓછા શું ગુણ તમારા **રઘુ૦**
સ્થાપી વિદ્યાલય **રઘુવર** નામે, વિદ્યાર્થીના જીવન પલટાવ્યા,
છે સત્કાર્યો અન્ય કર્યા જે એ વર્ણન નહીં થાય તમારા **રઘુ૦**
મમ અંતર તો એમ કહે છે, જુગ જુગ જીવો **રઘુવરાચાર્ય**;
હું તો શું પણ સૌ કોઈ કહેશે રામસમા છે ગુણ તમારા **રઘુ૦**

લી૦ હું છું, આપનો ગુણપુજક
બ્રહ્મભટ્ટ ભાણજી વિ. ભવાન પોરબંદર ॥

श्री सीतारामौ विजयेतेतमाम्

महामहोपाध्याय जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यरघुवराचार्य वेदान्तकेसरि

॥ स्मृत्युपलक्षेपद्यप्रसूनाञ्जलिसमर्पणम् ॥

समर्पयिता—पं जगदीशझा

प्राध्यापक-श्रीरघुवर रामानन्द वेदान्त महाविद्यालय श्रीकोसलेन्द्रमठ अहमदाबाद

अन्त प्रविश्य यो वाचं प्रबोधयति सेन्द्रियाम् । तस्मै श्रीकोसलेन्द्राय नमोऽस्तु परमात्मने ॥१॥

महापुरुष–माहात्म्यमशक्यं वक्तुमस्त्यपि । तथाऽपि स्वा गिर मेध्या विधातुं तद् ब्रुवे मनाक् ॥२॥

मुरादावादाब्धेर्गुणजलधिनिध्यब्ज (१९४३) प्रमिते नरेगाऽऽदित्याब्दे 'रघुवर'–सुधांशु समुदगात् ॥
अबोधात्मध्वान्त विदधदतिशान्तं दिशिदिशि समासाद्य स्वच्छा विजयदशमीमुत्तमतिथिम् ॥३॥

यदेतस्योदीतिर्विजयदशमीपुण्यदिबसे विपक्षालीकालीकृतवदनतास्थापनकृते ॥
विजेतृ पाण्डित्यप्रचुरतरताहेतिनिवहै प्रतिद्वन्द्विव्यूहं, जननविपये मन्यत इदम् ॥४॥

भवोद्विग्नो लग्नश्चरमपुरुपार्थे रघुवरो गुरोश्चारो श्रीमद्धनुमत उदाराद् व्रतमलात् ॥
क्रमादभ्यायातं परमशिवदवैष्णवचये तत प्रारभ्यास्य प्रचुरविमल जीवनमभूत् ॥५॥

अथायोध्याधामन्यतिविशदबुद्धी रघुवरो निजाचार्योद्भवद्वौ विजितकमलाऽऽभावभिजनम् ॥
समध्येतु शास्त्रं निजगुरुसकाशे निजरुचिमभिव्यक्तीकुर्वन् गुरुवरनिदेशामृतमपात् ॥६॥

ततो महामठाधीशश्रीमद्राममनोहर प्रसादाचार्यसान्निध्येध्ययनाध्यापनेऽलगत् ॥७॥

महाविद्वद्वृन्द प्रचुरतरगण्यत्वमपि यन्नयं ग्रन्थान् पश्यन्नगरतमनैनादइरह ॥
महापाण्डित्योत्थं निजहृदि न गर्व परिवहन् पर नम्र कम्र सकलकृतिना संसदि अभूत् ॥८॥

अकुण्ठामुत्कण्ठा हृदयतलजाता शमयितुमथ न्यायेऽन्यस्मिन्नपि विमलवेदान्तप्रमुखे ॥
महोच्चैर्विद्वत्ताचणबुधवरै राजिततला ययौ धीमाञ्छ्रीमान् रघुवरबुध पुण्यमिथिलाम् ॥९॥

मिथिलामुपेत श्रोत्रिययाचकश्च भासुरभास्करादुत्कृष्टवर्य–महामहोपाध्यायपदवी–भूषणात् ॥
"श्रीबालकृष्णमहोदयान्मिश्रोपनाम–समन्वितात्, स न्याय मीमांसा सहित–वेदान्तदर्शनमापठन् ॥१०॥

यस्याभवन् बहवो बुधा न्यायादिशास्त्रधुरन्धरा अन्तेवसन्त उदारयश इन्दूज्ज्वलीकृततर–वरा ॥
अधरित–सुधा मधुमाधुरीकवचोऽभिरञ्जित–सत्सभा सुगमितदुर्गमतत्त्वबोधा स्थायिकीर्तिहिमप्रभा ॥११॥

तमस्तत्राऽऽश्वेव प्रखरतरदर्भाग्रमतिक समस्तन्यायादेर्विषयनिचयं मानसचरम् ॥
चरन् वेदान्ताध्यात्मक–विपिनचारी हरिरभूद् दिगन्तेऽपि स्वान्ते निखिलसुधिया ख्यातिमुपयन् ॥१२॥

अयोध्याया श्रीमद्रघुवरपदाम्भोजलसने त्ववाच्यो वेदान्ती गललसितकण्ठ्यान् मतिवन ॥
जिघृक्षन्वेदान्त प्रति समकुचत् पाठनविधा–विहैव प्रारेभे प्रचुरकलहाग्निदलयुगे ॥१३॥

स च प्रापत् कालान्तर इह महायुद्धवरता समूहत्राणस्याऽऽव्रजिव इतिहासोऽस्ति वितत ॥
अमुष्यामाक्रान्तौ प्रथमपुरतोगन्तुक्तया प्रसिद्धो वेदान्तप्रवरहरिरेवाजनितमाम् ॥१४॥

प्रसिद्धप्रस्थानत्रितयमविकृत्यातिरचिर सुधी–रामानन्दैर्विहितमखिलाचार्यमणिभि ॥
अथानन्दं भाष्यत्रिपयमुपलब्धु श्रमपर प्रयेने फुल्लाम्भोजनिदलमृदु श्रीरघुवर ॥१५॥

ततो लब्ध्वा भाष्यत्रितयमनुसन्धाय गहन–मनैषीत् प्राकट्य सहममिह शारीरिकगतम् ॥
इहारतामाचार्यौ परमनिपुणौ यद्यपि तयाऽप्यमुष्मै तद्धार समुचितमदाता मतिमते ॥१६॥

सद्दार्शनिकगण–सार्वभौमो वासुदेवाचार्यराट्, श्रीरामवल्लभ(भा)शरण पण्डिततल्लजोऽपि बुधाविमौ ॥
वेदान्तकेसरिणे सुशोधन–सम्प्रकाशनवारदौ, आनन्दभाष्यस्येति कार्यं तस्य मानकर व्यभात् ॥१७॥

वेदान्तकेसरिणं च शेपमठस्य भाव्यधिकारिणम्, योग्य विदंस्तस्मा अदात्तस्याधिपत्य शासक ।
तत्प्रभृति शृङ्गिपुरस्थ–शेपमठाधिप श्रीरघुवरस्तत्कार्यजातं चारुरीत्या प्रेमभि समचालयत ॥१८॥

स सम्प्रदाय–रक्षणार्थमत्र विज्ञनिर्मितिम् समुद्दिशन् व्यधात् सुधी स्वनामपाठशालिकाम् ।
'रघुवरसंस्कृतविद्यालय" इति नामकृतं तदा सुविज्ञै यत्र सुशिक्षां प्रापन् श्रीवैष्णवाचार्य–प्रभृतय ॥
स्वामी श्रीवैष्णवाचार्यो रामपदार्थ सुधीवर । जानकीदास इत्येते यतो निरगमन् बुधा ॥२०॥

अद्यापि विद्यालय एष सम्यक्, स्वोद्देश्यपूर्ति कुरुते पुरावत् ।
सुदूरनेपाल–विहार जाताश्छात्रा उदीच्या इह सम्पठन्ति ॥२१॥

अमुष्मिन्नाचार्ये विलसिततराऽपूर्व–प्रतिभा व्यभान्मूर्ति सौम्या स्तिमितनयनाऽऽलोचसुषमा ॥
गभीरत्वं प्रापज्जलधिमपहायेव मधुरे नहुक्षारोद्विग्न प्रतिकृतिमपूर्वामभिलपन् ॥२२॥

तदानीं गोरण्डाद्भटप्रतिभया पूर्णबुधताचमत्कारस्फाराकुलहृदय उत्कृष्ट–पदवीम् ॥
अमुष्मै प्रायच्छद् गुणगरिमवश्योऽस्य हि भवन् गुण पूजास्थान भवति भुवने निश्चितमिदम् ॥२३

तत प्रारभ्याभूज्जगति सकलेऽस्मिन् सच महामहोपाध्याय सन्नपि च शतप्रश्नोत्तर–कर ॥
अमुं दृष्ट्वैवासन् विवशहृदया भूमिपतय कियन्तो राजान सनिजमहिला दीक्षणमलु ॥२४॥

परीणामस्तेषामयमुदभवच्छेषमठगाऽधिकाराधारोऽभूद् रघुवर–सुधी प्राज्यगुणवान् ॥
पुनर्वेदान्तोन्नामकरणहेतो स मतिमान् व्यधाद् वेदान्तस्याऽऽश्रममभिलशन् सिद्धपुरके (नगरे)॥२५॥

इहैवास्य स्तम्भं रिरचयिषुरासीच्छ्रमपर स्वविख्याति चक्रे विपुलतरविद्याभवनत ॥
अयं ख्यात सम्यग् दिशि दिशि यथार्थास्तिक उदैत् स रामानन्दीयो दृढतरप्रतिज्ञो हरिजुष ॥२६॥

सनातनं धर्ममवन् विशुद्धं विरुद्धमेतस्य विचारजालम् ।
व्यक्त विधातुं बृहदेव पापं तापं वितन्वत् स विदन् व्यराजत् ॥२७॥

लक्ष्मीस्तदीयाङ्घ्रि-सरोजयुग्मे लोष्टायमाना व्यलसल्लुठन्ती ।
स्वं सम्प्रदाय परितो निषेवे सर्वाधिक स स्थिरकार्यकारी ॥२८॥

विद्याजुषां सद्विदुषा सुमान कर्तु विजानन् स पर व्यभासीत् ।
स्वयंत्वमानी बुधमानकर्ता कचित् कचिद् भाति पुमानमूल्क ॥२९॥

स योग्यायोग्याना परिचयविधानेऽतिनिपुणो नचाहङ्कारस्य कचिदपि स सस्पर्शगममत् ।
कराले, कालेऽस्मिन् समजनि च साक्षन्नर-हरिर्न हि प्राशंसन् स्व कचिदपि स वेदान्त-मृगराट ।३०

कदाचिल्लोकाना बदनविलनि सारिततरा प्रशंसा स्त्रा शृण्वस्तुहिनकर रोचि परिगतम् ।
प्रफुल्लाम्भोजाम्वो वनमिव स सङ्कोचमगमत् परेषा सूरीणामुचितबुधतामूल्यमकरोत् ॥३१॥

सचैकदा वासुदेवाचार्यचर्चा प्रसङ्गत । वेदान्तकेसरी प्राह-वैष्णवाचार्य-पण्डितम् ॥३२॥

किमिति जिज्ञासायामुच्यते-दार्शनिकसार्वभौमस्वामिश्रीवासुदेवार्य इव ।
श्रीरामानन्दसम्प्रदाये नास्त्येव कोऽपि बुध ॥३३॥

अन्येऽपि च भवेत् स्वल्पो विद्वास्तत्सदृश खलु । विद्वत्ताऽलौकिकी भाति सार्वभौममहोदये ॥३४॥

तदेतन्मन्येऽहं" निजवदनत स्व गुणगणमभिव्यक्तीकुर्वन् अर्जति पुरुहूतोऽपि लघुताम् ।
महामान्यो विद्वान्नहि उपति कश्चिन्निजगुणं परेषामेवायं गुणमनुवदन् स्व ज्ञपयति ॥३५॥

वेदान्तकेसरिमहोदयचारुकीर्ति कि वर्णयामि बहलनगिरा बलं मे ।
कि तर्हि गर्हितमपीति सुरीतिहीनं क्षम्यीकरिष्यति सुधीस्त्रुटिसिन्धुलीनम् ॥३६॥

विधुशरनवचन्द्रे (१९५१) खृष्टवर्षे द्वितीये प्रछवति सति भासे वैश्वतिथ्या सुरांश ।
रघुवरशशधारी धर्मकर्मप्रचारी सुरपुर-यति-पूजां लब्धुमैत् तत्समीपम् ॥३७॥

कृतय -वैष्णवभास्करनाम पत्रसम्पादन-प्रकाशनाद्या ।
कृतरा सन्ति तदीया अनेके निबन्धका ख्याता ॥३८॥

ग्रन्थो -ब्रह्मसूत्रीयवेदान्तवृत्तिर्वेदार्थरक्षिका । ग्रन्थावेतौ तथाऽन्ये च सन्ति तस्य महात्मन ।३९।

श्रीमद्भगवद्गीता-ऽर्थ प्रकाशिका मन्त्रराजमीमासा । श्रीवैष्णवमताब्जभास्करभाष्यप्रभृतय सन्ति ॥४०

एतद्ग्रन्थातिरिक्ताश्च हिन्द्या गुर्जर-वाचि च । शीघ्रमेव प्रकाश्यन्ते मठात् तस्यान्य-वस्तिका ॥४१॥

प्रभुवर भज सयतचेतसा रघुवर जगतोऽतिविरक्तिभाक् ।
अनुचरत्वमिहास्य हि सत्यकं रघुवरानुचरो वदति स्फुटम् ॥४२॥

यत् खृष्टवर्षस्योनविंशतितमशताब्द्यारम्भभजमुद्भूत्तदनुसन्धाय भारतगेतिहासमनुत्तमम् ।
एतर्हि-भारत-वर्ष संस्कृत्या समाकृष्टो भवन् गोरण्डविद्वान् स्वीयविधया तदनुसन्धानेऽलगत् ॥४३॥

अथ भारतीय-विचक्षणेष्वपि तद्रतेय भावना स्वीयपभानमुपानयत् सर्वेऽथ भारतभूमिजा ।
निज-सस्कृति संरक्षितुं जागरितवत् संलक्षिता एव तदानी प्रत्यभासत, मन्यतामिति निश्चितम् ।४४।

एकोनविंशतितमशकाब्द्या पञ्चविंशाब्दात्पर श्रीसम्प्रदायरामानुयायितया प्रसिद्धिमुपेयुषाम् ।
उत्तरप्रदेशनिवासिना श्रीवैष्णवाना मण्डले श्रीसम्प्रदायपरम्पराऽन्वेषणप्रयत्न प्राचलन् ॥४५॥

क्तरुणा-सुधा-वरुणात्मय-श्रीरामचन्द्र कृपादृशा मन्त्रेष्ट-देव-सदाचरण-वैभिन्य-चिरकाऽऽगति ।
उत्तरप्रदेशनिवासिन श्री-सम्प्रदाय जुष सत श्रीसम्प्रदाय-परम्पराऽन्वेषणकृते साऽऽजूहवन् ॥४६॥

श्री-सम्प्रदायपरम्पराशोधनप्रवृत्तिरियं शनैः श्री-सम्प्रदायत्रोग-सत्याग्रह-कलेवरसमग्रहीन ॥
श्रीसम्प्रदायनिषेविणामगणितपरिश्रमफलमिदं यत् सर्वतन्त्रनिजायत्वम्यावसर प्रत्यासिलत् ॥४७॥

चलिते तु अस्मिन् सम्प्रदाय स्व व्यतीत गौरव गृह्णन् नभसि तारेश इव परमुज्ज्वलन् समजृम्भत।
आसीत् महत्यान्दोलने विशता जनाना मध्यगो वेदान्तकेसरि-रघुवराचार्योऽहि शेषमठेश्वर ॥४८॥

आन्दोलनेऽस्मिन् स्वस्य शोधन-पूर्णलेखपरम्परा स्फोटिका चोत्तेजिका वचनावली जनताऽऽहिता ॥
शास्त्रार्थ-पटुताऽऽघातसहिता सहयुजामनुयायिना प्रक-वलप्रदता च तस्योत्साह-सञ्चयमैवयत् ।४९

अथ सैव नवजागृतिगते श्री-सम्प्रदाय कथानके निजन्टमत-प्रतिविम्बमुज्ज्वलमादधादिति भन्यते ।
आन्दोलनेऽत्र सहानुभूतिर्या कथञ्चित् कस्यचित् सैषा सदा चाद्रा रलेव हि सम्प्रदायस्वगात्सेन्५०

दर्शननिधे श्रीरघुवराचार्यस्य सेवा या परा तामानताय सम्प्रदायन्तं निजाचार्य वदन् ।
वसुगुणनवेन्दु(१९३८ई०)प्रमितखृष्टे" कुम्भगाटड पत्रिका
देहल्यभिनगरी-प्रकाशिततामुपेता साक्षिणी ॥५१॥

दर्शननिधे श्रीरघुवराचार्यस्य शेषमठेशितुरभिनुन्नजात्रस्त्रीलरामानन्दवर्याचार्यता ।
गौरवयुता प्राप्ता सकल-विदुषा मता विधांतते श्रीसम्प्रदाये मानीशा प्रभिनि-सन्त-साविता ॥५२।

इति वदति जगदीशाभिध श्रीकोशलेन्द्रमठेऽधुना विद्यातयेऽ यापनपरो मिथिलाप्रदेशसमुद्भव ।
वेदान्तकेसरिण परमयोग्यस्य दर्शनवारिधेर्विजयादशम्या जनिजयन्ती भाविनीमुपलक्षयन् ॥५३॥

卐

卐 संस्मरण 卐

ले० प० श्रीकेदारनाथओझा
मुमुक्षुभवन-अस्सी-वाराणसी

श्रीरामचन्द्रचरणौ शरणौ श्रयामि

स्मरणीय चरित भव्यमूर्ति मल्ल विद्या प्रवीण शतावधानी लेखन भाषण अध्यापन आदि वैदुष्य कलाधर नैकभारतीय राज्य सम्मानित शनाधिक दीक्षा शिक्षाशिष्यशेवी दर्शननिधि वेदान्त केसरी प्रभृति अनेक विद्यासम्मान विभूषण पदवी भूषित भारत सरकार सत्कारपदवी महामहोपाध्यायालङ्कृत श्री रामानन्द सम्प्रदाय के ३९वें आचार्य जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरघुवराचार्यजी महाराज के शततम जयन्ती महोत्सव के अवसर पर उनकी अतुल महिमाओं का अल्प संस्मरण –

चत्वारिंशैकहीने प्रथमरजतसिंहासने न्यस्तपादः
नानोपायैर्विशिष्टद्वयमधुररसं वर्षयन् शस्तवादः ।
संवादो यस्य हर्षं वितरति विदुषः संश्रुतः सिंहनादः
आचार्यस्तेजसाऽसौ जयति रघुवरो रामसेवासुधार्द्रः ॥१॥

प्राय १९२८-३० ई० वर्ष का समय होगा, मै काशी हिन्दू विश्व विद्यालय वाराणसी मे पढता था, गुरुजी के निवासस्थान जो रही था वहाँ पढने जाता था, रामानन्दीय महात्मा श्री वासुदेवाचार्यजी तथा श्रीरामपदार्थाचार्यजी भी गुरुजी के यहाँ पढने जाया करते थे। ये लोग कुछ हम से ऊँची श्रेणी के छात्र थे। एक समय ये ही दोनो गुरुजी से चर्चा चला रहे थे। उसमे लिम्नलिखित मुझे ज्ञात हुआ था। श्रीरघुवराचार्य एश्वर्य विद्या सम्पन्न है जो मुजफ्फरपुर मे गुरुजी से पढे है। वे काशी आये है, अमुक समय अस्सी शीतलदासजी के अखाडा मे समिति बैठेगी, जिसमे श्रीसम्प्रदाय या विशिष्टाद्वैत सम्प्रदायके दाक्षिणात्य तथा उत्तरीय सदस्यो के आचरण व्यवहारो से एव उपासना मन्त्रादि प्रकारो मे बहुत विभेद होने पर भी अनिच्छित कलह उपस्थित हो गया है। इसलिये सम्प्रदाय विभेद बोधक सफाई या स्फुटता लाना निश्चित हो गया है। उसके लिये क्या क्या कर्त्तव्य किस प्रकार सम्पन्न किया जाय, इत्यादि का विचार होगा। उसके बाद दूसरे या तीसरे दिन मालूम हुआ कि अबतक अमुद्रित प्रस्थानत्रय भाष्यो का स्फुट उद्धार प्रकाशन आदि का निश्चय किया गया है, तथा आनन्दभाष्यो का सम्पादन प्रकाशन आदि का पूर्णभार वेदान्ती श्रीरघुवराचार्यजी के अधीन किया गया है। इतना ही समझ सका, इससे अधिक मेरे सामने नही आया। न उनका दर्शन न सलाप कुछ भी नही हुआ, केवल उनका व्यक्तित्व कुछ विशेषता के साथ मनमे रहा।

१९३२ ई० जुलाई अगस्त का समय होगा, मै जैन साधुओ को पढाने के लिये पाटण-गुजरात मे रहता था, किसी प्रकार आचार्यजी का श्रीशेषमठ शीगडा का ठिकाना मालूम हुआ, मैने पत्र दिया, उनका समय से ही उत्तर मिला कि मै ऊँझा मे अमुक मन्दिर मे इतने दिन रहूँगा यहाँ हमसे मिले। जाकर मिला बाते हुई, श्रीरघुवर सस्कृत महाविद्यालयमे मेरा रहना निश्चित हुआ जो आचार्यजी से ही स्थापित था वहाँ उनसे ज्ञात हुआ कि गत साल श्रीवासुदेवाचार्यजी कुछ मास वहाँ रह चुके है। वहाँ से पाटण आ गया। पाटण आने पर एक मास के अन्दर श्रीशेष-मठ शीगडा चला गया, वहा की विभूतियाँ दीख पडी विशाल मठ का स्थान, पहला विशाल प्राङ्गण जिस मे फाटक नही, किन्तु करीब चारो तरफ से मकानो से आवृत्त है, जिसमे बाहरी लोगो के आने-जाने की छुट थी। पोरबन्दर से बस वहाँ तक जाती थी। रातको ठहरती थी। सुबह वही से चलती थी।उसके अन्दर एक विशाल फाटक जो रातको बन्द रहता था। सुबह खुल जाता था। प्रहरी रहता था, उसके अन्दर बडा प्राङ्गण, जिसमे विद्यालय भवन, व्यायामशाला गोशाला जिसमे ५०-६० गाये थी। अश्वशाला जिसमे १५-१६ घोडे घोडिया रहते थे। उसी प्राङ्गण मे एक तरफ बडा फाटक वाला बडा दरवाजा था, उसमे बडा प्राङ्गण, मध्यमे विशाल मन्दिर, उसके चारो तरफ पाठशाला-भण्डार-शान्तिभवन-आनन्द भवन आदि अच्छे मकान है। गौशाला तथा विद्यालय के बीचसे एक छोटा द्वार निकला था, जिसमे केवाड लगी रहती थी। आवश्यकतावश खुलती थी। उससे एक विशाल मैदान मे निकला जाता था, वह एक तरफ से मकानों से घीरा था, तीन तरफ से पेड-झाड कुछ इटोंसे घीरा था, उसमे बाहरी लोगों का प्रवेश नहीं था, खुली गाये घूमती थी।

* महाराजजीकी दिनचर्या *

अपने नित्य कर्म के बाद कुछ पढ़ाना। जमीन्दारी कार्यवाही देखना, मठका प्रबन्ध जिसमे उनके पट्ट शिष्य स्वामी श्रीरामप्रपन्नचार्यजी सहायक थे कभी कभी गुरु शिष्य कुछ दूसरे लोग भी घोड़े पर ग्राम सीमा पर घूमना कभी व्यायाम-शाला मे आकर व्यायाम देखना पाक्षिक सभा का सञ्चालन, जिसमे अपना भाषण, औरोका भाषण, संस्कृत हिन्दी दो भाषाये चलती थी छात्रो को संस्कृत भाषण मे प्रोत्साहन आदि चलता था। कभी-कभी थोड़ा गुजराती भाषण भी चलता था। मठ से थोड़ी दूर पर कुछ ग्राम वसती के बाद एक बड़ा 'रामबाग' नामका विशाल उपवन था, जिसमे कुछ फल के वृक्ष, फल-पत्ती हरियाली विशाल स्वच्छ मधुर जलवाला कूप थोड़ा मकान बड़े बड़े वृषभ आदि रहते थे, उस रामबाग का भी वर्तमान आचार्य श्रीरामप्रपन्ना चार्यजी के अधीन प्रबन्ध था।

मेरे जाने से पूर्व ब्रह्मसूत्र आनन्दभाष्य और वाल्मीकि संहिता तथा श्रीमैथिली महोपनिषद का प्रकाशन हो चुका था। गीता और उपनिषदे संशोधित होकर तयार है ऐसा सुना, उस समय काशी की परीक्षाये फरवरी के अन्त मे अथवा मार्च के आरम्भ मे चलती थी तभी से तीन मास और आश्विन दशहरा के बाद एक मास काशी रहा करता था। शेष आठ मास श्रीरघुवर संस्कृत महाविद्यालय मे रहता था। इस प्रकार तीन वर्ष रहा, १९३५ ई० के अन्त मे मेरे गुरु जी का पत्र गया कि यहाँ आ जाय। मेरे प्रार्थना-पत्र के बिना ही वैदिक विशेषाध्यायन मे मेरी भर्ती करके काशीमे रहने की इच्छा से बुला लिये। मुझे पसन्द नहीं था कि वृत्ति थोड़ी थी गृहस्थी का भार बढ गया था। किन्तु गुरुजी की आज्ञा दूर से ही त्याज्य सह्य नहीं हुआ। छोड़कर काशी आया, १९३६ ई० जुलाई मे अहमदाबाद संन्यास आश्रम मे नौकरी के लिये चला गया। मेरे पहुँचने के करीब १५ रोज पहले से सात छात्र श्रीशेषमठ शीगड़ा के वहा उपस्थित थे। पूछने पर मालूम हुआ कि मेरे आचार्यपीठ छोड़ने के बाद दो तीन मास बीतने पर आचार्यजी सिद्धपुर गये और कुछ अधिक रुक गये ये छात्र घबड़ाकर श्रीशेषमठ छोड़कर बम्बई चले गये। वहाँ जबतक सुव्यवस्थित नहीं हुए तभी अखबारो से मेरा अहमदाबाद आना-जानकर अहमदाबाद आ गये, उनमे प्रधान ४०वे आचार्यपीठाधीश्वर श्रीरामप्रपन्नाचार्यजी योगीन्द्र थे। इस प्रकार फिर ५ वर्ष मेरे अध्यापन संरक्षण मे रहे। १९४१ ई० जुलाई मे मुझे राजकीय सेवा के लोभ से जयपुर जाना पड़ा। वे उधर आना पसन्द नहीं किये, किन्तु अधिक सम्बन्ध होने से ममता बढ गई थी। कब कहाँ कैसे है इसकी चिन्ता लगी थी, जयपुर जाने पर कुछ मासो के बाद आचार्यजी महाराज जयपुर गये थे उनकी द्वारा गद्दी वही थी, उसके उत्तराधिकारी का चुनाव था जिसके प्रबल विधायक वेदान्तकेसरीजी ही थे। वही मेरा उनका अन्तिम दर्शन था, कुछ छात्र साधु आने जानेवाले मिलते थे उनसे कभी कभी कुछ समाचार मिलता था। कुछ मासो के बाद सुना कि आचार्यजी सिद्धपुर स्वस्थापित वेदान्ताश्रम गये थे। अस्वस्थ हुए, समाचार पाकर शिष्याग्रगण्य श्रीरामप्रपन्नाचार्यजी योगीन्द्र वहा पहुँचे कुछ दिन सेवा किये, उनका वसन्त पञ्चमी २००७ मे साकेतवास हुआ। शीगड़ा की जनता योगिराज श्रीरामप्रपन्नाचार्यजी के संयम और स्वभाव पर मुग्ध थी। प्रतीक्षा करती थी। इनके वहाँ आ जाने पर सभी प्रसन्न हुए। राज्य से इनका ४०वे श्रीरामानन्दाचार्यजी के रूपमे उस आचार्यपीठ पर अभिषेक हुआ। इसको सुनकर मुझे बड़ी खुशी हुई।

वे ही रामानन्द सम्प्रदाय के ४०वे आचार्य जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य योगिराज श्रीरामप्रपन्नाचार्यजी महाराज हे ।

श्रेष्ठैर्भक्तैः सुवित्तैरधिगतबलविद्याविधौ दानिधुर्यः,
रक्तैस्त्वाचाशुवस्त्रैर्जगति विजयते आश्रमोयस्यतुर्यः ।

चत्वारिंशोऽतिदीप्तः कविवरसुवचोवर्णनाच्छादितार्यः
शुद्धो रामप्रपन्नो मुनिजनचरितः कीर्तिताचार्यवर्यः ॥१॥

इनके अभिषेक से बहुत से जनता मे धर्मभक्ति का प्रभाव पडा । इनके त्याग-तप का बडा प्रभाव पडा उससे मुझे बहुत खुशी हुई उस अवस्था को देखने के लिये १९५३ ई० मे मै एक रोज के लिये आचार्यपीठ गया मेरा यथोचित सम्मान हुआ । उसी समय मै दूर होनेसे जयपुर की नोकरी छोडकर 'लखनऊ बिश्वविद्यालय म गया, वहाँ केवल दो वर्ष रहकर पटना चला गया, वहाँ से १९६७ ई० मे राजकीय सेवा से निवृत्त हो गया । कभी कभी आचार्यजी से पत्र व्यवहार होता था । राजसेवा निवृत होने पर इनका पत्र गया था कि आप दोनो श्रीरामानन्दाचार्यपीठ श्रीशेषमठ शीगडा मे निश्चिन्त रहे, आप लोगों का सभी प्रकारका खर्च मठके तरफ से होगा । किन्तु वैसा अवसर नही आया । फिर अहमदावाद की विभूति सुनकर बडी खुशी हुई । अहमदावाद मे बहुत दिन पहले रहे थे, कुछ पहले से उनको जानते थे ।

फिर मुझे तीन-चार मास के लिये १९६१ ई० अहमदावाद आने का अवसर हुआ, वहाँ से श्रीकोशलेन्द्रमठ देखने गया । आचार्यजी नही थे । भावी आचार्य स्वामी रामेश्वरानन्दाचार्यजी मिले थे । पीछे आचार्यजी के आनेपर दूसरी बार भी गया था । १९७६ ई० से काशी मे रहते हुए सम्बन्ध चलता रहता है । स्वामी रामेश्वरानन्दाचार्य की सयम, तप, श्रम, विद्या भक्ति प्रचार आदि सम्पत्तिओ को सुनकर देखकर बडी प्रसन्नता होती है । सभी स्थानो का अच्छा सञ्चालन देखते हुए इनकी शक्तिओ पर आश्चर्य होता है ।

भक्तिरामस्यरम्या भुवि विलसति यद् यत्नजाताऽभिरामा
भक्ता भीष्टाश्च कामाः सपदि सुफलदा यत्प्रयासाः फलन्ति ।
सोऽयं विज्ञस्तपस्वी लिखितगदिततत्त्वः सुराचार्यकल्पः
भावी स्वामी सुधांशुर्यतिसुभमणिरामेश्वराचार्यविद्वान् ॥२॥

मै इस समय विशेष रुग्ण दुर्बल हूँ । इन बिभूतिओ को देख-सुन और स्मरण से जो प्रसन्नता आई उसके बलपर कुछ थोडा लिखकर विराम लेता हूँ । श्रीरामचन्द्रजी से प्रार्थनाकरता हूँ कि इस थोडी मेरी जीवनी मे ऐसी प्रसन्नता का अवसर मिले । तथा इस प्रथम शताब्दी मे इतने से मै उपस्थित होता हूँ ।



ॐ



श्रीमते रामानन्दाय नमः

श्रीशीगढास्थशेषमठाधीश्वरस्वामिश्रीरघुवराचार्यचरणाब्जेषु

卐 अभिनन्दनपत्रम् 卐

श्रीमद्रामपदाब्जगन्धमधुपः स्वाचार्यवर्यो महान् ,
धर्माध्वप्रतिपक्षिपक्षशमनस्त्र्यन्तविद्याचणः ।
दक्षो वैष्णवधर्मवर्धनविधौ वैदुष्यवारान्निधिः,
सोऽयं शेषमठाधिपो रघुवराचार्यश्चिरं राजताम् ॥१॥

विद्याधामासमर्च्यः शुभगुणनिलयो वाग्मिवर्य्यैः सुपूज्यः,
सत्सिद्धान्तप्रचारे दृढमतिरनघोवैष्णवं स्थापयन्यः ।
धर्मं लोके विशोध्य प्रकटितविभवं श्रीमदानन्दभाष्यम् ,
दिव्याम्नायोपकारं सजयतु कृतवान् शाश्वतं भारतेऽस्मिन् ॥२॥

श्रुतिमतमितरस्मिन्नध्वनि प्रापयन्तं,
सुजनमनसि खेदं वर्धयन्तम्प्रमत्तम् ।
गुरुजनधृतपक्षं निन्दयन्तं खलौघं
सपदि जितवतस्ते स्वागतं नित्यमस्तु ॥३॥

वेदान्तमार्गपरिचालनलब्धबोधं, वादीभकूटपरिहारमृगेन्द्ररूपम् ।
श्रीसम्प्रदायपरिरक्षणदक्षमूर्तिं, वन्दामहेऽखिलजनोद्धरणैकपक्षम् ॥४॥

पदवाक्यप्रमाणेषु स्वातन्त्र्यं यस्य विद्यते ।
श्रीमान्रघुवराचार्यः सोऽयं विजयतेतराम् ॥५॥

श्रीमच्छेषमठेशस्य द्वारकाप्रान्तवासिनः ।
प्रेम्णाऽभिनन्दनं कुर्मो वैष्णवच्छात्रसंसदि ॥६॥

श्रीमतामनुयायिनः
श्रीअयोध्यास्थश्रीरामानन्दीयवैष्णवच्छात्रपरिषद्
सभापति मन्त्रिप्रभृतयः
श्रीअयोध्याजी
आ० कृ० ९-१९९४
(२८-९-३७)

श्रीमता शेषमठाधीश्वर स्वामी १०८ श्री रघुवराचार्य वेदान्त केशरी मीमांसान्यायोपाध्याय वेदान्तकाव्यतीर्थ व्याकरणाचार्य वेदान्तशिरोमणि दर्शननिधिप्रभृतिपदवीविभूषिताना छत्तीसगटप्रान्तीयद्वितीयवैष्णवसम्मेलनसभापतिमहोदयाना करसरोरुहे सादरसमर्पितमिदम्

अभिनन्दनपत्रम्

श्रीमन्तः कमनीयकीर्तिविभवास्सौजन्यधैर्यालया
वेदज्ञाननिधानसंग्रहवता संबोधने तत्पराः ।
विद्यावारिधिपारगैस्सुकविभिर्जेगीयमानोदया
मान्या धन्यतमाः प्रसन्नमनसां वस्स्वागतं स्वागतम् ॥१॥

एतद्रायपुरस्थवैष्णवमठाधीशैस्समारोपिते
धर्मज्ञानसुभक्तिरक्षणपरे संमेलने वैष्णवे ।
आयाताः परमार्थबोधनिलया लोकोपकारक्षमाः
कार्याकार्यविचक्षणाः कृतधियां वस्स्वागत स्वागतम् ॥२॥

मन्ये भागवतास्सदा सहृदया निर्दूषणान्वो गुणान्
वाणीसत्यपरायणापि सकलान्वक्तुं न तावत्क्षमा ।
अन्येषामिह का कथा खलु नृणां मोहाभिभूतात्मनां
सौभाग्यातिशयेन नः शुभकर जातं भवद्दर्शनम् ॥३॥

ज्ञानानन्द परमसुखदंमोक्षधर्मैकनिष्ठंभक्ताधीनं विनयसहित भक्तिपूर सुधीरम्।
धर्मत्राणे सततनिरतं सर्वदा सुप्रसन्नं वेदाचार्यं रघुवरगुरुं पूर्णबोधं तमीडे॥४

स्वस्तिश्रीमद्रमानाथपादाब्जेहितवृत्तिषु ।
श्रीमद्रघुवराचार्यपादपद्मे नतिर्मम ॥५॥

पंचपुष्पांजलिरियं विद्वत्संघसमर्पिता ।
सानुग्रहं ग्रहीतव्या भवद्भिः करुणापरैः ॥६॥

वैशाख कृष्ण द्वितायाया भृगौ
वि० सं० १९९९

रायपुरस्थविद्वत्संघेन

श्रीमते रामानन्दायनम

इन्दौर में सम्मिलित समस्त खालसा और साधु संघ
पीलियखाल इन्दौर की ओरसे

सन्मानपत्र

समस्तसौजन्य सौशील्यादि शुभगुणरत्नाकर, न्यायोपाध्याय, मीमांसोपाध्याय, वेदान्ततीर्थ, तर्कतीर्थ, व्याकरणाचार्य, वेदांतशिरोमणि, दर्शननिधि, आदि गवर्नमेन्ट विश्वविद्यालयीय पदवीविभूषित, श्रीशीगडामठाधीश्वर वेदान्तकेसरी, स्वामिश्रीरघुवराचार्यजी महाराज ! आपने हमारे साधु-संघ में अनवरत महान् श्रमकरके वेदशास्त्रों में लोकोत्तर चमत्कारकारी अगाध-पाण्डित्य प्राप्त किया है। इसके साथ ही साथ विद्याध्ययन काल से आजतक हमारे श्रीरामानन्द सम्प्रदाय के उद्धार के लिये भी दुष्प्राप्यग्रंथ-प्रकाशन, प्रणयन, विद्यालयोद्घाटन और साम्प्रदायिक धर्मप्रचार आदि अनेक कार्य किये हैं जिनसे इस सम्प्रदाय का बहुत कुछ गौरव बढा है। और भविष्य ये विशेष रूप से बढने की सम्भावना है। अतः गुण परवश होकर यह 'साधु-संघ' परमोत्साही, सच्चरित और परम श्रद्धेय आपको यह सन्मानपत्र सादर समर्पित करता हुआ भगवन् श्रीरामचन्द्रजी से प्रार्थना करता है कि वे आपको साम्प्रदायिक कार्योंमे यशस्वी बनावे।

श्रीमहान्त भरतदासजी
चारसम्प्रदाय खालसा

श्रीमहान्त रामरतनदासजी
बाराभाई डाडिया खालसा

श्रीमहान्त रामनारायणदासजी
डाकौर खालसो

श्रीमहान्त अर्जुनदासजी
तेरहभाई त्यागी खालसा

श्रीमहान्त रामस्वरूपदासजी
इन्दौर खालसा

महान्त श्रीरामदासजी
अयोध्या

महान्त श्रीमथुरादासजी
राजगुरु देवास स्टेट न २

महान्त श्रीविहारीदासजी
तारापुर

महान्त यदुनन्दनदासजी तर्कभूषण
भागलपुर बिहार

महान्त श्रीभगवानदासजी
गजेरा (बडौदा)

श्रीमहान्त हनुमानदासजी
प्रेसीडेन्ट साधु सघ, पीलियाखाल इन्दौर

श्रीरामोजयति

श्लाघ्यगुणशालिमान्यवराग्रगण्य श्रीवेदान्तीजी महाराज गादर दंडवत 'जमनस चलिय दूरि तसतस' इस गोस्वामिवचनानुगुण हमारे कर्तव्यों की दशा हो रही है प्रथम कार्ग में जगन्नाथ प्रेससर्वथा अपनो ही था वह भाष्य की तयारी के पहिले ही ट्रस्टियो के राय पर उन्होने टोर ही दिया सीतारामप्रेस अयोध्या ने दृढ विश्वास देकर देने समय असमर्थता प्रकट कर जवाव दिया सवके रायसे इण्डियन प्रेससे वात करने पर प्रूफ वगैर शोधन पुस्तक तयार देकर ३२ फरमा के हिसाब दाम लेने मे तय भया पर मेरी राय यह होती है हम सव इस कार्य मे सर्वथा अनभिज्ञ है कृपया आप ही इस भार को स्वीकार करलेवै तौ बडा ही अच्छा होवै।

"त्वमस्मिन् कार्यनिर्योगेप्रमाणां हरिसत्तम ?।
परात्वत्तोगतिर्नीर दृश्यित्र्या नोपपद्यते ॥"

इस वचनानुसार इहा की इस कार्याकाक्षिवैष्णवजनता एक मात्र आपके ही ऊपर इस कार्य मे निर्भर होती है आप जो उचित समुझै सो करै सव आपके रुचि पर निर्भर है जैसे हो इह मुद्रण भार आपही को वोढव्य है जिस दिन यहा के प्रेस ने जवाब दी मै उसी दिन अमावा के छोटे राजकुमार को विद्यारभ कराने वास्ते पटना चला गया महंथजी को पत्र लिखने वास्ते कह गया था पत्र आपको मिला होगा आपका द्वितीय फरमा का भाग मिला इस निमित्त हमारी सवो की प्रार्थना है आप स्वय करे विना आपके यह कार्य हम सवो से नही हो सकैगा रुपया जब जो आज्ञा देवै भेजा जाय आशा है इस कार्य की स्वीकृति वा उत्तर आप शीघ्र देगे

निम्वडी अमदाबाद वगैरह मे १ फरमा का क्या पडैगा सो कृपया सूचित कीजियेगा यदि उनसे इण्डियन प्रेश मे ही कमसमुझिए तौ इसीमे दीजे इति

आपका पं० रामवल्लभाशरण

अनन्त श्रीविभूषित महामहोपाध्याय ज गु. श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरघुवराचार्यजी

(ले० मोतीराम शास्त्री चूडामणि प्राध्यापक
श्रीरणवीर केन्द्रीय सस्कृत विद्यापीठ, जम्मू)

महामहोपाध्याय जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्री श्री १०८ श्रीरघुवराचार्य वेदान्तकेसरीजी का विक्रम संवत १९४३ आश्विन शुक्ल विजयदशमी के दिन भूलोक मे अवतार हुआ। इनका स. २००७ वसन्त पञ्चमी को साकेतवास हुआ। इनकी जन्मभूमि मुरादावाद, उत्तरप्रदेश है। ये भारत के इतिहासादि के अनुसन्धान कार्यादि मे सलग्न रहे। आपने अग्रेजो पर भी अपनी सस्कृति और सभ्यता का बहुत प्रभाव डाला। भारतवासियो पर भी अपनी सस्कृति, अभ्यता, धर्मनिष्ठता, आचार-विचार, सदाचार आदि का महान् प्रभाव को उपस्थित किया, जिससे भारतीय सकल जनता अतीव प्रभावित हुई।

आचार्यजी ने सम्प्रदाय के विरुद्ध जितने भी आन्दोलनादि या आक्षेप होते रहे, उनकेसाथ भी लोहा लेते हुए अपने मत की दृढता का शिलान्यास किया। सन् १९३८ ई० मे ईन्होने कुभ

पर्व पर हरिद्वार मे अपने सम्प्रदाय के विरुद्ध वोलनेवालो के समक्ष दिग्विजयी शास्त्रार्थ की घोषणा कर महान् उपकार किया परिणामस्वरूप जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य रघुवराचार्योजी ने अपने सम्प्रदाय मे सर्वप्रथम महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया। कारणकि आपने सभी प्रतिपक्षियों के कुतर्को का शास्त्रीय सत्तर्को से मुहतोड उत्तर देकर उन्हे निरुत्तर होकर पलायन के लिये वाध्य कर दिया था।

जीवन परिचय

जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य रघुवराचार्योजी श्रीसम्प्रदाय के अद्वितीय विद्वान् थे। इनके प्राक्तन गृहस्थ जीवन का विशेप ज्ञान प्राय किसी को भी नही है। ये महान् सन्त थे। शुक्ल यजुर्वेद वाजसनेयशाखाध्यायी वशिष्ठ गोत्रीय त्रिप्रवर वाले कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। उपाध्याय परिवार मे इनका जन्म हुआ। इन्होने श्रीरामानन्द सम्प्रदाय मे प्रविष्ट होकर सम्प्रदाय मे चार चाँद लगा दिए। इनकी सर्वतोमुखी प्रतिभाथी।

वेदान्तकेसरीजी ने अयोध्या वडी जगहमे निवास कर अध्ययन, अध्यापन किया और प्रकाण्ड पण्डित हुए। इतने प्रकाण्ड पण्डित होते हुए भी मिथिला प्रान्त मे जाकर उच्चकोटि के विद्वान् श्री वालकृष्णमिश्रजी से न्याय, वेदान्त, मीमांसा आदि दर्शनो का सागोपाग अध्ययन किया। इनकी कुशाग्र बुद्धि थी। शीघ्र ही शास्त्र को गम्भीरता से जान जाते थे। अध्ययन तथा अध्यापन मे मानो ये बृहस्पति थे। श्रीवैष्णव सम्प्रदाय के अनुसार ये तुलसी की माला सर्वदा धारण करते थे और परम कर्मनिष्ठ थे। धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए आर्थिक, शारीरिक तथा आध्यात्मिक महान् सहायता की। जैसे मन्दिर के साथ पाठशाला, भोजनशाला, गौशाला, यज्ञशाला, हवनशाला तथा अतिथि सेवादि प्रधान अंग है। ये संपूर्ण अंग इनके आचार्यपीठों मे पाए जाते थे और वर्तमान मे भी अति उत्तम प्रकार से सचालित हो रहे है। आचार्यजी ने परोपकार के लिए ही धन राशि का समुचित व्यय किया। जैसे शास्त्रों मे लिखा है—परोपकाराय सता विभूतय।

अपने सम्प्रदाय के उद्धार के लिए इन्होने बहुत से ग्रन्थ रचे तथा प्रकाशित करवाए। इस कार्य के लिए धन राशि का पानी की तरह प्रवाह किया। क्योकि जितने भी प्रचार तथा प्रकाश है, वे सारे अर्थसाध्य है। अर्थ के विना कुछ नही हो सकता। इन्होने धन की ओर ध्यान न देते हुए निम्नाकित ग्रन्थ लोकहितार्थ रचे और प्रकाशित करवाए। धन के साथ प्रेम नहीं किया। जैसे शास्त्रो मे लिखा है—

अहो वत विचित्राणि चरित्राणि महात्मनाम्। धनं तृणाय मन्यन्ते तद्भारेण नमन्त्यपि

उपर्युक्त महात्माओं के पूर्ण लक्षण इनमे पाए जाते थे। इनकी अपार कृपा से आज भी आचार्यपीठो से पूर्ववत् ग्रन्थों का प्रचार एवं प्रसार हो रहा है एवं नि शुल्क परोपकारार्थ विद्वानों को वितरण कर रहे हैं। वे भली प्रकार से जानते थे कि देवस्व को देवताओं को ही अर्पित करना चाहिए। अन्यथा करने से दुष्परिणाम होता है, जिससे सम्पूर्ण कुल नष्टभ्रष्ट हो जाता है। यथा—

न विषं विषमित्याहुः देवस्वं विषमुच्यते। विपमेकाकिनं हन्ति देवस्वं पुत्रपौत्रकम्॥

ऐसे सन्त महन्तो का जीवन धन्य है, जिनके द्वारा असंख्य लोगो, सन्तो तथा अतिथियो का भरण-पोषण होता है । जैसे शास्त्रो मे लिखा है—

यस्मिन् जीवति जीवन्ति बहवः सोऽत्र जीवति

आज भी इनकी कृतियो से, इनके जीवन की सदाचारादि रूपी प्रतिमाए प्रतिविबित होती है और इनके हृदयोद्गार का साक्षात्कार होता है । क्योकि कविता और कृतियो से कवि की हृदय की मूर्ति तथा मानसिक विचारो एव भावो का पता चलता है । बाह्य आडबरो से उसके अन्तरात्मा तथा उसका पता लगाना अधिक कठिन है । इनके द्वारा रचित कतिपय ग्रन्थो एवं निबन्धो की सूची निम्न प्रकार से है —

१ श्रीरामावतार, २ भगवद् भक्त और भक्ति, ३ श्रीवैष्णवाचार, ४ शान्ति प्राप्त करने के उपाय, ५ आचार (गुरु) सेवा, ६ एक प्रश्न, ७ प्रश्न ८ अन्तर्यामी, ९ पंचसंस्कारो मे माला धारण, १० वैष्णव सम्प्रदायो से भारत का गौरव, ११ गुरुशरणागति, १२ बोधप्रद वाक्य (नीतिधर्मोपदेश), १३ श्रीरामानन्दीय वैष्णवो से निवेदन, १४ भगवान का तिलक, १५ वैष्णव भास्कर के लिए प्रश्नावली, १६ धर्म और धर्माभास, १७ सनातन धर्म और वैष्णव धर्म, १८ भगवत् पूजन, १९ ब्रह्मसूत्र, २० श्रीमद्भागवत मे श्रीरामावतार २१ वासुदेव मन्त्र, २२. अखाडो के लिए मेरा विचार, २३ मौन, २४ मन्त्रराज मीमांसा (पारिष्करिकवादग्रन्थ), २५ श्री रघुवरीयवृत्ति (ब्रह्मसूत्रीय वेदान्तवृत्ति). २६ सेवासमीक्षा, २७ विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त सार, २८ विशिष्टाद्वैत शब्द मीमासा, २९ साधुओ का कर्त्तव्य, ३० श्रीरघुवरीयगीतार्थचन्द्रिका (गीता विषयक अमूल्यवादग्रन्थ), ३१ धर्मसंग्रह, ३२. श्रीसम्प्रदाय और अन्त्यजस्पर्श, ३३ विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त, ३४ तत्त्व प्रकाशिका, ३५ नीराजस्तव ३६ सीतारामस्तव, ३७ श्रीरघुवरीयवृत्ति (उपनिषदोंकी) ३८ रम्यधर्मोपदेश, ३९ संसृतिचक्र और तत्परिहारोपाय, ४० श्रीरामानन्द संप्रदाय और वर्ण व्यवस्था, ४१ श्रीसंप्रदाय निष्ठा, ४२ मगल भवन अमंगल हारी, ४३ अखाडों के प्रति, ४४ मठमन्दिर तीर्थो का रक्षण, ४५ साधुपुरुषो के लक्षण ४६ संप्रदायाचार, ४७ जगद्गुरु रामानन्दाचार्यजी, ४८ साकारोपासना, ४९ श्रीरामनवमी, ५० श्रीरामानन्द संप्रदाय का वैभव, ५१ दास और आचार्य, ५२ धर्म का रक्षण कीजिए, ५३ श्रीरामरक्षास्तोत्र माहात्म्य, ५४. सनातन धर्म पर आपत्ति, ५५ प्रत्युत्तर, ५६ विजयोत्सव, ५७ धर्ममार्ग, ५८ महाविद्यालय की आवश्यकता ५९, तत्वविचार, ६० जगद्गुरु का जन्मोत्सव, ६१, जगद्गुरु का प्रादुर्भाव, ६२, श्रीरामानन्द सम्प्रदाय को किसकी आवश्ककता है, ६३, वेदान्तविद्या, ६४, सौराष्ट्र मे वैष्णवसभा, ६५, नित्यविभूति और लीला विभूति, ६६, समाज और सम्प्रदाय, ६७, उत्तर काण्ड विवेक, ६८, वेदार्थ रक्षा, ६९, श्री वै० म० भास्करभाष्य, ७०, परमगति मीमासा की टीका (मीमासा प्रकाश), ७१, भाष्य पदानुगा (आनन्दभाष्य की टीका) ७२, विद्या, ७३, भगवद्भक्ति, ७४, निश्रेयसमार्ग, ७५, उन्नति उनायक श्रीवैष्णव धर्म, ७६, आचार्योपसत्ति, ७७, सत्संग, ७८, गुरुपूर्णिमा, ७९, प्रेमप्रभाव, ८०, श्रीरामानन्द मंगलदशकम् , ८१, वैष्णवचन्द्रिका, ८२, मन्त्रका अधिकारी प्रभृति ।




महामहोपाध्याय जगद्विजयी जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यरघुवराचार्यवेदान्तकेसरीजीके

शताब्दी समारोह प्रसंग में श्रद्धाशब्दसुमन

(ले० श्रीशान्तिप्रकाश शास्त्री प्रवाचक-श्रीरणवीर केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ जम्बू)

अनादिकाल से इस ससार का प्रवाह अविच्छिन्न गति से चलाता आ रहा है, समय के अनुसार आज तक इसमे अनेक ऋषि महर्षि ज्ञानी योगी विद्वान् तथा सन्त महन्त एव अनेक सम्प्रदाय प्रवर्तको का आविर्भाव हुआ है। अतएव पावन भारतवर्ष मे धर्म योग ज्ञान आध्यात्मिक विद्याओ की परम्परा से सभी देशो मे से भारत का स्थान सर्वोपहि रहा है। इसी देश मे वेद शास्त्र तथा उपनिषद् पुराणादि धार्मिक ग्रन्था का निर्माण हुआ, इन सब शास्त्रों का निर्माग करनेवाले अनेक विद्वानो मे से एक उच्चविचारशील समाज सुधारक प्रतिभा सपन्न ज्ञान योगी श्रीरामानन्द सम्प्रदायोन्नायक जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य रघुवराचार्यजी महाराज है। आचार्यजी का जन्म उत्तर प्रदेशान्तर्गत मुरादाबाद शहरमे वै० स० १९४३ आश्विन शुक्ल दशमी को हुआ। तथा उनका साकेत वास २००७ वै० स० वसन्त पचमी को हुआ। सरस्वतीदेवी के परम उपासक होने के कारण श्रीवेदान्तीजी ने अपना भौतिक कलेवर भी उसी दिन छोडा। इनकी धार्मिक भावना तथा प्रखर पाडित्य से प्रभावित होकर ब्रीटिस सरकार ने महामहोपाध्याय की सर्वोच्च पदवी से सम्मानित किया। इनकी ही प्रेरणा से श्रीसम्प्रदाय के अनुयायिओ को अपनी विस्मृत परम्पराओं को खोजने की प्रेरणा मिली। श्रीरामानन्द सम्प्रदाय पर इनकी अपार श्रद्धा थी। इसी कारण श्री राम के वास्तविक रूप की खोज के लिये अनेक प्रयत्न किया। इनके सतत प्रयास से इसका विशिष्ट स्वरूप प्रतिष्ठित हुआ। इस परम्परा के प्रधान, सर्वशास्त्रज्ञ तथा शास्त्रमर्मवेत्ता अनेक उपाधि विभूषित महामहोपाध्याय श्रीरामानन्द सम्प्रदाय के उनचालिसवे आचार्य जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य रघुवराचार्यजी वेदान्त केसरी महानुभावही थे। जिनकी अपार श्रद्धा तथा अन्वेषण से प्रसुप्त प्राय इस वैदिक सम्प्रदाय को जागरित तथा उन्नत होने का प्रश्रय मिला। अपनी चातुरी तथा शास्त्र पटुता से आचार्यजी ने सैकडो अनुयायिओ को इस सम्प्रदाय को पुष्ट करने के लिये तैयार किया। इस कारण यह सम्प्रदाय आज तक अजस्रगतिसे फलता फूलता आ रहा है। दर्शन शास्त्र तथा सनातन जगत मे इनकी अपनी विशेप प्रतिष्ठा थी। अतएव हरिद्वार कुभ मे १९३८ के अवसर पर श्रीरामानन्द सम्प्रदाय का विश्वविजयी के रूप मे घोपणा की। परिणाम स्वरूप आप भी इसी उपाधी से सम्मानित हुये।

श्री स्वामीजी महाराज विलक्षण प्रातिभावान् प्रत्युत्पन्नमति, सौम्याकृति विशेप शास्त्रज्ञ थे। विद्वानो मे जो जो गुण आवश्यक होते है उनके वे पुञ्ज थे। इनकी विशेष प्रतिभा से प्रभावित होकर अग्रेजो ने इन्हे बहुत सम्मान दिया। आप शतावधानी थे तत्काल अनेक प्रश्नों का उत्तर देने की क्षमता रखते थे। इनके दर्शन से वडे वडे राजा महराजा धनीमानी प्रभावित होते थे। अनेक राजामहाराजा आचार्य श्री से दीक्षित थे। सुदामापुरी (पोरबन्दर) के राजगुरुतो थे ही अन्यभी राज परिवार के बहुत से इनके शिष्य थे। वेदान्त के प्रचार के लिये एक महान् वेदान्त ग्रन्थालय तथा श्रीरघुवर संस्कृत महाविद्यालय का निर्माण किया। तथा वेदान्त स्तंभ निर्माण का व्रत लिया सूर्य समान इनकी ख्याति एव यश नित्य प्रति वृद्ध्युन्मुख रहा। आचार्यजी कट्टर सनातनी तथा परम आचारवान् थे। सनातन धर्म के विरुद्ध किसी प्रकार के भाव को प्रकट करना पाप मानते थे। लक्ष्मी देवी की उनपर अपार अनुकम्पा थी।

विद्वज्जन सेवी सत्यनिष्ठापरायण अहकार रहित, विविध शास्त्रज्ञ, दृढ सकल्प सरलस्वभावकर्म योगी थे। अन्य विद्वानो की तरह आत्मश्लाघीनहि थे। आत्म प्रशंसा सुनकर सकुचाते थे।

अतएव ये आदर के प्रतीक तथा नम्रता की मूर्ति थे। अपने जीवनकाल मे सरस्वतीजी की आपार सेवा की। आचार्यजी के श्रीमन्त्रराज मीमासा श्रीरघुवरीयवृत्ति गीतार्थचन्द्रिका प्रभृति तात्विक प्रौढ वाद ग्रन्थातिरिक्त शताधिक छोटे बडे प्रकाशित अप्रकाशितदिव्य प्रबन्ध है जो सनातन जगत को सत्मार्ग प्रदर्शित कर स्वत प्रकाशित हो रहे है। सनातन वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार के लिये आपने अथक श्रम किया परिणाम स्वरूप सस्कृत-सस्कृति तथा श्रीरामानन्दसम्प्रदाय के आप पर्याय ही बन गये। आचार्यजीका अविरल श्रम का ही फल है कि आज विश्व मे श्रीरामानन्दसंप्रदाय का विजय वैजयन्ती फहरा रही है तथा उनके योग्यातियोग्य उत्तराधिकारी और प्रत्युत्तराधिकारी के निःस्वार्थ प्रेरणा से फहराती रहेगी। ओम् शान्ति ३।

श्री रघुवराचार्यजी महाराज

श्रीसियराम नमामि निरन्तर। आनंद रूप रम्यो उर अन्तर॥
मातु पितागुरु स्वामि सखा प्रिय। सर्वस श्रीसिय रामहिं जानिय॥
नाम पुनित सप्रेम रटा कर। जै रघुनन्दन राम रमा वर॥
स्वामि सबै जगके रघुनायक। नौमि निरन्तर आनंद दायक॥
मीन यथा जल ही में सुखी नित। भक्त तथा हरि ही में रहै थित॥
रङ्ग में राम के रङ्गि लियो मन। विश्व भयो हरि दर्शन दर्पन॥
घुमि भ्रमे भवमे नकबौं मन। आतम में परमातम दर्शन॥
बन्दत प्रेम पग्यो प्रभुको नित। आनंद मंगल मोद मयी चित॥
रामहि मानिय रामहि जानिय। राम रम्यो सबमे पहिचानिय॥
चारि पदारथ दायक श्री हरि। भक्तहिं दर्शन देहि दया करि॥
रेफ यकार संयुक्त विलोकिय। रेफ मे राम यकार मे श्रीसिय॥
यत्न यहि करिए कि मिलै हरि। भेटिय प्रेम समेत हृदे भरि॥
जीव कृतारथ पाइके रामहि। राम कृपा पुजवै मन कामहि॥
मङ्गल मूरत राम बसै उर। राम रम्यो दरसायँ तिहुँपुर॥
हाटम बाटमे होइ जहाँ तन। रामहि ध्यान मे मग्न रहे मन॥
राम मिलै लखि शील सनेहहि। वारिय रामपै देहहि गेहहि॥
जानिसबै जग राम सिया मय। आनंद मंगल मोद मनावय॥

श्रीमहामहोपाध्यायजी

ले० वेदान्तभूषण मानसतत्त्वान्वेषी स्वामी श्रीरामकुमारदासजी, अयोध्या

शिंगडामठ काठियावाड महँ परम सुहावा, तहँकर नृपतिमहान्त प्रतिष्ठित पद अतिपावा
अवधनिवसि लहिशास्त्र लसत लङ्करी केशरी, गीताभाष्यहि तिलकवृत्ति वेदान्तकेशरी॥
महामहोपाध्यायकीपदवीदीन्हीवृटिशपति, रघुवराचार्यविद्वानशुचि सम्प्रदायश्रीप्रीतिअति

꣡ वेदान्तदर्शने श्रीरामानन्ददर्शनम् ꣡

ले० पण्डितराज पं० श्रीरघुनाथशर्मा
मु पो छाता, जिला बलिया
(भारतसर्वकारपुरस्कृतोवाराणसेयसम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयस्यभूतपूर्वोवेदान्तविभागाध्यक्ष)

पदमिह कारुणिकं शरणं राजोऽप्यहि सहोदर आपमहत्पदम् ।
तमहमाशु हरि परमाश्रये जनकजाङ्कमनन्तसुखाकृतिम् ॥१॥

श्रीरामानन्दसम्प्रदाये एकोनचत्वारिंशत्तम आचार्य श्रीरघुवराचार्यो बभूव । तेन खलु बहवोनिबन्धालिखिता लोकानुजिघृक्षया । तेषामन्यतमाब्रह्मसूत्रीया श्रीरघुवरीयावृत्तिरिति । इय वृत्तिर्विशिष्टाद्वैतदर्शनस्यैकदेशभूत यद्बौधायनदर्शन तदाश्रित्यप्रवृत्ता । अनया च वृत्त्यावेदान्तसूत्राणिस्वसमतबोधायनदर्शनपरतयानीतानि । यद्यपि सन्तिवेदान्तसूत्राणा बह्वयष्टिका भिन्नार्थपरास्तथापि ते अधिकारिभेदमाश्रित्ययुक्ता इत्येवमतन्याय । इय वृत्तिर्बौधायनवृत्त्यागतार्थेतिवक्तु न शक्यते । ततोऽप्यधिकार्थत्वात्, बौधायनवृत्त्युक्तार्थानाविशदीकरणादुपपादनाच्च, यद्यपि श्रीशङ्करभगवत्पादैर्वेदान्तसूत्राणि अद्वैतपरतया व्यवस्थापितानि । तथापि इय वृत्ति विशिष्टाद्वैतप्रतिपादनपराऽवश्यमुपादेया । तथाहि उपासना च ज्ञानञ्चेतिसाधनद्वयमुक्तेर्दर्शितम् । तत्र उपासनामानसकर्मैव । कर्म च द्वैते एव सम्भवति नाद्वैते । अतएव कर्ममीमासाशास्त्रेण-सहब्रह्ममीमासाशास्त्रस्यैकशास्त्रत्व वैष्णवै स्वीक्रियते । सिद्धार्थब्रह्मपरत्वे च वेदान्तानाम-प्रामाण्यप्रसज्येत । अत उपासनाविधिशेषतयाब्रह्मपरत्ववेदान्तानावेदान्तसूत्राणाञ्च । उपासनया च भगवद्धामगताना तज्ज्ञानोत्पत्त्याभगवत्सायुज्यप्राप्तिरूपापुनरावृत्तिरहितामुक्तिरपि अस्मिन् सम्प्रदायेस्वीक्रियमाणायुक्तैव । उपास्यञ्चभगवद्रूपवेदान्तसूत्रेषुदर्शितम् । 'जन्माद्यस्ययत 'तत एव प्राण । आकाशस्तल्लिङ्गादित्यादि । एषासूत्राणामुपासना परत्वञ्च वाचधेनुमुपासीत–सूत्र बह्वर्थसूचनादित्यादिवाक्यप्रदर्शितदिशाविज्ञेयम् । येऽपि अद्वैतमतस्यसूत्रश्रुतितात्पर्यगोचरत्वमन्यन्ते तैरपिद्वैतसमर्थकस्यवैष्णवमतस्यमुक्तिसोपानत्वमवश्यमभ्युपेयमेव । उक्त हि गीतायाम्–"अव्यक्ता हि गतिर्दुःखदेहवद्भिरवाप्यते" इति । सन्ति हि श्रुतय सर्वा अपिउपासनापरावैष्णवमतस्य द्वैतसमर्थकस्यानुकूला । वेदान्तसूत्रेषु च सर्वाण्यपिउपासनापराणिसूत्राणिगत्यागतिप्रतिपादकानि च द्वैतमेवसमर्थयन्ते । अतोविद्वद्भि श्रीरघुवराचार्यैर्विरचिता विशिष्टाद्वैतप्रतिपादनपरावृत्ति समीचीनेत्यह मन्ये । इति वेदान्तसूत्रवृत्तिसमीक्षा ।

अन्यश्च श्रीरामानन्दाचार्यसम्प्रदाये 'अध्यासध्वसलेलेनामग्रन्थ । अत्रहि–जगत सत्यत्व व्यवस्थाप्यब्रह्मणिजगतोऽध्यास इत्यद्वैतिमतनिराकृतम् । अद्वैतवादिनोऽपि हि जगतो व्यावहारिक सत्यत्वस्वीकुर्वन्त्येव । वैष्णवाना तु अयमाशय । जगतअध्यासिकत्वेऽर्थक्रियाकारित्व न स्यात्–

यथा शुक्तिरूपस्य । जगत शतसहस्त्रादिवर्षस्थायित्वञ्च न स्यात् । श्रुतिस्मृतिपुराणादिप्रामाण्य न स्यात् । स्वस्वरूपस्यस्वविषयाणाञ्च मिथ्यात्वात् । प्रत्यक्षादिप्रमाणानाञ्च सर्वेषा प्रामाण्य न स्यात् । असद्विषयकत्वात् । प्रत्यक्षादिप्रमाणानाञ्चाबाधितानामसद्विषयकत्वरूपमप्रमाण्य कथं वक्तुशक्यते । अवताराणासिद्धानामृषिणाञ्चमिथ्यात्वमिथ्यावादित्वञ्च प्रसज्येत । श्रीवाल्मीकिरामायणम्, महाभारतञ्च इतिहासरूपंमिथ्याभूतार्थप्रतिपादकत्वात् मिथ्यास्यात् । प्रत्यक्षादिप्रमाणानाञ्चबाधाभावेकथमप्रामाण्य स्वीकुर्म । किञ्च 'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा' 'जन्माद्यस्ययत' इति सूत्रद्वय ब्रह्मणोजगज्जन्मादिकर्तृत्वप्रतिपादयति । कर्तृत्वञ्च उपादानविषयकापरोक्षज्ञानचिकीर्षाकृतिमत्वम् । एतच्चजगतस्तदुपादानानामीश्वरस्य च विग्रहवतामिथ्यात्वेनोपपद्यते । सर्वे च जगतोऽव्याहारा व्यवहारा आहारा वेदा उपदेशा गुरुशिष्यपरम्परा सर्वमिदस्वप्नोपम मिथ्या स्यात् । अस्मिञ्च अध्यासध्वसलेशनाम्नि ग्रन्थे—पारिभाषिकप्रत्यक्षलक्षणभङ्गोनामप्रथम परिच्छेद । वैयधिकरण्यभङ्गोनाम द्वितीय परिच्छेद । अधिष्ठानभङ्गोनाम तृतीय परिच्छेद । प्रतिबिम्बभङ्गोनाम चतुर्थ परिच्छेद । जीवस्यब्रह्मैक्यभङ्गोनामपञ्चम परिच्छेद । इत्येव परिच्छेदपञ्चकविस्तृतसोपपत्तिकञ्च वर्तते । अस्य च ग्रन्थस्यसांख्यदर्शनम्, योगदर्शनञ्च न साहाय्यमाचरति—ताभ्याप्रतिबिम्बवादाभ्युपगमात्—न्यायदर्शनवैशेषिकदर्शनमीमासादर्शनञ्च एतस्यपक्षेस्थितानि दर्शनानि । एवञ्चाविकारिभेदेनप्रवृत्त दर्शनत्रयानुसारि इद दर्शनम् । अथ ग्रन्थश्चमान्य एव सताम् । यथा रुचियथाऽर्थित्वयथा व्युत्पत्तिर्भिद्यते । एकोऽप्यर्थोगुणैर्बुद्धया बहुधामनसाधिप । इति । कलौ तु सर्वाणिदर्शनानि विहाय एक एवभवाब्धिसतरणोपाय । सचोक्तो भागवते—

त्यक्त्वासुदुस्त्यजसुरेप्सितराजलक्ष्मी धर्मिष्ठ आर्यवचसा यदगादरण्यम् ।
मायामृगं दयितयेप्सितमन्वधावद् वन्देमहापुरुष? ते चरणारविन्दम् ।

"श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर:"

अत्र सन्तिमुख्यद्वादशविषया । ते चात्र क्रमेणात्रनिबन्धेविचार्यन्ते । तत्र प्रथमोविषय प्रकृतितत्त्वनिरूपणम् । तत्र प्रकृतिर्नित्याज्ञा कस्यापिविकृतिर्न भवति, सर्वस्यकारणम्, अजन्मा अव्यक्तशब्दाभिधेया, परार्था महदहङ्कारादिप्रसवित्री- इति । एतच्च साख्ययोगयोरपिसमतम् । द्वितीयोविषयोजीवनिरूपणम् । नित्योज्ञ चेतन (ज्ञानाधिकरणम्) अज (अजन्मा) सततपरवश (ईश्वराधीन कर्माधीनश्च) परमाणुमहशोऽणु । बद्धमुक्तादिभेदैर्भिन्न, स्वर्गनरकादिगतिमान् निजकर्मफलभुक्, तत्त्वजिज्ञासुभिश्च जीव एव वेद्य । एतच्चन्यायवैशेषिकानुसारिमतम् । किन्तु जीवस्याणुत्वन्यायवैशेषिकमताभ्याविशेष. ।

'अथेश्वरनिरूपणम्'

श्रीरामएवेश्वर । स च जगज्जन्मस्थितिलयकर्तासूर्यचन्द्रयोरविभासक, सर्वस्यापिजगतो भासक यत्तेजसेन्दौसूर्याचन्द्रमसौजगद् भासयत । तद् भीत्यावातोवाति, अवनिरपिसुतल न याति ईश्वर सर्वज्ञोनाज्ञ । साक्षीविश्वस्यभामक । कूटस्थो निर्विकार एक, बहुशुभगुणवान्, अव्यय -(अविनाशी) विश्वभर्तासर्वपालक, श्रीमान् अर्च्य शरण्य —बहुविधविबुधैर्योगिभिश्च सेवितचरणक्लेशकर्मविपाकाशयैरस्पृष्ट सुयशा सूरिमान्योवदान्य । श्रीरामचन्द्र एवेश्वर । सुमहितमहिमा, निर्मृत्यु, सर्वशक्ति विकलुषोविजर वाङ्मनसागोचर । अत्र कश्चनकश्चर्नांश न्यायशास्त्रात् पुराणात् उपनिषद्भ्यश्च गृहीत ।

"अथ मुक्तिसाधननिरूपणम्"

तप्तेनमूले भुजयो समङ्कनशरेणचापेनतथोर्ध्वपुण्ड्रकम् । नाम जप. । तुलसीमालाग्राह्या । गुरुदत्तोमन्त्रश्चग्राह्य । इति । एतच्च नारदपञ्चरात्रे दृष्टम् ।

अथ गुरुलक्षणम्

यतेन्द्रियः शुचिःशुद्धवेषधृक् सुकुलोद्भवः । सदाचारपरोनम्रः शास्त्रज्ञोदेशना पटुः ।
विरक्तधर्मनिरतोध्यानाभ्यासीसुबुद्धिमान् । निग्रहेऽनुग्रहेचैवसमर्थोदेशिकोमतः ॥
हीनाङ्गोह्यधिकाङ्गश्चकपटीकृष्णदन्तवान् । नेत्ररोगी च कुष्ठी च वावदूकश्चवामनः ॥
व्यसनी बहुनिद्रश्चकुनखो बहुभोजनः । नेदृशोदेशिकोयोग्यो मुमुक्षोर्मुक्तिसाधने ॥

'अथ शिष्यलक्षणम्'

श्रद्धान्वितो विशुद्धात्मा मेधावीविनयीपटुः । कुलीनःसच्चरित्रश्च बुद्धिमान्व्रततत्परः ॥
गुरुशुश्रूषणेशक्तः आज्ञाकारीजितेन्द्रियः । अनुल्वणोभक्तिनिष्ठः शिष्य कार्यस्तुदेशिकैः ॥

उपाधिनिर्मुक्तस्यभगवत अनन्यभावेनमुहुर्मुहु सेवनम् भक्ति । सा चानेकभेदा । सा च सतततैलधारासमाभगवतो नित्यसस्मृतिरूपासतानरूपा ईश्वरे परानुरक्ति । सा च विवेकादिकसप्तजन्या । विवेकादयश्च सप्त—तल्लब्धिर्विवेकविमोकाभ्यासक्रियाकल्याणानवसादानुद्धर्षेभ्य सभवान्निर्वचनाच्चेतिसूत्राद् वेदितव्या । विवेक कामानभिष्वङ्ग । उदारकीर्ते श्रवणच्चकीर्त्तनहरेर्मुदासस्मरणपदश्रिति । समर्चनवन्दनदास्यसख्यान्यान्मार्पणसानवधेतिगीयते, इति पद्यानुसारेणभक्तिर्नवधा भिन्ना इति । एतच्चसर्वश्रुतिस्मृतिपुराणगीतासमतमधिकारिभेदेन मान्यमेवेतिमन्ये ।

अथ भगवद्गीताया आनंदभाष्यम्

तत्रकर्मयोगाऽध्यायषट्केप्रतिपादित । कर्मयोगश्चनिष्कामकर्मरूप । फलाभिसन्धिरहितं क्रियमाण कर्म न फलोपभोगरूपायबन्धायकल्पते । द्वितीयेऽध्यायषट्केभक्तियोगोमहापुरुषस्वरूपश्च

वर्णितम् । भक्तिश्चभगवतिपराऽनुरक्ति । एव षट्कद्वयेननिखिलमध्यात्मशास्त्रसमापितम् । तृतीयषट्केन तु षट्कद्वयोक्तानांपदार्थानांसंशोधनकृतम् । यानि तु गीताशास्त्रेस्वमतविरुद्धानिवाक्यानिउपलभ्यन्तेतानिवैष्णवैरन्यथाऽव्याख्यायन्ते । तद् यथा "नित्य सर्वगतस्थाणुरचलोऽय सनातन" इति अत्र जीवस्यसर्वगतत्वेन महत्त्व प्रतीयते । वैष्णवैस्तु एव व्याख्यायते । सर्वगते ईश्वरे अशत्वेनतिष्ठतीति । एवञ्च जीवस्याणुत्वंसिद्धम् । गीताशास्त्रेज्ञानकर्मसमुच्चयो वैष्णवै स्वीक्रियते, तदाधारभूतासु उपनिषत्सुच । अद्वैतवादिभिस्तु न स्वीक्रियते । तत्र वैष्णवानामते प्रकृतिर्भगवत शक्ति, तया नित्यमवियुक्तस्य भगवतोज्ञानध्यानरूपमुपासना । उपासना च कर्मैव मानसम् । अतस्तस्ययागहोमदानकर्मभि सहविरोध ।

अद्वैतवादिना मते तु अद्वितीयात्मविज्ञानज्ञानम् । तेन सह कर्मणा विरोध । इत्यद्वैतिनोज्ञानकर्मजमुच्चयवादप्रक्षिपन्ति । वस्तुतस्तु गीतायास्तात्पर्यकर्मणिभक्तौ च, अर्जुन प्रति भगवतउपदेशस्ययुद्धेकर्मणिप्रवर्तनार्थत्वात् । अर्जुनस्य तु पुत्रदारादिरक्तस्यज्ञानमार्गेऽनधिकारात्तप्रतिज्ञानोपदेशस्तुप्रसगसगत्याकृत । अतएवोक्तगीतासु—मदर्थमपिकर्माणिकुर्वन् सिद्धिमवाप्स्यसि ।" इति "न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यंपुरुषोऽश्नुते । न च सन्यसनादेवसिद्धिंसमधिगच्छति" इति । कुरुकर्मैवतस्मात्त्वपूर्वैं पूर्वतरै कृतम्" इति । अतएवोपनिषत्सुउक्तम् "कुर्वन्नेवेह कर्माणिजिजीविषेच्छतसमा । एव त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्मलिप्यतेतरे" इति । गीताशास्त्र च "कर्मणैव हि ससिद्धिमास्थिता जनकादय" इति वदत्कर्मणैव ससिद्धिमयमोक्षमन्यते । निष्कामकर्मयोगस्य च प्रशसा भगवता स्वय कृता गीताशास्त्रे "इम विवस्वतेयोगंप्रोक्तवानहमव्ययम् । विवस्वान् मनवेप्राहमनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् । एव परम्पराप्राप्तमिमराजर्षयोविदु । स कालेनेहमहतायोगोनष्ट परन्तप ? । उपदिष्टोमयातेऽद्यरहस्य ह्येतदुत्तमम्" इति । अन्ते मध्ये च शरणागतिरूप भगवत्प्रातिसाधनवैष्णवानामभिमतमुपदिष्ट गीतायाम् "मामेव शरण गच्छ सर्वभावेनभारत ? । मत्प्रसादात्परा शान्ति स्थानं प्राप्स्यसिशाश्वतमिति । "सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेक शरण व्रज । अह त्वा सर्वपापेभ्योमोक्षयिष्यामि मा शुच" इति एकमिति च पद द्वितीयमीश्वरप्रनिषेधति । एवमुपनिषत्स्वपिज्ञेयमिति । वैष्णवानामभिप्राय । गीतायासाख्ययोगाद्वैतमतप्रतिपादनन्तुप्रासङ्गिकम् । अधिकारिभेदेनचेत्यवधेयम् ।

ब्रह्मसूत्रेषु-आनंदभाष्यम्

तत्र एकशतोत्तरषष्ठ्यधिकरणाना प्रथमाध्यायेप्रथमेपादेब्रह्मजिज्ञासाधिकरणप्रथमम् । यत्र शास्त्रारम्भसमर्थनार्थंब्रह्मजिज्ञास्यत्वेन विचारितम् । द्वितीयजगज्जन्माधिकरणम् यत्र ब्रह्मणो जगज्जन्मादिकर्तृत्वरूपलक्षणदर्शितम् । तृतीयशास्त्रयोनित्वाधिकरणम् । इदमपि ब्रह्मणोलक्षणमेव शास्त्रयोनिपदे च द्विधा समास । शास्त्रस्य योनि । शास्त्रयोनिर्यस्येति । चतुर्थे समन्वया

धिकरणे उपासनाविविशेषतयाब्रह्मणिवेदान्तानासमन्वय प्रदर्शित । पञ्चममीक्षत्यधिकरणम । अत्रप्रधानादिकजगत्कारणमितिमतंप्रत्याख्यायसर्वज्ञस्यसर्वशक्तिमत सगुणस्यब्रह्मणिजगत्कारणत्व व्यवस्थापितम् । आनन्दमयाधिकरणे आनन्दमयस्यभगवतो जीवादन्यत्वसाधितम् । अन्तरधिकरणे आदित्यान्तर्गतोऽक्ष्यन्तर्गतश्चपुरुषोजीवादन्य परमात्मैव इति प्रसाधितम् । आकाशाधिकरणे आकाशपदवाच्यसर्वजगत्कारणंपरब्रह्मैवेतिविचारितम् । प्राणाधिकरणे प्राणशब्देनपरमात्मैव गृह्यते न तु प्राणोपलक्षितो जीव इति व्यवस्थापितम् । ज्योतिरधिकरणेज्योति शब्दवाच्य आदित्यादिप्रकासकपरब्रह्मैवेतिनिर्णीतम् । प्राणानुगमाधिकरणेप्राणशब्देनपरमात्मैवेतिव्यवस्थापितम् । प्रथमाध्यायेद्वितीयेपादेसर्वत्रप्रसिद्ध्यधिकरणेमनोमयत्वादिधर्मक उपास्यत्वेनपरमात्मैवपरिगृह्यते इति निर्धारितम् । अत्ताधिकरणे अत्ताचराचरस्यपरमात्मैव इति प्रसाधितम् । गुहाप्रविष्टाधिकरणेजीवपरमात्मानावेव गुहा प्रविष्टो इति साधितम् । अन्तराधिकरणे अन्तर परमात्मैव न जीव इति साधितम् । अन्तर्याम्यधिकरणे अन्तर्यामीपरमात्मैवेतिनिर्णीतम । अदृश्यत्वादिगुणकाधिकरणे—अदृश्यत्वादिगुणकोभूतयोनिरक्षर परमात्मेव इति दर्शितम् । वैश्वानराधिकरणे—वैश्वानर परमात्मा इति निर्धारितम् । प्रथमाध्यायेतृतीयपादेद्युभ्वाद्यधिकरणेद्युभ्वाद्यायतनंपरमात्मेतिनिर्णीतम् । भूमाधिकरणेअनन्तसुखरूप परमात्मैवेतिव्यवस्थापितम् । अक्षराधिकरणे अक्षरमविनाशिपरमात्मैव अम्बरान्तधृतेरितिनिर्णीतम् । ईक्षतिकर्माधिकरणे--ईक्षतिकर्मेक्षणविषय परमात्मैव--ईक्षतिकर्मत्वेन श्रुतौव्यपदेशादिति निर्णीतम् । दहराधिकरणेदहराकाश परमात्मैव—उत्तरेभ्योवाक्यशेषगतेभ्योहेतुभ्य । प्रमिताधिकरणे अङ्गुष्ठमात्र पुरुषोऽत्रपरमात्मैव प्रमित 'ईशानोभूतभव्यस्येतिश्रूयमाणशब्दबलादेव । देवताधिकरणेमनुष्याणामुपरिदेवादयस्तेषामपि ब्रह्मविद्यायामधिकारोऽस्तीति बादरायणमतनिर्धारितम् । मध्वधिकरणेदेवानामुपास्योपासकभावस्यैकस्मिन्नसम्भवान्मधुविद्यायामनधिकार इति जैमिनिमतं दर्शितम् ।

अपशूद्राधिकरणे—शूद्रस्योपनयनाभावेनब्रह्मविद्यायामनधिकार इति दर्शितम् । कम्पनाधिकरणे "प्राणएजतिनि सृतम" इति श्रुतौ प्राणशब्देनपरमात्मैवाभिहित — मुख्यप्राणादिसहितस्यकृत्स्नस्यजगत कम्पनात्—जीवनादिचेष्टाहेतुत्वादितिवर्णितम् । ज्योतिर्दर्शनाधिकरणे—ज्योति शब्दाभिहित परमात्मैव, 'एष आत्मा अपहतपाप्मा' इति ब्रह्मण श्रवणादितिदर्शितम् । अर्थान्तरत्वादिव्यपदेशाधिकरणे "आकाशो ह वै नामरूपयोर्निर्वहिता" इति श्रुतौ आकाश परमात्मा नामरूपभिन्नत्वेनब्रह्मत्वव्यपदेशात् । चतुर्थेपादे—आनुमानिकाधिकरणे—जगत्कारणप्रधानमितिसाङ्ख्यमतखण्डितम् । चमसाधिकरणेअजाशब्देन, ब्रह्मशक्तिभूताब्रह्मात्मिकाप्रकृतिरभिधीयते इति व्यवस्थापितम् । सङ्ख्योपसंग्रहाधिकरणेपञ्चजना इति साङ्ख्यतत्त्वानि नाभिधीयन्ते किन्तु प्राणादय इति दर्शितम् । कारणत्वाधिकरणे रामनाम्न सर्वशब्दकारणत्वेनपदवाच्यस्य श्रीरामस्यब्रह्मणोऽन्यनिखिलशब्दवाच्यानासर्वेषांबीजत्वोपपादनद्वारातस्यसर्वशब्द-

वाच्यादिकारणत्व बोधितम् । जगद्वाचित्वाधिकरणेकौषीतकिब्राह्मणे 'यो वै बालके' इति श्रुतौ साख्यतन्त्राभिमत पुरुषो न वेदितव्यतयोपदिष्ट । तस्य जगत्कर्तृत्वाभावात् किन्तु परमात्मैवेति निर्णीतम् । वाच्यान्वयाधिकरणे 'आत्मा वारे द्रष्टव्य' इत्यादिश्रुतौ परमात्मैवद्रष्टव्यत्वेनोपदिष्ट । उपक्रमादिभिर्लिङ्गैरस्यवाक्यस्यब्रह्मण्येवसमन्वयदर्शनात् इत्युक्तम् । प्रकृत्यधिकरणे ब्रह्मजगत प्रकृतिरुपादानकारणनिमित्तकारणञ्च कुत ब्रह्मविज्ञानेनसर्वविज्ञानरूपाया प्रकृते, मृद्विज्ञानेसर्वमृण्मयविज्ञानरूपस्यदृष्टान्तस्यचानुपरोधादितिनिर्णीतम् । अत परसर्वव्याख्यानाधिकरणम्—प्रथमाध्यायसमाप्ति । द्वितीयाध्यायस्यप्रथमेपादेस्मृत्यधिकरणप्रथमम्—तत्र न ब्रह्मणोजगत्कारणत्वमास्थेयम् कापिलादिस्मृत्यनवकाशप्रसङ्गादित्याशङ्का गीतादिस्मृत्यनवकाशप्रसगेनसमाहितम् । साख्यप्रत्याख्याननिदर्शनेनयोगप्रत्याख्यानवचनद्वितीयाधिकरणे । विलक्षणत्वाधिकरणेतृतीये—ब्रह्मणो न जगत्कारणत्वमुपादानोपादेययोर्विलक्षणत्वात् । उपादान ब्रह्मचिद्रूपमानन्दादिरूपञ्चचिदचिदात्मकजगत्तुजडदु खादिमच्चेत्याशङ्का उपादानोपादेययोर्विलक्षणत्वस्यलोकेदर्शनात्समाहितम् । दृश्यते हि चेतनात्पुरुषादचेतनस्यकेचनस्वादेर्जन्म । गोमयादचेतनस्यवृश्चिकस्योत्पत्तिरिति । अपीतौतद्वाप्रसङ्गादित्यपिसमाहितम् । न तु दृष्टान्तभावात् इति । तत शिष्टापरिग्रहाधिकरणेतर्कम्—कपिलादिस्मृतिकरणेन तर्कपरिगृहीतानापतञ्जलिकणादगोतमादिस्मृतिनामपि निराकरणदर्शितम् । भोक्तापत्यधिकरणेब्रह्मणोऽपिशरीरसामान्यसत्त्वादभोग स्यादित्याशकातस्यकर्मपारवश्याभावेनवारितम् । आरम्भणाधिकरणेकारणाद्ब्रह्मण कार्यस्यजगतोऽनन्यत्वम् । आरम्भणशब्दादिभ्योहेतुभ्य प्रसाधितम् । इतरव्यपदेशाधिकरणे—जीवस्यब्रह्मानन्यत्वव्यपदेशोहिताकरणादिदोषप्रसक्तिमाशङ्का जीवादर्थान्तरभूतब्रह्मश्रुतिषुभेदनिर्देशादिति समाहितम् । उपसहारदर्शनाधिकरणे असहायस्यब्रह्मणो न जगत्कर्तृत्वमुपादानत्वञ्चोपपद्यते इत्याशङ्काक्षीरदृष्टान्तेनसमाहितम् । कृत्स्नप्रसक्त्यधिकरणे ब्रह्मणोजगत्कारणत्वेकृत्स्नप्रसक्तिर्निरवयवत्वशब्दकोपो वा इत्याशङ्का श्रुतेस्तुसब्दमूलत्वादितिसमाहितम् । प्रयोजनत्वाधिकरणे—अवाप्तसमस्तकामस्यब्रह्मणोजगत्सृष्ट्यादिव्यापारो न सभवति इत्याशङ्का-लोकवत्तुलीलाकैवल्यमितिसमाहितम् । द्वितीयाध्यायस्यद्वितीयेपादे रचनानुपपत्त्यधिकरणेन अनुमीयमानंप्रधान न जगत्कारणम् अचेतनत्वेनरचनानुपपत्तेरितिसमाहितम् । महद्दीर्घाधिकरणे परमाणवोद्व्यणुकाद्युत्पादनक्रमेणाखिलब्रह्माण्डजनयन्तीतिनैयायिकादिमतनिराकृतम् । समुदायाधिकरणे बाह्यसमुदायोभूतभौतिकरूप तस्य परमाणव कारणम् । आन्तर समुदाय । चित्रचैत्रिकरूप तस्यरूपविज्ञानवेदनासज्ञासस्काररूपस्कन्धपञ्चककारणमिति बौद्धमतनिराकृतम् । उक्तहेतुकेऽपिसमुदायेनसमुदायसिद्धि । तत्कारणभूतानांपरमाण्वादीनाक्षणिकत्वाभ्युपगमात् । उपलब्ध्यधिकरणे विज्ञानातिरिक्तानामर्थानामभावोनोपपद्यते । कुत ? ज्ञानातिरेकेणपदार्थोपलब्धे, इति साधितम् । सर्वथानुपपत्यधिकरणे सर्वशून्यत्वरूपतुच्छत्वंनोपपद्यते । प्रमाणप्रमेयप्रमातृ-

रूपाणापदार्थानामबाधेनसततमुपलम्भादितिसाधितम् । एकस्मिन्नमभवाधिकरणे न युक्तोऽनेकान्तवादोजैनानाम्। एकस्मिन् वस्तुनिनित्यत्वानित्यत्वसत्त्वासत्त्वबक्तव्यत्वावक्तव्यत्वादीनापरस्परविरुद्धाना धर्माणामसम्भवात् इति दर्शितम् । पत्याधिकरणेपत्यु परमेश्वरस्यजगत केवलमधिष्ठातृत्वमिति कापालिकमतप्रत्याख्यायपरमेश्वरस्यजगदुपादानत्वमपीतिप्रसाधितम् । उत्पत्यसम्भवाधिकरणे न पाञ्चरात्रवचनानाजीवोत्पत्तौतात्पर्यम् । जीवोत्पत्तेरसम्भवादितिसाधितम् । द्वितीयाध्यायस्यतृतीयेपादे वियदधिकरणेअस्त्येवाकाशस्योत्पत्तिरितिसाधितम् । तेजोऽधिकरणे वायोस्तेजउत्पद्यते इति साधितम् । विपर्ययाधिकरणेसृष्टिक्रमाद्विपर्ययेणलयक्रम इति साधितम् । अन्तराविज्ञानाधिकरणेसर्वस्यजगत - साक्षात्ब्रह्मणएवोत्पत्तिरविशेषादितिसाधितम् । आत्माधिकरणे—आकाशादिवज्जीवस्योत्पत्तिनिराकृत्य-तस्यब्रह्मकार्यत्वनित्यत्वञ्च साधितम् । ज्ञाधिकरणे अयमात्माज्ञातृस्वरूप एव, न तु ज्ञानमात्र स्वरूप इति दर्शितम् । कर्त्राधिकरणे— आत्मैवजगत कर्ताशास्त्रार्थवत्वादितिनिर्णीतम् । अशाधिकरणे—अय जीवो ब्रह्माश एव नानात्वव्यपदेशादेकत्वव्यपदेशाच्चेतिनिर्धारितम् । द्वितीयाध्यायस्यचतुर्थपादे प्राणोत्पत्यधिकरणेवियदादिवदेवप्राणाउत्पद्यन्ते इति साधितम् । सप्तगत्यधिकरणेज्ञानेन्द्रियकर्मेन्द्रियमनासिएकादशेन्द्रियाणि इति व्यवस्थापितम् प्राणाणुत्वाधिकरणे अणव एव प्राणा इन्द्रियरूपा पञ्चप्राणरूपाश्चेति व्यवस्थापितम् । श्रैष्ठ्याधिकरणे--श्रेष्ठ प्राणोऽप्युत्पद्यते इति निर्णीतम् । वायुक्रियाधिकरणे भूतेषु परिगणितोवायुरेवप्राण इति साधितम् । श्रेष्ठाणुत्वाधिकरणे मुख्य प्राणोऽणुरितिसाधितम् । ज्योतिराद्यधिष्ठानाधिकरणे देवताऽधिष्ठितानामेवकरणाना प्रवृत्तिरिति साधितम् । इन्द्रियाधिकरणे श्रेष्ठप्राणभिन्नान्येवेन्द्रियाणि इति प्रसाधितम् । सज्ञामूर्तिक्लृप्त्यधिकरणे परमात्मनोऽशस्यप्रजापतिरूपस्यजीवस्यैवसमष्टिरूपस्यजगत्कर्तृत्वमितिनिर्धारितम् । तृतीयाध्यायस्यप्रथमेपादे—तदन्तरप्रतिपत्त्यधिकरणे- देहान्तरगमने तदारम्भकैर्भूतसूक्ष्मै सपरिष्वक्त एव जीवोरहति गच्छति प्रश्ननेनतदुत्तरेणचैतदवगम्यते इति निर्णीतम् । कृतात्ययाधिकरणे—स्वर्गस्य प्राप्तयेकृतस्यकर्मणोभोगेनात्ययेसतिभुक्तशिष्टकर्मवानेवचन्द्रमण्डलात्प्रत्यवरोहति । तथा श्रुतिस्मृतिदर्शनादितिसाधितम् । अनिष्टादिकार्याधिकरणेअनिष्टादिकारिणामपिचन्द्रमण्डलेगमनमस्ति तेषामपितत्रगमनस्यश्रवणादितिदर्शितम् । सभाव्यापत्त्यधिकरणे शोभादिषुपुण्यपापोपभोगार्थसाम्यापत्तिरेव सारूप्यमेवावश्यकम् इति दर्शितम् । नातिचिराधिकरणे अचिरकालमेवाकाशादिभावेनावतिष्ठते । ब्रीह्यभावप्राप्त्यनन्तरविशिष्यदुर्निष्क्रमेणवचनादितिनिर्णीतम् । अन्याधिष्ठिताधिकरणे अन्यैर्जीवैरधिष्ठिते ब्रीह्यादावनुशायिनाजीवानासंसर्गमात्रभवति आकाशादिवर्पान्तससर्गमात्रवत् । इति निर्णीतम् । तृतीयाध्यायस्यद्वितीयेपादेसन्ध्याधिकरणे स्वाप्निकरथादीनामायामात्रस्वरूपाणापरमात्मैवस्रष्टा इति निर्णीतम् । तदभावाधिकरणे सुषुप्तोस्वप्नाभाव सुषुप्तिर्नाडीषुपुरीततिपरमात्मनि च भवति इति निर्णीतम् । कर्मानुस्मृतिशब्दविध्यधिकरणे यस्तावत्पूर्वसुप्त स एव जीव प्रबुध्यते नान्य इति निर्धारितम् ।

मुग्धाधिकरणे मूर्च्छाऽर्धसपत्तिरितिनिर्णीतम् । उभयलिङ्गाधिकरणेजीवप्राप्यस्यब्रह्मण उभयलिङ्गताउक्ता । अहिकुडलाधिकरणे ब्रह्मणश्चिदचिदशद्वयवत्त्व दर्शितम् । पराधिकरणे ब्रह्मण-परकिञ्चित्प्राप्यनास्ति इति दर्शितम् । फलाधिकरणे जीवस्यभोगापवर्गादिलक्षणफल परमपुरुषादेवसपद्यते इति दर्शितम् । तृतीयाध्यायस्यतृतीये पादे सर्ववेदान्तप्रत्ययाधिकरणे सर्वेषुवेदान्तेषुविद्यैकाप्रतिपादितम् । अन्यथात्वाधिकरणे विद्याभेदमाशङ्क्यविद्यैकामेवसमर्थितम् । सर्वाभेदाधिकरणे अपिविद्यैकामेवसमर्थितम् । आनन्दाद्यधिकरणे सर्वासुउपनिषत्सुउपास्येब्रह्मणिसर्वत्रसर्वगुणोपसहारोदर्शित । कार्याख्यानाधिकरणे अप्राप्तस्यैवविधानेशास्त्रणामर्थवत्वप्रसाधितम् । समानाधिकरणे शाण्डिल्यविद्यावाजसनेयकविद्ययो समानत्वव्यवस्थापितम् । सबन्धाधिकरणेरूपभेदेविद्याभेदोव्यवस्थापित । संभृत्यधिकरणे सम्भृत्यादिगुणविशिष्टमुपासनान्तरमिति व्यवस्थापितम् । पुरुषविद्याधिकरणे फलभेदात् पुरुषविद्यानाभेद साधित । वेधाद्यधिकरणे अभिचारादिषुउक्तानामन्त्राणाविद्याङ्गत्वनेतिसाधितम् । हान्यधिकरणेहानिवाक्येउपायनस्यापिश्रवणात् द्वयो समुच्चयोऽभिप्रेत इति साधितम् । साम्परायाधिकरणे विद्याविपाकाद्देहापक्रमणकाल एव ब्रह्मविद सुकृतदुष्कृतयोर्हानमिति दर्शितम् । अनियमाधिकरणे सर्वविद्यावतामर्चिरादिमार्गेणैवगमनमितिदर्शितम् । अक्षरध्यधिकरणेसर्वेषांब्रह्मगुणानासर्वविद्यासुउपसहार इति दर्शितम् । आन्तरत्वाधिकरणेउभयत्रापि आन्तरत्वविद्या एकैवेतिनिर्णीतम् । कामाद्यधिकरणे छान्दोग्येबृहदारण्यके च विद्या एकैव इति निर्णीतम् । तन्निर्धारणानियमाधिकरणे कर्माङ्गविद्यानाकर्मविद्यासु अनियमेनोपसहार इति दर्शितम् । प्रदानाधिकरणे गुणभेदविशिष्टस्यब्रह्मणश्चिन्तनभिन्नमेव इति दर्शितम् । लिङ्गभूयस्त्वाधिकरणे लिङ्गस्यप्रकरणाद् बलीयस्त्वदर्शितम् । आत्मन शरीरभावाधिकरणे अससारीआत्मा-अनुसन्धेय इति साधितम् । अङ्गावबद्धाधिकरणे उद्गीथाद्यङ्गावबद्धाविद्यासर्वशाखासु एकैव इति साधितम् । भूमज्यायस्त्वाधिकरणे समस्तोपासनस्यैवज्यायस्त्वनव्यस्तोपासनस्येति प्रतिपादितम् । शब्दादिभेदाधिकरणे सर्वाविद्या परस्पर भिन्ना एवेतिप्रतिपादितम् । विकल्पाधिकरणे ब्रह्मप्राप्तिफलानादहरादिविद्यानामनुष्ठानेविकल्प इति प्रदर्शितम् । यथाश्रयभावाधिकरणे क्रत्वङ्गोद्गीथादिसमाश्रितानांविद्यानाक्रत्वङ्गतयानियमेनोपादानमिति व्यवस्थापितम् । तृतीयाध्यायस्यचतुर्थेपादे पुरुषार्थाधिकरणेब्रह्मविद्यात पुरुषार्थोब्रह्मानुभवलक्षण इति निर्णीतम् । स्तुतिमात्राधिकरणे उद्गीथाद्युपासनानारसतमत्वादिगुणानाञ्चापूर्वत्वाद् प्रमाणान्तराप्राप्तत्वाद् यागादिवद्विधेयत्वमेवेतिदर्शितम् । पारिप्लवार्थाधिकरणे औपनिषद् कथाना न परिप्लवशेषत्वमितिदर्शितम् । अग्नीन्धनाद्यधिकरणे ब्रह्मविद्याया स्वफलप्राप्तौशेषत्वेनयज्ञकर्मणामपेक्षा-नास्तीतिदर्शितम् । सर्वापेक्षाधिकरणे कर्माणियोग्यताबलाद् ज्ञानोत्पत्तावुपयुज्यन्ते न मोक्षे योग्यताभावादितिनिर्धारितम् । शमदमाद्यधिकरणेमुमुक्षुर्ब्रह्मविद्यार्थीगृहस्थ शमाद्युपेत स्यादेवेति दर्शितम् । सर्वान्नानुमत्यधिकरणे प्राणात्यय एव परस्यामापदिविद्वासंप्रतिसुरावर्जसर्वमन्नमदनीयत्वेनानुमतं

नानापदि । विहितत्वाधिकरणे यज्ञादीनिकर्माणिकेवलाश्रमिणाऽऽयनुष्ठेयानीतिप्रसाधितम् । विधुराधिकरणे विधुराणामपिब्रह्मविद्यायामधिकार इति साधितम् । तद्भूताधिकरणे नैष्ठिकादेरनाश्रमित्वेनावस्थानप्रमाणरहितमिति न तेषां ब्रह्मविद्यायामधिकार इति साधितम् । स्वाम्यधिकरणे क्रतुवत्क्रत्वङ्गोपासनमपि ऋत्विक्कर्तृकमेवस्वामिनेफलप्रदमितिदर्शितम् । सहकार्यन्तरविध्यधिकरणे सर्वाश्रमेषुमौनतृतीयसचिवाब्रह्मप्राप्तिसाधनीभूताविद्या इति दर्शितम् । अनाविष्काराधिकरणे विदुषा बालवत् मानापमानौविहायस्वस्वरूपमप्रकाश्यलोकेस्थेयम् बालस्यशौचाचाररहित्यन्तुनानुकार्यम् इति दर्शितम् । ऐहिकाधिकरणे ब्रह्मविद्यार्थमनुष्ठितकर्मसति प्रतिबन्धाभावेइहैवजन्मनिब्रह्मविद्यारूपफलसूतेप्रतिबन्धेसतितुजन्मान्तरे इति निर्णीतम् । मुक्तिफलाधिकरणे सततब्रह्मस्मृतिरूपाया विद्यायासत्यमिहैव मुक्तिर्भवति । अन्यथा तु जन्मान्तरेऽपि इति निर्णीतम् । चतुर्थाध्यस्यप्रथमेपादे आवृत्त्यधिकरणे ब्रह्मस्मृते सततमावृत्ति कर्त्तव्येति साधितम् । स्मृतिर्वेदना उपासना च एकार्थकान्येवपदानि इति दर्शितम् । आत्मत्वोपासनाधिकरणेउपासकेनस्वात्मतयैवोपास्यब्रह्मेति साधितम् । प्रतीकाधिकरणे मनआदौप्रतीकेनात्मबुद्धिकर्त्तव्येतिनिर्णीतम् आदित्यादिमत्यधिकदणे कर्माङ्गे उद्गीथादौ आदित्यादिमतय कर्त्तव्या इति निर्णीतम् । आसीनाधिकरणे नासाग्रदृष्टि सन् आसीन एवोपासनकुर्यादितिसाधितम् । आप्रायणाधिकरणे आप्रायणमुपासनाऽऽवृत्ति कर्त्तव्येतिदर्शितम् । इतराधिकरणे विदुष उत्तरपूर्वयो पुण्यपापयो शरीरान्तरहेतुभूतयोर्विद्याप्रभावेणश्लेषविनाशाभ्यामारब्धकर्मणश्च भोगेनैवक्षयेदेहान्तरेसति अवश्य मुक्तिरिति उक्तम् । अनारब्धकार्याधिकरणे सञ्चितेपुण्यपापेविनश्येतविद्याया नतु प्रारब्धकर्मेतिसाधितम् । तदधिगमाधिकरणे ब्रह्मविद्याप्राप्तौतद्बलादुत्तरपूर्वयोरर्थयोरश्लेशविनाशोभवत इति व्यवस्थापितम् । अग्निहोत्राधिकरणे होत्रादिककर्मतुविद्याकार्यायैव इति निर्णीतम् । इतरक्षपणाधिकरणे भोगेनैवप्रारब्धेपुण्यपापेक्षपयित्वामुच्यते एकेनजन्मनाबहुभिर्जन्मभिर्वा इति निर्णीतम् । चतुर्थाध्यायस्यद्वितीयेपादेवागधिकरणे म्रियमाणस्यवाग्मनसासपद्यते इत्युक्तम् । सपत्तिरत्रविलक्षणसयोग । मनोऽधिकरणे मन प्राणेसपद्यते इत्युक्तम् । अध्यक्षाधिकरणेप्राण अध्यक्षेजीवेसपद्यते इत्युक्तम् । भूताधिकरणेजीवसचिवप्राणोभूतेषु संपद्यते इत्युक्तम् । आसत्युपक्रमाधिकरणे ब्रह्मविदोऽपिआसत्युपक्रमात् (नाडी प्रवेशात्) प्राक् समानैवससारिणउत्क्रान्तिरितिवर्णितम् । परसपत्त्यधिकरणे सबीजानिभूतसूक्ष्माणिपरस्मिन्नात्मन्येवसम्पद्यन्ते इति उक्तम् । अविभागाधिकरणे परमात्मनासहविलक्षणसयोगरूपा इय सपत्तिरितिनिर्धारितम् । तदोकोऽधिकरणे ब्रह्मविद शताधिकयामूर्धन्ययानाड्योत्क्रमणम् अन्यस्यविदुषस्तुनाड्यन्तरेणेतिनिर्णीतम् । रश्म्यनुसाराधिकरणे रश्म्यनुसारेणैवब्रह्मविदोगमनम् इति निर्धारितम् । दक्षिणायनाधिकरणे दक्षिणायनेमृतस्यब्रह्मविदश्चन्द्रलोकावाप्तावपि न तत पुनर्निवृत्तिस्तस्येत्युक्तम् । चतुर्थाध्यायस्यतृतीयेपादेअर्चिरधिकरणेब्रह्मप्राप्तेरेकएवार्चिरादिलक्षणोऽध्वेतिनिर्णीतम् । वाय्वधिकरणे देवलोक-

वायुशब्दाभ्यामविशेषाभ्यावायुरेवाभिधीयते अत सवत्सरात्परवायुमेवाभिगच्छतीतिनिर्णीतम् । वरुणाधिकरणे तडितऊर्ध्वमेववरुणोनिवेशनीय , उभयोर्मेघसबन्धादितिसाधितम् । आतिवाहिकाधिकरणे ब्रह्मविदामतिवहनकर्तार एवैतेपरमात्मनोनियुक्तादेवताविशेषा एतेऽर्चिरादय इति निर्णीतम् । कार्याधिकरणे कार्यब्रह्मोपासकस्यकार्यब्रह्मप्राप्तिर्नतुपरब्रह्मविद इति अत्राधिकरणेनिर्णीतम् । चतुर्थाध्यायस्यचतुर्थेपादे सपद्याविर्भावाधिकरणे ब्रह्मविद्यास्वाभाविकस्यस्वस्वरूपस्यैवाविर्भावो नतु देवादिस्वरूपाभिनिष्पत्तिरितिप्रसाधितम् । अविभागेनदृष्टत्वाधिकरणेपरज्योतिरुपसंपद्यप्रक्षीणकर्मबन्ध प्रत्यगात्ममुक्तावविभागेनतितीष्ठतिसाधितम् । ब्रह्माधिकरणे मुक्तोप्रत्यगात्मन स्वरूपतोगुणतश्चापहतपाप्मत्वादिकमैवोपपद्यते नतु विज्ञानमात्रस्वरूपत्वमितिजैमिनिमतम् । चितितन्मात्रेणरूपेणप्रत्यगात्माऽवतिष्ठते इत्यौडुलोमिराचार्योमन्यते । ज्ञानिनोविज्ञानमात्रस्वरूपत्वाङ्गीकारेऽपितत्रअपहतपाप्मत्वादीनांगुणाना प्रकरणावगतानामविरोधबादरायणोमन्यते इति दर्शितम् । सकल्पाधिकरणेसकल्पादेवब्रह्मविद सर्वकामावाप्तिरितिदर्शितम् । अभावाधिकरणेमुक्तात्मन शरीरेन्द्रियाणामभावबादरिराचार्योमन्यते । जैमिनिस्तुतस्यशरीरेन्द्रियाणाभावमन्यते । बादरायणस्तुसकल्पवैचित्र्यादुभयमन्यते ।

जगद्व्यापारवर्जनाधिकरणे जगद्व्यापारवर्जमुक्तात्मन ऐश्वर्यं जगदीश्वरवद् भवति इति दर्शितम् । एव वेदान्तसूत्राणामानन्दभाष्ये श्रीराम एव पर ब्रह्म श्रीरामषडक्षरमन्त्रराजएवपरोमन्त्र ,ब्रह्मविदोऽचिरादिमार्गेणब्रह्मप्राप्ति ,तत पुनरावृत्त्यभाव ब्रह्मोपासनाभिर्विविधाभि ज्ञानकर्मसमुच्चयसम्बलितभक्त्याच ब्रह्मप्राप्तिरित्यादिका सिद्धान्ता दर्शिता ।ईशोपनिषदानन्दभाष्ये यत परमपुरुषस्यसर्वान्त प्रविष्टत्वात् सर्वमेवतस्यशरीरम् तस्मात् सर्वंब्रह्मात्मकमितिकिमपिकस्यापिभोग्यनास्तीत्यत परमात्मभिन्नसर्वविषयमाशापरित्यजेदित्यर्थ प्रथममन्त्रस्यआनन्दभाष्येदर्शित । ब्रह्मविद्याङ्गभूतकर्ममुमुक्षुणामपियावज्जीवकर्त्तव्यमेवेति द्वितीयमन्त्रार्थ । ये अज्ञानिनस्तेआत्मघातिन तेषादुष्कृतकारिणारौरवादिसज्ञकानिरयाभवन्ति । अतो ब्रह्मज्ञानायप्रयतनीयमितितृतीयमन्त्रार्थ । ब्रह्मअगच्छदपिमनसोवेगवत्तरम् इन्द्रियेभ्योऽपिवेगवत्तरम् तिष्ठदपिअन्यानत्येतितस्मिन् स्थितोवायु सर्वंधर्त्तुशक्नोतीतिचतुर्थमन्त्रार्थ । ब्रह्म अनेजदपि शरीराद्यनुप्रविष्टएजतीवातत् उपहितदूरेअनुपहितमन्तिकेतद् व्यापकतया सर्वस्यान्त सर्वस्यबाह्यतश्चेतिपञ्चममन्त्रार्थ । य सर्वाणिभूतान्यात्मनि पश्यति सर्वभूतेषुचात्मानपश्यतितेनस्वात्मविभूतित्वावगमात् न निन्दा कस्यचित् करोतीति षष्ठमन्त्रार्थ । यस्मिन् सर्वस्यब्रह्मात्मकत्वानुसधानसमयेसर्वाणिभूतानिविजानत पुरुषस्यात्मैवाभूततत्रसमये एकत्वम् जातिव्यक्तयोरिवविभागानर्हसम्बन्धविशेषमनुपश्यत कोमोह क शोक इति सप्तममन्त्रार्थ । य सर्वभूतान्तरात्मभूतब्रह्मपश्यति स तादृशब्रह्मदर्शीशुक्लमकायमित्यादिरूपब्रह्मप्राप्नोति । कविर्मनीषीपरिभू स्वयभूश्चभवति । यथार्थरूपेण च सर्ववस्तुसदागृह्णातीतिअष्टममन्त्रार्थ । येऽविद्याविद्यारहितकर्ममात्रमुपासतेतेऽतिगहनमज्ञानविशन्तिततोऽपिअधिकतरमज्ञानतेविशन्ति ये कर्मत्यक्त्वाविद्यायामेवरता । इति नवममन्त्रार्थ । केवलकर्मत. केवलज्ञानतश्चभिन्नंज्ञानकर्मसमुच्चयरूपमोक्षसाधनमितिदशममन्त्रार्थः । ज्ञानकर्मस-

मुच्चयरूपंमोक्षसाधनमितिएकादशमन्त्रार्थ । द्वादशेमन्त्रेअसंभूतिज्ञानसभूति कर्म तयो केवलयोरुपासनस्यनिन्दाद्वादशमन्त्रेक्रियते । त्रयोदशेमन्त्रे ज्ञानकर्मणो पृथक्पृथक्फलदर्शितम् । चतुर्दशे मन्त्रे सभूति समाधिरूपाब्रह्मोपासना, विनाशेहिंसास्तेयादिनिवृत्तितयो पृथक्पृथक्फलदर्शितम् । पञ्चदशेमन्त्रे सत्यस्यपरमात्मनोजीवस्य च मुखद्वारमन हे पूषन् त्वपावृणुसत्यधर्मरूपपरमात्मप्राप्तयेतत्-दृष्टये चेति अर्थ । हिरण्मयेनपात्रेणशब्दादिरूपेणविषयेणेत्यर्थ । हे पूषन् आश्रितपोषणस्वभाव, एकोद्वितीयऋषि अतीन्द्रियार्थद्रष्टा । यमसर्वान्तर्यामिन् । सूर्यस्वाश्रितानाबुद्धे सुष्ठुप्रेरक,प्राजापत्यप्रजापते स्वार्थेष्यञ् । व्यूहरश्मीन् समूहतेज सौम्यम् । यत्तेकल्याणतमरूपतत्तेपश्यामियोऽसौपुरुष सोऽहमस्मि अविभागगत इति षोडशमन्त्रार्थ । वायुर्जीव अनिलम् निलयरहित अमृतश्च इद शरीरन्तुभस्मान्तम् । हे क्रतो ? क्रत्वाराध्यविष्णो ? मा स्मर अनुग्रहार्थम् । मम कृतकर्मत्वदाराधनरूपस्मरेति सप्तदशमन्त्रार्थ । हे अग्नेपरमेश्वररायेत्वत्प्राप्तिरूपायधनायअस्मन्सुपथाऽर्चिरादिमार्गेणनय । हे देव ? आत्मा क विश्वानिसर्वाणिवयुनानिउपायान् विद्वान् जानन् अस्माक जुहुराणकुटिलमेन पाप युयोधि वियोजय भूयिष्ठांते नम उक्तिविधेम इति अष्टादशमन्त्रार्थ ।

एव केनकठप्रश्नमुण्डकमाण्डूक्यतैत्तिरीयैतरेयोपनिषत्सु श्रीराम एव पर ब्रह्म मन्त्रराज षडक्षरोमहामन्त्रोज्ञानकर्मसमुच्चयोमुक्तिसाधनमित्येवआनन्दभाष्येषुतत्तदुपनिषदादर्शितम् । विविधाश्चोपासनास्तत्तत्कामफलप्रदा , कामनानामभावेब्रह्मप्राप्तिफलादशिता । देशिकपरिचर्यायाश्रीरामानन्दसम्प्रदायस्य एकचत्वारिंशत्प्रमुखाअन्येचापिलोकविदिताआचार्या सप्रदर्शिता , तेषाकृतिकालादिकञ्चप्रदर्शितम् । तेषु श्रीतुलसीदासोविशेषरूपेणदृष्टिपथसाप्रतमारोहति । यतस्तस्यकृतिर्मानसनामअधुनासर्वस्यजगत उपकरोति । इद च पुस्तक न केवल श्रीरामानन्दाचार्यानुयायिनामेवकेवलमान्य मार्गदर्शकञ्च अपि तु सर्वेषादर्शनकर्तृणासम्प्रदायाना च मान्यम् । एतत्पुस्तकनिदर्शितमार्ग एव च जगति जनानाक्षेमकारकउद्धारकश्च । ब्रह्मसूत्राणाश्रीवैष्णवाचार्यविरचितभाष्यमपि श्रीरामानन्दाचार्यविरचितमानन्दभाष्यमेवानुकरोतीति न तस्यपुन पृथक् समीक्षणापेक्षा । वेदरहस्ये च श्रीराघवानन्दाचार्यदण्डिप्रणीते १५९ ऋङ्मन्त्रा श्रीरामचरितवर्णनपरतयाव्याख्याता इति महत्कौशलम् । छान्दोग्योपनिषद्भाष्येबृहदारण्यकोपनिषद्भाष्ये च श्रीमद्रामानन्दाचार्यैर्नानाविधाउपासना ज्ञानकर्मसमुच्चयश्चमोक्षसाधनतयाप्रदर्शित । श्रीरामस्यपरब्रह्मण स्वरूपञ्चमन्त्रव्याख्यामुखेनदर्शितम् । तथैवश्वेताश्वतरोपनिषदानन्दभाष्येशिवरुद्रादीनापरब्रह्मश्रीरामेसमन्वयविधायतस्यैवभक्त्यासमाराधनीयत्वसमर्थितम् । वैष्णवश्रीदेवदासविदुषाहिन्दीभाषायासगृहीतश्रीरामानन्दाचार्यजीवनचरितञ्चलोकानाजीवनस्यादर्शभूतम् । यत्रसदाचाराउपासनाभक्तयोर्विविधाश्चमोक्षसाधका - सिद्धिमार्गाबहूनि च दर्शनसाराणिप्रदर्शितानि । श्रीरामानन्ददर्शनस्यप्रचारकप्रसाधकञ्च जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यपीठ नामकमासिकपत्रामपि आचार्यपीठ-श्रीकोसलेन्द्रमठ कर्णावती (अहमदाबाद) नगरत प्रचलति । तदपितद्धितायेतिविदुषोबोधयन्विरमामि । ॥

ॐ श्रीरामानन्दवेदान्तेकिञ्चिद् ॐ

(ले० स्वामी उद्धवदास वेदान्ती)

अस्यन्दृश्यमाननामरूपात्मकस्य प्रपञ्चस्य परमाधारभूता भगवन्तो वेदास्ते प्रमाणान्तर नापेक्षन्त इति स्वत प्रामाण्यमपौरुषेयत्वञ्च वेदे वेदान्ते च सिद्ध्यति। यथोक्त मीमासायामपौरुषेय वेदमिति तस्य ज्ञानकर्मोपासना इति काण्डत्रयात्मकतयाऽन्ते उपासनापदप्रोक्तत्वेन ज्ञानकर्मणो रुपासनाया पर्यवसानमिति स्वरमत सिद्ध्यति। अत एव पूर्वोत्तरमीमांसाशास्त्रयोरैक्य प्रतिपादकतया भगवता श्रीआनन्दभाष्यकारेणोपासनात्मकम् कर्मज्ञानमिति ज्ञानस्यलक्षणमुदाहृतम्। तत्रेद विचार परम्पराया कस्योपासना कर्तव्या? इति शङ्का समुदेति यतो हि—अनादिवात स्वधयातदेकमिति ऋग् वेदीयनासदीयश्रुत्यानुरूपमेकस्य परमतत्वस्य जगज्जन्मादिकारणता सिद्ध्यति। उपनिषदोपि "यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति, यदभिसमृविसन्ति तद् विजिज्ञासस्व" इत्यादि सहस्रम एकस्य तत्त्वस्य कारणता प्रतिपादयन्ति तत्रैकस्यस्वरूपपरम्पराया भेदाभेदबोधकश्रुति वाक्येभ्य द्विधा दर्शनपरम्परा आस्तिकदर्शने समुदिता। तत्र वेदान्तस्य ब्रह्मबोधकत्वात् उपनिषद्यते ब्रह्मसमीपप्राप्यते इति उपनिषद् इति व्युत्पत्तिमूलकत्वाद् पद्लृधातोविशरणगत्यावसाद नेतित्रयार्थकत्वाच्चोपनिषत्पदबोधकता वेदान्तस्यसिद्ध्यति। अत एव सदानन्दयतिना स्वकीये वेदान्त सारे नानोपनिषत् प्रमाणम् तदुपकारीणि शारीरकसूत्राणि च उदाहृतानि। तत्र दृश्यतेऽनेनेति करण व्युत्पत्या ब्रह्मसाक्षात्कारकारणतादर्शनम् सिद्ध्यति तत्रैव ब्रह्मविचारपरम्परायाम् एकोनद्वौ इत्यादि निर्विशेषब्रह्मप्रतिपादकशङ्करमत महता समारोहेण निराकुर्वता भगवता भाष्यकारेण "नित्यो-नित्याना चेतनश्चेतनाम् एको बहुना यो विदधाति कामान् तमात्मस्थं ये परिपश्यन्ति धीरास्तेषा शाश्वती शान्ती नेतरेषाम्" एवं "यो पृथिव्या तिष्ठन् पृथ्वीमन्तरो य पृथ्वी यमयति यस्य पृथ्वी शरीरम्। य आत्मनि तिष्ठन् आत्मनोऽन्तरो यस्यात्मा शरीरम्। यद् अग्नौ तिष्ठन् अग्नयोन्तरम् यस्याग्निशरीरम् य काले तिष्ठन् कालमन्तरो यस्य काल शरीरम्" इत्यादि "अनेन जीवेन आत्मनाऽनुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि, एकोऽहं बहुस्याम प्रजायेय इत्यादि सहस्रस उपनिषद् वाक्येभ्य तथा च "ममयोनिर्महद् ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम्" इति श्रीमद्भगवद् मुखनिसृत गीता प्रमाणाच्च निखिलगुणगणनिलयहेयप्रत्यनीकस्य मर्यादापुरुषोत्तमस्य श्रीजानकीजाने, जगज्जन्मादिकारणत्वम् धारकत्वम् नियन्तृत्वम् अथ च सृष्टिप्रक्रियाया अनादित्वञ्च ब्रह्मत्वेन सिद्ध्यति। केवलम् सृष्टिकाले स्थूलरूपेण उपबृंहणम् भवतीति ब्रह्मपदव्युत्पत्या सिद्ध्यति। ईश्वरस्य च समस्तचेतनाचेतनव्यापकत्वमपि तेनैव सिद्ध्यति। एवं स्थूलचिदचिद् विशिष्टस्य अथ च सूक्ष्मचिदचिद्विशिष्टस्यैकतया एकमेवाद्वितीय ब्रह्म इति श्रुतिसम्बुध्यस्य भगवत श्रीरामचन्द्रस्य ब्रह्मत्वमायाति। अतएव महर्षि श्रीमद्वाल्मीकिनापि स्वकीयादिकाव्ये श्री रामस्यैव परत्वमुपपादयता "वेद वेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे। वेद प्राचेतसादासीत् साक्षात्रामायणात्मना। इति वेदवोधितत्त्वमेव प्रपञ्चितम्। अत ऋग्वेदीयविष्णुसूक्तेऽपि 'उभाहि हस्ता वसुनाप्रणिस्व' इत्यादिद्विभुजस्य भगवत श्रीरामचन्द्रस्यैवान्तर्यामित्वं प्रकटितम्। एवं समासेन विचारे ब्रह्मपदबोध्यता सर्वेश्वरश्रीरामस्यैवसिद्ध्यतीति नास्ति विसम्वादलेशो वेदान्तशास्त्रपरिशीलन संमुखीनाम्। अत एव श्रीरामतापनीयोपनिषदि रमन्तेयोगिनोऽनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि। इति रामपदेनाऽसौ परं ब्रह्माभिधीयते" इत्यादिना श्रुत्यापि श्रीरामस्यैवपरमब्रह्मपदाभिधीयत्वमभिधाश

क्त्या बोध्यता इतरेषु भगन्नामेषु क्वचिदन्तर्यामि तया क्वचिच्च गौणत्वेन ब्रह्मपदव्यवहारोपि उपपद्येत इति सर्वेषा सामञ्जस्यम् । र्वोक्तविचारजातेन जीवब्रह्मप्रकृति–इति तत्वत्रयम् नित्यतया वेदान्तप्रतिपाद्यमित्यपि सिद्ध्यति । तत्र लौकिककार्यकारणभावमादाय निर्विशेषब्रह्मसावकमतदत्तम् प्रामोण्यम् नोचितम् "नाध्रुवै प्राप्यते ध्रुवम्" "यतो वाचोनिर्वतन्ते अप्राप्यमनसासह आनन्द ब्रह्मणो विद्वान् न विभेति कुतश्चन" इत्यादिभि श्रुतिभि ब्रह्मण श्रीरामस्यालौकिकत्वात् । 'ॐ' इति एतत् उद्गीथमुपासीत' इति श्रुतिवाक्यात् जननमरणसंसारानलतप्तानामनाद्यविद्याप्रवाहनिमग्नानाम् कर्मग्रन्थीगर्हिलानाम् चेतनानाम् परमनि श्रेयसावाप्तिर्भगवच्चरणारविन्दद्वन्दभक्तिप्रपत्तिभ्यामेव सिद्ध्यति । शास्त्राणि तत्रकारणता गच्छन्ति । परमयथार्थ "नाऽयमात्मा प्रवचनेन लभ्य न मेधया न बहुना श्रुतेन । यमेवैपवृणुते तेन लभ्यस्तस्यैप आत्मा विवृणुते तनू स्वाम्" इति । अत एव तत्वत्रये भक्तिप्रपत्तिभ्यामेवोपाय इति चेतनस्य मोक्षमार्गोपायोपेयतया भगवत श्रीरामस्य न्यासभर प्रपत्तिमार्गे परमकल्याणाय कल्पते । तत्र श्रीरामपदवोभ्य ब्रह्मणि एवं जगदुद्भवस्थिति कारिणि निखिलब्रह्माण्डचिन्मयाह्लादकारिणि भगवती श्रीसीताया पार्थक्य नावसेयम् । यथा–सवितुर्गभस्तय परमार्थत तद्भिन्ना न किन्तु व्यवहारदशायामेव पार्थक्य प्रतीयते । अत एव श्रीमद्वाल्मीकीयसुन्दरकाण्डे भगवत्या श्रीसीताया श्रीराम प्रति–"अनन्याराघवेणाहं भास्करेण यथाप्रभा" एव भगवतो श्रीरामचन्द्रेण युद्धकाण्डे स्वयमुक्त "अनन्याहि मयो सीता भास्करेण प्रभा यथा' इत्याद्युक्ति सगच्छते । अत एवाकारणकरुणावरुणालयस्य अनन्तकल्याणगुणगणनिधेर्भगवत श्रीरामचन्द्रस्य तथाविधगुणना जीवे आविर्भावस्तेन च जीवाना भगवत् सायुज्यमित्यत्र भगवत्या प्रयोजककर्तृत्वम् मन्यते शास्त्रकारै । यथा अगाधे जलधौ स्पन्दनानन्तरा वीचयो नोत्पद्यन्ते तथैवभगवत्या कारुण्यमनन्तरा भगवति श्रीरामेस्थितानां गुणानामभिव्यक्ति भवितु नो पार्यते इति । जगजन्मादिव्यापार भगवतोऽपि विशिष्टाद्वैतप्रतिपादके श्रीरामानन्दवेदान्ते शास्त्रानुगमात् साध्यते स्वीक्रियते च । अत एव तस्याचरमगतौ चेतनस्य नि श्रेयसावाप्तये पुरुषाकारत्वं स्वीक्रियते य विना शरणागति न सम्यग् कल्यते । अत एव प्रस्थानत्रयानन्दभाष्यकारै "सर्वावीशेश्वरस्याप्तिर्हेतुरत्राभिधीयते । सीतापुरुपकारार्था श्रीत्यनेन पदेन तु" (श्रीवै म भास्कर २।२६) इत्यादिरूपेण तत्स्वरूप विहितम् । एवं विधा अलौकिकशक्ति सम्पन्नापि भगवती श्रीसीता स्वपत्यु श्रीरामचन्द्रस्य यश सन्ततिम् तन्तुम् सर्वथा यतते यथा श्रीमद्वाल्मीकीयसुन्दरकाण्डे–"कामत्वमपि पर्याप्तो निहन्तुं सर्वराक्षसान् । राघवस्य यशोहीयेत्त्वयाशस्तैस्तु राक्षसै । एव श्रीरामानन्दवेदान्तविशिष्टाद्वैतवादी तत्र च विशिष्टञ्च विशिष्टञ्च इति विशिष्टे तयो विशिष्टयो सूक्ष्मचिदचित् स्थूलचिदचिद् विशिष्टयो अद्वैत विशिष्टाद्वैतमिति प्रक्रिया एव "जगत्सर्व शरीर ते स्थैर्यते वसुधातलमिति आदि काव्येस्तथा च "सरित् समुद्राश्च हरे शरीरम् यत् किञ्चभूत प्रणमेदनन्य" इति भगवता व्यासेनाप्युक्त । पुनरपि व्यासेज चोक्तम्–मयाध्यक्षेण प्रकृत्ति सूयते सचराचरम्" "यद् यद् विभूति मत्सत्व श्रीमदूर्जितमेववा । तत्तदेवावगच्छत्व मम तेजोंशसम्भवम् । इत्यादि अनेकै वाक्यै ब्रह्मणोऽथ च नामरूपात्मकस्य अस्य विशिष्टस्य सर्वेश्वर श्रीरामस्य चाभेदतया "सर्व खल्विद ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन इति श्रुतिरपि स्वारस्येन संगच्छते। एवं श्रुतिसिद्धान्तमारानुगृहीतस्य श्रीरामानन्दवेदान्तस्याध्यापनाध्ययनप्रचारप्रसारेणसम्प्रति सामाजिकजीवने समस्त विसगतीनाम् निराकृति र्वकमनायासेन सौहार्दम् तेन च समाजस्यराष्ट्रस्य सर्वदा कल्याणंभविष्यतीति विषयेनास्ति विप्रतिपत्तिलेशो वेदान्तविपश्चितामिति मे द्रढीयान् विश्वास ।

ψ

श्रीसीतारामाभ्यां नमः

卐 आनन्दभाष्यकारश्रीरामानन्दाचार्याय नमः । 卐

श्रीअनुभवानन्दद्वारपीठसंस्थापकजगद्गुरुश्रीअनुभवानन्दाचार्यप्रणीतः

卐 श्रौतार्थसंग्रहः 卐

वन्दे सीतापतिं सीतां मारुतिं च महामतिम् ।
आनन्दभाष्यकृद्रामानन्दाचार्यं यतीश्वरम् ॥१॥
नत्वाऽहं स्वगुरुं भावानन्दाचार्यं जगद्गुरुम् ।
श्रौततत्त्वावबोधाय कुर्वे श्रौतार्थसंग्रहम् ॥२॥

"सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति" "इति रामपदेनासौ परब्रह्माभिधीयते" इत्यादिश्रुतिप्रामाण्यात् परब्रह्मपदाभिधेयः सर्वेश्वरः श्रीराम एव मुख्यं श्रौतं तत्त्वम् । मोक्षावाप्त्यर्थं तज्ज्ञानमेव मुमुक्षुभिः सम्पादनीयं "तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय" इत्यादिश्रुतिप्रामाण्यात् । स च भगवाञ्छ्रीरामः सर्वदा चिदचिद्विशिष्ट एवावतिष्ठते । तथा चाहुराचार्यसार्वभौमाः श्रीराघवानन्दाचार्याः श्रीराघवेन्द्रमङ्गलमालायाम्—

'चिदचिद्भ्यां विशिष्टाय शिष्टपक्षसुरक्षिणे ।
सच्चिदानन्दरूपाय राघवेन्द्राय मङ्गलम् ।

वेदान्तरहस्यमार्त्तण्डभाष्येप्युक्तम्—"बोधायनवृत्तिकारभगवत्पुरुषोत्तमाचार्यबोधायनप्रशिष्यैराचार्य—चक्रचूडामणिभिः श्रीसदानन्दाचार्यैरप्युक्तं वेदान्तसारस्तवे—

"चिताऽचिता विशिष्टाय सूक्ष्मयाऽसूक्ष्मयाथ च ।
कारणकार्यरूपाय श्रीरामाय नमो नमः ॥"इति॥"

चिदचितोः श्रीरामस्य विशेषणत्वं तु "य आत्मनि तिष्ठन्नात्मनाऽन्तरो यमात्मा न वेद यस्यात्मा शरीरं य आत्मानमन्तरो यमयति स त आत्माऽन्तर्याम्यमृतः" "यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्या अन्तरो यं पृथिवी न वेद यस्य पृथिवी शरीरं यः पृथिवीमन्तरो यमयति स त आत्माऽन्तर्याम्यमृतः" इत्यादिश्रुतिनिचयप्रतिपादिततच्छरीरत्वादेव । निगदितं चैतदुपेयोपायदर्पणे जगद्गुरुभिः श्रीश्रुतानन्दाचार्यैः—ईशस्य देहरूपत्वात् प्रकारौ कथितावुभौ । उभाभ्यां च विशिष्टो हि सर्वेशो रघुनायकः ॥" इति । सिद्धान्तविजयिभिः श्रीश्रियानन्दाचार्यैरप्युदितं—प्रमिताक्षरासारे—तनुत्वेन श्रुतो जीवो ब्रह्मणो हि विशेषणम्" (प्र सा २।३।२२) "तनुत्वात् तत् प्रकारत्वेनाचितो ब्रह्मणोऽशता" (प्र ३।२।९) इति । भगवद्रामानन्दाचार्य आचार्यसार्वभौमोऽप्याह—"चिदचिद्वस्तुशरीरतया तत्प्रकारं ब्रह्मैव सर्वदा सर्वशब्दाभिधेयम् ।" (आनन्दभाष्य २।१।१४)

शरीर तु चेतन प्रत्याधेय विधेय शेषभूत चापृथक्सिद्धं द्रव्यम् । तथा हि—भाष्यम्—"प्राण-शरीर"—सर्वेषा प्राणाना धारक "यस्य प्राण शरीरम्" इति श्रुत्या प्राणस्य शरीरत्वनिर्देशा-दाधेयत्वविधेयत्वाङ्गत्वादयस्तस्मिन् फलन्ति । लोकेऽपि शरीरपदेनाधेयत्वादय एव गृह्यन्त इति तान्येव शरीरपदबोध्यानीति ।" आनन्दभाष्यम् १।२।२) इति ।

एतेन चिदचिदीश्वरश्चेति त्रय एव श्रौता पदार्था इत्युक्त भवति । तथा हि श्रुति क्षर प्रधानममृताक्षरहर क्षरात्मानावीशतेदेवएक" इति । उक्त च सदाचार्यसुरेन्द्रै श्रीराघवानन्दा-चार्यै श्रौततत्त्वसमुच्चये—'भोक्ताभोग्यप्रेरितार च मत्त्वे" त्यादिश्रुतिप्रामाण्याच्चिदचिदीश्वरश्चेति त्रीण्येवश्रौतानितत्त्वानीति ।" इति ।

१—अथ चिद्रूपार्थनिरूपणम्—तत्र चित्पदवाच्योजीव । स चाणुचेतनोविशेषणा-नुक्तावीश्वरेविशेष्यानुक्तौप्रकृतिकार्येऽतिव्याप्तिरतउभयोपादानम् । चेतनोनाम ज्ञानाश्रयो जानामीति-प्रतीते 'बोद्धा कर्त्ते' तिश्रुतेश्च । "एष द्रष्टा स्प्रष्टा श्रोता घ्रातारसयितामन्ताबोद्धाकर्त्ता विज्ञानात्मा पुरुष" (प्रश्न० ५।९) इतिश्रुतिप्रण्याज्ज्ञानाश्रयोऽपि जीव । सिद्धान्तेज्ञानरूपतयाऽङ्गीकृतोऽत एव स ईश्वरवत् प्रत्यक्पदवाच्य । य स्वस्मैस्वयमेवप्रकाशते स प्रत्यक् । एवकारेण नित्यविभूति-धर्मभूतज्ञानयोर्व्यावृत्ति । जीवस्यस्वरूपभूतज्ञानधर्मिभूतज्ञानत्वेनतदाश्रिततद्गुणभूतं च ज्ञान धर्म-भूतज्ञानत्वेनाभिधीयते "सुखमहमस्वाप्समि" तिप्रतीत्या जीव स्वयम्प्रकाशोज्ञानत्वाद् धर्मभूत-ज्ञानवदित्यनुमानाच्च जीवे स्वप्रकाशत्वसिद्धि ।

जीवात्मनो नित्यत्वम्—स च जीवो नित्य "न जायते म्रियते वा विपश्चित्" "नित्यो नित्यानाचेतनश्चेतनानामि" त्यादिश्रुते । जीवस्य जन्ममरणावस्थाऽवाप्तिशङ्का तु देह-सयोगवियोगावादाय समाधेया । जीवस्यानित्यत्वे तु कृतविप्रणाशाकृताभ्युपगमौदोषौभवेतामिति नित्यत्वमेवाभ्युपगन्तव्यं तस्य ।

"सदेवसोम्येदमग्रआसीदेकमेवाद्वितीयमि" ति श्रुतिविरोधस्तु न शङ्कनीय, सिद्धान्ते सृष्टे. प्राङ् नामरूपविभागानर्हचिदचिद्विशिष्टस्यैकस्यब्रह्मण स्वीकारात् । अत उक्तमेतच्छ्रुतेरान-न्दभाष्येभगवद्भि श्रीरामानन्दाचार्यै "--यद्यप्यय सच्छब्दोविशेष्यलक्षणपरमात्मबोधकस्तथापिकारण-विषयत्वसामर्थ्यात् कारणताप्रयोजकगुणविशिष्टप्रकृतिपुरुषकालशरीरकपरमात्मानमेवसमुपस्थापयति ।" (छान्दोग्यानन्दभाष्यम् ६।२।१ इति । "इद प्रत्यक्षादिप्रमाणेनपरिदृश्यमानजगद् विभक्तनाम-रूपबहुत्वाबस्थसृष्टे पूर्व निमितान्तररहितमविभक्तनामरूपतया एकं सच्छन्दशब्दितब्रह्मलक्षण-मेवाभवदिति ।" (छान्दोग्यानन्दभाष्यम् ६।२।१) इति च ।

जीवात्मनोऽणुत्वम्—"एषोऽणुरात्माचेतसावेदितव्य" "बालाग्रशतभागस्यशतधाकल्पि-तस्य च । भागोजीव स विज्ञेय स चानन्त्यायकल्पते ।।" "आराग्रमात्रोह्यवरोऽपि दृष्ट ।" इत्यादिश्रुतिप्रामाण्यादणुपरिमाणोऽयजीवात्मा ।

स्थूलदेहमपहायसूक्ष्मदेहोपादानकालेसकलस्यावकाशाभावात् स्वरूपशैथिल्यप्रसङ्गाद्धेय एव सर्वथा-जीवमध्यमपरिमाणवाद । ननुसङ्कोचविकाशावङ्गीकृत्य स्थूलसूक्ष्मजीवानांक्रमात्सूक्ष्मस्थूलदेहप्रवेशस्यो-पपन्नत्वेनसमीचीन एव जीवमध्यमपरिणामवाद इति चेन्न,तथात्वेजीवानासावयवत्वेनानित्यत्वापत्ते ।

ननु शरीरव्यापिसुखदुखाद्युपलब्धयेसुदूरदेशेऽपिजीवादृष्टप्रयुक्तजीवभोग्य पदार्थोत्पत्तये जीव-विभुत्वमेवाङ्गीकर्त्तव्यमिति चेन्न, तथात्वे जीवोत्क्रान्त्यादिप्रतिपादकश्रुतिव्याकोपप्रसङ्गात् । तथा चाहुर्ब्रह्मसूत्रकारा भगवन्तोबादरायणा —'उत्क्रान्तिगत्यागतीनाम् '(ब्र० सू० २।३।२१) व्याख्यातञ्चैतत पारमार्षं सूत्रञ्चैवमेवानन्दभाष्यकारै र्भगवद्भि श्रीरामानन्दाचार्यै श्रीसम्प्रदाय प्रधानाचार्ये स्वभाष्ये। तदा हि—"आत्मन सर्वगतत्व निराकरोति उत्क्रान्तीत्यादिना । ताभ्य इत्यनुवर्त्तते । नायमात्मासर्वगत किन्त्वणुरेव । उत्क्रान्तिगत्यागतीनाम् । आत्मोत्क्रान्तितद्-गतितयागतिश्रुतिभ्य इत्यर्थ । "तेनप्रद्योतेनैषआत्मानिष्क्रामति" (बृ ६।४।२) "ये वै के चास्माल्लोकात् प्रयन्ती चन्द्रमसमेव ते सर्वे गच्छन्ति" (कौषीतकी १।२) तस्माल्लोकात् पुनरेत्यस्मैलोकायकर्मणे" (बृ ६।४।२) इत्यादिगत्यागत्युत्क्रान्तिश्रुतिभ्य आत्मन सर्वगतत्वनोपपद्य-तेकिन्त्वणुत्वमेव । सर्वगतस्यविभोर्गतिश्चागतिश्चनोपपद्यते । तस्मादात्मनोऽणुत्वमेव ।" (आन-न्दभाष्यम् २।३।।२१) इति ।

घटोपाधिकाकाशवच्छत्यननुमतस्यान्त करणोपाधिकचैतन्यात्मकजीवस्यगत्यादिर्स्वीकारे तु "अथै-षसम्प्रसादोऽस्माच्छरीरात् समुत्थायपरञ्योतिरुपसम्पद्यस्वेनरूपेणाभिनिष्पद्यते" इत्यादिश्रुतिविरो-धोऽनिवार्य एव । तस्मादणुपरिमाण एव जीव ।

गृहकोणस्थितस्यापि दीपस्य स्वप्रभया गृहस्य सर्वप्रदेशे व्याप्तिरिवाणुपरिमाण-कस्यापि जीवस्य स्वधर्मभूतज्ञानद्वारा देहस्य सर्वप्रदेशे व्याप्तिरस्त्यतो न काचिदनु पपत्ति शरीरव्यापिसुखाद्युपलब्धौ । एव जीवादृष्टमपि सर्वव्यापीश्वरेच्छाऽनर्थान्तरमेव । अत एवोक्तमाचार्यसार्वभौमै श्रीद्वारानन्दाचार्यै —'दैवाभिधास्ति जीवाना पूर्वकर्मफलप्रदा । यस्येच्छा सदसद्रूपा रामचन्द्र नमामि तम् ।।' (श्रीरामचन्द्रदशकम्) इति । अतो दूरदेशेऽपि अदृष्ट-प्रयुक्ततत्तज्जीवभोग्यपदार्थोत्पत्तिरप्यनुपपत्तिशून्यैवेति ध्येयम् ।

कर्तृत्वम्—"एष द्रष्टा स्प्रष्टा श्रोता घ्राता रसयिता मन्ता बोद्धा कर्त्ता विज्ञानात्मा पुरुष" (प्रश्नोपनिषद् ५।६) इति श्रुत्या बोद्धेत्येवरूपेण ज्ञानाश्रयत्ववत् कर्त्तेत्येवरूपेण कर्तृत्वाश्रय-त्वमपि प्रतिपादित जीवात्मनोऽनस्तस्याकर्तृत्वापादन श्रुतिविरुद्धमेव । अत एवोक्त जगद्गुरुभि. श्रीचिदानन्दाचार्यैश्चिदात्मप्रबोधे—'अकर्त्ता विभुनोथवा मध्य मानो न वा ज्ञानशून्यो जडो दुखरूप । अणुर्ब्रह्मणोऽश शरीर च शेष पर रामचन्द्रस्य दासश्चिदात्मा ।' ।इति ।

सूत्रित च ब्रह्मसूत्रकारै र्भगवद्भिर्बादरायणै –'कर्त्ता शास्त्रार्थवत्त्वात्') ब्र सू २।३।३४) इति । व्याख्यात चैतत् प्रमिताक्षरावृत्त्याख्ये श्रीबोधायनवृत्तिसारे जगद्गुरुभि श्रीदेवानन्दा-

चार्यैं । तथा हि—"आत्मा कर्त्ता" । न तु प्रकृति । 'ज्योतिष्टोमेन स्वर्गकामोयजेत' इत्यादिशास्त्राणामप्रवृत्तस्य पुरुषस्य प्रवर्त्तकबोधोत्पादनद्वारा प्रवृत्त्युत्पादनेनार्थवत्वात अन्त करणस्य प्रवर्त्यत्वस्वीकारे तु तस्याचेतनत्वेन प्रवर्त्तकबोधोत्पादनासम्भवाच्छास्त्रवैफल्यमनिवार्यमेव ।" (बोधायवृत्तिसार) इति ।

जीवकर्तृत्व च न जीवायत्तं किन्तु परमात्माऽऽयत्तमेव । ऊचुश्च 'परात्तु तच्छ्रुते' रित्येतत्सूत्रभाष्य आनन्दभाष्यकारा आचार्यसार्वभौमा भगवन्त श्रीरामानन्दाचार्या—तु शब्द पूर्वपक्षव्यावृत्यर्थ । तज्जीवस्यकर्तृत्व पराज्जीवान्तर्यामिण परमात्मन एव भवति । कुत ? तच्छ्रुते । 'अन्त प्रविष्ट शास्ता जनाना सर्वात्मा" (तै० आ ३।११।१०) 'य आत्मानमन्तरो यमयति" (बृ ३।७।२२) "एष ह्येवैन साधुकर्म कारयति त यमन्वानुनेषत्येष एवैनमसाधु कर्म कारयति त यमेभ्यो लोकेभ्यो नुनुत्सते" (कोषी० ३।९) इति तस्य जीवकर्तृत्वस्य परमायत्तत्वश्रुते । तस्माज्जीवकर्तृत्व परमपुरुषायत्तमेव । (आनन्दभाष्यम् २।३।४१) इति ।

कर्तृत्वप्रतिपादनाय भोक्तृत्वमपि प्रतिपादित भवति जीवानाम् ।

देहादिभ्यो वैलक्षण्यम्—जीवश्च न देहेन्द्रियप्राणबुद्धिस्वरूप 'मम देह' 'मम चक्षुरादीनीन्द्रियाणि' 'मम प्राणा' 'ममबुद्धि' श्चेत्यादिप्रतीते । ऊचुश्च श्रौततत्त्वसमुच्चये भगवन्त श्रीराघवानन्दाचार्या—"स च 'यस्यात्माशरीरमि' तिश्रुतिप्रामाण्यादीश्वरशरीररूपोऽपि न पाञ्चभौतिकस्वशरीररूपोऽहमित्युपलभ्यमानत्वात्, "मम पाञ्चभौतिक शरीरम्' इति शरीरात् पृथक्त्वेनोपलभ्यमानत्वात् " न जायते म्रियते वा विपश्चित्" 'नित्यो नित्याना चेतनश्चेतनानाम्"इत्यादिश्रुतिभिर्नित्यत्वेन प्रतिपादितत्वाच्च । इन्द्रियप्राणबुद्धिवैलक्षण्यमप्यनयैव रीत्या बोध्यम् । अत एवोक्तजगद्गुरुश्रीश्रुतानन्दाचार्यै—

"सुखाश्रयाणुचिजज्ञातृरूपोऽस्ति जीव परब्रह्मणोशस्तनुर्नित्यशेष ।
न देहेन्द्रियप्राणबुद्धिस्वरूपो विकारी जडो ब्रह्मरूपोऽपि नैव" ॥इति॥

उक्तश्च बोधायनमतादर्शाख्यायां सहस्रश्लोक्यां जगद्गुरुश्रीश्रुतानन्दाचार्यप्रशिष्यैर्जगद्गुरुश्रीपूर्णानन्दाचार्यैः सिद्धान्तसार्वभौमैः—

"स्थूलश्चाहं हि गच्छामि" प्रत्ययाच्चेतनस्तनुः ।
मृते देहे तु चैतन्यं प्राणनिर्गमनान्न हि ॥ ८७७ ॥
इति चेन्न वरं चैतद्, विकल्पासहता यतः ।
देहस्यावयवे तच्चैकस्मिन् सर्वेषु वाऽस्ति हि ॥८७९॥
नाद्यः प्रतीयते यस्माच्चैतन्यमितरत्र च ।
बहुचेतनवत्त्वं स्यादन्त्ये चैकतनावथ ॥८७९॥

उच्छेदो व्यवहारस्य वैमत्ये तु मिथो भवेत् ।
हस्ताद्यन्यतमोच्छेदे स्मृतेश्चानुपपन्नता ॥८८०॥
संघातरूपवत्वान्न त्वात्मा तनुर्यथा घट ।
देहस्यानात्मता सिद्धा चेत्येवमनुमानतः ॥८८१॥
"मम देहः" प्रतीतेश्च नात्मता मन्यते तनोः ।
अनित्यत्वाज्जडत्वाच्च शरीरस्यात्मता न हि ॥८८२॥
इन्द्रियस्य न चात्मत्वं "ममेन्द्रियं" प्रतीतितः ।
जीवत्वं न च नेत्रादेस्तच्छून्ये जीव्यते यतः ॥८८३॥
"मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः ।"
भोगोपकरणं चैव तस्मादात्मा मनो न हि॥८८४॥
"मम प्राणः" प्रतितेश्च प्राणस्य चात्मता न हि ।
"प्राणोऽस्मी" तिश्रुतौ चोक्तः प्राणदेही परेश्वरः॥८८५॥
"अहं जानामि" चेत्यत्राहमर्थस्यात्मता खलु ।
तस्य धर्मतया ज्ञान ज्ञाते सा न कथञ्चन ॥८८६॥ इति ।

जीवाश्च "ममैवाशो जीवलोके जीवभूत सनातन" इति भगवद्वचनप्रामाण्याद् विशिष्टस्य विशेषणवद् ब्रह्मणोशभूता ।

जीवानां मिथो भेदः—अनन्ता परस्परभिन्नाश्च जीवा । अन्यथा 'नित्यो नित्यानाम्' 'न त्वेवाह जातु नास न त्व नेमे जनाधिपा । न चेव न भविष्याम सर्वे वयमत परम् ।' इत्यादिश्रुतिस्मृतिव्याकोप प्रसज्येत । जीवानामैक्य एक सुख्यपरो दु खी केचिद् बद्धा केचिच्च मुक्ता इत्यादिव्यवस्था च न स्याद् अत एवोक्तमानन्दभाष्यकारै भगवद्भि श्रीरामानन्दाचार्ययति सार्वभौमैर्गीताभाष्ये—

"किञ्चात्मनां भेदभावे गुरुशिष्यव्यवस्थाभङ्गोऽपि स्यात् । एव शिष्यतया कञ्चन शिक्षणीयमुपलभ्यानुपलभ्यतया वोपदिशत्याचार्य ? आद्ये स्वस्माद् भिन्नमभिन्न वा ? प्रथमे सत्यमसत्य वा ? नाद्योऽपसिद्धान्तात् । अन्त्ये तु तस्य मिथ्यात्वेनोपलम्भे तस्मा उपदेशासम्भव । सत्यत्वेनोपलम्भे तु भ्रान्तत्वेनाचार्यत्वहानिराचार्यस्य । अभिन्नत्वपक्षे कथमुपदेश । अनुपलभ्येति पक्षेतु कस्मा उपदिशति ?

एवमात्मभेदानभ्युपगमे बद्धमुक्तव्यवस्थाभङ्गश्च भवेत् ।" (गीताया आनन्दभाष्यम् २।१२) इति।

श्रौत प्रमेयचन्द्रिकायां श्री श्रियानन्दाचार्यैरप्युक्तम्

एककालेसुखी चैको दुःखी चान्योऽवलोक्यते ।
विज्ञैः परस्परं भेदश्चात्मनां मन्यते ततः ॥२१॥
सुखीदुःखीतिभेदो नन्वन्तःकरणभेदतः ।
मैवं कुतो यतश्चैवं सौभर्यादौ कथं न हि ॥२२॥
मुक्तामुक्तत्वभावश्च बोध्यबोकता तथा ।
मृतामृतव्यवस्था च ह्यात्मैक्ये सम्भवेन्न हि ॥२३॥
नन्वात्मनामभेदोऽस्ति 'भोक्ता भोग्यमि' तिश्रुतेः ।
मैवं यतः प्रकारैक्याज्जीवानां च तथा श्रुतिः ॥२४॥

आहुश्च नवरत्नीकारा श्रीश्यामानन्दाचार्या –अहं देहेन्द्रियादिभ्य प्राणेभ्यो ज्ञानतोऽपि च । अन्यात्मभ्यश्च रामद्वि भिन्नोरामतनु स्तथा ।" इति ।

अतश्चैकजीववाद श्रुतिविरूद्धो युक्तिविरुद्धश्चास्तीति बोध्यम् ।

बद्धजीवाः—जीवस्त्रिविधा बद्धमुक्तनित्यभेदात् । उक्तञ्चेत्थमेव भाष्ये—

एतेन जीवाना बद्धमुक्तानित्यभेदेन त्रैविध्यमपि दर्शित भवतीत्यन्यत्र विस्तर । (श्रीरामानन्दभाष्यम् १।१।१४) इति । तत्रानादिकालीनस्वनियामकपुण्यपापात्मककर्मानुगुणजनिनिधनत्वादिधर्ममापन्नाआब्रह्मकीटादयो जीवा बद्धा । भगवान् श्रीरामोऽपि जीवस्य प्राक्तन कर्मानुसृत्यैव फलप्रदोऽतो न तत्र स्वातन्त्र्यप्रयुक्तवैषम्यनैर्घृण्यदोषोऽत एवोक्तमाचार्यशिरोमणिश्रीश्रुतानन्दाचार्यैं –

"विकारञ्च रामो दयाब्धिस्तथात्वे दयाशून्यतां पक्षपातञ्ज नैति ।
प्रकारे विकारस्तथा चित्रसृष्टौ च हेतुर्यतः प्राणिनां प्राच्यकर्म ॥" इति ।

(श्रौतासद्धान्तविन्दु)

मुक्तजीवाः—अनन्तजन्मोपार्जितपुण्योदयेन सत्त्वोद्रेकात् सद्गुरुमुपसद्य ततोऽनन्तब्रह्माण्डनायकनिखिलदोषप्रत्यनीकानन्तकल्याणगुणसागर पर ब्रह्म भगवन्त श्रीराममवबुध्य तद्भक्तिप्रपत्तिभ्या बन्धकारणभूतानि कर्माणि विनाश्य कर्मोपार्जितदेह परित्यज्य दिव्ये श्रीसाकेतधामनि भगवत्सायुज्यमवाप्ता जीवा मुक्ता ।

भक्तिः–भक्तिश्च ध्रुवा स्मृति । उक्तञ्च महर्षिश्रीपुरुषोत्तमाचार्यबोधायनोक्तसाधनसप्तकस्य पद्यात्मिकाया साधनदीपिकाख्याया व्याख्यायां श्रीबोधायनचरणचञ्चरीकैराचार्यसुरेन्द्रै श्रीगङ्गाधराचार्यैं ।

रामस्य ब्रह्मणोऽनन्यभक्त्यैव मुक्तिराप्यते ।
भक्तिर्ध्रुवास्मृतिः सा च विवेकादिकसप्तकात् ॥इति॥

भक्तिमधिकृत्याभिहितं चापरबोधायनाचार्यजगद्गुरुश्रीदेवानन्दाचार्यवेदान्तविद्यानिधिभिः प्रामिताक्षकारैर्योगपञ्चके–

"श्रीरामस्यानवच्छिन्नं स्मरणं प्रीतिपूर्वकम् ।
श्रीमद्वैष्णवाचार्यैर्भक्तियोगतया मतम् ॥२३॥
अङ्गष्टाङ्गयोगोऽङ्गी भक्तियोगः प्रकीर्तितः ।
लभ्यते भगवान रामो भक्तियोगेन नान्यथा ॥३३॥
भक्तिर्बोधायनप्रोक्तैर्विवेकादिकसाधनैः ।
ध्यानध्रुवस्मृतीत्यादिशब्दवाच्या प्रजायते ॥३४॥
संसारिता मताऽभक्त्या भक्त्या मुक्तिरुदीरिता ।
आमृत्युसमयं भक्तेरावृत्तिश्च मता श्रुतौ ॥३५॥
प्रारब्धान्ते मता भक्तिर्मुक्तिदा चार्चिरादिना ।
अङ्गिनी च मता भक्तिरङ्गे च ज्ञानकर्मणी ॥३६॥
"श्रवणं कीर्त्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्" ॥३७।
एवं महापुराणे श्रीभागवते हि मुक्तिदाः ।
भक्तेश्च नवधा भेदाः प्रह्लादेन प्रकीर्त्तिताः ॥३८॥
एभिराराधितो रामो भक्ते परं प्रसीदति ।
योगक्षेमं वहंल्लोके चान्ते मुक्तिं प्रयच्छति ॥ ३९ ॥
घृतं जलात् तथा तैलं सिकतातश्च निःसरेत् ।
तथाऽपि भगवद्भक्तिं विना मुक्तेर्न सम्भवः ॥४०॥
पूर्वाघनाशिनी चाथ पराघश्लेषवर्जिनी ।
भक्तिरेव ततः सैव पुंसां संसारनाशिनी" ॥४१॥

आनन्दभाष्यकारै राचार्यसार्वभौमैर्भगवद्भि श्रीरामानन्दाचार्यैरप्यभिहितमेवमेव श्रीवैष्णवमताब्जभास्करे--

"सा तैलधारासमनित्यसंस्मृतेः सन्तानरुपेशि परानुरक्तिः ।
भक्तिर्विवेकादिकसप्तजन्या तथा यमाद्यष्टसुबोधकाङ्गाः॥ इति ।

श्रीरामानन्दभाष्येऽपि "सा च भक्ति परमप्रेयो भगवदितरवैतृष्ण्यपूर्वकपरमपुरुषानुरागरूपो ज्ञानविशेष एव" (आ. भा १।१।१) इति ।

प्रपत्ति "सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज । अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः" (गी १८।६६) इत्येतस्य श्लोकस्यानन्दभाष्ये भगवद्भिः श्रीरामानन्दाचार्यैः प्रपत्तेः स्वरूपमपि निरूपितम् । तथाहि सर्वज्ञस्य सर्वशक्तेर्वात्सल्य जलधेः स्वभाव एवैष यत् स प्रार्थित एव सर्थं करोतीत्युपायत्वप्रार्थनाऽवश्यं कर्त्तव्येत्यपि ध्येयम् । सेयमुपायत्वप्रार्थनैव प्रपत्तिः ।

प्रार्थनांशेन शरणागतिपदवाच्य आत्मनिक्षेपांशेन न्यासपदवाच्यश्च प्रपत्तियोग एव । आनुकूल्यस्य सङ्कल्पः प्रातिकूल्यस्य वर्जनं रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्ववरणं कार्पण्यश्चेतीमानि प्रपत्तियोगस्य पञ्चाङ्गानि तथा हि शास्त्रं " आनुकूल्यस्य सङ्कल्पः प्रातिकूल्यस्य वर्जनम् । रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्ववरणं तथा । आत्मनिक्षेपकार्पण्ये षड्विधा शरणागतिः ।" (अहिर्बुध्न्यसंहिता ३७।२८) इति । पञ्चापीमानि प्रपत्त्यङ्गानि बोधायनवृत्तिकृता भगवता श्रीपुरुषोत्तमाचार्यबोधायनेन श्रीपुरुषोत्तमप्रपत्तिषट्के विहितानि । तथा हि—

"राम दीनोऽनुकूलोऽहं विश्वस्तोऽप्रातिकूल्यवान् ।
त्वयि न्यस्यामि चात्मानं पाहि मां पुरुषोत्तम ! ॥" गीतायाआनन्दभाष्यम् १८।६६।

प्रपत्तिं समधिकृत्य व्याहृतं चापरबोधायनाचार्यैर्जगद्गुरुभिः श्रीदेवानन्दाचार्यैर्वेदान्तविद्यानिधिभिः प्रमिताक्षराकारैर्योगपञ्चके—

"श्रीरामाय ससीताय स्वात्मस्वीयानुबन्धिनाम् ।
रक्षाभरार्पणं पुंसो न्यासयोगः प्रकीर्त्तितः ॥४२॥
आनुकूल्यस्य सङ्कल्पः प्रातिकूल्यस्य वर्जनम् ।
विश्वासोऽकिञ्चनात्वं च गोप्तृत्ववरणं तथा ॥४३॥
आचार्यैरुक्तमेतद्धि न्यासयोगाङ्गपञ्चकम् ।
अङ्गपुष्टौ प्रजातायामङ्गिपुष्टिर्मता ध्रुवा ॥४४॥
श्रीमद्रामानुकूलोऽहं भविष्याम्यद्यतः खलु ।
इत्त्रानुकूल्यसङ्कल्पो न्यासयोगाङ्गमादिमम् ॥४५॥
श्रीरामप्रतिकूलोऽहं भविष्याम्यद्यतो न हि ।
ऐतन्न्यासद्वितीयाङ्गं प्रातिकूल्यस्य वर्जनम् ॥४६॥
अवश्यं जानकीनाथो मम रक्षां विधास्यति ।
विश्वासनामकं चैतन्न्यासाङ्गं हि तृतीयकम् ॥४७॥

त्वामेव हि प्रपन्नं त्वं रक्ष राम शरण्य माम् ।
एतन्न्यासचतुर्थाङ्ग गोप्तृत्ववरणं मतम् ॥४८॥
प्रपन्नं साधनैर्हीनं मां पाहि रघुनन्दन ।
न्यासस्य पञ्चमं चाङ्गमाकिञ्चन्यमिति स्मृतम् ॥४९॥
मानसादिविभेदन न्यासोऽयं त्रिविधो मतः ।
न्यासस्यैवापरे नाम्नो प्रपत्तिशरणागती ॥५०॥
प्रतिज्ञातं च रामेण प्रपत्त्या सर्वतोऽभयम् ।
राम एव प्रपद्यो यद रामो द्विर्नाभिभाषते ॥५१॥
अयं प्रपत्तियोगो हि प्रारब्धस्यापि नाशकः
अस्य प्रपत्तियोगस्याधिकारः सर्वदेहिनाम् ॥५२॥ इति ।

मुक्तावस्थायां "निरञ्जन परम साम्यमुपैति" इति श्रुतिप्रतिपादितपरमसाम्यापन्नोऽपि मुक्तजीव सर्वेश्वरो न भवति साम्यस्व भेदघटितत्वादत एव सूत्रित ब्रह्ममीमासाया भगवता बादरायणे—"जगद्व्यापारवर्ज्जं प्रकरणादसन्निहितत्वाच्च" (ब्र सू ४।४।१७) इति । अभिहित-ञ्चैतस्य सूत्रस्यानन्दभाष्य आचार्यसार्वभौमैर्भगवद्भि श्रीरामानन्दाचार्यै — "पूर्वं सकल्पमात्रेण मुक्तस्य सवकामावाप्तिरभिहिताऽनन्याधिपतित्वचोक्तम् । तया सतीदानी विचार्यते । किं मुक्तस्य सकल्पमात्रेण परमपुरुषस्येव सर्वेश्वरत्वमपि प्राप्यते आहोस्वित् सर्वकामप्राप्तिरूपमैश्वर्यमेवेति सशये सर्वजगतामीश्वरत्वमपि । कुत ? मुक्तत्वादनन्याधिपतित्वेनार्थात् सर्वाधिपतित्वोपपत्त्या परमेश्वरस्येव सर्वनियन्तृत्वोपपत्ते । "निरञ्जन परम साम्यमुपैति" इति परमपुरुषसाम्यापतिश्रवणाज्जगत्सृष्ट्यादिकर्तृत्वमपि मुक्तस्य सम्भवतीति प्राप्तेऽभिधीयते जगद्व्यापारवर्ज्जमिति । जगद्व्यापारो जगदुत्पत्त्यादिकर्तृत्व तच्चाशेषचेतनाचेतनस्वरुपपस्थितिप्रवृत्तिभेदनियमन तद्वर्ज्जमविद्यातिरोधानराहित्यपूर्वकपरब्रह्माऽनुभवरूपम् 'सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चिता" इति श्रुत्यभिहितसङ्कल्पमात्रेण सर्वकामावाप्तिरूप मुक्तस्यैश्वर्यमस्ति न तु जगदीश्वरत्वमपि तत्तु परमपुरूषस्यासाधारणम् । कुत ? प्रकरणात् । 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति प्रयन्त्यभिसविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्म ।" (तै ३।१) इति परमात्मानमेव प्रकृत्याम्नात न तु मुक्तात्मानम् । एव "तदैक्षत बहुस्यामप्रजायेयेति तत्तेजोऽसृजत" (छा० ६।२।३) इत्याद-प्रकरणान्तरेष्वपि ज्ञेयम् । असन्निहितत्वाच्चापि मुक्तस्य । न हि जगन्नियमनादिषु मुक्तस्य सान्निध्यमप्यस्ति येन तस्याप्ययं व्यापार स्यात् ।" (आनन्दभाष्य ४।४।१७) इति ।

तस्मान्मुक्तो जीवो ब्रह्मभिन्न एव न तु ब्रह्मस्वरूप इति बोध्यम् ।

नित्यमुक्तजीवाः"यत्र पुर्वे साध्या सन्ति देवा ,, इत्यादिश्रुतिप्रतिपादिता हनुमदादयो नित्यमुक्तास्तु भगवत्प्रतिकूलाचरणाभावात् कदाचिदपि ससॉर नाप्नुवन्ति । नित्यमुक्तानामवतारास्तु भगवदिच्छया स्वेच्छया वा भवन्ति । भगवन्नित्येच्छया सनातनत्वेन व्यवस्थापितास्तेषा-मधिकारविशेषा इति ध्येयम् ।

उक्त च जीवतत्त्वमधिकृत्याचार्यसार्वभौमैरानन्दभाष्यकारै भगवद्भि श्रीरामानन्दाचार्यैर्वेदान्तसारे

नित्योऽज्ञश्चेतनोऽजः सततपरवशः सूक्ष्मतोऽत्यन्तसूक्ष्मा भिन्नो बद्धादिभेदैः प्रतिकुणपमसौ नैकधा सूरिवर्यैः । श्रीशाक्रान्तालयस्थो निजकृतिफलभुक् तत्सहा-योऽभिमानी जीवः सम्प्रोच्यते श्रीहरिपदसुमते तत्त्वजिज्ञासुवेद्यः ॥ इति ।

इत्यनुभवानन्दद्वारपीठनामकश्रीरामानन्दपीठसंस्थापकैर्जगद्गुरूश्रीमदनुभवानन्दाचार्यैर्विरचिते श्रौतार्थसग्रहेजीवनिरूपणात्मक प्रथम परिच्छेद ॥ १ ॥

२—अथाचिदर्थनिरूपणम्

अथ क्रमप्राप्तमचित्तत्त्वमभिधीयते अचिन्नाम ज्ञानविरहित तत्त्वम् । तच्चावस्थान्तरापत्ति-रूपविकाराश्रयरूपमत एव द्रव्यम् । तद् द्विविध जडाजडभेदात् । तत्र परप्रकाश्य जडम् । तद्भिन्नमजडम् । अजड द्विविध पराक्प्रत्यगूभेदात् । तत्र स्वयप्रकाशमानत्वे सति परस्मा एव भासमानत्व पराक्त्वम् । परागपि द्विविध शुद्धसत्त्वज्ञानभेदात् ।

शुद्धसत्त्वम्—शुद्धसत्व नाम त्रिगुणभिन्न शुद्धसत्त्वगुणाधिकरणमचिद्द्रव्यम् । तन्नित्यमजडमधप्रदेशे परिच्छिन्नमूर्ध्वप्रदेशे चान्तरहितम् । "आदित्यवर्ण तमस. परस्तात्" (श्वेता० ३।८) 'तद्विष्णो परम पद सदा पश्यन्ति सूरय" (नृ० पु० ५।१०) इत्यादिश्रुतयस्तत्र प्रमाणभूता । तदीश्वरसकल्पान्नित्यमुक्तेश्वराणा भोग्य भोगोपकरणभोगस्थानरूप भवति । नित्यविभूतिनित्यधामपरमधामपरमव्योमाक्षरधामसाकेतादिशब्दा शुद्धसत्त्वपर्याया ।

ज्ञानम् अर्थप्रकाशो ज्ञानम् । तच्च प्रभावद् द्रव्यगुणात्मकजड विभुद्रव्यम् । तच्चेश्वरस्य नित्याना च सदैव विभु, मुक्ताना बद्धावस्थाया तिरोहित मुक्तौ विभु बद्धाना तु तिरोहितमेव ।

ज्ञान हि नित्य द्रव्यम् ',न विज्ञातेर्विपरिलोपो विद्यते" (बृ ४।३।३०) इतिश्रुते । 'ज्ञानमुत्पन्नम्' 'ज्ञान नष्टम्' इत्यादिव्यवहारस्तु ज्ञानसम्बन्धिसकोचविकासावस्थाहेतुक एवेति ध्येयम् । ज्ञान, मति , प्रज्ञा, सवित्, धिषणा, धो , मनीषा, शेमुषी, बुद्धिरित्यादया शब्दा ज्ञानपर्याय ।

परप्रकाश्यं जडमित्युक्त प्राक् । जड द्विविध प्रकृतिकालभेदात् । तथा चोक्त श्रौतसिद्धान्तविन्दुकारश्रीश्रुतानन्दाचार्यचरणै —

अचिन्नाम तत्त्व द्विधा ज्ञानशून्य जडच्चाजडं नैव मिथ्या कदाचित् ।
जड मिश्रसत्त्व तथा कालतत्त्व मनीषाऽ जड शुद्धरूप च सत्वम् ।।इति।।

अत्र मिश्रसत्त्वपदेनविद्यामायाद्यपर्याया प्रकृतिरुक्ता ।

प्रकृतिः—प्रकृतिर्नाम सत्त्वरजस्तमोरूपगुणात्रयाश्रयरूप द्रव्यम् । तत्र सत्त्व नाम ज्ञानस्तुखतदुभयसङ्गोत्पादको गुण । रजोनाम रागतृष्णाकर्मसङ्गोत्षादको गुण । तमोनाम विपरीतज्ञानानवधानालस्यनिद्रोत्पादको गुण । उक्त च श्रौततत्वसमुच्चयकारैराचार्यसार्वभौमैर्भगवद्भि श्रीराघवानन्दाचार्यैं—"तत्र सत्व निर्मलत्वात् प्रकाशकमनामयम् । सुखसङ्गेन बध्नाति ज्ञानसङ्गेन चानघ ।। रजोरगात्मक विद्धि तृष्णासङ्गसमुद्भवम् । तान्निबध्नाति कौन्तेय कर्मसङ्गेन देहिनम् ।। तमस्त्वज्ञानज विद्धि मोहन सर्वदेहिनाम् ।" (गीता) इति भगवद्वचनप्रामाण्यात् सत्व नाम ज्ञानस्य सुखस्य तदुभयसङ्गस्य च जनको गुण । रजोनाम रागतृष्णाकर्मणा सङ्गाना जनको गुण । तमोनाम विपरीतज्ञानानवधानालस्यनिद्राणा जनको गुण ।" (श्रौततत्त्वसमुच्चय) इति ।

प्रलये प्रकृतेस्त्रयोऽपि गुणा साम्यमापन्ना एव भवन्ति । 'तदैक्षत बहुस्याम्' इतीश्वरसङ्कल्पवशात् प्रकृतिर्गुणवैपम्यप्रयुक्ता कायोन्मुखावस्थामवाप्याव्यक्तपदवाच्या भवति ।

महत्तत्त्वम—अव्यक्तपदवाच्याया प्रकुतेर्य प्रथमो बिकार स महान् । स च त्रिविध । सात्विकराजसतामसभेदात् ।

अहङ्कारः महत प्रथमो विकारोऽहङ्कार । सोऽपि सात्विकादिभेदात् त्रिविध । एते सात्विकराजसतामसाख्या अहङ्कारा क्रमाद वैकारिकतैजसभूतशब्दैरप्यभिधीयन्ते ।

एकादशेन्द्रियाणि—राजसाहङ्कारसहकृतात् सात्विकाहङ्कारादेकादशेन्द्रियाणि जायन्ते । तानि द्विविधानि । ज्ञानेन्द्रियाणि कर्मेन्द्रियाणि च ।

ज्ञानप्रसरणे शक्तानीन्द्रियाणि । ज्ञानेन्द्रियाणि । तानि षड्विधानि । मन श्रोत्रा त्वक् चक्षू रसन घ्राणाञ्चेति ।

तत्र स्मृत्यादिकरणमिन्द्रिय मन हृदयदेशवृत्ति ।

शब्दमात्रग्रहणसमर्थमिन्द्रिय श्रोत्रम् । कर्णशष्कुलीवृत्ति । सर्पाणा तु नेत्रगोलकवृत्ति ।

स्पर्शमात्रग्रहणसमर्थमिन्द्रिय त्वक् । सर्वशरीरवृत्ति ।

रूपमात्रग्रहणसमर्थमिन्द्रिय चक्षु नेत्रवृत्ति ।

रसमात्रग्रहणसमर्थमिन्द्रिय रसनम् । जिह्वाप्रवृत्ति ।

गन्धमात्रग्रहणसमर्थमिन्द्रिय घ्राणम् । नासाग्रवृत्ति ।

उच्चारणाद्यन्यतमकर्मसमर्थानीन्द्रियाणि कर्मेन्यिाणि । तानि पञ्चविधानि वाक्पाणिपादपायुपस्थभेदात् ।

तत्रोच्चारणकरणमिन्द्रियं वाक् । हृदयादिस्थानाष्टकवृत्ति ।
शिल्पादिकरणमिन्द्रियं पाणिः अङ्गुल्यादिवृत्ति ।
सञ्चारकरणमिन्द्रियं पादः चरणादिवृत्ति ।
मलोत्सर्जनकरणमिन्द्रियं पायुः गुदादिवृत्ति ।
मैथुनकरणमिद्रियमुपस्थः । मेहनादिवृत्ति ।

तन्मात्रपञ्चकं भूतपञ्चकं च—राजसाहङ्कारसहकृतात् तामसाहङ्काराच्छब्दतन्मात्रमुत्पद्यते । तन्मात्रा नाम भूतोपादानं द्रव्यम् । तत् पञ्चविधं शब्दस्पर्शरूपरसगन्धभेदात् । विशिष्टशब्दादिगुणाश्रयो भूतम् । तदपि पञ्चविधमाकाशवायुतेजोऽप्पृथिवीभेदात् ।

तत्र तामसाहङ्काराव्यवहितोत्तरावस्थाविशिष्टं द्रव्यं शब्दतन्मात्रम् । तस्मादाकाशमुत्पद्यते । रूपरहितं विशिष्टशब्दाधिकरणं द्रव्यमाकाशम् । तच्च शब्दगुणकम् ।

आकाशाव्यवहितोत्तरावस्थाविशिष्टं द्रव्यं स्पर्शतन्मात्रम् । तस्माद् वायुरुत्पद्यते । रूपरहितं विशिष्टस्पर्शवद् द्रव्यं वायुः । स च शब्दस्पर्शगुणकः । वायोः स्पर्शोऽनुष्णाशीतोऽस्तीति बोध्यम् । देहधारको वायुविशेषः प्राणः । स पञ्चविधः । प्राणापानव्यानोदानसमानभेदात् । तत्र प्राणो हृदयवृत्तिरपानो गुदवृत्तिर्व्यानः सर्वशरीरवृत्तिरुदानः कण्ठवृत्तिः समानश्च नाभिवृत्तिरिति बोध्यम्

वाय्वव्यवहितोत्तरावस्थाविशिष्टं द्रव्यं रूपतन्मात्रम् । तस्मात्तेजः उत्पद्यते । उष्णस्पर्शवद्द्रव्यं तेजः । तच्च शब्दस्पर्शरूपगुणकम् । तेजसो रूपं भास्वरं शुक्लमिति बोध्यम् ।

तेजोऽव्यविहितोत्तरावस्थाविशिष्टं द्रव्यं रसतन्मात्रम् । तस्मादापः उत्पद्यन्ते । शीतस्पर्शवत्य आपः । शब्दस्पर्शरूपरसाः अपां गुणाः अपां रूपमभास्वरं शुक्लं रसश्च मधुर इति बोध्यम् ।

अबव्यवहितोत्तरावस्थाविशिष्टं द्रव्यं गन्धतन्मात्रम् । तस्मात् पृथिव्युत्पद्यते । विशिष्टगन्धवद् द्रव्यं पृथिवी । सा च शब्दादिगुणपञ्चकशालिनी । पृथिव्याः स्पर्शोऽनुष्णाशीतो रूपं शुक्लरक्तकृष्णपीतेति चतुर्विधं रसो मधुराम्ललवणकटुकषायतिक्तभेदात् षड्विधो गन्धो सुरभ्यसुरभीति द्विविधः । तत्र रूपमभास्वरशुक्लमिति बोध्यम् । पृथिव्याः रूपरसगन्धस्पर्शाः पाकनिमित्तकाः ।

पञ्चीकरणम्—सर्वेश्वरो भगवान् श्रीरामो भूतसृष्टिं विधायैकैकस्य भूतस्य समानभागद्वयं कृत्वैकं विहायापरस्य समभागं चतुष्टयं विधायैकैकं तदर्धातिरेक्तेषु भूताधेषु संयोजयति । एतदेव भूतानां पञ्चीकरणम् । अतएवाकाशादिषु सर्वेषु भूतेषु शब्दादीनां

सर्वेषा गुणानामुपलब्धि । इन्थ सर्वभूतेषु सर्वभूतानां विद्यमानत्वेऽपि पृथिव्यादिव्यपदेश स्वभागस्य भूयस्त्वादपरभागस्य चाल्पीयस्त्वादेवेति बोध्यम् । वेदे त्रिवृतकरणो पदेश पञ्चीकरणसप्तीकरणयोरप्युपलक्षणम् ।

कालः—भूतादिव्यहारजनको गुणत्रयशून्यो जडद्रव्यविशेप काल । अखण्डकालो नित्यो विभुपरिमाणश्च । निमेषादिरूपस्त्वनित्य ।

उक्त चाचित्तत्त्वमधिकृत्यापरबोधायनाचार्यजगद्गुरुश्रीदेवानन्दाचार्यवेदान्तविद्यानिधिभि प्रमिताक्षराकारयोगञ्चके—

१"चिदात्माभिहितो द्रव्य चतुधाऽचिदचेतनम् । जीवेशयोर्गुणो ज्ञानमर्थाभासोऽजड विभु ॥१९॥
सकोच्य कमणा नित्योऽन्तरङ्ग भक्तिसाधनम् । शुद्धसत्वगुणा नित्यविभूतिरजडा मता ॥२०॥
कालावश्य तथा विभ्वीभोग्यभोगम्लादिका । सत्वादिस्हित कालो विभुर्जडो हरेस्तनु ॥२१॥
कालभिन्ना जडा नित्या प्रकृतिस्त्रिगुणाश्रय । तद्विकारो महानाद्यस्तद्भेदा सात्विकादय ॥२२॥
सत्वादिगुणभेदेनाहङ्कारस्त्रिविधस्तत । इन्द्रियाणि दशैक च सात्विकाहङ्कृतेरथ ॥२३॥
तामसाहङ्कृतेश्चाथ राजससहकारत । जायते शब्दतन्मात्र स्पर्शहेतुस्ततो नभ ॥२४॥
स्पर्शाद् वायुस्ततो रूप रूपात् तेजस्ततो रस । रसादापस्तथा चाद्भ्यो गन्धो जाता क्षितिस्तत २५॥
तन्मात्र द्रव्यरूप चाद्रव्य शब्दादयो गुणा । शब्दादयो गुणा भिन्ना शब्दादिकतन्मात्रत ।२६।
पञ्चीकृत्य च भूतेभ्यो रामो जगत करोति हि । स एव रक्षित तद्वत् प्रलय विदधात्यपि ।२७॥
पञ्चीकरणत पूर्वा सृष्टि समष्टिरुच्यते । उत्तरा व्यष्टिसृष्टिस्तु क्रियते ब्रह्मदर्हिर्ना" ॥२८॥इति ।

उक्त च प्रकृतितत्त्वमधिकृत्याचार्यसार्वभौमैरानन्दभाष्यकारैर्भगवद्भि श्रीरामानन्दाचार्यैर्वेदान्तसारे—

"पृष्टानामेकनाद्यं त्रिकमपि शृणु तद्भेदतो नामभेदैर्नित्याऽज्ञाऽचेतना सा प्रकृतिरविकृतिर्विश्वयोनिः शुभैका । नाना वर्णात्मकाजा त्रिगुणसुनिलयाऽव्यक्तशब्दाभिधेया निर्व्यापारा परार्था महदहमितिसूरुच्यते तत्त्वविद्भिः ।" इति ।

इत्यनुभवानन्दद्वारपीठनामकश्रीरामानन्दपीठसस्थापकैर्जगद्गुरु—श्रीमदनुभवानन्दाचार्यैं विरचिते श्रीतार्थसग्रहेऽचिदर्थ निरूपणात्मको

द्वितीय परिच्छेद ॥२॥

३—अथेश्वरार्थनिरूपणम्

ईश्वरस्तु विभुचेतन । विशेषणानुपादाने जीवे बिशेष्यानुपादाने कालेऽतिप्रसङ्गवारणोयोभयोपादानम् तत्र चेतनत्व नाम ज्ञानाधिकरणत्वम् । विभुत्व तु स्वरूपतो ज्ञानत शरीरतश्च व्यापकत्वम् ।

स ईश्वर 'सात्वादयो न सन्तीशे यत्र तु प्राकृता गुणा' इति वचनप्रमाण्यद्धेयप्राकृत-गुणरहित, 'परास्य शक्तिर्विविधैव श्रुयते स्वाभाविकीज्ञानबलक्रिया च' इत्यादिश्रुतिप्रामाण्यान्निरुपाधिकानन्तकल्याणगुणविशिष्ट, 'आनन्द ब्रह्म' 'सत्य ज्ञानमनन्त ब्रह्म' इत्यादिश्रुते सच्चिदानन्दरूप, देशकालवस्तुपरिच्छेदशून्यात्मकानन्तत्वविशिष्टत्वादनन्त, ब्रह्मशब्वाच्य, 'सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्' 'यतो वा इमानि भूतानि जातानि , इत्यादिश्रुतेरस्य जगतोऽभिन्ननिमित्तोपादानकारणरूपो भक्तिमुक्तिप्रदाश्चास्ति ।

इश्वरस्य जगदुपादानत्वस्वीकारे निर्विकारत्वप्रतिपादकश्रुतिविरोधस्तु न शङ्कनीयस्तत्र सद्वारकोपादानताया एव स्वीकारात् । उक्तञ्च जगद्गुरुभि श्रीश्रुतानन्दाचार्यै —विकारञ्च रामो दयाब्धिस्तथात्वे दयाशून्यता पक्षापातञ्च नैति । प्रकारे विकारस्तथा चित्रसृष्टौ च हेतुर्यत प्राणिना प्राच्यकर्म ।'' इति ।

''रमन्ते यौगिनो यस्मिन् सत्यानन्दे चिदात्मनि । इति रामपदेनासौ पर ब्रह्माभिधीयते ।।'' (रामतापनीय) इतिश्रुतिप्रमाण्याद् ब्रह्मपदाभिधेय स चेश्वर श्रीराम एव ।

''ज्ञानशक्तिबलैश्वर्यवीर्यतेजास्यशेषत । भगवच्छब्दवाच्यानि बिना हेयगुणादिभि ।।'' ''तत्र पुज्यपदार्थोक्तिपरिभाषासमन्वित । शब्दोऽय नोपचारेण अन्यत्र ह्युपचारत ।।'' इत्यादिवचनप्रामाण्याद् भगशब्दवाच्यज्ञानशक्तिबलैश्वर्यवीर्यतेजोरुपषडविधैश्वर्यशालित्वात् स हि भगवच्छब्दवाच्यश्च । उक्त च बोधायनवृत्तिकारस्य श्रीपुरुषोत्तमाचार्यस्य शिष्यवर्यै श्रीगङ्गाधराचार्य -'ज्ञानशक्तिबलश्वर्यवीर्यतेजासि षड्गुणा । भगत्वेनेरिता सन्ति श्रीरामे भगवान् स तत् । श्रीरामे भगवच्छब्दो मुख्यवृत्त्या प्रवर्त्तते । गोण एव स चान्यत्र षड्विधैश्वर्यलेशत ।।'' (श्रीरामभगवत्त्वम्) इति ।

'नित्या नित्यानाम्' इत्यादिश्रुतिप्रामाण्यात् स चेश्वरो नित्य ''यदा पश्य पश्यते रुक्मवर्ण कर्त्तारमीश पुरुष ब्रह्मयोनिम्'' (मु० ३।१।३) इत्यादिश्रुतेर्दिव्यमङ्गलविग्रहश्चास्ति । अत एवोक्त भगवद्भिरानन्दभाष्यकारे श्रीरामानन्दाचार्यैराचार्यसार्वभौमै —''अतएव श्रुत्युपबृहणीभूतेतिहासपुराणादिषु बहुशस्तत्र तत्र भगवतो दिव्यामङ्गलविग्रहस्योपवर्णन सङ्गच्छते ।'' (आनन्दभाष्य १।१।२१) इति ।

स च सर्वेश्वरो भगबान् श्रीराम परव्यूहविभवान्तर्याम्यर्चावतारस्वरूपेण पञ्चधा स्थित । तथा चागम —

''मम प्रकाराः पञ्चेति प्राहुर्वेदान्तपारगाः ।
परो व्यूहश्च विभवो नियन्ता सर्वदेहिनाम् ।।
अर्चावतारश्च तथा दयालुः पुरुषाकृतिः ।
इत्येवं पञ्चधा प्राहुर्मा रहस्यविदो जना ।।''इति ।

(विष्वक्सेनसहिता)

समुदीरितञ्चैतदीश्वरतत्त्वमधिकृत्य प्रमेयोद्देशभास्करे सिद्धान्तवाचस्पतिजगद्गुरुश्रीचिदानन्दाचार्यैं -
"रामश्च ब्रह्मकर्त्ता हि विष्णुत्वमुपजिग्मिवान् । परव्यूहादिरूपेण सातानाथश्च पञ्चधा ॥७४॥
परश्च परलोके हि साकेते सोऽधिराजते । दिव्यदेहगुणा नित्यो दिव्यशस्त्रस्त्रभूषण ॥७५॥
अनन्तकरुणावत्त्या सीतया जगदम्बया । सिंहासने समासीनो दिव्ये दिव्यपुरे परे ॥७६॥
सर्वज्ञ सर्वशक्तिश्च भगवान् करुणाम्बुधि । नित्यमुक्तै स्तुतश्चाथ वेदेवेद्य परात्पर ॥७७॥
व्यूहता याति रामश्च सृष्टयाद्यर्थमुपासितुम् । चतुर्धा च मतो व्यूहो वासुदेवादिभेदत ॥७८॥
वासुदेर्वात् त्रिधा व्यूहा भवन्ति केशवादय । सङ्कर्षणाच्च गोविन्दादयस्त्रिधा भवन्ति हि ॥७९॥
प्रद्युम्नाच्च त्रिधा व्यूहा ऋषीकेषादयो मता । भवन्त्यथानिरुद्धाच्य त्रय श्रीवामनादय ।८०॥
राम सर्वावताराणामवतारी समीरित । परित्राणं च साधूनामवतारप्रयोजनम् ॥८१॥
सर्वेभ्यश्चाभय दत्ते राम सकृत् प्रपत्तित । स्वाश्रितस्यापराधाश्चराम स्मरति नैव हि ८२॥
साक्षाद गौणस्तथाऽऽवेश इत्येव विभावाश्रय । मुख्यमुख्यतरत्वादिभेदात् त्रिधा मत ॥८३॥
नृसिंहवामनभेदाद् द्विवा मुख्य प्रकीर्त्तित । मुख्यतरश्च श्रीकृष्णो रामो मुख्यतमस्तथा ।८४॥
मत्स्यकूर्मादिभेदैश्च मतो गौणस्त्वनेकधा । कलास्वरूपशक्तीनामावेशात् त्रिविधोऽन्तिम ॥८५॥
विभवाश्च कलावेशात् पृथुवन्वन्तरादय । शुद्धावेशस्तथाऽशुद्धावेशो द्विधा च मध्यम ।८६॥
शुद्धावेशाश्च विज्ञेया श्रीव्यासकपिलादय । मता परशुरामादावशुद्धावेशिता बुधै ॥८७॥
शक्त्यावेशो द्विधा शुद्धाशुद्धत्वभेदतो मत । आदिमोऽपि द्विधा मुख्यगौणभेदात् प्रकीर्त्तित ।८८॥
हंसादयो मता मुख्या गौणा बुद्धादयो मता । अन्तिमोऽपि द्विधा मुख्यागौणभेदादुदीरित ॥८९॥
तत्रऽब्रह्मादयो मुख्या गौणा मन्वादयो मता । अन्तर्यामी द्विधा मूर्त्तामूर्त्तभेदात् प्रभापित ९०॥
स्थापितो वैष्णवैर्मन्त्रैश्चतुर्धाऽर्चावतारक । स्वय व्यक्तश्च दैवश्च सैद्धश्च मानुप खलु ॥९१॥इति।

तत्र परो नाम नित्यधाम्नि श्रीसाकेते जमज्जनन्या श्रीसीताम्बया सह दिव्यसिंहासनोपरि विराजमानो दिव्ययुधालङ्कारविशिष्टविग्रहशाली नित्य नित्यमुक्तपरिसेवमान । सर्वावतोरी परिपूर्णब्रह्म भगवान् श्रीराम ।

जगत् स्रष्टुमुपासितु च वासुदेवसङ्कर्षणप्रद्युम्नानिरुद्धरूपेणचतुर्धाऽवस्थितो भगवान् श्रीरामो व्यूह । तत्र वासुदेवे ज्ञानशक्त्यादिगुणषट्क सङ्कर्षणे ज्ञानबलद्वय प्रद्युम्ने वीर्यैश्वर्यद्वयम निरुद्धे च तेज -शक्तिद्वय वर्त्तते ।

मत्स्यादितत्तत्सजातीयरूपेण स्वेच्छयाविर्भूतो भगवान् श्रीरामो विभव ।

योगदृष्टयाऽनुभूयमान सर्वत्र सर्वदा सवर्था च जीवस्य परमसुहृद्रूपेण हृदयस्थितो भगवान् श्रीरामोऽन्तर्यामी ।

देशकालादिनियमविहीनस्तत्तत्स्थले भक्ताभिमतहिरण्यादिशरीरऽप्राकृतशरीरविशिष्टरूपेण वर्त्तमान स्नानभोजनादिष्वर्चकायत्तता गतो मूर्तिविशेषरूपा भगवान् श्रीरामोऽर्चावतार ।

उक्तं चेश्वरतत्त्वमधिकृत्याचार्यसार्वभौमैरानन्दभाष्यकारैर्भगवद्भि श्रीरामानन्दाचार्यैर्वेदान्तसारे—

विश्वं जातं यतोऽद्धा यदवितमखिलं लीनमप्यस्ति यस्मिन्
सूर्यो यत्तेजसेन्दुः सकलमविरतं भासयत्येतदेषः ।
यद्भीत्या वाति वातोऽवनिरपि सुतलं याति नैवेश्वरो ज्ञः
साक्षी कूटस्थ एको वहुशुभगुणवानव्ययो विश्वभर्त्ता ॥३॥

श्रीमानर्च्यः बहु शरण्यो वहुविधविबुधैर्योगिगम्यांघ्रिपद्मो
ऽस्पृश्यः क्लेशादिभिः सत्समुदितसुयशाः सूरिमान्यो वदान्यः ।
शश्वच्छ्रीरामचन्द्रः सुमहितमहिमा साधुवेदैरशेषै—
र्निर्मृत्युः सर्वशक्तिर्विकलुषविजरो गीर्मनोभ्यामगम्यः" ॥४॥

इति' ।

इत्यनुभवानन्दद्वारपीठनामकश्रीरामानन्दपीठसंस्थापकैर्जगद्गुरुमदनुभवानन्दाचार्यै-
र्विरचिते श्रौतार्थसंग्रह ईश्वरार्थनिरूपणात्मकस्तृतीय परिच्छेद ॥३॥

समाप्तोऽयं ग्रन्थः ।



जगद्गुरुश्रीअनुभवानन्दाचार्यविरचिता
श्रीरामचन्द्रविंशतिः

राम ब्रह्म तथानन्दभाष्यकार जगद्गुरुम् । नत्वा करोमि भावार्थं श्रीरामचन्द्रविंशतिम् ॥
सोदरहृतराज्यश्री सुग्रीव सह मन्त्रिभि । यस्य चाश्रितवान् पाद रामचन्द्र नमामि तम् ॥१॥
रावणन्यक्कृतो दान्तो विभीषणो भियाकुल । स्वजनैर्यत्पद चागाद् रामचन्द्र नमामि तम् ॥२॥
रक्षोधिनाथसक्षुब्धा सीता स्मृतवती च यम् । स्वभक्तवन्दित नित्य रामचन्द्र नमामि तम् ॥३॥
चन्द्रांशुशोभिते रम्ये पुरा सरोवरोत्तमे । सस्मार य गजो मुक्त्यै रामचन्द्र नमामि तम् ॥४॥
पतिव्रता शिरोरत्न गौतमधर्मचारिणी । अस्मरच्छापमुक्त्यै य रामचन्द्र नमामि तम् ॥५॥
कालिन्दीपुलिने रम्ये ध्रुव सस्मार य मुदा । लोकोत्तरपदप्राप्त्यै रामचन्द्र नमामि तम् ॥६॥
दीनाऽप्राप्तसहाया च कृष्णा सस्मार य प्रभुम् । दयालु कृष्णरूप श्रीरामचन्द्र नमामि तम् ॥७॥

जनकजनितक्लेशात् कयाधूनन्दनश्च यम् । दीनानाथेति सस्मार रामचन्द्र नमामि तम् ॥८॥
यस्त्राता वेदशास्त्राणां दण्डकवनपाव । स्वभक्तवन्दित शान्त रामचन्द्र नमामि तम् ॥९॥
नक्तञ्चरसमूहाश्च वेदमार्गविदूषका । मुक्ताश्च दर्शनाद् यस्य रामचन्द्र नमामि तम् ॥१०॥
रावणभग्नपक्षश्च जटायुर्मांसभोजन । य दृष्ट्वा तद्गतिं लेभे रामचन्द्र नमामि तम् ॥११॥
स्वधर्मत्यागतो भ्रष्टोऽजामिल पुत्रव्याजत । यन्नामस्मरणान्मुक्तो रामचन्द्र नमामि तम् ॥१२॥
बाली बालरविप्रख्य यत्पद च पुर स्थितम् । ध्यायन् मोक्षपद लेभे रामचन्द्र नमामि तम् ॥१३॥
त्यक्त्वा सर्वाणि कृत्यानि शरभगस्तपोवन । नत्वा य च गतो मुक्ति रामचन्द्र नमामि तम् ॥१४॥
यच्चरणाम्बुजोद्भूता गंगा दुर्गतिनाशिनी । तापत्रयविनाशित्री रामचन्द्र नमामि तम् ॥१५॥
सुगतिं शवरी लेभे निगमकर्मगर्हिता । आतिथ्यकरणाद यस्य रामचन्द्र नमामि तम् ॥१६॥
ध्यायन् यस्य पदाम्भोज भरत साश्रुलोचन ।अवसत् त्यक्तराज्यश्री रामचन्द्र नमामि तम् ॥१७॥
गुहराजोऽप्यहन् पाप यच्चरणाम्बुपानत । भवदारिद्र्यहन्तार रामचन्द्र नमामि तम् ॥१८॥
उपादान निमित्तच जगतोऽस्य प्रभु पर । ध्येयोऽमोघश्च वन्द्यो यो रामचन्द्र नमामि तम् ॥१९॥
मुच्यते स्मरणाधस्य सद्यो भवभिया नर । ब्रह्मेशाद्यमरैर्वन्द्य रामचन्द्र नमामि तम् ॥२०॥
रामानन्दप्रशिष्येणानुभवार्येण निर्मिता । पठता ध्वान्तहृद् भूयाच्छ्रीरामचन्द्रविंशति ॥

—०—

श्रीजानकीशो विजयतेतराम्

आनन्द भाष्यकारजगद्गुरूश्रीरामानन्दाचार्याय नम ।

श्रीअनुभवानन्दद्वारपीठसस्थापक——जगद्गुरूश्रीअनुभवानन्दाचार्यप्रणीता

श्रीगीतार्थसुधा

उत्पत्त्यादिविधायक य जगतो हेतु पर चेश्व
जीवाजीवशरीरिण सुशरण भक्त्यैव सायुज्यदम् ॥
निर्दोष सुगुणाकर निखिलविद्वेदान्तगम्य विभु
गीतोक्त वरद नतोऽस्मि करुणाम्भोधिं प्रभु राघवम् ॥१॥

नत्वा गुरु तथाऽऽनन्दभाष्यकार जगद्गुरुम् ।
करोम्यनुभवानन्द सुधां मृत्युविनाशिनीम् ॥२॥

कर्मज्ञानप्रसाध्या भगवति परमो भक्तिरेकोम्युपाय ।
श्रेष्ठो मोक्षस्य वाच्यो मतमितिविदित ज्ञापयिष्यन्मुकुन्द ।
धर्माधर्मप्रसगाद् विकलितमनस पार्थमुद्दिश्य गीता–
माहोपोद्घातरूप सुदृढमभिहितस्तत्र चाद्य. प्रपाठ ॥३॥

पोक्तौ देहात्मबुद्ध्या स्वजनममतया बालिशे मोहशोकौ ।
क्षीयेते तौ च बोधात् फलमतिरहितात् कर्मण सोऽपि सिध्येत् ।
तस्माद् भक्ति परेशे नियमितमनसा प्राप्यते सत्त्ववृद्ध्या ।
तस्या शान्तिर्ध्रुवात्मा फलमिदमशिषत् कृष्णचन्द्रो द्वितीये ॥४॥

ज्ञान कर्मेति निष्ठादयमिह जगति प्राहुराम्नायविज्ञा ।
कर्मारम्भ विहाय क्षणमपि भजते नैव कश्चित् प्रशान्तिम् ।
तस्मात् कर्मानुवृत्तिर्भगवति मनसा न्यस्य कर्माणि सम्यक् ।
कर्त्तव्या पुण्यपुसा गलितफलतृषा प्रोक्तमेतत् तृतीये ॥५॥

प्रोक्ता कर्मप्रसगान्निजविभवकथा नित्यकर्माणि पश्चात् ।
कर्माकर्मस्वरूप मतिसृतिमशिषत् कर्मभि सम्यवृत्ताम् ।
यज्ञाना द्वादशानामनुकथनमितो ज्ञानयज्ञस्य मोख्य ।
ज्ञानाग्निर्नाशयत्येव वृजिननिचय तुर्य इत्यभ्यधत्त ॥६॥

ज्ञानाकार विधते श्रुतिविदितफल कर्म सम्पच्यमान ।
सन्यासस्तस्य नेष्ट सममतिरुदिता ह्यात्मलब्धेरुपाय ।
भोगाना दु खदत्त्वाद्विरक्तिरतितरा पण्डितैस्तेभ्य इष्टा ।
स्वर्थानेतानवादीत् प्रणतसुरतरु पञ्चमे वासुदेव ॥७॥

यागाभ्यासस्य रीतिर्विरतिशया ससृतेमोहजाला ।
च्चातुर्विध्यप्रतीत सममतिरधिको योगिना तत्र चोक्त ।
यागस्योत्कृष्टसिद्धि परगतिफलका श्रद्धया य स युक्तो ।
योगिवेष्वेतेषु चेडय भजति हरिमिति प्राह षष्ठे पदार्थान् ॥८॥

याथार्थ्य स्वस्य चोक्त जगति जनचयो मायया मोहमाप्त—
स्तामेता तर्तुकामै खररिपुचरण सुप्रपत्तिर्विधेया ।
सेवा देवान्तराणा परिमितफलदा नैव कार्या प्रपन्नै—
र्ज्ञानी श्रेष्ठा समेषामितिमतमवदत सप्तमे श्रीमुकुन्द ॥९॥

प्रश्ना. पार्थस्य सप्त प्रतिवचनमथो वर्णन चान्तिमस्य ।
ब्रह्माऽनुध्यानतोऽद्धा ह्यासुगतिसमये ब्रह्मभाव सदैति ।
क्षेत्रज्ञस्याप्युपास्तौ प्रकृतिविरहिण सद्गति सैव शुक्ला ।
हेतुर्नैवागते. सा सृतिरितिभगवानष्टमे स्पष्टमाख्यत् ॥१०॥

माहात्म्य स्वस्य दिव्य जगति भगवतो व्याप्तिरन्त समस्मिन् ।
भक्त्याराध्य परेश सुमहितमनसा लक्षण कार्यमेषाम् ।
आवृत्तिश्चात्र भूयो विलयमुपगते कर्मिणा स्वर्गलोके ।
ब्रह्मोपास्ते स्वरूप ततमिति नवमे प्रादिशद् देवदेव ॥११॥

व्याप्त विश्व समस्त किल चरमचर येन सर्वाधिपेना—
त्रासीमैश्वर्यशाली विमलगुणनिधिर्य स्वतन्त्र परात्मा ।
यत्स्वायत्तस्वरूपस्थितिगतिरुदिता यद्विभूतिस्त्वनन्ता ।
सर्वात्मा सोऽयमेक प्रभुरितिदशमे निश्चिकायादिदेव ॥१२॥

पार्थश्चेश दिदृक्षुर्ह वपुरतितत चर्मचक्षुर्न योग्य ।
तस्मै दत्त्वा तु दिव्य स्मयभयजनक दर्शयामास कृष्ण ।
मेघान् विद्युन्महोधाम् क्षितिजलधियुतान् सूर्यचन्द्रादिदेवान् ।
दृष्ट्वा देवस्य देहे शरणमुपगतोऽवोचदेकादशेऽर्थान् ॥१३॥

श्रेष्ठोपायस्तु मुक्तेर्भगवति सुदृढा प्रीतिरेकैव शुद्धा ।
तत्राशक्तस्य कर्मण्यभिरुचिरुचिता ह्यात्मनिष्ठस्य पुस ।
आत्मोपास्ते प्रकारा अतिरतिमदिशत् स्वस्य भक्ते परेश ।
स्वार्थानेतानवादीच्छ्रितजनरतिकृद् द्वादशे च प्रपाठे ॥१४॥

क्षेत्रक्षेत्रज्ञरूप प्रकृतिपुरुषयोर्भेद आत्मस्वरूप—
ज्ञानोपायास्तथाऽत्र त्रिगुणपुरुषयोयोगतो विश्वसृष्टि ।
कर्तृत्वे हेतुरेका प्रकृतिरथ पुमान् भोक्तृभावे च हेतु—
र्बन्धोच्छेदो विवेकात् त्रिसहितदशमे शौरिणोक्ता इमेऽर्था ॥१५॥

सूते विश्व समस्त प्रकृतिरनुपमा ब्रह्मस्वायत्तमूर्ति ।
सत्वादीनां त्रयाणां प्रकृतिगुणतया देहिनो बन्धकत्वम् ।
लिङ्गं कार्यञ्च तेषां खलु मतिकृतिभिर्दर्शित तत्कृतोऽयं ।
बन्धो भक्त्या प्रहेयो द्विगुणित उदिता सप्तकेऽर्था मुदैते ॥१६॥

ससारोऽश्वत्थवृक्ष श्रुतिविदितपदोऽव्यक्तमूलश्च त वै ।
छित्वाऽसङ्गाख्यहेत्या प्रपदनमनिशं राघवेशे विधेयम् ।
बद्धान्मुक्तात् परश्चोत्तमपुरुष इति ख्यात ईश स्वतन्त्रो ।
भर्त्ता चास्म्येक एवावददिति दशमे पञ्चयुक्तेऽर्थजातम् ॥१७॥

दैवी सम्पज्जनाना भवतिसुकृतिना मुक्तये कर्मबन्धा—
न्नित्य बन्धाय लोके कुटिलमतिजुषामासुरी सा दुरन्ता ।
कार्याकार्यव्यवस्था दिशति हिततम शास्त्रमेतस्य त्याग—
श्चासुर्या मूलमुक्त निरयफलमिमे षोडशे वर्णितार्था ॥१८॥

वैध शास्त्रीयकर्म त्रिगुणपरवश यज्ञदाने तपश्च ।
त्रैविध्य तस्य वेद्य सुकृतियुतनरैः सात्विकैः सात्विक वै ।
ग्राह्य नैवासुर तत् खलु फलरहित लक्षण तस्त सम्यक् ।
श्रीमतकृष्णेन चोक्त वरमिह दशमे सप्तयुक्ते प्रपाठे ॥१९॥

सन्यास त्यागरूपो जगति मनुजै सत्वमालम्बनीय ।
सातानाथ परेशोऽमलगुणजलधिर्दिव्यदेहोऽवतारी ।
सर्वज्ञ सर्वशक्ति कृतिचयफलद कर्मणा सविधाता ।
सायुज्य तत्प्रपत्त्या भवति तनुभृता प्रोक्तमन्त्येऽत्र चैतत् ॥२०॥

श्रीगीतार्थसुधा चैषाऽनुभावानन्दनिर्मिता ।
जन्ममृत्युविनाशाय भूयान्मननशालिनाम् ॥२१॥

(स्वशताब्दीमहोत्सवे जगद्गुरुश्रीअनुभवानन्दाचार्योपदिष्ट प्रबन्ध)



श्रीरामो विजयतेतराम् ।

श्रीटीलाद्वारपीठसंस्थापक श्री १००८ जगद्गुरुश्रीटीलाचार्यव्रतिराजप्रणीत-

प्रपत्तिकुसुमाञ्जलि

उपनिषद्भाष्यकारस्वामिश्रीवैष्णाचार्यप्रणीतभाषानुवादसहित ।

रघुपतेऽहमकिञ्चनतां गतस्तव सुरक्षकतामतिविश्वसन् ।
निजभरं निदधाम्यखिलात्मनि त्वयि परेश विभो गुणसागरे ॥१॥

हे परेश ! हे विभो ! हे रघुनाथजी ! अकिञ्चनता (दीनता)को प्राप्त हुआ मै तुम्हारे सुन्दर रक्षकपनेका अत्यन्त विश्वास करता हुआ समस्त चेतनाचेतनतत्त्वोके आत्मा और गुणोके समुद्र तुम्हारे ऊपर अपने भारको रखता हू अर्थात् छोड देता हू ।

अननुकूलकुभावविवर्जितस्त्वदनुकूलसुभावगतस्तथा ।
अहमनन्यतया क्षितिजापते ! सुशरणं चरणञ्च गतोऽस्मिते ॥२॥

हे श्रीजानकीनाथजी ! प्रतिकूलभावोसे रहित तथा तुम्हारे अनुकूलभावो को प्राप्त हुआ मै अनन्यभाव से सुन्दर शरणरूप तुम्हारे चरणोको प्राप्त हुआ हूँ । अर्थात् सर्वश्रेष्ठ शरणरूप आपके चरणोका आश्रय ग्रहण किया हू ॥२॥

मम सुरक्षणकर्मणि यो भरः फलमहञ्च न मे भुवनम्भर ! ।
अपि तु भक्तसमर्पितहृद् प्रभो ! तव ततश्च निजं हि समर्पये ॥३॥

हे निखिल भुवनोका भरणपोषण करनेवाले भगवन् मेरे सुरक्षणका भार, मेरी प्रपत्तिका फल और मै (स्वय) ये सर्व मेरे नहीं है । किन्तु हे भक्तजनोको निजहृदय समर्पण करनेवाले प्रभो ये सब तुम्हारे ही है। इसलिये मै निजको (स्वयको) तुम्है समर्पणकरता हू ।

न हि मिलेद् दयनीयजनश्च ते रघुपते मयि चेन्न दया तव ।
सुदयनीयजनैकनिधे ततः कुरु दयां मयि नाथ दयाम्बुधे ॥४॥

हे रघुनाथजी ! यदि मेरे ऊपर तुम्हारी दया न होगी तो तुम्हे दया करने योग्य मनुष्य नही मिलेगा । अर्थात् सम्यग्दयनीयलक्षणयुक्त मै ही हू । इसलिये हे दयनीयजनोके मुख्यनिधि और हे दयासिन्धु भगवन् मुझपर दया करो ॥४॥

त्वमसि नो मदृते दयनीयवानहमपि त्वदृतेऽस्मि न नाथवान् ।
विधिविनिर्मितमेतदवेक्ष्य तत् करुणया करुणाकर पाहि माम् ॥५॥

हे करुणाके आकर (खानि) भगवन् तुम मेरे विना दयनीयजनवाले नहीं हो और मै भी तुम्हारे विना नाथवाला नही हू । इसलिये हे नाथ यह घटना भाग्य से ही घटित विचारकर कृपया मेरी रक्षा करो ॥५॥

सुशरणं चरणं त्वपहाय ते कथमियामहमन्यमकिञ्चनः ।
रघुपते ? दृढमायतपोतकं त्यजति किं जलधौ लघुवायसः ? ॥६॥

हे रघुनाथजी ! अकिञ्चन (सर्वविध हीन दीन) मै श्रेष्ठशरण तुम्हारे चरणको छोडकर अन्यके प्रति कैसे जाऊं ? हे नाथ ! समुद्रमे छोटा कौआ सुदृढ(मजबूत) विशाल जहाजको क्या छोड देता है ? ॥६॥

इह तिरस्कृततां गमितोऽप्यहं रघुपते ! न जहामि पदञ्च ते ।
निजजनन्यवधूतशिशुर्यथा स्वजननीचरणं विजहाति नो ॥७॥

हे रघुनाथजी इसलोकमे तिरस्कारको प्राप्त कियेजानेपर भी मै तुम्हारे चरणको नहीं छोडता हूं जैसे स्वमातासे तिरस्कृत बालक अपनी मा के चरणको छोडता है ॥७॥

वरद दाशरथे वरदापते कुरु कृपामिदमेव च देहि मे ।
त्वदरविन्दविलज्जकपादयोर्भवतु जन्मनि जन्मनि मे स्मृतिः ॥८॥

हे वरदानदेनेवाली श्रीजानकीजीके पति ! हे वरद दाशरथे ! भगवन् कृपा करो । मुझे यही दो की कमलको भी लजानेवाले तुम्हारे चरणोका स्मरण जन्म जन्म में होता रहे ।

वसुधया वसुधात्मजया तथा रुचिरया रुचिरं परिसेवित ? ।
रघुपते ? सुलभो जगतीपते ? भव भवाम्बुनिधौ पतितस्य मे ॥९॥

वसुधा (पृथिवी) सुन्दर वसुधात्मजा श्रीजानकीजीसे सुन्दर प्रकारसे सेवित हे जगत्पति श्रारघुनाथजी भवसिन्धुमे पतित मुझे सुलभ हो जाओ ॥९॥

समवभाति न ते समतां गतस्त्वदधिकोऽपि हि नाथ न कश्चन ।
प्रपदनं विदधे पदयोश्च ते निखिलपालक ? पालय मामपि ॥१०॥

हे नाथ तुम्हारी समानताको प्राप्त हुआ कोई विदित नही होता है । तुमसे अधिक भी कोई नही हे । तुम्हारे चरणोकी प्रपति मै करता हू । हे अखिलपालक(सबके पालनेवाले) भगवन् मेरा भी पालन करो ।

कृतभवाभन्न कारणकारण प्रकृतिरक्षक रक्ष्यविलक्षण ?
रघुपते पदयोः पतिते च ते कुरु कृपां कृपणे मयि पामरे ॥११॥

हे ससारको बनानेवाले हे उत्पत्तिशून्य हे कारणोके भी कारण हे प्रकृति (प्रकृति= स्वभाव, प्रजा, प्रकृतितत्त्व, प्रकृतिमण्डल) के रक्षक, रक्ष्य (रक्षणकरनेयोग्य जडचेतन)-से विलक्षण हे रघुनाथजी ! तुम्हारे चरणोमे पडे हुए मुझ दीन और पामर पर कृपाकरो ॥११॥

तव विभोश्चरणं शरणं गतो जन इह त्रिगुणैः परिभूयते ।
अभिहिता रघुनायक भारते प्रकृतितारक तारकता क्व ते ॥१२॥

लोकोत्तर वैभवशाली अथवा सर्वव्यापक तुम्हारे चरणोकी शरणमे गया हुआ (प्राप्त हुआ) जन इसलोकमे प्रकृति (माया)के तीन गुणोसे (सत्य रजस् और तमस्गुणोसे) तिरस्कृत हो रहा है । है रघुनाथजी हे प्रकृतितारक भारतमे कही हुई तुम्हारी तारकता कहा है ? ॥१२॥

अघमताव्यथिता पृथिबी पुरा रघुपते त्वयका परिमण्डिता ।
पुनरिदं हि तथा क्षितिमण्डलं भुवनमण्डलमण्डन मण्डय ॥१३॥

हे रघुनाथजी अधर्मसे दुखी हुई यह पृथ्वी पहले तुमसे ही अलकृत हुई

थी । यह पृथ्वीमण्डल पुन उसीप्रकार अधर्मग्रस्त हुआ है । इसलिये हे भुवनमण्डलके अलङ्कार भगवन् तुम पुन इसे अलङ्कृत करो ॥१३॥

रघुपते त्वयकैव युगे युगे समवतीर्य हि दक्षकुरक्षसाम् ।
बलमखण्डयमखण्डय? सुखण्डितं विजहि मत्प्रतिघादिकराक्षसान् ॥१४॥

हे रघुनाथजी युगयुगमे अवतार लेकर तुमने ही चतुर और दुष्ट राक्षसोके अखण्डनीय बल (सैन्य)का अच्छी प्रकारसे खण्डन किया है । किसीसे भी खण्डन न करने लायक (अखण्डनीये) हे नाथ तुम मेरे क्रोधादि राक्षसोको मारो ॥१४॥

अद्यताश्च गतेऽभयता कुतो न च भयं सदये त्वयि राघव? ।
अभयतार्थमतः शरणं विभो त्वदपरं न विभावये ॥१५॥

हे रघुनन्दन ! तुम्हारे निर्दय होनेपर निर्भयता कहासे हो सकती है ? और तुम्हारे दयायुक्त होनेपर भयभी कहासे हो सकता है ? अर्थात् नही हो सकता है । इसलिये हे विभो हे भगवन् निर्भयताके लिये शरण (रक्षक) रूपसे तुम्हारे सिवाय अन्य पुरुषका विचार मै नही करता हू । अर्थात् सर्वप्रकारसे अभय होनेके लिए मै रक्षक रूपसे (शरणरूपय) केवल तुमको ही स्वाकार करता हूं ॥१५॥

कृतमतिर्जगतः परिपालने सुकृपणस्य तदा मम रक्षणे ।
कृतमतिप्रभृतेः सहकारिणश्च विफलं जगदीश गवेषणम् ॥१६॥

हे जगदीश! भगवन् श्रीरामजी यदि तुमने जगत्को अच्छी प्रकारसे पालनेका विचार किया है तो अत्यन्त दीन मेरे रक्षणके लिये मेरे कर्म और ज्ञान आदि सहकारी कारणो का खोजना निष्फल है । तात्पर्य यह है कि हे नाथ ! यदि तुम यह कहो कि "रक्षणमें कारणरूप कर्म ज्ञान भक्ति इत्यादिमेंसे तुम्हारे पास एक भी नहीं तो हम तुन्हारा रक्षण कैसे करें ? कही कारण विना कार्य होता है ?" इसपर मेरा कहना है कि हे नाथ तुम्हारा यह कथन व्यर्थ है क्योकि तुमने समस्त जगत्के रक्षण करनेका सङ्कल्प किया है । मै भी जगत्के अन्तर्गत हू । इसलिये तुम मेरा रक्षण करोगे ही । तब मेरे कर्मज्ञानादि क्यो ढूढते हो ।

टीलाचार्यकृतश्चायं प्रपत्तिकुसुमाञ्जलिः ।
भूयाद्रामप्रसादेन भवपाथोधितारकः ।

श्रीसाकेतनिवासाचार्य नामक आचार्यशिरोमणि श्री १००८ जगद्गुरुश्रीटीलाचार्यजीमहाराज व्रतिराजद्वारानिर्मित यह प्रपत्तिकुसुमाञ्जलि भगवान् श्रीरामजीकी कृपासे ससार समुद्रका तारनेवाला हो ।卐

आचार्य परिचर्या

ले० कविकिंकर बलरामदास त्यागी

ॐ परब्रह्म श्रीरामजी ॐ

मंगलाचरण


परिपूर्णब्रह्म भगवान् श्रीरामजी

(लोकलीलार्थ प्रादुर्भावकालत्रेतायुग
चैत्रशुक्ल नवमी के दिन अयोध्या मे)

पूर्णब्रह्म श्री राम, सत् चिदानद घन सुन्दर ।
कृपाउदधि गुणधाम, ईश के ईशपरात्पर ॥
श्री सीतापति रघुपती, जगपति राम जगद धर ।
भुक्ति मुक्ति दातार, विश्वपति हरि विश्वम्भर ॥
रघुकुलके शिर मुकटमणि,रामचन्द्र करुणायतन ।
बेद–बेद्य रघुनाथ, निजजन मनहर सुखसदन ॥
रामप्रिया सुखधाम, भूमिजाभवभय हरनी ।
सन्त जनन अवलम्ब, जनकजा पालन करनी ॥
रामचरणसेबिका, सर्वदुख दरिद हरनी ।
कृपाअम्बु निधिमात, दशानन बश बिनासिनी ॥
है तव पदकींसेबिका उमा रमा ब्रह्मानि सब । कविकिंकर बलरामकहँ,तुही मात अवलम्ब अब ॥
पवनपुत्र हनुमान, अजनी मातृगतारे । शकर सुवन सुजान, केशरी भूप दुलारे ॥
महावीर वजरग, राम कहँ परमपियारे । सुर सन्तन दुख हरन, भूमिजामा दृगतारे ॥
लालदेह ललइ वदन, श्रीमहारुद्र हनुमन्तप्रभु । रामभक्तिकविकिंकर हिं दे करु, भव दुखअन्तविभु ॥
श्रीरामानन्दयतीन्द्र, बामपथ नष्ट करइया । स्वय रामसर्वेश यती, बनि दण्डधरइया ॥
आनँदभाष्य प्रणेता, अरुदिग् बिजय करईया । श्रौत विशिष्टाद्वैत, प्रचारक सुशीलाछइया ॥
पूर्णब्रह्म श्रीराम धनुर्धर, भे यतीन्द्रजग आइके । कवि किंकर बलरामके, दीजै दुख बिनसाइके ॥

द्वाराचार्य महान,जगद्गुरु टीलाचार्य मुनि । कीजैभक्ति प्रदान,ब्रह्म परात्पररामकी १।
श्रीअगस्त अवतार, मंगलार्य मुनिकुलतिलक ।दीजै जन्म सुधार,कविकिंकरबलरामकर २।
शुचिबेदान्त महोदधी,रघुवर आचार्यमुनीन्द्र ।श्रौतबिशिष्टाद्वैतनिधि,ममरक्षाकरिययतीन्द्र

बेदोपनिषद भाष्यकर स्वामि बैष्णवाचार्य । शुचिबेदान्तसुपीठपति, महाकवि क्षुचि आर्य ॥
श्रीरामानन्द बेदान्त, परिक्षा अटल करइया । अभिनववाचस्पती, उपाधी प्राप्त करइया ॥

रामनीष्ठ थे पूर्ण गुरु सम्प्रदा श्रीके दृढस्तम्भ । कनिर्किर बलरामके प्रभु काव्य गुरु निर्दम्भ ॥

ब्रह्म परात्परराम विभु, सर्व जगत आधार । अवधेश्वर सरवेश्वर, अगजग सिरजनहार १॥

सीतापति अखिलेश सुजाना । श्रीसाकेत पती भगवाना ।
जासु अंश उपजहिं जगनाना । ब्रह्मा बिष्णु शम्भु भगावाना ॥
जो जग पालत सृजत उदारा । उग्ररूप धरि करत सहारा ।
सीता-पती त्रिभुवनपति स्वामी । जाके ब्रह्मादिक अनुगामी ॥
जाको नाम लेत इक बरा । जात सूखि भव सागर सारा ।
जाकर भेद न बेदहु जाना । सोई साकेनाधीश सुजाना ॥
वहीराम सुर मुनि गो काजा । आइ बने कोशलपुर राजा ।
रामब्रह्म सर्वत्र समाना । बेदबेद्य समरथ भगवाना ॥

उनको शूक्ष्मचरितकछुलिखन चलेउ अज्ञान ।आई विराजो लेखनी, पवन पुत्र हनुमान२॥

मनुसतरूपा कहँ बर्दाना । दीने प्रथम राम भगवाना ।
अष्टबिसती त्रेता माही । भये मनु अवधेश्वर आई ॥
दशरथ नाम वीर विख्याता । दुर्जन काल सुजन के त्राता ।
कौशिल्या माताके रूपा । प्रकट भई भूतल सतरूपा ॥
तीनके गृह लीन अवतारा । ब्रह्म परात्पर राम उदारा ।
सूर्यबंश में सूर्यसमाना । प्रकटे अमित भूप बलवाना ॥
रघु दिलीप हरिचन्द्र नरेशा । नमन करै जिनको विबुधेशा ।
भागीरथ सम्राट्र सुजाना । जिन भूतल पर गगा आना ॥

ताही बंश अवतीर्ण भे, सर्वेश्वर श्रीराम। मारे निशिचर बीनके रामलषण सुख धाम३॥

शंकर विष्णू शेष सुजाना । भये अनुज इनके बलवाना ।
भरत बिष्णू अरु लक्ष्मण शेषा । भये शत्रु हन आइ महेशा ॥
बाल लीलालखि मुदित प्रजाजन, करै नित्य सरयू मे मज्जन ।
सखा अनुज युत क्रीड़ा करहीं । मातपिता लखि आनँद भरहीं ॥
बेद शास्त्र कर सुन्दर ज्ञाना । गुरु बशीष्ठ सोंलह भगवाना ।
मारग जात ताडका मारि । खल सुबाहु कहँ दीने जारि ॥
बिनु फरतीर मारीच उड़ावा । सत योजन पर ताहि गिरावा ।
गौतम नारि अहिल्या तारे । पदरज है कौशिला दुलारे ॥

कौशिक मख रक्षा किये, अनुज सहित भगवान। हने निशाचर यूथ प्रभु लैकोदण्ड महान

विश्वामित्र हृदय हर्षाई । दीब्य अस्त्र सब दिये गहाई ।
मुनिकौशिक के पद शिरनाई । सुरसरि उत्पति पूछे जाई ॥
गगा उत्पति सबिधि सुनाई । सुनि श्रीराम परम सुख पाई ।
पुन राम मुनि बृन्द समेता । गये जनकपुर कृपा निकेता ॥
सीर ध्वज विधिवत सन्माने । दोउ भइन लखि अति हर्षाने ।
पुनि गुरुवर की आज्ञा पाई । गिरिजा उपबन गे दोउ भाई ॥
तहँ सीता कर दर्शन कीने । हृदयगम मूरति करि लीने ।
उत सीता श्रीराम निहारी । आदि शक्ति निज तनमन वारी ॥

ब्रह्म परात्पर राम,धनु भजे इक निमिष महँ । हर्षे सुर-सुर वाम,सुर तरुके बर्षे सुमन

साजि बरात अवध अति आये । चारो सुत कर व्याह रचाये ।
बधुन समेत रामपुर आये । रानिन अन धन वस्त्र लुटाये ।
राज तिलककी भई तयारी । बीघ्न कीन केकय कुमारी ॥
मागेसि भूपति सो वरदाना । चउदह वर्ष रामबन गमना ।
पाइ पितु आज्ञा दीनदयाला । गये बनहिं सिय युत तत्काला ॥
राम वियोग भूप विद्वाना । कीने तनु तजि स्वर्ग पयाना ।
मिलि केवट सो राम अवागी । सुरसरि पार गये धनु धारी ॥

चित्रकूट मे जा वसे,अनुज प्रिया युत राम । सदलकुटम युत आये,भरत लाल सुख धाम

लै पादुका भरत फिरि आये । राम मुनिन आश्रमन सिधाये ।
सर्ब मुनिन आश्वासन दीने । पुनि प्रवेश दण्डक वन कीने ॥
मग बहु पाप मूर्ति सहारी । पचवटी निरखे धनुधारी ।
असुर विराध कबधहिं मारे । खल खरदूषण सदल सँहारे ॥
सूपनखा कर हरिश्रुति नाशा । कीने अमित निशाचर नाशा ।
सूर्पनखा सन सब सुधि पाई । रावण गा मारीच पहँ धाई ॥
स्वर्ण मृगा कर रूप बनाई । गा मारीच जहाँ रघुराई ।
हिरण अलौकिक देखि-सुजाना । श्री सीता मन मोहसमाना ॥

कह सीता हे नाथ,लाइय मिरगा पकरि यह । प्रभु लीने धनु हाथ,गयउ मृगा लैदूरिप्रभु ७

तब तकि राम कठिन शर हना । बाण लगत धरणी ढनमना ।
भरत प्रथम हा लखन पुकारी । पुनि मन मा सुमिरेसि धनुधारि ॥
आरत गिरा रामकी जानी । लखनहिं पठयेनि सिय महरानी ।

शून्य आश्रमहिं निरखि अयाना । दशमुख पुनि छलकीन महाना ॥
मन महँ चरण कमल शिर नाई । सीतहि उठाई यान बइठाई ।
चला जटायु किय सग्रामा । काटेउ पख असुर बलधामा ॥
प्रभु हेरत किष्किन्धा आये । कपि सुकण्ठ कहँ मित्र बनाये ।
पुनि हनुमत सौ सब सुधि पाई । दीने बालिहिं स्वर्ग पठाई ॥

बालिराज सुग्रीव कहँ, दीने कृपानिधान । अंगद कहँ युवराजपद, दिये राम भगवान ॥

पुनि सुकण्ठकी आज्ञा पाई । चहुँदिशि चले भालु कपि धाई ।
सीता अन्वेषणके काजा । गे दक्षिण अगद युवराजा ॥
सँग जामवन्त हनुमाना । द्विविद मयन्दादिक बलवाना ।
सम्पातीसो सब सुधिपाई । हनुमत लकागढ पर धाई ॥
श्रीसुरसा मुख विवर मझाई । बचे सिहिका को कपिराई ।
प्रबल लकनी का मदझारे । मिले विभीषण पवन दुलारे ॥
पुन अशोक विपिन कपि आये । जगदम्बा के दर्शन पाये ।
राम मुद्रिका सियहि गहाई । बाग उजारि दीन कपिराई ॥
लवटि कीश किष्किन्धहि आये । समाचार रघुपतिहिं सुनाये ।
चूडामणि हनुमत सो पाई । रघुपति लीने हृदय लगाई ॥
पुनि सुग्रीव सग कपि वीरा । ऋक्षादिक यूथप रणधीरा ।
सागर तट जा डेरा कीन्हे । सेतु बन्धकी काज्ञा दीन्हे ॥
शुक सारन कर शाप नशाई । लिये विभीषण हृदय लगाई ।
वाधि सेतु किय सागर पारा । गिरि सुबेल उतरे सुकुमारा ॥
राजदूत अगदहिं पठाये । निशिचर पति कहँ बहु समझाये ।
ना मानेउ जब अतिहकारी । तब ठाने राघव रणरारी ॥

जम्बू आदिक अमितभठ, अक्ष सहित संहारी । रावणमदमर्दनकिय, लंकानगर प्रजारि ९

लका राज्य बिभीषण दीने । आप गमन तव निज पुर कीने ।
सीता अनुज सहित हरि आये । परिकरन दर्शन सुख पाये ॥
भरतलाल उर आनद जेते । कहि न सकैं शारद श्रुति तेते ।
गुरु वशिष्ठ सब विप्र बुलाई । रामहिं दिये राज्य हर्षाई ॥
प्रभु पुष्पकहिं कहा समुझाई । जाउ धनेश्वर पहं तुम भाई ।
पुनि कपि रीछ सैन रणधीरा । किय सम्मान धीर रघुवीरा ॥

विदा किये सब कहं उरलाई । कृपासिन्धु रघुपति रघुराई ।
कपि सुकण्ठ की आज्ञा पाई । रह हनुमत सेवा मे आई ।
अश्वमेध शतकिये कृपाला । सुत इव कीन प्रजा प्रतिपाला ।
पुनि पुरजन परिजन लै साथा । गे साकेत लोक रघुनाथा ।

राजधर्म प्रश्नावली,राम गीतासुख ज्ञान । निरखै सज्जन मुदितमन, श्रीस्कन्धपुरान।

२. सर्वेश्वरी श्रीसीताजी



जगज्जननी श्री जानकी जी

(लोकलीलार्थ प्रादुर्भावकाल त्रेतायुग वैशाखशुक्लनवमीके दिन सीतामढी मिथलामे)

शब्दअर्थ जलकी लहर,यथा अभिन्नसुजान
रामसीयतिमि एकहैं,भेद इनमें न जान।

पूर्ण ब्रह्म श्रीराम उदारा ।
लीने जव भूतल अवतारा ।
प्रभु अवतार कार्य सम्पादन ।
प्रकटी आदि शक्ति भव तारन ।
श्रीशीरध्वज भूप सूजाना,
किये हलेष्टि यज्ञ विद्वाना ।
भई सीत से प्रकट कुमारी ।
आपरूप भू हृदय विदारी ।
दीव्य सिंहासन सखिन समेता । विनवत सुरमुनि सिद्ध सचेता ।
सुरतरु सुमन देववर्षाये । ब्रह्मादिक सुर शीश नमाये ।
देवऋषी नारद तह आए । शीशनमाइ विनय सुनाए ।
नारद कहे सुनउ जगदम्बा । करु मा शिशुलीला अविलम्बा !

बालरूप धरि जननी,कीजै जन प्रतिपाल । मातसुनैना अरुनृपहि,करु जगदम्ब निहाल ।

सुनि मुनिवरकी बिनय रशाला । बाल स्वरूप धरे ततकाला ।
रोवन लागि धरा की जाई । शीरध्वज नृप लिए उठाई ।
हृदय लगाय परम सुख माने । रानिहिं सौपि हृदय हर्षाने ।
पुनि नारद पदशीश नमाई । कहे नाम कहिए मुनि राई ।
सुनि भूपति की विनय पुनीता । देव ऋषी कह वचन सप्रीता ।
इनके नाम अनन्त अनूपा । गनि न सकैं शारद अहि भूपा ।
तदपि धरउं मै नाम विचारी । सुनउ ध्यान दै नृप व्रतधारी ।

सीतसे प्रकटी सरज कुमारी। शेष शीष सिंहासनधारी ।

तासों सीता नामशुचि,सुनो जनक भूपाल। पराशक्ति है ब्रह्मकी कहत वेद सुरपाल ३।

आविर्भाव काल अब गाऊ। मास नक्षत्र तिथी बतलाऊ ।

शुचि बईशाख मास अति सुखकर। शुक्लपक्ष तिथि नवम मनोहर ।

अठइसवा त्रेतायुग जानो । सीतामढि जन्मस्थल मानो ।

पाच वरसकी रही कुमारी । लीन उठाइ शकर धनु भारी ।

वाम हाथसो धनुप उठाई । दहिने चउका दीन लगाई ।

सुता शक्ति लखि जनक सुजाना । धनुषयज्ञ मख कीन महाना ।

उपवन मे श्रीराम निहारी । वरण किहेसि मन माहिं कुमारी ।

सभा मध्य जब प्रभु धनु तोरा । गर-जयमाल सीय तव गेरा ।

कौशिक आज्ञा पाइके,मिथिलेश्वर सुख पाय।संतन सहित दशरथ नृपति,लीनेतुरतबुलाय

सुतन बिबाहि अवध फिरि आये । उत्सव विविध भाति करवाये ।

अन धन वस्त्र द्विजन कह दीने । आशिर्वाद सबहि सा लीने ।

आनद मगन सकल पुरवाशी । गृही विरक्त सन्त सन्यासी ।

रामहि देन चहे युवराजा । नीत निपुण दशरथ मह राजा ।

राम इच्छासो सुनहू-सुजाना । भरत मात किय वीघ्न महाना ।

सुतहि राज रामहि वनवासा । पुर परिजन सब भये निरासा ।

पितु आज्ञा प्रभु बनहि सिधाये । दशरथ महाराज सुख पाये ।

वहुत प्रयत्न किये भूपाला, किन्तु न माने दीन दयाला ।

सीता तजे न साथ,बनगमनी तजिराजसुख,संग लखनधनुहाथ,गये बनहि प्रियभ्रातसंग।

चित्र कूट करि कछु दिन वासा । गे अत्री पह सहित हुलासा ।

अनुसुइया पदशीश नमाई, विनय कीन सीय मन मुसुकाई ।

ऋषि पतिनी आदर बहु कीन्हा, नारि धर्मकी शिक्षा दीन्हा ।

दीव्य वसन भूषण पहिराये, वारवार सिय कण्ठ लगाये ।

पुनि अत्री सौ विदा कराई, दण्डकवन प्रविशे रघुराई ।

कीन पचवटी मह वासा, प्रिया अनुजयुन रमानिवासा ।

पति आज्ञा सिय प्रविसि अनल मह, भई सहायक प्रभु लीलामह ।

सिय प्रतिविम्व सुनउ सव-भाई, स्वर्णमृगा पर गई लुभाई ।

कह सीता पतिपद शिर नाई, मृगा अलौकिक लावहु साईं ।

उठे राम सुर कार्य सवारन, चले हाथ धनु दनु--वन जारन ।
माया-मृग माया वहु कीना, प्रभु तब कोपि तीब्र शर लीना ।
लागत बान परा खल धरनी । मरत कीन शठ अद्भुत करनी ।
हा लछिमन हा लखन पुकारी, सीतहि व्याकुल कीनेसि भारी ।
सीता प्रेरित लछिमन धाये, शून कुटी दश कन्धर पाये ।
यती वेष मह सिय पह आई, मागेउ भिक्षा खल दुखदाई ।
चरण परसि, मन अति हर्षाई, लीनेउ सीतहिं यान चढाई ।
सीतहिं लै सो लकहि गयऊ, वन अशोक मह राखत भयऊ ।
बोलि निशिचरिन कहेउ सुरारी, करउ मानवीकी रखवारी ।

दण्डादिक सब नीतियां, हारेउ मूढ बताय, रूप अलग सियराम कर, शक्तिएकदरशाय
भयअरुप्रीति दिखाइके गयउ मन अति मूढ, तबसंकेतहिनिशिचरन, आज्ञादीनेउगूढ

राम विरह हो विकल कुमारी, तारागणन कहति चिनगारी ।
तरु अशोकसो अग्नि याचना । कीनेसि सिय करि विविध वन्दना ।
तव हनुमत मुद्रिका गिराई, राममुद्रिका लखिसुख पाई ।
सीता केरको पालन द्वारा, भस्म भयउ राक्षस कुलसारा ।
भक्त विभीषण राज बनाई, पिय-देवर युत निज पुर आई ।

वैभव मे सियरामसों, किंचित न्यून न जान । राम भक्ति दात्री सिया, है त्रिभुवनकोप्रान

छमा स्वरूप रामपटरानी, दुखदातहु पर क्रोध न आनी ।
राम कृपाकी मूर्ति अधारी, भूमि सुता लवकुश महतारी ।
राममन्त्र हनुमत कह दीन्हा, मूल प्रकृति है जगवस कीन्हा ।
हे वात्सल्य मयी जगजननी, निजसेवा रामहिं वस करनी ।
राम हृदय मह करत विहारा, एकहु पल न राम सौ न्यारा ।
राम इच्छासो ज्यो ससारा, प्रकटत वढत होत सहारा ।
उमा मा आदिकत्यो-माई, सीता अंश प्रकटत वहु आई ।
हैं सिय अश देविया सारी, अशी एक सीय महतारी ।

तिमि सर्वेश्वरीमात, जिमि सर्वेश्वरराम है, वेद शास्त्र गुणगात, कविकिंर भूमिजाकर ।

श्रीजनकजा जननि के विमल उपदेश दीव्य, लखै नीम्नग्रन्थोमे, ज्ञानी सन्त वेद विज्ञ ।
वाल्मीकि सहितामे, सीता उपदेश दीव्य, सीतोपनिषदमे, सीताके बचन भव्य ॥
श्रीवशीष्ठ सहिता मह, सीताराम अभेद नित । कविकिंकर बलरामशठ, सेवतसियपियविमलचित

स्वामीं वैष्णवाचार्य, काव्यगुरु करियोछमा, हैंबलराम अनार्य करियकृपाकरुणाउदधि

३. श्रीहनुमानजी

(स्वपरमाराध्य परब्रह्म श्रीरामजीके साथ लोकलीला सम्पादनार्थ प्रादुर्भावकाल त्रेतायुग कार्तिककृष्ण चतुर्दशी गन्धमादनपर्वतपर)



नित्यपारषद्रामके, पवनपुत्र हनुमान।
तिनको यस बर्णन करउ, सूक्ष्म सुनै सुजान

श्रीरुद्रावतार कपि राई,प्रकटे आ कचन गिरि भाई।
गिरि सुमेरके भूपसुजाना,श्रीकेशरीभूप बलवाना
पुत्रवने तिनके हरषाई, पूर्णब्रह्म रघुवररुखपाई।
श्रीअजना मातुकरनामा, पिताकेशरीसद्गुणधामा।
पाइप्रभजन सो वरदाना, पायेपुत्रकेशरीसुजाना।
कार्तिकमासकृष्णसुखसागर,चौदसतिथीपवित्रमनोहर।
राम ब्रह्मको इछाजानी, प्रकटभयेशकर वर्दानी।
समय सुहावनत्रिविध वयारी,ग्रहनक्षत्रसर्वसुभकारी

कल्पभेद चैत्रकी, पूनम कोउ कोउ मान,
सत्य सब शास्त्र मत,कह कवि बुधविद्वान।

अरुणोदय रवि मृदुफल जानी,मुखमेधारणकिय गिरिपानी।सर्वदेवऋषिगनसोभाई,शुभवर्दानपायेकपिराई
वक्रभई हनु वज्र प्रहारा, चतुरानन हनुमानउचारा। देवसर्वनज शक्तिद्वारा, अभयकिये अजनीदुलारा
शिक्षाप्रथम मातुके द्वारा,किये प्राप्त श्रीपवनकुमारा।ऋषियनकेआश्रमन जाई। करै उपद्रवश्रीकपिराई
दियेशापमुनिबहुदुखपाई,भूलिजाउनिजपौरुषभाई। जबकोउयादकरावै तुमको,तवस्मृतिहोइतुम्हारेबलको

रामनामके जापमे,रहैं सदा लयलीन, छोटे कपिके रूपमे सवबन खावै बीन।३॥

रामबाललीलासुखहोता,गये अवधपुर कृपानिकेता।वालरूप मह प्रभुपदसेवा,कियेकछुकदिनहनुमतदेवा
जव रघुवर कौशिकमखगये,हनूमानफिरिकिष्किन्धाआये।विद्यागुरुसूर्यभगवाना,तहाकियेवेदादिकध्याना
रामकार्यमे भये सहायक, महारुद्र कपिकुलके नायक।पपापुर(स)जवगेरघुराई,मिलेतहाहनुमतकपिराई
रामसुकण्ठहिं मित्र वनाये। इक दूजे सो जाइ मिलाये।दोउमित्रनिजदुखगाये,सुनिरघुवीर नैनजलछाये

बालिहीं एकइ बाणते हतेरामरणधीर, सुत लक्ष्मी अरु राज्य सब पुनी लहे श्रीकपिवीर।

सीता अन्वेषण काजहिंवीरा,रामआज्ञाचलेरणवीरा।एकमास मह सव कपिराई,आयउसियसुधिलेतुमभाई
तहँबसरगीरामदुलारा,नाघिसिन्धु हाटकपुरजारा। सियसुधिलाइसुकृपाआगारा, भालुकीशदलप्राणउवारा
मा सीतासो पा वरदाना, कीने सुरमुनिगोकल्याना। समाचाररघुवरहिं सुनाये, सदलरामसागरपरआये।
गोबर्धनगिरिकरपै धारन,कियेवीरबजरगमुदितमन।रामरामलिखिगिरिशिखरनपर,सुस्थिरसेतुकियेकरुणाकर

अभय विभिषण कहँ किये, मिला परात्परब्रह्म । वानर सेनापारकरि, बने विजय स्तम्भ॥
भयो युद्धश्मशान, रावण के सँग रामकर ।महावीर हनुमान, कियअद्‌भुत पुरुषार्थ तहँ॥
राम अनन्य मूसीय उपाशक, प्रेतादिक व्यभिचार विनाशक ।
अशरणशरणदीन द्विज पालक, असुर दुष्ट दुर्जन मददारक ।
वलबुधिज्ञानसतो गुणसागर,अतुल बलशिवरूपविश्वम्भर।भूमिभारटारनजगतारन,प्रकटेहरसुरसन्तउबारन
कुजरसुतानैनदृगतारे,ओजउदधिकेशरीदुलारे । तन्त्रमन्त्रसवपे अधिकारा,हैहनुमत को सुनदृढ़उदारा
अहिरावण दलसहित सँहारा, रामसहित कपि सैन उवारा ।
किये अलौकिक कार्य महाना, रामहृदय सन्तन के प्राना ।
फारि दिखाये हृदयनिज, सभामध्यहनुमान । रोमरोम मे सभामद, लखेतरामभगवान॥
रामआगमन सुधिसुखदायक,भरतहिं जाइदियेकपिनायक,महाकालमहमर्दनहारे,ब्रह्मरामकहँपरमपियारे ।
आद्योपान्तरामकीगाथा,लिखिपापाणापत्रकपिनाथा। वालमीकिमुनिआग्रहमानी, पधरायेसागरनिजपानी ।
गरुडबेग मदमर्दनकीने,अहसुदर्शनको हरि लीने। सत्यभामासौन्दर्यगुमाना, नष्टकियेकपिवरहनुमाना ।
पारथ धनुर्वेदमदहारक,वनेमित्रपुनिदोउभवतारक।अजरअमरहनुमतबलसिन्धु,तृतियाचार्यदीनजनवन्धू ।
तारक लयजगजननि सो, ब्रह्महिंदीने जाइ । भक्तविभीपणरामसे, कपिवरदिये मिलाइ ॥
अथर्ववेदी रामउपनिपद,मे हनुमत उपदेश शुचि । रचिनिज करहनुमान,राखे भक्तो की सुरुचि ॥
श्री वशिष्ठसंहिताशुचि,धरे बीरहनुमन्त रचि। श्रीसीताअष्टाक्षरहु;है स्तोत्र महानशुचि ॥
आदि कवी रामायण, हैं संहिता सुजानवर, रामतत्त्व पारायण, करत कीश करुणाकर।
श्रीकपिपति हनुमान, सीतास्तव कहे पुनि, कविकिंकर अज्ञान हनुमत नाटकमें स्वयं ।

४. श्रीब्रह्माजी

(सृष्टि का आरभकाल श्रीविष्णु के नाभि कमलाग्र भागमे आविर्भूत)

श्री ब्रह्मा सृष्टी सृजक,जगगुरु बनजकुमार,सृष्टि आदिमें प्रकटके, किये विश्व विस्तार॥
द्वादश महाभागवत सुखकर, तिनमें श्रेष्ठकमल भवसुन्दर ।
विश्वपितामह चतुर्वेदवर, सेवतहित चितमो परमेश्वर ।
गरुडध्वजनामी नाभीसो प्रकटी, मारे अमित निशाचर कपटी ।
जनक कौन मम करत विचारा चहु दिशिब्रह्मा दृष्टि पशारा ।
समुझि न पाये जव कहु-भाई, तव तपमह ममदिये लगाई ।
कई हजार वर्षद्विजराई, किये उग्र तप मन चितलाई ।



लखिनिष्कामतपश्याभारी प्रकटभये सन्मुखधनुधारी।
दर्शन पा द्विजभयेसुखारी, तपोमूर्तिब्रह्म मुखचारी।
परम भक्त श्रीरामके, श्रीयुत बनज कुमार,
अखिल विश्व पितामहं, ब्रह्मा परम उदार॥
वालमीकिमुनिवरकहँभाई, आज्ञादियेजगद्गुरुराई।
क्रौंचपक्षिगति–देखिदुखारि, दुखीभयेजवहीतपधारी॥
प्रथमअनुष्टुपछन्दउचारा, भयोवालमीकिमुखद्वारा।
कहेविधाताआदिकवीश्वर, कीन ध्यातो पैपरमेश्वर॥
रामब्रह्मयशवर्णनकाजै, ममआज्ञा हृदयधरिलीजै।
रामार्चाप्रियचतुरसुजाना, शिवसहिताकहत–विद्वाना॥
रामार्चावलविधिचतुरानन, रचेसृष्टिवहुगिरिसरिकानन।
रावणबधहितकृपाअगारालेनचहे जब हरिअवतारा।
तब देवन कहं आज्ञा, दीने जगकर्तारपुनि, सुनउ सर्वमम आज्ञा, रीछ कीश तनुधरिके।
सेवउ जा रघुवर चरण मृत्युलोकमहं जाइ। एक दिवस परमात्मा, स्वयं मिलेगे आइ
जामवन्त आप अघारा, सेवेरामब्रह्म धनुधारा। पुनि रघुवर यश गायन हेता, बोधायनतनु धरे सचेता।
चारोमुखसोकृपा अगारा, चारोवेदनितकरवउचारा। हनुमतशिषपरमसुखसागर, राममन्त्रजापकगुणआकर।
रामवनेजवरामानन्दा, सतचितआनंदघनसुखकन्दा। तवविधि भयेअनन्तानन्दा, दियेसाधुगुरुद्विजनअनदा।
जवजवरामलीलावपुधरही, तवतवआपसगसग रहहीं। रचिवोधायनबृत्तिअनूपा, सोखिलियेभवसागरकूपा।
परमतपश्वी चतुर्मुख, तपि न देत वर्दान करताधरताजगतके ब्रह्माचतुर सुजान।
निजगुरुपवनपुत्र बलपाइ, अद्भुतसृष्टिरचेद्विजराई। भक्तिमार्गनारदहिंवताए, सनकादिककह तपसमुझाए
गुरुवशिष्टकहनामगहाये, नामनामप्रभावअमरपदपाए। रघुवशिनकेगुरुभगवाना, भाग्यरेखदियपलटिसुजाना।
एकवारनाशिकामलद्वारा, प्रकटायेएककीशजुझारा। ऋक्षराजकपिकरशुचिनामा, अतुलितवलप्रतापगुणधामा।
जाकी सन्तति सव ससारा, सोकश्य ब्रह्मासुत प्यारा। बालखिल्य आदिकजेमुनिवरहैसोतुमारेपुत्रद्विजेश्वर।
द्वापरकहं त्रेता किये, नामप्रतापमुनीश, भुक्तिमुक्तिदाता सुना ब्रह्माकर आशीश॥६॥
असुरन कह दीने वरदाना, द्वापरमें ब्रह्माभगवाना। मन्त्रयन्त्रतन्त्रके कर्ता, मन्त्रानीष्ठ ब्रह्मानी भर्ता।
राममन्त्रादीनेद्विजराई, मानसपुत्र वशिष्ठहिं भाई। सम्प्रदाय श्रीकेइसुजाना, चौथे आचरजभगवाना।
अव उपदेश कहउमै गाई, सुने सर्व सज्जनमनलाई। बृहद सुब्रह्मसहिता सुन्दर, नारदपचरात्रकेअन्तर।
वालमीकिरामायणमाहीं, आर्शीरामस्तवझलकाहीं। श्रीस्कन्ध पुराण मझारी, रामगीताकीछटानियारी।
शुचिज्योतिषसिद्धान्तमें, ब्रह्मसिद्धान्तअनूप। अभ्युदयऔर्ध्वस्तोत्रहु, हैसन्तनसुखरूप।
पद्मपुराणखण्डशुचिसुन्दर, सोलहवाअध्यायमनोहर। है तामे एकसुन्दर गाथा, पढैसुनैदेखैद्विजनाथा।

शुचिगायत्रीकवचमनोहर,श्रीवशिष्ठसहिताकेअन्तर। मारुति वन्दननामकग्रन्थारचेविधातामुक्तिकपन्था।
लोकत्रयी कहमोहितकरई,रामकवचब्रह्माकृतअहई। श्रीसीता उपनिषद आदी,अहैवनजसुनकृताअनादी।
जाकेआननश्रुतिप्रकटहीं,ताकेउपदेशनकोगनहीं। रामब्रह्मगुणतीनपुनीता, रजनमतथासुसत्वअजीता।
रजसे ब्रह्मा भे प्रकट,रचन हेतु संसार, तमसे शंकर सत्वसोंचतुर्भुजा सरकार।
दर्शन सुनै सुजान, हैं अमोघ श्रीरामकर, रघुवर मति महान, अरु अमोघ है स्तवन।
रामनाम नित गान,कर सज्जन प्रेम युत,तर भव उदधि महानरामभक्तिसों जन्तुजड।



५. श्रीवशिष्ठजी

(ऋषि पञ्चमी के दिन ब्रह्मलोक मे ब्रह्माजी सत् संकल्प से प्रकट)



जयति जयति जयजगद्गुरु,श्रीवशिष्ठमुनिराज,
कृपादृष्टि की वृष्टि करि,सर्वसुधारिय काज।
मानसपुत्र आपब्रह्माके,परमपूज्य गुरु सूर्यवशके।
वेदमन्त्रद्रष्टा विज्ञानी, द्वितीय ब्रह्म इव गुरुवर्दानी।
राममन्त्रजापक मुनिराजा,जिनपदपद्मनमत सुरराजा।
ब्रह्मलोक तवजन्मस्थाना,कहतसर्ववेदज्ञसुजाना।
सप्तऋषिनमे आपप्रधाना,पूजतसुरमुनिवर पदत्राना।
तपोनीष्ठव्यक्तीत्व महाना,तीनोकालकरसुन्दरज्ञाना।
कामधेनुकी सुतासयानी, रहनितसेवा वरदानी,
द्वापर अग्र त्रेताधरआनी, विधिविधानपलटायेज्ञानी।
एक समय निमिराजने, कीनोहृदय बिचार,
करउ दीर्घ कलीन इक,मख मुक्ति दातार।

जाईस्वगुरुकहविनयसुनावा,सुनिवशिष्ठकेमनअतिभावा। कहवत्सहैनाकविचारा,किन्तुवचनइकमानुहमारा
देवराजमखपूर्णकराई तव तब मखकरवाईहौआई। असकहि आप गयेसुरलोका,परमसमर्थविदारकशोका
निमिराजामनकीनविचार, छगभगुरहैजीवनसारा। शुभकारजमेविलमउचितना,येविचारमन भयउअनमना
पुनिमनमानृपनिश्चितकीने, गौतमऋषिहिंअमन्त्रितकीने।कहेजगद्गुरुकिरपाकिजै,यज्ञारम्भकराममदीजै।
जबलौं गुरु आवैं नहीं, हे जगगुरुमुनिराय,तबलौं यज्ञाऽचार्यपद,मुनिवरदेउ निभाय॥
श्रीगौतममुनिकियस्वीकारा, कीनेयज्ञारम्भ उदारा। देवराजमखपूर्ण कराई, गुरुवशिष्ठजब आये-भाई।
गोतममुनिआचार्यनिहारी, क्रोधितभये जगद्गुरुभारी। निमिहिंशापदीनेगुरुभारी, होअशरीरीमूढअज्ञानी
गुरु अपमानकेरफलपाई,वशो जाइसुरपुर नरराई।तव निमिनृपहुशापदियभारी,विनुअघदण्डदिहेउतपधारी

तासोतुमहुतजउतन जाई, लीजैजन्मपुन मुनिराई ।
दोउतनतजेनिमिषइकमाहीं, ऋषि-मुनि-प्रजावृन्दविलखाहीं ।
नेत्र पलक परबास किय निमिराजा तनु त्यागि, मित्राबरुणकेतेजसोप्रकटेगुरुतिनलागि।
एकवारकौशिकनृप आए, गुरुवशिष्टकहशीश नमाए। कामधेनुपुत्रीवलपाई, किएसदलनृपकी पहुनाई।
कामधेनुकरदेखिप्रतापा,नृपकौशिकमनलोभवियापा। कहजगदगुरुकिरपाकीजै,कामधेनुगोहमकहदीजै ।
विनिमयकहकृपाअगारा, कोटिगऊगजअश्वअपारा। गुरुनकीनेजवस्त्रीकारा, तवनृपबलप्रयोगउरधारा ।
दियभूपतिकोगर्वउतारी, ब्रह्मदण्डइककरमेधारी । आमधेनुवहुदलप्रकटाए, कौशिकदलकेमारिभगाए ।
कौशिकके शतपुत्र तब,कीने क्रोध अपार, गुरु बशिष्ठ पर आक्रण कीने धर्म विसार ।
गुरुवशिष्ठतवकरिहुकारा,किएभस्मकौशिकदलसारा।कोशिकलज्जावससिरनाई,राज्यत्यागीगेवनहिंसिधाई।
किए कठिनतपभूपसुजाना,भयेप्रकटशंकरभगवाना।लखिशंकरपदपद्मपरागा,कौशिकमनउपजेउअनुरागा
गदगद कण्ठ नैन वह नीरा, प्रेम विवस नृप भए अधीरा ।
सावधान मन करि भूपाला, सप्तप्रदक्षिणाकिये ततकाला ।
विश्वामित्र भूप विद्वाना, परे चरण मह दण्ड समाना ।
पुनि उठि शिव मुखचन्द्र निहारी, अस्तुति कीन भूप तपधारी ।
चन्द्रमौलिहर सुनि हर्षाने, कहि प्रियवचन भूप सनमाने ।
कौशिक शिर कर कमल फिराई, कहे कहउ जो हो रुचि-भाई ।
महादानिमोहिंजानु, बरमांगउ जो भाव नम,सत्यवचनममानु,जोमांगै सोइ देउ तोहिं।
कह कौशिक हो दया निधाना, महामृत्युजयशिव भगवाना ।
जो प्रसन्न मो पै अविनाशि, विश्वभर सदगुण के राशी ।
तो प्रभु धनुर्वेद सव दीजै, अग उपागन युत सुन लीजै ।
देव दानवन अस्त्र महाना, सोऊ कृपामय करिय प्रदाना ।
ऋषी गन्धर्वन अस्त्र समेता, दीब्य अस्त्रदे कृपा निकेता ।
एवमस्तु कहि शिव भगवाना, कीने गिरिजा युत प्रस्थाना ।
कौशिक गुरु आश्रम पर जाई, दीने अस्त्र शस्त्र बर्षाई ।
ब्रह्म दण्डसो कृपा निधाना, नष्ट किए कौशिक अभिमाना ।
ब्रह्म अस्त्रहु दण्डसे, दीने गुरुजी गिराय, रौद्र रूप भे जगदगुरु, गयो विश्व थराय
ब्रह्म तेज प्राप्ति हित-भाई, किए उग्र तप पुनि नृप जाई ।
सो तप बल निज व्यर्थ गवाए, भूप त्रिशकुहि स्वर्ग पठाए ।
गुरु वशिष्ठ के शत-सुत-भाई, ताही तप बल दीन जराई ।
एक दिवस सदगुरु मुनिराई, अरुन्धती कह रहे सुनाई ।

तपी सयमी या जगमाहीं, आज कोउ कोशिक सम नाहीं ।
सुनि कोशिक मन लज्जा आई, गिरे वशिष्ठ चरणमा धाई ।
किए ब्रह्म ऋषि कहि सम्माना, जगगुरु श्रीवशिष्ठ भगवाना ।
नृप-दिलीप के समय अघारी, तपवल वर्षाए नभवारी ।
नृप ईक्ष्वाकू वंशके, गुरु पुरोहित आप । ब्रह्मासे तारक लिये, हर-आश्रित जन ताप ।
किय शिष्यत्व आइ स्वीकारा, स्वय ब्रह्म श्रीराम उदारा ।
पूर्ण ब्रह्म श्रीराम, है जाके शिष्यवने, दीये पराशरहि मन्त्र सोइ पुलकाने ।
पचरात्र अरु जोतिप निज सिद्धान्तभने, चतुर्वेद अरु नीतिशास्त्रहु, रामपरत्वसने ।
रामानन्दाचार्यके, गुरु वने प्रभु आइ कलि, सम्प्रदाय श्रीविजयध्वज,लहराएगुरुजगनभलि ।
आश्रम धर्म निरूपण गुरुविरचेग्रन्थ अनूप, करे आश्रमी जो मनन सूखै संसृतिकूप ।
ब्रह्म परातपर रामधामवर्णन सूखरूपा, हवन पद्धती श्रीवशीष्ठकी वेदस्वरूपा ।
वृद्धवशिष्ठ सिद्धान्त है श्रुति धर्म अनूप जग ।
वशिष्ठ स्मृति तन्त्रादिसुनि रामभक्तिकर सुभग मग ।
श्रीवशिष्ठ कल्पादिशुचि श्रीजगगुरुविरचित ग्रन्थबहु ।
कवि किंकर वलरामशठ, सदगुरु के पद पद्म गहु ।
सम्प्रदाय श्रीके यही है, पंचम आचार्य कविकिंर की अधमता क्षमा करैं आर्य ।



६. श्रीपराशरजी

(श्रीवशिष्ठ ऋषिके कालमे उनके आश्रममे)

श्रीशक्ति सुत महाऋषिभुक्ति मुक्तिदातार, कृपा दृष्टिकी वृष्टिकरि,दीजैभ्रम भय जार ।
अदृश्यन्ति माता तव सुखकर, शक्ति पिता बेदज्ञ मुनीश्वर ।
वेद शास्त्र कर सुन्दर ज्ञाना. पाये मातुगर्भ मति माना ।
शक्ति मृत्यु पश्चाद सुजाना, त्यागन चले जगदगुरु प्राना ।
दो पिता महँ कह शान्त्वना, अदृश्यन्तिको कुवर शुचि माना ।
सुनत गर्भकी अमृतवानी, भये मगन मन जगगुरु ज्ञानी ।
विधिवत जात कर्म सव कीने, विविध दान विप्रन कह दीने ।
पाराशर ऋषि नाम गहाये. धर्मशास्त्र विधिवत समुझाये ।
तन्त्र मन्त्रा कर विधिवत ज्ञाना, दीने पौत्राहिं कृपा निधाना ।
पितामरणकोकारण, जब जाने विद्वान, राक्षसयज्ञ सकोप किये शक्ति तनय मतिमान ।



कोटिन दनुज किये महारा,राक्षस यज्ञ मन्त्रके द्वारा
ब्रह्मापुत्रापुलस्त्यभगवाना,किएविनय बहुआइ-सुजाना।
एक असुर तवपितहिं सहारा,ताकह दावानलतुमजारा
निर अपराधीनकरउसँहारा,उचितनाहिंमेशक्तिकुमारा।
जवहिं पितामहँ आ समुझावा,तवहिंशान्तह्वै शीशनवावा
पुनि असुरनको वश उवारा,यज्ञवन्द करि शक्तिकुमारा।
तव पुलस्त्य मुनि कृपा निधाना,दीनेवहुअलभ्यवरदाना
होइहै सर्व शास्त्र कर ज्ञाना,गुप्त प्रकटजेते विधि जाना।

हो पुराण निर्माता,त्रयि विद्याकरज्ञानपुनि,
अग्रगण्य हो ऋषिन महं सत्यबचनममान।

आश्रम अमित किये निर्माना,पाराशरमुनिवर्य-सुजाना।
हय हय वशीखल अज्ञानी,सहसवाह शकर वर्दानी।
ताके वशज अधम अकरमी, नष्ट किये सो सर्व अधर्मी।
सास्कृती प्रचारके ताई, देश भ्रमण कीने मुनिराई।
श्रीयमुना तट इक दिन जाई, निरखे इक कन्या मुनिराई।
सत्यवती धमिरकी कन्या, गर्भाधान करिभे मुनि धन्या।
ज्योतिषसो मुनि दीख विचारी, यासो प्रकटै सुदर्शनधारी।
गर्भाधानमे लागि न वारा, भयो प्रकट एक दिव्य कुमारा।

क्वांरापन अक्षय रह्यो मुनिवरके बर्दान, बेदव्यास कहाये आ, स्वयं विष्णु भगवान।

कृष्णा द्वैपायन महाराजा, ब्यास देव मुनि कुल शिर ताजा।
माताके पदशीश नमाई, पितुसग गमने मुनिवरदाई।
बदरी बन कहँ कीये निवासा, कछु दिन कृपासिन्धु तजि आशा।
देवर्षिन के मध्य सुजाना, व्यासदेवकर उच्च स्थाना।
इन्द्रसभा सदेह मुनि जाहीं, देवराज सो आदर पाहीं।
इन्द्र प्रस्थ पहँचे इकवारा, गुरु बृहस्पति सग उदारा।
षटगोत्रो के आप पवर्तत, स्वसतकर्म राम कहं अर्पत।
गरुड पुराण अनुसार हे-भाई, शिष्य आपके है गणराई।

राममन्त्र के कृपासों मुनिवर भये महान, श्रीसम्प्रदायाचार्यमे छठवें आप सुजान।
वारह सहस श्लोकका, होराशास्त्र विमल, श्रीपाराशरीलघुपुनि, पाराशर स्मृतिनिर्मल।
पाराशरी विशाल अति, वस्तू शास्त्र अमल,पराशरोदित नीतिशास्त्र पढे होत हिय निर्मल।
पाराशरपुराणशुचि, गीता कर जगमान, कवि किंकर बलरामके हैं अराध्य हनुमान॥

ॐ ७. कृष्णद्वैपायन श्रीव्यासजी ॐ

(पराशर कालमे गुरुपूर्णिमाके दिन कालपी उत्तरप्रदेशमे प्रकट)



स्वयं विष्णु भगवान, वेदव्यास महामुनी,
करउ दास कल्यान, हे करुणानिधिजगद्गुरु।

आविर्भाव गुरु पूर्णिमा, बतावै सब सन्तमुनि।
असाढ मास सुन्दर शुचि तिथि अमावस गुनी ।

पाराशर मुनि सुवन, अरु सुख सम्पति दातार गुरु।
वेदव्यास महामुनि रामभद्रपद निकट कुरु ।

औरस पुत्र पराशरके कहत वेद वेदज्ञ गुनी ।
कालपी उत्तर प्रदेशशुचि, जन्मस्थल सुठि कहउसुनी।

सत्यवती श्रीमातुके पुत्र आपबेदज्ञ,
कवि किंकर बलराम तव, यस वर्णौ अतिअज्ञ।

बुद्धिमान नीतिग्य सुजाना, जन्मकालसे तुम भगवाना
वाल्यअवस्थ से मुनिराई, किय सवर्ष धर्म के ताई ।
तुमरो यस त्रयलोक उजागर, दिव्य शक्ति भक्तिके सागर ।
धर्म सहिष्णुता ही निहारी अजहु कालपी मे सुखकारी ।
गुरु स्मारक अजहु सोहावै, रामानन्दी सन्त पूजावै ।
परम विलक्षण तव अवतारा, को अस कवि कथिलह जो पारा ।
दया सुपर बस दीन दयाला, वेद विभाग किये ततकाला ।
अल्प बुद्धि जावन, के काजा, चारि किय श्रुति महराजा ।

किये अथर्बण बेद कहं, मान्य महा मुनिराय, निर्भिमानताके सदन, बेदविज्ञद्विज राय ।

अष्टादश पुराणके कर्ता, महाभारत आदिकके भर्ता ।
परमहश शुकदेव मुनिशा, तिनके गुरुसू आप जगदीशा ।
राममन्त्र निज पितु सन पाये, पुनि शुकदेवहिं आप सुनाये ।
सतये आचरज बरदानी, सम्प्रदाय श्रीके विज्ञानी ।
कीन समन्वय सब विचार कर अरु सम्मान सर्व देवन कर
कथाकार है जगमे जेते, व्यास कहावत तुमरे नाते ।
जितने है वक्ता जगमाहीं, ब्यास देवके ऋणी कहाहीं ।
ऋक यजु तथा साम कर भाई, वर्गीकरण किये भुनि राई ।

ब्रह्म सूत्र आदिकहुके सृजक आपगुरुदेव, कविकिकिर बल कहंचरण शरणमे लेव ।।४।।

ꣾ ८. श्रीशुकदेवाचार्यजी ꣾ

(व्यास कालमे व्यास आश्रममे प्रकट)



व्यासदेव के शिष्य तुम, वेदशास्त्र मर्मज्ञ,
परमहंस शुकदेवजी, अर्चै तव पद अज्ञ ।

एक समय कर येइतिहासा,सुनै सर्व श्रोतासहुलाशा
नारद पारवती पहँ आये,पादपद्म महँ शीशनमाये ।
किये प्रश्न मुनिवर शिरनाई,एक बात मादेउ बताई
मुण्डमालजोशिवगरमाहीं,कहउजनमिकिनकेशिरआही
उमाकही सुतमैनाजानउ,काके मुण्डनकछु,पहिचानउ
नारद कह जब आवपुरारी,पूछिउ तब उनसे महतारी।
असकहिकरतरामगुण गाना,पिता भवनकहकियप्रस्था
उमा कर इत हृदय विचारा,करत कपटमोतेकरतारा।
करके मुण्ड गरे लटकाये,कबहु न मोकह नाथ बताये
इतने मे शिव शकर आये,पारवती पदरज दृगलाये।

अर्चन बन्दन करि उमा,बोली मृदु मुसुकाय,स्वामी पूछउ बात इक,कहिये कपट बिहाय

पुछउ काह कहउ किन प्यारी, बोली उमा सुनउ शशिधारी ।
मुण्डमाल जो प्रभुगर सोहै, देव, दनुज मुनियन मन मोहै ।
है काके मस्तक बड भागी, कहउ सदा शिव सदा अदागी ।
जानि गये शकर मन माही, नारदके करतब ये आहीं ।
पुनि बोले सुनु हिमगिरि जाई, मस्तक ये सब तुमरोइ अहई ।
जब जब तुम तन त्यागउ एहा, तब तब गिरजा सहित सनेहा ।
निज माला मह लेउ मिलाई, तब सिर कमल पुष्पकी नाई ।
सुनि गिरिजा मन भई दुखारी, कहे दीन बच पुनि सुकमारी ।

आपअमर मम मृत्यु किमि,होवैकृपा अगार,नाथ कहो समुझाइमोहिं,ऐ शशिभालउदार

अमर कथाके दिव्य प्रतापा, जरा मरण दुख हमहिं न व्यापा ।
तब कह गिरजा पदशिरनाई, हमहु को प्रभु देउ सुनाई ।
गिरिकैलाश शिखर इक सुन्दर, चढे सदा शिव ताके ऊपर ।
नन्दिहिं द्वारसुस्थित करि दीना, आप प्रवेश गुफा मह कीना ।
लागे कहन कथा शिव शकर, लागी सुनै उमा सुखमा कर ।
गई उमा कछु दिनमे सोई, किन्तु हुकारि देतू रह कोई ।

समाधीस्थहर कथा सुनाये, सुनत कौन ये सुधि ना पाये।
अमर कथा भई पूरी जवही, नेत्र कमल खोले शिव तवहीं।

शिव मन कीन विचार, लखि निद्रा बस उमा कहं है कोई बटभार, मोई हुंकारी दीन इत

इतनेमे शुक चला पराई, तजे त्रिशूल शम्भू खिशियाई।
व्यास प्रिया उर पैठेउ जाई, सो शुक शिव त्रिशूल भय पाई।
गयउ त्रिशूल लवटि शिव पाही, महादेव मनमे मुसुकाहीं।
अमर कथाके दिव्य प्रतापा, सिद्धी सव शुकके उर व्यापा।
भिन्न भिन्न तन धारण शक्ति, राम ब्रह्म कर विशुद्ध सुभक्ति।
लह सर्वत्र गमनकी शक्ति, सव विद्या सर्वेश्वर भक्ति।

धारेउ मानव रूप, गर्भ प्रवेशत शुक शिशु, प्रकटे द्विजकुल भूप, सोरह सम्मत गर्भरहि।

बाह्य जगतमा जब शुक आये, भूमि परत तप हित वन धाये।
बालब्रह्मचारी श्रुतिधारी, परम तपस्वी वक्ता भारी।
है अ-दृश्य लिग तपधारी, अव्याहत गति राम पूजारी।
सम्प्रदाय श्रीके- भगवाना, हे अष्टम आचार्य-सुजाना।
व्यास शिष्य परमारथ ज्ञाता, भुक्ति मुक्ति प्रद सब सुखदाता।
गुरुहिं ब्रह्मसे श्रेष्ठ वखानै, नारि पुरुषको मर्म न जानै॥
सात दिवस भागवत सुनाई, दिये परीक्षित स्वर्ग पठाई।
अष्टादश पुराणके वक्ता, चतुर्वेद षटशास्त्रन ज्ञाता।

श्री ब्रह्मा अवतार, बोधायन भगवान प्रभु, योगीपरम उदार, सदादिगम्बर भेषधर।
तिनकहं किये प्रदान, दिव्यषडक्षर मन्त्रगुरु, शुकाचार्य भगवान, वक्तासुरपतिगुरुमम।
विरचिअनेकनग्रन्थ भक्ति तथा चहुं मुक्तिप्रद, रामधामकरपन्थ, किये सुलभमबजीवमहं
श्रीपुरुषोत्तमाचार्यके, मुक्तिगुरुभगवानशुचि, कलिकिकरुणाराम कहं, दीजैसियवरभक्तिप्रभु

❀ ९. जगद्गुरु श्रीपुरुषोत्तमाचार्यजी बोधायन ❀

(पौष कृष्ण द्वादशी बोधायनसर मिथिलामे प्रकट)

श्रीब्रह्मा अवतार गुरु, शंकर दत्तकुमार, चारुमती शुचिकोखसों, प्रकटे आप उदार।

१ पुण्डरीक तव नाम जनमकर, दुतिय पुत्र शकर द्विजवर कर।
२, अग्रज इनके वर्ष सुजाना, अलह उपवर्ष नाम भगवाना।

३ श्रीकृतकोटि अयाचित नामा, दिये पुन बुध जनगुण धामा ।
४ शुकाचार्यके शिष्य सुजाना, श्रीपुरुषोत्तमाचार्य भगवाना ।
५ ज्ञानभक्तिके गुरु भण्डारा, कीने बहुजीवन उद्धारा ।
६ काशीके सारे विद्वाना, कहि बोधायनकिय सम्माना ।
७ कालान्तर मह सुनहु सुजाना, श्रीबोधायन नाम महाना ।
शबर स्वामि अरु पूर्णानन्दा, रामानुज आदिक द्विजचन्दा ।


भगवान् श्रीपुरुषोत्तमाचार्य जी बोधायन

इनसों सम्मानित रहे,सदा आप भगवान,
सम्प्रदाय श्रीमे प्रभो,हो तुम सूर्य समान ।

व्याडिपाणिनीवररुचिआदी, शिष्यआपकेईश्वरवादी
पिगलादिमुनिवरतवचेरे,और शिष्य प्रशिष्य घनेरे।
द्वादशाध्यायी कर्ममिमांसा,रचे आपगुरुलहेप्रशसा
देव मिमासापुन बनाये,धर्मभक्ति करध्वजलहराये।
उभय मिमाशापर गुरुदेवा,विरचिवृत्तिकीनेजगसेवा
विद्यावतिके पतिपरमेश्वर,महासिद्धजगगुरुसिद्धेश्वर।
उपकोषा पिता जगद्धर,पुरुषोत्तमाचार्य मगलकर
भूपमहानदजीके द्वारा,लहे अयाचित पदकउदारा।
भअभिरामजगतसोमुनिवर,पतिनीगईजबहिंश्रीहरिघर
करनकठिनतपहृदयविचारी,तजिआश्रमगेवनहिंसिधारी।

किये अयाचितघोरतप, सद्गुरु प्राप्तिकाज, है प्रसन्न प्रकटे तुरत, शुकदेव महाराज।

दिये योग दर्शन उपदेशा, श्रीमद् शुकाचार्य द्विज-ईशा ।
ब्रह्मसूत्र पर कृपानिधाना, दिव्यवृत्ति इक रचे सुजाना ।
अभिप्राय श्री ब्रह्मसूत्र कर, समुझाये श्रीव्यास मुनीश्वर ।
मृतक विप्र सुत जीवित कीने, राममन्त्र की दीक्षा दीने ।
वैष्णव सस्कार सुखधामा, करि दीने गगाधर नामा ।
पुनि बोधायन वृत्ति पढाये, वेदान्तसूत्र मर्म समुझाये ।
वेदशास्त्रकर सुन्दर ज्ञाना, कीने गगा धरहिं प्रदाना ।
कात्यायन पाणिनी बचाये, शाप मुक्तकरि शिष्य बनाये ।

बोधायन आचार्यकी, कृतियां अमित अनूप.ताकेहित अघटित न कछु जोब्रह्मा सुरभूप ।
सूक्ष्ममे है कथित यहं, चरित आपको नाथ,कविकिंकर बलराम कहं कीजै नाथ सनाथ।

बोधायन प्रपत्ति शुचि पटकर्म, रामायणको सार सु उत्तम ।
पुरुषोत्तमाचार्य-सुनि गीता, वेद रहस्यहु परम पुनीता ।
सप्तकाण्डार्थ मनोहर सुन्दर, गायत्री रामायण सुखकर ।
श्रीबोधायन धर्मशास्त्र शुचि, द्वै-जाये सन्तनको बहु रुचि ।
धर्म सूत्र गृह-सूत्र मनोहर, पढे सुने जग जीवन भ्रम जर ।
वोधायन वृत्ति ब्रह्म सूत्रहु, पठन मनन बिनसै सब दुखहु ।
ग्रन्थ सुद्वादश शुद्धि समुच्चय, रामनाम माला मुक्तिमय ।
वोधायन कृतपूर्व मीमासा, सन्त सुजन सुनिकरत प्रशसा ।

बोधायन भगबान कर, पूर्ण यहा अख्यान, सूक्ष्ममे रचना हुई, सुनैं सभी विद्वान ।

१०. जगद्गुरु श्रीगंगाधराचार्यजी

(माघकृष्ण एकादशी ४३२ ईशापूर्व प्रतिष्ठानपुर प्रयागमे प्रकट २३२ ईशापूर्वमे साकेतवास)


जगद्गुरु श्रीगङ्गाधराचार्य जी

गंगाधरमतिवान, परमतपश्वी ज्ञान नीधि
शुकदेव शिष्यसुजान विद्यावारीधिदयामय ।

जन्मसमय करकरउ वखाना, माघ कृष्णएकादशिजाना
प्रतिष्ठानपुर जन्मस्थाना, तीर्थराज माधव कर थाना ।
सरयू पारिण विप्र सुजाना, रहे पिता उदभटविद्वाना
रामनारायणशुक्ल द्विजेश्वर, चतुर्वेद ज्ञाताबुधि सागर।
कमलादेवी मातु पुनीता, पति भक्ति वलविषयन जीता
प्रतिष्ठानपुर गगा किनारे, आप अचानक स्वर्गसिधारे।
माता पिता रुदन सुनि काना, भये द्रवितमुनिवरविद्वाना
वोधायनाचार्य भगवाना, राखे शुक्ला सुतके प्राना ।
परम हर्ष ना शके पचाई, मात पिता गे स्वर्गसिधाई
गगादत्त मन कियअनुमान, जाइ रहे जगगुरुपदत्राना।

बिनती सुनि मनमे द्रवित बोधायन भगवान, रामषडाक्षरमन्त्र पुनि वटु कह कीन प्रदान।

गगाधराचार्य है नामा, किये जगद्गुरु पूरण कामा ।
रही अषाढि पूर्णिमा, सुखकर ता दिन दीक्षित भये विप्रवर ।
श्रीब्रह्मा अवतार सुजाना, पुरुषोत्तमाचार्य भगवाना ।
गुप्तप्रकट रहस्य कर ज्ञाना, साम्प्रदायिक लहे, सुजाना ।
किये तपस्या कठिन मुनीशा, निज गुरु पद पकज धरिशीशा ।

परम त्यागकी मूर्ति अवारी, सेवै सिया रमन धनु धारी ।
समकालीन रहे श्री मुनिवर, श्रीचाणक्य विप्रके सुखकर ।
शाह सिकन्दरको उपदेशा, दीने गगादत्त द्विजेशा ।
जग छणभगुरता समुझाए, जीव नित्यता ताहि सुनाए ।
बिन्दुसार समय तिरस्कृत, रहा जो निज अस्था अच्युत ।
राधसार गुप्तहि थापित कीने, अभयवाद ताकह मुनिदीने ।
त्यागकी चर्चा घरघर व्यापी, पावन किए अनेकन पापी ।
बौद्ध अशोक भुवालके नष्ट किये अभिमान बिन्दुसारको मन्त्रदै राखे जग गुरुमान ।
रामानंदसम्प्रदायके हैं दशवें आचार्य कविकिंकरबलरामके सफल करेंगे कार्य ।
साधन दीपिका ग्रन्थ मनोहर, सन्तनहित विरचे करुणाकर ।
अनन्यता बेद नहि सुखाकर, रामईशत्वहु परम मनोहर ।
सूत्स्वरूप सप्तकम पुनीता, रहस्यार्थ चतुष्टयम अजीता ।
श्रीरामस्तव कलानीधि सुन्दर, किये त्रयताप जायसवजर ।
श्रीवोधायन की सुश्लोका, पढे सुने जन होहि अशोका ।
शुकाचार्य मतदीप-सुजाना, विरचे गगाधर भगवाना ।
है यह भागवत टीका सुन्दर, पढे सुने तर भव नीधि दुस्तर ।
सम्प्रदाय श्री केर उजागर, गगाधराचार्य मति आगर ।



❀ ११. जगद्गुरु श्रीसदानन्दाचार्यजी ❀

(माघशुक्लपच्चमी २८० ईशापूर्व गढमुक्तेश्वरमे प्रकट साकेतवास २३ पूर्व)

सदानन्द आनन्द नीधि, अवधविहारीदास, कृपाअम्बुनीधि जगद्गुरु, छेदियमकीफांस
माघ कृष्णपाचम तिथि सुन्दर, आये जवजग गुरु भूतल पर ।
जन्मास्थल है गढ मुक्तेश्वर, सुनि उत्तरप्रदेशमा सुखकर ।
पिता आपके सब सुखधामा, था दशरथ पण्डितजी नामा ।
ममता मयि मरालिका माता पतिव्रता परिजन सुखदाता ।
बाल्यावस्था सो विद्वाना, राखै राजनीति पर ध्याना ।
घृणाबौद्ध मत सोबहु करही, धर्म सनातन हित नित लडही ।
ले गए बौद्ध विहार उठाई, बालक एक दिनावरिधाई ।
बालक मुक्त करावन हेता, किए आप सघर्ष सचेता ।



बौद्धन प्रतिकूलइक, विरचे दल मतिमान,
इतनेमे मातापिता, किय हरिलोक पयान ।

तव अशोक भूपतिखिसियाना, देशनिकाल दियअज्ञाना
भ्रमण करत सो विप्र कुमारा, पतञ्जलि पदपद्मनिहारा।
गुप्त गोनर्द सलाहहिं पाई, रहे सनकं विप्र सुखदाई
यातिविभ्रमणकरतकछुकाला, किएव्यतीतश्रीदशरथलाला
ख्याती सुनि गंगाधरमुनिकी, शरणागतवत्सलहरिप्रियकी
जाइ जगद्गुरु के पदलागे, गंगाधराचार्य अनुरागे ।
कुणालअरु साम्प्रति सहयोगा, किएअमितघरग्रामअरोगा
पुनि गंगाधरके पदलागी भएद्विजेश्वर अतिवडभागी ।

सत्यनारायण शिष्यभे, गंगाधर के जाइ,
गुरुआज्ञासे विप्रवर, रहे प्रयागहि आइ ।

भाष्यकर मुनिकुलतिलक पतंजलिद्युतिवान, दोनोमें सम्बन्ध था, अति घनीष्ठमतिमान ।
परदेशी आक्रमणकी, चर्चा देशमहान, ता चर्चामे सत्यता लख महर्षि विद्वान ।
मौर्यवंशसम्राट् था बृहद्रथ अतिबलवान, पुष्यमित्र श्रीशुंगसों, किय सम्पर्कसुजान ।
पुष्यमित्र नृप मुकुटमणि गे प्रयाग बलवान, पतंजलि के संगमिलि, रचे व्यूह विद्वान ।
कूटनीतिके जालमें फंसे अमित विद्वान, प्रजा अश्रद्धामे फंसे बृहद्रथ बलवान ।
डोर सुदृढ सुठिराज्यकी शुंग हांथ गइ आइ, अश्वमेध करवाये द्वै पतंजलि सुखपाइ ।
यशकामना विहाय भ्रमण किये पश्चिम दिशा, विश्रामद्वारिकहिआयकियेकछुकविश्रामपुनि
तपे कछुक दिन जाइ श्रीगिरनारगुफा महं, दीने गुफा बनाइ शुंग शासकों ने तहा ।
तीर्थस्वरूप कहाय वही कन्दरा आजकल, मठपदवी गा पाय बाबा प्यारेलाल कर ।
वाक सिद्धिथी आपको कहत सर्वमुनिराय, (श्री)रामयज्ञपद्धति रचे महामुनी सुखपाय ।
भारत मध्यमुनीश किये स्वय बहुराममख, सदानन्दद्विज ईश जगतपसारे राममख ।
रहे प्रचारक आप रामषडाक्षरमन्त्रके, जाते घरघर कांप प्रतिवादी गणनाम सुनि ।
कृतियां दिव्य अनन्त सदानन्द मुनिवर्यकी, पढैसुनै नित सन्तश्रीराघवांघ्रि सुवर्णनम
रचे महामुनिराय बेदान्तसार सुस्तवम, पापपुज विनाशाय जाके श्रवणमननरटन ।
सदानन्द आचार्य बोधायन पंचकादिरचि, रच जो सदगुरु आर्य बहुतक ग्रन्थ अप्राप्य है
सदानन्दआचार्य कृपासिन्धु करुणायतन, श्रौत विशिष्टप्रचार्य कीने जगगुरु जन्मभर ।
कविकिंकरबलराम सुमिरि आपको पदकमल, चरितसन्तसुखधाम, रचेउ यथामतिअधमयह

##卐 १२. जगद्गुरु श्रीरामेश्वरानन्दाचार्यजी 卐

(वैशाखशुक्ल तृतीया ३६ वि. स पूर्व कामदगिरिमे प्रकट
ज्येष्ठशुक्ल एकादशी २३६ वि स मे साकेतवास)

रामेश्वरानन्दाचार्य, जगद्गुरु जगके हितु, रामभक्त शुचि आर्य सुब्राह्मकुलयशकेतू ।

जन्मकाल अब करउ वखाना, श्रवण करै सज्जन विद्वाना ।
परम दिव्य वैसाख मनोहर, शुक्लपक्ष तीजेतिथि सुखकर ।
रहे पिता उदभट विद्वाना, पूर्वमीमाशाके–मति माना ।
कल्पनाथ मिश्रा सुचि नामा, नित सुमिरै मनमे श्रीरामा ।
माता पद्मादेवी सुखकर, पतिव्रता सद्गुणके सागर ।
रुक्मिणि रमन जन्म कर नामा, सुनउ सर्व सज्जन गुण धामा ।
द्वादश वर्ष बिताये गृहमे, पितु आज्ञा पुनि गये काशी ।
भाव विभूति नाना द्विजवर, बसि काशीसेवै नितहरिहर ।

उपाध्यायजीने दिया विधिवत अक्षरज्ञाना, सामगानशास्त्रार्थमे हुये श्रेष्ठ विद्वान् ।

साम यजुरऋक बेद गान मे लहे एकता आर्यावर्त मे ।
उन इस वरष अवस्था अन्तर, वहु द्वन्दी जीते द्विजवर ।
शाक्त शैव वहु वादन आए, हनुमत कृपा सर्वहिं विचलाए ।
बौद्धभिक्षु जीते वरियाई, रुक्मिणि रमण विप्र सुखदाई ।
वामपन्थियन हेरि पछारे, सियारमण रघुवीर सहारे ।
अल्प वयस्क मन्य द्विजराई, अमर कीति कह दिये हराई ।
काशीके जेते विद्वाना, किय प्रमुदित वटुकर सम्माना ।
किन्तु न उर आवा अभिमाना, रामकृपा कह द्विज विद्वाना ।
सार्वभौम सास्वतको पद, लहे बुधन सो विप्र निरापद ।
रामभक्ति तव उरमा जागी, सोचन लगे विप्र बड भागी ।

सदानन्द आचार्यके दर्शन लहे द्विजेश, दीक्षाकी इच्छा भई प्रेरक हृदय रमेश ।

विनती कर प्रसन्न गुरु कीने, आशीर्वाद जगदगुरु दीने ।
कहे वत्स आयहु केहि काजा, विप्र सुनि ये महाराजा ।
चरण शरण दे निर्भय कीजै, राममन्त्रकी भिक्षा दीजै ।
गृह सुख गुरु द्विज वरहि बुझाए, किन्तु एकउ द्विज मन भाए ।



तब गुरु सस्कार करवाई,राममन्त्र दिय द्विजहिं सुनाई
जेठ मासशुचिसुखकर सुन्दर,गग दश हरापरममनोहर।
तेहिदिन दीक्षित भयेकुमारा,तजमायारघुपतिहिंसम्हारा
रामेश्वरानन्द है नाना,किए विप्र कह पूरणकामा ।

रामेश्वरानन्दाचार्य,बौद्ध विरोध किये सदा,
वोधायनमताचार्य रामेश्वरानंद जगद्गुरु ।

उत्तर पहुचे जगगुरु जवहीं,द्वन्द्व मचायेवौद्धन तबहीं
तह बौद्धनको मूल उपारी,वैदिकधर्म थापे अविकारी।
पुनिपश्चिमदिशि जाइ मझाये,पैठन भूपनभक्त वनाए
रामभक्तिकरविमलपताका,जगगुरुकृपाचहुदिशि व्यापा
भए सफल जगगुरु विज्ञानी,की नेवौद्ध मतोकी हानी
वौद्ध सुभक्त समन्वित शाखा,महयान जन्माबुधभाखा।
बौद्ध मूर्तिकर किए निर्माना, धर्म सनातन लखि उत्थाना । ।
अन्तिम जीवन मह मुनिराई, वसे सुराश्ट देश मह जाई ।

अवधधामपुनिजाइ रामयज्ञ विधिवत किये, रामदूत गे आइ गये आप साकेत कहं ।
यद्यपि अमित प्रबन्ध जगद्गुरु केर प्रसिद्ध हैं,प्रकाशित निवन्ध हैतीन सुनैताके सुजन ।
रामप्राप्तिपद्धति विमल,रचेमहामनिराय,होविकाशित हियकमल कविकिकरलहरामरति ।
सत्प्रसुप्रवोधा मृतहु जगद्गुरु केर निबन्ध इक,पावै अमिय तत्त्वहु टूटै जगके फन्द सर्ब।

॥ १३. जगद्गुरुश्रीद्वारानन्दाचार्यजी ॥

(फाल्गुन पूर्णिमा १६६ वि स द्वारका मे, आषाढ शुक्लतृतीया ३७६ मे साकेतवास)

द्वारानन्द आनन्दनिधि सन्तन हितसुररूख,कविकिंकर वलराम कहं रामभक्तिकीभूख ।

श्रीहरिशकर भट्ट सुजाना, पौराणिक उद्भट विद्वाना ।
रही गोमती पतिनी सुन्दर पतिब्रता सदगुणन केर घर ।
धाम द्वारिका जगविख्याता, भुक्ति मुक्तिसुखसम्पतिदाता ।
है जन्मस्थल सोइ गुरुवरको चतुर्बेद ज्ञाताद्विजवरको ।
विक्रम सम्मत एक छानबे, भये प्रकटरागभक्ति कागवे ।
पितानिवासस्थलशुचि सुन्दर, सागरतटअतिभव्यमनोहर ।
थे काशी प्रसिद्ध श्रुतिधारी, चारिबेद वक्ता ब्रतधारी ।
देशधर्मकी दशा निहारी, भए दुखी द्विज मणिमनभारी ।



रहि विरक्त आजीवन करउ धर्मउद्धार,
सदगुरुसों लउ दीक्षादृढ मनकीन विचार ।

रामेश्वरान द के द्वारा,दीक्षित भए द्विजेश कुमारा
गुरुवरसो सब विद्या पाई,पूर्णज्ञान निधि मे द्विजराई।
शास्त्रार्थमे निपुण-सुजाना,पण्डित करै सदा सम्माना
भ्रमणकरत सुराष्टमा आये,जनसमूहदर्शन लगिधाये।
देवाशंकर विप्रसुजाना, मिले परिजनन सह सम्माना
द्वारानन्दाचार्य विद्वाना,गहे जाइमा पितु पदत्राना।
बेद शास्त्र सब अग समेता,रहे कण्ठगत किएद्विजेशा
दियसुराष्टवासिन भण्डारा,निरखिसुबैष्णवमेप उदारा।

रामचरणगुरु चरणमे करिके दृढ विश्वास,
बौद्धगुरुन सों वादिके कीने उन्हे हतास ।

किय भारतसौ बौद्ध रवाना द्वारानन्दाचार्य भगवाना ।
बौद्ध प्रदेशन मे मुनिराई दीनवैष्णव मठ बनवाई ।
रामयज्ञ तह किए कराए, श्रौत विशिष्टाद्वैत चमकाए ।
उत्तर दक्षिण पूरब पश्चिम, किय परास्तबौद्धन धरखम ।
काचिपुरी माश्री गुरुसुखकर, रचे परात्व मिमाशा सुन्दर ।
प्रस्नोत्तरावली पुनि गाए, बैदिकधर्मपरत्व दिखाए ।
रामचन्द्र दशकम निर्माना, किए जगगुरु कृपानिधाना ।
पाप निवारक सग्रहनामा । ग्रन्थ रचे जगगुरु गुणधामा ।

जन्मभूमिमे आइपुनि पाये बहु सम्मान देशभ्रमण करि राममख किये अमित भगवान ।
कीने गुरु विद्वान बौद्ध गुरुन कर उर विमल,अमित बौद्ध विद्वानहिन धर्मप्रवेश किय ।
उद्धारक हिन्दुत्वके जगगुरुद्वारानन्द महासिद्धजन तारक कीने आर्य स्वछन्द ।
द्वारानन्दाचार्य कहं श्रीआचार्यत्व गहाय आप गये साकेत महं रामेश्वर मुनिराय ।

५ १४. जगद्गुरुश्रीदेवानन्दाचार्यजी ५

(वैशाखशुक्ल दशमी ३२६ वि स प्रयागमे प्रकट माघपूर्णिमा५२६ वि स मे साकेतवास)

सुरगुरुकेअवतारविद्याबारिधि दयामय, श्रीसम्प्रदाय, अचार रामभक्त सबविधिअभय

जन्मस्थल प्रयाग प्रयाग शुचि सुन्दर, प्रकटे सुर गुरु आत्रिबेदी घर ।
शुचि वैइसाख मास प्रति सुखकर, शुक्लपक्ष तिथि दशम मनोहर ।



बिक्रमसम्मतसुनहु-सुजाना,तीनसतओरछब्बिसवखाना।
त्रिवेदी मनमोहन बुधवर,मातानाम सरस्वति सुन्दर।
किये तपश्या मन चितलाई,देवप्रयाग मध्य द्विजराई
कीन वृहस्पतिपदकरध्याना,पुत्र हेतुद्विजवर्यसुजाना।
द्विजदम्पतितप देखि अपारा,भये,द्रवितअगिराकुमारा
स्वप्न माहिं दर्शन दियआई,कहे मागुवर द्विजराई।

द्विजदम्पतिकह सुनिय प्रभु जो प्रसन्नभगवान
आप सरिष इकपुत्रदै कीजैजनकल्यान।

राम आज्ञा तिनै सुनाई,कहे पुत्र हम होवै आई
सुनि अति प्रियसुरगुरुकीवानी,भेप्रसन्नमनमोहनज्ञान
कछु दिनगयेसुनहुमबसज्जन,भयेप्रकटसुरगुरुसुरराजन
वर्षचारि बीते मति माना, दर्शदियेसियपतिभगवाना।

जबसे दर्शदिये रघुनन्दन, चित्रकूटमे त्रिभुवन वन्दन।
तबसो देवदत्त सुकुमारा, लिये मौन ब्रत कठिन उदारा।
रहै समाधि अवस्था माही, चलै फिरै बोलै कछु नाही।
कुल गुरु इनके महासिद्धवर, द्वारानन्दाचार्य मुनिश्वर।
मनमोहनकी बिनती मानी, आये मण्डल युत वर्दानी।

कीने द्वारानन्द देवदत्त कर उपनयन, दम्पति परमानन्द लखि जगगुरुके पदकमल।

सम्मत तीन सत तैतिस (३३३) जाना, देवदत्त भे परम समाना।
देव प्रयाग गुरु आश्रम माही, पढे वर्षद्वादस तपधारी।
चतुर्बेद षटशास्त्र पुराना, पढिलीने गुरुसो-मतिमाना।
प्रयाग काशी बुध सारे, देवदत्त करिवाद पछारे।
दर्शन महारथी पद दाना, कीने काशीके विद्वाना।
सम्मत तीन सत सैतालिस मे (३४७), परे देवदत्त गुरु चरण मे।
सुनि बिनती जग गुरु मुसुकाने, निकट बुलाइ द्विजहिं सन्माने।
बैष्णव सस्कार करवाई, दीने राममन्त्र मुनिराई।

देवानन्दनाम शुचि दीने जगगुरुदेव, देवानन्द विरक्त हो करै सन्तगुरुसेव।

पुनि गुरु सँग द्विजेश सुजाना, तीर्थाटन हित कीन पयाना।
जा बद्री पदशीश नमाये, गगोत्री यमुनोत्रि नहाये।
पुनि केदार हो कृपा निधाना, मुक्ति नारायण किय प्रस्थाना।

मिथिला काशी अवध पधारे, तीर्थराज पदपद्म निहारे ।
राम विहार धाम शुचि सुन्दर, चित्रकूट पुनि लखे मुनीश्वर ।
तहा किये कछु दिन विश्रामा, नीलाचल निरखे सुख धामा ।
सेतु बन्धके दर्शन कीने, राम पादपकज चित दीने ।
रग-विष्णुकाची पुनि आये, गुरुवर पादपद्म शिरनाये ।

सु पंचवटी किष्किन्धा निरखे गुरु संग जाइ, पुनः तापती तट गये जगदगुरु हर्षाइ ।

जगगुरु श्रीब्रह्माऽवतारकी, नमे समाधी बोधायन की ।
किये तहा कछु दिन आरामा. देवानन्दाचार्य गुण धामा ।
बोधायनाचार्य निशि माही, दिये प्रकटि दर्शन द्विज काही ।
पुनिदेवानद निकट बुलाई, कहे त्रिदण्ड ग्रहण करु जाई ।
करु सक्षिप्तबोधायन वृत्ती, करउ सदा सीतावर भक्ति ।
लेहु त्रिदण्ड गुरुसो जाई, भे कृत कृत्य महामुनि राई ।
पुन द्वारिका पुष्कर आये, व्रज प्रदेश परिकिरमा लाये ।
कुरुक्षेत्र कर दर्शन कीने, काश्मीर कहु पुनि चलि दीने ।

भरीसभामेआपकोमिलीउपाधीदिव्य, अपरबोधायनाचार्य कहि सत्कारे बुध भव्य ।

द्वारानन्दाचार्य सुजाना, किये आचार्य पद इनहिं प्रदाना ।
आप प्रयाग धाम मह जाई, राममन्त्र जप किय मन लाई ।
अशाह भयकर पदवीदाना, कीने काशीके विद्वाना ।
अवधधामके मिलि सब सन्ता, तथा गृही सन्यासि महन्ता ।
सुठि शताब्धि गुरुवरकी मनाये, भारतके सब सन्त बुलाये ।
जगगुरु हे तुम धर्म अधारा, मास दिवस भा जय जयकारा ।
कई राम मख किये गुरुराई, भूतलके साकेतहिं जाई ।

करवाये दर्शन तहां रघुपतिकरमुनिराय, गगनोपरि पुष्पक चढे रामलखण कपिराय ।
गादी सौंपे शिष्य कहँ देवानदभगवान, गयेआप साकेत महं चढि सुठि दीव्य विमान ।
कृतियां कुछ वर्णन करु हैं जो प्राप्य-सुजान, सदाचार प्रदीपिका राघवअष्टक जान ।
ब्रह्म सुलक्षण संस्तवः रचे मुनी विद्वान, योग सुपंचक आदिहु गुरु ग्रन्थ महान ।

श्रीबोधायन वृत्तिसार, पुनि ग्रन्थ बनाये, शुचि प्रमिताक्षरा वृत्ति सृजन करि धर्म बचाये ।
सिद्धान्त विशिष्टाद्वैत ध्वज सब घरघर फहराये,नास्ति आस्तिक बनाकर रामकी भक्ति सिखाये ।
पवनपुत्र हनुमान, चरणमे ध्यान लगाये, मातपिता कुल तारि आप साकेत सिधाये ।

कविकिंक बलराम विनवैबारंबार, गुरु दे सीता पति भक्ति भव सागरसे पारकरु ।

॥ १५. जगद्गुरु श्रीश्यामानन्दाचार्यजी ॥

(आषाढ शुक्ल द्वितीया ४८६ वि स जगन्नाथपुरीमे प्रकट ६८६ वि म मे साकेतवास)



जगद्गुरु श्री श्यामानन्दाचार्यजी

श्यामानन्दाचार्य महासिद्धसदगुणसदन,
महाकवि शुचिआर्य विद्यावारिधिभक्तिधन ।

पिता रहे प्रकाण्ड विद्वाना,रामभक्ति घनवर्नी महाना
वर्धमान नगरीके वाशी,बुध सम्म्राटज्ञान गुणराशी।
माता नाम यशोदा देवी,पतिहिंईश गनियुगपद सेवी
उपाध्यायद्विजगुणगणधामा,तिनकेगृहजन्मेद्विजश्यामा
रहउन्नीसवरष लो द्विजवर,निज नानानानीकेघर पर
नाना गृह विद्या सब पाये,वेदशास्त्र दर्शनहुमझाये ।
श्री जगदीशपुरी महजाई,किये अध्ययन पुनिद्विजराई
श्यामाचरणविप्रसुखदाई,किय अध्यापनकाशीहिआई।
देवानन्दाचार्य सुजाना,रहे व्याख्यानकार महाना
जीवब्रह्मपरसुनिव्याख्याना,भयेमुग्धद्विजमणिमतिमाना

मथुरामे इक विप्रवर, थे प्रकाण्ड विद्वान,जीते उन कहं वादमहं श्यामाचरण मतिमान ।

शान्तभद्र था उनको नामा, जीते प्रथम उन्हे गुण धामा ।
सारस्वत सम्म्राट उपाधी, मिली तहा द्विजवरहिं अबाधी ।
देवानन्दाचार्य भगवाना, गुरु आपके सुनउ सुजाना ।
थे मथुरामे गुरु आशीना, द्विज मणि विनय कीन हो दीना ।
जाइ प्रदक्षिण सात लगाये, पुनि चरणोमे शीश नमाये ।
कहे नाथ अपनो करि लीजै, राममन्त्र की दीक्षा दीजै ।
सुनि द्विजवरकी आरत वानी, एवमस्तु बोले गुरु ज्ञानी ।
वैष्णव सस्कार करवाई, राममन्त्र दीने मुनिराई ।

श्यामाचरण अब बनिगये श्यामानन्दाचार्य, परमभक्तगुरु रामके सदगुणसिन्धु आर्य ।

एक बौद्ध उदभट विद्वाना, काशी मध्य रहा बलवाना ।
चन्द्र कीर्ति ताकर शुभ नामा, था अभिमानी अरुपथवामा ।
शास्त्रार्थमा दिये हराई, श्यामानन्द महामुनि राई ।
तब विद्वत समाज मिलि भाई, पदक अपूर्व दिये हर्षाई ।

श्रुति सिद्धान्त आभूषणनामा, भये पाइ द्विज पूरण कामा ।
पुन गये पटना मुनिराई, कृष्णकान्त कहँ दिये हराई ।
जययश मान बडाई पाई, तीर्थ यात्राहि गे द्विजराइ ।
हरिद्वार, वदरी केदारा, गगोत्री यमुनोत्रि निहारा ।
पुन सुरेन्द्रनगरमा जाई, मिले भरतादिकसो- भाई ।
मथुरा हो गोकर्णहिं आये, लछिमन सीतापुरहि मझाये ।

अवधपुरी जाइ पुनि, कीने कछु दिनवास, श्री सरयू तट राम मख, कीने सहहुल्लास ।

पुन प्रयागराज चलि आये, गग यमुन कह शीश नमाये ।
करि सगम मज्जन भगवाना, कीने काशी कह प्रस्थाना ।
गया पिण्ड दे पित्रान-भाई, गे जगदीशपुरी मुनिराई ।
दक्षिण के सव तीर्थ निहारी, गे वोधायन तीर्थ अघारी ।
श्री पुरुषोत्तमाचार्य आश्रमपर, चरणपादुका तापी तटपर ।
पुनि विश्राम द्वारिका आये, द्वारिकेशके दर्शन पाये ।
तह वराह भगवानके स्थापन, कीने जगगुरु थिर करि चितमन ।
पुनि वराडिया निकट सुजाना, नष्ट किये वौद्धन अभिमाना ।

माध्यमिक शून्यादिक, मतखण्डन किय आप, अन्यप्रतिबादिसब, गये हांक सुनिकांप ।

किन्ही किन्हींके निज मत द्वारा, भट्टि कत्री थे शिष्य उदारा ।
द्वारिका तजि गिरनारहिं आये, पुनि पुष्कर सरजाई नहाये ।
अमरनाथ दर्शन किय जाई, काश्मीर पुनि निरखे-भाई ।
पुनि बैष्णव देविहि शिरनाये, मणिमहेश कह पुन मनाये ।
रह कुरूप इक सिद्धमहाना, रामभक्ति ताकह समझाना ।
किंकरणी चुडैल एक भारी, ताकी मुक्ति किये अघारी ।
शिष्य-कीर्ति जब गुरु सुनि पाये, देवानन्द हृदय हर्षाये ।

श्यामानन्दाचार्य तब, गहे पीठसबभार, हो निबृतगुरु आप पुनि लगे जपन रघुसार ।
श्रीरघुवर नवरतनी, आदिककृती महान, श्रीसीतासुस्तवपुनः, सर्वमुक्तिकी खान ।
श्रुतितात्पर्य निरूपणहु, ज्ञान ध्यानकर कोष, परासुभक्ति निरूपणहु, है श्रुतिमत निर्दोष ।
ग्रहैं प्रभाकर मत निरासहु सबशास्त्रनको सार, मन्त्रराज रामायणहुरामभक्तिकरद्वार ।

॥ १६ जगद्गुरु श्रीश्रुतानन्दाचार्यजी ॥

(श्रावण शुक्लसप्तमी ६३६ वि स मिथिलामे प्रकट ८३६ वि स मे साकेतवास)



श्रुतानन्द जगगुरु प्रभो रामभक्ति दातार,
विप्रवंशमें प्रकटहो, किये सत्य परचार ।

सीताकान्त द्विजपितासुजाना, माता कमलासन्तबखाना
मैथिल ब्राह्मणथे विद्वाना, रामभक्त शुचिसुन्दरज्ञाना ।
विनु सन्तति सो रहे दुखारी, सीताकान्त विप्र ब्रतधारी
पुत्र प्राप्तिहित सुनहु-सुजाना, सीतामढीविप्रतपकीना।
भूमि सुता पदसो मनलाई, लगे जापन तारकद्विजराई
नीद नारि भोजन सबत्यागी, सीताकान्तविप्र बडभागी
या विधिजपतप करतसुजाना, वर्ष तीनवीतेमतिमाना
भई प्रसन्नसीयमहरानी, प्रेमी भक्त द्विजवरकहमानी।

कह जगदम्बा मांगु सुत, जाकी रुचिमनमाहिं,
तुमसे उत्तम भक्त कहं है अदेय कछु नाहिं॥

वोले सियाकान्त शिरनाई, पुत्र अलौकिक दे भू जाई ।
रामभक्त समरथ विद्वाना, होवै जननी व्यास समाना ।
सुनि द्विज वचन सीय मुसुकानी, मन मह रामहिं सुमिरि भवानी ।
जाउ भवन पूरै तव आशा, मम स्वामी गुरुजगन्निवासा ।
सुनि सिय वचन विप्र सुख पाये, सुमिरत राम लवटि गृह आये ।
वर प्रताप ते सुनहु उदारा, प्रकटभयो गृह दीव्य कुमारा ।
श्रावण शुक्ला सातम सुखकर, होन लाग द्विजवर घर सोहर ।
विक्रम सम्मत सुनउ सुजाना, छसौ छत्तिस (६३६) सन्त बखाना ।
सुनउ विचित्र रामकी लीला, जन्मसुस्थान सुना कमतौला ।
अहै विहार प्रदेश मनोहर, जनपद है दरभगा सुन्दर ।

भौमवारको भे प्रकट सीताकांत कुमार, बजी दुंदुभी स्वर्गमें करै संत जयकार ।

बर्ष पचके भये कुमारा, तव द्विजवर मन कीन विचारा ।
निज कुल गुरु कह भवन बुलाई, रामयज्ञ कीने द्विजराई ।
देवानन्दाचार्य भगवाना, बटु कह कीने सूत्र प्रदाना ।
ब्रह्मगायत्री पुन. सुनाई, द्विजत्व हेतु महामुनिराई ।

जन्मनाम नाम श्री कान्त वखाना, विद्वत मण्डल-सुनहु सुजाना ।
प्रथम अध्ययन किये कुमारा, अपने पितु सो सुनहु उदारा ।
पुनि काशी पहुचे द्विजराई, विष्णुकान्त काका गृह-भाई ।
सप्त वर्षकी लघुवय माही, भये मिमाशक पितु हर्षाहीं ।

सारनाथमे जाइके शक्य मुनिहि जीत, बौद्धमताऽवलम्बी थे बौद्धन गुरु अजीत ।

बौद्ध ग्रन्थ औलोकन कीने, पुनि पाटलीपुत्र चित दीने ।
राजगिरी नालन्दा जाई, दीने बौद्धन कह विचलाई ।
मैथिल पण्डित मण्डल सारा, श्रीकान्त कह देई सहारा ।
मातु पिता बहु आग्रह कीने, पै श्रीकान्त ध्यान ना दीने ।
तीस वर्षके भये कुमारा, तब निज मनमे कीन विचारा ।
सम्प्रदायकी करिहौ सेवा, राखि हृदयमा श्रीपति देवा ।
देश समाज धर्मको चाकर, रहिहउ त्यागि विचार व्याह कर ।
अस निश्चय करि कृपा अगारा, कहे पितासो निज निरधारा ।

भजउ राम रघुवीर ब्रह्मचर्य ब्रतधारि उर, भ्रमभय डारउचीर श्रीसद्गुरु पद शरण है ।

जगगुरु श्यामानन्द उदारा, आये सग द्विज सन्त अपारा ।
श्रीकान्त चरणन शिरनाये, मनो कामना सकल सुनाये ।
कहे जगद्गुरु सुनु द्विजराई, कठिन मार्ग ये चला न जाई ।
तासो करउ मात पितु सेवा, उनसो श्रेष्ठ और न देवा ।
ना माने श्रीकान्त द्विजेशा, दीने तव जगगुरु उपदेशा ।
वैष्णव सस्कार करवाई, दिव्य मन्त्र पुनि दिये सुनाई ।
है पुनि श्रुतानन्द सुठि नामा, किये द्विजहि गुरु पूरण कामा ।
पुनि शरणागति मन्त्र बताये, चरम मन्त्र विधिवत समुझाये ।

भारत पण्डितहु सब मिलि मन कियेविचार, बेदविद्यानिधिकोपदक दियेमुनिहि उपहार
श्रीयुतद्विजकुलकेतिलक गुरु श्रुतानंदआचार्य,श्रीसम्प्रदायप्रचारकश्रीजगगुरु कृपाअगार्य

आपके प्रबन्ध १ श्रुतिवेद्यस्तव २ श्रौनसिद्धान्तविन्दु ३ सर्वश्रुतिसमन्वय ४ वेदविद्यासमुच्चय ५ उपेयोपायदर्पणादि है ।

♆ १७ जगद्गुरु श्रीचिदानन्दाचार्यजी ♆

(चैत्रपूणिमा ७४६ वि स. चित्रकूट मे प्रकट ८९६ वि स. साकेतवास)

श्रीचिदानन्दगुरुदेवविप्रकुलकमलदिवाकर, श्रीजगगुरुकृपा अगार सम्प्रदाय श्रीहेतुसुधारक
(श्री)श्रुतानन्दकेशिष्यआनन्दीबेदविद्याकेसागर,शास्त्रार्थमेनिपुणमहामुनिरादभंकरश्रुतिधर



श्रीसियारामके भक्तमनोहर कर त्रिदण्डधर
श्रुतिसिद्धान्तप्रचारकमुनिवरबुधसम्राट्कवीश्वर

चिदानन्द मुनिवरसुखसागर,वेद शास्त्रमर्मज्ञगुणाकर
सहऔछियालिससम्मतसुन्दर,प्रकटेआदिजमणिभूतलपर
चैत्रामाससुखकर मुनिमनहर,तिथीपूर्णिमापूर्णसुखदवर
चित्रकूटजन्मस्थल मुनिकर,जहावसनवहुसिद्धमुनीश्वर
शोमभद्रजीपितु करनामा,रही मालती,मातु ललामा ।
वैरभाव इक क्षत्रिकुमारा,शोमभद्र करकीनसहारा ।
श्रीकन्नोज निकट सुखराशी,थानेसरके रहे निवाशी।
रहा पुत्र एकतिनकेसुन्दर,नाम चतुर्भुजपरममनोहर

दश वर्षियसोवाल गयउभागी आरण्य जहं
तहवनपशु विकराल छुपेयोजाई असवनमहं ।

तावनमे इक सन्त उदारा, मिले बाल कह कृपा अगारा ।
बालहिं दुखी निरखि दुख पाये, तप प्रभाव बालहिं समुझाये ।
रामायण कर दिव्य प्रभावा, चतुर्भुजहि मुनिवर समुझावा ।
अनुष्ठानकी गीति शिखाई, अन्तर्धान भये मुनिराई ।
रामोपाशक साधू द्वारा, सुनि तपवल मन हर्ष अपारा ।
करन तपश्या हृदय विचारी, चित्रकूट पहुचे तपधारी ।
शोमभद्रकर लाल उदारा, कामद गिरि तपकीन अपारा ।
श्रुतानन्द कह स्वप्न मझारी, आज्ञा दीने राम खरारी ।

कहे स्वप्नमह प्रकटिप्रभु सुनउमुनीशउदार, चित्रकुटमे तप करे बाल करउ स्वीकार ।

नाम चतुर्भुज है ता द्विजकर शोमभद्रको पुत्र मुनिश्वर ।
सुनि आदेश मुनीश कृपाला, चित्राकूट गमने ततकाला ।
श्रुतानन्दजी बहु समुझाये, घर गृहस्थकर सुखहु सुनाये ।
किन्तु चतुर्भुज मनना भावा, पुनि पुनि चरण कमल शिर नावा ।
रामाऽदेशकी जब सुधि आई, तव बोले गुरुवर मुसुकाई ।
क्षौर कराइ सुनउ मतिमाना, करउ जाइ गगामे स्नाना ।
गुरु आज्ञा सुनि आतुर धाये, क्षौर कराइ मज्जन करि आये ।
तब गुरु सस्कार करवाई, मन्त्र षडक्षर दिये सुनाई ।

चिदानन्द पुनि नाम है कीने पूरण काम, शून्यवाद निर्मूलकरु कहगुरुवर सुखधाम ।

जे काशीमा बौद्धअयाना, हरे चिदानन्द सबके माना ।
सारनाथमे सुनहु सुजाना, सन्त वन्त मुनिकर बहुमाना ।
वाद किये तासो बरियाई, श्रीमद चिदानन्द मुनिराई ।
जीति ताहि मुनि कृपा निधाना, बैष्णब बना कीन कल्याना ।
तर्जनी सकेतसे सुजाना कीलै यवनन सैन्य महाना ।
गहड वार शाशक पर आई, जगगुरु पर प्रभाव अति भारी ।
रहे विधर्मी शाशक जेते, कीने शक्ति हीन गुरु तेते ।
काशमीर आदिक मह जाई बैष्णव ध्वज दीने फहराई ।

मथुरा अरु आमेर है सपादलक्षगे आय, तांत्रिक जीते अमित गुरु श्रीपुष्कर में जाय ।

हो अवन्तिका कृपा अगारा, जगन्नाथपुर जाइ निहारा ।
वाममार्गी दुर्ग ढहाई, वैष्णव ध्वजा दिये लहराई ।
पुनि रामेश्वरम गये मुनिराई, लिगायतगढ दिये गिराई ।
वैष्णव सदोपदेश तह दीने, वहु लिंगायत अपनो कीने ।
किष्किन्धा है मुनि विद्वाना, पचवटी कह किय प्रस्थाना ।
पॅचवटी मह करि विश्रामा, रामयज्ञ कीने सुखधामा ।
सदल महामुनि करि प्रस्थाना, निरखे द्वारिकेश पदयाना ।
पुनि विश्राम द्वारकाहिं आये, राम परायण यज्ञ कराये ।

अर्बुदाचल पुनि गये चिदानंद भगवान, वाममार्गी रहे वहु हरे सवनिको मान ।
किये अमित संघर्ष जीवन भरि गुरुधर्महित्त, राम सीता पदपद्ममे रहैं लगाये चित्त ।
किये देशभरमे मुनी रामयज्ञ परचार, पूर्णानन्द शिष्यकरि किये जगत उपकार ।
सिद्धांतवाचस्पती सम्प्रदाय आचार्य, कवि किंकरबलराम कहं रामभक्ति दो आर्य ।
कृती आपकी हैं अमित किन्तु कछुक हें प्राप्य, श्रीबैष्णवी सन्तमहं हैं सर्वत्रहिं व्याप्य ।

आपके सच्चिदानन्दश्रीरामाष्टक प्रमेयोद्देशभाष्करादि अनेक प्रबन्ध है ।

॥ १८. जगद्गुरु श्रीपूर्णानन्दाचार्यजी ॥

(वैशाख कृष्ण त्रयोदशी ८६६ वि स अवन्तिकामे प्रकट
वैशाख पूर्णिमा १०६७ वि स मे साकेतवास)

पूर्णानन्दचार्यजी, पूर्ण कीजिये काज । शूक्षम तव चरित कछु, लिखन चहउ महराज।

ससम्मत अष्ट सत छाछठि (८६६) जाना, विक्रम को द्विज सन्त बखाना ।
अरु वैशाख पूर्णिमा सुखकर, रहा प्रकट मे जब भूपर ॥



जन्मस्थान उजैनी सुन्दर, जहा विराजे महाकालेश्वर ।
पितानामगोविन्दवखाना, नलिनीमात नामजगजाना ।
रहे प्रकाण्ड दोऊ विद्वाना, वेदशास्त्रसदग्रन्थन ज्ञाता ।
दम्पतिशिवपह ये वरयाचइ, योगीकोउममकोपीआवइ।
जन्म नाम पूर्णेन्दु कुमारा, मातपिताकर रहा दुलारा ।
प्रारम्भिक शिक्षण मति माना, नानाकेघरलहे सुजाना ।

पूर्णज्ञान जा काशी पाये द्विज सुज्ञान,
शास्त्रार्थकी कलामें, हुये पूर्ण विद्वान ।

तह अनन्तगिरि सो भा वादा, जीते पूर्णेन्दुअविवादा।
पुन सर्वविद्वाननद्वारा, (सिद्धान्त)सार्वभौमपदपायेउदारा।
ब्रह्मचर्यव्रतवारि कुमारा, रामभक्ति कर करै प्रचारा ।
पुन हृदयमे इच्छा जागी, कोउ सद्गुरु मिलै वडभागी।
तारक पाइ तरउ भव सागर, है, ससार असार मृत्युवर ।
ये विचारि मन विप्र सुजाना, पहुचे प्रयागराज मतिमाना ।
चिदानन्द गुरुवर पहँ जाई, मनइच्छा निज कह शिरनाई ।
जगगुरु बहुत द्विजहिं समुझाये, मातपिता सेवा व्रत लाये ।

पूर्णेन्दुमाने नही पुनि पुनि नाये माथ, स्वीकारे तब जगद्गुरु धरे शीशपर हाथ ।

वैष्णव सस्कार करवाई, राममन्त्र पुनि दिये सुनाई ।
पूर्णानन्दाचार्य है नामा, किये विप्र कह पूरण कामा ।
यौगिक क्रिया सविधि समुझाये, राम परत्व पुन वतलाये ।
रहे प्रकाण्ड वेद विद्वाना, पूर्णानन्दाचार्य भगवाना ।
मायावाद वौद्ध मत खण्डन, करिकीने वैदिक मत मण्डन ।
दै जनता कह भक्ति प्रकाशा, किये सर्व नास्तिक मतनाशा ।
दीने भ्रम अज्ञान मिटाई, राम भक्ति कर मर्म वताई ।
मायावाद कर किये निदाना, जाइ पुरी मह कृपा निधाना ।
इक नैयायिक थे विद्वाना, पुरी मध्य सुनि ये-मति माना ।
शास्त्रार्थ मह दिए बिचलाई, पूर्णानन्द जगद्गुरुभाई ।

अनर्घ राघव ग्रन्थकर भयो तहंइ निर्मान, स्वीकारे विद्वान सब जानि सु ग्रन्थ महान ।

पुनि दक्षिण तीरथ जेते, जाइ निहारे मुनिवर तेते ।
रामभक्ति कर करि परचारा, वाममार्ग को भूत निकारा ।

श्रौत विशिष्टाद्वैत प्रचारा, किय जगगुरु कृपा अगारा ।
चतुर्मास कीने मुनिराई, विष्णुकाचिपुरमे जाई ।
करै मुनीश्वर सदउपदेशा, पढे-गुने हो नष्ट कलेशा ।
रामायण हवनात्म कराई, नास्तिक आस्तिक दिये बनाई ।
अमित विरक्त सन्त नित आई, सुनै रामचर्चा मनलाई ।
बने शिष्य वहुतक विद्वाना किये अमित जीवन कल्याना ।

पाशुपतोंसे प्रभाषमें हुआ कठिन सम्वाद, विजई जगगुरुवर रहे रही भक्ति मर्याद ।

पुनि विश्राम द्वारिका आये, द्वारिकेशके दर्शन पाये ।
कवि तार्किक कर आग्रह मानी, कह अनर्घ राघव विज्ञानी ।
पुनि अद्वैतवाद विचलाई, द्वैत विशिष्ट थापे मुनिराई ।
राम-भक्ति घरघर फैलाई, किये प्रकाश महामुनिराई ।
पुष्कर तीरथ आप नहाये, रामयज्ञ विधिवत करवाये ।
यौगिक चमतकार दिखलाई, वाममार्गिन दिये भगाई ।
जा मथुरा मे दर्शन कीने, ब्रजभूमी परिकरमा दीने ।
काशी पचगग पर जाई, कछुदिन रहे महामुनिराई ।

जीवन चम्पूरचयिता हरिश्चन्द्र विद्वना, ता कहं गुरु दीक्षित किये पंचो मध्य सुजान।
अब प्रबन्ध कछु आपके सुनै सन्त भगवान, श्रीरामपंचकमशुचि विरचे मुनि मतिमान।
(स्व)बोध नक्षत्र मालहु रचे सुजान, (श्री) रामभक्ति कर चित्र, दर्शाये गुरु जगत कहं ।
(श्री)राम भक्ति सुविवेकविरचेजगगुरु शुचिसुखद,मन्त्ररमायणएक रचेजगदगुरुमुक्तिप्रद ।
बोधायन मतदर्शहू प्रमिताक्षर वृत्तिसार, शुचिसहस्रश्लोकीहू कृतीसुभग श्रुतिसार ।

ॐ १९. जगद्गुरु श्रीश्रियानन्दाचार्य ॐ

(वैशाख शुक्ल नवमी १०२६ वि स जनकपुरमे प्रकट १२०६ वि स.मे साकेतवास)

श्रीश्रियानन्दमुनिरायकरुणावरुणालयप्रभो, इष्टआपके परमप्रिय सीतापति रघुपतिविभो ।
द्विजकुलकमल दिनेश कृपा दासपे कीजिये,तव उर बसै हमेश प्रिया अनुजयुतरामप्रभु ।
जीवनवृत्त सुजानतव लिखन चहउगुरुकृपाकरु,ये कविकिंकरबलराम छमियोत्रुटीजगद्गुरु।
श्रीसीतापतिदास (श्री) सम्प्रदाय स्तम्भदढ, गुरुतुमरे सबदास सुदृढ किये श्रीविष्णुगढ।

आविर्भाव समय अव गावउ, सम्मताऽऽदि तिथि मास बतावउ ।
एक सहस अरु छब्बिस(१०२६) माना, विक्रम सम्मत सन्त बखाना ।



शुक्लनवमबइसाखमनोहर, वारभृगुकरसवसुखसागर ।
उपाध्यायपशुपतिविद्वाना, सरयूपारिणविप्र-सुजाना ।
हिन्दुराष्ट्र नैपाल निवासी, परमचतुरसद्‌गुणकेराशी ।
माता गगादेवि पुनीता, पतिसेवा इन्द्रियन जीता ।
जगगुरु पूर्णानदपदसेई, पुत्र प्राप्तवर पाये दोई ।
समयपायलीनेउअवतारा, दिव्यपुरुषइकसुनउउदारा ।

जातकर्म विधिवत किये पशूपतिविद्वान,
शिवप्रसादशुचिनाम है कियेसाधु द्विज मान ।

जगगुरुकेआश्रमरहिभाई, किये अ ययन द्विजकुलराई ।
विधिवत बेदशास्त्रकरज्ञाना, लहेजगद्‌गुरुसो मतिमाना।
दिये पुरणहु सर्व पढाई, दर्शनहु सव दिये रटाई ।
वीसवर्षमे भये सुजाना, भे द्विजवर प्रकाण्डविद्वाना ।
शिवप्रसादकी इच्छा जानी, पशुपती द्विजवर विज्ञानी ।
पूणानन्द चरग शिरनाइ, सुतहि समर्पण किमे द्विजराइ ।
चैत्रपूर्णिमा के दिन भाई, राममन्त्र दीने मुनिराई ।
श्रियानन्द शुचिनाम-उदारा, दीने वटु कह कृपा अगारा ।

वैष्णव दिव्यरहस्यमय पढे ग्रन्थ हर्षाय, पुनःतीर्थ भ्रमणहित, चले, गुरुहि शिरनाय ।

पागुरु आज्ञा द्विग विद्वाना, किय दिगविजय हतु प्रस्थाना ।
पुनि माण्डुका करिकहिं भाई, वौद्ध दर्शन-देन वनाई ।
करिके वाद सिद्ध किये मुनिवर, श्रियानन्द आचार्य मुनीश्वर ।
छीछालेदर करि अद्वैतिन कर, किये अनेकन वार द्विजेश्वर ।
हरिद्वारमे द्विग विद्वाना, मर्दे अद्वैतिनके माना,
श्रीसतद्रूके दिव्य किनारे, माध्यम परिमाणिन मदझारे ।
पंच सत (५००) शिष्यन युत-भाई, भयउ शिष्य परिणामी आई ।
भूप अनन्त देव गृह जाई, बोधायन बृत्ति लिपि वहु पाई ।

सत्य लिपि कहं शोधिके, दीने नृपहि गहाय,शूक्षम बृत्तिहुलिखे तहं श्रियानन्दमुनिराय

वोधायन बृत्तिसार सुग्रन्था, देवानन्द कृत मुक्तिक पन्था ।
प्रमिताक्षरी बृति पुनि देखे, जीवन जन्म सफल निज लेखे ।
सिद्धान्त विजेता पद स्वीकारा, कीने, भूपतिके दरबारा ।
लखि व्यक्तित्व गुरुकर भाई, शिष्यक्षेमेन्द्रहु भये आई ।

महाराजकी रानिहु जाई, दीक्षा ग्रहण कीन हषाई ।
श्रौत प्रमेय चन्द्रिका सुन्दर, रचे विश्राम द्वारिकहिं मुनिवर ।
दक्षिण काशीमे सम्माना, पाये श्रियानन्द विद्वाना ।
पुन जाई श्रीरगममे भाई, स्वपूर्वज यस दिये फैलाई ।

सदाचार सुप्रदीपीका, का कीनेपरचार, देवानन्दाचार्य कर उज्ज्वल कथे विचार ।
परमवैष्णव सन्तमे किय संगठन महान, श्रीसम्प्रदायकी गादी, घोषितकिय भगवान ।
रामयज्ञ करवाई तहं दिव्य वनाये घाट, गुरुगादी घोषित किये, पंचगंग शुचिघाट ।
सम्मतएक सहस्रअरु छाछठि(१०६६)मेमतिमान,सम्प्रदायआचार्यपदपायेकृपानिधान ।
अब प्रवन्ध कछुआपके लिखउं गुरुहिशिरनाई,भक्तचिन्तामणिऽस्तव प्रथम प्रबन्धकहाई।
श्रियःश्रियः शुचि षटकम गुरुवररचेविचारि,श्रीहनुमान सुअष्टकमअन्तर मल दे जारि ।
श्रुतिसिद्धान्त विजयादिहैं प्रबन्धहू दीव्य, श्रीबजरागसुअष्टकहु ग्रन्थ भक्तिप्रद भव्य ।
प्रमिताक्षरि वृत्तिसारहू जगगुरु कृती महान,श्रौतप्रमेय चन्द्रिका शुक्ति मुक्तिकी खान ।

२०. जगद्गुरुश्रीहर्यानन्दाचार्यजी

(आषाढ शुक्ल एकादशी ११५६ वि स कर्णपुरमे प्रकट)



हर्यानंदहरिहरचरण सेवक परमउदार,
कविकिंकर पर करि कृपा कीजै दुखसेपार ।
एकादशअरुछप्पनसुन्दर,भयेप्रकटजगगुरुभूतल पर ।
शुचिउत्तर प्रदेशमध्यान्तर,गगातटइकग्राममनोहर ।
नामकानपुरसब जगजाना,रहेतहाइकद्विजविद्वाना ।
रामकुमारअवस्थीनामा,कानकुब्जब्राह्मण सुखधामा ।
श्रियानन्दपदसेइसुजाना, पाये पुत्र एक विद्वाना ।
शुद्धअसाढमासशुचिसुखकर,तिथीएकादशिहरिकोवाशर
जन्मनाम श्रीहरि प्रसादा,राखे द्विज दोऊ मर्यादा ।
प्रथमअध्ययननगर मझारी,कीने हरिप्रसादव्रतधारी ।
बेदादिकको ज्ञान किये प्राप्त जगगुरु निकट,
भये श्रेष्ठ विद्वान श्रियानन्दजगगुरुकृपा ।

करि बिशिष्ट अध्ययन कुमारा, नाघि गये भ्रम सागर पार ।
पचगग पर सुनहु सुजाना, जगगुरु आश्रम दिव्य महाना ।
श्रीसम्प्रदाय श्री की सोइ गादी, कहत सन्त जे आतमबादी ।
श्रीहरिके पितु मातु सुजानो, कीने काशी कह प्रस्थाना ।

सुनि आगमन पिता कर आई, श्री हारे गये पिता पह धाई ।
मात पिता बन्दन करिके, सन्मुख बैठि गये पद गहिके ।
आज्ञा मागे पितु सन--भाई, शुचि विरक्त दीक्षा हित भाई ।
रामकुमार हृदय हर्षाई, लीने सुत कह हृदय लगाई ।

गहिकर अपने पुत्रकर श्रियानन्द पहंजाई, गुरुपदमे अर्पण किये, द्विज दम्पतिसुखपाई ।

श्रियानन्द गुरु पदचित दीने, बैष्णव सस्कार सब कीने ।
उर्ध्व पुण्ड्र तुलसी अरुनामा, राममन्त्र पुनि दिय सुखधामा ।
धनुबाणकी छाप लगाई, यमसो निर्भय किय मुनिराई ।
दर्शन वेदशास्त्र कर ज्ञाना, श्रियानन्द गुरु किये प्रदाना ।
काशीके एकत्र विद्वाना, विभिन्न मत आचार्य-सुजाना ।
श्री प्रतिपक्षि भयकर नामा, दिय उपनाम, सबन सुखधामा ।

याहि नामसो प्रसिध भे सम्प्रदाय मे आप,प्रतिद्वन्दी गुरु नाम सुनि, जाते थरथरकांप

दीन पुरी मा रथहि चलाई, रामस्तव राजसो भाई ।
सिद्ध शिरोमणि पद तह पाये, जगगुरु श्रियानन्द सुख पाये ।
पुनि निज गुरुकी आज्ञा पाई, तीर्थयात्रामे गे धाई ।
गे काशीमे गया उदारा, भली शुचि तीर्थ निहारा ।
नृसिहाचल पुनि गुरु आये, वहा रामके दर्शन पाये ।
रामसग प्रहलादहु आये, हर्यानन्दहिं हृदय लगाये ।
जब काची मे जगगुरु आये, दर्शनकाज सन्तबुध धाये ।
सर्व सन्त मिलि किए सम्माना, जगगुरु कर सुनिये-मतिमाना ।
तहते करि प्रस्थान-सुजाना, कन्याकुमारी गे भगवान ।
सुठि कालटिके थे एक पण्डित, ज्ञान ध्यान ब्रह्मचर्य अखण्डित ।

ताके प्रस्नोंका उचित, उत्तर दिये मुनीश, भये कालटी शिष्य तब धरे चरणपर शीश

पुनि श्रीरगमके दर्शन कीने, श्रीरामेश्वर कह चलि दीने ।
महाराष्ट्र लखि कृपा अगारा, गुर्जर देशहिं जाई निहारा ।
रामयज्ञ बहु किये सुजाना, हर्यानन्दाचार्य महाना ।
पुन द्वारिका धाम सिधाये, मुरलीधरके दर्शन पाये ।
रहि कछु दिन तह करि सतसगा, कीने भक्तनको भवभगा ।
पुनि विश्राम द्वारिका आये, मन्दिर परम सुखदसुहाये ।

पुष्करमे तान्त्रिकन पछारे, तिनके सब षडयन्त्र उगारे ।
कुरुक्षेत्र एव हरिद्वारा, सर्व विपछिन वादि पछारा ।

श्रीयानन्दगुरुदेव, तव शिष्यहि लीन बुलाइ, गादी सौंपे शिष्य कह हृदय लगासुखपाइ
कृति आपकी कछु यहां वर्नन करउ सुजान, सीतारामसुविसति, है इक ग्रन्थ महान ।
श्रीभगवत समाश्रय, दूजो ग्रन्थ पुनीत अति, प्रपन्न सर्वस्व सन्तन कहं रुचिकरअतिविमल
रामरत्न मंजूषा तीजो ग्रंथ महान, जहं राम मंत्रार्थ निरखै संतसुजान ।
चरममंत्र रामायण, चतुर्भुक्ति दातार, प्रमाणदीपिका आदिक, हैं सन्तन आधार ।
हर्यानंद भगवान कृपा सिन्धु करुणायतन, कविकिंकर अज्ञान, वन्दै तव पद कमलनित ।

ॐ २१. जगद्गुरु श्रीराघवानन्दाचार्यजी ॐ

(चैत्र शुक्ल एकादशी १२०६ वि स अयोध्यामे प्रकट १३९६ वि स मे साकेतवास)



राघवानन्दाचार्य, जगद्गुरु भक्ती सदन,
श्रीवशिष्ठअवतार कामक्रोध दल मद दलन ।
ब्रह्मामानस पुत्र उदारा, लीने आ भूतल औतारा ।
विक्रमसम्मतसुनहुसुजाना, बारहसौछसंवतसन्तवखाना।
अवधधामजन्मस्थलसुखकर, भूतलकोसाकेतमनोहर ।
पितानामअवधेश-सुजाना, बुधजनमेसम्म्राट् वखाना ।
मातुअम्बीकादेविसुशीला, गावइनित सीतापतिलीला ।
गृही शिष्यश्रीहर्यानन्दके जापकश्रेष्ठ सुराममन्त्र के।
जन्मनामराघवप्रसादशुचि, बाल्यअवस्थासेजपमेरुचि।
पुनिउपनयनवादमतिमाना, काशीश्रीमठकियेपयाना ।
हर्यानन्दाचार्यके चरणशरण मे जाई,
गूढ बेदान्त तत्व कर पढे विप्र हर्षाइ ।

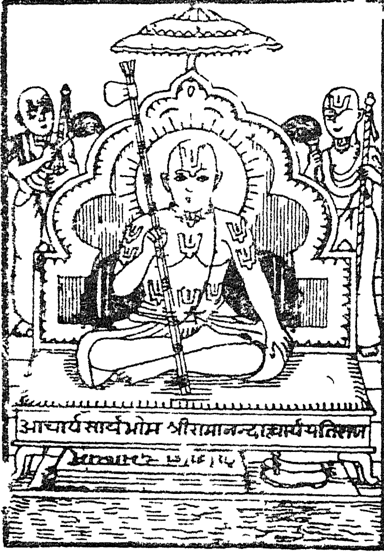
मातु पिताकी आज्ञापाई, दीक्षालीन गुरुपह जाई ।
स्वस्वरूपको ज्ञान कराये, योगशक्तिसो मनसुखपाये ।
तिथि नवमी अति सुखद मनोहर, शुक्ल पक्ष वईसाख मासकर ।
विक्रम सम्मत सुनहु सुजाना, वारह सौ चौविस (१२२४) वखाना ।
सुसस्कार पाचो करवाई, राममन्त्र दीने मुनिराई ।
राघवानन्दाचार्य सुनामा, दिये हर्यानद गुणवामा ।

रहे प्रभावित जे विद्वाना, राघवानन्दाचार्य-सुजाना ।
किये प्रतिज्ञा सो सब आई, जीवन भरि सगदड़ हो भाई ।
गुरुआज्ञा निज शीश धरि,राघवानंद विद्वान,तीर्थ भ्रमण दिग्विजयहितकिये मुदितप्रस्थान
प्रथम प्रयागराज मुनि आये, लक्ष्मण पुर कह पुन सिरनाये ।
नैमिषारण्य पुनि निरखे जाई, श्रीराघवानन्द मुनिराई ।
पुनि निर्मण्ड किन्नोर निहारे, गन्धर्व नगर कैलास पवारे ।
अमरनाथ जा दर्शन कीने, कुरुक्षेत्र कह पुनि चितदीने ।
किये तहा गीता पारायण सप्त दिवस लो भव तारायण ।
पुनि पुष्कर जा मज्जन कीने, वाममार्गिन मद हरिलीने ।
पुनि अर्बुदगिरि किये पयाना, श्रीवशिष्ठ अवतार-सुजाना ।
श्रीवशिष्ठ आश्रम जब गये, तब वशिष्ठ वपु प्रकटत भये ।
जनता कहं दर्शन दिये श्रीबशिष्ठ भगवान, सिद्धपुरी कह जगद्गुरु पुनि कीने प्रस्थान।
अनहिल पाटन कलह मिटाये, विप्र समर्थन नृपहिं दिलाये ।
पुनि विश्राम द्वारिका आये, भृगु क्षेत्रके दर्शन पाये ।
पुन तापती तट गुरु आये, श्रीबोधायन कह शिरनाये ।
वोधायन पादुका निहारी, परे दण्ड इव महि तपधारी ।
पचवटीके भूप सुजाना, राजाकर्ण महाविद्वाना ।
कीनेउ विधिवत गुरु सम्माना, परिचरणोमे दण्ड समाना ।
पुनि पण्ढरपुर गे भगवाना, जाइ नमे विट्ठल पदत्राना ।
वीस वर्ष लो कृपा अगारा कीने दक्षिण धर्म प्रचारा ।
पुनः लवटि मुनिअवधमे कछुदिन किय विश्राम,रामयज्ञविधिवत किये जगगुरुपूरणकाम।
माधव भट्ट व विट्ठल पन्ता, जगगुरु शिष्य कहै सव सन्ता ।
अरु देव आदि विद्वाना, शिष्य आपके सुनहु सुजाना ।
सिद्ध सम्म्राट् वने गुरुदेवा, करै सन्त द्विज भूपति सेवा ।
प्रतिवादिनको मत विचलाये, सत्यधर्मको ध्वज लहराये ।
गुरु प्रबन्ध अव करउं वखाना, सुनै सर्व सज्जन धरि ध्याना ।
राघवेन्द्र शुचि मगल माला, विरचे जगगुरु दीन दयाला ।
सीता मगल सुरुचि वनाये, सम्प्रदाय श्रीध्वज फहराये ।
श्रौत तत्त्व समुच्चय सुन्दर, राघव प्राप्ति बोध अति सुखकर ।
बेदरहस्य आदि बहु विरचे ग्रन्थ मुनीश, कविकिंकर बलरामगुरु तव यह नावतशीश ।

प्रस्थानत्रयानन्दभाष्यकार

॥ २२ जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी यतिराज ॥

(माघ कृष्णसप्तमी १३५६ वि स प्रयागमे अवतार
श्री रामनवमी चैत्र शुक्ल ९ वि स १५३२ मे साकेतवास)



स्वयंरामअवतारगुरुरामानन्दाचार्य,
कविकिंकर बलरामपर कृपा कीजियो आर्य ।

तेरसौछप्पनशुचिसम्मत, श्रीविक्रमादित्यसन्तन मत ।
माघकृष्णसातमतिथिसुखकर, प्रकटभयेप्रयागमेद्विजवर।
कान्यकुब्जब्राह्मणगृहआई, प्रकटेरवयरामरघुराई ।
पुण्यसदनथेपिता उदारा, थे विद्वननकोसरदारा ।
मातानाम सुशीलादेवी, पतिपरमेश्वरकेपदसेवी ।
जन्मनामरामानदसुन्दर, छोटीवयपरप्रिय द्विजघरघर ।
पाचवर्षकेभयेकुमारा, सस्वरवेदकरै उच्चारा ।
शुचिवसन्तपांचमतिथिसुखकर, यज्ञसूत्रदीनेआगुरुवर।

राघवानन्दाचार्यगुरु रामयज्ञ करवाय,
दिये जनेऊमुदितमनकृपासिन्धु मुनिराय ।

शिक्षण प्रथम पिता सन पाये, पुनि गुरु सग श्रीमठहिं सिधाए ।
अलपकाल सब विद्या पाये, राघवानन्द परमसुख पाये ।
शास्त्रार्थ विद्यामे भाई, भये निपुण द्विज मणि सुख दाई ।
मात पिता बहुतइ समुझाये, रामानन्दके मनहिं न भाये ।
करिहौ देश धर्मकी सेवा, ब्रह्मचर्यव्रत लै पितु देवा ।
पुनिराघवानन्द पहं जाई, सुतहिं समर्पण किय द्विजराई ।
गुरु राघवानन्द सुख पाये, क्षौर करा मज्जन करवाये ।
तिलक छाप तुलसीकी माला, दिने गुरुवर दीन दयाला ।
रामानन्दाचार्य सु नामा दिये जगद्गुरु पूरण कामा ।
पुनि कषायवस्त्र सुचिसुन्दर, पुनिदीने त्रिदण्ड श्रीगुरुवर ।

रामहिं दीने जगद्गुरु राममन्त्र श्रुतिसार, रामानंद अब वनगये रामानन्दाचार्य ।

देश धर्मरक्षक मण्डल कर, सचालक थे आप विप्रवर ।
यवनके मन दिये फिराई, प्रेमा भक्तिसो जगगुरुराई ।

यवन अनीति नीतिसो जीती, दोउ भाइनमे कराये प्रीति ।
किये समन्वय सभा विशाला, काशीमे गुरु दीन दयाला ।
तेरसौ सत्तानबे सम्मत, मे आचार्य आप सन्तन मत ।
पुनि यतीन्द्र पद किये प्रदाना, सन्त महन्त विप्र विद्वाना ।
पुनि दिग् विजय हेतु मुनिराई, चले सन्त द्विज सग लिवाई ।

अंग बग अरु कलिंगमें भाअद्भुत सम्मान, श्रद्धाभाजन सबहिके जे जगगुरुभगवान ।

विजय नगरमे अपूर्व स्वागत, कीन भूप सँग सारा जनमत ।
बहन किये पालकी नरेशा, मे प्रसन्न मुनिवर्य विशेषा ।
अर्चन बन्दन बोधायनकर, कीने पूजन पदत्रानन कर ।
जब गिरनार गये मुनि-ईशा, आये मिलन सुर सद सुर ईशा ।
रामानन्द पदशीश नमाये, दीव्य पादुका गुरुहिं गहाये ।
त्रय द्वारिका है एक साथा, गे विश्रामद्वारिका नाथा ।
मास एक कीने विश्रामा, तहाँ जगद्गुरु पूरण कामा ।
पुन अर्बुदाचल गुरुआये, नख्खीसर मुनिवर मनभाये ।

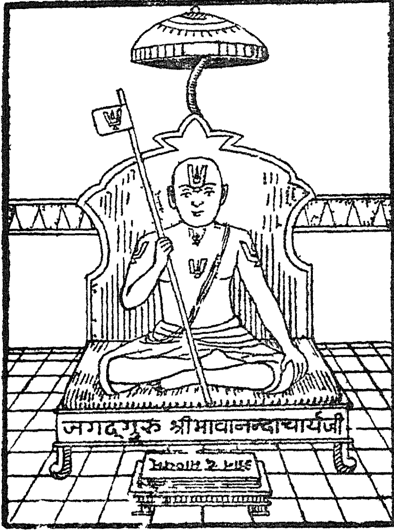
श्रीरघुनाथस्थापना निजकरकीन मुनीश, पुनि मुनिन कहं कृपानिधिदियेशुभगआशीश
गिरीनाथमहराजकी इक्षा कीने शमनसब, विशिष्टाद्वैतमण्डनकिये खण्डनकरिअद्वैततब।

शंख ध्वनिके द्वारा भाई, देते जगगुरु रोग मिटाई ।
आतताइ जन दमन-सुजाना, कीने जगगुरु कृपानिधाना ।
यवनोकी दी बुद्धि फिराई, केवल जगगुरु शख बजाई ।
गयासुद्दीनसो लेकर भाई, तथा शिकन्दर शा अन्यायी ।
जेते दुष्ट बुद्धि खल शाशक, सबके गर्ब समूल विनाशक ।
प्रवल बाढ इस्लाम शक्तिकी, दियेरोकि जय प्रेम भक्तिकी ।
द्वादश परम भागवत-भाई, भये शिष्य जगगुरुके आई ।
राम भक्ति भारतमे घरघर, स्वतप फैलाये गुरुवर ।

शुचि प्रस्थान त्रयीपर आनंदभाष्य महान. रामानंद बिरचित सुनो सर्वसन्तविद्वान ।
रामानंद श्रीरामके हैं पूरण अवतार, कविकिंकर से अधम बहु किये भवार्णव पार ।

५ २३. जगद्गुरु श्रीभावानन्दाचार्यजी ५

(वैशाखकृष्ण ६ वि, स १३७६ मिथिलामे प्रकट ज्येष्ठ-
पूर्णिमा १५३९ वि स मे साकेतवास पीठ स्थल गढमुक्तेश्वर)



भावानन्दाचार्य गुरु सुखसम्पतिदातार,
राम-रामानन्दार्यके सेवक परम उदार।

शीरध्वज महाराज आइ मानव तनुधारे।
धर्म सनातन ध्वस्त होत लखि आइ उबारे।
नित्यधाम साकेत, त्यागि जब राम पधारे।
आये तब मिथिलेश, सग भूसुर बपु धारे।
है द्वादशमे एक-भागवत, मिथिलेश्वर अवतार।
त्यागीअस्त्र अरु शस्त्र,सब लिय त्रिदण्डकरधार।
भावानन्द भावके भूखे,विषय वासनावोसे रुखे।
भूपजनकके थे अवतारा,कियेप्रकटह्वै देशसुधारा।
भावविभोर रहै दिनराती, गाबैरघुवरगुण गणपांती।
सम्मततेरहऔरछिहत्तरि,विक्रमकोगुनिकहतपापअरि।

जन्म मास वइसाख वखाना, कृष्णपक्ष तिथि षष्ठि सुजाना।
जन्मस्थल मिथिला सुखखानी, प्रकटीं जहा सीयमहरानी।
नाम बलान नदी इक सुन्दर, ताके तट इक ग्राम मनोहर।
नाम माण्डवीपुर सुखधामा, तामे एक द्विज पूरण कामा।

पिता नाम वर्णन करउ सुनउ ध्यानसे मित्र, सर्वशास्त्र मर्मज्ञ द्विज वाणी मधुर विचित्र

श्रीरघुनाथ मिश्र गुणधामा, रहे सर्वविधि पूरण कामा।
माता नाम जानकी देवी, पतिब्रता पति पद रज सेवी।
ताकी कोख लीन अवतारा, ज्योतिमान इक दिव्य कुमारा।
जन्म नाम भव नाथ धराये, बडे भये उपनयन कराये।
पुनि रघुनाथ मिशिर विद्वाना, सुतहिं सग लइ सुनहु सुजाना।
काशी आय विप्र कुल नाथा, रामानद पद नाये माथा।
बालहिं गुरु अध्ययन कराइय, चाकर अपनो नाथ बनाइय।
सुतहिं अर्पि द्विज गये सिधारी, लगे पढन भव नाथ अघारी।

अल्प समयमें भये द्विज सर्वश्रेष्ठ विद्वान, शास्त्रार्थकी कलामें एकता रहे सुजान।

दीक्षित होन हेत द्विजराई, गुरुवर सो बहु विनय सुनाई ।
कह जगद्गुरु निकट बुलाइ, पितु आज्ञालइ आवहु भाई ।
मातु पिता चरनन शिरनाई, आज्ञा प्राप्त कीन द्विजराई ।
आज्ञा लई जगगुरु पहँ आये, पिता पत्र गुरुवरहि गहाये ।
वाचिपत्र जगगुरु भगवाना, कहे वत्स कीजै अस्नानाना ।
बैष्णव सस्कार सव कीने, पुनि भव नाथहिं दीक्षा दीने ।
भावानन्दाचार्य सुनामा, दीने जगगुरु पूरणकामा ।
ले दीक्षा द्विजवर मतिमाना, जीते शैवोसे मैदाना ।

अत्याचार विपक्षकर दीने विप्र नशाय, अद्वैती सन्मुख न हों भागै वदन छुपाय ।

गढ मुक्तेश्वर गे भगवाना, जो शैवो कर दुर्ग महाना ।
थे वशीगिरि एक विद्वाना, निज सिद्धीकर बड अभिमाना ।
जाइ जगद्गुरु तिनहि प्रचारे, करि विवाद सिद्धी मदझारे ।
बैष्णव गढ अस्थापित कीने, अद्वैतिनकर मद हरि लीने ।
तह हनुमान विप्र कह भाई, राम मन्त्र दीन मुनिराई ।
है हनुमदाचार्य शुभ नामा, कीने विप्रहि सब सुखधामा ।
दीन स्वप्न मह दर्शन आई, महारुद्र हनुमत कपिराई ।
वाममार्गी मनहिं लजाई, बने शिष्य जगगुरुके आई ।

हरिद्वार है वृन्दावन आये गुरु भगवान, किये सुरसुरानन्दजी गुरुभाई सम्मान ।

शुचि शोरौ मा मुनिराई, आश्रम एक बनाये-भाई ।
श्री सुरसुरानन्दके नामा, बैष्णव आश्रम भा सुखधामा ।
रुहेल खण्डकर मारग-भाई, बैष्णव हित दिय सुगम बनाई ।
भिडे विपक्षिनसो वरियाई, पण्ढरपुरमे जा मुनिराई ।
बोधायन पद त्रान निहारा, भृगु क्षेत्रमे कृपा अगारा ।
पुन डकपुर किय प्रस्थाना, जगगुरु भावानन्द सुजाना ।
मिले तह रणहर भगवाना, भावानदसो कृपानिधाना ।
रामभक्तिका दै वर्दाना, कीने प्रभु मुनिवर सम्माना ।

वर्धमानमें जगद्गुरु पाये अनुपम मान, शोभायात्रा आपकी साजे सर्वसुजान ।

अर्बुदाचलमे मति माना, थापे रामानद भगवाना ।
सर्वेश्वर रघुनाथ–सुजाना, दीने दर्श प्रकटि भगवाना ।

शैवन नाथन दिये भगाई, राजस्थान भ्रमणमे भाई ।
शास्त्रार्थमे सबहि हराई, भव्य विजय पाये मुनिराई ।
मारवाडसो करि प्रस्थाना, मण्डलयुत जगगुरु भगवाना ।
करत मार्ग मह उपदेशा, निरखे उत्तर शुद्ध प्रदेशा ।
गढमुक्तेश्वर किये निवासा, पूजे भक्त जनोकी आशा ।
भावानदद्वार मतिमाना, गढमुक्तेश्वर मे जग जाना ।

द्वारपीठ निजथापि तह भावानंद भगवान, रामानन्दिनको जगत उन्नत किये निशान।
दइ अनुभवानंद कहं गादी अरु वर्दान, रामयज्ञ करवाय-पुनि किय साकेत पयान ।
शिक्षादशक आदिशुचि हैं प्रबन्ध-मतिमान,भावनात्रयादिक जानिये बैष्णव ग्रन्थ महान।

२४. जगद्गुरु श्रीअनुभवानन्दाचार्यजी

(वसन्तपञ्चमी १५०३ वि स काशीमे प्रकट श्रीरामनवमी
वि स १६११ साकेतवास द्वारपीठस्थल श्रीबालानन्दमठ जयपुर)



श्रीअनुभवानन्द गुरु, जग-अनुभव किये महान ।
राम-रामकि भक्ति कह, कहे मुक्ति सोपान ।
देह गेह अरु, जीवनका-जगगुरु किये निदान ।
किये राति दिवस आप, रामको सुयस गान ।
श्रीराम ब्रह्मको कीर्तन, किये कराये जन्म भरि ।
श्रीआनदभाष्यप्रचारक,(अरु)रहेआप दुष्कर्मअरि ।
माघ वसन्तपचमी जन्मकाल कहै सन्त,
चलत त्रिबिध पवन, साधुनको सुख अनन्त ।
पन्द्रह सौ तीन विक्रम, सम्मत बुधजन वदन्त ।
प्रकट भूतल पर अनुभवानन्द महासन्त ।
शुचिजन्मस्थलश्रीकाशीहिं,बतरावत बुधसन्तगण ।
शुभनक्षत्रशुभ ग्रह शशिउ,पूर्णचन्द्रमानखत गण ।

जयपुर राजस्थानमें, द्वारसुपीठ महान, बालानन्दाचार्यमठ, ताको नाम सुजाना ।

रामानन्द बनि रामपधारे, अत्री मुनि तव हृदय विचारे ।
मृत्युलोक मह चलि यहिकाला, सेवउ रघुपति दीन दयाला ।
सरयूपारीण विप्रगृह आई, प्रकट भये अत्री मुनि राई ।
पितानाम अव करउँ बखानो, सुनउ सर्व सज्जन धरि ध्याना ।

यज्ञनिधी शरमा व्रतधारी, अग्निहोत्रमे थी रुचिभारी ।
पिता आपके परम सुजाना, चारो वेदपट शास्त्रन ज्ञाना ।
माता नाम सुनउ सब भाई, श्रीदेवी-श्री इव सुखदाई ।
श्री अनूप निधि जन्मसुनामा, रामकृपा सब गुणके धामा ।

वेद ऋचनसों प्रेम अति कर्मकाण्डकर मान, करै त्रिकालहवन नित, अनूप निधिमतिमान।

भये अठार सम्मतके जब, शास्त्रार्थमे भये निपुण तब ।
वेदशास्त्र आदिकर ज्ञाना, रामानदसो लहे सुजाना ।
सम्प्रदाय श्री के प्रति प्रेमा, धर्मरक्षा कर लीने नेमा ।
प्रव्रज्याहित सुनउ सुजाना, अज्ञा किये त्रिपाठि प्रदाना ।
पितु आज्ञा लहि ज्ञान निधाना, गढमुक्तेश्वर किय प्रस्थाना ।
भावानन्द चरण मह जाई, किये प्रनाम प्रदक्षिण लाई ।
भावानन्दाचार्य सुजाना, किय गृहस्थकर वहुत वखाना ।
कह वैराग मार्ग द्विजराई, परम कठिन है चला न जाई ।

दृढ निष्ठा लखि विप्रकी जगगुरु दयानिधान, वैदिकसंस्कार करि कीने मन्त्र प्रदान ।

विक्रम सम्मत सुनउ सुजाना, पन्दर सौ अट्ठाइस (१५२८) माना ।
माघ महीना सुखद मनोहर, वसन्तपाचम तिथि अति सुखकर ।
दीक्षीत भये अनूपकुमारा, लीने सिय पिय चरण सहारा ।
दिये अनुभवानन्द सुनामा, जगगुरु भावानद गुणधामा ।
जब जगगुरु साकेत पधारे, गे प्रसन्न श्रीराम दुआरे ।
तब अनुभवानन्द मुनिराई वोलि पठाये लघु गुरुभाई ।
श्री हनुमदाचार्य शुचिनामा, गुरु-गोविन्द भक्त बुधि धामा ।
गढ मुक्तेश्वर तेहि बइठाई, आप चले तीरथ कह भाई ।

हरिद्वार कनखलहिं जा श्रीअत्री अवतार, राम कृपा दिग्विजय किय श्री-श्रीदेवी कुमार।
ज्ञानिनको ज्ञानबल ध्यानिन ध्यानसे, तान्त्रिनको तन्त्रबल मान्त्रिक मन्त्रसे ।
बिद्या गुमानिनको विद्याबलके बलसे, सिद्धिके घमण्डिनको मानमथे सिद्धीसे ।
दुर्जनन प्रेमसे (व) सधुनहि साधुतासे, दश घमण्डिनको गर्व हरे योगसे ।

करि सगठित बैष्णवन-भाई, गुर्जर देश प्रवेसे जाई ।
किय धौलका विजय मुनिराई, अति द्वन्दिन दिय मारि भगाई ।
रामभक्ति कर किये प्रचारा, गुर्जर देश भ्रमण करि सारा ।
गिरिनगरीमे—सुनहु सुजाना, भा सामुहिकवाद-मतिमाना ।

शास्त्रार्थमे गे सव हारी, विजई भये मुनी तपधारी ।
वीरमगाम तान्त्रिकन डेरा, आइ जगद्गुरु कह घेरा ।
श्रीहनुमन्त चरण उर आनी, जीते सव कहं गुरुवर्दानी ।
सिद्धपुरी मह जगगुरुराई, सिद्धन कह सिद्धी दिखलाई ।

कीने तहाँ सुजान, वेदखम्भ अस्थापितहु, जहा कबहुँ भगवान रामानंद उपदेश दिय ।
वाममार्गिनकर किला किय आबूमें ध्वस्त, पाखण्डी गे भागी नांचैं वैष्णव मस्त ।
जयजनपद्में पहुचि कीने मठ निर्मान, प्रिया अनुज युत रामविभु पधराये हनुमान ।
वही अनुभवानन्दकर द्वारपीठ प्रख्यात, मीरीणसे साकेत गे जहां लखणके भ्रात ।
विरजा नंदगुरु पादुका पूजैं तहं पधराय,कविकिंकर बलरामकर भाग्य शून दिखलाय ।
जगगुरुके हैं प्रबन्ध कछु सुनै सन्त चितलाय,गीतार्थ सुधा है मुक्तिप्रद पढे सुने भ्रमजाय
श्रौतार्थसंग्रह ग्रन्थहु अनुपमपरमसुजान,श्रीरामचन्द्र विंसतिहुकर सन्तधरैं नित ध्यान ।
स्वामिवैष्णवाचार्यके चरणकमल शिरनाय,स्वामिअनुभवानन्दकर लिखेउं चरितसुखपाय

२५. जगद्गुरु श्रीविरजानन्दाचार्यजी

(श्रावण शुक्ल ९ बरसाना ब्रज मे १५४० मे प्रकट)



विरजानंदआनन्द निधि कृष्णसखा अवतार
वैदिकधर्म प्रचार हित प्रकटे भूमि कुमार

विक्रमसम्मतसुनहुसुजाना,पन्दरसोचालिसजगजाना।
ब्रजभूमीमेप्रकटि कुमारा, कीने जगमे धर्मप्रचारा ।
मधुसूदनचौबेपितुनामा,रहेवेदविद सब सुखधामा ।
श्रीगिरिराजधरनकीकन्या,नामराधिका माताधन्या ।
वरसाना जन्मस्थलग्रामा,भयेप्रकट तहमनसुखरामा ।
जन्मनामसुनियेमतिमाना,बृजवल्लभसवसन्तवखाना।
श्रावणमाससन्तसुखदाई,तिथि नवमीदेवन मन भाई।
शुक्लपक्ष सब भातिमनोहर,मामधुसूदनकेघरसोहर

जातकर्म विधिवत किये मधुसूदन विद्वान, बुला अनुभवानन्दगुरु किये पूर्ण सम्मान ।

कृष्णबाललीलामे भाई, रह अनुरक्त सदा द्विजराई,खेलै सदा बालकनसाथा तनमनसे पूजैयदुनाथा
करै स्वयं श्रीयदुपतिलीला, विप्रकुमार बालकन मीला ।
करै युद्धमयलीला द्विजवर, अस्त्रशस्त्र विद्यामे आकर ।
भयउ विधर्मीदलवरियारा, डीग गाम मा सुनहु उदारा ।
जब ब्रजमे द्विजवर सुधि पाये, जाइ विधर्मीन दलविचलाये ।

हिन्दु धर्मरक्षक दल जोरी, किये प्रतिज्ञा आप वहोरी ।
जह सगठन यवनकर पावैं युवक सैन्य ले आतुर धावैं ।

लखि उदण्डता पुत्राकी मातु पिता किय त्याग,किन्तु धर्मप्रेमीयुवक-के मन दुख ना लाग

हिन्दुधर्म सरक्षक सेना, नेता रहै आप उर भयना ।
गुरु अनुभवानन्द पह जाई, दीक्षित भये आप हर्पाई ।
कण्ठी तिलक छाप दिय मुनिवर, पुन दिये तारक-द्विज ईश्वर ।
विरजानन्द नाम है सुन्दर, किये सुखी वटु कह श्रीमुनिवर ।
पुनि विरजानन्दार्य सुजाना, गोवरधन पै जा तप ठाना ।
उग्र तपश्या लखि भगवाना, सन्मुख प्रकटि दीन वर्दाना ।
राममन्त्रके दिव्य प्रतापा, दुखदारिद भय मुनिहिं न व्यापा ।
अष्टसिद्धिनवनिधिया आई, वस विरजानद उर वरि याई ।

जब अनुभवानन्दजी गे साकेत पधार, तवगुरुगादीके हुये आपमुख्यआचार ।

बालानन्दहिं शिष्य वनाई, जयपुर गादी दिय बैठाई ।
आप गोवर्धन किये निवासा, सुमिरत जगगुरु जगन्निवासा ।
दिव्य षडाक्षरमन्त्रा गहाई, आशाराम हि लिय अपनाई ।
मुगल सैन दर्प विनाशन, वैष्णवदल किये गठित हजारन ।
श्रीवैष्णव सगठन वनाई, सैनिक ब्यूह रचे मुनिराई ।
किये खडा दल राम मनाई, पूर्ण विरक्तन कर दल-भाई ।
मुगल-अवैष्णव दिय विचलाई, विरजानन्द महामुनिराई ।
मुगल सैन्य सन्मुख ना आवै, विरजानन्द जो नाम सुनि पावे ।

जाटोपर था आपका अप्रतिम परभाव, सर्वविपक्षिन पर विजयशास्त्र अस्त्र परभाव ।
जयपुर से ही गयेगुरु सीतापतिके धाम, लहि सायुज्य श्रीरामकर मुनि भे पूरण काम ।
अनुभव मंगलादिबहु हैं प्रबन्ध गुरुकेविमल,कविकिर बलराम कृत बृत्तआपकरलघुअमल

ॐ २६ जगद्गुरु श्रीआशारामाचार्यजी (श्रीहाथीरामजी) ॐ

(१५६५ वि स कार्तिक शुक्ल १२ जन्मस्थल वडू नागौर, राजस्थान)

(श्री) आशारामाचार्य—गुरु आशा पूरण कीजिये ।
करै भक्तभे अरदास—शुचि कृपा नेक कीजिये ।
जीवनकी आशा फली लिय आशा अवतार जब ।



कन्टक होगये दूरि हर्षित बसुदा भई तब ।
द्विजहिम्मतरामकुमारगुरु,श्रीराम भक्तअस्तम्भदृढ ।
कविकिंकर बलरामकर, गुरु करिय सुरक्षितगढ ।
जन्मसमयअरुतिथीबताऊँ, सम्मतमासवारसमुझाऊँ ।
पन्दरसौपैसठि शुचिसम्मत,विक्रमकोसन्तनकोयेमत ।
कार्तिकमासमुनिनशुभकारी,तिथीद्वादशीयमभयहारी
चन्द्रवारअतिसुखदमनोहर,शुभनक्षत्रग्रहगणशुभथलपर
ब्रह्ममुहूर्तप्रकटभेआई,दिव्यपुरुषहिम्मत गृहआई ।
राजस्थान प्रदेशपुनीता,प्रकटे जह वीर अजीता ।
ता प्रदेश मासुनउसुजाना, हैनागौर जिलासरनामा।

ता जनपदमें गामइक सब प्रकार सों भव्य,घरघर शालीग्राम अरु तुलसीबिरवा दिव्य ।

हिम्मत रामपिता सुखदाता, थीं मोघीवाई तव माता ।
ग्राम नाम वङू कह सन्ता, तापुरमे रह विप्र अनन्ता ।
एकसे एक श्रेष्ठ विद्वाना, राखै सर्वशास्त्र कर ज्ञाना ।
हिम्मत राम द्विजेन्द्र सुजाना, करै सामऋक कर नित गाना ।
योग क्रियामे परम प्रबीना, किन्तु रहे द्विजवर अति दीना ।
था परिवार भार दुखदाई, चारिपुत्र-पतिनी त्रयभाई ।
हिम्मत राम द्विजेन्द्र उदारा, तीर्थ भ्रमण कर कीन विचारा ।
भ्रमण करत ब्रज भूमिहिं आये, विरजानद गुरु दर्शन पाये ।

करिसेवा मुनिवर्य कहं किये प्रसन्न सुजान, मन इक्षित मुनिवर्यसों पाये द्विज वर्दान ।

गुरु अशीश लहि विप्र सुजाना, पाये श्रेष्ठ धनिनमे माना ।
पाइ दिव्य धन विप्र उदारा, आशाराम केर व्याह विचारा ।
जगन्नाथ द्विजवरकी कन्या, चन्दा नाम कुलवती धन्या ।
ताके सगपरिपूर्ण उछाहा, आशारामकर भयउ विवाहा ।
बङू ग्रामकर निरखि विकाशा, हर सार पती मन भयउ उदाशा ।
जोधपुराधिप भूप सुजाना, कीन खालसा गाम महाना ।
जगगुरु विरजानद तह आये, हिम्मत चरण शिर नमाये ।
द्विज इक्षा लखि मुनिवरदाई, द्वादश अक्षर दिए सुनाई ।

द्वादश अक्षर रामकर मन्त्र पाइ विद्वान, जपन लगे नित प्रेमसे आशाराम सुजान ।

या विधि वीत गये बहु काला, ध्यावत रघुपति दीन दयाला ।
गये अचानक हरिके धामा, हिम्मतराम सग गई वामा ।
आशाराम द्विज भये दुखारी, गये तीर्थ यात्रा सग नारी ।
देव प्रयाग गये द्विजवर, गगमार्ग पतिनी गई हरिपुर ।
तव द्विज विरजानद पह आये, राममन्त्र गुरुवरसो पाये ।
जा दिन दीक्षित भये कुमारा, वरनै सो कवि सुनउ उदारा ।
शुचि असाढ पूर्णिमा सुखकर, दीने दीक्षा आशहिं मुनिवर ।
आशारामाचार्य सु नामा, दै कीने गुरु पूरण कामा ।

बिरजानंन्दाचार्यगुरु लिय दोउ शिष्य बुलाय,उत्तरदक्षिण दोउन कहं दीने तुरत पठाय ।

कहे प्रचार भक्ति कर जाई, करउ वत्स तुम दूनउ भाई ।
सुनि आज्ञा पद शिरनाई, बालानद गे उत्तर धाई ।
आशारामाचार्य सुजाना, दक्षिण दिशा कीन प्रस्थाना ।
यौगिक क्रिया पूर्ण दोउ भाई, चले प्रचार करन मन लाई ।
कछु दिन गये सुनउ मति माना, विरजानद किय स्वर्ग पयाना ।
जव विरजानंद स्वर्ग सिधारे, दोउ भाइन महँ परीं दरारे ।
आशाराम मनभई गलानी, दक्षिण दिशा गये विज्ञानी ।
बेकटाचल जाइ सुजाना, कठिन तपश्या द्विजवर ठाना ।

प्रकटि दर्श दीने तबहिं बेकटेश भगवान, कहे सर्वदा रहउ इत मम सन्निकट सुजान ।

वेकटेशकी आज्ञा मानी, रमे बेकटाचल मुनिज्ञानी ।
एक दिवस राजा तह आवा, गुरु कह सुनैबेद चढावा ।
आशाराम कहे मुसुकाई, अलपाऽहार करउ का भाई ।
हांथी सरिष मोरि ये काया, तनिक विचार करउ नरराया ।
सुनि नृपाल वोला खिशियाई, हांथी भक्ष्य देइ हौ लाई ।
वड पीपर अगणित कटवाई, गजवा दिय मुनि सन्मुख जाई ।
कहे भूप जो हाथी मुनिवर, स्वीकारो नैबेद मनोहर ।
आशा राम सुमिरि भगवाना, कहे शर्त मम मानु सुजाना ।

लीद उठावो भूप तुम जो तिय संगलिवाय,तो सुनु भूपति मन्दमति पात बचन न पाय।

सुनि मुनि वचन सुभूप सुजाना, कीनेउ तुरत शर्त स्वीकारा ।
आशारामचार्य भगवाना, कीन हृदयमे ऐरावत 'याना ।
योग क्रियासो सुनउ-उदारा, गज स्वरूप जगगुरुवर धारा ।
पाइ गये लक्कड सब भाई, आशाराम जगद्गुरुराई ।
निरखि भूप भा गत अभिमाना, गिरा चरण मह दण्ड समाना ।
कीन वडी जागिर प्रदाना, स्वयं शिष्य वनि नृप विद्वाना ।
रहे कुष्ठ स्वामी इक-भाई, दीने तिनको कोढ मिटाई ।
मठ अस्थापित किय मुनिराई, तिरु मल्लाईमे हर्षाई ।

जगद्गुरु दामोदराचार्य मिले तहं आइ, जेष्ठगुरु भाइहिं निरखि,नमे चरण महं जाइ ।
तिरुपतिमे रहे जन्मभरि आशारामभगवान,रामसीय पदपद्ममे जगगुरु किय प्रस्थान ।
जगगुरुरामानन्दके वंशज कृपा निधान, कविकिंकर बलरामपर कृपा करउ भगवान ।

२७. जगद्गुरु श्रीरामभद्राचार्यजी

(वैशाखपूर्णिमा १७३३ वि स कन्दरामनिक्कातजौरमे
प्रकट माघपूर्णिमा १७८९ वि स मे साकेतवास)



श्रीराम-राम भद्रार्य-रामके निकट निवासी ।
जगद्गुरु सुखधाम, कटिये यमकी फासी ।
श्रीरघुनन्दनदास सत्य-सद्गुणके राशी ।
आनदभाष्य प्रचार, किये घर-घर सुखराशी ।
श्रीआशारामाचार्यके, शिष्य परमप्रियदयाधन ।
विप्रवश अवतश जगद्गुरु, रामभक्त—भक्ती सदन।
श्रीरामभद्राचार्यमुनि कृपा उदधि करुणाकर,
कविकिकर बलरामपरराखियों मीठी नजर ।
आर्विर्भावसमयशुचिसुखकर,वैशाखीपूर्णिमामनोहर।
सम्मतसत्रहसौतैतिसमाना,प्रकटेजबमुनिदयानिधाना।

जन्मस्थल कन्दरा मनीक्कम, जनपद सुठि तजौर सुने हम ।
यज्ञरामदीक्षित पितु नामा, कान्यकुब्ज ब्राह्मण गुण धामा ।
सुव्व लक्ष्मी माता सुन्दर, परम वैष्णव रामभक्तवर ।
दीने रगनाथ वर्दाना, सुतवनि आयो पुरुष महाना ।

रामभद्र दीक्षित तेहि नामा, दीने गुरु-पिता सुख धामा ।
नीलकण्ठ दीक्षित घर जाई, किय अ ययन वेद कर भाई ।

योग्ग नाथ दीक्षितसे पढे व्याकरण जाइ, किय साहित्य अध्ययन नीलकण्ठ पहं आइ

रामभद्र द्विज वर्य सुजाना, थे साहित्यकेवर विद्वाना ।
राम नाम जापक मतिमाना, रामसुयस द्विजकर प्रिय प्राना ।
स्वप्नाऽवस्थामे रघुराई, दीने दर्शन द्विज कह आई ।
कीने आज्ञा रामप्रदाना, हाथीबाबा पहं जाउ सुजाना ।
उनके पादपद्म शिरनाइ,, लीजै रामन्त्र द्विज जाई ।
जागि स्वप्नसो द्विज विद्वाना, आशाराम पदको किय ध्याना ।
नीलकण्ठ दीक्षीक्ष सुकुमारी, रामभद्रकीसो प्रिय नारी ।

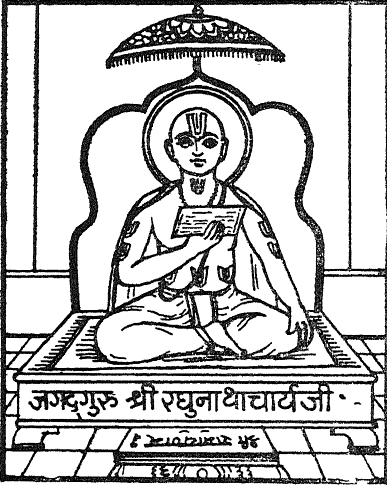
रामभजनमे दम्पति सदा रहैं लवलीन, दर्शन पुनः स्वप्न महं राम कृपा निधिदीन

भूप मराठा शाह सुजाना, किय द्विज कह ग्राम प्रदाना ।
राम भक्तिमे दिन दिनमे भाई, द्विज दम्पति रुचि बाटत जाई ।
कछु दिन गये सुनहु सब सज्जन, पनिर्ना गइ हरिपुर तजि निजतन ।
है स्वतन्त्र द्विज मणिहर्षाये, बेकटाचल जगगुरु पह आये ।
निज जागीर भ्रातन कह दीने, आप जगद्गुरु दर्शन कीने ।
किये प्रसन्न जगद्गुरुराई, वारवार चरणन शिरनाई ।
बैष्णव सस्कार करि सुखकर, तिलक छाप माला दिय मुनिवर ।
रामभद्र आचार्य सुनामा, पुनि दीने जगगुरु सुखधामा ।
सरणागती मन्त्र समुझाई, विधिवत जाप क्रियाहु गहाई ।
चरम मन्त्र पुनि गुरुज्ञानी, दीने द्विज अधिकारी जानी ।

कछुक दिवस गुरुसेवाकरि द्विजवर मतिमान,दक्षिण भारत यात्रा कियसंगबहु विद्वान ।
उथल पथल समय भा उत्तर माहि-सुजान, गुरु अस्थानमें ता समय सेवा होइ महान ।
साधुपाद पादोदक ले पंचामृत जानि, सन्त सेवा निशिदिन करै रामकृष्ण बपुमानि ।
रंगस्वामि सों वादमा जीते गुरु मैदान, उत्तर भारतकी पुनः यात्रा किये सुजान ।
भागीरथ मीमांशक मिथिलामे प्रख्यात, किये पराजित घरीमा रामभद्र हे तात ।
चन्दा नाम अघोरिहि जीते शंख बजाइ, ताकी कुत्सित विद्या दीने सर्व नशाइ ।
रामयज्ञ विधिवत किये नृसिहाचले सुजान, रममन्त्रको जापकरि किय साकेत पयान ।
रामचरण स्तव अरु रामचाप अस्तवशुचि, श्रीरामबाण सुस्तवः अरुतूणीरस्तवमेरुचि ।
श्रीरामचरितस्तवहु सुमहामुक्तिप्रदग्रन्थ, दिव्यरामस्तवपरहुं टीकाचन्द्रिका भक्ति पथ ।
श्रीजानकीशचरणमेराखैं गुरु अनन्य प्रेम,सत्यअहिंसउपकाररामयज्ञरामार्चालीनेदृढनेम ।

ꙴ २८. जगद्गुरु श्रीरघुनाथाचार्यजी ꙴ

(श्रावण अमावास्या १७५७ वि स लखना इटावामे
प्रकट ऋषिपचमी १८०७ वि स मे साकेतवास)



श्रीरघुनाथाचार्य गुरु रघुनाथ उपाशी,
वेद शास्त्र मर्मज्ञ सर्व सदगुणके राशी।
रामभक्त मर्मज्ञ अगुण पथ सदा उदाशी,
विप्र वश अवतश जिला लखनाके वाशी।
अरु रहेजन्मसेआपब्रह्मराममें अनुरक्त विमलमति।
सुसत्यसदनमितभाषीबुध,नित्यमुक्तअवताररामरति।

जन्मस्थलअरुसमय शुचिसम्मतकरउबखात,
मातपितागुरु देवकरकरउशान्तचितगान।

सुठि उत्तरप्रदेशअति उत्तम, जहअवतरेरामसर्वोतम।
जिला इटावामे इकगामा,लखना नामसर्वसुखघामा।

तामे बसत एक द्विज राजा, सब प्रकारका था सुखसाजा।
केशवनाथ तिवारी सुखकर, वेद शास्त्र मर्मज्ञ बुद्धिवर।
लीने तिनके गृह अवतारा, रामभक्त-रघुनाथ उदारा।
कमल-नाम मातु पतिसेवी, पतिव्रता भूतलकी देवी।
सम्मत सत्रहसौ सत्तावन, अमावास हरियाली सावन।
भये प्रकट ता दिन भू आई, द्विज दम्पति उर सुख न समाई।

पिता कालिका देविके रहे पूजारी शांत, सात्विक प्रकृतीके रहे हृदय बसै सियकांत।

ज़न्म नाम रघुनाथ तिवारी, थे चतुर्थ सुत आप अघारी।
बाल्यअवस्थामें द्विजराई, रहे मूक ना बोला जाई।
वर्ष आठके भे जब भाई, तन सौन्दर्य बरनि न जाई।
मातपिता सग इक दिन गये, मेलामे जह उत्सव नये।
बाटेश्वर मेलेमे जाई, वैष्णव सन्त लखे द्विजराई।
केशवनाथ तिवारी द्विजवर, कीन प्रणाम चरन मस्तकधर।
पुनि रघुनाथ चरन शिरनाये, बालशीश निज हस्त फिराये।
कहे वत्स बोलउ सियरामा, पूर्ण ब्रह्म रघुपति सुखधामा।

तब रघुनाथ उचारे रामराम अति स्पष्ट,मात पिता मनहर्ष अति मिटेउ मानशिककष्ट।

देवि शारदा जीह विराजी, मातपिता परिजन मे राजी ।
जब कछु दिन बीते हरि जाना, मातु कीन हरिपुर प्रस्थाना ।
वर्ष अठारह बीते भाई, काशी पटन गये द्विजराई ।
किय अध्ययन पूर्ण रघुनाथा, इत पितु गये जहा सिय नाथा ।
कलह पिता के भ्रातन कीना, तब रघुनाथ ग्राम तजि दीना ।
तीर्थ यात्रामे मन लाये, भ्रमत भ्रमत पोद्दु कुट्टिहिं आये ।
जहा विराजे मुनि कुल ईशा, रामभद्राचार्य मुनीशा ।
जाइ पादपकज शिरनाये, मन भावत अशीश द्विज पाये ।

वैष्णव संस्कार करि राममत्र दिय दान, रघुनाथाऽचार्यशुचि नामहु किये प्रदान।

पुन इटावा द्विजवर आये, टिकशी मन्दिर शीश नमाये ।
मन्दिर निकट गुफा इक सुन्दर, कुछ दिन भजन किये मुनिवर ।
गुफावाले बाबाके नामा, भये प्रसिद्ध तहां सुखधामा ।
हनुमत कृपा प्राप्त किय मुनिवर, सिद्धोमें बड मान आपकर ।
बहुतनके दुख द्वन्द मिटाये, अमित अपुत्रिन मुत्र गहाये ।
निर्धन धनी अनेक बनाये, दै अशीश दारिद्र नशाये ।
अठारह सौ इकमे (१८०१) मे भाई, छिपरा मऊद्विज पहुचे जाई ।
राम यज्ञ तह किये कराये, जन समूहके हृदय समाये,

करहल होते हुये गुरु मैनपुरी गे आइ, एक विप्रके पुत्रकर दीने रोग नशाइ ।

भाषा सब प्रान्तनकी जानै, निज गुरु कह ईश्वर करि माने ।
जब कलकत्ता गये मुनीशा, सब राजस्तानी नाये शीशा ।
बहुतक शिष्य बने तह आई, मारवाडके सज्जन भाई ।
गगामे बूडत मुनिराई, एक बालिका लिये बचाई ।
मध्य प्रदेश मध्य इक गामा, है नागदा नाम सुखधामा ।
लगी तामे अग्नि भयकर, रहे इटावामे तब गुरुवर ।
दीने अग्नि तुरत बुझाई, मन्त्र शक्ति सो श्रीमुनिराई ।
रामयज्ञ श्रीअवध कराई, प्रीति भोज दीने मुनिराई ।

रामभक्तिका जगतमें कीने खूब प्रचार, श्रौत विशिष्टाद्वैतकर घरघर किये प्रसार ।
राममंत्र बल जगद्गुरु राम निकट गे धाइ, रामगुफामे तन तजे रामचरण शिर नाइ।

आपके श्रीरामानन्दचम्पू, श्रीरतिराजशतक्र् तथा कुछ फुटकर पद्य प्रभृति प्राप्त हैं ।

२९. जगद्गुरु श्रीविश्वंभराचार्यजी

(चैत्रकृष्ण तृतीया १७७७ वि स पूनामे प्रकट ज्येष्ठशुक्लदशमी १८२७ वि स साकेतवास)



विश्वम्भर आचार्य विश्वपति राम उपाशक ।
विषमय जगको भोग, जानि तन ममता नाशक।
कामादिक सुख जानि, खर्व ना मोह करइया ।
माया पति पद ध्यान, माया दल दर्प हरइया ।
जगदम्बा श्री जानकिहिं,परा शक्ति अनुमानिमन ।
श्रीसीतापतिराम नमनकरि,पूजत श्रीहनुमतचरन ।

विश्वम्भर आचार्य गुरु पूरण कीजै काज,
कविकिर बलराम है चरण शरण महराज ।

राम चरणविश्वासअपारा,रहैजगतममतासोन्यारा ।
जानिभजनविनजगनिस्तारा,करै नजगसोनहिउद्धारा

मातु पिता गुरु जनकर आदर, करै सदैव गुरु विश्वभर ।
राम नामके श्रेष्ठ पूजारी, निरखै मात सम पर नारी ।
गोब्रह्म पद पूजन करही, सन्त दर्श लहि आनद भरही ।
भेद न गुरु गोविन्दमे जानै, द्रव्य पराया मृत्तिका मानै ।
सेवाधर्म श्रेष्ठ कह मुनिवर, पर उपकारी सन्त मुनीश्वर ।
पर दुख देखि दुखी ह्वै जावै पर सुख परम सुखी ह्वै जावै ।

अब जगगुरुवर कर चरित विरचौं राममनाय,मातुपिताकरनामअरु जन्मकाल कहुंगाय

सीताराम शास्त्रि पूणेकर, पिता आपके पूज्य द्विजेश्वर ।
सत्यभामा थी मातु सुशीला, कहै सुनै श्रीराघवलीला ।
जन्मस्थल पूना शुचि गामा, महाराष्टमे सब सुखधामा ।
सत्तरह सौ सतहत्तरि(१७७७)सम्वत विक्रमको है ये सन्तन मत ।
मास चैत्र मुनिजनमन भावन, कृष्णपक्ष सब भाति सुहावन ।
तृतीया तिथि त्रयताप विनाशक, प्रकटेउ द्विज गृह अद्भुत वालक ।
चउथ अवस्था माहि सुजाना, सीताराम लहे सन्ताना ।
वार शनिश्चर कह विद्वाना, प्रकटेउ वालक दीव्य महाना ।

नाम विनायक जन्मकर राखे गुरु पितुमात,बाल्य अवस्था आपको बीतेउ सुखमें तात ।

श्री तात्याशास्त्री पह जाई, किये अध्ययन श्री द्विजराई ।
राष्ट्र विचारधारा अनुयायी, बाल्यअवस्थासे द्विजराई ।
शोलापुर मह किय अध्यापन, परम चतुरता पूर्ण दयाघन ।
अट्ठारहसौ पाच (१८०५) मझारी, गये पिता साकेत सिधारी ।
भ्रातहिं मातु सेवा दै भाई, तीर्थ यात्रहिं गये सिधाई ।
निरखत तीर्थ क्षेत्र अरु धामा, विसरामद्वारिका गे बुधि धामा ।
तहा रहे आशीन-सुजाना, श्रीरघुनाथाचार्य भगवाना ।
उनके चरण शरण मा जाई, निर्भय भये विनायक भाई ।

बैष्णव संस्कार करि श्रीरघुनाथाचार्य, राममन्त्र विप्रहि दिये जन्म सफल किय आर्य ।

श्रीगोपाललालकी सेवा, किये कछुक दिन जगगुरु देवा ।
भाविक भक्त तहा वहु आवै, राम कथाऽमृत पी सुख पावै ।
दीन समन्वयकर उपदेशा, कपूरगिरि कह गुरु द्विजेशा ।
रामनाम सिद्धिहिं सतमानै, अन्य सिद्धिया असार जानै ।
सम्मत अट्ठारह सौ सत्तरह (१८१७) विजयादशमी दिवस मनोहर ।
राम यज्ञ सम्पूर्ण कराई, गोपाललालको धाम वनाई ।
गिरि नगरीमा सुनहु सुजाना, लहे वादमह विजय महाना ।
किये पराजित जगगुरुराई, सदानन्दब्रह्मचारिहिं जाई ।

राघवेन्द्रसिंह शाहिभे श्रीगुरु शिष्य-सुजान, संस्कारयुत गुरुवर कीने मन्त्र प्रदान ।

दक्षिण भारतकी यात्रामे, यसर गहा नामक सुगाममे ।
सुब्रह्मण्यहिं दीन अशीशा, श्रीरघुनाथाचार्य मुनीशा ।
गुरु अशीशके दिव्य प्रभावा, गगाधरकर जन्म सुहावा ।
सोई गगाधर सुनहु सुजाना, मे बैदिक विद्वान महाना ।
श्रीरघुनाथाचार्य भगवाना, किए दिग् विजय वजाई निशाना ।
श्रौत विशीष्टाद्वैतमत भाई, दीने घरघरमें फैलाई ।
राम यज्ञ बहु किये कराये, वाममार्गिन दूर्ग ढहाये ।
राम भक्तिकर करत प्रचारा, श्रीसाकेतधाम पगु धारा ।

श्रीविश्राम द्वारिकामें ले अंतिम स्वांस, श्रीसीतापति रामके जाइ बने प्रियदास ।
श्रीरघुनाथाचार्यगुरु करउ सदा कल्यान, शूक्ष्ममें तव गुण कथेउ कविकिंकर अज्ञान ।

आपके शिक्षामृत आचार्य प्रशस्ति प्रभृति निवन्ध है ।

ॐ ३० जगद्गुरु श्रीराघवेन्द्राचार्यजी ॐ

(चैत्र शुक्लपञ्चमी १८०७ वि स मे सिरसी विहारमे प्रकट
वैशाख शुक्ल नवमी १८३८ वि स मे साकेतवास)



राघवेन्द्राचार्य, रामरघुवरके प्यारे ।
दिव्य पुरुष औतार, राम भक्ति उर धारे ।
पवनपुत्र हनुमन्त, सन्तके चरण सहारे ।
मथिडारे भवसिन्धु, अनेकन पार उतारे ।
श्रीराघवेन्द्र सरकार युग, पादपद्म उरधारि नित ।
कलिकरालअघसिन्धुपर-गुरुरामनामजपपुल रचित।

राघवेन्द्र आचार्यकरजन्मकाल वर्णन करउ,
सम्मतउ तिथिअरुवार सुनासोई वर्णन करउ

सुरेन्द्रमोहनशाहाद्विजवर, पिताआपकेविद्यासागर ।
कमलकुमारीमाता नामा,बदत सर्व सुखके धामा ।
अहियारी अस्थान महाना, थे तहके दोउ शिष्य सुजाना ।
पुत्र प्राप्ति हित श्री द्विजराई, जनकपुरी परिकरमा लाई ।
किये मानता विप्र सुजाना, पूर्ण किये इच्छा भगवाना ।
सम्मत अट्ठारसौ सात (१८०७) मह, पुत्र जन्म सुनि परा विप्र कह ।
शुचि मधुमास सन्त सुखदाई, शुक्लपक्ष पाचम तिथि-भाई ।
जन्मेउ पुत्र रत्न इक सुन्दर, सुरेन्द्र मोहन घर सोहर ।

दरभंगामें रहा इक सिरसी ग्राम महान, भव्य बिहार प्रदेश महं प्रकटे दया निधान ।

राघवेन्द्रमोहन शाही, नामकर सन्त बताही ताही ।
जेष्ट पुत्र होनेके कारण, मात लडावै लाड हजारन ।
सम्मत अट्ठारह सौ सत्तर (१८१७), तीर्थ यात्रहिं चले त्यागि घर ।
गये प्रथम काशी विद्वाना, सुत विछोह तह भयउ सुजाना ।
गये अचानक दम्पति भाई, गये दोऊ साकेत सिदाई ।
राघवेन्द्र द्विज भये अनाथा, विचरै गंगा तट द्विज नाथा ।
विश्वम्भराचार्य मुनि नाथा, लखि अनाथ(शिशु) द्विज पकरे हाथा ।
पुनि बालक संग लिवाई, गे सौराष्ट देश मुनिराई ।

विश्रामद्वारिका जाइके जगगुरु किय [illegible] राघवेन्द्र कहं [illegible] हैं कीने पूरण काम ।

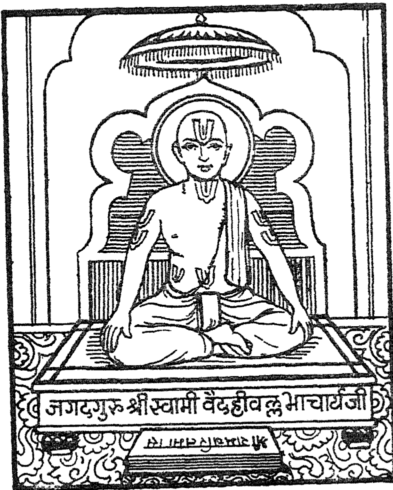
गुरु सेवा कीने मन [illegible], [illegible] विप्र सुखदाई ।
दीक्षा नाम दिये मुनिरा[illegible], राघवेन्द्रा[illegible] [illegible] ।
[illegible] प्रसन्न जगगुरु [illegible] राघवेन्द्र कह कीन प्रदाना ।
गुरुगादी अभिषेक कराई, [illegible] राम [illegible] [illegible] ।
सती सेवकन [illegible], अवध वाम गमने मुनिराई ।
राम यज्ञ करि सन्तमभारा, श्रीराघवेन्द्राचार्य उदारा ।

लघुवयमें ही करि गये गुरु साकेत पयाना, वैदेही वल्लभ कहं गुरुगादी करि दाना ।

आपके श्रीजानकीपञ्चकम् श्रीरामानन्दाचार्यस्त्रोत्र श्रीराघवेन्द्रमगलमालाकीटीका तथा विभिन्न गीत आदि हैं ।

३१. जगद्गुरुश्रीवैदेहीवल्लभाचार्यजी

(जन्माष्टमी १८११ वि. सं पोखरा, नेपालमें
प्रकट मौनीअमावास्या १८७१ वि स मे साकेतवास)



जगद्गुरु श्रीस्वामी वैदहीवल्लभाचार्यजी

वैदेहीवल्लभाचार्य गुणज्ञान निधाना ।
अशरण शरण सुजान, मिलै सन्तनमे माना ।
चतुर्वेद षटशास्त्र तथा पुरानन ज्ञाना ।
योगिक क्रिया प्रवीन, हृदय हनुमत अस्थाना ।
श्रीवैदेहीपति रामचरनमेश्रद्धा भक्ति महान अति ।
श्रीरामानन्द यतीन्द्रपद आजनेय पदपद्मरति ।
वैदेहिवल्लभाचार्य, सर्वसुखदातार,
कविकिंकर बलरामकी नइयाकीजै पार ।

सुनउसर्वसज्जन वरियाना, जन्मसमयअब करउबखाना
सम्मततिथीवारसमझावउ, मातपिताकरनाम बतावउ ।

पुराण रुद्र सम्मत (१८११) पर माना, विक्रमको सब सन्त बखाना ।
भादव मास कृषक सुख दाता, कृष्ण जन्म तिथि मुक्तिप्रदाता ।
जन्मस्थल अब करउ बखाना, सुनै सन्त सज्जन धरि ध्याना ।
कुडहर पोखरा गाम पूनीता, हिन्दु राष्ट नैपाल अजीता ।

गेदशर्मा पितुकर नामा, त्रय पतिनी घर पूरण कामा ।
पतिनी तीजी सुन्दर श्यामा, पतीव्रता सदगुणी ललामा ।
है तिनके सावित्री नामा, रूप राशि सद्गुणन सुकामा ।
जन्म नाम अब सुनउ सुजाना, श्रीविष्णु प्रसाद जगजाना ।

उपाध्याय ब्राह्मण रहे गेद द्विज विद्वान, परमबेष्णव रामपद प्रीति रही महान ।

बाल अवस्था सुखमे गयऊ, यज्ञ सूत्रहु पितुने दयऊ ।
पुनि काशीकीने प्रस्थाना, करन अध्ययन द्विज मतिमाना ।
धर्माचार्य विप्र विद्वाना, तिनसो लिय पाराणिश ज्ञाना ।
तहँ इ एक योगी मिलि गयऊ, तन्त्र मन्त्र युक्ति बहु दयऊ ।
श्री विष्णु प्रसाद द्विजराई, गये द्वारिका ता सग धाई ।
राघवेन्द्र आचार्य सुजाना, रहे विराजित तहा विद्वाना ।
जगगुरु ढिग बालहिं तजि भाई, योगी भयउ अदृश्य ता ठाईं ।
राघवेन्द्रबालकहिं लिवाइ, गे विश्रामद्वारिकहिं भाई ।

वेदशास्त्रमर्मज्ञ भे श्रीप्रभाषमा जाइ, अष्ट वर्षमें विप्र मणि गे सब विद्या पाइ ।

करि अध्ययन पूर्ण मतिमाना, रामयज्ञकी मनमे ठाना ।
सम्मत अट्ठारह सो चोतिस (१८३४)मे, रामयज्ञ द्विज किय प्रभाषमे ।
पुनि विश्रामद्वारिका आये, गोपालजीके दर्शन पाये ।
अट्ठारहसौ छत्तिस १८३६ सवत, भूप विक्रमको सन्तन मत ।
राघवेन्द्र मुनिवर पह जाई, मन्त्र प्राप्ति हित विनय सुनाई ।
गुरुपूर्णिमाके दिन जाई, मन्त्र प्रदान किय मुनिराई ।
अट्ठारह अडतिस शुचि १८३८ सम्मत, भये पीठपति आप सन्तमत ।
दीन दुखी दुर्बल सहारा, रहे सदा मुनिवर्य उदारा ।

मूलशंकरहिं अर्चक गुरुवर किये नियुक्त,पुनि कोशलकिशोर कहं मन्त्र दिये श्रुतियुक्त ।
कोशलेन्द्राचार्य कहं गादी दै भगवान, आप अयोध्या धाम हित तुरत किये प्रस्थान ।
नैपाली बाबा उन्हें कहैं अवध सब लोग,रहि कछु दिन साकेत गे दै शिष्य कहं शोग ।
वैदेहिवल्लभाचार्यकर शूक्षम वृत्त महान, रचेउ यथा श्रुत दास तब कविकिंकर अज्ञान

आपके रत्नप्रकाशिका श्रीसूक्तप्रकाशादि प्रवन्ध है ।

३२. जगद्गुरु श्रीकोसलेन्द्राचार्यजी

(वटसप्तमी १८३५ वि म रायगढमे प्रकट

अक्षयतृतीया १८८५ वि स मे साकेतवास)



कोशलेन्द्राचार्यके, उपास्यदेव राघवेन्द्र ।
राममन्त्र जापक, सत्यव्रतधर द्विजेन्द्र ।
आनंदभाष्य मर्मज्ञ, योग ज्ञानी जीतेन्द्र ।
शुचि सेवा व्रतधारी, उपकारी गुरु मुनीन्द्र ।
चतुर्वेद वक्ता-शक्तिमान,(अरु) तन्त्रमन्त्र मर्मज्ञ ।
वेदेहि वल्लभाचार्यके, शिष्य परम नीतीज्ञ ।

(श्री)कोशलेन्द्राचार्यगुरुरामभक्तिदो दान,
रचन चहै तवचरित कछु कविकिकर अज्ञान

जन्मसमयदिन वरीसुहावन,ग्रहतिथिनक्षत्रादिशुभपावन
अट्ठारहअरुपतिससम्मत,श्रीविक्रमादित्यसन्तनमत ।

वटसप्तमी तिथी अति पावन, प्रातकाल बहवात सुहावन ।
शुक्रवार नक्षत्र शुभस्थल, प्रादुरभाव भा द्विजकर भूतल ।
मध्यप्रदेशान्तर इक गामा, नाम रायगढ सुखको धामा ।
रह तामे इक विप्र प्रवीना, सद्गुणधाम अगुण छल हीना ।
चरणराम तिवारी नामा, पिता आपके पूरण कामा ।
यथा नाम तै सोइ गुण धारणि, रमावाइ माता कुल तारणि ।

परम वैष्णव मात पितु सीयरामपद प्रेम, साधु अतिथि गुरुसेवा था जिनका दृढ नेम ।

राम पादपकजमे प्रेमा, रामायण गीताकर नेमा ।
राममन्द्र कर किय अनुष्ठाना, प्राप्त करन हित सू सन्ताना ।
भये प्रसन्न रामसर्वेश्वर, ब्रह्म परात्पर विभु परमेश्वर ।
रमावाइके मुखमे भाई, दिव्य ज्योति इक प्रविशेउ आई ।
टवटसावित्रीव्रत दिन भाई, प्रकटेउ दिव्य पुरुष इक आई ।
श्री कोशलकिशोर सुखदाता, जन्मनाम दीने पितु माता ।
बाल्य अवस्था सुखी सुजाना, जगतजि करै जगत पति ध्याना ।
पन्दरा वर्ष भये कुमारा, मातपिता करि गये किनारा ।

मातपिताकर विधिवत क्रिया कीन विद्वान, उर उपजेउ वैराग तव घरतजि किय प्रस्थान।

श्रीविश्रामद्वारिकहिं आये, श्रीगोपाल चरण शिरनाये ।
वैदेहीवल्लभाचार्यकर, दर्शन लहे पुन श्रीगुरुवर ।
चरण शरण लगि विनय सुनाये, सुद्र प्रेम लखि गुरु मन भाये ।
वैष्णव सस्कार करवाई, राम मन्त्र गुरु दिये सुनाई ।
वर्ष तीन लौ सुनहु उदारा, काष्ठ मौनव्रत द्विजने धारा ।
श्रीकोशलकिशोर विद्वाना, गुरु कह मानै ब्रह्म समाना ।
अट्ठारह सत्तावन(१९५७)मे भाई, बने पीठाधीपति द्विजराई। ।

शिष्यहिं गादी सौंपिके जगगुरु किय प्रस्थान, अवधग्राममें जाबसे आचारज भगवान ।

श्रीवल्लभाचार्य सुजाना, गुरु वियोग मन भयउ मलाना ।
श्रीगोपाललालकी ताईं, स्वर्णछत्र गुरु गे बनवाई ।
राम कृष्णमे भेद न जानै, तत्त्व एक द्वै रूप बखानै ।
कुछ वैष्णव मन शका लाये, तिनहि राम बपु कृष्ण दिखाये ।
रामकिशोराचार्य सुजाना, गुरु वियोगमन भयउ मलाना ।
गमनोत्सव विधिवत सब कीने, सन्तन कह सम्मानित कीने ।
पुनि विश्रामद्वारिकहि जाई, रामयज्ञ कीने मुनिराई ।
रामायण भागवत पुराना, हो गुरु आश्रम सुनहु सुजाना ।
गूगा गुरुडम भारतीहिं किह्वा, राम मन्त्र बल पुनि सुविलिह्वा ।

राम किशोराचार्य कहं गुरुगादी बैठाई, गोपाललालके सन्मुख गे साकेत सिधाई ।

आपके अयोध्याशतक श्रीरामस्तोत्रादि अनेक प्रबन्ध है ।

३२ जगद्गुरु श्रीरामकिशोराचार्यजी

(अनन्तचतुर्दशी १८५१ वि स भुवनेश्वरमे प्रकट
भाद्रपद चतुर्थी १९११ वि स मे साकेतवास)

(श्री) रामकिशोराचार्य रामके परम पूजारी ।
सन्त सुजन सुखदेन दुर्जन मदहारी ।
दिव्य पुरुष अवतार, गुरु पदरजके भिखारी ।
विप्रवश अवतंश, मात इव लख परनारी ।



श्रीभुवनेश्वर भगवानके,वर प्रसाद प्रकटे जगत ।
महासिद्धसिद्धेश्वर,श्रीपवनपुत्रपवनपुत्रहनुमत भगत।
श्रीकोशलेन्द्राचार्यके शिष्य महाविद्वान,
शूक्षम जीवन वृत्तत्व रच बलराम अयान ।
जन्मसमयसम्मतअवगावउ,सुखदप्रदेशसुग्रामबताउ ।
वारतिथीशुभकरउवखाना,श्रवणकरै सज्जन धरिध्याना
कयउमातपितुकरगुभनामा,मास पाखहूकथउललामा
मासभाद्रनदरग्मसुहावन,अनन्तचोदशितिथिमुनिभावन
अठारहसोइक्कावनसम्मत,विक्रमभूपकेर सन्तमन ।
शुक्लपक्षसन्तनसुखदाता,तस्करअरु विरहिदुखदाना

जन्मस्थल भुवनेश्वर जानो, उडपी प्रान्त सुखद पहिचानो ।
दिव्य गुरु शुचिवार मनोहर, ग्रह नछत्र सभी शुभ थल पर ।

कमल नैन पितु नामशुचि चतुर्वेदविद्वान, मातरुक्मिणीसती अरु पतिप्रियप्राणसमान ।

भुवनेश्वर पद अर्चक द्विजवर, चाहत पुत्र अलौकिक सुन्दर ।
भे प्रसन्न भुवनेश्वर स्वामी, गमरमापनि अन्तर्यामी ।
अन्ताहित प्रभु दिय वदाना, किये विप्र मणी कर कल्याना ।
रेवति रमण जन्म कर नामा, अति नटखठ शिशु सुखको धामा ।
साधु सन्त सज्जन सग भावै, कथा वारतामे सुख पावै ।
प्रथम अध्ययन पिता कराये, शब्द शास्त्र विविवत समुझाये ।
करन विशेष अध्ययन भाई, काशीमे प्रस्थित द्विजराई ।
सस्कृत कर उत्तम ज्ञाना, पाये काशीमे मतिमाना ।

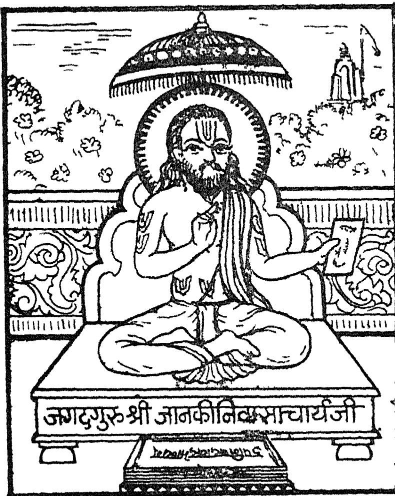
साधु सन्तके संगसो पाय उत्तम ज्ञान, इच्छा भगवत शरणकी प्रकटित भई सुजान ।

जाइ कटक अध्यापन कीने, विद्यादान माहिं चित दीने ।
कमल नयन सुत युवा निहारी, व्याहन हेत कीन तइयारि ।
गई अचानक स्वर्ग सिधाई, ममता मई रुक्मिणीबाई ।
कछु दिन गये सुनउ विद्वाना, कमल नयन किय स्वर्ग पयाना ।
भे विरक्त रेवतिरमण मन, करन लगे रघुवर पद चिन्तन ।
दर्शन दिये आइ भगवाना, जगन्नाथ प्रभु कृपा निधाना ।
दर्शन पाइ विप्र मतिमाना, तीर्थाटन हित कीन पयाना ।

भ्रमण करत गुजरातहि आये, जाइ द्वारिका दर्शन पाये ।
श्रीविश्रामद्वारिका जाई, आश्रम लखि हर्षे द्विजराई ।
तहाँ रहे कछु काल निरखेपुनिजगगुरु चरण,द्विजमणिभयेनिहाल कोशलेन्द्र पदपद्मलखि ।
रामकिशोराचार्य कछु दिन गुरु सेवा किये,कोशलेन्द्र आचार्य, सौंपे गादी मुदित मन ।
तीर्थयात्रा करन सिधाये, अमित विपक्षिन वादि हराये ।
धर्मप्रचार करत मुनिराई, उत्तर दक्षिण लिये मझाई ।
कुशुम सरस्वती स्वामिहि भाई, भक्ति शक्ति मुनि दिये दिखाई ।
सुठि पजाब देशमे जाई, मिले सर्व सन्तन सो भाई ।
अवधमाम पुनि आ मतिमाना, किय निवास सम्मत पर माना ।
रामयज्ञ सरयू तट कीने, दान मान सन्तन सन्माने ।
एक दिवस सुनिये मति माना, दिये स्वप्न यदुपति भगवाना ।
कियसाकेतपयानविशरामद्वारिकाआइगुरु, चादरकीन प्रदान जानकी निवासाचार्यकहं ।
आपके श्रीहनुमद्विंशन्ति श्रीआनन्दभाष्यमगल श्रीहनुमन्स्तत्र आदि प्रबन्ध है ।

३४.जगद्गुरु श्रीजानकीनिवासाचार्यजी

(माघकृष्णसप्तमी १८५१ वि स मरेलकोटला पजाबमे
प्रकट श्रावण शुक्ला सप्तमी १९१५ वि स मे साकेतवास)



जन मन करत निवास,जानकी वर सर्वेश्वर ।
ध्यावत जिनहिं गगेश,सहस मुख शिवामहेश्वर ।
आपहि कारण-कार्य, आपही जगत जगद् वर ।
हो आपहि परिपूर्ण, ईशोके ईश परात्पर ।
श्रीजानकी निवास मुनीन्द्रके,एकतुम्हीआराध्यप्रभु ।
बना दास पदपद्मकर, बलरामहिं कर पार विभु ।
जगगुरुजगदानन्द फन्द माया कर हरिये,
होवै परमानन्द दया गुरु जनपै करिये ।
श्रीजानकिनिवासमुनिईशा,दीजैकविकिंकरहिंअशीशा।
चाहउकथननाथगुनगाथा,लेउलेखनी गुरु निजहाथा
निमित बना दासहिं भगवाना, स्वय करउ निज चरित बखाना ।
कविकिंकर बलराम अयाना, है जग गुरुको चरित महाना ।

आविर्भाव समय अब गावउ, सम्मतवार तिथि समुझावउ ।
मातपिता प्रदेशकर नामा, जन्मस्थल कर वरनउ गामा ।
सम्मत अट्ठारह सौ इक्कावन, श्रीविक्रमको मुनि मन भावन ।
धार्मिक माघ महिना सुन्दर, तिथी सप्तमी सब विधिसुखकर ।
मल्लेर कोटला जन्मस्थाना, है पंजाब प्रदेश सुजाना ।

शुचिमंगलवारमांगलिक सुखसम्पति दातार, ग्रहनक्षत्रअरुयोगिनी ऋतू बसन्त उदार ।

कालूरामा शास्त्री द्विजवर, चतुर्बेद ज्ञाता योगेश्वर ।
कस्तुरीमाता कर नामा, पतीव्रता हरिभक्ता श्यामा ।
श्रीबैष्णवीदेवि के सेवक, तथा राम सीता पद पायक ।
पुत्र हेतु व्रत किये अपारा, वर ब्रूहि तव देवि उचारा ।
सुनि मइयाकी सुखप्रदवानी, बोले कालुराम द्विज ज्ञानी ।
चाहउ पुत्र रत्न विद्वाना, रामभक्त समरथ गुणवाना ।
जौ जननी जनपर तव नेहू, तो जगदम्व पुत्र इक देहू ।
एवमस्तु कहि मातु भवानी, अन्तर्धान भई वर्दानी ।

पाइ समय उतपन्न भा पुत्र रत्न द्युतिवान, जातकर्म विधिवत किये कालु राम विद्वान ।

जन्म नाम दीने पितु माता, श्रीजानकी राम सुखदाता ।
था पुरोहिती कर्मपिताका, कर्मकाण्ड शुचि विषय आपका ।
हरिद्वारमे जाइ सुजाना, किये अध्ययन द्विज मति माना ।
लघुवयमे हीं सुनउ उदारा, पितृदेव ने किया किनारा ।
गृहस्थ आश्रम किय स्वीकारा, मातुसेवा लगी सुनहु उदारा ।
अमृतकौर नारि शुचि सुन्दर, पतीव्रतासुशील गुणआकर ।
दे अशीश जननीउ जग त्यागी, गइ साकेत लोक बड भागी ।
गये कछुक दिन सुनउ सुजाना, पतिनिउ किय सुरलोक पयाना ।

तबउपजा बैराग उर कीने गृहपुरत्याग, तीर्थाटन हित चलिदिये जगसब शूना लाग ।

भयउ राम सिय पद अनुरागा, चले जाय निरखत बन बागा ।
सकल धाम अरु तीर्थ मझाई, गे विश्राम द्वारिकहिं आई ।
तह जगगुरुवर दीन दयाला, रहे तपश्यारत सवजन पाला ।
रामकिशोराचार्य मुनीशा, नाये जा द्विजवर पद शीशा ।

करिसेवा जगगुरुहिं रिझाये, स्वमनो कामना गुरुहिं सुनाये ।
जगगुरु कृपा उदधि गम्भीरा, कहे वत्स उर आनद्द धीरा ।
तिलक छाप-तुलसीकी माला, नाम मन्त्र है किये निहाला ।
जानकी राम मे जानकी दासा, छेदन किये माया कर फांशा ।

आज्ञा दादागुरुकी लीने शीश चढाय, दे प्रदक्षिणा गुरुकी गे दक्षिण दिशि धाय ।

अट्ठारह सो पच्चासी(१८८५)सम्मत, श्रीवरशिष्य बने मुनियन मत ।
श्रीसाकेत निवास नाम है, भस्म किये त्रयताप मन्त्र दै ।
जब दादा साकेत पधारे, आये गुरुद्वारेहिं मनमारे ।
श्री जानकी निवास उदारा, कीने दादागुरु कर्म सुसारा ।
श्री विश्रामद्वारिकावाशी, थे जेने गृहस्थ सन्यासी ।
सप्त दिवस लो भा जयकारा, श्रीगोपाल्लालके द्वारा ।
गुरु आज्ञा करिके स्वीकारा, श्रीसाकेत निवासहिं टेरि उदारा ।

गुरुगादी बइठाइके चादर दिये ओढाइ, श्रृंगवेरपुरके निकट बैठे जग गुरु जाइ ।
रामषडाक्षर मन्त्र करै जाप निशिवाशर, व्यर्थ किये सब तन्त्र कुरदा नाम अघोरिकर ।
त्यागे शरीर सरयू तट श्री अवध महं, गये जहां रघुवीर चढि विमान साकेत कहं ।
छमा करैगे सन्त कविकिकरबलराम कहं, त्रुटी रही अनन्त करन मे गुरु चरित ।

आपके श्रीसीतास्तोत्र श्रीजानकी विंशति तथा कुछ फुटकर रचना आदि है ।

ꣳ ३६. जगद्गुरु श्रीसाकेतनिवासाचार्यजी ꣳ

(चैत्र शुक्ल प्रतिपदा १८६७ वि स मण्डीमे ककट
ज्येष्ठशुक्लचतुर्थी १९३५ वि स० मे साकेतवास)

श्रीसाकेताधीश, आपके कार्य निराले ।
जगदीश्वर जगदीश, जगतके तुम रखवाले ।
आपहि करत सहार, आपहा पालन कर्ता ।
आपहि आप सर्वत्र, आपहा उत्पतिकर्ता ।
प्रभु श्रीसाकेत निवासके, परमईष्ट आराध्य तुम ।
कविकिंकर बलराम केहु, मातपिता गुरु सखा तुम ।



पवनपुत्र हनुमान मान अरिका हरहूप्रभु,
रामभक्तबलवानगुरुकविकिंकर निर्भय करहु।
श्रीसाकेतनिवासकर जीवन चरित अनूप,
चलेउं लिखनकिरपाकरउ ऐहनुमतकपिभूप ।

करउजगद्गुरुकरगुणगाना,सुनै सर्वसज्जनधरि याना
जन्मस्थलशुचिगामबतावउ,सम्मततिथिवारसमुझावउ
सम्वतअठारहमासडगठमें,लीनेउजन्म भारहरनजगतमें
प्रान्तहिमाचलकनिरमनाहर,मण्डीनामगाम ता अन्तर
जन्मस्थान सोइमुनिवरकर,श्रीसाकेतनिवासाचार्यकर
श्रीहरिरामपिताकर नामा,विद्यावारिविसदगुणधामा।
मातानाम वैष्णवी देवी,पति परमेश्वर पदरजसेवी।

श्रीजानकी निवासके गृही शिष्य थे आप, करैं निरन्तर प्रेमसे राममन्त्रका जाप ।

बृद्ध अवस्था माहि सुजाना, पाये परम दिव्य सन्ताना ।
पुत्र नाम श्रीधर सुखदाई, नामकरन कीने द्विजराई ।
बाल्यअवस्थासे द्विज बालक, मर्यादा अरु नियमपालक ।
मातपिता पद पूजन करई, गुरुजन पद रज मस्तक धरई ।
निरखि बैष्णव मनहर्षावै, पादपद्म मे शीश नवावै ।
प्रथम अध्ययन किय कुमारा, अपने गाम विद्यालय द्वारा ।
निरखि दृश्य जगका द्विजराई, रहे उदास न कछु सुहाई ।
मातपिता मन रहैं दुखारी, सुतकी दशा देखि व्रतधारी ।

जगसौं परम उदास हो श्रीधर द्विज विद्वान, तीर्थयात्राके निमित्त करिदीने प्रस्थान ।

(श्री) जानकिनिवास दिंगजाई, राममन्त्रलीने हर्षाई ।
ताहा समय उपद्रव भाई, भयउ ग्राम मण्डीके माई ।
माता पितासन भयउ बिछोहू, गे साकेत त्यागि सुत नेहू ।
तब श्रीधर विलासपुर आये, रामचरण रज मे मन लाये ।
किन्तु अस्थिर मन थिर न होई बन उपवन सबमे भय होई ।
भ्रमत भ्रमत इक दिन द्विजराई, श्रीजगगुरुपद निरखे जाई ।
पुनि जगगुरुकी आज्ञा पाई, किये कठिन तप भय बिसराई ।
तपमे हनुमत दर्शन कीने, राम पदपंकज चित दीने ।

पुनि जानकि निवास पहं जाई, राममन्त्र लीने द्विज राई ।
श्रीसाकेत निवासाऽचारज, नाम देई सारे द्विज कारज ।
अट्ठारहसौ पचानवे (१८९५) मांही, श्रीवर दीक्षित भये गुरुपांही ।
करि गुरु सेवा कछु दिन-माई, पुनि निज गुरुकी आज्ञा पाई ।

शुचिबिलास पुरमें सुजन इक मन्दिर बनवाई, पवनपुत्रहनुमान कहं दिय सप्रेमपधराई ।

रोपड गुरुद्वारेम जाई, भक्ति सिद्धान्त कहे मुनिराई ।
महा सिद्धो गुरु विख्याता, चमत बहु कीने ताता ।
इक कंगाल गिरि रहे गोसाई, लेन परिक्षा आये वाई ।
आइ कहे गुरु पह मुसुकाई, क्षुधा सताय रही मुनिराई ।
का चाहिये बोले मुनिराई, कह गिरि दनु दुग्ध मोहिं भाई ।
दुग्ध कमण्डल मंह जब जाई हो अदृश्य ना परै दिखाई ।
तब मुनिवर गुरुदेव सम्हारे, उफनि कमण्डल बहि चले नारे ।
जीति गोसाईहिं शिष्य बनाये, कृष्णाचार्य सूनाम गहाये ।

तांत्रिक भैरवनाथ कर दीने गर्व नशाय, भैरव भगतदासभे बने शिष्य सुख पाय ।
जानकी जीवनाऽचार्यकहं गादी पे बइठाइ, बिलासपुर मठियाहि मों गे साकेत सिधाइ ।
करुणाकर सदगुरु मिले स्वामिवैष्णवाचार्य, कविकिंकर बलरामके रह न अधूराकार्य ।

आपके श्रीरामशतकम श्रीसाकेत रहस्यादि प्रबन्ध है ।

३६. जगद्गुरुश्रीजानकीजीवनाचार्यजी


जगद्गुरु श्री जानकीजीवनाचार्यजी

(नागपञ्चमी १८७५ निस शुचीन्द्र केरलमें प्रकट
श्रावन कृष्ण द्वितीया १००२ मे साकेतवास)
तनमन काननमोर, राम साकेत निवासी ।
सुख उपजे चहुओर, कटे रवि सुतकीफाशी ।
पादपद्मकी रेणु, चहत सुरमुनि सन्यासी ।
राम कलाके कोप अश अज हरि कैलाशी ।
सु श्रीसीताजुकेप्राणधन, विधिहरिहरसेवित चरन ।
शठकविकिंकर बलरामकह, लीजै युगपदकी शरन ।
(श्री) जानकिजीवनदास रामदासगुनसदन,
जड़ कविकीअरदास श्रीहनुमतसुनलीजिये ।

श्रीजानकि जीवन यश गावउ, जन्म समय सम्मत बतलावउ ।
मातपिता गुरु नाम बताउ, जन्मस्थल प्रदेश समुझाउ ।

जानकि जीवनाचार्य सुजाना, करत सर्व जीवन कल्याना ।
अट्ठारहसो पचहत्तरि (१८७५) सम्मत, नागपचमी तिथि सन्तन मत ।
केरल प्रान्त मय इक गामा, सुठि शुचीन्द्र सुतीर्थ सनामा ।
पितानाम कुलशेखर द्विजवर, चतुर्वेद ज्ञाता बुद्धीवर ।
ममतामयी लक्ष्मि श्री माता, द्राविड ब्राह्मण सब सुखदाता ।
सरल स्वभाव मयत्री सबमन, सुखदुख सम गनि रहत मगन मन ।

पितानाम कुलशेखर थे अद्भुत विद्वान, शम्भु कृपाते भे प्रकट भवन एक सन्तान ।

किये हवन मख अनवन दाना, कुल शेखर द्विजवर्य सुजाना ।
जन्मनाम जयवर्धन सुन्दर, वर गुरु माता सुखकर ।
गये बहुह दिन सुखसे बीता, शिखये पिता सर्वकुल रीती ।
प्रयाग कुम्भमा सुनउ सुजाना, मातपिताकर भा अवशाना ।
जगगुरु श्री जानकीनिवासा, बाल्मिकि पालि पूर्ण किय आशा ।
सम्मत पन्च विंसता भाई, भये गुरुपद मन हर्षाई ।
अट्ठारह सो पन्चानो (१८९५) भाई, भे दीक्षित द्विजमणि सुख पाई ।
जानकीजीवनाचार्य सुनामा, दीने गुह्य विद्या सुखधामा ।

अट्ठारह सौ अट्ठनो मे तीर्थ भ्रमण चित दीन, भ्रमण करत बिदर्भ में पहुँचे विप्र प्रबीन ।

तह द्विज भरत कुमार सुजाना, शिष्य भयउ बुधिवर गुणवाना ।
पुनि केरल प्रदेशमे आये, जन्मभूमि कह शीश नमाये ।
कीने कछु दिन तह विश्रामा, श्रीजानकिजीवन गुण धामा ।
कन्याकुमारी कह द्विज विद्वाना, किये पुन हर्षित प्रस्थाना ।
करि दर्शन लौटे मुनि जबही, भ्रातन बहु समुझाये तबही ।
उत्तर दिशि कीने प्रस्थाना, श्रीजानकीजीवन भगवाना ।
करत वैष्णव धर्म प्रचारा, गोरखपुर मुनिवर्य निहारा ।
प्रकटि तहा यदुपति भगवाना, दीने दर्शन अरु वदाना ।
तन्त्र मन्त्र विद्या बहु पाये, रामयज्ञ प्रमुदित कर वाये ।
रामपरायण करत सुजाना, भे ज्वर सो पीडित भगवाना ।

भरताग्रजाचार्य कहं दै गादी भगवान, राम राम जपते किये श्रीसाकेत पयान ।
जानकिजीवनाचार्यगुरु दया करिय भगवान, तव यसगायोअबुधजड कविकिंकर अज्ञान ।

आपके श्रीसीतास्तोत्र श्रीजानकीतत्व आदि प्रबन्ध है ।

३७. जगद्गुरु श्रीभरताग्रजाचार्यजी

(माघी अमावस्या १८४८ वि स कुण्डराग्राम विदर्भमे
प्रकट वैशाख शुक्ल द्वितीया १९२३ वि स मे साकेतवास)



श्रीरघुनाथ अनाथनके, बनि नाथ सुयसविस्तारो ।
अशरण शरण सुजानप्रभो, अब दीनन देउ सहारो
श्रीभरत लखन अग्रजविभो, सीताजीके प्राणधन ।
हो,त्रिभुवनकेआराध्यप्रभो,सुसर्व सुखदमुनिजननमन
नारदशारदशेप विष्णु अज,सुपूजतपदनिशिवाशर ।
सर्वेश्वर सर्वज्ञ सदाशिव, विभू परमेश परात्पर ।
भरताग्रज महाराज, आज तव सुयश बखानू,
महासिद्ध मुनिराज कथउ जो कछु म जानू।
बेद तत्त्व मर्मज्ञ, शास्त्र मथिडारे सारे,
उपकारी नीतिज्ञ, जापबल मन कशि डारे ।

श्रीजानकी जीवनाचार्यके, शिष्य तपस्वी महामुनि,गुरु त्रुटी बलगमकी क्षम्य करो प्रभु बालगनि।

अब चरित्रवर्ननकरउं सुनै सन्त मन लाइ,जोकछु गुरुजनसो सुना कथउंसोइ चितलाइ ।

अट्ठारह सौ अडतालिस(१८४८)सम्मत, विक्रमकेर सन्त कह एक मन ।
माघ महीना तिथि अमावस, प्रकटे मातपिताके सरवस ।
जन्मस्थल कुण्डारा नामा, महाराष्ट्रमे सुन्दर गामा ।
रहे तहाँ इक विप्र सुजाना, महासुदेव भट्ट विद्वाना ।
धन्य सु गौरी माता नामा, सती सुशील सर्व गुण धामा ।
था ज्योतिपका पूरण ज्ञाना, धन्य गौरि कह सुनहु सुजाना ।
जन्म नाम शुचि भरतकुमारा, कछु दिनमे पितु स्वर्ग सिधारा ।
विधवाने अध्ययन करावा, ज्योतिष न्याय व्याकरण पढावा ।
सस्कृत अरु प्रान्तीयभाषा, पढे भरत हरि पदकी आशा ।
करि सम्यक अध्यन सुजाना, करै राम सीताकर ध्याना ।

आजिविकाअप्राप्य यद्यपि सबविधि योग्य द्विज,किय संघर्ष अमाप्य लहे मुनिभीसेवातब ।

किन्तु विप्र कर मन नहिं लागा, तब नोकरी विप्रवर त्यागा ।
धन्य गौरि गइ प्रभुके धामा, भे तव भरत विप्र निष्कामा ।

प्रसवकाल मह सुनहु सुजाना, नारि रुक्मिणी त्यागे प्राना ।
छिन्न भिन्न भे बन्धन सारे, तब द्विजवर रघुपतिहिं सम्हारे ।
रामटेकपर बैठे जाई, सीतावर चरणन चितलाई ,
किये कठिन तप भरत द्विजेशा, भये प्रसन्न राम अवधेशा ।
श्रीजानकीजीवनाचार्य, आये मण्डलयुत तह आर्य ।
करि बिनती गुरु वरहिं रिझाये, राममन्त्रकी दीक्षा पाये ।

भरत अग्रजाचार्य नाम दये गुरुवर मुदित, भये मगन मन आर्य भवतारन-तारकहिपा ।

भ्रमण करत विलासपुर आये, दादागुरुके दर्शन पाये ।
पुनि सौराष्ट्र देशमे जाई, धर्म प्रचार कीन मुनिराई ।
श्रीरेवातट जा द्विजराई, हरिशंकर द्विजवर अपनाई ।
दे दीक्षा जप रीति शिखाये, साम्प्रदायिक ज्ञान बताये ।
श्रीहनुमदाचार्य सुचि नामा, किये विप्र कह पूरण कामा ।
गुरु शिष्य दोनो इक साथा, गोहिलवाड गये मुनि नाथा ।
कोलियादके मन्दिर माहीं, योगक्रिया दीन द्विज काहीं ,
शिष्यहिं सब अधिकार गहाई, गये आप साकेत सिधाई ।

रामतत्त्वम् आदि बहु ग्रन्थ रचे मुनिराय, कविकिंकरबलराम जड नमन करै शिरनाय ।

आपके श्रीहनुमत्स्तव, श्रीरातत्त्व आदि प्रबन्ध है ।

॥ ३८. जगद्गुरु श्रीहनुमदाचार्यजी ॥

(अक्षयतृतीया १९०७ वि स राजपीपलामे
प्रकट कार्तिकशुक्ल एकादशी १९७८मे साकेतवास)

श्रीहनुमद आचार्य सर्व विद्या गुणराशी ।
कम्पै सकल अनार्य, देखि हनुमद सुखराशी ।
रामचन्द्र पद कंज, भ्रमर विद्याके सागर ।
ज्ञान भक्ति तप पुंज, तन्त्र विद्यामे आकर ।
श्रीगुरुपदपद्म परागमे, सदा रहै अनुरक्त गुरु ।
सियरामरहस्य प्रचारमे, रहत सर्वदा व्यस्त गुरु ।



श्रीहनुमदाचार्यकर जीवन चरित महान,
रचन चहउकरियोकृपाकृपासिन्धु हनुमान।

सम्मत वर्ष पाख बतलाउ, तिथीवारजन्मस्थलगावउ
विक्रमसम्मन-सुनहुसुजाना, ओनइसशून्य सातपरमाना
मामधार्मिकवइशाखमाना, शुक्लतीरतीयातिथीमहाना
राजपीपलाजन्मस्थाना, हेगुजरात मध्य-मतिमाना ।
भानुशकरपितासुजाना, वेदादिक कर सुन्दरज्ञाना ।
ममतामयी भगवतीमाता, सेवेअम्बापदजल जाता ।
नवरात्रीअम्बा(जी)महजाई, करमापूजन व्रतद्विजराई।
पुत्रप्राप्तिकरदियवर्दाना, अम्बामातप्रकटि मतिमाना ।

प्रकटेउ पुत्र महान विप्र भानुशंकर द्विज भवन, उत्सव सुजान विप्र मण्डली बोलि गृह ।

जन्म नाम हरिशकर सुन्दर, दीने मात अरु द्विजवर ।
बचपनमे नटखट हरिशकर, करै उपद्रव गृहपुर अन्तर ।
बाइस वर्ष विताये जबहीं, पिता स्वर्गवासी मे तबहीं ।
सम्मत ओनइस सौ पैतिस (१९३५)मे, किये व्याह द्विज उत्तमकुलमे ।
मातउ गई सुरलोक सिधाई, बसे भरुच नगरी द्विज जाई ।
मा विछोह पतिनीउसे भाई, सीताराम प्रीति उर छाई ।
भरताग्रजाचार्य मुनिराई, दिये षडक्षर मन्त्र सुनाई ।
दीक्षा नाम हनुमदाचार्य, दिये सहर्ष जगद्गुरु आर्य ।

कोलियादमें जगद्गुरु भरताग्रज भगवान, रामराम सिय कहि किये, साकेत पयान ।

पुनि हनुमदाचार्य विद्वाना, तीर्थाटन हित कीन पयाना ।
भू गर्भशास्त्री भगवाना, श्रीहनुमदाचार्य मति माना ।
श्रीरघुवर प्रसाद मिश्रा कह, दीने राममन्त्र मुनिवर तह ।
शिष्यहिं बारह वर्ष पढाई, दिये पूर्ण विद्वान बनाई ।
अवध मह पुन आप पधारे, श्रीसरयू तट यज्ञ कराये ।
पुनि रघुवराचार्य कह भाई, सिधपुरमे दीने बैठाई ।
रामघाट पर पुनि गुरु जाई, अपनो आसन दीन लगाई ।
वहा रामअर्चा करवाये, अवध सन्त मण्डल बुलवाये ।

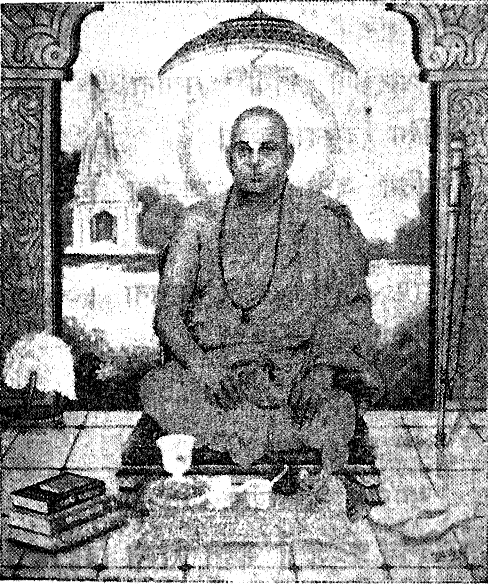
श्रीसीता रघुनाथके चरण कमलचितलाय, गये दिव्य साकेत कहं सुर दुर्लभ गतिपाय ।
श्रीघुरवर आचार्य भे मठ दुन्दुभि घनघोर, कविकिंकर बलरामके रक्षक अवध किशोर ।

आपके परमगतिमीमासा, विरहगीता, श्रहनुमत्पञ्चक, श्रीहनुमन्महिम्न आदि अनेक प्रबन्ध है ।

महामहोपाध्याय जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य

३९. रघुवराचार्य वेदान्त केशरीजी

(आश्विनशुक्ल दशमी १८४३ वि सं मुरादाबादमे
अवतार वसन्तपञ्चमी २००७ वि स मे साकेतवास)



श्रीरामानदराम, पादपकज शिर नाऊ ।
(श्री) जगजननि सुधाम, भूमिजा चरण मनाऊँ ।
(श्री) पवनपुत्र बलधाम, वीर हनुमान रिझाऊँ ।
(श्री) यतीन्द्र गुणधाम, रघुवराचार्य मनाऊँ ।
श्रीमदटीलाचार्यजगद्गुरु, व्रति पतिद्वाराचार्यमहान।
पुनि श्रीअगस्त्यआनारगुरु,नमउमगलाचार्य सुजान ।
श्रीरघुवराचार्य आचार्य, श्रीसम्प्रदायके महामुनि ।
सुवेदवेदान्तहिंमथनकरि,रामभक्तिलियकाढिशुद्धगुनि।
श्रीरामानवेदान्तकिये दृढ,सदइतिहासनशोधिशोधि।
वेदान्त केशरी पदलहे, महाविज्ञान सुमर्म बोधि ।
प्रतिवादभयकर जगद्गुरु, शास्त्रार्थमहारथीधीर ।
श्रौत विशिष्टाद्वैत प्रचारक,अरुसरक्षकथे महावीर ।

शिष्य महाविद्वानश्रीहनुमदाऽचार्यकर, रामानंदभगवान उन्तालिसवे या भूमिपर ।

परम तपस्वी जगद्गुरु, रामानन्दाचार्य ।
कविकिंकर बलरामके, सुर्वसुधारिय कार्य ।
हो शेष मठेश्वर आप, दया उदधि करुणा अयन ।
प्रतिवादिन बल नाप, लेत धरी मा सुख सदन ।

(गुरु) विप्र वंशअवतंस गुरु, श्रीशेष मठेश्वरआर्य ।
(प्रभु) रक्षक वैदिक धर्मके, श्रीरामानन्दाचार्य ।
बुधि विद्यागुण सिन्धु गुरुरघुवराचार्य, थाह न पावै मूढ कवि ये बलराम अनार्य ।
अब वरनउ जगगुरु यश गाथा, नाइ स्वगुरु पदपंकज माथा ।
सम्प्रदाय श्रीके विद्वाना, अद्वितीय थे कृपा निधाना ।
महामहोपाध्याय सुपदहु महाना, दिय ब्रिटिस पति मुदित प्रदाना ।
विप्रवंश अवतंश मुनीश्वर, सुमिरैं नित्य राग सर्वेश्वर ।
पिता आपके रहे सुजाना, कान्यकुब्ज ब्राह्मण विद्वाना ।
उपाध्याय परिवार पुनीता, भजन प्रताप इन्द्रियन जीता ।
गोत्र वशिष्ठ पुनीत महाना, परवर तीन कहत विद्वाना ।
शुक्ल यजुर्वेदीय मतिमाना, शाखा वाजसनेयी सुजाना ।
जन्मसमयसम्मतकथउंसुना जोअपने कान,है उनइस सौ तैंतालिसविक्रमकरमतिमान ।
उनइस सौ तैंतालिस सम्मत, रहा विक्रमकर सन्तन मत ।
आश्विन मास पुनीत महाना, विजयादशमी तिथी सुजाना ।
शुक्लपक्ष सन्तन सुखदायक, तस्कर अरु विरहिन दुखदायक ।
चन्द्र सूर्य सब नखत पुनीता, जादिन जन्मे आप अजीता ।
श्रीरघुवराचार्य विज्ञानी, थे कर्मठ मुनिवर वर्दानी ।
उन्तालिसवे आचार्य महाना, सम्प्रदाय महं उच्च स्थाना ।
श्रीरघुवर रघुवरके पायक, अपर रामानंद मुनि नायक ।
रामनिवास उपधिया नामा, पिता केर विद्यागुणधामा ।
श्रीजानकीदेवी थी माता, पतीव्रता जिमि सुरपति माता ।
जन्मोत्सव मा द्विज विद्वाना, रामयज्ञ करवाये महाना ।
नगर मुरादाबाद है, जन्मस्थल द्युतिवान, उत्तरदिव्य प्रदेश है कहत सन्त विद्वान ।
सुश्रीनिवास जन्म कर नामा, कहत सर्व गुरु जन गुणधामा ।
कछु दिन पितु पह किये निवासा, पितु पह किये प्रथम अभ्यास ।
श्रीहनुमदाचार्य पुर आये, जगगुरु दर्शन करि सुख पाये ।
अठत्तिसवे आचार्य सुजाना, श्रीहनुमदवतार भगवाना ।
श्रीनिवास तिन पद शिरनाये, चरण शरण लगि विनय सुनाये ।
जानि भविष्य महामुनिज्ञानी, विनती वटुकी लीने मानी ।

तिलक छाप कण्ठी अरु नामा, दीने जगगुरु पूरण कामा ।
उनइस सौ एकसठि शुचि सम्मत, दीक्षा दीन गुरु सन्तनमत ।

श्रीरघुवराचार्य पुनि कीने नाम प्रदान, सम्प्रदाय उत्थान मे भे प्रवृत्त मति मान ।

पुनि गुरुवर सग अवध पधारे, तारक जपत जाय मन मारे ।
राममनोहराचार्य प्रसादा, थापे सम्प्रदाय मर्यादा ।
बडे स्थानाधीश पह जाई, लागे पढन विप्र मन लाई ।
अल्पकालमें सुनउ सुजाना, ह्वै गे सर्व श्रेष्ठ विद्वाना ।
तबहु जगद्गुरु कृपा निधाना, पढै निरन्तर बेद पुराना ।
महामहिम दार्शनिक सुजाना, बालकृष्ण मिश्रा मति माना ।
श्रीरघुवराचार्य वरदाई, उनसो पढन लगे मन लाई ।
न्याय तथा बेदान्त मीमाशा, लीने पढि गुरु करैं प्रसशा ।

वेदान्त केशरीपद दिये सन्तोंने हर्षाय, थे अवतारी जगद्गुरु महिमा कही न जाय ।

रामानुजी रहे विद्वाना, विद्यालयमा एक सुजाना ।
रामानन्दि छात्र अपमाना, देखि सके न गुरु विद्वाना ।।
परम्परा उद्धरन हेता, किये प्रतिज्ञा गुरु सचेता ।
प्रस्थानत्रयभाष्य महाना, किये जो रामानद भगवाना ।
किंये प्रकाशन सोई सुजाना, श्रीरघुवराचार्य मति माना ।
महामहोपाध्याय सुपदवी पाई, पहुचे शेष मठहिं पुनि जाई ।
बना दिये सरकार तुरन्ता, दिव्य शेषमठ केर महन्ता ।
रामानन्द पीठ निर्माना, किये प्रथम जगगुरु भगवाना ।

रामानन्दाचार्यपद पुनि सब किये प्रदान, भारतके जेते रहे महा महिम विद्वान ।
संस्कृत विद्यालय थापे पुनि श्रीमान, सम्प्रदाय श्रीको भयउ तासों अति कल्याण ।

गुरुके छात्र अमित अमित विद्वाना, एकते एक श्रेष्ठ गुणवाना ।
कछुक नाम मे तुमै सुनाऊ, सुनि पावा जो सोई बताऊं ।
(१) बुधसम्म्राट्र महाकवि ज्ञानी, श्रीवैष्णवाचार्य वर्दानी ।
श्रीबेदान्तपीठ पति सुखकर, अभिनव वाचस्पती गुणाकर ।

(२) रामवल्लभा कुज अधीश्वर, रामपदारथदास मुनीश्वर ।
(३) चालिसवे आचार्य महाना, रामप्रपन्नाचार्य भगवाना ।
काशी श्रीयतीन्द्र मठ पती, कर त्रिदण्डधर योगी यती ।
कृपापात्र है द्विज वरदाई, श्रीरघुवराचार्यके भाई ।

ब्रह्मचारि बासुदेव कहं जानत सब विद्वान, श्रीरघुवरके छात्र हैं सोऊ विप्र सुजान ।

जानकिदास आदि विद्वाना, छात्र आपके सब जगजाना ।
रघुवर विद्यालयके भाई, छात्र अमित पदवी गे पाई ।
अजहु करत अभ्यास सदाई, अमित प्रदेशके द्विज जन आई ।
चलत अबाध गतीसो भाई, रघुवर विद्यालय सुखदाई ।
विद्यार्जन हित आवत धाई, नयपालसे छात्रगण भाई ।
श्रीवेदान्त केशरी मुनिवर, प्रतिभाशील दार्शनिक सुखकर ।
अमित प्रश्नकर उत्तर भाई, देत घरी मह गुरु समुझाई ।
थे विद्याकी मूर्ति सुजाना, श्रीरघुवराचार्य भगवाना ।

सुत नारी परिजन सहित आइ अमित भूपाल, ह्वै दीक्षित गुरुदेवसों मनमें भयेनिहाल।

वेदान्त आश्रम निर्माना, किय रघुवराचार्य भगवाना ।
वेदान्त स्तम्भ करन निर्माना, सिद्धपुरी में कृपा निधाना ।
किय सकल्प हृदय हर्षाई, वेद प्रचार हेतु मुनि राई ।
रामानन्दी सन्त शुद्धचित, करैं प्रसशा विद्वद्‌जन नित ।
योग्याऽयोग्य करि पहिचाना, करते जगगुरु विद्यादाना ।
विद्यामद गुरुवरमे नाहीं, आपुहिं लघु औरहिं बड गनहीं ।
आत्म प्रसशी ना भगवाना, निजप्रशसा गुरु सुनैं न काना ।
श्रीरघुवराचार्य मतिमाना, विद्वद्‌जनकर करते माना ।

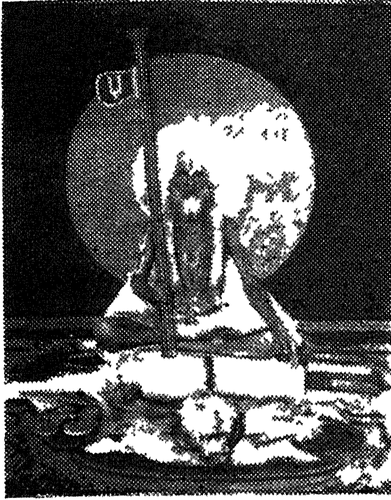
न्याय नम्रता रूप थे धीरवीर विद्वान, अमित प्रबन्ध रचयिता जगगुरु कृपानिधान ।
प्राप्य प्रबन्ध बयासी मुनिवर रचित महान,श्रवण मनन अरुपठन ते जन लह पदनिर्मान ।
विनवै कवि बलराम जगगुरुके पदपद्म द्वै, रामभक्ति सुखधाम दासहिं दीजै द्रवित ह्वै ।

आप के दिव्य प्रबन्धों की सूची पृष्ठ ६०२ मे छपी है ।

४०. जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य रामप्रपन्नाचार्यजीयोगीन्द्र

(चैत्र शुक्लनवमी [श्रीरामनवमी] १९४९ वि स काशीमे अवतार)



श्रीरामप्रपन्नाचार्य, रामके परम उपाशक ।
काम क्रोध मद दम्भ मोहकर मूल विनाशक ।
चालिसवे आचार्य, वेदवाणीके प्रचारक ।
शेषमठेश्वर दिव्य त्रिप्रकुल ज्योति प्रकाशक ।
शुचि अष्टाग योगके योगिराज है अच्छे ज्ञाता ।
ज्ञान उदधि श्रीराम भक्त शिरमौर स्मृति व्याख्याता ।
महा मुनीन्द्र श्रीयतीन्द्र गुण गाउ अब,
जन्मको समय शुभ सम्मत सुनाउ मै ।
तिथीवार जन्म भूमि जनपद प्रदेश शुचि,
मातपितु नाम वश विविवत बुझाउ मै ।

परम पुनीत दिव्य पुण्य प्रद मास शुचि,
तिथियोमें श्रेष्ठ रामनवमी बताउ मै ।
मुक्ति क्षेत्र काशी अविनाशी श्रीशम्भु धाम,
उत्तर प्रदेश भव्य दिव्य समझाउ मै ।
सम्मत कहत बुध उनइस अरु उनचास,
श्रीअवन्तिका नरेशवीर विक्रम सुनाउ मै ।
श्रीमत कान्य कुब्ज भूसुर कुलावतस,
विष्णु जा जान्हवी किनारा सुनि पायउ मै ।
याही पवित्र धाम काशी मे रहे एक,
विश्वम्भर प्रसाद द्विज मणी महा ज्ञाना जू ।
अन्न गो लक्ष्मीसे रहा परिपूर्ण गृह,
उनपै प्रसन्न रहीं शारदा भवानी जू ।
विद्या विनय सम्पन्न अरु दयावान,
विद्वत जनोमें रहा उनका बडा मान जू ।
बौद्ध मत विदारक प्रचारक सनातनके,
शास्त्रर्थ महारथी सन्त करैं मान जू ।

मातु श्री गुलाब देई सुन्दर सुशील सती,
पति पद सेवै नित्य जानि भगवान जू ।
ताके कुक्षी भयो प्रकट अनुपम सुदिव्य पुरुष,
सूर्य चन्द्र नक्षत्र रहे शुभ स्थान जू ।

राम प्रसादसुनाम दिये मातुपितुमुदित मन, बढ़नलगेउसुखधाम राति दिवसशशीकलावत

अष्ट वर्षके भये कुमारा, तब विश्वम्भर हृदय विचार ।
राम यज्ञ विधिवत करवाई, सुतहिं जनेउ दिये पहिराई ।
पा द्विजत्व सो बाल सुजाना, श्रवण करै नित बेद पुराना ।
पुन सस्कृत लगे पढावन, विश्वम्भर प्रसाद मन भावन ।
करैं नित्य गगा अस्नाना, सुमिरै रामचन्द्र भगवाना ।
कोरे घट गगाजल लावैं, विश्वनाथके शीश चढावै ।
पुनि हनुमत गायत्री जापा, करै शम्भु सन्मुख निष्पापा ।
या विधि बीति गये कछु काला, भये द्रवित शिव परम कृपाला ।
कहे सदा शिव निकट बुलाई, श्रीकेशरी सुवन वरदाई ।
द्विज बालक कह करउ सनाथा, मम आज्ञा ए कपि कुलनाथा ।

रामप्रसादहिं दर्श है करउ सम्मान, रामचरण रति दान दे शक्ति करउ प्रदान ।
एक दिवस गंगा निकट मिले आ हनुमान, जरजर तनद्विजरूप महं दियेभक्ति वर्दान ।

यहि विधि बीति गयउ कछु काला, सुनउ सन्त आगे कर हाला ।
माता तजि बालक विलखाता, गई साकेत धाम हे भ्राता ।
मातृ विहान बाल उर आई, भक्ति मातु प्रकटीं हर्षाई ।
तजि गृह गाम पिता परिवारा, तीर्थाटन हित बाल सिधारा ।
भ्रमण करत तीर्थनमें भाई, गगासागर पहुचे जाई ।
करि कछु दिवस तहां सतसगा, कीने महामोह तरुभगा ।
पुनि रामेश्वर किय प्रस्थाना, ध्यावत सियारमन भगवाना ।
दक्षिणके सबतीर्थ मझाई, अवन्तिका पहुचे द्विज राई ।

उज्जैनीके कुम्भपर दीक्षित भये सुजान, श्रीरघुवराचार्यगुरु दिये मन्त्र वर्दान ।

सम्मत उनइस सौ अठहत्तरि, मे गुरु चरण शरण द्विज अघअरि ।
देव प्रयाग गये मुनिनाथा, सुमिरत रामराम रघुनाथा ।
दर्शन दिये तहां पर आई, सिद्ध मुनी द्विज कहं हर्षाई ।
रामप्रपन्नाचार्य सुजाना, गिरे चरण महं दण्ड समाना ।

उठामुनीश्वर हृदय लगाये, शुभाशीश दे निकट बिठाये ।
कहे वत्स करु विद्याऽभ्यासा, जासो अज्ञान तम नाशा ।
है तव गुरु दिव्य औतारी, सेवा उनकी करु व्रतधारी ।
मुनि आज्ञा सुनि पद शिरनाई, चित्रकूटमा पहुचे जाई ।

हनुमतधाराके निकट किये तपस्या घोर, तीव्र तपस्यासे मचा चित्रकूटमें शोर ।

सस्कृत विद्यालय एक सुन्दर, श्रीजयदेव मुनीकर सुखकर ।
तहा पढन लागे मति माना, रामप्रपन्नाचार्य सुजाना ।
ताहि पढत किमि लागै वारा, जो एक दिव्य पुरुष औतारा ।
ह्वै उत्तीर्ण प्रथम द्विजराई, लगे पुन सुमिरन रघुराई ।
दर्श दिये सिय युत रघुवीरा, स्वप्नाऽवस्थामे रणधीरा ।
रामप्रपन्न दर्श जब पाये, सप्तप्रदक्षिण धाइ लगाये ।
दे अशीश रघुवर सन्माने, रामप्रपन्न चरण लपटाने ।
राम कहे सुनु वचन हमारो, जा ऊँझा गुरु चरण निहारो ।

जागृत ह्वैमुनि चलि दिये श्री गुरु दर्शन काज, कछुक दिवसमें जा लखे ऊझांमें महाराज ।
करत दण्डवत लखे जब शिष्यहिं कृपानिधान, रामप्रपन्नाचार्यकहि गुरु कीने सम्मान ।
चमत गुरुके अमित हमसे गने न जायं, कविकिंकर बलरामकहं छमा करैं मुनिराय ।
श्री बेदान्तीजी किये जब साकेत पयान, रामप्रपन्नाचार्य भे गादीपति भगवान ।

धारे त्रिदण्ड आप ताप त्रय विनासन हित,
सम्प्रदाय श्रीके आप परम दिव्य रत्न है ।
श्रीरामानद वेदान्तकी परिक्षा शुचि,
विश्व विद्यालयमें प्रस्थापनको किये बहुत यत्न है ।
जानकी मठ पोरबन्दर, शेषमठ शींगडाहु,
आपके प्रतापसे पवित्र कार्यरत है ।
अहमदाबादमें कोशलेन्द्रमठकी छटा,
वरनि न शिराय भक्त होते उन्मत्त है ॥
दिव्य बटवृक्षके तले है विराजमान,
योगेश्वर शिव सग रामनद राम हैं ।

रामेश्वरानदजु है शिष्य आपके अनूप,
सृजन करि ग्रन्थ बहु शोखे भ्रम कूप हैं ।
गुरुवरके सुयस को है सागर अगाध अति,
ये कवियोका किंकर भला पावै किमि पार है ।
स्थानाभाव ना कीन सम्पूर्ण कथन,
छमा छमा मूर्ति करैं अज्ञता महान है ।
आप है महान ये लेखक अयान मूढ,
त्रुटी सुधारि लेउ बालक अजान है ।
काशीमे जन्म तथा साकेत विहारी परम रुचि,
शिशुपनसे रामभक्त परम पवित्र है ।
जगत नात त्यागि किये जगतपतिके चरण नेह,
जगगुरुके सभी कार्य दिव्याति विचित्र हैं ।
राम भक्ति राजमार्ग सन्तन दिखाये गुरु,
श्रीआनदभाष्य का कीने प्रचार हैं ।
रामप्रपन्न वेदान्तीके योग्य शिष्य,
स्वगुरु सुयस फइलाये जग अति उदार हैं ।
त्रिदण्डधारि भस्म किये कलि मलहिं गुरु,
शकुधारा रामानंदपीठाचार्य हैं ।
है पंचानब्बे वर्षकी आयु महान,
अजहूँ गुरुदेव स्वस्थ गादी विद्यमान है ।

श्रीरामप्रपन्नाचार्य गुरु राम भक्ति दे दान, याचत दासानुदास ये कविकिंकर अज्ञान।

आचार्यजीके १ नव्यन्यायजागदीशीव्यधिकरणमें दीपिकाटीका २ सिद्धान्तदीपकमें किरणावलिटीका ३. वेदरहस्यमें तात्पर्यटीका ४. श्रीरघुवरीयवृत्तिविवरण ५ अभ्यासभवसलेशमें तात्पर्यचन्द्रिकाटीका ६. खण्डनोद्धारमेंदीपिकाटीका ७ तत्त्वत्रयसिद्धि ८. वेदार्थचन्द्रिका ९. आनन्दभाष्यमें भाष्यदीप १०. चिदात्मप्रकाश ११. योगसूत्रविवरण १२ श्वेतास्वतरोपनिषदमें रामानन्दभाष्यप्रभृति है



ॐ ४१. स्वामी रामेश्वरानन्दाचार्यजी ॐ

२

(सौर वैशाख २८ गते वि स १९८८ पूर्वनेपाल)



श्रीरामेश्वरानन्दाचार्य रामसिय चरण उपाशक ।
सत् चिद् आनद कन्द, ब्रह्म पदपकज पायक ।
श्रीपवन पुत्र हनुमान, चरणरजके शुचि सेवक ।
भूत नाथ भगवान सदा शिव प्रिय पायक ।
स्वगुरु चरणरजसो करत, तिलक अलौकिक भाल पर ।
विद्यावारिधि ज्ञानोदधि शुभ, धर्माचारज सन्तवर ।

जीवन चरित्र अब सुनाऊ आचार्यजू का ।
जो कछु जाना सुना सोई सुनाउ मै ।
प्राची नेपाल में है कोई भाग्यवान ग्राम,
माता पिताका न नाम जानि उायउ मै ।
कान्य कुब्ज वशावतश वेद विज्ञ श्रेष्ठ द्विज,
वशीष्ठ गोत्रीय तीन परवर सुनाउं मै ।
शुक्ल यजुर्वेदीय बाजसनेय शाखाध्यायी,
जन्मके नाम का न कोई पता पायउ मै ।

सब प्रकार सुख सम्पति परिपूर्ण गृह,
तीर्थ धाम भ्रमणको चाव सुनि पायउ मे ।
सम्मत द्विसहश्रमे प्रथम वार आप द्विज,
भ्रमण हितार्थ चले घरसे सुनि पायउ मे ।

ले पर्याप्त धन भवनसे चले भ्रमनके हेत, बहु तीर्थनमें भ्रमन करि लवटि लखे गृह खेत ।

रहि कछुदिन पुनि भवन सुजाना,
भ्रमण हेत कीने प्रस्थाना
इक श्मशान निकट हे भाई ।
मन्दिर हनुमत कर सुखदाई,
तहा कछुक दिन किय विश्रामा ।
श्री उपाध्याय सुख धामा ।
तह मानव अन्तिम गति देखी, दुखी भये द्विजवर्य विशेषी ।
नाशवान तनसो वैरागा, प्रकटेउ हिय जग सुखद न लागा ।
द्वि सहश्र औ अष्टमे भाई, गृह परिजन त्यागे द्विजराई ।
भ्रमत भ्रमत आसाम सिधाये, तेजपुरी के दर्शन पाये ।
प्रथम अध्ययन किये सुजाना, तेजपुरीमे रहि मतिमाना ।

द्विजवर दीनेमान एक सन्तआदेश कहं, तहं ते किय प्रस्थान और अधिक अध्ययन हित ।

तीर्थधाम मन्दिर मा जाई, दर्शन करैं ह्रदय हर्षाई ।
यहि विधि करत भ्रमण सत सगा, करत कुतर्क तरुन कर भगा ।
हरिद्वार है बटुक सयाना, ऋषीकेश किय गगास्नाना ।
पुनि द्विजवर श्रीराम मनाई, चतुर्धाम किय पैदल जाई ।
श्रीबद्री केदार यमुनोत्री, लखत शैलबन गे गगोत्री ।
सन उनइस चौवन मा भाई, भे उत्तीर्ण प्रथम द्विजराई ।
लवटि तहा सो पुन सुजाना, बृन्दावन निरखे विद्वाना ।
किये श्रङ्गपुर मठगुणगाना, तहा अमित द्विज सन्त सुजाना ।

करि तह ते प्रस्थान लखे जाइ सौराष्ट्र कहं, शेष सु मठ सुस्थान पुनः निहारे विप्र मणि ।

श्रीरामानदपीठ सुधामा, जेहि बिश्राम द्वारिका नामा ।
तीजो नाम शींगडा सुन्दर, पहुचे ता आश्रमहिं द्विजेश्वर ।

रहे विराजि तहां मति माना, राम प्रपन्नाचार्य [illegible] ।

नमन किये भूतल [illegible] [illegible] हर्षाई ।

दीक्षा हित बहु बिनय सुनाये, [illegible] ।

घर गृह [illegible] कर मुख [illegible] लागे ।

तब गुरु संस्कार करवाई, [illegible] ।

रामेश्वरानन्दार्य सुनामा, दीक्षा नाम [illegible] कामा ।

है दीक्षित द्विज मणि [illegible] ।

सेवैं गुरु पदपद्म [illegible] अनुरागा ।

कियेविशेष अध्ययन श्रीगुरुसों मतिमान, [illegible] गये विद्वान ।

करि अध्ययन पूर्ण रामेश्वर [illegible] ।

तहं पढ़ि भये पूर्ण [illegible], (श्री) [illegible] ।

लवटि पीठमहिं पुनि आगे, [illegible] ।

अवध विहारी प्रभु [illegible] भावा ।

पुनि गुरुवर [illegible] कृपानिधाना, [illegible] ।

श्रीयतीन्द्रकर पीठ [illegible], कोशलेन्द्र मठ [illegible] नामा ।

वैदिक विधि [illegible] बुलाई, साकेत [illegible] प्रिय [illegible] ।

करि [illegible] पुनि [illegible] करि [illegible] ।

रामानंद वेदान्त विद्यालय थापे पुनः, [illegible] विद्यालयः ।

महाविद्यालयके अध्यक्ष प्रधानाऽऽचार्य, [illegible] आप जू ।

स्वसम्प्रदायी दर्शनमें विशेष [illegible] आचार्य आपजू ।

वाराणसेय संस्कृत विद्यालयके परीक्षक हैं [illegible] जू ।

अखिल भारतीय श्रीरामानन्द [illegible] संस्थापक जू ।

कई मठ मन्दिर [illegible] आप, [illegible] जू ।

श्री त्रिदण्डी संस्थानहूके हैं आपी [illegible] जू ।

आगमनिगम निचोरके लिखे ग्रन्थ अनेक, [illegible] सहितविवेक ।

पूर्वाचार्य प्रसादित दिव्य अनेकन ग्रन्थ, [illegible] पन्थ ।

वैष्णवमताब्जभास्करहि सैकडों ग्रन्थ [illegible] शोषक भव कूप ।

सूक्ष्ममें तब चरित कछु किहें [illegible] अजान ।

आपके कतिपय प्रबन्ध निम्न हैं—

१ श्रीमकर्णरसायनम् मे सस्कृत हिन्दीटीका २ श्रीराममहिमस्तव में स हि टीका ३ वेदान्तचिन्तामणि मे हि टीका ४ साधनदीपिका मे स हि टीका ५ श्री वैष्णवमताब्जभास्करमे प्रभा-किरण स हिन्दी टीका ६ श्रीरामबाणस्तव मे स हि टीका ७ श्रीरामचापस्तव में स हि टीका ८ वाल्मीकिसहिता हि टीका ९, देशिकपरिचिर्या मूलप्रवन्ध सस्कृत १० श्रीरघुवरीयवृत्ति सारवोधिनी हिन्दी टीका ११ श्रीरामदोलिका-शयनाष्टकम् मे स हि टीका १२ स्तुतिप्रकाश हि टीका १३. ब्रह्मगायत्री में श्री रामतत्त्व गुजराती मे १४ श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर मे गुजराती टीका १५ श्रीरामशत-कम् में स हि टीका १६ श्रीसीताराघवस्तोत्रम् में गगा हि. टीका १७ श्रुतितात्पर्य-विन्दु संस्कृतमे (श्रुतितात्पर्यनिर्णयकीप्रोढ टीका) १८ रहस्यत्रयभाष्यम् में पवित्रा हि टीका १९. श्रीराममहिमस्तव मे गुजरानी टीका २० श्रीरामाष्टाक्षरस्तोत्रम् मे हि टीका २१ श्रीरास्तवकलानिधि मे हि टीका २२ अनन्यतानिवेदनम्में हि टीका २३ श्री सीतास्तोत्रम्में हि टी. २४ श्रीसीताराघवस्तोत्रम् (विरहगीता)मे गुजराती टीका २५ श्री मैथिलीमहोमनिषद् मे लघुदीपिका हि टीका २७ श्रीगीतार्थसुघामे हि टीका २८. श्रीरघुवरमगलम् २९ श्रीयोगीन्द्रमगलम् ३० ब्रह्मसूत्रानन्दभाष्यम् में प्रकाश हि. टीका ३१ वेदार्थचन्द्रिकामें प्रकाश-किरण सं हि टीका ३२ चिदात्ममीमासा प्रौढ-वादप्रबन्ध ३३ तत्त्वत्रयसिद्धिमें तत्त्वदीप प्रौढवादग्रन्थ ३४ ईशावास्योपनिषदानन्द भाष्यम् में प्रकाश हि टीका ३५ केनोपनिपदानन्दभाष्यम् में प्रकाश हि. टीका ३६ कठोपनिषदानन्दभाष्यम् में प्रकाश हि टीका ३७ प्रश्नोपनिपदानन्दभाष्यम् मे प्रकाश हिन्दी टीका ३८ मुण्डकोपनिपदानन्दभाष्यम् मे प्रकाश हि टीका ३९, माण्डूक्योपनिपदानन्दभा-ष्य मे प्रकाश हि टीका ४० तैत्तिरीयोपनिपदानन्दभाष्य मे प्रकाश हि टीका ४१ ऐतरेयोपनिषदानन्दभाष्यमे प्रकाश हि. टीका ४२ छान्दोग्योपनिपदानन्दभाष्य में प्रकाश हि टीका ४३ बृहदारण्यकोपनिपदानन्दभाष्यम् मे प्रकाश हि टीका ४४ श्वेता-श्वतरोपनिषद्रामानन्दभाष्यम् में तत्त्वदीप-प्रकाश स हिन्दी टीका ४५ गीतानन्दभाष्य मे प्रकाश हिन्दी टीका ४६ श्रीराममन्त्रार्थभाष्य में प्रकाश हिन्दी टीका ४७ भग-वद्गुणदर्पण मे सस्कृत हिन्दी टीका ४८ ससृतिचक्रविमर्श सस्कृतप्रवन्ध. ४९, गीता-तत्त्वमीमांसा में प्रकाश हिन्दी टीका ५० श्रीरामगीतामे प्रकाश हिन्दी टीका ५१ श्रीसीतोपनिषद् में प्रकाश हिन्दी टीका आश्रमधर्मनिरूपण मे हि टीका ५३ परात्पर श्रीरामधामवर्णन मे हिन्दी टीका ५४ सदाचारप्रदीपकामे हिन्दी टीका ५५ प्रभाकरमतनिरास मे प्रकाशः प्रौढटीका ५६

पुरुषसूक्तमे प्रकाश हिन्दी टीका ५७ प्रार्थनापञ्चक मे प्रकाश हिन्दी टीका ५८ श्रीरामतत्त्वभास्कर मे प्रकाश हिन्दी टीका ६० श्रीनामतत्त्वभास्कर मे प्रकाश हिन्दी टीका ६१ श्रीलीलातत्त्वभास्कर मे प्रकाश हिन्दी टीका ६२ भगवन्नामकौमुदीमे चन्द्रिका सस्कृत टीका ६३ श्रीसीतारामाभेद मे हिन्दी टीका ६४ अभ्युदेयिकोर्ध्वदेहिकस्तोत्र मे हिन्दी टीका ६५ सदाचारनिरूपण मे हिन्दी टीका ६६ भूतशुद्धिरात्मशुद्धिश्च मे हिन्दी टीका ६७ श्रीरामाष्टोत्तरशतनामस्तोत्र मे हिन्दी टीका ६८ स्वरूपसप्तक मे हिन्दीटीका ६९ श्रीरामभगवत्त्वम् मे हिन्दी टीका ७० रहस्यार्थचतुष्टय मे हिन्दी टीका ७१ वेदान्तसारस्तव मे हिन्दी टीका ७२ श्रीराघवाङ्घ्रिवर्णनस्तव मे हिन्दी टीका ७३ श्रीरामप्राप्तिपद्धति मे हिन्दी टीका ७४ सत्प्रबोधामृत मे हिन्दी टीका ७५ श्रीराघवाष्टक मे हिन्दी टीका ७६ श्रीरामोपनिषद् मे प्रकाश हिन्दी टीका ७७ श्रीरामार्चनपद्धति मे गगा हिन्दी टीका ७८ श्रीरामषडक्षरस्तव मे लघुदीपिका गुजराती टीका ७९ श्रीरामाष्टाक्षरस्तोत्र मे बालबोधिनी गुजराती टीका ८० श्रीरामानन्दसम्प्रदाय का सक्षिप्तपरिचय ८१ श्रीराघवेन्द्रमगलमाला मे बालबोधिनी हिन्दी टीका ८२ श्रीसीतामगलमाला मे बालबोधिनी हिन्दी टीका प्रभृति ।

ॐ

ॐ जगद्गुरु श्रीअनन्तानन्दाचार्यजी ॐ

(कार्तिकपूर्णिमा १३६३ वि स, महेशपुर उत्तरप्रदेशमे आविर्भाव देवोत्थानी एकादशी १५४० वि स मे साकेतवास द्वारपीठस्थल चौहट्टा पाटलीपुत्र)

नामके प्रताप नाम–धारिके हृदय बसो
ब्रह्माऽवतार जपि नाम–शुचि मन इन्द्रिन करो ॥
तारक दे तारि दिये, पापी अधम अनेक जन ।
आनदभाष्य प्रचारि, किने सुगम सुवेदमग ।
श्रीअनन्तानंद जगदगुरु, भक्ति मुक्ति दातार मुनि ।
श्रीवेद शास्त्रमर्मज्ञ सिध, ऋद्धि सिद्धिभ्रम मूल गुनि ।

कथै कथा संक्षेपमें स्वामि अनन्तानन्दकर,स्वीकारै गुरुपवनसुत पत्रपुष्प ये दासकर

अबं 'जगगुरु कर चरित बखानउ, जन्म समय प्रदेश बतलावउ
तेरहसौ तिरशठ(१३६३)विक्रम सम्मत,जन्मकाल अस सन्तनको मत ।

कार्तिकमास [illegible] रती निशागत ।

[illegible] शान्ती विथरी चहुंओरा ।

जन्मस्थल [illegible] सुन्दर ।

[illegible] श्रीराम अजीता ।

द्वारपीठ जगद्गुरु [illegible] मुनि [illegible] ।

[illegible] आपके थे विद्वाना ।

विश्वनाथतिरपाठी [illegible] कर्मकाण्डमें निपुनअति।

माता नाम उमा [illegible] चुप रहे ।

[illegible] पिता [illegible] गये पयाना ।

जन्म नाम द [illegible] जाना ।

[illegible] जगद्गुरु रामानन्दा ।

महा सिद्ध [illegible] जाना ।

[illegible] चमत्कार दिखलाये ।

अघर [illegible] उद्धारा ।

[illegible] पण्डितके छइया ।

थे पट शिष्य [illegible] मुनीन्द्र तेइसवें आचार्य पुनि ।

कृती आपकी [illegible] सुअष्टक रचे महान।

यतीन्द्रअष्टक आदि [illegible] मुनि [illegible], [illegible] पूरी भइ त्रुटी छमियो आर्य ।

जगद्गुरु श्री सुरसुरानन्दाचार्यजी

(१२८५ वि. [illegible] प्रकट द्वारपीठस्थल परसा विहार)

सरस्वती [illegible] भ्रात, [illegible] प्यारे ।

चन्द्रवदन शुचि गात देव ऋषि पदवी धारे ।

विष्णु [illegible] स्वरूप, हाथ मे वीणा धारे ।

सप्तराग रागिनी, वीणाके तन्तु तिहारे ।

श्रीनारद [illegible] जगद्गुरु ।

[illegible] धार जगद्गुरु ।

पंचरात्रके सृजक गुरु (विधि) मानस पुत्र उदार, मृत्युलोकमें आइके कर त्रिदण्डलियधार ।

अब सुरसुरानन्द यश गाथा, वरनउ ना हनुमत पद माथा ।
सम्मत मास पाख शुचि गावउ, वार प्रदेश तिथी समुझावउ ।
मात पिता कर नाम बखाना, करउ सुनै सज्जन धरि ध्याना ।
सम्मत तेरह सौ पच्चासी (१३८५) भये प्रकट भूतल सुखराशी ।
शुचि बइसाख मास अति सुन्दर, तिथि नवम सब सुखको सागर ।
पितानाम सूरेश्वर पण्डित, धर्माचार्य हरिभक्त अखण्डित ।
था मोले पण्डित उपनामा, सत्यव्रती सदविद्या धामा ।
ममता मयी मातु कर नामा, उर्वीय देबी सुख कर बामा ।

जन्मनाम भायण धरे मात पिता हर्षाइ,जन्मोत्सव विधिवत किये पुर परि जनहिं बुलाइ ।

प्रकटत बाल रुदन नहिं कीना, श्रीराम हरि सुमिरन कीना ।
भये बडे जब द्विज सुखदाता, किय उपनयन पिता अरुमाता ।
रहे आप उत्तम विद्वाना, सस्वर करै राम गुणगाना ।
एक दिवस श्रीमठ पर गये, रामानद गुरु दर्शन भये ।
दीक्षा हित बहु विनय सुनाये, अन्तर्यामी निकट बुलाये ।
वैष्णव सस्कार करवाई, राममन्त्र पुनि दिये सुनाई ।
दै सुरसुरानन्द शुचि नामा, किये भायणहिं पूरण कामा ।
राम पादपकज अनुयायी, रहे सुरसुरानन्द मुनिराई ।

थे परिपूरण काम(श्री)सुरसुरानन्दार्यगुरु, विरचेउ कबिवलराम यश तिनको संक्षेपमहं ।

आपके 'तत्त्व किम् ?' आदि दश प्रश्नोके उत्तरमें आनन्दभाष्यकार आचार्यचरणने श्रीवैष्णवमताब्जभास्करका उपदेशदियाजिसमे २०४ श्लोक है उसकी पश्चिमाम्नाय श्रीरामानन्दाचार्य पीठाधीश्वरस्वामीरामेश्वरानन्दाचार्यजीकी व्याख्या प्रभा-किरण तात्त्विक-अत्यन्तमहत्वपूर्ण है जो तत्त्वजिज्ञासुओ को मननीय है । श्रीवैष्णवदिनचर्या श्रीमैथिलीमहिम्नस्तव आदि प्रबन्ध है ।

ॐ

ॐ जगद्गुरु श्रीसुखानन्दाचार्यजी ॐ

(वैशाख शुक्ल ९ वि. सं. १३७४ उज्जैन मे प्रकट द्वारपीठस्थल चित्रकूट)

(श्री) सुखानन्द महाराज, आप सदगुण कै सागर ।

परमहंश द्विजराज, रामसीता पद चाकर ।
श्रीशकर अवतार, सदा श्रुति मार्ग प्रचारक ।
किये धर्म उद्धार, सुवैदिक मार्ग सुधारक ।
(श्री) श्रौत विशिष्टाद्वैत हित, कषाय दण्ड करमे धरे ।
जगगुरु सिद्ध सम्राट् मुनिश्वर आनदभाष्य प्रचार करे ।

सुखानन्द आन्दनिधि श्रीशंकर अवतार, लिखउं चरित संक्षेप तव कीजै गुरु स्वीकार ।

करउ सुखानद सुयस बखाना, गुरुजन मुख श्रुत सुनउ सुजाना ।
जन्मस्थल प्रदेश बतलाउ, सम्मत तिथी वार समुझावउ ।
शुचि बैसाख महीना सुन्दर, शुक्लपक्ष नवमी तिथि सुखकर ।
सम्मत तेरह सौ चोहत्तर, प्रकटे हर आ त्रिपुरारी घर ।
जन्मभूमि उज्जैनी पावन, किरीट पुर ता निकट सुहावन ।
सुखद प्रदेश मालवा जानो, भोमवार उत्तम पहिचानो ।
पितानाम त्रिपुरारी शर्मा, करै यज्ञ योगादिक कर्मा ।
जाम्बती माताकर नामा, पतीव्रता साध्वी गुण धामा ।
विश्वनाथ शिव कृपा अगारा, औघडदानी कृपा अगारा ।
चढे बृषम सग दक्षकुमारी, प्रकट भये सन्मुख त्रिपुरारी ।

वरम्ब्रूहि शंकर कहे जाम्बवती सों जाइ, मांगे जो सो आज तोहिं बेटीदेउं गहाइ ।

जाम्बती शिव दर्शन पाई, दीन चरण मह शीश नमाई ।
कहेसि नाथ तुम अन्तर्यामी, चहउ पुत्र तुमसा हे स्वामी ।
एवमस्तु कहि शिव भगवाना, कहे देबि तव हो कल्याना ।
मो समान त्रिभुवन कोउ नाहीं करि विचार देखेउ मन माहीं ।
लेइहौ स्वय आइ अवतारा, जाउ भवन तजि शोच विचारा ।
पा वर्दान हृदय हर्षानी, भई प्रसन्न मन मिटी गलानी ।
आये लेन. विप्र त्रिपुरारी, किरीटपुरसे निज ससुरारी ।
जाम्बवती किरीट पुर आई, सासु चरण- मा गइ लपटाई ।

कुशुमावती उठाइ तब लीने हृदयलगाइ, जननी हर्षित बधु कहं लीन अंक बैठाइ ।

समय पाइ प्रकटे कामारी, महारुद्र बालक बपुधारी ।
त्रिपुरारी मन हर्ष अपारा, सुत जन्मोत्सव किये उदारा ।
चन्द्रहरी मस्तक पर भाई, करै फणीधर छाया आई ।
शास्त्रार्थ मे दिये हराई, बिजई पण्ठित कह द्विजराई ।
चन्द्रहरी पितु आज्ञा पाई, काशी पढन गये सुखपाई ।
रामानंद आश्रम पर आये, जगगुरु चरण शीश निज नाये ।
ले दीक्षा द्विज भये निहाला, दिये त्यागि जग माया जाला ।
दीक्षा नाम सुनै विद्वाना, सुखानन्द गुरु किये प्रदाना ।

आनंद भाष्य मनन किये निज अग्रजसों जाइ, चित्रकूटमें जाय पुनि बैठे ध्यानलगाइ ।
सुखानन्दआचार्यकर द्वारपीठ सोइ जान, लीन भये हनुमान में सुखानन्द भगवान ।
भूल चूक करि हैं छमा कविकोविद विद्वान, कविकिंकर अज्ञान पर कृपाकरै जनजान ।

आपके श्रुतिसिद्धान्तदीपिका शिक्षावत्तीसी आदि प्रबन्ध है ।

जगद्गुरु श्रीकीलदेवाचार्यजी

(अवतार वैशाख शु० १० द्वारपीठस्थल गलतागादी—जयपुर)

कीलदेव आचार्यकर, जीवन चरित महान ।
कविकिंर जो कछु सुना करत सोई बखान ।
रहे सुमेरदेव विद्वाना, पिता आपके सुनउ सुजाना ।
परम भक्त थे कृपा धामके, श्रीसीता पति रामचन्द्रके ।
कीलदेव शुचि जन्म सुनामा, सरल स्वभाव उच्चतम ज्ञाना ।
जननी जबहिं गई सुरधामा, भा तब किल हृदय निष्कामा ।
कृष्णदासकर ध्यान लगाये, योगमार्ग गुरु तुरतहिं आये ।
जानि भविष्य हृदय हर्षाने, दै तारक आशीश बखाने ।
कील ज्योति दीने प्रकटाई जन्म अन्ध नाभाके भाई ।
आइ सर्प दशेउ कइ वारा, गुरुतन विष ना चढेउ उदारा ।

रहे समाधी में मगन कील देव भगवान, ठोंकि कील मस्तक दयउ एक यवन हैवान ।
किन्तु समाधीसे जगे ना गुरु कृपा निधान, रक्त बहेउना बूदहू तनसों सुनउ सुजान ।
गिरेउचरण मा धाय, त्राहित्राहि कहि अधमखल, जागृहभय बिसराय कहेताहिमुसुकायगुरु
राघवेन्द्र पद ध्यान, करतरहे मथुरापुरी, किये नमन-मतिमान पिता गये साकेत जब ।

किय साकेत पयान, राम यज्ञ करि राम कहि,थे गुरुवर विद्वान अमित ग्रन्थ सृजकहू ।
कविकिंकर बलराम, चाकरगुरु पदपद्मकर,दयाकरउ सुखधाम श्रीकील देव आचार्यवर ।

आपका प्रौढ़ प्रबन्ध है अभ्यासम्वलेश तथा साधन भक्ति दर्पण आदि ।

जगद्गुरु श्रीलालतुरंगीदेवाचार्यजी

(माघ शुक्ल द्वितीया १४१२ वि स कसूरपजाब में प्रकट १७१२ वि स. में साकेतवास द्वारपीठ स्थल ध्यानपुर पजाव)

श्रीलाल तुरंगी देव सेवक सीतारामके, करैं स्वगुरुपद सेव भक्ति प्रदायक जगगुरु ।

माघ शुक्ल द्वितीया तिथि सुखकर, प्रकट भये जगगुरु भूतल पर ।
चउदह सौ वारह शुचि सम्मत, प्रकट भये गुरुवर भूतल पर ।
सुठि पजाव प्रदेश मझारी, है सुठि ग्राम कशूर सुखारी ।
द्वारपीठ जगगुरु को सुन्दर, ध्यानपुरा पजाव देश कर ।
भोलाराम पिता कर नामा, सद्गुणज्ञ सदविद्या धामा ।
कृष्णदेवी मातु कुलिना, पतिव्रता दुर्गुण सों हीना ।
लाल दयाल जन्म कर नामा, इनहिं प्राण प्रिय सीतारामा ।
गोचारण बन गये सुजाना, मातपिता आज्ञा मति माना ।

सोइ रहे इक वृक्ष तर जब श्रीलाल दयाल, फनछाया मस्तककरेउ एक फणीधर लाल ।

कृष्णदास यह दृश्य निहारी, गये जानि होइहै तपधारी ।
जगगुरुदर्शन पायउ ज्ञाना, जग प्रपचमें सार न जाना ।
दीक्षा हित बहु विनती कीना, आशीरबाद जगदगुरु दीना ।
जानि भविष्य कृपा आगारा, बालविनय कीने स्वीकारा ।
बैष्णव सस्कार सब कीने, राममन्त्र पुनि बालहिं दीने ।
लाल तुरगी देव दै नाम, इच्छापूर्ण किये सुखधामा ।
चउदह सौ एक्कावन भाई, गये सहारनपुर मुनिराई ।
तह तपबल गंगा प्रकटाये, दर्शक बृन्द आचरज पाये ।

खिजीरखां सुल्तान चमतकार लखि भाखुशी,मुर्शद अपनो मान दीजगीरमें ग्राम तब ।
तहंइ सुनो मतिमान ध्यानदाससों भेटभइ, ध्यानपुरी कह जान द्वारपीठ मुनिराजकर ।
धराधाम तजिदीन पुर्णायु करि जगद्गुरु, गयेबीन पन तीन कविकिंकरबलराम केउ ।

ककहरा प्रभृति आपके प्रवन्ध है ।

॥ जगद्गुरु श्रीपीपाचार्यजी ॥

(चैत्रपूर्णिमा १४१७ वि स गागरौनगढमे प्रकट द्वारपीठस्थल गागरौनगढ)

पीपाचारज पापअरि मनू भूप अवतार, सत्य धर्म रक्षार्थ मोड प्रकटे अवनि उदार ।

सुनहु सर्व सज्जन मनलाई, कहउ जगदगुरु सुयश बनाई ।
राजऋषी थे पूरणकामा, रामनाम जापक अविरामा ।
उनकर जन्म समय बतलाऊ, सम्मत पक्ष तिथि समुझाऊं ।
तिथीवार विविवत मै गाऊ, जन्मस्थल प्रदेश समुझाऊ ।
चोदहसो सत्रह शुचि सम्मत, भूपविक्रमको सन्तन मत ।
शुचिमधु मास पुनीत सुहावन, तिथी पूर्णिमा मुनि मन भावन ।
वारचन्द्रकर परम पुनीता, रहा नक्षत्र शुद्ध अभिजीना ।
चन्द्रमौलि सिंह पितु कर नामा, पुष्पावती मातु सुखधामा

जो कछु सन्तन मुख सुनेउं सोर्डकीन बखान, शंकाशील सुधारि ले जो सच्चाहो ज्ञान ।

गागरौन गढ राज्य महाना, थे ताके अधिपति सुजाना ।
अचल सिंह खीचीके भाई, थे छोटे पीपा नरराई ।
साधु सेवामें प्रेम अपारा, करैं अतिथि गो द्विज सतकारा ।
थे देवीके परम उपासक, अघ अवगुण दुर्जन मद नाशक ।
देवी प्रकटिदीन आशीशा, वरद हस्त धरि नृपके शीशा ।
मुक्ति कामना नव मन माही, किन्तु मुक्ति मोरे बस नाही ।
मुक्तिके दाता रघुराई, बैठे है श्री मठमे आई ।
तासो जाउ चले नरराई, दीक्षा ले। यतीन्द्रसो भाई ।

जगदम्बा आदेश सुनि गांगरौनके भूप, त्यागी राज्य सुत नारिसुख पहुंचे जहं यतिभूप।

रामानदसो दीक्षा पाई, भये मगन मनमे नरराई ।
पीपा चारज नाम गहाई, किये अभय यमसो यति राई ।
पुनि पीपा कहं संग लिवाई, गये द्वारिका जगगुरुराई ।
मूल द्वारिका निरखन हेता, कूदे सागर मध्य नरेशा ।
श्रीगोलोक पती भगवाना, किये प्रकटि पीपा सम्माना ।
हिंशक जन्तु सिंह बरियारा, ताहिं दीक्षा दीये उदारा ।

भ्रमि सुराष्ट्र मध्य मुनिराई, किये प्रचार धर्मकर भाई ।
काहू काली मगम ऊपर, पीपाचार्य तजे तन नश्वर ।

अजहुं समाधी आपकी तहां दिखाई देत, भाविक भक्तोंका तहां दुख दारिद हरिलेत ।
कहेउ कथा संक्षेप महं कविकिंकरबलराम, त्रुटी छमि हैं सन्त जन हंसिहैं जे बदवाम ।

आपके श्रीपावाणी उपदेशचिन्तामणि तथा फुटकर पद आदि है ।

जगद्गुरु श्रीरामकवीराचार्यजी

(वैशाखपूर्णिमा १४४६ वि स लहरतारा काशीमे प्रकट १५७५
वि स मे साकेतवास द्वारपीठस्थल धार्वीसिरसी-विहार)

श्रीरामकवीराचार्यकर वर्णन करउं चरित्र, श्रीप्रहलादअवतारगुरु रामभक्त जग मित्र ।

सम्मत चउदह सो छेतालिस, प्रकटे जगगुर भक्ति नारिश ।
जन्मस्थान लहरतारा सर है, अयोनिजा सन्तन कर मत है ।
पालक पिता आपकर नीरू, जाति जुलाहा अति गम्भीरू ।
माता नीमा परम मनोहर, पायेसि सुत तलाव मह सुन्दर ।
एकदिन नीरू नीमा भाई, गये नहान लहरतरा धाई ।
कमल पुष्पपर सुन्दर बालक, निरखे नीरू सत्यव्रत पालक ।
थे नीरू सन्तान विहीना, कह औलाद खुदाने दीना ।
लाइ भवन उत्सव खुब कीन्हे, बहु गरीबन फकीरन दीन्हे ।

नाम कबीर धरे पुन सुनै सर्व विद्वान, रामानंद सो दीक्षा लेन चहैं मति मान ।

पचगंग तट जा सीढीपर, सोइ रहे कवीर प्रभ्वीपर ।
श्रीमदरामानद भगवाना, गये प्रातगगा अस्नाना ।
चरण कबीर शीशपर परेऊ, तडफडाइके रोवन भयऊ ।
रोवत देखि उठाइ दुलारे, कर फिराय श्रीराम उचारे ।
राममन्त्र गनि गहे कबीरा, भये स्वस्थ मिटिगइ सब पीरा ।
थे सीतापति रामउपाशक, सद्भक्त मनोमल नाशक ।
द्वारपीठ जगगुरुको सुखेकर, धार्वी सिरसीमे भव भय हर ।
आर्य अनार्य दोऊ पर सुन्दर, रहा प्रभाव कवीराचार्यकर ।

मगहरमें साकेत गे रामकबीरादास, हिन्दु मुशलमा दोउन ने कि शिज़दा अदाश ।
बिजक रमैनी आदि हैं जगगुरु ग्रन्थ महान, श्रौत विशिष्टाद्वैतके प्रतिपादक भगवान ।
कविकिंकर बलराम कहेउ यथामतितब चरित, स्वीकारो गुणधाम है अति शूक्षमबृत्ततब ।

जगद्गुरु श्रीहनुमदाचार्यजी

(कार्तिक कृष्ण १४ वि स. १४५६ भीमतालमे प्रकट चैत्रकृष्ण, १२ वि स १५६१ मे साकेतवास द्वारपीठस्थल जाखुगुफा शिमला)

श्रीहनुमदाचार्यगुरु रामभक्त विद्वान, रामपरत्व प्रचारक बुद्धिज्ञान बल खान ।

श्रीहनुमदाचार्य गुणगाऊ, जासो आत्मशाति सुख पाऊ ।
सम्मत जन्म तिथी बतलाऊ, पाख महीना दिन समुझाऊ ।
मातपिता प्रदेश कर नामा, सुनै सर्व सज्जन सुख धामा ।
चउदह सौ छप्पन शुचि सम्मत, वीरविक्रमा केर सन्त मत ।
कार्तिक कृष्ण चतुर्दशि सुखकर, भौम अति रुचिर मनोहर ।
ममतामई मातुकर नामा, गीतादेवि सकल गुणधामा ।
करकोटकके निकट सुनाना, भीमताल इक गाम महाना ।
जन्मस्थल सोई मुनिवरकर, जह नित वेदपाठ हो घर घर ।

हनुमतदत्तसुनाम जन्म समय गुरुजनधरे, भेद्विजगगकाय पुत्रअलौकिक निरखिगृह ।

करि विधिवत अध्ययन सुजाना, पुन गये काशी मतिमाना ।
करि मज्जन दर्शन जलपाना, श्रीमठ गये विप्र विद्वाना ।
भावानद गुरु दर्शन पाई, गहे चरण द्विजवर अकुलाई ।
स्वप्न माहि गुरु कहे बुझाई, रामशरण तजि कहु सुखनाई ।
सपनेमे गुरु आज्ञा पाई, गढमुक्तेश्वर गे द्विजराई ।
निरखे तह द्विज बनज दिवाकर, भावानन्दाचार्य मुनीश्वर ।
करि बिनती पदशीश नमाये, शुद्ध प्रेम लखि गुरु मन भाये ।
विधिवत सस्कार करवाई, राममन्त्र पुनि दिय सुनाई ।
श्रीहनुमदाचार्य हे नामा, किय बटुक कह पूरण कामा ।
कार्तिक शुक्ल पुर्णीमा सुखकर, भये शुद्ध वैष्णव मुनि निर्मल ।

महावीरहनुमन्तके हैं मुनिवर औतार, द्वारपीठ निज जाखू किये कृपा आगार ।
मेंहदीपुरमें जगद्गुरु कीने यज्ञ महान, रामयज्ञ परिपूर्ण करि किये विप्र सम्मान ।
तहंई प्रकटि दर्शनदिये सीतापति भगवान, निरखियुगलसरकार पद मुनिउरसुखनसमान ।
पुनि जाखूमें हीं गुरु त्यागे नश्वर देह, राम राम सियराम कहि गये रामके गेह ।

आपके श्रीहनुमत्प्रभुस्तव श्रीहनुमत्स्तव आदि प्रबन्ध हे ।

॥ जगद्गुरु श्रीयोगानन्दाचार्यजी ॥

(वैशाख कृष्ण ७ वि स १४१७ सिद्धपुर-गुजरातमे प्रकट
द्वारपीटस्थल योगानन्दमठ वडीमठिया विहार)

(श्री) योगानन्दाचार्य, सर्व विद्यागुण मन्दिर ।
योगिक कमाचार्य रामके विरह अधीर ।
शाख्यशास्त्र सृजक, कपिल मुनके अवतार ।
वदिक ध्वज स्थापक, श्रौत विशिष्ट प्रचार ।
श्रीरामभक्ति परचार हित, जग आये सिध मुकुटमणी ।
स्वय विष्णु औतार जगदुधर, कार्दमेय द्विज शीशमणी ।

योगीयोगानन्दगुरु सिद्धन के शिरताज, करिकिंकर बलरामपर करिय कृपा महराज ।

सन्त बनज हित सुखकर भानू, साइआनद चारत बखानू ।
जन्म समय तिथि बार सुनाऊ, नाम प्रदेस गाम गनि गाऊ ।
पिता नाम गुरु नामहु सुनिये, माता नाम हृदयमा धरिये ।
सम्मत चउदह सौ सत्तावन, भये प्रकट भूतल जगपावन ।
शुचि वइशाख मास यशदायक, पापसिह लगि तीक्षण शायक ।
कृष्णपक्ष तिथि सातम जानो, सोमवार उत्तम पहिचानो ।
सिद्धपुरी सुखप्रद अस्थाना, प्रकट योगानद भगवाना ।
मणिशकर जू पिता महाना, रहे सर्व विद्या अस्थाना ।
माता नाम सरस्वतिबाई, पति सेवा तजि कछु न सुहाई ।
दीने मात पिता सुठि नामा, श्रीयज्ञेशदत्त सुखधामा ।

अष्टवर्ष भये जब श्रीयज्ञेशकुमार, किये उपनयन पुत्रकर मातापिता उदार ।

चतुर्वेद षटशास्त्र पुराना, काशी पढे जाइ मतिमाना ।
इक दिन गये विप्रमणि मन्दिर, विश्वनाथ कर सुनउ विप्रवर ।
दीने दर्श प्रकटि हनुमाना, सगवर सुशिव भगवाना ।
कहे रामधरि मनुज शरीरा, बैठे श्रीमठमें मति धीरा ।
प्रभु सो राममन्त्र जा लीजै, आवागमन नष्ट करि दीजै ।
सुनि शिव बचन चरण शिर नाई, गये पंचगंगा पर धाई ।

रामानद पदपद्म निहारी, कीन दण्डवत द्विज व्रतधारी ।
अन्तर्यामी गुरु सब जाना, कह करउ गगा अस्नाना ।

गुरु आज्ञा अस्नान करि लवटि गये द्विज राय, रामन्त्र विधि वत दिये रामानंदहर्षाय ।
योगानन्दाचार्य नाम दये श्रीजगतगुरु, भये सुखी मन आर्य कर त्रिदण्ड काषायधर ।
जगन्नाथपुर जाइ ताल भरे गुरु लबालव, गंगासागर आइ कपिल मूर्तिमें लीन भे ।
कविकिंकर अज्ञान योगानन्दाचार्य प्रभु, कीजै नाथ प्रदान सीतापद पद्म रति ।

आपके योगागभास्कर भागवतानुशासन वैराग्यवत्तीसी प्रबन्ध उपलब्ध है । उपनिषदानन्दभाष्यव्याख्यान अभीतक अप्रकाशित है ।

जगद्गुरु श्रीनरहर्यानन्दाचार्यजी

(वैशाख शुक्ल तृतीया १४९१ वि स गगातट दिघवारा मे प्रकट १५९० वि स मे साकेतवास द्वारपीठस्थल गढखाला राजस्थान)

नरहर्यानन्द आनन्द निधि दयाधाम आचार्य ।
गुरु थे महान सिध अनन्तानन्दाचार्यवर्य ।
नामके प्रताप पाप पर्वत पजारि डारे ।
जपि राम नाम मुख जगगुरु बहु जीवतारे ।
श्री सन्त सुजन प्रतिपालगुरु, महाकाल दुर्जन हित ।
श्रीपादागुरु गुरुपदकमल, नित सेवै गुरुदत्तचित ।

श्रीनरहर्यानन्दाचार्य पादपद्मतननमन करि, लिखउं चरित तव आर्य कृपादासपरकीजिये ।

सम्भत चउदह सो एक्यानो, भये प्रकट भूतल मुनिमानो ।
शुचि बइशाख महीना सुन्दर, शूक्ल पक्ष तृतिया मुनिमनहर ।
दिघवारा जन्मस्थल गामा, श्रीगगाके निकट सुधामा ।
द्वारपीठ गढ खाला सुखकर, राजस्थान प्रदेश मनोहर ।
मिशिर महेश्वर नाम पिताकर, शास्त्रार्थे प्रतिवाद भयकर ।
ममतामयी अम्बिका माता, पतिपुत्र परिजन सुखदाता ।
मूल निवासी वृन्दावनके, यमुना तट श्रीबशीबट के ।
जन्मनाम दीने पितु माता, नरहरि मिश्र सुजन सुखदाता ।

वर्ष तीनके भये कुमारा, तब माताने किया किनारा ।
किय उपनयन पिता हर्षाई, वर्ष एक बीते पर भाई ।
काशी पच गगतट आये, रामानद पदशीश नमाये ।
तेहि आसर अनन्त तह आये, रामनद गुरु सब समुझाये ।

दिये अनन्तानन्द तब विप्रहि मन्त्र उदार, राममन्त्रके तेजसो पुनर्जम दिय टार ।

दीक्षानाम शुचि सुन्दर पाये, नरहर्यानद गुरु गहाये ।
पुन अनन्तानद मुनिराई, आनन्दभाष्य दिये समुझाइ ।
देवि अलोपि पर मुनि जाई, पशु बलिदान दिये अटकाई ।
बनीदेवि शिष्या हर्षाई, वैष्णव बनी अम्बिका माई ।
नीलाचल जब गये मुनीशा, गढखाला पति नायहु शीशा ।
किय शिष्यत्व भूप स्वीकारा, रामयज्ञ तह किय उदारा ।
रामबोला द्विज बालक मिलेऊ, नरहर्यापद पक्ज गहेऊ ।
अन्तर्यामी गुरु भगवाना, जानि भविष्य मन्त्र दिये काना ।

तुलसीदासाचार्यपुनि कीने नाम प्रदान, रामसीयके दर्शहित दीने पुनि वरदान ।
वैष्णव मठाचार्य बनि कीने धर्म प्रचार,रामाऽर्चा करि राम कहि कियमाकेत सिधार

आपके अनन्ततत्त्वामृत नामप्रतापप्रभृति प्रबन्ध हैं ।

卐

卐 जगद्गुरु श्रीकर्मचन्द्राचार्यजी 卐

(चैत्र शुक्लद्वितीया वि स १५०० द्योसा राजस्थान मे प्रकट चैत्र कृष्ण नवमी १६०० वि स में साकेतवास द्वारपीठस्थल द्योसा राजस्थान)

करमचन्द आचार्यकर करन चलेउंगुणगान,प्रविशिलेखनीमें रचउ छन्द वीरहनुमान ।

चैत्र शूक्ल द्वितिया तिथि सुन्दर, प्रकटे कश्यप ऋषि भूतल पर ।
सम्मत पन्दरसो विक्रमकर, सुनहु सन्त जन वचन मनोहर ।
जन्मस्थल द्योसाजगजाना, जयपुर राज्य मध्य मति माना ।
द्वारपीठ सोई मुनिवर कर, राजस्थान मध्य सो सुन्दर ।
श्रीधनचन्द पिताकर नामा, सब प्रकार थे पूरण कामा ।
बालक प्रकटनहीं नशाहीं, यासो दुखी शेठ मन माहीं ।

अन्तिम बालक जबहिं नशाना, आगे अनन्तानद भगवाना ।
रोवतवैश्य दम्पतिहिं देखी, द्रवित भये मुनिवर्य विशेषी ।

कीने जीवित बाल रामषडक्षर मन्त्रबल,भाग खाय भय काल करमचन्द दियनामगुरु ।

त्रिविवत वन चद किय सतकारा, मण्डल युत गुरु अग्र सिधारा ।
मातपिता आयसु अनुसरई, गो द्विज सन्तन आदर करई ।
सन्त मण्डली इक दिन आई, बोले अमरनाथ हम जाई ।
किन्तु रही अति शीत सताई, एक एक कम्बल देउ गहाई ।
करम चन्द सुनि सन्तन बानी, द्वै द्वै कम्ब दीने आनी ।
सुनि क्रोधी पितु दीन निकारी, करमचन्द सुमिरे धनुधारी ।
गुरु अनन्तानद पह जाई, राममन्त्र लीने हर्षाई ।
पन्द्रह सौ छत्तिसमा भाई, भये विरक्त करमचद जाई ।

करम चन्दआचार्य नाम दयेगुरु मुदितमन,सफल जन्म कियआर्य श्रीरघुनन्दनशरणह्वै ।

कहे करमचद निकट बुलाई, गुरु अनन्तानद सुखदाई ।
जाउ लवटि निज गामहिं भाई, द्वारपीठ थापहु तह जाई ।
सुनि आज्ञा हिय सुखमानी, लवटि गये घोसा मुनि ज्ञानी ।
राम यज्ञ प्रारम्भ कराये, अल्हदेव पयहारी आये ।
सिद्धि प्रदर्शन भा तह भाई, कोऊ न काहुई सका हराई ।
सम्मत पन्दर सौ उनचासा, करमचन्द किय यज्ञ प्रकाशा ।
सन्त महन्त तथा विद्वाना, द्वाराचार्य पद किये प्रदाना ।

सतवर्षायु पूर्ण गये आप हरिधाम, शिष्य प्रशिष्यादिक अमित मुनिके पूरण काम ।

आपके कर्मयोगविमर्श कर्मविनाशकस्तव आदि प्रबन्ध है ।



जगद्गुरु श्रीटीलाचार्यजी

(वैशाख शुक्ल तृतीया १५१५ वि स खटवाखडेल के पास कालन्दगाव मे प्रकट चैत्र शुक्ल पूर्णिमा १६४२ वि सं मे साकेतवास द्वारपीठस्थल अरणिया राजस्थान मतान्तर से डाकोर गुजरातमे)

सनक ऋषी अवतार टीलाचारज महामुनि, किये धर्म उद्धार ले पवित्र त्रिदण्डकर ।

जगगुरु जीवन वृत्त बखानू, तिथी नक्षत्र मास कर गान ।
पाख नखत जे सुना सनाऊ, जन्मादिक प्रदशहु गाऊ ।
मात पिताकर नाम बखाना, करउ सुना हमने जो कहना ।
पन्दर सौ पन्दरह शुचि सम्मत, विक्रम भूपकेर सन्ननगत ।
शुचि बडभाग मास वासिकवर, असन तनिया तिथी मनोहर ।
कृतिका नखत रहा सनिवर, मंगलकार मांगल्कि सुखकर ।
जन्मस्थल अब सुने सुजाना, है कान्न्द गांव जग जाना ।
खाटू खडेलाके नट माहिं गुरु जन्मस्थल शुचि सुखदाई ।

श्रीजानकि निवास थे, पिता श्रेष्ठ विद्वान, माता नाम था इन्दिरा पतिसेवामें मगन ।

श्रीहनुमतकी आज्ञा पाई, प्रवटिला पर गे द्विज राइ ।
सनतकुमार ऋषी अवतारा, कीन तपस्या कठिन उदारा ।
प्रकटि कहे बटुकह श्रीकपिवर, जो कोउ दावे(कण्ठी)हीरा तब गर ।
जानेउ सोइ सदगुरु मनि माना, अस कहि कपि भे अन्तरधाना ।
सुनि बटु कीति सिद्ध बहु आये, किन्तु न कण्ठ छुवन कोउ पाये ।
कृष्णदास गुरु सिद्ध महाना, कीने बटु कह मन्त्र प्रदाना ।
श्रीसाकेतनिवासाचार्य, दिये नाम पयहारी आर्य ।
जा गलता नाथन मद झारा, गुरु आज्ञासो कृपा अगारा ।
जाइ निहारउ टीला मन्दिर, है खोल्ना ग्रामके अन्तर ।
बालब्रह्मचारी बुधिसागर, द्वाराचार्य सर्व विद्याधर ।

श्रीडाकौर सुधाम महं द्वारागादी भव्य, किये तहंइ परिवार किउ गादी मंगल दिव्य ।
पदवी उन्हे सुजान महासिद्ध सम्राट्की, मुनिवर रहे महान आनदभाष्य प्रचारक ।

आपकी कुछ कृतिया—सुरद्रुम आनन्दभाष्य की टीका, प्रबोधकलानिधि, श्रीरामानन्द-वेदान्तसार । प्रपत्तिकुसुमाजलि, शिक्षासुधा आदि ।

५ जगद्गुरु श्रीविजयरामाचार्यजी (श्रीरामरावलजी) ५

(नागपचमी वि सं १५१६ जहाजपुरमे प्रकट चैत्रपूणिमा
१६१६ मे साकेतवास द्वारपीठस्थल खोड)

(श्री)रामरावलाचार्यश्रीविजयरामआचार्यगुरु,श्रीरामभक्ति दे आर्य कविकिंरबलरामकहं।

पन्दरह सौ सोरह शुचि सम्मत, वीरविक्रमाको सन्तन मत ।
भादव मास मनोहर सुखकर, नागपचमी तिथि अति सुन्दर ।
जन्मस्थल जहाजपुरगामा, है मेवाड मय सुख धामा ।
द्वारपीठ जगगुरु कर भाई, है खोड गाममे जनसुखदाई ।
शुचि मेवाड प्रदेश सुजाना, जामे श्रीजीकर अस्थाना ।
(श्री) राघवरावल पिता आपके, नित गावे गुणग्राम रामके ।
रही विदेही माता सुन्दर, पतीव्रता सर्वगुणाकर ।
रामयज्ञके पुण्य प्रतापा, लहे पुत्र रावल निरपापा ।

रामरावल नाम जन्म समय गुरुजन दये, परिजन पूरणकाम भये अलौकिकबाललखि ।

कछु दिन गये सुनउ सब शुभ मति, रावल मन भयउ दुख अति ।
सर्पदंश त्यागेउ सुत प्राना, राघव उर भा दुख महाना ।
करन लगे अन्त्येष्ठि तयारी, आइ गये मुनिवर तपधारी ।
अल्हदव जगगुरु भगवाना, कीने सुत जीवित विद्वाना ।
माता पिता परम सुखपाई, दिये पुत्र मुनिवरहि गहाई ।
विधिवत मन्त्र दान गुरु कीने, चरम मन्त्र शरणगति दीने ।
विजयरामार्य दिये गुरुनामा, किये रावलहि पूरण कामा ।
रामरावलाचार्य सुजाना, दिय उपनाम गुरुवर भगवाना ।
आगम निगम तन्त्रकर ज्ञाना, कीने गुरुवर मुदित प्रदाना ।
इक तांत्रिक बहु द्वन्द्व मचावा, अन्तहारि गुरुशरणहि आवा ।
पन्दरह सौ छाछठिमे भाई, द्वारपीठ थापे निज जाई ।
शुचिबईसाख तिथी सुठि चउदशि, खोड गाममा थापेउ पीठ ऋषि ।

सोरह सौ सोलहमें किये गुरु साकेत पयान,शिष्यप्रशिष्यअनन्तजग करै रामगुणगान ।
कथन किहेउकछु गुरुचरित कविकिंकर अज्ञान,भूल चूक करि हैं छमाकविकोविदविद्वान।

आपके श्रीराममहिमस्तव श्रीरामपडक्षरस्तव श्रीविजयरामयशावली आदि प्रबन्ध है ।

५ जगद्गुरु श्रीदिवाकराचार्यजी ५

(वामन द्वादशी १५३५ वि स धौसा राजस्थान मे प्रकट
साकेतवास १६१० वि स द्वारपीठस्थल जामलधौसा)

श्रीदिवाकराचार जगद्गुरु कृपा अगारा ।
किरण मालि अवतार वशको सुयस पसारा ।
बचपनसे ही आप किये जगतीमे त्तिनाश ।
दुतिय दिवाकर गरिम, विश्वमे तेज पसारा ।
श्रौत विशिष्टाद्वैतमत, कहे जगद्गुरु उच्चतम ।
श्रीमद् जगगुरु नाम रहे उपलक्ष दिव्यतम ।

जगसुरु परमाचार्यदिवाकरआचार्य सुनि... ...जीरे आगे...कथन तब चरितसुनि ।

पन्दर सौ पैतिस शुचि सम्मत, भये प्रगट गुरु सन्तनको गत ।
श्रीवामन द्वादशि तिथि सुखकर, रू वनाइ द्विजेश मुनीश्वर ।
राजस्थान मध्य इक गामा, धौसा नाम सर्वगुणधामा ।
जन्मस्थल सोई मुनिवरका, सद्गुण सागर दीवाकरका ।
द्वारपीठ है जामल धौसा, राखै गुरु सियराम भरोशा ।
करम चन्दके पुत्र मनोहर, बुद्धि सदन सद्गुणके सागर ।
जन्मतही कह सन्त सुजाना, पिता मातु किय स्वर्ग पयाना ।
करमचन्द मुनिवर सुखदाई, रामतत्त्व कछु कह बुझाइ ।

ब्रह्मचर्यका निज हृदय प्रण कीने मति मान, मामा... आदेशपो खोले एक दुकान ।

लाभको धन सुनिये सब भाई, गोसेवामे दिये लगाई ।
पुनि गृह त्यागि किये प्रस्थाना, श्रीगल्ता आश्रम विद्वाना ।
जगगुरु अग्राचार्य पहजाई, दीक्षित भये दिवाकर भाई ।
दिवाकर आचार्य सुनामा, दीक्षा नाम दिय गुरु गुणधामा ।
तान्त्रिक निर्मित सब तमभाई, सन्मुख प्रभा दीन विनशाई ।
दर्शकबृन्द चकित रहि गये, जयजयकार सन्त सब कये ।
पुनिगुरुवरकी आज्ञापाई, भ्रमि दिग् विजय कीन मुनिराई ।
या द्वारे के मठ बहु भाई, सन्त सेवा तह होत सदाई ।

रामब्रह्म स्तवरचे प्रपत्तितत्त्वकी सान, कविकिंकर बलरामकछु कीरति कीनबखान ।५

ॐ जगद्गुरु श्रीअलखरामाचार्यजी ॐ

(बावन द्वादशी १५४० वि स काशीमे प्रकट चैत्रकृष्ण १ वि स १६५१ मे साकेतवास द्वारपीठस्थल अलख गुफा कामाख्या आसाम)

अलखराम आचार्य——रामदासोंके अनुचर ।
महासिद्ध शिरमौर—विप्रकुल कमल दिवाकर ।
(श्री) सम्प्रदायके विमल ध्वज आनदभाष्य प्रचारक ।
सद्गुरु भक्ति प्रदायक अघअवगुण दाहक ।
गुरु शास्त्रार्थक महारथी, दिग् विजयी गुण सागर ।
श्रीराम-रामानदाचार्य किय नाम त्रिभुवन अमर ।

अलखरामआचार्य कर कार्उ अचल यसगान, पवनपुत्र हनुमान गुरु हृदय विराजेआन ।

सम्मत पन्द्र सौ चालिस विक्रम, श्रीवामन द्वादशि तिथि उत्तम ।
शुक्लपक्ष सद भानि पुनीता, श्रवण नखत कुंभ लगन अजीता ।
श्यामा चरण पितावर नामा, विप्रवराघवेन्द्रक धामा ।
श्रीराधिका दइ मा नामा, पतीव्रता सुशील निष्कामा ।
रहे मूल बमाल निवासी, द्विज दम्पति सद्गुणके राशी ।
तीर्थ जानि किय काशीवासा, सुमिरहि सीतावर सुखराशा ।
अर्ध अवस्थामे हे माई, मन इच्छा द्विजकी वर आई ।
दिव्य बालगृह प्रकटेउ आइ, मुख छबि लखि मन चन्द लजाई ।
विधिवत जन्मोत्सव करवाई, नामकरण कीन द्विजराई ।

श्रीअखिलेश्वर नाम किय प्रधान ज्योतिर्गुण, मे द्विज पूरणकाम रामयज्ञकरवाइपुनि।

प्रथम अध्ययन पिता कराये, पुनि श्रीमठ मह पुत्र पठाये ।
योगानद मुनिवरसो जाई, लाग बटु पढन मन चित लाई ।
बर्ष सप्तमा सुनहु सुजाना, भे अखिलेश श्रेष्ठ विद्वाना ।
इक द्राविड विद्वान महाना, आयउ वाद करन अज्ञाना ।
सुब्रह्मण्यम नाम द्राविडकर, हारि मानि सो गिरेउ चरणपर ।
धरी अर्ध मह दिय निचलाई, श्रीअखिलेश विप्र सुखदाई ।
सारस्वत सम्राट् सुजाना, पददीने बुधन प्रदाना ।
योगानन्दाचार्य भगवाना, कीने अखिलेश्वर सम्माना ।

वैष्णवसंस्कारयुत राममन्त्र दियकान, अलखराम आचार्यपुनि नामहु किये प्रदान ।
द्वारपीठ-स्थापना कामाख्या में कीन, ब्रह्मदेश आशाममें वामपन्थ भा दीन ।
रामयज्ञ करवाइके भे सियवर मे लीन, कविकिंकर बलराम तब गुरुचरणन चितदीन ।

आपके नमस्कारविंशति मानवसमीक्षा आदि प्रबन्ध है ।

जगद्गुरु श्रीकेवलरामाचार्यजी (कूबाजी)

(वैशाख शुक्ल ११ वि स १५४५ व्रजबोरनीमे प्रकट भाद्र शुक्ल
११ वि स १७२५ मे साकेतवास द्वारपीठस्थल झीथडा)

श्रीमद्कूबाचार्यकर करन चलेउं गुणगान, सीतापतिहनुमान युत हृदय बसउ श्रीमान ।

सम्मतमास तिथी बतलावउ, सुठि प्रदेश अरु ग्राम दिखावउ ।
मात पिता कर नाम सुजाना, द्वारपीठहु कथउ महाना ।
पन्दरह सौ पैतालिस सम्मत, वीरविक्रमाकेर सन्तमत ।
शुचि बइसाख महीना सुन्दर, हरिवाशर तिथि परम मनोहर ।
श्रीव्रजधाम मध्य द्विजराई, ग्रामबोरनी सब सुखदाई ।
तामे एक विप्र विद्वाना, रहे राम मिश्रा मनि माना ।
पिता आपके सोई सुजाना, वेदशास्त्र कर उत्तम ज्ञाना ।
सुखदेवी माता कर नामा, पतिबरता सब सद्गुणधामा ।

केवलराम सुनाम, जन्म समय दीने पिता, श्रीमिश्रागुणधाम चउथे पन सन्तति लहे ।

अग्रज त्रय कूबाके सुन्दर, रहे सर्व विद्वान धुरन्धर ।
किन्तु रहे केवल सुखसागर, मातपिता प्रिय प्राणगुणाकर ।
गये राम मिश्रा द्विजराई, द्वारिकेश दर्शनके ताई ।
लउटत एक बर्ना भा भाई, दीनेउ सर्प दश खिशियाई ।
रहा गोत्रदा बन दुखदाई, भेनिर्जीव मिश्र सुखदाई ।
पति बिन पतिनी भई अनाथा, सुखदेबी सुत केवल साथा ।
करै बिलाप धरणि दै माथा, वार वार निरखै सुत हाथा ।
सुनि दारुण सती बिलापा, बन देवन कर हिरदय कापा ।

ता औसर हरिप्रेरित ता मग सुनउ सुजान, गृही सन्त इक आगये वहीं परम विद्वान ।

मारवाड के सो सुखराशी, थे खिनावरी गाम निवासी ।
नाम गोपालदास सुखसागर, थे रामावत सन्त सुखाकर ।
ताहि सौपि सुत सती सयानी, निज पतिशव लै अगिनि समानी ।
लै बालक गोपालपुर आये, स्वपतिनी कह मुदित गहाये ।
पालक पिता हृदय अति प्रेमा, निरखि अलौकिक केवल नेमा ।
करि उपनयन सन्त गोपाला, ले सुत काशी गये कृपाला ।
नरहरि विद्यालयमा जाई, विद्याभ्यास लगि दिय बैठाई ।
अल्प समयमा सुजाना, केवल भये पूर्ण विद्वाना ।

पुनि पालक पितु चरण महं आइ नमायेमाथ, कछुदिन बीते व्याहभा द्विजकन्याकेसाथ ।

सुख मय जीवन लगे वितावन, श्रीकेवलाराम मन भावन ।
किन्तु न विधि सहि सके दुलारा, केवल शीश वज्र दै मारा ।
पोषक पिता मात दोउ भाई, गये रामके धाम सिधाई ।
जगदेवी पतिनिउ हे भाई, गई अचानक स्वर्ग सिधाई ।
तब स्वतन्त्र भे केवल रामा, लागे जपन राम कर नामा ।
तजि खिनावरी किय प्रस्थाना, तीर्थाटन हित द्विज विद्वाना ।
मारग मह जगगुरु कपिराई, मिले सन्त कर भेष बनाई ।
कहे जाउ शोरउ मतिमाना, जह नर हरियानंद भगवाना ।

राममन्त्रले उन्हीं सों करु जीवन कल्यान, सुनि आज्ञा गये जहं नरहरि विद्वान ।
नरहरि सों दीक्षित भये केवलराम सुजान, केवलरामाचार्य किय गुरुवर नाम प्रदान ।
जाइ झीथडा मे किये द्वारपीठ निर्मान, पूर्णशताब्दी करि गुरु किय साकेत पयान ।

आपके प्रबोधरत्नमाला, प्रबोधरत्नमजूषा, श्रीरामाष्टक आदि प्रबन्ध है ।

जगद्‌गुरु लाहारामाचार्जी

(कार्तिक शुक्ल ५ वि से १५४५ मेवाड राजस्थानमे प्रकट आषाड शुक्ल ११ वि स १६५० मे साकेतवास द्वारपीठस्थल अरणिया)

लाहारामाचार्यकी लगन रामके साथ, पवनपुत्र हनुमानको गुरु मस्तकमें हांथ ।

अब गुरुवरका रुचिर गुनगाथा, गावउ धरि हनुमत पद माथा ।
पन्दरह सौ पैंतालिस सम्मत, विक्रम अहे सन्त जनको एक मत ।
रहा कार्तिक मास सुखदाता, शुक्ल पक्ष पचमी वरदाता
है मेवाड राज्य जन्मस्थल, शुचि उत्तम विद्वान विप्रकुल ।
द्वारपीठ अरणिया सुजाना, बसै विप्र धनपती महाना ।
आदि गौड ब्राह्मण विद्वाना, पिता आपके रहे सुजाना ।
बाल्य अवस्थामे दुखदाई, काललीन पितु मातु उठाई ।
मामा लालन पालन कीने, विद्या दान प्रथम सोई दीने ।

करन विशेष अध्ययन कुंवर दीन पहुंचाय, द्वाराचार्यटीलार्या पहँ मामा दिये पठाय ।

भा वैराग जगत से भाई, जगगुरु चरण गहे तब जाई ।
पन्दर सौ पछि मह भाई, भये शिष्य गुरुवर पह जाई ।
श्रुति सिद्वान्त दिवाकर सुखकर, श्रीमदटीलाचार्य द्विजेश्वर ।
लाहारामाचार्य शुचि नामा, पाये लालचन्द सुख धामा ।
तीर्थयात्रा प्रति पुन सिधाये, भ्रमण करत नाशिक गुरु आये ।
शास्त्रार्थ मे दिये हराई, ब्रह्मानद अवधूतहिं जाई ।
हारिमान पदशीश नमाई, शिष्य भये गुरुवर के आई ।
ब्रह्मानन्दाचार्य दै नामा, किये जगद्गुरु पूरणकामा ।

सिद्धी दिये नशाई अघोरनाथ औघडकी, गिरे चरणमे आइ भाष्कर सूरी जैन मुनि ।
आप शताब्दि पूर्णकरि किय साकेत पयान, पाछे शिष्य प्रशिष्य सब किये धर्मउत्थान।
कविकिरबलराम विनवे दोउ करजोरि गुरु, जगगुरु सुखधाम दया करियो दासपर ।

आपके मन्त्रराजमगलम् सौरभभाष्यम् श्रीवैष्णवधर्मपीयूष प्रभृति प्रवन्ध है ।

जगद्गुरु श्रीअर्जुनाचार्यजी

(शरद पूर्णिमा १५४९ वि स सेतीवेनी नेपालमे प्रकट वैशाख पूर्णिमा
१६१५ वि स. मे साकेतवात द्वारपीठ स्थल सगुद्रकूप झूर्सी)

स्वयं धनंजय अर्जुनाचार्यबने जग आय, सम्प्रदाय श्रीदृढ किये जंगीनाम धराय ।

अब जगगुरु यसबखाना, सुनां जो गुरुजन मुखसो नाना ।
जन्म समय अब सुनउ सुजाना, शरदपुर्णिमा सब जग जाना ।।
आश्वीन मास वामिक माना, शुक्लपक्ष तमको निशाना ।।
हिन्दु राष्ट्र नेपाल मझारी, सेतीबेनी ग्राम सुखारी ।
जन्नस्थल सोई मुनिवरको, विप्र वंश अवनस गुरुको ।
पन्दर सौ उनचास शुचि सम्मत, भूप विक्रमको सन्तनमत ।
द्वारपीठ उत्तर प्रदेश मह, प्रतिष्ठानपुर उदधि कूप जह ।
श्रीरामप्रसाद पितु कर नामा, सदविद्या सद्गुणके धामा ।

मातुपूर्णिमा सरलचित, पतीव्रता सुशील, पति सेवा बल इन्द्रियन जाने दीनो कील ।

जन्म नाम अखिलेश्वर रामा, दीने सद गुरुजन सुखधामा ।
नरहर्यानद गुरु पह जाई, षोडषवर्ष पढे द्विजराई ।
पन्दर सौ पचहत्तरि सम्मत, शिष्य भये द्विजवर गुरुवनमत ।
अग्रअली गुरुवर पह जाई, भये प्रपन्न द्विजकुलराई ।
त्र्यम्बक अद्वैतिहिं बिचलाये' श्रोत विशिष्टहि प्रबल बताये ।
करि दिग् विजय सुयस विस्तारे, आनदभाष्यहिं जगत पसारे ।
विरोधी षटकम सुन्दर ग्रन्था, रचे जगद्गुरु मुक्ति पन्था ।
मिथिलामगलादि श्रुतिसारा, विरचे जगगुरु कृपा अगारा ।

कविकिंकर बलराम चाकर गुरुपदपद्म कर, भूलचूक पर दृष्टि ना करियो गुरु करुणाकर ।

जगद्गुरु श्रीराघवचेतनाचार्यजी

(श्रावणी १५५० वि स मे प्रकट अक्षयतृतीया १६६० मे साकेतवास द्वारपीठस्थल देवप्रयाग)

रघुनन्दनके परम निकट श्री नन्दरूपधर, द्वैराघवचैतन्य, कीर्तन किये भूमि पर ।
रामरावल शिष्य भक्तिमालाके कविवर, हास्यकुशल गुरुदास्य, भावधर भक्तिसुधाकर ।
रामचरण अनुरक्त चित, नितरघुनाथ मनाइके, देवप्रयाग पीठरचि बहुतारे गुनगाइके ।
श्रीराघोचेतनाचार्य सुउदार परम सुखराशी, करनधर्म उत्थान प्रकटभे मुनिवर वर काशी ।
गाइ रामसिय सुयस काटिदिये यमकी फाशी, नास्तिकदल विचलाय भये हरहृदयवाशी ।
श्रीआनदभाष्यप्रचारिजगविजय वज नभ लहराये, शठकविकिंकर बलरामहूश्रीराघवगुणगाये ।

करउंकथन जगगुरु कर अब शुचिजीवनवृत्त,सुजन सन्त श्रोता सुनै सावधानकरिचित्त।
अब बर्नौंगुणगाथ राघव चेतनाचार्यकर, नाई स्वगुरुपदमांथ सुमिरि वीरहनुमन्तपद।

सुनै सर्व सज्जन धरि ध्याना, करउ जगदगुरुकीति बखाना।
जन्म समय सम्मत अब गाव‌उं, मातपिताकर नाम बतावउ।
जन्मस्थल प्रदेशशुचि सुन्दर, करउ कथन जो सुनेउ विप्रवर।
राम आयसु निज मस्तकधारी, द्विज कुलमे जन्मे अवहारी।
श्रावणमास शुक्ल सुखदाई।, तिथी श्रावणी मुनिमन भाई।
सम्मत पन्द्र और पचासा, कहत सन्तगण सह विश्वासा।
बेणीमाधव शुक्ल सुर्नामा, पिता आपके सद्‌गुणधामा।
माता रामदेइ शुचि सुन्दर, पतिपदसेव मानि परमेश्वर।
सुठि उत्तर प्रदेश मन भावन, गग-यमुन जह सरयू पावन।
श्रीरघुवर दयाल शुचिनामा, दीने पितृदेव सुखधामा।

अलप अवस्थामे किये मातपिता प्रस्थान,भये स्वतन्त्र दयाल तब कृपा कीन भगवान।

चले अवध गृहधाम विहाई, तीर्थाटन हित राम मनाई।
भ्रमत भ्रमत दयाल द्विजराई, अवधधाम मह पहुचे जाई।
मिले दयालहिं कपिवर आई, श्रीसरयूतट जन सुखदाई।
कहे दयालहिं कृपा निधाना, चित्रकूट कीजै प्रस्थाना।
रामरावलाचार्य सुजाना, करत तपस्या तह मतिमाना।
तिनके चरण शरण है भाई, करउ सफल जीवन निज जाई।
जो आज्ञा कहि कीन प्रणामा, श्रीदयाल द्विजवर गुणधामा।
दे प्रदक्षिणा शीश नमाई, चित्रकूट गमने द्विजराई।

कछुक दिवसमे जाइके पहुंचे द्विजसुखधाम, हनुमतधारा जाइके गुरु कहं कीन प्रणाम।
कपिवर आज्ञापाइ मुनि कीने मन्त्र प्रदान, राघोचेतन नाम दै कीने द्विज सम्मान।

ले गुरु आज्ञा मुनि विद्वाना, कीने तीर्थराज प्रस्थाना।
प्रकटि दर्श दीने मतिधीरा, बेणीमाधव सग रघुवीरा।
भरद्वाज दीने वर आई, मनो कामना हो सिध भाई।
बौद्व भिक्षु दिय चकित बनाई, श्रीजगदीशपुरीमा जाई।
करि दिग् विजय सुयस विस्तारा, राममन्त्र कर किये प्रचारा।
निज कृत भक्ति माल पहिराई, दीने रामहिं मुग्ध बनाई।

करि करि वाद विपच्छिन जीते, रामभजन बल सन्त पिरीते ।
करत विजय रामेश्वर आये, महाशम्भुके दर्शन पाये ।

दिये स्वर्णबर्षाय तुलसी तरु झकझोरिकर, हीराकि झरिलाय हीरासे दिय जगद्गुरु ।
लीने शिष्य बनाय लिंगायत कहं जीति, गे साकेत सिधाय शताब्दी दश भजन करि ।
श्रीराघव शरणागती गुरु कृत ग्रन्थ महान, भक्तिमाल आदिक रचे राघो गुरु विद्वान ।
द्वारपीठ निज थापे देवप्रयाग सुजान, विद्यमान है अजहु सो जा निरखउ मतिवान ।

ॐ

ॐ जगद्गुरु श्रीभगवान् नारायणाचार्यजी ॐ
जगद्गुरु श्रीभगवान्जी

(चैत्रकृष्ण ४ वि म १५५० कान्दुवानमे प्रकट आषाढ पूर्णिमा १६७९, वि म. में साकेतवास द्वारपीठस्थल पिण्डोरीधाम——पजाब)

श्रीभगवान नारायणकर कीरति करउं बखान, सावधान ह्वै सुनै सब सन्त तथा विद्वान ।

चैत्र चउथि तिथि परम मनोहर, कृष्णपक्ष पित्रन दिवसवर ।
सम्मत पन्दरह और पचाशा, प्रकटे भूतल जगन्निवासा ।
है पजाब मध्य-मति माना, कान्हुवान इक ग्राम महाना ।
जन्मभूमि सोई मुनिवरकी, विष्णुअवतार जगद्गुरुवरकी ।
द्वारपीट पिण्डोरीधामा, कहत सन्तजन पूरणकामा ।
तोता राम पिता कर नामा, मैना देवी तिनकी वामा ।
थे वैकुण्ठ नाथके सेवक, बने न और देवके पायक ।
सारस्वत ब्राह्मण विद्वाना, वेदशास्त्र आदिकको ज्ञाना ।

सन्तरूपमें आन पुत्ररत्न हित दिये हरि, निजगृहदेव समान पुत्र अलौकिक भा प्रकट ।

बालपने सिद्ध महाना, जन्मनाम भगवान बखाना ।
माटी छुवत सर्करा होई, वाघ सिंहपुर झाक न कोई ।
चरणपादुका गगन उडाई, पकरि कमण्डल लाये भाई ।
लखि बहरामशाह शर्मायउ, पादपद्ममा शीश नमायउ ।
बडे भये पर पितु अरु माता, गे साकेत लोक सुखदाता ।
सम्मत पन्दरह अरु उन्नासी, तोरि दिये ममताकी फाशी ।

रामदास पदपकज मधुकर, बने जाइ भगवान द्विजेश्वर ।
श्रीभवानाचार्य सुजाना, नाम दिये जगगुरु भगवाना ।
भक्तमाल मे मिलत प्रमाना, थे हरिके अवतार सुजाना ।
द्वारपीठ निज थापे भाई, श्रीपिण्डोरिग्राममें जाई ।

जहाँगीरसे जो हुआ मुनिवरका सम्बाद, उपदेश मंजरी में लखै निज नैनन विद्वान ।
महेशदासनारायण शिष्य महाद्युतिवान, पूर्णायु साकेत गे चढि गुरु दिव्य विमान ।
कविकिंकर बलराम राखे आशारामकी, यद्यपि सेवकत्राम तदपिदास पद पद्मको ।

जगद्‌गुरु श्रीनारायणाचार्यजी

(श्री)जगदगुरुनारायण करै तव चरितगान, अल्पबुद्धि जड मन्द मति कविकिंरअज्ञान ।

जन्म भूमि गुजरेठ बखाना, विप्र वश अवतंश सुजाना ।
जयभानू श्री पितुकर नामा, विष्णुदेबी मातु ललामा ।
जन्म नाम नारायण सुन्दर, रामभक्त अति उत्तम द्विजवर ।
श्रीभगवान महामुनि ज्ञानी, नारायणकि मृत्यु लिये जानी ।
जोगमार्ग सो कृपा अगारा, पलक माहिं गुजरेठ निहारा ।
राम मन्त्र मन्त्रित जल द्वारा, जीवित किये द्विजेश कुमारा ।
मात पिता गुरु पद शिरनाई, दिये सौपि बालक सुखदाई ।
कह जयभानु द्विजेश उदारा, अब ये बालक नाथ तुम्हारा ।

विधिवत संस्कार तब कीने दया निधान, राममन्त्र नारायणहि पुनि मुनि किये प्रदान ।

एक दिवस सलीम तह आवा, श्रीभगवान दर्श ना पावा ।
नारायण सो पूछन लागा, काष्ठ मौनव्रत मुनि ना त्यागा ।
मौन गुरुहिं लखि मूढ रिशाना, मुनिहिं पकडि शहादरा आना ।
विषको प्याला मात पिलाये, नारायण मन गुरुहिं मनाये ।
तरल गरल प्रभाव भा फीको, मृत्यु रस फल दीन अमीको ।
जानि औलिया शाह लजाना, गिरा चरण मे दण्ड समाना ।
बनेउ सलीम शाह दीवाना, स्वय करायो मठ निर्माना ।
गुरु शिष्य दोऊनके नामा, द्वारपीठ पिण्डोरीधामा ।

वैष्णव सिद्धपीठ तेहि कह सन्त सुजान, है पंजाब प्रदेश महं पिण्डोरी अस्थान ।
है प्रपत्त्यंग पंचकम गुरुवर कृती महान, उपदेश मंजरी पठनकरि लह पद निर्वान ।
राम यज्ञ विधिवत किये सन्त समूह बुलाइ, सन्तन सों आशीश ले गे साकेतसिधाइ ।
कविकिंकर अबोधशठमन्दबुद्धि अज्ञान,भगवान नारायणचरित जिमितिमि कीनेउगान ।

जगद्गुरु श्रीअग्रदेवाचार्यजी

(फाल्गुन शुक्ल द्वितीया १५५३ वि स मे प्रकट द्वारपीठस्थल रेवासा)

(श्री) अग्रदेवआचार्यपद बिनवउँ बारबार,छुद्र बुद्धि लघुबालकी विनय करिय स्वीकार।

पन्दरह सौ तिरपन शुचि सवत, वीर विक्रमाकर सन्तन मत ।
फागुन शुक्ल दुतिया तिथि सुन्दर, प्रकट भये मुनिवर भूतलपर ।
द्वारपीठ गुरुकर सुखधामा, है रेवासा सुन्दर गामा ।
रामभजनरत रहई सुजाना, बाल्य अवस्था से मति माना ।
जन्मनाम अवधेश कुमारा, शुद्धस्वभाव न दुर्गुण प्यारा ।
कोशलेन्द्र पण्डित पितु नामा, रहीं सुमित्रा मातु ललामा ।
मातपिता गे स्वर्ग सिधाई, एक महामारीमे भाई ।
नानाके गृह पालन भयऊ, बडे मन विराग मह रमेउ ।

कृष्णदास गुरु आश्रम कियअध्ययन सुजान,चारिबेद षडशास्त्र युतकिय कण्ठस्थपुरान ।

पुनि दीक्षा हित पदशिर नाई, कीन विनय गुरुवर पह जाई ।
देखि अनाथ सनाथ बनाये, राममन्त्र द्विजवरहिं सुनाये ।
रहे बडे गुरुभाई सुखकर, कीलदेव आचार्य मुनीश्वर ।
नाशिक कुम्भपर्वसे भाई, लौटे जब दोनो मुनिराई ।
मिलेउ सघन बन मा इक आई, पाचवर्ष कर शिशुइक भाई ।
जन्म अन्ध ना कोऊ सहारा, तापे कीने कृपा अपारा ।
तब मन्त्रित जल कील चलाये, दिव्य ज्योति नेत्रन प्रकटाये ।
अग्रज आज्ञा शीश चढाई, नारायण लिय शिष्य बनाई ।

मानसिंहनरनाह(१६१३)मेंआइनिहारेउगुरुचरनमगनभयउमनमांहअर्चनकीनेउभलीविधि
थापे पीठ अनेक अग्र देवके वंशजन, राखी सबने टेक गुरु परम्पराकी जगत ।

कविकिंकर बलराम चाकर तबपदपद्मकर, जगगुरु पूरण काम रामचरण रति दीजीये ।

आपके १ अष्टयाम २ कुण्डलिया ३ ध्यानमजरी ४ अग्रसागर ५ आचार्यपरम्परा इत्यादि अनेक प्रबन्ध है ।

जगद्गुरु श्रीतनतुलसीदासाचार्यजी

(गगादशहरा १५५५ वि म सोरोमे आविर्भाव साकेतवास ज्येष्ठ शुक्ल २ वि स १६५७ द्वारपीठस्थल मुडियारामपुर उ प्र)

(श्री)तनतुलसीअवतारहुलसीसुततुलसीदासार्यकर, गहिपदकरतजुहारकविकिंकरबलरामशठ

गगा दशहरा पर्व सुहावन, जेठ महीना मुनिमन भावन ।
पन्दरह सौ पचावन शुचि सम्मत, विक्रमको सन्तनकर दृढमत ।
जन्मस्थल सोरो जग जाना, वसत जहा वहु सन्त सुजाना ।
भुडियारामपुरा अति सुन्दर, द्वारपीठ तह जगगुरुवर कर ।
श्रीअवधेश प्रसाद सुनामा, पिता आपके विद्याधामा ।
रमाबाई माता सुखदाई, पण्डित व्रजकिशोरके जाई ।
तुषारकान्तिअग्नी-होत्री, जन्म समय दीने सब गोत्री ।
धनवन्तरि विद्याके ज्ञाता, किय कण्ठस्थ शास्त्र बहु ताता ।

नैष्ठिक ब्रह्मचर्यव्रत धारे कृपानिधान, मातपिताके इछहिं ना दीने गुरुमान ।

पितु आज्ञा ले सुनहु सुजाना, तीर्थाटन हित कीन पयाना ।
भ्रमण करत रेवासा आये, जगिदेवके दर्शन पाये ।
करि अध्ययन सुनहु सुजाना, राम भजनकी हिरदय ठाना ।
तब जगगुरु पदपरसे जाई, चरण शरण हित विनय सुनाई ।
जानि भविष्य जगद्गुरु ज्ञानी, लिय प्रार्थना बटुकी मानी ।
सस्कार पाचा करवाई, राममन्त्र पुनि दिये सुनाई ।
श्रीअर्जुनाचार्य मुनिराई, योग विद्या पुनि दिये सिखाई ।
तन तुलसी किये नाम प्रदाना, श्रीजगीदेवार्य सुजाना ।

चतुर्भुज आचार्य दिय सन्तन उपनाम पुनि, मगन भये सबआर्य तनतुलसीदासार्यलखि ।
पूर्ण आयु भोगकरि जगद्गुरुकियसाकेत पयान, कविकिंकरबलरामपे रखे ध्यान हनुमान

आपके श्रीरामप्रणामाष्टकम्, धर्मशिक्षा प्रभृति प्रबन्ध है ।

ॐ जगद्‌गुरु श्रीरामरामायणीदेवाचार्यजी ॐ

(वैशाखकृष्ण ११ वि. स १५७५ उज्जैनमे प्रकट साकेतवास
वैशाख कृष्ण ११ वि स १६७५ द्वारपाठस्थल नासिक)

श्रीरामरामायणीदेव द्विज कुलके शृङ्गार,(श्री) याज्ञ्यवल्क्यअवतार जगकियभक्तिप्रचार ।

पन्दरह सौ पचहत्तरि सम्वत, उज्जेनपति कर अति उत्तम ।
शुचि बइशाख महीना सुन्दर, कृष्णपक्ष एकादशी मनोहर ।
जन्मभूमि सुज्जैन बखाना, मध्य प्रदेश मध्य जग जाना ।
द्वारपीठ शुचि नाशिक धामा, सेवत जाहि सन्त निष्कामा ।
महाराष्ट्र है देश मनोहर, शिवाआदि जह प्रकटे वीरवर ।
रमाकान्त थे पिता सुजाना, चतुवेद ज्ञाता विद्वाना ।
जन्मदात्री गगादेवी, सासु-स्वसुर निज पति पद सेवी ।
रामदेव सन्तन सुखदाता, नाम जन्मको दिय पितु माता ।

भये वर्ष दशके जबहिं रामदेव मतिमान, महामारी करि गये मातपिता प्रस्थान ।

भा अनाथ बालक दुखियारा, राम बिना ना कोई सहारा ।
तव सीताकी एक सहेली, चन्द्रकला इव नार नबेली ।
प्राकृत वृद्धा वपुकिय पालन, निज जननी इव कीनेसी लालन ।
बडे भये पर सुनहु सुजाना वृद्धा हो गई अन्तर्धाना ।
भ्रमण करत सो नाशिक आवा, खेमदास मुनि दर्शव पावा ।
दीक्षा हित विनय सुनावा, सुनि गुरुवर्य परम सुखपावा ।
सस्कार पाचो करवाई, राममन्त्र पुनि दिये सुनाई ।
दीक्षा नाम दिये भगवाना, रामरामायणीचार्य सुजाना ।

बालमीकि रामायण किय अठोत्तरी पाठ, अवधधाम में जाइके सीताबरके घाट ।

सलीमशाह(चिस्ती) इकदिन चलिआवा, जगगुरु चरणकमल शिरनावा ।
गुरु अशीश लहि सुनउ सुजाना, दीनेउ अकबर कह वर्दाना ।
प्रयाग कुम्भपर मुनि विद्वाना, किने रामकथामृतदाना ।
अमित सिद्ध मुनिगण नित आवै, राम रसामृत पी न अघावै ।
साक्षात ब्रह्मर्षि सुजाना, आवै भरद्वाज भगवाना ।
सोरह सौ पन्दरह सम्मत मे, द्वारपीठ थापे नाशीक मे ।

निज शताब्दी मह विद्वाना, राम यज्ञ कीने भगवाना ।
राम मन्त्र विधि व्रत करि जापा, गे साकेत लोक निष्पापा ।

नमोविसतीमे किये राममुयस मुनिगान, रामायणसारआदिहू हैं गुरु ग्रन्थ महान ।
कविकिंकरबलराम कहेउ सुयम यथा मति,छमा करेउ सुखधाम जो कुछ त्रुटी रह गई ।

जगद्गुरु श्रीमुरारीदेवाचार्यजी

(माघकृष्ण ११ वि सं १५७० पाठकके पुरवाप्रयाग मे प्रकट द्वारपीठस्थल दारागंज प्रयाग)

श्रीमुरारिदेवाचार्य हैं मुरअरिइव कृपामय, पद वन्दैद्विज आर्य रामभक्त समरथकर ।

पन्दर सौ सत्तरि विक्रम कर, सम्मत हे सन्तन को दृट मत
भये प्रकट मुनिवर भूतल पर, पण्डित दीनानाथ पाठक घर
जन्मस्थल पाठकको पुरवा, हो हरि कथा जहा घर घर बा ।
जिला इलाहाबाद सुजाना, सन्त महन्तन कीन बखाना ।
जन्म नाम दीने सुख दाता, विप्र मुनेश्वर सुनिये भ्राता ।
जगी देवकर हुआ पदार्पण, दीनानाथ कीने सुत अर्पण ।
जगी देव कह निकट बुलाई, तन तुलसी कह सुनिये भाई ।
राम मन्त्र यहि दीजे जाई, बालक होन हार है भाई ।

तन तुलसीके शिष्यभे मुनेश्वर द्विजराय, मुरारिदेवाचार्यशुचि दीने नाम गहाय ।
गुरु परम गुरु प्रवर गुरु दर्शन लहे सुजान, अग्रदेवसों लहे पुनि रामतत्त्वकर ज्ञान ।
द्वारपीठ निज थापे दारागंज महान, पूरे सतवर्ष बिताइके किय साकेत पयान ।
कविकिंकर बलराम हैं बुरे दिनजको फेर, भाग्य फिरे वनिजातजग मंजरिहू शेर ।

आपके बोधनक्षत्रमालाभष्यम् सद्विचारमाला प्रभृति प्रबन्ध है ।

जगद्गुरु श्रीनारायणाचार्यजी (श्रीनाभाजी)

(वसन्तपचमी १५८७ वि, स रामटेक महाराष्ट्रमे प्रकट द्वारपीठस्थल रेवासा)

नाभा नारायण दोउ एक देह द्वै नाम, भक्तमाल विरचे जिन भक्तिको सुधाम ।

माघवसन्त पचमी सुखकर, ता दिन प्रकटे मुनि भूतल पर ।
सम्मत पन्दर सौ सत्तासी, प्रकट भये द्विजवर सुखराशी ।

रामटेक इक नगर महाना, महाराष्ट्र मे सुनहु सुजाना ।
जन्म भूमि सोई मुनिवरकी, राममन्त्रदाता गुरुवरकी ।
मिला अग्र कह बाल सुजाना, एक सघन वनमे मति माना ।
जन्म अन्ध प्रति दीन दुखारी, देखि कील मन भा दुख भारी ।
राममन्त्र मन्त्रित जल मुनिवर, सिचन किये बाल नैत्रन पर ।
मन्त्रराज बल सुनउ उदारा, सचित पाप नष्ट भा सारा ।

दिव्य ज्योति प्रकटत भई नेत्रोंमे ततकाल, गहेउ युगल मुनिवर्यकर पादपद्म सो बाल ।

नारायण निज नाम बतावा, पुनि दिक्षा हित विनय सुनावा ।
बालहिं सग लिवा द्विजराई, नबसारीमा पहुचे जाई ।
करि तह कछुक दिवस सन सगा, किये प्रजाहित भक्ति गगा ।
पुन जगद्गुरु गल्तहिं आये, भाविक भक्तन दर्श दिखाये ।
पुनि नारायण निकट बुलाये, वैष्णव सस्कार करवाये ।
राम षडाक्षर मन्त्र प्रदाना, कीने अग्रदास भगवाना ।
नारायणाचार्य है नामा, पुन कहे जगद्गुरु गुणधामा ।
करु उद्धार धर्मकर जाई, कामक्रोध कह दूरी हटाई ।

नाभाचार्यउपनाम सुनउ वत्स चितलाइ तव,रामभक्त सुखधाम,होइ है हरि यस गाइके।
दो रामहिं पहिराइ भक्त सुमाल बनाइके,हो जगकीर्ति सवाइ सुनहु वत्स चितलाइअब।
भक्तमाल प्रारम्भ पन्द्र सौ निन्नानबे,किय गुरुवर निर्दम्भ निज गुरु आज्ञा पाइके।
अपररामानन्दाचार्य श्रीमदतुलसीदास मुनि,अरु नारायणाचार्यदोउसमर्थ हरिजनमिले।
रेवांसामहं जाइ द्वारपीठ थापेउनिज, गे साकेत सिधाइ रामयज्ञ करवाइ गुरु ।
कविकिंकर बलरामकहं राम भक्ति दै नामप्रभु,पवनपुत्रहनुमान पद कीजेनेहप्रदानगुरु ।

आपके भक्तमाला अष्टयामादि अनेक जगप्रसिद्ध प्रबन्ध है ।

जगद्गुरु श्रीभृङ्गीदेवाचार्यजी

(पौष शु० १५ कुरुक्षेत्र मे प्रकट द्वारपीठ आगर मे)

रामपदपद्मके दिव्य भृग भृङ्गीदेव, करै सियारामपद पकजको नित्य सेव ।
श्रीमद सुद्वाराचार्य,सिद्ध सन्त-धर्माचार्य,धीराति धीरआर्य करै नितपरमार्थकार्य
श्रीकुरुक्षेत्रमें जन्मिके किये धर्म उधार गुरु, शठ कविकिंकरबलरामकेपापतापदुखद्वन्द्वहरु ।

भृंगीदेवार्यकर करउं विमल यसगान, पूर्वाचारजसर्व नमि धरि हनुमत पद ध्यान।

जगगुरु भृङ्गीदेवयश गाऊ, जन्मक्षेत्र अरु समय बताऊ।
बद्री नारायण रूप निधाना, पिता आपके थे विद्वाना।
माता पारवती सुखशीला, गावै सुनै रामकी लीला।
मातपिता किय स्वर्ग पयाना, बाल अवस्था माहिं सुजाना।
भानु प्रसाद जन्नकर नामा, विप्र बंश सदगुणके धामा।
जन्मस्थल कुरुक्षेत्र सुजाना, हरियाणा प्रदेश मतिमाना।
तजि सियराम न और सहारा, तब भानू गृह गाम विसारा।
तीर्थ भ्रमण हित किय प्रस्थाना, करत रामसीता गुणगाना।

पहुंचा तीरथराज भ्रमण करत द्विजबालसो,लषणदास महराजे उदधि कूप पर जा लखे।

तन तुलसीकी अकनि बडाई, तन तुलसी पद निरखे जाई।
मुडिया रामपुरा मह जाई, सदगुरु शरण भये द्विजराई।
श्रीभृङ्गी देवार्य सुनामा, दीने श्री गुरुवर गुणधामा।
सदविचार मालाकर ज्ञाना, श्रीमुरारिदेवार्य सुजाना।
लघु गुरु भाइहिं कीन प्रदाना, तन्त्रमन्त्र कर सुन्दर ज्ञाना।
पुनि गुरुवर पदशीश नमाई, काशीधाम पहुचे मुनि राई।
अपर रामानन्दार्य सुजाना, तहा मिले तुलसी भगवाना।
पुन रामकी आज्ञा पाई, गे अवन्तिकामें द्विजराई।

श्रीउज्जैनीके निकट है इक आगर ग्राम, द्वारपीठनिज तहाँ पर थापे मुनिगुण धाम।
शुकाचार्य अवतारशुचि कहत इन्हें विद्वान,साधन निर्णय आपको है इक ग्रन्थ महान।
किय साकेत पयान पूर्णायु करिजगद्गुरु, पूर्ण भयउ अख्यान कविकिर बलरामकृत।

卐

卐 जगद्गुरु श्रीपरमानन्दाचार्य (पूर्णवैराठी) 卐

(माघशुक्ल सप्तमी नारायपुर ग्वालियरमें प्रकट
द्वारपीठस्थल गगादासजीकी बडीशाला ग्वालियर)

पर ब्रह्म श्रीराम चरणके परम उपाशक,
श्रीपूर्ण बैराठी देव पूर्णत काम विनाशक।

राम भक्त शिरमौर विशिष्टाद्वैत प्रचारक ।
षट विकार करि दूरि शब्द बैराग्य प्रकाशक ।
चहु बेद–शास्त्र मर्मज्ञ गुरु अष्टाग योग निष्णात ।
अरु चाकर हनुमतवीरके शुचि दिव्य मनोहर गात ।
पूर्ण बैराठी यश अब गाऊ, माता पिता कर नाम बताऊं ।
जन्मस्थल प्रदेशकर नामा, कौन वश प्रकटे सुखधामा ।
स्वर्ण रेखा तट सुदर गामा, नारायणपुर ता कर नामा ।
राज्य ग्वालियर कर सो भाई, तामे एक विप्र सुखदाई ।
नाम महेन्द्र तिवारी सुन्दर, शाडिल गोत्र सुविद्या बुधि घर ।
मातु नाम अब सुनहु सुजाना, जनक दुलारी पति प्रिय प्राना ।
माघशुक्ल सातम दिन आई, जन्मे भूतल द्विज गृह भाई ।
जन्म नाम पितु दिय सुखधामा, परमेश्वर प्रसाद सुठि नामा ।

वारह वर्ष विताइके लहे द्विजत्व सुजान, कछु दिनमें मातापिता किये स्वर्ग प्रस्थान ।

क्षेमदास आश्रम पर जाई, विद्याभ्यास किये द्विजराई ।
अल्प दिवस मह द्विज कुलराई, लिए कण्ठ सब शास्त्र बशाई ।
अग उपागन युत चहु वेदा, जानि लिये सव (षड) दर्शन भेदा ।
पुनि गुरु चरण शीश नमाई, राम मन्त्र लीने द्विजराई ।
श्रीपरमानदाचार्य सुनामा, दिये जगद्गुरु पूरण कामा ।
महासिद्ध मे सिद्ध शिरोमनि, योगक्रिया मर्मज्ञ महामुनि ।
स्वर्णरेखा तट मठ बनवाई, पवन पुत्र दीने पधराई ।
खण्ड योगके परमाचार्य, राम भक्ति परचारक आर्य ।

छिन्नभिन्न करि देह निजदेतेपुनि तेहि जोर, सलीम आवागुरु पहं सुनिसिद्धीकीशोर ।
कहे ताहि गुरुवर बुझा सुन सलीम सुल्तान, फतेपुराशीकरी कहं कीजै प्रस्थान ।
चिस्तीके वर्दानसे वर आयेगी मुराद, फरजंद हो अइयाशसो इसको रखिये याद ।
सोरह सौ एकशठि विमल विक्रमके सुजान, दीक्षा कालूराम कह दीने कृपा निधान ।
गंगादासकी बडी शाला जग विख्यात, द्वारापीठ गुरुदेव कर सोई सुनिये तात ।
करि शताब्दी पूर्णजग किये साकेत पयान, कविकिंकर बलरामकी त्रुटी छमहि सुजान ।

आपकी कृतिया—(१) श्रीवैष्णव ममल (२) पुरुषोत्तम योग आदि है ।

ॐ जगद्गुरु श्रीराघवेन्द्राचार्यजी (खोजीजी) ॐ

(अवतार मार्गशीर्ष १५ द्वारपीठस्थल खोजीकी पालडी)

बन्दउ पवनकुमार, मार बल दर्प दरइया ।
करनभूत उद्धार बने शिव केशरी छइया ।
राम भक्ति परचार किये जगगुरु कपिरइया ।
श्रीसम्प्रदाय आचार्य,गुरु कीने सिय भइया ।
प्रभु कपि सुकण्ठ रक्षक बने, रामहि मित्र बनाइ गुरु ।
ये कविकिंकर बलराम तव, शिष्य कृपामय कृपा कुरु ।
श्री राघवेन्द्राचार्य, रामके परम उपाशक ।
धर्माचार्य उदार्य, काम मद मोह विनाशक ।
गुरु पदपकजभृग, पवनसुतके शुचि पायक ।
रगे रामके रग, विशिष्टाद्वैत प्रचारक ।
श्रीराघवेन्द्राचार्य जगद्गुरु, नाम उप खोजी पाये ।
ये कविकिंकर बलराम त्यागिजग, श्रीजगपतिपद ध्याये ।
खोजीदेव यस करउ बखाना, सुनै सर्व सज्जन धरि ध्याना ।
कृष्णदत्त पितु नाम सुजाना, सावित्री जननी जगजाना ।
विप्रवश उद्भट विद्वाना, सरयूपारिण द्विज मतिमाना ।
थे उत्तर प्रदेशके वाशी, ग्राम सुरामनगर सुखराशी ।
रामप्रसाद जन्म कर नामा, सुने सर्व सज्जन गुणधामा ।
जन्म समयसे राम सुजाना, सुमिरै रामचन्द्र भगवाना ।
कछु दिन गये सुनउ मतिमाना, मातपिता किय स्वर्ग पयाना ।
भये अनाथ राम जब भाई, गये तीर्थ गृह गाम बिहाई ।

भ्रमणकरतसो बाल पहुंचाकाशी नगर महं,लखि पद हुआ निहाल माधवदासमुनीन्द्रकर ।

बिनती करि गुरुबरहिं रिझाये, राममन्त्र मुनिवरसो पाये ।
माधवदास जगद्गुरुराई, सब सस्कार बैदिक करवाई ।
दै तारक-तारे भवसागर, माधवाचार्य सिद्ध गुण आकर ।
(श्री) राघवेन्द्राचार्य सुनामा, दिये जगद्गुरु पूरणकामा ।

गुरुवर पादपद्म मनलाई, सेवै राघवेन्द्र द्विजराई ।

सब शिष्यन कहुं निकट बुलाइ, एक दिवस गुरु कहे बुझाई ।

जइहौ जब साकेतहिं भाई, आपहि बजै वाद्य सुखदाई ।

बाज दुन्दुभी घन्टी घन्टा, होई पयान मोर जब अन्टा (१)।

किन्तु भयउ ऐसो नहीं, बजे न झालर शख ।

परम अचम्भित शिष्यभे, किमि ना बाजेउ शख ।

खोजी खोजे ठामसो गुरु भये जह लीन, भोग लगाये सोई फल(२)बाजे घन्टाबीन ।

याहि ते उपनाम राघवेन्द्र खोजी लहे,जगगुरु पूरणकाम द्वारपीठथापे निज ।

मारवाडमे पालडी है इक सुन्दर ग्राम, खोजी द्वारसुपीठसो सन्तन कह सुखधाम ।

खोजीद्वाराकेअमितभारतमेअस्थान,कलिआयुनिजपूर्ण करि हरिपुर कियप्रस्थान ।

पूर्ण भयउ आख्यान खोजीदेवाचार्यकर, यतिकिंकर अज्ञान विनवै दोउकरजोरि निज ।

आपकी कृतिया—श्रीउपदेशवल्लरी जनकजाप्रपत्ति आदि है ।

(१) रामकी अटारी साकेतधाम (२) आपका फल ।

卐

卐 जगद्गुरु श्रीरामस्तम्भनाचार्यजी 卐

(वैशाख कृष्ण ११ द्वारपीठस्थल पिण्डदादनखा अभी पाकिस्थानमे)

(श्री)रामस्तम्भनाचार्यमहासिद्धद्विजकुलतिलक,दयादृष्टिकरिआर्यदिखलादे हनुमतझलक।

जन्म समय अब करउ बखाना, शुचि बईसाख मास जगजाना ।

कृष्णपक्ष एकादशी मनोहर, प्रकट भये मुनिवर भूतलपर ।

पण्डित कृष्णकान्त पितु नामा, सर्वगुणाकर विद्या धामा ।

दुर्गावती मातु सुखधामा, पतिपद सेव जानि श्रीरामा ।

ग्रहण नहान गये द्विजराई, कुरुक्षेत्र सुतसग लिवाई ।

इक तात्रिकने की अधमाई, मातपितासे दीन छुडाई ।

रामकृपाते सुनहु सुजाना, भागेउ बाल बचा निज प्राना ।

सूर्यमुनी ढिगपहुचेउ जाई, गिरेउ चरणपर हाहा खाई ।

है मुल्तान समीप सो सूर्य कुण्ड मतिमान, सूर्यमुनी आश्रम सोई कहत सन्त विद्वान ।

जानि भविष्यसुजान राममन्त्रजगगुरु दये,सिद्धिउअमितप्रदान किय महामुनिकृपामय ।

रामस्तम्भनाचार्य नाम दये गुरु मुदितमन,किये कठिनतप आर्य प्रकटिरामदीने दरस ।

पिण्डसुदादनखान द्वारपीठ मुनिराजकर, गये रामदरबार पूर्णायु श्री जगद्गुरु ।
भाविक गुरुके भक्त दीन समाधी बना तहं, चारिउ सशक्त पूजत गुरुपद पादुका ।
कविकिंकरबलराम कथेउ यथामतिचरिततव, छमाकरउसुखधाम जो कछु त्रुटीरहि गई ।

आपके पादुकापञ्चकम् शिक्षाचिन्तामणि प्रभृति प्रबन्ध है ।

जगद्गुरु हठीनारायणाचार्यजी

(माघअमावास्या १६०४ इगुरी इटावामे प्रकट साकेतवास श्रावणशुक्ला ७ वि सं १७०३ द्वारपीठस्थल वसो)

(श्री)हठीनारायणाचार्यगुरु(श्री)रामभक्तगुणग्राम,करिहठसतगुरुप्रापकियजगगुरुपूरणकाम

सोरह शून्य चारि शुचि सम्मत, विक्रमको गुरुजन का है मत ।
परम पुण्य मय माघ महीना, तिथी अमावस उत्रघ हीना ।
जन्मस्थल इगूरी गामा, जिला इटावामे सुखधामा ।
(श्री) जयनारायण पितुकर नामा, चतुर्वेदीय विप्र सुजाना ।
गगादेवि जननि सुखसागर, पतीव्रता, सद्गुणमे आकर ।
वर्ष पचास गये यहि भाती, जात न जाने दिन अरु राती ।
पुत्र प्राप्तिकर दिय वर्दाना, स्वय प्रकठि बड़ी भगवाना ।
जन्मनाम नारायण दीना, मात पिता गुरुजन छल हीना ।

द्वारपीठ गुजरातमें वसो गाम विद्वान, रहि तहं सन्त सुजान बहु करे रामगुणगान ।

मात पिता गे स्वर्ग सिधाई, कछुक दिवसमे बाल विहाई ।
कृष्णदास दर्शन हित भाई, हठ करि बैठे द्विज कुलराई ।
देखि बालहठ दीनदयाला, प्रकट भये सन्मुख ततकाला ।
पुनि पुनि करि आशीश प्रदाना, गुरुदेव भे अन्तरधाना ।
बसोमध्य गुरुदीनदयाला, तोरे इक तांत्रिक भ्रमजाला ।

पूर्ण आयु करिजगदगुरुकियसाकेत पयान,शिष्य प्रशिष्य अनन्तजग करतरामगुणगान।
ब्रह्मत्व विमर्शसुग्रन्थ रचि कीने जगकल्याण,बैरागयतीसी आदि बहु हैं गुरुग्रन्थ महान।
गायो कविबलराम जगगुरुवरको चरित कछु, स्वीकारो गुणधाम तुच्छ भेंट येदासकर।

॥ गद्गुरु श्रीमलूकदासजी ॥

(वैशाखकृष्ण ५ वि स १६३१ कडामानिकपुरमे प्रकट द्वारपीठस्थल जगन्नाथपुरी)

श्रीमलूकदासार्य कीजै कलिमल नष्ट सब, सिद्धकरो सबकार्य ऐ जगगुरुवर कृपामय।

विक्रमकर पवित्र सम्मत, सोरसौ इकतीस सन्तन मत।
जन्मस्थल माणिकपुर सुन्दर, शुद्ध वैष्णव अमित तहाँ पर।
श्री मलूकमुनि पूरणकामा, द्वारपीठ थापे सुखधामा।
श्रीजगदीश धाममे जाइ, सुनउ सब सज्जन मनलाई।
कक्कड सुन्दरदास सुनामा, पूज्यपिता इनके सुखधामा।
सरलादेबी मात पुनीता, करिपति सेवा इन्द्रिन जीता।
दिये मलूकदास सुठिनामा, जन्ममे ही पितु सुखधामा।

अभिरुचि थी हरिभक्तिमें बालपनेसे भ्रात, त्रिबेणीतटपर एक दिन ध्यानमग्न थे तात।

मुरारीदेवाचार्य सुजाना, आये करन गग अस्नाना।
गुरुके छुवत सुनउ-मतिमाना, छूटि समाधी उपजेउ ज्ञाना।
विधिवत दीक्षा दिये सुजाना, मलूक कहं जग गुरु भगवाना।
पुनि विधिवत अध्ययन कराई, दिये पूर्ण विद्वान बनाई।
दीक्षा नाम दिये भगवाना, श्रीमलूकदासार्य सुजाना।
सम्प्रदाय श्रीकर मुनिराई- दिये रहस्य सर्व समुझाई।
किये मलूक सतक निर्माना, सस्कृत सम मे दया निधाना।
श्रीमलूक टुकडा सुखदाई, अजहु पुरीमा मिलत सदाई।

मंजरीकी तरह नित रक्षत रामसुजान, दृढ मान्यता मलूककी सुनिये सन्तसुजान।
आयु पूर्णकरि जगत गुरु किय साकेत पयान, कविकिंकरबलरामके रक्षक गुरुहनुमान।

॥

॥ जगद्गुरु श्रीकालूरामाचार्यजी ॥

(वसन्तपचमी १६४० वि स पूरीमे प्रकट फाल्गुन शुक्ल १५
वि स. १७४१ मे साकेहवास द्वारपीठस्थल कटक)

कालूरामाचार्यकर चरित अब गान, शुद्ध हृदय शुचि सन्तगण देउ सुभग वर्दान।

देउ सुभग वर्दान, होइ रुचिकर ये गाथा।

साधु जनन हो सुखद, द्रवै सिय सह रघुनाथा ।
महाकुटिल कलि कलुषहर, हो आचार्य गुनगान ।
कवि किंकर बलरामको, दवै गुरु सुठि ज्ञान ।
जगगुरु जीवन परिचय गाऊ, मात पिता गुरु नाम बताऊ ।
जन्मकाल तिथि सम्मत सुनिये, सुनि गुनि शुद्ध हृदयमा धरिये ।
विक्रम सम्मत सुनहु सुजाना, सोरहसौ चालीस मुनिमाना ।
परम पुण्य प्रद माघ महीना, तिथि वसन्त पाचम रग भीना ।
देवल साइ जन्मस्थल सुन्दर, पुरी जिला मह परममनोदर ।
वासुदेव पण्डा पितुनामा, विद्यावारिधि सदगुण धामा ।
माता कृष्णकुमारी सुन्दर, पतिभक्ता विद्यागुण आगर ।
कृष्णनयन थे चउथे बालक, पितृ भक्त रघुवरके पायक ।
पितु आज्ञालै सुनउ सुजाना, कृष्णनयन द्विजवर मतिमाना ।
श्रीसाखी गोपालमठ जाई, ध्यावन लगे रामरघुराई ।

कालाबाबा नामसे हो गये तहाँ प्रसिद्ध, आगे चलकर के सोई रामभक्तमे सिद्ध ।

कुछ तस्कर मिलि कीन बिचारा, चोरी करै राजदरवारा ।
राजकीय धन ले जब भाई, चले चोर गे निरखि सिपाई ।
भगे चोर धन कह ले जबहीं, खेदि लिये सैनिकगण तबहीं ।
तस्कर लखे बचत ना प्राणा, कीने तब रघुपति कर ध्याना ।
धनकी गठरी सिन्धु बहाई, बैठे कृष्ण नयन पहजाई ।
ऊर्ध्व पुण्ड्र द्वादस करि भाई, सब तन लीने भस्म रमाई ।
इतनेमे सैनिक तह आये, सन्तमण्डली लखि शिरनाये ।
गये लवटि सैनिकगण जबही, कृष्ण नयन मन शोचे तबहीं ।

एक दिव्य झनकार हिय वीणापर भइ तबहिं, जयातयुगलसरकार जयजय श्रीसीतापते ।
पुनः कहेउ दोहा इक सुनउ सन्त धरि ध्यान, बडा विलक्षण अर्थयुत है सुनउ सुजान ।
बाना बडा दयालका तिलकछाप अरु माल, कह कालू यमहु डरै भयभानेकोतवाल ।
सच्चासाधन वननहित करिविचारद्विजराय, परमानन्दाचार्यके जाइ निहारे पायं ।
गुरुपुर्णिमाके दिवस दीक्षित भये सुजान, कालूरामाचार्य गुरु कीने नाम प्रदान ।
कविकिंकर बलरामसुनुभे सिद्धनशिरमौर, किये विजय जगभ्रमण करि लहे विजय सवठौर ।

आपके श्रीरामब्रह्माष्टकम् दोहामालिकाप्रभृति प्रबन्ध है ।

ॐ

॥ जगद्गुरु श्रीरामरङ्गीदेवाचार्यजी ॥

(विजयादशमी १६५२ नन्दिग्राममे प्रकट वैशाखशुक्ल ५ वि स
१७५७ में साकेतवास द्वारपीठस्थल काशी गगातटमें)

रंगे राम रंगमे, बिसारै न एक पलहु मुनि ।
रहै मस्त भजनमे, हो राम सुयस सुनि ।
सिद्धनमे महासिद्ध, तपोनीष्ट ज्ञान नीष्ठ ।
अरु रहै प्रसन्न नित राम मन्त्र जप नीष्ठ ।
श्रीराम रगी देवार्य मुनि मन अभिमत दाता गुरु ।
या कविकिंकर बलरामकर, अगुण अमगल नष्ट कुरु ।

श्रीरामरगीआचार्य कर करउंसुयस अवगान त्रुटि छमिहैं विज्ञजन दास आपनो जान ।

सोरहसौ बावन शुचि सम्मत, विक्रम केर रहा सतन मत ।
विजया दशमी तिथि मनोहर, भयउ तिवारीके गृह सोहर ।
शुचि उत्तर प्रदेश सुखधामा, तामे नन्दीग्राम सुठि ठामा ।
सोइ जन्मस्थ है मुनिवरका, परम प्रतापी जन वत्सलका ।
सरयू पारिण द्विज विद्वाना, वेदादिककर उत्तम ज्ञाना ।
राम भक्त सब बिधि गुणवाना, पिता आपके रहे सुजाना ।
रागानन्द तिवारी नामा, रहे सर्व विधि पूरण कामा ।
माता अनुसुइया महरानी, पतिव्रता सदगुणकी खानी ।

मात पिता द्विजवर्यके ब्रह्म पद चित लाय, पुत्र प्राप्ति हित कठिन तप कीने नैमिष जाय ।

प्रकटि दीन ब्रह्मा वरदाना, होइ पुत्र गृह श्रेष्ठ सुजाना ।
लहि बर्दान भवन द्विज आये, रामयज्ञ विधिवत करवाये ।
जात दिवस ना लागेउ वारा, पाये विप्र मणि दिव्य कुमारा ।
राम राम रघुवर अघ दाहक, भूतलपरत कहेउ मुख बालक ।
ताते रामानद मतिमाना, रामरगी सुतनाम बखाना ।
जन्मोत्सवमा पुन सुजाना, रामयज्ञकर किये विधाना ।
टीलाद्वार पीठ पति सुखकर, श्रीभागीरथ देव द्विजेश्वर ।
बावीस वरस बीते जवही, रामन्त्र दीने गुरु तवहीं ।

रामरगि देवार्य शुचि दीक्षा नाम सुजान, दिये जगद्गुरु कृपामय करिके कृपा महान ।

सोरह सौ चउहत्तरि सम्मत, था विक्रम सम्मत सन्तन मत ।
तपवल सिद्धी लहे महाना, रामरगीदेवार्य सुजाना ।
प्रयाग कुम्भके औसर भाई, जौघड किये उपद्रव आई ।
वैष्णव दलके ऊपर जाई, अग्नी वर्षाये मुसुकाई ।
रामरगी निज गुरुहिं मनाई, सो सब तुरत दिये लवटाई ।
द्वारपीठ निज सुनहु सुजाना, कीने रामनगर निर्माना ।
रामरगीदेवार्य उदारा, रहे भृगु ऋषिके औतारा ।

श्रीमुमुक्षु सर्वेश्व शुचि विरचे ग्रन्थ महान,कविकिंर पुनि पुनिनमत रामरगि पदत्रान ।

ॐ

ॐ जगद्गुरु श्रीदामोदराचार्यजी (श्रीदुन्दुरामजी) ॐ

(दीपावली १७५४ वि स कुरुक्षेत्रमे प्रकट द्वारपीठस्थल श्रीरामतीर्थ पजाब)

दामोदरआचार्य दुख दारिद् अरु द्वन्द्वहर,कृपाकीजीयोआर्य लिखन चलेउं तव विमलयश।

अब गुरु जन्म समय मै गाऊ, सम्मत तिथि शुभ मास बताऊ ।
सत्तरसौ चउन शुचि सम्मत, वीरविक्रमाकर सन्तन मत ।
कार्तिक अमावस सुन्दर, दीपावलीं मनोहर सुखकर ।
जन्मस्थल कुरुक्षेत्र बखाना, है हरियाना राज्य सुजाना ।
शुचि पजाब प्रदेश मझारी, रामतीर्थ है ग्राम सुखारी ।
द्वारपीठ सोई गुरुवरको, दुन्दूरामाचार्य मुनीको ।
पिता आपके थे विद्वाना श्रीयुत रलिया राम सुजाना ।
ममता मई सरस्वति माता, पतीव्रता परिजन सुखदाता ।

जन्म नामदामोदरारामधरे गुरुजनसकल,दिव्य ज्ञानसों था भरा उर दामोदर रामकर।

सत्तरह वर्ष बिताइ कुमारा, तन्त्र सिद्धिकर किया बिचारा ।
दे न सके पशु बलि द्विजराई, द्विज स्वभाव जागृत भा भाई ।
यवन आक्रम कीन करारा, मातपिताकर भयउ सहारा ।
बन्धन मुक्त भये द्विजवर, त्यागे दुखित हृदय सो पुरघर ।
हरी द्वारसे किये पयाना, मथुरा वृन्दावन विद्वाना ।
दीन दुखी रक्षा हित भाई, किये प्रतिज्ञा मन द्विजराई ।
कछु अद्वैती रहे सताई, एक वैष्णव जन कह भाई ।
ले दण्डा ठण्डा करि दीने, आतताई शैवन मदछीने ।

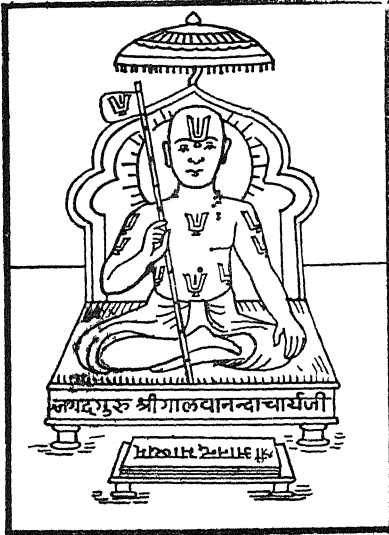
श्रीविरजानंद गुरुपहं दीक्षा लीने जाय, तन्त्र मन्त्र यन्त्रादि दै नामहु दिये गहाय।

दमोदराचार्य दिय नामा, विरजानन्दगुरु पूरण कामा ।
दुन्दुराम उपनाम सुजाना, दीने कछुक सन्त भगवाना ।
सत्तरह सौ पचहत्तरि सम्मत, रहा वीर विक्रम सन्तनमत ।
शुचि बइसाख महीना उत्तम, अक्षय तृतिया तिथी महोरम ।
ता दिन दीक्षित भये कुमारा, विरजानन्द जगद्गुरुद्वारा ।
धर्मधुरन्धर ज्ञान प्रदायक, रहे वैष्णव सेना नायक ।
दुन्दूराम द्वन्द्व प्रिय भाई, दिये शैव दल बल विचलाई ।
शिष्य प्रशिष्य गने ना जाही, रहे विचारि भारतके माहीं ।

श्रीरामऽस्तव आदि हैं प्रबन्ध जगगुरुके,करि निज समय समाप्त गयेसन्निकटरामके।
कविकिंकर बलराम कथेउ जगद् गुरुकर कछू, सर्वसन्तसुखधामस्वीकारैंगे पूनितमन ।

जगद्गुरु श्रीगालवानन्दाचार्यजी

(चैत्रकृष्ण ११ में आविर्भाव)



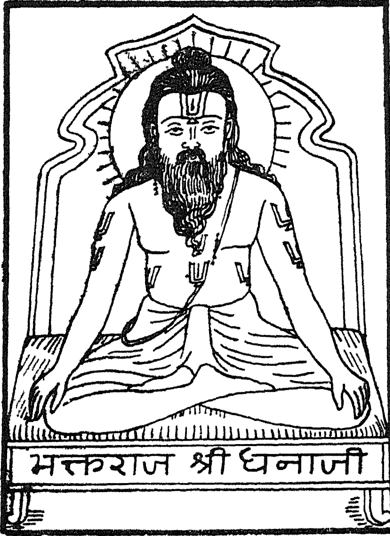
श्रीशुकके अवतार आप जगद्गुरु वर्दानी ।
जन्मत विप्रकुमार कहे रघुवर धनु पानी ।
धर्मरक्षा हित किये प्रतिज्ञा मुनिवर ज्ञानी ।
स्वआश्रम थापित किये, सिद्धेश्वर दड पानी ।
श्रीजगगुरु रामानन्दके योग्य शिष्य विद्वान गुरु।
शुचिचैत्रकृष्ण एकादशीतिथि,जन्मकहतसबधर्मगुरु।

कविकिंकर बलराम,विनवै जगगुरुचरणनित।
ग्रन्थअमित सुखधाम,है जगगुरुगालवरचित।
पुरुप सूक्त भाष्यमधुर,ग्रन्थ आपको दिव्य।
पूर्ण ब्रह्म रामाष्टकहु,है गुरु विरचित भव्य ।

रचे जगद्गुरु जगतहित, सदग्रन्थनमें एक ।
आगम निगम पुराणकर, काढे स्वच्छ शुचिसार ।
पढै सुनैं जे प्रेम सों, हों भवसागरपार ।

ॐ भगतराजश्रीयुत धनाजी ॐ

(माघकृष्ण ८ को प्रकट)



वना भगत वनी, राम सिय प्रेम भक्ति के।
जाटवंश अवतंश गुनी, अनुयायी रामके।
माघकृष्ण अष्टमी, तिथि परम मनोहर।
(श्री) दैत्यपती बलिराज, प्रकट भे आ भूतलपर।
द्वादश महाभावत मे, है बलिराज प्रसिद्ध इक।
(श्री)आनदभाष्य प्रचारमे, रचे ग्रन्थ वहु मार्मिक।
श्रीरामचन्द्र अवतार, जगद्गुरु रामानन्दा।
तिनके शिष्य उदार, आपश्री मुनि कुल चन्दा।
समरथ सिद्ध सुजान, महाज्ञानी गुण सागर।
दाता आप महान, तुमहिं सेव सब बुद्धिवर।
सन्त सेवामें लगा दिय,गोधूम बीजहु मुदित मन।
(श्री) रामकृपा बिन बीजहु, गेहूं भये हजार मन।

कविकिंकर बलराम सुनु धन्नाके पहं जय
करि सतसंग सुभक्तिपथ, अमित मन्त गह धाय। ॐ

ॐ भक्तराजश्रीसेनजी ॐ

(माघकृष्ण १२ वि म १३५७ मे प्रकट)



श्रीसेन भगत ससैन्य, कामदल किये पराजित।
प्रेम नीर सो दैन्य, क्रोधहु किये विसर्जित।
श्रीमजीके अवतार, रामसिय चरण उपाशक।
श्रीयतीन्द्रके शिष्य, अगुण अघराशि विनाशक।
माघ कृष्ण द्वादशी, तिथी आप प्रकटे भूपर।
कवि बलरामाचार्य, निछावर पादपद्मपर।
इक नापितके भवन, प्रकटभे आइ पितामह।
स्वयंराम अवधेश, सेन बनिगे कुरुपति पह।
सेनभक्तके नाम, पन्थ इक चला विश्वमे,
त्यागि रामको नाम और ना भावै मनमें। ॐ

श्रीभक्तराजरविदासजी

(१५१० वि स कार्तिक शुक्ल १५ को आविर्भाव)



रवि सम दिव्य प्रकाश, भक्तिकर फहलाये जग ।
श्रीराममन्त्र करि जाप, बताये परम मुक्ति मग ।

जन्म समयकर सम्मन, पन्द्रहसौ दश विक्रमकर ।
श्रीरामानद शिष्य, रहा इक बिप्र बुद्धिवर ।

दुष्ट अन्नकरथालधरायो,बटुअनजानत मह गुरुकह।
ता अघसोगुरु कोप करि तब,दीनेशाप करालतह।

ब्रह्मचारी ता शाप वस, धरि चमार कर देह ।
श्रौत विशिष्टाद्वैत मत, परचारे प्रति गेह ।

फइलाये करि कीर्तन, जगगुरु कीति विश्व मह ।
स्वय धरे यम मनुज तन, प्रकटे काशी क्षेत्र जह।

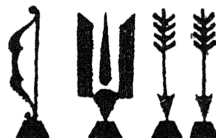
सो भक्त बना पदत्रान नया, नित वेचइ मुख्य बजार जा ।
श्रीकाशीबासी श्रेष्टजन सब, नित्य खरीदै तहा आ ।

स्वभक्तोके भक्तिबस, श्रीराम अवधेश जू ।
प्रकटि निज दर्शदै, दीने पारश ताहि जू ।

मीरा महारानिहिं दये, श्रीरैदासा गुरुभगत ।
सेवै गोसुर साधुपद, रह कीर्तनमे अनुरक्त ।

सन्देह ग्रन्थि छेदन किये, भक्त राज एक पलक मह ।
दिव्य जनेउ दिखाये रवि, निज छातीको चीरि तह ।

परम भक्त रैदासकर पन्थ जग विख्यात, अनुयायी तिनके सुजन कर कीर्तन दिवरात
कविकिंकर बलरामकी बिनती सुनै सुजान, राम सीयहनुमन्तकी भक्तिकरै प्रदान ।



ष



पृ० ७२३ में परिचय है।



पृ० ७२४ मे परिचय है।



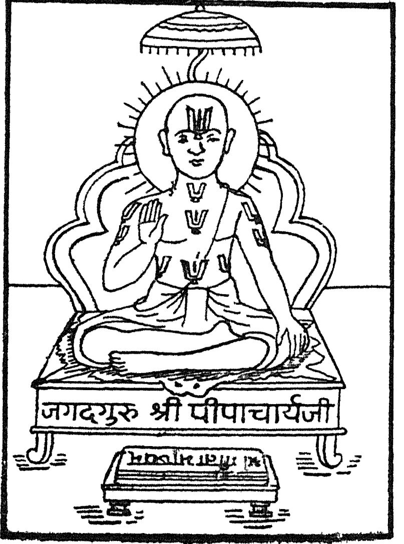
पृ० ७२५ मे परिचय है।



पृ० ७२७ मे परिचय है।



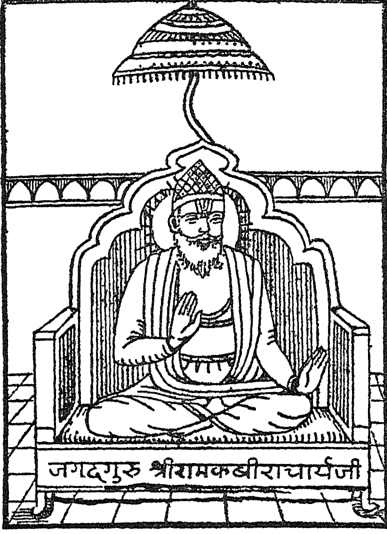
पृ० ७२८ में परिचय है।



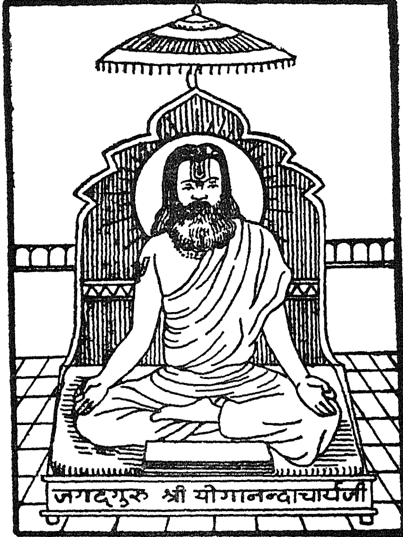
पृ० ७२९ मे परिचय है।



पृ० ७३ परिचय है।



पृ० ७३० में परिचय है।



पृ० ७३२ में परिचय है।



पृ० ७३३ में परिचय है।



पृ० ७३४ में परिचय है।



पृ० ७३५ मे परिजय है।



पृ० ७३७ में परिचय है।



पृ० ७३८ मे परिचय है।



पृ० ७३९ में परिचय है।



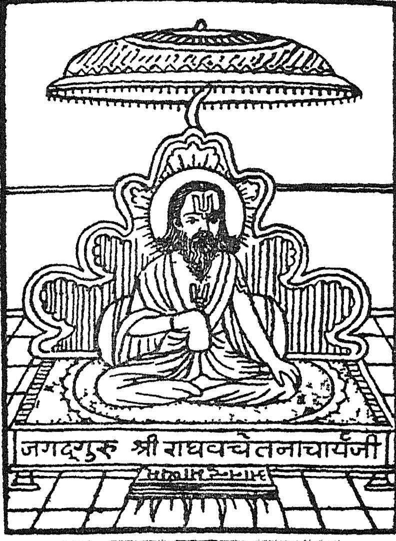
पृ० ७४० मे परिचय है।



पृ० ७४१ में परिचय है।



पृ० ७४२ मे परिचय है।



पृ० ७४३ में परिचय है।



पृ० ७४९ में परिचय है।



पृ० ७४७ में परिचय है।



पृ० ७४८ में परिचय है।



पृ० ७४५ में परिचय है।



प० ७५० में परिचय है।



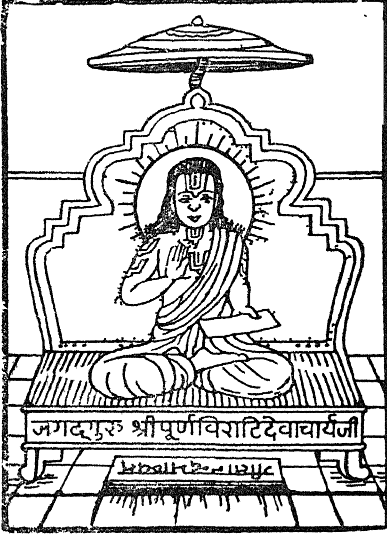
पृ० ७८९ मे परिचय है।



पृ० ७९० में परिचय है।



पृ० ७९१ मे परिचय है।



पृ० ७९२ में परिचय है।



पृ० ७९३ मे परिचय है।

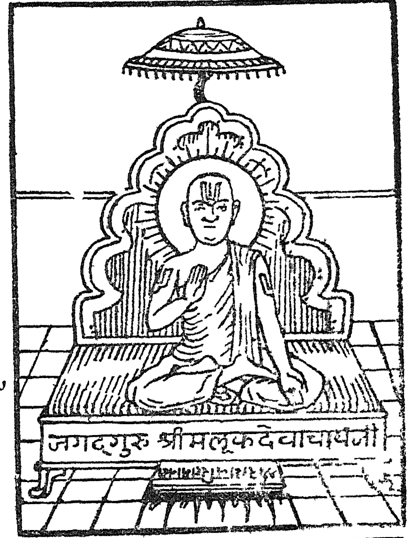


पृ० ७९४ में परिचय है।



पृ० ७५८ में परिचय है।

पृ० ७५९ में परिचय है।





पृ० ७५९ में परिचय है।

पृ० ७६० में परिचय है।



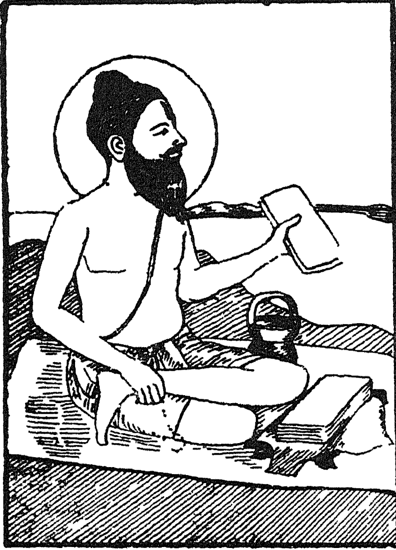
कविसम्राट्–अपररामानन्दाचार्य

श्रीतुलसीदासजी

(कार्तिककृष्ण ३ वि स १५५४ राजापुर मे प्रकट

श्रावणशुक्ल ७ वि स १६८० साकेतवास)

श्रीतुलसी इव राम पिय, श्रीतुलसीदासार्य, सम्प्रदाय श्रीमे भये रत्न दिव्य सुउदार्य।
श्रीवालमीक औतार आप सद्गुणके सागर, बेदशास्त्रकर खींचिसार भरिदीने गागर।



करउ जगद्गुरु कीर्ति बखाना ।
सुनै सर्व सज्जन धरि ध्याना ।
विक्रम सम्मत पन्दर सौ चउवन ।
भये प्रकट भूतल जग पावन ।
कार्तिक कृष्णपक्ष शुचि सुन्दर ।
तृतिया तिथी पुनीत सुखाकर ।
शुचि उत्तर प्रदेशमे ग्रामा ।
ह राजापुर ताकर नामा ।
राजापुरमे इक विद्वानो ।
सरयूपारिण विप्रसुजाना ।

दूबे आत्मा राम सुज्ञाना, वेदशास्त्रकर उत्तम ज्ञाना ।
माता हुलसी शुचि जिमि तुलसी, ताकी कोष प्रकट भे तुलसी ।
मूल माही लीने औवतारा, स्वयप्राचेतस कृपा अगारा ।

दन्त वतीसों रहे मुख जन्म समय विद्यमान, रामराम कीर्तन करन लागेउ बाल सुजान।

मात पिता सुत त्यागे भाई, अशुभ जानि दीने बिसराई ।
दयामयी श्रीचुनियादासी, तुलसी देबी की विश्वासी ।
रामबोला कह निज गृह लाई, पालन लागि हृदय हर्षाई ।
बीते कछु सम्मत जब भाई, चुनियाहु गइ स्वर्ग सिधाई ।
शिव आज्ञा तव हिमगिरि जाई, तुलसीहिं पालेसि हृदय लगाई ।
शेष सनातनजीसे जाई, विद्याऽभ्यास किये द्विजराई ।
श्रीनरहरियानदसो जाई, राममन्त्र लीने सुखपाई ।
तुलसीदासाचार्य सुनामा, दीने जगगुरुपूरण कामा ।

तुलसीकृत रामायण श्रुति शास्त्रनको सार, कवि किंकर बलरामपर कीने गुरु उपकार ।
जीवनवृत्त महान जगगुरुको जानैजगत, तासों कवि अज्ञान, थोडेउमें बर्णन करेउ ।

आपके श्रीरामलल्लानहछू, वैराग्यसदीपनी, वरवैरामायण, श्रीपार्बतीमगल, श्रीजानकीमगल, श्रीरामाज्ञाप्रश्न दोहावली, कवितावली, गीताबली, विनयपत्रिका, श्रीरामचरितमानस श्रहनुमानचालीसा, तुलसीसतसई आदि अनेक लोकोपकारी दिव्य प्रवन्ध है ।

॥ श्रीकृष्णदासजी पयहारीदेवाचार्यजी ॥

(चैत्रकृष्णपक्ष ९ तिथिमे प्रकट)

रामसियापति पतिहि बारबार मनाय, पवनपुत्र हनुमन्त अरु नमौं वैष्णवाचार्य ।
कृष्णदासगुणगन लिखउं स्वगुरुचरण शिरनाय, कृपाकरै गुरुजनसभी कार्यपूर्ण ह्वैजाय ।

लिखउ जगद्गुरु जन्मस्थाना, सुनै सर्व सज्जन धरि ध्याना ।
राजस्तान सुदिव्य प्रदेशा, धर्मधुरन्धर जहा नरेशा ।
तेहि प्रदेश मह सुनउ सुजाना, धोसा नामक ग्राम महाना ।
तामे एक दायमा द्विजवर, रहे सर्वविद्या गुणसागर ।
प्रकटे तिनके गृह भगवाना, (श्री) कृष्णदास मुनिवर्य सुजाना ।
नवम तिथी मधुमास पुनीता, कृष्णपक्ष खल ग्रह सोरीना ।
किशन चन्द शुभ जन्म सुनामा, दिये ज्योतिषीगण गुणधामा ।
समय जात नहिं लागेउ बारा, बर्षपाचके भये कुमारा

श्रीरामयज्ञ करवाय पुनि यज्ञ सूत्र दिय दान, अल्प समयमे पढि लिये चारिउबेदपुरान।

मात पितासो आज्ञा मागी, काशी पढन गये बड भागी ।
जा श्रीरामानद मठ द्विजवर, गिरे अनन्तानन्द चरणपर ।
दै परिकरमा सात उदारा, परे दण्ड इव धरणि कुमारा ।
दीक्षा हेत बिनय बहु कीने, जानि भविष्य जगद्गुरु लीने ।
सस्कार पाचो करवाई, राममन्त्र पुनि दिये सुनाई ।
कृष्णदास आचार्य सुनामा, दीने पुनि गुरुवर गुणधामा ।
कृष्णदास गुरुपद अनुरागी, सेवै गुरुहिं दिवस निशि जागी ।
अमित वर्षलो द्विजकुलराई, गुरु पद सेये राम मनाई ।

तन्त्र मन्त्र यौगिक क्रिया पाये विप्रसुजान, अन्नअहार न करै गुरु केवल कर पयपान ।

पन्दरह सौ उन्तालिस सम्मत, बिक्रम केर रहा सन्तन मत ।
जब पीठ आसीन भये द्विजराई, सुनउ सन्त सज्जन चितलाई ।
ले गुरु आज्ञा सुनउ सुजाना, तीर्थाटन 'हित कीन पयाना ।
श्रीसम्प्रदाऽचार्यपद पाई, किय पच्चीस शिष्य मुनिराई ।
उनमे द्वाराचार्य महाना, भये शिष्यषट सुनहु सुजाना ।
द्वारपीठ निज निज अस्थापी, स्वगुरु कीर्तिविश्व मह व्यापी ।

पयहारी उपनाम सुजाना, सन्त महन्तनकीन प्रदाना।
सम्मत पन्दर सौ साठि महाना, गलता मुनिवर कीन पयाना।

कवि किंकर बलराम नाथ उपद्रव तहं बहुत, किये शमन तपधाम नाथन मदचूर्ण करि।
सर्पदंशसों भा मृतक राजकुवंर मतिमान, राममन्त्रबल ताहि गुरु दीने जीवनदान।

भये अमेर नरेश उदारा, श्रीगुरुशरण सहित परिवारा।
पुनि कुल्लू प्रदेशके भूपा, भये शिष्यदलयुत सुखरूपा।
अमित अर्थी गुरु दिये उतारी, रामप्रताप गुरु तपधारा।
श्रीआमेर नगर सब भाई, भयउ शिष्य मुनिवर कर आई।
परम विरक्त सिद्ध मुनि ज्ञानी, हृदय बसै सियवर धनु पानी।
जग बिख्यात नाम किय मुनिवर, श्रीयुत पयहारी द्विज-ईश्वर।
आनदभाष्य प्रचारे घरघर, करै प्रचार राम भक्तीकर।
श्रौत विशिष्टाद्वैत प्रचारी, भव बूडत लिय जीव उबारी।

श्रीपयहारी मुनिराजकर जीवनवृत्त महान, वर्णै किमि बलरामकवि जडमति मन्द अयान।
जडमतिमन्द अयान जाय किमिसागरपारा, जोगुरुजनमुख सुना ताहिपे छन्द सवांरा।
छमा करै विद्वान कवीश्वर कृपा अगारा, कवी नहीं कविकिर है ये बाल गंवारा।



जगद्गुरु श्रीबालानन्दाचार्यजी

(वि स १७१०कातिक शुक्ल पूर्णिमामे प्रकट)

जगगुरु बालानन्द जगमा यस बिस्तार, सम्प्रदाय श्रीका किये निज भुज बल उद्धार।

जगगुरु जीवन बृत्त बखाना, करउ यथा श्रुत सुनहु सुजाना।
बिक्रम सम्मत सुनु मतिमाना, सत्तरह सौ दश सन्त बखाना।
कार्तिक सुदी पुर्णिमा सुन्दर, जन्म तिथि कहते सब मुनिवर।
गौड ब्राह्मण बंश उजागर, राजस्थान प्रदेश मनोहर।
जयपुर जनपद जन्मस्थाना, शोभा जासु न जाय बखाना।
तामे प्रकटे दया निधाना, करत साधुजन कीरति गाना।
बालकराम जन्मकर नामा, धरे ज्योतिषी गण सुखधामा।
जानि उपनयन योग्य कुमारा, रामयज्ञ कर कीन विचारा।

पूर्णकरा मख बिरजानंद दिय जनेउ पहिराइ, ब्रह्मगायत्री श्रवण दे भयेविदामुनिराइ।

पढन गये काशी मतिमाना, बालक राम बिप्र सुज्ञाना ।
पाचवर्षमे सुनउ सुजाना, बालक भये पूर्ण विद्वाना ।
लै पितु आज्ञा पितु गृह त्यागी, बिरजानद पह गे बडभागी ।
चरण शरण लगि बिनती कीने, जगगुरु प्रथम सिखावन दीने ।
बालक राम पुन शिरनावा, पादपद्म गहि विनय सुनावा ।
कहे कृपा निधि विमुख न कीजै, राममन्त्र दे भव हरि लीजै ।
करि आयउ गुरु आस तुम्हारी, बुडत भवजल लेउ उबारी ।
जमबन्धनसे लेउ छुडाई, राम प्रपत्ती देउ गहाई ।

द्रवित भये गुरुदेव तब बालहि निरखि अधीर, कहे वत्स चिन्ता तजो राम हरै सबपीर
क्षौर करा पुनि गंगजल मज्जन करउ सुजान, ब्रह्मगायत्री जापकरि करुसन्तनसम्मान ।

गुरु आज्ञा सुनि द्विज मतिमाना, क्षौर कराइ किये अस्नाना ।
पुनि आ गुरु कह शीश नमाई, सन्मुख बैठि गये द्विजराई ।
द्वादश ऊर्ध्वपुण्ड्र तब कीने, धनुषबाण बाहुन पर दीने ।
तुलसी कण्ठी कण्ठ पिन्हाई, राममन्त्र पुनि दिये सुनाई ।
बालानन्दाचार्य सुनामा, दिये पुन गुरु पूरण कामा ।
अनुभवानन्दाचार्य स्थापित, बैष्णवरक्षक दल प्रीत सहित ।
किये जगद्गुरु बालानन्दा, बैष्णव दलहिं सकलसानन्दा ।
चतुर्सम्प्रदायी शुचि सन्ता, अभ्यागत अरु सर्व महन्ता ।

एक ध्वजातर आजुरे बालानंदके साथ, सब शैव उद्रव शान्त किय बैष्णवदलके हाथ ।

बालानन्दाऽचार्य भगवाना, गादी किय जयपुर निर्माना ।
जयपुर राजगुरु मतिमाना, बालानन्दाचार्य सुजाना ।
सब सन्तन मिलि सुनउ सुजाना, श्रीबैष्णव सेनापति पद प्रदाना ।
मायापुरी कुम्भके माहीं, बैष्णव रक्षक दल हर्षाहीं ।
कुम्भपर्ब सुनहु सुजाना, बैष्णव रक्षक दल बलवाना ।
होत प्रथम निशान अस्नाना, ता पीछे सब सन्त सुजाना ।
बालानन्द कीर्ति बिस्तारा, भारतमे सर्वत्र उदारा ।
अमित जगद्गुरुके अनुयायी, बैष्णव ध्वजा रहे लहराई ।

कविकिंकर बलरामकर कर सम्पुट अरु दास, भूल चूक गुरुजनछमै जानि आपनोदास ।
जो समुझा अरु जो सुना सोई कीन बखान, कवी नहीं किंकर अहउं हूं बालक अज्ञान ।५

ॐ जगद्गुरु श्रीमंगलाचार्यजी ॐ

(अश्विन शु० १० वि स १७२६ श्रोत्रीयनगर मे प्रकट
१८११ वि स माघ शु० ५ साकेतवास)

मंगलमय मंगल सुयस सुने होइ दुख नाश, रामभक्ति दिन दिनबढै दुख ना आवैपाश
श्रीहनुमत मतिधीर हृदय बिराजिय आइ,सोधि सोधि सुठिवर्णगणकरिय छन्दसुखदाइ
श्रीरामानंदराम जब गे स्वधाम जगत्यागी,अमितकालबीतेपुनः भड़कि उठी अघआगि।

भयउ नास्तिकन दलबरियारा, लागे करन अधर्म प्रचारा ।
मानहिं ना गो ब्राह्मण सन्तहिं, तिय परित्याग करहिं निज कन्तहि ।
मात पितहिं सुत मानै नाही, त्रासहिं खल गुरु जन जगमाहीं ।
निन्दहिं बेदशास्त्र करितर्का, त्यागहिं धर्म गहै पथ नरका ।
कीर्ती लोलुप द्वन्द मचाये, तिलक भेद कह दूर्ग बनाये ।
मान प्रतिष्ठा लगि कुविचारी, निन्दहि पूर्वाचार्य अनारी ।
यहि बिधि भा जब भ्रष्ट अचारा, तब भक्तन भगवन्त पुकारा ।
हे करुणानिधि राम उदारा, आइ करिय प्रभु धर्म सुधारा ।

पठयेराम अगस्त्य कहं दुखी निरखि गोसन्त,प्रकटे काशीक्षेत्र महं करन हेत अघ अन्त।

काशी निकट सुपरम सुहावन, नगर दिव्य मुनि जन मन भावन ।
देव रूप तहके नरनारी, बेद विज्ञ सब सत व्रतधारी ।
चहुदिशि अमराई सुखधामा, श्रोत्रिय नगर गामकर नामा ।
तुलसीचौरा प्रति गृह सोहै, स्वेत ध्वजा जित नित मन मोहै ।
अगणित पुष्पबाटिका सुन्दर, पुष्प खिले वहु रग मनोहर ।
देव मन्दिरोकी अतिशोभा, वरनि न जाइ निरखि मनलोभा ।
श्रुति चर्चा रामअर्चा करहीं, जप मख निरत पाप सन डरहीं ।
सन्त अतिथि ईश्वर सम लेखै, परधन दारहिं विषवत देखै ।

सरयूपारिण विप्र सब सत्यव्रती मति धीर,करै गंगजलपान नित सुमिरहिं सियरघुवीर।
गगनचुम्बीअट्टालिका मध्य यथासुरराज,राजत सहित समाज द्विज विद्या निधिमहाराज

जगगुरु जीवन परिचय गावउं, जन्मस्थल प्रदेश समुझावउ ।
काशीक्षेत्र मध्य है भाई, श्रोत्रियनपुर इक सोहाई ।
पितानाम विद्यानिधि सुन्दर, माता विद्या सती मनोहर ।
आश्विनमास पुण्यप्रद सुखकर, विजयादशमी तिथी मनोहर ।

सत्तरह सौ छबीसरुचि सम्मत, रहा विक्रमाकर सन्तन मत ।
प्रात समय अरुणोदय दुखहर, प्रकटे श्रीअगस्त्यजी मुनिवर ।
भई मगन मन मह अति छोनी, प्रकट भये जा छण घटयोनी ।
मगल मिशिर जन्मकर नामा, वत्सगोत्री सुखके धामा ।

निरखि अनूपम बालछवि सुरतिय भई निहाल, कीन आरती मुदितमन कोकिलकण्ठीबाल

सहज रामके शिष्य मनोहर, वेदशास्त्र मर्मज्ञ बुद्धिवर ।
है परिवार गादी सुन्दर, गुर्जर देश मध्य सुखसागर ।
श्रीडाकोर धाम विख्याता, जहा बिराजे यदुकुलत्राता ।
श्रीगोमति तलावके पश्चिम, मन्दिर श्रीदाउकर उत्तम ।
खाक चौक मूजिया सन्तकर, गादी तह थापि निज मुनिवर ।
मगलार्यकर पीठ अनादी, टीलाचार्यकी सोई गादी ।
सुनै सन्त विद्वान सुजाना, किय शूक्षममे चरित बखाना ।

मंगलार्य दिग् विजयमहंकिहेउंविशदगुणगान, कविकिंकरबलरामकृत है सो ग्रन्थमहान ।

पण्डित वरेण्य श्रीहरिदासजी

(१८२५–१९२६ विक्रम सम्वत्)

हरीदास हरिभक्तके सेवामें रह लीन, कविकिंकर बलराम प्रिय रामलखण सिय तीन ।
रामलखन सिय तीन जगद्गुरु कह अति प्यारे, बुध सम्राट् सुजाज आप सन्तन दगतारे ।
रावणभुज अरु माथ ग्रन्थ है मगल कारि, कछु अप्राप्य कछु प्राप्य सुनै सज्जन श्रुतिधारी ।
राम तापनी उपनिषद रचे भाष्य मतिमान, स्तवराजसुभाष्यहू है गुरु कृती महान ।
है सटीक विद्यमान शुचि रहस्यत्रय भाष्यहू, होवै जन कल्यान श्रवण मनन अरुपठनते ।

आपके प्रपत्तिपंचकम् वेदान्त चिन्तामणि आदि अनेक प्रबन्ध है ।

श्रीसरयूदासजी

वैष्णव धर्म प्ररोचक श्रीसरयू दासार्य, करै नमन कविकिंकर कृपा कीजियो आर्य ।

श्रीमद्सरयूदासकर भाई, सम्प्रदाय रह ऋणी सदाई ।
पूर्णबैराठी कर शुचिद्वारा, तामे दीक्षित भये उदारा ।
सम्प्रदाय श्रीके शुचि उज्वल, रहे आप- कीर्ती अति निर्मल ।
सम्प्रदाय सक्रान्ति समयमे, ज्ञान प्रकाशे जन हिरदयमें ।

जगगुरु दिव्य लेखनी द्वारा, किये सगठित वैष्णव सारा ।
वैष्णव लहे पुन मर्यादा, सरयूदासके कृपा प्रसादा ।
सम्प्रदाय उपयोगी ग्रन्था, विरचे जगगुरु मुक्तिक पन्था ।
वैष्णवधर्मदिवाकर सुन्दर, विरचे सरयूदास मुनीश्वर ।

रामपटल आदिक रचे जगगुरु कृपा निधान, कविकिंकर बलरामकी त्रुटी छमहिंसुजान ।

आपके वैष्णबधर्मदिवाकर श्रीवैष्णवकुलभूषणसारसग्रह उपासनात्रयसिद्धान्त श्री राममन्त्रपरमवैदिक आदि प्रसिद्ध प्रवन्ध है ।

जगद्गुरु श्रीरामवल्लभाशरणजी)

(जन्मतिथि आषाढ कृष्ण १३ स १९१५ साकेतवास का शु १० स १९९९)

श्रीरामबल्लभाशरण रामसिय चरण उपाशक, किये आपभब तरण हेत भक्ति भय द्वन्द्व विनाशक ।
जन्मतिथी आसाढ कृष्ण तेरस अति पावन, नक्षत्र पूर्वाषाढ वार बुध मुनि मन भावन ।
सुठि उनइस सौ पन्दरह, विक्रक सम्मत कहत बुध ।
श्रीवैदिक द्विजमणि भवन, प्रकट वल्लभा शरण बुध ।
भक्ति नीष्ठासे आप रामके दर्शन कीने ।
आञ्जनेय परताप, प्राप्त सिद्धि बहुकीने ।
राम कथाऽमृत दान, जन्म भरि सन्तन दीने ।
रामनाम सकीर्त्तनमें चित्त मुनिवर दीने ।
परम श्रेष्ठ विद्वान, वेदके मुनिवर ज्ञानी ।
द्विज करै अन्नधन दान, आत्म तत्व मर्मके दानी ।

अमित ग्रन्थके हैं कवि रामवल्लभाशरण मुनि ।
ये कवि किंकर बलराम कथेउ यश गुरु मुख अकनि ।

श्रीरूपकला हरिनाम सकीर्तन के, रहे अध्यक्ष आप जीवन पर्यन्त जू ।
आपके द्वारा परमार्थिक कार्य बहु, भये सम्प्रदाय में न पावा कोउ अन्त जू ।
धर्मालय विद्यालय देवालयादि, थापे बहु अस्थल पे विप्रगुणवन्त जू ।
आनदभाष्यके शोधन प्रकाशनमे, रघुवराचार्य गुरु प्रेरें श्रीसन्त जू ।
है शोधित प्रकाशित अनेक ग्रन्थादि, कहा लो गिनाउ न गने मिलै अन्तजू ।
कथै कविकिंकर बलरामदास माथ नाइ, जानि अजान अग्य छमा करैं सन्तजू ।

ॐ वेदान्ती श्रीरामपदार्थदासजी ॐ

(चैत्र कृष्ण सप्तमी १९४७–२०२५ विक्रमसम्वत्)

श्रीरामपदारथदासजी रामचरण अनुरक्त, पवनपुत्र हनुमान के अन्तरंग थे भक्त ।

विक्रमादित्यको सम्मत सुनो उदार ।
उन्नइससौ सैतालिस शुचिवार भौमवार ।
चैत्रमासश्रेष्ठ, कृष्णपक्ष बुध जन विचार ।
तिथि शुभ सप्तमी थी, जन्मे जब द्विज कुमार ।
सुरामप्रसाद जन्म नाम दीने पितामातु परिजन,
धरापग परसत उचारे, श्रीराम राम मुदित मन ।
रामवल्लभाशरण शिष्य द्विजवश उजागर ।
परम्परा उद्धरण करनतप किये भूमि पर ।
योगानन्दाचार्य बशधर सन्त सुखाकर ।
वामपन्थ किय ध्वश रामकी भक्ति बुझाकर ।
श्रीरामवल्लभा कुजकर किये जीर्ण उद्धार गुरु ।
विनवै कविबलराम मन्दमति, दया उदधि गुरु दया कुरु ।
सदगुरु चरितामृतकी प्रकाशन करि,
रामयज्ञ पद्धतिहू आप विकशाये हैं ।
आदि शक्ति जानकीहू यज्ञ पद्धति बनाय ।
श्रीराम अर्चा को महत्त्व समुझाये हैं ।
करिके अनुवाद करि डारे विबाद नष्ट ।
श्रौत विशिष्टाद्वैत घर घर फइलाये है ।
श्रीबृहदारण्यकोपनिषदहुके,
श्रीआनंद भाष्य कह सरल बनाये है ॥
राम पदारथ कर चारो फल आनि धरे ।
पवन सुत हनुमान हिरदय लगाये हैं ।
महा अगाध मुनिराजको सुयस सिन्धु ।
भनै बलराम थाह कोऊ न पाये हैं ।

ψ दार्शनिक सार्वभौमश्रीवासुदेवाचार्यजा ψ

दार्शनिक सार्वभौम स्वामी वासुदेवाचार्य,
सम्प्रदायनीष्ठ दिव्य ज्ञानवान श्रेष्ठ आर्य ।
आप है सम्प्रदाय श्रीकी विभूति श्रेष्ट,
अवध निवास करि कीन महान कार्य ।
भव्य दिव्य दार्शनिक आश्रम निर्माण किये ।
आपने जगद्‌गुरु साकेत धाममें ।
लेखनी कापकी हर विषय अजोड रहा,
श्रौत विशिष्टाद्वैत किये सुदृढ मानमें ।
बोधायन महर्षि जन्मभूमीमे जाय गुरु ।
बोधायन सर दिव्य थापे मुनिवर सुजाना ।
आनन्द भाष्य छान्दोग्य उपनिषद मह,
कठिनको सरल किये शोधि शोधि मति माना ।
सीतापति रघुनाथके, चरण कमल महंप्रेम ।
राम मन्त्र जप साधु सुर, सेवाका दृढ नेम ।
बोधायन आख्यान है, गुरुवर शोध महान ।
कवि किंकर बलराम पर, करै कृपा हनुमान ।

ψ

ψपण्डित श्रीकान्तशरणजी ψ

(आषाढ शु ३ सम्वत १०,५२)

जय श्रीकान्त महामुनि टीकाकार सुजाज,कविकिंकरबलराम कहं रामभक्ति दो दान ।

उनइससौ बावन सम्मतमें, भयउ जन्म उत्तर प्रदेशमें
शुचि आसाढ मास सुखदादा, शुक्लपक्ष कृषकन बरदाता ।
तृतिया तिथी परम उपकारी, जन्मे मिश्रा तपधारी ।
बीजहडी सब सन्त बखाना, जन्मस्थल कर ग्राम सुजाना ।
श्रीउत्तर प्रदेश मह पावन, है प्रताप गढ जिला सुहावन ।
पिता आपके थे विद्वाना, सरयूपारिण द्विज मतिमाना ।
सर्वेश्वर प्रसाद था नामा, सर्वेश्वरी मातु गुणधामा ।
रहे पयासी मिसिर उदारा, वत्सगोत्री कृपा अगारा ।

तिनके गृह औतार ले द्विजकुल किये पवित्र, महातपस्वी बने सोइ आगे सुनउ चरित्र ।

सीता कान्त जन्म कर नामा, रह प्रखर बुद्धि गुणधामा ।
वेदादिककर ज्ञान महाना, लहे पितासो द्विज मति माना ।
देत विशिष्ट ज्ञान भगवाना, औतारिन कह सुनहु सुजाना ।
मातु पिता जब किन किनारा, तब गृह परिजन मोह बिसारा ।
चले अवध श्रीराम मनाई, गोलाघाट पर पहुचे जाई ।
दीक्षा ले तह द्विज विद्वाना, तीर्थाटन हित कीन पयाना ।
थे विशीष्ट विद्वान कवीश्वर, सम्प्रदाय मह आप मुनीश्वर ।
कूबा परम्परामे भाई, उज्वल रत्न आप द्विज राई ।

श्रीतुलसी साहित्य पर टीकाकिये महान, तिलकनाम सैद्धान्तिक, है सोदिव्यसुजान ।
(श्री)कान्तशरणमुनिराजकृपादामपैकीजिये,ये कविकिंकरअज्ञान,रामभक्ति धनदीजिये ।

श्रीरामलक्ष्मणाचार्यजी

(जन्म ता १५।१०।१८९०)

रामलक्ष्मणाचार्य जी रामपद कमल भृंग ।
मन्त्रराज जपि ध्वश किय अघ पर्बतकी श्रृङ्ग ।
ईशवी सन अट्ठारह अरु पुनि नब्बे जान ।
पन्द्रह दश के लिये जन्म महा मतिमान ।
श्रीनरसिंहाचार्यके कृपा पात्र गुण बन्त ।
वेद शास्त्र दर्शन कर मनन पठन किय सन्त ।
चूडा करन मीमाशा विरचे ग्रन्थ महान, ।
मोक्ष मीमाशहु है कृती, जगगुरु केर सुजान ।
ईश्वर सिद्धी आदि बहु, ग्रन्थनको विस्तार ।
सम्प्रदाय श्रीमे किये, जगगुरु श्रुति अनुसार ।
श्रौत बिशिष्टाद्वैतकर, घर घर किये प्रचार ।
रक्षक प्रेरक रहे नित, जगगुरु पवन कुमार ।
कवि किंकर बलराम, पूजन चाहत कपि चरण ।
किन्तु विधातावाम, सफल होन न देत रुचि ।

॥ मानसतत्वान्वेषी श्रीरामकुमारदास वेदान्तीजी ॥

(१९०४ मे प्रकट)

रामकुमाराचार्यगुरु रामचरित मर्मज्ञ, बनैं किमि गुरुवर सुयस कविकिंकर जड़ अज्ञ ।

रामकुमार रामायणीको जन्म सन,
उनइससौ चारि सन्त मुखन सुनि पावा है ।
मानस मर्मज्ञोमे कहाते आप अग्रगण्य,
विश्रामवाग रामग्रन्थालय बनावा है ।
मानसमे यत्र तत्र कीने शोध आप,
जाते प्रति द्वन्द्वी जन नाम सुन कांप है ।
आगम निगम अनुमोदित है कृती बहु आप ।
रामानन्द सम्प्रदाय के दिव्य रत्न है ।
सिद्धान्त धर्म रथ बेदोमे राम कथा,
सीताचरण चामर कीं टीका सजाये है ।
शका समाधान किये रामचरित मानसमे,
समाधान रत्नावलि भाग द्वै बनाये हैं ।

॥

॥ ब्रह्मचारीश्रीवासुदेवाचार्यजी ॥

रामरमावरको चरण उर अन्तर पधराय, वासुदेव आचाचार्यकी किर्ती लिखउं सुभाय ।
पत्रकार थे जगद्गुरु शुचि विरक्तके आप, श्रीमठ निर्माण समितिके महामन्त्रि निष्पाप ।
कवि किंकरबलरामकी त्रुटी छमहि सुजान, सामग्री अति अल्प है बृहद गनै विद्वान ।

॥ पण्डित श्रीअवधकिशोरदासजी प्रेमनिधि ॥

राम प्रेमके पूजारी, श्रीअवध किशोराचार्य ।
श्रीजनक दुलारीके अर्चक हैं श्रेष्ठ आर्य ।
रसिक शिरोमणि सद्विद्यावारिधि अगाध ।
भक्ति प्रचार किये, घूमिघूमि गुरु अबाध ।
कच्छके महन्त सीतारामीयके कृपापात्र ।
सम्प्रदायानुकूल, ग्रन्थ रचे बहु पवित्र ।

मथुरादासके शिष्य सुजाना, कच्छ मध्य कटाव सुस्थाना ।
सम्प्रदाय श्रीकर उत्थाना, कीने रचि साहित्य महाना ।
यतीन्द्र आश्रमके बिद्वाना, अहै आप अध्यक्ष सुजाना ।
गनै नारि सब मातु समाना, राममन्त्र जापक सुज्ञाना ।
प्रेमनिधिहिं सुनिये मतिमाना, धर्मसनातन प्राण समाना ।
रक्षक गुरुवर सत्य धर्मके, दिव्य रत्न श्रीखोजी द्वारके ।
प्रेमनिधी कृत हरि पुर पन्था, आगम निगम सार बहु ग्रन्था ।
कविकिंकर बलराम अयाना, करै नमन नित तव पद त्राना ।

श्रौत विशिष्टाद्वैतके प्रबल समर्थक आप, गुरु-गबिंदके मन बसे सेवाके बल आप ।

आपके प्रेमपपामृत ,वेदवादस्त्रोत्रटीका प्रशिष्ठासर्बस्व आचार्यतत्व मन्दिर का पूजारी सन्तमदाकिना आदि अनेक पुष्टप्रबन्ध है । ५

५ स्वामी श्रीमाधवाचार्यजी ५

ता० ११।१०।१९०३ मे प्रकट)

माधव रावरके भये श्रेष्ठ भक्त विद्वान, सम्प्रदाय उज्वल किये करि सद्विद्यादान ।
पोष्टबेला छपरा जिला, तथा बिहार प्रदेश,मोहमदपुरवा दिव्य थल पालैं श्रुति आदेश।
रहे प्रधानाचार्यगुरु,शंकुधाराके माहिं,श्रीतनतुलसीके द्वारा–के दिव्य रत्न मुनि आहिं ।
आतम तत्त्वविचार विरचे ग्रन्थ महान इक,कविकिंकर भवपार होइजीव तेहिमनन करि।

५ पण्डित सम्राट्‌ स्वामी श्रीवैष्णवाचार्यजी ५

(वसन्तपञ्चमी सन् १९०० मे प्रकट माघकृष्ण नवमी सन् १९८६ साकेतवास)

श्रीकाव्य गुरु भगवान, कवि किंकर बलरामके ।
श्रीअभिनव वाचस्पती, स्वामि बेदान्त पीठके ।
दानी परम उदार्य, सन्त टीलार्य द्वारके ।
बेद उपनिषद भाष्यकार, सिन्धु सदगुण बुद्धिके ।
मगलार्य परिवार रत्न, गुरु बृहद कोष बिद्या के ।
सम्प्रदाय श्री के रहै कर्णधार आप,
आपसे परिचित थें सारा सयाज है ।
श्रौत विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त किये दृढ,
(श्री) आनन्द भाष्यका करिके प्रचार है ।
परम्परा दूर्ग कह कीने अजीत गुरु,

कीने अभूतपूर्व रक्षण उदार है ।
जानत आबाल बृद्ध दिव्य इतिहास ये,
मगलार्य वशका बडाये जगमान है ।
सम्प्रदाय श्रीके इतिहासका शोध करि,
रामानन्दी सन्तो पे कीने उपकार है ।
परमराम नीष्ठ सम्प्रदाय नीष्ठ जगद्गुरु,
बलरामदास हू पे कीने उपकार है ।
करउ इतिहास सत्य गुरुवर अब बखान,
सुनै प्रेमी भक्त रचि कवित् सुनाऊ मै ।
मात पिता नाम सन इशबी सुनाऊ अब,
जनपद प्रदेश गाम ठाम समुझाऊ मै ।
माघ वसन्त पचमीके दिन जन्म लिये,
इसवी सन उनइस पूरा गिनाऊ मै ।
उत्तर प्रदेश दिव्य जनपद इलाहावाद,
गगा महारानीका किनारा सुनि पायउ मै ।
उत्तर श्रृङ्गवेरपुर के डेढ कोश दूरी पर,
परम दिव्य ग्राम ना नाम सुनि पयउ मै ।
पिण्डोके तिवारी विप्र परम पुनीत गुणी,
सरयू पारिण गोत्र शाण्डिल्य सुनाऊ मै ।

साम सुबेदिय ब्राह्मण इष्ट विष्णु भगवान, स्वयंभू मनु पूजित करै शाम श्रुति गान ।

है उपवेद वेद गन्धर्वा, शिखा अरु पाद वाम है सर्वा ।
गोभिल सूत्र कौमुथी शाखा, परवर त्रय वुध जन गनि राखा ।
राम प्रसाद पिताकर नामा, सद् विद्या सद्गुणके धामा ।
माता हुब्बी परम पुनीता, सती साध्वी दुर्गुण से रीना ।
रामनिधी पाठक की कन्या, रही जननि द्विज मणिकी धन्या ।
जन्म नाम श्रीदातारामा, धरे पुरोहितजी सुखधामा ।
हिन्दी उर्दूसे वर्नाक्यूलर, दिये परिक्षा गृह पर द्विजवर ।
स्मृति पूर्व जन्मकी जागी, चले ग्राम गृह कुनबा त्यागी ।

सन उनइस सौ बाइस इसवी सुनउ सुजान राममन्त्र सों दीक्षित भये आप मतिमान ।

सस्कारो पाचो युत भाई, वैष्णवदास नाम गे पाई ।
पढन संस्कृत द्विज सुखदाई, रेवातट पर पहुचे जाई ।

माधव विजय सस्कृत शाला, राणापुरमें दिव्य विशाला ।
प्रथमाऽभ्यास किये वहँ जाई, बैष्णवदास महामुनिराई ।
जाइ शींगडा पुनि श्रीद्विजवर, किय विशेष अध्ययन मुनीश्वर ।
शाख्य-न्याय-वेदान्त मीमांसा, लीने पढि गुरु करै प्रससा ।
भे व्याकणाचार्य सुजाना, कीने विद्यागुरु वहु सम्माना ।
श्रीरघुवराचार्य भगवाना, आपके विद्यागुरु द्युतिवाना ।

टीलाद्वारा कमल रबि मंगल कुल शृङ्गार, काव्य गुरुबलरामके बुध सम्राट् उदार ।

अध्यापन शैली अति सुन्दर, रहे पूर्ण सीतापति अनुचर ।
मगलाचार्य दिग् विजय रचाई, दीने मगल यश फैलाई ।
श्रीगुरुवर अशीश वरपाई, रच कवि किंकर पद शिर नाई ।
थे अनन्य रघुवरके पायक, राम सीय हनुमत यश गायक ।
उनइस सौ सडशठ ईशवी सन, भे वेदान्त पीठपति भगवन ।
रामप्रतापदास मुनि नायक, जानि इन्हे सब विधि सब लायक ।
गादी दिये इन्हे बैठाई, सन्त सर्व मण्डली बुलाई ।
सारगपुर दरवाजाबाहर, त्रणदेवडी सुमन्दिर सुन्दर ।

दिये सौंपि गुरुवर मुदित मठकासारा भार, जीर्णोद्धार ता कर किये जगगुरु कृपा अगार ।

अमित ग्रन्थके रचयिता महाकवीश्वरआप, युग युग रहि है कीर्तिव हे जगगुरु निष्पाप

आपकीकृतियाँ—१ अर्थपचक २ श्रीरामानन्दसिद्धान्तसार ३ आनन्द भाष्यकी वैष्णवालंकारटीका ४ प्रमेयपरिशोधीनी ५ प्रस्नोपनिषद् भाष्य ६ मानरत्नावली ७ अधिकरणरत्नमाला ८ भक्तिवाद ९ षइदर्शनोकी षड्वृत्तिया रामानन्ददर्शन १० गीतार्थभाष्कर ११ गीताकीटीका अन्वयार्थचन्द्रिका १२ अनुवादपड्डसग्रहसमुन्चय १३ श्रीबैष्णवकोष १४ प्रस्नोत्तरसतक १५ शिक्षा कलानिधि १६ श्रीभगवद्‌गुणषोडशा १७ विजई और अमर आनन्दभाष्य १८ स्तोत्र ग्रन्थ १९, छन्दप्रदीपिका २०, साहित्यसिद्धाजन २१ चालिसापचक २२ श्रौत सिद्धातचालीसा २३ श्रौतप्रमेयचन्द्रिका अनुवाद २४ मानरत्नावलीका अनुवाद २५, वैष्णवशिक्षामृतादि ।

卐

॥ स्वामीश्रीबजरंगाचार्यजी ॥

श्रीबजरंगाचार्य बसै बम्बइ नगर महं, रामनीष्ठ सुउदार्य प्रहरी सम्प्रदायके ।
कवि कोविद विद्वान रचे बहुतसेग्रन्थ शुचि,करै सन्तजन मान राम भजनमें परम रुचि
सुनउ सन्त गुणवानयथा नाम गुणहु तथा,काहकरउं अबगान जानउं ना तव चरितकछु
कविकिंकर बलराम, करै दण्डवति धरणि परि,करउ छमासुखधाम त्रुटीदाम अजानकर

आपके श्रीमद्रामायणसन्दर्भ वालीबधदर्पण कृष्णस्तुभगवान् स्वय कारहस्य प्रश्नावली श्रीरामपद्धति आदि प्रबन्ध हे ।

॥ स्वामीश्रीत्रिभुवनदासजी शास्त्री ॥

श्रीरामानद पीठ रघुनाथ मठ आबूके,
आप है महन्त वैद्यराज दिव्य ज्ञानी जू ।
है इतिहास और पुराणके मर्मज्ञ,
अमित श्रीविभूषित श्रीत्रिभुवनदास जू ।
रामानद प्रेसके स्वामी सम्पादक श्री ,
दामोदराचार्य के परम कृपा पात्र जू ।
रामशोभा दासने इन्हे सुयोग्य जानि,
आबू रघुनाथ मठ कीने प्रदान जू ।
पूर्वाध उत्तरार्ध सम्प्रदाय इतिहास,
करिके प्रकाशन उपकार किये महान जू ।
रहेगा समाज ऋणी आपको न भूलेगा,
जबलों गगन रविशशिका प्रकाश जू ।

त्रिभुवन पति श्रीरामके प्यारे त्रिभुवनदास, कविकिंकर बलरामके पूरण कीजै आस।

आपकी कृतिशा—१ श्रीमदनन्तानन्दाचायाष्टक, २ श्रीअग्राचार्याष्टक ।
श्रीरामार्चा प्रकाशिका इत्यादि ।

॥ स्वामी श्रीनृत्यगोपालदासजी ॥

नृत्यगोपाल मुनीन्द्र, रामसिय चरण उपासक ।
श्रीमणिराम द्विजेन्द्र, छावनी के मचालक ।
बालमीक कर दिव्य भवन निर्माण करइया ।
श्रीसम्प्रदाय भव्य रत्न गुरु अगुण हरइया ।
ये कवि किंकर बलराम हू, करै नमन पद नाइ शिर ।
अरु सेवत चरण नरेन्द्र हू, श्रीनृत्य गोपालाचार्यकर ।

सन्तसेवामें लीन रहत सदागुरु विमलमति,सर्वशास्त्र मर्मज्ञगुरु रामचरण महं सुदृढ रति।

कवि परिचय



प्रस्तुत आचार्य परिचर्याके लेखक कविकिंकर श्रीबलरामदासजी है। आपका जन्म भाद्रपद कृष्णगोकुलास्टमी वि म १९५५ को नारायणपुर, ग्राम मछरी, शहर तहसील, जिला जौनपुरमे सम्मृद्ध सरयूपारिण नागर मिश्र परिवारमे हुआ था ।आपका गोत्र वत्स प्रवर पाँच तथा सामवेद है। आपके पिताजीका नाम शिव दिहल मिश्र तथा माताजीका नाम श्रीमति रामदेवी था जो दलपतपुरा जिला इलाहाबादके श्रीराम अवतारदुवेकी कन्या थी। आपकी दो वर्षकी अबस्थामेहि माताजी श्रीसाकेतधाम पधार गई तथा १५ वर्षकी अवस्थामे आपके पिताजीने भी श्री साकेतधामका रास्ता लिया। श्रीत्यागीजी बालब्रह्मचारी है। परिजनो द्वारा विवाहके लिये प्रस्ताव रखने पर समृद्ध परिवारोसे आये हुये तिलकको त्यागकर गृह त्याग कर आपने सर्वेश्वर श्रीरामजीका शरण स्वीकार किया। इनका गृहस्थ आश्रमकानाम व्रजभूषणमिश्र था। ये माता पिताके एकलौते सन्तान थे। आपका गुरुद्वारा खाकचौक मुजीया दाउजीका मन्दिर डाकोर है। कुभ महापर्व सम्वत १९८३ अङ्कपात उज्जैनमे श्रीटीलाद्वारपिठाचार्य श्रीमङ्गलपीठाधीश श्रीस्वामी रामनायणाचार्यजीसे दीक्षा ग्रहण करने पर श्रीबलरामदास इस नामसे अविहित हुये पर समाजमे कविकिकरके नामसे अधिक प्रसिद्ध है। आप कट्टर सनातनी तथा चूस्त वैष्णव है। सामाजिक कार्योमे विशेष रुचि रखते है। मनातन धर्मके विरुद्ध नुक्ताचीनी करने वालोसे आपकी पटरी नही बैठती है। आपने कई एक प्रबन्ध लिखे है, कतिपय निम्न है—१ श्रीबोधायन चरितामृत, २ परम्परा चालीसा, ३ द्वाराचार्यचालीसासग्रह, ४ परम्परास्तव, ५ श्रीअवधेश्वरमहिमामृत, ६ भीडभञ्जन हनुमान पचासा ७ गो चालीसा, ८ गोसाठिका, ९ रणछोड चालीसा, १० रणछोडसाठिका, ११ रामनाम चालीसा, १२ श्रीतुलसीचालीसा, १३ श्री अयोध्याचालीसा, १४ श्रीहनुमत्तत्त्वदर्पण

१५ श्रीतुलसीदासार्यचालीसा, १६ श्रीगुरु चालीसा, १७ शिक्षाचालीसा, १८ श्री अवधधामचालीसा, १९ श्रीसरयूचालीसा, २० सद्विचारमाला, २१ श्रीअयोध्यापुरीचालीसा २२ श्रीपवनसुतास्टक, २३ श्रीरामानन्ददिक् विजय नाटक (तिन अकमें थियेटलिक) २४ श्रीरामानन्दचरिताबुधि (राधेश्याम रामायणकी तर्जमे) २५ श्रीमङ्गलार्य महाॅदिग् विजय (दोहा चोपाईमे) २६ कपित्त रामायण (श्रीरामचरितमानसकीटिका) २७ आचार्य विजय (पूर्वार्द्ध) २८ आचार्यविजय (उत्तरार्द्ध) २९ गीताशाकरभाष्यकीटाका दोहा चौपाईमे ३० श्रीहनुमान विनय ३१ श्रीहनुमान अस्टक, ३१ श्रीहनुमानस्तव, ३३ श्रीरणछोडवावनी, ३४ श्रीरामानुरक्ति, ३५ परम्परा दोहावली, ३६ श्रीसीतावरचालीसा, ३७ श्रीटीलाचार्यसाठिका, ३८ श्रीहनुमत् चिन्तन, ३९ श्रीहनुमत् जन्म ४० श्रीहनुमत् स्तुति, ४१ सदुपदेशमाला, ४२ श्रीरामप्राप्ति पद्धतिकी टीका, ४३ श्रासीतारामयुगलचालीसा, ४४ श्रीभूमीजा जन्मस्तुति, ४५ आचार्यमाल प्रभृति ।

श्रीसीतारामाभ्या नम

श्रीहनुमते नम

श्रीरामोपनिषद्

ॐ सनकाद्योयोगीन्द्रा अन्ये च ऋषयस्तथा ।
प्रह्लादाद्या विष्णुभक्ता हनुमन्तमिदं ब्रुवन् ॥१॥

प्रस्थानत्रयानन्दभाष्यकाराय नम

जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यरामप्रपन्नाचार्ययोगीन्द्र

शिष्य

पश्चिमाम्नाय श्रीरामानन्दाचार्यपीठाधीश्वर

स्वामीरामेश्वरानन्दाचार्य

कृत प्रकाश

मङ्गलाचरणम्

वसन्तं ब्रह्माण्डे चिदचिद्विशेषात्मकतया
कृपापारावारं श्रुतिनिचयपारं रघुवरम् ।
चिदानन्दं वन्दे परमसुखकन्दं हृदिचरं
प्रसुप्तायावाचः समुदितिकृतेऽज्ञानहतये ॥१॥

श्रीरामपूर्वतापनीयोपनिषत्मे अङ्ग सहित तारकमन्त्रराजका वर्णन किया गया है । श्रीरामोत्तरतापनिषत्मे प्रणवको नारकके रूपमे निरूपण किया गया है । अत परब्रह्म श्रीरामको प्रणव बीजोसे तारकत्व कहा जा चुका है । अब श्रीरामोपनिषत्के प्रारम्भके अवसरमे यह सदेह किया जाता है कि—क्या विघ्नराज आदि पाचो समानसामर्थ्य वाले ही है ? अथवा इनमेसे एक किसी मे विशेषता है ? क्या श्रेष्ठ तत्त्व प्रसिद्ध है । २ और कौन श्रीरामजीके अङ्गमन्त्र है ? ३ तथा प्रणवमे गृहस्थ ब्राह्मणोका अधिकार है अथवा यतियोका ही अधिकार है ? ४ अधिकार पक्षमे प्रणवका जप कितना करना चाहिये ? और कितना षडक्षरका ? कितने पुरश्चरणसे परमपुरुषार्थकी सिद्धि होती है ? और कितने पुरश्चरणके कल्प है ? इन बातोके स्पस्टीकरणके लिये श्रीरामोपनिषत्का प्रारम्भ किया जाता है 'ॐ सनकादय' यह इसका अनुष्टुप् छन्द है । योगीश्वर सनकादि दूसरे नारदादि ऋषि है । योगीन्द्र सनकादि और दूसरे नारदादि ऋषियोने तथा विष्णुभक्त प्रह्लाद आदियोने नित्यपार्षद श्रीहनुमानजीको पूछा । 'ब्रुवन्' इस प्रयोगमे 'छन्दस्यमाङ्-योगेऽपि' इस सूत्रसे माङ्योगके अभावमे भी वेदमे अडभाव समझना चाहिये ॥१॥

वायुपुत्र ! महावाहो ! कि तत्त्वं ब्रह्मवादिनाम् ।
पुराणेष्वष्टादशसु स्मृतिष्वष्टादशस्वपि ॥२॥

हे महावाहो ! बडे बाहुवाले ! वायुपुत्र ! पवननन्दन ! —अठारह पुराणोमे और अठारह स्मृतियो मे चतुर्वेदोमे षट्शास्त्रोमे सब अध्यात्मविद्याओमे वेदान्तोमे उपनिषदोमे ब्रह्मवादियोका अभिमत विशेष प्रतिपाद्य तत्त्व क्या है ॥२॥

चतुर्वेदेषु शास्त्रेषु सर्वाध्यात्म विद्यासु च ।
सर्वेषु विष्णवविधानेषु विघ्नेशसूर्येश शक्तिषु ।
एतेषु मध्ये किं तत्त्वं कथय त्वं महाबल ? ॥३॥

और चारो वेदोमे सब शास्त्रोमे सब अध्यात्मविद्याओमे विष्णुके नाममे विघ्नेश सूर्येशशक्तियोमे ब्रह्मवादियोका अभिमत विशेषप्रतिपादनीय तत्त्व क्या है ? यह सब कृपाकर हमे बतावे ॥३॥

श्रीहनुमानुवाच

भो भो योगीन्द्रा ऋषयो विष्णुभक्तास्तथैव च ।
शृणुत मामकी वाचं भवबन्धविनाशिनीम् ॥४॥

'भो भो' यह आदर अर्थवाला अव्यय है । हे योगीन्द्रो ऋषिओ ? तथा विष्णुभक्तो भवबन्ध विनाशिनी ससार बन्धनमोचिनी मुक्तिदेनेवाली मेरी वाणी आपलोग सुनिये ॥४॥

एतेषु चैव सर्वेषु तत्त्वं च ब्रह्म तारकम् ।
राम एव परं ब्रह्म राम एव परं तपः ।
राम एव परं तत्त्वं श्रीरामो ब्रह्म तारकम् ॥५॥

पूर्वोक्त इन सब शास्त्रोमे प्रतिपाद्य तत्त्व सर्वेश्वर श्रीरामजी ही है क्योकि देवोमे परम दैवत नामोमे परमतत्त्वरूप सर्वाधिक सायुज्यमोक्ष फलप्रद ब्रह्मतारक श्रीराम ही परब्रह्म है श्रीराम ही परम तप है श्रीराम ही परम तत्त्व तथा श्रीराम ही सब संसार तारक ब्रह्म है ॥५॥

वायुपुत्रेणोक्तायोगीन्द्राऋषयोविष्णुभक्ताःपुनःपप्रच्छुर्हनु
मन्तम्, रामस्याङ्गान् ब्रूहि हनुमन् ! ॥६॥

श्रीराममन्त्र जपनेवालेको कौन अङ्गमन्त्र जपना चाहिये । इस सन्देहके निवृत्ति के लिये पूछते है—'वायुपुत्रेणोक्ता' इत्यादि । वायुपुत्र श्रीहनुमानजीसे उपदिष्ट उपदेश किये गये योगीन्दऋषि और विष्णुभक्तोने फिर श्रीहनुमान्जीको पूछा कि हे श्रीहनुमन् ! हमे श्रीराम-मन्त्रके अङ्ग अङ्गस्थानीय मन्त्र और देवता कहिये । श्रीराममन्त्र जपनेवालेको कौन कौनसे अगोका अनुसन्धान करना चाहिये ॥६॥

सहोवाच वायुपुत्रः विघ्नेशं वाणीं दुर्गां सूर्यं चन्द्रं नारायणं नारसिंहं वासुदेवंवाराहमन्यांश्चकाश्चित् सर्वान् मन्त्रान् श्रीसीतालक्ष्मणंहनुमन्तंभरतंशत्रुघ्नंविभीषणं-सुग्रीवमंगदंजाम्बवन्तंप्रणवमेतान् रामस्याङ्गाञ्जानीयात् । अङ्गान् विना रामोविघ्न करो भवति ।

पूर्वप्रश्नके उत्तरमे श्रीहनुमान्जीने कहा कि विघ्नेश वाणी सरस्वती, दुगा, क्षेत्र पाल, सूर्य, चन्द्रमा, नारायण, नारसिंह, वासुदेव, वाराह दूसरे कोई भी सब मन्त्र, वशिष्ठवामदेवादि ऋषिवर्ग, इनमे विघ्नेशादिवाराहपर्यन्त दशअङ्गदेवताए है, अन्योकी अप्रधानताके सूचनार्थ सामान्य शब्दका प्रयोग है । ओर श्रीबीजपूर्वक श्रीसीताजी(श्रीसीतायै स्वाहा) इस प्रकार चतुर्थ्यन्त स्वाहान्त, श्रीलक्ष्मणजी, श्रीहनुमानजी, श्रीभरतजी, श्रीशत्रुघ्नजी, श्रीविभीषणजी, श्रीसुग्रीवजी, श्रीअङ्गदजी, श्रीजामबन्तजी, प्रणव (ॐ) श्रीसीतादि प्रणव पर्यन्त १० दश इनको श्रीरामजीका अङ्गमन्त्रा जानना चाहिये । इन सबोका प्रणवादि विन्दुअन्त प्रथमाक्षर बीज चतुर्थ्यन्त नाम मन्त्र जानना चाहिये । जैसे कि (श्रीसीतायै स्वाहा) इस प्रकार अन्यो मे भी जानना चाहिये । कहा है—'ॐकारविन्दुमध्यस्थ नामधेयाद्यमक्षरम् । देवताना-स्वबीजं तत् पूजायामृद्धिसिद्धिदम् । इति । अन्यत्र भी कहा है 'प्रणवादिनमोऽन्तच चतुर्थ्यन्त च सत्तम !' । देवताया स्वकनाममूलमन्त्र प्रकीर्तित । इति । इन मन्त्रोके उल्लङ्घन करने

पर बाधक कहलाते है—'अङ्गान् विना यह अङ्गोके छोडने पर श्रीरामजी विघ्नकर होते है । उनके विघ्नकारित्वमे जपपूजादिककी सिद्धी नहीं होती है ॥७॥

पुनर्वायुपुत्रेणोक्तास्तेहनुमन्तंपप्रच्छुः—आञ्जनेय! महाबल ! विप्राणां गृहस्थानांप्रणवाधिकारःकथंस्यात् इति ॥८॥

पूर्वक्रमसे श्रीवायुपुत्रसे उपदिष्ट उन्होने श्रीहनुमान्जीको चतुर्थसदेह पूछा—'आञ्जनेय' इत्यादि । अञ्जनाका अपत्य पुत्र आञ्जनेय, उसका सबोधन हे आञ्जनेय ? 'महाबल'—इससे सशय निराकरणसामर्थ्य सूचित हुआ । गृहस्थ विप्रोको प्रणवाधिकार कैसे होगा ? क्योंकि यतियोको हा प्रणवोपासनका विधान है । ऐसा अन्यान्य शास्त्रोसे अवगत होता है, अत इस विषयमे सशय नष्ट हो उस प्रकारसे आप हम सबोको उपदेश करे ?

पुनरुवाच हनुमान्—अयोध्यानगरेरम्येसमासीनोरामोमयापृष्टः-सीतापते! योगिमानसहंस? विप्राणांगृहस्थानांप्रणवाधिकारःकथंस्यादिति । स होवाचरामः—येषामेवषडक्षराधिकारोवर्तते, तेषांप्रणवाधिकारःस्यात् । नान्येषाम् ॥९॥

श्रीमान् हनुमान्जीने फिर कहा—हे मुनीश्वरो जेसे आप लोग मुझे पूछ रहे है इस शकाके निवारणके लिये मैने भी रम्य शोभन श्रीयोध्यानगरमे रत्नसिहासनपर विराजे हुए श्रीरामजीको निवेदन किया हे श्रीसीतानाथ ! योगिजनोके मानसरूप मानसरोवरके हस ! गृहस्थ विप्रोको प्रणवाधिकार कैसे होगा ? तव उन मेरे आराध्यसर्वेश्वर श्री रामजीने हमे उपदेश दिया कि हे हनुमान् जिन गृहस्थ विप्रोका इस ब्रह्मतारक षडक्षर मन्त्रराजमे अधिकार है । प्रणवमे भी अग-अगी पनासे उनका अधिकार है क्योकि उसके साथ इसका समान योग क्षेम है । अत जिनका मन्त्रराजमे अधिकार है उनको प्रणवाधिकार होगा , दूसरोका नही । अर्थात् षडक्षरमन्त्रराजसे अदीक्षितोका प्रणवमें अधिकार नही होगा ॥९॥

प्रणवंकेवलमकारमुकारमकारमर्द्धमात्रासहितजपित्वायोराममन्त्रंजपते,तस्य शुभकरोऽहं स्यां तस्मात् प्रणवस्यचाकारस्यचोकारस्य च मकारस्य चार्द्धमात्रस्य च ऋषिच्छन्दोदेवतास्तद्वत् चतुःस्थानस्वरवेदाग्निगुणादीन्युच्चार्यन्यासंकृत्वाप्रणवमन्त्रान् द्विगुणंजप्त्वापश्चाद्राममन्त्रमाद्यन्तप्रणवंयोजपते, स रामोभवेदितिरामेणोक्तंतस्माद्रामांगप्रणवःकथित इति वायुपुत्रेणोक्ताःपुनर्हनुमन्तं पप्रच्छुः ॥१०॥

प्रणवके जप विना श्रीराममन्त्रके जपमे अधिकार ही नही है, यह बतलाते है—'प्रणवम्' इत्यादि । प्रणव जो केवल अकार उकार मकार अर्धमात्रा सहित है उसका जपकर जो श्रीरामचन्द्रजीका मन्त्र जपता है । उसका शुभ करने वाला मै होता हू

ऐसा श्रीरामचन्द्रजीने कहा है। यहा अकारादिचतुरक्षरसहित ऐसा कहना चाहिये। क्योकि अकारादियोमे पृथक् विभक्त्युच्चारण अलगपद के उच्चारणस्वातन्त्र्य होनेसे छन्द ऋष्यादियोका कथन केवल सूचनार्थ है, वहा कहते है 'तस्मात्' इससे। इस कारणसे प्रणव के अकार उकार मकार अर्धमात्रा ऋषि छन्द और देवताए तथा वर्ण चतु स्थान स्वरवेद अग्निगुण आदियोका उच्चारणकर, जिनके अर्थ आदि अथर्वशिरसूक्तमे माण्डूक्यमे और नारसिंहमे कहे हुए है। तदनुरूप न्यासकर प्रणवमन्त्र प्रणवफलोक्त मन्त्र षडक्षरका द्विगुण जपकर पीछे आद्यन्त प्रणव (ॐ रा रामाय नम ॐ) इस प्रकार जो जपता है अर्थात् प्रणव सम्पुटित राममन्त्र जपता है वह छान्दोग्यादि उपनिषदोमे वर्णित सत्यकामत्वादि आठ गुणोसे युक्त होकर श्रीरामसदृश होजाता है ऐसा श्रीरामजीने कहा। 'तस्मात्' यह प्रकृत विषयका उपसहार है। प्रणवको श्रीरामाङ्ग कहा गया है, इस प्रकार श्रीवायुपुत्रसे उपदिष्ट सनकादियोने फिर श्रीविभीषणजीके उपासना विषयक पाचवा सन्देह निवृत्तिके लिये पूछा इसके उत्तरमे श्री हनुमानजीने कहा हे ॥१०॥

सहोवाच हनुमान्–रामभक्तविभीषणकृतरामपरिचर्यायांसप्तसहस्राणिसंस्कृतवाक्यानि, सप्तसहस्राणिगद्यानिपञ्चशतानिआर्याः, अष्टौसहस्राणिश्लोकाः, चतुर्विंशतिसहस्राणिपद्यानिदशसहस्राणिदण्डकाः। इत्येवमनुक्रमंज्ञात्वाकृतकृत्योभवेदिति।

इति हनुमदुपनिषत्। प्रथमःखण्डः ॥१॥

आप सबोका पाचवा सशय जो श्रीरामचन्द्रजीका भक्त विभीषणसे की हुई श्रीराम-परिचर्या- श्रीरामस्तुतिके विषयमे है, वह बहुत विस्तृत होनेसे अभी सुनने सुनानेके लिये अशक्य प्राय है, उद्देश्य मात्र अर्थात् सक्षेपसे कहूगा, इस आशयसे कहते है—कि 'सहोवाच' इति। उन श्रीहनुमान्जीने कहा कि श्रीरामजीके अनन्य भक्त श्रीविभीषणजीसे की गई श्रीरामपरिचर्यामे सात हजार सस्कृत वाक्य है, सात हजार गद्य है, पाच सौ आर्या है, आठ हजार श्लोक है, चौवीस हजार अनुष्टुप छन्दके पद्य है, दश हजार दण्डक है, अर्थात् सप्तविंशत्याद्यक्षरपाद है। यो कुल ५६५०० श्लोक वगेरे होते है। इस विषयमे जिज्ञासा होती है कि उद्देशमात्रसे उनके अर्थोके ज्ञानसे सपूर्ण परिचर्याका ज्ञान न होसकेगा तो फल सबन्धका अभाव होगा? इस शकाके निवारणके लिये कहते हे — 'इत्येवम्' इति इस प्रकारसे अनुक्रम मात्रको जानकर भी उपासक कृतकृत्य होगा। उद्देशसे अनुक्रम मात्र जाना जाय तो उतनेसे भी उपासक अधिकृतार्थ ज्ञातार्थ होगा, यह इसका तात्पर्य है।

यह श्रीरामपरिचर्या अतिरहस्यमय तथा अति विस्तृत होनेसे सर्वसाधारणजनके लिये

सुलभ न हो सका। अत आज तक भी रहस्य—गुप्तप्राय ही रही । सर्वजन प्रसिद्ध न हो सकी । इसका विशेष विवेचन अन्यत्र करूगा । इति पश्चिमाम्ना श्रीरामानन्दाचार्य-पीठाधीश्वर स्वामीरामेश्वरानन्दाचार्य प्रणीतप्रकाशटीका ।

श्रीरामोपनिषद्, द्वितीयः खण्डः

श्रीहनुमानुवाच—सिंहासनेसमासीनं रामं पौलस्त्यसूदनम् ।
प्रणम्यदण्डवद् भूमौपौलस्त्योवाक्यमब्रवीत् ॥२-१॥

कितने पुरश्चरणसे परमपुरुषार्थकी प्राप्ति होती है ? ऐसा जो षष्ठ सदेह है उसको दूर करनेके लिये कहते है । 'हनुमानुवाच' इति । श्रीहनुमान्जीने कहा कि पौलस्त्य पुलस्त्यका—अपत्य श्रीविभीषणजीने पौलस्त्यसूदन—रावणको मारने वाले सिंहासन पर विराजे हुए श्री रामजीको दण्डवत्—भूमिमे पडकर साष्टांग प्रणाम कर प्रार्थना की कि ॥२—१॥

रघुनाथ ! महाबाहो ? कैवल्यंकथितं मया ।
अज्ञानां सुलभंचैवकथनीयं च सौलभम् ।२-२॥
श्रीरामउवाच— २—३

हे रघुनाथ ! हे महावाहो ! जो मैने पहले सस्कृतवाक्यादियोमे कैवल्य—केवल शुद्ध उपाधिरहित आप विशुद्धस्वरूपके प्राप्तिसाधनका वर्णन किया अर्थात् सागोपांग निरूपित किया, वह अज्ञो अकृतबुद्धियो अल्पज्ञो के लिये असुलभ दुष्प्राप है । यहा चकार च हेतुरूप अर्थका द्योतक है, इसलिये सौलभ सुलभ ज्ञानका कारण सौलभस्थान प्राप्तिका साधन आप कृपाकर हमे उपदेश करे ताकि उस साधनसे सब जीव आपको प्राप्त कर सके । इस प्रकार प्रार्थित श्रीरामजीने कहा कि—॥२-२॥

अथ पञ्च दण्डकाः पितृघ्नो मातृघ्नो जारो गुरुहाऽनेककोटियतिघ्नोऽनेककृनपापोयोममषण्णवतिकोटिनामानिजपते स तेभ्य पादेभ्यः प्रमुच्यते। स्वयमेव सच्चिदानन्दरूपो भवेन्न किम् ? ॥२-४)

अथ शब्द पक्षावृत्त्यर्थ है पक्ष परावर्तन परक है । पाच दण्डक पठनीय हैं । श्रीविभीषणसे कहे हुए दश हजार दण्डकोसे उधृत कर अलगकर पांच दण्डक पढनेके योग्य है अर्थात् असमर्थ मानवको दशहजार दण्ठकमेंसे केवल पांच दण्डकका पाठ करना चाहिये इससे भी पूर्ण फल प्राप्त होगा । जो पितृघ्न पिताका घातक है, मातृघ्न—माता घातक है, जार पर स्त्रीगामी है, गुरुहा—गुरुका घातक है, अनेककोटियतिघ्न अनेककोटि यतियोका घातक है अनेक कृत पाप बहुत पाप करनेवाला है अनेक पाप किया हो वह भी

छयानव्वे कोटि रामनाम जपता है, तो वह नर उन पापोसे मुक्त हो जाता है, इतना ही नही स्वय वह क्या सच्चिदानन्दस्वरूप नही होगा ? अपितु हो ही जायगा । यह रहस्य मय महत्व पुरश्चरणयुक्त श्रीरामनामका है ॥२-४॥

पुनरुवाचबिभीषणः तत्राप्यशक्तोयः, स किं करोति । स होवाच रामः पञ्चाशल्लक्षमन्मन्त्रमाद्यन्तप्रणवंमन्मन्त्राद् द्विगुणः प्रणवोयोजपते सस्वयमेवाहंभवेन्न-किम् ।२-५॥ पुनरुवाचकार्कशेयः-तत्राप्यशक्ता ये ते किं कुर्वन्तीति । स होवाच रामः—अथत्रीणिपद्यानिपुरश्चरणानि, तत्राप्यशक्तोयोममगीता, मन्नामसहस्रं, मद्वि-श्वरूपं, मदष्टोत्तरशताभिधान, नारदोक्तंस्तवराजं, हनुमदुक्तंमन्त्रराजात्मकस्तवं च सीतास्तवं च रामरक्षेत्यादिभिस्स्तवैरेतैर्योमांनित्यंस्तौति सममसदृशोभवेन्नकिम् ? ॥२-६॥ इत्यथर्वणरहस्येश्रीरामोपनिषत् समाप्ता ॥२॥

सप्तम सदेह दूर करते हुए अनुकल्प प्रश्नपूर्वक करते है—'पुन' इससे । श्रीविभीषण ने कहा कि– छयानव्वेकोटि नामजपमे जो व्यक्ति असमर्थ है, वह क्या करे ? इसके उत्तरमें सर्वेश्वर श्रीरामजीने कहा कि आद्यन्तप्रणव युक्त पचाशलाख मेरा मन्त्र जो जपता है, वह पूर्वोक्त फल प्राप्त कर लेता है । ऐसे मन्त्रको मेरे मन्त्रसे द्विगुणित जपना चाहिये । तब वह प्रेमपूर्वक जपने वाला अवश्य ही श्रीराम सादृश्यता प्राप्त करलेगा ॥२-५॥ पुन शब्द पक्षान्तर सूचक है । कर्कशाका अपत्य कार्कशेय श्रीरामसमीपवर्ती विभीषणजी ने फिर श्रीरामसे निवेदन किया । प्रभो पचाशलाख मन्त्र जपमें असमर्थ जो है वे क्या करे इसके उत्तरमे श्रीरामजीने कहा उसमे असक्त तीन पद्य श्लोकोका पुरश्चरण करे । इस में भी असमर्थ जो है, उन्हे श्रीरामगीता १ श्रीरामसहस्रनाम, २ श्रीरामविश्वरूप, ३ श्रीरामनामाष्टोतरशत, ४ नारदोक्तश्रीरामस्तवराज, ५ श्रीहनुमदुक्त मन्त्रराजात्मकस्तव ६. श्रीसीतास्तव ७ श्रीरामरक्षास्त्रोत्र ८. इत्यादि इन स्तोत्रसे जो मेरी नित्य स्तुति करता है, वह सर्वपाप निर्मुक्त होकर अवश्य ही मेरे सादृश्यको प्राप्त कर लेता है ॥२-६॥

श्रीलरामप्रसादेन हिन्दीव्याख्या कृता मया ।
तत्र या मे त्रुटिर्जाता सा क्षन्तव्या सुधीजनै ॥

इतिपश्चिमाम्नायश्रीरामानन्दाचार्यपीठाधीश्वर स्वामीरामेश्वरानन्दाचार्य प्रणीता श्रीरामोपनिषदि प्रकाश हिन्दीटीका समाप्ता

॥ श्रीसीतारामार्पणमस्तु ॥

श्रीसीतारामाभ्या नम

सामयिक

※ संक्षिप्त—परिचय ※

"रामानन्दः स्वयं रामः प्रादुर्भूतो महीतले"

आविर्भाव=माघकृष्णसप्तमी १३५६ वि सम्वत् ।
तिरोभाव चैत्रशुक्ल श्रीरामनवमी १५३२ वि सम्वत् ।

आनन्दभाष्यकार जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी का अवतार माघ कृष्ण सप्तमी विक्रमसम्वत् १३५६ मे अतिसमृद्ध वशिष्ठ गोत्रीय तीन प्रवर वाले शुक्ल यजुर्वेदीय वाजसनेयशाखाध्यायी कान्यकुब्ज ब्राह्मणपरिवार मे प्रयागराज मे हुआ था । आप के पिताजी का नाम पण्डित श्रीपुण्य-सदन शर्मा था तथा माताजी का नाम श्रीमती सुशीला देवी । दम्पती द्वारा सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी की प्रवल आराधना से प्राप्त आप एक मात्र सन्तान थे जन्म नाम रामानन्द था । मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामजी के अवतार होने से प्रारभ से ही आप सव जनो के आकर्षण के केन्द्र वने थे। वाललीला व्याज से वालपन से ही सस्वर वेदगान करना आपकी लीलाका एक अग वन गया था। प्रारभिक शिक्षा घर मे ही पिताजी के पास सम्पन्न होने पर मनुस्मृति आदि स्मृति के नियमानुसार वि स० १३६१ वसन्तपञ्चमी मे सविधि यज्ञोपवीत सस्कार सम्पन्नकराकर विशिष्टाध्ययन के लिये श्रीमठ जो श्रीसम्प्रदाय का प्रधान आचार्यपीठ था मे सम्प्रदाय के २१वे आचार्य जगद्गुरु श्रीराघवानन्दाचार्यजी के छत्रछाया मे वाराणसी पहुँच कर विधिविधान के साथ वेद—वेदागो का अध्ययन कर उनमे कुछ समय मे ही निष्णात हो गये । समस्त धर्मशास्त्र तथा नास्तिक दर्शनो का भी आचार्य चरण से सम्यक् अध्ययन कर सभी विपयो म पटुता प्राप्त कर ली थी परिणामत शास्त्रार्थ कला मे पारगत होने से विपक्षियो को पराजीत कर अपने सनातन धर्म मे दीक्षित कर सन्मार्ग मे अग्रेसर करना आपश्री का व्यवसायसा हो गया था। आपश्री के मातापिता ने गृह प्रत्यावर्तनार्थ आचार्य पीठ मे आकर आग्रह किया पर आपने देश तथा धर्म की अति संकटापन्नस्थिति की ओर संकेत कर विरक्त जीवन व्यतित करते हुये देश तथा धर्म की संरक्षण सेवा करने की प्रवल इच्छा प्रकट कर जगदाचार्यजी से सन्यास दीक्षा लेने की अनुमति मागी । पर्याप्त चर्चा—विचारणा के पश्चात् माता—पिता की प्रव्रज्याग्रहण कर सनातन धर्मोद्धार की आज्ञा प्राप्त हो जाने पर जगद्गुरु श्रीराघवानन्दाचार्यजी ने सविधिपञ्चसस्कार पूर्वक १३८१ विक्रमसम्वत वसन्तपञ्चमी के पुण्य पर्व पर श्रीवैष्णवीय सन्यास दीक्षा प्रदान कर कापायवस्त्र तथा त्रिदण्ड धारण कराकर षडक्षर श्रीराम महामन्त्र द्वय मन्त्र चरम मन्त्र आदि मन्त्रो तथा रहस्यों का उपदेश दिया । आपका दीक्षा नाम 'रामानन्द स्वयराम' इस शास्त्रानुमोदित श्रीरामानन्दाचार्यजी ही रहा आचार्यश्री ने केवल नामान्त मे आचार्य शब्द जोडकर प्रसिद्ध कर दिया । देश तथा सनातन धर्म के रक्षा के उद्देश्य से आपने सत्सम्प्रदायाचार्यो तथ विशिष्ट जनो की संस्था स्थापित की जिसके आचार्य आपही थे अत आप "जगद्गुरु" इस महनीय उपाधि से अलंकृत किये गये वस्तुत इस गरिमामय उपाधि के योग्य आप ही है ।

आप की शास्त्रीय तथा व्यावहारिक चातुरिका ही सुपरिणाम था कि एकसाथ मे पारस्परिक वैमनस्य तथा यवनो का त्रास समित हुये। आचार्य श्री के समन्वयात्मक प्रचार तथा प्रयास ने समस्त देश मे शान्ति तथा आत्मविश्वास का वातावरण जागरित किया परिणामत गायासुद्दीन से सिकन्दर शाह तक के क्रूर शासको के आतंक से हिन्दु प्रजा स्वस्थ व सुरक्षित रह सकी। आचार्य प्रवर के लोकोत्तर चमत्कार पूर्ण कार्यो का ही परिणाम था जो धर्मान्ध इस्लामो के वलात् धर्म परिवर्तन रूप बाढ अवरुद्ध हुआ नही तो भारत वर्ष का नकशा आज कुछ और ही होता। आप श्री का वि सं० १३९७ वसन्तपञ्चमी के पुण्य पर्व के दिन विशेष समारोह के साथ जगद्गुरु श्रीराघवानन्दाचार्यजी ने श्री सम्प्रदाय के २२वे आचार्य के रूप मे अभिषेक किया, इसी प्रसग मे समस्त धर्माचार्यो व जनता द्वारा "आचार्य सम्राट्" की उपाधि से विभूपित किये गये। आचार्यजी ने सनातन धर्म प्रचारार्थ तीर्थ यात्रा के वहाने से दिग् विजय यात्रा प्रारम्भकी। अग वंग तथा कलिग आदि प्रदेशों मे सभी ने सादर आप की पूजा की। विजयनगर मे महराजा द्वारा आपकी पालकी वहन की गई तथा अभूत पूर्व स्वागत हुआ इसी उपलक्ष्यये विशिष्ट समारोह के साथ श्रीराम महायाग सम्पन्न हुआ। अनन्तर विजय यात्रा क्रम मे वोढाण पहुंचकर श्रीसम्प्रदाय के परमाचार्य जगद्गुरु श्री पुरुपोत्तमाचार्यजी बोधायन के चरणपादुकाओ का सविधि पूजन सम्पन्नकर गिरनार पधारे वहा देवताओ द्वारा आप की पादुकाप्राप्तकर प्रतिष्ठित की गई। वहा से द्वारका हो कर विश्राम द्वारका मे पधार कर एक माह तक विश्राम के व्याज से वेदान्त दर्शन पर प्रवचन के द्वारा वेदान्त तत्त्व का प्रवल प्रचार करके आबू की ओर प्रस्थित हुये। आबू मे सर्वेश्वर श्री रघुनाथजी की प्रतिष्ठा प्रसंग मे गिरनाथ महाचार्य की आकाक्षाओ को पूर्णत प्रशमन कर प्रसंगोपात्त अद्वैत मतका भी शास्त्रीय प्रणाली से पूर्णत खण्डन कर परमवैदिकविशिष्टाद्वैतसिद्धान्त का विजय ध्वज को फहराने के साथ शखनाद कर के समस्त जनो को त्रिविधतापो से मुक्त कर दिये। समस्त प्रदेशो मे परिभ्रमणकर सद्धर्म सत्कर्म के सम्बर्धन के साथ सारे देश मे भक्ति के लहर को प्रजागरितकर मानवमात्र को परमधामोभिमुखी वनाकर चैत्रशुक्ल ९ श्रीरामनमी वि स १५३२ मे लीलासम्वरण कर श्रीसाकेत पधारे।

आपके १२ परमविरक्त प्रधान शिष्य थे। आचार्यजी के ब्रह्मसूत्र गीता तथा उपनिषदों यो तीनो प्रस्थानो मे प्रसाद गम्भीर परम वैदिक विशिष्टाद्वैत मत प्रतिपादक आनन्दभाष्य है। तथा सर्वशास्त्रसार और सर्व जनगम्य तथा सर्वजनोपकारक सपरिशिष्ट श्रीवैष्णवमताब्जभास्कार जो प्रस्थान-त्रयानन्दभाष्यो का संक्षिप्तसार है आचार्य प्रवर की अत्युत्कृष्ट कृति है।

दुर्दान्त यवन शासकद्वारा अत्याचार का प्रतीक हिन्दुओ पर लादा गया जजिया-कर के विरुद्ध आचार्यजी ने धर्मयुद्ध छेडा। यौगिकशंखनाद द्वारा जगदाचार्यजी ने निग्रह शक्ति को आकाश मण्डल मे प्रसारित कर दिया परिणामस्वरूप देशभर के मस्जिदो मे मुल्ला मौलवियो की आवाज वन्द हो गई अत सर्वत्र नमाज पढना वन्द हो गया। इस आपत्ति से वचने के लिये मुहम्मद तुगलक बादशाह ने मौलवियो के साथ काशी आचार्य पीठ मे आकर श्रीकवीरदासजी को साथ मे लेकर जगदाचार्य श्रीरामानन्दाचार्यजी के चरणो मे प्रणिपात पूर्वक क्षमा याचना कर सशर्त कुख्यात जजिया-कर को हटा दिया।

जजिया-कर की १२ शर्तें निम्न हैं-१-हिन्दुओ पर जजिया कर न लगाया जाय। २-हिन्दुओं के धर्म स्थान मठ मन्दिर आदि के वनाने का प्रतिबन्ध उठालिया जाय। ३-हिन्दु दुलहे

को सवारी पर बैठकर मस्जिद के सामने से न जाने का कानून रद्द कर दिया जाय। ४–हिन्दु धर्म के प्रचार–प्रसार मे किसी प्रकार की रुकावट न डाली जाय। ५–गाय की कुर्बानी वन्द हो जाय। ६–हिन्दुओ के धर्म ग्रन्थो को जलाना और उसका प्रकाशन वन्द कराना रोका जाय। ७–हिन्दुओ के देव मन्दिरो को गिराकर उस जगह पर मस्जिद बनाना तथा हिन्दुओ को मस्जिद मे प्रार्थना करने के लिए वाध्य करने का दुर्व्यवहार को रोका जाय। ८–मोहर्रम पर या कोई भी अन्य समय पर हिन्दुओ के उत्सवो को न रोका जाय। ९–शंख वजाने का रोक को हटाया जाय। १०–किसी भी मेले या यात्रा मे हिन्दुओ से कर न लिया जाय। ११–किसी स्त्री का सतीत्व भंग न किया जाय। और १२–किसी हिन्दु को मुसलमान न वनाया जाय।

वि स १४३२ मे पचासेक हजार विटलाये गये हिन्दुओ को परावर्तन सम्कार (वैदिक सस्कार) द्वारा जगद्गुरुजी ने पुन सनातन हिन्दू धर्मावलम्वी वनाये जो हठात् मुसलमान बनाये गये थे जिन्हे पण्डित वर्ग ने पुन हिन्दु धर्म मे लेने से मनाई कर दी थी जिनमे वि स १३८१ मे वलात् अपने ३४ हजार राजपूत साथियो के साथ अयोध्या के राजा श्रीहरिसिह को मुहम्मद तुगलकबादशाह ने मुसलमान वनाया था का भी समावेस है अपनी अलौकिक चमत्कृति पूर्ण क्रिया कलापो द्वारा पूज्य आचार्यजी ने सभी को सर्वेश्वर श्रीरामजी की प्रपत्ती तथा देव दर्शन का मार्ग प्रसस्त किया जगदाचार्यजी की दिव्य घोपणा है–

"सर्वे प्रपत्तेरधिकारिण सदा शक्ता अशक्ता पदयोर्जगत्प्रभो।
अपेक्ष्यते तत्र कुल–वल च नो न चापि कालो न च शुद्धतापि वै॥"

(श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर ४।५०) अर्थात् भगवत् प्रपत्ति मोक्ष का कारण है इस पर जिज्ञासा होती है कि इस प्रपत्ति का अधिकारी कौन है? इसके उत्तर मे आचार्यजी कहते है कि हे सुर-सुरानन्द? जगत्प्रभु सर्वेश्वर श्रीराम की शरणागति मे सब को अधिकार है। चाहे वह बलवान् हो, बल हीन हो, उच्च कुल मे उत्पन्न हो या नीच हो क्योकि भगवान परम कृपालु है अत वे स्व प्रपत्ति मे कुल तथा जाति आदि की अपेक्षा नही रखते है। इसलिये जीव मात्र प्रपत्ति का अधिकारी है।

जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी की इस घोपणा को इतिहास कारोने स्वर्णाक्षरो मे अंकित कियो है जो घोपणानुसार अक्षरस चरितार्थ कर वता दिया है। उदाहरण के रूप मे श्रीकवीरदासजी तथा श्रीरविदोस (रैदास) जी प्रभृति जग जाहेर है। ऐसे जगदाचार्य चिराग लेकर अन्वेपण करने पर भी नही मिलेगे। वस्तुत जगद्गुरुत्व आप मे ही अक्षरस चरितार्थ है।

विशिष्टाद्वैत–आचार्य प्रवर का सिद्धान्त है। आपने ब्रह्मसूत्रो के आनन्दभाष्य मे लिखा है–"एवञ्चाखिलश्रुतिस्मृतीतिहासपुराणसामञ्जस्यादुपपत्तिवलाच्चविशिष्टाद्वैतमेवास्य ब्रह्ममीमांसाशास्त्रस्य विषयो नतु केवलाद्वैतम्"–(१।१।१) अत आप अनादि वैदिक विशिष्टद्वैत मत जिसका प्रथम प्रतिपादकाचार्य महर्षि बोधायन श्रीपुरुपोत्तमाचार्यजी थे के प्रवल प्रचारक–प्रसारक थे परिणामत आप के ही नाम से इस सम्प्रदाय का नाम–श्रीरामानन्दसम्प्रदाय प्रचलित हुआ। संक्षेपत इस शब्द की व्युत्पत्ति या अर्थयो है विशिष्टं च विशिष्ट च विशिष्टे विशिष्टयो अद्वैतम् विशिष्टाद्वैतम् है। व्युत्पत्ति मे दो वार विशिष्ट कहने का तात्पर्य यह है कि सूक्ष्मचित् तथा अचित् विशिष्ट यानी कारणावस्थापन्न सर्वेश्वर श्रीराम और स्थूलचित् तथा अचित् विशिष्ट यानी कार्यावस्थापन्न सर्वेश्वर परब्रह्म श्रीरामजी मे एकता–एकरूपता यानी अभेद है परब्रह्म दो नही। चित्

विशिष्ट चित् विशेषण से युक्त तथा अचित् विशिष्ट-अचित् विशेषण से युक्त होने से ही दो ब्रह्म की प्रतीतिसी होती है वस्तुत ब्रह्म म यानी कार्य कारण रूप परब्रह्म श्रीरामजी मे अभेद है। इस विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त मे परात्पर तत्त्व सर्वेश्वर श्रीरामजी है । श्रीरामाभिन्न रूपा सर्वेश्वरी श्रीसीताजी परा शक्ति के रूप मे समवराध्या है । श्रीलक्ष्मणादि श्रीरामजी की आज्ञा पालक शेष रूप है । शेषी मात्र सर्वेश श्री रामजी है। अन्य सभी शेप है। इस विशिष्टाद्वैत मतानुसार जीव तथा ब्रह्म अलग अलग तत्त्व है एक नही। विशेष्य रूपतया श्री रामजी है तो अन्य समस्त विशेषण रूप से स्वीकृत हे इन तत्त्वो के विशेप जानकारी के लिये प्रस्थानत्रयो के आनन्दभाष्य तथा उनपर मेरी प्रकाश टीका श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर तथा मेरी प्रभा-किरण टीका और जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य रामप्रपन्नाचार्यजी योगीन्द्र की तत्त्वत्रयसिद्धि तथा मेरी उसकी टीका तत्त्वदीप प्रभृति ग्रन्थो को पढे यहाँ तो केवल दिग्दर्शनमात्र कराया गया है ।

इस सम्प्रदाय के भाष्य-प्रस्थानत्रय (ब्रह्मसूत्र-गीता तथा उपनिषदों) के आनन्दभाष्य है- उनमे प्रतिपाद्यविषय-माया, जीव तथा परब्रह्मश्रीराम है ।

यौ राम-शब्द के अनन्त अर्थ होते है तथापि अति सक्षेपरूप से ऐसा समझा जा सकता है र= १ श्रीरामजी का प्रतिपादक २-श्री रामजी प्रतिपाद्य तथा ३-श्रीरामजी जगत् के रक्षा करने वाले है। आ=१ श्रीरामजी के अतिरिक्त अन्य किसी का भी यह जीव शेप नही है २-ब्रह्मादि देवो का भी यह जीव शेप नही है ३-श्री रामजी को छोडकर अन्य किसी का शेप वनना या मानना भूल है तथा स्वरूपविरोधी है। ४-आचार्य द्वारा ही श्रीराम प्राप्ति होती है। म=जीव हे जो र कारवाच्य श्रीरामजी का शेपभूत है अत श्रीरामजी जैसे चाहे इस शेप रूप जीव का उपयोग कर सकते है।

इस सम्प्रदाय के इष्ट-श्रीसीतारामजी है। मन्त्र द्रष्टा ऋषि-श्रीजानकीजी है मन्त्र-षडक्षर तारक महामन्त्र 'रा रामाय नम' है । यौतो जीव-अनन्त हे तथापि १-नित्य २-मुक्त ३-बद्ध ४-मुमुक्षु तथा ५-कैवल्य प्रभेद से पाच प्रकार के है । परब्रह्म श्रीरामजी के साथ जीवात्मा का ९-प्रकार का सम्बन्ध है १-शेप-शेपी २-नियम्य-नियामक ३-पिता-पुत्र ४-पति-पत्नी ५-आधार-आधेय ६-सेव्य-सेवक ७-शरीर-शरीरी ८ धर्म-धर्मी तथा ९ रक्ष्य-रक्षक । यह श्रीरामानन्दीय श्रीवैष्णव सम्प्रदाय के नाम से जगत विख्यात है । इसका धाम-नित्य दिव्य श्रीसाकेत धाम है यही श्रीअयोध्याजी के नाम से ससार मे प्रसिद्ध है । क्षेत्र-नन्दिग्राम तथा परिक्रमा-श्री चित्रकूट मि कामद गिरि और मिथिला की है। सुखविलास श्रीचित्रकूट तथा तीर्थ-धनुष कोटि और गोत्र-अच्युत है। वर्ण-शुक्ल शाखा-अनन्त, मुक्ति-सायुज्य द्वार-श्रवण, ऋषि-श्रीब्रह्माजी, मुनि-श्रीवशिष्ठजी, पार्षद देवता-श्रीहनुमानजी, वेद-ऋग्वेद, देवी-श्रीकमलाजी, सिहासन-शुद्ध रत्न सिहासन, वंश-सूर्य वंश, तिलक-ऊर्ध्वपुण्ड्र तथा माला-श्रीतुलसीजी की है। बडी जगह-पञ्चगङ्गाघाट काशी तथा आचार्य-प्रस्थान त्रयानन्द भाष्यकार जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी यति सम्राट् है । और धर्म-श्रीसीतारामीय श्रीवैष्णव है, आहार-हरिनाम है, ध्येय-श्रीसीतारामजी, तथा ज्ञेय-श्रीवाल्मीकि रामायण (और श्रीतुलसी कृतरामायण) है। तत्त्वत्रय-१ कृपा स्वरूपा माया २ जीव ३ ब्रह्म । रहस्यत्रय-१ महामन्त्र (रा रामाय नम) २ चरममन्त्र-सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते । अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम ॥ तथा ३ द्वयमन्त्र-"श्रीमद्रामचन्द्रचरणौ शरणं प्रपद्ये । श्रीमते रामचन्द्राय नम" है । शरणागति मन्त्र "श्रीराम शरणं मम" तथा गायत्री-श्रीराम गायत्री "ॐ दाशरथाय विद्महे सीता वल्लभाय धीमहि तन्नो राम प्रचोदयात्" है ।

इस श्रीरामानन्द सम्प्रदाय के पूर्वाचार्यो की शुभनामावली निम्न प्रकार से है १ सर्वेश्वर श्रीरामजी (लोकलीलार्थ प्रादुर्भाव काल त्रेतायुग चैत्रशुक्ल श्रीरामनवमी के दिन अयोध्या मे) २ सर्वेश्वरी श्रीसीताजी (लोकलीलार्थ प्रादुर्भाव काल त्रेतायुग वैशाख शुक्ल नवमी के दिन सीतामढी मिथिला मे) ३ श्रीहनुमान्जी (स्वपरमाराध्य श्रीरामजी के साथ लोकलीला सम्पादनार्थ प्रादुर्भाव काल त्रेतायुग कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी गन्धमादन पर्वत पर) ४ श्रीब्रह्माजी (सृष्टि का प्रारम्भकाल श्रीविष्णु के नाभिकमलाग्रभाग मे आविर्भूत) ५ श्रीवशिष्ठजी (ऋषि पञ्चमी के दिन ब्रह्मलोक मे प्रकट) ६ श्रीपराशरजी (आश्विन शु० १५ श्रवशिष्ठ काल मे उनके आश्रम मे) ७ श्रीबादरायणव्यासजी (पराशरजीके कालमें गुरु पूर्णिमा के दिन कालपी उ प्र मे प्रकट) ८ श्रीशुकदेवाचार्यजी (व्यासकाल मे व्यासाश्रय श्रावण शु० १५ मेप्रकट) ९ बोधायन श्रीपुरुषोत्तमाचार्यजी (पौषकृष्ण १२ बोधायनसर मिथिला मे) १० जगद्गुरु श्रीगंगाधराचार्यजी (माघ कृष्ण एकादशी आविर्भाव ४३२ ईशापूर्व तथा तिरोभाव २३२ ईशापूर्व प्रतिष्ठानपुर प्रयाग) ११ जगद्गुरु श्रीसदानन्दाचार्यजी (आविर्भाव २८० ईशापूर्व माघशुक्ल पञ्चमी तिरोभाव २३ ईशापूर्व जन्मस्थल गढमुक्तेश्वर) १२ जगद्गुरु श्रीरामेश्वरानन्दाचार्यजी (आविर्भाव ३६ वि स पूर्व वैशाखशुक्ला तृतीया तिरोभाव ज्येष्ठ शुक्ल एकादशी वि स २३६ जन्म कामद गिरि) १३ जगद्गुरु श्रीद्वारानन्दाचार्य (आ भा फाल्गुन पूर्णिमा वि सं १६६ द्वारका मे ति भा आपाढ शुक्ल तृतीया ३७६ वि०स मे) १४ जगद्गुरु श्रीदेवानन्दाचार्यजी (आ भा वैशाख शुक्ल दशमी वि सं ३२६ मे प्रयाग मे ति भा माघ पूर्णिमा ५२६ वि सं० मे) १५ जगद्गुरु श्रीश्यामानन्दाचार्यजी (आ भा आपाढ शुक्ल द्वितीया वि सं ४८६ जगन्नाथपुरी मे ति भा ६८६ वि सं मे) १६ जगद्गुरु श्रीश्रुतानन्दाचार्यजी (श्रावण शुक्ल सप्तमी ६३३ वि सं मिथिला मे जन्म ८३३ वि स मे साकेत गमन) १७ जगद्गुरु श्रीचिदानन्दाचार्यजी (चैत्र पूर्णिमा ७४६ वि स मे चित्रकूट मे जन्म ८९६ वि स मे साकेतवास) १८ जगद्गुरु श्रीपूर्णानन्दाचार्यजी (वैशाख कृष्ण त्रयोदशी ८६६ वि स, मे अवन्तिका मे जन्म वैशाख पूर्णिमा १०६७ वि स मे साकेतवास) १९ जगद्गुरु श्रीश्रियानन्दाचार्यजी (वैशाख शुक्ल नवमी १०२६ वि सं मे जनकपुर मे जन्म १२०६ वि सं मे अन्तर्धान) २० जगद्गुरु श्रीहर्यानन्दाचार्यजी (आपाढ शुक्ल एकादशी ११५६ वि स मे कर्णपुर मे जन्म साकेतवास अन्वेष्य) २१ जगद्गुरु श्रीराघवानन्दाचार्यजी (चैत्र शुक्ल एकादशी १२०६ वि स मे अयोध्या मे अवतार १३९६ वि स मे तिरोभाव)

आचार्यजी के प्रधान बारह शिष्य (महाभागवत) थे उनके नाम इस प्रकार है–१ ज गु श्री अनन्तानन्दाचार्यजी २ ज गु श्रीसुरसुरानन्दाचार्यजी ३ ज गु श्रीसुखानन्दाचार्यजी ४ ज गु श्री भावानन्दाचार्यजी ५ ज गु श्रीयोगानन्दाचार्यजी ६ ज गु श्रीनरहर्यानन्दाचार्यजी ७ ज गु श्रीगालवानन्दाचार्यजी ८ ज गु श्री पीपाचार्यजी ९ ज गु श्रीरामकबीराचार्यजी १० श्रीरविदास (रैदास) जी ११ श्रीधनाजी १२ श्रीसेनजी जो द्वादश महाभागवत के अवतार होने से बारह सूर्य के समान तेजस्वी लोकोत्तर चमत्कारी तथा लोक कल्याण कारक थे।

आनन्दभाष्यकार जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी द्वारा विशेष रूप से प्रचारित सनातन श्रीवैष्णव धर्म के सुरक्षा तथा प्रचार प्रसार के लिये ३६ अन्य पञ्चगङ्गा घाट काशी के अतिरिक्त आचार्य पीठों की स्थापना की गई जो द्वारो गादी के नाम से विख्यात हुये उन द्वारा गादी के संस्थापकाचार्यो के नाम इस प्रकार है।

१ जगद्गुरु श्रीअनन्तानन्दाचार्यजी (आविर्भाव कार्तिक पूर्णिमा १३६३ वि०स० महेशपुर उत्तर प्रदेश मे साकेतवास देवोत्थानी एकादशी १५४० वि०सं० पीठस्थल चौहट्टा–पाटलीपुत्र) २ ज०गु० श्रीसुरसुरानन्दाचार्यजी (अवतार वैशाख शुक्ल ९ साकेत वास जन्म स्थल पैखम लखनउ पीठस्थल परसा–विहार) ३ ज०गु० श्रीसुखानन्दाचार्यजी (आविर्भाव वैशाख शुक्ल ९ वि०सं १३७४ मे उज्जैन मे पीठस्थल चित्रकूट) ४ ज०गु० श्रीपीपाचार्यजी (अवतार चैत्र पूर्णिमा १४-१७ वि०सं० मे गागरौनगढ मे पीठस्थल गागरौनगढ) ५ ज०गु० श्रीयोगानन्दाचार्यजी (वैशाख कृष्ण ७ वि०स० १४५७ मे सिद्धपुर गुजरात मे पीठस्थल श्रीयोगानन्द मठ बडीमठिया विहार) ६ ज०गु० श्रीरामकबीराचार्यजी (आविर्भाव १४४६ वि०स० ज्ये शु १५ मे लहरतारा–काशी मे तिरोभाव १५७५ वि०स० पीठस्थल बाबी मिरसी विहार) ७ ज०गु० श्रीनरहर्यानन्दाचार्यजी (अवतार वैशाख शुक्ल तृतीया १४९१ वि०स० म गङ्गातट दिवबार मे तिरोभाव १५९९ वि०सं० मे पीठस्थल गढखाला राजस्थान) ८ ज०गु० श्रीकर्मचन्द्राचार्यजी (आविर्भाव चैत्र शु० २ वि०सं० १५०० मे द्योसा राजस्थान मे साकेतवास चैत्र कृष्ण ९ वि०सं० १६०० पीठ स्थल द्योसा राजस्थान) ९ ज०गु० श्रीहनुमदाचार्यजी (आविर्भाव कार्तिक कृष्ण १४ वि०सं० १४५६ मे भीमताल मे साकेतवास चैत्र कृष्ण १२ वि०सं० १५६१ पीठस्थल जाखुगुफा शिमला) १० ज०गु० श्रीअलखरामाचार्यजी (अवतार वामन द्वादशी १५४० वि० मे काशी मे साकेतवास चैत्र कृष्ण १ वि० १६५१ पीठस्थल अलखगुफा कामाख्या आसाम) ११ ज०गु० श्रीसाकेतनिवासाचार्य (टीलाचार्य) जी (अवतार ज्येष्ठ शुक्ल दशमी १५१५ वि०सं० मे कालन्द गाव मे खट्वा खण्डैल के पास साकेत गमन चैत्र शुक्ल पूर्णिमा १६४२ पीठस्थल अरणिया राजस्थान मतान्तरसे डाकोर गुजरातमे) १२ ज०गु० श्रीकीलदेवाचार्यजी (वैशाखशु० १० पीठस्थल गलता जयपुर) १३ज०गु० श्रीभगवान् नारायणाचार्यजी (अवतार चैत्रकृष्ण ४ वि०रा० १५५० मे कान्हुवान मे साकेत गमन आपाढ पूर्णिमा वि० स० १६७९ पीठस्थल पिण्डोरीवाम पजाव) १४ ज०गु० श्रीअर्जुनाचार्यजी (अवतार शरद-पूर्णिमा १५४९ वि०सं मे सेती वेनी नेपाल मे साकेतवास वैशाख पूर्णिमा १६१५ वि०स० पीठ स्थल समुद्रकूप झंसी) १५ ज०गु० श्रीनारायणाचार्यजी (श्रीनाभाजी) (आविर्भाव वसन्त पञ्चमी १५८७ वि०सं० मे रामटेक महाराष्ट्र मे पीठस्थल रेवासा) १६ ज०गु० श्रीदामोदराचार्यजी (दुदुरामजी) (दीपावली १७५४ वि०स० मे कुरुक्षेत्र मे पीठस्थल रामतीर्थ पजाव मे) १७ ज गु श्रीलालतुरगीदेवाचार्यजी (अवतार माघ शु २ वि सं १४१२ मे कसूर पजाव मे साकेतवास १७१२ वि स पीठस्थल ध्यानपुर पजाब) १८ ज गु श्रीलाहारामाचार्यजी (अवडार कार्तिक शुक्ल ५ वि सं. १५४५ मे मेवाड राजस्थान मे साकेतवास आपाढ शुक्ल ११ वि स १६५० पीठस्थल अरणिया) १९ ज गु श्रीदिवाकराचार्यजी (अवतार वामन द्वादशी १५३५ वि स मे द्योसा राजस्थान मे साकेतवास १६१० वि स पीठ स्थल जामल द्यौसा) २० ज गु श्रीअग्रदेवाचार्यजी (अवतार फाल्गुन शुक्ल २ वि स १५५३ मे पीठस्थल रेवासा) २१ज गु श्रीहठीनारायणाचार्यजी (आविर्भाव माघ अमावस्या वि स १६०४ मे इगुरी इटावा मे साकेतवास श्रावण शुक्ल ७ वि सं १७०३ पीठस्थल वसो) २२ ज गु श्रीरामरामायणीदेवाचार्यजी (अवतार वैशाख कृष्ण ११ स १५७५ मे उज्जैन मे साकेतबास वै क्रु ११ स १६७५ पीठस्थल नासिक) २३ ज गु श्रीविजयरामाचार्यजी–श्रीरामरावलजी (अवतार नागपञ्चमी स १५१६ मे जहाजपुर मे साकेतवास चैत्र पूर्णिमा १६१६ स पीठस्थल खोड) २४ ज गु श्रीरामस्तम्भनाचार्यजी आविर्भाव वैशाख कृष्ण ११ पीठस्थल पिण्डदादनखा अभी पाकिस्तान मे) २५ ज गु. श्रीचतुर्भुजाचार्यजी (श्रीननतुलपीदासजी) (अवतार

गङ्गादशहारा सं १५५५ मे सोरो मे साकेतवास ज्येष्ठ शुक्ल २ स १६५७ पीठस्थल मुडिया-रामपुर उ प्र) २६ ज गु श्रीमुरारिदेवाचार्यजी (आविर्भाव माघ कृष्ण ११ स १५७० मे पाठक के पुरवा प्रयाग मे पीठस्थल दारागञ्ज) २७ ज गु श्रीमलूकदासजी (अवतार वैशाख कृष्ण ५ सं १६३१ मे कडामनिकपुर मे पीठस्थल जगन्नाथपुरी) २८ ज गु श्रीभृङ्गिदेवाचार्य (भडगिदेवा-चार्य)जी (पौष शु०१५ जन्मस्थल कुरुक्षेत्र पीठस्थल आगरा) २९ ज गु, श्रीराघवेन्द्राचार्य (खोजी) जी (मोर्गशीर्ष शु० १५ पीठ स्थल खोजी की पालडी) ३० ज गु, श्रीपरमानन्दाचार्यजी (पूर्ण वैराठि) जी (ज्ये० शु० १० पीठस्थल गङ्गादासजी की वडीशाला ग्वालियर) ३१ ज गु श्रीकालू-रामाचार्यजी (आविर्भाव वसन्तपञ्चमी स १६४० मे पूरी मे साकेतवास फाल्गुन शुक्ल १५–१७-४१ सं पीठस्थल कटक) ३२ ज गु श्रीराघवचेतनाचार्यजी (अवतार श्रावणी स १५५० मे साकेतवास अक्षय तृतीय स १६६० पीठस्थल देव प्रयाग) ३३ ज गु श्रीकेवलरामाचार्य (कूबा) जी (आविर्भाव वैशाख शुक्ल ११ सं १५४५ मे ब्रजवोरनी मे साकेतवास भाद्र शुक्ल ११ सं १७२५ मे पीठ स्थल झीथडा) ३४ ज गु श्रीरामरंगिदेवाचार्यजी (अवतार विजयादशमी स १६५२ मे नन्दिग्राम मे साकेतवास वैशाख शुक्ल ५ स १७५७ पीठस्थल काशी गङ्गातट मे) ३५ ज गु श्रीभावानन्दाचार्यजी (आविर्भाव वेशाख कृष्ण ६ स १३७६ मे मिथिला मे तिरोभाव ज्येष्ठ पूर्णिमा स १५३९ मे पीठस्थल गढमुक्तेश्वर) ३६ ज गु श्रीअनुभवानन्दाचार्यजी (आविर्भाव वसन्त पञ्चमी स १५०३ मे तिरोभाव चै० शु० ९ काशी मे पीठस्थल श्रीबालानन्द मठ जयपुर)

पश्चिमाम्नाय श्रीरामानन्दाचार्य पीठ की परम्परा निम्नप्रकार से है। पूर्व विवरणानुसार आनन्दभाष्यकारजी २२वे आचार्य है। ज०गु० श्रीभावानन्दाचार्यजी २३वे तथा ज०गु० श्रीअनुभवानन्दाचार्यजी २४वे है। २५वे ज०गु० श्रीविरजानन्दाचार्यजी (श्रावण शु० ९ वि १५४० वरसाना) २६ ज०गु० श्रीआशारामाचार्यजी (हाथीरामजी) (का०शु० १२ वि० १५६५ जन्मस्थल नागौर राजस्थान) २७ ज गु श्रीरामभद्राचार्यजी (आ भा वैशाख पूर्णिमा १७३३ तिरोभाव माघ पूर्णिमा १७८९ वि सं जन्मस्थल कन्दरामनिक्कातंजौर) २८ ज गु श्रीरघुनाथाचार्यजी (श्रावण अमावास्या १७५७ वि सं मे अवतार तिरोभाव ऋषि पञ्चमी १८०७ जन्म स्थल लखना इटावा) २९ ज०गु० श्रीविश्वम्भराचार्यजी (आविर्भाव चैत्रकृष्ण तृतीया १७७७ वि स तिरोभाव ज्येष्ठ शुक्ल दशमी १८२७ वि सं जन्मस्थल पूना) ३० ज०गु० श्रीराघवेन्द्राचार्यजी (आविर्भाव चैत्र शुक्ल पञ्चमी १८०७ वि सं तिरोभाव १८३८ वि स जन्मस्थल सिरसी विहार) ३१ ज०गु० श्रीवैदेहीवल्लभाचार्यजी (ज०मा०ष्टमी १८११ वि स तिरोभाव मौनी अमावास्या १८७१ वि स जन्मस्थल पोखरा नेपाल) ३२ ज०गु० श्रीकोसलेन्द्राचार्यजी (आविर्भाव वटसप्तमी १८३५ वि स तिरोभाव १८८५ वि सं जन्मस्थल रायगढ) ३३ ज०गु० श्रीरामकिशोराचार्यजी (आविर्भाव अनन्त चतुर्दशी १८५१ वि सं तिरोभाव भाद्रपद चतुर्थी १९११ वि,स जन्मस्थल भुवनेश्वर) ३४ ज० गु० श्रीजानकीनिवासाचार्यजी (आविर्भाव माघ कृष्णसप्तमी १८५१ वि सं तिरोभाव श्रावण शु० सप्तमी १९१५ वि स० जन्मस्थल मलेरकोटला पंजाब) ३५ ज०गु० श्रीसाकेतनिवासाचार्यजी (आवि-र्भाव चैत्र शु० १–१८६७ वि स तिरोभाव ज्येष्ठशुक्ल चतुर्थी १९३५ वि सं जन्मस्थल मण्डी) ३६ ज०गु० श्रीजानकीजीवनाचार्यजी (आविर्भाव नागपञ्चमी १८७५ वि स तिरोभाव १९०२ श्रावण कृष्ण द्वितीया जन्मस्थल शुचीन्द्र केरल) ३७ ज०गु० श्रीभरताग्रजाचार्यजी (अवतार माघी अमावास्या १८४८ वि स साकेतवास वैशाख शुक्ल द्वितीया १९२३ बि स जन्मस्थल कुण्डराग्राम

विदर्भ) ३८ ज०गु० श्रीहनुमदाचार्यजी (अवतार अक्षय तृतीया १९०७ वि सं साकेतवास कार्तिक शुक्ल एकादशी १९७८ जन्म स्थल राजपीपला) ३९ महामहोपाध्याय ज०गु० श्रीरामानन्दाचार्य रघुवराचार्यजी वेदान्तकेसरी (अवतार विजयादशमी वि स १९४३ साकेतवास वसन्तपञ्चमी २००७ वि स अवतारस्थल मुरादाबाद) ४० ज०गु० श्रीरामानन्दाचार्यरामप्रपन्नाचार्यजीयोगीन्द्र काशी मे प्रधान आचार्यपीठ आनन्दभाष्यकार ज०गु० श्रीरामानन्दाचार्यपीठ के संस्थापक अवतार श्रीरामनवमी वि स १९४९ मे वाराणसी मे ४१ स्वमी रामेश्वरानन्दाचार्य ज म वैशाख शुक्ल ३-२८ गते १९८८ वि सं जन्मस्थलपर्वनेपाल ।

अनी तीन है=१ निर्वाणी २ निर्मोही तथा ३ दिगम्बर । अखाडा सात है=१ दिगम्बर २ निर्वाणी ३ निर्मोही ४ खाकी ५ निरालम्बी ६ सन्तोषी ७ महानिर्वाणी । श्रीरामानन्द सम्प्रदाय की निधिस्वरूप विभिन्न खालसाओ का चमत्कार कुम्भमेलो के अवसर पर देखा जा सकता है ।

* संक्षिप्त श्रीमन्त्रराजजपविधि *

शौचादि से निवृत्त होकर पूर्व अथवा उत्तर के तरफ मुहकर पवित्र आसन पर बैठकर श्रीराम रज से ऊर्ध्वपुण्ड्रतीलक कर ॐ रामाय नम ॐ रामभद्राय नम ॐ रामचन्द्राय नम इन मन्त्रो को बोल कर तीन वार आचमन कर ॐ रघुनन्दनाय नम इस मन्त्र को बोल कर हाथ धोवे तव ॐ नमो भगवते रघुनन्दनाय रक्षोघ्नविशदाय मधुरप्रसन्नवदनाय अमिततेजसे वलाय रामाय विष्णवे नम क्ली तेजसे रा तारक ब्रह्म स्वाहा' इस मन्त्र से जल अभिमन्त्रित कर पडक्षर महामन्त्र को पढ कर शिर पर उस जल को छिट के पुन हाथ मे जल लेकर नीचे लिखा विनियोग पढ कर जल छोडदे- ॐ अस्य श्रीराम पडक्षर महामन्त्रराजस्य श्रीसीता ऋषि गायत्री छन्द श्रीरामो देवता रा बीज नम शक्ति रामाय कीलक श्रीसीतारामप्रीत्यर्थे जपे विनियोग । तब न्यास करे

ऋषिन्यास-ॐ श्रीसीता ऋषये नम शिरसि । ॐ गायत्री छन्दसे नम मुखे । ॐ श्रीरामो देवतायै नम हृदि । ॐ रा बीजाय नम पादयो । ॐ रामाय कीलकाय नम सर्वांगे । कर न्यास-ॐ रा अगुष्ठाभ्या नम ॐ री तर्जनीभ्या नम । ॐ रू मध्यमाभ्या नम ॐ रै अनामिकाभ्या नम । ॐ रौ कनिष्ठिकाभ्या नम । ॐ र करतलकरपृष्ठाभ्या नम । अगन्यास- ॐ रा हृदयाय नम । ॐ री शिरसे स्वाहा । ॐ रू शिखायै वषट् । ॐ रै कवचाय हूम् । ॐ रौ नेत्राभ्या बौषट् ॐ र अस्त्राय फट् । मन्त्रागन्यास ॐ रा नम मूर्ध्नि । ॐ रामाय नम नाभौ।



ॐ नमो नम पादयो । ॐ रा बीजाय नम दक्षिणस्तने । ॐ नम शक्तये नम वामस्तने । ॐ रामाय कीलकाय नम हृदि । तब यथा शक्ति प्राणामाय कर इस श्लोक को बोलते हुये सर्वेश्वर श्रीरामजी का ध्यान करे-

नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गंसीतासमारोपितवामभागम् ।
पाणौ महासायकचारुचाप नमामि रामं रघुवंशनाथम् ॥

इसके बाद 'ॐ दाशरथायविद्महे सीतावल्लभाय धीमहि तन्नो राम प्रचोदयात्' इस श्रीराम गायत्री मन्त्र का वारह वार जप करे अनन्तर श्री मन्त्रराज-

॥ रां रामाय नमः ॥

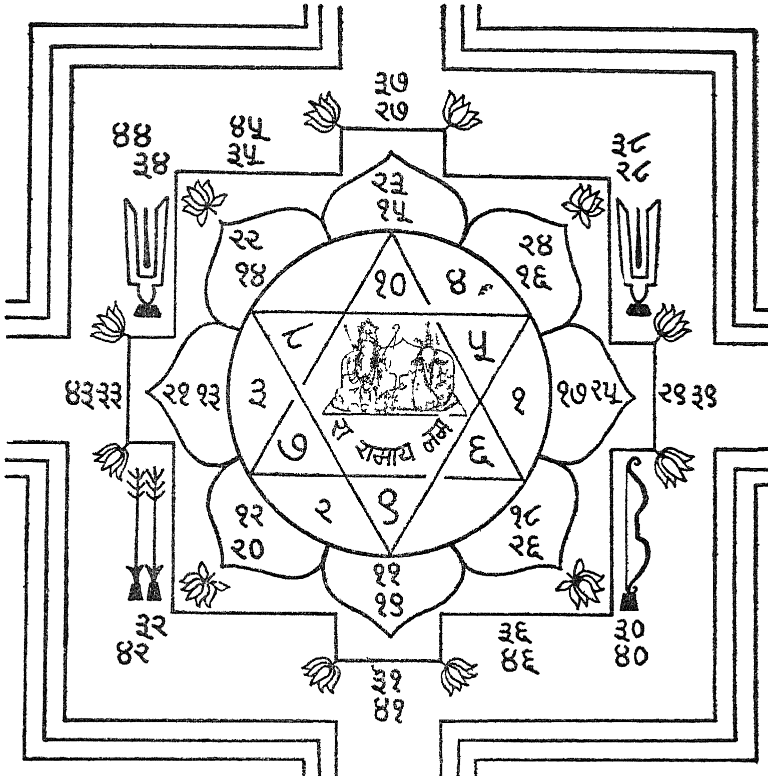
का कम से कम तीन माला जप कर श्रीराम गायत्री का १२ बार जप करे । पुन यथा शक्ति प्राणायाम कर १–श्रीराम शरण मम २–ॐ श्रीमद्रामचन्द्रचरणौ शरण प्रपद्ये 'श्रीमते रामचन्द्राय नम ।

ॐ सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते ।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम ॥

इन तीन मन्त्रो को यथा शक्ति जप करते हुये सर्वेश श्रीराम चन्द्रजी को सास्टाग दण्डवत् कर—

श्रीरामं जनकात्मजामनिलजंवेधोवशिष्टावृषी
योगीशं च पराशरं श्रुतिविदंव्यासंजिताक्षंशुकम् ।
श्रीमन्तं पुरुषोत्तमं गुणनिधिं गङ्गाधराद्यान् यतीन्
श्रीमद्राघवदेशिकञ्चवरदंस्वाचार्यवर्यं श्रये ॥

इस गुरु परम्परा मन्त्र को बोलते हुये पूर्वाचार्यो का स्मरण पूर्वक श्रीगुरु देव को साष्टाग दण्डवत् प्रणाम करे ।



 सर्वकामनाप्रद श्रीरामयन्त्र

प्रस्तुत श्रीरामार्चन पद्धति जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी प्रणीत श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर का परिशिष्ट भाग है। यह जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्यपीठ पत्रिका के वर्ष ७ अक १ मे प्रकाशित हुआ था। वह केवल मूल मात्र होने से सामान्य माधको को सेवा मे असौविध्यानुभव के कई साग्रह पत्र सहृदय श्रीरामार्चा ज्ञानपिपासुजनो के आये अत अति संक्षिप्तराष्ट्रभाषा हिन्दी के साथ इसे पुन प्रकाशिक किया जा रहा है। जगदाचार्य श्री तथा श्रीरामानन्दसम्प्रदाय के विषय मे संक्षिप्त जानकारी के लिये सामयिक के रूप मे परिचय कराने का प्रयत्न किया गया है।

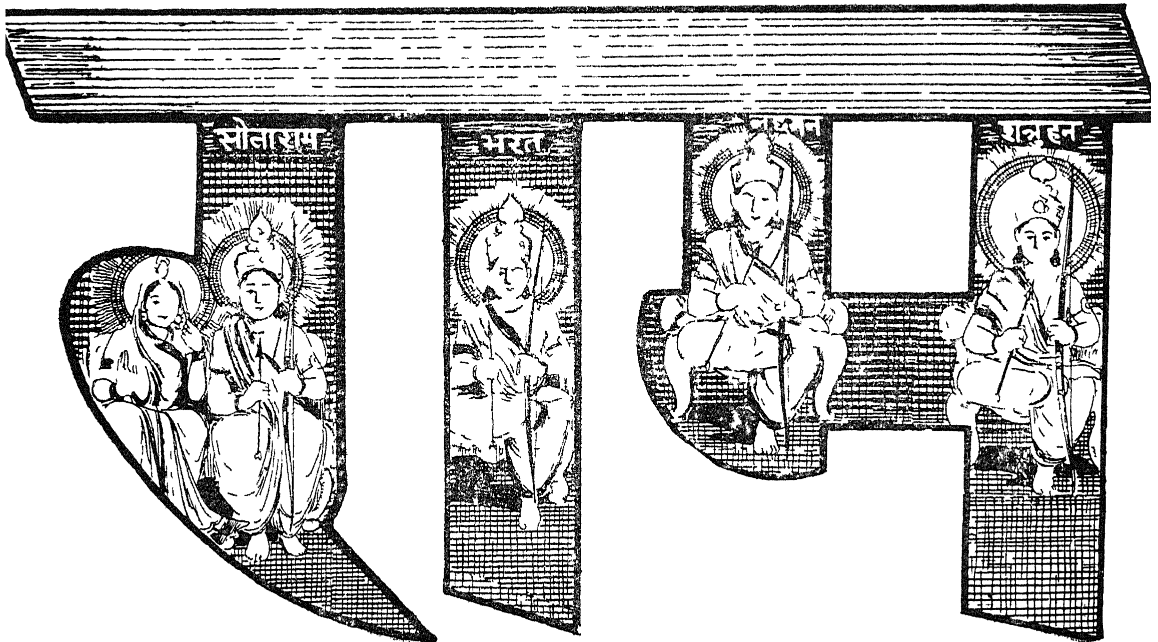
कई एक सम्भ्रान्त व्यक्तियो का कहना है कि यह श्रीरामार्चन पद्धति आचार्य श्री की अलगकृति है तथैव अलग से छपी भी है। क्रिया सौकर्यार्थ अलग छापना उचित भी है। यहाँ भी लाघवात् मात्र पद्धति ही छापी जा रही है पर यह आचार्य श्री प्रणीत श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर का परिशिष्ट भाग ही है स्वतन्त्र प्रबन्ध नही। आपने श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर के 'धर्म एकोऽस्ति कश्च' ११४ के उत्तर स्वरूप पाचवे परिच्छेद मे अर्चावतार का निरूपण कर १३वे तथा १४वे श्लोको के द्वारा पूजा विधान का उपदेश किया है जो षोडशोपचार पूजन का नाममात्र निर्देश है अत परिशिष्टतया पद्धति का उपदेश हुआ है विशदर्थ ज्ञापन के लिये जो पूर्वाचार्य जगद्गुरु श्रीसदानन्दाचार्यजी से उपदिष्ट पूजाविधान से सर्वतो भाव से मेल खाता है। आशा है इस अल्पप्रयत्न से साधको को यत्किंचित् तुष्टि होगी। सती अवसरे विशदीकरण का प्रयत्न किया जायगा।

सुधी जनविधेय

स्वामी रामेश्वरानन्दाचार्य

पश्चिमाम्नाय श्रीरामानन्दाचार्य पीठाधीश्वर

विश्राम द्वारका श्रीशेषमठ पो० शींगडा–पोरबन्दर ॥ श्रीकोसलेन्द्रमठ अहमदाबाद–७



श्रीसीतारामाभ्या नम

श्रीहनुमते नम

प्रस्थानत्रयानन्दभाष्यकाराय नमोनम

जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य प्रणीत

श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर परिशिष्ट

श्रीरामार्चनपद्धतिः

तदित्थं मुमुक्षुरुपासको मुहूर्तमात्रावशिष्टाया रात्रौ प्रतिबुध्यनिरालसः प्रातः समुत्थाय धौतपाणिपादः प्राङ्मुखः स्थित्वा—

हरिः ॐ सचन्तयदुषसःसूर्येणचित्रामस्य केतवोराम विन्दन्'
आयन्नक्षत्रं ददृशेदिवो न पुनर्यतोनकिरद्धानुवेद ॥

हरिः ॐ अर्वाचीसुभगे ? भव सीते ? वन्दामहेत्वा ।
यथानः सुभगाऽससि यथानः सुफलाऽससि ॥

इत्यादिकमनुसन्धाय बहिर्निर्गत्य दक्षिणकर्णे यज्ञसूत्रं संवेष्ट्य उत्तराभिमुखो भूत्वा मूत्रपुरीषोत्सर्जनं कुर्यात् । ततोऽतन्द्रितो गन्धलोपकरं शौचं विधायसप्तकृत्वः सजलामलकमात्रमृत्तिकाभिर्गुदप्रक्षालनं कुर्यात् । त्रिः सजलंमृत्तिकाभिर्लिङ्गशौचं च ततो दक्षिणवामहस्तौ प्रत्येकं दशकृत्व सजलंमृत्तिकाभिः प्रक्षाल्यदक्षिणबामपादौ च पञ्चकृत्वस्ताभिः प्रक्षाल्यषोडशकृत्वागण्डूषमाचरेत् । ततोद्विराचम्य शरीरशुद्ध्येस्नानं प्रोक्षणादिकं वा यथाशक्तिविधाय गुरुपरपरानु सन्धानपूर्वकतत्तन्मन्त्रानुच्चार्योर्द्ध्वपुण्ड्रान्धृत्वा पुनः स्वाचार्यं ध्यात्वा गुरुपरपरानुसन्धानपूर्वकं रहस्यत्रयं चानुसन्धाय पश्चात् सन्ध्यावन्दनादिकर्मतत्प्रयोगविधिना भगवदाज्ञया भगवत्कैकर्यत्वेन च कुर्यात् ।

पश्चिमाम्नाय श्रीरामानन्दाचार्यपीठाधीश्वर

卐 स्वामीरामेश्वरानन्दाचार्य 卐

प्रणीता गङ्गा

सीताकान्तसमारम्भां रामानन्दार्यमध्यमाम् । रामप्रपन्नगुर्वन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम् ॥

अनादि काल से ससार सागर मे स्वकर्म जालाभिभूत होकर संसरणशील जीवों के उद्धार हेतु जगद्गुरु श्रीसुरसुरानन्दाचार्यजी ने जगदुद्धार हेतु अवतरित "रामानन्द स्वयं राम प्रादुर्भूतो मही तले" इस आगम शास्त्र बोधित करुणाशील जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराज से "तत्वं किम्"

१।४ आदि दश प्रश्न किये थे । उन प्रश्नों मे पाचवा प्रश्न "धर्म एकोऽस्ति कश्च" १।४ श्री वैष्णवमताब्जभास्कर के इस पाचवे प्रश्न के जवाब मे आनन्द भाष्यकार महाप्रभुजी ने सर्वधर्म मुख्यात्मक श्रीवैष्णवधर्म निरूपण प्रसग मे अर्चावतार की चर्चा 'अर्चावतारोऽपि च" ५।११ तथा 'स्वयं व्यक्तश्च" ५।१२ इन श्लोको से कर–

"आवाहनासनाभ्या च पाद्यार्घ्याचमनैस्तथा ।
स्नानवस्त्रोपवीतैश्च गन्धपुष्पसुधूपकैः ॥५.१३
दीपनैवेद्यताम्बूलप्रदक्षिणविसर्जनैः । षोडशार्चाप्रकारैस्तमेतैरर्चेत्सदासुधीः ॥५.१४"

का उपदेश किया। अर्थात मुमुक्षु भजनानन्दी महापुरुष प्रात उठकर के शौचादि स्नानान्त प्रात्यहिक कर्मकर लेने के बाद समार्जित पूजा स्थानादि मे उपस्थित होकर आवाहन आसन पाद्य अर्घ्य आचमन स्नान वस्त्र यज्ञसूत्र गन्ध पुष्प धूप दीप नैवेद्य ताम्बूल प्रदक्षिणा और विसर्जनान्त षोडशोपचार विधि से समन्त्रक सर्वेश्वर श्रीरामजी की सर्वदा पूजा करे। पूजक यदि द्विज होतो पुरुषसूक्त विधान से पूजन करे द्विजेतर होतो पौराणिक विधि से नियतरूप से अर्चना करे । इस प्रकार अति सक्षिप्तरूप से अर्चाश्रीविग्रह सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी की सेवा का उपदेश महा प्रभुजी ने किया। पर इस सूत्रात्मक उपदेश से सामान्य जन जिस प्रकार से सर्वेश्वरजी की सेवा होनी चाहिये उस प्रकार नही कर पायेगे ऐसा विचार कर कारुणिक आचार्य श्रीने श्रीमुख से ही 'श्रीरामार्चपद्धति' का उपदेश किया। जो कुछ विस्तृत तथा गद्य पद्य मय होने से स्वमुखारविन्द से ही उपदिष्ट श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर के खिल-परिशिष्ट भाग के रूप मे प्रसिद्ध है । कई एक व्यक्ति इस श्रीरामार्चनपद्धति को भाष्यकार की अलग कृति के रूप मे परिगणित करते है क्रिया सौविध्य के लिये अलग से मुद्रित भी है पर यह है एक ग्रन्थ भास्कर का परिशिष्ट भाग ही महभारत का शेषभाग हरिवश के समान । अत आचार्य प्रवर–"तदित्थम्" इत्यादि से पूर्वोपदिष्ट प्रसंगानुसन्धानपूर्वक उपदेश प्रारभ कर रहे है ।

भवसागर से मुक्ति की इच्छा वाले साधक को चाहियेकि दो घडी रात्रि शेष रहते ही प्रात काल मे सर्वथा आलस्य रहित होकर उठ जाय। अनन्तर हाथ पैर धोकर यथेच्छ कुल्लाकर पूर्व-दिशा के तरफ मुख कर बैठ जाय। तब अत्यन्त तन्मयता से–"हरि ॐ सचन्त' तथा "अर्वाची" इन मन्त्रो का तथा प्रात स्मरण के पाच श्लोको का मधुर स्वर से अर्थानुसन्धानपूर्वक कीर्तन करे। अनन्तर बाहर दूर जाकर दाहीने कान मे यज्ञसूत्र को वेष्टित-चढाकर उत्तराभिमुख होकर मल-मूत्रका त्याग करे । पुन शौच तथा दुर्गन्ध निवारणार्थ आलस्य रहित होकर आवले के दाने के बराबर विशुद्ध मिट्टी तथा शुद्ध जल से प्रत्येकबार सात बार गुदा को तीन बार लिग को विधिवत् प्रक्षालन कर फिर पूर्व क्रम से ही दशबार दोनो हाथ तथा पाचबार दोनोपैर का प्रक्षालन करे । अनन्तर शुद्ध जल से सोलह कुल्ला करके शुद्ध हो जाय । इसके बाद दो बार आचमन कर देह शुद्धि के लिये विशुद्ध जल से स्नान करे–देश काल स्वास्थ्यादि के आनुकूल्य से प्रोक्षणादि को सम्पन्न करे। इसके बाद "श्रीराम जनकात्मजामनिज वेधो वशिष्ठावृषी यागीश च पराशर श्रुतिविद व्यास जिताक्ष शुकम् । श्रीमन्त पुरुषोत्तम गुणनिधि गङ्गाधराद्यान्यतीन् श्रीमद्राघवदेशिकञ्च वरद स्वार्यवर्य श्रये ॥ इत्यादि समस्त पूर्वाचार्यो को अपने आचार्य-अपने दीक्षा गुरु तक सभी का अनुसन्धान सादर स्मरण कर उन-उन मन्त्रो के उच्चारण पूर्वक बारह उर्ध्व पुण्ड्रों को धारण करके अपने आचार्य-दीक्षागुरु तथा आचार्य परपरा के–

सीताकान्तसमारम्भां रामानन्दार्यमध्यमाम् ।
अस्मदाचार्यपर्यन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम् ।।

इस श्लोक के स्मरणपूर्वक रहस्यत्रय–मन्त्रराज षडक्षर चरम मन्त्र तथा शरणागति मन्त्रों का सार्थ स्मरण कर अनन्तर भगवान की आज्ञा से सर्वेश्वर श्रीरामभद्रजी का कैङ्कर्य बुद्ध्या सन्ध्या वन्दनादि नित्य कर्मों को शास्त्रीय विधान के अनुसार सम्पादन करे ।

ततो दिव्यमङ्गलविग्रहस्यसाङ्गसायुधसपरिवारस्य श्रीसीतालक्ष्मणसमेतस्य भगवतो रामभद्रस्य मनसैव एकैकमङ्गं ब्रह्मसृष्टिलोकोत्तरसौन्दर्यलावण्याढ्यं ध्यायन् दिव्यैः षोडशोपचारैरर्चनं विदध्यात् ।

इसके बाद प्रत्येक अंग प्रत्येक आयुध–सस्त्रादि परिवार सर्वेश्वरी श्रीसीताजी तथा श्रीलक्ष्मणजी से सम्पृक्त दिव्य मंगल श्रीविग्रह सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी के सर्वलोकोत्तर सौन्दर्यलावण्य से युक्त पृथक् पृथक् अंग का मन से ही सम्यक् ध्यान करते हुये दिव्य षोडशोपचार से मानसिक अर्चना करे ।

माध्याह्निकानुष्ठानसमयेऽपि भगवच्चरणारविन्दं स्वाचार्यचरणारविन्दं च ध्यायन् स्नात्वा भगवद्विभूतिर्भगवच्छरीरभूतान् देवर्षिपितॄन् ध्यात्वा संतर्प्य च धौतवस्त्रादिकं परिधायाचम्य पूर्ववदेवोर्ध्वपुण्ड्रादिकं विधायैवमेवभगवदाराधनत्वेनैव माध्याह्निकानुष्ठानमपि कुर्यात् ।

भगवान के मध्याह्निक आराधन के समय में भी सर्वेश्वर श्रीरामभद्रजी के श्रीचरण कमल तथा स्वाचार्य देव के चरणकमलों का ध्यान करते हुए स्नान क्रिया सम्पादन करके सर्वाधार श्रीराम जी की विभूति तथा शरीर भूत देवताओं और पितरों का ध्यान पूर्वक तर्पण करे । बाद में स्वच्छ वस्त्र धारण कर आचमन कर के पहले बताए गए विधि के अनुसार ही ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करे । इसी प्रकार से सर्वदा सर्वेश्वर श्रीरामजी की आराधना बुद्ध्या मध्याह्निक क्रिया का सम्पादन करे ।

अथैवमर्चनयोग्यो मुमुक्षुरुपासको भगवन्मन्दिरं प्रविश्य
श्रीरामंजनकात्मजामनिलजं वेधोवसिष्ठावृषी
योगीशञ्चपराशरं श्रुतिविदं व्यासंजिताक्षं शुकम् ।
श्रीमन्तं पुरुषोत्तमं गुणनिधिं गङ्गाधराद्यान् यतीन्
श्रीमद्राघवदेशिकञ्च वरदं स्वाचार्यवर्यंश्रये ।।

इत्यादि श्रीगुरुपरम्परादिकमनुसन्दधत्साष्टाङ्गत्वेन दण्डवद्भगवन्तं प्रणम्य, अर्चनपात्रादीनि संमृज्य शुद्धजलेन संप्रक्षाल्य समर्चनीयदेवस्य दक्षिणपार्श्वे समुपविश्य पूर्वदिनसमर्पितगन्धमाल्यतुलसीदलादिकमपनीयपीठोपरिसन्निवेश्य आग्नेयादारभ्य प्रदक्षिणक्रमेण, अर्घ्यपाद्याचमनस्नानपात्राणि संस्थाप्य तेषां मध्ये शुद्धजलपात्रं निधाय ।

पूर्व में प्रदर्शित क्रिया के द्वारा सर्वेश श्रीरामजी की अर्चना के योग्य हुए सायुज्य मोक्ष की इच्छावाले उपासक को भगवान् के मन्दिर में प्रवेश कर श्रीरामजी श्रीजानकीजी श्रीहनुमानजी श्रीब्रह्माजी

श्रीवशिष्ठऋषिजी योगियो मे श्रेष्ठ श्रीपराशरजी वेदज्ञाता श्रीव्यासजी जितेन्द्रिय श्रीशुकदेवजी सर्वगुणो के खजाने ऐश्वर्यशाली श्रीपुरुषोत्तमाचार्यजी बोधायन यतियो मे श्रेष्ठ श्रीगङ्गाधराचार्यजी आदि समस्त पूर्वाचार्यो के साथ अपने गुरुदेव वरदाता श्रीमान् जगद्गुरु श्रीराघवानन्दाचार्यजी का मै आनन्दभाष्यकार जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य आश्रय लेता हूँ अर्थात् समस्त पूर्वाचार्यो को सादर दण्डवत् प्रणाम करता हूँ ।

श्लोक के आदि शब्द से श्रीसदानन्दाचार्यजी श्रीरामेश्वरानन्दाचार्यजी श्रीद्वारानन्दाचार्यजी श्रीदेवानन्दाचार्यजी श्रीश्यामानन्दाचार्यजी श्रीश्रुतानन्दाचार्यजी श्रीचिदानन्दाचार्यजी श्रीपूर्णानन्दाचार्यजी श्रीश्रियानन्दाचार्यजी तथा श्रीहर्यानन्दाचार्यजी का ग्रहण होता है । क्योकि श्रीआचार्यजी के परम्परा मे श्रीरामजी से लेकर उनके गुरुदेव जगद्गुरु श्रीराघवानन्दाचार्यजी तक २१ आचार्य है। अत आचार्य प्रवर आनन्दभाष्यकार श्रीरामानन्दाचार्यजी श्रीसम्प्रदाय (श्रीरामानन्द सम्प्रदाय) के २२वे आचार्य है। इत्यादि श्रीगुरु परम्परादिक का अनुसन्धान करते हुये समाराधनीय भगवान को सादर साष्टाग दण्डवत् प्रणाम कर के पूजा के पात्रो को मलकर शुद्ध जल से धोकर स्वच्छ करे अनन्तर समाराधनीय देव के दाहिने भाग मे बैठकर पहले दिन के चढे पुष्प चन्दन गन्ध तुलसीदल माला आदि को वहाँ से हटाकर पीठ बाजोट—डाली आदि पर रखकर एक तरफ कर दे। अनन्तर अग्नि कोण से प्रारम्भ कर के प्रदक्षिणा क्रम से अर्घ्य पात्र पाद्यपात्र आचमनीयपात्र स्नानीयपात्रो का स्थापन कर उनके मध्य मे शुद्ध जलपात्र का स्थापन करे ।

तत्रार्घ्यपात्रे सिद्धार्थाक्षतकुशाग्रतिलयवगन्धफलपुष्प सहित जलं निक्षिपेत् १ । दूर्वाविष्णुपर्णीपद्मश्यामाकसहित जलं पाद्यपात्रे निक्षिपेत् २ । एलालवङ्गकक्कोलजातिसहितं जलमाचमनपात्रे निक्षिपेत् ३ । कोष्टमाजिष्ठहरिद्रामुस्ताशैलेयचम्पकवचाकर्पूरलामज्जकसहितं जलं स्नानपात्रेनिक्षिपेत् ४

अनन्तर अर्घ्यपात्र मे सरसो अक्षत कुशाग्र तिल यव गन्ध फल फूल सहित शुद्ध छना हुआ जल डाले। पाद्यपात्र मे दुर्वा विष्णुपर्णी कमल तथा श्यामाक—सावा सहित जल डाले। आचमनीय पात्र म इलायची लवग, ककोल तथा जायफल सहित जल डाले । स्नानीयपात्र मे कूठ मजीठ हल्दी मोथा छडीला चम्पा वच कपूर तथा लामज्जक—खस सहित जल डाले ।

तदेतदभावेतु तद्वाक्योच्चारणपूर्वकं तुलसीदलमेव तत्तत्तोयपात्रे निक्षिपेत्। श्री मन्त्रराजेन प्रत्येकं तत्तत्पात्रं संमन्त्र्य सुरभिमुद्रां च प्रदर्श्य बामपार्श्वे पूर्णकुम्भं निधाय अन्यानि पूजाद्रव्याणि दक्षिणपार्श्वे च निधाय मनसा स्वाचार्यमर्घ्यादिभिः सम्पूज्य तद्धस्तेनैवाराधनं स्वीकार्यमिति भगवतेविज्ञाप्य प्राणायामत्रयं च कृत्वा भगवदुत्थापनाय भगवन्तं प्रार्थयेत् ।

पूर्वोक्त उन सभी वस्तुओ के अभावमे उन उन वस्तुओका नाम लेकर अर्घ्यादि पात्रों मे केवल तुलसी सहित जलडाले । इसके बाद अर्घ्यादि सभी पात्रो को श्रीतारक मन्त्र से संमन्त्रित करके सुरभिमुद्रा दिखाकर अपनी वाम भाग मे शुद्ध जल से भरा पात्र तथा अन्य पूजन की समस्त सामग्री को अपनी दाहिने भाग मे रखकर अपने आचार्यजी की अर्घ्यादि से मानसिक

पूजनकरके श्रीओचोर्य देव के द्वारा ही मानसिक भावना से पूजन वस्तुओं को आराध्य देव को समर्पण करे। तात्पर्य यह कि भगवान्? मैं तो अल्पज्ञ हूं अत आपकी आराधना मे पूर्णतया असमर्थ हूं अत हमारे श्रीआचार्य देवके द्वारा ही आप मेरी आराधना को स्वीकार करें। इस प्रकार प्रार्थना करके तीन वार प्राणायाम करके आराध्यदेव को शयन से उठाने के लिये इन निम्नलिखित श्लोको द्वारा अतिविनम्र भाव से प्रार्थना करे।

कौशल्यासुप्रजाराम? पूर्वासन्ध्या प्रवर्तते। उत्तिष्ठनरशार्दूल कर्त्तव्यं दैवमाह्निकम्।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठभद्रंते त्यजनिद्रा जगत्पते?। त्वदीयोत्थानमात्रेण उत्थितं भुवनत्रयम्।२।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठश्रीराम? भद्रं ते करुणानिधे?। उत्तिष्ठ जानकीकान्त? त्रैलोक्य मङ्गलंकुरु
अप्रमेयकृपासिन्धुस्वरूपे? रामसुप्रिये?। सुप्रभातानिशा सीते? श्रीरामाभिमुखीभव।४।
लक्ष्मणोत्तिष्ठ भद्रन्ते रामकैङ्कर्यतत्पर?। सौमित्रे? वीररामस्यप्राणप्रियतरप्रभो?।५।

श्रीभगवद्रामचन्द्राभिमतानुरूपगुणविभवैश्वर्यशीलाद्यनवधिकातिसयासंख्येयकल्याणगुणगणा पद्मवनालयां पद्माननां पद्मदलायताक्षीं नित्यानपायिनीं भगवतीं निरवद्यां श्रीसीतां श्रीरामदिव्यमहिषीमखिलजगन्मातरमशरणशरण्यामनन्यशरणः शरणमहं प्रपद्ये।

स्वशेषभूतेन मया स्वीयैः सर्वपरिच्छदैः।
विधातुं प्रीतमात्मानं देवः प्रक्रमते स्वयम्॥

इति श्लोकञ्चानुसन्धाय पञ्चोपनिषन्न्यासं कुर्यात्।

अनन्य पतिव्रता श्रीकौशल्यादेवी के सुपुत्र सर्वेश्वर हे रामजी प्रातकालिन सन्ध्या का समय हो रहा है अत हे नरशार्दूल श्रीरामजी आप शैया से उठे कारण यह कि प्रातकाल हो रहा है अत देवाराधनादि दैनिक क्रियाओ को सम्पादन करना चाहिये। उन दैनिक क्रियाओ को सम्पादनार्थ आपका शरणापन्न यह सेवक उपस्थित है अत सर्वेश्वर श्रीरामजी? आप जागें।१। हे जगत्पति श्रीरामजी? आप निद्रा को त्याग कर जग जाय सुकोमल शैया को त्याकर उठ जाय हे जगन्नियन्ता? आप का कल्याण हो। प्रभो? आपके उत्थान—यानी उठ जाने से तीन लोक उठ जायगा अर्थात् तीनो लोकके जीव जगकर अपनी अपनी नित्यनैमित्तिक प्रवृत्तियो मे लगजायेगे अत लोगो की सत्प्रवृत्ति के लिये आप जागे ॥२॥ हे श्रीरामजी? आप उठ जाय हे करुणा के समुद्र श्रीरामचन्द्रजी आप जग जाय प्रभो? आपका कल्याण हो। हे जानकीकान्त श्रीरामजी? आप उठ जाय। उठ कर तीनो लोको का कल्याण करे ॥३॥ अमित कृपा के सिन्धु स्वरूपा हे श्रीजानकीजी? हे श्रीराम प्रिया श्रीसीता जी? प्रातकाल हो गया है। अत सर्वेश्वरी हे श्रीसीता जी? उठकर नित्यकर्मो से निवृत्त होकर सर्वेश श्रीरामजी के अभिमुख सम्मुख हो जाय तथा श्रीरामचन्द्रजी की आज्ञा के अनुसार सव कृत्य सम्पादन करावे ॥४॥ हे श्रीलक्ष्मणजी? आप उठ जाय सर्वेश्वर श्रीरामजी के कैंकर्य मे सर्वदा तत्पर रहनेवाले श्रीलक्ष्मणजी? आपका कल्याण हो। वीर व्रती श्रीरामजी के प्राण से भी प्रिय प्रभो? श्रीलक्ष्मण? हे सुमित्रानन्दन? आप जागे तथा श्रीरामजी के कैंकर्य मे सन्नद्ध हो जाय ॥५॥ अनन्त ऐश्वर्य शाली सर्वेश्वर श्रीरामजी के अनुरूप गुण विभव ऐश्वर्य आदि अनवधिकातिशय अर्थात् सर्वोत्कृष्ट परमावधि से रहित उत्कृष्टवाली यानी

सर्वोत्तम ऐश्वर्यवाली तथा असख्येय यानी अनन्त कल्याण गुण समुदायो से सम्पन्न तथा दिव्य कमलवनो मे आवासशील दिव्य कमल के समान मुखकमलवाली और दिव्य कमलदल पत्रके समान अति सुन्दर सर्वजन मोहक आखवाली तथा नित्य अनपायिनी अर्थात् अनश्वर सर्वदा सर्वकाल देश आदि मे एकरूपसे स्थिर रहनेवाली भगवती यानी उत्पत्ति प्रलय अगति गति विद्या अविद्या प्रभृति छ प्रकार के ऐश्वर्य से सम्पृक्त तथा निरवद्य यानी कर्म से होनेवाले सकोच विकाश आदि सर्व दोषो से सर्वदा रहित रहनेवाली सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी से सर्वदा अभिन्न रहने वाली श्रीरामजी की दिव्य पत्नी सर्वेश्वरी श्रीसीताजी जो सम्पूर्ण जगत की माता शरण रहित सब जीवो को अपने शरण मे रख कर सर्वदा के लिये अभय करने वाली सर्वेश्वरी श्रीसीताजी है उनके शरण मे अन्य शरण रहित मै जाता हूं अर्थात् अन्यशरण रहित शरणागत सब जीवो को ससार भय से मुक्त कर देनेवाली सर्वेश्वरी श्रीसीतजी के शरण मे मै जाता हूँ । सर्वेश्वर श्रीराम जी की आराधना करने मे मेरे जैसे अल्पज्ञ जीव की गति ही क्या अत परम कारुणिक सर्वशरण्य श्रीरामचन्द्रजी अपने शेष स्वरूप मेरे तथा श्रीरामजी के नित्य परिचारक नित्यमुक्त सेवको के द्वारा अपना अभीप्सित सम्पादन करने के लिये या मेरे जैसे ससार चक्र मे पतित जीव का उद्धार करने के लिये स्वय ही शुभ कार्यारम्भ कर रहे हे । इस प्रकार ऐकान्तिक रूप से अनुसन्धान—ध्यान करके पञ्चोपनिषद् वाक्योका न्यास करे । वे इस प्रकार से है—

ॐ पां नमः परायपरमेष्ठ्यात्मने नमः इति शिरसि ।१।

ॐ यां नमः पराय पुरुषात्मने नमः इति नासाग्रे ।२।

ॐ रां नमः पराय विश्वात्मने नमः इति हृदये ।३।

ॐ वां नमः पराय निवृत्त्यात्मने नमः इति गुह्ये ।४।

ॐ लां नमः पराय सर्वात्मने नमः इति पादयोः ।५।

ॐ पा नम पराय परमेष्ठ्यात्मने नम इस मन्त्र को बोल कर शिर का स्पर्श करना । ॐ या नम पराय पुरुपात्मने नम इस मन्त्र को बोलकर नाक के अग्रभाग का स्पर्श करना । ॐ रा नम पराय विश्वात्मने नम इस मन्त्र को बोकर हृदय का स्पर्श करना । ॐ वा नम पराय निवृत्त्यात्मने नम इस मन्त्र को बोलकर गुह्य—गुप्ताग का स्पर्श कर हाथ धोवे । ॐ ला नम पराय सर्वात्मने नम इस मन्त्र को बोलकर दोनो पैरो का स्पर्श करना ।

पञ्चोपनिषद् न्यासं विधाय श्रीमन्त्रराजन्यासं कुर्यात् ॐ रां ज्ञानाय हृदयाय नमः । ॐ नमः ऐश्वर्याय शिरसे स्वाहा । ॐ रामाय शक्त्यै नमः शिखायै वषट् । ॐ बलाय कवचाय हुम् । ॐ तेजसे नेत्राभ्यां वौषट् । ॐ रामाय वीर्याय—अस्त्रायफट् ।

पूर्वमे वताये अनुसार पञ्चोपनिषद् वाक्यो का न्यास करने के वाद नीचे वताये अनुसार से श्रीमन्त्रराज का न्यास करे—ॐ रा ज्ञानाय हृदयाय नम ऐसा बोलकर हृदय प्रदेश का स्पर्श करे ॐ नम ऐश्वर्याय शिरसे स्वाहा ऐसा वोलकर शिरका स्पर्श करे । ॐ रामाय शक्त्यै नम शिखायैवषट् ऐसा बोलकर शिखा का स्पर्श करे । ॐ बलाय कवचाय हूँ ऐसा बोलकर दोनों हाथो के मूल भाग का परस्पर मे स्पर्श करे । ॐ तेजसे नेत्राभ्या वौपट् ऐसा बोलकर दोनो नेत्रो का स्पर्श करे । ॐ रामाय वीर्याय अस्त्राय फट् ऐसा बोलकर दक्षिण हाथ को शिर पर घूमाकर ताली बजावे ।

इति मन्त्रराजन्यासमनुष्ठाय पूर्वस्थापितस्ववामपार्श्वस्थपुर्णकुम्भे श्रीराममन्त्रोच्चारणपूर्वकं तुलसीदलं निक्षिप्य श्रीमन्त्राराजेनैवाभिमन्त्र्य तज्जलेनार्घ्यादिपञ्चपात्राणि क्रमेण षडक्षरमन्त्रोच्चारणपूर्वकं प्रपूर्य उद्धरण्यार्घ्यादिपञ्चपात्रेभ्यः किञ्चित्किञ्चित्तोयं समुद्धृत्यपूर्णकुम्भेनिक्षिपेत् । तत उद्धरण्यार्घ्यसलिलमादायनासाग्रपर्यन्तमुत्धृत्य ॐ विरजे आगच्छागच्छेति सप्तकृत्वा उक्त्वा तत्तोयेनात्मानं पूजोपकरणानि यागभूनि च प्रोक्ष्यावशिष्टमन्यत्र प्रक्षिपेत् ।

पूर्वोक्त रीतिसे श्रीमन्त्रराज का न्यास करने के वाद अपने वाम भाग मे पहले रखे पूर्ण कुम्भ मे श्रीराममहामन्त्र का उच्चारण करते हुये तुलसी दल को डाले । पुन श्रीराममन्त्र से ही अभिमन्त्रित करके उसी जलसे अर्घ्यादि पञ्चपात्रो को अर्घ्यपात्र के क्रम से षडक्षर श्रीमन्त्रराज के उच्चारण पूर्वक भरकर पुन दक्षिणावर्त शख या आचमनी से पाचो पात्रो से थोडा थोडा जल निकालकर पूर्ण कुम्भ मे डाल दे । इसके वाद दक्षिणावर्त शंख या आचमनी से अर्घ्य पात्र से जल लेकर अपने नाक के आगे तक ऊपर उठाकर ॐ विरजे आगच्छ आगच्छ इस आवाहन वाक्य को सातवार बोलकर उस जल से अपना देह सव पूजा की सामग्री यागभूमि–मन्दिर को भी प्रक्षालन सिचन करके अवशिष्ट जल को अन्यत्र डाल दे ।

ततस्तुलसीदल समादाय हरिः ॐ

साकेतं दिव्यलोकं सुरतरुमतुलं तत्र रत्नालिगर्भं
हैम सिहासनं तच्छुभरुचिनिचयं भानुकोटिप्रकाशम् ।
पद्मं चानेकपत्रं कपिनिकरपति पादुके वातजातं
सुग्रीवान् द्वारपालान् नलगवयमुखान् रामभक्तान्प्रपद्ये ।
वामं पादं प्रसार्याश्रितकलुषहरं दक्षिणं कुञ्चयित्वा
जानुन्याधाय दिव्यैरिपुकुलदमने बाणचापे दधत्सः ।
रामः पाणिद्वयेन प्रतिभटभयदः पद्मगर्भारुणाक्षो
देवीभूषादिजुष्टो वितरतु जगतां शर्म साकेतनाथः ।२।

इति पद्यैरित्थमनुसन्धाय श्रीसीतालक्ष्मणसमेतभगवच्छ्रीरामचन्द्रचरणारविन्दे तत्प्रक्षिपेत् ।

अनन्तर तुलसीदल को हाथ मे लेकर हरि ॐ इस प्रकार उच्चारण कर दिव्य लोक श्रीसाकेत मे स्थिर वर्णनातीत कल्पवृक्ष के नीचे रत्न समूह से खचित दिव्य सुवर्ण सिहासन जो कि करोडों सूर्य के प्रकास से भी अधिक प्रकाश वाला तथा कल्याण प्रद और जनमन मोहक है उसके मध्य मे अनेक पत्रवालेदिव्य कमलासन मे विराजमान सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी है जिनके चारो तरफ कपि सेनापतियो का समूह स्थित है, तथा श्रीरामजी के चरणारविन्द की सेवा करते हुए श्रीहनुमानजी

है। सुग्रीव नल नील गवय आदि प्रधान प्रधान लोग द्वारपाल के रूप मे स्थिर है। ऐसे श्रीराम सेवापरायण श्रीरामभक्त तथा सर्वेश्वर श्रीरामजी के शरण मे मै हूँ यानी सपरिकर श्रीरामजी को सादर प्रणाम करता हूँ ॥१॥ सम्पूर्ण कलुष कल्मष पाप के अपहरण करनेवाले बाम पाद को प्रसार्य–लम्बाकर लटकाकर तथैव सर्व पापताप सहारक दक्षिण पाद को मूढकर जानु के ऊपर रखकर विराजमान तथा दिव्य दोनो कर कमलो से शत्रुकुल का दमन यानी नाश करनेवाले दिव्य धनुष और बाण धारण किये हुए वे सर्वलोक प्रसिद्ध सर्वेश्वर श्रीरामजी जोकि कमल के बीच के भाग के समान अरुण यानी लाल आख वाले प्रतिपक्षिवीरो को भय देने वाले यानी दमन करने वाले दिव्य महिषी श्रीसीताजी तथा अनेक दिव्य आभूषणो से सुशोभित दिव्यधाम श्रीसाकेत लोक के स्वामी श्रीरामचन्द्रजी सब संसार को कल्याण प्रदान करे ॥२॥ इत्यादि पद्यो से ऊपर वर्णित रूप से ध्यान करकर सर्वेश्वरी श्रीसीताजी श्रीलक्ष्मणजी के सहित सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी के चरणार विन्दो मे हाथ मे ली हुई तुलसी आसन के रूप मे समर्पण करे।

अथैवमासनं कल्पयित्वा ओमाधारशक्त्यै नमः इति आधार शक्त्यै अर्घ्या-दीनिसमर्पयामि। ओ प्रकृत्यै नमः इति प्रकृत्यै अर्घ्यादीनिसमर्पयामि। ओमखिलज-गदाधाराय कूर्मरुपिणे नारायणाय नमः इति तस्मै अ०। ओंभगवतेऽनन्ताय नागराजाय नमः इति तस्मै अ०। ॐ भूम्यै नमः इति तस्यै अ०। ॐ श्रीसाकेताय दिव्य नगराय नमः इति तस्मै अ०। ॐ पुष्पकाय दिव्यविमानाय नमः इति तस्मै अ०। ॐ श्री साकेतायदिव्यजनपदाय नमः अ०। ॐ आनन्दयायमदिव्यरत्नमण्डपाय नमः अ०। ॐ आस्तरणभूताय अनन्ताय नमः अ०।

पूर्वोक्त क्रम से आसन की कल्पना करके निम्नप्रकार से आधार शक्ति आदि की पूजा करे– ॐ आधार शक्त्यै नम अर्घ्या दीनि समर्पयामि इस मन्त्र को बोलकर आधार शक्ति की पाद्य अर्घ्य आचमनीय आदि षोडशोपचार या यथा मिलितोपचार यानी सोलह पदार्थो से या जितने पदार्थ की शक्यता हो उतने ही पूजा की सामग्री से पूजा करे। अर्घ्यादि मे आदि शब्द से अन्य पूजा द्रव्यो का ग्रहण करना चाहिये जो देश काल तथा शक्ति के अनुसार जुटाई गई हो। ॐ प्रकृत्यै नम इति प्रकृत्यै अर्घ्यादीनि समर्पयादि ऐसा बोलकर यथोपचार सामग्री से प्रकृति की पूजा करे। तथैव ॐ अखिल जगदाधाराय कूर्मरूपिणे नारायणाय नम ऐसा बोलकर निखिल ब्रह्माण्ड के आधार भूत कूर्मजी की पूजा करे। ॐ भगवते अनन्ताय नारायणाय नम इस प्रकार बोलकर सर्वोपचार से नागराज की पूजा करे। ॐ भूम्यै नम ऐसा बोलकर सर्वोपचारोद्रव्य से भूमिकी पूजा करे। ॐ श्री साकेताय दिव्य नगराय नम ऐसा बोलकर सर्वोपचार द्रव्य से सर्वापेक्षयोपर रूप से स्थित दिव्य धाम श्रीसाकेत की पूजा करे। ॐ पुष्पकाय दिव्यविमानाय नम ऐसा बोलकर सर्वोपचार द्रव्यो से दिव्य पुष्पक विमान की पूजा करे। ॐ श्रीसाकेताय दिव्य जनपदाय नम ऐसा बोलकर सर्वोपचार द्रव्यो से श्रीसाकेत नामक दिव्यजनपद की पूजा करे। ॐ आनन्दमयाय दिव्यरत्नमण्डपाय नम ऐसा बोलकर सर्वोपचार द्रव्य से आनन्दस्वरूप दिव्यरत्नमण्डप की पूजा करे। ॐ आस्तरणभूताय अनन्ताय नम ऐसा बोलकर सर्वोपचार द्रव्यों से आस्तर स्वरूप यानी ऊपर का बिछौनाके रूपमे अनन्त की पूजा करे। इसके बाद–

आग्नेय्यां दिशि ॐ धर्माय पीठपादाय नमः अ० । नैऋत्या ॐ ज्ञानाय पीठपादाय ननः अ० । वायव्या ॐ वैराग्याय पीठपादाय नमः अ० । ऐशान्या ॐ ऐश्वर्यायपीठपादाय नमः अ० । मध्ये ॐ पीठभूताय अनन्ताय नागराजाय नमः अ० । प्राच्यां ॐ अधर्माय पीठगात्राय नमः अ० । दक्षिणस्या ॐ अज्ञानाय पीठगात्राय नमः अ० पश्चिमायां ॐ अवैराग्याय पीठगात्राय नमः अ० । उत्तरस्या ॐ अनैश्वर्याय पीठगात्राय नमः अ० ।

ॐ धर्माय पीठपादाय नम इस मन्त्र को बोलकर प्रथम सिहासन के अग्नि कोण की अर्घ्य आदि सर्वोपचार से पूजा करे । ॐ ज्ञानाय पीठपादाय नम ऐसा बोलकर नैऋत्य कोण की पूजा करे । ॐ वैराग्यायपीठ पादाय नम ऐसा बोलकर वायव्य कोण की पूजा करे । ॐ ऐश्वर्याय पीठपादाय नम ऐसा बोलकर ईशान कोण की पूजा करे । ॐ पीठ भूताय अनन्ताय नागराजाय नम ऐसा बोलकर मध्यभाग की पूजा करे । ॐ अधर्माय पीठगात्राय नम ऐसा बोलकर सिहासन के पूर्वभाग की पूजा करे । ॐ अज्ञानाय पीठ गात्राय नम ऐसा बोलकर दक्षिण भाग की पूजा करे । ॐ अवैराग्याय पीठगात्राय नम एसा बोलकर पश्चिम दिशा की पूजा करे । ॐ अनैश्वर्याय पीठगात्राय नम ऐसा बोलकर उत्तर दिशा की पूजा करे ।

एभिः परिच्छिन्नतत्त्वसदसदात्मकाय नमः अ० । ॐ ऋग्वेदाय पीठवाहकाय नमः अ० । ॐ यजुर्वेदाय पीठवाहकाय नमः अ० । ॐ सामवेदाय पीठवाहकाय नमः अ० । ॐ अथर्ववेदाय पीठ वाहकाय नमः अ० । इत्थं गन्धपुष्पादिभिस्तानभ्यर्च्य प्रणमेत् ।

ॐ एभि परिच्छिन्नतत्त्वसदसदात्मकाय नम ऐसा बोलकर अधर्म अज्ञान अवैराग्य तथा अनैश्वर्य रूपमात्र से मुक्त कार्य तथा कारणस्वरूप पीठतत्त्व की सर्वोपचार से पूजा करे । पुन ॐ ऋग्वेदाय पीठवाहकाय नम ऐसा बोलकर पूर्वदिशा मे ऋग्वेद की पूजा करे । ॐ यजुर्वेदाय पीठवाहकाय नम ऐसाबोलकर दक्षिण दिशा मे यजुर्वेद की पूजा करे । ॐ सामवेदाय पीठवाहकाय नम ऐसा बोलकर पश्चिम दिशा मे सामवेद की पूजा करे । ॐ अथर्ववेदाय पीठवाहकाय नम ऐसा बोलकर उत्तर दिशा मे अथर्ववेद की पूजा करे । ऊपर बताए अनुसार गन्ध पुष्प अक्षत आदि यथोचित पूजा सामग्री से भगवान के सिहासन के वहन करने वाले वाहक रूप चारो वेदो की पूजा कर प्रणाम करे ।

अथ पीठवाहकोपरि ॐ परिच्छिन्नतनवेपीठभूताय शुद्धात्मकायाऽनन्ताय-नागराजाय नमः इति तस्मै अ० । तत्रानन्तोपरि ॐ अष्टदल पद्माय नमः इति तस्मै अ० । तद्दलेषु ॐ सं सूर्याय नमः अ० । केशरेषु ॐ सं सोममण्डलाय नमः अ० । कर्णिकायाम् ॐ र वह्निमण्डलाय नमः अ० ।

पूर्व मे बताये अनुसार वेदो की पूजा करने के बाद ॐ परिच्छिन्नतनवे पीठ भूताय शुद्धात्मकायाऽनन्ताय नागराजाय नम ऐसा बोलकर पीठवाहक चारो वेदो के ऊपर पीठस्वरूप शेष

की सर्वोपचार द्रव्यो से पूजा करे। पुन अनन्त के ऊपर मे ॐ अष्टदल पद्माय नम ऐसा बोलकर अष्टदल कमल की पूजा करे। ॐ स सूर्याय नम ऐसा बोलकर अष्टदल कमल के दलों –पत्तो पर सूर्य मण्डल की पूजा करे। ॐ स सोममण्डलाय नम ऐसा बोलकर कमल के केसरों मे चन्द्रमण्डल की पूजा करे। ॐ र वह्निमण्डलाय नम ऐसा बोलकर अष्टदलकमल के कर्णिका मे अग्नि मण्डल की पूजा करे।

इति मण्डलत्रयं ध्यात्वा पद्मस्य पूर्वपार्श्वदले ॐ विमलायै चामरहस्तायै नमः इति तस्यै अ०। पद्मस्याग्निकोणे ॐ उत्कर्षिण्यै चामरहस्तायै नमः इति अ०। पद्मस्य दक्षिणदले ॐ ज्ञानरूपायै चामरहस्तायै नमः अ०। पद्मस्य नैर्ऋत्यदले ॐ क्रियायै चामरहस्तायै नमः अ०। पद्मस्य पश्चिमदले ॐ योगायै चामरहस्तायै नमः अ०। पद्मस्य वायव्यदले ॐ सत्यायै चामरहस्तायै नमः अ०। पद्मस्योत्तरदले ॐ प्रह्व्यै चामरहस्तायै नमः अ०। पद्मस्यैशानदले ॐ ऐशानायै चामरहस्तायै नमः अ०।

पूर्वोक्त प्रकार से अष्टदल कमल मे तीनो मण्डल का शान्तचित्त से ध्यानकर यथोपचार पूजा करके ॐ विमलायै चामरहस्तायै नम इस मन्त्रको वोलकर कमल के पूर्वभाग के दल मे हाथ मे चंवर ली हुई विमलाजी की अर्घ्यादि से पूजा करे। तथैव ॐ उत्कर्षिण्यै चामरहस्तायै नम को वोलकर कमल के अग्नि कोण के दल मे चवर हस्ता उत्कर्षिणी की अर्घ्यादि से पूजा करे। ॐ ज्ञानरूपायै चामरहस्तायै नम ऐसा वोलकर कमल के दक्षिणदल मे चंवर ली हुई ज्ञानरूपा की अर्घ्यादि से पूजा करे। ॐ क्रियायै चामरहस्तायै नम ऐसा बोलकर कमल के नैर्ऋत्यकोण के दल मे हाथ मे चंवर ली हुई क्रिया शक्ति की अर्घ्यादि से पूजा करे। ॐ योगायै चामरहस्तायै नम ऐसा बोलकर कमल के पश्चिम दल मे हाथ मे चंवर ली हुई योगशक्ति की अर्घ्यादि से पूजा करे। ॐ सत्यायै चामरहस्तायै नम ऐसा बोलकर कमल के वायव्यकोणवाले दल मे हाथ मे चवर ली हुई सत्यास्वरूपा शक्ति की अर्घ्यादि से पूजा करे। ॐ प्रह्व्यैचामर हस्तायै नम ऐसा बोलकर कमल के उत्तर तरफ के दल मे हाथ मे चवर ली हुई प्रह्वीनामक शक्ति की अर्घ्यादि से पूजा करे। ॐ ऐशानायै चामरहस्तायै नम ऐसा बोलकर कमल के ईशान वाले दल मे हाथ मे चवर ली हुई ऐशानी रूपा शक्ति की अर्घ्यादि से पूजा करे। अनन्तर–

भगवतोऽग्रे कर्णिकायाः पूर्वभागे ॐ अनुग्रहायै नमः अ०। पद्मस्य कर्णिकायां ॐ जगत्प्रकृतयेदिव्ययोगपीठवाहकाय नमः अ०। दिव्ययोगपीठवाहकोपरि ॐ दिव्ययोगपीठाय नमः अ०। योगपीठे ॐ दिव्ययोगपर्यङ्काय नमः अ०। पर्यङ्कोपरि ॐ सहस्रफणाशोभिताय नागराजाय नमः अ०। पुरो ॐ भगवत्पादपीठाय नमः अ०। तदुपरि ॐ भगवत्पादुकाभ्यां नमः अ०।

ॐ अनुग्रहायै नम इस मन्त्र को बोलकर भगवान् श्रीरामजी के आगे अष्टदल कमल की कर्णिका के पूर्वदिशा में अनुग्रहा रूपा शक्ति की अर्घ्य आदि सर्वोपचार द्रव्यों से पूजा करे। ॐ जगत्प्रकृतये दिव्ययोगपीठवाहकाय नम ऐसा बोलकर अष्टदल कमल के कर्णिका मे दिव्ययोग-पीठ वाहक की अर्घ्य आदि से पूजा करे। ॐ दिव्ययोगपीठाय नम ऐसा बोलकर दिव्ययोग

पीठवाहक के ऊपर दिव्ययोग पीठकी अर्ध्य आदि से पूजा करे। ॐ दिव्ययोगपर्यङ्काय नम ऐसा बोलकर योगपीठ पर दिव्ययोग पर्यङ्क की अर्ध्य आदि से पूजा करे। ॐ सहस्त्रफणाशोभिताय नागराजाय नम ऐसा बोलकर पर्यङ्क के ऊपर सहस्त्र फण से शोभित नागराज की अर्घ्य आदि से पूजा करे। ॐ भगवत्पाद पीठाय नम ऐसा बोलकर भगवान् के सामने भगवान के पादुका पीठ की अर्घ्य आदि से पूजा करे। ॐ भगवत्पादुकाभ्या नम ऐसा बोलकर पादुका पीठ के ऊपर भगवान के दिव्य पादुका खडाउ की अर्घ्य आदि से पूजा करे।

अथ तादृशाष्टदलपद्मस्थपर्यङ्कस्थितानन्तोपरि–
प्रपन्नाभीष्टसंदोहश्रीराम ! करुणानिधे !।
शिवशेषाद्यविज्ञेयाशेषमाहात्म्य राघव ! ।१।
तादृश्या सीतयाऽऽगच्छ लक्ष्मणेन सह प्रभो ! ।
आज्ञां क्रियस्व दासस्य प्रपन्नस्यार्चनाय मे ।२।

इति श्रीसीतालक्ष्मणसहितमप्रमेयकृपारत्नाकर भगवन्तं साङ्गं सायुधं सपरिवारं सवाहनं स्वशक्तियुक्त श्री रामचन्द्रमावाह्य पुष्पाञ्जलिं च तस्मै प्रदाय पूर्वस्थापितार्घ्यपात्रादुद्धरण्यार्घ्यजलमादाय ॐ श्रीसीतालक्ष्मणसमेतायाप्रमेयकृपा रत्नाकराय भगवते श्रीरामचन्द्राय नमः, मध्ये 'रां रामाय नमः' वामे 'श्रीसीतायै स्वाहा' दक्षिणे 'लं लक्ष्मणाय नमः' इति तत्तन्मन्त्रैः पृथक् पृथग्वा अर्घ्यं समर्पयामी त्युक्त्वा भगवतो दक्षिणहस्त प्रोक्षन्निव विभाव्य तज्जलं पतनपात्रे प्रक्षिपेत् ।

पूर्व कथित विधान से भगवान् के पादुकान्त पूजा होजाने के बाद पहले वर्णित अष्टदल कमल मे स्थित अनन्त के ऊपर निम्न रूप से सपरिकर सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी का आवाहन करे

शरण मे आये हुये सभी जनो के इच्छित पदार्थ को देने वाले हे करुणा के खजाने सर्वेश्वर श्रीरामजी ? शिव शेषनाग सर्वदेव समूह सरस्वती प्रभृति से सर्व प्रयत्न करने पर भी आप का सम्पूर्ण माहत्म्य नही जाना जा सका ऐसे अनन्त माहत्म्य शाली रघुकुल श्रेष्ठ हे श्रीराघवजी ? सर्वसमर्थ प्रभु श्रीरामजी ? आप से अभिन्न स्वरूपा नित्य सहचरी सर्वेश्वरी श्रीसीताजी तथा सर्व जगत् के आधार श्रीलक्ष्मणजी के साथ पधारे तथा आपके शरण मे आये आपका नित्य किंकर मुझे आपकी पूजा करने के लिये आज्ञा प्रदान करे। इस प्रकार प्रार्थना पूर्वक सर्वेश्वरी श्रीसीताजी तथा श्रीलक्ष्मणजी के साथ अप्रमेय अमित कृपा के समुद्र सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी को आयुध–दिव्यास्त्र धनुष बाणादि सपरिवार बाहन अनन्तानन्त अपनी शक्तियो के साथ श्रीरामचन्द्रजी को आवाहन करके पुष्पाञ्जलि श्रीचरणो मे समर्पण करके पहले से स्थापित अर्घ्यपात्र से दक्षिणावर्तशंख या आचमनी से अर्घ्य जल लेकर–ॐ श्रीसीता लक्ष्मण समेताया प्रमेय कृपा रत्नाकराय भगवते श्रीरामचन्द्राय नम इस मन्त्र को बोलकर श्रीरामजी का दाहिना हाथ प्रक्षालन की भावना से अर्घ्यं समर्पयामि ऐसा कहते हुये हाथ मे लिया अर्घ्य जल पतनपात्र योनी तरभाणीं मे गिरादे। अनन्तर पाद्य आदि यथा मिलित पूजा द्रव्यों का नाम लेकर सभी वस्तुओं से पूर्व क्रम से ही पूजा करे। अथवा दिव्यासन के मध्यभाग मे–रां रामाय नमः', इस

महामन्त्र से सर्वेश्वर श्रीरामजी का सर्वोपचारो से पूजा करे। तथैव श्रीरामजी के वामभाग मे 'श्री सीतायै स्वाहा' इस मन्त्र से श्रीसीताजी की आवाहन तथा पूजा करे। श्रीसीताजी तथा श्री रामजी के आसन से किञ्चित न्यून नीचे श्रीरामजी के दक्षिण भाग मे 'ल लक्ष्मणाय नम' इस मन्त्र से श्रीलक्ष्मणजी का आवाहन कर पूजा करे। यहा यह खयाल मे रखना चाहिये कि यदि आचमनी एक ही हो तो उसे शुद्ध जल से प्रक्षालन धोकरही अर्घ्यपात्र से पाद्यपात्र मे तथा पाद्यपात्र से आचमन पात्र मे डालना चाहिये। अलग अलग पात्रो के लिये अलग अलग ओचमनी की व्यवस्था हो तो अति उत्तम।

तत उद्धरणीं शुद्धजलपात्रजलेन संप्रक्षाल्य ततस्तया पाद्यजलपात्रात् पाद्यजलमादाय तदेव वाक्यं समुच्चार्य पाद्यं समर्पयामीति वदन् भगवतः पादौ प्रक्षाल्येव विभाव्य तज्जलं पतनपात्रे द्विः प्रक्षिपेत्। शुद्धजलपात्रस्थजलेनोद्धरणीं प्रक्षाल्य आचमन पात्रात्तज्जलमादाय तदेव वाक्यं समुच्चार्य आचमनं तस्मै समर्पयामीति वदन् भगवतो मुखकमलसमीपे प्रदर्श्य तज्जलं पतनपात्रे त्रिः प्रक्षिपेत्।

पुन शुद्धजल पात्र के जल से आचमनी को प्रक्षालन कर के आचमनी से पाद्य जलपात्र से पाद्यजल लेकर ॐ श्रीसीता लक्ष्मण सहितायाऽप्रमेय कृपारत्नाकराय भगवते श्रीरामचन्द्राय नम इस प्रकार बोलकर या पूर्वोक्त क्रमसे श्रीरामजी श्रीसीताजी तथा श्रीलक्ष्मणजी को अलग अलग उन उन मन्त्रो का उच्चारण करते हुये भगवान के श्रीचरण कमलो को प्रक्षालन की भावना करके पाद्यं समर्पयामि बोलकर श्रीचरणो मे दृष्टि रखकर पतन पात्र मे दो बार उस जल को गिरादे। फिर शुद्ध जलपात्र के जल से आचमनी को प्रक्षालन करके आचमनी मे आचमन पात्र से जल लेकर ॐ श्रीसीता लक्ष्मण सहितायाऽप्रमेयकृपारत्नाकराय भगवते श्रीरामचन्द्राय नम इस प्रकार बोलकर श्रीमुखारविन्द के समक्ष दृष्टि करके आचमनीय जल को भी श्रीमुखकमल के समक्ष करके मै भगवान को आचमन करा रहा हू ऐसी भावनाकर "आचमनीयं समर्पयामि" ऐसा बोलते हुए आचमनीय जल को पतन पात्र मे तीन बार गिरादे।

उद्धरणीं पूर्ववदेव प्रक्षाल्य शुभ्रवस्त्रेण हस्तकमलमुख कमलेसंमृज्य, शाटिकोत्तराग्रेण पदौ च प्रत्येकं संमृज्य, षोडशोपचारान् समर्पयामीति पुष्पाञ्जलि प्रदाय, उद्धरण्या पूर्णकुम्भात्सलिलमुद्धृत्यक्षीरफलगुडपूर्णधयात्रा तदेव वाक्यं समुच्चार्य मधुपर्कं समर्पयामीति वदन् निवेद्य पतनपात्रे प्रक्षिप्य पूर्ववदुद्धरणीं प्रक्षाल्य पूर्ववदेवाचमनं प्रदाय शाट्या पूर्ववत्समृज्य स्नानार्थं पादुके समर्पयामीति पुष्पाञ्जलिं भगवते प्रदाय पूर्ववदेवचार्घ्याद्युपचारान् प्रदाय स्नानशाटी मनसाध्यात्वा तुलसीकाष्ठेन तद्वाक्योच्चारणपूर्वकं दन्तधावनमाचरन्निव विभाव्य स्वहस्तं प्रक्षाल्य शुद्धजलपात्रतोयेन मन्त्रोच्चारणपूर्वकं गण्डूषं समर्पयामीति तज्जलं षट्कृत्वः पतनपात्रे प्रक्षिप्य पुनरपि तज्जलेनमुखशोधनं समर्पयामीति मुखाम्बुजशोधनमाचरन्निव विभाव्य तज्जलं पतनपात्रे प्रक्षिप्य पूर्ववत्पाद्याचमने प्रदाय ताम्बूलं च प्रदाय अभ्यङ्गोद्वर्तनचूर्णं प्रदाय अभ्य-

ङ्गस्नानमाचरन्निव विभाव्यस्नानपात्रं मूर्ध्नि निधाय स्नानीयपात्रजलेन पुरुष-सूक्तादिकमनुसंदधत् भगवन्तं स्नापयित्वा स्नानशाट्या संमृज्य सिंहासने स्थापयित्वा तद्वाक्येनैव गन्धपुष्पधूपदीपादिकं समर्पयामीति वदन् गन्धादिकं भगवते समर्पयेत्।

अनन्तर पहले के समान ही आचमनी को शुद्धजल से प्रक्षालन कर स्वच्छ सफेद वस्त्र के एक भाग से भगवान के हस्तकमल तथा मुखकमल पोछने की भावना करते हुये मुखारविन्द तथा हस्तकमलो के समक्ष मे समुपस्थापित करे वस्त्र के अन्य भाग से श्रीचरणकमलो की पोछने की भावनो से श्रीचरणकमल के समक्ष समुपस्थापित करे। पुन हाथ मे तुलसी तथा पुष्पो को लेकर–ॐ श्रीसीतालक्ष्मण सहितायाप्रमेय कृपारत्नाकराय भगवते श्रीरामचन्द्राय नम इस मन्त्र को बोलकर पोडशोपचारान समर्पयामि ऐसा बोलकर षोडशोपचार की भावना से श्रीचरणकमलों मे पुष्पाञ्जलि समर्पण कर दे। अनन्तर आचमनी से पूर्णकुम्भ से शुद्ध जल लेकर दूव फल तथा गुड से पूर्ण है ऐसा ध्यान करके ॐ श्रीसीताल्द्मणसहितायाप्रमेयकृपा रत्नाकराय भगवते श्री रामाय नम इस को बोलकर मधुपर्कं समर्पयामि ऐसा बोलकर पतन पात्र मे गिरा दे, पुन आचमनी को प्रक्षालन कर पूर्वके समान ही भगवान को आचमन कराकर पहले के समान ही शुभ्रवस्त्र से हस्तकमल तथा मुखकमल और चरण कमलो को पोछने की भावन कर वस्त्र को भगवान् के समुख करे। अनन्तर हाथ मे पुष्प लेकर भगवान के स्नान के लिये पादुका का समर्षण करता हूँ ऐसी भावना कर भगवान के श्रीचरणो मे पुष्पाञ्जलि समर्पण करे तव पूर्वके समान ही अर्घ्य पाद्य समर्पण कर आचमन कराके स्नानार्थ शाटिका–पीताम्वर का मन से ही ध्यान कर पूर्व के समान ही मन्त्र का उच्चारण करके दन्त धावनं समर्पयामि ऐसा बोलकर तुलसी काष्ठ से भगवान को दन्तधावन करा रहे हो ऐसी भावना करके उस काष्ठ को पतनपात्र मे रखकर अपने हाथ को धोकर शुद्ध जलमात्र से आचमनी से जल लेकर पूर्व के समान मन्त्र को बोलकर गण्डूषं समर्पयामि ऐसा बोलकर जल को छ वार पतनपात्र मे गिरा दे। पुन आचमनी से शुद्ध जल लेर पूर्व के समान ही मन्त्र को बोलकर मुखशोधनं समर्पयामि ऐसा बोलकर शुद्ध जल से मुखारविन्द प्रक्षालन की भावना कर उस जल को पतनपात्र मे गिरा दे। पुन अर्घ्यपाद्य आचमन कराने के वाद पूर्वके समान ही मन्त्र को पढकर ताम्बूलं समर्पयामि ऐसा बोलकर ताम्बूल समर्पण करने के वाद अभ्यङ्ग स्नान के लिये तेल तथा उवटन आदि हाथ मे लेकर यह मानसिक भावना करेकि श्रीभगवान् के दिव्य अंगोमे मै सुगन्धित द्रव्यादि लगा रहा हू। इसके वाद अभ्यङ्ग स्नान सम्पादन करने की भावना से स्नान पात्र को मस्तक मे स्थापित कर उस शुद्ध जल से हरि ॐ सहस्रशीर्षा पुरुष इत्यादि पुरुष सूक्त के मन्त्रो को पढते हुए भगवान् को स्नान कराकर स्नान शाटि–शुद्धशुभ्रवस्त्र से अच्छी तरह से पोछकर सिंहासन मे विराजमान करा दे। अनन्तर ॐ श्रीसीता ल्द्मण सहितायाप्रमेय कृपा रत्नाकराय भगवते श्रीरामचन्द्राय नम इस मन्त्र को बोलकर गन्धं समर्पयामि इस प्रकार बोलकर गन्ध का समर्पण करे। तथैव पुष्प समर्पयामि बोलते हुए पुष्प तथा धूप–दीप नैवेद्य–तम्बूल–एला–लवङ्ग–सुगन्धद्रव्य आदि नामो को अलग–अलग बोलकर यथामिलित सभी द्रव्य भगवान् को सादर समर्पण करे।

ततः पात्रावशिष्टजलेन श्री श्रियै नमः ली लीलायै नमः भूं भूम्यै नमः इति मन्त्रोच्चारणेनार्घ्यादिकं प्रदाय ततः ॐ किरीटाय मुकुटाधिपतये नमः अ० । ॐ

दक्षिणकुण्डलाय मकरात्मने नमः अ० । ॐ वामकुण्डलाय मकरात्मने नमः अ० । ॐ वैजयन्तीमालायै श्रीतुलस्यै नमः अ० । ॐ श्री वत्साय श्रीनिवासाय नमः अ० । ॐ कौस्तुभायरत्नाधिपतये नमः अ० । ॐ काञ्चीगुणोज्ज्वलायदिव्यपीताम्बराय नमः अ० । ॐ सर्वेभ्योभगवद्दिव्यविभूषणेभ्यो नमः अ० । इति भगवद्भूषणानि अर्घ्यादिभिरभ्यर्चेत् ।

पूर्वोक्त प्रकार से भगवान की पूजा सम्पादन करने के वाद अर्घ्यादिपात्रो मे वचे हुये जल से श्री श्रियै नम इस मन्त्र को बोलकर श्रीदेवी की अर्घ्य आदि सभी पदार्थो से पूजा करे। तथैव ली लीलायै नम इस मन्त्र को बोलकर लीलादेवी की और भू भूम्यै नम इस मन्त्र को बोल कर भूदेवी की सभी अर्घ्यादि सामग्री से पूजा करे । पुन ॐ किरीटाय मुकुटाधिपतये नम इस मन्त्र को बोलकर अर्घ्य पाद्य आचमनीय स्नानीय गन्ध पुष्प आदि से किरीट मुकुट की पूजा करने के वाद ॐ दक्षिण कुण्डलाय मकरात्मने नम इस मन्त्र को बोलकर पहले के समानही अर्घ्यादि सामग्री से दक्षिण कुण्डल की पूजा करके ॐ वाम कुण्डलाय मकरात्मने नम इस मन्त्र को बोलकर पूर्व के ही तरहसे वाम कुण्डल की पूजा करे । तब ॐ वैजयन्तीमालयै श्रीतुलस्यै नम इस मन्त्र को बोल कर अर्घ्यादि सभी वस्तुओ से वैजयन्ती माला की पूजा करनेके वाद ॐ श्रीवत्साय श्रीनिवासाय नम इस मन्त्र को बोलकर पूर्व के समान ही सभी अर्घ्यादि से श्रीरामचन्द्रजी के वक्षस्थल मे स्थित सर्वेश्वरी श्रीसीताजी के निवास स्थान भूत श्रीवत्स की पूजा करे। इसके बाद ॐ कौस्तुभाय रत्नाधिपतये नम इस मन्त्र को बोलकर पहले के समान ही अर्घ्यादि समस्त सामग्री से श्रीरामजी का भूषण कौस्तुभमणि की पूजा सम्पादन करे । अनन्तर ॐ काञ्चीगुणोज्ज्वलाय दिव्यपीताम्बराय नम इस मन्त्रको बोलकर पूर्व के ही समान अर्घ्यादि सभी वस्तुओं से श्रीरामजी के दिव्य परिधान पीताम्बर की पूजा करे । इसके बाद ॐ सर्वेभ्यो भगवद्दिव्यविभूषणेभ्यो नम इस मन्त्र को बोलकर पूर्व के ही तरह से समस्त अर्घ्यादि द्रव्यों से श्रीराम चन्द्रजी के समस्त दिव्य आभूषणों की एक ही साथ मे पूजा करे ।

ततोऽर्घ्याद्येकैकपात्रस्थ जलेन क्रमशः ॐ सुदर्शनाय हेतिराजाय नमः अ० । ॐ पाञ्चजन्याय शङ्खाधिपतये नमः अ० । ॐ कौमोदक्यै गदाधिपतये नमः अ० । ॐ नन्दकाय खड्गाधिपतये नमः अ० । ॐ शार्ङ्गाय चापाधिपतये नमः अ० । इति भगवतो दिव्यायुधानि अर्घ्यादिभिरभ्यर्चेत् ।

पूर्वोक्त क्रम से भगवान् के दिव्य भूषणो के पूजन करने के वाद उन्ही अर्घ्य आदि पात्रों के जलसे ॐ सुदर्शनाय हेतिराजाय नम इस मन्त्र को बोलकर अर्घ्य पाद्य आदि सभी सामग्री से भगवान् के दिव्य आयुध सुदर्शन चक्रकी पूजा करे । इसी प्रकार से ॐ पाञ्चजन्याय शङ्खाधिपतये नम इस मन्त्र को बोलकर अर्घ्यादि से पाञ्चजन्य शंख की पूजा करे । पुन ॐ कौमोदक्यै गदाधिपतये नम इस मन्त्र को बोलकर अर्घ्यादि से गदाकी पूजा करने के बाद ॐ नन्दकाय खड्गाधिपतये नम इस मन्त्र को बोलकर खड्ग की अर्घ्यादि से पूजा करे पुन ॐ शार्ङ्गायचापाधिपतये नम इस मन्त्र को बोलकर भगवान् के दिव्य आयुध धनुषवाण की अर्घ्यादि से पूजा करे ।

ततस्तथैव ॐ अं अनन्ताय नमः अ० । ॐ गं गरुडाय नमः अ० । ॐ विं विष्वक्सेनाय नमः अ० । ॐ गं गजाननाय नमः अ० । ॐ जं जयत्सेनाय नमः अ० । ॐ हं हरिवक्राय नमः अ०। ॐ कं कालप्रकृत्यै संज्ञिकायै नमः अ० । ॐ सर्वेभ्योभगवत्परिजनपरिचरश्रीसुग्रीवाङ्गदविभीषणजाम्ववन्तनलनीलसुषेणगजगवयप्रभृतिभ्यो नमः अ० । इति भगवत्परिजनानर्घ्यादिभिरभ्यर्चेत् ।

भगवान् के दिव्यायुधो के पूजन के वाद पूर्व मे बताये क्रम से ही ॐ अ अनन्ताय नम इस मन्त्र को बोलकर अनन्त की अर्घ्यादि से पूजा करे। पुन ॐ ग गरुडाय नम इस मन्त्र को बोलकर अर्घ्यादि से गरुडजी की पूजा करे तथा ॐ वि विष्वक्सेनाय नम इस मन्त्र को बोलकर विष्वक्सेन की पूजा करे। और ॐ गं गजाननाय नम इस मन्त्र को बोलकर गजानन की अर्घ्यादि से पृजा करे । तव ॐ ज जयत्सेनाय नम इस मन्त्र को बोलकर अर्घ्यादि से जयत्सेन की पृजा करे। बाद मे ॐ ह हरिवक्राय नम इस मन्त्र को बोलकर हरिवक्र की अर्घ्यादि से पूजा करे । अनन्तर मे ॐ क काल प्रकृत्यै सज्ञिकायै नम इस मन्त्र को बोलकर अर्घ्यादि से कालप्रकृति की पूजा करने के वाद ॐ सर्वेभ्योभगवत्परिजनपरिचरश्रीसुग्रीवाङ्गदविभीषणजाम्ववन्तनलनीलसुषेणगजगवयप्रभृतिभ्यो नम इस मन्त्र को बोलकर भगवान् के सभी परिजन परिचर श्रीसुग्रीव श्रीअङ्गद श्रीविभीषण श्रीजाम्ववन्त श्रीनलनील सुषेण गजगवय आदि को अर्घ्यादि से पूजा करे ।

ततस्तथैव भगवतः पूर्वे ॐ ऋक्षराजाय नमः अ० । ॐ नीलाय नमः अ० । दक्षिणे ॐ सुग्रीवाय नमःअ० । ॐ नलाय नमः अ० । पश्चिमे ॐ शत्रुघ्नाय नमः अ०। ॐ अंगदाय नमः अ० । उत्तरे ॐ भरताय नमः अ०। ॐ बिभीषणाय नमः अ०। भगवतोऽग्रे ॐ आञ्जनेयाय महाबलाय हुं हनुमते नमः अ० । ॐ सर्वेभ्योभगवद्द्वारपालेभ्यो नमः अ० । इति भगवतोद्वारपालानर्घ्यादिभिरभ्यर्चेत् ।

पूर्वोक्त क्रम से परिजनादि कीपूजा के वाद उसी प्रकार से भगवान् के द्वारपालो की पूर्वादि क्रम से पूजा करे ॐ ऋक्षराजाय नम इस मन्त्र को बोलकर भगवदपेक्षया पूर्वदिशामे अर्घ्यादि से श्रीऋक्षराजजी की पूजा कर तथैव ॐ नीलाय नम इस को बोलकर अर्घ्यादि से श्रीनीलजी की पूजा करे । पुन ॐ सुग्रीवाय नम इस मन्त्र को बोलकर दक्षिणदिशा मे अर्घ्यादि से श्रीसुग्रीवजी की पूजा करके ॐ नलाय नम इस मन्त्र को बोलकर अर्घ्यादि से श्रीनलजी की पूजा करे फिर ॐ शत्रुघ्नाय नम इस मन्त्र को बोलकर पश्चिमभाग मे अर्घ्यादि से श्रीशत्रुघ्नजी की पूजा कर ॐ अगदाय नम इस मन्त्र को बोलकर अर्घ्यादि से श्रीअगदजी की पूजा करे । पुन ॐ भरताय नम इस मन्त्र को बोलकर उत्तरदिशा मे श्रीभरतजी की अर्घ्यादि से पूजा कर ॐ विभीषणाय नम इस मन्त्र को बोलकर अर्घ्यादि से श्रीविभीषणजी की पूजा करे । अनन्तर भगवान् के आगे ॐ आञ्जनेयाय महाबलाय हुं हनुमते नम इस मन्त्र को बोलकर अर्घ्यादि से श्री हनुमानजी की पूजा के वाद ॐ सर्वेभ्यो भगवद् द्वारपालेभ्यो नम इस मन्त्र को बोलकर भगवान् के सभी द्वारपालो की अर्घ्यादि से पूजा करे ।

ततस्तथैव ॐ विघ्नेशाय नमः अ० । ॐ वाण्यै नमः अ० । ॐ दुर्गायै नमः अ० । ॐ क्षेत्रपालाय नमः अ० । ॐ सूर्याय नमः अ० । ॐ चन्द्राय नमः अ० । ॐ नारायणाय नमः अ० । ॐ नारसिंहाय नमः अ० । ॐ वासुदेवाय नमः अ० । ॐ वाराहाय नमः अ० । इत्यङ्गदेवान् सम्पूज्य ॐ श्रीसीतायै नमः अ० । ॐ श्रीलक्ष्मणाय नमः अ० । ॐ श्रीहनुमते नमः अ० । ॐ श्रीभरताय नमः अ० । ॐ श्रीशत्रुघ्नाय नमः अ० । ॐ श्रीविभीषणाय नमः अ० । ॐ श्रीसुग्रीवाय नमः अ० । ॐ श्रीअङ्गदाय नमः अ० । ॐ श्री जाम्बवन्ताय नमः अ० । ॐ श्रीप्रणवाय नमः अ० । इत्यङ्गमन्त्रान् प्रपूजयेत् ।

पूर्वोक्त क्रम से द्वारपालादिकों की पूजा के बाद निम्न प्रकार से भगवान के दश अग देवताओं को पूजे ॐ विघ्नेशाय नम इस मन्त्र को बोलकर अर्घ्यादि से विघ्नेश की पूजा करे। ॐ वाण्यै नम इस मन्त्र को बोलकर वाणी की अर्घ्यादि से पूजे । ॐ दुर्गायै नम इस मन्त्र से दुर्गाजी की अर्घ्यादि से पूजे । ॐ क्षेत्रपालाय नम इस मन्त्र से अर्घ्यादि द्वारा क्षेत्रपालों की पूजा करे । ॐ सूर्याय नम इस मन्त्र से सूर्य की अर्घ्यादि से पूजा करे । ॐ चन्द्राय नम इस मन्त्र से चन्द्र की अर्घ्यादि से पूजा करे ॐ नारायणाय नम इस मन्त्र को बोलकर नारायण को अर्घ्यादि से पूजे ॐ नारसिंहाय नम इस मन्त्र से अर्घ्यादि द्वारा नारसिंह की पूजा करे । ॐ वासुदेवाय नम इस मन्त्र से वासुदेव की अर्घ्यादि से पूजा करे । ॐ वाराहाय नम इस मन्त्र से अर्घ्यादि से वाराह की पूजा करे । इस प्रकार अग देवताओं की पूजा करने के बाद श्रीरामजी के अग मन्त्रो की निम्न रूप से पूजा करे—ॐ श्रीसीतायै नम इस मन्त्र को बोलकर श्रीसीताजी की अर्घ्यादि सभी सामग्री से पूजा करे । तथैव ॐ लक्ष्मणाय नम इस मन्त्र से श्रीलक्ष्मणजी की अर्घ्यादि से पूजा करे । ॐ श्रीहनुमते नम इस मन्त्र से अर्घ्यादि द्वारा श्रीहनुमानजी की पूजा करे । ॐ श्रीभरताय नम इस मन्त्र से श्रीभरतजी की अर्घ्यादि से पूजा करे । ॐ श्रीशत्रुघ्नाय नम इस मन्त्र से अर्घ्यादि द्वारा श्रीशत्रुघ्नजी की पूजा करे । ॐ श्रीविभीषणाय नम इस मन्त्र से अर्घ्यादि से श्रीविभीषणजी की पूजा करे। ॐ श्रीसुग्रीवाय नम इस मन्त्रके द्वारा अर्घ्यादि से श्रीसुग्रीवजी की पूजा करे । ॐ अगदाय नम इस मन्त्र से अगद जी की अर्घ्यादि से पूजा करे । ॐ श्रीजाम्बवन्ताय नम इस मन्त्र से श्रीजाम्बवन्तजी की अर्घ्यादि से पूजा करके ॐ श्रीप्रणवाय नम इस मन्त्र से प्रणव की अर्घ्यादि से अच्छी प्रकार प्रेम भावना युक्त होकर पूजा करे ।

"अङ्गान् विना रामो विघ्नकरो भवति" ऐसा श्रीरामोपनिषद् मे लिखा है अत सर्वेश्वर श्री रामजी के पूर्वोक्त विघ्नेश आदि दश अग देवता तथा श्रीसीता आदि दश अग मन्त्रो की पूजा सावधानी से सभक्तिभाव करना चाहिये। इसी ओर आचार्य श्रीने सकेत–प्रपूजयेत लिखकर किया है । क्योकि साग पूजा के विना पूजा सफल नही होती है ।

ॐ सर्वेभ्यो भगवद्गणाधिपेभ्यो नमः अ० । ॐ सर्वेभ्योभगवत्पार्षदेभ्यो नमः अ० । ॐ सर्वेभ्यो भगवत्परिजनपरिचरेभ्यो नमः अ० । ॐ नीत्यै नमः अ० ।

ॐ मुक्त्यै नमः अ० । ॐसाङ्गसायुधसपरिवारसमहिषीकायदिव्यमङ्गलमूर्त्तये नमः अ० ।

पूर्व वर्णित क्रमसे सर्वेश्वर श्रीरामजी के अगो की पूजा करने क वाद पूर्वोदित क्रम से ही ॐ सर्वेभ्यो भगवद्गणाधिपेभ्यो नम इसे बोलकर भगवान् के सभी गणाधिपो की अर्घ्यादि से पूजाकर के ॐ सर्वेभ्यो भगवत्परिजनेभ्यो नम इस मन्त्र से भगवान् के सभी परिजनो कीअर्घ्यादि से पूजा करे । तव ॐ नीत्यै नम इस मन्त्र से नीति की अर्घ्यादि से पूजा करे । ॐ मुक्त्यै नम इस मन्त्र से अर्घ्यादि से [मुक्ति की पूजा करे । अनन्तर ॐ साङ्गायसायुधसपरिवारस-महिषीकाय दिव्य मङ्गलमूर्तये नम इस मन्त्र से भगवान के अगो आयुधो परिवारो परिकरो आदि तथा सर्वेश्वरी श्रीसीताजी के साथ दिव्य मगल विग्रह सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी की अर्घ्यादि उपचारो से पूजाकरे।

अथेत्थं पूर्वोक्तैः सहभगवन्तं श्रीराममभ्यर्च्य अञ्जलिनापुष्पाण्यादाय—

अनन्तर पूर्वोक्त विधिसे सर्वेश श्रीरामचन्द्रजी की अग आयुध परिवार परिकर तथा श्रीसीताजी के साथ पूजा करने के वाद अञ्जलि मे पुष्पो को लेकर निम्नश्लोको से प्रार्थना कर श्रीचर-णारविन्दो मे पुष्पाञ्जलि समर्पण करे—

सुरासुरेन्द्रादिमनोमधुव्रतैर्निषेव्यमाणाङ्घ्रिसरोरुह प्रभो ।
असंख्यकल्याणगुणामृतोदधे? सुरेश? रामाद्भुतवीर्यमापते ।१।

समस्त सुरासुर देवदानव इन्द्रप्रमुखो के मनरूपी भ्रमरो से सर्वदा स सेव्यमान चारणरूपी कमलवाले सर्वसमर्थ हे प्रभु श्रीरामजी? हे देवेश? अत्यन्त अद्भुत लोकोत्तर चमत्कारकारी पराक्रम शाली सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी? असख्य अनन्त कल्याण गुणरूपी अमृत के महासमुद्ररूप हे श्री रामजी? आपके श्रीचरणो मे अनेक वार सादर दण्डवत प्रणाम हे ॥१॥

अपारसंसारमहार्णवप्लवं पदाम्बुजं तं प्रणतार्तिनाशनम् ।
निषेव्यमाण सगणैःशिवादिभिर्गतोऽस्म्यहं ते शरणंशरण्यम् ।२।

हे प्रणतार्तिनाशक श्रीरामजी? अपार ससाररूपी महासमुद्र को पार करने के लिये सुदृढ नौका रूप आपके शरण मे आकर प्रणाम—नमस्कार करनेवाले जनो के सर्व दुखो को सर्वदा के लिये नाश करने वाले तथा अपने समस्त गण परिजन और परि करो के साथ श्रीशिवजी श्री विष्णुजी और श्रीब्रह्माजी के द्वारासर्वदा ससेव्यमान यानी निरन्तर सेवित शरण्य अर्थात् सवो के लिये शरण मे आने योग्य या शरण म आये जीवो को सर्वदा के लिये अभय करदेनेवाले उन प्रसिद्ध तीनो लोको को पवित्रकरने वाले सर्वसमर्थ आपके श्रीचरणरूपी कमलो के शरण मे आया हूँ प्रभो? ससार भय से त्राण मेरी रक्षा करे ॥२॥

विकचपद्मदलायतलोचना प्रणतकामदुघाङ्घ्रिसरोरुहाम् ।
अशरणः शरणां जनकात्मजे प्रतिदिनं भवतीमनुचिन्तये ॥३।

अच्छी तरह से विकशित—खीले हुये कमल पत्र के समान विशाल तथा अति मनोहर नेत्र-वाली तथा आपके शरण से आकर प्रणाम करनेवाले जनो के सव कामनाओ को पूर्ण करनेवाले चरणरूपी कमल वाली और अशरण यानी अन्य रक्षक या आधार से रहीत जीवो को सर्वदा शरण

प्रदान करनेवाली हे जनकनन्दिनी सर्वेश्वरी श्रीसीताजी? सबो को अभय प्रदान करनेवाली आपको मै प्रतिदिन सादर चिन्तन यानी स्मरण के साथ नमन करता हूँ॥३॥

श्रीरामकैङ्कर्यपरायणम्मुहुर्मुहुश्च सीतेशनिदेशकारिणम् ।
तमेकवीरंशरदिन्दुकीर्तिं नमाम्यहं लक्ष्मणमप्रमेयम् ॥४॥

सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी के कैकर्य-सेवा मे सर्वदा तत्पर तथा वारवार किसी भी प्रकार के सर्वेश्वरी श्रीसीताजी के स्वामी श्रीरामचन्द्रजी के आज्ञाओ को परिपालन करनेवाले शरदकालिन चन्द्रमा के समान स्वच्छ कीर्तिवाले अनन्यवीर-अतिपराक्रमी शूर वीर बल तथा शौर्यादि मे अन्य उपमा रहीत उन प्रसिद्ध वीर श्रालक्ष्मणजी को मै नमस्कार करता हू ॥४॥

मणीन्दुगर्भं मुकुटाधिनाथंश्रीमत्किरीटं मणिकुण्डले च ।
श्रीकौस्तुभादीनिचदिव्यभूषणान्येतानिनित्यंप्रणमामिविष्णोः ।५।

मणि रूपी चन्द्रमा है गर्भ-वीच भाग मे जिसके ऐसे मुकुटो मे श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी के मुकुट संपूर्ण शोभा से युक्त श्री रामजी का किरीट तथा मणियो से शोभित दिव्य कुण्डल और दिव्य श्रीकौस्तुभमणि आदि समस्त दिव्य आभूपथो को सर्वदा प्रणाम करता हूँ ॥५॥

महाबलं वायुसुतं महामति प्रपप्तचामीकरचारुलोचनम् ।
श्रीरामपादाब्जनिविष्टमानसं द्विडन्तकं श्रीहनुमन्तमीडे ॥६॥

सन्तप्त अति तपाये हुये सोने के समान अति सुन्दर नेत्र वाले अति बलशाली और महा-बुद्धिशाली तथा श्रीरामचन्द्रजी के चरणरूपी कमलो मे सर्वदा सन्निवेपित मनवाले और उपासक के शत्रुओ का नाश करनेवाले वायुदेव के पुत्र सर्वैश्वर्य सम्पन्न श्री हनुमानजी की प्रार्थना योनी स्तुति करता ह् ॥६॥

प्रत्यूहव्यूहभङ्गं विदधदुरुबलश्शक्तिमान्सर्वकारी
भूरिश्रेयः प्रतापोमुनिवरनिकरैः स्तूयमानो विमानः ।
रक्षो दैत्यादिनाशी क्षुभितजलनिधिर्लौकजिल्लोकमान्यो
धन्योनोमङ्गलौघंसपदिसुकुरुताद्रामशस्त्रास्त्रसङ्घः ॥७॥

अति वेगवाला तथा महा सामर्थ्य से युक्त अघटित घटना आदि सब कुछ करने मे सर्वदा समर्थ और अत्यन्त श्रेष्ठ तथा प्रतापी तथैव सर्वदा अभिमान से रहित और राक्षस तथा दैत्यादि समूहो का नाश करनेवालो सर्वदा मननशील मुनिओ से अहर्निश संस्तुत, तथा अति अगाध समुद्र को अपने अलौकिक तेजसे क्षुभित करनेवाला और सर्वलोको को जितने वाला एवं सर्वलोक समान्य तथा अतिधन्य यानी सर्वविजयादि ऐश्वर्य सम्पन्न सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी का अस्त्र तथा शस्त्र (जिसको मन्त्र के विना चलाया जाता है उसे शस्त्र कहा जाता है, जैसे बाण खड्ग आदि । मन्त्र प्रयोग पूर्वक जिसका प्रयोग किया जाता है उसे अस्त्र कहते है, जैसे ब्रह्मास्त्र आग्नेयास्त्र आदि) समूह है वह अति शीघ्र ही मेरे विघ्न समूहों का विनाश करता हुआ समस्त मंगल सम्प्रदान करे ॥७॥

सुग्रीवमुख्यान्परितोजनान्विभोः सद्वारपालान्नलनीलमुख्यान्।
गणाधिपान्देववरस्यविष्णोर्नमाम्यहंनित्यमशेषपार्षदान् ।८।

सर्वव्यापक तथा देवश्रेष्ठ सर्व नियमन शील श्रीरामचन्द्रजीके श्रीसुग्रीव प्रभृति सर्वदा सान्निन्ध्य प्राप्त परिजन तथा सभी द्वार पालो के साथ श्रीनलनील प्रमुख द्वारपालो और समस्त गणाधिपतिओ के साथ श्रीरामचन्द्रजी के नित्यपार्षदोको मै नित्य ही नमन-सादर प्रणाम करता हूं ॥८॥

हरि ॐ यज्ञेन यज्ञमयजन्तदेवास्तानिधर्माणि प्रथमान्यासन् ।
तेह नाकम्महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्तिदेवाः ।९।

सिद्ध संकल्प देवोने यज्ञ से यानी याग के साधनरूप संकल्प से अथवा पूर्वोक्त सामग्री से यज्ञ को अर्थात् सर्वत्र व्यापक रूप से स्थित श्रीरामरूप विष्णु को "यज्ञोवैविष्णु" इस श्रुति से और "यज्ञोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम्" "सर्वं विष्णु मयं जगत्" इत्यादि स्मृतियो से उस यज्ञ मे पूजित किया उन लोगो से आचरित देवाराधनादिक ही अन्य धर्मो के अपेक्षा श्रेष्ठ सनातन श्रीवैष्णव धर्म के रूप मे प्रचलित हुये। जो आज भी विश्वका सर्वश्रेष्ठ धर्म के रूप मे मानव को मार्ग वता रहा है। वे पूर्वोक्त रीतसे यजन करनेवाले परमपद श्रीसाकेत लाभात्मक नाक सर्व पाप रहित अयोध्या को निश्चय रूप से प्राप्त किये है। जिस दिव्य धाम मे प्राचीन साध्य आदि देव लोग अर्थात् नित्य मुक्त श्रीहनुमान् आदि नित्यपार्षद विराजमान है ॥९॥

जगत्पते? श्रीश? जगन्निवास? प्रभोः? जगत्कारण? रामचन्द्र ? ।
नमो नमः कारुणिकाय तुभ्यं पादाब्जयुग्मेतवभक्तिरस्तु ॥११।

हे जगत्पति श्रीसीतानाथ ? हे जगन्निवास ? हे सर्वजगत्कारण भगवान् श्रीराम ? हे दयासागर श्रीराम ? आपके चरणो मे मेरा शतश नमस्कार हो तथा आपके पादपद्म युग्म मे सदा मेरी भक्ति बनी रहे ॥१०॥

मनोमिलिन्दस्तवपादपङ्कजे रमार्चिते संरमतां भवे भवे ।
यशः श्रुतौ ते मम कर्णयुग्मकंत्वद्भक्तसङ्गोऽस्तुसदा मम प्रभो ॥

हे भगवन् श्रीरामचन्द्र ? मेरा अन्त करण रूप भ्रमर मधुपान कर्त्ता जन्तु विशेष सकल सौभाग्यवती श्रीसीताजी से समादृत आपके पद युगल मे सर्वदा रमित होता रहे। तथा मेरे दोनों श्रवणेन्द्रिय आपके यश कीर्ति को सुनने मे संलग्न रहे और आपके जो अनन्य भक्त है उनके साथ हमारा सत्संग होता रहे। अर्थात् मै भक्तो के साथ ही वार्तालाप करता रहूँ ॥११॥

इत्यभिष्टुवन् पुष्पाञ्जलिंसर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रपदारविन्दे समर्प्य—

इस प्रकार से श्रीरामजी की प्रार्थना करते हुये पुष्पाजलि सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी के श्रीचरण कमलो मे समर्पण करके-

उरः शिरोदृष्टिमनोवचः पदद्वयप्राजत्करयुग्मजानुभिः ।
कङ्गैः क्षितौ तं प्रणमेदथाष्टभिर्दीर्घं तथैते कृतधीश्चदण्डवत् ।

इति साष्टाङ्गप्रणामं कुर्यात् ।

पूर्वोक्तक्रम से भगवान् की प्रार्थना करने के बाद प्रणाम करने का प्रकार–नियम बतलाने के लिये आचार्य श्री कहते है सर्वेश्वर परमकारण रूपसे स्थित श्रीरामचन्द्रजी को प्रणाम करने के लिये निश्चित बुद्धिवाले महापुरुष मन, वचन दोनो पैर दोनो जानु घुटना छाती शिर मस्तक नेत्रयुग तथा फैलाया हुआ दोनो बाहु हाथ इन आठो प्रकार के अगो से पृथिवी मे दण्ड की तरह लेट कर गिरकर सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी को सभी भक्त लोग सादर प्रणाम करे। इस प्रकार साष्टाग दण्डवत प्रणाम करे। अनन्तर राजभोगादि के लिये निम्न प्रकार से व्यवस्था करे।

अथ महानैवेद्यसमये पात्राणि प्रक्षाल्य पूर्ववत्पूर्णकुम्भ जलेन पात्राणि पूरयित्वा भोज्याशनार्थं पादुके प्रसार्याध्यर्यादिभिरभ्यर्च्य मधुपर्कं च प्रदाय भगवतः श्रीरामचन्द्रस्य पुरस्ताच्छुचिप्रदेशे यथाशक्तिसम्पादितचतुर्विधभोज्यादीन्युपहृत्य—

पूर्वोक्त विधान से पूजा प्रणामादि के अनन्तर राजभोग के समय मे पूजा पात्रो को प्रक्षालन कर पूर्व के समान ही पूर्णकुम्भ के जल से पात्रो को भरकर भोजन करने जाने के लिये पादुका को आगे करके पूर्व प्रदर्शित विधान से पाद्य अर्घ्य आचमनीय आदि से पूजाकर मधुपर्क समर्पण करे। अनन्तर सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी के समक्ष अति पवित्र किये गये स्थान मे यथा विधि यथा शक्ति सपादित चतुर्विध चार प्रकार के लेह्य पेय चर्व्यचोस्य भोज्य विशुद्ध सामग्री को अति आदर के साथ रखकर निम्न प्रकार से प्रार्थना करे—

दोषाकर नीचमथाल्पशक्ति चैतन्यहीनं त्वशुचि त्वनर्हम्
त्वद्भृत्यकर्मण्यपराधभाजनम्पर दुरात्मानमितीत्थमेव ॥१।
सुचिन्तयन्मामपि मत्समर्पितमशेषपापापहनामधेय ?।
उपेक्षितुं त्वच्चरणावलम्बिनं न चार्हसि त्व जगदीशराघव ?।

शरणागत जीवों के सम्पूर्ण पापो के नाश करने मे प्रसिद्ध 'पतीतपावन सीताराम' ऐसे नाम से जगविख्यात श्रीरामजी? आदर के साथ पवित्रतया मेरे द्वारा समर्पित नेवैद्य को आप स्वीकार करे तथा अनन्त दोषो का भण्डार नीचवृत्तिवाला और अति अल्पशक्तिवाला और तथ्यातथ्य विवेकसे रहित अपवित्र तथा आपके कैंकर्य मे अयोग्य सब जन कल्याणकारि आपके उद्देश्य कर्म न करने से अपराध के पात्र बने अत्यन्त दुरात्मता से युक्त ऐसे ही अन्य अनन्त अब गुणों से लिप्त यह है ऐसा विचार कर हे जगदीश्वर सर्वेश्वर श्रीराघवजी? आप आपके दिव्यचरणों के अवलम्बन किये मेरी भी उपेक्षा न करे ॥१।२॥

कौशल्याजनकात्मजावरगुणश्रीलक्ष्मणैरर्पितं
पंपायां शबरीसर्पितमहो दिव्याद्भुतस्वादकम् ।
भारद्वाजसमर्पितं च सरसं क्षीर व्रजे यत्स्वयं
तयद्वैद्दुग्बमर्जितं सहघृतं यद्यज्ञपत्न्यर्पितम् ॥३॥
अन्यैर्मुक्तजनैः कुचैलविदुराद्यैरर्पितं त्वत्प्रियं
पथ्यं पाकविशेषसंयुतमथो दृष्टिप्रियं राघव ?।

रुच्यं दोषविवर्जित सह यथाऽशेषः प्रभो? भोक्तृभिः
स्वीकर्तुश्च तथार्हसि त्वमधुना भक्त्यार्पितं ते मया॥४॥

हे राघव? रघुकुल शिरोमणि श्रीरामजी? आपने श्रीकौशल्या जी श्रीजनकनन्दिनी श्रीसीताजी सर्वश्रेष्ठ गुणो से युक्त श्रीलक्ष्मण जी से सादर सस्नेह समर्पित नैवेद्यादि तथा पंपामे शवरी द्वारा स स्नेह समर्पित लोकोत्तर दिव्य अद्भुत स्वादवाले फलादि तथैव श्रीभारद्वाज मुनि से सादर समर्पित अति रस वाले फलादि तथा स्नेही व्रजवासी जनो से समर्पित सुस्वादु दूध वह अद्भुत स्वाद वालो ताजा नवनीत–मख्खन और उन स्नेही यज्ञ पत्नियों से सादर समर्पित ताजे घी से सम्पृक्त विविध भोज्य पदार्थ तथैव अन्य अनेक मुक्तजनो और साधारण स्थिति मे रह रहे श्रीविदुर जी तथा उनकी धर्मपत्नि से सस्नेह समर्पित आपको अतिप्रिय अनेक प्रकार के पाक से युक्त–नाना प्रकार के वानगी जो पथ्य तथा देखने मे अति सुहावे थे तथैव रुचिकर और सब प्रकार के दोषो से रहित थे उन सबो को आपने अपने समस्त सेवको दिव्य पार्षदो के साथ जैसे सस्नेह स्वीकार किया प्रभो? सर्व समर्थ श्रीरामचन्द्रजी ? आज मेरे द्वारा आपको भक्ति पूर्वक सादर समर्पित इन भोज्य नैवेद्यादि को भी उसी प्रकार स्वीकार कर इस अबोध आपके शरणापन्न बालक को कृतार्थ करे।३–४

हरि ॐ नाभ्याऽआसीदन्तरिक्ष गुं शीर्णोद्यौः समवर्तत।
पद्भ्यां भूर्मिदिशः श्रोत्रात्तथा लोकांरऽअकल्पयन्॥५॥

इस प्रकार विनम्र भाव से प्रार्थना कर पुन–सर्वकारणभूत सर्वेश्वर आपके ही नाभि से अन्तरिक्ष आकाश उत्पन्न हुआ तथा शिर से द्युलोक तथा भूमि पावो चरणो से और दिशाए कान से उत्पन्न हुए है यानी पूर्वोक्त क्रमसे ही विश्वरूप आप से ही आकाशादि सभी लोक–स्थावर जंगमादिक सव प्रपच उत्पन्न हुआ है अत विश्वरूप आपको आपकी ही सामग्री सादर समर्पण कर रहा हूँ उन्हे स्वीकार करे॥५॥

इति विज्ञाप्यार्घ्य जलेनप्रोक्ष्य श्रीमन्त्रराजेनाभिमन्त्र्य सुरभिमुद्रां प्रदर्श्य श्रीरामं जनकात्मजामनिलजमित्यादिगुरुपरम्परामनुसन्धाय निवेदयेत्।

इस प्रकार नैवेद्योको स्वीकार करने के लिये सादर निवेदन कर अर्घ्य जल से प्रोक्षण करे। अनन्तर षडक्षर श्रीमन्त्रराज से अभिमन्त्रित कर सुरभि मुद्रा दिखाकर श्रीरामजी से लेकर अपने आचार्य पर्यन्त के गुरुपरम्परा का स्मरण कर नैवेद्य निवेदन करे।

ततो जलपानहस्तशोधनगण्डूषपाद्याचमनादिभिरभ्यर्च्य—

अनन्तर सर्वेश श्रीरामजी को जलपान कराना हाथ प्रक्षालन गण्डूष कराना और आचमन कराना तथा श्रीचरण प्रक्षालन आदि प्रक्रियाओं से पूजा करके—

शृणोभिसीतापतिचित्रसत्कथा वदामिसीतापतिकीर्तिमक्षयाम्।
स्मरामिसीतापतिदिव्यविग्रहं वृणोमिसीतापतिभक्तिमुत्तमाम्॥१॥

मै अन्य लौकिक विषयो से विरत होकर सर्वेश्वर श्रीसीता पति श्रीरामजी की सव वेदों से अति अद्भुत रूप से वर्णित भवपाश नाशक कथा को सर्वदा सुनता हूँ तथा श्रीसीतापति की ही

अक्षयकीर्ति श्रीरामजी के दिव्य कथा प्रसगो को सर्वदा गोन करता हूँ। तथैव श्रीसीतोनाथ राम चन्द्रजी के दिव्य सर्वलोकोत्तर सुन्दर श्रीविग्रहका सर्वदा स्मरण करता हू और सर्वजन शरण्य श्री सीतापति श्रीरामजी के सर्वोत्कृष्ट भक्ति को ही वरण यानी स्वीकार करता हूं जो सर्वजनो को सायुज्य मुक्तिदायक है अन्यो की भक्ति नही क्योकि अन्यदेव सर्वदा के लिये सब जीवो को सव जीवो या दुखो से अभय प्रदान करने मे समर्थ नही है ॥१॥

व्रजामिसीतापतिदिव्यमन्दिर तथाचसीतापतिसत्प्रपन्नताम् ।
युनज्मि सीतापतिचिन्तनेमनः तनोमि सीतापतिदासङ्गतिम् ॥२॥

मै अन्य विषयोन्मुखता को छोडकर सर्वदा श्रीसीतापति श्रीरामजी के दिव्य मन्दिर के तरफ ही जाता हू, तथा मनुष्य देह की सफलता के लिये श्रीसीतापतिजी की शरणागति को सर्वतो भाव से स्वीकार करता हू। तथैव श्रीसीतापतिजी के चिन्तन मे मन को सदा लगाये रखता हू। और श्रीसीतापतिजी के दास अनन्य सेवक सद्भक्तो के साथ सगति को अधिक से अधिक वढाया करता हूं यानी श्रीरामदासो की सगति सदा किया करता हुँ अन्यो की नही ॥२॥

अवैमि सीतापतिमञ्जुबन्धुतातथाचसीतापतिदिष्टभोग्यताम् ।
ततश्चसीतापतिनित्यधामदां करोमिसीतापतिभक्तिमुत्तमाम् ॥३॥

मै श्रीसीतापतिजी के मञ्जु सुन्दर या दृढबन्धुता को स्वीकार करता हुँ। अथवा श्रीसीतानाथ ही मेरे एकमात्र अनन्य वन्धु है इस वात को मै अवगम करता हुँ। तथा श्रीसीतानाथजी के द्वारा निर्दिष्ट भोग्य पदार्थ को ही भोगता हुँ यानी मेरे कर्मानुसार मेरे लिये भोग्यतया समुपस्थित पदार्थो को श्रीराम शेष बुद्धि से यथा योग्य उपभोग करता हुँ। तथैव श्रीसतापति के नित्यधाम श्रीसाकेत को देनेवाली श्रीसीतापति श्रीरामजी की सर्वोत्कुष्ट भक्ति—शरणागति सर्वाभयप्रदप्रपन्नता को स्वीकार करता हुँ ॥३॥

करोमि सीतापतिपाददासतां नमामि सीतापतिपादपङ्कजम् ।
पठामि सीतापतिकाव्यसंहति जपामि सीतपतिमन्त्रभूपतिम् ॥४॥

मै अन्य सोमोन्य जनों की या देवोकी दासता को छोडकर श्रीसीतापतिजी के श्रीचरणक्मलों की दासता को ही स्वीकार करता हुँ और श्रीसीतापतिजी के चरणक्मलो को ही सर्वदा नमन सादर दण्डवत प्रणाम करता हुँ, तथैव श्रीसीतापतिजी के दिव्य गुण सम्पन्न काव्य समूहो को ही सदा पाठ करता हुँ, और श्री सीतोपतिजी के महामन्त्र मन्त्रराज पडक्षर महामन्त्र को ही एक चित्ततया सदा जपता हुँ अन्य मन्त्र का नही, क्योकि अन्यमन्त्र चित्त मे भ्रम पैदा करने वाले है निश्चित रूप से मोक्षदायक नही मोक्ष ही जीवात्माका चरमलक्ष्य है अत सायुज्य मुक्तिप्राप्ति के लिये सदा श्रीरामषडक्षर महामन्त्र को ही जपता हुँ ॥४॥

करोमि सीतापतिविग्रहार्चनं तथा च सीतापतिमूर्तिदर्शनम्
गुणाब्धिसीतापतिनामकीर्तनं परेशसीतापतिपादवन्दनम् ॥५॥

मै सर्वदा श्रीसीतापतिजी के दिव्य श्रीविग्रहका पूजन किया करता हुँ, तथैव श्रीसीतापतिजी के सर्वमंगल कारक दिव्यमूर्तिका दर्शन सर्वदा किया करता हुँ, और सर्वगुणो के सागर श्रीसीता-

पतिजी के सर्व अमगलो को अपहरण कर जप करनेवालों को सब प्रकार के मगलों का प्रदान करने वाले दिव्य नामोका सकीर्तन रातदिन किया करता हुँ । तथा सर्वेश्वर श्रीसीतापतिजी के लोक कल्याणकारक चरणकमलो की वन्दना सदा क्यिा करता हुँ, जिन श्री चरण की धूली के स्पर्शमात्र से अघरूपा गौतम नारी का उद्धार हुआ तथा जिनके चिन्तन से अनन्त पतितो का कल्याण हुआ उन पाद पद्मो की सदा वन्दना करता हुँ ॥५॥

भजामि सीतापतिमेवकेवलं रटामि सीतापतिमेव केवलम् ॥
श्रयामि सीतापतिमेव केवलं प्रयामि सीतापतिमेवेकेवलम् ॥

मै केवल श्रीसीतापतिजी का ही भजन-यानी सेवा करता हु अन्यो का नही, तथैव श्रीसीता पतिजी के दिव्य नामो का ही रटन करता हुँ अन्य नामो का नही, और सर्वाश्रय दाता श्रीसीता पतिजी का ही आश्रय लेता हुँ अन्यो का नही, तथा सर्वशरण्य श्रीसीनापनिजी के तरफ ही जाता हुँ अन्यो के तरफ कदापि नही जाता हुँ ॥६॥

इत्याद्यनन्यतावेदनस्तोत्रपुरुषसूक्तादिकं पठन् प्रदक्षिण नमस्कारादिभिः सपूज्य भगवन्तं श्रीसीतासमेतं श्रीरामचन्द्रं पर्यङ्के निवेश्य—

इत्यादि ज गु श्रीगगाधराचार्य प्रणीत अनन्यतावेदन दिव्य स्तोत्र तथा पुरुष सूक्त आदि को पढता हुआ श्रीरामजी की प्रदक्षिणा तथा नमस्कार आदि से अच्छी तरह से पूजा करके श्रीसीताजी के साथ भगवान् श्रीरामजी को पर्यंक मे सन्निवेश करके निम्न प्रकार से प्रार्थना करे—

पर्यङ्कासनमारुह्य सीतया सहितः प्रभो ? ।
निद्रां कुरुस्व भगवन् ? पार्षदैरभिरक्षितः ॥१॥

इति प्रार्थयन् निम्नाष्टकं गायन् शाययेत् ।

षडैश्वर्य परिपूर्ण सर्व समर्थ सर्वेश्वर श्रीरामजी ? स्वच्छस्फटिकसन्निभपर्यंकासन दिव्य पलंग पर समारोहित होकर श्रीसीताजी के साथ श्रीहनुमदादिपार्षदो से अभिरक्षित होकर आराम करे यानी सुखनिद्रा का अनुभव करे ॥१॥

इस प्रकार से प्रार्थना करते हुये निम्न श्रीरामदोलिकाशयनाष्टक का मधुर स्वर से गान करता हुआ श्रीरामजी को सुलावे ।

माता गीत्वा स्वपुत्रं यदि शयनगतं संविधत्तेऽथ शेषिन् ?
शेषत्वात्सात्म्यतत्वं गतवत इह मे कोशलाधीशजायाः ।
वात्सल्यातुल्यपात्रं स्वपिहि गुणगणोदारगीतेन गीतो
देहे सौधेऽतिशुद्धे भजनकलनतः स्वान्तदोलाऽधिशायी ।१।

पालने मे बालक माता का गीत सुनते सुनते सो जाते है अथवा गीत गाकर माता बच्चे को सुलाती है ऐसा अनुभव है । इसलिये समस्त जगत का प्रयोजन होने के कारण हे शेषिन्! मैं तथा श्रीकौशल्याजी दोनो का एक मात्र आपके अधीन होने से शेष रूप से अभेद होने के

कारण मेरे तथा श्रीकौशल्याजी के अनुपम दुलारे श्रीरामजी ! भजन के कारण अत्यन्त निर्मल सुधा धवल प्रासाद रूपी मेरे देह मे मेरे मन रूपी दोला पर लेटे हुये तथा गुण गण कीर्तन के गीत सुनते सुनते सो जाये मेरे मन मे स्थिर रूप से वास करे ॥१॥

कौशल्या कीर्तिधन्या यदुदरजनिमागाज्जगद्यत्तनुः स
श्रीरामो रावणास्याऽप्युपनवशिरसां कर्तितैकेषुणाद्राक् ।
जामाताऽन्वर्थनाम्नो नृपतिकुलमणेर्यो विदेहस्य कुर्यात्
स्वापं दोलां श्रितो हृन् मम दशरथसूर्भक्ति गङ्गाम्बुधौतम् ॥२॥

वह कौशल्या अपनी कीर्ति से धन्यवाद का पात्र है, क्योकि स्थूल सूक्ष्मचिदचिदात्मक यह ससार जिसकी शरीर है, ऐसे श्रीरामजी ने जिसके उदर से अवतार–जन्म लिया था। इससे बडी कीर्ति और क्या हो सकती है ? वह श्रीरामजी जिन्होने एक ही बाण से अत्यन्त लघुता से रावण के दश मस्तको को काट दिया था तथा विदेह कहे जाने वाले राजाओ के कुलश्रेष्ट ऐसे विदेह के जो जामाता है । ऐसे श्रीरामजी श्रीदशरथजी के पुत्र मेरे भक्ति रूपी गङ्गाजल से पवित्र ऐसे हृदय रूपी दोला पर रहनेवाले निद्रा को प्राप्त करे अर्थात् भक्ति से भरे मन मे सदावास करे ॥२॥

नीलाभो नीलपद्मोद्भवकृतजगतीनाथ ! सीताधिनाथः
सद्भिर्भोग्योऽपि भोग्यं ननु निखिलमिदं यस्यलीलाधृताङ्गः ।
धन्वोन्मुक्तेषुणाऽब्जच्छदमिव सितवां स्ताटकोरः परेशो
भक्तिक्षीराब्धिशेषं सदपि मम मनोदोलिकांसोऽधिशेताम् ॥३॥

अपने नाभिकमल से उत्पन्न हुऐ ब्रह्माजी के द्वारा उत्पन्न किये गये जगत के स्वामी हे श्रीरामजी नीलकान्ति वाले तथा श्रीसीताजी के प्राणेश्वर आप सज्जनो के सेवनिय हैं पुनश्च यह संपूर्ण ससार आपकी लीला का विषय होने से आपका भोग्य है । आपने ताटका की छाती को धनुष से छोडे गये बाण से कमल के पत्ते के सदृश सरलता से ही काटा था। आप ही परमेश्वर है, इस प्रकार जगत के कर्त्ता तथा पालक एव दुष्ट का निग्रह करने वाले आप भक्ति रूपी क्षीर सागर मे शेषनागरूपी मेरे मन की दोला पर शीघ्र ही सो जॉय ऐसी मेरी प्रार्थना है आप शेष शय्या के समान ही मेरे मन मे सदा निवास करे ।

राज्यं दत्त्वाऽनुजायाऽतिविपुलविलसच्छ्रीसमिद्धं निरीहो
वक्षस्वीवीरलक्ष्मी वसतिरनुपमोदारकीर्तिर्निरर्तिः ।
अव्राजील्लक्ष्मणेनाऽतिगहनविपिनं भक्तिभाजाऽनुजेना
ऽऽशेतां दोलां वरेण्यो मम हृदयकृतां सज्जनानां शरण्यः ॥४॥

विशाल छाती वाले तथा वीर के सभी गुणो से युक्त श्री रामजी निष्काम होने के कारण विशाल एवं समृद्ध राज्य अपने छोटे भाई श्रीभरतजी को देकर अतुल्य एवं महान् कीर्ति से शोभित तथा किसी प्रकार की पीडा को मन मे नही रखते हुये छोटे भाई तथा परम भक्त ऐसे

श्रीलक्ष्मणजी के साथ अत्यन्त भयकर वन मे गये वे सज्जनो के रक्षक पुरुषोत्तम श्रीरामजी मेरे मन से बनाये पालना मे ही रहने का विचार करे ऐसी मेरी उनसे प्रार्थना है—ऐसे पुरुषोत्तम श्रीरामजी मे ही मेरा मन सदा लगा रहे ॥४।

साकेतेशो विमातुर्वचनकरवरो ज्ञानिनामग्रभूमिः
पौरैर्पित्रैस्तथान्यैरनुगमनकरै दण्डकां साकमाप्तः ।
शेषाणां तन्मुनिनां परमहितकृते दिव्यभैषज्यतुल्यो
दोलायां स्वापमेयाद्रघुकुलतिलकोमानसे मे सरामः ॥५॥

रघुकुल के तिलक समान साकेतपुर के स्वामी तथा ज्ञानियो का आलम्बन स्वरूप तथा विमाता के आज्ञाकारियो मे श्रेष्ठ होने के कारण विमाता की आज्ञा से दण्डक नाम के बन मे वहाँ के परम भक्त मुनियो के परम कल्याण को साधन करने के लिये दिव्य औषध के तुल्य ऐसे श्री रामजी अनुगमन करते हुए नगर के मित्र तथा अन्य जनो के साथ ही पहुचे थे । ऐसे अलौकिक विनय से सम्पन्न तथा अप्रतिमभक्तवत्सल श्रीरामजी मेरे मन रूपी पालने मे शयन करे और मेरा मन सर्वदा उनके ध्यान मे ही मग्न रहे ॥५॥

सुग्रीवायाऽधिराज्यं ददढभिनवकाऽब्दच्छविर्वालिकालः
पारावारेऽप्यपारे गिरिवरनिकरैर्बद्धसेतुर्विभुर्यः ।
प्राकारैः प्रावृतां तां दशमुखनगरीं ध्वंसिता ध्यानगम्यो
दोलां चेतोऽधिशेतां मम सकलकलोधवन्विनां ग्रामणीःसः ॥६॥

जो श्रीरामजी नवीन मेघ के समान कान्ति वाले है, धनुर्धरो मे मुख्य है, जो वालि के लिये यमराज समान है तथा सुग्रीव को विशाल राज्य देने वाले है । तथा जिन्होने पर्वतो के समूहो से अपार समुद्र मे सेतु बाधा था, तथा जिन्होने कोटो से सुरक्षित ऐसी रावण की राजधानी लंका का नाश किया था, ध्यान से जानने योग्य सभी कलाओ से युक्त एवं सर्वत्र व्यापक ऐसे वे श्रीरामजी मेरे मन रूपी पालने मे शयन करे ॥६॥

लोकाक्ष्या सेचनाढ्यातुलबलवपुषा राजमानोविमानः
प्रोन्मीलन्नीलपङ्केरुहवदनघनश्यामधामाभिरामः ।
कोदण्डेनेषुणा चोल्लसितकरकजः श्रीविशालः सुमाल-
श्चित्ते स्वापं ममेयादहितविहतिकृद्दोलिकायां स रामः ॥

जिसके दर्शन मे लोगो के नेत्र कभी तृप्त नही होते ऐसे तथा अतुल बल से युक्त शरीर वाले, निरभिमानी, विकसित नील कमल के समान श्याम वर्ण से मनोहर धनुष तथा बाण से शोभित करकमल वाले, उत्तममाला से विभूषित सभी प्रकार के अतिशयो से युक्त, दुष्टों के निग्रह करने वाले श्रीरामजी मेरे चित्त रूपी पालने मे शयन करे ॥७॥

वीराणामग्रणीर्यः सुरदनुजनृणां जन्मिनां वेतरेषा
कर्त्तापाताऽथहर्त्ता समविरुद्युतो हेयहीनोऽप्यहीनः ।

स्तुत्यो नम्यश्चगम्यश्चिदचिदुभयव्यापिवर्ष्मानिरूष्मा
रामः स्वापं म एयादसितमणितनुर्दोलिकायां स चित्ते ॥

जो श्रीरामजी वीरो के अग्रसर है तथा जो देव, दानव, मनुष्य तथा अन्य प्राणियो के कर्ता रक्षक तथा नाश करनेवाले भी है, सभी प्रशस्तियो से युक्त है हेयगुणो के स्पर्स से भी रहित है। तथा जो परात्पर है, स्थूल एव सूक्ष्म चेतन तथा अचेतन को अपने शरीर मे समाये हुये है तथा सर्वोत्कृष्ट विनय निरभिमानता आदि गुणो से सम्पन्न है ऐसे इसलिये केवल वे ही स्तुति के प्रणाम के तथा ध्यान के योग्य है ऐसे नीलमणि के समान कान्ति से युक्त शरीरवाले श्री रामजी मेरे मन रूपी पालने मे शयन करे मेरा मन सदा ही उनमे लगा रहे ॥८॥

ततो निवेदितनैवेद्यं मनसा चतुर्भागं परिकल्प्य हनुमदङ्गदसुग्रीवविभीषणेभ्यो-निवेद्यानन्तरं पूर्वाचार्यादिभ्यः स्वाचार्येभ्यश्चनिवेद्य शेष भागवतैः सहभुञ्जीत ।

अनन्तर श्रीरामजी को निवेदित नैवेद्य को मन से चारभागकी कल्पना करके 'हुं हनुमते नम' इस मन्त्र से श्रीहनुमानजी को तथा 'अ अंगदाय नम' बोलकर श्रीअगदजी को तथैव 'सुंसुग्रीवाय नम' मन्त्र से श्रीसुग्रीव और 'वि विभीषणाय नम' बोलकर श्रीबिभीषणजी को निवेदन करने के बाद 'ॐ ब्रह्मादि समस्त पूर्वाचार्येभ्यो नम महा नैवेद्य समर्पयामि' ऐमा बोलकर समस्त पूर्वाचार्यो को राजभोग का समर्पण करने के वाद 'ॐ स्वाचार्येभ्यो महाप्रसादं समर्पयामि' ऐसा बोलकर स्वाचार्यजी को महाप्रसाद समर्पण करने के वाद शान्तचित्त से भागवत तथा समागत अभ्यागतों के साथ महाप्रसाद का सेवन करे। श्रीवैष्णवो को यह खास खयाल रखना चाहिये कि जब कभी जो कोई भोज्य पदार्थ परेश श्रीरामजी को भोग लगाया जाय पर्योक्त विधि से सभी को समर्पित करके ही स्वय सेवन करे एकाकी नही।

रामानन्दोपदिष्टेयं श्रीरामार्चनपद्धतिः। मुमुक्षूणां मुदेभूयाच्छ्रीरामप्रीतिकारिणी ॥१॥
अर्चकोयःसमभ्यर्चेदास्थायेमामहर्दिवम्। प्रासाद्य सगणं रामं लभते गतिमुत्तमाम् ॥२॥

इत्यानन्दभाष्यकार जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यप्रणीत श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर परिशिष्ट
卐 श्रीरामार्चनपद्धतिः 卐
卐 श्रीरामः शरण मम 卐

"मङ्गलादीनि मङ्गलमध्यानि मङ्गलान्तानि च शास्त्राणि प्रथन्ते वीरपुरुषाणि भवन्त्यायुष्मत्पुरुषाणि चाध्येतारश्चमङ्गलयुक्ता स्यु" इस स्मृति वचनानुसार आचार्य सम्राट् जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी प्रबन्धप्रकरणान्त मे आशीर्वादात्मक मंगल वचन पूर्वक प्रकरणोपसहार करते है—

ज गु श्रीरामानन्दाचार्यजी से स्वशिष्य ज गु श्रीसुरसुरानन्दाचार्यजी के "तत्त्वं किम्? आदि दश प्रश्नों को निमित्त बनाकर सर्वलोकोपकारार्थ उपदिष्ट यह सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी के श्रीचरणों मे अनन्य प्रीति करानेवाली श्रीरामार्चनपद्धति सब मुमुक्षुजनोके लिये सायुज्य मुक्ति प्राप्त कराने वाली हो ॥१॥

जो अर्चक श्रीरामजी की पूजा इस श्रीरामार्चनपद्धति के विधानानुसार सदा त्रिकाल अच्छी तरह से समाराधन करेगा वह श्रीरामजी के सब गणो के साथ उन्हे प्रसन्नकर सर्वोत्तम सायुज्य मुक्ति को प्राप्त करेगा ॥२॥

इस प्रकार यह आनन्दभाष्यकार जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी प्रणीत श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर का परिशिष्टभाग पूरकभाग श्रीरामार्चनपद्धति की जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यरामप्रपन्नाचार्ययोगीन्द्र शिष्य पश्चिमाम्नाय श्रीरामानन्दाचार्यपीठाधीश्वर स्वामीरामेश्वरानन्दाचार्य प्रणीत गंगाटीका पूर्ण हुई। श्रीराम शरण मम।

जगद्गुरु श्रीतुलसीदासजयन्ती
श्रावण शुक्ल सप्तमी २०४२

प्रासङ्गिक

"रामानन्दः स्वयं रामः प्रादुर्भूतो महीतले"

ग्लानिप्राय सनातन भगवद्धर्म के उत्थान के लिये जगदाचार्य आनन्दभाष्यकार श्रीरामानन्दाचार्यजी (१३५६–१५३२) यति सम्राट् के विषय मे यह वैश्वानरागम तथा श्रीवाल्मीकि संहिता भविष्य पुराण प्रभृति प्रसिद्ध है। भगवान् आनन्दभाष्यकार द्वारा पुन प्रचूर तया प्रचारित सत्प्रवृत्ति तथा स्वप्रणीत भाष्यरत्नादि सद्ग्रन्थो की ग्लानि प्राय स्थिति मे सनातन श्रीवैष्णवधर्म का पुन प्रचार प्रसार के लिये जगदाचार्य श्रीने आश्विन शुक्ल दशमी १९४३ मे वशिष्ठ गोत्रीय त्रिप्रवर वाले शुक्ल यजुर्वेदीय कान्यकुब्ज परिवार मे श्रीरघुवर के रूप मे अवतार लिया। श्रीवेदान्त केसरीजी का इतिवृत्त अनेक ऋषि महर्षियो के समान प्रच्छन्नप्राय ही है जो कुछ विज्ञजनों को विदित हो पाया वह देशिक परिचर्या तथा स्मृति ग्रन्थ के पृष्ठ ५७५ से ६०४ तथा ७११ से ७१४ मे विवृत है अत पिष्टपेषण अस्थाने ही होगा।

आपने 'वेदान्ततीर्थ' की परीक्षा ई सं १९१५ मे कलकत्ता विश्वविद्यालय गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज से उत्तीर्ण की। तथा 'साख्ययोगतीर्थ' परीक्षा इसी संस्था की १९१६ मे उत्तीर्ण की। 'वेदान्तशिरोमणि' परीक्षा नवद्वीप बङ्गाल संस्कृत एसोसियेशनकी १९१७ मे उत्तीर्ण की। 'तर्कतीर्थ' परीक्षा विहार गवर्नमेन्ट संस्कृत एसोसियेशन से १९२० मे उत्तीर्ण की। 'न्यायाचार्य परीक्षा भी इसी संस्था से १९२२ मे उत्तीर्ण की। मीमासाचार्य' परीक्षाभी इसी संस्था से १९२३ मे उत्तीर्ण की। 'व्याकरणाचार्य परीक्षा गवर्नमेन्ट संस्कृत कालेज काशी से १९२४ मे। दुर्भाग्य से मूल प्रमाण पत्र तथा यत्र तत्र प्राप्त पदक और उपहारो का परिचय यहाँ नही दिया जा सका महत्त्वानभिज्ञासमीक्षकारीता के कारण नष्ट हो गये (आचार्य चरण का साकेत प्रयाण वेदान्ताश्रम–सिद्धपुर मे वसन्तपञ्चमी २००७ को हुआ था अमूल्य निधि ये सब वहीं थे, अदूरदर्शी उत्तराधिकारी का अभिनय करने वालो के शीकार हो गये) विशेष प्रयत्न करने पर भग्नावशेष के रूप मे श्रीसीतारामजी के सौजन्य से जो अभिनन्दन पत्रादि प्राप्त हुये वे तथा महामहोपाध्याय का प्रमाण पत्र यहा दिया जा रहा है।




SANAD



SANAD

To

Mahant Shri Raghuvaracharyaji,
Mahant of Shingda Math,
Porbandar State

I hereby confer upon you the title of Mahamahopadhyaya as a personal distinction

Wavell
Viceroy of India

New Delhi
The 14th June 1945





SANAD

श्री

प्रतिष्ठापत्रम्

गुर्जरजनपदावयवबडोदा मण्डलान्तः पाति श्रीमदुञ्झावसथवास्तव्यः सकलवैष्णवकुलकाननकुसुमाकरः श्रीरघुवराचार्यमिश्रोव्याकरणकाव्यन्याय-मीमांसावेदान्तसांख्ययोगसाहित्यादीनिशास्त्राणि श्रमक्रमाभ्यामादरादधीत्य लब्धविशदव्युत्पत्तिकतया तदुत्तमपरीक्षासु प्रथमपदेसमुत्तीर्णः समस्तान्येव शास्त्राणि सरहस्य प्रतिपादनपुरस्सरं साधुतममध्यापयितुम्प्रभवतीतीदमी-यगुणगणगौरवेणप्रवणीकृताःसन्तोऽतिसन्तोषेण व्यावहारिकचातुरीमप्युपेयुषे सुशीलस्पृहणी य चरितजुषेऽस्मैविदुषे प्रतिष्ठापत्रमेतद्वितरन्तिविहारप्रदेशीय-मुजफ्फरपुरस्थ ।

राजकीय संस्कृत महाविद्यालयाध्यापका

बालकृष्ण मिश्र	धर्मराजओझा	ईश्वरदत्तोदौर्गादत्ति
बदरीनाथझा	दयानन्दझा	शशिनाथझा
रविनाथझा	अम्बिकादत्त चतुर्वेदी	श्रीबटेश्वरझा

श्रीमते रामानन्दाय नमः

तीनो अनीके सस्थापक षट्दर्शन शाहंशाह चतु सम्प्रदायाचार्य श्री १०८ श्रीबालानन्दजी

श्रीसीतारामजी सहाय

श्रीगुरुमहन्त महाराज

श्रीरामकृष्णानन्दजी

प्रमाणपत्रमिदम्

सर्व शास्त्रों में असीम पाण्डित्य रखनेवाले दर्शननिधि न्यायोपाध्याय मीमांसोपाध्याय वेदान्ततीर्थ तर्कतीर्थ वेदान्तशिरोमणि इत्यादि उपाधिविशिष्ट श्रीरघुवराचार्यजी वेदान्त केसरी हमारे सम्प्रदाय में एक परमोच्च सच्चरित्र प्रखरविद्वान है। आपने अध्ययनकाल से अद्यावधि श्रीसम्प्रदाय के उद्धार के लिये तथा प्रचार के लिये सीमातिक्रान्तपरिश्रम उठाया हैं। ऐसे सर्वथा सम्माननीय परमयोग्य विद्वान् को हम "आचार्य" पदवीसे सहर्ष विभूषित करते हैं, और आशा कहते हैं कि भगवान श्रीरामजी महाराज आपको चिरञ्जीवी रक्खे जिससे कि सम्प्रदाय में आप उन्नति के अनेक कार्य करते रहें ॥ शुभम् ॥ शरत् सं. १९९०॥

卐 श्रीमते मारुत नन्दनाय नम 卐

शिडडास्थशेषमठाधीश्वर श्रीरघुवराचार्य्य वेदान्त केसरिभ्यः



अभिनन्दनपत्रम्



वैदेहीशं परेशं रघुकुलतिलकं फुल्लपंके रुहाक्षम् ।
सीतङ्कारूढ पाद नृपमुकुटमणे रञ्जितश्चार्य्यमानम् ॥
भक्त्या प्राह्लादयन्तः श्रुति विदितपथान् ख्यापयन्तोविभावाः ।
वैदुष्यात् ख्यातभावा जगति रघुवराचार्य्य वर्या महान्ताः ॥१॥

मीमांसायामुभय्या कणभुजपद्दृक् पाणिनीयेषु दक्षाः ।
विद्वन्मार्तण्डवाग्भाकृतरिपुनिशिदृग् वागूदगन्धाः सुशान्ताः ॥
रामानन्दीयभाष्याशय जलधि पीयूषपानावतंसाः ।
श्रीमन्तो मान्यवर्याः सुविदित यशसो वीर्यबन्तो जयन्तु ॥२॥

श्रीमन्तो धर्मधीरा धरणितलविभुं भासमानं समन्तात् ।
प्राचीनं शास्त्रसिद्धं विकशितमतुलं वैभवं-धार्मिकानाम् ॥
धर्मंक्ष्माधारभूतं त्रिभुवनविजय विश्ववन्द्यानवद्यम् ।
सिद्धान्तं वैष्णवानामिति विबुधवराद्योतयन्तो जयन्तु ॥३॥

दुष्टाः सन्तु पराहताः हृतधियः सन्तु प्रसन्नोदयाः ।
शिष्याः सन्तु प्रभाविता ननु गुणाः सन्तु प्रभातास्तथा ॥
देशाः सन्तु निरामयाः समुदिताः सन्तु प्रशस्ताः श्रियः ।
श्रीमान् शेषमठेशविश्वविजयी तेते चिरं राजताम् ॥४॥

रम्यं विस्तृतमेव यन्निरुपम कुत्राप्यदृष्ट श्रुतम् ।
पूर्ण वर्णयितुं नु भाव समयाऽशक्यं त्वदीयं यशः ॥
वात्सल्याम्बुनिधि चराचरपतिं श्री शंततः प्रार्थये ।
नर्ण्यश्शेषमठाधिपो विजयतामाचन्द्रमातारकम् ॥५॥

श्लोकानां पञ्चकञ्चैतच्चाभिनन्दनपत्रकम् ।
साकेतवासिभिर्विद्वन्मण्डलैः सम्प्रदीयते ॥

पं० रुद्रप्रसादावस्थी न्या० व्या० आ० राजगोपाल पाठशाला पं० गोपीकान्तझा ज्योतिषाचार्य्य राजगोपाल पा० प० सहदेवझा व्या०आ०सा० तीर्थ वे० शास्त्री राजगोपाल पा० उदयराज मिश्र व्या० आ० न्या० शास्त्री राजगोपाल पा० प० रामसरूप पाण्डेय व्या० आ० बडास्थान पाठशाला पं० विष्णु पठक वैदिक राजगोपाल पाठ० पं० कालिकादत्त झा व्या० आ० बडास्थान पाठशाला पं० सिद्धनाथझा ज्योतिषाचार्य्य रुसी पाठशाला प० वासुदेव मिश्र व्या० आ० या० शा० गोवर्धन पा० प० फुलेश्वर पाठक व्या० आ० वे० शा० रुसी पाठ० प० प्रभाकरधर द्विवेदी व्या० आ० रानूपाली पाठशाला पं० छेदीराम द्विवेदी ज्योतिषी प० रामसरूपजी ग्वालियर

आश्विन कृ० एकादशी ता० ३०-९-३७ ई० अयोध्या

नोट-अवकाशाभाव के कारण अधिकाश विद्वानोके शुभनाम नही दिया जा सका ।

परब्रह्मणे श्रीरामाय नम
आनन्दभाष्यकारश्रीरामानन्दाचार्याय नम
महामहोपाध्यायपदविकजगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यस्वामिश्रीरघुवराचार्यवेदान्तकेसरिणा
प्रणीता

श्रीमन्त्रराजमीमांसा

श्रीमदाचार्यपादाब्जं निधाय हृन्निकेतने ।
श्रीमन्त्रराजमीमांसां कुर्वे नत्वा गुरुं मुदा ॥१॥

अथास्य षडक्षरात्मकस्य श्रीराममन्त्रस्य श्रद्धातिशयेनोपवर्णयद्भिर्महर्षिभिर्निरतिशय माहात्म्यमुदटङ्कि । वेदेऽप्यस्यानवधिकमहिम्नस्तारकमनोरसकृन्महत्त्वमाम्नायत इति तद्विषयमवलम्ब्यायं प्रस्तूयते प्रबन्धः ॥१॥

नचान्येषु देवतान्तरोपास्तिप्रचुरतरेषु मन्त्रेषु सत्सु किमनेन बैशिष्ट्यमिति वाच्यम् । देवतान्यत्त्वफलान्यत्वा, द्यभिदधानेभ्यो मन्वन्तरेभ्योऽस्त्येवास्य षडक्षरलक्षणस्य श्रीराममनोर्वैशिष्टचम् । तथाहि–प्रमाणतमपांचरात्रागमान्तर्गत, बृहद्ब्रह्मसंहितायाम् —

श्रीराममन्त्रराजस्य माहात्म्यं गिरिजापतिः ।
जानाति भगवाञ्छम्भुज्वलत्पावकलोचनः ॥

शोभायुक्त आनन्दभाष्यकार जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजीके चरण कमल को मैं अपने हृदय मन्दिर मे स्थापित करके तथा श्रीगुरुदेव जगद्गुरु श्रीहनुमदाचार्यजी को गार्ष्टांग प्रणिपात नमस्कार करके श्रीमन्त्रराज मीमासा को प्रकाशित करता हूँ ।

इस षडक्षर स्वरूप श्रीराममन्त्र का श्रद्धाके साथ बर्णन करने वाले महर्षियो ने अपने अपने ग्रन्थों मे बहुत महात्म्य लिखा है और वेद मे भी इस सर्वोत्कृष्ट महिमा शाली तारक श्रीराम मन्त्र का वारवार महत्व कहा गया है। इसलिये श्रीराममन्त्र के विषय मे यह प्रबन्ध प्रस्तुत किया जाता है ॥१॥

इस पर किसी को यह शंका नही उठानी चाहिये कि इस तारकमन्त्र के अतिरिक्त दूसरे देवताओं की उपासना से पूर्ण और भी अनेक मन्त्र विद्यमान है तब इस मन्त्र से क्या विशेष लाभ है। देवता भेद और फल भेद आदि कहने वाले दूसरे मन्त्रों से इस षडक्षरात्मक श्रीराम मन्त्र मे अवश्य वैशिष्ट्य है । इमी विपय का अब अग्रिम प्रमाणो से विवेचन किया जाता है। परम प्रमाणभूत पञ्चरात्रशास्त्र के अन्तर्गत बृहद्ब्रह्मसंहिता मे इस प्रकार श्रीराममन्त्र के लिये लिखा है कि "जाज्वल्यमान अग्नि नेत्रधारी गिरिजापति भगवान् शम्भु इस श्रीराममन्त्र के महत्व को जानते हैं ।"

इत्यादिपद्यैस्तथागस्त्यसंहितायाम्=

सुतीक्ष्णमन्त्रवर्गेषु श्रेष्ठो वैष्णव उच्यते ।
गाणपत्येषु शैवेषु शाक्तसौरेष्वभीष्टदः ।
वैष्णवेष्वपि सर्वेषु राममन्त्रः फलाधिकः । मन्त्रराज इति प्रोक्तः सर्वेषामुपकारकः ॥

इत्यस्याधिकफलप्रदत्वेन वैशिष्टयमाचष्टे। एवं वृद्धहारीतस्मृतौ ।

षडक्षरं दाशरथेस्तारकं ब्रह्म गद्यते। सर्वैश्वर्यप्रदं नृणां सर्वकामफलप्रदम् ॥
एतमेव पर मन्त्रं ब्रह्मरुद्रादिदेवताः ।
ऋषयश्च महात्मानो मुक्ता जप्त्वा भवाम्बुधौ ॥६।२४१।
एतन्मन्त्रमगस्त्यस्तु जप्त्वा रुद्रत्वमाप्तवान् ।
ब्रह्मत्वं काश्यपो जप्त्वा कौशिकस्त्वमरेशताम् ॥६।२४२।
एष वै सर्वलोकानामैश्वर्यस्यैव कारणम् ।
इममेवजपन्मन्त्रं रुद्रस्त्रिपुरघातकः ॥६।२४४॥
अनन्ता भगवन्मन्त्रा नानेन तु समाः कृताः ।
श्रियो रमणसामर्थ्यात्सौन्दर्याद्गुणगौरवात् ॥६।२४८।

इत्यादिवचनैरस्यैव सर्वातिशायिफलवत्वमुत्कृष्टत्वञ्चाभिदधौ ॥२॥

एवं शिवसंहितासनत्कुमारसंहितास्कन्दपुराणादिवचोभिरस्यमहत्त्वमतिशेतेऽखि-

इन पद्यो से स्पष्ट वर्णन किया है। अगस्त्य संहिता मे भी "हे सुतीक्ष्ण ! समस्त गाणपत्य शैव, शाक्त, और सौर मन्त्रोमे अभीष्ट फलको देनेवाले वैष्णव मन्त्र ही श्रेष्ठ माने जाते हैं और वैष्णव मत्रो मे भी सबसे श्रेष्ठ और अधिक फल देनेवाला श्रीराममंत्रही है यह अन्यसब मंत्रोका और विश्वकाभी उपकारक है। अतएव इस मत्रको 'मत्रराज' कहा गया है। इस प्रकार इस श्रीराममंत्रको अधिक फलप्रद बताकर दूसरे मंत्रोसे विशिष्टता दिखायी है वृद्धहारीत स्मृतिमे– "भगवान् श्रीरामजी का यह षडक्षर 'राममंत्र' तारक ब्रह्म कहागया है। यह मंत्र मनुष्योंको सर्व प्रकारके ऐश्वर्योको देकर सर्वमनोरथोंको पूर्ण करता है। इस सर्वोत्कृष्टमंत्रको जपकर ब्रह्मरुद्रादिदेव और ऋषि महात्मो भवसागरसे पार उतर गये है। इस मत्र को जाप करके अगस्त्य मुनि ने रुद्रत्व को प्राप्त किया है काश्यप ब्रह्मत्वको और कौशिक मुनि अमरेशताको प्राप्त हुए हैं। यह मन्त्र सब प्राणियोके ऐश्वर्य का कारण है। इस मत्र के जप करनेसे रुद्र त्रिपुरासुर के वधमे समर्थ हुए है।

भगवान के मंत्र अनन्त है परन्तु भगवान के लक्ष्मी रमण सामर्थ्य, अनुपम सौन्दर्य व और अनेक गुणों के गौरव से इस मंत्र के समान अन्य कोई मंत्र नहीं है।"

इत्यादि वचनोंसे इसी श्रीराममत्रका सर्वोपरि फलदायकत्व और सर्व श्रेष्ठत्व बताया गया है। इसी प्रकार शिव संहिता सनत्कुमार सहिता और स्कन्द पुराण आदिके वचनोंसे भी श्रीमंत्रराज का

लामरमन्त्रमहिम्न इति स्पष्टमेव शास्त्ररहस्यवेदिनाम्। तेषां कानिचन वचनान्यत्र निर्दिश्यन्ते ।

अहं दिशामि ते मन्त्रं तारकं ब्रह्मसंज्ञितम् । एष मन्त्रश्च विज्ञेयस्तारकश्चेति संज्ञितः।।
कल्पद्रुमइतिस्फीतः साधकानां फलप्रदः । सर्वेषां मन्त्रवर्णानां श्रेष्ठो वैष्णव उच्यते ।।

तेषु वैष्णवमन्त्रेषु राममन्त्र फलाधिकः ।
विश्वरूपस्य ते राम ! विश्वशब्दाहिवाचकाः ।।
तथैव मूलमन्त्रस्ते विश्वेषां वीजमक्षयम् ।
अचिन्त्योय महाबाहो ? मंत्रश्चिन्तामणिर्विभोः ।
विहायैनं विमूढात्मा ततश्चेतश्च धावति ।।इति।।

एभिर्वचननिचयैर्निरस्तसमस्तविशयैर्भ्रमप्रमादलिप्साद्यशेषदोषादूषितान्तः करणैः शिष्टविशिष्टपरिवृढरपास्तहेयगुणानवधिककल्याणगुणार्णवभगवच्छ्रीरामरहस्यवेदिभिराञ्जनेयाब्जयोनिहैरण्यगर्भपराशरद्वैपायनादिभिश्चास्यैव स्वीयनिःश्रेयसैकसाधनतया सादरपरिगृहीतत्वम् ।।३।।

नन्वागमस्मार्तप्रमाणैरवश्यमस्य मनोरनितरसाधारणफलातिशयाधायकत्वमुद्धुष्यते। नचाम्नायिकैः कैरपि प्रमाणैस्तत्रत्रैवर्णिकानामेवाधिकारात्। अस्मिस्तु चातुर्व-

महत्व अन्य समस्त देवोके मन्त्रो की महिमा को अतिक्रमण करने वाला कहा गया हे । यह बात मत्र शास्त्रके रहस्यको जानने वाले खूब जानते है। इनशास्त्रो के कुछ वाक्य यहाँ पर उद्धृत कियेजाते है । शिवजी पार्वतीजीसे कहते हैं, कि 'मै तुम्हें ब्रह्मसज्ञक तारकमंत्रका उपदेश देता हुँ, इसमंत्र की 'तारकमत्र' ऐसी सज्ञा है। यह मत्र साधक जनोको कल्पवृक्षके समान फल देनेवाला है । समस्त मन्त्रो से वैष्णव मन्त्र ही श्रेष्ठ कहे गये है और उन वैष्णव मन्त्रो मे भी श्रीराममन्त्र ही अधिक फल का देने वाला है। हे राम! आप विश्वरूप हे अतएव विश्व के समस्त शब्द आपके वाचक है। और इसी प्रकार आपका मूलमन्त्र जो श्रीराम मन्त्र है वह समस्त मन्त्रो का और शब्दों का भी मूल है। हे महाबाहो! यह मन्त्र चिन्तामणि अचिन्त्य (अतर्कित) शक्ति वाला है। इस मन्त्र रूप चिन्तामणि को भूलकर मूढ मनुष्य अन्य वस्तुओ की लिप्सा से जहा तहा दौडता है।" इन वचनो से (यह मन्त्रराज) समस्त शंकाओ से रहित, भ्रम प्रमाद और लिप्सा आदि समस्त दोषो से रहित शुद्ध अन्तकरण वाले सज्जन पुरुषो मे विशेष समादरणीय है और निन्द्य गुण रहित तथा अनन्त कल्याण गुण सागर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के रहस्य को जानने वाले श्रीपवनकुमार, ब्रह्मा, वसिष्ठ, पराशर और द्वैपायनादि महर्षियो ने इसी श्रीराममन्त्र को मोक्ष का एक मात्र साधन मानकर प्रम के सहित ग्रहण किया है ।।३।।

अब यहा शङ्का यह होती है कि पाञ्चरात्र आदि आगमो से और स्मृति पुराणो से तो अवश्य इस श्रीराममन्त्र को सब मन्त्रो से अधिक फलदायी बताया गया है । परन्तु किसी भी वैदिक प्रमाण से इसका वर्णन अथवा महत्व नही जाना गया । क्योंकि वेद मे और वैदिककर्म कलाप

र्णस्याप्यधिकारः 'सर्वेषामधिकारो वै ज्ञातव्यो दैशिकोत्तमैः' इत्यादिवचनैरवगम्यत इति कुतोऽस्यवैदिकत्वं कुतस्तराश्चाम्नायवचोभिरर्चितत्वमितिचेदनभिज्ञो भवान् मंत्रशास्त्रस्य। तथैतत्कृत्स्नं भवदुरोगह्वरगर्भगुम्फितं शुद्धमपित्वदीयशंकातककलंकपङ्किलं सामंजस्यमुपेयात्तथेदमग्रिममभिधास्यमानं सावधानमाकर्णय ॥४॥

अत्र चेदमेव प्राग्विचिन्त्यते। यत्किन्तावद्भवदभिमतं वैदिकपदवाच्यतावच्छेदकम्

१—वेदानुकूलप्रमाणप्रतिपाद्यत्वम्। २—वेदोपबृहंणेतिहासपुराणप्रतिपाद्यत्वम्। ३—वेदविहितत्वविशिष्टकृतिसाध्यत्वम्। ४—वेदोदित फलार्थिप्रवृत्तिविधेयत्वम्। ५—वेदैकसमधिगम्यत्वम्। ६—वेदैकभागब्राह्मणदृष्टार्थाधिकृतत्वम्। ७—वेदांशमन्त्रमात्रदृष्टार्थकत्वम्। ८—वेदोभयभागदृष्टार्थकत्वम्। ९—वेद पदाभिधेयार्थसम्बन्धित्वम्। १०—वेदोच्चरितानुपूर्वीकत्वं वा।

एष्वेवार्थेषु जिज्ञासुजनाकांक्षितस्य वैदिकपदवाच्यतावच्छेदकस्यान्यतमार्थे निर्भरत्वम्। तत्र विशिष्टबोधं प्रति तदवच्छेदकमते हेतुतया तद्विषय एव तावत्प्रथमं विवि-

मे त्रैवर्णिकका ही अधिकार देखा जाता है और इस श्रीराममन्त्र के तो चारों वर्ण अधिकारी है। यह बात "सर्वेषा" इस श्लोकसे स्पष्ट ही ज्ञात होती है, तब इस मन्त्र को कैसे वैदिक माना जावे ? और किस प्रकार वेद भगवान् की इस मन्त्र मे प्रवृत्ति कही जा सकती है। इस शङ्का का अब समाधान किया जाता है। आप मन्त्र शास्त्र के अनभिज्ञ है अतएव ऐसी शंका करते है। जिस प्रकार यह सब आपके हृदय गर्भ मे समाया हुआ शुद्ध होते हुए भी आपकी शंका रूप कलक पंकसे पंकिल हुआ शुद्धता को प्राप्त हो, उसी प्रकार हम यह आगेका विवेचन करते है। सावधान होकर सुनिये ॥४॥

यहा पर पहले यही विचार किया जाता है कि आपका अभिमत 'वैदिकत्व' क्या है? इसके लिये यहा १० कल्प किये गये है वे इस प्रकार है।

१. वेदके अनुकूल जो अन्य प्रमाण हैं (जैसेकि स्मृति, इतिहास, पुराण, दर्शनशास्त्र तथा अन्य आप्तो के प्रणीत ग्रन्थ) उनसे जिसका प्रतिपादन किया जाता हो (अर्थात् वेद मे हो या न हो) उसे वैदिक कहा जा सकता है। २ वेद के उपबृहण केवल इतिहास और पुराण से जिसका प्रतिपादन किया जाता हो। ३ वेद से विहित हो और अर्थीजन के प्रयत्न से साध्यहो। ४. वेदमें कहे गये जो फल है उनकी कामनावाले अर्थोकी प्रवृत्ति का जो विधेय हो। ५. एक मात्र वेद से जिसका ज्ञान होता हो। ६ वेदके एक भाग ब्राह्मण भाग मे देखे गये प्रयोजन के लिए जो अधिकृत हो। ७ वेदका अश जो केवल मन्त्रभाग है उससे जिसका प्रयोजन देखा गया हो। ८ वेदके उभय भागमे जिसका प्रयोजन देखा गया हो। ९ वेद पदसे कथित जो अर्थ तत्सम्बन्धी जो हो। १० वेद मे जिसकी आनुपूर्वी साक्षात् कठरव से कही जाती हो।

इन्ही १० दस अर्थोमे जिज्ञासुजनों से आकाक्षित वैदिक पदके अर्थका समावेश है। ऐसा एक नियम है कि यदि विशेषण युक्तका ज्ञान करना हो तो प्रथम उसके विशेषण का ज्ञान करना

च्यते। लक्षणप्रमाणाभ्यां वस्तुसिद्धिरिति न्यायविदो वदन्तस्तदुभयव्यतिरेकेण न किञ्चिदपि प्रसिद्धिपदमध्यास्त इति मन्वते।

तस्माद्वेदलक्षणं तावदादौ वाच्यं तदेव तु न संभवति। मन्त्रब्राह्मणान्यतरशब्दसमूहो वेद इति चेन्न। मन्त्रब्राह्मण प्रकारयोरद्याप्यनिश्चयात्। प्रमाणतया प्रगृहीतेषु प्रत्यक्षानुमानागमेष्वन्तिमस्य वेदत्वमित्यपि नानवद्यम्। स्मृत्यादावतिप्रसंगात्। अपौरुषेयत्वविशिष्टवाक्यत्वमेव तदित्यप्यविचारसहम्। भगवदनुभवाहितकृतिजन्यत्वेन पौरुषेयत्वात्। नच विग्रहवतोऽनिर्मितत्वादपौरुषेयत्वमितिवाच्यम्। भगवतोऽपि "अग्निर्मूर्धादिवः ककुत्" "सहस्रशीर्षापुरुषः" इत्यादिपरश्शतैः प्रमाणैरखिलानुग्रहविग्रहसमर्थत्वात्। कर्मकृतकलेवरकर्तृकत्वाभावादपौरुषेयमित्यपि नावसेयम्। कर्मात्त कलेवरसचिवैरेवाग्निवाय्वादित्यैर्वेदानामुत्पत्त्याम्नानात्। "ते तपोऽतप्यन्त, तेभ्यस्तपो तेपातेभ्यस्त्रयोवेदा असृज्यन्त, अग्नेऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेद आदित्यात्सामवेदः" इति। अतएव "न नित्यत्वं वेदानां कार्यत्वश्रुतेः" (सां.द ५।४४) इति कपिलवचोऽपि संगच्छते। एव प्रमाणमपि वेदपदाभिधित्सते वस्तुनि न किञ्चिदुपलभ्यते। "ऋग्वेदं

आवश्यक है, इसलिये विशेषण का ज्ञान विषय जो वेद है उसी का प्रथम विवेचन किया जाता है।

'प्रत्येक वस्तुकी सिद्धी उसके लक्षण और प्रमाण से हुआ करती है" इस प्रकार कहते हुए न्याय शास्त्रविद् "लक्षण और प्रमाण के बिना किसी भी वस्तुकी सिद्धी नही होती" यह मानते है।

इसलिये प्रथम वेद का लक्षण कहना चाहिये। किन्तु वह असभवसा प्रतीत होता है। यदि मन्त्र शब्द समुदाय को अथवा ब्राह्मण शब्दसमुदायको वेद माना जावे तो यह ठीक नही क्योकि 'किस लक्षणयुक्त शब्द समुदाय को मन्त्र अथवा ब्राह्मण कहना" इसका तो अभीतक निर्णय ही नही हुआ है। प्रमाण रूप से माने गये प्रत्यक्ष, अनुमान, और आगम इन तीनो मे अन्तिम आगम प्रमाण को ही वेद मानले, यह पक्षभी निर्दोष नहीं है। क्योकि यह लक्षण स्मृति (और आधुनिक वाक्यो) मे चले जाने के कारण अतिव्याप्ति दोषग्रस्त है। अपौरुषेय (पुरुषोच्चरित नही) ऐसा वाक्य भी वेद का लक्षण विचार से सगत नही है। क्योकि भगवान के अनुभव सहित जो उनका प्रयत्न है उससे जन्म होने के कारण पौरुषेय ही है। कदाचित् यह कहा जावे कि भगवान् से वेद की उत्पति होने पर भी वह भगवान् के अशरीरी होने के कारण शरीर जन्य न होने से अपौरुषेय ही है, तो यह कथन भी ठीक नही। भगवान् को भी 'अग्नि मस्तक है' इत्यादि अर्थवाली श्रुतियो से और भी अनेक प्रमाणो से अखिल प्राणियो के ऊपर दयाधारी शरीर युक्त कहा गया है। 'कर्मकृत शरीरधारी से वेद प्रणयन नही किया गया अत वह अपौरुषेय ही है' यह कहना भी अयुक्त है। क्योकि कर्म के परवश होकर शरीर धारण करने वाले अग्नि, वायु और आदित्य नामक देवो से वेदोकी उत्पत्ति वेदो मे ही कही गयी है। श्रुति का अर्थ इस प्रकार से है—उन तीन देवो ने तप किया, उनके तप करने से तीन वेदो की उत्पत्ति हुई। अग्नि से ऋग्वेद। वायु से यजुर्वेद और आदित्य से सामवेद।

भगवोध्येमि, यजुर्वेदं भगवोध्येमि" इत्यादि वाक्यानि तु सिषाधयिषतार्थोदरवर्तितयाऽत्माश्रयदोषाक्रान्तत्वेनाश्रद्धेयप्रमाणत्वात् एवं च लक्षणप्रमाणविरहिणो वेदपदवाच्यस्य गगनकुसुमायितत्वेन न प्रेक्षावद्बुद्धिगोचरत्वमिति ॥५॥

तदेतच्छंकाकलङ्कितमनसां दुर्मेधसामापातरमणं वचो वैदिकाचारचणैरनादरणीयम् । अस्मत्पूर्वजैर्मनुयाज्ञवल्क्यवसिष्ठनारदवाल्मीकिपराशरव्यासशुकादिभिः सर्वस्याप्यर्थस्यस्वकीयतन्त्रेषुसुदृढं निर्णीतत्वात् । यदुक्तं—'वेदलक्षणमसंभवि' तदयुक्तम् । मंत्रब्राह्मणात्मकत्वस्यैव तल्लक्षणस्य वक्तुं शक्यत्वात् । अत एव महामुनिर्जैमिनिः "तच्चोदकेषुमंत्र" (२।१।३२) इति मंत्रलक्षण विलक्षणमभिधाय "शेषे ब्राह्मणशब्दः" (२।१।३३) इत्यभ्यर्णमेव ब्राह्मणलक्षणमसूत्रयत् । यद्युभयोर्वेदपदेन नोपादानंस्यात्तदा शेष इति कथनस्यानर्थक्यमेवाभविष्यत् । नहि स्वरूपेण भिन्नयोः स्वतन्त्रयोरन्यतरस्मिन्नस्यायं 'शेष' इति व्यवहरन्ति विशेषज्ञाः । तथा चात्र शबरस्वामिनः 'अथ किं लक्षण ब्राह्मणं' मंत्राश्च ब्राह्मणञ्च वेदस्तत्र मंत्रलक्षण उक्ते परिशेषसिद्धित्वाद् ब्राह्मणलक्षणमवचनीयम् मंत्रलक्षणेनैव सिद्धम् । यस्यैतल्लक्षणं न भवति तद्ब्राह्मणमिति परिशेषसिद्धंतद् ब्राह्मणम्"

अतएव "उत्पत्ति श्रुति होने के कारण वेदो की नित्यता नही कही जा सकती" यह साख्यकार का वचन भी सगत होता है। इस प्रकार वेदका लक्षण नही बन सकना और वेद पदसे कही जाने वाली वस्तुमे कोई प्रमाण भी नही मिलता। 'ऋग्वेद पढता हूँ' 'यजुर्वेद पढता हूँ' इत्यादि वाक्य छान्दोग्य आदि उपनिषदो मे विद्यमान है परन्तु वह तो साधनीय ग्रन्थो के अन्तर्गत होनेके कारण आत्माश्रय दोष संयुक्त होने से उनको प्रमाण भूत मानना श्रद्धा के बाहर है। इसलिये लक्षण और प्रमाण से रहित वेदपदार्थ को आकाश कुसुम के समान होनेसे वे चतुर मनुष्य की बुद्धिके विषय नही हो सकते ॥५॥

इस शका से कलंकित मन वाले दुर्बुद्धि मनुष्यो के ऊपर से ही रमणीय वचन वैदिक आचार मे प्रसिद्ध शिष्ट जनोको अनादरणीय है। क्योकि हमारे पूर्वज मनु, याज्ञवल्क्य, वसिष्ठ, नारद, वाल्मीकि, पराशर, व्यास और शुक आदि महर्षियोने सब अर्थो का अपने अपने ग्रन्थो मे बहुत अच्छी प्रकार से निर्णय किया है। जो कहते है कि 'वेदका लक्षण असंभव है, यह ठीक नही। मन्त्रात्मक अथवा ब्राह्मणात्मक ही वेदका लक्षण कह सकते है। इसीलिये महामुनि जैमिनिने 'प्रेरणात्मक जो वाक्य है वही मन्त्र है' ऐसा विलक्षण मन्त्र लक्षण कह कर बाकी वेद भाग को ब्राह्मण कहा है "ऐसा तुरत ही ब्राह्मण लक्षण के लिए सूत्र पढा। यहा पर यदि दोनो भागों का वेद पद से ग्रहण न होता तो 'शेष' इस कथन का वैयर्थ्य हो जाता। स्वरूप से जो दो पदार्थ स्वतन्त्र होकर भिन्न होते है उन पदार्थो मे यह इसका शेष है ऐसा व्यवहार बुद्धिमान मनुष्य नही करते अत एव यहाँ पर शबर स्वामीजी यह लिखते है कि ब्राह्मण का क्या लक्षण है? मन्त्र और ब्राह्मण इन दोनो को वेद कहा जाता है इनमे मन्त्र का लक्षण कहने पर बाकी जो बच गया वह ब्राह्मण है" अत ब्राह्मण का लक्षण नही कहना चाहिये। वहाँ तो मन्त्र का लक्षण करने से ही सिद्ध हो चुका कि जिसका यह लक्षण नही है वह ब्राह्मण है यह उन्होने स्पष्ट

इति स्पष्टमभिदधुः । एवं पार्थसारथिमिश्रैरत्रैव शास्त्रदीपिकायां स्वकण्ठरवेणैव "द्विविभागस्य वेदस्यैकभागस्य मन्त्रात्मकस्य लक्षणमुक्तं तत्प्रसंगात् एतद्ब्राह्मणान्येव 'पञ्च-हवींषि' इति वेदप्रयुक्तस्य ब्राह्मणशब्दस्यार्थपरिज्ञानार्थं ब्राह्मणलक्षणाभिधानमवशिष्टं ब्राह्मणमिति" इत्युदीरितम् ॥६॥

एवं यज्ञपरिभाषाप्रकरणे भगवतापस्तम्बेनापि "मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्" इति स्पष्टमुक्तम् ॥७॥

एवं दैवतकाण्डे त्रयोदशाध्यायस्य प्रथमे पादे वाग्वस्तु निर्वचनावसरे 'मन्त्रः कल्पो ब्राह्मणचतुर्थी व्यावहारिकीति याज्ञिका' इति यास्काचार्याः 'मन्त्र तात्पर्यार्थ-प्रकाशको वेदभागो ब्राह्मणम्' इति च तद्भाष्यकाराः । अत एव च नैघन्टुककाण्डे प्रथमाध्यायस्य प्रथमे पादेवैदिकभागरूपमन्त्रमुद्दिश्य "पुरुष विद्याऽनित्यत्वात्कर्मसम्पत्ति-र्मन्त्रो वेदे" इति निरुक्तावुक्तम् ॥८॥

तथा च "धर्माख्यविषयं वक्तुं मीमांसायाः प्रयोजनम्" इतिश्लोकवार्तिकवचना-न्मीमांसावसेयत्वमेव धर्मस्येति निश्चयान्मीमांसया चोभयभागस्य वेदत्वं सुस्पष्टमभिहि-तम् । एतदुक्तं भवति । मंत्रब्राह्मणात्मकवेदे केषुचिदभिधायकेषु वाक्येषु मन्त्र इति समाख्या सम्प्रदायविद्भिर्व्यवह्रियते 'मंत्रानधीमह' इति । तद्व्यतिरिक्तभागे तु ब्राह्मण-शब्दस्तैर्व्यवहृत इति । एतल्लक्षणरक्षणात् कल्पान्तराण्यस्मिन्नुपन्यस्तानि निराकृतान्येव

ही कहा है । इसी प्रकार शास्त्रदीपिका नाम के ग्रन्थ मे पार्थसारथि मिश्र नेभी कहा है कि "दो विभाग वेद के है इन दोनो मे से मन्त्र का लक्षण कहा गया । इसी प्रसंग मे "एतद् ब्राह्मणान्येव" इस श्रुति मे ब्राह्मणपद आया है इसके अर्थ परिज्ञान के लिए ब्राह्मण लक्षण कहा गया है कि अवशिष्ट वेद भाग ब्राह्मण है ॥६॥

इसी प्रकार यज्ञ परिभापा प्रकरण मे आपस्तम्बने भी मन्त्र और ब्राह्मण का वेद नाम है ऐसा स्पष्ट ही कहा है ॥७॥

इसी प्रकार निरुक्त के दैवत काड के त्रयोदशाध्याय के प्रथम पाद मे वाक्पदार्थ के निर्वचन समय मे 'मन्त्र०'इत्यादि यास्क महर्षि ने कहा है और "मन्त्र के तात्पर्य को प्रकाशित करने वाला वेद का भाग ब्राह्मण कहा जाता है" ऐसा निरुक्त भाष्यकार ने कहा है। इसलिए नैघन्टुककाण्ड के प्रथम अध्याय के प्रथमपाद मे वेदके एक भाग मन्त्र को लेकर 'पुरुष विद्या' आदि निरुक्त मे कहा है ॥८॥

अतएव "धर्मरूप विपय कहने के लिये मीमासाका प्रयोजन है" इस कुमारिल भट्टके वचन से यह जाना जाता है कि धर्मका यथार्थ ज्ञान मीमासा से ही हो सकता है और मीमासा शास्त्रने मन्त्र और ब्राह्मण दोनो को वेद माना है । यह तात्पर्य निकला कि, मन्त्र और ब्राह्मण रूप वेद मे अभिधायक वाक्यो मे 'मन्त्र' यह समाख्या साम्प्रदायिकोने व्यवहृत की है जैसे 'मन्त्रों को पढ़ते है' यही बोला जाता है और उससे व्यतिरिक्तभाग मे 'ब्राह्मण' शब्द का व्यवहार किया है।

वेदितव्यानि। यः किल स्थूलमतिर्वेदानाम्पौरुषेयत्वमनित्यत्वं च ब्रूते स चानाघ्रातवेदशास्त्रसम्प्रदायरहस्य उपहस्य एव साम्प्रदायिकविपश्चित्परिषदि ॥९॥

तथाहि आम्नायस्यापौरुषेयत्वं 'उक्तं तु शब्दपूर्वत्वम्' (मी. १।१।२९) 'अत एव च नित्यत्त्वम्' (ब्र सू. १।३।२९) इति पूर्वोत्तरमीमांसयोर्महता प्रबन्धेन व्यवस्थापितत्वान्न केनचिदपोहितुं शक्यम् ॥१०॥

यद्याम्नायः केनचिज्जन्योऽभविष्यत्ततोऽवश्यमध्येतृपरम्परयातथागतादिवत्तदुपज्ञमज्ञोऽप्यस्मरिष्यत्। न च कर्तुर्विस्मरणं संभवदुक्तिकम्। नचाद्ययावद्वेदकर्तुः स्मरणं कचित्केनचित्कृतचरम्। तस्मादयं स्मृतिविरहः खपुष्पायमाणस्य कर्तुरभावमवगमयति ॥११॥

न च तैत्तिरीयं कौथुममित्याद्याख्यावशात् तत्तदाम्नायशाखाजनकतयाऽखिलस्याम्नायस्यापि पौरुषेयत्वमेव। तथा चायं प्रयोगः 'वेदवाक्यानि पौरुषेयाणि वाक्यत्वात्कालीदासादिवाक्यवत्' किञ्च 'बबरः प्रावाहणिरकामयत' इत्यादि जनिमृतिधर्मजुषामभिधानाच्चानित्यत्वमपि। नह्यनादिनिधनाम्नायेऽनित्यानामर्वाचीनानां वर्णनं युक्तिसहम्। तस्मात्पौरुषेयत्वमेव वेदानामिति वाच्यम् वैदिकस्य शब्दस्य तदर्थस्य तत्सम्बन्धस्य च शास्त्रकारैर्नित्यत्वेनाभिधानात्। अत एव च 'औत्पत्तिकस्तु शब्द-

इस लक्षणके रखने से दूसरे सब कल्पो का खण्डन हो जाता है। जो स्थूल बुद्धि मनुष्य वेदों को पुरुष के बनाये हुए (पौरुषेय) मानता है और अनित्य भी कहता है वह वेद शास्त्र और सम्प्रदाय के रहस्य को नही जानता और साम्प्रदायिक पण्डितो की सभा म उपहास का पात्र है ॥९॥

इसी वात को कहा जाता है। 'वेद अपौरुषेय है' इस वातको 'उक्तंतु' इस मीमासा सूत्र मे और 'अत एव च' इत्यादि वेदान्त सूत्र मे और बडे प्रबन्ध से इन सूत्रो के भाष्य मे व्यवस्थापित किया गया है यह किसी से हटाया नही जा सकता ॥१०॥

यदि वेद किसीसे उत्पादित किया गया होता तो अध्येतृ परम्परासे बुद्धादि प्रणीत ग्रन्थोंकी तरह उस पुरुष से लेकर अज्ञ ने भी उसका स्मरण किया होता। कर्ताका विस्मरण होना सभवित नहीं है वेद के बनाने वाले का आजतक कही भी किसी ने स्मरण नही किया। इस लिये यह स्मरण का अभाव आकाश पुष्प के सदृश कर्ताके अभाव को ही सिद्ध करता है ॥११॥

यहा पर यह शंका हो सकती है कि, तैत्तिरीय, कौथुम, आदि अनेक वेदों के नाम है यह नाम तित्तिर और कुथुमके रचियता होने से ही हो सकते है। इस लिये तत्तद्वेद की शाखा के रचयिता जव सिद्ध हो गये तो इसीसे समस्त वेद को पौरुषेय (पुरुषो का बनाया हुआ) मानलेंगे। और यह अनुमान होगा कि वेद वाक्य पौरुषेय है वाक्य होने के कारण आधुकि कालीदास आदि के वाक्यों के समान, इस अनुमान से वेदमे पौरुषेयत्व सिद्ध होगा। इसी प्रकार बबर आदि उत्पत्ति और मरण धर्म वालों के नाम वेद मे आते है इससे वेद अनित्य भी कहा

स्यार्थेनसम्बन्ध' इत्यादिजैमीनीयसूत्रम् 'औत्पत्तिक इतिनित्यं ब्रूमः' इति च शाबर भाष्यं संगच्छते । न चात्र सम्बन्धमात्रस्यैव नित्यत्वमुच्यत इति साम्प्रतम् । सम्बन्धस्य नित्यत्वं सम्बन्धिनित्यत्वमन्तरेणानुपपन्नं सत्सम्बन्धिनित्यत्वमुपस्थापयतीत्येष एव समीचीनः पन्थाः ॥१२॥

'बबर' 'प्रावाहणिः' इत्यादिवाक्यैरपि न शक्यतेऽनित्यतामाम्नायस्य साधयितुम् । न ह्यत्र कश्चिन्मरणधर्मापुमान् विवक्षितो येन वेदस्योत्पत्तिमत्वं स्यात् । केवलमंत्र शब्दसामान्यमुक्तम् । प्रवहणशीलस्य वायोरपि ग्रहणमम्भवात् । एतदेव "आख्या प्रवचनात्" । परन्तु श्रुतिसामान्यमात्रमितिसूत्राभ्यां प्रत्यपादि महामुनिर्जैमिनिः । इममेवार्थं श्रीमदाचार्यचरणाः "गतकल्पीयवेदस्य तादृशानुपूर्वीमत एवास्यां सृष्टावपि संस्मृत्योपदिष्टत्वादपौरुषेयत्वमप्यक्षतम्" इत्यादिश्रीमदानन्दभाष्येऽधिदेवताधिकरणे प्रतिपादयाञ्चक्रुः । विस्तरेणायं विषयोऽस्माभिः स्वरचितवेदार्थरक्षायाम्प्रत्यपादीति तत एव विशेषजिज्ञासुभिरवगन्तव्य इति दिक् ॥१३॥

एवञ्चाम्नायस्यापौरुषेयत्वमङ्गीकुर्वत्स्वखिलसम्प्रदायाचार्येषु यः किल गेहेनर्दीस्वदुराशयाहितकुमतितया वेदानाम्पौरुषेयत्वमभ्यधात् स साम्प्रदायिकरहस्यानभिज्ञ

जा सकता है। क्योंकि अनादि वेद मे सादि नाम नही हो सकते । इस लिये वेद पौरुषेय ही हैं। यह शका है अव इसका समाधान किया जाता है। वैदिक शब्द उसका अर्थ और शब्दार्थका सम्वन्ध यह सव शास्त्रकारो ने नित्य कहे है । इसी लिये 'औत्पत्तिक' इत्यादि जैमिनीय सूत्र और उसी सूत्रका भाष्य यह दोनो यथार्थ रूपसे सगत होते है। इस सूत्र मे औरइसके शावर भाष्य मे सम्बन्ध मात्र को ही नित्य कहा है यह नही मानना चाहिये। क्योकि दोनो सम्बन्धी पदार्थो के नित्य हुए बिना उनका सम्बन्ध मात्र नित्य नही हो सकता। इससे दोनो सम्बन्धियों का भी नित्यत्व सिद्ध होता है यही समीचीन मार्ग है ॥१२॥

बबर इत्यादि वाक्यो से भी अनित्यत्व सिद्ध नही कर सकते । बबर नामक कोई जन्म मरणवाला मनुष्य यहा विवक्षित नही है जिससे वेदको अनित्य कहा जावे। यहाँ तो केवल शब्द सामान्य कहा है। अथवा प्रवहणशील वायुका भी बबर शब्दसे ग्रहण हो सकता है इसी आशय को 'आख्या प्रवचनात्' और'परन्तु०' इन दो सूत्रो से जैमिनि ने कहा है और इसी अर्थका भगवान् श्रीरामानन्दाचार्य चरणोने देवताधिकरण के आनन्द भाष्य मे प्रतिपादन किया है कि 'गत कल्पके आनुपूर्वीवाले वेद को इस कल्पकी सृष्टि मे भी स्मरण करके भगवान् उपदेश करते है । अत अपौरुषेयत्व भी सुरक्षित रहा' इत्यादि रूपसे वहा लिखा है। इससे भी अधिक विस्तार से यह विषय स्वरचित वेदार्थरक्षा मे प्रति पादित किया हूँ इस लिये विशेष जिज्ञासुओ को वहाँ पर ही देखना चाहिये । यहा तो केवल दिग्दर्शन मात्र है ॥१३॥

इस प्रकार वेद को सव आचार्यो के अपौरुषेय मानने पर भी जो मनुष्य अपनी दुर्भावना वशात् पौरुषेय कहते है वह साम्प्रदायिक रहस्य से अनभिज्ञ है अत सम्प्रदाय प्रेमियो को

एवेति साम्प्रदायिकैर्दूरतः परिहर्तव्य इत्युपरम्यते प्रासङ्गिकविवेचनात् ॥१४॥

अथाधुना दशविधकल्पविभक्तस्य वैदिकपदवाच्यस्यादिमे कल्पेऽस्य श्रीराममंत्रस्य सामञ्जस्यमुपपाद्यते। तथा हि—वेदानुकूलं यत्प्रमाणजातं तत्प्रतिपाद्यत्वमेव प्रथमं वैदिकत्वम्। तच्च श्रीराममनोर्वेदाविरोधिस्मृतीतिहासपुराणसदाचारादिभिः सम्यक् प्रतिपाद्यमानत्वादक्षतम्। वेदानुकूलस्मृतीनाञ्च प्रामाण्यं शास्त्रकारैर्व्यवस्थापितमेव अत एव 'अष्टकाः कर्तव्या' इति स्मृतिप्रतिपादितधर्मस्यानुष्ठानं वैदिकैः क्रियते। तथा च जैमिनीयसूत्रम् 'अपि वा कर्तृसामान्यात्प्रमाणमनुमानं स्यात्' इति। नहि वयं स्वातन्त्र्येण स्मृतेः प्रामाण्यमभ्युपगच्छामो येन भ्रान्तिप्रमादादिषुदोषदूषितत्वेन विचिकित्सितमेव प्रामाण्यं स्यात्। वयन्त्वधिगतवेदार्थानां मन्वगस्त्यहारीतपराशरादिमहर्षीणां स्मरणमेव भ्रान्त्यादिदोषापेत ब्रूमः। नतु चैत्यवन्दनादिविधायकानां वेदार्थबोधशून्यानां सौगतशाक्योलूक्यादीनां भ्रान्तिमत्स्मरणम् ॥१५॥

इदन्तु युक्तम्। सहस्रं सामशाखा, एकशतमध्वर्युशाखा, एकविंशतिशाखं वाह्वृच्यमिति शाखाप्रमाणस्य वैदिकपारम्पर्येण स्मरणान्न शाखाधिक्यं शक्यमुत्कल्पयितुं मन्त्राणान्तु केषाञ्चिदुच्छिन्नध्येतृपारम्पर्य्यादुत्सादनमेकत्र सतामपि शाखा-

उन्हे दूर से ही त्याग देना चाहिये। अब इस प्रासगिक विवेचन से उपरत होकर प्रकृत का ही अनुसरण किया जाता है।१४।

पूर्व मे जो दश प्रकार से वैदिक पदका अर्थ किया गया है उनमे से प्रथम कल्प मे श्री राममन्त्र का समंजस कहा जाता है। प्रथम कल्प मे वैदिकत्व है वेदानुकूल जितने भी प्रमाण हैं उनसे श्रीराम मन्त्र का प्रतिपाद्यत्व होना। वेदके अविरुद्ध स्मृति, इतिहास, पुराण, और सदाचार आदि सब मे श्रीराममन्त्र का वर्णन किया गया है इसलिये प्रथम प्रकार से वैदिकता श्री राममन्त्र मे भली प्रकार से है। वेदानुसारिणी स्मृतियों का प्रामाण्य शास्त्रकारो ने स्थापित किया ही है। अतएव 'अष्टका' आदि स्मृति प्रतिपादित धर्मका पालन समस्त वैदिक करते है। इसीका समर्थन 'अपि वा' इस सूत्रसे जैमिनि ने किया है। हम वेद को छोडकर स्वतन्त्र रूपसे स्मृति को प्रमाण नही मानते जिससे कि मनुष्य स्वभाव मे सरल भ्रान्ति और प्रमाद आदि दोष आ जाने के कारण स्मृतियों के प्रमाण मे संदेह हो जावे। किन्तु हमतो वेदार्थ के पूर्ण ज्ञाता त्रैकालिक ज्ञानवान् मनु, अगस्त्य, हारीत, पराशर आदि महर्षियो की स्मृतियों की ही भ्रान्ति आदि दोषों से रहित कहते है। चैत्यवन्दनादि विधान करनेवाली और वेदार्थ बोधसे हीन सुगत, शाक्य और उलूक आदि से प्रणीत स्मृतियों को निर्दुष्ट नही मानते ॥१५॥

यहा पर यह अवश्य विचार करने योग्य है। सामवेद की एक सहस्र शाखा है। यजुर्वेद मे एक शत और एक शाखा है और ऋग्वेद इक्कीस शाखा वाला है इस प्रकार वैदिक ब्राह्मण परम्परा से यह बात स्मरण होती चली आयी है अत शाखाओं मे आधिक्य नही कहा जा सकता। मन्त्रों मे अध्ययन परम्परा के भ्रष्ट होने के कारण एक शाखा मे पाठ होते हुए भी

न्तरेऽधिगतत्वञ्च शक्यते वक्तु। नत्वङ्गवाक्योत्सादनमन्यथा तदङ्गवैकल्यस्य संशयाधायकतया न स्यात्साध्यवसाया प्रवृत्तिः कस्मिन्नपिकर्मणि कर्मठानाम्। पश्यामश्चाहर्दिवं वैदिकाना सम्प्रतिपन्नां प्रवृत्तिमिति नाङ्गवाक्योत्सादनमाम्नायस्य ॥१६॥

तथा च वेदाविरोधिस्मार्तैर्वचोभिः केचिदेव मन्त्राः शक्यन्तेऽनुमातुमिति तादृशं वेदानुकूलं यत्किमपि स्मृतिसदाचारादिकं तत्सर्वमत्र प्रमाणम्। प्रत्यक्षश्रुतिविरुद्धन्तु स्मार्त्तवचन त्यज्यत एव। तथा च सूत्रम् "विरोधे त्वनपेक्षं स्यादसति ह्यनुमानम्" इति ॥१७॥

प्रकृते च वेदानुकूलास्वेव हारीतादिस्मृतिषु श्रीराममन्त्रस्य दण्डग्राहिकयास्त्येव विद्यमानत्वमिति।

षडक्षरं दाशरथेस्तारकं ब्रह्म गद्यते। सर्वैश्वर्यप्रदं नृणां सर्वकामफलप्रदम् ॥६।२४०॥

तस्माद्रामिति वै बीजमाद्यं तस्य मनोः स्मृतम्। शक्तिः श्रीरुच्यते राजन्! सर्वाभीष्टफलप्रदा॥

श्रियो मनोरमो योऽसौ स राम इति विश्रुतः।

चतुर्थ्या नमसश्चैव सोऽर्थःपूर्ववदेवहि ॥६।२५२॥

इति वृद्धहारीते स्पष्टमस्यमनोरुक्तिरुपलभ्यत इति। वाल्मीकि संहितायामपि।

एवं महात्म्यसंयुक्तो राममंत्रो विशेषतः। मोक्षप्रदो महामंत्रो मन्त्राराजः प्रशस्यत।इति।

एवं पुराणादिष्वपि श्रीराममंत्रस्य वर्णनमसकृदुपलभ्यते १८।

वहा न पढ कर शाखान्तर मे उसका अध्ययन कह सकने है। परन्तु अग वाक्य का विनाश नहीं कह मकते। क्योकि किसी अगके न होने के कारण वैदिक ब्राह्मणो की किसी भी कर्म मे नि सन्देह प्रवृत्ति ही न होगी। और हम वैदिक महानुभावो को निरन्तर देखते है कि वह निश्चित रूप से स्वकीय कर्मो मे प्रवृत्ति परायण है। अत अग वाक्यो का उड जाना तो वेद मे है नही ॥१६॥

वेद से अविरुद्ध स्मृति वचनो से कुछ ही अनुमान किया जा सकता है। इस प्रकार का वेदानुकूलत्व स्मृति और सदाचार आदि मे है। अत वह सब इस राममन्त्र मे प्रमाण हो सकते है परन्तु प्रत्यक्ष श्रुतिके विरुद्ध यदि स्मार्त वचन हो तो उसका त्याग ही किया जाता है। इसमे प्रमाण रूप जैमिनि ऋषिका 'विरोधे' इत्यादि सूत्र ही है ॥१७॥

श्रीराममन्त्र के विषय मे वेदानुकूल हारीतादि स्मृतिया प्रमाण है इन स्मृतियो मे स्पष्ट रूपसे श्रीराममन्त्र विद्यमान है। "दाशरथी भगवान् का जो षडक्षर मन्त्र है वह तारक ब्रह्म कहा जाता है वह मनुष्यो को सब ऐश्वर्य और सब इच्छित फलो का देने वाला है। उस मन्त्र का 'रा' यह बीज है और सब अभीष्ट फलो को देने वाली श्रीशक्ति है। श्रीराम जिसमे रमा हो वह 'राम' पदसे कहा जाता है। चतुर्थ्यन्त और नमस् पदसे यही पूर्वोक्त अर्थ कहा जाता है"। इस प्रकार बृद्ध हारीत मे श्री राममन्त्र स्पष्ट रूप से कहा गया है। वाल्मीकि सहिता मे भी क्तयु स'एवं माहात्म्य' इत्यादि श्लोक से श्रीराममन्त्र और उसका महत्व प्रतिपादन किया है। इसी

शिष्टाचारस्यापि 'श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः' इत्यभिहितस्याविच्छिन्नसम्प्रदायपारम्पर्येण सम्प्राप्तस्य शिष्टाकोपाधिकरणेप्रामाण्यमुपपादितम्। न च केषांचित् सदाचाराणां वेदेऽनुपलभ्यमानत्वात्स्मृतिष्वप्यदर्शनात् कथं वैदिकत्वमिति वाच्यम् अवछिन्नवैदिकसत्सम्प्रदायनिष्ठैर्धर्मबुद्ध्यानुष्ठितस्य सामान्याकारेण स्मृत्यादिषूपदिष्टस्यानुपदिष्टस्य वा वेदाविरोधिस्मार्तधर्मवदेववेदमूलत्वेन सम्भवत्येव प्रामाण्यम् १९॥

आह च भगवान् वसिष्ठः "श्रुतिस्मृतिविहितो धर्मः तदलाभे शिष्टाचारःप्रमाणम्" (अ० १।३।४) तथैवापस्तम्बोऽपि "धर्मज्ञसमयः प्रमाणं वेदाश्च" इत्याह। मनुरपि 'वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्।

आचारश्चैवसाधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च" इति स्पष्ठमभिदधौ ॥

शिष्टाश्चात्र–धर्मेणाधिगतो यैस्तु वेदः सपरिबृंहणः।

ते शिष्टा ब्राह्मणा ज्ञेयाः श्रुतिप्रत्यक्षहेतवः। इत्यादिलक्षणलक्षिता ज्ञेयाः।२०॥

अयमभिसन्धिः धर्मेखिलस्ऽय वेदस्य तदविरुद्धानाञ्च स्मृतीनाम्प्रामाण्यम्। रागद्वेषाद्यसंश्लिष्टस्याप्तस्य शीलमाचारश्चापि प्रमाणम्। विकल्पविहितेषु पदार्थेषु-यदनुष्ठानेनात्मनस्तुष्टिर्भवेत्तस्यैवानुष्ठानम्। इयमेवात्मतुष्टिर्धर्मे प्रमाणम्। नतु

प्रकार पुराण मे भी श्रीराममन्त्र का वारम्वार वर्णन मिलता है। (इसको पुराग के प्रकरग मे कहेंगे) ॥१८॥

अव रहा सदाचार। सो वह भी अविच्छिन्न सम्प्रदाय परम्परा होने के कारग पूर्ण रीति से प्रमाण है यह बात पूर्वमीमासा के शिष्टाकोपाधिकरण मे प्रतिपादित है। यहां कोई शंका उठाते है कि "कई ऐसी भी सदाचार है जिनका वेद और स्मृति मे प्रमाण नही मिलता और लोक मे प्रचलित है उनको वैदिक कैसे माना जा सकता है" उत्तर देते है कि जिन आप्त पुरुषों की वैदिक परम्परा नष्ट नही हुई है ऐसे पुरुपोसे धर्म बुद्धि से पालन किये गये धर्म का स्मृतियो मे सामान्य रूपसे कथन होने पर भी, श्रुति के अविरुद्ध होने के कारण वह वेद मूल ही कहा जायेगा और उसको सर्वथा प्रमाण कहा जा सकता है ॥१९॥

इसी आशय को भगवान् वसिष्ठजी ने अपनी स्मृति मे कहा है। 'श्रुति और स्मृति मे जिसका विधान हो वह धर्म है। उसके अभाव मे शिष्ट पुरुपो का सदाचार भी प्रमाण है।' (१।३।४) इसी प्रकार आपस्तम्बने भी कहा है कि धर्मज्ञों का सदाचार प्रमाण है और वेद भी प्रमाण है।' मनुस्मृति मे भी 'समस्त वेद धर्ममे प्रमाण है वेदवित् पुरुपोकी स्मृति और शील भी प्रमाण है एवं साधु पुरुपो का सदाचार और आत्म तुष्टि यह सब भी प्रमाण है' इस प्रकार कहा गया है। परिबृंगह के साथ जिन्होने वेद पढा है श्रुति वाक्य और उसके अर्थको जो यथार्थ रूपसे जानते है वही ब्राह्मण शिष्ट कहे जाते है ॥२०॥

तात्पर्य यह है कि धर्म मे अखिल वेद और वेद से अविरुद्ध स्मृतियाँ प्रमाण है। एवं राग द्वेष से रहित आप्त पुरुषो का शील और आचार भी प्रमाण है। विकल्प करके जो पदार्थ विधान किये गये है उनमे जिसके अनुष्ठान से अनुष्ठाता के मन को संतोष हो वह भी धर्म

स्वस्यात्मनः प्रियं यत्किमपि । एतेन 'स्वस्यात्मनो यत्प्रियंस्वैरविहरणादिकं तदेवानुष्ठेयं स एव च धर्म' इति वदन्तोऽतिक्रान्तसम्प्रदायमर्यादा स्वच्छन्दचारिण उच्छृंखला निराकृता वेदितव्याः । वैकल्पिकेषु पदार्थेष्वेवात्मनः प्रियस्यानुष्ठेयत्वस्यैव शास्त्रकृत्सम्मतत्वात् ॥२१॥

एवञ्च भगवच्छ्रीरामप्रवर्तितत्वात्परमेष्ठिवसिष्ठपराशरद्वैपायनादिभिराप्ततमैर्महाजनैः स्वसदाचारपरिपाट्या परिगृहीतत्वात्तदविच्छिन्नपारम्पर्येण प्रथितस्यास्य श्रीराममनोर्वेदानुकूलसदाचारात्मकप्रमाणवेद्यत्वेन संगच्छते एवादिमं वैदिकत्वमिति ॥२२॥

अथ द्वितीयतल्लक्षणपक्षमुद्भावयामः । स च वेदोपबृंहणेतिहासपुराणैः प्रतिपाद्यत्वं वैदिकत्वमित्येतल्लक्षणः । अस्मिन्नपि कल्पे निर्विकल्पमुपपन्नमस्य मनोर्वैदिकत्वम् ॥२३॥ तथाहि

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत् ।
बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रतरिष्यति ।

इति बार्हस्पत्यवचनादितिहासपुराणयोर्वेदोपबृंहकत्वमवगम्यते । उपबृंहणं तावत् "अतिसंक्षिप्तस्याम्नायार्थस्य तदविरोधिमद्वचोभिर्विशदीकरणम् । प्रतारकत्वञ्चात्र स्वानवबोधप्रयोज्यानर्थोत्पादकत्वम् । न ह्यनधीतोभयमीमांसोऽनवलोकितेतिहासपुराणादितन्त्रः शक्नोति दुरूहं वेदार्थमवगन्तुम् । तदुक्तं श्लोकलातिके—

मे प्रमाण है । आत्म तुष्टिका यह अर्थ नही है कि 'कर्ता को जो कुछ भी प्रिय हो उसको ही कर चले और यही आत्मतुष्टि होनी हुई धर्म मे प्रमाण भूत मानी जावे ।' इससे 'स्वस्य च प्रियमात्मन' इसका स्वच्छन्द मनोनुकूलविहरण भी धर्म है ऐसे तात्पर्य को निकालने वाले उच्छृङ्खल मनुष्यो के मत का खण्डन हो जाता है । क्योकि उपर्युक्त तात्पर्य ही साधु सम्मत है ॥२१॥

इस प्रकार भगवान् श्रीरामचन्द्रजी से प्रवर्त्तित और ब्रह्मा, वसिष्ठ, पराशर, व्यासादि परम आप्त महामुनियों के सदाचारसे सम्प्राप्त एव उनकी अविच्छिन्न परम्परा मे अखण्ड रूप से चले आते हुए इस श्रीराम मन्त्र मे प्रथम लक्षण के अनुसार वैदिकत्व सुतरा उपपन्न हुआ ॥२२॥

अब वैदिकपद के द्वितीय लक्षण की सगति की जाती है । वह है वेद के (उपबृंहक) तात्पर्य को बढाने वाले इतिहास और पुराणो से प्रतिपादित होना । इस (दूसरे) कल्प मे भी श्रीराममन्त्र का वैदिकत्व निर्विवाद रूप से सिद्ध होता है ॥२३॥

अब इसका विवेचन किया जाता है । "इतिहास और पुराणो से वेद को उपबृंहण करना चाहिये । क्योकि अल्प श्रुत से वेद भय मानता है कि यह मेरा प्रतारण करेगा अर्थात् मेरे अर्थ का अनर्थ कर देगा" इस बृहस्पति के वचन से इतिहास और पुराणो को वेदोपबृंहक माना गया है । अत्यन्त सक्षिप्त वेद वचनो को उनके अविरोधी वचनो से विशद करने को उपबृंहण कहा जाता है । व्याख्याता के अज्ञान के कारण अर्थका अनर्थ कर देना इसको प्रतारण कहा जाता है।

यथा धर्मावबोधस्य प्रमाणं वैदिकं वचः। तदर्थनिर्णये हेतुर्जैमिनीयं तथैव नः। स्थिते वेदप्रमाणत्वे पुनर्वाक्यार्थनिर्णये। मतिर्बहुविदां पुंसां संशयान्नोपजायते। केचिदाहुरसावर्थः केचिन्नासावयं त्विति। तन्निर्णयार्थमप्येतत्परं शास्त्रं प्रणीयते। इति। एवञ्च यथावेदार्थनिर्णीतौ मीमांसायाः प्राधान्यं तथैवेतिहासपुराणयोरपि तदुपबृंहणत्व शास्त्रकृद्भिरुपपादितम् ॥२४॥

तथा चेतिहासपुराणयोर्वेदोपबृंहणत्वे सिद्धे तदभिधायित्वमपि वैदिकत्वं शक्कत एव वक्तुम्। श्रीरामषडक्षरमंत्रस्य च नारदीयादिपुराणेषु स्पष्टतया प्रतिपाद्यत्वमुपलभ्यते ॥२५॥ तथाहि–

अथ रामस्य मनवो वक्ष्यन्ते सिद्धिदायकाः।
येषामाराधनान्मर्त्यास्तरन्ति भवसागरम् ॥ बृं.ना पु.पू.ख.७३अ.१श्लो
वैष्णवेष्वपि मंत्रेषु राममंत्रः फलाधिकः।
गाणपत्यादिमन्त्रेभ्यः कोटिकोटि गुणाधिकः ॥ ॥ना.पु.७३।३
विष्णुशय्यास्थितो वह्निरिन्दुभूषितमस्तकः।
रामाय हृदयान्तोयं महाघौघविनाशनः। ना.पु.७३।४।

जिसने पूर्व मीमासा और उत्तर मीमामा यह दोनो नही पढी और इतिहास पुराण तथा तन्त्र शास्त्रो का परिशीलन नही किया वह अति गहन वेदार्थ को नही जान सकता। श्लोकवार्तिक मे कुमारिलभट्ट कहते है कि 'धर्म के यथार्थ स्वरूप का परिज्ञान कराने मे वेद वाक्य ही प्रमाण है।' वेद वाक्य के अर्थ का निर्णय करने के लिये जैमिनि महर्षि का दर्शन (पूर्व मीमासा) हमारे लिये प्रमाण है। वेद प्रामाण्य का निश्चय हो जाने पर भी वाक्यार्थ निर्णय करने के लिये बहुश्रुत मनुष्यो की बुद्धि भी संशय मे पडकर प्रतिहत हो जाती है। कोई कहते है यह अर्थ है और कोई कहते है यह नही किन्तु यह अर्थ है। इस विकल्प के निर्णय के लिये भी इस मीमासा शास्त्र का प्रणयन किया जाता है। तात्पर्य यह है कि वेदार्थ निर्णय के लिये जिस प्रकार मीमासा शास्त्र की प्रधानतया आवश्यकता है इसी प्रकार इतिहास और पुराणों को भी शास्त्रकारो ने वेदार्थ के विस्तार करने के लिये परमोपयोगी माना है ॥२४॥

इतिहास और पुराणको इस प्रकार उप बृंहण सिद्ध हो जाने पर इतिहास और पुराणों मे जिसका वर्णन आता हो उस को भी वैदिक कह सकते है। श्रीराम मत्र का नारदीय आदि पुराणों मे स्पष्ट रूपसे वर्णन मिलता है, इसका नीचे के प्रवट्टक से विवेचन किया जाता है ॥२५॥

'अब श्रीरामजीके मत्रोका वर्णन किया जाता है जो शीघ्र ही सिद्धि देने वाले है और जिनके आराधनसे मनुष्य भवसागर को तर सकता है कि नारद पुराणके वचन है यह श्रीराम मंत्र गाणपत्यादि मंत्रो की अपेक्षा कोटि कोटि गुण अधिक फल देने वाला है और समस्त वैष्णव मत्रो मे भी सबसे अधिक फल वाला है। विष्णुशय्यास्थित वह्निबीज अर्थात् 'रा', और चन्द्रबीज अर्थात् अनुस्वार वर्तुल होनेको समता से मस्तक अर्थात् ऊर्ध्व भाग (लिपित) जिसका भूषित है 'रा' यह आमिद वर्ण तथा हृदयान्त रामाय पद अर्थात् रामाय नम इस प्रकार अन्तिम आनुपूर्वी युक्त यह मंत्रराज सब पाप राशि को नाश करने वाला है।

सर्वेषु राममंत्रेषु ह्यतिश्रेष्ठः षडक्षरः ।
ब्रह्महत्यासहस्राणि ज्ञाताज्ञातकृतानि च ।ना.पु.७३।५।
स्वर्णस्तेयसुरापानगुरुतल्पयुतानि च ।
कोटिकोटिसहस्राणि ह्युपपापानि यानि वै ।।ना.पु.७३।६
मंत्रस्योच्चारणात्सद्यो लयं यन्ति न संशयः ।
ब्रह्मा मुनिः स्याद्गात्री छन्दो रामश्च देवता ।।७३।७।।
षट् कोणेषु षडर्णानि मंत्रस्य विलिखेद्बुधः ।
अष्टपत्रे तथाष्टार्णां लिखेत्प्रणवगर्भिता ।।७३।३३।
षडक्षरः षड्विधः स्याच्चतुर्वर्गफलप्रदः ।
ब्रह्मासंमोहनः शक्तिर्दक्षिणामूर्तिसंज्ञकः ।।७३।५६।
अगस्त्यः श्रीशिवः प्रोक्तास्ते तेषां मुनयः क्रमात् ।
अथवा कामबीजादेर्विश्वामित्रो मुनिः स्मृतः ।।७३।५४।।
छन्दः प्रोक्तं च गायत्री श्रीरामो देवता पुनः
बीजशक्तिराद्यमान्त्यं मंत्रार्णैः स्यात्षडंगकम् ।।७३।।५४।।

इत्याद्यनेकपौराणिकवचनैर्विशदतया प्रतिपादितत्वाद्द्वितीयवैदिकत्वमपि श्रीराममनावुपपन्नतरम् ।।२६।।

अथ तृतीयकल्पाभिहितवैदिकत्वं वेदानुकूलकृतिसाध्यत्वरूपम् । वैदिकवाक्यानां स्वार्थानुष्ठानेऽर्थिसमर्थजनप्रवर्त्तकत्वात्तदनुष्ठानायास्थीयमानो योऽयं यत्नस्तद्वताऽस्यम-

श्रीरामजी के भी सब मत्रों मे यह षडक्षर मंत्र श्रेष्ठ है । यह मत्रराज जान अजान मे किये गये ब्रह्महत्या, स्वर्णस्तेय, सुरापान, और गुरुस्त्री गमन आदि महापापो को और गोवधादि उप पापो को उच्चारण मात्र से शीघ्र ही नाश करता है इसमे सदेह नही है । इस श्रीराम मत्र के ब्रह्मा मुनि है, गायत्री छन्द है और श्रीराम देवता है । छ कोनो मे छ अक्षर लिखे । और अष्ट पत्र मे प्रकार युक्त आठ अक्षरों को लिखे ।

षडक्षर मत्र छ प्रकार का है और धर्म, अर्थ काम मोक्ष, इन चारों पदार्थो को देने वाला है । इस षडक्षर मंत्र के छ अक्षरो के अनुक्रम से ब्रह्मा, समोहन, शक्ति, दक्षिणामूर्त्ति, अगस्त्य, और श्री शिव ये मुनि कहे गये है । इस मंत्र का गायत्री छन्द है । श्रीराम चन्द्रजी देवता है। बीज शक्ति है । आदि के और अन्तके वर्णो के मिलाने पर जो शब्द होगा वह एतन्मंत्रप्रतिपाद्य प्रधान देव माने जाते है । इस प्रकार मंत्र वर्णो से छ अग वाला है ।

इत्यादि अनेक पौराणिक वचनो से इस मत्रराज का विशद रूपसे प्रतिपादन किया गया है । अत द्वितीय वैदिकत्व भी श्रीराम मंत्रमे सुतरा उपपन्न हुआ ।।२६।।

अब तृतीय कल्प से कथित वैदित्वका विवेचन किया जाता है । वह है वेदानुकूल जो यत्न उस यत्न से साधित किया जाना । इसी अर्थ को ग्रन्थकार स्वयं विशद करते हैं । वैदिक

नोरप्यनुष्ठेयत्वं सम्भवतीत्येतदर्थकम् । नहीयं राजाज्ञास्ति यदाम्नायमात्रानुमोदित-दर्शपौर्णमासादिश्रौतयागानुष्ठातृभिर्न किञ्चिदन्यत्कर्मानुष्ठेयमिति । किन्तु परमपुरुषार्थेप्सुभिर्वेदानुशासनवशवर्तिभिश्च वैदिकं शास्त्रीयं लौकिकं चेति त्रिविधमप्याचारपूतकर्मावश्यमनुष्ठेयम् । अत एव "श्रुतिस्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः । एतच्चतुर्विधंप्राहुःसाक्षाद्धर्मस्यलक्षणम् ।।" इति मानवं वचः-संगच्छते ।।२७।।

अत एव वृद्धैः "प्रवृत्तिसंज्ञके धर्मे फलमभ्युदयो मतः ।
निवृत्तिसंज्ञके धर्मे फलं निश्रेयसंमतम् ।।" इतिनिर्णीतम् ।

तथाच श्रुतिः 'धर्मेण पापमपनुदति" एवञ्च नित्यसुखैषिभिर्वेदाद्धर्मपक्षमन्विष्य तदनुष्ठानपूर्वकमन्यदपि वेदाविरोधिनिःश्रेयसातिशयाधायिकर्मशास्त्रीयंलौकिकं वापि भवेन्नजातुचिद्धेयमिति शास्त्रीयः पन्थाः ।।२८।।

वैदिककर्ममार्गमुत्सृज्यापि लोकोपकृतयेऽन्यदनुष्ठानमितितुमद्भिगर्हितम् । तथानुष्ठातुः प्रत्यवायसंभवात् । एतदेवोक्तं गीताचार्यैः

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः ।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् ।। इति

वाक्य अपने अर्थ के पालन कराने के लिये अर्थो तथा योग्यता वाले पुरुपकी आकाक्षा रखते हैं। इस लिये वेदार्थो के अनुष्ठान के लिये जो यत्न किया जायगा इस यत्न वाले अधिकारी पुरुष द्वारा इस मन्त्रका भी अनुष्ठान अच्छी प्रकारसे हो सकता है । यही तृतीय वैदिकत्व का तात्पर्यार्थ है। यह कोई राजाज्ञा नहीं है कि वैदिक दर्श पौर्णमासादि श्रौत यागो का कनुष्ठाता अन्य किसी कर्म का अनुष्ठान ही न करे । उचित तो यह है कि परम पुरुपार्थ (मोक्ष) की इन्छा वाले शिष्ट जनो को वेद की आज्ञा के वशवर्ती हो कर वैदिक शास्त्रीय और लौकिक इस प्रकार विविध सदाचार से पवित्र कर्म अवश्य पालन करने चाहिये । इसी लिये श्रुति, स्मृति, सदाचार, और स्वात्मप्रिय यह चार प्रकार का धर्म ऋषियोने माना है यह मनु वाक्य भी सगत हुआ ॥२७॥

इसीलिये वृद्धो ने कहा है कि "प्रवृत्ति धर्म का फल अभ्युदय है अर्थात् ऐहिक सुख और स्वर्ग सुख है। और निवृत्ति सज्ञक धर्म का फल मोक्ष है ।" 'धर्म से पाप नष्ट होता है, यह श्रुतिभी कहती है । इसलिये मोक्ष सुख की इच्छा वाले पुरुषो को चाहिये कि वेद से धर्म के स्वरूपको जानकर उसका यथार्थ रूप से अनुष्ठान करते हुए अन्य जो वेद का अविरुद्ध और मोक्ष को देने वाला शास्त्रीय अथवा लौकिक किसी भी प्रकार का कर्म हो उसे भी पालन करना चाहिये, छोडना कभी न चाहिये यह शास्त्रो का सिद्धान्त है ॥२८ ॥

वैदिक कर्म मार्ग को छोड कर लोक मनोरजन के लिये अन्य कार्य करना यह साधुजनो से निन्दित मार्ग है, ऐसे कर्म कर्ताको प्रत्यवाय होता है । यही बात श्रीभगवान ने गीता शास्त्र मे कही है कि 'जो मनुष्य शास्त्र विधि को छोडकर अपनी स्वेच्छाचारिता से वर्त्तता है वह सिद्धि को नहीं प्राप्त होता और न स्वर्गादि सुख अथवा परगति मोक्ष को ही प्राप्त होता है' इसी प्रकार

यमोऽप्याह—वेदाः प्रमाणं स्मृतयः प्रमाणं धर्मार्थयुक्तं वचनं प्रमाणम् ।
यस्य प्रमाणं न भवेत्प्रमाणं कस्तस्य कुर्याद्वचनं प्रमाणम् ॥इति॥२९॥

अयमभिसन्धिः । श्रौतं स्मार्तञ्च धर्ममनुतिष्ठद्भिः कालक्रमात्कुलगतोऽपि धर्मोऽनुष्ठेय एव सदाचारस्यापि प्रमाणकोटौ निविष्टत्वात् तदाह भगवान् सुमन्तुः—
यत्रशास्त्रगतिर्भिन्ना सर्वकर्मसु भारत । उदितेऽनुदिते चैव होमे भेदो यथा भवेत् ॥
तस्मात्कुलक्रमायातमाचारं ह्याचरेद्बुधः ।
स गरीयान् महाबाहो! धर्मशास्त्रोदितादपि ॥इति॥३०॥

स्वसम्प्रदायसिद्धस्यापि धर्मस्यानुष्ठानं सर्वसम्मतम् । एवञ्च सुखविशेषलिप्सयैवार्थिनामाम्नायिकेषु प्रवृत्तिरुपपद्यते । यदि ततोऽप्यधिकसुखलिप्सा चेन्निष्कामकर्मणामप्यनुष्ठानं कार्यमेव । यतः चरमपुरुषार्थस्य मोक्षस्य तदनुष्ठानप्राप्यत्वात् ।३१॥

नच कामस्यैव निस्सीमसुखस्वरूपत्वेन चरमपुरुषार्थत्वम् । तथा चारण्यके पर्वणि—

अर्थार्थी पुरुषो राजन्! बृहन्तं धर्ममिच्छति ।
अर्थमिच्छन्ति कामार्थं न कामादन्यमिच्छति ।

यम स्मृति मे भी लिखा है कि हमारे मतमे वेद प्रमाण है स्मृतिया भी प्रमाण है एव धर्मार्थ युक्त वचन भी प्रमाण है। जिसके मत मे उपर्युक्त तीनो प्रमाण प्रमाण नही उसके वचनको कौन प्रमाण करेगा। अर्थात् पूर्वोक्त तीनो प्रमाणो को न मानने वाले के वचन को कभी नही मानना चाहिये ॥ २९ ॥

अभिप्राय यह है कि, श्रौत और स्मार्त कर्म को पालन करने वालो को अनन्त काल से कुलागत धर्म का भी पालन करना चाहिये। क्योंकि सदाचार भी प्रमाण कोटि मे माना जाता है इसको सुमन्तु महर्षि ने इस प्रकार कहा है 'जिन कर्मोंकि पालन मे शास्त्रकी गति विभिन्न प्रकार से उपलब्ध होती हो जैसे 'उदिते जुहोति' 'अनुदिते जुहोति' इन दो वचनो से उदित होम और अनुदित होम इन दोनोंका ही विधान पाया जाता है, एव वाक्यान्तरमे दोनो की निन्दा भी श्रुत है। इस अवस्था मे कुल परम्परासे प्राप्त आचारके अनुसारही विद्वानको व्यवहार करना चाहिये। हे महाबाहो! वह कुलाचार धर्मशास्त्र के कथनसे भी श्रेष्ठ माना जाता है' ॥ ३० ॥

इस प्रकार अपनेअपने संप्रदाय मे प्रसिद्ध जो धर्म हो उसका अनुष्ठान भी सर्व सम्मत है। इस से यह निष्पन्न हुआ कि सुख विशेषकी लिप्सा से ही तदर्थी मनुष्यों की वैदिक कर्मो मे प्रवृत्ति देखी जाती है। परन्तु उस सुख विशेषसे भी अधिक सुखकी इच्छा हो तो निष्काम भगवदर्चन वन्दन मन्त्र जपादि रूप कर्मोको भी अवश्य अनुष्ठान करना ही चाहिये। क्योंकि उन निष्काम कर्मो से अंतिम पुरुषार्थ मोक्ष की प्राप्ति होती है ॥ ३१ ॥

कोई कहते है कि, काम ही निःसीम सुखरूप होने के कारण अन्तिम पुरुषार्थ है। अतएव भारत के आरण्यक पर्व मे यह कहा हुआ है कि "हे राजन्! प्रत्येक मनुष्य अर्थ की

नहि कामेन कामोन्यः साध्यते फलमेव तत् ।
इन्द्रियाणां च पञ्चानां मनसो हृदयस्य च ॥

इति शास्त्रनिश्चयादितिवाच्यम् । कामस्य सुखस्वरूपत्वेऽपि दुःखानुलिप्तत्वेन निरतिशयसुखस्वरूपत्वाभावात् ॥३२॥

अत एवावाप्तसमस्तशास्त्रतत्वामहामहिमशालिनो ब्रह्मवसिष्ठपराशरव्यासादिमुनयस्तस्य निरतिशयसुखस्वरूपत्वमपाकृत्य मुहुरनिन्दयन् तदेवाह—

कामिनो वर्णयन् कामं लोभं मुग्धस्य वर्णयन् ।
नरः किंफलमाप्नोति कूपेऽन्धमिव पातनम् ॥

न चैवं संसाराब्धिनिमग्नजनसमुद्धर्तुकामोऽखिलशास्त्रपारावारपारदृश्वा पाराशर्यः कथमर्थकामौ सुखत्वेनावर्णयत् ॥ ३३ ॥

इति चेदित्थम् । धर्ममोक्षयोर्निरतिशयसुखरूपत्वविधित्सया लोकानुग्रहपरोऽपि मुनिस्तौ दृष्टान्तीकृत्य धर्ममोक्षयोः पुरुषार्थपरमपुरुषार्थत्वे प्रत्यपीपदत् । यतः केचिद्दूरदर्शिनो वैदिककर्मणिश्रद्धाजडा सुखैकमात्रलिप्सवः कामक्लेशमप्यमहिष्णवो धर्मापवर्गयोर्वैदिकानुष्ठाने मन्दं प्रवर्तेरन् ।

प्राप्ति के लिये अधिक धर्मकी इच्छा रखता है और उस अर्थको काम प्राप्ति के लिये साधन मानता है। परन्तु कामसे अन्य किसी फलकी इच्छा नही रखता कामरूपपुरुषार्थ से दूसरे किसी कामकी साधना नही होती क्योकि पाच इन्द्रियोंका मन का और हृदयका एक कामही फल है" इत्यादि वचनोंको प्रमाणतया कहते है। यह उनका कथन ठीक नही है। क्योंकि काम को सुखरूप होने पर भी दु खमिश्रित होनेके कारण निरतिशय सुखरूपता नही कही जा सकती ॥३२॥

इसलिए ससस्त शास्त्रो के तत्व को जानने वाले महामहिमाशाली ब्रह्मा, वसिष्ट पराशर और व्यास आदि मुनियोंने उस कामरूप पुरुपार्थ को अन्तिम सुखरूपतासे खण्डन करके बारबार उनकी निंदा की है। यही पुराणान्तर मे भी कहा गया है। "कामी पुरुपके लिये कामका वर्णन और लोभी के लिये लोभका वर्णन करने वाला मनुष्य किस फलको प्राप्त करेगा? यह एक प्रकारसे कुएमे अन्धेको गिरानेके समान है"। यहा पर यह शंका होती है कि ससार समुद्रमे डूबेहुये जनसमूदाय के समुद्धार की इच्छा वाले एवं शास्त्र सागर के पार देखने वाले पराशर ऋषिके पुत्र श्री व्यास भगवान् अपने महाभारत मे किस लिये अर्थ और कामको सुख रूपसे वर्णन करते है ॥३३॥

इस शंकाका समाधान यह है कि धर्म और मोक्ष इन दोनों मे ही निरतिशय सुख रूपताके विधानकी इच्छासे लोकानुग्रह परायण होने के कारण मुनिने अर्थ और कामको दृष्टान्तभूत बनाकर धर्म और मोक्ष मे पुरुषार्थत्वका प्रतिपादन किया है। क्योंकि कुछ अदूरदर्शी मनुष्य वैदिक कर्मोमे मन्द श्रद्धा वाले होकर सुख मात्रकी इच्छा रखतेहुए शारीरिक क्लेश लेशकोभी नहीं सहन करते हुए धर्म और अपवर्गके लिए वैदिक अनुष्ठान मे प्रवृत्ति नही करेगे।

तात्पर्य यह है कि अर्थ और कामको इन्द्रिय गोचर होने के कारण उनके प्राप्त करने के लिए अपनी प्रवृत्ति करते हुए उन दोनों मे आपातत सुख देखकर भोगार्थ राग से अधिक बढजाने

अर्थकामयोश्चैन्द्रियकतया तयोरर्जने प्रवृत्तिं विधित्सवस्तत्र चापाततः सुखमुपलभ्योद्रिक्तरागास्तदधिकफलप्रेप्सया धर्मनिःश्रेयसयोरपि जागृयुरिति तन्निदर्शनमितिहासपुराणादिष्वकरोन्महर्षिः । तथा चोक्तम्—

मुनिनाऽपि च कामर्थौ ज्ञात्वा लोकमनोहरौ ।
निन्द्यावपिस्तु तावेनौ धर्ममोक्षविवक्षया ।
अन्यथा घोरसंसारे बन्धहेतू जनस्य तौ ।
वर्णयेत्स कथं धीमान् महाकारुणिको मुनिः ।
लोकचिन्तानुरागार्थं वर्णयित्वा च तेन तौ ।
इतिहासैर्विचित्रार्थैः पुनस्तत्रैव निन्दितौ ।इति ॥३४॥

एवमतिसंक्षेपात् त्रिवर्गेषु धर्मस्यैव प्राधान्यम् तस्यापि च निःश्रेयसाङ्गत्वमतश्चरमपुरुषार्थपदाभिधेयत्वं केवलं मोक्षस्यैवेति प्रासङ्गिकमुपपाद्येदानीं प्रकृतमनुसरामः । वैदिकाचारचतुरचरणचेतोभिरेव संजातस्वोपास्यदेवताभिनवानुरागवशात् देवतार्चन, वन्दन, मन्त्रजपादिकं परप्राप्तिप्रयोजकं शक्यत एवावश्यमनुष्ठातुम् । नह्यनयोर्मिथो निवर्त्यनिवर्तकभावोऽस्ति । येन वैदिकक्रियाकलापमनुतिष्ठति नेदमाश्रयमासादयेत् । तस्माच्छ्रौताचारनिरतेनापि साध्यमिदं मनोग्त्नमिति तृतीयमपि वैदिकत्वं भजतेऽत्र मनौ सामञ्जस्यम् ॥३५॥

पर उससेभी अधिक सुखकी इच्छासे धर्म और मोक्षरूप पुरुषार्थ मे भी जागृत हो जावे इस कारण से महर्षिने इतिहास और पुरणोमे पुरुषार्थ रूपसे अर्थ कामकाभी परिगणन किया है । यही विषय इन श्लोकोमे वर्णित है । भगवान व्यासजीने काम और अर्थको लोक मनोहर जानकर विवेकी जनोकी दृष्टि मे निन्द्य होने पर भी धर्म और मोक्ष को पुरुषार्थ रूप से उपादेयत्व समझाने के लिये इन दोनो की भी प्रशसा की । नही तो महाकारुणिक व्यास मुनि स्वय बुद्धिमान होने पर उन दोनोको इस घोर संसारमे मनुष्य के बन्धनके हेतु होने के कारण क्यो वर्णन करते। परन्तु लोकानुग्रह परायण श्रीव्यास मुनि ने नाना रूप से अर्थ काम का वर्णन करके फिर से अनेक धार्मिक विचित्र आख्यानो द्वारा उनकी निन्दा कि है ॥ ३४ ॥

इस प्रकार धर्म अर्थ, काम इन तीनो मे धर्म को ही प्रधानता है । और उस धर्म को भी परम पुरुषार्थ मोक्षका अगत्व है इस लिए परम पुरुषार्थ केवल मोक्षही सिद्ध है, यह विषय अत्यन्त संक्षेप से यहा प्रसगत उपपादन करके अब पुन प्रकृतका अनुसरण किया जाता है । इस प्रकार वैदिक कर्मानुष्ठानमे सुकुशल पुरुषोसे अपने उपास्य देवतामे अधिक प्रेम होने के कारण स्वकीय इष्ट देवता का पूजन बन्दन और मन्त्रजप आदि जो परमेश्वर प्राप्ति के साधन है वह आवश्यक रूपसे किये जासकते है वैदिक क्रिया समूहका अनुष्ठान और भगवदाराधन मन्त्र जप इन दोनोका परस्पर बध्य घातक भाव नहा है जिससे वैदिक काम्य कर्मका अनुष्ठान करनेवाला यह निष्काम भगवत्पूजन मन्त्र जप आदिका अनुष्ठानही न कर सके । इसलिए श्रौत परिगणित कर्म

चतुर्थवैदिकत्वकल्पोऽयमनल्पफलशालिन्यखिलक्लेशकलिलोत्कालनचतुरेऽस्मिन् श्रीराममहामंत्रे संगतिमादधाति । तथाहि वेदोदितफलार्थिप्रवृत्तिविधेयत्वमित्यस्य वेदे श्रूयमाणानि भूत्यादिरूपाणि फलान्युद्दिश्य तदुपलब्धये तत्र सतृष्णस्य कामिनोऽधिकफलाजिघृक्षोः प्रवृत्तिविधेयतेत्यर्थः ॥३६॥

इदमत्र विचारास्पदम् । नित्यं, नैमित्तिकं, काम्यञ्चेति त्रिविधं कर्म वेदेषूपदिष्टम् । तत्र नित्यनैत्तिककर्मणोः प्रत्यवायपरिहार एव फलं, सिद्धान्ते भगवन्निग्रहलक्षण एव प्रत्यवायोऽभ्युपेयते । तत्रहि विधिप्रत्ययेन भगवन्निग्रहात्मकप्रत्यवायप्रयोजकीभूताभावप्रतियोगिकर्तृव्यापारसाध्यत्वमेव बुबोधयिषितम् । अनिष्टनिवृत्तिरूपेष्टसाधनताज्ञानत्वमनुगतीकृत्योभयविधकर्मसाधारण्येनावश्यकर्तव्यताज्ञानप्रयोजकत्वमुभयत्राप्यक्षतम् ॥३७॥

एवञ्चोत्पन्ननिग्रहात्मकानिष्टनिवृत्तिप्रयोजकतां प्रायश्चित्तस्थलीयनैमित्तिकविधावधिगत्य सिध्यत्यत्राप्यवश्यकर्तव्यत्वम् । नन्वेवं जातेष्टयादिनैमित्तिकविधावव्याप्तिस्तत्र तत्कालावच्छेदेन भगवन्निग्रहस्यैवानुदयादिति चेन्न । नित्यस्थले प्रायश्चित्तनैमित्तिकजातेष्टयादिरूपनैमित्तिकस्थलयोश्च निग्रहाभावप्रयोजककृतिसाध्यत्वलक्षणावश्यकर्तव्यत्वमेव सर्वस्थलसाधारण्येन विध्यर्थः । तथा च—

परायण होने परभी अधिकारी पुरुष इस मन्त्र का भी जप ध्यान आदि करही सकता है । अतः तृतीय वैदिकत्व भी इस मन्त्र राजमे संगत हुआ ॥ ३५ ॥

चतुर्थ वैदिकत्व भी महाफलप्रद और अखिल क्लेश विनाश करनेमें समर्थ इस श्रीराम मन्त्र मे यथावत्सगत होता है । अब इसी का विवेचन किया जाता है । चतुर्थ कल्प का यह अर्थ है कि वेदमे श्रूयमाण जो भूति आदि फल है उनका उद्देश्य करके उनकी प्राप्ति के लिये उन फलों मे तृष्णा धारण करने वाले अर्थी पुरुष की अधिक फल की इच्छा से जो प्रवृत्ति हो उस को संपादन करना ॥ ३६ ॥

यहांपर यह विचारणीय है कि वेदमे नित्य नैमित्तिक और काम्य इस प्रकार त्रिविध कर्म कहे गये है । इनमे नित्य और नैमित्तिक कर्मका प्रत्यवाय परिहार ही फल है । क्योकि हमारे सिद्धान्त मे भगवान् का निग्रह रूपही प्रत्यवाय माना जाता है । नित्य नैमित्तिक स्थल मे विधि प्रत्यय से भगवन्निग्रह रूप जो प्रत्यवाय है वह प्रत्यवाय जिस कर्ताके व्यापारसे उत्पन्न न हो ऐसा कर्ताका व्यपारही साध्य रूपसे बोधित किया जाता है । ऊपर के दोनो स्थलोमे इष्टसाधनत्व ज्ञानको अनुगत करके अवश्य कर्तव्यत्व रूप ज्ञानका प्रयोजक विधि प्रत्यय है ॥ ३७ ॥

यहा पर इष्ट साधनता भी अनिष्ट निवृत्ति रूपही मानी गई है । इससे सम्पन्न यह हुआ कि नित्य नैमित्तिक कर्म न करनेके कारण उत्पन्न भगवन्निग्रह रूप अनिष्ट निवृत्तिको प्रयोजकता उभय स्थलमे मानकर अवश्य कर्तव्यता दोनो स्थल मे सिद्ध होती है ।

यहां शका यह होती है कि जातेष्टि आदि नैमित्तिक विधि मे यह उपर्युक्त विधि प्रत्यय का अर्थ सगत नही होता। क्यो कि जातेष्टि कर्म सम्पादन करने के समय भगवन्निग्रह रूप प्रत्य-

श्रुतिस्मृती ममैवाज्ञा यस्तामुल्लंघ्य वर्तते ।
आज्ञाच्छेदी मम द्रोही न मद्भक्तो न वैष्णवः ॥३८॥
अपि च-प्रतिष्ठा सर्वधर्माणां प्रसादकात्मनां हरेः ।
तदाज्ञा रूपमनघं शास्त्रं श्रुत्यादिमानयेत् ॥
एवंगीताशास्त्रेऽपि-ये त्वेतदभ्यसूयन्तो नानुतिष्ठन्ति मे मतम्
सर्वज्ञानविमूढांस्तान्विद्धि नष्टानचेतसः ॥

इत्याद्यनेक प्रमाणावगतभगवदाज्ञारूपशास्त्रप्रतिपाद्यकर्मणामनुष्ठाने भगवदनुग्रहरूपोऽभ्युदयफलन्तेषामनुष्ठाने च निग्रह इति नित्यविधिस्थले जातेष्टयादिनैमित्तिकस्थले च निग्रहविशेषष्यानुदयात्तदभावः प्रायश्चित्तस्थले तु निग्रहविशेषस्योत्पत्तिप्रतिबन्धादेव तदभाव इति सर्वं सुस्थम् । येतु नित्यनैमित्तिककर्मणोः फलं न विद्यतेऽन्यथा सफलत्वेन काम्यत्वापत्ते स्त्रैविध्यानुपपत्तेरित्याहुस्तत्प्रौढिवादमात्रम् । तयोरपि फलवत्वमवश्यमङ्गीकार्यमन्यथा तयोः प्रवृत्त्यनुपपत्तेरितिदिक् ॥३९॥

वाय की उत्पत्ति ही नही हुई । इस शका का परिहार यह है कि नित्य स्थल मे प्रायश्चित्त स्थल मे और जातेष्टयादि रूप नैमित्तिक स्थल मे निग्रहाभाव को उत्पन्न करने वाला कृतिसाध्यत्वरूप ही अवश्य कर्तव्यत्वको सर्व स्थल के लिये विद्‌यर्थ मान लेना चाहिये। इस प्रकार मान लेने पर किसी भी स्थल मे दोषापत्ति न होगी। इसका विवेचन निम्न प्रकार से समझाना चाहिये । शास्त्रों मे स्वय भगवान् कहते है कि--श्रुति और स्मृति यह दोनो मेरी आज्ञा रूपही है, पुरुष इन दोनोंका उल्लघन करता है अर्थात् नही मानता स्वेच्छासे वर्तता है वह मेरी आज्ञाका छेदन करने वाला है एव मेरा द्रोही है वह न मेरा भक्त है न वैष्णव ही है ॥ ३८ ॥

और भी शास्त्रो मे कहा है कि "सब धर्मो की प्रतिष्ठा भगवत्कृपा पात्र सज्जनो के लिये भगवदाज्ञा का पालन करना ही है और भगवान् की आज्ञा रूप ही निष्पाप शास्त्र है उनको अवश्य मानना चाहिये" । इसी प्रकार गीता शास्त्र मे स्वय भगवान् कह रहे है कि "जो लोग श्रुतिस्मृति की अवज्ञा करके मेरे मत रूप जो श्रुति स्मृति आदि है उनको नही मानते वह सब प्रकार से मोहित होकर नष्टबुद्धिवाले गिने जाते है" ।

इत्यादि अनेक प्रमाणो से यही सिद्ध होता है कि, भगवदाज्ञा रूप जो शास्त्र है उनसे प्रतिपादित जो कर्म है उनका पालनकरना भगवदनुग्रह माना जाता है और शास्त्र प्रतिपादित जो नित्यादि कर्म है उनके पालन न करने से भगवान् के कोप का भाजन माना जाता है । इसीको निग्रह शब्द से कहा है। नित्य विधि स्थलोमे और जातेष्टयादि नैमित्तिक स्थल मे उन कर्मो का अनुष्ठान कर लेने पर निग्रह विशेष की उत्पत्ति ही नही होती । इसलिये निग्रहाभाव ही ठीक हुआ । और प्रायश्चित्त स्थल मे निग्रह विशेष की उत्पत्ति का प्रतिबन्ध हो जाने के कारण निग्रहाभाव है इसलिये सर्वत्र एक रूप से ही विधि प्रत्यय के अर्थ की सगति हो जाती है । जो लोग नित्य नैमित्तिक कर्मका फलही नही मानते वह अपने वक्तव्य मे यह कारण बताते है कि यदि नित्य और नैमित्तिक कर्मोका फल माना जाएगा तो उनको काम्यत्वापत्ति होगी और ऐसा होने

काम्यविधाविष्टसाधनत्वस्य विध्यर्थतया तत्प्रतिपादितस्य "वायव्यं श्वेतमालभेत भूतिकामः" वायुर्वै क्षेपिष्ठादेवता वायुमेव स्वेन भागधेयेनोपधावति स एवैनं भूति गमयति" इत्यादेः कर्मणः स्पष्टमेव फलवत्त्वमुपलभ्यते ।

तथा चास्या संसृतेर्दुःखबहुलतया सुखमात्रैकलिप्सोः फलार्थिनोऽखिलजगद्धितानुशासनपराम्नायसमधिगतफलप्राप्तये यथा वैदिके कर्मणि प्रवृत्तिरुपपद्यते तथा वैधेषूपायान्तरेष्वपीति साम्यमेव फलप्रयोज्यप्रवृत्तेरिति । अर्थित्वावच्छेदेन प्रवृत्तेर्निश्चितत्वात् ।४०।

एवञ्च काम्यविधिसमधिगतकर्मभगवत्प्रसत्तिप्रयोजकध्यानार्चनमंत्रजपादिकर्मणोरुभयोर्मध्ये "अक्के चेन्मधुविन्देत किमर्थं पर्वतं व्रजेद्" इति न्यायेन भगवदनुकल्पानुबन्धिनामेव कर्मणामविलम्बेन निःश्रेयससमर्पकत्वात्तान्येव प्रथमतोऽनुष्ठातारमनुबध्नुयुरन्यदखिलकर्मकलापानुष्ठानात् । ।।४१।।

न चैवं काम्यविधेरानर्थक्यं तत्प्रतिपादितेऽपरिमितशरीरायासार्थव्ययादिसाध्ये क्षुद्रफले सत्यक्षय्यफलके भगवदर्चनमंत्रजपादिलक्षणेऽल्पायाससाध्ये कर्मणि फलमात्रैकप्रेप्सोर्नियोज्यस्य प्रवृत्तेरयोगादिति वाच्यम् । नियोज्यतावच्छेदकधर्माणां वैविध्येन भिन्नफलार्थिष्वत्यनुगुणप्रवृत्तिरुपपद्यत एवानियतदेशकालफलेषु काम्यकर्मसुपरिच्छिन्नफलाभिलाषुकाणामिति न किञ्चित्तिरोहितं प्रेक्षावताम् । तथा च वेदोदितफलार्थिनः सतः पुंसोऽत्र मनो प्रवृत्तेरनुष्ठेयतोपपद्यतेतरामिति ।।४२।।

से तीन प्रकार के कर्म नही कहे जा सकते । इसलिये उन स्थलो मे फल नही मानना चाहिये । यह उनका केवल प्रौढिवाद है । नित्य और नैमित्तिक कर्मो का भी फल मानना ही चाहिये । अन्यथा निष्फल होनेके कारण उन कर्मो मे किसी भी मनुष्य की प्रवृत्ति ही न होगी ।। ३९ ।।

काम्य विधिमे तो इष्टसाधनत्वको विध्यर्थ होनेसे तत्प्रतिपादित वायु देवता के "वायव्य" इत्यादि कर्मो को स्पष्ट ही फलवत्व है ।

सुख की इच्छा वाले मनुष्यो को जिस प्रकार वैदिक कर्म मे प्रवृत्ति होती है ठीक उसी प्रकार वैध उपायान्तरो मे भी प्रवृत्ति भली प्रकार से होगी क्योंकि जहा अर्थिता होती है वहा प्रवृत्ति अवश्य ही होती है ।। ४० ।।

फलित यह हुआ कि काम्य विधि से जाने गये कर्म और भगवत्प्रीति प्रयोजक जो कर्म है इन दोनोमे "गृह कोण मे जो मधु मिलता हो तो दूर पर्वत मे जानेकी कोई आवश्यकता नही" इस न्यायसे भगवान्‌की कृपाके देनेवाले कर्मोमे ही प्राधान्य होगा और उन्ही के अनुष्ठान के लिए प्रथम प्रवृत्ति होगी । काम्य कर्मोमे अधिक क्लेश होने के कारण मंद प्रवृत्ति होगी अथवा तो प्रवृत्ति ही न होगी ।। ४१ ।।

यहा पर यहशंका नही कर सकते कि वैदिक काम्य विधि को ही आनर्थक्य हो जायगा । क्योंकि अल्पायाससाध्य भगवत्सम्बन्धि कर्मो के होने के कारण बहुत आयाससाध्य वैदिक काम्य कर्मोमे क्यो प्रवृत्ति करनी चाहिये । क्योंकि फलार्थियोंकी कामना भिन्न भिन्न प्रकार की देखी

नन्वेवं तृतीयतुरीययोरेकार्थत्वम् । तृतीयकल्पेऽपि प्रवृत्त्यनर्थान्तरभूताया एव कृतेः साध्यत्वस्यानपायादितिचेन्मैवं वोचः । तृतीयकल्पप्रतिपाद्यकृतिसाध्यत्वस्यानुष्ठातरितद्योगमात्रमुच्यते नत्वावश्यकतयानुष्ठेयत्वम् । चतुर्थकल्पकल्पितायाः प्रवृत्तिविधेयतायास्त्वनुष्ठातुर्नियतानुष्ठेयत्वमिति तयोरर्थान्तरत्वादिति सर्वंचतुरस्रम् ॥४३॥

अथ "वेदैकसमधिगम्यत्वात्मकं" पञ्चमं वैदिकत्वमालोचयामः । वेदैकसमधिगम्यत्वमित्युदीर्यमाण एकपदमहिम्ना वेदपदाभिधेयमंत्रब्राह्मणान्यतराधिगमविषयत्वे सति तदितरप्रमाणाविषयत्वमिति लभ्यते ॥४४॥

एतादृग्वैदिकत्वेऽभ्युपगम्यमाने लोके सर्वैस्तान्त्रिकैर्वैदिकत्वेन व्यवह्रियमाणानां कर्मकलापानामवैदिकत्वमापद्येत। मंत्रब्राह्मणातिरिक्तागमस्मार्तपौराणिकादिप्रमाणवेद्यत्वात्। भूयांसि कर्माण्याम्नायश्रुतान्येवानुवदन्त्यागमस्मृतिपुराणादयः । नित्यसन्ध्याग्निहोत्रादिकर्मणां श्रुतिस्मृत्यादिष्वसंशयं निर्दिष्टाना न केनचिद्धर्मवशीकृतस्वान्तेन मृष्यतेऽवैदिकत्वमित्येतादृशं तत्वं यथान्येषु कर्मसुनोपपद्यते तथा प्रकृतेऽप्यस्मिन् श्रीराममनौ नोपपद्यन्तां का नो हानिरिति ॥४५॥

वेदैकभागब्राह्मणदृष्टार्थाधिकृतत्वमिति षष्ठं वैदिकत्वमत्र श्रीरामषडक्षरे सुतरामुपपद्यते ॥४६॥

जाती है इसलिये कामनाके अनुसार भिन्न भिन्न फलो के लिये फलाभिलाषियोकी भिन्न फलदायी वैदिक काम्य कर्मोमे भी अवश्य ही प्रवृत्ति होगी । इस प्रकार वेदोक्त काम्यादि कर्मो मे प्रवृत्ति करते हुए भी विद्वानो की श्रीराम मन्त्र म प्रवृत्ति होने मे कोई बाधक नही है ॥ ४२ ॥

इस चतुर्थ कल्प मे और तृतीय कल्प मे एकार्थत्व होने कि शका नही करनी चाहिये क्योंकि तृतीय कल्प मे प्रतिपादित जो कृति साध्यत्व है उनका अनुष्ठान कर्त्तामे सम्बन्ध मात्र कहा गया है आवश्यक रूप से नियंत्रण नही किया गया । और इस चतुर्थ कल्प मे जो प्रवृत्ति विधेयता है उनका अनुष्ठान कर्ता को नियत रूपसे 'करना ही चाहिये' इस प्रकार नियन्त्रण किया गया है इसलिये तृतीय और चतुर्थ वैदिकत्वमे सुतरा भेद सिद्ध होता है ॥४३॥

अब वैदिक समधिगम्यत्व रूप पंचम वैदिकत्वका विचार किया जाता है । एक वेद से ही जाने जासके इस कथनमे 'एक' पद आया है । इसका अर्थ यह होता है कि मन्त्र और ब्राह्मण के सिवाय अन्य किसी प्रमाण से न समझा जावे अर्थात् अन्य किसी प्रमाण का विषय न हो ॥४४॥

अब यदि ऐसा भी कोई वैदिक होतो लोक मे सर्व विद्वान् जिन कर्मो को वैदिक कहते है उन सबको अवैदिकता सिद्ध होगी । क्योंकि मन्त्रब्राह्मण से अतिरिक्त आगम, तन्त्र, शास्त्र, स्मृति और पुराणोसे वह कर्म वेद्य है । बहुतसे ऐसे कर्म है जो वेदमे कथित होते हुए भी आगमस्मृति और पुराणादि मे आते है । नित्य सध्या और अग्निहोत्रादि कर्म स्मृतिमे असंदिग्ध रूप से उपदिष्ट है ऐसे कर्मो को कौन धर्मानुरागी अवैदिक कहेगा । यदि कोई संध्यादि कर्मको अवैदिक मानता हो तो ऐसा अवैदिकत्व राममन्त्रमे हो तो उससे हमको क्या हानि है ॥ ४५ ॥

तथाहि—मंत्रब्राह्मणयोरेव वेदपदाभिधेयतयोपनिषद्रूपब्राह्मणात्मके तदेकभागे येऽर्थाः पुरुषार्थतयोपदिश्यन्ते तेष्वधिकृतत्वमेवेत्यर्थकमिदं वैदिकत्वम् । पुरुषाभिलषित फलभूतानाञ्च तदर्थानां रामरहस्याद्युपनिषत्स्वनेकधोपवर्णितानामवाप्तिरेवास्य श्रीराम-मंत्रस्य प्रयोजनमितितु निर्विवादम् ॥४७॥

तद्यथा रामरहस्योपनिषदि "सनकाद्या योगिवर्या अन्ये च ऋषयस्तथा । प्रह्लादाद्या विष्णुभक्ता हनुमन्तमथाब्रुवन् । इत्यारभ्य श्रीरामतत्वमवलम्ब्य प्रश्नस्तदुत्तरञ्चाञ्जनेयेन भगवताभिहितम् । ततश्च भूयस्तारकं श्रीरामषडक्षरमुद्दिश्य तेषामेव प्रश्नः । ते हनुमन्तं प्रपच्छुः 'आञ्जनेय ! महाबल विप्राणां गृहस्थानां प्रणवाधिकारः कथं स्यादिति" । सहोवाच श्रीराम एवोवाचेति । येषामेव षडक्षराधिकारो वर्तते तेषां प्रणवाधिकारः स्यान्नान्येषाम् । केवलमकारोकारमकारार्धमात्रा सहितं प्रणवमूह्य यो राममंत्रं जपति तस्य शुभकरो ह्यहम् । तस्य प्रणवस्याकारस्योकारस्य मकारस्यार्धमात्रायाश्च ऋषिश्छन्दो देवता तत्तद्वर्णावस्थानं स्वरवेदाग्निगुणानुच्चार्यान्वहं प्रणवमंत्राद्द्विगुणं जप्त्वा पश्चाद्राममंत्रं जपेत् । स रामो भवतीति "रामषडक्षरीत्यादिभिर्मन्त्रैर्यो मां नित्यं स्तौति तत्सदृशो भवेन्नकिम् भवेन्नकिम्" "सनकाद्या मुनयो हनुमन्तं पप्रच्छुः श्रीराममंत्रार्थमनुब्रूहीति । हनूमान् होवाच । सर्वेषु राममंत्रेषु मंत्रराजः षडक्षरः । एकधाथ द्विधा त्रेधा चतुर्धा पञ्चधा तथा । षट्सप्तधाष्टधा चैव बहुधायं व्यवस्थितः । षडक्षरस्य माहात्म्यं शिवो जानाति तत्त्वतः" । तत्त्वमस्यादिवाक्यन्तु केवलं मुक्तिदं यतः । तथा मुक्तिप्रदं चैतत्तस्माद्प्यतिरिच्यते । मनुष्वेतेषु सर्वेषामधिकारोऽस्ति देहिनाम् । मुमुक्षूणां विरक्ताना तथा चाश्रमवासिनाम् । प्रणवत्वात् सदाध्येयो यतीनां च विशेषतः । राममंत्रार्थविज्ञानी जीवन्मुक्तो न संशयः । "राम-

इसके आगे "वेदके एक भाग मे जिसका प्रयोजन देखा गया हो और उस प्रयोजन के लिये जिसका अनुष्ठान किया जाता हो उसे भी वैदिक माना जाता है" यह छठा वैदिकत्व भी इस श्रीराम षडक्षरमे अच्छी तरह उपपन्न हो जाता है ॥ ४६ ॥

इसका विवेचन मन्त्र और ब्राह्मण दोनों को वेद पद से कहा गया है इन मे से उपनिषद रूप जो ब्राह्मणात्मक वेद भाग है इस वेद भाग मे पुरुष कि अभिलाषा पूर्ति के लिये जो फल कहे गये है उनके साधन मे समर्थ जो हो उसे वैदिक कह सकते है यह षष्ठ वैदिकत्व का तात्पर्य है । पुरुषेच्छानुसार फलोंको देने वाला यह श्रीराम मन्त्र है यह राम रहस्यादि उपनिषदो मे स्पष्टतया वर्णित है ॥ ४७ ॥

श्रीरामरहस्योपनिषद् मे इस प्रकार लिखा है कि, 'एक बार सनकादिक योगि वर्य अन्य ऋषि और प्रह्लाद आदिक भक्त श्री हनुमान जी से पूछने लगे, हे आजनेय ! हमको श्रीरामतत्व का और श्रीराम मन्त्रका उपदेश कीजिये । यहा से सब ऋषियों के अनेक प्रश्न है । और श्री हनु-

मंत्राणां कृतपुरश्चरणो रामचन्द्रो भवति'' एतदनुकल्पमेव रामोत्तरतापिन्याम् । अथ हैनं भारद्वाजः पप्रच्छ याज्ञवल्क्य कि तारकं कि तारयतीति । महोवच याज्ञवल्क्यस्तारकं दीर्घानलं विन्दुपूर्वकं दीर्वानलपुनर्माय नमश्चन्द्राय नमो भद्राय नम इत्येतत् ब्रह्मात्मिका सच्चिदानन्दाख्या इत्युपासितव्यम्'' ''त्वत्तो वा ब्रह्मणो वापि ये लभन्ते षडक्षरम् । जीवन्तो मंत्रसिद्धाः स्युर्मुक्ता मां प्राप्नुवन्ति ते'' । अखण्डैकरसानन्दस्तारकब्रह्मवाचकः । रामायेति सुविज्ञेयः सत्यानन्दश्चिदात्मकः । नमः पदं सुविज्ञेयं पूर्णानन्दैककारणम् । सदा नमन्ति हृदये सर्वे देवा मुमुक्षव इति । य एवं मंत्रराजं श्रीरामषडक्षर नित्यमधीते । सोऽग्निपूतो भवति । स वायु पूतो भवति स आदित्यपूतो भवति । स सोमपूतो भवति । स ब्रह्मपूतो भवति । स विष्णुपूतो भवति । स रुद्रपूतो भवति । स सर्वैर्देवैर्ज्ञातो भवति । सर्वै क्रतुभिरिष्टवान् भवति । तेनेतिहासपुराणाना रुद्राणां शतसहस्राणि जप्तानि सकलानि भवन्ति । दश पूर्वान् दशोत्तरान् पुनाति । स पक्ति पावनो भवति । स महान् भवति । सोऽमृतत्वञ्च गच्छति'' । इत्याद्यनेकवेदैकभागब्राह्मणवचनान्यत्रप्रामाण्यमभिदधते ॥४८॥

'न चोपनिषदा न वेदैकभागब्राह्मणरूपत्वमितिवाच्यम्' 'शेषे ब्राह्मणशब्दः' (२।१।३३) इति जैमिनीयेनोपनिषदामपि ब्राह्मणपदनिर्देश्यत्वमेवेत्युक्तम्प्रागेवेति नात्र पुनर्विवेचनीयतामर्हत्येतत् ॥४९॥

नचान्यवैदिककर्मकलापस्यापि ब्राह्मणभागनिर्दिष्टफललक्षणार्थेऽधिकृतत्वादेव वैदिकत्वमिति ततः को विशेष इति वाच्यम् । न कश्चिद्विशेपस्तद्वदेवास्यापि वैदिकत्वमित्यवेहि । यदि विशेपान्वेषणेआग्रह एव चेत्तर्हि साक्षात् परमपुरुषार्थलक्षणफलोपयिकत्वमेवास्य मंत्रराजस्य । अन्य वैदिककर्मकलापस्य तु परम्परया चरमफलप्रयोजकत्वमित्यस्त्यनयोर्विशेषः ॥५०॥

मानजी का उत्तर है । इस प्रकरण मे श्री हनुमान जी ने श्रीराम मन्त्र का वर्णन और फल भी खुब कहा है । यह सब मूल से जान लेना चाहिये ॥ ४८ ॥

यहा यह शंका होती है कि उपनिपदो को वेद का एक भाग ब्राह्मण नहीं कहाजा सकता । इसका उत्तर यह है कि शेषे ब्राह्मण शब्द इत्यादि जैमिनि सूत्रसे उपनिषदोको भी ब्राह्मणही माना गया है । यह विपय प्रथम ही कह दिया गया है इसलिए अब दुहराया नही जाता ॥४९॥

यदि कोई यह कहे कि अन्य कर्म भी ब्राह्मण निर्दिष्ट फल देते है । अत उन कर्मोसे इस मे क्या विशेपता है । तो इसका उत्तर यह है कि इसमे कोई विशेपता नही । वैसेही यह भी वैदिक है । यदि विशेपता ही आप चाहते है तो सुनिये । वह यह है कि श्रीराम मन्त्र साक्षात् मोक्ष प्रद है और अन्य वैदिक कर्म परम्परया मोक्ष फल देते है । अथवा नही भी देते । यही विशेषता है ॥ ५० ॥

तथा च–"पूर्णाहुत्या सर्वान् कामानवाप्नोति पशुबन्धयाजी सर्वान् लोकानभिजयति । तरति पाप्मानं तरति ब्रह्महत्यां योऽश्वमेधेन यजते य उचैनमेवं वेद" इत्यादौ वेदैकभागब्राह्मणदृष्टब्रह्महत्यातरणलक्षणार्थेऽधिकृतस्याश्वमेधस्य वैदित्वमूरीचक्रुर्वैदिककर्मठास्तथैव प्रकृतेऽप्यस्य मंत्रराजस्य वेदभागदृष्टफलकत्वादक्षत षष्टं वैदिकत्वमिति । ।।५१।।

इदमत्र विचार्यतामाश्रयति । भवन्मते मंत्रभागस्य प्रयोगमात्रोपकारकत्वादूद्रव्यदेवतयोरुपवर्णनमात्रमत्र मंत्रेष्वभिलक्ष्यते । विनियोगप्रयोगानुष्ठानन्तु ब्राह्मणग्रन्थेनैवाखिलकर्ममार्गस्येति । ततश्चब्राह्मणोपदर्शिता फलबलाधायकत्वेन वैदिकत्वं यदि नाधिगच्छामस्तर्हि वैदिकपदगोचरतैव तपस्विनी समाकुलास्यादिति समस्तस्य ब्रह्मणावगतार्थकस्य वैदिकत्वमास्थेयम् ।।५२।।

मंत्राणामपि "वैदिकोयं मंत्र" इत्याख्यया यथा वैदिकत्वं तथा प्रकृतेऽपीति न किञ्चिन्निगूढम् । अनेन सप्तमकल्पस्य वेदांशमात्रदृष्टार्थकत्वस्यापि विवेकः सम्पद्यतेतरामिति नाधिकं प्रपंच्यते ।।५३।।

न चैवमपि सप्तमकल्पत्वभगप्रसंगः शक्यशंकः । वेदांशमात्रेत्यादिवक्तुर्मंत्रभागमात्रे दृष्टप्रयोनत्वं ज्ञायते । उत्तरयितुश्च मंत्रब्राह्मणयोरुभयोरपि वेदांशत्वाद्ब्राह्मणभागे दृष्टफलकत्वात्तस्यापि च वेदांशत्वाद् गतार्थता स्पष्टैव । एवं च कल्पकर्तुराशयाकलने-

इसलिये यह सिद्ध हुआ कि जैसे अश्वमेध यागका ब्रह्महत्या विनाशन फल है । यह फल वेदके एक भाग ब्राह्मण भागमे ही है । और इस फल को ब्राह्मण भाग मे होने पर भी वैदिक ब्राह्मणोंने अश्वमेध यज्ञको वैदिक माना है वैसे ही श्रीराम मन्त्र का भी ब्राह्मण भाग मे फलश्रुत होने से वैदिकत्व निर्विवाद सिद्ध है ।। ५१ ।।

यहा पर यह विचार हो सकता है कि आपके मत मे मन्त्र भाग को प्रयोग मात्र का ही उपकारक होने के कारण द्रव्य और देवता का ही वर्णन मन्त्र भाग मे माना जाता है । विनियोग द्वारा प्रयोग का अनुष्ठान तो ब्राह्मण ग्रन्थसे ही सब कर्मोका मानना होगा। ईस अवस्था मे ब्राह्मण भाग के अनुसार फल प्रापकतया यदि वैदिकत्व न स्वीकार करे तो वैदिक पदका कोई अर्थ ही न रहेगा । इसलिए ब्राह्मण भाग से ज्ञात समस्त अर्थ वाले कर्म कलाप को वैदिक मानना ही पडेगा ।। ५२ ।।

मन्त्रोंमे भी 'यह मन्त्र वैदिक है' इस समाख्यासे जिस प्रकार वैदिकता मानी गयी है इसी प्रकार श्रीराम मन्त्र मे भी वैदिकता सुतरा सिद्ध है इसमे लेशमात्र भी भेद नही है । इस छठे कल्प के विवेचन से सप्तमकल्प का भी विवेचन हो जाता है। अत इसके लिए अधिक विस्तार करने की आवश्यकता नहीं है ।।५३।।

इस प्रकार कल्प का अर्थ होने से सप्तमकल्प का कोई अर्थ नही रहता यह शका नहीं करनी चाहिये । सप्तमकल्प विधाता के हृदय मे यह आशय है कि मन्त्र भाग मात्र मे फल होना

नास्य कल्पस्य समञ्जसत्वेऽपि विवेचयितुरुभयोरपि वेदांशप्रत्ययस्य प्रामाणिकत्वेन प्रहितोत्तरतेति तत्तात्पर्यम् ॥५४॥

अथाष्टमकल्पक्लृप्तवैदिकत्वं विविच्यते । तद्धि वेदोभयभागदृष्टार्थकत्वरूपम् । एतस्यापि च मंत्रब्राह्मणाख्यवेदांशयोरपि प्रयोजनानुसंधित्सयोच्चार्यमाणत्वेनास्त्येव समन्वयोऽस्मिन्मंत्रराज इति निश्चयः ॥५५॥

तथाहि षष्ठकल्पकल्पनायामस्माभिरुपनिषद्रूपवेदैकभागेस्य श्रीराममनोरुपपत्तिः प्रादर्शि । इदानीमपरवेदभागे मंत्ररूपेऽप्युपपत्तिः प्रदर्श्यते । मन्त्रभागेऽपि भगवद्रामचन्द्रस्य कथामन्त्रमहात्म्यादिक कृत्स्नं यथावदुपलभ्यते । अत एव च 'वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे । वेदः प्राचेतसादासीत्साक्षाद्रामायणात्मना । तस्माद्रामायणं देवि ! वेद एव न संशयः' । इत्याद्यगस्त्यसंहितावचनानि "स तु मेधाविनौ दृष्ट्वा वेदार्थपरिनिष्ठितौ । वेदोपबृहणार्थाय तावग्राहयत प्रभुः । काव्यं रामायणं कृत्स्नं सीतायाश्चरितं महत्" इत्यार्षवचनानि च वेदोपबृंहणप्रयोजनाभिधायिकान्युपपद्यन्ते ॥५६॥

एवमेव 'मन्त्रह्रदात्कथाकुल्या विद्या केदारमागता । मोक्षस्य च प्रसूर्मध्ये पीयते कर्ममार्गगैः' रित्यभियुक्तवचनस्यापि संगतिः ॥५७॥

चाहिये । इसी आशयसे सप्तम कल्प की रचना है । उत्तरदाता मन्त्र और ब्राह्मण इन दोनो को वेदाश मानता है इस लिये ब्राह्मण भाग मे फल होने से और उसे भी वेदाश होने से 'गतार्थत्व' स्पस्ट ही है । तात्पर्य यह है कि सप्तम कल्पकार को आशय का परिज्ञान न होने के कारण इस कल्प की समञ्जसता ज्ञात होती है । परन्तु विवेचन कर्ता मन्त्र और ब्राह्मण तीनो भागों को वेद मानता है । अत एव वह इस प्रकार उत्तर देता है इसलिये दोनो का अभिप्राय युक्ति युक्त है ॥ ५४ ॥

अब अष्टम कल्प के विषय मे लिखा जाता है । तद्धि इत्यादि कल्प का आकार है । इस अष्टम कल्प का भी वेद के दोनो भागो मे प्रयोजन के लिये मन्त्रराज को अधीत होने के कारण ठीक से समन्वय होता है ॥ ५५ ॥

इसका विवेचन इस प्रकार है । हमने षष्ठ कल्प के उत्तर मे वेद के एक भाग उपनिषद् रूप ब्राह्मण मे श्रीराम मन्त्रकी उपपत्ति की है । अब दूसरे (मन्त्र) भाग मे भी मन्त्रराज की सिद्धि दिखायी जाती है । मन्त्र भाग मे भी भगवान श्रीरामचद्रजी महाराजकी कथा तथा मन्त्र और उन का माहात्म्य आदि यथावत् उपलब्ध होते हे । इसी लिये अगस्त्य सहिता के तथा अन्य भी आर्ष वचनो की सगति होती है । अगस्त्य सहिता मे लिखा है कि 'वेदसे ज्ञेय पर पुरुषने श्रीदशरथजी से अवतार धारण किया और वेदने स्वयं प्राचेतस श्रीवाल्मीकि से रामायण स्वरूप होकर अवतार धारण किया । इसलिये हे देवि ? श्रीवाल्मीकि रामायण वेद ही है' इसी प्रकार वाल्मीकीय रामायण मे भी लिखा है कि ऋषिने कुश और लव को बुद्धिशाली और वेदार्थ मे निष्णात देखकर वेद के उपबृहण के लिये श्री जानकीजी के महान् चरित्र वाले रामायण काव्य का उन दोनो को उपदेश दिया । इन सब बचनो की सगति उक्त प्रकार से मानने पर ही होती है ॥५६॥

अतएव ऋग्वेदे तृतीयाष्टके पञ्चम्यां सायणभाष्यमपि संगच्छते । तथाहि—

वीडौसतीरभिधीरा अतृन्तन्प्राचाहिन्वन्मनसासप्तविप्राः ।

विश्वामविन्दन् पथ्यामृतस्य प्रजानन्नित्ता नभसाविवेश ॥

(सायणभाष्यम्) पुरा किलांगिरसांगावः पणिनामकैः सुरैरपहृत्य निगूढेकस्मिश्चित्पर्वते स्थापिताः । ते चांगिरसस्तत्प्राप्त्यर्थमिन्द्र तुष्टुवुः । स्तुतश्च स इन्द्रो गवान्वेषणाय देवशुनीं प्राहिणोत् । सा च गवां गवेषणपरा सती तत्स्थानमलभत । तया विज्ञापित इन्द्रस्ता गा आनीयांगिरेभ्यः प्रादादित्यैतिहासिकी कथा । तथा चास्या ऋचोऽयमर्थः । धीराः धीमन्तः सप्तविप्रा मेधाविनः सप्तसंख्याका अंगिरसो वीडौ दृढे पर्वते सतीर्निरुद्धा सतीर्गा अभि अभिलक्ष्यातृन्दन् निधानमपावृण्वन् उपेक्षामकुर्वन् । ततस्तेंऽगिरस पर्वतबिले गावः सन्तीति मनसा निश्चित्य प्राचा येन मार्गेण प्रविष्ट स्तेनैव प्राचीनेन मार्गेण गता अहिन्वन् निरगमयन् । स्तुत्याच ऋतस्य पथ्यां मार्गे साधुभूतां विश्वां सर्वामपहृतां गामविन्दन्—अलभन्त । ततः स इन्द्रस्ता तानि अंगिरसां कर्माणि प्रजानन् नित् प्रकर्षेण जानन्निद्रो नमस्कारेणांगिरसः संभावयन् तैरधिष्ठितं पर्वतमाविवेश । यथात्रायमितिहासः प्रस्फुटमुपलभ्यते । तथैवान्यत्रापि मन्त्रभागे विश्वामित्रस्योत्तितीर्षोर्नदीभिः संवाद ऐतिहासिक एवोपलभ्यते । एवमस्मिन्नेवाष्टके—'ये पायवो मामतेयम्' इति मन्त्रेऽपि काचिदृषिसम्बन्धिन्यैतिहासिक्येव कथोपलभ्यते । किं बहुनाम्नायेऽपि विविधकथोपकथनादिपरयेतिहासादिकं वरीवर्तीति न किञ्चित्तिरोहितं प्रेक्षावताम् ॥ ५८ ॥

इसी प्रकार "मन्त्र सरोवर से मोक्षकी देने वाली कथा नलिका द्वारा निकल कर विद्यारूपी क्यारियो मे प्राप्त हुई है और वह कर्म मार्ग वालो से जलपान के रूप मे उपयुक्त की जाती है" इस अभियुक्त वाक्य की भी सगति हुई ॥ ५७ ॥

अतएव ऋग्वेदके ३ अष्टक मे पंचमी ऋचाके सायणभाष्यकी संगति भी होती है । मूल मन्त्र मे एक इतिहास आया है । वह इस प्रकार है । पूर्व काल मे कभी अगिरा नामके ऋषियों की गायो को पणिनाम के असुरों ने हरण करके किसी पहाड के गुप्त स्थान मे रख लिया था । उन अगिराओ ने गायों की प्राप्ति के लिये इन्द्र की स्तुति की । प्रसन्न होकर इन्द्र ने उनकी गायों की खोज के लिये देव शुनी को भेजा । वह गायो के पदो का अन्वेषण करती जहा वह थी वहा पहूँच गयी औ इन्द्र को आकर कह दिया । यह पश्चात् इन्द्रने उन गायों को अगिरा नामके ऋषियोंको प्रदान कर दिया । यह इतिहास मन्त्र भाग मे ही आया है । जिस प्रकार इस मन्त्र मे यह इतिसास मिलता है । इसी प्रकार दूसरे मन्त्रो मे नदियों को पार उतरने की इच्छा वाले विश्वामित्र ऋषि और उन नदियों का ऐतिहासिक संवाद भी मिलता है एवं इसी तृतीयाष्टक मे 'ये पायवोमामतेयम्' इस ऋचामे किसी ऋषिकी कोई प्रसिद्ध (ऐतिहासिक) कथा लिखी गयी है । किंबहुना मन्त्र भाग (संहिता) मे भी नाना प्रकार की शतश कथाएं मिली है ॥ ५८ ॥

अत्र वेदव्याख्याता नीलकण्ठः "ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्यन्यस्मिन्देवा अधि-विश्वे निषेदुः । यस्तन्न वेदकिमृचाकरिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते" । इति मन्त्रेण सर्वासामृचां सर्वेन्द्रियदेवताधिष्ठानभूतपरमव्योमशब्दितब्रह्मपरत्वावधारणात् । अतद्विदोऽध्ययनादेर्वैयर्थ्याभिधानाच्चाध्यात्मपरतयाप्ययं मन्त्रो व्याख्येय इति । एवं तुग्रोह भुज्युमश्विनोदमेघेरयिनं कश्चिन्ममृवामवाहाः । तमूहथुर्नौभिरात्मन्वतीभिरतरिक्षप्रुद्भिरपोढकाभिः ।

इत्यत्र कथामालम्ब्य देवता स्तूयते तत्रालम्बनीभूताना तुग्रादिपदार्थानामनित्यानां संयोगेन वेदस्यापौरुषेयत्वं मा बाधिष्ठ इति देवताधिकरणेऽवान्तरतात्पर्येण तेषा प्रतिकल्पं समाननामरूपाणामुत्पत्तिमभ्युपगम्य व्रीह्यादिपदार्थानामिव प्रवाहानादित्वमुक्तम् ॥५९॥

चमसाधिकरणेत्वेवं जातीयकानां कथारूपकेण ब्रह्मविद्यायां मुख्यं तात्पर्यमिति निश्चीयते । तत्रहि "अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णाम्" इत्यादिमंत्रेषु अजादिशब्दाना श्रौतार्थपरिग्रहे मन्त्रस्याधिगतार्थगमकत्वेनाप्रामाण्याद्वैयर्थ्यमाभूदिति तेषां 'न जायत' इति योगेन मूलप्रकृत्यादिप्रतिपादकत्वमाशंक्य मण्डपं भोजयेत्यादौमण्डपस्थजनवन्मण्डपायिनो झटित्यनुपस्थानेन रूढिपूर्वकलक्षणातो योगस्य दुर्बलत्वात् छान्दोग्यस्थाना

अब इस विषय का वेदके प्रसिद्ध व्याख्याता नीलकठजी का ही ग्रंथ उद्धृत करके स्पष्टीकरण किया जाता है। 'ऋचो अक्षरे' इस मन्त्र से सब ऋचाओ को सब इन्द्रियो के अधिष्ठान स्वरूप परब्रह्मवाचकत्व ही निश्चित है। जो परमात्म तत्व को ऋक् प्रतिपाद्य नही जानता उसका अध्ययन व्यर्थ है यह भी इसी श्रुतिमे कहा है। इसलिये आत्मतत्व विषय भी मन्त्र से कहा जाता है।

इसी प्रकार 'तुग्रोह' इत्यादि मन्त्र मे भी एक कथा लेकर देवता की स्तुतिकी गयी है। इस मन्त्र मे तुग्रादि पदार्थोका प्रतिपादन है और उन्हे अनित्य होने के कारण वेद को पौरुषेय बना देवेगे यह शका नही करनी चाहिये क्योकि वेदान्त के देवताधिकरण मे समान नाम रूप वाली प्रतिकल्प मे उत्पत्ति स्वीकार करते हुए व्रीहि आदि पदार्थो के समान उन सब को प्रवाहानादिता मानी है ॥ ५९ ॥

चमसाधिकरण मे भी इस प्रकार कथा रूपक से ब्रह्म विद्या मे ही तात्पर्य सिद्ध किया है, वहाँ पर 'अजामेकाम्' इत्यादि मत्र मे आये हुए अजादि शब्दो के लिये यदि श्रौत अर्थ का ग्रहण किया जावे तो प्राप्त अर्थ का ज्ञापक होने के कारण अप्रामाण्य होने से वेदको व्यर्थता होगी। इस व्यर्थता के रोकनेके लिये 'जो उत्पन्न न हो' ऐसी प्रकृति को अजापद से लिया जावे तो अप्रामाण्य प्रयुक्त वैयर्थ्य न होगा किन्तु जैसे 'मण्डप को भोजन दो' इस वाक्य के दो अर्थ हो सकते है 'मण्ड (छाछ) पीने वाला एक, और दूसरा मण्डप के भीतर बैठे हुए समस्त मनुष्य' इन दोनों अर्थो मे 'मण्ड पीने वाले अर्थ की शीघ्र उपस्थिति नही होती परन्तु दूसरे अर्थ की ही उपस्थिति हो जाती है तात्पर्य यह है कि योगलभ्य अर्थ की अपेक्षा रूढि प्राप्त अर्थ शीघ्र ही हृदय

रोहितादिरूपाणामन्यत्रेत्यभिज्ञानात् पराभिमतप्रकृतिग्रहणे विशेषहेत्वभावाच्च तेजोबन्नात्मिकाभूतप्रकृतिरजेवाजेति अजारूपकेणात्र प्रतिपाद्यत इति सिद्धान्तितम् ॥६०॥

एवं रामायणस्य तन्मूलभूताना मंत्राणां च अवान्तरतात्पर्येण कथापरत्वं महातात्पर्येण विद्यापरत्वं च वक्तुं युक्तम् ।

ननु 'सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति' इति नामानि सर्वाणि यमाविशन्ति 'यो देवानां नामधा एक एव' इत्यादिश्रुतिभ्यः परमतात्पर्यविषयीभूतस्य रामस्य सर्वैर्देवतावाचकैः शब्दैः अभिधानं युक्तम् ।

अवान्तरतात्पर्ये तु व्यवस्थाया आवश्यकत्वान्नान्यदैवत्यो मंत्रो रामकथां प्रकाशयितुमीष्टे । अथ हठात्तत्परत्वं वर्ण्यते तर्हि एकस्य शब्दस्यानेकार्थता स्यात् सा चानिष्टेति चेत् ।

उच्यते तथा एकैव रेखास्थानभेदात् । एकदशशतसहस्रादिव्यपदेशान् लभते एवमेकमेव पदं वाक्यं वा पदान्तरवाक्यान्तरसमभिव्याहारादनेकमर्थं प्रत्याययति न च तावतानानार्थत्वं शब्दस्य संभवति, अपितु वृत्तिभेद एव । तथाहि एकमप्यमृतपदम् । "यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः । अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते ।" इत्यत्र कैवल्यवाचि "अपामसोमममृता अभूम" इत्यत्र देवभाववाचि "प्रयामनुप्रजायसे तदुते मर्त्यामृतम्" इत्यत्र संतानवाचिदृष्टम् । यथा वा "यज्ञेन यज्ञमयजन्तदेवा" इति वाक्यम् "अबध्नपुरुषं पशुम्" इत्यव्यवहितातीतमंत्रावयवेन

मे आ जाता है । अत एव द्वितीय अर्थ का ही ग्रहण होता है इस लिये यहा पर भी साख्य मत सिद्ध प्रकृति नही लेकर तेज जल पृथ्वी इन भूतो की जो प्रकृति है वही ली जाती है। इसी भूत प्रकृति का अजा रूपक से प्रतिपादन है यह सिद्धान्त कियो है ॥ ६० ॥

इसी प्रकार रामायण के अर्थ प्रतिपादक मन्त्रो को भी अवान्तर तात्पर्य से कथा प्रकाशक और महा तात्पर्य से विद्या प्रकाशक मानना चाहिये ।

यहा पर यह शंका होती है कि 'सर्वे वेदा' इत्यादि अनेकश्रुतियो से परम तात्पर्य विषयीभूत श्रीराम परब्रह्म का सब देवता वाचक शब्दों से भी युक्त है । परन्तु अवान्तर तात्पर्य मे भी ता व्यवस्था करना आवश्यक है। इस पक्ष मे अन्य दैवत्य मन्त्र राम कथा का किस प्रकार प्रकाशन करेगा । यदि हठ से रामकथा का भी प्रकाशक मन्त्र हो सकेगा यह कहोगे तो अनेकार्थत्व रूप दोष होगा । यह दोष अनिष्ट है ।

इस शंकका समाधान यह है कि "जैसे एक ही रेखा स्थानोके भेदसे एक, दश, शत एवं सहस्र इन व्यपदेशो को धारण करती है इसी प्रकार एक ही पद अथवा वाक्य दूसरे पद के वा वाक्यके साथ पड जानेसे भिन्न अर्थका भी बोध करता है। ऐसा होने पर उस पदको नानार्थक नही कहा जाता । किन्तु वृत्तिभेद माना जाता है। जैसे एक ही 'अमृत' पद 'यदासर्वे' इस श्रुति मे कैवल्य मोक्ष वाचक है । 'अपामसोम' इस श्रुतिमे देवभाव वाचक है और 'प्रजामनु प्रजायसे'

जीवस्य सूक्तदेवता लोचनया परमेश्वरस्य चोपस्थितेर्जीवो ब्रह्मणि प्रविलापनीय इत्यर्थे । पर्यवस्यति तदेव "तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् , मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च" इत्येताभ्यां वाक्याभ्यामन्वीयमानं बर्हिःस्थेन पशुसोमादिना इन्द्राग्न्यादयो देवता यष्टव्या गति ब्रवीति तदेवाग्निमंथनीयानामृचां परिधानीयायां विनियुज्यमानम्। "यज्ञेनैन तद्देवा यज्ञमयजन्त यदग्निमयजंत" इति ब्राह्मणे व्याख्यातमर्थं ब्रवीति ॥६१॥

तत्राध्यात्मिकोर्थो मुख्य उपेयत्वात् । अधिदैविकस्तु तत्प्रत्यासन्नत्वादमुख्यः । तृतीयस्तु मन्तताबमृतत्ववद् ध्यानयज्ञांगभूतकर्मयज्ञागयोरग्न्योर्यज्ञत्वमभिजघन्यं भवति । तथा इन्द्रादिशब्दोऽतिबलवता रामलिअंगेनोपहितः तमिदं इन्द्रं सन्तमिन्द्र इत्याचक्षते । 'इदि परमैश्वर्ये' इतिश्रुतिस्मृतिनिर्दिष्टंमुख्यवृत्त्या स्वार्थमभिधत्ते स एव देवता लिंगोपहितस्तत्प्रत्यासन्नं शचीपति ब्रवीति । लक्षणया स एव पुनः 'ऐन्द्रया गार्हपत्यमुपतिष्ठेत' इति श्रुत्या यार्हपत्योपस्थाने विनियुक्तायामृचिदृष्टौ गौण्या वृत्त्या गार्हपत्यमभिधत्ते ।

किञ्चोन्यत्ररूढोऽपि शब्दो लिगबलादन्यमर्थ ब्रवीति। यथा "सर्वाणि हवा इमानि भूतान्याकाशादेव समुत्पद्यन्त" इतिसर्वभूतोपादानत्वलिगात् भूताकाशपरोऽपि आकाशशब्दो जगत्कारणं ब्रवीति । तस्मादवान्तरतात्पर्यविषये कथाया बलवल्लि-

इस वेद मन्त्र मे सन्तान वाचक है। जैसे 'यज्ञेन यज्ञम्' इत्यादि वाक्यका 'अवध्नन्' इत्यादि मन्त्र के अवयवार्थ विचार करने पर जीव की और सूक्त देवता के विचार करने पर परमेश्वर की भी उपस्थिति होनेपर 'जीवका ब्रह्मके साथ तादात्म्य माननो चाहिये' इस अर्थ मे पर्यवसान होता है । 'तं यज्ञ वर्हिषि' मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च' इन दोनो वाक्यो के साथ अन्वित होने पर बर्हिस्थित पशु सोमसे इन्द्र और अग्नि आदि देवताओका यजन करना इन अर्थो का बोधन करता है और वही अग्नि मथनीय परिधानीय और ऋचाओ के साथ विनियुक्त होकर "यज्ञेनैव तद्देवा" इत्यादि ब्राह्मण में कहे हुए अर्थका प्रत्यायक होता है ॥ ६१ ॥

इनमे उपेय होने के कारण आध्यात्मिक अर्थ ही मुख्य है। आधिदैविक अर्थ तत्प्रत्यासन्न होने के कारण अमुख्य है। और तीसरा ध्यान यज्ञ के अग भूत कर्म यज्ञीय अग्नियों को यज्ञत्व कहने वाला अतिजघन्य है जैसे सतति मे 'अमृत' पद का प्रयोग हुआ है। इसी प्रकार इन्द्र शब्द भी लिग बलात् 'इदि परमैश्वर्ये' इस धातु से बनने के कारण मुख्य वृत्ति से श्रीराम रूप स्वार्थ का बोधक है । वही देवता लिगबल से शचीपति को कहता है और 'ऐन्द्रया गार्हपत्यमुपतिष्ठते' इस प्रत्यक्ष श्रुति से गार्हपत्याग्नि के उपस्थान मे विनियुक्त होने के कारण गौणवृत्ति से गार्हपत्य रूप अर्थका बोध करता है ।

और भी सुनीये--अन्य अर्थमे रूढ शब्द भी लिग बल से अन्य अर्थ का बोध करता है। जैसे 'सर्वाणि समुत्पद्यन्ते', इस वाक्य मे भूताकाश वाचक आकाश पदका अर्थ सर्वभूतोपादानत्व रूप लिंग से जगत्कारण होता है । अत अवान्तर तात्पर्य वशात् लिग बल से अन्य दैवत्य मन्त्र भी श्रीराम वाचक हो सकता है ॥ ६२ ॥

गोपहितोऽन्यदैवत्योऽपि मन्त्रो राममेव ब्रवीति । न चानेकार्थतादोषः परिहृतत्वात् ॥६२॥

इति भाष्यकृन्नीलकंठाचार्योक्तदिशा संहिताभागेऽपि उपास्यदेवमंत्रादिवर्णनं युज्यत एव । न चैककर्मणि विनियुक्ता मत्रा कथमन्यत्र चारितार्थ्यमुपगच्छेदिति वाच्यम् । एकस्मिन्नेव प्रतिपत्तृभेदेन प्रतिपत्तिभेददर्शनात् । यथा ह्येकं घटं कश्चिदसत्त्वेन कश्चित्सत्वेन कश्चिदनिर्वचनीयत्वेन तर्कबलात्प्रत्येति । यास्कोऽपि "बहुप्रजाः निर्ऋतिमाविवेश" इत्यस्य बहुप्रजाः कृच्छ्रमापद्यत इति परिव्राजकाः वर्षकर्मेतिनैरुक्ता इत्येकमेव निर्ऋतिपदं द्वेधा व्याचष्टे । तस्मादस्ति प्रतिपत्तिभेदादर्थभेदो मंत्राणामिति । एवमग्रेऽप्यभिदधौ ननु रामायणीया कथा कस्यांचिदपि शाखायां वृत्रवधादिवन्न दृश्यतेऽतोस्याः श्रुतिमूलत्वमेव नास्तीति चेन्न "नैष स्थाणोरपराधो यदेनमन्धो न पश्यति' इति न्यायेन त्वयि वेदार्थानभिज्ञे सति न रामायणमपराध्यति । ननु वेदभाष्येऽपि न रामायणकथासूचकत्वं कस्यचिदपि मन्त्रस्य पश्याम इति चेत् । नैष दोषः विनियोगानुसारिणः कर्मत्वव्युत्पादनार्थस्य भाष्यकारीयव्याख्यानस्य निगमनिरुक्तानुसारि तात्विकव्याख्यानादूषकत्वात् । किञ्चात्यल्पमिदमुक्तमायुष्मता मंत्रार्थवादैरपि कर्मणि रुच्युत्पादनार्थमनुपपन्नोऽप्यर्थः प्रजाया अमृतत्वमात्मवपोत्खननमित्यादिरुपन्यस्यते "प्रजामनुप्रजायसे तदु ते मर्त्यामृतम्" इति प्रजापतिरात्मनो वपा-

इस प्रकार भाष्यकार नीलकंठ आचार्य के कथनानुसार संहिताभागमे भी उपास्य देवके मन्त्रों का वर्णनयुक्त ही है । यह शंका निर्मूल है कि एक कर्म मे विनियुक्त मन्त्र अन्य प्रतिपादन कैसे कर सकता है । प्रतिपत्ता के भेदसे एक ही वस्तु मे प्रतिपत्तिमे भेद हो सकता है । जैसे एक घट ही को कोई असत् रूपसे कोई सत् रूप से और कोई अनिर्वचनीय रूप से तर्कबल से जानता है । यास्कोचार्यने भी 'बहु प्रजा निर्ऋतिमाविवेश' इस निर्ऋतिपदका दो प्रकार से व्याख्यान किया है । परिव्राजकमत से कष्ट अर्थ है और नैरुक्तो के मत से वर्ष कर्म अर्थ है । इससे प्रतिपत्ति (ज्ञान) भेद से मन्त्रों के अर्थ मे भी भेद होता है । इसी प्रकार नीलकण्ठाचार्य जी ने आगे भी कहा कि वृत्र वध की कथा जिस प्रकार वेदमे उपलब्ध होती है इस प्रकार रामायणीय कथा वेदकी किसी शाखा मे भी उपलब्ध नहीं होती । इसलिये इसे श्रुति मूलता कैसे मानी जावे ? इसशंका पर आप समाधान करते है—'यह कोई स्थाणु (स्तम्भ) का अपराध नहीं है जो इसे अन्धा नही देखता' इस न्यायानुसार तुम स्वयं वेदार्थके अनभिज्ञ हो तब रामायण की कथाका क्या अपराध है ? फिर भी यह शंकोहोकि वेदभाष्य मे भी रामायण कथा सूचकता किसी मन्त्र को नही बतायी गयीतो इसका समाधान सुनिये । भाष्यकारीय व्याख्यान विनियोगके अनुसार है । वह निगम और निरुक्तिके अनुसार किये गये वास्तविक व्याख्यानका दूषक नहीं हो सकता, और यह भी आप अल्प ही कहते है । सुनिये मन्त्र और अर्थ वाद मे भी कर्ममे रुचि उत्पन्न करने के लिये अनुपपन्न भी प्रजा को अमृतत्व, और आत्मवपाका निकालना आदि

मुदखिदत् इति च। एव च कर्मस्तावकार्थवादानुसारि भाष्यकारीयं व्याख्यानम-मुख्यम्। अत एवोक्तम्भारते"इतिहासपुराणाभ्यामित्यादि। तत्र उपबृहणं नाम—एकत्र मन्त्रे तृचे सूक्ते वा दृष्टस्यार्थस्य संक्षिप्तस्य नानास्थानेषु विप्रकीर्णानां तदनुगुणानाम-र्थानामुपसंहारेण पुष्टीकरणम्। तच्च येन कर्ममात्रं न श्रुतं तेन कर्तुमशक्यम्। अतस्तस्मादल्पश्रुताद्वेदस्य भयं युक्तम्। भगवानपि "यामिमां पुष्पिता वाचम्" इत्यादिनार्थवादानां मोहकत्वं ब्रुवन् तदनुसारिणो व्याख्यानस्यानादरणीयत्वं दर्शयति। मंत्रवर्णा अपि निहारेण प्रावृता जल्प्या च इति अल्पो जल्पो जल्पी तुच्छार्थप्रतिपादि-का वाक् तया प्रावृता इति अज्ञानेनार्थवादैश्च वंचिताः। नन्वेवं तिष्ठतु भाष्यकारीया मर्यादा द्रव्यदेवताधिप्रकाशनद्वारा विध्यर्थ स्मारयतो मन्त्रजातस्य कथं कथासूचकत्व-मुपपद्यत इति चेत्सुतरामिति ब्रूमः ॥६३॥

तथाहि सर्वोऽपि मन्त्र आध्यात्मिकीमाधिदैविकींवा कथामुपजीव्यैव कर्मांगं स्तुवन् विध्यर्थं स्मारयति। यथा "यत्कृष्णो रूपं कृत्वा प्राविशस्त्वं वनस्पतीन् ततस्त्वमेक-विंशतिधा संभरामि सुभृतम्" इति मन्त्रः कृष्णाख्यब्रह्मरूपस्त्वं रूपप्रपंचं निर्माय स्थाव-रजंगमात्मकं तं प्रविश्य तत्र तद्वस्तु तादात्म्यापत्त्या समिद्रूपोऽसि ततो हेतोः त्वां एक-विंशतिधा संभरामीति। तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्। तदनुप्रविश्य सच्चत्यच्चा-भवत्। इति ब्राह्मणोक्तकथाप्रदर्शनपूर्वकं समिधां कृष्णभावमापादयत् तासां संभरणं स्मार-यति। यथा वा "यस्य रूपं बिभ्रदिमामविन्दद् गुहां प्रविष्टा सरितस्य मध्ये तस्येदं

अर्थोका उपन्यास किया है। "प्रजामनु" इस श्रुतिसे सिद्ध हुआ कि कर्मकी स्तुति करने के लिये जो अर्थ वाद है उन का अनुसरण करने वाला भाष्यकारीय व्याख्यान अप्रधान है। इसीलिये महाभारत मे कहा भी है कि, इतिहास और पुराणो से वेदका उपबृहण करना चाहिये इत्यादि। एक जगह मन्त्र मे तृचमे वा सूक्त मे अतिसंक्षिप्तरूप से देखे गये अर्थ का अन्य अनेक स्थानीय तदनुसारीय अर्थ से पुष्ट करने को उपबृहण कहते है। अत जिसने समस्त कर्म नहीं जाने है वह उपबृंहण नही कर सकता। ऐसे अल्प श्रुत पुरुष से वेदको भय ठीक ही है। भगवान् गीता मे स्वयं 'यामिमा' इत्यादि वाक्य से अर्थ वादों को मोहक बताते हुए अर्थवादानु सारि व्याख्यान को अनादरणीय सूचित करते है इसी प्रकार मन्त्र वर्णभी 'नीहारेण' इस वाक्य से 'अर्थवादो से वंचित हुए' यह कहता है। यदि यह कहा जावे कि अस्तु भाष्य कारीय व्याख्यान जाने दो पर द्रव्य देवता को प्रकाशित करके विध्यर्थका स्मरण कराने वाले मन्त्रोको कथा सूचकता कैसे कही जा सकती है। तो अवश्य कही जा सकती है यही उत्तर है॥ ६३॥

सुनिये। सब मन्त्र आध्यात्मिक अथवा आधिदैविक कथा को लेकर ही कर्माङ्गकी स्तुति करते विध्यर्थका स्मरण करते है। जैसे 'यत्कृष्णोरूपम्' यह मन्त्र कृष्णरूप ब्रह्म आप स्थावर जंगम को स्वयं निर्माण करके और उसमे प्रविष्ट होकर उस वस्तु के साथ अभिन्न होने के कारण आप

विहतमाभरत इति मन्त्रो यस्य वराहस्य रूपं धारयन् परमेश्वरः भूमि समुद्रमध्ये निगूढस्थाने प्रविष्टामलभत् । तेनेदमुत्खातं मृत्खण्डम् आभरन्तो वयमिति" वराहावतारकथाप्रदर्शनपूर्वकं वराहविहितं स्तुवन् तत्संभरणं स्मारयति । एतेनैव प्रकारेण 'इषेत्वोर्जेत्वा' इत्यादयोऽपि मन्त्रा व्याख्येयाः । तत्र हि "इषेत्वोर्जेत्वा" इति 'शाखामाच्छिनत्ति' इति विनियोगात् हे शाखे ! भो स्वसृष्टशाखान्तः प्रवेशेन तत्तादात्म्यापन्नपरमेश्वर ! त्वां इषे अन्नाय 'अन्नंविराट्' इति श्रुतेः विराड्भावाय 'उर्जे रसाय' 'रसो वै सः' इति श्रुतेः परमानन्दप्राप्त्यैव छेदनेनावाप्नवानीति ॥६४॥

एतेन 'ओषधे त्रायस्वैनं स्वधिते मैनं हिन्सीः शृणोत, ग्रावाणः लोमभ्यः स्वाहा, चंक्रमणाय स्वाहा' इत्यादयोऽचेतनार्थे संबन्धोऽचेतनप्रवेशतत्तादात्म्यापत्तिपरतया व्याख्येयाः । एवं हि व्याख्याने क्रियमाणे 'पुरुष एवेदं सर्वम्' 'सर्व खल्विदं ब्रह्म' 'स र्वेवेदा यत्पदमामनन्ति' 'इमानि सर्वाणि यमाविशन्ति' 'ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्' इत्यादयः श्रुतयः सर्वस्यातममात्रत्वं सर्वेषा शब्दानां तत्प्रतिपादनपरत्वं च दर्शयन्त्यः समञ्जसा भवन्ति । तत्र यः संभरणादिकं कर्मैव प्रशंसति स कर्मठोऽल्पश्रुतः, योवराहसउपासको मध्यमः यः कृष्ण स तत्वज्ञ उत्तम, कर्मोपास्तिज्ञान काण्डानामुत्तरोत्तरस्य

समित् रूप हो इसलिये आप को इस प्रकार से सभरण करता हूं इस प्रकार 'तत्सान्द्वा' इत्यादि ब्रह्मणोक्त कथा प्रदर्शन पूर्वक समिधाको कृष्णत्व कहते हुए उनका सभरण कराता है । जैसे "यस्य रूप" यह मन्त्र वराहावतारकी कथा को दिखाता हुआ वराहविहित की स्तुति करता हुआ सभरण करता है । इसी प्रकार 'इषेत्वोर्जेत्वा' इत्यादि मन्त्रोका व्याख्यान करलेना चाहिये । 'इषेत्वा' इसका शाखाच्छेदन मे विनियोग है । इस लिये अर्थ यह होगा कि हे शाखे ! अर्थात् शाखान्तर्यामी परमेश्वर ! तुम्हे अन्न के लिये अर्थात् अन्न द्वारा परमानन्द प्राप्तिके लिये छेदन से आपको प्राप्त होता हूं । इसी प्रकार ऊर्जेत्वा' इसका भी अर्थ है ॥ ६४ ॥

इससे 'ओषधे ! त्रायस्वैन०' इत्यादि अचेतनों का वर्णन भी चेतन प्रवेश द्वार उनके साथ तादात्म्य होने से व्याख्यान सम्पन्न होता है । इस प्रकार व्याख्यान करने पर 'पुरुषएवेद' इत्यादि समस्त श्रुतिया समन्वित होती है और 'सर्वेषा शब्दाना परमात्मन्येव पर्यवसान' यह सिद्धान्त भी संगत हो जाता है । इसमे जो कर्मठ केवल कर्म की ही प्रशंसा करना मानता है वह अल्प श्रुत है । जो वराह आदिको उपासक है वह मध्यम है । और जो कृष्ण तत्व का ज्ञानवान है वह उत्तम है । क्योकि कर्म उपासना और ज्ञानकाण्डो मे उत्तरोत्तर श्रेष्ठता है । क्या ऐसा संभव है कि जिससे संभरण को महत्त्व प्राप्त हो वह वस्तु संभरण से अपकृष्ट हो इसको चतुर मनुष्य ही जान सकते है । इस अवस्था मे भाष्यकारीय व्याख्यान कि 'हे शाखे ! मै तुम्हे लौकिक अन्नरस की प्राप्ति के लिये छेदन करता हू' यह केवल प्रशसार्थक है कि यह शाखा छेदन ऐसा है जिससे ऐसे सुन्दर रसकी प्राप्ति होती है । यह अर्थ कर्मजडो को रुच्युत्पादक होने से भी प्रत्यक्ष श्रुतिमूलक हमारे कथित अर्थ का बाधक नही है । दूसरी बात यह भी है कि विनियोग मात्र से केवल कर्मपरत्व ही मत्र को मान लेना भी ठीक नहीं । उसका स्वार्थ तो अवश्य मानना

प्रशस्तत्वात्, नहि येन संभरणस्य महत्वं सोऽर्थः संभरणादमहानिति संभवतीति सहृदयग्राह्यमेतत्। तत्रैवं सति भाष्यकारीयं व्याख्यानं हे शाखे त्वां लौकिकयोरन्नरसयोः प्राप्त्यर्थं छिनद्मीति क्रियमाणच्छेदनप्रशंसार्थं मीदृशमिद शाखाच्छेदनं येनात्र रसौ लभ्येते इति सोऽयमर्थः कर्मजडानां रुचिरोऽपि पूर्वोक्तस्यार्थस्य प्रत्यक्षश्रुतिशिखरमूलस्य सहृदयग्राह्यस्य न बाधकः। किञ्च, विनियोगमात्रात्स्वार्थमुत्सृज्य केवलकर्मपरत्वमंत्रस्य नवक्तुं शक्यते। तथा हि 'इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्। समूढमस्यपांसुरे'' इत्ययं मंत्रः वाङ् नियमलोपप्रायश्चित्तार्थमाज्यहोमे वैष्णवोपासुयाजस्यपुरोनुवाक्यत्वेन च विनियुज्यते न चात्र तदनुकूलं दृश्यते येन विनियोगभेदेन व्याख्यानभेदोत्रकल्पयितुं शक्यते इदं त्रैलोक्यं पदत्रयेण विष्णुरतिक्रान्तवान्न तच्चित्रं यतस्तदस्य पांसुमतिपदे पांसुरूपेण सम्यगारूढमिति। न चैतेषां व्याख्यानम् इषे "त्वा" इति वद्विनियोगमात्रविदा पुष्करवराहवामनप्रादुर्भावान् ऐतिहासिकानजानता कर्तु शक्यमिति। ॥६५॥

तस्माज्जडानां कर्मसु यथाकथञ्चित् रुच्युत्पादनार्थो भष्यकारमते वेदे रामकथाया अदर्शनेऽपि निगमनिरुक्तोपबृंहणादिसिद्धायास्तस्या अपलापायोगात् अव्युत्पन्नाग्राह्यत्वेपि व्युत्पन्नग्राह्यत्वात्सिद्धं रामायणस्य श्रुतिमूलत्वमतस्तन्मूलमन्त्रेष्वपि रामा-

ही चाहिये। जैसे 'इद विष्णु' इस मन्त्र का विनियोग वाणी नियम लोप प्रायश्चित के लिये जप मे, सर्व प्रकार के प्रायश्चित्त के लिये आज्य होम मे और वैष्णव उपासुयाज के लिये पुरोनुवाक्य मे होता है। पर इसमे इन कर्मो के लिये कोई लिग नही देखा जाता कि जिससे विनियोग भेद से व्याख्यान भेद किया जावे। अर्थ यह है कि इस त्रैलोक्य को तीन पद से विष्णु ने अतिक्रमण किया है। यह इसके लिये चित्र नही क्योकि यह त्रैलोक्य इसके धूल वाले पद मे पासु (धूल) रूप मे निविष्ट है। इन सब का व्याख्यान 'ईषेत्वा' इत्यादि के समान केवल विनियोग जानने वाला पुष्कर वराह, वामन आदि के इतिहास को न जानने वाला कैसे कर सकता है॥६५॥

इस लिये जडो (एक ही ओर के पदार्थ को समझने वालो) को किसी प्रकार रुचि उत्पन्न करने के लिये ही ऐसा व्याख्यान किया है। यद्यपि वेद मे रामायण कथा भाष्यकार के मत से नही भी है तथापि निगम निरुक्त इतिहास और पुराणादिसे सिद्ध पायी जाती श्रीराम कथा का अपलाप नही कर सकते। वह अव्युत्पन्न जन से अज्ञात भी हो पर व्युत्पन्न विद्वान् तो वेद मे श्रीराम कथा का स्पष्टतया अवगम करते ही है इससे श्रीरामायण को श्रुति मूलता सिद्ध हुई। अतएव वैदिक मन्त्रो मेभी श्रीरामायण के समान ही कथा भाग प्रत्यक्ष वृत्ति से ही कहा गया है। और आत्म सम्बन्धी अर्थ परोक्ष वृत्ति से कहा गया है।

इस लम्बे प्रबन्ध से नीलकण्ठाचार्य ने 'वेद को भी श्रीराम कथा मन्त्र और तन्माहात्म्य आदि का प्रकाशकत्व अच्छी प्रकार से उत्पन्न होता है'' इसका उपपादन किया है। इसीलिये वह स्वय कुछ ऋचाओ के द्वारा श्रीरामायण की कथा का प्रदर्शन करते हुए उनका व्याख्यान करते है।

यण इव कथांशः प्रत्यक्षवृत्त्या लभ्यते । अध्यात्मांशः परोक्षवृत्त्येतीत्यादि महता प्रबन्धेनाम्नायस्यापि श्रीरामकथामंत्रमहात्म्यादिप्रकाशकत्वमुपपद्यते सुतरामित्युपपादयति । अत एव च सः काश्चिदृच श्रीरामायणकथाप्रकाशनपरतया व्याचख्यौ । एतदत्रोक्तं भवति । नाहमत्रावेशादेकाक्येव प्रयते । किन्त्वपरैरपि विद्वद्भिरस्मिन्विपयेऽसकृल्लेखनीव्यापारितैवेत्यतोत्रकेषाञ्चिद्विचिकित्सोदीयाच्चेत्त एव पर्यनुयोज्याः । तस्माद्वेदकल्पपादपसंश्रयाद्यद्यत्कामयतेतत्तदुपलभ्यत इति प्राचामुपचितः पन्थाः । एवञ्चात्र पूर्वं नीलकण्ठाचार्येणैवश्रीराममंत्रः प्रादर्शिः । पूर्वमन्यैश्चास्मत्पूर्वजैः साम्प्रदायिकैस्तथैव तस्यामेवर्चि राममन्त्रमाकलय्य समुद्घाट्य व्याख्यातस्तथामहमपि प्रदर्शयामि । अयं मन्त्र ऋक्संहितायामेव विद्यते ।

सचंत यदुषसः सूर्येण चित्रामस्य केतवो रामविन्दन् ।
आयन्नक्षत्रं ददृशे दिवोन पुनर्यतो नकिरद्वानुवेद ।(अ ८ अ ६ व.११)॥६६॥

उपासनायां मंत्रमंत्रार्थयोरनुसन्धानमेव प्राधान्यमावहतीत्येतदाविष्करोति सचन्त इति । केतवो ज्ञानवन्तोऽस्य रामस्य रां संपदं 'ऋचः सामानि यजूंषि' 'साहि श्रीरमृता सताम्' इति श्रुतांत्रयी तत्सारभूतप्रणवरूपां शब्दतोऽर्थतश्चाविन्दन् यस्त्वत्र शब्दमय्यां सम्पदि उकारोनास्तीति मन्यते तम्प्रत्येव वदेत् यत् यतः उषसः उषसम्

इस से यह फलित हुआ मै इस विषय मे अकेला ही किसी आवेश वशात् कोई प्रयत्न नही कर रहा हूं किन्तु अन्य विद्वानो ने भी इस विषय मे मुहुर्मुहु अपनी लेखनी उठाई है । अन इस विषय मे किसी को सदेह हो तो ये ही महानुभाव उनके प्रश्न के कर्म हो सकते है । इससे प्राचीनो से यह निश्चित हो चुका है कि वेद रूपी कल्पवृक्ष के आश्रय से जो जो इच्छा की जावे वह सब पूर्ण ही होती है अर्थात् वेद भगवान् से सब अर्थो की सिद्धि होती है। अत श्रीराम मन्त्र के विषय म नीलकण्ठाचार्य ने भी प्रकट ऋचा को दिखाया है । और हमारे श्रीपुरुषोत्तमाचार्यजी बोधायन तथा ज गु श्रीराघवानन्दाचार्य प्रभृति प्राचीन सम्प्रदायाचार्यो ने इसी ऋचा मे श्रीराममन्त्र का उपपादन किया है और उस का व्याख्यान भी किया है। इसी प्रकार मै भी ऋचा मे श्रीराम मन्त्र है इसे स्पष्टतया प्रदर्शित करता हू । जिस ऋचा मे श्री राममंत्र है वह ऋक् सहिता म मूल मे देखिये है ॥६६॥

उपासना मे मन्त्र और मंत्र के अर्थका अनुसन्धान करना प्रधान माना जाता है इसको प्रस्फुट करते है । 'सचंत' इस ऋक्से केतव अर्थात् ज्ञानवाले विद्वानो ने इस राम की रा—सम्पत्ति को ऋक् साम यजुर्वेद रूप एवं "वह सज्जनो की लक्ष्मी है अमृत है" इत्यादि वेद वचनो से कहा है। वेदत्रयी को सारभूत प्रणव रूप है इसको शब्द से और अर्थ से भी अविन्दन् जान लिया है जो कोई यह कहे कि इस शब्दमयी सम्पत्ति मे उकार नही है। उसके प्रति यह उत्तर है कि उषस—उषा प्रात काल के समान अल्प प्रकाशक जो विराड् है वह अकाररूप सूर्य के साथ अर्थात् पूर्ण प्रकाश उकार रूप हिरण्यगर्भ के साथ सचन्त अर्थात् ऐक्यको प्राप्त होकर स्थित है। अर्थात् कार्यत्व सामान्य से आकार मे ही उकारका समावेश है । ऐसा होने पर भी अम यही निष्पन्न

उषोवदल्पप्रकाशम् विराज अकाररूपं सूर्येण पूर्णप्रकाशेन हिरण्यगर्भेण उकाररूपेण सचन्त ऐक्यमनयन् कार्यत्वसामान्यादकारमध्ये एव उकारस्यान्तर्भावो बोध्यः । एवमपि अमित्येवापेक्षिकं न तु रामित्यत आह चित्रामिति चित्रभानुत्वाच्चित्रो अग्निः रेफः सोऽस्यास्तीति चित्रा सस्वरशब्दवती ततः सवर्णदीर्घे रामित्यर्थः चित्रशब्दान्स्थूलसूक्ष्म-कारणानि रामित्यनेन दर्शितानि अर्धमात्रातु प्रणववदत्राप्यन्तरस्तिया रां केतवोऽवि-न्दन् सा पुनर्ददृशे रामिति रेफाकारमकाराः पुनर्दृश्यन्तः इन्यर्थः । तत्र दृष्टान्तो-दिवो नेति । नेत्युपमार्थः दिवः स्वप्नः स्वल्पं प्राप्य यथा जागृद्दृष्टमेवार्थजातं-पुनस्तत्शदृशं दृश्यते तद्वत्समष्टित्रयवाचकाद् रांपदात् क्रमेण महशत्यष्टि स्थूलसूक्ष्मकार-णवाचि रामितिपदं पुनः पठेदित्यर्थः ॥६७॥

अस्य विशेषणं आयन्नक्षत्रमिति । आ इति स्वरूप य इव आचरतीति यत् आचारक्विन्तात् यत् धातोः कर्तरि क्विविति तस्मिस्तुक् । येन य इति स्वरूपं सिद्धम् । इदं वर्णद्वयं द्वितीयेन रामित्यनेन सह पठितं चेत् रामाय इति चतुर्थ्यन्तं नाम भवति । नक्षत्रपदेन मुख्यत्वाच्चन्द्रस्तेनास्य कारणम्-'हृदयान्मनो मनमश्चन्द्रमाः' इति श्रुतिप्रसिद्धं गृह्यते । यथा 'ता अन्नमसृजंत' इत्यन्नशब्देन पृथिवी तद्वत् तेना-गमप्रसिद्धो हृदयशब्दार्थो नमः शब्द उद्धृतो भवति एषां सर्वेषां संकलनेन—

हुआ 'राम' नही । इस पर कहते है कि चित्राम—चित्र अग्नि का वाचक है तद्बीज रेफ है वह रेफ सस्वर स्वर विशिष्ट होने पर और अम के साथ सवर्ण दीर्घ कर देनेपर 'राम' यह पद होता है । चित्र शब्द मे मत्वर्थीय अच् प्रत्यय और टाप् प्रत्यय है । अर्थ यह है कि रेफार्थ अग्नि रूप चिदाभास के साथ समष्टि स्थूल और सूक्ष्म कारणो का इस 'राम' पद से प्रदर्शन हुआ । अर्ध मात्रा जो ओंकार मे मानी जाती है वह इस 'राम्' पद मे भी विद्यमान है । सापुनर्ददृशे—अर्थात् रेफ अकार विशिष्ट अर्धमात्रात्मक मकार सिद्ध हुए । इसमे दृष्टान्त है दिवो नेति—न उपमार्थक है । जैसे स्वप्न मे जागृत अवस्था के देखे पदार्थ ही फिर से देखे जाते है इसी प्रकार समष्टित्रय – वाचक रां पद से क्रम से व्यष्टि स्थूल सूक्ष्म और कारण वाचि रा' इस पदको फिर पढना चाहिये ॥६७॥

इसका विशेषण आयन्, नक्षत्र, यह है । तात्पर्य यह है कि 'आ' विशिष्ट जो 'य' यह 'य' य शब्दसे आचर क्विप करके पुन क्विप और तुक करने पर निष्पन्न होता है । इसके आगे द्वितीय वार पठित राम जोडदेने पर चतुर्थ्यन्त 'रामाय' पद निकल आया । तदनतर नक्षत्र पदसे नक्षत्रो मे मुख्य चन्द्र लिया गया । इसका कारण मन और मन का कारण हृदय है । अत नक्षत्र पदसे हृदय पदार्थ लिया गया । जैसे अन्यत्र वेद म 'ता अन्नमसृजन्त' इस स्थल मे अन्नपद पृथिवी का बोधक है । इसी प्रकार यहा भी जान लेना चाहिये । फलित यह हुआ कि हृदय पदार्थ आगम शास्त्रो मे 'नम' माना गया है । इन सव वर्णोका सम्मेलन करदेने से 'रा रामाय नम' यह मन्त्र निष्पन्न होता है । इसका फल इस वाक्य से कहा जाता है । 'यतो नकिरद्धातु वेद''—अर्थात् यत्नशील पुरुष की स्थिर बुद्धि निश्चय रूप से इसको जान सकती है ।

'रां रामाय नमः इति उद्धृतो वेदितव्यः। एतत्फलमाह यतो नकिरद्धानुवेदेति। यत इति तस्य यतमानस्य यतेः नकिरति इतस्ततो विक्षिप्यत इति नकिः अविक्षिप्तं मन अद्धा साक्षात् नु निश्चित वेद जानाति एनं मंत्रं जपन्नेतदर्थं मनसा साक्षात् करोतीत्यर्थः 'मनसैवेदमाप्तव्य' मिति श्रुतेः।

अस्यामृचि स्पष्टमेव श्रीराममनोरभिधानमुपलभ्यते। नीलकंठाचार्येण यथेयं व्याख्याता तथैव मयात्र समदर्शि। तदत्रास्मदाचार्याः "कथं पूर्वीणां सूनृतानां प्रतिपाद्यो राम इत्यपेक्षायां मन्त्रोद्धारमाह सचन्तेति। यद् यस्मात् केतवो ज्ञानिनः। अस्य श्रीरामस्यचित्रांचित्रश्चित्रवर्णत्वाच्चित्रभानुरग्निः। तत्तत्त्वं रेफःस्वरयुक्तस्तत्सहिताम्। अग्निश्चिदाभासस्तन्मयं कारण ब्रह्म श्रीरामएवेतिध्येयम्। राम् रामिति श्रुतिमविन्दन् शब्दतोऽर्थतश्च ज्ञातवन्तः। चिदात्मकाऽग्नितत्त्वप्रतिपादकसस्वररेफयुक्ता रामिति श्रुति जगृहुरित्यर्थः। ननु कारणब्रह्मप्रतिपादिकामितिश्रुतिरत्रनास्तीति चेत्तत्राह उषसः। उषसमुषोवत्सूक्ष्मप्रकाशसमष्टिसूक्ष्मचिदचिद्विशिष्टकारणब्रह्मप्रतिपादकाकाररूपं वर्ण सूर्येण व्यक्तप्रकाशेन समष्टिस्थूलचित्कारणब्रह्मापादकेनोकाररूपेण वर्णेन सचन्त गमयामासुः। अकारे उकारमन्तर्भावयामासुरित्यर्थः। तत्राऽकारो वै सर्वावाक्" इति श्रुतेरिति ध्येयम्। एवञ्च रश्च अम् चेति रामिति पदं जातम्। अर्धमात्रातु पारमेश्वर्यशक्त्यात्मिकाऽन्तर्भूता ज्ञेया। शक्तिशक्तिमतोरभेदात्। एवञ्च रामिति श्रुतिः श्रुतिसारभूतप्रणवरूपेति न वाचोयुक्तिमपेक्षत इति बोध्यम्।

तात्पर्य यह है कि इस पूर्व प्रतिपादित मन्त्र का जप करते हुए इसके अर्थका अनुसन्धान करने से पदार्थ स्वरूप का मनसे साक्षात्कार होता है। क्योंकि 'मन से ही इस परम तत्व की प्राप्ति होती है' श्रुति है।

इस ऋचा मे स्पष्ट ही श्रीराम मन्त्र का स्वरूप वर्णित है। श्रीनील कंठाचार्य ने जिस प्रकार इस ऋचा का व्याख्यान किया है उसी प्रकार मैंने यहां प्रदर्शित किया है। प्रकृत विषय में भगवान् श्रीपुरुषोत्तमाचार्यजी बोधायन सम्पादित वेदरहस्यम् के रहस्यमार्तण्ड नामक भाष्य जो जगद्गुरु श्रीराघवानन्दाचार्यजी दुर्वादध्वान्तमार्तण्ड प्रणीत है उसका संक्षिप्तसार-"रां रामाय नमः" इस महा मन्त्र का उद्धार करते हुए कहते हैं-ज्ञानियों ने राम शब्द के 'राम्' इस अंश को अग्नि तत्त्व स्वरयुक्त रेफ पदको प्राप्त किया। क्योंकि उष कालके समान सूक्ष्म प्रकाश समष्टि सूक्ष्मचिदचिद्विग्रहकारण ब्रह्मवाचक अकार को व्यक्त प्रकाश समष्टिस्थूलचिदचिद्विशिष्टविग्रहकार्य ब्रह्म प्रतिपादक उकार को 'तत्राऽकारो वै सर्वावाक्" इस श्रुति के अनुसार अभिन्न जाना। अर्थात् राम पद मे रेफ चिन्मयत्व प्रतिपादक विशिष्टकारण ब्रह्म तथा विशिष्ट कार्य ब्रह्म के अभिन्न होने से अकार मे उकार का अभेदेन अन्तर्भाव कर 'अम्' पद सिद्ध होता है। इस प्रकार र्+अम्=राम् पद सिद्ध होता है इसमे पारमेश्वर्य प्रतिपादक अर्धमात्रा अन्तर्भूत समझना चाहिये। इस प्रकार राम् तथा प्रणव ओम् पद में ऐक्य सिद्ध होता है। तथा जैसे दिन मे देखी वस्तु ही के समान

अथ रामाय नम इत्यंशमुद्धरन्नाह दिवो न दिवसे दृष्टमिव जाग्रद्दशायां दृष्टं वस्तुजात स्वप्नदशायां पुनः सादृश्येन दृश्यते तथेत्यर्थः । पुनारामिति श्रुतिरनन्तर तत्सदृशं रामिति श्रुति व्यष्टिस्थूलसूक्ष्मचिदचिद्विशिष्टकारणब्रह्मप्रतिपादिकांरामिति श्रुतिमित्यर्थः । ददृशे ज्ञातवन्तः । एतेन समष्टिव्यष्टिस्थूलसूक्ष्मचिदचिद्विशिष्टकारणब्रह्मैक्यं प्रतिपादितमित्यवगन्तव्यम् । एवञ्च रामिति पदान्तरं पठितं रामिति पदंविशिनष्टि आयन्नक्षत्रमिति । आकारः । य इवाचरतीति यत् यकार । नक्षत्रमिति प्रधानत्वाच्चन्द्रमाः, तेन च तत्कारणं हृदयं गृह्यते "हृदयान्मनो मनमश्चन्द्रमाः" इति श्रुतेः । यथा "ता अन्नमसृजन्त" इत्यादावन्नशब्देन पृथिवी गृह्यते तद्वत् । आगमे च हृदयशब्दार्थो नमः शब्दः प्रसिद्धः । आकारे यकारे नमः शब्दश्च यत्र तादृशं रामितिपदं रामित्यनन्तर पठेदित्याशयः । एवं "रा रामाय नमः" इति मन्त्र उद्धृतो भवति । तत्र 'आय' इति शब्दयोजनेन रामायेति चतुर्थ्यन्तं पदमुपास्यत्वेन रामस्येप्सिततमत्वं बोधयति । तत्र प्रह्वीभावप्रतिपादकं नमः पदम् । एवं रा रा च तस्मै रां रामाय नमस्करोमीत्यर्थः पर्यवमन्नोबोध्यः । तत्प्राप्तिफलमाह यतो यतमानस्योक्तश्रुत्या श्रीराममाराधयतः । नकिः नकिरतीतस्ततो विक्षिप्यते मन इत्यर्थोद्बोध्यम् । तादृशस्य यतमानस्यस्थिर मनः । अद्धा साक्षात् नु निश्चयेन वेद जानाति । उक्तं मन्त्रं जपन् मन्त्रार्थं श्रीरामं मनसा साक्षात्करोति "मनसैवेदमाप्तव्यम्" इति श्रुतेरिति बोध्यम्" (भगवच्छ्रीपुरुषोत्तमाचार्यबोधायनसम्पादितवेदरहस्यस्य जगद्गुरु श्रीराघवानन्दाचार्यप्रणीतरहस्यमार्तण्डभाष्यम् १४६) इति । एवञ्च, ऋक्संहिताभागेऽप्यस्य श्रीराममंत्रास्योपलब्धिः साक्षादुपपन्नैवेत्युपनिषद्भागे संहिताभागे चोपासासिद्ध्यर्थमस्य श्रीराममन्त्रास्योच्चार्यमाणत्वमक्षतम् ॥६८॥

रूप से स्वप्न मे देखते है उसी प्रकार ज्ञानियों ने उक्त राम् पद के आगे समष्टि सूक्ष्मचिदचिद्विग्रह कारण ब्रह्म से अभिन्न व्यष्टि स्थूल चिदचिद्विग्रहविशिष्ट कार्य ब्रह्मप्रतिपादक 'राम्' पद पुन देखा। इस प्रकार 'रा राम्' पद सिद्ध हुआ वही मुमुक्षुओ को अभीष्ट है अत ईप्सिततमत्व बोधक 'आ' तथा 'य' पद देखा। इस प्रकार 'रामाय' यह चतुर्थ्यन्त पद सिद्ध हुआ, तथा अपनी भक्ति प्रतिपादित करने के लिये नक्षत्रों मे मुख्य चन्द्र के कारण हृदय शब्द से प्रसिद्ध मन्त्र—हृदय 'नम' शब्द देखा। इस प्रकार "रा रामाय नम" यह मन्त्र उधृत हुआ। इस मन्त्र की उपासना से उपासकों के चित्त की चञ्चलता दूर होती है। तथा वे निश्चय रूप से उस विशिष्ट ब्रह्म को साक्षात्कार करते है। इस प्रकार ऋग् वेद के मन्त्र से "रा रामाय नम" इस मन्त्र का उद्धार तथा फल का कथन किया गया है। इस प्रकार सहिता भाग मे भी श्रीराममन्त्र की उपलब्धि खूब स्पष्टतया है। अत उपनिषद भाग (ब्राह्मण भाग) मे और मन्त्र भाग (सहिता) मे उपासना की सिद्धि के लिये इस श्रीराम मन्त्र का उच्चारण, तथा वर्णन निर्विवाद सिद्ध हुआ ॥६८॥

नवमकल्पस्यार्थस्तु वेदपदेनोपनिषत्प्रभृतिब्राह्मणग्रन्थस्य मंत्रसंहितायाश्च ग्रहणम् तत्सम्बन्धित्वमस्य मनोः स्पष्टतरमेव । यतः कर्मोपासनाज्ञानकाण्डत्रयविभक्तेन वेदराशिना स्वार्थानुष्ठानवतः परमपुरुषार्थावाप्तिरेव चरमं फलमुपदिश्यते । प्राक्कर्मणामुपदेशस्तस्य तात्पर्यं त्विदमेव यत् वेदाधिकृतः कामुको विविधानि विहितानि कर्म्माण्यनुतिष्ठन् तत्फलमाद्यन्तवदुपलभ्य ततो विरज्योपासनापरपर्यायरूपायां भगवद्भक्तावधिकृतो भवति ततोऽप्यनन्यतासिद्ध्यर्थं प्रयतमानो ज्ञानपदाभिहितभगवत्प्रपत्तिगर्भां परभक्तिमुपादत्ते । एवञ्चोत्तरोत्तराभ्यर्हिततमसाधनेधिकारिणमधिष्ठापयन्वेदोऽखिलजननिकायमुपकरोति । तत्रोपासनपरभक्त्योः प्रधानं साधनमिष्टदेवमंत्रमत्रार्थानुसन्धानमेवेति मंत्रस्यापि सादरं वेदेन समर्थितत्वमित्यस्यैव वेदपदाभिधेयार्थसम्बन्धित्वरूपं नवमं वैदिकत्वमस्येति ।।६९।।

अथ दशमकल्पलक्षितं वेदोच्चरितानुपूर्वीकत्वरूपं वैदिकत्वं पर्यालोच्यते । वेदपदाभिधेययोः संहितापदाभिधित्सितमंत्रभागब्राह्मणभागयोर्दृष्टानुपूर्वीकत्वमेव तस्यार्थः । तत्र यद्यपि प्रातिस्विकतयोभयत्रापि श्रीराममंत्रस्य वर्णनमस्तीत्येतदस्माभिः पूर्वोदितकल्पविवेचनायां सम्यक् प्रत्यपादि । षष्ठकल्पे ब्राह्मणभागीयोपनिषत्सु तथाष्टमकल्पे

अब नवम कल्प का अर्थ व्यक्त किया जाता है। वेद पद से उपनिषद् आदि जो ब्राह्मण ग्रन्थ है उनका और मन्त्र संहिता का ग्रहण होता है। इन दो भागों का सम्बन्ध इस राममन्त्र से स्पष्ट ही है क्योंकि कर्म उपासना और ज्ञान यह जो काण्ड त्रयात्मक वेद है इससे परम पुरुषार्थ (मोक्ष) की प्राप्ति ही वेदार्थ के आचरण करनेवाले के लिये अन्तिम फल है यह कहा जाता है। वेद मे प्रथम कर्मो का उपदेश है इसका तात्पर्य यही है कि वेदाधिकारी भिन्न फलों की कामना वाला अनेक प्रकारके विहित कर्मो का अनुष्ठान करता हुआ वैदिक कर्मो के फल को सादि और सान्त (अर्थात् उत्पत्ति और नाश वाला) जानकर उनसे विरक्त होकर उपासना रूप भगवद्भक्ति मे अधिकृत होता है। इस भक्ति से भी उत्कृष्ट अनन्यता सिद्धि के लिये प्रयत्न शील विवेकी पुरुष ज्ञान पद से कही गयी जिसके अन्तर कुक्षि मे भगवत्प्रपत्ति आ जाता है ऐसी परभक्ति को ग्रहण करता है। इस प्रकार वेद भगवान उत्तरोत्तर श्रेष्ठ साधनों मे तत् तत् अधिकारी को प्रोत्साहित करते हुए प्राणीमात्र का उपकार करते है। इन तीनों साधनो मे उपासना और परभक्ति का प्रधान साधन (उत्पादक) इष्टदेव मन्त्र और उसके अर्थका अनुसन्धान ही है। इसलिए मन्त्रों का भी आदर पूर्वक वेद प्रतिपादन करता है। इसलिए वेदपदाभिधेय आदि नवम वैदिकत्व कल्प भी इस श्रीराममन्त्र मे भली प्रकार से संगत होता है।।६९।।

अब दशम कल्प से लक्षित वेदोच्चारित० आदि वैदिकत्व का पर्यालोचन किया जाता है। इस कल्प का अर्थ यह है कि वेद पद से कहे जाने वाले मंत्र संहिता और ब्राह्मण भाग मे देखी गयी आनुपूर्वी वाला जो हो वह वैदिक कहा जा सकता है। इन दोनो प्रकार मे एक एक करके मन्त्र और ब्राह्मण भाग इन दोनों मे श्रीराममन्त्र विद्यमान है, यह हमने सिद्ध कर दिया

मंत्रसंहितानाञ्चानुपूर्व्यवच्छिन्न एवायं मन्त्रराजः समदर्शि । न चोपनिषत्सु "तारकं दीर्घानलं विन्दुपूर्वकम्" "स्वप्रकाशः परज्योतिः स्वानुभूत्येकचिन्मयः । तदेव रामचन्द्रस्य मनोराद्यक्षरस्मृतः । अखण्डैकरसानन्दस्तारकब्रह्मवाचकः । रामायेति सुविज्ञेय सत्यानन्दचिदात्मकः ।। नमः पदं सुविज्ञेयं पूर्णानन्दैककारणम् । सदा नमन्ति हृदये सर्वे देवा मुमुक्षव इतीत्यादौ" एवं सचंत यदुषसः सूर्येण चित्रामस्येत्यादिमंत्रभागे च शृंगग्राहिकयास्य मनोरानुपूर्वी समालक्ष्यते । किन्तुक्लिष्टकल्पनयातथानुपूर्वी साम्प्रदायिकैरुपपद्यते नतु शुद्धेति वाच्यम् । मन्त्राणामीप्सितफलसाधकत्वेनातिगोपनीयत्वात्तथैव वेदादिसच्छास्त्रप्रवर्तकाचार्याणां समयस्तन्निरूपणे व्यवहृतो भवति । अत एव 'रामो ऽन्तो वह्निपूर्वो' इत्यादिपौराणिकवचसा सङ्गतिः । दृश्यते पंचरात्रतंत्रशास्त्रेष्वेव प्रकारेणैव गोपनीयार्थानामभिधानम् । एतेन साधारणजनवेद्यत्वाभाव एव साधितो भवति । अयं भावः यथा वेदार्थो दुरधिगमस्तथा मंत्रशास्त्रमपि दुर्ज्ञेयम् । अप्रसादितगुरुचरणास्त्वेनं मंत्रशास्त्रं लेशतोऽपि न ज्ञातुं शक्नुवन्ति ज्ञातुं जातु प्रयतमाना अप्यनधिगतसाम्प्रदायिकाचारतया पदे संशयाना विपरीतमेवार्थमुपाददते । तस्मात्सम्प्रदायाचारचणाचार्यचरणापरिचर्यापरायणेन मंत्रत्वजिज्ञासुना सविधि मन्त्ररहस्यमभ्यसनीयम् । तथा सत्येव श्रद्धाधनेन विनेयेन मंत्रमन्त्रार्थस्तदनुष्ठानप्रकारश्च सम्यक् शक्यते ऽवगन्तुम् ।।७०।।

है । छटे कल्प मे ब्राह्मण भाग उपनिषदो मे और अष्ठम कल्प मे मन्त्र सहिता मे हमने ठीक आनुपूर्वी विशिष्ट ही यह मन्त्रराज दिखाया है । यहा यह शका की जा सकती है कि उपनिषदों मे "तारकं दीर्घानल" इत्यादि वाक्यो मे और 'सचंतयदुषस' इत्यादि मन्त्रभाग मे मन्त्र दिखाया गया पर वह ठीक शृङ्गग्राहिका रूप से सीधी आनुपूर्वीयुक्त नही बताया गया । क्लिष्ट करके किसी प्रकार साम्प्रदायिक लोगो ने मन्त्र सिद्ध किया है । शुद्ध आनुपूर्वीयुक्त नही बताया गया । इस शका का समाधान किया गया है । मन्त्रो को हमारे सिद्धान्त मे इष्ट फल के देने वाले कहा गया है । अत एव वह अत्यन्त गुप्त रखे जाते है। जिससे सर्वसाधारण इस विषय को न समझ सके । इसी आशय को लेकर 'रामोऽन्तो वह्निपूर्व' इत्यादि पुराण वचनो की सगति होती है । पंचरात्र शास्त्र मे एव अन्य तंत्र शास्त्रमे इसी प्रकार गोपनीय अर्थो के कथन किये जाने की प्रथा है कि जिस प्रकार वेदार्थ दुरभिगम है इसी प्रकार मन्त्र शास्त्र भी अति दुर्ज्ञेय है । जिन्होंने गुरु चरणो की सेवा नही की ऐसे मनुष्य तो इन मन्त्र शास्त्र को लेश मात्र भी नही जान सकते । कदाचित् जानने के लिये प्रयत्न भी करते है परन्तु साम्प्रदायिक आचार के न जानने के कारण पद पद मे संशय को प्राप्त होकर उलटे अर्थ को ही ग्रहण कर बैठते है । इसलिये सम्प्रदायाचार मे प्रवीण श्रीआचार्य (अपने गुरु) चरणों की सेवा परायण होकर मन्त्रशास्त्र जिज्ञासु जन को यथा विधि मन्त्रशास्त्र का अभ्यास करना चाहिये । ऐसा करने से ही श्रद्धाधन शिष्य मन्त्र और मन्त्र के अर्थ को तथा उसके अनुष्ठान को भली प्रकार से जान सकता है ।।७०।।

तथाप्यानुपूर्वीविशिष्टमेवेमं मंत्रराजमस्मिन्कल्पकलितमाम्नाये प्रदर्शयामः। मंत्रब्राह्मणयोराम्नायत्वमित्यनुपदं निरणायि। तत्राथर्ववेदे महानारायणोपनिषदि महायंत्रस्वरूपविवेचनावसरे शिष्येण तद्यंत्रस्वरूपे पृष्टे देशिकस्योत्तरम्। "आदौ षट्कोणचक्रम्" इत्यारभ्य तद्दलकपोलेषु रामकृष्णषडक्षरमन्त्रौ" "रां रामाय नमः" "क्लीं कृष्णाय नमः" षट्कोणेषु सुदर्शनषडक्षरमंत्र इत्यादिकं स्वरवेणैवोच्चारितम्। अत्र च हस्तामलकवद्दरीदृश्यमानो विशुद्धानुपूर्वीविशिष्ट एव श्रीराममंत्रोनिभाल्यत इति विदांकुर्वन्तु पक्षपातविरहिणो विद्वांसः ॥७१॥

एवमस्मत्साम्प्रदायिकमहाचार्यैः पंचसंस्कारपरिगणनावसरे चतुर्थे मंत्रसंस्कारे श्रीरामपद्धतावपि विशिष्टतयाऽभ्यधायि। तत्राप्याथर्वणिकश्रुतौ श्रीरामतापनीयोपनिषदि "ॐ रां रामाय नमः" इत्ययं महामंत्रां स्वकंठरवैणैवोक्तः। एवं सर्वप्रकारणास्य मंत्रराजस्य वैदिकत्वं सिद्धम्। मन्त्रसंहिताभागेऽपि श्रीराममन्त्रस्योपलब्धिः स्पष्टैव। एवं कृतेऽपि विस्तृतविवेचने केषांचिद्धृदयतः शंकापङ्को नापैति चेत्त एव नास्तिकशिरोमणयः साम्प्रदायिकैरभाष्याः। अनेन मंत्र संहिताया एव वेदत्वमपरस्य ब्राह्मणभागस्य चर्षिप्रणीतत्वमिति मन्वानैः सुधारकदलमलंकुर्वद्भिस्सामाजिकैरपि संतोष्टव्यम्।

तो भी इस दशम कल्प मे 'ठीक आनुपूर्वी विशिष्ट ही श्रीराममन्त्र का वेद मे ठीक उल्लेख है' यह प्रदर्शित करते है। मन्त्र (संहिता) और ब्राह्मण यह दोनो वेद है, यह अभी निर्णय किया गया है। इसमे से अथर्व वेद मे महानारायणोपनिषद मे महायन्त्र के स्वरूप विवेचनके समय शिष्य के इस यन्त्र के स्वरूप को पूछने पर गुरु का उत्तर इस प्रकार है। प्रथम षट्कोण चाहिये इत्यादि विवेचन का आरभ करके आगे लिखे है कि इस मन्त्रराज के भीतर कमलदल वनाकर उसके कपोल भाग मे श्रीराम षडक्षर औ श्रीकृष्ण षडक्षर मन्त्रो को लिखना चाहिये। आनुपूर्वीयुक्त स्वयं वेद भगवान् निर्देश करते है कि 'रा रामाय नम' "क्ली कृष्णाय नम" इस प्रकार इन दोनो मन्त्रो को लिखे। और छ कोनो पर सुदर्शन षडक्षर मन्त्र लिखना चाहिये। इत्यादि स्वयं वेद मे पठित है। इस स्थल मे हाथ मे आँवले जैसे देखे जाते है इसी प्रकार परम विशुद्ध आनुपूर्वीयुक्त ही श्रीराममन्त्र देखा जाता है इस बात को पक्षपात रहित विद्वान स्वयं जान सकते है ॥७१॥

इसी प्रकार हमारे सम्प्रदायके महान आचार्योने पंच सस्कार के परिगणन अवसर मे चतुर्थ मन्त्र संस्कार मे श्रीरामपद्धति नामक ग्रन्थ मे विशेष रूप मे आथर्वणिक श्रुति का उल्लेख किया है। श्रीरामतापनी श्रुति से 'ॐ रा रामाय नम' इस प्रकार यह श्रीराममन्त्र निजकंठरवसे ही कहा है। अब वह खिल इस समय उपलब्ध हो या न हो। क्योकि अनेक श्रुतिया ऐसी है जिनको सम्प्रदायाचार्यो ने अपने ग्रन्थो मे लिखा है परन्तु वेदो मे उनका श्रवण नहीं होता तो भी उन श्रुतियों को सब कोई मानते है। इस रीति से इस श्रीराममन्त्र की उपलब्धि स्पष्ट ही है। हमारे इस प्रकार विस्तृत विवेचन करने पर भी किसी के हृदय से शकारूप कीचड न जाता हो तो वह नास्तिक शिरोमणि है और साम्प्रदायिक जनो के भाषण करने योग्य नही है। इस वैदिकत्व के

तदभिमते मंत्रभागरूपे वेदेऽपि श्रीराममनोर्दर्शितत्वात् । ननु 'सचन्ते'त्यादि मंत्रोऽन्यर्थः सामाजिकैः प्रकारान्तरेणैव व्याख्यायते । तदीयव्याख्यायां च न राममंत्रो व्युत्पाद्यत इति कुतस्तत्सिद्धिरितिचेन्मैवं वोचः । नह्येवं राजाज्ञास्ति यत्सामाजिकादिभिर्योऽर्थोवैदिकवाक्यानामवधृतः स एव सर्वैः स्वीकार्य इति । तथा तैर्निरुक्तकल्पशिक्षादिसाहाय्येनार्थोऽङ्गीकृतस्तथास्माभिरपि तत्साहाय्येनैव विशुद्धार्थोऽङ्गीकृतः अतो न कश्चिद्विशेषोऽन्यत्राभिनिवेशादिति सुधियो विभावयन्तु ॥७२॥

अथैवं श्रीराममंत्रस्य वैदिकत्वे सिद्धे तत्प्रसंगादत्र केषामधिकार इत्यपि निर्णीयते । तथाहि "तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्" इत्याद्यनेकश्रुतिप्रमाणेन भगवत्तत्त्वावगमरूपब्रह्मविद्याया इष्टमंत्रजपादिष्वपि पर्यवसन्नत्त्वात्तोपाञ्चगुरूपदेशपूर्वकत्वविधानाच्छास्त्रोक्तलक्षणेनाचार्येण "तस्मै स विद्वानुपसन्नाय सम्यक् प्रशान्तचित्ताय शमान्विताय" इत्यादिलक्षणलक्षिताय शिष्याय यथाधिकार मंत्रो देयः एतदेवान्यत्र निरूपितम् । विष्णुयामलतन्त्रे—

समर्थन से जो लोग मन्त्र संहिता को ही वेद मानते हैं और ब्राह्मण भाग को ऋषियों का बनाया हुआ मानते हैं ऐसे सुधारकम्मन्य सामाजिक भाइयों को भी संतुष्ट हो जाना चाहिये । क्योंकि उनका अभिमत वेद जो मन्त्रभाग है 'इस भाग में भी श्रीराममन्त्र है' यह प्रस्फुट किया गया है॥

कोई यह शंका न कर बैठे कि 'सचन्त' इत्यादि मन्त्र का सामाजिक लोग दूसरे प्रकार से ही अर्थ करते हैं । सामाजिकों के व्याख्यान से इससे राममन्त्र की सिद्धि नहीं होती? अतः इसका समाधान किया जाता है । समाजिक भाई को ऐसा नहीं कहना चाहिये ।

ऐसी कोई राजाज्ञा नहीं है कि सामाजिक आदि ने वैदिक वाक्यों का जो अर्थ निश्चित किया है वही सब विद्वानों को भी स्वीकार कर लेना चाहिये । जैसे उन्होंने निरुक्त कल्पशिक्षादि की सहायता लेकर अर्थ को निश्चय किया है वैसे हमने भी निरुक्तादि के साहाय्य से ही इस अर्थ को स्वीकार किया है । इसलिये केवल अभिनिवेश के सिवाय अन्य कोई विशेष नहीं है । इसका विद्वान महानुभाव स्वयं विचार करेंगे । इस प्रकार यह दश कल्प से विभक्त करके 'श्रीराम मन्त्र को वैदिकत्व है' यह सिद्ध किया गया ॥७२॥

अब इस प्रकार श्रीराममन्त्र की वैदिकता सिद्ध हो जानेपर इस प्रसंग से इस मन्त्र के ग्रहण में किसका कैसा अधिकार है यह भी निर्णय किया जाता है । इसका विचार इस प्रकार है । 'तद्विज्ञानार्थ" इत्यादि अनेक श्रुतियों के प्रमाण से भगवत्स्वरूप का पूर्ण परिज्ञान करना एतद्रूप जो ब्रह्मविद्या है इस विद्या के अन्तर्भूत इष्ट मन्त्र का जप आदि, भगवत्प्रपत्तिजनक समस्त कर्मों का समावेश हो जाता है । और मन्त्र का ग्रहण यथाविधि गुरु से ही करना चाहिये । गुरु को भी शास्त्र में जैसे लक्षण वर्णित हैं वैसा ही होना आवश्यक है । एवं शिष्य के लक्षण 'तस्मै स विद्वान' इस श्रुति में कथित है, उसे उपसन्न, अच्छी तरह प्रशान्त चित्त, और पूर्ण मुमुक्षु होना चाहिये । इन लक्षणों से युक्त शिष्य को उसके अधिकार के अनुसार ही मन्त्रोपदेश करना चाहिय । यही बात अन्य ग्रन्थों में निरूपण की गयी है । विष्णुयामलतन्त्र में लिखा है कि—

दिव्यं ज्ञानं यतो दद्यात् कुर्यात्पापस्य संक्षयम् ।
तस्माद्दीक्षेति सा प्रोक्ता देशिकैस्तंत्रकोविदैः ॥१॥
अतो गुरु प्रणम्यैव सर्वस्व विनिवेद्य च ।
गृह्णीयाद्वैष्णवं मंत्रं दीक्षापूर्वं विधानतः ॥२॥
दीक्षामूलं जपं सर्वं दीक्षामूलं परंतपः ।
दीक्षामाश्रित्य निवसेद्यत्रकुत्राश्रमे नरः ॥३॥
अदीक्षिता ये कुर्वन्ति जपपूजादिकाः क्रियाः ।
न भवन्ति प्रियं तेषां शिलायामुप्तबीजवत् ॥४।७३॥

एवं वैष्णवदीक्षायाश्चतुर्भिर्वर्णैरवश्यगृहीतव्यतया स्वाधिकारानुगुण एव वैदिकस्तदितरो वा मंत्रो ग्राह्यः । अत एव विष्णुयामले ब्राह्मणान् क्षत्रियान् वैश्यान् सच्छूद्रान् सत्स्त्रियोऽपि वा । विष्णुभक्तिरतान् मावृन् दीक्षयेद्विधिना गुरुरिति स्पष्टमभिहितम् । अत्रत्रैवर्णिकानन्तरं सच्छूद्रानिति कथनेन असच्छूद्राणां (अस्पृश्यशूद्राणां) दीक्षानिषेधोऽर्थादापद्यते । हारीतशास्त्रे-ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियः शूद्रास्तथेतराः । मंत्राधिकारिणः सर्वे ह्यनन्यशरणा यदि । अत्र शूद्रपदं स्पृश्यशूद्रपरमितरपदञ्च

दीक्षा इस शब्द मे प्रथमाक्षर 'दी' है इसका अर्थ है दिव्यज्ञानदायिनी द्वितीयाक्षर 'क्ष' का अर्थ है पापोको क्षय करने वाली अर्थात् दिव्य ज्ञान को देकर पापो को क्षय करनेवाली है अत एव सर्व आचार्यो ने दीक्षा नाम से इसकी प्रसिद्धि की है ॥१॥ इसलिये गुरु को प्रणाम करके और सर्वस्व निवेदन करके विधि पूर्वक दीक्षा लेते हुए वैष्णव मन्त्र को ग्रहण करना चाहिये ॥२॥ जप और तप सब दीक्षामूल है इसलिये धर्माधिकारी मनुष्य को दीक्षा का आश्रय लेकर ही जिस किसी आश्रम मे रहना चाहिये ॥३॥ जो अदीक्षित है और वह जप पूजादि कर्म करते है उसका वह कर्म सिद्धिप्रद नही होता जेसे शिलातल मे बीज बोया हुआ जमता नही वैसे ही जान लेना चाहिये ॥४॥७३॥

इस प्रकार वैष्णव दीक्षा चारों वर्णो को अवश्य ग्रहण करनी चाहिये इस दीक्षा मे अपने वर्ण के अनुसार ही द्विजाति को वैदिक चतुर्थ वर्ण को तान्त्रिक मन्त्र लेना चाहिये। इसलिए विष्णुयामलतन्त्र मे लिखा है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, सच्छूद्र (जिन शूद्रो का जल ग्रहण किया जा सकता है) और सत्स्त्रिया यदि विष्णुभक्ति परायण हो तो उनको गुरु सविधि दीक्षा दवे। इस उपर्युक्त वचन मे प्रथम तीन वर्णो को दीक्षा का विधान किया। पश्चात् सत् शूद्र को भी तद्वर्णोचित दीक्षा देना लिखा। सच्छूद्र पद से कथन है अत असत् शूद्रो (अस्पृश्य, असंभाष्य शूद्रो) का निषेध सिद्ध होता है। इस प्रकार हारीत धर्मशास्त्रका भी प्रमाण संग्रह किया जाता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, स्त्री, शूद्र और अन्य अनुलोम प्रतिलोम वर्णा का भी मन्त्र मे अधिकार है वे यदि अनन्य शरण हों तो। इस वाक्य मे शूद्र पद स्पृश्य शूद्रका बोधक है और इतर पद अस्पृश्य अनुलोम प्रतिलोम वर्णो का बोधक जानना चाहिये। यह अर्थ अनेक साम्प्रदायिक प्रमाणो के अनुरोध से सिद्ध होता है। उपर्युक्त इन समस्त अधिकारियों मे भी ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्यको वैदिक मन्त्र

स्पृश्यानुलोमप्रतिलोमवर्णपरमनेकसाम्प्रदायिकप्रमाणानुरोधादिति निज्ञेयम् । तत्रापि त्रैवर्णिकाना सविधि वैदिकस्यैव श्रीराममनोरुपदेशस्तदितरजातीयाना च तांत्रिक स्यैवेति विवेकः । तथाचोक्तं तंत्र शास्त्रे–वैदिकास्तांत्रिकाश्चैव द्वये मुख्या द्विजन्मनाम् । शूद्रानुलोमजातीनां मंत्रास्युस्तांत्रिकाः परम् । अत एव च पञ्चरात्रेशास्त्रे 'नस्वरः प्रणवोंगानि नाप्यन्यविधयस्तथा । स्त्रीणाञ्च शूद्रजातीनां मंत्रमात्रोतिरिष्यते' इत्यादिवचनान्युपपद्यन्ते ॥७४॥

अयमभिप्रायः । द्विजस्त्रीसच्छूद्रानुलोमादिजातीनामुपदेश्यत्वेऽपि तेषामधिकारानुगुण एव मंत्रो देयः द्विजातेस्तु प्रणवस्थानीयबीजविशिष्ट एवोपदेश्यः । तद्भिन्नस्त्रीसच्छूद्रानुलोमजातिभ्य' प्रणवस्थानीयबीजवर्णविरहित एव प्रदेयः । न च बीजवर्णरहितस्य क्षतषडक्षरतया न फलविशेषाधायकत्वमिति वाच्यम् । बीजवर्णरहितत्वेऽपि तदनुगुणवर्णान्तर्योजनेन फलविशेषाधायिनी सुरक्षितैवषडक्षरतेति गृहाण ॥७५॥

यथोक्तमष्टाक्षरमंत्रविद्भिराचार्यैः "तत्रोत्तरायणास्यादिविन्दुमान् विष्णुरन्ततः । बीजमष्टाक्षरस्य स्यात् तेनाष्टाक्षरता भवेत् ।" एवं प्रकृतमन्त्रेऽपि बीजवर्णस्थानाभिषिक्तेन षट्त्वसंख्यापूरकेण बीजार्थप्रतिपादकेन घटितस्यतत्तदुचितार्थप्रतिपादकत्वम-

को और इन तीन वर्गो से अतिरिक्त समस्त वर्णो को तान्त्रिक मन्त्र का ही उपदेश देना चाहिये यह विवेक है । इसी प्रकार तन्त्र शास्त्रो मे व्यवस्था देखी जाती है । द्विजवर्ग को वैदिक और तान्त्रिक दोनो प्रकार के मन्त्रो का अधिकार है और शूद्र तथा अनुलोमादि जाति वालो को तान्त्रिक मन्त्रो का अधिकार है । इस लिये पच रात्र शास्त्र के इस वचनकी भी उपपत्ति होती है कि स्त्री, शूद्र, आदि वर्णो को स्वर, प्रणव अग और अन्य विधिको छोडकर केवल मन्त्र प्रदान करना चाहिये ॥७४॥

अभिप्राय यह है कि द्विजवर्ण स्त्री शूद्र और अनुलोमादि वर्ग इन सब को मन्त्रोपदेश देना चाहिये, पर उनके अधिकार के अनुसार ही । द्विजवर्ण को प्रणव स्थानीय बीज वर्ण विशिष्ट ही उपदेश देना आवश्यक है । द्विजेतर स्त्री, शूद्र, अनुलोम, आदि जातियो को प्रणव स्थानीय बीज वर्ण रहितही उपदेश देना चाहिये । बीजवर्ण रहित श्रीराममन्त्र को पूर्ण षडक्षर न होने के कारण विशिष्ट फलदायकता न होगी यह नही मानना चाहिये । बीज रहित होने पर भी बीज वर्ण की योग्यता वाले दूसरेवर्ण को उसकी जगह स्थापित कर देने से विशिष्ट फल का देने वाली षडक्षरता पूर्ण सुरक्षित रहती है यही उत्तर समझ लेना चाहिये ॥७५॥

इसी बात को अष्टाक्षर मन्त्र के ज्ञाता आचार्यो ने कहा है। "तत्रोत्तरायण" इत्यादि वाक्य से। इसी प्रकार प्रकृत मन्त्र मे भी बीज वर्ण के स्थान पर स्थापित छ की सख्या को पूर्ण करने वाले एव बीज के ही अर्थ को प्रतिपादन करनेवाले वर्णसे युक्त यह मन्त्र भी योग्य फल का देने वाला निर्विवाद सिद्ध हुआ । वह कौन वर्ण है जो बीज के अर्थ को कहता हुआ उसके स्थान पर स्थापित किया जाता है यह जिज्ञासा यदि किसी को हो तो साम्प्रदायिक रहस्य को

व्याहतमिति कतमः सवर्णो बीजार्थमभिधत्ते तत्स्थानाश्रियञ्च लभत इति जिज्ञासा चेद्र-हस्यविदो देशिकवर्या एव समाश्रयणीया इति सर्वमवदातम् ॥७६॥

ननु "न शूद्रा भगवद्भक्ता विप्रा भागवताः स्मृताः । सर्ववर्णेषु ते शूद्रा ये ह्यभक्ता जनार्दने" इति महाभारतवचनाद् धनुर्बाणाद्यायुधचिह्नितानां शूद्रत्वमेव नास्ति चाण्डालादीनामत्यन्तनिकृष्टाना दर्शनस्पर्शनसम्भाषणानर्हाणान्तूपदेश्यत्वमेव नास्तीतिकुतो मन्त्रभेद इति चेन्न, श्रुतिस्मृतिसदाचारविरोधात् । तथाहि उत्तरमीमांसाया तद्भाष्ये च शूद्रस्याप्यर्थित्वं सामर्थ्यञ्च विद्यत इतिब्रह्मविद्यायामधिकारः स्यादिति पूर्वपक्षयित्वा, असामर्थ्याच्छूद्रस्य ब्रह्मविद्यायां नाधिकार इति तन्निराचक्रुः सूत्रभाष्यकृतः । नोपनयनवेदानुवचनयज्ञादिष्वनधिकृतस्य ब्रह्मोपासनसामर्थ्यं सम्भवति । अध्ययनविधिसिद्धस्वाध्यायाध्ययनाधिगतज्ञानस्यैव ब्रह्मोपासनोपायत्वादसामर्थ्यमेवेति । तथा च श्रुतिस्मृतयः । "यद्युहवा एतच्छ्मशानयच्छूद्रस्तस्माच्छूद्रसमीपे नाध्येतव्यम्" तस्माच्छूद्रो बहुपशुरयज्ञीयः" "न शूद्र पातकं किञ्चित् न च संस्कारमर्हति" । एवमग्न्याधानप्रकरणेऽपि "वसन्ते ब्राह्मणोऽग्नीनादधीत ग्रीष्मे राजन्यः शरदि वैश्यः" इति त्रैवर्णिकानामेवाग्न्याधानं श्रूयते न तु शूद्रस्यापि ।

विदुरधर्मव्याधादीनान्तु पूर्वजन्माभ्यस्तसमस्तविद्यत्वादिहजन्मनि प्राक्तनसंस्कार-

यथार्थरूप से जानने वाले आचार्यो की ही शरण लेनी चाहिये । इस प्रकार यह सब शंकाओं से रहित है ॥७६॥

अब यहा यह आशङ्का होती है कि महाभारत म लिखा है कि "भगवान् के भक्त शूद्र नही होते किन्तु वह भागवत विप्र ही कहे जाते है। सब वर्णो म वही शूद्र है जो भगवान् के भक्त नही है।" इत्यादि बचनो से धनुर्बाणादि आयुधों से बाहु मूल मे चिह्नित ऐसे श्रीवैष्णव शूद्र ही नही कहे जाते और चाण्डाल आदि जो अत्यन्त निकृष्ट वर्ण है जो देखने के छूने के और भाषण करने के अयोग्य है ऐसे अन्त्यजों को इस मन्त्र की उपदेश्यता ही नही हो सकती। तब मन्त्र मे भेद किस लिये करना चाहिये ।

इस शका का समाधान इस प्रकार है कि ऐसा करने से श्रुति स्मृति और सदाचार मे विरोध आता है । इसका समर्थन इस प्रकार है । उत्तर मीमासा शास्त्र और उसके आनन्दभाष्य मे यह शका उठायी गयी कि 'शूद्र का भी आर्थित्य और सामर्थ्य धारण करने के कारण ब्रह्म विद्या मे अधिकार होना चाहिये । इस पूर्व पक्ष का उत्तर सूत्रकार भाष्यकार इन दोनो ने कह दिया कि, सामर्थ्य न होने के कारण शूद्र का ब्रह्म विद्या म अधिकार नही है । जिसको उपनयन सस्कार वेदाध्ययन और यज्ञादि मे अधिकार न हो उसे ब्रह्म विद्या मे समर्थ नही माना जाता। क्योंकि "स्वाध्यायोऽध्येतव्य" इस अध्ययन विधि से प्राप्त जो वेदज्ञान है वह वेदज्ञान ब्रह्मोपासन का उपाय है । और शूद्र कोवेदाध्ययन का निषेध है अतएव उसे असामर्थ्य है। इस विषय मे श्रुति और स्मृति के प्रमाण दिये जाते है । 'यद्युहवा' इत्यादि । भावार्थ यह है कि शूद्र श्मशान की भांति सदा अपवित्र रहता है इस लिये शूद्र के समीप मे भी वेद नहीं पढना चाहिये । इस

वशाज्ज्ञानवत्त्वमिति न कश्चिद्विरोधः । तस्मान्न ब्रह्मविद्यायां शूद्रस्याधिकारः सम्भवति । तदभावे च परमवैदिके बीजवर्णविशिष्टे षडक्षरश्रीराममनावपि न तेषामधिकारस्तस्यापि ब्रह्मविद्यात्वाविशेषादिति सिद्धम् ।

एवं तर्हि 'न शूद्राभगवद्भक्ताः विप्राभागवताः स्मृताः' इत्यस्यका गतिरितिचेच्छृणु नानेन वाक्येन शूद्रभगवद्भक्ते शूद्रत्वं निषिध्य विप्रत्वं विधीयते । विधिपदाश्रवणात् न च विधिपदाध्याहारः कर्तव्यः श्रूयमाणस्मृतपदार्थविरोधापत्तेः । नहि भागवता विप्राः स्मृताः ज्ञेयाश्चेति शक्यते वक्तुम् वाक्यभेदापत्तेः तस्मादस्य वाक्यस्यायमेवार्थः । भगवत्प्रसत्तिहेतुभूततदनन्यभक्तिवशीकृतान्तःकरणत्वाद्भगवतास्वीयत्वेन स्वीकृता विप्राः स्मृताः इत्यधिकारिर्विप्रगत्यर्हा इत्यर्थः ।

अस्मिन्नर्थे भगवद्वाक्यमेव प्रामाण्यम्भजते । "मां हि पार्थ ? व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः । स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्" । अत्र भगवदाश्रितानामपि स्त्रीवैश्यशूद्राणां पार्थक्येन निर्दिश्य परगतित्वबोधनात् पुरोदीरितार्थ एव तात्पर्यलाभात् । एवमेव "सर्ववर्णेषु ते शूद्रा ये न भक्ता जनार्दने" इत्यादौ शूद्राः शूद्रगत्यर्हा एष एवार्थोऽभ्युपेयः । एवं चानेकप्रमाणव्याकोपप्रसंगोऽपि दूरोत्सारितो भवति सर्वं समञ्जसम् ।

इतः परमतिसंक्षेपान्मंत्रार्थो निरूप्यते । रहस्यग्रन्थेषु जपकर्मीभूतस्य मन्त्रस्य

लिये शूद्र बहुत पशु रखने वाला होता है और यज्ञ का अनधिकारी होत है। शूद्र के लिये पातक नही है और वह संस्कार के योग्य नही होता। इसी प्रकार अग्न्याधान प्रकरण म श्रुति से ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य इन तीन वर्णो के लिये विधान किया गया शूद्र के लिये नही।

विदुर और धर्मव्याधनेतो पूर्व जन्म मे ही पूर्णतया सब विद्याएँ पढ ली थी। परन्तु किसी उग्र कर्म से शूद्र शरीर प्राप्त हो गया था। इस शरीर मे भी पूर्व के प्रबल संस्कारो से सब स्मृति और जातिस्मर ज्ञान बना था। इससे वह पूर्णज्ञानवान थे। अत कोई विरोध नही होता। इसलिये शूद्र को ब्रह्म विद्या मे अधिकार असम्भव है और इसमे अधिकार न होने से बीजवर्ण संयुक्त श्रीराममन्त्र मे भी अधिकार नही है। क्योकि यह भी ब्रह्म विद्या ही है। यह निर्विवाद सिद्ध हुआ।

अब 'न शूद्रा भगवद्भक्ता' इसकी क्या दशा होगी यह शंका हो तो सुनिये। इस वाक्य से शूद्र भगवद्भक्त मे शूद्रत्व का निषेध करके विप्रत्व का विधान नही किया जाता। क्योकि वहा विधि पद का श्रवण नही है और विधि पद का अध्याहार भी नहीं हो सकता। क्योकि श्रूयमाण स्मृत पदार्थ का विरोध होगा। भागवत कहे जाते है और जाने चाहिये ऐसा अर्थ करने से वाक्य भेद होगा इसलिये इस वाक्य का यह अर्थ है कि भगवत के अनुग्रह के कारण अनन्य भक्ति से जिनके अन्त करण वशीकृत है ऐसे भक्तों को प्रभु ने अपने करके स्वीकृत किये है वे विप्र है। अर्थात् वे अधिकारी विप्रगति के योग्य है।

सार्थकस्यैव मननीयत्वेन फलविशेषाधायकत्वम् । एवं स्थितेऽर्थसापेक्षत्वमायातम् । तत्र वैदिकानां मन्त्राणाञ्चार्थो द्विविधो भवति । एकः साधारणः यो ह्याशु समस्तजन-प्रतिपत्तिगोचरतामुपगच्छति । अपरश्च साम्प्रदायिकरहस्यवेदिवेदनविषयः । तत्र चतुर्थ्यन्तपदेन मनसा च योऽर्थोऽवबुध्यते स साधारणः । यश्चापरोऽर्थः साम्प्रदायिकविज्ञानाञ्जनोद्रिक्तनयनैर्निर्णीतः स एवात्र प्रदर्श्यते । तथाहि प्रकृतेऽस्मिन् मन्त्रराजे प्रथमो रामिति बीजवर्णो विद्यते । अयञ्च प्रणवकारणतया तत्वविद्भिरुपदिश्यते । एवमेव श्रीवैष्णवमताब्जभास्करे श्रीमदाचार्यपादैरभ्यधायि । "यावद्वेदार्थगर्भे प्रणवि जगदुदाधारभूतं सविन्दु सुव्यक्तं रामबीजमित्यादिना । अत्र चाचार्यपादैः यावद्वेदार्थगर्भमित्यनेन तारकमंत्रराजाग्रवर्तिवीजवर्णो विशेषितः । अनेन चाखिलवेदार्थगर्भत्वं रामिति बीजवर्णस्य सिद्धम् । तच्चेत्थं गायत्र्याः समस्तवेदमयत्वात्तत्प्रतिपाद्यश्च सवित्रन्तर्वर्तिभर्गवत्शब्दाभिहितपरमपुरुषपदवेद्यो भगवान् श्रीराम एवेत्यनेकप्रमाणैरवसीयते । सनत्कुमारसंहितादिषु "सूर्यमण्डलमध्यस्थं रामं सीतासमन्वितम् । नमामि पुण्डरीकाक्षममेयं गुरुतत्परम्" इत्यादिवाक्यैस्तथादर्शनात् । एवञ्च स एवात्र रशब्देनाभिधीयते । तस्माद्युक्तमेवाखिलवेदार्थगर्भत्वमस्य ।

अत एवोक्तमाचार्यैः—"यथैव वटबीजस्थः प्राकृतश्च महाद्रुमः । तथैव रामबीजस्थं जगदेतच्चराचरम्" इति । अतएव च स्मृतौ—"सर्ववेदाश्रयत्वाच्च सर्वलोकस्य कारणात् । ईश्वरप्रतिपाद्यत्वादखण्डब्रह्मवाचक" इति स्पष्टमभिहितम् ।

इस अर्थ मे श्रीभगवान का वाक्य ही प्रमाण है। वह वाक्य यह है कि 'हे अर्जुन ! मेरे आश्रित जो स्त्री वैश्य और शूद्र आदि पाप योनियां है वह भी पर गति को प्राप्त हो जाती है" इस भगवद्वाक्य मे भगवदाश्रित ऐसे स्त्री शूद्रो को पृथक् निर्देश करके पर गतिका बोध किया है । इससे पूर्व कथित अर्थ का ही लाभ होता है । इसी प्रकार 'सर्ववर्णेषु' इत्यादि वाक्यों मे जहा जहा शूद्रादि पद है उनका 'शूद्रादि गति के योग्य है' यही अर्थ स्वीकार करना चाहिये । इस प्रकार अर्थ मानने से अनेक प्रमाणों का व्याकोप प्रसंग दूरोत्सारित होता है । अत सब समंजस है ।

अब इससे आगे अति संक्षेप से मन्त्रार्थ का निरूपण किया जता है। रहस्य ग्रन्थों मे जपनीय मन्त्र को अर्थ सहित ही जप करने से फल विशेष दातृता है। जब ऐसा है तब अर्थ सापेक्षता सिद्ध हुई । वैदिक मन्त्रो का अर्थ दो प्रकार हुआ करता है। एक—साधारण होता है जिसका सब मनुष्यों को शीघ्रतया ज्ञान हो जाता है दूसरे अर्थ को केवल साम्प्रदायिक रहस्य जानने वाले ही जान सकते है । इन दोनो मे चतुर्थ्यन्त पद से और नम पद से जो अर्थ स्वरसत निकलता है वह साधारण है और जो दूसरा अर्थ साम्प्रदायिक विज्ञान रूप अंजन से परिष्कृत नेत्र वाले पूर्वाचार्यो से निर्णीत है वही यहा दिखाया जाता है । इस श्रीराममन्त्र मे प्रथम 'रा' यह बीज वर्ण है । यह प्रणव का कारण है ऐसा तत्ववेत्ताओं ने कहा है। और इसी प्रकार श्रीवैष्ण

अत एव च "विश्वरूपस्य ते राम विश्वशब्दा हि वाचकाः। तथापि मूलमन्त्रस्ते विश्वेषा बीजमक्षयम्"। इति स्कान्दवचः संगच्छते।

अनेन सर्वेषां शब्दानां मूलकारणं रामशब्द एवेति सर्वशाखाप्रत्ययन्यायेन साधितं भवति। अत एव आचार्यपादैः प्रणवीत्युक्तम्। प्रणवश्चोंकारः स अस्मिन् विद्यत इति प्रणवि। अनेन प्रणवजनकत्वं रामनाम्नः सिद्धयति। तथा चोक्तं महारामायणे "अंशांशै रामनाम्नश्च त्रयः सिद्धा भवन्ति हि। बीजमोंकारः सोहंच सूत्रमुक्तमिति श्रुतिः।" स्मृतावपि "प्रणवं केचिदाहुर्वै बीजं श्रेष्ठं तथापरे। तत्तुते नामवर्णाभ्यां सिद्धिमाप्नोति मे मतम्।" अत एव केचिद् पृषोदरादित्वमङ्गीकृत्य वर्णविपर्ययेण तारकषडक्षरमंत्रबीजतः प्रणवं साधयन्ति। तदपि युक्तमुपदर्शितप्रमाणपर्यालोचनेनेत्यलं रहस्यवित्सु।

एवञ्चास्य श्रीराममनोरुपरिष्टाद्रहस्यविद्भिः षट्पदान्युदाहृतानि। तत्राद्यं पदं रामितिबीजघटकाद्यावयवभूतं रेतिलुप्तचतुर्थीकं पदम्। एतच्च पदं क्रीडादीप्त्यादानपालनाद्यर्थकैरमिराजिरातिरक्षीस्यादिभिर्निष्पद्यते। तद्वाच्यश्च सर्वकारणकारणः सर्वशक्तिविशिष्टो भगवान् श्रीरामचन्द्र एव। तेन चाखिलस्य जगतः समुत्पादनपालनलयकर्तृत्वं सर्वेश्वरे भगवति श्रीरामे स्पष्टमुट्टंकितं भवति अव्युत्पन्नरशब्दस्याप्ययमेवार्थोऽभ्युपेयः श्रुतिसम्मतः।

वमताब्ज भास्कर मे श्रीमदाचार्य चरणो ने भी यावद्वेदार्थ इत्यादि वाक्य से कहा है। इस वाक्य मे आचार्य चरणों ने 'यावद्वेदार्थगर्भम्' इस पद से तारक मन्त्रराज के अग्र भाग मे स्थित बीज वर्ण को विशिष्ट किया है। इससे समस्त वेदो का अर्थ इसके भीतर समाया हुआ है यह सिद्ध होता है। वह इस प्रकार से गायत्री को सर्व वेदरूपा माना गया है और गायत्री से प्रतिपादित सूर्य के अतरवर्ती भर्ग शब्द से कथित परम पुरुष भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ही है। यह अनेक प्रमाणों से निश्चित है। "सूर्य मण्डल म श्रीसीता महाराणीजी के साथ श्रीरामजी विराज मान है मै उनको नमस्कार करता हूं" इत्यादि सनत्कुमार सहिता मे लिखा है। अत वही यहाँ पर 'र' शब्द से कहे जाते है। इसलिये अखिल वेदों के अर्थ का समूह इसमे युक्त ही है। इसलिये "यथैव" इत्यादि वाक्यों से आचार्यो ने कहा है।

इस उपर्युक्त विवेचन से सब शब्दो का मूलकारण राम शब्द ही है यह सर्व शाखा प्रत्यय न्याय से सिद्ध होता है। इसी लिये परमाचार्य चरणो ने इसे प्रणवी कहा है। अर्थात् प्रणव (ओंकार) का यह कारण है। यही महारामायण मे भी कहा है कि रामनाम के ही अश से बीज, ओंकार और सोह यह तीन शब्द सिद्ध होते है। स्मृति मे भी यही बात मिलती है। कितने प्रणव को श्रेष्ठ मानते है और कितने बीज को परन्तु मेरा मत है कि वह श्रीरामनाम के वर्णो से ही सिद्ध होता है। इसीलिये विद्वान् लोग इसी तारक षडक्षर मन्त्र के बीजवर्ण से पृषोदरादि मान

द्वितीयमेति प्रथमान्तं पदम्। तदर्थश्चाखिलजगद्योनिर्जगतामधीश्वरी श्रीरामाभिन्नस्वरूपरूपलीलानामधामधिराज्ञी भगवती श्रीसीतैवोच्यते । रक्षणाद्यर्थकाऽवधातोर्निष्पन्नस्याप्यस्य पदस्यायमेवार्थोऽवसेयः सिद्धान्ते महाराज्ञ्याः श्रीजनकनन्दिन्याः पुरुषकारत्वेन स्वीकृततया शरणगताञ्जीवाननन्तदिव्यगुणधाम्न्यभिमुखीकृत्य साकेतधाम्नि नित्यलीलाविलासानुभवप्रदापयितृतया रक्षकत्वंतस्यां श्रियः श्रियां स्पष्टमेव संगच्छते। एवमवधातोर्व्युत्पादितस्यास्य सर्वेप्यर्थाः स्वकीयदेशिककृपाकटाक्षेण जिज्ञासुजनैरवगन्तव्याः । श्रीराममनोरेतद्द्वितीयपदार्थपर्यालोचनं देवतान्तरशेषत्वनिवृत्तिपुरस्सर भगवदनन्यार्हशेषत्वं दृढयति। न चाकारस्य श्रीपदबोध्यसीतावाचकत्वं न सम्भवति नामनिरुक्तिव्याकृत्यादिषु तथाविधार्थस्यादृष्टत्वादिति वाच्यम्। 'अनन्या राघवेणाहं भास्करेण प्रभा यथा।'' 'रकारेणोच्यते रामः श्रीरकारेण ह्युच्यते। मकारस्तु तयोर्दासः' ।। ''रकारमकारयोर्मध्येऽकारेण सीतोच्यते'' इत्यादिसाम्प्रदायिकप्रमाणैस्तथार्थावधारणात् ।

श्रीराममनोस्तृतीयं पद हर्षावबोधनपरिणामज्ञानाद्यर्थकैर्मदिमनिमसिमन्यादिभिर्निष्पद्यते। पारतन्त्र्यादिगुणविशिष्टजीववाचकात्मञ्छब्दस्यच्छान्दसत्वेन मकारातिरिक्तयोः पूर्वोत्तरभागयोर्लोपेनापीदं सिद्ध्यति । एतत्पदवाच्यश्च ज्ञानानन्दगुणको ज्ञानाश्रयोऽजः करणकलेवरविलक्षणः पारिमाण्डल्यवद्भगवदनन्यार्हशेषभूतो भगवत्कैकर्याधिकारी जीव एव । इत्थमनेन मंत्रराजबीजपदत्रयेण चिदचिद्विशिष्टं श्रीरामाख्यम्परं

कर वर्ण विपर्यय करके प्रणवकी सिद्धि मानते है। ऊपर कहे हुए प्रमाणो के पर्यालोचन से यह भी ठीक है ।

इस प्रकार रहस्यवेत्ताओ ने इस श्रीराममन्त्र के पद्पद कहे है। इनमे प्रथम पद बीज मे लुप्त चतुर्थीक 'र' यह पद है। यह पद, क्रीडा दीप्ति, आदान और पालन आदि अर्थ वाले रम राज् रा रक्ष धातुओ से औणादिक ड प्रत्यय करने पर तथा चतुर्थी विभक्ति का सुपा सुलुक्० इत्यादि सूत्र से लोप करने पर सिद्ध होता है । इस पद का अर्थ सब कारणो के भी कारण सर्व शक्तिसम्पन्न भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ही है। इससे सब जगत् के उत्पादन पालन और लय के कर्ता भगवान् श्रीरामजी ही सिद्ध होते है। अव्युत्पन्न 'र' शब्द का भी यही अर्थ श्रुति सम्मत है।

दूसरा पद 'अ' प्रथमान्त पद है। इसका अर्थ समस्त जगत् की उपादानकर्त्री जगदीश्वरी श्री रामजी से अभिन्न स्वरूप रूप लीला नाम और धामकी अधिष्ठात्री भगवती सीताजी है । रक्षणाद्यर्थक अव् धातु से व्युत्पादित 'अ' पद का भी यही अर्थ है । सिद्धान्त मे महारानी श्रीजनकनन्दिनीजी को पुरुषकार रूप से माना गया है इसलिये शरणागत जीवो को अनन्त दिव्यगुणधाम श्री रामजी के सन्मुख करके दिव्य साकेत धाम मे नित्यलीला विलास का अनुभव प्रदान करने के कारण रक्षकत्व अम्बाजी मे स्पष्ट ही है। अव् धातु से निष्पन्न इस शब्द के सब अर्थ स्वकीय आचार्य की कृपा कटाक्ष से जान लेने चाहिये। कोई यह शका करते है कि कोश व्याकरण

ब्रह्मैवाभिधीयते । बीजघटकयोरयोः पदयोर्मध्यगं द्वितीयं पदं स्वरूपतोऽर्थतश्चाद्यतृतीयपदतद्वाच्याभ्यां सह सम्बन्धमप्यभिधत्ते । मंत्रार्थानुसन्धाने तु मवाच्योऽहं जीवो न स्वतन्त्रः किन्तु रवाच्ययोरखिललोकपरिवृढश्रीजनकनन्दिनीरघुनन्दनयोश्शेषभूतोऽनन्यार्ह इति समुदितेन बीजेनावगन्तव्यम् ।

तुरीयं पदं रामायेति चतुर्थ्यन्तमेव । तेनाखिलचेतनात्मकप्रपंचस्य श्रीसीतादेव्याश्च रमयितृत्वमभिधीयते । रामपदेन नित्यविभूतिनायकत्वविशिष्टोभयलिंगत्वं सार्वदिकं भगवति श्रीरामे व्युत्पादितं भवति । तदुत्तरचतुर्थ्याच्चास्य जीवस्य सर्वविधबन्धुत्वविशिष्टोत्कृष्टत्वशालिनो नित्यस्वामिनः स्वेष्टदेवस्य कैंकर्यं प्रतिपाद्यते । जीवाना स्वशरीरधारणं शरीरेण च यद्यत्प्रवर्तनं तत्सर्वं स्वामिनः सेवार्थमेवेति तात्पर्यम् । एतेनैतच्छरीरधारणं कैंकर्यार्थं तच्च निर्हेतुकस्वामिनः श्रीरामस्यैवेति फलितम् । एवं नेति पंचमपदेनेतरविनियोगामनर्हत्वमभिधाय भगवदनन्यशेषत्वमाविष्क्रियते । षष्ठेन म इति षष्ठ्यन्तपदेन स्वामिश्रीरघुनन्दननिरूपितमेव स्वत्वमस्मिञ्जीवे विद्यते नत्वन्यनिरूपितमिति ज्ञाप्यते । पारतन्त्र्यादिविशिष्टोप्ययं जीवस्वेष्टकैंकर्यकप्रयोजनो भगवच्छेषतया तत्परतन्त्र एव नान्यस्य कस्यचिज्जातु पारतन्त्र्यमावहतीति सिद्धान्तोऽनेन निष्पद्यते । तन्त्रादिना खण्डनमसाचोपायोऽपि प्रतिपाद्यते । एवञ्चोपेये परमपुरुषे स एवोपाय इति सैद्धान्तिकोऽप्यर्थोऽनुगृहीतो भवति । अथ च रामिति समुदितेनानन्यशेषत्वं रामायेति समुदितेनानन्यभोग्यत्वं नम इति समुदितेन चानन्योपायत्वमित्यप्यापाततोऽवगम्यते । अष्टपदपक्षेऽप्ययमेवार्थो बोध्यः ।

के विरुद्ध होने के कारण 'अ' को श्रीसीता वाचकत्व नही हो सकता। इसका उत्तर 'अनन्या' इस वाल्मीकि मुनि के प्रयोग से तथा 'श्रीरकारेणोच्यते' इस वचन से श्रीसीता वाचकत्व उपपन्न होता है ।

श्रीराममन्त्र का तीसरा पद हर्ष, अवबोधन, परिणाम और ज्ञान आदि अर्थ वाले मद् मन् मस् मन आदि धातुओं से निष्पन्न होता है। एव परतन्त्रत्वगुणविशिष्ट जीववाचक आत्मन् शब्द के मकार से अतिरिक्त पूर्व के और उत्तर के भागो का लोप होने पर भी सिद्ध होता है । मन्त्र को तथा इसके बीज को छान्दस होने के कारण लोप होने मे कोई बाधक नही है। इस पद का अर्थ जीव ही है । वह जीव ज्ञान और आनन्द गुण वाला हे और ज्ञान का आधार है अजन्मा है देह और इन्द्रियोसे भिन्न है अणु परिमाण वाला है भगवान् श्रीरामजी का शेष भूत है और भगवत्कैंकर्य का अधिकारी है, इस प्रकार इस मन्त्र राज के बीजस्थ तीन पदो से चिद चिद्विशिष्ट श्रीराम ब्रह्मका ही बोध होता है । बीज के मध्य मे द्वितीय पद स्वरूप से तथा अर्थ से भी प्रथम तृतीय पद और उसके वाच्य श्रीरामजी के साथ सम्बन्धका भी बोधक है । मन्त्रार्थ का अनुसन्धान करना हो तो 'म' पदवाच्य मै जीव स्वतन्त्र नही हूं किन्तु 'र' 'अ' से वाच्य सकल लोक के नाथ श्रीसीतारामजी का अनन्यार्ह शेष हू यह अर्थ बीज से जानना चाहिये ।

अत्र भगवच्छरीरभूतस्यात्मनो नवविधः सम्बन्धस्तत्तत्पदार्थमहिम्नाप्रत्यपीपपदच्छास्त्रदर्शिनो देशिकवर्याः । तत्राखिलजद्बीजवाचिबीजस्थमाद्यं पदं रक्ष्यरक्षकपितापुत्रत्व सम्बन्धावभिधत्ते । तदुत्तरतिरोहिततूर्यविभक्तिः शेषशेषित्वमुदीरयति । अनन्तरमनन्यार्हत्ववाचकाकारोऽर्पयति भार्याभर्तृभावम् । ततो मितिपदं स्ववाच्यमात्मानमुदीरयद्दृढयति स्वस्वामिभावसम्न्धम् । रामपदंतदव्यवहितचतुर्थी च व्याचक्षातेऽर्थस्वारस्यगम्यौ क्रमेणाधाराधेयसेव्यसेवकत्वसम्बन्धौ । एवमखण्डं नम इति पद ब्रूते शब्दबलायात शरीरशरीरिभावापरपर्यायमात्मीयत्वसम्बन्धम् । ततो म इति षष्ठं पदमुपदिशति भोग्यभोक्तृत्वलक्षणं विलक्षणं सम्बन्धम् । भगवन्नियाम्यस्यात्मनः परमपुरुषेण साकमिमान् सम्बन्धान् स्वकीयाचार्यचरणसेवयावगम्यसर्वथासद्भावः स्थिरीकर्तव्य इत्येतत्फलं विज्ञानस्य । एष्वपि सम्बन्धेषु सेव्यसेवकभावाख्यः संबन्ध एव प्राधान्येन परमाचार्यसम्मतः सुगमतया ग्राह्यश्च इत्थमेतत्सर्वमाकलय्य श्रीरामांघ्रिपंकजदासभूतेनानेन जीवसेवकेन स एव दीनबन्धुः शरणागतवत्सलोऽखिलहेयप्रत्यनीकनिरतिशयोज्ज्वल्यसौंदर्य्यसौगन्ध्यसौकुमार्यसौशील्यवात्सल्यसौहार्दमाधुर्योदार्यगाम्भीर्यकारुण्यचातुर्यस्थैर्यधैर्यलावण्यनवयौवनसत्यकामत्वसत्यसन्धत्वज्ञानशक्तिबलैश्वर्यतेजोवी—र्याद्यपरिमितस्वाभाविकानवधिकातिशयासंख्येयकल्याणगुणनिधिर्विश्वामित्रवशिष्ठपरा—

चौथा पद 'रामाय' यह चतुर्थ्यन्त है। इसका अर्थ अखिल जगत् के और श्रीसीतादेवी के रमण करनेवाले श्रीरामही है। राम पदसे लीलाविभूति और नित्य विभूतिके नायक नित्य निर्दोष और कल्याण गुण वाले श्रीरामजी ही है यह सिद्ध होता है। इस पद के पश्चात् चतुर्थी विभक्ति कर के अपने इष्ट देवका कैंकर्य कहा जाता है। जीवका शरीर धारण करने का फल भगवत्सेवा ही है। सिद्ध यह हुआ कि श्रीराम कैंकर्य के लिये ही शरीर है और कैंकर्य भी स्वामी श्रीरामजी का ही करना चाहिये। इसी रीति से 'न' यह पञ्चम पद है। इस पद से भगवदनन्यशेषता कही जाती है। षष्ठपद 'म' यह षष्ठी विभक्ति वाला है इस पद से श्रीराम भगवान का ही स्वत्व इस जीव मे है अन्य किसी का नही यह कहा जाता है। इससे परतन्त्र यह जीव एक अपने इष्ट देव श्रीरामजी के ही अधीन है अन्य किसी के नही, यह सिद्धान्त निष्पन्न होता है। तन्त्र अथवा आवृति करने पर अखण्ड 'नम' पद से उपाय का प्रतिपादन भी होता है। इससे उपेय श्रीरामजी की प्राप्ति के उपाय भी वही है यह भी सिद्ध होता है।

इस मन्त्र के बीज वर्णसे श्रीरामजी को अनन्यशेषता 'रामाय' पदसे श्रीरामानन्यभोग्यत्व और 'नम' इस पद से श्रीरामानन्योपायत्वका भी प्रतिपादन होता है। इस मन्त्र के आठपद है यह भी एक पक्ष है। इस पक्ष मे भी अर्थ समान है।

इस मन्त्र मे भगवान् के साथ सम्बन्धो का भी वर्णन पदार्थ स्वारस्य से हो जाता है शास्त्रदर्शी आचार्योने ऐसे ही माना है। इनमे प्रथम पद से 'रक्ष्यरक्षकत्व' पिता पुत्रत्व' इनका बोध होता है। इसके आगे लुप्त चतुर्थी से शेषशेषित्वका एवं द्वितीय पद से भार्याभर्तृत्वका बोध होता है।

शरागस्त्यसुतीक्ष्णादिमुनिजनैरनिशं तोष्टूयमानः श्रीभरतशत्रुघ्नहनुमद्विभीषणसुग्रीवादि-परिकरनिकरवन्दितचरणनलिनः परमव्योमादिशब्दभाग्दिव्यसाकेतधामामरतरुसमुद्भासितरत्नसिंहासनासीनो नवनीरदकान्तिकमनीयमनोहरः श्रीसीतासमेतो मदीयप्राणाधिकप्रियतमश्रीरघुवरः संसेव्यः सर्वदेति सिद्धम् ॥

॥ श्रीसीतारामार्पणमस्तु ॥

माघमासे वैक्रमाब्दे गुणांकनवभूमिते । कृष्णपक्षे च सप्तम्या जगद्गुरुजनुर्दिने ॥१॥
श्रीमान् रघुवराचार्यो वाग्मी शेषमठाधिपः । श्रीमंत्रराजमीमासामनयत् पूर्णता शुभाम् ॥२॥

इति श्रीमद्वेदमार्गप्रतिष्ठापनाचार्यजगद्गुरुश्रीमद्रामानन्दमुनीन्द्रान्वयप्रतिष्ठितसप्तत्रिंशद्वारपीठपरिगणितप्रधानपीठपतिश्रीमदनुभवानन्दाचार्यस्वामिवंशाम्बुधिपूर्णचन्द्रेण श्रीबालाजीस्थानाभिजनेन, न्यायमीमांसोपाध्यायेन तर्कवेदान्ततीर्थेन वेदान्तशिरोमणिदर्शननिधिनाशतावधानिना महामहोपाध्यायजगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यस्वामिश्रीरघुवराचार्य वेदान्तकेसरिणा विरचिता श्रीमन्त्रराजमीमांसा समाप्ता ।

॥ श्रीरामः शरणं मम ॥

'राम' इससे और चतुर्थीसे 'आधाराधेयत्व' और सेव्यसेवकत्वसम्बन्ध कहे जाते है । और अखण्ड 'नम' पद से शरीर शरीरित्वरूप सम्बन्ध कहा जाता है । 'म' यह छठापद भोग्य भोक्तृत्वरूप विलक्षण सम्बन्ध का भासक है । अपने आचार्य चरणो की सेवा करके इन सम्बन्धो का पक्का ज्ञान करना आवश्यक है । भगवान् मे सद्भाव धारण करना यही विज्ञानका फल है । इन सम्बन्धो मे भी सेव्य सेवक भाव ही अस्मत्संप्रदाय के परमाचार्यो को प्रधान रूप से इष्ट है औ सुगमतया ग्राह्य है । इस प्रकार यह सब अपने हृदय मे विचार कर श्रीरामचरण के दासभूत इस जीव सेवक को वही दीनबन्धु शरणागतवत्सल उपरोक्तगुणयुक्त (मूलग्रन्थ मे जो भगवान् श्रीराम को स्वरूप वर्णित है तदनुसार) श्रीसीताजी समेत भगवान् श्रीरघुनाथजी ही सर्वदा ससेव्य है यह सिद्ध हुआ ।

इस श्रीमन्त्रराजमीमासा को विक्रम सवत् १९९३ के माघ कृष्ण पक्षकी सप्तमी को
अर्थात् जगद्गुरु भगवान् श्रीरामानन्दाचार्य की अवतार तिथि को विश्राम
द्वारकास्थपश्चिमाम्नाय श्रीरामानन्दाचार्यपीठ श्रीशेषमठ शीगडाके
अधिपति वाग्मीस्वामी श्रीरघुवराचार्यजी महाराज
ने सज्जन वैष्णवो की प्रसन्नता के लिये
लिखकर पूर्ण किया

ॐ जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यरघुवराचार्यानुगृहीताः ॐ

जायामा मैथिलीत स्मितशुचिवदनोद्दासभासाभिराम
श्याम सीता सखीना हृदिरतिसुकर कासते यश्च काम ।
वाम श्रीतारिशिष्टौ दशमुखवदनोद्दामशोभाभिराम
श्रीराम श तनोतु श्रुतिरतिमुनिभिर्मन्यते मानकाम ॥
औद्धत्याधूतधर्मश्रुतिरतिरहितक्रूरकर्मप्रहारी
हारीकामारिबेधोमुनिजनमनसो जानकीहृद्विहारी ।
वारिक्लेशाग्निकाण्डे रघुकुलतिलक कीर्त्यते योऽसुरारि
र्वारी मुक्तिप्रसाद शुभमिह तनुता मारुतीश रवगारि ॥
प्रथितभानुकुलाम्बुजभास्कर जनकजा हृदयैकविभूषणम ।
शिवविरिञ्चिनुताङ्घ्रिसरोरुह रघुपतिं सतत प्रणमाम्यहम ॥
सव्याङ्के च विभाति भूतलसुता धृत्वा करे पङ्कज
ग्रीवाया स्थलपद्मनिर्मित्तमहाहार दधानामना ।
पादाग्रे नतमस्तक कपिवर पार्श्वे स्थितो लक्ष्मणो
यस्याय स रघूत्तम श्रुतिनुत पायात्सदा स्वाश्रितान् ॥
यज्ञानामवरोधत श्रुतिपथप्रध्वसनात्तत्क्षणे
पापाचारचणरियखलगणैर्व्याप्ताक्षितिर्दु खिता ।
दुखाद्येनविमोचिता गुरुरसाप्राचार्यवर्यो महान्
रामानन्दयतिर्जगत्त्रयगुरुर्वोऽव्यात्सुरेन्द्राचित ॥
अज्ञानाम्बुधिमग्नमानवकृते वेदान्तसूत्रे व्यधान्
मायिध्वान्तनिराकरिष्णुविशद स्वानन्दभाष्य शुभम् ।
येनार्येण कृत समोपनिषदि प्रेम्णा च भाष्य बृहद्
रामानन्दयतिर्जगत्त्रयगुरुर्वोऽव्यात्सुरेन्द्रार्चित ॥
जैनारण्यगजेन्द्रदारणपटु कण्ठीरवो भीषणो बौद्धाना बलहारकोद्विजगणानान्धर्मसयोजक ।
गीताभाष्यकृदेषदैशिकपतिर्योगीन्द्रचूडामणी रामानन्दयतिर्जगत्त्रयगुरुर्वोऽव्यात्सुरेन्द्रार्चित ॥
य ब्रह्मेति गदन्ति वेदनिपुणा वेदान्तिन सर्वदा साख्यज्ञै पुरुषस्तथाक्षचरणै कर्मेति यो गीयते।
भाट्टै कर्म च काव्यकोविदचयैर्मुख्योरस कीर्तितो विश्वेस्मिन्सुजनान्स एव भगवान् पायाद्घृणापति ॥
श्रीरामेण तदात्म्यतामुपगता कल्याणधामा शुभा सर्वैश्वर्ययुता गुणैकनिलया लीलाजगद्धारिणीम् ।
आम्नायान्तविभावनीयचरितां ब्रह्मादिभिर्वन्दिता श्रीदेवी मिथिलाधिराजतनयामम्बा किशोरी भजे ॥
प्राप्योपायपरा पूर्णा प्रपन्नामरवल्लरीम् । श्रीरामाऽभिन्नरूपा ता श्रिय शश्वन्मनाश्रये ॥

श्रीरामो विजयतेतराम्
भगवते श्रीबोधायनाय नम
जगद्गुरु श्रीगङ्गाधराचार्यप्रणीता

साधनदीपिका

सीतानाथसमारम्भा बादरायणमध्यमाम् । बोधायनाख्यगुर्वन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम् ॥१॥

जगद्गुरु श्रीगङ्गाधराचार्यजीमहाराज कहते है कि श्रीसीतानाथ भगवान् श्रीरामजीसे आरम्भ हुई और श्रीबादरायणजी (श्रीव्यासजी) जिसके मध्यमे है उस निजगुरु बोधायननामक जगद्गुरु श्रीपुरुषोत्तमाचार्यजी पर्यन्तकी गुरुपरम्पराको मे (श्रीगङ्गाधराचार्य) वन्दन करता हूँ ॥१॥

रामस्य ब्रह्मणोऽनन्यभक्त्यैव मुक्तिराप्यते । भक्तिर्ध्रुवो स्मृति सा च विवेकादिकसप्तकात् ॥२॥

परब्रह्म भगवान् श्रीरामजीकी अनन्य भक्तिसे ही मुक्ति मिलती है । ध्रुवा स्मृति अर्थात् तैलधाराके समान अखण्ड श्रीरामस्मण ही भक्ति है और वह भक्ति विवेक इत्यादि सात साधनोसे उत्पन्न होती है ॥२॥

जात्याश्रयनिमित्तैर्यद् दुष्टमन्न भवेन्न हि । तस्माद् देहस्य संशुद्धिर्विवेक कथ्यते बुधै ॥३॥

जो अन्न जाति, आश्रय और निमित्त इन दोषोसे दुष्ट न हो उससे देहकी मशुद्धिको पण्डितलोग 'विवेक' नामवाला भक्तिका प्रथम साधन कहते है ॥३॥

शब्दरूपरसस्पर्शगन्धेषु विषयेषु य । अनादर स तत्त्वज्ञैर्विमोक परिकीर्त्तित ॥४॥

शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध नामक पाँच विषयोका अनादर ही तत्त्वज्ञानियो द्वारा 'विमोक' नामवाला भक्तिका दूसरा साधन कहा गया है ॥४॥

शुभाश्रयस्य यच्चात्र सशीलन पुन पुन । अभ्यास साधनं तद्धि योगध्यानोपकारकम् ॥५॥

भगवान्के दिव्यविग्रहको 'शुभाश्रय' कहते है । श्रीरामजीके दिव्यविग्रहका बारबार सशीलन(सम्यक्चिन्तन)ही योगध्यानोपकारक 'अभ्यास' नामवाला तीसरा भक्तिकासाधन है ॥५॥

यथाशक्ति हि पञ्चाना यज्ञाना महता तथा । आश्रमान्तरधर्माणामनुष्ठान क्रिया मता ॥६॥

शक्तिके अनुसार पाँच महायज्ञो और अन्य आश्रमोके धर्मोंके करनेको'क्रिया'नामवाला चौथा भक्ति–साधन माना गया है ॥६॥

अहिंसा चानभिध्या च सत्यार्जवे तथा दया । दान चैतानि कल्याणतयाऽऽम्नातानि सूरिभि ॥७॥

अहिंसा (मन वचन और कायासे किसीको पीडा न देना) परायी वस्तुके लेनेका सङ्कल्प नहीं करना, सत्य बोलना, सरलता (कुटिलता न करना)दया तथा दान इनको विद्वान्पुरुषोने 'कल्याण' नामवाला भक्तिका पाँचासाधन कहा है ॥७॥

शोकभीतिनिमित्तोनावसादश्चित्तदीनता । तदभावो हि सम्प्रोक्तोऽनवसादो महात्मभि ॥८॥

शोक और भयसे होनेवाली चित्तकी दीनताको अवसाद कहते है। अवसादके अभावको (चित्तकी दीनताकेअवावको) महात्माओने 'अनवसाद' नामक भक्तिका छट्ठा साधन कहा है ॥८॥

उद्धर्ष खलु सन्तोषोऽनुद्धर्षस्तद्विपर्यय । शोकवच्चातिसन्तोषे मन शैथिल्यहेतुता ॥९॥

अतिसन्तोषको उद्धर्ष कहते है । उद्धर्षके अभावको 'अनुद्धर्ष' कहते है । यह भक्तिका सातवाँ साधन है । शोकके समान अतिसन्तोष भी मनकी शिथिलताका कारण है ॥९॥

पुरुषोत्तमशिष्यश्रीगङ्गाधरार्यनिर्मिता । अज्ञानध्वान्तहृद् भूयादेषा साधनदीपिका ॥१०॥

बोधायनवृत्तिकार जगद्गुरु श्रीपुरुषोत्तमाचार्यजीबोधायनके शिष्य जगद्गुरु श्रीगङ्गाधराचार्यजी निर्मित यह साधनदीपिका अज्ञानान्धकारका हरण करनेवाली हो ॥१०॥

जगद्गुरुश्रीअनन्तानन्दाचार्यविश्वविजयिप्रदर्शितं

श्रीबौधायनं दर्शनम्

रामे दुर्गुणवृन्दखण्डनपरा नैर्गुण्यवादा श्रुता
गाणार्था न गुणोक्तय शुभगुणाम्भोधौ परब्रह्मणि ।
अद्वैतश्रुतयो विशिष्टविषया द्वैतश्रुतिस्तात्त्विकी
रामानन्दमत हि तद् विजयते बोधायन दर्शनम् ॥१॥

स्थूलातश्च चिताऽचिता किल युत कार्यं पर ब्रह्म यत्
सूक्ष्मातश्च चिताऽचिता खलु युतं ब्रह्मैव तत् कारणम ।
ऐक्य चाथ मत द्वयो शुभविशिष्टाद्वैतक यत्र वै
रामानन्दमत हि तद् विजयते बोधायन दर्शनम् ॥२॥

चिद्वाच्यस्त्वणुचेतनो बुधवरैर्ज्ञानस्वरूपो मत
श्रीरामस्य परेश्वरस्य सुतनुदेहो स्वदेहस्य य ।
न प्राणस्त्वथ नेन्द्रिय न च तनुर्जीवोऽमृतो यत्र वै
रामनन्दमत हि तद् विजयते बोधायन दर्शनम् ॥३॥

ज्ञेयाऽचित् प्रकृतिर्जडा गतमति सत्वादयो यद्गुणा
अव्यक्तादिपदेरिता विकृतिकृन्माया जगन्मोहिनी ।
रामाधिष्ठितरूपिणी तु जगतो हेतु सती यत्र वै
रामानन्दमत हि तद् विजयते बौधायन दर्शनम् ॥४॥

श्रीरामश्चिदचित्तनुर्हि जगतोजन्मादिहेतुर्विभु ।
सर्वज्ञ सकलेश्वर श्रुतिमतो यो भक्तितो मुक्तिद. ।
तत्त्व यत्र परो यतोऽधिकतमं नो येन तुल्य क्वचिद्
रामानन्दमत हि तद् विजयते बोधायन दर्शनम् ॥५॥

श्रीरामानन्दशिष्यश्रीअनन्तानन्ददर्शितम् । बोधाद्धि मुक्तिद भूयाच्छ्रीबोधायनदर्शनम् ॥६॥

श्रीमते रामानन्दाचार्य्याय नम

शिखरिणी मणिरत्नमालाके सन्दर्भमे

सन्त भक्तोंसे निवेदन

वेदोसे लेकर आज पर्यन्त सभी प्रभुके प्रेमियोने भगवानका गुणानुवाद गाया है, शेष शारदा शिव सनकादिक ब्रह्मा नारद निरतर गुण गाते हुए भी अघाते नहींहे प्रत्युत नवीन नवीनभाव लहरिया लहराती ही जाती है। आधुनिक युगमे भी यह परम्परा अक्षुण्ण चल रही है, सब अपनी अपनी बुद्धिके अनुसार अपनी अपनी भाषामे श्रीरामगुण गाते है। परन्तु सस्कृतभाषा विश्वकी सर्वश्रेष्ठ भाषा देवोकी दिव्यवाणी होनेसे इसके प्रति विद्वानो का अधिक आकर्षण रहता है, अत अधिकाश स्त्रोत्र सस्कृत भाषामे ही पाये जाते है।

श्रीकाञ्चीपुरीके निवासकरनेवाले श्रीराघवाचार्यजी भी एक ऐसे ही श्रीरामके प्यारे महाभागवत विद्वान् हो गये है। उनके मातापिता एव जन्मस्थान—जन्मसवत् तो अज्ञात ही है। परन्तु स्त्रोत्रके अन्तमे आपने अपना इतना ही परिचय दिया है——

य श्रीनिवासरघुनन्दनजानकीभ्याम्—वाधूलगोत्र उद्भूत प्रणिधाय तेन।

शेषार्यपादकमले हृदि राघवेण श्रीशेर्पिता शिखरिणीमणिमालिकेयम्।

दक्षिणभारतमे काञ्चीपुरीमे वाधूलगोत्रमे आपका जन्म है। श्रीशेषाचार्य सम्भवत इनके आचार्यचरणोका नाम है। जो कुछ हो इनको भगवान् राममे अगाध निष्ठा है, अपार प्रेम है और अत्यन्त भावपूर्ण हृदयसे सस्कृतके विद्वानोके परमप्रिय शिखरिणीछन्दमे "शिखरिणी

टिप्पणी—प्रकृत दिव्य प्रबन्ध "अनन्यतानिवेदनम्" "स्तोत्ररत्नम्"के नामसे भी सम्प्रदायमें प्रसिद्ध है। जगद्विजयी महामहोपाध्याय जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यरघुवराचार्यजी वेदान्तकेसरीजीके व्याख्यान प्रवन्ध सग्रहमे 'शिखरिणीमणिरत्नमाला' स्तोत्ररत्नम्' 'अनन्यतानिवेंदनम्" इन्ही दिव्यप्रवन्धोके नामोसे जगद्गुरुश्रीराघवानन्दाचार्यजीके नामसे प्रस्तुत दिव्य प्रवन्धके श्लोक ६१-६७-७२-७३-७४-८०-८१-९४-९६-१०१ प्रभृति कई श्लोकोका सग्रह उपलब्ध होता है। पण्डितसम्राट् स्वामी श्रीवैष्णवाचार्यजी भी प्रवचनोमे प्रसगोपात्त उक्त श्लोकोका उदाहरण उपर्युक्त नामोसे ही श्रीआचार्यजीके नामसे प्रस्तुत करते थे। आचार्यप्रवर जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यरामप्रपन्नाचार्यजीयोगीन्द्रके प्रवचनोमे भी उपर्युक्त-प्रणालीको यथापूर्व पाते है। अत प्रस्तुत दिव्य प्रवन्ध श्रीरामानन्दसम्प्रदायके २१ वे आचार्य जगद्गुरु श्रीराघवानन्दाचार्यजी (वि स १२०६—१३९६) की कृतिकी ओर अनायास ध्यान खीचता है। इसमे निम्न अन्य भी कारण है—१-आचार्यजीके दक्षिण यात्राके

मणिमाला" आपने रची है। इतनी भावपूर्ण है कि नित्य पाठकरनेपर भी मन तृप्त ही नहीं होता है, रुचि बढती ही जाती है, ऐसी दिव्यभावनासे भरपूर है। यह तो पाठकोको पढनेपर स्वय अनुभव होगा।

श्रीअयोध्या जानकीघाटपर "श्रीरामवल्लभाकुञ्च" एक परम सुन्दर दर्शनीय मन्दिर है। वहाँपर अद्वितीय विद्वान् श्रीसम्प्रदायाचार्य अभिनववशिष्ठ सन्तशिरोमणी श्रीअनन्त श्री स्वामी श्रीरामवल्लभाशरणजी महाराज श्रीअवधके महान् गणमान्य अन्त हो गये है। उनके प्राचीन पुस्तकालयमे हस्तलिखित पुस्तकोका भी सग्रह है, उस विशाल सग्रहमेसे यह "शिखरिणीमणिमाला" भी प्राप्त हुई है, वर्षोसे मेरे पास है परन्तु इसका भाषान्तर करनेकी प्रेरणा पश्चिमाम्नाय जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यपीठ श्रीशेषमठाधीश श्रीरामेश्वरानन्दाचार्यजी महाराज द्वारा प्राप्त हुइ, तथा उनके ही सौजन्यतापूर्ण आग्रहसे शारीरिकस्वाथ्य ठीक न होनेपर भी मानसिक उल्लासके कारण यह भाषान्तर "श्रीप्रेमामृतवर्षिणी व्याख्या"के नामसे स्वल्प समयमे हा तैयार होगया और आज प्रकाशीत होकर आपकी सेवामे भी प्रस्तुत हो रहा है।

इसकी रचना कुछ इस प्रकारकी है कि किसी किसी श्लोकका भाव इतना गभीर है कि वारवार मनन करनेपर भी ठीक समझमे नहीं आता है, श्रीगुरुदेवकी कृपासे श्रीकिशोरीजी ने करुणाकर जो कुछ समझाया, जोकुछ लिखवाया लिख दिया है, तथापि मेरी आत्मा स्वीकार करती है कि इसमे अभी बहुतसी त्रुटिया रह गई है जो कृपाकर कृपालु पाठक सुधार लेगे तथा यदि मुझे सूचिन करनेका कष्ट करे तो मुझे अधिक प्रसन्नता होगी,

---

प्रसगमें श्रीरगमे समानित होने तथा वहाँके वैष्णवोके अनुरोधपर सप्तकाण्डार्थसप्तकम्'के परिप्रेक्षमे श्रीरामतत्त्व विषयक विशिष्ट प्रवचनका 'श्रीरामनन्दसम्प्रदायका इतिहास'के पृष्ठ ३३८ मे उल्लेख है। तात्विक दृष्टिसे पर्यालोचन करनेसे इन श्लोकोको सप्तकाण्डार्थ सप्तकम् का पद्यात्मक महाभाष्य कहना कोई अन्याय नही होगा। २-श्रीसम्प्रदायदिग्दर्शन'के पृष्ठ ४४ में तथा ३-देशिकपरिचिर्याके पृष्ठ ३४ में भी प्रकृतविषयकी चर्चा है। ४—इसी तरहका 'भगवान् श्रीराघवानन्दाचार्य' नामक निवन्धके पृष्ठ ४८ में इस ओर पर्याप्त सकेत है।

सम्भ्रान्त विद्वानोका ध्यान इस ओर भी अनायास आकृष्ट होजाता है कि प्रवन्ध का नाम "शिखरिणीमणिरत्नमाला" है तो मालाके नामसे उपलब्ध होनेवाले प्रवन्धोमे १०८ श्लोक तो होते ही है कहीं प्रथानुसार मगलाचरण या फलश्रुति या कवि परिचयके १, २, ३, श्लोकोके होनेसे १०९, ११०, १११, श्लोक भी देखे जाते हैं। जैसे

अस्तु जो है, आपकी सेवामे समर्पण है। ठीक ऐसा हा एक "श्रीरामकृपाकाव्यम्" है, उसमे तो लेखकका तथा रचयिताका नाम निर्देश भी नही है तथा लेखकने भी बहुत त्रुटियाकी है, उसकी प्रतिलिपि तो करली है परन्तु उसको उचित स्वरूपमे शुद्ध पाठ लिखकर टीका करना भी एक कठिन कार्य है परन्तु है बडा ही सुन्दर काव्य, यदि कोई विद्वान् इस ओर ध्यान देकर प्रकाशित करना चाहे तो श्रीजानकीघाट श्रीरामवल्लभापुस्कालयसे प्राप्त कर सकते है। उसकी प्रतिलिपि श्रीरामानन्दआश्रम जनकपुर धाममे भी है जो पुन प्रतिलिपि करनेको मिल सकती है।

'श्रीसीतास्त्रोत्रसुधासागर" दो भागोमे सानुवाद छपता था उसी समय "श्रीरामस्त्रोत्र सुवासागर" सग्रह करनेकी भी कल्पना हुई परन्तु स्वास्थ्य तथा साधन सानुकूल न होनेसे वह अभीतक रह ही गया। प्रभुकी कृपासे उसी समय कुछ श्रीरामस्त्रोत्रोका भी सग्रह हुआ, उसीमे की यह एक प्रसादी है। अस्तु मेरी त्रुटियोपर दृष्टिपात नकर इसके सुन्दर भावोको भावग्राही सन्त ग्रहण करेगे, इसी विचारसे मनको सन्तोष है।

निवेदक

श्रीरामानन्दआश्रम — अवधकिशोरदास श्रीवैष्णव

जनकपुरधाम (नेपाल) — "प्रेमनिधि"

माघशुक्ला ९ मगलवार स, २०४२

१-'श्रीराघवेन्द्रमगलमाला', २-'श्रीसीतामगलमाला', आदि। तब प्रकृत प्रवन्धमे १०३ हा श्लोक क्यो ? अगतिकगत्या स्वीकार करना पडता है कि खण्डित है या कर दिया गया है परोत्कर्षासहिष्णुग्रहगृहीत होकरके। जैसा कि श्रीरामानन्द सम्प्रदायके महानिधि अनेक दिव्य प्रबन्ध ऐसोके शिकार होते आये है। इसी ओर ही इस प्रवन्धका १०३ वा श्लोकका "वाघूलगोत्र अद्भूत" छन्दशास्त्रागन्धित कविपरिचायक वाक्य सकेत तो नही कर रहा है ? आचार्योके सदुपदेशमे श्रुत तत्त्व तथ्यान्वित हो तथा अनुमानने भी सत्यापन के सन्मार्गसे वैराग्य नहीं लिया तो प्रकृतश्लोकका कलेवर—

"यः श्रीनिवासरघुनन्दनजानकीभ्यां वासिष्ठगोत्रजनिमत्प्रणिधायतेन ।
शेषा [हर्या]र्यपादकमले हृदिराघवेण श्रीशेर्पिता शिखरिणी मणिमालिकेयम् ॥"

रहा होगा। पुष्पिकामे लिखित १९६६ स लिपिकाल है। जैसी कि परिपाटी थी अन्य अनन्त पुस्तकोमे देखी जा सकती है।

सम्पादक

ॐ

श्री श्रिय श्रियै नम
श्रीसीतारामौ—विजयेतेतराम्
श्रीमते रामानन्दाचार्य्याय नम

अथ शिखरिणीमणिरत्नमाला

पिता माता भ्राता गुरुरधिपतिर्बन्धुरपि वा धनं मित्रं विद्याभरणमसवोदैवतमपि ।
त्वमेवाशेषं मे रघुकुलमणे ! त्वामिह विना न जाने श्रीजाने शरणमिहमन्यत्त्रिभुवने ॥१॥

हे श्रीरघुकुलमणी श्रीराम! इस ससारमे आपही एकमात्र हमारे माता पिता भ्राता गुरु स्वामी बन्धु धन मित्र विद्या अलङ्कार (विभूषण) प्राण तथा दैवत (शक्तिवल)जो कुछ भी है, केवल आपही है । हे श्रीसीतापते ! प्रभो आपके विना त्रिभुवनमे अन्य कोई भी हमारा शरणदाता नही है॥१॥

अयोध्याधीशश्रीदयितदशकण्ठद्विपहरेहरे मारीचारे दशरथमनोनन्दनविभो !
इति क्रोशन्तं मां कलय कलया राघव ययाकयाचिद्वातन्व्या झटिति करुणायाः शिशिरया२।

हे अयोध्यानाथ ! हे सीतापते ! हेश्रीपते, हे दशग्रीव रूपी हाथीको मारनेवाले सिह, हे मारीचके निकन्दन करनेवाले, हे श्रीदशरथजीके मनको आनन्दित करनेवाले, हे व्यापक इस प्रकार आपके मङ्गलमयनामोको निरन्तर पुकारनेवाले मुझ अनाथकी ओर उस करुणामयी दृष्टिसे देखनेकी कृपा करे जिस कृपा कोरके प्रकाशकिरणकी छटामात्रसे दु खसे सन्तप्तजीवात्मा परमशीतल शान्ति सुखको प्राप्तकर धन्य धन्य हो जाते है ॥२॥

न युक्तं त्यक्तुं श्रीरघुवरपुराणी तवसकृन्नमद्रक्षादीक्षा निखिलनिगमान्तप्रकटिताम् ।
ममैकस्येदानी कलुषमयमूर्तेरपेकृते विचार्यैवं दोषं कुरुमयि कटाक्षाङ्कुरलवम् ॥३॥

हे श्रीरघुनाथजी! सभी वदवदान्त प्रकाशित शरणम आकर प्राणपात करनवाल प्रपन्न की रक्षा करनेकी दीक्षा (व्रत) वाली यानी "सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते । अभय सर्वभूतेभ्यो तदाम्येतद्व्रतमम" ऐसी लोकोत्तर उदात्त आपकीजो पुरातन प्रणाली है उसका त्याग करना आपके लिये कभी भी उचित नही है, सम्पूर्ण पापमय कलुष-मूर्ति मेरे जैसेके लिये भी आपको खूब विचार करके उस अपनी महान् प्रतिज्ञाका त्याग करना उचित नही अतः हे कृपानिधान ! मुझपर थोडासी भी कृपा दृष्टि करे तो म कृतार्थ हो जाऊगा।

भजन्तं त्वत्पादाम्बुरुहयुगलं मामशरणं कटाक्षैः किं राम ? न सुखयसि कारुण्यशिशिरैः
सकृन्नम्रत्राणव्रतमवासित नीतमथवा त्वया किं मद्वृत्तं त्वरितमनुचिन्त्यागतभिया॥४॥

हे राम ? आपके युगलचरणारविन्दोका भजन करनवाल मुझ अशरणजीवको अपने शीतल करुणा कटाक्षोसे सुखित क्यो नही करते है ? क्या एक वार भी शरणमे आकर जो त्राहि त्राहि पुकारता है उसकी रक्षा करनेके व्रतका आपने अब परित्याग कर दिया है ? अथवा हमारे भयंकर अपराधोका देखसुनकर डरके मार उन्न घबराग्ए ह कि अर ऐसा महान् पापी भी होता है, इसकी मे रक्षा कैसे करूगा ॥४॥

भ्रमन्तं मज्जन्तं भवजलनिधौ पाररहिते नितान्त सीदन्ताविषयझषपादकवलितम् ।
भवन्तं क्रोशन्तं रघुकुलमणे हा इति कृपा रसं तं कांक्षंतं तव झटितिमामुद्धरहरे ? ॥५॥

अपार ससारसागरमे ऊब-डूब करते हुए भटकनेवाले अत्यन्त महान् कष्ट भोगनेवाले, विपयरूपी विकराल मगरमच्छने जिसका पाँव पकड लिया हे ऐसा मे हूं । हे रघुकुल शिरोमणे ! कृपाकरो, नाथ ! उबारो ऐसा करुण स्वरसे आपको पुकारनेवाले, केवल आपकी कृपारसका पान करनेकी चाहनावाले हू अत हे श्रीहरे ! आप मुझपर शीघ्र दया करके उद्धार करिय ॥५॥

अलं ते मत्पापस्मृतिजनितनिश्वासनिकरै रलं पश्चात्तापै र्नमदवन आवाह्यविरदम् ।
अलं साकेताधीश्वर मयि धनेर्ष्या प्रकटनै रलं कुर्वन्नेहि स्मितलवरुचा साधुवदनम् ॥६॥

हे प्रभो ! मेरे भयङ्कर पापोका स्मरण कर करके अरेरेरे ऐसा घोरपापी केसे शुद्ध होगा ? ऐसी चिन्ता करके वारबार निसासा लेनेकी आपको कोई आवश्यकता नहीं है हे श्रीसाकेताधीश्वर ! मेरी रक्षाके लिये पश्चात्ताप करते हुए अपने शरणागत रक्षक विरह को आवाहन करनेकी भी कोई आवश्यकता नहीं है, तथा ऐसा पापी न जाने कहाँसे आगया ? ऐसा मेरे प्रति ईर्षाभाव प्रकट करनेका भी कोई काम नहीं है, आपतो ये सब चिन्तायें त्याग करके मन्द-मन्द मुसकुराता, हसता हुआ अपना सुन्दर मुखारविन्द मुझे दिखा दीजिये, वस उतने मे ही मेरा सब काम बन जायगा, दीनानाथ ! ॥६॥

कठोर पापानांगणमगणितं मा गणमयेमयीर्ष्यां मुञ्चत्वं मनसि धृतिमङ्गीकुरु दृढम् ।
बलादेवाकर्षन् मदवनचरामाशु करुणाम् प्रसादं वैदेहीरमण मयि दीने प्रकटय ॥७॥

ह नाथ मेरे महान् तथा कठोर पापोके अगणित समूहोकी गणना करनेका कष्ट आप मत करिये अथात् पापकी गणनाको छोडिये, प्रभो मेरे जैसे पापीके प्रति ईर्षा भाव का भी त्याग करके मनमेभूर दृढता पूर्वक धैर्य धारण करिये अनन्तर आप मेरी रक्षा करनेमे तुरन्त लगजानेवाली अपनी करुणाको बलपूर्वक अपनी ओर आकर्षितकर हे श्रीवैदहीरमणप्रभो ! मुझ दीन पर उसी करुणा दयाको कृपाकरके प्रकट करदीजिये वस, इतना ही तो काम है । इतनेसे ही मै कृतार्थ हो जाऊंगा ॥७॥

अघानामुग्राणां जननभवनं भाविनममुम् जनं जानन् पूर्वं जलनिधितटे सर्वविदपि ।
नतानासर्वेषामहमभयदोऽस्मि व्रतमिदम् ममेतित्वं धैर्य्यात् कथमुदितवान् राम गतभीः८।

बडे आश्चर्यकी बात है कि–'भयङ्कर महान् और घोर पापकर्म करनेवाला मै भविष्यमे होनेवाला हू " इस बातको भलीभाति जानते हुए भी समुद्रके किनारे सब कुछ जाननेवाले आपने स्वय विभीषणजीके प्रति श्रीमुखसे "मेरे शरणमे आये हुए सभी शरणागतदीन जनोको निर्भय करदेनेका व्रत है ।" (अभय सर्वभूतेभ्योददाम्येतद्व्रत मम) यह आपने बडे धैर्यसे निर्भय होकर वानरी सभामे क्यो कहा था ? क्या मेरा स्मरण

भूलगये थे कि एक ऐसा पापी भी मेरेशरणमे आनेवाला है, इसलिये, उसको छोडकर अन्योके लिये मेरा व्रत है, ऐसा श्रीमुखसे क्यो न कहा ॥८॥

मदन्यः पापीयान् त्रिजगति जनो नैव सुलभः सदिष्टया लब्धोऽहं तव सदनुकम्पैकविषयः। इदानीमौदास्यं भजसि यदि हसान्वयमणे ! गतिर्मेकावास्यात्कथय भवतः कीर्तिरपिका९॥

हे नाथ ! हमारे जैसा महान् पापी आपको तीनो भुवनमे कहीं भी मिलना महान् दुर्लभ है, यहतो आपको दैवयोगसे अपनी महती अनुकम्पा करनेके लिये एक नमूनेका पात्रके रूप मे सौभाग्यसे मिल गया। परन्तु हे सूर्यवश शिरोमणे ! यदि इस समय आप मेरे प्रति उदासीन होकर मुझपर कृपा नहीं करते है तब फिर मेरी क्या गति होगी ? आपकी उज्वल कीर्तिकी क्या दशा होगी ? यह तो अब आप ही भलीभाति विचार कीजिये ॥९॥

क्व मे बुद्धिर्गच्छेत् रघुवर न जाने परमितः तमेतं मात्रातुं तव समय एषोऽञ्जलिरिमम्। परं व्याजीकृत्य त्वरितमघजालान्यगणयन् प्रसीद त्रैलोक्ये प्रतिभटमलभ्यं भज यशः१०।

हे रघुनादजी ! यदि आप मेरी रक्षा न करेगे तो न जाने मेरी बुद्धि कहाँ चली जाय और क्या क्या कर बेठे, ये आगेकी बात मै कुछ भी नहीं जानता हू, इसलिये मेरी रक्षा करनका आपको बहुत ही सुन्दर समय मिला है, इससमय मेरा बहाना करके मेरे घोरपापोका विचार न करके यदि मुझपर प्रसन्न हो जाय तो तीन लोकमे जिसका जोडा न मिले ऐसे मुझसा पापीका उद्धार करके अपने निर्मल यशका त्रिभुवनमें विस्तार करना आप कदापि न चूकिये ॥१०॥

गजेन्द्रः प्रह्लादो दशमुखसगर्भ्यश्च विजय स्तथैवान्ये त्राता इति च भगवता ये सुकृतिनः। किमाश्चर्यं तत्र त्रिभुवनपते ? मां रघुपते? दुरात्मानं रक्षन् प्रकटयकृपामद्भुततमाम्११

आपने गजेन्द्रको, प्रह्लादको तथा रावणके भाई विभीषणको और भी अन्यान्य पुण्यात्मा भक्त व प्रेमियोकी रक्षाकी तो इसमे क्या आश्चर्य है ? परन्तु हे त्रिभुवनपति हे रघुपति ? मेरे जैसे दुरात्मा पापीके ऊपर अपनी उस अनूपम अद्भुत कृपाको प्रकट करिये, तब आपकी महिमाका सम्पूर्ण प्रकाश होगा ॥११॥

मदंहः सन्दोहं न लिखितुमलं लेखकशतैः शतैः कल्पाना मां दमयितुमलं नान्तकशतम्। भवेयुर्मे मञ्चाः किशलयमयाः सर्वनरकाः कटाक्षात्ते नान्या रघुतनय मन्निष्कृतिरतः१२

मेरे पापोके अपरम्पार समूहोको चित्रगुप्त जैसे सैकडो लेखक लिखते लिखते थक जायेगे परन्तु पार नहीं पायेगे। तथा सैकडो कल्पो तक सैकडोयम रज दण्ड देते देते थक जायेगे तो भी मेरे पापोकी शुद्धि नहीं हो सकेगी। परन्तु हे रघुकुल बिभूषण श्रीराम ? यदि आपकी कृपा कटाक्षका किञ्चिन्मात्र भी प्रसाद हमको मिल जाय तो भयङ्कर नरककी जलती हुई अग्नि भी मेरे लिए शीतल पुष्पोकी शैय्या जैसे सुखप्रद बन

जायेगे, हे नाथ ! आपके कृपाकटाक्षसे अतिरिक्त मेरे उद्धारका दूसरा कोई मार्ग ससारमें है ही नही ॥१२॥

न गायत्री जप्ता विधिरपि च संध्या न रचिता नवातृप्तिनीता सुरवरपितॄणां समुदया।
गुरूणां शुश्रूषावहितमनसा जातु न कृताकुतः काकुत्स्थ त्वच्चरणकमलाराधनकथा १३।

प्रभो ! न तो मैने गायत्रीका जप या पुरश्चरण ही किया है तथा न विधिवत् सध्यावन्दन व आराधना ही किया है, उसी प्रकार (मैने न तो देवताओको ऋपियोको एवं पितरौको यज्ञ, दान, स्वाध्याय तथा तर्पण आदिसे तृप्त ही किया है तव हे काकुत्स्थ ? हे ! रघुनाथजी ? आपके श्रीचरणकमलोके आरावनकी तो बात ही क्या पूछना ? १३॥

न दत्तं पात्रेभ्यो किमपिखरहन्तस्तवमुदेनजप्तं त्वन्नामक्षणमपि कदाचित्स्थिरधिया ।
भवदासानां वा पदनलिन सेवापि न कृतामया मोहावेशाद् भव विपिनमेवैवमटता१४।

हे नाथ ! आपकी प्रसन्नताके लिये मैने कभी सुपात्रोको दान नहीं दिया है । कभी एकान्तचित्तसे बैटकर आपके मङ्गलमय नामका भी जप नहीं किया है । प्रभो ! क्या कहू ? जिसप्रकार मोहावेश मे मस्त होकर ससाररूपी घोर जगलमे प्रेमपूर्वक भटकता हूं उस प्रकार प्रेमपूर्वक आपके चरणानुरागी सेवकोके पादारविन्दोकी सेवा मन लगाकर कभी स्वप्नमे भी मैने नही की है ॥१४॥

किमन्यद्वा ब्रूयां मदकृतमघं नास्ति भुवनेष्विदानीमप्येषो न विरमति पापाद्धतमतिः ।
अतः सर्वेश? त्वं मयि रघुपते यद्यकरुणोममावसो भूयान्निरयचयमाचन्द्रमिहिरम् १५

हे नाथ मै और क्या कहू मेरे जैसा पापकरनेवाला तो त्रिभुवन मे भी कोई नहीं है, इतना पाप करते हुए भी आश्चार्य तो यह है कि पाप करते करते मेरी बुद्धि ऐसी नष्ट हो गई है कि अभी भी पापकर्म छोडना नहीं चाहती है । यह ऐसा नीच प्रवृत्ति वाला है तो भी पतीतोद्धारक श्रीराम इस पर यदि हे सर्वेश्वर प्रभु श्रीरघुनानजी यदि आपकी करुणा मयी कृपा इस दीनपर नहीं हुई तो जब तक ससारमे सूर्यचन्द्र रहेगे । तब तक नाना प्रकारके घोर नरकोमे मुझे निवास करना पडेगा ॥१५॥

प्रलापैरेतैः किं बहुभिरिह मे निश्चितमिदं शृणुष्वैकं सत्यं शुभकरकटाक्षेण भवता ।
गृहीतो नाह चेद्रघुकुलपते ? नूनमसृजेद्विधाता मां शंके नरकनिकरैकोत्सवकृते ॥१६॥

हे श्रीराघवेन्द्र प्रभो अब विशेष प्रलाप केरनेसे क्या लाभ ? मैने तो अब जो निश्चय कर लिया है उसे ध्यानपूर्वक सुनिय । यह परम सत्य तथ्य यह है कि-यदि अपनी परम शुभकृपा कटाक्षद्वारा आपने मुझे ग्रहण नहीं किया यानी आपसे मेरा उद्धार नहीं हुआ तो हे रघुपते विधादा भी मेरे जन्मके विधान करने में शका करेगा कि-यह तो भयङ्कर नरकोमें निवास करनेमें ही खुशी मनानेवाला मेरे हाथमें कहाँसे आगया ॥१६॥

क्षणाल्लोकॉन् स्रष्टुं प्रभवति भवान् दग्धुमपिवा कृतंमर्भुक्तं यदि भुवि न नश्येद्ध्रुवमिति
रघुश्रेष्ठस्वामिन् जनमिममहो मोहयसि किं-कमोक्षे त्वां त्वं वा त्रिभुवनमयो योस्यामि कुत

हे नाथ महषि श्रीवाल्मीकिजीने भी आपके लिये "सर्वान्लोकान् सुसहृत्य सभूतान् स चराचरान् । पुनरेव तथा स्रष्टु शक्तो रामोमहा यशा" कहा है तो आप क्षणमात्रमे सभी लोकोका निर्माण कर सकते है तथा क्षणमात्रमे भस्म भी कर सकते है । तब किये कर्मोंका भोग किये विना नष्ट नही होता है तो यह सृष्टिके निर्माण तथा विनाशकी क्रिया कैसे हो सकती है ? हे रघुकुलशिरोमणी हे स्वामी ऐसी ऐसी बाते कहकर आप अपने जनको मोहमे क्यो डाल्ते है, आपतो कर्तु अकर्तुं अन्यथा कर्तुं समर्थ है । फिर मै आपका त्याग कैसे कर सकता हू और आप भी जब त्रिभुवनमय है तब मुझे छोडकर कही कैसे जा सकते है । अर्थात् किसी प्रकारसे मेरा स्वीकार तो आपको करना ही पडेगा ।।१७।।

स्व संकल्पायत्तस्त्रिजगदुद्योल्लासशमनः- समस्तैकाधारस्त्वमसि सकलाम्नायपठितः ।
कियत्ते मत् त्राणं दिनमणिकुलैकाभरण ? कि बलीयान् वा तस्मात्त्वदपि मम दुष्कर्ममहिमा

समस्त त्रिभुवनका उदय-पालन प्रलयादि सम्पूर्ण कार्योके आधार एकमोत्र आप हा है ऐसा वेदोने वर्णन किया है, तब श्रीरघुवशविभूषण राम? मेरा उद्धार कर देना, मेरी रक्षा करना आपके लिये क्या कठिन है ? परन्तु इतना वारवार त्राहिमा त्राहिमा करने पर कृपा नही करते है । इसका क्या कारण है ? क्या आपकी अनुकम्पाके बलसे भी मेरे पापोकी महिमा बलवती है ? ।।१८।।

ददौ प्राणान् ग्राव्णे तवचणपंकेरुहरजः कृतः सेतुः सिन्धावहह भवता ब्राह्मणशिशोः ।
मृतस्यासीस्त्वं श्रीरमण नवसंजीवनसुधा न मामेकं त्रातु कथमिह भवान् कोबलमलम् १९

आपके चरणकमलकी धूलीने पथ्थरकी प्रतिमा अहल्याको प्राणवती बनाई, आपने अगाध अपार समुद्रपर सेतु पुलबांधकर आश्चर्यकर दिखाया, मरे हुए ब्राह्मणकुमारको अपनी सजीवनी सुधासे पुन जीवन प्रदान किये प्रभो ! ये सब आश्चर्यमयी लीलाये तो आप कौतुक रूपमे ही कर सकते है, केवल मेरी रक्षा करनेका ही आपमें सामर्थ्य नहीं है, तब फिर आपकी महिमा ही क्या रही ? ।।१९।।

शिलायांप्राणस्थापनन उदधौ सेतुकरणात् सुरक्षाभृत्सारप्रमथपतिकोदण्डदलनात् ।
सभीके तत्तादृक् दशमुखमुखारातिदलनात् तवायोध्यास्वामिन् मदवनमिदं किं गुरुतरम् २०।

हे स्वामिन ! मै आपसे एक प्रश्न पूछता हू आप ही खूब विचारकर उत्तर दीजिये । प्रभो पत्थरमें प्राणस्थापन करनेसे, समुद्रपर सेतु बांधनेसे और सुरक्षाके धारण करनेमें सार-रूप शकरके धनुषको विचलितकर देनेसे तथा सभीको रुलानेवाले रावणके भयसे भयभीत विभीषणकी रक्षा करनेके लिये दशानन जैसे महाभयङ्कर शत्रुका दलन करनेसे भी अयोध्या-नाथ प्रभु श्रीराम ? क्या मेरा रक्षण करना आपको भारी लगरहा है ? ।।२०।।

ध्रुवं दुःखोदर्कोद्विपयसुखसेवा निरतमा-भवत्येदं साक्षादपि हतमनो मुह्यति मुहुः ।
भवन्मायागैवं व्रतबलवती नर्तयति माम् खरारे सा हेला बत भवति हाला मम पुनः२१

प्रभो ! भयङ्कर दुःखो को सहन कर लेना अच्छा है, परन्तु विषय सुख भोग करना अच्छा नही है इसका प्रत्यक्ष अनुभव करते हुए भी मेरा मन पुनः पुनः विषय विलास मे ही निमग्न रहता है, इसका कारण केवल आपकी महान् बलवती माया ही है, जो इस प्रकार बारबार मुझे नचाती रहती है, प्रभो ! आपकी यह लीला आपके लिये खेल है कौतुक है परन्तु मेरे लिये दुर्वार विषका काम कर रही है, प्रभो ! कृपा करे अब जैसे भी हो इस आपकी दैवी माया के चक्कर से दास को छुडा लीजिये ॥२१॥

भ्रमन्तः श्रूयन्ते घनविषयगम्भीरजलधौ यथा यादोरूपा विधिशिवमुखा मोहित धियः २।
अहं ता त्वन्मायां कथमिव तरिष्यामि कृपया-विना ते सुधात्मा नलिनदलशंकाशनयन।२

यदि आप कहे कि तब तुम उस माया के चक्कर से निकल क्यो नही जाते हो, तो दास की प्रार्थना है कि आपकी इस प्रबलतम माया के गम्भीर अपार समुद्र मे जलचरो के समान मोहितमति होकर ब्रह्मा, शिवादिक जैसे देवाधिदेव भी निरन्तर विमूढ होकर चक्कर काट रहे है, ऐसा महापुरुषो के मुख से सुना जाता है तब मेरे जैसा पामर जीव आपकी इस दैवी माया के पञ्जे से हे कमल नयन ! आपकी कोमल कृपा कटाक्ष के बिना कैसे तर सकता हू ? ॥२२

हठादाकृष्यैवेन्द्रियकुलमिदं मानसमनारतं गाहं गाहं विषयगहनानिद्रवदहो ।
भ्रमत्येवं स्वैरं प्रबलतरमोहोत्कटतया करिष्ये किं वाहं दशरथमहीपालतनय ? २३॥

हे श्रीदशरथ महीपालतनय श्रीदशरथराजकुमार ! प्रभो ? ये इन्द्रियो का समूह मेरे मनको जबरदस्ती हठ पूर्वक अपनी ओर खीचकर विषय विलास के गहनवन मे गहरे घनघोर झाडियोमे लेजाकर कुत्ते की तरह महा प्रबल मोहमाया के वश मे भटकाता रहता है, प्रभो ! मै क्या करु ? मेरा तो कुछ भी वश नही चलता है ॥२३॥

दुरालापान् वक्तुं स्फुरति रसना नाम नहि ते असारेसंसारे शुभममृतदानैकनिपुणम् ।
श्रुती दुष्टादन्तश्च चपले तावककथा-सुधासारैर्हर्तु प्रचुरभवतापं न भवतः ॥२४॥

हे नाथ ! क्या करूं ये इन्द्रियाँ मेरा कैसी दुर्दशा कर रही है वह मै आपसे निवेदन करता हू । ये मेरी रसना जीभ खराब खराब बाते तो खूब करती है परन्तु असार संसार सागर के भयङ्कर रोग का छुडाने वाले दिव्य अमृत स्वरूप दान देने मे परम प्रवीण आपके नामका कीर्तन नही करती है । ये कान भी आपके दिव्य मङ्गलमय गुणानुवाद आपकी कथा नही सुनते है जो भवताप का कष्ट कभी न भोगना पडे ऐसे अमृत के भी अमृतसार स्वरूप आपकी कथा सुनना छोडकर रातदिन दुष्टजनो की ही बाते सुना करते है ॥२४॥

दृशोर्द्वन्द्वं दुष्टं विषयमपि द्रष्टुं मृगयते-तमूर्ति भद्रान्ते रुचिरशरचापाङ्कितकराम् ।
वपुस्तावच्छीघ्रं परिचलति दुष्कर्म करणे न ते कैङ्कर्ग्येहा रघुरमण? मज्जामि निरये २५॥

हे श्रीरघुनाथजी ! मेरी और भी दुर्दशा सुनिये ! ये मेरी आखे दुष्ट विषयवर्धन करनेवाले दृश्यो को तो बार बार देखना चाहती है परन्तु धनुषबाण दिव्य आयुध धारण किये हुए आपकी परमसुन्दर कल्याणमयी मूर्तिका दर्शन करना नही चाहती, और मेरा यह शरीर भी भयङ्कर दुष्कर्म करने मे तो तुरन्त लग जाता है, परन्तु आपके कैङ्कर्य सेवाशुश्रूषाका दिव्यसुख लेना नही चाहता, प्रभो ! मै तो इस प्रकार सब तरह से नरक मे ही डूब रहा हूं ॥२५॥

पतित्वा कामाग्नौ ज्वलतिमनएतच्छलभवद्विधत्तेत्वद्ध्यानामृतसरसिलीलां न झषवत् ।
म सीनहयेरो ते भाति परिहापार महते मपेर्दत्वन्नाया मधुमहिममक्षस्यनटनम् ॥२६॥

मेरा यह मन कामाग्नि मे गिरकर कीडा फतीगा के समान जल रहा है परन्तु आपके स्वरूप सौन्दर्य के ध्यानामृत सरोवर मे मछली की भाँति लीलाविहार नही करता है प्रभो! आपकी माया के वश मे होकर मेरा यह नाचना-चना यदि सच पूछिये तो श्रीसीताजी के सहित आप दोनो का महान् परिहास करानेवाला ही होगा। इसलिये भी आप मेरी रक्षा करके अपने सुयश की भी रक्षा कर लीजिये ॥२६॥

मनः कामक्रोधाद्यरिगणपराभूतमभवद् हृषीकालीबद्धा विषयमयकारानिवसने ।
अहं मग्नोगाधप्रतिभयभवाधाधुकहरे ? हरे सीतानाथ ? त्रिजगदधिनाथावकृपया ।२६।

हे हरे! मेरा मन कामक्रोधादिक शत्रुओ से पराभूत होकर इन्द्रियो के जाल मे बँधकर विषय भोगरूपी कारागार (जहल) मे निवास कर रहा है। अत प्रभो! मै अगाध भयकर अन्धकार के भय से भयभीत होकर भटक रहा हूँ। हे सीतानाथ! हे त्रिभुवन के स्वामी श्रीराम! यह आपकी कृपा न होने के कारण ही मेरी दुर्दशा हो रही है अत आपको कृपा अवश्य करनी चाहिये ॥२७॥

भवल्लीलोद्यानं हृदयमभितो दह्यत इदं ज्वलत्कामक्रोधात्मकदवशिखज्वालपटलैः ।
सुधाधारावारोस्तवनयनपद्मोच्चलपरात दयालोकाकारैः सभय समयेऽस्मिन्रघुपते २८

हे दया निधान! मेरा यह हृदय आपकी लीला विहार की सुन्दर बगीचा फुलवारी है जो चारो ओर से काम क्रोधरूपी अग्नि की लपटो से धाँय धाँय जल रही है। हे रघुनाथ जी! आपकी दयारूपी अमृतधारा की वर्षा बरसाकर अपनी कृपा कटाक्ष द्वारा उसको शान्त शीतल करने का यही सुन्दर अवसर है। अत हे नाथ! अपनी दया दृष्टि की मूसलाधार वर्षा कर अब मेरे जलते हुए हृदय को तुरन्त शान्त कर देने की कृपा करे ॥२८॥

भवत्केलीयोग्याहृदयनलिनी क्षुभ्यत इयं प्रकामं कामाद्याह्वयघनमदोन्मत्तकलभैः ।
स्वसान्निध्यादेतान् प्रसभमभिनिर्धूयसहसा तवेदं स्पष्टार्थं घटय रघुसिंह?त्वमधुना ॥२९॥

हे प्रभो! काम क्रोधादिक हाथियों द्वारा आपकी केली क्रीडा करने योग्य मेरी यह हृदय रूपी कमलिनी नष्टभ्रष्ट की जा रही है, इस समय यदि आपकी सान्निध्यता उपस्थिति हो जाय तो रघुकुलसिंह यह आपका नाम सार्थक यानी स्पष्ट हो जायगा अत इस समय सहसा यहा पधारकर तुरन्त इन सबको भगा देनेकी कृपा करके अपने नाम को सफलकर दिखाइये ॥२९॥

मदीया प्राचीना परिगणितकर्मौघजनितां भवद्ज्ञानानन्दात्मकविमलमूर्ते जवनिकाम् ।
शरीराक्षार्थत्वेनच परिणतान्ता गुणमयीं त्वदीयां माया मां रघुकुलपते तारय विभो ॥३०

हे रघुकुलपते! श्रीराघवेन्द्र प्रभो! यह आपकी माया जो मेरे किये हुए प्राचीन पुरातन कर्मो के फल भोग उत्पन्न हुई है ऐसी मानी जाती है। जो आपके निर्मल ज्ञान सच्चिदानन्दस्वरूप को छिपातेवाली पडदा सरीखी कही जाती है। तथा जो शरीर की रक्षा के व्याज के बहाने से त्रिगुणमयी बनकर मुझे ससार मे डूबा रही है, हे सर्वव्यापक प्रभो! कृपा करके उस अपनी माया से मेरा उद्धार कर दीजिये ॥३०॥

कदर्य्यः कामात्मा कठिनहृदयकातरगतिः, मदासत्यासूयांकपटदुरहङ्कारजनिभूः ।
शठः क्रूरः पापी भवजलधिमेतं कटुरहम्–कथं तीर्त्वा प्राप्स्ये तवचरणसेवां रघुपते ॥३१

हे रघुपते! महान् लोभी कजूस, कामात्मा, कपटी और अहकारी मद–ईर्षा-कपट–अहङ्कार तथा महान् क्रूर हृदय वाला इतना ही नही दुष्टबुद्धि शठ पापी सभी प्रकार के पापो की जन्म-भूमि हू ऐसा मै भवसागर मे पडा हूँ तो मेरा जैसा कटुस्वभाववाला इस दुस्तर ससारसागर को तर कर आपके श्रीचरणकमलो की सेवा कैसे प्राप्त कर सकूँगा ? ॥३१॥

मनः सूत्रंगृह्णन् भवसदसि तुल्य प्रतिमया–चिरादेवं मायामयजवनिकान्तिर्हततनुः ।
भवान् लीलाशीलो रघुकुलपते नाटयतिमाम्-कदा वा नाट्यान्ते मम तव पदाब्जाभ्युपगमः।

हे लीलवर नटवर! संसाररूपी इस नाटकशाला मे आने ही समान आपकी रुचि रखनेवाली मायादेवी अपने नये नये पडदे लगाकर मेरे मन की डोरी पकडकर मुझे अपने वश मे रखकर नाना प्रकार के नाच नचाती है, परन्तु आप कहाँ छिपकर ये तमाशा लगा रहे हैं कुछ पता नही नटाधीश हे प्रभो! अबतो इस नाटक मे नाचते नाचते मै थक गया हूँ न जाने कब आप का यह नाटक समाप्त होगा और कब मुझे आपके श्रीचरणारविन्दोंकी प्राप्ति होगी ?॥३२॥

अरक्षन् रक्षन् वा दशवदनवैरिन्! मम गतिः तवैवान्या दैवानहृदि न गणये जातु चिदपि।
असौख्यं सौख्यं वा मम भवतु सर्वं त्वनुभवाम्यकीर्तिः कीर्तिर्वा तव खलु न तस्मिन् वद प्रभो

आप रक्षा करे अथवा न करे हे दशमुखरावण के वैरी! मेरी तो एक मात्र आप ही गति है, दूसर आपके विना किसी भी देवताओं को मै अपने हृदय मे कुछ भी नही गिनता हू। इसलिये मुझे चाहे सुख हो या दुख हो, जो कुछ भी भले बुरे अनुभव होना हो होते रहे, मै धैर्यपूर्वक अनुभव करता रहूंगा, परन्तु एक बात आपही खुब सोच विचार कर कहिये कि इससे आपकी अपकीर्ति होती है कि सुकीर्ति ? यह भी तो आपको ही विचारना है ? ॥३३॥

मुहुःक्रोशन् श्रान्तो दशमुखरिपो त्वामहमणुप्रमाणं कारुण्यं विलपति मयि त्वं न कुरुषे।
अपारो घोरोऽयं पुनरहहसंसारजलधिर्विमूढः किंकुर्यां विषय निचय कुण्ठितमतिः ३४

हे दशानन रावण के दुश्मन श्रीराम! मै इस प्रकार रोते रोते बारम्बार दीनतापूर्वक चिल्लाते चिल्लाते थक गया हू परन्तु आपको मुझपर अभी तक किंचित् मात्र भी दया नही आती है। एक तरफ यह अपार घोर संसार समुद्र और एक तरफ आपकी दयाका एकदम अभाव इस बीच मे सर्वप्रकार से दीनहीन विमूढ विषयो के वश मे पडा हुआ भ्रष्ट बुद्धिवाला मैं अनाथ कर ही क्या सकता हूं ? ॥३४॥

ज्वलज् ज्वालामाले प्रविशतु जनोऽयं किमनले, गिरेः शृंगात्तुङ्गात्पततु किमथइच्चूर्णिततनुः
शिरो वै तद्भित्वा किमिह शिलया मूर्ध्नि करतु क्षमाकन्याप्राणेश्वर न कुरुषे हन्त करुणाम्
समूलां किं वोत्पाटयतु जन एषोऽद्य रसनां, शिलां कण्ठे बध्वा पततु किमगाधे जलनिधौ।
मुहुःसोरस्ताडं तव किमथवा क्रन्दतु पुरो न मे शान्तिः सीतारमण तव कारुण्यविलयात्

हे अत्यन्त क्षमाशील धरणी कुमारी श्रीजानकीजी के प्राणश्वर प्रभो! इतना रोने चिल्लाने पर भी जब आप कृपा नही करते हे तो क्या यह दुखियारा प्राणी धधकती हुई अग्नि की ज्वालाओं मे प्रवेश कर जल जाय? अथवा पर्वत के ऊँचे शिखर पर चढकर नीचे शिलाओ पर गिरकर शरीर को चूरमचूर कर दे, अथवा पत्थरो से टकरा टकरा कर शिर के टुकडे टुकडे करदे, आखिर क्या करे? क्या अपनी जीभ को जड से खीचकर मर जाय अथवा एक भारी पत्थर गले मे बांधकर अगाध समुद्र मे गिरकर डूब जाय, अथवा वारंवार छाती कूटकूट कर आपके सम्मुख विह्वल होकर रोया करे। हे श्रीसीताराम प्रभो! मै सत्य सत्य कहता हू आपकी कृपा विना मुझे किसी प्रकार और कही भी किसी के द्वारा शान्ति नही मिल सकती है ॥३५-३६॥

न जेतुं शक्नोमीन्द्रियसमुदयं नापि मनसा, स्थिरेण त्वा ध्यातुं मरकतमणी मञ्जुलतनुम्।
न कर्मानुष्ठातुं विधिवदपि भास्वत् कुलमणे भवत्पादाम्भोजं शरणमभजं केवलमहम् ॥३७॥

हे सूर्यवंशशिरोमणे! मै अपनी इन्द्रियो को जीतकर वश मे नही कर सकता हू। तथा न तो स्थिर एकाग्र चित्त से आपके नीलमणी के समान मधुर मनोहर मञ्जुल छविका ध्यान ही लगा सकता हूं, उसी प्रकार अनेको प्रकार के धर्मकर्मो के अनुष्ठानो को भी मै विधिपूर्वक करने म समर्थ नही ह, मै तो आपके श्रीचरणकमलो का केवल भजन ही कर लेता हू यही बहुत है ॥३७

न धर्मे नो कामे न च धनचये नैव जगतीगतित्वे कामं मे भवतु भवितव्यं विधिवशात्।
तथापि श्रीराम प्रतिजननमङ्गीकृत कृपः, तव श्रीपादाब्जे दृढपरमभक्ति वितर मे ॥३८

हे प्रभो ! मैं बड़ा भारी धर्मात्मा बनजाऊ, मैं संसार का सम्पूर्ण धन सुख भोग प्राप्त कर लूं मैं महान धनाढ्य होजाऊ अथवा सम्पूर्ण पृथिवी का एक मात्र स्वतंत्र सम्राट बन जाऊं इन सब की मुझे कुछ भी आकांक्षा नहीं है ये तो प्रारब्ध वश जो कुछ होना होगा, होता रहेगा परन्तु मैं तो दीनों पर अहेतुकी कृपा करने की व्रत को स्वीकार किये सर्वसमर्थ हे श्रीराम ? इतना ही चाहता हू कि आप कृपा कर मेरा निवेदन स्वीकार करके मेरे कर्म-प्रारब्धानुसार जिनजिनयोनियो मे मुझे जाना पडे उन उन योनि यानी जन्म मे आप अपने श्रीचरणारविन्दो की परमदृढ परा-भक्ति प्रदान कर मुझे कृतार्थ कर दें ॥३८॥

पशुत्वं पक्षित्वं तृणतरुलताश्मत्वमपिवा, कृमित्वं वा रक्षोनरसुरपिशाचत्वमथवा ।
यदि स्याद्यद्यन्मे जननमपि सर्वत्र भवतु त्वदीये पादाब्जे रघुकुलपते भक्तिरचला ।३९॥

हे श्रीरघुवंश विभूषण ! मुझे पशु-पक्षी घास वृक्ष-लता पत्ता अथवा प्रारब्धवश पत्थर ककड जो कुछ बनना पडे कोई चिन्ता नहीं है । कृमी-कीट-राक्षस-मनुष्य-देव-दैत्य असुर अथवा पिशाच इत्यादि जो जो जन्म लेना पडे जो जो शरीर धारण करना पडे कर लूंगा, इस लिये तो आपसे कुछ भी कहना नहीं है, कहना तो केवल इतना ही है कि जहां जहां मेरा जन्म हो जो जो शरीर धारण करना पडे करलू परन्तु हे नाथ ! उन उन स्थानों मे आपके श्रीचरणकमलोका प्रेम, आपके श्रीचरणो की अविचल भक्ति मेरे हृदय मे अखण्ड बनी रहे यही वारम्वार प्रार्थना है॥३९॥

पृथिव्यां पाताले नभसि नरकेऽन्धे तमसिवा-वसामि स्वाकर्म श्रीरघुरमणकर्मगुणतः ।
तदास्तां मत्प्राणोत्क्रमणसमये त्वत्करुणया, त्वदङ्घ्र्यब्जद्वन्द्वस्मरणमनिरोधं भवतु मे ४०

हे रघुकुल रमण श्रीराम ! मैं अपने कर्मानुसार पृथिवी-मे पाताल-मे आकाश-मे नरक-मे घोर अन्धकार मे जहां कहीं भी वास करू पर करुणामूर्ति प्रभो वहां मेरे प्राण छूटते समय आपके युगल श्रीचरण कमलो का निरन्तर बाधा रहित स्मरण चिन्तन होता रहे, एक क्षण भी आपका विस्मरण न होने पावे ऐसी कृपा करिये ॥४०॥

कदा वा त्वां ध्यायन् नवजलधरश्यामलतनुम् शरद्राकाचन्द्रप्रतिभमुखाम्भोरुहरुचिम् ।
वसानं कल्याणाम्बरमचलविद्युच्छतनिभं विमोक्ष्येऽहं देहं भुवनमुपरामेत्यनुलयम् ।४१॥

हे प्रभो ! आपके नवीन मेघ के समान श्याम सुन्दर शरीर का ध्यान करते हुए शरद् पूर्णिमा के चन्द्रमा को भी लज्जित करनेवाले मनोहर मुखारविन्द की दिव्य छटा का दर्शन करते हुए सैकडो विजलियों का तेज जिसमे स्थिर होकर बैठा है ऐसे पीताम्बर को धारण किये हुये सर्वकल्याण स्वरूप आपकी मनमोहनमूर्ति का दर्शन करते हुए मेरा यह शरीर मैं कब छोडूंगा जिससे फिर दूसरे किसी लोक मे न जाकर आपके ही दिव्यधाम साकेत मे मेरा लय यानी नित्य निवासहो क्योकि आपके विषय मे आचार्य श्रीका कथन है कि "सत्यसन्ध प्रतिश्रुत्य प्रपन्नायाभयं स्वयम् । निवर्तयेद्भये नैनं श्रीराम श्रितवत्सल" तो आप हमे भयजनक संसार मे निवर्तित न करे सब प्रकार से निर्भय श्रीचरणो मे ही आश्रय दे ॥४१॥

असूनां चेत्येषां गमनसमये राघव वदन् मुहुर्मा भैरित्येष्यसि शरभमं मे परिसरम् ।
धनुर्घण्टाघोषः श्रवणपरिभूतान्तकभटाः किरीटी क्वचित्त्वं कटिपटिराजाम्बूनदपटः४२॥

प्रस्तुत स्तोत्र रत्नप्रणेता आचार्यजी सर्वेश्वर श्रीरामजी मे अपने भावको व्यक्त करते हैं या भक्त भावना करता है कि मेरे इन प्राणों के जाते समय मैं श्रीराघव श्रीराम एसा वारवार बोलता रहूंगा उस समय आप डरमत, मतडर मैं आगया इस प्रकार अभयवाणी बोलते हुए तुरन्त मेरे पास पहुंच जायेंगे । उस समय आपके धनुष की टंकार ध्वनि घंटानाद सुनकर यमराज के भट [illegible] से [illegible] पीताम्बर धारण किये हुए आपके मनोहर स्वरूप का दर्शन कर परमानन्द प्राप्त कर लूंगा ॥४२॥

स्मरेयं क्वचित्त्वां ... तनुलो जपेयं क्वचित्त्वां कुशलतनुर्नाम शुभधीः ।
भजेयं क्वचित्त्वां ... महिलो भवेयं ... ॥४३॥

आचार्य पुनः अपनी भावना को स्पष्ट करते हैं ... भक्त पुनः ... कि—प्रभो! मेरे शरीर का भय होता होगा तब उस समय मैं ... कि आपका ही स्मरण करता रहूँगा? क्या उस समय है कुशलत्व के पिताजी! मैं आपका ... जपता रहूँगा? क्या कभी आपका भजन करते हुए संसार के पुनः पुनः ... हो जाऊँगा? प्रभो! क्या कभी ऐसा भी समय आयगा कि मैं आपके श्रीचरणकमलों में ... आपका शरणागत होकर प्राप्त करूँगा ॥४३॥

स्वसन्नास्ते श्रीधात्स्फुरदशनदंष्ट्राधरपुटः कठोरः ... स्मृतमदयकोटिर्यमभटाः ।
प्रतिक्षन्ते कालं धृतविविधघोरप्रहरणाः शरण्यं धन्यस्तेऽहं तव पदसरोजे रघुपते ॥४४॥

मेरे भयङ्कर पापों को स्मरण कर यमराज के करोड़ों कठोर ... थर थर कांपते हुए लम्बे लम्बे श्वास लेते हुए, दांत कड़ कड़ाते हुए, ... हुए, अनेकों प्रकार के घोर शस्त्र लेकर ... की प्रतीक्षा ... परन्तु हे रघुवर्य्य! मैं तो आपके श्रीचरणकमलों का आश्रय लेकर ... हूँ ॥४४॥

मणिर्जीवश्चिह्नं ... शावकगतिः तमश्चाहंकारो ... हृदयपदम् ।
गदा बुद्धिर्भूतान्यपि ... वनमाला ... वित्तं जयि ... पदम् ॥४५॥

कौस्तुभमणि जीवात्मा का चिह्न है। ... अङ्कुश ... चिह्न है, ... हंस की गति ... गति का चिन्ह है। अन्धकार तथा अहङ्कार को नष्ट करनेवाला तथा हृदय कमल को प्रफुल्लित करने वाला रथका पहिया चक्राकार ... चिह्न है। हृदय के अन्धकार तथा अहङ्कारको नष्ट करना, हृदय कमलको प्रफुल्लित करना, तथा शत्रुओं को विजयकरके गन्तव्य स्थान पर पहुँचाना, इस प्रकार का भाव प्रकट करने के लिये ... को सुखप्रद कमल—रथ तथा ... प्रभुने अपने श्री चरणकमलों पर धारण किया है। पाञ्चभौतिक प्राणियों की बुद्धि को शुद्ध करना तथा ... का मद ... करने के लिये आपने गदा का चिन्ह धारण किया है। ... जीवों को अपने वश में रखने के लिये ... का चिन्ह तथा विषय सुख लालसा निवारण कर दिव्यसुख सच्चिदानन्द प्रदान करने के लिये "वनमाला" चिन्ह धारण करके आपने यह स्पष्ट दिखा दिया कि सम्पूर्ण सचराचर एवं लोक परलोकका वैभव मेरे ही हाथ में है। जब सब कुछ आपका ही और आप के ही अधिकार में है तब हमारा क्या है जो हम आपको अर्पण करने की धृष्टता करें ॥४५॥

अवष्टभ्यैवात्तं त्रिणतमहिराट् भोगसुभगं दधानं संवर्तज्वलनशिखिमर्धेन्दु विशिखम् ।
परं ज्योतिः पीताम्बरधरमनारोदितकृपम् पुरः प्रादुर्भूयान्मम किमपि देहान्तसमये ॥४६॥

मेरे देहान्त के समय शेषनाग के समान तीन स्थानों में झुककर बाहु पर लिपटे हुए धनुष को धारण किये अर्धचन्द्र धारण करनेवाले महाप्रलय की ज्वाला वाले भगवान् शंकर के समान तीक्ष्ण बाण को लिये हुए तथा करोड़ों सूर्य के समान तेजस्वी ... पीताम्बर धारण करने वाला कोई परम तत्त्व (सर्व विश्व नियन्ता सर्वस्वरूप सर्वेश्वर श्रीरामतत्त्व) मेरे सन्मुख प्रकट हो यही मेरी प्रार्थना है ॥४६॥

सवामश्चापाङ्गः ... शरः पाणिरनिशं मुखं तद्राजीवायतनिपुणकान्तनयनम् ।
स्मितः श्रीः ... चरणयुगलं ... मृदुलं वपुस्तत्कस्यापि स्फुरतु मदसूइडीनसमये ।

वाम भाग में श्रीकिशोरीजी हों तथा ... हाथ में धनुष हो, दाहिने हाथ में बाण हो, कमलदल के समान ... नयन हों, मन्द मन्द मुसुकान माधुरी युक्त सुन्दर मुख जो श्रीकिशोरी जी हों, तथा ... परमानन्द

बरसाते हो, ऐसा दिव्य कल्याणमय उज्ज्वल अंग मेरे प्राणों को उनके प्रयाण करते समय मेरे आगे प्रकट होकर मुझे धन्य बनाने की कृपा करें ॥४७॥

असाकेताधीशरघुकुलसमुद्रविधुभिरकौशल्याधन्यैरमरकतसंकाशतनुभिः ।
अधानुष्कैरक्ष्मादुहितृवदनाम्भोजमिहिरैरनामाख्यैर्नस्तैरलमलमलं दैवतगणैः ४८॥

जो साकेतधामाधीश्वर नहीं है, जो श्रीरघुकुल को प्यारा नहीं है, जो कौशल्याजी का लाल नहीं है, जो मरकत मणि के समान श्यामसुन्दर नहीं है। जो धनुष को धारण किये हुए नहीं है, जो श्रीधरणीपुत्री सीताजी के मुखकमल को विकसित करने वाले सूर्य नहीं है, तथा जिसका 'श्रीराम' ऐसा नाम नहीं उस देवता से हमको कोई काम नहीं है, उससे तो हम पूर्ण है, पूर्ण हे, पूर्ण है, अर्थात् शरणागत श्रीरामजी के शरणाश्रित जीवों को अन्य सामान्य देवों के आश्रयण की कोई आवश्यकता नहीं है अतः सर्वाभयप्रद सर्वेश्वर श्रीरामजी के शरण मे मै हू तो अन्याश्रयण क्यों करूं यानी अन्य समीचीन समूह हमारी रक्षा में असमर्थ है केवल श्रीसाकेताधीश ही समर्थ हे ॥४८॥

मदाम्नायं मन्त्रो मम कुलगुरुं सत्कुलधनं मदिष्टं मद्भाग्यं मम परमविद्या मम गतिम् ।
मदीशं मान्तःस्फुरदवनिसुतेशप्रियजनं ...ः रघुपतिपदाम्भोजयुगलम् ४९।

मेरा जो कुछ धन है इन्हीं श्रीयुगल चरणों से है, मेरा जो कुछ है वह श्रीयुगल चरण है। मेरे कुलगुरु मेरे कुल का धन दिव्य, मेरा परमप्रिय इष्ट, मेरा भाग्य मेरी परमश्रेष्ठ विद्या, मेरी परमगति, मेरे आराध्य ईश्वर मेरी मनकामना पूर्ण करनेवाली दिव्य चिन्तामणी, तथा मेरे हृदय मे आनन्दसिन्धु उमगाने वाली दिव्य प्रेममूर्ति एवं मेरे जीवन प्राण श्री सीतापति राघवजी के श्रीयुगलचरण कमल ही है ॥४९॥

त्वदेकं शरणं मे त्वदितरविहीनं मम हृदयं त्वदन्नं त्वद्येनामितनिखिलाशापरिकरम् ।
त्वयि न्यस्तप्राणं तव चरणपद्मैकशरणं तदस्तं त्वद्धामं रघुकुलपते मा त्यज विभो ॥५०॥

हे श्रीरघुनाथजी ? आप ही एक मात्र मेरे आश्रय है। आपके बिना अन्य जो कुछ भी है मेरे हृदय का वह सब कुछ शून्य बना हुआ है। आपके बिना अन्य जो कुछ है आप ही से अनुप्राणित है। मेरी सम्पूर्ण आशा अभिलाषा आपकी कृपा द्वारा ही पूर्ण होती है। मेरे प्राण आप ही के श्रीचरणो मे समर्पित है। मै स्वयं भी एकमात्र आपके ही श्रीचरणकमलकी शरणागत हूँ। आप ही मेरे सर्वस्व धन हैं। मैं स्वयं भी आपका ही जन हूँ तथा आपके ही चरणाश्रय मे रहनेवाला हूं। ऐसे केवल आपके आधार पर रहनेवाले चरणाश्रित दासानुदास का हे विभो ! कभी भी त्याग न करिये, बस यही प्रार्थना है ॥५०॥

धनुर्बाणौ गृह्णन् करकिसलयाभ्यां तनुरुचा तिरस्कुर्वन् सद्यः कुवलयवनीनां रुचिमिदम् ।
परिष्कुर्वन्वक्त्रं स्मितलवविलासेन मधुरं कदा वा मत्स्वामी शरणिमनयोरेष्यसि दृशोः ५१

अपने दोनो कर कमलो मे धनुषबाण धारण किये हुए हो, अपनी शरीर की कान्तिसे सुन्दर पुष्पवाटिका की मनोहर शोभा को लज्जित करते हुए, किञ्चिन्मात्र मन्द मन्द मुसकान से सुशोभित मुखारबिन्द से मधुरता को भी सुमधुर बनाते हुए हे मेरे स्वामी ! हे परमकृपालु ! मेरे नयनो द्वारा आप दृष्टिगोचर होने की कृपा कब करोगे ? ॥५१॥

वहन्ती कोटीरं स्फुरदरुणकोटिप्रतिनिभं हसन्ती स्वद्युत्या त्रिदशपतिनीलक्षितिधरम् ।
धरन्ती कोदण्डं करकमलयोर्बाणमपि ये वसन्ती व्यक्तिः सा भवतु हृदये कापि मधुरा॥

करोडो अरुणो की अरुणाई को लज्जित करनेवाली सुन्दर ललित लालिमा धारण करनेवाली, अपनी नीलरत्नमणी के समान कान्ति से इन्द्रलोक की स्वर्गीय नीलिमा को भी हँसनेवाली, अपने कर कमलो मे धनुष और बाण को भी धारण करनेवाली वह कोई मधुर मूर्ति मेरे हृदय मे बसने वाली हो जाय, अर्थात् नीलाम्बुज श्यामल प्रभु मेरे हृदय मे बस जावे ॥५२॥

स्वभासामङ्कुरान्मृदुलनवदुर्वादलधिया लिहद्भिर्गाधेयाध्वरभुविपरीतो मृगगणः ।
शिखण्डी कोदण्डी धृतकनकदामैकवसनो मनस्यस्मिन् भ्रात्रास्फुरतु रघुवंशार्भकमणिः।५३

अपनी नवदूर्वादल कोमलकान्ति से श्रीविश्वामित्रजी की यज्ञ भूमि को हरी हरी बनानेवाले प्रभु के चारो ओर नये नये दूर्वाङ्कुर की भ्रान्ति से मृगगण घेर कर खडे हो गये है और बडे प्यार से चाट रहे है, ऐसे सर्वश्रेष्ठ शार्ङ्गधनुष तथा स्वर्ण के समान पीताम्बर वस्त्र धारण किये हुए अपने भाई लक्ष्मणजी के सहित श्रीरघुवंश - बालकों मे सर्वश्रेष्ठतम श्रीराम मेरे इस मन मे सदैव सुप्रकाशित होते रहे ॥५३॥

शरज्ज्योत्स्नाश्लिष्टेस्फुटकुवलयालीसुरभिते सिते गोदावर्य्या मृदुनि पुलिने सौम्यपवने ।
सुखासीनक्षोणीदुहितृतन श्रृङ्गारनिरतं रघुश्रेष्ठं चेतः स्मरवनजटावल्कलपरम् ॥५४॥

शरद्पूर्णिमा की चान्दनी छिटक रही है, कमलपुष्पों की सुगन्धी से दशों दिशायें सुरभित हो रही है, श्रीवरणीसुता जानकीजी के संग अत्यन्त आनन्द से श्रीकिशोरीजी के श्रीविग्रह के श्रृङ्गार मे लगे हुए हैं जटामुकुट तथा वल्कल वस्त्र धारण किये हुए है श्रीगोदावरी के शुभ्रमनोहर तट पर सुन्दर पुलिन के उपवन मे विराजे हुए श्रीरघुकुलशिरोमणी श्रीरामका हे मन ! तू निरन्तर स्मरण करता रह ॥५४॥

मनश्चापल्येन भ्रमसि गगने दिक्षटसितत्क्षणादुल्लङ्घ्याब्धीनथ विशसि पातालकुहरम् ।
न जाने का सिद्धिमिह रघुपतेरङ्घ्रियुगलं न किस्मस्मिन्नेव स्मरसि परमानन्दनिलयम्॥५५

रे मन ! तू अपनी चञ्चलता से आकाश मे उड रहा है, तथा दशों दिशाओ मे भटक रहा है, एक क्षण मात्र में समुद्र को भी लांघकर पाताल मे घुसता रहता है, परन्तु इस व्यर्थ व्यापार करने से तुमको न जाने क्या सिद्धि प्राप्त होती है, इससे तो अच्छा है कि तू यहीं अपने श्रेष्ठ पवित्र स्थान मे स्थित होकर अपने ही हृदय के भीतर श्रीरघुनाथजी के आनन्द भवन श्रीयुगल चरणारविन्दो का स्मरण किया कर, मेरे इतना सिखानेपर भी न जाने क्यो तू श्रीरामचरणो का स्मरण नही करता है ॥५५॥

त्यजत्वर्कोभानं निशितुहिनरोचिः परिहरत्वमुंज्योत्स्नामुच्चैस्त्वमरशिखरीस्थैर्यमपि वा ।
क्षमावा क्ष्मादेवी विसृजतु मनस्ते दशमुखप्रहर्तुः पादाम्भोरुहविरहगन्धोऽप्यनुचितः।५६

यदि सूर्यनारायण दिन का परित्याग करदे, यदि चन्द्रमा रात्रि को त्याग कर दे, यदि सूर्य चन्द्र दोनों अपनी अपनी किरणो का प्रकाश को छोड दे, यदि सुमेरु पहाड अपनी स्थिरता का त्याग कर दे, यदि पृथिवी माता क्षमा सहनशीलता त्याग कर दे तो भी हे मन ! दशमुख रावण को मारनेवाले श्रीराम के श्रीचरणो के क्षणभर वियोग की गन्ध का सहन करना भी अत्यन्त अनुचित है, यह निश्चित समझ ले । यानी स्वाभाविक स्वधर्मवाले सूर्य चन्द्र मेरु पृथिवी अपनेअपने प्रकाश स्थिरता या क्षमा को छोड नही सकते मानो कि वे अपने धर्म को छोड भी दे तो भी जीवों को अपना धर्म स्वरूप श्रीरामस्मरण या सान्निध्य का त्याग एक निमेषभर के लिये भी उचित नही ॥५६॥

वृथा कालो याति स्फुटितघटतो वारिनिगलत्यनुश्वासं चायुर्गणयति कृतान्तो दिनगणम् ।
अये चेतः साधुस्त्यजनमखिलं कामपटलं परित्यज्यायोध्यारमणचरणौ गच्छशरणम्॥५७॥

फूटे हुए घडे मे से जैसे धीरे धीरे पानी निकल जाता है वैसे ही तुम्हारी आयु का अनमोल समय वृथा ही नष्ट होता जा रहा है । प्रत्येक श्वास को गिन गिन कर काल कृतान्त दिन रात तुम्हारे आयु का हिसाब लगाता रहता है जहा तुम्हारी गिनती के श्वास पूरे हुए चट से तुम्हें पकड कर लेजायगा । इसलिए हे सज्जन चित्त ! तुम तो मेरी बात को मानकर तुमने जो अपने हाथों मे संसार भर का भार उठा रखा है उन सबको तुरन्त त्याग कर श्रीअवधविहारी प्रभु श्रीराम के श्रीचरणों का शरणागत हो जा ॥५७॥

प्रवालं प्रत्यग्रं श्रुतियुवतिसीमन्तपदवीरागाया: शान्तानां हृदयसरसीसारसमयम्।
मुदालिङ्गत्सीताकुचकलशकाश्मीरमधुरं कदा द्रक्ष्ये स्वामी तव रघुमणेः पादयुगलम् ॥५८

प्रभो! शान्त महात्मा सन्तों के हृदय सरोवर में पंकज मधुर प्रवालरूप का सार सर्वोत्तम स्वरूप जिन श्रीचरणों की लालिमा श्रुतिरूपा युवती के सीमन्त की शोभा बढ़ा रही है, (अर्थात् जो वेद वेदान्त का सार स्वरूप है।) श्रीजनकराज किशोरीजी जिन चरणों को बड़े प्यार से अपने हृदय पर धारण करती है एवं जिन चरणों का आलिङ्गन पाकर अत्यन्त प्रसन्न होती है, हे श्री रघुपति श्रीराम! हे मेरे स्वामी! आपके उन युगल श्रीचरणों का दर्शन मुझे कब होगा नाथ? ॥५८

रसादालिङ्गन्त्याः कमलनलिनचक्रादिरुचिरा यदीया जानक्या हरिमदविलिप्तेस्तनतटे।
प्रकाशन्ते रेखा जलजलटलेखाः सरलता तपस्याध्यङ्कं तद्रघुकुलवरेण्यस्य मृगये ॥५९

प्रसन्न भक्ति रस से श्रीजानकीजी का आलिङ्गन करने से जिनके हृदय में शंख-चक्र कमलादि रेखायें कस्तूरी और चन्दन से लिप्त होकर प्रकाशित हो रही हैं उस रघुकुल वरेण्य श्रीराम के चरणकमलों को मैं दर्शन चाहता हूँ ॥५९॥

जलक्रीडाचक्रे कमठपतिरब्धावहिपतिः सुखं शिश्ये शान्ता नागसतुलभरापुरितदिशाः।
धृते यस्मिन् ...... श्रीपदकमलं ते मृगयते ॥६०॥

उन प्रभु श्रीरामजी ने कृपा करके भूमण्डल पर श्रीचरणारविन्द पधराये तब पृथिवी का भार हल्का हो जाने से शेषनाग तथा कमठराज आनन्दित होकर आपस में जलक्रीडा करनेलगे दशो दिशाओं के दिग्गज सुखपूर्वक शयन करने लगे। शरणागत शरण्य श्रीरामजी के आनेसे सब निश्चिन्त होकर विश्राम करने लगे, हे प्रभो! मेरी ये दोनों आंखें भी उसी श्रीचरणकमल का दर्शन कर सर्वदा के लिये निश्चिन्त होना चाहती है ॥६०॥

न यज्ज्ञात्वा ज्ञेयं किमपि निगमे नो रसमयं न यद्ध्यात्वाध्येयं किमपि हृदयेन्यत्सुखमयम्
न यत्प्राप्त्वा प्राप्यं किमपि परमं क्वापि मृगये तदेवाहल्यादुष्कृतविदलनं पादनलिनम्॥६१

जिसको जानने के पश्चात् वेदों में कुछ भी रसमय जेगतत्त्व अवशिष्ट नहीं रहता है। जिसका ध्यान करने पर हृदय को सुखमय बनाने वाला कोई भी ध्यान शेष नहीं रहजाता है। जिसको प्राप्तकर अन्य कोई भी श्रेष्ठतम तत्त्व प्राप्त करना कहीं भी कुछ भी बाकी नहीं रहता है, अहल्या के दुष्कर्मों के पापों का विनाश करनेवाले उसी श्रीचरण कमलों को केवल उन्ही चरणो का मैं चाहता हूं ॥६१॥

अमूभ्यां नेत्राभ्यामपरिमितहर्षाश्रुतरलं भुजाभ्यामप्याभ्यां बहुलकुतुकोत्कीर्णपुलकम्।
परिरभ्योद्गाढं सफलयितुमेताजनिमहं रजः पूताहल्ये चरणकमले एव मृगये ॥६२॥

हे नाथ? निस्सीम आनन्द हर्षपूर्वक प्रेमाश्रु बहाते हुए इन्ही दोनो नेत्रोंसे मैं आपका दर्शन करूं। आनन्द से पुलकायमान होकर बहुत ही प्रसन्नतापूर्वक मेरी इन्ही दोनो भुजाओं से मैं आपका प्रेमालिङ्गन करके अपने इस मानवजीवन को धन्य धन्य करूं। मेरे जन्म को सुफल बनाते हुए जिन चरणो की रज से अहल्या पवित्र हुई केवल एक मात्र उन्ही श्रीचरणो की प्राप्ति की कामना करता हूं ॥६२॥

त्रयी राजीवाक्षी चिकुरनिकराकारजलधिः स्फुरत्सीमान्ताकृत्युपमितमहासेतुजलधिः।
अहल्यादेहालङ्करणपटवासद्युतिधराः परागा यान्त्वास्मान् भवतिमिरकूपक्षयकृतः ।६३

जिनके चरणकमल वेदत्रयी के मार्मिक रहस्यको दिखाने वाले दिव्य नेत्र कमल हैं। जिनके मुखकी डोडी चिकुरको गहिरापन महिमा का अपार समुद्राकार स्वरूपज्ञान कराता है, जिनके चरण की रज अहल्या के मस्तक पर सीमन्त में सिन्दूर की भाँति लगा कर संसार को दिखादिया कि अपार संसार से पार होने के लिये प्रभु के चरण की रजही महान् सेतु है। जिन चरण कमल

का पराग अहल्या के देहका अलकार वस्त्रादि महान् प्रकाशमान् बनकर वता दिया कि भवतिमिररूप अधेरे कुए का दु ख नष्ट करने के लिये केवल प्रभु के चरण कमल की रजरूपी पराग ही महान् समर्थ है अन्य कोई नही, वही आपके श्रीचरण हमारे संसार कूप के अन्धकार का क्षय करने वाले हों ॥६३॥

कदा वा कोटीन्दुद्युतिभरनिरासोद्यमधराः अहल्याघं मिल्लस्थलललितमल्लीसुमनसः ।
नखद्युत्याधूताऽपरिमितमनोध्वान्तनिचयः समग्रावग्राहं मम कवलयेयुर्नयनयोः ॥६४॥

करोडों कोटि चन्द्रमा की मनोहर ज्योति को परास्त करने के उद्यम मे लगे हुए अर्थात् करोडों चन्दमा की मनोहर छबिको लज्जित करनेवाले, अहल्या के पापो को मिलाकर उस अहल्या उद्धार के स्थलको पावन करनेवाली सुयशरूपी सुगन्धित रज से ललित पुण्यस्थल बनानेवाले किञ्चित् नखकी कांति से मनको परमपवित्र बनाकर मानसिक महान् अन्धकार के समूह को नष्ट करनेवाले प्रभु के श्रीचरणकी मै तो सम्पूर्ण ज्योति प्रकाशमय झांकी अपने इन्ही नयनो से करना चाहता हूं ६४

विसृज्यायोध्यायद्वनभुवि चचारोपलचयैः कुशैः कासैर्विध्यदधिकतरदारुण्यमभवत् ।
द्रवन्तं यन्मायाहरिणमनुदुद्राव मृगये तदंघ्रिद्वन्द्वं श्रीकुचयुगपरिष्वक्तमसकृत् ॥६५॥

श्रीअयोध्याकी साम्राज्य लक्ष्मी का परित्याग कर जो पत्थर ककड से भरी हुई वनभूमि मे विचरण किये कुशकास के कटकाकीर्ण मार्ग मे चलने से जिनके चरणों के तलवे मे कुशकास की जडे गडगड कर अधिक लाल हो गये है । जो माया मृग मारीच के पीछे उसकी भक्ति से द्रवीभूत होकर दौड रहे थे, तथा जिनके चरण श्रीजी के वक्षस्थल मे वारवार क्रीडा करते रहते है, उन श्रीराघवेन्द्र प्रभु के श्रीयुगलचरणों का दर्शन मुझे भी प्राप्त हो यही प्रार्थना है ।६५।

गजाः सिंहा व्याघ्रा मृगशशवराहा वनचरा मयूराः कादम्बापिककवलखक्रौंचकुरराः ।
तथान्ये धन्या यैः शमितनयनावग्रहमहो महानीलश्यामं खररिपुः सदासेवितमभूत् ६६

वनलीला प्रसङ्ग मे नीलाम्बुजश्यामल खरदूषणारी श्रीराम की सेवा का तथा दर्शनस्पर्शको जिन्होंने लाभ लिया है उन हाथी–सिह–बाघ–हरिण–खरगोश–वराह (सूअर) आदि वनचर तथा मयूर–तोता–मैना–क्रौच–कुररी आदि पक्षियो को धन्यवाद है, जिन्होने सदा प्रभु की सेवा अपने क्रीडा कौतुक द्वारा करके अपना जीवन धन्य बनाया है, उन सबको मेरा प्रणाम है ॥६६॥

तृणत्वं नासीन्मे किमपि सरयूरोधसि मनोरमारामे धिग् धिग् धिगिदमधमं मानववपुः ।
यदेवं कौशल्या तनयचरणाम्भोजयुगलीपरिरम्भानन्दप्रभवभवनं नेह भवति ॥६७॥

अहा–धिक्कार है वारवार मेरा इस मानव देह को धिक्कार है जो श्रीसरयूतट पर तृण भी न हो सका, जो श्रीकौशल्यानन्दन रमारमण श्रीरामके युगलचरणारविन्द का अमृतमय सुखद स्पर्शपाकर उनके श्रीचरणों का आलिङ्गन का परमानन्द प्राप्त करके धन्य धन्य हो जाता (इस मानव शरीर से तो उनका दर्शन भी दुर्लभ हो रहा है)॥६७॥

प्रणामं साष्टाङ्गं तृणतरुलताभ्योहि निरुत प्रभावेभ्यः कुर्यां विनयसरलं भक्तिबहुलम् ।
अरण्या भोगे यत् किशलयमयीं लक्ष्मणकृतामलंचक्रे शय्यां सहमहिलया रामशयनम् ६८

हम उन तृण–लता तथा वृक्षादिको को अत्यन्त विनय पूर्वक प्रेमसे वारवार साष्टाङ्ग प्रणाम करते हैं, वे बडे ही प्रभावशाली भाग्य सम्पन्न है, जो जङ्गल मे रहते हुए भी अपने सुको-

मल पत्ते देकर श्रीलक्ष्मणजी द्वारा श्रीरामशय्या बनने का सौभाग्य प्राप्त करते है । जिन कोमल पत्तों की शय्या पर अपनी प्राणप्रिया श्रीजानकीजी के सहित श्रीराम शयन कर उन्हे कृतार्थ करते है अलकृत करते है ।।६८।।

वनानां वन्यानामपितनुभृता वा नदनदी गिरीन्द्राणां योदक्छिकजननसाफल्यमभवत्
कटाक्षैः कल्याणैर्द्रुहिणहरमृग्यैर्घनकृपारसासारैः पूता अहह रघुनाथस्य यदि मे ।।६९।।

जिन वनों को, वनवासियो को, नद नदियो को, अथवा पर्वतादिक या शरीरधारियों का पृथिवीपर देहधारण करनेका साफल्य प्राप्त हुआ है अत वे सब धन्य है धन्य है शिव ब्रह्मादिक देव देवेन्द्र भी जिनकी कृपाकटाक्षका कणमात्र पाने के छिये भी तरसते है उन्ही श्रीरामजी की सम्पूर्ण रसमयी कृपा का सार प्राप्त कर ये सब पावन हो रहे है, यदि उसी कृपा का रस मुझे भी प्राप्त होजायतो मै भी धन्य धन्य होजाऊ ।।६९।।

अहो भाग्यं तेषां निशिचरभटा ये जहुरमून् रणाग्रे पश्यन्तः शरसुकलिताङ्गा रघुपतेः ।
ज्वलत्संवर्ताग्निप्रतिभटकटुक्रोधमपितत् मुखं लोकैकासेचनमृदुलहासं प्रकृतितः ।।७०

अहो, उन निशाचर भटो का वडा सौभाग्य है जिन शूरवीरो ने रणभूमि मे प्रलयाग्नि के समान जलते हुए श्रीरामके बाणो से जर्जर होकर अत्यन्त क्रोध से भरे हुए कटु भाव रखतेहुए भी मरते समय मे श्रीरघुनाथजी का स्वाभाविक मधुर भावसे मन्द मन्द हँसते हुए मुखारविन्दके दर्शन करते हुए अपने प्राणो का त्याग किया ।।७०।।

अयोध्यायाः पत्युः सुरुचिरजगन्मोहनप्रिय स्मृतः श्रीप्रासादं वदननलिनं चारुनयनम् ।
मुहुश्चुम्बत् धात्री दुहित्रीमुखवीटीरसलसत् कपालं दृष्टं मे विधिरहहमाह्यं न कुरुते ।।७१

श्रीअयोध्यानाथ के परम रुचिर जगतको मोहित करनेवाले अत्यन्त प्रियतम अति सुन्दर नयनो से सुशोभित मनोहर मुखारविन्द कमल को श्रीकिशोरीजी की कृपा से मैने आज स्मरण किया, जिसकी श्रीकौशल्या अम्बा प्रेम से विभोर होकर वारवार चुम्वन कर रही है तथा उनके मुख के पानवीडा का रस प्रभु के कपोलो पर लग रहा है, मैने अपने ललाट के लेख पढे कि उस मुखार बिन्द की छवि के दर्शन मेरे भाग्य मे है कि नही ? परन्तु हायरे दुर्भाग्य क्या करू अरेरे ! विधाता तुम भी मुझ अभागे की सहायता नही कर रहा है ? ।।७१।।

किमाभ्यां नेत्राभ्यां फलमिह रघूणामधिपतेर्न पीता याभ्यां तद्वदनशशिसौन्दर्यलहरी ।
इमौ दोषौ दोषौ कमलदरचक्राङ्कलसितं न याभ्यामाश्लिष्टं तव चरणराजीवयुगलम् ।७२

मुख छबि के सौन्दर्य रस का पान करने को तो इन अभागे नयनों से न मिला, परन्तु श्रीराघवेन्द्र सरकार के कमल–चक्र–शंखादिक सुललित चिन्हो से अङ्कित उनके दिव्योतिदिव्य श्री चरणों का भी जिन हाथो ने प्रेमपूर्वक आलिङ्गन न किया उन अभागे नयनों हाथों को मिलने से ही क्या लाभ ! उन आँखों हाथो का तो मिलना न मिलनो बराबर ही है जो अपने स्वधर्म-भूत लक्ष्य प्राप्त करने मे असमर्थ रहे ।।७२।।

दुराशं दुर्बुद्धिं दुरितकुनदीप्राविशमिमं सुनिर्लज्जं धिङ्मां सकलजनहासोचितकृतिम् ।
तितीर्षुर्बाहूभ्यामिव जलनिधिं हे रघुपते! दिदृक्षे योऽहंत्वां विधिशिवमुखध्यानविषयम्७३

हे श्रीरघुवंश विभूषण रघुनाथजी ! मेरे जैसा दुराशा रखनेवाले, दुर्बुद्धि महादुष्ट, भयङ्कर पापोंकी घोर वैतरणी नदी मे गोता लगानेवाले महानिर्लज्ज मनुष्य को वारवार धिक्कार है जो सम्पूर्ण जगत मे हास्यास्पद कार्य करने वाला है, इसकी धृष्टता को देखिये कि यह पामरक्षुद्रजीव अपने

हाथो से तैरकर भवसागर को पारकर लेना चाहता है तथा जो ब्रह्म शिवादि देवगण शिरोमणीके आराध्य है यानी उनको भी कभी ध्यान मे ही आते है परन्तु दर्शन तो दुर्लभ ही है मै उनका अर्थात् सर्वाराध्य आपका इन नयनो से दर्शन करना चाहता हूं ऐसा निर्लज्ज कौन होगा? ॥७३॥

स्ववक्त्रेन्दूद्भूतं श्रवणविवर ते तनुभृतां शिवोवर्षन् काश्या वसति सहगौर्य्या रघुपते !।
पुनर्जन्मव्याधिप्रभवजननीगर्भशमनं प्रचण्डप्रत्यूहं तव मधुरनामामृतरसम् ॥७४॥

श्रीशकर भगवान् श्रीपार्वतीजी के साथ काशीपुरी मे वास करते हुए अपने मुखरूपी चन्द्रमा से प्रकट हुए, पुन पुन जन्म मरण की प्रचण्ड व्याधिका विनाश करनेवाले श्रीरामनामरूपी मधुर अमृतरसकी वर्षा मरण के समय सभी देह धारियो के कान मे वरसाकर उनके जन्ममरण जननी गर्भ शयन की व्याधिका सदा के लिये विनाश कर देते है ॥७४

क्व माधुर्य्याधिक्यं दधिघृतसितापायससुधामधुष्वाम्रद्राक्षापनसकदलीना फलरसे ।
क्व कांक्षा कौशल्याहृदयजलधीन्दो मनसिचेदजस्त्रंत्वन्नामस्मरणनवपीयूषलहरी ॥७५॥

हे श्रीकौशल्या अम्बा के हृदयरूपी समुद्र से उत्पन्न चन्द्रमा स्वरूप श्रीराम ! यदि आप किसी भाग्यशाली के हृदयाकाश मे विराजमान है, जिनके आपके रूपरसमाधुरी का रसास्वादन करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है उसको दही-दूध-घी-मिश्री-मधु-द्राक्ष-कटहल-केला तथा अमृत रसमे भी माधुर्यता की अधिकता क्या लगेगी? तथा जो आपके नामस्मरणरूपी नवीनतम सुधारसलहरो का रस पान करता है उसको अन्यतुच्छ रसो का आस्वादन करने की आकाक्षा भी क्यो होगी ?
जो तोहि राम लागते मीठे, तो षटरस नवरस सब अनरस, हो जाते अति सीठ ।
तुलसी जोलौ जगतकी सुधा माधुरी मीठ । तो लौ सुधा सहस्रसम, रामभक्ति सुठि सीठ ॥७५॥

तुरीयं षष्टं वा सरिदधिपतिपञ्चममपि द्वितीयं मन्यन्ते प्रथममिव सन्तो रघुपते ? ।
लिहन्तस्तन्नामामृतरसमजस्त्रं रसनया पवित्रीकुर्वन्तः सुचरणरजोभिः क्षितितलम् ॥७६

हे श्रीरघुपते ! आपके नामामृत का निरन्तर रसपान करनेवाले सन्तजन जैसे रसनासे किसी मधुर रसको बारबार चाटते है फिर भी मन नभरता हो ऐसे आनन्द होकर प्रमविभोर हृदय से रसपान करते है कि प्रथमवार-दूसरीवार-तीसरीवार-चौथीवार-पाचवीवार-छट्ठीवार अथवा सातवी वार रसनासे आपके नामरसका पुन पुन स्वाद लेते हुए भी मानो अभी प्रथम ही वार उच्चारण कर रहे हों ऐसा आनन्द लेते हुए अपने श्रीचरणों की रज से वे नामानुरागी सन्तजन इस वसुधातल को पवित्र करते रहते है ॥७६॥

अहल्या वेत्तित्वच्चरणरजसः शक्तिमतुला भवद्दास्यानन्दं निरवधिरुचि लक्ष्मणमनः ।
शिवो वा वाल्मीकिर्भवदसमनामामृतरसं धरित्रीकन्यैव त्वदधरमधूनां मधुरताम् ॥७७

आपके श्रीचरणरज की अपरम्पार शक्ति को श्रीअहल्याजी जानती है। आपके दास्य भावसे सेवा कैंकर्य का सीमारहित सुख वा अभिरुचि को श्रीलक्ष्मणजी का मन जानता है । श्रीशिवजी तथा श्रीवाल्मीकिजी आपके अतुलनीय नामामृत के रस को जानते है तथा आपके अधरामृत की मधुर माधुरी को श्रीधरणीनन्दिनी श्रीजानकीजी ही जानती है ॥७७॥

हनूमान् वेत्तित्वच्छुभगणकथास्वादनरसं भवत्पादत्राणाप्रतिममहिमानं च भरतः ।
गिरिर्भूमिशाला अपिभवदमोघां शुभगति त्वदीयस्त्वन्माया सलिलनिधिपाररघुपते ॥७८॥

आपके शुभ गुणानुवाद कथा का रसास्वादन का पुनीत रस श्रीहनुमानजी जानते है, आपके श्रीचरणपादुकाओं की महान् महिमा श्रीभरतजी जानते है, आपकी पदयात्रा का परमसुख पर्वत

भूमि तथा आपके प्यारे सन्तो के आश्रम तथा पर्णकुटी जानती है, तथा आपकी माया के सागर से कैसे तरा जायगा यह आपके प्यारे महाभागवत सन्त जानते है प्रभो ? आपके इस अमित ऐश्वर्य को मै पामर जीव क्या जानू ? ॥७८॥

त्वदंशो वेत्ति त्वत्पृथुलभुजसार भृगुपतिर्भवत्क्रोधाटोपं प्रलयशिखिरूपं जलनिधिः ।
जयन्तस्त्वत्क्षान्ति परममपराधी जगति को महात्मामाहात्म्यं ननु तवमनोवाक्सुविषयम् ।

आपका अंश एक कलामात्र भी प्राप्त हो जाय उसकी भुजा मे कितना पराक्रम भर जाता है यह भृगुपति श्रीपरशुरामजी जानते है आपके विकराल क्रोधका घटाटोपआतङ्क समुद्र जानता है । आपकी क्षमाका निस्सीम स्वरूप महान अपराधी इन्द्रपुत्र जयन्त जानता है तथा मनवाणीसे वर्णन करना अगम्य ऐसे आपके माहात्म्य को महान् महात्मा पुरुष ही जानते है ॥७९॥

व्रतैःकि दानैः किमखिलनदस्नानादिकरणैर्जपैः कि होमैः कि किमथविविधाम्नायपठनैः।
किमन्यैर्वाधर्माचरणघनमोहैर्हृदि न चेत् परिष्वक्तं पादाम्बुरुहयुगलं ते रघुपते!॥८०।

हे रघुपते ! यदि आपके युगल श्रीचरणकमलो मे मन आसक्त न हुआ तो ससार मे अनेकों प्रकार के व्रत करने से क्या लाभ ? दान देने से तथा सम्पूर्ण तीर्थ नद तथा नदियो मे स्नान करने से ही क्या ? अनेको मन्त्रो को जप करने से तथा विविध प्रकार से वेदों के पाठ करने से भी क्या लाभ ? उसी प्रकार से अन्यान्य अनेक धर्माचरण करने पर भी यदि आपके चरण कमल मे प्रेम न हुआ तो इन साधनों मे व्यर्थ परिश्रम करने से क्या लाभ होगा ? ॥८०॥

समन्विष्यज्ञानाञ्जनविषयदृष्ट्या श्रुतिखनीं पुमर्थानां दाता मरकतमणिराघवमयः ।
स एको लब्धोमे गुरुभिरुपदिष्टः करुणया मनः पेट्यामास्ते कथमथभवेद्दुर्गतिकथा ८१

अपने नेत्रो मे ज्ञानअञ्जन लगाकर परम विशुद्ध दृष्टि से श्रुतियों की कन्दराओं मे खूब मन लगाकर परमतत्त्व का अन्वेषण किया तो सभी परमपुरुषार्थो के दाता मरकतमणि घनश्याम कान्ति वाले श्रीराघवमय ही सभी श्रुतियो का सारसर्वस्व दीख रहा है, यह निश्चितरूप से जान पड़ा। मुझे वही एक तत्त्व श्रीगुरुमहाराज की करुणा से उपदेश रहस्य प्राप्त हुआ है मैने उसको अपनी मन की पिटारी मे छिपाकर रख लिया है, अब मेरी दुर्गति कभी भी कैसे हो सकती है ? मेरा तो कल्याण ही कल्याण है ॥८१॥

पयोभिः प्रत्यग्रैर्दधिघृतसितादिव्यसुमनोरसैःकस्तूरीभिः शुभपरिमलैश्चन्दनरसैः ।
सरय्व्याःनीरेण सुशुचिरभिःसिञ्चामि मनसा हृदाम्भोजानैकाभरणरघुवीरांघ्रिनलिनम् ।

अहा आज मेरा कैसा सौभाग्य है कि मै आज दही-दूध-घृत-मिश्री-मधु आदि के द्वारा बने हुए पञ्चामृत से तथा कस्तूरी चन्दनसे एवं श्रीसरयूके सुपवित्र जल से प्यारे प्रभु को प्रेम से सीच सीच कर स्नान करा रहा हू । मेरे हृदयरूपी जल मे उत्पन्न, सम्पूर्ण विश्व के अनन्त शृङ्गार स्वरूप श्रीरघुनाथजी के चरण कमल की सेवा का मुझे सुअवसर प्राप्त हुआ है अत मै धन्य धन्य हू ॥८२॥

तडित् कोटीभासं तव कटितटे हाटकपटं किरीटं केयूर शिरसि भुजयोः कौस्तुभमणिम् ।
उरस्यर्काकार श्रवणयुगले कुण्डलयुगं विभो ! चेतः सिंहासनसमधिरूढस्य कलये ॥८३।

आपने करोडो बिजली के समान प्रकाशित स्वर्णसूत्रो से निर्मित पीताम्बर कमर मे पहरे हुए है, किरीट शिरपर शोभा दे रहे है, भुजाओ मे केयूर की छबि चमक रही है, हृदय मे सूर्य के समान आकार वाला कौस्तुभ मणी तथा कानो मे कुंडल लटक रहे है, हे प्रभो ! इस प्रकार

आप मेरे चित्तरूपी सिंहासन पर विराजमान है, मैं अपने हृदय में आपकी इस मनोहर छबि का दर्शन करता रहूं यही चाहता हूं ॥८३॥

गलेमुक्ताहारान् शशिकिरणसंकाशमहसोनवोद्यद्द्यौरत्नद्युतितरलमाणिक्यतरलान् ।
कराम्भोजद्वन्दे कनकवलये राम कलये त्वदीयाख्यामुद्रां नवमणिमयीरङ्गुलिषु ते ॥८४॥

चन्द्रमा की महान् द्युतिके समान मुक्तामणियों का हार गले में धारण किये है। जिसकी नवीन द्युति के प्रकाश में सुशोभित अपनी ज्योति का दिव्य प्रकाश छिटकाते हुए मणिमाणिक्य चमक रहे है। दोनों कर कमलों में स्वर्णखचित कडे कंकण पहने हुए है। तथा दोनों करकमलों की अंगुलियों में नवीन मणियों की नगजटित अंगुठियाँ धारण किये है जो व्याख्यानमुद्रा के समय मनको मोहित कर लेती है, मैं आपकी उसी झांकी को हृदय में धारण करता हूं, अर्थात् उसी स्वरूपका ध्यान करता हूं ॥८४॥

मणि मन्ये भानुं हिमकिरणमास्यं तनुमपि श्रियः शम्पां वृष्टि किमलमधुचिन्हं नवघनम्
उडन्मुक्तामालास्त्वदुर उरगारिध्वजनभो विभान्त्यस्मिन्नेते युगपदिति चित्रं महदिदम्

आपका कौस्तुभमणि सूर्य है, हिमकिरणों के समान अमृत मय आपका मुख चन्द्रमा है। आपका नवीनघन के समान सुन्दर श्यामल शरीर है। श्रीकिशोरीजी शरद चान्दनी के समान है, आपके हृदय पर मुक्तामणियों की माला ताराओं के समान सुप्रकाशित हो रही है। और आपका हृदय ही निर्मल आकाश है, इस प्रकार की आपकी मनोहर छबि का लाक्षणिक दर्शन कर महान् आश्चर्य होता है कि परस्पर विरुद्ध होते हुए भी ये सब एकत्र निवास कैसे कर रहे है ॥८५॥

तडिद्वल्यानीलो घन इव तमालक्षितिरुहो यथारूढः स्कन्धः कनकलतया नीलशिखरी ।
मयूखेनार्कस्योद्यत इव रघूणां परिवृढो हिरण्याकारेणोल्लसित उपनीतेन जयति ॥८६॥

विद्युल्लता के समान श्रीकिशोरीजी है, नीलघन के समान श्रीरामजी है दोनों युगल प्रभुकी झांकी ऐसी सुन्दर लगती है कि जैसे तमाल वृक्ष के स्कन्धपर कनकलता लहरा रही है। सूर्यके उदय की वेला में जैसे उसकी किरणे चारों ओर फैलती है वैसे ही रघुवंशियों में श्रीराम के चारों ओर आनन्दित उल्लसित होकर रघुवंशकुमार स्वर्ण के प्रकार कोट की तरह सुशोभित हो रहे है ऐसे श्रीरामका सदा जय हो, जय हो—जय हो ॥८६॥

अयं येन व्याप्तस्त्रिभुवनतटाको बलिमुखे यतो जाता गङ्गा मधुहरशिरोभूषणमयम् ।
परागाणुर्यः कोप्यवरमनयद्यस्य चरतां विमोसद् पादाब्जं कनककटकोद्भासिकलये ॥८७

यह सम्पूर्ण त्रिभुवन जिसके द्वारा व्याप्त है, जैसे तालाब में जल ही जल रहता है जिसके श्रीचरण से गंगा प्रकट हुई है जो श्रीशंकरजी के मस्तक का विभूषण बनी हुई है जिसका पराग महान् पुरुषों के मनको मधुप बनाकर विचरता रहता है हे प्रभो ! वह आपके श्रीचरणकमल जो स्वर्ण नूपुरों से सुशोभित परमसुख प्रद है सदैव स्मरण करता हूं ॥८७॥

दशाशामध्योज्जृंभितपरिमलोदारमधुरः स्रवन्माध्वीधारा प्रचुरतुलसीदामरुचिरः ।
नवारण्यावल्याभरण इव गारुत्मतगिरिर्मनोऽयोध्यामध्ये दशरथकुमारो विजयते ॥८८॥

दशों दिशाओं में जिसकी महान् उदारता की मधुर सुगन्धी का परिमल फैला ही रहता है, तुलसीपत्रकी मालाओं से परमरुचिर मधुरसधारा झरती रहती है, नवीनवाटिका का लताओं का विभूषण स्वरूप जो सुमेरु पर्वत को भी सुशोभित कर रहे है ऐसे दशरथराजकुमार मेरे मनरूपी अयोध्या में विहार करते हुए सदैव विजयी हों ॥८८॥

दरोन्मीलन्मुग्धैः स्रवदतुलमाधुर्यमधुभिः स्वसौरभ्याहूतभ्रमरनिनदाकान्तभुवनैः ।
वियद्रङ्गाजातैः कनककमलैर्भूषिततनुर्मनः श्रीवैकुण्ठे परमपुरुषोऽयं विजयते ॥८९॥

जिनके अधरो की मन्द मन्द मुग्ध मुसक्यान से अतुलनीय माधुर्य मधु बरस रहा है, जो अपनी दिव्य सुगन्धी से मधुरसभोजी प्रेमी भ्रमरो को बरबश खीचकर उनके मधुर गुंजार से त्रिभुवन को भरपूर कर रहे है, जा बिजली के रग के समान सोने के कमल फूलो के आभूषणो से अपने श्याम शरीर को विभूषित किये हुए है ऐसे परमपुरुष प्रभु मेरे मनरूपी वैकुण्ठ मे सदा विजयी होकर विराजमान रहे ॥८९॥

घनामोदव्याप्त्या घुमघुमितनिद्ध्यण्डकुहरैर्जपापुष्पच्छायैर्घसृणमसृणैश्चन्दनरसैः ।
यथा सिन्धुः संध्याद्युतितिमिरलिप्तो रघुपतिः पतिः ब्रह्माण्डानामधिवसतिहृत्पुष्पकमिदम्

परमानन्द घन प्रमोद की सर्वत्र भरपूर व्याप्ति से समस्त ब्रह्माण्ड उसकी धमाधम बरसती हुई सीकरो से महान् सुखमय हो रहा है। जपाकुसुमकी शीतल छाया मे चन्दनरस मिलाकर बनाये हुए अगराग से अर्चित रघुपति की छवि, संध्याकाल मे सूर्यास्त की लालिमा से अनुरञ्जित सागर की भाती श्यामरग पर लाली की शोभा छीन रही है। ऐसे अनन्त ब्रह्माण्डो के अधिपति श्रीरघुपति मेरे हृदयरूपी पुष्पक विमान पर विराजमान होकर परमसुख प्रदानकर रहे है ॥९०॥

मुखं मुग्धस्निग्धाधरकिशलयोल्लासिमधुरं स्मितं क्रूराकाराभिनवकलिकेकाभभरणम् ।
विभोर्धात्रीपुत्रीनयनकमलाह्लादजनकं हृदेतत्कस्तूरीतिलकरुचिरचुम्बितमुहुः ॥९१॥

आपका मुख कमल मनको मुग्ध करने वाला है, नूतन किशलय को उल्लसित विकसितकरने वाले मधुर अरुणारे चमकारे चिकने ओठ है, मन्द मुसक्यान को अकुरित करनेवाले, नवीन कलिकाओ को उदित करने के समान दन्तावली शोभा दे रही है, श्रीजनकराजनन्दिनीजी के नयन कमलो को आह्लादित करनेवाले हे प्रभो! ललाटमे कस्तूरी का तिलक परमरुचिर सुशोभित है। जो बारबार हृदयानन्द को लहराते हुए परमसुख दे रहा है ॥९१॥

स्वतस्तेजोराशिहृदयपरमव्योम्नि यमिनां वसन् सीताजानिः परिदलितहार्दान्धतमसः ।
यया बिम्बत्रय्या भवति कृतिनीराजनविधिः तयाप्राप्ताचण्डातपनिहितदीपप्रतिकृतिः ॥९२

हे सीतापते! आप स्वयं दिव्य तेजकी राशी है तथा योगी जनों के हृदयाकाश मे निवास करके हृदय के अन्धकार को नष्ट कर देते है। वह तेजोराशी बिम्ब तीनो वेदों की आकृति धारणकर नीराजन (आरती) की विधिपूर्ति करता है उसी आपके श्रीविग्रह की तेजोमय ज्योतिके प्रचण्ड तेजस्वरुप को सूर्य मे थोडीसी रखी गयी है उससे सूर्य आपके सम्मुख दीपक की भाति लगते है ॥९२॥

प्रसूनान्याहृत्यार्चयितुमनिशं ? ते पदयुगे सहस्रं हस्तानामभिलषति मे मानसमिदम् ।
सहस्रंनेत्राणामपितवतनुं द्रष्टुममलां सहस्रंवक्त्राणामपि रघुपते?ते स्तुति विधौ ॥९३॥

हे प्रभो! आपके श्रीयुगलचरणारविन्दो मे सुन्दर सुन्दर फूलो को लाकर चढाने के लिये मेरा मन चाहता है कि मुझे हजारो हाथ हो जाय जो खूब पुष्पाञ्जली चढाने का आनंद लूटता रहूं। तथा आपके श्यामल सुन्दर शरीर का दर्शन करने के लिये हजारों नेत्र भी चाहता है तथा आपकी स्तुति करने के लिये गुणानुवाद गाने के लिये हे रघुपते! मेरा मन हजारो मुख भी चाहता है।९३।

अदन्कन्द मूलं फलमपि चरन्पुण्यसरयूतटारण्याभोगे गतविषयरागो रघुपते ?।
कदा वा त्वत्पादाम्बुरुहयुगली लीनहृदयः करिष्ये निःशेषं भुवनसमुदाय तृणमिव ।९४॥

हे श्रीरघुनाथजी ! श्रीसरयूतट पर वन लताओ मे विचरण करते हुए सम्पूर्ण विषयभोगों का परित्याग कर कन्द मूल फल शाग पत्ते खाकर जीवन निर्वाह करता हुआ आपके श्रीयुगलचरणों मे मेरा हृदय ऐसा कब लीन होजायगा कि उस दिव्य सुखके सम्मुख त्रिभुवन का साम्राज्यसुख को भी तृण के समान त्याग कर सकूँ ॥९४॥

निरस्ते षड्वर्गे विषयिषुजितेष्वेषुसकलेष्वखण्डे वैराग्ये प्रबलतरभक्त्या कवलिते ।
प्रसन्ने हृद्यस्मिन् स्वयमुदितमूर्तौ रघुपते कदास्यामश्रान्तं निरवधिकसन्तोषभरितः९५॥

काम क्रोधादि षड्रिपु निरस्त हो गये हो, सभी विषयो को जीतकर सम्पूर्ण अखण्ड वैराग्य का पुण्योदय हो गया हो, आपकी प्रवल तीव्रतर प्रचण्डभक्ति से हृदय भरपूर हो गया हो मेरे हृदय मे स्वय परम प्रसन्न होकर आप अपना राज्यसिंहासन बनाकर विराजमान हो गये हों, हे श्रीरघुनाथजी ऐसा परम शान्त निस्सीमसन्तोष से भरा हुआ मेरा हृदय कब होगा ॥९५॥

अकस्मादुन्मीलत्तरुणकरुणैनैवमनसा त्वया व्यामोहन्तं द्रवितहृदयैः किं विलपितैः ।
प्रमादायोद्युक्ते भवति मम दोषैः किममितै रनुद्युक्ते किंवा मम गुणगणैर्हा रघुपते९६॥

अकस्मात प्रकट हुई नवीन तरुण करुणा से लहराता हुआ मेरा मन द्रवीभूत होकर करुणापूर्ण गदगद कण्ठ से आपको प्रसन्न करने के लिये धैर्य त्याग कर नाना प्रकार का विलाप करना है तो उस मेरे पूर्व के दोषपूर्ण आचरण से ही क्या ? अथवा महान धैर्य धारण कर सब कुछ सहकर कुछ भी न बोलने से ही क्या ? अर्थात हे श्रीरघुनाथजी ! आपकी प्रसन्नता न हुई तो रोना और चुपचाप सहन करना सब कुछ व्यर्थ ही चला जाता है ॥९६॥

त्वमेवैकोपायो दशरथमुखाम्भोजतरणो–धरण्यामेज्ञातस्तरणिरिवदुःखाब्धितरणः ।
दवाग्न्युग्रज्वालावलयितनिकुंजालयमृगीशिशोरन्या का वा गतिरभिनवाभ्राद्वनभुवि ॥९७

श्रीदशरथजी के मुखकमल को विकसित करनेवाले दिवाकर प्रभो श्रीराम ! मेरे तो इस भूतल पर एक मात्र आप ही उपाय हैं ऐसा मैने निश्चयपूर्वक जान लिया है। दुःखरूपी दरिया को तरने के लिये नौका जहाज के बिना दूसरा उपाय ही क्या हो सकता है ? वन मे दावाग्नि से जलते हुए निकुञ्ज मे फँसे हुए मृगी के बच्चे को भागकर बचने के लिये फिर बन को छोडकर दूसरी गति ही क्या हो सकती है ? ॥९७॥

रतिर्मे नो धर्मे विरतिरपि नाधर्मकरणात् स्वभावोदुर्वारः खलु सकलसाधारणतया ।
नते ग्राह्यस्त्याज्यो न च चरपतिस्त्वां व्यसनिनं जनोऽयंतद्विश्वम्भर रघुपते तेस्म्यतिभरः९८

हे श्रीरघुपति ! मेरा धर्म मे प्रेम नही है, इसलिये धर्मानुष्ठान परायण नही हूं। मेरी पाप से घृणा भी नहीं है इसलिये अधर्म का त्याग भी नही करता हूं। प्राणीमात्र अपने स्वभाव से लाचार है वैसे ही आपका भी समदर्शी स्वभाव है, न तो कोई आपको ग्रहण करने योग्य है तथा न कोई त्याग करने योग्य आपके लिये तो सब बराबर है क्योकि आप सचराचर पति है अतएव सब आपके ही है इसीलिये हे विश्वम्भर ! मै भी आपके विश्व मे ही हू और सर्वथा आपपर निर्भर हूं, तब आप मेरा त्याग कैसे कर सकते है ? कदापि नही कर सकते क्योकि जैसे मै अपने स्वभाव के वशीभूत हू वैसे ही आप भी तो अपने स्वभाव के परवश है ॥९८॥

करे वामे चापं शरमपि दधानं तदितरे मणीमौलिं मस्ते कनकमयवासः कटितटे ॥
तडिच्छव्या देव्यां विकसदतसीसूनसदृशं दृशोमेऽग्रेरूपं तव रघुपते भातु सततम् ॥९९॥

बायें हाथ मे धनुष तथा दाहिने हाथ मे बाण धारण किये हों, मणिरत्न जटित मुकुट मस्तक पर सुशोभित हो, सोने की भाँति पीले पीताम्बर कमर मे पहने हुए हो, बिजली के समान छवि

शोभा सम्पन्न श्रीदेवीजी वाये भाग मे विराजमान हो, अतसी (तीसी) के खिले हुए पुष्प के समान श्यामसुन्दर स्वरूप वाले आपके रमणीय स्वरूप के दर्शन हे श्रीरघुपते ! हमको निरन्तर हुआ करे ॥९९॥

इति त्वत्प्रीत्यर्थं कपटनुति वाक्यं प्रलपितं यथार्थत्वेनेदं प्रसभमुररीकृत्यकृपया ।
अनन्तागस्तोमं त्रिविधमपि मे त्वं परिहरन् प्रसन्नश्रीसीतारमण भव गंगेव शरदि ॥१००॥

इस प्रकार आपको प्रसन्न करने के लिये भक्ति प्रेमी न होने पर भी बनावटी छलकपटभरी वाणी से विनय का नाटक करके मैने अभी जो कुछ भी प्रलाप किया है उसको हे दयालो आप करुणा करके अपने शीलस्वभाव से यथार्थ ही मानकर कृपाकरके मुझे अवश्य कृतार्थ करेगे । मेरे तन-मन-वचन से किये गये अनन्तानन्त अपराधो को क्षमाकरके हे श्रीसीतारमण प्रभो ! आपतो शरदऋतु के गंगाजल की समान निर्मलभाववाले है अत अपने स्वाभाविक स्वभाव का परिचय देते हुये मुझ पर प्रसन्न होने की कृपा करेगे ॥१००॥

कोदण्डकाण्डपरिमण्डितबाहुदण्डं गारुत्मताद्दकमनीयसुनीलकान्तिम् ।
कोटीरहारकनकाम्बरराजमानं रूपं तवास्तु रघुवीर ? दृशोममाग्रे ॥१०१॥

कोदण्ड धनुप तथा बाण से भुजाये सुशोभित हो, गरुड के नेत्रके समान सुनील वर्ण की कमनीय काया हो, रत्नों के हार तथा पीताम्बर धारण किये हो ऐसा आपका दिव्य स्वरूप मेरी आँखों के सम्मुख सदा दर्शन देता रहे ॥१०१॥

शोणाधरैः कमलगन्धिविशालनेत्रां लोलालके कुटिलनीलमनोहरभ्रू ।
कुन्दप्रसूनरदनं मुखमुन्नसन्ते मञ्जुस्मितं रघुकुलेन्द्र ? कदानु द्रक्ष्ये ॥१०२॥

लाल लाल अरुणारे कमलपुष्प की सुगन्ध वाले सुन्दर ओठ शोभा दे रहे हों, बडे-बडे मनोहर नेत्र हो, भ्रमर जैसी काली-काली घुंघुराली अलके हो, टेढी मेढी मनोहर तिरछी भौंहे हो, कुन्दके पुष्प के समान स्वच्छ चमकते दात हो ऐसा सर्वश्रेष्ठ उन्नत मुखारविन्दवाले श्रीरघु-कुलेन्द्र श्रीराघवजी के दर्शन मुझे कब होंगे ? (प्रभो दया करके दर्शन दीजिये) ॥१०२॥

यः श्रीनिवास रघुनन्दनजानकीभ्याम् वाधूलगोत्र उद्भूत प्रणिधाय तेन ।
शेषार्य पादकमले हृदि राघवेण श्रीशेर्पिता शिखरिणीमणिमालिकेयम् ॥१०३॥

इति श्रीकाञ्चीपुरी परिसर वास्तव्येन राघवाचार्येण कृता शिखरिणीमणिरत्नमाला समाप्ता शुभम् सं १९६६ मिति मार्गशीर्ष कृष्ण ४ बुधवार । श्रीरामसीताराम । जयराम जय जय राम । श्री राम सीताराम राम । जय राम जय जय राम राम । श्रीसीतारामचन्द्रार्पणमस्तु । श्रीसीतारामौ बिजयेतेतराम् । श्रीसीतारामचन्द्राभ्या नम । मु० अयोध्याजी सन्तनिवास माहेश्वरी बाबरी ।

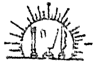
यह "शिखरिणीमणि मालिका" व्याख्या प्रेमप्रवीण । पूर्ण हुई गुरुदेव कृपा अहैतुकी कीन ।
'प्रेमोमृतरसवर्षिणी' टीका सन्त सुजान । पढे सुने समुझाई के पावै मोद महान ॥
बुद्धि ज्ञान बल हीन मै, सब विधि स्वास्थ्य विहीन । नेत्रज्योति से क्षीण पै, रामप्रेमरस पीन ।
माघशुक्ल नवमी तिथी मगल मगलवार । दो हजार व्यालीस मे पूर्ण हुई सुखसार ॥
"प्रेमनिधि" प्रभुचरण मे विनवत वारवार । अर्पित है करुणानिधी करि है यह स्वीकार ॥
भूलचूक छमि हैं सदा, सज्जन सन्त सुजान । आशिष दें करता रहूं, सदा राम गुणगान ॥

श्रीसीतारामचन्द्रार्पणमस्तु

नमः सर्वेश्वराय भगवते श्रीरामाय

卐 आनन्दभाष्यकारश्रीरामानन्दाचार्याय नमः 卐

श्रीमद्भगवद्रामानन्दाचार्यकृतानन्दभाष्यभूषिता



श्वेताश्वतरोपनिषत्



ॐ ब्रह्मवादिनो वदन्ति ।

किं कारणं ब्रह्म कुतः स्म जाता जीवाम केन क्व च सम्प्रतिष्ठाः ।
अधिष्ठिताः केन सुखेतरेषु वर्त्तामहे ब्रह्मविदो व्यवस्थाम् ॥१॥

राम एव परं ब्रह्म राम एव परं तपः । राम एव परं तत्त्वं श्रीरामो ब्रह्म तारकम् ॥१॥
संहारवृत्तिकतया प्रथितो हरोऽपि गृह्णद्यदम्बुशिरसाशिवसंज्ञितोऽभूत् ।
सर्वातिशायिमृदुतादिगुणावलम्बः सोऽन्तःस्फुरत्वविरतं मम राघवाङ्घ्रिः ॥२॥
स्तुतः परशुरामेण सुरैश्च पद्मजादिभिः । अगस्त्यादिमुनीन्द्रैर्यो रामं ब्रह्म नमामि तम् ।३।
सूत्रवृत्तिकृतौ नत्वा व्यासबोधायनौमुनी । श्रीमन्तं राघवानन्दाचार्यं गुरुं नमाम्यहम् ।४॥
कुर्वे गुरुं नमस्कृत्य ज्ञानभक्तिदयानिधिम् । श्वेताश्वतरोपनिषदोभाष्यमानन्दसंज्ञकम्५।
श्रीमद्रामसमारम्भां शुकबोधायनान्विताम् । राघवानन्दगुर्वन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम्॥६॥

'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत्प्रन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्म' इति श्रुतिप्रमाणितं किमिति निर्धारणाय प्रवृत्तेयं श्वेताश्वतराणां मन्त्रोपनिषत् । ब्रह्मवादिनो वदन्तीत्याख्यायिका विद्यास्तुतिप्रयोजनवती । ब्रह्मवदन्तीत्येवंशीला ब्रह्मवादिनो मुनयो वक्ष्यमाणरूपेण वदन्तिस्म । मीमांसन्त इत्यर्थः । कथं वदन्तिस्मेति वदनप्रकाराकाङ्क्षायामाह—किमिति । हे ब्रह्मविदः ! किं कारणं ब्रह्म ? 'यतोवे'ति—श्रुतौ जगत्कारणतयाऽभिहितं ब्रह्म किं देवतात्मकमस्ति ? जगत्कारणं ब्रह्मादिषु देवेष्वन्तर्भूतमनन्तर्भूतं वाऽस्तीत्यर्थः कुतः स्म जाता ? वयं कस्माद् ब्रह्मणो जाताः ? जीवाम केन ? अस्माकं स्थितिश्च किंप्रयुक्ता ? क्व च सम्प्रतिष्ठा ? सम्प्रतिष्ठाशब्दाभिहितोस्माकं लयश्च कुत्र ? अथ स्वप्रवृत्तिकारणमपि मीमांसन्ते—अधिष्ठिता इति । केन वा ब्रह्माख्येन देवेनाधिष्ठिता नियमिता वयं सुखेतरेषु प्राक्तनकर्मफलहेतुभूतेषु दुःखात्मकेषु जन्मसु व्यवस्थांविशिष्टामवस्थामनुसरन्तो वर्त्तामहे १॥

कालः स्वभावो नियतिर्यदृच्छा भूतानि योनिः पुरुष इति चिन्त्यम् ।
संयोग एषा न त्वात्मभावादात्माऽप्यनीशः सुखदुःखहेतोः ॥२॥
ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन् देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निरूढाम् ।
यः कारणानि निखिलानि तानि कालात्मयुक्तान्यधितिष्ठत्येकः ॥३॥

अथ कालस्वभावादीना जगत्कारणतां निरस्यति—काल इति । कालविदः कालः, लोकायतिकाः, स्वभावः, मीमांसका नियतिरूपं कर्म, केचिद् भूतानि, सांख्या योनिपद-वाच्या प्रकृतिः, केचित् पुरुषो जगत्कारणमिति वदन्ति । तच्चिन्त्यं विकल्पासहत्वात् । तथा हि—किमुक्तेषु चेतनाचेतनेषु पदार्थेषु प्रत्येकं जगत्कारणमुतैतेषां संयोगः ! नाद्यो-ऽसम्भवात् । नापि द्वितीयः संयोजकाभावात् । तदाह–तु शब्द एवार्थकः । आत्मसद् भावादेषां संयोगो नैव कुतः ? यतः सुखदुःखहेतोरनीश आत्मा । आत्मा चेन्नानीशः सुखभोक्तैव स स्यात् । नैवमस्ति लोके तस्य दुःखभोक्तृत्वस्यापि प्रत्यक्षमीक्ष्यमाणत्वात् । सुखदुःखभोक्तृत्वेनानीशत्वादेवात्मा जगत्कारणमपि न । एतेन कालादयोऽचेतना-श्चेतनो जीवश्च न जगत्कारणमित्युक्तं भवति ॥२॥

उक्तेन प्रकारेण कालादीना जगत्कारणत्वं प्रतिक्षिप्तमतस्तेभ्योऽतिरिक्तस्तेषां प्रेरकः सर्वेश्वरः कश्चिदस्ति जगत्कारणमित्यभिधत्ते न इति । ध्यानयोगानुगता ध्यानमेव योगस्तमनुगता युक्तास्ते मुनयः स्वगुणैः स्वस्य प्रकृतेर्गुणः सत्त्वरजस्तमांसि तैर्निरूढा समन्विताम् । स्वपदेनैषां गुणानां परमात्मगुणत्वाभावः सूचितः । प्रकृतेर्गुणा-नाञ्च भेदप्रदर्शनाद् गुणसमूहस्य प्रकृतित्वाङ्गीकर्तॄणां साख्याना निरासोऽपि वेदितव्यः । देवात्मशक्तिं देवात्मनः 'लोकवत्तुलीलाकैवल्यम्' इत्येवं प्रदर्शितस्य परब्रह्मणो भगवतः श्रीरामस्य शक्ति जगदात्मकैककार्योपयिकापृथक्सिद्धविशेषणतया शक्तिपदेनोदीरिताम् । द्रव्यत्वसत्त्वेऽपि ब्रह्मणो जगत्कारणत्वनिर्वाहकत्वेन शक्तितयाऽभिहितामित्यर्थः । प्रकृतिमपश्यन्नवालोकन्त । परब्रह्मणो भगवतः श्रीरामस्य देवत्वमामनन्ति कतिचि-च्छ्रुतिस्मृतयः तथाहि—"अरं दासो न मीढुसे कराण्यहं देवाय भूर्णयेऽनागाः । अचेत यदचिता देवो अर्योगृत्स राये कवितरो जुनाति ॥" (ऋग्वेदः) "यो ब्रह्मा विष्णुर्महेश्वरो यः सर्वदेवात्मा" (रामोत्तरताप०) "इत्येतैर्ब्रह्मा सप्तचत्वारिंशन्मन्त्रै-र्नित्यं देव स्तौति । ततो स्तुतो देवः प्रीतो भवति । स्वात्मानं दर्शयति । तस्माद् य एतैर्मन्त्रैर्नित्यं देवं स्तौति स देवं पश्यति । सोऽमृतत्वं गच्छति । सोऽमृतत्वं गच्छति । (श्रीरामतापनीयोपनिषत्)

"ततः सहस्ताभरणान् प्रगृह्य विपुलान् भुजान्। अब्रुवंस्त्रिदशश्रेष्ठा राघवं प्राञ्जलि स्थितम्
कर्त्ता सर्वस्य लोकस्य श्रेष्ठो ज्ञानविदां विभुः। उपेक्षसे कथं सीता पतन्तीं हव्यवाहने।
कथं देवगणश्रेष्ठमात्मानं नावबुध्यसे ॥६॥" (वाल्मीकि रा० यु०)

"इति ब्रुवाणं काकुत्स्थं ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः।अब्रवीच्छृणु मे वाक्यं सत्यंसन्यपराक्रमः१२
भवान् नारायणो देव सीतालक्ष्मीर्भवान् विष्णुर्देवः कृष्णः प्रजापतिः ॥२७॥"
अमोघं देव ते वीर्यं न तेऽमोघाः पराक्रमाः ॥२९॥"

अमोघं दर्शनं राम अमोघस्तव संस्तवः। अमोघास्ते भविष्यन्ति भक्तिमन्तो नरा भुवि३०
ये त्वां देवं ध्रुवं भक्ताः पुराणं पुरुषोत्तमम्। प्राप्नुवन्ति तथा कामानिह लोके परत्र च
(वाल्मीकि रा० यु० ६।११७)

सनत्कुमारसंहितास्थे श्रीरामस्तवराजेऽपि—

"रामं रघुवरं वीरं धनुर्वेदविशारदम्। मङ्गलायतनं देवं रामं राजीवलोचनम् ॥२०॥"
"श्रीरामचन्द्रं हरिमादिदेवं परात्परं राममहं भजामि ॥२५॥"
"नमोऽस्तु वासुदेवाय ज्योतिषा पतये नमः। नमोऽस्तु रामदेवाय जगदानन्दरूपिणे५०

"वरं वरेण्यं वरदं तु काव्यं सन्तारयत्याशु च सर्वलोकम्।
मङ्कल्पितार्थप्रदमादिकाव्यं श्रुत्वा च रामस्य पदं प्रयाति ॥२८॥
ब्रह्मेशविष्णवाख्यशरीरभेदैर्विश्व सृजत्यत्ति च पाति यश्च।
तमादिदेवं परमं वरेण्यमाधाय चेतस्युपयाति मुक्तिम् ॥२९॥"
(स्कन्दपुराणरामायणमाहात्म्ये)

आचार्यवर्यभगवत्पादश्रीराघवानन्दाचार्यैरप्यभिहितम्—

"अशरण्यशरण्याय देवदेवाय वेधसे। व्यक्तषाड्गुण्यचेष्टाय राघवेन्द्राय मङ्गलम् ।५९
(श्रीराघवेन्द्रमङ्गलमाला)

प्रकृतिलक्षणायां शक्तामङ्गीकृतायां तद्द्वारकमेव जगदुपादानकारणत्वं परब्रह्मणो भगवतः श्रीरामचन्द्रस्यातो न तस्य घटोपादानकारणस्य मृत्पिण्डस्येव विकारित्वप्रसङ्ग इति ध्येयम्। उक्तञ्चैवमेव परिणामविमर्शे भगवद्भिः श्रीद्वारानन्दाचार्यैः—

"उपादानं निमित्तं च जगतो राघवो मतः। श्रुतयो निर्विकारत्वं वदन्ति ब्रह्मणो ननु
व्याकुप्येयुर्हि ताश्चैवं कुतश्चेदुच्यते यतः। विकारीति मतं सर्वैरुपादानं विचक्षणैः ३।
इति चेदुच्यते ह्यत्र नैव वाच्यं कुतो यतः। प्रतिज्ञातं श्रुतौ सर्वज्ञानमेकस्य ज्ञानतः ।४॥
दृष्टान्तः कथितश्चापि मृत्कार्याणां मृदस्तथा। उपादानं घटादेर्हि मृत्तिका परिकीर्त्तिता५

तमेकनेमिं त्रिवृतं षोडशान्तं शतार्धारं विंशतिप्रत्यराभिः ।
अष्टकैः षड्भिर्विश्वरूपैकपाशं त्रिमार्गभेदं द्विनिमित्तैकमोहम् ॥४॥

परिणता यतो मृद्धि घटादिरूपतः खलु । उपादानस्य विज्ञानादुपादेयावबोधतः ॥६॥
मृज्ज्ञानेन घटादीनां विज्ञानं सम्मतं तथा । एकस्य ब्रह्मणो ज्ञानाद् विज्ञानं जगतस्तथा।
उपादानं यतो ब्रह्म जगतोऽस्य मतं बुधैः । परिणतं यतो ब्रह्म जगद्रूपेण सम्मतम् ।८॥
व्यासेन'प्रकृतिश्चे'त्यादिकं हि सूत्रितं ततः । श्रीबोधायनवृत्तौ तद् व्याख्यातमेव मेव च
ब्रह्मणः परिणामो हि प्रकारद्वारको जगत् । विकारित्वं ततो द्वारे प्रकृतिपुरुषद्वये ॥१०॥
स्वरूपे च स्वभावे च विकारः प्रकृतेः खलु । स्वभाव एव जीवस्य विकारः स्वीकृतो बुधैः
ब्रह्मणस्तु विकारो यन्न स्वरूपस्वभावयोः । व्याकोपावसरः कश्चिच्छ्रुतीनां वर्त्तते न तत्"

अत एवोक्तं श्रीश्रुतानन्दाचार्यैः श्रौतसिद्धान्तबिन्दुप्रबन्धे
"त्रिधाऽपि श्रुतौ सर्ववित् सर्वशक्ति र्जगत्कारणं जानकीनाथ एव ।
ततः कापिलं गौतमीयञ्च शैवं च शाक्तं तथान्यन्मतं नानवद्यम् ॥७॥
विकारञ्च रामो दयाब्धिस्तथात्वे दयाशून्यतां पक्षपातं च नैति ।
प्रकारे विकारस्तथा चित्रसृष्टौ च हेतुर्यतः प्राणिनां प्राच्यकर्म।७॥" इति ।

प्रकृतिलक्षणशक्त्यवलोकनानन्तरं तादृशशक्तिशरीरकं कालाद्यखिलकारणाधिष्ठितारं परमात्मानमप्यपश्यन्नित्यभिधत्ते—य इति । यानि कालात्मयुक्तानि कालादारभ्यात्मान्तानि यानि कारणानीतः प्रागुक्तानि तानिनिखिलानि यश्चैकोऽधितिष्ठत्यधीष्टे तं सर्वकारणनियन्तार परमात्मानं श्रीराममप्यपश्यन्नित्यर्थः ।

"राम एव परं ब्रह्म राम एव परं तपः ।राम एव परं तत्त्वं श्रीरामो ब्रह्मतारकम्" इतिश्रुतेः ३।

।\ अथ चित्तावतारसौकर्यार्थं तच्छक्तितया निर्दिष्टां प्रकृतिं चक्रतया निरूपयति—तमिति । तं परमात्मानमेका प्रकृतिपदाभिधेयानेमिर्यस्य स एकनेमिस्तमेकनेमिं प्रकृत्याख्यनेमिविशिष्टं त्रिवृतं त्रिभिःसत्वरजस्तमोभिर्गुणैर्वृत्तं षोडशान्तंषोडशसंख्याका अन्ता विकारा यस्य स यद्वा प्राणादारभ्य नामपर्यन्तायाः षोडशकलास्तासामन्तोऽवसानं यस्मिन् स षोडशान्तस्तं शतार्धारं शतस्यार्धमकारादिपञ्चाशद्वर्णात्मका अरा नाभिनेमिमध्यस्थकाष्ठविशेषा यस्य तं पञ्चाशत्संख्याकवर्णात्मकाराविशिष्टं विंशतिप्रत्यराभिः । अत्र प्रत्यराभिरिति लिङ्गविपर्ययश्छान्दसो ज्ञेयः । तथा च द्वादशमासषड्ऋत्वयनद्वयात्मकैर्विंशतिसंख्याकैःप्रत्यरैररराणां दाढर्यार्थं निहितैस्तन्मध्यस्थैःकाष्ठविशेषैश्चविशिष्टमित्यर्थः ।

पञ्चस्रोतोम्बुं पञ्चयोन्युग्रवक्त्रां पञ्चप्राणोर्मिं पञ्चबुद्ध्यादिमूलाम् ।
पञ्चावर्त्तां पञ्चदुःखौघवेगां पञ्चाशद्भेदां पञ्चपर्वामधीमः ॥५॥

षड्भिरष्टकैरुपेतम् । तत्रादिमष्टकमणिमाद्यैश्वर्याष्टकम् । प्राच्यादिदिगष्टकमिन्द्रादिदिक्पालाष्टकं वा द्वितीयम् । भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनोबुद्धिरेव च । अहङ्कार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥" (गीता ७।४) इति गीतोक्तं प्रकृत्यष्टकं तृतीयम् । "ब्रह्मा प्रजापतिर्देवा गन्धर्वा यक्षराक्षसा। पितरश्च पिशाचाश्च" इति देवाष्टकम् "अष्टौ वसव" इति वस्वष्टकं वा चतुर्थम् । दयाक्षान्त्यनसूयाशौचानायासमङ्गलाकार्पण्यास्पृहेत्यात्मगुणाष्टकं पञ्चमम् । अपहतपाप्मत्वादिब्रह्मगुणाष्टकं षष्ठम् । एभिः षट्संख्याकैरष्टकैरन्वितम् । विश्वरूपैकपाशं विश्वरूपः स्वाश्रितजगद्‌चलत्वकारणत्वेन बन्धकपाश इव विराट् पुरुष एव एको मुख्यः पाशो यस्य तम्[卐] । त्रिमार्गभेदम् । त्रयो देवयानपितृयाणक्षुद्रजन्तुभवनात्माकास्त्रिसंख्याकामार्गभेदा यस्य स तम् । द्विनिमित्तैकमोहम् । पितृयाणक्षुद्रजन्तुभवनरूपमार्गद्वयस्य निमित्तं हेतुभूतो देहात्मैक्याभिमानात्मक एको मोहो यस्मात्तमपश्यन्निति पूर्वेण सम्बन्धः ॥४॥

अथ चक्रतया निरूपितां प्रकृतिं वैराग्यजननाय नदीत्वेनोपवर्णयति -पञ्चस्रोतोम्बुमिति । पञ्चसंख्याकानि स्रोतोम्बूनि स्रोतस्तयाऽविच्छेदेन प्रवर्त्तमानानितमोऽक्षराव्यक्तमहदहङ्कारात्मकान्येवाम्बूनिःयस्याः सा पञ्चस्रोतोम्बुः ताम् । पञ्चयोन्युग्रवक्त्रामाकाशादिपञ्चमहाभूतोपादानकारणतया योन्यात्मकानि पञ्च पञ्चसंख्याकानि शब्दादितन्मात्राण्येव उग्राणि भीषणानि वक्त्राणि मुखानि यस्याः सा तथोक्ता ताम् । पञ्चप्राणोर्मिं पञ्चसंख्याकाः प्राणापानादय एवोर्मयस्तरङ्गा यस्याः सा तथोक्ता ताम् । पञ्चबुद्ध्यादिमूलां बुद्धेर्ज्ञानस्यादीनि ज्ञानेन्द्रियाणि । पञ्च बुद्ध्यादीनि मूलं यस्याः सा पञ्चबुद्ध्यादि मूलाताम् पञ्चावर्त्तां पञ्च कर्मेन्द्रियाण्येव आवर्त्ता सा तथोक्ता ताम् ।पञ्चदुःखौघवेगां पञ्च पञ्चसंख्याकानि गर्भजन्मव्याधिजरामरणानि प्रतिकूलतया वेदनीयानि पञ्चमहाभूतान्येव वा दुखानि ओघस्य वेगो यस्याः सा पञ्चदुखौघवेगा ताम् । पञ्चाशद्भेदां पञ्चाशद्वर्णात्मकाभेदा यस्याः सा पञ्चाशद्भेदा ताम् पञ्चपर्वां पञ्च पञ्चसंख्याकानि पर्वाणितमोमोहमहामोहतामिस्रात्मकपर्वाणि यस्याः सा पञ्चपर्वा तां नदीमिति शेषः । ब्रह्मात्मकनदीरूपा प्रकृति तदधिष्ठातारं सर्वेश्वरं भगवन्तं श्रीरामञ्च वयमधीमः स्मरामः ॥५॥

[卐] विराट्पुरुषात्मकब्रह्मचक्रपाशरूपमित्यर्थ ।

सर्वाजीवे सर्वसंस्थे बृहन्ते अस्मिन् हंसो भ्राम्यते ब्रह्मचक्रे ।
पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा जुष्टस्ततस्तेनामृतत्वमेति ॥६॥
उद्गीतमेतत् परमं तु ब्रह्म तस्मिंस्त्रयं स्वप्रतिष्ठाक्षरं च ।
अत्रान्तरं वेदविदोविदित्वा लीना ब्रह्मणि तत्परा योनिमुक्ताः॥७॥

अथ 'जीवाम केन ?' 'क्व च सम्प्रतिष्ठा ?' अधिष्ठिताः केन सुखेतरेषु व्यवस्थां वर्त्तामहे ?' इति प्रश्नत्रयस्योत्तरमाह—सर्वाजीव इति । सर्वानाजीवयतीति सर्वाजीवंतस्मिन् सर्वाजीवे सर्वाजीवनकर्त्तरि * सर्वेषां संस्थाप्रलयो यस्मिंनस्तत् सर्वसंस्थं तस्मिन् सर्वसंस्थे × सर्वलयस्थानभूते । कुतस्तस्य सर्वसंस्थत्वं युक्तमित्याशङ्कायामाह—बृहन्त इति । निरतिशयबृहत्त्वशालिनीत्यर्थः, तस्मिन् ब्रह्मचक्रे ब्रह्मात्मके चक्रे हंसो गमनशीलो जीवो भ्राम्यते । ब्रह्मचक्रेण भ्राम्यमाणो भवतीत्यर्थ + । अत्र ''भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ।'' इति भगवदुक्तिरनुसन्धेया । अथैतादृशस्य ज्ञानस्य फलमभिधत्ते—पृथगात्मानमिति । एवं प्रेरितारं स्वनियन्तृतया परमात्मानमात्मानंपरमात्मनियम्यतया तच्छरीरभूतं स्वात्मानञ्च पृथङ् मत्वा विज्ञाय ततस्तेन निरुक्तज्ञानप्रीतेन ब्रह्मणा भगवता श्रीरामेण जुष्टः प्रीतः (प्रीतिविषयीकृतः स नित्यर्थः) सन्नमृतत्वंमोक्षमेत्यवाप्नोति । एतेन नियाम्यनियन्तृरूपजीवेश्वरभेदविषयकस्य ज्ञानस्य मोक्षहेतुत्वाभिधानेन जीवेश्वरभेदस्यापारमार्थ्यं वदन्तो निरस्ता वेदितव्या अपरमार्थविषयकस्य ज्ञानस्य मोक्षहेतुत्वासम्भवात् । ईर् धातोरदादिगणवृत्तित्वात् प्रेरितारमिति णिज्विकल्पः ।६॥

चक्ररूपेण प्रागभिहितस्यैव परमतां सर्वाधारतां स्वमहिमप्रतिष्ठिततामक्षरताञ्चाभिधत्ते—उद्गीतमिति । उद्गीतमेतच्चक्ररूपेण प्रागभिहितम् । एवार्थकस्तु । परमं सर्वत उत्कृष्टं ब्रह्म । स्वप्रतिष्ठेति स्त्रीत्वं छान्दसम् । तथा च स्वस्मिन्नात्मीय महिम्नि प्रतिष्ठा यस्य तत् स्वप्रतिष्ठमक्षरमिति ''रमन्ते योगिनोऽनन्ते नित्यानन्दे चिदात्मनि । इति रामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते'' (रामपूर्वताप०) 'ॐ यो वश्रीरामचन्द्रः स भगवानद्वैतपरमानन्दात्मा यः परं ब्रह्म भूर्भुव स्वस्तस्मै वे नमो नमः ॥१॥' (रामोत्तरताप०) 'राम एव परं ब्रह्म राम एव परं तपः । राम एव पर तत्त्वं श्रीरामो ब्रह्म

* एतेन 'जीवाम केन ? इति प्रश्नस्योत्तरमभिहितम् ।
× एतेन क्व च सम्प्रतिष्ठा ?' इति प्रश्नस्योत्तरमुक्तम् ।
+ एतेन 'अधिष्ठिता केन सुखेतरेष्वित्यादिप्रश्नादुत्तोत्तरा भवति ।

संयुक्तमेतत् क्षरमक्षरञ्च व्यक्ताव्यक्तं भरते विश्वमीशः ।
अनीशश्चात्मा बध्यते भोक्तृभावाज् ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ।८
ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशनीशावजा ह्येकाभोक्तृभोगार्थयुक्ता ।
अनन्तश्चात्मा विश्वरूपो ह्यकर्त्ता त्रयं यदा विन्दते ब्रह्ममेतत् ॥९॥

तारकम् ॥"(रामोपनिषत्) 'नारायणं परं ब्रह्म' स्वेमहिम्नि प्रतिष्ठितः' 'एतद् वैतदक्षरं गार्गि ब्रह्मणा अभिवदन्ति, इत्यादिश्रुतिषूद्गीतं परब्रह्मतया स्वप्रतिष्ठिततयाऽक्षरतया चोच्चैर्गीतम् । क्वचिदुद्गीथमिति पाठः । अर्थस्तु तत्राप्येष एव । तस्मिन् स्वप्रतिष्ठाक्षरात्मके परमब्रह्मणि त्रयं प्रकृतिपुरुषकालत्रयमाश्रितमिति शेषः । वेदविदस्तत्परास्तदेव ब्रह्म परमं येषां ते तत्परा ब्रह्मपरा । ब्रह्मावाप्तिकामा इत्यर्थः । अत्रास्मिन् परमे ब्रह्मण्यन्तर प्रकृतिपुरुषकालानां ब्रह्मशरीरत्वेन ब्रह्मापृथक्सिद्धत्वेनान्तरशब्दाभिहितमाधाराधेयभावात्मकं भेदं विदित्वाऽवगम्य योनिमुक्ताः प्रकृतिसम्बन्धनिर्मुक्ताः सन्तो लीना परमं साम्यमवाप्य नामरूपविभागानर्हतामवाप्ताः ॥७॥

नन्वविशिष्ट एव जीवपरमात्मनोः प्रकृतिसम्बन्धस्तर्हि जीव एव कुतो बध्यते न परमात्मेत्यत आह संयुक्तमिति । ईशः परमात्मा व्यक्ताऽव्यक्तं क्षरमचिद्वर्गमक्षरं चिद्वर्गं संयुक्तं भोक्तृभोग्यतया मिथः संयुक्तमेतद्विश्वं सर्वं भरते बिभर्त्यथापि स न बध्यते "न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफलेस्पृहा ।' इति वचनप्रामाण्यात् कर्मफलस्पृहाभाववत्त्वेनापहतपाप्मत्वेन चेशस्य कर्मलेपाभावात् । अनीशश्चात्मा जीवस्तु भोक्तृभावादैहिकक्षुद्रफलकामनया निषिद्धस्यामुष्मिकफलकामनया च काम्यस्य कर्मणः कर्तृत्वाद् बध्यत एव । यदा तु भगवत्कृपया जातवैराग्यः सन् भगवन्निष्ठं सद्गुरुमासादयति तदा देवमनन्तकरुणावरुणालयं स्वप्रकाशं देवशब्दवाच्यं परब्रह्म भगवन्तं श्रीरामं ज्ञात्वा विदित्वा सर्वपाशैः कर्मक्लेशाद्यखिलपाशैर्मुच्यते । नित्यमनवधिकातिशयसुखरूपं च ब्रह्मानुभवात्मकं मोक्षमवाप्नोति ॥८॥

"ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः" इत्युक्तं मोक्षकारणं परमात्मविज्ञानम्, तच्च चिदचिद्वैलक्षण्यापन्नपरमात्मविषयकमेवेत्यभिदधाति—ज्ञाज्ञाविति । प्रागभिहितयोर्जीवपरमात्मा ज्ञः सर्वज्ञोऽत एवेशः । जीवस्त्वज्ञोऽल्पज्ञोऽत एवानीशः । अजत्वमुत्पत्तिशून्यत्वम् । तच्चोभयोस्तुल्यमेव । ईशनीशाविति छान्दसो दीर्घाभावः । अजत्वेन जीवेश्वरतुल्या ताभ्यां भिन्नैका प्रकृतिरप्यस्ति । सा हि भोक्तृभोगार्थयुक्ता भोक्तुर्जीवस्य भोगरूपार्थेन विशिष्टा न तु परमात्मभोगार्थयुक्ता । कुत इतिचेदाह—अनन्तश्चेति ।

वह्नेर्यथा योनिगतस्य मूर्त्तिर्न दृश्यते नैव च लिङ्गनाशः ।
स भूय एवेन्धनयोनिगृह्यस्तद्वोभयं वै प्रणवेन देहे ॥१३

आत्मानमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम् ।
ध्याननिर्मथनाभ्यासाद् देवं पश्येन्निगूढवत् ॥१४॥

तिलेषु तैलं दधनीव सर्पिरापः स्रोतःस्वरणीषु चाग्निः ।
एवमात्माऽऽत्मनि गृह्यतेऽसौ सत्येनैनं तपसा योऽनुपश्यति ॥१५॥

सर्वव्यापिनमात्मानं क्षीरे सर्पिरिवार्पितम् ।
आत्मविद्यातपोमूलं तद्ब्रह्मोपनिषत्परम् तद्ब्रह्मोपनिषत्परम् ॥१६

इति श्वेताश्वतरोपनिषदि प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

नित्यनिरतिशयानन्तदिव्यगुणगणाश्रयो भगवान् श्रीराम एतत् त्रिविधं प्रोक्तमभितं सर्वं मत्त्वा ज्ञात्वा ब्रह्म ब्रह्मसाम्यापन्नो मुक्तो भवति । ब्रह्ममिति मान्तत्वं छान्दसम् ॥१२॥

अथात्मसंस्थस्य परात्मनोऽनुपलब्धिशङ्कामपाकरोति—वह्नेरिति । यथा योनिगतस्यारण्यादिकाष्ठवृत्तेर्वह्नेर्विभावसोर्मूर्तिः स्वरूपं न दृश्यते प्रत्यक्षप्रमाणेन नोपलभ्यते किन्तु लिङ्गनाशो लिङ्गस्य वह्न्यनुमापकस्य धूमात्मकस्य लिङ्गस्यदर्शनं नैवास्ति किन्त्वरण्यादिमथनेसति धूमस्योपलब्धिरेव भूयः पश्चान्मथने सति स वह्निरेवेन्धन योनिगृह्य इन्धनात्मकयोनिप्रभवत्वेन गृह्यते । तद्वेत्यत्र वाशब्दः सादृश्यार्थकः । तथा च तद्वा तद्वत् प्रणवेन प्रणवात्मकेन साधनेन देहे 'यस्यात्मा शरीरम्' इति श्रुत्यभिहितपरमात्मदेहात्मके जीवात्मनि शोध्यमाने सत्युभयमात्मलक्षणदेहस्थं ब्रह्म तल्लिङ्गं चोपलब्धं भवति । प्रेरकत्वादिना लिङ्गेनात्मसंस्थस्य ब्रह्मण उपलब्धिर्भवतीत्यर्थः ॥१३॥

प्रणवेन यथा तत् प्रकाश्यते तदाह—आत्मानमिति । आत्मानं स्वात्मानमरणिमधरारणिं कृत्वा विधाय । प्रणवेन स्वात्मनो ध्यानं कृत्वेत्यर्थः । ध्याननिर्मथनाभ्यासाद् ध्यानमेव स्वप्रेरकत्वादिचिन्तनमेव निर्मथनं तस्याभ्यासाद् देवं द्योतनस्वभावशालिस्वान्तर्यामिणं भगवन्तं श्रीरामम् । निगूढवत् । अत्रारणिदृष्टान्तबलेन निगूढवदित्यस्य निगूढाग्निवदित्यर्थः । स्वात्मनि स्थित पश्येदुपलभेत ॥१४॥

अथोक्तमेव प्रपञ्चयति—तिलेष्विति । यथा यन्त्रपीडनेन तिलेषु तैलं मथनेन दधनि सर्पिर्भूखननेन स्रोतस्स्वापो मथनेनारणिषु चाग्निर्गृह्यत एवं यः पुरुष एनं परमात्मानं

॥ अथ द्वितीयोऽध्यायः ॥

युञ्जानः प्रथमं मनस्तत्त्वाय सविता धियः ।
अग्नें ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या अध्याभवत् ॥१

सत्येन तपसा चोपायेनानुपश्यति तेनासावात्माऽऽत्मनि स्वात्मनि गृह्यत उपलभ्यते ॥१५॥

अथ प्रकरणार्थस्योपसंहारं करोति—सर्वव्यापिनमिति । क्षीरेपयस्यर्पितं व्याप्तं सर्पिरिव घृतमिव सर्वं व्याप्तुं शीलमस्येति सर्वव्यापी तं सर्वव्यापिनमात्मानमात्मविद्यातपोमूलमात्मविद्यया तपसा च ज्ञेयमुपनिषत्परमुपनिषदां परमं प्रतिपाद्यं तं तत् परं ब्रह्म विद्यादिति शेषः । द्विरुक्तिरादराधिक्यमध्यायसमाप्तिं च द्योतयति ॥१६॥

इति श्वेताश्वतरोपनिषदो भगवच्छ्रीरामानन्दाचार्यप्रणीतानन्दभाष्ये प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

॥

प्रथमाध्याये मुख्योपायतया ध्यानमभिहितम् । तत्प्रकारमवगमयितुमारभ्यते द्वितीयोऽध्यायः । परमात्माऽऽत्मसंस्थस्तत्प्रतीत्युपयोगीन्द्रियनिग्रहलक्षणतपः सिद्ध्यनुगुणपरमात्मविषयकप्रार्थनासम्बन्धिमन्त्रमभिधत्ते—युञ्जान इति । अत्रधीपदं सर्वेन्द्रियाणामुपलक्षणम् । तथा च धियः सकलेन्द्रियाणां सविता गायत्रीमन्त्रप्रतिपाद्यःसर्वेषां प्रेरकःपरमात्मा श्रीरामः 'एतत्सवितुर्वरेण्यंध्रुवमचलममृतं भर्गाख्यं विष्णुसंज्ञं सर्वाधारं धाम" "ॐ यो व श्रीरामचन्द्रः स भगवान् यश्च सूर्यो भूर्भुवः स्वस्तस्मै वै नमो नमः" (रामोत्तरतापिनी २७) "ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवानद्वैतपरमानन्दात्मा ये च द्वादशादित्या भूर्भुवः स्वस्तस्मै वै नमो नमः" (रा० ता०) "सविता सर्वभूतानां सर्वभावान् प्रसूयते। सवनात् पवनाच्चैव सविता तेन उच्यते ॥" (याज्ञवल्क्यः) 'प्रजानां च प्रसवनात् सवितेत्यभिधीयते ॥' (विष्णुधर्मोत्तर०) 'सूर्यस्यापि भवेत् सूर्यो ह्यग्नेरग्निः प्रभोः प्रभुः ।' 'आदित्यमण्डलगतं निश्चितार्थस्वरूपिणम् । भक्तप्रियं पद्मनेत्रं भक्तानामीप्सितप्रदम् ॥' (सनत्कुमारसंहितास्थः श्रीरामस्तवराजः) । 'सूर्यमण्डलमध्यस्थं रामं सीतासमन्वितम् ।' (रामस्तव०) 'ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च त्वमेव रघुनन्दन ॥' (रामस्तव०) 'ततो रामशरीरे वै रामः पश्यति भार्गवः । आदित्यान् सवसून् रुद्रान् साध्यांश्च समरुद्गणान् ॥' (महाभारते) इत्यादि श्रुतेः स्मृतेश्च । प्रेरणार्थकात् षूधातोस्तृचि सवितेति निष्पन्नः । पृथिव्याः क्षितेरध्यूर्ध्वमग्निमग्न्यात्मकं ज्योतिर्निचाय्य सम्यक्

युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सवे । सुवर्गेयाय शक्त्या ॥२॥

युक्त्वाय मनसा देवान् सुवर्यतो धिया दिवम् ।

बृहज्ज्योतिः करिष्यतः सविता प्रसुवाति तान् ॥३॥

युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः ।

वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इन्महीदेवस्य सवितुः परिष्टुतिः ॥४॥

पूजयित्वाऽग्निहोत्रादिकर्म कृत्वा तत्त्वानां तत्त्वसाक्षात्काराय पृथिवीमग्नेर्ज्योतिः सदृशात्मवृत्तिपरमात्मसाक्षात्कारायेत्यर्थः । मनो युञ्जानो नियुञ्जान आभवद् भवतु ॥१॥

अथ तदनन्तरकृत्यमाह—युक्तेनेति । देवस्य 'भवान् नारायणो देवः' (वाल्मीकि रा० यु०) 'अहं वन्दे तं देवं रामं राजीवलोचनम् ॥' (रामरहस्य उ०) इति प्रमाण्याद् देव-शब्दवाच्यस्य स्वजनहर्षप्रदस्य सवितुः प्रेरयितुः सर्वान्तर्यामिनः श्रीरामस्य सवेऽनुज्ञायां सत्यामनुज्ञयेत्यर्थः । युक्तेन भगवदनुकूलेन मनसा वयं विशिष्टा वयं सुवर्गेयायानवधिकातिशयानन्दविशिष्टभगवल्लोकप्राप्तये भगवदभिध्यानकर्मणे शक्त्या युक्ता भवेमेति शेषः ॥२॥

अथ स्वान्तःकरणभूतमीदृशमभ्यासं कृत्वा भगवत्प्राप्तौ यतमानानामेव भगवाननुज्ञां ददातीत्येतदाह—युक्त्वायेति सुवः सुवर्गमनवधिकातिशयानन्दविशिष्टं भगवल्लोकं यतः प्राप्तवतो देवान् श्रीरामनामाद् हनुमदादीन् पूर्वाचार्यान् मनसा युक्त्वाय, अत्र छन्दसि 'क्त्वो यक्' इति यक् । तथा च मनसा युक्त्वेत्यस्य प्रणम्येत्यर्थः । दिवं द्योतनस्वभावं बृहन्निरतिशयबृहत्त्वविशिष्टं परमात्मलक्षणं ज्योतिर्धियोपासनात्मकेन ज्ञानेन करिष्यतो विषयीकरिष्यमाणान् तान् मुमुक्षून् सविता निखिलप्रेरकः सर्वेश्वरो भगवान् श्रीरामः प्रसुवात्यनुजानाति ॥३॥

अथ ब्रह्मस्वरूपवेत्तार एव भगवति मनो नियुज्य भगवत्समाराधनात्मकं कर्म कुर्वन्तीत्याह—युञ्जत इति । विप्रास्तत्त्ववेत्तारो मन उत धियो मनोऽतिरिक्तान्यन्यान्यपि ज्ञानेन्द्रियाणि परमात्मन्येव युञ्जते योजयन्ति । विप्रस्य परिपूर्णस्य बृहतो बृहद्गुणाश्रयस्य विपश्चितः सर्वज्ञस्य द्योतमानस्य सवितुरखिलप्रेरयितुर्भगवतः श्रीरामस्य वयुनाविद् वयुनं ज्ञानं तद्वित् । छान्दसो दीर्घः । भगवतः सार्वज्ञ्यादिमहिम्नो वेत्तेत्यर्थः । एक इदेक एव मही महतीः परिष्टुतिः परिष्टुतीः । अत्र ह्रस्वत्वं छान्दसम् । परिचर्या इत्यर्थः । होत्रा ऋत्विग्भिर्मन्त्रेण वा विदधे कृतवान् । भगवत्सार्वज्ञ्यादिमहिमज्ञानमेव भगवत्प्रीतिहेतुरिति तादृग् ज्ञानमेव मुमुक्षुभिरर्जनीयमित्यर्थः ॥४॥

युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिर्विश्लोक एतु पथ्येव सूरेः ।
शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः ॥
अग्निर्यत्राभिमथ्यते वायुर्यत्राधिरुध्यते ।
सोमो यत्रातिरिच्यते तत्र सञ्जायते मनः ॥६॥

सवित्रा प्रसवेन जुषेत ब्रह्म पूर्व्यम् ।
तत्र योनिं कृणवसे न हि ते पूर्तिमक्षिपत् ॥७॥

अथ योगप्रवृत्तेः प्राक्तनस्य सर्वेश्वरस्तवस्य कर्त्तव्यतामाह युज इति । ये दिव्यानि प्राकृतलोकविलक्षणानि धामानि नित्यधामपदवाच्यानि स्थानान्यातस्थुर्नित्यमास्थितास्ते विश्वे सर्वेऽमृतस्य नित्यविभोर्ब्रह्मणः पुत्राः पुत्रतुल्या नित्यमुक्ता इत्यर्थः । शृण्वन्त्वाकर्णयन्तु मम प्रार्थनामिति शेषः । सूरेः नित्यसूरिकर्तृकस्तुतिविशिष्टा पथोऽनपेता पथ्या स्तुतिर्वा पूर्व्यं वः पूर्वम् । अत्र वामिति वचनव्यत्ययश्छान्दसः । तथा विश्लोको ब्रह्मेव भगवन्तं श्रीरामं यथा प्राप्नोति । मया कृतः स्तुतिरूपो विविधः श्लोको नमोभिर्नमस्कारैः सह युजे योगाय । ब्रह्मप्राप्तय इत्यर्थः । एत्ववाप्नोतु । हे हनुमदादयो नित्यमुक्ता भवद्भिस्तथाविधेयं यथा भवत्कृता स्तुतिमिव भगवान् श्रीरामो मत्कृतामपि स्तुतिमङ्गीकुर्यादिति नित्यमुक्तविषयप्रार्थनाभिप्रायः । अत्र ब्रह्मणो नित्यसूर्यपेक्षया पूर्वत्वं तु नित्यसूरीणां ब्रह्मणोऽनुत्पन्नत्वेऽपि ब्रह्माधीनस्वरूपस्थितिप्रवृत्तिकत्वादेव बोध्यम् ॥५॥

अथ योगमारभमाणस्य शीतोष्णदेशपरिहरणीयतामाह—अग्निरिति । यत्र यस्मिन् देशेऽग्निः पावकोऽभिमथ्यतेऽभितो मथ्यते निरार्यते । यत्र वायुर्मातरिश्वाऽधिरुध्यतेऽधिकतया रुध्यते । यत्राधिकं वायुर्नवातीत्यर्थः । यत्र च सोमः सोमपदलक्षितो हिमो नातिरिच्यतेऽतिशयेन निरस्यते तत्र मनो ध्येयोन्मुखं संजायते ॥६॥

अथ योगमारभमाणस्य ध्येयमाह—सवित्रेति । सवित्रोक्तेन प्रकारेण कृताभ्यां गुरुप्रणामभगवत्स्तुतिभ्यां प्रसन्नतामवाप्तेनाखिलप्रेरकेन परमात्मना कृतेन प्रसवेनानुज्ञया योगे प्रवर्त्तमानः पूर्व्यं पूर्वदृष्टं ब्रह्म जुषेत सेवेत । ध्यायेदितियावत् । तत्र तस्मिन् परमात्मनि योनिं मनोनिष्ठां कुरुष्व । हि यस्मात् तथा कृते सति तद्ब्रह्म ते तव पूर्तिं समीहितपूरणं नाक्षिपत् न क्षिपति । समीहितपूर्तिं न निरस्यतीत्यर्थः । अत्राक्षिपदिति लडर्थे लङ् ॥७॥

त्रिरुन्नतं स्थाप्य समं शरीरं हृदीन्द्रियाणि मनसा संनिवेश्य ।
ब्रह्मोडुपेन प्रतरेत विद्वान् स्रोतांसि सर्वाणि भयावहानि ॥८॥
प्राणान् प्रपीड्येह स युक्तचेष्टः क्षीणे प्राणे नासिकयोच्छ्वसीत ।
दुष्टाश्वयुक्तमिव वाहमेनं विद्वान् मनो धारयेताप्रमत्तः ॥९॥
समे शुचौ शर्करावह्निवालुकाविवर्जिते शब्दजलाश्रयादिभिः ।
मनोऽनुकूले न तु चक्षुपीडने गुहानिवाताश्रयणेन योजयेत् ॥१०॥

अथ संसारतारकयोगदशाप्रकारमभिधत्ते—त्रिरुन्नतमिति । त्रीण्युन्नतानि यस्मिस्तत् त्रिरुन्नतमुरोग्रीवाशिरोदेशेषून्नतमन्यत्र समं शरीर स्थाप्य संस्थाप्येत्यर्थः । इन्द्रियाणि सर्वाणि चेन्द्रियाणि मनसा हृदि हृदये संनिवेश्य संनिधाय । संनियम्येत्यर्थः। ब्रह्मैवोडुपो ब्रह्मोडुपस्तेन ब्रह्मोडुपेन ब्रह्मपदवाच्यप्रणवात्मकेनप्लवेन । ब्रह्मध्यानेनेत्यर्थः । यद्वा "श्रीरामेति परं जाप्यं तारकं ब्रह्मसंज्ञकम्" (रामस्तव०) इत्यागमवचनप्रामाण्याद् ब्रह्मसंज्ञकेन षडक्षरश्रीराममन्त्रप्लवेन यद्वा ब्रह्मलक्षणप्लवेन । भगवत्साहाय्येनेत्यर्थः । विद्वान् सर्वाणि भयावहानि भयप्रदानि स्रोतांसि विविधयोनिजन्मस्रोतांसि प्रतरेत् प्रकर्षेण तरेत् ॥८॥

अथ प्राणायामविधिमभिधत्ते—प्राणानिति । इह योगकाले स पूर्वोक्तो विद्वान् 'युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु । युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥' (गी० ६।१७) इति भगवद्वचनानुसारेण युक्तचेष्टः परिमितचेष्टः सन् प्राणान् प्रपीड्य प्राणानां निरोधं विधाय प्राणे क्षीणे सति पीडां परिहर्तुं नासिकया नासारन्ध्रेणोच्छ्वसीत निरुद्धस्य प्राणवायो रेचनं विदध्यात् । ततोऽप्रमत्तः प्रमादरहितः सन् दुष्टाश्व युक्तं वाहं स्यन्दनमिव । यथा निपुणः सारथिर्दुष्टतुरङ्गयुक्तं रथं स्ववशं करोति तथेत्यर्थः । एवं मनो धारयेत् स्ववशं नयेत् । अत्रैनमिति पुंस्त्वं छान्दसम् ॥९॥

अथ योगानुष्ठानार्हं देशमभिधत्ते—सम इति । समे निम्नोन्नतभावशून्ये शुचौ पवित्रे शर्करावह्निवालुकाविवर्जिते क्षुद्रोपलपावकसिकताविरहिते शब्दजलाश्रयादिभिः कलहादिध्वनिजलाशयादिभिश्च 'विरहिते' इति शेषः । मनोऽनुकूले चित्तानुकूल्यविशिष्टे न तु चक्षुपीडने चक्षुः पीडाजनकोष्णत्वादिशून्ये । अत्र चक्षुपीडन इत्यत्र छान्दसो विसर्गलोपः । मनोऽनुकूले चित्तानुकूल्यविशिष्टे देशे गुहानिवाताश्रयणेन गुहादिरूपवायुशून्यस्थानं समाश्रित्य योजयेद् योगानुष्ठानं कुर्यात् । सूत्रितञ्च भगवद्भिर्बादरायणैः "यत्रैकाग्रता तत्राविशेषात्' इति । व्याख्यातञ्च तत् श्रीबोधायनवृत्तिसारापर-

नीहारधूमार्कानिलानलानां खद्योतविद्युत्स्फटिकशशीनाम् ।
एतानि रूपाणि पुरस्सराणि ब्रह्मण्यभिव्यक्तिकराणि योगे ॥११॥
पृथिव्यप्तेजोऽनिलखे समुत्थिते पञ्चात्मके योगगुणे प्रवृत्ते ।
न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम् ॥१२
लघुत्वमारोग्यमलोलुपत्वं वर्णप्रसादं स्वरसौष्ठवं च ।
गन्धः शुभो मूत्रपुरीषमल्पं योगप्रवृत्तिं प्रथमां वदन्ति ॥१३॥
यथैव बिम्बं मृदयोपलिप्तं तेजोमयं भ्राजते तत् सुधान्तम् ।
तद्वाऽऽत्मतत्त्वं प्रसमीक्ष्य देही एकः कृतार्थो भवते वीतशोकः ॥

पर्यायप्रमिताक्षरावृत्तिकारैर्जगद्गुरुभिः श्रीदेवानन्दाचार्यैः—'समे शुचौ शर्करावह्निवालुकाविवर्जिते शब्दजलाश्रयादिभिः । मनोऽनुकूले न तु चक्षुपीडने गुहानिवाताश्रयणेन योजयेत् ॥' (श्वेता० २।१०) इत्यविशेषेणैकाग्रतानुकूलदेशविशेषस्यैवांगत्वाभिधानाद् यत्र देशे काले वा मनस एकाग्रता स्यात् तत्रोपासीत' (प्रमिताक्षरावृत्तिः ४।१।११) इति ॥१०॥

अथ योगानुष्ठातुर्ब्रह्माभिव्यक्तिचिह्नान्यभिधीयन्ते—नीहारेति । साधकेन योगे प्रारब्धे क्रमशः नीहारधूमार्कानिलानलानां तुषारधूमरविपवनपावकानां खद्योतविद्युत्स्फटिकशशीनां खद्योतविद्युत्स्फटिकचन्द्रमसां क्रमश स्फुरणानि भवन्ति । अत्र शशीनामिति छान्दसं दैर्ध्यम् । एतानीमानि रूपाणि स्फुरणानि योगे ब्रह्मण्याविष्क्रियमाणे ब्रह्मणि पुरस्सराणि पूर्ववृत्तान्यभिव्यक्तिकराणि योगिनश्चित्त आविर्भूतानि भवन्ति ।११।

गुणनं गुणोऽभ्यासो योगस्य गुणो योगगुणः तस्मिन् योगाभ्यासे योगिनः कार्यसिद्धिमभिधत्ते—पृथिवीति । प्रवृत्ते सति पृथिव्यप्तेजोऽनिलखे सत्त्वप्रचुरपृथिव्यादिपञ्चभूतसमारब्धे पञ्चात्मके पञ्चभूतात्मके देहे समुत्थिते योगाग्निमयं सर्वरोगदहनसमर्थयोगाग्निप्रचुरं शरीर प्राप्तस्य योगाग्निमयशरीरविशिष्टस्य योगिनो न रोगो भवति न जरा भवति न च मृत्युर्मरणं भवति ॥१२॥

अथ प्रथमां योगप्रवृत्तिमाह—लघुत्वमिति । यदा योगे प्रवृत्तस्य देहे लघुत्वमारोग्यं रोगराहित्यमलोलुपत्वं विषयवैतृष्ण्यं वर्णप्रसादं शरीरवर्णोज्ज्वलत्वं स्वरसौष्ठवं स्वरसौन्दर्यं शुभो गन्धः शरीरे शुभो गन्धोऽल्पं मूत्रपुरीषं मूत्रमलयोर्न्यूनता च दृश्यते तदा योगसिद्धिज्ञापिकां प्रथमामाद्यां योगप्रवृत्तिं वदन्ति योगतत्त्वज्ञा इति शेषः ।

यदाऽऽत्मतत्त्वेन तु ब्रह्मतत्त्वं दीपोपमेनेह युक्तः प्रपश्येत् ।
अजं ध्रुवं सर्वतत्त्वैर्विशुद्धं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ॥१५॥
एष हि देवः प्रदिशोऽनु सर्वाः पूर्वो हि जातः स उ गर्भे अन्तः ।
स एव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ् जनास्तिष्ठति विश्वतोमुखः ॥१६॥

अथ योगसाधकस्य ब्रह्मसाक्षात्कारप्रकारं तत्फलञ्चाभिधत्ते—यथैवेति । यथा मृदयोपलिप्तं मृदाऽयसा वोपलिप्तं बिम्बं प्रतिमाविशेषः शुधान्तं सुधाविशेषाख्यरञ्जकद्रव्यलिप्तं तत् तेजोमयं सद् भ्राजते दीप्यते तद्वा तद्वत् सुधाविशेषोपलिप्ततेजोमयबिम्बमिव कश्चिद् देही पुरुषश्रेष्ठ आत्मतत्त्वं प्रसमीक्ष्य दर्शनसमानाकारध्यानेनोपलभ्य वीतशोको निवृत्तसंसारतापप्रयुक्तशोकः सन् कृतार्थः सिद्धार्थो भवते भवतीत्यर्थः । तद्वेत्यत्र वाशब्द इवार्थकः ॥१४॥

अथान्तर्यामिब्रह्मतत्त्वावबोधेन सर्वबन्धनिवृत्तिमभिधत्ते—यदेति । यदा युक्तो योगानुष्ठातेह देहे दीपोपमेन दीपसदृशप्रकाशमानेन परमात्मावबोधोपायात्मकेनात्मतत्त्वेन परमात्मशेषभूतेन प्रत्यगात्मना साधनेनान्तर्यामिरूपेण तस्मिन्नात्मनि स्थितं ब्रह्मतत्त्वं सूक्ष्मवस्त्रान्तरितमाणिक्यसदृशं प्रपश्येद् ध्यानेनानुभवविषयं कुर्यात् तदैव । तु शब्द एवार्थकः । अजमनादि ध्रुवं नित्यमुत्पत्तिविरहविशिष्टध्वंसाप्रतियोगिनं सर्वं तत्त्वैः 'भूषणास्त्रस्वरूपस्थं यथेदमखिलं जगत् । बिभर्ति भगवान् विष्णुः . (विष्णुपुराण १–२२) इति पुराणरत्नवचनप्रामाण्यात् सर्वतत्त्वरूपभूषणास्त्रैरुपेतमिति शेषः । विशुद्धं समस्तहेयप्रतिभटं देवं 'भवान्नारायणो देवः' (वाल्मीकि यु०) इति ब्रह्मवाक्यप्रामाण्याद् देवपदवाच्यं सर्वेश्वरं श्रीरामं ज्ञात्वा साक्षादनुभवविषयं विधाय सर्वपाशैः पाशशब्दाभिहिताविद्यारूपनिखिलकर्मबन्धैर्मुच्यते ॥१५॥

अथ परमात्मनः सर्वात्मकतामभिधत्ते—एष इति । अथ मुनयः परस्परं सम्बोधयन्ति—हे जना इति । एष ह देवः 'विज्ञानहेतुं विमलायताक्षं प्रज्ञानरूपं स्वसुखैकहेतुम् । श्रीरामचन्द्रं हरिमादिदेवं परात्परं राममहं भजामि ॥' (रामस्तव०) इत्याद्यागमवचनप्रामाण्याद् देवपदवाच्यः सर्वेश्वरः श्रीराम एव सर्वात्मत्वेन सर्वशब्दवाच्यत्वात् सर्वाः प्रदिशस्तद्वृत्तिपदार्थाश्च । अनुपदञ्चार्थे ह शब्दश्चाप्यर्थकः । पूर्वो ह जातः कल्पादौ सकलेभ्यः पूर्वो हिरण्यगर्भरूपेणोत्पन्नोऽप्येष एव । गर्भे अन्तः स उ गर्भस्थोऽपि स एव जातः स जनिष्यमाणो जातो जनिष्यमाणश्च स एव । अतो विश्वतोमुखः सर्वतो मुखोऽखिलचेतनाचेतनवाचकसर्वपदवाच्यः सर्वान् प्रति प्रत्यङ् सन्

यो देवो अग्नौ अप्सु यो विश्वं भुवनमाविवेश ।
यो ओषधीषु यो वनस्पतिषु तस्मै देवाय नमोनमः ॥१७

इति श्वेताश्वतरोपनिषदि द्वितीयोऽध्यायः ।२।

अथ तृतीयोऽध्यायः

य एको जालवानीशत ईशनीभिः सर्वांल्लोकानीशत ईशनीभिः ।
य एवैक उद्भवे सम्भवे च य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥१॥

सर्वत्र तिष्ठति । परस्परं भिन्नानां जीवानां कथमेकात्मकत्वमित्याशंकां निरस्यति -प्रत्यङिति । प्रत्यक्त्वं नामाहमर्थत्वेन भासमानत्वम् । वामदेवादीनामहमिति प्रत्यये भासमानत्वेन प्रत्यक्त्वात् परमात्मनः सर्वान् जीवान् प्रति प्रत्यक्त्वम् । नन्वस्मदाद्यहम्प्रत्ययेऽभानात् कथमस्मदादीन् प्रति प्रत्यक्त्वं परमात्मन इति चेन्न, दोषवशादभानेऽपि योग्यतासत्त्वेन दोषाभावात् ॥१६॥

परमात्मनो न स्वरूपेण सर्वत्वं किन्त्वन्तर्यामित्वेनवेत्यावेदयति—यो देवो देवशब्दवाच्यः परमेश्वरः श्रीरामो न स्वरूपेण किन्त्वन्तर्यामितयैवाग्नावप्सु विश्वं भुवनं शाल्यादिष्वोषधीष्वश्वत्थादिषु वनस्पतिषु चाविवेश । तस्मै सर्वान्तर्यामित्वेन सर्वात्मने देवाय देवशब्दवाच्याय परमात्मने श्रीरामाय नमो नमोऽस्तु । द्विर्वचनमध्यायसमाप्त्यर्थमादरार्थश्च बोध्यम् ॥१७॥

इति श्वेताश्वतरोपनिषदो भगवद् रामानन्दाचार्यप्रणीतानन्दभाष्येद्वितीयोऽध्यायः ।२।

प्राग्योगेनात्मसाक्षात्कारपूर्वकब्रह्मसाक्षात्कारः कथं सम्पाद्यत इत्येतदभिधायास्मिन् तृतीयेऽध्याये केवलं ब्रह्मण एव मोक्षप्रदातृत्वमस्तीति प्रतिपाद्यते । तत्र परमात्मनः सर्वेशितृत्वसर्वजगदुत्पत्त्यादिकारकत्वविषयकस्य ज्ञानस्य फलमाह—य एक इति । य 'इति रामपदेनासौ परब्रह्माभिधीयते' इत्यादिश्रुतिप्रसिद्धः सर्वेश्वरः श्रीराम एवैको जालवान् जालपदाभिहितमायात्मकवागुराविशिष्टः सन्नीशनीभिरीशनसामर्थ्यविशिष्टाभिर्ज्ञानबलक्रियाशक्तिभिः सर्वान् मायाजालगोचरानखिलान् प्राकृताँल्लोकानीशत ईष्टे । यश्चैक एव जगत उद्भवनमुद्भव उत्पादस्तस्मिन् सम्भवनं सम्भव एकीभावः । लय इति यावत् । तस्मिश्चेष्टे । ये ये पुरुषा एतत् परमात्मनो निखिलेशितृत्वमखिलजगदुद्भवादिकारकत्वं च विदुरेतद्विषयकज्ञानरूपमोक्षसाधनसम्पन्नास्तेऽमृता मुक्ता भवन्ति ॥१॥

एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुर्य इमाँल्लोकानीशत ईशनीभिः।
प्रत्यङ् जनास्तिष्ठति सञ्चुकोचान्तकाले संसृज्य विश्वा भुवनानिगोपाः

अथ सृष्टिस्थितिप्रलयकर्तुर्मोक्षप्रदस्यैक्यमभिधत्ते—एक इति। हे जना य इमानखिलाँल्लोकानीशनीभिरीशनसमर्थाभिर्ज्ञानबलक्रियाशक्तिभिरीशत इष्टे प्रत्यङ् तिष्ठति स स्वभक्तानां संसाररुजं द्रावयति नरकादिपातेनाभक्तान् रोदयतीति वा रुद्रः "ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवानद्वैतपरमानन्दात्मा ये चैकादश रुद्रा भूर्भुवः स्वस्तस्मै वै नमो नमः॥" (रामोत्तरतापिनी) 'दशग्रीवहरं रुद्रं केशवं केशिमर्दनम्। वालिप्रमथनं वीरं सुग्रीवेप्सितराज्यदम्॥" (रामस्तव० ४५) ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च देवेन्द्रो देवतास्तथा। आदित्यादिग्रहाश्चैव त्वमेव रघुनंदन॥ (रामस्त. ६९) 'सनकादिमुनिश्रेष्ठास्त्वमेव रघुपुंगव?। वसवोऽष्टौ त्रयः काला रुद्रा एकादश स्मृताः॥" (रामस्तवराज ७२) इत्यादिनिगमागमवचनप्रामाण्याद् रुद्रपदवाच्यो सर्वेश्वरः श्रीराम एक एव हि विश्वाऽखिलानि भुवनानि संसृज्य सृष्ट्वा गोपा गोप्ता सन्नन्तकाले प्रलयकाले सञ्चुकोच संहृतवान्। (तस्य) द्वितीयाय द्वितीयत्वाय सहायरूपेण केचिदपि न तस्थुर्न स्थितवन्तः। रुद्रपदवाच्यः सर्वेश्वर एकः श्रीराम एव सृष्टिस्थितिलयमोक्षप्रदानादिकार्याणि करोतीत्यर्थः। अत्र रुद्रपदमुद्देश्यसमर्पकमेव न त्वेकोद्देशेन रुद्रत्वविधानसमर्पकं न द्वितीयाय तस्थुरित्यनेकतापक्षव्युदस्यैकत्वपरतायाः स्पष्टमुल्लेखात्। उद्देश्यश्च प्रकृतः सर्वेश्वरोऽमृतपद्वाच्यमोक्षसाधनज्ञानविषयो भगवान् श्रीराम एव। रूढ्यर्थापेक्षया संसारमोचकत्वरूपो यौगिकार्थ एव बलीयानत्ररुद्रशब्दस्य प्रकृतोपयोगित्वात्। प्रकृतश्चात्र 'य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति' इति मोक्षसाधनज्ञानविषय एव। स च भगवान् श्रीराम एव। 'ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान् यश्च तारकं ब्रह्म भूर्भुवः स्वस्तस्मै वै नमो नमः '(रामोत्तरतापिनी) 'तमेव विदित्वातिमृत्युमेति' इत्यादिषु श्रुतिषु 'भवाब्धिपोतं भरताग्रजं तं भक्तप्रियं भानुकुलप्रदीपम्। भूतत्रिनाथं भुवनाधिपत्यं भजामि रामं भवरोगवैद्यम्॥" (रामस्त०) इत्यादिष्वागमवाक्येषु च भगवतः श्रीरामस्यैव तारकब्रह्मत्वेन मोक्षसाधनज्ञानविषयत्वेन भवाब्धिपोतत्वेन भवरोगवैद्यत्वेन चाभिधानादत एव दुर्वादध्वान्तमार्त्तण्डैराचार्यवर्यैर्भगवद्भिः श्रीराघवानन्दाचार्यैरप्यभिहितं 'धर्मार्थकाममोक्षाख्यपुरुषार्थप्रदायिने। अद्वितीयवदान्याय राघवेन्द्राय मङ्गलम्॥"(श्रीराघवेन्द्रमङ्गलमाला) इति। रूढ्यर्थमपहाय रुद्रशब्दस्य यौगिकार्थ एवाश्रितः "नमस्ते रुद्र-

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात् ।
सं बाहुभ्यां धमति सम्पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देव एकः ॥३॥
यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च विश्वाधिको रुद्रो महर्षिः ।
हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ॥४॥

मन्यवे उतो त इषवे नमः । बाहुभ्यामुत ते नमः । " इति मन्त्रस्यमहीधरभाष्येऽपि । तथाहि—"नम इति । रुत् दुःखं द्रावयतीति रुद्रः । यद्वा रु गतौ । ये गत्यर्थास्ते ज्ञानार्थाः । रवणं रुद् ज्ञानम् । भावेक्विप् । तुगागमः । रुद् ज्ञानं राति ददातीति रुद्रो ज्ञानप्रदः । यद्वा पापिनो नरान् दुःखभोगेन रोदयतीति रुद्रः । हे रुद्र ! ते तव मन्यवे क्रोधाय नमो नमस्कारोऽस्तु । उतोऽपि च ते तव इषवे बाणाय नमः । उतापि च ते तव बाहुभ्या नमः । तव क्रोधबाणहस्ता अस्मदरिष्वेव प्रसरन्तु नास्मास्वित्यर्थः । " इति । "बाहुभ्याम्" इति द्विवचनान्तबाहुशब्दप्रयोगाद् द्विभुजो भगवान् श्रीराम एव रुद्रशब्दवाच्योऽत्र न तु चतुर्भुजः पञ्चवक्त्रो नीलकण्ठः शिव इति ॥२॥

अथ सर्वजगद्धेतोः सर्वेश्वरस्य भगवतः श्रीरामस्यासहायत्वेऽपि सर्वप्रपञ्चनिर्माणक्षमनित्यदिव्यविग्रहवत्त्वमभिधत्ते—विश्वत इति । विश्वतोऽभितश्चक्षुर्नेत्रा यस्य सः । अनन्तचक्षुरित्यर्थः । एवं विश्वतोऽभितोमुखानि सन्ति यस्य सः । अनन्तमुख इत्यर्थः । विश्वतो बाहुः । अनन्तबाहुरित्यर्थः । विश्वतस्पाद् अनन्तपादित्यर्थः । सहस्रशीर्षा पुरुषः' 'अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रम्' इत्याद्युक्तप्रकारेणानन्याश्रीनानन्तनयनादिविशिष्टदिव्यविग्रहशाली यः पूर्वोक्तो रुद्रपदवाच्योऽसहाय एव सर्वविधायकः सर्वेश्वरः श्रीरामः स एवैकः 'भवान्नारायणो देवः '(रामायण) 'श्रीरामचन्द्रं हरिमादिदेवम्' (सनत्कुमारसंहिता) इत्यादिवचनप्रामाण्याद् दीव्यतीति देवः क्रीडाकर्त्ता द्युतिमाँश्च द्यावाभूमी द्युपृथिव्युपलक्षितमखिलं प्रपञ्चं सञ्जनयन्नुत्पादयञ्जीवान् बाहुभ्यां पतत्रैः पतत्रशब्दवाच्यपद्भिश्च संधमति संयोजयति । कर्मानुसृत्य सर्वेषा जीवानां बाहुपतत्रोपलक्षितशरीरेन्द्रियसम्बन्धं विदधातीत्यर्थः ॥ ३ ॥

अथ निखिलकारणस्य परब्रह्मणो भगवतः श्रीरामस्यैकता मोक्षदातृताञ्चाभिधाय मोक्षहेतुभूता बुद्धि च तत एव याचते—य इत्यादिना । यः परमात्मा भगवान् श्रीरामो देवाना ब्रह्मादीना सर्वेषाममराणामुद्भवत्यस्मादित्युद्भवः कारणमस्ति । उक्तञ्च रामायणे"प्रभवश्चाप्ययश्च त्वमुपेन्द्रो मधुसूदन "(लंका) पद्मपुराणेभगवन्तंश्रीरामं प्रति

श्रीपरशुरामवाक्यम्—"राम राम महाबाहो न वेद्मि त्वां सनातनम् ॥ जानाम्यद्यैव काकुत्स्थ तव वीर्यगुणादिभिः ॥ त्वमादिपुरुषः साक्षात् परं ब्रह्म परोऽव्ययः ॥ त्वमनन्तो महाविष्णुर्वासुदेवः परात्परः । नारायणस्त्वमीशस्त्वमीश्वरस्त्वं त्रयीमयः ॥ त्वं कालस्त्वं जगत् सर्वमकाराख्यस्त्वमेव च । स्रष्टाधाता च संहर्त्ता त्वमेव परमेश्वर । त्वमचिन्त्यो महद्भूतरूपस्त्वं स्वगुणो महान् । चतुःषट्पञ्चगुणवान् त्वमेव पुरुषोत्तमः ॥ त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वमोङ्कारस्त्रयीमयः। व्यक्ताव्यक्तस्वरूपस्त्वं गुणभृन्निर्गुणः परः॥ स्तोतुं च त्वामशक्तोऽहं वेदानामप्यगोचरम् । यच्चापलत्वं कृतवाँस्त्वां युयुत्सुतया प्रभो ?॥ तत् क्षन्तव्यं त्वया नाथ कृपया केवलेन तु । तव शक्त्या नृपान् सर्वान् जित्वा दत्त्वा मही द्विजे ॥ त्वत्प्रसादवशादेव शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम् । रामायणेऽपि—"त्रयाणामपि लोकानामादिकर्त्ता स्वयं प्रभुः । " "ये त्वां देवं ध्रुवं भक्ताः पुराणं पुरुषोत्तमम् । प्राप्नुवन्ति तथा कामानिह लोके परत्र च ॥ (लंका काण्ड) श्रीरामस्तवराजेऽपि "देवतिर्यङ्मनुष्याणां दानवानां तथैव च ॥७४॥ माता पिता तथा भ्राता त्वमेव रघुवल्लभ । सर्वेषां त्वं परब्रह्म त्वन्मयं सर्वमेव हि ॥७५॥" श्रीरामतापिनी श्रुतिश्च—"सीतारामौ तन्मयावत्र पूज्यौ जातान्याभ्यां भुवनानि द्विसप्त । स्थितानि च प्रहितान्येव तेषु ततो रामो मानवो मायया‍ऽधात् ॥ " अत्र धातूनामनेकार्थत्वात् पूज्यावित्यस्य ज्ञेयावित्यर्थो बोध्यः । "तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशदि" तिश्रुतिप्रामाण्यान्मानवो नूतनप्रभावान् भगवान् श्रीरामः "माया दम्भे कृपायां चे" ति विश्वकोशवचनबलान्मायया कृपया स्वसृष्टेषु चतुर्दशसंख्याकेषु भुवनेष्वधाद्न्तर्यामितया प्राविशत् । प्रभवश्च प्रकर्षेण देवाधिपत्यशाली "भूतत्रिनाथं भुवनाधिपत्यं भजामि रामं भवरोगवैद्यम् ॥५७॥" इति श्रीरामस्तवराजवचनप्रामाण्यात् । रामायणेऽपि—"इत्युक्तो लोकपालैस्तैः स्वामी लोकस्य राघवः । "(लंकाकाण्डे)विश्वाधिकः 'इति रामपदेनासौ परब्रह्माभिधीयते ॥' (रामतापिनी) इति श्रुतिप्रामाण्यात् परब्रह्मतया विश्वस्मादधिकः । निरतिशयबृहत्वशालीत्यर्थः । अत एवोक्तं गीतायां 'विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्" इति । रुद्रो रुद्रशब्दवाच्यः । भगवतः श्रीरामस्य रुद्रशब्दवाच्यत्वं तु द्वितीयमन्त्रस्य भाष्ये सुनिरूपितम् । निरतिशयसर्वज्ञताशालित्वान्महर्षिश्च भगवान् श्रीरामो पूर्वं सृष्ट्यादौ हिरण्यगर्भं लोककर्त्तारं ब्रह्माणं जनयामासोत्पादयामास । "द्विर्बद्धं सुबद्धं भवती"ति न्यायेन [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]नत्वन्येऽपि "यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं [illegible]" इत्य[illegible]रूपेण[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]स्नाभो [illegible]र्मन्त्रकृत् ।" ([illegible])

या ते रुद्र शिवा तनूरघोरा पापकाशिनी ।
तया नस्तनुवा शन्तमया गिरिशन्ताभिचाकशीहि ॥५॥

इत्येवं रूपेण नाभिकमलोद्भवेन ब्रह्मणा भगवतः श्रीरामस्य पद्मनाभत्वमुदीरयता स्वस्य श्रीरामादुत्पन्नत्वमभिहितमेव । "संक्षिप्य हि पुरा लोकान् मायया स्वयमेव हि । महार्णवे शयानोऽप्सु मा त्वं पूर्वमजीजनः ॥" (रामा० उत्तरकाण्डे) इत्येव रूपेण ब्रह्मणा भगवतः श्रीरामस्य प्रलयकर्तृत्वं क्षीरार्णवशायिरूपधारित्वं स्वस्य जनकत्वञ्च स्पष्टमेव व्याहृतम् । स हिरण्यगर्भजनको भगवान् श्रीरामो नोऽस्मान् मोक्षमभिकाङ्क्षमाणान् शुभया सर्वविधदुःखनिवारकत्वप्रयुक्तसर्वोत्कर्षशालिन्या मोक्षहेतुभूतया परमात्मविषयिण्याबुद्ध्यासंयोजयतु ॥४॥

अथ पूर्वोक्ता मोक्षहेतुभूता शुभा बुद्धिः किंविषयिणीत्यवगमयति—यान । हे रुद्र ? दुःखद्रावयितृत्वेन ज्ञानप्रदत्वेन पापिजनरोदयितृत्वेन वा रुद्रपदवाच्य भगवान् श्रीराम ? यद्वा "जगत् सर्वं शरीरं ते" इति रामायणोक्तरीत्या शरीरत्वेन रुद्रविशिष्टतया रुद्रानतिरिक्त भगवन् श्रीराम ? । अत एवोक्तं सनत्कुमारसंहितायाम्—"ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च देवेन्द्रो देवतास्तथा । आदित्यादिग्रहाश्चैव त्वमेव रघुनन्दन' इति । "त्रयाणामपि लोकानामादिकर्त्ता स्वयं प्रभुः । रुद्राणामष्टमो रुद्रः साध्यानामपि पञ्चमः। अश्विनौ चापिकर्णौ ते सूर्याचन्द्रमसौ दृशौ ।" इति । न चैवं विशेषणविशेष्यभूतयो रुद्रामयोरद्वैतत्वं स्यादिति वाच्यम्, विशेषणविशेष्ययोस्तयोर्दण्डपुरुषयोरिव स्वरूपधर्मप्रयुक्तभेदस्य निरूपयितुं शक्यत्वात् । अथ "रुद्रशब्दस्येह न रुद्रवाचकत्वं किन्तु परब्रह्म श्रीरामवाचत्वमेवे"त्यभिप्रायं व्यञ्जयितुं विशेषणान्तरमाह—गिरिशन्तेति । गिरौ शेत इति गिरिशः कैलाशशायी शङ्करः । गिरिशं तनोतीति गिरिशन्तो रुद्रसर्जकस्तत्सम्बुद्धौ हे गिरिशन्त हे शिवसर्जक भगवन् श्रीराम! ते निरुक्तविशेषणविशिष्टस्य तव या " य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते हिरण्यश्मश्रुर्हिरण्यकेश आप्रणखात् सर्व एव सुवर्णः" (छा० १ । १ । ६) "रामः कमलपत्राक्षः पूर्णचन्द्रनिभाननः । रूपदाक्षिण्यसम्पन्नःप्रसूतो जनकात्मजे ॥ " (रामा० ५ । ३५ । ८) "विपुलांसो महाबाहुः कम्बुग्रीवः शुभाननः । गूढजत्रुः सुताम्राक्षो रामो नाम जनैः श्रुतः । (रामा० ५ । ३५ । १५) इत्यादिश्रुतिस्मृतिविश्रुता अघोरा घोरत्वरहिता । अभयङ्करीत्यर्थः । पापकाशिनी पापकाशनशीला । दर्शनात् पापनाशिनीत्यर्थः । अपापकाशिनीतिच्छेदे तु पुण्यप्रकाशनशीलेत्यर्थोऽवगन्तव्यः । तनूर्देहस्तया शन्तमया सुखप्रदायिन्या तनुवा देहेनाभिचकाशीहि । तादृग्देहविशिष्टरूपेण त्वं प्रकाशितो भवेत्यर्थः ॥५॥

यामिषुं गिरिशन्त हस्ते बिभर्ष्यस्तवे ।
शिवां गिरित्र तां कुरु मा हिंसीः पुरुषं जगत् ॥६॥
ततः परं ब्रह्म परं बृहन्तं यथा निकायं सर्वभूतेषु गूढम् ।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारमीशं तं ज्ञात्वा अमृता भवन्ति ॥७॥
वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥८॥

अथ दिव्यविग्रहवद् दिव्यायुधध्यायिनां दण्डपरिहारपूर्वकपरिपालनार्थमभ्यर्थयति वेदान्तवेद्यं बाणधारकं भगवन्तं श्रीरामम्—यामिति। हे गिरिशन्त ? हे रुद्रसंज्ञक ? भगवन् श्रीराम ? त्वं शिवां दिव्यां यामिषुममोघबाणं बिभर्षि धारयसि । ''सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञमानन्दकरसुन्दरम् । कौसल्यानन्दनं रामं धनुर्बाणधरं हरिम् ॥ एवं सञ्चिन्तयन् विष्णुं यज्ज्योतिरमलं शिवम् । प्रहृष्टमनसो भूत्वा मुनिवर्यः स नारदः ॥'' (सनत्कुमारसंहिता) इत्यादिसच्छास्त्रप्रामाण्याद् हे श्रीराम रममोघं दिव्यं शरं त्वं दधासि । हे गिरित्र ! गिरि भगवन्निश्वासरूपे वेदशिरोभागे वेदान्ते त्रायते प्रतिपाद्यत इति गिरित्रो वेदान्तप्रतिपाद्यस्तत्सम्बुद्धौ हे गिरित्र ? ''वेदान्तवेद्यं कविमीशितारमनादिमध्यान्तमचिन्त्यमाद्यम् । अगोचरं निर्मलमेकरूपं नमामि रामं तमसः परस्तात् ॥'' इत्याद्यागमवचनप्रामाण्याद् हे वेदान्तवेद्य श्रीराम ? तां स्वहस्तस्थितां तामिषुं शरमस्तवे त्वत्प्राप्त्यवरोधकक्षेपणाय कुरु विधेहि गच्छतीति जगदिति व्युत्पत्त्या जगत् संसारमार्गे पुनः पुनरतिशयेन वा भ्राम्यमाणं पुरुषं जनं मा हिंसीः संसारान्धकूपापन्नं माकार्षीरित्यर्थः ॥६॥

अथ पूर्वाभिहितप्रार्थनैव मोक्षजनकध्यानसम्पादिकेति बोधयति—तत इति । ततः परमुक्तविधप्रार्थनाकरणानन्तरं बृहन्तं निरतिशयबृहत्त्वविशिष्टमत एव परं ब्रह्म यथानिकायं पिपीलिकामातङ्गसूक्ष्मस्थूलशरीरानुरूपेण सर्वभूतेषु सर्वप्राणिषु गूढमन्तर्यामितया स्थितम् । सर्वस्यान्तर्व्याप्तमित्यर्थः । विश्वस्याखिलस्यैकं मुख्यं परिवेष्टितारं परिवेष्टनविधातारम् । सर्वस्य बहिर्व्याप्तमित्यर्थः । तं सर्वस्यान्तर्बहिर्व्यापकम् ''तस्मिन्नेव श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन'' ''सर्वभूतात्मभूतस्थं सर्वाधारं सनातनम् । सर्वकारणकर्त्तारं निदानं प्रकृतेः परम्'' इत्यादिनिगमागमनिचयप्रतिपादितमीशं नियन्तारं भगवन्तं श्रीरामं ज्ञात्वा विज्ञायामृता अमृतपदमवाप्ताः । जन्ममरणशून्या इत्यर्थः । मुक्ता इति यावत् । भवन्ति । जना इति शेषः ॥७॥

यस्मात् परं नापरमस्ति किञ्चिद् यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति कश्चिद्‌ वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम् ॥९॥

अथ पूर्वमन्त्रोक्तस्य परस्य ब्रह्मणो महापुरुषपदवाच्यतां तज्ज्ञानस्यैव मोक्षसाधनता चाभिधत्ते—वेदेति । अहमेतं पूर्वमन्त्रोक्तं तमसः तमश्शब्दवाच्यात् प्रकृतिमण्डलात् परस्तात् परात्परम् साकेतलोके स्थितमादित्यवर्णं निरतिशयोज्ज्वल्यादिगुणविशिष्टदिव्यमङ्गलविग्रहविशिष्टं महान्तं सर्वथा सर्वतोऽधिकमहत्त्वशालिनं पुरुष भगवन्तं श्रीरामं वेदावगच्छामि सर्वेश्वरश्रीरामस्य महापुरुषपदवाच्यत्वञ्च 'इति रामपदेनासौ परंब्रह्माभिधीयते' (श्रीरामतापिनी) ''अमोघं देव वीर्यं ते न ते मोघाः पराक्रमाः । अमोघं दर्शनं राम अमोघस्तव संस्तवः ॥३१॥ अमोघास्ते भविष्यन्ति भक्तिमन्तो नरा भुवि॥३२॥ ये त्वा देवं ध्रुवं भक्ताः पुराणं पुरुषोत्तमम् । प्राप्नुवन्ति तथा कामानिह लोके परत्र च ॥३३॥ (वाल्मीकिरामायणे ६ ।११७) 'उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ॥' (गीता१५) 'त्यक्त्वा सुदुस्त्यजसुरेप्सितराजलक्ष्मीं धर्मिष्ठ आर्यवचसा यदगादरण्यम् । मायामृगं दयितयेप्सितमन्वधावद् वन्दे महापुरुष? ते चरणारविन्दम् ॥'(श्रीमद्भागवत-११ स्कन्ध) 'आदिपुरुषः परमपुरुषो महापुरुषएव च । पुण्योदयो दयासारः पुराणपुरुषोत्तमः । स्मितवक्त्रो मितभाषी पूर्वभाषी च राघवः ॥' (पद्मपुराण) 'नतोऽस्मि नित्यं जगदेकनाथमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्' ॥६५॥ 'परात्परं यत्परमं पवित्रं नमामि रामं महतो महान्तम् ॥' (६८) 'त्वमक्षरं परं ज्योतिस्त्वमेव पुरुषोत्तमः । त्वमेव तारकं ब्रह्म त्वत्तोऽन्यन्नैव किंचन ॥'' ७६)(श्रीरामस्तवराजः) इत्यादौव्यक्तम् । 'वेदाहमेतमि' ति पुरुषसूक्तानुवादरूपः । पुरुषसूक्तेन तु 'सहस्राक्षः सहस्रपात्' इत्यादिरूपेण महतः पुरुषस्य सहस्राक्षत्वादयः प्रतिपादिताः । ते च सहस्राक्षत्वादयो भगवतो श्रीरामस्य वेदोपबृंहणभूते रामायणे 'सहस्रचरणः श्रीमाञ्शतशीर्षः सहस्रदृक् ।' (युद्धकाण्डे) इत्येवंरूपेण प्रतिपादिता अतोऽत्र महापुरुषपदवाच्यत्वं भगवतो श्रीरामस्यैवास्ति । अत एवोक्तं स्कन्दपुराणे—'यथा पुरुषशब्दोऽयं वासुदेवे प्रतिष्ठितः ।' इति । तमेव महापुरुषपदवाच्यं परं ब्रह्म भगवन्तं श्रीराममेव विदित्वाऽवगम्य । उपास्येत्यर्थः । मृत्युं मृत्युपदवाच्यं संसारमत्येत्यतिक्रामति । अयनाय भगवतः श्रीरामस्यावाप्तये । मोक्षाख्यपरमपददिव्यधाम श्रीसाकेतप्राप्तय इत्यर्थः । अन्य इतरः पन्था मार्गो न विद्यते । नास्तीत्यर्थः । तद् गमनप्रकारश्च जगदाचार्य श्रीरामेश्वरानन्दाचार्य प्रसादित श्रीरामप्राप्तिपद्धतौ प्रस्फुटम् । अत एवोक्तं श्रीरामस्तवराजे—'त्वमेव तारकं ब्रह्म त्वत्तोऽन्यन्नैव किञ्चन ॥' (सनत्कुमारसंहिता) इति ॥८॥

ततो यदुत्तरतरं तदरूपमनामयम् ।
य एतद् विदुरमृतास्ते भवन्त्यथेतरे दुःखमेवापियन्ति ॥१०
सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः ।
सर्वव्यापी स भगवाँस्तस्मात् सर्वगतः शिवः ॥११॥

अथात्मज्ञानस्य मोक्षहेतुतापादिकायाः 'तरति शोकमात्मविद्' इत्येतस्याः श्रुतेरविरोधमापादयितुं व्यापकत्वादादित्यवर्णस्य पुरुषस्यात्मत्वमापादयति—यस्मादिति । 'न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते' 'न त्वत्समश्चाभ्यधिकः कुतोऽन्यः' ''नेदं यशोरघुपते सुरयाच्ञयात्त लीलातनोरधिकसाम्यविमुक्तधाम्नः । रक्षोवधो जलधिबन्धनमस्त्रपुगैः किं तस्य शत्रुहनने कपयः सहायाः'' इत्यादि श्रुतिस्मृतिभ्यां परमपुरुषसमाधिकनिषेधाद् यस्मादपरमन्यत् परमुत्कृष्टं किंचिन्नास्ति यस्माद् यदपेक्षाऽतिसूक्ष्मत्वात् कश्चिदणीयः प्रवेशयोग्यं सर्वव्यापित्वाज्ज्यायोऽधिकं विवृद्धं वस्तु किञ्चिदपि नास्ति । कश्चिदिति छान्दसो लिङ्गव्यत्ययः । अवाप्तसमस्तकामत्वाद् ब्रह्मादिकमपि तृणाय मन्यमानो यश्च दिवि नित्यधामाख्येऽप्राकृते लोके वृक्ष इव तरुरिव स्तब्धोऽप्रणतस्वभावविशिष्ट एको मुख्यः संस्तिष्ठति । अथ 'जीवाम केन' इति चिन्तामपाकर्त्तुमाह—तेन । तेन पुरुषेण नियमनान्तःप्रविष्टेनादित्यवर्णमहापुरुषपदवाच्येन भगवता श्रीरामेणेदं सर्वं पूर्णं व्याप्तम् । पूर्णमिति व्याप्त्या श्रीरामस्य सर्वात्मत्वाद् 'यस्यात्मा शरीरमि'तिश्रुतेर्देहभूतो जीववर्गः स्वात्मभूतेन श्रीरामेणैव जीवतीति भावः ॥९॥

'वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम्' इति मन्त्रे महापुरुषपदवाच्यस्य श्रीरामस्य ज्ञानमेव मोक्षसाधनं नान्यदित्युपदिष्टं तदुपपादयन् 'यस्मात् परं नापरमस्ति किञ्चित्'इत्यनेन महापुरुषस्यैव परत्वं नान्यस्येति प्रतिपाद्य पूर्वोक्तमर्थं हेतुतो निगमयन्नाह—ततो यदुत्तरतरमिति । यद् उत्तरतरमुत्कृष्टतरं महापुरुषपदवाच्यं श्रीरामतत्त्वं यतस्तदेवारूपं कर्मकृतरूपशून्यमनामयं दुःखशून्यं चास्ति, ततस्तस्माद्धेतोर्ये एतन्महापुरुषपदवाच्यं श्रीरामतत्त्वं विदुरुपासते तेऽमृता भवन्ति । त एवामृता जननमरणशून्या भवन्तीत्यर्थः । अथेति पक्षान्तरे । ये त्वेतच्छ्रीरामतत्त्वं न विदुस्ते दुःखमेवापियन्ति प्राप्नुवन्ति । यद्वा 'तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम् ।' इति पूर्वोक्तं सर्वशब्दवाच्यं जगत् तच्छब्देन परामृश्य ततः सर्वशब्दवाच्याज्जगतो यदुत्तरतरमित्यन्वयः कर्तव्योऽन्यत् सर्वं तु पूर्ववदेव बोध्यम् ॥१०॥

अथ 'तेनेदं पुरुषेण सर्वम्' इति सर्वव्यापित्वेन महापुरुषस्य हेयसम्बन्धशङ्का-

महान् प्रभुर्वै पुरुषः सत्त्वस्यैव प्रवर्त्तकः ।
सुनिर्मलामिमां शान्तिमीशानो ज्योतिरव्ययः ॥१२॥

मपाकरोति—सर्वाननशिरोग्रीव इति । यतः स महापुरुषः सर्वव्यापी तस्मात् सर्वेषामाननानि शिरांसि ग्रीवाश्च तस्यैव सन्तीति स सर्वाननशिरोग्रीवोऽस्ति यद्वाऽऽनन्त्यार्थकोऽत्र सर्वशब्दस्तस्मादनन्तान्याननानि शिरांसि ग्रीवाश्च सन्ति यस्य सर्वाननशिरोग्रीवः सोऽस्ति । सर्वेषां भूतानां गुहायां हृदयलक्षणायां शेत इति सर्वभूतगुहाशयश्चापि सोऽस्ति । 'अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो मध्य आत्मनि तिष्ठति । ईशानो भूतभव्यस्य ।' (का० ४।२।१२) 'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति'(गीता) 'जगत् सर्वं शरीरं ते'(रामायण) इत्यादिश्रुतिस्मृत्योऽत्र प्रामाण्यमुपयान्ति । महापुरुषस्य श्रीरामस्य सर्वभूतशरीरत्वसर्वभूतगुहाशयत्वसर्वव्यापित्वेषु मन्त्रवर्ण्यनामयन्त्रस्यासम्भवस्तु नास्ति यतो महापुरुषपदवाच्यः श्रीरामो भगवान् भगो विद्यते यस्य तादृशोऽस्ति 'ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः । ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा ॥' 'ज्ञान-शक्तिबलैश्वर्यतेजोवीर्याण्यशेषतः । भगवच्छब्दवाच्यानि विना हेयैर्गुणादिभिः ॥' इत्यादिवचनप्रामाण्यादैश्वर्यादयो ज्ञानादयो वा भगशब्दवाच्या बोध्याः । यतो महा-पुरुषपदवाच्यः श्रीरामस्तस्मात् सर्वगतोऽपि स शिवःशुद्ध योऽसौ सर्वतनुः सर्वः सर्वनामा सनातनः । अलिप्तःसर्वभावेषु श्रीरामः शरणं मम ॥ इत्यागमोक्तेः सर्वविधहे-यसम्बन्धविवर्जितःसोऽस्तीति भावः । तदुक्तं भगवता बादरायणेनापि ,सम्भो गप्राप्तिरिति चेन्न वैशेष्यात्' (ब्रह्मसूत्र १।२।८) इति । एवं स्थिते "तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति" (श्वेता०४।६) इतिश्रुतिर्जीवस्य पुण्यपापरूपकर्म-परवशत्वेन सुखदुःखोपभोगमपहतपाप्मनः परमात्मनस्तन्निवृत्तिञ्चाभिधत्ते ॥११॥

अथोक्तस्य महापुरुषस्य सत्त्वप्रवर्त्तकतामभिधत्ते—महानिति । अवधारणार्थको वै शब्दः । महान् पुरुष एव प्रभुः फलदाने समर्थः । उक्तञ्च सनत्कुमारसंहितायाम्—'भक्तप्रियं पद्मनेत्रंभक्तानामीप्सितप्रदम् ।' (रामस्तवराजः) इति । 'जायमानं हि पुरुषं यं पश्येन्म धुसूदनः । सात्त्विकः स तु विज्ञेयः स वै मोक्षार्थचिन्तकः" इत्येवंरूपेण मोक्षजनक-ज्ञानहेतोः सत्त्वस्य सत्त्वगुणस्य स्वकटाक्षेण प्रवर्त्तकः स एव महापुरुषोऽत एव ज्योतिरादित्यादिप्रकाशकज्योतिस्स्वरूपः । एतेन महापुरुषस्य निरतिशयदीप्तिविशिष्टादि-त्यवर्णविग्रहत्वमावेदितं वेदितव्यम् । अव्ययोऽविनाशिस्वरूपो भगवानेव सुनिर्मलाम-ज्ञानदुःखादिमलशून्यामिमां मुक्तिरूपां जन्ममरणाद्युपशमात्मिकां शान्तिमीशानः ।

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः।
हृदा मनीषा मनसाभिक्लृप्तो य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥१३॥
सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिं विश्वतो वृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशांगुलम् ॥१४॥

ईष्ट इत्यर्थः 'तं देवतानां परमं च दैवतं तमीश्वराणा परमं महेश्वरम्' वन्दामहे महेशानं चण्डकोदण्डखण्डनम्। जानकीहृदयानन्दं चन्दनं रघुनन्दनम् ॥५३॥ इत्यादिश्रुतिस्मृतयोऽत्र प्रमाणतामुपयान्ति ॥१२॥

अथोक्तस्य सर्वभूतगुहाशयस्य महापुरुषस्यांगुष्ठपरिमाणत्वमाह—अगुष्ठमात्र इति। अंगुष्ठेन अगुष्ठपरिमितहृदयेन मीयमानत्वादंगुष्ठमात्रे। जानानां हृदये सदान्तरात्मा सन्निविष्टः सम्यग् रूपेण स्थितः पुरुषो महापुरुषपदवाच्यो भगवाञ्श्रीरामो हृदा भक्त्या मनीषा धृत्या सयुतेन मनसाऽभिक्लृप्तो ग्रहणार्हः। य एतद् विदुरमृतास्ते भवन्तीति पूर्ववद् व्याख्येयम् ॥ १३॥

अथ पुरुषस्याङ्गुष्ठमात्राभिधानेन प्राप्तस्य परिच्छिन्नत्वभ्रमस्य निरासं करोति सहस्रेति। अत्र सहस्रशब्द आनन्त्यार्थकः सहस्राण्यनन्तानि शिरांसि यस्य स सहस्रशीर्षोऽनन्तशीर्षः। अत्र 'शीर्षन् छन्दसि' इत्यनेन शिरसः शीर्षनादेशः। एवं 'सहस्राक्षः 'सहस्रपात्' इत्यादौ विग्रहः कार्यः। सहस्राक्ष इत्यत्राक्षशब्दो ज्ञानेन्द्रियमात्रोपलक्षकः। सहस्रपादित्यत्र पादशब्दः कर्मेन्द्रियमात्रोपलक्षकः। तथा च सहस्राक्षसहस्रपाच्छब्दाभ्यां ज्ञानशक्त्योरानन्त्यमुक्तं भवति। पुरुषः "पूर्वमेवाहमिहासमिति। तत् पुरुषस्य पुरुषत्वम्' इति श्रुत्या जगत् कारणरूपेण पूर्वं वर्तमानत्वात् 'तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम्' इति श्रुत्या पूर्णत्वाद्वा 'पुरमाक्रम्य सकलं शेते यस्मान्महाप्रभुः। तस्मात् पुरुष इत्येष प्रोच्यते तत्त्वचिन्तकैः ॥' इति विष्णुस्मृतिवचनेन शरीराख्ये पुरे शयनाद्वा बहूनां बहुभिर्भजनाद्वा 'भगवानिति शब्दोऽयं तथा पुरुष इत्यपि। निरुपाधी च वर्त्तेते वासुदेवे सनातने ॥ सर्वलोकप्रतीत्या च पुरुषः प्रोच्यते हरिः। तं विना पुण्डरीकाक्षं नान्यः पुरुषशब्दभाक्" ॥ इति पद्मपुराणवचनाद्वा 'असौ रामो महाबाहुरतिमानुषचेष्टया। तेजो महत्तया वाऽपि संस्मारयति पूरुषम् ॥' इत्युत्तररामायणस्थागस्त्यवचनाद्वा 'त्वमक्षरं परं ज्योतिस्त्वमेव पुरुषोत्तमः' इति सनत्कुमारसंहितावचनप्रामाण्याद्वा पुरुषः पुरुषशब्दवाच्योऽनन्तज्ञानशक्तिसम्पन्नो भगवान् श्रीरामः 'अनन्तबाहूदरवक्त्रनेत्रम्' इत्यादिवचनानुसारेणानन्तशिरआद्यङ्गैर्विराड्रूपीसन् भूमिं भूमिशब्दवाच्यमखिलं ब्रह्माण्डं

पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् ।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥१५॥

सर्वतः पाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥१६॥

विश्वतः सर्वतो वृत्वा व्याप्य । दशाङ्गुलमित्यत्राङ्गुलशब्दोऽवयवार्थकः । तथा च पञ्चभूतपञ्चतन्मात्ररूपदशावयवयुक्तं निखिलं ब्रह्माण्डमतिक्रम्य परात्परे स्वधाम्नि स्थितः । तथा च पुरुषशब्दवाच्यस्य सर्वेश्वर श्रीरामस्य न परिच्छिन्नत्वं किन्त्वपरिच्छिन्नत्वमेवेति बोध्यम् ॥१४॥

अथ परब्रह्मणो भगवतः श्रीरामस्योभयविभूतिस्वामित्वमभिधत्ते—पुरुष एवेत्यादिना। यद् भूतं भूतकालिकं यच्च भाव्यं भविष्यत्कालिकं यच्चेदं वर्त्तमानकालिकं तत् सर्वं कृत्स्नं प्रपञ्चजातं पुरुष एव पुरुषशब्दवाच्यभगवच्छ्रीरामात्मकमेव । अत्र सामानाधिकरण्येन व्यपदेशः "ग्रामोऽयं देवदत्तः" इतिवत् प्रपञ्चपुरुषयोरीशेशितव्यभावात् "पानीयं प्राणिनां प्राणः" इतिवत् तयोः कार्यकारणभावाद् वा बोध्यः । एतेन सर्वशरीरकस्य भगवतः श्रीरामस्य लीलाविभूतीशत्वमभिहितम् । न च भगवतः प्रपञ्चशरीरकत्वे "अशरीर शरीरेषु" इत्यशरीरश्रुतिविरोधः स्यादिति वाच्यम्, अशरीरश्रुतेः कर्मकृतशरीरनिषेधकत्वाङ्गीकारेणादोषात् । ननु भगवतः शरीरेऽङ्गीकृतेतत्प्रयुक्तसुखदुःखभोगोऽपि प्रसज्येतेति चेन्न, ऐहिकसुखदुःखादिभोगस्य कर्मनिबन्धनत्वेनेश्वरस्य कर्माभावेन दोषाभावात् । अथ भगवतो नित्यविभूतीशत्वमभिधत्ते—उतामृतत्वस्येत्यादिना । अर्थान्तरवाचक उतशब्दः । अमृतत्वस्य न विद्यते मृतत्व यत्र तदमृतत्वं यत्र तदमृतत्वं परमधाम तस्यामृतत्वस्येशानो नियन्ता स्वामीत्यर्थः । तद्विशेषयति—यदन्नेनातिरोहतीति। यत् परमं धामान्ने प्रकृतिप्राकृतसम्बन्धे सति नातिरोहति नोत्पन्नो भवति । भक्त्या कर्मण्यश्लिष्टे विनष्टे च सत्येव भगवानमृतपदं ददातीत्यर्थः । तदुक्तं मोक्षधर्मे—"अन्नाज्जातस्य भूतस्य मनुष्यादेरकारणात् । निर्वाणदायी भवति कृपया पुरुषोत्तमः ॥" इति ॥१५॥

अथ भगवतः सर्वशरीरावयवादिकार्यकारित्व सर्वमावृत्यावस्थायित्वं चाभिधत्ते—सर्वत इति । तत् पूर्वाभिहितं पुरुषतत्त्वं सर्वतः पाणिपाद पाणिपादक्रियाकारकं सर्वतश्चाक्षिशिरोमुखं नयनाननशिरः प्रयुक्तकार्यकृत् सर्वतश्च श्रुतिमच्छ्रवणेन्द्रियजन्यकार्यविधायकं

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ।
सर्वस्य प्रभुमीशानं सर्वस्य शरणं सुहृत् ॥१७॥
नवद्वारे पुरे देहि हंसो लेलायते बहिः ।
वशी सर्वस्य लोकस्य स्थावरस्य चरस्य च ॥१८॥

लोके जगति सर्वपदार्थजातावृत्य व्याप्य तिष्ठत्यवतिष्ठते । उक्तं च श्रौतप्रमेयचन्द्रिकायामाचार्यवर्यैः श्रीश्रियानन्दाचार्यैः—

'स्वया च प्रभया सर्वान् यतश्चावृत्य तिष्ठति ।
श्रीमद्रामस्ततश्चैव सर्वात्मत्वेन सम्मतः ॥" इति ॥१६॥

सर्वेन्द्रियेति—सर्वेषां ज्ञानकर्मेन्द्रियत्वभेदभिन्नानामिन्द्रियाणा मनः श्रोत्राद्येकादशसंख्याकानाममुख्यप्राणानां गुणैस्तत्तदिन्द्रियजन्यज्ञानैराभासो बाह्यविषयग्रहोयस्य तत् सर्वेन्द्रियगुणाभासं मनःश्रोत्रादिनिखिलेन्द्रियवृत्त्याऽवबोधितुं समर्थम् । तत्रसर्वेन्द्रियशालित्वमप्यैच्छिकमेव न तुस्वाभाविकमत आह सर्वेन्द्रियविवर्जितमिति । तज्ज्ञानस्येन्द्रियानधीनत्वादिन्द्रियवृत्ति विनाप्यखिलमगन्तुं समर्थमितिभावः । सर्वस्याखिलस्य प्रभुं पतिविश्वस्येतिश्रुतः सर्वस्वामिनम् परिचर्याफलप्रदायकमित्यर्थः । ईशानं नियामकम् । सर्वस्य शरणं निखिलभूतरक्षकम् । उक्तं च श्रीमद् वाल्मीकीये रामायणे युद्धकाण्डे चतुर्मुखेन—

"इन्द्रकर्मा महेन्द्रस्त्वं पद्मनाभो रणान्तकृत् ।
शरण्यं शरणं च त्वामाहुर्दिव्या महर्षयः ॥"

सुहृत् सर्वदा सर्वथा च हितकरम् । बृहदितिपाठे गुणतः स्वरूपतः शरीरेण च सर्वेभ्यो महादित्यर्थः । उक्तं च श्रौतप्रमेयचान्द्रिकाया सिद्धान्तविजयिभिर्जगद्गुरुश्री श्रियानन्दाचार्यैः—"बृहत्वाद् बृंहणत्वाच्च रामो ब्रह्मतयेरितः ॥'

भगवच्छ्रीबोधायनसम्पादितस्य वेदरहस्यस्य रहस्यमार्त्तण्डभास्ये दुर्वादध्वान्तमार्त्तण्डैर्जगद्गुरुभिः श्रीराघवानन्दाचार्यैसमुद्धृतं च श्रीरामब्रह्मप्रतिपादकं बोधायनमतादर्शवचनम्—"आ सर्वत अन्तर्बहिश्वेत्यर्थः । वितते व्याप्ते, तथोक्तं बोधायनमतादर्शे"अन्तर्बहिर्जगत् सर्वं व्याप्य रामो हि संस्थितः । अनेन संवृतं ह्यन्तर्बहिः सर्वं तथान्तरम् ॥" इति ॥१७॥

ननु 'सर्वतः पाणिपादं तत्' इत्यादिमन्त्रेण यथा भगवतः सर्वतः पाणिपादत्वादिक मुक्तं तथैव गीतायास्त्रयोदशाध्यायस्य चतुर्दशेश्लोके 'सर्वतः पाणिपादं तत्' इत्येवंरूपेण

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः ।
स वेत्ति वेद्यं नच तस्यास्तिवेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम् ॥१९॥

परिशुद्धस्यात्मनश्चापि भगवता सर्वतः पाणिपादत्वादिकमुक्तम् । ततश्च 'सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् । सर्वस्य प्रभुमीशानं सर्वस्य शरणं सुहृत्" (श्वेताश्वतर० ३।१७) इति मन्त्रोक्तं सर्वस्य प्रभुत्वेशानत्वादिकमपि परिशुद्धात्मस्वरूपस्यैव स्यादिति चेन्न, 'नवद्वारेपुरे देही'त्यादिमन्त्रेण नवद्वारपुरे परिभ्रमणोक्त्या हसशब्देनाभिहितस्य जीवस्य पुण्यपापकर्मपरतन्त्रोक्तेः । तथाहि—नवद्वारे शिरसि सप्त पायूपस्थयोश्चद्वे इति नवसंख्याकानि मलस्रावकानि द्वाराणि यस्मिन् तस्मिन् पुरे पुरवत् स्वात्यन्तभिन्ने देहे देही शरीरी हंसो हन्ति गच्छति नानादेहमिति हसोहंसशब्द वाच्यो जीवो लेलायते स्वकृतपुण्यापुण्यकर्मपराधीनतया परिभ्रमतीत्यतस्तस्य सर्वप्रभुत्वेशानत्वादौ न शक्तिः किन्तु ततोबहिर्बाह्यः परमात्मैव सर्वस्य स्थावरस्य चरस्य च लोकस्य वशीवशकर्त्ता प्रभुरित्यर्थ' ॥१८॥

अथ जीवादीशस्य विशिष्टतामाह—अपाणिपाद इति । न विद्यन्ते पाणिपादा यस्य सोऽपाणिपादः पाणिपादरहितोऽपि स ईश्वरो जवनोवेगशाली । वेगेन गतिमानित्यर्थः। ग्रहीता ग्रहण कर्त्ता । ईश्वरस्य वेगेन गमनं ग्रहणं च पाणिपादानपेक्षमस्तीत्यर्थः । एतच्चान्यकर्मेन्द्रियाणामुपलक्षणम् । ईश्वरस्य सर्वं कर्म सङ्कल्पाधीनत्वादस्य कर्मेन्द्रियानपेक्षमस्तीति यावत् । न विद्यते चक्षुर्यस्यसोऽचक्षुः सन्नपि स पश्यति । ईश्वरस्य चाक्षुषं ज्ञानं चक्षुरिन्द्रियानपेक्षमस्तीत्यर्थः । न विद्येते कर्णौ यस्य सोऽकर्णः । अथापि स शृणोति । ईश्वरस्य श्रावणं ज्ञाणं श्रवणाधीनं नास्तीत्यर्थः । अत्रापि चक्षुरादिसर्वेषां ज्ञानेन्द्रियाणामुपलक्षणं बोध्यम् ।ईश्वरस्य सर्वज्ञानं ज्ञानेन्द्रियानपेक्षमवगन्तव्यम् । स च सर्वमखिलं वेद्यं वस्तु वेत्ति जानाति किन्तु स्वरूपेण गुणैश्च सर्वेभ्योवेद्येभ्यो विलक्षणत्वात् कात्स्न्र्येन तस्यवेत्ता कश्चिदपि नास्ति । वेदावेदज्ञा वा तमग्र्यमग्रगण्यं सर्वश्रेष्ठं महान्तं पुरुषमाहु,'वन्दे महापुरुष ? ते चरणारविन्दम्" इत्यादिरूपेणाहुः । "उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ।" इत्येवं रूपेण गीताया भगवताप्युक्तम् । सिद्धसम्राड् जगद्गुरु श्रीराघवानन्दाचार्यदुर्वादध्वान्तमार्त्तण्डैरपिचोक्तं श्रीराघवेन्द्रमङ्गलमालायाम्— "पुरुषायोत्तमायाथ क्षराक्षरपराय च ।परमात्माभिधानाय राघवेन्द्रायमङ्गलम् ।।"इति१९

अणोरणीयान् महतोमहीयानात्मा गुहायां निहितोऽस्य जन्तोः ।
तमक्रतुं पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमीशम् ॥२०॥
वेदाहमेतमजरं पुराणं सर्वात्मानंसर्वगतं विभुत्वात् ।
जन्मनिरोधं प्रवदन्ति यस्य ब्रह्मवादिनोहि प्रवदन्ति नित्यम् ॥२१॥

इति श्वेताश्वतरोपनिषदि तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

अथ वीतशोकत्वावाप्तेर्हेतुमाह—अणोरणीयानिति । अणोरणुपरिमाणविशिष्टात् पदार्थादप्यणीयानणुपरिमाणशाली । निखिलसूक्ष्मपदार्थान्तः प्रवेशयोग्यसूक्ष्मत्वविशिष्ट इत्यर्थः । सर्वेभ्योऽणुपदार्थेभ्योऽणुतम इति यावत् । तथात्वेऽपि महतः सकलमहत् परिमाणविशिष्टेभ्योमहीयान् महत् परिमाणविशिष्टः । निरतिशयबृहत्त्वविशिष्ट इत्यर्थः । इत्थम्भूतोऽपि परमात्मा श्रीरामोऽस्य जन्तोर्जीवस्य । जन्तोरित्येकवचनं जात्यभिप्रायेण सर्वस्य जीवव्रातस्यात्मा प्रेरकोऽस्य जीववर्गस्य गुहायाँहृदयगुहायां निहितः स्थितोऽस्ति प्रेरकतयास्थित इत्यर्थः । तं तादृशमक्रतुमकर्माणम् । कर्मकर्तृत्वशालित्वेऽपि तदनासक्तिमत्तया कर्मलेपशून्यमित्यर्थः । महन् महिमविशिष्टमिति यावत् । धातुर्जगद्धारकस्य जगत् पालकस्य वा परब्रह्मणः श्रीरामस्य प्रसादात् । ईश सर्वेश्वरं भगवन्तं श्रीरामस्य महिमानमखिलजगन्नियमनरूपं यदा पश्यत्यवलोकयति तदा वीतशोको गतशोकः । क्लेशशून्य इत्यर्थः । भवतीति शेषः ॥२०॥

अथ प्रागुक्तं वक्तव्यार्थं निगदयति—वेदाहमिति । 'अजायमानो बहुधाभिजायते 'नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामि'त्यादि यस्य विभुक्ताज्जन्म निरोधं कर्मप्रयुक्तजन्माभावं प्रवदन्ति प्रकर्षेण कथयन्ति । अहमेतं विभुत्वात् सर्वगत "अन्तः प्रविष्टः शास्ता जनानामि"ति श्रुतिप्रमाणितं सर्वान्तर्यामिणमजर जरारहितं पुराणं पुरातनं सर्वात्मानं वेदेत्येतादृशं 'रमन्ते योगिनोऽनन्ते नित्यानन्ते चिदात्मनि । इति रामपदेनासौ परब्रह्माभिधीयते ॥६॥ (श्रीरामपूर्वतापनीयोपनिषत्) इति श्रुतिप्रमाणितस्य स्वरूपगुणादिभिर्बृहत्तमस्य परब्रह्मणो भगवतः श्रीरामस्य वदनशीला महात्मानो नित्यं प्रवदन्ति ॥२१

इति श्वेताश्वतरोपनिषदो भगवच्छ्रीरामानन्दाचार्यप्रणीतानन्दभाष्येतृतीयोऽध्यायः ॥३॥



॥ अथ चतुर्थोऽध्यायः ॥

य एकोऽवर्णो बहुधाशक्तियोगाद् वर्णाननेकान् निहितार्थो दधाति
विचैति चान्ते विश्वमादौ स देवः स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ॥
तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः ।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म तदापस्तत् प्रजापतिः ॥२॥
त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी ।
त्वं दण्डेन वञ्चसि त्वं जातो भवति विश्वतोमुखः ॥३॥

अथ "द्यावाभूमी जनयन् देव एकः" इति देवशब्देनाभिहितस्य "भवान्नारायणोदेव" इतिश्रीमद्रामायणवचनप्रमाणितस्य "रति रामपदेनासौ परब्रह्माभिधीयते" इति श्रीरामतापनीयश्रुतिप्रमाणितस्य परब्रह्मणो भगवतः श्रीरामस्य "यस्यात्मा शरीरं यस्य पृथिवी शरीरं", 'सर्वात्मा' जगत्सर्वं शरीरं ते" इत्याद्यनेकश्रुतिस्मृतिप्रमाणितं सर्वात्मत्वं "पतिं विश्वस्य" इत्यादि श्रुत्यापादितं सर्वस्वामित्वं "यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते" इत्यादिश्रुतिप्रतिपादितं सर्वकारणत्वं च प्रतिपादयिष्यन् तद्विषयिणीं बुद्धिं प्रार्थयति—य एक इति । य एको मुख्योऽवर्णः । अवतीति अः, रक्षकः । आप्नोतीति अः, व्यापकः । वर्ण्यते प्रतिपाद्यते इति वर्णः 'सर्वेवेदा यत्पदमामनन्ति' इतिश्रुतिप्रतिपादितः । अश्चासौ वर्णश्चावर्णः सर्वेषां रक्षको व्यापकः सर्वश्रुतिप्रतिपादितश्च यः । अर्थ्यन्त इत्यर्थाः पदार्थाः । निहिता सूक्ष्मरूपेण रक्षिता निखिलपदार्था यस्मिन् स निहितार्थः सूक्ष्मरूपेण स्वस्मिन् स्थापितसर्वपदार्थः । बहुधा शक्तियोगादुत्पादकत्वादिशक्तिवैशिष्ट्यादादौ सृष्टिकालेऽनेकान् वर्णान् पदार्थान् दधाति धारयति पोषयति च । अन्ते प्रलयकाले च विश्वं विचैति स्वस्मिन्नदर्शनं च गमयति । एवंभूतो यो देवः सृष्ट्यादिलीलाविधायकः स भगवान् श्रीरामेनोऽस्मान् शुभया बुद्ध्या संयुनक्तु शुभबुद्धिविशिष्टान् विदधातु ॥१॥

तदेवाग्निरिति । तदेव परब्रह्म स एव परब्रह्माख्यः श्रीरामोऽग्निरादित्यो वायुश्चन्द्रमाः शुक्रं प्रकाशविशिष्टनक्षत्रमण्डलमापः प्रजापतिर्ब्रह्माचास्ति । अग्न्यादिष्वन्तरात्मरूपेण वर्त्तमानतया सर्वेश्वरश्रीरामस्यैवाग्न्यादितत्तच्छब्दवाच्यता बोद्ध्येत्यर्थः । योऽसौसर्वतनुः सर्वः सर्वनामा सनातनः । अलिप्तः सर्वभावेषु श्रीरामः शरणं मम" इत्यागमोक्तेः ॥२॥

नीलः पतङ्गो हरितो लोहिताक्षस्तडिद्गर्भ ऋतवः समुद्राः ।
अनादिमत् त्वं विभुत्वेन वर्त्तसे यतो जातानि भुवनानि विश्वा ॥
अजामेकां लोहित शुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः ।
अजोह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः ॥५॥

अथ परब्रह्मणो भगवतः श्रीरामस्योक्तमेव सर्वात्मत्वं सम्बोधनद्वाराऽभिदधाति त्वस्त्रीति । हे देव भगवन् श्रीराम ! अग्न्याद्यन्तरात्मतयावर्त्तमानस्त्वं त्वमेव स्त्री असि स्त्रीत्वविशिष्टान्तरात्मतया वर्त्तमानोऽपि त्वमेवासीत्यर्थः । त्वं त्वमेव पुमानसि, पुंस्त्वविशिष्टान्तरात्माऽपि त्वमेवासीत्यर्थः । त्वं कुमार' कुमारत्वविशिष्टान्तरात्मा उत अपि त्व त्वमेव कुमारी कुमारीत्वविशिष्टान्तरात्मावा चासि । जीर्णोजीर्णत्वावस्थापन्नो वृद्धात्मासन् दण्डेनावलम्बभूतेन लगुडेन वञ्चमि सञ्चरस्यपि त्वं त्वमेव । अत्यल्पमिदमुक्तं सर्वात्मत्वेन सर्वगतत्वात् विश्वतोमुखः सर्वरूपेण जातस्त्वमेवासि । आख्यातञ्च परिपूर्णब्रह्मणो भगवतः श्रीरामस्य विश्वरूपत्वं श्रीरामस्तवकलानिधौ बोधायनवृत्तिकारजगद्गुरु श्रीपुरुषोत्तमाचार्यकृपापात्रैर्यतिसम्राट्जगद्गुरुश्रीगङ्गाधराचार्यदेवैः—
"सुरध्येय? नमस्तेऽस्तु योगिध्येय?नमोऽस्तुते।मुनिध्येयनमस्तेऽस्तु श्रीरामायनमोऽस्तुते
नमस्ते विश्वरूपाय नमस्ते विश्वहेतवे। नमस्ते विश्ववन्द्याय नमस्ते विश्वरक्षक ? ।।४।।
अपरयाज्ञवल्क्यजगद्गुरुश्रीश्रुतानन्दाचार्यवेदविद्यानिधिभिर्भगवतः श्रीरामचन्द्रस्य सर्वात्मत्वमभिहितञ्चोपेयोपायदर्पणे—
"करणेशशरामश्चानेन जीवेन चात्मना । सृष्ट्वा विश्वं प्रविश्यान्तर्विश्वेषां प्रेरकस्तथा । सर्वात्मा सर्वदेहश्च सर्वाराध्यश्च सर्वदः। सर्वशक्तिश्च सर्वेशः सर्ववित् सर्वकृत् तथा ॥"
इति ।।३।।

नील इति । त्वमिति पदं सर्वत्रसम्बध्यते । हे भगवन् श्रीराम ! नीलः कृष्णवर्णः कोकिलादिर्हरितो हरितवर्णः शुकादिर्लोहिताक्षो राजहंसादिः पतङ्गः पक्षिविशेषः । त्वमेवासि । तडिद्गर्भेऽस्यामौ तडिद्गर्भोमेघस्त्वमेवासि । ऋतवो वसन्तादय ऋतवस्त्वमेवासि । समुद्राः सागरा अपि त्वमेवासि । अत्र सर्वत्र सामानाधिकरण्यं शरीरात्मभावनिबन्धनं बोध्यम् । यतो यस्माद् विश्वानि सर्वाणि भुवनानि भूरादीनि जाता न्युत्पन्नानि तदनादिमदादिरहितं सर्वकारणभूतं च त्वमेवासि। हे भगवन् श्रीराम ! त्व विभुत्वेन वर्त्तसे । त्वमेव समस्तचिदचित्पदार्थानभिव्याप्य तिष्ठसि । सर्वव्यापकस्त्वमेवासीत्यर्थः ।।४।।

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति ॥६॥
समाने वृक्षे पुरुषोनिमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः ।
जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानमिति वीतशोकः ॥७॥

पूर्वप्रकरणप्रदर्शितचिदचिद्विवेकं "क्षर प्रधानममृताक्षरम्, भोक्ताभोग्यं प्रेरितारञ्च मत्वा" इत्यादिकं स्फोरयन्नाह अजामेकामि यादि । तेजोजलपृथिवीरूपेण परिणामाद्रक्तश्वेतकृष्णस्वरूपवतीमजांस्वसमानानेकप्रजोत्पादयित्रीं। जन्मरहितप्रकृतिं स्नेहेन सेवमान एकोऽजन्मा जीवस्तत्रानुरक्तोभवन्नवतिष्ठते। अन्यो भगवच्छरणापत्त्यामज्ञात वैराग्योऽजन्माजीवो भुक्तभोगां तां परित्यजतीत्यर्थः ॥५॥

जीवस्य प्रकृतिसम्बन्धराहित्येसत्यपिस्वभावतया कर्मफलभोक्तृत्वं न तु ब्रह्मण इतिनिदर्शनतयाऽवतारयति द्वासुपर्णे यादि। युक्छब्दो गुणवचनपरो युज्यत इति व्युत्पत्तेः सखायौ अपृथक् भूतसम्बन्धेन परस्परसंमिलितौ जीवपरमेश्वरौ संचलनसाधनतयापर्ण शब्दव्यवहृतपक्षतुल्यज्ञानादिगुणत्वेनतुल्यौ समानमेकं वृक्षं वृक्षतुल्यमच्छेदनविषयभूत षाट्कौशिकदेहमवस्थितौ जीवेशावित्यर्थः । तयोरन्योजीवः पूर्वानेकभवोपार्जितस्वकर्मफलभूतं फलोपधायोन्मुखंपिप्पलमश्वत्थवृक्षफलवत्परिपक्वतयास्वादु बद्धतयाऽज्ञान विजृम्भितत्वेनस्वादुबुद्धियुक्तः स्वस्यैवकर्मफलंभुनक्ति । अन्यः सर्वजननियन्ताऽपहत पाप्मत्वाद्यनेकगुणगणमहिमावान् सर्वेश्वरश्रीरामोजीवेनविनाभूतत्वेऽपितत्संश्लिष्टकर्मफलमनश्नन्नेवाभिचाकशीति समभिवर्तत इत्येतत् । धातूनामनेकार्थत्वान्प्रेरयति सर्वजीवान् स्वकर्मफलभोगायेत्यर्थः । प्रकृतमन्त्रे 'तयोरन्योऽनश्नन्नन्यः' इत्युक्त्या जीवपरमात्मनः सर्वथा भेदः प्रदर्शितस्ततश्च जीवात्मा परमात्मा श्रीरामापेक्षयाऽत्यन्तं भिन्न इति दृढीकृतं भगवत्या श्रुत्या। ततश्चेतरमताभ्युपगत जीवब्रह्मणोरैक्यं निरस्तमवगन्तव्यं श्रुति विरोधात् ॥६॥

पूर्वमन्त्रोपदिष्टं प्रस्फोरयति समान इत्यादि । पूर्वमन्त्रप्रतिपादितशरीररूपैक वृक्षेसमासक्तः पुरुषो जीवात्मा निमग्नः "पराभिध्यानात्तुतिरोहितं ततो ह्यस्य बन्धविपर्ययौ" (३।२।४) इति परमार्षन्यायेनावबोधितपरमपुरुषात्मशेषत्वज्ञानानन्दत्वादिस्वरूपोभूत्वा 'स्थूलोऽहम्' 'कृशोऽहम्' इत्यादिरूपेण तादात्म्यतयाऽनीशया भोग्यस्वरूपया प्रकृत्या मुह्यमानो विवेकवैधुर्यतया स्वलक्ष्यनिर्धारणेऽसमर्थःसन् शोचति स्वप्राक्तनकर्म-

ऋचोऽक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः ।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत् तद् विदुस्त इमे समासते ॥८
छन्दांसि यज्ञाः क्रतवो व्रतानि भूतं भव्यं यच्च वेदा वदन्ति ।
यस्मान्मायी सृजते विश्वमेतत् तस्मिंश्चान्यो मायया संनिरुद्धः ॥९

जनितदुःखादिकमनुभवतीत्यर्थः । यदात्वसौ जीवः सर्वेश्वरश्रीरामस्याहैतुकीकृपया जुष्टं श्रीहनुमदादिनित्यमुक्तादिभिरहर्निशंसंसेवितमन्यं स्वस्माद्भिन्नमीशं धारकत्वनियन्तृत्वशेषित्वादिनातिवैलक्ष्यण्यं "राम एव पर ब्रह्म राम एव पर तपः । राम एव पर तत्त्वं श्रीरामो ब्रह्मतारकम्" इत्यादिरूपेण श्रुतिप्रतिपादितं सर्वेशश्रीराममस्यसकलेशितुः "यतो वै इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्तेऽभिसंविषन्ति" "जन्माद्यस्य यतः" इत्यादिश्रुतिसूत्रप्रतिपादितं महिमानमत्याश्चर्यमयमखिलजगदीशनलक्षणञ्चपश्यति परमेशितुरहैतुकीकृपया प्रत्यक्षतोऽनुभवति "यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः" इतिश्रुतेस्तदावीतशोकऽपगत ऐहिकप्रपञ्चो भवतीतिशेषः ॥७॥

तत्त्वतः परमपुरुषाश्रयणाऽभावे वेदादिनिखिलशास्त्राध्ययनत्वादिकं नैष्फल्यं प्रतिपादयति ऋच इत्यादि । यस्मिन्नखिलाधारे विश्वेदेवाः समस्तदेवसमूहा ब्रह्मा प्रभृतिका अधिनिषेदुः समवस्थिताः सन्ति "यस्मिनोतञ्चप्रोतञ्च" "मयिसर्वमिदंप्रोतं सूत्रे मणि गणा इव" इत्यादिश्रुतिस्मृत्युक्तेः । तस्मिनखिलाधारेऽक्षरे नक्षरतीत्यक्षरोऽविनाशी सदैकस्वरूपे परमेव्योमन् परमदिव्यधामश्रीसाकेताभिधे। ऋचः सम्पूर्णभगवत्स्वरूपप्रतिपादका वेदाः समवस्थिताः सन्ति अक्षरपदं श्रीसाकेताधिनायकपर तल्लोक बोधकतया वा नेयं तत्स्वरूपं यो मनुष्यवर्गो नविजानाति सः समवधीतेनापि ऋचा वेदसमूहेन किं करिष्यति वेदाद्यध्ययनफलसर्वेश्वरश्रीरामस्वरूपज्ञानं तदभावे तद्व्यर्थ मेवेत्यर्थः । "एतद्वैतदक्षर गार्गि अविदित्वाऽस्मिन् लोके जुहोति यजते तपस्तप्यते बहूनि वर्षसहस्राणि, अन्तवदेवास्य तद्भवति" इति श्रुत्युक्तेः । "स्थाणुरयं भारवाहः किलाभूद्धीत्यवेदं न विजानाति योऽर्थम्" इत्याद्युक्तेश्च । इत् परन्तु येजना तत् परमब्रह्म श्रीराममक्षरपदबोध्यं "राम एव पर ब्रह्म राम एव परं तपः । राम एव परं तत्वं श्रीरामो ब्रह्मतारकम्" इतिश्रुतिप्रतिपादितं विदुस्ते चेमेविधिवदधीत्ययथोक्तदिशा श्रीरामोपासका समासते निरस्ताखिलप्रतिकूलाचरणतया सुखमासते स्वलक्ष्यभूतपरस्वरूपप्राप्त्या कृतकृत्यो भवतीत्यर्थः ॥८॥

इतः पूर्वमन्त्रे किमृचाकरिष्यतीति श्रवणाद्वैयर्थ्यशंकायामाह—छन्दांसीत्यादि ।

मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् ।
तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत् ॥१०॥

छन्दांसि समस्त वेदमन्त्रस्वरूपछन्दप्रभृतयो यज्ञाः क्रतवो ज्योतिष्टोमादिविशेषाः व्रतानि नाना प्रकारका शुभसंसूचकाः सदाचारप्रभृतयस्तथान्ये च ये केचनः भूतं समवतीतं भव्यंभविष्यत्कालसंभाव्यंवर्तमानकालोपलक्षितं वा वेदा वदन्ति । एतद्विश्वं प्रत्यक्षतयासमवलक्षितमखिलमपिजगत् मायी प्रकृत्यधिपतिपरमेश्वरोऽस्मात्पूर्वनिर्दिष्टान्महाभूतादितत्त्वसमूहात् सृजते स्वस्वप्राक्तनकर्मान्नुपलक्ष्य यथायथं समुत्पादयतीत्यर्थः "विकारञ्चरामोदयाब्धिस्तथात्वे दयाशून्यतां पक्षपातञ्चनैति । प्रकारे विकारस्तथा चित्र सृष्टौ च हेतुर्यतः प्राणिनां प्राच्य् कर्म" इत्याचार्योक्तेः । नचात्र जीवस्यैवतथास्रष्टृत्वंसंभवत्यत आह—तस्मिंश्चान्य इति । अन्योजीवः सर्वेश्वरश्रीरामाश्रितमायया संनिरुद्धः सम्यक्तया मोहितस्ततश्च तन्मायाप्रेरकत्वाभावान्न सृष्ट्यादिकार्यसमर्थः "जगद्व्यापारवर्जं प्रकरणादसन्निहितत्वाच्च" इति सूत्रकारोक्तेः "जगद्व्यापारवर्जं समानोज्योतिषा" इतितद्व्याख्याया श्रीपुरुषोत्तमाचार्यचरणोक्तेश्च ॥९॥

पूर्वतनमन्त्रेषु 'अजा' 'माया' 'मायी' इत्यादिकं संश्रुत्य का माया? कश्चमायीति संजातशङ्काऽपकरणायाऽह मायामित्यादि । मायां सत्वरजस्तमत्रिगुणात्मिका प्रकृतिमेव यतस्तस्या विचित्राश्चर्यजनकानन्तसृष्टिकारणत्वान्मायापदभाक्त्वं विद्यात् तथैव मायिनं मायायाः अन्तर्यामितयानैरन्तर्यप्रेरकस्तु महेश्वर सर्वान्तर्यामिरूपेणावस्थितं परपुरुषं विद्यात् "मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते स चराचरम्" "उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः" इत्युक्तेः । न चात्रदेवतान्तरवाचकत्वेनभाव्यं महेश्वरशब्दस्य "देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्" "यद्वेदादौ स्वरः प्रोक्तो वेदान्ते च प्रतिष्ठितः । तस्य प्रकृतिलीनस्य यः परः स महेश्वरः" "दैवीह्येषा गुणमयी मम माया" "य एकोऽवर्णो विश्वमादौ स देवः" इत्याद्युक्तेः परपुरुषवाचकत्वसम्भवजागरुकत्वात्तस्य । तस्यावयवभूतैस्तस्यैवा पृथक् सिद्धविशेषणरूपतया तस्यैवांशभूतैर्ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातन इत्युक्तेस्तदंशभूतैर्जीवैरिदं सर्वं निखिलं जगत् सर्वमचेतनभूतं विश्वं व्याप्तमित्येतत् "रामो ब्रह्म परात्पर श्रुतिमतं भक्त्यैव निःश्रेयसं शेषा येन च शेषिणो रघुपते जीवा इति स्वीकृतम्" इत्याद्युक्तेः सकलेशितुः शेषिणः श्रीरामस्य शेषभूतभूतवर्गैः सर्वंव्याप्तमित्यर्थः ॥१०॥

'एकोऽहं बहुस्याम' इतिश्रुतिसमर्थितबहुरूपापन्नदेवशब्दाभिधश्रीरामंज्ञात्वैवमुक्ति समर्थयन्नाह—यो योनिमित्यादि । यः एकः समाभ्यधिकविवर्जितः सर्वेश्वर

यो योनिं योनिमधितिष्ठत्येको यस्मिन्निदं सञ्चविचैति सर्वम् ।
तमीशानं वरदं देवमीड्यं निचाय्येमां शान्तिमत्यन्तमेति ॥११॥

श्रीरामः "आवां तौ हि यतः कश्चिन्नाधिकोन च यत्समः । सर्वात्मानौ मतौ चावां सर्वेषां प्रेरकौ तथा" इत्याद्यागमोक्तेर्योनिं जगद्योनिभूतां स्वप्रकृतिं योनिं पञ्चभूतात्मकजगद्योनिसंभूतमहदादिकमधितिष्ठति सर्गकाले जगद्योनिरूपस्वप्रकृत्यातत्तत्स्वरूपमादत्त इत्यर्थः "यतो वै इमानि भूतानि जायन्ते" इतिश्रुतेः । यस्मिन् सर्वाधार भूतेपरेशे इदंपरिदृश्यमानमनुभूयमानं वा सर्वमखिलमपि जगदुत्पत्तिकाले वियदादिस्वरूपेण व्येति विविधतामेति स्थावरजङ्गमादिरूपेणानन्तप्रकारकोभवतीत्येतत् । उपसंहारकाले च समेति स्वस्वरूपत्वेनैक्यं समाप्नोतीत्यर्थः । "सर्वभूतानि कौन्तेय ? प्रकृतिं यान्तिमामिकाम् । कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम्" "प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः । भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात्" "मनसैव जगत्सृष्टिं संहार च करोति यः" इत्यादिस्मृत्युक्तेः । तम् प्रकृतंममाश्रिताभिष्टप्रदायिनमीशानं सर्वनियन्तारं वरदं स्वशरणापन्नजनेभ्योऽभीष्टप्रदायकमीड्यं संस्तुतियोग्यं सर्वेश्वर श्रीरामं "यस्यामलं नृपसदस्सुयशोऽधुनापि गायन्त्यघघ्नमृषयोदिगिभेन्द्रपट्टम् । तं नाकपालवसुपालकिरीटजुष्टपादाम्बुजं रघुपतिं शरणं प्रपद्ये" इत्याचार्यशिरोमणिभगवद्व्यासोक्तेः । प्रकृतश्लोकव्याख्यायां श्रीशुकार्यमतदीपिकायामाचार्यप्रवरश्रीगङ्गाधराचार्यचरणास्तु "मर्यादापुरुषोत्तमस्यलीलाप्रयोजनमतिसमासेनप्रदर्शयन् स्वशरण्यत्वाच्छरणं गच्छति—यस्यामलमिति यस्य श्रीरामचन्द्रस्यामलमघघ्नं पापनाशकं पादाम्बुजं तत्सम्बधिरेणुं नृपाणा युधिष्ठिरप्रभृतीनां सदस्सु ऋषयो मार्कण्डेयप्रभृतयो यशोऽधुनापिगायन्ति यद्यशोदिगिभेन्द्राणां पट्टवदाभरणस्वरूपेण तत्पर्यन्तं व्याप्तं नाकपाला देवा वसुपालास्तेषांकिरीटैर्जुष्टं पादाम्बुजं यस्य तं रघुपतिमखिलजीवशरण्यं शरणं प्रपद्ये। यद् वा नास्त्यकं यस्मिन् स नाकः सत्यलोकस्तदधिष्ठातृदेवो ब्रह्मा वसुशब्दश्च धनभूत पशूपलक्षकस्ततश्च पशुपतिः शंकरस्तयोरिति योज्यम् । रघुपतेरिति पाठे तस्य रघुपतेर्नाकपालादिभिर्जुष्टं पादाम्बुजमिति संयोज्यम् । प्रकृतश्लोकीयतत्त्वन्तुभगवच्छ्रीबोधायनपुरुषोत्तमाचार्यचरणप्रसादित—

(श्रीरामतत्त्वम्)

"स्वां दत्त्वा भरतं कृपापरवशो योऽन्वग्रहीत्पादुकां
गत्वाऽरण्यपथादवाग्दिशमथो दूरे पथो व्युत्थितान् !
लोकत्राणकृते रणे नरभुजोऽर न्यग्रहीदग्रही
साकेते स विराजते जनकाप्राणः शरण्यः सताम् ॥१॥

भक्तो दुष्कृतमेव मे न कुरुते यत्तत्कृतं तन्मम
वात्सल्यादिदमाह मागस्सुतोपालम्भमुन्मूलयन् ।
योऽसौ दिव्यगुणाकरो मुदिररुग् हेयप्रहीणः प्रभुः
सेव्यः सद्भिरभीतिदो दशशिरः सहारकृत्तापरः ॥२॥
पश्येदं बलवल्लसन्मम धनुर्दुःक्षत्रगोत्रान्तकृत्
सार्धोग्रं किल जामदग्न्यमजयद् योऽनुग्रहैकाशयः ।
विश्वामित्रमखावनप्रयतितो बालोऽपि कल्पानल-
प्रख्योऽहन्निह ताटकां स भगवान् रामः प्रणम्यो न कैः ? ॥३॥
दत्तानुज्ञ उदन्तमेत्य निखिलं मात्रा सुमित्राह्वया
कैकेय्या सुरमायया हृतधियाऽऽदिष्टः सनामाश्रयः ।
कौशल्यां रुदतीं विहाय विपिनं योगात्स्वकृत्य विद-
न्निष्टानिष्टसमो मनोनिविशते नो कस्यपुण्यात्मनः ? ॥४॥
साम्राज्यं महदप्यखिन्नमनसा त्याज यथीनं कृतं
विरूप्या शूर्पणखाकृता विपथगा बद्धोऽम्बुधिर्नीलवाः ।
राज्यं प्राज्यमदाद्विभीषणकृते हत्वा दशास्यं द्रुहं
रामः सोऽयमलौकिकीकृतिपटुर्भक्तप्रिय. सेव्यताम् ॥५॥
विश्वेषामवनो जगत्कृतिपटुः कल्पान्तकालाश्रयी
नैकावासनिवासकृच्छ्रितजनानर्थच्छिदे देहभाक् ।
सूक्ष्मस्थूलजडाजडात्मकतनुस्तत्रावतीर्णोऽपि सन्
ज्ञेयः सर्वविलक्षणोऽद्भुतगती रामः कथं तत्त्वतः ? ॥६॥
भक्तेभ्योऽन्यजनैरनाप्यमतुलं दिव्यं ददद्विग्रहं
सर्गासर्गतनुग्रहादिविधिषु ज्ञेयः स्वकैर्ज्ञापितैः ।
सन्तुष्टः कपिसेवयापि तुलसीमालोपशोभीविभू
रामो धर्मतनुस्सहस्ररसनैर्वर्ण्यो न शेषैरपि ॥७॥
कालो रावणमातुलस्य सरुषं सृष्टेन वार्धेरपा
मत्युत्तापकरः शरेण शरणापन्ने प्रसादातुरः ।
भक्तेभ्यस्तदपेक्षयेव कृपया स्वर्गापवर्गप्रपदो
रामः सैष जयत्युदारसुगुणग्रामो विरामोऽसताम् ॥८॥
उल्लालोर्जितवारिधौ कृतपथः सैन्यैः कपीनां पुरीं
लङ्कामेत्यविनाश्य राक्षसकुलं तीक्ष्णेषुवृष्ट्याऽधमम् ।

ऋद्धं राज्यमदाद्विभीषणकृते चित्रं चरित्रं श्रितो
रामः श्रीपुरुषोत्तमोविजयते माङ्गल्यमूर्तिः प्रभुः ॥९॥
छित्वैकेषुनियोगतो द्रुमवरान् सप्ताञ्जसा वालिनं
हत्वाऽतूतुषदाशु शङ्कितहृदंभीतं कपीनां पतिम् ।
सुग्रीवं सहृद प्रपन्नमसता नाशेऽनिशं सोधमः
स्वोद्धाराय सता स एव भगवान् सेव्यः परेभ्यः परः ॥१०॥
त्राता सुन्दरदीर्घदृक् क्षितिसुता हत्वाऽमितान् राक्षसा
नार्ताऽशोकवनं गता स्मृतिपराऽनन्याश्रयाऽङ्गीकृता ।
तद्वन्मां शरणागतं रघुपते ! दीनावनैकव्रत ?
स्वीकुर्वाशु विनाथनाथ ? दययोपेक्षस्व मा मा प्रभो ? ॥११॥
प्राणा देहिषु शेमुषी शुभतमाऽथाऽसत्तमाऽधि त्वयि
त्वञ्चैवाऽसि विभोऽस्ति यच्छुचितमं गव्यं च पञ्चामृतम् ।
अध्यास्से च विभूतिषूत्तमगुणाधारोऽपि नित्यादिषु
शेषास्तेऽङ्घिभवांश्च रत्ननिचया दासोऽहमीशो भवान् ॥१२॥
बाणैश्चूर्णयिताऽस्त्रपान् दृढतनूंल्लौहादपि प्रोद्धता
निक्षोर्यष्टिरिवाऽनिशं नतजनेष्वाद्यन्तमाधुर्यवान् ।
रोलम्बाश्रितशीतलाच्छतुलसीहाराभिराम ? प्रभो ?
राम ? त्वत्पदपद्ममात्रहृदयं दासं दयस्व स्वकम् ॥१३॥
क्षीराब्धौ निजसेवकेन कपिना क्षारीकृतां प्राक्पुरी
लङ्कामेत्य समित्यभद्रमधियं हन्ताऽऽशराणां शरैः ।
श्रीरामो विजयी विभीषणमधाद् दास्ये पदे निर्भये
भक्त्या सन्निहितस्य तस्य न भयं क्रूरात्कृतान्तादपि ॥१४॥
सोढ्वा दुःखानि नानाऽतिविषमविषयक्ष्वेडसङ्गात्सुखेच्छु
रात्रौ भुक्त्वा शयानोऽप्यवहितहृदयो गात्रपोषेऽमतिर्यः ।
धिक्धिक् कुक्षि भरि त सकलगुणनिधि तौलसेयीसनाथं
भक्त्या संसेव्य लभ्यं परतरममृतं मौर्ख्यतो हा जहाति ॥१५॥
शास्त्राऽऽसेवारतास्तेऽतुलविमलधियोलब्धतत्त्वावबोधाः
श्रेयः प्रत्यर्थिभूतं कुमति कुलमतं श्रोतुमर्हा न मन्तुम् ।
एको देवः सरामः शपथ इहमयाऽत्युग्रशस्त्रप्रहारै
श्छिन्नं न स्याच्छिरोमे मरणमपि न मे द्वापरो नात्र कोऽपि ॥१६॥

यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः।
हिरण्यगर्भं पश्यत जायमानं सनोबुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ॥१२॥

कोदण्डेनाऽतुलेनोल्लसितमृदुशयः सेतुबन्धेन सिन्धौ
गत्वा लङ्कां समेषां शुभकृतिमतिमानादरी योग्युद्धे।
पत्युर्हन्ताऽसुपाणां परतरमहिमा राजतेदिव्यमूर्तिः
साकेते नेक्षितरतं भजति करुणया तेन गर्भादभाग्यः ॥१७॥
भक्तिर्नोचेन्न साऽस्तु द्विषमपि सभिया नो यथा रावणादिः
सीतेशस्तावतापि प्रसृमरदयया त्वा विदध्यात्स्वकीयम्।
वाचा तन्वा हृदा वा यदि नहि भजसेऽशक्तितोऽज्ञानतो वा
दृष्ट्वास्या दिव्यमूर्तिं परमसुखमयः प्राप्त एवाऽसि रामम् ॥१८॥
आनीयानीयशैलाञ्जलनिधिसलिलेन्यस्यतो वानरेन्द्रान्
सेतोर्हेतोः सुभक्त्या सपदि रघुपतेः प्रीतिपात्राणि दृष्ट्वा।
सेवावेशाज्जलार्द्रैस्तनुतनुरसकावङ्ककैर्धूलिमस्यत्
जन्तुर्जातः कृतार्थो जभतमुहुरमुंराममेकं दयालुम् ॥१९॥
विश्वामित्रस्य यज्ञान्नरवरवपुषा वारयन् राक्षसान् यः
स्नानं सम्पादयन् प्रागवभृथमनघंख्यातकीर्तिर्जगत्याम्।
तेषां तेषां खलानां निखिलजनिमतां पीडनात्तत्पराणां
नाशायाऽऽकृष्ट चापोऽद्भुतकृतिनिपुणःसेव्यतां सोऽखिलेशः ॥२०॥"

इत्यादिश्रीरामतत्त्वानुसन्धायकश्रीरामतत्त्वाद्यनेकदिव्यप्रबन्धतोऽनुसन्धेयो विशेषार्थिभिः" इत्यादिकं संगिरन्ति। तदेव सर्वतोभावेननिःश्रेयसायसर्वजनसेवनीयं देवं देवशब्दवाच्यंपरमेश्वर श्रीरामं निचाय्यदर्शनसमानाकारस्वरूपज्ञानेन स्वविषयीकृत्योपासकोऽत्यन्तसर्वतोभावेनरागद्वेषादिरहितत्वे स्थायित्वमापन्नामिमां श्रुतिस्मृत्यादिभिः परिपुष्टां मुक्तिपदाभिलप्यां शान्ति परमश्रेयोरूपामेति समवाप्नोतीत्यर्थः। श्रीरामशरणागति विहाय नैरन्तर्यशान्तिलाभाभावो जीवानामितितात्पर्यार्थः ॥११॥

"नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन। यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुंस्वाम्" इति श्रुत्युक्तेर्भगवज्ज्ञानोपायपरमपुरुषानुग्रह एवेतितल्लाभार्थं प्रार्थयते यो देवानामित्यादि। यो देवानामिन्द्रवरुणरुद्रप्रभृतीनामुद्भवः उद्भवत्यस्मादितिव्युत्पत्तेः प्रभवश्च प्रकर्षेण भवतीति प्रकर्षरूपेण देवाधिपति

यो देवानामधिपो यस्मिंल्लोका अधिश्रिताः ।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१३॥
सूक्ष्मातिसूक्ष्मं कलिलस्य मध्ये विश्वस्य स्रष्टारमनेकरूपम् ।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वा शिवं शान्तिमत्यन्तमेति ॥१४॥

त्वादिकमस्य प्रभवनमिति यावत् "यान्येतानि देवत्रा क्षत्राणि इन्द्रो वरुणः सोमो रुद्रः पर्जन्यो यमो मृत्युरीशानः" इति श्रुतेः "अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च" इतिस्मृतेश्च स्वकर्मफलप्रदायित्वरूपप्रभुत्वस्य प्रजापतिपशुपतित्वादिरूपस्थानसंप्रापकत्वस्वरूपोद्भवनस्य च सर्वेश्वरपरमपुरुषाधीनत्वादिति भाव्यम् । विश्वाधिपः सर्वस्यापि जगतस्तदेकदेशैकदेशरूपतयाविश्वाधिपत्वम् "विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेनस्थितो जगत्" इति गीतोक्तेः । रुद्रः संसाररुजां संद्रावकत्वाच्चरुद्रपदाभिधेयः परपुरुषो महर्षिरतिशयसार्वज्ञत्वादिगुणविशिष्टतया महर्षिपदभाक्निखिलेश्वरोऽस्ति येन प्रथमं जायमानं समुद्भूतं हिरण्यगर्भं पश्यत "यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं योवै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै" "सृष्ट्यादौ च सिसृक्षुः श्रीरामोविधिं विधाय हि। सृष्टये प्रेषयामास वेदं ज्ञानमहानिधिम्" इत्यादिरूपेण श्रुतिस्मृतिप्रतिपादितदिशा मद्विसृष्टोऽयं स्वकर्मणि कृतमनोरथः स्यादिति सानुग्रह समुदैक्षत । सः परमेश्वरो न शुभया बुद्ध्या दिव्यमाङ्गल्यभावनया साबुद्ध्येत्यर्थः संयुनक्तु संयोजतु स्वस्याहेतुक्या करुणयादृष्ट्या मां समवलोक्षतामितिभावः ॥१२॥

प्रार्थनाप्रकारमेव प्रपञ्चयति योदेवानामधिप इति । यो देवानामधिपोऽखिलचिदचित्प्रपञ्चजातस्याधिपतिर्यस्मिन् सकलाधारभूतेपरब्रह्मणि लोका अधिश्रिताः सर्वतोभावेन जनाः समाश्रिताः सन्ति "सर्वस्याधारभूतौ च त्वावामेवहि मारुते !। स्वेमहिम्नि स्थितावावामन्याधारो न चावयोः" इत्यागमोक्तेः । यश्चास्य सर्वव्यवहारभूतद्विपदश्चतुष्पदश्च समस्त जीवसमुदायस्येशे शासनकर्ताऽस्ति सम्पूर्णचिदचिद्वर्गनियन्तेत्यर्थः । कस्मै देवायाऽऽनन्दस्वरूपाय सर्वशेषिणे वयं हविषा पुरोडाशादिना श्रद्धाभक्तिपूर्वकप्रस्तुतेनाऽन्येन वा पूजोपकरणद्रव्यदिव्यस्तुतिपाठादिना विधेय पूजां सम्पादयामः । "यज्ञो वै विष्णुः" "चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च द्वाभ्यां पञ्चभिरेव च । हूयते च पुन द्वाभ्यां स नो विष्णुः प्रसीदतु" इति श्रुतिस्मृतितोयज्ञोविष्णुः सर्वव्यापकः श्रीराम इत्यवगम्यते ततश्च तदाराधनात्मकं पुरोडाशादिसमर्पणात्मकं तदुपयोगात्मकमन्यमपि सर्वं प्रेमोत्साहपूर्वकं श्रीरामसायुज्यसम्प्राप्तये परेशकैङ्कर्यबुद्ध्यासमाराधयाम इत्यर्थः ॥१३॥

स एव काले भुवनस्य गोप्ता विश्वाधिपः सर्वभूतेषु गूढः ।
यस्मिन् युक्ता ब्रह्मर्षयो देवताश्च तमेवं ज्ञात्वा मृत्युपाशांश्छिनत्ति ॥१५

श्रुतिस्मृत्यादिविहितभगवत्कैङ्कर्यबुद्ध्यासमाराधितकर्मफलमाह- सूक्ष्मातिसूक्ष्ममित्यादि । सूक्ष्मरूपेण प्रसिद्धपरमाणोरप्यन्तप्रवेशयोग्यमत्यन्तसूक्ष्ममणोरणीयानिति श्रुतेः कलिलस्य मध्ये स्थितमन्तर्यामितयाऽतिजीवहृदयगुहाद्यनेकस्थानेषु समवस्थितमित्येतत् । विश्वस्याखिलब्रह्माण्डस्यप्रजापतिहिरण्यगर्भाद्यनेकरूपेणावस्थायतत्तदानुकूल्यप्रातिकूल्येनस्रष्टारं प्राक्तनकर्मानुगुण्येन सर्वसर्जकमनेकरूपमनन्तस्वरूपमनन्तरूपधारकमित्यर्थः । विश्वस्य परिवेष्टितारमन्तर्यामित्वेन सर्वतः सर्वव्याप्तमोतञ्च प्रोतञ्च, सर्वतः स्पृत्वा, विश्वतः स्पृत्वेत्यादिश्रुतेः । एतादृशापूर्वस्वरूपमेकमद्वितीयं स्वसमाभ्यधिकविवर्जितमित्येतत् । शिवं सर्वकल्याणस्वरूपं परमात्मानं ज्ञात्वा याथार्थ्येनममत्वधार्योपासकोजीवसमूहोऽत्यन्तं शान्तिमेति पुनरावृत्तिविवर्जितां शाश्वतिकीं मुक्तिमसवगच्छति "मामुपेत्य पुनर्जन्मदुःखालयमशाश्वतम् । नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः ॥ आब्रह्म भुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन ! । मामुपेत्य तु कौन्तेय ! पुनर्जन्म न विद्यते" इतिगीतोक्तेः "सत्यसन्धः प्रतिश्रुत्य प्रपन्नायाभयं स्वयम् । निवर्तयेद्भये नैनं श्रीरामः श्रितवत्सलः" इत्याद्याचार्योक्तेश्च ॥१४॥

पूर्वमन्त्रोदितमेवसमर्थयति स एव काल इत्यादि । स एव जगद्योनिरखिलविश्वस्याभिन्ननिमित्तोपादानकारणभूतसर्वेश्वरश्रीरामः काले सर्वजीवकर्मपरिपाकसमये भुवनस्य गोप्ता समस्तब्रह्माण्डस्य संरक्षकोविश्वाधिपोऽखिलजगतोऽधिपतिः सर्वभूतेषु गूढः सर्वप्राणिसमुदायेषुनिगूढश्चास्ति सर्वशेषित्वात्सर्वान्तर्यामितया सर्वंसमवाप्य संतिष्ठत इत्यर्थः । यस्मिनेतादृशमहिम्नि सर्वलोकशरण्ये श्रीरामे ब्रह्मर्षयोऽखिलवेदतत्त्वज्ञमहर्षिगणाः देवताश्च ब्रह्मादिदेवगणा अपि "यस्यामलं नृपसदस्सु यशोऽधुनाऽपि गायन्त्यघघ्नमृषयोदिगिभेन्द्रपट्टम् । तं नाकपालवसुपालकिरीटजुष्टपादाम्बुजं रघुपतिं शरणं प्रपद्ये ॥" "ध्येयं सदापरिभवघ्नमभीष्टदोऽहं तीर्थास्पदं शिवविरिञ्चिनुतंशरण्यम् । भृत्यार्तिहं प्रणतपालभवाब्धिपोतं वन्दे महापुरुष ! ते चरणारविन्दम् ॥" इत्याद्युक्त्या स्वश्रेयसे युक्ताः सर्वदा ध्यानाभ्यासादिना संलग्नाः सन्ति शेषशेषिभावसम्बन्धत्वेनसर्वेशाराधने सर्वदा प्रशक्ता भवन्ति तस्यैव सर्वमोचकत्वादित्यर्थः । यतस्तमुक्तस्वरूपं परमात्मानमेवमुक्तप्रकारेण ज्ञात्वा दर्शनसमानाकारज्ञानविषयीकुर्वन् मृत्युपाशान् जायस्वम्रियस्वेति सूचितमरणधर्मत्वादिबन्धनानि छिनत्ति संसारसंसरणभूतान् पाशान् संछिद्यसंसारागमनात्सर्वतोभावेनमुक्तो भवतीत्यर्थः ॥१५॥

घृतात्परं मण्डमिवातिसूक्ष्मं ज्ञात्वा शिवं सर्वभूतेषु गूढम् ।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ॥१६॥
एष देवो विश्वकर्मा महात्मा सदा जनानां हृदये संनिविष्टः ।
हृदा मनीषा मनसाभिक्लृप्तो य एतद् विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥१७॥
यदातमस्तन्न दिवा न रात्रिर्न सन्न चासच्छिव एव केवलः ।
तदक्षरं तत् सवितुर्वरेण्यं प्रज्ञा च तस्मात् प्रसृता पुराणी ॥१८॥

अनवद्यस्वरूपेणातिसूक्ष्मतयासर्वंसमव्याप्यस्थितं परस्वरूपं ज्ञात्वैव मुक्तो भवतीत्याह घृतात्परमित्यादि । शिवंसर्वकल्याणस्वरूपमेकं देवमद्वितीयत्वेन वर्तमानं सर्वेशं घृतात्परमतिसूक्ष्मतयासारांशभूतसर्वक्षीरव्यापीमण्डमिवसर्वसूक्ष्मासूक्ष्मजडचेतनसमव्याप्य-- स्थितमतिसूक्ष्मं सर्वभूतेषु समस्तचिदचित्पदार्थेषुगूढं सर्वान्तर्यामित्वेनविद्यमानं ज्ञात्वा विश्वस्यपरिवेष्टितारमखिलं जगत्सर्वतो भावेन समव्याप्यसन्नियमनकर्तारं तत्र तत्र तत्तद्रूपेणावस्थाय्यवत्तच्छुभाशुभकर्मसु स्वप्राक्तनकर्मानुगुण्येनसंप्रवर्तकमित्येतत् ॥ ''विकारश्चरामो दृष्टाङ्घिस्तथात्वे दयाशून्यतां पक्षपातश्चनैति । प्रकारे विकार स्तथा चित्रसृष्टौ च हेतुर्यतः प्राणिना प्राच्यकर्म'' इत्याचार्योक्तेः । ज्ञात्वा दर्शनसमानाकारज्ञानविषयं कृत्वेत्यर्थः । जीवः सर्वपाशैर्मुच्यते शापवद्बन्धनसाधनीभूतसर्वकर्मतोविमुच्यत इत्यर्थः ॥१६॥

एषदेव इत्यादि । विश्वकर्मा क्रियते इति कर्म विश्वंकार्यं यस्येत्यर्थः संसारकर्तेत्येतत् । महात्मादेवः परमपुरुषः सदा जनानां हृदये हृदयप्रदेशे सन्निविष्टः सम्यक्तया स्थितोऽस्ति अतो हृदा मनीषा बुद्ध्या मनसा च अभिक्लृप्तः सम्यग्ध्यानविषयीकृतः सन् प्रत्यक्षोभवति ये साधका एतन्निगूढतत्वंविदुस्तेऽमृताः अमृतस्वरूपा मरणधर्मव्यापारवर्जिता मुक्ता इत्यर्थः भवन्ति ॥१७॥

''शरण्यौ वेदनीयौ च भजनीयौ हि मुक्तये । वेदवेद्यो जगद्योनिर्मन्निभोराघवोमतः'' इत्यादिरूपेणवशिष्ठसंहितायां जगज्जननी सर्वेश्वरी श्रीसीतायाः प्रतिपादितदिशा वेदवरेण्यशब्दोपलक्षितगायत्रीमन्त्रप्रतिपाद्यत्वमपि पूर्वप्रक्रान्तसर्वेशस्यैवेति प्रतिपादयति—यदातम इत्यादि । यदातमो यस्मिन् समयेसदसत्वेनमूर्तामूर्तत्वेप्रपञ्चितं रात्रिन्दिवविभागराहित्यतया तमोमात्रांस्थितं ''सूक्ष्माचिच्चिद्द्वयेनावां विशिष्टौ प्रलये किल । सृष्टावावां विशिष्टौ तु स्थूलाचिच्चिद्द्वयेन हि'' इत्यागमोक्तेऽत्र तमः शब्दप्रागवर्णितमायापदबोधकोऽवसेयः प्रलयकालेऽपिस्थायित्वात् तस्याः तत् तदातस्मिन् काले

नैनमूर्ध्वं न तिर्यञ्चं न मध्ये परिजग्रभत् ।
न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः ॥१९॥

प्रणष्टे स्थावरजङ्गमे ब्रह्मादिषु परब्रह्मणि श्रीरामे प्रलीनेष्वित्यर्थः । न दिवा न रात्रि र्नसन् नचासनित्यादिपदप्रयुक्तव्यवहारो भवति परञ्च तदा केवलः शिव एव सर्वदा संकुचित ज्ञानमहिमा कल्याणगुणगणगुम्फितः सर्वशरण्यः सर्वेश्वरो जगद्योनिश्री राम एवास्ते तच्चाक्षर क्षरणगुणधर्मरहितं सदैकरूपंस्वभावञ्चेत्येतत् । तदेव च सवितुः सर्वान्तर्यामित्वेनसवितृमण्डलमध्यवर्त्तित्वात्सूर्यब्रह्मादिसर्वदेवानां वरेण्य वरणीयं समुपासनीयं भजनीयञ्चेत्यर्थः । तस्मात्पूर्वप्रपञ्चितपरेशादेवसंकुचितज्ञानवता प्रजाना सृष्टिकाले पुराणीं प्रज्ञा नित्यं ज्ञानमनादीत्येतत् धर्मभूतज्ञानस्य नित्यत्वावगमात् "न विज्ञातुर्विज्ञातेविपरिलोपो विद्यते" "अविनाशी वा अरे अयमात्मा अनुच्छित्ति-धर्मा" इत्यादिश्रुत्युक्तेः । गायत्रीमन्त्रपठित 'धियोयोनः प्रचोदयात्' इत्यंशप्रतिपा-दनपरत्वेन नेयमत्रत्य प्रज्ञा च तस्मादितिपदम् यतः श्रीरामस्यैव सर्वप्रेरकत्वात् । प्रसृता पारम्पर्येणाऽविच्छिन्नाचार्यगत्या प्रसरणमवाप्तेत्यर्थः "यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै" "सृष्ट्यादौ च सिसृक्षुः श्रीरामोविधि विधाय हि। सृष्टये प्रेषयामास वेदं ज्ञानमहानिधिम्" इति श्रुतिस्मृत्युक्तेः ॥१८॥

ब्रह्मणोगुणतः स्वरूपतश्चापरिच्छेद्यत्वं प्रतिपादयति—नैनमूर्ध्वमित्यादि । एनं सर्व-व्यापकपरमात्मानं नोर्ध्वमूर्ध्वत्वेनस्थाणवादितयावर्तमान न तिर्यञ्चं तिर्यक्त्वेन पश्वादि-रूपत्वेनवर्तमानं न मध्ये मनुष्यादिस्वरूपेणोभयविलक्षणस्वरूपेणवर्तमानमपि कश्चिज्जनः परिजग्रभत् याथातथ्येन न समन्वग्रहीत् सर्वव्यापकत्वेऽपि ब्रह्मस्वरूपं सम्यग्रूपेण ज्ञातु मक्षम इत्यर्थः । परेशकृपाकटाक्षराहित्यात्तदनुग्रहेतु तत्स्वरूपं तत्त्वतोऽनुभविषयत्येव "नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुधाश्रुतेन । यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुंस्वाम्" इतिश्रुत्युक्तेः । ब्रह्मणोविभुत्वादूर्ध्वप्रदेशब्रह्मेन्द्रलोकादिषु विद्यमानात्तत्तदधिष्ठातृदेवविशेषा अपि तत्त्वतो ज्ञातुमक्षमा इति वा योज्यं तेषां जीव-कोटिनिविष्टत्वेनाल्पज्ञतया प्रसिद्धेः । यस्यमहद्यशः "यस्यामलं नृपसदस्सुयशोऽधु-नापि गायन्त्यघघ्नमृषयोदिगिभेन्द्रपट्टम् । तंनाकपालवसुपालकिरीटजुष्टं पादाम्बुजं रघुपतेः शरणं प्रपद्ये" इत्यादिरूपेणपरमाचार्यश्रीव्यासादिभिः समुपवर्णितनामाति प्रसिद्धमस्तित्रिजगत्यां तस्य प्रतिमा तादृशपुरुषस्योपमानास्ति सर्वातिशायित्वात्तस्य "नेद यशोरघुपतेः सुरयाञ्चयात्तलीलातनोरधिकसाम्यविमुक्तधाम्नः । रक्षोवधो जलधिबन्ध-नमस्त्रपूगैः किं तस्य शत्रुहनने कपयः सहायाः" इतिबादरायणोक्तेः ॥१९॥

न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम् ।
हृदा हृदिस्थं मनसा य यनमेवं विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥२०॥
अजात इत्येवं कश्चिद्भीरुः प्रपद्यते ।
रुद्र यत्ते दक्षिणं मुखं तेन मां पाहि नित्यम् ॥२१॥

अधुनां परमपुरुषावबोधायसाधनमुच्यते—नसंदृश इत्यादि । अस्य परमपुरुषस्य रूपं सर्वव्यापकीभूतमन्तर्यामिस्वरूपमप्राकृतदिव्यविग्रह इत्यर्थः । संदृशे दृष्टिपथे न तिष्ठति दर्शनगोचरतानायातीत्यर्थः । ततोहेतोः कश्चनैनं चक्षुषा नपश्यति चक्षुषः प्राकृतत्वेन कश्चिदपि देवमनुष्यगन्धर्वमनुष्यो वा तादृशेन परेशंद्रष्टुं नाक्षमस्तस्यान्तर्यामिस्वरूपस्य सर्वव्यापकत्वाद्विग्रहस्य च प्राकृतत्वात् । प्राकृतमिन्द्रियजातमप्राकृतग्रहणाऽसमर्थमित्यर्थः । चक्षुपादिदर्शनसाधननिषेधात् किं परमात्मदर्शनसाधनमिति शङ्कायामाह—हृदेति हृत्पद्मत्र हृदयस्थाया बुद्धेर्लक्षकं तथा च भक्तिरूपापन्नाया हृदयस्थयाबुद्ध्या तथा मनसा निर्मलस्वान्तेन स्वनियन्त्रकभक्तिरूपापन्नबुद्धिकृतसंस्कारेण चेतसेत्यर्थः "मनसा तु विशुद्धेन" "मनसैवेदमाप्तव्यम्" इत्यादिश्रुतेः । ये समुपासकाः एनं स्वोपास्यभूतं सर्वेशं श्रीरामं हृदिस्थमन्तर्यामितया स्वहृदये समवस्थितमित्येवरूपेण विदुः साक्षादनुभवन्ति ते तादृशाः समुपासका अमृता भवन्ति पुनरावृत्ति विवर्जितश्रीरामसायुज्यमाप्नुवन्तीत्यर्थः ॥२०॥

पूर्वोक्तरीत्यापरब्रह्मस्वरूपं तत्प्राप्त्युपायञ्चोपवर्ण्यपरस्वरूपध्यानस्यमोक्षोपायत्वावगमात्तद्ध्यानं कुर्वन्नभीष्टमर्थयते—अजात इत्येवमित्यादि । रुद्र ? सर्वसंसाररुग्द्रावकत्वाद्रुद्ररूप हे सर्वेश श्रीराम ? "ऋतधामावसुः पूर्वं वसूतां च प्रजापतिः । त्रयाणामपिलोकानामादिकर्तास्वयं प्रभुः । रुद्राणामष्टो रुद्रः साध्यानामपि पञ्चमः । अश्विनौ चापि कर्णौते सूर्याचन्द्रमसौदृशौ । अन्ते चादौ च मध्ये च दृश्यसे च परतपः । इत्यादि रूपेणमहर्षि श्रीवाल्मीकिनिर्वचनात्सर्वसर्गस्थित्यन्तकृत्वं श्रीरामस्यैवेति रुद्रत्वंतस्य । त्वमजातः इतरदेवजीवादिवज्जननलक्षणसंहारादिहीन इत्येवं मत्वा कश्चिन्मादृशः संसारानलसंतप्तस्वकर्मपारिपाकरूपजन्ममरणक्लेशभीरुरहं ते यद् दक्षिणं कल्याण प्रद सर्वाभयस्वरूपं मुखम् "विकचपद्मदलायतवीक्षणं विधिभवादिमनोहरसुस्मितम् । जनकजादृगपाङ्गसमीक्षितं प्रणतसत्समनुग्रहकारिणम्" मुनिमनः सुमधुव्रतचुम्बितस्फुटलसन्मकरन्दपदाम्बुजम् । वरारदम्बुदविग्रहवनुः शरामहितजानुविलम्बिमहाभुजम् ॥ पराध्यर्हाराङ्गदचारुनूपुर सुपद्मकिञ्जल्कपिशङ्गवाससम् । लसद्घनश्यामतनुं गुणाकरं

**मा नस्तोके तनये मान आयुषि मानो गोषु मानो अश्वेषु रीरिषः।
वीरान्मानो रुद्र भामितो वधीर्हविष्मन्तः सदमित्त्वाहवामहे ॥२२॥**

॥ इति श्वेताश्वतरोपनिषदि चतुर्थोऽध्यायः ॥

कृपार्णवं सद्धृदयाम्बुजासनम् ॥ प्रसन्नलावण्यसुभ्रून्मुखाम्बुजं जगच्छरण्यं शरणं नरोत्तमम्'' शरणं प्रपद्यते उक्तविशेषणविशिष्टं त्वा प्रपद्ये समाश्रयामीत्यर्थः। छान्दस त्वात्पुरुषव्यत्ययः। तेन च मत्कृतप्रपदनेन भवदभिध्यानेनेति यावत् मा नित्यं पाहि सकृदेवप्रपन्नाय तवास्मीति च याचते। अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम'' ''सत्य सन्धः प्रतिश्रुत्य प्रपन्नायाभयं स्वयम्। निवर्तयेद्भये नेनं श्रीरामः श्रितवत्सलः'' इत्यादिकं स्वविरुदंस्मरन्ननपास्तसंसार कुरु सर्वाभयप्रद श्रीसाकेतं प्रदाय मा स्वकिंकर कुर्विति सानुनयप्रार्थना ॥२१॥

परपुरुषप्रपत्तिनिष्पत्तये स्वपरिजनान्नपेक्षमाणस्य जनस्य काम्यकर्मत्वेन ममाराध्योऽपि सैवेति बोधयति मानस्तोके इत्यादि। रुद्र ! हे संसाररुग्द्रावक ? सर्वसंहारकेत्यर्थो वा ''कालः कलयतामहमितिस्मृत्युक्तेः। त्वदुपासका वयं हविष्मन्तस्त्वत्पूजोपकरभूतगन्धाक्षतपुरोडाशादिभिः संयुक्ताः सन्तः सदमित् सर्वदैव त्वा त्वां स्वरक्षायै हवामहे समाराधयामः संप्रार्थयामः इत्येतत्। अतस्त्वमस्मद्विरुद्धाचरणेन जीवलक्ष्यभूतत्वत्प्रपदनरूपपरमधर्मत्यागजनिताघेनेतियावत् भामितो मदाज्ञापरिपन्थीति कुपितस्सन् मानस्तोके पुत्रे तनये पौत्रे मानः आयुषि मानः गोषु मानः अश्वेषु वा रीरिषः न्यूनतां मा सम्पादय ऐहिकसाधनतयापत्यपुत्रायुगोऽश्वप्रभृतीन् माहिंसीरित्यर्थः रिषधातोर्हिसार्थकत्वात्। तथैव नो वीरान् सुवीर्यसम्पन्नान् जनान् मोक्षसाधनीभूतान् ज्ञानवैराग्यादीन् वा मा वधीः हिंसां मा विधेहीत्यर्थः। साधनवैकल्येसाधनानुपपत्ते तेषां माहिंसीरिति प्रार्थना ॥२२॥

इति श्वेताश्वतरोपनिषदो भगवच्छ्रीरामानन्दाचार्यप्रणीतानन्दभाष्ये चतुर्थोऽध्यायः





卐 पञ्चमोऽध्यायः 卐

द्वे अक्षरे ब्रह्मपरे त्वनन्ते विद्याविद्ये विहिते यत्र गूढे ।
क्षरं त्वविद्या ह्यमृतं तु विद्या विद्याविद्ये ईशते यस्तु सोऽन्यः ॥१॥
यो योनिं योनिमधितिष्ठत्येको विश्वानि रूपाणि योनींश्च सर्वाः ।
ऋषिं प्रसूतं कपिलं यस्तदग्रे ज्ञानैर्बिभर्ति जायमानं च पश्येत् ॥२॥
एकैकं जालं बहुधा विकुर्वन्नस्मिन् क्षेत्रे संहरत्येष देवः ।
भूयः सृष्ट्वा पतयस्तथेशः सर्वाधिपत्यं कुरुते महात्मा ॥३॥

चिदचिच्छरीरकब्रह्मणो माहात्म्यनिर्वचपूर्वकतच्छेषतयावगम्यमानजीवस्य तद्वै लक्षण्याणुत्वादिकंनिरूपयितुमवतारयतिपञ्चमोऽध्यायः द्वे अक्षरे इत्यादि । ब्रह्मपरेब्रह्मा राधनस्वरूपेऽनन्ते नित्यानित्यपरिणामत्वेनासंख्यातीतव्यक्तिस्वरूपे क्षराऽमृतरूपशब्द-शब्दित इत्येतत् । विद्याविद्ये विद्यात्वेन प्रपञ्चितज्ञानकर्मपरे द्वे यत्राक्षरे प्रत्यगात्मनि गूढे निहिते सामान्यतो दुर्मोचतयासमवलग्ने सुसंश्लिष्ट इत्येतत् । एतादृशोऽन्यः पुरुषोऽस्ति । अत्रक्षर विनाशशीलोजडवर्गस्तु अविद्याशब्दशब्दितोभवति अमृतमविना-शिवर्गस्तुविद्यापदाभिहितं भवति सोऽप्यन्य एव यस्त्वाभ्यां सर्वदासमाराध्यमानः समाराधितस्तत्तदनुरूपफलप्रदायकश्चविद्याविद्ये ईशते पूर्वोक्तमनुशासति सोऽन्यः सर्व-नियन्तेत्यर्थः । 'सर्वस्येशान' इतिश्रुतेः ॥१॥

मतविशेषे ब्रह्मरूपेणाशङ्क्यमानकपिलादितोऽप्यन्योऽयंपरेशस्ततश्च कुतस्तरां तस्य-सामान्यजीवैक्यमितिबुबोधयिषया द्वितीयंमन्त्रमवतारयति यो योनिं योनिमित्यादि । यः एकः एवसन् योनि योनि समष्टिव्यष्टिरूपेणप्रतियोनि प्रतिशरीरमितियावत् विश्वानि रूपाणि जडचेतनतयाविभक्तसमस्तभूतवर्गेषु सर्वाः योनीश्च समस्तकारणवर्गेषु च सर्वतो-भावेनाधितिष्ठति सर्वसंव्याप्यावतिष्ठति सर्वचराचररूपत्वेनाऽस्ते इत्येतत् । योह्यग्रेसर्गा-दिकालेप्रसूतंस्वसत्संकल्पेन समुत्पन्नं कपिलमृषिंहिरण्यगर्भं ज्ञानैः सर्वप्रकारकतत्त्वादि भिर्बिभर्तिसंपुष्टं करोतीत्यर्थः "यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं योवै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै" इतिश्रुतेः । येन च तं जायमान सर्वप्रथमसमुत्पद्यमानं ब्रह्माणं पश्येदैक्षत सानुग्रहमपश्यत् सोऽस्मादन्यः परपुरुष इति पूर्वेण सम्बन्धः ॥२॥

पूर्वप्रपञ्चितसर्वेशितुरनन्तब्रह्मकल्पकारकत्वाच्चतुर्मुखाद्यन्यदेवातिशायित्वमाहा—त्म्यंप्रतिपादयति—एकैक जालमित्यादि । एषः सर्वातिशायिप्रत्यक्षतोऽनुभूयमानो देवः

सर्वा दिश ऊर्ध्वमधश्चतिर्यक् प्रकाशयन् भ्राजते यद्वनड्वान् ।
एवं स देवो भगवान् वरेण्यो योनिस्वभावानधितिष्ठत्येकः ॥४॥

सर्वेश्वरोऽस्मिन् क्षेत्रे प्रकृतिरूपेऽस्मिन् प्रपञ्चे सर्गसमये एकैकं जालं पृथक्पृथकतया बुद्ध्यादिभूतकार्यवर्ग जालवदावेदैकं बहुधा नानाप्रकारेण विकुर्वन् यथातथ्येनावश्यकतानुसार संविभक्तयन् पुनः प्रलयकालेतस्मिन्नेव स्वप्रकृतिभूते क्षेत्रेमंहरतिप्रकृतिस्थत्वेनावासयतिस्वस्मिन्नेवाऽविभक्तनामरूपगुणतां प्रापयतीत्यर्थः । असौमहामहिमशालीमहात्माऽचिन्त्यशक्तिकेशो भूयः सर्गादिकालेकल्पान्तरेऽपि तथैव पूर्वसृष्टिमनुसृत्यैव पतयः सृष्ट्वा प्रजापत्याद्युपलक्षणलक्षितप्रपञ्चं सृष्ट्वा समस्तलोकपालादिकान् समुत्पाद्येत्येतत् । तदाह स्मृतिः "सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृति यान्तिमामिकाम् । कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम्" सर्वभूतानि द्विपरार्धकालरूपब्रह्मणआयुः कल्पस्तस्यक्षये मामिकां मच्छरीररूपां प्रकृतिमविभक्तनामरूपां तमः शब्दाभिधेयां यान्ति तत्संकल्पाधीनत्वात् तेषां ते मत्संकल्पान्मत्प्रकृतिमाविशन्तीत्यर्थः । कल्पस्यादौ पुनस्तानि सत्यसङ्कल्पोऽहं "मनसैव जगत्सृष्टि संहारञ्चकरोति यः" "यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्तेऽभिसंविशन्ति" इत्युक्तदिशाविसृजामीतिभावः । "सूक्ष्माचिच्चिद्द्वयेनावांविशिष्टौ प्रलये किल । सृष्टावावां विशिष्टौ तु स्थूलचिच्चिद्द्वयेन हि "जगत्सृष्ट्याद्यो लीला ममैव राघवस्य च" इत्याद्यागमोक्तेः । सर्वाधिपत्यं कुरुते निगूढतया सर्वदासर्वेषा सन्नियन्तृकत्वरूपेणाऽऽस्ते । एतादृशाद्भुतशक्तिकोऽन्यः परेशश्चतुर्मुखाद्यतिशयितमाहात्म्यकमितिभावः ॥३॥

सर्वेश्वरस्यैकत्वेनसर्वेषु कथं युगपत्संस्थानत्वमुपपद्यते इति जिज्ञासाशान्त्यर्थमाह—सर्वादिश इत्यादि । अनड्वान्नसिचक्रपरिवर्तनरूपेण प्रयुक्तवत् कालचक्रपरिवर्तनहेतुत्वान्ननड्वान् रूपेणरूपीतसूर्यो यदुयथैकाक्येव सर्वादिशः ऊर्ध्वमधस्तिर्यक् च सामस्त्येनप्रकाशयन् समुद्दीपयन् भ्राजते देदीप्यमानो भवति । एवमेव सः सर्वेश्वरो भगवान् "ज्ञानशक्तिबलैश्वर्यवीर्यतेजांसि षड्गुणाः । भगत्वेनेरिताः सन्ति श्रीरामे भगवान् स तत् श्रीरामे भगवच्छब्दोमुख्यवृत्त्या प्रवर्तते । गौण एव स चान्यत्र षड्विधैश्वर्यलेशतः" इत्यादिरूपेणाचार्यचरणविवृतो भगवान् वरेण्यो देवः सर्वजीवैर्मुक्तये सर्वदैववरणीयोभजनीयश्चैक एव योनिस्वभावान्नधितिष्ठति स्वसत्यसंकल्पोपार्जितसर्वयोनिष्वधिष्ठातृत्वेनाधिपत्यं करोतीत्यर्थः ॥४॥

यच्चस्वभावं पचति विश्वयोनिः पाच्यांश्चसर्वान् परिणामयेद्यः ।
सर्वमेतद्विश्वमधितिष्ठत्येको गुणांश्च सर्वान् विनियोजयद्यः ॥५॥
तद्वेदगुह्योपनिषत्सु गूढं तद् ब्रह्मावेदते ब्रह्मयोनिम् ।
ये पूर्वदेवा ऋषयश्च तद्विदुस्ते तन्मया अमृता वै बभूवुः ॥६॥
गुणान्वयो यः फलकर्मकर्ता कृतस्य तस्यैव स चोपभोक्ता ।
स विश्वरूपस्त्रिगुणस्त्रिवर्त्मा प्राणाधिपः सञ्चरति स्वकर्मभिः ॥७॥

"कालः स्वभावोनियति"रित्यादीनामेतदधीनत्वमाह—यच्चस्वभावमित्यादि । यद्विश्वयोनिर्योजलादिभूतवर्गाणां सर्वेषापरमकारणमास्तेऽऽछान्दशलाहिङ्गद्ध्यस्ययः स्वभावञ्चोष्णानुष्णादितत्तद्गुणार्ईश्च पचति स्वस्वभाविकसकरूपरूपपाकेनसमवर्त्तयति यश्चसर्वानखिलान् परिणामयोग्यान् पाच्यान् पदार्थान् परिणामयेत् तत्तदाकारेण यथा यथं परिवर्तयतीत्यर्थः । यः एकः सर्वान् गुणान् विनियोजयेत् सत्वादिगुणान्स्वस्वदर्गेषु यथायथं संयोगयतीत्येतत् । एतच्च सर्वं सर्वैः प्रात्यक्षेणानुभूयमानं विश्वमधितिष्ठतिसर्वमपिजडचेतनवर्गजातमधिष्ठायसमनुशासति स एव सर्वाराध्यपरपुरुषः सैवोपासनीयोमुक्तिकामैर्नान्यः "शरण्यौ वेदनीयौ च भजनीयौहि मुक्तये" इत्यागमोक्तेः ॥५॥

चतुर्मुखादिदेवानामृषिप्रभृतीनामपि चेदृशब्रह्मवेदनान्मुक्तिरित्यस्यैवोपास्यत्वमाह—तद्वेदगुह्येत्यादि । तद्वेदगुह्योपनिषत्सु सर्वप्रसिद्धवेदेषु वेदान्ततया प्रसिद्धभगवद्रहस्यप्रकाशनपरकोपनिषत्सु च गूढमतिगहनतया तात्पर्यविषयत्वेन स्थितं ब्रह्मयोनि ब्रह्मणो वेदस्य योनित्वेनावगतं तत् परब्रह्मब्रह्मासर्ववेदप्रसारकश्चतुर्मुखोवेदते जानाति ये च पूर्वदेवा' सर्वेशमुपासकाः पुरातना देवाः ऋषयश्चसाधककऋषिगणाश्चेत्यर्थः । तद्विदुर्याथातथ्येन तत्स्वरूपं ज्ञातवन्तोऽतस्ते सर्वेऽपि तन्मयाः सर्वेशपरब्रह्माकारतया आविर्भूतगुणाष्टकत्वेन ब्रह्मसमानाकारतामवाप्ता इत्येतन्नतुतदभिन्नता गताः "उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः" "जगद्व्यापारवर्ज समानो ज्योतिषा" इत्यादिशास्त्रविरोधात् सन्तोऽमृताः बभूवुः मुक्ता जाता मरणधर्मापिवर्जितत्वेन सायुज्यं गता इत्यर्थः । अतः साधकैः सैव सर्वेशोसाध्यो नान्यः "नान्यः पन्थाविद्यतेऽयनाय" इतिश्रुत्युक्तेः वै शब्दश्च सत्यसन्धःप्रतिश्रुत्य प्रपन्नायाभयं स्वयम् । निवर्तयेद्भयेनैनं श्रीरामः श्रितवत्सलः" इतिस्मृतिप्रपञ्चितश्रीरामशरणापन्नजीवानां सर्वदासर्वाभयत्वंव्यनक्तिः ॥६॥

पूर्वप्रकरणेसर्वाराध्यपरेशरूपंतज्ज्ञानस्य मोक्षसाधनत्वञ्चोपवर्णितम् । तत्राहमस्मीत्यादिरूपेण देवैः ऋषिभिश्चविधीयमानमुपासनं जीवब्रह्माद्वैतपरं भवेदित्याशंकास्पदमा-

कलश्यात्यन्ताणोर्जीवस्य महता ब्रह्मणा ऐक्यायोगं तत्रोपासनाया शेषशेषित्वेनशरीरात्म-भावापन्नविशिष्टैक्यपरकत्वमेवेति बोधयितुञ्च जीवाणुत्वस्वरूपं वर्णयति—गुणान्वय इत्यादि। यो जीवोगुणान्वयः सत्वरजस्तमोभेदविभिन्नानां गुणानामन्वयस्तत्राबद्ध इत्येतत्। सत्त्वादिगुणसंबद्धं सद् यद् यद् भोगफलसाधनरूपं कर्म तत् करोति भुङ्क्ते चेत्यर्थः। तदाहुर्जगद्गुरवः श्रीपूर्णानन्दाचार्यचरणाः श्रीबोधायनमतादर्शे—

"ज्ञातेति कथनाज्जीवे कर्तृत्त्वमपि सिद्धयति। सामानाधिकरण्येन ज्ञानकर्तृत्त्वयोस्ततः।
'चेतनोऽहं करोमीति' प्रतीतिरुपपद्यते। कर्तृत्वमात्मनो धर्मो 'भोक्ताभोग्यमितिश्रुतेः।
चेतनस्यात्रकर्तृत्वं भोक्तृत्वेहि प्रयोजकम्। अन्यः करोतिभुंक्तेऽन्यः कथञ्चिन्नोपपद्यते।
प्राज्ञैश्चकर्मकर्तुर्हि सम्मतं कर्मणः फलम्। 'आत्मेन्द्रियमनोयुक्तंभोक्तेत्याहुर्मनीषिणः'।
इति श्रुतिप्रमाणत्वात् कर्तृत्वं नात्मनो ननु। किन्त्वन्तः करणस्थं तदध्यस्तमात्मनीति नु।
नैवं प्रतीयते चात्र कर्तृता मनसो न यत्। किन्तूपकारत्वेवैभोक्तृत्वे चात्मनो मतम्।
अन्यथा चेन्द्रियादेश्चकर्तृत्वं संभवेत्खलु। कर्तृत्वमात्मनस्तस्मान्नैषा श्रुतिर्निषेधति।
'कर्त्ताशास्त्रार्थवत्त्वाद्' वै व्यासेनसूत्रितं ततः। ततश्चाहं करोमीति प्रतीतिरुपपद्यते।
यद्यात्मनोन कर्तृत्वं शास्त्राणां व्यर्थता भवेत्। 'हन्ताचेन्मन्यतेहन्तुं हतश्चेन्मन्यते हतम्।
उभौतौ न विजानीतोनायं हन्ति न हन्यते। नन्वेवं प्रतिसिद्धाचह्यात्मनो हन्तृताश्रुतौ।
इतिचेन्नात्मनित्यत्वाद् हन्तृता वर्जिता यतः। प्रकृतेः क्रियमाणानिगुणैः कर्माणि सर्वशः।
अहङ्कारविमूढात्मा कर्त्ताहमिति मन्यते। इत्येवं ननु गीताया निषिद्धा कर्तृतात्मनः।
उदीरितश्चगीतायामुत्तरत्रायमाशयः। न स्वरूपप्रयुक्तंहि गुणसंसर्गतो यतः।
नैवं जीवस्य कर्तृत्वं संसारिकप्रवृत्तिषु। पञ्चैतानिमहाबाहो कारणानिनिबोध मे।
अधिष्ठानं तथा कर्त्ता करणं च पृथक् विधम्। विविधाश्च पृथक्चेष्टादैव चैवात्रपञ्चमम्।
शरीरवाङ्मनोभिर्यत् कर्मप्रारभते नरः। न्याय्यं वा विपरीतं वा पञ्चैते तस्यहेतवः।
तत्रैवं सति कर्त्तारमात्मानं केवलं तु यः। पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मति।
प्रश्नोपनिषदि 'कर्त्ता' स्पष्ट जीवः समीरितः। ग्रहणस्यविहारस्य चात्मनः कथनाच्छ्रुतौ
आत्मनश्चैवकर्तृत्वंबादरायणसम्मतम्। विज्ञानं यज्ञं तनुते कर्माणि तनुतेऽपि च'।
तैत्तरीयेऽपि चेत्येवं कर्तृत्वमात्मनः श्रुतम्। बुद्धेरेवहि कर्तृत्वं सांख्यास्तु प्रवदन्ति हि।
सम्भवेच्चतथात्वे तु बुद्धेरेवहिभोक्तृता। कर्तृत्वे च मते बुद्धेः समाधिश्च भवेन्न हि।
आत्मनः कर्तृतातस्मात्सिद्धान्तेस्वीकृताखलु। तक्षावत् स्वेच्छयाचात्मा करोति नकरोतिच
जडबुद्धेस्तु कर्तृत्वे व्यवस्थैषानसम्भवेत्। स्वायत्तं राघवायत्तं वा कर्तृत्वं किमात्मनः।

अङ्गुष्ठमात्रोरवितुल्यरूपः संकल्पाहङ्कारसमन्वितो यः।
बुद्धेर्गुणेनात्मगुणेन चैव आराग्रमात्रोह्यवरोऽपि दृष्टः ॥८

जीवस्य भोक्तृता तस्मात् पक्षश्चाद्योमनोहरः। विधिनिषेधशास्त्राणां वैयर्थ्यं चान्यथाभवेत् पिप्पलंस्वादुचात्तीति जीवस्य भोक्तृता श्रुतौ। इति चेन्न यतो जीवेराघवाधीन कर्तृता। 'अन्तः प्रविष्टःशास्ते'ति श्रुतौरामोहि शासकः। विधिनिषेधशास्त्राणा वैयर्थ्य हि तथा ननु मैवं जीवस्य यत्नं यद्वीक्ष्य स्वानुमति खलु। रामो दत्ते ततो जीवोयोग्यो विधिनिषेधयोः तथा प्रवर्त्तते चाथ फलदाने तु चात्मनः। वैषम्यं चाथनैर्घृण्यं मन्येते राघवे न तु। अवोचद्भगवांश्चैवंगीतायां स्वयमेवहि। 'तेषां सततयुक्ताना भजतां प्रीतिपूर्वकम्। ददामि बुद्धियोगं तं येनमामुपयान्ति ते। तानहं द्विषतः क्रूरान् संसारेषु नराधमान्। क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेवयोनिषु। 'एष एव साधुकर्मेत्यादिश्रुति प्रमाणतः। अखिलं चात्मकर्तृत्वं रामाधीनं हि मन्यते। कर्तृत्व राघवाधीनं निर्दोषं श्रुति सम्मतम्। विशिष्टाद्वैतसिद्धान्ते जीवस्य मन्यते ततः (९६७–९९९) इति।

तथैव श्रौतप्रमेयचन्द्रिकाकाराः "ईशाधीनोहि जीवात्मा लोके कर्म करोति तत्। ईशदत्तं फलं भुङ्क्ते जीवः स्वकृतकर्मणः" (५।२७) "कर्त्ताशास्त्रार्थवत्त्वात्" इतिसूत्रवृत्तौ जगद्गुरुश्रीदेवानन्दाचार्यचरणा अपि "आत्मा कर्त्ता नतु प्रकृतिः 'ज्योतिष्टोमेन स्वर्गकामोयजेत' इत्यादिशास्त्राणामप्रवृत्तस्य पुरुषस्य प्रवर्त्तकबोधोत्पादनद्वारा प्रवृत्त्युत्पादनेनार्थवत्त्वात्। अन्तः करणस्य प्रवर्त्त्यत्वस्वीकारे तु तस्याचेतनत्वेन प्रवर्त्तकबोधोत्पादनासम्भवाच्छास्त्रवैफल्यमनिवार्यमेवेति" (श्रीबोधायनवृत्तिसारः २।३।४) इत्याहुरतः सः फलकर्मकर्ता फलोद्देश्यपूर्वककर्मसम्पादकः स एव च तस्यैव शुभाशुभात्मकस्वकृतस्यैव कर्मफलस्योपभोक्ता भोगकर्तापीति शेषः। उक्तरूपेण रूपितो विश्वरूपः स्थावरजङ्गमादिभेदभिन्नस्त्रिगुणः कामक्रोधलोभाख्यगुणत्रययुक्तः सन् त्रिवर्त्मा स्वोपार्जितकर्मानुसारेण देवयानपितृयाणकष्टकगतियानरूपगतित्रययुक्तः प्राणाधिपः प्राणानामधिपः आश्रयस्थानं तत्सहचरितः सन्नित्येतत् सः स्वकर्मभिः स्वप्रवर्तितकर्मपाशसंबद्धःसन् सञ्चरतितत्तत्फलभोगकाले तत्तद्योनिषु विचरतीत्यर्थः ॥७॥

पूर्वमन्त्रोदितजीवस्वरूपमेव प्रपञ्चयति–अङ्गुष्ठमात्र इत्यादि। योऽङ्गुष्ठमात्रः "अङ्गुष्ठमात्रपुरुषं निश्चकर्षयमोबलान्" इत्युक्त्यातत्परिमाणवान् रवितुल्यरूपः स्वप्रकाशरूपो बुद्धेर्गुणेनान्तः करणस्य सत्वादिगुणेनाध्यवसायात्मके नात्मधर्मभूतेन संकल्पाहङ्कारसमन्वितः "आढ्योऽभिजनवानस्मि" इत्यादिरूपेणतत्तत्कार्येतत्तत्कार्यानु-

वालाग्रशतभागस्यशतधा कल्पितस्य च ।
भागोजीवः स विज्ञेयः स चानन्त्यायकल्पते ॥९॥
नैव स्त्री न पुमानेष न चैवायं नपुंसकः ।
यद्यच्छरीरमादत्ते तेन तेन स युज्यते ॥१०॥
संकल्पनस्पर्शनदृष्टिहोमैर्ग्रासाम्बुवृष्ट्याऽऽत्मविवृद्धजन्म ।
कर्मानुगान्यनुक्रमेणदेही स्थानेषुरूपाण्यभिसम्प्रपद्यते ॥११

कृत्स्नेन युक्तः सन्नात्मगुणेनात्मवत् स्वप्रकाशस्वरूपश्चैवाराग्रमात्रधर्मसूच्यग्रभागपरिमाणवान् ततोऽप्यवरः सूक्ष्मपरिमाणवान् जीवः शास्त्रेषु तज्ज्ञैर्दृष्टः प्रत्यक्षसमानाकारतयानुभूत इति ॥८॥

प्रस्तुतोऽयंजीवात्माऽत्यन्ताणुरितिस्वमतमाह—वालाग्रेत्यादि । वालाग्रशतभागस्यतस्यापि शतधाकल्पितस्याग्रभागस्यशतशतांशकल्पपरिमाणस्येति यावत् यद् भागोभवति स एव जीवोविज्ञेयस्तादृशपरिमाणयुक्तो जीवोज्ञातव्य इत्यर्थः । उक्तदर्शितपरिमाणयुक्तश्चजीवोऽत्यन्ताणुत्वेऽपिमोक्षसमयेविभुत्वरूपाऽनन्त्याय कल्पते स्वधर्मभूतज्ञानविकासेनानन्तत्वासीमत्वापरिच्छिन्नत्वञ्चाधिगच्छतीत्यर्थः । एतेन जीवस्यनियतपरिमाणत्वं मध्यमपरिमाणत्वं वा तिरस्कृत्याणुपरिमाणवत्त्वमेव संस्थापितं श्रुत्याऽन्यैवमर्वशास्त्रसङ्गतेरिदिक् ॥९॥

पूर्वप्रतिपादितस्य जीवात्मनो लोके सामान्यतः स्त्रीत्वादिलिङ्गत्रये प्रसिद्धत्वात्तस्य च सावयवत्वेनानुभूयमानत्वात्कथं तस्यात्यन्ताणुत्वमिति शङ्कामपनोदनायप्राह—नैवस्त्रीत्यादि । एषोजीवात्मा वस्तुतो नस्त्री न पुमान् न चैवायं नपुंसकादिकं यद् यद् भोगायतनभूतंशरीरमादत्ते स्वीकरोति स तदा तेन तेन तत्तद्रूपेणेति यावत् युज्यते स्वकर्मफलोपभोगसमयेतत्तदाकारत्वेन तत्र तत्र युक्तो भवति नतुतस्य स्वाभाविकत्वंतत्त्वमित्यर्थः । "विकारश्चरामोद्याविकलतयात्वे दयाशून्यतां पक्षपातञ्चनेति । प्रकारे विकारस्तथाचित्रसृष्टौ च हेतुर्यतः प्राणिना प्राच्यकर्म" इत्याचार्योक्तदिशा जीवकर्मस्वारस्यात् शरीरगतमेव स्त्रीत्वादिकं नतु स्वात्मगतमितिदिक् ॥१०॥

जीवात्मनः प्रकृतशरीरप्राप्तौकारणं किमितिजिज्ञासायामाह—संकल्पनेत्यादि । संकल्पनस्पर्शनदृष्टिहोमैः शास्त्रविहितपुण्यविधायकमत्यसंकल्पैः सरयूगङ्गाप्रभृतिपुण्यलक्षणजलवस्तुस्पर्शैः शास्त्रानुमोदितपुण्याधायकवस्तुसुदृष्टिपातैः पुण्योत्पादकशास्त्रमोदितहोमैर्योगादिविशेषैस्तथाग्रासाम्बुवृष्ट्या भोजनजलपानवृष्ट्यादिभिः "आहारशुद्धौ

स्थूलानि सूक्ष्माणि बहूनि चैव रूपाणि देही स्वगुणैर्वृणोति ।
क्रियागुणैरात्मगुणैश्च तेषां संयोगहेतुरपरोऽपि दृष्टः ॥१२॥
अनाद्यनन्तं कलिलस्य मध्ये विश्वस्यस्रष्टारमनेकरूपम् ।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ॥१३॥

सत्वशुद्धिः" इत्यादिश्रुत्युक्तदिशा सर्वेशसन्निवेदितविशुद्धाहारैः "दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे । देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्विकं स्मृतम्" इतिस्मृत्युक्तदिशा योग्यायोग्येषु ग्रासमुष्टिदानादिप्रदानं पुण्यपापहेतुर्भवतीति शास्त्रमर्यादा वृष्टयादेरपि-तथैवौवृश्चूछेदन इतिनिष्पन्नत्वात्तस्य । अनर्थोच्छेदनमनर्थवता पुण्यहेतुरर्थोच्छेदन-मर्थवताश्चपापहेतुरितितात्पर्यम् । ततश्चतत्तद्धेतुकं तत्तच्छरीरधारणमितिविवेकः । आत्म विवृद्धिजन्मजीवात्मनो विवृद्धिजन्मदेवमनुष्यादिप्रकृष्टयोनिषु जन्मभवत्यतोदेही जीवात्मा स्थानेषु स्वकर्मसंकल्पानुगुण्येन तेषु तेषु ब्राह्मणस्त्रीनपुंसकादियोनिषु कर्मानु गानि स्वकर्मानुसरणशीलानि स्वसंकल्पानुगानीतियावत् रूपाणि तत्तच्छुभाशुभसंकल्प-लक्षितानिहेयोत्कृष्टादिनि शरीराणि "यं यं वापिस्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् । तं तमेवैति कौन्तेय ! सदा तद्भावभावित" इतिस्मृतेः । अनुक्रमेण भोगानुकुल्यसंक-ल्पपर्यायेणाभिसम्प्रपद्यते यावत्कर्मफलभोगंभूयो भूयः संप्राप्नोतीतिशेषः ॥११॥

जीवात्मनो भूयोभूयोनानायोनिग्रहणकारणान्तरमपिदर्शयति—स्थूलानिसूक्ष्माणीत्यादि । देहीक्रियागुणैः स्वसंस्कारोद्भूतकर्मभिरात्मगुणैः स्वगुणैश्च तत्तत्फलप्रयुक्तयागादिलक्षण गुणैराबद्धः सन् स्थूलानि सूक्ष्माणि चैव बहूनि देवमनुष्यमातङ्गमसकप्रभृतीनि रूपाणि स्वरूपाकृतिविशेषाणि वृणोति तत् तत्फलभोगाय स्वीकरोतीति तेषां तत्र तत्र संयोग हेतुरयमपरोऽपि दृष्टः शास्त्रेष्विति शेषः । जीवानां स्वकृतकर्मवत्तादृशात्मयोगेहेतुरिति विवेकः ॥१२॥

पूर्वोक्तप्रकारेणप्रत्यगात्मनः स्वरूपमभिधाय तत्प्राप्यस्वरूपमभिधत्ते अनाद्यनन्त मित्यादि । कलिलस्य स्वकार्यरूपातिनिविडसंसारस्य मध्ये संस्थितयाऽनाद्यनन्तमादि मध्यावसानविवर्जितमचिन्त्यमितियावत् । विश्वस्य स्रष्टारं हिरण्यगर्भाद्यनेकरूपेण जगत्सृष्टिविधातारं "तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्" इतिश्रुतेः । अनेकरूपमनन्तानन्तस्य रूपत्वेनविश्वस्य परिवेष्टितारं सर्वतोभावेनसमव्याप्यावस्थितमेकमद्वितीयंसमाभ्यधिक-विवर्जितं देवं सर्वेश्वरं देवशब्दवाच्यं श्रीरामं ज्ञात्वा सर्वपाशैः सांसारिकसमस्तबन्धनै-र्मुच्यते श्रीरामसायुज्यं लभते इत्यर्थः ॥१३॥

भावग्राह्यमनीडाख्यं भावाभावकरं शिवम्।
कलासर्गकरं देवं ये विदुस्ते जहुस्तनुं तेजहुस्तनुम् ।१४।

इति श्वेताश्वतरोपनिषदः पञ्चमोऽध्यायः

पूर्वं ये देवा ऋषयश्च तद्विदुस्तेऽमृता बभूवुरिति बहुनामुपासनद्वारा सायुज्याप्तिरितिप्रपञ्चितं तच्चैवं भूतजीवविलक्षणस्याराधनेनेत्युपसंहरन्नाह—भावग्राह्यमित्यादि । भावग्राह्यं भावोऽत्रपरेशस्वरूपविषयिण्यतिशयिताश्रद्धा भक्त्यपरपर्याया तेन ग्राह्यंप्राप्तुं शक्यमितियावत् "नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुंस्वाम्" इतिश्रुतेः । "गम्यो ब्रह्मपरात्पर श्रुतिमतं भक्त्यैव निःश्रेयसम्" (श्रीबोधायनपञ्चके ज.गु. श्रीमदानन्दाचार्याः) 'ज्ञानस्य ब्रह्मणोऽनन्यभक्त्यैवमुक्तिरापद्यते' (भावनदीपिकायां ज.गु. श्रीगङ्गाधराचार्याः) "नूनं जलात्तथातैलं सिकतानवनिःसरेत् । तथापि भगवद्भक्तिं विनामुक्तिर्न सम्भवः" (योगपञ्चके ज.गु. श्रीदत्तानन्दाचार्याः) "भक्त्यैव मुक्तिदाना म स्वतन्त्रता तथैव च" (श्रौतप्रमेयचन्द्रिकायां ज.गु. श्रीनिगमानन्दाचार्याः) इत्याद्याचार्यप्रवराणामुक्तेश्च । अनीडाख्यमनाधाररूपेणाऽऽख्यायमानमनिलयत्वमिति शास्त्रप्रसिद्धमिति भावः । भावाभावकरमुत्पत्तिस्थितिसंहारप्रतिपादकं जगत्सृष्ट्यादिसर्गलीलासम्पादकमितियावत् शिवमशुभास्पृष्टं सदैकरूपत्वेन कल्याणनिलयमितियावत् । कलासर्गकरं सद्विद्याद्यनन्तकलोद्भूतस्थानं देवं "यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते" "जन्माद्यस्य यतः" "जगत्सृष्ट्यादयोलीला ममैव राघवस्य च" इत्यादिरूपेण श्रुतिस्मृत्यादिभिः प्रबोधितं सर्वेश्वरश्रीरामं ये शास्त्रोक्तदिशा समुपासका विदुस्ते तनुं स्वकर्मभोगसाधनभूतंशरीरं जहुः । प्रकृतेर्मुक्ता भूत्वा श्रीरामसायुज्यमवापुरित्येतत् । अध्यायसमाप्तिसूचिका द्विरुक्तिः ॥१४॥

इति श्वेताश्वतरोपनिषदोभगवच्छ्रीरामानन्दाचार्यप्रणीतानन्दभाष्ये पञ्चमोऽध्यायः





॥ अथ षष्ठोऽध्यायः ॥

स्वभावमेके कवयो वदन्ति कालं तथान्ये परिमुह्यमानाः ।
देवस्यैष महिमा तु लोके येनेदं भ्राम्यते ब्रह्मचक्रम् ॥१॥

येनावृतं नित्यमिदं हि सर्वं ज्ञः कालकालो गुणी सर्वविद्यः ।
तेनेशितं कर्मविवर्त्तते ह पृथ्व्यप्तेजोऽनिलखानि चिन्त्यम् ॥२॥

अथाध्यायपञ्चकाभिहितानर्थाननूद्य 'धर्मावहं पापनुदं भगेशं' 'परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रियाचे'त्यादिना विशिष्य परब्रह्मणः श्रीरामस्य कल्याणगुणानभिधातुं प्रवर्त्ततेऽयमन्तिमः षष्ठोध्यायः—स्वभावमिति । तत्र 'कालस्व भावो नियतिर्यदिच्छा भूतानि योनिः पुरुष इति चिन्त्यम्' (श्वेताश्वतर १।२) इति प्रथमाध्यायोक्तमर्थमनुवदन्नाह—एक इति । एके केचन कवयोविद्वासः । लोकायतिका इत्यर्थः । जगच्चक्रपरिवर्त्तने कारणभूत स्वभावं वदन्त्युदीरयन्ति । एतेन वेदबाह्यकारणवादिन उपलक्षिताः परिमुह्यमाना भगवन्मायया मोहं प्रापिता अन्य इतरे वैदिकाभासा इत्यर्थः । कालं जगच्चक्रपरिवर्त्तनकारणं वदन्ति । अत्र 'तु' शब्दः पूर्वपक्ष व्यावर्त्तयति । तथा च स्वभावकालयोर्जगत्कारणत्वं निरस्यन् सिद्धान्तयति—देवस्यैषमहिमेति । लोके देवस्य ब्रह्मादीनां वाचकोऽयं मन्त्रोऽन्यर्थादिसंज्ञकः । जप्तव्यो मन्त्रिणा नैनं विना देवः प्रसीदति ।" (रामपूर्वता० ११) 'भवान् नारायणो देवः' (वा.रा.यु.का. ११७।१४) 'श्रीरामचन्द्रं हरिमादिदेवं परात्पर राममहं भजामि ॥' (सनत्कुमारसं.) इत्यादिश्रुतिस्मृतिप्रामाण्याद् देवशब्दवाच्यस्य भगवतः श्रीरामस्यैव महिमा सङ्कल्पो येन महिम्नेदं ब्रह्मचक्रं ब्रह्माश्रितं जगच्चक्रं प्रकृतिप्राकृतचक्रं वा भ्राम्यते ॥१॥

नियतिरपि न स्वातन्त्र्येण कार्यं करोत्यपि तु देवप्रेरणयैवेत्याह—येनेति । येन भगवता श्रीरामेण नित्यमिदं सर्वं चेतनाचेतनात्मकमखिलं विश्वमावृतं व्याप्तं हि । य श्रीरामोनित्यं सर्वव्यापक इत्यर्थः । यश्च ज्ञः सर्वज्ञः कालस्यापि कालः कालकालः कालस्यापि नियन्ता प्रशस्ता गुणा सन्त्यस्येति गुणी कारुण्याद्याश्रयणीयौपार्थककल्याणगुणगणार्णवोयः सर्वं वेत्तीति सर्ववित् सर्वाविद्या यस्य स सर्वविद्यो वा । ज्ञः सर्वविदित्यत्र 'यः सर्वज्ञः सर्वविदितिवन्न पुनरुक्तिर्भगवतः श्रीरामस्य सामान्यविशेषोभयविषयक ज्ञानाश्रयत्वात् । क्रियत इति कर्म नियतिशब्दवाच्यं जीवविहितं पुण्यपापलक्षणं कर्म हतेन भगवता श्रीरामेणेशितं स्यादिति सङ्कल्पमात्रविषयीकृतं सत् पृथिव्यप्तेजोऽनिल खानि पृथिव्यप्तेजोनिलाकाशरूपेण विवर्त्तत विशेषेणवर्त्तते । निष्पन्नं भवतीत्यर्थः । इति चिन्त्यमित्थं विचारणीयम् ॥२॥

तत् कर्मकृत्वा विनिवर्त्य भूयस्तत्त्वस्य तत्त्वेन समेत्ययोगम् ।
एकेन द्वाभ्यां त्रिभिरष्टभिर्वा कालेन चैवात्मगुणैश्च सूक्ष्मैः ॥३॥
आरभ्य कर्माणि गुणान्वितानि भावांश्च सर्वान् विनियोजयेद् यः ।
तेषामभावे कृतकर्मनाशः कर्मक्षये याति स तत्त्वतोऽन्यः ॥४॥
आदिः स संयोगनिमित्तहेतुः परस्त्रिकालादकलोऽपि दृष्टः ।
तं विश्वरूपं भवभूतमीड्यं देवं स्वचित्तस्थमुपास्य पूर्वम् ॥५॥

अथ 'पुरुष इति चिन्त्यम्' (श्वेताश्वतर १।२) इत्युक्तस्य कर्मणायोगेन च सिद्धिमवाप्तस्य जीवापरपर्यायस्य पुरुषस्य कारणत्वपक्षं निरस्यति—तत्कर्मेति द्वाभ्याम् । अन्येभ्यः काम्यकर्मभ्यो विनिवर्त्यतत्त्वस्य "यत्परं यद् गुणातीतं यज्ज्योतिरमलं शिवम् । तदेव परमं तत्त्वं कैवल्यपदकारणम् ॥" (श्रीरामस्तवराज ५) इतिसनत्कुमारसंहितावचनप्रामाण्यात् परमतत्त्वस्य भगवतः श्रीरामस्य तदर्थं कर्म तत्कर्म समाराधनबुद्ध्या नित्यनैमित्तिकं कर्मभूयोऽनेकजन्मसु कृत्वाविधायैकेन जनिसमये भगवच्छ्रीरामकृपाकटाक्षेण गुरुपसदनेनवा, द्वाभ्यां'यस्य देवे परा भक्तिःयथा देवे तथा गुरौ ।'(श्वेताश्वतर६।२३) इतिश्रुत्युक्तदेवगुरुभक्तिभ्याम् , त्रिभिर्बाल्यपाण्डित्यमौनैः श्रवणमनननिदिध्यासनैर्वा, अष्टभिर्यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारध्यानधारणासमाधिपदवाच्यैरष्टभिर्योगाङ्गैश्च । अत्र वा शब्दश्चार्थे । कालेन मोक्षोपयोगिसमयेनात्मगुणैः प्रजापतिवाक्याभिहितापहतपाप्मत्वादिभिरष्टभिरात्मगुणैः सूक्ष्मैर्बहुजन्मानुष्ठितपुण्यसंस्कारैश्च विशिष्टः सन् तत्वेन सर्वेश्वर श्रीरामेण योगं शेषत्वज्ञानात्मकयोगं समेत्यावाप्यगुणान्वितानि प्रारब्धत्वगुणविशिष्टानि । भगवत्प्रीत्यप्रीत्यात्मकत्वगुणविशिष्टानीत्यर्थः । कर्माण्यारभ्यावलम्ब्य सर्वान् विश्वान् भावान् कामाँश्चयोविनियोजयेद्भुनक्ति । तेषां कर्मफलभोगानामभावेऽन्ते कृतकर्मनाशो भगवदुपासनेनोत्तरपूर्वाघाश्लेषविनाशविशिष्टः स भगवद्भक्तः कर्मक्षये प्रारब्धकर्मक्षये यात्यवाप्नोति । ब्रह्मेति शेषः । स तत्वतो परमतत्वाद् भगवतः श्रीरामादन्यः । अतः पुरुषपदवाच्यः सजीवो न जगत्कारणमित्यर्थः । अत एवोक्तं शारीरकमीमांसायां भगवद्भिर्बादरायणैः "जगद्व्यापारवर्जं प्रकरणादसन्निहितत्वाच्च ।" (ब्रह्मसूत्र ४।४।१७) इति । तदाहुर्वृत्तिकाराः श्रीपुरुषोत्तमाचार्यबोधायनमहाभागाः "जगद्व्यापारवर्जसमानोज्योतिषा" इति ॥३-४॥

अथ परमात्मोपासनस्य स्वात्मोपासनान्तरकर्त्तव्यतामाह—आदिरिति । स पूर्वमन्त्राभिहितो जीवः सम्यग् योगः संयोगस्तत्र यानि पूर्वोक्तानिनिमित्तानि तेषां हेतु-

स वृक्षकालाकृतिभिः परोऽन्यो यस्मात् प्रपञ्चः परिवर्त्ततेऽयम् ।
धर्मावहं पापनुदं भगेशं ज्ञात्वाऽऽत्मस्थममृतं विश्वधाम ॥६॥
तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमञ्च दैवतम् ।
पतिं पतीनां परमं परस्ताद् विदाम देवं भुवनेशमीड्यम् ॥७॥

राद्विः सम्यक् परमात्माप्राप्तौ प्रधान कारणं कालाद् भूतादिकालत्रयात् परः । काल त्रयपरिच्छिन्नपर इत्यर्थः । न विद्यन्ते कला यस्य सोऽकलोनिरवयवोऽपि दृष्टः । शास्त्रेष्वितिशेषः । तं विश्वरूपं कर्माधीनत्वेनामितदेह भवभूतं संसारितामवाप्तमीड्यं स्तुत्यं देवं द्योतमानस्वभावम् । स्वप्रकाशज्ञानस्वरूपमिति यावत् । स्वचित्तस्थं स्वहृदये स्थितं तं स्वात्मानमुपास्य यस्मादयं प्रपञ्चश्चिदचिदात्मकः प्रपञ्चः परिवर्त्तते स परः परमात्मा वृक्षकालाकृतिभिरत्र तृतीया 'अन्यदाहुर्विद्यया' इत्यादिवत् पञ्चम्यर्थे । वृश्च्यते विद्यत इति व्युत्पत्त्या प्रकृतिवाचकोऽत्रवृक्षशब्दः । आकाररूपार्थविवक्षणे वैयर्थ्यादत्राकृतिशब्द आसमन्तात् कृतिर्यस्येत्येवं कृतिमतो जीवस्य वाचकः । तथा च स परमात्मा प्रपञ्चापरिवर्त्तकेभ्यः प्रकृतिकालजीवेभ्योन्यो भिन्नोऽस्तीति शेषः । धर्मावहं ज्ञानोत्पत्त्यनुकूलसत्कर्मप्रवर्त्तकं पापानुदं ज्ञानोत्पत्तिप्रतिबन्धपापापनोदकं भगेशम् "ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः । ज्ञानवैराग्ययोश्चैवषण्णां भग इतीरणा" इत्यत्रोक्तज्ञानाद्यैश्वर्यषट्केश्वरम् । उक्तञ्च बोधायनवृत्तिकारभगवत्पुरुषोत्तमाचार्यशिष्य-वर्यैर्जगद्गुरुश्रीगङ्गाधराचार्यैः श्रीरामभगवत्वे—
"ज्ञानशक्तिबलैश्वर्यवीर्यतेजांसि षड्गुणाः । भगत्वेनेरिताःसन्ति श्रीरामे भगवान् स तत् श्रीरामे भगवच्छब्दो मुख्यवृत्त्या प्रवर्त्तते । गौण एव स चान्यत्रषड्विधैश्वर्यलेशतः ॥३॥इति विश्वधाम विश्वस्याधारभूतममृतं मरणशून्यम् । नित्यमित्यर्थः । स्वात्मस्थमन्तर्यामि-रूपेण स्वात्मऽन्यवस्थितं तं परमात्मानं ज्ञात्वोपास्य मुक्तो भवतीति शेषः ॥५-६॥

अथ परमात्मज्ञानार्थं प्रार्थयति—तमीति । ईश्वराणां जगत्सृष्ट्यादिसमर्थानाञ्चतु-र्मुखविष्णुशिवानां परममुत्कृष्टं महांश्चासावीश्वरोमहेश्वरस्तं महेश्वर महेशानं देवतानां मनुष्याद्यपेक्षयाधिकदेवनशक्तिविशिष्टानामिन्द्रादिदेवानां मध्ये परमं देवतैवेति दैवतं पान्तीति पतयस्तेषां पतीनां विश्वपालकाना मध्ये परमं पतिम् । "पतिं विश्वस्ये"ति श्रुतेः । देवं द्योतमानस्वरूपम् । स्वयम्प्रकाशज्ञानानन्दस्वरूपमिति यावत् । "ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान् यश्च ब्रह्मा विष्णुरीश्वरो यः सर्वदेवतात्मा भूर्भुवः स्व-स्तस्मै वै नमो नमः ॥" (श्रीरामोत्तरतापनीयोपनिषत्) "योगीन्द्रसंघैः शतसेव्यमानं नारायणं निर्मलमादिदेवम्" "विज्ञानहेतुं विमलायताक्षं प्रज्ञानरूपं स्वसुखैकहेतुम् ।

न तस्य कार्यं करणं च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्चदृश्यते ।
पराऽस्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च ॥८॥

श्रीरामचन्द्रं हरिमादिदेवं परात्परं राममहं भजामि'' (सनत्कुमारसंहितायां श्रीरामस्तवराजः) ''भवान् नारायणोदेवः (वाल्मीकिरा०यु०) इत्यादिवचनानि भगवतः श्रीरामस्य देवत्वपरात्परात्वं च प्रमाणयन्ति । भुवनानामीशं भुवनेशं निखिललोकनियामकम् । ''भवाब्धिपोतं भरताग्रजं तं भक्तप्रियं भानुकुलप्रदीपम् । भूतत्रिनाथं भुवनाधिपत्यं भजामि रामं भवरोगवैद्यम् ॥'' ''त्रैलोक्यनाथ सरसीरुहाक्षम्'' (श्रीसनत्कुमारसंहिता) इत्यादिपाञ्चरात्रवचनप्रामाण्यात् । ईड्यं सर्वेषा देवमुनीनां स्तवनीयं तं प्रस्तुतं परमात्मानं सर्वेश्वर श्रीरामं वयं विदाम जानीमः । अत्र प्रार्थनाया लोट्लकारः । अत्र ''शम्भुरीशः पशुपतिः शिवः शूली महेश्वरः'' (अमरकोष) इति कोषबलान्महेश्वरपदे रूढिर्नशङ्कनीया । कुतः ? ईश्वराणामिति प्रतिनिर्देशात् अतएव श्रुतौ पञ्चरात्रे च भगवति श्रीरामे महेश्वरशब्दः प्रयुक्तः । तथाहि—
ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान् यश्च महेश्वरो भूर्भुवः स्वस्तस्मै वै नमो नमः ॥'' (श्रीरामोत्तर०) ''वन्दामहे महेशानं चण्डकोदण्डखण्डनम् । जानकीहृदयानन्दं चन्दनं रघुनन्दनम् ॥ (सनत्कुमारसं०) इति ॥७॥

अथ परमात्मनः प्राकृतदेहेन्द्रियाभाववत्वं समाभ्यधिकरहितत्वं शक्तिज्ञानादिगुणवत्वं परमात्मगुणानाञ्च स्वाभाविकत्वं सत्यत्वञ्चाभिधीयते—नेति । तस्य भगवतः श्रीरामस्य कार्यं प्राकृतं शरीर करणञ्च प्राकृतेन्द्रियञ्च न विद्यते तेन समस्तत्समोऽधिकश्च ततोऽधिकश्चापिश्रुत्यादिषु न दृश्यते । भगवता तुल्योभगवतोऽधिकश्च कश्चिदपि न कुत्रापि नास्तीत्यर्थः । अस्य परमात्मनः श्रीरामस्य परोत्कृष्टस्वरूपेतरा वा स्वाभाविकी स्वभावतो विद्यमाना न तूपाधिवशात् सञ्जातेत्यर्थ । शक्तिरद्भुतकर्मकरणसामार्थ्यम् । श्रूयते सर्वोत्कृष्टश्रुतिप्रमाणसिद्धाऽस्तीत्यर्थः । तदुक्तं श्रीरामभगवत्वे—

''सामर्थ्यमद्भुतस्याथ कर्मणः करणे च यत् ।
तद्धि शक्तितया प्रोक्तो गुणोभागवतो महान् ॥'' इति ।

'श्रूयते' इत्येवं परमात्मगुणाना श्रुतिसिद्धत्वप्रतिपादनेन तेषां मिथ्यात्वप्रतिपादकाः प्रत्याख्याता वेदितव्याः । केवलं परमात्मनः शक्तिरेव तथाभूताऽपितु तस्येतरेगुणा अपि तथाभूता इत्यतआह—ज्ञानेति । ज्ञानं नाम निखिलदेशकालवस्तुविषयक प्रत्यक्षानुभवलक्षणः परमात्मगुणः । बलं नाम सर्वधारणसामर्थ्यं जगद्रचनायां श्रमाभावो वा । उक्तञ्चोभयमधिकृत्य श्रीरामभगवत्वे—

न तस्य कश्चित् पतिरस्ति लोके न चेशिता नैव च तस्य लिङ्गम् ।
सकारणं करणाधिपाधिपो न चास्य कश्चिज्जनिता न चाधिपः ॥९॥

"स्वप्रकाशश्च सर्वेषां सर्वदा भासको विभुः ।
गुणश्चालोचकैः प्राज्ञैर्ज्ञानत्वेन प्रकीर्त्तितः ॥
सर्वधारणसामर्थ्यं गुणो बलतया मतः ।
जगतो रचनायां हि श्रमाभावोऽथवा च सः ॥" इति ।

ज्ञानं च बलं च ज्ञानबले ज्ञानबलाभ्यां सहिता क्रिया ज्ञानबलक्रिया । अत्र क्रियानाम परमात्मनोजगत्सर्जनादिरूपोव्यापारः । अत्र चकाराद्खिलानां भगवद्गुण क्रियादीना संग्रहो ज्ञेयः ॥८॥

अथ ब्रह्मपदवाच्यस्य भगवतः श्रीरामस्य सर्वपतित्वादिकमभिधत्ते—न तस्य कश्चिदित्यादिना । लोके कस्मिश्चिदपि लोके तस्य पूर्वोक्तस्य भगवतः श्रीरामस्य कश्चित् पातीतिपती रक्षकोनास्ति । न च श्रीरामः कस्यचिद् रक्ष्य इत्यर्थः । भगवान् श्रीराम एव सर्वेषा रक्षक इति यावत् । अत एवोक्तं श्रीराममन्त्रप्रदेन श्रीवशिष्ठर्षिगुरुणा पद्मोद्भवेन भगवता श्रीचतुर्मुखेन—"शरण्य शरणं च त्वामाहुर्दिव्या महर्षयः" इति "त्वं त्रयाणां हि लोकानामादिकर्त्ता स्वयं प्रभुः" इति च (वाल्मी.रा.यु. ११७।१८) श्री पवनकुमारेणाप्युक्तम्—"रामस्य लोकत्रयनायकस्य" इति ।वा.रा.सु ५१।४३) देवर्षिणा श्रीनारदेनाप्युक्तम्—"नारायणं जगन्नाथमभिरामं जगत्पतिम् । कविं पुराणं वागीशं रामं दशरथात्मजम् ॥" इति (श्रीरामस्तवराज २८) तस्य पूर्वोक्तस्य श्रीरामस्य कश्चिदीशिता नियामको नैवास्ति । "तमीश्वराणां परमं महेश्वरम्" इतिश्रुत्या तस्य सर्वेश्वराणामपि परममहेश्वरतायाः प्रतिपादितत्वात् । अत एवोक्तं रावणं प्रति चतुर्मुखगुरुणा भगवता श्रीप्राभञ्जनेन—"सर्वलोकेश्वरस्येह कृत्वा विप्रियमीदृशम् । रामस्य राजसिंहस्य दुर्लभं तव जीवितम्" इति । (वा.रा सुन्दरकाण्ड ५१।३९) । सनत्कुमारसंहितायां श्रीमता देवर्षिणाऽप्युक्तम्—"भर्गं वरेण्यं विश्वेशं रघुनाथं जगद्गुरुम् ॥" इति (श्रीरामस्तवराज २९) । अत एवोक्तं श्रीरामार्थरत्नमञ्जूषायां श्रीराम शब्दंव्युत्पादयद्भिरस्मत्परमगुरुभिराचार्यवर्यैः श्रीहर्यानन्दाचार्यैः—"ब्रह्मविष्णुशिवादीनां र वाच्यैश्वर्यशालिनाम् । गमश्चामोऽवितुं यस्य स रामः परिकीर्त्तितः ॥९॥ "महाराजाधिराजै रैरम्यते सेव्यते च यः । स्वामी च सर्वलोकानां स रामः परिकीर्त्तितः ॥२१॥" इति श्रीराघवेन्द्रमङ्गलमालायामाचार्यवर्यैरप्युक्तम्—भयाभयविधातारः सर्वे यच्छासने स्थिताः । तस्मै हि निखिलेशाय राघवेन्द्राय मङ्गलम् ॥६३॥" इति । तस्य पूर्वोक्तस्य श्रीरामस्य (किञ्चित्) लिङ्गमनुभावकः सद्धेतुरपि नैव विद्यते । तस्य

यस्तन्तुनाभ इव तन्तुभिः प्रधानजैः स्वभावतः ।
देव एकः समावृणोति स नो दद्याद् ब्रह्माप्ययम् ॥१०॥

वेदैकवेद्यत्वात् । तथैवोक्तं श्रीसनत्कुमारसंहितायाम्—"वेदान्तवेद्यं कविमीशितारमना-दिमध्यान्तमचिन्त्यमाद्यम् । अगोचरं निर्मलमेकरूपं नमामि रामं तमसः परस्तात् ॥ इति । (श्रीरामस्तव० ६१) । एतद्विषयकमधिकं तु शारीरकमीमांसायाः शास्त्रयोनि-त्वाधिकरणस्यानन्दभाष्ये वक्ष्याम इत्यत्रसंक्षेपः । स श्रीरामः कारणमखिलस्य जगतो-ऽभिन्ननिमित्तोपादानकारणम् । 'सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयमितिश्रुतिप्रामा-ण्यात् । करणाधिपाधिपः करणानि मन आदीन्येकादशेन्द्रियाणि तेषामधिपोऽधिपति-र्जीवस्तस्याधिपः स्वामी करणानामधिपा इन्द्रियाधिष्ठातारः सुरास्तेषामधिपो वा । अस्य भगवतः श्रीरामस्य कश्चिज्जनिता जनयिता जनक इत्यर्थः । च नास्ति । "यतो वा इमानि भूतानिजायन्ते" इत्यादिश्रुतयः "प्रभवश्चाप्ययश्च त्वमुपेन्द्रो मधुसूदनः" इत्यादिस्मृतयश्चात्रानुसन्धेयाः। एवमस्य श्रीरामस्य कश्चिदधिपः स्वामी च नास्तीत्यर्थः। सुष्ठूक्तमाचार्यवर्यैः श्रीराघवानन्दाचार्यैः "विष्णवे विबुधारातिजिष्णवे प्रभविष्णवे । सर्वलोकैकनाथाय राघवेन्द्राय मङ्गलम्" ॥ इति । (श्रीराघवेन्द्रमङ्गल माला) ॥९॥

जीवानामोक्षापादनायैव भगवतः स्रष्टव्यायामस्ततत्साफल्याय मोक्षं याचते य इति । यः प्रसिद्ध एकः प्रधानो देवः सर्वेश्वररामस्तन्तुभिः स्वशरीरजैः सूत्रैस्त न्तुनाभ ऊर्णनाभिरिव प्रधानाज्जाताः प्रधानजास्तैः 'यस्य पृथिवीशरीरम्' इत्यादि श्रुतिसिद्धस्वशरीरभूतकृतिजैर्महत्तत्त्वादिभिस्तत्त्वैः स्वभावतः स्वेच्छया चेतनवर्गमावृ-णोति सङ्कुचितज्ञानतामापादयति । यथा तन्तुनाभपदवाच्यो जन्तुविशेषः स्वदेहा-ज्जातैस्तन्तुभिरितस्ततो भ्रमणकर्त्तारं स्वसमीपस्थं जीववर्गमावृणोति तथैव देवपदवाच्य सर्वेश्वररामोपि स्वसङ्कल्पात् सृष्टैः प्राकृतैर्महत्तत्वादिभिस्तत्त्वैः स्वोद्धारमार्गात् परिभ्रष्टान् जीवानावृणोतीत्यर्थः । तदुक्तं भगवद्भिः श्रीश्यामानन्दाचार्यैः—

"शरीरं चेन्द्रियं दत्त्वा सृष्टिकाले तु राघवः ।
　　अन्तर्यामितया जीवं स्वीया सत्तां च रक्षति ॥
सत्सङ्गादिगुणांश्चाथ समुत्पाद्य हि देहिनि ।
　　सदाचारेण संयोज्य चापराधान् विमृश्यति ॥
निवार्य भवसम्बन्धमर्चिरादिपथेन हि ।
　　स्वधामानुभवौ दत्वा नित्यां सेवां ददाति च ॥" इति । (नवरत्नी)

स प्रधानजैस्तत्त्वैर्जीवावरणकर्त्ता देवो रामो नोऽस्माकंब्रह्माप्यय ब्रह्मणि 'इति रामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते' इत्यादिश्रुतिबलाद् ब्रह्मपदवाच्ये स्वस्मिन् श्रीरामेऽप्य-

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ॥११॥
एको वशी निष्क्रियाणां बहुनामेकं बीजं बहुधा यः करोति ।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ॥१२॥
नित्यो नित्यानांचेतनश्चेतनानामेको बहुनां यो विदधाति कामान् ।
तत् कारणं सांख्ययोगाधिगम्यं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ॥१३॥

यमात्यन्तिकं लयम् । भेदाकारेणास्फुरणम् । मोक्षमिति यावत् । दद्यात् सम्पादयेत् । ब्रह्माव्ययमिति पाठे तु अव्ययं नित्यम् भावप्रधाननिर्देशादत्र ब्रह्मपदस्य ब्रह्मत्वमर्थः । जगद्व्यापारादिशून्यत्वविशिष्टगुणाष्टकमितियावत् । तद् दद्यात् प्रयच्छतु । मोक्षं दद्यादित्यर्थः ॥१०॥

अथ मोक्षप्रदातार देवं भगवन्तं श्रीरामं निरूपयति—एक इत्यादिभिः सर्वभूतेषु निखिलभूतेषु गूढ इतराज्ञातरूपेण विद्यमानः सर्वव्यापी 'अन्तर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थित' इति श्रुतेर्विश्वान्तर्बहिर्व्याप्तिशीलोऽत एव सर्वभूतान्तरात्मा सर्वेषा कर्मसु प्रेरयिता । सर्वान्तर्यामीत्यर्थः । कर्माध्यक्षः कर्मणां फलप्रदाने प्रधानः । कर्मणा फलप्रदानेऽन्याध्यक्षताविरहित इत्यर्थः । सर्वेषुभूतेषु नियन्तृरूपेणाधिवसतीति सर्वभूताधिवासः सर्वभूतनियायकः साक्षी 'यः सर्वज्ञः सर्वविदिति श्रुतेः सकलस्य सामान्यविशेषरूपेणसाक्षादेव वेत्ता चेता विश्वनिर्माणकर्त्ता केवलो विश्वनिर्माणकर्तृत्वेऽपि गुणत्रयावश्यत्वेनावाप्तसमस्तकामतया फलाभिसन्धिपूर्वकविश्वनिर्मातृत्वाभावेन चौदासीन्यविशिष्टः कल्याणगुणविशिष्टत्वेऽपि प्राकृतगुणप्रतिभटत्वान्निर्गुण एकोऽद्वितीयः । स्वसमाभ्यधिकरहित इत्यर्थः । देवोद्योतनस्वभावविशिष्टः स्वयंप्रकाशइत्यर्थः भगवान् श्रीरामोऽस्तीतिशेषः ॥११॥

यो बहुनामसंख्यातानां निष्क्रियाणां स्वतन्त्रप्रवृत्यात्मकक्रियारहितानां चेतनाचेतनानामेकः प्रधानो वशी वशकर्त्ता । निजाधीनताऽऽपादक इत्यर्थः । समस्ताश्चेतनाचेतना न स्वतन्त्रा नान्यपरतन्त्राः किन्तु भगवतः श्रीरामस्यैव वशवर्त्तिनः सन्तीति यावत् । एकं बीजं विश्वस्यैकं प्रकृत्याख्यं बीजं यश्च 'बहुस्याम्' इति स्वसङ्कल्पतो बहुधा महत्तत्वादिबहुप्रकारविशिष्टं करोति विदधाति त समस्तचेतनाचेतनवर्गस्य स्ववश्यताऽऽपादकं प्रकृतेर्महत्तत्वाद्यनेकावस्थावैशिष्ट्यापादकं चात्मस्थं स्वान्तर्यामिणं भगवन्तं श्रीरामं ये धीरा विवेकशालिनः पुरुषा अनुपश्यन्त्यवगच्छन्ति तेषामेव शाश्वतं सुखं शाश्वतसुखात्मकं मोक्षो भवतीतिशेषः । नेतरेषां भगवज्ज्ञानविरहितानां जनानां तु मोक्षो नैव भवतीति ध्येयम् ॥१२॥

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥१४॥
एको हंसो भुवनस्यास्य मध्ये स एवाग्निः सलिले सन्निविष्टः।
तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥१५॥

अथ निखिलाभिलपितपदार्थप्रदजगत्कारणलक्षणदेवपदवाच्यभगवच्छ्रीरामज्ञानान्मुक्तिर्भवतीत्येतदभिदधाति—नित्य इति। बहूनां बहुसंख्याकानां नित्यानामुत्पत्तिविनाशशून्यानां मध्ये नित्योऽत्यन्तनित्यश्चेतनानां बहूनां बहुसंख्याविशिष्टानां चैतन्यपदवाच्यज्ञानाश्रयाणां मध्ये चेतनः परमचेतन एक एव यः कामानपेक्षमाणानर्थान् विदधाति सम्पादयति तत् कारणं जगतोऽभिन्ननिमित्तोपादानात्मको हेतुः सांख्ययोगाधिगम्यं ज्ञानयोगकर्मयोगविज्ञेयं देवं देवशब्दाभिधेयं भगवन्तं श्रीरामं ज्ञात्वा सर्वे च ते पाशाः सर्वपाशास्तैरखिलैः पाशवद्बन्धनकारकैः कर्मभिर्मुच्यते मुक्तो भवति। अत्र यद्यप्य'जो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो' इति भगवद्वचनबलाद् जीवानां नित्यत्वमेवास्त्यत एवोक्तं श्रीतत्त्वमेयचन्द्रिकायामाचार्यचक्रवर्तिभिः श्रीप्रियानन्दाचार्यैः—"पयः पानानुसन्धानाच्चेतनत्वात् तथैव च। यस्यात्मेतिश्रुतेश्चाथ नानात्वव्यपदेशतः॥ नित्यो देहातिरिक्तश्च देहश्चांशः परात्मनः।" इति। तथापि दुराग्रहवशात् केचिदिह नित्यो नित्यानामित्यत्र नित्योऽनित्यानामिति पाठमङ्गीकुर्वन्ति। तथापाठेऽपि धर्मभूतज्ञानसंकोचयोगाच्चेतनानामनित्यत्वमिति नास्त्यत्र कश्चिद्दोषावसर इति सुधियोऽभिदधति ॥१३॥

अथ स्वतो भासमानस्य भगवतः सर्वभासकत्वम्प्रतिपादयति—न तत्रेति। तत्र प्रस्तुते जगत्कारणे परब्रह्मणि भगवति श्रीरामे सूर्यो सहस्रकिरणमाली भगवान् भास्करो न भाति प्रकाशं न विदधाति, चन्द्रश्च तारकानि चैषां समाहारश्चन्द्रतारकशशितारकचक्रं न भाति प्रकाशं न करोति, इमा विद्युतो न भान्ति प्रकाशं न कुर्वन्ति। सर्वेषां तेजःशालिनां भास्करादीनां तेजांसि ब्रह्मतेजसाऽभिभूतानीत्यर्थः। कुतोऽयमग्निर्भातीतिशेषः। तर्हि पूर्वोक्तभास्कराद्यपेक्षयाऽत्यन्ताल्पतेजः शीलस्यानलस्य वराकस्य तेजसो ब्रह्मतेजसाऽभिभवे किमुवक्तव्यमित्यर्थः। तर्हि सर्वेषां भानं कुत इत्याशङ्कायामाह—तमेवेति। तमेव भगवन्तं श्रीरामं भान्तमनुपश्चात् सर्वं भाति। तस्य भगवतः श्रीरामस्य भासा तेजसैवेदं सर्वं विभाति प्रकाशत इत्यर्थः। आदित्यादीनां तेजांसि भगवदीयान्येव न स्वीयानीतिभावः। तदुक्तं गीतायाम्—"यदादित्यगतं तेजो जगद् भासयतेऽखिलम्। यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्" इति। भगवतस्तेजसोऽभावे सर्वमिदं तिमिराच्छन्नमेव स्यादित्येतत् ॥१४॥

स विश्वकृद् विश्वविदात्मयोनिर्ज्ञः कालकालो गुणी सर्वविद्यः ।
प्रधानक्षेत्रज्ञपतिर्गुणेशः संसारमोक्षस्थितिबन्धहेतुः ॥१६॥
स तन्मयो ह्यमृत ईशसंस्थो ज्ञः सर्वगो भुवनस्यास्य गोप्ता ।
य ईशेऽस्य जगतो नित्यमेव नान्यो हेतुर्विद्यते ईशनाय ॥१७॥
यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदाँश्च प्रहिणोति तस्मै ।
तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये ॥१८॥

अथ भगवत्प्रापकं भगवदुपासनमेवेत्येतदभिधत्ते—एक इति । अस्य भुवनस्य चेतनाचेतनलक्षणस्य जगतो मध्य एको मुख्यो हंसः पक्षिणां मध्ये हंस इव स्थित अग्रे नयतीत्यग्निरग्रनेता मोक्षदाता संसारबन्धदाहको वा सलिले समुद्राम्भसि सन्निविष्टः तमेव सर्वेश्वर श्रीरामं विदित्वोपास्यातिमृत्युंमृत्योरतिक्रममेति प्राप्नोति । मृत्युमतिक्रम्य परमपदमत्राप्नोतीत्यर्थः । ईयत इत्ययनं प्राप्यं तस्मा अयनाय भगवत्प्राप्तये भगवत्प्राप्तिहेतवे भगवत्प्रसादाय वेत्यर्थः । अन्य भगवदुपासनं विना पन्था अन्योऽध्वा । उपाय इत्यर्थः । न विद्यते नवर्त्तते "रामो ब्रह्म परात्परं श्रुतिमतं भक्त्यैव निःश्रेयसमित्याचार्योक्तेः ॥१५॥

अथ भगवतो विश्वकर्तृत्वादिकमापादयति स विश्वकृदिति । स प्रस्तुतो भगवान् श्रीरामो विश्वं करोतीति विश्वकृत् सर्वकारकः सर्वहारकश्च, विश्वं विन्दतीति विश्ववित् सर्वं प्राप्तः, आत्मा योनिः स्थानं यस्य स आत्मयोनिर्जीवान्तर्यामी, जानातीतिज्ञो-विभुज्ञानाश्रयः सर्वज्ञ इत्यर्थः, कालस्यापिकालः कालनियन्तेत्यर्थः, प्रशस्ता गुणाः सन्त्यस्येतिगुणी दिव्यानन्तगुणविशिष्टः सर्वा विद्या अस्य सन्तीति सर्वविद्यःसर्वविद्या-प्रवर्त्तकः, प्रधान च क्षेत्रज्ञश्चेति प्रधानक्षेत्रज्ञौ तयोः पतिः प्रधानक्षेत्रज्ञपतिः प्रकृति-पुरुषस्वामी, गुणानामीशो गुणेशो ज्ञानादिगुणपरिपूर्णः सत्वादिगुणनियन्ता वा, संसार-मोक्षस्थितिबन्धहेतुः संसारान्मोक्षे संसारस्थित्यात्मके बन्धे च हेतुःकारणमित्यर्थः ॥१६॥

स तन्मय इति । स पूर्वोक्तो भगवान् श्रीरामः तन्मयस्तदात्मको हि, अमृतोऽसंसारी, ईशसंस्थ ईशनसंस्थितिकः, ज्ञः सर्वज्ञः, सर्वगः सर्वगतः, अस्य चिदचिल्लक्षणस्य भुवनस्य गोप्ता रक्षकः, अस्य जगतो नित्यमीशे नियमनं करोति यश्च नित्यमेतज्ज-गन्नियन्तेत्यर्थः, नित्यमित्यनेन मोक्षेपीश्वरस्येशानव्यापारो भवतीत्यर्थो लभ्यते । ईशानायान्यो हेतुर्न विद्यते । भगवतो जगदीशितृत्वमन्यहेतुकं न भवतीत्यर्थः ॥१७॥

अथ भगवतो ममुक्षुशरणत्वमाह—य इति । यो लोके शास्त्रे च जगत्कारणत्वेन प्रसिद्धो भगवान् श्रीरामः पूर्वसृष्ट्यादौ "भवान्नारायणोदेवः" इतिवचनबलात् स्वस्य नारा-यणस्वरूपस्य नाभिकमले ब्रह्माणं चतुर्मुखं विदधात्युत्पादयति यो वै यश्चवै तस्मै स्वेनोत्पादि-

निष्कलं निष्क्रियं शान्तं निरवद्यं निरञ्जनम् ।
अमृतस्य परं सेतुं दग्धेन्धनमिवानलम् ॥१९॥
यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः ।
तदा देवमविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति ॥२०॥
तपः प्रभावाद् देवप्रसादाच्च ब्रह्म ह श्वेताश्वतरोऽथ विद्वान् ।
अत्याश्रमिभ्यः परमं पवित्रं प्रोवाच सम्यगृषिसंघजुष्टम् ॥२१॥

ताय विधये वेदांश्च सर्वविद्यानिधानरूपान् वेदांश्च प्रहिणोति प्रेषयतिप्रददातीन्यर्थः । उक्तञ्चैतद् वशिष्ठसंहितायां चतुराननस्यमानसैः पुत्रैः श्रीराममन्त्रप्रदाचार्यैर्महर्षिवशिष्ठैः

"सृष्टयादौ च सिसृक्षुः श्रीरामो विधिं विधाय हि ।
सृष्टये प्रेषयामास वेदं ज्ञानमहानिधिम् ॥" इति ।

अहं तं आत्मबुद्धिप्रकाशं स्वविषयकबुद्धिप्रकाशकं देवं ब्रह्मेशानादिसर्वपूज्यं भगवन्तं श्रीरामं शरणं प्रपद्ये "सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति य याचते । अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम ॥" इति भगवच्छ्रीरामोक्त्या भगवच्छ्रीरामप्रपत्तेरेव सर्वाभयनिदानत्वात् सर्वेश्वरश्रीराममेव शरणमहं प्रपद्ये । उक्ता च सकृद्रामप्रपत्त्यैव परधामावाप्तिर्जगद्गुरुभिः श्रीचिदानन्दाचार्यैर्न्यामकलानिधौ—

"नावाप्यते परं धाम तपोयोगसमाधिभिः ।
सकृद्रामप्रपत्त्यैव प्राणिभिः प्राप्यते हि तत् ॥" इति ।

ततो भगवच्छ्रीरामप्रपत्तिरेव मोक्षार्थं विधेया मुमुक्षुभिरिति भावः ॥१८॥

अथ भक्त्यभावे प्रपत्तिवद् ब्रह्मज्ञानाभावेऽपिकिं किञ्चिदुपायान्तरं स्यान्मुक्तिसाधकमित्याशङ्कामपाकरोति निष्कलमित्यादिमन्त्रद्वयेन । यदा मानवाश्चर्मवदाकाशं नभो वेष्टयिष्यन्ति तदा निष्कलमवयवरहितं निष्क्रियं कर्तृत्वाभिमानशून्यत्वाद्वाप्तसमस्तकामत्वेन प्रयोजनरहितत्वात् संकल्पमात्रेण सर्वविधायकत्वाद् वा क्रियारहितं शान्तं अशनायाद्यूर्मिषट्कशून्यं निरवद्यं स्वाश्रितपराङ्मुखत्वादिदोषहीनं निरञ्जनं निरवलेपममृतस्य मोक्षस्य परं सेतुं मर्यादास्वरूपं चरमं प्राप्यमित्यर्थः । दग्धेन्धनानलमिव स्वयम्प्रकाशमानं देवं सर्वपूज्यं भगवन्तं श्रीराममविज्ञायाननुभूय दुःखस्यान्तो विनाशो भविष्यति । परब्रह्मश्रीरामज्ञानाभावदशायामाकशवेष्टनस्यासम्भावनेव मोक्षस्याप्यसम्भावनैवास्तीतिभावः ॥१९॥२०॥

अथोक्तस्य मोक्षहेतुभूतस्य ब्रह्मज्ञानस्याधिकारिणमधिकृत्योपदिशति—तप प्रभावादिति । तपसः कृच्छ्रचान्द्रायणादेः * प्रभावाद् देवस्यसर्वाराध्यस्य भगवतः श्रीरामस्य

* आदिनाऽऽश्रमविहितधर्मात्मकस्येन्द्रियैकाग्र्यस्वरूपस्य च ग्रहणम् ।

वेदान्ते परमं गुह्यं पुराकल्पे प्रचोदितम् ।
नाप्रशान्ताय दातव्यं नापुत्रायाशिष्याय वै पुनः ॥२२॥
यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥
प्रकाशन्ते महात्मनः ॥२३॥

इति श्वेताश्वतरोपनिषदि षष्ठोऽध्यायः॥६॥

卐 समाप्ता श्वेताश्वतरोपनिषत् 卐

प्रसादात् परानुग्रहाच्च यद्वैवार्थकोऽत्र चकारः । तथा च तपःप्रभावाद् यो देव प्रसादस्तस्मादेवेत्यर्थः । विद्वान् समापन्नब्रह्मविज्ञानः श्वेताश्वतर एतन्नायकः कश्चिद् ऋषिरथ ब्रह्मज्ञानावाप्त्यनन्तरमत्याश्रमिभ्योऽतिरत्रपूजार्थकस्तस्मात् पूज्याश्रमिभ्यः । न चात्याश्रमिभ्य इत्यस्याश्रमशून्येभ्य इत्यर्थःस्यादिति वाच्यमाश्रमरहितस्य नरस्य कृच्छ्रेण शुद्धेरुक्तत्वात् । तथा हि–"न चानाश्रमिणा भाव्यं नरेण हितमिच्छता । अनाश्रमी यतश्चात्र नरः कृच्छ्रेण सुध्यति ॥" (वशिष्ठसंहिता) अन्यत्रापि–"अनाश्रमी न तिष्ठेत्तु दिनमेकमपि द्विजः ।" इति । ऋषिसंघैर्वशिष्ठागस्त्यपराशरविश्वामित्रभरद्वाजादिमहर्षिसमूहैः सम्यग् जुष्टं सेवितं परममत्युत्कर्षशालिपवित्रं स्वभावतोऽपास्तदोषसंघत्वान्निरतिशयशुद्धिसमन्वितं ब्रह्म स्वरूपेण गुणेन देहेन चात्यन्तबृहत्तामापन्नं "रमन्ते योगिनोऽनन्ते नित्यानन्दे चिदात्मनि । इतिरामपदेनासौ परब्रह्माभिधीयते" "भवान्नारायणो देवः श्रीमांश्चक्रायुधः प्रभुः । एकशृङ्गोवराहस्त्वं भूतभव्यसपत्नजित् ॥ अक्षरं ब्रह्मसत्यं च मध्ये चान्ते च राघव" इत्यादिश्रुतिस्मृतिप्रमाणाद् ब्रह्मपदाभिधेय भगवन्तं श्रीरामं प्रोवाचोक्तवान् ह इति प्रसिद्धौ ॥२१॥

वेदान्त इत्येकवचनं जातौ । वेदान्तेषूपनिषत्सु परममत्यन्तं गुह्यं रहस्यत्वेनगोपनीयं पुराकल्पे प्रचोदितमुपरिष्टमेतद् विज्ञान अप्रशान्ताय शान्तिशून्यायापुत्राय पुत्ररहितायाशिष्याय शिष्यभावविरहिताय च नदातव्यम् । अतिरहस्यात्मकमेतद् ब्रह्मज्ञानं प्रशान्ताय पुत्राय शिष्यायचैवोपदेष्टव्यं नान्यस्मा इत्यर्थः ॥२२॥

अथोपदिष्टरहस्यप्रकाशहेतुतया भगवद्भक्तिं गुरुभक्तिं चोपदिशति–यस्येति । यस्य जिज्ञासोर्देवे ब्रह्मे ज्ञानादिसकलाराध्ये परब्रह्मणि भगवति श्रीरामे परोत्कृष्टा भक्तिर्भवेद् यथा देवे तथागुरौ भक्तिर्भवेत् तस्य महात्मनो देवभक्तितुल्यगुरुभक्तिविशिष्टस्य पुरुषस्यैते कथिताः श्वेताश्वतरोपदिष्टा अर्थाः पदार्थाः प्रकाशन्ते । देवप्रसादगुरुप्रसादद्वयेनावभासन्ते नान्यस्येत्यर्थः समादरं संसूचयति द्विरुक्तिः ॥२३॥

इति श्वेताश्वतरोपनिषदो भगवच्छ्रीरामानन्दाचार्यप्रणीतानन्दभाष्ये षष्ठोऽध्यायः॥६॥ 卐

卐 जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी 卐

(ले० श्रीकृष्णचन्द्र वैष्णव)

१ **जन्म नाम** श्रीरामानन्द

२–**दीक्षा नाम** श्रीरामानन्दाचार्यजी

३ **सम्प्रदायाचार्य**–बाईसवे सम्प्रदायाचार्य

४ **सम्प्रदाय** श्रीरामानन्दीय श्रीसम्प्रदाय

५ **पिताजीका नाम** श्रीपुण्यसदनजीशर्मा

६ **माताजीका नाम**–श्रीसुशीलादेवीजी

७ **सम्प्रदायगुरुजीका नाम**– जगद्गुरु श्रीराघवानन्दाचार्यजीगुरुश्रीहर्यानन्दाचार्यजी

८ **प्रधान शिष्यों के नाम** श्रीअनन्तानन्दाचार्यजी, श्रीसुखानन्दाचार्यजी, श्री भावनन्दाचार्यजी, श्रीसुरसुरानन्दाचार्यजी श्रीपीपाचार्यजी, श्रीयोगानन्दाचार्यजी श्री-गालवानन्दाचार्यजी,श्रीनरहर्यानन्दाचार्यजी श्रीकबीरदासनी, श्रीधन्नाजी श्रीसैनजी श्रीरैदासजी

९ **अवतार** भगवान् श्रीरामजीके

१० **गोत्र जाति वर्ण** त्रिप्रवरान्वित वशिष्ठगोत्रीय कान्यकुब्ज ब्राह्मण

११ **जन्मतिथि** माघकृष्ण सप्तमी वि स १३५६ ।

१२ **सम्प्रदाय दीक्षा तिथि** वि स १३८१ वसन्तपचमी

१३ **पाटोत्सव तिथि** वि स १३०७ वसन्पञ्चमी

१४ **साकेतवास तिथि** वि स १५३२ श्रीरामनवमी ।

१५ **अस्तित्वकाल** वि स १३५६ से१५३२

१६ **अवतार स्थान**–प्रयाग जिला इलाहाबाद

१७ **सम्प्रदाय पीठस्थान** पचगंगाघाट,काशी (वाराणसी)

१८ **साकेकवास स्थान**–आचार्यपीठकाशी

१९ **साम्प्रदायिक रचनाये**–प्रस्थान त्रयी (उपनिषद् ब्रह्मसूत्र तथा गीता) पर आनन्दभाष्य, श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर (परिशिष्ट श्रीरामार्चन पद्धति के साथ)

२० **सन्दर्भ ग्रंथ**–१ पूर्वार्ध इतिहास (२) उत्तरार्ध इतिहास (३) देशिकपरि-चर्या (४) भक्तचरित्राक (५) सन्त वाणी अक (६) आचार्यजीवनवृत्त (७) स्वामीरामारानन्द (८) रामानन्द सदेश (९) उत्तरभारत का इतिहास (१०) मध्यकालीन भारत १०००–१७४० (११) जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यपीठ (मासिक पत्रिका)

२१ **संक्षिप्त जीवन परिचयः**—जगद्गुरु श्री का जन्म अपने पिताजी की ४५ वर्षकी आयु मे हुआ । पिताजी ने आप श्रीका चार वर्ष की आयुमें अन्न प्राशन सस्कार तथा ६ वर्ष की आयु में चूडाकर्म सस्कार करवाया था । पिताजी ने ही आप श्री को गायत्री

मत्र प्रदान किया था । आपश्री की स्मरण शक्ति बहुत तेज तथा बुद्धि बडी कुशाग्र थी अत कोई भी बात एक बार सुन लेने पर उसे कभी नही भूलते थे । इसी कारणसे आठवे वर्ष की आयु तक मे आपश्री को कई ग्रन्थ कटस्थ हो गये थे। इसी वर्ष आपश्री का यज्ञोपवीत सस्कार भी सम्पन्न हुआ । वाल्यावस्था मे ही आप श्री ने एक वार अपने पिताजी का शख इतने सुन्दर ढग से बजाया कि उन्होने प्रसन्न होकर वह शख आप श्री को ही दे दिया । यह शख दाहिनावर्त था । आगे चलकर यह शख आपश्री के लिये बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ । जगद्गुरु श्री द्वारा की गई इस शख की ध्वनि के कर्णगोचर होते ही भयकर से भयकर रोग दूर हो जाते थे तथा मृत व्यक्ति जी उठते थे।

यज्ञोपवीत सस्कार के पश्चात् विशेष अध्ययन के लिये आपश्री को श्रीमठ, काशी मे लेजाया गया । वहाँ “रामनामासित्व” से आपश्री का विद्याभ्यास प्रारभ हुआ । थोडे ही समय मे आपश्री ने सस्वरवेद पाठ सिख लिया तथा व्याकरण वेद, वेदान्त, न्याय सांख्य, योग उभय मीमासा, ज्योतिष, तर्क, वैशेषिक, निरुक्त, कला, शिक्षा, काव्य आदि का सम्यक् अध्ययन कर लिया । फिर बौद्ध, चार्वाक, कच्छपायन, युद्धपायन, अजिकेशक्रम्बलि आदि नास्तिक दर्शनो का भी ज्ञान प्राप्त कर लिया । पच्चिसवे वर्ष की आयु में माता पिता आपश्री के समावर्तन सस्कार के लिये श्रीमठ में आये, परन्तु विद्याध्ययन के लिये काशी जाते समय देखे गये हिन्दुओ पर मुस्लिम शासको के अत्याचारो के दृस्य आपश्री के हृदयपटल पर अभी तक अकित थे । उस समय आपश्री ने देखा कि कई स्थानो पर मुस्लिम शासको के अत्याचारो से घबराकर कितने ही हिन्दु परिवार जगलो और पर्वतो मे छिपकर तथा फलमूल आदि खाकर जीवन वितारहे है। उस समय आपश्री ने ऐसे परिवारोसे अनुरोध किया था कि वे हिन्दुधर्मको न छोडे और उन्हे आश्वासन दिया था कि भगवान् जल्दी ही उनकी रक्षा करेगा। उन्ही दृश्यो को याद करते हुये आपश्री ने अपने माता-पिता तथा गुरुदेवको कहा कि भारत की वर्तमान राजनैतिक, धार्मिक तथा सामाजिक परिस्थितियां, हिन्दुधर्म, हिन्दुस्थान व हिन्दुओको नष्ट करने पर तुली हुई है । ऐसी परिस्थितियोमें आवश्यकता इस बातकी है कि भारत के नवयुवक कटिबद्ध होकर देश, जाति व धर्म की रक्षा करे। अत मेरी करबद्ध प्रार्थना हैं कि आपलोग मुझे विरक्त वैष्णवी दीक्षा लेकर यही कार्य करने की आज्ञा प्रदान करे । अपने पुत्र को अपने विचारों मे दृढ देखकर माता-पिता ने आपश्री को सन्यास ग्रहण करने की आज्ञा देदी । गुरुदेव ने आपश्री को त्रिदण्ड, काषाय, कठी, तिलक आदि धारण करवा कर मत्रराज “श्रीराममत्र” प्रदान किया तथा आचार्य परम्परा का ज्ञान करवाकर दीक्षा

प्रदान की । आपश्री ने जिस दिनसे सन्यास लिया उसी दिन से केवल कौपीन पहन कर तपस्या व्रतोपवास, योगसाधना आदि करना प्रारम्भ कर दिया ।

दीक्षान्त समारोहमे आपश्री ने अपनेभाषण मे चेतावनी दी कि यदि वर्तमान धार्मिक, राजनैतिक व सामाजिक परिस्थितियो में परिवर्तन नहीं लाया गया तो सर्वनाश अवश्य-म्भावी है । पडितो, साधु-सन्तो आदिको मेरी इस चेतावनीको जन साधारण तक पहुचाना है तथा उन्हे अपने शास्त्रज्ञान और क्षत्रियो को अपने शस्त्रबल से इन परिस्थितियो से जूझने का कार्य करना है आपश्री की ओजस्वीवाणीसे प्रभावित होकर काशी के समस्त विद्वानो ने एक "एकता प्रचार समिति"का गठन किया जिसके अध्यक्ष पद पर आपश्री को प्रतिष्ठित किया गया । काशी के प्रत्येक मुहल्ले मे इस समिति की शाखये-स्थापित की गई । ये समितिया भगवान् श्रीराम व श्रीकृष्णकी कथाओ का आयोजन करती थी तथा जनता को अपनी रक्षा करने की प्रेरणा देती थी तथा उपाय बनाती थी। इन आयो जनो से जनतामे आत्म विश्वास की भावना जाग उठी ओर वह आत्म रक्षार्थ तैयार होगई । ज गु श्रीराघवानन्दाचार्यजी के पश्चात् आपश्री श्रीरामानन्द सम्प्रदाय के बाईसवे सम्प्रदायाचार्य के रूप मे पदासीन हुये । सम्प्रदायाचार्य पद पर आसीन होते ही आपश्री ने सर्वप्रथम जो कार्य किया वह था देश काल व पात्र के भेद भाव से रहित सब मनुष्यो को श्रीराममत्र देना तथा श्रीरामभक्ति का प्रचार प्रसार करना ।

जगद्गुरु श्रीने अपने विद्यार्थीकाल तथा तीर्थयात्राओ के दौरान हिन्दुओ, हिन्दूधर्म तथा हिन्दुस्थान के पतन को खुली आखो से देखा था । इस पतन के कारणो को आपश्री ने सात भागो में बाटा । यथा (१) सघ शक्ति का अभाव (२) माया-वाद का प्रचार (३) राजाओ तथा विद्वानो का आपसी कलह तथा एक दूसरे को हराने की प्रबल कामना (४) वर्णाश्रम व्यवस्था के दुरुपयोग के कारण ऊच नीच का भेद तथा शूद्रो व अन्त्यजो के प्रति घृणा तथा उन पर अत्याचार (५) सामाजिक व सास्कृतिक आचार विचारो में जडता (६) केवल चौके चूल्हे व शरीर शुद्धि को ही धर्म का सर्वस्व मान लेने की जड धारणा तथा (७) हिन्दू धर्म तथा हिन्दूसमाज के दरवाजे अहिन्दुओ तथा बलात् धर्मपरिवर्तित हिन्दुओके लिये बन्द कर देना । जगद्गुरु श्रीने इन कारणो पर कुठाराघात करना आरम्भ किया इसके लिये आपश्रीने सात उपाय अपनाये । (१) भगवान श्रीराम के नाम पर एक संगठन शक्ति को जन्म दिया तथा 'श्रीराम ही सबके रक्षक है" ऐसी घोषणा करके हिन्दुजातिका मनोबल जागृत किया ।

(२) मायावाद आदि का खण्डन करके विशिष्टाद्वैत का प्रचार किया जिससे लोगो में जीवन के प्रति आस्था बढी । (३) जगद्गुरु श्री जहा कही भी गये वही आपश्री ने राजाओ तथा विद्वानो को व्यक्तिगत अहकार और शत्रुता छोडकर विधर्मियो के विरुद्ध सगठित होने की सलाह दी । आपश्री ने शूद्रो, अन्त्यजो, यवनो आदि सबको अपने गले लगाया और उनको तथा स्त्रियो को भी अपना शिष्य बनाया । कबीर, रविदास, सैन, सुरसुरीजी, पद्मावतीजी, रानी सीताजी आदि इस कथन के प्रत्यक्ष प्रमाण है । और भी देखिये - एकबार आपश्री स्नान ध्यान से निवृत्त होकर देव मन्दिर जा रहे थे कि रास्ते मे रविदासजी मिल गये । उन्होने दूर से ही आपश्री को दण्डवत् प्रणाम किया। यह देख कर आपश्री ने उन्हे उठाकर अपने गले से लगा लिया । इसी प्रकार एक बार आपश्री गगास्नान कर रहे थे । खूब मल मल कर नहाने के बाद भी आपश्री को शरीर की निर्मलता का अनुभव नही हुआ । इतने मे आपश्री एकाएक चमारगली मे भाजन भक्त के घर की तरफ भागे । वहा पहुच कर आपश्री उनसे भेट पडे और बोले भाजन ! आज सूर्यनारायणको अर्घ देते समय मुझे उनकी ज्योति के दर्शन नही हुये, परन्तु उसी ज्योति के दर्शन आज मुझे तेरे ललाट पर हो रहे है । अब मेरा स्नान समाप्त हुआ और आज मुझे मदिर जानेकी आवश्यकता नही है । इस प्रकार आपश्री ने छूआछूत को दूर करके तथा ऊचनीच का भेद मिटाकर सबको एक स्तर पर ला खडा किया । भारत में भक्ति के क्षेत्र मे सर्वप्रथम वर्णाश्रम व्यवस्था के दुरुपयोग के चक्रव्यूह को तोडने का कार्य यदि किसी धर्माचार्य ने किया है तो वह जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्यजी ने ही किया है । (५) आपश्री की मान्यता थी कि जो समाज तथा सस्कृति अपने आचार विचार और व्यवहारमे समयानुसार परिवर्तन नही करते वे नष्ट हो जाते है । अपनी इस मान्यताको कार्यान्वित करने के लिये आपश्री ने आदेश दिया कि जहाँ तक होसके हिन्दुओ का धर्मपरिवर्तन रोका जाय । धर्म परिवर्तित हिन्दू यदि वापस हिन्दु बनना चाहे ओर अन्य विधर्मी भी यदि हिन्दू बनना चाहे तो उनके लिये हिन्दूधर्म तथा हिन्दूसमाज के द्वार हरदम खुले रक्खे जाय । आपश्री प्रथम हिन्दूधर्मगुरु थे जिन्होने विधमियो को भी शुद्ध करके हिन्दूधर्म मे अपनाया । जगद्गुरु श्री ने यह भी समझाया कि धर्म चूल्हेचौके और शरीर को मिट्टीपानी आदि से शुद्ध रखने मे ही नही सिमिट गया है, वह तो जीवन मे उतारने और आचरण मे लाने के कुछ सिद्धान्तो का समूह है । यथा -

अहिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्यापग्रिहायमा ।
शौचसतोषतप स्वाध्याय ईश्वरप्रणिधानानि नियमा ॥

अत प्रत्येक मनुष्य को इन यम नियमो का पालन करके सच्चे अर्थों मे धर्म का पालन करना चाहिये । आपश्री के इन उपायो से हिन्दूसमाज, सस्कृति तथा आचार विचारो में परिवर्तन आना शुरु हुआ । (६) हिन्दूजाति पर से जजिया आदि करोको दूर करवा कर उसकी आथिक स्थिति दृढ की । (७) अति आवश्यकता पडने पर योग, शास्त्र, शस्त्र आदि शक्तियो का प्रयोग करने मे भी जगद्गुरुश्री नहा हिचकिचाये ।

श्रीरामानन्दाचार्यजी के उपरोक्त उपाय तथा कार्य भारत मे नये नहीं थे । उनका प्रयोग विक्रम की सातवी सदी के अन्त तक होता रहा था । फलस्वरूप उस समय तक शक हूण' कोल, किरात व्रात्य आदि जितनी भी विदेशी जातिया भारत मे आई वे सब हिन्दु समाज मे विलीन हो गई । परन्तु चन्द्रगुप्त मार्य अशोक हर्ष आदि सम्राटो के राज्य काल मे लगभग पन्द्रह सौ वर्षों तक समृद्धि के उपभोग से आलसी तथा सम्राट् हर्ष के निधन (वि स ७०३) के पश्चात् प्रवल राजशक्ति के अभाव मे डरपोक बन जाने और आपसी फूट मे उलझ जाने के — कारण वि स ७६७ मे मुहमद बिन कासिम के समय से हा हिन्दुसमाज ने मुस्लिम आक्रमणो के विरुद्ध खुले मे जूझने के वजाय अपनी रक्षा के लिये नकारात्मक बातो तथा मान्यताओ का एक दुर्भेदा किला खडा कर लिया । इससे अपने अस्तित्व की इस लडाई मे वह एकदम कटकर मरजाने अथवा लडाई जीत कर खुशहाल बनजाने के बजाय दम घुटघुट कर मरने लगा । इस घुटन का पूरापूरा लाभ विधर्मियो और विजेताओ ने उठाया । उन्हन्ने हिन्दुओ की धन सम्पत्ति ही नहीं छीनी, मानव सम्पत्ति भी छीन ली । परन्तु इसके पहले कि ग्रीक युनानी आदि सस्कृतियो की भाति हिन्दूसस्कृति भी नष्ट होजाती, जगद्-गुरुश्री ने उस किले के द्वार व खिडकिया खोल दी और हिन्दू समाज को ताजा हवा और दानापानी मिला जिससे इस मरणासन्न सस्कृति व समाज को पुनर्जीवन मिला । हिन्दूसमाज द्वारा निर्मित इस किलेको तोडने के लिये चार मोर्चोंपर कार्य किया । यथा - (१) शास्त्रार्थ तथा लोक-भोग्य साहित्य सर्जन (२) राजनैतिक परामर्श (३) चमत्कार तथा (४) शस्त्र बल । आप श्रीके इन मोर्चों के कारण विधर्मी तथा विदेशी ठडे पड गये, हिन्दुओ पर उनके अत्याचार कम हो गये तथा कुछ समय तक शाति स्थापित होगई । उसी समय के दौरान जगद्गुरुश्री के शिष्यो के प्रशिष्यो के साथ साथ अन्य वैष्णव आचार्यों विशेषकर श्रीवल्लभाचार्यजी, श्रीचैतन्य महाप्रभु आदि ने भी इस क्षेत्र मे प्रवेश किया

और सबने मिलकर श्रीराम और श्रीकृष्ण भक्ति की ऐसी गगा बहाई कि हिन्दु मुस्लिम आदि सब उसमे नहाने लगे और जाति, पद, विजेता, विजित आदि के भूलकर सब एक होगये । उदाहरणार्थ श्रीराम—कृष्ण के कुछ मुस्लिम स्त्री-पुरुष भक्तो के नाम यहाँ दिये जाते है । नवाव अलफखा, खुसरो, फारेखा करीमबख्श, इन्शाबाजिन्द, आदिल मकसूद, मौजदीन, वाहिद, लतीफ, हुसैन, मन्सूर, फरहत, काजी अशरफ, आलन, वालिबशाह, महबूब, नफीस खलीली, अब्दुल रहीम खान खाना रसखान, सूफी बुल्लाशाह, ताजबीबी, सरमद, हसीना, हमीदा, जलालुद्दीन बसावी, शाह अब्दुल लतीफ होथी आदि । इस भक्ति गगामे स्नान करके चैतन्य शिष्य हरिदास आदि कई मुस्लिम सज्जन तो हिन्दू ही बन गये, लाखो बलात् धर्म परिवर्तित हिन्दू वापस हिन्दु समाज मे आये वह अलग से । यदि यही प्रक्रया आगे भी चालू रहती अथवा औरगजेव के स्थान पर दाराशिकोह दिल्ली की राजगद्दी पर आया होता तो आज हिन्दू मुस्लिम सब एक हो जाते । परन्तु भारत के दुर्भाग्य से ऐसा नही हुआ । इसी समय अंग्रेजो ने भारत मे घुस पैठ शुरू करदी और व्यापार करते करते भारत के मालिक बन बैठे । उन्होने अपना राज्य सुदृढ करने के लिये वि म १९१३ से ही पचतत्र की मित्रभेद नीति (फूट डालो और राज्य करो) के अनुसार दोनो कौमो को लडवा कर एक दूसरे का जानी दुश्मन बना दिया । इस दुश्मनी का परिणाम यह आया कि दोनो कौमो ने जो एक होने लगी थी भारत को दो टुकडो मे बाट लिया और सदा के लिये अलग ही नही हुई एक दूसरे को नष्ट करने पर भी तुल गई ।

उपरोक्त चारो मोर्चों पर कार्य करने के लिये अकेले जगद्गुरुश्री ने ही ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य, शूद्र, अत्यज, विधर्मा, स्त्री, गृहस्थ, विरक्त आदि अनेको शिष्य बनाये । साथ ही आपश्री ने केवल अपने आपको ही अपने सम्प्रदाय का एक मात्र कर्ताधर्ता के रूपके प्रतिष्ठित नही किया, परन्तु जो भी व्यक्ति आपश्री के सम्पर्क मे आया उसीको सर्वमान्य बना दिया । यही कारण है कि श्रीकबीर श्रीरैदास आदि आपश्री का स्पर्श प्राप्त करके हिन्दूसमाज के गौरव रूप मै प्रतिष्ठित हुये । इसी प्रकार आपश्री के शिष्य प्रशिष्य भी इतने प्रतिभा सम्पन्न, प्रभावशाली तथा लोक प्रिय हुये कि केवल हिन्दूप्रजा तथा राजाओ महाराजाओ ने ही नहीं ' मुस्लिम बादशाहो ने भी उनके दर्शन किये, उनको जागीरे भेट की तथा उनके लिए मन्दिर बनवाये । ऐसे मन्दिरो मे कितने ही आज भी विद्यमान है । जगद्गुरुश्री के समान हा आपश्री के शिष्योने भी अनन्त शिष्य बनाये जो भारत की सामाजिक राजनैतिक, धार्मिक व सास्कृतिक दशा मे क्राति-

कारी परिवर्तनो का सूत्रपात करने के लिये अग्रसर हुए। लोकभोग्य साहित्य सर्जन के क्षेत्र में स्वनामधन्य ज.गु श्रीतुलसीदासजी, सन्त कबीरदासजी आदि के नाम तो अमर है ही, श्रीपीपाजी, श्रीमलूकदासजी, श्रीनाभाजी आदि के नामो को भी कौन भूला सकता है ? इन आचार्यों ने अपनी वाणियो, दोहो, साखिया आदि से प्रजा मे श्रीरामभक्ति का प्रचार करके उन्हे निडर और सगटित बना दिया । ज गु श्रीतुलसीदासजीकृत रामचरितमानसने तो हिन्दूप्रजा मे मृतसजीवनी का कार्य किया और वह प्रत्येक हिन्दू के गले का हार बन गई । साहित्य सर्जन के साथसाथ शास्त्रार्थ का कार्य भी चालू रहा । इस कार्य मे जगद्गुरुश्री के साथ साथ सर्व श्रीअनन्तानन्दाचार्यजी श्रीअनुभवा-नन्दाचार्यजी श्रीअलखरामाचार्यजी, श्रीअर्जुनदेवाचार्य (जगी) जी श्रीभावानन्दाचार्यजी श्रीयोगा-नन्दाचार्यजी, सुखानन्दाचार्यजी, श्रीलाहारामाचार्यजी आदि ने अति प्रशसनीय कार्य किया इन आचार्यों ने मायावाद, शून्यवाद, शैव, शाक्त कापालिक आदि मतो का खण्डन करके सगुणश्रीराम की भक्ति और विशिष्टाद्वैत मत का प्रतिपादन किया। इससे लोगो के मन मे जीवन के प्रति आस्था बढी और उनको जीवन ध्येय स्पष्ट रूप मे दिखलाई पडने लगा।

जहाँ तक सम्भव होसका देश और हिन्दुत्व प्रेमी राजाओ का मार्गदर्शन भी जगद्गुरुश्री तथा उनके शिष्यो प्रशिष्यो ने किया । आपश्री ने अपनी विभिन्न यात्राओ के दौरान अनेकानेक राजाओ को राजनैतिक परामर्श तथा मार्गदर्शन देकर उन्हे सगठित किया तथा विधर्मियो के लिये विरुद्ध सघर्ष करने को प्रेरित किया। श्रीयोगानन्दाचार्यजी ने अपनी दक्षिणयात्रा के समय शैव-वैष्णव वैमनस्य दूर करके स्वामी विद्यारण्य को राजनैतिक सलाहकार के रूप मे कार्य करने की सलाह दी। स्वामीजी ने हरिहरराय तथा बुक्का-राय के धार्मिकगुरु के साथसाथ राजनैतिक सलाहकार बनकर उनको हिन्दूराज्य स्थापित करने और आक्रान्ताओ से लोहा लेने को प्रेरित किया, फलस्वरूप विजयनगर जैसा हिन्दूराज्य अस्तित्व मे आया और फूलाफला । आगे चलकर यह परम्परा समर्थगुरु स्वामी रामदासजी ने छत्रपतिशिवाजी के समय में अपनाई । फलस्वरूप मराठा साम्राज्य का उदय हुआ । छत्तीसगढक्षेत्र मे भी यह परम्परा चालू रही और श्रीवैष्णव सम्प्र-दायानुयायी कई धार्मिक गुरुओं ने कई राजाओं के पुरोहितो तथा राजनैतिक सलाहकारो का कार्य भी किया । कालान्तर में कई राजाओ ने अपने राज्य अथवा उनके कुछ भाग इन्ही धर्मगुरुओं को भेट कर दिये । छुईखदान, राजनादगाव, दुर्ग आदि पुरानी रियासते इन बातो की गवाह है ।

जो लोग साहित्य, शास्त्रार्थ तथा परामर्शों से अपनी जिद न छोड कर अपने अपने अहकार मे ही डूबे रहे और चमत्मकारो के बल पर जनता को मूर्ख बनाकर अपना उल्लू सीधाकरते रहे, ऐसे लोगो के चमत्कारो की पोल खोल कर अथवा उनसे भी अधिक विस्मयपूर्ण चमत्कार बताकर उन्हे पराभूत किया और जनता को सही भक्तिमार्ग पर लगाया। इस क्षेत्र मे स्वय जगद्गुरुश्री, सर्वश्री अग्रदेवाचार्यजी श्रीअनन्तानन्दाचार्य, श्रीअनुभवानन्दाचार्यजी, श्रीकर्मचन्द्राचार्यजी, श्रीकाल्हूरामाचार्यजी, श्रीकेवलरामाचार्य (कूवा) जी, श्रीकीलदेवाचार्यजी, श्रीसाकेतनिवासाचार्य (टीला) जी, श्रीतनतुलसीदास (चतुर्भुजी) श्रीनारायणदासजी (नाभा) जी श्रीनरहर्यानन्दाचार्यजी, श्रीपीपाचार्यजी, श्रीपरमानन्दाचार्य (पूर्णवैराठी) जी, श्रीभगवन्नारायणाचार्यजी, श्रीमलूकदासजी, श्रीमुरारीदेवाचार्यजी, श्रीयोगानन्दाचार्य, श्रीराघवचेतनाचार्य जी, श्रीलालतुरगीजी,श्रीविजयराघवाचार्य(रामरावल)जी, श्रीमङ्गलदासजी, श्रीरामप्रसादजी, श्रीलाहारामाचार्यजी आदि के कार्य अत्यधिक प्रसिद्ध है। इन आचार्यों मे से कई आचार्यों की सिद्धियो से प्रभावित होकर कई राजा महाराजाओ, बादशाहो आदि ने जागीरे प्रदान की तथा मन्दिर बनवाये। उदाहरणार्थ श्रीभगवन्नारायणाचार्यजी (पिंडोरीधाम) के लिये जहाँगीर ने मन्दिर बनवाया तथा जागीर भेट की, श्रीमलूकदासजी की आज्ञा पर औरगजेब ने काशी तथा आसपास के क्षेत्रो मे हिन्दुओ पर से जजिया कर उठा लिये, श्रीलालतुरगीजी को खिज्रखा सैयद ने जागीर भेट की तथा शाहजहा ने उनकी समाधि मन्दिर बनवाना शुरू किया आदि।

फिर भी कुछ हठधर्मी लोग तथा सगठन ऐसे बच गये थे जो अपने पाशविक बल पर वैष्णवो तथा हिन्दुओ पर अत्याचार करने से बाज नहीं आ रहे थे। ऐसे व्यक्तियो तथा सगठनो से निपटने के लिये अखाडा शक्ति का पुनगर्ठन किया गया तथा इन अखाडो में उन नवयुवको को भर्ती किया गया जो अपने धर्म तथा सम्प्रदाय के लिये प्राणो की बाजी लगाने को तत्पर रहते थे। इन अखाडो में शास्त्रविद्या के साथ साथ शस्त्रसचालन तथा युद्ध विद्या का भी ज्ञान तथा अभ्यास करवाया जाने लगा। इस कार्य को श्रीभावानन्दाचार्यजी ने प्रारम्भ किया जिसमें सर्वश्री अर्जुनदेवाचार्य (जगी) दामोदराचार्य (धून्ध्यानन्द) जी, मुरारीदेवाचार्यजी, विजयरामाचार्य (रामरावल) जी, हठीनारायणाचार्यजी आदि ने सहयोग दिया। इसी कार्य को आगे चलकर सर्व श्रीअनुभवानन्दाचार्यजी, बालानन्दाचार्यजी, रामप्रसादाचार्यजी आदि ने हाथ में लिया।

उपरोक्त कार्यों से निपटकर जगद्गुरुश्री ने श्रीरामानन्द सम्प्रदाय को स्थायित्व प्रदान करने के लिये एक अमोघ व्यवस्था स्थापित की । आपश्री ने अपने शिष्यो प्रशिष्यो को भारत के प्रत्येक गाव मे कम से कम एक श्रीराम अथवा हनुमान मन्दिर स्थापित करने की आज्ञा दी । इस आज्ञा का पालन सम्प्रदाय के प्रत्येक व्यक्ति ने किया फलस्वरूप आज भारत मे कुछ ही ऐसे शहर अथवा गाव होगे जहा श्रीराम अथवा हनुमान मन्दिर न हो । इन मन्दिरो, मठो, स्थानो, आचार्यपीठो आदि की सेवा पूजा तथा सचालन करने के लिए शास्त्रज्ञ, पडित युद्धविद्या विशारद, वैद्यकीय शिक्षा प्राप्त विरक्त आचार्य तथा गृहस्थ ब्राह्मणो को मह त पुजारी, मठाधीश, सचालक आदि के रूप मे नियुक्त किया गया । इन स्थानो के लिये केवल ऐसे ब्रह्मणो को ही इस लिये चुना गया कि जिससे वहा सब ब्राह्मणोचित कर्म अध्ययन, अध्यापन भगवत् पूजन, मानवसेवा दानदेना तथा भेट प्राप्त करना आदि निर्वाध रूप से चालू रहे और भगवत्प्रसाद तथा चरणामृत लेने मे किसी भी वर्णाश्रमी को कोई हिचक न हो । उपरोक्त मन्दिरो आचार्यपीठो मठो आदिमे प्रजा बच्चो को पढाने तथा रोगियो की चिकित्सा सेवा और कथा कीर्तन आदि धार्मिक चर्चाये होती थी । ये सब कार्य निशुल्क होते थे इससे लोग श्रद्धा से प्रेरित होकर तथा सेवा भावना की कद्र करके इन मन्दिरो, मठो आदि मे अविरलरूप और पुष्कलमात्रा मे धन, जमीन, अन्न आदि भेट करते रहते थे । इस भेट प्रवाह से इन संस्थानो की आर्थिक व्यवस्था सुदृढ होगई थी । इन्ही पीठो मठो मन्दिरो आदि मे श्रीरामानन्द सम्प्रदाय मे दीक्षित हुये बच्चो व नवयुवको को शास्त्रो की शिक्षा तथा शस्त्रो का प्रशिक्षण दिया जाता था । इस प्रकार अखाडो के निहग अथवा अन्य कोई विरक्त साधु सघर्षों के दौरान घायल हो जाते थे अथवा अन्यथा बिमार पड जाते थे तो उनकी सेवा सुश्रुषा तथा चिकित्सा भी इन्हीं सस्थानो मे होती थी । इसी प्रकार अखाडो, जमातो आदि के योगक्षेम की व्यवस्था भी इन्हीं मठो मदिरो आदि के द्वारा ही की जाती थी । इस प्रकार यह एक ऐसी स्वय सचालित व्यवस्था बन गई थी कि प्रजा स्वेच्छा से श्रीरामानन्दसम्प्रदाय को जन तथा धन दे और यह सम्प्रदाय प्रजा के रोगो और आततायियो से रक्षा तथा उसकी शिक्षा तथा धार्मिक भावनाओ और आवश्यकताओ की पूर्तिकी व्यवस्था करे । जगद्गुरुश्री ने इस व्यवस्था की देखरेख करने तथा वैष्णवधर्म के प्रचार प्रसार हेतु अपने प्रधान शिष्यो को निम्न लिखित क्षेत्रो मे स्वतन्त्ररूप से कार्य करने के लिए नियुक्त कर दिया था ।

यथा - (१) प्रधान आचार्यपीठ श्रीमठ काशी की व्यवस्था श्रीअनन्तानन्दाचार्यजी के नेतृत्व मे सर्वश्री कवीरदासजी, सेनदासजी तथा रविदासजी(२) वगाल -श्रीसुखानन्दजी (३) पजाव -श्रीसुरसुरानन्दजी (४) काश्मीर -श्रीगाल्वानन्दजी, (५) महाराष्ट्र -श्रीभावानन्दजी (६) उडीसा -श्रीनरहर्यानन्दजी (७) मालवा - श्रीधन्नादासजी (८) गुजरात - श्रीयोगानन्दजी (९)सौराष्ट्र - श्रीपीपाचार्यजी ।

जगदगुरुश्री तथा उनके शिष्यो प्रशिष्योके उपरोक्तकार्यो तथा व्यवस्थासे जनतामे श्रीरामानन्द सम्प्रदाय के प्रति बहुतश्रद्धा उत्पन्न हो गई जिससे इसकी समृद्धि तथा मानव सख्याबल बहुत बढगया । इसका प्रभाव काश्मीर से कन्याकुमारी तथा अफगानीस्तान व द्वारका से ब्रह्मा तक फैलगया । इस फैलाव से एक समस्या यह उत्पन्न होगई कि निकट सर्म्पक के अभाव मे इस सम्प्रदाय के व्यत्तियो के लिये एक दुसरे को पहचानना असम्भव होगया । इस कमजोरी का लाभ उठाकर कई अन्य प्रतिद्वन्दी सम्प्रदायवाले व्यक्ति छद्मवेश मे घुस कर इस सम्प्रदाय का अहित करने लगे । इसी प्रकार कई अनधिकृत व्यक्ति इस सम्प्रदाय मे घुस कर प्राप्त सुविधाओ का अनुचित लाभ लेने लगे । इस समस्या के हल के रूप मे यह प्रथा चलाई गई कि सम्प्रदाय के व्यक्ति जब मिले तो एक दूसरे को पहचानने के लिये अपनी अपनी सम्प्रदायाचार्य तथा द्वाराचार्य परम्परा तथा धामक्षेत्र आदि बोले । ये परम्पराये तथा धामक्षेत्र कहीं छापे नहीं गये थे अत कोई भी अनधिकृत अथवा छद्मवेशी व्यक्ति इनको जान नही सकता था । इनका ज्ञान साम्प्रदायिक दीक्षा देते समय गुरुदेव अपने शिष्य को मौखिक रूप से ही देते थे ।

जगद्गुरुश्री की शारीरिक सम्पति भी खूब अच्छी थी । आपश्री स्वभाव से उदार, क्रातिकारी, युगद्रष्टा, समय को पहचानने वाले तथा नीति व सदाचार के उपासक थे । आपश्री मे अलौकिक प्रतिभा थी तथा आपश्री का चरित्र उदात्त था । आप श्री योगी, ज्ञानी, तपस्वी, सत्य व अहिंसा के उपासक, यतिराज, राष्ट्रवीर और सिद्ध पुरुष थे । अपने विरोधियो को जीतने के लिये आपश्री के शस्त्रागार मे श्रीराममत्र, परमात्मा मे श्रद्धा, साधना, आत्मबल तथा शास्त्रज्ञान आदि आयुध थे । आपश्री अपनी साधना कक्षा मे रहते हुये भी सदा सर्वत्र रहते थे । आपश्री का दिव्य तेज दिग्दिगान्त तक छा गया था। वह तेज राजनैतिक क्षेत्र मे भी उसी प्रकार चमक रहा था जिसप्रकार धार्मिक क्षेत्र मे । सम्पूर्ण जगत उन्हे अपना आचार्य और धर्मगुरु मानता था । स्वदेशी विदेशी, स्वधर्मी-विधर्मी आदि सब आपश्रीमें हार्दिक श्रद्धा रखते थे । जैन, बौद्ध, पारसी, ईसाई, मुसलमान आदि सभी अपनी अपनी आध्यात्मिक शकाओका निवारण आपश्री के

चरणो मे बैठकर किया करते थे। जीव मात्र पर आपश्री की समान करुणा थी, भेदभाव तो कोई था ही नही। आपश्री ने अपने शिष्यो पर धर्म परिवर्तन के लिए कभी कोई जोर नही दिया। आपश्री की अनुग्रह शक्ति स्वभावत सतत सर्वत्र व्यापक रहती थी। आवश्यकता पडने पर आप श्री अपनी निग्रह शक्ति से काम लेने मे भी नही हिचकिचाये। आपश्री नित्य प्रति जनता को सस्कृत के बजाय सरल एव जन साधारण की ही भाषा मे उपदेश देकर हिन्दुधर्म और उसकी मौलिकता को समझाया करते थे, जिसमे प्रत्येक व्यक्ति आपश्री का आशय तुरत समझ जाया करता था। और निर्भय होकर अपने व्यक्तित्व को बनाने तथा उसकी रक्षा करने को तैयार हो जाता था। आपश्री ने मुस्लिम शासन द्वारा पीडित भारतीय जनता मे चेतना और प्राणफूक दिये और हिन्दुधर्म व समाज का तेज प्रकट किया और हिन्दुओ के सुसुप्त बल को पुर्नजागृत करके विरोधियो का प्रतिकार करने के लिये उन्हे सुसज्जित कर दिया। भक्तिमार्ग मे वर्णाश्रम सम्बन्धी आपश्री की उदारता का अभिप्राय यह कदापि नही था कि आपश्री वर्णाश्रम व्यवस्था के विरोधी थे। समाज के लिये इस व्यवस्था को उपयोगी मानते हुये आपश्री भिन्न भिन्न कार्योकी योजना बनाते थे तथा कार्यकर्ताओ की नियुक्ति करते थे। कर्म के क्षेत्र मे वर्णाश्रम मर्यादा आपश्री को मान्य थी। गृहस्थो के लिये इस व्यवस्था को आपश्री आवश्यक मानते थे। तथा वर्णाश्रमधर्मानुसार ही उनको उपदेश दिया करते थे। लेकिन विरक्तो के लिये आपश्री इस व्यवस्था की कोई खास आवश्यकता नही समझते थे। उनके लिये तो आपश्री ने केवल एक ही गोत्र (वर्ण) 'अच्युत' तथा एक ही आश्रम "सन्यास' निश्चित कर दिया था तथापि शास्त्रमर्यादा तथा व्यवहार और कार्यकलापा से अविरोध होने से विरक्त समाज मे वर्णव्यवस्था की धारा यथारूप प्रवाहित होती आ रही है। उपासना के क्षेत्रमे आपश्री ने वर्णाश्रम वर्णाश्रमधर्म निरपेक्ष सबका समान अधिकार की "सर्वेप्रपत्तेरधिकारिण सदा शक्ता अशक्ता पदयोर्जगत्प्रभो। अपेक्षते तत्र कुल बल च नो न चापि कालो न च शुद्धतापि वै ॥" (श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर ४।५०) इस प्रकार घोषणा की जो अक्षरस घटित है। उदारण श्रीकबीर रैदास आदि जग जाहिर है।

सक्षेप मे कहा जासकता है कि जगद्गुरुश्री ने अपने जीवन मे चार अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य किये। यथा - (१) साम्प्रदायिक कलहो की शान्ति तथा अपने सम्प्रदाय की स्थिति सुदृढ करना (२) अत्याचारी बादशाहो की हिन्दूसहारिणीशक्ति को कुठित करना। (३) हिन्दुओ के आर्थिक सकटो को दूर करना तथा (४) रामभक्ति का विपुल प्रचार प्रसार करना।

श्रीरामानन्दाचार्यजी-एक योगी, सिद्ध व चमत्कारिक पुरुषः-

श्रीरामचन्द्रजी का अवतार होने के कारण बहुत सी अलौकिक शक्तियां जगद्गुरुश्री मे जन्म से ही विद्यमान थी। एक बार आपश्री की बारहवर्ष की आयुमे एक बडे भारी यज्ञ का आयोजन हो रहा था। उस समय आपश्री सबके देखते-देखते अन्तर्धान हो गये और थोडीदेर बाद उसी यज्ञ समारोह मे सबके सम्मुख प्रकट हो गये।

विद्याध्ययन के लिये पिताश्री की साथ काशी जाते समय आप श्रीमुस्लिम अत्याचारो से दुखी हिन्दू जनता को आश्वसन देते थे तथा उन्ही से हिन्दू धर्म न छोडने का अनुरोध करते थे। आपश्री की इस प्रवृत्ति मे एक काजी को राजद्रोह दृष्टिगोचर हुआ। उसने आपश्री को इस विषय मे एक भी शब्द नही बोलने का आदेश दिया। इस पर आपश्री ने कहा कि स्वधर्म रक्षण राजद्रोह नहीं है। इस उत्तर से क्रुद्र होकर काजीने आपश्री को उठाकर नदी मे फैक देने का आदेश दिया। सैनिक आपश्री के व्यक्तित्व तथा ओज से इतने प्रभावित होगये कि वे अपने स्थान से हिल भी नहीं सके। उधर काजी के शरीर मे अग्नि प्रदीप्त होगई। जलन से पीडित होकर काजी ने आपश्री की शरण में आकर क्षमा मागी। आपश्री की दयादृष्टि से उसकी जलन शात हो गई और वह अपने सैनिको सहित वहा से चला गया।

एक बार काशीके ब्राह्मणो के एक मोहल्ले में एक बडे भाग को मुसलमानो ने जला दिया खूब लूटखसोट की तथा वहा अपनी एक मस्जिद बना ली। एक दिन मस्जिद के पडोस मे ही एक ब्राह्मण ने पूजा के पश्चात् शखध्वनि की। मस्जिद मे उस समय एक राज्याधिकारी आया हुआ था। यह शखध्वनि सुनकर वह बहुत नाराज हुआ। उसने ब्राह्मण को मस्जिद मे पकडवा मगवाया तथा उसके मकान को आग लगाने का हुक्म दे दिया। मसजिद मे उस ब्राह्मण को खूब पीटा गया। उधर मकान की आग मे उस ब्राह्मण का बालक फस गया। राज्याधिकारी के साथ आये हुये एक हिन्दू सिपाही ने उस बालक को आग से बचाकर श्रीमठ मे भेज दिया तथा उस ब्राह्मण के पीटेजाने का विरोध किया। इस पर क्रुद्ध होकर राज्याधिकारी ने सैनिक को भी पीटने और मुसलमान बनना स्वीकार न करने की हालत मे दोना को मार डालने का हुकम देदिया। दोनोने मुसलमान बनना अस्वीकार करके मरना बेहतर समझा। जल्लादो द्वारा उनके वध के लिये तलवारे उठाते ही काशी के प्रत्येक मन्दिर व मस्जिद की प्रत्येक ईंट से शख की ध्वनि निकलने लगी और जल्लादो के हाथो

से तलवारे छूट गई। यह ध्वनि सात दिनो तक होती रही। अन्त मे सब मुल्लामौलवी तथा काजी जगद्गुरुश्री की शरण मे आये और इस आफत को दूर करने की विनती की। आपश्री ने कहा कि यदि तुम मस्जिद हटालो, मोहल्ले मे नाजायज कब्जा हटालो और हिन्दूओ को सताना छोड दो तो शखध्वनि बन्द हो सकती है। उन्होने ये सब बाते मान ली और आपश्री ने वह ध्वनि बन्द कर दी।

एक बार दिल्ली सम्राट् बहलोललोदी के सिर मे भयकर पीडा हूई। उनको देख उसने जगद्गुरुश्रीको बुलाने के लिए ऊट सवार भेजे। उनको देखकर ही आपश्री ने कह दिया कि तुम लोगो के श्री मठ मे पहुचते ही बादशाह का सिरदर्द समाप्त हो गया है। तुम लोग जब तक चाहो यहाँ आराम करो और वापस जाओ तब उनको हमारा आशीवाद कहना। सैनिक जब दिल्ली पहुचे तो बादशाह को स्वस्थ्य पाया। बादशाह ने अपने गुरु हजरत तकी के साथ जगद्गुरुश्री को भेट के लिये स्वर्णथालो मे बहुमूल्य रत्न तथा वस्त्र भेजे परन्तु आपश्री ने उन्हे जरूरत मन्दो व गरीबो को बटवा दिया और हजरततकी की आध्यात्मिक शकाओ का समाधान किया।

एकबार यवनोने अयोध्या मे कई स्थानो पर ऐसे यत्र लगा दिये थे जिनके नीचे से निकलने वाला हिन्दू अपने आप मुसलमान बन जाता था। यह जानकर जगद्गुरुश्री ने सर्वश्री सुरसुरानन्दजी, पीपाजी, सुखानन्दजी आदि शिष्यो को भेज कर वे सब यत्र उखडवा दिये और अपने वैष्णव यत्र लगवा दिये जिनके नीचे से निकलनेवाला अपने आप हिन्दु बन जाता था। इससे दुखी होकर दिल्ली सम्राट् फिरोजशाह तुगलग ने अपने पीर को जगद्गुरुश्री के पास भेजा। आपश्री ने अपने वैष्णव यत्र हटालेने के लिये निम्न लिखित जगप्रसिद्ध बारह शर्तेरक्खी (१) हिन्दुओ पर से जजिया (काफिरो पर लगाये जाने वाला विशेषकर) हटालिया जाय (२) हिन्दुधर्म स्थानो के बनाने पर जो प्रतिबन्ध है, उसे हटालिया जाय (३) हिन्दू जुलुसो तथा हिन्दू दुल्हो को सवारी पर बैठकर मस्जिद के सामने से गुजरने पर जो प्रतिबन्ध हे उसे उठा लिया जाय (४) हिन्दुधर्म के प्रचार तथा कथावार्ता आदि पर जो प्रतिबन्ध है, उसे समाप्त किया जाय (५) गायो की हत्या बन्द की जाय (६) हिन्दुओ के धर्मग्रथो को जलाना बन्द किया जाय (७) हिन्दुओ के देव मदिरो को गिराकर उनकी जगह मस्जिदे बनाना और मस्जिद मे नमाज पढते समय हिन्दुओ को जबरन बुलाना रोका जाय (८) मोहर्रम अथवा अन्य किसी भी समय हिन्दुओ के उत्सवो को न रोका जाय (९) शख तथा घडी घटे घडियाल बजाने पर जो प्रतिबन्ध है उसे उठा लिया जाय (१०)

किसी भी मेले अथवा यात्रा पर हिन्दुओ से कर नही लिया जाय (११) किसी भी हिन्दूस्त्री का सतीत्वभग नहीं किया जाय तथा उन्हे सताया न जाय (१२) किसी भी हिन्दू व्यक्ति को जवरन मुसलमान न बनाया जाय । बादशाह के द्वारा उपरोक्त शर्त्ते मानलेने पर वैष्णव यत्र हटा लिये गये ।

हिन्दुओ को मुस्लिम अत्याचारो से बचाने के लिये जगद्गुरुश्री ने एक बार अजान देते हुये मुल्लाओ के कठ अवरुद्ध कर दिये । जब कई दिनो तक अजान न हो सकी तो बात दिल्ली सम्राट् गयासुद्दीन तुगल्क तक पहुची । उसको बताया गया कि यह कारस्तानी एक हिन्दू पीर श्रीरामानन्दजी की है । बादशाह ने अपने वजीरो से सलाह मशविरा करके दूव्बनूर तथा मीरतवकी को आदेश दिया कि वे श्रीकवीरजीके शराफत जगद्गुरुश्रीसे अपनी माया समेट लेने के लिये निवेदन करे । ये दोनो महानुभाव अपने साथियो सहित श्रीमठ मे पहुचे और बादशाह की विनती निवेदित की । आपश्री ने सबको सम्मोहित किया तथा उन्हे मुहम्मदसाहब के दर्शन करवाकर उनसे हिन्दुओ पर अत्याचार न करने के आदेश दिलवाये ।

एक बार काशी मे श्रीअनन्तानन्दाचार्यजी के पास समस्त देशके हिन्दू एकत्रित होकर आये और यवनो के अत्याचारो का निवारण करने की प्रार्थमा की । उन्हाने ज.गु श्री को प्रार्थना से अवगत करवाया । आपश्री ने अपनी दिव्य शक्ति से समस्त देश के यवनो की धार्मिक कियाये बन्द करदी । जव वे लोग मस्जिद मे जाते थे तो उनको लकवा मार जाता था ओर नमाज की बाग पुकारने पर उनका गला थवा जाता था । अन्तत दिल्ली सम्राट् मुहम्मदविन तुगलक के क्षमा मागने तथा हिन्दू विरोधी कितने हो कानूनो को रद्द करने पर आपश्री ने अपनी माया समेटली तथा सब धार्मिक क्रियाये वापस चालू करदी ।

तीर्थयात्रा के दौरान कुछ क्षेत्र मे यवन सेना की एक टुकडी ने श्रीरामयज्ञ मे विघ्न डालने का प्रयास किया तो जगद्गुरुश्री ने टुकडी के नायकको स्तम्भित कर दिया । अन्य सैनिको द्वारा क्षमा मागने तथा भविष्य मे यज्ञो मे बाधा न डालने का वादा करने पर आपश्री ने स्तम्भ समाप्त कर दिया । सेनापति मुक्त होकर अपनी टुकडी के साथ वहा से चला गया ।

इसी प्रकार रामपुर मे भी कुछ यवनो ने श्रीरामयज्ञ मे विघ्न उपस्थित करने के प्रयास किये तो जगद्गुरुश्री ने उन सवका ही स्तम्भन कर दिया । क्षमा मागने तथा भविष्य मे ऐसे अपराध न करने की प्रतिज्ञा करने पर ही उनको मुक्ति मिली । फिर तो उन यवनो ने यज्ञ मे आपश्री की बहुत सहायता भी की ।

इसी प्रकार कन्नौज के श्रीराममहायज्ञ के ससय पर भी कुछ म्लेच्छो द्वारा विघ्न उपस्थित करने पर जगद्गुरुश्री ने अपनी योगशक्ति से बडे भयकर सपो की उत्पत्ति की। ये सर्प म्लेच्छो को समाप्त करने लगे । आखिर म्लेच्छो के क्षमा मांगने तथा भविष्य मे ऐसे कर्म न करने की कसम खाने पर आप श्री ने उन सर्पोको अदृश्य कर दिया।

प्रयाग के श्रीराममहायज्ञ के समय पर जगद्गुरुश्री ने अपने मातापिता के दर्शन किये तथा सैकडो कोढियो तथा अन्य रोगियो को केवल अपना शख बजाकर ही निरोग कर दिया । इसी प्रकार एक सद्य विधवा ब्राह्मणी के विलाप को सुनकर आपश्री द्रवित होउठे और आपश्री ने अपना शख बजाकर उसके सद्य मृत पति को जीवित कर दिया।

यात्रा के दौरान चित्रकूट मे राम कथा के अवसर पर भरत मिलाप का प्रसग आने पर जगद्गुरुश्री ने कथाप्रेमियो को भरतमिलाप का साक्षात् दर्शन कराया । इसी प्रकार मिथिलामण्डल मे कथा कहते समय पुष्पवाटिका प्रसग के साक्षात् दर्शन करवाये। श्रीमहाराज सागर पर अपने पार्षदो को चतुरगिणी सेना सहित शदरथजी के तथा श्रीराम-जीके विवाह प्रसग का साक्षात् दर्शन करवाये । बलिया में श्रीविश्वामित्र ऋषि के द्वारा भगवान राम व लक्ष्मण को विद्या ग्रहण करते हुये साक्षात् दर्शन करवाये । अयोध्या मे श्रीरामजन्मभूमि मदिर में श्रीराम कथा सुनाने के लिये मडप मे पहुचते ही जगद्गुरु श्री का स्वरूप भगवान् श्रीराम के सदृश होगया था । आपश्री ने द्वारका मे भक्तपीपा जी को सोने की द्वारका तथा श्री राधाकृष्ण के साक्षात् दर्शन करवाये ।

जगद्गुरुश्री ने अपनी आबू पर्वत की यात्रा के समय एक जैनभिक्षुक तथा एक तात्रिक को शास्त्रार्थ मे हराया था । भिक्षुक तो आप श्री का शिष्य बन गया परन्तु तात्रिक अपनी तंत्रविद्या से जगद्गुरु श्री तथा आपश्री की मण्डली पर पत्थरो इटो तथा कीचड की वर्षा करने लगा । आपश्री द्वारा अपना हाथ ऊचा करते ही वह वर्षा उस तात्रिक तथा उसके साथियो पर होने लग गयी । उनके वहाँ से भागने पर भी वह वर्षा उनका पीछा करती रही । अन्त मे जब वे सब आपश्री के शरणागत हुये तब जाकर वर्षा रुकी । यह देखकर कुछ हठधर्मियो को छोडकर उसतात्रिक के सब साथी आपश्री के शिष्य बन गये । इसी प्रकार दिग्विजयी महासेन की जिह्वा (जिसे श्रीपीपाचार्यजीने उसके गर्व का खण्डन करने के लिए जड कर दिया था) को आपश्रीने पलभर मे स्वस्थ्य कर दिया था इससे वह शरणागत होकर आपश्री का शिष्य बनगया शास्त्रार्थ मे हार जाने पर काशी के दुर्जनानन्द द्वारा एक विषधर सर्प जगद्गुरुश्री के गले मे डाल दिया परन्तु उसने आपश्री को कोई हानि

नही पहुचाई और गले से उतर कर अपने रास्ते चला गया। इस पर दुर्जनानन्द ने आपश्री के ऊपर अग्नि वर्षा की परन्तु आपश्री के पास पहुँचते जलते हुए अगारे शीतल हो गये। इस पर उसने क्रोधित होकर आपश्री के ऊपर अस्थि वर्षा शुरु की परन्तु अस्थिया आपश्री के पास पहुचतेही पुष्पो मे परिणित होगई। अपनी इस हार से क्रुद्ध होकर दुर्जनानन्द आपश्री को मारने के लिए तलवार लेकर दौडा परन्तु वह जगद्गुरुश्री के तेज से हतप्रभ होकर अपनी ही तलवार पर गिर पडा और मरगया। इस घटना से दुर्जनानद के शिष्यो को बहुत क्रोध आया और उन्होने समाधिस्थ अवस्था मे आपश्री को उठाकर गगाजी मे प्रवाहित करदेने का प्रयत्न किया। परन्तु उनके द्वारा पूरा प्रयत्न करने और सारीशक्ति लगाने पर भी वे आपश्री को अपने स्थान से हिलाने मे भी असमर्थ रहे। अपने सब प्रयत्नो मे हारकर वे सब आपश्री के शरण में आये और अपने दुष्कृत्यो के लिये क्षमा मागी। आपश्री ने उनको उपदेश दिया और वैष्णवी दीक्षा प्रदान की।

नवजातशिशु रैदास को अपने पूर्वजन्म का स्मरण था अत भगवद्भक्त होने के कारण अपनी चर्मकार (चमारिन) माता का स्तन पान नही करते थे। इससे चिंतित होकर उनके माता-पिता ने जगद्गुरुश्री की शरण ली। आपश्री ने अपनी योगशक्ति द्वारा, शिशुद्वारा स्तनपान न करने का कारण जान लिया और शिशु को उपदेश देकर स्तनपान करने का आदेश दिया। शिशुरैदास ने नतमस्तक और करबद्ध होकर आप श्री की आज्ञाका पालन किया और दम्पति की चिता दूर हुई।

गागरौनगट के रास्ते मे एक स्थान मे शाक्तो द्वारा देवी का उत्सव मनाया जा रहा था जिसमें बहुत से पशुओ को बलि देने की तैयारी चल रही थी। उसी समय जगद्गुरुश्री उधर पधारे। आपश्री ने उन शाक्तो के गुरु भैरवनाथ को यह हिंसापूर्ण कार्य बन्द करने के लिये आग्रह किया। इस पर भैरवनाथ शास्त्रार्थ करने लगा। आप श्री ने उसे अहिंसा के पक्ष में हरा दिया। इससे भैरवनाथ के सब शिष्य बहुत प्रभावित हुये और बैष्णवी दीक्षा ग्रहण करके आपश्री के शिष्य वन गये। इस पर भैरवनाथ अत्यन्त क्रोधित हुआ और उसने आपश्री के ऊपर यज्ञकुण्ड की अग्नि फेकी परन्तु अग्नि आपश्री का कुछ भी नही विगाड सकी। इस पर भैरवनाथ ने पशु वध करने काशस्त्र (गडासा) आपश्री के ऊपर फेका परन्तु आपश्री के सकेत मात्र से गडासा वापस लौटकर भैरवानन्द की गर्दन पर पडा तथा इसका मस्तक कट कर यज्ञकुण्ड में जा गिरा।

एक बार एक मायावी पुरुष ने जगद्गुरु श्री के उपर हड्डियो की वर्षा करना शुरु की । आपश्री ने अपनी दृष्टि मात्र से ही उन हड्डिया का एक पिटारा बना दिया और उस पिटारे मे आकर्षित कर लिया । उसके अन्दर घुसते ही पिटारा अपने आप बन्द हो गया । इस प्रकार वह मायावी दमघुटने पर मर गया ।

गिरनार से प्राभास जाते समय जगद्गुरुश्री को एक औघड ने अपनी माया के द्वारा अपने पेट मे समालिया । परन्तु आपश्री उसकी मायाको छिन्न-भिन्न करके पुन प्रकट होगये । इस पर इस मायावी ने वायुस्तम्भन कर दिया जिससे आपश्री के पार्सदो का दम घुटने लगा । आपश्री ने अजली मे पानी लेकर तथा उसे श्रीराममत्र से अनियत्रित करके वायुमडल मे चारो ओर फेका जिससे वायु पुन प्रवाहित होगई । हारकर औघड ने आपश्री से क्षमा मागी । आपश्री ने उसे क्षमाकर दिया तथा वैष्णवी दीक्षा देकर अपना शिष्य बना लिया ।

प्रभासपाटन के रास्ते मे एक और औघड जगद्गुरुश्री के ऊपर अग्नि वर्षा करने लगा । आपश्री ने अपने कमण्डल मे से थोडा जल लेकर और उसे अभिमत्रित करके उस अग्नि वर्षा पर छिडका इससे अग्नि वर्षा शान्त होगई, परन्तु उस औघड का शरीर जलने लगा । इस पर वह आपश्री की शरण मे आया तथा क्षमा मागने लगा । आपश्री ने दयावश उसके ऊपर कमण्डल से जल लेकर छीटे मारे जिसमे उसकी जलन शान्त होगई और वह वहां से चला गया । परन्तु थोडी देर मे उसी औघड ने अपनी माया से आपश्री और मडली के चारो तरफ अन्धकार फैलाकर पिशाची गर्जनाये करना आरम्भ कर दिया । इस पर आपश्री ने अपनी दृष्टिके तेज से ही अन्धकार तथा गर्ज-नाओ का नाश कर औघड की आखो मे जलन पैदा करदी । इस जलन से बचने का कोई और उपाय न देख कर वह औघड वापस आपश्री की ही शरण मे आया और अपने कष्ट से मुक्ति पाई । इसी प्रकार आबू पर्वत पर भी अघोरियो ने आपश्री के समक्ष यनेक उपद्रव किये जिनको आपश्री ने बडी सरलता के साथ शमन कर दिया ।

एक बार काशी के कनिष्ठ नामक एक तात्रिकने श्रीमठ मे आग लगा दी । परन्तु जगद्गुरुश्री ने अपनी दृष्टि मात्र से ही उसे शान्त कर दिया । इस पर उसने फिर से अपनी माया का उपयोग करना चाहा तो उसके पेट मे भयकर पीडा होना शुरु होगई । इस पर वह आपश्री की शरण मे आकर क्षमा मागने लगा । आपश्री ने उसे क्षमा करके वैष्णवी दीक्षा दी तथा अपना शिष्य बनाया ।

इसी प्रकार एक बार अपार नामक तात्रिक अपनी तात्रिककन्या विद्या के साथ काशी में आया । एक दिन विद्या की नजर जगद्गुरुश्री की सभा मे बैठे हुए आपश्री के एक युवा ब्रह्मचारी शिष्य पर पडी । उसे देखकर विद्या काम मोहित होगई ।

उसने शिष्य के सामने अपना कामुक प्रस्ताव रक्खा जिसे उसने ठुकरा दिया। इससे अपमानित होकर विद्या ने उसपर तान्त्रिक प्रयोग किया जिससे वह शिष्य गिर पडा और रक्तवमन करने लगा। यह सब लीला जानकर जगद्‌गुरुश्री ने उस शिष्य पर दृष्टिपात किया। फलस्वरूप वह स्वस्थ्य होकर उठ खडा हुआ। विद्याने और भी कई तान्त्रिक प्रयोग किये परन्तु आपश्री की कृपा से सब निष्फल हो गये साथ ही विद्या की सब तान्त्रिक शक्तिया भी समाप्त होगई। यह समाचार पाकर अपार बहुत क्रोधित हुआ। उसने जगद्‌गुरुश्री पर अपनी तन्त्रविद्या का प्रयोग किया परन्तु आपश्री के उपर इसका कोई प्रभाव नहीं पडा। अन्त मे उसने अपनी ईष्टदेवी तारा का स्मरण कियो तारादेवी ने स्वय प्रकट होकर उसकी आखो पर हाथ रक्खा तो उसे दिखलाई दिया कि स्वय श्रीहनुमानजी आपश्री की रक्षा कर रहे है। यह देखकर अपार आपश्री के चरणो मे गिर कर क्षमा मागने लगा। आपश्री ने उसे तथा उसकी पुत्री को क्षमा दान दिया और वैष्णवीदीक्षा देकर अपना शिष्य बना लिये। आपश्री ने अपार का दीक्षा नाम पद्मनाभ रखा। दोनो बाप बेटी दीक्षा लेकर वैष्णवधर्म का प्रचार करने के लिये काशी से निकल पडे। जगन्नाथपुरी के एक जन्मान्ध ब्राह्मण (जो आपश्री के दर्शन करने को बहुत व्याकुल था) के मुह पर हाथ फेर कर चक्षुज्योति प्रदान कर दी। वह ब्राह्मण आपश्री के दर्शन करके कृतार्थ होगया।

वृन्दावन के महात्मा श्रीकृष्णविहारीजी के निमत्रण पर आपश्री एकबार भोजन करने के लिये पधारे। जब भोजन के लिये मण्डली के सदस्यो की पगत लग गई और बन मे से लाये गये कन्दमूल फलफूल परोसे जारहे थे उसी समय आपश्री के दर्शनार्थ वृन्दावन के भक्तो की भीड उमडी। जगद्‌गुरुश्री ने सब दर्शनार्थियो को पगत में बिठाया। ढाक के पत्तो की पत्तले लगादी और अपनी परोसी हुई पत्तल उठाकर उसे ढकदी और उसी पत्तल मे से सब उपस्थित व्यक्तियो को कन्दमूल फूलफल परोस कर सब को तृप्त कर दिया। आपश्री की पत्तल अक्षय पात्र बन गई। सबको भोजन करवाकर ही आपश्रीने भोजन किजा।

त्रिवेन्द्रम् में भगवान पद्मनाभ के मन्दिर मे दर्शनार्थ जानेवाली ब्रह्मणेतर जातियो पर मदिर के पुजारियो ने रोक लगा रखी थी। जब जगद्‌गुरु दक्षिणयात्रा के दौरान वहा पहुचे और कबीर, पीपाजी, रैदास, सेन आदि मन्दिर मे जाने लगे तो पुजारियो ने उन्हे रोक दिया। आपश्री ने पुजारियो को वादविवाद तथा शास्त्रार्थ द्वारा समझाया परन्तु उन्होने एक नहीं सुनी। इस पर आपश्री ने अपनी योग शक्ति से अपने उपरोक्त शिष्यो को एक रूप से मन्दिर मे भेज कर भगवान् के चरणो के स्पर्श के लिये पहुचाया और दूसरे रूप से पुजारियो के सामने ही उपस्थित रक्खा। यह देखकर पुजारी लोग लज्जित हो गये और उन्होने विनीत हो कर आपश्री से क्षमा मागी।

अपनी पजाबयात्रा के दौरान आपश्री ने देखा कि एक स्थान पर एक नागा साधु दो नग्न स्त्रिजो के साथ बैठा शराव पी रहा है। आपश्री ने उसे आदेश देकर उस घृणितकार्य से विरत करना चाहा परन्तु वह क्रोधाविष्ट होकर आपश्री की तरफ झपटा। आपश्री ने उसे वहा स्तम्भित कर दिया। अन्त मे हारकर उसने आपश्री से क्षमा मागी अत उन तीनो को अपनी शरण मे लेकर वैष्णवी दीक्षा प्रदान की। उपरोक्त उदरण आपश्री की योगशक्ति के कुध नमूने है। आपश्री को अपने जीवन मे ऐसे कई चमत्कार दिखाने पडे थे।

श्रीरामानन्दाचार्यजी- एक शास्त्रज्ञ तथा तार्किक

जगद्गुरुश्री का अधिकाश समय योगाभ्यास शिष्यो को शास्त्राध्यापन, पडितो की शकाओ का समाधान करने जनता को स्वधर्म मे आस्था रखने का उपदेश देने, आगन्तुक शास्त्राभिमानियो से शास्त्रार्थ करने आदि मे व्यतीत होता था। बडे बडे दिग्विजयी पडित शास्त्रार्थ करने के लिये आपश्री के सामने उपस्थित होते थे परन्तु शीघ्र ही परास्त होजाते थे। अधिकाश तो आपश्री के शिष्य ही बन जाते थे। अपनी दिग्विजय यात्रा के दौरान भी आपश्री ने कितने ही शास्त्रार्थ इच्छुको को हराया था।

अपने अ ययनकाल मे ही आपश्री ने कालाचार्य दुर्जनानन्द को शास्त्रार्थ मे पराजित करके उसके अनेक शिष्यो को वाममार्ग से विरत करके वैष्णवधर्म मे दीक्षित होने को प्रेरित किया था।

एकबार सत्यमूर्ति नामक एक विद्वान् कई विद्वानो को शास्त्रार्थ मे हराता हुआ काशी में आया और वहा के विद्वानो को विजयपत्र लिखदेने अथवा शास्त्रर्थ करने के लिये ललकारा। विद्वानो ने उसे श्रीमठ मे भेज दिया। जगद्गुरुश्री ने उसके प्रश्नो के उत्तर देकर उसके सदेहो का निवारण किया तथा उसे पराभूत करके अपना शिष्य बनाया। इसी प्रकार हरिद्वार मे एक अद्वैतवादी विद्वान् श्रीगिरीनाथभट्टाचार्य के शंकाओ का समाधान करके उसे आपश्री ने उसे अपना शिष्य बनाया। उज्जैन मे अनेकानेक मालवीय पडितो, कापालिको, वाममार्गियो, शैवो, शाक्तो, नाथो आदि को शास्त्रर्थ मे हरा कर श्रीवैष्णवी दीक्षा प्रदान की। श्रीरगम मे रामानुजीय पूजारियो द्वारा जगद्गुरुश्री के भगवान् के मन्दिर प्रवेश मे बाधा पहुचाने पर आपश्री ने उन सवो को शास्त्रार्थ मे हराया तथा अपने दलबल सहित मदिर मे प्रवेय किया। मेमूर मे एक अद्वैतवादी की शकाओ का समाधान करके उसे अपना शिष्य बनाकर श्रीसुरेश्वराचार्य नाम दिया। त्रिवेन्द्रम् मे शास्त्रो के उदाहरण देकर आपश्री ने यह प्रतिपादित किया कि शूद्रो को भी मदिर प्रवेश तथा श्रीविग्रह के दर्शन करने का अधिकार है। श्रीनगर मे शास्त्रार्थ केलिये उत्सुक विद्वानो को आपश्री ने फटकारा उन्हे शास्त्रार्थ करने के पागलपन को छोडकर हिन्दुधर्म, हिन्दुओ तथा हिन्दूस्थान की रक्षा करने के लिये अपनी शक्तियो का उपयोग करने का आदेश दिया। नासिक मे बौद्धो तथा अद्वैतवादियो के सिद्धान्तो का खडन कर उन्हे सच्चा मार्ग पर आरुढ किया। नैमिषारण्य मे श्रीरामयज्ञ के समय कई अद्वैत-

वादियो को शास्त्रार्थ मे पराजित करके आपश्री ने उन्हे हिन्दुओ मे एकता बनाये रखने तथा सद्धामिक अनुष्ठान करते रहने का आदेश दिया। गागरौनगढ मे राज्य पडित शाक्त विद्वान्श्री कातिकेयचरण को विशिष्टाद्वैत पर आपश्री ने उपदेश देकर उसके मन को शाति प्रदान की थी। प्रभास से द्वारका के मार्ग पर कई पडितो ने आपश्री के साथ शास्त्रार्थ किये तथा पाखण्डियो ने अपने पाखण्डो के प्रदर्शन किये परन्तु आपश्री के शास्त्रज्ञान तथा सिद्धियो के सामने किसी की कुछ नही चली और सबको हारकर आपश्री का शिष्य बनना पडा। इसी प्रकार आपश्री ने मिथिला मण्डल के नैयायिको को हराया। आबूपर्वत पर एक जैन भिक्षुक तथा एक जैन तात्रिक को शास्त्रार्थ मे हराकर तथा अपनी सिद्धियो से पराभूत करके अपने शिष्य बनाये। यही पर एक दिन कुछ व्यक्ति आपश्री के पास आध्यात्मिक जिज्ञासा लेकर आये। आपश्री ने उनकी शकाओ का समाधान करके उनको अपना शिष्य बनाया। पैठण से नासिक मार्ग मे एक जैन साधु सिद्धमणि की शकाओ का समाधान आपश्री ने किया तथा उसे श्रीभागवतानन्द नामसे अपना शिष्य बनाकर वैष्णवधर्म का प्रचार करने के लिये भेजा। भरुच मे भी मध्यमपरिमाणवाद का भरपूर खण्डन किया।

रामेश्वरम् मे शैवो ने उर्ध्वपुण्ड्रधारी वैष्णवो का मन्दिर मे प्रवेश निषिद्ध कर रक्खा था परन्तु आचार्यश्री के शास्त्रज्ञान तथा तेजस्विता से प्रभावित होकर पूजारियो ने आपश्री का ससम्मान मन्दिर मे प्रवेश करवाया।

श्रीरामानन्दाचार्यजी—एक हिन्दुधर्म और हिन्दू रक्षक

यह एक तथ्य है कि यदि श्रीरामानन्दाचार्यजी का अवतार नही हुआ होता अथवा एक दो शताब्दी बाद हुआ होता तो आज भारत मे एक भी हिन्दु नजर नहीं आता। आपश्री ने हिन्दुओ की रक्षा के लिये अनेक कार्य किये उनमे से कुछ की झलकियाँ नीचे लिखी जारही है।

फिरोजशाह तुगलक से आपश्री ने जगप्रसिद्ध बारह शर्ते (जो इसी लेख मे अन्यत्र लिखी जा चुकी है) मनवाकर हिन्दुओ की समाजिक, आर्थिक व धार्मिक, स्थिति सुधारी।

एक बार श्रीगजसिंहदेव ने आकर जगद्गुरुश्री से निवेदन किया कि जूनाखा तुगलक के भय से मेरे चाचा अमोघानरेश श्रीहरिसिंहदेवजी, वैशाखशुक्ल दशमी वि स १३८१ को हिमालय की तराई मे भाग गये। इस पर जूनाखा ने मुझे और अन्य बीसो हजार हिन्दुओ को जबरदस्ती से मुसलमान बना दिया है। मै चाहता हू कि आप हम सबका उद्धार करके वापस हिन्दूधर्म मे लेने की कृपा करे। आपश्री ने उन सबको सरयू तट पर लेजाकर स्नान करवाया तथा श्रीराममन्त्र सुनाकर शुद्ध कर दिया। इसी प्रकार वि स १४८८ मे जूनाखा द्वारा हिन्दुओ से परिवर्तित ५०००० मुसलमानो की सरयूतट पर शुद्धी की। परन्तु यहा आपश्री को एक नई समस्या का सामना करना पडा। ब्राह्मणो ने इन शुद्धिकृत हिन्दुओ को हिन्दूसमाज मे स्वीकृत नही किया। इस पर जगद्गुरुश्री ने उनसे शास्त्रार्थ करके तथा उनको मुसलमान बनादने का डर

दिखाकर उन्हे शुद्धिकृत हिन्दुओ के साथ बैठकर भोजन करने के लिये बाध्य किया ।

अपनी यात्रा के दौरान जनकपुर धाम मे भी अनेक धर्मपतितो को श्रीराममन्त्र तथा वैष्णवीदीक्षा देकर पुन हिन्दूधर्म मे लिया था । वि स १४५४ मे तेमूरलङ्ग के आक्रमण के समय हिन्दुओ के लिये अत्यन्त सकटपूर्ण था । ऐसे समय मे भी जगद्गुरुश्री ने हिन्दुओ की रक्षा की थी ।

श्रीरामानन्दाचार्यजी एक परिव्राजक

जगद्गुरुश्री ने अपने जीवन मे पूरे भारत वर्ष की यात्राये की । भारत का कोई भी प्रदेश ऐसा नही बचा था जो आपश्री का स्वागत करके कृतार्थ नही हुआ हो । इन यात्रा स्थानो और कार्यो का पूर्ण विवरण देना तो असम्भव है परन्तु इतना अवश्य लिखा जा सकता है कि जहा जहा भी आपश्री पधारे और अवसर मिला वहा श्रीराममहायाग, उपदेश, वैष्णवीदीक्षादान, शास्त्रार्थ आदि का आयोजन अवश्य हुआ ।

जगद्गुरुश्री ने निम्नलिखित स्थानो के अतिरिक्त अन्य भी कई छोटे बडे स्थानो की यात्राये की —विजयनगरम्, गोदावरी, विजयवाडा, गुटूर, ओगल, नेलोर, चितूर, आर्कोणम्, मदुराई त्रिचिनापल्ली, नीलगिरि, महिसासुर, भद्रावति, तुगभद्रा, सागली, शोलापुर, महाबलेश्वर, नासिक, भरुच तथा गुजरात के अन्य स्थान, द्वारका तथा सौराष्ट्र के कई स्थान, आबू पर्वत, पुष्कर, महेन्द्रगढ, लोहारू, सिरसा, कुरुक्षेत्र, काश्मीर, कागडा हरिद्वार, बिजनौर, मुरादाबाद, रामपुर शाहजहापुर, सीतापुर, नैमिषारण्य, लखनऊ, कनौज प्रयाग, चित्रकूट, उज्जैन, अमरकटक, अयोध्या, जनकपुर, मिथिला, बलिया, सिन्ध, मुल्तान पेशावर, पजाब, तक्षशिला, रावलपिंडि, दुमेल, बारामूला, श्रीनगर, अमरनाथ, जम्मू, स्यालकोट, बणगगा (कुरुक्षेत्र) लक्ष्मणझूला, स्वर्गाश्रय, देवप्रयाग, टेहरीगढवाल, गगोत्री, यमुनोत्री, उत्तर काशी, बूढेकेदार, तुगनाथ, त्रियुगीनारायण, केदारनाथ, गौरीकुण्ड, बद्रीनारायण, कैलाश, मुक्तिनारायण, भूटान, नेपाल तथा हिमालय के विभिन्न स्थान, गागरौनगढ आदि ।

इन यात्राओ के दौरान कई राजाओ को आपश्री का शाही स्वागत करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ । गागरौनगढमे पीपाजी द्वारा आपश्री का राजकीय स्वागत तथा गागरौनगढ राज्य भेट किया गया था । आमेरनरेश, चित्तौड के महाराणा, उज्जैन नरेश, पुरी के राजा टेहरी गढवाल के राजा आदि ने आपश्री का शाही स्वागत तथा षोडशोपचार पूजा की थी । नेपालनरेश सकुटुम्ब आपश्री के स्वागतार्थ और सत्सगार्थ आपश्री के पास आये थे । विजयनगरम् नरेश श्रीबुक्काराय ने आपश्री की पालकी को कधा दिया था आपश्री के उपदेशो से प्रभावित होकर सोराष्ट्र के कई राजाओ ने आपश्री की शरणागति स्वीकार करके वैष्णवी दीक्षा ली थी और वे धार्मिक कार्यो मे सलग्न हो गये थे । आपश्री के सम्प्रदायाचार्य पाटोत्सव समारोह के अवसर पर रामनगर नरेश अपनी रानियो के साथ उपस्थित रहे थे ।

विजयवाडा मे श्रीवैष्णवो द्वारा आपश्री का भव्य स्वागन किया गया। आर्कोणम् तैलग स्वामियो द्वारा आपश्री की शोभा यात्रा निकाली गई। आपश्री ने उनको सारे राष्ट्र को एक सूत्र मे बाधने का उदेश दिया। राजामुन्द्री मे आध्रवासियो द्वाग आपश्री का भव्य सन्मान किया गया था। तथैव भरुच तथा प्रभास मे जनता द्वारा कापश्री का भव्य स्वागत किया गया।

लखनऊ तथा चित्रकूट मे श्रीरामयज्ञ के समय अनेकानेक लोगोको आपश्री ने वैष्णवी दीक्षा दी। उज्जैन से अमरकटक के मार्ग पर लाखो लोगो को आपश्री ने बैष्णव धर्म मे दीक्षित किया। ताप्ती नदी के तट पर श्री बोधायनजीकी पादुकाओ का दर्शन किये तथा उनकी पूजा की। साथ ही बोधायन पचकम् का पाठ किया तथा बोधायन चरितामृत पर व्याख्यान दिया। आपश्री ने काश्मीर मे बोधायन वृत्ति की खोज की परन्तु वह उपलब्ध नही हुई। मिथिला मे आपश्री ने हिंसा के विरुद्ध-प्रभाव शाली प्रचार किया। काची मे शैवो तथा वैष्णवो के झगडे समाप्त करवा कर आपश्री ने दोनो पक्षो के मनमुटावो को दूर किया। आबूपर्वत पर आपश्री ने नक्खी सरोवर के किनारे देवताओ के द्वारा एक सुन्दर मदिर बनवाकर उसमे भलिन्दसुन द्वारा सुपूजित श्रीरघुनाथजी को प्रतिष्ठिन किया। आबूपर्वत के गुरुशिखर पर आपश्री की चरणपादुकाये आज भी प्रतिष्ठित है। यही पर श्रीसुरसुरानन्दाचार्यजी ने जगद्गुरुश्री से दश प्रश्न पूछे जिनके समाधानो का सग्रह ही श्रीरामार्चन पद्धति परिशिष्ट के साथ "श्रीवैष्णवमताब्जभाष्कर" के रूप मे हुआ जो जगद्गुरुजीकी उपनिषदो, ब्रह्मसूत्रो तथा गीतानन्दभाष्यो के बाद की अन्तिम रचना है। जनकपुरधाम मे आपश्री ने महाराजसागर, श्रीजानकीमन्दिर रत्नसागर आदि की परिक्रमा की। गिरनार के जिस शिखर पर जगद्गुरु श्रीने निवास किया था वह आजकल "श्रीरामानन्दजी की पादुका" के नाम से प्रसिद्ध है और वहा आपश्री की पूर्ति स्थापित हो चुकी है। आज तो गिरनार पर श्रीरामानन्द सम्दाय के बहुत से स्थान स्थासित हो चुके है जिनमे से श्रीरघुनाथ जी मन्दिर, रामटेकरी, भरतवन, रामझरोखा, शेषवन, लम्वा हनुमान, चीपियावाले की जगह बोलदेवी आदि अधिक प्रसिद्ध है। आपश्री ने कुछ कालतक चित्रकूट मे पर्णकुटी बनाकर वहाँ पर विश्राम किया था और जनता को सत्सग का लाभ दिया था। एक बार आपश्री ने कामदगिरि की परिक्रमा करते हुए भरत मिलाप के साक्षात् दर्शन स्वय ने भी किये तथा अपनी मण्डली को भी करवाये। तक्षशिला के महाविद्यालय के जले हुये श्रेष्ठतम पुस्तकालय को देखकर जगद्गुरु की आखो मे आंसू आगये थे। इसी प्रकार प्रभास मे सोमनाथ मदिर के खडहरो को देख कर आपश्री रो पडे थे। जगद्गुरु श्री ने अपने साकेतगमन के अवसर पर ध्यानावस्थित होकर यौगिक क्रियाओ द्वारा प्राण तथा अपान वायुओ को सम करके सर्वेश्वर श्रीरामजी का ध्यान कर सशरीर दिव्यधाम श्रीसाकेत मे प्रवेश कर इहलीला को वि स. १५३२ श्रीरामनवमी के दिन सम्वरण किया। ॥ ॥

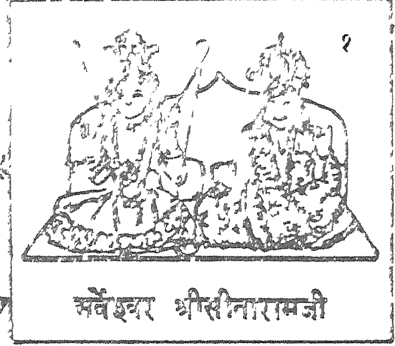
जगद्गुरु श्रीत्रिदण्डिग्रन्थमालाया उनचत्वारिंशत्तमपुष्पम्

गवेश्वर श्रीसीतारामाभ्यां नमः

श्रीरामानन्दसम्प्रदायके ३९वे आचार्य

महामहोपाध्याय जगद्गुरु
श्रीरामानन्दाचार्य रघुवराचार्य

स्मृतिग्रन्थः



सर्वेश्वर श्रीसीतारामजी

२१ से २



जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी

२३ से ३८



जगद्गुरु श्रीरघुवराचार्यजी



जगद्गुरु रामप्रपन्नाचार्यजी



स्वामी रामेश्वरानन्दाचार्यजी

श्रीसाकेतधामसोपान

